

जैनाचार्य-जैनधर्मविद्या-पूज्यश्री-नामोलालजी-महागज-

विग्नित प्रकाशिसाम्यथा व्याख्या समष्ट्यनम्

हिन्दी-गुर्जर-भाषाज्जुवादमहितम्-

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रम्

(प्रथमो भागः)

नियोजक

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यान-
पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी महागज.

प्रकाशक

अ० भा० श्वे० स्या० जैनशास्त्रोद्धार समिति प्रमुग्य श्रेष्ठि-
श्री बलदेवभाई डोसाभाई पटेल महोदय मु अहमदाबाद

प्रथम-आवृत्तिः
प्रति १२००

वीरसंवत्
२५०६

विक्रमसंवत्
२०३६

इस्वीसन्
१९८०

मूल्यम्-रु० ४०-००

श्री
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिस्मृत भाग १ की विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमांक

विषय

पृष्ठाङ्क

प्रथम वक्षस्कार

१	मङ्गलचरण	१—३
२	प्रस्तावना	३-८
३	नमस्कार निक्षेप	९-११
४	गौतमस्वामी का वर्णन	१२-१६
५	जम्बूद्वीपके सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर	१७-२२
६	जम्बूद्वीप का प्राकारभूतजगतीका वर्णन	२२-३४
७	पद्मवरवेदिका के बहिर्भागस्थ वनपण्ड का वर्णन	३५-४३
८	वनखण्ड की भूमि भाग का वर्णन	४४-४९
९	जम्बूद्वीप की द्वारसख्या एव द्वारों के स्थान विशेष का वर्णन	४९-५५
१०	भरतक्षेत्र के स्वरूपका वर्णन	५५-६४
११	दक्षिणार्ध भरतवर्षका निरूपण	६४-७५
१२	दक्षिणार्धभरत का सीमाकारी वैताढ्य पर्वत कहाँ है? उसका कथन	७५-८२
१३	वैताढ्य पर्वतके पूर्व पश्चिम भागमे आगत दो गुफाओंका वर्णन	८२-९२
१४	आभियोग दो भ्रैणीका निरूपण	९२-१०६
१५	सिद्धायतनकूटका वर्णन	१०७-११७
१६	दक्षिणार्ध भरतकूटका निरूपणम्	११७-१३०
१७	वैताढ्य नाम होनेके कारण का कथन	१३०-१३२
१८	उत्तरभरतार्द्ध का स्वरूप वर्णन	१३३-१३९
१९	उत्तरार्धभरतमे ऋषभकूटपर्वतका निरूपण	१४०-१४८

दूसरावक्षस्कार-प्रथमारक

२०	कालके स्वरूपका निरूपण	१४९-१८३
२१	सुषमासुषमानामकी अवसर्पिणी का निरूपण	१८४-१९८
२२	कल्पवृक्षके स्वरूपका कथन	१९९-२२२
२३	सुषमसुषमाकालमे उत्पन्न मनुष्यों के स्वरूपका कथन	२२२-२४०
२४	सुषमसुषमाकालमावि मनुष्यके आहारादिका कथन	२४१-२५४
२५	युगलियों के निवास का निरूपण	२५४-२५७
२६	सुषमसुषमा कालमे गृहादिके होने के संबन्धमे प्रश्नोत्तर	२५८-२६३
२७	सुषमसुषमादिकालमे राजादिके विषयमे प्रश्नोत्तर	२६४-२७०
२८	उसकालमें आबाह विवाहादि विषयमें प्रश्नोत्तर	२७१-२७५
२९	उसकालमे शकटादिके अस्तित्वसंबन्धी प्रश्नोत्तर	२७५-२८०
३०	उसकालमे गर्तीदिके सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर	२८१-२८४

३१	उमसमयमें लिख्य उपद्रवगण्यन्धी प्रश्नोप	२१०-२०१
३२	उमसालके मनुष्योंकी भ्रातृभार्याः का निरूपण	२०१-२०२

दूसरा आरक

३३	सुपमानामके दूसरे आरेका निरूपण	२०२-२१०
३४	सुपमानामके आरेमें भ्रातृभार्याका निरूपण	२११-२१६

तीसरा आरक

३५	तीसरे आरकके स्वरूपका कथन	२१५-२२३
३६	सुपमदुपमासालके अन्तिम त्रिभागमें लोक व्यवस्था का कथन	२२४-२२९
३७	कुलकर्ता के प्रकारका कथन	२२९-२३३
३८	ऋषभस्वामी के त्रिजगत्जनपननीयता का कथन	२३३-२५०
३९	ऋषभस्वामीके शिश्रागृहण के अनन्तरीय स्मृत्यका कथन	२५०-२६३
४०	भगवान की भ्रातृभार्याका कथन	२६४-२७१
४१	भगवानका देवज्ञान प्राप्तिका कथन	२७१-२८१
४२	ऋषभस्वामी को वेदज्ञानोत्पत्तिके अनन्तरीय कार्यका निरूपण	२८१-२९३
४३	भगवान के जन्मकल्याणसदिका निरूपण	२९३-२९९
४४	भगवानके निर्वाणके बाद के देवकृत्यका निरूपण	२९९-३१०
४५	भगवानके निर्वाणके अनन्तर ईशानेन्द्रके कर्तव्यका कथन	३११-३१८
४६	६४ इन्द्रके आगमनानन्तर देवेन्द्र शक्रके कार्य का कथन	३१८-३२६
४७	भगवान आदिके कलेवरके स्मरणसदिका निरूपण	३२६-३३६
४८	भगवान आदिके कलेवर चिन्तामें रखनेके बादका शक्रादिके कार्य का निरूपण	३३६-३४५
४९	अस्थिसंचयके बाद की विधी का निरूपण	३४५-३५०

चतुर्थ आरक

५०	चतुर्थ आरक के स्वरूप का कथन	३५१-३५६
----	-----------------------------	---------

पांचवां आरक

५१	पांचम आरक के स्वरूपका कथन	३५७-३५२
----	---------------------------	---------

छठा आरक

५२	छठे आरेका स्वरूपनिरूपण	३५२-३८३
५३	उत्सर्पिणी के दुष्पमा आरकमें अवसर्पिणीके दुष्पमा आरकसे विशिष्टताका कथन-३८४-४९४	
५४	उत्सर्पिणी दुष्पमाकालके मनुष्यों के कर्तव्य एवं आकार भावप्रत्यक्षतारका कथन-४९४-४९९	
५५	दुष्पमसुपमा कालको वर्णन-	४९९-५११

तीसरा वक्षस्कार

५६	भरतवर्ष नाम होने के कारण का कथन-	५१२-५१६
५७	भरत चक्रवर्ती के उत्पत्त्यासदिका निरूपण-	५१६-५२६
५८	भरत चक्रवर्ती के दिग्विजयासदिका निरूपण-	५२७-५४८

श्री
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र भाग १ की विषयानुक्रमणिका

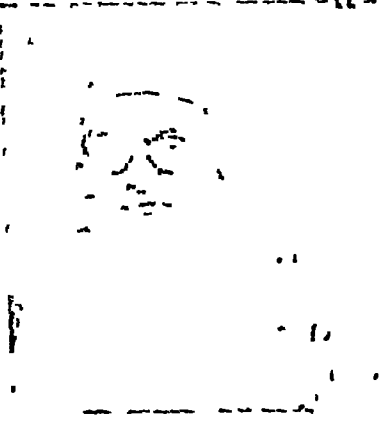
अनुक्रमिक	विषय	पृष्ठांक
	प्रथम वक्षस्कार	
१	मङ्गलाचरण	१—३
२	प्रस्तावना	३—८
३	नमस्कार निक्षेप	९—११
४	गौतमस्वामी का वर्णन	१२—१६
५	जम्बूद्वीपके सम्बन्धमे प्रश्नोत्तर	१७—२२
६	जम्बूद्वीप का प्राकारभूतजगतीका वर्णन	२२—३४
७	पद्मवरवेदिका के बहिर्भागस्थ वनपण्ड का वर्णन	३५—४३
८	वनखण्ड की भूमि भाग का वर्णन	४४—४९
९	जम्बूद्वीप की द्वारसख्या एव द्वारों के स्थान विशेष का वर्णन	४९—५५
१०	भरतक्षेत्र के स्वरूपका वर्णन	५५—६४
११	दक्षिणार्ध भरतवर्षका निरूपण	६४—७५
१२	दक्षिणार्धभरत का सीमाकारी वैतादय पर्वत कहाँ है? उसका कथन	७५—८२
१३	वैतादय पर्वतके पूर्व पश्चिम भागमे आगत दो गुफाओंका वर्णन	८२—९२
१४	आभियोग दो श्रेणीका निरूपण	९२—१०६
१५	सिद्धायतनकूटका वर्णन	१०७—११७
१६	दक्षिणार्ध भरतकूटका निरूपणम्	११७—१३०
१७	वैतादय नाम होनेके कारण का कथन	१३०—१३२
१८	उत्तरभरतार्द्ध का स्वरूप वर्णन	१३३—१३९
१९	उत्तरार्धभरतमें ऋषभकूटपर्वतका निरूपण	१४०—१४८
	दूसरावक्षस्कार—प्रथमारक	
२०	कालके स्वरूपका निरूपण	१४९—१८३
२१	सुषमासुषमानामकी अवस्पर्पिणी का निरूपण	१८४—१९८
२२	कल्पवृक्षके स्वरूपका कथन	१९९—२२२
२३	सुषमसुषमाकालमे उत्पन्न मनुष्यों के स्वरूपका कथन	२२२—२४०
२४	सुषमसुषमाकालभावि मनुष्यके आहारादिका कथन	२४१—२५४
२५	युगलियों के निवास का निरूपण	२५४—२५७
२६	सुषमसुषमा कालमें गृहादिके होने के संबन्धमें प्रश्नोत्तर	२५८—२६३
२७	सुषमसुषमादिकालमे राजादिके विषयमे प्रश्नोत्तर	२६४—२७०
२८	उसकालमें आवाह विवाहादि विषयमें प्रश्नोत्तर	२७१—२७५
२९	उसकालमे शकटादिके अस्तित्वसंबन्धी प्रश्नोत्तर	२७५—२८०
३०	उसकालमें गर्तादिके संबन्धमें प्रश्नोत्तर	२८१—२८४

नामाश्चर्यकरो रसो येषां ते तथाभूताः नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः । तान द्रुमगणान् सदृष्टान्तं वर्णयति तान् वर्णयितुं दृष्टान्तमाह—'जहा से' इत्यादि । यथा येन प्रकारेण तत् प्रसिद्धं सुगन्धवरकलमशालितण्डुलविशिष्टनिरूपहतदुग्धराद्धं सुगन्धाः उत्तमगन्धयुक्ताः वगः—प्रधानाः निर्दोषक्षेत्रकालादिसामग्रीभिः प्राप्ततण्डुलभावाः, ये कलमशालितण्डुलाः कलमशाळेः तण्डुलास्ते सुगन्धवरकलमशालितण्डुलाः तथा विशिष्टं—नीरोग—गवादिभक्तवा-दुत्तमगुणसम्पन्नं निरूपहतं— पाकादिभिरनुपहतं च यद् दुग्धं तद् विशिष्टनिरूपहतदुग्धम्, उभयो द्वन्द्वे सुगन्धवरकलमशालि तण्डुल—विशिष्ट निरूपहत दुग्धानि तैः राद्धं—पक-म्, उत्तमशालितण्डुलैर्विशुद्धदुग्धेन च पाकनिपुणेन निष्पादितमिति भावः, तथा—शारदघृतगुडखण्डमधुमैलितम् शारदघृतगुडखण्डमधुभिः तत्र—शारदघृतं—शरदतुभवं घृतं गुडः प्रसिद्धः खण्डं—'खॉड' इति प्रसिद्धम्, मधु—शहद इति प्रसिद्धं तैर्मैलितं योजितम् अतएव अतिरसम्—प्रशस्तरससम्पन्नम्, उत्तमवर्णगन्धवत्—प्रकृष्टवर्णगन्धसम्पन्नं परमान्नं पायसं भवेत्, अथवा—इव यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनो निपुणैः पाककुशलैः सूपपुर्यैः पाककारिपुर्यैः सञ्जितः—निष्पादितः चतुष्कल्पसेकनसिक्त इव चत्वारः कल्पाः पाकशास्त्रोक्तविधयो यत्र स चतुष्कल्पः स चासौ सेकश्चेति चतुष्कल्पसेकस्तेन सिक्तः युक्तः पाकशास्त्र विदो-हि ओदनेषु कोमलतोत्पादनयै चतुरः सेककल्पान् कुर्वन्तीति बोध्यम् । तथा—कलमशालिनिर्वर्तितः—कलमशालितण्डुलनिष्पादितः तथा विप्रशुक्तः—पाकदोषरहितः सुपक्वः तथा सबाष्पमृदुविशदसकलसिक्थः सबाष्पाणि—वाष्पसहितानि निःसरद्वाष्पयुक्तानि मृदुनि कोमलानि विशदानि—सर्वथा तुपादिमलापगमाद्विशुद्धानि सकलानि—पूर्णानि सिक्थानि कणा यत्र स तथा—अनेकशालनकसंयुक्तं अनेकानि बहूनि यानि शालनकानि निष्छानकानि तै संयुक्तः ओदनो भवेत्, अथवा इव यथा परिपूर्णद्रव्योपस्कृत—परिपूर्णानि—मोदकाद्रभूतानि सर्वाणि यानि द्रव्याणि कैसरैलावातद्राक्षादीनि तैरुपस्कृत. परिष्कृत—यद्वा तानि उपस्कृतानि निश्चितानि यत्र स तथा, तथा—सुसंस्कृतं यथामात्राग्नि तापादिनोत्तमस्कार सम्पन्नीकृत, तथा—वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तः वर्णादयोऽत्राऽतिशायिनो गृह्य-समणाउसो'— इत्यादि । सातवें कल्पवृक्ष का नाम चित्ररस है । प्रथम काल में ये कल्पवृक्ष

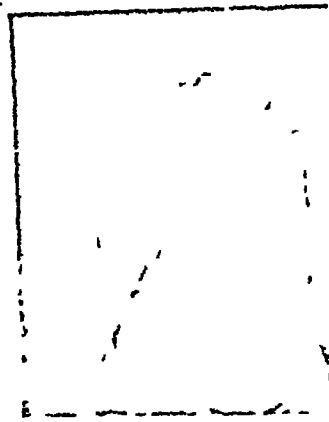
इस भरतक्षेत्र में जगह २ पर अनेक होते हैं । जैसा इनका नाम है उसी के अनुसार ये गुणो-पेत है । मधुर आम्लादि रस इनका अनेक प्रकार का होता है । अथवा—आस्वादक जनों को वह रस आश्चर्यकारी होता है । इसलिये भी इन कल्पवृक्षों का नाम चित्ररस हो गया है । ये कल्पवृक्ष इस मधुरादि मेद से अनेक प्रकार के रसादि को किसो के द्वारा किये जाने पर

नहीं देते हैं किन्तु इनका ऐसा ही स्वभाव है कि ये स्वभावतः ही उस प्रकार के परिणमनवाले ठेकेकाष्ठे पुष्कण अथवा भां डोय से जेवु जेमनु नाम तेवा ज गुणोत्थी को युक्त से मधुर आस्वादक रस जेमना अनेक प्रकारना डोय से अथवा आस्वादकेना भाटे ते रस आश्चर्यकारी डोय से जेथी पषु आ कल्पवृक्षो चित्ररस नामथी प्रसिद्ध थई गया से जे कल्पवृक्षो मधुर वगेरे रसोने कौई बडे नहिं पषु स्वत स्वभावत. ज आ प्रभाषे परि

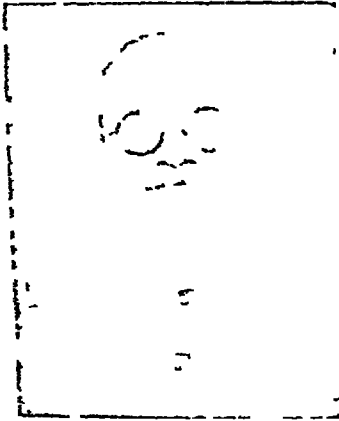
५९	भरत चक्रवर्ती के गमन के बाद उनके अनुचर वर्ग के कार्यका निरूपण-	५४८-५६८
६०	अष्टाण्डिका समाप्त करके आगेके कार्य का निरूपण	५६८-५८४
६१	भरतचक्रीके स्नानादिसे निवृत्त होनेके अनन्तर कार्यका निरूपण	५८४-५९८
६२	मागधतीर्थाधिपतिका भरतचक्री को भेटप्रदान का निरूपण	५९९-६०९
६३	भरतचक्रीका बरदामतीर्थ के प्रतिगमनका निरूपण-	६१०-६१९
६४	वर्द्धकीरत्नको आवसथादिबनानेकी आज्ञा करने पर वर्द्धकीरत्न के कौशल्यका वर्णन-	६१९-६२७
६५	रथवर्णन पूर्वक भरत महाराजा के रथावरोहणका निरूपण	६२७-६४३
६६	सिंधूदेवी को साधने का निरूपण	६४३-६५४
६७	वैताढ्यगिरिकुमाग्देव के साधने का कथन	६५४-६६३
६८	सुषेणसेनापति के विजय का वर्णन	६६३-६८८
६९	तमिस्त्रा गुहा के द्वार को उद्घाटन करने का निरूपण-	६८८-७२१
७०	उन्मत्त निमग्गनाम की महानदी के जलाशयका निरूपण- एव उत्तरार्धभूत जितनेका निरूपण-	७२१-७४०
७१	भरत महाराजाके सैन्यकी स्थितिका कथन—	७४०-७५९
७२	आपातचिलातके देवों के उपासना का निरूपण—	७६०-७७२
७३	वर्षा हो जाने के बाद भरतमहाराजा के कार्य का वर्णन—	७७३-७८०
७४	भरतमहाराजाके सैन्य की स्थिति का वर्णन-	७८१-७८८
७५	सातरात्रि के बादका घृत्तांत वर्णन-	७८९-८०६
७६	उत्तरदिशाके निष्कूटजितनेका एव ऋषभकूट को जितनेका वर्णन-	८०६-८२०
७७	नमी एव विनमी नामके विद्याधरों के विजयका वर्णन-	८२०-८३४
७८	भरत महाराजा के दिग्गयात्रा तथा दक्षिणार्ध में भरत के कार्यका वर्णन-	८३४-८६५
७९	राज्यों के जितने के बादका भरतमहाराजा-के कार्य का वर्णन-	८६५-८८९
८०	अपनी राजधानी में आये हुए भरत महाराजा के कार्य का निरूपण-	८९०-९०८
८१	भरतमहाराजाके राज्याभिषेक विषयका निरूपण—	९०९-९५७
८२	भरतमहाराजाके रत्नोत्पत्तिके स्थान का निरूपण-	९५७-९५९
८३	छहोंखंडों के पालन करते हुए भरतमहाराजा की प्रवृत्ति करने का निरूपण-	९५९-९७७
८४	प्रकारान्तर से भरतनामकी अन्वर्थताका कथन-	९७८-९८०



શ્રી ગાનિલાલ ભગતરામભાઈ
અમદાવાદ



(સ્વ) શ્રી ગામલભાઈ વેલંબલાઈ
વીગણી-ગાજકોટ



શ્રી પોપટલાલ ભાવલભાઈ-મહેતા
ભમનેશ્વર



(સ્વ) શ્રી જાનલાલ શામળદાસ
લાવચાર-અમદાવાદ.

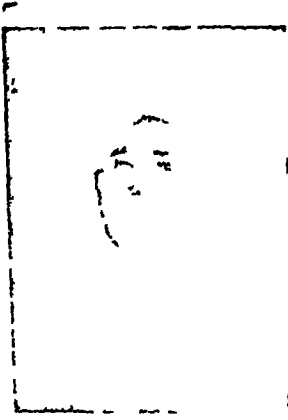


શ્રી રામલભાઈ શામલભાઈ
વીરાણી-રાજકોટ.



શ્રી લાલાજી-કિશનચંદજી સા. જીહરી
ડમેલા-સુપુત્ર ચિ. મહેતાચંદજી સા.
નાના-અનિલકુમાર જૈન દોયસા દિલ્હી

આચાર્યમુરુબીશ્રીઓ

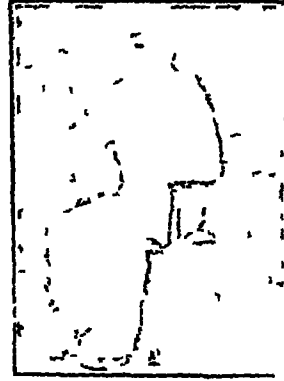


માનવતા આદ્ય
મુરુબી શ્રી શ્રી
માણેકલાલભાઈ
અમુલખભાઈ મહેતા
ઘાટકોપર-મુખર્ષી

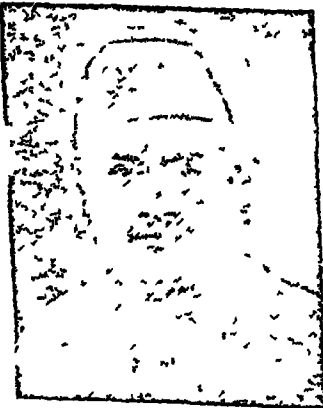
(સ્વ.) ગૅઠશ્રી હરખચંદ કાલીદાસ વાલ્કિયા
લાણવડ



(સ્વ) ગૅઠશ્રી દિનેશભાઈ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.



(સ્વ) ગૅઠ રંગજીભાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ



ગૅઠશ્રી કેશિંગભાઈ પાટીલાલભાઈ
અમદાવાદ

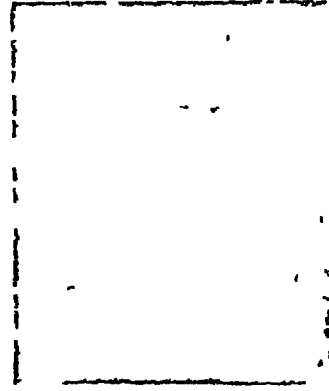


સ્વ. ગૅઠશ્રી આત્મારામ માણેકલાલ
અમદાવાદ

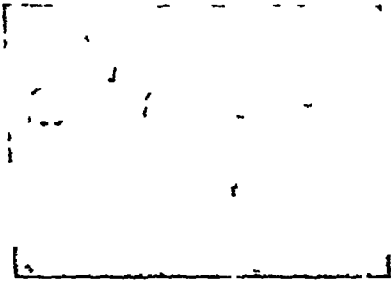
आद्यभुरग भीश्रीओ



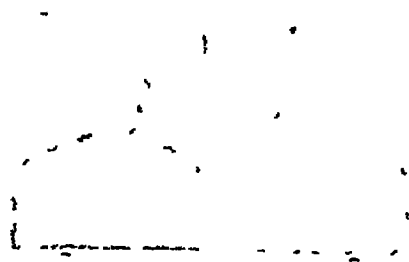
स्व. गेळशी लुरिलास अनोपयंद शाह
अंलयात.



स्व. शेठ श्री तागचंदजी साहेव गेलडा
मद्रास.



शेठश्री श्रीमनलालजी कृष्णभचंदजी
अजीतवाले सपरिवार



शेठ श्री कीशनलालजी फुलचंदजी लुणिया
बेगलोरवाले

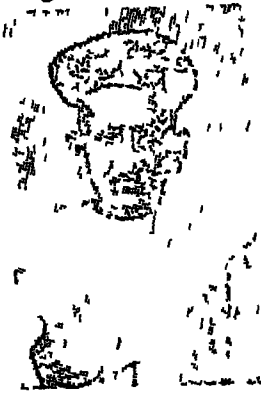


बच्चे बेठेला-मोटामाई श्रीमान् मूलचंदजी -
जवाहीरलालजी बरडिया
पानुमा बेठेला-भाई मिश्रीलालजी बरडिया
बनेला-भाई पूनमचंदजी बरडिया

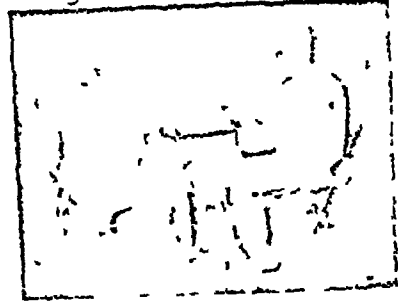


श्रीमान् शेठश्री
खींवरजजी सा. चोरडिया
मु० मद्रास

આદ્યમુરખીશ્રીઓ



પટેલ ડાસાભાઈ ગોપાલદાસ
મુ. સાહુદ (જી. અમદાવાદ)



૧ અમીચ દલાઈ તથા
૨ ગીરશ્વરભાઈ વ્યાઠવિયા મુ. બે ગલોર



શાહજી શ્રી મોહીલાલજી ગલુન્ડિયા
મુ. હદયપુર



મદ્રાસવાલા સ્વર્ગસ્થ ન્યાયમૂર્તિ
રતીલાલભાઈ લાયચ દલાઈ મહેતા



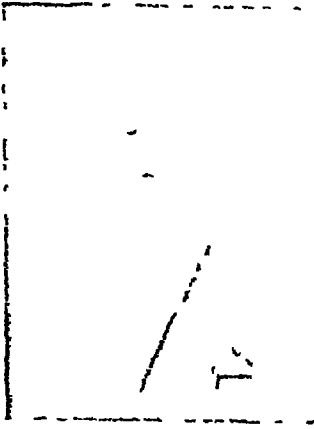
સ્વ. શ્રી શ્રી મહેશ્વરજી નેમચંદલાઈ
મુ. માગસોલ



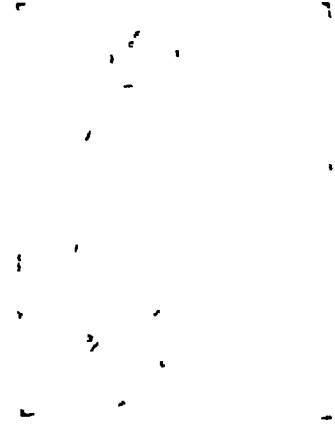
અમલનેર

પારસ જોગમલજી મુલતાનમલજી
શેઠ રઘુનાથમલજી, શેઠ વાલુલાલજી
પન્નાલાલજી, શેઠ મુગનચંદનો

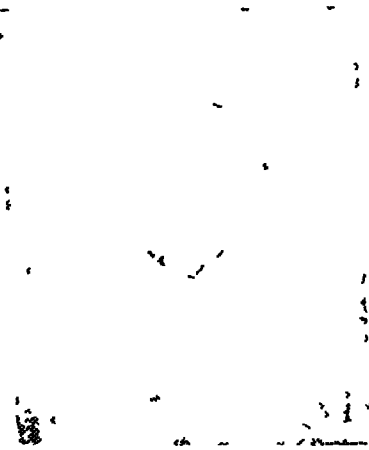
आद्यमुञ्चरीश्रीजो



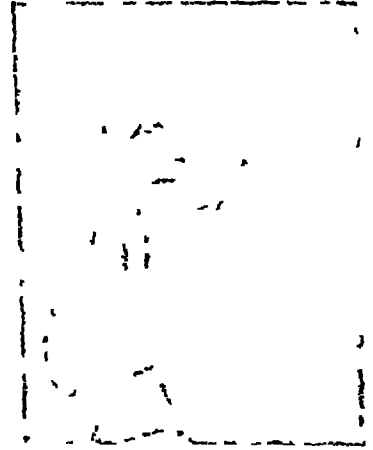
श्रीमान् जेठ भणीसास पोपटसास बेरा
अभवाए.



धीमान् शेठ लालाजी कपरचन्दजी
नाहटा, मु. देहली



श्री प्रभासास दुर्लालभाई पारेभ
राजकोट.



देवारी हरगोविंद जेथदसास
राजकोट.

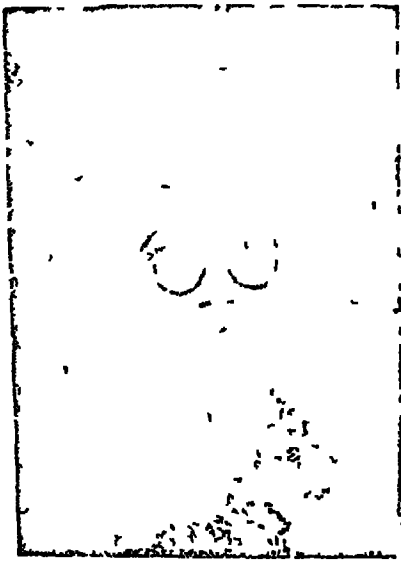


श्रीश्री भणीसास जेठुसास
पालनपुरवाणा



श्रीमान् लालाजी पन्नालालजी नाहटा
सपरिवार-दिल्ली

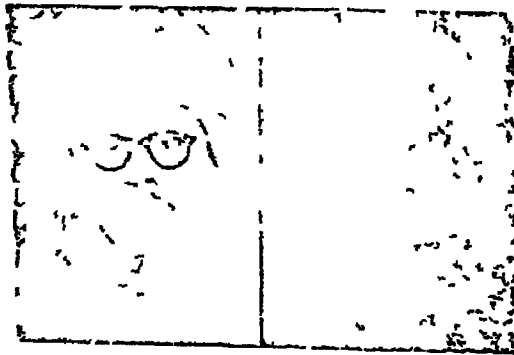
आद्यमुखीश्रीओ



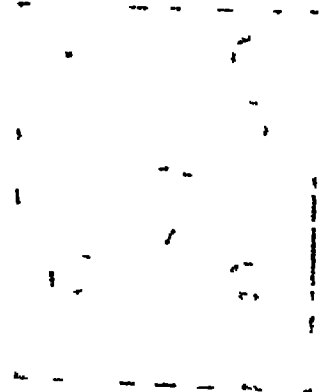
श्रीमान् गेठ कानुगा चि गडमलजी-अमदावाद



श्रीमान् गेठ धनराजजी पन्नालालर्जः
जागडा, मु. जालना (महाराष्ट्र)



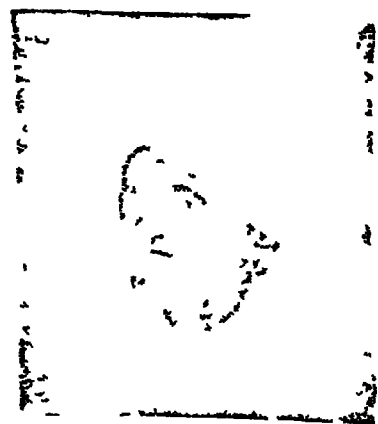
शेठ श्री मिश्रीलालजी लालचंदजी सा. लुणिया
तथा शेठश्री जेवंतराजजी-अमदावाद



श्रीः प्रभुदाभलार्ध भूललार्ध देशी
राजकोट

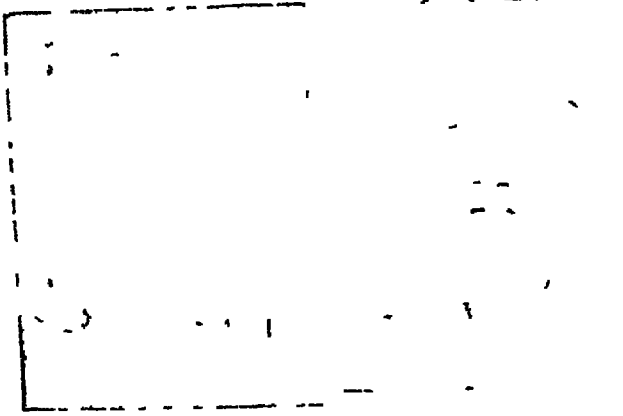


अदेरी रसीकदास मणोदास महेता
मद्राप्र



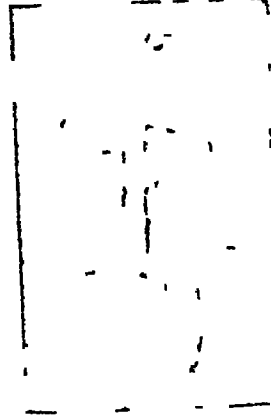
स्व. श्रीमान् शेठश्री मुकनन्दजी सा०
कालिया-पाली महाराष्ट्र

આદ્યમુરબીશ્રીઓ



પાલિનપુરવાલા
કોહારી અમુલખચદ મલુકચદ

ગૃહશ્રી કચ્છલાલજી
દરડા-મુ. ચિયાલા



ભાનુભાઈ દેગવલાલ ભાણુસાલી
પાલિનપુર-મુંળઈ

શેઠ જગજીવનભાઈ રતનસીભાઈ
બગડિયા-દામનગર



શ્રીમાન લાલાજી હજારો લાલજી
જવેરી-દેહલી

ગૃહ ભોળીલાલ છગનલાલ લાવસાર
સરસપુર-અમદાવાદ

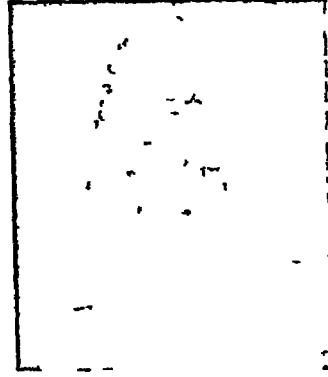


શેઠ શ્રી મોહનજી ભગરંબંદલી
શેઠિયા વીકાનેર

આવમુરુખીશ્રીઓ

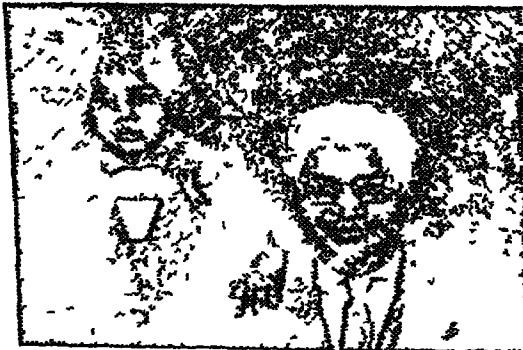
શ્રી પન્નાલાલજી ઠાંગમલજી પારખ
નગરપાલીકા અધ્યક્ષ અમલનેર

શ્રીમાન લીકમચ દજી એલ. ચુતર
ખી એ એલ એલ ખી
મુ તેવાચા ા અધ્યક્ષ



શ્રી શાંતિલાલ ટી. અજમેરા
અમલવાદ

સ્વ. મૂલચંદલાઈ જેઠાલાલભાઈ મહેતા
(કેટડાવાલા) રાજકોટ



શ્રીમાન જિનેન્દ્રકુમારજી જૈન
વી. એ. એલ. એલ. વી.
જોધપુર-રાજસ્થાન

श्री वीतरागाय नमः ॥
श्रीजैनाचार्य जैन धर्मदिवाकर पूज्य श्रीघासीलालव्रतिविरचितया
प्रकाशिकाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतं

॥ श्रीजं द्वै पप्रज्ञप्ति सूत्रम् ॥

मङ्गलाचरणम्

श्रीसिद्धराजं स्थिर सिद्धिराज्यं,
प्रदं गतं सिद्धिगति विशुद्धम् ।
निरञ्जनं शाश्वतसौधमध्ये,
विराजमानं सततं नमामि ॥१॥
चतुर्ज्ञानोपेतं जिनवचनपीयूषमतुलं,
पिबन्तं कर्णाभ्यामविरति पुटाभ्यां गुणगृहम् ।
अघौघं भिन्दन्तं सकलजनकल्याणसदनं,
भजे तं श्रीमन्तं गुणिषु गुणिनं गौतममिनम् ॥२॥

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र का हिन्दी अनुवाद

मंगलाचरण का हिन्दी अनुवाद—

मौखरूप स्थिर सिद्धिराज्य को देने वाले एवं सिद्धिगति को प्राप्त किये हुए अत्यन्त विशुद्ध निरञ्जन और शाश्वत कैवल्य धाम में हमेशा विराजमान श्री सिद्धराज भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

चार प्रकार के ज्ञानों से युक्त, अनुपम जिन वचनमृत को सतत दोनों कर्णपुटों से पान करने वाले गुणों के आकार, सारे ही पापपुत्र को भेदन करने वाले सकलजन मङ्गलाख्य, गुणिगण श्रेष्ठ श्री गौतम गणधर को भजना हूँ ॥२॥

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिनो गुजराती अनुवाद

मंगलाचरण

मौखरूप स्थिर सिद्धि-राज्यने आपनारा, सिद्धि-गति-प्राप्त, अत्यन्त विशुद्ध निर-
ञ्जन अने शाश्वत सुधना धाममां सर्वदा विराजमान श्रीसिद्धराज भगवानने हूँ नमस्कार
करे हूँ ॥१॥

चार प्रकारना ज्ञानाशी समलङ्कृत, अनुपम जिन वचनामृतने सतत पातानां अन्ने कर्ण
पुटेशी पानकरनारा, शुष्णाना आकर, समस्त पापपुत्रने विनष्ट करनारा, सकलजनमंगला-
ख्य, शुष्णिगणु श्रेष्ठ श्रीगौतम गणधरने हूँ भजुं हूँ ॥२॥

षट्काय प्रतिपालकं च करुणा धर्मोपदेशोत्सुकं,
 यत्नार्थं मुखवस्त्रिका विलसितास्यन्दु प्रसन्नाननम् ।
 अन्तर्ध्वान्त विनाशकाद्घ्नि नखरज्योतिश्चयं चिन्तयन् ,
 संस्तौम्युग्रविहारिणं गुरुवरं पञ्चव्रताऽऽराधकम् ॥३॥

सर्वानुयोग विज्ञान वृद्धान् श्रीगुरु परम्परामुख्यान् ।
 हुकुमचन्द्रजी पूज्यान् भजे जैनागमविशारदान् ॥४॥
 पूज्य तत्पट्टशिष्यान् श्रीशिवलालजी वाचकप्रमुखान् ।
 अर्हद् दीक्षादक्षान् निदधेज्ञान वैराग्यसम्पन्नान् ॥५॥
 पूज्यान् गुरुनुदयसागर पूज्यवर्यान् ज्ञानप्रकाशमिहिराहत जाड्यराशीन् ।
 मान्यान् प्रणम्य विहिताञ्जलि रेप घासीलालोऽनुयोगविशदामुखमातनोति ॥६॥

पृथिवीकायादि षट्काय जीवो का प्रतिपालक दया धर्मोपदेश में तत्पर एव यतना के लिये मुखवस्त्रिका से अलकृतमुखचन्द्र, एवं प्रसन्न वदन, उग्र विहारी पांच महाव्रतो का आराधक आन्तरिक मोहान्धकार का विनाशक चरणनखज्योतिःपुञ्ज से विराजमान गुरुवर को चिन्तन करते हुए स्तुति करता हू ॥३॥

सर्वानुयोग विज्ञान वृद्ध श्री गुरुपरम्परा प्रमुख जैनागम विशारद पूज्य श्री हुकुमचन्द्र जी को भजता हूँ ॥४॥

तत्पट्टशिष्य अर्हद्दीक्षादक्ष ज्ञान वैराग्य सम्पन्न पूज्य श्री शिवलाल जी महाराज वाचक प्रमुख को हृदय में धारण करता हूँ ॥५॥

ज्ञानप्रकाशरूप सूर्य से जाड्यानधकार को दूर करने वाले पूज्यमान्य उदयसागर गुल्वर्य को प्रणाम कर बद्धाञ्जलि घासीलाल मुनि अनुयोग की विशद प्रस्तावना को पल्लवित करता हूँ ॥६॥

पृथिवीकायादि षट्काय जीवोना प्रतिपालक, दयाधर्मोपदेशमा तत्पर, यतनाभाटे मुख वस्त्रिकाथी समलकृत, अन्द्रवत् मुखवाणा, प्रसन्नवदन, उग्रविहारी, पांचमहाव्रतोना आराधक, आन्तरिक मोहान्धकारने विनष्ट करनारी अरञ्च नखज्योतिः पुञ्जेथी सुशोभित ज्येवा गुरुवरनु ध्यान करते हू तेमनी स्तुति करु छु ॥३॥

सर्वानुयोगविज्ञान वृद्ध श्रीगुरुपरंपराप्रमुख जैनागम विशारद पूज्य श्रीहुकुमचन्द्रजीने हं भजुं छु ॥४॥

तत्पट्टशिष्य, अर्हद्दीक्षादक्ष, ज्ञान-वैराग्य सम्पन्न पूज्य श्रीशिवलालजी महाराज वाचक प्रमुखने हू हृदयमा धारणु करु छु ॥५॥

ज्ञान प्रकाशरूप सूर्यथी जाड्यानधकारने दूर करनारा पूज्य, मान्य उदयसागर गुरुवर्यने प्रणाम करी बद्धाञ्जलियेवे हू घासीलाल मुनि अनुयोगनी विशद प्रस्तावनाने पल्लवित करुं छु ॥६॥

आर्हतीं भारतीं नत्वा घासीलालो मुनिव्रती ।

श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिव्याख्यां कुर्वे प्रकाशिकाम् ॥७॥

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रस्य प्रस्तावना ॥

इह हि परमासारविकरालससारकान्तारपर्यटनजन्य नानाविधदुःखदावदन्दह्यमानान्तः-
करणा उच्चावच्चाः प्राणिनो जिहासितमपि तद् दुःखं समूलघातमपहन्तुमपारय-
न्तोऽकामनिर्जरायोगतः संजात दुःखनिदानकर्मलाघवास्तज्जिहासया निखिलकर्म-
मलक्षयलक्षणं निरतिशयसुखस्वरूपमोक्षपदमभिवाञ्छन्ति, तच्च मोक्षयदं परमपुरु-
षार्थरूपतया सम्यग्ज्ञानसम्यग्दर्शनसम्यक्चारित्रलक्षणरत्नत्रयविषयकपरमपुरुषकारलक्षण-
परमयत्नैरुपार्जनीयम्, स च पुरुषकारः इष्टसाधनताज्ञानेन जन्यते, ममेद मिष्टसाध-
नम्, इति इष्ट साधनता ज्ञानश्चाप्तोपदेशात् भवति, आप्तश्च यथार्थवक्ता केवलज्ञानावल्लो-
कित सकलजीवाजीवपदार्थसार्थो निरुपाधिक परोपकारपरायणः करुणावरुणालयोऽनुभूय-

अर्हद् भगवान् श्री भारती वाणी को नमस्कार कर मुनि व्रती घासीलाल जी श्री जम्बू-
द्वीप प्रज्ञप्ति की प्रकाशिका व्याख्या करता हूँ ॥७॥

प्रस्तावना का हिन्दी अनुवाद

इस परम असार ससाररूप घोर जगल में इधर उधर भटकने से उत्पन्न नाना प्रकार के
दुःख दावानलों से अत्यन्त सन्तप्त छोटे बड़े सभी प्राणी सर्वथा छोड़ने के लायक उन दुःखों
को समूल विनाश करने में असमर्थ होकर अकाम निर्जरा योग से दुःखों के मूल निदानमूल-
कर्मों को हलका कर उसको छोड़ने की इच्छा से सारे ही कर्मों का क्षय लक्षण निरतिशय
सुख स्वरूप मोक्षपद की अभिलाषा करते हैं उस मोक्ष पद को परम पुरुषार्थस्वरूप होने से
सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्र लक्षण रत्नत्रय विषयक परम पौरुषलक्षण परम
यत्नो से उपार्जित करना चाहिये वह पौरुष इष्ट साधनताज्ञान से उत्पन्न होता है, "मम
इदमे इष्ट साधनम्" इस प्रकार का इष्टसाधनताज्ञान आप्त पुरुषों के उपदेश से होता है

अर्हद् भगवान् श्री भारती वाणीने नमस्कार करीने मुनिव्रती हूँ घासीलाल श्रीजम्बू-
द्वीप प्रज्ञप्ति की प्रकाशिका व्याख्या प्रारंभ करूँ ॥७॥

प्रस्तावनानो गुजराती अनुवाद

आ परम असार ससार इय घोर जगलमां आम-तेम कटकवाथी उत्पन्न थयेल अनेक
जातना दुःख दावानलैथी अत्यंत सन्तप्तथयेला नाना-मोटा अधां प्राणीयो सर्वथा त्याग्य
ये दुःखीने, समूल विनाश करवामा असमर्थ थयने अकाम निर्जरायोगथी दुःखीना मूल
निदानमूल कर्मोने हलका करीने तेमने त्यजवानी ध्येछाथी समस्त कर्मोना क्षय-लक्षण निर-
तिशय सुखस्वरूप मोक्षपदनी अभिलाषा करे छे, ते मोक्षपदतुं परम पुरुषार्थ स्वरूप होवाथी
सम्यग् ज्ञान, सम्यग्, दर्शन, सम्यक् चारित्र लक्षण रत्नत्रय विषयक परमपौरुष लक्षण
परमयत्नोथी इ देकने उपार्जन करवु जेधजे ते पौरुष इष्ट साधनताज्ञानथी उत्पन्न थाय
छे. "मम इदं इष्ट साधनम्" आगततुं इष्ट साधनता ज्ञान आप्त पुरुषोना उपदेशथी थाय

मानतीर्थकृत्नामकर्मा कोऽपि विलक्षणो विचक्षणः परमः पुरुष एव भवति, तदुपदेशश्च गण-
धर स्थविरादिभिरङ्गोपाङ्गादि शास्त्रेषु प्रपञ्चितो विशदीकृतश्च वर्तते, तत्र आचाराङ्गा-
दीनि द्वादशाङ्गानि प्रतीतान्येव, उपाङ्गान्यपि अङ्गैरुदेशविस्तररूपाणि प्रत्यङ्गमेकैकसत्त्वात्
द्वादशैव सन्ति, तत्राचाराङ्गस्य औपपातिकमुपाङ्गम्, १, सूत्रकृताङ्गस्य राजप्रश्रीयम् २,
स्थानाङ्गस्य जीवाभिगमः ३, समवायाङ्गस्य प्रज्ञापना ४, भगवत्याः सूर्यप्रज्ञप्तिः ५, ज्ञाता-
धर्मकथाङ्गस्य जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः ६, उपासकदशाङ्गस्य चन्द्रप्रज्ञप्तिः ७, अन्तकृद्दशाङ्गा-
दीनां दृष्टिवादपर्यन्तानाम् पञ्चानामप्यङ्गानां निरयावलिका श्रुतस्कन्धगतकल्पिकादिपञ्च-
वर्गाः पठन्च उपाङ्गानि सन्ति, तत्र अन्तकृद्दशाङ्गस्य कल्पिका ८, अनुत्तरौपपातिकदशा-
ङ्गस्य कल्पावतंसिका ९, प्रश्नव्याकरणस्य पुष्पिता १०, विपाकश्रुतस्य पुष्पचूलिका ११,

यथार्थवक्ता को आत कहते है । जो कि केवलज्ञान के द्वारा सकल जीवाजीव पदार्थ समूह
को जानने वाले निर्व्याज परोपकार परायण, करुणावरुणालय, तीर्थकृद् नामकर्मा का
अनुभव करने वाले कोई विलक्षण विचक्षणविरुधे ही परम पुरुष होते है उन आत पुरुषों के
उपदेशों को गणधर स्थविरादि महामुनियों ने अङ्गोपाङ्गादि शास्त्रों में विशदरूप से पल्लवित
किया हुआ है । उनमें भी आचाराङ्गादि द्वादशाङ्ग प्रसिद्ध ही है । अङ्गैरुदेश विस्तररूप
उपाङ्ग भी प्रत्यङ्ग एक एक होने से द्वादश हो माने जाते हैं । उनमें आचाराङ्ग का औप-
पातिक उपाङ्ग है १, सूत्रकृताङ्ग का राजप्रश्रीय २, स्थानाङ्ग का जीवाभिगम ३, समवायाङ्ग
का प्रज्ञापना ४, भगवतीसूत्रका सूर्यप्रज्ञप्ति ५, ज्ञाताधर्मकथाङ्ग का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ६, उपासक
दशाङ्ग का चन्द्रप्रज्ञप्ति ७, अन्तकृद् दशाङ्गादि दृष्टिवादपर्यन्त पांचो भी अङ्गों का निरयावलिका
श्रुतस्कन्धगत कल्पिकादि पांच वर्ग पांच उपाङ्ग माने जाते हैं । उनमें अन्तकृद् दशाङ्ग का
कल्पिका ८, अनुत्तरौपपातिक दशाङ्ग का कल्पावतंसिका ९ प्रश्नव्याकरण का पुष्पिता १०,
विपाकश्रुत का पुष्पचूलिका ११, दृष्टिवाद का वृष्णिदशा १२, उपाङ्ग है । उनमें प्रस्तुत जम्बू-

छे. यथार्थवक्ताने आत कहे छे केवल ज्ञान वडे सकल लवालव पदार्थ समूह ना ज्ञाता,
निर्व्याज परोपकार परायण, करुणावरुणालय, तीर्थकृद् नाम कर्माने अनुभवनारा केह
विलक्षण-विचक्षण विरुधे परम पुरुषो आत होय छे ते आत पुरुषाना उपदेशोने
गणधर स्थविरादि महामुनियो अङ्गोपाङ्गादि शास्त्रोमा विशदरूपी पल्लवित कयो छे.
ते सर्वमा आचाराङ्गादि द्वादशाङ्गो प्रसिद्ध छे अङ्गैरुदेश विस्तार रूपोपाङ्ग पञ्च
प्रत्यङ्ग ज्येष्ठ-ज्येष्ठ होवाथी द्वादशज मानवामां आवेल छे तेमा आचाराङ्गनु औपपातिक
उपाङ्ग छे १, सूत्रकृताङ्ग नु राजप्रश्रीय २, स्थानाङ्गनु लवाभिगम ३, समवायाङ्गनु प्रज्ञापना
४, भगवती सूत्रनु सूर्यप्रज्ञप्ति ५, ज्ञाताधर्मकथाङ्गनु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ६, उपासक दशा-
ङ्गनु चन्द्रप्रज्ञप्ति उपाङ्ग गणाय छे ७ तमज अन्तकृद्दशाङ्गादि दृष्टिवाद पर्यन्त पांचे अणो,
निरयावलिकाना श्रुतस्कन्धगत कल्पिकादि पांच वर्गो पञ्च पांच उपाङ्गो गणाय छे तेमा अन्त-
कृद्दशाङ्गनु कल्पिका ८, अनुत्तरौपपातिकदशाङ्गनु कल्पावतंसिका-९, प्रश्नव्याकरणनु पुष्पिता-

दृष्टिवादस्य वृष्णिदशा १२, तत्र प्रस्तुतोपाङ्गम् जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरूपगम्भीरार्थतयाऽति-
गहनत्वादन्युयोगरहितं मुद्रितराजकीय कमनीय कोशागारमिव न तदर्थार्थिनामभीष्टफल-
दायकं भवतीति विभाव्य कोशाध्यक्षाज्ञया प्रेष्येण कोशागारस्योन्मुद्रणमिवविदुषा तदनु-
योगः कृतः, सचानुयोगश्चतुर्विधो भवति, धर्मकथानुयोगः, गणितानुयोगः, चरणकरणानु-
योगश्च, तत्र धर्मकथानुयोगः—उत्तराध्ययनादिकः, गणितानुयोगः—सूर्यप्रज्ञप्त्यादिकः,
द्रव्यानुयोगः पूर्वाणि सम्मत्यादिकश्च, चरणकरणानुयोगश्च आचाराङ्गादिकः तत्रानुयोग-
शब्दार्थस्तु युज्यते सम्बध्यते भगवदुक्तार्थेन सहेति योगः—कथनलक्षणो व्यापारः अनु-
रूपोऽनुकूलो वा योगः अनुयोगः भगवदुक्तार्थानुरूपः प्रतिपादनलक्षणो व्यापारोऽनुयोग
इति निष्कर्षः, तत्र यथा गणधरेण सुधर्मस्वामिना जम्बूस्वामिनं प्रति भगवदुक्तार्थानुरूप-

द्वीप प्रज्ञप्ति रूप उपाङ्ग गम्भीरार्थक होने से अत्यन्त गहन है इसलिये अनुयोग रहित होकर
यह उपाङ्ग बन्द किये हुए कमनीय राजकोय कोशागार की तरह तदर्थार्थी का अभीष्ट फल-
दायक नहीं हो सकता ऐसा समझकर कोशाध्यक्ष को आज्ञा से नोकर द्वारा कोशागार
का उद्घाटन के समान विद्वानो ने उसका अनुयोग किया, वह अनुयोग चार प्रकार का है—धर्म-
कथानुयोग १, गणितानुयोग २, द्रव्यानुयोग ३, और चरण करणानुयोग ४, उनमें उत्तराध्य-
यनादि धर्मकथानुयोग कहलाता है, सूर्यप्रज्ञप्त्यादि गणितानुयोग, पूर्व और सम्मत्यादि द्रव्यानुयोग
और आचाराङ्गादिचरण करणानुयोग कहलाता है, उनमें अनुयोग शब्द का अर्थ भगवान वीतराग
के द्वारा उक्त अर्थ के साथ अनुरूप या अनुकूल कथन रूप व्यापार को अनुयोग कहाजाता है
इस प्रकार भगवदुक्तार्थानुरूप प्रतिपादनरूप व्यापार ही अनुयोग शब्द का निष्कर्ष होता है।
उस में जैसे गणधर सुधर्मस्वामी ने जम्बूस्वामी के प्रति भगवदुक्तार्थानुरूप कथनरूप अनुयोग

१० विपाठ श्रुतनु पुष्पवृद्धिका-११, दृष्टिवाहन वृष्णिदशा-१२ विभाग छे ते सर्वमा प्रस्तुत
'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति रूप विभाग गम्भीरार्थक डोवार्थी अत्यन्त गहन छे. ओटलाभा टे अनुयोग
रहित थऽने आ विभाग अथ करवामा आवेला कमनीय राजकीय कोशागारनी जेम तद-
र्थार्थिने अभीष्ट फलदायक थर्ष शके नहि आभ विचारने कोशाध्यक्षनी आज्ञार्थी नोकर वडे
कोशागारने उद्घाटित करववानी जेम विद्वानो जे तेनो अनुयोग कर्षो ते अनुयोग आर
प्रकारने छे—

(१) धर्मकथानुयोग (२) गणितानुयोग (३) द्रव्यानुयोग अने (४) चरणकरणांनुयोग.

तेमा उत्तराध्ययनादि धर्मकथानुयोग' कडेवाय छे सूर्यप्रज्ञप्त्यादि गणितानुयोग, पूर्व
अने सम्मत्यादि द्रव्यानुयोग अने आचाराङ्गादि चरणकरणांनुयोग कडेवाय छे. जेमा जे
'अनुयोग' शब्द छे, तेनो अर्थ थाय छे—भगवान वीतराग वडे उक्त अर्थनी साथे अनु-
रूप था—अनुकूल कथन रूप व्यापार. आ प्रभाषे भगवद् उक्तार्थानुरूप प्रतिपादन रूप व्या-
पारज अनुयोग शब्दने निष्कर्ष थाय छे तेमा जेम गणधर सुधर्मा स्वामीजे जम्बू स्वामी
प्रति भगवदुक्तार्थानुरूप कथन रूप अनुयोगने ओटवे डे—उपक्रम—निक्षेप—अनुगम—नयलक्षण

कथनरूपोऽनुयोगः उपक्रमनिक्षेपअनुगम-नयलक्षणानि चत्वारि द्वाराणि आश्रित्य कृत्तस्तथा अन्येनाप्याचार्येण शिष्येभ्यः सूत्रार्थरूपोऽनुयोगः कर्तव्यः, यद्यपि सर्वेषामागमानामनुयोगः कर्तव्यस्तथाप्यत्र सूत्रे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ते रनुयोगस्यैव प्रस्तुतत्वेन तस्या अनुयोगकरणे समर्थो हि सर्वेषामागमानामनुयोगकरणे समर्थो भवति, तस्मादनुयोगविधि जिज्ञासुना मुनिनाऽनुयोगद्वारसूत्रमभ्येतव्यम्, अतएव—

“चूर्णीकृत्य पराक्रमान्मणिमयं स्तम्भं सुरः क्रीडया,
मेरौ सन्नलिकासु वायुवशतः क्षिप्त्वा रजो दिक्षु तत् ।
स्तम्भस्तैः परमाणुभि सुमिलितैर्लोकै यथा दुष्करः,
संसारे भ्रमतो मनुष्यजननं जन्तोस्तथा दुर्लभम्”

इत्युक्तिभणितमतिदुर्लभं मानुषं जन्म सम्प्राप्य मिथ्यात्वतिमिरविनाशक श्रद्धा ज्योतिः प्रकाशक तत्त्वातत्त्वविवेचकं सुधाधाराऽऽमारमिवामरत्वप्रदायकं चञ्चच्चन्द्रचन्द्रिका मिव चकोरचेतसो हृदयाह्लादकं स्वप्नदृष्टवस्तुनः पुनर्जाग्रदवस्थायां तल्लभवत् प्रमोदसन्दोहजनकं भूमिगत प्राप्तनिधिमिव सुखजनकं सकलसन्तापहारकं धर्मश्रवणं समुप-

मो उपक्रम-निक्षेप-अनुगम-जयलक्षण चार द्वारो का आश्रय कर क्रिया है, वैसे ही अन्य आचार्यों ने भी शिष्यों के लिये सूत्रार्थ कथन रूप अनुयोग करना चाहिये, यद्यपि सभी आगमो का अनुयोग करना चाहिये तथापि इस सूत्र में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुयोग को ही प्रस्तुत होने से उसके अनुयोग करने में समर्थ पुरुष सभी आगमो के अनुयोग करने में समर्थ होते है इस लिये अनुयोग विधिका जिज्ञासु मुनि को अनुयोग द्वार सूत्र पढना चाहिये, अत एव ‘चूर्णीकृत्य पराक्रमान्मणिमयः, इस उक्ति भणिति के अणुसार अत्यन्त दुर्लभ मणुष्य जन्म को प्राप्त कर मिथ्यात्वरूप तिमिर का विनाशक, श्रद्धारूप ज्योति प्रकाशक, तत्त्वातत्व का विवेचक, सुधाधारा मुशलधारवर्षा के समान अमरत्व का प्रदान करने वाला चञ्चत् चन्द्र चन्द्रिका के समान चकोर चित्त सहृदय जनो का हृदयाह्लादजनक, स्वप्नदृष्ट वस्तु का जाग्रद् अवस्था में फिर से

ज्ये चार द्वारेनो आश्रय कर्ते छे तेमज् अन्य आचार्येज्ये पञ्च शिष्येनाभाटे सूत्रार्थ कथनरूप अनुयोग करवे जेधं ज्ये. यद्यपि अथा आगमोने अनुयोग करवे जेधंज्ये तथापि आ सूत्रमा जम्बू द्वीप प्रज्ञप्तिने अनुयोग ज् प्रस्तुत होवाथी ज्येने अनुयोग करवामा समर्थ पुरुषो अथ आगमोना अनुयोग भाटे समर्थ होय छे ज्येथी अनुयोग विधि भाटे जिज्ञासा धरावनार मुनिने जेधंज्ये के ते ‘अनुयोगद्वार’ सूत्रनु’ अध्ययन करे ज्येथी ‘चूर्णी कृत्य पराक्रमान्मणिमयम्” आ उक्ति मुज्ज अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करीने मिथ्यात्व रूप तिमिर ने विनष्टकरनार, श्रद्धारूप ज्योतिने प्रकाशक, तत्त्वातत्त्वने विवेचक, सुधाधारा-मूशधधार वर्षानी जेम अमरत्व प्रदान करनार, अथत् अन्द्र-चन्द्रिकानी जेम अकोर चित्त, सहृदयेना मनने आह्लादित करनार, स्वप्न दृष्ट वस्तु ज्येतावस्थामा पुन प्राप्त थाय तेम, अत्यन्त प्रमोदानन्द जनके, भूमिगत प्राप्त निधिनी जेम सुख जनक,

लभ्य अपारसंसारसागरतरणतरणि मिथ्यात्वकषायतिमिरहरण द्युमणि स्वर्गापवर्गसुखचिन्ता-
मणि क्षणकश्रेणिसरणि कर्मरिपुदमनीं केवलज्ञानकेवलदर्शनजननीं श्रद्धामवाप्य, कर्मरजः
प्रक्षालने जलमिव भोज भुजङ्गनिवारणे गारुडमन्त्रमिव कर्मघनाघनविकरणे पवनमिव
केवलज्ञानभास्करप्रकटने प्राचीं दिशामिव साधनन्तमुक्तिसाम्राज्याभिलषितप्राप्तौ कल्पतरु
मिव संयमं लब्ध्वा हेयोपादेय वस्तु स्वरूपनिरूपकाणि अव्याधाधसुखजनकानि आचारा-
ङ्गादि सूत्राणि विधिवदधीत्य, संसारवारिधिमहातरणि शिवपदसरलसरणि सिद्धिपददायकं
सकलगुणनायकम् अनादि संचिताष्टाविधकर्म बन्धनोच्छेदकं मिथ्यात्वग्रन्थिभेदकं सम्य-
ग्ज्ञानवर्षण समर्थ सूत्र परमार्थ स्वपर समयरहस्यं च विज्ञाय तथाविधकर्मक्षयोपशमसम्भा-

लाभ के समान, अत्यन्त प्रमोदानन्दजनक भूमिगत प्राप्त निधिकी तरह सुखजनक सकल
सन्तापहारक धर्मश्रवण को प्राप्त कर अपारसंसार सागर को तैरने की नौका के समान,
मिथ्यात्वकषाय रूप अन्धकार का विनाशक सूर्यके समान, स्वर्गापवर्गसुख का प्रदान कर्ता
चिन्नामणिवत् क्षणक श्रेणि को सरणिरूप, कर्मरिपु का दमन करने वाली केवलज्ञान और केवल-
दर्शन की जननी श्रद्धा को प्राप्तकर कर्मरज के प्रक्षालन में जल के समान भोगरूप भुजङ्ग
को दूर करने में गारुड मंत्र के समान, कर्मरूप घन घोर घटा को तितर बितर करने में पवन
आंधी की तरह केवलज्ञानरूप सूर्य को प्रगट करने में पूर्व दिशा की तरह सादि अनन्त मुक्ति-
रूप अभिलषित साम्राज्य प्राप्ति में कल्पवृक्ष के समान संयम को प्राप्तकर हेयोपादेय वस्तुओं
के स्वरूप का निरूपक, बाधरहितसुख का जनक आचाराङ्गादिसूत्रोको विधी पूर्वक अध्ययन
कर संसाररूप समुद्र की बड़ी नौका के समान शिवपद मोक्ष की सरल सरणि "मार्ग" के समान
सिद्धिपद का दायक, सकल गुण का नायक, अनादिभव द्वारा संचित (उपाजित) अष्टविध
कर्मबन्धन का उच्छेदक मिथ्यात्व रूप ग्रन्थि का भेदक सम्यग्ज्ञान वर्षण समर्थ सूत्र के

सकल सन्तापहारक, धर्मश्रवणने प्राप्तकरने अपार संसार सागरने तरी जवा भाटे
नौका समान मिथ्यात्व कषाय रूप अन्धकारने विनाश करनार सूर्य सदृश स्वर्गापवर्ग सुखने
आपनार चिन्नामणिवत्, क्षणक श्रेणिनी सरणिरूप, कर्मरिपुने दमन करनारी केवलज्ञान
अने केवलदर्शनने जननी श्रद्धाने भेगवीने कर्मरजना प्रक्षालन भाटे जल समान, भोज रूप
भुजङ्गने दूर करवा भाटे गारुडमन्त्रवत्, कर्मरूप घनघोर घटाने छिन्न-विच्छिन्न करवाभां
आधीनी जेभ, केवल ज्ञान रूप सूर्यने प्रकट करवाभां पूर्व दिशानी जेभ सादि, अनन्त
मुक्तिरूप अभिलषित साम्राज्य प्राप्तिभां कल्पवृक्षनी जेभ संयमने प्राप्त करीने हेयो-
पादेय वस्तुओंना स्वरूपने निरूपण करनारा, बाधरहित सुखने उपन करनारा आचारा-
ङ्गादि सूत्रोनु यथाविधि अध्ययन-मनन करीने संसार रूप समुद्रनी महान् नौका सदृश
शिवपद मोक्षनी सरल सरणि 'मार्ग'नी जेभ सिद्धिपद हाता, सकल गुण नायक, अनादि
भव द्वारा संचित (उपाजित) अष्टविध कर्मबन्धनोच्छेदक मिथ्यात्वरूप ग्रन्थि-भेदक, सम्यग्
ज्ञान वर्षण समर्थ सूत्रना परम-अर्थने तेमच स्वपर सिद्धान्त रहस्यने लक्ष्मीने पूर्वोक्त

विनीं सकलतत्त्वस्वरूपनिदर्शिनीं द्रव्यगुणपर्यायविषयविज्ञां विशदप्रज्ञां समधिगत्य, प्रवचनानुयोगकरणे यतिभिर्यतितत्त्वव्यम्, अनुयोग द्वारसूत्रमिदमावश्यकस्य अनुयोगतया द्रव्यानुयोगान्तर्गतमवसेयम्, प्रस्तुतशास्त्रस्य जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरूपस्य क्षेत्रप्ररूपणात्मकत्वात्, तस्याश्च गणितसाध्यत्वात् गणितानुयोगेऽन्तर्भावोऽवसेयः अथैवमस्याः जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तेः गणितानुयोगतया साक्षात् मोक्षमार्गभूत रत्नत्रयानुपदेशकत्वात् चरणकरणात्मकाचारादि शास्त्राणामिव न मोक्षाद्गत्वमितिचेत् अत्रोच्यते—साक्षान्मोक्षमार्गानुपदेशकत्वेऽपि तदुपकारितया परम्परया शेषाणामपि त्रयाणामनुयोगाना मोक्षाद्गत्वे विरोधाभावात् ।

चरणपड्वित्ति हेऊ धम्मकहा कालि दिक्खमादीया ।

दविण दंसण सोही दंसण सुद्धस्स चरणं तु ॥१॥

छाया-चरणप्रतिपत्तिः हेतुः धर्मकथानुयोगः काले गणितानुयोगे दीक्षादीनि ।

व्रतानि श्रुद्ध गणितसिद्धे प्रशस्ते काले गृहीतानि प्रशस्त फलानि स्युः ॥१॥

परमार्थ को और स्वपर सिद्धान्त रहस्य को जानकर पूर्वोक्त अष्टविध कर्मक्षयोपशम के द्वारा उत्पन्न होने वाली सकल तत्त्व स्वरूप को बतलाने वाली द्रव्यगुण पर्यायो के विषयो को जानने वाली विशदप्रज्ञा को प्राप्त कर प्रवचन अनुयोग करने में यतियो को प्रयत्नकरना चाहिये, इस अनुयोग द्वारसूत्र को आवश्यक का अनुयोगरूप होने से द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत समझना चाहिये, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरूप प्रस्तुत शास्त्र को क्षेत्र प्ररूपणात्मक होने से गणित साध्य क्षेत्र प्ररूपण की तरह गणितानुयोग में अन्तर्भाव समझना चाहिये, यह जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति गणितानुयोगात्मक होने से साक्षात् मोक्षमार्गभूत रत्नत्रय का अनुपदेशक है इसलिए चरण करणात्मकाचारादि शास्त्रों की तरह यह मोक्ष का अङ्ग नहीं माना जा सकता ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये क्योंकि साक्षात् मोक्षमार्गका उपदेशक नहीं होने पर भी तदुपकारी होने से परम्परया शेष तीन अनुयोगो को भी मोक्षका अङ्ग मानने में कोई विरोध नही माना जा

अष्टविध कर्मक्षयोपशम द्वारा उपलब्ध बनारी सकल तत्त्व स्वरूपने अतावनारी, द्रव्यगुण पर्यायाना विषयाने लक्षणारी, विशद प्रज्ञाने प्राप्तकर्त्रीने प्रवचन-अनुयोग करवाभाटे यति-जोके प्रयत्न करवा जेधजे आ 'अनुयोगद्वार सूत्र' आवश्यकना अनुयोग रूप छे, जेवु भानीने—'द्रव्यानुयोग'नी अहर न जेने। अन्तर्भाव मानवे जेधजे जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिरूप प्रस्तुत शास्त्र क्षेत्र प्ररूपणात्मक होवाथी, गणित साध्य क्षेत्र प्ररूपणाती जेभ गणितानुयोगमा अन्तर्भाव समजवे जेधजे आ 'जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति' गणितानुयोगात्मक होवाथी साक्षात् मोक्षमार्गभूतरत्ननी अनुपदेशक छे, जेथी यरषु करणात्मकाचारादि शास्त्रानी जेभ आ मोक्षाद्ग नथी जेवी शक्षा करवी योअ न गणुय, केभके आ साक्षात् मोक्षमार्गोपदेशक न होवा छनांजे, तदुपकारी होवाथी, परंपरया शेष त्रय अनुयोगाने पवु मोक्ष भाटे अङ्ग रूप गणुवाभा टेध पवु मतने। विरोध होध शके नहि कहुं पवु छे—'चरणपड्वित्ति हेऊ' इत्यादि धर्मकथानुयोग यरषु प्रतिपत्तिने हेतु

मूलम्-णमो अरिहंताणं तेणं कालेणं तेणं समएणं मिहिला-
णामं णयरी होत्था, सिद्धत्थिमिय समिद्धा वण्णओ, तीसे णं मिहि-
लाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं माणिभद्दे
णामं चेद्दए होत्था वण्णओ । जियसत्तूराया, धारिणी देवी, वण्णओ
तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा णिग्गया,
धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया ॥सू० १॥

छाया—नमोऽर्हद्भ्यः तस्मिन् काले तस्मिन् समये मिथिला नाम नगरी आसीत् ।
ऋद्धस्तिमितसमृद्धा वर्णकः । तस्याः खलु मिथिलाया नगर्याः, वहिः उत्तरपौरस्त्ये
दिग्भागे अत्र खलु माणिभद्रनाम चैत्यम् अभवत्, वर्णकः (जितशत्रु राजा) धारिणी देवी,
वर्णकः । तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसतः परिपद् निर्गता, धर्मः कथित,
परिषत् प्रतिगता ॥सू० १॥

टोका—‘णमो अरिहंताण इत्यादि—

नमोऽर्हद्भ्यः अर्हद्भ्यः अर्हन्त्यशोकाद्यष्ट प्रकाराणि परममक्ति भरभरितसु-
रासुरसमूहविरचितानि जन्मान्तरसंजातानवच्छिन्नसम्यक्त्वमहालवालविरुद्धार्हद्गुणग्राम-
गानप्रभृति विंशतिस्थानक समाराधनजलाभिषिक्त तीर्थङ्करत्वमहातरुकल्पानि
महाप्रातिहार्याणि, निखिलकर्मनिविडनिगडबन्धनबन्धापगमात् सिद्धिसौधशिखराऽऽ-
रोपणं चैत्यर्हन्तः, अष्टमहाप्रातिहार्ययोग्या मुक्तियोग्याश्चेत्यर्थः, तेभ्योऽर्हद्भ्यो नमः

सकता । कहा भी है के “चरणपडिवत्तिहेऊ” इत्यादि, धर्मकथानुयोग चरणप्रतिपत्ति का हेतु होता
है गणितानुयोग काल में दीक्षा प्रभृतिवत् शुद्धगणित सिद्ध प्रशस्त काल में गृहीत हो पर प्रशस्त
फलवाले होते हैं ।

“णमो अरिहंताणं—तेणं कालेणं तेणं समएणं” इत्यादि ।

अर्हन्त भगवन्तो को नमस्कार हो, जो अष्ट प्रातिहार्यों से सुशोभित होते हैं वे अर्हन्त
हैं, ये प्रातिहार्य अशोक वृक्ष आदि के मेद से आठ प्रकार के होते हैं—अर्हन्तो-के सिवाय और
किसी के ये नहीं होते हैं—इनके करने वाले परममक्ति के भार से भरे हुए सुर और असुर होते

होय छे गणितानुयोगकावमा दीक्षा प्रभृति वत् शुद्ध गणित सिद्ध प्रशस्तकालमां गृहीत
थधने प्रशस्त कूपवान् होय छे.

अभ्यूद्धीप प्रज्ञमिनु गुजराती भाषान्तर

णमो अरिहंताण—तेणं कालेणं तेणं समएणं—इत्यादि सूत्र—१ ।

अर्हन्त भगवन्तोने नमस्कार के जेयो अष्ट प्रातिहार्योथी सुशोभित होय छे तेयो
अर्हन्त छे आ प्रातिहार्यो अशोकवृक्ष वगेरेना लेहथी आठ प्रकारना होय छे. अर्हन्तो
सिवाय भीज कोधने पबु आ होता नथी. जेभने कर्नारा परममक्तिना बारथी युक्त सुर

નમસ્કારઃ, 'તેણં કાલેણં' તસ્મિન્ કાલેઅવસર્પિણી ચતુર્થારકલક્ષણે ભગવચ્છ્રી મહાવીરસ્વામીવિહરણકાલે, 'તેણં સમણં' તસ્મિન્સમયે હીયમાનલક્ષણે, 'મિહિલા ણામં નયરી હોત્થા' મિથિલાનામ્ની નગરી આસીત્ । નન્નુ સૂત્રનિરૂપણકાલેઽસ્યાઃ સત્ત્વેઽપિ 'હોત્થા' ઇતિ ભૂતકાલનિર્દેશઃ કથમુચિતઃ ? ઇતિ ન શક્કનીયમ્, અસ્મિન્નવસર્પિણીકાલે શુભાભાવાઃ પ્રતિક્ષણં હાનિમુપગચ્છન્તીતિદેતોસ્તાદ્શવિશેષેણ વિશિષ્ટાયા અસ્યા ડદાનીમ-સમ્મવાદ્ ભૂતકાલનિર્દેશો ન દોષાવહ ઇતિ । સા કીદશી ? ઇતિ જિજ્ઞાસાયામાહ—

હૈં । જન્માન્તર-પૂર્વભવ મેં જિન્હોને અનર્વાચ્છન્ન સમ્યક્ત્વ પૂર્વક વીમસ્થાનો કી આરાધના સે તીર્થ-કર નામકર્મ કો પ્રકૃતિ કા વન્ધ કર લિયા હોતા હૈ એસે મનુષ્ય હી ડસ ભવ મેં ડન અષ્ટ મહા પ્રાતિહાયો કે યોગ્ય હોતે હૈં, અથવા જો મુક્તિ પ્રાપ્તિ કે યોગ્ય હોતે હૈં વે અર્હન્ત ડેં, એસે અષ્ટ મહાપ્રાતિહાયો કે યોગ્ય ઓર મુક્તિ પ્રાપ્તિ કે યોગ્ય અર્હન્ત ભગવન્તો કો યહા સૂત્રકાર ને નમસ્કાર કિયા હૈ ।

“તેણં કાલેણ” ઇક્ષ અવસર્પિણી કે ચૌથે આરે મેં જવ કિ ભગવાન્ શ્રી મહાવીર સ્વામી કા વિહાર હો રહા થા “તેણં સમણ” ઓર ડસ સમય મેં—જો કિ હીયમાન સ્વરૂપ થા—આયુ આદિ કી જિસમેં પ્રતિસમય હીનતા હો રહી થી—“મિહિલા ણામં નયરી હોત્થા” મિથિલા નામ કી નગરી થી, શંકા—જવ ઇસ સૂત્ર કા નિરૂપણ હુઆ હૈ ડસ કાલ મેં ઇસ નગરી કા સદ્ભાવ તો થા હો—તો ફિર યહાં પર “હોત્થા” એસા ભૂત કાલ કા નિર્દેશ ક્યોં કિયા ગયા ? ડત્તર—ઇસ અવસર્પિણી—કાલ મેં શુદ્ધ ભાવ પ્રતિક્ષણ હીનતા કી ઓર સે હી વઢતે રહતે હૈં—અતઃ જૈસે વિશેષણો કા ઇસમેં નિર્દેશ કિયા ગયા હૈ વૈસે વિશેષણોવાલી યહ નગરો ઇસ સૂત્ર નિરૂપણ કે અવસર મેં નહોં અને અસુર હોય છે જન્માન્તર-પૂર્વભવમાં જેમણે અનર્વાચ્છન્ન સમ્યક્ત્વપ્રાપ્તિ પૂર્વક વીશ સ્થાનોની આરાધનાથી તીર્થ કર નામકર્મની પ્રકૃતિને બન્ધ કરેલ છે એવા માણુસોજ આ ભવમાં આ અષ્ટ મહાપ્રાતિહારો માટે યોગ્ય હોય છે અથવા જેઓ મુક્તિને પ્રાપ્ત કરવા યોગ્ય હોય છે, તેઓ અર્હન્ત છે એવા અષ્ટ મહાપ્રાતિહારોના યોગ્ય અને મુક્ત પ્રાપ્તિ માટે યોગ્ય અર્હન્ત ભગવન્તોને અહીં સૂત્રકારે નમસ્કાર કરેલ છે

“તેણં કાલેણ” આ અવસર્પિણીના ચોથા આરામાં જ્યારે ભગવાન્ મહાવીર સ્વામીનો વિહાર થઈ રહ્યો હતો, “તેણં સમણ” અને તે સમયે—જો કે હીયમાન સ્વરૂપ હતું—આયુ-વગેરેની જેમાં ડરેકે ડરેકે ક્ષણે હીનતા થઈ રહી હતી—“મિહિલા ણામં નયરી હોત્થા” મિથિલા નામે એક નગરી હતી

શંકા—જ્યારે આ સૂત્રનું નિરૂપણ થયું છે, તે કાલે તે નગરીનો સદ્ભાવ તો હતો જ, તો પછી અહીં હોત્થા આરીતે ભૂતકાળ નો નિર્દેશ શા માટે કરવામાં આવેલ છે ?

ઉત્તર—આ અવસર્પિણી કાળમાં શુભ ભાવો પ્રતિક્ષણ હીનતા તરફ જ વધતા રહે છે તેથી જેવા વિશેષણો આમાં નિર્દેશ કરવામાં આવેલ છે, તેવા વિશેષણોથી મુક્ત આ નગરી આ સૂત્રના નિરૂપણ વખતે રહી નહીં—એથી અહીં ભૂતકાળનો નિર્દેશ હોયમુક્ત નથી.

‘रिद्धत्थिमिय समिद्धा’ इति, ऋद्धस्तिमितसमृद्धा तत्र-ऋद्धा-विभव-भवनादिभिः पौरजनैश्च वृद्धि प्राप्ता, स्तिमिता-स्वचक्रपरचक्रभयरहिता स्थिरेत्यर्थः, समृद्धा-धनधान्यादि समृद्धियुक्ता ऋद्धाचासौ स्तिमिता चासौ समृद्धा चेति पदत्रयकर्मधारयः । ‘वण्णओ’ अस्याः वर्णकः-वर्णनकारकः पदसमूह औपपातिकसूत्रे प्रथमसूत्रगत चम्पानगरी वर्णनवद्वोध्यः । ‘तीसेणं मिहिलाए णयरीए वहिया’ तस्याः-ऋद्धत्वादि सम्पन्नायाः खलु मिथिलाया नगर्याः बहिः-बहिः प्रदेशे, ‘उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए’ उत्तरपौरस्त्ये उत्तरपूर्वान्तरालरूपे दिग्भागे ईशानकोणे, ‘एत्थणं’ अत्र खलु ‘माणिभदे णाम चेइए होत्था’माणिभद्रं-मणिभद्रनामकं चैत्यं व्यन्तरायतनम् आसीत् । ‘वण्णओ’ वर्णकः अस्यापि वर्णनपदसमूह औपपातिकसूत्रे द्वितीयसूत्रगतपूर्णभद्रचैत्यवर्णनवद् विज्ञेयः, ‘जियसत्तूराया जितशत्रुनामा राजा आसीत् । ‘धारिणी देवी’ तस्य जितशत्रुराजस्य धारिणी-धारिणी नाम्नी देवी पट्टराज्ञी आसीत् । ‘वण्णओ’ वर्णकः-राज राज्ञीवर्णनपदसमूह औपपातिकसूत्र एकादश द्वादश सूत्रगत कूणिकराजधारिणीदेवी वर्णनवद्वोध्यः ।

रही-इसलिये इसके निरूपण में भूतकाल का निर्देश दोषावह नहीं है । “रिद्धत्थिमियसमिद्धा” उस समय यह नगरी ऋद्ध-विभव, भवन एवं पौर-जनो से वृद्धि को प्राप्त थी, स्तिमित-स्वचक्र और परचक्र के भय से रहित थी, समृद्ध धन धान्यादि रूप समृद्धि से परिपूर्ण थी “वण्णओ” इसका वर्णन कारक पदसमूह औपपातिक सूत्र में प्रथमसूत्र में चम्पा नगरी के वर्णन में जैसा कहा गया है वैसा ही है “तीसेण मिहिलाए णयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं माणिभदे णामं चेइए होत्था” इस मिथिला नगरी के बाहर ईशान कोण में माणिभद्र नाम का एक व्यन्तराय-तन था “वण्णओ” इसका वर्णन औपपातिक सूत्र के द्वितीयसूत्र में वर्णित पूर्णभद्र चैत्य के जैसा ही है “जियसत्तू राया धारिणी देवी वण्णओ” इस नगरी का राजा जितशत्रु था और इसकी पट्टरानी का नाम धारिणी था, इन दोनों का वर्णन औपपातिक सूत्र के ११वें और १२ वे सूत्र में वर्णित कूणिक राजा और उसकी देवी धारिणी के जैसा ही है “तेणं कालेणं तेणं समपणं सामी

‘रिद्धत्थिमियसमिद्धा ते समये आ नगरी ऋद्ध-विभव, भवन अने परिभनो थी वृद्धि-गत હતી. स्तिमित-સ્વચક્ર અને પરચક્રના ભયથી મુક્ત હતી સમૃદ્ધ-ધન ધાન્યાદિ રૂપ સમૃદ્ધિથી પરિપૂર્ણ હતી. “વણ્ણઓ” આ નગરીનું વર્ણન ઔપપાતિક સૂત્ર ના પ્રથમ સૂત્રમાં વર્ણિત ચ પાનગરીનાવર્ણન ની જેમ જ છે. ત્રીસેણ મિહિલાણ ણયરીણ વહિયા ઉત્તરપુરત્થિમે દિસીભાણ પ્થણં માણિભદ્રે ણામ ચેઈણ હોત્થા આ મિથિલા નગરીની બહાર ઈશાન કોણમાં મણિભદ્રનામનું એક વ્યન્તરાયતન હતું. “વણ્ણઓ” આનું વર્ણન ઔપ પાતિક સૂત્ર ના બીજા સૂત્રમાં વર્ણિત પૂર્ણભદ્ર ચૈત્ય જેવું જ છે. “જિયસત્તૂરાયા ધારિણી દેવી વણ્ણઓ આ નગરીને. રાજા જિતશત્રુ હતો અને તેની પટ્ટરાણી નું” નામ ધારિણી હતું આ બંનેનું વર્ણન ઔપપાતિક સૂત્રના ૧૧ અને ૧૨ સૂત્રોમાં વર્ણિત કુણિક નરેશ અને તેમની દેવી ધારિણી જેવું જ છે. “તેણં કાલેણં તેણં સમપણં સામી સમોસદે” તે કહે

‘तेणं कालेणं’ तस्मिन्काले ‘तेणं समएणं’ — तस्मिन् समये खलु ‘सामी समो-
सदे’ स्वामी श्रीमहावीरप्रभुः समवसृतः-समवासरत् । समवसरणवर्णनमर्ष्योप-
पातिकसूत्रस्य पीयूषवर्षणी टीकातो ग्राह्यम् । ‘परिसा णिग्गया’ परिपत् जनमंइतिः
निर्गता नगरान्निस्सुता । ‘धम्मो कहिओ’ सदेवामुरमानुपपरिपदि भगवता श्रीमहा-
वीरेण धर्मः—अगारधर्मोऽनगारधर्मश्च कथितः प्ररूपितः । सच ‘अत्थिलोए अत्थिअलोए’
इत्यादि औपपातिकसूत्रे पट्पञ्चाशत्तमसूत्रतो बोध्यः । ‘परिसा पडिगया’ परिपत्ज-
नसंहतिः यामेव दिश समाश्रित्य प्रादूर्भूता समागता तामेव दिशमाश्रित्य प्रतिगता-
परावृत्य गता ॥सू० १॥

अथ परिपदि प्रतिगतायां सत्यां यज्जातं तदाह—

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
जेट्ठे अंतेवासी इंदभूर्इ णामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे सम-
चउरंससंठाणसंठिए जाव तिखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ वंदइ
णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी ॥सू० २॥

१—तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठोऽन्तेवासी
इन्द्रभूतिर्नामानगारो गौतमो गोत्रेण सप्तोत्सेधः समचतुरस्रसंस्थानसंस्थित यावत् त्रिहृत्त्व-
आदक्षिणं प्रदक्षिणं करोति वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा पवमवादीत् ॥ सू० २॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि—

‘तेणं कालेणं तेणं समएणं’ तस्मिन् काले तस्मिन् समये एतद् व्याख्या प्रथम-
सूत्रवद्बोध्या । ‘समणस्स भगवओ महावीरस्स’ श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ‘जेट्ठे’
समोसदे” उस काल में और उस समय में वहा पर भगवान् महावीर स्वामी समवसृत हुए—
आये समवसरण का वर्णन भी औपपातिक सूत्र की पीयूष वर्षिणी टीका से जान लेना चाहिये
“परिसा निग्गया” नगर से जनमेदिनी निकली “धम्मो कहिओ” भगवान् ने गृहस्थ धर्म और
मुनिधर्म की प्ररूपणा की यह उपदेश “अत्थिलोए अत्थि अलोए” इत्यादि रूप से औपपातिक
सूत्र मे ५६ वें सूत्र से जान लेना चाहिये, “परिसा पडिगया” धर्म सुनकर वह जन सहति
जिस दिशा से आई थी उसी दिशा की तरफ वापिस चली गई ॥१॥

अने ते समये त्या भगवान् महावीर स्वामी समवसृत थया—पधार्था समवसरणु
वर्णनं पणु औपपातिकसूत्रनी पीयूषवर्षिणी टीका परथी लखी देवु नेधंअये “परिसा
णिग्गया” नगरथी जनमेदिनी नीकणी “धम्मो कहिओ” भगवाने गृहस्थधर्म अने मुनि-
धर्मनी उरूपणु करि आ उपदेश “अत्थिलोए अत्थिअलोए धत्थादि उपमा औपपातिकसूत्र
ना पठना सूत्रथी लखी देवो नेधंअये ‘परिसा पडिगया’ धर्म साभणीने ते जनपरिषदा ने
दिशा तरक्थी आवेदइती ते तश्च याधी जती रही ॥१॥

જ્યેષ્ઠઃ—સર્વતઃ પ્રથમઃ ‘અંતેવાસી’ અન્તેવાસી—શિષ્યઃ ‘ઈંદ્ર મૂર્દ્ધુનામં અળગારે’ ઇન્દ્રમૂર્તિઃ
 ઇન્દ્રમૂર્તિનામા અનગારઃ—અગારં—ગૃહં તત્ અવિદ્યમાન યસ્ય સોડનગારઃ—શ્રમણઃ । સ
 ક્ષીદ્શઃ ૨ ઇત્યાહ—‘ગોયમગોત્તેણ’ ગોત્રેણ ગૌતમઃ—ગૌતમગોત્રોત્પન્નઃ ‘સત્તુસ્સેહે’ સપ્તો-
 ત્સેધઃ—સપ્તહસ્તપ્રમાણોચ્ચશરીરઃ ‘સમચરંસસંઠાણસંઠિષ્ઠિ’ સમચતુરસ્રસંસ્થાનસંસ્થિતઃ—
 સમાઃ—તુલ્યાઃ—અન્યુનાધિકાઃ ચતસ્રોડસ્રયો—હસ્ત—પાદ—પર્ય ધોરૂપાશ્ચત્વારોડપિ વિભાગા
 યસ્ય તત્ સમચતુરસ્રં—તુલ્યારોહ—પરિણાહં, તચ્ચ સસ્થાનમ્ આકાર વિગેષ ઇતિ સમચતુ-
 રસ્ર—સંસ્થાનં, તેન સંસ્થિતઃ યુક્તઃ સમચતુરસ્રસંસ્થાનસંસ્થિતઃ । ‘જાવ’ યાવત્ યાવત્પદેન—
 વજ્રઋષભ—નારાચસંહનનઃ, કનકપુલકનિકપપદ્મગૌરઃ, તથા—ઉગ્રતપાઃ, દીપ્તતપાઃ, તપ્તતપાઃ
 મહાતપાઃ, ઉદારઃ, ધોરઃ, ધોરવ્રતઃ, ધોરગુણઃ, ધોરતપસ્વી, ધોરબ્રહ્મચર્યવાસીક ઉચ્છૂ-
 ઢશરીરઃ, સંક્ષિપ્તવિપુલતેજોલેશ્યઃ, ચતુર્હાનોપગતઃ, સર્વાક્ષરસન્નિપાતી ઇત્યેષાં પદાનાં
 સહગ્રહો બોધ્યઃ । તત્ર ચતુર્દશપૂર્વી વજ્રઋષભનારાચસંહનનઃ વજ્ર—કીલિકાકારમસ્થિ, ઋષભઃ

“તેણં કાલેણં તેણં સમણં સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ” ઇત્યાદિ ।

“તેણં કાલેણં તેણં સમણં” એસ કાલ મેં ઓર એસ સમય મેં ‘સમણસ્સ ભગવઓ મહાવી-
 રસ્સ,, શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીર કે ‘જેદ્દે અતેવાસી” જ્યેષ્ઠ-પ્રધાન-અન્તેવાસી શિષ્ય કિ “ઈંદ્રમૂર્દ્ધુ
 નામં અળગારે” કિ જિનકા નામ ઇન્દ્રમૂર્તિ અનગાર થા “ગોયમ ગોત્તેણ” ઓર જો ગૌતમ ગોત્રો-
 ત્યન્ન થે “સત્તુસ્સેહે” તથા જિનકા ઉત્સેધ ૭ હાથ કા થા “સમચરંસ સઠાણસઠિષ્ઠિ” સસ્થાન
 જિનકા સમચતુરસ્ર થા અર્થાત્—હાથ પૈર, ઊપર ઓર નીચે યે ચાર અસ્ત્રિયા—વિભાગ શરીર કે
 પ્રમાણાનુરૂપ થે ન કમયે ઓર ન અધિક થે; યાવત્પદ કે અનુસાર—સહનન ઇનકા વજ્રઋષભના-
 રાચ થા જિસકે દ્વારા શરીર પુદ્ગલ દ્ઢ કિયે જાતે હૈ એસકા નામ સહનન હૈ યે સહનન શાસ્ત્ર-
 કારો ને ૬ વિભાગો મેં વિમલ્લ કિયે હૈ ઇનમેં યહ પ્રથમ સહનન હૈ ઇસ સહનન વાલે જીવ કી જો
 અસ્થિ હોતી હૈ વહ કીલિકા કે આકાર કી હોતી હૈ ઓર ઇસકે ઊપર પરિવેષ્ટનપટ્ટી કે જૈસી

તેણં કાલેણં તેણં સમણં સમણસ્સ ભગવઓ મહાવીરસ્સ—ઇત્યા ૦ સૂત્ર—૧૧૨।

ટીકાર્થ—તેણ કાલેણં તેણં સમણં તે ઠાળમા અને તે સમયમા ‘સમણસ્સ
 ભગવઓ મહાવીરસ્સ” શ્રમણ ભગવાન્ મહાવીરના ‘જેદ્દે અંતેવાસી” જ્યેષ્ઠ-પ્રધાન-અતેવાસી-
 શિષ્ય ‘ઈંદ્રમૂર્દ્ધુ નામ અળગારે’ કે જેમતુ’ નામ ઇન્દ્રમૂર્તિ અણગાર હંતુ “ગોયમગોત્તેણ”
 અને જેઓ ગૌતમ ગોત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલ હતા “સત્તુસ્સેહે તથા જેમતો ઉત્સેધ ઊચાઈ ૭
 હાથ જેટલો હતો—

‘સમચરસસંઠાણસંઠિષ્ઠિ’ સસ્થાન જેમતુ’ સમચતુરસ્ર હંતુ કમ પણ હતા નહીં
 તેમજ વધારે પણ ન હતા—યાવત્પદ સુજ્જભ—સહનન—વજ્ર ઋષભ નારાય ૩૫—હંતુ’ જેના
 વડે શરીર પુદ્ગલો સુદૃઢ કરવામા આવે છે, તેનુ નામ સહનન છે એ સહનનો શાસ્ત્રકારો
 એ ૬ વિભાગો મા વિભક્ત કરેલ છે આમા આ પ્રથમ સહનન છે. આ સહનનવાળા
 જીવની જે અસ્થિ હોય છે તે કીલિકાના આકાર જેવી હોય છે અને તેની ઉપર પરિવેષ્ટન

तदुपरि-परिवेष्टनपट्टाकृतिकोऽस्थिविशेषः, नाराचम्-उभयतो मर्कटबन्धः, तथा च उभयो-
रश्रोत्रभयतो मर्कटबन्धनेन वद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनाश्चा परिवेष्टितयोरुपरि
तदास्थित्रयं पुनरपि दृढीकर्तुं तत्र निखातं कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थियत्र भवति तद्
वज्रऋषमनाराचम् । तत् संहनन-संहन्यन्ते दृढी क्रियन्ते शरीरपुद्गला येन तत्
संहननम् अस्थिनिचयो यस्य स तथा । कनकपुलकनिकपपद्मगौरः-कनकस्य सुवर्णस्य
पुलकः-खण्डम् तस्य निकपः-शाणनिघृष्टरेखा, 'पद्म' शब्दात्पद्मकिञ्जल्कं गृह्यते, तेन पद्मं
पद्मकिञ्जल्कं च, तद्वत् गौरः, यद्वा-कनकस्य सुवर्णस्य पुलकः सारो वर्णातिशयस्तत्प्रयानो
यो निकपः-शाणनिघृष्टसुवर्णरेखा, तस्य यत् पक्ष्म-बहुलत्वं तद्वद् गौरः-शाणनिघृष्टा-
नेकसुवर्णरेखावच्चाकचिक्ययुक्तगौरशरीरः, उग्रतपाः-उग्रं-विशुद्धं प्रवृद्धपरिणामत्वात्
पारणादौ विचित्राभिग्रहत्वाच्च अप्रभृष्यमनशनादि द्वादशविधं तपो यस्य स तथा, तीव्र-
तपोधारीत्यर्थः दीप्ततपाः-दीप्त-जाज्वल्यमान तपो यस्य स तथा-वद्विरित्र कर्मवनदाह-

एक और विशेष हड्डी होती है इस का नाम ऋषम है उभयतो मर्कटबन्ध का नाम नाराच है
तथाच दोनों हड्डियों के दोनों ओर से मर्कट बन्धन से बद्ध करके और पट्टाकृति के जैसी एक
तृतीय हड्डी से परिवेष्टित करके पुनः इन तीनों हड्डियों को बहुत ही अधिकरूपसे मजबूत करने के
लिये वे आपस में विघटित न हो जावें इस रूप से उन्हें दृढ बनाने के लिये जिस सहनन में की-
लिका के आकार जैसी वज्र नामकी हड्डी हुकी रहती है उग्र सहनन का नाम वज्र ऋषम नाराच
सहनन है शाण के ऊपर-कसोटी पर कसे गये सुवर्ण की रेखाएँ जैसी चाकचिक्य से युक्त होती
हैं-चमकीली होती हैं और गौरवर्ण की प्रतीत हैं-ठीक इसी प्रकार का इन गौतम का शरीर भी
था ये उग्रतपस्वी थे पारणादि के समय ये विचित्र प्रकार के अभिग्रह को धारण करते रहते थे
क्यों कि चारित्र विशुद्धि के प्रति इनके परिणाम सदा जागृति सपन्न बने रहते थे किसीमे भी ऐसी
शक्ति नहीं थी जो इन्हें अनशनादि के भेद से १२ प्रकार के तप से व्युत्त कर सके इस तरह से
ये तीव्र तप की आराधना में अपने आपको विसर्जित किये हुए थे जिस प्रकार अग्नि वन को

पट्टी ना जेवी ओक भील वधारांनी अस्थि होय छे तेनु नाम ऋषम छे उभयतो मर्कट
बन्ध तु नाम नाराच छे तथाच-अन्ने अस्थिअने अन्ने तश्चथी मर्कट भंघनथी अद्ध
करीने अने पट्टाकृति जेवी ओक त्रील अस्थि वडे परिवेष्टित करीने इरी आ त्रिषु अस्थिअो
ने अहुंज सुदंठ करवाभाटे-तेअो ओक भीलथी विघटित थर्ध न अथ-आ प्रभाषु तेमने
सुदंठ अनाववा भाटे जे संहननमा छीदिकाना आऽार जेवी वज्र नामनी अस्थि पदेवा.
धने रहेल छे ते संहननतु नाम वज्र ऋषमनाराच संहनन छे शाषु पर-कसोटी पर-
कसवाभा आवेल सुवर्णनी रेखाअो जेम अमकती होय छे अने गौरवर्णनी प्रतीत थाय छे.
तेम आ गौतमतु शरीर पषु हतुं अेअो उग्रतपस्वी हता पारणादिना सभये अेअो
विचित्र प्रकारना अभिग्रहो धारषु करता रहेता हता केमके अरित्र विशुद्धिना प्रत्ये अेमना
परिष्ठायेो सर्वदा जागृति स पन्न रहेता हता. केधमा पषु अेवी ताकात नहोती के जेथी
अेमने अनशनादिना वेदथी १२ प्रकारना तपथी विचलित करी शके. आ प्रभाषु तीव्र

कत्वेन, ज्वलत्तेजस्वीत्यर्थः, तप्ततपाः—येन तपसा ज्ञानावरणीयाद्यष्टकर्म भस्मी भवति तादृशं तपस्तप्त येन स तथा, कर्म निर्जरणार्थं तपस्यावान् । महातपाः—आशंसा-दोषरहितत्वात् प्रशस्ततपाः, उदारः—सकलजीवैः सह मैत्रीकरणात् प्रधानः, घोरः परीष-होपसर्गकषायशत्रुप्रणाशनविधौ भयानकः, घोरव्रतः—घोरं कानरैर्दुश्चरं व्रतं सम्यक्त्व शीला-दिकं यस्य स तथा, घोरगुणः—घोराः—अन्यैर्दुरनुचरा गुणाः—मूल गुणादयो यस्य स तथा । घोरतपस्वी घोरैस्तपोभिस्तपस्वी—कठिनतपोधारीत्यर्थः, घोरब्रह्मचर्यवासी घोरं—दारुणं—कठिनम् अन्यैरल्प सचैर्दुष्करत्वादयद् ब्रह्मचर्यं तत्र वस्तुं स्थातुं शीलवान् , उच्छ्र-

दग्ध करने में कसर नहीं रखती है ठीक इसी प्रकार से इनका उग्रतप भी कर्मरूप कान्तार को सर्वथा क्षपित करने में समर्थ था यही बात दीप्ततप विशेषण से सूत्रकार ने प्रकट की है 'तप्ततपाः' पद से यह समझाया गया है कि तपस्या की आराधना ये किसी लौकिक कामना के वशवर्ती होकर नहीं कर रहे थे किन्तु कर्मों की निर्जरा होने के निमित्त से ही करते थे "महातपाः" इन्हें इसलिये कहा गया है कि जैसी तपस्या ये करते थे—वैसी तपस्या अन्य साधारण तप-स्विजनों से होनी अशक्य थी ये बड़े उदाराशयवाले थे क्यों कि सकल जीवों के साथ इनका व्यवहार मैत्री भावसे युक्त था घोर ये इसलिये प्रकट किये गये हैं कि परीषह और उपसर्ग के आजाने पर ये विचलित नहीं होते थे तथा कषोयादि आत्मा के विकारी भावों को ये अपने पास तक नहीं आने देते थे ये विकारीभाव उनके समीप तक आने में भय खाते थे घोर व्रत-कातरों से दुश्चर इनके व्रत—सम्यक्त्व शीलादिव्रत थे घोरगुण—मूलगुणादिक जो इनके गुण थे वे अन्य जनो द्वारा दुरनुचर थे घोरतपस्वी ये इसलिये थे कि ये कठिन से कठिन तपो की आरा-

तपनी आराधनामां तेजो तद्वदीनं हता. तेम अग्नि वनने दग्ध करवाभां कथाश राभती नथी, तेम अमनुष्ठित तप पशु कर्म इप कांतार (वन) ने सर्वथा क्षपित (विनष्ट) करवाभा समर्थं हंतु अेव वात 'दीप्ततप' विशेषणथी सूत्रकारे प्रकट करी छे 'तप्ततपा' पदथी आम समभववाभां आण्यु छे के तपस्यानी आराधना अेजो केरि लौकिक कामना माटे करता न होता परतु कर्मानि निर्जरा माटे न अेजो करता हता "महातपाः" अेमने अेटला माटे कहेवाभा आवेल छे के ने नतनी तपस्या अेजो करता हता तेनी तपस्या भीन साधारण तपस्वीअे माटे अेकदम अशक्य न हती. अेजो अहुन उदार आशय युक्त हता. केभके सकलजिवोनी साथे अेमने व्यवहार मैत्री भावपुषुं हता. अेजो ने घोर' अेटलामाटे कहेवाभां आवेल छे के परीषह अने उपसर्गथी अेजो विचलित थता नही' तेमन कषाय आदि आत्माना विकारी भावो ने अेजो अहुन हर राभता हता. अो सर्व विकारो अेमनी पास आवतां बाधित थता हता 'घोरव्रत' कातरथी दुश्चर अेमना व्रतो-सम्यक्त्व शीलादि व्रतो हता 'घोरगुण'—मूलगुणादिक ने अेमना शुषोहता ते अन्यलौको वडे दुरनुचर हता घोरतपस्वी अेजो अेटलामाटे हता के अेजो कंठ्य मां कंठ्य तपोनी आराधनामा तद्वदीनं हता अेजो घोर ब्रह्मचर्यवासी अेटलामाटे हता के भीन अदपसत्त्व

दशरीरः—उच्छृङ्खल्यक्तमिवत्यक्तं शरीरं तत्संस्कारपरिहाराद् येन स तथा । संक्षिप्तविपु-
लतेजोलेइयः—संक्षिप्ता-शरीरान्तर्गतत्वेन संकुचिता, विपुला विस्तीर्णा अनेक योजन परि-
मितक्षेत्रगतवरतु भस्मीकरणसमर्था, तेजोलेइया—विशिष्टतपोजनितलब्धिविशेषसमुत्पन्न-
तेजोज्वाला यस्य स तथा चतुर्दशपूर्वी-चतुर्दशपूर्वाण्यस्य सन्तीति चतुर्दशपूर्वी-चतुर्दशपूर्वधारी
स चावध्यादि विकल्पोऽपि भवेदित्याह—चतुर्ज्ञानोपगतः—मति-श्रुत्य-वधि-मनःपर्यवज्ञान-
सम्पन्नः चतुर्दशपूर्वि चतुर्ज्ञानोपगतेति विशेषणद्वयविशिष्टोऽपि कश्चिन्न समस्तश्रुतगतवि-
षयव्यापि ज्ञानवान् भवति चातुर्दश पूर्वधराणां पद्मगुणहानिवृद्धिलक्षण पटस्थानपतितत्त्वेन
श्रूयमाणत्वात् , अतस्तन्निरासार्थमाह—सर्वाक्षरसन्निपाती सर्वे च ते अक्षरसन्निपाता अक्षर
संयोगा, यद्वा सर्वेषामक्षराणां सन्निपाताः—संयोगाः सर्वाक्षरसन्निपाताः ते ज्ञेयत्वेन
सन्त्यस्येति सर्वाक्षरसन्निपाती सर्वाक्षरार्थज्ञानसम्पन्नः, एतादृश इन्द्रभूतिः, 'तिखुत्तो'
श्रीमहावीर स्वामिनं त्रिकृत्वः—चारत्रयम् , 'आयाहिण पयाहिण करेइ' आदक्षिणं प्रदक्षिणं
करोति 'वंदइ णमंसइ' वन्दते स्तौति, नमस्यति-नमस्करोति, 'वंदिता णमंसिता' वन्दित्वा
नमस्यित्वा च 'एवं वयासी' एवम्-अनुपदं वक्ष्यमाणं वचनम् अवादीत्—उक्तवान् ॥६० ॥

धना में अपने आप को लगाये हुए थे घोर ब्रह्मचर्यवासी थे इसकारण थे कि ये अन्य कल्प
सत्त्व वाले जीवों द्वारा जिसका पालन करना असंभव है उस कठिनातिकठिन ब्रह्मचर्य व्रत की
नव कोटि से आराधना करते थे इन्होंने अपने शरीर का संस्कार आदि करना बिल्कुल छोड़
रक्खा था इसलिये ये उच्छृङ्खल शरीर थे इन्हे जो तेजोलेइया प्राप्त थी उसमें ऐसी शक्ति थी कि
वह अनेक योजनो तक की वस्तु को भस्मसात् कर सकती थी पर वह उन्हो ने अपने भीतर
ही संकुचित करके दबा रखी थी उसे कभी भी कार्यान्वित नहीं किया था यह तेजो विशिष्ट
तपस्या से जनित लब्धिविशेष से उत्पन्न होती है ये चतुर्दशपूर्वों के पाठी थे साथ में मतिज्ञान
श्रुतज्ञान अविज्ञान और मन पर्यय ज्ञान के धारी थे और सर्वाक्षरार्थज्ञान संपन्न थे ऐसे इन
इन्द्रभूति गणघरने भगवान् महावीर का तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिण किया बन्दना की, नमस्कार
किया, बन्दना नमस्कार करके फिर उन्होने प्रभु से ऐसा पूछा ॥२॥

शुक्त एवो वडे जेमनु पालन अशक्य जेमहुतु ते कठिनातिकठिन ब्रह्मचर्यव्रतानी ज्येओ
नवकौटिथी आराधना करता हुना. जेमणे चोताना शरीरना संस्कारो वगेरे करवा त्यल्ल
दीधा हुता ज्येथी तेओ उच्छृङ्खल शरीर हुता जेमने जे तेजोलेइया प्राप्त हुती तेमां ज्येवी
शक्ति हुती हे ते धण्णा येजने। इरनी वस्तुने पणु बरुम करी शके तेम हुती पणु ते तेजो
लेइयाने तेमणे चोताना शरीरनी अहर ज सु कुञ्चित करीने इयावी राणी हुती. ते लेइयाने
तेमणे केअ पणु द्विपसे कार्यान्वित करी न हुती, आ तेजो विशिष्ट तपस्याथी जनित लब्धिवि-
शेषथी उपपन्न होय छे ज्येओ चतुर्दश पूर्वना पाठी हुता जने जेनी साथे मतिज्ञान,
श्रुत अविज्ञान जने मन पर्ययज्ञानना धारी हुता जने सर्वाक्षरार्थज्ञान संपन्न हुता ज्येवा
आ ध-द्रभूत गणुधरे भगवान् महावीरनी त्रणु वार आदक्षिण प्रदक्षिणा करी बन्दना करी
नमस्कार करी वडनी नमस्कार करीने पछी तेमणे प्रणुने आ प्रभाणे निवेदन कथुं ॥सू.२॥

किमुक्तवानिति प्रदर्शयितुमाह—

मूलम्—कहिणं भंते ! जम्बुद्वीवेदीवे ? के महालएणं भंते ! जंबु-
होवे दीवे ? २ किं संठिएणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे ३ किमायोरभाव-
पढोयरेणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे ४ पणत्ते ? गोयमा ! अयणं जंबु-
द्वीवे दीवे सव्वदीवसमुद्धानं सव्वव्भंतराए ? सव्वखुड्ढाए वट्टे तैल्ला
पूयसंठाणसंठिए वट्टे रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे पुक्खरकणिण्या
संठाणसंठिए वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए वट्टे ३ एगं जोयणसय-
सहस्सं आयामविकखंभेणं तिण्णिण जोयणसयसहस्साइं सोलंस सह-
स्साइं दोण्णिण य सत्तावीसे जोयणसए तिण्णिणय कोसे अट्ठावीसं च
धणुसयं तेरस अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहियं परिक्खेवेणं
पणत्ते ॥सू०३॥

छाया—क्व खलु भदन्त ! जम्बुद्वीपो द्वीपः १, किं महालयः ? खलु भदन्त ! जम्बु
द्वीपो द्वीपः २, किं संस्थितः ? खलु भदन्त ! जम्बुद्वीपो द्वीपः ३, वि कारभावप्रत्यवः
तारः ? खलु भदन्त ! जम्बुद्वीपो द्वीपः ४, प्रज्ञप्तः ? गौतम ! अयं खलु जम्बुद्वीपो द्वीप
सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तरकं सर्वक्षुल्लकं वृत्तः तैलापूपसंस्थानसंस्थितं वृत्तः रथ
चक्रवालसंस्थानसंस्थितः वृत्तं, पुक्करकणिका संस्थानसंस्थितः वृत्तं परिपूर्णचन्द्रसंस्थान
संस्थितः वृत्तं ३, एकं योजनशतस्त्राणि द्वेच सप्तविंशे योजनशते त्रयः कोशा. अष्टाविंशं
च धनुः शतं त्रयोदश अङ्गुलानि अधोऽङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः ॥सू०३॥

टीका—‘कहि णं भंते !’ इत्यादि । इन्द्रभूतिः श्रीमहावीरं प्रति पृच्छति- हे
भदन्त ! हे सुख कल्याणकारक ! भदन्त ! शब्दस्य विस्तरतो व्याख्याऽऽवश्यक-

“कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे ? इत्यादि ।

टीकार्थ—हे भदन्त ! हे सुख कल्याण कारक ! “कहि ण भंते । जंबुद्वीवे दीवे ?”, किस
स्थान परजम्बुद्वीप नाम का द्वीप कहा गया है ? यहां “ण” शब्द खलु शब्द के अर्थ में प्रयुक्त हुआ
है और यह इस वाक्य का अलङ्कृत करने के लिये आया है, इसी प्रकार से अन्य प्रश्न वाक्यों को

कहिणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे ! इत्यादि सूत्र-३॥

टीकार्थ—हे भदन्त ! हे सुखकल्याण कारक ! ‘कहि णं भंते जम्बुद्वीवे दीवे’
क्या स्थान पर जम्बुद्वीप नामक द्वीप कहेवासां आवेक्ये ? अर्थात् ‘ण’ शब्द
‘खलु’ शब्दना अर्थमा प्रयुक्त थयेक्ये ? अने आ शब्द आ वाक्यने अलङ्कृत
करवां माटे प्रयुक्त करवासां आवेक्ये. आ प्रभाषे षीण भश्च वाक्ये माटे

सूत्रस्य मत्कृतायां मुनितोषिणीटीकायां विलोकनीया । क कस्मिन् स्थाने 'जंबूद्वीवे दीवे' १ जम्बू द्वीपः—जम्बूद्वीपनामको द्वीपः प्रज्ञप्तः १ इत्यग्रेऽपि खलु शब्दो वाक्यालङ्कारे । अनेन जम्बूद्वीपस्य स्थानं पृष्टवान् १, 'के महालयं भंते ! जंबूद्वीवे दीवे २' तथा—हे भदन्त जम्बूद्वीपो द्वीप किं महालयः किं प्रमाणो महान् आलयः आश्रयो व्याप्यक्षेत्ररूपो यस्य स तथा कियत्प्रमाणकमहत्त्वविशिष्टाऽऽश्रयसम्पन्नः अनेन जम्बूद्वीपस्य प्रमाणं पृष्टवान् । २। 'किं संतिष्ठणं भंते ! जंबूद्वीवे दीवे ३' हे भदन्त ! जम्बूद्वीपो द्वीपः किं संस्थितः ? किं कीदृशं सस्थानम्-आकारो यस्य स किं संस्थानोऽस्ति ? एतेन जम्बूद्वीपस्य संस्थानं पृष्टवान् । ३। 'किमायारभावपडोयारेणं भंते ! जंबूद्वीवे दीवे ४' तथा—हे भदन्त ! जम्बूद्वीपो द्वीपः किमाकारभावप्रत्यवतारः—कः कीदृशः आकारभावप्रत्यवतारः—तत्राऽऽकारः—स्वरूपं भावाः पृथिवीवर्षवर्षधर प्रभृतयस्तदन्तर्गताः पदार्थाः, तेषां प्रत्यवतारः—अवतरणं प्रकटीभावः इति यावत् यस्मिन् स तथा 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः—कथितः । अनेन जम्बूद्वीपरय स्वरूपं तदन्तर्वर्ति पदार्थाश्च पृष्टवान् । ४। इत्येवं प्रश्नचतुष्टये कृते तदुत्तर श्रवणपरायणतामुत्पादयितुं तस्य जगत्प्रसिद्ध गोत्रनामोच्चारण पूर्वकामन्त्रणेन क्रमेण भगवानुत्तरयति—'गोयमा' इत्यादि । 'गोयमा' हे गौतम ! गौतमगोत्रोत्पन्न ! इन्द्रभूते ! 'अयणं जंबूद्वीवे दीवे' अयम्

भी ऐसा ही जानना चाहिये, "भदन्त" शब्द की विस्तृत व्याख्या आवश्यक सूत्र की मुनि तौषिणी टीका में की जा चुकी है, अतः वहाँ से इसे देख लेना चाहिये, "के महालयं भंते ! जंबूद्वीवे दीवे १", तथा हे भदन्त ! जंबू द्वीप, नाम का द्वीप कितना विशाल कहा गया है १, "किं संतिष्ठणं जंबूद्वीवे दीवे ?" तथा—हे भदन्त ! इस जम्बूद्वीप का सस्थान कैसा कहा गया है ? "किमायार भावपडोयारेणं भंते ! जंबूद्वीवे दीवे ४", २ तथा इस जम्बूद्वीप का आकार-स्वरूप कैसा कहा गया है ? और इसमें कौन से पदार्थ कहे गये हैं ? इसप्रकार से ये चार प्रश्न गौतम ने प्रश्नु से यहाँ पूछे हैं इसके उत्तर में प्रश्नु कहते हैं—"गोयमा ! हे गौतम गोत्रोत्पन्न ? इन्द्रभूते ! " 'अयणं जंबूद्वीवे दीवे' सव्वद्वीवसमुदाणं सव्वम्भतराप,, यह जो प्रत्यक्ष से दृश्यमान द्वीप है कि जहाँ पर हम सब रहते हैं इसी का नाम जम्बूद्वीप है यह जम्बूद्वीप नाम का द्वीप समस्तद्वीप

पण्णत्ते एवै रीते न समञ्जु नेध्मे लदन्त शब्दनी विस्तृतव्याख्या आवश्यक सूत्रनी मुनितोषिणी टीकाया करवाया आवेद छे तेथी ते त्याथी समञ्जु लेवी 'के महालयं भंते ! जंबूद्वीवे दीवे ?' तथा हे भदन्त ! आ जम्बूद्वीप नामे द्वीप केटवो विशाल कडेमा आवेद छे ? "किं संतिष्ठणं जंबूद्वीवे २ ? तेमञ्जु हे भदन्त ! आ जम्बूद्वीपस्य संस्थानं केपु कडेवाया आवेद छे ? "किमायारभावपडोयारेणं भंते ! जंबूद्वीवे दीवे ४७ तेमञ्जु आ जम्बूद्वीपना आकार-स्वरूप-केवो छे ? अने एमा कर्ध कर्ध जतना पदार्था छे ? आरीने आ चार प्रश्नो गौतमे प्रश्नुने अही पूछ्या छे, एना

प्रत्यक्षतो दृश्यमानः अस्मदादीनां निवासभूतः, जम्बूद्वीपो द्वीपः जम्बूद्वीप नामको द्वीपः 'सन्वहीवसमुद्राण सन्वन्मंतराप' १, सर्वद्वीपसमुद्राणाम्-सर्वेषां द्वीपानां-धातको-खण्डप्रभृतीनां तथासर्वेषां समुद्राणां लवणोदादीनां च सर्वाभ्यन्तरकः सर्वात्मना अभ्यन्तरः सर्वाभ्यन्तरः स एव सर्वाभ्यन्तरकः सर्वतिर्यग्लोकमध्यवर्तीत्यर्थः । इति प्रथम-प्रश्नस्योत्तरम् १। 'सन्वखुड्वाए वट्टे २' तथा-सर्वक्षुल्लकःसर्वेभ्यो द्वीपेभ्यः समुद्रेभ्यश्च क्षुल्लकः घृत्तः-गोलाकारः । इति द्वितीयप्रश्नस्योत्तरम् २। तथा घृत्तः वर्तुळः, स च छिद्रसहित घृतोऽपि स्यादित्यत आह-'तेल्लापूयसंठाणसंठिए वट्टे' इति ३, तैलापूप-संस्थानसंस्थितः तैलापूपः तैलेन पक्कोऽपूपस्तैलापूपः तैरुपकापूपोहि प्रायः परिपूर्ण-घृतो भवति न तु घृतपक्कोऽपूपस्तथेव तैलविशेषणम् । तद्वत् यत् संस्थानम्-आकारः

और समुद्रों के बीच में रहा हुआ सब से पहला द्वीप है इस प्रकार के ऋथत से प्रमुने प्रथम प्रश्न का उत्तर दिया है तात्पर्य इसका यहो है कि धातकी खण्ड आदिक जितने भी और अस-ख्यात द्वीप है, तथा-लवण समुद्रादिक जितने असख्यात समुद्र है उन सब के बीच में यह जम्बू-द्वीप नाम का द्वीप है । इस तरह यह जम्बूद्वीप नामका द्वीप समस्त तिर्यग्लोक के मध्य में रहा हुआ है । इसका विस्तार धातकी खण्ड आदिको एव लवण समुद्र आदिको की अपेक्षा कम है जितने भी इसके सिवाय द्वीप और समुद्र है वे सब बलथ के आकार जैसे गोल है-अतः इसकी गोलाई सब द्वीप और समुद्रों से कम है ऐसा यह द्वितीय प्रश्न का उत्तर दिया गया है इसीलिये "सन्व खुड्वाए वट्टे" ऐमा सूत्रकार ने कहा है "तेल्लापूयसंठाण सठिए वट्टे"रहचक्कवाल संठाण सठिए वट्टे,, इसका आकार जैसा तैल में तले हुए पुये का होता है वैसा है घृत में तले गये पुये का आकर पूर्णरूप से गोल नहीं हो पाता है इसलिये यहां तैल में तले पुये के साथ में

उत्तरमां प्रभु ढंडे छे-"गोयमा !" छे गौतम गोत्रोत्पन्न धन्द्भूत । "अथर्णो जंबुद्वीवे द्वीवे सन्वहीवसमुद्राणं सन्वन्मंतराप" आ जे अमारी सामे प्रत्यक्ष दृश्यमान द्वीप छे, त्या अमे जथां रडोये छीये तेनु नाम ज जम्बूद्वीप छे आ जम्बूद्वीप नामक द्वीप जथा द्वीपो तेमज समुद्रोनी वन्थे अवस्थित सौथी पडेले। द्वीप छे आ रीते प्रभुजे प्रश्नो जवाज अ.प्ये छे तात्पर्य आ प्रभाणे छे के धातकी अंड वगेरे जेटला भीज अस ज्जात द्वीपो छे तथा लवण समुद्राडिक जेटला अस ज्जात समुद्रो छे, ते सर्वानी मध्ये आ जम्बूद्वीप नामक द्वीप आवेल छे आ प्रभाणे आ जम्बूद्वीप नामको द्वीप समस्त तिर्यग्लोकना मध्यमा आवेल छे आने। विस्तार धातकोअंड वगेरे तेमज लवण समुद्र वगेरेनी अपेक्षा स्वल्प छे जेना सिवाय भीज जेटला द्वीपो छे तेमज समुद्रो छे तेजो। सर्वे वलयना आकार जेवा गोल आकृतिवाजा छे आ द्वीप पण गोल छे जेथो जेनी गोल आकृति सर्व द्वीपो अने समुद्रो करता स्वल्प छे आभ भीज प्रश्नो जवाज आपवाभां आव्ये छे जेथो ज 'सन्व खुड्वाए वट्टे' आ प्रभाणे छु छे "तेल्लापूय संठाणसठिए वट्टे रहचक्कवालिसंठाणसंठिए वट्टे, पुष्करकणिया संठाणसंठिए वट्टे "आने। आकार तेवभा तणेला अपूप जेवे छे धीमां तणेला अपूप ने। आकार संपूर्ण पण गोल थतो नथो जेथो अही तेव भा तणेला अपूपनी साथे तेना गोल

ननु जम्बूद्वीपस्य पूर्वतः पश्चिमं यावत् योजनलक्षं प्रमाणमभिहितं, तत्र पूर्व पश्चिम-दिग्वर्ति जगती मूलयोः प्रत्येकं विष्कम्भो द्वादशयोजनप्रमाण, ततश्च पूर्वोक्त लक्षप्रमाणे पूर्वपश्चिमदिग्वर्ति जगत्यो द्वादश द्वादश योजनात्मकं मूलविष्कम्भप्रमाणं संयोजितं तच्चतुर्विंशत्यधिकैकलक्षयोजनं जम्बूद्वीपप्रमाणं वक्तव्यम्, एवं च पूर्वोक्त मानं विरुध्यते इति चेदाह-जम्बूद्वीपस्य यत् प्रमाणमभिहितं तज्जगती मूलविष्कम्भप्रमाणापेक्षयैव । एवं लवणसमुद्रस्यापि यन्लक्षद्वयं प्रमाणमभिहितं तद् लवणसमुद्र जगती मूलविष्कम्भमादायैव । एवमन्यान्य द्वीप समुद्रविषयेऽपि विज्ञेयम् । यदि द्वीपसमुद्रमानाज्जगतीमानं पृथग् भण्येत, तदा मनुष्यक्षेत्रप्रमाणं यत् पञ्चचत्वारिशल्लक्षयोजनप्रमाणमभिहितं तद् विरुध्येत । अतो जगतीविष्कम्भप्रमाणमादा-

तेरस अंगुलाह अद्वंगुल च किंचि विसेसाहिय परिक्लेवेणं पणत्ते' इसकी लम्बाई चौड़ाई एक लाख योजन की है

शंका-जम्बूद्वीप का जो पूर्व पश्चिम तक एक लाख योजन का प्रमाण कहा गया है वहां पूर्व पश्चिम दिग्वर्ती जगती और मूल का प्रत्येक का विष्कम्भ प्रमाण १२-१२ योजन का है अतः एक लाख योजन में २४ योजनात्मक इस प्रमाण को मिलाने से एक लाख २४ योजन का प्रमाण इसका कहना चाहिये था सो केवल इसकी लम्बाई का यह १ एक लाख योजन का प्रमाण विरुद्ध पड़ता है ।

उत्तर-यहां जो जम्बूद्वीप का प्रमाण कहा है वह जगती और मूल के विष्कम्भ प्रमाण को अपेक्षा से ही कहा है, इसी तरह लवण समुद्र का जो दो लाख योजन का प्रमाण कहा गया है वह लवण समुद्र की जगती और मूल विष्कम्भप्रमाण को लेकर ही कहा गया जानना चाहिये इसी तरह का कथन अन्य द्वीप और समुद्रों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये यदि द्वीप समुद्रों के प्रमाण पृथक् कहा जाता तो मनुष्यक्षेत्र का जो प्रमाण ४५ लाख योजन का कहा गया है उसमें विरोध आता है' अतः जगती विष्कम्भ प्रमाण

अद्वंगुलं च किंचि विसेसाहिय परिक्लेवेणं पणत्ते' आनी लंबाई, चौड़ाई जोक योजन जेटली छे

शंका.—जम्बूद्वीपस्य प्रमाणं पूर्वं पश्चिमं सुधीनुं जोक लाख योजन जेटलुं कडेवामां आवेल छे त्या पूर्वं पश्चिम दिग्वर्ती जगती अने मूलनु प्रत्येकनु विष्कम्भ प्रमाण १२-१२ योजन जेटलु छे जेवा जोक लाख योजनात्मा २४ योजनात्मक आ प्रमाणने जोकन करवाथी जोक लाख २४ योजन नुं प्रमाण आनुं छे तेम कडेनु जोधजो परतु अही तो इकत आनी लंबाई पडोणार्धनुं जोक लाख योजन प्रमाण निरूपित करवामां आवेल छे ते उपरोक्त रीते जोक लाख योजननुं कथन विरुद्ध पडे छे उत्तर-अही जम्बू द्वीपस्य प्रमाण कडेवामा आवेल छे ते जगती अने मूलना विष्कम्भ प्रमाणनी अपेक्षाथी ज कडेवामा आवेल छे आ प्रमाण लवण समुद्रनु जे जे लाख योजन जेटलुं कडेवामा आवेल छे ते लवण समुद्रनी जगती अने मूलविष्कम्भ प्रमाणना आधारे ज कडेवामां आवेल छे जे आ प्रमाणे षील द्वीपे अने समुद्रोना विशे पलु जण्णी लेवुं जोधजो जे द्वीप समुद्रना प्रमाण थी जगतीनु प्रमाण अलग कडेवामां आवे तो मनुष्यक्षेत्रनु जे प्रमाण ४५ लाख योजन जेटलु कडेवामां आवेल छे, तेमां विरोध लागे छे जेथी जगतीना विष्कम्भ प्रमाण

यैव द्वीपसमुद्राणां प्रमाणं विवक्षितमिति विज्ञेयमिति । तथा 'तिण्णिजोयण सयसह-
स्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि त्रीणि लक्षाणि 'सोलससहस्साइं' षोडश सहस्राणि
योजनानि 'दोन्निय सत्तावीसे जोयणसए' द्वे योजनशते सप्तविधे सप्तविंशत्यधिके
'तिण्णियकोसे' त्रयः—त्रिसहस्रकाः क्रोशाः, 'अट्टावीसं च धणुसय' अष्टाविंशत्—अष्टा-
विंशत्यधिकं धनुः शत 'तेरस अंगुलाइ' त्रयोऽंशान्जुलानि 'अट्टंगुलं च किंचिविसे-
साहिय परिकखेवेण पणत्ते' अधोऽङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकमित्येतावान् परिक्षेपेण
परिधिना जम्बूद्वीपो द्वीपः प्रज्ञप्तः ॥६०३॥

अथाऽऽकारभावप्रत्यवतारविषयकप्रश्नस्योत्तरमाह—

मूलम्—से णं एगाए वर्डशमईए जगईए सव्वओ समंता संपरि-
क्खित्ते । सा णं जगई अट्ट जोयणाइं उट्टं उच्चत्तेणं, मूले वारस
जोयणाइं विक्खंभेणं, मज्झे अट्ट जोयणाइं विक्खंभेणं, उवरि चत्तारि-
जोयणाइं विक्खंभेणं, मूले वित्थिन्ना मज्झे संखिता उवरि तणुया
गोपुच्छसंठाणसंठिया सव्ववड्ढामई अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्टा
णीरया निम्मला णिप्पंका णिक्कंकटच्छाया सप्पभा समरीइया सउ-
ज्जोया पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । सा णं जगई
एगेणं महंतगवक्खकडएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता । से णं गव-
क्खकडए अट्टजोयणं उट्टं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं सव्व-
रयणामए अच्छे जाव पडिरूवे । तीसेणं जगईए उप्पि बहुमज्झदे-
सभाए एत्थणं महई एगा पउमवरवेइया पणत्ता, अट्टजोयणं उट्टं
उच्चत्तेणं पच धणुसयाइं विक्खंभेणं जगई समिया परिकखेवेणं सव्व-
रयणामई अच्छा जाव पडिरूवा । तीसेणं पउमवरवेइआए अयमे

को लेकर ही द्वीप समुद्रो का प्रमाण कहा है ऐसा जानना चाहिये इस जम्बू द्वीप की परिधि
का प्रमाण ३ लाख १६ हजार दो सौ २७ योजन एवं ३ कोश २८ धनुष १३॥ अंगुल से
कुछ अधिक है ॥३॥

ने वर्धने न द्वीप समुद्रोत्तं प्रमाणं कडेवाभां आवेदं छे, आम समज्जु लेधंछे आ
नंभूद्वीपनी परिधीनु प्रमाणं उउ लाख १६ हजार असे। उउ (उउ१६२३७) योजन अने
उ कोश २८ धनुष १३॥ अंशुव करतां कर्धकं वधादे छे ॥३॥

यारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा वइरामया नेमा एवं जहा जीवा-
भिगमे जाव अट्ठो जाव ध्रुवा णियया सासया जाव णिच्चा ॥सू० ४॥

छाया—स खलु एकया वज्रमय्या जगत्या सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्त । सा खलु जगतो अष्टयोजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेण, मध्ये अष्टयोजनानि विष्कम्भेण, उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण, मूले विस्तीर्णा मध्ये संक्षिप्ता उपरि तनुका गोपुच्छसस्थानसंस्थिता सर्ववज्रमयी अच्छा प्रलक्षणा घृष्टा मृष्टा नीरजाः निर्मला निष्पङ्का निष्कङ्कटच्छाया सप्रभा समरीचिका सोद्द्योता प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा, सा खलु जगती एकेन महागवाक्षकटकेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्ता स खलु गवाक्षकटक' अर्द्धयोजनम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन पञ्चधनुः शतानि विष्कम्भेण, सर्वरत्नमय अच्छ' यावत् प्रतिरूपा', तस्या खलु जगत्या उपरि बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महती एका पद्मवरवेदिका प्रक्षप्ता, अर्द्धयोजनम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, पञ्चधनुः शतानि विष्कम्भेण जगतीसमिता परिक्षेपेण सर्वरत्नमयी अच्छा यावत् प्रतिरूपाः । तस्याः खलु पद्मवरवेदिकायाः अयमेतद्रूपो वर्णावासः प्रक्षप्त. तद्यथा—वज्रमया नेमाः पव यथा जीवाभिगमे, यावत् अर्थः ध्रुवा नियता शाश्वती यावत् नित्या ॥ सूत्र० ४ ॥

टीका—“से णं एगाए” इत्यादि—‘से णं एगाए वइरामईए जगईए’ सः—अनन्तरोक्तो जम्बूद्वीप नामा द्वीपः खलु वक्यालङ्कारे, एकया एकसंख्यया वज्रमय्या वज्ररत्नमय्या जगत्या—जम्बूद्वीपप्राकाररूपया द्वीपसमुद्रसीमाकारिण्या, ‘सव्वओ समंता संपरिक्खत्ते’ सर्वतः सर्वदिक्षु समन्तात्—सर्वदिक्षु संपरिक्षिप्तः—सम्यक् परिवेष्टितः । ‘सा णं जगई अट्ठ जोयणाइं उट्ठ उच्चत्तेणं’ सा च जगती अष्टयोजनानि ऊर्ध्वम् उपरि उच्चत्वेन—उच्छ्रयेण प्रक्षप्तेत्यग्रेण सम्बन्धः एवमग्रेऽपि । ‘मूले बारस जोयणाइं विक्खंमेणं’ मूले—मूलभागे विष्कम्भेण—विस्तारेण द्वादश योजनानि’ मज्झे अट्ठजोयणाइं विक्खं-

“ से ण एगाए वइरामईए जगईए ” इत्यादि ।

टीकार्थ—यह जम्बूद्वीप नाम का द्वीप एक वज्रमयी जगती से—द्वीप समुद्र की सीमाकारी कोट से— “सव्वओ समंता” चारो ओर से अच्छी तरह से घिरा हुआ है “सा णं जगई अट्ठ जोयणाइ उट्ठ उच्चत्तेण मूले बारस जोयणाइं विक्खंमेण, मज्झे अट्ठ जोयणाइ विक्खंमेण” यह प्राकार रूप जगती आठ योजन की ऊँची है मूल में बारह योजन की विष्कम्भवाली है मध्य में आठ

से णं एगाए वइरामईए जगईए सव्वओ समंता, इत्यादि ॥ सूत्र ४॥

टीकाार्थ—आ ञ् द्वीप नामक द्वीप वज्रमयी जगती थी—द्वीप समुद्रकी सीमाकारी कोटयो— “सव्वओ समंता” ओभेर चारी रीते आवृत्त छे “सा णं जगई अट्ठ जोयणाइ उट्ठ उच्चत्तेण मूले बारस जोयणाइं विक्खंमेण, मज्झे अट्ठजोयणाइं विक्खंमेण” आ प्राकार रूप जगती आठ योजन केटकी ज'थी छे, मूलभा आठ योजन केटकी विष्कम्भवाणी छे मध्यभा आठ योजन केटकी विस्तारवाणी छे, “उपरि चत्वारि जोयणाइं विक्खंमेण” उपरभां आ

मेणं' मध्ये-मध्यभागे विष्कम्भेण अष्टयोजनानि 'उवरिं चत्वारि जोयणाइं विक्खंभेणं, उपरि ऊर्ध्वभागे विष्कम्भेण चत्वारि योजनानि । अतएवाह-‘मूले विस्तिण्णा’ मूले विस्तीर्णा-द्रावशयोजनविष्कम्भसम्पन्नत्वात्, ‘मज्झे संखित्ता, मध्ये-संक्षिप्ता-मूलापेक्षयाऽल्प-प्रमाणा अष्टयोजनप्रमाणविष्कम्भसम्पन्नत्वात्, उवरि ‘तणुया’ उपरि-उर्ध्वभागे तनुका-मूलमध्यापेक्षया ह्रस्वा चतुर्योजनप्रमाणविष्कम्भसम्पन्नत्वात्, अतएव’ ‘गोपुच्छ संठाणसंठिया’ गोपुच्छ संस्थानसंस्थिता गोपुच्छम् ऊर्ध्वीकृत गोपुच्छं क्रमशः बहुमध्य-माल्यप्रमाणं भवति तद्वत् यत् संस्थानम्-आकारः तेन संस्थिता, ‘सव्ववडरामई’ सर्व-वज्रमयी-सर्वात्मना-सामस्त्येन वज्ररत्नमयो सा कीदृशीति वर्णयते-“अच्छे” त्यादि, ‘अच्छा’ अच्छा आकाश स्फटिकवत् स्वच्छा ‘सण्हा’ श्लक्षणा-श्लक्ष्ण पुद्गलस्कन्धनिष्पन्ना श्लक्ष्णसूत्रनिष्पन्नपटवत्, पुनः ‘लण्हा’ श्लक्ष्ण-चिक्कणा धुण्डितपटवत्, ‘घट्टा’ घृष्टा-घृष्टेऽवघृष्टा खरशाणनिघृष्टपाषाणखण्डवत् ‘मट्टा’ मृष्टा-मृष्टेव मृष्टा-कोमलशाण-घृष्टपाषाणखण्डवत्, ‘णीरया’ नीरजाः-स्वामाविकरजोवर्जिता, ‘निम्मला’ निर्मला-

योजन की विस्तार वाली है “उवरिं चत्वारि जोयणाइ विक्खंभेणं” ऊपर में यह चार योजन की विस्तार वाली है इस तरह यह मूल में विस्तीर्ण है, मध्य में संक्षिप्त है और ऊपर में पतली हो गई है अत एव इस जगती का आकार ‘गोपुच्छ के आकार जैसा हो गया है यह जगती “सव्ववडरामई अच्छा, मण्हा, लण्हा घट्टा, मट्टा, णीरया, निम्मला, णिप्पका, णिक्ककडच्छाया, सप्पमा, समरीइया, सउज्जोया, पासार्इया दरिसणिज्जा, अभिरूवा पडिरूवा” सर्वात्मना वज्र-रत्न की बनी हुई है, तथा यह आकाश और स्फटिक मणि के जैसी अतिस्वच्छ है, श्लक्ष्ण सूत्र से निर्मित पट कि तरह यह श्लक्ष्णपुद्गल स्कन्ध से निर्मित हुई है, अत एव यह सब से श्रेष्ठ है तथा घुटे हुए बल की तरह यह चिकनी है, खरशाण से बिसे गये पाषाण की तरह यह घृष्ट है, कोमल शाण से बिसे गये पाषाणखण्ड की तरह यह मृष्ट है स्वामादिक रज से रहित होने से यह नीजर है आगन्तुक मैल से रहित होने से यह निर्मल है, कर्दमरहित होने से यह निष्पङ्क है, आवरण

थार योजन नेटली विस्तारशुक्त छे आ प्रमाणे आ मूलमा (विस्तीर्ण) छे, मध्यमा संक्षिप्त छे, अने उपरमा पातणी थर्ध गर्थ छे अथी आ जगतीना आकार “गोपुच्छसंठाण-संठिया” गोपुच्छना आकार नेवे थर्ध गथे छे आ जगती “सव्व वडरामई अच्छा सण्हा, लण्हा, घट्टा, मट्टा, नीरया, निम्मला, णिप्पका णिक्ककडच्छाया सप्पमा समरीइया, सउज्जोया, पासार्इया दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा,” सर्वात्मना वज्र रत्ननी अनेली छे, तेमज्ज आ आकाश अने स्फटिकभाषि नेवी अति स्वच्छ छे, श्लक्ष्ण सूत्र निर्मित पटनी नेम आ श्लक्ष्ण पुद्गल स्कन्धथी निर्मित थयेली छे अथी आ लष्ट-श्रेष्ठ-छे तेमज्ज घूटेव पत्तनी नेम आ सुचिद्रवण छे धार हाठवाना पथरथी घसेला पाषाणनी नेम आ घृष्ट छे. कोमल शाणथी घसेला पाषाण थ डनी नेम आ मृष्ट छे स्वामाविक रजथी रहित होवा अहल आ नीरज छे, आग तुक मेरुथी रहित होवा अहल आ निर्मल छे. कर्दम

आगन्तुकमलरहिता, 'णिप्पका' निष्पङ्का-पङ्क-रहिता निष्कर्ममा, तथा 'णिककटच्छाया' निष्ककटच्छाया आवरण रहितत्वाद्ब्याहृत प्रकाशा 'सप्पमा' सप्रभा-स्वरूपतः प्रभासम्पन्नाः, प्रकाशमानेत्यर्थः, 'समगीइया' समरीचिका-किरणसम्पन्ना वस्तुजातप्रकाशिकेत्यर्थः, 'सउज्जोया' सोद्द्योता निरन्तरदिग्बिदिक प्रकाशिका, तथा 'पासादीया' प्रासादीका-प्रसादो-मनः प्रसन्नता, स प्रयोजनं यस्या इति प्रासादीया हृदयोल्लासकारिणी । 'दरिसणिज्जा' दर्शनीया-रमणीयतया क्षणे क्षणे द्रष्टु योग्या, 'अभिरूवा' अभिरूपा-अभिमतमनुकूलं रूपं यस्याः सा तथा-सर्वथा दर्शकजनमनमनोहारिणी । 'पडिरूवा' प्रतिरूपा-अपूर्व चमत्कारसमुत्पादिका । असाधारणरूप सम्पन्नेत्यर्थः । यद्वा प्रति प्रतिक्षणं नवं नवमिव रूप यस्याः सा तथा ।

'सा ण जगई' सा च खलु जगती 'एगेण महंत गवक्ख कडएणं' एकेन अनुपमेन महागवाक्षकटकेन-विशाल जालक समूहेन 'सव्वओ समंता संपरिक्खत्ता' सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्ता-सम्यक् परिवेष्टिता विविधविशालगवाक्षसम्पन्नेत्यर्थः । 'से ण गवक्खकडए' स खलु गवाक्षकटकः अद्भजोयण उद्दह उच्चत्तेण' अर्द्धयोजनम् ऊर्ध्वम् उपरि उच्चत्वेन-उच्छ्रयेण 'पंचधणुसयाइ विक्खंभेणं' पञ्चधनुः शतानि विष्कम्भेण विस्तारेण, प्रज्ञप्तः । कीदृशः पुनः स गवाक्षकटकः ? इत्याह-'सव्वरयणामए' इत्यादि ।

रहित होने से निष्ककटच्छाया वाली है- अव्याहृत प्रकाशयुक्त है- स्वरूप से प्रभासंपन्न है-स्वतः प्रकाशमान है, किरणयुक्त है- वस्तु समूह की प्रकाशक है, निरन्तर दिशाओं में इसका प्रकाश फैला रहता है, इसलिये सोद्योत है हृदय में उल्लास जनक होने से यह प्रासादीय है. अधिक रमणीय होने से क्षण क्षण में यह देखने के योग्य है इसलिये दर्शनीय है, सर्वथा दर्शकजनो के नेत्र और मन को हरण करनेवाली होने से यह अभिरूप है और असाधारणरूपसंपन्न होने से यह प्रतिरूप है । अथवा-क्षण क्षण में इसका रूप नवीन नवीन जैसा प्रतीत होता है इसलिये प्रतिरूप है । "सा णं जगई" वह जगती "एगेणं महंतगवक्खकडएण सव्वओ समंता संपरिक्खत्ता" एक विशाल गवाक्षजाल से-अनेक बड़ी २ खिडकियों से युक्त है "से णं गवक्खकडए" वह गवाक्ष जाल "अद्भजोयण उद्दहउच्चत्तेण" आधे योजन का ऊँचा है "पंच

रहित डोवाथी आ निष्पक छे आगरखु रहित निष्क टके छायावाणी छे अव्याहृत प्रकाश-युक्त छे, वस्तु समूहनी प्रकाशिका छे निरन्तर दिशाओमा अने विदिशाओमा आने प्रकाश व्याप्त रहे छे ओथी आ सोद्योत छे, हृदयमा उल्लासजनक डोवाथी आ प्रासादीय छे अधिक रमणीय डोवाथी आ दर्शनीय छे सर्वथा दर्शकेना नेत्र अने मनने आकर्षनारी डोवाथी आ अभिरूप छे अथवा क्षण क्षणमा आयुं इय नवनवीत जेपु लागे छे ओथी आ प्रतिरूप छे "सा णं जगई" ते जगती "एगेण महंतगवक्खकडएण सव्वओ समंता संपरिक्खत्ता" अक विशाल गवाक्ष अदृथी-अनेक मोटा मोटा अर्ध्याओथी युक्त छे. "से णं गवक्खकडए" गवाक्ष जाल "अद्भजोयण उद्दहं उच्चत्तेणं" अर्धा योजन जेटेदी ७.३।

सर्वरत्नमयः—सर्वात्मना—सामस्त्येन रत्नमयः 'अच्छे' अञ्छः—आकाशस्फटिकवदति स्वच्छः 'जाव पडिरूवे' यावत्—यावत्पदेन—“श्लक्ष्णः घृष्टः, मृष्टः, नीरजः, निर्मलः निष्पङ्कः, निष्कङ्कटच्छायः सप्रभः, समरीचिकः, सोद्द्योतः, प्रासादीयः दर्शनीयः अभिरूपः” एतेषां सङ्ग्रहो बोध्यः । तथा—प्रतिरूपः एषां श्लक्ष्णादि प्रतिरूपान्तानां व्याख्याअस्मिन्नेव सूत्रे गता केवलं स्त्रीपुंसकृतो विशेषः । इत्येवं जगतीवर्णनं भुक्त्वा जगत्या उपरिभागवर्णनमाह—तीसेणं' इत्यादि । 'तीसेणं जगईए उप्पि' तस्याः—अनन्तरोक्ताया बलयाकारेण व्यवस्थितायाः खलु जगत्या उपरि—चतुर्योजनविस्तारात्मके उपरितने भागे 'बहुमज्झदेसभाए' यो बहुमध्यदेशभागः—चतुर्योजनविस्तारात्मकस्य जगत्युपरितनभागस्य लवणदिशि देशोनयोजनद्वये त्यक्ते जम्बूद्वीपदिशि च देशोनयोजनद्वये त्यक्तेऽवशिष्टः पञ्चधनुश्शतात्मके बहुमध्यदेशभागः अस्ति, 'एत्थ णं महई एगापउमवरवेइया पणत्ता' अत्र अस्मिन् स्थले महती—वृहती एका पद्मवरवेदिका श्रेष्ठकमलप्रधाना वेदिका देवभोगभूमिः प्रहस्ता—कथिता । किं प्रमाणा ? इत्याह—“अद्धजोयणं” इत्यादि, 'अद्धजोयणं उद्धं उच्चत्तेणं पञ्चधणुसयाइं विक्खंमेणं' अर्द्धयोजनमूर्ध्वमुच्च

धणुसयाइं विक्खंमेणं' एवं पांचसौ धनुष का इसका विस्तार है "सव्वरयणामए" यह सर्वात्मना सर्वरत्नमय है, तथा "अच्छे जाव पडिरूवे" अञ्छ से लेकर प्रतिरूप तक के विशेषणो वाला है, "तीसेणं जगईए उप्पि" बलयाकार वाली इस जगती के ऊपर के भाग में जो कि चार योजन के विस्तार वाला है "बहुमज्झदेसभाए" ठीक मध्य में-५०० योजन विस्तार वाले बीच के भाग में लवण समुद्र की दिशा की ओर कुछ कम दो योजन को और जम्बूद्वीप की दिशा की ओर कुछ कम दो योजन को - छोड़कर बाकी बचे हुए ५०० योजन के विस्तार वाले बहुमध्य-देश में—“ एत्थ ण महई एगा पउमवरवेइया पणत्ता” एक विशाल पद्मवरवेदिका है यह श्रेष्ठ-कमलो की प्रधानतावाली है , इसलिये इसका नाम पद्मवरवेदिका कहा गया है यह देवो का भोगो को भोगने का एक स्थान रूप है. यह पद्मवरवेदिका 'अद्ध जोयणं उद्धं उच्चत्तेणं पंचधणु-

छे. "पंच धणु सयाइं विक्खंमेणं" पांचसौ धनुष जेटला आने। विस्तार छे "सव्वरयणामए" आ सर्वात्मना सर्वरत्नमय छे, तथा "अच्छे जाव पडिरूवे" अञ्छणी भाडीने प्रतिरूप सुधीना आ विशेषणोथी युक्त छे तीसेणं जगईए उप्पि" बलयाकारवाणी आ जगतीना उपरना भागमा के जे चार योजन जेटला विस्तारवाणी छे "बहुमज्झदेसभाए" ठीक मध्यमा ५०० योजन विस्तारवाणी वचनेना भागमा लवण समुद्रनी दिशानी तरफ क'धक'कम जे योजन आने जम्बूद्वीपनी दिशानी तरफ क'धक' स्वल्प जे योजन ने आह करता शेष ५०० योजन जेटला विस्तारवाणी अद्ध मध्यदेशमा "एत्थ ण महई एगा पउमवरवेइया पणत्ता" एक विशाल पद्मवरवेदिका छे आ श्रेष्ठ कमलोनी प्रधानतावाणी छे. अथी आनु नाम पद्मवरवेदिका कडेवाभा आवेल छे आ हेवाने भोगअने उपभोग करवाना अके स्थान रुप छे. आ पद्मवरवेदिका "अद्ध जोयणं उद्धं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं

त्वेन पञ्चधनुः शतानि विष्कम्भेण-विस्तारेण, 'जगई समिया परिक्खेवेणं' जगती समिका-जगत्या समा समाना जगती समा सैव जगती समिका परिक्षेपेण-परिधिना, यावान् जगत्याः परिधिस्तावानेवास्या अपीति भावः । सा कीदृशी ? इत्याह-"सन्वरयणामई" इत्यादि । सर्वरत्नमयी सर्वात्मना रत्नमयी 'अच्छा जाव पडिख्वा' अच्छा यावत् प्रतिरूपा इत्येतस्य विवरणं प्राग्वत् । 'तीसे णं पउमवरवेइयाए' तस्याः अनन्तरोक्तायाः खलु पद्म-वरवेदि कायाः 'अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते' अयमेतद्रूपः-वक्ष्यमाणस्वरूपः वर्णावासः वर्णनषट्तिः, प्रज्ञप्तः 'तं जहा' तद्यथा-'वइरामया जेमा' नेमाः भूमिभागादूर्ध्वं निष्क्रामन्तः प्रदेशाः वज्रमयाः-वज्रमणिमयाः 'एव जहा जीवाभिगमे' एवम्-अनेन प्रकारेण यथा जीवाभिगमे जीवाभिगमसूत्रे पद्मवरवेदिकावर्णनविस्तर उक्तः तथाऽत्रापि सर्वो बोध्यः स च कियत्पर्यन्तः ? इत्याह-"जाव अट्टो" यावदर्थः-वज्रमया नेमा इत्यारभ्य अर्थ इत्यन्तः पाठो बोध्यः, तत आरभ्य कियत्पर्यन्तः पाठो ग्राह्यः ? इत्याह-"जाव धुवा णियया सासया" यावद् ध्रुवा नियता शाश्वती" इति, ततोऽपि कियत् पर्यन्तः पाठो ग्राह्यः ? इत्याह-"जाव णिच्चा" यावद् नित्या, इति, स च सर्वः पाठ एवम्-"वइरामया जेमा

सयाइं विक्खमेण" ऊँचाई में आवे योजन की है और विस्तार में अर्थात् चौड़ाई में पाचसौ धनुष की है "जगई समिया परिक्खेवेण" इसका परिक्षेप जगती के परिक्षेप बराबर पद्मवरवेदिका "सन्वरयणामई" सम्पूर्णरूप से रत्नमयी है और अच्छ आदि प्रतिरूपान्ततक के विशेषणो वाली है "तीसेण पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे पण्णावासे पण्णत्ते" इस पद्मवरवेदिका के वर्णन के सम्बन्ध में ऐसा कहा गया है-"तं जहा-वइरामया जेमा" इसके नेम-भूमिभाग से ऊपर की ओर निकले हुए प्रदेश वज्रमणि के बने हुए है "एव जहा जीवाभिगमे" इस तरह से वर्णन जैसा इसका जीवाभिगम सूत्र में किया गया है वैसा हो यहां पर समझना चाहिये, और यह वहां का सब वर्णन वेदिका के सम्बन्ध का "जाव अट्टो जाव धुवा णियया सासया" इस सूत्र पाठ तक का यहां पर कहलेना चाहिये क्यों कि वेदिका का वर्णन वहां इसी सूत्र पाठ तक

विक्खमेण" ७। याधमा अधथिावन ७ेटली छे अने विस्तारमां ७ेटले के ७े।।।धमां पायसे। धनुष ७ेटली छे 'जगई समिया परिक्खेवेणं' आने। परिक्षेप ७गतीना परिक्षेप ७रा७र छे आ पद्मवरवेदिका "सन्वरयणामई" स पूषुं पषुे रत्नमयी छे अने अ७७ वगेरैथी प्रतिरूपा त्मक सुधीना विशेषणुेथी युक्त छे "तीसेण पउमवरवेइयाए अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते" आ पद्मवरवेदिकाना वषुंन माटे आ७ कडेवामां आ७यु छे "तं जहा वइरामया" आना नेम भूमि भागथी उपरनी तरई नीकणेला प्रदेश वज्रमणिना अनेला छे "एव जहा जीवाभिगमे" आ प्रभाणुे आनु वषुंन 'जीवाभिगम'मा ७े रीते करवामा आ७यु छे, तेम अही' पषुु स७शुवु ७ेधअे अने वेदिका विषेनु ७धु वषुंन 'जाव अट्टो जाव धुवा णियया सासया' आ सूत्रपाठ सुधी अही' स७शुवु ७ेधअे के७ के वेदिकानु वषुंन त्या ७े ७ सूत्रपाठ

रिद्धामया पइद्वाणा वेरुलियामया खंभा मुवणमया पालगा लोहियकरमईओ मईओ वडगमई
संधि णाणामणिमया कलेवरा णाणामणिमया कलेवमघाडा णाणामणिमया रूत्रा
णाणामणिमया रूवसंघाडा अकामया पक्खा पग्गवादाओ य जोउग्गामया वंमा वम-
कचेल्लुया य रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ आंहाडणीओ वडगमईओ उवरि पुंछ-
णीओ सव्वसेए रययामए छायणे साणं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं एगमेगेण
कणगवक्खुजालेणं एगमेगेणं खिखिणीजालेण एगमेगेणं वंटाजालेण एगमेगेण मुत्ताजा-
लेणं एगमेगेणं मणिजालेणं एगमेगेणं कणगजालेणं एगमेगेणं रयणजालेणं एगमेगेणं पउ-
मजालेणं सव्वरयणामएणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता, ते णं जान्ता तत्रणिज्जलंबूसगा
सुवण्णपयरमडिया णाणामणिरयणहारद्धहार उवसोभियममुदया ईसिअणमणसंपत्ता पुव्वा-
वरदाहिणुत्तरागएहि वाएहिं मंदाय मंदाय एड्जमाणा एड्जमाणा पलंबमाणा पलवमाणा
पल्लमाणा पल्लमाणा ओरालेण मणुणेणं मणहरेणं ऋणमणणिव्वुडकरेणं सहेणं ते पएसे
सव्वओ समंता आपूरेमाणा सीरिए अईव २ उवसोभेमाणा २ चिद्धंति । तीसेणं पउम-
वरवेइयाए तत्थ तत्थदेसे तहि तहि वहवे इयसंघाडा गयसंघाडा णरसंघाडा किंनरसंघाडा-
किंपुरिससघाडा महोरगसंघाडा गंधव्वसंघाडा वसहसंघाडा सव्वरयणामया जाव पडि-
रूवा, एवं पंतीओवि विहीओवि मिहूणगाइवि च तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थदेसे
तहिं २ वहुईओ पउमलयाओ नागलयाओ असोगलयाओ चंपगलयाओ वणलयाओ वासं-
तीलयाओ अइमुत्तलयाओ कुंदलयाओ सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ णिच्चं मउलि-
याओ णिच्चं लवइयाओ णिच्चं थवइयाओ णिच्चं गुलइयाओ णिच्चं गुच्छियाओ णिच्चं
जमलियाओ णिच्चं जुयलियाओ णिच्चं विणमियाओ णिच्चं पणमियाओ णिच्चं सुवि-
भत्तपडिपिडमंजरिवडिसगधरीओ णिच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइय गुलइयगुच्छिय-
जमलिय जुयलिय विणमिय पणमिय सुविभत्तपडिपिडमजरीवडिसगधरीओ सव्वरयणाम-
ईओ अच्छा जाव पडिरूवा, तीसेणं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं २ वहवे
अक्खयसोत्थिया पणत्ता सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा, से केणहेणं मंते ! एवं
वुच्चइ-पउमवरवेइया २, गोयमा ! पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं वेइयासु
वेइयाबाहासु वेइयापुडंतरेसु खंभेसु खंभबाहासु खंभसोसेसु खंभपुडंतरेसु खईसु खइसु-
हेसु खईफलएसु खईपुडंतरेसु पक्खेसु पक्खवाहासु बहूइं उप्पलाइ पउमाइं कुय्याइं सुभ-
गाइं पौंडरीयाइं महापौंडरीयाइं सयवचाइं सहस्सवचाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं जाव
पडिरूवाइं महावासिक्कलत्तसमाणाइं पणत्ताइं समणाउसो ? से एणहेणं गोयमा ! एवं
वुच्चइ-पउमवरवेइया २, अदुत्तर च णं गोयमा ! पउमवरवेइयाए सासए णामधेज्जे
पणत्ते । पउमवरवेइयाणं मंते ! किं सासया असासया ? गोयमा ! सिय सासया सिय-
असासया, से केणहेणं ? गोयमा दव्वइयाए सासया वणपज्जवेहि गंधपज्जवेहि रस-
पज्जवेहि फासपज्जवेहिं असासया, से तेणहेणं एवं वुच्चइ सिय सासया सिय असा-
सया । पउमवरवेइयाण मंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! ण कयाइ णासी ण क-

याइ ण भवइ ण कयाइ ण भविस्सइ भुवि च भवई य भविस्सइ य धुवा णियया सासया
अक्खया अक्खया अबट्टिया णिच्चा'

छाया-वज्रमया नेमाः रिष्टमयानि प्रतिष्ठानानि, वैडूर्यमयाः स्तम्भाः, मुवर्णमयानि
फलकानि, लोहिताक्षमय्यः, सूचयः, वज्रमयाः सन्धयः, नानामणिमयानि कलेवरणि
नानामणिमयाः कलेवरसङ्घाटाः, नानामणिमयानि रूपाणि, नानामणिमयाः रूपसङ्घाटाः
अङ्कमयाःपक्षाः, पक्षवाहाश्च, ज्योतिरसमयाः वशाः, वंशकवेल्लुकानि च, रजतमय्यः
पट्टिकाः, जातरूपमय्यः अवघाटिन्यः, वज्रमय्यः उपरि पुरुच्छन्यः, सर्वश्वेत रजतमयं छाद-
नम् । सा खलु पद्मवरवेदिका । एकैकेन हेमजालेन एकैकेन कनकजालेन, एकैकेन किङ्कि-
णीजालेन एकैकेन घंटाजालेन, एकैकेन मुक्ताजालेन एकैकेन मणिजालेन एकैकेन रुनक-
जालेन, एकैकेन रत्नजालेन एकैकेन पद्मजालेन सर्वरत्नमयेन सर्वतः समन्तात् संपरि-
क्षिप्ता । तानि खलु जालानि तपनीय लम्बूसकानि सुवर्णप्रतरकमण्डितानि नानामणिरत्न
हारार्द्धहारोपशोभित समुदयानि ईपदन्योऽन्यमसंप्राप्तानि, पूर्वापरदक्षिणेत्तराऽऽगतैर्वातिर्मन्दं
मन्दमेजमानानि एजमानानि प्रलम्बमानानि प्रलम्बमानानि शब्दायमानानि शब्दायमानानि
उदारेण मनोज्ञेन मनोहरेण निर्वृत्तिकरेण शब्देन तान् प्रदेशान् सर्वतः समन्तात् आपूरयन्ति
२ श्रिया अतीव २ उपशोभमानानि २ तिष्ठन्ति । तस्याः खलु पद्मवरवेदिकायाः

किया गया है इसके आगे नहीं, वह पाठ सब इस प्रकार से है—'वहरामया नेमा, रिष्टमयापट्टाणा,
वेरुलियामया खंभा, सुवण्णमया फलगा, लोहियक्खमईओ सुईओ, वईरामई संधी, णाणा-
मणिमया कलेवर सघाडा, णाणामणिमया रूवा, णाणामणिमया रूवसघाडा, अक्रामया वक्खा-
पक्खवाहाओ य, जोहरसमया वंसा वंसकवेल्लुगा, य रययामईओ पट्टियाओ, जायरूवमईओ
ओहाडणीओ, वहरामईओ उवरि पुच्छणीओ, सब्बसेए रययामए छायेणे, सा ण पडमवरवेइया
एगमेगेण हेमजालेणं, एगमेगेणं कणगवक्खजालेण, एगमेगेण खिखिणीजालेणं एगमेगेणं घटाजालेणं,
एगमेगेणं मुत्ताजालेण, एगमेगेणं मणिजालेण, एगमेगेण कणगजालेणं, एगमेगेणं रयणजालेणं, एग-
मेगेण पडमजालेण' इत्यादि, इस सब पाठ के पदों की व्याख्या त्रिलकुल स्पष्ट है और यह

सुधी कश्वाभा आवेल छे येना पछी नडो ते सर्व पाठ आ प्रभाणे छे—वईरामया नेमा,
रिष्टमया पट्टाणा, वेरुलियामया खंभा, सुवण्णमया फलगा, लोहियक्खमईओ, सुईओ, वईरा-
मई, संधी णाणा मणिमया कलेवरा, णाणामणिमया कलेवरसंघाडा, णाणामणिमया रूवा,
णाणामणिमया रूवसंघाडा अक्रामया पक्खा, पक्खवाहाओ य, जोहरसमया, वंसा
वंसकवेल्लुगाय, रययामईओ पट्टियाओ, जायरूवमईओ ओहाडणीओओ, वहरामईओ उवरि
पुच्छणीओ, सब्बसेए रययामए छायेणे, सा ण पडमवरवेइया, एगमेगेणं हेमजालेणं
एगमेगेणं कणगवक्खजालेण एगमेगेणं खिखिणीजालेणं एगमेगेणं घंटाजालेणं
एगमेगेणं मुत्ताजालेणं एगमेगेणं मणिजालेणं एगमेगेणं कणगजालेणं एगमेगेणं रय
णजालेणं एगमेगेणं पडमजालेणं' इत्यादि आ सर्वपाठना पढोनी व्याख्या साव स्पष्ट ७

तत्र तत्र देशे तत्र तत्र वहवो ह्यसङ्घाटा गजसङ्घाटाः नःसङ्घाटाः किन्नरसङ्घाटाः
 किपुरुषसङ्घाटाः महोरगसङ्घाटाः गन्धर्वसङ्घाटाः वृषभसङ्घाटाः सर्वरत्नमयाः यावत्
 प्रतिरूपाः, एवं पंक्तयोऽपि वीथयोऽपि मिथुनकान्यपि । च तस्याः खलु पद्मवरवेदिकाया
 तत्र तत्र देशे तत्र तत्र वहव्यः पद्मलताः नागलताः अशोकलताः चम्पकलताः वनलताः
 वासन्तीलताः अतिमुक्तलताः कुन्दलता इयामलता नित्यं कुसुमिताः नित्यं मुकुलिताः
 नित्यं लवङ्गिताः नित्यं स्तर्वाङ्गिताः नित्यं गुल्मिताः नित्यं गृच्छिताः नित्यं यमलिताः
 नित्यं युगलिताः नित्यं विनमिताः नित्यं प्रणमिताः नित्यं सुविभक्तप्रतिपिण्डमञ्जर्य-
 वतंसकधराः नित्यं कुसुमित मुकुलित लवङ्गितस्तवङ्गित गुल्मित यमलितयुगलित विनमित
 प्रणमित सुविभक्तप्रतिपिण्डमञ्जर्यवतंसकधराः सर्वरत्नमग्न्यः अच्छाः यावत् प्रतिरूपाः ।
 तस्याः खलु पद्मवरवेदिकायाः तत्र तत्र देशे तत्र २ अक्षय स्वस्तिकानि प्रज्ञप्तानि सर्वर-
 त्नमयानि अच्छानि यावत् प्रतिरूपाणि । अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—पद्मवरवे-
 दिकः ? २ गौतम ! पद्मवरवेदिकायास्तत्र तत्र देशे तत्र २ वेदिकामु वेदिकावाहामु वेदिका-
 पुटान्तरेषु स्तम्भेषु स्तम्भवाहासु स्तम्भशीर्षेषु स्तम्भपुटान्तरेषु सूचीषु सूचीमुखेषु सूची-
 फलकेषु सूचीपुटान्तरेषु पक्षेषु पक्षवाहासु वहूनि उत्पलानि पद्मानि कुमुदानि सुभगानि
 सौगन्धिकानि पुण्डरीकाणि महापुण्डरीकाणि शतपत्राणि सहस्रपत्राणि सर्वरत्नमयानि
 अच्छानि यावत् प्रतिरूपाणि प्रहावार्पिंरुच्छवसमानानि प्रज्ञप्तानि श्रमणाऽऽयुष्मन् !
 सा एतेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते—पद्मवरवेदिका २ 'अदुत्तरं वा णं' अथ च खलु
 गौतम ! पद्मवरवेदिका इति शाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तम् । पद्मवरवेदिका खलु भदन्त कि
 शाश्वती अशाश्वती ? गौतम स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती अथ केनार्थेन स्यात् शाश्वती
 स्यादशाश्वती ? गौतम ! द्रव्यार्थतया शाश्वतीवर्णपर्यायैः गन्धपर्यायैः रसपर्यायैः स्पर्श-
 पर्यायैः अशाश्वती सा तेनार्थेन एवमुच्यते स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती । पद्मवरवेदिका
 खलु भदन्त ! कालतः क्रियच्चिर भवति ? गौतम ? न कदाचित् नाऽऽसीत् न कदा-
 चिन्न भवति न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च भवति च भविष्यति च ध्रुवा नियता
 शाश्वती अक्षया अव्यया अवस्थिता नित्या " इति ।

अथ व्याख्याः— तस्याः पद्मवरवेदिकायाः वज्रमयाः—वज्ररत्नमयाः नेमाः—
 भूमिभागादूर्ध्वं निःसृताः प्रदेशाः रिष्टमयानि—रिष्टरत्नमयानि प्रतिष्ठानानि मूलपादाः
 वैडूर्यमयाः—वैडूर्यरत्नमयाः स्तम्भाः, सुवर्णमयानि—फलकानि—पद्मवरवेदिकावयवभू-
 तानि, लोहिताक्षमय्यः—लोहिताक्षरत्नमय्यः सूचयः—फलकद्वयसयोगकारि पादूत्था-
 नीयाः, वज्रमय्याः—वज्ररत्नमयाः, सन्धयः—फलकानां मेलनानि वज्ररत्नलेपापूरिताः
 फलकसन्धय इति भावः । नानामणिमयानि—विविधमणिमयानि कलेवराणि—मनुष्या-
 काररूपाणि, तथा—नानामणिमयाः कलेवरसङ्घाटाः—मनुष्ययुग्मकरूपाणि, तथा—नानाम-
 णिमयानि रूपाणि गजाश्वादीनामाकाराः नानामणिमयाः रूपसङ्घाटाः—गजाश्वादिरूपयु-

ग्मानि, अङ्गमयाः-अङ्गरत्नमयाः, पक्षाः-वेदिकावयवाः, पक्षवाहाः वेदिकावयवकवि-
शेषाश्च, ज्योतिरसमयाः-ज्योतिरस-नामकरत्नमयाः-वंशाः-पृष्ठवंशाः महान्तो मन्थ-
वलका इत्यर्थः, वंशकवेल्लुकानि-तत्र वंशाश्च-महतां पृष्ठवंशानामुभयपार्श्वयोस्तिर्यक्
स्थाप्यमानाः वंशाः कवेल्लुकानि-तदुपरि आच्छादनविशेषाश्च एतान्यापि ज्योती-
रसमयानि रजतमय्यः- रूप्यमय्यः पट्टिकाः-वंशानामुपरि कम्बा स्थानीयाः प्रतराः,
जातरूपमय्यः-सुवर्णविशेषमय्यः. अवघाटिन्यः-कम्बोपरिस्थाप्यमानाच्छादनभूतमहा-
प्रमाणकिलिञ्चस्थानीयाः, वज्रमय्यः-वज्ररत्नमय्यः, उपरि-अवघाटिनीनामुपरि पुठ्छन्यः-
निविडतराऽऽच्छादनभूतचिकण्णतरतृणविशेषस्थानीयाः, सर्वश्वेतं सर्वात्मना श्वेतं-श्वेत-
वर्णं रजतमयं रूप्यमयं छादनम्-आच्छादनम् । सा पूर्वोक्ता खलु पमवरवेदिका एकैकेन हेम
जालेन-स्वर्णमयमालासमूहेन 'संपरिक्षिप्ता' इति परेण सम्बन्धः, एवमग्रेऽपि, एकैकेन
कनकजालेन- पीतवर्णस्वर्णविशेषमयमालासमूहेन, एकैकेन किङ्किणीजालेन-सुद्रघण्टिका-
समूहेन, एकैकेन घण्टाजालेन-घण्टासमूहेन एकैकेन मुक्ताजालेन-मुक्ताफलमयमालासमू-
हेन, एकैकेन कनकजालेन मणिजालेन-मणिमयमालासमूहेन, एकैकेन कनकजालेन
पीतसुवर्णमयमालासमूहेन एकैकेन रत्नजालेन-हीरकादिरत्नमयमालासमूहेन, एकैकेन
पद्मजालेन सर्वरत्नमयेन कमलमालासमूहेन सर्वतः सर्वदिक्षु समन्तात् सर्वविदिक्षु संप-
रिक्षिप्ता-सम्यक् परिवेष्टिता तानि-हेमजालादीनि जालानि-दामानि मालाः, तपनीय-
लम्बूसकानि तपनीयं- रक्तवर्णं स्वर्णं तन्मयोलम्बूसकाः- मालाग्रभागस्थमण्डनविशेषो
येषां तानि तथा, तथा-सुवर्णप्रतरकमण्डितानि-सुवर्णमयपत्रभूषितानि तथा नाना मणिरत्न
हाराऽर्द्धहारोपशोभितसमुदयानि, तत्र-नाना- अनेक प्रकारकाणि यानि मणिरत्नानि मणया-
मरकतादयः रत्नानि-ककैतनादीनिच तेषां-तत्सम्बन्धिनः- तद्रचिता ये विविधा हारा-
र्द्धहाराः तत्र हाराः- अष्टादशसरिकाः, अर्द्धहारा- नवसरिकाश्च हारविशेषाः, तैरुपशोभितः
अलङ्कृतः समुदयः समूहो येषां तानि तथा, तथा- ईषदन्योऽन्यमसम्प्राप्तानि-ईषत्
किञ्चित् अन्योऽन्यं-परस्परम्, असम्प्राप्तानि- असंलग्नानि, तथा-पूर्वापरदक्षिणोत्तरा-
ऽऽगतैः पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरदिग्भ्यः समागतैः वातैः वायुभिः मन्दं मन्दम् अतिमन्दम्
किञ्चिदित्यर्थः एजमानानि एजमानानि पुनः पुनः कम्पमानानि, प्रलम्बमानानि प्रल-
म्बमानानि इतस्ततः किञ्चिच्चलनेन पुनः पुनः लम्बितानि भवन्ति तथा 'पङ्क
झमाणाई' इति शब्दायमानानि २ परस्परं संघर्षवशात् पुनः पुनः शब्दं कुर्वाणानि, तथा
-उदारेण- विशालेन व्यापकेनेत्यर्थः, अस्य 'शब्देने' ति परेण सम्बन्धः एवमग्रेऽपि,
मनोज्ञेन- मनोऽनुकूलेन, मनोऽनुकूलत्वं लेशतोऽपि स्यादत आह-मनोहरेण-श्रोतृज-
नमनोहरणकारकेण अतएव कर्णमनोनिवृत्तिकरेण प्रतिश्रोतृकर्णमनःसुखोत्पादकेन शब्देन
तान् पद्मवरवेदिकाऽऽसन्नान् सर्वतः सर्वदिक्षु आपूरयमाणानि २ वारंवारपूरितान्
कुर्वाणानि, श्रिया- शोभया 'अतीव २' अत्यधिकं यथा स्थात्तथा उपशोभमानानि २-

तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बह्व्यो ह्यसङ्घाटा गजसङ्घाटाः नःसङ्घाटाः किन्नरसङ्घाटाः
 किपुरुषसङ्घाटाः महोरगसङ्घाटाः गन्धर्वसङ्घाटाः वृषभसङ्घाटाः सर्वरत्नमयाः यावत्
 प्रतिरूपाः, एवं पंक्तयोऽपि वीथयोऽपि मिथुनकान्यपि । च तस्याः खलु पद्मवरवेदिकाया
 तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बह्व्यः पद्मलताः नागलताः अशोरुलताः चम्पकलताः वनलताः
 वासन्तीलताः अतिमुक्तलताः कुन्दलता इयामलता नित्यं कुमुदिताः नित्यं मुकुलिताः
 नित्यं लवङ्गिताः नित्यं स्तर्वाङ्गिताः नित्यं गुल्मिताः नित्यं गुच्छिताः नित्यं यमल्लिताः
 नित्यं युगल्लिताः नित्यं विनमिताः नित्यं प्रणमिताः नित्यं सुविभक्तप्रतिपिण्डमञ्जर्य-
 वतंसकधराः नित्यं कुमुमित मुकुलित लवङ्गितस्तवङ्गित गुल्मित यमल्लितयुगल्लित विनमित
 प्रणमित सुविभक्तप्रतिपिण्डमञ्जर्यवतसकधराः सर्वरत्नमय्यः अच्छाः यावत् प्रतिरूपाः ।
 तस्याः खलु पद्मवरवेदिकायाः तत्र तत्र देशे तत्र २ अक्षय स्वस्तिकानि प्रज्ञप्तानि सर्वर-
 त्नमयानि अच्छानि यावत् प्रतिरूपाणि । अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—पद्मवरवे-
 दिकः ? २ गौतम ! पद्मवरवेदिकायास्तत्र तत्र देशे तत्र २ वेदिकायु वेदिकावाहायु वेदिका-
 पुटान्तरेषु स्तम्भेषु स्तम्भवाहासु स्तम्भशीर्षेषु स्तम्भपुटान्तरेषु सूचीषु सूचीमुखेषु सूची-
 फलकेषु सूचीपुटान्तरेषु पक्षेषु पक्षवाहासु बहूनि उत्पलानि पद्मानि कुमुदानि सुभगानि
 सौगन्धिकानि पुण्डरीकाणि महापुण्डरीकाणि शतपत्राणि सहस्रपत्राणि सर्वरत्नमयानि
 अच्छानि यावत् प्रतिरूपाणि प्रहावार्पिकृच्छवसमानानि प्रज्ञप्तानि श्रमणाऽऽयुष्मन् !
 सा एतेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते—पद्मवरवेदिका २ 'अदुत्तरं वा णं' अथ च खलु
 गौतम ! पद्मवरवेदिका इति शाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तम् । पद्मवरवेदिका खलु भदन्त कि
 शाश्वती अशाश्वती ? गौतम स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती अथ केनार्थेन स्यात् शाश्वती
 स्यादशाश्वती ? गौतम ! द्रव्यार्थतया शाश्वतीवर्णपर्यायैः गन्धपर्यायैः रसपर्यायैः स्पर्श-
 पर्यायैः अशाश्वती सा तेनार्थेन एवमुच्यते स्यात् शाश्वती स्यादशाश्वती । पद्मवरवेदिका
 खलु भदन्त ! कालतः कियच्चिर भवति ? गौतम ? न कदाचित् नाऽऽसीत् न कदा-
 चिन्न भवति न कदाचिन्न भविष्यति, अभूच्च भवति च भविष्यति च ध्रुवा नियता
 शाश्वती अक्षया अव्यया अवस्थिता नित्या " इति ।

अथ व्याख्याः— तस्याः पद्मवरवेदिकायाः वज्रमयाः—वज्ररत्नमयाः नेमाः—
 भूमिभागादूर्ध्वं निःसृताः प्रदेशाः रिष्टमयानि—रिष्टरत्नमयानि प्रतिष्ठानानि मूलपादाः
 वैदूर्यमयाः—वैदूर्यरत्नमयाः स्तम्भाः, सुवर्णमयानि—फलकानि—पद्मवरवेदिकावयवभू-
 तानि, लोहिताक्षमय्यः—लोहिताक्षरत्नमय्यः सूचयः—फलकद्वयसयोगकारि पादूत्था-
 नीयाः, वज्रमय्याः—वज्ररत्नमयाः, सन्धयः—फलकानां मेलनानि वज्ररत्नलेपापूरिताः
 फलकसन्धय इति भावः । नानामणिमयानि—विविधमणिमयानि कलेवराणि—मनुष्या-
 काररूपाणि, तथा—नानामणिमयाः कलेवरसङ्घाटाः—मनुष्ययुग्मकरूपाणि, तथा—नानाम-
 णिमयानि रूपाणि गजाश्वादीनामाकाराः नानामणिमयाः रूपसङ्घाटाः—गजाश्वादिरूपयु-

ग्मानि, अङ्गमयाः—अङ्गरत्नमयाः, पक्षाः—वेदिकावयवाः, पञ्चवाहाः वेदिकावयवकवि-
 शेषाश्च, ज्योतिरसमयाः—ज्योतिरस—नामकरत्नमयाः—वंशाः—पृष्ठवंशाः महान्तो म-य-
 वलका इत्यर्थः, वंशकवेल्लुकानि—तत्र वंशाश्च—महतां पृष्ठवंशानामुभयपार्श्वयोस्तिर्यक्
 स्थाप्यमानाः वंशाः कवेल्लुकानि—तदुपरि आच्छादनविशेषाश्च एतान्यापि ज्योती-
 रसमयानि रजतमय्यः—रूप्यमय्यः पट्टिकाः—वंशानामुपरि कम्ब्रा स्थानीयाः प्रतराः,
 जातरूपमय्यः—सुवर्णविशेषमय्यः अवघाटिन्यः—कम्बोपरिस्थाप्यमानाच्छादनभूतमहा-
 प्रमाणकिलिञ्चस्थानीयाः, वज्रमय्यः—वज्ररत्नमय्यः, उपरि-अवघाटिनीनामुपरि पुठ्ठन्यः—
 निविडतराऽऽच्छादनभूतचिक्कणतरतृणविशेषस्थानीयाः, सर्वश्वेतं सर्वात्मना श्वेतं—श्वेत-
 वर्णं रजतमयं रूप्यमयं छादनम्—आच्छादनम् । सा पूर्वोक्ता खलु पञ्चवरेदिका एकैकेन हेम
 जालेन—स्वर्णमयमालासमूहेन 'संपरिक्षिप्ता' इति परेण सम्बन्धः, एवमग्रेऽपि, एकैकेन
 कनकजालेन—पीतवर्णस्वर्णविशेषमयमालासमूहेन, एकैकेन किङ्किणीजालेन—क्षुद्रयण्टिका-
 समूहेन, एकैकेन घण्टाजालेन—घण्टासमूहेन एकैकेन मुक्ताजालेन—मुक्ताफलमयमालासमू-
 हेन, एकैकेन कनकजालेन मणिजालेन—मणिमयमालासमूहेन, एकैकेन कनकजालेन
 पीतसुवर्णमयमालासमूहेन एकैकेन रत्नजालेन—हीरकादिरत्नमयमालासमूहेन, एकैकेन
 पद्मजालेन सर्वरत्नमयेन कमलमालासमूहेन सर्वतः सर्वदिक्षु समन्तात् सर्वविदिक्षु संप-
 रिक्षिप्ता—सम्यक् परिवेष्टिता तानि—हेमजालादीनि जालानि—दामानि मालाः, तपनीय-
 लम्बूसकानि तपनीयं—रक्तवर्णं स्वर्णं तन्मयोलम्बूसकाः—मालाग्रभागस्थमण्डनविशेषो
 येषां तानि तथा, तथा—सुवर्णप्रतरकमण्डितानि—सुवर्णमयपत्रभूपितानि तथा नाना मणिरत्न
 हाराऽर्द्धहारोपशोभितसमुद्धानि, तत्र—नाना—अनेक प्रकारकाणि यानि मणिरत्नानि मणया-
 मरकतादयः रत्नानि—कर्केतनादीनि च तेषां—तत्सम्बन्धिनः—तद्रचिता ये विविधा हारा-
 र्द्धहाराः तत्र हाराः—अष्टादशसरिकाः, अर्द्धहारा—नवसरिकाश्च हारविशेषाः, तैरुपशोभितः
 अलङ्कृतः समुदयः समूहो येषां तानि तथा, तथा—ईषदन्योऽन्यमसम्प्राप्तानि—ईषत्
 किञ्चित् अन्योऽन्यं—परस्परम्, असम्प्राप्तानि—असंलग्नानि, तथा—पूर्वापरदक्षिणोत्तरा-
 ऽऽगतैः पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरदिग्भ्यः समागतैः वातैः वायुभिः मन्दं मन्दम् अतिमन्दम्
 किञ्चिदित्यर्थः एजमानानि एजमानानि पुनः पुनः कम्पमानानि, प्रलम्बमानानि प्रल-
 म्बमानानि इतस्ततः किञ्चिच्चलनेन पुनः पुनः लम्बितानि भवन्ति तथा 'पञ्च
 ज्ञमाणाहं' इति शब्दायमानानि २ परस्परं संघर्षवशात् पुनः पुनः शब्दं कुर्वाणानि, तथा
 -उदारेण—विशालेन व्यापकेनेत्यर्थः, अस्य 'शब्देने' ति परेण सम्बन्धः ॥ ११ ॥
 मनोज्ञेन—मनोऽनुकूलेन, मनोऽनुकूलत्वं लेशतोऽपि स्यादत
 नमनोहरणकारकेण अतएव कर्णमनोनिर्वृत्तिकरेण प्रतिश्रोतृकर्णान्
 तान् पद्मवरवेदिकाऽऽसन्नान् सर्वतः सर्वदिक्षु आपूरयमाणा-
 कुर्वाणानि, श्रिया—शोभया 'अतीव २' अत्यधिक यथा ॥ ११ ॥

सर्वदा सर्वथा शोभां धारयमाणानि तिष्ठन्ति । तस्याः अनन्तरोक्तायाः खलु पद्मवरवे-
दिकायाः तत्र तत्र - तस्मिन्स्मिन् देशे तत्र तत्र तस्य देगस्य तस्मिन्स्मिन् अवाप्त-
रदेशे बहवः—बहुसंख्या अनेके ह्यसंघाटकाः—अश्वसघाताः—अश्वसमूहाः एवं गजनर-
किन्नर—किंपुरूप—महोरग—गन्धर्व—वृषभानां—संघाटा बोध्याः, ते च हयादिसंघाटाः
सर्वरत्नमयाः—सर्वात्मना रत्नमयाः, यावत्—यावत्पदेन—अच्छाः—श्लक्षणाः, घृष्टाः,
मृष्टाः, नीरजसः, निर्मलाः, निष्पङ्काः, निष्कङ्कटच्छायाः, सप्रभाः, समरीचिकाः सोद-
घोताः, प्रासादीयाः, दर्शनीयाः, अभिरूपाः; इत्येषा सङ्ग्रहो बोध्यः, तथा प्रतिरूपाः
एषां पदानां व्याख्याऽस्मिन्नेव सूत्रे पूर्वं जगतो वर्णनप्रसङ्गे कृता, केवलं स्त्रीपुंसत्व
बहुवचनकृतो विशेषः, एवम्—इत्यादि सगटवत् पङ्क्तयोऽपि—हयादीनां श्रेणयोऽपि
बोध्याः, तथा हयादीनां वीथयः उभयोः पार्श्वयोरेकैकश्रेणिभावेन यत् श्रेणियुगलं
तत् वीथि पदवाच्यम् तद्वहुत्वे वीथयः अनेकश्रेणी हयानि पङ्क्तिस्तु एकस्यां दिशि
अथवा श्रेणिः सा व्यवह्रियते अतो न पङ्क्ति-वीथयोरेकार्थकताशङ्का । एतेषामेव ह्यगज-
नरकिन्नरकिंपुरूप महोरगगन्धर्ववृषभानामष्टानां स्त्री पुंसयुग्म प्रतिपादनार्थमाह मिथुन-
कान्यापि स्त्रीपुंसयुग्मान्यपि हयादिसङ्घाटवदेव वक्तव्यानि ८ ।

तस्याः पूर्वोक्तायाः खलु पद्मवरवेदिकायाः तत्र तत्र तस्मिन्स्मिन् देशे तत्र तत्र
तद्देशैकदेशे बहव्यः पद्मलताः पद्मिन्यः नागलताः नागाः वृक्षविशेषाः तद्रूपाः लताः
तिर्यक्शाखा विस्तार रहितत्वाल्लता इवेति नागलताः एवम् अशोकलताः अशोकवृक्षरूप-
लताः चम्पकलताः चम्पकपुष्पवृक्षविशेषरूपलताः वनलताः वननार्थकवृक्षविशेषरूपलताः,
वासन्तीलताः वासन्तीपुष्पविशेषलताः अतिमुक्तकलताः अतिमुक्तकः तिनिशनामको वृक्ष-
विशेष स्तद्रूपलताः कुन्दलताः—कुन्दनामक पुष्पविशेषलताः श्यामलताः श्यामा वनस्पति-
विशेषः शारिवेति प्रसिद्धा तद्रूपा लताः ताःअनन्तरोक्ताः पद्मलतादयो लताः कीदृशः ?
इत्याह—नित्यं—सदा कुमुमिताः पुष्पिताः पुष्पसम्पन्नाः नित्यं मुकुलिता कुम्भलिता ईष-
द्विकासोन्मुखकालिका सम्पन्नाः नित्यं लवकिताः सञ्जातपल्लवल्वाः नित्यं स्तवकिता
विकासोन्मुखकालिका सम्पन्ना नित्यं गुल्मिताः स्तम्बिताः काण्डरहितावयव सम्पन्नाः ।
नित्यं गुच्छिताः पत्रपुष्पगुच्छसमूहसम्पन्नाः नित्यं यमलिताः सजातीयलतायुग्मपरि-
वेष्टिताः नित्यं युगलिताः सजातीय विजातीयलताद्वयपरिवेष्टिताः नित्यं विनमिताः
फलपुष्पादिसारेण विशेषेण नम्रभावं प्रापिताः, नित्यं प्रणमिताः फल पुष्पादिभारेण-
नम्रभावं प्रापयितुमारब्धाः नम्रभावोन्मुखा इति भाव, नित्यं सुविभक्तप्रतिपिण्डमञ्ज-
र्यवतंसकधराः सुविभक्तः सम्यग् विभागयुक्तो यः प्रतिमञ्जर्यवतंसकः प्रतिमञ्जरी प्रति-
गता प्रतिपल्लवस्थिता या मञ्जरी-पुष्पमञ्जरी सैवावतंसकः शिरोभूषणविशेषः' तस्य
धराः धारिकाः, एवं सति ताः पद्मलतादयो लताः नित्यं कुमुमितमुकुलित-
लवकित स्तवकितगुल्मितयमलितयुगलितविनमितप्रणमितसुविभक्तप्रतिमञ्जर्यवतंसकधराः

एतद्व्याख्याऽनुपद गता । पुनस्ताः पद्मलतादय सर्वाः लताःसर्वरत्नमय्यः सर्वात्मना-
कर्केतनादिरत्नमय्यः पुन अच्छा यावत् प्रतिरूपाः—अच्छादि प्रतिरूपान्तानां सद्ग्रहोऽर्थ-
श्चास्मिन्नेव,सूत्रे पूर्वं कृतः । तस्याः पूर्वोक्तायाः खलु पद्मवरवेदिकायाः तत्र तत्र,देशे
तस्मिंस्तस्मिन् देशे तत्र तत्र तस्यैव देशस्यैकदेशे अक्षय स्वस्तिकानि प्रज्ञप्तानि कथितानि
तानि अक्षय स्वस्तिकानि कीदृशानि ? इत्याह—सर्वरत्नमयानि सर्वात्मना रत्नमयानि,
अच्छानि यावत् प्रतिरूपाणि अच्छादि प्रतिरूपपर्यन्तपदानां संग्रहो विवरणं च प्राग्वत् ।
पूर्वतोऽत्र नपुंसककृतो विशेषः । सम्प्रति पद्मवरवेदिकाशब्दार्थं गौतमः पृच्छति—

अथ केन अर्थेन कारणेन भदन्त ! एवम् इत्थम् उच्यते कथ्यते यत् पद्मवरवे-
दिका २ इति ? किमर्थमादायास्याः पद्मवरवेदिकेति शब्दप्रवृत्तिर्जातेत्यर्थः । इति पृष्टो
भगवान् गौतमं प्रत्याह—हे गौतम ! पद्मवरवेदिकायाः तत्र तत्र—तस्मिंस्तस्मिन् देशे
तत्र तत्र तस्यैव देशस्यैकदेशे वेदिकासु—उपवेशनार्थमत्तगजाकाररूपासु वेदिका वाहासु
वेदिकायाः वाहासुः पार्श्वेषु वेदिकापुटान्तरेषु वेदिकयोर्द्वयोरेतत् पुटं-परस्परमेलन
तदन्तरेषु तन्मध्येषु स्तम्भेषु प्रसिद्धेषु स्तम्भबाहासु स्तम्भपार्श्वेषु, स्तम्भशीर्षेषु
स्तम्भाग्रभागेषु, स्तम्भपुटान्तरेषु द्वयो स्तम्भयोः सन्धिमध्येषु सूचीषु फलकद्वय-
संधानार्थप्रतनुकीलकरूपासु सूचिषु सूचीमुखेषु सूचीनां फलकान्तः प्रवेशासन्नप्र
देशेषु सूचोफलकेषु सूचीसंयोजित फलकप्रदेशेषु सूचीपुटान्तरेषु सूचीद्वयमेलनमध्येषु
पक्षेषु वेदिकाया अवयवविशेषेषु तथा पवक्षाहासु वेदिका पार्श्वेषु, बहूनि—प्रचुराणि
उत्पलानि—चन्द्रविकाशीनि कमलानि पद्मानि—सूर्यविकाशीनि कमलानि कुमुदानी
कैरवाणि, तान्यपि चन्द्रविकाशीनि श्वेतरक्तादिवर्णानि भवन्ति, तानि सुभगानि सुन्द-
राणि, सौगन्धिकानि- कहूलाराणि, श्वेतवर्णानि सुगन्धीनि कमलानि, पुण्डरीकाणि-श्वेत
कमलानि, तान्येव महान्ति महापुण्डरीकाणि, शतपत्राणि—पत्रशतविशिष्टानि कमलानि
सहस्रपत्राणि पत्रसहस्रयुक्तानि कमलानि एतानि सर्वाणि सर्वरत्नमयानि, सर्वात्मना कर्के-
तनादि रत्नमयानि, अच्छानि यावत् प्रतिरूपाणि अच्छादिप्रतिरूपपर्यन्तपदानां संग्रहो
विवरणं च प्राग्वत् । पुनस्तानि कथम्भूतानि ? इत्याह—महावाषिकच्छत्रसमानानि महा-
न्ति विशालानि यानि वार्षिकानि वर्षाकालिकानि जलधारानिवारणार्थानि च्छत्राणि तै-
समानानि—समाकाराणि प्रज्ञप्तानि—कथितानी हे श्रमण आयुष्मन् ! गौतम ? सा पद्मवर
वेदिका एतेन अनन्तरोक्तेन अर्थेन समुचितेनार्थेन एवम् इत्थम्—उच्यते कथ्यते यत् पद्म
वरवेदिका पद्मवरवेदिकेति । अथ च खलु अत एवास्याः पद्मवर वेदिका पद्मवर वेदि-
केति शाश्वतं नामधेयं प्रज्ञप्तमिति । पुनर्गौतमः पृच्छति—हे भदन्त पद्मवरवेदिका
खलु किं शाश्वती उत अशाश्वती ! इति पृष्टो भगवानाह—हे गौतम स्याच्छाश्वती स्याद-
शाश्वती । अत्र स्याच्छब्दः कथञ्चिदर्थको निपातःतेन कथञ्चिच्छाश्वती कथञ्चिदशा-
श्वती विद्यते । पुनर्विशेषजिज्ञासया गौतमः पृच्छति—“से केणद्वेणं” इत्यादि । अथ केना-

थेन केन प्रकारेण शाश्वती केन प्रकारेण च अशाश्वतीति प्रश्नः । भगवानाह हे गौतम !
द्रव्यार्थतया—द्रव्यार्थिकनयेन शाश्वती नित्या पर्यायार्थिकनयेन प्राह—वर्णपर्यायैः कृष्णा
दिभिः तथा गन्धपर्यायैः सुरभि प्रभृतिः, रसपर्यायैः तिक्तादिभिः स्पर्शपर्यायैः कठिन
त्वादिभि अशाश्वती अनित्या तेषां वर्णादीनां प्रतिक्षणं क्रियत् कालान्तर वाऽन्यथाऽ-
न्यथा संभवात् । एवं च नित्यत्वानित्यत्वयोर्विरुद्धयोरपि धर्मयोर्द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिक
नयाभ्यामेकस्मिन्नाधिकरणेऽवस्थानं सम्भवतीति पर्यवसितम् ।

एवमुपसंहरति —

सा तेनार्थेन एवम् इत्थमुच्यते स्याच्छाश्वती स्यादशाश्वतीति । एतद्व्याख्या
निगदसिद्धा ।

इह द्रव्यास्तिकनयवादी स्वमतं द्रढयित्तुमाह

“नात्यन्तासत् उत्पादो नापि सतो विद्यते विनाशो वा” अपि च—

“नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः” इति,

ततश्च सर्वं वस्तु नित्यमेवेति । इत्थंतन्मते सन्देहः—

सा पद्मवरवेदिका किं घटादिवत् द्रव्यार्थत्वेन शाश्वती । आहोस्वित्—सर्वदा शाश्व
तीति । इमं सन्देहं गौतमो निराकर्तुं भगवन्तं पुनः पृच्छति कालतः क्रियच्चिरमिति,
पद्मवरवेदिका खलु हे भदन्त ! कालत काल माश्रित्य क्रियच्चिरं क्रियन्तं काल याव-
द्वतिष्ठते ? अत्र भगवानाह हे गौतम न कदाचिद् नासीत् नव्द्वयस्य प्रकृतार्थं दृढीका-
रक्त्वात् सदैवासीदिति तथा न कदाचिद् न भवति अपि तु सदैव भवति तथा न कदा
चिद् न भविष्यति—अपि तु सदैव भविष्यति । एवं सर्वमुपसंहरति—अञ्च भवति
च भविष्यति कालत्रयेऽपि अवस्थिति शीलत्वात् । अत एव ध्रुवा—मेरु पर्वतादिवत्स्थि-
रत्वात् नियता—निश्चितत्वात् जीवद्रव्यवत् अत एव शाश्वती समयावलिंकादिषु काल-
वचनवच्छाश्वतत्वात् अतएव अक्षया पुद्गलपुञ्जविघटनेऽपि नवीनपुद्गलपुञ्जसंक्रमणेन
स्वरूपाधिनाशात्, गङ्गा सिन्धु प्रवाहेऽपि पद्मवदवत्, अतएव अव्यया कदाचिदपि
स्वरूपचलनस्यासम्भवत् मानुषोत्तरपर्वताद् बहिः समुद्रवत् अत एव अवस्थिता स्व-
प्रमाणे सम्यक् स्थिता जम्बूद्वीपादिवत् एवं च स्वप्रमाणावस्थायितया नित्या धर्मा-
स्तिकायादिवत् इति ॥ सू० ४॥

जीवामिगम सूत्र मे पद्मवरवेदिका के वर्णन में ज्यो की त्यो लिखी जा चुको है अतः वहा से इसे
देखलेना चाहिये यह विस्तृत व्याख्या वज्रमय पद से लगाकर अन्त के नित्यपद तक की गई है
अतः यहा पुनः उसे विस्तार हो जाने के मय से नहीं लिखा है । इसी अभिप्राय को हृदय में

ॐ अने लुवा(अगम सूत्र)मा पद्मवरवेदिकाना वज्रमया व्याख्येय निरूपित करवाय आवी
ॐ अथी लिखासुअथी तथाथी वाची देवी आ विस्तृत व्याख्या तथा वज्रमय पदथ' माडीने
अन्तना नित्यपद सुधी करवाया आवी ॐ अथी विस्तार अथी अही थील वअत व्य .

अथ जगत्या उपरि पञ्चवरवेदिकाया बहिर्यदस्ति तदाह—

मूलम्—तीसेणं जगईए उप्पि बाहि पउमवरवेइयाए एत्थ णं महं एगे वणसंडे पण्णत्ते देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेण जगईसमए परिक्खेवेणं वणसंडवण्णओ णेयव्वो ॥सू०५॥

छाया—तस्या खलु जगत्या उपरि बहिः पञ्चवरवेदिकायाः अत्र खलु महानेको वनषण्डः प्रज्ञप्तः, देशोने द्वे योजने विष्कम्भेण जगती समकः परिक्षेपेण वनपण्डवर्णको नैतव्यः ॥सू०५॥

टीका—‘तीसेणं जगईए’ इत्यादि ‘तीसे णं जगईए’ तस्याः पूर्वोक्तायाः खलु-जगत्याः ‘उप्पि बाहि पउमवरवेइयाए’ उपरि ऊर्ध्वभागे पञ्चवरवेदिकायाः प्राग्वर्णि-ताया देव भोगभूमि विशेषरूपायाः बहिः परतः ‘एत्थ णं महं एगे वणसंडे पण्णत्ते’ अत्र अस्मिन् प्रदेशे खलु एको महान् बृहत् वनपण्डः-अनेकविधबृक्षसमूहः प्रज्ञप्तः । स च वनषण्डः कीदृशः ? — इत्याह—‘देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेणं’ देशोने देशतो न्युने द्वे योजने विष्कम्भेण-विस्तारेण प्रज्ञप्तः देशरूचात्र सार्धधनुःशतद्वयरूपो बोध्यः तथाहि चतुर्योजनविस्तृतशिरस्काया जगत्या बहुमध्यभागे पञ्चधनुः शतव्यासा धारण करके सूत्रकार ने “ एवंजहा जीवाभिगमे जाव अट्टो जाव धुवा, णियया, सासया, जाव णिच्चा” ऐसा सूत्र पाठ कहा है ॥४॥

जगती के ऊपर वर्तमान पञ्चवर वेदिका के बाहर विद्यमान वनषण्ड का वर्णन—

“तीसेणं जगईए उप्पि बाहि” इत्यादि ।

उस जगती के ऊपर जो पञ्चवरवेदिका है उस पञ्चवरवेदिका के बाहर “ एत्थ णं महं एगे वणसंडे पण्णत्ते ” एक बहुत विशाल वनपण्ड है—अनेक प्रकार के वृक्षों का समूह है “ देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेणं ” इस का विष्कम्भ - विस्तार—कुछ कम दो योजन का है यहां देश से २५० धनुष लिया गया है इसका विचार इस तरह से करना चाहिये जगती के मध्यभाग में

करवाभा आनी नथी अे अे अलिप्राय ने सूत्रकारे लुहयमां धारणु करीने ‘एवं जहा जीवाभिगमे जाव अट्टो जाव धुवा णियया सासया जाव णिच्चा’, अेवे। सूत्रपाठ कडेवे। छे. ॥४॥

जगतीनी उपर विद्यमान पञ्चवरवेदिकांनी अहारे वर्तमान वनषण्डतु वर्णनः—

‘तीसेणं जगईए उप्पि बाहि’ इत्यादि सूत्र ॥५॥

आ जगतीनी उपर अे पञ्चवरवेदिका छे ते पञ्चवरवेदिकांनी अहारे “एत्थंणं महं एगे वणसंडे पण्णत्ते” अेक अहु अे विशाल वनपण्ड छे अनेक प्रकारना वृक्षसमूहे। छे “देसूणाइं दो जोयणाइं विक्खंभेणं” आने। विष्कम्भ-विस्तार-कछेक रूपे अे थे।अेन अेटवे। छे अही देशथी २५० धनुष अहणु करवाभा आवेळ छे. आ स अ धमां आ प्रभावे विचार करवे। अेधअे. जगतीना आ शिअरने। विस्तार आर थे।अेन अेटवे। कडेवाभा आवेळ छे आ

पञ्चवरवेदिका एतस्य बहिर्भागे एको वनपण्डः अपरश्चाभ्यन्तरभागे अतो जगती शिरो विस्तारो वेदिका विस्तारश्च धनुःशतपञ्चक्रन्यूनोऽर्धो क्रियते ततो यथाक्तं मान स्पष्टं भवति । तथा स वनपण्डः 'जगद् समए परिक्रखेवेणं' जगतो समरुः जगती तुल्यः परिक्षेपेण परिधिना प्रज्ञप्तः 'घणसंडवण्णओ जेयव्वो' वनपण्डवर्णकः वनपण्डवर्णनकारकः सर्वोऽपि पदसमूहोऽत्र ज्ञातव्यः । स चैवम्—'किण्हे किण्होभासे नीले नीलोभासेहरिण् हरिओभासे सीए सीओभासे णिद्धे णिद्धोभासे तिब्बे तिब्बोभासे किण्हे किण्हच्छाए नीले नीलच्छाए हरिण् हरियच्छाए सीए सीयच्छाए णिद्धे णिद्धच्छाए तिब्बे तिब्बच्छाए घणकडिअच्छाए रम्मे महामेहणिकुरंभवूए तेणं पायवा मूलमंतो कदमंतो खधमंतो तयामंतो सालमतो पवालमतो पत्तमतो पुप्फमतो फलमतो वीयमतो अणुपुण्विसुजायखड्डलवट्टभावपरिणया एगखंधी अणेगसाहप्पसाहविडिमा अणेगणरवामसुप्पसारिया गेज्झघणविउलवट्टखथा अच्छिइपत्ता अविरलपत्ता अवाईणपत्ता अणईईपत्ता णिद्धयजरदपडुरपत्ता णव हरियभिसंतपत्तमारधयारगंभीरदरिसणिज्जा उवविणिग्गय नवतरुणपत्तपल्लवकोमल्लुज्जलचलंत किमलयसुकुमाल पवाल सोभिय चरंक्कुरग्गसिहरा णिच्चं कुसुमिया णिच्चं मउलिया णिच्चं लवइया णिच्चं थवइया णिच्चं गुलइया णिच्चं गुच्छिया णिच्चं जमलिया णिच्चं जुअलिया णिच्चं विणमिया णिच्चं पणमिया णिच्चं कुसुमियमउलियलवइयथवइयगुलइयगोच्छियजमलियजुय-

५०० धनुष की व्यासवाली एक पञ्चवरवेदिका कही गई है , इस पञ्चवरवेदिका के बहिर्भाग में एक वनपण्ड है और भीतर के भाग में भी एक वनपण्ड है जगती के ऊपर के भाग का विस्तार ४ योजन का है और बिदिशाओ में जो इसका विस्तार है वह ५०० धनुष का है सो इस विस्तार को ऊपर के विस्तार में से कम करने पर एव अवशिष्ट प्रमाण को आधा करने पर वनपण्ड का यथोक्त प्रमाण निकल आता है, इस वनपण्ड का परिक्षेप " जगद् समए परिक्रखेवेणं " प्रमाण , जगती के परिक्षेप प्रमाण जैसा ही है " घणसंडवण्णओ जेयव्वो" वनपण्ड का वर्णन यहा पर कर लेना चाहिये जो अन्य सूत्रों में इस प्रकार से किया गया है "किण्हे किण्होभासे नीले नीलोभासे, हरिण् हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे, णिद्धोभासे"

जगतीना मध्यभागमां ५०० धनुष णेट्ठी व्यास युक्त एक पञ्चवरवेदिका छे. आ पञ्चवरवेदिकाणा अहारना भागमां एक वनपण्ड छे जगतीना उपरना भागना विस्तार ४ योजन णेट्ठी छे अने विदिशाओमां जे आना विस्तार छे ते ५०० धनुष णेट्ठी छे ते आ विस्तारने उपरना विस्तारमाथी आड करवाथी तेमज अवशिष्ट प्रमाणने अर्धे करवाथी वनपण्ड उतु यथोक्त प्रमाण आवी लय छे आ वनपण्डना परिक्षेप "जगद् समए परिक्रखेवेणं" प्रमाण जगतीना परिक्षेप प्रमाण जेवु ज छे "घणसंडवण्णओ जेयव्वो" वनपण्ड उतु वर्णन अही करी देवु लेख्ये जे जीव सूत्रोमा आ प्रमाणे करवाभा आवेल छे "किण्हे किण्होभासे नीले नीलोभासे, हरिण् हरिओभासे, सीए सीओभासे णिद्धे ।"

एतद्व्याख्या चैवम्—कृष्णः मध्यमावस्थायां कृष्णवर्णपत्रसम्पन्नत्वाद् वनपण्डोऽपि कृष्णवर्णः न चोपचारमात्रेण कृष्ण इति व्यवह्रियते । किन्तु कृष्णतया प्रतिभासनात् । तथाऽऽह—कृष्णावभासः—यावत्तिवनपण्डभागे कृष्णदलानि मन्ति नावन्ति तद्भागे स वनपण्डोऽतीव कृष्णः कृष्णवर्णोऽवभासाः कान्तिर्यस्य वनपण्डस्य स तथा—कृष्णवर्णावभाससम्पन्नः एवमग्रेऽपि । तथा—नीलः प्रदेशान्तरे नीलवर्णपत्रयुक्तः मयूरकण्ठवत् एव नीलावभासः नीलवर्णावभाससम्पन्नः तथा—हरितः—प्रदेशान्तरे हरितवर्णपत्रयुक्तः एवं हरितावभासः हरितवर्णपर्णानां प्राचुर्याच्छुक्र पक्षवद्वभाममानः इदानीं स्पर्शापेक्षया वर्ण्यते—शीतः—शीतलस्पर्शवान् आर्द्रलतापुञ्जपिहितान्तगलतल-तथा सूर्य किरणाप्रवेशात् अतएव शीतावभासः क्रीडार्थसमागतानां वनपण्डतन्वर्णिव्यन्त-

मध्यमावस्था में पत्तो का वर्ण कृष्ण हो जाता है अन उन पत्तो से युक्त होने का कारण यहाँ वनको भी कृष्ण वर्णवाला कह दिया गया है इस तरह यह वनपण्ड किसा २ प्रदेश में काले वर्ण वाला है यह कथन उपचार मात्र से कहा गया नहीं जानना चाहिये क्योंकि उम रूप से ही इसका अवभास होता है इसी बात को स्पष्ट करने के लिये “किण्हे किण्होभासे” इन दो पदों का प्रयोग किया गया है इसी तरह किसी २ प्रदेश में यह वन नीलवर्ण वाले पत्तो से युक्त होने के कारण स्वयं नीलवर्ण वाला है और इसी रूप से इसका अवभास होता है तथा किसी २ प्रदेश में यह वन पत्रों की हरीतिमा को लेकर—अर्थात् हरे २ पत्रों से युक्त होने के कारण—स्वयं हरित वर्णवाला है और इसीरूप से इसका अवभास होता है. यह वनपण्ड किसी स्थान विशेष में शीतलस्पर्शवाला है. क्योंकि आर्द्रलतापुञ्जों से इसका तत्र सदा पिहित-ढका-रहता है, तथा सूर्यकिरणों का प्रवेश वहां नहीं हो सकता है. अतएव वहां पर क्रीडा के लिये समागत व्यन्तर देव और देवियों को इसका स्पर्श शीतल रूप से प्रतीत होता है। क्योंकि

भासे” मध्यमावस्थायां पादडाञ्चोने। वर्युं कृष्णु यर्ध नय छे ज्येथी ज्ये पदडाञ्चोथी युक्त होवा भदल अही वनने पणु कृष्णु वर्युं युक्त कडेवामा आवेल छे आ प्रभाषे आवनपण्ड केरि केरि प्रदेशमा श्यामवर्ण युक्त छे. आ कथन उपचार मात्रथी न कडेवामा आवेल छे ज्येपुं समजपु न जेध ज्ये केम के ते इपथी न आने अवभास थाय छे आ वातने स्पष्ट करवा माटे “किण्हे किण्होभासे” आ जे पदोने प्रयोग करवामा आवेल छे आ रीते केरि केरि प्रदेशमा आ वन नीलवर्ण युक्त पादडाञ्चोथी युक्त होवा भदल स्वय नीलवर्ण युक्त छे अने आ इपथी न ज्येने अवभास थाय छे तेमज केरि केरि प्रदेशमा आ वने पत्रोनी हरीतिमाने लधने ज्येठवे के लीला लीला पादडाञ्चोथी युक्त होवा भदल स्वय हरित युक्त छे अने आ इपथी आने अवभास थाय छे आ वनपण्ड केरि स्थान विशेषमा शीतल स्पर्शवाणे छे केम के आर्द्रलता पुज्येथीआनु तणियु सदा पिहित-आच्छादित रहे छे, तेमज सूर्यकिरणो त्या प्रवेशी शकता नहीं ज्येथी न त्या क्रीडा भेटे आवेल व्यन्तरदेव अने देवीज्येने आने स्पर्श शीतल इपथी प्रतीत थाय छे केम के तेज्ये।

रदेवदेवीनां तथाविध शीतस्पर्शेन प्रमोददर्शनात् शीतावभामो वनपण्डः, तथा—स्निग्धः चिक्रकणः स्निग्ध कृष्णादि वर्णयुक्तत्वाद् वनपण्डोपि स्निग्ध इत्युच्यते, एवं स्निग्धभाव-भासः वास्तविक स्निग्धत्वेन प्रतिभासमानो न तूपचारमात्रतः एवं तीव्रः—इहावभासो मरुमरीचिकाया जलावभासवद् भ्रमविषयोऽपि भवत्यतो यथावस्थितस्वरूपज्ञानाय विशेषणान्तरमाह—कृष्ण इत्यादिकृष्णवर्णो वनपण्डः, कुतः? इत्याह—कृष्णच्छायः—कृष्णवर्णच्छाया विशिष्टः एतद्विशेषणद्वयं गाढकृष्णतां प्रकटयति । एवं नीलः नीलच्छाय इत्याद्यपि । घन कटितटच्छायः—घना—निबिडा कटितटच्छाया मध्यभागच्छाया यस्य स तथा, अत

कि वे 'वर्हा' क्रीडा करते २ उकताते नहीं है . प्रत्युत अधिक प्रमोदभाव से भरित अन्तःकरण वाले बनते रहते हैं । तथा यह वनपण्ड किसी २ स्थान में स्निग्ध—चिक्रना है और चिक्रने रूप से ही इसका अवभास होता है । कहीं पर यह वनपण्ड " तीव्र " तोत्र प्रभावाला है और इसी रूप से इसका अवभास होता है . यदि यहां पर ऐसी आगका की जावे कि सभी अवभास सत्य नहीं होते हैं अतः उस रूप के अवभास को लेकर जो यहां वनपण्ड में तद्रूपता सिद्ध की जा रही है वह कैसे सिद्ध हो सकती है यदि कहा जावे कि नहीं तद्रूप से जो अवभास होता है वह तो सत्य ही होता है सो इस पर ऐसा कहा जा सकता है कि मरुमरीचिका मे जो जलावभास होता है वह अवभास भी सत्य मानना पड़ेगा. परन्तु वह तो सत्य नहीं माना गया है—अतः यहां जो अवभास होता है वह ऐसा नहीं है इसी बात को सूत्रकार इन विशेषणान्तरों से सुस्पष्ट कर रहे हैं कि यह वन कृष्णवर्णवाला इससे सागित होता है कि यह वन कृष्णवर्ण काली छाया से विशिष्ट है । इसी तरह यह वन नीलवर्णवाला इसलिये है कि यह नीलवर्णवाली छाया से युक्त है "घनकटितटच्छाय" इसके मध्यभाग में जो छाया रहती है वह बहुत

त्यां 'क्रीडा' करतां करता कटाणी जाता नथी परंतु वधारे ने वधारे प्रमोह भावथो युक्त अंतःकरण कृष्णवाणा शंभने रहे थे तेमज आ वनपण्ड केथ स्थानमां स्निग्ध—सुचिक्रकण—थे अने चिक्रकणरूपथी ज आने। अवभास थाय थे केथ केथ स्थणे आ वनपण्ड "तीव्र" तीव्र प्रभावाणो थे अने आ रूपथी ज आने। अवभास थाय थे. जे अही आ जतनी आ शका करवामा आवे के सर्व अवभासो सत्यरूपमा होता नथी अथी ते रूपना अवभासने लभने जे अही वनपण्डमा तद्रूपता सिद्ध करवामां आवी रही छे ते केथी रीते सिद्ध थथ शके छे, जे कहेवामा आवे के आभ नहि तद्रूपथी जे अवभास थाय छे ते सत्यरूपमां ज होय छे तो आ सपथमा आभ कही शकथ के मरुमरीचिकामा जे जलावभास होय छे ते अवभास पक्ष सत्य मानवामां आवशे पक्ष अरेअर ते तो सत्य मानवामा आवतो नथी अथी अही जे अवभास होय छे ते अवेो नथी जे ज वातने सूत्रकार आ विशेषणान्तरेथो सुस्पष्ट करी रहथय छे के आ वन कृष्णवर्ण युक्त ओटला भाटे सागित थथु छे के आ वन कृष्णवर्णनी छायाथी विशिष्ट छे आ रीते आ वन नीलवर्णवाणु ओटला भाटे छे के आ नीलवर्ण युक्त छायाथी युक्त छे "घनकटितटच्छाय" आना मध्यभागमां

एव-रम्यः-रमणीयः तथा महामेष निकुरम्बभूतः-महामेषममृहतुरन्व्य-ते खलु पादपाः
 मूलवन्तः-दूरावगाढमूलसहिताः, कन्दवन्तः प्रशस्त मूत्रोपरिवर्ति-भागरूपकन्दयुक्ताः,
 तथा-स्कन्धवन्तः-स्कन्धः शाखाप्रभवप्रदेशः, स प्रशस्तोऽस्त्येपामिति स्कन्धवन्तः-प्रशस्त
 स्कन्धयुक्ताः, तथा-प्रवालवन्तः-प्रशस्तपल्लवाङ्कुरयुक्ताः तथा पत्रवन्त-प्रशस्तपत्रसम्पन्नाः
 एवं पुष्पवन्त, फलवन्त, बीजवन्त प्रशस्त पुष्पफलबीजयुक्ता इति, तथा आनुपूर्वीं सुजा-
 तरुचिरवृत्तभावपरिणताः आनुपूर्व्यां-यथाक्रमं सुजाताः सुसमुत्पन्नाः अतएव रुचिरा सुन्द
 राश्च ते वृत्तभाव परिणताः-वृत्तभावेन वर्तुलत्वेन परिणताः परिणामप्राप्ताः, एकस्क-
 न्धिनः-एकस्कन्धवन्तः, अनेकशाखाप्रशाखाविटपाः-अनेके शाखा प्रशाखा विटपाः-तत्र
 शाखाः-प्रधानशाखाः, प्रशाखाः-अवान्तरशाखाः, विटपाः-विस्तारा येषां ते तथा बहु

હી સાન્દ્ર હોતી હૈ, હસોસે યહ “ રમ્ય. ” બહુનરમણીય હૈ “ મહામેષનિકુરમ્બમૂત ” જિસ પ્રકાર જલ સે ભરે હુણ મેષ પ્રતીત હોતે હૈ । ડસી પ્રકાર સે યહ વનપણ્ડ મી પ્રતીત હોતા હૈ “ મૂલવન્ત ” યહા જો વૃક્ષ હૈ વે પ્રશસ્ત મૂલ વાલે હૈ । અર્થાત્ ઇનકી જઢે બહુત હીં દૂરતક જમીન કે મીનર ગર્દે ડુર્ડે હૈં । પ્રશસ્ત કન્દવાલે હૈ । મૂઝ કે ડપરિ વર્તીં ભાગરૂપ પ્રશસ્ત કન્દ સે યુક્ત હૈ । પ્રશસ્તસ્કન્ધ - વાલે હૈ- શાક્ષાઁ જિસ સ્થાન સે ડત્પન્ન હોતી હૈં ડસ સ્થાનકા નામ સ્કન્ધ હૈ, પ્રશસ્ત પ્રવાલ વાલે હૈ । પ્રશસ્ત પલ્લવાકુરોં સે યુક્ત હૈં । પ્રશસ્ત પત્રોં વાલે હૈં, પ્રશસ્ત પુષ્પોં વાલે હૈં, પ્રશસ્ત ફલોં વાલે હૈં, પ્રશસ્ત વીજ વાલે હૈ । ડસતરહ પ્રશસ્ત પુષ્પ, ફલ ડઊર વીજ સે યુક્ત યહાં કે વૃક્ષ હૈ “ આનુર્વીં સુજાતરુચિરવૃત્ત ભાવ પરિણતા. ” તથા યે વૃક્ષ ક્રમ ૨ સે અઙ્છી તરહ સે ડત્પન્ન હુણ હૈ અતપ્વ યે રુચિર - સુન્દર હૈ ડઊર વૃત્ત ભાવ કો પરિણન હુણ હૈ, છતે કા જૈસા આકાર હોતા હૈ વૈસા ડનકા આકાર હૈ । ડનમ્ ડનેક સ્કન્ધ નહીં હૈં કિન્તુ ડક હી સ્કન્ધ હૈ, “ ડનેક શાક્ષા પ્રશાક્ષાવિટપા ” યે ડનેક પ્રધાન

જે છાયા રહે છે તે ખૂબ જ સારૂ હોય છે એથી આ “રમ્ય,” ખૂબ જ રમણીય છે. “મહામેષનિકુરમ્બમૂત” જેમ જલભરિન મેષ માલૂમ પડે છે તેમજ આ વનખંડ પણ માલૂમ પડે છે “મૂલવન્તઃ” અહીં જે વૃક્ષો છે તે પ્રશસ્તમૂલવાળા છે એટલે કે એમની જડો ખૂબ જ ઢૂર સુધી જમીનની અંદર પહોંચેલી છે તેઓ પ્રશસ્ત કંદવાળા છે મૂળના ઉપરિવર્તીં ભાગ રૂપ પ્રશસ્ત કન્દોથી યુક્ત છે પ્રશસ્ત સ્કન્ધવાળા છે શાખાઓ જે સ્થાનેથી ડત્પન્ન થાય છે તે સ્થાનનુ નામ સ્કન્ધ છે પ્રશસ્ત પ્રવાલવાળા છે. પ્રશસ્ત પલ્લવાકુરોથી યુક્ત છે પ્રશસ્ત પત્રોવાળા છે પ્રશસ્ત પુષ્પોવાલા છે પ્રશસ્ત ફલોવાળા છે પ્રશસ્ત વીજ-વાળા છે. આ પ્રમાણે પ્રશસ્ત પુષ્પ ફલ અને વીજોથી યુક્ત અહીંના વૃક્ષો છે “આનુ-પૂર્વીંસુજાતરુચિરવૃત્તભાવપરિણતા” તેમજ આ વૃક્ષો અતુકમે સારી રીતે ડત્પન્ન થયેલા છે. એથી આ બધા રુચિર સુંદર છે મધપૂડાનો જેવો આકાર હોય છે તે બાતનો આકાર એમનો છે. આમા ધણા સ્કન્ધો નથી પરંતુ એક જ સ્કન્ધ છે “ડને ક્ષાપ્રશાક્ષાવિટપાઃ” એઓ ધણી પ્રધાન શાખાઓ અને અવાન્તર શાખાઓના વિરૂપ-વિસ્તાર-થી યક્ત છે એઓ

शाखाप्रशाखाविस्तारयुक्ताः अनेक नरव्यामसुप्रसारिताग्राह्यघनविपुलवृत्तस्कन्धाः
 अनेकेषां बहूनां मनुष्याणां व्यामैः—प्रसारितभुजान्तरालैः अग्राह्यः—अतिस्थूलतया—
 ग्रहीतुमशक्यः घनः—सान्द्रः विपुलः—विशालः वृत्तः—वर्तुलः स्कन्धो येषां ते तथा भूताः
 अतिस्थूलसघनविशालतया प्रसारितपाणिभिर्नरैर्दुर्ग्राह्य वर्तुलस्कन्धाः इति यावत् । तथा
 अच्छिद्रपत्राः अच्छिद्राणि सूर्यकिरणैरपि दुष्प्रवेशानि पत्राणि येषां ते तथापरंस्परमि-
 लितपत्राः, अतएव अविरलपत्राः—निरन्तरपत्राःअवातीनपत्राः—वातीनानि वातोपहतानि
 न वातीनानि अवातीनानि तादृशानि पत्राणि येषां ते तथा अत्र अतिसघनत्वाद्वायोर-
 प्रवेशेनाकम्पित पत्रा इत्यर्थः । तथा—अनीतिपत्राः ईतयः पट्ट—अतिवृष्टिः १, अनावृष्टिः
 २, मूपिकः ३, श्लभः ४, शुकः ५, अत्यासन्नो राजा ६ चेति, अविद्यमाना ईतयो
 येषां तानि अनीतिनि—षड्विधेति रक्षितानि निरुपद्रवाणि पत्राणि येषां ते तथा ।
 तथा निर्धूत जरठपाण्डुपत्राः—निर्धूतानि नष्टानि जरठानि जीर्णानि पाण्डुपत्राणि—
 पाण्डुवर्णपत्राणि येषां ते तथा । तथा नव हरितभासमान पत्र भारान्धकारगम्भीर
 दर्शनीयाः नवेन सद्योजानेन हरितेन शुकपिच्छाभेन भासमानः स्निग्धत्वचा दीप्यमानो
 यः पत्रभारः—पत्रसमूहः तेन अन्धकारा, अन्धकारव्याप्ता अत एव गम्भीराः—इदमी
 दृगिति विवेक्तु मशक्या यथा तथा दृश्यन्त इति गम्भीरदर्शनीयाः तथा—
 उपविनिर्गतनवतरुणपत्रपल्लवकोमलोज्ज्वलचलत्किसलयसुकुमारप्रवालशोभितवराङ्कुराग्र-
 शिखराः—उपविनिर्गतानि—सद्यः प्रकटितानि नवतरुणानि—नवीनाऽऽगततरुणता सम्पन्नानि
 यानि पत्र पल्लवानि—पत्रगुच्छरूपाणि तैः, तथा—कोमलोज्ज्वलैः मृदु निर्मलैः चलद्भिः—
 कम्पमानैः, किसलयैः—सद्योजातैः पत्रविशेषैः सुकुमारप्रवालैः—कोमलपल्लवैः शोभितानि
 वराङ्कुराग्रशिखराणि—सुन्दराङ्कुरयुक्तोपरितनभागाः येषां ते तथा । अत्र विशेषणे—
 अङ्कुरः—प्रवाल—पल्लव—किसलय—पत्राणि स्वल्पतर स्वल्पबहु चिरतरादि कालकृतावस्था-
 भेदाद् भिन्नानीति भावः । नित्यं कुसुमिताः—सदा सर्वर्तुसंजातपुष्पोपेताः, न तु ऋतु
 प्रतिबद्धपुष्पाः, नित्यं—सदा मुकुलिताः, नित्यं लवकिताः—सदा पल्लविताः, नित्यं सदा-
 स्तवकिताः विकासोन्मुखकलिका सम्पन्नाः, नित्यं गुल्मिताः—सदा प्रतानसम्पन्नाः,
 नित्यं गुच्छिताः—कलिकादि समूहसम्पन्नाः, नित्यं यमलिताः—समर्पकितया स्थिताः,
 नित्यं युगलिताः—सदा युगलतया स्थिताः, नित्यं विनमिताः—फल पुष्पादिभिर्विनत्री-
 कृताः, नित्यं प्रणमिताः केचित् प्रकर्षेण नम्रीकृताः, नित्यं सुविभक्त प्रतिमञ्जर्यवतं-
 सकधराः, नित्यं—सर्वकालं सुविभक्तः सुविच्छित्तिक प्रतिविशिष्टो मञ्जरीरूपो योऽवतं-
 सकः शिरोभूषणस्तद्धरा—तद्धारिणः । नित्यं कुसुमित मुकुलितलवकित स्तवकित गुल्मित-
 गुच्छितयमलितयुगलितविनमितप्रणमितसुविभक्तप्रतिमञ्जर्यवतंसकधराः, अत्र स्थानि
 कुसमितादिपदानि पूर्व पृथक् पृथक् व्याख्यातानि । शुकबर्हिण मदनशलाका
 कोकिल कोरक भृङ्गारक कोण्डलकजीवञ्जीवकनन्दीमुखकपिल पिङ्गलाक्षक कारणव-
 चक्रवाककलहससारसानेकशकुनगणविरचितशब्दोन्नतमधुरस्वरनादिताः—तत्र शुकाः—

प्रसिद्धाः, बर्हिणाः मयूराः मदनशलाकाः-सारिकाः कोकिलाः-प्रसिद्धाः, कोरकाः-
 पक्षविशेषाः, भृङ्गारकाः भृङ्गाराः पक्षिविशेषास्त एव भृङ्गारकाः कोण्डलकाः पक्षिविशेषाः,
 जीवञ्जीवकाः-जीवञ्जीवाः चकोरास्त एव जीवञ्जीवकाः, नन्दीमुखाः-पक्षिविशेषाः,
 कपिलाः-पक्षिविशेषाः, पिङ्गलाक्षकाः-पिङ्गलवर्णनेघाः पक्षिविशेषाः, कारण्डवाः-पक्षि-
 विशेषाः, चक्रवाकाः-केकाः 'चकवे'ति भाषाप्रसिद्धाः, कलहंसाः 'वतक' इति प्रसिद्धाः,
 सारसाः-प्रसिद्धाः पक्षिविशेषाः, एते ये अनेके शकुनाः पक्षिणस्तेषां ये गणाः-
 समूहा स्तेषां यानि मिथुनानि स्त्रीपुंसयुग्मानि तैर्विरचिताः-कृता ये शब्दोन्नताः-उन्नत
 शब्दाः-उच्चै रवाः ते मधुरस्वरा मधुरालापयुक्तास्तैर्नादिताः कन्ठरुलरवयुक्ता -विविध
 पक्षिगण मिथुन कृतमधुरध्वनियुक्ता इत्यर्थः, अतएव सुरम्या अतीव रमणीयाः, तथा
 सम्पिण्डित दृप्तभ्रमर मधुकरी प्रकरपरिलीयमानमत्तपदपद कुसुमासवलोल मधुरगुमगुमाय-
 मानशुब्जदेशभागाः, तत्र सम्पिण्डिताः कुसुमासवपानार्थं परस्पर सम्मिलिताः ये दृप्तानां
 मदमत्तानां भ्रमराणां मधुकरीणां भ्रमरीणां च प्रकराः समूहास्तैः सह परिलीयमानाः
 श्लिष्यन्तः-परिमिलन्तो ये मत्तपदपदाः, त एव पुनः कुसुमाऽऽसवलोलाश्च पुष्परसाऽऽ
 स्वादलोलुपाश्च तेषां मधुरं यथा तथा गुमगुमायमानैः गुमगुमेति मधुर भृङ्गसङ्गीतैः
 गुञ्जन् मधुरमव्यक्तं शब्दायमानो देशभागो येषु ते तथा । अत्र मधुकरगुञ्जनं देश-
 भागे आरोपितम् । तथा अभ्यन्तरपुष्पफलाः अभ्यन्तरे पुष्पफलैः सम्भृताः,
 वहिः पत्रावच्छन्नाः-वहिः सजात पत्रसमूहमच्छन्नाः पुष्पै फलैश्च अवच्छन्न्
 प्रतिच्छन्नाः सर्वथाऽऽच्छादिताः, तथा स्वादुफलाः-स्वादयुक्तफलसम्पन्नाः नोरोगकाः
 वृक्षचिकित्साशास्त्रप्रदर्शितरोगवर्जिताशीत-विद्यु-दातर्पादजनितोपद्रवरहिता वा, अकण्टकाः
 कण्टकरहिता नानाविध गुच्छगुल्ममण्डपकशोभिताः नानाविधैः बहुप्रकारैः गुच्छैः-पुष्प-
 स्तवकैः गुल्मैः लताप्रतानैः मण्डपकैः मण्डपाकारलतामण्डलैश्च शोभिताः शोभा-
 सम्पन्नाः, विचित्रशुभकेतुभूताः विचित्रशुभध्वजरूपाः वापी पुष्करिणी दीर्घिका सुनि-
 वेशितरम्यजालगृहकाः, तत्र वाप्यः चतुष्कोणाः, पुष्करिण्यः-वृत्ता वाप्य एव दीर्घिका
 ऋजु सारिण्यः, तासु सुनिवेशितानि सुष्ठुतया स्थापितानि रम्याणि-रमणीयानि
 जाल गृहकाणि सच्छिद्रगवाक्षा यत्र ते तथा पिण्डिमनिर्हारिमसुगन्धि सुरभिमनोहरा
 सम्मिलितां सतीं शुभपुद्गलसमूहरूपेण दूरदेशगामिनीं सुगन्धि शोभनगन्धवतीं
 शुभसुरभिमनोहरां-श्रेष्ठसुगन्धमनोहारिणीम्, महागन्धघ्राणिं-महती चापी गन्ध एव
 घ्राणिः तृप्तिस्तद्धेतुत्वाद् घ्राणिः गन्धघ्राणिः तां महागन्धघ्राणिं-महागन्धतृप्तिम्,
 मुञ्चन्तः-प्रसारयन्तः तथा-शुभ सेतुकैतु बहुलाः शुभा प्रधानाः ये सेतवःमार्गाः आल
 चालपाल्यो वा, केतवः पत्ताकाश्च तैर्बहुलाः-व्याप्ताः, अनेक रथ शकटयान युग्य गिल्लि
 थिल्लि स्पन्दमानिकाशिविका प्रविमोचनाः-अनेकेत्यस्य रथादि शिविकान्त इन्द्रघटकेषु

प्रत्येकेषु सम्बन्धः, तेन तत्र अनेके ये रथाः अनेकानि यानि शकटानि, अनेकानि यानि यानानि अश्वादीनि, अनेकानि यानि युग्यानि गोल्लदेशप्रसिद्धानि द्विहस्तप्रमाणानि चतुरस्राणि वेदिकोपशोभितानि जम्पानानि 'गिल्लि' इति देशीयः शब्द आसन विशेषार्थकः तेन हस्तिनः पृष्ठोपर्यासनानि 'अम्वाडी' इति प्रसिद्धानि गिल्लिपदवाच्यानि । 'थिल्ली' इत्यपि देशीयः क्रीडारथार्थकः, तेन लाटदेशप्रसिद्धाः क्रीडारथाः थिल्लिपदवाच्याः, स्यन्दमानिकाः—पुरुषप्रमाणजम्पानविशेषा, एनम् अनेकाः या शिविकाः—पुरुषवाहयानविशेषाः 'पालखी' इति प्रसिद्धाः, तासामनेकरथाद्यनेक शिविकान्तानाम् अधोऽतिविस्तीर्णत्वात् प्रविमोचनं स्थापनं यत्र ते तादृशाः । क्रीडार्थ-मागतानां जनानामनेकरथादयस्तत्र रथाप्यन्त इति भावः । तथा—सुरम्याः, अतिरमणीयाः प्रासादीयाः—दर्शकानां हृदयप्रसादकराः, यावत्पदेन "दर्शनीयाः द्रष्टुं योग्याः, तथा अभिरूपाः—सर्वथा दर्शकजनमनोनयनहारिणः" इति पदद्वयं बोध्यम् । तथा—प्रतिरूपाः—असाधारणरूपयुक्ता, इति ॥ सू० ५ ॥

शाखाओ और अवान्तर शाखाओ के विटप— विस्तार से युक्त हैं ये इतने मोटे हैं कि अनेक पुरुष एक साथ हाथ पसारे तब भी इनके स्तम्भ को अपने अङ्ग में नहीं भर सकते हैं । इनका जो स्तम्भ है वह मोटे होने के साथ सान्द्र है— मजबूत है, पोला नहीं है । गोल है— आडा टेढ़ा नहीं है । सरल है इनके पत्र ऐसे हैं कि जिनमें छिद्र का नामतक भी नहीं है । अथवा— वृक्षो की डालियो आपस में इस रूप से मिली हुई है कि उनके पत्र आपस में एक दूसरे पत्रो के साथ सलग्न होते गये हैं । अतः छिद्र वहा नहीं होता है । इसलिये सूर्य की किरणो को वहा प्रवेश करने के लिये स्थान नहीं प्राप्त होता है, " इत्यादि रूप से इस सूत्रपाठ में आगत यह वनपण्ड का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में व्याख्यात किया जा चुका है । अतः वही से इस पाठ की व्याख्या जान लेनी चाहिये ॥५॥

बोटका विशाल छे के अनेक पुरुषो ओकी साथे हाथ पडोणा करे छतां ओ ओभना थडाने पोताना आहुओभा समाडि । करी शकता नथी ओभना ओ स्तम्भो छे ते मोटा डोवाथी सान्द्र छे, मजबूत छे, पोला रथी गोण छे, आडा-वाका नथी, सरल छे ओभना पादडा-ओ ओवा छे के ओभनामा छिद्र नथी अथवा वृक्षोनी शाखाओ ओक भीनथी ओवी रीते सम्भित्तन थयेकी छे के तेभना पादडाओ परस्पर संलग्न थध जयां छे ओथी त्या छिद्रो रक्षा नथी, ओथी सूर्यना किरणोने त्या प्रवेशवा भाटे अत्रकाश नथी, धत्याद्विपमा आ सूत्र पाठमा वर्णित आ वनपण्डनु वर्णन जीवाभिगम सूत्रमा व्याख्यात करवामा आवेल छे, निरासुओओ त्याथी आ पाठनी व्याख्या जखी लेनी ओध ओ. ॥५॥

अथ वनखण्डस्य भूमिभागं वर्णयितुमुपक्रमते —

मूलम्—तस्स णं वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहा नामए आलिगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविह पंचव-
ण्णेहिं मणिहिं तणेहिं उवसोभिए, तं जहा किण्णेहिं ? एवं वण्णो गंधो
रसो फासो सदा पुक्खरिणोओ पव्वयगा घरगा मंडवगा पुद्विसिलोव-
हट्टया गोयमा ! णेयव्वा, तत्थ णं बहवे वाणमंतरा देवा य देवोओ य
आसयंति सयंति चिंढंति णिसीयंति तुअट्टंति रमंति ललंति कीलंति
किट्टंति मोहंति पुरा पौराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताणं सुभाणं कल्लाणा
णं कडाणं कम्माणं कल्लोण फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।
तीसेणं जगईणं उप्पि अंतो पउमवरवेइयाए एत्थणं एगं महं वणसंडे
पण्णत्ते देसूणाइं दोजायणाइं विक्खंभेण वेदियासमए परिक्खेवेणं
किण्हे जाव तणविहूणे णेयव्वे ॥ सू० ६ ॥

छाया—तस्य खलु वनखण्डस्य अन्तः बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः तत्
यथा नामक आलिङ्गपुष्करमिति व यावत् नानाविधपञ्चवर्णैर्मणिभिः तृणैरुपशोभितः, तद्यथा
-कृष्णः पवं वर्णो गन्धो रसः स्पर्शः शब्दः पुष्करिण्यः पर्वतका गृहकाणि मण्डपकाः पृ-
थिवी शिलापट्टकाः गौतम ! नेतव्याः । तत्र खलु बहवो वानव्यन्तरा देवाश्च देव्यश्च आ-
सते शेरते तिष्ठन्ति निषीदन्ति त्वग्वर्त्तयन्ति रमन्ते ललन्ति क्रीडन्ति कीर्तयन्ति मोहन्ति
पुरापौराणानां सुचीर्णानां सुपरीक्रान्तानां शुभानां कल्याणानां कृतानां कर्मणां कल्याणफल-
वृत्तिविशेषं प्रत्यनुभवन्तस्तिष्ठन्ति । तस्याश्च खलु जगत्या उपरि अन्तः पञ्चवरवेदिकाया
अत्र खलु एको महान् वनखण्डः प्रज्ञप्तः देशोने द्वे योतने विक्कम्भेण वेदिका समयः परि-
क्षेपेण, कृष्णो यावत् तृणविहीनो ज्ञातव्यः ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘तस्स णं वणसंडस्स’ इत्यादि ।

‘तस्स णं वणसंडस्स अतो’ तस्य पूर्वोक्तस्य खलु वनखण्डस्य अन्तः मध्यभागे

वनखण्ड के भूमिभाग का वर्णन—

“ तस्स ण वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते ” इत्यादि ।

उस वनखण्ड का भीतरी भूमिभाग अत्यन्त -समतलवाला होने से बहुत सुन्दर है “ से

वनखण्ड का भूमिभाग का वर्णन—

तस्स ण वणसंडस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—इत्यादिसूत्र— ६”
ते वनखण्डना अ इरने। भूमि भाग अतीव समतल डोवाथी भई ७ अ इर ६

‘बहुसमरमणिज्जे भूमिमात्रे पण्णत्ते’ बहुसमरमणीयः अत्यन्त समतलोऽतएव रमणीयः सुन्दरो भूमिभागः प्रज्ञप्तः कथितः । ‘आलिगपुक्खरेइवा’ तत् प्रसिद्धं यथा इति दृष्टान्तोपदर्शनार्थम् नामेति कोमलामन्त्रणे ‘ए’ इति वाक्यालङ्कारे, आलिङ्गपुष्कर्मिति वा-आलिङ्ग-मृदङ्गस्तस्य यत्पुष्करं-मुखोपरि चर्मपुटकम् तदत्यन्तं समतलं भवतीति तद्वत्समतल मिति तेन सादृश्य दर्शयितुमिति शब्दः प्रयुक्तः, वा ममुच्चये, एवमग्रेऽपि ‘जाव’ यावत् यावत्पदेन भूमिभागस्थात्यन्त समतलतावर्णनं राजप्रश्नीयसूत्रस्य पञ्चदशसूत्रे विलोकनीयम् । तदर्थस्तत्रैव मत्कृतसुबोधिनी टीकातोऽवसेयः । पुनः स भूमिभागः कीदृशः ! इत्याह “नाणाविहपंचवण्णेहि” इत्यादि, नानाविध पञ्चवर्णैः कृष्णादिपञ्चवर्णयुक्तैः “मणिहि तणेहि उवसोमिण्” मणिभिस्तृणैश्चोपशोमितः ‘तं जहा’ इत्यादि, तं जहा’ तद्यथा-तदेव दर्शयति ‘किण्हेहि’ कृष्णः-कृष्णवर्णयुक्तैः ‘गव्वण्णो’ एवं नीललोहितहारिद्र-शुक्ल वर्णयुक्तैर्मणिभिस्तृणैश्चेति सर्ववर्णविपयकं वर्णनं तथा ‘गंधो रसो फासो’ गन्धरसस्पर्शवर्णनं च राजप्रश्नीयसूत्रे पञ्चदशसूत्रादारभ्यैकोन-

जहा नामए आलिग पुक्खरेइ वा जाव णाणाविह पंचवण्णेहि मणिहि तणेहि उवसोमिण्” जैसा मृदङ्ग के मुख पर महा हुआ चर्म पुट समतल वाला होने से सुन्दर होता है । यहा यह दृष्टान्त समतलता की सादृश्यता प्रकट करने के लिये कहा गया है यहा जो यावत्पद का प्रयोगहुआ है वह यह प्रकट करता है कि भूमिभाग की अत्यन्त समतलता का वर्णन यदि देखना हो तो राजप्रश्नीय सूत्र के १५ वे सूत्र को देखो-वहां पर इस बात का अच्छी तरह से स्पष्टीकरण किया गया है राजप्रश्नीय सूत्र की मैं ने सुबोधिनी टीका लिखी है । उसमें पद व्याख्या इस सम्बन्ध में मैने की है । यह भूमिभाग अनेक प्रकार के पांचवर्ण वाले रत्नों से एव तृणो से खचित है -उपशोमित है । वे पांच वर्ण कृष्ण , नील , लोहित , हारिद्र-और शुक्ल है वहां जैसे ये पांच वर्णों के रत्न है उसी प्रकार से वहा पांच वर्णों के तृण भी हैं इनके गंध, रस एव स्पर्श किस प्रकार के हैं-इन सम्बन्ध का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र में १५

जहा नामए आलिग पुक्खरेइ वा जाव णाणाविह पंचवण्णेहि मणिहि तणेहि उवसोमिण्” मृदङ्गना सुभ उपरने। अर्धपुट जेवे समतल होवाथी सुहर होय छे अर्हा आ दृष्टात समतलतानी सादृश्यता प्रकट करवा माटे ज कडेवामा आवेल छे अर्हा जे यावत् पढेने प्रयोग थयेल छे ते आ प्रकट करे छे जे भूमिभागनी अत्यन्त समतलता विषे लक्ष्यु होय तो राजप्रश्नीय सूत्रना १५ भा सूत्रने लुओ। त्यां आ विषे अक्षु सारी रीने स्पष्टीकरण करवाभां आव्युं छे राज प्रश्नीयसूत्रनी मे सुबोधिनी टीका लखी छे तेमा आ विषेनी पहोयाख्या मे करी आ भूमिभाग. अनेक छे लतना पाचवर्णोवाणा रत्नोथी तेमज तृणोथी अचित छे. ते उपशोमित पांच वर्णो कृष्ण, नील, लोहित, हारिद्र, अने शुक्ल छे त्यां जेम आ पांच वर्णोवाणा रत्नो छे तेमज त्यां पाचवर्णोवाणा तृणो पणु छे जेमना गंध, रस अने स्पर्श देवा प्रकारना छे ? आ म अ धमा राजप्रश्नीय सूत्र ना १५ भा सूत्र थी लधने

विंशतितमसूत्रपर्यन्तं विलोकनीयम् । अर्थोऽपि तत्र सुबोधिनी टीकातो विज्ञेयः । तदेवाह—“एवं” इत्यादि । “सद्बो त्ति” शब्दवर्णनमपि तस्यैव राजप्रश्नीयसूत्रस्य त्रिंशत्तम चतुष्पष्टितमेमि सूत्रद्वये विलोकनीयम् । अर्थोऽपि तत्रैव सुबोधिनी टीकायां द्रष्टव्यः । “पुक्खरिणीओ त्ति, तत्र वनपण्डस्य बहुसमरमणीये भूमिभागे पुष्करिण्यः—क्षुद्रा क्षुद्रिकाः, वाप्यः, पुष्करिण्वाद्यश्च सन्ति तासां वर्णनं राजप्रश्नीयसूत्रस्य पञ्चपष्टितमसूत्रे, “पव्वयाणा इति पर्वतकाः, तासां पुष्करिण्यादीनां तत्र तत्र देशे उत्पातादि पर्वताः सन्ति, एषां वर्णनं पट्पष्टितमसूत्रे ‘घरगा इति ‘आलियघरगा’ तेषु वनपण्डेषु तत्र तत्र देशे बहूनि आलिना गृहकाणि कदली गृहकाणीत्यादि गृहवर्णनं सप्तपष्टितमसूत्रे, ‘मंडवगा’ इति मण्डपकाः तत्रैव तत्र तत्र देशे बहवो जाति मण्डपका यूथिका मण्डपकाः, इत्यादि मण्डपकवर्णनं, तथा ‘पुढविसिलापट्टया’ इति पृथिवीशिलापट्टका

वें सूत्र से लेकर २१वें सूत्र तक क्रिया गया है—सो वही से इस वर्णन को जान लेना चाहिये, तथा पदों की अर्थ व्याख्या सुबोधिनी टीका में की गई है—सो यह भी उम्मी से देख लेना चाहिये जब ये तृण वायु के झोको से मन्द २ रूप में या विशेषरूप में प्रकम्पित होते हैं—तब इनमें से परस्पर के सघट्टन से किस प्रकार का शब्द निकलता है यह सब यदि देखना हो तो राज प्रश्नीय के ६३वें और ६४वें सूत्र की व्याख्या को देखना चाहिये । वहाँ पर यह सब बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया गया है “पुक्खरिणीओत्ति” बहुसमरमणीय मध्यभूमिभाग में अनेक छोटी २ वापिकाएँ हैं—इनका वर्णन भी राजप्रश्नीयसूत्रके ६५वें सूत्र में आया है” इन पुष्करिणियों के बीच में “पव्वया” उत्पात आदि पर्वत हैं तथा उस वनपण्ड में अनेक “घरगा” कदली-गृह है, अनेक “मंडवगा” मण्डप-लताकुञ्ज-आदि है एवं “पुढविसिलापट्टया” अनेक हसासन आदि जैसे पृथिवीशिलापट्टक हैं और ये सब प्रतिरूपान्त तक के विशेषणों वाले हैं—यह सब

२१ मा सूत्र सुग्री वरुण करवाभा आबु छे तो त्याथी ज आ वरुण विषे लक्ष्मी द्वेषु लेछिअे, तेम ज पहोना अर्थनी व्याख्या सुबोधिनी टीकाभा करवाभा आवी छे तो आ विषे पबु त्याथी ले द्वेषु लेछिअे ज्यार आ तृष्णा पवनना अपाटाअेथी धीमे धीमे अथवा विशेष रूपमा प्रकपित थाय छे त्यारे अभेनामांथी परस्परना सघट्टनथी कर् अनो शब्द उत्पन्न थाय छे आ विषे जे लक्ष्मु डोय तो ‘राज-प्रश्नीय’ना ६३मा अने ६४ मा सूत्रना व्याख्यावाचनी लेछिअे त्या आ विषे त्तम रूपमा स्पष्ट करवाभा आवेल छे, “पुक्खरिणीओ “त्ति” ते बहुसमरमणीय मध्यभूमिभागमा वरुणी नानी वापिकाअे छे तेमनु वरुण प्रबु ‘राजप्रश्नीयसूत्रना ६५ मा सूत्रमा करवाभा आवेल छे आ पुष्करिणीअेनी वरुणे “पव्वया” उत्पात वगेरे पर्वतो छे तेमज ते वनपण्डमा अनेक “घरगा” कदली गृहो छे अनेक “मंडवगा मण्डप-लताकुञ्ज-वगेरे छे, तेमज “पुढविसिलापट्टया” अनेक हसासन इत्यादि जेवा पृथिवी शिला-पट्टके छे अने आ सर्व प्रतिरूपान्त सुधीना विशेषणोथी युक्त छे आ अथु वरुणपबु अनुकमे त्या

हंसासन संस्थिता यावत्प्रतिरूपाः, इत्यादि वर्णनं च राजप्रश्नीयसूत्रस्याष्टपष्टितमसूत्रे
 द्रष्टव्यं तद्यथाऽपि तत्रैव सुबोधिनी टीकायां विलोकनीयः, 'गोयमा' गौतम ! 'जेयञ्चा'
 इति नेतव्याः एते पदार्था ज्ञातव्या इत्यर्थः । 'तत्थ णं' इत्यादि । तत्र पूर्वोक्तेषु हंसा-
 सनादि सस्थानसंस्थितेषु पृथिवीशिलापट्टकेषु खलु 'बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ
 य बहवः—अनेकसंख्या वानमन्तराः—व्यन्तरदेवाश्च देव्यश्च व्यन्तर देवा व्यन्तर
 देव्यश्च 'आसयति' आसते, यथासुखं सामान्यत म्तिष्ठन्ति, 'सयति शेरते—दोर्धकाय
 प्रसारणेन वर्तन्ते न तु निद्राति देवानां निद्राया अभावात्, 'चिद्धंति' तिष्ठन्ति ऊर्ध्वा-
 वस्थानेन 'णिसीयंति' निपोदन्ति—उपविशति, 'तुयद्धंति' त्वग्वर्त्तयन्ति—पार्श्वपरिवर्तनं
 कुर्वन्ति, 'रमंति' रमन्ते—रतिमाध्वन्ति, 'ललंति' ललन्ति—विलसन्ति, 'कीलंति' क्रीडन्ति
 क्रीडां कुर्वन्ति 'किद्धंति' कीर्तयन्ति 'मोहंति' मोहन्ति—विलासं कुर्वन्ति, 'पुरा पौरा-
 णाणं पूरा-प्रारभवे पुराणानां—पूर्वजन्मजातानां कर्मणामिति' परेण सम्बन्धः, एवं 'सुचि-
 ष्णाणं' सुचीर्णानां—सुचीर्णानां सुविधिकृतानां, 'सुपरिककताणं' सुपरिक्रान्तानां शोभनपरा-
 क्रमसम्पादितानाम्, अतएव 'सुभाणं' शुभानां शुभफलानां 'कल्लाणं' कल्याणानां—

वर्णन भी क्रमशः वहीं राजप्रश्नीय सूत्र में ६६वें ६७वें ६८ सूत्र में आया है अतः इसके लिए
 उसकी सुबोधिनी टीका देखना चाहिये "तत्थ णं बहवे वाणमन्तरा देवा य देवीओ य आसयति
 सयति, चिद्धंति, णिसीयंति, तुयद्धंति, रमंति ललंति, कीलंति, किद्धंति, मोहंति" उन हंसासनादि
 के जैसे आकार वाले पृथिवी शिलापट्टको के ऊपर अनेक वानव्यन्तरदेर और देवियां सुखपूर्वक
 उठती बैठती रहती हैं, लेटती रहती है, आराम करती रहती है, कहीं खड़ी रहती है, पार्श्व-
 परिवर्तन करती रहती है, और करवटबदलती हुई विश्राम करती रहती है रतिसुखमोगा करती
 हैं, नाना प्रकार की क्रीडाएँ करती रहती है, गाने गाती रहती हैं, आपस में एक दूसरे को
 मुग्ध करती रहती हैं, भिन्न २ प्रकार के विलासो से देवो के चित्त को लुभाती रहती हैं, इस
 प्रकार से ये देव और देवियां "पुरा पौराणाण सुचिष्णाण सुपरिककताण सुभाण कल्लाणाणं

'राजप्रश्नीय सूत्रना ६६ भा अने ६७ भा तेमञ्ज ६८ भा सूत्रमा करवाभा आवेल छे.
 ज्येथी आ विषेण्णुषु डोय तो तेनी सुबोधिनी टीका ज्येथी ज्येथी "तत्थ णं बहवे वाण-
 मन्तरा देवाय देवीओ य आसयति सयति चिद्धंति णिसीयंति, तुयद्धंति रमंति, ललंति,
 कीलंति, किद्धंति मोहंति " ते हंसासनादिना देवा आकारवाणा पृथिवीशिलापट्टकेनी
 उपर धरुा वानव्यन्तर देव देवीओ सुपेथी उठता भेसना रहे छे, लेटता रहे छे, आराम
 करता रहे छे, कथाक कथाक जेसा रहे छे पार्श्व परिवर्तित करता रहे छे ज्येठवे के
 पासु ईरवीने विश्राम करता रहे छे रतिसुख भोगवता रहे छे अनेक प्रकारनी क्रीडाओ
 करता रहे छे गीता गाता रहे छे, परस्पर ज्येक भाजने मुग्ध करता रहे छे. भिन्न भिन्न
 प्रकारना विलासोथी देवाना चित्तने देवीओ लुग्ध करती रहे छे. आ रीते आ सर्व देव
 अने देवीओ "पुरापौराणाण सुचिष्णाणं सुपरिककताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडोणं कम्मणं

वास्तविक कल्याण फलानां 'कडाणं' कृतानां कर्मणां-पुण्यकर्मणां 'कल्लाणफलवित्ति-
विसेसं पच्चणुभवमाणाविहरन्ति' कल्याण-कल्याणरूपं फलवृत्तिविशेषं फलविपाके परिणाम
फलं प्रत्यनुभवन्तः एकैकशोऽनुभवविषयं कुर्वन्तः सन्तो विहरन्ति ।

इत्येवं पद्मवरवेदिकाया बह्विः स्थितवनपण्डवर्णनमुक्तम् । अधुना तस्या एव मध्य-
वर्त्ति प्रदेशान्तर्गत महावनपण्डवर्णनं चिकीर्षुगह-‘तीसेणं इत्यादि-‘तीसेणं जगइए
उर्पिं’ तस्याः पूर्वोक्तायाः खल्लु जगत्याः उपरि-ऊर्ध्वभागे ‘अंतो पउमवरवेइयाए’
स्थितायाः पद्मवरवेदिकायाः अन्तः मध्ये यः प्रदेशः, ‘एत्थ णं एगं महं वणसंडे पण्णत्ते’
अत्र-अस्मिन्प्रदेशे खल्लु एको महान् विशालो वनपण्डः प्रज्ञप्तः, ‘देसुणाइ दो जोयणाइं
विकखमेणं’ सच देशोने द्वे योजने विष्कम्भेण विस्तारेण, ‘वेदियासमए परिक्खेवेणं,
वेदिकासमकः-वेदिकया पद्मवरवेदिकया समः तुल्यः वेदिकासमः स एव वेदिका
समकः परिक्षेपेण-परिधिना, पद्मवरवेदिकापरिक्षेपयुक्त इत्यर्थः, अस्य वर्णनं पद्मवरवेदि-

कडाणं कम्माणं कल्लाणफलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरन्ति” पूर्व में आचरित किये गये
शुभाध्यवसाय से सविधि शोभनपराक्रमपूर्वक उल्लास के साथ सेवित किये-ऐसे शुभकल्याणकारी
फलवाले पुण्यकर्मों के कल्याणरूप फल को उनके उदयकाल में भोगते हुए अपने समय को
व्यतीत करते रहते हैं ।

इस प्रकार से पद्मवरवेदिका के बाहर के वनपण्ड का वर्णन कर-अब सूत्रकार उसके
मध्यवर्ती महावनपण्ड का वर्णन करते हुए कहते हैं-

“तीसेण जगइए उर्पिं अंतो पउमवर वेइयाए” उस जगती के ऊपर जो पद्मवरवेदिका
कही गई है उस पद्मवरवेदिका के भीतर “एत्थ णं एगं महं वणसंडे पण्णत्ते” एक बहुत विशाल
वनपण्ड कहा गया है यह वनपण्ड “देसुणाइं दो जोयणाइं विकखमेणं वेदिया समए पक्खेवेणं
किण्हे जाव तणविहणे जेयव्वे” चौड़ाई में कुछ कम दो योजन का है तथा इसकी परिधि का

कल्लाणफलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणा विहरन्ति” पूर्वभा आचरित शुभाध्य-
वसायथी सविधि शोभन पराक्रमपूर्वक उल्लासनी साथ सेवन करेवा-अब शुभकल्याणकारी
क्षणवाणा पुण्य कर्मोंना कल्याण रूप फल ने तेमना उदयकालमा भोगवता पेताना समयने
पसार करे छे

आ प्रभाञ्जे पद्मवर वेदिकान्तरं गच्छन्तं वनपण्डं वल्लुं करीने इवे सूत्रकार तेना
मध्यवर्ती महावनपण्डं वल्लुं करतां कहे छे —“तीसेणं जगइए उर्पिं अंतो पउमवरवे
इयाए” ते जगतीनी उपर ले पद्मवरवेदिका छे ते पद्मवर वेदिकानी अहर “एत्थ णं एगं
महं वणसंडे पण्णत्ते” अके अहुंए विशाल वनपण्ड कहेवामा आवेद छे आ वनपण्ड “देसुणाइं
दो जोयणाइं विकखमे ण वेदियासमए परिक्खेवेणं किण्हे तण विहणे जेयव्वे” चौड़ा-
ईमा कहेके स्वल्प जे योजन जेटवे छे तेमज आनी परिधि ने । वस्तुतः वेदिकानी परिधि

काया बहिर्गतवनषण्डवत् केवलं तृणशब्दवर्णनमत्र न कार्यमित्याह—“कण्हं जाव तण-
विहूणे जेयव्वो’ कृष्णो यावत् तृण विहीनो ज्ञातव्य इति—कृष्णः कृष्णावभासः नीलो
नीलावभासः, इत्यादि, अत्रस्थ पञ्चमसूत्रोक्त वर्णनमत्र बोध्यम् । तृणविहीनः तृण-
शब्दोऽत्र तृणजन्य शब्दपरः, तेन तृणजन्य शब्दविहीन इत्यर्थः अस्योपलक्षणत्वा-
न्मणिशब्द विहीनीऽपि स वनषण्डो बोध्यः, यतः पञ्चवरवेदिका मध्यवर्ति वनषण्डस्य
पञ्चवरवेदिका परिवेष्टिततया तत्र वायुप्रवेशाभवाच्चृणानां मणीनां च चलनासम्भवा-
त्परस्परं संघर्षाभावात् शब्दो न सम्भवति ॥ सू० ६ ॥

अधुना जम्बूद्वीपस्य द्वारसंख्याप्ररूपणार्थमाह—

मूलम्—जंबुद्वीवस्स णं भंते । दीवस्स कइ दारा पणत्ता !
गोयमा ! चत्तारि दारा पणत्ता. तं जहा-विजए १ वेजयंते २ जयंते
३ अपराजिए ४ ॥ सू० ७ ॥

छाया जम्बूद्वीपस्य खलु भदन्त कत्ति द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, गौतम ! चत्वारि द्वाराणि
प्रज्ञप्तानि, तद्यथा चिजयं १ वैजयन्तं २ जयन्तं ३ अपराजितम् ४ ॥ सू० ७ ॥

टीका—‘जम्बूद्वीवस्स ण इत्यादि । व्याख्या स्पष्टा ॥ सू ७ ॥

विस्तार वेदिका की परिधि के ही बराबर है इस महावनषण्ड का वर्णन जैसा अभी पञ्चवरवेदिका के
बाहर का वनषण्ड वर्णित हुआ है वैसा ही है परन्तु बाहर के वनषण्ड के वर्णन में वह वनषण्ड
कृष्ण है और कृष्णरूप से उसका अवभास होता है इत्यादि रूप से जो कहा गया है सो वह सब
पंचम सूत्रोक्त वर्णन यहां पर भी कर लेना चाहिये परन्तु उस वर्णन में जो तृण और मणियों के
शब्दों का वर्णन किया गया है वह वर्णन यहां पर इसलिये नहीं करना चाहिए कि यह वनषण्ड
पञ्चवर वेदिका से परिवेष्टित है अतः इसमें वायु का प्रवेश न हो सकता है और वायुप्रवेश के
अभाव से वहां के मणियों का एव तृणों का परस्पर में सचलन नहीं हो सकता है इसलिये वे
भापस में सघटित नहीं होते हैं टकराते नहीं हैं अतः संघर्ष के अभाव में शब्दोत्थान नहीं
होता है ॥६॥

नेटवो न छे. आ भडावनषंडु वरुणं उपर पञ्चवरवेदिकाणी भडारना वनषंडु वरुणं कर-
वाभां आवु छे तेषु न छे भडारना वनषंडना वरुणंभां ते वनषंड कृष्ण छे अने कृष्ण
इपथी तेना अवभास थाय छे वगेरे इभा ने कहेवाभा आवेल छे ते सर्व पंचम सूत्रोक्त
वरुणं अही पञ्च वरुणं द्वेषु भेधये पन्तु तं वरुणंभां ने तृण अने मणियोना शण्डोपुं
वरुणं करवाभा आवेल छे ते वरुणं अही नेटवो माटे नही करवु भेधये के आ वनषंड
पञ्चवर वेदिकाथी परिवेष्टित छे अथी आभा वायुप्रवेश थर्ध शकतो नथी. अने वायु-प्रवेश
ना अभावथी त्याना मणियो तेमज तेषु पञ्चपर सचलन थर्ध शकतु नथी अथी तेयो
परस्परभां सघटित थतां नथी-अथडाता नथी अथी संघर्षना अभावभां शण्डोत्थान थतु
नथी ॥६॥

एषां द्वाराणां स्थानविशेषनियमनाय प्राह—

मूलम्—कहि णं मंते । जंबुद्वीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पणत्ते ! गोयमा ! जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पणयालीसं जोयण सहस्माइं वीइवइत्ता जंबुद्वीवदीवपुरत्थिमपेरंते लवणसमुद्दपुरत्थिमद्धस्स पच्चत्थिमेणं सीयाए महाणईए उप्पि एत्थ णं जंबुद्वीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पणत्ते. अट्ट जोयणाइं उइहं उच्चत्तेणं चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेए वरकणगथूभियाए. जाव दारस्स वणणओ जाव रायहाणी ॥सू०८॥

छाया—कव खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं प्रघ्नसम् ? गौतम । जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पञ्चत्वारिंशत्तं योजनसहस्राणि व्यति व्रज्य जम्बूद्वीप द्वीप पौरस्त्यपर्यन्ते लवणसमुद्रपौरस्त्यार्द्धस्य पाश्चात्ये सीताया महानद्या उपरि अत्र खलु जम्बूद्वीपस्य विजय नाम द्वारं प्रघ्नसम् अष्ट योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन चत्वारि योजनानि विक्कमेण तावदेव प्रवेशेन, श्वेत वरकनकस्तूपिकाकं यावद् द्वारस्य वर्णको यावद् राजधानी ॥सू०८॥

‘कहि णं मंते’ इत्यादि ।

टीका—‘कहि णं मंते ! जंबुद्वीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पणत्ते’ हे भदन्त ! जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य विजयं नाम द्वारं क्व-कस्मिन् प्रदेशे प्रज्ञप्त कथितम् ?’ इति गौतमेन पृष्ठो भगवान् महावीर आह—‘गोयमा’ गौतम ! ‘जंबुद्वीवे दीवे

“जंबुद्वीप की द्वारसख्या का वर्णन—

जंबुद्वीवस्स ण मंते ! दीवस्स कई दारा पणत्ता” इत्यादि । सू० ७ ॥

इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है ॥७॥

ये द्वार कहां है ? इसका कथन —

“कहि णं मंते ! जंबुद्वीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पणत्ते” इत्यादि ।

हे भदन्त ! जंबूद्वीप नाम के द्वीप का विजय द्वार कहां पर कहा गया है ? इसके उत्तर में

जम्बूद्वीपनी द्वार स ख्यातु वधुंन —

‘जंबुद्वीवस्स ण मंते ! दीवस्स कई दारा पणत्ता’ इत्यादि सूत्र ७॥

आ सूत्रनी व्याख्यास्पष्ट छे

आ द्वारे कथा कथा छे ? तेनु वधुंन आ प्रभावे छे—

“कहिणं मंते ! जंबुद्वीवस्स दीवस्स विजय णामं दारे पणत्ते—इत्यादि

छे भदत । जम्बूद्वीपनामक द्वीपनु विजय द्वार कथा उडेवाभा आवेस छे ? जेना

मंदरस्स पक्वयस्स पुरत्थिमेणं जम्बूद्वीपे द्वीपे स्थितस्य मन्दरस्य पर्वतस्य पौर-
स्त्ये पूर्वदिशि 'पणयालीसं जोयणसहस्साइं वीइवइत्ता, पञ्चत्वारिंशत् पञ्चत्वारिंश-
संख्यकानि योजनसहस्राणि व्यतिव्रज्य अतिक्रम्य 'जंबुद्वीव दीवपुरत्थिमपेरंते जम्बू-
द्वीप' द्वीपपौरस्त्यपर्यन्ते—जम्बूद्वीपाभिधद्वीपपूर्वपर्यन्तं 'लवणसमुद्रपुरत्थिमदस्स
पच्चत्थिमेणं' लवणसमुद्रपौरस्त्यार्द्धस्य पाश्चात्ये पाश्चात्यभागे 'सीयाए महाणईए
उत्पि' सीतायाः महानद्याः उपरि य' प्रदेशोऽस्ति, 'एत्थ णं जंबुद्वीवस्स दीवस्स' अत्र
अस्मित् प्रदेशे खलु जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य 'विजए णाम दारे पणत्ते' विजयं नाम द्वारं
प्रज्ञप्तम् । तच्च 'अट्ट जोयणाइं उइह उच्चत्तेणं' अट्ट—अट्ट संख्यानि योजनानि ऊर्ध्वम्
उपरि उच्चत्वेन उच्छ्रयेण-अनन्तत्वेनेत्यर्थं, तथा-'चत्तारि जोयणाइं विक्खंमेणं' चत्वारि-
योजनानि विष्कम्भेण चतुर्थो जनपरिमाणविस्तारयुक्तमित्यर्थः, 'तावइए चेव पवे-
सेणं' तावदेव—चतुर्थो जनपरिमाणमेव प्रवेशेन प्रवेशमार्गावच्छेदेन प्रज्ञप्तम्, तत्पुनः कीदृश
मित्याह—'सेए' इत्यादि । 'सेए' श्वेतं—श्वेतवर्णयुक्तम्, तथा 'वर कणगथूमियाए' वरकनक

प्रसु कहते है—“गोयमा । जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पक्वयस्स पुरत्थिमेण पणयालीसं जोयणसहस्साइं
वीइवइत्ता” हे गौतम । जम्बूद्वीप नामके इस द्वीप में स्थित मन्दर पर्वत की पूर्वदिशा में ४५ हजार
योजन आगे जाने पर “जंबुद्वीवेदीवे पुरत्थिमपेरंते लवणसमुद्रपुरत्थिममदस्स पच्चत्थिमेण
सीयाए महाणईए उत्पि” जम्बूद्वीप के पूर्व के अन्त में और लवण समुद्र से पूर्वदिशा के पश्चिम
विभाग में सीता महानदी के ऊपर “एत्थ णं जंबुद्वीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पणत्ते”
जम्बूद्वीप का विजय नाम का द्वार कहा गया है “अट्टजोयणाइउइह उच्चत्तेणं” इस द्वार की
ऊँचाई आठ योजन की है तथा “चत्तारि जोयणाइ विक्खंमेणं” इसका विस्तार ऊँचाई से आधा
है—चार योजन का है “तावइयं चेव पवेसेणं” और प्रवेश भी—प्रवेश मार्ग भी इतने ही योजन
का अर्थात् चार योजन का है “सेए वरकणगथूमियाए” यह द्वार धवल वर्ण वाला है और
शिखर इसकी उत्तम स्वर्ण की बनी हुई है “जाव दारस्स वण्णमो जाव रायहाणी” इस विजय

उत्तरमा प्रथु कडे छे—“गोयमा । जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पक्वयस्स पुरत्थिमेण पणयाली
सं जोयणसहस्साइ वीइवइत्ता “हे गौतम । जंबूद्वीप नामके आ द्वीपमा स्थित मन्दर
पर्वतनी पूर्व दिशाभा ४५ हजार योजन आगण जावथी “जंबुद्वीव दीव पुरत्थिमपेरंते
लवणसमुद्र पुरत्थिमदस्स पच्चत्थिमेण सीयाए महाणईए उत्पि “जंबूद्वीपनी पूर्व दिशाने
अ ते अने लवण समुद्रधीपूर्व दिशाना पश्चिमविभागमा सीता महानदीनी उपर “एत्थ णं
जंबुद्वीवस्स दीवस्स विजए णामं दारे पणत्ते” जंबूद्वीपनु विजय नामके द्वार कडेवामा
आवेत्त छे. “अट्टजोयणाइं उइह उच्चत्तेणं” आ द्वारनी आठ योजन नेटवी छे
तेमज “चत्तारि जोयणाइं विक्खंमेण” आने विस्तार आठ योजन अर्धा छे नेटवी छे
आर योजन नेटवी छे. “तावइयं चेव पवेसेण” अने प्रवेश पथु—प्रवेशमार्ग पथु आर
योजन नेटवी छे. “सेए वरकणगथूमियाए” आ द्वार धवलवर्णवाणु छे अने आनु शिखर

स्तूपिकाकम् उत्तमस्वर्णमयशिखरयुक्तम्, 'जाव दारस्स वण्णओ' यावत् द्वारस्य वर्णकः पदसमूहोऽत्र बोध्यः क्रियदवधिः । इत्याह—'जाव रायहाणी' यावत् राजधानी विजय देवस्य या विजयाभिधा नाम राजधानी सो यावद् वर्ण्यते तावत्पर्यन्ते सर्वं पदजातं व्याख्यासहितं सर्वमत्र जीवाभिगमसूत्रस्य तृतीयप्रतिपत्तौ विलोकनीयमिति ॥ सू ८ ॥

अधुना विजयादि द्वाराणां परस्परमन्तरं दर्शयितुमाह—

मूलम्—जंबुद्वीवस्स भंते दीवस्स दारस्स य दारस्स य केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ? गोयमी । अउणासीइं जोयणसहस्साइं वावण्णं च जोयणाइं देस्रणं च अद्धजोयणं दारस्स य दारस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते अउणासोइ सहस्सा, वावण्णं चैव जोयणा हुंति । उर्णं च अद्धजोयणं. दारंतरं जंबुदीवस्स ॥सू०९॥

छाया—जम्बूद्वीपस्य खलु भदन्त ! द्वीपस्य द्वारस्य च द्वारस्य च कियत् अवाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् । गौतम, पकोनाशीतिर्योजनसहस्राणि द्विपञ्चाशच्च योजनानि देशोर्न च अर्द्धयोजनं द्वारस्य च द्वारस्य च अवाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् । पकोन, अशीतिः सहस्राणि द्विपञ्चाशदेव योजनानि भवन्ति । ऊनच अर्द्धयोजनं द्वारान्तरं जम्बूद्वीपस्य ॥ ९ ॥

'जंबुद्वीवस्स णं भंते' इत्यादि ।

टीका—गौतमः पृच्छति 'जंबुद्वीवस्स णं भंते दीवस्स दारस्स य दारस्स य' हे भदन्त ! जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य सम्बन्धिनो द्वारस्य च द्वारस्य च चतुर्णां द्वाराणाम् एकस्माद् द्वाराद् द्वितीयस्य द्वारस्य परस्परं 'केवइए' कियत्—कि प्रमाणकम् 'अबाहाए'

द्वार का वर्णन विजया नामक राजधानीतक का जैसा जीवाभिगम सूत्र में किया गया है वैसा ही वह सब वर्णन यहाँ पर भी कह लेना चाहिये यह सब वर्णन जीवाभिगम सूत्र में तृतीय प्रतिपत्ती में किया गया है ॥८॥

विजयादि द्वारो का पारस्परिक अन्तर कथन—

"जंबुद्वीवस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य इत्यादि ।

टीकार्थ—गौतमस्वामी ने अब प्रश्न से ऐसा पूछा है—हे भदन्त ! जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे

उत्तम स्वर्ण निर्मित थे. "जाव दारस्स वण्णओ जाव राय ति" आ (विजयद्वारस्य) वण्णं न विजया नामक राजधानी सुधीनुं जेम 'जीवाभिगम' 'सूत्र' मां करवाभां आवेलं छे तेषु न वण्णं अही" पण्णं समण्णु जेधं जे आ सर्वं वण्णं 'जीवाभिगम सूत्रनी तृतीय प्रतिपत्तिमा करवाभा आवेलं छे ॥८॥

विजयादि द्वारोतु पारस्परिक अन्तर कथन—

'जंबुद्वीवस्स णं भंते ! दीवस्स दारस्स य दारस्स य' इत्यादि सूत्र ॥९॥

टीकार्थ—गौतमस्वामीने प्रश्न कथे के छे बाइत ! जंबूद्वीप ना जेके द्वारथी पीम द्वार

अबाधया—परस्पर संघर्षाभावेन 'अंतरे' अन्तर-व्यवधानं 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तम् ? भगवानाह—
 'गोयमा !' हे गौतम ! 'अउणासीइं जोयणसहस्साइं वावण्णं च जोयणाइं' एकोना-
 शीतिः योजनसहस्राणि द्विपठ्चाशच्च योजनानि 'देसूण' देशोऽं देशेन किञ्चिद्देशेन
 ऊनं न्यूनं च 'अद्धजोयनं' अर्द्धयोजनं 'दारस्सय दारस्सय' द्वारस्य च द्वारस्य च
 'अवाहाए अंतरे' अबाधया अन्तर 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तम् । तदेव विशदयति तथाहि—
 जम्बूद्वीपपरिधिप्रमाणम् सप्तविंशत्युत्तरशतद्वयाधिक षोडशसहस्राधिकलक्षत्रय (३१
 ६२२७) मितानि योजनानि क्रोशत्रयम् ३ अष्टाविंशत्यधिकं धनुः शतम् १२८ त्रयो-
 दशाङ्गुलानि १३ अर्द्धाङ्गुलं चेति । अस्मात् विजयादिद्वारचतुष्टयाष्टादश योजनरूप
 विस्तारः पृथक् क्रियते, प्रतिद्वारं विस्तारस्तु चत्वारि योजनानि ४ द्वारशाखाद्वय
 विस्तारश्च क्रोशद्वयम् २ क्रोशद्वयस्य चतुर्षु द्वारेषु सत्त्वेन चतुर्भिर्गुणनेन क्रोशाष्टकं
 भवति तच्च द्वे योजने तयो षोडशभिर्योजनैः सह योजनयाऽष्टादशयोजनानि १८
 सम्पन्नानि । तस्मात् पूर्वोक्तपरिधिपरिमाणादष्टादशापनयने शेषपरिधिपरिमाणस्य

द्वार तक का अव्यवहित अन्तर कितना है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—“गोयमा ! अउ-
 णासीइं जोयणसहस्साइ वावण्णं च जोयणाइं देसूणं च अद्धजोयणं दारस्स य दारस्स य अवा-
 हाए अंतरे पण्णत्ते” हे गौतम ! जम्बूद्वीप के एक द्वार से दूसरे द्वार तक अव्यवहित अन्तर
 ७९ हजार ५२ योजन तथा कुछ कम आधे योजन का है यह अन्तर इस प्रकार से निकाला
 गया है—जम्बूद्वीप की परिधि का प्रमाण ३१६२२७ तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस
 योजन ३ तीन कोश १२८ धनुष और १३॥ अंगुल का है इस प्रमाण में से विजयादि
 चार द्वार का १८ योजनरूप जो विस्तार है वह अलग कर देना चाहिये हर एक द्वार का विस्तार
 चार योजन का है द्वार शाखाद्वय का विस्तार २ कोश का है ४ कोशों में क्रोशद्वय के सद्भाव
 से चार से गुणा करने पर ८ कोश होते हैं ८ कोश के २ योजन हैं इन दो योजनों को १६
 योजनों के साथ मिलाने से १८ योजन हो जाते हैं पूर्वोक्त परिधि प्रमाण में से १८ योजन

अव्यवहित अंतर केटहुं छे ? आना जवाभमां प्रभु कहे छे के 'गोयमा ! अउणासीइ जोयण
 सहस्साइ वावण्णं च जोयणाइ देसूणं च अद्धजोयणं दारस्स य दारस्स य अवाहाए
 अंतरे पण्णत्ते” हे गौतम ! जम्बूद्वीपना ओक द्वारथी पीणद्वार सुधीनुं अव्यवहित अंतर
 ७९ हजार ५२ योजन तेभज कर्क स्वल्प अर्धां योजन केटहुं छे आ अंतर आ रीते जणु-
 वामा आवे छे के जम्बूद्वीपनी परिधितु प्रमाणु ३१६२२७ योजन उ गाडि १२८ धनुष
 अने १३॥ अशुल केटहुं छे, आ प्रमाणुमांथी विजयादि चारद्वार ना १८ योजनने जे विस्तार
 छे ते बुढो ज राभवे जेधजे इरेके इरेके द्वारने विस्तार चार योजन केटहो छे द्वार-
 शाखाद्वयने विस्तार २ गाडि केटहो छे, ४ गाडिमां क्रोशद्वयना सद्भावथी चारथी शुषु
 करवाथी ८ गाडि थाय छे ८ गाडिना २ योजन थाय छे आ जे योजननेने १६ योजननेनी
 साथे ओकर करवाथी १८ योजन थई जय छे पूर्वोक्त परिधिना प्रमाणुमाथी १८ योजन

નવોત્તરદ્વિશતાધિકપોદશસહસ્રપદ્ધિતલક્ષત્રયપરિમિતસ્ય (૨૧૬૨૦૯) ચતુર્ભિર્ભાગે હૃતે
 લબ્ધાનિ દ્વિપઠ્ચાશદધિકાનિ ઇકોનાશીતિ સહસ્રાણિ ક્રોશશ્ચૈકઃ । પરિધિ સત્કસ્ય
 ક્રોશત્રયસ્ય ચતુર્ભિર્ભાગે હૃતે લબ્ધઃ પાદોન ઇકઃ ક્રોશઃ પૂર્વલબ્ધક્રોશૈકેન સયોજને
 જાતં પાદોનં ક્રોશદ્વયમ્ (૧૧૧) પરિધિ સત્કાનામષ્ટાવિશત્યત્રિકશતૈક (૧૨૮) ધનુષાં
 ચતુર્ભિર્ભાગે હૃતે લબ્ધાનિ દ્વાત્રિશદ્ ધનૂપિ (૩૨) પરિધિસત્કાનાં ત્રયોદશાંગુલાનાં
 ચતુર્ભિર્ભાગે હૃતે લબ્ધાનિ ત્રીણ્યગુલાનિ ૩ અવશિષ્ટમેકાંગુલમ્ ઇતદેવાંગુલં પરિધિ-
 સત્કેનાર્દ્ધાંગુલેન સહ મીલને જાત સાદ્દૈકમંગુલમ્, ઇકાંગુલસ્યાષ્ટૌ યવાં ઇતિ સાદ્દૈકાં-
 ગુલસ્ય યવકરણે જાતા દ્વાદશ યવાઃ, ઇપાં ચતુર્ભિર્ભાગે હૃતે લબ્ધાઃ પૂર્ણાસ્ત્રયો
 યવાઃ । ઇત્યેકૈકસ્ય દ્વારસ્યાન્તરં જાત-દ્વિપઠ્ચાશદધિકૈકોનાશીતિ સહસ્ત્ર યોજનાનિ
 (૭૯૦૫૨) પાદોન ક્રોશદ્વયં (૧૧) દ્વાત્રિશદ્ધનૂપિ (૩૨) ત્રીણ્યગુલાનિ ત્રયો યવાશ્ચ
 (૬૯૦૫૨ યો, ૧૧૧ ક્રો, ૩૨ ધનુ, ૩ અ, ૩ યવ) ઇત્યેવમાયાતમેકૈક દ્વારાન્તરમ્
 ઇકોનાશીતિસહસ્રાણિ દ્વિપઠ્ચાશદધિકાનિ યોજનાનિ કિઞ્ચિદનમર્ધયોજન ચેતિ ।
 ઇત્યેવ દૃઢીકર્તુ ઇકા ગાથામાહ—“અડળાસીહ સહસ્તા, વાવણ્ણ ચેવ જોયણા હુંતિ ।

ક્રમ કરને પર શેષ રહે હુણ ૩૧૬૨૦૯ કો ૪ સે માજિત કરન પર ૫૨ અધિક ૭૯
 હજાર યોજન ઔર ૧ કોશ લબ્ધ હોતા હૈ અર્થાત્ ૭૯ હજાર ૫૨ યોજન ઇવ ૧ કોશ
 આતા હૈ પરિધિ સબધી ત્રીન કોશ કો ૪ સે માજિત કરને પર' ॥ ક્રોશ લબ્ધ હોતા હૈ ઇસમેં
 પૂર્વલબ્ધ ઇક કોશ મિલને સે ૧૧૧ હો જાતે હૈ અબ ૧૨૮ ધનુષ મેં ૪ કા માગ દેને પર ૩૨
 ધનુષ હોતે હૈ પરિધિ કે જો ૧૩ અંગુલ હૈ અનમેં ૪ કા માગ દેને રપ ૩ અંગુલ લબ્ધ હોતે
 હૈ ઔર ૧ અ ગુલ બચતા હૈ ઇસ ઇક અંગુલ કો પરિધિ કે આધે અગુલ કે સાથ જોડ દેને
 સે ૧૧ અંગુલ હો જાતા હૈ આઠ જૌ કા ઇક અ ગુલ હોતા હૈ ૧૧ અંગુલ કે ૧૨ જૌ હોતે
 હૈ । ૧૨ મેં ૪ માગ દેને સે ૩ અ ગુલ આતે હૈ, ઇસ તરહ ઇક ઇક દ્વાર કા અતર ૭૯૦૫૨
 યોજન ૧૧૧ કોશ, ૩૨ ધનુષ ૩ અ ગુલ ઔર ૩ જૌ કા નિકલ આતા હૈ । યહી બાત “અડ-

કમ કરવાથી અવશિષ્ટ ૩૧૬૨૦૯ ને નથી ભાજિત કરવાથી પર અધિક ૭૯ હજાર યોજન
 અને ૧ ગાઉ લબ્ધ થાય છે એટલે કે ૭૯ હજાર પર યોજન અને ૧ કોશ આવે છે.
 પરિધિ સંબધી ત્રણ કોશને ૪ થી ભાજિત કરવાથી ॥ કોશ લબ્ધ થાય છે આમા પૂર્વ
 લબ્ધ એક કોશનો સરવાળો કરવાથી ૧૧૧ થઈ બંધ છે હવે ૧૨૮ ધનુષમા ૪ નો ભાગ-
 કાર કરવાથી ૩૨ ધનુષ થાય છે પરિધિના જે ૧૩ અંગુલો છે તેમા ચાર નો ભાગાકાર
 કરવાથી ૩ અંગુલ લબ્ધ થાય છે અને ૧ અંગુલ શેષ રહે છે આ એક અંગુલ ને પરિ-
 ધિના અર્ધા અંગુલની સાથે સરવાળો કરવાથી ૧૧ અંગુલ થઈ બંધ છે આઠ જવનો એક
 અંગુલ થાય છે ૧૧ અંગુલના ૧૨ જવ હોય છે ૧૨ મા ૪ નો ભાગાકાર કરવાથી ૩ અંગુલ
 આવે છે આ પ્રમાણે એક એક દ્વારનું અતર ૭૯૦૫૨ યોજન ૧૧૧ ગાઉ ૩૨ ધનુષ ૩ અંગુલ
 અને ૩ જવ જેટલું થાય છે એજ વાત ‘અડળાસીહ સહસ્તા વાવણ્ણ ચેવ જોયણા હુંતિ
 ક્ષણ ચ મદ્ધ જોયણા દ્વારંતરં જંબુદીવસ્લ’ આ ગાથા વડે પ્રકટકરવામા આવી છે ॥૬॥

ऊर्णं च अद्भुतजोयणा दारतरं जंबुद्वीवस्स ॥ छाया-एकोन, अशीतिः सहस्राणि
द्विपञ्चाशदेव योजनानि भवन्ति । ऊर्णं च अर्द्धयोजनं द्वारान्तरं जम्बूद्वीपस्य ॥
व्याख्या स्पष्टा ॥सू० ९।

इत्थं जम्बूद्वीपविषये स्वपृष्ठ सकलप्रश्नानामुत्तरं निश्चय्य गौतमः स्वापेक्षया
ऽऽसन्नभरतक्षेत्रस्वरूपं जिज्ञासुस्तृतीयसूत्रोक्तं चतुर्विधप्रश्नवर्तिनम् आकारभावरूपं चतुर्थ
प्रश्नमाश्रित्य पृच्छति —

मूलम्—कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे णामं वासे
पण्णत्त गोयमा! चुल्लहिमवंतस्स वोसहरपव्वयस्स दाहिणेणं दाहिणलवण-
समुद्दस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवण-
समुद्दस्स पुरत्थिमेणं, एत्थ णं जंबुद्वीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते
खाणु बहुले कंटगबहुले विसमबहुले दुग्गबहुले पव्वयवहुले पवायवहुले
उज्झरबहुले णिज्झरबहुले खड्डाबहुले दरिबहुले णईबहुले दहवहुले
रुक्खबहुले गुच्छबहुले गुम्भबहुले लयाबहुले वल्लीबहुले अडवीबहुले
सावयबहुले तणबहुले तक्खरबहुले डिबहुले डमरबहुले इब्भिक्ख बहुले
इक्कालबहुले पासंडबहुले किवणबहुले वणीमगबहुले ईतिबहुले मारिबहुले
कुवुडिबहुले अणावुडिबहुले रायबहुले रोगबहुले संकिलेसवहुले अभि-
क्खणं अभिक्खणं संखोह बहुले पाईणपडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे
उत्तरओ पलिअंकसंठाणसंठीए दाहिणओ धणुपिट्ठसंठीए तिधा लवण-
समुद्दं पुट्ठे गंगा सिंघुहिं महाणईहिं वेयड्ढेण य पव्वएण छ्भागप-
विभत्ते जंबुद्वीव दीव णउयसयभागे पंचछव्वीसे जोयणसए छच्च
एगूणवीसइभाए जोयणस्स विक्खंमेण । भरहस्स णं वोसस्स बहु मज्ज-
देसभाए एत्थणं वेयड्ढे णामं पव्वए पण्णत्ते जे णं भरहं बासं दुहा विभय-
माणे २ चिट्ठइ, तं जहा—दाहिणद्धभरहं च उत्तरद्धभरहं च ॥सू० १०॥

छाया क खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतं नाम वर्षं प्रकृतम्, गौतम ! क्षुल्ल-
हिमवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणे दक्षिणलवणसमुद्रस्य उत्तरे पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य पश्चिमे
णासीद् सहस्रा बावणं चैव जोयणा हुंति ऊर्णं च अद्भुतजोयणा दारंतरं जंबुद्वीवस्स” इस
गाथा द्वारा प्रकट की गई है ॥९॥

पाश्चात्यलवणसमुद्रस्य पौरस्त्ये, अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् स्थाणु
 बहुलं कण्टकबहुलं विषमबहुलं दुर्गंबहुलं पर्वतबहुलं प्रपातबहुलम् भवन्नरग्रहलं निर्द्धरं
 बहुलं गर्तबहुलं दरीबहुलं नदीबहुलं हृदयबहुलं वृक्षबहुलं गुच्छबहुलं गुरमबहुलं लताबहुलं
 वल्लोढबहुलम् अटवीबहुलं श्वापदबहुलं तृणबहुलं तस्करबहुलं डिम्बबहुलं उमरबहुलं दुर्भिक्ष-
 बहुलं दुष्कालबहुलं पाषण्डबहुलं कृपणबहुलं वनीपकबहुलम् इतिबहुलं मारिवहलं
 कुर्वाष्टबहुलम् अनावृष्टिबहुलं राजबहुलं रोगबहुलं संकलेशबहुलम् अभीष्टणमभीक्षणं
 संक्षोभबहुलं प्राचीनप्रतीचीनायतम् उदीचीनदक्षिणविस्तोर्णम् उत्तरतः पत्यङ्गसंस्थाननं-
 स्थितं दक्षिणतो घनुष्पृष्टसंस्थितम् त्रिधा लवणसमुद्रं स्पृष्टः गङ्गासिन्धुभ्यां महानदीभ्यां
 वैताढ्येन च पर्वतेन पद्मभागवतिभक्तं जम्बूद्वीपद्वीपं नवतिशतभागं पञ्चपड्विंशं योज-
 नशतं षट् च एकोनविंशति भागान् योजनस्य विष्कम्भेण । भरतस्य खलु वर्षस्य बहुमध्य-
 देशभागे अत्र खलु वैताढ्यो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः, य खलु भरतं वर्षं द्विधा विभजमानो
 विभजमानस्तिष्ठति, तद्यथा-दक्षिणार्द्धभरतं च उत्तरार्द्धभरतं च ॥ सू० १० ॥

टीका—‘कहि णं भंते’ इत्यादि गौतमस्वामी पृच्छति—‘कहि णं भंते ! जंबु-
 द्वीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते’ हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतं नाम वर्षं
 क्व-कस्मिन् प्रदेशे प्रज्ञप्तं कथितम्, भगवानाह-गोयमा !’ हे गौतम ! ‘खुल्लहिमवं-
 तस्स’ खुल्लहिमवत-लघुहिमवतः, ‘वासहरपव्वयस्स’ वर्षधरपर्वतस्य भरतादिक्षेत्रसीमा
 कारिणः पर्वतविशयस्य, ‘दाहिणेणं’ दक्षिणे-दक्षिणदिग्भागे ‘दाहिणलवणसमुद्रस्स’ दक्षि-

इस प्रकार से जम्बू द्वीप के विषय में अपने द्वारा पूछे गये सकल प्रश्नोका उत्तर सुनकर
 गौतम स्वामी अपनी स्थिति की अपेक्षा आसन्नवर्ती भरतक्षेत्रके स्वरूप को जानने का
 इच्छा से प्रेरित होकर तृतीय सूत्रगतचतुर्विधप्रश्न के अन्तर्गत आकारभावस्वरूप चतुर्थ प्रश्न को
 लेकर के प्रभु से ऐसा पूछने हैं—“कहि णं भंते ? जंबुद्वीवे दीवे भरहे णामं वासे
 पण्णत्ते ?” इत्यादि ।

टीकार्थ—“कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते !” हे भदन्त ! जम्बूद्वीप
 नाम के द्वीप में भरत नाम का वर्ष-क्षेत्र कहा पर कहा गया है ! इसके उत्तरमें प्रभु कहते हैं—
 “गोयमा ! खुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेण दाहिणलवणसमुद्रस्स उत्तरेण पुरथिम

आ प्रभाणे जंजूद्वीपना स भ धमा पोताना सवं प्रश्नोना जवाणे सांलणीने इवे
 गौतम स्वामी पोतानी स्थितानी अपेक्षा आसन्नवर्ती भरत क्षेत्रना स्वइधने लघुवानी
 धम्माणी प्रेरित धर्धने तृतीयसूत्रगत चतुर्विध प्रश्नानी अतर्गत आकारभाव रूप चतुर्थ
 प्रश्नने लधने प्रभु ने आ प्रभाणे पूछे छे है—

‘कहिण भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे णामं वासे पण्णत्ते ?’ इत्यादि सूत्र-१०

टीकार्थ—हे भदन्त ! जंबूद्वीप नामक द्वीपमा भरतनामक वर्ष-क्षेत्र-कथा कहेवामा
 आवेस छे ? आना जवाभमा प्रभु कहे छे—‘गोयमा ! खुल्लहिमवंतस्स वास-

णलवणसमुद्रस्य 'उत्तरेण' उत्तरे-उत्तरदिग्भागे, 'पुरत्थिमलवणसमुद्रस्स पच्चत्थिमेण' पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य पश्चिमे-पश्चिमदिग्भागे 'पच्चत्थिमलवणसमुद्रस्स' पाश्चात्यलवणसमुद्रस्य, 'पुरत्थिमेण' पौरस्त्ये-पूर्वदिग्भागे, 'एत्थ णं जंबूद्वीवे दीवे भरहे णाम वासे पणत्ते' अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् । तत् कीदृशम् ? इति जिज्ञासायामाह-'खाणु बहुले' स्थाणुबहुलम्-स्थाणुभिः पल्लवादिरहितशुष्कवृक्षैः 'टूठा' इति प्रसिद्धैः, बहुलम् व्याप्तम् यद्वा-बहुलाः स्थाणवो यस्मिस्तत्तथा, एवमग्रेऽपि 'कंटगबहुले' कण्टकबहुलं वर्धुरवदरीखदिरादि कण्टकव्याप्तम्, 'विसमबहुले' विषमबहुलम् निम्नोच्चस्थानव्याप्तम्, 'दुग्गबहुले' 'दुर्गबहुलम्' दुष्प्रवेशस्थानव्याप्तम्

लवणसमुद्रस्स पच्चत्थिमेण पच्चत्थिम लवणसमुद्रस्स पुरत्थिमेण एत्थण जम्बुद्वीवे दीवे भरहे णामं वासे पणत्ते" हे गौतम । भरतादि क्षेत्रो को सीमा करने वाले लघुहिमवान् पर्वत के दक्षिणदिग्भाग में, दक्षिणदिग्वर्ती लवण समुद्र के उत्तरदिग्भाग में पूर्वदिग्भागवर्ती लवण समुद्रकी पश्चिम दिशामें एव पश्चिमदिग्भागवर्ती लवण समुद्रकी पूर्वदिशा में यह जम्बूद्वीपगत भरतक्षेत्र है, यह भरत क्षेत्र-"खाणुबहुले, कंटगबहुले, विममबहुले, दुग्गबहुले पव्वयबहुले, पवायबहुले, उज्जर बहुले" स्थाणु बहुल है अर्थात् इसमें स्थाणुओं की-टूठों की अधिकता है. ये टूठ पत्र पुष्पादि से रहित होते हैं और निरस-शुष्क होते हैं-अर्थात् जो वृक्ष उखट जाते हैं वे पत्र पुष्पादि से रहित होते हुए सूख जाते हैं और जमीन में ही गड़े रहते हैं इन्हें ही स्थाणु कहा गया है । ऐसे टूठों से यह भरतक्षेत्र व्याप्त है. अथवा ऐसे टूठों की इस भरतक्षेत्र में बहुलता-अधिकता है-तथा ऐसे ही वृक्षों की यहां बहुलता है जो कण्टको वाले हैं-जैसे-बबूल, बेर और खैर आदि के वृक्ष यहां पर होते हैं यहां की जमीन का भाग अधिकांश ऐसा ही है कि जो नीचाऊँचा है सर्वथा सम नहीं है बहुत से स्थान

एपव्वयस्स दाह्णिणेण दाह्णिणलवणसमुद्रस्स उत्तरेण पुरत्थिमलवणसमुद्रस्स पच्चत्थिमेण पच्चत्थिमलवणसमुद्रस्स पुरत्थिमेण एत्थणं जंबूद्वीवे दीवे भरहे णामं वासे पणत्ते" हे गौतम । भरतादि क्षेत्रोनी सीमा करनार लघु हिमवान् पर्वतना दक्षिण दिग् भागमा दक्षिण दिग्वर्ती लवण समुद्रना उत्तरदिग्भागमा पूर्व दिग् भागवर्ती लवण समुद्रनी पश्चिम दिशाभां अने पश्चिम दिग् भागवर्ती लवण समुद्रनी पूर्व दिशाभां आ जम्बूद्वीपगत भरत क्षेत्र छे. आ भरत क्षेत्र "खाणु बहुले, कंटग बहुले, विसम बहुले दुग्ग बहुले पव्वय बहुले पवायबहुले उज्जरबहुले" स्थाणु बहुल छे, अट्ठे के आमा स्थाणुओनी-टूठाओनी-अधिकता छे आ स्थाणु ओ पत्र पुष्पादिथी रहित डोय छे अने नीरस-शुष्क डोय छे अट्ठे के जे वृक्षा बिपडी जय छे ते अथा पत्र-पुष्पादि रहित थर्ध ने शुष्क थर्ध जय छे अने जमीनमा ज बिवा रडे छे. अने जे स्थाणु ठडे-वामा आवेल छे. अवेा टूठाओथी आ भरतक्षेत्र व्याप्त छे अथवा अवेा टूठाओनी आ भरत क्षेत्रमा बहुलता अधिकता-छे तेमज कंटगवाणा वृक्षोनी पणु अही अधिकता छे पावण, गोवर्दी, जेर वगेरे अनेक वृक्षो अही पुष्कण प्रमाणुमां छे अहीनी जमीनना अधिकांश भाग

‘पञ्चयवहुले’ पर्वतवहुलम् अनेकपर्वतव्याप्तम् ‘पत्राय बहुले’ प्रपातवहुलम् प्रपपाता भृगवः पर्वततः पतनस्थानविशेषाः, यत्र मुमूर्षवो जनाः प्राणान् परित्यक्तुं निपतन्ति, तैर्वहुलम्, ‘उज्झरवहुले, अवझर बहुलम् पर्वततटतो जलाशयःपतनव्याप्तम्, ‘णिज्झर बहुले’ निर्झर बहुलम् पर्वततटात् सदातनजलक्षरणव्याप्तम्, ‘खड्गावहुले’ गर्तवहुलम् खड्गा इति प्रसिद्धाः तैर्वहुलम्, ‘दरिवहुले’ दरीवहुलम् गुहावहुलम् ‘णईवहुले’ नदी बहुलम्, ‘दहवहुले’ दूधवहुलम्, ‘रुक्खवहुले’ वृक्षवहुलम्, ‘गुच्छवहुले’ गुच्छवहुलम् गुच्छाः—स्तवक्राः, तैर्वहुलम्, ‘गुम्मवहुले’ गुल्मवहुलम् गुल्माः नवमालिकादयस्तैर्व-

यहां ऐसे हैं कि जहा पर प्रवेश पाना अशक्य है-या कष्ट साध्य है. यहा पर्वतों की अधिकता है तथा उन पर्वतों पर ऐसे ही विशेष स्थान है कि जहा से गिरने पर मनुष्य का शरीर चूर र हो जाता है यहां अवझर बहुत हैं—जिन पर्वतीय स्थानों से नोचे जल गिरता है उन स्थानों का नाम अवझर है जैसे जवलपुर का—मेडाघाट आदि, यहा निर्झर बहुत है -पर्वत के जिन स्थानो से सदा जल झरता रहना है—ऐसे स्थानों का नाम निर्झर है—ऐसे स्थान इस भारतक्षेत्र में अधिकांश हैं । इसी प्रकार यह भारतक्षेत्र “खड्गा बहुले” जगह र जिस में प्राय गह्वे हैं ऐसे स्थानो वाला है—अर्थात् जगह र गह्वो वाला हैं “दरि बहुले” पहाडो पर जिसके जगहरप्रायः गुफाएँ है ऐसे स्थानो वाला है—अर्थात् गुफाओ की अधिकता वाला हैं “ णई बहुले” जगह र जिसमें प्राय नदियाँ है ऐसा है “दहवहुले” जगह र जहां प्राय द्रव—पानी के कुड हैं ऐसा है “रुक्ख बहुले” जगह र जहा प्रायः वृक्ष हैं ऐसा है “गुच्छ बहुले” प्राय जगह र जहां गुच्छे हैं, ऐसा है जगह र जहा पर “गुम्म बहुले”

७।यो—नीयो छे—सर्वथा समन्थी, अर्द्धी धष्ठा स्थानो ज्येवा पष्णु छे के त्या प्रवेशवु अश-
क्य छे—अथवा ते कष्ट साध्य छे, अर्द्धी पर्वतानी अधिकता छे तेमन् ते पर्वतानी उधेरे
ज्येवा ज्येवा विशेष स्थानो छे के ज्यथाथी पडी जवाय तो भेषुसंनारशरीरिना सुकंठे लुक्का धंष्ट
लय छे अर्द्धी अवजरे। पुष्कण छे जे पर्वतीय स्थानो परथी नीये जण पडे छे ते स्था-
नाने अवजरे (प्रपात) कडे छे जेभके जणलपुरने। लेडाघाट वगेरे अर्द्धी निर्झरे। पुष्कण छे,
पर्वतना जे स्थानोथी सर्वदा जण अरतु रहे छे ज्येवा स्थानोने निर्झर कडे छे ज्येवा स्थानो
आ भारतक्षेत्रमा अधिकांश छे. आ प्रभाषे आ भारतक्षेत्र “खड्गा बहुले” उगदी ने पंगले
ज्या आडाज्यो पुष्कण छे ज्येवा स्थान वाणु छे ज्येदे के स्थान स्थान पर धष्ठा आडाज्यो
छे “दरि बहुले” दुःसरे पर ठेकठेकाज्यो धंष्टी शुकाज्यो वाणु छे ज्येदे के अर्द्धी शुकाज्यो
जुमन् वधारे छे “णई बहुले” स्थान स्थान पर जेभा नदीज्यो छे ज्येवु आ क्षेत्र छे “दह
बहुले” ठेकठेकाज्ये ज्या प्राय द्रवपाषीना कुडा छे ज्येवु आ क्षेत्र छे “रुक्ख बहुले” ठेक
ठेकाज्ये ज्या धष्ठा वृक्षो छे ज्येवु छे “गुच्छ बहुले” प्राय ठेकठेकाज्ये ज्या शुष्ठाज्यो छे
ज्येवु छे. ठेकठेकाज्ये ज्या “गुम्म बहुले” शुद्धो अधिकांश रूपमा धष्ठा छे ज्येवु आ क्षेत्र छे.

हुलम्, 'लया बहुले' लताबहुलम् पद्मलतादिव्याप्तम्, 'वल्लीबहुले' 'वल्लीबहुलम् कूष्माण्ड्यादिलताव्याप्तम्, यद्यपि लताबल्ल्योरेकार्थकत्वं तथापीह लतापदेन विस्तार रहिता वल्लीपदेन विस्तारसहिता लता गृह्यत इति तयो भेदः। 'अडवीबहुले' अटवीबहुलम्, 'सावयबहुले' श्वापदबहुलम्-हिंसकजन्तुव्याप्तम्, 'तणबहुले' तृणबहुलम्, 'तक्करबहुले' तस्करबहुलम्-चौर व्याप्तम्, 'डिंबबहुले' डिम्बबहुलम्-स्वदेशोत्पन्नोपद्रवव्याप्तम्, 'डमरबहुले' डमरबहुलम्-परदेशीराजकृतोपद्रवव्याप्तम्, 'दुम्भिकबहुले' दुर्भिक्षबहुलम् दुर्लभा भिक्षा यत्र ते दुर्भिक्षाः कालविशेषाः तैर्बहुलं व्याप्तम्, 'दुक्कालबहुले' दुक्कालबहुलम्-धान्यमहार्घतादिना ये दुष्टाः कालास्तैर्बहुलम्, 'पासंडबहुले' पाखण्ड बहुलम् पाखण्डाः मिथ्यावादास्तैर्बहुलम्, 'किवणबहुले' कृपणबहुलम् कृपणाः-कदर्याः-मितम्पचास्तै 'बहुलम्' 'वणीमगबहुले' वनीपकबहुलम्-वनीपकाः-याचकास्तैर्बहु-

गुल्म अधिकांश है ऐसा हैं " लया बहुले" जगह २ जहां पर लताओ की-विस्तार रहित पद्मलतादि को को-प्रधानता है ऐसा है " वल्ली बहुले" विस्तार वाली कूष्माण्डादि वेलो को प्रधानता जहां पर है ऐसा है " अडवी बहुले" जंगलों की जहां पर प्रधानता है ऐसा है " सावय बहुले" जंगली हिंसक जानवरो की जहां पर प्रधानता है ऐसा है "तण बहुले" घासकी जहा के जंगलो में प्रधानता है ऐसा है 'तक्कर बहुले' तस्करो-चोरो की जहां पर बहुलता है ऐसा है "डिंब बहुले" स्वदेशोत्पन्न जनों से ही जहा पर उपद्रवों की बहुलता है ऐसा है "डमर बहुले" परदेशी राजा के द्वारा कियेगये उपद्रवों की जहां बहुलता है ऐसा है "दुम्भिकस बहुले" दुर्भिक्ष की जहां बहुलता है ऐसा है "दुक्काल बहुले" दुक्काल की-चीजों को जहां पर बहुत ही अधिक कीमत बढ़ गई हो ऐसे कालकी बहुलता वाला है "पासंड बहुले" पाखण्डों-मिथ्या वादियों की जहां बहुलता है ऐसा है "किवण बहुले" कृपणजनो की जहा पर बहुलता है ऐसा है "वणीमग बहुले" याचक

'लया बहुले' ठेकेकेको न्या लताओनी विस्ताररहित पद्मलतादिओनी प्रधानताओ ओवु आ क्षेत्र ओ 'वल्ली बहुले' विस्तार प्रधान कूष्माण्डादि लताओ वधारे पडती ओ ओवु आ क्षेत्र ओ. "अडवी बहुलम्" जंगलोनी न्या प्रधानता ओ ओवो आ प्रदेश ओ. "सावय बहुले" जगलना डिंसक जानवरोनी न्या बहुलता ओ ओवु आ क्षेत्र ओ. "तण बहुले" तृणनी न्या जगलोभा प्रधानता ओ ओवु आ क्षेत्र ओ "तक्कर बहुले" तस्करोनी-चोरोनी न्या बहुलता ओ ओवु आ क्षेत्र ओ "डिम्ब बहुले" स्वदेशोत्पन्नजनोथी न्या उपद्रवो धषा थाय ओ ओवो आ प्रदेश ओ. "डमर बहुले" परदेशी राजओ न्या उपद्रवो करता रहे ओ ओवो आ प्रदेश ओ " दुम्भिकबहुले" दुर्भिक्षनी न्या बहुलता ओ ओवो आ प्रदेश ओ. "दुक्काल बहुले" दुक्कालनी-ओटले के न्या चीज वस्तुओनी कीमतभां पूणव वधारे वृद्धि शर्ध गध होय-ओवो काणनी बहुलतावाणो आ प्रदेश ओ. "पासंड बहुले" पाखण्डो मिथ्या वादीओनी न्या बहुलता ओ ओवो आ प्रदेश ओ "किवण बहुले" कृपणजनोनी न्या बहुलता ओ ओवो आ प्रदेश ओ. "वणीमग बहुले" याचकोनी न्या बहुलता ओ ओवो आ

લમ્ 'ઈતિવહુલે' ઈતિવહુલમ્-ઈતયઃ-અતિવૃષ્ટચનાવૃષ્ટિ-મૂષક-શલમ-શુકાત્યાસન્ન-
 રાજાઃ ષડુપદ્રવાઃ તાભિર્વહુલમ્ 'મારિવહુલે' મારિ વહુલમ્ મારયો વિપૂચિકાદયઃ,
 તાભિર્વહુલમ્ 'કુબુદ્ધિવહુલે' કુવૃષ્ટિવહુલં કુવૃષ્ટયઃ-કુત્સિતાઃ કર્ષકજનનાનભિલ્પનીયા
 વૃષ્ટયો વર્ષાસ્તાભિર્વહુલમ્, 'અણાબુદ્ધિવહુલે' અનાવૃષ્ટિવહુલમ્-અનાવૃષ્ટયઃ-વર્ષણસ્યામાવાઃ
 તાભિર્વહુલમ્ 'રાયવહુલે' રાજવહુલમ્-રાજાનઃઆધિપત્યકર્તાં જનાસ્તૈર્વહુલમ્ 'રોગવહુલે'
 રોગવહુલમ્ રોગાઃ-વાત-પિત્ત-કફ વિષમતાજન્યાઃ જ્વરાદયસ્તૈર્વહુલમ્, 'સંકિલેસ-
 વહુલે' સંકલેશવહુલં-સંકલેશાઃ-શારીરિકમાનસિકાસમાધયસ્તૈર્વહુલમ્ 'અભિક્ષણં અભિ-
 ક્ષણં' અમીક્ષણમમીક્ષણમ્ વારંવારમ્ 'સંસ્નોહવહુલે' સંસ્નોભવહુલમ્ સંસ્નોભાઃ પ્રજાનાં
 દણ્ડપારુષ્યાદિના ચિત્તવૈકલ્યાનિ તૈર્વહુલમ્ ર્ત્યં સ્વરૂપતઃ પ્રદર્શ્ય સમ્પ્રતિ પ્રમાણત
 આહ-પાર્શ્વણ્યહીણાયણ' પ્રાચીનપ્રતીચીનાઽઽયતં પ્રાચીનપ્રતીચીનથોઃ પૂર્વપશ્ચિમદિશોઃ,
 આયતં દીર્ઘમ્ અત્ર પ્રાક્ પ્રત્યક્ષબ્દાભ્યાં સ્વાર્થે સ્વઃ પ્રત્યયસ્તસ્યેનાદેશઃ સ ચ સ્વઃ,

જનો કી જહાં પર બહુલતા હૈ પેસા હૈ "ઈતિ વહુલે" મારી વહુલે કુબુદ્ધિ વહુલે અણાબુદ્ધિ વહુલે
 રાયવહુલે રોગ વહુલે સંકિલેસ વહુલે" અતિવૃષ્ટિ અનાવૃષ્ટિ મૂષિક શલમ શુક એવ અત્યાસન્નરાજા
 યે છહ ઈતિયાં હોતી હૈં ઇન છહ ઈતિયોકો ઉપદ્રવો કે બહુલતા જહાં પર હૈ પેસા હૈ ઇનકી બહુલતા
 મરત ઓર એરવત ક્ષેત્રમેં હી હોતી હૈ, મારી હૈજા આદિ કી હૈ બહુલતા જિસમેં 'પેસા હૈ કર્ષક-
 કિસાન જનો કો અનભિલ્પનીય વર્ષાકી બહુલતા જિસમે હૈ પેસા હૈ અનાવૃષ્ટિ વર્ષા કે
 અભાવ કા જહા પ્રાયઃ સદ્ભાવ હૈ પેસા હૈ અધિપતિત્વ કરને વાલે રાજા જનો કી જહાં પર
 બહુલતા હૈ પેસા હૈ વાત પિત્ત કફ કી વિષમતા જન્ય રોગો કા સદ્ભાવ જહા પર હૈ પેસા
 હૈ શારીરિક ઓર માનસિક અસમાધિયાં કી બહુલતા જહાં પર હૈ પેસા હૈ 'અભિક્ષણં
 અભિક્ષણં સંસ્નોહ વહુલે પાર્શ્વણ્યહીણાયણ ઉદીણદાહિણ વિત્તિથણે ઉત્તરઓ પલિબક સઠાણ સઠિણ'
 ઓર નિરન્તરવાર વાર જહાં પર પ્રજા જનો કે ચિત્તકો ક્ષુભેત કરને વાલે દણ્ડકી કઠોરતાપૈ

પ્રદેશ છે "ઈતિ વહુલે, મારિ વહુલે, કુબુદ્ધિ વહુલે, અણાબુદ્ધિ વહુલે, રાય વહુલે, રોગ
 વહુલે, સંકિલેસવહુલે" અતિ વૃષ્ટિ, અનાવૃષ્ટિ, મૂષક, શલમ, શુક તેમજ અત્યાસન્ન
 રાજાઓ આમ ૬ ઈતિઓ હોય છે આ ૬ ઈતિઓના ઉપદ્રવોની જેમાં બહુલતા છે એવો
 આ ભરત પ્રદેશ છે એરવત પ્રદેશમા પણ એવુ જ થાય છે મારિ-કાલેરા વગેરે જ્યાં
 વિશેષ રૂપમાં થાય છે એવો આ પ્રદેશ છે. કર્ષક-ખેડૂનો ના માટે અનિચ્છિત વર્ષા જ્યાં
 થતી રહે છે એવો આ પ્રદેશ છે અનાવૃષ્ટિ-વર્ષાના અભાવનો જ્યા પ્રાયઃ સદ્ભાવ છે એવો
 આ પ્રદેશ છે અધિપતિત્વ કરનારા રાજાઓની જ્યાં બહુલતા છે એવો આ પ્રદેશ છે વાત,
 પિત્ત, કફની વિષમતાથી જ્યા રોગો વધારે પડતા કાઠી નીકળે છે એવો આ પ્રદેશ છે
 શારીરિક, અને માનસિક અસમાધીઓની બહુલતા જ્યા છે એવો આ પ્રદેશ છે "અભિ
 ક્ષણ ૨ સંસ્નોહવહુલે, પાર્શ્વણ્યહીણાયણ ઉદીણદાહિણવિત્તિથણે ઉત્તરઓ પલિબક સઠાણ
 સઠિણ" અને નિરન્તર-વાર વાર જ્યાં પ્રજાજનોના ચિત્તને કષ્ટ આપનારા કંઠની-શિક્ષાની

‘अर्षत्वात् एवम् ‘उदीण दाह्णिविस्थिण्णे’ उदीचीन दक्षिणविस्तीर्णम् उत्तर-दक्षिण-दिशोर्विस्तारयुक्तम्, तदेव सस्थानतो वर्णयति- ‘उत्तरओ’ उत्तरतः-उत्तरस्यां दिशि ‘पलियंकसंठाणसंठिए’ पल्यङ्कसंस्थानसंस्थितं=पर्यङ्काकारसंस्थितम्, ‘दाह्णिमो’ दक्षिणतः-दक्षिणस्यां दिशि ‘धणुपिट्ठ संठीए’ धनुष्पृष्ठ संस्थितं-धनुषः पृष्ठं पाश्चात्यभागस्तस्येव संस्थितं-सस्थानं यस्य, यद्वा-धनुषः पृष्ठमिव संस्थितं यत् तत्तथा, तथा ‘तिघा’ त्रिधा-त्रिभिः प्रकारै स्पृष्टं-पूर्वकोटया ‘लवणसमुद्रं’ पूर्व लवणसमुद्रं, धनुष्पृटेन दक्षिणलवणसमुद्रम् अपरकोट्या पश्चिमलवणसमुद्रं, ‘पुट्टे, प्राप्तम् । इह धातूनामनेकार्थत्वात् स्पृशेः प्राप्त्यर्थः, कत्तरिक्तः, तेन कर्मणि द्वि-तीया । तथा ‘गंगासिंधुहि’ गङ्गासिन्धुभ्यां ‘महाणईहि’ महानदीभ्यां ‘वेयइडेणय’वैताढये-न च ‘पव्वएण’ पर्वतेन’ छ्वाभागपविभक्ते’ षड्भागप्रविभक्तं-षड्भिर्भागैः प्रविभक्तं-

मौजूद हैं; ऐसा यह भरत क्षेत्र है, यह भरत क्षेत्र पूर्वसे पश्चिम तक लम्बा है, और “उदीण-दाह्णिविस्थिण्णे” उत्तर से दक्षिणतक चौड़ा है । “उत्तरओ” यह भरतक्षेत्र उत्तरदिशामें “पलियंक सठाणसठिए” पलंग का जैसा सस्थान-आकार होता है वैसे आकार वाला है, “दाह्णिमो धणुपिट्ठसठिए” दक्षिण दिशा में धनुषपृष्ठ का जैसा सस्थान होता है वैसे सस्थान वाला हो गया है, यह “तिघा लवणसमुद्र पुट्टे” भरत क्षेत्र तीन प्रकार से लवण समुद्र को छू रहा है-पूर्वकोटि से पूर्वलवण समुद्र को, धनुष्पृष्ठ से दक्षिण लवण समुद्र को और अपर कोटि से पश्चिमलवण समुद्र को । इस तरह से यह तीन प्रकार से लवणसमुद्र को छू रहा है “गंगा सिंधुहि महाणईहि वेअइडेण य पव्वएण छ्वाभागपविभक्ते जंबुदीव दीव णयउ सयभागे पंच छ्वासे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स विक्खंमेण” यह भरत क्षेत्र गंगा और सिन्धु इन दो महानदियों से और विजयार्ध पर्वत से विभक्त हुआ ६ खंडों

ठोरेताओ न्यां विद्यमाने छे ओवे। आ प्रदेश छे. आ भरतक्षेत्र पूर्वथी पश्चिम सुधी लांछु छे. अने “उदीणदाह्णिविस्थिण्णे” उत्तरथी दक्षिण सुधी पडे। छे “उत्तरओ” आ भरत क्षेत्र उत्तर दिशाभां “पलियंकसंठाणसंठिए” पलंगनुं नेवुं संस्थान (आकार) होय छे ओवा आकारवा। छे “दाह्णिमो धणुपिट्ठ संठिए” दक्षिण दिशाभां धनुष पृष्ठनुं नेवुं संस्थान होय छे तेवा संस्थानवा। थर् गच्छुं छे आ “तिघा लवणसमुद्र पुट्टे” भरतक्षेत्र त्रयु रीते लवण समुद्रने २५शीं रच्छुं छे. पूर्वकोटिथी पूर्व लवण समुद्रने धनुषपृष्ठथी दक्षिण लवण समुद्रने अने अपरकोटिथी पश्चिम लवण समुद्रने आ २५शीं रच्छुं छे आभ आ त्रये भागुओथी लवण समुद्रने २५शीं रच्छुं छे. “गंगा सिंधुहि महाणईहि वे अइडेण य पव्वएण छ्वाभागपविभक्ते जंबुदीवदीव णयउ सय भागे पंच छ्वासे जोयणसए छच्च एगूणवीसइ भाए जोयणस्स विक्खंमेण” आ भरतक्षेत्र गंगा अने सिंधु ओ अने महानदीओथी अने विजयार्ध पर्वतथी विभक्त थर्ने छ थ’डोथी युक्त थर् गयैद

खण्डितम्, उत्तरस्यां दिशि खण्डत्रयं दक्षिणस्यां दिशि च खण्डत्रयमिति पद्धा खण्डितमिति भावः ।

इदं च भरतक्षेत्रम् जम्बू द्वीपस्यैकदेशभूतं तदिदम् आयामविष्कम्भतो जम्बू द्विपस्य कतितमे भागे भवति ? इति जिज्ञासानिवृत्त्यर्थमाह—‘जंजु द्वीव दीवणउयसयभागे, इत्यादि । तदिदं भरतक्षेत्रं ‘जबुद्वीव दीवणउयसयभागे’ जम्बूद्वीप द्वीप नवतिशतभागे—जम्बूद्विपनामको यो द्वीपस्तस्य यो नवति शतभागो=नवत्यधिकैकशततमो भागस्तत्र वर्तते, जम्बूद्वीपापेक्षया आयामविष्कम्भेणेदं नवत्यधिकैकशतभागतो न्यूनमिति भावः । ननु जम्बूद्वीपापेक्षया भरतक्षेत्रं नवत्यधिकैकशतभागतो न्यूनमिति पर्यवसितं, तर्हि भरतक्षेत्रस्यायामविष्कम्भतः प्रमाणं कियद् भवति ? इति जिज्ञासायामाह—‘पंचछन्वीसे’, इत्यादि । इदं भरतक्षेत्रं ‘पंच छन्वीसे’ पञ्चषड्विंशं ‘जोयणसए’ योजनशतम्—पद्द्विंशत्यधिकानि एकशतयोजनानि

वाला हो गया है. इसका विस्तार ५२६ ६/१९ योजन प्रमाण है अर्थात् जम्बूद्वीप कि जिसका विष्कम्भ १ एक लाख योजन का है उसके १९० टुकड़े करने पर भरत क्षेत्र का विस्तार १९० वां टुकड़ा के रूप में आता है. और वह १९० वा टुकड़ा ५२६ ६/१९ रूप पड़ता है. यह इस प्रकार से समझना चाहिए जम्बूद्वीप लम्बाई चौड़ाई मे १ लाख योजन का कहा गया, १ एक लाख में १९० का भाग देने पर ५२६ आते हैं और नीचे ६० बचते हैं, अब ६० को १० से भाजित करने पर ६ आते हैं, भाजक राशी जो १९० है उसे भी १० दस से भाजित करनेपर १९आते हैं । इस तरह करने से “पंच छन्वीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स,” यह सूत्रकार का कथन स्पष्ट हो जाता है ।

शका—जम्बूद्वीप के १९० वे भागरूप यह भरत क्षेत्र है इसमें युक्ति क्या है—सुनो—इस विषय में युक्ति यह है—भरत क्षेत्र का १ एक भाग है इसकी अपेक्षा द्विगुणित विस्तारवाला होने से हिमवत् पर्वत के दो भाग है, इसक्रम से पूर्व पूर्व की अपेक्षा दूने २ विस्तार वाले

छे. आने। विस्तार पर ६ ६/१९ योजन प्रमाण छे ज्येठवे के जम्बूद्वीप के नेने विष्कम्भ १ लाख योजन ज्येठवे छे तेना १६० ककडा करवा थी भरत क्षेत्र ने। विस्तार १६० मा ककडा ज्येठवे थाय छे आने ते १६० ने ककडा पर ६ ६/१९ ज्येठवे थाय छे जम्बूद्वीप लम्बाई-चौड़ाईमा १ लाख योजन प्रमाण छे. १ लाखमां १६० ने। भागाकार करवाथी पर ६ आवे छे आने शेष ६० वधे छे हवे ६० ने १० भाजित करीये तो ६ आवे छे भाजक राशी जे १६० छे तेने पछु १० भाजित करीये तो १६ आवे छे. आ प्रमाणे करवाथी “पंचछन्वीसे जोयणसए छच्च एगूण वीसइभाए जोयणस्स” आ सूत्रकार जु कथन स्पष्ट थर्छे नय छे. शंकाः—जम्बूद्वीपना १६० मा भाग इय आ भरतक्षेत्र छे आमा युक्ति शी छे १ सांभणे। आ सांभधमां युक्ति आ प्रमाणे छे के भरतक्षेत्रने। १ भाग छे, तेनी अपेक्षा द्विगुणित विस्तारवाणे होवाथी हिमवत् पर्वतना जे भाग छे. आ कभथी पूर्वनी अपेक्षा पञ्च

‘छच्च एगूणवीसइभागे’ पट्च एकोनविंशतिभागान् ‘जोयणस्स’ योजनस्य—
एकोनविंशतिभागविभक्तस्य योजनस्य षड्भागांश्च ‘विकखंभेण’ विष्कम्भेण—विस्तारेण
इदमायामस्याप्युपलक्षणम्, आयामेन=दैर्घ्येण च भवतीति । भरतक्षेत्रस्येदमायाम-
विष्कम्भमानमनया दिशाऽवगन्तव्यम् । तथाहि—जम्बूद्वीपो हि आयामविष्कम्भतो लक्ष-
योजनप्रमाणः । अयमङ्कराशि नवत्यधिकैकशतसंख्यकेन राशिना भाजितः, लब्धोऽ-
ङ्कराशिः षड्विंशत्यधिकपञ्चशतानि (५२६) भाज्यराशितोऽवशिष्टः पष्टिरूपोऽङ्क-
राशिः । अय दशभिरपहतो लब्धः षड्रूपोऽङ्कराशिः । भाजकराशिश्च नवत्यधिकैक-
शतरूपः । अयमपि दशभिरपहतो लब्ध एकोनविंशतिरूपोऽङ्कराशिः । अनया रीत्या
‘पञ्चछब्बीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्सं’ इति संगमनीयम् ।

ननु भरतक्षेत्रं जम्बू द्वीपस्य नवत्यधिकैकशततमभागे वर्तते इति यदुक्तं तत्र
का युक्तिः ? इति चेत्, उच्यते—भरतक्षेत्रस्यैको भागः, तदेपेक्षया द्विगुणत्वाद् हिम-
वतो द्वौ भागौ, एवं क्रमेण पूर्वपूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरस्य द्विगुणत्वात् हैमवत क्षेत्रस्य
चत्वारो भागाः महाहिमवतोऽष्टौ भागाः हरिवर्षस्य षोडश भागाः निषधस्य द्वात्रिं-
शद् भागः, सर्वसंकलनया जाताः त्रिषष्टिर्भागाः । एते भागा मेरोर्दक्षिणतः । एवं
मेरोरुत्तरतोऽपि त्रिषष्टिर्भागाः । उभयसंकलनया जाताः षड्विंशत्यधिकैकशत-
भागः । विदेहवर्षस्य तु चतुष्षष्टिर्भागाः इत्येतेषां पूर्वराशौ निक्षेपे जाता नवत्ये-
धिकैकशतभागः इति भरतक्षेत्रं जम्बू द्वीपस्य नवत्यधिकैकशततमभागै वर्तते इति
यदुक्तं तत्समीचीनमेवेति ।

होते जाने से हैमवत क्षेत्र के ४ भाग हो गये है, महाहिमवान् पर्वत के ८ भाग है हरि-
वष के १६ भाग हो गये हैं, निषधपर्वत के ३२ भाग हैं, ये सब भाग जोड़ने पर ६३
होते है ये ६३ भाग मेरु की दक्षिणदिशा की ओर वर्तमान क्षेत्र और पर्वतों के हैं इसी तरह के
भाग मेरु की उत्तर- दिशा में वर्तमान क्षेत्र और पर्वतों के हैं इन दोनों के भागों का जोड़
१२६ आता है. विदेह क्षेत्र के ६४ हैं. सो ये ६४ भाग १२६ में जोड़ने पर १९० भाग होते
है, इस तरह यह भरत क्षेत्र जम्बूद्वीप के १९० वें भाग रूप है यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

अथवा विस्तार युक्त डोवाथी हैमवतक्षेत्रना चार बागो धर्ष गया छे मडा हिमवान् पर्वतना
८ बागो छे हरिवर्षना १६ बागो धर्ष गया छे निषध पर्वना ३२ बागो छे. आ सव
भागोना सखाणो कवराथी ६३ धर्ष जाय छे. आ ६३ बागो मेरुनी दक्षिण दिशा तरफ
वर्तमान क्षेत्र अने पर्वताना छे. आ अतना बागो-मेरुनी-उत्तर दिशाभा वर्तमान क्षेत्र
अने पर्वताना छे आ अन्ने बागोना सखाणो १२६ थाय छे. (विदेहक्षेत्रना ६४ बागो छे.
तो आ ६४ बागो १२६ भा उमेरवाथी १६० बाग थाय छे. आअ आ भरतक्षेत्र जम्बू-
द्वीपना १६० भा बाग इय छे. आ वात स्पष्ट धर्ष जाय छे. भरतक्षेत्रना गंगा सिंधु

અથ 'ગણ્ણાસિન્ધુભ્યાં મહાનદીભ્યાં વૈતાલ્યપર્વતેન પદ્મભાગપ્રવિભક્તમ્' इत्युक्तम् तत्र
 वैताल्यपर्वतः किं स्वरूपः ? इति जिज्ञासायां तत्स्वरूपं निरूपयितुमाह—'भरहस्स णं
 वासस्स' इत्यादि । 'भरहस्स णं वासस्स' भरतस्य खलु वर्षस्य—क्षेत्रस्य 'बहुमज्झ-
 देसभाए' बहुमध्यदेशभागे—अत्यन्तमध्यदेशभागे 'एत्थ णं वेयइडे णामं पव्वए पण्णत्ते'
 अत्र इह खलु वैताल्यो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः । 'जे ण' यः वैताल्यः पर्वतः खलु 'भरहं
 वासं दुहा' भरतं वर्षं द्विधा—द्वाभ्यां प्रकाराभ्यामनुपदं वक्ष्यमाणाभ्यां 'विभयमाणे'
 २, विभजन् विभजन्—विभक्तं कुर्वन् कुर्वन् 'चिट्ठइ, तिष्ठति—वर्तते 'तं जहा' तद्यथा
 'दाहिणद्ध भरहंच' दक्षिणार्द्धं भरतंच 'उत्तरद्धभरहंच' उत्तरार्द्धं भरत चेति ॥६०॥

તત્ર પ્રથમમાસન્નત્વેન દક્ષિણાર્દ્ધભરતવર્ષસ્થાનં વર્ણયતિ —

મૂલમ્—કહિ ણં મંતે જંબુદ્વીવે દીવે દાહિણદ્ધે ભરહે ણામં વાસે
 પણ્ણત્તે ગોયમા ! વેયહ્હુસ્સ પવ્વયસ્સ દાહિણેણં દાહિણલવણસમુદ્દસ્સ
 ઉત્તરેણં પુરત્થિમલવણસમુદ્દસ્સ પચ્ચત્થિમેણં પચ્ચત્થિમલવણસમુદ્દસ્સ
 પુરત્થિમેણં એત્થ ણં જંબુદ્દીવે દીવે દાહિણદ્ધભરહે ણામં વાસે
 પણ્ણત્તે પાર્ણપહીણાયણ ઉદીણદાહિણવિત્થિણ્ણે અદ્ધચંદસંઠાણસંઠિણ
 તિહા લવણસમુદ્દે પુદ્ધે ગંગા સિંધૂહિં મહાણઈહિં તિમાગ
 પવિભક્તે દોણિણ અદ્ધતીસે જોયણસણ તિણ્ણિ ય એગૂણવીસઈમાગે
 જોયણસ્સ વિક્કલંમેણં તસ્સ જીવા ઉત્તરેણં પાર્ણપહીણાયયા દુહા

भरत क्षेत्र के गंगा सिन्धु नदियों से और वैताल्य पर्वत से ६ खंड हो गये हैं ऐसा जो
 कहा गया है सो वैताल्य पर्वत का क्या है ! इस जिज्ञासा को शान्त करने के निमित्त-
 सूत्रकार उसका स्वरूप प्रतिपादन करते हैं "भरहस्स णं वासस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण
 वेयइडे णामं पव्वए पण्णत्ते जे णं भरह वास दुहा विभयमाणेर चिट्ठइ" वताल्य पर्वत भरत
 क्षेत्र के बिलकुल मध्यभाग में पड़ा हुआ है. इसने भरत क्षेत्र को दो विभागों में विभक्त
 कर दिया है वे उसके दो विभाग दक्षिणार्द्धभरत और उत्तरार्द्ध भरत हैं ॥ १० ॥

નદીઓથી અને વૈતાલ્ય પર્વત થી છ ખંડો થઈ ગયા છે આમને કહેવામાં આનું છે
 તે વૈતાલ્ય પર્વત વિષે શુ છે આ જિજ્ઞાસા ને શાંત કરવા માટે સૂત્રકાર
 તેના સ્વરૂપને પ્રતિપાદન કરતાં કહે છે કે "ભરહસ્સણ સ્સ બહુમજ્ઞદેસમાય એત્થણ
 વેયહ્હુહં નામં પવ્વય પણ્ણત્તે જે ણ વાસં દુહા વિ જે ૨ ચિટ્ઠઈ" વૈતાલ્ય પર્વત
 ભરત ક્ષેત્રના એકદમ મધ્યભાગમા આવેલ છે આ પર્વતે ભરતક્ષેત્રને બે ભાગોમા વિભક્ત
 કરેલ છે, આના તે બે વિભાગો દક્ષિણાર્દ્ધ ભરત અને ઉત્તરાર્દ્ધ ભરત છે. ॥૧૦॥

लवणसमुद्रं पुढा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्रं
 पुढा, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्रं पुढा
 णव जोयणसहस्साइं सत्तय अडयाले जोयणसए दुवालस य
 एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयोमेणं तीसे धणुपुट्ठे दाहिणेणं णव
 जोयणसहस्साइं सत्तच्छावडे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे
 जोयणस्स किचिविसेसाहिए परिकखेवेणं पण्णत्ते । दाहिणद्ध भरहस्स
 णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा !
 बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ
 वा जाव णाणाविह पंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए, तं जहा-
 कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिंचेव । दाहिणद्धभरहेणं भंते वासे मणुयाणं
 केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा ! ते णं मणुया बहुसंध-
 यणा बहुसंठाणा बहुउच्चत्त पज्जवा बहु आउ पज्जवा बहुइं वासाइं आउं
 पालेति. पालित्ता अप्पेगइया निरयगामी अप्पेगइया तिरियगामी
 अप्पेगइया मणुयगामी अप्पेगइया देवगामी अप्पेगइया सिज्झंति
 ज्झंति मुच्चंति परिणिब्बायंति सच्चदुक्खाणमंतं करेइ ॥सू०११॥

छाया—क्व खलु मदन्त ? जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्धभरतं नाम वर्षं प्रश्नतम् ?,
 गौतम ! वैताल्यस्य पर्वतस्य दक्षिणे दक्षिणलवणसमुद्रस्य उत्तरे पौरस्त्यलवणसमु-
 द्रस्य पाश्चात्ये पाश्चात्यलवणसमुद्रस्य पौरस्त्ये अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्द्ध-
 भरतं नाम वर्षं प्रश्नतम्, प्राचीनप्रतीचीनायतम् उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णम् अर्द्धचन्द्रसंस्था-
 नसंस्थितं त्रिधा लवणसमुद्रं स्पृष्टं, गङ्गा सिन्धुभ्या महानदीभ्यां त्रिभागप्रविभक्तं द्वे
 अप्पत्रिंशं योजनशतं त्रींश्वैकोनविंशतिभागान् योजनस्य विष्कम्भेण । तस्य जीवा
 उत्तरे प्राचीन प्रतीचीनाऽऽयता द्विधा लवणसमुद्रं स्पृष्टा पौरस्त्यया कोटया पौरस्त्यं लव-
 णसमुद्रं स्पृष्टा पाश्चात्यया कोटया पाश्चात्यं लवणसमुद्रं स्पृष्टा । नव योजन सहस्राणि
 सप्त च अष्ट सत्वारिंशानि योजनशतानि द्वादश च पकोनविंशतिभागान् योजनस्य आया
 मेन, तस्याः धनुस्पृष्टं दक्षिणे नव योजनसहस्राणि सप्त षट् षष्ट्यधिकानि योजनशतानि
 एकैकोनविंशति भागान् योजनस्य किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण प्रश्नतम् । दक्षिणार्द्ध

भरतस्य खलु भदन्त ! वर्षस्य कीदृशक' आकाभावप्रत्यवनार प्रज्ञप्तः ? गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्त, स यथानामक, आलिङ्गपुङ्गव इति वा यावद् नानाविध पञ्चवर्षैर्मणिभिः तृणैरुपशोभितः तद्यथा-कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैव । दक्षिणार्द्धं भरते खलु भदन्त ! वर्षे मनुजानां कीदृशकः आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः गौतम ! ते खलु मनुजाः बहुसंहननाः बहुसंस्थानाः बहुचत्वपर्यवाः चक्षायुः पर्यवाः चहन्ति वर्षाणि आयुः पालयन्ति, पालयित्वा अप्येकके निरयगामिनः अप्येकके तिर्यग्गामिनः अप्येकके मनुजगामिनः अप्येकके देवगामिनः अप्येकके सिध्यन्ति बुध्यन्ते मुच्यन्ते परिनिर्वान्ति सर्व-दुःखानामन्तं कुर्वन्ति ॥सू०११॥

टीका—'कहि णं भंते' इत्यादि ।

'कहि णं भंते ! जंबूद्वीवेदीवे दाहिणद्धे भरहे णामं वासे पणत्ते' जम्बूद्वीपे द्वीपे क्व-कस्मिन्प्रदेशे खलु दक्षिणार्द्धं भरत नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् ? इति गौतमेन पृष्टो भगवांस्त सम्बोधयन्नाह—'गोयमा वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणेणं' हे गौतम ! वैताड्यस्य पर्वतस्य दक्षिणे=दक्षिणदिग्भागे 'दाहिण लवणसमुद्दस्स उत्तरेण' दक्षिणलवणसमुद्रस्य उत्तरे= उत्तरदिग्भागे 'पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स' पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य-पूर्वदिग्भवलवणसमुद्रस्य 'पच्चत्थिमेणं' पश्चिमे=पश्चिमदिग्भागे 'पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स' पाश्चात्यलवणसमुद्रस्य= पश्चिमदिग्भवलवणसमुद्रस्य 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्ये=पूर्वदिग्भागे 'एत्थणं' अत्र=अस्मिन्

दक्षिणार्द्धं भरत कहा पर है ? इसका कथन—

“कहिणं भंते ! जम्बूद्वीवे दीवे दाहिणद्धे” इत्यादि ।

टीकार्थ—हे भदन्त ! जम्बूद्वीप नाम के इस द्वीप में दक्षिणार्ध “भरहे” भरत “णामं वासे” नाम का क्षेत्र “कहिण पणत्ते” किस स्थान पर कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—“गोयमा । वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणेणं दाहिणलवणसमुद्दस्स उत्तरेण पुरत्थिमलवण समुद्दस्स पच्चत्थिमेण पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेण” हे गौतम ! वैताड्य पर्वत की दक्षिणदिशामें दक्षिणदिग्वर्ती लवण समुद्र की उत्तर दिशा में, पूर्वदि-
ग्वर्ती लवणसमुद्र की पश्चिमदिशा में एवं पश्चिमदिग्वर्ती लवणसमुद्र की पूर्वदिशा में “एत्थण

दक्षिणार्द्धं भरत क्या आवेल छे ? आ विणे कथनः—

'कहिणं भंते जंबूद्वीवे दीवे दाहिणद्धे'—इत्यादि सूत्र-११॥

टीका—हे भदन्त ! जंबूद्वीप नामक आ द्वीपमा दक्षिणार्द्धं “भरहे णामं वासे” भरत नामक क्षेत्र “कहिण पणत्ते” क्या स्थान पर आवेल छे. आना ३ वाक्यमा प्रथु कहे छे हे “गोयमा । वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणेणं दाहिण लवण समुद्दस्स उत्तरेण पुरत्थिम लवण समुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिम लवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं” हे गौतम ! वैताड्य पर्वतनी दक्षिण दिशाभा दक्षिणदिग्वर्ती लवण समुद्रनी उत्तर दिशाभा, पूर्ववती लवण समुद्रनी पश्चिमदिशाभा अने पश्चिमदिग्वर्ती लवण समुद्रनी पूर्वदिशाभा “एत्थ णं जम्बूद्वीवे दीवे

प्रदेशे खलु 'जंबुद्वीपे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणद्ध भरहे णामं वासे पणत्ते' दक्षिणार्द्ध-
भरतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम् । तच्च 'पाईण पडीणायए' प्राचीनप्रतिचीनाऽऽयत=पूर्व-
पश्चिमयो दिशो रायतं=दीर्घम्, 'उदीणदाहिणवित्थिण्णे' उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णम्
'उत्तरदक्षिणयो दिशो विस्तीर्ण-विस्तारयुक्तम् 'अद्धचंदसंठाणसंठीए' अर्द्धचन्द्रसस्थान-
संस्थितम्-अर्द्धचन्द्रस्य संस्थानेन-अवयवसंनिवेशेन आकारेण संस्थितम् 'तिहा' त्रिधा
-त्रिभिः प्रकारैः 'लवणसमुद्धं पुट्टे' लवणसमुद्रं स्पृष्टम् तथाहि आरोपितज्यधनु-
स्तुल्यतयेदं पूर्वकोट्या पूर्वलवणसमुद्रं धनुः पृष्ठेन दक्षिणलवणसमुद्रं पश्चिकोट्याच
पश्चिमलवणसमुद्रं स्पृष्टमिति । तथा 'गंगा सिंधुहिं' गङ्गासिन्धुभ्यां 'महानदीहिं'
महानदीभ्यां 'तिभागपविभत्ते' त्रिभागप्रविभक्तं=त्रिभिर्भागैः प्रविभक्तं त्रिभागी-
कृतम् । तत्रैव भागत्रयं बोध्यं पूर्वभागो लवणसमुद्रं संगतया गङ्गामहानद्या कृतः, पश्चि-

जंबूद्वीपे दीवे दाहिणद्धभरहे णाम वासे पणत्ते' जम्बूद्वीपान्तर्गत दक्षिणार्द्ध भरत नाम का
क्षेत्र कहा गया है, "पाइणपडोणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे अद्धचंदसंठाणसंठीए" यह दक्षि-
णार्ध भरतक्षेत्र पूर्व से पश्चिमतक लम्बा है और उत्तर से दक्षिणतक चौड़ा है इसका आकार
जैसा अर्द्धचन्द्र का होता है वैसा है "तिहा लवणसमुद्धं पुट्टे" यह तीन तरफ से लवण समुद्र
को स्पर्श करता है, प्रत्यंचा जिसके ऊपर चढाई गई है ऐसे धनुष के आकार वाला हो
जाने से यह भरतक्षेत्र पूर्वकोटी से पूर्वमलवण समुद्र को, धनु पृष्ठ से दक्षिण लवणस-
मुद्र को एवं पश्चिम कोटी से पश्चिमलवणसमुद्र को स्पर्श करता है. "गंगा सिंधुहिं महा-
नदीहिं तिभागपविभत्ते दोणिण अट्टतीसे जोयणसए तिणिण य एगूणवोसइभागे जोयणस्स विक्खंमेणं"
गंगा और सिन्धुनामकी दो महा नदियों के द्वारा यह तीन भागों में बट गया है.
पूर्व लवणसमुद्र में मिली हुई गंगा नदी के द्वारा पूर्वभाग इसका किया गया है, पश्चिमलवणसमुद्र
में मिली हुई सिन्धु महानदी के द्वारा इसका पश्चिमभाग किया गया है, तथा गंगा और

दाहिणद्धभरहे णाम वासे पणत्ते" जम्बूद्वीपान्तर्गत दक्षिणार्द्ध भरत नाम क्षेत्र कहेवाय
छे. 'पाइणपडोणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे अद्धचंदसंठाणसंठीए" आ दक्षिणार्द्ध
भरतक्षेत्र पूर्वोत्थी पश्चिम सुधी लागो छे अने उत्तरोत्थी दक्षिण सुधी पडोणो छे आने आउर
अर्द्ध चन्द्र ७३ छे ' तिहा लवणसमुद्धं पुट्टे ।' आ त्रयु भागुओथी लवण समुद्रने स्पर्शो
छे प्रत्यंचा ७ धनुषनी उपर अडाववाभा आवी छे ओवा धनुषना आकारवाणो आ प्रदेश
थं अथ छे, तेथी आ पूर्वोत्थी पूर्व लवण समुद्रने धनु पृष्ठथी दक्षिण लवण समुद्रने
अने पश्चिमोत्थी पश्चिमलवण समुद्रने स्पर्शो छे "गंगासिंधुहिं महानदीहिं तिभाग
पविभत्ते दोणिण अट्टतीसे जोयणसए तिणिण य एगूणवोसइभागे जोयणस्स विक्खंमेणं"
गंगा अने सिंधु नामके दो महानदीओ वडे आ त्रयु भागोभा स विभक्त धयेत छे. पूर्व
लवण समुद्रमा गगती गगानदी वडे आने पूर्व भाग लुट्टो थाय छे पश्चिम समुद्रमा
गगती सिन्धु महानदी वडे आने पश्चिम भाग लुट्टो तरी आवे छे तेमज गंगा अने

भागो लवणसमुद्रं संगतया सिन्धु महानद्या कृतः मध्यमभागो गङ्गासिन्धुकृत इति । अथ विष्कम्भमाह—‘दोन्नि अट्टतीसे’ इत्यादि द्वे अष्टात्रिंशे ‘जोयणसए’ योजनशते =अष्टात्रिंशदधिकानि द्विशतयोजनानि, ‘तिण्णि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स’ त्रीन् एकोनविंशतिभागान् योजनस्य—एकोनविंशतिभागविभक्तस्यैकस्य योजनस्य त्रीन् भागांश्च ‘विक्खमेणं’ विष्कम्भेण विस्तारेण प्रज्ञप्तमिति । अथ दक्षिणार्द्धभरतस्य जीवां निरूपयति—‘तस्स जीवा’ इत्यादि । ‘तस्स जीवा’ तस्य—दक्षिणार्द्धभरतस्य जीवा-जीवेव—धनुज्येव जीवा—धनुज्याऽऽकारः क्षेत्रविभागविशेषः ‘उत्तरेणं’ उत्तरे—उत्तरदिग्भागे ‘पाईणपडोणायया’ प्राचीनपतोचीनाऽऽयता पूर्वपश्चिमयोर्दिशांर्द्धयुक्ताः ‘दुहा’ द्विधा=द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां ‘लवणसमुद्रं पुट्टा’ लवणसमुद्रं स्पृष्टा तत्र ‘पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्ल लवणसमुद्रं पुट्टा’ पौरस्त्यया—पूर्वदिग्भवया कोट्या=अग्रभागेन पौरस्त्यं=पूर्वदिग्भवं लवणसमुद्रं स्पृष्टा ‘पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्ल लवणसमुद्रं पुट्टा’ पाश्चात्यया—पश्चिमदिग्भवया कोट्या—अग्रभागेन पाश्चात्यं=पश्चिमदिग्भवं लवणसमुद्रं स्पृष्टा । अथ जीवायाः प्रमाणमाह—‘नवजोयण सहस्साइं’ इत्यादि । ‘णवजोयण सहस्साइं, नव योजन सहस्राणि=नव सहस्र योजनानि ‘सत्तय अडयाले जोयणसए’ सप्त च अष्टचत्वारिंशद्योजनशतानि=अष्टचत्वारिंशदधिकानि सप्तशतयोजनानि, ‘दुवालस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयामेणं’

सिन्धु इन दोनों नदियों के द्वारा इसका मध्यभाग क्रिया गया है. ‘दोन्नी अट्टतीसे जोयणसए तिण्णि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्खमेणं’ इम दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र का विस्तार

२३८ $\frac{३}{१९}$ योजन का है, “तस्स जीवा उत्तरेण पाईणपडोणायया दुहा लवणसमुद्रं पुट्टा”

उस दक्षिणार्द्धभरतकी जीवा—धनुष की ज्याके जैसा क्षेत्र विभागविशेष उत्तर दिशा में पूर्व से पश्चिमदिशातक लम्बी है और दो प्रकार से लवण समुद्र को छू रही है, पूर्वदिशाकी कोटि से पूर्वदिशा के समुद्र को छूती है, और पश्चिम दिशा की कोटी से पश्चिम दिशा के समुद्र को छूति है । जीवा का प्रमाण कथन—“णवजोयणसहस्साइं सत्तय

अडयाले जोयणसए दुवालस य एगूण वीसइभाए जोयणस्स आयामेणं” १७४८ $\frac{१२}{१९}$

सिन्धु आ अन्ने नदीयो वडे आने। मध्य भाग धर्ध लय छे “दोन्नि अट्टतीसे जोयणसए तिण्णि य एगूण वीसइभागे जोयणस्स विक्खमेणं” आ दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्रने।

विस्तार २३८ $\frac{३}{१९}$ योजन भेटवै। छे “तस्स जीवा उत्तरेण पाईण पडोणायया दुहा लवण-

समुद्रं पुट्टा” ते दक्षिणार्द्ध भरतकी जीवा—धनुषकी ज्या केने क्षेत्र विभागविशेष—उत्तर दिशाभां पूर्वशी पश्चिम दिशा सुधी वाणी छे अने छे रीते लवण समुद्रने स्पृशी रहीं छे पूर्व दिशानी कोटिशी पूर्व दिशानी समुद्रने अने पश्चिम दिशानी कोटिशी पश्चिमदिशानी समुद्रने स्पृशी रहीं छे जीवाना प्रमाण विषे कथनः—“णवजोयणसहस्साइं सत्तय अडयाले

जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइ भाए जोयणस्स आयामेणं” ६७४८ $\frac{१२}{१९}$ योजन भेटवै।

द्वादश च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य—एकोनविंशतिभागविभक्तस्य एकस्य योजनस्य द्वादशभागान् सा जीवा आयामेन—दैर्घ्येण प्रज्ञप्ता । इत्थ जीवायाः स्वरूपं प्रमाणं चाभिधाय सम्प्रति धनुष्पृष्ठप्रमाणमाह—‘तीसे, इत्यादि । ‘तीसे घणुपुट्टे दाहिणेणं’ तस्या जीवायाः दक्षिणे=दक्षिदिग्भागे धनुष्पृष्ठं =धनुष्पृष्ठाऽऽकारक्षेत्रविशेषो ‘णव जोयण सहस्साइ’ नवयोजनसहस्राणि—नवसहस्रयोजनानि ‘सत्तच्छावट्टे जोयणसए, सप्तषट्पण्टि योजनशतानि=पट् पण्ट्यधिकानि सप्त शतयोजनानि ‘इक्कं च एगूणवीसइ भागे जोयणस्स’ एकं च एकोनविंशतिभागं योजनस्य ‘किचि विसेसाहिए’ किंचिद् विशेषाधिकम्—एकोनविंशतिभागविभक्तस्य योजनस्य किंचिद्विशेषाधिकम् एकं भागं च ‘परिक्खेवेणं’ परिक्षेपेण—परिधिना ‘पण्णत्ते’ प्रज्ञप्तम् ।

अथ दक्षिणार्द्धभरतस्वरूपं प्रश्नोत्तराभ्यां निरूपयितुमाह—‘दाहिणद्धे’ त्यादि, ‘दाहिणद्ध भरहस्स णं मंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ? हे मदन्त ! दक्षिणार्द्धभरतस्य वर्षस्य क्षेत्रस्य खलु कीदृशः—कीदृशः ? आकारभावप्रत्यवतारः—आकारस्य—स्वरूपस्य भावाः—पर्यायाः आकारभावास्तेषां प्रत्यवतारः—प्रकटीभावः प्रज्ञप्तः, दक्षिणार्द्धभरतस्य वर्षस्य कीदृशः स्वरूपविशेष—इति भावः’ इति गौतमेन पृष्ठो भगवानाह—‘गोयमा’ ! ‘हे गौतम ! दक्षिणार्द्ध भरतस्य ‘बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते’ बहुसमरमणीयः बहुसमः—अत्यन्त समतलोऽ

योजन का प्रमाण जीवा का लम्बाई की अपेक्षा से है, धनुष्पृष्ठ के प्रमाण का कथन—“तीसे घणुपुट्टे दाहिणेण णवजोयणसहस्साइ सत्तच्छावट्टे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे जोयणस्स किचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते” उस जीवा का धनुष्पृष्ठ नौ हजार सात सौ ६६ योजन और एक योजन के १९ भागों में से कुछ अधिक एक भाग है यह परिधि की अपेक्षा दक्षिणार्ध भरत के स्वरूप का कथन—“दाहिणद्ध भरहस्स ण मंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते” हे मदन्त ! दक्षिणार्धभरतक्षेत्र का स्वरूप कैसा कहा गया है ? इस प्रकार से जब गौतम स्वामी ने प्रश्न से पूछा—तब प्रश्न ने उनसे कहा—“गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते—जहानामए आलिगपुक्खरेइ वा जाव णाणा-

प्रमाण जीवा का लम्बाई की अपेक्षा से है धनुष्पृष्ठ का प्रमाण—कथन—“तीसे घणुपुट्टे दाहिणेणं णवजोयण सहस्साइ सत्तच्छावट्टे जोयणसए इक्कं च एगूणवीसइभागे जोयणस्स किचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते” ते जीवात् धनुष्पृष्ठं ८ ७२ ७ से ६६ योजन अने एक योजनना १९ भागमाथी कर्क वधारे एक भागनेटुं छे. आ परिधिनी अपेक्षाये छे

दक्षिणार्ध भरतना स्वरूपं कथन—

‘दाहिणद्ध भरहस्स ण मंते वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते’ हे मदन्त ! दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रं स्वरूपं कथं कथं वा छे आ प्रमाणे न्यारे गौतमे प्रश्ने अने कथं त्वादे प्रश्ने तेभने न्याय आपता कलु “गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमि-

ત એવ રમણીયઃ સુન્દરઃ ભૂમિભાગઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ 'સે જહાનામણ, સ યથાનામકઃ—આલિ-
જ્ઞપુષ્કર ઇતિ વા તત્ર 'આલિંગપુષ્કરેઈ વા' આલિંગપુષ્કરઃ—મૃદજ્ઞમુખપુટ!' ઇતિ
શબ્દઃ સ્વરૂપનિર્દેશે વા શબ્દો વિકલ્પે, મૃદજ્ઞમુખપુટવદ્—વહુસમરમણીયડત્યર્થઃ ।
યાવચ્છબ્દેન— આલિંગપુષ્કર ઇતિ વા ઇત્યન્તં રાજપ્રશ્નીયસૂત્રસ્ય પઠ્ચદશ સૂત્રાદાર
ભ્યૈક્રોનવિંશતિતમસૂત્રસ્થ નાનાવિધ પશ્ચવર્ણેઃ ઇત્યન્તઃ પૂર્વ યાનિ પદાનિ તાનિ સક-
લાનિ સંગ્રાહ્યાણિ । તદર્થશ્ચ તત્રૈવ મત્કૃતાયાં સુવોધિનીટીકાયાં દ્રષ્ટવ્ય ડતિ । તથા
'જાણાવિહપંચવર્ણેહિ' નાનાવિધપઠ્ચવર્ણેઃ—અનેકપ્રકારકપશ્ચવર્ણે 'મણીહિ તણેહિ ઉવ-
સોમિણ' મણિમિરત્તૃણૈશ્ચ ઉપશોભિત ઇતિ । એતાનિ પદાનિ તદર્થશ્ચ ક્રીદ્દશેસ્તૈર્મણિમિ-
સ્તૃણૈસ્સ ભૂમિભાગ ઉપશોભિત ઇતિ જિજ્ઞાસાયામાહ 'તં જહા' તદ્યથા 'કિત્તિમેહિં ચેવ'
કૃત્રિમૈઃ શિલ્પિકર્ષકાદિપ્રયોગનિષ્પન્નૈઃ 'અકિત્તિમેહિચેવ' અકૃત્રિમૈઃ રત્ન સ્વના ભૂમી
ચ સ્વતઃ સંજાતૈરિતિ ।

વિહ પચ વર્ણેહિ મણીહિ તણેહિ ઉવસોમિણ—તં જહા કિત્તિમેહિં ચેવ અકિત્તિમેહિંચેવ" હે
ગૌતમ । દક્ષિણાર્દ્ધભરત કા બહુસમહોને સે ભૂમિભાગ રમણીય કહા ગયા હૈ. વહુ એસા
બહુસમ હૈ જૈસા કિ આલિંગ—મૃદજ્ઞ કા મુખપુષ્ક હોતા હૈ. યહાં પર ઇતિ શબ્દ સ્વરૂપ-
નિર્દેશ મેં ઓર "વા" શબ્દ વિકલ્પ મેં પ્રયુક્ત હુઆ હૈ યહાં યાવત્ શબ્દ રાજપ્રશ્નીય
સૂત્ર કે "આલિંગપુષ્કરેઈ" ઇસ ૧૫વેં સૂત્ર સે લગાકર ૧૯ વે સૂત્ર કે "નાનાવિહ
પંચવર્ણેહિ" યહાં તક કે પાઠ મેં જિતને મી પદ આયે હૈં વે સબ યહાં ગૃહીત કિયે
ગયે હૈં ઇન સમસ્ત પદો ક્રી વ્યાખ્યા વહીં પર મૈને ડસકી સુવોધિની ટીકા મેં કર
દી હૈ—અતઃ વહીં સે યહુ સબ કથન જાનલેના ચાહિય વહાં પર કા જો અનેક પ્રકાર
કે પચવર્ણોં વાલે મણિયો સે ઓર તૃણો સે ભૂમિભાગ ઉપશોભિત કહા ગયા હૈ સો યે
મણિ ઓર તૃણ કૃત્રિમ શિલ્પિયોં દ્વારા એવ કર્ષકોં દ્વારા પ્રયોગ સે નિષ્પન્ન હુય મી હૈ ।

મને પળણસે—સે જહાનામણ આલિંગપુષ્કરેઈવા જાવ જાણાવિહપંચવર્ણેહિ મણિહિ
તણેહિ ઉવસોમિણ તંજહા કિત્તિમેહિં ચેવ અકિત્તિમેહિં ચેવ 'હે ગૌતમ । દક્ષિણાર્દ્ધ ભરતને
ભૂમિભાગ બહુસમ હોવાથી રમણીય લાગે છે તે આલિંગ મૃદ ગના મુખ પુષ્ક બેવો બહુ
સમ છે. અહીં ઇતિ શબ્દ સ્વરૂપ નિર્દેશમાં અને 'વા' શબ્દ વિકલ્પ માટે પ્રયુક્ત થયેલ
છે અહીં યાવત્ શબ્દથી રાજપ્રશ્નીય સૂત્રના "આલિંગ પુષ્કરેઈ વા" આ ૧૫ માં સૂત્રથી
માંડીને હમા સૂત્રના 'નાનાવિહ પંચવર્ણેહિ' અહીં સુધીના પાઠમાં બેટલા પદો આવેલ
છે તે સર્વે અહીં ગૃહીત થયેલા છે આ સર્વ પદોની વ્યાખ્યા મે ત્યાજ તેની સુવોધિની
ટીકામાં કરી છે તેથી ત્યાથીજ આ બધુ કથન બાણી દેવુ બેઇએ ત્યાનો ભૂમિ ભાગ જે
અનેક પ્રકારના પાંચ વર્ણોવાળા મણિઓ તેમજ તૃણોથી ઉપશોભિત કહેવાય છે તે આ
સર્વ મણિ અને તૃણો કૃત્રિમ શિલ્પિઓ વડે તેમજ કર્ષકો વડે પ્રયોગથી નિષ્પન્ન પણ
થયેલા છે અને અકૃત્રિમ રત્નખાણમાં તેમજ ભૂમિમાં સ્વતઃ સ્વભાવથી જનિત પણ થયેલા છે

નજુ સામાન્યતો ભરતવર્ણનસૂત્રે 'સ્થાણુવહુલે' વિષમવહુલ ક્ષ્ણકવહુલમ્ ઇત્યાદિ યદુક્તં તેન સહ વહુસમરમણીયત્વવર્ણનપરેઽસ્મિન્ સૂત્રે વક્ષ્યમાણોત્તરાર્દ્ધે ભરતવર્ણકસૂત્રેચ વિરોધઃ આયાતિ વિષમત્વસમત્વયોસ્તેજસ્તિમિરયોરિવ ધર્માધર્મયોરિવ સુરાસુરયો રિવ પરસ્પરં વિરોધાત્ ? ન ચારકવિશેષાપેક્ષમિદં સૂત્રદ્વયં, સામાન્યતો વર્ણકભરત સૂત્રં તુ અવસર્પિણ્યાં તૃતીયારકાન્તાદારભ્ય વર્ષશતન્યૂન દુષ્પમારક પર્યન્તરૂપ પ્રજ્ઞાપક કાલાપેક્ષમિતિ ન વિરોધાવકાશ ઇતિ વાચ્યમ્ । મળીનાં તૃણાનાં કૃત્રિમત્વાકૃત્રિમત્વોભયપ્રતિપાદનેનૈતત્સૂત્રદ્વયસ્યાપિ પ્રજ્ઞાપકકાલાપેક્ષત્વસ્યૈવોચિત્યાત્ કૃત્રિમમણિતૃણાનાં

શંકા—સામાન્ય સે જો ભરતક્ષેત્ર કે વર્ણન કરને વાલા સૂત્ર કહા ગયા હૈ ઉસમેં વહાં કા ભૂમિભાગ સ્થાણુવહુલ, વિષમપ્રદેશવહુલ એવં ક્ષ્ણકવહુલ આદિ રૂપ સે કહા ગયા હૈ પરન્તુ હસ દક્ષિણાર્ધ-ભરતક્ષેત્ર કે વર્ણન મેં યહાં કા ભૂમિભાગ વહુસમરમણીય કહા ગયા હૈ સો ઉસ વર્ણન સે હસ વર્ણન મેં વિષમતા ઓર સમતા કે વિરોધ કો લેકર તેજ ઓર તિમિર કી તરહ ધર્મ ઓર અધર્મ કી તરહ એવં સુર ઓરઅસુર કી તરહ પરસ્પર વિરોધ સ્પષ્ટ હી હૈ. યદિ હસ વિરોધ કો હટાને કે લિપ્ એસા કહા જાવે કિ દક્ષિણાર્દ્ધભરત એવં વક્ષ્ય-માણ ઉત્તરાર્ધ ભરત ક્ષેત્ર કે પ્રતિપાદક સૂત્રદ્વય તો—આરક વિશેષ કી અપેક્ષા લેકર કહે ગયે હૈ ઓર ભરત ક્ષેત્ર કા જો સૂત્ર હૈ વહ સામાન્યસે ભરતક્ષેત્ર કા વર્ણન કરનેવાલા કહા ગયા હૈ સો વહ અવસર્પિણી કાલ મેં તૃતીય આરક કે અન્તર સે લેકર વર્ષ શતન્યૂન દુષ્પમારક પર્યન્તરૂપ પ્રજ્ઞાપક કાલ કો અપેક્ષા સે કહા ગયા હૈ અતઃ વિરોધ આને કી કોઈ વાત હી નહીં ઉઠતી હૈ । સો એસા કહના મી ઉચિત નહીં હૈ—ક્યોંકિ દક્ષિણાર્ધ એવં વક્ષ્યમાણ ઉત્તરાર્ધ ભરત સંબંધી જો સૂત્ર હૈં વે મી મળિ ઓર તૃણો મેં કૃત્રિમતા ઓર અકૃત્રિમતા કે પ્રતિપાદન સે

શંકા—ભરતક્ષેત્રના વિષે વર્ણન જે સૂત્રમાં પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે તેમાં સામાન્યરૂપમાં આમ કહેવામાં આવ્યું છે કે ત્યાંના ભૂમિભાગ સ્થાણુ બહુલ, વિષમ પ્રદેશ બહુલ તેમજ કંટક બહુલ યુક્ત છે પરંતુ દક્ષિણાર્દ્ધ ભરતક્ષેત્રના વર્ણનમાં ત્યાંના ભૂમિભાગ બહુસમરમણીય કહેવામાં આવેલ છે તો તે વર્ણનમાં અને આ વર્ણનમાં વિષમતા અને સમતાના વિરોધને લઈને, તેજ અને તિમિરની જેમ, ધર્મ અને અધર્મની જેમ તેમજ સુર અને અસુરની જેમ પરસ્પર વિરોધ સ્પષ્ટરીતે તરી આવે છે એ આ વિરોધના પરિહાર માટે આમ કહેવામાં આવે કે દક્ષિણાર્દ્ધ ભરત તેમજ વક્ષ્યમાણ ઉત્તરાર્ધ ભરતક્ષેત્રના પ્રતિપાદક સૂત્રદ્વય તો આરક વિશેષણની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે અને ભરતક્ષેત્ર વિષે જે સૂત્ર છે તે સામાન્યની અપેક્ષાએ ભરતક્ષેત્રનું વર્ણન કરનાર છે. તો આ અવસર્પિણી કાલમાં તૃતીય આરકના અતથી લઈને વર્ષ શતન્યૂન દુષ્પમારક પર્યન્તરૂપ પ્રજ્ઞાપક કાળની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે. એથી વિરોધ જેવી સ્થિતિ ઉત્પન્ન થતી નથી. તો વિરોધ છે એવું કથન યોગ્ય ન કહેવાય કેમકે દક્ષિણાર્ધ તેમજ વક્ષ્યમાણ ઉત્તરાર્ધ ભરતક્ષેત્ર બંધી જે સૂત્ર છે તે પણ મણિ અને તૃણોમાં કૃત્રિમતા અને અકૃત્રિમતાના પ્રતિપાદનથી પ્રજ્ઞાપક

ત એવ રમણીયઃ સુન્દરઃ भूमिभागः प्रज्ञप्तः 'સે જહાનામણ, સ યથાનામકઃ—આલિ-
જ્ઞપુષ્કર ઇતિ વા તત્ર 'આલિંગપુષ્કરેઈ વા' આલિંગપુષ્કરઃ—મૃદ્ગ્ગમુખપુટઃ' ઇતિ
શબ્દઃ સ્વરૂપનિર્દેશે વા શબ્દો વિકલ્પે, મૃદ્ગ્ગમુખપુટવદ્—વહુસમરમણીયઈત્યર્થઃ ।
યાવચ્છબ્દેન— આલિંગપુષ્કર ઇતિ વા ઇત્યન્તં રાજપ્રશ્નીયસૂત્રસ્ય પઠ્ચદશ સૂત્રાદાર-
મ્યૈકોનવિંશતિતમસૂત્રસ્થ નાનાવિધ પञ्चवर्णैः ઇત્યન્તઃ પૂર્વ યાનિ પદાનિ તાનિ સક-
લાનિ સંગ્રાહ્યાણિ । તદર્થશ્ચ તત્રૈવ મત્ક્રુતાયાં સુબોધિનીટીકાયાં દ્રષ્ટવ્ય ઇતિ । તથા
'જાણાવિહપંચવર્ણેહિં' નાનાવિધપઠ્ચવર્ણેઃ—અનેકપ્રકારકપञ्चवर्णै 'મણીહિં તણેહિં ઉવ-
સોમિણ' મણિમિસ્તૃણૈશ્ચ ઉપશોમિત્ત ઇતિ । ઇતાનિ પદાનિ તદર્થશ્ચ કીદ્દશસ્તૈર્મણિમિ-
સ્તૃણૈસ્સ ભૂમિભાગ ઉપશોમિત્ત ઇતિ જિજ્ઞાસાયામાહ 'તં જહા' તદ્યથા 'કિત્તિમેહિં ચેવ'
કૃત્રિમૈઃ શિલ્પિકર્ષકાદિપ્રયોગનિષ્પન્નૈઃ 'અકિત્તિમેહિચેવ' અકૃત્રિમૈઃ રત્ન સ્વનો ભૂમૌ
ચ સ્વતઃ સંજાતૈરિતિ ।

વિહ પચ વર્ણેહિ મણીહિં તણેહિં ઉવસોમિણ—તં જહા કિત્તિમેહિં ચેવ અકિત્તિમેહિચેવ" હે
ગૌતમ । દક્ષિણાર્દ્ધભરત કા બહુસમહોને સે ભૂમિભાગ રમણીય કહા ગયા હૈ. વહ એસા
બહુસમ હૈ જૈસા કિ આલિંગ—મૃદ્ગ્ગ કા મુખપૃષ્ઠ હોતા હૈ. યહાં પર ઇતિ શબ્દ સ્વરૂપ-
નિર્દેશ મેં ઓર 'વા' શબ્દ વિકલ્પ મેં પ્રયુક્ત હુઆ હૈ યહાં યાવત્ શબ્દ રાજપ્રશ્નીય
સૂત્ર કે "આલિંગપુષ્કરેઈ" હસ ૧૫વેં સૂત્ર સે લગાકર ૧૯ વે સૂત્ર કે "નાનાવિહ
પંચવર્ણેહિં" યહાં તક કે પાઠ મેં જિતને મી પદ આયે હૈં વે સબ યહાં ગૃહીત કિયે
ગયે હૈં ઇન સમસ્ત પદો કી વ્યાખ્યા વહીં પર મૈને ઉસકી સુબોધિની ટીકા મેં કર
દી હૈ—અતઃ વહીં સે યહ સબ કથન જાનલેના યાહિણ વહાં પર કા જો અનેક પ્રકાર
કે પચવર્ણો વાલે મણિયો સે ઓર તૃણો સે ભૂમિભાગ ઉપશોમિત્ત કહા ગયા હૈ સો યે
મણિ ઓર તૃણ કૃત્રિમ શિલ્પિયો દ્વારા ઇવં કર્ષકો દ્વારા પ્રયોગ સે નિષ્પન્ન હુણ મી હૈ ।

મ્ને પળ્ણત્તે—સે જહાનામણ આલિંગપુષ્કરેઈવા જાવ જાણાવિહપંચવર્ણેહિ મણિહિં
તણેહિં ઉવસોમિણ તંજહા કિત્તિમેહિ ચેવ અકિત્તિમેહિ ચેવ 'હે ગૌતમ ! દક્ષિણાર્દ્ધ ભરતને
ભૂમિભાગ બહુસમ હોવાથી રમણીય લાગે છે તે આલિંગ મૃદ્ગના મુખ પૃષ્ઠ જેવો બહુ
સમ છે. અહીં ઈતિ શબ્દ સ્વરૂપ નિર્દેશમાં અને 'વા' શબ્દ વિકલ્પ માટે પ્રયુક્ત થયેલ
છે અહીં યાવત્ શબ્દથી રાજપ્રશ્નીય સૂત્રના "આલિંગ પુષ્કરેઈ વા" આ ૧૫ માં સૂત્રથી
માંડીને હમા સૂત્રના 'નાનાવિહ પંચવર્ણેહિં' અહીં સુધીના પાઠમાં જેટલા પદો આવેલ
છે તે સર્વે અહીં ગૃહીત થયેલા છે આ સર્વ પદોની વ્યાખ્યા મેં ત્યાજ તેની સુબોધિની
ટીકામાં કરી છે તેથી ત્યાથીજ આ બધું કથન બાણી લેવું જોઈએ ત્યાનો ભૂમિ ભાગ જે
અનેક પ્રકારના પાંચ વર્ણોવાળા મણિઓ તેમજ તૃણોથી ઉપશોમિત કહેવાય છે તે આ
સર્વ મણિ અને તૃણો કૃત્રિમ શિલ્પિઓ વડે તેમજ કર્ષકો વડે પ્રયોગથી નિષ્પન્ન પશુ
થયેલા છે અને અકૃત્રિમ રત્નઆણ્યમાં તેમજ ભૂમિમાં સ્વતઃ સ્વભાવથી જનિત પશુ થયેલા છે.

નનુ સામાન્યતો ભરતવર્ણનસૂત્રે 'સ્થાણુવહુલે' વિપમવહુલં કણ્ટકવહુલમ્ इत्यादि यदुक्तं तेन सह बहुसमरमणीयत्ववर्णनपरेऽस्मिन् सूत्रे वक्ष्यमाणोत्तरार्द्धे भरतवर्णकसूत्रेच विरोधः आयाति विषमत्वसगतयोस्तेजस्तिमिरयोरिव धर्माधर्मयोरिव सुरासुरयो रिव परस्परं विरोधात् ? न चारकविशेषापेक्षमिदं सूत्रद्वयं, सामान्यतो वर्णकभरत सूत्रं तु अवसर्पिण्यां तृतीयारकान्तादारभ्य वर्षशतन्यून दुष्पमारक पर्यन्तरूप प्रज्ञापक कालापेक्षमिति न विरोधावकाश इति वाच्यम् । मणीनां तृणानां कृत्रिमत्वाकृत्रिमत्वोभयप्रतिपादनेनैतत्सूत्रद्वयस्यापि प्रज्ञापककालापेक्षत्वस्यैवोचित्यात् कृत्रिममणितृणानां

શકા-સામાન્ય સે જો ભરતક્ષેત્ર કે વર્ણન કરને વાલા સૂત્ર કહા ગયા હૈ ઉસમેં વહાં કા ભૂમિભાગ સ્થાણુવહુલ, વિષમપ્રદેશવહુલ એવં કણ્ટકવહુલ આદિ રૂપ સે કહા ગયા હૈ પરન્તુ હસ દક્ષિણાર્ધ-ભરતક્ષેત્ર કે વર્ણન મેં યહાં કા ભૂમિભાગ વહુસમરમણીય કહા ગયા હૈ સો ઉસ વર્ણન સે હસ વર્ણન મેં વિષમતા ઓરે સમતા કે વિરોધ કો ઠેકર તેજ ઓર તિમિર કી તરહ ધર્મ ઓર અધર્મ કી તરહ એવં સુર ઓરઅસુર કી તરહ પરસ્પર વિરોધ સ્પષ્ટ હી હૈ. યદિ હસ વિરોધ કો હટાને કે લિપે એસા કહા જાવે કિ દક્ષિણાર્ધેભરત એવં વક્ષ્ય-માણ ઉત્તરાર્ધે ભરત ક્ષેત્ર કે પ્રતિપાદક સૂત્રદ્વય તો-આરક વિશેષ કી અપેક્ષા ઠેકર કહે ગયે હૈ ઓર ભરત ક્ષેત્ર કા જો સૂત્ર હૈ વહ મામાન્યસે ભરતક્ષેત્ર કા વર્ણન કરનેવાલા કહા ગયા હૈ સો વહ અવસર્પિણી કાલ મેં તૃતીય આરક કે અન્તર સે ઠેકર વર્ષ શતન્યૂન દુષ્પમારક પર્યન્તરૂપ પ્રજ્ઞાપક કાલ કો અપેક્ષા સે કહા ગયા હૈ અતઃ વિરોધ આને કી કોઈં વાત હી નહીં ઉઠતી હૈ । સો એસા કહના મી ઉચિત નહીં હૈ-ક્યોંકિ દક્ષિણાર્ધ એવં વક્ષ્યમાણ ઉત્તરાર્ધે ભરત સંબંધી જો સૂત્ર હૈં વે મી મણિ ઓર તૃણો મેં કૃત્રિમતા ઓર અકૃત્રિમતા કે પ્રતિપાદન સે

શંકા-ભરતક્ષેત્રના વિષે વર્ણન જે સૂત્રમાં પહેલા કરવામાં આવ્યું છે તેમાં સામાન્યરૂપમાં આમ કહેવામાં આવ્યું છે કે ત્યાંના ભૂમિભાગ સ્થાણુ બહુલ, વિષમ પ્રદેશ બહુલ તેમજ કંટક બહુલ યુક્ત છે પરંતુ દક્ષિણાર્ધે ભરતક્ષેત્રના વર્ણનમાં ત્યાંના ભૂમિભાગ બહુસમરમણીય કહેવામાં આવેલ છે તો તે વર્ણનમાં અને આ વર્ણનમાં વિષમતા અને સમતાના વિરોધને લઈને, તેજ અને તિમિરની જેમ, ધર્મ અને અધર્મની જેમ તેમજ સુર અને અસુરની જેમ પરસ્પર વિરોધ સ્પષ્ટરીતે તરી આવે છે જે આ વિરોધના પરિહાર માટે આમ કહેવામાં આવે કે દક્ષિણાર્ધે ભરત તેમજ વક્ષ્યમાણ ઉત્તરાર્ધે ભરતક્ષેત્રના પ્રતિપાદક સૂત્રદ્વય તો આરક વિશેષણની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે અને ભરતક્ષેત્ર વિષે જે સૂત્ર છે તે સામાન્યની અપેક્ષાએ ભરતક્ષેત્રનું વર્ણન કરનાર છે. તો આ અવસર્પિણી કાલમાં તૃતીય આરકના અત્યંત લઈને વર્ષ શતન્યૂન દુષ્પમારક પર્યન્તરૂપ પ્રજ્ઞાપક કાળની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે. જેથી વિરોધ જેવી સ્થિતિ ઉત્પન્ન થતી નથી. તો વિરોધ છે એવું કથન યોગ્ય ન કહેવાય કેમકે દક્ષિણાર્ધ તેમજ વક્ષ્યમાણ ઉત્તરાર્ધે ભરતસંબંધી જે સૂત્ર છે તે પણ મણિ અને તૃણોમાં કૃત્રિમતા અને અકૃત્રિમતાના પ્રતિપાદનથી પ્રજ્ઞાપક

प्रज्ञापक काल एव सम्भवात् ' इति चेच्छ्रूयताम् स्थाणुबहुलं विषमबहुलम् इत्यादि सूत्रं भरतस्य बहुस्थले स्थाणुसम्पन्नं विषमसम्पन्नं चेति प्रतिपादकं बहुसमरमणीयो भूमिभाग' इत्येतत्पदगर्भितं च सूत्रद्वयं भरतस्य कचिद्देशविशेषे पुरुषविशेषस्य पुण्यफलभोगार्थमत्यन्तसमो भूमिभागे । रमणीयोऽस्तीत्येतत्प्रतिपादकमिति न विरोध शङ्का भोक्तृवैचित्र्ये सति भोग्यवैचित्र्यस्य नियमेन सत्त्वात् । एतेन भरतवर्षस्यैकान्त शुभैकान्ताशुभमिश्ररूपकालत्रयाधारत्वं सूचितम् । तत्रैकान्तशुभे काले सर्वे क्षेत्रभावाः शुभा एव भवन्ति एकान्ताशुभे काले सर्वे भावाः अशुभा एव भवन्ति, मिश्रकाले

प्रज्ञापक काल की अपेक्षा से ही कहे गये हैं क्योंकि इस प्रकार के मण्यादिको का सद्भाव प्रज्ञापक काल में ही होता है,

उत्तर—भरत क्षेत्र के वर्णन में जो "स्थाणुबहुल, विषम स्थान बहुल" इत्यादि रूप से भूमिभाग वर्णित हुआ है वह भरत क्षेत्र के अनेक स्थानों को लेकर वर्णित हुआ है क्योंकि भरत क्षेत्र के कई स्थल ऐसे हैं जो स्थाणु संपन्न और विषमतासंपन्न हैं तथा "बहुसमरमणीय भूमिभाग है" इस तरह के पद से गर्भित जो सूत्रद्वय कहे गये हैं वे यह प्रकट करते हैं कि भरतक्षेत्र के किसी देश विशेष में पुरुष विशेष के पुण्यफल के भोगार्थ अत्यन्तसम भूमिभाग होता है और वह रमणीय होता है । इस तरह के प्रतिपादन में विरोध के लिये कोई स्थान नहीं है क्योंकि भोक्तृत्व की विचित्रता से भोग्य पदार्थों में विचित्रता का सद्भाव नियम से देखा ही जाता है । अतः भरतक्षेत्र काल की अपेक्षा एकान्ततः शुभ का भी आधारभूत होता है अशुभ का भी आधारभूत होता है और शुभाशुभ

क्षणों की अपेक्षाओं के कहेवाला आवेक के कहेके आ जतना भविष्य वगेरेना सद्भाव प्रसा पक क्षणमा के थाय के उत्तर-भरतक्षेत्रना वषु-नमा के स्थाणु बहुल विषम स्थान बहुल वगेरे रूपमा के भूमिभाग वर्णित थयेक के ते भरत क्षेत्रना वषु स्थानोने वर्धने वर्णित थयेक के कहेके भरत क्षेत्रना अनेक स्थानों के के के के स्थाणु संपन्न अने विषमता संपन्न के तेमके "बहुसमरमणीयभूमिभागवाणा" के आ जतना पदोष्ठी गर्भित के सूत्रद्वय निरूपित करवाया आवेक के, तेमनाथी आ प्रकट थाय के के भरतक्षेत्रना केष देश विशेषमा पुरुष विशेषमा पुण्यक्षणना उपलक्षणमाते अत्यंत समभूमिभाग होय के, अने ते रमणीय होय के आ जतना प्रतिपादनमा विरोध माते केष स्थान के नहीं केकके लोकताओंकी विचित्रताथी भोग्य पदार्थोंमा विचित्रताना सद्भाव यथानियम जेवामा आवे के के, जेथी भरतक्षेत्र क्षण की अपेक्षाओं केकान्ततः शुभाधारभूत पक्ष होय के तेमके अशुभाधारभूत पक्ष होय के, तथा शुभाशुभ जन्ने रूपमा पक्ष होय के न्याये केकान्त शुभक्षण होय के तयारे तेमा केरवा क्षेत्रो के ते सर्वे शुभरूप होय के केकान्त अशुभ कालमा सर्वे अशुभरूप होय के तेमके शुभाशुभमिश्रकालमा कथाक तो शुभता रहे के

तु चिच्छुभाःक्वचिच्छाशुभाः । इत्थं चात्र सूत्रत्रयमवसर्पिण्यास्तृतीयारकान्तादारभ्य वर्षशतन्यूनदुष्पमारकपर्यन्तो यो मिश्रकालस्तदपेक्षया बोध्यम् न तु एकान्ताशुमष-
ष्टारककालापेक्षम्, तत्र विरोधस्यावार्यमाणत्वादिति सर्वं समञ्जसम् ।

अथ दक्षिणार्द्धभरतोद्भवमनुष्यस्वरूपं पृच्छति 'दाहिणद्धभरहेणं भंते ? वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते' हे भदन्त ! दक्षिणार्द्धभरते खलु वर्षे मनुजानां मनुष्याणां कीदृशकः किं स्वरूपः आकारभावप्रत्यवतारः स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः प्रज्ञप्तः ! इति गौतमेन पृष्टो भगवानाह—'गोयमा' हे गौतम ! तेणं मणुया' ते खलु मनुजाः मानवाः 'बहुसंघयणा' बहुसंहननाः—बहूनि—अनेकानि वज्र-
शृषमनाराचादीनि संहनानि—शरीरदाढर्यसम्पादकास्थिसमूहरूपाणि येषां ते तथा ।
तथा 'बहुसंठाणा' बहुसंस्थानाः बहूनि—प्रचूराणि संस्थानानि—चमचतुरस्रादि लक्षणशरीराकृतिविशेषा येषां ते तथा, 'बहुउच्चत्तपज्जवा' बहुउच्चत्वपर्यवाः बहवः अनेकविधा उच्चत्वपर्यवाः उच्चत्वस्य शरीरोन्नतत्वस्य पर्यवाः पठच्चधनुःशतहस्तप्रमाणादिकाः

दोनों का भी आधारभूत होता है । जब एकान्त शुभ काल होता है तब उसमें जितने भी क्षेत्र है वे सब शुभरूप ही होते हैं एकान्त अशुभकाल में सब ही अशुभरूप ही होते हैं एव शुभाशुभ मिश्रकाल में कहीं पर शुभता रहती है और कहीं पर अशुभता रहती है । इस तरह सूत्रत्रय अवसर्पिणी के तृतीय आरक के अन्त से लेकर वर्ष शतन्यून दुष्पम आरक पर्यन्त जो मिश्र काल है उसकी अपेक्षा से कहे गये हैं । एकान्त अशुभ आरकरूप षष्ठ काल की अपेक्षा से नहीं—
क्योंकि वहाँ पर इस प्रकार के कथन में विरोध का आना अनिवार्य है

दक्षिणार्धभरत में उत्पन्न हुए मनुष्यों का कथन—

'दाहिणद्धभरहेणं भंते ! मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते'

इस सूत्र द्वारा गौतम ने प्रसु से ऐसा पूछा है—हे भदन्त ! दक्षिणार्द्ध भारत में रहनेवाले मनुष्यों का आकारभाव प्रत्यवतार—स्वरूप कैसा कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रसु कहते हैं—
'गोयमा ! तेणं मणुया बहुसंघयणा, बहुसंठाणा, बहु उच्चत्तपज्जवा' हे गौतम ! दक्षिणार्द्ध-
भरत में रहनेवाले मनुष्य अनेक वज्रशृषमनाराच आदि सहनन वाले होते हैं, अनेक समचतुरस्र आदि सस्थानवाले होते हैं, अनेक प्रकार की ५०० धनुष आदि रूप शारीरिक उच्चतावाले होते

अने कथांके अशुभाना रहे छे आ प्रभाषे सूत्रत्रय अवसर्पिणीना तृतीय आरकना अंतर्ती भांतीने वर्षशतन्यून दुष्पम आरकपर्यन्त जे मिश्रकाल छे तेनी अपेक्षाजे कहेवाभा आवेल छे, जेकान्त अशुभ आरक इप पठ कालनी अपेक्षाजे कहेवाभा आवेल नथी केभके त्या आ जतना कथनमा विरोधनी स्थिति उत्पन्न यवी अनिवार्य ज छे

दक्षिणार्ध भरतमा उत्पन्न थयेला मनुष्योना स्वइपतु कथन—

'दाहिणद्धभरहेणं भंते ! वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते'

आ सूत्र वडे गौतमे प्रसुने जेवी रीते प्रश्न कथे के छे भदन्त ! दक्षिणार्द्ध भरतमा रहेनारा भाषुसेना आकार भाव प्रत्यवतार—स्वरूप—केवा छे, जवाभभां प्रसु कहे छे के 'गोयमा तेणं मणुया बहुसंघयणा बहुसंठाणा बहु उच्चत्तपज्जवा के गौतम ! दक्षिणार्द्धभरतमा रहेनारा मनुष्ये अनेक वज्र शृषम नाराच वगेरे सहननवाणा छेय छे अनेक समचतुरस्र

विशेषा येषां ते तथा' तथा 'बहुभाउ पञ्जवा' बह्वायुः पर्यवाः वहवः अनेकविधाः आयुः पर्यवाः आयुपो जीवितस्य पर्यवा' पूर्वकोटि वर्षशतादिका विशेषा येषां ते तथा 'बहूँ वासाइ' बहूनि वर्षाणि' संवत्सरान् 'आउं' आयुः जीवितं 'पालेंति' पालयन्ति धारयन्ति 'पालित्ता' पालयित्वा 'अप्पेगइया' अप्येकके अप्येके केचित् मनुजाः 'निरयगामी' निरयगामिनः नरकगतिगामिनः 'अप्पेगइया' अप्येकके केचित् 'तिरियगामी' तिर्यग्गामिनः तिर्यग्गतिगामिनः 'अप्पेगइया' अप्येकके केचित् 'मणुयगामी' मनुजगामिनः मनुष्यगतिगामिनः 'अप्पेगइया' अप्येकके केचित् 'देवगामी' देवगामिनः देवगतिगामिनः 'अप्पेगइया' अप्येकके केचित् मनुजाः 'सिज्झति' सिध्यन्ति सकलकार्यकारि तथा सिद्धा भवन्ति 'बुज्झति' बुध्यन्ते विमलकेवलालोकैः सकललोकालोकं जानन्ति 'मुच्चंति' मुच्यन्ते सर्वकर्मभ्यो मुक्ता भवन्ति, 'परिणिव्वायंति' परिनिर्वाणन्ति समस्तकर्मकृतविकाररहितत्वेन स्वस्था 'भवन्ति सव्वदुक्खाणमंत करेति' सर्वदुःखानाम् शारीरिक

हैं "बहु भाउ पञ्जवा" अनेक प्रकार की आयुवाले पूर्वकोटि रूप एवं सौ वर्ष आदि रूप आयु वाले होते हैं "बहुइ वासाइ भाउ पालेंति, पालित्ता अप्पेगइया निरयगामी, अप्पेगइया तिरियगामी, अप्पेगइया, मणुयगामी, अप्पेगइया देवगामी" अनेक वर्षों की आयु के वे भोक्ता होते हैं इस तरह से आयु-जीवनकाल को भोग करके-समाप्त करके इनमें से कितनेक ऐसे होने हैं जो मर कर तिर्यग्गति में जाते हैं कितनेक ऐसे होते हैं जो मरकर मनुष्यगति में जाते हैं, और कितनेक ऐसे हैं जो मरकर देवगति में जाते हैं तथा "अप्पेगइया सिज्झति, बुज्झति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति सव्व दुक्खाण मंत करेति" कितनेक ऐसे भी होते हैं जो सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं अर्थात् कृतकृत्य हो जाते हैं बुद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं-विमल केवल ज्ञान रूप आलोक से समस्त लोक सहित अलोक के ज्ञाता हो जाते हैं-मुक्त हो जाते हैं-सकलकर्मों से छूट जाते हैं-रहित हो जाते हैं। सकलकर्म कृत विकारों से रहित हो जाने के कारण वे परिनिर्वांत हो

वगैरे संस्थानवाणा होय छे, अनेक प्रकारनी ५०० धनुष आदि रूप शारीरिक विस्थापणा होय छे "बहु भाउपञ्जवा" अनेक प्रकारनी आयुवाणा होय छे बहूँ 'वासाइ आउं पालेंति पालित्ता अप्पेगइया निरयगामी अप्पेगइया तिरियगामी अप्पेगइया मणुयगामी अप्पेगइया देवगामी" अनेक वर्षोंनी आयुना तेज्जो लोकाता होय छे आ रीते आयु-एवनकाल-नो' उप लोग करीने जेभनामां केट्ठाक जेवां होय छे के जेज्जो मृत्यु प्राप्त करीने नरकमां जाय छे केट्ठाक जेवां होय छे के जेज्जो मृत्यु प्राप्त करीने तिय 'य गतिमां जाय छे, केट्ठाक जेवां होय छे के जेज्जो मृत्यु प्राप्त करीने मनुष्य गतिमा जाय छे अने केट्ठाक जेवा होय छे के जेज्जो मरीने देवगति पाये छे तथा अप्पेगइया 'सिज्झति बुज्झति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंत करेति" केट्ठाक जेवा पणु होय छे के जेज्जो सिद्ध अवस्थाने पाये छे जेट्ठे के कृत कृत्य थर्ष जाय छे बुद्ध अवस्था पाये छे-विमल केवल ज्ञान रूप आलोकथी समस्त लोक सहित अलोकना ज्ञाता थर्ष जाय छे मुक्त थर्ष जाय छे सकल कर्मथी मुक्त थर्ष जाय छे-रहित थर्ष जाय छे सकल-कर्मकृत विकारथी रहित थर्ष जाय छे तेथी तेज्जो परि-

मानसिक समस्त क्लेशानाम् अन्तम् नाश कुर्वन्ति अव्याबाधसुखभाजो भवन्तीत्यर्थः । अनोक्तमिदं सर्वं स्वरूपवर्णनम् अरकविशेषापेक्षया नानाविधान् जीवानपेक्ष्य बोध्यम् अन्यथा सुषमसुषमादि भवमनुजानां सिद्धत्वादि विरहात्तत्कथनमयुक्तं स्यादिति ॥सू० ११॥

अथास्य दक्षिणाद्धर्भरतस्य सीमाकारी वैताढ्यपर्वतः काऽऽस्ते ? इति पृच्छति—

मूलम्—कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयड्ढे णामं पव्वए पणत्ते ? गोयमा ! उत्तरद्ध भरहवासस्स दाहिणेणं दाहिण भरह वासस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिम समुद्दस्स पुग्त्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयड्ढे णामं पव्वए पणत्ते, पाईणपडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे दुहा लवण-समुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे पच्चत्थि-मिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पणवीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं छस्म कोसाइं जोयणाइं उव्वेहेणं पण्णासं जोयणाइं वि-क्खंभेणं, तस्स बाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं चत्तारि अट्ठासीए जोयण-सए सोलस य एगूणवीसइ भागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं पणत्ता. तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठा पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा पच्चत्थि-मिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठा दस जोयणसहस्साइं

जाते हैं, अपने आप में समा जाते हैं और शारीरिक एवं मानसिक समस्त क्लेशो का नाश कर देते हैं अर्थात्—अव्याबाध सुख के भोक्ता हो जाते हैं । यहा उक्त यह सब स्वरूप वर्णन अरक-विशेष की अपेक्षा से नानाविध जीवों को लेकर के कहा गया जानना चाहिये । नहीं हो तो फिर सुषम सुषमादि काल में उत्पन्न हुए मनुष्यो को सिद्ध पद की प्राप्ति तो होती नहीं है—अत यह कथन अयुक्त हो जावेगा ॥११॥

निर्वा । थर्ध णय छे स्व स्वइपमा न समाहित थर्ध णय छे. अने शारीरिक अने मानसिक समस्त क्लेशोने निवृत्त करी नाणे छे अट्ठे के अव्याबाध सुखना बोक्ता थर्ध णय छे अही आ णधु स्वइप वरुण ने करवामा आण्यु छे ते अरक विशेषनी अपेक्षाजे नानाविध एवोने लधने कडेवामा आवेल छे आम न होय तो सुषमसुषमादिकाणमा उत्पन्न थयेल मनुष्येने सिद्ध यह आम थतु, नथी अथी आ कथन अयुक्ता थर्ध नथे. ॥११॥

सत्त य वीसे जोयणसए दुवालस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स
 आयामेणं तीसे धणुपुदठे दाहिणेणं दस जोयणसहस्साइं सत्त य
 तेआले जोयणसए पण्णास य एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं
 रुयगसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हे लदठे घदठे मदठे नीरए
 निम्मले णिष्पंके णिक्कं कडच्छाए सप्पमे समरोए पासार्इए दरिसणिज्जे
 अभिरूवे पडिरूवे उभओ पासि दोहि पउमवरवेइयाहि दोहिं य वण-
 संडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते । ताओ णं पउमवरवेइयाओ अच्चे-
 जोयण उट्ठं उच्चत्तेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं पव्वयसमियाओ आया-
 मेणं वण्णओ भाणियव्वो । तेणं वणसंडा देसूणाइं दो जोयणाइं
 विक्खंभेणं पउमवरवेइया समगा आयामेणं किण्हा किण्होभासा जाव
 वण्णओ ॥सू०१२॥

छाया—कव खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे वैताढ्यो नाम पर्वतः प्रकृतः,
 गौतम ! उत्तरार्द्धे भरतवर्षस्य दक्षिणे दक्षिणभरतवर्षस्य उत्तरे पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य
 पाश्चात्ये पश्चिमलवणसमुद्रस्य पौरस्त्ये अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे वैताढ्यो नाम
 पर्वतः प्रकृतः, प्राचीनप्रतीचीनाऽऽयतः उन्नीचीनदक्षिण विस्तीर्णः द्विधा लवणसमुद्रं
 स्पृष्ट पौरस्त्यया कोट्या पौरस्त्ये लवणसमुद्रं स्पृष्टः पाश्चात्यया कोट्या पाश्चात्यं लवण-
 समुद्रं स्पृष्टः, पञ्चविंशति योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन षट् सक्रोशानि योजनानि उद्वेधेन पञ्चा-
 शति योजनानि विष्कम्भेण ५० तस्य बाह्या पौरस्त्यपश्चिमेन चत्वारि अष्टाशीतानि योज-
 नशतानि षोडशच पकोनविंशतिभागान् योजनस्य अर्द्धभागं च आयामेन प्रकृता । तस्य
 जीवा उत्तरेण प्राचीनप्रतीचीनाऽऽयता द्विधा लवणसमुद्रं स्पृष्टा पौरस्त्यया कोट्या पौर-
 त्यं लवणसमुद्रं स्पृष्टा पाश्चात्यया कोट्या पाश्चात्यं लवणसमुद्रं स्पृष्टा, दश योजन सह-
 स्राणि सप्त च विंशति योजनशतानि द्वादश च पकोनविंशति भागान् योजनस्य आया-
 मेन । तस्या धनुस्पृष्ट दक्षिणेन दश योजनसहस्राणि च त्रिचत्वारिंशानि योजन
 शतानि पञ्चदश च पकोनविंशतिभागान् योजनस्य परिक्षेपेण । रुचकसंस्थानसंस्थितः
 सर्वरजतमय अबलः सुदृणः लष्ट घृष्टः मृष्टः नोरजा निर्मलः किष्पङ्कः निष्कङ्कटच्छायः
 सप्रमः समरीचिकः प्रासादीयः दर्शनीयः अमिरूपः प्रतिकूपः ।

उभयोः पार्श्वयोः द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च वनवण्डाभ्यां सर्वतः समन्तात्
 संपरिक्षितः । ते खलु पद्मवरवेदिके अर्द्धयोजनमूर्ध्वमच्चत्वेन पञ्चधनुः शतानि विष्कम्भेण,
 पर्वतसमिके आयामेन वणको भणितव्यः । तौ खलु वनवण्डः देशोने द्वे योजने विष्कम्भेण
 पद्मवरवेदिका समकौ आयामेन कृष्णौ कृष्णावभासौ । ॥सू०१२॥

टीका—‘कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे’ इत्यादि—गौतमो भगवन्तं पृच्छति ‘कहि णं भंते जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयइहे णामं पव्वए पण्णत्ते’ हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे वैताढ्यो नाम पर्वतः क=कुत्र प्रज्ञप्तः ? इति पृष्टो भगवानाह—‘गोयमा उत्तरद्ध-भरहवासस्स’ हे गौतम उत्तरार्द्धभरतवर्षस्य अनन्तरोक्तस्वरूपस्य ‘दाहिणेणं’ दक्षिणे दक्षिणदिग्भागे ‘दाहिणभरहवासस्स उत्तरेणं’ दक्षिणार्द्धभरतस्य उत्तरे—उत्तरदिग्भागे ‘पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स’ पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य ‘पच्चत्थिमेणं’ पश्चिमे पश्चिमदिग्भागे ‘पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं’ पश्चिमलवणसमुद्रस्य पौरस्त्ये-पूर्वदिग्भागे । ‘एत्थ णं जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयइहे णामं पव्वए पण्णत्ते’ अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे वैताढ्यो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः स वैताढ्यः पर्वतः कीदृशः ? इत्याह ‘पाइण पडीणायए’ प्राचीन प्रतीचीनाऽऽयतः पूर्वपश्चिमदिशोरायतः—दीर्घः ‘उदीणदाहिणवि-त्थिण्णे’ उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णः उत्तर दक्षिणदिशोर्विस्तीर्णः विस्तारयुक्तः ‘दुहा’ द्विधा अनुपद बक्ष्यमाणाभ्यां द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां ‘लवणसमुद्द पुट्ठे लवणसमुद्दं स्पृष्टः

इस दक्षिणार्ध भरत की सीमा करने वाला वैताढ्य पर्वत कहा पर है ? इसका कथन—

“कहिणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयइहे णामं पव्वए पण्णत्ते” इत्यादि ।

टीकार्थ—हे भदन्त ! जम्बूद्वीप में स्थित भरत क्षेत्र में वैताढ्य पर्वत कहा पर कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रश्न कहते हैं—“गोयमा । उत्तरद्ध भरहवासस्स दाहिणेणदाहिण भरहवासस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थ ण जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयइहे णामं पव्वए पण्णत्ते” हे गौतम ! उत्तरार्ध भरत क्षेत्र को दक्षिणदिशा में दक्षिणभरत क्षेत्र की उत्तरदिशा में पूर्वदिग्वर्तीलवण समुद्र की पश्चिमदिशा में और पश्चिमदिग्वर्ती लवण समुद्र की पूर्वदिशा में जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र में वैताढ्यनामका पर्वत है । यह वैताढ्य-पर्वत “पाइणपडीणायए उदीण दाहिणवित्थिण्णे दुहा लवणसमुद्दं पुरट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे, पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे” पूर्व से

आ दक्षिणार्द्ध भरतनी सीमा अतावनार वैताढ्य पर्वत कथा आवेल छे ? आ विषे कथन

‘कहिणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयइहे णामं पव्वए पण्णत्ते—इत्यादि सूत्र—१२ ॥

टीकार्थ—हे भदन्त ! जंबूद्वीपमा स्थित भरत क्षेत्रमा वैताढ्य पर्वत कथा आवेल छे ? अने अवाणभां प्रश्न कडे छे के “गोयमा ! उत्तरद्ध भरहवासस्स दाहिणेणं दाहिण भरहवासस्स उत्तरेणं पुरत्थिम लवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं पच्चत्थिमलवणसमुद्दस्स पुरत्थिमेणं एत्थणं जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे वेयइहे णामं पव्वए पण्णत्ते” हे गौतम ! उत्तरार्ध भरत क्षेत्रनी दक्षिण दिशाभां दक्षिण भरत क्षेत्रनी उत्तरदिशाभा पूर्व दिग्वर्ती लवण समुद्रनी पश्चिम दिशाभां अने पश्चिम दिग्वर्ती लवण समुद्रनी पूर्व दिशाभां जंबूद्वीपस्थ भरत क्षेत्रमा वैताढ्य नामे पर्वत छे आ वैताढ्य पर्वत “पाइणपडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे दुहा लवणसमुद्दं पुट्ठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुट्ठे पच्चत्थिमिल्लाए

પ્રાપ્તઃ સ્પૃશોરત્ર પ્રાપ્ત્યર્થત્વાત્કર્તરિક્તઃ તેન કર્મણિ દ્વિતીયા, એવમગ્રેડપિ । 'પુરત્થિ-મિહ્લાઈ' પૌરસ્ત્યયા પૂર્વદિગ્ભવયા 'કોહીઈ' કોટ્ચા અગ્રભાગેન 'પુરત્થિમિલ્લ' પૌરસ્ત્યં પૂર્વદિગ્ભવં 'લવણસમુદ્દં પુદ્દે' લવણસમુદ્દંસ્પૃષ્ટઃ 'પચ્ચત્થિમિલ્લાઈ' પશ્ચિમયા પશ્ચિમદિગ્ભ-વયા 'કોહીઈ' કોટ્ચા 'પચ્ચત્થિમિલ્લં લવણસમુદ્દં પુદ્દે' પશ્ચિમલવણસમુદ્દં સ્પૃષ્ટઃ । સ ચ 'ઉદ્દં' ઝર્ધ્વમ્ ઉપગિ 'ઉચ્ચત્તેણં' ઉચ્ચત્ત્વેન 'પણવીસં' પશ્ચવિંશતિ પશ્ચવિંશતિ સંખ્યકાનિ 'જોયણાં' યોજનાનિ 'ઉવ્વેહેણં' ઉદ્દેધેન ધૂમ્યન્તર્ગતમાગેન 'હસ્સકોસાં જોયણાં' સક્રોશાનિ ક્રોશસહિતાની એક ક્રોશાધિકાનિ પદ્ પદ્યત્થ્યાનિ યોજનાનિ સમયક્ષેત્રવર્તિના મેરુવર્જના સકલપર્વતાનામુદ્દેધઃ સ્વોચત્ત્વ ચતુર્થાંશો ભવતિ । અત્તેવાત્ર પશ્ચવિંશતિયોજનચતુર્થાંશઃ સક્રોશપદ્યયોજનાનિ 'ઉવ્વેહેણં' ઉદ્દેધત્ત્વેન પ્રોક્તાનીતિ વોધ્યમ્ । તથા 'વિવ્વલ્લમેણં' વિષ્કમ્મેણ=વિસ્તારેણ 'પણ્ણાસં જોયણાં' પશ્ચાશત યોજનાનિ ઇતત્પરિમિતો વર્તતે ।

પશ્ચિમતક લમ્મા ઠે ઓર ઉત્તર સે દક્ષિણતક ચોહા હૈ દોં તરફ સ યહ લવણસમુદ્ર કો છૂ રહા હૈ પૂર્વ કી કોટિ સે પૂર્વદિગ્વર્તી લવણસમુદ્ર કો ઓર પશ્ચિમદિગ્વર્તી કોટિ સે પશ્ચિમ કૈ લવણસમુદ્ર કો । “પણવીસ જોયણાં ઉદ્દં ઉચ્ચત્તેણં હસ્સ કોમાં જોયણાં ઉવ્વેહેણ-પણ્ણાસ જોયણાં વિવ્વલ્લમેણં” હસકી ઊંચાઈ ૨૫ યોજન કી હૈ. હસકા ઉદ્દેધ એક ક્રોશ અધિક ૬ યોજન કા હૈ. સમય ક્ષેત્રવર્તી જિતને મી પર્વત હૈ અને એક મેરુ પર્વત કો છોડ કર સબ પર્વતોં કા ઉદ્દેધ અપની ઊંચાઈ સે ચતુર્થાંશ હોતા હૈ. હસીલિએ યહા પર વૈતાલ્ય પર્વત કા ઉદ્દેધ એક ક્રોશ અધિક ૬ યોજન કા કહાગયા હૈ તથા વિસ્તાર હસ કા ૫૦ યોજન કા કહા ગયા હૈ “તસ્સ વાહા પુરત્થિમપચ્ચત્થિમેણ ચત્તારિ

કોહીપ પચ્ચત્થિમિલ્લં લવણસમુદ્દં પુદ્દે” પૂર્વથી પશ્ચિમ સુધી લાંબા છે અને ઉત્તરથી દક્ષિણ સુધી ચોટા છે. એ બાજુથી આ લવણ સમુદ્રને સ્પર્શી રહ્યો છે પૂર્વની કોટિથી—પૂર્વ દિગ્વર્તી લવણ સમુદ્રને અને પશ્ચિમ દિગ્વર્તી કોટિથી પશ્ચિમના લવણ સમુદ્રને આ સ્પર્શી રહ્યો છે “પણવીસ જોયણાં ઉદ્દં ઉચ્ચત્તેણં હસ્સકોસાં જોયણાં ઉવ્વેહેણ પણ્ણાસં જોયણાં વિવ્વલ્લમેણં” આની ઊંચાઈ ૨૫ યોજન જેટલી છે. આનો ઉદ્દેધ એક માહિ-અધિક ૬ યોજન જેટલો છે. સમય ક્ષેત્રવર્તી જેટલા પર્વતો છે. તેમા એક મેરુ પર્વતને બાદ કરતા સર્વ પર્વતોનો ઉદ્દેધ પેત પેતાની ઊંચાઈથી ચતુર્થાંશ હોય છે એથી જ અહી વૈતાલ્ય પર્વતનો ઉદ્દેધ એક માહિ અધિક ૬ યોજન જેટલો કહેવામા આવેલ છે તેમજ વિસ્તાર આનો ૫૦ યોજન જેટલો કહેવામા આવ્યો છે “તસ્સ વાહા પુરત્થિમ પચ્ચત્થિમેણ ચત્તારિ અઠ્ઠાસીપ જોયણસપ્ સોલસય પ્ણવીસદ્ભાગે જોયણસં અઢ્ઠમાગ ચ આયામેણં ચ પ્ણત્તા” આ વૈતાલ્ય પર્વતની વાહા—દક્ષિણથી ઉત્તર સુધીની આડી આકાશ પ્રદેશ પંકિત—પૂર્વ અને પશ્ચિમ દિશામા ૮૪ યોજન જેટલી છે અને એક યોજનના ૧૬ ભાગી-માથી ૧૬૫ ભાગ પ્રમાણ છે આ તેની લંબાઈની અપેક્ષા એ ક્યેન છે

‘તસ્સ’ તસ્ય-વૈતાલ્યસ્ય ‘વાહા’ વાહા-દક્ષિણોત્તરાયતા વક્રા આકાશપ્રદેશપદ્ધત્તિઃ
‘પુરત્થિમપ્ચત્થિમેણ’ પૌરસ્ત્યપાશ્ચાત્યેન પૂર્વપશ્ચિમયોર્દિશોઃ, ‘ચત્તારિ અદ્વાસીંણ જોયણ-
સણ’ અષ્ટાશીતાનિ અષ્ટાશીત્યધિકાનિ ચત્તારિ યોજનશર્તાનિ ચતુશ્શત યોજનાનિ તથા
‘સોલસય ઇગૂણ વીસઈભાગે’ ષોડશ ચ ઇકોનવિંશતિભાગાન્ ‘જોયણસ્સ’ યોજનસ્ય
ઇકોનવિંશતિભાગવિમક્તસ્ય ઇકસ્ય યોજનસ્ય ષોડશભાગાન્, ‘અદ્ધભાગંચ આયા-
મેણં પ્ણણત્તા’ અદ્ધ-ઇકોનવિંશતિતમભાગસ્ય અદ્ધં ચ સાદ્ધં ષોડશભાગાનીત્યર્થઃ,
આયામેન-દૈર્ઘ્યેણ પ્રજ્ઞપ્તા ।

અથ વૈતાલ્યસ્ય જીવામાહ-‘તસ્સ જીવા ઉત્તરેણં’ તસ્ય-વૈતાલ્યસ્ય જીવા
ઉત્તરેણ - ઉત્તરસ્યાં દિશિ ‘પાઈણપહીણાયયા’ પ્રાચીનપ્રતીચીનાઽઽયતા-પૂર્વ પશ્ચિમયો
ર્દિશોરાયતા ‘દુહા’ દ્વિધા=દ્વાભ્યાં પ્રકારાભ્યાં ‘લવણસમુદ્દં પુટ્ટા’ લવણસમુદ્ર સ્પૃષ્ટા,
તથાહિ ‘પુરત્થિમિલ્લાણ’ પૌરસ્ત્યયા-પૂર્વદિગ્ભવયા ‘કોહીણ’ કોટયા અગ્રભાગેન
‘પુરત્થિમિલ્લ’ પૌરસ્ત્ય-પૂર્વદિગ્ભવં ‘લવણસમુદ્દં પુટ્ટા’ લવણસમુદ્રં સ્પૃષ્ટા ‘પ્ચત્થિમિ-
મિલ્લાણ’ પાશ્ચાત્યયા-પશ્ચિમદિગ્ભવયા ‘કોહીણ’ કોટયા-પ્ચત્થિમિલ્લે પાશ્ચાત્ય-પશ્ચિમ-
દિગ્ભવં ‘લવણસમુદ્દં પુટ્ટા’ લવણસમુદ્રં સ્પૃષ્ટા, ‘દસજોયણસહસ્સાઈં’ દશ
યોજનસહસ્સાણિ દશસહસ્સ યોજનાનિ, ‘સત્ત ય વીસે જોયણસણ’ સપ્તચ વિજ્ઞાનિ

અદ્વાસીંણ જોયણસણ સોલસય ઇગૂણવીસઈભાગે જોયણસ્સ અદ્ધભાગં ચ આયામેણં પ્ણણત્તા”
ઇસ વૈતાલ્ય પર્વત કી વાહા-દક્ષિણ સે ઉત્તર તક ટેઢી આકાશ પ્રદેશપદ્ધત્તિ-પૂર્વ ઓર પશ્ચિમ
દિશા મેં ૮૪ યોજન કી હૈ ઓર ઇક યોજન કે ૧૭ ભાગો મેં સે ૧૬૥ ભાગ પ્રમાણ
હૈ । યહ ઉસકી લમ્બાઈ કી અપેક્ષા કથન હૈ । વૈતાલ્ય કી જીવા કા પ્રમાણ કથન “તસ્સ
જીવા ઉત્તરેણં પાઈણપહીણાયયા દુહા લવણસમુદ્દં પુટ્ટા, પુરત્થિમિલ્લાણ કોહીણ પુરત્થિમિલ્લ
લવણમમુદ્દ પુટ્ટા પ્ચત્થિમિલ્લાણ કોહીણ પ્ચત્થિમિલ્લં લવણસમુદ્દ પુટ્ટા” ઉસ વૈતાલ્ય કી જીવા
ઉત્તરદિશા મેં પૂર્વ સે પશ્ચિમદિશા તક લમ્બી હૈ ઇવં દો પ્રકાર સે લવણ સમુદ્ર કો
સ્પર્શ કરતી હૈ પૂર્વ દિગ્ભવકોટા સે પૂર્વદિગ્ભવલવણ સમુદ્ર કો ઓર પશ્ચિમદિગ્ભવકોટિ સે
પશ્ચિમદિગ્ભવ લવણ મમુદ્ર કો । ઇસકી લમ્બાઈ ૧૦૭૨૦ યોજન કા હૈ ઓર ૧ યોજન
કે ૧૭ ભાગો મેં સે ૧૨ ભાગ પ્રમાણ હૈ

વૈતાલ્યની જીવાના પ્રમાણુ કથન “તસ્સ જીવા ઉત્તરેણં પાઈણપહીણાયયા દુહા
લવણસમુદ્દં પુટ્ટા પુરત્થિમિલ્લાણ કોહીણ પુરત્થિમિલ્લં લવણસમુદ્દં પુટ્ટા પ્ચત્થિમિલ્લાણ
કોહીણ પ્ચત્થિમિલ્લ લવણસમુદ્દં પુટ્ટા” । વૈતાલ્યની જીવા ઉત્તરદિશામાં પૂર્વથી
પશ્ચિમદિશા સુધી લાગી છે તેમજ એ રીતે લવણ સમુદ્રને સ્પર્શ કરે છે પૂર્વ દિગ્ભવ કોટિથી
પૂર્વદિગ્ભવ લવણ સમુદ્રને, અને પશ્ચિમ દિગ્ભવ કોટિથી પશ્ચિમ દિગ્ભવ લવણ સમુદ્રને।
૨૪૧ કરે છે આની લ માઈ ૧૦૭૨૦ યોજન જેટલી છે અને ૧ યોજનના ૧૬ ભાગોમાંથી
૧૨ ભાગ પ્રમાણ જેટલી છે

योजनशतानि-विंशत्यधिकानि सप्तशतयोजनानि च 'एगूण वीसइभागे-जोयणस्स' एकोनविंशतिभागान् योजनस्य-एकोनविंशतिभागविभक्तस्य योजनस्य 'दुवालसय' द्वादश भागांश्च 'आयामेणं' आयामेन-दैर्येण प्रज्ञप्ता ।

अथ वैताढ्य धनुष्पृष्ठं वर्णयति-'तीसे' तस्याः-जीवायाः 'दाहिणेणं' दक्षिणेन दक्षिणदिग्भागे वैताढ्यपर्वतस्स 'धणुपुट्टे' धनुष्पृष्ठं 'दस जोयणसहस्साइ' दश योजनसहस्राणि-दशसहस्रयोजनानि तानि 'तेयाळे, त्रिचत्वारिंशदधिकानि 'सत्त य जोयणसए, सप्तशत योजनानि, 'पण्णास य एगूणवीसइभागे' पञ्चदशच एकोन-विंशतिभागविभक्तस्य एकस्य योजनस्य पञ्चदशभागांश्च 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना-वर्तुलाकारेण प्रज्ञप्तम् ।

अथ कीदृशो वैताढ्यः? इत्याह-'रुयगसठाणसंठिए' रुचकसंस्थानसंस्थितः रुचकं, ग्रीवाभ्रुवणविशेषः तस्य यत् संस्थानम्=आकारः तेन संस्थितः, तथा 'सव्वरयणामए' सर्वरजतमयः- सर्वात्मना रजतमयः- रूप्यमयः, 'अच्छे सण्हे लट्ठे घट्टे मट्टे णीरए निम्मळे णिप्पके णिककडच्छाए सप्पमे समरीए पासाईय दरिसणिज्जे-अभिरूवे पडिरूवे' अच्छादि प्रतिरूपपर्यन्तपदानां व्याख्या अस्यैव चतुर्थसूत्रे गता, तत एवावलोकनीयेति ।

वैताढ्य का धनुष्पृष्ठ-तीसे धणुपुट्टे दाहिणेणं दसजोयणसहस्साइं सत्तय नेयाळे जोयणसए पण्णासय एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेण रुयगसठाणसंठिए सव्व रयणामए अच्छे सण्हे लण्हे घट्टे मट्टे नीरए निम्मळे पिप्पके, णिककटच्छाए सप्पमे समरीए पासाईए दरि सणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे', उस जीवा के दक्षिण दिग्भाग में वैताढ्य पर्वत का धनुष्पृष्ठ १०७४ योजन का और १ योजन के १९ भागों में से १५ भाग प्रमाण हैं यह उसकी परोधि की अपेक्षा से कथन है इस वैताढ्य का आकार रुचक ग्रीवा के आभ्रुवण विशेष का जैसा आकार होता है वैसा है. यह वैताढ्यपर्वत सर्वात्मना रजतमय है और अच्छ आदि विशेषण से लेकर प्रतिरूपतक के विशेषणों वाला है इन अच्छादि पदों को

वैताढ्य धनुष्पृष्ठ --

"तीसे धणुपुट्टे दाहिणेणं दस जोयणसहस्साइ सत्तयतेयाळे जोयणसए पण्णासय एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेण रुयगसठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे घट्टे मट्टे नीरए, निम्मळे, णिप्पके, णिक०, सप्प०, समरी०, पासा०, दरि०, अभि०, पडि० ते एवाना दक्षिण दिग्भागमा वैताढ्य पर्वतसु धनुष्पृष्ठ १०७४३ योजन ढेट्ठुं अने १ योजन ना १९ अ गोमाथी १५ भाग प्रमाणु ढेट्ठुं छे. आ तेनी परिधीनी दक्षिणे कथन छे ते वैताढ्यने। आकार रुचक-ग्रीवाने। ओक आभ्रुवण विशेषने। ढेवे। आकार डोय छे-ढेवे छे आ वैताढ्य पर्वतसर्वात्मना रजतमय छे अने अच्छ विगरे विशेषणुथी भाडीने प्रतिरूपक सुधीना विशेषणुथी युक्त छे. आ अच्छादि पदोनी व्याख्या

स च पुनः 'उभयो' उभयोः-द्वयोः 'पार्सि पार्श्वयोः उत्तरतो दक्षिणतश्च 'दोहिं' द्वाभ्यां 'पउमवरवेइयाहि' पञ्चवरवेदिभ्यां मणिमयपञ्चरचितोत्तमवेदिकाद्वयेन 'दोहिं य वणसंडेहिं' द्वाभ्यां च वनषण्डाभ्यां-अनेकजातीयोत्तमवृक्षसमूहाभ्यां 'सव्वओ-समंता' सर्वतः समन्तात् 'संपरिक्खत्ते' संपरिक्षिप्तः परिवेष्टितः । पूर्वपश्चिमतो जगतीसन्धेन तदवरोद्धत्वात् पञ्चवरवेदिका वनषण्डाभावेन 'उभयोः पार्श्वयोः इत्यु-क्तम् । 'ताओणं पउमवरवेइयाओ' ते अनन्तरोक्ते खलु पञ्चवरवेदिके 'अद्धजोयणं' अर्धयोजनम्-योजनस्य अर्धम् अर्धभागम् 'उद्धं' उर्ध्वम्-उपरि 'उच्चत्तेण' उच्छ्रयेण तथा 'पंचघणुसयाइं' पञ्चधनुःशतानि 'विक्खंभेण' विष्कम्भेण विस्तारेण, तथा 'पव्वय-समियाओ' पर्वतसमिके पर्वततुल्ये 'आयामेणं' आयामेन-दैर्घ्येण प्रज्ञप्ते । 'वणणओ वर्णाकः-अत्र वर्णनपरो वाक्यसमूहो 'भाणियव्वो' भणितव्यः वक्तव्यः । सचास्यैव चतुर्थ-सूत्रे टीकायां द्रष्टव्य इति । 'तेण' तौ-पूर्वोक्तौ 'वणसंडा' वनषण्डौ खलु 'देसुणाइं' देशोने-देशेन-विचिद्देशेन ऊने-न्यूने दो 'जोयणाइं' द्वे योजने 'विक्खंभेण' विस्तारेण, 'पउमवरवेइया समगा' पञ्चवरवेदिका समके पञ्चवरवेदिकासमाने 'आयामेणं' आयामेन-दैर्घ्येण 'किण्हे' कृष्णे कृष्णवर्णे 'किण्होभासे' कृष्णावभासे 'जाव वणणओ' यावत्-

व्यख्या इसी के चतुर्थ सूत्र में की जा चुकी है । "उभयो पार्सि दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं वणसंडेहिं सव्वओ समता संपरिक्खत्तो" यह वैताड्य पर्वत अपने दोनो पार्श्वभागों से दो पञ्चवर वेदिकाओ से स्पृष्ट हो रहा वैताड्य पर्वत के उत्तर पार्श्वभाग की ओर एक पञ्चवर वेदिका है और वैताड्य पर्वत के दक्षिण पार्श्वभाग की ओर एक पञ्चवर वेदिका है इसी प्रकार से उसके दोनो पार्श्वभागों की तरफ दो वनषण्ड है - ये पञ्चवरवेदिकाएँ माणिमय पद्म की बनी हुई तथा वनषण्ड अनेक जातिय उत्तम वृक्ष समूह से युक्त है । "ताओणं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उद्धं उच्चत्तेणं पंच घणुसयाइं विक्खंभेण पव्वयसमियाओ आयामेणं वणणओ भाणियव्वो" ये पञ्चवर

आ अन्थ न योथा सूत्रमा करवाभा आवी छे उभयो पार्सि दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिंय वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खत्तो" वैताड्य पर्वत अन्ने आओयेथी ये पञ्चवर वेदिकाओने स्पथी रहै छे वैताड्य पर्वतना उत्तर पार्श्वभाओनी तरफ ओके पञ्चवर वेदिका छे अने वैताड्य पर्वतना दक्षिण पार्श्वभाओनी तरफ ओके पञ्चवर वेदिका छे आ प्रभाओ तेना अन्ने पार्श्वभाओनी तरफ ओ वनषण्डा छे ओ पञ्चवर वेदिकाओ मणिमय पद्मनी अनेही छे तेमल वनषण्ड अनेक जातीय उत्तम वृक्ष समूहथी युक्त छे, ताओणं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उद्धं उच्चत्तेणं पंच घणुसयाइं विक्खंभेण पव्वय समियाओ आयामेणं वणणओ भाणियव्वो ओ पञ्चवर वेदिकाओ अण्णे गाँ नेटली लीथी छे अने १००, ५०० धनुष नेटली चौडी छे तेमल ओभाथी इरैनी दीर्घता पञ्चवर वेदिका

योजनशतानि-विंशत्यधिकानि सप्तशतयोजनानि च 'एगूण वीसइभागे-जोयणस्स' एकोनविंशतिभागान् योजनस्य-एकोनविंशतिभागविभक्तस्य योजनस्य 'दुवालसय' द्वादश भागांश्च 'आयामेण' आयामेन-दैर्येण प्रज्ञप्ता ।

अथ वैताढ्य धनुष्पृष्ठं वर्णयति-'तीसे' तस्याः-जीवायाः 'दाहिणेणं' दक्षिणेन दक्षिणदिग्भागे वैताढ्यपर्वतस्स 'धणुपुट्टे' धनुष्पृष्ठं 'दस जोयणसहस्साइ' दश योजनसहस्राणि-दशसहस्रयोजनानि तानि 'तेयाळे, त्रिचत्वारिंशदधिकानि 'सत्त य जोयणसए, सप्तशत योजनानि, 'पण्णास य एगूणवीसइभागे' पञ्चदशच एकोन-विंशतिभागविभक्तस्य एकस्य योजनस्य पञ्चदशभागांश्च 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना-वर्तुळाकारेण प्रज्ञप्तम् ।

अथ क्रीदृशो वैताढ्यः? इत्याह-'रुयगसंठाणसंठिए' रुचकसंस्थानसंस्थितः रुचकं, ग्रीवाभ्रुपणविशेषः तस्य यत् संस्थानम्=आकारः तेन संस्थितः, तथा 'सन्वरयणामए' सर्वरजतमयः- सर्वात्मना रजतमयः- रूप्यमयः, 'अच्छे सण्हे लट्टे घट्टे मट्टे नीरए निम्मले णिप्पंके णिककडच्छाप सप्पमे समरीए पासाईय दरिसणिज्जे-अभिरूवे पडिरूवे' अच्छादि प्रतिरूपलपर्यन्तपदानां व्याख्या अस्यैव चतुर्थसूत्रे गता, तत एवावलोकनीयेति ।

वैताढ्य का धनुष्पृष्ठ-तीसे धणुपुट्टे दाहिणेणं दसजोयणसहस्साइ सत्तय नेयाळे जोयणसए पण्णासय एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेण रुयगसंठाणसंठिए सन्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे घट्टे मट्टे नीरए निम्मले पिप्पंके, णिककटच्छाप सप्पमे समरीए पासाईए दरि सणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे', उस जीवा के दक्षिण दिग्भाग में वैताढ्य पर्वत का धनुष्पृष्ठ १०७४ योजन का और १ योजन के १९ भागों में से १५ भाग प्रमाण हैं यह उसकी परोधि की अपेक्षा से कथन है इस वैताढ्य का आकार रुचक ग्रीवा के आभ्रु पण विशेष का जैसा आकार होता है वैसा है. यह वैताढ्यपर्वत सर्वात्मना रजतमय है और अच्छ आदि विशेषण से लेकर प्रतिरूपतक के विशेषणों वाला है इन अच्छादि पदों को

वैताढ्य धनुष्पृष्ठ --

"तीसे धणुपुट्टे दाहिणेणं दस जोयणसहस्साइ सत्तयनेयाळे जोयणसए पण्णासय एगूणवीसइभागे जोयणस्स परिक्खेवेण रुयगसंठाणसंठिए सन्वरयणामए अच्छे सण्हे लण्हे घट्टे मट्टे नीरए, निम्मले, णिप्पंके, णिक०, सप्प०, समरी०, पासा०, दरि०, अमि०, पडि० ते एवाना दक्षिण दिग्भागे वैताढ्य पर्वतनु धनुष्पृष्ठ १०७४३ योजन लट्टु अने १ योजन ना १९ भागमाथी १५ भाग प्रमाण लट्टु' छे. आ तेनी परिधिनी दृष्टये कथन छे ते वैताढ्यने आकार रुचक-ग्रीवाने अक आभ्रुपण विशेषने लवे आकार होय छे-लवे छे आ वैताढ्य पर्वत सर्वात्मना रजतमय छे अने अच्छ विगरे विशेषणथी भांडीने प्रतिरूपक सुधीना विशेषणथी युक्त छे. आ अच्छादि पदोनी व्याख्या

स च पुनः 'उभयो' उभयोः—द्वयोः 'पांसि पार्श्वयोः उत्तरतो दक्षिणतश्च 'दोहिं' द्वाभ्यां 'पउमवरवेइयाहिं' पद्मवरवेदिभ्यां मणिमयपद्मरचितोत्तमवेदिकाद्वयेन 'दोहिं य वणसंडेहिं' द्वाभ्यां च वनपण्डाभ्यां—अनेकजातीयोत्तमवृक्षसमूहाभ्यां 'सव्वओ-समंता' सर्वतः समन्तात् 'संपरिक्खत्ते' संपरिक्षिप्तः परिवेष्टितः । पूर्वपश्चिमतो जगतीसन्धेन तद्वरुद्धत्वात् पद्मवरवेदिका वनपण्डाभावेन 'उभयोः पार्श्वयोः इत्यु-क्तम् । 'ताओणं पउमवरवेइयाओ' ते अनन्तरोक्ते खलु पद्मवरवेदिके 'अद्धजोयणं' अर्धयोजनम्—योजनस्य अर्धम्—अर्धभागम् 'उद्धं' उर्ध्वम्—उपरि 'उच्चत्तेण' उच्छ्रयेण तथा 'पंचघणुसयाइं' पञ्चधनुःशतानि 'विक्खंमेणं' विष्कम्भेण विस्तारेण, तथा 'पव्वय-समियाओ' पर्वतसमिके पर्वततल्लये 'आयामेणं' आयामेन—दैर्घ्येण प्रज्ञप्ते । 'वणणओ वर्णकः—अत्र वर्णनपरो वाक्यसमूहो 'भाणियव्वो' भणितव्यः वक्तव्यः । सचास्यैव चतुर्थ-सूत्रे टीकायां द्रष्टव्य इति । 'तेण' तौ—पूर्वोक्तौ 'वणसंडा' वनपण्डौ खलु 'देसुणाइं' देशोने—देशेन—विं चिदेशेन ऊने—न्यूने दो 'जोयणाइं' द्वे योजने 'विक्खंमेणं' विस्तारेण, 'पउमवरवेइया समगा' पद्मवरवेदिका समके पद्मवरवेदिकासमाने 'आयामेणं' आयामेन—दैर्घ्येण 'किण्हे' कृष्णे कृष्णवर्णे 'किण्होभासे' कृष्णावभासे 'जाव वणणओ' यावत्—

व्यख्या इसी के चतुर्थ सूत्र में की जा चुकी है । "उभओ पांसि दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खत्तो" यह वैताड्य पर्वत अपने दोनो पार्श्वभागों से दो पद्मवर वेदिकाओ से स्पृष्ट हो रहा वैताड्य पर्वत के उत्तर पार्श्वभाग की ओर एक पद्मवर वेदिका है और वैताड्य पर्वत के दक्षिण पार्श्वभाग की ओर एक पद्मवर वेदिका है इसी प्रकार से उसके दोनों पार्श्वभागों की तरफ दो वनपण्ड है - ये पद्मवरवेदिकाएँ मणिमय पद्म की बनी हुई तथा वनपण्ड अनेक जातिय उत्तम वृक्ष समूह से युक्त है । "ताओण पउमवरवेइयाओ अद्धजोयण उद्धं उच्चत्तेणं पंच घणुसयाइं विक्खंमेण पव्वयसमियाओ आयामेणं वणणओ भाणियव्वो" ये पद्मवर

आ अन्थ न थोथा सूत्रमा इरवामा आवी छे उभओ पांसि दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिय वणसंडेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खत्तो" वैताड्य पर्वत अपने आन्तुओथी छे पद्मवर वेदिकाओने स्पर्शी रहै छे वैताड्य पर्वतना उत्तर पार्श्वभागानी तरफ् ओक पद्मवर वेदिका छे अने वैताड्य पर्वतना दक्षिण पार्श्वभागानी तरफ् ओक पद्मवर वेदिका छे आ प्रमाणे तेना अन्ने पार्श्वभागानी तरफ् छे वनपण्डा छे ओ पद्मवर वेदिकाओ मन्थिय पद्मनी अनेही छे तेमन् वनपण्ड अनेक जातीय उत्तम वृक्ष समूहथी युक्त छे, ताओण पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं उद्धं उच्चत्तेण पंच घणुसयाइं विक्खंमेण पव्वय समियाओ आयामेणं वणणओ भाणियव्वो ओ पद्मवर वेदिकाओ अण्णे गाँ नेटली गाँथी छे अने २००, ५०० धनुष नेटली थोडी छे तेमन् ओभाथी इरेनी दीर्घता पद्मवर वेदिका

यावत्पदेन 'नीले, नीलावभासे, हरिते, हरितावभासे, शीते शीतावभासे. स्निग्धे, स्निग्धावभासे तीव्रे, तीव्रावभासे, कृष्णे, कृष्णच्छाये, नीले, नीलच्छाये, हरिते, हरितच्छाये, शीते, शीतच्छाये, स्निग्धे, स्निग्धच्छाये तीव्रे तीव्रच्छाये. घनकटित-
टच्छाये रम्ये महामेघनिकुरम्बभृते' इत्यादि पञ्चमसूत्रतो बोध्यम् । व्याख्या च तत्
एव बोध्या ॥ सू० १२ ॥

मूलम्—वेयङ्गस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमपुरत्थिमेणं दो गुहोओ
पण्णत्ताओ, उत्तरदाहिणाययाओ पाईणपढीणवित्थिण्णाओ पण्णासं
जोयणाइं आयामेणं दुवालसजोयणाइं विक्खंभेणं अट्ट जोयणइं
उड्डं उच्चत्तेणं वड्ढमयकवाडोहाडियाओ, जमलजुयलकवाडघणटुप्प-
वेसाओ णिच्चंधयारत्तिमिस्साओ ववगयगहचंदसूरणक्खत्तजोइसपहाओ
जाव पडिक्खाओ तं जहा तमिसगुहो चैव खंडप्पवायगुहा चैव ।
तत्थणं दो देवा महिड्डिया महज्जुईया महाबला महायसा महासोक्खा
महा भागा पलिओवमट्ठिईया पस्विसंति, तं जहा कयमालए चैव
णट्टमालए चैव । । तेसिणं वणसंडाणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभा-
गाओ वेयङ्गस्स पव्वयस्स उभओ पासि दस दस जोयणाइं उड्डं
उप्पइत्ता एत्थणं दुवे विज्जाहरसेढीओ पण्णत्ताओ पाईणपढीणाय-
याओ उदीणदाहिणवित्थिण्णाओ दस दस जोयणाइं विक्खंभेणं
पव्वयसमियाओ आयामेणं उभओ पासि दोहिं पउमवरवेइयाहिं दोहिं
वणसंडेहिं संपरिक्खत्ताओ । ताओ णं पउमवरवेइयाओ अद्धजोयणं
उड्डं उच्चत्तेणं पंचधणुसयाइं विक्खंभेणं पव्वयसमियाओ आयामेणं
वण्णओ णेणव्वो वणसंडावि पउमवरवेइया समगा आयामेणं वण्णओ ।
विज्जाहरसेढीणं भंते । भूमिणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते

वेदिकाए दो दो कोश की उँचि है और ५००-५०० धनुष की चौडी है तथा इनकी प्रत्येक
पर्वत की दीर्घता पञ्चवर वेदिका जितनी है । यहाँ वनषण्ड का वर्णन जैसा जो पहिले कृष्ण
कृष्णा वभास आदि पदो द्वारार्पचन सूत्र में किया गया है वैसा ही वह वर्णन यहाँ पर भी
कर लेना चाहिये ॥१२॥

नेटली छे. अही वनष उनु वर्णन के रीते पडेवा पथम सूत्रमा करेवामा आन्धु छे ते रीते
७ सभञ्जु ॥१२॥

गोयमा बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पणत्ते से जहानामए आलिग
 पुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए,
 तं जहा—कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव तत्थणं दाहिणिल्लाए विज्जाहर—
 सेढीए रहनेउरत्रक्कवालपामोक्खा सद्धिं विज्जाहरणगरावासा पणत्ता
 एवोमेव सपुब्बावरेणं दाहिणिल्लाए उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेढीए
 एणं दसुत्तरं विज्जाहरणगरावाससयं भवतीतिमक्खायं, ते विज्जाहर—
 णगरा सिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजणवया जाव पांडेरूवा । तेषु णं
 विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसंति महयाहंभवंतमलयमं-
 दरमहिंदसारा रायवण्णओ भाणियव्वो । विज्जाहरसेढीणं मंते मणु
 याणं केरिसए आचारभावपढोयारे पणत्ते । गोयमा ! तेषं मणुया बहु
 संघयणा बहुसंठोणा बहुउच्चत्तपज्जवा बहुआउपज्जवा जाव सव्व
 दुक्खाणमंतं करेति ॥ सू० १३ ॥

छाया—वैताहयस्य खलु पर्वतस्य पाश्चात्यपौरस्त्येन द्वे गुह्ये प्रकृप्ते, उत्तरदक्षि
 णाऽऽयते प्राचीनप्रतोचीनविस्तीर्णे पञ्चाशत् योजनानि आयामेन द्वादश योजनानि
 विष्कम्भेण अष्ट योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन वज्रमयकपाटावघाटिते यमलयुगलकपाट
 घनदुष्प्रवेशे नित्यान्धकारतमिक्षे व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिःपथे यावत् प्रतिक्रमे
 तद्यथा—तमिक्षगुहा चैव १ खण्डप्रपातगुहा चैव २। तत्र खलु द्वौ देवौ महर्द्धिकौ महाद्यु
 तिकौ महायशसौ महासौख्यौ महानुभागौ पत्न्योपमस्थितिकौ परिवसत, तद्यथा कृतमा-
 लकश्चैव नृतमालकश्चैव । तयोः खलु वनषण्डयोः बहुसमरमणोयाद् भूमिभागाद् वैता-
 हयस्य पर्वतस्य उभयोः पार्श्वयोः दश दश योजनानि ऊर्ध्वम् उत्पत्य अत्र खलु द्वे
 विद्याधरश्रेण्यां प्रकृप्ते, प्राचीनप्रतोचीनाऽऽयते उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णे दश दश योज
 नानि विष्कम्भेण पर्वतसमिके आयामेन उभयोः पार्श्वयोः द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां
 वनषण्डाभ्यां संपरिश्लिप्ते । ताः खलु पद्मवरवेदिकाः अर्द्धयोजनमूर्ध्वमुच्चत्वेन पञ्चधनु
 शतानि विष्कम्भेण पर्वतसमिका आयासेण वर्णको नेतव्यः वनषण्डा अपि पद्मवरवेदिका
 समका आयामेन वर्णकः । विद्याधरश्रेण्योः भवन्तः । भूम्यो कोदशकः आकारभावप्रत्यक्ष
 तारः प्रकृप्तः, गौतमः । बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रकृप्तः, स यथानामकः आलिक्रुपुक्कर
 इति वा यावद् नानाविधपञ्चवर्णैर् मणिभिस्तृणैरूपशोभितः, तद्यथा—कत्रिमैश्चैव अकत्रि
 ष्चैव । तत्र खलु दक्षिणात्यायां विद्याधरश्रेण्यां गगनवल्गुप्रमुखाः पञ्चाशद् विद्याधर-

નગરાઽઽવાસાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, ઔત્તરાહ્યા વિદ્યાધરશ્રેણ્યાં રથનુપુરચક્રવાલપ્રમુલાઃ પષ્ટિવિદ્યાધર-
નગરાઽઽવાસાઃ પ્રજ્ઞપ્તા, પદ્મમેવ સપૂર્વાપરેણ દાક્ષિણાત્યાયામ્ ઔત્તરાહ્યા વિદ્યાધરશ્રેણ્યા
મેક દશોત્તરં વિદ્યાધરનગરાઽઽવાસશતં ભવતીત્યાખ્યાતમ્ । તાનિ વિદ્યાધરનગરાણિ ઋદ્ધ
સ્તિમિતસમૃદ્ધાનિ પ્રમુદિતજનજાનપદાનિ યાવત્ પ્રતિરૂપાણિ, તેપુ સ્ત્રુ વિદ્યાધરનગરેપુ
વિદ્યાધરરાજા. પશ્ચિવસન્તિ, મહાહિમવન્મલયમન્દ મહેન્દ્રસારાઃ રાજવર્ણકો ભણિતવ્યઃ ।
વિદ્યાધરશ્રેણ્યો ભેદન્ત । મનુજાના કોદશકઃ આકારભાવપત્યવતારઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ । ગૌતમ ।
તે સ્ત્રુ મનુજા વહુસંહનનાઃ વહુસંસ્થાનાઃ વહુચ્ચત્વર્યવાઃ ઘઘ્યાયુઃ પર્યવાઃ યાવત્
સર્વદુઃખાનામન્તં કુર્વન્તિ ॥ સ્. ૧૩ ॥

ટીકા—‘વેયદ્દસ્સ ણં’ इत्यादि ।

अथ वैताढ्यपर्वतगुहावर्णनमाह—‘वेयददस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमपुरत्थिमेणं’
वैताढ्यस्य स्तु पर्वतस्य पाश्चात्यपौरस्त्येन-पश्चिमपूर्वयोर्दिशोः ‘दो गुहाओ-
पण्णासाओ’ द्वे गुहे प्रज्ञप्ते, ते च उत्तरदाहिणाययाओ’ उत्तरदक्षिणाऽऽयते—उत्तर-
दक्षिणयोर्दिशोरायते दोर्धे, ‘पाईण पड्डीणवित्थिण्णाओ’ प्राचीन प्रतीचीनविस्तीर्णे—
पूर्वपश्चिमयोर्दिशोर्विस्तीर्णे—विस्तारयुक्तं ‘पण्णासं’ पञ्चाशत् पञ्चाशत्संख्यानि ‘जोयणाइं
आयामेणं’ योजनानि आयामेन—दध्येण ‘दुवालसजोयणाइं विक्खंमेणं’ द्वादश
योजनानि विष्कम्भेण—विस्तारेण ‘अद्दजोयणाइं’ अष्टयोजनानि ‘उद्दं’ उर्ध्वम्—उपरि
‘उच्चत्तेणं’ उच्चत्वेन प्रज्ञप्ते । पुनस्ते कथंभूते ? इत्याह—‘वइरामयकवाडोहाडियाओ’

“ वेयददस्स ण पव्वयस्स पच्चत्थिमेणं” इत्यादि

ટીકા—વૈતાઢ્ય પર્વત કો પશ્ચિમ ઓર પૂર્વદિશા મેં દો ગુહાએ કહી ગઈ હૈ । “ઉત્તર દાહિણાય-
યાઓ” યે ઉત્તર ઓર ક્ષિણ તક લમ્બી હૈ । ‘પાઈણપડ્ડીણ વિત્થિણ્ણાઓ’ “તથા પૂર્વ સે પશ્ચિમતક
ચોડી હૈ “પણ્ણાસ જોયણાઈ આયામેણં”, ઇનકી પ્રત્યેક કી લમ્બાઈ ૫૦ યોજન કી હૈ “દુવાલમ
જોયણાઈ વિક્કમ્મેણ” ઓર વિસ્તાર—ચોડાઈ ૧૨ યોજન કા હૈ “અદ્દ જોયણાઈ ઉદ્દ
ઉચ્ચત્તેણં વરૂરામયકવાડોહાડિયાઓ, જમલ જુયઠ કશાડ ઘણ દુ-પવેસાઓ ણિચ્ચધયારતિમિ-
સ્સાઓ વવગયગહચંદસૂરણક્ષત્તજોહસપહાઓ જાવ પઢિરૂવાઓ” ઇનકી પ્રત્યેક કો ઉંચાઈ ૮
યોજનકી હૈ. યે દોનો વજ્જમય કિવાડો સે આજ્ઞાદિત રહતી હૈ. તથા યે કિવાડ આપસ મેં

‘વેયદ્દસ્સ ણં પવ્વયસ્સ પચ્ચત્થિમ પુરત્થિમેણં’ इत्यादि सूत्र ॥૧૩॥

ટીકા—વૈતાઢ્ય પર્વતની પશ્ચિમ અને પૂર્વ દિશામાં બે ગુફાઓ કહેવાય છે “ઉત્તરદાહિ-
ણાયયાઓ,, એ ઉત્તર અને દક્ષિણ સુધી લાગી છે “પાઈણ પડ્ડીણ વિત્થિણ્ણાઓ” તેમજ
પૂર્વથી પશ્ચિમ સુધી ચોડી છે ‘પણ્ણાસં જોયણાઈ આયામેણં’ એમાંથી દરેકની લાંબાઈ ૫૦
યોજન જેટલી છે “દુવાલસ જોયણાઈ વિક્કમ્મેણં” અને વિસ્તાર—ચોડાઈ-૧૨ યોજન
જેટલી છે, “અદ્દ જોયણાઈ ઉદ્દં ઉચ્ચત્તેણં વરૂરામયકવાડોહાડિયાઓ જમલજુઅલકવાડ
ઘણ દુપવેસાઓ ણિચ્ચધયારતિમિસ્સાઓ વવગયગહચંદ સૂરણક્ષત્તજોહસ પહાઓ જાવ

वज्रमयकपाटावघाटिते—वज्ररत्नमयकपाटाभ्यामवघाटिते—आच्छादिते, अतएव 'जमल-
जुयलकवाहघणदुष्पवेसाओ' यमलयुगलकपाटघनदुष्प्रवेशे यमलानि समस्थितानि
युगलानि—युग्मानि घनानि निश्छिद्राणि च यानि कपाटानि तैः दुष्प्रवेशे कृष्टेन प्रवेशार्हे
पुनः कोदशे ? 'निचंचयारतिमिस्साओ' नित्यान्धकारतमिस्से नित्यं सदा अन्धं सतो-
रप्यायतलोचनयोः प्रवेशकजनं निश्चक्षुषमिव करोतीति अन्धकार तादृशं तमिस्रं—तिमिरं
यत्र ते तथ—सदा निबिडान्धकारयुक्ते, तादृशत्वे हेतुमाह—ववगयगहचंदसूर णक्खत्त जोइस
पहाओ' व्यपगतग्रहचन्द्रसूर्यं नक्षत्रज्योतिः पथे-व्यपगतं-निर्गतं ग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्राणां ज्योतिः
प्रकाशो यस्मात् स व्यपगत ग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्रज्योतिः, तादृशः पन्था ययोस्ते तथा यद्वा-
ववगयेत्यादि प्राकृतस्य "व्यपगत ग्रहचन्द्र सूर्यनक्षत्र ज्योतिः प्रमे" इतिच्छाया, व्यप
गता निर्गता ग्रहचन्द्रसूर्यनक्षत्र ज्योतिः प्रभा यतस्ते तथा । तत्र ज्योतिष्पदेन वहे ग्रहणम्,
ग्रहपदेनैव चन्द्रसूर्ययोरपि ग्रहणसम्भवे पुनस्तयोरुपादानं गोबलीवर्द्धन्यायेन प्रकर्षघोतना-
र्थम् 'जाव' यावत्—यावत्पदेन—'अच्छ लक्षणे लष्टे मृष्टे नीरजसौ निर्मले निष्पङ्के
निष्कङ्कटच्छाये सप्रमे समरीचिके सोद्घोते प्रासादीये दर्शनीये अभिरूपे" इत्येषां
पदानां संग्रहो बोध्यः, तथा 'पडिख्वाओ' प्रतिरूपे अच्छादि प्रतिरूपपर्यन्तपदानां
व्याख्या चतुर्थसूत्रतो बोध्या । अथ तद्गुहाद्वयं नामतो दर्शयति, 'तं जहा' तद्यथा 'तमि-
स्सगुहाचेव खडप्पवायगुहाचेव' तमिस्रगुहा चैव खण्डप्रपातगुहा चैवेति ।

'तत्थ णं' तत्र—तयोर्गुहयोः प्रत्येकमेक एको देव इति संकलनया 'दो देवा' द्वौ देवौ
परिवसतः इति वक्ष्यमाणेनान्वयः । तौ च कीदृशौ ? इति जिज्ञासायामाह—'महिद्धिया'

इस तरह से जुड़े रहते हैं कि जिनकी वजह से उनमें प्रवेश पाना बड़े कष्ट से होता है. इनमें
सदा ऐसा गाढ अन्धकार रहता है कि वह प्रवेशक जन को निश्चक्षुष जन की तरह कर देता
है अर्थात् ये निबिड अन्धकार से युक्त रहती है क्यो कि ग्रह, चन्द्र सूर्य एव नक्षत्र इनका वहा
प्रकाश तक नहीं पहुचता है ये दोनों गुफाएं अच्छ से लेकर प्रतिरूप तक के विशेषणों वाली
हैं इन गुफाओ के नाम "तमिस्सगुहा चैव खडप्पवायगुहाचेव" तमिस्रगुहा और खडप्रपात-
गुहा हैं ।

"तत्थ ण दो देवा महिद्धिया महज्जुईया महाबला, महायसा, महासोकखा, महाणुभागा
पलिओवमठईया परिवसति" इन प्रत्येक गुफामें दो देव रहते है ये विमान परिवार आदि

पडिख्वाओ' ओभाथी इरेके इरेकनी जिआथं ६ येअन अेटलीं छे ओ ओ णन्ने वणमय
कपाटोथी आच्छादित रहे छे तेमअ ओ क्वाटो पररपर आ रीते संयुक्त थयेला छे के ओथी
तेमा प्रविष्ट थवु अहुंण हुंकर कायं छे ओमा ग ६ अ धकार व्याम छे तेणी ओमा प्रविष्ट
अनने ते अक्षुविहीननी ओम अनावी हे छे. अेटलीं के ओओ निमिड अ धकार पूणु रहे
छे केमके अद, अद्र सूर्य, तेमअ नक्षत्रोने त्या प्रकाश पडोअने नथी ओ अन्ने शुक्षओ
अच्छथी मांडीने प्रति ३५ सुधीना विशेषयोथी युक्त छे. ओ शुक्षओना नाम 'तमिस्स गुहा
चैव खडप्पवाय गुहा चैव' तमिस्र शुक्ष अने अंउ प्रपात शुक्ष छे

तत्थण दो देवा महिद्धिया महज्जुईया महाबला, महायसा, महासोकखा, महाणुभागा

इत्यादि—महर्द्धिकादि पदव्याख्याऽष्टमसूत्रे विजयदेववद् विजेया । तो देवी तत्र 'कय-मालएचेव' कृतमालकस्तमिस्रगुहाधिपतिः, 'नट्टमालएचेव' नृत्तमालकः खण्डप्रपातगुहाधिपतिश्चैव ।

अथात्र विद्याधरश्रेणिद्वयं प्ररूपयित्तुमाह—'तेसि णं वणसंडाण' तयोः—पूर्वोक्तयोः खलु वनपण्डयोः 'बहुसमरमणिज्जाओ' बहुसमरमणीयात्—अत्यन्तसमतलात् अतएव रमणीयात् सुन्दरात् 'भूमिभागाओ' भूमिभागात् भूमिभागप्रदेशात् 'वेयइहस्स-पव्वयस्स उभओ पासि' वैताद्वयस्स पर्वतस्य उभयोः द्वयोः पार्श्वयोः 'दस दम जोयणाइ उइह' दश दश योजनानि ऊर्ध्वम्—ऊपरितनभागम् 'उप्पइत्ता' उत्पत्त्य गत्वा 'तत्थणं दुवे विज्जाहरसेदीओ' अत्र इह खलु द्वे विद्याधरश्रेण्यौ विद्याधराणां श्रेण्यौ आश्रयभूते पङ्क्ती 'पणत्ताओ' प्रज्ञप्ते, तयोरेका दक्षिणभागे अपरा चोत्तरभागे ते द्वे क्रीदश्यौ ? इत्याह—'पाईणपडीणाययाओ' प्राचीन प्रतीचीनायते—पूर्वपश्चिमयोर्दिशोरायते दीर्घे, 'उदीण दाहिण वित्थिण्णाओ' उदीचीन दक्षिण विस्तीर्णे—उत्तरदक्षिणयोर्दिशोर्विस्तीर्णे—

रूप महा ऋद्धि के स्वामी हैं महाधुति वाले हैं महा बल वाले हैं महा यशवाले हैं महासुखशाली है, महाप्रभाववाले है, इन पदों की व्याख्या विजयदेव की तरह अष्टम सूत्र में की जा चुकी है, इनकी प्रत्येक की स्थिति १—१ पद्योपम की है "तं जहा"—कयमालए चेव, नट्टमालए चेव" इन देवों के नाम कृतमालक और नृत्यमालक हैं इनमें जो कृतमालकदेव है वह तमिस्र-गुहा का अधिपति है । "तेसिण वणसंडाणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ" इन वन-पण्डों के भूमिभाग बहुसम हैं और बहुत रमणीय है । "वेयइहस्स पव्वयस्स उभओ पासि दस दस जोयणाइ उइह उप्पइत्ता एत्थणं दुवे विज्जाहरसेदीओ पणत्ताओ" वैताद्वय पर्वतके दोनों पार्श्वभागों में दस योजन ऊपर जाकर विद्याधरों की दो श्रेणियाँ कही गई हैं "पाईणपडीणा-ययाओ उदीणदाहिणवित्थिण्णाओ" ये विद्याधरश्रेणिया पूर्व से पश्चिमतक लम्बी है और उत्तर से

पल्लिवोवमदिइया परिवसंति ओमाथी हरेक शुद्धिमा मे देवो रडे छे ओओ विमान परिवार आदि इपथी महाऋद्धिना स्वामी छे महाधुनिवाणा छे, महापणवान छे महायशवाणा छे महासुखशाली छे, महा प्रभाव सपन्न छे आ पटोनी व्याख्या अष्टम सूत्रभा विजयदेवनी नेम करवाभां आवी छे आमाथी हरेकनी स्थिति १—१ पद्योपम नेटली छे "तं जहा—कयमालए चेव नट्टमालए चेव" आ देवानानामो कृतमालक अने नृत्यमालक छे. आमाथी ने कृतमालक देव छे ते तमिस्रशुद्धिना अधिपति छे अने नृत्यमालक छे ते अउप्रपात शुद्धिना अधिपति छे "तेसिण वणसंडाणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ" ओ वनपण्डोना भूमिभाग बहुसम छे अने भूषण रमणीय छे "वेयइहस्स पव्वयस्स उभओ पासि दस दस जोयणाइ उइह उप्पइत्ता एत्थणं दुवे विज्जाहरसेदीओ पणत्ताओ" वैताद्वय पर्वतना अने पार्श्वभागोमा इथ योजन ऊपर अर्धने विद्याधरानी मे श्रेणी छे. "पाईण पडीणाययाओ उदीणदाहिणवित्थिण्णाओ" ओ विद्याधर श्रेणीओ पूर्वथी

‘वणसंडावि’ वनषण्डा अपि ‘पद्मवरवेइया समगा’ पद्मवरवेदिका-पद्मवरवेदिका तुल्या ‘आयामेण’ आयामेन बोध्याः । ‘वण्णओ’ वर्णक-वनषण्डवर्णकपर सर्वोऽपि पद समूहोऽस्यैव पठचमसूत्रे टीकायां द्रष्टव्य इति ।

अथ तयोः श्रेण्योराकारभावप्रत्यवतारं पृच्छति— ‘विज्जाहरसेढीणं’ इत्यादि, ‘विज्जाहर सेढीणं भंते!’ हे भदन्त ! विद्याधरश्रेण्योः—विद्याधरश्रेणिद्वय सम्बन्धिन्योः ‘भूमिणं केरिसए’ भूम्योः कीदृशकः—कीदृशः ‘आयारभावपडोयारे’ आकारभावप्रत्यवतारः स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः ‘पण्णत्ते’ प्रज्ञप्तः भगवानुत्तरयति ‘गोयमा बहुसमरमणिज्जे’ हे गौतम ! बहुसमरणीयः—अत्यन्तसमतलः अत एव रमणीयः ‘भूमिभागे-पण्णत्ते’ भूमिभागः प्रज्ञप्तः, ‘से जहा णामए आलिगपुक्खरेइ वा जाव’ स यथा नामकः आलिङ्गपुष्कर इति वा यावत् ‘णाणाविहपंच वण्णेहि मणीहिं तणेहिं उवसोभिए’ नाना विधि पञ्चवर्णैः मणिभिः—तृणैश्च उपशोभितः आलिङ्गपुष्कर इति वा इत्यारभ्य नाना-विध पठचवर्णैर्मणिभि स्तृणैश्चोपशोभित इत्यन्त पद सङ्ग्रहो राजप्रश्रीयसूत्रस्य पठच-

की है वनषण्ड का वर्णन करने वाला पदमसूत्र इस सूत्रके पंचम सूत्र में कहा जा चुका है इसलिए सूत्रकार ने “वनसंडावि पद्मवरवेइयाममगा आयामेण वण्णओ” ऐसा यह सूत्र कहा है ।

“विज्जाहरसेढीणं भंते ! भूमिणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते” हे भदन्त ! विद्याधर श्रेण्यो का आकारभाव प्रत्यवतार—स्वरूप कैसा कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—“गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते” हे गौतम विद्याधरश्रेणियो का भूमिभाग बहुसम-विलकुलसमतलवाला—अतएव रमणीय कहा गया है । “से जहा णामए आलिगपुक्खरेइ वा जाव णाणाविह पंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए” वह ऐसा बहुसम है कि जैसा मृदंग का मुख पुट बहुसम होता है, इत्यादि रूप से जैसा वर्णन भूमिभाग का यावत् वह नाना प्रकार के पांच वर्णोंवाले मणियों से एवं तृणों से उपशोभित है” यहां तक के पद समूहो द्वारा किया गया है वैसा ही वह सब वर्णन इसके सम्बन्ध में यहा पर भी कर लेना चाहिये’ यह सब वर्णन राजप्रश्रीय सूत्र के १५ वे सूत्र से लेकर १९ वें सूत्रतक करने में

छे आ श्रयना पथम सूत्रमा जे वनष डोनु वण्णं करवामा आवेल छे जेथी न सूत्रकारे “वनसंडावि पद्मवरवेइया समगा आयामेण वण्णओ” आ प्रभाणे कहु छे

‘विज्जाहर सेढीणं भंते ! भूमिणं केरिसए आयारभाव पडोयारे पण्णत्ते’ छे भदन्त ! विद्याधर श्रेण्योने आकारभाव प्रत्यवतार—स्वरूप विषे शु कहु छे ? जेना जेवाममा प्रभु कहे छे ‘ गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते’ छे गौतम ! विद्याधर श्रेण्यो जेना भूमिभाग बहुसम—जेक हम सम—जेथी रमणीय छे “से जहा णामए आलिग पुक्ख रेइ वा जाव णाणाविह पंचवण्णेहिं मणीहिं तणेहिं उवसोभिए” ते भूदंगना सुभयन—गहु-सम छे. इत्यादि रूपमा जेवु वण्णं “यावत् ते अनेक जातना पथवण्णोथी युक्त मणिज्जे तेमथ तृणोथी उपशोभित छे “अही सुणीना पडसमूडे वडे भूमिभागनु वण्णं पडेलां

दशसूत्रादारभ्य एकोनविंशतितमसूत्रपर्यन्तेभ्यः पठ्यभ्यः सूत्रेभ्य कर्तव्यः, तदर्थश्च तत्रैव मत्कृतसुबोधिनीटीकायां द्रष्टव्य इति । कीदृशै र्मणिभिस्तृणैश्चोपशोभित-इति । जिज्ञासायामाह 'तं जहा' तद्यथा 'कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव' कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैवेति । तत्र कृत्रिमाः शिल्पिकौशलनिर्मिताः, अकृत्रिमाः= स्वाभाविकाः, तैरुभयैः स भूमिभागः उपशोभित इति सम्बन्धः ।

अत्रोभयोर्विधाधर श्रेण्योर्नगर संख्यामाह-'तत्थ णं' तत्र-तयो द्वयोर्विधाधर श्रेण्यो-र्मध्ये खलु 'दाहिणिल्लाए' दाक्षिणात्यायां-दक्षिणभागवर्तिन्यां 'विज्जाहर सेठीए' विधाधरश्रेण्यां गगनवल्लभप्रमुखाः-गगनवल्लभः प्रमुखः-प्रधानो येषु ते तथाभूताः पठ्य-शत्संख्यकाः विधाधरनगराऽऽवासाः विधाधराणां नगरावासाः-राजधान्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-ओत्तराहायाम्-उत्तरभागवर्तिन्यां विधाधरश्रेण्यां 'रहनेउरचक्रवालपामोक्खा' रथनूपुर चक्रवालप्रमुखाः-रथनूपुर चक्रवालाः प्रमुखो येषु तथाभूता 'विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता' विधाधरनगरावासाः प्रज्ञप्ताः, 'एवामेव' एवमेव प्रदर्शितप्रकारेणैव 'सपुव्वावरेणं' सपूर्वा-परेण-पूर्वापरसंख्यासंकलने 'दाहिणिल्लाए' दाक्षिणात्यायां-दक्षिणभागवर्तिन्याम् 'उत्तरिल्लाए' औत्तराहायाम्-उत्तरभागवर्तिन्यां च 'विज्जाहरसेठीए' विधाधरश्रेण्यां 'एगं द-सुत्तरं' दशोत्तरं-दशाधिकम्, एकम्-एकसंख्यकम्, 'विज्जाहरणगरावाससयं' विधाधर-नगरावासशतम्-विधाधरनगरावासानां शतं भवति, उभयश्रेणीस्थानां विधाधराणां दशाधिका एकशतसंख्यका राजधान्यो भवन्तीत्यर्थः, 'भवन्तीति मक्खायं' इति एतत्

आया है ये मणि और तृण वहां पर "कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव" कृत्रिम भी है और अकृत्रिम भी हैं शिल्पियो द्वारा अपनी कुशलतासे निर्मित जो मणि और तृण है वे कृत्रिम और स्वाभाविक जो मणि और तृण है वे अकृत्रिक है । "तत्थण दाहिणिल्लाए विज्जा-हरसेठीए रहनेउरचक्रवालपामोक्खा सद्धि विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता" दक्षिण विधाधर श्रेणि में गगनवल्लभ आदि ५० नगर है राजधानिया हैं तथा उत्तर विधाधरश्रेणी में रथनू-पुर चक्रवाल आदि ६० नगर है-राजधानियां है इस तरह ये सब नगर ११० हैं दोनों

करवाया आवेला छे तेषु ७ वर्षुन अही पण्ण समणुं जेधंओ आ वर्षुन राजप्रश्रीय सूचना १५ भा सूत्रधी आडीने १६ भा सूत्र सुधी करवायां आवेला छे आ मण्णि अने तृण त्या "कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव" कृत्रिमपण्ण छे अने अकृत्रिम पण्ण छे. शिल्पकारो स्वकौशलथी मण्णि अने तृणेषु निर्माण्ण करे छे ते कृत्रिम अने स्वाभाविकरीते जे मण्णि अने तृणो संश्रित थाय छे ते अकृत्रिम छे. "तत्थण दाहिणिल्लाए विज्जाहरसेठीए रहनेउरचक्रवालपामोक्खा सद्धि विज्जाहरणगरावासा पण्णत्ता" दक्षिण विधाधर श्रेणीमा गगनवल्लभ पगेरे ५० नगरो छे-राजधानीओ छे. तेगळ उत्तरविधाधर श्रेणीमा रथनूपुर 'चक्रवाल पगेरे ६० नगरो आवेला छे राजधानीओ-छे. आभ आ सर्व नगरो अने श्रेणीओमा

आख्यातं-कथितम् । 'ते विज्जाहरणगरा' तानि अनन्तरोक्तानि विद्याधरनगराणि कीदृशानि ? इति जिज्ञासायामाह-'रिद्धत्थिमियसमिद्धा' ऋद्धस्तिमित समृद्धानि 'पमुइय जणजाणवया जाव पडिख्वा' प्रमुदितजनजानपदानि यावत् प्रतिरूपाणि ऋद्धानि= विभवभवनादिभिर्वृद्धिं प्राप्तानि, स्तिमितानि-स्वपरचक्रभयरहितानि, समृद्धानि-धनधान्यादिसमृद्धियुक्तानि, अत्र द्विपदकर्मधारयः । तथा प्रमुदित जनजानपदानि-प्रमुदिताः हृष्टाः प्रमोदकरवस्तुनां सद्भावात् जना नगरीवास्तव्याः लोकाः जानपदाः जनपदभवाः देशभवास्तत्राऽऽयाताः सन्तो येषु तानि तथा । यावत् यावच्छब्दात् नगरवर्णनमौपपातिकसूत्रवर्णितचम्पानगरीवद् बोध्यम् । केवलं स्त्रीनपुंसकत्वकृतो विशेषः तदर्थजिज्ञासुभिरौपपातिकसूत्रस्य मत्कृता पीयूषवर्षिणी टीका विलोकनीयेति । प्रासादीयानि दर्शनीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणीत्येषां व्याख्या प्राग्वत् । 'तेषु णं विज्जाहरणगरेसु' तेषु-पूर्वोक्तेषु विद्याधरनगरेषु खलु 'विज्जाहररायाणो' विद्याधरराजानः विद्याधराणां राजानः-अधिपतयः 'परिवसन्ति' परिवसन्ति-निर्वसन्ति । "विद्याधरराजान"

श्रेणियो में । "ते विज्जाहरणगरा रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइय जणजाणवया जाव पडिख्वा" ये विद्याधरो की राजधानिया विभव, भवन आदिकों द्वारा ऋद्ध है-वृद्धि को प्राप्त है, स्तिमित है-स्वचक्र और परचक्र के भय से रहित है, एवं धनधान्यादि रूप समृद्धि से युक्त है । तथा प्रमोदकर वस्तुओं के सद्भाव से नगरी में बसने वाले जन एव बाहर से आये हुए जन सब सदा प्रमुदित रहते हैं यहां यावत् शब्द से सूत्रकार ने यह प्रकट किया है कि इन नगरियों का वर्णन जैसा औपपातिक सूत्र में चम्पा नगरी का वर्णन किया गया है वैसा ही है उस के वर्णन में आये हुए पदों की व्याख्या हमने उसकी पीयूषवर्षिणी टीका में स्पष्ट की है प्रासादीय दर्शनीय, अभिरूप एव प्रतिरूप पदों की व्याख्या यथास्थान कर दी गई है "तेषुणं विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसन्ति महया हिमतवतमलयमदरमहिंदसारा रायवण्णो भाणियब्बो" उन विद्याधर नगरों में विद्याधर राजा रहते हैं ये सब राजा हैमवतक्षेत्र की

११० छे 'ते विज्जाहरणगरा रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजणजाणवया जाव पडिख्वा' आ विद्याधरोनी राजधानीओ विभव, भवन वगैरथी ऋद्ध छे, वृद्धि-प्राप्त छे, स्तिमित छे-स्वचक्र अने परचक्रना भयथी मुक्ता छे, तेभज धनधान्यादिइय समृद्धिथी युक्ता छे तथा प्रमोददायिनी वस्तुओना सद्भावथी नगरमां रहे नारा तेभज महारथी आवेदा नने प्रमुदित रहे छे आही 'यावत्' शब्दथी सूत्रकारे आ वात स्पष्ट करी छे के आ नगरीयोनु वर्णन के रीते औपपातिक सूत्रमा यथा नगरीनु वर्णन करवाभां आओ छे तेषुं ज छे यथा नगरीना वर्णनमा के पदो छे तेनी व्याख्या अने तेनी पीयूषवर्षिणी टीकाभा करी छे प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप अने प्रतिरूप पदोनी व्याख्या यथास्थान करवाभा आवी छे "तेषुणं विज्जाहरणगरेसु विज्जाहररायाणो परिवसन्ति महयाहिमवत मलय मदर महिंदसारा रायवण्णो भाणियब्बो" ते विद्याधर

इत्यत्र समासान्तविधेरनित्यत्वाद्दृक्प्रत्ययाभावो बोध्यः ते कीदृशाः ? इति जिज्ञासा-
यामाह—‘महाहिमवन्तमलयमदरमहिदसारा’ महाहिमवन्मलयमन्दरमहेन्द्रसाराः महा-
हिमवान्—हैमवत क्षेत्रस्योत्तरतः सीमाकारी वर्षधरः पर्वतः, मलयः पर्वतविशेषः, मन्दरः—
मेरुः, महेन्द्रः पर्वतविशेषः, ते इव साराः प्रधानाः इत्यादि ‘रायवर्णओ’ राजवर्णकः-
राजवर्णनपरः पदसमूहोऽत्र ‘भाणियव्वो’ भणित्तव्यः—वक्तव्यः । अयं च—औपपातिक
सूत्रस्य एकादशसूत्रतो बोध्यः तदर्थश्च तत्रैव मत्कृतपीयूषवर्षिणी टीकातोऽवगन्तव्य इति ।

अथ विद्याधरश्रेणिद्वयवास्तव्य मनुजानामाकारभावप्रत्यवतारं पृच्छति—‘विज्जा-
हरसेदीणं भंते ! मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पणत्ते’ विद्याधरश्रेण्योः भदन्त
मनुजानां-मानवानां कीदृशकः-कीदृशः आकारभावप्रत्यवतारः-स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः प्रज्ञप्तः
कथितः ? इति पृष्ठो भगवानाह—‘गोयमा! ते णं मणुआ बहुसघयणा’ हे गौतम !
ते विद्याधरश्रेणि वास्तव्यः खलु मनुजाः—मनुष्या बहुसंहननाः—वह्नि वज्ररूपभनारा-

उत्तर दिशा में सीमाकारी महाहिमवान् पर्वत, एव मलय पर्वत मेरुपर्वत और महेन्द्र पर्वत के
जैसे प्रधान है इन राजाओ का और विशेष वर्णन देखना हो तो औपपातिक सूत्र के ११
वें सूत्र की टीका देखनी चाहिये, वहां पर विस्तार के साथ यह वर्णन करने में आया है ।

अब सूत्रकार विद्याधरश्रेणिद्वय के निवासी जनो के आकार भाव प्रत्यवतार को प्रकट
करने के लिये प्रश्नोत्तर के रूप में उसे स्पष्ट करते हैं—“विज्जाहर सेदीणं भंते ! मणुयाणं
केरिसए आयारभावपडोयारे पणत्ते’ हे भदन्त ! विद्याधर श्रेणिद्वय में रहेनेवाले मनुष्योंका
आकार भाव प्रत्यवतार-स्वरूप कैसा कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रमु कहते हैं—“गोयमा !
तेणं मणुजा बहुसघयणा, बहुसठाणा, बहु उच्चत्त पज्जवा बहु आउपज्जवा जाव सव्व दुक्खाण
मत्तं करेत्ति” हे गौतम ! विद्याधर श्रेणि द्वय निवासी मनुष्यो का स्वरूप इस प्रकार से
कहा गया है—वे वज्र रूपम नाराच आदि सहनन वाले होते हैं, समचतुरस्र आदि संस्थान

नगरोभा विद्याधर राजा रहे छे आ जधा राजज्जा हैभवत क्षेत्रनी उत्तर दिशाभा सीमा
कारी महाहिमवान् पर्वत तेभव मलय पर्वत मेरु पर्वत अने महेन्द्र पर्वतना जेवा
प्रधान छे आ राजज्जा विषे लखुवु होय तो औपपातिक सूत्रना ११ भा सूत्रनी टीका
जेवी जेछेत्ति त्या विस्तारपूर्वक आ विषे वखुन करवामां आब्धुं छे.

इवे सूत्रकार विद्याधर श्रेणिद्वयना निवासीजनोना आकारभाव प्रत्यवतार-विषे स्पष्टता
करवा भाटे प्रश्नोत्तर रूपमां पोतानु कथन आ रीते प्रकट करे छे के—

“विज्जाहार सेदीणं भंते ! मणुयाण केरिसए आयारभावपडोयारे पणत्ते ?” छे
भदंत ! विद्याधर श्रेणिद्वयभा रहेनारा भाखुसोना आकार भावप्रत्यवतार-स्वरूप-रूप कहेवामां
आवेत्त छे ? जेना जवाजभा प्रभु कहे छे के “गोयमा ! तेणं मणुया बहुसघयणा बहुस
ठाणा बहुउच्चत्तपज्जवा बहु आउपज्जवा जाव सव्व दुक्खाण मत्तं करेत्ति” छे गौतम !
विद्याधर श्रेणिद्वय निवासी मनुष्योवुं स्वरूप जेवुं कहेवामां आवेत्तुं छे. समचतुरस्र आदि

चादीनि संहननानि-वपुर्द्वीकरणास्थिनिचयरूपाणि येषां ते तथा, 'बहुसंटाणा' बहुस-
स्थानाः-बहूनि समचतुरस्रादीनि संस्थानानि-विशिष्टावयवगचनारूपशरीराकृतयो येषां
ते तथा, 'बहु उच्चत्तपञ्जवा' बहूच्चत्वपर्यवाः बहवः नानाविधा उच्चत्वस्य शरीरोच्छ्र-
यस्य पर्यवाः पञ्चधनुशतादिका मानविशेषा येषां ते तथा, तथा 'बहु आउपञ्जवा'
बह्वायुः-पर्यवाः-बहवः आयुषः पूर्वकोटिर्वर्षशतादिकाः पर्यवाः-विशेषा येषां ते तथा,
'जाव' यावत्-यावत्पदेन "बहूनि वर्षाणि आयुः पालयन्ति पालयित्वा अप्येके निरय-
गामिनः अप्येके तिर्यग्गामिनः, अप्येके मनुजगामिनः अप्येके देवगामिनः, अप्येके
सिध्यन्ति मुच्यन्ते परिनिर्वान्ति" इत्येषां पदानां मद्ग्रहो बोध्य, 'सर्वदुक्खानामन्तं करे ति'
सर्वदुक्खानामन्तं कुर्वन्ति । एषां व्याख्या एकादशसूत्रतो बोध्या ॥ सू० १३ ॥

मूलम्-तासि णं विज्जाहरसेदीणं बहुममरमणिज्जाओ भूमिमा-
गाओ वेयड्ढस्स पव्वयस्स उभओ पासिं दस जोयणाइं उड्ढं उप्प-
इत्ता एत्थ णं दुवे आभिओगसेदीओ पण्णत्ताओ पाईणपडीणायाओ
उदीणदाहिणवित्थिण्णओ दस दस जोयणाइं विक्खंभेणं पव्वय

वाले होते हैं, इनके शरीर की ऊँचाई पाचसौ धनुष आदि की होती है, पूर्वकोटिर्वर्षशत आदि
की इनकी आयु होती है यावत् पद के अनुसार वे इनकी आयु का अच्छी तरह से पालन
करते हैं-पालन करके मृत्यु के अवसर पर मर कर उनमें से कितनेक तो नरकगामी होते
हैं, कितनेक तिर्यग्गतिगामी होते हैं, कितनेक मनुष्यगतिगामी होते हैं और कितनेक देवगति
गामी होते हैं । कितनेक सिद्ध-कृतकृत्य हो जाते हैं केवलज्ञान रूपी आलोक से लोक-
लोक के ज्ञाता हो जाते हैं सर्व कर्मों से रहित हो जाते हैं, समस्त कर्मकृतविकार से
रहित हुए अपने आप में समा जाते हैं शारीरिक एवं मानसिक रूप समस्त क्लेशों का
नाश कर देते हैं-इस तरह अव्यावाध सुख के वे भोक्ता हो जाते हैं । ऐसी ही व्याख्या
इसके ११ वे सूत्र में की जा चुकी है ॥ १३ ॥

संस्थानवाणा डोय छे ज्येभना शरीरणी उ च्याध पायसे धनुष वगेरे जेट्ठी डोय छे पूर्व
कोटि वर्षशत आदि जेट्ठी आयु डोय छे. 'यावत् पदधी ओ रूपट थाय छे के ज्येओ
आट्ठु आयु थोळस लोअवे छे आयु लोअवीने मृत्यु वपते तेजोभांथी केट्ठाक नरकगामी
डोय छे, केट्ठाक तिर्यग् गतिगामी डोय छे अने केट्ठाक मनुष्य गतिगामी डोय छे अने
केट्ठाक-देवगतिगामी डोय छे केट्ठाक सिद्ध-कृतकृत्य-थध जय छे-देवज्ञानरूपी आलोअथी
दोआलोअना ज्ञाता थध जय छे सर्व कर्मथी रहित थध जय छे समस्तकर्मकृतविकारथी
रहित थयेदा तेजो स्वभां न समवडत थध जय छे. शारीरक अने मानसिकरूप मभस्त
क्लेशोने विनष्ट करी नाये छे आ रीते अथाभाध सुभना तेजो बोक्ता थध जय छे ज्येवी
न थाथा ज्येना न ११ भा सूत्रभा पडेदा करवाभा आवी छे. ॥ १३ ॥

समियाओ आयामेणं उमओ पासि दोहें य वणसंडेहिं संपरिक्खि
 त्ताओ वण्णओ दोण्हवि, पव्वयसमियाओ आयामेणं । आभियोग-
 सेदीणं भंते ! केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा बहु
 समरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव तणेोहें उवसोभिए वण्णाइं
 जाव तणाणं सदोत्ति । तासि णं आभियोगसेदीणं तत्थ तत्थ देसे
 तहिं तहिं बहवे वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयंति संयाति
 जाव फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति । तासु णं आभि
 ओगसेदीसु सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमजमवरुणवेसभणकाइयाणं
 आभियोगाणं देवाणं बहवे भवणा पण्णत्ता. ते णं भवणा बाहें वट्टा
 अंतो चउरंसा वण्णओ जाव अच्छरगणसंघविकिण्णा जाव पडिख्वा ।
 तत्थ णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो सोमजमवरुणवेसभणकाइया
 बहवे आभियोगा देवा महिद्धिया महज्जुईया जाव महासोक्खा
 पलिआवमट्टिइया पखिसंति । तासि णं आभियोगसेदीणं बहुसमर-
 मणिज्जाओ भूमिभागाओ वेयड्ढस्स पव्वयस्स उमओ पासि पंच पंच
 जोयणाइं उड्ढं उप्पइत्ता. एत्थणं वेयड्ढस्स पव्वयस्स सिहरतले पण्णत्ते
 पाईणपडिणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दस जोयणाइं विक्खंमेणं
 पव्वयसमगे आयामेणं से णं इक्कोए पउमवरवेइयाए इक्केणं वणसं-
 हेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, पमाणं वण्णओ दोण्हंपि । वेयड्ढस्स
 णं भंते ! पव्वयस्स सिहरतलस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते
 गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते से जहाणामए आलिंण
 पुक्खरेइ वा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए जाव
 वावीओ पुक्खरिणीओ जाव वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसं
 यंति जाव मुंजमाणा विहरंति ।

जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे भारहेवासे वेयड्ढपव्वए कइ कूडा
 पण्णत्ता ? गोयमा ! णव कूडा पण्णत्ता, तं जहा—सिद्धोयणकूडे ? दाहि

ण्डुभरहकूडे २ खंडप्पवायगुहाकूडे ३ मणिभद्रकूडे ४ वेयडूकूडे
 ५ पुण्णभद्रकूडे ६ तिमिसगुहाकूडे ७ उत्तरडूभरहकूडे ८ वेसमणकूडे
 ॥ सू० १४ ॥

छाया—तयोः खलु विद्याधरश्रेण्योः बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् वैताढ्यस्य पर्वतस्य उभयोः पार्श्वयोः दश योजनानि ऊर्ध्वमुत्पत्य अत्र खलु द्वे आभियोग्यश्रेण्यो प्रज्ञप्ते प्राचीनप्रतीचीनाऽऽयते उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णं दशदश योजनानि विष्कम्भेण पर्वतसमिके आयामेन उभयोः पार्श्वयोः द्वाभ्यां पञ्चवरवेदिकाभ्यां च जनगण्डाभ्यां संपरिक्षिप्ते वर्णको द्वयोरपि पर्वतसमका आयामेन आभियोग्यश्रेण्यो भवन्न कीदृशकः आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्त गौतम । बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः यावत् तृणैरुपशोभितवर्णा यावत् तृणानां शब्द इति । तयोःखलु अभियोग्यश्रेण्याः तत्र तत्रदेशे तत्र तत्र बहवो व्यन्तरा देवाश्च देव्यश्च आसते शेरने यावत् फलवृत्तिविशेष प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति । तयोः खलु अभियोग्य श्रेण्योः शकस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमयमवरुणवैश्रवणकायिकानामाभियोग्यानां देवानां बहूनि भवनानि प्रज्ञप्तानि । तानि खलु भवनानि बहिः वृत्तानि अन्तःचतुरस्राणि वर्णकः यावत् अप्सरागणसंघविकीर्णानि यावत् प्रतिरूपाणि । तत्र खलु शकस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोमयमवरुणवैश्रवणकायिका बहव आभियोग्या देवा महर्द्धिका महाद्युतिका यावत् महासौख्याः पत्न्योपमस्थितिकाः परिघसन्ति ।

तयोः खलु आभियोग्यश्रेण्यो बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् वैताढ्यस्य पर्वतस्य शिखरतल प्रज्ञप्तम्, प्राचीनप्रतीचीनाऽऽयतम् उदीचीन दक्षिणविस्तीर्णं दश योजनानि विष्कम्भेण पर्वतसमकम् आयामेन । तत् खलु एकया पञ्चवरवेदिकया पकेन वनखण्डेन सर्वत समन्तात् संपरिक्षिप्तम् प्रमाणं वर्णकोद्वयोरपि ।

वैताढ्यस्य खलु भवन्त । पर्वतस्य शिखरतलस्य कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः । गौतम । बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, स यथानामकः आलिङ्गपुष्कर इति वा यावत् नानाविधपञ्चवर्णैः मणिभिरुपशोभितः, यावत् वाप्यः पुष्करिण्यः यावत् व्यन्तरा देवाश्च देव्यश्च आसते यावद् भुञ्जाना विहरन्ति,

जम्बूद्वीपे खलु भवन्त । द्वीपे भारते वैताढ्यपर्वते कतिकूटानि प्रज्ञप्तानि गौतम नवकूटानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा सिद्धायतनकूटं १ दक्षिणार्द्धभरतकूटं २ खण्डप्रपातगुहाकूटं ३ मणिभद्रकूटं ४ वैताढ्यकूटं ५ पूर्णभद्रकूटं ६ तमिस्रगुहाकूटम् ७ उत्तरार्द्धभरतकूटम् ८ वैश्रवणकूटम् ९ ॥ सू० १५ ॥

टीका—‘तासि णं विज्जाहरसेदीणं’ इत्यादि । अथात्रैव वर्तमानाभियोग्यश्रेणीं निरूपयति ‘तासि णं’ तयोः—पूर्वोक्तयोः खलु ‘विज्जाहरसेदीणं बहुसमर-

‘तासिण विज्जाहरसेदीणं बहुसमरमणिज्जाओ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—उन विद्याधर श्रेणियों के बहुसमरमणीय भूमिभाग से वैताढ्य पर्वत के दोनों पार्श्व-

‘तासिण विज्जाहरसेदीणं बहुसमरमणिज्जाओ’ इत्यादि ॥ सूत्र १५ ॥

टीकार्थ—ते विद्याधर श्रेणियों ने बहुसमरमणीय भूमिभागी वैताढ्य पर्वतना अन्ने पार्श्व-

णिज्जा गो भूमिभागाओ वेयद्दहस्स पच्चयस्स' विद्याधरश्रेण्योः बहुसमरमणीयात् , भूमिभागात् वैताड्यस्य पर्वतस्य 'उभओ' उभयोः—द्वयोः 'पासिं' पार्श्वयोः. 'दसजो-यणाइ' दश योजनानि 'उद्धं' ऊर्ध्वम्—उपरि 'उप्पइत्ता' उत्पत्य गत्वा 'एत्थणं दुवे अभि ओग सेढीओ' अत्र इह द्वे आभियोग्यश्रेण्यौ आ समन्तात् आभिमुख्येन युज्यन्ते प्रेष्यकमणि व्यापार्यन्त इत्याभियोग्याः शक्र लोकपालानां किङ्करा व्यन्तरविशेषाः तेषां श्रेण्यौ आवासपङ्क्ती 'पणत्ताओ' प्रज्ञप्ते— कथिते ते च, कीदृश्या ! इति जिज्ञासायामाह 'पाईणपडीणययाओ' प्राचीन प्रतीचीनाऽऽयते पूर्वपश्चिमयोर्दिशोरायते दीर्घे 'उदीणदाहिणविस्तिण्णाओ' उदीचीन दक्षिण विस्तीर्णे उत्तरदक्षिणदिशोर्विस्तीर्णे विस्तारयुक्ते, 'दस दस जोयणाइं विकखमेणं' दश दश योजनानि विष्कम्भेण—विस्तारेण, 'पच्चयसमियाओ' पर्वतसमिके पर्वततुल्ये 'आयामेणं' आयामेन दैर्घ्येण, तथा 'उभओ' उभयोः—द्वयोः 'पासिं' पार्श्वयोः 'दोहिं' द्वाभ्यां पद्मवरवेदिकाभ्यां द्वाभ्यां च 'वण संदेहिं संपरिविखत्ताओ' वनषण्डाभ्यां संपरिक्षिप्ते परिवेष्टिते । 'वणओ' वर्णकः—वर्णनपरो वाक्यसमूहो 'दोण्हचि' द्वयोरपि द्वयोरिति जात्यापेक्षया प्रोक्तं, तेन द्वयोः पद्मवरवेदिकयोः द्वयोर्वनषण्डयोरित्तिचतुर्णां पूर्ववद् बोध्यः । तथा—चत्वारोऽप्येते पद्मवरवेदिकावनषण्डा 'आयामेणं' आयामेन—दैर्घ्येण 'पच्चयसमियाओ' पर्वतसमकाः पर्वततुल्या बोध्या इति ।

भागों में दश दश योजन ऊपर जाकर दो अभियोग्य श्रेणियां कही गई है शक्र एव लोकपालों के किङ्करभूत जो व्यन्तर देवविशेष है उनकी ये निवास भूत श्रेणियां हैं "प्राचीन प्रतीचीनायते ये दोनो पूर्वपश्चिम में लम्बी है "उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णे" उत्तर दिशा और दक्षिणदिशा में चौड़ी है इनका विस्तार दश दश योजन का है "पर्वत समिके" तथा पर्वत की लम्बाई के बराबर इनकी लम्बाई है । तथा ये अपने दोनो पार्श्वभाग में दो पद्मवर वेदिकाओ से एवं दो वनषण्डों से परिवेष्टित हैं । इस ४ पद्मवरवेदिकाएँ और चार वनषण्ड इनके दोनो पार्श्वभागों की ओर हैं । ये चारों पद्मवरवेदिकाएँ और वनषण्ड लम्बाई में पर्वत के तुल्य है । "आभिओगसेढीणं" हे भदन्त ! इन आभियोग्य श्रेणियों का आकारभाव

भागेभा दश दश योजन उपर लईने ये आभियोग्य श्रेणीओ छे शक्र अने लोकपालाना किङ्कर-भूत जे व्य तर देव विशेष छे, तेमनी आ निवासभूत श्रेणीओ छे "प्राचीनप्रतीचीनायना" ओ ओ पन्ने पूर्व पश्चिमभा लाणी छे "उदीचीनदक्षिण विस्तीर्णा उत्तर दिशा अने दक्षिण दिशामा थोडी छे, ओमने। वस्तार दश-दश योजन लेटदी छे "पर्वत समिके" तेम ४ पर्वतनी ल भाई जे वनष डोथी परिवेष्टित छे ओ ४ पद्मवरवेदिकाओ अने चार वनषण्डो ओमनी पन्ने आणुओ छे ओ चारे पद्मवरवेदिकाओ अने वनष णोनी लभाई पर्वत तुल्य छे "अभिओगसेढीणं" हे भदन्त ! आ आभियोग्य श्रेणीओनो आकारभावप्रत्यवतार (स्व३५) डेवो छे ? ओना

અર્થાભિયોગ્યશ્રેણિદ્વયસ્યાકારભાવપ્રત્યવતારં પૃચ્છતિ 'આભિયોગસેદીળં' इत्यादि । 'આભિયોગસેદીળં મંતે ! કેરિસણ આચારભાવપહોયારે પળ્ણત્તે' હે મદન્ત અભિયોગશ્રેણ્યાઃ ત્રીદશકઃ કોદશઃ આકારભાવપ્રત્યવતારઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ । મગશાગાહ—'ગોયમા બહુસમરમણિજ્જે ભૂમિભાગે પળ્ણત્તે' હે ગૌતમ ! બહુસમરમણીયો ભૂમિભાગઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ 'જાવ તળેહિં ઉવસોમિણ' યાવત્ તૃણરૂપશોમિતો 'વળ્ણાહં જાવ તળાણ સદ્દો ત્તિ' વર્ણા યાવત્તૃણાનાં શબ્દ इति । અન્ન યાવત્પદસંગ્રાહ્યઃ પદસમૂહો રાજપ્રશ્નીયસૂત્રસ્ય પઠ્ચ-દશસૂત્રાદારમ્ય ઇકોનવિંશતિતમસૂત્રતો ગોચ્ચઃ । અર્થોઽપિ તત્રૈવમત્કૃત મુલોધિની ટીકાતોઽવસેય इति । 'તાસિ ણં' તયોઃ પૂર્વોક્તયોઃસ્વલ્લુ 'અભિયોગસેદીળં' આભિ-યોગ્યશ્રેણ્યોઃ 'તત્થ તત્થ' તન્ન તન્ન તસ્મિસ્તસ્મિન્ 'દેસે' દેશે ભાગે, 'તહિ તહિ' તન્ન તન્ન તત્તદ્દેશસ્યાવાન્તરદેશે 'વહવે વાળમંતરા' વહવો વ્યન્તરાઃ દેવવિશેષા દેવા ય દેવીઓ ય આસયતિ' દેવાશ્ચ દેવ્યશ્ચ આસતે—યથાસુખં સામાન્યતસ્તિપૃન્તિ, 'સયંતિ' શેરને સર્વથા કાચપ્રસારણેન વર્તન્તે ન તુ નિદ્રાન્તિ, દેવાનાં નિદ્રાયા અભાવાત્ 'જાવ' યાવ

પ્રત્યવતાર-સ્વરૂપ કૈસા કહા ગયા હૈ ? હસકે ઉત્તર મેં પ્રમુ કહતેહૈ 'બહુ સમરમણીઓ ભૂમિ-ભાગો પળ્ણત્તો' હે ગૌતમ । હન દોનો શ્રેણ્યોં કા ભૂમિભાગ બહુસમ હૈ ઓર હસીસે વહ બહુત હી રમણીય કહા ગયાહૈ ક્યોકિ વહ તૃણો મે ઓર મળિયોં સે ઉપશોમિત હૈ યે તૃણ મળિયાં વહાં કૃત્રિમ મી હૈ ઓર અકૃત્રિમ મી હૈ । યહા યાવત્પદ સે સપ્રાહ્ય પદ સમૂહ રાજપ્રશ્નીય સૂત્રકે ૧૫વેં સૂત્ર સે લેકર ૧૯વેં તરુ કે સૂત્રસે જાન લેના ઇચ્છા ઇતિ; હનકા અર્થ હમને હસકી મુલોધિની ટીકા મેં સ્પષ્ટ કર લિલ દિયા હૈ । વહાં હનકે વર્ણોં કા ઓર હનકે શબ્દો કા મો સમ્ભાવ પ્રકટ ક્રિયા હૈ । "તાસિણ આભિયોગસેદીળં તત્થ તત્થ દેસે તહિ તહિ વહવે વાળમંતરા દેવા ય દેવીઓ આસયતિ, સયતિ, જાવ ફલવિત્તિવિસેસ પચ્ચણ્ણમ્ભવ-માણા વિહરતિ" હન પૂર્વોક્ત આભિયોગ્યશ્રેણ્યોં કે હન ૨ સ્થાનો પર અનેક વાનવ્યન્તર દેવ ઓર દેવિયાં યથાસુલ ઉઠતી બેઠતી રહતી હૈ, શરીર કો પસાર કર આરામ કરતી રહતી હૈ,

જવાબ માં પ્રમુ કહે છે "બહુસમરમણીઓ ભૂમિભાગો પળ્ણત્તો" હે ગૌતમ । એ બન્ને શ્રેણી-ઓને ભૂમિભાગ બહુ સમ છે અને એથી જ તે બહુજ રમણીય છે કેમકે તે તૃણોથી અને મણિઓથી ઉપશોભિત છે. એ તૃણ મણિઓ ત્યા કૃત્રિમ પણ છે અને અકૃત્રિમ પણ છે અહીં "યાવત્" પદથી સંગ્રાહ્ય પદ સમૂહ રાજપ્રશ્નીય સૂત્રના ૧૫ માં સૂત્રથી ૧૯ માં સૂત્ર સુધી બાધવો જોઈએ. આ બધા પદસમૂહોની વ્યાખ્યા તેની મુલોધિની ટીકામા સ્પષ્ટ કરી છે. ત્યા તેમના વર્ણોં તેમજ શબ્દોને સદ્ભાવ પ્રકટ કરવામા આવેલ છે "તાસિણ આભિ-યોગસેદીળં તત્થ તત્થ દેસે તહિ તહિ વહવે વાળમંતરા દેવા ય દેવીઓ આસયતિ, સયતિ જાવ ફલવિત્તિવિસેસ પચ્ચણ્ણમ્ભવમાણા વિહરતિ" આ પૂર્વોક્ત આભિયોગ્ય શ્રેણીઓના સ્થાનોપર અનેક વાનવ્યન્તર દેવો દેવીઓ મુખપૂર્વક ઊઠતા-બેસતા વહે છે, શરીરને પશુત કરીને આરામ કરતા રહે છે, નિદ્રાધીન થતા રહે છે કેમકે હેવાને નિદ્રા આવતી નથી.

त्पदेन -“तिष्ठन्ति, निषीदन्ति, त्वग्वर्त्तयन्ति, रमन्ते, ललन्ति, क्रीडन्ति, कीर्त्तयन्ति, मोहन्ति, पुरापुराणानां सुचीर्णानां सुपराक्रान्तानां शुभानां कृतानां कल्याणानां कर्मणां कल्याणम्” इति संग्राहम् । तत्र तिष्ठन्ति=ऊर्ध्वावस्थानेन विद्यन्ते, निषीदन्ति=उप-
विशन्ति, त्वग्वर्त्तयन्ति त्वक्परिवर्तनं पार्श्वपरिवर्तनं कुर्वन्ति रमन्ते रतिमावध्नन्ति,
ललन्ति विलासन्ति क्रीडन्ति क्रीडां कुर्वन्ति कीर्त्तयन्ति वर्णयन्ति, मोहन्ति विषयं सेवन्ते
तथा पुरा प्राग्भवे उपाजितानां पुराणानां चिरन्तनानां सुचीर्णानां सुविधिकृतानां
सुपराक्रान्तानां शोभनपराक्रमसम्पादितानाम् अत एव शुभानां शुभफलानां कृतानां
कल्याणानां वास्तविककल्याणफलानां कर्मणां दानशीलादीनां कल्याणम् एकान्त-
सुखावहं ‘फलवित्तिविसेसं’ फलवृत्तिविशेषं फलविपाकं ‘पञ्चणुभवमाणा’ प्रत्यनुभवन्तः
एकैकशोऽनुभवविषयं कुर्वन्तः सन्तो ‘विहरन्ति’ विहरन्ति तिष्ठन्ति ।

‘तासु णं’ तयोः पूर्वोक्तयोः खलु ‘आभियोगसेढीसु सकस्स देविदस्स देवरण्णो
सोममवरुणवेसमणकाइयाणं’ आभियोग्यश्रेण्योः शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सोम-

निद्रा नहीं लेती हैं, क्योंकि देवों के निद्रा का अभाव होता है । यहाँ यावत्पदसे “तिष्ठन्ति
निषीदन्ति, त्वग्वर्त्तयन्ति, रमन्ते, ललन्ति, क्रीडन्ति, कीर्त्तयन्ति मोहन्ति, पुरापुराणानां सुची-
र्णानां सुपराक्रान्तानां शुभानां कृतानां कल्याणानां कर्मणां कल्याणम्” इस पाठ का संग्रह
हुआ है इस पाठ के अनुसार वे वानव्यन्तर देव और देवियां उनर स्थानों में खड़ी भी
रहती है, बैठी भी रहती है, करबटे भी बदलती है, विषय सेवन भी करती है, विलास,
युक्त चेष्टाएँ भी करती है मिनर प्रकार की क्रीडाएँ भी करती हैं, गाना बजाना नृत्य करना
आदि क्रियाएँ भी करती है, देविया एक दूसरे देवो को और देवियो को वहाँ रिज्ञाते
रहते हैं; इत्यादि रूप से वे वहा पर अपने सुविधिपूर्वक क्रिये गये पूर्वके दानादिरूप शुभ
कर्मों के शुभ फलविशेष भोगा करते हैं । “तासुणं आभियोगसेढीसु सकस्स देविदस्स देवरण्णो
सोममवरुणवेसमणकाइयाणं आभियोगाणं देवाणं बहवे भवणा पणत्ता” उन दोनो

अर्थात् यावत् पदथी “तिष्ठन्ति, निषीदन्ति, त्वग् वर्त्तयन्ति, रमन्ते, ललन्ति, क्रीडन्ति
कीर्त्तयन्ति, मोहन्ति, पुरापुराणानां सुचीर्णानां, सुपराक्रान्तानां, शुभानां, कृतानां कल्या
कर्मणां कल्याणम्” आ पाठने स अर्थ थयेस छे आ पाठ सुअथ ते वानव्य तर देव अने
देवी अो तत्तत्त प्रदेशोभा ठीला रहे छे, असे छे, पार्श्व परिवर्तन करे छे, विषय सेवन करे
छे, विलास युक्त चेष्टाअो करे छे, मिनर मिनर प्रकारनी क्रीडाअो करे छे, गानु, वगाइवु
नृत्य करवु पगेरे विविध क्रियाअो करता रहे छे. देवीअो थीला देवाने अने देवा थील
देवीअोने रिअवता रहे छे इत्यादि रूपमां तेअो तां पोतपोतानी सुविधाथी पूर्वकृत
दानादि शुभ कर्मोना शुभ कृण विशेषने उपलोग करता रहे छे “तासुणं आभियोगसेढीसु
सकस्स देविदस्स देवरण्णो सोममवरुणवेसमणकाइयाणं आभियोगाणं देवाणं बहवे
भवणा पणत्ता” तेअो अने आभियोग्य श्रेणीअोभां देवेन्द्र देवराज शक्रो-ने पूर्व दिशाना

यमवरुणवैश्रवणकायिकानां तत्र सोमः पूर्वदिक्पालः यमो दक्षिणदिक्पालः, वरुणः पश्चिमदिक्पालः, वैश्रवणः उत्तरदिक्पालः तेषां कायः समूहः स्वामित्वेन तेषां ते तथाभूतास्तेषाम् 'आभिओगाण' आभियोग्यानाम् आज्ञाकारिणां 'देवाणं वहवे भवणा पण्णात्ता' देवानाम् अनेकानि भवनानि प्रज्ञप्तानि 'तेणं भवणा वाहिं वट्टा' तानि खलु भवनानि वहिर्वृत्तानि वहिर्वर्तुलाकाराणि 'अतो चउरंसा' अन्तः अभ्यन्तरे चतुरस्राणि चतुष्कोणानि अत्र 'वण्णओ' वर्णकः भवनवर्णनपरःपदसमूहो वक्तव्यः स च किं पर्यन्त इत्याह 'जाव अच्छरगणसंघविकिण्णा' यावदप्सरोगणसङ्घ विकीर्णानि-अप्सरोगणसङ्घविकीर्णानि अप्सरोगणसमूहव्याप्तानि इति पर्यन्तः ततोऽपि किमवधिरिति जिज्ञासायामाह 'जाव पडिख्वा' यावत् प्रतिरूपाणि । प्रतिरूपाणि इति पर्यन्तो वर्णको बोध्य इति पर्यवसितम् । तथा च सर्वपदानि यावत्पदसंगृहीतान्येवम् अथः पुष्करकणिकासंस्थानसंस्थितानि उत्कीर्णान्तरविपुलगम्भीरखातपरिखाणि प्राकाराट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वारदेशभागानि यंत्रशतधनीमुशलमुशुण्डीपरिवारितानि अयोध्यानि सदा जयानि सदा अजेयानि सदा गुप्तानि अष्टचत्वारिंशत्काण्डरचितानि अष्टचत्वा-

आभियोग्य श्रेणियो में देवेन्द्र देवराज शक के जो पूर्व दिशा के दिक्पाल सोम है, दक्षिण दिशा के दिक्पाल जो यम है, पश्चिम दिशा के दिक्पाल जो वरुण है और उत्तर दिशा के दिक्पाल जो वैश्रवण है जो कि इन्द्र के आज्ञाकारी है उनके अनेक भवन कहे गये है । "तेण भवणा वाहिं वट्टा, 'अतो चउरंसा, वण्णओ जाव अच्छरगणसंघविकिण्णा जाव पडिख्वा" के भवन बाहर में तो गोल है, और भीतर में चतुरस्र-चौकोर है । यहां भवनो के वर्णन करने वाला पाठ "ये अप्सराओं के समूह से व्याप्त है और यावत्प्रामादीय आदि विशेषणो वाले है" यहां तक का यहा गृहीत हुआ है. वह पाठ जानकारी के लिए यहां प्रकट किया जाता है- "अथः पुष्करकणिकासंस्थानसंस्थितानि उत्कीर्णान्तरविपुलगम्भीरखातपरिखाणि, प्राकाराट्टालककपाटतोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, यंत्रशतधनी मुशलमुशुण्डीपरिवारितानि, अयोध्यानि, सदा जयानि सदा अजेयानि, सदा गुप्तानि,

दिक्पाल सोम छे दक्षिण दिशाना दिक्पाल यमना पश्चिम दिशाना दिक्पाल वरुणना अने उत्तर दिशाना दिक्पाल वैश्रवणना-ये ईन्द्रना आज्ञाकारी छे-तेभना अनेक भवनो कहेवाय छे "तेण भवणा वाहिं वट्टा, अतो चउरंसा, वण्णओ जाव अच्छरगणसंघविकिण्णा जाव पडिख्वा" ते भवनो गडारथी गेण छे अने अइरथी चतुरस्र योभ डी-छे. अही भवनोना वरुण संभंधी अयेओ अप्सराओना समूहोथी व्याप्त छे अने यावत्प्रामादीय आदि विशेषणोथी मुक्तने "अही मुधीने पाठ गृहीत थयेल छे ते पाठ भाषुवा भाटे अही प्रकट करवाभा आवे छे "अथः पुष्करकणिकासंस्थानसंस्थितानि, उत्कीर्णान्तरविपुल गम्भीरखातपरिखाणि, प्राकाराट्टालककपाटतोरण प्रतिद्वारदेशभागानि, यंत्रशतधनीमुशल मुशुण्डी परिवारितानि, अयोध्यानि, सदा जयानि, सदा अजेयानि, सदा गुप्तानि, अष्टचत्वारिंशत् काण्ड-

रिंशत्कृतवनमालानि क्षेमाणि शिवानि किङ्करामरदण्डोपरक्षितानि लायितोल्लायितमहितानि गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दर (प्रचुर) दत्त पञ्चाङ्गुलितलानि उपचितचन्दनकलशानि चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि आसक्तोत्सक्तविपुलवृत्तव्याधारितमाल्यदामकलापानि पञ्चवर्णसरससुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपदह्यमानसुरभिमघमघायमान गन्धोद्धूताभिरामाणि सुगन्धवरगन्धितानि गन्धवर्तीभूतानि (अप्सरोगणसङ्घकीर्णानि) दिव्यत्रुटितशब्दसंप्रनादितानि सर्वरत्नमयानि अञ्छानि श्लक्ष्णानि लष्टानि घृष्टानि मृष्टानि नीरजांसि निर्मलानि निष्पङ्कानि निष्कङ्कटञ्छायानि सप्रभाणि समरीचिकानि सोद्योतानि प्रासादीयानि दर्शनीयानि अभिरूपाणि (प्रतिरूपाणि) इति ।

एतद्व्याख्या—अधः पुष्करकर्णिकासंस्थान संस्थितानि अधः पुष्करकर्णिका-अधो-मुखकमलबीजकोशस्तस्या यत् संस्थानम्—आकारस्तेन संस्थितानि अधोमुख-पद्मबीजकोशाकाराणि तथा—उत्कीर्णान्तरविपुलगम्भीरखातपरिखाणि उत्कीर्णमिवो

अष्टचत्वारिंशत् कोष्ठरचितानि, अष्टचत्वारिंशत्कृतवनमालानि, क्षेमाणि, शिवानि, किङ्करामर-दण्डोपरक्षितानि, लायितोल्लायितमहितानि, गोशीर्षसरसरक्तचन्दन दर्दर (प्रचुर) दत्त पञ्चा-ङ्गुलितलानि उपचितचन्दनकलशानि, चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, आसक्तोत्सक्त-विपुलवृत्तव्याधारितमाल्यदामकलापानि, पञ्चवर्णसरससुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि, काला-गुरुप्रवरकुन्दुरुष्कतुरुष्कधूपदह्यमान सुरभिमघमघायमानगन्धोद्धूताभिरामाणि, सुगन्धवरगन्धि-तानि, गन्धवर्तीभूतानि, (अप्सरोगणसङ्घकीर्णानि,) दिव्यत्रुटित शब्दसंप्रनादितानि सर्वरत्नमयानि, अञ्छानि, श्लक्ष्णानि, लष्टानि, घृष्टानि, मृष्टानि, नीरजांसि, निर्मलानि, निष्पङ्कानि, निष्कङ्क-टञ्छायानि सप्रभाणि, समरीचिकानि सोद्योतानि, प्रासादीयानि, दर्शनीयानि, अभिरूपाणि प्रति-रूपाणि । इस पाठ के पदों की व्याख्या इस प्रकार से है—नीचा मुख करके रखी गई कमल-कर्णिका का जैसा आकार होता है वैसा आकार इन भवनों का है इनकी जो खात—ऊपर

रचितानि, अष्टचत्वारिंशत्कृतवनमालानि क्षेमाणि, शिवानि, किङ्करामरदण्डोपरक्षितानि, लायितोल्लायितमहितानि, गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दर (प्रचुर) दत्त पञ्चाङ्गुलितलानि, उप-चितचन्दनकलशानि, चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि, आसक्तोत्सक्तविपुलवृत्त-व्याधारित माल्यदामकलापानि, पञ्चवर्णसरस सुरभि मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि, कालागुरुप्रवरकुन्दुरुष्क तुरुष्क धूप दह्यमानसुरभिमघमघायमानगन्धोद्धूताभिरामाणि, सुगन्ध-वर गन्धितानि, गन्धवर्तीभूतानि, (अप्सरोगणसङ्घकीर्णानि) दिव्यत्रुटित शब्दसंप्रनादितानि सर्वरत्नमयानि, अञ्छानि श्लक्ष्णानि, लष्टानि, घृष्टानि, मृष्टानि, नीरजांसि निर्मलानि, निष्पङ्कानि निष्कङ्कटञ्छायानि 'सप्रभाणि, समरीचिकानि, सोद्योतानि, प्रासादीयानि' दर्शनीयानि, अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि' आ पाठना पढेनी व्याख्या आ प्रभाणे छे. नत

त्कीर्णम्—सुव्यक्तम् तादृशमन्तरम्—अभ्यन्तरं यासां तादृश्य. विपुलाः बहवः गम्भीराः
 अलब्धतलाः खातपरिखाः खातानि उपर्यधः समानि परिखाः उपरि विशाला अवः
 सङ्कुचिताश्च येषां तानि प्राकाराद्दालककपाटतोरणप्रतिद्वारद्वेगभागानि—प्राकारः
 'कोट्ट' इति भाषाप्रसिद्धः, अदालकः—'अटारी' भाषाप्रसिद्धः, तथा प्रतिद्वारदेशभागे
 कपाट तोरण च येषां तानि तथा । 'प्रतिद्वारदेशभाग' शब्दस्य परनिपात आर्पत्वात्
 तथा—यन्त्र शतधनी मुशलपृथुण्डी परिवारितानि—यन्त्राणि जत्रादि यन्त्राणि शतत्रयः—
 पुरुषशतघातकास्त्रविशेषाः 'तोप' इति भाषा प्रसिद्धाः मुगलानि—प्रसिद्धानि गुथुण्डयः
 शस्त्रविशेषाः—एतैः परिवारितानि—रक्षणाय परिवेष्टितानि, अतएव अयोध्यानि—
 योद्धुमशक्यानि सदा—सर्वस्मिन् काले जयानि—जयन्तीति जयानि शत्रुजयकारकाणि,
 तथा शत्रुभिः सदा अजेयानि—जेतुमयोग्यानि रादा गुप्ताणि—रक्षितानि अष्टचत्वारिंश-
 त्कोष्ठरचितानि—रचितानि—कृतानि अष्टचत्वारिंशतकोष्ठानि यत्र तानि तथा, रचितश-
 ब्दस्य प्राकृतत्वात्परनिपातः । अष्टचत्वारिंशत्कृतमालानि अष्टचत्वारिंशत=अष्टचत्वारिंश-
 त्त्रैदमिन्नविच्छित्तियुक्ता वनमालाः कृताः—स्थापिताः येषु तानि तथा, क्षेमाणि—पर-

और नीचे समान आकृति वाली खाई है उसका एव ऊपर में विशाल और नीचे भाग में
 सङ्कुचित जो परिखा है उसका भीतरी अन्तर बिलकुल सुव्यक्त है तथा ये दोनो ही विपुल
 गंभीर है - अलब्ध तल वाली है, प्रत्येक भवन के साथ कोट है, अटारी है तथा इनके
 प्रत्येक द्वार में कपाट लगे हुए है, हर एक भवन में एक साथ सौ पुरुषो को मार डाले
 ऐसी अनेक शतगिधियाँ—अस्त्रविशेष जिसे तोप कहा जाता है हैं, अनेक मुशल है अनेक
 मुशुण्डिया है—इस नाम के हथियार विशेष है इन सब हथियारो से वे मकान परिवेष्टित
 है अतएव कोई भी इन पर आक्रमण नहीं कर सकता है । इसीसे ये सदा अजेय है
 और स्वयं में ये सदा शत्रुओं को जीतने वाले है और सुरक्षित है प्रत्येक भवन में
 ४८-४८ कोठे बने हुए है एव "अष्टचत्वारि" ४८-४८ वनमालाए रखी हुई है ।

मुष्ठी कभलकषिडानो जेवो आकार डोय छे तेवो आकार अहीना लवनेनो छे. जेमनी जे
 भात-उपर अने नीचे समान आकृतिवाणी भाध छे—तेनो तथा उपरनी तरक विशाल अने
 नीचेना लागमा सङ्कुचित जे परिखा छे तेनु भीतरी अन्तर जेकहम मुष्पष्ट छे तेमज
 जे जे अन्ने विपुल ग भीर छे अलब्ध तलवाणी छे. हरेक लवननी साथे कोट छे, अटारी
 छे, तेमज जेमना प्रत्येक द्वारमा कपाटो लागेला छे हरेक लवनमा जे की साथे सो पुरु-
 षोने जेकी साथे मारी नाथे जेवी अनेक शतधनीजो—तोपो—छे, अनेक मुशलो छे, अनेक
 मुशुण्डीजो छे, मुशुण्डी जेक विशेष प्रकारनु हथियार डोय छे, आ सर्व हथियारोथी ते
 लवनेो परिवेष्टित छे. जेथी तेमनी उपर कोठ आकमण करी थके नही जेथी जे जे लवनेो
 सदा अजेय रहे छे अने स्वयमेव आ लवनेो शत्रुजोने लतनारा छे. अने सुरक्षित छे
 प्रत्येक लवनमा ४८-४८ कोठो अनेला छे तेमज "अष्टचत्वारि" ४८-४८ वनमालाजो.

चक्रभयरहितानि, पुनः शिवानि-स्वचक्रभयरहितानि तथा किङ्करामरदण्डोपरक्षितानि दण्ड हस्तैर्भृत्यदेवैः संरक्षितानि, लायितोल्लायितमहितानि-छेपोपछेपपरिष्कृतानि, गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि-गोशीर्ष चन्दनविशेषः, सरसं-रससहित प्रशस्त यद् रक्तचन्दनं चेत्युभाभ्यां दर्दरं-प्रचुरं यथा स्यात्तथा दत्तानि-न्यस्तानि पञ्चाङ्गुलितलानि येषु तानि तथा, । उपचितचन्दनकलशानि-उपचिताः-स्थापिताः चन्दनकलशा येषु तथा, चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि चन्दनघटाः चन्दनचर्चितकलशाः, सुकृततोरणानि -सुष्ठु रचिततोरणानि च प्रतिद्वारदेशभागेषु येषां तानि तथा । आसक्तोत्सक विपुलवृत्तव्याधारित माल्यदामकलापानि आसक्तः भूमौ लग्नः उत्सक्तः-उपरि लग्नश्च विपुलः विस्तीर्णः वृत्तः-वर्तुलः व्याधारितः-प्रलम्बितः माल्यदामकलापः-पुष्पमाला-समूहो येषु तानि तथा, पञ्चवर्णसरससुरभिमुक्तपुष्पपुठजोपचारकलितानि पञ्चवर्णानां सरसानां सुरभीणां-सुगन्धीनां पुष्पाणां यः पुठजः-समूहः तस्य य उपचारः यत्र तत्र स्थापनम् तेन कलितानि-युक्तानि तथा कालागुरु प्रवरकु-

परचक्र का यहां भय नहीं है "शिवानि" तथा स्वचक्र के भय से ये रहित है । जिनके हाथों में दण्ड है ऐसे किङ्करभूत देवों से ये संरक्षित बने हुए हैं । "लायितोल्लायित महितानि" गोमयादि के लेप से ये परिष्कृत हैं "गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्त पञ्चाङ्गुलितलानि" गोशीर्ष चन्दन और सरस रक्त चन्दन के अधिक से अधिक मात्रा में इनमें हाथे लगे हुए हैं । जगह जगह इनमें चन्दन के बने हुए कलश रखे हुए हैं । हर एक भवन के हर एक द्वार पर चन्दन कलशों द्वारा किये गए तोरण बने हुए हैं "आसक्तोत्सक विपुलवृत्तव्याधारितमाल्यदामकलापानि" इनमें जो पुष्पमालाओं का समूह है वह ऊपर से लेकर भूमि तक लगा हुआ है-ऐसा विस्तीर्ण है, तथा-वृत्त-गोल आकार वाला है और लटकता हुआ है "पञ्चवर्णसरसं" इन भवनों में यत्र-तत्र सरस पंचवर्णोपेत एवं सुगंधित पुष्पों का समूह बिखरा हुआ रहता है "कालागुरु" जलते हुए कालागुरु की,

गोश्वेदी छे परचक्रने अही भय नहीं "शिवानि", तेमज स्वचक्रने भयथी छे रहित छे जेभना हाथेमां डंड छे जेवा किङ्करभूत देवथी छे भवने संरक्षित थयेला छे. "लायितोल्लायितमहितानि" गोमयादिना लेपनथी छे भवने परिष्कृत छे "गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्त पञ्चाङ्गुलितलानि" गोशीर्षचन्दन अने सरसरक्त चन्दनना अधिकाधिक प्रमादलेपाना छे भवनेमां हाथना थापाजो लागेला छे. स्थान स्थान पर चन्दन निर्मित कलशो छे भवनेमा भूकेला छे इरेक भवनना इरेक द्वार पर चन्दन कलशो ना तोरणो भनेला छे. "आसक्तोत्सकविपुलवृत्त व्याधारितमाल्यदामकलापानि" छे भवनेमा जे पुष्पमालाजोना समूहो छे ते उपरथी भूमिसुधी पडोयेला छे-विस्तीर्ण छे. तेमज वृत्त-गोल आकार वाला छे अने लटकता छे "पञ्चवर्णसरसं" छे भवनेमां यत्र तत्र सरस पंचवर्णोपेत तेमज सुगंधित पुष्पेना समूहो निकीर्ण थयेला रहे छे. "कालागुरु" प्रज्वलित कला-

चक्रभयरहितानि, पुनः शिवानि—स्वचक्रभयरहितानि तथा किङ्करामरदण्डोपरक्षितानि दण्ड हस्तैर्भृत्यदेवैः संरक्षितानि, लायितोल्लायितमहितानि—लेपोपलेपपरिष्कृतानि, गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि—गोशीर्ष चन्दनविशेषः, सरसं—रससहित प्रशस्तं यद् रक्तचन्दनं चेत्युभाभ्यां दर्दरं—प्रचुरं यथा स्यात्तथा दत्तानि—न्यस्तानि पञ्चाङ्गुलितलानि येषु तानि तथा, । उपचितचन्दनकलशानि—उपचिताः—स्थापिताः चन्दनकलशा येषु तथा, चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागानि चन्दनघटाः चन्दनचर्चितकलशाः, सुकृततोरणानि—सुष्ठु रचिततोरणानि च प्रतिद्वारदेशभागेषु येषां तानि तथा । आसक्तोत्सक विपुलवृत्तव्याधारित माल्यदामकलापानि आसक्तः भूमौ लग्नः उत्सक्तः—उपरि लग्नश्च विपुलः विस्तीर्णः वृत्तः—वर्तुलः व्याधारितः—प्रलम्बितः माल्यदामकलापः—पुष्पमाला-समूहो येषु तानि तथा, पञ्चवर्णसरससुरभिमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितानि पञ्चवर्णानां सरसानां सुरभीणां—सुगन्धीनां पुष्पाणां यः पुञ्जः—समूहः तस्य य उपचारः यत्र तत्र स्थापनम् तेन कलितानि—युक्तानि तथा कालागुरु प्रवरकु-

परचक्र का यहां भय नहीं है “शिवानि” तथा स्वचक्र के भय से ये रहित है । जिनके हाथों में दण्ड है ऐसे किङ्करभूत देवों से ये संरक्षित बने हुए हैं । “लायितोल्लायित महितानि” गोमयादि के लेप से ये परिष्कृत हैं “गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्त पञ्चाङ्गुलितलानि” गोशीर्ष चन्दन और सरस रक्त चन्दन के अधिक से अधिक मात्रा में इनमें हाथे लगे हुए हैं । जगह जगह इनमें चन्दन के बने हुए कलश रखे हुए हैं । हर एक भवन के हर एक द्वार पर चन्दन कलशों द्वारा किये गए तोरण बने हुए हैं “आसक्तोत्सक विपुलवृत्तव्याधारितमाल्यदामकलापानि” इनमें जो पुष्पमालाओं का समूह है वह ऊपर से लेकर भूमि तक लगा हुआ है—ऐसा विस्तीर्ण है, तथा—वृत्त-गोल आकार वाला है और लटकता हुआ है “पञ्चवर्णसरसं” इन भवनों में यत्र-तत्र सरस पञ्चवर्णोपेत एवं सुगन्धित पुष्पों का समूह बिखरा हुआ रहता है “कालागुरु” जलते हुए कालागुरु की,

गोष्ठवेदी छे परचक्रनो अही अथ नथी “शिवानि” तेमञ् स्वचक्रना अथथी ओ रहित छे. जेभना हाथोभां दंड छे ओवा किङ्करभूत देवोथी ओ अवनो संरक्षित थयेला छे. “लायितोल्लायितमहितानि” गोमयादिना लेपनथी ओ अवनो परिष्कृत छे “गोशीर्षसरसरक्तचन्दनदर्दरदत्त पञ्चाङ्गुलितलानि” गोशीर्षचन्दन अने सरसरक्त चन्दनना अधिकाधिक प्रगाढलेपादिना ओ अवनोभां हाथना थापाओ लागेला छे. स्थान स्थान पर चन्दन निर्मित कलशो ओ अवनोभां भूकेला छे इरेक अवनना इरेक द्वार पर चन्दन कलशो ना तोरओ अनेला छे. “आसक्तोत्सकविपुलवृत्त व्याधारितमाल्यदामकलापानि” ओ अवनोभा ओ पुष्पमालाओना समूहो छे ते उपरथी भूमिसुधी पडोयिंला छे—विस्तीर्ण छे. तेमञ् वृत्त-गोल आकार वाला छे अने लटकता छे “पञ्चवर्णसरसं” ओ अवनोभां यत्र तत्र सरस पञ्चवर्णोपेत तेमञ् सुगन्धित पुष्पोना समूहो निडीयुं थयेला रहे छे. “कालागुरु” अन्वहित काला-

ન્દુરુષ્કતુરુષ્કધૂપદહ્યમાનસુરભિમધમઘાયમાનગન્ધોદ્ધૂતાભિરામાણિ-કાલાગુરુઃ - કૃષ્ણાગુરુઃ પ્રવરઃ-પ્રશસ્તતરો યઃ ગન્ધદ્રવ્યવિશેષઃ, તુરુષ્કઃ-યાવનો ધૂપ 'લોહવાન્' इति भाषा प्रसिद्धः, धूपः-दशाङ्गधूपश्च, एतेषां दह्यमानानां यः सुरभिः-मनोज्ञः मधमघायमानः -प्रसरन् गन्धः-स एव उद्धृतः, वायुना प्रसृतस्तेन, अभिरामाणि-रमणीयानि तथा-सुगन्धवरगन्धितानि-सुगन्धेषु-शोभनगन्धेषु यो वरः उत्तमो गन्धः स सज्जातोऽत्रेति तथा उत्तमगन्धयुक्तानि, अत एव गन्धवर्तिभूतानि-गन्धगुटिकासदृशानि, तथा अप्सरोगणसङ्घकीर्णानि-अप्सरोगणानां सङ्घेन समुदायेन कीर्णानि-व्याप्तानि तथा- दिव्यत्रुटित शब्द-सम्प्रनादितानि-दिव्यानां त्रुटितानां-वाद्यानां यः शब्दस्तेन सम्प्रनादितानि-शब्दयुक्तानि सर्वरत्नमयानि-सर्वात्मना रत्नमयानि अच्छादिप्रतिरूपपर्यन्तपदव्याख्या पूर्ववत् ।

‘तस्य णं सवरुसस देविदसस देवरणो सोमजमवरुणवेसमणकाऽया बहवे-
आभिओगा देवा परिवसंति’ तत्र-तेषु पूर्वोक्तेषु भवनेषु खलु शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य
सोमयमवरुणवैश्रवणकायिका बहव आभियोग्याः -किङ्कराः देवाः परिवसन्तीति

પ્રશસ્તતર કુન્દરુષ્કગન્ધદ્રવ્ય વિશેષ કી લોમાન કી ઓર દશાઙ્ગધૂપ કી મનોજ્ઞ ગન્ધ-વાસ
સે જો કિ વાયુ કે દ્વારા ઇધર ઉધર ફેલાઈ ગઈ હૈ યે ભવન વડેત હી અધિક રમણીય
બને હુપ હૈ તથા શોભનગન્ધ વાલે દ્રવ્યો કી ગન્ધ સે ઓ ઉત્તમ ગન્ધ કો મહક ઇનમેં
સદા ભરી રહતી હૈ અત ઇવ યે ઇસે જ્ઞાત હોતે હૈ કિ માનો યે ગધ કી ગુટિકારૂપ
હી હૈ । ઇન ભવનો મેં સદા અપ્સરાઓં કા સમુદાય ઇધર સે ઉધર ફિરતા રહતા હૈ ।
યહાં પર દિવ્ય વાજો કા નાદ હોતા રહતા હૈ અતઇવ ઇસસે યે સદા વાચાલિત સે બને
રહતે હૈ । યે સર્વાત્મના રત્નમય હૈ તથા અચ્છ સે લેકર પ્રતિરૂપ તક કે જિતને ઓ વિશેષણ
પદ હૈ-ઇનસે યે યુક્ત હૈ ઇન અચ્છ આદિ પદો કી વ્યાખ્યા પહેલે યથાસ્થાન કી જા
ચુકી હૈ ઇન પૂર્વોક્ત ભવનો મેં દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્ર કે સોમ, યમ, વરુણ ઓર વૈશ્રવણ
જાતિ કે અનેક કિંકર મૂત દેવ રહતે હૈ । યે દેવ વિપુલ ભવન ઇવ પરિવારાદિરૂપ સમૃદ્ધિ

શુરુની, પ્રશસ્તતર કુન્દરુષ્કગન્ધ દ્રવ્ય વિશેષની, લોમાનની અને દશાઙ્ગધૂપની મનોજ્ઞગન્ધ
અહીંના ભવનોમા સર્વત્ર વ્યાપ્ત છે તેથી એ ભવનો ખૂબજ રમણીય થઈ ગયા છે. તેમજ
શોભન ગન્ધવાળા દ્રવ્યોની ગન્ધ કરતા પણ ઉત્તમ ગન્ધની મહેકથી સર્વદા એ ભવનો મહે
કતા રહે છે એથી એ એવા લાગે છે કે માનો એ ગધની ગુટિકા રૂપ જ છે એ ભવનોમા
અપ્સરાઓના સમુદાયો આમથી તેમ હરતા-હરતાજ રહે છે અહીં દિવ્ય વાજાઓનો નાદ
થતો રહે છે. એથી એ સુખરિત રહે છે. એ સર્વાત્મના રત્નમય છે તેમજ અચ્છથી માંડીને
પ્રતિરૂપ સુધીના જેટલા વિશેષણ પદો છે તેમનાથી એ યુક્ત છે આ અચ્છ વગેરે પદોની
વ્યાખ્યા પહેલાં યથાસ્થાન કરવામા આવી છે આ પૂર્વોક્ત ભવનોમા દેવેન્દ્ર દેવરાજ શક્રના
સોમ, યમ, વરુણ અને વૈશ્રવણ જાતિના અનેક કિંકર ભૂત દેવો રહે છે એ દેવો વિપુલ

परेणान्वयः, तेव कीदृशाः ? इति जिज्ञासायामाह—‘महिद्द्विया’ महद्दिकाः=विपुल भवनपरिवार-लक्षणसमृद्धियुक्ताः ‘महज्जुईया’ महाद्युतिकाः शरीराभरणोभयसम्बन्धिबृहत्प्रकाशसम्पन्नः ‘जाव’ यावत्-यावत्पदेन-‘महाबलाः महायशसः, एतदुभयपद संग्रहो बोध्यः, तथा ‘महासोक्खा पलिओवमद्द्विया’ महासुखाः पल्योपमस्थितिकाः एतेषां महाबलादीनां पदानां व्याख्याऽष्टमसूत्रतो विजयद्वाराधिष्ठातृविजयदेववर्णनप्रकरण-दवसेया ।

‘तासिणं’ तयोः- पूर्वोक्तयोः खलु आभिओगसेदीणं बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागओ वेयद्दहस्स पव्वयस्स उभओ पासिं’ आभियोग्यश्रेणयो बहुसमरमणी-यात् भूमिभागात् वैताढ्यस्य पर्वतस्य उभयोः-द्वयोः पार्श्वयोः ‘पंच पंच जौयणाइं उद्द उप्पइत्ता, पञ्च पञ्च योजनानि ऊर्ध्वमुत्पत्य-गत्वा ‘एत्थणं वेयद्दहस्स पव्वयस्स-सिहरतणे पण्णे’ अत्र-इह खलु वैताढ्यस्य पर्वतस्य शिखरतलं प्रज्ञप्तम्, तच्च कीदृशम् ? इति जिज्ञासायामाह-प्राचीनप्रतीचीनायतमित्यादि । तत्र ‘पाईण पडी-णायए’ प्राचीनप्रतीचीनायतं पूर्वं पश्चिमयोर्दिशोरायत-दीर्घम् ‘उदीण दाहिण विच्छिण्णे’ उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णे ‘दसजोयणाइ विक्खंमेण’ दशयोजनानि विक्कमेण-विस्तारेण ‘पव्वयसमगे’ पर्वतसमकम्-पर्वतसमानम् ‘आयामेणं’ आयामेन- दैर्घ्येण । ‘सेणं’ तत् शिखरतलं खलु ‘इक्काए’ एकया ‘पउमवरवेइयाए’

युक्त है शरीर की एव आभरण की बृहत् कान्ति से सम्पन्न है. यावत्पद के अनुसार ये महाबलिष्ठ है, महायशस्वी है तथा महासुख सम्पन्न है, और एक पल्योपम की स्थिति वाले है । महाबल आदि पदों की व्याख्या अष्टमसूत्र से कीं जिसमें विजय द्वार के अधि-पति विजय देव का वर्णन प्रकरण है जान लेनीं चाहिए ।

इन दोनों आभियोग्य श्रेणियों के बहुसमरमणीय भूमिभाग से वैताढ्यपर्वत की दोनों बाजुओं में पाच पाच योजन ऊपर आगे जाने पर वैताढ्य पर्वत का शिखर तल कहा गया है “पाईण पडिणायए उदीणदाहिणविच्छिण्णे दस जोयणाइ विक्खमेणं पव्वयसमगे आयामेण” यह शिखर पर्व से पश्चिम तक लम्बा है इसका विस्तार १० योजन का है इसलिए यह लम्बाई को अपेक्षा पर्वत के हो बराबर है “सेणं एककाए पउमवर

भवन तेभञ् परिवारादिइय समृद्धिथी युक्त छे शरीरनी तेभञ् आभरणुनी भृहत् कान्तिथी संपन्न छे यावत्पद सुब्ब छे महाबलिष्ठ छे, महायशस्वी छे तेभञ् महासुखसंपन्न छे अने अकअक पल्योपम नेटवी स्थितिवाणा छे महाबल आदि पदोनी व्याख्या अष्टमसूत्रमाथी जाल्ही देवी जेधअे तेमा विजयद्वारना अधिपतिं विजयदेवतुं वरुणं कारवामां आवेत्तुं छे. अे अन्ने आभियोग्य श्रेणीओना बहुसमरमणीय भूमिभागथी वैताढ्य पर्वतनी अन्ने भाणु ओमा पाच पाच योजन उपर आगण जवाथी वैताढ्य पर्वततुं शिखर ठहेवाय छे. ‘पाईण पडिणायए उदीणदाहिण विच्छिण्णे दसजोयणाइं विक्खमेणं पव्वयसमगे आयामेणं’ आ शिखर पूर्वथो पश्चिम सुधी दाणुं छे आने विस्तार १० योजन नेटवेा छे. अेथी आ लवाधनी अपेक्षाअे पर्वतनी परापर छे “सेणं एककाए पउमवरवेइयाए एककेणं वण-

पद्मवरवेदिकया 'इक्केणं वणसंढेणं' एकेन वनषण्डेन च—'सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते' सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तं—परिवेष्टितमिति । अनयोर्द्वैर्ध्यविस्तार प्रमाणं वर्णनं च जम्बूद्वीपजगतीगतपद्मवरवेदिकावनषण्डयोरिव बोध्यम् । एतदेव सूचयितुमाह 'प्रमाणं वण्णगो दोण्हपि' प्रमाणं वर्णको द्वयोरपीति ।

अथ गौतमः पुनः पृच्छति—'वेयइढस्सणं भंते' इत्यादि । 'वेयइढस्स णं भंते ! पव्वयस्स सिहरतलस्स केरिसए आगारभावपाडोयारे पण्णत्ते । हे भदन्त ! वैताढ्यस्य खलु पर्वतस्य शिखरतलस्य कोटशकः आकारभावप्रत्यवतारः—स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः प्रज्ञप्तः ? भगवानाह—'गोयमा ! बहुसरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते' हे गौतम ! बहुसरमणीयः भूमिभागः प्रज्ञप्तः, 'से जहाणामए अळिगपुक्खरेइवा जाव णाणाविह पंचवण्णेहि मणीहि उवसोमिए जाव वावीओ पुक्खरिणीओ जाव वाणमंतरा देवा य देवीओ य आसयति जाव सुंजमाणा विहरंति' स यथानामकः आळिङ्गपुक्कर इति वा पश्चवर्णे मणिभिरुपशोभितो यावद् वाप्यः पुक्करिण्यो यावद् व्यन्तरा देवाश्च

वेइयाए इक्केणं वणसंढेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते प्रमाणं वण्णगो दोण्हपि ” वह शिखरतल एक पद्मवर वेदिका और एक वनषण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है इन दोनों की लम्बाई चौड़ाई का प्रमाण तथा इनके सम्बन्ध का वर्णन जम्बूद्वीप की जगती पद्मवर वेदिका और वनषण्ड के वर्णन जैसा ही है ।

“वेयइढस्स णं भंते ! पव्वयस्स सिहरतलस्स केरिसए आगारभावपाडोयारे पण्णत्ते” हे भदन्त ! वैताढ्य पर्वत के शिखर का आकारभाव प्रत्यवतार—स्वरूप कैसा कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रश्न कहते हैं “गोयमा ! बहुसरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते” हे गौतम ! शिखर तलका जो भूमिभाग है वह सम एवं रमणीय कहा गया है, 'से जहाणामए अळिगपुक्खरे इवा णाणाविह पंच वण्णेहि मणीहि उवसोमिए जाव वावीओ पुक्खरिणीओ जाव वाणमंतर देवाय देवीओ य आसयंति जाव सुंजमाणा विहरंति” जैसा बहुसरमणीय मृदंग का मुख पुट होता है इत्यादि रूप से तथा यावत् नाना प्रकार के पंच वर्णोपेत मणियों से वह

संढेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते प्रमाणं वण्णगो दोण्हपि” ते शिखरतल ओक पद्म-
वरवेदिका अने ओक वनषण्डोयारे तरे तरेथी घेराओइ छे ओओ अन्नेनी लंभाई—चौडाईधनुं
'प्रमाणं तेभओ ओभना संभंधं वल्लुं न ओपुद्धीपनी जगतीनी पद्मवरवेदिका अने वनषण्डना
वल्लुं न ओवु ओ छे 'वेयइढस्स णं भंते ! पव्वयस्स सिहरतलस्स केरिसए आगारभाव-
पाडोयारे पण्णत्ते” हे भदन्त ! वैताढ्य पर्वतना शिखरना आकारभाव प्रत्यवतार—(स्वरूप)
केवा छे ? ओना ओवाअभा प्रथुं कडे छे. “गोयमा ! बहुसरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते”
हे गौतम ! शिखर तलना ओ भूमिभाग छे ते सभरभक्षीय छे “से जहाणामए अळिग
पुक्खरेइवा जाव णाणाविह पंचवण्णेहि मणीहि उवसोमिए जाव वावीओ पुक्खरिणीओ जाव
मंतरा देवाय देवीओ य आसयंति जाव सुं जा विहरंति” मृदंग मुख पुट ओवुं

देव्यश्च आसते यावद् भुञ्जमाना विहरन्तोति । अत्र यावत् पदसंग्राहः पाठो राज-
प्रश्रीवसूत्रस्य तत्रैव मत्कृतसुबोधिनीटीकातोऽवबोध्य इति ।

अथास्य वैताढ्यस्योपरितनःनां कूटानां संख्या पृच्छति 'जंबूद्वीपेण' इत्यादि 'जम्बू-
द्वीपे णं मंते ! दीवे भारहे वासे वेयद्दपव्वए कइ कूडा पणत्ता' हे भदन्त !
जम्बूद्वीपे द्वीपे वर्तमाने भारते वर्षे स्थिते वैताढ्यपर्वते कति-कियत्स ख्यकानि
कूटानि-शिखराणि प्रज्ञप्तानि भगवानाह--'गोयमा ! णव कूडा पणत्ता' हे गौतम !
नव-नव संख्यानि कूटानि प्रज्ञप्तानि 'तं जहा सिद्धाययणकूडे' तद्यथा सिद्धायतनकूट
सिद्ध शाश्वत यदायतनं स्थानं तदुपलक्षितं कूटं प्रथमम् ? 'दाहिणद्दभरहकूडे'
दक्षिणार्द्धभरतकूटं-दक्षिणार्द्धभरतनामकस्य देवस्य निवासभूतं कूट द्वितीयम् २,
'खण्डप्पवायगुहाकूडे' खण्डप्रपातगुहाकूटं-खण्डप्रपातगुहायां अधिष्ठातृदेवस्य नृत्तमालस्य

शोभित है इत्यादि रूप से तथा वहां पर अनेक वापिकाएँ एव अनेक पुष्करिणियां हैं यावत्
अनेक व्यन्तर देव और देविया वहां पर उठती बैठती रहती है इत्यादि रूप से तथा
यावत् वहा वे भोग भोगने हुए अपना समय चैन से व्यतीत करते हैं इत्यादि रूप से
जैसा यह सब पुरा का पुरा वर्णन राजप्रश्रीय सूत्र के १५वे सूत्र से लेकर १९ वे सूत्र तक
कथित वर्णन से जान लेना चाहिये वहां यह सब वर्णन बिलकूल स्पष्ट से किया गया है ।
'जंबूद्वीपे णं मते ! दीवे भारहे वासे वेयद्दपव्वए कइ कूडा पणत्ता " हे भदन्त !
जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें स्थित भरत क्षेत्र में पडे हुए वैताढ्यपर्वत के कितने कूट-शिखर
कहे गये है ? इसके उत्तर में प्रमु कहते है, 'गोयमा ! णव कूडा पणत्ता' हे गौतम !
वैताढ्य पर्वत के नौ कूट शिखर कहे गये हैं । 'त जहा " जिनके नाम इस प्रकार
से हैं "सिद्धाययणकूडे १, दाहिणद्दभरहकूडे २, खंडप्पवायगुहाकूडे ३ माणिमद्कूडे

अहुसम २मष्ठीय डोय छे इत्यादि इपथी तथा यावत् नाना प्रकारना पंचवर्णित मष्ठीयोथी
ते शोभित छे इत्यादि इपथी तथा त्यां अनेक वापिकाओ अनेक पुष्करिणीओ छे, यावत्
अनेक व्यन्तर देवा अने देवीओ त्यां उठता-जेसता रहे छे इत्यादि इपथी तेमज यावत्
त्यां तेओ भोगवता पोतानो समय आनद पूर्वक व्यतीत करे छे इत्यादि इपथी जेपुं
आ अधुं वषुंन राजप्रश्रीय सूत्रना १५मा सूत्रधी भांडीने १६ मा सूत्र सुधी करवामा आवेल
छे ते प्रमाणे अडिया पष्ठी अष्ठी लेपु जोधओ, आ अधुं वषुंन त्या ओकदम स्पष्ट
इपमा करवामा आवेल छे

"जंबूद्वीपे णं मंते ! दीवे भारहे वासे वेअद्दपव्वए कइ कूडा पणत्ता" हे भदन्त !
जम्बूद्वीप नामद्वीपमां स्थित भरतक्षेत्रना मध्यमा पडता वैताढ्य पर्वतना केटला शिखरा
छे ! जेना जवाभमां प्रमु कडे छे के "गोयमा णव कूडा पणत्ता" हे गौतम ! वैताढ्य
पर्वतना नव कूट-शिखरा कडेवाया छे "तं जहा" जेभना नामो आ प्रमाणे छे "१ सिद्धा-
ययण कूडे, २ दाहिणद्दभरहकूडे, ३ खंडप्पवाय गुहा कूडे, ४ माणिमद्कूडे, ५, इदवेय

निवासभूत कूटं तृतीयम् ३, 'माणिभद्रकूडे,' माणिभद्रकूटं—माणिभद्रनामकस्य देवस्य निवासभूतं कूटं चतुर्थम् ४, 'वेयङ्गकूडे' वैताढ्यकूटं—वैताढ्यनामकस्य देवस्य निवासभूतं कूटं पञ्चमम् ५, 'पुण्णभद्रकूडे' पूर्णभद्रनामकस्य देवस्य निवासभूत कूटं षष्ठम् ६, 'तमिस्रगुहा कूडे' तमिस्रगुहाकूटं—तमिस्रगुहाधिष्ठातृदेवस्य कृतमालकस्य निवासभूतं कूटम् सप्तमम् ७ 'उत्तरार्द्धभरतकूडे' उत्तरार्द्धभरतकूटम्—उत्तरार्द्धभरतनामकस्य देवस्य निवासभूतं कूटं अष्टमम्, 'वैश्रवणकूडे' वैश्रवणकूटं—वैश्रवणनामकस्य लोकपालविशेषस्य निवासभूतं नवमम् ९, सर्वत्र मध्यमपदलोपि तत्पुरुषसमासो बोध्यः । इति ॥१४॥

'यथोद्देशं निर्देशः' इति प्रथमतः सिद्धायतनकूटं वर्णयति—

मूलम्—कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे वेयङ्गपव्वए सिद्धाययणकूडे पण्णत्ते ? गोयमा पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं दाहिणद्धभरहकूडस्स पुरत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे वे-

४, वेयङ्ग कूडे ५, पुण्णभद्रकूडे ६, तमिस्रगुहा कूडे ७, उत्तरार्द्धभरतकूडे ८, वैश्रवणकूडे ९," सिद्धायतनकूट—शाश्वत आयतन से उपलक्षित कूट १, दक्षिणार्ध भरतनाम के देवका निवासभूत दक्षिणार्ध भरतकूट २, खंडप्रपात नाम की गुहाके अधिष्ठायाक नृत्तमाल देव का निवासभूत खंडप्रपातगुहाकूट ३' माणिभद्र नामक देव का निवासस्थान रूप माणिभद्रकूट ४, वैताढ्यनामक देव का निवासभूत वैताढ्यकूट ५, पूर्णभद्रनामक देव का निवासभूतकूट पूर्णभद्रकूट ६, तमिस्रगुहाके अधिष्ठायाक कृतमाल देव का निवासभूतकूट तमिस्रगुहाकूट ७, उत्तरार्धभरत नामकदेव का निवासभूतकूट उत्तरार्धभरतकूट ८, और वैश्रवणनामक लोकपाल का निवासभूतकूट वैश्रवणकूट है । इन समस्त पदों में मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास हुआ है ॥१४॥

कूडे, ६ पुण्णभद्र कूडे, ७ तमिस्रगुहा कूडे, ८ उत्तरार्द्ध भरतकूडे ९ वैश्रवणकूडे," सिद्धायतन कूट—शाश्वत—आयतनथी उपलक्षित कूट १, दक्षिणार्ध भरतनामक देवना निवास भूत दक्षिणार्ध भरत कूट २ अंडप्रपात नामक गुहाना अधिष्ठायाक नृत्तमाल देवना निवास भूत अंडप्रपातगुहाकूट ३ माणिभद्र नामक देवना निवासस्थान रूप माणिभद्र कूट ४, वैताढ्य नामक देवना निवासभूत वैताढ्यकूट ५ पूर्णभद्र नामक देवना निवास भूत पूर्णभद्र कूट ६ तमिस्र गुहाना अधिष्ठायाक कृतमाल देवना निवासभूत कूट तमिस्रगुहाकूट ७ उत्तरार्ध भरत नामक देवना निवास भूत कूट उत्तरार्ध भरत कूट ८, अने वैश्रवण नामक लोकपालना निवासभूत वैश्रवणकूट छे—आ, सर्व पदोंमें मध्यमपद लोपी तत्पुरुष समास थयेल छे ॥१४॥

यद्दृष्टे पञ्चए सिद्धाययणकूडे णामं कूडे पणत्ते—छसकोसाइं जोयणा
 इं उड्डं उच्चत्तेणं ,मूले छसकोसाइं जोणाइं विक्खंभेणं मज्झे देसूणाइं
 पंच जोयणाइं विक्खंभेणं, उवरि साइरेगाइं णव जोयणाइं परिक्खेवेणं,
 मूले वित्थिण्णे मज्जे संखित्ते उप्पि तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए,
 सब्बरयणामए अच्छे सण्हे जाव पडिख्वे । से णं एगाए पउमवर-
 वेइयाए एगेण य वणसंडेणं सब्बओ समंता संपरि विक्खत्ते.
 पमांणं वण्णओ दोण्हंपि । सिद्धाययणकूडस्स णं उप्पि बहुसमर-
 मणिज्जे भूमिभागे पणत्ते, से जहानामए आलिंणपुक्खरेइ
 वा जाव वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति । तस्स णं बहुसमरमणि-
 ज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थणं महं एगे सिद्धा-
 ययणे पणत्ते कोसं आयामेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं , देसूणं कोसं
 उड्डं उच्चत्तेणं अणेग खंभसयसंनिविट्ठे खंभुग्गय सुकयवइरवेइया
 तीरणवरसइयसालभंजियाग सुसिलिद्धविसिद्धलद्धसंठियपसत्थवेरुलिय-
 विमलखंभे णाणामणिरयण खचियउज्जलबहुसम सुविभत्तभूमिभागे
 ईहामिग उसभत्तुरगणर मगर विहगवालगकिन्नर रुरुसरभवमर
 कुंजरवंणलय जाव पउमलयभत्तिचित्ते कंचणमणिरयणथूमियाए
 णाणाविहं पंचं वण्णओ घंटापडांगपरिमंडियग्गसिहरे धवले
 मरीइकवयं विणिम्मुर्यंते लाउल्लोइयमहिए जाव ज्ञया । तस्स णं
 सिद्धाययणस्स तिदिस्सि तओ दारा पणत्ता । तेणं दारा पंच धणु-
 सयाइं उड्डं उच्चत्तेणं अड्डाइज्जोइं धणुसयाइं विक्खंभेणं तावइयं चैव
 पवेसेणं, सेयवरक्कणगथूमियाग दाखण्णओ जाव वणमाला । तस्सणं
 सिद्धाययणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पणत्ते, से जहा
 णामए आलिंणपुक्खरेइ वा जाव तस्स णं सिद्धाययणस्स णं बहुसमर-
 मणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगे देवच्छंदए
 पणत्ते पंचधणुसंयोइं आयामविक्खंभेणं साइरेगाइं पंचधणुसयाइं उड्डं

उच्चतेणं सव्वरयणामए । एत्थणं अट्टसयं जिणपडिमाणं जिणुस्से-
हप्पमाणमित्ताणं संनिखित्तं चिट्ठइ एवं जाव धूवकडुच्छुगा ॥सूत्र० १५॥

छाया— क खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे वैताढ्यपर्वते सिद्धायतन-
कूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम् । गौतम । पौरस्त्यलक्षणममुद्रस्य पश्चिमेन दक्षिणार्द्धभरतकूटस्य
पौरस्त्येन अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे वैताढ्ये पर्वते सिद्धायतनकूटं नाम कूटं
प्रज्ञप्तम्, षट् सक्रोशानि योजनानि उर्ध्वमुच्चत्वेन, मूले षट् सक्रोशानि योजनानि विष्कम्भेण
मध्ये देशोनानि पञ्च योजनानि विष्कम्भेण, उपरि सातिरेकाणि त्रीणि योजनानि विष्क-
म्भेण, मूले देशोनानि द्वाविंशति योजनानि परिक्षेपेण, मध्ये देशोनानि पञ्चदश योजनानि
परिक्षेपेण, उपरि सातिरेकाणि नव योजनानि परिक्षेपेण मूले विस्तोर्णं मध्ये संक्षिप्तम् उपरि
तनुकं गोपुच्छसंस्थानसंस्थित, सर्वरत्नमयम् अच्छं प्रलक्षण यावत् प्रतिरूपम् । तत्
खलु एकया पञ्चवरवेदिकया एकैच वनपण्डेन सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तम्, प्रमाणं
वर्णको द्वयोरपि । सिद्धायतनकूटस्य खलु उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्त, स
यथा नामकः अलिङ्गपुष्कर इति वा यावद् व्यन्तरा देवश्च यावद् विहरन्ति ।

तस्य खलु बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महदेकं सिद्धा-
यतनं प्रज्ञप्तम्, क्रोशमायामेन अर्द्धक्रोश विष्कम्भेण देशेन क्रोशमूर्ध्वमूर्च्छत्वेन, अनेक स्तम्भ
शतसन्निविष्टं स्तम्भोद्गतकृतवज्रवेकातोरणवरचितशालभञ्जिगाक सुप्रिलष्टविशिष्ट
लष्ट संस्थित प्रशस्तवैदूर्यविमलस्तम्भं नानामणिकनकरत्नखचितोज्ज्वलबहुसमसुविभक्त-
भूमिभागम् ईहामृगवृषभतुरग नरमकरविहगव्यालक किन्नर रुद्र सरभ चमरकुञ्जरवनलता
यावत् पञ्चलता भक्तिचित्रं काञ्चनमणि रत्न स्तूपिकाक नागाविध पञ्च० वर्णकः घण्टापताका
परिमण्डिताप्रशिखरं धवलं मरीचिकवचं विनिर्मुञ्चत् लायितोत्लायितमहितं यावत्
ध्वजा । तस्य खलु सिद्धायतनस्य त्रिदिशि त्रीणि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तानि खलु द्वाराणि
पञ्चधनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, अर्धदशतानि धनुःशतानि विष्कम्भेण, तावदेव प्रवेशेन
इवेतवरकनक स्तूपिकाकं द्वारवर्णको यावद् वनलता । तस्य खलु सिद्धायतनस्य अन्तः
बहुसमरणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः, स यथानामकः अलिङ्गपुष्कर इति वा यावत् तस्य खलु
सिद्धायतनस्य खलु बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महानेको
देवच्छन्दकः प्रज्ञप्तः पञ्च धनुः शतानि आयामविष्कम्भेण सातिरेकाणि पञ्चधनुः शतानि
उर्ध्वमुच्चत्वेन सर्वरत्नमयः अत्र खलु अष्टशतं जिनप्रतिमानां जिनोत्सेधप्रमाणमात्राणां
संनिक्षिप्तं लिण्डति, एवं यावत् धूपकडुच्छुका ॥सू० १५ ॥

टीका—‘कहि ण भंते !’ इत्यादि ।

‘कहि णं भंते ! जंबुद्वीपे दीपे भारते वासे वेयड्ढपव्वए सिद्धाययणकूडे पण्णत्ते’
हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे वैताढ्यपर्वते—मध्य जम्बूद्वीपान्तर्वर्ति भरत-

क्षेत्रस्थितवैताढ्यपर्वते सिद्धायतनकूटं क्व कस्मिन् भागे खलु प्रज्ञप्तम्? भगवानाह-
 'गोयमा ! पुरत्थिमलवणसमुद्रस्स' हे गौतम पौरस्त्य लवणसमुद्रस्य पूर्व दिग्घर्तिलवणसमुद्रस्य
 'पच्चत्थिमेणं' पश्चिमेन-पश्चिमायां दिशि 'दाहिणद्धभरहकूडस्स पुरत्थिमेणं' दक्षिणार्द्ध-
 भरतकूटस्य पौरस्त्येन-पूर्वस्यां दिशि 'एत्थ णं जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढे
 पच्चए सिद्धायणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते' अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे वैताढ्य-
 पर्वते सिद्धायतनकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम् । तस्य उन्नतत्वादि प्रमाणमाह-'छ सक्को-
 साइं' इत्यादि । तत् सिद्धायतनकूटं 'छ सक्कोसाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं' सक्रोशानि
 क्रोशेन सहितानि षट्-षट्संख्यानि योजनानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन प्रज्ञप्तम् । तथा
 'मूळे छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खमेणं' मूळे-मूलप्रदेशे सक्रोशानि-क्रोशसहितानि
 षट् योजनानि विष्कम्भेण विस्तारेण, 'मज्झे देसूणाइं पंच जोयणाइं विक्खंमेणं'
 मध्ये-मध्यभागे देशोनानि-क्रिश्चिदेशेन न्यूनानि पञ्च योजनानि विष्कम्भेण, 'उवरि
 साइरेगाइं तिण्णि जोयणाइं विक्खंमेणं' उपरि-उर्ध्वभागे सातिरेकाणि-क्रिश्चिदधिकानि-

“कहिणं भंते! जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढपच्चए' इत्यादि ।

टीकार्थ-गौतम स्वामी ने इस सूत्र द्वारा प्रभु से ऐसा पूछा है-हे भदन्त ! जम्बूद्वीप
 नामके द्वीप में स्थित जो भरत नाम क्षेत्र है और उस भरतक्षेत्र के बीचमें जो विजयार्थ नाम का
 पर्वत है सो उस पर्वत पर सिद्धायतन नामक कूट किस भाग में कहा गया है ? इसके उत्तर
 में प्रभु कहते हैं “गोयमा ! पुरत्थिमलवणसमुद्रस्स पच्चत्थिमेणं दाहिणद्धभरहकूडस्स पुरत्थिमेणं
 एत्थ ण जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढपच्चए सिद्धायणकूडे णामं कूडे पण्णत्ते 'हे गौतम !
 पूर्वदिग्घर्तिलवण समुद्र की पश्चिमदिशा में तथा दक्षिणार्ध भरतकूट की पूर्वदिशा में जम्बूद्वीप-
 स्थित भरतक्षेत्र के मध्य में रहे हुए वैताढ्यपर्वत के ऊपर सिद्धायतन कूट कहा गया है ।
 “छक्कोसाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूळे छ सक्कोसाइं जोयणाइं विक्खंमेणं मज्झे देसूणाइं
 पंचजोयणाइं विक्खंमेणं उवरि साइरेगाइं तिण्णि जोयणाइं विक्खंमेणं, मूळे देसूणाइं बावीस

“कहिणं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढपच्चए-इत्यादि सूत्र ॥१५॥

टीकार्थ-' गौतमे आ सूत्रं पठे प्रभुने प्रश्नं कथं के डे लहन्त ! जम्बूद्वीप नामक द्वीपमां
 स्थित जे भरत नामक क्षेत्र छे आने ते भरत क्षेत्रना मध्यमा जे विजयार्थ नामक पर्वत छे आने
 ते पर्वत पर जे सिद्धायतन नामक कूट छे ते कथा लागभा आवेल छे ? आना जवाभमां
 प्रभु कहे छे 'गोयमा ! पुरत्थिमलवणसमुद्रस्स पच्चत्थिमेणं दाहिणद्धभरहकूडस्स
 पुरत्थिमेणं एत्थणं जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढ पच्चए सिद्धायतनकूडे नाम कूडे
 पण्णत्ते' हे गौतम ! पूर्व दिग्घर्ती लवण समुद्रनी पश्चिमदिशाभा तेमज्ज दक्षिणार्द्धं भरत
 कूटनी पूर्व दिशाभा जम्बूद्वीप स्थित भरत क्षेत्रना मध्यमा आवेल गौताढ्य पर्वतनी
 ऊपर सिद्धायतन कूट छे “छक्कोसाइं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूळे छसक्कोसाइं जोयणाइं
 विक्खंमेणं मज्झे देसूणाइं पंच जोयणाइं विक्खंमेणं उवरि साइरेगाइं तिण्णि जोयणाइं

અર્થક્રોશાધિકાનિ ત્રીણિ યોજનાનિ વિષ્કમ્ભેણ, 'મૂલે દેસૂળાઈં વાવીસ જોયળાઈં પરિક્ષેવેણ' મૂલે દેશોનાનિ કિશ્ચિદેશન્યૂનાનિ દ્વાવિશતિં-દ્વાવિશતિ સંખ્યાનિ યોજનાનિ પરિક્ષેપેણ-પરિધિના, 'મજ્જે દેસૂળાઈ પળ્ળરસજોયળાઈં પરિક્ષેવેણ' મધ્યે-મધ્ય-માગે દેશોનાનિ-કિશ્ચિદેશન્યૂનાનિ પશ્ચદશ પરુચ્ચદશ સંખ્યાનિ યોજનાનિ પરિક્ષેપેણ, 'ઉવરિં સાઈરેગાઈં ણવ જોયળાઈં પરિક્ષેવેણ' ઉપરિ-ઉપરિતનમાગે સાતિરેકાણિ-સાધિકાનિ નવ-નવસંખ્યાનિ યોજનાનિ પરિક્ષેપેણ, 'મૂલે વિત્થિળ્ણે' મૂલે વિસ્તીર્ણ વિસ્તાર-યુક્તમ્ 'મજ્જે સંખિત્તે' મધ્યે-મધ્યમાગે સંક્ષિપ્તં-સંકુચિતમ્, 'ઉપ્પિ તણુણ' ઉપરિ ઉર્ધ્વમાગે તનુકં-પ્રતલમ્ અત એવ 'મૂલમધ્યોર્ધ્વેષુ ક્રમશો વિસ્તારસંક્ષેપ-તનુત્વસત્વાત્' 'ગોપુચ્છસંઠાણસઠિણ' ગોપુચ્છસંસ્થાનસંસ્થિતં-ગોપુચ્છાડ્ડકારેણ સંસ્થિતમ્ પુનઃ 'સવ્વરયણામણ' સર્વરત્નમય-સર્વાત્મના રત્નમયમ્ 'અચ્છે સળ્હે જાવ પહ્લિરૂવે' અચ્છં શ્લક્ષણં યાવત્ પ્રતિરૂપમ્, તત્ર અચ્છમ્-આકાશસ્ફટિકવદતિનિર્મલમ્-"શ્લક્ષણં શ્લક્ષણ-પુદ્ગલસ્કન્ધનિર્મિતવદતિચિક્કણમ્, યાવત્ યાવત્પદેન લ્હં ઘૃષ્ટ મૃષ્ટ નીરજસ્કં નિર્મલં નિષ્પદ્ધં નિષ્કલ્લુટચ્છાયં સપ્રભં સમરીચિક સોદ્ધોતં પ્રાસાદીયં દર્શનીયમ્ અભિ-રૂપમ્" इत्येषां सङ्ग्रहो बोध्यः, तथा प्रतिरूपम् एषां व्याख्या चतुर्थसूत्रतो बोध्या ।

જોયળાઈં પરિક્ષેવેણ' यह सिद्धायतन कूट एक कोश ६ योजन का ऊँचा है मूल में इसका विस्तार एक कोश सहित ६ योजन का है मध्य में इसका विस्तार कुछ कम पाच योजना का है, उर्ध्वभाग में इसका विस्तार तीन योजन का एव कुछ अधिक आधेकोश का है मूल में इसकी परिधि कुछ कम २२, योजन की है मध्यभाग में इसकी परिधि कुछ कम १५ योजन की है, ऊपर में इसकी परिधि कुछ अधिक नौ योजन की है इस तरह यह मूल में विस्तार युक्त है, मध्यभाग में संकुचित है और ऊपर में प्रतल है अत एव यह गोपुच्छ के आकार जैसा हो गया है । यह पर्वत सर्वात्मना रत्नमय है और अचछ से लेकर प्रतिरूपतक के समस्त विशेषणों से युक्त है । इन अचछ आदि समस्त पदोंकी व्याख्या चतुर्थ सूत्र में की जा चुकी है अतः वही से यह देख लेना चाहिये यह सिद्धायतन कूट

વિક્ષેપેણ, મૂલે દેસૂળાઈં વાવીસ જોયળાઈં પરિક્ષેવેણ" આ સિદ્ધાયતન કૂટ એક ગાઉ ૬ યોજન જેટલો ઊંચો છે. મૂલમા આનો વિસ્તાર એક ગાઉ સહિત ૬ યોજન જેટલો છે મધ્યમા આનો વિસ્તાર કુછ કમ પાચયોજન જેટલો છે ઉર્ધ્વભાગમાં આનો વિસ્તાર ત્રણ યોજન તેમજ કઈક વધારે અર્ધગાઉ જેટલો છે મૂલમા આની પરિધિ કઈકે કમ ૨૨ યોજન જેટલી છે મધ્યભાગમા આની પરિધિ કઈકે કમ ૧૫ યોજન જેટલી છે ઉપરની આની પરિધિ કઈકે વધારે નવ યોજન જેટલી છે. આમ આ મૂલમા વિસ્તાર યુક્ત છે. મધ્યભાગમાં સંકુચિત છે અને ઉપર પ્રતલ છે એથી આ ગોપુચ્છના આકાર જેવો થઈ ગયો છે આ પર્વત સર્વાત્મના રત્નમય છે અને અચ્છથી પ્રતિરૂપ સુધીના સમસ્ત વિશેષણોથી યુક્ત છે આ અચ્છ વગેરે સર્વ પદોની વ્યાખ્યા ચતુર્થ સૂત્રમાં કરવામા આવી છે. એથી

‘से णं पगाए’ तत् सिद्धायतनकूटं खलु एकया ‘पउमवरवेइयाए’ पद्मवर-
वेदिकया ‘एणेण य’ एकेन च ‘वणसंडेणं’ वनपण्डेन. ‘सव्वओ.समंता संपरिक्खित्ते’ सर्वतः
समन्तात् संपरिक्खित्तं--परिवेष्टितम् । पद्मवरवेदिकावनपण्डयोर्द्वैर्ध्वविस्तारप्रमाणं वर्णनं
च जम्बूद्वीपजगतीगत पद्मवरवेदिकावनपण्डयोरिव बोध्यम् । एतदेव सूचयितुमाह--
‘पमाणं वण्णओ दोण्हं पि’ प्रमाणं वर्णको द्वयोरपीति ।

तथा ‘सिद्धाययणकूडस्स णं उप्पि’ सिद्धायतनकूटस्य खलु उपरि-ऊर्ध्वभागे
‘बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते’ बहुसमरमणियः भूमिभागः प्रज्ञप्तः, ‘से जहा-
णामए, आलिङ्गपुक्खरेइ वा जाव वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति’ स यथाना-
मकः आलिङ्गपुक्कर इति वा यावद् व्यन्तरा देवाश्च यावद् विहरन्ति । अत्र

एक पद्मवरवेदिका से और एक वनपंड से सब ओर से घिरा हुआ है पद्मवर वेदिका और
वनपण्ड का वर्णन लम्बाई चौड़ाई को लेकर जैसा जम्बूद्वीप की जगती की पद्मवरवेदिका
का और उसके वनपण्ड का पहिले किया जा चुका है वैसा ही है । इसी बात को
सूचित करने के लिए सूत्रकारने “प्रमाणं वर्णको द्वयोरपीति” ऐसा सूत्र पाठ कहा है ।

“सिद्धाययणकूडस्स णं उप्पि बहुसमसमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते” उस सिद्धायतनकूट के
ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहागया है “से जहाणामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा जाव
वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति” वह बहुसमरमणीय भूमि ऐसी बहुसम है कि जैसा बहुसम
मृदङ्ग का मुखपुट होता है यावत् यहा अनेक व्यन्तर देव आदि अपने समय को आनन्द से
व्यतीत करते रहते हैं यहां यावत्पद द्वय से राजप्रश्नोपसूत्र के १५वे सूत्र से लेकर १९वे
सूत्रतक जो पाठ कहा गया है वह गृहीत हुआ है. इस समस्त पाठ का अर्थ हमने उसकी
सुबोधिनी टीका में लिखा है अतः वहीं से इस विषय को समझ लेना चाहिये ।

त्याथी आ विषे वाची देवुं जेधंजे आ सिद्धायतनकूटं ज्येष्ठं पद्मवरवेदिकाथी अने ज्येष्ठं वन-
पण्डनी आरे आणुज्येथी वेशयेथी छे पद्मवरवेदिका अने वनपण्डनुं वण्णुं न लणाधं तेमज्ज
शोकाधनी अपेक्षाज्जे जेम ज्जं भूद्वीपनी जगतिनी पद्मवर वेदिका अने तेना वनपण्डनुं पडेवा
करेवाभां आणुं छे तेणुं ज्जं छे आ वातने सूचित करवा आटे सूत्रकारे ‘प्रमाणं वर्णको
द्वयोरपीति’ आ आतने। सूत्र पाठ कही छे

सिद्धाययणकूडस्स णं उप्पि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते” ते सिद्धायतन
कूटनी उपरं बहुसम रमणीय भूमिभाग छे “से जहा णामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा
जाव वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति” ते बहुसमरमणीय भूमिभाग मृदङ्ग मुखपुट
बहुसम छे. यावत् आही, अनेक व्यन्तर देव आदि पीताना समयने आतं क पूर्वकं पसार
करे छे. अही यावत्पदद्वयथी राजप्रश्नीयसूत्रना १५भा सूत्रथी १६ भां सूत्र सुधी जे
पाठ कहेवाभा आवेल छे तेणुं अहंणु समज्जु आ समस्त पाठने अर्थ अने जे त्या सुबो-
धिनी टीकाभां लभ्ये छे जेथी आ सपधमा त्याथी ज्जं आणी देवुं जेधंजे.

अर्धक्रोशाधिकानि त्रीणि योजनानि विष्कम्भेण, 'मूले देवणाईं वावीस जोयणाईं परिकखेवेणं' मूले देशोनानि किञ्चिद्देशन्यूनानि द्वाविंशतिं-द्वाविंशति संख्यानि योजनानि परिक्षेपेण-परिधिना, 'मज्जे देवणाइ पण्णरसजोयणाईं परिकखेवेणं' मध्ये-मध्यभागे देशोनानि-किञ्चिद्देशन्यूनानि पञ्चदश पञ्चदश संख्यानि योजनानि परिक्षेपेण, 'उवरिं साइरेगाईं णव जोयणाईं परिकखेवेणं' उपरि-उपरितनभागे सातिरेकाणि-साधिकानि नव-नवसंख्यानि योजनानि परिक्षेपेण, 'मूले वित्थिण्णे' मूले विस्तीर्णं विस्तारयुक्तम् 'मज्जे संखित्ते' मध्ये-मध्यभागे संक्षिप्तं-सकुचितम्, 'उप्पि तणुए' उपरि ऊर्ध्वभागे तनुकं-प्रतलम् अत एव 'मूलमध्योर्ध्वेषु क्रमशो विस्तारसक्षेप-तनुत्वसत्वात्' 'गोपुच्छसंठाणसठिए' गोपुच्छसंस्थानसंस्थितं-गोपुच्छाऽऽकारेण संस्थितम् पुनः 'सव्वरयणामए' सर्वरत्नमय-सर्वात्मना रत्नमयम् 'अच्छे सण्हे जाव पडिखूवे' अच्छं श्लक्ष्णं यावत् प्रतिरूपम्, तत्र अच्छम्-आकाशस्फटिकवदतिनिर्मलम्-"श्लक्ष्णं श्लक्ष्ण-पुद्गलस्कन्धनिर्मितवदतिचित्रकणम्, यावत् यावत्पदेन लष्टं घृष्टं मृष्टं नीरजस्कं निर्मलं निष्पङ्कं निष्कङ्कटच्छाय सप्रभं समरीचिक सोद्घोतं प्रासादीयं दर्शनीयम् अभिरूपम्" इत्येषां सङ्ग्रहो बोध्यः, तथा प्रतिरूपम् एषां व्याख्या चतुर्थसूत्रतो बोध्या ।

जोयणाईं परिकखेवेणं' यह सिद्धायतन कूट एक कोश ६ योजन का ऊँचा है मूल में इसका विस्तार एक कोश सहित ६ योजन का है मध्य में इसका विस्तार कुछ कम पाच योजन का है, उर्ध्वभाग में इसका विस्तार तीन योजन का एव कुछ अधिक आर्धकोश का है मूल में इसकी परिधि कुछ कम २२, योजन की है मध्यभाग में इसकी परिधि कुछ कम १५ योजन की है, ऊपर में इसकी परिधि कुछ अधिक नौ योजन की है इस तरह यह मूल में विस्तार युक्त है, मध्यभाग में सकुचित है और ऊपर में प्रतल है अत एव यह गोपुच्छ के आकार जैसा हो गया है । यह पर्वत सर्वात्मना रत्नमय है और अच्छ से लेकर प्रतिरूपतक के समस्त विशेषणों से युक्त है । इन अच्छ आदि समस्त पदोंकी व्याख्या चतुर्थ सूत्र में की जा चुकी है अतः वही से यह देख लेना चाहिये यह सिद्धायतन कूट

विष्कम्भेण, मूले देवणाईं वावीस जोयणाईं परिकखेवेणं" आ सिद्धायतन कूट एक गाँठ ६ योजन जेटली ७ यो. छे. मूलभा आनी विस्तार एक गाँठ सहित ६ योजन जेटली छे मध्यभा आनी विस्तार कुछ कम पाचयोजन जेटली छे उर्ध्वभागमा आनी विस्तार त्रयु योजन तेमज क छके वधारे अर्धगाँठ जेटली छे मूलभा आनी परिधि क छके कम, २२ योजन जेटली छे मध्यभागमा आनी परिधि क छके कम १५ योजन जेटली छे उपरनी आनी परिधि क छके वधारे नव योजन जेटली छे. आभ आ मूलभा विस्तार युक्त छे. मध्यभागमा सकुचित छे अने उपर प्रतल छे जेथी आ गोपुच्छना आकार जेवे थप जये छे आ पर्वत सर्वात्मना रत्नमय छे अने अच्छथी प्रतिरूप युधीना समस्त विशेषणोथी युक्त छे आ अच्छ वगेरे सर्व पहोनी व्याख्या चतुर्थ सूत्रमा करवाभा आनी छे. जेथी

‘से ण एगाए’ तत् सिद्धायतनकूटं खलु एकया ‘पउमवरवेइयाए’ पद्मवर-
वेदिकया ‘एगेण य’ एकेन च ‘वणसंडेणं’ वनषण्डेन ‘सव्वओ समन्ता संपरिक्खित्ते’ सर्वतः
समन्तात् संपरिक्षिप्तं--परिवेष्टितम् । पद्मवरवेदिकावनषण्डयोर्द्वैर्ध्वविस्तारप्रमाणं वर्णनं
च जम्बूद्वीपजगतीगत पद्मवरवेदिकावनषण्डयोरिव बोध्यम् । एतदेव सूचयितुमाह--
‘प्रमाणं वणणओ दोण्हंपि’ प्रमाणं वर्णको द्वयोरपीति ।

तथा ‘सिद्धायणकूडस्स णं उप्पि’ सिद्धायतनकूटस्य खलु उपरि-ऊर्ध्वभागे
‘बहुसमरमणिज्जे, भूमिभागे पण्णत्ते’ बहुसमरमणियः भूमिभागः प्रज्ञप्तः, ‘से जहा-
णामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति’ स यथाना-
मकः आलिंगपुष्कर इति वा यावद् व्यन्तरा देवाश्च यावद् विहरन्ति । अत्र

एक पद्मवरवेदिका से और एक वनषण्ड से सब ओर से घिरा हुआ है पद्मवर वेदिका और
वनषण्ड का वर्णन लम्बाई चौड़ाई को लेकर जैसा जम्बूद्वीप की जगती की पद्मवरवेदिका
का और उसके वनषण्ड का पहिले किया जा चुका है वैसा ही है । इसी बात को
सूचित करने के लिए सूत्रकारने- “प्रमाणं वर्णको द्वयोरपीति” ऐसा सूत्र पाठ कहा है ।

“सिद्धायणकूडस्स णं उप्पि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते” इस सिद्धायतनकूट के
ऊपर बहुसमरमणीय भूमिभाग कहा गया है “से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव
वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति” वह बहुसमरमणीय भूमि ऐसी बहुसम है कि जैसा बहुसम
भूदङ्ग का मुखपुट होता है यावत् यहा अनेक व्यन्तर देव आदि अपने समय को आनन्द से
व्यतीत करते रहते हैं यहां यावत्पद द्वय से राजप्रश्नीयसूत्र के १५वे सूत्र से लेकर १९वे
सूत्रतक जो पाठ कहा गया है वह गृहीत हुआ है. इस समस्त पाठ का अर्थ हमने उसकी
सुत्रोचिनी टीका में लिखा है अतः वहीं से इस विषय को समझ लेना चाहिये ।

त्यांथी आ विषे वाथी वेवु नेधओ आ सिद्धायतनकूट ओठ पद्मवरवेदिकाथी अने ओठ वन-
षण्डनी आरे भावुओथी वेरायेवो छे पद्मवरवेदिका अने वनषण्डनुं वरुण द्वाभाधं तेमज्ज
थोकाधनी अपेक्षाओ जेम ज्जम्बूद्वीपनी जगतिनी पद्मवर वेदिका अने तेना वनषण्डनुं पडेवा
करनामां आवुं छे तेवु ज्ज छे आ वातने सूचित करवा, भाटे सूत्रकारे ‘प्रमाणं वर्णको
द्वयोरपीति’ आ जतने, सूत्र पाठ कथो छे

सिद्धायणकूडस्स णं उप्पि बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते” ते सिद्धायतन
कूटनी उपर बहुसम रमणीय भूमिभाग छे “से जहा णामए आलिंगपुक्खरेइ वा
जाव वाणमंतरा देवा य जाव विहरंति” ते बहुसमरमणीय भूमिभाग भूदङ्ग मुखपुट
बहुसम छे यावत् अही अनेक व्यन्तर देव आदि योताना समयने आतड पूर्वक, पसार
करे छे. अही यावत्पदद्वयथी राजप्रश्नीयसूत्रना १५मा सूत्रथी १९ मा सूत्र सुधी जे
पाठ कडेवामा आवेद छे तेनु अडुषु समज्जु आ समस्त पाठने अर्थ अभाओ त्या सुत्रो-
चिनी टीकांमा लभ्यो छे ओथी आ स णं धमा त्यांथी ज्ज भावु वेवु नेधओ,

यववत्पदद्वयेन राजप्रश्रीयसूत्रस्य पञ्चदश सूत्रादारभ्य एकोनविंशतितमसूत्रतः पाठः । तदर्थश्च तत्रैव मत्कृतसुबोधिनीटीकातोऽवसेय इति ।

‘तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे’ तस्य खलु बहु-
रमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्यन्तमध्यदेशभागे ‘एत्थं णं महं एगे
सिद्धाययणे पण्णत्ते’ अत्र खलु एकं महत् विशाल सिद्धायतनं प्रज्ञप्तम्, तस्य प्रमाणमाह
‘कोस आयामेणं’ क्रोशम् एकं क्रोशम् आयामेन दैर्घ्येण ‘अद्धकोसं’ अद्धक्रोशम् क्रोश-
स्याद्धम् ‘वेक्खमेणं’ विक्कमेण विस्तारेण, ‘देसुणं कोसं उद्धं उच्चत्तेण’ देशेन किञ्चि-
द्देशन्यूनं क्रोशम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन प्रज्ञप्तम् । इत्थं प्रमाणमुक्त्वा सम्प्रति तद्वर्णनमाह-
‘अणेगखंभसयसनिविट्ठे’ अनेकं स्तम्भशतसन्निविष्टम् अनेकानि बहूनि स्तम्भशतानि
सन्निविष्टानि संलग्नानि यत्र तत् अनेकशतस्तम्भयुक्तमित्यर्थः, तथा ‘खंभुग्गयसुकयवइर
वेइया तोरण वररइयसालभजियाग सुसिलिद्धविसिद्धलद्धसंठिय पसत्थ वेरुलियविमल
खंभे’ स्तम्भोद्गतसुकृतवज्रवेदिकातोरणवररतिदशलभञ्जिकाकसुम्भिल्लपृविशिष्टल्लसस्थित
प्रशस्त वैदूर्यविमलस्तम्भम् तत्र स्तम्भेषु उद्गताः निविष्टाः सुकृताः निपुणशिल्पिरचिता

“तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थं णं महं एगे सिद्धाय-
यणे पण्णत्ते” उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल सिद्धायतन कहा
गया है यह “कोस आयामेण, अद्धकोस विक्खमेणं, देसुणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं” सिद्धायतन
लम्बाई में एक कोश का है और विस्तार में आधे कोश का है, तथा कुछ कम एक कोश
का उंचा है ‘अणेगखंभसयसनिविट्ठे’ यह अनेक सौ खम्भों के ऊपर रहा हुआ है “खंभुग्गय
सुकयवइरवेइया तोरणवररइयसालभजियाग सुसिलिद्ध विमिद्धलद्धसंठियपसत्थवेरुलियविमलखंभे”
प्रत्येक स्तम्भ के ऊपर निपुण शिल्पिजनो द्वारा रचित जैसी वज्रवेदिकाएँ और तोरण हैं तथा
श्रेष्ठ एवं नेत्रमन को हर्षित करने वाली शालभंजिकाएँ बनी हुई हैं । इस सिद्धायतन के जो
वैदूर्यनिर्मित स्तम्भ हैं वे सुल्लिष्ट- अच्छी तरह से जमे हुए हैं विलक्षण हैं-ये किस प्रकार से

“तस्सं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेस भागे एत्थं णं महं एगे सिद्धाययणे
पण्णत्ते” ते बहुसमरमणीय भूमिभागना परापर मध्यमां ज्येष्ठं विशाल सिद्धायतन आवेद
छे “कोस आयामेणं अद्धकोसं विक्खमेणं देसुणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं” सिद्धायतन लम्बाई
मा ज्येष्ठं गच्छेत्तुं छे अने विस्तार मा अर्द्धं गच्छेत्तुं छे, उद्धं कम ज्येष्ठं गच्छेत्तुं
छे, उच्चत्तेणं छे, “अणेगखंभसयसनिविट्ठे” आ अनेकसो थाललाज्योनीं उपर स्थित
छे, “खंभुग्गय सुकयवइरवेइया तोरणवररइयसालभजियाग सुसिलिद्ध विसिद्धलद्ध संठिय पसत्थ
वेरुलियवि म्भे” इरेक स्तम्भनीं उपर निपुण शिल्पिकारे वडे निर्मित पञ्च वेदिकाज्यो अने
तोरणो छे तथा श्रेष्ठ अने नेत्र मनने हर्षित करनारी शाल भंजिकाज्यो अनेकी छे, आ
सिद्धायतनना जे वैदूर्य रत्ननिर्मित स्तम्भो छे ते सुल्लिष्ट सारी रीते प्रिलक्ष थयेला छे,
विलक्षण छे शिल्पिकारेज्ये ज्येष्ठ निर्माण्डे केवी रीते कथुं हरी ? आ प्रमाणे जेनाशज्यो,

इव वज्रवेदिकास्तोरणानि वररतिदशालभञ्जिकाः वराः श्रेष्ठाः रतिदाः नेत्रमनः
सुखदाः शालभञ्जिकाश्च यत्र तत् स्तम्भोद्गतसुकृतवज्रवेदिका तोरणवररतिदशाल-
भञ्जिकाकं, तथा सुश्लिष्टाः सुष्ठु मिलिताः विशिष्टाः विलक्षणाः लष्टसंस्थिताः सुन्दर-
संस्थानयुक्ताः, अतएव प्रशस्ताः वैदूर्यविमलस्तम्भाः वैदूर्यरत्नमयनिर्मलस्तम्भा यत्र तत्
सुश्लिष्टविशिष्टलष्टसंस्थितप्रशस्तवैदूर्यविमलस्तम्भम्, ततः पदद्वयस्य कर्मधारय इति ।

तथा 'नानामणिरयणखचियउज्ज्वलबहुसमसुविभक्तभूमिभागे' नानामणि कनकरत्न-
खचितोउज्ज्वलबहुसमसुविभक्तभूमिभागं-नानामणिभिः अनेकप्रकारकमणिभिः कनकैः
स्वर्णैः रत्नैश्च खचितः युक्तः उज्ज्वलः विशुद्ध बहुसमः अत्यन्तसमः सुविभक्तः
कृतसम्यग्भिभागो भूमिभागो यत्र तादृशम्, तथा 'ईहामिगउसभतुरगणरमगर-
विहगवालगकिन्नररुसरभचमरकुंजरवणलय जाव पउमलयमत्तिचित्ते' इहामिगउसभतुरग-
नरमकरविहगव्यालककिन्नररुसरभचमरकुंजर वनलता यावत् पञ्चलता भक्तिचित्रम्-
तत्र-ईहामिगो वृकः भो बलीवईः, तुरगः अश्वः, नरः मनुष्यः, मकरः ग्राहः,
विहगः पक्षी, व्यालकः व्यालः-सर्पः स एव व्यालकः, किन्नरः व्यन्तरदेवविशेषः,
रु-मृगः, शरभः अष्टापदो वन्यजन्तुविशेषः चमरः वन्या गौः, कुंजरः-इस्ती वनलता-
वनोत्पन्नलता यावत्-यावत्पदेन नागलता अशोकलता चम्पकलता चूतलता वासन्ति-
कालताऽति कलता कुन्दलतानां संग्रहः, तथा-पद्मलता कमलिनी चैषां मत्त्या-

बनाये गये होंगे इस तरह के आश्चर्य देने वाले हैं लष्ट संस्थित-सुन्दर आकार वाले हैं एवं
प्रशस्त हैं और विमल-निर्मल हैं । "णाणामणिरयणखचिय उज्ज्वल बहुसम सुविभक्तभूमिभागे"
इस सिद्धायतन का जो भूमिभाग है वह अनेक मणियों से स्वर्णों से और रत्नों से खचित है
अतएव वह उज्ज्वल है और अत्यन्तसम है, तथा-"ईहामिग उसभतुरगणरमगरविहगवालग
किन्नररुसरभचमरकुंजरवणलय जाव पउमलयमत्तिचित्ते" यहा ईहामिग-वृक-वृषभ-वैल, तुरग-
अश्व, नर, मनुष्य, मकर-मगर, विहग-पक्षी, व्याल-सर्प, किन्नर-व्यन्तरदेवविशेष, रु-मृग,
शरभ-अष्टापद, चमर-चमरीगाय कुंजर-हाथी, वनलता-वनोत्पन्नवैल, तथा यावत्पद-गृहीत-नाग
लता, अशोकलता, चम्पकलता, चूतलता, वासन्तिकलता, अतिमुक्तकलता, कुन्दलता तथा पद्म-

नेर्धने आश्चर्य पाये तो वा अ स्त बोले लष्ट-संस्थित सुंदर आकार वाला छे, तेभञ्
प्रशस्त छे अने विमल निर्मल छे. "णाणा मणि खचिय उज्ज्वल बहुसुविभक्त भूमि भागे"
आ सिद्धायतनना अे भूमिभाग छे ते अनेक मणियेथी स्वर्णोथी अने रत्नोथी अचित छे अेथी
ते उल्लेखल छे अने अत्यंत सम छे. तेभञ् 'ईहामिग उसभतुरगणरमगरविहगवालग किन्न-
ररु सरभ चमरकुंजरवणलयजाव पउमलयमत्तिचित्ते" अही धंइहामिग वृक, वृषभ अण्ड
पुरग अश्व, नर मनुष्य, मकर मगर, विहग-पक्षी, व्यालक-सर्प, किन्नर व्य तरदेवविशेष,
मृग, शरभ अष्टापद, चमर चमरी गाय कुंजर हाथी वनलता वनोत्पन्न लता तथा यावत्पद
गृहीत नागलता अशोकलता चम्पकलता चूतलता, वासन्तिक लता अतिमुक्तकलता कुं
१५

रचनया चित्रम् अद्भुतम् तथा 'कंचणमणिरयणभूमियाए' काठवनमणिरत्नं स्तृपि हाकं-
 काठचनं सुवर्णमणिः-मरकतादिः-रत्नं वैडूर्यादि तन्मयी स्तूपका यस्य तत्तथा पुनः कीदृ-
 शम्: 'णाणाविह पच०' नानाविधपठचवर्णमणिभिः- अनेकजातीय कृष्णादिवर्णम-
 णिभिः उपशोभितम्-अलंकृतम् । तत्र मणोनां वर्णगन्धरसस्पर्शानां 'वर्णमो' वर्णकः
 वर्णनपरः पदसमूहः प्राग्वत् । तथा 'घंटापडागपरिमंडियगसिहरे' घण्टापता-
 कापरिमण्डिताग्रशिखरं घण्टाभिः पताकाभिश्च परिमण्डितम् सुशोभितम्-अग्रशिखरम्
 उपरितनभागो यस्य तत् तथा 'धवले' धवल-शुद्धवर्णम् 'मरीडकवयं' मरीचिकवच
 किरणसमूहपरिक्षेपं 'विणिम्मुयंते' त्रिनिर्मुञ्चत्-निःसारयन् तथा 'लाउल्लोइयमहिण'
 लायितोल्लायितमहितं लायितं-गोमयादिना भूम्युपलेपनम्, उल्लायितं सेटिकादिभिः-
 (श्वेतमृत्तिकादिभिः) कुड्यसमूहस्य संमृष्टीकरणम् आभ्यां महितं परिष्कृतमिव, तथा
 'जाव झया' यावद् ध्वजाः इति । लायितोल्लायितमहितमित्यनन्तरं 'ध्वजाः' इत्यत

छता कमत्रिनो इन सबके चित्र वने है इससे वह सिद्धायतन अद्भुत जैसा प्रतीत होता है
 'कंचणमणि रयणभूमियाए, णाणाविहपंच० वर्णमो, घंटा पडाग परिमंडियगसिहरे धवले मरीडकव-
 यं विणिम्मुयते' 'कचन-मुवर्ण, मरकत आदि मणि और वैडूर्य आदि रत्न इनसे उमकी शिखर
 बनी हुई है अनेक प्रकार के कृष्णादि वर्णोंपेत मणियों से वह सिद्धायतन सुशोभित है यहाँ
 मणियों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों का वर्णन परक पद समूह जैसा पहले कहा गया है-वैसा
 ही वह रहा पर भी कह लेना चाहिये इसका अग्रशिखर-उपरितनभाग घण्टा और पताकाओं
 से परिमंडित है यह सिद्धायतन धवल है. तथा किरणों के समुदाय की- प्रभाजाल को प्रति
 समय छोड़ता रहता है "ला उल्लोइय०" इसकी भित्तियां सेटिकादि से-चूने की कली आदि-सै-
 पुनी हुई हैं और जमोन इमको गोमयादि से लिप रहती है- इससे यह बड़ा-ही सुहावना
 लगना है. "जाव झया" यावत् ध्वजाएँ इसके ऊपर फहराती रहती हैं यहाँ यावत्पद से जिन

तेम अ पद्मसिता कमत्रिनी आ सर्वना चित्रो भनेला छे. ओथी आ सिद्धायतन अद्भुत
 नेपु लागे छे 'कंचणमणिरयणभूमियाए णाणाविहपच० वर्णमो, घंटा पडागपरिमंडिय-
 गसिहरे धवले मरीडकवयं विणिम्मुयते' कचन मुवर्ण मरकत वगेरे मणि आदि 'वैडूर्य'
 आदि रत्नोथी तेनु शिखर भनेलु छे अनेक प्रकारना कृष्णादि वर्णोपेत मणीओथी-ते
 सिद्धायतन सुशोभित छे अही मणीओना वर्ण, गन्ध, रस अने स्पर्शना वर्णन
 स भधी पद समूह नेम पडेला कडेसमा आवेल छे तेम समल लेवे लेधिये आनु
 अग्रशिखर उपरितन भाग घटा अने पताकाओथी परिमंडित छे आ सिद्धायतन धवल
 छे ते आ अ किरण समूहोने-प्रभाजालने प्रतिसमय प्रसृत करतु रडे छे. "लाउल्लोइय०"
 आनी दिवाले सेटिकादिथी-चूना वगेरेथी घोलेली रडे छे अने ओनी जमीन गोमयादिथी
 लिप रडे छे ओथी आ भूमर रणियाभलु लागे छे 'जाव झया' यावत् ध्वजोओ ओनी 'उपर
 लडेराती रडे छे-अही यावत्पदथी ने पदोसंगृहीत थयेल छे 'ते पदोसु' विवरण यथिके।

पूर्व यानि पदानि तानि वक्ष्यमाण यमिकाराजधानी वर्णनप्रसङ्गे वक्ष्यन्तेऽतस्तानि न विव्रियन्ते इति बोध्यम् ।

‘तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिस्सि’ तस्य खलु सिद्धायतनस्य त्रिदिशि-तिस्रणां दिशां समाहार ख्दिक् तस्मिन् तिस्रषु दिक्षु ‘तओ दारा पण्णत्ता’ त्रीणि-त्रिसंख्यकानि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि । ‘ते णं दारा पञ्च धणुसयाइं’ तानि खलु द्वाराणि पञ्च धनुश्शतानि पञ्चशत धनुः प्रमाणानि ५०० ‘उड्डं उच्चत्तेण अड्ढाड्ज्जाइं’ ऊर्ध्वं मुच्चत्वेन अर्धतृतीयानि धणुसयाइं, धनुःशतानि-सार्धद्विशत-धनुः २५० प्रमाणानि ‘विकखंमेणं’ विष्कम्भेण-विस्तारेण, ‘तावइयं चेव पवेसेणं’ तावदेव-तत्प्रमाणमेव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि । तानि कीदृशानि ? इत्याह-‘सेयवरकणगथूमियाण’ श्वेतानि-शुक्लवर्णानि वरकनक स्तूपिकाकानि-उच्चमस्वर्णमयस्तूपिका युक्तानि, अत्र ‘दार वण्णओ’ द्वारवर्णकः- द्वारवर्णनपरः पदसमूहो वक्तव्यः स कियन्तः ? इत्याह ‘जाव वणमाला’ यावद् वनमाला इति वनमाला वर्णनपर्यन्तो वर्णको-बोध्य इत्यर्थः । अयं वर्णकोऽस्यैवाष्टमसूत्रे विलोकनीय इति ।

अथ सिद्धायतनस्य भूमिभागं वर्णयितुमाह-‘तस्स णं’ तस्य पूर्वोक्तस्य खलु

पदों का समूह हुआ है उन पदों का विवरण यमिका राजधानी के वर्णन प्रसङ्ग में किया जायगा इसलिये यहाँ उनका विवरण नहीं किया है.

“तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिस्सि तओ दारा पण्णत्ता” उस सिद्धायतन के तीन द्वारों दिशाओं में कहे गये हैं “तेण दारा पंचधणुसयाइं उड्डं उच्चत्तेण अड्ढाड्ज्जाइं धणुसयाइं विकखंमेणं तावइयं चेव पवेसेण सेयवरकणगथूमियाण, दार वण्णओ जाव वणमाला” ये द्वार ५०० पांच सौ धनुष के ऊँचे हैं और २५० अर्द्धाई सौ धनुष के विस्तार वाले-चौड़े हैं । और इतना ही इनका प्रवेश है । ये द्वार सफेद हैं और इनकी शिखरें श्रेष्ठ सुवर्ण की बनी हुई हैं । यहाँ द्वारों का वर्णन करने वाला पद समूह वन माला वर्णन तक का जो इसी के आठवे सूत्र में कहा जा चुका है यहाँ पर भी कह लेना चाहिये

‘तस्स णं सिद्धाययणस्स अतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते’ उस सिद्धायतन का

राजधानीना वर्णन प्रसङ्गों में करवाना आवश्य. ओटला माटे न अही आनु वर्णन करवाना आठु नथी.

“तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिस्सि तओ दारा पण्णत्ता” ते सिद्धायतनना त्रषु द्वारे त्रषु दिशाओभां आवेशा छे “तेण दारा पंचधणुसयाइ उड्डं उच्चत्तेण अड्ढाड्ज्जाइं धणुसयाइं विकखंमेणं तावइयं चेव पवेसेण सेयवर कणगथूमियाण दारवण्णओ जाव वणमाला” ओ द्वारे ५०० पाचसे धनुष ओटला उंचा छे २५० अर्द्धाईसे धनुष ओटला विस्तार वाणा छे चौडा छे तेमन ओटला ओमना प्रवेश छे ओ द्वारे श्वेत छे अने ओमना शिखरा श्रेष्ठ सुवर्ण निर्मित छे आ अथना आठमां सूत्रमां वनमाला सुधी ओ द्वार विषयक वर्णन करनार पद समूह छे ते अही पद्य लखुवा लेउओ

‘तस्स णं सिद्धाययणस्स अतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते’ ते सिद्धायतन नो

રચનયા ચિત્રમ્ અદ્ભુતમ્ તથા 'કંચનમણિરયણથૂમિયાણ' કાઠચનમણિરત્નં સ્તૂપિકાર્ક-
 કાઠચનં સુવર્ણમણિઃ-મરકતાદિઃ-રત્નં વૈદ્યર્યાદિ તન્મયી સ્તૂપકા યસ્ય તત્તથા પુનઃ ક્રીટ-
 શમ્: 'ણાણાવિહ પચ્ચ' નાનાવિધપઠચવર્ણમણિમિઃ- અનેકજાતીય કૃષ્ણાદિવર્ણમ-
 ણિમિઃ ઉપશોભિતમ્-અલંકૃતમ્ । તત્ર મણીનાં વર્ણગન્ધરસસ્પર્શનાં 'વર્ણઓ' વર્ણકઃ
 વર્ણનપરઃ પદસમૂહઃ પ્રાગ્વન્ । તથા 'ઘંટાપટ્ટાગપરિમંડિયગ્ગસિહરે' ઘણ્ટાપતા-
 કાપરિમંડિતાગ્ગશિખરં ઘણ્ટામિઃ પતાકામિશ્ચ પરિમંડિતમ્ સુશોભિતમ્-અગ્રશિખરમ્
 ઉપરિતનભાગો યસ્ય તત્ તથા 'ધવલે' ધવલ-શુક્રવર્ણમ્ 'મરીચકવચં' મરીચિકવચ
 કિરણમમૂહપરિક્ષેપં 'ત્રિણિમ્મુયંતે' ત્રિનિર્મુઠ્ઠવન્-નિઃમારયન્ તથા 'લાઝલ્લોદ્યમદિણ'
 લાયિતોલ્લાયિતમહિતં લાયિતં-ગોમયાદિના ધૂમ્યુપલેપનમ્, ઉલ્લાયિતં સેટિકાદિમિઃ-
 (શ્વેતમૃત્તિકાદિમિઃ) કુલ્યસમૂહસ્ય સંમૃષ્ટીકરણમ્ આખ્યાં મહિતં પરિષ્કૃતમિવ, તથા
 'જાવ જ્ઞયા' યાવદ્ ધ્વજાઃ ઇતિ । લાયિતોલ્લાયિતમહિતમિત્યનન્તર 'ધ્વજાઃ' ઇત્યત્

લતા કમઠિનો ઇન સબકે ચિત્ર બને છે ઇમસે વહ મિદ્ધાયતન અદ્ભુત જૈસા પ્રતીત હોતા હૈ
 'કંચનમણિ રયણથૂમિયાણ, ણાણાવિહપંચવર્ણઓ, ઘંટાપટ્ટાગ પરિમંડિયગ્ગસિહરે ધવલે મરીચકવ-
 ચં ત્રિણિમ્મુયંતે' કચન-સુવર્ણ, મરકત આદિ મણિ ઓર વૈદ્યર્યા આદિ રત્ન ઇનસે ડામકી શિખર
 બની હુઈ હૈ અનેક પ્રકાર કે કૃષ્ણાદિ વર્ણોપેત મણિયોં સે વહ સિદ્ધાયતન સુશોભિત્ હૈ યહાં
 મણિયો કે વર્ણ, ગન્ધ, રસ ઓર સ્પર્શોં કા વર્ણન પરક પદ સમૂહ જૈસા પહેલે કહા ગયા હૈ-વૈસા
 હી વહ દહા પર મી કહ લેના ચાહિયે ઇસકા અગ્રશિખર-ઉપરિતનભાગ ઘણ્ટા ઓર પતાકાઓ
 સે પરિમંડિત હૈ યહ સિદ્ધાયતન ધવલ હૈ. તથા કિરણો કે સમુદાય કી- પ્રમાજાલ કો પ્રતિ
 સમય ડોહ્તા રહતા હૈ "લાઝલ્લોદ્યમ" ઇસકી મિત્તિયાં સેટિકાદિ સે-ચૂને કી કલી આદિ સે-
 પુની હુઈ હૈ ઓર જમોન ઇમકો ગોમયાદિ સે લિપ રહતી હૈ- ઇસસે યહ બઢા હી સુહાવના
 લગતાહૈ. "જાવ જ્ઞયા" યાવત્ ધ્વજાઈ ઇસકે ડાર ફહરાતી રહતી હૈ યહાં યાવત્પદ સે જિન

તેમજ પદસત્તા કર્મણી આ સર્વના ચિત્રો બનેલા છે. એથી આ સિદ્ધાયતન-અદ્ભુત
 બેવુ લાગે છે 'કંચનમણિરયણથૂમિયાણ ણાણાવિહપંચવર્ણઓ, ઘંટા, પટ્ટાગપરિમંડિય-
 ગ્ગસિહરે ધવલે મરીચકવચં ત્રિણિમ્મુયંતે' કચન સુવર્ણ મરકત વગેરે મણિ આદિ 'વૈદ્યર્યા'
 આદિ રત્નોથી તેવુ શિખર બનેલુ છે અનેક પ્રકારના કૃષ્ણાદિ વર્ણોપેત મણિઓથી તે
 સિદ્ધાયતન સુશોભિત છે અહી મણિઓના વર્ણ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શના વર્ણન
 સબથી પદ સમૂહ એમ પહેલા કહેવામાં આવેલ છે તેમ સમલ લેવો જોઈએ. આનુ
 અગ્રશિખર ઉપરિતન ભાગ ઘટા અને પતાકાઓથી પરિમંડિત છે આ સિદ્ધાયતન ધવલ
 છે તે આજ કિરણ સમૂહોને-પ્રમાજાલને પ્રતિસમય પ્રસૂત કરતુ રહે છે. "લાઝલ્લોદ્યમ"
 આની દિવાલો સેટિકાદિથી-ચૂના વગેરેથી ઘોળેલી રહે છે અને એની જમીન ગોમયાદિથી
 લિપ્ત રહે છે એથી આ ધૂમ્યુ રણિયામણુ લાગે છે 'જાવ જ્ઞયા' યાવત્ ધ્વજાઓ એની ઉપર
 લહેરાતી રહે છે અહી યાવત્પદથી જે પદોસંગૃહીત થયેલ છે તે પદોનુ વિવરણ યમિકા

पूर्व यानि, पदानि तानि वक्ष्यमाण यमिकाराजधानी वर्णनप्रसङ्गे वक्ष्यन्तेऽतस्तानि न विव्रियन्ते इति बोध्यम् ।

‘तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिस्सि’ तस्य खलु सिद्धायतनस्य त्रिदिशि-तिसृणां दिशां समाहारं त्रिदिक् तस्मिन् तिसृषु दिक्षु ‘तओ दारा पण्णत्ता’ त्रीणि-त्रिसंख्यकानि द्वाराणि प्रज्ञप्तानि । ‘ते णं दारा पञ्च धणुसयाइं’ तानि खलु द्वाराणि पञ्च धनुश्शतानि पञ्चशत धनुः प्रमाणानि ५०० ‘उड्डं उच्चत्तेण अड्ढाइज्जाइं’ ऊर्ध्वं मुच्चत्वेन अर्धतृतीयानि ‘धणुसयाइ, धनुःशतानि-सार्धद्विशत-धनुः २५० प्रमाणानि ‘विक्खंभेणं’ विष्कम्भेण-विस्तारेण, ‘तावइयं चैव पवेसेणं’ तावदेव-तत्प्रमाणमेव प्रवेशेन प्रज्ञप्तानि । तानि कीदृशानि ? इत्याह—‘सेयवरकणगथूमियाए’ श्वेतानि-शुक्लवर्णानि वरकनक स्तूपिकाकानि-उत्तमस्वर्णमयस्तूपिका युक्तानि, अत्र ‘दार वण्णओ’ द्वारवर्णकः— द्वारवर्णनपरः पदसमूहो वक्तव्यः स क्वियन्तः ? इत्याह ‘जाव वणमाला’ यावद् वनमाला इति वनमाला वर्णनपर्यन्तो वर्णको-बोध्य इत्यर्थः । अयं वर्णकोऽस्यैवाष्टमसूत्रे विलोकनीय इति ।

अथ सिद्धायतनस्य भूमिभागं वर्णयितुमाह—‘तस्स णं’ तस्य पूर्वोक्तस्य खलु

पदों का समूह हुआ है उन पदों का विवरण यमिका राजधानी के वर्णन प्रसङ्ग में किया जायगा-इसलिये यहाँ उनका विवरण नहीं किया है.

“तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिस्सि तओ दारा पण्णत्ता” उस सिद्धायतन के तीन द्वार तीन दिशाओं में कहे गये हैं “नेण दारा पंचधणुसयाइं उड्ड उच्चत्तेण अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं विक्खंभेण तावइयं चैव पवेसेण सेयवरकणगथूमियाग, दार वण्णओ जाव वणमाला” ये द्वार ५०० पाच सौ धनुष के ऊँचे हैं और २५० अढाई सौ धनुष के विस्तार वाले चौड़े हैं । और इतना ही इनका प्रवेश है । ये द्वार सफेद हैं और इनकी शिखरें श्रेष्ठ सुवर्ण की बनी हुई हैं । यहाँ द्वारों का वर्णन करने वाला पद समूह वन माला वर्णन तक का जो इसी के आठवें सूत्र में कहा जा चुका है यहाँ पर भी कह लेना चाहिये

‘तस्स णं सिद्धाययणस्स अतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते’ उस सिद्धायतन का राजधानीना वर्णन प्रसंगमां करवाभा आवशे. ओटला भाटे न अही आनु वर्णन करवाभा आणुं नथी

“तस्स णं सिद्धाययणस्स तिदिस्सि तओ दारा पण्णत्ता” ते सिद्धायतनना त्रक्षु द्वारे त्रक्षु दिशाओमां आवेशा छे “तेणं दारा पंचधणु सयाइ उड्डं उच्चत्तेण अड्ढाइज्जाइं धणु सयाइं विक्खंभेण तावइयं चैव पवेसेण सेयवर कणगथूमियाग दारवण्णओ जाव वणमाला” ओ द्वारे ५०० पाचसो धनुष ओटलां उंचा छे २५० अढीसो धनुष ओटला विस्तार वाणा छे ओटा छे तेमं ओटला ओभनो प्रवेश छे. ओ द्वारे श्वेत छे अने ओभनां शिखरी श्रेष्ठ सुवर्णुं निर्मित छे. आ अन्थना आठमां सूत्रमां वनमाला सुधी ओ द्वार विषयक वर्णन करनार-पद समूह छे ते अही पक्ष लक्ष्यो ओट्टिओ

‘तस्स णं सिद्धाययणस्स अतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते’ ते सिद्धायतनने

‘सिद्धाययणस्स’ सिद्धायतनस्य ‘अन्तो’ अन्तः-मध्ये ‘बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पणत्ते, बहुसमरमणीयः भूमिभागः प्रज्ञप्तः, कथितः ‘से जहाणामह आलिंगपुक्खरेइ वा जाव’ स यथानामक आलिंगपुष्कर इति वा यावत् । यावत्पदेन-‘आलिंग पुष्कर इति वा’ इत्यारभ्य ‘तस्य खलु सिद्धायतनस्य’ इत्यतः पूर्वं ‘नानाविध-पञ्चवर्णैर्मणिभिरुपशोभितः, इत्यन्त पदसग्रहोऽत्र कर्तव्यः इति ।

‘तस्स णं सिद्धाययणस्स’ तस्य खलु सिद्धायतनस्य-सिद्धायतनसम्बन्धिनो ‘बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए’ बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे-अत्यन्त मध्यदेशभागे ‘एत्थ णं’ अत्र इह खलु ‘महं’ महान् विस्तृतः ‘एगे देवच्छंदए’ एकः देवच्छन्दकः-देवासनविशेषः ‘पणत्ते’ प्रज्ञप्तः, स च देवच्छन्दकः ‘पंचधणुसयाइं’ पञ्चधनुःशतानि ‘आयामविकखंभेणं’ आयामविष्कम्भेण दैर्घ्यविस्ताराभ्याम् ‘साइरेगाइं’ सातिरेकाणि किञ्चिद्देशाधिकानि ‘पंचधणुसयाइं’ ‘उद्धं उच्चत्तेणं’ पञ्चधनुः शतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, स पुनः ‘सव्वरयणामए’ सर्वरत्न-मयः-सर्वात्मना रत्नमयः । ‘एत्थणं’ अत्र इह अनन्तरवर्णितदेवच्छन्दके खलु

भीतरी भूमिभाग बहुसमरमणीय कहा गया है ‘से जहाणामए आलिंगपुक्खरेइ वा जाव तस्स णं सिद्धाययणस्स ण बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एगे देवच्छंदए पणत्ते’ वह भूमिभाग ऐसा बहुसम है जैसा कि मृदङ्ग का मुखपुट बहु-सम होता है इत्यादिरूप से इस भूमिभाग के वर्णन में जैसे उपमावाची पद पहिले कहे गये हैं वे ही उपमावाचीं सब पद यहां पर भी कहलेना चाहेये और यह भूमिभाग का वर्णन “वह नाना प्रकार के पाचवर्णी वाले मणियों से सुशोभित हैं” इन अन्तिम पदों द्वारा वहां जैसा किया गया है वैसा ही यहां पर भी यह इन अन्तिमपदों द्वारा वर्णित कर लेना चाहिये उस सिद्धायतन के बहुमध्यदेशभाग में एक विशाल देवच्छन्द-क कहा गया है । देवच्छन्दक देवासनविशेषरूप होता है । यह देवच्छन्दक ‘पंचधणुसयाइ उद्धं उच्चत्तेण सव्वरयणामए’ ऊंचाई में पाच सौ धनुष का हैं तथा सर्वात्मना रत्नमय

अ इरनेो भूमिभाग बहुसमरमणीय कहेवाभां आवेले ऐ, “से जहाणामए आलिंग पुक्खरेइवा जाव तस्स णं सिद्धाययणस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगे देवच्छंदए पणत्ते” ते भूमिभागमृदङ्ग गुणपुटवत् बहुसम ऐ. इत्यादिइपभां आ भूमिभागतु वर्णन करता ऐ प्रभाषे उपमावाची पदो पहेलां कहेवाभां आवेला ऐ ते उपमावाची सर्व पदो अही पक्ष कहेवा लेईऐ आ भूमिभागतु वर्णन ते नाना प्रकारना पांच वर्णवाणा मणिव्याथी सुशोभित ऐ. ऐ अतिम पदो वडे त्यां नेतुं करवाभां आओं ऐ तेतुं अही पक्ष ऐ अतिम पदो वडे वर्णित समथ तेषुं लेईऐ ते सिद्धाय तन बहुमध्य देशभागमा ओक विशाल देव च्छंदक कहेवाथ ऐ. आ देवच्छंदक देवासन विशेष होय ऐ आ देवच्छंदक “पंचधणुसयाइ उद्धं उच्चत्तेण सव्व” जे आर्धभां पांचशो

‘अदृसयं’ अष्टशतम् अष्टोत्तरशतम् ‘जिणयडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताणं’ कामदेवप्र-
तिमानां कामदेवोत्सेधप्रमाणमात्राणां कामदेवशरीरोच्चत्वप्रमाणप्रमिताम् ‘संनिखित्तं’
सन्निक्षिप्तं-संरक्षितं ‘चिद्वइ’ तिष्ठति । इतोऽनन्तर ‘तासां खल्लु कामदेव प्रतिमाना-
मयमेतद्भूपो वर्णावासः प्रज्ञप्तः, इत्यारभ्य’ ‘अष्टशतं धूपकडुच्छुकानां सन्निक्षिप्त
तिष्ठति, इति पर्यन्तः पाठः संग्राह्यः । अमुमेवार्थं सूचयितुमाह—‘जाव धूवकडु-
च्छुगा’ इति । स च, पाठो राजप्रश्नीयसूत्रस्य अशीतितमैकाशीतितमसूत्रतो द्रष्टव्यः ।
तदर्थश्च तत्रैव मत्कृता सुबोधिनी टीकातोऽवसेय इति ॥
उक्तञ्च—‘अर्हन्नपि जिनश्चैव जिनः सामान्यकेवलो ।

कन्दर्पोऽपि जिनश्चैव जिनो नारायणो हरिः ॥१॥ ॥छ० १५॥

अथ दक्षिणाद्धंभरतकूट स्वरूपमाह—

मूलम्—कहि णं भंते वेयड्ढे पव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे
पण्णत्ते ? गोयमा ! खंडप्पवायकूडस्स पुरत्थिमेणं सिद्धाययणकूडस्स
पच्चत्थिमेणं एत्थ णं वेयड्ढपव्वए दाहिणड्ढभरहकूडे णामं कूडे पण्णत्ते
सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे जाव तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमि
भागस्स बहुमज्झदेक्षभाए एत्थ णं महं एगे पासायबडिसए पण्णत्ते
कोसं उड्डं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिय पहसिए

है । ‘एत्थ ण अदृसय जिणयडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताण संनिखित्त चिद्वइ’ इस देव-
च्छदक में जिनोत्सेधप्रमाण प्रमित १०८ कामदेव को प्रतिमाएं हैं । इन १०८ कामदेव
प्रतिमाओं का वर्णावास इस प्रकार का कहा गया है इसके बाद यहां ऐसे इस पाठ
से लेकर “अष्टशतं धूपकडुच्छुकानां सन्निक्षिप्तं तिष्ठति” इन कामदेव प्रतिमाओं के आगे
१०८ धूप से भरे हुए कडाहे रखे हुए हैं यहां तक का सब पाठ कह लेना चाहिये
इसी अर्थ को सूचित करने के लिये “एवं जाव धूवकडुच्छुगा ” सूत्रकार ने ऐसा
सूत्रपाठ कहा है । यह पुरा का पुरा पाठ राजप्रश्नीय सूत्र के ८० और ८१ वे सूत्र से
जान लेना चाहिए वहां हमने इसको सुबोधिनी टीका से उसका अर्थ स्पष्ट किया है ॥१५॥

धनुष प्रभाषु छे तेभञ्च सर्वात्मना रत्नमय छे ‘एत्थणं अदृसयं जिणयडिमाणं जिणुस्सेह
पमाणमित्ताणं संनिखित्तं चिद्वइ’ देवदंडकमा जिनोत्सेध प्रभाषु प्रमित १०८ जिन
प्रतिमाओ। विराजमान छे आ १०८ जिन प्रतिमाओ। ने। वए, वास आ प्रभाषु छे आ
पाठथी आ जिन प्रतिमाओ। नी सामे १०८ धूप-पूरित कटाडो। भूडेला छे अडी सुधीने।
सभस्त पाठ अध्याहृत करवे। लेधओ जेना अर्थने सूचित करवा माटे सूत्रकारे जेवे। सूत्र-
पाठ कडेला छे, आ स पूरुं पाठ राजप्रश्नीय सूत्रना ८० जने ८१ सूत्रथी जेषुवे। लेधओ
त्यां जेने सुबोधिनी टीकाभा आने। अध स्पष्ट कर्यो छे, ॥१५॥

जाव पासाईए २ । तस्स णं पासायवडिसगस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ
 णं महं एगा मणिपेढीया पणत्ता पंच धणूमयाइं आयामविकखंभेणं
 अड्ढाइज्जाइं धणूसयाइं बाहल्लेणं सब्बमणिमई । तीसे णं मणि-
 पेढियाए उण्णे सीहासणं पणत्तं सपरिवारं भाणियव्वं से केणट्ठेणं
 भंते ! एवं बुच्चइ-दाहिणड्ढभरहकूडे दाहिणड्ढभरहकूडे ? गोयमा !
 दाहिणड्ढभरहकूडे णं दाहिणड्ढभरहे णामं देवे महिड्ढीए जाव पलि-
 ओवमट्ठिईए परिवसइ, से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं
 चउण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं
 सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयस्खदेवसाहस्सीणं दाहिणड्ढ-
 भरहकूडस्स दाहिणेड्ढाए रायहाणीए अण्णेसे बहूणं देवाण य देवीण
 य जाव बिहरइ ।

कहि णं भंते ! दाहिणड्ढभरहस्स देवस्स दाहिणड्ढा णामं राय-
 हाणी पणत्ता ? गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं तिरियम-
 संखेज्जे दीवसमुद्दे वीइवइत्ता अण्णमि जंबुद्विदे दीवे दक्खिणेणं
 वारम जोयणसहस्साइं ओगाहिता एत्थ णं दाहिणड्ढभरहस्स देवस्स
 दाहिणड्ढा णामं रायहाणी भाणियव्वा जहां विजयस्स देवस्स ।
 एवं सब्बकूडा णेयव्वा जाव वेसमणकूडे परोप्परं पुरत्थिमपच्च-
 त्थिमेणं । इमेसि वण्णावासे गाहा—

मज्झे वेयड्ढस्स उ कणगमया तिण्णि होंति कूडाउ ।

सेसा पव्वयकुडा सब्बे रयणामया होंति

माणिभरहकूडे १ वेयड्ढकूडे २ पुण्णभरहकूडे ३ एए तिण्णि कूडा
 कणगामया सेसा छण्णि रयणामया, दोण्हं वि सरिसणामया देवा कय
 मालए चेव णड्ढमालए चेव. सेसाणं छण्हं सरिसणामया जण्णामया
 य कूडा तन्नामा खलु हवंति ते देवा । पलिओवमट्ठिईया हवंति पत्तेयं
 पत्तेयं । १। रायहाणीयो जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरिं

असंखेज्जे दीवसमुदे वीईवइत्ता अण्णंमि जंबुहीव दीवे वास्मजोयण
सहस्साइं ओगाहत्ता, एत्थ णं रायहोणीओ भाणियव्वाओ विजयराय
हाणी सरिसयाओ ॥सू० १६॥

छया — क खलु भदन्त ! वैताढ्यपर्वते दक्षिणार्द्धभरतकूटं नाम कूटं गौतम ! खंड
प्रपातकूटस्य पौरस्त्येन सिद्धायतनकूटस्य पाश्चात्येन अत्र खलु वैताढ्यपर्वते दक्षिणार्द्ध-
भरतकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्, सिद्धायतनकूटप्रमाणसदृशं यावत् तस्य खलु बहुसमरम
णीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महानेक प्रासादावतंसकः प्रज्ञप्तः, क्रोश-
सूर्ध्वमुच्चरत्रेण अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेण' अभ्युद्धतोच्छ्रितप्रहसितो यावत् प्रासादीयः ४ ।

तस्य खलु प्रासादावतंसकस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महानी एका मणिपीठिका प्रज्ञप्ता
पञ्चधनुःशतानि आयामविष्कम्भेण अर्धतृतीयानि धनुःशतानि बाह्व्येन, सर्वमणिमयो
तस्याः खलु मणिपीठिकाया उपरि सिद्धासनं प्रज्ञप्तम्, सपरिवारं भणितव्यम् ।

तत् केनार्थेन भदन्त ! एव मुच्यते दक्षिणार्द्धभरतकूटं दक्षिणार्द्धभरतकूटम् ? गौतम !
दक्षिणा भरतदेकू खलु दक्षिणार्द्धभरतो नाम देवो महद्भिको यावत् पत्न्योपमस्थितिकः
परिवसति, स खलु तत्र चतसृणां सामानिकसाहस्रोणां, चतसृणाम् अप्रमह्विषोणा सपरि-
वाराणां, तिसृणां परिषदं, सप्तानामनौकानां, सप्तानामनौकाधिपतीनां, षोडशानामात्म-
रक्षकदेवसाहस्रोणां, दक्षिणार्द्धभरतकूटस्य दक्षिणार्द्धाया राजधान्याम् अन्येषा बहूनां देवानां
च देवीनां च यावत् विहरति ।

क खलु भदन्त ! दक्षिणार्द्धभरतस्य देवस्य दक्षिणार्द्धां नाम राजधानी प्रज्ञप्ता ?
गौतम ! मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन तिर्यगक्षेत्रेयद्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्य अन्यस्मिन्
जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणेन द्वादश योजनसहस्राणि अवगाह्य अत्र खलु दक्षिणार्द्धभरतस्य देवस्य
दक्षिणार्द्धां नाम राजधानी भणितव्या यथा विजयस्य देवस्य । एवं सर्वकूटानि नेतव्यानि
यावत् वैतश्चरणकूटम् परस्परं पौरस्त्यपश्चिमेन । एषा वर्णावासे गाथा

मध्ये वैताढ्यस्य तु कनकमयानि त्रीणि भवन्ति कूटानि तु,

शेषाणि पर्वतकूटानि सर्वाणि रत्नमयानि भवन्ति ॥१॥

माणिसद्रकूटं १ वैताढ्यकूटं २ पूर्णभद्रकूटं ३ पतानि त्रीणि कूटानि कनकमयानि,
शेषाणि षडपि रत्नमयानि, । द्वयो विसदृशं नामकौ देवो कृतमालकश्चैव १ नृत्तपादकश्चैव
२ शेषाणां पण्णा सदृशनामकाः य नामकानि च कूटानि तन्नामान्, खलु भवन्ति ते देवाः ।
पत्न्यापमस्थितिकः भवन्ति प्रत्येक प्रत्येकम् १ राजधान्यो जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य
दक्षिणेन तिर्यगक्षेत्रेयद्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्य अन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादश योजन सह-
स्राणि अवगाह्य, अत्र खलु राजधान्यो भणितव्याः विजयाराजराजधानी सदृशिका ॥सू१६॥

टीका— 'कहि णं भते ! वेयइडे' इत्यादि ।

गौतमः श्रीमहावीरस्वामिनं पृच्छति—'कहि णं भंते ! वेयइडे पव्वए दाहिणइढभरइकूडे णामं कूडे पण्णत्ते' हे भदन्त ! क—कुत्र खलु वैताढ्ये पर्वते दक्षिणार्द्धभरतकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम्, भगवानाह—'गोयमा ! खंडप्पवायकूडस्स' हे गौतम ! खण्डप्रपातकूटस्य—खण्डप्रपात-गुहाकूटस्य 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्येन—पूर्वस्यां दिशि 'सिद्धाययणकूडस्स' सिद्धायतन-कूटस्य वैताढ्यपर्वतीयप्रथमकूटस्य 'पच्चत्थिमेणं' पाश्चात्त्येन पश्चिमायां दिशि 'एत्थ णं-वेयइढपव्वए' अत्र खलु वैताढ्यपर्वते—वैताढ्यपर्वतोपरि 'दाहिणइढभरइकूडे णामं कूडे पण्णत्ते' दक्षिणार्द्धभरतकूटं नाम कूटं प्रज्ञप्तम् । तत् कीदृशम् ? इति जिज्ञासा-यामाह—'सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे' सिद्धायतनकूटप्रमाणसदृशं सिद्धायतनकूटस्य यत् प्रमाणं षट् सक्रोशानि योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन इत्यादि वर्णक्रेनोक्तं त्रयोदशसूत्रे तेन सदृशं तत्प्रमाणसदृशप्रमाणरूपं सिद्धायतनकूटस्य यत्प्रमाणं तदेवदक्षिणार्द्धभरतकूट-स्यापि प्रमाणमिति भावः । एवं च षट् सक्रोशानीत्यारभ्य तस्य खलु इत्यादि पर्यन्तः

दक्षिणार्द्धभरतकूट का स्वरूप कथन—

'कहिणं भंते! वेयइडे पव्वए दाहिणइडे भरइकूडे णामं कूडे पण्णत्ते' इत्यादि ।

टीकार्थ—इस सूत्र द्वारा श्रीगौतमस्वामी ने प्रभु श्रीमहावीरस्वामी से ऐसा पूछा है—हे भदन्त! वैताढ्यपर्वत के ऊपर दक्षिणार्द्धभरतकूट नामक कूट कहाँ पर कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं "गोयमा! खंडप्पवायकूडस्स पुरत्थिमेणसिद्धाययणकूडस्स पच्चत्थिमेणं एत्थणं वेयइढ-पव्वए दाहिणइढभरइकूडे णामं कूडे पण्णत्ते" हे गौतम! खण्डप्रपात कूट की पूर्वदिशा में एवं प्रथम सिद्धायतन कूट की पश्चिमदिशा में वैताढ्यपर्वत सबधी दक्षिणार्द्धभरतकूट नामक द्वितीयकूट कहा गया है "सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे जाव तस्सणं बहुसमरमणिज्जस्स भूमि-भागस्स बहुमज्झवेसभाए एत्थ ण मह एगे पासायवड्डिसए पण्णत्त' इस कूट की ऊँचाई का

दक्षिणार्द्ध भरत कूटना स्वरूपं कथन

'कहिणं भंते वेयइडे पव्वए दाहिणम भरइकूडे णामइडे कूडे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र १६॥

टीकार्थ—आ सूत्र वडे गौतमे प्रभु श्रीमहावीरस्वामी ने प्रश्न किये के डेबाह त वैताढ्य पर्वत पर दक्षिणार्द्धभरत नामे कूट क्यास्थणे आवेल्ले छे ओना जवाणभा प्रभु कडे छे "गोयमा खंडप्प वाय कूडस्स पुरत्थिमेणं सिद्धाययणकूडस्स पच्चत्थिमेणं एत्थणं वेयइढपव्वए दाहिणइढ-भरइकूडे णामं कूडे पण्णत्ते" हे गौतम भ ड प्रपात कूटनी पूर्वदिशा मां वैताढ्य पर्वत स णंधी दक्षिणार्द्ध भरतकूट नामे द्वितीय कूट आवेल्ले छे 'सिद्धाययणकूडप्पमाणसरिसे जाव तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झवेसभाए एत्थणं महं एगे पासायवड्डिसए पण्णत्ते' आ कूटनी उचाईनु प्रमाण सिद्धायतन कूटनी उचाई भराभर कडेवाभां आवेल्ले छे. ओटले ओके गाडे अधिक छेवाहन ओटवी ओनी उचाई छे. सिद्धायतन कूटनी उचाईनु वर्णन १३ भा सूत्रभा कडेवाभां आण्यु छे आ द्वितीय कूटनी अहुसमरमणीय भूमिभागनी भराभर मध्यभां ओके विशाण प्रासादावतंसक आवेल्ले छे

सर्वोऽपि पदसमूहः सद्ग्राह्यः इति सूचयितुमाह— 'जाव तस्सणं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए' यावत् तस्य खलु बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे इति—एतद्व्याख्या पञ्चदशसूत्रे गता । 'एत्थणं' अत्र इह दक्षिणाद्धं भरतकूटस्य बहुसमरमणीयभूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे खलु 'महं एगे' एको महान्-पासायवडिसए' प्रासादावतंसकः-प्रासादश्रेष्ठः 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः । स च 'कोसं' क्रोशं-क्रोशप्रमाणम् 'उड्ढं उच्चत्तेणं' ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन 'अद्धकोस' अद्धक्रोश=क्रोशस्याद्धम् 'विक्खमेणं' विष्कम्भेण-विस्तारेण तथा 'अब्भुग्गयमूसियपहसिय' अभ्युद्गतोच्छ्रित-प्रहसितः अभ्युद्गतोच्छ्रितः- अत्युच्च प्रहसितः-श्वेतोज्ज्वलप्रभया हसन्निव तथा 'जाव पासाइए' यावत् प्रासादीयः दर्शनीयः अभिरूपः प्रतिरूपः इति अत्र यावत्पदेन "विविधमणिरत्नभक्तिचित्रः, वातोद्भूतविजयवैजयन्ती पताकाच्छत्रकलितः, तुङ्गः गगनतलमनुलिखच्छिखरः' जालान्तररत्न, पञ्जरोन्मीलितः इव मणिकनकस्तूपिकाकः विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नाद्धचन्द्रचित्रः नानामणिदामालंकृतः अन्तर्बहिश्च-

प्रमाण सिद्धायतन कूट की ऊँचाई बराबर कहा गया है अर्थात् एक कोश अधिक ६ योजन की इसकी ऊँचाई है. सिद्धायतन कूट की ऊँचाई का प्रमाण १३ वे' सूत्र में कहा है । इस द्वितीयकूट के बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक बीच में एक विशाल प्रासादावतंसक कहा गया है "कोस उड्ढं उच्चत्तेण, अद्धकोस विक्खमेणं, अब्भुग्गयमूसिय-पहसिए जाव पासाइए ४' यह प्रासादावतंसकश्रेष्ठ प्रासाद-एक कोश का ऊँचा है और आधे कोश का विस्तार वाला है तथा यह बहुत ही अधिक ऊँचा है और अपनी श्वेत उज्ज्वलप्रभा से हँस सा रहा है ऐसा प्रतीत होता है यावत् यह प्रासादीय है, दर्शनीय है, अभिरूप और प्रतिरूप है. यहां यावत्पद से "विविधमणिरत्नभक्तिचित्रः, वातोद्भूत विजय वैजन्ती पताकाच्छत्रकलितः तुङ्ग, गगनतलमनुलिखच्छिखरः, जालान्तररत्नः, पञ्जरोन्मीलित इव मणिकनकस्तूपिकाकः, विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नाद्धचन्द्रचित्रः, नानामणिदामालं-

कोस उड्ढं उच्चत्तेण अद्धकोसं विक्खमेण अब्भुग्गयमूसियपहसिए जाव पासाइए ४" आ प्रासादावतंसक-श्रेष्ठ प्रासाद एक आउ श्रेटवै। उयो छे अने अर्धा गाउ श्रेटवै। विस्तार पाणे छे तेमअ आभूअअ वधारे उयो छे आ पोतानी श्वेत उअववव प्रभाथी हसतो डोअ तेम लागे छे यावत् आ प्रासादीय छे दर्शनीय छे अक्षिइय छे प्रतिइय छे अडी यावत् पदथी', विविध मणिरत्नभक्तिचित्रः वातोद्भूतविजयवैजयन्ती पताकाच्छत्रकलितः तुङ्ग गगनतलमनुलिखच्छिखरः जालान्तररत्नः पञ्जरोन्मीलित इव मणिकनकस्तूपिकाकः विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नाद्धचन्द्रचित्रः नानामणि दामालंकृतन अन्तर्बहिश्च शतक्षणं तपनीयवालुकाप्रस्तटः सुखस्पर्शं सधीकः" आ।

શ્લક્ષ્ણઃ તપનીયવાલુકાપ્રસ્તટઃ સુખસ્પર્શઃ સશ્રીકઃ इत्येषां संग्रहः, व्याख्या च राजप्रश्नीयसूत्रस्यैकोनपण्डितमसूत्रस्य मत्कृतसुबोधिनी टीकातोऽवसेया ।

અથ તસ્ય પ્રાસાદાવતંસકસ્યાન્તવર્તિવસ્તુ વર્ણયતિ-‘તસ્સણં પાસાયવર્હિસગસ્સ બહુમજ્જદેસમાપ’ તસ્ય ચલ્લુ પ્રાસાદાવતંસકસ્ય બહુમધ્યદેશભાગે-અત્યન્ત મધ્યભાગે ‘ઈત્થ ણં મહં ઇગા મણિપેદિયા પણ્ણત્તા’ અત્ર ચલ્લુ મહતી વિશાલા એકા મણિપીઠિકા પ્રજ્ઞપ્તા, સા-મણિપીઠિકા ‘પચઘણૂસયાઈં આયામવિક્ખંમેણ’ પચ્ચઘણુઃશતાનિ આયામ-વિષ્કમ્મેણ-દૈર્ઘ્યવિસ્તારાભ્યામ્ ‘અહ્હાહ્જ્જાઈં ઘણૂસયાઈં વાહલ્લેણ’ અદ્ધત્તીયાનિ ઘણુઃ શતાનિ વાહલ્યેન-સર્વાત્મના રત્નમયી-‘તીસેણ’ તસ્યાઃ-અનંતરોક્તાયાઃ ચલ્લુ ‘મણિ-પેદિયાઈ ઉપ્પિ સીહાસણ પણ્ણત્તં’ મણિપીઠિકાયાઃ ઉપરિ સિંહાસનં પ્રજ્ઞમ્મ । તચ્ચ સિંહાસનં ‘સપરિવારં’ સપરિવારં-દક્ષિણાર્દ્ધભરતકૂટાધિષ્ઠાત્ સામાનિકાદિ દેવોપવેશન-યોગ્યમદ્રાસનસહિત ‘માણિયવ્વં’ મણિતવ્યં વક્તવ્યમ્ ।

અથ દક્ષિણાર્દ્ધભરતકૂટસ્યાન્વર્ધનામતાં પ્રશ્નોત્તરાભ્યાં દર્શયિતુમાહ-‘સે કેણદ્દેણં

કૃતઃ, અન્તર્વૈદિશ્ચ શ્લક્ષ્ણઃ, તપનીયવાલુકાપ્રસ્તરઃ, સુખસ્પર્શઃ, સશ્રીકઃ’ હસ પૂરે પાઠ કા સપ્રહ હુઆ હૈ. હસ સૂત્રપાઠ કી વ્યાખ્યા હમને રાજપ્રશ્નનીય સૂત્ર કે ૫૮ વે સૂત્ર કી સુબોધિની ટીકા મેં કર દી હૈ અતઃ વહી સે હસે જાનલેના ચાહિયે., “તસ્સણં પાસાયવર્હિસગસ્સ બહુ મજ્જ દેસમાપ ઇત્થણં મહં ઇગા મણિપેદિયા પણ્ણત્તા” હસ પ્રાસાદાવતંસક કે ઠીક મધ્યભાગ મે એક વિશાલ મણિપીઠિકા કહી ગઈ હૈં “પચઘણૂસયાઈં આયામવિક્ખંમેણં અહ્હાહ્જ્જાઈં ઘણુસ-યાઈં વાહલ્લેણં, સવ્વમણિમઈં” યહ મણિપીઠિકા લખ્વાઈં મેં પાંચ સૌ ઘણુષ કી હૈ તથા હસકી મોટાઈ અઢાઈ સૌ ઘણુષ કી હૈ યહ મણિપીઠિકા સર્વાત્મના રત્નમય હૈ “તીસેણં મણિપેદિયાઈ ઉપ્પિ સીહાસણ પણ્ણત્તં, સપરિવારં માણિયવ્વં” હસ મણિપીઠિકા કે ઉપર એક સિંહાસન કહા ગયા હૈ હસ સિંહાસન કે વર્ણન મેં “યહ સિંહાસન દક્ષિણાર્ધ ભરતકૂટ કે અધિષ્ઠાયક દેવ કે જો સામાનિક આદિ દેવ હૈં હનકે ઉપવેશન કે યોગ્ય મદ્રાસનો સે સહિત હૈ., એસા કથન

સમસ્ત પાઠનો સંગ્રહ થયેલ છે આ સૂત્ર પાઠની વ્યાખ્યા અમે રાજપ્રશ્નીય સૂત્રના ૫૮માં સૂત્રની સુબોધિની ટીકામાં કરી છે તેથી જિજ્ઞાસુઓ ત્યાથી બાણી લે. “તસ્સ ણં પાસાયવર્હિસગસ્સ વહુમજ્જદેસમાપ ઇત્થણં મહં ઇગા મણિપેદિયા પણ્ણત્તા” તે પ્રાસાદાવતંસકના બરાબર મધ્યભાગમાં એક વિશાળ મણિપીઠિકા છે. ‘પંચઘણૂસયાઈં આયામવિક્ખંમેણં અહ્હાહ્જ્જાઈં ઘણૂસયાઈં વાહલ્લેણં સવ્વ મણિમઈં’ આ મણિપીઠિકા ઉપર એક સિંહાસન પાથરેલ છે આ મણિપીઠિકા સર્વાત્મના રત્નમય છે. ‘તીસેણં મણિપેદિયાઈ ઉપ્પિ સીહાસણં પણ્ણત્તં સપરિવારં માણિયવ્વં’ આ મણિપીઠિકાની ઉપર એક સિંહાસન છે આ સિંહાસનના વર્ણનમાં “આ સિંહાસન દક્ષિણાર્ધ ભરત કૂટના અધિષ્ઠાયક દેવના જે સામાનિક આદિ દેવો છે તેમના ઉપવેશન માટે યોગ્ય મદ્રાસનોથી સમાહિત છે” એવું કથન કરવું જોઈએ

भंते !' हे भदन्त ! तत् कूटं केनार्थेन केन प्रकारेण 'दाहिणद्भ्रमरहकूडे दाहिणद्भ्र-
मरहकूडे' दक्षिणार्द्धभरतकूटं दक्षिणार्द्धभरतकूटम् 'एवं बुच्चइ' एवम्-इत्थम् उच्यते
-प्रज्ञाप्यते । भगवानाह-'गोयमा' दाहिणद्भ्रमरहकूडेणं दाहिणद्भ्रमरहे णामं देवे'
हे गौतम ! दक्षिणार्द्धभरतकूटे खलु दक्षिणार्द्धभरतो नाम देवः-तदधिष्ठातृदेवः 'परि-
वसइ' परिवसतीत्युत्तरेणान्वयः, स-च कोट्ठः ? इत्याह-'महिइडिण जाव पल्लिओ-
वमट्टिइए' महिइको यावत् पल्ल्योपमस्थितिकः, इति । महिइक इति समारभ्य पल्ल्यो-
पमस्थितिक इति पर्यन्तानां देवविशेषणवाचकानां पदानां सग्रहोऽस्यैवाष्टमसूत्रे विलोक-
नीयो व्याख्याऽपि तत् एव बोध्येति । 'से णं' स-पूर्वोक्तः दक्षिणार्द्धभरतनामा
देवः खलु 'तत्थ' तत्र-दक्षिणार्द्धभरतकूटे विहरतीति परेणान्वयः, स किं कुर्वन् विहर-
तीत्याह-'चउण्हं सामाणियसाहस्सीण चउण्हं अगमहिसीणं सपरिवाराणं' चतुस्रणां
सामानिक-साहस्सीणां सपरिवाराणां चतस्रणामग्रमहिषीणां=प्रधानमहिषीणाम् 'तिण्हं'
तिस्रणाम् आभ्यन्तरिकमध्यमबाह्यानां 'परिसाणं' परिषदां-सभानां 'सत्तण्हं' सप्तानां
इयगजरथपदाति महिषगन्धर्वनाटचलस्रणानाम् 'अणियाणं' अनीकानां-सैन्यानाम्
'सत्तण्हं' अणियाहिवईणं' सप्तानाम् अनीकाधिपतीनां-सेनाधिपतीनाम् 'सोलसण्हं

कर लेना चाहिए । 'से केणट्ठेण भते। एवं बुच्चइ दाहिणद्भ्रमरहकूडे २' हे भदन्त ! इस
कूटका नाम दक्षिणार्द्ध भरतकूट ऐसा किस कारण से हुआ है ? इसके उत्तर में प्रसु कहते हैं-
"गोयमा । दाहिणद्भ्रमरहकूडेणं दाहिणद्भ्रमरहे णामं देवे महिइडिण जाव पल्लिओवमट्टिइए
परिवसइ' हे गौतम ! इस कूट का नाम दक्षिणार्द्ध भरतकूट इसलिये कहा गया है कि
इस पर दक्षिणार्द्धभरत नाम का एक देव रहता है. यह महिइक यावत् पल्ल्योपम की
स्थिति वाला है यहां इस देव के वर्णन में महिइक पद से लेकर पल्ल्योपमस्थितिक पद के
भीतर जितने भी देव विशेषणवाचक पद आये हैं उन सब का सग्रह इसी सूत्र के ८वें
सूत्र में देख लेना चाहिये "से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अगमहिसीणं,
सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आय-

'से केणट्ठेण भंते एवं बुच्चइ दाहिणद्भ्रमरहकूडे २' के अर्थतः । आ इत्थु' नाम
दक्षिणार्द्ध भरत कूट केवी रीते प्रसिद्ध थयु ? आना न्वापभमां प्रसु कडे छे गोयमा ।
दाहिणद्भ्रमरहकूडेणं दाहिणद्भ्रमरहे णामं देवे महिइडिण जाव पल्लिओवमट्टिइए परिवसइ"
हे गौतम ! आ इत्थु नाम दक्षिणार्द्ध भरत कूट अट्ठला माटे प्रसिद्ध थयुं के आ इत्
पर दक्षिणार्द्ध भरत नामे अेक देव रहे छे आ देव महिइइके छे यावत् पल्ल्योपमनी
स्थितिवाणे छे अह्नी आ देवना वल्लुनमा महिइइके पदथी लउने पदथोपमस्थिति सुधी
लेटला हेवविशेषण वाचक पदो आवेला छे ते सर्वना संअड आ सूत्रनाट्ठमा सूत्रमां लेध
देवे। "से णं तत्थ चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हं अगमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं
परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सोलसण्हं आयरकजदेवसाहस्सीणं

आयरक्खदेवसाहस्सीणं' षोडशानाम् आत्मरक्षकदेवसाहस्रीणाम्-षोडशसदस्र संख्यात्म-
रक्षकदेवानाम् 'दाहिणइडभरहकूडस्स दाहिणइडाए रायहाणीए अन्नेसिं' दक्षिणार्ध-
भरतकूटस्य दक्षिणार्द्धायाः राजधान्याः अन्येषाम्-उक्तेभ्य इतरेषां 'बहूणं' देवा ण
देवीण य' बहूनां देवानां च देवीनां च 'जाव' यावत् यावत्पदेन "आधिपत्यं पौरपत्यं
स्वामित्वं मर्तृत्वं महत्तरकत्वम् आग्नेश्वरसेनापत्यं कात्यन् पालयन् महताऽहतनाट्यगीत-
वादित्रतन्त्रीतलताल-त्रुटितघनमृदङ्गपट्टप्रवादितरवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानः"
इत्येषां संग्रहः, एवंभूतः स 'विहरइ' विहरति तिष्ठति, एतेषां विवरणमष्टमसूत्रे गतम् ।

अथास्य राजधानी कुत्र वर्तते इति पृच्छति-'कहि णं भंते । दाहिणइडभर-
हस्स देवस्स दाहिणइडा णामं रायहाणी पण्णत्ता' हे भदन्त ! क कुत्र खलु दक्षिणार्द्ध

रक्खदेवसाहस्सीणं दाहिणइडभरहकूडस्स दाहिणइडाए रायहाणीए अण्णेसिं च बहूण देवाण
य देवीण य जाव विहरइ' यह बहा चार हजार सामानिक देवों का चारसपरिवार अग्रम-
हिषियों का, तीन परिषदाओ का, सात सैन्यों का, सात सेनापतियों का, सोलह हजार
आत्मरक्षक देवों का तथा दक्षिणार्ध भरतकूट की दक्षिणार्धा राजधानी निवासी अन्य और भी
बहुत से देव और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, मर्तृत्व, महत्तरकत्व एवं
आग्नेश्वर सेनापत्य करवाता हुआ, पलवाता हुआ, एव चतुर प्रकारके बाजे बजाने वाले पुरुषों
द्वारा जोरजोर से बजाये गये बाजों के नाद पूर्वक, गीतों के साथ बाजों के नाद पूर्वक,
नाट्य के बाजों के नाद पूर्वक दिव्य दो गधीक देवोंके समान भोगों को भोगता हुआ अपने
समय को आनन्द के साथ व्यतीत करता है यहां "तन्त्री, तल, ताल, त्रुटिल, घनमृदङ्ग' ये
सब विशेष प्रकार के बाजों के ही मेद हैं । इनके विषय में जीवाभिगमसूत्र की टीका में
स्पष्टीकरण किया गया है तथा इन सब का विवरण इसके ८ वे' सूत्र में किया जाचुका है-
अतः वहां से इस विषयको देख लेना चाहिये ।

दाहिणइडभरहकूडस्स दाहिणइडाए रायहाणीए अन्नेसिं च बहूण देवाणय देवीणय जाव
विहरइ' आ देव त्यां चार हजार सामानिक देवोना चार सपरिवार अग्रमहिषीओना
त्रय परिषदाओना सात सैन्योना सात सेनापतिओना सोण हजार आत्मरक्षक देवोना
तेमज दक्षिणार्द्ध भरत कूटनी दक्षिणार्धा राजधानी निवासी अन्य भील वषु देव-देवीओना
आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, मर्तृत्व महत्तरकत्व तेमज आग्नेश्वर सेनापत्य करावतो
पणावतो तथा चतुर वाजओ वगाठनारा पुरुषोथी जेरथी वगाडेला वालत्रोथी गीतो
साओणीने नाट्य के वादिओना नादपूर्वक दिव्यभोग भोगवतो योतानो समय आनदपूर्वक
पसार करे छे. अही "तन्त्री, तल, ताल, त्रुटित, घनमृदङ्ग ये सर्वे विशेष प्रकार ना
वादिओना व प्रकारे छे आ संबधमा लवाभिगम सूत्रनी टीकाभा.स्पष्टीकरण करवाभां
आओ छे तेथी आ सर्वत्रु विवरण ओना ८ सूत्रमा कश्वाभां आओ छे. ओथी आ
विषे त्याथी लषु लषु ओथी.

भरतस्य देवस्य दक्षिणार्द्धा नाम राजधानी प्रज्ञप्ता ? भगवानाह—‘गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेण’ हे गौतम ! मन्दरस्य—मेरो. पर्वतस्य दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि ‘तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे’ तिर्यगसंखेयद्वीपसमुद्रान् तिर्यक् स्थितान् असख्येयान् द्वीपान् समुद्रांश्च ‘वीईवइत्ता’ व्यतिवृज्य—व्यतिक्रम्य उत्लङ्घ्य ‘अण्णमि’ अन्यस्मिन्—अस्मदाद्याश्रयीभूतजम्बूद्वीपाङ्गिन्ने ‘जंबुद्वीवे दीवे दक्खिणेणं’ जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणेन दक्षिणस्यां दिशि ‘वारस जोयगसहस्साइं’ द्वादश योजन सहस्राणि—द्वादशसहस्रयोजनानि ‘ओगाहिता’ अवगाह्य—प्रविश्य ‘एत्थ णं—दाहिणद्धमरहस्स देवस्स दाहिणद्धा णामं रायहाणी भाणियन्वा’ अत्र खलु दक्षिणार्द्धभरतस्य देवस्य दक्षिणार्द्धा नाम राजधानी भणितव्या—वक्तव्या ‘जहा विजयस्स देवस्स’ यथा विजयस्य देवस्य । ‘एवं एवम्—दक्षिणार्द्धभरतकूटवत् ‘सव्वकूडा नेयन्वा’ सर्वकूटानि नेतव्यानि—ज्ञातव्यानि, किम्पर्यन्तानि ? इत्याह—‘जाव—वेसमणकूडे’ यावत् वैश्रवणकूटपर्यन्तानि सर्वाणि

राजधानी विषयक प्रश्न—“कहिणं भते ! दाहिणद्धमरहस्स देवस्स दाहिणद्धा णामं रायहाणी पण्णत्ता’ गौतम ने प्रभु से ऐसा पूछा है हे भदन्त! दक्षिणार्द्धभरतदेव को दक्षिणार्द्धा नामकी राजधानी कहा पर कहो गई है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते—हैं “गोयमा! मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियमसखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णमि जंबुद्वीवे दीवे दक्खिणेणं वारस जोयगसहस्साइं ओगाहिता एत्थण दाहिणद्धमरहस्स देवस्स दाहिणद्धा णामं रायहाणी भाणियन्वा’ हे गौतम! सुमेरु पर्वत की दक्षिणदिशा में तिर्यक् असख्यात द्वीप समुद्रों को पार करके अन्य जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में दक्षिण दिशा में १२ हजार योजन नीचे आगे जाने पर दक्षिणार्द्ध भरत देव की दक्षिणार्द्धा नाम की राजधानी वक्तव्य है ‘जहा विजयस्स देवस्स’ जैसे विजयदेव की राजधानी वक्तव्य हुई है, “एवं एवम् सव्व कूडा नेयन्वा जाव वेसमणकूडे परोप्पर पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं” इसी तरह से वैश्रवण

राजधानी विषयक प्रश्न :—कहिणं भते दाहिणद्धमरहस्स देवस्स दाहिणद्धा णामं रायहाणी पण्णत्ता” गौतमे प्रभुने प्रश्न कथीं के डे भदन्त ! दक्षिणार्द्ध भरत देवनी दक्षिणार्द्धा नाम राजधानी क्या स्थणे आवेदी छे ? अना जवाणमा प्रभु कडे छे. गोयमा ! मंदरस्स पव्वयस्स दक्खिणेणं तिरियमसंखेज्जे दीवसमुद्दे वीईवइत्ता अण्णमि जंबुद्वीवे दीवे दक्खिणेणं वारस जोयगसहस्साइं ओगाहिता एत्थण दाहिणद्धमरहस्स देवस्स दाहिणद्धा णामं रायहाणी भाणियन्वा “हे गौतम ! सुमेरु पर्वतनी दक्षिण दिशाभा तिर्यक् असख्यात द्वीपसमुद्रोंने पार करीने अन्य जम्बूद्वीपनामक द्वीपभा दक्षिण दिशाभा १२ हजार योजन नीचे आगण जवाथी दक्षिणार्द्ध भरत देवनी दक्षिणार्द्धा नामनी राजधानी आवेदी छे. ‘जहा विजयस्स देवस्स’ विषय देवनी राजधानी विषये प्रमाणे कडेवाभा आयु छे. “एवं एवम् सव्व कूडा नेयन्वा जाव वेसमणकूडे परोप्परं पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं” ते प्रमाणे ज वैश्रवण

કૂટાનિ દક્ષિણાર્દ્ધભરતકૂટવદ્ વર્ણનીયાનીતિ ભાવઃ । एवञ्च दक्षिणार्द्धभरतकूटं १
 खण्डप्रपातगुहाकूटं २ माणिभद्रकूटं ३ वैताढ्यकूटं ४ पूर्णभद्रकूटं ५ तमिस्रगुहाकूटं ६
 उत्तरार्द्ध-भरतकूटं ७ वैश्रवणकूटम् ८ एतानि अष्टौ कूटानि समानवर्णनक नीति ।
 तथा 'परोष्परं' परस्परम्-अन्योन्यं 'पुरत्थिमपञ्चत्थिमेणं' पौरस्त्यपाश्चात्त्येन-पूर्वं
 पूर्वकूटं पूर्वदिशि परं परं कूटं पश्चिमदिशि वर्तत इति बोध्यम् । तथा च दक्षिणार्द्ध
 भरतकूटं पूर्वस्यां खण्डप्रपातकूटान् पूर्वस्यां माणिभद्रकूटात्, तत् पूर्वस्यां वैताढ्यकूटात्
 तत् पूर्वस्यां पूर्णभद्रकूटात् तत् पूर्वस्यां तमिस्रगुहाकूटात् तत् पूर्वस्यामुत्तरार्द्धभरतकू-
 टात् तत् पूर्वस्यां वैश्रवणकूटात् यस्माद्यत् पूर्वस्यां तस्मात्तत् पश्चिमायां बोध्यम्, पूर्व-
 पश्चिमयोः सापेक्षत्वात्, तथाहि-वैश्रवणकूटं पश्चिमायामुत्तरार्द्धभरतकूटात्, तत् पश्चि-
 मायां तमिस्रगुहाकूटात्, तत् पश्चिमायां पूर्णभद्रकूटात्, तत् पश्चिमायां वैताढ्यकूटात्,

કૂટક ઓર સબ વાકીકે કૂટો કા વર્ણન કર લેના ચાહિયે. હસ તરહ દક્ષિણાર્ધ
 भरतकूट १ खण्डप्रपातगुहाकूट २ माणिभद्रकूट ३ वैताढ्यकूट ४ पूर्णभद्रकूट ५ तमिस्रगुहा-
 कूट ६ उत्तरार्द्धभरतकूट ७ और वैश्रवणकूट ८ ये आठ कूट समान वर्णन वाले हैं । इन
 कूटों में पूर्व पूर्व का कूट तो पूर्वदिशा में है और दूसरा दूसरा कूट पश्चिमदिशा में है
 ऐसा जानना चाहिये तथाच दक्षिणार्ध भरतकूट खण्डप्रपातकूट से पूर्व दिशा में है
 खण्डप्रपातगुहाकूट माणिभद्रकूट से पूर्व दिशा में है, वैताढ्यकूट से माणिभद्रकूट पूर्वदिशा
 में है. पूर्णभद्रकूट से वैताढ्यकूट पूर्वदिशा में है तमिस्रगुहाकूट से पूर्णभद्रकूट पूर्वदिशा में है
 उत्तरार्धकूट से तमिस्रगुहाकूट पूर्व दिशा में है और वैश्रवणकूट से उत्तरार्धकूट पूर्व दिशा में
 है इस तरह जो जिससे पूर्वदिशा में है वह उससे पश्चिमदिशा में है क्योंकि पूर्व पश्चिम
 में सापेक्षता है. जैसे उत्तरार्ध भरतकूट से वैश्रवणकूट पश्चिमदिशा में है तमिस्रगुहाकूट से
 उत्तरार्ध भरतकूट पश्चिमदिशा में है. पूर्णभद्रकूट से तमिस्रगुहाकूट पश्चिमदिशा में है.
 वैताढ्यकूट से पूर्णभद्रकूट पश्चिमदिशा में है माणिभद्रकूट से वैताढ्यकूट पश्चिमदिशा में है

કૂટ સુધી અને બીજા સર્વ કૂટોતુ' વર્ણન અહીં સમજવું જોઈએ આ પ્રમાણે દક્ષિણાર્ધ
 भरतकूट १, અહ પ્રપાતશુક્રકૂટ २, મણિભદ્ર કૂટ ૩, વૈતાઢ્યકૂટ ૩, પૂર્ણભદ્રકૂટ ૫, તમિસ્ર
 શુક્રકૂટ ૬, ઉત્તરાર્ધ કૂટ ૭ અને વૈશ્રવણ કૂટ ૮ એ આઠ કૂટો સમાનવર્ણનવાળા છે એ
 કૂટોમા પૂર્વ પૂર્વના કૂટો તા પૂર્વ દિશામાં છે અને બીજા બીજા કૂટ પશ્ચિમ દિશામાં
 છે. એમ બાણુવું જોઈએ તથાચ દક્ષિણાર્ધ ભરતકૂટ અહ પ્રપાત કૂટથી પૂર્વ દિશામાં છે,
 અહ પ્રપાત શુક્રકૂટ મણિભદ્ર કૂટથી પૂર્વદિશામાં છે, વૈતાઢ્ય કૂટથી મણિભદ્રકૂટ પૂર્વ દિશા
 માં છે. પૂર્ણભદ્રકૂટથી વૈતાઢ્ય કૂટ પૂર્વ દિશામાં છે. તમિસ્ર શુક્રકૂટથી પૂર્ણભદ્રકૂટ પૂર્વ
 દિશામાં છે. ઉત્તરાર્ધ કૂટથી તમિસ્ર શુક્રકૂટ પૂર્વદિશામાં છે અને વૈશ્રવણકૂટથી ઉત્તરાર્ધકૂટ
 પૂર્વ દિશામાં છે આ પ્રમાણે જે જેનાથી પૂર્વ દિશામાં છે તે તેનાથી પશ્ચિમ દિશામાં છે
 એમ કે પૂર્વ પશ્ચિમમાં સાપેક્ષતા છે એમકે ઉત્તરાર્ધ ભરતકૂટથી વૈશ્રવણકૂટ પશ્ચિમ દિશામાં
 છે. તમિસ્ર શુક્રકૂટથી ઉત્તરાર્ધ ભરતકૂટ પશ્ચિમ દિશામાં છે, પૂર્ણભદ્ર કૂટથી તમિસ્ર શુક્ર

पश्चिमायां माणिभद्रकूडात् तत् पश्चिमायां खण्डप्रपातकाटात् तत् पश्चिमायां दक्षिणाब्दं भरतकूडात् इति पर्यवसितम् ।

‘इमेसि’ एयाम् अनन्तरोक्तानां कूटानां ‘वण्णावासे’ वर्णावासे-वर्णनपद्धतौ ‘गाहा’ गाथा-‘मञ्जु वेयद्दस्स उ’ वैताढ्यस्य पर्वतस्य मध्ये-मध्यभागे ‘तिण्णि कूडा’ त्रीणि-कूटानि अनुपदं वक्ष्यमाणानि ‘कणगमया’ कनकमयानि-स्वर्णमयानि ‘होति’ भवन्ति सन्ति ‘सेसा’ शेषाणि-तद्भिन्नानि ‘पव्वयकूडा पर्वतकूटानि ‘सव्वे रयणामया सर्वाणि रत्नमयानि-वैदूर्यादि रत्नमयानि ‘हो ति भवन्ति-सन्ति । १। तत्र कानि स्वर्णमयानि कानि रत्नमयानोति दर्शयितुमाह-‘माणिभद्रकूडे’ माणिभद्र कूट १ ‘वेयद्दकूडे’ वैताढ्यकूटं २ ‘पुण्णभद्र कूडे’ पूर्णभद्रकूटं ३ ‘एए तिण्णि कूडा कणगमया’ एतानि त्रीणि कूटानि कनकमयानि ‘सेसा’ शेषाणि-अनन्तरोक्तकूटत्रयभिन्नानि ‘छप्पि रयणामया’ षडपि कूटानि रत्नमयानीति ।

नवसु कूटेषु ‘दोण्हं’ द्वयोः कूटयोः तमिस्रगुहाकूट, खण्डप्रपातकूटयोः

इत्यादि । ता इमेसि वण्णावासे गाहा—

मञ्जु वेयद्दस्स उ कणगमया तिण्णि होति कूडा उ ।

सेसा पव्वयकूडा सव्वे रयणामया होति । १।

इन कूटों के वर्णन करने में यह गाथा है वैताढ्य पर्वत के मध्य में वक्ष्यमाण ये तीन कूट हैं जो कि स्वर्णमय हैं: इनसे भिन्न जो और पर्वत कूट है वे सब रत्नमय हैं वैदूर्य आदि रत्नों के बने हुए हैं इनमें ‘माणिभद्रकूडे वेयद्दकूडे पुण्णभद्रकूडे एए तिण्णि कूडे कणगमया सेसा छप्पि रयणामया’ माणिभद्रकूट वैताढ्यकूट एव पूर्णभद्रकूट, ये तीन कूट कनकमय हैं और बाकीके ६ कूट रत्नमय हैं । ‘दोण्हं वि सरिसणामया देवा कयमालए चैव ण्हमालए चैव सेसाणं छण्हं सरिसणामया जण्णामया य कूडा तन्नामा खल्ल हवन्ति ते देवा पल्लिओवमट्ठिइया हवन्ति पत्तेयं’, ॥१॥ इन नौ कूटों में से दो कूटों के तमिस्रगुहाकूट और

कूट पश्चिम दिशाभां छे, वैताढ्य कूटथी पूषुंभद्र कूट पश्चिम दिशाभां छे, मञ्जुभद्र कूटथी वैताढ्य कूट पश्चिम दिशाभां छे इत्यादि, इमेसि वण्णावासे गाहा—

मञ्जु वेयद्दस्स उ क या तिण्णि होति कूडा उ ।

सेसा पव्वयकूडा सव्वे रयणामया होति ॥ १ ॥

आ कूटानां वर्णनने अनुलक्षीने आ गाथा छे—वैताढ्य पर्वतानां मध्यभां वक्ष्यमाणेषु ये त्रय कूटो छे ये स्वर्णमय छे अनाथी भिन्ना ये पर्वत कूटो छे ते सर्वे रत्नमय छे, ये वैदूर्यं वगैरे रत्नानां भवेत्ता छे, अथा ‘माणिभद्रकूडे वेयद्दकूडे पुण्णभद्रकूडे एए तिण्णि कूडा कणगमया सेसा छप्पि रयणामया “मञ्जुभद्र कूटं, वैताढ्य कूटं अने पूषुंभद्र अत्र त्रय कूटो कनकमय छे अने आधीनां ६ कूटो रत्नमय छे “दोण्हं वि सरि णामया देवा कयमालए चैव ण्हमालए सेसाणं छण्हं सरिसणामया जण्णामया य कूडा तन्नामा खल्ल हवन्ति ते देवा पल्लिओवमट्ठिइया हवन्ति पत्तेयं ॥१॥ ये नवकूटोभाथी ये कूटानां—

‘विसरिसणामया देवा’ विसदृशनामकौ देवौ स्तः । तौ च क्रमेण दर्शयति—‘कय-
मालए चैव’ कृतमालकः ? चैव ‘नट्टमालए चैव’ नृत्तमालकः चैव इति । तमिस्र-
गुहाकूटस्य कृतमालः, खण्डप्रपातगुहाकूटस्य नृत्तमालः इति क्रमेण द्वौ देवौ बोध्यौ ।
‘सेसाणं’ शेषाणां—पूर्वोक्तमिन्नानां ‘छण्हं’ पण्णां कूटानां ‘सरिसणामया’ सदृशनामकाः
कूटनामसदृशनामकाः देवा भवन्ति । अत्रार्थे गाथामाह- ‘जण्णामया’ इत्यादि ।
इति स्पष्टयति—‘जण्णामयाय कूडा तन्नामा खल्लु’ यन्नामकानि कूटानि तन्नामकाः
खल्लु ते = कूटाधिष्ठातागो देवाः । ‘होति’ भवन्ति-सन्ति इति ते देवाः कीदृशाः ?
इति जिज्ञासायामाह—‘पलिओवमट्ठिईया’ पल्योपमस्थितिकाः—इत्यादि ‘पत्तेयं’ प्रत्येकम्
एकैकस्य कूटस्य ‘पत्तेयं’ प्रत्येकम् एकैको देव एव सर्वकूटदेवाः पल्योपमस्थितिकाः
‘हवति’ सन्तीति । अनेनाष्टानां कूटानां स्वामिन उक्ताः, सिद्धायतनकूटे तु सिद्धाय-
तनस्यैव मुख्यत्वेन स्वामिनोऽकथनमिति बोध्यम् ।

अथ खण्डप्रपातगुहाकूटाधिपतीनां राजधान्यः क सन्तीति पृच्छति—हे
मदन्त ! खण्डप्रपातगुहाकूटाधिपतीनां तेषां कृतमालकादिदेवानां ‘रायहाणीओ’

खण्डप्रपातगुहाकूट के देव विसदृशनाम वाले है इनके नाम क्रमशः कृतमालक और नृत्त-
मालक है । बाकी के ६ कूटों के देवकूटों के जैसे नाम है वैसे ही नामवाले है । यही
वात “जण्णामयाय कूडा तन्नामा खल्लु हवति ते देवा पलिओवमट्ठिईया हवन्ति पत्तेयं २”
इस गाथा द्वारा प्रकट को गई है इन देवों को एक २ पल्योपम की स्थिति होती है
इस तरह एक एक कूट का एक एक देव होता है और वह अपने २ कूट का स्वा-
मी होता है परन्तु सिद्धायतनकूटमें जो सिद्धायतन देव है वही वहा का मुख्य रूप से
स्वामी है ऐसा नहीं है ऐसा जानना चाहिये ।

इन खण्डप्रपातगुहाकूट आदि के अधिपतियों की राजधानियां कहा पर हैं, इस बात
को जानने की इच्छा से गौतमस्वामी प्रभु से ऐसा पूछते हैं—

तमिस्र शुक्रकूट अने अष्ट प्रपात शुक्र कूटना—देव विसदृश नामवाणा छे. जेभना नाओ
कमशः कृतमालक अने नृत्तमालक छे शेष ६ कूटोंना नाम जेवा न नामवाणा छे जे
वात “जण्णामया य कूडा तन्नामा खल्लु हवन्ति ते देवा पलिओवमट्ठिईया हवन्ति पत्तेयं २”
“आ गाथा वटे प्रकट करवामा आवी छे जे देवानी जेक जेक पल्योपम जेटवी स्थिति
छे. आ प्रभाणे जेक जेक देव होय छे अने ते पंत पाताना कूटोंना स्वामी होय
छे परंतु सिद्धायतन कूटों जे सिद्धायतन देव छे ते न त्याने मुख्य रूपी स्वामी होय
जेवु नथी आ जेक विशेष वात स्थानमां राअवी जेछेजे

जे अष्टप्रपात शुक्र कूट वगेरना अधिपतिओनी राजधानीओ कथा अवेदी छे? जे
वातने जखुवानी छेअथी गौतम प्रभुने जेवी रीते पूछे छे के “रायहाणीओ” के अहेत !

राजधान्यः क्व सन्ति ? भगवानाह—हे गौतम ! 'जंबूद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं' जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन-दक्षिणस्यां दिशि -तिरियं-असखेज्जे दीवसमुद्दे वीह्वइत्ता' तिर्यक् असंख्येयद्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्य-व्यतिक्रम्य 'अण्णमि जंबुद्वीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता' अन्यस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वादश योजनसहस्राणि अवगाह्य-प्रविश्य 'एत्थ णं रायहाणीओ' भाणियन्वाओ' अत्र खलु राजधान्यः भणितव्याः-वक्तव्याः ताःकीदृश्यः ? इति जिज्ञासायामाह—'विजया रायहाणी सरिसयाओ' विजयाराजधानीमदृशिकाः इति । यथा विजया राजधन्याः प्रमाणादिकं वर्णितं तथैव सामपि बोध्यमिति । तत्र खण्डप्रपातगुहाकूटाधिपतिदेवस्य राजधानी उप्रपातगुहानाम्नी माणिभद्रकूटाधिपत्ते देवस्य माणिभद्रेत्येव मन्येषामपि राजधान्यो

“रायहाणीओ” हे भदन्त! उन खण्डप्रपात गुहाकूट आदि के अधिपति कृतमालादि देवों की राजधानियां कहाँ पर है? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं 'गोयमा! जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियं असखेज्जे दीवसमुद्दे वीह्वइत्ता अण्णमि जंबुद्वीवे दीवे बारस जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता एत्थणं रायहाणीओ भाणियन्वाओ विजया रायहाणी सरिसयाओ' जहाँ पर हम रहते है ऐसे इस जंबूद्वीप नामके द्वीप में जो सुमेरु पर्वत है उस पर्वत की दक्षिण दिशामें तिर्यक् असख्यात द्वीप समुद्रों को उल्लङ्घन करके आगत अन्य दूसरे जम्बूद्वीप में १२ हजार योजन नीचे आगे जाने पर उन कृतमालादिक देवों की राजधानियां हैं । ये राजधानियां विजया राजधानी की ही जैसी हैं अतः विजया राजधानी का प्रमाण आदि जैसा उपर कहा गया है वैसा ही वह सब यहाँ पर भी है ऐसा जानना चाहिये इनमें जो खण्डप्रपातगुहाकूट का अधिपति देव है उसकी राजधानी खण्डप्रपातगुहा नामकी है माणिभद्रकूट का अधिपति जो देव है उसकी राजधानी माणिभद्रा नाम की है इसी तरह से अन्य कूटाधिपति देवों की भी राजधानियां समझलेनी चाहिये । ये सब कहे

अंठप्रपात शुक्रकूट आदिना 'अधिपति कृतमालादिदेवोनी राजधानीओ कथां आवेक्षी छे ? आना उत्तरमा प्रभु कहे छे, "गोयमा ! जंबुद्वीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं तिरियं असखेज्जे दीवसमुद्दे वीह्वइत्ता अण्णमि जंबुद्वीवे दीवे बारस जो सहस्साइ ओगाहेत्ता एत्थ णं रायहाणीओ भाणियन्वाओ विजयारायहाणी सरिसयाओ कथां अमे रहीओ छीओ ओवा आ जंबूद्वीप नामके द्वीपमां ओ सुमेरु पर्वत छे ते पर्वत नी दक्षिण दिशामां तिर्यक् असख्यात द्वीप समुद्रोने ओणगोने ओ अन्य जंबूद्वीप आवे छे तेमां १५ योजन नीचे आगत वाधवाथी ते कृतमालादिक देवोनी राजधानीओ छे ओ सर्व राजधानीओ विजया राजधानी लेवी ज छे ओथी विजया राजधानीनुं प्रमाणु लेवुं कहेवामां आणुं छे तेवुं ज सर्वतु समणुं ओधंओ ओमां ओ अंठ प्रताप शुक्रकूटना अधिपति देव छे तेनी राजधानी अंठ प्रपात शुक्रा नामनी छे माणिभद्र कूटोना अधिपति ज देव छे तेनी राजधानी माणिभद्रा नामे छे आ प्रमाणे अन्य कूटाधिपति

बुच्चइ' भदत्त । एवम् उच्यते—ऋथ्यते 'वेयड्डे पव्वए' वेयड्डे पव्वए, वैताढ्य पर्वतः
 वैताढ्यः पर्वतः । इति भगवानाह—'गोयमा ! वेयड्डेण पव्वए भरह वासं' हे गौतम !
 वैताढ्यः खलु पर्वतः भरत वर्ष—क्षेत्रं 'दुहा' द्विधा वक्ष्यमाणायां द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां
 विभयमाणेः' विभजन् २- विभक्तं कुर्वन् २ चिद्वइ' निष्पत्ति, 'त जहा' तद्यथा 'दाहिणइह
 भरहं च । उत्तरइह भरहं' दक्षिणार्द्धभरतं च ? उत्तरार्द्धभरतं च २। एवं भरतवर्षस्य भागद्वयं
 करोति वैताढ्यः एकं दक्षिणमर्द्धम् अपरं चोत्तरमर्द्धमिति । अत्र वैताढ्यपर्वते च 'वेयड्ड-
 गिरिकुमारे य इत्थदेवे परिवसइ' वैताढ्यगिरिकुमारो देवः परिवसति, स च कीदृशः ?
 इति जिज्ञासायामाह—'महिड्डिण जाव पलिओवमट्टिइए' महर्द्धिको यावत् पल्योपमस्थि-
 त्तिकः इति । अत्र यावच्छब्द संग्राह्याः शब्दा अस्यैवाष्टमसूत्रतो ग्रहीतव्याः, तेषाम-
 र्थोऽपि तत्रैव टीकातोऽवबोध्य इति ।

अथ वैताढ्यस्यान्वर्थनामत्वे दर्शित हेतुमुपसंहरति—'से तेणट्टेणं' तत्तेनार्थेने-
 त्यादि-सः—वैताढ्यः तेन- प्रदर्शितेन अर्थेन कारणेन 'गोयमा, एवं बुच्चइ' हे गौतम!
 एवमुच्यते—'वेयड्डे पव्वए' वैताढ्यः पर्वतः २ इति ।

'अदुत्तरं च णं' अथोत्तरम्—अथापरं च खलु "गोयमा ! वेयड्डस्स पव्व-

'गोयमा ! वेयड्डेणं पव्वए भरहं वासं दुहा विभयमाणे चिद्वइ'

हे गौतम! वैताढ्यपर्वत भरतक्षेत्र को दो विभागों में विभक्त करता है "तं जहा" जैसे
 'दाहिणइह भरहं च उत्तरइह भरहं च' इनमें एक का नाम दक्षिणार्द्धभरत और दूसरे के नाम
 उत्तरार्द्धभरत है, 'वेयड्डगिरिकुमारे य इत्थ देवे महिड्डिण जाव पलिओवमट्टिइए परिवसइ',
 इस वैताढ्यपर्वत पर वैताढ्यगिरिकुमार नाम का एक देव रहता है यह महर्द्धिक देव है और
 इसको एक पल्योपम की स्थिति है यहां यावत् शब्द से संग्राह्य शब्द इसी सूत्र के अष्टम
 सूत्रसे जान लेना चाहिये "से तेणट्टेणं गोयमा एव बुच्चइ वेयड्डे पव्वए २" इस कारण हे
 गौतम! इस पर्वत का नाम वैताढ्य ऐसा मैंने कहा है । "अदुत्तरं च ण गोयमा! वेयड्डस्स

अथाभमा प्रश्नु कळे छे. "गोयमा ! वेयड्डेणं पव्वए भरहं वासं दुहा विभयमाणे २ चिद्वइ"
 हे गौतम ! वैताढ्य पर्वत भरत क्षेत्रने मे विभागेभा विभक्त करे छे. "तं जहा" जेभडे
 "दाहिणइह भरहं च उत्तरइह भरहं च" जेभा थी जेकडु नाम दक्षिणार्द्ध भरत अने धीअनु
 नाम उत्तरार्द्ध भरत छे "वेयड्डगिरिकुमारे य इत्थ देवे महिड्डिण जाव पलिओवमट्टिइए
 परिवसइ" आ वैताढ्य पर्वत पर वैताढ्य गिरिकुमार नामे जेक देव रहे छे आ महर्द्धिक
 देव छे अने आनी जेक पल्योपम जेठली स्थिति छे अही यावत् शब्दथी संग्राह्य शब्दो
 जे अ सूत्रना अष्टम सूत्रथी लक्ष्मी देवा जेठजे "से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ वेयड्डेय
 पव्वए २" आ अक्षरथी हे गौतम ! आ पर्वतनु नाम वैताढ्य जेवु मे कळु छे. "अदुत्तरं

યસ્સ વેયહ્હેદ્દ સાસપ' હે ગૌતમ ! વૈતાહ્યસ્ય પર્વતસ્ય વૈતાહ્ય્ય ઇતિ શાશ્વત શાશ્વ-
તત્વસૂચકં 'ણામધેજ્જે પ્ણ્ણત્તે' નામધેય વ્રજ્ઞસમ્ । તત્ર હેતુમાહ—'જં ણં' યત્ યસ્માત્
કારણાત્ સ્વલ્લ અયં વૈતાહ્ય્યપર્વતઃ 'કયાહ્ ણ આસિ' કદાપિ નાસીદિતિ ન, અપિ
તુ સર્વદૈવાસીત્ અનેન ભૂતકાલિકશાશ્વતસત્તા સૂચિતા, તથા 'ન કયાહ્ ણ
અત્થિ' ન કદાપિ નાસ્તિ 'ણ કયાહ્ ણ ભવિસ્સહ' ન કદાપિ ન ભવિષ્યતિ ઇત્યા-
ભ્યાં વર્તમાનકાલિકી ભવિષ્યત્કાલિકી ચ શાશ્વતસત્તા સૂચિતા । ઇત્યં વ્યતિરે-
કેણાભિધાય સમ્પ્રત્યન્વયેનાહ—'શુવિં ચ' ઇત્યાદિ । અયં વૈતાહ્ય્યઃ 'શુવિં ચ ભવહ્
ય ભવિસ્સહ ય' અપૂચ્ચ ભૂતકાલે ભવતિ, અસ્તિ ચ વર્તમાને, ભવિષ્યતિ ચ ભવિષ્ય-
ત્કાલે । અત્ત ઇવાયં—'ધુવે ણિયપ્ સાસપ અક્ષપ અવ્વપ અવટ્ટિપ્ ણિચ્ચે' ધુવો
નિયતઃ શાશ્વતઃ અવ્યયઃ અવસ્થિતો નિત્ય ઇતિ । ધુવાદીનામર્થોઽસ્યૈવ ચતુર્થસૂત્રતો
બોધ્ય ઇતિ ॥ સૂ. ૧૭॥

અથ ઉત્તરભરતાર્દસ્વરૂપં પૃચ્છતિ—

મૂલમ્—કહિ ણં મંતે ! જંબુદ્વીવે દીવે ઉત્તરભરહે ણામં વાંસે

પવ્વયસ્સ વેયહ્હેદ્દ સાસપ્ ણામધેજ્જે પ્ણ્ણત્તે', અથવા હે ગૌતમ—વૈતાહ્ય્યાર્વત કા વૈતાહ્ય્ય
એસા નામ શાશ્વત કહા ગયા હૈ' ઇસકે હોને મેં કોઈ નિમિત્ત નહીં હૈ । 'જં ણં કયાહ્
ણ આસિ ણ કયાહ્ ણ અત્થિ ણ કયાહ્ ણ ભવિસ્સહ શુવિં ય ભવહ્ ય ભવિસ્સહ ય ધુવે ણિયપ્
સાસપ્ અક્ષપ અવ્વપ અવટ્ટિપ્ ણિચ્ચે' ક્યોકિ એસા નહીં હૈ કિ યહ્ વૈતાહ્ય્યપર્વત પહિલે
નહીં થા કિન્તુ યહ્ પહિલે મો થા ઓર એસા મો નહીં હૈ કિ યહ્ વર્તમાન મેં મો નહીં
હૈ કિન્તુ અન્ન મો યહ્ હૈ તથા એસા મો નહીં હૈ કિ યહ્ ભવિષ્યત્ કાલ મેં નહીં
રહેગા કિન્તુ ઊસ સમય મો યહ્ રહેગા અતઃ ત્રિકાલ મેં ઇસકી સત્તા હોને સે યહ્ પહિલે
મૂતકાલ મેં થા અન્ન મો વર્તમાન હૈ ઓર ભવિષ્યત્ કાલ મેં મો રહેગા ઇસ કારણ યહ્ ધ્રુવ
હૈ નિયત હૈ શાશ્વત હૈ અક્ષય હૈ અવ્યય હૈ અવસ્થિત હૈ ઓર નિત્ય હૈ ઇન્ ધ્રુવાદિ પદો
કી વ્યાખ્યા ચતુર્થ સૂત્ર મેં કો જા ચુકી હૈ અતઃ યહ્ વહીં સે જાનલેની ચાહિયે ॥૧૭॥

જ ણ ણો । વેયહ્હેદ્દસ્સ પવ્વયસ્સ વેયહ્હેદ્દ સાસપ્ ણામધેજ્જે પ્ણ્ણત્તે" અથવા હે ગૌતમ !
વૈતાહ્ય્ય પર્વતનું વૈતાહ્ય્ય એવું નામ શાશ્વત કહેવામાં આવેલ છે એ નામથી તેની પ્રસિદ્ધિમાં
કોઈ નિમિત્ત નથી "જં ણ કયાહ્ ણ આસિ, ણ કયાહ્ ન અત્થિ ન કયાહ્ ણ ભવિસ્સહ
શુવિં ચ ભવહ્ ય ભવિસ્સહ ય ધુવે ણિયપ્ સાસપ અક્ષપ અવ્વપ અવટ્ટિપ્ ણિચ્ચે" કેમકે
એવું પણ નથી કે આ વૈતાહ્ય્ય પર્વત પહેલા હતો નહિ. પરંતુ અરેખર એ પહેલાં પણ હતો.
એ અર્થારે નથી એવું પણ નથી એ અરેખર વર્તમાનમાં પણ છે તેમજ એવું પણ નથી
કે એ ભવિષ્યત્ કાળમાં રહેશે નહિ અરેખર એ ભવિષ્યત કાળમાં પણ વિષ્ણુમાં રહેવાનો
છે આ રીતે ત્રિકાળમાં એની સત્તા હોવાથી આ ભૂતકાળમાં હતો, હવેના વર્તમાનમાં
છે અને ભવિષ્યત કાળમાં પણ રહેશે એથી આ ધ્રુવ છે, નિયત છે, શાશ્વત છે, અક્ષય છે,
અવ્યય છે, અવસ્થિત છે અને નિત્ય છે એ ધ્રુવાદિ પદોની વ્યાખ્યા ચતુર્થ સૂત્રમાં કરવામાં
આવી છે. એથી તે સંબંધી કથન ત્યાંથી બાહ્યી હેવું ભેદ એ. ॥૧૭॥

पण्णत्ते ? गोयमा ! चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणेणं वेयड्डस्स पव्वयस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्दस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं जंबुद्वीवे दीवे उत्तरड्डुभरहे णामं वासे पण्णत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिण-वित्थिण्णे, पलिअंक्रसंठिए दुहा लवणसमुद्दं पुदुठे पुरत्थिमिल्लाए कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुदुठे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्च-त्थिमिल्लं लवणसमुद्दं पुदुठे गंगासिंघूहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते दोण्णि अट्ट तीसे जोयणसए तिण्णि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स विक्क भेणं तस्स वाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं अट्टारसवाणउए जोयणसए सत्त य एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं । तस्स जीवा उत्तरेणं पाईणपडीणायया दुहा लवणसमुद्दं पुट्टा तहेव जाव चोदस जोयणसहस्साइं चत्तारिय एककहत्तरे जोयणसए च्च एगूण-वीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणे आयामेणं पण्णत्तो । तीसे धणुपुट्टे दहिणेणं चोदसजोयणसहस्साइं पंच अट्टावीसे जोयणसए एकारस य एगूण वीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं ।

उत्तरड्डुभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए आल्लिगपुक्खरेइ वा जाव कित्तिमेहिचेव अकित्तिमेहिचेव । उत्तरड्डु भरहेणं भंते ! वासे म याणं केरिसए आयारभाव पडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा ! तेणं मणुया बहु संघयणा जाव अप्पेगइया सिज्झंति जाव सब्ब दुक्खाणमंतं करंति ॥सू० १८॥

छाया—कव खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरतं नाम वर्षं प्रकृतम् ? गौतम क्षुद्रहिमवतो वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणेन वैताल्यस्य पर्वतस्य उत्तरेण पौरस्त्य णसमुद्दस्य पाश्चात्येन पाश्चात्यलवणसमुद्दस्य पौरस्त्येन अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरतं नाम वर्षं प्रकृतम्, प्राचीनप्रतीचीनाऽऽयतम्, उदीचीनदक्षिणविस्तीर्णं पर्यङ्कस्थितं द्विधा लवणसमुद्दं स्पृष्टं पौरस्त्यया कोट्या पौरस्त्य लवणसमुद्दं स्पृष्टं पाश्चात्यया कोट्या पाश्चात्ये लवणसमुद्दं स्पृष्टं गङ्गासिन्धुभ्यां महानदीभ्या त्रिभागप्रविभक्तं द्वे अष्टात्रिंशे योजनशते श्रीधैकोनविंशतिभागान् योजनस्य विष्कम्भेण । तस्य वाहा पौरस्त्यपाश्चात्येन

अष्टादश द्विनवत्यधिकानि योजनशतानि सप्त च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य अर्द्धभागं च आयमेन । तस्य जीवा उत्तरेण प्राचनप्रतीचीनाऽऽयता द्विधा लवणसमुद्र स्पृष्टा तथैव यावत् चतुर्दशयोजनसहस्राणि चत्वारि च एक सप्तत्यधिकानि योजनशतानि षट्च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य किञ्चिद्विशेषान् आयामेन प्रज्ञप्ता । तस्याः घनुष्पृष्टं दक्षिणेन चतुर्दशयोजनसहस्राणि पञ्चअष्टाविंशानि योजनशतानि एकादश च एकोनविंशति-भागान् योजनस्य परिक्षेपेण ।

उत्तरार्द्धभरतस्य खलु भदन्त ! वर्षस्य कीदृशकः आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्त स यथानामकः आलिङ्गपुष्करमिति वा यावत् कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैव । उत्तरार्धभरते खलु भदन्त ! वर्षे मनुजानां कीदृशकः आकार प्रत्यवतारः ? गौतम ते खलु मनुजा बहुसंहनना यावत् अप्येकके सिद्धयन्ति यावत् सर्व-दुःखानामन्तं कुर्वन्ति ॥ १८ ॥

टीका— 'कहि णं भंते !' इत्यादि ।

'कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे-उत्तरभरहे णामं वासे पण्णत्ते' हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरतं नाम वर्षं खलु क्व प्रज्ञप्तम् ? भगवानाह—'गोयमा ! चुल्लहिमवतस्स' हे गौतम ! क्षुद्रहिमवतः—लघुहिमवतः 'वासहरपण्वयस्स दाहिणेणं' वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि 'वेयड्ढस्स पण्वयस्स उत्तरेणं' वैता-ह्यस्य पर्वतस्य उत्तरेण—उत्तरस्यां दिशि 'पुरत्थिमलवणसमुद्रस्स' पौरस्त्यलवणसमुद्रस्य पूर्वदिग्बर्तिलवणसमुद्रस्य 'पच्चत्थिमेणं' पाश्चात्त्येन—पश्चिमायां दिशि 'पच्चत्थिमलवण-

उत्तरार्ध भरतके स्वरूप का प्रतिपादन—

'कहिणं भंते! जंबुद्वीवे दीवे उत्तरड्ढ भरहे णामं वासे पण्णत्ते' इत्यादि ।

टीकार्थ—गौतमस्वामी ने प्रभु से ऐसा पूछा है हे भदन्त! इस जम्बूद्वीप नामके द्वीप में उत्तरार्ध भरतक्षेत्र कहाँ पर कहा गया है' इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं 'गोयमा! चुल्लहिमवत-स्स वासहरपण्वयस्स दाहिणेणं वेयड्ढस्स पण्वयस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवणसमुद्रस्स पच्चत्थि-मेण पच्चत्थिमलवणसमुद्रस्स पूरत्थिमेण एत्थण जंबुद्वीवे दीवे उत्तरड्ढे भरहे णामं वासे पण्णत्ते' हे गौतम! लघुहिमवान् वर्षधर पर्वत को दक्षिण दिशा में एवं वैताह्यपर्वत की उत्तरदि-शामें तथा पूर्वदिग्बर्तिलवण समुद्र को पश्चिमदिशामें एवं पाश्चात्यलवणसमुद्र की पूर्वदिशामें

उत्तरार्द्ध भरतना स्वरूपनु प्रतिपादन—

'कहिणं भंते ! जम्बुद्वीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते' इत्यादि सूत्र ॥१८॥

टीकार्थ—गौतम प्रभुने ज्येवी रीते प्रश्न किये थे हे भदन्त ! आ जम्बूद्वीप नामके द्वीपमा उत्तरार्ध भरत क्षेत्र क्या स्थाने आवेला छे ? आना जवाअमां प्रभु कहे छे "गोयमा ! क्षुल्लहिमवतस्स वासहरपण्वयस्स दाहिणेणं वेयड्ढस्स पण्वयस्स उत्तरेणं पुरत्थिमलवण समुद्रस्स पच्चत्थिमेण एत्थणं जम्बुद्वीवे दीवे उत्तरड्ढभरहे णामं वासे पण्णत्ते" हे गौतम ! लघुहिमवान् वर्षधर पर्वतनी दक्षिण दिशाभा अने गैताह्य पर्वतनी उत्तर दिशाभा तथा पूर्व दिग्बर्ती लवण समुद्रनी पश्चिम दिशाभा अने पाश्चात्य लवण समुद्रनी पूर्व दिशा

समुद्रसं पुरत्थिमेण' पाश्चात्यलवणसमुद्रस्य पौरस्त्येन-पूर्वस्यां दिशि 'एत्थ णं जंबुद्वीवे दीवे उत्तरइडभरहे णामं वासे पणत्ते' अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे 'उत्तरार्द्धभरतं नाम वर्षं प्रज्ञप्तम्, तच्च कीदृशमिति जिज्ञासः यामार्यामप्रमाणादिना तद्वर्णयति- 'पाईणपडीणायए' प्राचीनप्रतीचीनाऽऽयतं पूर्वपश्चिमयोर्दिशोरायतं-दीर्घम् 'उदीणदाहिणवित्थिण्णे' उदीचीनदक्षिणविस्तीर्ण-उत्तरदक्षिणयोर्दिशोर्विस्तारयुक्तम्, 'पलिंअकसठिए' पर्यङ्कासस्थितं-पर्यङ्कासनसंस्थानेन सस्थितम्, 'दुहा लवणसमुद्धं पुट्टे' द्विधा लवणसमुद्रं स्पृष्टम्, तथाहि 'पुरत्थिमिल्लाए' पौरस्त्यया पूर्वदिग्भवया 'कोडीए कोटया-अग्रभागेन 'पुरत्थिमिल्लं' पौरस्त्यं पूर्वदिग्भवं 'लवणसमुद्धं पुट्टे' लवणसमुद्रं स्पृष्टं 'पच्चत्थिमिल्लाए' पाश्चात्यया-पश्चिमदिग्भवया 'कोडीए' कोटया 'पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्धं पुट्टे' पश्चिमलवणसमुद्रं स्पृष्टम्, गंगासिंधुहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते' गङ्गासिन्धुभ्यां महानदीभ्यां त्रिभागविभक्तं=त्रिभिर्भागैर्विभक्तम्, तत्रैवं भागत्रय बोध्यं-पूर्वभागो लवणसमुद्रं संगतया गंगामहानद्या कृतः, पश्चिमभागो लवणसमुद्रं संगतया सिन्धुमहानद्या कृतः, मध्यभागो गङ्गासिन्धुकृत इति । तथा 'दोण्णि

जम्बूद्वीप नामक द्वीप में उत्तरार्धे भरतक्षेत्र कहा गया है यह क्षेत्र-“पाडीण पडीणायए उदोणदाहिणवित्थिण्णे पलीअकसठिए दुहा लवणसमुद्धं पुट्टे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्धं पुट्टे गंगासिंधुहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते दोण्णि अट्टनीस जोयणसए तिण्णिय एगुणविसइभागे जोयणस्स विक्खंमेणं ” यह पूर्व एवं पश्चिम दिशा में लम्बा है उत्तर और दक्षिणदिशा में विस्तारयुक्त है पर्यङ्कासन संस्थान से सस्थित है पूर्वदिग्वर्ती कोटि से पूर्वदिग्वर्ती लवण समुद्र को और पश्चिम दिग्वर्ती कोटि से पश्चिम लवण समुद्र को स्पर्श कर रहा है गंगा और सिन्धु इन दो महान लवण समुद्र में मिलने वाली गंगा महानदी ने पूर्वभाग किया है, लवण समुद्र में मिलने वाली सिन्धु महानदी ने इसका पश्चिम भाग किया है एवं गंगा और सिन्धु इन दोनों ने इसका मध्यभाग किया है, इसका विस्तार

जम्बूद्वीप नामक द्वीपमां उत्तरार्धे भरत क्षेत्र आवेल छे. आ क्षेत्र 'पाडीण पडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे पलिअकसठिए दुहा लवणसमुद्धं पुट्टे पुरत्थिमिल्लाए-कोडीए पुरत्थिमिल्लं लवणसमुद्धं पुट्टे पच्चत्थिमिल्लाए कोडीए पच्चत्थिमिल्लं लवणसमुद्धं पुट्टे गंगासिंधुहिं महाणईहिं तिभागपविभत्ते दोण्णि अट्टनीसे जोयणसए तिण्णिय एगुणविसइभागे जोयणस्स विक्खंमेणं" आ पूर्व तेमश्च पश्चिम दिशांमां वायु छे उत्तर अने दक्षिणदिशांमां विस्तारयुक्त छे पर्यङ्कासन संस्थानथी सस्थित छे. पूर्व दिग्वर्ती कोटिथी पूर्वदिग्वर्ती लवण समुद्रने अने पश्चिम दिग्वर्ती कोटिथी पश्चिम लवण समुद्रने आ २५शीं रडेल छे गंगा अने सिन्धु अने ये महा नदीओ अने येने त्रयु तिभागोमा विभक्त करेल छे. लवण समुद्रमां भगनारी महा. नदी गंगाअने अने। पूर्व भाग कथी छे, लवण समुद्रमां भगनारी महानदी सिन्धुअने आने। पश्चिम भाग कथी छे अने गंगा अने सिन्धुअने आने। मध्यभाग कथी छे आने। विस्तार

अद्वतीसे जोयणसए' द्वे अष्टात्रिंशे योजनशते अष्टात्रिंशदधिकानि द्विशतयोजनानि
 'तिणिगि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स' त्रींश्च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य-एको-
 नविंशतिभागविभक्तस्य योजनस्य त्रीन् भागांश्च 'विकल्पेण' विकल्पेण=विस्तारेण ।
 'तस्स' तस्य-उत्तरार्द्धभरतस्य 'वाहा'-वाहा-भुजाकारः क्षेत्रविशेषः 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेण'
 पौरस्त्यपश्चिमेन-पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः 'अट्टारस वाणउए जोणसए' अष्टादश द्विनवत्य-
 धिकानि योजनशतानि-द्विनवत्यधिकाष्टशताधिकैकसहस्रयोजनानि 'सत्त य एगूण
 वीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च' सप्त च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य अर्द्ध-
 भागम्-एकोनविंशतिभागविभक्तस्य योजनस्य सप्तभागान् एकोनविंशतितमभागस्य
 अर्द्धभागं च 'आयामेण' =दैर्घ्येण । 'तस्स' उत्तरार्द्धभरतस्य 'जीवा' जीवा 'उत्तरेण' उत्तरेण
 चुल्लहिमवदिशि 'पाईणपडोणायया' प्राचीन प्रतीचीनऽऽयता-पूर्वपश्चिमयोर्दिशोरा-
 यता दीर्घा, 'दुहा लवणसमुद्धं पुट्टा तद्देव' द्विधा लवणसमुद्र स्पृष्टा तथैव पूर्ववदेव
 दक्षिणार्द्धभरतजीवावदेव, अयम्भावः पौरस्त्यया कोटया पौरस्त्यं लवणसमुद्रं स्पृष्टा
 पश्चिमया कोटया पश्चिमलवणसमुद्रं स्पृष्टा, इत्येव दर्शयितुमाह-'जाव' यावदिति
 पश्चिमलवणसमुद्रं स्पृष्टेति पर्यन्तमित्यर्थः, 'चोइसजोयणसहस्साइं' चतुर्दश योजन-

२३८ $\frac{३}{१९}$ योजन का है "तस्स वाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेण अट्टारस वाणउए जोयणसए

सत्त य एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेण" इस उत्तरार्द्ध भरत की
 वाहा-भुजाकार क्षेत्र विशेष पूर्व पश्चिमदिशा में १८९२ योजन को और एक योजन के
 १९ भागों में से ७। भाग प्रमाण है यह कथन आयाम(दीर्घता) की अपेक्षा से कहा गया
 है । "तस्स जीवा उत्तरेण पाईणपडोणायया दुहा लवणसमुद्धं पुट्टा तद्देव जाव चोइसजोयण
 सहस्साइं चत्तारिय एक्कहत्तरे जोयणसए लुच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचि विसेसुणे
 आयामेण पण्णत्ता" उस उत्तरार्द्ध भारत की जीवा क्षुल्लहिमवान् पर्वत की दिशा में पूर्व
 से पश्चिम तक लम्बी है और पूर्वदिग्वर्ती कोटि से पूर्वदिग्वर्ती लवणसमुद्र का तथा पश्चिम
 दिग्वर्ती कोटिसे पश्चिम लवण समुद्र को छूती है इसका आयाम १४४७१ योजन का है और

२३८।३।१६ योजन केटली छे "तस्स वाहा पुरत्थिमपच्चत्थिमेण अट्टारस उप
 जोयणसए सत्त य एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेण" आ उत्तरार्द्ध
 भरतनी वाहा-भुजाकार क्षेत्र विशेष-पूर्व पश्चिम दिशाभा १८६२ योजन केटली अने
 ओक योजनना १६भां भागभांथी ७। भाग प्रमाण छे आ कथन आयामनी अपेक्षाओ
 सभन्नु ओछे "तस्स जीवा उत्तरेण पाईणपडोणायया दुहा लवणसमुद्धं पुट्टा तद्देव
 जाव चोइस जोयणसहस्साइं चत्तारिय एक्कहत्तरे जोयणसए लुच्च एगूणवीसइ भाए
 जोयणस्स किंचि विसेसुणे आयामेण पण्णत्ता" ते उत्तरार्द्ध भरतनी एवा क्षुल्ल
 हिमवान् पर्वतनी दिशाभां पूर्वी पश्चिम सुधीं बांथी छे अने पूर्व दिग्वर्ती केटिथी
 पूर्व दिग्वर्ती एवञ्च सञ्चरने तेभञ्च पश्चिम दिग्वर्ती केटिथी पश्चिम एवञ्च सञ्चरने

सहस्राणि—चतुर्दशसहस्रयोजनानि 'चत्वारि य एक्कहत्तरे जोयणसए' चत्वारि च एकसप्तत्यधिकानि योजनशतानि—एकसप्तत्यधिकचतुश्शतयोजनानि 'छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेखणे' पद च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य किञ्चिद्विशेषोनान् एकोनविंशतिभागविभक्तस्य योजनस्य किंचिद्विशेषपन्थूनान् पद्दभागान् 'आयामेण पणत्ता' आयामेन—दैर्घ्येण प्रज्ञप्ता, 'तीसे' तस्याः उत्तरार्द्धभरतजीवायाः 'दाहिणेण' दक्षिणेन—दक्षिणस्यां दिशि दक्षिणपार्श्वे इति भावः 'धणुपुट्टे' धनुष्पृष्ठम्—उत्तरार्ध-भरतक्षेत्रसम्बन्धि धनुष्पृष्ठाकारः क्षेत्रविशेषः 'चोइस्स जोयणसहस्साइं' चतुर्दशयोजन-सहस्राणि—चतुर्दशसहस्रयोजनानि, 'पंच अट्टावीसे जोयणसए' पञ्च अष्टाविंशानि योजन-शतानि—अष्टाविंशत्यधिकानि पञ्चशतयोजनानि 'एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स' एकादश एकोनविंशतिभागान् योजनस्य एकोनविंशति—भागविभक्तस्य योजनस्य एकादश भागांश्च 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण—परिधिना विज्ञेयमिति ।

अथोत्तरार्द्धभरतस्य स्वरूपं प्रश्नोत्तराभ्यां वर्णयितुमाह—'उत्तरद्ध भरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए' उत्तरार्द्धभरतस्य खलु भदन्त ! वर्षस्य कीदृशकः—स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः 'पणत्ते' प्रज्ञप्तः, भगवानुत्तरयति—गोयमा ! बहुसमरमणि-ज्जे' हे गौतम ! बहुसमरमणीयः—अत्यन्तसमत्लोऽत एव रमणीयः—सुन्दरः भूमि-

एकं योजन के १८ भागों में से कुछ कम ६ भाग प्रमाण है । "तीसे धणुपुट्टे दाहिणेण चोइस्स जोयणसहस्साइं पंच अट्टावीसे जोयणसए एक्कारस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं" उस उत्तरार्ध भारत की जीवा का दक्षिण दिशा में दक्षिणपार्श्वे—धनुष्पृष्ठ-धनुष् पृष्ठाकार क्षेत्र विशेष १४५२८ योजन को और एक योजन के १८ भागों में से ११ भाग प्रमाण कहा गया है यह धनुष्पृष्ठ का परिक्षेप की अपेक्षा प्रमाण कथन है ।

"उत्तरद्ध भरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पणत्ते" हे भदन्त ! "उत्तरार्ध भरतक्षेत्र का आकारभाव प्रत्यवतार—स्वरूप कैसा कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं "गोयमा बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पणत्ते से जहा णामए आळिण पुवखरेइ वा जाव

स्पष्टे' छे. आने। आयाम १४४७१ योजन जेट्ठो छे. अने जेक योजनना १६ भागो-भाथी कथं कथं इ भाग प्रमाथु छे. "तीसे धणुपुट्टे दाहिणेण चोइस्स जोयणसहस्साइं पंच अट्टावीसे जोयणसए एक्कारस य एगूणवीसइ भाए जोयणस्स परिक्खेवेणं" ते उत्तरार्धे भरतणी एवाणु दक्षिण दिशाभा-दक्षिण पार्श्वेभा-धनुष्पृष्ठ-धनुष्-पृष्ठाकार क्षेत्र विशेष-१४५२८ योजन जेट्ठु' छे अने जेक योजनना १६ भागभाथी ११ भाग प्रमाथु कडेवाय छे धनुष्पृष्ठना परिक्षेपनी अपेक्षाजे आ प्रमाथु कथन छे

'उत्तरद्धभरहस्स णं भंते ! वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे पणत्ते" हे भदन्त ! उत्तरार्धे भरत क्षेत्रने। आकारभाव प्रत्यवतार (स्वइप) कवे। छे ? आना जवाणभां प्रभु कडे छे. "गोयमा बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पणत्ते से जहा णामए आळिणपुवखरेइ

भागे पण्णत्ते' भूमिभागः प्रज्ञप्तः स च भूमिभागः कीदृशः इति जिज्ञासायामाह—
'से जहाणामए आळिगपुक्खरेइ वा जाव क्कित्तिमेहिचेव अक्कित्तिमेहि चेव' स यथा
नामक आळिङ्गपुष्करमिति वा यावत् कृतिमैश्चेव अकृत्रिमैश्चेवेति । अत्र यावत्पद
संग्राह्याणि पदानि राजप्रश्नीयसूत्रस्य पञ्चदशसूत्रादारभ्य एकोनविंशतितमसूत्रतो
बोध्यानि । तदर्थश्च तत्रैव मत्कृतसुबोधिनी टीकातो विज्ञेय इति ।

अथोत्तरार्द्धभरतवर्षवास्तव्यमनुष्यस्वरूपं पृच्छति—उत्तरार्द्धभरते खलु भदन्त !
वर्षे—इत्यादि 'उत्तरद्दभरहे णं भंते ! वासे' हे भदन्त ! उत्तरार्द्धभरते वर्षे—उत्तरार्द्ध-
भरतक्षेत्रे स्थितानां 'मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे' मनुजानां कीदृशकः
आकारभावप्रत्यवतारः—स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः ? भगवानाह—गोयमा !
तेणं मणुया बहुसंघयणा जाव अप्पेगइया सिज्झति जाव सव्व दुक्खाणमंतं करेति'
हे गौतम ! ते खलु मनुजाः बहुसंहनना यावद् अप्येकके सिद्धयन्ति-यावत्

क्कित्तिमेहि चेव अक्कित्तिमेहिचेव" हे गौतम उत्तरार्ध भरत क्षेत्र का स्वरूप इस प्रकार से कहा
गया है—वहां का भूमिभाग बहुसमरमणीय है और वह आळिगपुष्कर के जैसा कहा गया है
भृदङ्ग के मुखपुट का नाम आळिङ्गपुष्कर है इस विषय में पहिले अनेक उपमावाची शब्दों
द्वारा स्पष्टीकरण किया जा चुका है यही बात यावत् पद से यहां समझाई गई है इसके लिये
राजप्रश्नीय सूत्र के १५ वें सूत्र से लेकर १९ वे सूत्र तक के पाठ को देखना चाहिये वहां
का भूमिभाग कृत्रिम और अकृत्रिम तृणों से एव मणियों से सुशोभित है ।

"उत्तरद्दभरहेण भंते वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते" हे भदन्त!
उत्तरार्ध भरत में रहने वाले मनुष्यों का स्वरूप कैसा कहा गया है ? उत्तर में प्रश्न कहते हैं
'गोयमा तेणं मणुया बहु संघयणा जाव अप्पेगइया सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेति', हे
गौतम! वहां के निवासी मनुष्यों का स्वरूप ऐसा है कि वे वज्ररूपभनाराच आदि अनेक प्रकार

वा जावक्कित्तिमेहि चेव अक्कित्तिमेहि चेव' हे गौतम ! उत्तरार्ध भरतक्षेत्रतु स्वइय आ प्रभाणु
कडेवामां आवेल्ले छे. त्यांनो भूमिभाग बहुसमरमणीय छे अने ते आळिग पुष्करना जेवो
कडेवामां आवेल्ले छे. भृदङ्गना मुखपुटतु नाम आळिग पुष्कर छे आ स भ धर्मा पडेलां
अनेक उपमावाची शब्दोवडे स्पष्टता करवामा आवी छे जेव वात अही यावत् पदथी
अही' स्पष्ट करवामां आवी छे आ माटे राजप्रश्नीय सूत्रना १५मा सूत्रथी भाडीने १६मां
सूत्र सुधीना पाठने जेवो जेधंजे त्यांनो भूमिभाग कृत्रिम अने अकृत्रिम तृणोथी तेमज्ज
मणियोथी सुशोभित छे

"उत्तरद्दभरहेण भंते ! वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते" हे
भदन्त ! उत्तरार्ध भरत मां रहेनारा भाषुसोना स्वइय केवा छे ? उत्तरमा प्रबुध्री कडे छे.
"गोयमा ! तेणं मणुया बहुसंघयणा जाव अप्पेगइया सिज्झति जाव सव्व दुक्खाणमंतं
करेति" हे गौतम ! त्यांना निवासी मनुष्योना स्वइय जेवा छे हे तेजो वज्ररूप

सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति । अत्र यावत्पदद्वयसंग्राहाणि पदानि एकादशसूत्रतो बोध्यानि तदर्थोऽपि तत्रैव बोध्य इति ।

ननु उत्तरार्द्धभरतवर्षक्षेत्रवासिमनुष्याणां मुक्तिधर्मोपदेशकतीर्थकराद्यभावेन मोक्षाङ्गभूतधर्मश्रवणाद्यभावात् कथं मोक्षप्राप्तिसूत्रसूत्रोक्तिः सङ्गतिमङ्गति ? इति चेत् उच्यते चक्रवर्तीकाले समुद्रादित गुहाद्वयसत्त्वेन उत्तरार्द्धभरतवासिनां जनानां दक्षिणार्द्धभरते दक्षिणार्द्धभरतवासिनां साध्वादीनामुत्तरार्द्धभरते च गमनागमनतस्तेषामुत्तरार्द्धभरतवासिनां साध्वादिभ्यो मोक्षधर्मश्रवणसद्भावान्मोक्षसूत्रोक्तिरुचितैव । यद्वा चक्रवर्ती कालातिरिक्ते काले विद्याधरश्रमणादिभ्यो मोक्षधर्मश्रवणसंभवात् स्वतो वा जातिस्मरणादिना मोक्षाङ्गधर्मप्राप्तिसंभवान्मोक्षसूत्रोक्तिः रुचितैवेति ॥ सू० १८ ॥

के संहनन वाले होते हैं, यावत् इनमें से कितनेक उसीभव से सिद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखों का विनाश करते हैं । यहा आगत दो यावत्पदों के द्वारा जिन पदों का संग्रह हुआ है उन पदों के लिये देखो ११ वें सूत्रको

शंका- उत्तरार्द्धभरत क्षेत्र में निवास करने वाले मनुष्यो को जो मोक्ष प्राप्ति होना कही गई सो वहां मुक्ति धर्मोपदेशक तीर्थकर आदि के अभाव होने से मोक्षाङ्गभूत धर्म श्रवण के अभाव को आश्रित करके कैसे वह संगत हो सकती है ? उत्तर—चक्रवर्तिकाल में समुद्रादित गुहा द्वय के सत्त्व से उत्तरार्द्ध भरतवासी जनों का दक्षिणार्द्ध भरत में गमनागमन होने से उन्हें साधु आदिकों से मोक्षधर्मश्रवण का अवसर मिल जाता है इससे इन्हें मोक्षप्राप्ति का होना संगत ही है असंगत नहीं । अथवा चक्रवर्तीकाल के अतिरिक्त काल में विद्याधर श्रमणादि को से मोक्षप्राप्ति के कारणभूत धर्म की प्राप्ति का होना संभव होने से अथवा स्वतः जातिस्मरण आदिसे मोक्षके कारणभूत धर्मकी प्राप्ति का होना संभव होनेसे यहां मोक्षसूत्रोक्ति उचित ही है ॥ १८ ॥

नारायण वगेरे अनेक प्रकारना संहननवाणा होय छे, यावत् अर्थाथी कटलाक तेव अवभां सिद्ध थर्ध नथ छे यावत् सर्व दुःखोने विनष्ट करे छे, अर्धी आवेला जे यावत् पढे, पडे जे पढेना संश्रुत थयेल छे ते पढे ना माटे ११ भा सूत्र भां जेपुं जेधजे

शंका—उत्तरार्द्ध भरत क्षेत्र भां निवास करनारा मनुष्योना सधधमा जे मोक्ष प्राप्ति माटे कडेवाभां आवेल छे तो त्या मुक्ति धर्मोपदेशक तीर्थकरना अभावथी तेमज मोक्षां गभूत धर्मश्रवणना अभावथी मोक्षप्राप्तिनुं कथन केवी रीते उचित कडेवाय ?

उत्तर—अर्धवर्तीकालभां समुद्रादित गुहाद्वयना सत्त्वथी उत्तरार्द्ध भरत वासी जेनेपुं दक्षिणार्द्ध भरत भां गमनागमन थवाथी तेमने साधुजो वगेरेथी मोक्षधर्म श्रवणुने अवसर भजे छे तेथी तेमने मोक्ष प्राप्ति थवी असंगत नहि. पथु संगत जे कडेवाय अथवा अर्धवर्ती कालना अतिरिक्त काल भां विद्याधरश्रमणादिकोथी मोक्षप्राप्तिना कारणभूत धर्मनुं श्रवणु संभवित होवाथी अथवा स्वतः जाति स्मरण आदिथी मोक्षना कारण भूत धर्मनी प्राप्ति थवी संभव होवाथी मोक्ष सूत्रोक्ति उचित जे छे ॥ १८ ॥

उत्तरार्द्धभरते ऋषभकूटपर्वतः क्वाऽस्तीति पृच्छति—

मूलम्—कहि णं भंते ? जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्वभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते । गोयमा ! गंगा कुंडस्स पच्चत्थिमेणं सिंधुकुंडस्स पुरत्थिमेणं चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंवे एत्थ णं जंबुदीवे दीवे उत्तरद्वभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते, अट्ट जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं, दो जोयणाइं उव्वेहेणं मूले वारस जोयणाइं विक्खंभेणं, मज्झे अट्ट जोयणाइं विक्खंभेणं, उप्पि चत्तारि जोयणाइं विक्खंभेणं, मूले साइरेगाइं सत्तनीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोयणाइं परिक्खेवेणं उप्पि साइरेगाइं वारस जोयणाइं परिक्खेवेणं मूले वित्थिण्णे मज्झे संक्खित्ते उप्पि तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए, सब्वजंणयामए अच्छ सण्हे जाव पडिरूवे । से णं एगाए पउमवरवेइयाए तहेव जाव भवणं कोसं आयामेणं, अच्चकोसं विक्खंभेणं. देसूणं कोसं उद्धं उच्चत्तेणं अट्टो तहेव उप्पलाणि पउमाणि जाव उसभेय एत्थ देवे महिड्ढिए जाव दाहिणेणं रायहाणी तहेव मंदरस्स पव्वयस्स जहा विजयस्स अविसेसियं' ॥सू०१९॥

छाया—कव खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरते वरुं ऋषभकूटो नाम पर्वतःप्रकृतः, गौतम ! गङ्गाकुण्डस्य पश्चिमेन सिन्धुकुण्डस्य पौरस्त्येन क्षुद्रद्विवतो वर्षघर-पर्वतस्य दक्षिणात्ये, नितम्बे, अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरते वरुं ऋषभकूटो नाम पर्वतःप्रकृतः, अष्ट योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन द्वे योजने उद्वेघेन, मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेण मध्ये अष्ट योजनानि विष्कम्भेण, उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण, मूले सातिरेकाणि सप्तत्रिंशत् योजनानि परिक्षेपेण, मध्ये सातिरेकाणि पञ्चविंशति योजनानि परिक्षेपेण, उपरि सातिरेकाणि द्वादशयोजनानि परिक्षेपेण । मूले विस्तीर्णः मध्ये संक्षिप्त उपरि तनुकः गोपुच्छसंस्थानसंस्थित्यन सर्वजम्बूतदमय. अच्छः इलङ्गो यावत् प्रतिरूप स खलु पकया पद्मवरवेदिकया तथैव यावत् भवनं क्रोशम् आयामेन अर्द्धक्रोशं विष्कम्भेण, देशेन क्रोशमूर्ध्वमुच्चत्वेन, अर्थस्तथैव, उत्पलाणि पलाणि यावत् ऋषभश्च, अत्र देवो महद्विक्रो यावत् द्वा. णेन राजधानो तथैव मन्दरस्य पर्वतस्य यथा विजयस्य अविशेषितम् ॥सू०१९॥

उत्तरार्ध भरत में ऋषभकूट कहाँ पर है ? इसका समाधान —

“कहिं णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्वभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए’

उत्तरार्ध भरतमा ऋषभकूट कया आवेद छे ! तेषुं समाधान—

‘कहिं णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्वभरहे वासे उसभकूडे णामं पव्वए पण्णत्ते’

टीका—‘कहि णं भंते !’ इत्यादि । ‘कहि णं भंते ! जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्वद्वभरहे वासे उसमकूडे णामं पव्वए पणत्ते’ हे भदन्त ! जंबुद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरते वर्षे ऋषभकूटो नाम पर्वतः क्व-कस्मिन् प्रदेशे प्रज्ञप्तः ? भगवानाह—‘गोयमा ! गंगा-कुंडस्स’ हे गौतम ! गङ्गाकुण्डस्य गङ्गायाः महानद्याः कुण्डं—हिमवतो निपतज्जलाशयस्तस्य ‘पच्चत्थिमेणं’ पश्चिमेन पश्चिमायां दिशि ‘सिधुकुंडस्स’ सिन्धुकुण्डस्य सिन्धोः कुण्डं—हिमवतो निपतज्जलाशयस्तस्य ‘पुरत्थिमेणं’ पौरस्त्येन—पूर्वस्यां दिशि ‘चुल्लहिमवतस्स’ क्षुद्रहिमवतः—लघुहिमवतो ‘वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले’ वर्षधरपर्वतस्य दक्षिणात्ये—दक्षिणदिग्भवे ‘णित्ते’ नितम्बे मेखलासमीपवर्ती प्रदेशे ‘एत्थ णं जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्वद्वभरहे वासे उसमकूडे णामं पव्वए पणत्ते’ अत्र खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्ध-भरते वर्षे ऋषभकूटो नाम पर्वतः प्रज्ञप्तः, स च ‘अट्टजोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं दो जोय-णाइं उव्वेहेणं’ अष्ट योजनानि उर्ध्वस्युच्चत्वेन द्वे योजने उद्वेधेन गाम्भीर्येण परिक्षेपेण ।

पणत्ते’ इत्यादि ।

टीकार्थ—गौतम स्वामो ने प्रमु से रेसा पूछा है—हे भदन्त! उत्तरार्ध भरत क्षेत्र में ऋषभकूट नामका पर्वत कहां पर कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रमु कहते हैं—‘गोयमा । गंगाकुण्डस्स पच्चत्थिमेणं सिधुकुंडस्स पुरत्थिमेणं क्षुल्लहिमवतस्स वासहरपव्वयस्स दाहि-णिल्ले णित्ते एत्थ ण जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्वद्व भरहेवासे उसमकूडे णाम पव्वए पणत्ते’ भगवान फरमाते है हे गौतम ! गंगाकुण्ड—हिमवान पर्वत से गङ्गा नदी जिस स्थान पर नीचे गिरती है उस स्थान की पश्चिम दिशा में एव सिन्धुकुण्ड—हिमवान् से सिन्धु महानदी जिस स्थान पर नीचे गिरती है उस स्थान—की पूर्वदिशा में तथा—लघुहिमवान् वर्षधर पर्वत के दक्षिण दिशा के नितम्ब—मेखलासमीपवर्ती प्रदेश—पर जम्बुद्वीपस्थित उत्तरार्ध भरतक्षेत्र में ऋषभकूट नामका अत्यंत रमणीय पर्वत कहा गया है । यह ऋषभकूट नाम का पर्वत ‘अट्टजोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं’ ऊँचाई में आठ योजन का है “दो जोयणाइं उव्वेहेण” दो योजन जमीन में है

इत्यादि ॥ सू० १९ ॥

टीकार्थ—गौतमे प्रभुने प्रश्न किये के हे भदन्त ! उत्तरार्ध भरत क्षेत्रमा ऋषभकूट नामे पर्वत कथा आवेट्ठी छे ? कोना ज्वाणमा प्रभु कहे छे—गोयमा’ गंगाकुण्डस्स पच्चत्थिमेणं सिधुकुण्डस्स पुरत्थिमेणं क्षुल्लहिमवतस्स वासहरपव्वयस्स दाहिणिल्ले णित्ते एत्थ ण जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्वद्व भरहे वासे उसमकूडे णामं पव्वए पणत्ते’ हे गौतम ! हिमवान पर्वत थी गंगा नदी जे स्थान परथी नीचे प्रवाहित थाय छे, ते गंगा कुंडनी पश्चिमदिशाभां अने हिमवान थी सिन्धु नदी जे स्थान परथी नीचे प्रवाहित थाय छे ते सिन्धु कुंडनी पूर्वादिशाभा तथा लघुहिमवान वर्षधर पर्वतनी दक्षिण दिशाना नितम्ब—मेखला समीपवर्ती प्रदेश—पर जम्बुद्वीपस्थित उत्तरार्ध भरतक्षेत्रमा ऋषभकूट नामे पर्वत आवेल छे आ ऋषभकूटनामे पर्वत “अट्टजोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं” अष्टयोजन आठ योजन जेठ्ठी छे, “दो जोयणाइं उव्वेहेणं” दो योजन जेठ्ठी जमीननी अंदर छे,

मूले बारस जोयणाइं विक्खंमेणं' मूले-मूलप्रदेशे द्वादशयोजनानि विष्कम्भेण, 'मज्झे अट्ट जोयणाइं विक्खंमेणं' मध्ये अष्ट योजनानि विष्कम्भेण 'उत्पि चत्तारि जोयणाइं विक्खंमेणं' उपरि चत्वारि योजनानि विष्कम्भेण उपलक्षणत्वाद् मूले मध्ये उपरि च आयामप्रमाणमपि तथैव विज्ञेयम् समवृत्तस्यायामविष्कम्भयोः साम्यादिति । तथा 'मूले साइरेगाइं' मूले सातिरेकाणि किञ्चित्प्रदेशाधिकाणि 'सत्ततीसं जोयणाइं परिकखेवेणं' सप्तत्रिंशत् योजनानि परिक्षेपेण-परिधिना, 'मज्झे' मध्ये-मध्यदेशभागे 'साइरेगाइं पणवीसं' सातिरेकाणि पञ्चविंशति-पञ्चविंशतिसंख्यानि 'जोयणाइं परिकखेवेणं' योजनानि परिक्षेपेण 'उत्पि' उपरि-ऊर्ध्वदेशे 'साइरेगाइं बारस जोयणाइं परिकखेवेणं' सातिरेकाणि द्वादश योजनानि परिक्षेपेण-परिधिना ।

तथा मूले वित्थिण्णे' मूले विस्तीर्णो 'मज्झे संखित्ते' मध्ये संक्षिप्तः 'उत्पि-तणुए' उपरि तनुकः अत एव 'गोपुच्छसंठाणसंठिए गोपुच्छसंस्थानसंस्थितः, तथा 'सव्वजबूणयामए' सर्वजम्बूनदमयः सर्वात्मना जम्बूनदाख्यस्वर्णविशेषमयः 'अच्छे सण्हे

"मूले बारस जोयणाइं विक्खंमेण, मज्झे अट्टजोयणाइं विक्खंमेण, उत्पि चत्तारि जोयणाइं विक्खंमेणं" मूल में इसका विष्कम्भ-विस्तार-बारह योजन का है मध्य में इसका विस्तार आठ योजन का है और ऊपर में इसका विस्तार चार योजन का है "मूले साइरेगाइं सत्ततीस जोयणाइं परिकखेवेणं' मज्झे साइरेगाइं पणवीस जोणाइं परिकखेवेण, उत्पि साइरेगाइं बारस जोयणाइं परिकखेवेणं" मूल में इसको परिधि कुछ अधिक ७ सात योजन की है । मध्यमे इसकी परिधि कुछ अधिक २५ पचीस योजन कहि गई है और ऊपर में इसकी परिधि कुछ अधिक १२ बारह योजन की है । इस तरह यह ऋषभ कूट पर्वत " मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उत्पि तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वजबूणयामए अच्छे, सण्हे, जाव पडिखेवे" मूल में विस्तीर्ण मध्य में संकुचित और ऊपर में पतला होगया है अतएव गाय की पूछ का जैसा संस्थान होता है वैसा हि इसका संस्थान होगया है यह पर्वत सर्वात्मना जाम्बूनद स्वर्णका बना हुआ है और अच्छ से लेकर प्रतिरूप तक के विशेषणों वाला है

'मूले बारस जोयणाइं विक्खंमेण मज्झे अट्टजोयणाइं विक्खंमेण उत्पि चत्तारि जोयणाइं विक्खंमेणं" मूलमां आने। विष्कम्भ-विस्तार बार योजन जेटवी। छे मध्यमा आने। विस्तार आठ योजन जेटवी। छे अने उपरमा आने। विस्तार चार योजन जेटवी। छे "मूले साइरेगाइं सत्ततीसं जोयणाइं परिकखेवेण मज्झे साइरेगाइं पणवीसं जोयणाइं परिकखेवेणं उत्पि साइरेगाइं बारसजोयणाइं परिकखेवेणं" मूलमा आनी परिधि क छे अधिक २५ योजन जेटवी छे अने उपरमा आनी परिधि क छे अधिक १२ योजन जेटवी छे. आ प्रमाणे आ ऋषभकूट पर्वत 'मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते, उत्पि तणुए गोपुच्छ-संठाणसंठिए सव्व जम्बूगयामए अच्छे सण्हे जाव पडिखेवे" मूलमा विस्तीर्ण मध्यमा संकुचित अने उपरमा पतला थर गये। छे जैथी आयना पूछाडु' जेवु संस्थान होय छे तेवु आडु' संस्थान थर गये छे. आ पर्वत सर्वात्मना जाम्बूनद-स्वर्ण निर्मित छे

जाव. पडिरूवे' अच्छःश्लक्ष्णो यावत्प्रतिरूपः । अच्छादि प्रतिरूपान्तपदानां संग्रहोऽ-
र्थथ पूर्ववद् बोध्य इति । तथा 'से णं' सः ऋषभकूटपर्वतः खलु 'एगाए पउमवर
वेइयाए' एकया पदमवरवेदिकया 'तहेव' तथैव—सिद्धायतनकूटवदेव वर्णनीयः, तद्वर्ण-
कवाक्यं किम्पर्यन्तं संग्राह्यमिति जिज्ञासायामाह—'जाव भवणं' यावद् भवनम् ऋषभकूटा-
धिपते ऋषभनामकदेवस्य भवनवर्णनपर्यन्तं संग्राह्यम्, तथाहि—एकेन च वनषण्डेन सर्वतः
समन्तात् संपरिक्षिप्तः, ऋषभकूटस्य खलु उपरि बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः,
स यथा नामकः आलिङ्गपुष्करमिति वा यावद् व्यन्तरा यावद् विहरन्ति, तस्य खलु
बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे महदेकं भवनं प्रज्ञप्तमिति । एतद्व्या-
ख्या भवणवर्णनं च चतुर्दशसूत्रतो बोध्यम् ।

अथ भवनमानमाह—'कोसं' इत्यादि । तद्भवनं 'कोसं आयामेणं' क्रोशम् आया
मेन दैर्घ्येण 'अद्धकोसं' अद्धक्रोशं—क्रोशस्याद्धं 'विक्लंभेणं'—विक्लंभेण विस्तारेण

"से णं एगाए पउमवरवेइयाए तहेव जाव भवणं कोस आयामेण अद्धकोस विक्लंभेणं दे
सूणं कोसं उहं उच्चतेणं अट्टो तहेव" यह ऋषभकूट पर्वत चारों ओर से एक पदावर वेदिका
से परिवेष्टित है । इसका और सर्व विशेष वर्णन सिद्धायतन कूट के जैसा ही है तथाच वह
ऋषभकूट पर्वत एक वनषण्ड से चारों ओर से घिरा हुआ है । इस ऋषभकूट पर्वत की ऊप
र की भूमि बहुसमरमणीय है जैसा बहुसम मृदङ्ग का मुखपुट होता है ऐसा ही बहुसम
उस पर्वत का ऊपर का भूमिभाग है, यावत् यहां अनेक प्रकारके व्यन्तर देव और देवियां
यावत् आनन्द से अपने पूर्वकृत शुभकर्मों के शुभफलों को भोगते हुए आनन्द से रहते हैं
उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के मध्यभाग में एक विशाल ऋषभ नाम के देवका भवन
कहा गया है इत्यादि रूप से कथन और भवन का वर्णन इसी सूत्र के १४ वें सूत्र
से जानलेना चाहिये इस भवन की लम्बाई एक कोश की है और चौड़ाई आधे कोश

अच्छ धी मांडीने प्रतिरूप सुधीना विशेषश्लोधी युक्त छे "से णं एगाए पउमवरवेइयाए
तहेव जाव भवणं कोसं आयामेणं अद्धकोसं विक्लंभेणं देसूणं कोसं उहं उच्चतेणं अट्टो
तहेव" आ ऋषभकूट पर्वत ओमेर ओक पदावर वेदिकाधी परिवेष्टित छे. आनुं विशेष
वर्णन सिद्धायतन कूटना जेवु न छे तथा अ-ऋषभकूट पर्वत ओक वनषण्डी ओमेर
धेराओक छे. आ ऋषभकूटपर्वतनी भूमिने उपरिभाग बहुसमरमणीय छे मृद गमुपपट
वत् आने उपरिभाग बहुसमरमणीय छे यावत् अही अनेक व्यन्तर देव अने देवीओ
यावत् आनंद पूर्वक पीताना पूर्वकृत शुभ कर्मोना शुभ रूपोने उपरिभाग करेता आनंद
निवास करे छे ते बहुसमरमणीय भूमिभागना मध्यभाग मां ओक विशाल ऋषभ
नामना देवतु भवन छे इत्यादि रूपमा कथन अने भवनतुं वर्णन आन सूत्रना १४ मा
सूत्रमाथी अथी सेवुं नोर्थओ आ भवननी लमाथि ओक गाड जेटली छे अने आडाथि
अर्धा गाड जेटली छे. तेभज कर्धक कम ओक गाड जेटली ओनी उयाथि छे.

‘देस्युणं कोसं उहदं उच्चत्तेणं’ देशोणं क्रोशम् ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन वर्त्तते इति । अयं भावः धनुस्सहस्रद्वयप्रमाण एकः क्रोशो भवति । “किञ्चिद्देशोण” शब्देनेह पञ्च्यधिक पञ्चशतधनुन्यूनताविवक्षिता । एवं चेदं भवनं चत्वारिंशदधिक चतुर्दशशतधनुः प्रमाणमुच्चत्वेन भवतीति । अर्थः नामानुगतोऽर्थः ‘अट्टो तहेव’ तथैव अर्थः अन्वर्थ ऋषभकूटस्य तथैव यथा जीवाभिगमादौ यमकादीनां पर्वतानामुक्तः तथैवौचित्येन वक्तव्यः । तदभिलापसूत्रं तु ‘उप्पलाणी’ त्यादिना सूचितं तदनुसृत्य सूत्रमेवं वक्तव्यम् तथाहि ‘से केणट्टेणं भंते । एवं बुच्चइ उसहकूडपव्वए २१ गोयमा उसहकूडपव्वए खुद्धासु वावीसु पुक्खरिणीसु जाव विलपंतीसु बहूइ उप्पलाइ जाव सहस्सपत्ताइ सयसहस्सपत्ताइ उसहकूडप्पमाइ उसहकूडवण्णाइ’ इति ।

की है तथा कुछ कम एक क्रोश की इसकी ऊँचाई है तात्पर्य इसका ऐसा है कि दो हजार धनुष का एक क्रोश होता है यहा जो इसकी ऊँचाई कुछ कम एक क्रोश की कंहो गई है सो उस दो हजार धनुष में से ५६० कम विवक्षित हुए हैं । इस तरह इसकी ऊँचाई १ एक हजार ४४० चारसो चालोस धनुष की होती है ऐसा जानना चाहिये, “अट्टो तहेव” ऋषभकूट ऐसा नाम इसका सार्थक है जीवाभिगम सूत्र में जैसे यमकादिक पर्वतों के नामकी सार्थकता प्रकट की गई है वैसे ही यहां पर भी इसके नाम की सार्थकता प्रकट करलेनी चाहिये यही बात “उप्पलाणि पउमाणि जाव उसमे य एत्थ देवे महिद्धदिप” इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है अर्थात् जब श्रीगौतम स्वामी ने प्रसु से ऐसा पूछा कि हे भदन्त ! “से केणट्टेणं एव बुच्चइ उपहकूडपव्वए १” इस ऋषभकूट पर्वत को ऋषभ कूट इस नाम से आपने क्यों कहा है ? तब प्रसुश्री ने इसके उत्तर में इस प्रकार कहा है “गोयमा ! उसहकूडपव्वए खुद्धासु खुद्धियासु वावीसु पुक्खरिणीसु जाव विलपतीसु बहूइ उप्पलाइ जाव सहस्सपत्ताइ सयसहस्सपत्ताइ उसहकूडप्पमाइ उसहकूड

तात्पर्य आम छे के जे हजर धनुष अराअर ओक गाठ होय छे अहीं जे आनी जे आर्थ कंठकंभ ओक कोश जेटवी कहेवामा आवी छे तो ते जे हजर धनुषमाथी ५६० कंभ विवक्षित छे आ प्रभावे आनी जे आर्थ १ हजर ४४० धनुष जेटवी होय छे ओठुं कंठबुलु जेठजे “अट्टो तहेव” ऋषभकूट नाम आतु यथार्थ जे छे जीवाभिगमसूत्रमां जेभ येमकादिक पर्वताना नामनी सार्थकता प्रकट करवामा आवी छे तेवी जे अहीं आना नाम नी सार्थकता प्रकट करी देवी जेठजे ओश वात “उप्पलाणि पउमाणि जाव उसमेय एत्थ देवे महिद्धदिप” आ सूत्रपाठ वडे प्रकट करवामा आवी छे जेटवी के जयारे गौतमे प्रसु श्रीने आ जानने। प्रश्न करी के हे भदन्त ! “से केणट्टेणं एव बुच्चइ उसहकूड पव्वए” ? आ ऋषभकूट पर्वत ने ऋषभकूट नाम थी तमे केम स जोधित करी रक्षा जे । तयारे प्रसुजे जेना उत्तरमा आ प्रभावे कछु के ‘गोयमा ! उसहकूडपव्वए खुद्धासु खुद्धियासु वावीसु पुक्खरिणीसु जाव विलपतीसु बहूइ उप्पलाइ जाव सहस्सपत्ताइ सयस-

एतच्छाया-अथ केनार्थेन मदन्त ! एवमुच्यते ऋषभकूटपर्वतः २ ! गौतम ।
 ऋषभकूटपर्वते क्षुद्रासु क्षुद्रिकासु वापीसु पुष्करिणीषु यावत् विलपक्तिषु बहूनि उत्पलानि
 पद्मानि यावत् सहस्रपत्राणि शतसहस्रपत्राणि ऋषभकूटवर्णभानि । इति ।

एतद्व्याख्या-अथ केन अर्थेन-कारणेन मदन्त । एवमुच्यते ऋषभकूटपर्वतः २
 इति ! भगवानाह हे गौतम ? ऋषभकूटपर्वते ऋषभकूटपर्वतोपरि मानासु क्षुद्रासु स्व-
 ल्पासु-क्षुद्रिकासु अतिस्त्रव्पासु वापीषु-चतुष्कोणासु पुष्करिणीषु वर्तुलासु कमलपुक्तासु
 वा यावत् यावत्पदेन-दीर्घिकासु च गुञ्जालिकासु च सरस्सु च सरःपङ्क्तिकासु च सरः
 सरः पङ्क्तिकासु च इतिपदानि संग्राह्याणि । तत्र दीर्घिकासु-सरलजलागममार्गयुक्तासु
 गुञ्जालिकासु वक्रजलागममार्गयुक्तासु सरस्सु जलाशयविशेषेषु, सरःपङ्क्तिकासु-
 सरसां-तडागानां पङ्क्तिषु, सरः सरः पङ्क्तिकासु एकस्मात्सरसोऽन्यस्मिन्नन्यस्मादन्य-
 स्मिन्नेवं संचारकपाटकेनोदक संचरति यासु तासु, तथा-बिलपङ्क्तिषु विलानि-बिल
 सदृशानि कूपरूपजलस्थानानि तेषां पङ्क्तयस्तासु च बहूनि उत्पलानि चन्द्रविका-
 सीनि कमलानि पद्मानि सूर्यविकासीनि कमलानि यावत् यावत्पदेन कुमुदानि
 नलिनानि सुभगानि सौगन्धिकानि पुण्डरीकाणि महापुण्डरीकाणि शतपत्राणि इत्येषां

वण्णामाह” इस पाठ के पदों की स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार से है । हे आयुष्यमान गौतम ऋषभ-
 कूट पर्वत पर छोटी २ वापिकाएँ चार कोनेवाली बावड़ियाँ हैं बड़ेसुन्दर कमलों से युक्त अथवा
 गोल २ आकार की पुष्करिणियाँ है यावत् दीर्घिकाएँ हैं जिनमें जलके आनेका मार्ग सरल है
 ऐसी वापिकाएँ है गुञ्जालिकाएँ हैं जिनमें जलके आनेका मार्ग सीधा नहीं है किन्तु बड़ा
 वक्र-टेढ़ा है ऐसी वापिकाएँ हैं । सरः-तालाब हैं । सरः पंक्तियाँ है । एव बिल (छोटे छोटे जल
 स्थान) है उनमें पंक्तियाँ अनेक चन्द्र विकाशी कमल सूर्यविकाशी कमल कुमुद, नलिन सुभग, सौग-
 न्धिक, पुण्डरीक शतपत्र और सहस्र पत्र कमल है इनकी प्रभा ऋषभकूट पर्वत की प्रभा जैसी है
 और इनका आकार ऋषभकूट पर्वत के आकार के जैसा है अतः इन उत्पलादिकों को ऋषभकूट
 कह दिया गया है और इनके योग से इस पर्वत को ऋषभकूट कह दिया गया है ।

दृस्सपत्ताहँ उसहकूटव्यमाहँ उसहकूटवण्णामाहँ” आ पाठना पढोनी स्पष्ट व्याख्या आ
 प्रमाञ्छे छे. हे गौतम ऋषभकूट पर्वत पर नानी नानी वापिकाओ-चार थूला वाणी
 नानी नानी वापिकाओ छे कमलोंशी सुशोभित छे अथवा गोल गोल आकारनीपुष्क-
 रिणीओ छे. यावत् दीर्घिकाओ छे जेभा जल सरल रीते आपी शक्येवी वापिकाओ छे
 शुभलिकिओ छे जेभा जल प्रवेशवाने भाग सीधा नथी परतु पक आडो टेढो छे जेवी
 वापिकओ छे सर. तलाओ छे सर. पङ्कितओ छे तेभज मिल पङ्कितओ नाना नाना
 भाओशी या कूप पङ्कितओ छे तेओभा अनेक अन्द्रविकाशी कमणो, कुमुद, नलिन, सुभग
 सौगान्धिक, पुण्डरीक, मडापुण्डरीक, शतपत्र अने सहस्रपत्र कमणो छे, जेभनी प्रभा ऋषभ
 कूट पर्वतनी प्रभा जेवी छे अने जेभनो आकार ऋषभकूट पर्वतना आकार जेवो छे, जेथी
 आ उत्पलादिकेने ऋषभकूट कह्यो छे. अने जेभनी सौगथी आ पर्वतने ऋषभकूट कह्यो छे.

सङ्ग्रहो बोध्यः । तत्र कुमुदानि-चन्द्रविकासि श्वेतकमलानि नलिनानि-सामान्य कमलानि, सुभगानि-कमलविशेषाः, सौगन्धिकानि-शोभनगन्धयुक्तकमलविशेषाः पुण्डरीकाणि-श्वेतकमलानि, -महापुण्डरीकाणि विशालश्वेत कमलानि शतपत्राणि शतपत्रयुक्तानि कमलानि तथा सहस्रपत्राणि सहस्रसंख्यकपत्रयुक्तानि कमलानि, -शतसहस्रपत्रानि लक्षपत्रयुक्तानि कमलानि तानि कीदृशानि ? इत्याह ऋषभकूटप्रभाणि ऋषभकूटपर्वतकाराणि । तथा ऋषभकूटवर्णानि ऋषभकूटस्य यो वर्णः तस्यैव आभा प्रतिभासो येषां तानि तथा ततस्तानि तदाकारत्वात् तद्वर्णसादृश्याच्च ऋषभकूटानीति प्रसिद्धानि । तद्योगादेश पर्वतः ऋषभकूटः, नन्विह ऋषभकूटाकारत्वात् तत्सादृश्याच्च उत्पलादीनि ऋषभकूटान्युच्यन्ते तेषां तेषामुत्पलादीनां योगात् पर्वतोऽपि ऋषभकूट उच्यते ? इत्यन्योन्याश्रय इति चेदाह-उभयेपामपि नाम्ना अनादिकाल प्रवृत्तोऽयं व्यवहार इति अन्योन्याश्रय दोषो नाशङ्कनीय इति । एवमन्यत्रापि बोध्यम् ।

अथ प्रकान्तरेणापि नामकारणं तदतिरिक्तं च सर्वं वर्णयितुं सूत्रकारः संक्षेपेणाह- 'उसमेय एत्थ देवे' इत्यारभ्य 'जहा विजयस्स अवसेसियं' इति ततश्च ऋषभश्चात्र देवो

शंका— इस प्रकार के कथन से तो फिर परस्पराश्रय दोष उपस्थित हो जाता है क्योंकि ऋषभकूट के आकार वाले कमल होने से उत्पलादिकों को ऋषभकूट कहा गया है और इनके योग होने से पर्वत को ऋषभकूट कहा गया है ? ।

उत्तर—ऐसा नहीं है क्यों कि दोनों का ऐसा नाम तो अनादिकाल से ही प्रवृत्त हुआ चला आ रहा है अतः इसमें परस्पराश्रय दोष के लिये स्थान ही नहीं मिलता है अनादि परम्परा से चले आ रहे व्यवहार में परस्पराश्रय दोष नहीं होता है । "उसमे य एत्थ देवे महिह्विण्ण जाव दाहिणेण रायहाणी तहेव मंदरस्स पव्वयस्स जहा विजयस्स अवसेसियं" अब सूत्रकार इस सूत्र द्वारा प्रकारान्तर से ऋषभकूट का नामकरण आदिमें का कथन करते हुए कहते हैं कि इस पर्वत का जो ऋषभकूट नाम कहा गया है उसका कारण ऐसा है कि उस पर ऋषभकूट नाम का देव जी कि महर्द्धिक, महाधुतिक, महाबल, महायश-

शंकाः—आ जतना कथन्थी तो इरी परस्पराश्रय दोष उपस्थित थाय छे केमके ऋषभकूटना आकारवाणा डोवाथी उत्पलादिडेने ऋषभकूट कहेवाभा आवेल छे अने जेभना योगथी पर्वतने ऋषभकूट कहेवाभा आवेल छे ।

उत्तर—आम नथी केमके भन्नेना जे नामे तो अनादिकालथी न प्रवृत्त थता आव्वा छे जेथी जेभा परस्पराश्रय दोष भाटे केछि स्थान नथी अनादि परंपराथी आव्वा आवता व्यवहारभा परस्पराश्रय दोष थतो नथी 'उसमे य एत्थ देवे महिह्विण्ण जाव दाहिणेण रायहाणो तहेव मंदरस्स पव्वयस्स जहा विजयस्स अवसेसियं' हवे सूत्रकार आ सूत्र वडे प्रकारान्तरथी ऋषभकूटना नामकरण आदिनुं कथन करेता कहे छे । के आ पर्वतनुं जे ऋषभकूट नाम कहेवाय छे तेनुं कारण आव्वा छे के तेनी उपर ऋषभ

महाद्विको महाद्युतिको महाबलो महायशा महासौख्यः पल्योपमस्थितिकः परिवसति ।
 स खलु तत्र चतसृणां सामानिकसाहस्रीणां चतसृणाम् अग्रमहिषीणां सपरिवाराणां
 तिसृणां परिषदां सप्तानाम् अनीकानां सप्तानाम् अनीकाधीपतीनां षोडशानाम्
 आत्मरक्षकसाहस्रीणाम् ऋषभकूटस्य ऋषभाया राजधान्या अन्येषा च खलु बहूनां देवानां
 च देवीनां च आधिपत्यं पौरपत्यं स्वामित्वं भर्तृत्वं महत्तरकत्वम् आज्ञेश्वरसेनापत्यं
 कारयन् पालयन् महताऽऽहतनाट्य गीतवादिततन्त्रीतलतालत्रुटितघनमृदङ्गप्रत्युत्पन्न
 वादितरवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहरति, स तेनार्थेन एवमुच्यते । ऋषभकूट
 ऋषभकूट इत्यारभ्य “क खलु भदन्त ! ऋषभस्य देवस्य ऋषभानाम राजधानी

स्त्री, महासुखी एव पल्योपम की स्थिति वाला है रहता है वहाँ वह चार हजार सामानिक
 देवों का, चार सपरिवार अग्रमहिषियों का, तीन परिषदाओं का, सात अनीकों का, सात
 अनीकाधिपतियों का सोलह हजार आत्मरक्षकदेवों का तथा ऋषभकूट की ऋषभा राजधानी का
 एवं अन्य और वहाँ के निवासी अनेक देवों का और देवियों का आधिपत्य पौरपत्य स्वामित्व
 भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञेश्वर सेनापत्य करवाता हुआ, पलवाता हुआ, जोर २ से चतुर बजाने
 वालों के द्वारा बजाये गये नाट्य, गीत के बाजों की, तन्त्री, तल, ताल, आदि रूप बाजों की
 ध्वनि पूर्वक दिव्य भोग भोगों को भोगता हुआ आनन्द के साथ रहता है । इस कारण गौतम ।
 मैंने एव अन्यतीर्थकरो ने ऋषभकूट इस नाम से उस पहाड़ का नाम कहा है । हे भदन्त !
 ऋषभदेव की ऋषभा नामकी राजधानी कहाँ पर है ? इसके उत्तर में प्रभु श्रीकहते हैं—हे गौतम ।

नामने। देव के जे महद्विके महाद्युतिके महाबल, महायशस्वी, महासुधी तेमज पल्योपमनी
 स्थितिवाणे। छे ते रहे छे. त्यां ते चार डण्डर सामानिक देवानु चार सपरिवार अग्र-
 महिषीञ्चानु त्रयु परिषदाञ्चानु सात अनीकानु सात अनीकाधिपतियेनु सोण डण्डर
 आत्मरक्षक देवानु तेमज ऋषभकूटनी ऋषभाराजधानीना तेमज भीण डेटलाक त्यांना
 निवासी अनेक देवा अने देवीञ्चानु आधिपत्य पौरपत्य, स्वामित्व भर्तृत्व, महत्तरकत्व
 आज्ञेश्वर सेनापत्य करवाता, पालन करवाता, चतुर वादको वडे णुण जोरथी वगाडेला
 वाणञ्चो गायेला गीतो, नाट्यो तेमज तन्त्री, तल, ताल आदि रूप विशेष वाद्योनी ध्वनि
 पूर्वक दिव्य भोगोने उपभोग करतो आन हपूर्वक त्यां रहे छे. आ कारणुथी हे गौतम !
 मे अने भीण तीर्थ करेञ्चो ऋषभकूट आ नामथी आ पर्वतने सञ्चोधित करेला छे. हे
 भदंत ऋषभदेवनी ऋषभानामके राजधानी कथा स्थले आवेकी छे जेना जवाणमां प्रभु श्री कहे
 छे. हे गौतम ! ऋषभदेवनी ऋषभा नामके राजधानी ऋषभकूटनी दक्षिण दिशामां तिथिक,

प्रज्ञप्ता १ गौतम ! ऋषभकूटस्थ दक्षिणेन तिर्यगसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् व्यतिव्रज्य-
इत्यादि सर्वं वर्णनमस्यत्र सूत्रतो बोध्यम् । तदर्थोऽपि तत्रैव बोध्य इति ॥सू०॥१९॥

इति श्री श्विविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्ध वाचक-पठचदशभाषाकलित-ललित-
कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्री शाहु
छत्रपति कोल्हापुर राजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित
कोल्हापुर राजगुरु-बालब्रह्मचारी जैनशास्त्राचार्य जैनधर्मदिवाकर
पूज्यश्री-घासीलाल-व्रति विरचितया जम्बूद्वीप-
प्रज्ञप्तेः प्रकाशिकाख्यायां व्याख्याया
प्रथमवक्षस्कारपर्वतवर्णनम् ॥१॥

ऋषभदेव की ऋषभा नामकी राजधाकी ऋषभाकूट की दक्षिणदिशा में तिर्यक् असख्यात द्वीप
समुद्रों को उल्लेखन करके इत्यादि सब वर्णन इस विषय का जैसा इसी सूत्र के ८ वे सूत्र में
कहा गया है वैसा ही जानना चाहिये. ॥ २० ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासीलाल व्रति विरचित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्र
की प्रकाशिका व्याख्या में प्रथम वक्षस्कार पर्वत वर्णन सपूर्ण ॥१॥

असख्यात द्वीप समुद्रान् ओजसीने इत्यादि वर्णन आ सूत्र ना ८ सूत्रमा करवाभां
आवेत्ते छे तेषुं ज सही पद्य समल्ल लेषुं जेधं जे आ प्रभाषे अही जंजूद्वीपप्रज्ञप्ति
नी प्रकाशिका टीकाभा प्रथमवक्षस्कार पर्वतनु वर्णन अही सभास यथुं.

श्री जैनाचार्य जैनधर्म दिवाकर पूज्य श्री घासीलाल व्रतिविरचित जम्बूद्वीप
प्रज्ञप्ति सूत्रनी प्रकाशिका व्याख्याभा प्रथम वक्षस्कार पर्वत वर्णन संपूर्ण ॥१॥

कालाधिकारः--

अथ द्वितीयवक्षस्कारवर्णनम्--

क्षेत्राणि अवस्थितानवस्थितकालभेदेन द्विधा जानन्नपीह साक्षादपगच्छतः
शुभान्भावान् दृष्ट्वा पारिशेष्यात्संभाव्यमानमनवस्थितकालमभिप्रेत्य पृच्छति--

मूलम्-जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे कइविहे काले पण्णत्ते
गोयमा ! दुविहे काले पण्णत्ते. तं जहा-ओसप्पिणिकाले य
उस्सप्पिणिकाले य, ओसप्पिणि कालेणं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?
गोयमा छव्विहे पण्णत्ते तं जहा-सुसमसुसमा काले णे सुसमाकाले २
सुसम दुस्समकाले ३ दुस्सम सुसमाकाले ४ दुस्समा काले ५ दुस्सम
इस्समा काले ६ उस्सप्पिणि काले णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ! गोयमा !
छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-दुस्समदुस्समाकाले १ जाव सुसमसु-
समाकाले ६ । एग्गेगस्स णं भंते ! मुहुत्तस्स केवइया उस्सासद्धाविया
हिया ? गोयमा ! असंखिज्जाणं समयणं समुदयसामिइ समागमेणं सा
एगा आवलियत्ति बुच्चइ, संखिज्जाओ आवलियाओ उसासो संखि-
ज्जाओ आवलियाओ नीसासा ।

हेट्ठस्स अणवगल्लस्स, णिरुक्किट्ठस्स जंतुणो ।

एगे उसासनीसासे, एस पाणुत्ति बुच्चइ ॥१॥

सत्त पाणूइं से थोवे. सत्त थोवाइं से लवे । लवानां सत्तहत्तरीए,
एस मुहुत्तेत्ति आहिए ॥२॥ तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च
उसासा । एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणंतनाणाहिं ॥३॥ एएणं मु -
त्तप्पमाणेणं तीसं मुहुत्ता अहोरत्तो, पण्णरस्स अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा
मासो, दो मासा उउ, तिण्णि उउ अयणे, दो अयणा संवच्छरे, पंच
संवच्छरिए जुगे, वीसं जुगाइं वाससए, दस वामसयोइं वाससहस्से, सयं
वाससहस्साणं वाससहस्से, चउरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे,
चउरासीई पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे पुव्वे, एवं विगुणं विगुणं णेयव्वं
तुडिए २ अड्ढे २ अववे २ हुहुए २ उप्पले २ पउमे २ णलिणे २ अत्थ-

णिउरे २ अउए २ नउए २ चूलिया २ सीसपहेलिया २ जाव चउरा-
सीइ सीसपहेलियग सय सहस्साइं सा एगा सीसपहेलिया । एतोव ताव
गणिए एतावताव गणियस्स विसए, तेण परं ओवमिए ॥ सू० २० ॥

छाया-जम्बूद्वीपे खलु भदन्त । द्वीपे भारते वर्ये कतिविधः काल प्रक्षप्तः ? गौतम ।
द्विविध, कालः प्रक्षप्तः तद्यथा अवसर्पिणीकालः १, उत्सर्पिणोकालश्च २, अवसर्पिणोकालः खलु
भदन्त कतिविधः प्रक्षप्तः ? गौतम पइविधः प्रक्षप्तः तद्यथा सुपमसुपमाकालः १, सुपमाकालः
२, सुपमदुष्पमाकालः ३, दुष्पमसुपमाकालः ४, दुष्पमाकालः ५, दुष्पमदुष्पमाकालः ६,
उत्सर्पिणोकाल खलु भदन्त कतिविधः प्रक्षप्तः गौतम पइविधः प्रक्षप्तः, तद्यथा दुष्पमदु-
ष्पमाकालः १ यावत् सुपमसुपमाकालः ६ पर्येकस्य खलु भदन्त मुहूर्त्तस्य कियत्यउच्छ्वा-
साद्धा व्याख्याताः, गौतम असंख्येयाना समयानां समुदयसमितिसमागमेन सा
आवलिकेति उच्यते, संख्येयाः आवलिकाः उच्छ्वासाः, संख्येयाः आवलिकाः निश्वासः ।

दृष्टस्य अनवग्लानस्य निरुपकिलष्टस्य जन्तोः ।

एक उच्छ्वासनिःश्वासः एष प्राण इत्युच्यते ॥ १ ॥

सप्त प्राणाः स स्तोक सप्त स्तोकाः स लवः ।

लवानां सप्त सप्तत्या, एष मुहूर्त्त इत्याख्यातः ॥ २ ॥

त्रीणि च सहस्राणि सप्त च शतानि त्रिसप्ततिश्च उच्छ्वासाः ।

एष मुहूर्त्तो गणित, सर्वैरनन्तज्ञानिभिः ॥ ३ ॥

एतेन मुहूर्त्तप्रमाणेन त्रिंशन्मुहूर्त्ता अहोरात्रः, पञ्चदश अहोरात्राः पक्षः, द्वौ पक्षौ मास
द्वौ गौ क्रतुः त्रय क्रतवोऽयनम् द्वे अयने संवत्सरः पञ्च संवत्सरिकं युगं विशतिर्यु-
गानि वर्षशतम् दशवर्षशतानि वर्षसहस्रं, शतं वर्ष सहस्राणां, चतुरशीतिवर्षशतसहस्राणि
तदेकं पूर्वाङ्गं चतुरशोतिः पूर्वाङ्गशतसहस्राणि तदेकं पूर्वम्, एषं द्विगुणं द्विगुणं नेतव्यं
वृद्धितम् २, अववम् २, हुहुकम् २, उत्पलम् २ षडम् २ नलिनम् २, अर्थनिपूरम् २,
अयुतम् २, नयुतम् २, प्रयुतम् २, चूलिका २, शीर्षप्रहेलिका २, यावच्चतुरशीतिशोर्ष
प्रहेलिकाङ्गशतस णि सा एका शीर्षप्रहेलिका । एतावत् तावद् गणितम् एतावान् तावद्
गणितस्य विषयः ततः परम् औपमिकम् ॥ २० ॥

कालाधिकार—

अवस्थित और अनवस्थित काल के भेद से क्षेत्रों के दो प्रकारों को जानते हुए भी गौतम
स्वामी साक्षात् शुभ भावों का यहाँ ह्रास देखकर सभाव्यमान अनवस्थित काल को लक्ष्य में
लेकरके प्रभू से पूछते हैं—

कालाधिकार—छे

अवस्थित अने अनवस्थित कालना बेदधी क्षेत्रों ना ये प्रकारेने लक्षणवा छताये गौतम
स्वामी साक्षात् शुभ भावोंने। अही ह्रास नेधने सभाव्यमान अनवस्थित काल ने लक्ष्य
भां शशी ने प्रभुने प्रश्न करे छे—

टीका—जंबूद्वीवेण भंते ! दीवे' इत्यादि ।

'जंबूद्वीवेण भंते ! दीवे भारहे वासे कइविहे काले पण्णत्ते' जम्बूद्वीपे द्वीपे खलु भदन्त भारते वर्षे कतिविध; कियत्प्रकारकः कालः प्रज्ञप्तः ? भगवानाह—गोयमा ! दुविहे काले पण्णत्ते' हे गौतम ! द्विविधः द्विप्रकारकः कालः प्रज्ञप्तः 'तं जहा ओसप्पिणि काले य' तद्यथा—अवसर्पिणो कालः—अवसर्पति हीयमानारक्तत्वेनावमर्षयतिवा क्रमेणाऽऽयुः शरीर प्रभृतिभावान् ह्रासयतीति अवसर्पिणी स चासौ कालश्चेति तथा अस्याः प्रथमतउपादानं प्रज्ञापकापेक्षया बोध्यं, क्षेत्रेषु भरतवत् ! तथा 'उत्सर्पिणिकाले य' उत्सर्पिणीकालः—उत्सर्पति—वर्द्धते अरकापेक्षया, उत्सर्पयति क्रमेणाऽऽयुः शरीरादिकान् भावान् वर्द्धयति वेत्युत्सर्पिणी सा चासौ कालश्चेत्ति तथा, चकारद्वयमभयोरपि समानारकता समानपरिमाणतादि सूचनार्थम् । उभयत्र संज्ञात्वाद्भाषितपुंस्कत्वाभावात् पुंवद्भावः । तत्रावसर्पिणी कालमेदं पृच्छति—'ओसप्पिणि कालेणं भंते कइविहे पण्णत्ते' हे भदन्त अवसर्पिणीकालः

“जंबूद्वीवेण भंते ! दीवे भारहे वासे कइविहे काले पण्णत्ते” इत्यादि ।

टीकार्थ—हे भदन्त ! जम्बूद्वीप नामके इस द्वीप मे कितने प्रकार का काल कहा गया है ? इसके उत्तर मे प्रमुश्री कहते हैं—“गोयमा ! दुविहे काले पण्णत्ते” इस जम्बूद्वीपनामके द्वीपमें दो प्रकार का काल कहा गया है, “तं जहा” जो इस प्रकार से है “ओसप्पिणी काले य उत्सर्पिणी काले य” एक अवसर्पिणीकाल और दूसरा उत्सर्पिणीकालः, जिस काल में क्रमशः आयु, शरीर आदि हीन होते जाते हैं—ह्रास को प्राप्त होते रहते हैं ऐसा जो काल है वह अवसर्पिणी काल है, प्रज्ञापक की अपेक्षा से इसका प्रथमतः उपादन किया गया है, जैसा कि क्षेत्रों में भरत का प्रथम उपादान किया गया है तथा जिस काल में क्रमशः आयु, शरीर आदि भावों की वृद्धि होती जाती है अथवा जो क्रमशः इन भावों को अरकों की अपेक्षा से बढ़ता जाता है उसका नाम उत्सर्पिणी काल

‘जम्बूद्वीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे कइविहे काले पण्णत्ते’ इत्यादि सूत्र २०॥

टीकार्थ—हे भदन्त ! जंबूद्वीप नामके आ द्वीपमा केटला प्रकारने काण कहेवाभां आवेद छे ? ओना जवाणभां प्रभु कहे छे “गोयमा” दुविहे काले पण्णत्ते” आ जंबूद्वीप नामके द्वीपभां दो प्रकारने काण कहेवाभां आवेद छे. ‘तं जहा’ ते आ प्रभाण्णे छे. “ओसप्पिणी काले य उत्सर्पिणी काले य” ओके अवसर्पिणी काण अने थीने उत्सर्पिणी काण. जे काणभां क्रमशः आयु, शरीर वजरे हीन थता नय छे ह्रास थता नय छे ओवे ओ काण छे ते अवसर्पिणी काण छे प्रज्ञापकनी अपेक्षाओ आयु प्रथमतः उपादान करवाभा आवेद छे जेवु के क्षेत्रों मां भरतनु प्रथम उपादान करवाभा आवेद छे तेमज्जे ओ काणभां क्रमशः आयु शरीर वजरे भावोनी वृद्धि थती नय छे अथवा जे क्रमशः ओ भावोने अरकोनी अपेक्षाओे वधारने नय छे. ते काणनु नाम उत्सर्पिणी काण छे अही जे ओ ‘य’ आण्णा छे

कतिविधः प्रज्ञप्तः भगवानाह 'गोयमा छविहे पणत्ते' हे गौतम अवसर्पिणीकालः षड्विध प्रज्ञप्तः 'तं जहा—'सुसमाकाले'तद्यथा सुषमसुषमाकालः—सु—सुष्टु शोभना समा वर्षाणि यस्या सा सुषमा, अत्र सुविनिर्दुभ्यः सुपि सृति समाः८।३।८८ इति सकारस्य षत्वम् सुषमाचासौ सुषमा सुषमसुषमा, उभयोः समानायेयोः प्रकृष्टार्थत्वा दत्यन्त सुषमेत्यर्थः इयमवैकान्तसुखरूपप्रथमारकरूपा सा चासौ कालश्च सुषम सुषमा कालः १, 'सुसमाकाले' सुषमाकालः तत्र सुषमा—प्रागुक्तस्वरूपा तद्रूप कालस्तथा २, 'सुसमःदुस्समाकाले' सुषम दुष्पमाकालः तत्र सुषमा प्रागुक्तस्वरूपा सा चासौ दुष्पमा दुः दुष्टा समा वर्षाणि यस्या सा चेति सुषमदुष्पमा अयिक सुषमा प्रभावाऽल्पदुष्पसुषमाप्रभावा तद्रूपः कालः सुषमदुष्पमाकालः ३ 'दुष्पम सुसमाकाले' दुष्पम सुषमाकालः दुष्पमा चासा सुषमा

है। यहां जो दो चकार आये हैं वे यह प्रकट करते हैं ये दोनो काल अरेक आदिकों की अपेक्षा समान है, और परिमाणना आदि का अपेक्षा भा समान है। अत्र अवसर्पिणी काल के कितने भेद हैं इसबात को श्रीगौतम स्वामी पूछते हैं "ओसर्पिणि कालेण भने । कडविहे पणत्ते" हे भदन्त ! अवसर्पिणी काल कितने प्रकार का कहा गया है उत्तर में प्रमुश्रो कहते हैं- 'गोयमा । छविहे पणत्ते' हे गौतम ! अवसर्पिणी काल ६ प्रकार का कहा गया है "तं जहा" जैसे- "सुसम सुसमाकाले १, सुसमाकाले २, सुसमदुस्समाकाले ३, दुस्समसुसमाकाले ४, दुस्समाकाले ५, दुस्समदुस्समा काले ६, सुषमसुषमा काल- जिसमें अच्छे समा-वर्ष होते है उसका नाम सुषमा है यहां स को ष "सुविनिर्दुभ्य सुपि सृतिममा" इस सूत्र से हुआ है "सुषमा चासौ सुषमा इति सुषमसुषमा" यहा दूसरा सुषमा शब्द भी इसी पूर्वोक्त-प्रथम सुषमा अर्थ का हो वाचक है यह दोनो समानार्थक शब्दों के प्रयोग से यह काल अत्यन्त शोभन वर्षों वाला होता है. यह प्रथम आरक अवसर्पिणी काल का कहागया है क्यो कि यही एकान्तत सुखरूप होता है

ते अये भतावे छे के अये भन्ने काणे। अरक वगेरेनी अपेक्षाये समान छे अने परिमाणता आदिनी अपेक्षाये पणु समान छे हवे' अवसर्पिणी काणना केटला बेढो छे, अये वातने गौतम स्वामी पूछे छे "ओसर्पिणि काले ण भने ! कडविहे पणत्ते" हे भदन्त ! अवसर्पिणी काण केटला प्रकारने कहेवाय छे ! उत्तर मा पणु कडे छे—"गोयमा । "छविहे पणत्ते" हे गौतम ! अवसर्पिणी काण ६ प्रकारने कहेवाया आवेलछे "तं जहा" अये के "सुसमसुसमाकाले १, सुसमाकाले २, सुसमदुस्समाकाले ३, दुस्समसुसमाकाले ४, दुस्समाकाले ५, दुस्समदुस्समाकाले ६" सुषमसुषमा काण अयेमां सारा समा-वर्ष-डोय छे तेसुं नाम सुषमा छे. अही 'स' ने 'ष' छविनि-र्दुभ्यःसुपि सृतिममाः" ८।३।८८ आ सूत्र वडे थये छे सुषमा चासौ सुषमा इति सुषम सुषमा" अही ओन्ने सुषमा शब्द पणु पूर्वोक्त प्रथम अर्थने अ वाचक छे समानार्थक अने शब्दोना प्रयोगथी आ स्पष्ट थाय छे हे आ काण अतीव शोभन वर्षवाणे थाय छे आ प्रथम आरक अवसर्पिणी काणने

यं दुष्पम सुषमा अधिक दुष्पमाप्रभावाऽल्पसुषमा प्रभावा, तद्रूपः कालो दुष्पमसुषमा कालः ४, 'दुस्समाकाले' दुष्पमाकालः तत्र दुष्पमा प्रागुक्तस्वरूपा तद्रूपः कालः ५, 'दु मद्दुस्समाकाले' दुष्पमदुष्पमाकालः दुष्पमा प्रागुक्तस्वरूपा साचौ दुष्पमा 'अत्यन्तदुष्पमा तद्रूपः कालस्तथा ६, इत्य पिपीकालभेदाः १।

अथोत्सर्पिणी कालभेदं पृच्छति 'उत्सर्पिणिकाले णं भंते कइविहे पण्णत्ते' उत्सर्पिणीकालः खलु भदन्त कतिविधः प्रज्ञप्तः भगवानाह—'गोयमा छव्विहे पण्णत्ते' हे गौतम उत्सर्पिणी कालः षड्विधः प्रज्ञप्तः 'तं जहा—दुस्समदुस्समाकाले' तद्यथा दुष्पमदुष्पमाकालः जाव यावत् यावत्पदेन 'दुष्पमाकालः २, दुष्पमसुषमा : ३, सुषम-

द्वितीयकाल जिसका नाम सुषमा है यह भी शोभन वर्षों वाला होता है. "सुषमदुष्पमाकाल" यह तृतीय काल है इस काल में अधिकरूप से प्रथम तो शोभन वर्ष होते हैं, और बाद में दुष्ट वर्ष अल्प होते हैं. तात्पर्यकहने का यही है कि इस तृतीय आरक में सर्वप्रथम सुषमा का प्रभाव होता है और अल्परूप में दुष्पमाओं का प्रभाव रहता है. चतुर्थ आरक दुष्पम सुषमाकाल है—इस काल में अधिकरूप में दुष्पमाओं का प्रभाव रहता है और अल्परूप में सुषमाओं का प्रभाव रहता है. पांचवा आरक दुष्पमाकाल नामका है इस काल में समस्त वर्ष दुःख दायक ही होते हैं, छटा भेद दुष्पमाकाल है इनमें जितने भी वर्ष होते हैं—अर्थात् २१ हजार वर्ष होते हैं वे सब अत्यन्त दुष्ट ही होते हैं. एक भी समय इसमें शोभन नहीं होता है "उत्सर्पिणी काले णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते" हे भदन्त ! उत्सर्पिणीकाल कितने प्रकार का कहा गया है उत्तर में प्रसुश्री कहते हैं "गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते" हे गौतम ! उत्सर्पिणी काल ६ प्रकार का कहा गया है—'तं जहा जैसे—'दुस्समदुस्समाकाले' १ जाव सुसमसुसमाकाले ६" दुष्पम दुष्पमाकाल, यावत्-दुष्पमाकाल २, दुष्पमसुषमाकाल ३, सुषमदुष्पमाकाल ४, सुषमाकाल ५ और सुषमसुषमाकाल ६।

कहेवासां आवेल्ले छे केभके जेव जेकान्त सुभस्वइप होय छे. द्वितीय काण जेतुं नाम सुषमा छे ते पञ्च शोभन वर्षवादी होय छे " सुसमदुस्समा काले" आ तृतीय काण छे. आ काणमा अधिक इपथी आरंभमा तो शोभन वर्षो होय छे अने त्थार णाह अल्पइपमां दुष्ट वर्षो होय छे. तात्पर्य आ प्रभावे छे के आ तृतीय आरक मां सर्व प्रथम सुषमानो प्रभाव होय छे अने अल्पइपमा दुष्पमाज्जेनो प्रभाव रहे छे अतुर्थ आरक दुष्पम सुषमा काण छे. आ काणमा अधिक इपमा दुष्पमाज्जेनो प्रभाव रहे छे. अने अल्पइपमां सुषमाज्जेनो प्रभाव रहे छे पाचमो आरक दुष्पमा काण नामे छे. आ काणमा समस्त वर्ष दुःखदायक जे होय छे. छट्टो प्रकार दुष्पम दुष्पमा काण छे. जेमां जेट्ठा वर्षो होय छे. जेट्ठे के २१ हजार वर्ष होय छे ते सवे अतीव दुष्ट हो छे जेके पञ्च समय आमां शोभन थतो नथी 'उत्सर्पिणी काले णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते' हे भदन्त उत्सर्पिणीकाण जेट्ठा प्रकारनो कहेवासा आवेल्ले छे ? उत्तरमा पञ्च कहे छे—'गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते' हे गौतम ! उत्सर्पिणी काण ६ प्रकारनो कहेवासां आवेल्ले छे, 'तं जहा' जेभ के 'दुस्सम दुस्समाकाले १ जाव सुसमसुसमाकाले ६' दुष्पमदुष्पमाकाण १ यावत् दुष्पमाकाण २ दुष्पमसुषमा

દુષ્પમાકાલઃ ૪, સુપમાકાલઃ ૫ इति पदचतुष्टयस्य संग्रहः तथा 'सुसम सुसमा काले'
सुपमसुषमा कालः ६, इति इत्युत्सर्पिणीकालभेदाः । २।

अथ तदुभयकालपरिमाणं जिज्ञासमानोऽवान्तरकालं प्रष्टुमुपक्रमते । 'एगमेगस्स णं' इत्यादि । 'एगमेगस्स णं भते मुहुत्तस्स' हे भदन्त एकैकस्य मुहूर्तस्य खलु 'केवइया' कियत्स्यः कित्प्रमाणाः निश्वासो नाम वायोर्वहि निर्गमः ततश्च 'उस्सासद्धा' उच्छ्वासाद्धाः उच्छ्वासः—वायोरन्तःप्रवेशः उपलक्षणमेतत् तेन—निःश्वासोपि गृह्यते उच्छ्वासपदेन उच्छ्वासनिःश्वासौ बोध्यौ तदद्धाः—उच्छ्वासनिःश्वासाद्धाः उच्छ्वासनिःश्वासप्रमितकाल-विशेषाः 'वियाहिया' व्याख्याताः—कथिताः भगवानाह—'गोयमा असंखिज्जाणं समयाणं' हे गौतम असंखयेयानां समयानां आगम प्रसिद्धपटशाटिकापाटनदृष्टान्तज्ञापनीयस्वरूपाणां परमजधन्यकालविशेषाणां 'समुदयसमिद्द समागमेणं' समुदय समिति समागमेन समुदयाः समूहास्तेषां समितय सम्मेलनानि तासां यः समागमः एकीभवनं समुदयस-

“एगमेगस्स णं भते । मुहुत्तस्स केवइया उस्सासद्धा वियाहिया ?” इन दोनो कालो के परिमाण जाननेकी इच्छा से अब श्रीगौतम स्वामीने प्रभु से ऐसा पूछा है—हे भदन्त! एक एक मुहूर्त के कितने उच्छ्वास निःश्वास प्रमित काल विशेष कहे गये हैं यहां उच्छ्वास यह पद उपलक्षण रूप है इससे निःश्वास का भी ग्रहण हो जाता है वायु का भीतर जाना यह उच्छ्वास है, तथा वायु का बाहर निकालना यह निःश्वास है. तात्पर्य पूछने का यही है की एक अन्तर्मुहूर्त में कितने उच्छ्वासनिःश्वास होते हैं ? इसके उत्तर में प्रभुश्री कहते हैं—“गोयमा ! असंखिज्जाणं समयाणं समुदयसमिद्दं समागमेणं सा एगा आवल्लिअत्ति बुच्चइ संखिज्जाओ आवल्लियाओ उसासो, संखिज्जाओ आवल्लियाओ नीसासो” हे गौतम आगम प्रसिद्ध समय का स्वरूप को जिसे शास्त्रकारों ने पटशाटिका के फाड़ने के दृष्टान्त से साबित किया है और जो काल का सब से जघन्यरूप प्रमाण है, ऐसे असंख्यातसमयों को समुदायरूप एक आवल्लिका कही गई है यहां पर ऐसी शका

કાળ ૩. સુષમ દુષ્પમાકાળ ૪ સુષમા કાળ ૫. અને સુષમ સુષમા કાળ ૬.

“एगमेगस्स णं भते । मुहुत्तस्स केवइया उस्सासद्धा वियाहिया ?” अन्ने कालोना परिभाष्य ने जलुवानी धंछाथी हवे गौतमने प्रभु ने जेवी रीते प्रश्न क्यो के के अर्कत जेक जेक मुहूर्तना केटला उच्छ्वास निःश्वास प्रमित काल विशेष कडेवाय छे ? अही उच्छ्वास यह उपलक्षण रूप छे. जेनाथी निःश्वासनुं पलु अहलु थाय छे, वायु ने अहंर लधं जेवो ते उच्छ्वास छे हुवा वायु अहंर नीकणे छे ते निःश्वास छे तात्पर्य आ छे के जेक अन्तर्मुहूर्तना केटला उच्छ्वास निःश्वासो डोय छे ? जेना जेवाजभां प्रभु कडे छे— गोयमा ! असंखिज्जाणं समयाणं समुदय समिद्दसमागमेणं सा एगा आवल्लिअत्ति 'बुच्चइ' संखिज्जाओ आवल्लियाओ उसासो संखिज्जाओ आवल्लियाओ नीसासो” हे गौतम आगम प्रसिद्ध समयनु स्वरूप के जेभ शास्त्रकारो जे पटशाटिकाना काडवाना दृष्टान्त थी साबित करेव छे जे काल नु सर्वथी जघन्य रूप प्रमाण छे जेवा अ संख्यात समयोना समुदाय रूप जेक आवल्लिका कडेवाभा आवी छे. अही जेवी शका करवी योग्य नथी के प्रश्नकारे

मिति समागमस्तेन प्रमितः कालविशेष 'सा एगा आवलियत्ति वुच्चइ' सा एका आव-
लिका इति उच्यते ।

ननु प्रश्नवाक्ये मुहूर्त्तस्य कियन्तः उच्छ्वासाद्वा व्याख्याताः इत्युक्तम् उत्तरवाक्ये
तु समयावलिकादिक्रमेण निरूपणं क्रियते इति प्रश्नानुरूपमुत्तरदानमसंगतम् इति चेत्
आह प्रश्नवाक्ये समयावलिकयोरसां व्यवहारिकत्वेन तद्विषये पृच्छा न कृता उत्तर
वाक्ये तु केवलि प्रज्ञाया सूक्ष्मत्वेन वस्तुसूक्ष्मस्वरूपपर्यन्त गमनात् उच्छ्वासादीनां समया
वलिकानिरूपणाधीननिरूपणत्वाच्च भगवतस्तयोर्निरूपणं युक्तमेवेति ।

ननु पूर्वसमयसद्भावे परसमयस्मानुत्पन्नतया परसमयस्य च सद्भावे पूर्वसमयस्य
व्यतीतत्वेनाभावात्कथमसख्यातसमयानां समुदय समिति समागमो भवितुमर्हति येनाऽ

नहीं करनी चाहीये कि प्रश्नकार ने तो एक अन्तर्मुहूर्त्त में कितने उच्छ्वास निःश्वास होते है
ऐसा पूछाहै और आप उत्तर दे रहे है कि असख्यात समयों के समुदाय की एक आवलिका
होती है सो ऐसा आपका उत्तररूप वाक्य सर्वथा असंगत ही है, क्यों कि उच्छ्वास आदिकों का
निरूपण किये बिना नहीं हो सकता है, अतः उच्छ्वास आदिकों का निरूपण इनके निरूपण
के आधीन है इसीलिये शास्त्रकार ने इनका निरूपण पहिले किया है, यद्यपि शंकाकार ने समय
आवलीका को असव्यवहारिक होने से इस विषय में पृच्छा नहीं की है परन्तु उत्तरवाक्य में जो
इनका निरूपण किया गया है वह केवलिप्रज्ञा सूक्ष्म होती है और वह वस्तु के सूक्ष्म स्वरूपतक
पहुंच जाति है इस तरह समय काल का सब से सूक्ष्मस्वरूप है, अतः, जबतक ऊपका निरूपण
नहीं हो जाता है तब तक इसके द्वारा साध्य आवलिका का और आवलिका साध्य उच्छ्वास
आदि का निरूपण नहीं हो सकता है, इस बात को प्रकट करने के लिये भगवान् ने इस प्रकार
से उत्तर दिया है अतः ऐसा यह उत्तर रूप कथन अनुचित नहीं है, किन्तु उचित ही है ।

तो जो अन्तर्मुहूर्त्तमा केटला उच्छ्वास निःश्वासे डोय छे जेवो प्रश्नकर्त्ता छे अने तसे
जवाब आपी रह्या छे के असख्यात समयाना समुदायनी एक आवलिका डोय छे, तो
जेवा तभारा उत्तर रूप वाक्यने सर्वथा असंगत कडेवो उचित नथी, केमके उच्छ्वास वगे
रेतुं निरूपण समय आवलिकाना निरूपण कथां वगर संभव नथी, जेथी उच्छ्वास आदि डोय
निरूपण समय आवलिकाना निरूपण कथां वगर संभव नथी, जेथी उच्छ्वास आदि डोय
निरूपण जेमना निरूपणने आधीन न छे, जेथी शास्त्रकारो जे जेमनु निरूपण पहिला
करेलु छे, जे के शंकाकारे समय आवलिका ने असव्यवहारिक डोयथी आ संभ्रमां
पृच्छा करी नथी परतु उत्तर वाक्यमां जे आ विषे निरूपण करवाभा आवेलुं छे ते केवलि
प्रज्ञा सूक्ष्म डोय छे अने ते वस्तुना सूक्ष्म स्वरूप सुधी पहोच्यी जय छे आ रीते समय
काणतुं सौ करता वधारे सूक्ष्म स्वरूप छे जेथी जथां सुधी तेलुं निरूपण कर वामां आवे
नहीं त्यां सुधी तेना वडे साध्य आवलिका अने आवलिका साध्य उच्छ्वास आदि
निरूपण थरुं शके तेम नथी जे वातने प्रकट करवा भाटे भगवाने जेवी रीते जवाब
आवे छे, जेथी आ उत्तररूप कथन अनुचित नथी परंतु उचित न छे.

वल्लिकादीनामसंख्यातसमयप्रमाणस्वरूपता घटते इति चेत् आह—यद्यपि समुदयादिधर्मो विमात्रस्निग्धरुक्षपुद्गलादीनां भवति न तु कालस्येति सत्यं तथापि यं यं कालविशेषं प्ररूपयितुं प्रज्ञापकपुरुषविशेषेण यावन्तो यावन्तः समया एकज्ञानविषयी कृतास्तावन्तस्ते समुदयसमितिसमागता उपचर्यन्ते, अत एवायमौपाधिकः काल इति न काचिदनुपपत्तिरिति । तथा 'संखिज्जाओ आवलियाओ उसासो' संख्येया आवलिका उच्छ्वासः संखिज्जाओ आवलियाओ नीसासो' संख्येया आवलिका निश्वासः तत्र संख्येयत्वोपपत्तिश्चैवम् आवलिकानां पदपञ्चाशदुत्तरशतद्वयेनैकः क्षुल्लकभवो भवति तानि

शका—असख्यात समयो की समूह समिति से एक आवलिका निष्पन्न होती है ऐसा आप कह रहे हैं—सो यह बात हम को समझ में ही नहीं आती है क्यों कि जब तक पूर्व-समय का सद्भाव रहेगा—तब तक पर समय का उदय नहीं होगा और जब परसमय का सद्भाव हो जावेगा—तब पूर्व समय का विनाश हो जावेगा—तो फिर असख्यात समयों की समुदायसमिति कैसे निष्पन्न हो सकेंगी कि जिससे आवलिका बनाई जाती है ?

उत्तर—शंका ठीक है—क्योंकि समुदयादि रूप धर्म विमात्रस्निग्ध रूक्षगुणवाले पुद्गलो में होता है काल में नहीं होता । क्योंकि वह अमूर्त है परन्तु फिर भी प्रज्ञापकपुरुष विशेष द्वारा जिस जिस काल विशेष की प्ररूपणा करने के लिये जितने जितने समय एक ज्ञान के विषयभूत किये गये होते हैं उतने उतने वे समय समुदयसमिति में आ गये हैं ऐसा उपचार से मान लिया जाता है, इसलिये काल को औपाधिक माना गया है वास्तविक नहीं अतः इस प्रकार की प्ररूपणा में कोई अनुपपत्ति नहीं है । सख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास होता है और असख्यात ही आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है, सख्यात की उपपत्ति इस प्रकार से होती है—२५६ आवलिकाओं का एक क्षुल्लकभव होता है कुछ अधिक १७ क्षुल्लकभवों

शकाः—असंख्यात समयानी समूह समितिथी ओक आवलिका निष्पन्न थाय छे ज्येवुं तमे कही रखा छे तो आवात समजभा आवती नथी. केमके ज्यां सुधी पूर्व समयने सद्भाव रहेशे त्यां सुधी परसमयने उदय थशे नही अने ज्यारे परसमयने सद्भाव थर्ष जशे त्यारे पूर्व समयने विनाश थर्ष जशे, तो असंख्यात समयानी समुदाय समिति केवी रीते निष्पन्न थर्ष शकेशे के जेनाथी आवलिका निष्पन्न थाय छे

उत्तर—शंका जराजर ज छे. केमके समुदायादि रूप धर्म विमात्रस्निग्ध रूक्षगुणवाला पुद्गलो भां डोय छे काणभां थतो नथी. केमके ते अमूर्त छे छतांजे प्रज्ञापक पुरुष विशेष वडे जे जे काण विशेषनी प्ररूपणा करवा भाटे जेटका जेटका समये ओक ज्ञानना विषयभूत करेवा डोय छे तो तेटका ते समये समुदय समितिभां आवी गया छे, आम उपचारथी भाणी देवामां आवे छे. ज्येथी ज काणने औपाधिक मानवामां आवेवो छे ते वास्तविक नथी ज्येथी आ जतनी प्ररूपणभां केर्ष पण अनुपपत्ति नथी, संख्यात आवलिकाज्येना ओक उच्छ्वास डोय छे. अने संख्यात आवलिकाज्येना ज ओक निश्वास पणु डोय छे. संख्यात उपपत्ति आ प्रभाजे थाय छे. २५६ आवलिकज्येना ओक क्षुल्लक भव डोय छे.

च सप्तदश साधिकानि उच्छ्वास निःश्वासकालः इति ।

अथ यादृशैरुच्छ्वास निश्वासादिभिर्मुहूर्तमानं भवति तदाह—‘हेट्टस्स’ इयादि ‘हेट्टस्स’ हृष्टस्य—तारुण्येन समर्थस्य ‘अणवगल्लस्स’ अनवगलानस्य—ग्लानिर्वर्जितस्य ‘णिरुवकिट्टस्स’ निरुपक्लिष्टस्य—सर्वदा व्याधिरहितस्य नीरोगस्य ‘जंतुणो’ जन्तोः मनुष्यस्य च ‘एगे उसा मनीसासे’ एक उच्छ्वासनिःश्वासः उच्छ्वास युक्तो निश्वासः ‘एस पाणुत्ति’ स एष प्राण इति प्राण इति संज्ञया ‘बुच्चई’ उच्यते व्यवह्रियते इति ।

तथा ‘सत्त पाणूइं से थोवे’ सप्त प्राणाः स स्तोकाः ‘सत्त थोवाइं से लवे’ सप्त स्तोका स लवः ‘लवानां सत्तहत्तरीए’ लवानां सप्त सप्तत्या मितो यः स ‘एस मुहुत्तेत्ति’ एष मुहूर्त इति ‘आहिए’ आख्यातः कथितः २ ।

का एक उच्छ्वास निश्वासरूप काल होता है । अब जिस प्रकार के उच्छ्वासनिःश्वास आदिकों से एक मुहूर्त का प्रमाण होता है वह प्रकट क्रिया जाता है—‘हेट्टस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्टस्स जंतुणो । एगे उसासनीसासे एस पाणुत्ति बुच्चई’ ॥१॥ सत्त पाणूइं से थोवे सत्त थोवाइं से लवे, लवाना सत्तहत्तरीए एष मुहुत्तेत्ति आहिए ॥२॥ तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तं च ऊसासा, एस मुहुत्तो भणियो सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥३॥—ऐसे पुरुष का कि जो युवा होने से समर्थ हो, ग्लानि वर्जित हो, सर्वदा व्याधि से रहित हो ऐसे उस नीरोग मनुष्य का जो एक उच्छ्वासयुक्त निश्वास है उसका नाम प्राण कहा गया है ऐसे सात प्राणों का एक स्तोका होता है सात स्तोकों का एक लव होता है ७७ लवों का एक मुहूर्त होता है ३७७३ उच्छ्वासनिःश्वासों का एक मुहूर्त होता है । ऐसा अनन्त ज्ञान सम्पन्न श्रीजिनेन्द्र भगवानों ने कहा है “एएण मुहुत्तप्पमाणेणं तास मुहुत्ता अहोरत्तो, पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो, दो मासा उऊ, तिण्णि उऊ अयणे, दो अयणा सव्वच्छेरे”

कंधके पधारे १७ क्षुद्धकभवोनेो अेक उच्छ्वास निःश्वास इय काल डोय छे. हवे नेम उच्छ्वास निश्वास आदिकोथी अेक मुहूर्तं तु प्रमाण डोय छे, ते प्रकट करवाभां आवे छे. ‘हेट्टस्स अणवगल्लस्स निरुवकिट्टस्स जंतुणो । एगे उसासनीसासे एस पाणुत्ति बुच्चई ॥१॥ सत्त पाणूइं से थोवे’ सत्त थोवाइं से लवे लवाना सत्तहत्तरीए एष मुहुत्तेत्ति आहिए ॥२॥ तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तं च ऊसासा एस मुहुत्तो भणियो सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥३॥ अेवेो पुरुष डोय के नेने युवावस्था प्राप्त डोय अने समर्थ डोय ग्लानि वर्जित डोय, सर्वदा व्याधि विहीन डोय अेवा ते निरोग मनुष्यनेो अे अेक उच्छ्वास युक्त निःश्वास छे तेतुं नाम प्राण कहवाभां आवेत्त छे. अेवा सात प्राणोनेो अेक स्तोका डोय छे सात स्तोकोनेो अेक लव डोय छे ७७ लवोतु अेक मुहूर्तं डोय छे ३७७३ उच्छ्वास-निश्वासेतु अेक मुहूर्तं डोय छे अेवुं अनन्तज्ञान सम्पन्न सर्वश्री जिनेन्द्र भगवन्तोअे कथु छे ‘एएण मुहुत्तप्पमाणे णं तीसं मुहुत्ता अहोरत्तो पण्णरस अहोरत्ता पक्खो, दो पक्खा मासो दो मासा उऊ, तिण्णि उऊ, अयणे, दो अयणा सव्वच्छेरे, अेवा मुहूर्तं प्रमाणथी उउ मुहूर्तंनेो अेक अडोय

अथ कियद्भिरुच्छ्वासनिश्वासैरेको मुहूर्त्तो भवतीत्याह 'तिणिण सहस्सा' इत्यादि 'तिणिण सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं' त्रीणि सहस्राणि सप्त शतानि त्रिसप्ततिः त्रि सप्तत्यधिकसप्तशत्युत्तरसहस्रत्रयसंख्यका 'उसासा' उच्छ्वासा उपलूक्षणत्वान्निःश्वासाश्च 'एस मुहूतो' एष मुहूर्त्तः मुहूर्त्ताभिधानः काठः 'सव्वेहिं अणतनाणीहिं' सर्वे अनन्त ज्ञानिभिः अनन्तज्ञानसम्पन्नैर्जिनैः 'भणिओ' भणितः-उक्त इति । 'एएणं एतेन-अनन्तरोक्त स्वरूपेण 'मुहुत्तप्पमाणेण तोसं' मुहूर्त्तप्रमाणेन त्रिंशत्-त्रिंशत्संख्यका 'मुहुत्ता' मुहूर्त्ताः 'अहोरत्तो' अहोरात्रः भवति, 'पण्णरस' पञ्चदश-पञ्चदशसंख्यकाः 'अहोरत्ता' अहोरात्राः एकः 'पक्खो' पक्षः 'दो पक्खा मासो' द्वौ पक्षौ एको मासः, 'दो मासा उऊ' द्वौ मासौ एकः ऋतुः 'तिणिण' त्रयः त्रिसंख्यका 'उऊ अयणे' ऋतवः एकमयनम्, 'दो अयणा संवच्छरे' द्वे अयने एकः संवत्सर, 'पंच संवच्छरिए' पञ्च संवत्सरिकं-पञ्च वर्ष परिमितम् एकं 'जुगे' युगम् 'वीसं' विंशति संख्यकानि 'जुगाइ वाससए' युगानि वर्ष-शतम् 'दस' दश-दशसंख्यानि 'वाससयाइं वाससहस्से' वर्षशतानि वर्षसहस्रम् 'सयं वास-सहस्साणं वाससयसहस्से' वर्षसहस्राणां शत वर्षशतसहस्रम्-वर्षलक्षम्, 'चउरासीइं-वाससयसहस्साइं' चतुरशीति वर्षशतसहस्राणि-चतुरशोतिवर्षलक्षाणि 'से एगे पुव्वंगे' तदेकं पूर्वाङ्गम्, 'चउरासीइं पुव्वंगसयसहस्साइं' चतुरशीतिः पूर्वाङ्गशतसहस्राणि-चतुर शीतिलक्षपूर्वाङ्गाणि 'से एगे पुव्वे' तदेकं पूर्वम्, पूर्ववर्षमान चैवमभिहितं, तथाहि-"पुव्व-

ऐसे मुहूर्त्त प्रमाण से ३० मुहूर्त्त का एक अहोरात्र होता है पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है दो पक्ष का एक मास होता है दो मास को एक ऋतु होता है तीन ऋतुओं का एक अयन होता है, दो अयन का एक संवत्सर होता है, "पंच सव्वच्छरिए जुगे, वीस जुगाइं वाससए, दसवाससयाइं वाससहस्से सयं वाससहस्साणं वाससयसहस्से, चउरासीइं वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे" पांच सवत्सरो का एक युग होता है बीस युगों का एक सौ वर्ष होता है, १० सौ वर्षों का एक हजार वर्ष होते हैं, १०० एक सौ हजार वर्षों के एक लाख वर्ष होते हैं ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है, "चउरासीइं पुव्वंगसयसहस्साइं से एगे पुव्वे, एव विगुण विगुणं जेयव्व तुडिपर अडडे २ अववेर हुहुपर उप्पळे २ पउमे २

त्र डोय छे पइर अडोरात्रेनो अेक पक्ष डोय छे जे पक्षेनो अेक मास डोय छे जे मासनी अेक ऋतु डोय छे. त्रषु ऋतुओतु अेक अयन डोय छे जे अयने नो अेक संवत्सर डोय छे 'पंच सव्वच्छरिए जुगे, वीसं जुगाइं वाससए दसवाससयाइं वाससहस्से सयंवास सहस्साण वाससयसहस्से चउरासीइ वाससयसहस्साइं से एगे पुव्वंगे" पांच संवत्सर नो अेक युग डोय छे वीस युगेना अेक सौ वर्ष डोय छे १० सौ वर्षेना अेक हजार वर्ष डोय छे. १०० हजार वर्षेना अेक लाख वर्षे डोय छे ८४ लाख वर्षे तु' अेक पूर्वांग डोय छे, 'चउरासीइं पुव्वंगसयसहस्साइ से एगे पुव्वे एवं विगुणं विगुण जेयव्व तुडिपर २ अडडे २ अववे २ हुहुपर २ उप्पळे २ पउमे २ णल्लिणे अत्थण्डरे २ अउप

“उ परिमाणं सपरिं खलु हुंति कोटिलक्खाओ । छप्पणं च सहस्सा वोद्ध्वा वास-
कोडीणं” छाया-पूर्वस्य तु परिमाणं सप्ततिः खलु भवन्ति कोटिलक्षाणि । पट्पञ्चा-
शत् सहस्राणि बोद्धव्यानि वर्षकोटीनाम् इति । स्थापना च ७०५६००००००००००००
इति । ‘एव’ एवम्-अनेन प्रकारेण-पूर्वाङ्गपूर्वन्यानेन परं परं त्रुटिताङ्गं त्रुटितम्-
इत्यादि तदङ्गतलक्षणभेदाभ्यां ‘विगुणं विगुणं’ द्विगुणं द्विगुणं द्विसंख्यकं द्विसंख्यकं
‘ण्येयञ्च’ नेतव्यं-ज्ञातव्यम् । अयं भावः-‘त्रुटितम् अडडम्’ इत्यादीनि सूत्रे एक-
त्वेन निर्दिश्यमानानि त्रयोदशसंख्यास्थानानि सूत्रस्य लाधवप्रधानत्व सूचकानि । द्विगुणं
द्विगुणमिति तु द्विसंख्यकं द्विसंख्यकमिति परं न तु द्विगुणकारपरम् । ततश्च पूर्वानन्तर
‘तुडिए २’ त्रुटिताङ्गं त्रुटितम्, ‘अडडे २’ अडडाङ्गम् अडडम्, ‘अववे २’ अववाङ्गम्
अववम् ‘हुहुए २’ हुहुकाङ्गं हुहुकम्, ‘उत्पले २’ उत्पलाङ्गम् उत्पलम्, ‘पउमे २’
पभाङ्गं पभम्, ‘णलिणे २’ नलिनाङ्गं नलिनम्, ‘अत्थनिउरे २’ अर्थनिपूराङ्गम् अर्थ-
निपूरम्, ‘अउए २’ अयुताङ्गम् अयुतम् ‘णउए २’ नयुताङ्गं नयुतं, ‘पउए’ २’ प्रयुताङ्गं

णलिणे२ अत्थणिउरे२ अउए२ नउए पउए चूलिया२ सीसपहेलियाए२ जाव चउरासीइ
सीसपहेलियगसयसहस्साइं सा एगा सीसपहेलिया” ८४ लाखपूर्वाङ्ग का एक पूर्व होता है.
पूर्ववर्ष का प्रमाण इस प्रकार से कहा गया है—“पुव्वस्स उ परिमाणं सपरिं खलु हुंति
कोटिलक्खाओ, छप्पणं च सहस्सा वोद्ध्वा वासकोडीणं” इनकी स्थापना इस प्रकार है—
७०५६०००००००००००० । ८४लाख पूर्व का एक त्रुटिताङ्ग होता है, ८४लाख त्रुटिताङ्ग का
एक त्रुटित होता है ८४ लाख त्रुटित का एक अडडाङ्ग होता है ८४ लाख अडडाङ्ग का एक अडड
होता है, ८४ लाख अडड का एक अववाङ्ग होता है, ८४लाख अववाङ्ग का एक अवव होता है,
८४ लाख अवव का एक हुहुकाङ्ग होता है, ८४लाख हुहुकाङ्ग का एक हुहुक होता है, ८४लाख
हुहुक का एक उत्पलाङ्ग होता है, ८४लाखउत्पलाङ्ग का एक उत्पल होता है, ८४ लाख उत्पल
का एक पभाङ्ग होता है, ८४लाख पभाङ्ग का एक पभ होता है, ८४ लाख पभ का एक नलिनाङ्ग

२ नउए २ पउए २ चूलिया ५ सीसपहेलियाए २ जाव चउरासीइ सीसपहेलियंग सय
सहस्साइं सा एगा सीसपहेलिया” ८४ लाख पूर्वांगने। ओक पूर्व डोय छे, पूर्ववर्षनु
प्रभाषु आ प्रभाषे डडेवाभा आवेव छे “पुव्वस्स उ परिमाण सपरिं खलु हुंति कोटि
लक्खाओ छप्पणं च सहस्सा वोद्ध्वा वासकोडीण” ओमनी स्थापना आ प्रभाषे छे—
७०५६०००००००००००० ८४ लाख पूर्वनु ओक त्रुटितांग डोय छे ८४ लाख त्रुटितांग
भराभर ओक अडडांग डोय छे ८४ लाख अडडांग भराभर ओक अडड डोय छे ८४ लाख
अडडनु ओक अववांग डोय छे ८४ लाख अववांग भराभर ओक अवव डोय छे. ८४ लाख
अववनु ओक हुहुकांग डोय छे ८४ हुहुकांग भराभर ओक हुहुक डोय छे, ८४ लाख हुहुक
भराभर ओक उत्प-लांग डोय छे ८४ लाख उत्पलांग भराभर ओक उत्पल डोय छे.
८४ लाख उत्पलनु ओक पभांग डोय छे. ८४ लाख पभांग नु ओक पभ डोय छे. ८४
लाख पभनु ओक नलिनांग डोय छे. ८४ लाख नलिनांग भराभर ओक नलिन डोय छे.

प्रयुतं 'चूलिया २' चूलिकाङ्गं चूलिका, 'सीसपहेलिया २' शीर्षप्रहेलिकाङ्गं शीर्षप्रहेलिका इति पर्यन्तं बोध्यम् । अत्र प्रथम प्रथमापेक्षयाऽपरमपरं चतुरशीति लक्षगुणितं बोध्यमिति एतदेव सूचयितुमाह—'जाव चउरासीऽ सीसपहेलियगसयसहस्ताइं' यावच्चतुरशीतिः शीर्षप्रहेलिकाङ्गशतसहस्राणि—चतुरशीति लक्षशीर्षप्रहेलिकाङ्गानि 'सा एगा सीसपहेलिया' सा एका शीर्षप्रहेलिकेति । अस्याः स्थापना चैवं विज्ञेया, तथाहि—७५८२६३ २५३०, ७३०१०२४११५, ७९७३५६९९७५, ६९६८९६२१८९, ६६८४८०८०१८ ३२९६ इति चतुष्पञ्चाशदङ्काः, एतदग्रे च चत्वारिंशदधिकं शून्यशतं प्रक्षेप्यम् । एवं स्यां शीर्षप्रहेलिकायां चतुर्नवत्याधिकशतसंख्यकानि अङ्कस्थानानि भवन्तीति ।

यद्वा—विगुणं विगुणं" इत्यस्य—'विगुणं विगुणम्' इतिच्छाया । एतत्पक्षे तु यथोत्तरं प्रधानं प्रधानं=प्रकर्षयुक्तं यथा स्यात्तथा ज्ञातव्यमिति । ततश्चायमत्र पर्यवसितोऽर्थः

होता है, ८४लाख नलिनाङ्ग का एक नलिन होता है, ८४ लाख नलिन का एक अर्थनिपुराङ्ग होता है, ८४ लाख अर्थनिपुराङ्ग का एक अर्थनिपूर होता है ८४लाख अर्थनिपूर का एक अयुताङ्ग होता है, ८४ लाख अयुताङ्ग का एक अयुत होता है, ८४ लाख अयुत का एक नयुताङ्ग होता है, ८४लाख नयुताङ्ग का एक नयुत होता है, ८४ लाख नयुत का एक प्रयुताङ्ग होता है, ८४ लाख प्रयुताङ्ग का एक प्रयुत होता है, ८४लाख प्रयुत का एक चूलिकाङ्ग होता है, ८४लाख चूलिकाङ्ग को एक चूलिका होती है, ८४ लाख चूलिका का एक शीर्षप्रहेलिकाङ्ग होता है और ८४लाख शीर्षप्रहेलिकाङ्ग को एक शीर्षप्रहेलिका होती है इस शीर्षप्रहेलिका की स्थापना इस प्रकार से है—७५८२६३२५३०७३०१०२४११५७९७३५ ६९९७५६९६८९६२१८९६६८४८०८०१८३२९६ ये सब अंक ५४ हैं इनके आगे शून्यों की स्थापना और करनी चाहिये. इस तरह एक शीर्षप्रहेलिका में १९४-अङ्कस्थान होते हैं, यद्वा—'विगुणं विगुणं" की जब संस्कृत छाया "विगुणं विगुणं" ऐसी ही होती है तब इस पक्ष में आगे

८४ लाख नलिन तु एक अर्थनिपूरांग होय छे ८४ लाख अर्थनिपुरांग परापर एक अर्थनिपूर होय छे ८४ लाख अर्थनिपूर तु एक अयुतांग होय छे, ८४ लाख अयुतांग परापर एक अयुत होय छे, ८४ लाख अयुतनु एक नयुतांग होय छे, ८४ लाख नयुतांग परापर एक नयुत होय छे ८४ लाख नयुतनु एक प्रयुतांग होय छे ८४ लाख प्रयुतांग परापर एक प्रयुत होय छे ८४ लाख प्रयुतनु एक चूलिकांग होय छे, ८४ लाख चूलिकांगनी एक चूलिका होय छे, ८४ लाख चूलिकानु एक शीर्ष प्रहेलिकांग होय छे अने ८४ लाख शीर्ष प्रहेलिकांगनी एक शीर्ष प्रहेलिका होय छे आ शीर्ष प्रहेलिकानी स्थापना आ प्रमाणे छे—७५, ८२ ६३, २५, ३०७३०१०२४११५, ७६७३५६६८९६६८६६२१ ८६६६८४८०८०१८३२९६ अे सब अंक ५४ छे अेअनी आगण १४० शून्येानी स्थापना वधारेानी करवी जेछेअे आ प्रमाणे एक शीर्ष प्रहेलिकामा १९४ अंक स्थाने होय छे यद्वा—'विगुणं विगुणं" नी संस्कृत छाया विगुणं विगुणं अे थाय छे. अे पक्षमां आगण

यथा पूर्वाङ्गापेक्षया पूर्वं प्रधानं तथा पूर्वापेक्षया त्रुटिताङ्गं प्रधानं तदपेक्षया त्रुटित-
मित्यादि रीत्या उत्तरमुत्तरं प्रथमप्रथमापेक्षया प्रधानं २ बोध्यम् । एवं च शीर्षप्रहेलिका
सर्वापेक्षया प्रधानं बहुतरसंख्यास्थानविषयत्वादिति । अथवा-विगुणं गुणरहितमित्यर्थः ।

अयमत्राशयः-पूर्वाङ्गपूर्वादिकानि अनादिसिद्धसंकेतमात्रवशादेव विवक्षित संख्या-
मिधायकानि, न पुनः पञ्चाशत्सहस्रादिवद् गुणनिष्पन्नानि । तथा च यथा पूर्वाङ्गं
पूर्वं च तथा त्रुटितादिकपदसमूहोऽपि विज्ञेयः । “विगुणं विगुणम्” इति वीप्सा तु
त्रुटितादिपदानां बहुत्वात् । ननु भवता पूर्वाङ्ग. पूर्वादिकानि अनादि सिद्ध संकेतमात्र-
वशादेव विवक्षितसंख्यामिधायकानि इत्युक्तं, ततश्चैषामन्वर्थत्वाभाव इति पर्यवस्यति,
परन्तु अन्वर्थत्वमेवां सुव्यक्तमेव, तथाहि- अङ्गं तावत्कारणं, कारणं च कार्यसापेक्षम्,

२ का प्रधान होता है ऐसा भाव निकलता है. तथा च पूर्वाङ्ग को अपेक्षा पूर्व में प्रधानता-प्रकर्ष
युक्तता है, पूर्व को अपेक्षा त्रुटिमात्र में प्रधानता है, त्रुटिमात्र की अपेक्षा त्रुटित में प्रधानता है
इत्यादि रीति से उत्तर उत्तर में प्रथम प्रथम को अपेक्षा से प्रधानता जाननी चाहिये । इस तरह
शीर्ष प्रहेलिका में सब की अपेक्षा प्रधानता है क्योंकि वह बहुतर संख्याके स्थान का विषय है
अथवा-“विगुणम्”, इसका अर्थ गुण रहित ऐसा भी होता है इस पक्ष में ऐसा भाव निकलता
है कि जिस प्रकार पञ्चाशत् शतसहस्र इत्यादि गुण निष्पन्न हैं उस तरह से ये पूर्वाङ्ग पूर्व आदि
गुणनिष्पन्न नहीं हैं ये तो केवल अनादिसिद्ध संकेत के वश से ही विवक्षित संख्या के अमिधा-
यक हैं “विगुणं”, ऐसा जो दो बार कहा गया है वह त्रुटित आदि पदों को बहुता को लेकर
कहा गया है ।

शंका—आपने अभी पूर्वाङ्ग पूर्व आदिकों को अनादि सिद्ध संकेत के वश से ही विवक्षित संख्या
के अमिधायक कहा है तो इसका तात्पर्य-भाव यही हुआ कि इनमें अन्वर्थता नहीं है परन्तु
ऐसी बात तो है नहीं कि क्यों इनमें अन्वर्थता है और वह इस प्रकार से है-अङ्ग कारण होता

आगल तु प्रधान थाय छे ओवे भाव स्पष्ट थाय छे. तथा अ-पूर्वाङ्गनी अपेक्षा पूर्वमां
प्रधानता प्रकर्ष युक्तता-छे पूर्वनी अपेक्षा त्रुटितांग मा प्रधानता छे. त्रुटितांगनी अपेक्षा
त्रुटित मां प्रधानता छे इत्यादिइपमां उत्तर उत्तरमा प्रथमनी अपेक्षाओ प्रधानता लखवी
नेछेओ. आ रीते शीर्षप्रहेलिकामा सर्वांनी प्रधानता छे केभके ते बहुतर संख्यात रथा
नने विषय छे. अथवा विगुणम् आने। अर्थ शुष्य रहित पक्ष थाय छे. आ पक्षमां
ओवे भाव पक्ष नीकणे छे के ने प्रमाणे पञ्चाशत् शतसहस्र इत्यादि शुष्य निष्पन्न छे.
तेम ओ पूर्वांगो पूर्व आदि शुष्य निष्पन्न नहीं. ओ तो केकत अनादि सिद्ध संकेत वशथी
न विवक्षित संख्याना अमिधायक छे विगुणम्, ने ओ वार कहेवामा आन्धु छे ते
त्रुटित आदि पदोनी बहुतर ने बोधे कहेवामा आवेल छे, शंका—तमे हमलां पूर्वांग
पूर्व आदिकाने अनदिसिद्ध संकेतना वशथी न विवक्षित संख्या ना अमिधायक कहेल
छे तो आने अर्थ आ थये के आमा अन्वर्थता नहीं परन्तु अरेअरे ओबु नहीं
केभके आमा अन्वर्थता छे अने ते आ प्रमाणे छे अग कारण डोय छे अने ते कार्य सापेक्ष
डोय छे अही पूर्वाङ्गइप कारण तुं कार्य पूर्व छे तेथी न तो पूर्वाङ्गमां पूर्वस्य अङ्ग

કાર્ય ચ પૂર્વમ્, અતएव पूर्वस्याङ्ग पूर्वङ्गमिति विग्रहः, पूर्वाङ्गं चतुरशीतिलक्षगुणितं सत् पूर्वं जायते, एवं चात्रान्वर्थत्वं सुव्यक्तमेवेति चेत्, आह—पूर्वशब्दस्यैव तावन्नास्त्यन्वर्थत्वं ततश्च तत्कारणस्यापि तदभावः सुस्पष्ट एवेति न कश्चिद्दोषः । यद्वा-द्विगुणं द्विगुण-मित्येवञ्जाया, अर्थस्तु ‘द्विभेद द्विभेदं’ इति बोध्यः । ततश्चायमत्राशयः—यथा “पूर्वाङ्गं पूर्वम्” इति द्विभेदम् अनेन क्रमेणैव त्रुटिताङ्गं त्रुटितमित्यारभ्य शीर्षप्रहेलिकाइग शीर्ष-प्रहेलिका इति पर्यन्त भेदद्वयं वो रमिति । सम्प्रति प्रक्रान्तविषयम् उपसंहरन्नाह— “एतावदिति” ‘एताव’ एतावत्-समयादि शीर्षप्रहेलिका पर्यन्तं ‘ताव’ तावद् ‘गणिए’ गणितं-कालगणितं संख्यास्थानमिति यावत् । ‘एताव ताव गणियस्स विसए’ एतावानेव ताव र गणितस्य विषयः=आयुःस्थित्यादिकालः । एतावानायु कालस्तु केषांचिद् रत्न-प्रभानारकाणां भवनपतिव्यन्तराणां सुपम दुष्पमारक सभविनां नरतिरश्वां च बोध्यः । एतस्मात्परतोऽपि सर्पपचतुष्पल्यप्ररूपणा गम्यः संख्येयः कालोऽस्ति, परन्तु सोऽन-

હૈ और वह कार्य सापेक्ष होता है, यद्वा पूर्वाङ्ग रूप कारण का कार्य पूर्व है तभी तो जाकर पूर्वाङ्ग में—“पूर्वस्य अङ्गं” इस व्युत्पत्ति के अनुमार ऐसा विग्रह हुआ है पूर्वङ्ग को ८४ लाख से गुणा करने पर उससे पूर्व बनता है इस तरह से यद्वा अन्वर्थता स्पष्ट ही है फिर आपने इनमें अन्वर्थता का अभाव कैसे प्रतिपादित किया है ? तो इस शंका का उत्तर ऐसा है कि जब पूर्व शब्द में ही अन्वर्थता नहीं है तो फिर इनका जो कारण है उसमें अन्वर्थता का अभाव तो स्पष्ट ही है इस तरह से यद्वा कोई दोष नहीं है । यद्वा—“विगुण २” की संस्कृत छाया द्विगुण द्विगुण ऐसी ही है इसका अर्थ दो दो भेद होता है तथा च पूर्वाङ्ग पूर्व त्रुटिताङ्ग त्रुटित इस रूपसे शीर्षप्रहेलिकाइग शीर्षप्रहेलिका तक दो दो भेद होते गये हैं-जो ऊपर में स्पष्ट किये जा चुके हैं । “एताव ताव गणिए, एतावताव गणियस्स विसए तेण परं ओवमिए” इस प्रकार समय से लेकर शीर्ष-प्रहेलिका तक कालगणित है-संख्या का स्थान है और इतना ही गणित का विषय है- आयुस्थिति आदि रूप काल है इतना आयु काल कितनेक रत्नप्रमा के नारकोंका, भवनपति देवों का, व्य-

આ વ્યુત્પત્તિ સુબળ આ બતાવે (વશક થયે છે પૂર્વાંગને ૮૪ લાખથી ગુણિત કરવામાં આવે તો તેનાથી પૂર્વ બને છે આ પ્રમાણે અહીં અન્વર્થતા સ્પષ્ટ જ છે તો પછી તમે એ આમાં અન્વર્થતાનો અભાવ છે એવું પ્રતિપાદન કર્યું છે તે યોગ્ય છે ? આ શકાનો જવાબ આ પ્રમાણે છે કે જ્યારે પૂર્વ શબ્દમાં જ અન્વર્થતા નથી તો પછી એવું જે કારણ છે તેમાં અન્વર્થતાનો અભાવ તો સ્પષ્ટ છે આ પ્રમાણે અહીં કોઈ દોષ જ નથી

યદ્વા—“વિગુણ ૨” ની સંસ્કૃત છાયા દ્વિગુણ દ્વિગુણ એવી જ છે, આનો અર્થ બખે લેઈ હોય છે તથા ચ-પૂર્વાંગ પૂર્વ, ત્રુટિતાંગ ત્રુટિત આ રૂપથી શીર્ષ પ્રહેલિકાગુણ શીર્ષ પ્રહેલિકા સુધી બખે લેઈ શકાય છે તે વિષે ઉપર સ્પષ્ટતા કરવામાં આવી છે ‘પતાવતાવગણિય, પતાવતાવગણિયસ્સ વિસए તેણ પરં ઓવમિય’ આ પ્રમાણે સમયથી માંડી ને શીર્ષ પ્રહેલિકા સુધી કાળ ગણિત છે, સખ્યાનું સ્થાન છે, અને એજ ગણિતનો વિષય છે આયુસ્થિતિ આદિરૂપ કાળ છે. આટલો આયુ કાળ કેટલાક રત્નપ્રમાના નારકોના

तिज्ञानिनोमसंव्यवहार्यः, अत एवात्र स न निर्दिष्ट इति । शीर्षप्रहेलिकातः परंतु अनतिशयज्ञानिभिर्ग्रहीतुमशक्यम्' अतस्तदौपमिकम्—उपमया सादृश्येन निर्वृत्त बोध्यमिति । एतदेव सूचयितुमाह—तेण परं ओवमिए' इति । 'तेण' इति पठचम्यर्थे—तृतीया बोध्येति ॥२०॥

पूर्वमौपमिकमुक्तं तदेव प्रश्नोत्तराभ्यां निरूपयितुमाह—

मूलम्— से किं तं उवमिए, उविमिए दुविहे पणत्ते, तं जहा—पलिओमे य सागरोवमे य । से किं तं पलिओवमे ? पलिओवमस्स परूवणं करिस्सामि' परमा दुविहे पणत्ते, तं जहा—सुहुमे य वावहारिए य, तत्थ णं जे से हुमे से ठप्पे, तत्थ णं जे से वावहारिए से णं अणं—ताणं सुहुमपरमा पुग्गलाणं समुदय समिइ समागमेणं वावहारिए परमा निप्फज्जइ, तत्थ णो सत्थं कमइ—

सत्थेण सुतिकखेण वि छेतुं भेतुं च जं किर ण सक्का ।

तं परमा सिद्धा वयंति आइं पमाणोणं ॥१॥

वावहारिय परमाणूणं समुदयसमिइसमागमेणं सा एगा उस्सण्ह—

न्तर देवों का एव सुषमदुष्मरक में उत्पन्न हुए नर और तिर्यञ्चों का, जानना चाहिये इस काल से भी आगे जो सर्षपचतुष्पल्य प्ररूपणागम्य काल है वह भी सख्यात काल ही है परन्तु वह अनतिशयज्ञानियों के ज्ञान का विषय नहीं होने से असव्यवहार्य है इसीलिये उसे यहाँ निर्दिष्ट नहीं किया गया है शीर्षप्रहेलिका से आगे का जो काल है वह अनतिशय ज्ञानियों द्वारा गम्य नहीं हो सकता है इसलिये उसे औपमिक कहा गया है अर्थात् उसका ज्ञान उपमा देकर ही कराया जाता है अर्थात् वह सादृश्य से बोध्य है— इसीलिये 'तेण परं ओवमिए' ऐसा सूत्रकार ने कहा है । 'तेण' यह तृतीया विभक्ति पंचमी विभक्ति के अर्थ में हुई है ॥२०॥

भवन्पति हेवोना तेमञ्च सुषम दुष्मरकमां उत्पन्न थयेदा नर अने तिर्यञ्चोना लक्षणे लोभजे आ काण करतां पण आगण ने सर्षपचतुष्पल्य प्ररूपणा गम्य काण छे ते पण सख्यात काण न छे परंतु ते अनतिशय ज्ञानीओना ज्ञानेना विषय नथी तेथी ते अस्स' व्यवहार्य' छे, ओथी न तेने अड्डी निर्दिष्ट कस्वामा आवेद नथी शीर्षप्रहेलिका पछी ने ने काण छे ते अनतिशय ज्ञानीओ वडे गम्य थाय तेवे नथी ओथी तेने औपमिक कडेवा मा आवेद छे ओटवे के तेत्तुं ज्ञान उपमा वडे न स लवी शके तेम छे ओटवे के ते साह श्यथी बोध्य छे ओथी न 'तेण परं ओवमिए' ओवु सूत्रकारे कहुं छे "तेण" आतृतीया विभक्ति पंचमीना अर्थ मा, थर्थ छे. ॥२०॥

सण्हिआइवा सण्हिसण्हिआइ वा उद्धरेणूइ वा तसरेणूइ वा रहरेणूइ
 वा वालगगेइ वा लिक्खाइ वा जूआइ वा जवमज्झेइ वा उस्सेहंगुलेइ वा
 अट्ट उस्सण्हसण्हियाओ सा एगा सण्ह सण्हिया, अट्ट सण्हसण्हियाओ
 सा एगा उद्धरेणू, अट्ट उद्धरेणूओ सा एगा तसरेणू, अट्ट तासरेणूओ
 सा एगा रहरेणू अट्ट रहरेणूओ से एगे देवकुरुत्तरकुराण मणुस्साणं
 वालगगे अट्ट देवकुरुत्तरकुराण मणुस्साण वालगगा से एगे हरिवासरम्म-
 यवासाण मणुस्साणं वालगगे, एवं हेमवयहेरण्वयाण मणुस्साणं पुव्वविदेह
 अवरविदेहाणं मणुस्साणं वालगगा सा एगा लिक्खा अट्ट लिक्खाओ सा
 एगा जूआ अट्ट जूआओ से एगे जवमज्झे अट्ट जवमज्झा से एगे अंगुले.
 एएणं अंगुलप्पमाणेणं छ अंगुलाइं पाओ, बारस अंगुलाइं विहत्थी,
 चउवीसं अंगुलाइं रयणी, अडयालीसं अंगुलाइं कुच्छी, छण्णउइ अंगुलाइं
 से एगे अक्खेइ वा, दंडेइ वा, धणूइ वा, जुगेइ वा, मुसलेइ वा, णालिआइ
 वा, एएणं धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं गाउयं, चत्तारि गाउयाइं
 जोयणं, एएण जोयणप्पमाणेणं जे पल्ले जोयणं आयामविकखंभेणं
 जोयणं उड्डं उच्चत्तेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिकखेवेणं । से णं पल्ले
 एगाहिय बेहिय तेहिय उक्कोसेणं सत्तरत्तप^एढाणं संमट्टे सण्णिचिए
 भरिए वालगगकोडीणं । तेणं बालगगा णो कुत्थेज्जा, णो परिविडंसेज्जा
 णो अग्गी डहेज्जा णो वाए हरेज्जा, णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा,
 तओणं वाससए २ एगमेणं वालगगं अवहाय जावइएणं कालेणं से पल्ले-
 णीणे णीरए णिल्लेवे णिड्डिए भवइ से तं पलिओवमे ।

एएसि पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दस गुणिआ ।

तं सागरोवमस्स उ एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥

एएणं सागरोवमप्पमाणेणं चत्तारि सोगरोवमकोडाकोडीओ
 कालो सुसमसुसमा १ तिण्णि सागरावमकोडाकोडीओ कालो समा २
 दो सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमदुस्समा ३ एगा सागरोवमको-

डाकोडो बायालीसाए वाससहस्सेहि ऊणिओ कालो दुस्समसुसमा ४
 ए वीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समा ५ एकवीसं वाससहस्साइं
 कालो दुस्समदुस्समा ६ पुणेरवि उस्सप्पिणीए एकवीसं वाससहस्साइं
 कालो दुस्समदुस्समा १ एवं पडिलोमं णेयव्वं जाव चत्तोरि सागरोवम
 कोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा ६ दस सागरोवमकोडा कोडीओ
 कालो ओसप्पिणि दम सागरोपवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी ।
 वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो ओसप्पिणी उस्सप्पिणी ॥सूत्र २१॥

छाया—अथ किं तदौपमिकम् ? औपमिकं, उपमितं द्विविधं प्रज्ञप्तम् तद्यथा-पल्यो-
 पमं च सागरोपमं च, अथ किं तत् पल्योपम १, पल्योपमस्य प्ररूपणां करिष्यामि, परमाणु
 द्विविधः प्रज्ञप्तः तद्यथा सूक्ष्मश्च व्यावहारिकश्च, तत्र खलु य- सः सूक्ष्मः, स स्थाप्यः, तत्र
 खलु य स व्यावहारिकः स खलु अनन्तानां सूक्ष्मपरमाणुपुद्गलानां समुदयसमितिसमागमेन
 व्यावहारिकः परमाणु निष्पद्यते, तत्र नो शस्त्रं क्रामति—

शस्त्रेण सुतीक्ष्णेनापि छेत्तुं शक्नुं च यं किल न शक्ताः ।

तं परमाणुं सिद्धा वदन्ति आदिं प्रमाणानाम् ॥ १ ॥

व्यावहारिक परमाणूनां समुदयसमितिसमागमेन सा एका उच्छ्रलक्षणप्रलक्षिणा इति वा
 प्रलक्षणप्रलक्षिणा इति वा ऊर्ध्वरेणुरिति वा त्रसरेणुरिति वा रथरेणुरिति वा बालाग्रमिति
 वा लिखा इति वा यूका इति वा यवमध्यमिति वा उत्सेधाङ्गुलमिति वा अष्ट उच्छ्रलक्षण
 प्रलक्षिणाकाः सा एका श्लक्ष्णश्लक्षिणा, अष्टप्रलक्षणप्रलक्षिणा सा एका ऊर्ध्वरेणुः अष्ट
 ऊर्ध्वरेणवः सा एका त्रसरेणुः, अष्ट त्रसरेणवः सा एका रथरेणुः, अष्ट रथरेणवः तदेकं
 देवकुरुत्तरकुरुणा मनुष्याणां बालाग्रम्, अष्ट देव कुरुत्तरकुरुणा मनुष्याणां बालाग्राणि तदेक
 हरिवर्षरम्यकवर्षाणां मनुष्याणां बालाग्रम्, एवं हैमवत हैरण्यवतानां मनुष्याणां पूर्वविदेहाप-
 रविदेहाणां मनुष्याणां बालाग्राणि सा एका लिखा, अष्ट लिखाः सा एका यूका, अष्ट यूकाः
 तदेकं यवमध्यम्, अष्ट यवमध्यानि तदेकमङ्गुलम्, पतेनाङ्गुलप्रमाणेन षडङ्गुलानि पादः,
 द्वादशाङ्गुलानि वितस्ति, चतुर्विंशतिरङ्गुलानि रत्नि, अष्ट चत्वारिंशद्द्विगुलानि कुक्षिः,
 षण्णवतिरङ्गुलानि स एकोऽक्षइति वा दण्डइतिवा घनुरिति वा युगमिति वा मुशलमिति
 वा नालिका इतिवा । पतेन घनुप्रमाणेन द्वे घनुः सदस्रे गन्धूतं, चत्वारि गन्धूतानि
 योजनम् । पतेन योजनप्रमाणेन य पल्यः योजनमायामविष्कम्भेण योजनमूर्ध्वमुच्चत्वेन तत्
 त्रिगुणं सविशेषं परिक्षेपेण, स खलु पल्यः ऐकाहिक द्वैयहिक त्रैयहिकीणाम् उत्कर्षेण सप्त-
 रात्रप्ररूढानां समृष्टः सन्नचित भृतः बालाग्रकोटीनाम् । तानि खलु बालाग्राणि नो कुथ्येयुः
 नो परिविध्वंसेरन्, नो अग्निर्दहेत् नो वातो हरेत्, नो पूतितया शीघ्रमागच्छेयुः, ततः

खलु वर्षशते २ एकमेकं बालाग्रमपहाय थावता कालेन स पल्य क्षीण नीरजा निर्लेपः निष्ठिनो भवति । तत् पल्योपमम् ।

पतेषा पल्याना, कोटाकोटी भवेद् दशगुणिता ।
सा सागरोपमस्य तु एकस्य भवेत् परिमाणम् ॥ १ ॥

पतेन सागरोपमप्रमाणेन चतस्रः सागरोपमकोटाकोट्यः कालः सुपमसुपमा १, तिस्रः सागरोपमकोटाकोट्यः कालः सुपमा २, द्वे सागरोपमकोटाकोट्यौ कालः सुपमदुष्पमा ३, एका सागरोपमकोटाकोटी द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः अनिका कालः दुष्पमसुपमा ४, एकविंशति वर्षसहस्राणि कालो दुष्पमा ५, एकविंशतिवर्षसहस्राणि कालो दुष्पमदुष्पमा ६ — पुनरपि उत्सर्पिण्या एकविंशति वर्षसहस्राणि कालो दुष्पमदुष्पमा १, एव प्रतिलोमं नेतव्यम् थावत् चतस्रः सागरोपमकोटाकोटयः कालः सुपमसुपमा ६, दशसागरोपमकोटाकोटयः कालः अवसर्पिणो दशसागरोपमकोटाकोटयः कालो उत्सर्पिणो, विंशतिः सागरोपमकोटाकोटयः कालः अवसर्पिण्युत्सर्पिणो ॥ सू० २१ ।

टीका—‘से किं तं उवमिण्’ इत्यादि ।

‘से किं तं उवमिण्’ अथ किं तत् औपमिकम् ? इति प्रश्न उत्तरमाह—‘उवमिण् दुविहे’ औपमिकं नाम कालविशेषं द्विविध—द्विप्रकारक ‘पण्णत्ते’ प्रज्ञप्तम्, ‘तं जहा पलिओवमे य सागरोवमे य’ तद्यथा पल्योपमं च सागरोपमं च । तत्र धान्यपल्यवत् पल्यं वक्ष्यमाणस्वरूपं तेन उपमा यस्मिंस्तत् पल्योपमम् १, सागरेण—समुद्रेण उपमा-दुर्लभपारत्वेन सादृश्यं यस्मिंस्तत् सागरोपमम् । इह चकारौ समकक्षत्वद्योतनार्थं, समकक्षता—समान

औपमिक कालका निरूपण —

“से किं तं उवमिण्” इत्यादि—

इस सूत्र द्वारा गौतम ने प्रभु से ऐसा पूछा है-हे भदन्त ! औपमिक काल का क्या स्वरूप है ? इसके उत्तर में प्रभु ने कहा है “उवमिण् दुविहे पण्णत्ते” हे गौतम औपमिक दो प्रकार का कहा गया है ‘तं जहा’ जैसे ‘पलिओवमे य, सागरोवमे य’ पल्योपम और सागरोपम, जिस काल में धान्य के पल्य की तरह पल्य की उपमा दी जाय वह पल्योपम है और जिस में समुद्र की उपमा दी जाय वह सागरोपम है यहां जो दो चकार आये हैं वे इन कालों में

औपमिक कालानु निरूपण --

‘से किं तं उवमिण्’ इत्यादि सूत्र-२१ ॥

टीकार्थ—आ सूत्र वडे गौतमे प्रभुने प्रश्न कर्थो छे के डे लहत । औपमिककालानुं स्वरूपं केवुं छे ? आना जवाभमा प्रभुये कल्लु छे “उवमिण् दुविहे पण्णत्ते” डे गौतम ! औपमिकना जे प्रकारे कडेवामा आवेल छे. “तं जहा” जेम के “पलिओवमेय सागरोवमेय” पल्योपम अने सागरोपम जे कालमा धान्यना पल्यनी जेम पल्यनी उपमा आपवमां आवे ते पल्योपम छे अने जेमा समुद्रथी उपमा आपवामा आवे ते सागरोपम छे अही

श्रेणिता सा च द्वयोरसंख्येयकालत्वरूपा । एवं चासंख्येयकालविशेषस्वरूपं पल्योपमसा-
गरोपमद्वयं सिद्धम् । सम्प्रति पल्योपमस्वरूपं जिज्ञासमानः शिष्यः पृच्छति—हे भदन्त !
'से किं तं पलिओवमे' अथ किं तत्पल्योपमम् ? इति । आचार्य आह—'पलिओवमस्स'
इत्यादि । 'पलिओवमस्स परूवणं' पल्योपमस्य प्ररूपणां—स्वरूप निरूपणां 'करिस्सामि'
करिष्यामि—अस्मिन्नेव सूत्रेऽग्रे विधास्यामि इति । अनेनाग्रे पल्योपमप्ररूपणाकरणक्रिया-
सूत्रकवाक्येन शिष्यमनः प्रसादितं भवति, अन्यथा "परमाणु द्विविधः" इत्यादिप्रक्रि-
यारीत्या दूरसाध्यां पल्योपमप्ररूपणां मन्यमानः शिष्यः खिन्नः स्यादिति । वाचना-
दानकाले आचार्यस्य शिष्यं प्रत्यायमेव हि क्रम इति पल्योपममेव प्ररूपयन्नाह—“पर
माणु” इत्यादि । 'परमाणु दुविहे पणत्ते' परमाणुद्विविधः प्रज्ञप्तः, त जहा—सुहुमे
य वावहारिण य' तद्यथा—सूक्ष्मश्च व्यावहारिकश्च । इह चकार द्वयं समकक्षत्व द्योतनार्थम् ।

समकक्षता के द्योतक हैं समकक्षता का तात्पर्य समान श्रेणिता से है यह समान श्रेणिता
दोनों में असंख्येय कालत्वरूप है इस तरह ये दोनों काल असंख्यात काल विशेष स्वरूप
वाले सिद्ध होते हैं । "से किं तं पलिओवमे" हे भदन्त पल्योपम का स्वरूप कैसा है ? इसके
उत्तर में प्रभु कहते हैं "पलिओवमस्स परूवण करिस्सामि -परमाणु दुविहे पणत्ते तं जहा
सुहुमे य वावहारिण य" हे गौतम । मैं आगे पल्योपम की प्ररूपणा करने वाला हूँ सो उससे
तुम्हें पल्योपम का स्वरूप ज्ञात हो जायगा, इस प्रकार के कथन से सूत्रकार ने शिष्य के
मन को प्रसन्न किया है जो वे ऐसा न कहते तो परमाणु दो प्रकार को है इत्यादि कथन रूप
प्रक्रिया की रीति से दूरसाध्य पल्योपम की प्ररूपणा मान कर शिष्य का मन खेदखिन्न हो
जाता, वाचनादान काल में आचार्य का शिष्य के प्रति यह क्रम है । पल्योपम की प्ररूपणा
करने के निमित्त सूत्रकार ने सब से पहिले परमाणु सूक्ष्म एव व्यावहारिक के भेद से दो प्रकार
का है ऐसा कहा है यहाँ दो चकार इनमें समकक्षता के द्योतन के निमित्त प्रयुक्त हुए हैं ।

जो जे य आवेला छे ते जे कालोभां समकक्षता जताववा भाटे छे. समकक्षताने अर्थ
समान श्रेणीया थाय छे. जे समान श्रेणीता जन्नेभा असंख्येय काल त्व रूप छे आ
प्रमाणे जे जन्ने काले असंख्यात काल विशेष स्वरूपवाणा सिद्ध थाय छे 'से किं तं
पलिओवमे' हे भदन्त ! पल्योपमनु स्वरूप केवु छे ? ज्ञाना जवाजभां प्रभु कहे छे
"पलिओवमस्स परूवण करिस्सामि परमाणु दुविहे पणत्ते त जहा—सुहुमेय वावहारिणय
"हे गौतम" हुं आगण पल्योपमनी प्ररूपणा करवाने छुं जेथी तमने पल्योपमना
स्वरूपनु ज्ञान थर्थ जेथे आ जतना कथनथी सूत्रकारे शिष्यना मनने प्रसन्न कथुं छे जे
तेजो आम करता नही तो परमाणु जे प्रकारने होय छे. इत्यादि कथन रूप प्रक्रियानी
रीतिथी दूरसाध्य पल्योपमनी प्ररूपणा मानीने शिष्यनु मन भेद भिन्न थर्थ जेतु वाचन
दानकालभा आचार्यने शिष्य प्रति जेज कभ होय छे पल्योपमनी प्ररूपणा करवा भाटे
सूत्रकारे सर्वप्रथम परमाणु सूक्ष्म अने व्यावहारिकना लेदथी जे प्रकारने छे जेभ कथुं छे.
अही जे 'च' नी प्ररूपणा जेभा समकक्षताना द्योतन भाटे करवाभा आवी छे. जेभा जे

'तत्थणं' तत्र-तयोर्मध्ये खलु 'जे से सहुमे से ठप्पे' यः सः सूक्ष्मः परमाणुः सः स्थाप्यः अनिरूपणीयः एतत्प्रसङ्गानुपयोगित्वात्, तस्य स्वरूपं चान्यत्रोक्तमेवम्—

“कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।

एकरसवर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥”

इत्यादि लक्षणेनात्यन्त परम निकृष्टत्वमस्य स्वरूपं प्रतिपादितम्, तदतिरिक्तं वैशेषिकं रूपं चात्र न प्रतिपाद्यमस्ति तस्मात्तं सूक्ष्म परमाणुं स्थापयित्वा व्यावहारिकं परमाणुं प्रक्रान्ततया निरूप्यस्वरूपत्वेन निरूपयति 'तत्थ णं जे से वावहारिण' तत्र तयोर्मध्ये यः सः-ब्रूवोक्तो द्वितीयः व्यावहारिकः व्यवहार प्रयोजनः परमाणुपुद्गलः 'से ण अण-ताण सुहुम परमाणुपुद्गलाणं समुदयसमिद्दसमागमेणं' स खलु अनन्तानां सूक्ष्मपरमाणु पुद्गलानां समुदयसमितिसमागमेन समुदयाः सम्भूहाः तेषां याः समितयः-ब्रूहि मेळ-

इन में जो सूक्ष्म परमाणु है वह स्थाप्य है अनिरूपणीय है क्यों कि वह इस प्रसङ्ग में अनु-पयोगी है सका स्वरूप दूसरी जगह इस प्रकार से कहा गया है परमाणु कारण ही होता है और वह-अन्त में ही होता है तथा सूक्ष्म, नित्य, एक रस एक वर्ण, एक गन्ध और दो स्पर्शवाला होता है इसको सत्ता का अनुमापक उससे अन्य कार्य ही होता है ।

“कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।

एक रस वर्णगन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥ १ ॥

इस प्रकार के लक्षण कथन से इसका स्वरूप अत्यन्त परम निकृष्ट है ऐसा ही प्रतिपादित होता है. इसके अतिरिक्त और विगेष स्वरूप इसका यहाँ प्रतिपाद्य नहीं है. इसलिए सूक्ष्मपरमाणु की चर्चा न करके अब सूत्रकार व्यवहारोपयोगी परमाणु के स्वरूप का कथन करते हैं । यह व्यावहारिक परमाणु पुद्गल अनन्त सूक्ष्म परमाणु पुद्गलों की एकीभाव परिणति रूप समुदाय

सूक्ष्म परमाणु छे ते स्थाप्य छे अनिरूपणीय छे कभके ते आ प्रसङ्गमा अनुपयोगी छे आनु इसरूप अन्यत्र आ प्रमाणे निरूपित करवाभा आवेळ छे—

के परमाणुं कारणेणं होय छे अने ते अ तमाणं होय छे तथा सूक्ष्म, नित्य, ओक रस ओक वर्णुं ओक गन्ध अने स्पर्श वाणो होय छे आनी सत्तानो अनुमापक तेनाथी निरूप्य कार्यं णं होय छे--

कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।

एक रस वर्ण गन्धो द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च ॥१॥

आ 'अतना कथनथी आनु' स्वरूप अतीव परम निकृष्ट छे ओनुं ण प्रतिपादित थाय छे ओना सिवाय आनु विशेष स्वरूप अही प्रतिपाद्य नथी ओथी सूक्ष्म परमाणुनी चर्चा न करता हेवे सूत्रकार व्यवहारोपयोगी परमाणुना स्वरूपतु कथन करे छे. आ व्यावहारिक परमाणु पुद्गल अनन्त, सूक्ष्म परमाणु पुद्गलौनी ओको भाव परिणति रूप समुदय समि तिना समागमथी निरूप्यन होय छे. तात्पर्यं आभ छे के निश्चय नय सूक्ष्म पुद्गलौनी

नानि तासां समागमेन संयोगेन एकीभावपरिणतिरूपेण एको 'वावहारिण् परमाणु
णिष्पन्नश्च' व्यावहारिकः परमाणु निष्पद्यते सम्पद्यते । अयम्भावः—निश्चयनयोहि
निर्विभागसूक्ष्मं पुद्गलं परमाणुं वाच्छति, यस्त्वेकपरमाणुनिष्पन्नः सौऽशसहितत्वात्
स्कन्धत्वेनैव व्यपदिश्यते, व्यवहारनयस्तु सूक्ष्म परमाणुपुद्गलानेक संघातनिष्पन्नोऽपि
यः शस्त्रच्छेद भेदानलदाहादिविषयो न भवति तं तथाविधस्थूलत्वा प्राप्तत्वात्परमाणु-
त्वेन व्यवहरति, तस्मादसौ—निश्चयनयतः स्कन्धोऽपि व्यवहारनयमतेन व्यावहारिकः
परमाणुरुक्तः इति । अयं च स्कन्धत्वादिन्धनवत् छेदादिविषयो भवतीति मा कश्चित्संशयं
कुर्यादित्याह—'तत्थ णो' इत्यादि । 'गत्य णो सत्थ कमइ' तत्र व्यावहारिक परमाणौ शस्त्र

समितिके समागम से निष्पन्न होता है तात्पर्य कहने का यह है—यद्यपि निश्चयनय सूक्ष्म पुद्गलों
की एकीभाव परिणतिरूप समिति के समागम से उत्पन्न हुए परमाणु नहीं मानता है—उसे तो
वह एक स्कन्धरूप ही मानता है, उसकी मान्यता में तो परमाणु वही है जो निर्विभाग सूक्ष्म
पुद्गल है, जो अनेक परमाणुओं के मेल से निष्पन्न हुआ है वह तो अंश सहित होने के कारण
स्कन्धरूप से ही कहा गया है, परन्तु जो व्यवहारनय है वह ऐसा मानता है कि भले ही
अनेक परमाणु पुद्गलों के संयोग से स्कन्धरूप अवस्था निष्पन्न हुई हो परन्तु यदि वह शस्त्रादि
से छिदती नहीं है, भिदती नहीं है, अग्नि से जलती नहीं है तो वह तथाविध स्थूलत्वरूप परि-
णति को अप्राप्त होने के कारण परमाणु रूप से ही व्यवहार पथ में अवतरित होती है, इसलिये
व्यावहारिक परमाणु भलेही निश्चयनय की मान्यतानुसार स्कन्धरूप हो तबभी वह व्यवहार-
नय की मान्यतानुसार परमाणुरूप ही मानी गई है परन्तु कोई इसे यों न समझ बैठे कि यह
स्कन्धरूप होने से इन्धन काष्ठादि की तरह छेदादि क्रिया का विषयभूत होती होगी । इसलिये
इस संशय को दूर करने के लिये सूत्रकार ने ऐसा कहा है कि "तत्थ णो सत्थ कमइ" उस व्याव-

एकीभाव परिणतिरूप समितिना समागमथी उत्पन्न थयेत परमाणुने परमाणु न मान
तो नथी नेने तो ते एक स्कन्ध रूप न माने छे तेनी मान्यता मुज्ज्म तो परमाणु ते न
छे के न निर्विभाग सूक्ष्म पुद्गल छे न अनेक परमाणुओंना भेगथी निष्पन्न थयेत छे
ते तो अश सहित होवा भद्वे स्कन्ध रूप न कहेन य छे परंतु न व्यवहारनय छे ते अम
माने छे के अनेक परमाणु पुद्गलोंने संयोगथी स्कन्ध रूप अवस्था निष्पन्न थयेती छे ते
तो शस्त्रादिथी छेदित थती नथी छेदित थती नथी, अग्निमां भरम थती नथी ते तो
तथाविध स्थूलत्वरूप परिणतिने प्राप्त न करवाथी परमाणु रूपमां व्यवहारपथ मां अव
तरित होय छे अथी व्यावहारिक परमाणु निश्चयनयनी मान्यता मुज्ज्म भवे स्कन्ध रूप
होय छतांजे ते व्यवहारनयनी मान्यतानुसार परमाणुरूप न मानवामां, आवी छे
परंतु केअं आम न समल देके आ स्कन्ध रूप होवाथी इन्धन—काष्ठादिनी नेम छेदादि
क्रियानो विषय थती छे, अथी आ संशयने दूर करना माटे सूत्रकारे कहुं छे के 'तत्थ णो
सत्थ कमइ' ते व्यावहारिक परमाणुने अद्गलादि कापी शक्ता नथी अही अवी आशका
२२

खज्ञादि नो क्रामति न प्रविशति । ननु अनन्त सूक्ष्मपरमाणुपुद्गलानेक संघातनिष्पन्नानां काष्ठादीनां छेदनभेदनादि प्रसिद्धं तत्कथमनन्तसूक्ष्मपरमाणुपुद्गलानेकसंघातनिष्पन्नस्य व्यावहारिकपरमाणोश्छेदनभेदनादि न भवति ? इति चेत्, आह—काष्ठादीनां स्थूलत्वाद्भवति शस्त्रादिभिश्छेदनादि व्यावहारिक परमाणोस्तु सूक्ष्मत्वात् शस्त्रादिभिश्छेदनादि न भवति । इह शस्त्रं नो क्रामतीत्युपलक्षणम्, तेन वह्निजलादिकमपि तत्र न क्रामति ।

अग्निदाहत्वं जलाद्र्त्वं गङ्गादिनदीस्रोतः प्रतिघात्यत्वं तरङ्गान्दोल्यत्वादिकं च व्यावहारिकपरमाणौ न भवतीति बोध्यम् । अमुमेवार्थं सूत्रकारो गाथया प्राह—‘सत्येण’

हारिक परमाणु को खड्गादि काट नही सकते हैं, यदि यहा पर ऐसी आशंका की जाय कि अनन्त सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं के संयोग से निष्पन्न हुए काष्ठादिक तो शस्त्रादि द्वारा छेदे भेदे जाते हैं तो फिर अनेक सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं के संयोग से निष्पन्न हुआ यह व्यावहारिक परमाणु शस्त्रादिकों द्वारा क्यों नहीं काटा जाता है? क्यों नहीं मेदा जाता है? क्यों नहीं अग्नी द्वारा जलाया जाता है? वह भी काष्ठादिकों की तरह से छेदा मेदा जाना चाहिये तो इस आशंका का उत्तर ऐसा है कि काष्ठादिक तो स्थूल होते हैं इसलिये उनका तो शस्त्रादिको द्वारा छेदन भेदन आदि होता है, परन्तु व्यावहारिक जो परमाणु है वह सूक्ष्म होता है इसलिये उसका शस्त्रादिकों द्वारा छेदनभेदनादि नहीं होता है । यहां जो ऐसा कहा है कि इस पर शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता है सो यह उपलक्षण है इससे यह भी गृहीत होता है कि इस पर अग्नि जल आदि का भी कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है न अग्नि इसे जला सकती है और न पानी इसे गोला आदि कर सकता है, ऐसा यह व्यावहारिक परमाणु है । गंगा आदि महानदियों का प्रवाह भी इसे नहीं बहा सकता है, और न लहरें इसे डुला सकती हैं इसी बात को कथित यह गाथा वताती है—

करवामा आवे के अनन्त सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओंका संयोगથી निष्पन्न थयेला काष्ठादिके तो शस्त्र आदि वडे छेदी शक्य छे. अने बेदी शक्य छे तो पछी अनेक सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओंका संयोगથી निष्पन्न थयेला आ व्यावहारिक परमाणु शस्त्र आदि वडे केम कापी शक्य तो नथी ? केम बेदी शक्यतो नथी ? केम अग्नि मां भरम करी शक्यता नथी ? काष्ठ आदि केनी केम तेनुं पषु छेदन तेमज्ज बेदन थर्धं ज्वु लेर्धं छे तो आ आशंकाको जवाप आ प्रमाणे छे के काष्ठादिके स्थूल होय छे, जेथी तेमनुं तो शस्त्र आदि वडे छेदन-बेदन वगेरे थर्धं शक्य छे. परन्तु व्यावहारिक जे परमाणु छे ते सूक्ष्म होय छे जेथी तेनुं शस्त्र आदि वडे छेदन-बेदन थर्धं शक्य नथी. अडीं जे आम कडेवामा आव्युं छे के तेनी उपर शस्त्र नेा प्रभाव पडतो नथी तो आ उपलक्षण छे. जेनाथी जेनुं पषु अडणु थाय छे के जे पी उपर अग्नि-ज्वु वगेरेनेा पषु प्रभ व पडतो नथी अने अग्नि भरम करी शक्यतो नथी तेमज्ज पाणी पषु अने बाहुं करी शक्य नथी. जेवो आ व्यावहारिक परमाणु छे गंगा आदि महानदीजोनेा प्रवाह पषु जेने प्रवाहित करी शक्यतो नथी अने पाणी नी लहेरो पषु जेने डहावी शक्य नथी, स्थानस्थित करी शक्य नथी. जे ज वातने आ

इत्यादि । 'सत्येण सुतिक्लेण वि' सुतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण खड्गादिना केऽपि जनाः यं 'छेत्तुं' छेत्तुं-द्विधाकर्तुम् 'मेत्तुं, मेत्तुं' विदारयितुं वा 'किर' किल-निश्चयेन ण सक्ता' न शक्ताः-समर्था न भवन्ति, 'तं सिद्धा'तं-सिद्धा' सिद्धाइव सिद्धा उत्पन्न केवलज्ञानधरा जिनाः, न तु सिद्धिं गताः, तेषां वचनयोगासम्भवात् 'परमाणुं' परमाणुं=व्यावहारिकं परमाणु 'पमाणाणं' प्रमाणानाम्-अग्रे वक्ष्यमाणानामुच्छ्लक्षण श्लक्ष्णिकादिरूपाणाम् आदि' आदि-प्रथमम् 'वयंति' वदन्ति-कथयन्ति इति । भगवदुक्तत्वेनात्र परमाणुलक्षणे आगमप्रमाण सुव्यक्तम्, अनुमानप्रमाणमप्यत्रैव विज्ञेयं तथाहि-अनुमानप्रयोगः अणुपरिमाणं क्वचिद् विश्रान्तं तरतमशब्दवाच्यत्वात् महत्परिमाणवत्, यत्र विश्रान्तं स परमाणुरिति ।

“सत्येण सुतिक्लेण वि छेत्तुं मेत्तुं च ज किर ण सक्ता ।

त परमाणुं सिद्धा वयति षाड् पमाणाणं ॥ १ ॥ —

कोई भी मनुष्य सुतीक्ष्ण शस्त्र से भी इस व्यावहारिक परमाणु को संहित करने के लिये या उसे विदारित करने के लिये समर्थ नहीं है ऐसा उत्पन्न केवलज्ञान वाले भगवन्तों ने कहा है यहां सिद्ध पद से सिद्ध अवस्था प्राप्त जन गृहीत नहीं हुए हैं, क्यों कि उनके वचनयोग नहीं होता है, अतः केवलज्ञान के आधारभूत केवली ही गृहीत हुए है । यह व्यावहारिक परमाणु सकल प्रमाणों का कहे जाने वाले उच्छ्लक्षण आदि प्रमाणों का आदि कारण है, इस प्रकार का यह कथन भगवदुक्त होने से व्यावहारिक परमाणु के अस्तित्व में आगम प्रमाणरूप है। अर्थात् व्यावहारिक परमाणु की सत्ता का ज्ञापक आगम प्रमाण है । अनुमान प्रमाण इसकी सत्ता का ज्ञापक इस प्रकार से है “अणुपरिमाणं क्वचिद् विश्रान्तम् तरतमशब्दवाच्यत्वात् महत् परिमाणवत्” महत्परिमाण की तरह अणु परिमाण तरतमशब्द वाच्य होने से कहीं पर विश्रान्त है अर्थात् जिस प्रकार तरतमशब्द होने के कारण महत् परिमाण आकाश में विश्रान्त है, इसी प्रकार यह अणुपरिमाण भी तरतम-

गाथा स्पष्ट करे छे —

सत्येण सुतिक्लेण वि छेत्तुं मेत्तुं च ज किर ण सक्ता ।

तं परमाणुं सिद्धा वयंति षाड् पमाणाणं ॥१॥

कहाँ पक्ष मनुष्य सुतीक्ष्ण शस्त्रही पक्ष आ व्यावहारिक परमाणु ने संहित करी शक्ती नथी, विदारित करी शक्ती नथी, छेत्तुं उत्पन्न केवल ज्ञानी भगवन्तोके कक्षुं छे. अही सिद्धपदथी सिद्ध अवस्था प्राप्त जन गृहीत थयेला नथी केभके तेभने वचन योग थतो नथी अथी केवलज्ञानना आधारभूत केवली न अही गृहीत थयेला छे. आ व्यावहारिक परमाणु सकल प्रमाणाने कहेनार उच्छ्लक्ष्ण आदि प्रमाणोतु आदि कारण छे, आ अततुं आ कथन भगवदुक्त होवाथी व्यावहारिक परमाणुना अस्तित्वमां आगम प्रमाण रूप छे अतदे के व्यावहारिक परमाणु सत्ता ज्ञापक आगम प्रमाण छे. अनुमान प्रमाण आनी सत्ताने अतावनार आ प्रमाणे छे “अणु परिमाणं क्वचिद् विश्रान्तम् तरतमशब्द वाच्यत्वात् महत्परिमाणवत्” महत् परिमाणुनी नेम अणु परिमाण तरतम शब्दवाच्य होवाथी केहाँ स्थाने विश्रान्त छे अतदे के नेम तरतम शब्द होवाथी महत् परिमाणु

अन्यथा वस्तुनो महत्त्वमपि नोपपद्येत अणुमहतोः सापेक्षत्वात् । अतो द्व्यणुकादीनि परिणामानि परस्पर भिन्नानि मन्तव्यान्वेव । एवं च द्व्यणुके सिद्धे ततः पूर्ववर्ती निरंशः परमनिकृष्टः परमाणुः सिध्यत्येव । यदि अणुमहत्त्वादिरूपेण परिमाणभेदा न मन्येत तदा सर्पपसुमेर्वोस्तुल्यपरिमाणता प्रसज्येत । अतः सिद्धः परमाणुः । ननु भवतु परमाणुः स सूक्ष्मत्वात् चक्षुरादीन्द्रियागम्योऽपि भवतु, परन्तु तैरनन्तैः परमाणु-मिथश्चक्षुराद्यगोचरः शस्त्रच्छेदाद्यगोचरश्च एको व्यावहारिकः परमाणुर्निष्पद्यते इति यदुक्तं तन्मन्दम् इति चेत्, आह, पुद्गलपरिणामो हि सूक्ष्मवादरभेदेन द्विविधः । तत्र सूक्ष्म-परिणामपरिणतानां पुद्गलानामिन्द्रियाग्राह्यत्वागुरुलघुपर्यायवत्त्वशस्त्रच्छेदाद्यविषयत्वादयो

शब्दवाच्य होने के कारण परमाणु में विश्रान्त है, यदि ऐसा न हो तो वस्तु में महत्ता नहीं बन सकती है महत्ता के सद्भाव से यह भी मानना पड़ता है कि कहीं न कहीं अणुपरिमाण भी है क्यों कि अणु और महत् ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं, इसलिये द्व्यणुकादि त्र्यणुकादिरूप परिमाण परस्पर में भिन्न है ऐसा मानना चाहिये जब जिससे निष्पन्न हुआ है द्व्यणुक का सत्ता सिद्ध हो जाती है तो यह द्व्यणुक जिससे निष्पन्न हुआ है ऐसा पूर्ववर्ती निरंश परमनिकृष्ट परमाणु भी सिद्ध हो जाता है । यदि अणु महत्त्वादिरूप से परिमाण भेद न माने जावे तो सर्पप और सुमेरु में तुल्य परिमाणता आने का प्रसङ्ग प्राप्त होगा परन्तु ऐसा तो है नहीं इसलिये परमाणु है इससे यह सिद्ध हो जाता है । शका-भले ही परमाणु की सिद्धि हो जावे और यह भी बात मानली जावे कि वप चक्षुरादिक इन्द्रियो का विषय नहीं है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है कि इन अनन्त परमाणुओं से चक्षुरादि इन्द्रियो द्वारा ग्रहण करने में नहीं आने वाला और शस्त्रादिको द्वारा छेदन भेदनादि रूप क्रिया का विषय नहीं हो सकने वाला एक व्यावहारिक परमाणु निष्पन्न होता है- तो इसका उत्तर ऐसा है कि पुद्गल-परिणाम सूक्ष्म एव बादर के भेद से दो प्रकार

आकाशमा विश्रान्तं छे, तेभ्य आ अणु परिमणु पणु तरतम शण्ड वाच्य होवाथी परमा णुमां विश्रान्तं छे जे आम न होय तो वस्तुमा महत्ता यथं शकं न नही, महत्ताना सद् भावथी आ वात पणु मानवी पश्ये के कोष्ठ ने कोष्ठ स्थाने अणु परमाणु पणु छे न केभके अणु अने महत् जे अन्ने परस्पर सापेक्ष छे जेथी द्व्यणुकादि त्र्यणुकादि इय परिणाम परस्परमा-भिन्न छे जेवुं मानवु जेथंजे ज्यारे द्व्यणुकनी सत्ता सिद्ध यथं लय छे तो आ द्व्यणुक जेनाथी निष्पन्न थाय छे जेवा पूर्ववति निरंश परमनिकृष्ट परमाणि पणु सिद्ध यथं लय छे, जे अणुमहत्त्वादिरूपथी परिमाणु सेह मानवाभा आवे नही तो सर्पप अने सुमेरुमातुल्यपरिणामता आववाने समय उपस्थितयथे परतु आम तो अनतु न नथी, जेथी परमाणु छे आम सिद्ध यथं लय छे शकाः-परमाणुनी सिद्धि लवे थाय अने जे वात पणु मान्य यथं लयके ते चक्षुरादिक इन्द्रियोना विषय नथी, परतु आ वात ठीक नथी के आ अनन्त परमाणुजेथी चक्षुरादि इन्द्रियो द्वारा ग्रहण करवामां नही आवेस शस्त्र आदिके द्वारा जे छेदन-भेदन इय क्रियाना विषय यथं शकं नही तेवा जेक व्यावहा-रिके परमाणु निष्पन्न थाय छे, तो आने जवाण आ प्रमाणु छे के पुद्गल परिणाम

धर्मा भवन्त्येवेति न काऽप्यनुपपत्तिः । आगमेऽपि पुद्गलानां सूक्ष्मत्वासूक्ष्मत्वपरिणामः श्रूयते, यथा द्विप्रदेशिकः स्कन्ध एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे भाति द्वयोश्चापीति संकोचविकास कृतो भेदः । लोकेऽपि पिण्डित कार्पासपुञ्जलोहपिण्डयोः परिणामभेदो दृश्यते एवेति नात्र काऽपि विप्रतिपत्तिः कर्त्तव्येति दिक् ।

अथ प्रमाणान्तरं लक्षयितुमाह—‘वावहारियपरमाणूणं’ इत्यादि । ‘वावहारियपरमाणूणं’ व्यावहारिकपरमाणूनां व्यावहारिका ये परमाणवस्तेषाम् इहाप्यनन्तानामिति पूर्वतोऽनुषङ्ग्यते तेनानन्तानां व्यावहारिकपरमाणूनां ‘समुदयसमिद् समागमेणं’ समुदय-

का होता है इनमें जो पुद्गल सूक्ष्म परिणाम वाले होते हैं उनमें इन्द्रियाग्राह्यत्व, अगुरुलघुपर्यायत्व, एवं शलादि द्वारा अच्छेघत्व आदि धर्म होते ही हैं. इस विषय में तो कोई कहने जैसी बात ही नहीं है. आगम में भी ऐसा कहा गया सुना गया है कि पुद्गलो का सूक्ष्म परिणाम और असूक्ष्म परिणाम होता है द्विप्रदेशिक स्कन्ध एक आकाश प्रदेश में भी समा जाता है और दो प्रदेशों में भी समा जाता है. ऐसा जो यह भेद है त वह उनके सकोच और विकास को लेकर हो जाता है जब द्विप्रदेशी स्कन्ध सकुचित होता है त वह एक अकाश प्रदेश में मा जाता है और जब वह विस्तारवाला होता है तो वही दो प्रदेशों में समा जाता है. सकोच और विस्तार ये पुद्गलो का स्वभाव है जब कपास पिण्डावस्था में होता है तो वह आकाश प्रदेशों को इतना नहीं घेरता है कि जितना वह अपिण्डावस्था में घेरता है । इसी तरह एक मन कपास के जितने प्रदेश फैले हुए नजर आते हैं उतने ही वे प्रदेश लोहे में सकुचित देखे जाते हैं , इस तरह यह पुद्गलों में परिणामकृत भेद लक्षित होता है. अत. इस

सूक्ष्म अने आहरना लेखी अ प्रकारतु थाय छे अमे अ पुद्गल सूक्ष्म परिष्णामवाणा होय छे तेमां इन्द्रिय आहृत अगुरुलघुपर्यायत्व, तेमअ शस्त्रादि वडे अच्छेघत्व वगेर धर्मा होय अ छे आ संअधमां तो विशेष कडेवायेतुं कर्त्त नथी. आगममा पणु अतु अ कडेवामां आणु छे तेमअ संअधवामां आणुं छे के पुद्गलौतुं सूक्ष्म परिष्णाम अने असूक्ष्म परिष्णाम होय छे द्विप्रदेशिक स्कन्ध अके आकाश प्रदेश मां पणु समाविष्ट थर्त्त लय छे अने अे प्रदेशोमा पणु समाविष्ट थर्त्त लय छे. अे अे लेद छे, तो ते तेना स केय अने विकास ते लधनेअ थाय छे. न्यारे द्विप्रदेशी स्कन्ध सकुचित थाय छे, तो ते अके आकाश प्रदेशमा समाविष्ट थर्त्त लय छे अने न्यारे ते विस्तारवाणे होय छे तो ते अे प्रदेशोमा समाविष्ट थर्त्त लय छे. स केय अने विस्तार अे पुद्गलौने स्वभाव छे न्यारे कपास पिण्डावस्थामा होय छे तो ते आकाश प्रदेशोने आटवै. घेरतो नथी के अेटवै ते अपि रावस्थामा घेरे छे आ प्रमाणे अके मणु कपासना अेटवै प्रदेशो देवाअेवा देभाय छे, तेटवै ते प्रदेशो वाअ अ मा सकुचित देभाय छे आ रीते पुद्गलौमा परिष्णाम कृत लेद लक्षित होय छे. अथी आ संअधमा शका अेवी केअ वात नथी,

સમિતિ સમાગમેન યા પરિણામમાત્રા 'સા ઇગા ઉસ્સપ્હસપ્હિહઆઈ' સા ઇગા ઉચ્છલક્ષ્ણ શ્લક્ષિણકા ઉત્ પ્રાવલ્યેન 'સપ્હિહસપ્હિહઆઈ' શ્લક્ષ્ણશ્લક્ષિણકા અતિશયેન શ્લક્ષ્ણા શ્લક્ષ્ણશ્લક્ષ્ણા સૈવ તથા' इति शब्दः स्वरूपदर्शनार्थः, वा शब्दः परापेक्षया समुच्च-यार्थकः । 'एवं उद्धरेणूइ वा तसरेणूइ वा रहरेणूइ वा वालगोइ वा लिक्खाइ वा जूआइ वा जवमज्झेइ वा उस्सेहंगुळेइ वा' ऊर्ध्वरेणुरिति वा त्रसरेणुरिति वा रथरेणुरिति वा वालग्रमिति वा लिक्षाइति वा यूका इति वा यवमध्य इति वा उत्सेधाङ्गुल-मिति वा श्लक्ष्णश्लक्षिणकाद्युत्सेधाङ्गुलान्ता अपि बोध्याः ।

एते च श्लक्ष्णश्लक्षिणकादय उत्सेधाङ्गुलान्ता सर्वे प्रमाणाविशेषा यद्योत्तरम-ष्टगुणाः अनन्तपरमाणुकाः बोध्या अनन्तपरमाणुकत्वमय सर्वत्राविरोधेन सत्त्वात्, अत एव श्लक्ष्णश्लक्षिणके त्यादि निर्विशेषितमेवोक्तम् । तत्र श्लक्ष्णश्लक्षिणका-पूर्व-प्रमाणापेक्षयाऽष्टगुणाविका, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । एतदेव स्पष्टयति—'अट्ट उस्सप્हस-पिहयाओ' इत्यादि । 'अट्ट उस्सप્हसपिहयाओ सा एगा सप્हसपिहया' अष्ट उच्छलक्ष्ण श्लक्षिणिकाः सा एका श्लक्ष्णश्लक्षिणिकाः 'अट्टसप્हसपिहयाओ सा एगा उद्धरेणू' अष्ट श्लक्ष्णश्लक्षिणिका सा एका ऊर्ध्वरेणुः अत्र उर्ध्वेत्यस्योपलक्षणत्वादधस्तिर्यग्ग्रहणम् तेन ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गामी जालान्तरगतसूर्यकिरणस्फुरणलक्षणोरेणुः—धूलिः ऊर्ध्वरेणुः 'अट्ट

सम्बन्ध में शंका करने जैसी कोई बात नहीं है । "वावहारिय परमाणुणं समुदयसामिहसमा-गमेणं सा एगा उस्सप્हसपिहयाइ वा सपिहसिपिहयाइ वा उद्धरेणूइ वा तसरेणूइ वा रहरेणूइ वा वालगोइ वा लिक्खाइ वा जूआइ वा" अनन्त व्यावहारिक परमाणुओ का सयोग से जो परि-णाममात्रा होती है उसका नाम एक उच्छलक्ष्णश्लक्षिणिका है, आठ उच्छलक्ष्ण श्लक्षिणिकाओं को एक श्लक्ष्णश्लक्षिणिका होती है इसी तरह से उत्सेधाङ्गुल तक कथन जानना चाहिये. ये सब प्रमाण विशेष है ये सब अपने से पहिले से आठ २ गुणित होते हैं और एक अनन्त २ पुद्गल परमाणुओं वाला होता है । आठ श्लक्ष्णश्लक्षिणिकाओं का एक उर्ध्वरेणु होता है । उर्ध्व-शब्द यहां उपलक्षणरूप है, इससे अधोगाकी रेणु और तिर्यग्गामी रेणु का भी ग्रहण हुआ है, इस तरह जो रेणु उर्ध्व, अधः एव तिर्यग्गामी जाल के अन्तर्गत सूर्य किरणों से जिसका

"वावहारिय परमाणुणं समुदयसामिह समागमेणं सा एगा उस्सप્હસપિહયાइ वा સપિહ-સપિહયાइ વા ઉદ્ધરેણૂઈ વા તસરેણૂઈ વા રહરેણૂઈ વા વાલગોઈ વા લિક્ખાઈવા જૂઆઈ વા" અનંત પરમાણુઓના સયોગથી એ પરિણામમાત્રા થાય છે તેનું નામ ઉચ્છલક્ષ્ણશ્લક્ષિણિકા છે આ ઉચ્છલક્ષ્ણશ્લક્ષિણિકાઓની એક શ્લક્ષ્ણ શ્લક્ષિણિકા હોય છે આ પ્રમાણે ઉત્સેધાંગુલ સુધી કથન બાણુવું બોધ એ એ સર્વે પ્રમાણુ વિશેષ છે, એ સર્વે પહેલા બેટલા આવી ગયા છે તે બધાથી ગુણિત થાય છે- અને હરેકે હરેકે અનંત અનંત પુદ્ગલ પરમાણુઓવાલા હોય છે આઠ શ્લક્ષ્ણશ્લક્ષિણિકાઓના એક ઉર્ધ્વરેણુ હોય છે ઉર્ધ્વ શબ્દ અહીં ઉપલક્ષણરૂપ છે એનાથી અધોગામી રેણુ અને તિર્યગામી રેણુનું પણ ગ્રહણ થયું છે આ પ્રમાણે બે રેણુ

उद्धरेणुओ सा एगा तसरेणु' अष्ट ऊर्ध्वरेणव सा एका त्रसरेणुः-त्रस्यति पूर्वादि वात-
 प्रेरितो गच्छतीति त्रसा सा चासौ रेणुस्त्रसरेणुः 'अष्ट तसरेणुओ सा एगा रहरेणु' अष्ट
 त्रसरेणवः सा एका रथरेणुः रथगमनादुड्डीयमाना रेणु रथरेणुः 'अष्ट रहरेणुओ से एगे
 देवकुरुत्तरकुराण' अष्ट रथरेणव तदेक देवकुरुत्तरकुरूणां देवकुरुत्तरकुरुक्षेत्रनिवासिनां
 'मणुस्साण वालग्गे' मनुष्याणां वालाग्रं केशाग्रभागः, 'देवकुरुत्तर कुराण मणुस्साणं'
 देवकुरुत्तरकुरूणां मनुष्याणां यानी 'अट्टा वालग्गा' अष्टवालाग्राणि केशाग्राणि 'से एगे
 हरिवासे रम्मयवासाण' तदेकं हरिवर्परम्मयकवर्षाणां हरिवर्ष रम्मयकवर्षवासिनां 'मणुस्साणं
 वालग्गे' मणुष्याणां वालाग्रम्, 'एव' एवम् अनेन प्रकारेण हरिवर्परम्मयकवर्षक्षेत्रवासि-
 मनुष्याणां यानि अष्ट वालाग्राणि तत् 'हेमवयहेरणवयाण' हैमवतहैरण्यवतानां हैमवत-
 हैरण्यवतवर्षवासिनां 'मणुस्साणं' मनुष्याणामेकं वालाग्रम्, यानि अष्टौ हैमवत हैरण्य-
 वतवर्षवासिमनुष्यवालाग्राणि तत् 'पुव्वविदेहअवरविदेहाणं' पूर्वं विदेहापरविदेहानां पूर्व-
 विदेहापरविदेहवासिनां मणुष्याणामेकं वालाग्रम् यानि चाष्टौ पूर्वविदेहापरविदेहवासि
 'मणुस्साण वालग्गा सा एगा लिक्खा' मनुष्यवालाग्राणि सा एका लिक्खा, 'अट्ट लिक्खाओ

स्फुरण होता है ऐसी जो घूलि है वह उर्ध्वरेणु शब्द से बाध्य हुई है। आठ उर्ध्वरेणुओं का एक त्रसरेणु होता है। जो पूर्वादि दिशाओ से आगत वात से प्रेरित हुई इधर उधर चली जाती है-उड़ जाती है ऐसी घूलि का नाम त्रसा है, ऐसी त्रसारूप जो रेणु है वह त्रसरेणु है. आठ त्रसरेणुओं का एक रथरेणु होता है, रथ के चलने समय उससे उड़ी हुई घूलि ही रथ रेणु है आठ रथ रेणुओ का एक देवकुरु एव उत्तरकुरु क्षेत्र के निवासी मनुष्यों का बालाग्र होता है. आठ बालाग्रों का हरिवर्ष और रम्मयकवर्ष के निवासी मनुष्यो का एक बालाग्र होता है इसी हरिवर्ष और रम्मयकवर्ष के निवासी मनुष्यो के जो आठ बालाग्र हैं उनका हैमवत और हैरण्यवतक्षेत्र निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है. इनके आठ बालाग्रों का पूर्वविदेह और अपरविदेह के निवासी मनुष्यों का एक बालाग्र होता है. इनके आठ बालाग्रों

उर्ध्वं, अधः अने तियं गगामी न्ना-तर्गतसूयं किरणोथी नेनुं स्फुरणु डोय छे जेवी ने धूलि छे ते उर्ध्वरेणु शब्दथी वाच्य थयेथी छे. आठ उर्ध्वरेणुओने जेक त्रसरेणु डोय छे. जे पूर्व आदि दिशाओथी आगत वातथी प्रेरित थर्धने आम-तेम उडी नय छे. जेवी धूलितुं नाम त्रसा छे जेवी त्रसापुरेणु जे त्रसरेणु कडेवाय छे. आठ त्रसरेणुओने जेक रथरेणु डोय छे, रथ आले छे तयारे तेनाथी जे रेणु उडे छे ते रथरेणु छे आठ रथरेणुओने जेक देव कुरु अने उत्तर कुरुक्षेत्र निवासी मनुष्येओने जेक बालाग्र डोय छे आठ बालाग्रोने जे हरिवर्ष अने रम्मयक वर्षाना निवासी मनुष्येओने जे जेक बालाग्र डोय छे. जे जे हरिवर्ष अने रम्मयक वर्षाना निवासी मनुष्येओने जे आठ बालाग्रो छे ते हैमवत अने हैरण्यवत क्षेत्र निवासी मनुष्येओने जेक बालाग्र डोय छे जेभना आठ बालाग्रोनुं पूर्व विदेह अने अपर विदेहना निवासी मनुष्येओने जेक बालाग्र डोय छे. जेभना आठ बालाग्रोनी-केशाग्रोनी-जेक लिक्खा

मा एगा ज्वा' या अष्टयूकाः तदेकं यवमध्यम् , यानिच 'अष्ट जवमञ्जा से एगे अंगुले'
 अष्ट यवमध्यानि तदेकमङ्गुलम् , 'एएणं' एतेन अनन्तरोक्तेन 'अंगुलप्रमाणेणं छ अंगु-
 लाइं पाओ' अङ्गुलप्रमाणेन पङ्गुलानि एकः पादः-पादमध्यतलप्रदेशः, पादैकदे-
 शत्वा त्पादः ग्रामैकदेशे ग्रामत्वव्यवहारवत् 'वारस अंगुलाइं विद्वत्थी' द्वादश अङ्गुलानि
 वित् स्तिः , चउवीसं अंगुलाइं रयणी' चतुर्विंशतिः अगुलानि रत्तिः प्रसारिताङ्-
 गुलिको हस्तः, रत्नरिणि सैद्धान्तिकी परिभाषा शब्दकोशेतु "मुष्ट्या तु वद्धया स
 (हस्तः) रत्तिः स्यात्" इति वद्धमुष्टिकहस्तो रत्तिरुक्तः, सचेह न गृह्यते न्यूनप्रमाण-
 त्वात्, विवक्षितश्च चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणः स च प्रसारिताङ्गुलिक एव हस्तो घटते
 इति, तथा 'अड्यालीसं अंगुलाइं कुच्छी.' अष्टचत्वारिंशत अङ्गुलानि कुक्षिः, 'छण-
 उइ अंगुलाइं से एगे अक्खेइवा' पण्णवतिरङ्गुलानि स एकोऽक्ष शकटावयवविशेषः,
 इतिवा इति शब्दः स्वरूपोपदर्शने वा शब्दः समुच्चये एवमग्रेऽपि 'दडेइवा' दण्ड इति

की-कैशाग्रो की एक लिखा-लाख होती है आठ लिखाओ की एक यूका- गिरका जू होती है।
 है। आठ यूकाओ का एक यवमध्य होता है आठ यवमध्यो का एक अङ्गुल होता है छह
 अंगुलो का एक पाद- पादमध्यतल प्रदेश होता है पादमध्यतल प्रदेश को जो यहां पाद
 कह दिया है वह ग्रामैकदेश में हुए ग्राम के व्यवहार को तरह कह दिया है १२अगुलो
 की एक वितस्ति होती है तथा २४ अगुलो की एक रत्ति होती है जिममें अंगुलियां पसारी
 गई हों ऐसे एक हाथ का नाम सैद्धान्तिकी परिभाषा में रत्ति कहा गया है ; परन्तु शब्दकोष में
 बंधी हुई मुट्टिवाले हाथको एक रत्ति कहा गया है, सो ऐसी रत्ति यहां गृहीत नहीं हुई
 है क्यो कि इसमें प्रमाण कम आता है, जब पसारी हुई अगुलियो वाले हाथ की रत्ति कहते
 हैं तभी उसमें २४ अंगुल प्रमाणर्ता आती है, और इसीसे रत्ति प्रमाण सघता है ४८ अंगुलो
 की एक कुक्षि होती है, ९६ अंगुलो का एक अक्ष होती है, शकट का अवयव विशेष जो होता
 है उसका नाम अक्ष है इसी प्रकार से ९६ अंगुलो का एक दण्ड होता है, धनुष भी इतने

होय छे, आठ लिखाओनी ओक यूका होय छे आठ यूकाओतु ओक यव मध्य होय छे आठ
 यवमध्योनी ओक अंगुल होय छे. १२ अगुलोनी ओक पाद-पादमध्यतल प्रदेश होय छे
 पाद मध्यतल प्रदेशने जे अही पाद कहैत छे ते ग्रामैक देशमां थयेव ग्रामना व्यवहारनी
 जेभ सभजुं १२ अगुलोनी ओक वितस्ति होय छे तेभज २४ अगुलोनी ओक रत्ति होय
 छे. जेभाआगणीओ पडोणी करवाभां आवी छे जेवा ओक हाथतु नाम सैद्धान्तिकी परिभाषामा
 रत्ति कहैवमा आवेव छे शब्दकोषमा मुष्टिका भाषेव। हाथने पक्ष ओक रत्ति कहैवमां आवेव
 छे. परंतु जेतु अही अक्षयुतुं नथी केभके आमा प्रमाणे ओछ आवे छे न्यारे पडोणी
 करेही अंगुलीओ वाणा हाथने रत्ति कहै छे त्यारे जे तेमां २४ अगुल प्रमाणाता आवे
 छे. अने जेनाथीओ रत्ति प्रमाणे सधे छे. ४८ अगुलोनी ओक कुक्षि होय छे ९६ अगुलोनी
 ओक अक्ष होय छे शकटने अवयव विशेष जे होय छे तेतुं नाम अक्ष छे. आ प्रमाणे

वा दण्डः प्रसिद्धः, धनुइवा' धनुरिति वा धनुः प्रसिद्धम्, 'जुगेइवा' युगमिति वा युग धुर्यवृषमस्कन्धस्थितः कण्ठविशेषः 'मुसलेइ वा' मुशलमिति वा मुशलं प्रसिद्धम् 'नालिकाइ वा' नालिकेति वा नालिका यष्टि विशेषः अक्षादि नालिकान्तानि पणवत्य-ङ्गुलप्रमाणानि । अत्र धनुर्मात्रमुपयोगि, तदतिरिक्तानि नामानि प्रसङ्गादुपन्यस्तानि तानि चान्यत्रोपयोगीनि 'एएणं' एतेन अनन्तरोक्तेन 'धणुप्पमाणेणं दो धणुसहस्साइं' धणुप्रमाणेन द्वे धनुःसहस्रे द्वि सहस्रधनुपि एकं 'गाउय' गव्यूतम्, 'चत्तारि गा-उयाइं जोयणं' चत्वारि गव्यूतानि एकं योजनम् । 'एएणं' एतेन अनन्तरोक्तेन 'जो-यणप्पमाणेणं जे पल्ले' योजनप्रमाणेन यः पल्यः धान्यपात्रविशेष स इव पल्यः पल्यसदृशः पात्रविशेषो 'जोयणं' योजनम् एकं योजनम् 'आयामत्रिखंभेणं' आयाम-विष्कम्भेण-दैर्घ्यविस्ताराभ्यां समवृत्तत्वात् एकं 'जोयणं' योजनम् 'उद्धं उच्चत्तेणं' ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन, 'तं' तत् पूर्वोक्त योजनम् 'तिगुणं' त्रिगुणं-त्रिभिर्गुणितं 'सविसेसं' सविशेषं विशेषसहितं 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण-परिधिना, वृत्तपरिधेः किञ्चिन्न्यूनं षड्भागाधि क त्रिगुणत्वात् 'से ण पल्ले' स खलु पल्यः 'एगाहिय बेहिय तेहिय' एकादिक द्वय हिकत्रैयहिकोणां तत्र मुण्डिते शिरसि एकेनाह्वा यावत्प्रमाणा वालाग्रकोटय उत्तिष्ठन्ति ता एकादिक्यः द्वाभ्यां तु द्वैयद्विक्यः त्रिभिस्तु त्रैयद्विक्यस्तासाम्-अर्थात् एकदिनमत्र द्विदिनमत्र त्रिदिनभवानाम् 'उक्कोसेण' उत्कर्षेण-उत्कृष्टतया 'सत्तरत्तपरुहाण' सत्तरात्रो

ही अंगुलों का होता है जुआ जो बैलों के कंधों पर रखा जाता है वह भी इतने ही अंगुलों का होता है। मुशल एवं नालिका यष्टिविशेष भी इतने ही अंगुलों की होती है। यहां प्रकरण में उपयोगी एक धनुष मात्र ही है इससे अतिरिक्त और नाम तो केवल प्रसङ्ग से ही लिख दिये हैं। इनका उपयोग अन्यत्र होता है। २ हजार धनुष का एक गव्यूत होता है। चार गव्यूत का एक योजन होता है। इस योजन प्रमाणवाला पल्य-धान्यपात्रविशेष के जैसा यह पल्य होता है अर्थात् एक योजन गहरा, एक योजन चौड़ा और एक योजन लम्बा ऐसा एक पल्य बनाना चाहिये इस पल्य में कम से कम एक दिन से लेकर तीन दिन तक और अधिक से अधिक सात दिन तक के मुण्डित हुए शिर पर उत्पन्न हुए बालाग्रों की जो कि देवकुरु और

६६ अशुदीने। ओक ६३ डोय छे धनुष पणु आटलाण अशुदीनु डोय छे धूसडुं-जे भणवना आधा पर भूकवाभा आवे छे ते पणु ओटला न अशुदीनु डोय छे मुशल अने नालिका-यष्टि विशेष पणु ओटलाण अशुदीनी डोय छे अही प्रकरणमां उपयोगी ओक धनुष मात्र न छे भीण नामो इकत प्रसंगानुसार न लभवाभा आव्या छे अन्यत्र आ सवने। उपयोग थाय छे, ओ हल्लर धनुषने ओक गव्यूत थाय छे चार गव्यूत परापर ओक योजन डोय छे आ योजन प्रमाणवाणा पल्य-धान्य पात्रविशेष ना जेवु आ पल्य डोय छे ओटले के ओक योजन पडोणु अने ओक योजन लाणु जेवुं ओक पल्य अनवुं लोछे। आ पल्यमां ओछामां ओछा ओक द्विवसथी माडीने त्रयु द्विवस सुधी अने वधारेमा वधारे सात द्विवस सुधीना सु डित थयेला शिर पर उत्पन्न थयेला आलाशोनी—के जेओ देवकुरु अने उत्तर

त्पन्नानाम् बालाग्रकोटीनां-देवकुरुत्तरकुरुमनुष्यबालाग्रभागानाम् 'संभट्टे' संभृष्टः आ-
कर्णपूरितः 'सण्णिचिए' सन्नित्तः सं-सम्यक् प्रचयविशेषात् निचितः-निविडोक्तः,
भरिए" भृतः पूर्णः । 'भूळे एगाहिय वेहिय तेहिय' इत्यत्र प्राकृतत्वात् पणो बहुवचन-
लोपः सर्वत्र तृतीयार्थे पठिठ 'तेण' तानि पूर्वोक्तानि खलु 'बालगा णो कुयेज्जा' बाला
ग्राणि न कुध्येयुः प्रचयविशेषाद् विवराभावाद्वायोः प्रवेशासम्भवाच्चासारतां न प्राप्नुयुः
अतएव 'णो परिविडंसेज्जा' न परिविध्वसेरन् कतिपय परिशाटनमपि स्वीकृत्य
विध्वस्तानि न भवेयुः, तानीत्यस्यार्थवशाद्विभक्तिं विपरिणमय्य द्वितीया बहुवचनान्तत
याऽग्रेतन दहनादि क्रियान्वय इति तानि बालाग्राणि 'णो अग्गी डहेज्जा' अग्निः नो
दहेत्-न भस्मी कुर्यात् 'णो वाए हरेज्जा' वातः वायुः न हरेत् देशदेशान्तरं न नयेत्
अत्यन्तनिचितत्वात् च न वह्नि वाय्वोः सङ्क्रमो न भवतीति तात्पर्यम् । तानि बालाग्राणि
'णो पूइत्ताए हव्वमागच्छेज्जा' पूतितया पूतिभावं हव्य कदाचिदपि न गच्छेयुः न कदापि
शटितभावं प्राप्नुयुरित्यर्थः ततः तेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यो बालाग्रेभ्यः यद्वा 'तओणं' तत्
तदनन्तरं पूर्वोक्तप्रकारकपल्यभरणानन्तरं मित्यर्थः 'वाससए' २ वर्षशते वर्षशते
प्रतिवर्षशते 'एगमेग' एकमेकम्-एकैकम् 'बालगं' बालाग्रम् पूर्वोक्तस्वरूपं प्रमाणविशेषम्
'अवहाय' अपहाय-अपहृत्य 'जावइएण' यावता-यत्प्रमाणेन 'कालेणं' कालेन 'से

उत्तर कुरु के मनुष्यो की ही कोटियों को खूब धांसर कर भर देना चाहिये कहीं पर तिल
मात्र भी स्थान खाली न रहे इस ढंग से वे उसमें भरना चाहिये. इस तरह भरे जाने पर
उनमें विवर-छेद नहीं रहेगा. विवर नहीं रहने से वहां वायु का भी प्रवेश नहीं हो सकेगा, इस-
लिये न वे सड़ गल सकेंगे और न एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ाये जाकर वायु द्वारा रखे
जा सकेंगे निविडरूप से भरे रहने के कारण उन्हें अग्नि भी भस्मसात् नहीं कर सकती
इस तरह जब उन बालाग्रकोटियों से वह पल्य आकर्ण अच्छी तरह अत्यन्त निविडरूप से
भर जावे-तब उसमें से सौ वर्ष निकल जाने पर एक बालाग्रकोटि निकालनी चाहिये इस तरह
करते २ जितने काल में वह पल्य उन बालाग्रकोटियों से रिक्त होता है, थोडा सा भी बालाग्रो
का अंश उसमें नहीं चिपका रहता, अत्यन्त रूप से उस पल्य को उन बालाग्रो से शुद्धि हो

कुरुना भाषुसोना ७ डोय-कोटियोने अकहम हासी हासीने भरवाभा आवे कोर्ध पणु स्थाने
तदाभात्र पणु स्थान् आदी डोय नही तेम तेमां भरवाभा आवे आभ भर्यापणी तेमां
विवर रडेथे नही विवर नही रडेवाथी त्यां वायु पणु प्रविष्ट थर्ध शकथे नही अथी तेओ
सठथे नही ओगणथे नही अने वायु पणु तेभने ओक स्थानथी उडावी ने अन्यत्र लर्ध
भवामां समर्थ थथे नही निमिडइपभा डोवाथा अग्नि पणु तेभने भरम करी शकथे नही आ
रीते न्यारे ते आदाअ कोटिओथीते पल्य आकर्ण सारी रीते अतीव निमिड इपमां पूरित
थर्ध नय त्यारे तेमां सो वर्ष नीकली नवा अ द ओक आदाअ कोटि अदार हावी नेर्ध ओ
आभ करतां करतां नेटका हाणभा ते पल्य ते आदाअ कोटिओथी रिक्त थथ छे आदा
अने स्वटपाश पणु तेमां रडे नही ते पल्य ओक इम आदाओथी रिक्त थर्ध नय, ओटके

पल्ले खीणे' सः पूर्वोक्तः पल्यः क्षीणः बालाग्रकर्षणवशात् क्षयं प्राप्तः आकृष्टधान्यको-
 ष्टागारवत् तथा 'णीरए' नीरजाः—रज धूलिस्तत्सदृशसूक्ष्मबालाग्रस्तस्मान्निष्क्रान्तो नी-
 रजाः रजस्तुल्य सूक्ष्मबालाग्ररहितः कोष्ठागारवत् तथा 'णिल्लेवे' निर्लेपः हेपरहितः
 अत्यन्तसह्येषेण तन्मयत्वप्राप्तबालाग्रलेपापहारात् अपनीत धान्यलेपकोष्ठागारवत् 'तथा
 'णिट्टिण्' निष्ठितः अपनेतव्यः द्रव्यापनयनान्निष्ठां रिक्ततां गतो 'भवइ' भवति विशिष्ट
 प्रयत्न प्रमार्जित कोष्ठागारवत् यद्वा नीरज आदयस्त्रयोऽपि समानार्थाः शब्द अतिशयित
 शुद्धि सूचनपराः 'से तं पल्लिओवमे' तदेतत् पल्योपमम् । इदं संख्येयवर्षकोटीकोटी
 प्रमाणं बादरपल्योपमं बोध्यं यतोऽत्र पल्यगतबालाग्राणां संख्येयैरेव वर्षे रपहारसंभव
 उक्तः । अस्य च यद्यपि वक्ष्यमाणसुषमसुषमादिकालमानादौ नोपयोगस्तथापि सुषम
 सुषमा काल मानोपयोगि सूक्ष्मपल्योपमं सुखेनावबोधं भवत्वितौदं प्रदर्शितम् । सूक्ष्म-
 पल्योपमप्रमाणं तु एवं विज्ञेयं, तथाहि पूर्वोक्तमेकैकबालाग्रमसंख्येय खण्डीकृत्य भृत्-
 स्य उत्सेधाङ्गुलयोजनप्रमाणायामविष्कम्भावगाहस्य पल्यस्य वर्षशते २ एकैक बाला-
 ग्र खण्डापहारेण यावता कालेन सर्वबालाग्रखण्डापहारान्निर्लेपतास्यात् सोऽसंख्येय वर्ष

जाती है—अर्थात् पूर्णरूप से वे बालग्र उस पल्य में से निकल जाते हैं तो इतने काल का नाम
 पल्योपम काल है इस पल्य में सख्यात कोटीकोटीप्रमाण वर्ष समाप्त हो जाते हैं, इसे बादर
 पल्योपम काल कहा गया है, क्यों कि इस पल्य गत बालाग्रों का अपहार संख्यात वर्षों में ही हो
 जाता है, इस पल्य का यद्यपि वक्ष्यमाण सुषमा सुषमादिकाल प्रमाण में उपयोग नहीं है परन्तु फिर
 भी सुषम सुषमा काल के प्रमाण में उपयोगी जो सूक्ष्म पल्योपम है वह सुख से समझ में
 आजाय इसलिये इसे यहां दिखलाया गया है सूक्ष्म पल्योपम का प्रमाण इस तरह से विज्ञेय
 है—पूर्वोक्त बालाग्रों में से एक एक बालाग्र के असख्यात खण्ड कर केना चाहिये और फिर उनसे
 उस पल्य को भरना चाहिये इस अवस्था में इस पल्यकी लम्बाईचौड़ाई एव अवगाह उत्से-
 धाङ्गुल योजन प्रमाण हो जावेगी, अब सौ वर्ष निकल जाने पर उसमें से एक २ बालाग्रखण्ड
 का अपहार करना चाहिये इस तरह से करते २ जितने काल में वह पल्य उन सर्व बालाग्रों के

के तेमाथी स पूर्युं पल्ले आलाओ अहार काही नाभवाभां आवे तो तेदला काणतु नाम
 पल्लोपम काण छे. आ पल्लेभां स भ्यात केटि केटि प्रभाणु वर्षं समाप्त थधं जय छे आने
 आदर पल्लोपम कळेवाभां आवे छे, केभके आ पल्लेगत आलाओने अपहार स भ्यातवर्षां
 भा न थधं जय छे जे के आ पल्लेने वक्ष्यमाण सुषम सुषमादि काल प्रभाणुभां उप-
 योग नहीं छताओ सुषम सुषमाकाणना प्रभाणुभा उपयोगी जे सूक्ष्मपल्लोपम छे ते सुषेथी
 समज भा आवी शके जेटेलाभाटे अही इशाववा भा आवेद छे. सूक्ष्मपल्लोपमनुं प्रभाणु
 आ प्रभाणु विज्ञेय छे पूर्वोक्त आलाओभा ओके ओके आलाओना असंभ्यात भडो करी
 नाभवा नेधं ओ अने त्थार आह तेभना वडे आ पल्लेने पूरित करवुं आ स्थिति भा आ
 पल्लेनी ल भाधं पळेणाधं तेभन अवगाह उत्सेधाङ्गुलयोजन प्रभाणु थधं जये हवे हर
 सेा वर्षे ओके आलाओभडने तेमाथी अपहार करवे आ प्रभाणु जेटेला काणभां ते पल्ले

कोटीकोटोप्रमाणः कालः सूक्ष्मपल्योपमम् । “विचित्राकृतिराचार्यस्य” इति सूत्रकारेणा
जुक्तमपीदं स्वयं विज्ञेयम् । इदं सूक्ष्मपल्योपममेवच प्रस्तुतोपयोगी । अन्यथाऽनुयोगद्वारा
दिभिः सह विरोधः प्रसज्येतेति सर्वमुपपन्नम् । एवमग्रे सागरोपमेऽपि विज्ञेयमिति ।

अथ गाथया सागरोपमस्वरूपमाह—‘एएसि’ इत्यादि । ‘एएसि’ एतेषाम्—अनन्त-
रोक्तानां ‘पल्लानं’ पल्यानां—पल्योपमानां या ‘दसगणिया कोडाकोडी हवेज्ज’ दश
गुणिता कोटी कोटी भवेत् ‘तं’ तत् ‘एगस्स’ एकस्य ‘सागरोवमस्स’ सागरोपमस्य
‘भवे परिमाणं’ परिमाणं भवेत् ॥१॥ इति । ‘एएणं सागरोवमप्पमाणेणं चत्तारि साग-
रोवमकोडाकोडोओ कालो सुसमसुसमा’ एतेन सागरोपमप्रमाणेन चतस्रः सागरोपम-
अपहार होते २ उनसे सर्वथा निर्लिप्त बन जाता है ऐसा यह असख्यातकोटीकोटी वर्षप्रमाण-
वाला काल सूक्ष्म पल्योपम काल कहा गया है । यही विषय “एएण जोयणप्पमाणेण जे पल्ले”
इत्यादि सूत्रपाठ से लगाकर “णिट्ठिए भवइ सेतं पल्लिओवमे” यहां तक के सूत्रपाठ द्वारा
स्पष्ट की गई है । यद्यपि यहां पर सूत्रकार ने सूक्ष्मपल्योपम के विषय में अपने स्वतेज रूप से
विचार प्रगट नहीं किये हैं परन्तु फिर भी “विचित्राकृतिराचार्यस्य” के अनुसार अनुक्त भी इसे
स्वयं समझ लेना चाहिये. क्योंकि यह सूक्ष्म पल्योपम ही प्रस्तुत में उपयोगी है । यदि ऐसा न
हो तो फिर अनुयोगादि द्वारों के साथ विरोध का प्रसङ्ग प्राप्त होगा, इसी तरह का कथन साग-
रोपम के संबंध में भी जानना चाहिये, अब सूत्रकार इस गाथा द्वारा सागरोपम के स्वरूप का
कथन करते हुए कहते हैं—

“एएसि पल्लानं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिआ ।

त सागरोवमस्स उ एगस्स भवे परिमाणं ॥ १ ॥

पल्योपम की जो दश गुणित कोटी कोटी है वही एक सागरोपम प्रमाण है । अर्थात्
कोटी कोटो पल्योपम को १० दश से गुणित करने पर एक सागरोपम होता है ऐसे सागरोपम

ते षाळात्रैना अपहार था सत्रथा निर्लिप्त बनना जय ज्येते ते असंख्यात कोटी कोटी
वर्ष प्रमाण वाणो काल सूक्ष्म पल्योपम काल कडेवामा आवे छे जे जे विषय “एएणं
जोयणप्पमाणेणं जे पल्ले” इत्यादि सूत्र पाठथी भांडीने ‘णिट्ठिए भवइ से तं पल्लिओवमे’ अर्थात्
सुधीना सूत्रपाठ वडे स्पष्ट करवामा आवेख छे, जे के अर्थात् सूत्रकारे सूक्ष्मपल्योपमना
विषे पोताना स्वतंत्र रीते विचारो व्यक्त कर्था नथो छान्छे “ विचित्राकृतिराचार्यस्य ”
ना सुश्रुत अर्थात् अनुक्त छे तो पणु समल्ले वेवुं जेधंजे केभके आ सूक्ष्म पल्योपम जे
प्रस्तुतमा उपयोगी छे. जे आभ डोय नहि तो पणु अनुयोगादि द्वारो साथे विरोधनी
स्थिति उपस्थित थरो आ जतनु कथन सागरोपमना स भवमा पणु लणुवुं जेधंजे,
इवे सूत्रकार आ गाथा वडे सागरोपम ना स्वइयतु कथन करता कडे छे—

पएसि पल्लानं कोडा कोडी हवेज्ज दस गुणिआ ।

तं सागरोवमस्स उ एगस्स भवे परिमाणं ॥१॥

पल्योपमनी जे दश गुणित कोटी कोटी छे तेज्जे एक सागरोपमनु प्रमाण छे, जेट्ठे

कोटाकोट्यः कालः सुषमसुषमा, चतुः सागरोपमकोटाकोटी प्रमितः कालः प्रथमो-
 ऽरको भवतीत्यर्थः १ । तथा 'तिणिण सागरोवमकोडाकोडीओ' तिस्रः सागरोपम-
 कोटाकोट्यः—त्रिसागरोपमकोटाकोटी रूपः 'कालो सुसमा' कालः सुषमा, अयं कालो
 द्वितीयोऽरक इति २ । 'दो सागरोवमकोडाकोडीओ' द्वे सागरोपमकोटाकोट्यौ द्विसा-
 गरोपमकोटाकोटीरूपः 'कालो सुसमदुस्समा' काल सुषमदुष्पमा, अयं कालस्तृतीयो-
 ऽरक इति ३ । 'वायालीसाए वाससहस्सेहि ऊणिया' द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैरुनि-
 का—न्यूना 'एगा सागरोवमकोडाकोडी' एका सागरोपमकोटाकोटी 'कालो दुस्समसु-
 समा' कालो दुष्पमसुषमा, अय कालश्चतुर्थाऽरक इति ४ । एकवीसं वाससहस्साइं
 कालो दुस्समा' एकविंशतिवर्षसहस्राणि कालो दुष्पमा अयं कालः पञ्चमोऽरकः इति
 ५ । तथा 'एक्कवीसं वाममहस्साइं कालो दुस्समदुस्समा' एकविंशतिवर्षसहस्राणि कालो
 दुष्पमदुष्पमा, अय कालः षष्ठोऽरक इति । ६ । अत्रेदं बोध्यम्—प्रथमोऽरके चतस्रः
 सागरोपमकोटाकोट्यः द्वितीये तिस्रः, तृतीये द्वे, चतुर्थे द्विचत्वारिंशत्सहस्रवर्षन्यूना
 एका सागरोपमकोटाकोटी, पञ्चमे एकविंशतिसहस्रवर्षाणि षष्ठे च एकविंशतिसहस्रवर्षा-
 णीति सर्वसंकलनयाऽवसर्पिणीकालो दशसागरोपमकोटाकोटी प्रमाण इति । इत्यव-
 सर्पिणी कालनिरूपणम् ॥

अथोत्सर्पिणी कालं निरूपयितुमाह—“पुणरवि”इत्यादि । ‘पुणरवि उत्सर्पिणीए’
 पुनरपि उत्सर्पिण्याः—उत्सर्पिणीकालस्य ‘एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समदुस्समा’

प्रमाण से चार सागरोपम कोटाकोटी का एक सुषमसुषमा काल होता है. इसीको अवसर्पिणी
 का प्रथम आरक कहा गया है तब सागरोपमकोटाकोटी का द्वितीय काल जो सुषमा है वह होता
 है. दो सागरोपम कोटाकोटी का तृतीय काल जो सुषम दुष्पमा है वह होता है. ४२ हजार वर्ष
 कम १ कोटाकोटी सागरोपम का दुष्पम सुषमा काल होता है. यह चौथा काल है “एकवीस
 वाससहस्साइं कालो दुस्समा ” २१ हजार वर्ष का दुष्पमा नामका ५वां काल होता है
 तथा इतने ही हजार वर्ष का ६ वां काल जो दुष्पम दुष्पमा है वह होता है. इस तरह सर्व
 संकलना से अवसर्पिणी काल १० कोडाकोडो सागरोपम का होता है इसप्रकार से अवसर्पिणी

के कोटी कोटी पद्येऽपमने १० वडे शुद्धित करवाथी ओक सागरोपम थाय छे ओवा सागरो-
 पम प्रभाण्णुथी चार सागरोपम कोटा कोटिने ओक सुषम सुषमा काण होय छे. ओने न
 अवसर्पिणी ने प्रथम आरक कडेवाभा आवेद छे त्रष सागरोपम कोटा कोटीने द्वितीय
 काल ने सुषमा छे ते होय छे. ओ सागरोपम कोटा कोटिने तृतीय काण ने सुषम
 दुष्पमा छे ते होय छे ४२ हजार वर्ष कम १ कोटा कोटी सागरोपमने दुष्पम सुषमाकाण
 होय छे, आ ओथो काण छे ‘एक्कवीसं वाससहस्साइं कालो दुस्समा’ २१ हजार वर्षने
 दुष्पमा नामे ५ ने काण होय छे. तथा आठवाण हजार वर्षने ६ठो काण ने दुष्पम-दुष्पमा
 छे ते होय छे आ प्रभाण्णु सर्व संकलनाथी अवसर्पिणी काण १० कोडा कोटी सागरोपम

एकविंशतिवर्षसहस्राणि काल दुष्पमदुष्पमा इति उत्सर्पिण्याः प्रथमोऽरको १ । 'एवं' एवम् अनेन प्रकारेण अवसर्पिणीकालस्य 'पडिलोमं' प्रतिलोमं-पश्चान्तुपूर्व्या 'जेयव्वं' नेतव्य-ज्ञातव्य कियदवधिज्ञातव्यम् ? इत्याह-'जाव चत्तारि' इत्यादि । 'चत्तारि सागरोवम काल का निरूपण करके अब सूत्रकार उत्सर्पिणी कालका निरूपण करते हैं—“एव पडिलोम जेयव्वं जाव चत्तारि सागरोवम कोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा ६” उत्सर्पिणीकाल में प्रथम काल जो दुष्पमदुष्पमा है वह २१ हजार वर्ष का होता है इसे ही उत्सर्पिणी काल का प्रथम अरक कहा गया है इस तरह से उत्सर्पिणी काल के ६ छट्टे सुपममुपमा अरक तक कथन कर लेना चाहिये, अवसर्पिणीकाल में जो १ प्रथम अरक है वह उत्सर्पिणी काल में ६ छट्टा पड जाता है और अवसर्पिणीकाल में जो ६ छट्टा अरक है वह उत्सर्पिणी काल में प्रथम अरक हो जाता यहाँ पर जो अरको का कालप्रमाण अवसर्पिणी के प्रकरण मे कहा गया है वह वैसा ही है—उतना ही है घट बढ नहीं है इस तरह अवसर्पिणी में अरको का प्रमाण और नम्बर इस प्रकार से रहता है—अवसर्पिणी के अरक—

- १-सुषमसुषमा ४कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति ।
- २-सुषमा-३कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति ।
- ३-सुषमदुष्पमा-२कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति ।
- ४-दुष्पमसुषमा—४२हजार वर्ष कम १ कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति
- ५-दुष्पमा-२१हजार वर्ष की स्थिति ।
- ६-दुष्पमदुष्पमा-२१हजार वर्ष की स्थिति ।

ना होय छे आ प्रमाणे अवसर्पिणी कालतु निरूपण करीने हवे सूत्रकार उत्सर्पिणी कालतु निरूपण करे छे “एवं पडिलोमं जेयव्वं जाव चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा ६” उत्सर्पिणी कालमा प्रथम काल के दुष्पम दुष्पमा छे ते २१ हजार वर्षना होय छे अने ४ उत्सर्पिणी कालना प्रथम अरक कडेवामा आवेल छे. आ प्रमाणे उत्सर्पिणी कालना ६ठ्ठा सुषमा सुषमा आरक सुधीतुं कथन समल्ल वेवुं जेधअ. अवसर्पिणी कालमा के १ प्रथम अरक छे ते उत्सर्पिणी कालमा ६ ठो होय छे अने अवसर्पिणी कालमा के ६ठ्ठे आरक छे ते उत्सर्पिणी कालमा १ प्रथम अरक थध लय छे. अही के आरकेना काल प्रमाणे अवसर्पिणीना प्रकरणमा कडेवामा आवेल छे ते प्रमाणे ४ छे वध घट नथी आ रीते अवसर्पिणीमा आरके तुं प्रमाणे अने कम आ प्रमाणे रहे छे. अवसर्पिणी ना आरक—

- १ सुषम सुषमा ४ कोडा कोडी सागरोपमनी स्थिति
- २ सुषमा— ३ ” ”
- ३ सुषम दुष्पमा २ ” ”
- ४ दुष्पम सुषमा ४२ हजार वर्ष कम १ कोडा कोडी सागरोपमनी स्थिति
- ५ दुष्पमा २१ हजार वर्षनी स्थिति
- ६ दुष्पम दुष्पमा २१ हजार वर्षनी स्थिति.

कोडाकोडीओ कालो सुसमसुसमा' चतस्रः सागरकोटाकोटयः कालः सुपमसुपमा इति, योऽवसर्पिण्याः प्रथमो भेदः स इह षष्ठत्वेनावसेय इत्यर्थः । अत्रेदं बोध्यम्—उत्सर्पिण्या दुष्मदुष्मारूपे प्रथमेऽरके एकविंशतिवर्षसहस्राणि, द्वितीये दुष्मारूपेऽरके एकविंशतिवर्षसहस्राणि, दुष्मसुष्मारूपे तृतीयेऽरके द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना एका सागरोपमकोटा कोटी, सुष्मदुष्मारूपे चतुर्थेऽरके द्वे सागरोपमकोटाकोटयौ, सुष्मारूपे पञ्चमेऽरके तिस्रः सागरोपमकोटाकोटयः, सुष्मसुष्मारूपे षष्ठेऽरके चतस्रः सागरोपमकोटाकोटयइति सर्व संकलनया दश सागरोपमकोटाकोटय एकस्या मुत्सर्पिण्यां भवन्तीति ।

अथ प्रकृतमुपसहरन्—अवसर्पिण्या उत्सर्पिण्या उभयोश्च कालमानमाह—'दससागरोवमकोडाकोडीओ' इत्यादि तत्र अत्रसर्पिणीकाल उत्सर्पिणीकालश्च दशसागरोपमकोटे कोटिक । अवसर्पिण्युत्सर्पिणीरूपं कालचक्रं तु । विशतिसागरोपमकोटाकोटिकम् इत्यर्थः ॥ सू० २१ ॥

उत्सर्पिणी काल के आरक—

- १—दुष्मसुष्मा—२१ हजार वर्ष की स्थिति ।
- २ — दुष्मा— २१ हजार वर्ष की स्थिति ।
- ३ -दुष्मसुष्मा—४२ हजार वर्ष कम १ कोडा कोडी सागरोपम की स्थिति ।
- ४—सुष्मदुष्मा—२कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति ।
- ५—सुष्मा—३कोडाकोडी सागरोपम को स्थिति ।
- ६—सुष्मसुष्मा—४कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति ।

इस सब की संकलना करने से उत्सर्पिणी काल भी १०कोडाकोडी सागरोपम का होता है इस तरह यह अवसर्पिणीरूप और उत्सर्पिणीरूप काल चक्र २० कोडाकोडी सागरोपम का होना कहा गया है; यही सब विषय "एएणं सागरोवमपमाणेणं चत्तारि सागरोवमकोडाकोडिओ" से लेकर "दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उत्सर्पिणी, वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ

उत्सर्पिणी काणना आरक

- १ दुष्म दुष्मा—२१ हजार वर्ष की स्थिति
 - २ दुष्मा—
 - ३ दुष्म सुष्मा ४२ वर्ष कम १ कोडा कोडी सागरोपमनि स्थिति.
 - ४ सुष्म दुष्मा २ कोडा कोडी सागरोपमनी स्थिति,
 - ५ सुष्मा ३ कोडा कोडी सागरोपमनी स्थिति,
 - ६ सुष्म सुष्मा ४ कोडा कोडी सागरोपमनी स्थिति
- आ सर्वनी संकलना करवाथी उत्सर्पिणी काल पणु १० कोडा कोडी सागरोपम नेो डेत्ये छे. आ प्रमाणे आ अवसर्पिणी ३५ अने उत्सर्पिणी ३५ काल अक २० कोडा कोडी सागरोपमनु छे जेपु कडेवासा आवेल छे, जे न वात "एएणं सागरोवमपमाणेणं

अनन्तरसूत्रे भगते कालस्वरूपमुक्तम्, सम्प्रति काले भरतस्वरूपं जिज्ञासमानस्तत्र प्रथमोपस्थितत्वादादौ सुपमसुपमारूपावसर्पिणीभेद पृच्छति—

मूलम्—जंबुद्वीवेणं भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणए सुसमसुसमाए समाए उत्तमकड्डपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयार-
भावपडोयारे होत्था ? गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था. से जहाणामए आलिगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणि पंच वण्णेहिं तणेहि य मणीहि य उवसोभिए. तं जहा—किण्हेहिं जाव सुक्किल्लेहि एवं वण्णो गंधो रमो फासो सहो य तणाण य मणीण य भाणियव्वो जाव तत्थ णं बहवे मणुस्सा मणुस्सोओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति णिसीयंति तुयट्ठंति हसंति रमंति ललंति । तीसेणं समाए भरहे वासे बहवे उद्दाला कुद्दाला कयमाला णट्टमाला दंतमाला नागमाला सिंगमाला संखमाला सेयमाला णामं दुमागणा पण्णत्ता. कुसविकुसविसुद्धरूक्खमूला मूल-
मंतो कंदमंतो जाव बीयमंतो पत्तेहि व पुप्फेहि फलेहि य उच्छण्णपडि-
च्छण्णा सिरीए अईव २ उवसोभेमाणा चिट्ठंति । तिसेणं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ बहवे भेरुतालवणाइं हेरुतालवणाइं मेरुतालवणाइं पभयालवणाइं सालवणाइं सरलवणाइं सत्तबण्णवणाइं पूयफलिवणाइं ख-
ज्जूरीवणाइं णालिएरीवणाइं कुसविकुसविसुद्धरूक्खमूलाइं जाव चिट्ठंति । तीसेणं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ बहवे सेरिया गुम्मा णोमालि-
यागुम्मा कोरंटयगुम्मा बंधुजीवगुम्मा मणोज्ज-गुम्मा बीयगुम्मा णगुम्मा कणइरगुम्मा कज्जयगुम्मा सिंदुवाग्गुम्मा मोग्गरगुम्मा जू-
हियागुम्मा मल्लियागुम्मा वासंतियागुम्मा वत्थुलगुम्मा कत्थुलगुम्मा

कालो ओसप्पिणो उस्सप्पिणो” यहा तत्र के सूत्रपाठ द्वारा कहा गया है इनके पदों की व्याख्या सुगम है ॥ २१ ॥

चत्तारि सागरोवमकोडाकोडीओ” थी भा.६.ने “ दस सागरोवमकोडाकोडीओ कालो उस्सप्पिणी” वोस सागरावमकाडा कोडीओ कालो ओसप्पिणो उस्सप्पिणी” अडी” सुधीना सूत्र पाठ वडे कडेवाभा आवेव छे. आ सर्व पडोनी व्याख्या सरग छे. ॥२१॥

सेवालेगुम्मा अगत्थिगुम्मा भगदंतियोगुम्मा चंपगगुम्मा जाइगुम्मा
 णवणीइयागुम्मा कुंदगुम्मा महाजाइगुम्मा रम्मा महामेघणिकुरम्बभूया
 दसच्चवणं कुसुमं कुसुमैति । जे णं भरहे वासे बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं
 वायविधुयगसाला मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेति । तीसेणं समाए
 भरहे वासे तत्थतत्थ तहि ताहे बहुईओ पउमलयाओ जोव सामलयाओ
 णिच्चं कुसुमियाओ जाव लयावणणओ । तीसेणं समाए भरहे वासे
 तत्थतत्थ तहि ताहे बहुइओ वणराईओ पणत्ताओ, किण्हाओ किण्हो भा-
 साओ जाव रम्माओ रयमत्तगच्छप्पय कोरंटगभिगारग कौडलग जीवंजीवग
 नंदीमुहकविलपिगलक्खग कारंडवचक्कवायगकलहंसहंससारसअणेगस-
 उणगणमिहुणवियरिया सदुण्णइयमहुर सरणाइयाओ सर्पिण्डिय दरिय
 भमरमहुपरिपहकर परिंलैतमत्त छप्पयकुसुमासवलोलमहुरगुमगुमंत गु-
 जंत देसभागाओ अम्भितरपुप्फफलाओ बाहिरपत्तोच्छण्णाओ पत्तेहि
 य पुप्फेहि य ओच्छन्नर्वाल्छत्ताओ साउफलाओ निरोययाओ अकंट-
 याओ णाणाविहगुच्छगुम्भमंडवग सोहियाओ विचित्तसुहकेउभूयाओ
 वावीपुक्खरिणी दीहिया सुनिवेशिय रम्मजाल हरयाओ पिण्डिमणी-
 हारिम सुगंधिं सुह सुरभि मणहरंच महया गंधद्वारिणिसुयंताओ सब्वा-
 उयपुप्फफलसामद्धाओ सुरम्माओ पासाईयाओ दरिसणिज्जाओ अभि-
 रूवाओ पडिरूवाओ ॥सू०२२॥

छाया— जम्बूद्वीपे खलु भदन्त ! द्वीपे भरते वर्षे अस्या अवसर्पिण्याः सुषम सुषमाया
 समायाम् उत्तम काष्ठा प्राप्तायां भरतस्य वर्षस्य कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारोऽभवत्
 गीतम । बहुसमरमणीयो भूमिभागोऽभवत् स यथानामकः आलिङ्ग पुष्करमिति वा यावत्
 नानाविधपञ्चवर्णै तृणैश्च मणिभिश्च उपशोभित , तद्यथा—कृष्णैर्यावच्छुक्लैः, पत्र वर्णो गन्धो
 रसः स्पर्शः शब्दश्च तृणानां च मणोनां च भणितव्यः, यावत् तत्र खलु बहवो मनुष्या
 मानुष्यश्च आसते शेरते तिष्ठन्ति निषीदन्ति त्वग्वर्त्तयन्ति हसन्ति रमन्ते ललन्ति । तस्यां
 खलु समाया भरते वर्षे बहव उद्दालाः कुडालाः मोदालाः कृतमालाः नृत्तमाला दन्तमालाः
 नागमालाः शृङ्गमाला शङ्खमाला श्वेतमालाः नाम द्रुमगणा प्रहृताः कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला
 मूलयन्त कन्दयन्त यावद् वीजयन्त पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्च अवच्छन्नप्रतिच्छन्ना श्रिया

अतिव अतीव उपशोभमानास्तिष्ठन्ति । तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र वह्नि मेरुतालवनानि हेरुतालवनानि मेरुतालवनानि प्रभनालवनानि सालवनानि सरलवनानि सप्तपर्णवनानि पूगफलीवनानि खर्जूरोवनानि नालिकेरीवनानि कुशविकुशविशुद्धवृक्षसूत्रानि यावत् तिष्ठन्ति । तस्यां खलु समाया भरते वर्षे तत्र तत्र वहवः सेरिका गुल्माः नवमालिका गुल्माः कोरुण्टऋगुल्मा वन्धुजीवकगुल्माः मनोऽवद्यगुल्माः वीजगुल्माः वाणगुल्मा कर्णिकार गुल्माः कुञ्जकगुल्मा सिन्दुवारगुल्मा मुद्गरगुल्माः यूथिकागुल्मा मल्लिकागुल्मा वासन्तिकागुल्मा वस्तुलगुल्मा कस्तुल गुल्माशैवालगुल्मा अगन्तिगुल्माः मगदन्तिका गुल्माः चम्पकगुल्मा जातिगुल्माः नवनीतिकागुल्मा कुन्दगुल्मा महाजातिगुल्माः रम्या महा-मेघनिकुरम्बभूताः दशाद्वैवर्णं कुसुम कुसुमयन्ति । ये खलु भरते वर्षे वहसमरणोय भूमिभागं वातविधूताग्रशाला मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलित कुर्वन्ति । तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र तस्मि तस्मिन् वहव्य गञ्जलना यावत् श्यामलता नित्यं कुसुमिता यावत् तता वर्णक । तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र तस्मिन् तरिमन् वहव्यो वनराजय प्रक्षप्ताः कृष्णः कृष्णवभासा यावत् रम्याः रत मत्तक पद्पदकोरुङ्ग भृङ्गारक कुण्डल-कजीवञ्जीवनन्दीमुष कपिल पिङ्गलाक्षक कारण्डवचक्रकाकफलहंस हंससारसानेकशकुन गर्णामथुन विचारिताः शब्दोन्नदिनमधुरस्वरनादिताः सम्पिडितदृष्टभ्रमरमधुकरीप्रकरपरिली यमानमत्तपद्पद कुसुमासवलोलमधुरगुमगुमायमान अञ्जहेशभागाः अभ्यन्तरपुष्पफलाः वह्निः पत्रावच्छन्ना, पुष्पैश्च फलैश्चावच्छन्नप्रतिच्छन्नाः स्वादुफलाः नीरोगकाः अकण्टकाः नानाविधगुच्छगुल्ममण्डपकशोभिताः विचित्रशुभकेतुभूताः वापीपुष्करिणी दीर्घिका सुनिवेशित रम्यजालगृहका पिण्डमनिर्हारिमा शुगर्धं शुभसुरभिमनोहरां च महागन्धघ्राणि मुञ्चन्त्यः सर्वर्तुकपुष्पफलसमृद्धाः सुरम्या प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपाः प्रतिकूपाः ॥सू० २२॥

टीका—‘जंबुद्वीवे णं भते ! दीवे’ इत्यादि ।

गौतमस्वामी पृच्छति ‘जंबुद्वीवे ण भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सुममसुसमाए समाए’ हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्याः वर्तमानायाः

भरत क्षेत्र में यह काल स्वरूप प्रतिपादित हुआ है अतः भरतक्षेत्र के स्वरूप को जानने की इच्छावाले गौतमस्वामी सब से पहिले कहे गये सुषमसुषमा काल के स्वरूप जो कि अवसर्पिणी का प्रथम धरक कहा गया है पूछते हैं—

“जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए” इत्यादि ।

“जंबुद्वीवे ण भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए” हे भदन्त ! इस जम्बूद्वीप नाम

भारतक्षेत्रमा आ काल स्वरूप प्रतिपादित थयेल छे, ओथी भारतक्षेत्रमा स्वरूप विषे लक्षुवाने धम्मिक श्री गौतम स्वामी सब पडेला कडेवाभा आवेल सुषम सुषमा नामक कालना स्वरूप विषे—के ले अवसर्पिणी ना प्रथम आरक ना रूपमा कडेवाभा आवेल छे प्रथु श्रीने पूछे छे—

‘जंबुद्वीवेण भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए’ इत्यादि सूत्र—२२ ॥

टीका—हे भदन्त ! आ जंबूद्वीप नामना द्वीपमा स्थित भारतक्षेत्रमा आ अवसर्पिणी

अवसर्पिण्याः सुषमसुषमायां समायां कालविभागरूपायां प्रथमेऽरके इत्यर्थः, तस्यां कीदृश्याम् ? 'उत्तमकट्टपत्ताए' उत्तमकाष्ठाप्राप्त्यायां प्रशस्तप्रकृष्टावस्थां गतायां सत्यां 'भरहस्स बासस्स केरिसए' भरतस्य वर्षस्य कीदृशकः—कीदृशः 'आयारभावपडोयारे' आकारभावप्रत्यवतारः स्वरूपपर्याय प्रादुर्भावः 'होत्था' अभवन् ? इति । भगवानाह— 'गोयमा !' हे गौतम ! अस्या अवसर्पिण्याः सुषमसुषमायां समायां भरतवर्षस्य 'बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था' बहुसमरमणीयो भूमिभागोऽभवत् 'से जहा णामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा जाव णाणामणि पचवण्णेहि तणेहि य मणीहिय उवसोमिए' तद्यथा नामकः आलिङ्गपुक्करमिति वा यावत् नानाविधपञ्चवर्णैः तृणैश्च मणि मिश्र उपशोभितः । अत्र यावच्छब्दसंग्राह्याणि पदानि राजप्रश्रीयसूत्रस्य पञ्चदश सूत्रादारभ्य एकोनविंशतितम सूत्रपर्यन्तात् सूत्रसमूहाद् विज्ञेयः, तदर्थश्चापि तत्रैव मत्कृतसुबोधिनी टीकातोऽवसेय

के द्वीप में स्थित भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के "सुषमसुषमाए समाए" सुषमसुषमा नाम के प्रथम आरक में "उत्तम कट्टपत्ताए" जब कि वह अपनीसर्वोत्कृष्ट अवस्था में वर्त रहा था "भरहवासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे" भरतक्षेत्र का कैसा आकारभावप्रत्यवतार—स्वरूप "होत्था" था, इसके उत्तर में प्रसु कहते हैं—"गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहा णामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा णाणामणिपंचवण्णेहि तणेहि य मणीहि य उवसोमिए" हे गौतम ! जब जम्बूद्वीपाश्रित इस भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी काल के समय प्रथम सुषमसुषमा नाम का प्रथम आरक अपनी सर्वोत्कृष्ट अवस्था पर चलना था उस समय यहाँ भूमिभाग बहुसमरमणीय था और वह ऐसा बहुसम था जैसा कि सृदंग कामुसुपुट होता है यावत् वह नाना प्रकार के पाच वर्णों वाले मणियों से एव तृणों से सुशोभित था. यहाँ यावत्पद से जिन पदों का संग्रह किया गया है उनपदों को यदि जानना हो तो इसकेलिये राजप्रश्रीयसूत्र के १५ वें सूत्र से लेकर १९वें सूत्र तक के कथन को देखना चाहिये. वहाँ पर इसविषय को उसकी सुबोधिनी टीका

काणना 'सुसम सुसमाए' सुषम सुषमा नामना प्रथम आरक भा "उत्तम कट्टपत्ताए" ज्यारे ते पोतानी सर्वोत्कृष्ट अवस्थाभा वती" रह्यो इतो 'भरहवासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे' भरतक्षेत्रना केवो आकार भाव प्रत्यवतार—(स्वरूप) 'होत्था' इतो जेना ज्वाणभा प्रसु कडे छे " गोयमा ! बहुसमर मणिज्जे भूमिभागे होत्था से जहाणामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा जाव णाणामणि पंचवण्णेहि तणेहि य मणीहिय उवसोमिए" हे गौतम ! ज्यारे ज्जूद्वीपाश्रित आ भरतक्षेत्रभा अवसर्पिणी काणना समये प्रथम सुषमसुषमा नामक प्रथम आरक पोतानी सर्वोत्कृष्ट अवस्था पर आदी रह्यो इतो, ते समयभा आदी भूमि भाग अहुं सभ रमणीय इतो अने ते जेवो अहुंसम इतो के जेवो मृद गना सुष पट नेो आकार होय छे यावत् ते अनेक प्रकारना पाच वर्ण वाणा मणियो थी तेम ज्जूथोथी सुशोभित इतो आदी यावत्पद थी जे रहोनेो सथइ करवामा आवेल छे ते पदो विषे नेो ज्जूवानी धरिछा होय तो जेना भाटे राजप्रश्रीय सूत्रना १५ भा सूत्र थी आदी ने १६ भा सूत्र सुधीना कथनने जेवु जेछे जे आदी आ विषय ने तेनी सुषो-

अतिव अतीव उपशोभमानास्तिष्ठन्ति । तस्या खलु समाया भरते वर्षे तत्र तत्र वह्नि मेरुतालवनानि हेरुतालवनानि मेरुतालवनानि प्रभतालवनानि सालवनानि सरलवनानि सप्तपर्णवनानि पूगफलीवनानि खर्जूरोवनानि नालिकेरीवनानि कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूलानि यावत् तिष्ठन्ति । तस्यां खलु समाया भरते वर्षे तत्र तत्र वहवः सैरिका गुल्मा' नवमालिका गुल्माः कोरुण्टकगुल्मा वन्धुजीवकगुल्माः मनोऽवद्यगुल्माः वीजगुल्मा' वाणगुरमा कर्णिकार गुल्माः कुञ्जकर्णुल्मा सिन्दुवारगुल्मा मुद्गरगुल्मा' यूथिकागुल्मा' मल्लिकागुल्माः वासन्तिकागुल्माः वस्तुलगुल्माः कस्तुल गुल्माशैवालगुल्मा' अगस्तिगुल्मा मगदन्तिका गुल्माः चैम्पकगुल्मा जातिगुल्माः नवनीतिकागुल्माः कुन्दगुल्मा महाजातिगुल्मा रम्या महा-मेघनिकुरम्बभूताः दशार्द्धवर्णं कुसुम कुसुमयन्ति । ये खलु भरते वर्षे वहूलमरणोय भूमिभागं घातविधूताग्रशाला मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलिन कुर्वन्ति । तस्या खलु समाया भरते वर्षे तत्र तत्र तस्मिन् तस्मिन् वहव्य वनराज्य प्रसङ्गताः कृष्णः कृष्णवभाला यावत् रम्याः रत मत्तकः पट्टपदकोरुङ्ग भृङ्गारक कुण्डल-कजीवञ्जीवनन्दीमुष कपिल पिङ्गलाक्षक कारण्डवचक्रवाककलहंस हंससारसानेकशकुन गणमिथुन विचारिताः शब्दोन्नतितमधुरस्वरनादिताः सम्पिडितदत्तभ्रमरमधुकरीप्रकरपरिली यमानमत्तपट्टपद कुसुमासवलोलमधुरशुमगुमायमान अञ्जहेशभागाः अभ्यन्तरपुष्पफलाः वह्निः पत्रावच्छन्ना, पुष्पैश्च फलैश्चावच्छन्नप्रतिच्छन्नाः स्वादुफलाः नीरोगकाः अकण्टकाः नानाविधगुच्छगुल्ममण्डपकशोभिताः विचित्रशुभकेतुभूताः वापीपुष्करिणी दीर्घिका सुनिवेशित रम्यजालगृहका पिण्डमनिर्हारिमा सुगन्धि शुभसुरभिमनोहरां च महागन्धघ्राणि मुञ्चन्त्यः सर्वैकपुष्पफलसमृद्धाः सुरम्या प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपाः प्रतिरूपाः ॥सू० २२॥

टीका—'जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे' इत्यादि ।

गौतमस्वामी पृच्छति 'जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सुममसुसमाए समाए' हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्याःवर्तमानायाः

भरत क्षेत्र में यह काल स्वरूप प्रतिपादित हुआ है अतः भरतक्षेत्र के स्वरूप को जानने की इच्छावाले गौतमस्वामी सब से पहिले कहे गये सुषमसुपमा काल के स्वरूप जो कि अवसर्पिणी का प्रथम अरक कहा गया है पृच्छते है—

“जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए” इत्यादि ।

“जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए” हे भदन्त ! इस जम्बूद्वीप नाम

भरतक्षेत्रमा आ काल स्वरूप प्रतिपादित थयेल छे, जेथी भरतक्षेत्रना स्वरूप विषे लक्ष्मिने उच्यते श्री गौतम स्वामी सर्व पडेला कहेवाभा आवेल सुषम सुषमा नामक कालना स्वरूप विषे—के जे अवसर्पिणी ना प्रथम आरक ना रूपमा कहेवाभा आवेल छे अथु श्रीने पृच्छे छे—

‘जंबुद्वीवेण भंते ! दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए’ इत्यादि सूत्र—२२ ॥

टीका—हे भदन्त ! आ जंबूद्वीप नाम

स्थित भरतक्षेत्रमा आ अवसर्पिणी

अवसर्पिण्याः सुपमसुपमायां समाया कालविभागरूपायां प्रथमेऽङ्के इत्यर्थः, नम्यां कीदृश्याम् ? 'उत्तमकट्टपत्ताए' उत्तमकाष्ठाप्राप्त्यायां प्रशस्तप्रकृष्टावस्था गतायां सन्यां 'भरहस्स वासस्स केरिसए' भरतस्य वर्षस्य कीदृशः—कीदृशः 'आयारभावपडोयारे' आकारभावप्रत्यवतारः स्वरूपपर्याय प्रादुर्भावः 'होत्था' अभवत् ? इति । मगवानाह— 'गोयमा !' हे गौतम ! अस्या अवसर्पिण्याः सुपमसुपमाया समायां भरतवर्षस्य 'बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था' बहुसमरमणीयो भूमिभागोऽभवत् 'मे जहा णामए आलिङ्गिपुक्खरेइ वा जाव णाणामणि पंचवण्णेहिं तणेहिं य मणीहिय उवसोभिए' तत्र या नामरुः आलिङ्गिपुक्खरमिति वा यावत् नानाविधपञ्चवर्णैः तृणैश्च मणि मिश्र उपगोमितः । अत्र यावच्छब्दसंग्राह्याणि पदानि राजप्रश्रीयसूत्रस्य पञ्चदश सूत्रादारभ्य एकोनविंशतितम सूत्रपर्यन्तात् सूत्रसमूहाद् विज्ञेयः, तदर्थश्चापि तत्रैव मत्कृतसुबोधिनी टीकातोऽवसेय

के द्वीप में स्थित भरतक्षेत्र में उस अवसर्पिणी काल के "सुपमसुपमाए समाए" सुपमसुपमा नाम के प्रथम आरक में "उत्तम कट्टपत्ताए" जब कि वह अपनी सर्वोत्कृष्ट अवस्था में वर्त रहा था "भरह्वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे" भरतक्षेत्र का कैसा आकारभावप्रत्यवतार—स्वरूप "होत्था" था, इसके उत्तर में प्रसु कहते हैं—'गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहा णामए आलिङ्गिपुक्खरेइ वा णाणामणिपंचवण्णेहिं तणेहिं य मणीहिय उवसोभिए" हे गौतम ! जब जम्बूद्वीपाश्रित इस भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी काल के समय प्रथम सुपमसुपमा नाम का प्रथम आरक अपनी सर्वोत्कृष्ट अवस्था पर चलना था उस समय यहाँ भूमिभाग बहुसमरमणीय था और वह ऐसा बहुसम था जैसा कि मृदंग कामुसुपट्ट होता है यावत् वह नाना प्रकार के पाच वर्णों वाले मणियों से एव तृणों से सुगोमित था यहाँ यावत्तद से जिन पदों का संग्रह किया गया है उनपदों को यदि जानना हो तो इसकेलिये राजप्रश्रीयसूत्र के १५ वें सूत्र से लेकर १९वें सूत्र तक के कथन को देखना चाहिये. वहाँ पर इसविषय को उसकी सुबोधिनी टीका

काणना 'सुपम सुसमाए' सुपम सुपमा नामना प्रथम आरक मां "उत्तम कट्टपत्ताए" न्यारे ते पोतानी सर्वोत्कृष्ट अवस्थाया वती" रह्यो इतो 'भरह्वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे' भरतक्षेत्रने केवे आकार भाव प्रत्यवतार—(स्वरूप) 'होत्था' इतो जेना न्वाभमा प्रसु कडे छे " गोयमा ! बहुसमर मणिज्जे भूमिभागे होत्था से जहाणामए आलिङ्गिपुक्खरेइ वा जाव णाणामणि पंचवण्णेहिं तणेहिं य मणीहिय उवसोभिए" हे गौतम ! न्यारे न्वाभदीपाश्रित आ भरतक्षेत्रमा अवसर्पिणी काणना समये प्रथम सुपमसुपमानामक प्रथम आरक पोतानी सर्वोत्कृष्ट अवस्था पर आली रह्यो इतो, ते समयमां अही भूमि भाग बहुसम रमणीय इतो जेने ते जेवे बहुसम इतो के जेवे मृदंगना मुष्पट्ट ने आकार डोय छे यावत् ते अनेक प्रकारना पांच वर्ण वाणा मणिज्जे थी तेम न्वाभदीपाश्रित इतो अही यावत्पद थी जे यदोने संग्रह करवामा आवेल छे ते पदे विषे जे न्वाभदीपाश्रित इच्छा डोय तो जेना माटे राजप्रश्रीय सूत्रना १५ मा सूत्र थी मांडी ने १६ मा सूत्र सुधीना कथने जेपुं जेछे जे अही आ विषय ने तेनी सुभा-

इति । यद्यद्वर्णविशिष्टैस्तृणैश्च मणिभिश्च स उपशोभितस्तत्तद्वर्णविशिष्ट तृणमणि-
प्रतिपादनायाह—‘तं जहा—किण्हेहि जाव सुक्किल्लेहि’ तद्यथा—कृष्णैर्यावच्छुक्लैरिति ।
अत्र यावत्पदेन ‘नीलैः लोहितैः हारिद्रैः’ इति संग्राहम् तथा ‘एवं वण्णो गंधो रसो फा-
सो सद्दो य तणाण य मणीण य भाणियव्वो’ तेषां तृणानां मणीनां च वण्णो गन्धो-
रसः स्पर्शः शब्दश्च भणितव्यः । वर्णादि स्पर्शान्तवर्णनं राजप्रश्नीयसूत्रस्य पञ्चदश-
सूत्रादारभ्य एकोनविंशतितमसूत्रपर्यन्तेऽवलोकनीयम् । शब्दवर्णनं तस्यैव त्रिपष्टितमचतु-
ष्षष्टितमेति सूत्रद्वयेऽवलोकनीयम् । तथा ‘जाव’ यावत् ‘तत्थ णं वहवे मणुस्सा मणु-
स्सीओ य आसयंति’ तत्र खलु वहवो मनुष्या मानुष्यश्च आसते, अत्र यावत्पदेन
पुष्करिण्यः पर्वतकाः गृहकाणि मण्डपकाः पृथिवीशिलापट्टकाश्च ज्ञातव्याः । तत्र पुष्क-
रिणीवर्णनं तस्यैव पञ्चपष्टितमसूत्रतः पर्वतकर्णनं पटपष्टितमसूत्रतः गृहकवर्णनं सप्त-
षष्टितमसूत्रतः, मण्डपकवर्णनं पृथिवीशिलापट्टकवर्णनं च अष्टपष्टितमसूत्रतो बोध्यम् ।

द्वारा स्पष्ट किया गया है ।—‘किण्हेहि जाव सुक्किल्लेहि एव वण्णो, गंधो, रसो, फासो सद्दोयतणाण
य मणीण य भाणियव्वो मणुस्सा जाव तत्थ ण वहने माणुसा माणुसीओ य आसयंति सयति
चिट्ठंति णिसीयंति तुयट्ठंति हसति रमंति ललंति’ वे वहा के मणि और तृण कृष्णवर्ण यावत् नीलव
र्ण, लोहित (लाल) वर्ण एव पीत वर्ण इन वर्णों से एव शुक्लवर्ण से युक्त हैं । इस उन मणि-
यों और तृणों के गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द का वर्णन जैसा कि राजप्रश्नीय सूत्र के १५ वे
सूत्र से लेकर १९ वें सूत्र तक वहा पर किया गया है उसी प्रकार से यहा पर भी वह वर्णन
कर लेना चाहिये इनके शब्दों का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र के ६३ वे सूत्र में और ६४ वें सूत्र में
किया गया है । यावत् वहां पर अनेक मनुष्य और मनुष्य स्त्रीया उठती बैठती रहती हैं इत्यादि
यहा यावत्पद से पुष्करिणियों का, पर्वतों का, गृहों का, मण्डपो का और पृथिवीशिलापट्टकों का
ग्रहण हुआ है । पुष्करिणियों का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र के ६५ वे सूत्र से पर्वतों का वर्णन ६६
वें सूत्र से, गृहों का वर्णन ६७ वें सूत्र से एव मण्डपो का और पृथिवीशिलापट्टों का वर्णन ६८

ધિની નામની ટીકા વડે સ્પષ્ટ કરવામાં આવેલ છે ” “કિણ્હેહિ જાવ સુક્કિલ્લેહિ પંવ વણ્ણો,
ગંધો, રસો ફાસો સદ્દોય તણાણય મણીણય ભાણિયવ્વો જાવ તત્થ ણં વહવે મણુસ્સા
માણુસીઓ ય આસયંતિ, સયંતિ, ચિટ્ઠંતિ, ણિસીયંતી, તુયટ્ઠંતિ રમંતિ, લલંતિ” ત્યાંના
મણિ અને તૃણ કૃષ્ણ વર્ણુ યાવત્ નીલવર્ણુ, લોહિતવર્ણુ પીતવર્ણુ તથા શુક્લ વર્ણુ થી
શુક્લ છે આ પ્રમાણે તે મણિઓ અને તૃણોના ગન્ધ, રસ, સ્પર્શ અને શબ્દનું વર્ણન
જે પ્રમાણે રાજપ્રશ્નીય સૂત્રના ૧૫ માં સૂત્રથી માહીને ૧૯ માં સૂત્ર સુધી માં કરવામાં
આવ્યું છે તે પ્રમાણે જ અહીં પણ વર્ણન કરી લેવું જોઈએ એમના શબ્દોનું વર્ણન
રાજપ્રશ્નીય સૂત્રના ૬૩ માં સૂત્ર અને ૬૪ માં સૂત્રમાં કરવામાં આવેલ છે. યાવત્ ત્યાં
અનેક પુરુષો, સ્ત્રીઓ ઉડતાં, ખેસતા રહે છે ઇત્યાદિ અહીં યાવત્ પદ થી પુષ્કરિણીઓ,
પર્વતો, ગૃહો મહાપો અને પૃથિવી શિલા પટ્ટકોનું ગ્રહણ થયેલું છે પુષ્કરિણીઓનું
વર્ણન રાજપ્રશ્નીય સૂત્રના ૬૫ માં સૂત્ર થી, પર્વતો નું વર્ણન ૬૬ સૂત્ર થી ગૃહોનું વર્ણન

अर्थोऽपि तत्रैव मत्कृतसुबोधिनी टीकातोऽवसेयः । तथा 'आसयति सयंति' आसने शेरते इत्यादीनामर्थोऽस्वैवागमस्य पृष्ठ सूत्रतो विज्ञेयः । केवलं 'शेरते' इत्यस्य अन्योऽर्थो बोध्यः । तत्र देवानां निद्राया अभावात् 'शेरते शय्योपरिशरीरप्रमाणमात्रं कुर्वन्ति इत्यर्थः मनुष्याणां तु शरीरप्रसारणस्य निद्रायाश्चापि संभवात् अत्र शेरते=शय्योपरिशरीरं प्रसारयन्ति निद्रान्ति चेत्यर्थ इति । शिष्योपकारपरायणेन गुरुणा शिष्याऽविजिज्ञासितोऽपि विषयः स्वयं वक्तव्य इति प्रथमारकप्रभावजनित भग्नक्षेत्रभूमिसौभाग्यं सूचयितुमाह—'तीसेणं-इत्यादि । 'तीसेणं' तस्यां पूर्वोक्तायां खलु 'समाए' समायां सुपमसुपमायां 'भारहे-वासे वहवे' भरते वर्षे वहवः-अनेके 'उद्दाला कुद्दाला' उद्दालाः कुद्दालाः, 'कयमाला' कृतमालाः 'नट्टमाला दंतमाला नागमाला सिंगमाला सरत्त माला सेयमाला णामं' नृत्तमालाः दन्नमालाः नागमालाः शृङ्गमालाः शहमालाः श्वेत मालाः नाम

वें सूत्र से जान लेना चाहिये इन सूत्रोके पदो की व्याख्या हमने उनकी सुबोधिनी टीका में कर दी है "आसते शेरते" इत्यादि क्रिया पदो की व्याख्या इसी आगम के छठे सूत्र में की जा चुकी है । "शेरते" शब्द का अर्थ यद्यपि सोना होता है पर वहां यह अर्थ विवक्षित नहीं हुआ है क्यों कि देवों को निद्रा का अभाव रहता है इसलिये इसका अर्थ केवल यहा पर शय्या के ऊपर वे देव और देवियां अपने अपने शरीर को पसार कर लेट जाती है ऐसा ही "शेरते" इस क्रियापद का अर्थ किया गया है पर यह अर्थ यहां नहीं किया है क्यों की मनुष्यों में शय्या के ऊपर शरीर प्रसारण भी देखा जाता है और निद्रा लेना भी देखा जाता है इसलिये शेरते क्रियापद का अर्थ यहा पर "वे लेटते भी हैं और निद्रा भी लेते है" ऐसा ही करना चाहिये इस नीति के अनुसार कि गुरु के द्वारा जो कि शिष्यो के उपकार करने में ही परायण रहते हैं शिष्यजनों द्वारा अविजिज्ञासित भी विषय स्वयं बताना प्रकट करना चाहिये, अब सूत्रकार भारतक्षेत्र की भूमि के सौभाग्य को सूचित करने के लिए कहते हैं 'तीसे णं समाए भरहे वासे वहवे उद्दाला कु-

६७ भा सूत्र थी तेभ ७ म डपो अने पृथिवी शिलापट्टकोतु वषुंन ६८ भा सूत्रथी करवाभा आवेस छे आ सूत्रेना पदोनी व्याख्या तेनी सुबोधिनी टीकाभा करवाभा आवेस छे. "आसते शेरते" इत्यादि क्रियापदोनी व्याख्या आ ७ आगमना ६ सूत्रभा करवाभा आवेस छे "शेरते" शब्दो अर्थ ने के 'सुधनु' थाय छे, परंतु अही आ अर्थ विवक्षित नहीं केभ के देवो सूता नहीं ज्येथी आ शब्दो अर्थ इकत अही शय्यानी उपर ते देव अने देवीओ पोताना शरीर ने प्रसृत करी ने इकत देटे छे, अही "शेरते" क्रिया पद ने अर्थ मनुष्यना स'द'भा करवाभा आवेस छे ते इपभा करवाभा आवेस छे. मनुष्यो शय्या पर शरीरतु प्रसारण करे छे अने निद्राधीन पणु थाय छे. ज्येथी 'शेरते' क्रिया पदो अर्थ अही तेओ देटे पणु छे अने निद्राधीन पणु थाय छे. ज्येओ करवो नेछे ज्ये आ नीति सुज्ज शिष्येना उपकारमा रत शुद्ध शिष्यो वडे अविजिज्ञासित विषयना स'ण'धभा पणु जने यथा समय उपस्था करता रहे छे. ते सुज्ज इवे सूत्रकार भारतक्षेत्रनी भूमिना सौभाग्य ने सूचित करवा भाटे कडे छे—"तीसेणं समाए भरहे वासे

प्रसिद्धाः 'द्रुमगणा' द्रुमगणाः उत्तमवृक्ष जाति विशेषसमूहाः 'पण्णत्ता प्रज्ञप्ताः मया-
 5न्यैश्च तीर्थकरैः । ते च कीदृशाः ? इति जिज्ञासायामाह—'कुस-विकुसविसुद्धरुक्ख-
 मूला' कुश विकुशविसुद्धरुक्खमूलाः तत्र कुशाः-दर्भाःविकुशाः बल्वजादयस्तृणविशेषाश्चे-
 ति कुश विकुशास्तैर्विशुद्धं-रहितं वृक्षमूलं वृक्षाधोभागो येषां ते तथा, मूलमिह शाखा-
 दोना मपि आदिभागो लक्षणया गृह्यते, ततश्च सकलवृक्षमत्कमूलजापनायेह वृक्षपदमु-
 पात्तम् । तेन सर्वेऽपि वृक्षाः स्वस्वमूलेषु शाखा प्रशाखादि मूलेषु च कुशविकुशवर्जिता
 इत्यर्थः । पुनः कीदृशास्ते ? इत्याह—'मूलमंतो' मूलवन्त -अत्र प्रशस्तार्थे मतुप् प्रत्ययः
 तेन दूरावगाहप्रशस्तमूलयुक्ता इत्यर्थः एवमग्रेऽपि 'कंदमंतो जाव' कन्द वन्त यावत् या-
 वत्पदेन जगती वनगतवृक्षगणवत् सर्व विशेषणं ग्राह्यम् तदर्थश्च तत्सङ्गा द्वोध्वः, वृक्षव-
 वर्णनं च पञ्चमसूत्राद्वोध्यम् । क्रियदवधि विशेषणं वृक्षस्य संग्राह्यम्' इत्याह 'वीय-
 मंतो' वीजवन्तः प्रशस्तवीजयुक्ताः इति पर्यन्तम्, तथा 'पत्तेहिय पुप्फेहिय फलेहिय उ-

दाला ,कयमाला नट्टमाला दंतमाला, नागमाला, मिगमाला सखमाला, सेयमाला णाम दुमगणा प-
 ण्णत्ता" उस सुषम सुषमा काल में इस भारत क्षेत्र में अनेक उदाल, कुदाल, मोदाल, कृतमाल,
 वृत्तमाल, दन्तमाल, नागमाल, शृङ्गमाल शङ्गमाल और श्वेतमाल नामके प्रसिद्ध उत्तमवृक्ष जाति
 के उत्तम वृक्षों का समूह कहा गया है "कुस विकुस विसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो, कंदमंतो जाव
 वीयमंतो पत्तेहि य पुप्फेहि, फलेहि य उच्छण्णपडिच्छण्णा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठ
 ति" ये सब वृक्ष अपने अपने मूल भागों में और शाखा प्रशाखा आदि के मूल स्थानों में कुश
 और विकुशबल्वज आदि तृण विशेषों से रहित हैं । वृक्षों का जो अधोभाग होता है वह यहां
 मूल शब्द से गृहीत हुआ है । तथा लक्षणा से शाखादिकों का भी आदि भाग गृहीत हो जाता
 है तथा ये सब वृक्ष प्रशस्त मूल वाले हैं क्योंकि इनके मूल जड़े बहुत बहुत दूरदूर तक जमीन
 में गहरे गये हुए हैं । इसी तरह से ये सब वृक्ष प्रशस्त कन्दों वाले हैं यहां आगत यावत्

बहवे उदाला कुदाला कयमाला णट्टमाला, दंतमाला, नागमाला, सिगमाला, सखमाला,
 सेयमाला, णामं दुमगणा पण्णत्ता" आ सुषम सुषमा कालमा आ भारत क्षेत्रमा अनेक
 उदाल, कुदाल, मोदाल, कृतमाल, दन्तमाल, नागमाल, शृंगमाल, शंभमाल अने
 श्वेतमाल नामना प्रसिद्ध उत्तम वृक्ष जातिना उत्तम वृक्ष समूहो कळेणामा आवेल छे
 "कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो जाव वीयमंतो पत्तेहिय पुप्फेहि, फले-
 हि, य उच्छण्ण पडिच्छण्ण सिरीए अईव उवसोभेमाणा चिट्ठ ति" आ सर्व वृक्षो
 पोत पोताना भूण भागोमा अने शाखाप्रशाखा आदिना भूण स्थानोमा कुश अने विकु-
 शमल्वज वगेरे तृण विशेषोथी रहिन छेय छे वृक्षोना ने अधोभाग छेय छे ते अहा
 मूल शब्दथी गृहीत थयेल छे तेम न लक्षणाथी शाखादिकोना पद्य आदि भाग संगृ-
 हीत थर्ध नाथ छे तेम न आ सर्व वृक्षो प्रशस्त मूल वाणा छे केम के अभेनो मूलभाग
 अहु न छेय सुधी भूमिमा गयेला छे आ प्रमाणे आ सर्व वृक्षो प्रशस्त क हो वाणा
 छे. अही आवेल यावत् पद आ अतावे छे के नगती ना वनवृक्षोना वषुंन मा नेटला

चञ्चणपद्धिचञ्चणा' पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्च अवचञ्चन्न प्रनिचञ्चनाः व्याप्ताः 'सिरीए' श्रि
या-शोभया 'अडव २' अतीवातीव अतितराम् 'उचसोभेमाणा' उपशोभमानाः विराजमानाः
'चिद्वृत्ति' तिष्ठन्ति विधान्ते 'तीसेणं समाए भरहे वासे' तम्यां समायां सन्तु भरते वर्षे
भरतक्षेत्रे 'तत्थतत्थ' तत्र तत्र स्थले स्थले 'वहवे' वहूनि बहुसंख्यकानि मूले पुस्त्वं
प्राकृतत्वाद्बोधयम् 'भेरुतालवणा' भेरुतालवनानि भेरुतालाः वृक्षविशेषाः तेषां वनानि
एवं 'हेरुतालवणाइं मेरुतालवणाइं पमया लवणाइं सालवणाइं सरलवणाइं सत्तवणवणाइं
पूयफलिवणाइं खज्जूरीवणाइं णालिपरीवणाइं हेरुताल मेरुताल प्रभताल साल सरल
सप्तपर्णं पूगफली खज्जूरी नालिकेरीणां वृक्षविशेषाणां वनानि तानि च वनानि कीदृशानि ?
इत्याह—'कुसविकुस विसुद्धरुक्खमूलाइ' कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूलानि कुशविकुशवर्जितवृक्ष-

पद यह प्रकट करता है कि जगती के वन के वृक्षों के वर्णन में जितने विशेषण प्रशस्त वीज
विशेषणतक प्रयुक्त किये गये हैं वे सब ही विशेषण इन वृक्षों के वर्णन करने में यथा पर भी गृही-
त कर लेना चाहिये । वृक्षों का वर्णन पंचम सूत्रमें किया गया है तथा ये सब वृक्ष पत्रों से पुष्पों
से, और फलों से भरे हुए रहते हैं । इस कारण ये अपनी शोभा से बहुत अधिक रूप में सुहावने
है । 'तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ वहवे मेरुतालवणाइ, हेरुतालवणाइं मेरुतालवणाइं
पमयालवणाइं सालवणाइं सरलवणाइं सत्तवणवणाइं, पूयफलिवणाइं, खज्जूरीवणाइं, णालिपरीव-
णाइं, कुसविकुस विसुद्धरुक्खमूलाइं जाव चिद्वृत्ति' उसकाल में भारतवर्ष में जगह २ अनेक मेरु-
ताल-वृक्षविशेषके वन होते हैं, हेरुताल के वन होते हैं, मेरुताल के वन होते हैं, प्रभताल के वन
होते हैं, सालवृक्षोंके वन होते हैं, सरलवृक्षों के वन होते हैं, सप्तपर्णों के वन होते हैं, पूगफली
सुपारीके वृक्षों के वन होते हैं खज्जूरी-पिण्डखज्जूरी के वन होते हैं और नारियल के वृक्षों के वन होते
हैं । इन वनों में रहे हुए इन वृक्षों के नीचे का मृभाग कुश काश और विल्वादि लताओं से

विशेषणो प्रशस्त वीज विशेषणो सुधी प्रयुक्त करवाभा आवेल छे, ते सर्व विशेषणो आ
वृक्षोना वृक्षानमा अही पधु गृहीत करवा जेधं जे. वृक्षोनु वृक्षान पचम सूत्रभां करवाभा
आवेल छे तेम जे आ सर्व वृक्षो पत्रो, पुष्पो अने इणोथी अलंकृत रहे छे. जेथी आ
वृक्षो पधु जे सुद्ध शोभा स पन्न दीध गत थाय छे 'तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ
२ वहवे मेरुतालवणाइं, हेरुतालवणाइं, मेरुतालवणाइ, पमयालवणाइं, सालवणाइं,
सरलवणाइं सत्तवण वणाइं, पूयफलिवणाइं खज्जूरी वणाइं, णालिपरी वणाइं कुसवि-
कुसविसुद्ध रुक्खमूलाइं जाव चिद्वृत्ति' ते काणभा भारतवर्षभा ठेक ठेकाण्णि अनेक बेर
ताल-वृक्ष विशेष-ना वनो डोय छे हेरुतालना वनो डोय छे, मेरुतालना वनो डोय छे,
प्रभतालना वनो डोय छे सालवृक्षोना वनो डोय छे, सरलवृक्षोना वनो डोय छे, सप्तप-
र्णोना वनो डोय छे, पूगफली-सुपारी-ना वृक्षोना वनो डोय छे, खज्जूरी-पिण्डखज्जूरी-
ना वनो डोय छे. अने नारिकेलना वृक्षोना वनो डोय छे आ वनो भा आवेला वृक्षोनी
नीचोना भूमि भागो कुश-काश अने [पदादि लता जेथी सर्वा रक्षित डोय छे. आ वृक्षो
पधु प्रशस्त मूल वाणा डोय छे. प्रशस्त कंठवाणा डोय छे. धत्यादि इप थी जे जे विशेषणो

मूलसहितानि 'जाव चिद्वंति' यावत्तिष्ठन्ति । यावत्पदेन मूलवन्ति कन्दवन्तित्यादीनि उपरितनानि पदानि संग्राह्याणि । तथा 'तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ वहवे सेरियागुम्मा' तस्यां खल्ल समायां भरते वर्षे तत्र तत्र वहवः सेरिकागुल्माः—सेरिका-ऽऽख्यलता समूहाः 'णोमालियागुम्मा' नवमालिकागुल्माः नवमालिकालतासमूहाः एव 'कोरंटयगुम्मा' कोरण्टकगुल्मा 'बंधुजीवगुम्मा' बन्धुजीवकगुल्माः 'मणोज्जगुम्मा' मनोऽवघगुल्माः वीयगुम्मा' वीजगुल्मा 'वाणगुम्मा' वाणगुल्मा' नील क्षिण्टिकागुल्माः 'कणइरगुम्मा' कर्णिकारगुल्माः कर्णिकाराणां 'कणेर इति भाषा प्रसिद्धानां गुल्माः तथा 'कज्जयगुम्मा' कुब्जकगुल्मा कुब्जा वृक्षविशेषास्त एव कुब्जका तेषां गुल्मा 'सिंदु-

सर्वथा रहित होता है. ये वृक्ष भी प्रशस्त मूल वाले होते हैं, प्रशस्त कन्दवाले होते हैं- इत्यादि रूप से जो विशेषण अभी २ ऊपर में सम्राह्य कहे गये हैं वे सब विशेषण यहां इन वृक्षों के वर्णन में भी प्रशस्त बीजतक के विशेषणतक ग्रहण कर लेना चाहिये "तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ वहवे सेरियागुम्मा, णोमालियागुम्मा, कोरंटयगुम्मा, बंधुजीवयगुम्मा, मणोज्जगुम्मा, वीयगुम्मा वाणगुम्मा कणइरगुम्मा, कज्जयगुम्मा सिंदुवारगुम्मा, मोगगरगुम्मा, जूहियागुम्मा, मल्लियागुम्मा, वासतियागुम्मा, वत्थुलगुम्मा कत्थुलगुम्मा, सेवालगुम्मा, अगत्थिगुम्मा, मगदति-गुम्मा चंपकगुम्मा, जाईगुम्मा णवणोयगुम्मा कुंदगुम्मा, मडाजाइगुम्मा रम्मा, महामेहणिकुरंब-भूया दसद्धवणं कुसुमं कुसुमेति" उस कालमें भरतक्षेत्र में जगह जगह अनेक सेरिका नामकी लताओं के समूह होते हैं, नवमालिका नामकी लताओं के समूह होते हैं कोरण्ट नामकी लताओं के समूह होते हैं, बन्धु जीवक नामकी लताओं के समूह होते हैं मनोऽवघ नामकी लताओं के समूह होते हैं, वीजगुल्म होते हैं वाणगुल्म होते हैं । नीलक्षिण्टिका गुल्म होते हैं, कणेर के गुल्म होते हैं । कुब्जक के गुल्म होते हैं, वृक्ष विशेष का नाम कुब्ज है, सिन्दुरवार

इमं च ७ उपर स अहं करवाभा आवेत्ता छे ते सर्व विशेषणो अही' आ वृक्षेना वक्षुनमां येषु प्रशस्त णीअ सुधीना विशेषण सुधी अहं करवा जेधं अे "तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ २ वहवे सेरिया गुम्मा, णोमालिया गुम्मा कोरंटयगुम्मा, बंधुजीवयगुम्मा, मणोज्ज गुम्मा, वीजगुम्मा, वाणगुम्मा, कणइर गुम्मा, कज्जय गुम्मा, सिंधुवारगुम्मा, मोगगरगुम्मा जूहियागुम्मा मल्लिया गुम्मा' वासतिया गुम्मा, वत्थुल गुम्मा, कत्थुल गुम्मा, सेवाल गुम्मा, अगत्थि गुम्मा मगदतिया गुम्मा चंपक गुम्मा, जाई गुम्मा, णवणो यया गुम्मा कुंद गुम्मा महाजाइगुम्मा रम्मा, महामेहणिकुरंबभूया दसद्धवणं कुसुमं कुसुमेति' ते क्षेपे भरत क्षेत्रमा ठेठेठेठे वक्षी सेरिका नामनी लता अेना समूहो डोय छे नवमालिका नामनी लताअेना समूहो डोय छे कोरंट नामनी लताअेना समूहो डोय छे बन्धु जीवक नामनी लताअेना समूहो डोय छे मनोवघ नामनी लताअेना समूहो डोय छे णीअ शुद्धो डोय छे णाषु शुद्धो डोय छे. नीलक्षिण्टिका शुद्धो डोय छे. कणेरना शुद्धो डोय छे. कुब्जकना शुद्धो डोय छे. वृक्ष विशेषण नाम कुब्जक छे. सिंदु-

वारगुल्मा' सिन्दुवारगुल्माः 'मोगगरगुम्मा' मुद्गरगुल्माः वेली इति प्रसिद्धपुष्पविशेषगुल्माः 'जूहियागुम्मा' यूथिकागुल्माः जूहि' इति प्रसिद्धपुष्पविशेषगुल्माः 'मल्लियागुम्मा मल्लिकागुल्माः 'वासंतियागुम्मा' वासन्तिकागुल्माः 'वस्तुलगुम्मा' वस्तुलगुल्माः हरितवनस्पतिविशेषगुल्माः शारुविशेषगुल्मा वा 'कस्तुलगुम्मा' कस्तुलगुल्माः वनस्पति विशेषगुल्मा 'शैवालगुम्मा' शैवालगुल्माः 'अगस्त्यगुम्मा' अगस्त्यगुल्माः-अगस्त्यपुष्पगुल्माः 'मगदतियागुम्मा' मगदन्ति कागुल्माः-'चम्पगुम्मा' चम्पकगुल्माः 'जाईगुम्मा' जातीगुल्माः मालतीगुल्माः 'णवणीइयागुम्मा' नवनीतिकागुल्माः पुष्पप्रधान वनस्पतिविशेषगुल्माः 'कुन्दगुम्मा' कुन्दगुल्मा माद्यपुष्पविशेषगुल्मा 'महाजाइगुम्मा' महाजातीगुल्माः बृहन्मालतीगुल्माः ते च गुल्माः कीटशाः इत्याह 'रम्मा' रम्माः मनोहरा 'महामेढणिक्करवभूया' महामेढनिकुग्म्वभूता महान्तः साटोपा ये मेघास्तेपां निकुरम्बेन समूहेन भूताः सदशाः 'दसद्धवण' दशार्द्धवर्ण पञ्चवर्ण 'कुसुम' कुसुमं पुष्प पुष्पाणीति बोध्यम् जातावेकत्वात् 'कुसुमेति' कुसुमयन्ति उत्पादयन्ति कुसुमपदसमभिव्याहारे फलाशस्यात्रमोपात् कुसुमं कुर्वन्ति उत्पादयन्तीति हि तैस्यं त्रिवरणम् 'जे णं भरहे वासे बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं' ये गुल्माः खलु भरते वर्षे स्थितं बहुसमरमणीयम् भूमिभागम् 'वायविधुयगसालामुक्क

गुल्म होते हैं, मुद्गर वेली के गुल्म होने हैं यूथिका स्वर्णजूही के गुल्म होते हैं, मल्लिकालता के गुल्म होते हैं, वासन्तिकालता के गुल्म होते हैं, वस्तुल के गुल्म होते हैं, वस्तुल यह एक प्रकार की हरित वनस्पति का नाम है और यह शाक के काम में आती हैं वनस्पति विशेषरूप कस्तुल के गुल्म होते हैं शैवाल के गुल्म होते हैं, अगस्त्यपुष्प के गुल्म होते हैं, मगदन्तिका के गुल्म होते हैं, चम्पक के गुल्म होते हैं, मालती के गुल्म होते हैं पुष्पप्रधान वनस्पति रूप नवनीतिका के गुल्म होते हैं, माद्यपुष्पविशेषरूप कुन्द के गुल्म होते हैं एवं बृहत् मालती के गुल्म होते हैं। ये सब गुल्म बड़े सुन्दर होते हैं और आटोपयुक्त मेघ के समूह जैसे होते हैं तथा पांच वर्णों वाले पुष्पों को ये उत्पन्न करते रहते हैं "जे णं भरहे वासे बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुयगसाला मुक्कपुष्फ" ये गुल्म भारतक्षेत्र में स्थित बहुसमरमणीय भूमिभाग को वायु

वासेनां शुद्धो डोय छे. मुद्गर वेली ना शुद्धो डोय छे. यूथिका-स्वाणुं लुडीना शुद्धो डोय छे मल्लिका लतानां शुद्धो डोय छे वासंतिका लतानां शुद्धो डोय छे वस्तुलना शुद्धो डोय छे वस्तुल आ अके प्रकारनी हरित वनस्पति उ नाम छे. अने आ शाक अनाववाना विषयो ग मा आवे छे. वनस्पति विशेषरूप कस्तुलना शुद्धो डोय छे शैवालना शुद्धो डोय छे अगस्त्य पुष्पना शुद्धो डोय छे मगदतिकांना शुद्धो डोय छे. य पकना शुद्धो डोय छे मालतीना शुद्धो डोय छे पुष्प प्रधान वनस्पति रूप नवनीति काना शुद्धो डोय छे माद्य पुष्प विशेष रूप कुन्दना शुद्धो डोय छे. तेभन् अहत् मालतीना शुद्धो डोय छे. आ सर्व शुद्धो अतीव सुन्दर डोय छे अने आरोग्य युक्त मेघना समूह जेवा डोय छे तेभन् पांच वर्ण वाणा पुष्पाने आ सर्वे उत्पन्न करता रहे छे. "जे णं भरहे वासे बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं वायविधुयगसाला मुक्क पुष्फ०" जे शुद्धो

પુષ્પપુંજોવચારકલિયં' વાતવિધુતાગ્રશાલામુક્તપુષ્પપુઝ્જોપચારકલિતં વાતેન વાયુના વિધુ-
 તાઃ વિશેષેણ કમ્પિતાઃ યા અગ્રશાલા શાલાગ્રાણિ શાલાગ્રાણિ તાભિર્મુક્તઃ ત્યક્તો ય
 પુષ્પપુઝ્જઃ પુષ્પસમૂહઃ સ એવ ઉપચારઃ રચનાવિશેષસ્તેન કલિત-યુક્તં 'કરંતિ'કુર્વન્તિ
 અગ્રશાલા इत्यत्र आर्षत्वादग्र शब्दस्य पूर्वप्रयोगः तथा 'तीसेणं समाए भरहे वासे तत्थ
 तत्थ तर्हि तर्हि बहुइओ पउमलयाओ जाव' तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र
 तस्मिन्स्तस्मिन् देशे तत्र तत्र' तस्य तस्य देशस्यावान्तरदेशे वहव्य पद्मलता यावत्-यावत्प-
 देन 'नागलता अशोकलताः चम्पकलताः आम्रलताः वनलताः वासन्तिकलता अतिमुक्त
 कलता कुन्दलता इति संग्राह्यम् , तथा 'सामलयाओ' श्यामलताश्च प्रज्ञप्ता ताश्च कीदृश्य
 इत्याह-'णिच्चं कुसुमियाओ' नित्यं कुसुमिता 'जाव यावत् यावत्पदेन-नित्य मयूरिताः
 इत्यादय शब्दा अस्यैवागमस्याष्टमसूत्रतः संग्राहा इदमेव सूचयितुमाह 'लयावण्णओ'
 लतावर्णक इति । अथ भरतक्षेत्रवर्ति वनराजिं वर्णयति-'तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ
 तत्थ' तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे 'तर्हि तर्हि' तत्र तत्र-तस्य

સે કમ્પિત શાલાઓકે અગ્રભાગ સે ત્યક્ત હુપ પુષ્પસમૂહ સે યુક્ત કરતે રહતે હૈ । “તીસેણં સમાપ
 ભરહે વાસે તત્થ તત્થ તર્હિ તર્હિ બહુઈઓ પઝમલયાઓ જાવ સામલયાઓ ણિચ્ચ કુસુમિયાઓ જાવ
 લયાવણ્ણઓ” ડસ કાલ મેં ભરતક્ષેત્ર મેં જગહ જગહ સ્થાન સ્થાન પર અનેક પદ્મલતાઈેં હોતી હૈં,
 યાવત્ શ્યામલતાઈેં હોતી હૈં, યે સબ લતાઈેં સર્વદા, પુષ્પોં કો ઉત્પન્ન કરતી હૈં । યહાં યાવત્પદ
 સે “નાગલતા, અશોકલતા, ચમ્પકલતા, આમ્રલતા, વનલતા વાસન્તિકલતા, અતિમુક્તકલતા,
 ઔર કુન્દલતા ઇન સબ લતાઓ કા ગ્રહણ હુઆ હૈ । ઇન લતાઓ કે વિશેષરૂપ સે વર્ણન કો દેક્ષને
 કે લિયે ઇસી આગમ કા અષ્ટમ સૂત્ર દેક્ષના ચાહિયે, ઇસી સૂચના કે નિમિત્ત “જાવ લયાવણ્ણ-
 ઓ” ઈસા સૂત્રપાઠ સૂત્રકાર ને કહા હૈ ।

“તીસે ણં સમાપ ભરહે વાસે તત્થ તત્થ તર્હિ તર્હિ બહુઈઓ વણરાઈઓ પણ્ણત્તાઓ” ડસ
 કાલ મેં ભારતક્ષેત્ર મેં જગહ જગહ સ્થાન સ્થાન પર અનેક વનરાજિયાં કહી ગઈ હૈ યે વનરાજિયાં

ભરત ક્ષેત્રમાં સ્થિત બહુસમરમણીય ભૂમિભાગને વાયુથી કંપિત શાલાઓના અગ્રભાગથી
 વર્ષેલા પુષ્પોથી અલંકૃત કરતા રહે છે, “તીસેણં સમાપ ભરહે વાસે તત્થ તત્થ તર્હિ તર્હિ
 બહુઈઓ પઝમલયાઓ જાવ સામલયાઓ ણિચ્ચં કુસુમિયાઓ જાવ લયા વણ્ણઓ” તે કાળમાં
 ભરત ક્ષેત્રમાં ઠેક ઠેકાણે અનેક પદ્મલતાઓ હોય છે યાવત્ શ્યામલતા હોય છે. યે સર્વ
 લતાઓ સર્વદા પુષ્પોને ઉત્પન્ન કરે છે અહીં યાવત્પદથી નાગલતા, અશોક લતા, ચંપક
 લતા, આમ્ર લતા, વન લતા, વાસન્તિકા લતા, અતિમુક્તક લતા અને કુન્દ લતા આ સર્વ
 લતાઓનું ગ્રહણ થયું છે આ લતાઓના વિષે સવિશેષ જાણવા માટે યે જ આગમના
 આઠમાં સૂત્રનું અધ્યયન કરવું જોઈ યે સૂચના માટે ‘જાવ લયા વણ્ણઓ’ યેવો સૂત્રપાઠ
 સૂત્રકારે કરેલ છે

‘તીસેણં સમાપ ભરહેવાસે તત્થ ૨ તર્હિ તર્હિબહુ ઈઓ વણરાઈઓ પણ્ણત્તાઓ” તે કાલે
 ભરત ક્ષેત્ર માં ઠેકઠેકાણે ઘણી વનરાજિઓ હતી યેવું કહેવામાં આવે છે, યે વનરાજિઓ

तस्य देशस्यावान्तरदेशे 'बहुईओ' वद्वयः-बहुसंख्याः 'घणराईओ' वनराजयः- वन-
पंक्तयः 'पणत्ताओ' पन्नसाः, ताश्च कीदृश्यः ? इत्याह- 'किण्हाओ किण्होभासाओ जाव
रम्माओ' कृष्णाः कृष्णावभासाः यावद् रम्याः इति । कृष्णावभासा इत्यारभ्य रम्या इति
पर्यन्तानां पदानां वनराजिविशेषणवाचकानामत्र सङ्ग्रहो बोध्यः, तथाहि- नीलाः नी-
लावभासाः हरिताः हरितावभासाः शीताः शीतावभासाः स्निग्धाः स्निग्धावभासाः ती-
व्राः तीव्रावभासाः कृष्णाः कृष्णच्छायाः नीलाः नीलच्छाया हरिता हरितच्छायाः
शीता शीतच्छायाः स्निग्धाः स्निग्धच्छायाः तीव्राः तीव्रच्छायाः घनकटितटच्छायाः
महामेघनिकुरम्बभूता रम्या इति, व्याख्या पूर्वमेव पञ्चमसूत्रे कृता पद्मवरवेदिका वन-

'किण्हाओ किण्होभासाओ जाव रम्माओ, रयत्तगळ्ळप्य कोरटगभिगारग कोडळग जीवं जीवग
नंदीमुह क्विचिर्पिगळ्ळखग कोरडगवक्कायग कळइंसइसमारस अगेगसउगागामेदुग विचिग्या-
ओ" कृष्ण हैं और कृष्णरूप से ही इनका अवभास होता है यावत् ये बड़ी अच्छी सुहावनी
लगती हैं, यहा यावत्पद से यह प्रकट किया गया है कि कृष्णावभास पद से लेकर अन्तिम रम्य
पद तक जितने भी पद वनराजि के विशेषणरूप से वाचक है उन सब का यहा पर सग्रह
हुआ है वे पद इस प्रकार से है- "नीला, नीलावभासाः, हरिताः हरितावभासाः, शीता. शीताव-
भासाः, स्निग्धाः स्निग्धावभासाः, तीव्राः तीव्रावभासाः, कृष्णाः कृष्णच्छायाः, नीलाः नीलच्छाया',
हरिता' हरितच्छाया', शीता', शीतच्छायाः, स्निग्धा' स्निग्धच्छायाः, तीव्रा' तीव्रच्छायाः, घनकटित-
च्छाया', महामेघनिकुरम्बभूताः रम्या " इन पदो को व्याख्या पूर्व में पांचवें सूत्र में पञ्चवर वेदि-
का के वर्णन के प्रसङ्ग में कर दिया गया है । इन वनराजियो में पुष्पो की गंध में अनुरक्त हुए
उन्मादी मृक्क कहीं कहीं पर मन बनाते हुए नजर आते हैं तो कहीं पर कोरङ्कक नाम के पक्षि
विशेष चह चहाते हुए दिखाई पड़ते है कहीं पर मृङ्गारक कहीं पर कुंडलक, कहीं पर चकोर,

"किण्हाओ किण्होभासाओ, जाव रम्माओ, रयमत्तगळ्ळप्य कोरट गभिगारग कोडळगजीवं
जीवग नंदीमुह क्विल पिगळ्ळखगकोरडव वक्कवायग कळइंस इंस सारस अगेग सउणगण
मिहुणं विचिरियाओ" कृष्णु छे अने कृष्णुइपथी अवभासित थाय छे यावत् ओओ पृमञ्च
सोडाभछो लागे छे अडी यावत् पदथी आवात रुपट करनाभा आवी छे के कृष्णावभास
पदथी माडीने अतिम रम्य पद सुधी नेटला पदो वनराजिना विशेषणु इपमां आवेला छे
ते सर्वेनो अत्रे सग्रह थयेव छे तेमसमञ्जु ते पदो आ प्रभाछे छेः 'नीलाः नीलावभासा,
हरिताः, हरितावभासाः, शीताः, शीतावभासाः, स्निग्धाः, स्निग्धावभासाः तीव्राः, तीव्राव-
भासा, कृष्णाः, कृष्णच्छायाः, नीलाः नीलच्छाया, हरिताः, हरितच्छायाः, शीताः, शीत-
च्छाया, स्निग्धाःस्निग्धच्छायाः, तीव्राः तीव्रच्छाया, घनकटितटच्छायाः, महामेघनिकुर-
म्बभूताः रम्या " आ पदोनी व्याख्या पञ्चवर वेदिकाना प्रसंगमां य मां सूत्रमां करवाभां
आवी छे ओ वनराजिओमां पुष्पनी गंधमा अनुरक्त थयेव उन्मादी लुगे के। छे के। छे
स्थले शुभन करता देणाय छे तो के। छे के। स्थणे के। रटक नामना पक्षी विशेषो कलरव
करता देणाय छे. के। छे स्थणे लुंगारक, के। छे स्थणे कुंडलक, के। छे स्थणे अकार, के। छे स्थले

वर्णनप्रसङ्गे । तथा 'रय मत्तगच्छप्य कोरंटगभिगारग कोंडलगजीवञ्जीवग नन्दीमुख कविलपिङ्गलखग कारंडव चक्रवायग कलहसहंससारस अणेगसउणगणमिहुणवियरियाधो' रतमत्तक पटपदकोरङ्गकभृङ्गारककुण्डलकजीवञ्जीव नन्दीमुख कपिलपिङ्गलाक्षक कारण्डचक्रवाककलहंसहंससारसानेक शकुनगणमिथुनविचरिताः तत्र-रताः अनुरक्ता अत-एव मत्ताः-उन्मादिनो ये पट् पदाः-भ्रमराः, कोरङ्गराः पक्षिविशेषाः, भृङ्गारकाः पक्षिविशेषाः, कुण्डलकाः-पक्षिविशेषाः, जीवञ्जीवाः-चक्रोराः, नन्दीमुखाः-पक्षिविशेषाः कपिलाः-पक्षिविशेषाः, पिङ्गलाक्षकाः-पिङ्गलवर्णनेत्राः पक्षिणः कारण्डवाः-पक्षिविशेषाः चक्रवाकाः-'चक्रवा' इति भाषा प्रसिद्धाः, पक्षिणः, कलहंसाः-'वतक' इति प्रसिद्धाः, हंसाः प्रसिद्धाः, ते शकुनाः-पक्षिणः तेषां ये गणाः-समूहा-स्तेषां मिथुनेन युरमेन विचरिताः-इतस्ततः शाखाग्राच्छाखाग्रे कृतसंचाराः तथा 'सदुण्णइयमहुरसरणाडयाओ' शब्दोन्नदितनमधुरस्वरनादिताः उन्नदिता-पक्षिभिरुच्चैरुच्चारिता ये शब्दास्तेषां मधुरस्वरेण मधुरध्वनिना नादिताः ध्वनिताः तथा 'संपिडियदरिय भमरमहुकरि पहकर परिहित मत्त छप्पय कुसुमासवलोल महुरगुमगुमंतगुजंतदेसभागाओ' सम्पिण्डितदृप्त भ्रमर मधुकरीप्रकर परिलीयमानमत्तपट्पदकुसुमासवलोलमधुरगुमगुमायमानगुञ्जेशभागाः, सम्पिण्डिताः कुसुमासवपानार्थं परस्परसम्मिलिताः ये दृप्ताना-मदमत्तानां भ्रमराणां मधुकरीणां-भ्रमरीणां च प्रकाराः समूहास्तैः सह परिलीयमानाः श्लिष्यन्तः परिमिलन्तो ये मत्तपट्पदाः, त एव पुनः कुसुमासवलोलश्च पुष्परसाऽऽस्वादलोलुपाश्च तेषां मधुरं यथा स्यात्तथा गुमगुमायमानैः-गुमगुमेति मधुरभृङ्गसङ्गीतैः गुञ्जन्-मधुरमन्यक्तं शब्दायमानो देशभागो यासु तास्तथा, अत्र मधुरगुञ्जनं मधुकरवृत्त्यापि देशभागे

कहीं पर नन्दीमुख, कहीं पर कपिल तीतर, कहीं पर पिङ्गलाक्षक, पिङ्गल नेत्रो वाले पक्षी विशेष, कहीं पर कारण्डव जलकाक और कहीं पर चक्रवाल तथा कलहंस-वतख एव हंस अपनी अपनी घर वालियों के साथ वृक्षो की एक शाखा से दूसरी शाखाओं के ऊपर संचार करते हुए दृष्टिपथ होते हैं । इस तरह यह वनराजि इन पक्षियों के मधुर शब्दों से सदा ध्वनित होती रहती है । "संपिडियदरिय भमर महु परि पहकर परिहित मत्त छप्पय कुसुमासवलोल महुर गुम गुमंत गुजंत देसभागाओ" इन वनराजियों के प्रदेश जगह जगह के कुसुमो का आसव के पान करने के निमित्त परस्पर समिलित हुए मदोन्मत्त भ्रमरों एवं भ्रमरीओ के समूह के साथ साथ मिले हुए एव कुसुम

नदी सुभ डोर्ध स्थणे कपिल तीतर, डोर्ध स्थणे पिङ्गलाक्षक पिङ्गल नेत्रवाणु पक्षी विशेष डोर्ध स्थणे कारंडव जलकाक अने डोर्ध स्थणे चक्रवाक तेमळ कलहंस-वतक अने हंस पोतपोता नी भाडाओनी साथे वृक्षोनी ओकथी जील शाखाओ पर संयंत्रणु करता देभाय छे आ प्रभाषे आ वनराजि आ पक्षीओना मधुर शब्दोधी सर्वदा सुभरित रहे छे "संपिडियदरियभमरमहुपरिपहकर परिहित मत्त छप्पय कुसुमासवलोलमहुरगुमगुमायमानगुजंत देसभागाओ" आ वनराजिओना प्रदेशा कुसुमासवोना पान करवा माटे परस्पर समिलित थयेला मदमत्त भ्रमरो अने भ्रमरीओना समूहोनी साथे साथे ओकत्र थयेला

समारोपितम्, तथा 'अर्चिभतरपुष्पफलाओ' अभ्यन्तरपुष्पफलाः अभ्यन्तरे पुष्पफलः सम्भृताः, 'वाहिरपत्तोच्छण्णाओ' वहिः पत्रावच्छन्नाः वहिर्भागे संजातपत्रसमूहप्रच्छन्नाः 'पत्तेहि य पुष्पेहि य' पत्रैश्च पुष्पैः फलैश्च 'ओच्छन्न वलिच्छताओ' अवच्छन्न प्रतिच्छन्नाः—तर्वाथाऽऽच्छादिता, 'साउफलाओ' स्वादुफलाः—स्वादयुक्तफलसम्पन्नाः 'निरोययाओ' निरोगकाः—रोगरहिताः वृक्षचिकित्साशास्त्रप्रदर्शितरोगवर्जिताः शीतविद्युदातपादि जनितोपद्रवरहिता वा, तथा 'अकंटयाओ' अकण्टकाः कण्टकरहिताः 'णाणाविह गुच्छ गुम्ममंडवगसोहियाओ' नानाविध गुच्छ गुल्म मण्डपकशोभिताः—नानाविधैः—ग्रहुप्रकारैः गुच्छैः पुष्पस्तवकैः गुल्मैः—लताप्रतानैः मण्डपकैः—लतामण्डपैश्च शोभिताः, 'विचित्त सुहकेउ भूयाओ' विचित्र शुभकेतुभूताः—विचित्रशुभध्वजरूपाः, 'वावी

के आसंब पान से चंचल हुए मत्त अन्य और पट्टपदों के गुम गुम मधुर सगीत से शब्दायमान होते रहते हैं। "अर्चिभतरपुष्पफलाओ वाहिरपत्तोच्छण्णाओ पत्तेहि य पुष्पेहि य ओच्छन्नवलिच्छताओ, साउफलाओ निरोययाओ अकंटयाओ णाणाविहगुच्छगुम्ममंडवगसोहियाओ" ये वनराजियां भीतर में तो पुष्प और फलों से लदो हुई है और बाहर में पत्रों के समूह से आच्छादित हो रही है इनके फल मधुर रस से भरे हुए हैं इनमें किसी भी प्रकार का रोग नहीं है अथवा यहां किसी भी प्रकार का रोग नहीं रहता है वृक्षचिकित्साशास्त्र में जो रोग कहे गये हुए हैं वे रोग यहां के वृक्षों में नहीं हैं उन रोगों से यहां के वृक्ष रहित हैं, अथवा शीतजन्य, विद्युत्पातजन्य एव आतप आदि जन्य उपद्रवों से ये वृक्ष सर्वथा रहित हैं। यहां कांटो का तो नाम नहीं है, ये वनराजिया नाना प्रकार के पुष्प स्तवकों से पुष्पों के गुच्छों से गुल्मों से, लता प्रतानों से, और लता मण्डपों से शोभित हैं। "विचित्त सुहकेउभूयाओ वावी पुक्खरिणी दीहिया सुनिवेशियरम्मजालहरयाओ, पिण्डिमणीहारिम, सुगंधि सुहसुरभिमणहरं च महया गंधद्वाणि सुयंताओ सव्वोउयपुष्प-

तेभञ्ज कुसुभासव पानथी अथय थयेह मडभत्त ओञ्ज पट्टपदोना मधुर शु जन स गीतथी शब्दायमान थता रहे छे "अर्चिभतरपुष्पफलाओ वाहिरपत्तोच्छण्णाओ पत्तेहियपुष्पेहिय ओच्छन्न वलिच्छताओ, साउफलाओ, निरोययाओ अकंटयाओ णाणाविह गुच्छ गुम्म मंडवगसोहियाओ" ये वनराजियो अहर तो पुष्पो अने कणोथी युक्त छे अने अहार पत्रोना समूहोथी आच्छन्न छे ओभना कणो मधुर रसोथी युक्त छे. ओभनामा केह पञ्च भतेना रोग नथी अथवा अही केह पञ्च भतना रोगत्त अस्तित्व न नथी. अथवा वृक्षचिकित्सा शास्त्र मा जे रोगोत्त वरुन छे ते रोगो अही ना वृक्षोमा नथी अर्थात् अहीना वृक्षो ते सर्व रोगोथी रहित छे अथवा शीत जन्य विद्युत्पातजन्य अने आतप आदि जन्य उपद्रवोथी ओ वृक्षो सर्वथा हीन छे अही कांटोओत्त तो अस्तित्व न नथी ओ वनराजियो अनेक भतना पुष्पस्तवकोथी-पुष्पोना गुच्छोथी शुभोथी लता प्रतानोथी अने लता मण्डपोथी सुशोभित छे. "विचित्त सुहकेउभूयाओ, वावी पुक्खरिणी दीहिया सुनिवेशिय रम्मजालहरयाओ, पिण्डिमणीहारिम, सुगंधि सुहसुरभिमणहरं च महया गंधद्वाणि सुयंताओ सव्वोउय पुष्पफलसमिद्धाओ सुरम्माओ पासाइयाओ, वरि

पुष्करिणी दीहिया सुनिवेशिय रम्मजालहरयाओ' वापीपुष्करिणी दीर्घिका सुनिवेशितरम्यजालगृहकाः, तत्र-वाप्यः-चतुष्कोणाः, पुष्करिण्यः-वाप्य एव वृत्ताकाराः, दीर्घिकाः-ऋजुसारिण्यः, तासु सुनिवेशितानि-सृष्टु स्थापितानि रम्याणि-रमणीयानि जालगृहकाणि-सच्चिद्रगवाक्षा यासु ताः, 'पिण्डिमणोहारिमं' पिण्डमनिहारिमां-पिण्डिमां मिलितां सतो निर्हारिमां शुभपुद्गलसमूहरूपेण दूरदेशगामिनोम् 'सुगन्धि' सुगन्धि-शोभनगन्धवतोम्, तथा 'सुह सुरभिमणहरं च' शुभसुरभिमनोहराम्-शुभः-प्रशस्त यः सुरभिः शोभनो गन्धस्तेन मनोहारिणोम्, 'महया गन्धघ्राणि' महागन्धघ्राणि महती चासौ गन्धघ्राणिः-गन्ध एव घ्राणि तृप्ति. तद्धेतुत्वात् गन्धघ्राणि स्तां तथा महागन्ध-तृप्तिम् 'सुयंताओ' सुश्रन्त्यः-प्रसारयन्त्य. तथा 'मन्त्रोत्पपुष्पफल्परमिद्धाओ' सार्वर्तु-कपुष्पफलसमृद्धाः-सकलऋतुत्पन्नपुष्पफलैः समृद्धाः-सम्पन्नाः 'सुरम्माओ' सुरम्याः-अति रमणीयाः, 'पासाइयाओ' प्रासादीयाः-दर्शकाना हृदयप्रसादकराः, 'दरिसणिज्जाओ' दर्शनीयाः, द्रष्टु योग्या, 'अभिरूवाओ' अभिरूपाः-सर्वथा दर्शकजनमनोनयनहारिण्यः 'पडिरूवाओ' प्रतिरूपाः-असाधारण रूप युक्ताश्च सन्ति इति ॥सू०२२॥

फल समिद्धाओ सुरम्माओ पासाइयाओ, दरिसणिज्जाओ, अभिरूवाओ पडिरूवाओ' ये वनराजियां देखने वालों को ऐसी प्रतीत होता है कि मानो ये विचित्र प्रकार की अच्छी ध्वजाएँ सी ही हैं । इन में जो वापिकाएँ है चौकोर बावड़िया है, गोल आकार वाली पुष्करिणियां हैं तथा दीर्घिकाएँ है इन सब के ऊपर सुन्दर सुन्दर जालगृह स्थापित है, छिद्रों सहित गवाक्षों का नाम जालगृह है, ये वनराजियां ऐसी गन्ध घ्राणि को-जिससे मनुष्यों को तृप्ति हो जावे ऐसी सुगन्धि को-छोड ती रहती हैं यह गन्ध घ्राणि उन वनराजियों में से अल्प मात्रा के रूप में निकलती है किन्तु पिण्डित होकर के निकलती है और निकलकर वह बहुत दूर दूर तक चली जाती है इसकी जो वास होती है वह मनोहर होती है, इन वनराजियों में सर्वऋतुओ के पुष्प एव फूल लगे रहते हैं अतः ये उनसे सदा समृद्ध रहती हैं, ये सब वनराजिया अति रमणीय हैं, दर्शकजनो के हृदयों को प्रसन्न करनेवाली हैं, दर्शनीय-हैं देखने योग्य हैं, देखने वालों के मन और नयनों को हरण करने वाली हैं, और असाधारणरूप से युक्त हैं ॥ २२ ॥

सणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ" ये वनराजियो जेनाराजोने ओवी लागे छे ते जखे ओओ विचित्र प्रकारनी सारी ध्वजओओ डोय' ओमां ओ वापिकाओ छे-यार भूषा वाणी वावे छे गोल आकारवाणी पुष्करिणीओ छे. तेमओ दीर्घिकाओ छे ओ सर्वनी उपर सुन्दर सुन्दर जाल गृहो स्थापित छे छिद्रोवाणा गवाक्षो जालगृहो कडेवाय छे ओ वन राजियो मनुष्योने तृप्ति थाय तेवी शुभ'धिने-गन्धघ्राणिने ओभेर प्रसन्न करती रहे छे ओ घ्राणि ते वनराजियो भाधी अल्पमात्रामा पिण्डित यत्रने नीकणे छे अने नीकणी ने ते जहुन दूर सुधी जाती रहे छे ओमनी ओ वास डोय छे ते मनोहर डोय छे ओ वनराजियोमा सर्वऋतुओना पुष्पो तेमओ कुणो सर्वदा रहे छे ओथी ओओ तेमनाथी सदा समृद्ध रहे छे ओ सर्व वनराजियो अतिरमणीय छे दर्शकाना हृदयोने प्रसन्न करनारी छे, दर्शनीया छे, दर्शकाना मन अने नयनोने आकर्षनारी छे अने असाधारण रूपी युक्त छे. ॥२२॥

अथात्र वृक्षाधिकारात्कल्पवृक्षवक्षस्वरूपमाह

मूलम्— तीसेणं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं मत्तंगाणामं दुमगणा पण्णत्ता. जहा से चंदप्पभा जाव ओच्छण्ण पडि-
च्छण्णा चिट्ठंति, एवं जाव अणिगणाणामं दुमगणा पण्णत्ता ॥सू० २३॥

छाय—तस्यां खलु समाया भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तस्मिन् तस्मिन् मत्ताङ्गा नाम
दुमगणाः प्रज्ञप्ताः यथा ते चन्द्रप्रभा यावत् अवच्छन्न प्रतिच्छन्नास्तिष्ठन्ति, एव यावत्
अनग्नका नाम दुमगणाः प्रज्ञप्ताः ॥२३॥

टीका—‘तीसे णं समाए भरहे’ इत्यादि । ‘तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ
तत्थ देसे तहिं तहिं’ तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तस्मिन् तस्मिन्
तस्य तस्य देशस्यावान्तरभागे ‘मत्तंगा’ मत्ताङ्गाः मत्तं—मदो हर्षः, तत्कारणभूतः, पेय-
पदार्थ इह मत्त शब्देनोच्यते, तस्य अङ्गकाः—हेतुभूताः, अथवा मत्तम्—आनन्दजनकं
पेयवस्तु तदेव अङ्गम्—अवयवो येषां ते तथा आनन्दप्रदपेयपदार्थदायिनो ‘णामं दुमगणा
नाम दुमगणाः—वृक्षसमूहाः ‘पण्णत्ता’ प्रज्ञप्ताः ते कीदृशाः ! इति जिज्ञासायामाह—
‘जहा से चंदप्पभा जाव ओच्छण्णपडिच्छण्णा चिट्ठंति’ यथा ते चन्द्रप्रभा यावत् छन्न-

अव सूत्रकार वृक्षाधिकार को लेकर कल्पवृक्षों के स्वरूप का कथन करते हैं—

“तीसेणं समाए भरहे वासे” इत्यादि ।

टीकार्थ—“तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं मत्तंगा णामं दुमगणा पण्णत्ता’
उस सुषम सुषमा नामके आरक में भारतक्षेत्र में जगह जगह उन स्थानों में मत्तांग नामके कल्पवृक्ष ये
यहां मत्त शब्द से हर्ष का कारण भूत पदार्थ छिया गया है उस हर्ष के कारण भूत पदार्थ को
देने में जो हेतुभूत होते हैं वे यहा मत्ताङ्ग शब्द से कहे गये है अथवा आनन्द जनक जो पेयव
स्तु वही वस्तु जिनकी अवयव है—अर्थात् आनन्द प्रद पेय पदार्थ को देने के स्वभाववाले जो दुम
गण हैं—वृक्ष समूह हैं वे मत्ताङ्गशब्द से कहे गये हैं । “जहा से चंदप्पभा जाव ओच्छण्ण पडिच्छ-

हवे सूत्रकार वृक्षाधिकारने लई ने कल्पवृक्षोंना स्वरूपनु कथन करे छे—

“तीसेणं समाए भरहेवासे तत्थ २ देसे तहिं २ मत्तंगा णामं दुमगणा पण्णत्ता’
इत्यादि सूत्र-२३)

टीकार्थ—ते सुषम सुषमा नामना आरकमां भारतक्षेत्रमां ठेक ठेकाछे ते स्थानोमां मत्तांग
नामना कल्पवृक्षो हता अही मत्त शब्दथी हर्षना कारणभूत पदार्थ अहर्ष करवामां आवेक
छे. ते हर्षना कारणभूत पदार्थ ने आपनामां ने हेतुभूत होय छे ते अही मत्तांग
शब्दथी कहेवामां आव्या छे अथवा आनन्द जनक ने पेयवस्तु छे ते वस्तु नेमना अव
यवो छे जेतहे के आनन्द प्रद पेय पदार्थने आपनारा ने दुमो छे—वृक्ष समूहो छे ते
मत्तांग शब्दथां गृहीत थयेला छे “जहा से चंदप्पभा जाव ओच्छण्ण पडिच्छण्णा चिट्ठंति”
आ पाठने स्पष्ट रूपथी समन्वा माटे यावत् पद वडे ने पाठ स गृहीत थयेला छे, पहेलां
तेने प्रजट करवां मां आवे छे. ते पाठ आ प्रभाछे छे: “जहासे चंदप्पभामणि सिलागावर-

प्रतिच्छन्नास्तिष्ठन्ति । अत्र यावत्पदेन्—‘जहा से चन्दप्पभामणिसिलाग वरसीधुवर वारुणि सुजाय पत्तपुप्फफल चोयणिज्जा ससार बहुद्व्वजुत्ति संभार काल संधि आसवा महु- मेरगरिट्टाभदुद्धजाति पसन्नतल्लगसताउर खज्जूरियमुद्धियासारका विसायण सुपक्क खोयरस- वर सुरा वण्णगंधरस फरिसजुत्ता बलवीरियपरिणामा मज्जविही बहुप्पगारा तहेव ते म- चंगा वि दुमगणा अणेग बहु विविहवीससापरिणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा वीसंदति कुसविकुस विसुद्धरुक्खमूला जाव पत्तेहिं च पुप्फेहिं च फलेहिं च ओच्छन्नप- ङ्किच्छन्ना चिट्ठंति’ इति संग्राहम् । एतेषां छाया—

यथा ते चन्द्रप्रभा मणिशिलिकावरसीधुवरवारुणी सुजात पत्र पुष्पफलचोय नि- र्यास सार बहुद्रव्य युक्ति सम्भा’ सन्धि आसवा मधुमेरकरिष्ठाभा दुग्ध जाति प्रसन्ना तल्लकशतायुः खर्जूरी मृद्धीकासार कापिशायन सुपक्कक्षोदरसवरसुराः वर्णगन्धरसस्पर्श- युक्ताः बलवीर्यपरिणामाः मद्यविधयो बहुप्रकाराः तथैव ते मत्तङ्गा अपि दुमगणाः अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन मद्यविधिना उपपेताः फलेषु पूर्णाः विष्यन्दन्ते. कुशवि कुशविशुद्ध वृक्षमूलाः यावत् पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्च अवच्छन्न प्रतिच्छन्नाः तिष्ठन्ति ।

ण्णा चिट्ठंति’ इस पाठ को स्पष्टरूप से समझने के लिये यावत् पद द्वारा जो पाठ गृहीत हुआ है पहिले उसे प्रकट किया जाता है वह पाठ इस प्रकार से है—‘जहा से चंदप्पभा मणि सिलाग वर सीधुवरवारुणि सुजाय पत्तपुप्फ फलचोयणिज्जा ससार बहुद्व्वजुत्तिसभार काल संधि आसवा महुमेरगरिट्टाभदुद्धजाति पसन्न तल्लग सताउ खज्जुरिय मुद्धियासारका विसायण सुपक्कखोय- रस वर सुरा वण्णगंधरसफरिसजुत्ता बलवीरियपरिणामा, मज्जविही बहुप्पगारा तहेव ते मचं- गा वि दुमगणा अणेग बहु विविहवीससा पविणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा वीसं दंति, कुसविकुस विसुद्ध रुक्खमूला जाय पत्तेहिं च पुप्फेहिं च फलेहिं च ओच्छन्नपङ्किच्छन्ना चिट्ठंति’ चन्द्रप्रभा, मणिशिलिका, उत्तममद्य एवं वरवारुणी ये सब मादक रस विशेष हैं ये सब सुपरिपाकगत पुष्पों के फलों के एव चोय इस नामके गन्धद्रव्य विशेष के रस से बनाये जाते हैं तथा इनमें शरीर को पोषण करने वाले द्रव्यों का मेल रहता है, इसी प्रकार से अनेक प्र- कार के आसव (नशा करने वाला) भी बनाये जाते हैं जो अपने अपने समय में आसवोत्पादक

सीधु वरवारुणि सुजाय पत्त पुष्पफल चोयणिज्जा ससार बहुद्व्वजुत्ति संभारकाल संधि आसवामहुमेरगा रिट्टाभदुद्धजातिपसन्न तल्लग सताउखज्जुरिय मुद्धिया सारका विसायण सुपक्कखोय रसवर सुरा वण्णगंधरसफरिसजुत्ता बलवीरिय परिणामा मज्जविही बहुप्प गारा तहेव ते मचंगा वि दुमगणा अणेग बहुविविह वीससा परिणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा वीसंदंति, कुसविकुसविसुद्धरुक्खमूला जाव पत्तेहिं च पुप्फेहिं च फलेहिं च ओच्छन्नपङ्किच्छन्ना चिट्ठंति’ चन्द्रप्रभा मधु शिक्षा उत्तममद्य तथा वरवारुणी ये सर्वे मादक रस विशेषे छे आसवे’ सुपरिपाकगत पुष्पों के आसवों के नामके गन्धद्रव्य विशेषना रसोभाथी बनाववाभां आवे छे, तथा अनेकां भा शरीरने पुष्ट करीरा द्रव्योंके अन्निश्रव्य रहे छे. आ प्रभासे अनेक जतना आसवो’ पक्षु तैयार करवाभा आवे छे ये

इदं सङ्केतवाक्यमपरेष्वपि वक्ष्यमाणं द्रुमगणेऽपृथनीयम् । व्याख्या चंचम्—यथा—येन प्रका-
रेण ताः चन्द्रप्रभा मणिशिलिका वरसीधु वग्धारुणोमृजात पत्रपुष्पफलचोयनिर्यास सार
बहुद्रव्य युक्ति सभारकालसन्धिजासवाः—तत्र—चन्द्रस्येव प्रभा—कान्तिः यस्याः सा तथा,
मणिशिलिका—मणिशिलैव मणिशिलिका सैव तथा, वरसीधु वरं परमं सीधु—मद्यं, वर वारु-
णी—उत्तमवारुणी, सुजातपत्रपुष्पफलचोयनिर्याससाराः सुजातानां सुपरिपाकागतानां पु-
ष्पाणां फलानां च चोयस्य तदाख्यगन्धद्रव्यविशेषस्य च निर्यासः रसः तेन साराः, तथा
बहुद्रव्ययुक्ति सम्भाराः बहूनां द्रव्याणां—रस वर्धकानां या युक्तयः मेलनानि तासां सम्भा-
रः—समूहो येषु ते तथा कालसन्धि जासवाः काले स्व स्वोचितकाले सन्धिजासवाः आ-
सवाद्भूतद्रव्यमेलनजनितमद्यानि तत पदद्वय पदद्वय सम्मेलनेन कर्मधारयसमासः तथा
मधुमेरकरिष्टाभादुग्धजाति प्रसन्नातल्लकशतायु. खर्जूरो मृद्धीकासार कापिशायन सुपक्व-
क्षोदरसवरसुराः तत्र मधु—मद्यविशेषः, मेरकं मद्यविशेषः रिष्टाभा गिष्टरत्नवर्णा जम्बूफलक-
लिकैति प्रसिद्धा, दुग्धजातिः आस्वादतो दुग्धसदृशी प्रसन्ना—सुराविशेषः तल्लकः सुराविशे-
षः, शतायुः—शतकृत्वः शोधिताऽपि स्व स्वरूपा परित्यागिनी सुराः खर्जूरी मृद्धीकासारः
खर्जूरद्राक्षयोः सारः कापिशायनं—मद्यविशेषः, सुपक्वक्षोदरसवरसुराः सुपक्वः सम्यक्परिपा-
कप्राप्तो यः क्षोदरसः सुरोत्पादकचूर्णमिलितैक्ष्वादिरसः तन्निष्पन्नाः वरसुरा सर्वेषां पदा-
नां कर्मधारयः, एतेच मद्यविधय मद्यप्रकारा वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्ता विशिष्टेन वर्णेन गन्धेन

द्रव्यों के मेल से निष्पन्न होते हैं तथा मधु मेरक, आदि ये भी मद्य जाति के विशेष प्रकार हैं
इनमें मधु और मेरक ये मादक पदार्थों के संयोग से बनाये जाते हैं रिष्टाभा नाम की शराब
जामुन के फलो से तैयार की जाती है, दुग्ध जाति की जो शराब होती है वह स्वाद में दुग्ध
जैसे स्वादवाली होती है प्रसन्ना और तल्लक यह भी एक प्रकार की विशेष शराब होती है सोबा
र शोधित हो जाने पर भी जो अपने स्वरूप का परित्याग नहीं करती है उस शराब विशेष का
नाम शतायु है खर्जूर और दाखो के रस से जो शराब बनाई जाती है उसका नाम खर्जूरी मृद्ध
का सारा है इसी प्रकार एक शराब ऐसी भी होती है जो इक्षु के रस को पकाकर के उससे
तैयार की जाती है और इसमें सुरोत्पादक चूर्ण मिलाया जाता है । इन सब सुराविशेषों का वर्ण

यथा समये आसवेत्पादकं द्रव्येना सांभ्रमश्लथी निष्पन्नं होय छे तेभ्य मधुमेरक वगेर
ये येषु भवन्तिना विशेष प्रकारे छे आभा मधु अने मेरक ये मादक पदार्थाना संये
गमां निष्पन्नं थाय छे रिष्टाभा नामक शराब जामुना क्षणोथी तैयार करवामा आवे छे.
दुग्धजातिनी के शराब होय छे ते स्वादभा दूध जेवी स्वादवाणी होय छे. प्रसन्न अने तल्लक
आ येषु येक प्रकारनी शराब शेष छे सो वधत शोधितथर्धन्व छता ये के पीताना स्व
रूप ने यथावत राणे छे ते शराब विशेषतु नाम शतायु छे. भजूर अने द्राक्षाना रसथी
के शराब तैयार करवामा आवे छे तेतु नाम खर्जूरी मृद्धीकासार छे आ प्रभाये येक
शराब जेवी येषु होय छे के के धक्षुना रसने यकवी ने तेनाथी तैयार करवामा आवे छे
अने तेभा सुरोत्पादकं चूर्णं मिश्रित करवामा आवे छे. आ सर्व सुरा विशेषेना येषु गन्ध रस
२६

रसेन स्पर्शेन च युक्ता सम्पन्ना तथा बलवीर्यपरिणामा बलं शारीरिक शक्तिः वीर्यं पराक्रमः इत्युभे परिणमयन्तीति तथा बलवीर्यकारका इत्यर्थः तथा बहुप्रकारा अनेकविधाश्च सन्ति तथैव तेनैव प्रकारेण ते—पूर्वोक्ता मत्ताङ्गा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन अनेक व्यक्तिभेदात् सचासौ बहु विविध—बहु प्रचुरं यथा स्यात्तथा विविध जातिभेदान्ना- नाविध विस्रसारपरिणतः—विस्रसया—स्वभावेन परिणतः—जातः न पुन केनापि कृतश्चेत्ति अनेक बहुविविधविस्रसापरिणतस्तेन तथाप्रकारेण मद्यविधिना माद्यन्ति—हृष्यन्ति अने- नेति मद्यम्—आनन्दप्रदपेयपदार्थः 'मदीहर्षे' इति धातोः, गदमदचर (पा० ३।१।१००) इति यत्प्रत्ययः, तस्य विधिः प्रकार स्तेन आनन्दप्रदपेय प्रकारेणेत्यर्थः उपपेता युक्ता ते च तालादि तख इव नाङ्कुरादिषु पेयप्रकार युक्ताः किन्तु फलेषु, इत्येव दर्शयितुमाह—'फ लेर्हि' इति । मूले तृतीया सप्तम्यर्थे प्राकृतत्वात्, तेन फलेषु— फलावच्छेदेन पूर्णा तै- रानन्दप्रदपेयपदार्थैर्भृता सन्तो निष्पन्दन्ते स्रोतोरूपतया बहन्ति निर्झरवत् । अयं भावः- तेषां द्रुमगणानां परिपक्वः स्फुटितफलेभ्यः आनन्दप्रदपेयरसा निर्झरन्तीति । ते द्रुमगणा- पुनः कीदृशा ? इत्याह कुशविकुशविशुद्धवृक्षमूला दर्भवल्जजादि रहिताधोभागा यावत् यावत्पदेन मूलवन्तः, कन्दवन्तः स्कन्धवन्तः इत्यादय पञ्चमसूत्रोक्ता संग्राह्या, अर्थोऽपि एव बोध्यः । तथा पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्च अवच्छिन्न प्रतिच्छिन्नाः सर्वथाऽऽच्छादिताः तिष्ठन्तीति । एते द्रुमगणास्तु युगलिजनेभ्य पेयपदार्थ वितरन्तीतिबोध्यम् । अत्रदं बो-

गन्ध, रस और स्पर्श विशिष्ट प्रकार का हो जाता है और ये सेवित किये जाने पर शरीर में बल एवं वीर्य के उत्पादक होते हैं और ये अनेक प्रकार के होते हैं । तो जिस प्रकार ये लोग प्रसिद्ध चन्द्रप्रभा आदि सुराये होती है उसी प्रकार से मत्ताङ्ग जाति के द्रुमगण भी स्वतः स्वभाव से अनेक प्रकार के अमादक पदार्थों के रूप में परिणत हो जाते हैं इनका यह ऐसा परिणमन तालादि वृक्षों में जैसा उनके अङ्कुरादिकों में होता हुआ देखा जाता है वैसा इनमें नहीं देखा जाता है किन्तु जब इनके फल पकजाते हैं और वे फुटते हैं तब उनमें से निर्झर की तरह रस झर ने लगता है और उसे पीकर वहा के लोग आनन्द की मस्ती में डुबने लगते हैं इन वृक्षों के अधो- भाग कुश और विल्वादि तृणों से रहित होते हैं जो मनुष्य इनके पास जाकर जिस मादकपदार्थ-

अने स्पर्श विशिष्ट प्रकारना होय छे, अने ज्येभना सेवनथी शरीरमा णण अने वीर्यं तु उत्पादन थाय छे ज्ये धष्णी प्रकारनी होय छे, ज्येभ दोक प्रसिद्ध अन्द्रप्रभा वगेरे सुराज्यो होय छे तेमज मत्ताग जातिना द्रुमगण्य पण स्वतः स्वभावथी अनेक प्रकारना अमादक पदार्थाना रूपमा परिणत थर्ष णय छे ज्येभनु आ ज्येवु परिणमन अङ्कुरादिठेना रूपमा तालादि वृक्षोभां ज्येर्ष शक्य छे तेवुं नथी परंतु ज्येभना इदो परिपक्व थर्ष णय छे अने ते इठे छे त्यारे तेमनामाथो निर्झरनी ज्येभ रप्र निर्युत थवा लागे छे, अने ते रसतु पान करीने त्यांना दोकै आन इनी मस्तीमा तरणोण थर्ष णय छे आ वृक्षोना अधो भागो कुश अने विल्वादि तृणोथी विहीन होय छे, जे माणुस आ वृक्षोनी पासे ज्येभने जे मादक

ध्यम् मद्यपानं हि निश्चयतो दुर्गतिजनकं सुषमसुषमाकालवर्तिनो युगलिनस्तु निश्चयत
सुगतिगामिनः । अतो मत्ताङ्गका वृक्षा अमादकान् अमृतमयान् आनन्दप्रदरसविशेषानेव
निष्पन्दयन्ति न तु सुराविशेषान् । सादृश्यं तु वर्णसाम्येनेति । एते द्रुमगणास्तु युगलि-
जनेभ्यः पेयपदार्थं वितरन्तीति बोध्यम् । 'एवं' एवम् अनेन प्रकारेण मत्ताङ्ग द्रुमग-
णवत् 'जाव अणिगणा णाम दुमगणा पण्णत्ता' यावत् अनग्नका नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः
इति । अत्र यावत्पदेन ये द्रुमगणाः सगृह्यन्ते तद्वर्णनप्रकार एवं बोध्यः । तथाहि 'तीसेणं
समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तहि तहि बहवे भिंगंगा णामं दुमगणा पण्णत्ता सम-
णाउसो जहा से वारग घडग कलस करग कक्करिपायचणिउदंक्वद्धणिसु पडद्वगविट्टर-

की चाहना करता है वे वृक्ष उसी रूप में स्वतः स्वभाव से परिणत हो जाते हैं और याचक-
जनों की उस चाहना को शान्त कर देते हैं, इस विषय में विशेष खुलाशा रूप से पाठ-
गत पदों को व्याख्या पूर्वक कथन हमने जीवाभिगम सूत्र की प्रमेयद्योतिका टीका में किया
है, तात्पर्य इस कथन का केवल इतना ही है कि युगलिकजनो को ये द्रुमगण जैसा पेय पदार्थ
वे चाहते हैं वैसा ही पेय पदार्थ प्रदान करते रहते हैं वैसा देखा जाय तो मद्यपान दुर्गतिका
जनक होता है और सुषमसुषमा कालवर्ती युगलिक जन नियम से सुगतिगामी होते हैं अतः ये
मत्ताङ्गक वृक्ष अमादक अमृतमय ऐसे आनन्दप्रद रसविशेषों को ही बहाते रहते हैं सुराविशेषों
को नहीं, परन्तु यहां जो सुराविशेषों के साथ इन्हे उपमित किया गया है वह इनके वर्ण
को लेकर किया गया है, इसी प्रकार से वहां जो १० वे अन्तिम कल्पवृक्ष अनग्नक नाम के
होते हैं वे भी उन युगलिकों को अनेक प्रकार के वस्त्रों को देकर उनकी चाहना की पूर्ति क-
रते रहते हैं, यहां जो यावत्पद आया है उससे शेष कल्पवृक्षों का ग्रहण हुआ है-इनमें द्वितीय
नम्बर का कल्पवृक्ष मूताङ्ग नामका है ये कल्पवृक्ष भी वहां अनेक ही होते हैं इनके सम्बन्ध

पदार्थनी ध्विच्छा करे छे ते वृक्ष ते स्वइपमाञ्ज स्वतः स्वभावथी परिणत थर्ध जाय छे, अने
याचकेनी ध्विच्छा ने पूर्युं करे छे. आ संधधमां विशेष रूपट्ठायी पाठगत पढोत्तुं व्या-
भ्या पूर्वक कथन जीवाभिगम सूत्रनी टीकाभां करवाभां आवेत्त छे आ कथनत्तु तात्पर्य
आट्टुं छे के अे द्रुमा युगलिके जनोनी ध्विच्छा सुलभ अे पदार्थ तेज्जे ध्विच्छता डोय
ते आपे छे. जे पुद्धि पूर्वक विचार करवाभां आवे तो आस ज्ज्वाशे के मद्यपान दुर्गति
जनक छे अने सुषम सुषमाकाणना युगलिके नियमतः सुगतिगामी डोय छे. तेथी आ
मत्ताङ्गक वृक्षो पण्ण सुरा विशेषना स्थाने अमादक अमृतमय जेवा आनन्द प्रद रस रसवि
शेषाने अ प्रवाहित करे छे अही अे सुरा विशेषोनी साथे जेभने उपमित कर्था छे ते
इकेत जेभना वणुंनना उद्देश्यथी अ. आ प्रभाण्णु त्या अे १० भा अन्तिम अनग्नक नामे
कल्पवृक्षो डोय छे. ते पण्णु ते युगलिकेने अनेक नतना वज्जेने अथी ने तेभनी ध्विच्छा
पूर्युं करता रहे छे अही अे यावत् पद आवेत्त छे तेनाथी शेष कल्पवृक्षोत्तुं अर्द्धं करवा
भां आण्यु छे आभा णीण नंभरे अे कल्पवृक्ष छे ते वृत्ताग नामक कल्पवृक्ष कडेवाय छे.
अे कल्पवृक्षो पण्णु त्या पुक्कण प्रभाण्णुमा डोय छे. जेभना संधधमां जेवुं कथन छे-तीसेणं

પારીચસક મિંગાર કરોહિ સહગપત્તી થાલળલ્લગચવલિયં અવમદ દગવારગ વિચિત્તવ
દ્વગમુત્તિચારુપીણયા કંચણ મણિરયણ મત્તિચિત્તા માયણવિદ્દોય વહુપ્પગારા તહેવ તેમિંગ-
ગા વિ દુમગણા અણેગવહુવિહ વીસસા પરિણયાપ્ માયણવિદ્દીપ્ ઉવવેઆ ફલેહિ પુણ્ણા-
વિવ વિસદ્દત્તિ ।૨।

પ્રત્તચ્છાયા—તસ્યાં સ્વલ્લુ સમાયાં મરતે વર્ષે તત્ર તત્ર તસ્મિન્ તસ્મિન્ વહવો મૃતાજ્ઞા
નામ દ્રુમગણાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ શ્રમણાઽઽયુષ્મન્ યથા તે વારકઘટકકલ્લશકરક કર્કરી પાદાશ્વ-
ન્યુદ્દક્ક વાર્ધાની સુપ્રતિષ્ઠક વિષ્ટરપારીચપક અજ્ઞારકરોટિસરક પાત્રી સ્થાલ નલ્લક ચપ
લિતાવમદદકવારક વિચિત્ર વૃત્તક મણિ વૃત્તક શુક્તિચારુપીનકાકાશ્ચન મણિરત્નમક્તિ-
ચિત્રાઃ માજનવિધયશ્ચ વહુપ્રકારા તથેવુ તે મૃતાજ્ઞા અપિ દ્રુમગણા અનેકવહુવિધવિસસા-
પરિણતેન માજનવિધિના ઉપપેતાઃ ફલેઃ પૂર્ણાં ઇવ વિરુસન્તિ ૨

પ્રત્તચ્છાયા—‘તીસેણ’ ઇત્યાદિ । હે શ્રમણાયુષ્મન્ તસ્યાં સ્વલ્લુ સમાયાં મરતે વર્ષે-
તત્ર તત્ર દેશે તસ્મિન્ તસ્મિન્ તસ્ય તસ્ય દેશસ્યાવાન્તરમાગે વહવો મૃતાજ્ઞાઃ મૃતં-મરણં
પૂરણમ્ તસ્મિન્ અજ્ઞાનિ કારણાનિ મૃતાજ્ઞાનિ માજનાનિ મરણાક્રિયાહિ મરણીયં માજનં
વિના નોપપદ્યતે ઇતિ માજનસમ્પાદકત્વાદ્ વૃક્ષા અપિ મૃતાજ્ઞાઃ-માજનસંપાદકા નામ
દ્રુમગણાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ તાન્ દ્રુમગણાન્ વર્ણયિતું દૃષ્ટાન્તમુપન્યસ્યતિ યથા તે પ્રસિદ્ધા વારક
ઘટક કલ્લશ કરક કર્કરી પાદાશ્વન્યુદ્દક્કવાર્ધાની સુપ્રતિષ્ઠક વિષ્ટરપારીચપકઅજ્ઞાર કરોટિ
સરક પાત્રી સ્થાલ નલ્લક ચપલિતાવમદદકવારક વિચિત્ર વૃત્તક મણિ વૃત્તક શુક્તિ ચારુ
પીનક કાશ્ચનમણિરત્નમક્તિચિત્રા તત્ર વારક માજ્જલિકઘટઃ ઘટકઃ હસ્વો ઘટો ઘટક.-લધુ
મેં એસા કથન હૈ-‘તીસેણ સમાપ્ મરહે વાસે તત્થ ૨ દેસે તહિં તહિં વહવે મિંગગા ણામ દુમગણા
પણ્ણતા સમણાહસો ! જહા સે વારગ-ઘટગ-કલ્લસ-કરગ કરકરિ પાયચણિ ઉદક વદ્ધણિ સુપહદ્ધગ
વિષ્ટરપારી ચસક મિંગારકરોહિસહક પત્તો થાલળલ્લક ચવલિય અવમ દયગ વારગ વિચિત્ત વદ્ધ-
ગમુત્તિ ચારુ પીણયા કંચણ મણિરયણ મત્તિચિત્તા માયણ વિદ્દીય વહુપ્પગારા તહેવ તે મિંગંગા વિ
દુમગણા અણેગ વહુવિહ વીસસા પરિણયાપ્ માયણવિદ્દીપ્ ઉવવેઆ ફલેહિ પુણ્ણાવિવ વિસદ્દત્તિ’
હસ કથન કા તાત્પર્ય એસા હૈ કિ ઉસ પ્રથમ આરક મેં મરત ક્ષેત્ર મે જગહ ૨ સ્થાનો સ્થાનો
પર અનેક મૃતાજ્ઞ નામ કે કલ્પવૃક્ષ હોતે હૈ, યે કલ્પવૃક્ષ ઉન્હે યુગલિકો કો અનેક પ્રકાર કે

સમાપ મરહે વાસે તત્થ ૨ દેસે તહિં તહિં વહવે મિંગંગા ણામ દુમગણા પણ્ણતા સમણાહસો
જહા સે વારગ ઘટગ-કલ્લસ- કરગકકરિપાયચણિ ઉદકવદ્ધણિસુપહદ્ધગવિષ્ટર પારી
ચસક મિંગાર કરોહિસહગપત્તી થાલ ણલ્લક ચવલિય અવમદદગવારગ વિચિત્ત વદ્ધગ
મુત્તિચારુપીણયા કંચણમણિરયણમત્તિચિત્તા માયણ વિદ્દીય વહુપ્પગારા તહેવ તે
મિંગંગા વિ દુમગણા અણેગ વહુવિહવીસસા પરિણયાપ્ માયણવિદ્દીપ્ ઉવવેઆ ફલેહિ
પુણ્ણાવિવ વિસદ્દત્તિ’ આ કથનનુ તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે કે તે પ્રથમ આરકમા ભરતક્ષેત્ર
માં ઠેક ઠેકાણે અનેક ભૃતાંગ નામના કદંપવૃક્ષો હોય છે એ કદંપવૃક્ષો તે યુગલિકોને અનેક
પ્રકારના ભાજનોને પ્રદાન કરતા રહે છે આ સૂત્રપાઠગત પદોની વ્યાખ્યા ભુવાસિગમ સૂત્ર

घटः कलशः महाघटः, काकः कर्करी पात्र विशेष, पादाञ्चनी पाद प्रक्षालनार्था काञ्चन-
मयी पात्रो, उदङ्कः जलोत्क्षेपणपात्रविशेषः, वार्धानी जलधानी जलकुण्डिका युप्रति-
ष्ठकः— पुष्पपात्रविशेषः पारी, घृतपात्रम् चपकः पानपात्रम्, भ्रदारकनकालुका 'झागी'
इति भाषायां प्रसिद्धा सरकः पात्रविशेषः पात्री भाजनविशेषः, म्यालम् प्रसिद्धम्, नल्ल-
कः पात्रविशेषः चपलिता अवमदश्च पात्रविशेषौ दकवारकः— जलघट, तथा विचित्राणि—
विविधचित्रयुक्तानि वृत्तकानि गोलाकाराणि भोजनकालोपयोगीनि घृतादि पात्राणि, तथा
मणि वृत्तकानि—मणिप्रधानानि वृत्तकानि—पूर्वोक्तानि पात्राणि, श्रुक्तिः—चन्दनाद्याधारभूता
'पात्री' चारुपीनका—पात्रविशेषः, एते पात्रप्रकाराः कीदृशाः ? इत्याह—काञ्चनमणि रत्न
भक्तिचित्राः काञ्चनमणिरत्नानां या भक्तयः— रचनास्ताभिः चित्राः अद्भुताः भाजन
विधयः—पात्रभेदाः, बहुप्रकाराः—एकैकस्मिन् भाजनविधाववान्तरानेरुभेदसत्त्वाद्बहुविधाः
भवन्ति तथैव तद्भदेव ते पूर्वोक्ताः श्रुताङ्गा अपि द्रुमगणाः अनेक बहुविधविस्रसापरिण
तेन भाजनविधिना उपपेताः फलैः पूर्णा इव विकसन्ति— शोभन्ते इति एते च द्रुमग-
णाः युगलिभ्यो यथेच्छं पात्राणि वितरन्तीति बोध्यम् ॥२॥

अथ तृतीयकल्पवृक्षस्वरूपमाह—

'तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे तुडिअंगा णाम दुम-
गणा पणत्ता समणाउसो ! जहा से अलिंगमुङ्गपणव पडह ददरिय करडि डिडिम भंभा-
होरंभकणिय खरसुहिमुगुंद संखिय पिरलीवच्चक परिवाइणि वसवेणु सुघोस विवचिम-
हती कच्छभिरिगिसिगिआतलतालकंसतालसुसंपउत्ता आतोज्जविही निउणगंधव्वसम-
यकुसलेहिं फंदिया तिट्ठाणकरणसुद्धा तदेव ते तुडिअंगा वि दुमगणा अणेग बहु विविह-
वीससापरिणयाए ततविततघणञ्जुसिराए आतोज्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णाविव वि-
सट्ठंति, कुसविकुस जाव चिट्ठंति ।३।

भावनो को प्रदान करते रहते है । इस सूत्रपाठगत पदो की व्याख्या जीवाभिगम सूत्र में की
जा चुकी है, अतः वहीं से इसे देखलेना चाहिये ।

तृतीयकल्प वृक्षका स्वरूप कथन—

"तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ २ देसे तहिं बहवे तुडिअ गा णाम दुमगणा पणत्ता, समणा-
उसो ! जहा से अलिंगमुङ्ग पणव पडह ददरियकरडि डिडिम भभा होरंभ कणिय खरसुहि
मुगुंद संखिय पिरली वच्चक परिवादिनी वसवेणु सुघोस विवचि महतिकच्छभि रिगि सिगिआ—तल
तालकस सुसपउत्ता आतोज्जविही निउण गंधव्व समय कुसलेहिं फंदिया तिट्ठाणकरणसुद्धा तदेव

भा करवाभां आवी छे, जेथी जिज्ञासुजेनेत्थाथी जे वाची दे

तृतीय कल्पवृक्षना स्वरूपतुं कथन—

'तीसेण समाए भरते वासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे तुडिअंगा णाम दुमगणा
पणत्ता समणाउसो ! जहा से अलिंग मुङ्ग पणव पडह, ददरियकरडि डिडिम भंभाहो-
रंभ कणिय खरसुहिमुगुंद संखिय पिरली वच्चक परिवादिनी वसवेणु सुघोस विवचि

एतच्छाया-तस्यां खलु समाया भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र तस्मिन् तस्मिन्
 बहवः त्रुटिताङ्गा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः श्रमणाऽऽयुष्मन् ! हे श्रमणायुष्मन् तस्यां खलु
 समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवः त्रुटिताङ्गाः-वाद्यदायका नाम द्रुमगणाः
 प्रज्ञप्ताः । तत्र दृष्टान्तमाह-यथा ते आलिङ्ग मृदङ्ग पणव पटह दर्दरिका करटी डिण्डिम
 भम्भाहोरम्भा कणिता खरघुखी मुकुन्द शङ्खिका पिरलीवच्चक परिवादिनीवंशवेणु सुधो-
 पाविपञ्ची महती कच्छपी रिगिसिगिका तल-ताल कांस्यताल सुसम्प्रयुक्ताः आतोद्य-
 विधयः निपुणगान्धर्वसमयकुशलैः स्पन्दिता त्रिस्थानरुणशुद्धाः, तथैव ते त्रुटिताङ्गा अपि
 द्रुमगणाः अनेक बहुविधविससापरिणतेन ततविततघनशुपिरेण आतोद्यविधिना उपपेता
 फलैश्च पूर्णा इव विकसन्ति, कुशविकुशयावत् तिष्ठन्ति ।३।

एतद्व्याख्या—‘तीसे णं’ इत्यादि ‘जहा से’ इत्यादि । यथा येन प्रकारेण ते
 वक्ष्यमाणाः वाद्यविधयः, ते च कीदृशा ? इत्याह—‘आलिङ्गे’ त्यादि—आलिङ्गी-आलिङ्ग्य
 हृदिधृत्वा वादकेन वाद्यमानो मुरजः, मृदङ्गः-लघु मृदङ्गः, पणवः-भाण्डपटहः यद्वा-लघु
 पटहः, पटहः-दक्का, दर्दरिका वाद्यविशेषः, करटी वाद्यविशेषार्थः, डिण्डिमः-वाद्यविशेषः,
 खरघुखी-वाद्यविशेषः, मुकुन्दः-वाद्यविशेषः-प्राणातिलीनं ये वाद्यमानः, शङ्खिका-लघुशङ्ख-
 रूपा तस्याः शब्दः किञ्चित्क्षीणो भवति, न तु शङ्खवद्गभीर पिरलीवच्चकौ-तृणवाद्यवि-
 शेषौ, परिवादिनी-सप्ततन्त्रीका वीणा सितार इति भाषा प्रसिद्धा, वंशः वंशवाद्यम्, वे-
 णुः-वंशवाद्यविशेषः सुधोपा-वीणाविशेषः, विपञ्ची-त्रितन्त्रीका वीणा, महती-शततन्त्री
 का वीणा, कच्छपी-वीणाविशेष रिगिसिगिका-घर्ष्यमाणवाद्यविशेषः, तलं-हस्तपुट,
 तालो वाद्यविशेषः, कांस्यतालः-कांस्यनिर्मितो वाद्यविशेषः इत्येतैः सुसम्प्रयुक्ता-सु-सुष्ठु-
 अतिशयेन सम्-सम्यक् सङ्गीतशास्त्रोक्तरीत्या प्रयुक्ताः-सम्बद्धाः, यद्यपि हस्तपुटरूपं तलं
 ते तुडिअंगा वि द्रुमगणा अणेगबहुविविह वीमसा परिणयाए तत वितत घण झुसिराए आतोञ्ज-

विहीए उववेया फलेहिं पुण्णा वि विसइति कुसविकुस जाव चिट्ठंति ” इस तृतीय कल्पवृक्ष
 का यह कार्य है कि वह उन युगलिक जनों के लिये अनेक प्रकारके यथेच्छ बाजों को देता
 रहता है । ये कल्पवृक्ष वहा अनेक हैं इनका स्वाभाविक परिणमन ही बाजों के रूप में हो
 जाता है अत जिन्हें जिन २ बाजों की चाहना होती है वे उन २ बाजों को वहा से प्राप्त कर
 लिया करते हैं । इस सूत्रपाठगत पदो को व्याख्या मैने जीवोभिगमसूत्र में भोग भूमि के वर्णन

महति कच्छभि रिगिसिगिआ-तल तालकस ताल सुसंपउत्ता आतोञ्जविही निउणगंघन्व
 समयकुसलेहिं फंदिया तिङ्गाणकरणशुद्धा तहेव ते तुडिअगा वि द्रुमगणा अणेग बहु
 विविह वीससापरिणयाए तत वितत घण झुसिराए आतोञ्जविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा
 विव विसइति कुसविकुस जाव चिट्ठंति” आ तृतीय ४६५वृक्षउ” ४३” आ प्रभाषे छे के ते

न वाद्यविशेषस्तथापि तलोत्पन्नशब्दमदृशगद्वद्वद्यं लक्षणयाऽवगमयति, एतादृशाः आ-
तोद्यविधयः-वाद्यप्रकारा. निपुणगान्धर्वसमयकुशलैः-निपुणं-पटु यथा स्यात्तथा गान्धर्वम-
मये संगीतशास्त्रे ये कुशला-चतुरास्तैः स्पन्दिताः वादिताः, पुनः क्रीदशाः ? इत्याह-
त्रिस्थानकरणशुद्धाः त्रिपु-आदिमध्यान्त्येषु स्थानेषु कारणेन-क्रियया यथावद्वादनरूप-
क्रियया शुद्धाः निर्दोषाः अस्थान व्यापारदोषरहिताः, इत्यर्थः तर्धव-तद्वत् ते पूर्वोक्ता त्रु-
टिताङ्गा अपि द्रुमगणाः अनेक बहु विविध-विस्त्रसापरिणतेन अनेको व्यक्तिभेदात् स चा-
सौ बहु-प्रचुरं यथास्यात्तथा विविधो-जाति भेदान्नानाविधः स चासौ विस्त्रसापरिणत-
विस्त्रसया-स्वभावेन परिणतश्च तेन तथाप्रकारेण तत् 'विततघनशुपिरेण तत्र तत-वीणा-
दिकं वाद्यम् विततं पटहादिकं घनं-कांस्यतालादिकं, शुपिरं वशादिकं चैषा समाहारः
ततविततघनशुपिर तेन तथा भूतेन आतोद्यविधिना वाद्यप्रकारेण उपपेता-युक्ताः फलैः
पूर्णा इव विकसन्ति शोभन्ते । पुनस्ते क्रीदशाः इत्याह-कुशविकुशयावत्तिष्ठन्ति इति ।
यावत्पदसंग्राह्याणि पदानि अर्थश्चास्यैव पञ्चमसूत्रतो बोध्यः ।

अथ चतुर्थकल्पवृक्षस्वरूपमाह —

'तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तहि तहिं बहवे दीवसिहा णामं
द्रुमगणा पणत्ता समणाउसो ! जहा से संझाविरागसमए नवनिद्विबइणो दीविया चक्क-
वालविदे पभूयवट्टिपलित्तणेहे घणिउज्जलिए तिमिरमइए कणगनिगरकुसुमियपालिया-
तग वणप्पगासे कंचणमणिरयणविमलमहरिह तवणिज्जुज्जळ विचित्तदंडाहिं दीविवाहिं

प्रकरण में की है अतः वहीं से इसे देखलेना चाहिए, ग्रन्थ का कलेवर बढ जाने के मय से
यहां उसे नहीं लिखा है, इस तृतीय कल्पवृक्ष का नाम त्रुटिताङ्ग है-त्रुटित नाम बाजे का है
— बाजे अनेक प्रकार के होते हैं । यही बात इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है ।

शुगलिकजनाने अनेक प्रकारना यथेच्छ वादित्रो आपता रहे छे जेवा कल्पवृक्षो त्यां अनेक छे.
वादित्रोना इपना जेमनुं स्वाभाविक इपभा परिष्कृतन थर्ष जय छे जेभने जे जे प्रकारना
वादित्रोनी आवश्यकता ज्ञाय छे ते ते प्रकारना वादित्रो तेजो त्याथी भेगवीदे छे आ
सूत्रभा आवेक्षा पहोनी व्याख्या ल साक्षिग्रम सूत्रना लोकाभूति प्रकरणुभा करवामा आवी
छे जेथी वाचके त्याथी वाची ले अन्थ विस्तार भयथा अत्रे व्याख्या करवामा आवी
नथी आ तृतीय कल्पवृक्षु नाम त्रुटिताग छे त्रुटिन नाम वादित्रु छे वादित्र अनेक
प्रकारना होय छे, जे ज वात आ सूत्र पाठ वडे प्रकटकरवामा आवी छे.

सहसा पञ्जालिउस्सप्पिय निद्धतेय दिप्पंत विमल्लगहगणसमप्पहाहिं वितिमिरकरसूरपसरि-
उज्जोयचिल्लियाहिं जालुज्जलप्पहसियाभिरामाहिं सोभमाणा तहेव ते दीवसिहावि दुमग-
णा अणेगवहुविविहवीससापरिणयाए उज्जोयविहीए उववेया फलेहिं पुण्णा इव विसट्ठंति
कुसविकुस जाव चिट्ठंति, इति ।४।

एतच्छाया-तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवो दीपशिखा
नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः श्रमणाऽऽयुष्मन् !, यथा तत् सन्ध्यारागसमये नवनिधिपतेः दी-
पिकाचक्रवालवृन्दं प्रभूतवर्तिपर्याप्तस्नेहं घनोज्ज्वलितं तिमिरमर्दकं कनकनिकरकुसुमितपा-
रिजातकवनप्रकाशं काञ्चनमणिरत्नविमलमहाहृतपनीयोज्ज्वलविचित्रदण्डाभिः दीपिका-
भिः सहसा प्रज्वालितोत्सर्पितस्निग्धतेजोदीप्यमान विमलग्रहणसमप्रभाभिः वितिमि-
रकरसूरप्रसृतोद्घोतदीप्यमानाभिः ज्वालोज्ज्वलप्रहसिताभिरामाभिः शोभमानं तथैव ते
दीपशिखा अपि द्रुमगणाः अनेक बहुविविधविस्रसापरिणतेन उद्घोतविधिना उपपेताः
फलैश्च विकसन्ति, कुशविकुश यावत् तिष्ठन्ति इति ।४।

एतद्व्याख्या—हे श्रमणायुष्मन् ! तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे
तत्र तत्र बहवो दीपशिखाः दीपशिखा इव दीपशिखाः, तत्कार्यसम्पादित्वात्, अन्यथा
व्याघातकालत्वेन तत्र बह्वेभावादीपशिखानामप्यसम्भवात्, नाम प्रसिद्धा द्रुमगणाः
प्रज्ञप्ताः । तान् वर्णयितुं दृष्टान्तमुपन्यस्यति यथा—येन प्रकारेण तत्—प्रसिद्धं सन्ध्या-

चतुर्थं कल्पवृक्षका स्वरूप—

“तीसेण समाए भरहेवासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे दोवसिहा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणा-
उसो ! जहा दे सञ्जाविरागसमए नवनिहिवहणो दीवियाचक्रवालविंदे पसूय वट्टिपलित्तणेहे घणि
उज्जलिप तिमिरमहए कणगणिगर कुसुमिय परियातगवणप्पगासे कचणमणिरयणविमलमहरिह तव-
णिउज्जुज्जल विचित्त दंडाहिं दीवियाहिं सहसा पञ्जालियो सप्पिय निद्धतेयदिप्पत विमल्लगहगण-
इत्यादि । चतुर्थं कल्पवृक्ष का नाम द्वीपशिख है ये द्वीपशिख नामके कल्पवृक्ष वहा उस समय
जगह २ अनेक स्थलो पर सुशोभित होते हैं । ये अनेक बहुविध विस्रसा परिणत उधोतविधि से

चतुर्थं कल्पवृक्षसु स्वरूप—

‘तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे दोवसिहा णामं दुमगणा
पण्णता समणाउसो । जहा से संज्ञाविरागसमए नवनिहिवहणो दीविया चक्रवाल विंदे
पसू वट्टिपलित्तणेहे घणि उज्जलिप तिमिरमहए कणगणिगर कुसुमिय पारियातगवणप्प-
गासे कचणमणिरयण विमलमहरिय तवणिउज्जुज्जल विचित्त दंडाहिं दीवियाहिं सहसा
पञ्जालियो सप्पिय निद्धतेयदिप्पंत विमल गहगण—इत्यादि ।

चतुर्थं कल्पवृक्षसु नाम द्वीपशिख छे द्वीपशिख नामना कल्पवृक्षे त्यां ठेठ ठेठे
डोय छे. ये सर्व वृक्षे त्या अनेक ये बहुविध विस्रसा परिणत उधोतविधिथी युक्त डोय

विरागसमये सन्ध्यैव विरागः विगतो रागः सूर्यस्यारुणिमा यत्र न विरागः स चासौ समयः सन्ध्याविरागसमयस्तस्मिन् तथा सूर्यरागरहितं संध्यासमये अंधकाररम्भकाले नवनिधिपतेः नव=नव संख्यकाश्च ते निधयः नैसर्प १, पाण्डुक २, पिङ्गलक ३, सर्वरत्न ४, महापद्म ५, काल ६, महाकाल ७, माणवक ८, शङ्गा तेषां पति—स्वामी—नवनिधिपति—चक्रवर्ति तस्य नवनिधिपतेः दीपिकाचक्रवालवृन्दं—दीपिकाः—लघु दीपाः, तासां चक्रवाल—गोलाकारः दीपिका चक्रवालं तदेव वृन्दं, तत् कीदृशम् ? इत्याह प्रभूतवर्ति पर्याप्तस्नेह—प्रभूताः—प्रचुराः स्थूला वर्तिकाः दशा यस्य तत् प्रभूतवर्ति तच्च तत् पर्याप्तस्नेह—पर्याप्तः—परिपूर्णाः स्नेहः तैलादि—लक्षणो यस्य तत् तथा, तथा घनोज्ज्वलितं घनम्—अत्यर्थ—निरन्तरम् उज्ज्वलितं—प्रकाशितम्, अतएव तिमिरमर्दकम्—अन्धकारनाशकम्, पुनस्तत् कीदृशम् इत्याह—कनकनिकरकुमुमितपारिजातकवनप्रकाशं तत्र कनकनिकरः—स्वर्णपुञ्जः कुमुमितपारिजातकवनं कुमुमित—पुष्पितं यत् पारिजातकवनं कल्पवृक्षविशेषवनं चेति कुमुमितपारिजातकवनम् अनयो समाहारद्वन्द्वे कनकनिकरकुमुमितपारिजातकवनं तद्वत्प्रकाशो यस्य तत् तथा, तथा—काञ्चनमणि रत्न विमल महाहृतपनीयोज्ज्वलविचित्रदण्डाभिः—तत्र काञ्चन—स्वर्ण मणिः वैडूर्यादि, रत्नं वज्रादि चेति काञ्चनणिरत्नानि तन्मयाः विमलाः स्वाभाविकागन्तुकमलरहिताः महाहर्षाः—बहुमूल्या तपनीयोज्ज्वला तपनीयेन—उत्तमजातीयस्वर्णेन उज्ज्वलाः—भास्वराः, विचित्राः—विचित्रवर्णाः दण्डा—दीपिकाधारयष्टयो यासां ताभिः, तथा सहसा प्रज्वालितोत्सर्पित स्निग्धतेजोदीप्यमानविमलग्रहगणसमप्रभाभिः सहसा—एककालेन प्रज्वालिताः—प्रदीपिताः उत्सर्पिताः—एककालेन वर्च्युत्सर्पणत उर्ध्वीकृताः, स्निग्धतेजसः स्निग्धं—नयनसुखदं तेजो यासां ताः नेत्राप्रतीघातकतेजोयुक्ता इत्यर्थः, दीप्यमानविमलग्रहगणसमप्रभाः—दीप्यमानः—निशि स्फुरन् विमलः—धूल्याद्यभावेन स्वच्छो यो ग्रहगण—ग्रहसमूहः तेन समा—समाना प्रभा—दीप्तिर्यासां ताः एतेषां पदानां कर्मधारये सहसा प्रज्वालितोत्सर्पितस्निग्धतेजोदीप्यमानविमलग्रहगणसमप्रभास्ताभिः, तथा—वितिमिरकरस्रप्रसृतोद्घोतदीप्यमानाभिः—वितिमिरकरः—विगतं तिमिरमन्धकार यस्मिन् सति स वितिमिरः तादृशः करः—किरणो यस्य स वितिमिरकरः,—अथवा वितिमिरम्—अन्धकाराभावः तस्य करः कारको वितिमिरकरः स चासौ सुरः सूर्यश्चेति वितिमिरकरस्र तस्य यः प्रसृत—दिशि दिशि व्याप्तः उद्घोतः—प्रभासमूहः तद्वत् दीप्यमानाः प्रकाशमानास्ताभिः, तथा ज्वालोज्ज्वलप्रहसिताभिरामाभिः ज्वालाः शिखाएव उज्ज्वलप्रहसितं स्वच्छहासः, तेनाभिरामाः मनीहरास्ताभिः, एतादृशीभिर्दीपिकाभिः शोभमानं भवति, नथैव ते दीप-

युक्त होते हैं अतः द्वीपो को जो कार्य होता है उसके ये सम्पादक होते हैं नौ निधियों के ये नाम हैं—नैसर्प १, पाण्डुक २, पिङ्गलक ३, सर्वरत्न ४, महापद्म ५, काल ६, महाकाल ७,

४. जे थी दीपिना जे कार्य होय छे तेभना जे सम्पादक होय छे नव निधिजोना नाम आ प्रभाषे छे नैसर्प १ पाण्डुक २ पिङ्गलक ३ सर्वरत्न ४ महापद्म ५ काल ६ महाकाल

शिखा अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन अनेको व्यक्तिभेदात्, स चासौ बहुविविधः बहु-प्रचुरं यथा स्यात्तथा विविधः जातिभेदान्नानाविधः स चासौ विस्रसा परिणताः स्वभावपरिणतश्च तेन तथाभूतेन उद्घोतविधिना दीपप्रकारेण उपपेता युक्ता फलैः पूर्णा इव विकसन्ति शोभन्ते, तथा कुशविकुश यावत् तिष्ठन्तीति प्राग्वत् इति ॥४॥
अथ पञ्चमकल्पवृक्षस्वरूपमाह—

‘तीसे ण समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे जोइसिया णामं द्रुमगणा पण्णत्ता समणाउसो ! जहा से अइरुगयसरयसूरमण्डलपडतउक्कासहस्सदि-
प्यंत विज्जुज्जलहुयवहणिद्धूमजलियणिद्धंतधोय तत्तवणिज्जकिंसुयासोयजासुयणकुसु-
मविमउलियपुज्जमणिरयण किरणजच्चहिंगुन्धयणिगररूवाइरेगरूवा तहेव ते जोइसिया वि
द्रुमगणा अणेगवहुविविह वीससापरिणयाए उज्जोयविहीए उववेया सुहलेसा मंदलेसा
मंदायवलेसा कूड इव ठाणट्टिया अन्नोन्न समोगाढाहिं लेसाहिं साए पहाए ते पएसे स
व्वओ समंता ओहासेति उज्जोयति पभासंति, कुसविकुस जाव चिट्ठंति, इति १५।

एतच्छाया—तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवो ज्योति-
षिका नाम द्रुमगणा प्रज्ञप्ता श्रमणाऽऽयुष्मन् । यथा ते अचिरोद्गतशरत्सूर्धमण्डलपत-
दुल्कासहस्रदीप्यमानविद्युदुज्ज्वल निर्धूमज्वलितह्रतवह निर्धमांत धौततप्ततपनीय किंशु-
काशोक जपाकुसुमविमुकुलितपुञ्जमणिरत्नकिरणजात्यहिङ्गुलकनिकररूपातिरेकरूपाः त-
थैव ते ज्योतिषिका अपि द्रुमगणा अनेकबहुविविधविस्रसापरिणतेन उद्घोतविधिना
उपपेता मुखलेस्या मन्दलेस्या मन्दाऽऽतपलेस्या कूटानीव स्थानस्थिता अन्योऽन्य-
समवगाढाभिः लेस्याभिः स्वया प्रभया तान् प्रदेशान् सर्वतः समन्तात् अवभासयन्ति
उद्घोतयन्ति प्रभासयन्ति कुशविकुश यावत् तिष्ठन्ति, इति १५।

एतद्व्याख्या—‘तीसे णं’ इत्यादि, तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र
तत्र=तस्य तस्य देशस्यावान्तरभागे ज्योतिषिका ज्योतिः प्रभा, तदस्त्यस्येति ज्योतिषः
स एव ज्योतिषिकः सूर्यः, तद्वत्प्रकाशकत्वेन वृक्षा अपि ज्योतिषिकाः एतन्मानः नाम प्र-

माणवक ८, और शङ्ख । इस सूत्रपाठगत पदों की व्याख्या भी जीवाभिगम सूत्र के अनुवाद करते
समय लिखी जा चुकी है अतः वहीं से देख लेना चाहिये ।

पांचवें कल्पवृक्ष का स्वरूप—

‘तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे जोइसिया णामं द्रुमगणा पण्णत्ता
इत्यादि—पांचवे कल्पवृक्ष का नाम जोतिषिक है ये कल्पवृक्ष उसकाल में वहां अनेक होते हैं—

७ भाष्यवक ८ अने श ५ आ सूत्रपाठमा आवेदा पढोनी व्याख्या जीवाभिगमसूत्र ना
भाषान्तर भां करवाभा आवी छे अथी जिज्ञासुओओ त्याथी वाची देवु

पांचवें कल्पवृक्ष का स्वरूपः

‘तीसेण समाए भरहे वासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे जोइसिया णामं द्रुमगणा
पण्णत्ता’ इत्यदि पांचवें कल्पवृक्ष का नाम जोतिषिक छे अथी कल्पवृक्ष ते अने तया वषा

सिद्ध द्रुमगणा प्रज्ञप्ताः । सम्प्रति सदृष्टान्त तद्वर्णनमाह 'जहा से' इत्यादि । यथा येन प्रकारेण ते प्रसिद्धाः अचिरोद्गतशरत्सूर्यमण्डलपतदुल्कासहस्रदीप्यमानविद्युद्गुज्ज्वलित निर्धूमज्ज्वलित हुतवहनिर्ध्मांतधौततप्ततपनीयकिंशुकाशोकजपाकुमुमविमुकुलितपुञ्जमणिरत्नकिरण जात्यहिङ्गुलकनिकररूपातिरेकरूपाः तत्र अचिरोद्गतशरत्सूर्यमण्डलम्-अचिरोद्गतं सद्य एव उदितं यत् शरत्सूर्यमण्डलं शरदत्तु सम्बन्धिसूर्यत्रिम्बम्, तथा-पतदुल्कासहस्रम्-पतन्तीनाम्-आकाशादध आगच्छन्तीनाम् उल्काना सहस्रम्, तथा दीप्यमानविद्युत्-प्रकाशमानविद्युत्, तथा-उज्ज्वालनिर्धूमज्ज्वलितहुतवहः-उज्ज्वालः-उद्गता ज्वाला यस्य सः देदीप्यमानः एतादृशो निर्धूमो=धूमरहितो ज्वलितः-दीपितसम्पन्नो यो हुतवहः-अग्निः स तथा, मूले 'हुतवह' शब्दस्य 'निर्धूम' शब्दात्पूर्वप्रयोगः प्राकृतत्वात्, पूर्वोक्तपदचतुष्टयस्य द्वन्द्वे-अचिरोद्गतशरत्सूर्यमण्डलपतदुल्कासहस्र-दीप्यमानविद्युत्-उज्ज्वाल निर्धूमज्ज्वलितहुतवहा इति । एते क्रीदशा उति दर्शयितुमाह-'निर्ध्मांत' इत्यादि । तत्र निर्ध्मांत नितराम् अग्निसयोगेन ध्मांतं-शोधितमलम् अत एव धौतं- शुद्धं तप्ते-तापप्राप्त च यत् तपनीयम् उत्तमजातीयं सुवर्णं तत् निर्ध्मांतधौततप्ततपनीयमिति, तथा किंशुकाशोकजपाकुमुमानां किंशुकः-पलाशः, अशोकः प्रसिद्धः, जपा प्रसिद्धा, आसां यानि विद्युत्कुलितानि-विकसितानि कुमुमानि-पुष्पाणि तेषां ये पुञ्जाः-समूहास्ते किंशुकाशोकजपाकुमुमविद्युत्कुलितपुञ्जा इति । 'विद्युत्कुलित' शब्दस्य परनिपात आर्षत्वात् । तथा-मणीना रत्नानां च किरणा इति मणिरत्नकिरणा इति तथा-जात्यहिङ्गुलकानां-उत्तमजातीयहिङ्गुलकानां यो निकरः-समूहः म जात्यहिङ्गुलकनिकर इति । एतेषां द्वन्द्वे-निर्ध्मांतधौततप्ततपनीयकिंशुकाशोक जपाकुमुमविद्युत्कुलितपुञ्जमणिरत्नकिरणजात्यहिङ्गुलकनिकराः एतेषां यद्रूपं ततोऽपि अतिरेक-सातिशयं रूपं येषां ते तथा, ततः 'अचिरोद्गतेत्यादि ज्वलित हुतवहान्तस्य पदस्य निर्ध्मांत-तेत्यादि रूपातिरेकरूपान्तस्य च पदस्य कर्मधारय । येन प्रकारेण निर्ध्मांतधौततप्ततपनीयाद्यपेक्षयाऽपि विशिष्टरूप सम्पन्ना अचिरोद्गतशरत्सूर्यमण्डलादयः सन्तीति निष्कर्षः इति । तथैव ते-पूर्वोक्ताः ज्योतिषिका अपि द्रुमगणाः, अनेक बहुविधविस्त्रसापरिणत-तेनोद्द्योतविधिनोपपेताः सन्ति । ननु यदि सूर्यमण्डलादिहुतवहान्त ज्योतिर्वत् प्रकाशिनस्ते स्थुस्तदा तद्बहुदर्शत्वतोत्रत्व चलनादिधर्मोपेता अपि सम्भवेयुरित्याह-सुखछेदश्या-इत्यादि सुखयतीति सुखा-सुखदा लेख्या तेजो येषां ते सुखछेदश्याः अतएव मन्दछेदश्याः

और ये अपनी स्वाभाविक प्रभा से एवं अनेकबहुविधविस्त्रसा परिणत हुई उद्योतविधि से युक्त हुए उन २ प्रदेशों को चारों ओर से अवभासित करते रहते हैं । उद्योतित करते रहते हैं । इन सब कल्पवृक्षों के अधोभाग कुशकाश एव विकुश-बिल्वादि लताओं से रहित होते हैं ।

होय छे अने चोतानी स्वाभाविक प्रभाथी तेभञ्ज अनेक बहुविधविस्त्रसा परिणत थयेही-उद्योत विधियो युक्त थयेका तत् तत् प्रदेशोने चोभेथी अवभासित करता रहे छे उद्योतित करता रहे छे तेभञ्ज प्रभायुक्त करता रहे छे आ सब कल्पवृक्षना अधोभाग कुश काश तेभञ्ज विकुश बिल्वादि लताओथी रहित होय छे आ सूत्रपाठगत पदोनी व्याख्या एवा-

—मन्दा—अल्पा छेइया येषां ते तथा, मन्दाऽऽतपलेइयाः मन्दानप इव छेइया येषां ते तथा, सुखसह तेजस्सम्पन्ना इत्यर्थः, तथा कूटानीव—पर्वतादि शिखराणीव स्थानस्थिताः—स्वोत्पत्तिस्थाने स्थिताः स्थिरीभूताः समयक्षेत्रवद्विर्वृत्तिं ज्योतिष्का इव ते प्रकाशयन्तीति भावः, तथा अन्योऽन्य समवगाढाभिः—अन्योऽन्यं—परस्परं समवगाढाभिः एकत्र मिलिताभिः छेइयाभिः तेजोभिः स्वया—स्वकीयया प्रभया दीप्त्या तान् प्रदेशान् सर्वतः सर्वदिक्षु समन्तात्—सर्वविदिक्षु च अत्रभासयन्ति—प्रकाशयन्ति, उद्घोतयन्ति तत्रस्थान् पदार्थान् सामान्यतः प्रभासयन्ति विशेषत इति । तथा कुश विकुश यावत् तिष्ठन्तीति प्राग्वदिति । एषां ज्योतिषिकाणां द्रुमगणानां प्रकाशो बहुदूरं व्यापीदीपशिखाद्रुमापेक्षया तीव्रश्च भवतीति पूर्वद्रुमेभ्यो विशेषोऽत्र बोध्यः । ५।

अथ पष्टकल्पवृक्षस्वरूपमाह—

‘तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ देसे तत्थ तत्थ बहवे चित्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो । जहा से पेच्छाधरे विचित्ते रम्मो वरकुसुम दाम मालुज्जले भासंतमुक्कपुष्कपुजोवयारकलिए विरल्लिय विचित्तमल्लसिरिसमुदयप्पगम्भे गंठिम वेढिम पूरिम संघाइमेण मल्लेण छेय सिप्पिविभागरइएणं सव्वओ चेव समणुवद्धे पविरल लंबंत विप्पइट्ठ पंचवण्णेहिं कुसुमदामेहिं सोभमाणे वणमालकयगाए चेव दिप्पमाणे, तहेव ते चित्तंगा वि दुमगणा अणेग बहु विविहं वीससापरिणयाए मल्लविहीए उववेया कुसविकुस जाव चिट्ठंति इति । ६।

एतच्छाया—तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवः चित्राङ्गा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः श्रमणाऽऽयुष्मन्, यथा तत् प्रेक्षागृहं विचित्रं रम्यं वरकुसुमदाममालो ज्ज्वलं भासमानं मुक्कपुष्पपुञ्जोपचारकलितं विततं विचित्रं माल्यं श्रीसमुदयप्रगल्भं ग्रंथिमवेष्टिमं पूरिमं सङ्घातिमेन माल्येन छेकं शिल्पिविभागरचितेन सर्वतश्चैव समनुवद्धं प्रविरललम्बमानं विप्रकृष्टं पञ्चवर्णैः कुसुमदामभिः शोभमानं वनमालाकृताग्रं चैव दीप्यमानं, तथैव ते चित्राङ्गा अपि द्रुमगणाः अनेक बहुविविध विस्त्रमापरिणतेन माल्यविधिना उपपेताः कुशविकुश यावत् तिष्ठन्ति, इति । ६।

एतद्ग्याख्या—‘तीसेणं’ इत्यादि । हे श्रमणायुष्मन् ! तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवः चित्राङ्गाः चित्राणाम् अनेक प्रकारकाणां माल्यानां कारण-इस सूत्र पाठ गत पदों की व्याख्या जीवाभिगम सूत्र में लिखी गई है । अतः इसे भी वहीं से

देख लेना चाहिये । ग्रन्थ का कलेवर विस्तृत करने से कोई छाम नहीं है ।

छठे कल्पवृक्ष का स्वरूप—

‘तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ २ देसे तहिं बहवे चित्तंगा णाम दुमगणा पण्णत्ता’ इत्यादि । छठे कल्पवृक्ष का नाम चित्राङ्ग है । पुण्य से ये कल्पवृक्ष उस काल में वहां अनेक होते

बिगमसूत्र भा करवा भा आनी छे ज्येथी जिज्ञासुज्येथी त्यांथी वाथी देवु जेधज्ये अही पुनः सूत्रपाठगत पढोनी व्याख्या करवाथी ग्रन्थ विस्तार थरी.

त्वात् चित्रांगा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः । तान् द्रुमान् वर्णयितुं दृष्टान्तमुपन्यस्यति—‘जहासे’ इत्यादि । यथा—येन प्रकारेण तत् — प्रसिद्धं प्रेक्षागृहं नाट्यशाला, विचित्रं—नानाविधचित्रोपशोभितम् अतएव रम्यं=रमणीयं तथा वरकुमुदाममालोज्ज्वलं—वर्णानि—उत्तमानि यानि कुसुमानि येषां यानि दामानि—माल्यानि तेषां याः मालाः श्रेणयस्ताभिरुज्ज्वलमण्डितं—देदोप्रमानम्, तथा—भासमानमुक्तपुष्पपुञ्जोपचारकलितं भासमानः—देदीप्यमानो यः मुक्तपुष्पपुञ्जोपचारः मुक्तो विकीर्णो यः पुष्पपुञ्जः पुष्पसमूहः तत्कृतो उपचारः—रचना तेन कलितं युक्तम्, तथा विततविचित्रमाल्यश्रोसमुदायप्रगल्भं विततानि विस्तृतानि विवित्राणि—नानाप्रकाराणि यानि माल्यानि—गुम्फितपुष्पमालाः, तेषां यः श्रोसमुदायः शोभासमूहः तेन प्रगल्भम्—अतिपरिपुष्टं तथा—ग्रन्थिमं ग्रन्थिमवेष्टिमपूरिमसङ्घातिमेन—ग्रन्थिमं ग्रन्थेन निर्वृत्तं, नैपुण्यातिशयात् ग्रन्थि ग्रन्थिसमुदायनिष्पादितं वेष्टनेन सूत्रवेष्टनक्रमेण निष्पन्नं पूरिमम् पूरणेन—भरणेननिष्पन्नं संघातिमम्—सवातेन समूहेण निष्पन्नम्, एषा समाहारे ग्रन्थिमवेष्टिम पूरिमसङ्घातिमेन तेन तथा प्रकारेण माल्येन मालया, पुनः कीदृशेन माल्येन ? इत्याह छेकशिल्पिविभागरचितेन छेकः निपुणो यः शिल्पी तेन विभागरचितं विभागेन विभक्त्या विच्छिन्त्या रचितं निष्पादितं तेन तथाभूतेन माल्येन सर्वतः=सर्वदिक्षु समनुबद्धं संयुक्तम् तथा—प्रविरल लम्बमानविप्रकृष्टपञ्चवर्णैः—प्रविरलानि अभिलितानि लम्बमानानि दीर्घाणि विप्रकृष्टानि—परस्परतःसुदूरवर्तीनि यानि पञ्चवर्णानि नीलकृष्णहारिद्रं लोहितशुक्लवर्णात्मकानि तानि प्रविरललम्बमानविप्रकृष्टपञ्चवर्णानि तैस्तथाभूतैः कुसुमदामभिः—पुष्पमाल्यैः शोभमानं प्रविरलत्वम् अल्पावकाशे सत्यपि स्यादत उक्तं विप्रकृष्टेति । पुनः कीदृशम् ? इत्याह—वनमालाकृताग्रं वनमाला—वन्दनमाला सा कृता अग्रे—अग्रभागे यस्य तत्तथाअग्रभागे कृतवन्दनमालमित्यर्थः, एव—निश्चयेन तथाभूतं सत् दीप्यमानं शोभमानं भवति, तथैव ते पूर्वोक्ताः चित्राङ्गाः अपि द्रुमगणाः अनेकबहु विविधविस्त्रसापरिणतेन अनेको व्यक्तिभेदात् बहुप्रचुरं यथा स्यात्तथा विविधः अनेकविधो जातिभेदात् स चासौ विस्त्रसापरिणतः—स्वभावेन परिणतस्तेन तथाविधेन माल्यविधिना उपपेताः—युक्ता भवन्ति, तथा कुशचिकुश यावत् तिष्ठन्तीति प्राग्बत् । ६।

है जगह २ में स्थान २ पर ये वहां उस काल में पाये जाते हैं । भोगभूमि में इनका अब भी सङ्घ है । इस भरतक्षेत्र में प्रथमकाल में भोगभूमि थी । अतः उस समय ये यहाँ प्रत्येक स्थानों पर वर्तमान थे । ये चित्राग जाति के कल्पवृक्ष उन भोग भूमियां जनों को तथाविध

छ्दः ६६५वृक्षसु २६३५ -

‘तीलेणं समाप भरहे वासे तत्थ २ देसे तर्हि तर्हि बहुवे चिचिंगा णामं द्रुमगणा पण्णत्ता’ इत्यादि ।

छ्दः ६६५वृक्षसु नाम चित्राग छे ते काणे छे ६६५वृक्षे त्यां पुष्पसु स प्याभां यथा इत्यां देकेकाण्ये छे ६६५ वृक्षे ते काणे त्यां पुष्पसु स प्याभां प्राप्तं यथा इत्यां भोग भूमिभां छेभेने अत्यारे पश्य सहसाव छे आ भरत क्षेत्रमा प्रथम काणभा भोग भूमि इती छेथी ते

अथ सप्तमकल्पवृक्षस्वरूपमाह—

‘तीसे णं समाए तत्थ तत्थ भरहे वासे देसे तहिं तहि बहवे चित्तरसा णामं दुम-
गणा पण्णत्ता समणाउसो । जहा से सुगंधवरकमलसालि तंदुलविसिट्टिणिख्वइयदुद्ध रद्धे
सारयधयगुडखण्डमहुमेलिए अइरसे परमण्णे होज्जा उत्तमवण्णगधमंते, अहवा रण्णो
चक्कवट्टिस्स होज्ज णिउणेहिं स्रवपुरिसेहिं सज्जिए चउकप्पसेयसित्ते इव ओदणे कलम
सालिणिव्वत्तिए विप्पम्वक्के सवप्फमिउविसयसगलसित्थे अणेगसालणगसजुत्ते अहवा प-
ड्डिपुण्णदव्वुवक्खडे सुसक्खए वण्णगधरसफरिसजुत्ते बलवीरिय परिणामे इदियवलपुट्टिवि-
वद्धणे खुप्पिपासामहणे पहाणं गुलकदिय खण्डमच्छंडियउवणीएव्वमोअगे सण्हसमिड-
गम्भे हवेज्ज परमेट्टगसंजुत्ते, तहेव ते चित्तरसाविं दुमगणा अणेगवहुविह विविह वीस-
सापरिणयाए भोयणविहीए उववेया कुसविकुस जाव चिट्ठति इति ।७।

एतच्छाया—तस्यां खलु समाया भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवः चित्र-
सा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन् !, यथा तत् सुगन्धवर कलम शालि तण्डुलवि-
शिष्ट निरुपहतदुग्धराद्धं शारदघृतगुडखण्डमधुमेलितम् अतिरस परमान्नं भवेत् उत्तमव-
र्णगन्धवत् अथवा राज्ञः चक्रवर्तिनः भवेत् निपुणैः स्रवपुरूपैः सज्जितः चतुष्कल्पसेकसि-
क्तः इव ओदनः कलमशालिनिर्वर्तितः विप्रमुक्तः सवाष्पमृदु विशदसकलसिक्थः अनेक
शालनसयुक्तः अथवा परिपूर्णद्रव्योपस्कृतः सुसस्कृतः वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तो बलवीर्यपरि-
णामः इन्द्रियबलपुष्टिविवर्धनः क्षुत्पिपासामथनः प्रधानगुडकथितखण्डमत्स्यण्डी घृतोप-
नीत इव मोदकः श्लक्ष्णसमितागर्भः भवेत् परमेष्ठकसंयुक्तः, तथैव ते चित्ररसा अपि
द्रुमगणाः अनेकवहु विध विविध विस्रसापरिणतेन भोजनविधिना उपपेताः कुशविकुश
यावत् तिष्ठन्ति, इति ॥७॥

एतद्व्याख्या—‘तीसे ण’ इत्यादि । तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे
तत्र तत्र बहवः चित्ररसाः—चित्रः मधुराम्लादि भेदादनेकप्रकारः, यद्वा—आस्वादकजना-

विस्रसा परिणाम से परिणत होकर अनेक प्रकार का मालामो को प्रदान करते हैं । इस सूत्र
पाठ गत पदों की व्याख्या जीवाभिगम सूत्र के अनुवाद से जानना चाहिये ।

सातवें कल्पवृक्ष का स्वरूप—

“तीसे ण समाए तत्थ २ भरहे वासे देसे तहिं २ बहवे चित्तरसा णामं दुमगणा पण्णत्ता

वपथते अहिं आ ते ठेक ठेकाण्णे डता ओ चित्राग ळातिना कल्पवृक्षे ते कोण भूमिना भाणु
सोने तथाविध विस्रसापरिष्ठाभथी परिष्णुत थर्धने अनेक प्रकारेनी भाणाओ प्रदान करे
छे. आ सूत्रपाठगत पढोनी व्याख्या एवाभिगमसूत्रना अनुवादमा करवाभा आवी छे
सातमा कल्पवृक्षु स्वरूप—

“तीसेण समाए तत्थ २ भरहे वासे तत्थ देसे तहिं २ बहवे चित्तरसा णामं दुमगणा
पण्णत्ता समणाउसो” इत्यादि ।
सातमा कल्पवृक्षु नाम चित्ररस छे अथम काणमा ओ कल्पवृक्षे आ भरत क्षेत्रमा

नामाश्चर्यकरो रसो येषां ते तथाभूताः नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः । तान् द्रुमगणान् सदृष्टान्तं वर्णयति तान् वर्णयितुं दृष्टान्तमाह—'जहा से' इत्यादि । यथा येन प्रकारेण तत् प्रसिद्धं सुगन्धवरकलमशालितण्डुलविशिष्टनिरुपहतदुग्धराद्धं सुगन्धाः उत्तमगन्धयुक्ताः वगः—प्रधानाः निर्दोषक्षेत्रकालादिसामग्रीभिः प्राप्ततण्डुलभावाः, ये कलमशालितण्डुलाः कलमशालेः तण्डुलास्ते सुगन्धवरकलमशालितण्डुलाः तथा विशिष्टं—नीरोग—गवादिभवत्त्वाद्दुत्तमगुणसम्पन्नं निरुपहतं—पाकादिभिरनुपहतं च यद् दुग्धं तद् विशिष्टनिरुपहतदुग्धम्, उभयोर्द्वन्द्वे सुगन्धवरकलमशालितण्डुल—विशिष्ट निरुपहत दुग्धानि तैः राद्धं—पकम्, उत्तमशालितण्डुलैर्विशुद्धदुग्धेन च पाकनिपुणेन निष्पादितमिति भावः, तथा—शारदघृतगुडखण्डमधुमैलतम् शारदघृतगुडखण्डमधुमिः तत्र—शारदघृतं—शरदतुभवं घृतं गुडः प्रसिद्धः खण्डं—'खॉड' इति प्रसिद्धम्, मधु—शहद इति प्रसिद्धं तैर्मैलितं योजितम् अतएव अतिरसम्—प्रशस्तरससम्पन्नम्, उत्तमवर्णगन्धवत्—प्रकृष्टवर्णगन्धसम्पन्नं परमान्नं पायसं भवेत्, अथवा—इव यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनो निपुणैः पाककुशलैः सूपपुरुषैः पाककारिपुरुषैः सञ्जितः—निष्पादितः चतुष्कल्पसेकनसिक्त इव चत्वारः कल्पाः पाकशास्त्रोक्तविधयो यत्र स चतुष्कल्पः स चासौ सेकश्चेति चतुष्कल्पसेकस्तेन सिक्तः युक्तः पाकशास्त्रविदो हि ओदनेषु क्लेमलतोत्पादनयै चतुरः सेककल्पान् कुर्वन्तीति बोध्यम् । तथा—कलमशालिनिर्वर्तितः—कलमशालितण्डुलनिष्पादितः तथा विप्रसुक्तः—पाकदोषरहितः सुपक्वः तथा सबाष्पमृदुविशदसकलसिक्थः सबाष्पाणि—वाष्पसहितानि निःसरद्वाष्पयुक्तानि मृदुनि कोमलानि विशदानि—सर्वथा तुपादिमलापगमाद्विशुद्धानि सकलानि—पूर्णानि सिक्थानि कणा यत्र स तथा—अनेकशालनकसंयुक्तं अनेकानि बहूनि यानि शालनकानि निष्ठाणकानि तैः संयुक्तः ओदनो भवेत्, अथवा इव यथा परिपूर्णद्रव्योपस्कृत—परिपूर्णानि—मोदकाद्भूतानि सर्वाणि यानि द्रव्याणि केसरैलावातद्राक्षादीनि तैरुपस्कृतं परिष्कृतं—यद्वा तानि उपस्कृतानि निश्चितानि यत्र स तथा, तथा—सुसंस्कृतं यथामात्राम्नि तापादिनोत्तमस्कार सम्पन्नीकृत, तथा—वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तः वर्णादयोऽत्राऽतिशायिनो गृह्यसमणाउसो'— इत्यादि । सातवें कल्पवृक्ष का नाम चित्ररस है । प्रथम काल में ये कल्पवृक्ष

इस भरतक्षेत्र में जगह २ पर अनेक होते हैं । जैसा इनका नाम है उसी के अनुसार ये गुणोपेत हैं । मधुर आम्लादि रस इनका अनेक प्रकार का होता है । अथवा—आस्वादक जनों को वह रस आश्चर्यकारी होता है । इसलिये भी इन कल्पवृक्षों का नाम चित्ररस हो गया है । ये कल्पवृक्ष इस मधुरादि मेद से अनेक प्रकार के रसादि को किसो के द्वारा किये जाने पर

नहीं देते हैं किन्तु इनका ऐसा ही स्वभाव है कि ये स्वभावतः ही उस प्रकार के परिणमनवाले ठंडकेकाष्ठे पुष्कण अथवा भां डोय से जेपु जेमनु नाम तेवा ज गुणोधी को युक्त से मधुर आस्वादक रस जेमना अनेक प्रकारना डोय से अथवा आस्वादकेना भाटे ते रस आश्चर्यकारी डोय से जेधी पक्ष आ कल्पवृक्षे चित्ररस नामधी प्रसिद्ध यथ गया से जे कल्पवृक्षे मधुर वगैरे रसोने डोय वडे नहि पक्ष स्वत स्वभावत. ज आ प्रभाषे परि

न्ते सामर्थ्यात्, तेन अतिशायिवर्णगन्धरसस्पर्शैः युक्तं—सम्पन्नः, तथा बलवीर्यपरिणामः—बलवीर्यहेतवः परिणामा उत्तरकाले यस्य स तथा, बलवीर्यहेतुपरिणामयुक्त इति भावः तत्र बलं शारिरीकं वीर्यं मानसिकोत्साहः, तथा- इन्द्रियबलपुष्टिविवर्धन. इन्द्रियाणां यद् बलं-स्वस्वविषयग्रहणसामर्थ्यं तस्य या पुष्टिः= अतिशायी पोषस्तस्याः वर्धनः वर्धयती-ति वर्धनः वृद्धिकारक, तथा-क्षुत्पिपासामथनः— क्षुधातृपानाशकः, तथा-प्रधानगुडकथित खण्डमत्स्यण्डीघृतोपनीतः प्रधानानि गुडखण्डमत्स्यण्डीघृतानि तत्र गुडः-प्रसिद्धः, खण्डं-खाँड' इति प्रसिद्धम् मत्स्यण्डी 'मिश्री' इति भाषा प्रसिद्धम्, घृत-प्रसिद्धम् इत्येतानि उपनीतानि योजितानि यत्र सः अत्र 'कथित' शब्दस्य उपनीत' शब्दस्य च परप्रयोगः आर्षत्वात्, तथा-श्लक्ष्णसमितागर्भः—श्लक्ष्णा=त्रिवस्त्र गालितत्वेन सूक्ष्मतामुपनीता या समिता गौधूमचूर्णं सा गर्भे—अभ्यन्तरे यस्य स तथा वस्त्र त्रिः पूतगोधूमचूर्णनिर्मितः, तथा—परममेष्टक संयुक्तःप्रशस्त द्रव्ययुक्त, एतादृश मोदको भवेत् तथैव तै चित्ररसा अपि द्रुमगणाः, अनेक बहुविध विविधविस्त्रसापरिणतेन भोजनविधिनोपपेता भवन्ति, तथा कुशविकुश यावत् तिष्ठन्ति इति प्राग्वत् । ७ ।

अथाष्टमकल्पवृक्षस्वरूपमाह—

'तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तत्थ तत्थ बहवे मणिय गा णामं दुमगणा पण्णत्ता समणाउसो! जहा से हारद्धहारवेढणयमउडकुंडल वामुत्तग हेमजाल मणिजाल कणगजालग मुत्तग उचिय कडग खुडुय एकावलि कंठमुत्तग मगरियउरत्थ गेविज्ज सोणि-मुत्तगा चूडामणिकणगतिलग फुल्लगसिद्धत्थयकण्णवालि ससिद्धर उसह चक्कगतल मंगय-तुडिय इत्थ मालगहरिसय केऊर बलय णालंब अंगुलिज्जग बलक्ख दोणारमालिया कंचि मेहलकलाव पयरगपारि हेरग पायजाल घंटियाखिखिणि रयणोरुजाल खुडियवर नेऊर-चळणमालिया कणगणिगल मालिया कंचणमणिरयणभत्तिचित्ता, तहेव ते मणिअंगावि दुमगणा अणेग जाव भूसणविहीए उववेआ जाव तिट्ठति इति । ८ ।

एतच्छाया—तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवो मण्यङ्गा नाम दुमगणा प्रज्ञप्ताः श्रमणऽऽयुष्मन् ! यथा सा हाराद्धहारवेष्टनकमुकुटकुण्डल व्यामुक्तक

होते हैं । अतः अनेक बहुविध विस्त्रसा परिणत हुए भोजनविधि से युक्त होते हैं इस सबन्ध में कहे गये सूत्र के पदों की व्याख्या पहिले हम जीवाभिगम सूत्र के हिन्दी अनुवाद में लिख आये हैं, अतः वहीं से इसे समझ लेनी चाहिये ।

आठवें कल्पवृक्ष का स्वरूप—

“तीसे णं समाए भरहे वासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे मणियं गा णामं दुमगणा पण्णत्ता

धुमनवाणा डोय छे अथीअनेक महुवध विविध विस्त्रसा परिष्णत धथेदा बोअन विधिथी अे युक्त डोय छे. आ सु भ धमा कडेवाभा आवेदा सूत्रेना पडोनी व्याख्या लुवाभिगम सूत्र ना अनुवादमां अमे पडेला करी छे अथी अिसासुअने त्थाथी वाथी दे.

आठमा कल्पवृक्षतुं स्पष्ट.

“तीसेणं त्व भरहे वासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहवे मणिं णामं दुमगणा पण्णत्ता

हेमजालमणिजालकनकजालक सूत्रकोचित कटकक्षुद्रकैकावलिकण्ठसूत्रकमकरिकोरः स्थ-
 ग्रैवेय श्रोणिसूचकचूडामणिकनकतिलकपुष्पकसिद्धार्थकर्णवाली शशिसूर्यवृषभचक्रकतल-
 भङ्गक त्रुटित हस्तमालक हर्षक केयूर वलय प्रालम्बाङ्गुलीयक वलाक्षदीनार मालिका-
 काञ्ची मेखला कलापप्रतरक पारिहार्यक पादजाल घण्टिका किङ्किणी रत्नोरुजाल क्षुद्रि-
 का वरनूपुर चरणमालिका कनक निगडमालिका काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्रा, तथैव ते मण-
 यज्ञा अपि द्रुमगणाः अनक यावद् भूषणविधिना उपपेता यावत् तिष्ठन्ति इति । ८।

एतद्व्याख्या— 'क्षीसे णं' इत्यादि । हे आयुष्मन्श्रमण! अस्यां खलु समायां भरते
 वषे तत्र तत्र देशे तत्र तत्र बहवो मण्यङ्गाः—तत्र मणिपदं मणिमयाभरणपरं तेन मणयः म-
 णिमयान्याभरणानि तेषाम् अद्भूताः—कारणभूता मण्यङ्गा नाम द्रुमगणाः प्रजप्ताः तान्
 द्रुमगणान् सदृष्टान्तं वर्णयति 'जहा से' इत्यादि । यथा-येन प्रकारेण सा वक्ष्यमाणाभरण-
 मालिका भवति, कथंभूता सा ' इत्याह 'हारद्वहार' इत्यादि । तत्र हारः अष्टादशसरिकः
 अर्द्धहारः नवसरिकः वेष्टनकः कर्णभूषणविशेषः, मुकुटकुण्डले प्रसिद्धे व्यामुक्तकं प्रालम्बि-
 तं कुण्डलविशेषः, हेमजालं स्वर्णरचितजालाकृतिकालङ्कारविशेषः एव मणिजालकनकजाल-
 केऽपि बोध्ये, हेमजालकनकजालयो र्भेदो रुद्धिगम्यः, सूत्रकं—यज्ञोपवीतवद् धार्यमाणं
 सुवर्णसूत्रम्, उचितकटकानि—योग्यवलयानि, क्षुद्रकम्—अङ्गुलीयकविशेषः, एकावली
 विचित्रमणिस्वर्णरचिता एकसरिका, कण्ठसूकं—सूत्राकारकण्ठाभरणविशेषः मकरिका—
 मकराकृतिराभरणविशेषः, उरःस्थं—हृदयाभरणविशेषः, ग्रैवेयं ग्रीवाभरणविशेषः श्रोणिसूत्रं
 कटिसूत्रं चूडामणिः—सर्वभूषणरत्नसारो देवमनुष्याधिपतिमौलिस्थायी रोगामङ्गलादिदोषना-
 शकः परममङ्गलभूत आभरणविशेषः, कनकतिलकं ललाटाभरणं, पुष्पकं पुष्पाकृतिललाटा
 भरणं,—सिद्धार्थक सर्षपप्रमाणं स्वर्णकणरचितं सुवर्णमणिकमयं भूषणं, कर्णवाली कर्णोपरि-
 तनमागाभरणविशेषः, शशिसूर्यवृषभाः चन्द्रसूर्यवृषभाकार स्वर्णमयाभरणविशेषाः चक्रकचक्रा-
 कारशिरोभूषणं, तलभङ्गकं बाह्याभरणविशेषः, त्रुटिकानि बाह्याभरणानि, उभयोर्बाह्याभरणत्वे-
 ऽपि आकारकृतो भेदः, हस्तमालकम् आभरणविशेषः, हर्षकं भूषणविशेषः' केयूरं बाहुभू-
 षणविशेषः, अङ्गदापरपर्यायः, पूर्वोक्त बाहुभूषणतोऽत्राकृतिकृतो भेदः, वलयं—कङ्कणं, प्रा-

समणाउसो" इत्यादि । उस सुषम सुषमा नामके आरक की उपस्थिति में इस भरतक्षेत्र में
 जगह २ अनेक मण्यङ्गनामके कल्पवृक्ष होते थे । ये कल्पवृक्ष वहाँ के युगलिकों के लिये स्वाभा-
 विक रूप से अनेक प्रकार की भूषणविधि से युक्त हुए उनके मनोनुकूल आभूषणों की इच्छाओंकी
 पूर्ति करते हैं इस सूत्र पाठ में जो २पद आये हैं , उन की व्याख्या जीवाभिगम सूत्र के हिन्दी

समणाउसो" इत्यादि ।

ते सुषम सुषमा नामना आरकनी उपस्थितिमा आ भरतक्षेत्रमां ठेक ठेकाणि अनेक
 मण्यङ्ग नामना कल्पवृक्षो त्यांना युगलिको माटे स्वाभाविक रूपशी अनेक प्रकारनी भूषण
 विधिशी युक्त थयेला तेमना आभूषणोनी इच्छाओंनी पूर्ति करे छे आ सूत्रपाठमां जे जे पदो

लम्बं—शुम्बनकं कर्णभूषणम् अङ्गुलीयकं मुद्रिका, वलक्षं गलाभरणविशेषः, दीनारदालिका-
दीनारं स्वर्णमुद्रा तदाकारा मणिमाला, काञ्ची मेखला कलापा तत्र काञ्ची एका यष्टिः, मे-
खला अष्ट यष्टिका कलापः पञ्चविंशति यष्टिः । उक्तं च तल्लक्षणम्—

एका यष्टिर्भवेत् काञ्ची, मेखला त्वष्ट यष्टिकाः ।

रशनाः पोटश ज्ञेयाः, कलापः पञ्चविंशकः ॥१॥ इति ।

काञ्च्यादयस्त्रयः स्त्रीकट्याभरणविशेषाः प्रतरक-वृत्तप्रतल आभरणविशेषः, पारि-
हार्यकम्—वल्यविशेषः पादजाल—जालाकृतिपादाभरणम्, घण्टिका-घर्घरिका; किङ्कण्यः शु-
द्धघण्टिकाः, अनयोराकारकृतो विशेषः, रत्नोरुजाल—रत्नमयं जङ्घायाः प्रलम्बमानं सङ्कलकं-
शुद्रिका—आभरणविशेषः वरनूपुराणि श्रेष्ठ चरणाभरणविशेषः, चरणमालिका-विलम्बणाकारं
पादाभरणं तच्च लोके 'पागडां' इति प्रसिद्धम् कनकनिगडः=निगडाकारः पादालङ्कारः, सौ-
वर्णः राजतो वा लोके स 'कडलौ' इति ख्यातः, एतेषां हारार्द्धं हारादि कनकनिगडान्ता-
नां वा मालिका श्रेणिः सा तथा, कथंभूता सा 'इत्याह' कंचण' इत्यादि । काञ्चन-सुवर्ण-
मणिः—चन्द्रकान्तादिः रत्नं—कर्केतनादिकम् एतेषां वा भक्तिः—विच्छित्तिः—रचना इति
यावत् तथा चित्रा-अद्भुता सा काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्राः तत हारार्द्धं हारादिमालिकान्तं
पदस्य काञ्चनादि चित्रान्तपदस्य च कर्मधारयो, विशेषणस्य परनिपात आर्पत्वात् । तत-
श्चायं सक्षिप्तोऽर्थः—काञ्चनमणिरत्नविच्छित्ति सुशोभिता हारार्द्धं हारादि श्रेणि भवति इति
तैथैव-तेन प्रकारेणैव ते मण्यङ्गा अपि द्रुमगणा अनेक बहुविधविविधविस्रसा परिणतेन भूष-
णविधना उपपेताः-युक्ता भवन्ति, तथा कुशविकुश यावत् तिष्ठन्तीति ॥८॥

अथ नवम कल्यवृक्षस्वरूपमाह—

तीसेणं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तत्थ तत्थ वहवे गेहागारा णांमं दुमगणा
-पण्णत्ता समणाउसो! जहा से पागारद्वालयचरियदारगोपुरपासायागासतलमंडव एगसालग-
-विसालगतिसालगचउसालग गढभघरमोहणघर वलभीघरचित्त मालयघरभत्तिघरवटुतंस-
-चउरंस णंदियावत्तसंठिया पंडुरतल मुंडमाल हम्मियं अहवाणं धवलहर अद्दमागह विब्भम
सेलद्धसेल संठिय कूडागारसुविहिय कोट्टुग अणेगघर सरणलेण आवणा विहंग जालविंद-
णिज्जूह अपवरगचंदसालिया खविभत्तिकलिआ भवणविही बहुविकप्पा, तदेव ते गेहा-
गारा वि दुमगणा अणेग बहुविह विविहवीससा परिणयाए सुहारुहण सुहोत्ताराए सुहणि-

अनुवाद में स्पष्ट रूप से की जा चुकी है । मन यह वहीं से समझ लेनी चाहिये, एक लर की
काञ्ची होती है । आठ लरो की मेखला होती है । सोलह लरों की रसना होती है और
पच्चीस लरों का एक कलापक होता है ।

आवेदा छे, तेमनी व्याख्या 'लुवाखिगभसूत्र' ना हिन्दी अनुवादमा स्पष्ट रूपमा करवाभा
आवी छे, ओथी आ विषे त्याथी व वाची देवु लेखिजे ओठ सेरनी कांची डोय छे, आठ
सेरानी मेभला डोय छे सोणसेरानी रसना डोय छे. अने २५ सेरानी ओठ कलापक डोय छे,

खलमणपवेसाए दहरसोवाणपतिकल्याए पड़रिऊ सुहविहाराए मणोणुक्लाए भवणविहीए उववेया जाव चिट्टे ति, इति १९।

एतच्छाया- तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र तत्र देशे तस्मिन् तस्मिन् बहवः
गेहाकारा नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन् ! यथा ते प्राकाराट्टालक चरिकाद्वार गो-
पुरप्रासादाऽऽकाशतलमण्डपैकशालक द्विशालक त्रिशालक चतुःशालक गर्भगृहमोहनगृह वल-
भीगृह चित्रमालकगृहभक्तिगृहवृत्त यज्ञचतुरस्रनन्धावर्तसंस्थिताः पाण्डुरतल मण्ड माल-
हर्म्यम् अथवा खलु धवलगृहार्धमागध विभ्रम शैलार्धशैल संस्थितकूटाकार मुविहित-
कोष्ठकानेक गृहशरणलयनापणाः विटङ्कजाल वृन्द निर्व्यूहापवरक चन्द्रशालिका रूपवि-
भक्ति कलिताः भवनविधयो बहुविकल्पाः, तथैव ते गेहाकारा अपि द्रुमगणा अनेक बहु-
विधविधिविध विस्त्रसापरिणतेन सुखाऽऽरोहण सुखावतारेण सुखनिष्क्रमणप्रवेशेन दर्दरसोपा-
नपङ्क्ति कलितेन प्रतिरिक्त सुखविहारेण मनोऽनुकूलेन भवनविधिना उपपेताः यावत्तिष्ठ-
न्ति, इति १९।

एतद्व्याख्या- 'तस्यां खलु समायामि' त्यादि-पूर्ववत्, नवरं गेहाकारा नाम द्रुम-
गणाः प्रज्ञप्ताः, हे आयुष्मन् ! श्रमण ! तान् वर्णयितुं दृष्टान्तमुपन्यस्यति-यथा ते प्राकारे-
त्यादि प्राकारः 'कोट' इति भाषा प्रसिद्धः अट्टालकः- प्रासादोपरिगृहम्, चरिका नगर प्रा-
कारान्तरालेऽष्ट हस्त प्रमाणो मार्गः, द्वारम्-गृहादि प्रवेशस्थानम्, गोपुरं पुरद्वारम्, प्रासा-
दः-राजभवनम् आकाशतलम्-कटाघनाच्छन्नप्रदेशः मण्डप छायाद्यर्थं पटादिमयः स्थान-
नविशेषः, एकशालकम्-एक भूमगृहम्, द्विशालक द्विभूमगृहम्, त्रिशालकं त्रिभूमगृहम्,
चतुः शालकं चतुर्भूमगृहम् । गर्भगृहम्-अभ्यन्तरगृहम्, मोहनगृहं वासभवनम्, वज्रभीगृहं-
प्रासादाग्रभागः, चित्रमालकगृहम्-चित्रकर्मयुक्तगृहम् मालकगृह-द्वितीयभूमिकाद्युपरिवर्ति-
गृहम्, गृहेत्यस्योभयत्रयोगात्, भक्तिगृह भक्तिः विच्छित्ति-स्तत्प्रधान गृहं, वृत्तं वर्तु-
लाकारं, यज्ञ-त्रिकोणं, चतुरस्र-चतुष्कोणं, नन्धावर्तः स्वस्तिकविशेषस्तैः संस्थिताः, पा-
ण्डुरेत्यादि पाण्डुरतलं-शुक्तिकाचूर्णलिप्त तलयुक्तं गृहं मण्डमालहर्म्यम्- उपर्यनाच्छादित-
शिखरादिभागरहितं हर्म्यम् अथवा-यद्वा खलु निश्चयेन धवलगृहेत्यादि-धवलगृह सौधम्
अर्धमागधविभ्रमाणि गृहविशेषाः, शैलार्धशैलसंस्थितानि-संस्थितेत्यस्य शैले अर्धशैले-च-
योगः, तेन शैलसंस्थितानि पर्वताकाराणि अर्धशैलसंस्थितानि अर्धपर्वताकाराणि च गृहाः-

नैवे कल्पवृक्ष का स्वरूप -

"तीसे ण समाए भरहे वासे तत्थर देसे तहि तहि बहवे गेहागारा णामं दुमगणाः
पण्णत्ता समणाउसो ।" इत्यादि ।

हे श्रमण आयुष्मन् उभ सुषम सुषमा नामक आरे में भरतक्षेत्र में जगह २ अनेक गेहाकार

नवमा कल्पवृक्ष स्वरूप

"तीसेण समाए भरहे वासे तत्थर देसे तहि तहि
बहवे गेहागारा णामं दुमगणा पण्णत्ता इत्यादि ।

हे श्रमण आयुष्मन् ! ते सुषम सुषमा नामना आरामा भरतक्षेत्रमां ये स्थाने पर

णि, कूटाकाराणि—शिखराकृतीनि, सृविहितकोष्ठकानि सुसूत्रणापूर्वक रचितोपरितिनभाग-
विशेषाः अनेकगृहाणि—बहूनि गृहाणि सामान्यतः शरणानि—तृणमयानि लयनानि पर्वत-
निकुटितगृहाणि आपणाः इष्टाः, इत्यादिकाः भवनविधय इत्यग्रिमेण सम्बन्धः ते च की
दृशाः ? इत्याह—विटङ्केत्यादि—विटङ्कः—कपोतपालिका जाल वृन्दं—गवाक्षसमूहः, निर्यूहः
—द्वारोपरितन पार्श्वनिःसृतदारु अपवरकः आच्छादकः चन्द्रशालिका शिरोगृहम्, इत्येवं
रूपा या विभक्तयः विच्छिन्नयस्ताभिः कलिताः युक्ताः, बहुविकल्पाः अनेक प्रकाराः
भवनविधयः वास्तु प्रकाराः भवन्ति तथैव तेनैव प्रकारेण ते गेहाकारा अपि द्रुमगणाः ।
किं विशिष्टास्ते ! इत्याह—‘अनेक बहुविध विविधवित्तसापरिणतेन’ अर्थस्तु प्राग्वत् सु-
रारोहणसुखोत्तारेण—सुखेन सुख पूर्वकम्, आरोहः उपरिगमनम्, तथा सुखेन अवतारः
अधस्तादवतरणं यत्र स तथा तेन । सुखनिष्क्रमण प्रवेशेन सुखेन निष्क्रमणं ततोऽपग-
मनं यत्र स तथा । दर्दरसोपानपङ्क्तिफलितेन -दर्दराणि निरन्तर रत्नफलकमयानि सो-
पानानि, तेषां पङ्क्तयस्ताभिः कलितः युक्तस्तेन । प्रविरक्तसुखविहारेण प्रचिरक्ते एकान्ते
सुखः सुखमयः विहारः अवस्थानशयनासनादिरूपो यत्र स तथा तेन । अतएव मनोऽनु-
कूलेन भवनविधिना उपपेताः—युक्ता यावत्तिष्ठन्तीति प्राग्वत् । १।

अथ दशमकल्पवृक्षस्वरूपमेवम्—

तीसेणं समाए भरहे वासे तत्थ तत्थ देसे तर्हि तर्हि बहवे अणिगणा णामं दुम-
गणा पण्णत्ता समणाउसो ! जहा से आईणग खोमतणुल कंबल दुगूल कोसेज्ज कालमि-
गपट्ट अंसुअ चीणअंसुयपट्टा आभरण चित्त सण्हग कल्लाणगभिगणीलकज्जल बहुवण्णरत्त-
पीयसुक्किल्ल सक्कयमिगलोमहेमघरल्लग अवरुत्तर सिंधुउसभदामिल—वगकल्लिग नल्लिण
तंतुमय भत्तिचित्ता वत्थविही बहुप्पगारा पवरपट्टणुग्गया वण्णरागकल्लिआ, तहेव ते अणि
गणा वि दुमगणा अणेगबहुविह विविह वीससा परिणायाए वत्थविहीए उववेआ कुसवि-
कुस जाव चिट्ठंति, इति । १०।

एतच्छाया—तस्यां खलु समायां भरते वर्षे तत्र देशे तस्मिन् तस्मिन् बहवः अन-
ग्ना नाम द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः श्रमणाऽऽयुग्मन् । यथा ते आजिनक क्षीम तनुल (क) कम्ब
ल दुकूल कौशेय कालमृग पट्टांशुकचीनांशुक पट्टाः आभरण चित्र श्लक्ष्णककल्याणक भृङ्ग-
नील कज्जलबहुवर्णरक्तपीत शुक्ल संस्कृतमृगलोम हेमात्म रत्नकापरोत्तर सिन्धुऋषभद्रवि-

नाम के कल्पवृक्ष होते हैं । ये कल्पवृक्ष मनोनुकूल भवनविधि से युक्त होते हैं अर्थात् अनेक
प्रकार के भवनरूप में ये स्वतः स्वभाव से परिणत हो जाते हैं । सूत्रगत पदों की व्याख्या जी-
वाभिगम सूत्र के अनुवाद में की गई है ।

अनेक गेहाकार नामना कल्पवृक्षो डोय छे. जे कल्पवृक्षो मनोनुकूल भवनविधिधी युक्त
डोय छे. जेटवे के अनेक प्रकारना भवन रूपमां जे स्वतः स्वभावधी परिणत थर्छ भय
छे आ सूत्रमा आवेला पढोनी व्याख्या एवाभिगमसूत्रना अनुवादमा कश्चामा आवेली
छे. जेधी जिज्ञासुजो त्यांथी वांथी छे

ड वङ्ग कलिङ्ग नलीन तन्तुमयभक्तिचित्राः वस्त्रविधयः बहुप्रकाशः प्रवरपत्तनोद्गताः वर्णरागकलिताः, तथैव ते अनग्ना अपि द्रुमगणाः अनेक बहुविधविधिविधिविन्नसा परिणतेन वस्त्रविधिना उपपेताः कुशचिकुल यावत् तिष्ठन्ति, इति ।१०।

एतद्व्याख्या—‘तस्यां खलु’ इत्यादि प्राग्बत्, नवरम् अनग्नाः अविद्यमानाः नग्नाः तात्कालिका जना येभ्यस्तेऽनग्नाः द्रुमगणाः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन् ! तान् वर्णयितुं दृष्टान्तमुपन्यस्यति यथा ते आजिनकेत्यादि—तत्र आजिनकम्—चर्ममयं वस्त्र क्षीमं सामान्यतः कार्पासिकं वस्त्रं केचित्तु क्षुमा—अतसी तन्मयं वस्त्रमिती वदन्ती, तनुलं—तनुः शरीरं तत् सुखस्पर्शतया लाति अनुगृह्णातीति तनुलं शरीरसुखादि कारक वस्त्रं, कम्बलः प्रसिद्धः ‘तणुअकवल’ इति पाठे तु तनुक कम्बलः, इतिच्छाया, तत्पक्षे तनुकः सूक्ष्मोर्णमयः कम्बलः, दुकूलः—गौडदेशीयं कार्पासिकं वस्त्रम्, यद्वा—दुकूलः—वृक्षविशेषः तद्वत्कृ गृहीत्वा उदूखले जलेन सह कुट्टयित्वा कुसीकृत्य च व्यूयते तत्तत् दुकूलम्, कौशेयं—कृमिकोशज-तन्तुनिष्पन्नं वस्त्रम्, कालमृगपट्टाः कृष्णमृगचर्ममयं वस्त्रम् अंशुकं चीनांशुकानि नानादेशेषु प्रसिद्धानि दुकूलविशेष रूपाणि पूर्वोक्तस्यैव वल्कस्याभ्यन्तरहारिभिर्निष्पादितानि चीनांशुकानि वा पट्टाः पट्टमूर्त्तनिष्पन्नानि वस्त्राणि, आभरणचित्रेत्यादि तत्र आभरणैः, भूषणैः, चित्राणि अद्भुतानि आभरणचित्राणि, लक्ष्णानि सूक्ष्मतन्तुनिष्पन्नानि कल्याणकानि सुलक्षणानि वस्त्राणि भृगनील भ्रमरवन्नीलवर्णं तथा कज्जल कज्जलवत्कृष्णवर्णं बहुवर्णम् विचित्रवर्णम् रक्त-रक्तवर्णं पीतं पीतवर्णम्, शुक्लं शुक्लवर्णम् संस्कृत सुसज्जितं यन्मृगलोम हेम स्वर्णं च तदात्मकं तन्मयम्, रत्नकः कम्बलश्चैते कीदृशाः ! इत्याह—अपरः—पश्चिमदेशः उत्तरः—उत्तरप्रदेशः सिन्धुः—देशविशेषः ऋषभः—देशविशेषः, द्रविडवङ्ग कलिङ्गदशर्वे कल्पवृक्ष क, स्वरूप कथन—

“तीसे ण समाए भरहे बासे तत्थ २ देसे तहिं तहिं बहुवे अणिगण्य णामं दुमगणा पण्णसा समणाउत्तो !” इत्यादि । हे श्रमण आयुष्मन् ! उस सुषम सुषमा नाम के बारे में भरत क्षेत्र में अनग्ना नाम के कल्पवृक्ष होते हैं, इन कल्पवृक्षों के प्रभाव से वहाँ का कोई भी जन वस्त्र रहित नहीं रह पाता है, सुन्दर २ वेश कीमती वस्त्र वहाँ के मनुष्यों को इन से प्राप्त होते रहते हैं क्योंकि ये वृक्ष स्वभावतः अनेक रागों से रजित हुए वस्त्रों के रूप में परिणत हो जाते हैं ।

दशभा कल्पवृक्षसु स्वरूप कथनः

“तीसेण समाए भरहे बासे तत्थ २ देसे तहिं २ बहुवे अणिगमा णामं दुमगणा पण्णसा” इत्यादि ।

हे श्रमण आयुष्मन् ! ते सुषम सुषमा नामना आशामा भरतक्षेत्रनी अंदर अनग्ना नामना कल्पवृक्ष होथे छे जे कल्पवृक्षना प्रभावशी त्यानी, कौण्ड पक्ष व्यक्तित वस्त्र रहित रहती नथी. उत्तम तेमअ भूद्वयवान वस्त्रे त्यांना भाळुसेने जेभनाथी प्राप्त थता रहे छे केभते जे वृक्षो स्वभावत अनेक रागोथी रजित थयेत्ता वस्त्रोना उपमां परिष्कृत थथ जाथ छे, ॥१०॥

ज्ञाः एते त्रयो देशविशेषाः, एतेषां सम्बन्धिनो ये नलिनतन्तवः मृणालतन्तवः सूक्ष्मतन्तवः यद्वा सूक्ष्मतन्तुमय्यः, भक्तयः विशिष्टरचना ताभि चित्राः अद्भुताः वस्त्रविधयः बहु प्रकाराः अनेक प्रकाराः भवन्ति तथा प्रवर पत्तनोद्भवाः प्रसिद्धनगरोद्भवाः, वर्णरागकलिताः वर्णैः अनेकविधवर्णैः रागैः मञ्जिष्ठादिभी रागैः कलिताः युक्ताः तथैव तेनैव प्रकारेण ते पूर्वोक्ताः अनग्ना अर्पि द्रुमगणाः तिष्ठन्ति, अनेक बहुविधेन्यादि प्राग्वत् ॥१०॥सू०२३॥

पूर्वसूत्रे सुपमसुपमायां कल्पवृक्षदशकस्वरूपं वर्णितम् अधुना सुपमसुपमा भाविनां मनुजानां स्वरूपं जिज्ञासमान आह—

मूलम्—तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुथाणं केरिसए
आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ! गोयमा ! ते णं मणुया सुपइड्डियकुम्म
चारुचलणा जाव लक्खणवंजणगुणोववेया सुजायसुविभत्त संगयंगा
पासाईया जाव पडिख्वा । तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मनुईणं
केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा ! ताओ णं मनुईओ सु-
जायसव्वंगसुंदरओ पहाणमहिलागुणेहिं जुत्ता अइकंत विसप्पमाणमउ-
यसुकुमाल कुम्मसंठियविसिद्धचलणा उज्जुमउयपीवर सुसाहयंगुलीओ
अब्भुण्णयइयतलिण तंब सुइणिद्धणक्खा रोमरहियपट्टलड्डसंठिय अज-
हण्णपसत्थलक्खण अक्कोप्पजंघजुयलाओ सुणिम्मिय सुगूढ सुजण्णुमंड-
लसुबद्धसंधीओ कयली खंभाइरेकसंठियाणेव्वण सुकुमालमउयमंसल
अबिरलसमसंहियसुजाय बइपीवरणिरंतरोरु अट्टावयवीइयपट्टसंठिय पस-
त्थविच्छिण्णपिहुलसोणी वयणायामप्पमाण दुगुणिय विसालमंसल सुबद्ध
जहणवरधारिणीओ वज्जविराइयपसत्थ लक्खणनिरोदर तिवलियबलिय-
तणु णयमज्झिमाओ उज्जुयसमसहिय जच्च तणु कसिण णिद्ध आइज्ज-
लउह जाय विभत्त कंत सोभंतरुइल रमणिज्जरोमराई गंगावत्तपया-
हिणावत्तरंग भंगुर विकिरणतरुण बोहिय आकोसायंतपउमगंभीर-
वियडणाभा अ ञ्मडपसत्थपीण कुच्छीओ सण्णयपासाओ संगयपासाओ

इन्हीं बलों का वर्णन इस सूत्र द्वारा किया गया है इनको प्रकट करने वाले सूत्रगत पदों की व्याख्या ।
मैंने हिन्दी अनुवाद करते समय जीवाभिगम सूत्र में की है अत वहाँ से यह जान लेनी चाहिये ।

आ वस्त्रोत्तु वस्तुन आ सूत्रद्वारा कर्वाभा आवेद छ तेने प्रकट कर्नाश सूत्र गत-
पडोनी व्याख्या ल्वाभिगम सूत्रना अनुवादमा कर्वाभा आवीगयेद छ तेधी त्यांथी ते
अमल देवी ॥सू० २३॥

सुजायपासाओ मियमाइयपीणइयपासाओ अकरंडुय कणगरुयगणिम्मल
सुजायणिरुवहयगायलट्टीओ कंचणकलसप्पमाण समसहियलट्ट चुचुआ-
मेलगजमलजुयलवट्टिय अब्भुण्णयपीणइअय पीवरपओहराओ भुयंग
अणुपुव्वतणुय गोपुच्छ वट्टसमसंहियणमिय आइज्जललियवाहा तंवण-
हाओ मंसलग्गहत्थाओ पीवरकोमलवरंगुलियाओ णिद्धपाणिरेहा रवि
ससि संखचक्कसोत्थियसुविभत्तसुविइयपाणिरेहाओ पीणुण्णय कर कक्ख
वत्थिप्पप्सा पडिपुण्णगलकपोला चउरंगुल सुप्पमाण कंबुवरसरिंस-
गीवाओ मंसलसंठिय पसत्थहणुगाओ दाडिम पुप्फप्पगास पीवरपलंब
कुंचियवराधराओ सुंदरुत्तरोट्टाओ दहिदगरयचंदकुंदवासंतिमउलधवल-
अच्छिह्विमलदसणाओ रत्तुप्पलपत्तमउय सुकुमालतालुजीहाओ कण-
वीरमउलकुडिल अब्भुग्गय उज्जुतुंगणासाओ सारयणवकमल कुमुयकुव-
लयविमलदलणियरसरिसलक्खणपसत्थअजिह्वकंतणयणा पत्तलधवलायत
आतंबलोयणाओ आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइसंगयसुजायभूमयाओ
अलीणपमाणजुत्तसवणा सुसवणाओ पीणमट्टगंडलेहाओ चउरंसपसत्थ
समणिडालाओ कोमुई रयणिअरविमलपडिपुण्णसोमवयणाओ छत्तुण्णय-
उत्तमंगाओ अकविल सुसिणिद्ध सुगंधदीहसिरयाओ छत्त १ ज्झय २
जूअ ३ थूम ४ दामिणि ५ कमंडलु ६ कलस ७ वावि ८ सोत्थिय ९
पडाग १० जव ११ मच्छ १२ कुम्म १३ रहवर १४ मगरज्झय १५ अंक
१६ थाल १७ अंकुस १८ अट्टावय १९ प्पइट्टग २० मयूर २१ सि
रियमिसेय २२ तोरण २३ मेइणि २४ उदहि २५ वरभवण २६ गिरि
२७ वरआयंस २८ सलीलगय २९ उसम ३० सीह ३१ चामर ३२ उत्तम
पसत्थ वत्तीस लक्खणधरीओ हंससरिसगईओ कोइलमहुरगिरसुस्सराओ
कृता सब्वस्स अणुमयाओ ववगयवलिपलियवंगदुव्वण्णवाहि दोहग्गसो-

गमुक्काओ उच्चत्तेण य णराण थोवूणमुस्सियाओ सभावासैंगारचारुवे-
 साओ, संगयगयहसियभणियचिद्धियविलाससंलावणिउणजुत्तोवयारकुस-
 लाओ सुंदर थणजहणवयणकरचलणणयणलावणयरूपजोव्वणविलास-
 कलियाओ णंदणवणविवरचारणीउव्व अच्छराओ भरहवास माणुसच्छ-
 राओ अच्छेगपेच्छणिज्जाओ पासाईयाओ जाव पडिख्वाओ । तेण
 मणुओ ओहस्सरा हंसस्सरा णंदिस्सरा सीहस्सरा सीहघोसा स्सरा
 सुस्सरणिग्घोसा छायायवोज्जोविअंगमंगा वज्जरिसहनारायसंघयणा
 समचउरंससंठाणसंठिया छविणिरातंका अणुलौभवाउवेगा कंकग्गहणी
 कवोयपरिणामा सउणिपोसपिट्ठंतोरुपरिणया छद्धणुसहस्सभूसिआ ।
 तेसिणं मणुयाणं वे छप्पणा पिट्ठकरंडकसया पण्णत्ता समणाउसो ! पउ
 मुप्पलगंधसरिसणीसाससुरभिवयणा, तेणं मणुया पगई उवसंता पगई
 पयणु कोहमाणमायालोभा मिउमहवसंपन्ना अल्लीणा भद्दगा विणीया
 अप्पिच्छा असणिणहिसंचया विडिमतरपरिवसणा जहिच्छिय कामका-
 मिणो ॥सू०२४॥

छाया—तस्या खलु भदन्त ! समायां भरते वर्षे मनुष्याणा कीदृशकः आकार-
 भावप्रत्यवतारः प्रक्षप्तः गौतम ! ते खलु मनुजा सुप्रतिष्ठितकूर्मचारुचरणा यावत् लक्षण-
 व्यञ्जनगुणोपपेता सुजात सुविभक्तसङ्गताङ्गाः, प्रासादीयाः, यावत् प्रतिरूपाः, । तस्या खलु
 भदन्त ! समायां भरते वर्षे मनुजीना कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारः प्रक्षप्तः ? गौ-
 तम ! ताः खलु मनुज्य सुजातसर्वाङ्गसौन्दर्य प्रधानमहिलागुणैर्युक्ताः अतिकान्त विसर्प
 मृदुकसुकुमार कुर्मसंस्थित विशि रणाः ऋजुमृदुक पीवरसंहताङ्गुलयः अभ्युन्नरतिद
 तलीन ताम्रशुचिस्निग्धनखाः रोमरहितवृत्तलष्ट (रम्य) संस्थिताऽनघन्य प्रशस्तलक्षण को-
 प्यजङ्गायुगला मुनिर्मित सुगूढ सुजानु मण्डल बुधद्धसन्धयः कदलीस्तम्भातिरेक संस्थितिवृण
 सुकुमार मृदुकमासलाबिरलसमसहितसुजातवृत्तपीवरनिरन्तरीर्वः अष्टापदवोतिक प्रष्ट संस्थित
 प्रशस्तविस्तीर्ण पृथुलभ्रोगयः वदनाऽऽ प्रमाण द्विगु विशालमांसल बुधद्धज
 रधारिण्य वज्रविराजितप्रशस्तलक्षणनिरुद्धत्रिवृति लिततनुनतमभ्यमाः ऋजुकसमसहित
 जात्यतनुकृष्णस्निग्धादेयललित सुजात सुवि कान्तशोभमानरुधिररमणीय रोमराजयः
 गङ्गावर्त प्रदक्षिणावर्ततरङ्गमद्गुरुरविकिरण तरुणबोचिताऽऽक्रोशायमानपद्मगम्भीरविकटना-
 भाः अनुद्भट प्रशस्तपोन कुक्षय सन्नतपार्श्वाः सहगतपार्श्वाः सुजातपार्श्वाः ि त्रिक
 पीनरतिदपार्श्वाः अकरण्डक कनयरूचक सुजातनिरूपहतगात्रयष्टयः काञ्चनकलश
 समसहि ट (रम्या)बुधु क यमल युगल वसिस्ताभ्युन्नतपीनरतिदपीवरपयोधराः भूज-

हगानुपूर्वतनुकगोपुच्छवृत्तसमसंहितनतादेयललितवाहवः ताभ्रनला मासलाग्रहस्ताः पीवर-
 क्रोमलवराहगुलीकाः स्निग्धपाणिरेखाः रविशशिशर्षिकस्वस्तिकसुविभक्तमुचिरचितपाणि-
 लेखा. पीनोन्नतकरकक्षवस्तिप्रदेशाः परिपूर्णगलकपोलाः चतुरङ्गुलसुप्रमाण कम्बुवरसदृश-
 श्रोवाः मांसलसंस्थितप्रशस्तहनुकाः दाडिमपुष्पप्रकाशपीवरप्रलम्बकुञ्चिनवराधरा सुन्दरो-
 चरोष्ठा. दधिदकरजभ्रन्द्रकुन्दवासन्तीमुकुलघवलाच्छिद्रविमलदशना रक्तोत्पलपत्रमृदुक-
 षुकुमारतालुजिह्वा. करवीरमुकुलकुटिलाभ्युद्रतक्रतुतुङ्गनासाः शारदनवकमल कुमुदकुवलय-
 विमलदलनिकरसदृशलक्षणप्रशस्ताजिह्वकान्तनयनाः पत्रल घवलायताऽऽताम्रलोचनाः आना-
 मित्रचाप चारुविर कृष्णाभ्रराजिसङ्गतसुजातभ्रुव आलीनप्रमाणनयुक्तश्रवणा सुश्रवणाः
 पीनलण्ट (रम्य) गण्डलेखाः चतुरस्र प्रशस्तसमललाटा. कौमुदीरनिकरविमलपरिपूर्णसौ-
 म्यवदनाः छत्रोन्नतोत्तमाहगाः अकपिलसुस्निग्ध सुगन्धदीर्घशिरोजा छत्र १ ध्वज २ यूप ३
 स्तूप ४ दामनी ५ कमण्डलु ६ कलश ७ वापी ८ स्वस्तिक ९पताका १० यव ११ मत्स्य
 १२ कूर्म १३ रथवर १४ मकरध्वजा १५ ऽहक १६ स्थाला १७ ऽकुशा १८ ऽष्टापद १९
 सुप्रतिष्ठक २० मयूर २१ श्यभिपेक २२ तोरण २६ मेदिन्यु २६ दधि २५ वरभवन २६ गिरि
 २७ वरादर्श २८ सलीलगज २९ ऋषभ ६० सिंह ३१ चामरो ३२ तमप्रशस्तद्वात्रिशल्लक्ष-
 णधरा हससदृशगतय कोकिलमधुरगी सुस्वराः कान्ताः सर्वस्य अनुमताः व्यपगतवलिप-
 लित व्यङ्गतुर्वर्णव्याधिदौर्भाग्यशोकमुक्ताः उच्चत्वेन च नराणां स्तोकोनोच्छ्रिता स्वभाव-
 शृङ्गारचारुवेधाः सङ्गातगतहसितभणितस्थितविलाससलापनिपुणयुक्तोपचारकुशला. सुन्द-
 रस्तनजघनवदनकरचरणनयनलावण्यरूपयौवनविलासकलिताः नन्दनवनविवरचारिण्य इव
 अप्सरसः भरतवर्षमानुषाप्सरसः आचार्यकप्रेक्षणीयाः प्रासादीयाः यावत् प्रतिक्रपाः ते खलु
 मनुजा ओघस्वरा हंसस्वरा क्रौञ्चस्वरा नन्दीस्वरा सिंहस्वराः सिंहघोषाः सुस्वरा सु-
 स्वरनिर्घोषाः छायातपोद्द्योतिताङ्गाङ्गाः वज्रब्रह्मभनाराचसंहननाः समचतुरस्रसंस्थानसं-
 स्थिताः छविनिरातङ्गाः अनुलोमवायुवेगाः कङ्कग्रहणोकाः कपोतपरिणामाः शकुनिपोसपृष्ठा-
 न्तरोरुपरिणताः षड्धनु सदस्रोच्छ्रिता तेषां खलु मनुष्याणां द्वे षट् पञ्चाशत् पृष्टकरण्डक-
 शते प्रहृष्टे, भ्रमणायुष्मन्ते खलु मनुजा प्रकृत्युपशान्ता प्रकृतिप्रतनुक्रोधमानमायालोभाः
 मृदुमादेवसम्पन्नाः आलीनाः भद्रका विनीता अल्पेच्छा असन्निधिसंचया विष्टपान्तरप-
 रिवसना यथेप्सितकामकामिन ॥ सू० २४ ॥

टीका—‘तीसे णं भते!’ इत्यादि ।

‘तीसे णं भते! समाए भरहे वासे मणुयाणं’ हे भदन्त ! तस्यां खलु समायां भरते

इस प्रकार से १० दस तरह के कल्पवृक्षों का स्वरूप प्रकट कहके अब सूत्रकार सुषमसुषमा नामके कालमें उत्पन्न हुए मनुष्यों के स्वरूप का वर्णन करते हैं ।

“तीसेणं समाए भरहेवासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पणत्ते” इत्यादि ।

आ प्रभाषे १० प्रकाशना कल्पवृक्षेषु स्वरूप प्रकट करीने हरे सूत्रकार सुषमासुषमा नामके कालमा उत्पन्न यथेव मनुष्येना स्वरूपेषु वर्णन करे छे. ;

वर्षे मनुजानां युगलिनां स्त्री पुरुषाणां 'केरिसप' कोट्टशकः—कथम्भूतः 'अयारभावपडो-
यारे' आकारभावप्रत्यवतारः—स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः? इति गौतमेन पृष्टो
भगवान् प्राह—'गोयमा ! ते णं मणुया' हे गौतम ! ते युगलिन स्त्रीपुरुषाः 'सुपडद्वियं कु-
म्मचारुचलणा' सुप्रतिष्ठितकूर्मचारुचरणाः—सुप्रतिष्ठिताः समीचीनसस्थानाः कूर्मचारुच-
रणाः—कूर्मः कच्छपस्तद्धत् उन्नतत्वेन चारवः शोभनाः चरणाः येषां ते तथा ननु "मानवा
मौलितो वर्ण्या देवाश्चरणतः पुनः" इति ऋक्समयान्मनुज जन्मवतां युग्मिनां मौलित एव
वर्णनमुचितं तत्कथं चरणादारभ्य वर्णनं युक्तियुक्तमिति चेदत्रोच्यते—युग्मिनो हि मनुष्याः
प्रशस्तपुण्यात्मानो भवन्तीति ते देवकल्पा इति न देवकल्पानां तेषां चरणत आभ्य वर्णने
काचित्क्षतिरिति 'जाव लक्खणवंजणगुणोववेया यावत् लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेताः "सुपड-

गौतम स्वामी ने प्रभु से इस सूत्र द्वारा ऐसा पूछा है कि हे भदन्त ! उस सुषमसुषमा आ-
रक के सद्भाव में भरत क्षेत्र में युगलिक मनुष्योंका स्वरूपपर्याय प्रादुर्भाव—स्वरूप कैसा होता है ?
इसके उत्तर में प्रभु ने ऐसा कहा है—'गोयमा ! तेण मणुया सुपडद्वियं कुम्मचारुचलणा, जाव लक्-
खणवंजणगुणोववेया सुजाय सुविभत्तसंगयंगा पासाईया जाव पडिख्खा" हे गौतम ! उस समय
में मनुष्य युगलिक स्त्री पुरुष—जिनका सस्थान समीचीन है ऐसे तथा कच्छप के जैसे उन्नत सुन्दर-
चरणों वाले होते हैं,

शंका—“मानवा मौलितो वर्ण्या देवाश्चरणत. पुनः” इस कविसमय के अनुसार मनुष्य जन्म-
वाले युगलिकों का वर्णन मस्तक से लगाकर किया जाता है और देवों का वर्णन चरण से लेकर
किया जाता है तो फिर यहाँ इनका वर्णन चरण से लेकर सूत्रकार ने क्यों किया ? तो इसका
उत्तर ऐसा है कि युगलिक मनुष्य प्रशस्त पुण्यवाले होते हैं अतः उन्हें देवतुल्य माना जाता है
अतः देवकल्प इन युगलिक मनुष्यों का वर्णन चरण से लेकर करने में कोई क्षति जैसी बात

'तीसेण समाप भरहे वासे मणुयाणं केरिसप आयारभावपडोयारे पण्णत्ते—इत्यादि ॥सूत्र११॥

टीका—गौतमे प्रभुने आ सूत्र वडे प्रश्न कर्थी छे के हे लक्षत । ते सुषमसुषमा आ-
रकना सद्भावमां भरतक्षेत्रमा युगलिक मनुष्येना स्वरूपपर्याय प्रादुर्भाव ज्येत्से के स्वरूप
केवुं डोय छे ? जेना जन्ममा प्रभुजे आ प्रभावे कर्हुं छे—गोयमा ! तेण मणुया सुपड
द्विय कुम्मचारुचलणा जाव लक्खणवंजणगुणोववेया सुजायसुविभत्तसंगयंगा पासाईया जाव
पडिख्खा" हे गौतम ! ते अभये मनुष्य युगलिक स्त्री—पुरुष जेमनु सस्थान समीचीन छे
जेवा तेमज कच्छप जेवा उन्नत सुन्दर चरणोवाणा डोय छे

शंका—“मानवा मौलितो वर्ण्या देवाश्चरणतः पुनः” आ ऋक्समय मुश्रुष मनुष्य-
जन्मवाणा युगलिकेणु वर्णन मस्तकथी भाडीने करवु जेधजे अने देवाणु वर्णन चर-
णोथी करवाभा आववु जेधजे तो पछी अही जेमनु वर्णन चरणथी भाडीने सूत्रकारे शा
भाटे कर्थुं छे ? आ प्रश्नने। उत्तर आ प्रभावे छे के युगलिक मनुष्य प्रशस्त पुण्यवाणा
डोय छे जेथी तेजो देव तुकथ मानवाभा आवे छे. ज्येत्सा भाटे देवकल्प आ युगलिक मनुष्येणु
वर्णन चरणथी भाडीने करवाभां केध क्षति जेनी वत नथी आ युगलिक स्त्री—पुरुष लक्ष्य स्व -

द्विय' इत्यादि पदादारभ्य 'लक्ष्ण वंजण' इत्यादि पदपर्यन्त विशेषणपदानां सग्रहो जी-
वाभिगमादि सूत्रतो बोध्यः लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेताः-लक्षणानि-स्वस्तिकादीनि व्यञ्ज-
नानि-मपीतिलकादीनि गुणाः, प्रकृतिभद्रतादयश्च तरुपेताः युक्ताः 'मुजाय सुविभक्त-
संगयंगा' सुजातमुविभक्तसङ्गताङ्गाः सुविभक्तं सुष्ठु विभागयुक्तम् अङ्गोपाङ्गानां यथा
वद्विभागसत्त्वात्, सङ्गतं-प्रमाणोपेतं न तु न्यूनाधिकम् अङ्गं शरीरावयवो येषां ते तथा 'पा
साईया' प्रासादीया इत्यारभ्य 'जाव पडिह्वा' यावत् प्रतिरूपाः इति पर्यन्तपदसङ्ग्रहो
बोध्यः तथाहि-प्रासादीयाः, दर्शनीयाः अभिरूपा प्रतिरूपाः इति पदचतुष्टय फलितम्
एत इच्छाख्या प्राग्वत् . तस्यां खलु भदन्त ! समायामित्यादि 'तीसे णं मंते ! समाए' हे
भदन्त ! तस्यां-पूर्वोक्तायां सुषमसुषमायां समायां कालविभागरूपायां खलु 'भरहे वासे
भरते वर्षे भरतक्षेत्रे 'मणुईणं' मनुजीनां-मानुषीणां प्रस्तावाद् युग्मिनीनां 'केरिसए' कीट-
शकः कोट्टशः 'आयारभावपडोयारे' आकारभावप्रत्यवतारः स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः 'पण्णत्ते'
प्रज्ञप्तः ? भगवानाह-'गोयमा ' ताओणं' हे गौतम ! तस्यां खलु समायां ताः-त्वया
पृष्टाः खलु 'मणुईओ' मनुज्यः 'सुजाय सव्वंगसुन्दरीओ' सुजातसर्वाङ्गसुन्दर्यः, सुजा

नहीं है । युगलिक स्त्री पुरुष लक्षण-स्वस्तिक आदि, व्यजन-मपीतिलक आदि एवं गुण-प्रकृति
भद्रता आदि से युक्त होते हैं, सुजात सुविभक्त सगत अंग वाले होने हैं अर्थात् इनके शरीराव-
यव सुविभागयुक्त होते हैं एवं सङ्गत-प्रमाणोपेत होते हैं न्यूनाधिक नहीं होते हैं, यहा जो प्रथम
यावत् शब्द आया है उससे 'सुपइद्विय' इत्यादि पद से लेकर 'लक्ष्ण, वंजण' इत्यादि पद पर्यन्त
जितने और विशेषणपद है उनका सग्रह जीवाभिगम आदि सूत्र से जानलेना चाहिये "पासाईया जाव
पडिह्वा" पाठ में आगत इस यावत्पद से दर्शनीय और अभिरूप इन पदों का सग्रह हुआ है,
इन चारों पद की व्याख्या पहिले जैसी की गई है वैसे ही जाननी चाहिये "तीसेणं मंते ! समाए
भरहे वासे मणुईण केरिसए आयारभाव पडोयारे पण्णत्ते" हे भदन्त ! उस सुषमसुषमाकाल के
समय भरत क्षेत्र की स्त्रियों का मनुष्यणियों का आकारभाव प्रत्यवतार स्वरूप कैसा कहा गया
है ? इसके उत्तर में प्रश्न कहते हैं -"गोयमा ! ताओ ण मणुईओ सुजायसव्वंग सुंदरीओ पहाण

स्तिष्ठे विगेरे व्यञ्जन-मपीतिलक विगेरे तेभञ् शुष्-प्रकृतिभद्रता वगेरेथी युक्त होय छे
सुजात सुविभक्त सगत अ गवाणा होय छे. ओट्टे हे ओभना शरीरावयवो सुविभागयुक्त
होय छे. तेभञ् सगत प्रमाणोपेत होय छे न्यूनाधिक होता नथी अही ने प्रथम यावत्
शब्द आवेल छे तेथी 'सुपइद्विय' इत्यादि पथी भांडीने 'लक्ष्णवंजण' इत्यादि पद पर्यन्त
नेट्टेवा पधाराना विशेषणपदे छे तेभने स'अड 'जीवाभिगम' वगेरे सूत्रदारा अण्णो देवे
नेध'ओ 'पासादीया जाव पडिह्वा' पाठमा आवेल आ यावत् पदथी दर्शनीय अने
अभिज्ञ आ पडोने स अड थयेल छे ओ थारे थार पडोनी व्याख्या पडेलो नेवी करवामां
आवे छे. तेथी न सभञ्ची नेध'ओ "तीसेणं मंते ! समाए भरहेवासे मणुईण केरिसए
आयारभावपडोयारे पण्णत्ते" हे भदन्त ! ते सुषमसुषमा काल ना सभये भरत क्षेत्रनी स्त्री-
जोना आकार भाव प्रत्यवतार-रूपरूप केषु कडेवामा आवेल छे. आना अवाणमा प्रश्न कडे-
छे - "गोयमा ! ताओ णं मणुईओ सुजायसव्वंग सुंदरीओ पहाण महिलागुणेहिं सुत्ता" हे

तानि यथावत् प्रमाणोपेततया सूतपन्नानि सर्वाण्यङ्गानि मस्तकादोनि यासां ताः सुजा-
तसर्वाङ्गा, ताश्च सुन्दर्यः सुजातसर्वाङ्गत्वात् मनोहराकाराः, 'पद्माण महिलागुणेहि जुता' प्र-
धानमहिलागुणैर्युक्ताः प्रधानाः प्रवराः ये महिला गुणाः स्त्रीगुणाः प्रियंवदत्व स्वामिचि-
त्ताजुवर्त्तकत्वादयस्तैर्युक्ताः उपेताः तथा 'अइकंत विसप्पमाण मउय सुकुमाल कुम्मसंठिय
विसिट्ठचलणा' अतिक्रान्त विसर्पन्मृदुक सुकुमार कूर्मसंस्थितविशिष्टचरणाः—अतिक्रान्तौ
अतिसुन्दरौ, विसर्पन्तौ सञ्चरन्तावपि यद्वा 'विसप्पमाणे' त्यस्य विश्वप्रमाणेतिच्छाया
तस्य द्विवचने विश्वप्रमाणौ—विशिष्ट स्वप्रमाणौ स्वशरीराजुसारि प्रमाणौ न न्यूनाधिकप्रमा-
णा वित्यर्थः मृदुक सुकुमारौ मृदुकानां—कोमलानां मध्ये सुकुमारौ सुकोमलौ कूर्मसंस्थितौ
कूर्मः कच्छपस्तद्वत् उन्नतपृष्ठतया संस्थितौ विशिष्टौ मनोज्ञौ चरणौ यासा तास्तथा 'उज्जु
मउयपीवरसुसाहियंगुलीओ, ऋजुमृदुकपीवरसुसहताङ्गुलीकाः ऋजवः सरलाः मृदुकाः

महिलागुणेहि जुता" हे गौतम । वे मनुष्य स्त्रिया—युगलिक मनुष्यस्त्रिया अच्छे प्रमाण में उत्पन्न
हुए मस्तकादिक अंगों वाली होती है तथा सुजात सर्वाङ्गयुक्त होने से वे बड़ी सुन्दर होती है—
मनोहर आकार वाली होती है, तथा महोलाओं के प्रधानगुणों से प्रिय बोलना एव अपने स्वामी
के चित्त के अनुकूल वर्तन करना आदि महिला जगत के प्रधान सद्गुणों से वे युक्त होती है, "अ
इकंत विसप्पमाण मउय सुकुमाल कुम्मसंठियविसिट्ठचलणा, उज्जुमउल पीवर सुसाहियंगुलीओ
अभुण्णय रइय तल्लिण तंवसुइण्णिद्धणक्खला रोमरहिय पइ—लट्ट सठिय अजहण्णपसत्थलक्खण अक्को
प्पजंघजुयलाओ" इनके दोनों चरण अतिक्रान्त—अतिसुन्दर होते हैं, विशिष्ट प्रमाणोपेत होते हैं—
अपने—अपने शरीर के अनुरूप प्रमाण वाले होते हैं न्यूनाधिक प्रमाणयुक्त नहीं होते, दुनिया में
जितने कोमल पदार्थ माने जाते हैं उन पदार्थों के बीच में ये इनके चरण और भी अत्यन्त सुकोमल
है । तथा जैसा कच्छप का सस्थान होता है वैसाही संस्थान आकार इनके चरणों का होता है,
अतएव ये बड़े मनोज्ञ होते हैं । इनके चरणों की अंगुलियां ऋजु सरल होती है, मृदुक कोमल

गौतम । ते मनुष्य स्त्रीयो—युगलिकमनुष्य स्त्रीयो सुप्रमाणुमां उत्पन्न थयेत्वा मस्तकादि
अंगोवाणी डोय छे तेमञ्च सुजात सर्वाङ्ग युक्त होवाथी तेज्यो भूषण सुहर डोय छे. म
नोहर आकारवाणी डोय छे, तथा महिलाज्योना प्रधानगुणोथी जेट्ठे के प्रिय बोदवुं तेमञ्च
स्वामीना चित्तानुकूल वर्तन करवु वगेरे महिला जगतना प्रधान सद्गुणोथी तेज्यो युक्त डोय
छे "अइकंत विसप्पमाणमउय सुकुमाल कुम्म संठिय—विसिट्ठचलणा उज्जुमउल पीवर
सुसाहियंगुलीओ अभुण्णयरइमतल्लिण तंव सुइण्णिद्धणक्खला रोमरहिय पइठलइठ संठिय
अजहण्णपसत्थलक्खण अक्कोप्प जंघ जुयलाओ" जेमना जन्ने यरथो अतिक्रान्त—अति
सुहर डोय छे., विशिष्ट प्रमाणोपेत डोय छे योतपोताना शरीरना अनुसूय प्रमाणवाणा डोय
छे. न्यूनाधिक प्रमाण वाणा डोता नथी. स सारमा जेट्ठेला कामण पदार्थो मानवाभा आवे छे.
ते पदार्थोनी वरथे जेमना आ यरथो अत्यन्त वधारे सुकोमण छे तेमञ्च जेवु कच्छपवु
स स्थान डोय छे, तेवु ज स स्थान जेमना यरथोनु डोय छे जेथी ज्यो भूषण मनोज्ञ
डोय छे. जेमना यरथोनी आगणीज्यो ऋजु सरल डोय छे. मृदुक—कामण—डोय छे जन्ने पी-

कोमलाः पीवराः पुष्टाः अनुपलक्ष्यमाणस्नाय्वादिसन्धिकत्वेनोपचिताः मृमृहताः मुमि
लिताः अङ्गुल्यः पादाङ्गुल्यो यासां तास्तथा, 'अङ्गुणय रङ्गय तल्लिण तंत्र मृःणिद्धणवखा'
अभ्युद्धत रतिदतल्लिन ताम्र शुचिस्निग्धनखा' अभ्युन्नताः समुन्नताः रतिदाः द्राष्टृजनानां
प्रीतिदाः यद्वा 'रङ्ग्या' इत्यस्य, रञ्जितेतिच्छाया, तत्पक्षे रञ्जिता लाक्षारसेन रागेण
रञ्जनमुपनीताः, तलिना. प्रतलाः ताम्राः—ताम्रवर्णाः—ईपद्रक्ता शुचय पवित्राः मन्दर-
हिता स्निग्धाः चिककणाः नखाः यासां तास्तथा, मूले 'नक्खे' त्यत्र द्वित्वं प्राकृतत्वात्
'रोमरहियवट्टलट्टसंघियअजहणपसत्थलक्खणअक्कोप्पजंघजुअलाओ' रोमरहित वृत्त लृट्
(रम्य) संस्थिताऽजघन्य प्रशस्तलक्षणाकोप्यजङ्घा युगलाः—रोमरहितं निर्लाम वृत्तं वर्तुलं
लष्टसंस्थितं रम्यसंस्थानयुक्तम् ऊर्ध्वोर्ध्वक्रमेण स्थूलस्थूलतरम् इति भावः, अजघन्य प्रश-
स्तलक्षणम् अजघन्यानि उत्कृष्टानि प्रशस्तानि श्लाघ्यानि लक्षणानि यत्र तत्तथा भूतम्
अकोप्यम् अद्वेष्यम् अति सुभगत्वात्, जङ्घायुगलं यासां तास्तथा, 'सुणिम्मिय सुगूढ
सुजाणुमंडल सुवद्धसंधीओ' सुनिर्मितसुगूढ सुजानुमण्डलसुवद्धसन्धयः सुनिर्मिते सुष्ट
नितरां प्रमाणोपेते सुगूढे मांसलत्वादनुपलक्ष्ये ये सुजानुमण्डले सुन्दरजानुमण्डले तयोः
सुवद्धौ दृढस्नायुभिः सम्यग्बद्धौ सन्धौ सन्धाने यासां तास्तथा, 'कयलोखंभाइरेक रांठिय

होती हैं और पीवर पुष्ट होता है, अर्थात् स्नायु आदिकों की सन्धिया इनमें दिखलाई नहीं देती है
ऐसी होती हैं तथा सुसह्य होता है आपस में मिली रहती है इन अगुलियों के नख समुन्नत होते
हैं ऊपर कीओर नीच में उठे हुए रहते हैं रतिद होते हैं देखने वाले को आनन्द प्रद होते हैं अ-
थवा "रङ्ग्या" रञ्जित होते हैं—लाक्षारस के राग से—रंगे हुए रहते हैं, तल्लिन पतले होते हैं ताम्र
ईपद्र रक्तवर्ण वाले होते हैं, शुचि मल रहित होते हैं एव स्निग्ध चिकने होते हैं । "नक्खे" में
द्वित्व प्राकृत होने से हुआ है इनका जङ्घायुगल रोमरहित होता है वृत्त—वर्तुल—गोल होता है लष्ट
संस्थित रम्य संस्थान से युक्त होता है ऊर्ध्व ऊर्ध्व क्रम से स्थूल स्थूल तर होता है—और अ-
जघन्यप्रशस्त लक्षणो वाला होता है—उत्कृष्ट श्लाघ्य लक्षणों से युक्त होता है, अकोप्य अतिसुभग
होने से अद्वेष्य होता है "सुणिम्मिय सुगूढ सुजाणु मण्डल सुवद्ध संधीओ, कयलो खंभाइरेक स

पर-पुष्ट होय छे अर्थात् स्नायु वगेरेना स धिक्काग ओभां देयातो नथी तेभज सुसंल्लत होय
छे परस्पर अडीने रडे छे ओ आगणीओना नथो सभुद्धत होय छे. उपरनी तरङ्ग मध्यभां उ-
न्नत थयेला रडे छे. रतिद होय छे—जेनाशओने आनंदप्रद होय छे अथवा "रङ्ग्या" रञ्जित
होय छे—लाक्षा रसना रागथी रगेला होय छे 'तल्लिन' पातणा होय छे ताम्र—ईपद्र रक्तवर्ण-
वाणा होय छे. शुचि मल विहीन होय छे तेभज स्निग्ध सुचिकवषु होय छे "नक्खे" मां
द्वित्व प्राकृत होवाथी थयेल छे ओभनुं ज धायुगल रोमरहित होय छे वृत्त—वर्तुल—गोल
होय छे लष्टसंस्थित—रम्यसंस्थानथी युक्त होय छे ऊर्ध्व ऊर्ध्व क्रमथी स्थूल स्थूलतर होय छे
अने अजघन्य प्रशस्त लक्षणावाणु होय छे उत्कृष्ट श्लाघ्य लक्षणाथी युक्त होय छे अकोप्य

तानि यथावत् प्रमाणोपेततया सूत्रपञ्चानि सर्वाण्यङ्गानि मस्तकादीनि यासां ताः सुजा-
तसर्वाङ्गा, ताश्च सुन्दर्यः सुजातसर्वाङ्गत्वात् मनोहराकाराः, 'पद्मण महिलागुणेहि जुत्ता' प्र-
धानमहिलागुणैर्युक्ताः प्रधानाः प्रवराः ये महिला गुणाः स्त्रीगुणाः प्रियंवदत्व स्वामिचि-
त्तानुवर्त्तकत्वादयस्तैर्युक्ताः उपेताः तथा 'अङ्कत विसप्पमाण मउय सुकुमाल कुम्मसंठिय
विसिट्ठचलणा' अतिक्रान्त विसर्पन्मृदुक सुकुमार कूर्मसंस्थितविशिष्टचरणाः—अतिक्रान्तौ
अतिसुन्दरौ, विसर्पन्तौ सञ्चरन्तावपि यद्वा 'विसप्पमाणे' त्यस्य विश्वप्रमाणेतिच्छाया
तस्य द्विवचने विश्वप्रमाणौ—विशिष्ट स्वप्रमाणौ स्वशरीरानुसारि प्रमाणौ न न्यूनाधिकप्रमा-
णा वित्यर्थः मृदुक सुकुमारौ मृदुकानां—शोभलानां मध्ये सुकुमारौ सुकोमलौ कूर्मसंस्थितौ
कूर्मः कच्छपस्तद्वत् उन्नतपृष्ठतया संस्थितौ विशिष्टौ मनोज्ञौ चरणौ यासां तास्तथा 'उज्जु
मउयपीवरसुसाहयंगुलीओ, ऋजुमृदुकपीवरसुसहताङ्गुलीकाः ऋजवः सरलाः मृदुकाः

महिलागुणेहि जुत्ता" हे गौतम । वे मनुष्य स्त्रिया—युगलिक मनुष्यस्त्रिया अच्छे प्रमाण मे उत्पन्न
हुए मस्तकादिक अंगों वाला होती है तथा सुजात सर्वाङ्गयुक्त होने से वे बड़ी सुन्दर होती है—
मनोहर आकार वाली होती है, तथा महोत्सवों के प्रधानगुणों से प्रिय बोलना एवं अपने स्वामी
के चित्त के अनुकूल वर्तन करना आदि महिला जगत के प्रधान सद्वृत्तों से वे युक्त होती है, "अ
ङ्कत विसप्पमाण मउय सुकुमाल कुम्मसंठियविसिट्ठचलणा, उज्जुमउल पीवर सुसाहियगुलिओ
अम्मुण्णय रह्य तल्लिण तंभसुइण्णिद्धणक्खा रोमरहिय पइ—लट्ठ संठिय अजहण्णपसत्थलक्खण अको
प्पजजुयलाओ" इनके दोनों चरण अतिक्रान्त—अतिसुन्दर होते हैं, विशिष्ट प्रमाणोपेत होते हैं—
अपने—अपने शरीर के अनुरूप प्रमाण वाले होते हैं न्यूनाधिक प्रमाणयुक्त नहीं होते, दुनिया में
जितने कोमल पदार्थ माने जाते हैं उन पदार्थों के बीच में ये इनके चरण और भी अत्यन्त सुकोमल
हैं । तथा जैसा कच्छप का सस्थान होता है वैसाही सस्थान आकार इनके चरणों का होता है,
अतएव ये बड़े मनोज्ञ होते हैं । इनके चरणों की अंगुलियां ऋजु सरल होती हैं, मृदुक कोमल

गौतम । ते मनुष्य स्त्रीयो—युगलिकमनुष्य स्त्रीयो सुप्रभाषुमा उत्पन्न थयेवा मस्तकादि
अ गोवाणी डोय छे तेमञ्च सुजात सर्वाङ्ग युक्त डोवाथी तेओ भूषञ्च सुहर डोय छे. म
नोहर आकारवाणी डोय छे, तथा महिलाओना प्रधानगुणोथी ओटवे के प्रिय बोलवु तेमञ्च
स्वामीना चित्तानुकूल वर्तन करवु वगेरे महिला जगतना प्रधान सद्वृत्तुथी तेओ युक्त डोय
छे "अङ्कत विसप्पणमाण मउय सुकुमाल कुम्म संठिय—विसिट्ठचलणा उज्जुमउल पीवर
सुसाहियंगुलीओ अम्मुण्णयरइअतल्लिण तंभ सुइण्णिद्धणक्खा रोमरहिय पइलट्ठ संठिय
अजहण्णपसत्थलक्खण अकोप्प जंघ जुयलाओ" ओमना अन्ने अरओ अतिक्रान्त—अति
सुहर डोय छे., विशिष्ट प्रमाणोपेत डोय छे पोतपोताना शरीरना अनुकूल प्रभाषुवाणा डोय
छे. न्यूनाधिक प्रभाषु वाणा डोता नथी. ससारमा ओटवा केमण पदार्थो मानवामा आवे छे.
ते पदार्थोनी वओ ओमना आ अरओ अत्यन्त पधारे सुकोमण छे. तेमञ्च ओवु कच्छपवु
संस्थान डोय छे, तेवु अ संस्थान ओमना अरओवु डोय छे ओथी ओओ भूषञ्च मनोज्ञ
डोय छे ओमना अरओनी आंगणीओ ऋजु सरल डोय छे. मृदुक—केमण—डोय छे अने पी-

कोमलाः पीवराः पुष्टाः अनुपलक्ष्यमाणस्नाय्वादिसन्धिकत्वेनोपचिताः मुग्धताः मुग्धि-
लिताः अङ्गुल्यः पादाङ्गुल्यो यासां तास्तथा, 'अभ्युण्णय रडय तल्लिण तंभ मृदःणिद्धणवखा'
अभ्युद्धत रतिदतल्लिन ताम्र शुचिस्निग्धनेखा. अभ्युन्नताः समुन्नताः रतिदाः द्रष्टृजनानां
प्रीतिदाः यद्वा 'रहया' इत्यस्य, रञ्जितेतिच्छाया, तत्पक्षे रञ्जिता लाक्षासेन रागेण
रञ्जनसुपनीताः, तल्लिना. प्रतलाः ताम्राः—ताम्रवर्णाः—ईषद्रक्ता शुचय पवित्राः मन्त्र-
हिता स्निग्धाः चिक्कणाः नखाः यासां तास्तथा, मूले 'नक्खे' त्यत्र द्वित्वं प्राकृतत्वात्
'रोमरहियवट्टलट्टसंट्टियअजहण्णपसत्थलवखणअक्कोप्पजंघजुअलाओ' रोमरहित वृत्त लष्ट
(रम्य) संस्थिताऽजघन्य प्रशस्तलक्षणाकोप्यजङ्घा युगलाः—रोमरहितं निर्लोम वृत्तं वर्तुलं
लष्टसंस्थितं रम्यसंस्थानयुक्तम् ऊर्ध्वोर्ध्वक्रमेण स्थूलस्थूलतरम् इति भावः, अजघन्य प्रश-
स्तलक्षणम् अजघन्यानि उत्कृष्टानि प्रशस्तानि श्लाघ्यानि लक्षणानि यत्र तत्तथा भूतम्
अकोप्यम् अद्वेष्यम् अति सुभगत्वात्, जङ्घायुगलं यासां तास्तथा, 'सुणिम्मिय सुगूढ
सुजाणुमंडल सुवद्धसघीओ' सुनिर्मितसुगूढ सुजाणुमण्डलसुवद्धसन्धयः सुनिर्मिते सुष्ठु
नितरां प्रमाणोपेते सुगूढे मांसलत्वाद्नुपलक्ष्ये ये सुजाणुमण्डले सुन्दरजाणुमण्डले तयोः
सुबद्धौ दृढस्नायुभिः सम्यग्वद्धौ सन्धो सन्धाने यासां तास्तथा, 'कयलोखंभाइरेक राठिय

होती हैं और पीवर पुष्ट होती है, अर्थात् स्नायु आदिकों को सन्धिया इनमें दिखलाई नहीं देती हैं
ऐसी होती हैं तथा सुसह्य होती हैं आपस में मिली रहती है इन अगुलियों के नख समुन्नत होते
हैं ऊपर कीमोर बीच में उठे हुए रहते हैं रनिद होते हैं देसने वाले को आनन्द प्रद होते हैं अ-
थवा "रहया" रञ्जित होते हैं—लाक्षारस के राग से—रंगे हुए रहते हैं, तल्लिन पतले होते हैं ताम्र
ईषद् रक्तवर्ण वाले होते हैं, शुचि मल रहित होते हैं एव स्निग्ध चिकने होते हैं। "नक्खे" में
द्वित्व प्राकृत होने से हुआ है इनका जन्घायुगल रोमरहित होता है वृत्त—वर्तुल-गोल होता है लष्ट
संस्थित रम्य सस्थान से युक्त होता है उर्ध्व उर्ध्व क्रम से स्थूल स्थूल तर होता है—और अ-
जघन्यप्रशस्त लक्षणो वाला होता है—उत्कृष्ट श्लाघ्य लक्षणों से युक्त होता है, अकोट्य अतिसुभग
होने से अद्वेष्य होता है "सुणिम्मिय सुगूढ सुजाणु मण्डल सुवद्ध सघीओ, कयलो खंभाइरेक स

वर-पुष्ट होय छे अर्थात् स्नायु वगेरेना संधिभाग ओभा देभातो नथी. तेमञ्ज सुसंद्धत होय
छे परस्पर अडीने रडे छे ओ आगणीओना नपो सशुद्धत होय छे. उपरनी तरङ्ग मध्यमां उ-
न्नत थयेला रडे छे रतिद होय छे—जेनाराओने आनंदप्रद होय छे अथवा "रहया" रञ्जित
होय छे—लाक्षा रसना रागशी रगेला होय छे 'तल्लिन' पातला होय छे ताम्र-ईषद् रक्तवष्णु-
वाणा होय छे. शुचि मल विहीन होय छे तेमञ्ज स्निग्ध सुचिकवष्णु होय छे. "नक्खे" मां
द्वित्व प्राकृत होवाथी थयेल छे ओमनुं जंघायुगल रोमरहित होय छे वृत्त—वर्तुल-गोल
होय छे लष्टसंस्थित-रम्यसंस्थानथी युक्त होय छे उर्ध्व उर्ध्व क्रमशी स्थूल स्थूलतर होय छे
अने अजघन्य प्रशस्त लक्षणवाणु होय छे उत्कृष्ट श्लाघ्य लक्षणोथी युक्त होय छे अकोप्य

णिन्वण सुकुमाल मउय मंसल अविरल समसंहिय सुजाय वट्टपीवरणिरंतरोरु' कदलो स्तम्भातिरेक संस्थित निर्त्रण सुकुमार मृदुक मांसलाविरलसमसंहितसुजातवृत्तपीवर निरन्तरोरवः कदली-रम्भा तस्या यः स्तम्भः-काण्डम् तस्मादतिरेकेण अतिशयेन संस्थितं संस्थानं ययोस्ते कदलीस्तम्भातिरेकसंस्थिते निर्त्रणे विस्फोटकादि क्षतरहिते सुकुमारमृदुके सुकुमारेषु मृदुषु मृदुके तथा अतिकोमले मांसले पुष्टे अविरले परस्परासन्ने समे तुल्यप्रमाणे सहिके क्षमे सुजाते सुनिष्पन्ने वृत्ते वर्तुले पीवरे उपचिते निरन्तरे परस्परनिर्विशेषे ऊरू यासां तास्तथा, 'अट्टावय वीइय पट्ट संठिय पसत्थ विच्छिण्णपिहुल सोणी' अष्टापदवीतिक प्रष्ठ संस्थित प्रशस्तविस्तीर्ण पृथुल श्रोणयः वीतिकः विगता ईतयो यस्य स वीतिकाः घुणाद्युपद्रवरहितः स चासौ अष्टापदः-द्यूतफलकविशेषः अत्र विशेषण वाचकपदस्य परप्रयोगः प्राकृतत्वात्, तद्वत् प्रष्ठसंस्थिता प्रधान सस्थानोपेता प्रशस्ता श्लाघ्या विस्तीर्णविपृथुला-अतिस्थूला श्रोणिः कट्टिदेशो यासां तास्तथा तथा 'वयणायामप्पमाण दुगुणिय विसालमंसल सुबद्ध जहनवरधारिणीओ' वदनायामप्रमाणद्विगु-

ठिय निन्वण सुकुमालमउय मंसल अविरल समसंहिय सुजाय वट्ट पीवर णिरंतरोरु" इनके सुजानु-मण्डल नितरा प्रमाणोपेत होते हैं, और मांसल होने से अनुपलक्ष्य होते हैं तथा इनकी सधिया दृढ़स्नायुओ से अच्छी तरह बद्ध रहती है इनके दोनों उरु कदली के स्तम्भ के जैसे सस्थान से भी अधिक सुन्दर सस्थान वाले होते हैं, विस्फोटक आदि के व्रण से रहित होते हैं, सुकुमार पदार्थों से भी ये अधिक सुकुमार होते हैं अतिकोमल होते हैं, मांसल-पुष्ट होते हैं, अविरल-परस्पर में जुड़े हुए से अर्थात् सट्टे हुए से रहते हैं, सम-तुल्यप्रमाण वाले होते हैं सहित-सक्षम होते हैं, अच्छे रूप में उत्पन्न हुए होते हैं, वृत्त-वर्तुल-होते हैं, पीवर-मांस से भरे हुए रहते हैं एवं निरन्तर-अंतर रहित होते हैं, 'अट्टावय वीइयपट्टसंठियपसत्थविच्छिण्णपिहुलसोणी, वयणायामप्पमाण दुगुणिय विसालमंसल सुबद्ध जहनवर धारिणीओ, वज्जविराजियपसत्थ लक्खणनिरोदर-

अति सुभग डोवाथी अट्टेय डोय छे "सुणिम्मिय सुगूढ सुजण्णमडल सुबद्धसंधीओ, कयली खंभाइरेक संठिअणिन्वण सुकुमाल मउय मंसल अविरल समसंहिय सुजायवट्ट पीवर णिर तरोरु" ओमदु' सुजानुम डण अतीव सप्रभाषु डोय छे, अने मासण डोवाथी अनुपलक्ष्य डोय छे तेभण ओमनी स धियो दृढ स्नायुओथी सारी रीते आभद्ध रहे छे ओमना अन्ने उडुओ कदलीना स स्थान करता पणु वधारे सुद्ध सस्थानवाणा डोय छे विस्फोटक वगेरना मणुथी रहित डोय छे सुकुमार पदार्थी करतां पणु वधारे ओओ सुकुमार डोय छे, अति कामण डोय छे, मांसल-पुष्ट डोय छे, अविरल ओक भील ने अडीने रहे छे सम-तुल्य प्रभाषु वाणा डोय छे सहिक-सक्षम डोय छे सारा इपमा उत्पन्न थयेवा डोय छे वृत्त-वर्तुल डोय छे पीवर पुष्ट रहे छे तेभण सतत अतर विहीन डोय छे "अट्टावय-वीइय पट्ट संठिय पसत्थ विच्छिण्ण पिहुलसोणी वयणायामप्पमाणदुगुणिया विसाल मंसल सुबद्धजहनवरधारिणीओ वज्जविराजि अपसत्थ लक्खण निरोदरतिवल्लियवलि

णितविशाल मांसल सुबद्ध जघनवरधारिणीण्यः वदन मुख तरुय य आयामो दन्त्य द्वाद-
शाङ्गुलप्रमाणं तस्माद् द्विगुणितं चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमितं विस्तीर्णं त्रि तारोपेत मांसलं पुष्टं
सुबद्धं दृढवद्धं न तु श्लथं जघनवर प्रधानकटिपूर्वभागं धरन्तीत्येवं गीलास्तथा वरशब्दस्य
विशेषणवाचकत्वेन पूर्वप्रयोगार्हत्वेऽपि परप्रयोगः प्रकृतत्वादेवात्रापि बोध्य 'वज्रविगडय
पसत्थलक्षणनिरोदरतिवलयिवलय तणुणयमज्झिमाओ' वज्रविगजित प्रशस्तलक्षण-
निरुदर त्रिवलिक बलित तनुनतमध्यमाः-वज्रविराजितं वज्रवद् विगजितं शोभितं क्षाम-
त्वेन प्रशस्तलक्षणं सामुद्रिकशास्त्रोक्तप्रशस्तगुणयुक्तं निरुदरं विकृतोदररहितं यद्वा निरुद-
रम् अल्पोदरम् त्रिवलिकं त्रिवलयुत बलितं सञ्जातवलं वलयुक्तं नहि क्षामतया दुर्बलम् तनु-
पतलं नत नम्र तनु नत किञ्चिन्नम्रम् मध्यमं-कटिरूपमध्याङ्गम् यासां तास्तथा 'उज्जुय-
समसहियजच्च तणु कसिण णिद्ध आइज्जलउह सुजायसुविभक्तकंतसोभंत रुइल रमणिज्ज
रोमराई' ऋजुक समसहितजात्यतनु कृष्णस्निग्धादेय ललित सुजात सुविभक्त कान्तशोभ-

तिवलयिवलयितणुमज्झिमाओ" अष्टापदवीतिक पद में वीतिक विशेषण का प्राकृत होने से परप्रयोग
हुआ है-तथा च-घुण आदि उपद्रव से रहित धूतफलक की तरह प्रथम स्थान वाला-श्रेष्ठ
आकार वाला इनका श्रोणिप्रदेश-कटिभाग होता है और वह प्रशस्त एवं अतिस्थूल होता है.
इनका प्रधानकटि पूर्वभाग अर्थात् जघन मुख की द्वादश अंगुल प्रमाण लम्बाई से दूना होता
है अतएव वह विस्तीर्ण, मांसल-पुष्ट, एवं सुबद्ध-मजबूत होता है. इनका जो मध्यभाग है वह-वज्र
के जैसा सुहावना होता है प्रशस्त लक्षणों से-सामुद्रिक शास्त्रोक्त अच्छे २ लक्षणों से युक्त
होता है विकृत उदर से रहित होता है अथवा अल्प उदर वाला होता है. त्रिवली से युक्त
होता है, बलित-बल सपन्न होता है. दुर्बल नहीं होता है पतल होता है-स्थूल नहीं होता है,
और कुछ २ झुकासा रहता है " उज्जुय सम सहिय जच्चतणु कसिणणिद्ध आइज्जलउहसुजाय
सुविभक्त कंतसोभंतरुइल रमणिज्जरोमराई, गंगावत्त पयाहिणावत्त तरग भगुर विकिरण तरुण-

यतणुमज्झिमाओ, अष्टापदवीतिक पदमा वीतिक विशेषण प्राकृततु होवाथी पर प्रयोग
थयेल छे. तेमज्ज धुषु वगेरे उपद्रवथी विहीन धूतफलकनी जेम प्रथ संस्थान युक्त
श्रेष्ठ आकार युक्त जेमने श्रोणि प्रदेश-कटि भाग होय छे, जेने ते प्रशस्त जेने अति
स्थूल होय छे जेमने प्रधान कटिपूर्वभाग जेटले के जघन सुभनी द्वादश अंशुल प्रमाण
लंबाई-करता जे गलु होय छे, जेथी ते विस्तीर्ण मांसल पुष्ट जेने सुबद्ध सुदृढ होय
छे जेमने जे मध्यभाग छे ते वज्रना जेवे जेनेहर होय छे प्रशस्त लक्षणोथी सामुद्रिक
शास्त्रोक्त सारा-सारां लक्षणोथी युक्त होय छे विकृत उदरथी रहित होय छे. अथवा
अल्प उदरवाणे होय छे त्रिवलीथी युक्त होय छे. बलित-बल संपन्न होय छे दुर्बल
होता नथी, पातलो होय छे, स्थूल होता नथी जेने क पक्ष नभिन होय छे. "उज्जुयसम-
सहिय जच्च तणुकसिणणिद्ध आइज्जलउह सुजाय सुविभक्तकंतसोभंतरुइलरमणिज्ज

मानरुचिरमणीयरोमराजय-इह ऋजुकत्वादीनि रोमराजिविशेषणानि, तत्र ऋजुका-ऋ-
ज्वी-अवक्रा न कुटिला समा तुल्या न कापि दन्तुरा संहिता मिलिता न त्वन्तरिता जात्या
स्वाभाविकी मुख्या वा, तन्वी-सूक्ष्मा कृष्णा-कृष्णवर्णा, न तु कपिरोमवत्कपिशा स्निग्धा
चिक्कणा सकान्तिः आदेया नेत्रस्पृहणीया ललिता-सुन्दरता सम्पन्ना सुजाता सूतपन्ना
सुविभक्ता समीचीनविभागसम्पन्ना कान्ता कमनीया अत एव शोभमाना रुचिरमणीया
अत्यधिकमनोहरा रोमराजिः रोमवलिर्यासां तास्तथा, केचिद् ऋजुकत्वादीनि रोमविशेषा-
न्याहुः तथा सति व्यधिकरणबहुव्रीहे रवलम्बनापत्तिरतो रोमराजिविशेषणान्येव युक्तानी-
ति व्यधिकरणबहुव्रीहे रगतिकगतित्वात्तन्मत न युक्तम् । 'गंगावत्त पयाहिणावत्तरंग
भंगुर विकिरणतरुणबोहियआकोसायतपउमंगभीरवियडणाभा' गङ्गावर्त्तप्रदक्षिणावर्त्त-
रङ्गभङ्गुरविकिरणतरुणबोधिताकोशायमानपद्मगम्भीरविकटनाभाः-एतत्पदं मनुजवर्णन-
प्रसङ्गेऽस्मिन्नेव सूत्रे पूर्वं व्याख्यात केवलं स्त्रीषु सत्वकृतो भेदः अन्यत्सर्वं समानम्,
'अणुम्भडपसत्थपीणकुच्छीओ' अनुद्भट प्रशस्तपीनकुक्षयः अनुद्भटौ-अस्पष्टौ प्रशस्तौ-
श्लाघ्यौ पीनौ स्थूलौ कुक्षी-उदरस्य वामदक्षिणभागौ यासां तास्तथा, 'सण्णयपासाओ'

बोहिय आकोसायतपउम गभीरवियडणाभा' इनकी रोमराजिऋजुक-ऋज्वी सरल होती है, वक्र,
कुटिल नहीं होती है, सम- बराबरहोती है कमती बढ़ती नहीं होती है-संहित-आपस से मिली
हुई होती है. अन्तर से युक्त नहीं होती है. स्वभावतः पतली होती है. स्थूल नहीं होती है.
कृष्णवर्ण वाली होती है. कपि के रोमों की तरह कपिश नहीं होता है. स्निग्ध-चिकनी होती है,
दर्दरी नहीं होता है, आदेय नेत्रों को स्पृहणीय होती है, ललित सुन्दरता से युक्त होती है, सुजात
होती है अच्छे ढंग से उत्पन्न हुई होती है, सुविभक्त होती है. अच्छी तरह विभाग से सपन्न
होती है. कान्त कमनीय होती है. अनएव यह बड़ी सुहावनी लगती है, और जितनी भी रुचिर
वस्तुएँ है उनकी भी अपेक्षा यह अधिक रुचिर होती है "गंगावर्त्त प्रदक्षिणावर्त्त" आदि सूत्र
मनुष्य वर्णन के प्रसङ्ग में इसी सूत्र में पहिले व्याख्यात हो चुका है "अणुम्भड पसत्थ पीणकु-

रोमराई, गंगावत्त पयाहिणावत्तरंगभंगुर विकिरण तरुण बोहिय आकोसायंत पउम :
गभीरवियडणाभा" ऐमनी रोमराजि ऋजुक-ऋज्वी सरल डोय छे वक कुटिल डोती
नथी सम बराबर डोय छे सहित परस्पर मिलित डोय छे अन्तरथी युक्त डोती नथी
स्वभावतः पातली डोय छे. स्थूल डोती नथी कृष्ण वष्णुवाणी डोय छे, कपिना रोमनी
ऐम कपिश डोती नथी. स्निग्ध सुचिककषु डोय छे, भरपच्छी डोती नथी आदेय नेत्रो
भाटे स्पृहणीय छे. ललित सुदस्तथी युक्त डोय छे सुजात डोय छे सारी रीते उत्पन्न
थयेल डोय छे सुविभक्त डोय छे सारी रीते विभागथी स पन्न डोय छे कान्त-कमनीय छे
ऐथी ते भूषण सोडाभणी लागे छे अने बेटली सुचिकर वस्तुओ छे ते सर्व करता ते वधाई
रुचिर डोय छे, "गंगावर्त्त प्रदक्षिणावर्त्त" वगेरे सूत्र मनुष्यवर्णनना प्रसंगमा आ सूत्रन
वष्णुनमां पडेला व्याख्यात थयेल छे "अणुम्भडपसत्थपीणकुच्छीओ सण्णयपासाओ संगय

સન્નતપાર્શ્વાઃ, 'સંગયપાસાઓ' મંગતપાર્શ્વાઃ, 'મુજાયપાસાઓ' મુજાતપાર્શ્વાઃ, 'મિયમાહ્ય-
યપીણ રહ્યપાસાઓ' મિતમાત્રિકપીનરતિદપાર્શ્વાઃ: एतन्पदचतुष्टयं प्राग्वन् केवलं स्त्रीपु-
सत्त्वकृतो विशेषः, 'અકરહ્ય કળગરુયગણિમ્મલમુજાયણિરુવહ્ય ગાયલટ્ટીઓ' અકરણ્ડુક
કનકરુચકનિર્મલમુજાતનિરુવદતગાત્રયષ્ટય -અકરણ્ડુ ના માંમ ક્વાદનુપલક્ષ્યમાણપૃષ્ઠવંગા-
સ્થિકા કનકરુચકા-સ્વર્ણવન્કાન્તિ કલિતા નિર્મલા સ્વામાવિકાઠ્ઠગન્તુકોભયમલગહિતા,
મુજાતો ગર્ભાનાદાભ્ય જન્મદોપરદિના, નિરુવદતા જ્વગદિરોગદંશાદ્યુપદ્રવરહિતા ગાત્રય-
ષ્ટિઃ-શરીરરુપયષ્ટિ યાનાં તામ્તથા, 'કચળ કલસપ્પમાણસમસદિય લટ્ટુચુચુઆમેલગજ-
મલજુયલ વદિય અમુળ્ળયપીણરહ્યપીવરપઓહરાઓ' કાચ્ચનકલશપ્રમાણસમસદિતલષ્ટ
(રમ્ય) ચુચુ આમેલક યમઠ યુગઠ વર્તિતામ્બુન્નતપોનાતિદપોત્રપયોધરાઃ-કાચ્ચનકલશ-
પ્રમાણો સુવર્ણઘટપ્રમિતૌ સમૌ પરસ્પરં સમાનો ન ન્યૂનાધિકૌ મદિતો મિલિતો આન્તર્યર-

ષ્ટુઓ સળ્ળયપાસાઓ, સાયપાસાઓ, મુજાયપાસાઓ, મિયમાહ્યયપીણરહ્યપાસાઓ" इनके उदर
के वाम दक्षिणभाग अनुद्भट-अस्पष्ट होते हैं, प्रशस्त-श्लाघ्य होते हैं, औ' पीन-स्थूल होते हैं,
"सन्नतपार्श्व, मुजानपार्श्व, मित्रमात्रिक पीन रतिदपार्श्व"ये पदत्रय पहिले मनुज वर्णन के समय
व्याख्यात हो चुके है "अकरह्य कणग रुयग णिम्मल मुजायणिरुवह्य गायलट्टीओ" इनकी
शरीर यष्टि अकण्डुक-भांसल होने से अनुपलक्ष्यमाण है पृष्ठवंग की हड्डी जिसमें ऐसी होती
है, तथा स्वर्ण का जैसा कान्ति से युक्त होती है, निर्मल स्वामाविक एव आगन्तुक मैल से रहित
होती है मुजात होती है गर्भ से लेकर जन्म तक के दोषो से रहित होती है एवं निरुवहत-
ज्वादिरोग तथा देशादिक उपद्रव से रहित होती है "कंचणकलसप्पमाणसमसदियलट्टुचुचु आ-
मेलग जमलजुअउदियं अमुण्णयपिणरह्यपिवरपोहराओ" इनके दोनो पयोधर सुवर्ण के
घट के जैसे सुहावने होते हैं, सम होते हैं परस्पर में समान होनेहै न्यूनाधिक नहीं होते हैं
आपस में मिठे हुए होते हैं. इनको इतनी अधिक निकटता रहती है कि इन दोनो के बीच में

પાસાઓ, મુજાયપાસાઓ, મિયમાહ્ય પીણરહ્યપાસાઓ" એમના ઉદરને વામ-દક્ષિણ
ભાગ અનુદ્ભટ અસ્પષ્ટ હોય છે. પ્રશસ્ત શ્લાઘ્ય હોય છે. અને પીન સ્થૂલ હોય છે,
"સન્નતપાર્શ્વ, મુજાતપાર્શ્વ, મિત્ર માત્રિક પીનરતિદપાર્શ્વ" એ ત્રણે પદો પહેલાં મનુજવ
વર્ણનના પ્રશ્નગથી વ્યાખ્યાત થયેલ છે 'અકરહ્ય કળગરુયગણિમ્મલ મુજાય ણિરુવહ્ય
ગાયલટ્ટીઓ" એમની શરીરયષ્ટિ અકરડુક ભાસલ હોવાથી અનુપલક્ષ્યમાણ છે પૃષ્ઠવશ્ચ
હાડકું જેના જેવી તે હોય છે તેમજ સ્વર્ણના જેવી કાંતિથી યુક્ત હોય છે નિર્મળ સ્વા
માવિક અને આગન્તુક મેલથી વિહીન હોય છે સુખત હોય છે ગર્ભથી માડીને જન્મ
મુખીના દોષોથી રહિત હોય છે અને નિરુવદત જ્વરાદિરોગ તેમજ દશાદિક ઉપદ્રવોથી
હીન હોય છે "કંચળકલસપ્પમાણસમસદિય લટ્ટુચુચુ આમેલગજમલ જુઅલ વદિય અ-
મુળ્ળયપીણરહ્યપીવરપઓહરાઓ" એમના બંને પયોધરો સુવર્ણ ઘટના જેવા મનો
હર હોય છે સમ હોય છે પરસ્પર મા સમાન હોય છે ન્યૂનાધિક હોતા નથી પરસ્પર

द्विती अनयोर्मध्ये विसतन्तुरपि न प्रवेष्टुमर्हतीति भावः, लष्टचूचुकामेलकौ-लष्टौ-
सुन्दरो चूचुकामेलकौ कुचाग्रभागौ ययोस्तौ तथाभूतौ यमलौ तुल्यश्रेणिकौ युगलौ युग्मरू-
पौ वर्तितौ-वर्तुलाकारौ अभ्युन्नतौ उचुङ्गौ पीनरतिदौ पुष्टप्रोत्तिदौ, पीवरौ मांसलत्वात्पु-
ष्टौ पयोधरौ-कुचौ यासां तास्तथा, 'भ्रुयंग अणुपुन्व तणुअ गोपुच्छ वट्ट' संहिय णमिय
आइञ्जल्लियवाहा' भ्रुज्जानुपूर्व्य तनुक गोपुच्छ वट्ट समसंहितनताऽऽदेयललितवाहवः-
भ्रुज्जानुपूर्व्यतनुकौ-भ्रुज्जः सर्पस्तद्वत् आनुपूर्व्येण अधोऽधीभागक्रमेण तनुकौ प्रतलौ अ-
तएव गोपुच्छवृत्तौ गोपुच्छवद् वृत्तौ वर्तुलौ समौ परस्परं सदृशौ संहितौ मध्यशरीरापेक्षया-
ऽविरलौ नतौ-नम्रौ स्कन्धदेशस्य नतत्वात् आदेयो-अतिशोभनतया कमनीयो ललितौ म-
नोहरौ बाहू भ्रुजौ यासां तास्तथा, 'तंबणहाओ' ताग्रनखाः ताग्रवर्णनखाः रक्तनखा इत्या-
शयः, 'मसलग्गहत्थाओ' मांसलग्गहस्ताः मांसलौ पुष्टौ अग्रहस्तौ हस्ताग्रभागो यासां ता-
स्तथा, 'पीवर कोमलवरंगुलियाओ' पीवर कोमल वराङ्गुलीकाः पीवरा पुष्टाः कोमला मृदवः

से मृणालतन्तु मां नही निहल सकता है या मृणालतन्तु भी इन दोनों के मध्य में प्रवेश नहीं
पासकता है। इन दोनों स्तनों के जो अग्रभाग होते हैं वे बड़े सुन्दर होते हैं, ये दोनों स्तन
समश्रेणि में रहे हुए होते हैं और युग्मरूप होते हैं इनका दोनों का आकार गोल होता है और
ये वक्षस्थल पर आगे की ओर बहुत सुन्दर ढंग से ऊँचे उठे हुए होते हैं "पीनरतिदौ" ये स्थूल
होते हैं और प्रीति देने वाले होते हैं तथा मांस से भरे हुए रहते हैं "भ्रुयंग अणुपुन्वतणुअ गोपु-
च्छवट्टसमसंहिय णमिय आइञ्जल्लियवाहा" इनकी दोनों भुजाएँ सर्प की तरह क्रमशः नीचे
की ओर पतली हुई होती है अतएव वे गोपुच्छ की तरह गोल होती है परस्पर में वे समान एकसी
होती है, मध्यशरीर की अपेक्षा ये सहित-अविरल होती हैं स्कन्ध देशके नत होने से ये नम्र-
रूपकी हुई होती है आदेय होती है और मनको हरण करने वाली होती है। "तंबणहाओ, मस-
लग्गहत्थाओ, पीवरकोमलवरंगुलियाओ, णिद्धपाणिरेहा, रविससिसखचकसोत्थियसुविमत्तसुविरइय-

भजेला डोय छे, ओओ ओटला पासे पासे डोय छे डे ओओ अन्नेना मध्यभाथी मृषाल
तत्तु पषु नीकणी शकत्तु नथी अथवा तो ओमना मध्यमां मृषाल तत्तु पषु प्रवेशी शकत्तु
नथी. ओओ अन्ने स्तनेना ओ अग्रभाग डोय छे. ते अहुअ सुहर डोय छे, ओ अन्ने
स्तने समश्रेणिमा डोय छे अने युग्म रूप डोय छे ओ अन्नेनी आकृति गोल डोय छे
अने वक्षस्थल पषु आगण अहुअ सुहर रीते उथे ठेकेला डोय छे "पीनरतिदौ ओ स्थूल
डोय छे अने प्रीतिकारक डोय छे तेमअ भासथी सुपुष्ट डोय छे "भ्रुयंग अणु पुन्वतणु
अगोपुच्छवट्ट समसंहिय णमिय ज्जल्लिय वाहा" ओमनी अन्ने सुअओ सर्पनी
ओम क्रमशः नीचेनी तरइ पातणी डोय छे ओथी ते गोपुच्छनी ओम गोणाकार डोय छे
पर स्परमां ते समान ओक सर्पनी डोय छे मध्य शरीरनी अपेक्षाओ-अहित अविरल
डोय छे. स्कन्धदेश नत डोवाथी ओ नम्र-नमित डोय छे आदेय डोय छे अने मनोहर
डोय छे "तंबणहाओ, मसलग्गहत्थाओ, पीवरकोमलवरंगुलियाओ, णिद्धपाणिरेहा, रवि
ससि सख चकक सोत्थिय सुविमत्त सुविरइय पाणिलेहाओ" ओमना नओने। पषु ताग्र
डोय छे ओमना डोवैना अग्रभाग मांसल-पुष्ट डोय छे, ओमना डोवैनी आगणी ओ पी-

वराः-उत्तमा अंगुल्यो यासां तास्तथा, 'णिद्धपाणि रेहा' स्निग्धपाणिरेखाः-चिकणहस्त-
रेखावत्यइत्यर्थः 'रविससिसंखचक्रसोत्थिय सुविभक्तसुविरहयपाणिरहाओ' रविशशिशङ्क-
क्रस्वस्तिक सुविभक्तसुविरचितपाणिरेखाः-रविशशिशङ्कक्रस्वस्तिक एव सुविभक्ता सुस्प-
ष्टाः सुविरचिताः सुनिर्मिताः पाणिरेखाः इस्तरेखा यासां तास्तथा, 'पीणुण्णयकरकवख-
त्थिपपसा' पीनोन्नतकरकक्षवक्षोवस्तिप्रदेशः पीनाः-पुष्टाः अत एव उन्नताः-अभ्युन्नति
प्राप्ताः प्रशस्ता कर कक्षवक्षोवस्तिप्रदेशः करकक्षः भुजमूले वक्षो-हृदयं वस्तिप्रदेशः-गु-
ह्यप्रदेशश्च यासां तास्तथा, तथा 'पडिपुण्णगलकपोला' प्रतिपूर्णगलकपोलाः प्रतिपूर्णाः प-
रिपुष्टा गलकपोलाः गल-कण्ठः कपोलौ च यासां ताः, तथा 'चउरंगुल सुप्पमाण कंबु-
वरसरिसगीवाओ' चतुरङ्गुलसुप्रमाण-कम्बुवर सदृशग्रीवाः चतुरंगुला=चतुरङ्गुलप्रमाणा
अत एव सुप्रमाणा-उचितप्रमाणयुक्ता कम्बुवरसदृशी श्रेष्ठशङ्कसमाना रेखात्रययुक्ता ग्रीवा
यासां तास्तथा; 'मंसलसंठियपसत्थहणुगाओ मांसलसंस्थितप्रशस्तहनुकाः मांसल.-परिपुष्टः

पाणिरेहाओ" इनके नखों का वर्ण ताम्र होता है इनके हाथों के अग्रभाग मांसल-पुष्ट होते हैं, इनके हाथों की अंगुलियां पीवर-पुष्ट होती हैं कोमल होती हैं और उत्तम होती हैं। ये स्त्रियां चिकनी हस्तरेखावाली होती हैं, इनके हाथों में रवि, शशि, शङ्क, चक्र एवं स्वस्तिक, की रेखाएँ होती हैं और ये रेखाएँ वहाँ सुस्पष्ट होती हैं। "पीणुण्णयकरकवखत्थिपपसा" इनका कक्ष-प्रदेश, वक्षस्थल, और वस्तिप्रदेश-गुह्यप्रदेश-ये सब पुष्ट होते हैं उन्नत होते हैं एवं प्रशस्त होते हैं। "पडिपुण्णगलकपोला" इनके गाल और कण्ठ ये दोनों प्रतिपूर्ण-भरे हुए होते हैं पिचके नहीं होते हैं "चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवाओ" इनकी जो ग्रीवा होती है वह चतुरंगुलप्रमाणवाली होती है और इससे वह सुप्रमाणोपेत मानी जाती है, तथा जैसा श्रेष्ठ शङ्क होता है वैसी वह होती है अर्थात् रेखात्रय से सहित होती है, "मंसलसंठियपसत्थहणुगाओ" इनके कपोल का अग्रभाग-हनु-मांसल होता है, उचितसंस्थानवाला होता है, अतएव वह प्रशस्त होता

पर-सुपुष्ट होय छे केमणहोय अने उत्तम होय छे, ओ स्त्रीओ सुविकवख हस्तरेखाओ वाणी होय छे ओभना हाथोमां रवि शशी शंभ अक अने स्वस्तिकनी रेखाओ होय छे. अने ओ रेखाओ त्यां सुस्पष्ट होय छे, "पीणुण्णयकरकवखत्थिपपसा" ओभना कक्ष प्रदेश वक्ष-स्थल अने वस्तिप्रदेश-गुह्य प्रदेश ओ सर्वे पुष्ट हो छे, उन्नत होय छे तेमज प्रशस्त होय छे "पडिपुण्णगलकपोला" ओभना गाल अने कंठ ओ अने प्रति पूष्ट परिपुष्ट सुंदर होय छे. अ हर वणी गयेदा होता नथी चउरंगुलसुप्पमाणकंबुवरसरिसगीवाओ" ओभनी ओ ग्रीवा होय छे ते चतुरंगुल प्रमाणवाणी होय छे अने ओथी ज ते सुप्रमाणोपेत-मानवाभा आवी छे. तथा ओवे श्रेष्ठ शंभ होय छे तेवी ज ते श्रेष्ठ होय छे, ओटवे के रेखात्रयथी युक्त होय छे "मंसल संठीय पसत्थ हणुगाओ" ओभना कपोलना अधो भाग हनु मांसल होय छे. उचित संस्थान युक्त होय छे, ओथी ते प्रशस्त होय छे "वाडिसं

સંસ્થિતઃ—ઉચિતાકારયુક્તઃ, અત એવ પ્રશસ્તઃ શોભનઃ ॥ ૧૫ ॥ વપોલાઘોભાગો યાસાં તાસ્ત-
 થા, 'દાહિમપુષ્પગાસપીવર પલવકુંચિયવરાધરાઓ' દાહિમપુષ્પપ્રકાશ પીવર પ્રલમ્બકુ-
 શ્ચિતવરાધરાઃ—દાહિમપુષ્પવત્ પ્રશ્નો યસ્ય સઃ દાહિમપુષ્પપ્રકાશઃ દાહિમપુષ્પવદ્ રક્ત-
 પીવરઃ પુષ્પઃ પ્રલમ્બ-—પૂર્વોષ્ઠાપેભયા ઈપલમ્બમાનઃ કુશ્ચિત-—ઈપદ વલિતઃ અત એવ વરઃ શ્રેષ્ઠ-
 અધરઃ—અધસ્તનોષ્ઠો યાસાં તાસ્તથા, 'સુન્દરુત્તરોદ્યાઓ, 'સુન્દરોત્તરોષ્ઠચ --શોભનોપરિતનો-
 ષ્ઠયુક્તાઃ, તથા' દહિ દગરયચંદ કુંદવાસંતિમડયધવલ અચ્છિદ્દવિમલદસણાઓ' દધિદક-
 રજશ્ચન્દ્ર વાસંતીમુકુલધવલાચ્છિદ્દદશનાઃ—દધિ પ્રસિદ્ધ દકરજઃ જલકળઃ ચન્દ્રઃ પ્રસિદ્ધઃ,
 કુન્દ—કુન્દપુષ્પં, વાસન્તીમુકુલં વાસન્તીકલિકા, તદ્દધવલાઃ—શુભ્રાસ્તંયા, અચ્છિદ્રાઃ—
 અવિરલા દશનાઃ—દન્તાઃ યાસાં તાસ્તથા,— તથા 'રત્તુપ્પલપત્ત મડયસુકુમાલ તાલુ જીહા-
 ઓ' રક્તોત્પલ પત્ર મૃદુસુકુમાર તાલુજિહાઃ—રક્તોત્પલસ્ય પત્રં 'પાંચડી ઇતિ પ્રસિદ્ધં, ત-
 દ્વદ રક્તં મૃદુસુકુમારમ્=અતિ કોમલ તાલુજિહ્વા=તાલુ જિહા ચ યાસાં તાસ્તથા, તંયા 'ક-
 ણવીરમડલકુહિલ અબ્મુગય ડ્વજ્જુતુગણાસાઓ, કરવીર મુકુલાકુટિલામ્બુદ્વતઋજુતુદ્વના-
 સાઃ—કરવીરઃ 'કનેર ઇતિ ભાષા પ્રસિદ્ધો વૃક્ષવિશેષઃ, તમ્ય મુકુલવત્ કલિકા સદશી અ
 કુટિલાઃ—અજિહ્વા સતી અમ્બુદ્વના મૂદ્વય મધ્યવિનિર્ગતા, ઋજ્વી—સરલા તુદ્વા—ઉચ્ચા ન તુ

હૈ "દાહિમપુષ્પગાસપીવરપલવકુંચિયવરાધરાઓ" ઇનકા જો અધરોષ્ઠ હોતા હૈ, વહ દાહિમ કે
 પુષ્પ કી તરહ પ્રકાશવાલા હોતા હૈ, અર્થાત્ અનાર કે પુષ્પ કે જૈસા લાલ હોતા હૈ, પુષ્પ હોતા
 હૈ, ઓર ડપર કે હોઠ કી અપેક્ષા કુચ્છ ૨ લમ્બા હોતા હૈ તથા વહ કુચિત—નીચે કી ઓર કુચ્છ
 ૨ છુકા સા હુમા રહતા હૈ, અત એવ વહ બઢા શ્રેષ્ઠ હોતા હૈ, "સુન્દરુત્તરોદ્યાઓ દહિદગરયચ-
 દકુંદવાસંતિમડલધવલ અચ્છિદ્દવિમલદસણાઓ" તથા ડપર કા જો ઇનકા હોઠ હોતા હૈ, વહ વ-
 હુત સુન્દર હોતા હૈ ઇનકે જો ડાત હૈ વે દહિ, જલકળ, ચન્દ્ર, કુન્દપુષ્પ ઓર વાસન્તીકલી કે
 જૈસે અત્યન્ત ધવલવર્ણવાલે હોતે હૈ, ઇનકે ડીચ મેં છિદ્ર નહીં હોતા હૈ યે એસે અવિરલ હોતે હૈ,
 ઓર વિમલ—મલરહિત હોતે હૈ, "રત્તુપ્પલપત્તમડય સુકુમાલતાલુજીહાઓ, કણવીરમડલકુહિલ અ-
 બ્મુગય ડ્વજ્જુતુગણાસાઓ, સારયણવકમલકુમુયકુવલયવિમલદલણિયરસરિસલક્ષણપસત્થ અજિહ્વા-

પુષ્પગાસપીવરપલવકુંચિયવરાધરાઓ" એમનેા જે અધરોષ્ઠ હોય છે તે દાહમના
 પુષ્પની જેમ પ્રકાશયુક્ત હોય છે તેટલે, કે દાહમના પુષ્પ જેવો લાલ હોય છે, પુષ્પ હોય
 છે અને ઉપરના ઓષ્ઠ કરતા કલ્ક, લાંબો હોય છે તેમજ તે કુચિત નીચેની તરફ સહેજ
 નૂત્ર થયેલ હોય છે. એથી તે ખૂબ જ શ્રેષ્ઠ હોય છે "સુન્દરુત્તરોદ્યાઓ દહિદગરય ચંદ કું-
 દવાસંતિ મડલધવલઅચ્છિદ્દવિમલદસણાઓ" તેમજ ઉપરનેા જે એમનેા ઓષ્ઠ હોય છે તે
 ખડુંજ સુદર હોય છે એમના દાત દહી જલકલ્ક ચન્દ્ર કુંદ પુષ્પ અને વાસન્તીની કળી જેવા
 અતીવ સ્વેત વર્ણવાળા હોય છે એમની મધ્યના છિદ્ર હોતા નથી એ અવિરલ હોય છે અને
 વિમલ—મળ રહિત હોય છે "રત્તુપ્પલપત્તમડયસુકુમાલતાલુજીહાઓ કણવીર મડલકુહિલ
 અબ્મુગય ડ્વજ્જુતુ ગ ણાસાઓ, સારયણવકમલકુમુય કુવલયવિમલદલણિયરસરિસ લક્ષણ-

गवादि शृङ्गवत् कुटिला नामा-नासिका यासां तास्तथा, तथा-‘सारयणवक्रमलकुमुदकुवल-
लयविमलदलणियर रारिसलवखणपसत्थ अजिह्वकंतनयना’ शारद नवकमल कुमुदकुवल्य
विमलदलनिकर सदालक्षणप्रशस्ताजिह्वकान्तनयनाः-शारदानि शरदत्तु भवानि यानि नवा-
नि-नूतनानि यानि कमलकुमुदकुवलयाणि कमलं च पद्म सूर्य विकासि, कुमुद च उत्पलं
चन्द्रविकासि, कुवल्यं च नीलोत्पलम्, एतेषां द्वन्द्वन्तानि तथा, एतेषां यानि विमलानि-
निर्मलानि दलानि पत्राणि तेषा यो निकर समूहः, तत्सदृशे-रक्तश्चेतनीलवर्णयुक्ते लक्षण-
प्रशस्ते लक्षणतः-शोभनलक्षणयोगात् मुशोभने अजिह्वे अमन्दे भद्रभावयुक्ततया निर्वि-
कारचपले कान्ते सुन्दरे नयने नेत्रे यासां ता स्तथा, तथा ‘पत्तलधवलायत आतंत्रलो-
यणाओ’ पत्रलधवलायताताम्रलोचनाः पत्रले पक्षमले शोभनपक्षमयुक्ते धवले-शुभ्रे आयते
दीर्घे कर्णान्तगते आताम्रे-ईपदरूपे लोचने नेत्रे यासां तास्तथा, नाराणा नयनशुभगत-

कंतणयणा” इनका तालु और जिह्वा रक्तोत्पल के पत्र के समान रक्त होते हैं तथा पृष्ठ और सु-
कुमार होते हैं इनकी नासिका कनेर की बालिका जैसी अकुटिल होती हुई शृङ्ग के मध्य से नि-
कलकर अत्यन्त सरल एवं ऊँची रहती है, गाय आदि की नाक की तरह वह कुटिल नहीं होती
है, इनके दोनो नेत्र शरद ऋतु सम्बन्धी नवीन सूर्य-विकासी पत्र, कुमुद चन्द्रविकाशी उत्पल,
पत्र कुवल्य-नीलोत्पल के विमल पत्रो के समूह के जैसे होते हैं, -अर्थात् रक्त, श्वेत एव नील
वर्ण से युक्त रहते हैं, तथा वे शोभन लक्षण के योग से प्रशस्त होते हैं, अजिह्व होते हैं भद्रभा-
वयुक्त होने से विकारभाव रहित होकर चपल होते हैं, और कन्त होते हैं बड़े सुन्दर होते हैं,
“पत्तलधवलायत आतंत्र लोयणाओ; आणामियचावरुडलकिण्हम्भराडसगयसुजाय भूमयाओ” तथा
वे उनके लोचन पत्रल-पक्षमल शोभन पक्षम से युक्त होते हैं, धवल शुभ्र होते हैं, आयत होते
हैं, कर्णान्तगत होते हैं एवं ईपद अरुणहोते हैं नारियो की नयनसुभगता ही उनका उत्कृष्ट शृङ्गार
है इस बात को सूचित करने के लिये ही-शोभनपक्षमयुक्तता और कर्णान्तगतत्व विशेषणों को ले-

पसत्थ अजिह्वकंतणयणा’ ऐभना तालु अने जिह्वा रक्तोत्पलना पत्रनी ऐभ रक्त डोय छे,
अने सुकुमार डोय ने ऐभनी नासिका, कषेरनी कलिका ऐवी अकुटिल डोय छे अने ते
भद्रयना मध्यमाथी नीकणीने अतीव सरण तेमज्जि च्छी रहै छे गाय वगेरेना नाकनी ऐभ
ते कुटिल डोती नथी ऐभना अन्ने नेत्रो शरद ऋतु सम्बन्धी नवीन कमल-सूर्य विकासी
पद्म कुमुद अन्द्र विकासी उत्पल तेमज्ज कुवल्य नीलोत्पलना विमल पत्रोना समूहना ऐवा
डोय छे. ऐटले के रक्त श्वेत अने नील वर्णथी युक्त रहै छे तथा ते शोभन लक्षणना
योगथी प्रशस्त डोय छे अल्लु डोय छे, लक्ष्मणायुक्त डोवा थि विकार भाव रहित डोवा
छताओ अपण डोय छे अने कान्त डोय छे अतीव सुन्दर डोय “पत्तलधवलायत आतंत्र लो-
यणाओ, आणामियचावरुडलकिण्हम्भराड संगयसुजायभूमयाओ, तेमज्ज ते तेमना नेत्रो
पत्रलपक्षमल-शोभन पक्षमथी युक्त डोय छे, धवल शुभ्र डोय छे आयत डोय छे कर्णान्त-
गत डोय छे अने ईपद अरुण डोय छे अजिह्वनी नयन सुभगता ज तेमने उत्कृष्ट शृ-
ङ्गार छे ऐ वातने सूचित करवाभाटे शोभन पक्षम युक्तता अने कर्णान्तगतत्व विशेषणोने

મેવોત્કૃષ્ટશૃક્ષમિત્તિ શોભનપદ્મયુક્તત્વ કર્ણાન્તગતત્વસૂચનાર્થં પુનરિદ વિશેષણમુપાત્તમિત્તિ
 વોધ્યમ્ । તથા—‘આણામિય ચાવ રુદ્ધલ ક્ષિપ્ત્વમરાઈ સંગય મુજાયભૂમયાઓ’ આનામિત
 ચાપરુચિર કૃષ્ણાભ્રરાજિસંગતમુજાતભ્રુવઃ—અનામિતઃ આરોપિતો યશ્ચાપો—ધનુસ્તદ્વદ્ વક્રે
 રુચિરે સુન્દરે કૃષ્ણાભ્રરાજિસંગતે કૃષ્ણમેઘપદ્કિત્વત્ સંગતે સંહતે અવિચ્છિન્ને મુજાતે—
 શોભને ભ્રુવૌ યાસાં તાસ્તથા ‘આલીણપમાણજુત્તસવળા આલીન પ્રમાણયુક્તશ્રવળા’, આલી-
 ને—સંગતે અત એવ ણ યુક્તે શ્રવળે—કર્ણૌ યાસાં તાસ્તથા, અત એવ ‘મુસવળાઓ’ મુશ્ર
 વળાઃ—મુકર્ણાઃ તથા ‘પીળમટ્ટગંડલેહાઓ, પીનમૃષ્ટ ગળ્ડલેહાઃ—પીના પરિપુષ્ટા ન તુ નિ-
 મ્નોન્નતા તથા મૃષ્ટા શુદ્ધા ન તુ શ્યામત્વાદિભિર્વર્ણે સંક્રાન્તા ગળ્ડલેહા—કપોલપાલી યાસાં
 તાસ્તથા, તથા ‘ચડરંસપસત્થસમણિહાલાઓ’ ચતુરસ્રપ્રશસ્તસમલલાટાઃ—ચતુરસ્ર—ચતુષ્કો-
 ણં પ્રશસ્ત લક્ષણોપેતં સમમ્—અવિષમમ્ લલાટં—માલં યાસાં તાસ્તથા, તથા ‘કોમુર્ફરયણિ-
 કરવિમલપદ્ધિપુણ્ણસોમવયળાઓ’ કૌમુદી રજનીકરવિમલપ્રતિપૂર્ણસૌમ્યવદનાઃ—કૌમુદી-
 કર પુનઃ લોચન કા વર્ણન ક્રિયા ગયા હૈ, આનામિત—આરોપિત ધનુષ સમાન વક્ર—કુટિલ અત-
 એવ રુચિર—સુન્દર એવં કૃષ્ણાભ્રરાજિ કે જૈસે સગત—કૃષ્ણમેઘપદ્કિત્ત કે સમાન સગત—સહતઅવિ-
 ચ્છિન્ન તથા મુજાત —શોભન એસી ધોઈં મૂં ઇનકી હોતી હૈ । “આલીણપમાણજુત્તસવળા, મુસવ-
 ળાઓ, પીળમટ્ટગંડલેહાઓ, ચડરંસપસત્થસમણિહાલાઓ, કોમુર્ફરયણિયરવિમલપદ્ધિપુણ્ણસોમવય-
 ળાઓ” ઇનકે દોન શ્રવળ—કાન—આલીન—સગત હોતે હૈ અતએવ વે પ્રમાણયુક્ત હોતે હૈ ઓર ઇસી
 લિયે યે મુકર્ણ—અચ્છે કાન વાલી માના જાતી હૈ ઇનકો કપોલપાલો પોન હોતો હૈ—પરિપુષ્ટ હોતો હૈ,
 નીચી ઊંચી નહીં હોતી હૈ તથા વહ શુદ્ધ હોતી હૈ શ્યામતા આદિ વર્ણો સે સક્રાન્ત નહીં હોતી હૈ
 ઇસકા લલાટ માલ ચતુરસ્ર ચૌકોર હોતોહૈ, પ્રશસ્ત-લક્ષણોપેત હોતો હૈ, એવં સમ-અવિષમ હોતો હૈ
 ઇનકા મુલ શરદકાલ કી પૂર્ણિમા કે ચન્દ્ર કે જૈસા વિમલ—નિર્મલ હોતો હૈ, પ્રતિપૂર્ણ હોતો હૈ—સૌન્દર્ય
 સે પૂર્ણરૂપ મેં મરા હુઆ હોતોહૈ ઓર સૌમ્ય—શાન્તિજનક હોતો હૈ “હુત્તુણય ઉત્તમંગાઓ, અ-

લક્ષને કરીથી નેત્રોતુ વશુન કરવામાં આવ્યું છે આનામિત આરો પિત ધનુષની જેમ વક્ર
 કુટિલ એથી રુચિર સુંદર તેમજ કૃષ્ણાભ્રરાજિની જેમ સંગત કૃષ્ણ મેઘપદ્કિતની સમાના
 સંગત—સંહત અવિચ્છિન્ન તથા મુજાત શોભન એવી ભમરો એમને હોય છે. “આલીણપમાણ
 જુત્તસવળા મુસવળાઓ, પીળમટ્ટગંડલેહાઓ, ચડરંસપસત્થસમણિહાલાઓ, કોમુર્ફર
 યર વિમલપદ્ધિપુણ્ણસોમવયળાઓ’ એમના બન્ને શ્રવણો—કાનો આલીન સંગત હોય છે.
 એથી તે સપ્રમાણ હોય છે અને એટલા માટે જ એઓ મુકર્ણ એટલેકે સારા કાનોવાળી
 માનવામાં આવે છે. એમની કપોલપાલી પીન હોય છે પરિપુષ્ટ હોય છે, નીચી ઊંચી હોતી
 નથી તેમજ તે શુદ્ધ હોય છે શ્યામતા વગેરે વર્ણોથી સંક્રાન્ત હોતી નથી એમને લલાટ
 પ્રદેશ માલ ચતુરસ્ર ચૌકીયો હોય છે. પ્રશસ્ત લક્ષણોપેત હોય છે તેમજ સમ-અવિષમ
 હોય છે. એમનું મુખ શરદ કાલની પૂર્ણિમાસીના એવું વિમલ નિર્મલ હોય છે પ્ર-
 તિપૂર્ણ હોય છે, સૌન્દર્યથી પરિપૂર્ણ હોય છે અને સૌમ્ય શાન્તિજનક હોય છે “ હુત્તુણય—

शर त्पौर्णमासी, तस्या यो रजनीकरः चन्द्रस्तद्वद् विमलं-निर्मलं प्रतिपूर्णम्-अहोर्न सौम्यं प्रसन्न वदन मुखं यासां तास्तथा, तथा 'छत्रुणय उत्तमंगाओ, छत्रोन्नतोत्तमाद्वाः-छत्रवत् उन्नत-तुङ्गम् उत्तमाङ्ग-शिरो यासां तास्तथा, तथा 'अकविल सुसिणिद्धसुगन्ध दीह सिरयाओ' अकपिल सुस्निग्ध सुगन्धिदीर्घशिरोजाः अकपिलाः-कृष्णाः सुस्निग्धाः स्वभावतश्चिकणाः सुगन्धयः शोभनगन्धयुक्ताः दीर्घाः-लम्बमानाः शिरोजाः केशा यासां तास्तथा, तथा 'छत्र' छत्र १ 'ज्झय' ध्वज २ 'जूय' यूप 'थूम' स्तूप ४ 'दामिणि' दाम ५ 'कमंडलु' कमण्डलु ६ 'कलस' कलश ७ 'वावि' वापी ८ 'सोत्थिय' स्वस्तिक ९ 'पडाग पताका १० 'जव' यव ११ 'मच्छ' मत्स्य १२ 'कुम्म' कूर्म १३ 'रहवर' रथवर १४ 'मगरज्झय' मकरध्वज १५ 'अंक' अङ्क १६ 'थाल' स्थाल १७ 'अंकुस' अङ्कुश १८ 'अट्टावय' अष्टापद १९ 'सुप्पइट्टग' सुप्रतिष्ठक २० 'मयूर' मयूर २१ 'सिरि अभिसेअ' श्युभिपेक २२ 'तोरण' तोरण २३ 'मेइणि' मेदिनि २४ 'उदहि' उदधि २५ 'वरभवण' वरभवन २६ 'गिरि' गिरि २७ 'वर आयंस' वरादर्श २८ 'सलीलगय' सलीलगज २९ 'उसम' ऋषभ ३० 'सीह' सिंह ३१ 'चामर' चामर ३२ 'उत्तमपसत्थ वत्तीसलखणधरोओ' उत्तमप्रशस्तद्वान्निशलक्षणधरिण्यः-तत्र छत्रं प्रसिद्धं १, ध्वजः प्रसिद्धः यूपः-स्तम्भविशेषः ३. स्तूपः-पीठं ४, दाम-माला ५, कमण्डलुः-जलपात्रविशेषः ६, कलशः ७ वापी ८ स्वस्तिकविल सुसिणिद्ध सुगन्धिदीह सिरयाओ, छत्र १ ज्झय २ जूम ३ थूम ४ दामिणि ५ कमंडलु ६ कलस ७ वावि ८ सोत्थिय ९ पडाग १०, जव ११, मच्छ १२, कुंम १३, रहवर १४ मगरज्झय १५, अंक १६, थाल १७, अंकुस १८, अट्टावय १९ सुपइट्टग २० मयूर २१, सिरि अभिसेय २२, तोरण २३ मेइणि २४, उदहि २५, वरभवण २६, गिरि २७ वर आयस २८, सलीलगय २९, उसम ३० सीह ३१ चामर ३२ उत्तमपसत्थ वत्तीस लखणधरोओ' इनका मस्तक छत्र के जैसा उन्नतहोता है, इनके मस्तक के बाल-केश-अकपिल कृष्ण होते हैं, सुस्निग्ध-स्वभावतश्चिकने होते हैं सुगन्धित-शोभनगन्ध से युक्त रहते हैं, दीर्घ-लम्बे होते हैं, ये वत्तीस श्रेष्ठ लक्षणों को जो सामुद्रिक शास्त्र में स्त्रियों के सौभाग्य के सूचक कहे गये हैं धारण करने वाली होती हैं वे ३२ चिह्न लक्षण इस प्रकार से हैं-छत्र १ ध्वज २, यूप-स्तम्भविशेष-जो कि

उत्तमंगाओ अकविल सुसिणिद्ध सुगन्धिदीहसिरयाओ छत्र-१, ज्झय-२ जूम-३ थूम ४ दामिणी-५ कमंडलु-६ कलस-७ वावि-८ सोत्थिय-९ पडाग-१० जव-११ मच्छ-१२ कुम्म-१३ रहवर-१४ मगर-ज्झय-१५ अक-१६ थाल-१७ अंकुस-१८ अट्टावय-१९ सुपइट्टग-२० मयूर-२१ सिरिअभिसेअ-२२ तोरण-२३ मेइणि-२४ उदहि-२५ वरभवण-२६ गिरि-२७ वरआयंस-२८ सलीलगय-२९ उसम-३० सीह-३१ चामर-३२ उत्तमपसत्थवत्तीस लखणधरोओ अमनु मस्तक छत्र अमु उन्नत होय छे. अमना मस्तकना वाप अकपिल कृष्ण होय छे सुस्निग्ध स्वभावतः सुचिकवष होय छे सुगन्धित शोभन गन्धयो युक्त रहै छे दीर्घ होय छे अमना सौभाग्य सूचक तेमअ सामुद्रिक शास्त्रना उर लक्षणेयो तेओ सपत्त होय छे ३२ लक्षणे आ प्रमाणे छे छत्र १, ध्वज २, यूप-अके स्तंभ विशेष है ते यममा आशयित होय छे-स्तूप पीठ-४ दाम माणा-५ कमंडलु-जलपात्र विशेष-६, क-

કઃ ૧૨ પતાકા ૧૦ યવઃ ૧૧ મત્સ્યઃ ૧૨ કલ્પશાદયઃ પ્રસિદ્ધાઃ, તથા-કૂર્મઃ-કચ્છપઃ ૧૩
 રથવરઃ-શ્રેષ્ઠરથઃ ૧૪ મકર-ધ્વજઃ-મકરરૂપઃ ધ્વજઃ કામદેવ-ધ્વજઃ, અયં-ધ્વજઃ સર્વકાલિક
 સૌભાગ્ય સૂચયતિ ૧૫, તથા અક્ક-ચિહ્ન ક્યામતા લગ્ન ૧૬ સ્થાલં પ્રસિદ્ધમ્ ૧૭ અક્કુશઃ
 પ્રસિદ્ધઃ ૧૮, અષ્ટાપદં-દ્યૂતફલકમ્ ૧૯, મુપ્રતિષ્ઠકં-સ્થાપનકં ચિન્હવિગેષઃ ૨૦, મયૂરઃ પ્ર-
 સિદ્ધઃ ૨૧, અભિષેકઃ શ્રિય-લક્ષ્મ્યાઃ, અભિષેકઃ રનપનમ્ ૨૨, તોરણં પ્રસિદ્ધમ્ ૨૩,
 મેદિની-પૃથ્વી ૨૪ ઉદધિઃ-સમુદ્રઃ ૨૫, વરભવનં શ્રેષ્ઠપ્રાસાદઃ ૨૬, ગિરિઃ-પર્વત ૨૭,
 વરાદર્શઃ-શ્રેષ્ઠદર્પણઃ ૨૮, સલોલગજઃ-લીલા સહિતોગજઃ ૨૮, ઋષભઃ બલીવર્દઃ ૩૦,
 સિંહઃ પ્રસિદ્ધઃ ૩૧ ચામર પ્રસિદ્ધન્ ૩૨ ઇત્યેતાનિ ઉત્તમાનિ-શ્રેષ્ઠાનિ અતએવ પ્રશસ્તાનિ-
 સામુદ્રિરુશાસ્ત્રે શ્રેષ્ઠત્વેનામિહિતનયા પ્રશંમાર્હોણિ ચાનિ દ્વાત્રિશલ્લક્ષણાનિ=દ્વાત્રિગતસંખ્ય-
 કાનિ સ્ત્રીણાં સૌભાગ્યસૂચકાનિ ચિહ્નાનિ, તેષા ધારિણ્યઃ-ધારિકાઃ-પ્રશસ્તછત્રાદિદ્વાત્રિશ-
 ત્સરલ્યક સ્ત્રીશુભલક્ષણધારિણ્ય ઇતિ ભાવઃ, 'હંસસરિમર્ગૈઓ' હંમપદગગતયઃ તથા 'કોહલ
 મહુરગિર સુસ્સરાઓ' કોહિલમધુર્ગીર્સ્વરા -કોહિલસ્ય સહકારમહુરી રમાસ્વાદજનિતાન-
 ન્દેન મત્સ્યસતો યા મધુરાઃ-મનોહરા ગીઃ-ગાળી તદ્વત્સરો યાસાં તાસ્તથા કોહિલવન્મ-
 ધુરાલાપિન્યઃ ઇતિ ભાવઃ તથા 'કંતા' કાન્તા કમનીયાઃ અત એવ 'સન્વસ્સ' સર્વસ્ય-સ્વા
 સન્નવર્તિનો જન્સ્ય 'અણુમયાઓ' અણુમતાઃ-જમિમતાઃ ન તુ કસ્યાપિ દ્વેષ્યા ઇતિ ભાવ
 તથા-'વવગયવલિપલિય' વ્યપગતવલિપલિતાઃ-વ્યપગતાનિ-વિશેષેણ ઉપગતાનિ-દૂરિષુ-

યજ્ઞ મેં આરોપિત હોતાઠે ૩, સ્તૂપ-પોઠ ૫, દામ-માલા ૫, કમળહલજલપાત્રવિગેષ ૬, કલ્પશ ૭
 વાપી ૮, સ્વસ્તિક ૯, પતાકા ૧૦, યવ ૧૧, મત્સ્ય ૧૨ કૂર્મ-કચ્છપ ૧૩, રથવર-શ્રેષ્ઠ રથ ૧૪,
 મકરધ્વજ-મકરરૂપધ્વજા ૧૫, યહ કામદેવ કો ધ્વજા ઠે ઓર વહ સર્વકાલિક સૌભાગ્ય કો સૂ-
 ચક હોતો ઠે અક્ક-કાલાનિલ ૧૬, સ્થાલ-થાલ ૧૭, અક્કુશ ૧૮, અષ્ટાપદ-દ્યૂતફલક ૧૯,
 મુપ્રતિષ્ઠક-સ્થાપનક ૨૦, મયૂર-મોર ૨૧, અભિષેક-લક્ષ્મી કા અભિષેકરૂપચિન્હ ૨૨, તોરણ
 ૨૩, 'મેદિની-પૃથ્વી ૨૪' ઉદધિ-સમુદ્ર ૨૫, શ્રેષ્ઠ પ્રાસાદ ૨૬, ગિરિ-પર્વત ૨૭ શ્રેષ્ઠદર્પણ
 ૨૮, સલોલગજ-લીલા સહિતહાથી ૨૯, ઋષભ-બલીવર્દ બૈલ ૩૦, સિંહ ૩૧ ઓર ચામર ૩૨,
 " હંસ સરિમર્ગૈઓ, કોહલમહુરગિરસુસ્સરાઓ, કંતા, સન્વસ્મ અણુમયાઓ, વવગયવલિપલિયવંગ-

લશ-૭ વાપી-૮, સ્વસ્તિક-૯ પતાકા-૧૦ યવ-૧૧ મત્સ્ય-૧૨ કૂર્મ-કચ્છપ ૧૩ રથવર-શ્રેષ્ઠ
 રથ-૧૪ મકર ધ્વજ- મકર રૂપધ્વજા-૧૫ આ કોમદેવની ધ્વજા છે, અને એ સર્વ કાલિક
 સૌભાગ્ય સૂચક હોય છે) અંક કાળો તલ ૧૬-સ્થાલ-થાલ-૧૭, અક્કુશ-૧૮, અષ્ટાપદ દ્યૂત-
 ફલક-૧૯, મુપ્રતિષ્ઠક-સ્થાપનક-૨૦, મયૂર-મોર ૨૧, અભિષેક-લક્ષ્મી અભિષેક રૂપ ચિહ્ન
 -૨૨, તોરણ-૨૩, મેદિની-પૃથ્વી-૨૪, ઉદધિ-સમુદ્ર-૨૫, શ્રેષ્ઠ પ્રાસાદ-૨૬, ગિરિ-પર્વત-
 ૨૭, શ્રેષ્ઠ દર્પણ-૨૮, સલીલ ગજ-લીલા સહિત હાથી-૨૯ ઋષભ-બલીવર્દ-બળહ-૩૦,
 સિંહ-૩૧ અને ચામર-૩૨, 'હંસસરિમર્ગૈઓ, કોહલમહુરગિરસુસ્સરાઓ' કંતા, સન્વસ્સ
 અણુમયાઓ, વવગયવલિપલિયવંગદુઃસ્વણવાદિ દોહગલોગમુક્કાઓ' હંસના જેવી એમની
 ગતિ હોય છે, એમની સ્વર સહકાર-આમની મનોરના રસાસ્વાદથી ઉત્પન્ન થવાવાળા આ-

तानि वलिपलितानि वलयः—चर्मशैथिल्यजनिता रेखाविशेषाः पलितानि श्वेतकेगाश्च यासां तास्तथा वार्धकरहिता इति भावः तथा 'वंग दुव्वणवाहि दोहग्गसोगमुक्काओ' व्यङ्ग दुर्वण व्याधिदौर्भाग्यशोकमुक्ताः विरुद्धानि अङ्गानि व्यङ्गानि हीनाधिका अवयवाः दुर्वर्णः दुष्टो वर्णः अप्रशस्ता त्वगित्यर्थः व्यावयवः—ज्वरादय दौर्भाग्यं—वैधव्यं शोक—पति पुत्रादिमरण-जनितो दारिद्र्यकृतश्च एभ्यो मुक्ताः—रहिता च पुनः 'उच्चत्तेण' उच्चत्वेन—औन्नत्येन 'नराण' नराणाम् अपेक्षया 'थोवूणमुस्सियाओ' स्तोकोनं किञ्चिद्गुणं यथा स्यात्तथा उच्छ्रिताः उच्चा—किञ्चिन्म्यून त्रिगव्यूतोच्छ्रिता इत्यर्थः तथा 'सभावसिगारचरुवेसाओ' स्वभाव शृङ्गारचारुवेपाः स्वभावतः प्रकृत्या शृङ्गारः शृङ्गारानुकूलः चारु. सुन्दरो वेपो यासां तास्तथा स्वभावत एव शृङ्गारानुरूप सुवेपशालिन्य इत्यर्थः अनेन केशविरचनघौषाधिकशृङ्गाराभावेन तासां निर्विकारमनस्कता सूचितेति तथा 'संगयगयहसियभणियचिद्वियविलाससंलावाणलणजुत्तोवयारकुसलाओ' संगतगतहसित भणितचेष्टितविलाससंलापनिपुणयुक्तो पचारकुशलाः तत्र—संगतम् उचितं गतं गमनं हसितं हासः भणित वचन चेष्टितं चेष्टा व्यापारो विलासः शृङ्गारचेष्टाविशेषः संलापः मिथो भाषणम् एतेषु निपुणाः कुशलाः तथा युक्ताः—संगता ये उपचारा—लोकव्यवहारास्तेषु कुशला ततः संगतादिनिपुणान्तपदस्य

दुव्वणवाहि दोहग्गसोगमुक्काओ" हँस की जैसी इनकी चाल होती है इनका स्वर सहकार—आम्र मंजरी के रसास्वाद से जनितानन्द से मत्त हुई कोकिल की वाणी के जैसा मधुर होता है ये बड़ी सुन्दरी होती है, अतएव पास में रहे हुए प्रत्येक व्यक्ति को चाहना के ये विषयभूत ही बनी रहती हैं, कोई भी उनसे द्वेष नहीं करता है, इनके शरीर में चर्म की शिथिलता से जनित रेखाएँ— झुर्रियां नहीं पड़ती है और न इनके बाल ही सफेद होते हैं अर्थात् इनके शरीर में वृद्धता नहीं आती है इनके शरीर में हीनाधिक अंग नहीं है, इनके शरीर की चमड़ी अप्रशस्त वर्णवाली नहीं होती है, ज्वर आदि व्याधिया इन्हे नहीं सताता हैं वैधव्य का दुःख ये नहीं भोगती हैं और पुत्र का शोक एवं दारिद्र्य जन्य सकलेश इनके निकट तक भी नहीं आ पाता है । "उच्चत्तेण य नराण थोवूण मुस्सियाओ सभावसिगारचारुवेसाओ, संगयगयहसियभणिय चिद्वियविलास

नन्दथी मत्त थजेवी केकिलनी वाणी जेवो मधुर होय छे जेजो भहु ज सुन्दर होय छे. जेथी निकट रहेनारी हरेके-हरेके व्यक्ति जेभने खाडे छे केध जेभनाथी द्वेष करतुं नथी सामान्य व्यक्तिताना शरीरमां अर्भनी शिथिलताथी ज प्रकारनी रेखा पडी जाय छे ते प्रकारनी रेखाजो जेटवे के करवलिथो जेभना शरीर पर पडती नथी अने जेभना वाण पखु सकेह थता नथी अर्थात् जेभना शरीरमा केध पखु द्विपसे घडपखु आवतुं नथी. जेभना शरीरमां हीनाधिक—अ गो होता नथी. जेभना शरीरनी आभडी अप्रशस्त वर्णवाणी होती नथी, ताव जेरे शोधाथी जे जो सर्वे मुक्ता होय छे वैधव्यनु हु भ जे केध पखु द्विपसे बो-गवतो नथी, अने पुत्रशोक अने दारिद्र्य जन्य सकलेशथी जे जो सदा मुक्त रहे छे. "उच्चत्तेण य नराण थोवूण मुस्सियाओ सभावसिगारचारुवेसाओ संगयगयहसियभणिय चिद्विय विलाससंलावनिपुणजुत्तोवयारकु ओ, सुन्दरथणजहण करवलणयणलावण-

तञ्जननीजनकौ च तां कन्यां पालनपोषणादिना रक्षितवन्तौ । ताभ्यां च तस्याः
सुनन्देति नाम कृतम् । ततः कियद्विसानन्तरं तञ्जननीजनकौ मृतौ । ततः सा सु-
नन्दा आश्रयाभावाद् एकाकिनी तिष्ठति स्वपिति उपविशति वने इतस्ततः परिभ्रम
ति च । क्रमेण प्राप्तयौवनां निस्सहायामेकाकिनीं वने परिभ्रमन्तीमवलोक्य युगलिनस्तां
नाभिकुलकरस्य समीपे समानीतवन्तः । नाभिकुलकरोऽपि तदीयमशेषवृत्तान्तमुपलभ्य भ
वत्वेष्टा ऋषभस्य पत्नीति तां भगवन्त ऋषभदेवस्य पत्नीत्वेन गृहीतवान् । अतो भगव-
ता कुमारिकैव सुनन्दा परिणीता ततो भगवति परस्त्रीपरिणयनरूपो दोषारोपो न घटते ।
ननु युगलिकानामकाल मृत्यु न भवतीति कथमस्य दारकस्य मृत्युर्जातः इति चेदाह-पूर्व-
कोट्यर्थिकायुष्काणामकाल मृत्युर्न भवति किन्तु भगवतः आदिनाथवारके तस्य दारकस्य

में समाधान ऐसा है किसी युगलियाके युगल रूप से कन्या और दारक उत्पन्न हुआ वे बालोचि-
तकीड़ा से खेलते किसी तालवृक्ष के नीचे पहुंच गये वहां कर्मयोग से उस तालवृक्ष से काकता-
ल्य न्याय से गिरते हुए उनके फल से सिर में चोट आजाने से वह बालक मर गया कन्या के
माता पिता ने उस कन्या को पालपोष कर बड़ा किया उसका नाम सुनन्दा रखा गया कितनेक
दिनों के बाद सुनन्दा के माता पिता का देहोत्सर्ग-मरण, हो गया सुनन्दा अब अकेली रह गई
और अकेली हीं उठने बैठने सोने लगी धीरे धीरे वह वनमें भी इधर उधर आश्रयाभाव के कारण
आने जाने एव फिरने लगी । जब वह यौवन मती हुई तो उसे जंगल में अकेली घूमती हुई देखकर
युगलिक जन नाभिराय कुलकरके पास ले गये नाभिकुलकर ने उसका सब वृत्तान्त जानकर "यह
ऋषभकुमार की पत्नी हो जावे" इस रूप से उसे स्वीकार कर लिया इस तरह भगवान् ऋषभ ने
कुमारिका अवस्था में रही हुई ही उस सुनन्दा के साथ अपना विवाह किया है अतः भगवान् पर
परस्त्री परिणय का दोषारोप नहीं आता है, शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि भोगभूमियां जीवों की
अकाल मृत्यु नहीं होती हैं फिर उस दारक की अकाल में मृत्यु कैसे होगइ कही गई है ' तो इस

करता केरु केरु ताल वृक्षनी नीचे जर्ध पड़ोन्था त्या कर्मयोगधी ते तालवृक्ष परस्थी'कक
तालीथ न्यायधी पडता तेना इणधी माथाभां आघात थवाधी ते दारक भरषु पाग्थे. कन्याना
माता-पिताजे ते कन्याद्युं पालन पोषणु कथुं' अने तेने मोटी करी तेदुं' नाम माता पिता
जे सुनदा राग्थु. केटल क द्विसे। पछी सुनं'दाना माता पिताद्युं' अपसान थर्ध गथुं' सुनदा
त्यार भाइ जेकली रही गर्ध. ते जेकली ज धरभां रहेवा लागी धीजे धीजे ते वनभा पणु
आम तेम जवा आववा लागी ज्यारे ते दुपती थर्ध तो तेने ज गलभां जेकली इरती
जेध ते युगलिक जन नाभिराय कुलकरनी पासे लर्ध गया नाभिकुलकरे तेनी अधी डकीकतं
जणु ने आ ऋषभकुमारनी पत्नी थाय. आम तेने स्वीकार करी लीधे। आरीते भगवान
ऋषभे कुमारिकावस्थावाणी ते सुनदा माथे पाण्डुथडणु कथुं' छे जेथी-भगवान पर परस्त्री
परिषुथनने दोषारोपणु थैज्य कडेवाय नहि. शास्त्रोभा जेदुं' विधान छे के भोगभूमिभां

पूर्वकोट्यधिकमायुर्ना भूदित्यकालमृत्योः प्राथम्यम् । तदेवाहान्यत्र ननु एवं तर्हि भगवतः सहोदरया सुमङ्गलया सह पाणिग्रहण त्वनुचितमेव सहोदरापाणिग्रहस्यातिगर्हितत्वं तु आपामरप्रसिद्धम् इति चेत् आह—तदानीं तथाविध व्यवहारस्य लोकाविरुद्धत्वेन भगवत्कृतस्य सहोदरायाः पाणिग्रहणस्यानौचित्यकथनमयुक्तमेवेति—पुनरप्याह—सुन्दर इत्यादिसु-
 म् । जघनं स्त्रीकटया अधोभागः विलासः=स्त्रीणां चेष्टाविशेषः तथा 'णदणवणविवरचारिणीउव्व' नन्दनवनविवरचारिण्यः नन्दनवनं मेरोर्द्वितीयं वनं तस्य यो विवरः अवकाशः तत्र चारिण्यः विहरणशीला 'अच्छराओ' अप्सरस इव 'भरहवासमाणुसच्छराओ' भारतवर्षमानुषाप्सरसः भरतक्षेत्रे मानुषीरूपा अप्सरसः तथा 'अच्छेरगपेच्छणिज्जाओ' आश्चर्यं प्रेक्षणीयाः आश्चर्यमिति कृत्वा जनैरवलोकनीयाः तथा पासाईयाओ जाव पडि-
 रूवाओ प्रासादीया यावत् प्रतिरूपाः यावत्पदेन दर्शनीया अभिरूपाः इति संग्राह्यम् प्रासा-

का उत्तर ऐसा है कि जिसकी आयु पूर्व कोटि से अधिक हाति है ऐसे युगलिकों को अकाल मृत्यु नहीं होती है, परन्तु आदि नाथ के वारक में हुए इस दारक की पूर्वकोटि से अधिक आयु नहीं थी, इसलिए इसकी अकाल मृत्यु हुई । अह अकाल मृत्यु का उनके वारक का प्रथम दृष्टान्त है । ऐसे ही बात अन्यत्र इस प्रकार से कही गइ है भगवान् का अपनी सहोदरा सुमंगला के साथ जो पाणिग्रहण हुआ है वह अनुचित ही हुआ है । सहोदरा के साथ पाणिग्रहण होना तो साधारण से साधारण तक व्यक्तियों में अनुचित कार्य माना जाता है तो इस विषय में कहा गया है कि उस समय इस प्रकार का व्यवहार लोकाविरुद्ध था—लोक में निन्दनीय—एवं अनुचित नहीं माना जाता था अतः सहोदरा के साथ किया गया भगवान् का पाणिग्रहण उस समय के अनुसार अनुचित कार्य नहीं था । सुन्दर इत्यादि इन स्त्रियों के स्तन जघन भाग—कटि के निचे का स्थान इत्यादि वह सुन्दर ही होते है । 'णदणवणविवरचारिणीउव्व अच्छराओ' नन्दन वन में सुमेरु के द्वितीयवन में—विहरण शील अप्सराओ के जैसी ये प्रतीत होती है अतः

एवोत्तुं अकालमृत्यु यत् नथो तो पछी ते दारकत्तुं अकाल मृत्यु केवी रीते थयु ? तो आने जवाण आ प्रभाणे छे के जेभत्तुं आयु पूर्वकोटिथी अधिक होय छे, जेवा युगलिकेत्तुं अकालमृत्यु यत् नथी पणु आदिनाथना वारकमा थयेव आ दारकनी पूर्वकोटि करता वधारे आयुव्य न होती जेथी जेतु अकाल मृत्यु थयुं तेभनावारकमां अकाल मृत्यु सभ धी आ पडेव्वं दृष्टान्त छे. जेवी वात भीज स्थाने आ प्रभाणे कडेवामां आवी छे भगवान्तुं पेतानी सहोदरा सुमंगला साथे जे पाणिग्रहण थयु छे ते धणुं अनुचित न थयुं छे. सहोदरा साथे पाणिग्रहण तो साधारण व्यक्ति भाटे पणु अनुचित कार्य गणाय छे तो आ संभ्रमां आभ कडेवामां आयु छे के ते वधते आ जतने वडेवार लोकाविरुद्ध गणायते हुते. लोकमां निन्दनीय तेभज अनुचित गणायते नथी जेथी सहोदरानी साथे करवामां आवेव पाणिग्रहण ते वधतना व्यवहार सुज्जम अनुचित कार्य गणाय नहिं. 'सुन्दर' इत्यादि जे स्त्रीजोना स्तन जघन भाग कटिना नीचेतु स्थान वगेरे सर्व अंगो 'सुन्दर न होय छे "नन्दन वण विवरचारिणी उव्व अच्छराओ" जे स्त्रीजो नन्दनवनमां—सुमेरुना द्वितीय

दीयादीनामर्था पूर्ववद्वोध्या इति सम्प्रति तत्कालोत्पन्न स्त्रीपुंसा साधारणतया वर्णनमाह
 'तेण मणुया' इत्यादि । ते भरतवर्षे सुपमसुपमाकालभाविनः खलु मनुजाः, मनुजाश्च मनु-
 ज्यश्चेति मनुजाः-पुरुषाः स्त्रियश्च 'ओहस्सरा' ओघस्वराः-ओघेन प्रवाहेण स्वगे येषां ते-
 तथा-मेघवद् गम्भीरस्वरा इत्यर्थः । 'हंसस्सराः-हंसस्येव मधुरो स्वरो येषां ते तथा ।
 'कौचस्सरा' क्रोञ्चस्वरा -क्रोञ्चस्येव-क्रोञ्चपक्षिण इव अनायासनिर्गतोऽपि दूरदेशव्यापी
 स्वरो येषां ते तथा । 'णंदिस्सरा' नन्दीस्वरा -नन्दीः-द्वादशविधतूर्य समुदायस्तस्याः स्वर
 इव स्वरो येषां ते तथा' तथा 'णंदिघोसा' नन्दीघोषा -नन्द्याः पूर्वोक्तरूपायाः घोष इव-
 अनुनाद इव घोष-अनुनादो येषां ते तथा । 'सीहस्सरा' सिंह स्वराः-सिंहस्येव बलिष्ठः
 स्वरो येषां ते तथा । 'सीहघोसा' सिंहघोषाः-सिंहस्य घोष इव अनुनाद इव घोषो येषां
 ते तथा, अतएव 'सुस्सरा' सुस्वराः-प्रशस्तस्वरयुक्ताः 'सुस्सरणिग्घोसा' सुस्वरनिर्घोषा-सु-
 षु-शोभन स्वरनिर्घोषः-स्वरानुनादो येषां ते तथा, तथा 'छायायवोज्जो विअंगमंगा'
 छायोद्योतितान्नाङ्गाः-छायया-प्रभया उद्योतितानि-प्रकाशितानि अङ्गानि अवयवा यस्य

'भरहवास माणुसच्छराओ', भरतक्षेत्र की ये मानुषीरूप में अप्सराएँ ही है "अच्छेरगपेच्छणिज्जा-
 ओ पासाईयाओ जाव पडिख्वाओ" मनुष्यलोक के ये आश्चर्यरूप है ऐसा समझ कर ये जनों
 द्वारा प्रेक्षणीय है प्रासादीय आदि-इन चार पदों की व्याख्या जैसी पूर्व में की जा चुकी है वैसी
 ही है 'तेण मणुया ओहस्सरा, हंसस्सरा, कौचस्सरा, णंदिस्सरा णंदिघोसा सीहस्सरा" वे उस
 काल के मनुष्य और स्त्रिया ओघस्वर वाले मेघके जैसे गभीर स्वर वाले, हंस के जैसे मधुर स्वर
 वाले क्रोञ्च पक्षी के जैसे दूरदेश व्यापि स्वर वाले, नन्दी के द्वादशविध तूर्य समुदाय के स्वर के
 जैसे स्वर वाले, नन्दी के अनुनाद के जैसे अनुनाद वाले सिंह के बलिष्ठ स्वर के जैसे स्वर वाले
 "सीहघोसा सुस्सरा, सुस्सरणिग्घोसा, छायायवोज्जोविअंगमंगा, वज्जरिसह नारायसघयणा सम-
 चवरससठाणसठिया छविणिरातका" सिंह के अनुनाद जैसे अनुनाद वाले, एतएव शोभन स्वर

वनमां-विहरषुशील अप्सराओ जेवी सु'हर छे जेथो "भरहवासमाणुसच्छराओ" भर-
 तक्षेत्रनी जे मानुषीरूपमां अप्सराओ न छे "अच्छेरगपेच्छणिज्जाओ पासाईयाओ जाव
 पडिख्वाओ" मनुष्यलोकना भाटे जे आश्चर्य स्वरुपा होवार्थी लोको वडे जे प्रेक्षणीय छे.
 प्रासादीय वगेरे जे चार पदोनी व्याख्या जेभ पड़ेता करवामां आवी छे तेवी न अही'
 पद्य समजवी "तेण मणुया ओहस्सरा, हंसस्सरा, कौचस्सरा णंदिस्सरा, णंदिघोसा,
 सीहस्सरा" ते कहैना मनुष्यो अने स्त्रियो ओघस्वरवाणा मेघना जेवा गंभीर स्वरवाणा
 हंसना जेवा मधुरस्वरवाणा कौच पक्षीना जेवा दूरदेशव्यापी स्वरवाणा नन्दीना द्वादश-
 विधतूर्य समुदायना स्वर जेवा स्वरवाणा नन्दीना अनुनादना जेवा अनुनादवाणा सिं-
 हा बलिष्ठ स्वरना जेवा स्वरवाणा, "सीहघोसा, सुस्सरा, सुस्सरणिग्घोसा, छायायवोज्जो
 विअंगमंगा वज्जरिसहनारायसंघयणा, समचवरंससठाणसठिया छविणिरातका" सिं'हना

તદેવંવિધમજ્જ-શરીર યેપાં તે તથા, તથા 'વજ્જરિસદ્દનારાયસઘયણા' વજ્જઋપમનારાચ સંહનનાઃ વજ્જઋપમનારાચાનિ વજ્જઋપમનારાચનામકાનિ સંહનનાનિ-શરીરસંઘટન પ્રકારા યેપાં તે તથા । 'તથા-સમચતુરસસંઠાણસંઠિયા' સમચતુરસસંસ્થાનસંસ્થિતાઃ-સમચતુરસ સસ્થાનમ્ આકૃતિ વિશેષો યેપાં તે તથા । , તથા 'છવિણિરાતંકા' છવિણિરાતંકાઃ છવ્યાં =ત્વચિ નિરાતંકાઃ=રોગરહિતા-દદ્રુકુપ્પાદિ ચર્મરોગ રહિતા इत्यर्थः । તથા 'અણુલોમવાયુ-વેગા' અણુલોમવાયુવેગાઃ અણુલોમઃ અણુલો વાયુવેગઃ-શરીરાન્તર્વર્ત્તી વાતપ્રચારો યેપાં તે તથા । કકગહણી' કંકગ્રહણ્યઃ-કંકસ્યેવ પક્ષિવિગેપસ્યેવ નીરોગવર્ચસ્કતયા ગ્રહણી-ગુ દાશયો યેપાં તે તથા તથા 'કવોયપરિણામા' કપોતપરિણામાઃ-કપોતસ્યેવ પરિણામઃ- આહારપરિણામો યેપા તે તથા કપોતસ્ય પ્રસ્તરલવોઽપિ ધુત્તો જીર્યતે તથેવ તેપામપિ ધુત્તં દુર્જરભોજનમ્ અનાયાસેન જીર્યતે इति भाव । અનેન તેપામજીર્ણતાદિદોષરાહિત્ય સ્વચિ-

વાળે હોતે હૈ અષ્ટે સ્વર ઓર નિર્ધોષ અનુનાદ વાળે હોતે હૈ, પ્રમા સે જિનકે શારીરિક અવયવ પ્રકાશિત હોતે રહતે હૈ એસે હોતે હૈ વજ્જઋપમનારાચ સંહનનવાળે હોતે હૈ સમચતુરસ સસ્થાન વાળે હોતે હૈ, ચમડી મેં ઇનકી કિસી મો પ્રકાર કા આતક રોગ નહી હોતા હૈ, દદ્રુ કુષ્ટ આદિ ચર્મ-રોગ સે યે રહિત હોતે હૈ "અણુલોમવાયુવેગા, કકગહણી, કવોયપરિણામા, સઠ્ઠિણિપોસપિટ્ટતરોરુપ-રિણયા છદ્વણુસહસ્સમૂસિઆ" શરીરાન્તર્વર્ત્તી વાયુ કા વેગ ઇનકે સદા અણુકૂલ રહતા હૈ ઇનકા ગુદાશયકંકપક્ષી કે ગુદાશય કી તરહ નીરોગવર્ચસ્વાલા હોતા હૈ અર્થાત્ ઇનકા ગુદાશય ટટ્ટી સે છિત નહીં હોતા હૈ કપોત કા જૈસા આહાર પરિણામ હોતા હૈ ડસી તરહકા ઇનકા આહાર પ-રિણામ હોતા હૈ અર્થાત્ જૈસે કવૂતર કંકડ સ્લા જાવે તો વહ મી જીર્ણ હો જાતા હૈ પચ જાતા હૈ ડસી તરહ સે ઇન્હે મી દુર્જર ભોજન પચ જાતા હૈ એસા ઇનકા આહાર પરિણામ હોતા હૈ ઇસ કથન સે યે અજીર્ણતા આદિ દોષ સે રહિન હોતે હૈ યહ બતલાયા ગયા હૈ ઇનકી ગુદા કા જો બા-હ્યમાગ હોતા હૈ વહ પક્ષી કી ગુદા કે બાહ્યમાગ કી તરહ મલ કે લેપ સે રહિત રહતા હૈ પોસ-

અનુનાદ જેવા અનુનાદવાળા એથી શોભન સ્વરવાળા હોય છે સારા સ્વર અનેનિર્ધોષ-અનુનાદવાળા હોય છે પ્રભાથી જેમના શારીરિક અવયવો પ્રકાશિત થતા રહે છે, એવા હોય છે. વજ્જ ઋપમનારાય સંહનનવાળા હોય છે સમચતુરસ સંસ્થાનવાળા હોય છે એમની ચામડીમા કોઈ પણ ભાતની વિકૃતિ થતી નથી દદ્રુ કુષ્ટ વગેરે ચર્મરોગથી એઓ વિહીન હોય છે, "અણુલોમ વાયુવેગા, કકગહણી, કવોયપરિણામા સઠ્ઠિણિપોસપિટ્ટતરોરુપરિણયા, છદ્વણુસહસ્સમૂસિઆ" એમના શરીરાન્તર્વર્ત્તી વાયુનો વેગ સદા અણુકૂલ રહે છે. એમનું ગુદાશય કંકપક્ષી ના ગુદાશયની જેમ નીરોગ વચ્ચેકવાળું હોય છે, એટલેકે એમનું ગુદાશય ભજ્જુથી લિપ્ત હોતું નથી કપોતનો જે ભાતનો આહાર-પરિણામ હોય છે તેભાતનો એમનો આહાર પરિણામ હોય છે એટલે કે કપોત કાંકરાઓ ખાય છે તો પણ અર્થ થઈ ભાય છે પચી ભાય છે, તેવી જ રીતે એમને પણ દુર્જર ભોજન પણ પચી ભાય છે એવો એમનો આહાર પરિણામ હોય છે આ કથનથી સ્પષ્ટ થાય છે કે એઓ સર્વે અભ્યુષિતા વગેરે દોષોથી રહિત

તમ્ । તથા--'સડણિ પોસપિઢ્ઠંતરોરુપરિણયા' શકુનિ પોમપૃષ્ઠાન્તરોરુપરિણતા:- શકુને:-
 પક્ષિણ ઇવ નિલેપત્વાત્ પોસ:-અપાનભાગો ગુદવાદ્યભાગો યેપાં તે તથા । તથા-પૃષ્ઠ-પૃષ્ઠ-
 ભાગ', અન્તરે-પૃષ્ઠોદરયોરન્તરાલે-પાર્શ્વે इत्यर्थः ऊरू=सविथनी-इत्येतानि-परिणतानि
 પરિનિષ્ઠતાં ગતાનિ યેપાં તે તથા, તતઃ પક્ષદ્વયસ્ય કર્મધારયઃ । તથા 'છદ્વણુ સહસ્સમ્-
 સિયા' પદ્મજ્જુસ્સહસ્રોચ્છ્રિતા:- પદસહસ્રધનુઃ પરિમિતોચ્ચાઃ । એવ વિધાસ્તે મનુજા ભવ-
 ન્તીતિ । અથ તેપામેવ મનુજાનાં વેશિષ્ટ્યમાહ--'તેસિણ મણુયાણં' ઇત્યાદિ । 'સમણા ડસો,
 હે આયુષ્મન્ ! શ્રમણ ! 'તેસિણ મણુયાણં' તેપાં યલ્લ મનુજાનાં 'વે છપ્પણા પિટ્ઠકરંઢક-
 સયા' દ્વે પદ પન્ચાશત્પૃષ્ઠકરણ્ઢકશતે-પદ્મપશ્ચાશદધિકદ્વિશત સંખ્યકાનિ પૃષ્ઠવંશવર્ચ્યુન્નતા
 અસ્થિખણ્ઢા પશુલિકા ઇતિ યાવત્ 'પણ્ણત્તા' પ્રજ્ઞપ્તે-કથિતે । તથા-તે મનુજાઃ 'પડમુ-
 પ્પલ્લાંગંધસરિસ ણીસાસમુ(મિવયણા' પદ્મોત્પલ ગન્ધસદ્દશનિઃશ્વાસસુરમિવદનાઃ પદ્મં સૂર્ય-
 વિકાસિકમલમ્ ઉત્પલં-ચન્દ્રવિકાસિકમલમ્, એતદ્વયસ્ય યો ગન્ધસ્તત્સદ્દશઃ-તત્તુલ્યો નિઃ-
 શ્વાસસુરમિ ર્યસ્મિસ્તાદ્દશં વદનં મુખ યેપાં તે તથા ભવન્તિ । પુનસ્તે કીદ્દશાઃ ! ઇત્યાહ-
 'તેણ' ઇત્યાદિ । 'તેણ મણુયા પગઈ ડવસંતા' તે યલ્લ મનુજાઃ પ્રકૃત્યુપશાન્તા -પ્રકૃત્યા-
 સ્વભાવેન ડપશાન્તા શાન્તસ્વભાવા ભવન્તિ ન તુ ક્રૂરસ્વભાવાઃ, તથા 'પગઈપયણુકોહમા-
 ણમાયાલોમા' પ્રકૃતિપ્રતજુક્રોધમાનમાયાલોમાઃ પ્રકૃત્યા-સ્વભાવેન પ્રતનવઃ-અત્યલ્પાઃ
 ક્રોધમાનમાયાલોમાઃ યેપાં તે તથા, અતએવ 'મિડમદ્વસમ્પન્ના' મુદુમાર્દવ સમ્પન્નાઃ-
 મુદુ શોભન પરિણામ સુખકર યન્માર્દવં તેન સમ્પન્નાઃ-યુક્તાઃ, ન તુ યલ્લજનવત્ કપટમા-
 ર્દવયુક્તાઃ, તથા 'અલ્લીણા' અલીનાઃ-સર્વગુણાલ્હુકૃતાઃ અથવા શુરૂજનાજ્ઞાકારિણો ન તુ

શબ્દ કા અર્થ અપાન ભાગ હૈ इनका पृष्ठभाग दोनों पार्श्वभाग और दोनों ऊरू परिनिष्ठित होते हैं अर्थात् बहुत मजबूत होते हैं ६ हजार धनुष के ये ऊँचे होते हैं । 'तेसिणं मणुयाणं वे छप्पणा पिट्ठ करंढकसया पण्णत्ता समणाडसो' हे श्रमण ! आयुष्मन् उन मनुष्यों की २५६ पसुरियों को हड्डिया होती हैं, 'पडमुप्पल्लंगं ध सरिसणोसास सुरमि वयणा' इनका आसोच्छ्वास पक्ष एवं (कमल)की जैसी गंध होती है वैसी गन्ध बाला होता है अतः उसकी खुशबू से इनका मुख सदा सुवासित बना रहता है 'तेणं मणुया पगई डवसंता पगई पयणु कोहमाण मायालोमा मिडमद्व सपन्ना अल्लीणा मद्दगा विणीया अप्पिच्छा असण्णिहिसचया विड्ढिंतं परिवसणा जहिच्छिय का मकामिणो' ये मनुष्य प्रकृति से ही शान्तस्वभाव वाले होते हैं क्रूरस्वभाव वाले नहीं होते हैं, तथा

હોય છે એમનાં શુદ્ધાને જે બાહ્ય ભાગ હોય છે તે પક્ષીની શુદ્ધાના ભાગની જેમ મલના લેપથી વિહીન રહે છે 'પોસ' શબ્દનો અર્થ અપાનભાગ છે. એમનો પૃષ્ઠભાગ, ખન્ને પાર્શ્વ ભાગ અને ખન્ને ઉપરો પરિનિષ્ઠિત હોય છે. એટલે કે પ્રહુ જે મજબૂત હોય છે છ હજાર ધનુષ જેટલા એઓ ઉચા હોય છે "તેસિણં મણુયાણં વે છપ્પણા પિટ્ઠકરંઢકસયા પણ્ણ ત્તા સમણાડસો" હે શ્રમણ આયુષ્મન્ ! તે મનુષ્યોની ૨૫૬ પાંસળીઓના અસ્થિઓ હોય છે "પડમુપ્પલ્લાન્ગ્ધ સરિસ ણીસાસસુરમિવયણા" પક્ષ અને ઉત્પલનો જેવો ગંધ હોય છે તેવા જે ગંધવાળા એમના આસોચ્છ્વાસ હોય છે. એથી એમના અર્ધથી એમનું મુખ

कदाचिदपि तदाज्ञोल्लङ्घकाः, यद्वा-आ-समन्तात् लीनाः-सर्वासु क्रियासु गुप्ता न तूद्धतचेष्टाकारिणः इत्यर्थः, तथा 'भद्रगा'भद्रका-कल्याण भागिनः 'भद्रगा' इतिच्छाया पक्षे-भद्रहस्तिगतय इत्यर्थः, तथा 'विणीया' विनीताः-वृद्धजनेषु विनयशालिनः, 'अपिच्छा' अल्पेच्छा-मणिकनकादि प्रतिबन्ध रहिताः, 'असण्णहिसंचया' असन्निधि सचयाः-न विद्यते सन्निधेः-पर्युषितखाद्यादेः संचयो येषां ते तथा असंचयशीला इत्यर्थः, तथा-'विडिमंतरपरिवसणा' विटपान्तरपरिवसनाः-विटपान्तरेषु-प्रासादाद्याकारेषु शाखान्तरेषु परिवसनम्-आवासो येषां ते तथा, प्रासादाकारकल्पवृक्षनिवासिन-इत्यर्थः । तथा 'जहिच्छियकामकामिणो' यथेप्सितकामकामिन-यथेप्सितान्-यथेष्टान् कामान्-शब्दादीन् भोगान् कामयन्ते-उभोग्यत्वेन अभिलषन्तीति तथा-यथेष्ट शब्दादिविषयोपभोगशालिनश्च भवन्तीति ॥६०२४॥

प्रकृति से ही क्रोध मान माया और लोभ कषाय का मदता वाले होते है इसलिये ये मृदु-शोभन परिणामवाले परिणाम में सुखकारी-ऐसे मार्दव भाव से संपन्न होते हैं खलजन की तरह कपट युक्त मार्दवभाववाले नही होते हैं । ये अलीन सर्वगुणों से सहित होते हैं अथवा गुरुजनों की आज्ञा के आराधक होते हैं उनकी आज्ञाके विराधक नही होते है । अथवा सब तरफसे ये समस्त शुभ क्रियाओं में लोन रहते है उद्धतचेष्टाकारी ये नही होते हैं, ये भद्रक कल्याणभागी होते हैं अथवा भद्रग-भद्रहाथी की जैसे चाल वाले होते है ये विनीत होते है वृद्धजनों की विनय करने वाले होते है, ये अल्पेच्छ होते है, मणि कनक आदि में प्रतिबन्ध से हीन रहते हैं ये पर्युषित खाद्य आदि के समग्र शील नही होते है इनका रहन सहन प्रासाद आदि के आकाररूप कल्पवृक्षों की शाखाओं के भीतर होता है तथा ये प्रासाद के जैसे आकार वाले कल्पवृक्षों पर निवास करते है तथा ये यथेष्ट शब्दादिक भोगों को भोगने के स्वभाव वाले होते है ॥२४॥

सहा सुवासित रहे छे, "तेण मणुया पगई उवसता, पगई पयणु कोहमाणमायालोभा मिउमहवसंपन्ना, अल्लीणा, भद्गा, विनीया अपिच्छा असण्णहिसं, विडिमंतर-परिवसणा, जहिच्छियकामकामिणो" जे अनुभो प्रकृतिथी शान्त स्वभाववाणा होय छे. हेर स्वभाववाणा नहि तेमज प्रकृतिथी क्रोध, मान, माया अने दोष कषायनी भंदावाणा होय छे. जेथी ज जे जो मृदु शोभन परिणामवाणा परिणाम भा सुभकारी जेवा मार्दव-भावथी स पन्न होय छे अह माणुसेनी जेम कपट युक्त मार्दवभाववाणा होता नथी. जे अलीन सर्व शुभ स पन्न होय छे अथवा गुरुजनोनी आज्ञाना विराधक नहि पणु पालन करनारा होय छे अथवा सर्व रीते जे सर्व समस्त शुभक्रियाजोभां हीन रहे छे. जेजो उद्धत चेष्टाकारी होता नथी जे भद्रक कषाय लागी होय छे अथवा भद्रग भद्र हाथीना जेवी गतिवाणा होय छे जे विनीत होय छे वृद्ध जनोनी सामे विनय थर्थ ने रहे छे जे अल्पेच्छ होय छे मणि कनक वगेरेमा प्रतिबन्धथी हीन रहे छे जे पर्यु-षित भाष वगेरे पहाथीना स अक्षरवावाणा होता नथी जेमनी रहेषु करषी प्रासाद आ-दिना आकर इप कल्पवृक्षोनी शाखाजोनी अंदर होय छे जेटले के जे प्रासाद जेवा आकार वाणा वृक्षोपर निवास करे छे तेम ज यथेष्ट शब्दादिक भोगोने भोगवनार होय छे-२४॥

सम्प्रति तेषां मनुजानां कियत्सु दिनेसु व्यतीतेषु आहारप्रयोजनं भवति ? तेषा-
माहारश्च कीदृशो भवति ? तस्मिन्काळे च पृथिव्या पुष्पफलानां च कीदृश आस्वादो-
भवति ? इति च प्रदर्शयितुमाह —

मूलम्—तेसि णं मणुयाणं केवइकालस्स आहारद्वे समुप्पज्जइ ?
गोयमा । अट्टमभत्तस्स आहारद्वे समुप्पज्जइ । पुढवीपुष्पफलाहारा णं ते
मणुया पण्णत्ता समणाउसो ! तीसे णं भंते ! पुढवीए केरिसए आसाए
पण्णत्ते ? से जहा नामए गुलेइ वा खंडेइ वा सक्कराइ वा मच्छंडियाइ वा
पप्पडमोयएइ वा भिसेइ वा पुप्फुत्तराइ वा पउमुत्तराइ वा विजयाइ वा
महाविजयाइ वा आकासियाइ वा आदंसियाइ वा आगासफलोवमाइ
वा उवमाइ वा अणोवमाइ वा भवेएयारूवे ? गोयमा ! णो इणद्वे समद्वे,
सा णं पुढवी इत्तो इड्डतरिया चैव जाव मणामतरिया चैव आसाएणं प-
ण्णत्ता । तेसिणं भंते ! पुष्पफलाणं केरिसए आसाए पण्णत्ते ! से जहा
णामए रण्णो चाउरंतचक्कवद्विस्स कल्लाणे भोयणजाए सयसहस्सनिप्फ-
न्ने वण्णेण उवेए जाव फासेणं उवेए आसायणिज्जे विसायणिज्जे
दिप्पणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे बिंहणिज्जे सन्विदियगायपल्हाय
णिज्जे भवे एयारूवे, ? गोयमा ! णो इणद्वे समद्वे, तेसिणं पुष्पफलाणं
एत्तो इड्डतराए चैव जाव आसाए पण्णत्ते ॥सू०२५॥

छाया—तेषां खलु मनुजानां कियत्कालेन आहारार्थः समुत्पद्यते? गौतम! अष्टमभ-
केन आहारार्थः समुत्पद्यते, पृथिवीपुष्पफलाहाराः खलु ते मनुजा प्रहसताः भ्रमणायुष्मन् ।
तस्या खलु पृथिव्या भदन्त । कीदृशक आस्वादः प्रहसत तद्यथानामकं गुड इति खण्ड-
मितिवा शर्करेति वा मत्स्यण्डिकेति वा पर्यटमोदक इति वा विसमिति वा पुष्पोत्तरेति वा
पषोत्तरेति वा विजयेति वा महाविजयेति वा आकाशिकेति वा आर्दशिकेति वा आकाश-
फलोपमेति वा उपमेति वा अनुपमेति वा, भवेदेतद्रूप ! गौतम! नो अयमर्थः समर्थः
सा खलु पृथिवी इत इष्टतरिका चैव यावद् मन आमतरिका चैव आस्वादेन प्रहसता ।
तेषां खलु भदन्त । पुष्पफलानां कीदृशक आस्वादः प्रहसतः तद्यथा नामक राहञ्चातुरन्तश्च-
क्रवर्तिनः कस्यार्णं भोजनजातं शतसहस्रनिष्पन्न वर्णेनोपेतं यावत् स्पर्शेन उपेतम् आस्वा-
दनीयं विस्वादनियं दीपनीयं दर्पनीयं मदनोयं वृंहणीयं सर्वेन्द्रियगात्रप्रहादनीयम्, भवेत्
पतद्रूपः ? गौतम ! नायमर्थः समर्थः तेषां खलु पुष्पफलानाम् इत इष्टतरकञ्चैव यावत् आ-
स्वाद प्रहसतः ॥ सू०२५ ॥

ટીકા—‘તેસિ ણં મંતે ! ઇત્યાદિ । ‘તેસિ ણં મનુયાણં કેવઙ્કાલસ્સ’ તેપાં ધલ્લ મનુ-
જાનાં ક્રિયત્કાલેન કિં પ્રમાણેન કાલેન ‘અહારદ્દે’ આહારાર્થઃ આહારપ્રયોજનં ‘સમુપ્પજ્જહ’
સમુત્પદ્યતે સંજાયતે ? ઇતિ ગૌતમપ્રશ્નઃ । ‘કેવઙ્કાલસ્સ’ ઇત્યત્ર તૃતીયાર્થે પઠ્ઠી ।
મગવાનાહ—‘ગોયમા ! અદ્દમમત્તસ્સ હે ગૌતમ ! અપ્પમમક્કેન અપ્પમમક્કપ્રમાણકાલેન
તેપામ્ ‘આહારદ્દે’ આહારાર્થઃ આહારપ્રયોજનમ્ આહારેચ્છે યથઃ ‘સમુપ્પજ્જહ’ નમુત્પદ્યતે ।
‘અદ્દમમત્તસ્સ’ ઇત્યત્ર તૃતીયાર્થે પઠ્ઠી વોધ્યા । અપ્પમમક્કમ્ ઇત્યુપવાસત્રયસ્ય સંજ્ઞા તચ્ચ
તપોવિશેષો નિર્જરાર્થં ક્રિયતે તેપાં મનુપ્યાણાં તુ સરસાહારમોજિત્વેન તાવત્કાલપર્યન્તં
ક્ષુદ્ધેદનીયોદયામાવાદાહારમંજ્ઞેવ ન જાયતે ઇતિ નિર્જરાર્થત્વામાવાત્તકૃતાહારત્યાગસ્ય ય-
દ્યપ્યપ્પમક્કત્વ નાસ્તિ તથાપિ અમક્કાર્થત્વસામ્યાદત્રાપિ ‘અદ્દમમત્તસ્સ’ ઇત્યુક્તમિતિ । તથા

અવ સૂત્રકાર યહ પ્રગટ વરતે હૈ કિં ડન મનુષ્યો કો કિતને દિનો કે વાદ આહાર કો
ઈચ્છા હોતી હૈ, તથા—ડનવા આહાર કૈમા હોતા હૈ, ઓગ ડસ કાલ મે પૃથિવી કે પુષ્પફલ-
દિકોં કા કૈસા આસ્વાદ હોના હૈ ।

“તેસિ ણ મણુયાણ કેવઙ્કાલસ્સ આહારદ્દે સમુપ્પજ્જહ” ઇત્યાદિ ।

ટીકાર્થ—‘તેમિ ણં મણુયાણ કેવઙ્કાલસ્સ આહારદ્દે સમુપ્પજ્જહ’ ગૌતમસ્વામી ને પ્રશ્ન સે
એસા પૂછા હૈ—હે મદન્ત ! ડન મનુષ્યોં કો કિતને સમય કે વાદ આહાર કી અમિલાષા હોતો હૈ
હસકે ડત્તર મેં પ્રશ્ન કહતે હૈ—‘ગોયમા ! અદ્દમમત્તસ્સ આહારદ્દે સમુપ્પજ્જહ’ હૈ ગૌતમ ! અદ્દમ
મક્ક પ્રમાણ કાલ કે વાદ—અર્થાત્ તોન દિન કે વાદ ડનકે આહાર કી અમિલાષા હોતી હૈ
‘અદ્દમ મક્ક’ યહ તોન ડપવાસ કા નામ હૈ, યહ તપો વિશેષ હૈ ઓર નિર્જરા કે લિષ ક્રિયા
જાતા હૈ, પરન્તુ યે મનુષ્ય તો ડપવાસ કરતે નહીં હૈ—ક્યોં કિ મોગમૂમિ કે જીવો કે ચારિત્ર
નહીં હોતા હૈ યે તો સરસ આહાર મોજો હૈ, અત ડસ મોજન સે ડન્હે તોન દિન તક ક્ષુદ્ધેદનીયો-
દય કે અમાવ સે મૂલ્હ હી નહીં લગતી હૈ તોન દિન વ્યતીત હો જાને પર હી મોજનેચ્છા ડન્હે

હવે સૂત્રકાર ઓ પ્રકટ કરે છે કે તે મનુષ્યોને કેટલા દિવસ પછી આહારની ઇચ્છા
થાય છે, તેમ જ તેમને આહાર કેવો હોય છે અને તે કાળ મા પૃથિવીનાં પુષ્પફલ વગેરેનો
સ્વાદ કેવો હોય છે

‘તેસિ ણં મણુયાણં કેવઙ્કાલસ્સ આહારદ્દે સમુપ્પજ્જહ’, ઇત્યાદિ—સૂત્ર—૧૧૨૫।

ટીકાર્થ—ગૌતમે પ્રશ્નને પ્રશ્ન કર્યો કે હે મદન્ત તે માણુસોને કેટલા સમય પછી આહારની
અમિલાષા થાય છે એના જવાબમાં પ્રશ્ન કહે છે

। “ગોયમા અદ્દમમત્તસ્સ આહારદ્દે સમુપ્પજ્જહ” હે ગૌતમ ! અપ્પમમક્કેન પ્રમાણ કાળ
પછી એટલે કે ત્રણ દિવસ પછી આહારની અમિલાષા થાય છે ‘અદ્દમ મક્ક’ આ ત્રણ
ઉપવાસનું નામ છે આ તપ વિશેષ છે અને નિર્જરામાં ડે કરવામા આવે છે પણ ઓ
મનુષ્યો તો ઉપવાસ કરતા નથી, કેમકે મોગમૂમિના ઓળોને ચારિત્ર હોતુ નથી એઓ
તો સરસ આહાર-લોભ છે એથી ઓ લોભનથી તેમને ત્રણ દિવસ સુધી ક્ષુદ્ધેદનીયોદ-
યાના અભાવથી ભૂખ ડગતી જ નથી ત્રણ દિવસ વ્યતીત થય તે પછી જ તેમની લોભ-

‘समणाउसो’ हे आयुष्मन् ! श्रमण ! ‘ते मणुया’ ते मनुजाः ‘णं’ खलु-निश्चयेन ‘पु-
ढवीपुष्पफलाहारा’ पृथिवीपुष्पफलाहाराः पृथिवी=भूमिः, पुष्पाणि-कल्पतरुपुष्पाणि फ-
लानि-कल्पतरुफलानि च, एतान्याहरन्ति-भुञ्जते ये ते तथाभूताः ‘पण्णत्ता’ प्रज्ञप्ताः ।
ततो गौतम पृच्छति- ‘तीसे णं भंते ! पुढवीए’ हे भदन्त ! तस्याः खलु पृथिव्याः
‘केरिसए’ कीदृशकः-किं प्रकारकः ‘आसाए’ आस्वादः-रसः ‘पण्णत्ते’ प्रज्ञप्तः ? ‘से जहा
णामए’ तद्यथानामकम् ‘गुळेइ वा’ गुड इति वा, इति शब्दः स्वरूपप्रदर्शने, वा शब्दः
समुच्चये, एवमग्रेऽपि, ‘खंडेइवा’ खण्डमिति वा ‘सक्कराइ वा’ शर्करेति वा शर्करा-‘काल्पी-
मिश्री’ इति प्रसिद्धा ‘मच्छंडियाइ वा’ मत्स्यण्डिकेति वा, मत्स्यण्डिका शर्करा विशेषः,
‘पप्पडमोयएइ वा’ पर्पटमोदक इति वा, पर्पटमोदको लड्डुक विशेषः, ‘भिसेइ वा’ विष-
मिति वा, विष-मृणालम्, ‘पुष्फुत्तराइवा’ पुष्पोत्तरेति वा, ‘पउमुत्तराइ वा’ पद्मोत्तरेति
वा, पुष्पोत्तरपद्मोत्तरे शर्कराभेदो ‘विजयाइवा’ विजयेति वा ‘महाविजयाइ वा’ महाविज-

होती है। इसलिए यह आहारत्याग उनके कर्मों की निर्जरा का कारण नहीं होता है क्योंकि
उस आहारत्याग में अष्टम भक्तता नहीं है परन्तु फिर भी जो इस आहारत्याग को अष्टमभक्त
की सज्ञा दी गई है वह अभक्तार्थत्व के साम्य को लेकर ही दी गई है। “पुढवीपुष्प फलाहारा
ण ते मणुया पण्णत्ता” हे श्रमण आयुष्मन् ! वे मनुष्य निश्चय से पृथिवी-मृत्तिका, पुष्प और फल
कल्प वृक्षों के फल इनका आहार करते हैं अब गौतमस्वामी प्रभु से ऐसा पूछते हैं-“तीसे
णं भंते ! पुढवीए केरिसए आसाए पण्णत्ते” हे भदन्त ! उस पृथिवी का आस्वाद कैसा कहा
गया है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं-“से जहा नामए गुळेइ वा खंडेइ वा, सक्कराइ वा मच्छ-
डियाइ वा पप्पडमोयएइ वा भिसेइ वा पुष्फुत्तराइ वा विजयाइ वा” हे गौतम ! जैसा आस्वाद
गुड का होता है, खंड का होता है, शर्करा का होता है-काल्पीमिश्री का होता है, मत्स्यण्डि-
का-राव या शर्कराविशेष का होता है, पर्पटमोदक-लड्डुका होता है, मृणाल का होता है,

नेत्रा नश्रत थाय छे अथी आ आहारत्याग अभिना कर्मोनी (निर्जरा) कारण डोपु नथी,
केभके ते आहारत्यागमा अष्टम भक्तता नथी, छताये ने अे आहारत्यागने अष्टम भ-
क्ततानी संज्ञा आपवामा आपी छे ते अभक्तार्थत्वना साम्यने दीधे न आपवामा आपी
छे. “पुढवी-पुष्पफलाहारा ण ते मणुया पण्णत्ता” हे श्रमण ! आयुष्मन् ! ते मनुष्यो
निश्चयपूर्वकं पृथिवी, मृत्तिका, पुष्प अने कल्प-कल्पवृक्षोना कल्प-आ सवेने आहार रूपमा
ग्रहण करे छे इवे गौतम स्वामी प्रभुने आ नतने प्रश्न करे छे के “तीसे णं भंते ! पुढवीए
केरिसए आसाए पण्णत्ते” हे भदन्त ! ते पृथिवीने आस्वाद केवे कडेवामा आयी छे ?
अेना नवामा प्रभु कडे छे-“से जहा नामए गुळेइ वा खंडेइ वा सक्कराइ वा मच्छंडि-
याइ वा पप्पडमोयए इ वा भिसेइ वा पुष्फुत्तराइ वा पउमुत्तराइ वा विजयाइ वा” हे गौ-
तम ! जेवे आस्वाद गेणने डोय छे, आउने डोय छे, शर्कराणे डोय छे, काल्पी मिश्री
ने डोय छे, मत्स्य डिका-राव अथवा शर्करा विशेषने डोय छे, पर्पट मोदक-लड्डुवा विशे-
षने डोय छे, मृणालने डोय छे, पुष्पोत्तरने डोय छे, पद्मोत्तरने डोय छे, (पुष्पोत्तर अने

येति वा, 'आकाशियाइ वा' आकाशिकेति वा 'आदंसियाइ वा' आदर्शिकेति वा, 'आगास-
फलोवमाइ वा' आकाशफलोपमेति वा, 'उवमाइ वा' उपमेति वा, 'अणोवमाइ वा' अनुप-
मेति वा, विजयाद्यनुपमान्तास्तदानीन्तना अमृतस्वादा भोज्यविशेषा विज्ञेयाः किम् 'एया-
रूवे' एतद्रूपः—एतत्प्रकारकः—गुडादीनामास्वाद तुल्यस्तेषामास्वादो 'भवे' भवति ? इति ।
भगवानाह—'गोयमा ! णो इणट्ठेसमट्ठे' हे गौतम ! नो अयमर्थः समर्थः 'सा णं पुढवी'
सा खलु पृथिवी 'इत्तो' इतः— पूर्वोक्तगुडादित 'इट्ठतरिया चैव' इष्टतरिका—अतिशयेन
सकलेन्द्रिय सुखजनिका । 'जाव' यावत्पदेन—कान्ततरिकाप्रियतरिका मनोज्ञतरिका चेति
पदत्रयं संगृह्यते, तत्र—कान्ततरिकाअतिशयेन रुचिकरा प्रियतरिका अतिशयेन प्रेमोत्पा-
दिका मनोज्ञतरिका—अतिशयेन मनोहरा तथा 'मणामतरिया' मन आमतरिकाअतिशयेन

पुष्पोत्तर का होता है पद्मोत्तर का होता है पुष्पोत्तर और पद्मोत्तर ये दो मेद एक जाति को
शर्करा के होते हैं, विजया का होता है "महाविजयाइ वा, आकाशियाइ वा, आदंसियाइ वा,
वा, आगासफलोवमाइ वा, उवमाइ वा, अणोवमाइ वा, भवे एयारूवे ?" महाविजया का होता
है, आकाशिकाका होता है, आदर्शिका का होता है, आकाशफलोपमा का होता है, उपमा का
होता है, अनुपमा का होता है—ये सब विजया से लेकर अनुपमा तक के उस समय के विशेष
भोज्य पदार्थ हैं इसका स्वाद अमृत के जैसा होता है, इतना प्रभु के कहते ही गौतमस्वामीने
बीच में ही पूछा तो क्या हे भदन्त ! जैसा इनका स्वाद होता है वैसा ही स्वाद वहीं की
पृथिवी का होता है ? तो इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—'गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे' हे गौतम !
यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि "सा ण पुढवी इत्तो इट्ठतरिया चैव जाव मणामतरियाचैव आसा
एण पणत्ता" वहां की पृथिवी इन पूर्वोक्त गुडादि पदार्थों से भी इष्टतरक है— अतिशय रूपसे
सकल इन्द्रिय को सुख जनक है यहां यावत्पद से—"कान्ततरिका प्रियतरिका, मनोज्ञतरिका"
इन तीन पद का ग्रहण हुआ है, अतः इन पदों के अनुसार वह कान्ततरिका—अतिशय रूपसे

पुष्पोत्तर के अन्ने लेहो केक विशेष प्रकारनी शर्कराना छे) विजयानो डोय छे. "महाविज-
याइ वा, आगासियाइ वा आदंसियाइ वा, आगासफलोवमाइ वा, उवमाइ वा, भवे एया
रूवे" महाविजयानो डोय छे, आकाशिकानो डोय छे, आदर्शिकानो डोय छे, आकाश-
फलोपमानो डोय छे, उपमानो डोय छे, अनुपमानो डोय छे, के अथा विजयाथी भांडीने
अनुपमा सुधीना ते वपतना विशेष प्रकारना लोभ्य पदार्थो छे अमनो आस्वाद अमृत
नेवो डोय छे प्रभुके आठलु कलु के तरत गौतमे वचये ज प्रश्न कर्थो के—हे भदन्त !
नेवो अमनो स्वाद डोय छे, तेवो ज स्वाद त्यानी पृथिवीनो डोय छे ? तो अना जवा-
अभां प्रभु कहे छे—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे" हे गौतम ! आ अर्थ समर्थ नहीं केमके
"सा णं पुढवी इत्तो इट्ठतरिया चैव जाव मणामतरिया चैव आसाएणं पणत्ता" त्यानी
पृथिवी पूर्वोक्त गोण वगैरे पदार्थो करता पणु इष्ट तरक छे अतिशय इपथी सकल इन्द्रियो
भाटे सुभजनक छे अही यावत् पदथी "कान्ततरिका, प्रियतरिका मनोज्ञतरिका" के
प्रभु पढे अहणु करवामां आण्यो छे अथी अे पढे सुभण ते कान्ततरिका—अतिशय इपमा

मनो गम्या 'आसाएण' आस्वादेन-रसेन 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता । पुनर्गौतमस्वामी पुष्पफला-
नामास्वादविषये पृच्छति- 'तेसि ण' इत्यादि । 'तेसि ण मंते ' हे भदन्त ! तेषा खलु
तत्कालोत्पन्नमनुष्याहारभूतानां कल्पतरुसम्बन्धिनां 'पुष्पफलाण केरिसए आसाए पण्णत्ते'
पुष्पफलानां कीदृशः आस्वादः प्रज्ञप्तः ? इति । 'से जहा णामए रण्णो' तद्यथा नामकं
राज्ञो नृपस्य कीदृशस्य तस्य ? 'चाउरंतचक्कवट्टिस्स' चातुरन्तचक्रवर्त्तिनः; पट्खण्डाधि-
पतेः 'कल्लाणे' कल्याणम्-एकान्तसुखजनकं 'भोयणजाए' भोजनजातं-भोजनप्रकारः 'स-
यसहस्सनिप्फन्ने' शतसहस्रनिष्पन्नं-लक्षदीनारव्ययेन सम्पन्नं 'वण्णेण' वर्णेन-अनिप्रग-
स्तेन वर्णेन 'उवेए' उपपेत-युक्तं, 'जाव' यावत्-यावत्पदेन गन्धेनोपपेत रसेनोपपेतम्
इति सग्राह्यम् तत्र-गन्धेन-अतिप्रशस्तेन गन्धेन, रसेन अतिप्रशस्तेन रसेनेति बोध्यम्,
तथा 'फासेण' स्थर्शेन-अतिप्रशस्तेन स्पर्शेन 'उवेए' उपपेतं-युक्तं यद्यपीह वर्णादयः सा-
मान्येन नोक्तास्तथापितेऽति प्रशस्ता एव बोध्याः, सामान्य वर्णादिमत्त्व तु सामान्य
भोजनेऽपि भवत्येवेत्यत एवाह-'आसायणिज्जे' आस्वादनीयम् सामान्यतः, 'विसा-

रुचिकरा है, प्रियतरिका-अतिशयरूप से प्रेमोत्पादिका है और मनोजतरिका-अतिशय रूप से
मन को हरने वाली है, एवं अतिशय रूप से वह मन आमतरिका मन के द्वारा गम्य है इस
प्रकार का उसका रस कहा गया है अर्थात् रस को लेकर इस पृथिवी का ऐसा वर्णन
किया गया है ।

'तेसि णं मंते ! पुष्पफलाण केरिसए आसाए पण्णत्ते ?' हे भदन्त ! वहा उन पुष्पफलो का
रस कैसा कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं-'से जहा णामए रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स
कल्लाणे भोयणजाए यससहस्सनिप्फन्ने वण्णेण उवेए जाव फासेण उवेए आसायणिज्जे विसायणिजे,
दिप्पणिज्जे, दप्पणिज्जे, मयणिज्जे, विहणिज्जे, सविदियगायपल्हायणिज्जे' हे गौतम ! जैसा-पट्-
खण्डाधिपतिचक्रवर्तिराजा का भोजन जो कि एक लाख दीनार के स्वर्ण से निष्पन्न हुआ हो, क-
ल्याणप्रद-एकान्ततः सुख जनक होता है और वह अति प्रशस्त वर्ण से, अति प्रशस्त रस से,

रुचिकरा-छे, प्रियतरिका-अतिशय रूपी प्रेमोत्पादिका छे अने मनोजतरिका-अतिशय रूप-
थी मनने आकर्षनादी छे तेमज्ज अतिशय रूपमा ते मन आमतरिका मन वडे गम्य छे, आ-
मतनी तेना रसनी विशेषताओ कडेवाभा आवी छे जेट्ठे के रसने लधने ते पृथ्वीतुं आ-
मततुं वषुंन करवाभा आवुं छे

'तेसि णं मंते ! पुष्पफलाण केरिसए आसाए पण्णत्ते ?' हे भदन्त ! त्हां ते पुष्प
फलोना रसो कथं मतना कडेवाभा आवेल छे ? जेना जवाणमां प्रभु कडे छे :- 'से जहा णा-
मए रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिस्स कल्लाणे भोयणजाए यससहस्स निप्फन्ने वण्णेण उवेए
जाव फासेण उवेए आसायणिज्जे विसायणिज्जे दिप्पणिज्जे दप्पणिज्जे मयणिज्जे विहणिज्जे,
सविदियगायपल्हायणिज्जे' हे गौतम ! जेपु पट्खण्डाधिपति चक्रवर्तिनरेशतु बोजन के
जे जेके बाण दीनारना भये निष्पन्न थयेल होय, कल्याण प्रद, एकान्तत सुखजनक होय
छे, अने ते अति प्रशस्त वषुंथी, अति प्रशस्तरसथी, अति प्रशस्त गन्धथी अने अति प्रशस्त
रूपथी थी युक्त होवार्थीते जेम आस्वाहनीय होय छे, विशेषरूपथी स्वाहनीय होय छे, जक-

યણિજ્જે' વિસ્વાદનીયં વિશેષતઃ, 'દિપ્પણિજ્જે, દીપનીયં-દીપયતિ જાઠરાગ્નિમિતિ વિ-
ગ્રહે વાહુકાત્કર્ત્યનીયર પ્રત્યયઃ, જાઠરાગ્નિદીપ્તિવરમિત્યર્થઃ, 'દિપ્પણિજ્જે' દર્પણીયમ્-
દ્વિપ્તિકરમ્ ઉત્સાહ વર્ધકમિતિ યાવત્ 'મયણિજ્જે' મદનીય-મદજનકં 'દિહણિજ્જે' વૃહ-
ણીયં-ધાતુપચયકર, 'સન્ધિદિયગાયપશ્ચાયણિજ્જે, સર્વેન્દ્રિયગાત્રપ્રહાદજનક ચ ભવતિ
ક્રિમ્ 'ભવે યારૂવે' એતદ્રૂપઃ=એતત્તુલ્યઃ તેપાં પુષ્પફલાનામ્ આસ્વાદો-રસો ભવેત્ ? મગ-
વાનાહ 'ગોયમા ! ણો ણ્ણઠ્ઠે સમટ્ટે' હે ગૌતમ ! નાયમર્થઃ સમર્થઃ, 'તેસિ ણં પુષ્પફલાણં'
તેપાં સ્ખલુ પુષ્પફલાનામ્ 'ડત્તો' ઇતઃ ચક્રવર્તિભોજનતઃ 'ઇટ્ટરાણ ચેવ' ઇટ્ટરકશ્ચેવ
'જાવ' યાવત્-યાવપ્પદેન કાન્તતરકશ્ચેવ પ્રિયતરકશ્ચેવ મનોજ્ઞતરકશ્ચેવ મન આમતરકશ્ચેવ
ઇતિ પદસંગ્રહઃ. એપામર્થોડચૈવ સૂત્રે પૂર્વ ગતઃ, 'આસાણ' આસ્વાદો રસઃ પણ્ણત્તે' પ્રણ્ણત્તઃ
કથિત ઇતિ ॥૨૫॥

સુપમસુપમાકાળે ભરતવર્ષોત્પન્ના જનાસ્તમાહારમાહાર્ય ક વસન્તિ ? ઇતિ જિજ્ઞાસોપ-
શાન્તયે ગૌતમસ્વામી પૃચ્છતિ—

મૂલમ્-તે ણં ! મણુયા તમાહારમોહારેત્તા કહિં વસહિં ઉવેતિં ગોયમા !
રુક્ષવગેહાલયાણં તે મણુયા પણ્ણત્તા સમણાસો ! તેસિ ણં મંતે ! રુક્ષવાણં
કેરિસણ આયરભાવપહોયારે પણ્ણત્તે ગોયમા ! કૂહાગારસંઠિયા પેચ્છા

અતિ પ્રશસ્ત ગન્ધ સે ઔર અતિપ્રશસ્ત સ્પર્શ સે યુક્ત હુઆ જૈમા આસ્વાદનીય હોતા હૈ, વિશેષ
રૂપ સે સ્વાદનીય હોતા હૈ, જઠરાગ્નિ કા દીપક હોતા હૈ, ઉત્સાહવર્ધક હોતા હૈ, મદનીય હોતા
હૈ, વૃહણીય-ધાતુઓં કે ઉપચય કા કરને વાલા હોતા હૈ, પ્રહ્લાદનીય-સમસ્ત ઈન્દ્રિયોં કો
ઔર પૂરે શરીર કો આનન્દ દેને વાલા હોતા હૈ તો ક્યા હે મદન્ત ! "ભવે યારૂવે" ઈન્કે
જૈસા હો ઊન પુષ્પફલ કા આસ્વાદ-રમ હોતા હૈ ? ઈસકે ઉત્તર મે પ્રમુ કહતે હૈ -"ગોયમા !
ણો ણ્ણઠ્ઠે સમટ્ટે" હે ગૌતમ ! યહ અર્થ સમર્થ નહીં હૈ અર્થાત્ ચક્રવર્તીં કે મોજન સે મો ઇટ્ટરક,
હો યાવત્ આસ્વાદ ઈન પુષ્પફલોં કા હોતા કહા ગયા હૈ, યહા યાવત્પદ સે "કાન્તતરક, પ્રિય-
તરક, મનોજ્ઞ તરકર ઔર મન આમતરક" ઈન વદો કા સમ્પ્રહ હુઆ હૈ । ઈન સમ્પ્રહીત પદો કા
અર્થ જૈસા પહિલે કહાગયા હૈ-જૈસા હી હૈ ॥૨૫॥

રાશિને દીપક હોય છે, ઉત્સાહ વર્ધક હોય છે, મદનીય હોય છે, વૃહણીય-ધાતુઓતુ ઉપચય
યક હોય છે અને પ્રહ્લાદનીય-સર્વ ઇન્દ્રિયોને અને સર્વ શરીરને આનન્દ આપનારુ' હોય
છે, તો શુ હે ભદન્ત ! "ભવેયારૂવે" એમના જેવો જ તે પુષ્પફળોનો આસ્વાદ હોય છે ?
એના જવાબમા પ્રમુ કહે છે 'ગોયમા ! ણો ણ્ણઠ્ઠે સમટ્ટો' હે ગૌતમ ! આ અર્થ સમર્થ નથી
એટલે કે ચક્રવર્તીના ભોજન કરતા પશુ ઇટ્ટ તરક યાવત્ આસ્વાદ એ પુષ્પ ફલાદિકનો હોય
છે. અહીં યાવત્ પદથી "કાન્તતરક પ્રિયતરક મનોજ્ઞતરક. અને મન આમ તરક" એ સર્વ
પદોનો સંબંધ થયેલ છે એ પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં કરવામા આવી છે, ॥૨૫॥

छत्तज्ञयथूमतोरण गोउरवेइया चोप्पालग अट्टालगपामाय हम्मियग वक्ख-
वालगगपोइया वलभीधरसंठिया, अत्थण्णो इत्थ वहवे वरभवणविसिद्ध संठा-
णसंठिया दुमगणा सुहसीयलच्छाया पणत्ता समणाउसो ! ॥सू० २६॥

छाया— ते खलु भदन्त ! मनुजास्तमाहारमाहार्यं क्व वसन्तिम् उपयन्ति ? गौतम
वृक्षगेहालयाः खलु ते मनुजाः प्रज्ञप्ताः श्रमणायुष्मन् तेषां खलु भदन्त ! वृक्षाणा कीदृशक
आकारभावप्रत्यवतारः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! कृटागारसंस्थिताः प्रेक्षाच्छत्रध्वज स्तूपतोरण गोपु-
रवेदिका चोप्पालकाट्टालक प्रासादहर्म्यगवाक्षवालाग्रपोनिका वलभीगृहसंस्थिताः सन्त्यन्ये
अत्र वहवो वरभवनविशिष्टसंस्थानसंस्थिता द्रुमगणाः शुभशीतलच्छाया, प्रज्ञप्ता श्रमणा-
युष्मन् ॥सू० २६॥

टीका—‘तेणं भंते’ इत्यादि ।

गौतम स्वामी पृच्छति—‘ते णं भंते ! मणुया’ हे भदन्त ! ते खलु मनुजाः ‘त-
माहारमाहरेत्ता’ तं पूर्वोक्तम् आहारम् आहार्यं— अहारं कृत्वा ‘कहिं क—कस्मिन् स्थाने
‘वसतिं वासं—निवासम् ‘उवेति’ उपयन्ति—प्रप्नुवन्ति कस्मिन् स्थानं निवासं कुर्वन्ति !
इत्यर्थः । भगवानाह—‘समणाउसो । हे आयुष्मन् ! श्रमण ! ‘गोयमा !’ गौतम !
‘रुक्खगेहालया णं’ वृक्षगेहालयाः वृक्षरूपाणि गेहानि=गृहाणि आलयाः आश्रया येषां ते
तथा—वृक्षरूपगृहेषु निवसनशोलाः, ‘ते मणुया पणत्ता’ ते मनुजा प्रज्ञप्ता भवन्ति । पुनर्गौ-
तमस्वामी पृच्छति ‘तेसि ण भंते । रुक्खाणं केरिसए’ हे भदन्त ! तेषां खलु वृक्षाणां
कीदृशकः किम्प्रकारत आयारभावपडोयारे’ आकारभावप्रत्यवतारः आकारभावः स्वरूप-

अब भगवान् गौतम की इस जिज्ञासा के कि भारतवर्ष में उत्पन्न हुए वे युगलिक जन
उस आहार को खाकर के फिर कहां रहते हैं ? समाधानार्थं सूत्र कहते हैं—

“तेणं भंते ! मणुया तमाहारमाहरेत्ता कहिं वसहिं उवेति” इत्यादि ।

टीकार्थ—‘तेणं भंते ! मणुया तमाहारमाहरेत्ता कहिं वसहिं उवेति’ हे भदन्त ! वे युगलिक
मनुष्य उस आहार को खा करके फिर कहां निवास करते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में प्रश्न कहते हैं
“ गोयमा ? रुक्खगेहालयाण ते मणुया पणत्ता समणाउसो” हे श्रमण आयुष्मन् ! गौतम ! वे
युगलिक मनुष्य उस आहार को खाकर के वृक्षरूप गृह ही है आश्रयस्थान जिनका ऐसे होजाते
है अर्थात् वृक्षरूप गृहों में निवास करते हैं । “ तेसिण भंते ! रुक्खाणं केरिसए आयारभावप-

‘भारतवर्षमा उत्पन्न थयेत्ते ते युगलिके जने। आहार अहंषु करीने पछी क्या रहे
छे ? जे जिज्ञासाना समाध न भाटे हवे भगवान गौतमने आ सूत्र कहे छे

‘ते णं भंते ! मणुया तमाहारमाहरेत्ता कहिं वसहिं उवेति—इत्यादि सू० ॥२६॥

टीकार्थ—हे भदन्त ! ते युगलिके ते आहारने अहंषु करीने पछी क्या (निवास करे छे ? आ
प्रश्नना जवाबभां प्रश्न कहे छे, “गोयमा ! रुक्खगेहालया णं ते मणुया पणत्ता समणा-
उसो” हे श्रमण आयुष्मन् ! गौतम ! ते युगलिक मनुष्ये ते आहारने अहंषु करीने वृक्ष
रूप गृह छे आश्रयस्थान जे मनु—जेना थऽ जय छे जेटवे के वृक्ष रूप गृहोभा निवास

विशेषस्तस्य प्रत्यवतारः प्रादुर्भावः 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः प्ररूपितः भगवानाह—'गोयमा'
हे गौतम ! 'कूडागारसठिया' कूटाकारसंस्थिताः—कूट—शिखर तदाकारसंस्थिताः—तदा-
कृत्तिकाः तथा—'पेच्छाछत्तञ्जय थूम तोरण गोउर वेइया चोप्पालग अट्टालगपासाय हम्मि-
यगवक्ख वालगगपोइया वलभीघरसठिया' प्रेच्छाच्छत्रध्वज स्तूप तोरण गोपुर वेदिका
चोप्पालकाट्टालकप्रासादहर्म्यगवाक्षवालाग्रपोतिका वलभीगृहसंस्थिताः अत्र प्रेक्षादि वल-
भीगृहान्तशब्दानां द्वन्द्वः, तद्वत् संस्थिताः-संस्थानयुक्ता इति विग्रहः, 'संस्थिताः, श-
ब्दस्य द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वात् प्रेक्षादिषु प्रत्येकत्रान्वयः । तेन-प्रेक्षा संस्थिताः छत्रसंस्थि-
ताः इत्यादि रूपेण पदयोजना कार्या । तत्र प्रेक्षापदं पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् प्रेक्षा-
गृहपर, ततश्च प्रेक्षागृहसंस्थिताः—प्रेक्षागृह—नाटकगृहं तद्वत् संस्थिताः—तादृशसंस्थान यु-
क्ताः प्रेक्षागृहाकारा इत्यर्थः । तथा छत्र संस्थिताः—छत्राकाराः, ध्वज संस्थिताः ध्वजाकाराः
तोरणसंस्थिताः तोरणाकारा, स्तूपसंस्थिताः=स्तूपाकाराः गोपुरसंस्थिताः गोपुराकाराः,
वेदिकासंस्थिताः—वेदिका=वितर्दि का-उपवेशनयोग्या भूमिस्तद्वत्संस्थिताः—तदाकाराः चो-
प्पालकसंस्थिता—चोप्पालकं=वरण्डा, इति भाषा प्रसिद्धम्, तद्वत्संस्थिताः=तदाकाराः,

डोयारे पण्णत्ते " हे भदन्त ! उन वृक्षो का स्वरूप कैसा कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रसु
कहते हैं " गोयमा ! कूडागार सठिया पेच्छा छत्तञ्जयथूमतोरणगोउरवेइया चोप्पालग अट्टालग-
पासाय हम्मिय गवक्खवालगगपोइयावलभीघरसठिया" हे गौतम ! वे वृक्ष कूट-शिखर का जैसा
आकार होता है वैसे आकार वाले होते हैं प्रेक्षा-प्रेक्षाग्रह-सिनेमाग्रह या नाटकग्रह-का जैसा
आकार होता है वैसे आकार वाले होते हैं छत्र-छाते का जैसा आकार होता है वैसे आकार
वाले होते हैं, ध्वजा का जैसा आकार होता है वैसे आकार वाले होते हैं, स्तूपका (चबूतरा)
जैसा आकार होता है वैसे आकार वाले होते हैं, तोरण का जैसा आकार होता है वैसे आकार
वाले होते हैं, गोपुरका जैसा आकार होता है, वैसे आकार वाले होते हैं, उपवेशन योग्य भूमि
का जैसा आकार होता है वैसे आकार वाले होते हैं, चोप्पालक वरडा का जैसा आकार

करे छे "तैसिणं भंते ! रुक्खाण केरिसप आयारभावपडोयारे पण्णत्ते" डे भदन्त !
ते वृक्षोनु स्वरूप केवुं कडेवामां आबु छे ? ओना उत्तरभा त्रु छडे छे : "गोयमा ! कूडा-
गारसठिया पेच्छा छत्तञ्जयथूम तोरण गोउरवेइया चोप्पालग अट्टालग पासाय हम्मिय
गवक्खवालगग पोइया वलभीघरसठिया" डे गौतम ! ते वृक्षे कूट-शिखर-ना आकार
सदृश आकारवाणा डोय छे प्रेक्षा-प्रेक्षागृह-नाटक गृहने जेवो आकार डोय छे, तेवा आ-
कारवाणा डोय छे छत्रने जेवो आकार डोय छे तेवा आकारवाणा डोय छे ध्वजने जेवो
आकार डोय छे, तेवा आकारवाणा डोय छे स्तूपने जेवो आकार डोय छे, तेवा आकारवाणा
डोय छे तोरणने जेवो आकार डोय छे तेवा आकारवाणा डोय छे गोपुरने जेवो
आकार डोय छे, तेवा आकारवाणा डोय छे उपवेशन योग्य भूमिने जेवो आकार डोय छे,
तेवा आकारवाणा डोय छे अट्टालने जेवो आकार डोय छे, तेवा आकारवाणा डोय छे,

अट्टालकसंस्थिताः-अट्टालकाकाराः, प्रासादसंस्थिताः-प्रासादो-राजगृहं तदाकाराः इर्म्य-
संस्थिताः-इर्म्य-धनिनामावासः-तदाकाराः गवाक्षसंस्थिताः-गवाक्षाकाराः, वालाग्रपोत्ति-
का संस्थिताः वालाग्रपोत्तिका=जलस्थितप्रासादः तदाकारा तथा-वलभीगृहसंस्थिता-व-
लभीगृहं चन्द्रशालागृहं, तदाकाराश्च ते द्रुमगणाः सन्ति । अयं भावः केचिद् द्रुमगणाः कू-
टाकारसंस्थिताः, केचित् प्रेक्षागृहसंस्थिताः, केचिच्छत्रसंस्थिताः एव प्रकारेणाग्रेऽपि भा-
वनीयम् इति । तथा 'अत्थण्णे इत्थ' अत्र-भरते वर्षे अन्ये पूर्वोक्तभिन्ना 'बहवे' बहवो 'वर-
भवनविसिद्धसंस्थिता' वरभवनविशिष्ट संस्थान संस्थिताः-वरभवनं-श्रेष्ठगृहं, तस्य यद्
विशिष्ट संस्थानम्-आकारस्तेन संस्थिताः 'द्रुमगणा' द्रुमगणाः सन्ति । 'समणाउसो !' हे
आयुष्मन् ! श्रमण ! ते सर्वेऽपि द्रुमगणा 'सुहसीयलच्छाया' शुभशीतलच्छायाः-शुभा
शीतला च छाया येषां ते तथाभूताः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः=कथिता इति । पूर्वगृहाकारकल्प-
द्रुमवर्णने कृतेऽपि यत्पुनर्वर्णनं कृतं तत् एतेष्विति मनोहरेषु आवासेषु ते परमपुण्यभाजो
मनुजाः परिवसन्तीति सूचयितुम् । अतोऽत्र पौनरुक्त्यं नाशङ्कनीयम् ॥ सू० २६ ॥

होता है वैसे आकार वाले होते हैं अटारी का जैसा आकार होता है वैसे आकार वाले होते हैं, इसी
प्रकार वे प्रासाद-राजमहल, इर्म्य-धनवालो के गृह-गवाक्ष खिडकी रूप गृह, वालाग्र-पोत्तिका
जलस्थित प्रासाद और वलभीगृह चन्द्रशालागृह के जैसे आकार वाले होते हैं ऐसा जानना
चाहिये । तात्पर्य यह है कि कितनेक वृक्ष कूट के जैसे आकार वाले होते हैं कितनेक वृक्ष प्रेक्षागृह
के जैसे आकार वाले होते हैं, कितनेक वृक्ष छत्र के जैसे आकार वाले होते हैं, इसी प्रकार से
आगे भी समझ लेना चाहिये । "अत्थण्णे इत्थ बहवे वरभवन विसिद्ध संस्थिता द्रुमगणा
सुहसीयलच्छाया पण्णत्ता समणाउसो,, हे आयुष्मन् श्रमण ! इस भरतक्षेत्र में इन पूर्वोक्त वृक्षों
से मिल अनेक वृक्ष ऐसे भी हैं जो श्रेष्ठ गृह का जैसा आकार होता है वैसे आकार वाले
हैं । हे आयुष्मन् श्रमण ! ये सब द्रुमगण शुभशीतल छाया वाले हैं-ऐसा तीर्थकरों ने तथा मैंने
कहा है । यहाँ पहिले ग्रहोकार के कल्पवृक्षों का वर्णन करके भी जो फिर से 'वर
भवन संस्थान ' इत्यादि रूप से वर्णन किया गया है वह इन मनोहर आवासों में वे परमपु-

त्रे वा प्रभाषे ते प्रासाद-राजमहल-इर्म्य-धनाख्य भाषुसोना भवने-गवाक्ष-खिडकी, इ-
गृह, वालाग्रपोत्तिका-जलस्थित प्रासाद अने वलभीगृह-चन्द्रशालागृहना जेवा आकारवाणा
होय छे, जेभ भाषुवु जेध जे तात्पर्य आ प्रभाषे छे ते केटलाक वृक्षो कूटना जेवा आकार-
वाणा होय छे, केटलाक वृक्षो प्रेक्षागृहना जेवा आकारवाणा होय छे, केटलाक वृक्षो छत्रना
जेवा आकारवाणा होय छे, आ प्रभाषे आगण पषु समल देवु जेधजे "अत्थण्णे इत्थ
वहने वरभवनविसिद्धसंस्थिता द्रुमगणा सुहसीयलच्छाया पण्णत्ता समणाउसो" हे
आयुष्मन् श्रमण ! ते भरतक्षेत्रमा जे पूर्वोक्त वृक्षोथी भिन्न णीण वृक्षो जेवा पषु छे
ते श्रेष्ठगृहना जेवा आकार होय छे, तेवा आकारवाणा होय छे, हे आयुष्मन् श्रमण !
जे सर्व द्रुमगणो शुभ-शीतल छायावाणा छे, जेवु तीर्थकरो जे तेभमे कलु छे अही
पडेवा गृहाकारना कल्पवृक्षो पषुन करीने करीथी "वरभवन संस्थानग०" इत्यादि इयमा
३३

किं तस्मिन् काले गृहाणि सन्ति ! नवा सन्ति सन्ति चेत् किं तानि विद्यमान
धान्यवत्तेषामुपभोगाय न भवन्ति ! इत्यादिप्रश्नोत्तरमाह —

मूलम्—अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गेहाइ वा गेहावणाइ
वा गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे रुक्खगेहालया णं ते मणुया पणत्ता
समणाउसो ! अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गामाइ वा
जाव सणिवेसाइ वा गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे जहिच्छिय कामगामिणो
णं ते मणुया ! अत्थि णं भंते असीइ वा मसीइ वा किसीइ वा वणिएत्ति
वा पणिएत्ति वा वाणिज्जेइ वा णो इणट्ठे समट्ठे ववगयअसिमसिकिसि-
वणिय पणियवाणिज्जा णं ते मणुया पणत्ता समणाउसो अत्थि णं
भंते हिरण्णेइ वा सुवण्णेइ वा कंसेइ वा दूसेइ वा मणिमोत्तियसंख
सिलप्पवालरत्तरयणसावज्जेइ वा हंता अत्थि णो चैव णं तेसि मणु-
याणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छइ ॥सू० २७॥

छाया—सन्ति खलु भदन्त ! तस्या समायां भरते वर्षे गेहानि वा गेहापणानि वा ।
नायमर्थः समर्थः, वृक्षगेहालया खलु ते मनुजाः प्रज्ञता भ्रमणायुष्मन् । सन्ति खलु भदन्त
तस्यां समायां भरते वर्षे ग्रामा इति वा यावत् सन्निवेशा इति वा ? गौतम ! नायमर्थः
समर्थं यथेप्सितकामगामिन खलु ते मनुजाः प्रज्ञताः, अस्ति खलु भदन्त अस्तिरिति वृ-
मपिरिति वा कृपिरिति वा वणिगिति वा पणितमिति वा वाणिज्यमिति वा ? नायमर्थः
समर्थः, व्यपगतासिमसि कृषि वणिक्पणितवाणिज्याः खलु ते मनुजाः प्रज्ञताः भ्रमणायु-
ष्मन् । अस्ति खलु भदन्त । हिरण्यमिति वा सुवर्णमिति वा कांस्यमिति वा दूष्यमिति वा
मणिमौक्तिकं शङ्खशिलाप्रवाल रक्षत रत्नस्वापतेयमिति वा ? हन्त ! अस्ति 'नो चैव खलु तेषां
परिभोग्यतया हव्यम् आगच्छति ॥सू० २७॥

प्यशालो मनुष्य रहते है इस बात को सूचित करने के लिये किया गया है. इसलिये पुनरुक्ति क्री
आशंका नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

क्या उस काल में गृह होते है ? या नहीं होते है ? यदि होते है तो क्या वे उनके
उपभोग के काम में नहीं आते है ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर देते हुवे सूत्रकार कहते हैं

वष्णुं न करवामा आण्युं छे ते अये मनोहर आवासोमां ते परम पुष्यशास्त्री मनुष्यो रडे छे,
अये वातने सूचित करवा भाटे कडेवामा आण्यु छे भाटे आ स अ धमा पुनरुक्ति करवामा
आवी छे, अयेवी आश हा करवी नही ॥२६॥

शु ते काणमा गृहो होय छे ? के नहि ? जे होय छे तो शु तेमना उपभोगना काम-
मा आवता नथी ? वगेरे प्रश्नोना जवाजे।

टीका—‘अत्थिणं भते ! इत्यादि । गौतमस्वामी पृच्छति-‘अत्थिण भंते ! तीसे समाए भरहे वासे’ हे भदन्त ! तस्यां-सुषमसुषमायां समायां भरते वर्षे सन्ति ‘गेहाइवा’ गेहानि-गृहाणि वा; ‘गेहावणाइ वा’ गेहावणाः गृहयुक्ता आपणाः दृष्टावन्ति ? भगवानाह—‘गोयमा’ णो इणद्वे समद्वे’ हे गौतम ! नायमर्थः समर्थः, यतो ‘समणाउमो ! हे आयुष्मन् ! श्रमण ! तदानीन्तनाः ‘ते मणुया रुक्खगेहालया’ ते मनुजा वृक्षगेहालयाः—प्रासादाकारकल्पवृक्षरूपगृहेषु निवसनशीलाः ‘पणत्ता’ प्रज्ञप्ताः । गौतमस्वामी पुनः पृच्छति ‘अत्थिण भंते ! तीसे समाए भरहे वासे’ हे भदन्त ! तस्या समाया भरते वर्षे ‘गामाइवा’ ग्रामाः—अष्टा-दशकरसहिता वृत्तिवेष्टिताः, ‘जाव’ यावत्-यावदिति पदेन-आकाश-इति वा, नगराणीति वा, खेटानीति वा, कर्बटानीति वा मडम्बानीति वा, द्रोणमुखानीति वा, पत्तनानीति वा, निगमा इतिवा, आश्रमा इतिवा, सवाहा इति वा, इति संग्रहः । तत्र—आकराः=सुवर्ण रत्नाद्युत्पत्तिस्थानानि नगराणि=अष्टादशकरवर्जितानि, खेटानि=धूलिप्राकारपरिवेष्टितानि, कर्बटानि=क्षुल्लकप्राकारपरिवेष्टितानि, अभित्तः पर्वतावृत्तानिवा, मडम्बानि=सार्द्धक्रोशद्वयान्तर्ग्रामान्तररहितानि द्रोणमुखानि=जलस्थलपथोपेता जननिवासाः, पत्तनानि=समस्तवस्तु प्राप्तिस्थानानि, तानि द्विविधानि जलपत्तनानि च स्थलपत्तनानि च । तत्र यत्र नौभिर्गम्यते तानि स्थलपत्तनानि । अथवा यानि केवलं शकटादिभिर्नौभिर्वा गम्यन्ते तानि पत्तनानि, यानि केवलं नौभिरेव गम्यन्ते तानि पट्टनानि । तदुक्तम्—

“अत्थि णं भते ? तीसे समाए भरहे वासे गेहाइ वा गेहावणाइ वा ?” इत्यादि

“टीकार्थ—अत्थि ण भते । तीसे समाए भरहे वासे गेहाइ वा गेहावणाइ वा” हे भदन्त ! उस सुषम सुषमा काल में भरत क्षेत्र में घर होते हैं क्या ? गृहयुक्त आपण—दुकाने होते हैं क्या ? अथवा बाजार होते हैं क्या ? इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु कहते हैं —“गोयमा ! णो इणद्वे समद्वे” हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है क्यों कि “रुक्खगेहालया” णं ते मणुया पणत्ता” हे श्रमण आयुष्मन् ! वृक्षरूप गृह ही जिनका आश्रय स्थान है ऐसे वे मनुष्य कहे गये हैं “अत्थि णं भते ! तीसे समाए भरहे वासे गामाइ वा जाव सण्णिवेसाइ वा” हे भदन्त ! उस सुषम सुषमा आरक में भरत क्षेत्र में ग्राम यावत् सन्निवेश होते हैं क्या ? उत्तर में प्रभु कहते

“अत्थिणं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गेहाइ वा गेहावणाइ वा ?” इत्यादि सूत्रात् ७७॥
टीकार्थ—‘हे भदन्त ! ते सुषम सुषमा कालमा भरतक्षेत्रमा धरो होय छे ? गृह युक्त आपण दुकानो—होय छे ? जनरो होय छे आ प्रश्नमा उत्तरमा प्रभु कडे छे के—‘गोयमा णो इणद्वे समद्वे’ हे गौतम आ अर्थ समर्थ नथी केभके ‘रुक्खगेहालया णं ते मणुया पणत्ता’ हे श्रमण आयुष्मन् वृक्ष रूप गृह वा जेभनु आश्रय स्थान छे जेवा ते मनुष्यो छे ‘अत्थिणं भंते तीसे समाए भरहे वासे गामाइ वा जाव सण्णिवेसाइवा’ हे भदन्त ते सुषम सुषमा आरकमा भरतक्षेत्रमा ग्राम यावत् सन्निवेश होय छे ? उत्तरमा प्रभु कडे छे ‘गोयमा

पतनं शकटैर्गम्यं, घोटकैर्नौभिरेव च । नौभिरेव तु यद् गम्यं, पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥१॥ इति ।
 निगमाः=प्रभूततरवणिगजननिवासाः, आश्रमाः=पूर्व तापसैरावासिताः पश्चादपरेऽपि लो-
 का यत्रागत्य वसन्ति तादृशा जननिवासाः, संवाहाः=कृषीवलैर्धान्यरक्षार्थं निर्मितानि दुर्ग
 भूमिस्थानानि, पर्वतशिखरस्थितजननिवासा वा तथा 'सण्णिवेसाइवा' सन्निवेशाः=समाग-
 तसार्थवाहादि निवासस्थानानि वा ! भगवानाह—'गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे' हे गौतम !
 नायमर्थः, 'जहिच्छियकामगामिणो णं ते मणुया' यतस्ते मनुजा यथेप्सितकामगामिनः—
 यथेप्सितम्=इच्छामनतिक्रम्य कामम्—अत्यर्थम् गच्छन्तीति एवशीलाः—यथाभिलषित-
 स्थानेषु गमनशीला इत्यर्थः, एतादृशाः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता इति । अयं भावः—तस्मिन्
 काले ग्रामनगरापिच भावेन ते यथेच्छ स्थलगामिनः आसन् इति । पुनर्गौतमस्वामी पृ-
 च्छति—'अ ते ? हे भदन्त ! तस्यां=पूर्वोक्तायां सुपमसुपमाख्यायां समायां भरते वर्षे जी-
 वनोपायसाधनभूत 'असीइ वा' असिः=खड्ग इति वा शस्त्रकलेत्यर्थः, 'मसीइ वा' मषिः—
 लेखनकलेत्यर्थः 'किसीइ वा' कृषिः—कृषिकलेत्यर्थः 'वणिपत्ति वा' वणिक=वणिकलेत्यर्थः
 'पणिपत्ति वा' पणित=क्रयविक्रयकलेत्यर्थः 'वाणिज्जेइ वा वाणिज्यं=व्यापारकलेत्यर्थः
 'अत्थि' अस्ति अयं भावः जीवनोपायत्वेन प्रसिद्धा असिमष्यादि कलाः किं तदानीन्तन
 जनानां जीवनोपायभूता आसन् ! इति । भगवानाह—हे गौतम ! 'णो इणट्ठे समट्ठे' नायमर्थः

र्थः, यतो 'समणाउसो ! हे, आयुष्मन् ! श्रमण ! 'ते मणुया' ते मनुजा 'ववगयअसि
 मसि किसि वणिय पणिय वाणिज्जा' व्यपगतासिमपिकृषि वणिकपणित वाणिज्याः कल्प-
 वृक्षतो जीवनोपायभूत सकल वस्तु प्राप्त्या असिमस्यादि व्यापाररहिताः 'पण्णत्ता' प्रज्ञ-

'गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे' हे गौतम ? यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि "जहि-च्छियकामगामि-
 णो णं ते मणुया पण्णत्ता" वे मनुष्य यथाभिलषित स्थानों पर जाने के स्वभाव वाले होते हैं
 "अत्थि णं भन्ते ! असीइ वा मसीइ वा किसीइ वा वणिपत्ति वा पणिपत्ति वा वाणिज्जेइ वा" हे
 भदन्त ! उस काल में असि, मषी, कृषी वणिक कला, क्रयविक्रयकला और व्यापार कला ये सब
 जीवनोपाय भूत कलाएँ होती हैं क्या ? उत्तर में प्रभु कहते हैं "णो इणट्ठे समट्ठे" हे गौतम ! यह
 अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि "ववगयअसि मसि किसी वणिय पणियवाणीज्जा णं ते मणुया पण्णत्ता
 समणाउसो" हे श्रमण आयुष्मन् ! वे मनुष्य असि, मषी, कृषी वणिककला आदि से रहित हुए

णो इणट्ठे समट्ठे' हे गौतम ! आ अर्थ समर्थ नहीं है कि 'जहिच्छियकामगामिणो णं ते
 मणुया पण्णत्ता' ते मनुष्ये यथाभिलषित स्थानो पर अवर अवर करनार होय छे तेभने।
 आ भतने स्वभाव अ होय छे, "अत्थि णं भन्ते ! असीइ वा मसीइ वा किसीइ वा
 वणिपत्ति वा पणिपत्ति वा वाणिज्जेइ वा' हे भदन्त ते कणभा असि, मषी, कृषी, वणि
 ककला क्रयविक्रयकला अने व्यापारकला अने सबे जीवनोपायभूत कलाओ होय छे ? उत्तर
 भां प्रभु कहे छे 'णो इणट्ठे समट्ठे' हे गौतम अर्थ समर्थ नहीं है कि 'ववगय असि
 मसि किसि वणिय पणिय वाणिज्जा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो' हे श्रमण आयु

साः पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति—‘अथि णं भंते !’ हे भदन्त ! किमस्ति तस्यां समायां भरते वर्षे ‘हिरण्णेइवा’ हिरण्यमिति वा; तत्र हिरण्यं—रूप्यम् अघटितं सुवर्णमिति वा’ मृ-
वण्णेइवा’ सुवर्ण-घटितं सुवर्णमिति वा, ‘कंसेइ वा’ कांस्यम्=ताम्रत्रपुसंयोगजनितो धातु-
विशेषः इतिवा, ‘दूसेइवा’ दूष्य=वस्त्रमिति वा, ‘मणिमोत्तियसंख सिलप्पवालरत्तरयण सा-
वज्जेइ वा’ मणिमौक्तिकशंखशिलाप्रवालरत्तरत्नस्वापतेयमिति वा, तत्र-मणिः वैडूर्यादिः;
मौक्तिकं=मुक्ताफलं, शंखः-दक्षिणावर्त्तादिः प्रशस्तः शंखशिख्रं=स्फटिकादिरूपा, प्रवालं=
विद्रुमः; रक्त रत्नानि पद्मरागादीनि, स्वापतेयं रजतसुवर्णादिकं द्रव्यम्; एतेषां समाहारे
तथेति । तस्मिन् काले इरण्य सुवर्णादीनि द्रव्याण्यासन् न वेति गौतम स्वामिनः प्रश्ना-
शयः । भगवानाह ‘हंता ! अथि’ इन्त ! गौतम ? अस्ति हिरण्यादिकं तस्मिन् काले ।
परन्तु तत् ‘तेसि मणुयाणं परिभोगत्ताए’ तेषां मनुजानां परिभोग्यतया=उपभोग्यत्वेन
‘णो चेषणं’ नो चैव खलु ‘हव्वमागच्छइ’ इव्यं=कदाचिदपि आगच्छति—याति इति ।

कहे गये हैं ‘अथि णं भंते ! हिरण्णेइ वा सुवण्णेइ वा कसेइ वा दूसेइ वा मणिमोत्तिय सख सि-
लप्पवाल रत्तरयण सावज्जेइ वा’ हे भदन्त ! उसकाल में क्या भरत क्षेत्र में हिरण्य चाँदी अ-
थवा अघटित सुवर्ण होता है क्या ? सुवर्ण होता है क्या ? कासा होता है क्या ? दूष्य वस्त्र होते हैं
क्या ? मणि, मौक्तिक, शंख, शोला, प्रवाल रक्त रत्न और स्वापतेय ये सब होते हैं क्या ? उत्तर में
प्रभु कहते हैं ‘हंता अथि णो चेष ण तेसि मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छइ’ हाँ गौतम
उस काल में ये सब होते हैं पर ये उन पुरुषों के परिभोग के काम में नहीं आते हैं । १८ प्र-
कार के कर—टेक्सो से जो सहित होते हैं तथा वाड से जो धिरे रहते हैं उनका नाम ग्राम है
यहाँ यावत्पद से आकर आदि स्थानों का ग्रहण हुआ है इन में सुवर्ण, रत्न आदि उत्पन्न करने
वाली स्थाने जहाँ पर होती है ऐसे स्थान का नाम आकर है । और १८ प्रकार के टेक्स जिनमें
नहीं लगते है ऐसे स्थानों का नाम नगर है । बूलि के बने हुए कोट से जो परिवेष्टित होते है
उन स्थानों का नाम खेट है । छोटे प्राकार से जो परिवेष्टित रहते है उन स्थानों का नाम कर्बट है

भन् ते मनुष्यो अस्मि, भर्षा, कृषी, वय्ठिककला वगेरेथी रहित डोय छे ‘अथि णं भंते
हिरण्णेइ वा सुवण्णेइ वा कसेइ वा दूसेइ वा मणिमोत्तिय संखसिलाप्पवालरत्तरयण साव-
ज्जेइ वा’ हे भदन्त ते काणमा भरतक्षेत्रमा हिरण्य आदी अथवा अघटित सुवर्णुं डोय छे,
सुवर्णुं डोय छे ? कासुं डोय छे, दूष्य-वस्त्र डोय छे मण्ठि मौक्तिक, शंख, शिला प्रवाल
रक्त रत्न अने स्वापतेय अे सवे’ डोय छे, उत्तरमा प्रभु कहे छे, ‘हंता-अथि णो चेष
ण तेसि मणुयाण परिभोगत्ताए हव्वमागच्छइ’ हाँ, गौतम ते काणमा सवे’ डोय छे, यण्ठु
अे ते मनुष्याना उपभोगमा आपता नथी १८ प्रकारना टेक्सो (करे) सहित अे डोय छे,
तेभण वाडथी अे आवृत रहे छे तेनु नाम ग्राम छे, अही यावत्पदथी आकर वगेरे
स्थानोतुं अेडण्ठु करवामां आण्ठुं अे आमां सुवर्ण रत्न वगेरे उत्पन्न करनारी भाण्ठो अ्यां
डोय छे अेवा स्थानोतुं नाम आकर छे, अने १८ प्रकारना टेक्स अे स्थानोमा नाथवामा
आपता नथी, तेवास्थानोतु नाम नगर छे भाटीनी हीवाडथी ने परिवेष्टित डोय छे, ते

અત્રાય પ્રશ્ન:-અસ્તિ અઘટિતસુવર્ણસ્ય સુવર્ણસ્થાનો, રૂપ્યસ્ય ચ રૂપ્યસ્થાનો સંભાવના, પ-
રન્તુ ઘટિતસુવર્ણસ્ય તામ્રત્રપુસયોગજનિતસ્ય કાંસ્યસ્ય તત્તસન્તાનસમ્ભવસ્ય વસ્ત્રસ્ય ચ ત-
દાનીં તાદૃશ વિજ્ઞાનાભાવાન્નાસ્તિ સંભાવના । યદ્યત્રૈવ મુચ્યેત-અતીતોત્સર્પિણી સમ્બન્ધી-
નિ તાન્યત્ર ભરતે વર્ષે નિધાનગતાનિ સમ્ભવન્તીતિ તદપિ ન વાચ્ય, સાદિ સપર્યવસિત
પ્રયોગવન્ધસ્ય અસંખ્યેયકાલપર્યન્તમવસ્થાનાસંભવાત્, તર્હિ કથં તાનિ તત્કાલસ્થાયિ-

અથવા જિનકે ચારોં ઓર પર્વત રહતે હૈં એસે સ્થાનો કા નામ મી કર્વટ હૈં જિનકે આસ પાસ
૨।।-૨।। કોશ તક્ર દસરે ગ્રામ નહીં હોતે હૈં વે મહમ્મ કહે ગયે હૈં । જિન સ્થાનોં મેં જલ માર્ગ
સે ઓર સ્થલ માર્ગ સે દોનો માર્ગ સે પહુંચા જાતા હૈં એસે જન નિવાસ સ્થાન કા નામ દ્રોણમુસ
હૈં જિનમેં જીવનોપયોગી સમસ્ત વસ્તુએં મિલ જાતિ હૈં ઉન સ્થાનોં કા નામ પત્તન હૈં । યે પત્તન
જલ પત્તન ઓર સ્થલ પત્તન કે મેદ સે દો પ્રકાર કે હોતે હૈં જહા પર નૌકાઓ દ્વારા પહુંચા જાતા
હૈં વે જલપત્તન હૈં ઓર જહા કેવલ ગાઢી આદિકે દ્વારા પહુંચા જાતા હૈં વે સ્થલ પત્તન હૈં અથવા
જહા પર કેવલ શકટ આદિ યા નૌકા દ્વારા પહુચા જાતા હૈં એસે સ્થાન કા નામ તો પત્તન હૈં
ઓર જહાં પર કેવલ નૌકા કે હી દ્વારા પહુચા જાતા હૈં ઉસ સ્થાન કા નામ પટ્ટન હૈં ।

પત્તન શકટૈર્ગમ્ય ઘોટકૈં નૌમિરેવ ચ ।

નૌમિરેવ તુ યદ ગમ્ય પટ્ટન તત્પ્રચક્ષતે ॥૧॥

જહાં પર બહુત અનેક વણિગ્જન રહતે હૈં એસે સ્થાન કા નામ નિગમ હૈં. પૂર્વ જિસ સ્થાન મેં તપ-
સ્વિજન તાપસીજન રહે હો ઓર વાદ મેં જહાં પર લોક આકર કે ઠહરને લગે હોં એસે સ્થાન કા
નામ આશ્રમ હૈં કિસાનોં દ્વારા ધાન્ય કો રક્ષા કે લિયે નિર્મિત જો દુર્ગમ્મિસ્થાન હૈં અથવા પર્વત
કે ઊપર જો જન નિવાસ સ્થાન હૈં ઉનકા નામ સવાહ હૈં જહાં પર સાર્થવાહ આદિ આકર કે ઠહ-
રતે હૈં યા નિવાસ કરને લગતે હૈં એસે સ્થાન કા નામ સન્નિવેશ હૈં । તલવાર ચલા કર જો આજી-
વિકા કી જાતી હૈં ઉસ કલા કા નામ અસિ હૈં. યહ ઉપલક્ષણ હૈં ઇસસે ઓર મો અન્ય શસ્ત્રોં

સ્થાનોતુ નામ ખેટ છે લઘુ પ્રાકારથી જે પરિવેષિત રહે છે તે સ્થાનોતુ નામ કમટ છે
અથવા જેમની ઓર પર્વત હોય છે, એવાં સ્થાનોતુ નામ કમટ છે. જેમની આસ પાસ ૨।।,
૨।। ગાઉ સુધી ગ્રામો હોતા નથી, તેને મડંબ કહેવામા આવે છે. જે સ્થાનોમાં જલમાર્ગ અને
સ્થળમાર્ગ આમ બન્ને રીતે પહોંચી શકાય એવા જનનિવાસ સ્થાનતુ નામ દ્રોણમુખ
છે જે સ્થાનોમાં જીવનોપયોગી સર્વ વસ્તુઓ મળી આવે છે. તે સ્થાનોતુ નામ પત્તન છે,
જે પત્તનો જલ પત્તન અને સ્થલ પત્તન આમ બે પ્રકારના હોય છે જ્યાં હોડીઓ વડે
જઈ શકાય તે જલ પત્તન અને જ્યાં ફક્ત ગાડી વગેરે વડે જઈ શકાય તે સ્થલપત્તન છે.
અથવા જ્યાં ફક્ત શકટ વગેરે કે હોડીઓ વડે જઈ શકાય છે, એવા સ્થાનતુ નામ પત્તન
છે, અને જ્યાં ફક્ત નૌકા વડે જ જઈ શકાય તે સ્થાનતુ નામ પટ્ટન છે તદ્વત્કતમ્

પત્તન શકટૈર્ગમ્ય ઘોટકૈં નૌમિરેવ ચ

નૌમિરેવ તુ યદ ગમ્ય પટ્ટન તત્પ્રચક્ષતે ॥૧॥

જ્યાં ઘણા વણિક હોકા રહે છે તે સ્થાનતુ નામ નિગમ છે, પહેલા જે સ્થાનમાં તપ
સ્વિ જનો-તપસ્વી ઓ રહે છે. અને પછી જ્યાં હોકા આવી ને રહેવા લાગે છે તે સ્થા

त्वेनोक्तानि ! इति, अत्राह-क्रीडापरायणदेवैः क्षेत्रान्नगात् तेषां संहरणसंभवेन मृपममृप-
माकालेऽपि भरते वर्षे तत्सत्ता संभाव्यत एवेति नात्र मंगयाऽवकाश इति ॥सू० २७॥

के द्वारा जो आजीविका की जाती है वह भी असिकला या गस्त्रकला है लेखन कला का नाम मणि है, कृषि कला का नाम कृषि है, वणिग् कला का नाम वणिक् है खरीदने बेचने की कला का नाम पणित है, व्यापार कलाका नाम वाणिज्य है, घटित सुवर्ण का नाम सुवर्ण है, मात्र सोने का नाम हिरण्य है । चांदी का नाम भी हिरण्य है । वैदूर्य आदि का नाम मणि है, मुक्ता फल का नाम मौक्तिक है, दक्षिणावर्त्तादि वाला जो प्रशस्त गङ्ग है वही यहां गङ्ग शब्द से लिया गया है, स्फटिक आदि रूप जो ठोस पदार्थ है वह गिला शब्द से लिया गया है मृगे का नाम प्रवाल है ? पद्मरागादि रक्तरत्न से कहे गये है और रजत सुवर्ण आदिक द्रव्य स्वाप-
तेय शब्द से लिये गये हैं । यहां पर ऐसी शंका हो सकती है कि अघटित सुवर्ण की सत्ता सुवर्ण स्नानि में तथा रूप्य चांदी की सत्ता चांदी की खान में हो सकती है. परन्तु घटित सुवर्ण की ताम्र और त्रपु के संयोग से जनित कासेकी और तन्तु संयोग से जनित वज्र को उसकाल में ऐसे विज्ञान के अभाव से संभावना कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती है, यदि यहां ऐसा कहा जावे कि अतीत उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी वे वस्तुएँ इस समय के भरतक्षेत्र में निधानगत हुई प्राप्त हो सकती हैं, सो ऐसा भी नहीं है क्योंकि सादि सपर्यवसित प्रयोगबन्ध असंख्यत

ननु नामआश्रम छे जेडुतो वडे निर्मित धान्यनी रक्षा भाटे जे दुर्गभूमि स्थान छे अथवा पर्वतनी उपर जे अननिवास स्थान छे, तंतुं नाम सवाड छे ज्यो साधवाड वगेरे आवी ने रोकथ छे. अथवा निवास करे छे ते स्थानतु नाम सन्निवेश छे तक्षवारनी शक्तिना आधारे जे आलुविका भेगववामा आवे छे, ते कलानु नाम असि छे. आ उपलक्ष्य छे. ज्येनाथी भीना शस्त्रोनी ताकात थी जे आलुविका भेगववामा आवे छे ते पशु असिकला-
शस्त्रकला छे जेअन कलानुं नाम मणि छे. कृषिकलातु नाम कृषि छे वणिक् कलानु नाम वणिक् छे क्य विकथ करवांनी कलानुं नाम पणित छे व्यापार कलानुं नाम वाणिज्य छे घटित सुवर्णतुं नाम सुवर्ण छे, इकत सुवर्णतुं नाम हिरण्य छे. चांदीतु नाम पशु हिर ष्य छे वैदूर्य वगेरेतु नाम मणि छे मुक्ताक्षणातु नाम मौक्तिक छे दक्षिणावर्त्तादि आकार वाणा जे प्रशस्त श जो छे ते अही श भ शण्ड वडे अहंषु करवामा आंथ्या छे. स्फटिक वगेरे इथे जे नककर पदार्थी छे ते शिला शण्डोथी अहंषु करवामा आंथ्या छे. भूगानु नाम प्रवाल छे पद्मरागादिक रक्तरत्नोने रत्नोकेवामा आंथ्या छे तेमज रजत सुवर्ण वगरे द्रव्ये स्वापतेय शण्ड वडे अहंषु करवामा आंथ्या छे अही ज्येवी शंका थर्ष शके के अघटित सुवर्णनी सत्ता सुवर्णनी भाष्य मां तेमज इथ-चांदीनी सत्ता चांदीनी भाष्य मां ज डो थ छे पशु घटितसुवर्णनी ताम्र अने त्रपुना संयोगथी जनित कासेनी अने तंतु संयोग थी जनित वस्त्रनी ते काणमा आधुनिक युग जेवा वैज्ञानिक आविष्कारोना अभावे संभा वना केवी रीते थर्ष शके ? ज्येद्वे के थर्ष शके नहि जे अही आ प्रमाणे कहेवामा आवे के अतीत उत्सर्पिणी काण संभधी ते वस्तुज्यो आ समयना भरत क्षेत्रमा निधान गत थयेही प्राप्त थर्ष शके छे, तो आ वात पशु योग्य नथी केमके सादि सपर्यवसित प्रयोग

मूलम्—अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे रायाइ वा, जुवरा-
याइ वा, ईसरतलवर माडंबिय इब्भसेट्टि सेणावइ सत्थवाहाइ वा ?, गोयमा !
णो इणट्टे समट्टे, ववगय इट्टिसकारा णं ते मणुया पणत्ता समणाउसो !
अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे दासेइ वा, पेसेइ वा सिस्सेइ
वा, भयगेइ वा भाइलएइ वा, कम्मयरएइ वा ? णो इणट्टे समट्टे, ववगय
अभिओगा णं ते मणुया पणत्ता समणाउसो ! अत्थि णं भंते ! तीसे समाए
भरहे वासे ! मायाइ वा पियाइ वा भायाइ वा भगिणीइ वा भज्जाइ वा
पुत्तेइ वा धूयाइ वा सुण्होइ वा ? हंता ! अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणु-
याणं तिब्बे पेमबंधणे समुपज्जइ । अत्थि णं भंते ! भरहे वासे अरीइ वा
वेरिएइ वा धाइएइ वा वहएइ वा पडिणीएइ वा पच्चामित्तेइ वा ? गोयमा !
णो इणट्टे समट्टे, ववगयवेराणुसया णं ते मणुया पणत्ता समणाउसो !
त्थि, णं भंते ! भरहे वासे मित्ताइ वा वयंसाइ वा णायएइ वा संघा-
डिएइ वा सहाइ वा सुहीइ वा संगएत्ति वा ? हंता अत्थि. णोचेव णं तेसिं
मणुयाणं तिब्बे रागबंधणे समुपज्जइ ॥ सू० २८ ॥

छाया—अस्ति खलु भदन्त ! तस्यां समायां भरते वर्षे राजेति वा, युवराज इति
वा, ईश्वर तलवर माडम्बिककौटुम्बिकेभ्यश्चेष्टितेनापतिसार्थवाहा इति वा ? नो
अयमर्थः समर्थः, व्ययगत ऋद्धि सत्काराः खलु ते मनुजाः प्रवृत्ताः धमणायुष्मन् ! अस्ति
खलु भदन्त तस्यां समायां भरते वर्षे दास इति वा प्रेय्य इति वा शिष्य इति वा भृतक
इति वा भानक इति वा कर्मकरक इति वा । नो अयमर्थः समर्थः, व्ययगताभियोगाः

काल तक अवस्थित नहीं रह सकता है अतः उस सुषम सुषमा काल में भरतक्षेत्र में इनका जो
आपने सद्भाव कहा है सो कैसे रहा है? तो इसका उत्तर ऐसा है कि देव क्रीडा परायण
होते हैं अतः वे क्षेत्रान्तर से उन वस्तुओं को सहरण करके सुषम सुषमा काल में भी भरतक्षेत्र
में लाकर रख सकते हैं । इस तरह इनकी समावना यहाँ हो सकती है इस विषय में सशय
करने की कोई बात नहीं है ॥ २७ ॥

अन्ध आस आत्त क ण सुधी अवस्थित रहो शकें नहि, भाटे ते सुषम सुषमा कालमां भरत
क्षेत्रमा ओमनो ने आपत्तीओ सद्भाव कथो छे, ते कया आधारे कथो छे ? तो आनो न
वाओ आ प्रभावे छे के देवा कीडा परायणु होय छे ओथी तेओ क्षेत्रान्तरथी ओ वस्तुओउ
स डरणु करीने सुषम-सुषमा कालमा पणु भरत क्षेत्र मा लावी ते भूकी शकें छे, ओथी ओ
सर्वनी अही सभावना थई शकें छे- आ स अंध ना प्रशयना भाटे केई स्थान नथी ॥ २७

खलु ते मनुजाः प्रज्ञसाः श्रमणायुष्मन् । अस्ति खलु भदन्त । नस्यां समाया भरते वर्षे माते ति वा पितेति वा भ्रातेति वा भगिनीति वा भार्येति वा पुत्र इति वा दुहितेति वा स्तुपे ति वा ? हन्त । अस्ति , नो चैव खलु तेषा मनुजाना तीव्रं प्रेमानुबन्धनं समुत्पद्यते । अस्ति खलु भदन्त । भरते वर्षे अरिचित्तिवा वैरिक इतिवा घातक इतिवा घधक इति वा प्रत्यनीक इति वा प्रत्यमित्रमिति वा ? गौतम ! नो अयमर्थः समर्थः, व्यपगतवैरानु शयाः खलु ते मनुजाः प्रज्ञसाः श्रमणायुष्मन् । अस्ति खलु भदन्त भरते वर्षे मित्रमिति वा घयस्य इति वा ह्यायक इति वा संघाटिक इति वा सखेति वा सुहृदिति वा संगत इति वा हन्त अस्ति, नो चैव खलु तेषां मनुजानां तीव्र रागबन्धनं समुत्पद्यते ॥सू०२८॥

टीका— 'अत्थिणं' इत्यादि ।

गौतम स्वामी पृच्छति—'अत्थि णं भंते । तीसे समाए भरहे वासे रायाइ वा जुव- रायाइवा' हे भदन्त । अस्ति खलु तस्यां समायां भरते वर्षे राजा इति वा, युवराज इति वा, तत्र राजा—माण्डलिको नरपतिः, युवराजः—नृपत्वेनाभिषेक्ष्यमाणो राजपुत्रः । तथा- सन्ति, किं तस्यां समायां भरते वर्षे 'ईसर तलवर माडंबिय डवसेट्टि सेणावइ सत्थ- वाहाइवा ?' ईश्वरतलवरमाडंबिककौटुम्बिकेभ्यश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहा इति वा, तत्र ईश्वर. ऐश्वर्यशाली , तलवरः = सन्तुष्टभूपालप्रदत्तपट्टबन्धपरिभूषितराजकल्पः , माड- म्बिकः पञ्चशतग्रामाधिपतिः, 'माण्डविकः' इतिच्छाया पक्षे तु छिन्नभिन्नजनाश्रय विशेषो

"अत्थि णं भंते। तीसे समाए भरहे वासे" इत्यादि ।

'अत्थि णं भंते । तीसे समाए भरहे वासे रायाइ वा जुवरायाइ वा ईसरतलवर माडं- बियइम्म सेट्टिसेणावइसत्थवाहाइवा' गौतमस्वामी ने यहा ऐसा पूछा है—हे भदन्त । सुषम सुषमा आरक की मौजूदगी में भरतक्षेत्र में राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक कौटुम्बिक श्रेष्ठी, सेनापति एवं सार्थवाह ये सब होते हैं क्या ? माण्डलिक राजा का नाम नरपति है । आगे जिस राजपुत्र का नृप के रूप में अभिषेक होने वाला होता है उसका नाम युवराज है, ऐश्वर्य शाली व्यक्ति का नाम ईश्वर है सन्तुष्ट हुए भूपाल के द्वारा प्रदत्त पट्टबन्ध से जो परिभूषित होता है ऐसे राजकल्प व्यक्ति का नाम तलवर है. जो पांच सौ ग्राम का अधिपति होता है उसका नाम माडंबिक है "माण्डविक" इस छायापक्ष में जो छिन्न भिन्न जनाश्रय विशेष

'अत्थिणं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे रायाइ वा जुवरायाइ वा ईसरतलवर माडं बिय इम्म सेट्टि सेणावइसत्थवाहाइवा ? इत्यादि सूत्र २८।

टीकाथ—गौतम स्वामीने अही आगतने प्रश्न किये छे के छे लहन्त। सुषम सुषमा आरकना समयमा भरतक्षेत्रमा राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर माडंबिक कौटुम्बिक श्रेष्ठी, सेनापति तेभज सार्थवाहा छे सवे होय छे । मांडलिक नरेश तु नाम नरपति छे आश्रय ले राजपुत्रं नृपना रूपमा अभिषेक यनार छे, तेतु नाम युवराज छे. ऐश्वर्य शाली व्य- क्तिनु नाम ईश्वर छे सन्तुष्ट यथैव भूपाल वडे प्रदत्त पट्टबन्धनी ले परिभूषित होय छे तेवा राजकल्प व्यक्ति तु नाम तलवर छे पाचसो ग्रामना ले अधिपति होय छे. तेनु

मण्डवस्तत्राधिकृत इति, कौटुम्बिकः=कुटुम्बभरणे तत्परो बहुकुटुम्बप्रतिपालको वा, इभ्यः-इभो= हस्ती तत्प्रमाण द्रव्यमर्हतीति तथा, स जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदात् त्रिविधः तत्र हस्तिपरिमितमणिमुक्ताप्रवालसुवर्णरजतादि द्रव्यराशि स्वामी जघन्यः, हस्तिपरिमितवज्रहीरकमणिमाणिवयराशिस्वामिनो मध्यमाः, हस्तिपरिमितकेवलवज्रस्वामी उत्कृष्टः इति । श्रेष्ठी - लक्ष्मीकृपाकटाक्षप्रत्यक्षलक्ष्यमाणद्रविणलक्षलक्षणविलक्षणहिरण्यपट्टसमलङ्कृतमूर्धा नगरप्रधानव्यवहर्ता, सेनापतिः=चतुरङ्गसेनानायकः, सार्थवाहः=गणिमधरिभयेयपरिच्छेद्यरूपक्रयविक्रयवस्तुजातमादाय लाभेच्छया देशान्तराणि व्रजतां सार्थं वाहयति=योगक्षेमाभ्या परिपाल्यतीति, मूलधनं दत्त्वा तान् समर्द्धयतीति वा तथा, तत्र-गणिमम् =एक द्वि त्रि चतुरादि संख्याक्रमेण गणयित्वा यद् दीयते तत्, यथा-नालिकेर

में अधिकृत होता है उसका नाम माण्डविक है जो कुटुम्ब के भरण पोषण करने में तत्पर रहता है अथवा अनेक कुटुम्बों का जो प्रतिपालक होता है उसका नाम कौटुम्बिक है जिसके पास हाथ का वजन बराबर द्रव्य होता है वह इभ्य है यह इभ्य उत्तम, मध्यम, और जघन्य के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है इनमें जो हाथी के प्रमाण परिमित हुए मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण एवं रजत आदि द्रव्यों का स्वामी होता है वह जघन्य स्वामी है, हाथी परिमित वज्र का ही जो स्वामी होता है वह उत्कृष्ट इभ्य है जो लक्ष्मी की कृपा के कृपाकटाक्ष से युक्त है एवं जिसका मस्तक लक्ष्मी की कृपा के द्योतक हिरण्यपट्ट से अलङ्कृत रहता है ऐसा नगर का जो प्रधान व्यवहर्ता पुरुष होता है उसका नाम श्रेष्ठी है चतुरङ्ग सेना का जो नायक होता है उसका नाम सेनापति है, गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्यरूपा क्रय विक्रय के योग्य वस्तुओं को लेकर लाभ की इच्छा से देशान्तर में जाते हुए पुरुष के सार्थ-सध को जो योग क्षेम द्वारा पालता है उसका नाम सार्थवाह है अथवा मूलधन देकर जो उन्हें अपनी ऋद्धि के बराबर ऋद्धिवाला बनाता है वह सार्थवाह है

नाम मांडविक छे "माण्डविक" आ छाया पक्षमा ने छिन्न बिन्न जनाश्रय विशेषमा अधि-कृत होय छे तेनु नाम मांडविक छे जे कुटुम्बना लक्षण पोषण करनामा तत्पर होय छे. अथवा तेमना कुटुम्बना प्रतिपालक होय छे, तेनु नाम कौटुमिक कहवाय छे. जेनी पासे हाथीना वजन जेटलु द्रव्य होय छे ते धव्य छे जे धव्यो उत्तम, मध्यम अने जघन्य आम त्रय प्रकारना कहवाया आया छे जेमा जे हस्ति प्रमाण-परिमित मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण तेमज रजत वगेरे द्रव्योना स्वामी होय छे, ते ने जघन्य धव्य कहवाया आवेछे हस्तिपरिमित वज्र ना जे स्वामी होय छे ते उत्कृष्ट धव्य छे, जे लक्ष्मीना कृपा कटाक्षी जे युक्त छे तेमज जेनु मस्तक लक्ष्मीनी कृपायी द्योतक हिरण्यपट्टी अलङ्कृत रहै छे, जेवा नगनो जे प्रधानव्यवहर्ता पुरुष होय छे तेनु नाम श्रेष्ठी छे चतुर ग सेनानो जे नायक होय छे, तेनु नाम सेनापति छे, गणिम, धरिम, मेय अने परिच्छेद्य रूप क्रय-विक्रय योग्य वस्तुओने लभने लाभनी ध्वंछायी देशान्तरमा जाता पुरुषो साथे सधने जे योगक्षेम वडे रक्षण आपे छे तेनु नाम सार्थवाह छे, अथवा मूलधन नापी ने जे तेओने पैतानी ऋद्धि जेटली ऋद्धिवाणा बनावे छे, ते सार्थवाह छे जे वस्तु

पूगोफळकदलीफलाटिकमिति, धरिमं=नुत्रा सूत्रेणोत्तोल्य यद् दीयते तत् यथा-ब्रीहि यव-लवणसितादि, मेयं = शरावलघुमाण्डादिनोत्तोल्य यद् दीयते तत् यथा-दुग्ध घृत तैलप्रभृति, परिच्छेद्य च प्रत्यक्षतो निरुपादिपरीक्षया यद् दीयते तत्, यथा मणि मुक्ता-प्रवालाऽऽभ्रणादि । इश्वरादि सार्थवादान्तपदानाम् इतरेतरयोग द्वन्द्व इति । भगवानाह- 'गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे' गौतम ! नो अयमर्थः समर्थः, 'समणाउसो !' हे आयुष्मन् ! श्रमण ! यतः 'तेणं प्रणुया ववगयइइदिसक्कारा' ने खलु मनुजा व्यपगतद्धिं सत्काराः व्यपगतौ=दूरीभूतौ ऋद्धिसक्कारौ=विभवैश्वर्यसत्कारः सेव्यतालक्षणश्च येभ्यस्ते तथा, 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः कथिता इति । पुनर्गीतमस्वामी पृच्छति - 'अत्थि ण भते ! तीसे समाए भरहे वासे दासेइ वा' हे भदन्त ! अस्ति खलु तस्यां समाया भरते वर्षे दास इति वा दासः प्रसिद्धः 'पेसेइ वा' प्रेष्य इति वा 'प्रेष्यः प्रपणाहो दूतादिः, 'सिसेइवा' शिष्य इति वा ? शिष्यः प्रसिद्धः 'भयगेइ वा' भृतक इति वा, भृतकः वेतनेन नियतकालं यावत् कर्मसम्पादकः 'भाइल्लएइ वा' भाजक इति वा ' भाजको धनांशगृहीता

जो वस्तु एक, दो, तीन आदि सख्या से गिनकर दो जाती है जैसे नारियल आदि ऐसी ये वस्तुएँ गणिम में ली गई है, जो वस्तु तराजु से तालकर दी जाती है जैसे ब्रीहि, जौ, गेहु आदि ऐसी ये वस्तुएँ धरिम में ली गई है, जो वस्तु प्रमाणित वर्तन आदि से नापकर दो जाती है जैसे दूध, घृत, तैल आदि ऐसी ये वस्तुएँ मेय में ली गई है तथा जो चीज कसौटी आदि पर कसकर परीक्षा करके दी जाती है जैसे मणि, मुक्ता, प्रवाल सुवर्ण आदि ये सब वस्तुएँ परिच्छेद्य में ली गई है इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं "गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे" हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि 'ववगयइद्वि सक्काराणं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो ' हे ' श्रमण आयुष्मन् ! वे मनुष्य विभव ऐश्वर्यरूप ऋद्धि और सेव्यतारूप सत्कार इनसे रहित होते हैं । 'अत्थि ण भते । तीसे समाए भरहे वासे दासेइ वा, पेसेइ वा, सिसेइ वा, भयगेइ वा, भाइल्लएइ वा कम्मयरएइ वा" हैं भदन्त । उस सुषम सुषमा काल के सद्भाव में इस भरत क्षेत्र में क्या कोई दास होता है ? क्या

ओक, छे, त्रलु वगेरे सु णया वडे गळ्णिने आपवाभा आवे छे, जेभ के नारियेल वगेरे-जेवी ते वस्तुओने गळ्णिम तरीके गळ्णवाभा आवी छे जे वस्तु त्राजवाथी तोलीने आपवाभा आवे छे जेभके ब्रीहि, जव' धळि वगेरे-जेवी जे वस्तुओने धरिम कडेवाभा आवे छे. जे वस्तुओ प्रमाणित पात्र वगेरेथी मापीने आपवाभा आवे छे, जेभके दूध, धी, तेल वगेरे जेवी जे वस्तुओने मेय कडेवाभा आवे छे, तेभज जे वस्तुओ नी कसौटी वगेरे उपर कसौने परीक्षा करीने आपवाभा आवे छे, जेभके मणि, मुक्ता, प्रवाल, सुवर्ण वगेरे-जे सर्व वस्तुओ परिच्छेद्य कडेवाय छे जेना जवाभभा प्रलु कडे छे "गोयमा णो इणट्ठे समट्ठे" हे गौतम ! आ अर्थ समर्थ नहीं जेभके "ववगय इइदिसक्कारा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो "हे श्रमण आयुष्मन् ते मनुष्यो विभव, ऐश्वर्य रूप ऋद्धि अने सेव्यता रूप सत्कारथी रहित होय छे "अत्थि ण भते । तीसे समाए भरहे वासे दासेइ पेसेइ वा सिसेइ वा भयगेइ वा भाइल्लएइ वा, कम्मयरएइ वा" हे भदन्त । ते सुषम सुषमाकाले ना सहभाव भां आ भरत क्षेत्र मा शु कौण दास होय छे ? प्रेष्य-प्रेषणाहं-इत वगेरे होय छे ? शिष्य

દાયાદ્ इति यावत्, 'कम्मयरएडवा' कर्मकरकड ति वा ? कर्मकरकः=गृहसम्बन्धिसामान्य
कार्यसम्पादक इति । गौतमस्वामिनः प्रश्न श्रुत्वा भगवानाह — 'समणाउसो ! णो इण
दूठे समदूठे' हे आयुष्मन् श्रमण ! नो अयमर्थः समर्थः, यतः 'ते मणुया ववगय अभि-
जोगा' ते मनुजा व्यपगताभियोगाः व्यपगतः= दूरीभूतः अभियोगः=कार्यं कर्तुं परप्रे-
रणा येभ्यस्ते तथा भूताः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः । तस्मिन् काले स्वस्वामिभावदि संबन्धाभा-
वान्न कस्यापि कंचित् प्रति प्रेरकत्वमस्तीति बोध्यमिति । गौतमस्वामी पुनः पृच्छति—
'अत्थि णं मंते ! तीसे समाए भरहे वासे मायाइवा पियाइवा भायाइ वा भगिणीइवा
भज्जाइवा पुत्तेइवा धूयाइवा सुण्हाइवा' हे भदन्त ! तस्या खलु समाया भरते वर्षे अस्ति
किं माता इति वा ! पिता इति वा ! भ्राता इति वा भगिनी इति वा पुत्रः इति वा दुहिता
इति वा स्नुषा पुत्रवधूः इति वा भगवानाह— 'हंता ! अत्थि' हन्त गौतम ! अस्ति किन्तु

कोई प्रेष्य-प्रेषणार्ह दूत आदि होता है ? क्या कोई शिष्य होता है ? मृत-वेतन लेकर नियत
काल तक काम करने वाला होता है ? क्या कोई दायद धन का हिस्सेदार होता है ? क्या कोई
गृहसंबंधी सामान्यकार्य करने वाला होता है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—'णो इणदूठे समदूठे'
हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि "ववगय अभियोगा ण ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो"
हे श्रवण आयुष्मन् ? वे मनुष्य कार्य करने के लिये जिनसे परप्रेरणारूप अभियोग दूर हो गया है
ऐसे होते हैं । अर्थात् उस काल में स्वस्वामिभाव-आदि रूप सबध का अभाव रहता है इस
लिये कोई किसी के प्रति प्रेरक नहीं होता है " अत्थि ण मंते ! तीसे समाए भरहे वासे मायाइ
वा पियाइ वा भायाइ वा, भगिणीइ वा, भज्जाइ वा, पुत्तेइ वा, धूयाइ वा, सुण्हाइ वा" हे
भदन्त ? उस वर्तमान सुषम सुषमा काल में भरतक्षेत्र में माता होती है क्या ? पिता होता है
क्या ? भ्राता होता है क्या ? बहिन होती है क्या ? पुत्र होता है क्या ? दुहिता-पुत्री होती है
क्या ? पुत्र वधू होती है क्या ? अर्थात् उस काल में क्या भरतक्षेत्र में पिता पुत्र, पति पत्नी आदि
संबंध होते हैं क्या ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—'हंता, अत्थि णो चेव ण तेसिं मणुयाण

હોય છે ? ભૂતક- વેતન લઈને નિયતકાલ સુધી કામ કરનાર હોય છે ? શું કોઈ દામાદ ધન
ના હિસ્સેદાર-હોય છે ? શું કોઈ ગૃહ સંબંધી સામાન્ય કાર્ય કરનાર હોય છે ? એના
જવાબમાં પ્રભુ કહે છે— "ણો ઇણદૂઠે સમદૂઠે" હે ગૌતમ ! આ અર્થ સમર્થ નથી કેમકે
"વવગય અભિયોગા ણ તે મણુયા પણ્ણત્તા સમણાઉસો !" હે શ્રવણ આયુષ્મન્ ! તે મનુ
ષ્યો કાર્ય કરવા માટે એમની ઉપરથી પરપ્રેરણા રૂપ અભિયોગ દૂર થઈ ગયો છે, એવા
હોય છે. એટલે કે તે કાળમાં-સ્વસ્વામિભાવ વગરે રૂપ સંબંધના અભાવ રહે છે એથી
કોઈ કોઈને પ્રેરક રૂપ થતુ નથી "અત્થિણં મંતે તીસે સમાપ્પ ભરહે વાસે માયાઈ વા પિ-

વા
આઈ વા ભગિણીઈ વા ભજ્જાઈ વા, પુત્તેઈ વા ધૂયાઈ વા સુણ્હાઈ વા" હે ભદન્ત !
તે સુષમ સુષમા કાળમાં ભરત ક્ષેત્રમાં માતા હોય છે ? પિતા હોય છે ? ભાઈ હોય છે ?
બહેન હોય છે, પુત્ર હોય છે દુહિતા-પુત્રી-હોય છે ? પુત્ર વધૂ હોય છે ? એટલે કે તે કાળમાં
ભરત ક્ષેત્રમાં પિતા, પુત્ર પતિ, પત્ની વગેરે સંબંધો હોય છે ? એના જવાબમાં પ્રભુ કહે

मात्रादिकेषु प्रत्येकं च पुनः एतेषां परस्पर 'तिन्वे' तीव्रं सातिशय, - 'पेमबन्धणे' प्रेमबन्धन स्नेहबन्धन णो' नैव 'समुपज्जइ' समुत्पद्यते न सजायते पुन गौतम स्वामी पृच्छति- 'अत्थि णं भंते भरहे वासे अरोड वा' हे भदन्त अस्ति खलु तस्या समाया भगते वपे अरि- रिति वा अरिः सामान्य शत्रुः, 'वेरिएइवा' वैरिः मूपकमार्जार वज्जातितः शत्रु, 'घाडएइवा' घातक इति वा घातकः अन्यद्वारा घातकर्ता, 'वहएइवा' वयकः स्वयं हननकर्ता व्यथक इतिच्छाया पक्षे चपेटादिना व्यथोत्पादकः इति, 'पडिणीयएइवा' प्रत्यनीक इ- ति वा प्रत्यनीकः कार्यविधातकर्ता, 'पच्चामित्तेइवा' प्रत्यमित्रमिति वा प्रत्यमित्रम् यः पू र्व मित्रत्वमुपगतः पश्चादमित्रत्वमुपगच्छतीति सः, यद्वा-अमित्र सहायक इति ? भगवाना- ह- 'गोयमा णो इणट्ठे समट्ठे' हे गौतम नो अपमर्थः समर्थः यतो 'समणाउमो' हे मा- युष्मन् भ्रमण 'ते णं मणुया ववगयवेराणुसथा' ते खलु मनुजाः व्यपगत वैरानुशयाः- व्यपगतो वैरानुशयः द्वेषानुबन्धो येभ्यस्ते तथाभूताः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता इति । तस्मिन्

तिन्वे पेमबन्धणे समुपज्जइ" हा गौतम । यह सब वहा पर होता है परन्तु उन मनुष्य का उनमें तीव्र प्रेम बन्धन उत्पन्न नहीं होता है । "अत्थि ण भंते । भरहे वासे अरोड वा वेरिएइ वा घा- इएइ वा, वहएइ वा, पडिणीयएइ वा, पच्चामित्तेइ वा" अब गौतम प्रभु से ऐसा पूछने है- हे भ- दन्त ! उस काल में भरतक्षेत्र में क्या कोई किसी का शत्रु होता है ? मूपक-मार्जार की तरह क्या जाति से कोई किसी का वैरी होता है ? क्या कोई किसी का घातकर्ता-अन्य द्वारा वध करने वाला होता है ? क्या कोई स्वयं किसी को हत्या करने वाला होता है ? अथवा जब "वहएइ" को संस्कृत छाया व्यथक ऐसी होगी-तब चपेटा आदि द्वारा क्या कोई किसी को व्यथा उत्पन्न करने वाला होता है ? ऐसा इसका अर्थ होगा क्या कोई किसी के कार्य का विधात करने के स्वभाव वाला होता है ? क्या कोई किसी का प्रत्यमित्र होता है ! अर्थात् पहिले मित्र बनाकर बाद में क्या कोई किसी का शत्रु होता है, इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं "गोयमा। णो इणट्ठे समट्ठे" हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि "ववगयवेराणुसथा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउमो"

छे:- "इत्ता अत्थि णोत्वेव णं तेस्सि मणुयाणं तिन्वे पेमबन्धणे समुपज्जइ" हा, गौतम । आ सब अर्थों धी ते काणमां डोय छे पणु ते भाणुसेने तेस अर्थोंमां तीव्र प्रेम भाव डोते। नथी अत्थि णं भंते । भरहे वासे अरिइ वा वेरिएइवा घाडएइ वा वहएइ पडिणीयएइ वा, पच्चामित्तेइ वा" इवे गौतम प्रभुने आ जातने। प्रश्न करे छे के डे अदन्त । ते काणमा, भरत क्षेत्रमा शु डो। केधं ने। शत्रु डोय छे ? मूपक-मार्जार नी जेम शु डो। पणु जा- तनुं जातीय वेर डोय छे ? केधं घातकर्ता णीण वडे वधकरवानार-डोय छे ? शुं येते केधं नी हत्या करनार डोय छे ? अथवा ज्यारे 'वहएइवा' शब्दनी संस्कृत छाया व्यथक ज्येवी थशे-त्यारे थपड वगेरे वडे शुं केधं केधं ने व्यथा आपनार डोय छे ? ज्येवे। ज्येने। अर्थ थशे केधं केधं ना कार्यमां विधकरवाना स्वभाववाणु डोय छे ? शुं केधं केधंने। प्रत्यमित्र डोय छे ? ज्येठवे के पडेवां केधं केधं ने। मित्र जनीने पछी तेने। शत्रु थध जय छे तेवा ज्येना जवाभमा प्रभु कडे छे 'णो इणट्ठे समट्ठे' डे गौतम । आ अर्थ समर्थ

काले वैरानुबन्ध कारणभावाद्दरिप्रभृतयो नागन्ति भावः । पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति-‘अत्थि णं भते ! भरहे वासे मित्ताइवा’ हे भदन्त ! अस्ति खलु तस्या समाथा भरते वपे मित्र मिति वा, मित्र स्नेही ‘वयंसाइवा’ वयस्य इति वा । वयस्यः समानवयस्कोऽतिशयस्नेहवान्, ‘णायएइ वा’ ज्ञातक इति वा ! ज्ञातकः स्वजातीयः, यद्वा-एकत्र संवासादिना परिचितः ‘संघाडिइवा’ सघाटिक इति वा !, सघाटिकः सहचरः, ‘सहाइ वा’ सखा स मप्राणः ‘समप्राण. सखामतः’ इत्यभिधानात् महासनपानशीलः सातिशयस्नेहीत्यर्थः, ‘सुहीइ वा’ सुहृदिति वा ! सुहृत सकल कालमप्रतिकूलो हितोपदेशदायकश्चेति, ‘सग एत्ति वा’ साङ्गतिक इति वा ? साङ्गतिकः समानकार्यशीलत्वेनैकत्रसगमनशील इति । भगवानाह-‘हता अत्थि !’ हत ! गौतम ! अस्ति मित्रादिषु प्रत्येकम्, च पुनः ‘णो’ नैव ‘तेमि’ तेषा परस्पर ‘तिव्वे’ तीव्रं सातिशय ‘रागवन्धणे’ रागवन्धनं प्रेमवन्धः ‘समु पज्जइ’ समुत्पद्यते ॥सू० २८॥

हे श्रमण आयुष्मन् ! वे मनुष्य वैरानुबन्ध से दूर रहे हुए होते है । इसका कारण यह है कि उमकाल में वैरानुबन्ध के कारणों का अभाव रहता है अन वहा अरि आदि कोई किसी का नहीं होता है । ‘अत्थि ण भते ! भरहे वासे मित्ताइ वा, वयमाइ वा णायएइ वा संघाडिइइ वा सहाइ वा, सुहीइ वा संगएत्ति वा’ हे भदन्त ! उम काल में इस भरतक्षेत्र में क्या कोई स्नेही होता है ? क्या कोई वयस्य-समान वयवाले के साथ स्नेह रखने वाला साथी होता है ? क्या कोई स्वजातीय होता है ? अथवा एक जगह रहने आदि से क्या कोई परिचित-परिचयवाला बन्धु होता है ? क्या कोई सघाटिक सहचर-साथ साथ रहनेवाला होता है ? क्या कोई सखा ‘समप्राण सखा मत’ के अनुसार समान प्राणों वाला होता है साथ उठने बैठने वाला साथ खानेपीने वाला जो सातिशय स्नेहा होता है उसे सखा कहा गया है, क्या कोई सुहृद्, सर्वदा अप्रतिकूलचरण वाला और हितोपदेश देनेवाला होता है ? क्या कोई साङ्गतिक होता है ? सदा किसी एक ही कार्य में लगा रहने वाला होता है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते है ‘हता,

नथी डेअडे ‘वडगव वैराणुसया ण ते मणुया पण्णत्ता समणाउत्तो, डे श्रमणु आयुष्मन !-ते मनुष्यो वैरानुबन्धतो परं डोयं छे ओनु कारणु आ छे डे ते काणमां वैरानुबन्धना कारणोना अभाव रडे छे ओथी त्या डेअडे तु अरी वगरे थनु’ न नथी ‘अत्थि णं भते ! भरहे वासे । मित्ताइवा वयसाइ वा णायएइ वा संघाडिइइ वा सहाइ वा, सुहाइ वा संगएत्ति वा’ डे भदन्त ! ते काणमा आ भगव क्षेत्रमा शु डेअडे स्नेही डोय छे ? शु डेअडे वयस्य समान वयवालाओनी साथे स्नेह रखनार साथी-डोय छे ? शु डेअडे स्वजातीय डोय छे ? अथवा शु डेअडे सघाटिक-सहचर-साथे रडेनार डोय छे ? अथवा शु डेअडे सखा ‘सम प्राण सखामतः’ ओ कथन सुख समान प्राणवाणो डोय छे ? साथे रडेनार, साथे खानार पीनार ने सातिशय स्नेही डोय छे, तेने सखा कडेवामा आवे छे, शु डेअडे सुहृद् सर्वदा अप्रतिकूलचरणवाणो अने हितोपदेश आपनार डोय छे ? शु डेअडे साङ्गतिक डोय छे ? शु सर्वदा ओकज कार्यमा प्रवृत्त रडेनार डोय छे ? ओना जवाणमां प्रमु, कडे छे ‘हता !

मूलम्—अत्थि णं भंते तीसे ममाए भरहे वासे आवाहाइ वा वीवाहाइ वा जण्णाइ वा सच्चाइ वा थालीपागाइ वा मियपिंडनिवेयणाइ वा? णां इणट्टे समट्टे, ववगय आवाह वीवाह जण्ण सच्च थालीपागमियपिंडनिवेयणा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउमो ! अत्थि णं भंते तीसे ममाए भरहे वासे इंदमहाइ वा खंदमहाइ वा णागमहाइ वा जक्खमहाइ वा भूयमहोइ वा अंगडमहाइ वा तडागमहाइ वा दहमहाइ वा णदीमहाइ वा रुक्खमहाइ वा पव्वयमहाइ वा थूममहाइ वा चेइयमहाइ वा ? णो इणट्टे समट्टे, ववगय-महिमा णं ते मणुयां पण्णत्ता समणाउसो ! अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे णट्टपेच्छाइ वा जल्लपेच्छाइ वा मल्लपेच्छाइ वा मुट्ठियपेच्छाइ वा वेलंबगपेच्छाइ वा कहगपेच्छाइ वा पवंगपेच्छाइ वा लासगपेच्छाइ वा ? णो इणट्टे समट्टे, ववगयकोउहल्लो णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो ! ॥सू० २९॥

छाया—अस्ति खलु भदन्त तस्यां समाया भरते वर्षे आवाह इति वा विवाह इति वा यक्ष इति वा आद्धमिति वा स्थालीपाक इति वा मृतपिण्डनिवेदनम् इति वा नो अयमर्थः समर्थः, व्यपगतऽवाहविवाहयक्षआद्धस्थालीपाकमृतपिण्डनिवेदनाः खलु ते मनुजा प्रज्ञताः अमणायुष्मन् अस्ति खलु भदन्त तस्या समायां भरते वर्षे इन्द्रमह इति वा स्कन्द मह इति वा नागमह इति वा यक्षमह इति वा भूतमह इति वा भवटमह इति वा तडागमह इति वा इंदमह इति वा नदीमह इति वा वृक्षमह इति वा पर्वतमह इति वा स्तूपमह इति वा चैत्यमह इति वा नो अयमर्थः समर्थः, व्यपगतमहिमाः खलु ते मनुजा प्रज्ञता अमणायुष्मन् अस्ति खलु भदन्त तस्यां समायां भरते वर्षे नटप्रेक्षेति वा नाटयप्रेक्षेति वा बल्लप्रेक्षेति वा मल्लप्रेक्षेति वा मौष्टिकप्रेक्षेति वा विडम्बकप्रेक्षेति वा कथक प्रेक्षेति वा प्लवकप्रेक्षेति वा लासकप्रेक्षेति वा नो अयमर्थः समर्थः व्यपगतकोउहल्ला. खलु ते मनुजाः प्रज्ञता अमणायुष्मन् ॥सू० २७॥

॥ टीका—अत्थि णं भंते ? इत्यादि ।

गौतम स्वामी पृच्छति—‘अत्थि णं भंते ! तोसे समाए भरहे वासे आवाहाइ वा’ हे भ-
अत्थि’ हा गौतम । ये सब वहा होते तो है परन्तु ‘णो चैव ण तेसि मणुयाणं तिब्बे रागबधणे समुप्पज्जइ’ आपस में कोई किसी के साथ सातिश तोत्र प्रेमबन्धन से बंधा हुआ नहीं होता है ॥२८

अत्थि’ हा, गौतम । आ अथु त्या होय छे पथु ‘णो चैव ण तेसि मणुयाणं तिब्बे राग-
बन्धणे समुप्पज्जइ परस्पर कोछ कोछनी साथे सतिशय-तीन-प्रेममन्धन भा आमद्ध रडेत्तु
नथी, ॥२८॥ ।

दन्त अस्ति खलु तस्यां समायां भरते वर्षे आवाह इति वा ? आवाहः विवाहात् पूर्व क्रिय-
माणो वाग्दानरूप 'उत्सवनिशेषः, वीवाहाइ वा' विवाह इति वा ? विवाहः-प्रसिद्धः, 'जण्णाइ
वा' यज्ञ इति वा ! यज्ञःवक्त्रौ घृतादिहवनलक्षणः, 'सद्धाइ वा' श्राद्धमिति वा ? श्राद्धं मृतक
क्रिया । 'थालीपागाइ वा' स्थालीपाक इति वा ? स्थालीपाकः-लोकगम्यो मृतकक्रियावि-
शेष एव, 'मियपिण्डनिवेयणाइ वा' मृतपिण्डनिवेदनमिति वा ?, मृतपिण्डनिवेदनम् मृतमु-
द्दिश्य पिण्डप्रदानम् ? भगवानाह—'णो इणट्टे समट्टे' नो अयमर्थः समर्थः यतो 'समणा
उसो, हे आयुप्पन् श्रमण' 'तेण मणुया' ते मनुजाः खलु 'ववगय आवाहवीवाह जण्ण
सद्ध थालीपागमियपिण्डनिवेयणा' व्यपगताऽऽवाहविवाहयज्ञश्राद्धस्थालीपाकमृतपिण्डनि
वेदनः-व्यपगतानि आवाहविवाह यज्ञश्राद्ध स्थालीपाकमृतपिण्डनिवेदनानि येभ्यस्ते तथा
भूताः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः । न तत्रावाहविवाहादिकं वर्त्तते इति भावः । पुनर्गौतमस्वामी पृ-
च्छति—'अत्थिण भते ! तीसे समाए भरहे वासे इंदमहाइ वा' हे भदन्त अस्ति खलु तस्यां
समायां भरते वर्षे इन्द्रमह इति वा' इन्द्रमहः इन्द्रनिमित्तक उत्सवः, 'खंदमहाइ' वा स्क-

“अत्थि ण भते ! तीसे समाए भरहे वासे आवाहाइ वा वीवाहाइ” इत्यादि

टीकार्थ—गौतम स्वामी ने पुन प्रभु से ऐसा पूछा है हे भदन्त! उस सुषम सुषमा काल के समव
इस भरत क्षेत्र में आवाह विवाह होने के पहिले होनेवाला वादान रूप उत्सव विशेष होता है
क्या ? विवाह परिणयन रूप उत्सव विशेष होता है क्या ? यज्ञ अग्नि में घृतादि के हवन करने
रूप उत्सव विशेष होता है क्या ? श्राद्ध मरण के बाद पक्तिभोजन आदि रूप क्रिया होती है क्या ?
स्थालीपाक लोक गम्य मृतक क्रिया विशेष होता है क्या ? मृतपिण्डनिवेदन मृतक को लक्ष्य करके
पिण्डदान करना होता है क्या ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं कि “णो इणट्टे समट्टे” हे गौतम
यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि “ववगया आवाह विवाह जण्ण सद्ध थाली पाग मिय पिण्ड निवेयणा
ण ते मणुया पण्णत्ता” वे उस काल के मनुष्य आवाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध, स्थालीपाक और मृत
पिण्ड निवेदन इन सब से रहित होते हैं अर्थात् उस काल में आवाह आदि क्रियाएँ नहीं होती
हैं । “अत्थि ण भते ! तीसे समाए, भरहे वासे इंदमहाइ वा खंदमहाइ वा गागमहाइ वा जक्ख

अत्थि ण भंते तीसे समाए भरहे वासे आवाहाइ वा वीवाहाइ वा—इत्यादि

टीकार्थ—गौतम स्वामीने प्रभुने इरीथी आभ प्रभन कथीं के हे लहन्ताते सुषम सुषमा काणना
सुभय मा आ भरत क्षेत्रमा आवाह-विवाह पडेलाने वाग्दान रूप उत्सव विशेष होय छे ?
विवाह परिणयन रूप उत्सव विशेष होय छे ? यज्ञ-अग्निमा घृतादिकथी हवन कस्वा रूप उत्सव
विशेष होय छे ? श्राद्ध-मृत्यु पछी प कितलोभजन आदि रूप क्रिया-होय छे ? स्थालीपाक-दो।क-
गम्य मृतक क्रिया विशेष होय छे ? मृतपिण्डनिवेदन-मृतकने अनुलक्षीने पिण्डदान नामक
कस्वामा आवेल क्रिया विशेष होय छे ? अनेना जवाममा प्रभु कहे छे “णो इणट्टे इहे” हे
गौतम । आ अर्थ समर्थ नथी केभके “ववगय आवाह विवाह जलसा सद्धथालीपाग मिय
पिण्ड निवेयणा ण ते मणुया पण्णत्ता” ते काणना मनुष्ये आवाह, विवाह, यज्ञ, श्राद्ध
स्थालीपाक अने मृतपिण्ड निवेदन के सर्व क्रियाओथी रहित होय छे ओटठे के ते काणमां
आवाह वगरे सर्व क्रियाओ थती नथी ? “अत्थि ण भंते तीसे तप भरहे वासे इह

न्दमह इति वा स्कन्दमहः कार्तिकेयनिमित्तक उत्सवः 'णागमहाइ' वा नागमह इति वा? नागमह नागो भवनपतिविशेषः तन्निमित्तक उत्सवः 'जक्खमहाइ' वा यक्षमह इति वा? यक्षमहः यक्षनिमित्तक उत्सवः 'भूममहाइ वा' भूतमह इति वा भूतमह भूतनिमित्तक उत्सवः यक्षभूतो व्यन्तरदेवविशेषौ 'अगडमहाइवा' अघटमह इति वा 'अघटमहः कूपोत्सव 'तडागमहाइवा' तडागमह इति वा तडागमहः सरोनिमित्तक उत्सवः 'दहमहाइवा' हृदमह इति वा हृदमहः हृदनिमित्तक उत्सवः 'णदीमहाइ वा' नदीमहइति वा नदीमहः नदीमुद्दिश्य क्रियमाण उत्सवः, 'रुक्खमहाइ वा' वृक्षमह इति वा वृक्षमहः वृक्षमुद्दिश्य क्रियमाण उत्सवः 'पव्वयमहाइ वा' पर्वतमह इति वा पर्वतमहः पर्वतोद्देशेन क्रियमाण उत्सवः 'थूममहाइ वा' स्तूपमह इति वा स्तूपः स्मृतिस्तम्भः तन्निमित्तक उत्सवः 'चेइयमहाइ वा' चैत्यमह इति वा चैत्यनिमित्तक उत्सवश्चैत्यमह इत्युच्यते चैत्यः मृतक स्मृति चिह्न चैत्यमिति । इत्थं गौतमेन पृष्ठो भगवानाह—'णो इणट्ठे समट्ठे' नो अयमर्थः समर्थः यतो 'समणा उसो' हे आयुष्मन् श्रमण 'ते णं मणुया ववगयमहिमा' ते खलु मनुजाः व्यपगतमहिमानः व्यपगतो म

महाइ वा भूममहाइ वा, अगडमहाइ वा, तडागमहाइ वा दहमहाइ वा णईमहाई वा, रुक्खमहाइ वा, पव्वयमहाइ वा थूममहाइ वा चेइयमहाइ वा ' हे भदन्त ! क्या उस सुषम सुषमा काल के समय इस भरत क्षेत्र में इन्द्र को निमित्त करके महोत्सव किये जाते हैं ? कार्तिकेय को लक्ष्य करके महोत्सव किये जाते हैं ? नागकुमार को लक्ष्य करके महोत्सव किये जाते हैं ? यक्ष के निमित्त करके महोत्सव किये जाते हैं ? भूत को निमित्त करके उत्सव किये जाते हैं ? यक्ष और भूत ये व्यन्तर जातिके देव हैं । कुषों कूपो को निमित्त करके उत्सव किये जाते हैं तडाग को निमित्त करके उत्सव किये जाते हैं ? इसी प्रकार से द्रह को नदी को वृक्ष को पर्वत को स्तूप को स्मृतिस्तम्भ को एवं चैत्य को मृतक स्मृति चिह्न को लक्ष्य करके उत्सव किये जाते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु कहते हैं "णो इणट्ठे समट्ठे" हे गौतम यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि "ववगय महिमा णं ते मणुया पणत्ता समणाउसो" हे श्रवण आयुष्मन् वे उस काल के मनुष्य जिसको हर

महाइ वा खईमहाइ वा णागमहाइ वा जक्खमहाइ वा भूममहाइ वा, अगडमहाइ वा तडागमहाइ वा, दहमहाइ वा णदीमहाइ वा रुक्ख महाइ वा पव्वयमहाइ वा थूम महाइवा चेइयमहाइ वा ? हे भदन्त ! शु ते सुषमसुषमा कालना समयमा आ भरतक्षेत्रमा इन्द्रना निमित्त उत्सवो योज्जवामा आवे छे ? कार्तिकेयने अनुलक्षी ने महोत्सवो योज्जवामा आवे छे ? नाग कुमारने अनुलक्षीने महोत्सवो योज्जवामा आवे छे ? यक्षना निमित्त महोत्सवो योज्जवामा आवे छे ? भूताना निमित्त उत्सवो योज्जवामा आवे छे । भूत जे वानर जतिना देवा छे, कूपाना निमित्त उत्सवो योज्जवामा आवे छे ? तडाग-तणावो-ना निमित्त उत्सवो योज्जवामा आवे छे ? आ प्रभाण्णे द्रहने, नदीने, वृक्षने, पर्वतने, स्तूपकेने, स्मृतिस्तम्भाने तेमथ चैत्यने मृतकस्मृतिचिह्नेने अनुलक्षीने उत्सवो योज्जवामा आवे छे ? आ प्रश्नना उत्तरमा प्रभु कहे छे 'णो इणट्ठे समट्ठे' हे गौतम आ अर्थ समर्थ नहीं, केभडे 'ववगय महिमाण ते मणुया पणत्ता स उसो' हे श्रमण आयुष्मन् ! ते कालमा मनुष्यो जेवा

हिमा माहात्म्यं येभ्यस्ते तथाभूतः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः । पुनर्गतमस्वामी पृच्छति 'अत्थिणं भंते तीसे समाए भरहे वामे णडपेच्छाड वा' हे भदन्त अस्ति खलु तस्यां समायां भरते वर्षे नट प्रेक्षेति वा नटप्रेक्षा नटानां क्रीडाकारिणां प्रेक्षा नटकृत कौतुक दर्शनाय जनमेलक इत्यर्थः 'नटपेच्छाड' नाट्यप्रेक्षेति वा नाट्यप्रेक्षा नाट्य नटकर्म अभिनयः नदर्शनाय जनमेलक इति 'जल्लपेच्छाड वा' जल्ल प्रेक्षित जल्लप्रेक्षा जल्लः वरत्र खेलकाः तत्कृतकौतुकदर्शनाय सम्मिलितो जनसमुदाय इत्यर्थः 'मल्लपेच्छाड वा' मल्लप्रेक्षेति वा मल्लाः युजाभ्यां युद्धकारकः तत्कृतवाहु युद्धदर्शनाय समुदिता जना इत्यर्थः । 'सुद्धियपेच्छाड वा' मौष्टिक प्रेक्षेति वा मौष्टिकाः मुष्टिभिर्युद्धकारका मल्लः तत्कृतकौतुक दर्शनाय सम्मिलितो जनसमूह इत्यर्थः । 'कहगपेच्छाड वा' कथक प्रेक्षेति कथकप्रेक्षा—कथकाः—कथाकारिणः ये हि सुललितकथावाचनेन श्रोतृजनानां हृदि रसमुत्पादयन्ति तत्कृत कथा श्रवणाय समागतो जनसमुदायइति 'पवगपेच्छाड वा' प्लवक प्रेक्षेति वा प्लवकरुपेक्षाः—प्लवका उत्प्लुत्य ये गर्त्ता-

प्रकार के उत्सव करने को भावना दूर रहा करती है ऐसे ही होते हैं । "अत्थि ण भंते तीसे समाए भरहे वासे णडपेच्छाड वा णट्टपेच्छाड वा, जल्लपेच्छाड वा, मल्लपेच्छाड वा सुद्धियपेच्छाड वा वेळवगपेच्छाड वा कहगपेच्छाड वा पवगपेच्छाड वा लासगपेच्छाड वा" हे भदन्त उस सुषम सुषमा काल के समय में भरत क्षेत्र में क्या नटों के खेल तमाशो के देखने के लिये मनुष्यों के मेले होते हैं ? नाट्य—नट कर्म अभिनय आदि को देखने के लिये मनुष्य के मेले होते हैं क्या ? जल्ल वर्त पर नाना प्रकार के खेल तमाशे दिखाने वालों के कौतुको को देखने के लिये मनुष्यों के मेले होते हैं क्या ? अर्थात् वहां मनुष्य एकत्रित होते हैं क्या ? मल्लो द्वारा किये गये वाहुयुद्ध को देखने के लिये मनुष्य एकत्रित होते हैं क्या ? मनुष्य द्वारा युद्ध करने वाले मल्लजनों के कौतुको को देखने के लिये मनुष्य एकत्रित होते हैं क्या ? सुखविकार आदि द्वारा मनुष्यों को हसाने वाले विदूषक जन के कौतुक को देखने के लिये मनुष्य एकत्रित होते हैं क्या ? तथा सुललित कथा के वाचने से श्रोता जनो के हृदय में रस उत्पन्न कराने वाले कथक पुरुषों के द्वारा वाची गई कथा को सुनने के लिये मनुष्य एकत्रित होते हैं क्या ? तथा प्लवकजनों के सङ्घे आदि को लांघकर

होय छे डे इरेके जतना उत्सवे। येज्ज्वानी भावनाओथी तेओ। दूर रहे छे 'अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे णड पेच्छाड वा णट्टपेच्छाड वा जल्लपेच्छाड वा मल्लपेच्छाड वा सुद्धियपेच्छाड वा वेळवग पेच्छाड वा कहग पेच्छाड वा पवग पेच्छाड वा लासग पेच्छाड वा' हे भदन्त, ते सुषम सुषमा कालना समयमा भरत क्षेत्रमा शुं नटाना भेद तमाशाओने जेवा मनुष्येना टोणाओ ओकत्र थाय छे ? नाट्य—नाटकना अभिनय विगेरेने जेवा भाटे मनुष्ये ओकठा थाय छे ? जल्ल-वर्त पर अनेके जतना भेद तमाशाओ। जतावना-राओना कौतुकेने जेवा भाटे मनुष्येना टोणाओ ओकत्र थाय छे ? अट्टे डे त्यां माणुसे ओकत्रित थाय छे ? मल्लो वडे करवामा आवेद भाहु युद्धोने जेवा भाटे माणुसे ओकत्रित थाय छे । सुष्टियो वडे युद्ध करवामा मल्लो ना कौतुके ने जेवा भाटे माणुसे ओकत्रित थाय छे ? तेभना सुललित कथाना वाचनथी श्रोताओना हृदयोमा रस उत्पन्न करा-

दिक लङ्घयन्तिने गर्त्तादिलङ्घनकारिण इत्यर्थः अथवा ये अन्यजनानुत्तरणी यामति विशालां नदीम् उत्तरन्ति ते प्लवकाः तत्कृतकौतुकदर्शनाय सम्मिलितो जनसमूह इत्यर्थः । 'लासकपेच्छा इ वा' लासकप्रेक्षेति वा लासकप्रेक्षा—लासाकाः लास्य नामकनृत्यविशेषकारिणः तत्कृतलास्य नृत्यप्रेक्षणाय समागतो जनसमुदाय इति । इत्थं गौतमेन पृष्ठो भगवानाह—'णो इण्टे समट्टे' नो अयमर्थः समर्थः यतो 'समणाउसो' हे आयुष्मन् श्रमण 'ववगय कोउ हल्लाणं ते मणुया ते मज्जुजाः खल्ल व्यपगतकौतुहलाः—व्यपगतं कौतुहलं गेभ्यस्ते तथा भूताः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः इति ॥ सू० २९॥

मूलम्—अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे सगडाइ वा रहा-इवा जाणाइ वा गिल्लीइ वा थिल्लीइ वा सीयाइ वा संदमाणियाइ वा णो इण्टे समट्टे पायचारविहारा णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो ! अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गावीइ वा महिसीइ वा आयाइ वा एलगाइ वा ? हंता अत्थि, णो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे आसाइ वा हत्थिइ वा, उट्टाइ वा गोणाइ वा गवयाइ वा अयाइ वा एलगाइ वा पसयाइ वा मियाइ वा वराहाइ वा रुरुत्ति वा

उसके पार पहुंच जाने वाले अथवा दूसरे जन जिस नदी को पार नहीं कर सके ऐसी अतिवि-
शाल नदी को पार करने वाले मनुष्यों के द्वारा किये गये कौतुक को देखने के लिये मनुष्य एक-
त्रित होते हैं क्या ? लासक जनों के लास्यनामक नृत्य विशेष को करने वाले मनुष्यों के उस
लास्य नृत्यविशेष को देखने के लिये मनुष्य एकत्रित होते हैं क्या ? इस प्रकार से गौतम । के
पृष्ठे पर प्रसु उनसे कहते हैं "णो इण्टे समट्टे ववगय कोउहल्लाणं ते मणुया पण्णत्ता समणा-
उसो" हे गौतम यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि जिनके चित्त में इस प्रकार के कौतुक देखने
का भाव सर्वथा दूर होगया है ऐसे हा वे मनुष्य वहा के होते हैं ऐसा शास्त्रों में सिद्धान्तका
राने कहा है ॥ २९॥

वनारा कथक पुत्रुषो वडे कडेवाभा आवेल कथाने साबणवा माटे भाषुसे अकत्रित थाय छे ?
तेमज्ज प्लवक जनाना—भासाओ वगेरेने ओणं गीने तेनी भील्लतरक् पडोअनारा अथवा भीण
मनुष्यो ने नहीने पार करी शके नही अट्टे के आकाठेथी भीणे कठे जध शके नडि
ओवी अति विशाल नहीने पार करनारा भाषुसेना कौतुकेने जेवा माटे शुं भाषुसे अकत्रित
थाय छे ? आ प्रभाषे गौतम ने प्रश्न साबणीने प्रलु तेने जवाप आपता कडे छे के 'णो
इण्टे समट्टे ववगय कोउहल्ला णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो' हे गौतम ! आ अर्थ
समर्थ नहीं, केभके जेभना अित्तमाथी आ जतनां कौतुके जेवानो भाव संपूर्ण रीते दूर
थर गयो छे जेवा ते मनुष्यो त्या रडेछे जेवुं शास्त्रोभा सिद्धान्तकारो जे कल्लु छे ॥ २९॥

सरभाइ वा चमराइ वा कुरंगाइ वा गोकण्णाइ वा ? हंता अत्थि, णो चेव णं तेसि परिभोगत्ताए हव्व मागच्छंति । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे सीहाइ वा वग्धाइ वा विगाइ वा दीवियाइ वा अच्छोइ वा तरच्छाइ वा सियालाइ वा विडालाइ वा सुणगाइ वा कोकंतियाइ वा कोलसुणगाइ वा ? हंता अत्थि, णो चेव णं तेसि मणुयाणं आवाहं वा वावाहं वा छविच्छेयं वा उप्पायेति पगइभइयो णं ते मावयगणो पणत्ता समणाउसो ! अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे साली इ वा वीहीइ वा गोहुमाइ वा जवाइ वा जव जवाइ वा, कलोयाइ वा मथूराइ वा मुग्गाइ वा मोसाइ वा तिलाइ वा कुलत्थाइ वा णिप्फावाइ वा आलिसंदगाइ वा अयसीइ वा कुसुंभाइ वा कोदवाइ वा कंगुत्ति वा वरगाइ वा रालगाइ वा सणाइ वा सरिसवाइ वा मूलगवीयोइ ? हंता अत्थि णो चेव णं तेसि म याणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ॥सू० ३०॥

छाया—सन्ति खलु भदन्त ! तस्या समायां भरते वर्षे शकटानीति वा रथा इति वा यानानीति वा सुरयानोति वा गिल्ल्यइति वा थिल्ल्यइति वा शिविका इति वा स्यन्दमानिका इति वा ? नो अयमर्थः समर्थः, पादवारविहाराः खलु ते मनुजाः प्रज्ञता भ्रमणायुष्मन् ! अस्ति खलु भदन्त ! तस्या समायां भरते वर्षे गाव इति महिष्य इति वा अजा इति वा पडका इति वा ? हन्त ! सन्ति, न चैव खलु तेषां मनुजाना परिभोग्यतया हव्व्यमागच्छन्ति । सन्ति खलु भदन्त ! तस्या समायां भरते वर्षे अश्वा इति वा हस्तिन इति वा उष्ट्रा इति वा गाव इति वा गवया इति वा अजा इति वा पडका इति वा प्रश्नया इति वा मृगा इति वा वराहा इति वा रुक्ख इति वा शरभा इति वा चमरा इति वा कुरङ्गा इति वा गोकर्णा इति वा ? हन्त ! सन्ति नो चैव खलु तेषां परिभोग्यतया हव्व्यमागच्छन्ति । सन्ति खलु भदन्त ! तस्या समायां भरते वर्षे सिंहा इति वा व्याघ्रा इति वा वृका इति वा द्वीपिका इति वा ऋक्षा इति वा तरक्षव इति वा शृगाला इति वा विडाला इति वा शुनका इति वा कोकन्तिका इति वा कोलशुनका इति वा ? हन्त ! सन्ति, नो चव खलु तेषां मनुजानाम् आवाधां वा न्यावाधां वा छविच्छेदं वा उत्पादयन्ति, प्रकृतिभद्रका खलु ते श्वापदगणा प्रज्ञताः भ्रमणायुष्मन् ! अस्ति खलु भदन्त ! तस्यां सम यां भरते वर्षे इति वा व्रीहय इति वा गोधूमा इति वा यवा इति वा यवयवा इति वा कलाया इति वा मसूरा इति वा मुद्गा इति वा माषा इति वा तिला इति वा कुलत्था इति वा निष्पावा इति वा आलिसन्दका इति वा अस्स्य इति वा कुसुम्भा इति वा कोदवा इति वा

कङ्ग वा इति वा वरगा इति वा रालका इति वा शणा इति वा स्पर्षपा इति वा मूलक बीजानीति वा ' हन्त ' सन्ति नो चैव खलु तेषां मनुजाना परिभोग्यतया दृव्यमा गच्छन्ति सू ॥३०॥

टीका—'अत्थि णं भंते' इत्यादि ।

गौतम स्वामी पृच्छति—'अत्थि णं भते तीसे समाए भरहे वामे सगडाड वा' हे भदन्त सन्ति खलु तस्यां समायां भरते वर्षे शकटानि इति वा शकटानि गन्त्री विशेषाः 'रहाइ वा' रथा इति वा 'रथा' प्रसिद्धाः 'जाणाडवा' यानानीति वा यानानि शकटरथातिरिक्ता गन्त्री विशेषाः 'जुग्गाइवा' युग्यानीति' वा युग्यानि पुरुषवाह्या यानविशेषाः जम्पानानीत्यर्थः 'गिल्लीइवा' गिल्लयति वा गिल्लयः—पुरुषद्वयवाह्याः शिविका विशेषाः 'थिल्लीड वा' थिल्लय इति वा थिल्लयः अश्वद्वयेन अश्वतरद्वयेन वा वाह्यानि यानानि 'सीयाड वा' शिविका इति वा शिविकाः—पुरुषवाह्या यानविशेषाः पालकीति प्रसिद्धः 'संदमाणियाड वा' स्यन्दमानिका इति वा स्यन्दमानिकाः शिविकाविशेषा भगवानाह 'णो डणट्टे समट्टे'नो अयमर्थः समर्थः यतो 'समणाउसो' हे आयुष्मन् श्रमण 'पायचार विहारा णं ते मणुया' ते मनुजाः

"अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे सगडाइ वा रहाइ वा" इत्यादि ।

टीकार्थ—"अत्थि णं भते तीसे समाए भरहे वासे सगडाइ वा रहाइ वा" गौतमस्वामी ने प्रभु से ऐसा पूछा है हे भदन्त क्या उस सुषम सुषमा काल के समय में भरत क्षेत्र में शकट सामान्य बैलगाड़िया होती है, रथ होते हैं, यान शकट एव रथ से अतिरिक्त सवारी की गाड़िया होती हैं ? युग्य दो पुरुष जिन्हें अपने कंधों पर रखकर चलाते हैं ऐसी छोटी २ डोलिया पालकियां होती हैं ? गिल्लिया दो पुरुष जिन्हें कंधा देकर चलाते हैं ऐसी डोलियों के आकार में कुछ २ बड़ी शिविकाएँ होती हैं क्या ? थिल्लियां दो घोड़े जिन में जोते जाकर जिन्हे खेंचते हैं अथवा दो खच्चर जिनमें जुतकर जिन्हें खेंचते हैं ऐसी विशेष शिविकाएँ बाग्धिया होती हैं क्या ? शिविकाएँ बड़ी २ पालकिया जिन्हे पुरुष अपने कंधों पर रखकर साथ २ उठाकर चलते हैं होती हैं ? स्यन्दमानिकाएँ होती हैं ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—हे गौतम यह अर्थ समर्थ—शास्त्रसंमत नहीं क्योंकि वहा के मनुष्य पादचारी ही होते हैं । अतः उन्हें न बैलगाड़ीयों की आवश्यकता

अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे सगडाइ वा रहाइवा' इत्यादि सूत्र ॥३०॥

टीकार्थ—गौतमे प्रभुने आ जतने प्रश्न कथो के हे भदन्त शु ते सुषम सुषमा कालना समयमा भरत क्षेत्रमा शकट सामान्य जणह गाडीयो डोय छे ? रथा डोय छे ? याने शकट तेमज रथातिरिक्त सवारी गाडीयो डोय छे ? युग्यो जे माणुसो जेभने पोताना रथ घे पर भुंकीने खावे छे, जेवा नानी नानी पालभीयो डोय छे ? गिल्लियो जे पुइयो जेभने भला पर भुंकीने खावेछे, जेवा पालभीयो करतां मोटी शिविकायो डोय छे ? थिल्लियो जे घोडायो अथवा जे अश्वरवाणो विशेष शिविकायो भगीयो डोय छे ? शिविकायो मोटी मोटी पालभीयो जेभने माणुसो पोताना भला जेपर भुंकीने खावे छे ते डोय छे ? स्यन्दमानिकायो डोय छे ? तेना जवाभमां प्रभु कडे छे—हे गौतम. आ अर्थ समर्थ नथी. जेतवे के शास्त्र-संमत नथी, हेभके त्याना माणुसो पादचारी जे डोय छे. जेथी तेभने

खलु पादविहाराः पादाभ्यां चरणाभ्यां विहारो विचरणं येषां ते तथाभूताः—चरणचङ्क्रमण शीला न तु शकटादि गामिनः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः । पुन गौतमस्वामी पृच्छति—'अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे गाविड वा' हे भदन्त सन्ति खलु तस्यां समायां भरहे वासे वा गावडतिवा गावो धेनवः 'महिसीइवा' महिष्य इति वा, महिष्यः प्रसिद्धः 'अयाइवा' अजा इति वा 'अजाः छाग्यः' 'गल्गाड वा' एडका इति वा एडकाः उरभ्यूः । भगवानाह—'हंता अत्थि' हन्त सन्ति 'णो चैव णं' नो चैव खलु ताः गावो महिष्योऽजा एडका वा 'तेसि मणुयाणं परिभोगत्ताए' तेषा मनुजानां परिभोग्यतया 'हव्वं हव्य=रुदाचिदपि 'आगच्छंति' आगच्छन्तीति । पुनगौतमस्वामी पृच्छति—'अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे आसाड वा' हे भदन्त ! सन्ति खलु तस्यां समाया भरते वपे अथा इति वा ?, अथाः—प्रसिद्धाः, 'हत्थीड वा, उट्टाड वा, गोणाड वा, गवयाड वा, अयाड वा एल्गाड वा पसयाड वा, मियाड वा, वराहाड वा, रुरुत्ति वा, सरभाड वा, चमराड वा, कुरगाइ वा गोक्कणाड वा' हस्त्युष्ट्रगोगवयाजैडकप्रश्रय मृगवराहरुरुशरभचमरकुरङ्गगोकर्णा इति वा ?, तत्र—हस्तिनःप्रसिद्धाः, उष्ट्राः—प्रसिद्धाः, गावो—वृषभाः, गवया =गोसजातीया-वन्यपशवः, अजाः=छागाः, एडकाः=मेपाः, प्रश्रयाः=द्विखुरा वन्यपशु विशेषाः मृगाः=हरिणाः, वराहाः=शकराः, रुरवो=मृगविशेषाः, शरभाः=अष्टापदाः, चमराः=आरण्या गावः,

रहतो है और न पालखो आदि की आवश्यकता ही रहती है हे भदन्त । उस सुषम सुषमा काल क्री मौजूदगी में क्या गायें होती है ? भैस होती है ? अजाएँ बकरियाँ होती है ? एडकाएँ भेड़ें होती है ? इस के उत्तर में प्रसु कहते है हां गौतम ये सब जानबर तो होते हैं पर वे गाय आदि पशु उन मनुष्यो के उपयोग मे कमी नही आते हैं ।

अब पुन गौतमस्वामी प्रसु से पूछते है—हे भदन्त उस काल में इस भरत क्षेत्र में अश्व—घोड़ा हस्ती—हाथो उष्ट्र—कैट गाय—गवय रोज अजा एडक पसय मृग विशेष मृग—वराह सूवर रुरु मृगविशेष शरभ अष्टापद चमर चमरीगाय कुरङ्ग और गोकर्ण मृग विशेष ये सब जीव होते है क्या ? उत्तर में प्रसु कहते है हे गौतम ये सब जीव उस काल मे होते है, "नो चैव ण०" परन्तु ये उस समय के मनुष्यों के काम में कभी भी उपयुक्त नहीं होते है । पुनः गौतम स्वामी प्रसु से पूछते है हे भदन्त । उस काल में इस भरत क्षेत्र में सिंह व्याघ्र वृक, मेडिया—द्वीपिका—

अण्ड गार्डीओ, पादभीओ। वगेरेनी आवश्यकता रहती नथी। हे भदन्त ! ते सुषमा सुषमाकाणमां भरतक्षेत्रमां गाथो डोय छे ? केथो डोय छे ? अणओ—अकरीओ—डोय छे ? अडकाओ—वे टीओ—डोय छे ? ओना नवाणमां प्रभु कडे छे डा, गौतम ! ओ अधां प्राणीओ डोय छे, पशु ओ गाय वगेरे पशुओ माणुसोने उपयोगमां आवता नथी।

हे ईरी गौतम स्वामी प्रसुने प्रश्न करे छे हे भदन्त । ते अणमां भरतक्षेत्रमां अश्व—घोडा' हस्ती—हाथी उष्ट्र—कैट, गाय, गवय, रोज,अण अडक, पसय—मृगविशेष, मृग वराह—सूवर इतु—मृगविशेष, शरभ—अष्टापद, चमर—चमरी गाय, कुरग अने गोक्कण—मृगविशेष ओ अधां प्राणीओ डोय छे ? उत्तरमां प्रभु कडे छे. डा, गौतम ! ओ सव' लोयो ते अणमां डोय छे 'णो चैव णं' पशु ते समयना माणुसोना उपयोगमां कदापि आवता नथी. ईरी गौतम प्रसुने प्रश्न करे छे. हे भदन्त, ते अणमां, आ भरत क्षेत्रमां सिद्ध व्याघ्र, वृक—

कुरङ्गाः=मृगविशेषाः, गोकर्णाः=मृगविशेषाः इति वा ? । भगवानाह-‘हता अत्थि’ हन्त ! सन्ति, ‘णो चैव णं’ नो चैव खलु ते अश्वहस्त्युपद्रादयः’ तस्मि परिभोगनाए’ तेषा मनुजानां परिभोग्यतया ‘हव्वमागच्छति’ कदाचिदपि आगच्छन्ति इति । पुनर्गन्तमस्वामी पृच्छति-‘अत्थि णं भन्ते ! तीसे समाए भरहे वापे सीहाट वा’ हे भदन्त ! मन्ति खलु तस्यां समायां भरते वर्ष सिद्ध इति वा । सिद्धा=केशरिणः, ‘वग्वाडवा’ व्याघ्रा इति वा ?, व्याघ्राः=शार्दूलाः, ‘विगाड वा. दोवियाड वा अच्छाडवा तरच्छाड वा सियालाड वा विडालाडवा सुणगाडवा कोकंतियाडवा कोलमुणगाड वा’ वृक द्वीपिक ऋक्षतरक्षुशृगाल-विडालशुनककोकन्तिक कोलशुनका इति वा?, तत्र वृकाः-‘भेडिय’ इति प्रसिद्धाः, द्वीपिकाः व्याघ्रविशेषा चित्रका इति प्रसिद्धाः. ऋक्षाः-भल्लकाः, तरक्षवः-मृगादनाः व्याघ्रविशेषाः, शृगालाः प्रसिद्धाः, विडालाः-मार्जाराः, शुनकाः-श्वानः, कोकन्तिकाः-‘लोमडी’ ति भाषा प्रसिद्धाः, कोलशुनकाः-महावराहाः । भगवानाह-‘हता अत्थि’ हन्त ! सन्ति, ‘णो चैव णं तेसि मणुयाणं आवाहंवा’ नो चैव खलु तेषा मनुजानाम् आवाधाम्-ईगद्धाधांवा ‘वावाहवा’ व्यागधा-विशेषेण वात्रा वा, ‘छपिच्छेदं-चर्मोत्पाटनं वा’ ‘उत्पायेति’ उत्पादयन्ति-जनयन्ति, यतो समणाउसो ?’ हे आयुष्मन् श्रमण ! ‘ते सावयगणा’-ते श्वापदगणाः-हिंसक पशुमहाः‘णं’ खलु ‘पगइ भइया’ प्रकृति भद्रकाः

व्याघ्रविशेष, चित्रक-चित्ता, ऋक्ष-रीछ तरक्षु मृगभक्ष। व्याघ्रविशेष शृगाल गीटड विडाल विलाव शुनक कुत्ता, कोकन्तिक लोमडी एव कोलशुनक बडे २ सुधर या जंगली कुत्ते ये सब जानवर होते है क्या ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं, हां गौतम । ये सब जंगली जानवर उस काल में इस भरत क्षेत्र में होते हैं परन्तु “णो चैव णं तेसि मणुयाणं आवाहं वा वावाहं वा०” इत्यादि ये उन मनुष्योंको जरा सी भी बाधा नहीं पहुँचाते है, न विशेषरूप से उन्हें कष्ट देते है, न ये उनके शरीर को छिन्न भिन्न करते है क्योंकि “समणाउसो पगइ भइया णं ते सावयगणा पणत्ता” हे श्रमण आयुष्मन् । ये श्वापदगण जंगली जानवर प्रकृति से ही भद्र होते है “अत्थिणं भन्ते तीसे समाए भरहे वासे सालीइ वा वीहिगोह्म जवजव जवाइ वा कलम मसूर०” इत्यादि

पदे द्वीपिक व्याघ्र विशेष चित्रक चित्ती, ऋक्ष रीछ तरक्षु मृगभक्षी व्याघ्र विशेष शृगाल विडाल शुनक कुत्तु कोकन्तिक लोमडी अने कोल शुनक मोटा सुधरे अथवा वन्य श्वाने होय छे ? अने जवानमा प्रभु कहे छे, हां गौतम । ये सब वन्य प्राणीओ ते कालमा आ भरतक्षेत्रमा होय छे, पणु “णो चैव णं तेसि मणुयाणं आवाहं वा वावाहं०” इत्यादि. ये वन्य प्राणीओ ते माणुसोने सहेव पणु कष्ट आथता नथी, न विशेष रूपमा तक्षुकी आये छे अने न तेमनां शरीरो ने छिन्न भिन्न करे छे केभडे ‘समणाउसो पगइ भइयाणं ते सावयगणा ए०’ अथ श्रमण आयुष्मन् । ये श्वापदगणो-वन्य प्राणीओ स्वभावतः भद्र होय छे अत्थि णं भन्ते । भरहे वासे सालीति वा वीहि गोह्म जव जवाइ वा कलम मसूर’ इत्यादि इवे गौतम प्रभुने आ जतने प्रश्न करे छे के-हे लक्षन्त । शु’ ते कालमा भरत क्षेत्रमा शालि-कलमादि धान्य विशेष मीहि-धान्य, गोधूम गेहुं यव जव

'पण्णत्ता' प्रज्ञसाः । पुनर्गौतम स्वामी पृच्छति—'अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे सालोइ वा' हे भदन्त ! सन्ति खलु तस्यां समायां भरते वर्षे शालय इति वा ? शालयः कलमादि धान्यविशेषा , 'वीहीइ वा गोहमाइवा जवाइ वा ज्वजवाइ वा' व्रीहिशोधूम यव यवयवा इति वा ? तत्र व्रीहिः धान्यविशेषः, गोधूमः—प्रसिद्धः, यवः प्रसिद्धः, यवयवः यवभेदः, एतेषाम् इतरेतरद्वन्द्वः, तथा 'कलायाइ वा मसुराइ वा मुग्गाइ वा मासाइवा तिलाइ वा कुलत्थाइ वा णिफफावाइ वा आलिसंदगाइ वा अयसीइ वा कुसुंभाइ वा कोई-वाइ वा कंगुत्ति वा वग्गाइ वा रालगाइ वा सणाइ वा सरिसवाइ वा मूलगवीयाइ वा' कलायमसुरमुद्गमासतिलकुलत्थनिष्पावालिसन्दकातसीकुसुम्भकोद्रवकङ्गुवरकरालकशण सर्षपमूलक बीजानि वा ? तत्र कलायःवृत्तचणको' मटर' इति भाषा प्रसिद्धः. मसुरो धान्य विशेषः, मुद्गः 'मुँग' इति लोकप्रसिद्धो धान्यविशेषः, मापः 'उडद' इति भाषा प्रसिद्धो धान्य विशेषः, तिलः प्रसिद्ध, कुलत्थः—'कुलथी' इति भाषा प्रसिद्धो धान्य विशेषः, वरको धान्य-विशेषः, रालकः—कङ्गु विशेषः, एव, तत्र कङ्गुवृद्धच्छिगाः, रालकोऽल्पशिरा दूति भेदो बोध्यः, शणो धान्यविशेषः, सर्षपः 'सरसों' इति भाषा प्रसिद्धस्ते इति वा, तथा मूलकबीजानि—मूलकं—'मूली' इति भाषाप्रसिद्धं तस्य बीजानि । इत्थं गौतमस्वामिना पृष्टो भगवानाह—'हता अत्थि' हन्त ! सन्ति, 'णोचेव णं'न चैव खलु तानि धान्यानि 'तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए' तेषां मनुजानां परिभोग्यतया 'हव्वं' हव्व्य—कदाचिदपि 'आगच्छति' आगच्छन्ति । यतस्ते मनुजाः कल्पवृक्षपुष्पफलाद्याहरका भवन्तीति ॥३०

अब श्रीगौतम स्वामी प्रश्न से ऐसा पूछते हैं—हे भदन्त ! क्या उस कालमें भरत क्षेत्रमें शाल—कलमादि धान्यविशेष, व्रीहि धान्य, गोधूम गेहू, यव—जौ यवयव ज्वार या विशेष प्रकार के यव, कलाय—मटर, मसूर, मुद्ग मूग, मास उडद, तिल्ली, कुलत्थ कुलथी, निष्पाव वल्ल आलिसन्दक चौला, अतसी अलसी कुसुम्भ कुसुम्भवृक्ष का बीज जिस के पुष्पो से वल्ल रंगजाता है कोद्रव कोद, कङ्गु बड़ी कागनी, वरक धान्यविशेष, रालक छोटीकागनीविशेष शण, सर्षप सरसों एवं मूलक बीज मूली के बीज ये सब बीज होते हैं ? उत्तरमें प्रमुश्री कहते हैं 'हता अत्थि' हाँ, गौतम उस काल में भरत क्षेत्र में ये सब बीज होते हैं परन्तु "णो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छति" ये सब उन मनुष्यों के भोगोपभोग में काम नहीं आते हैं क्योंकि वे उस काल के मनुष्य कल्पवृक्ष के पुष्पो और फलों का आहार करते हैं ॥३०॥

यवयव गुआर अथवा विशेष प्रकारने। यव कलाय वषळा मसूर मुद्ग भग माप अडद तिल कुलत्थ कणथी निष्पाव वदल आलिसन्दक येणा अतसी अलसी कुसुंभ-कुसुंभ वृक्षत् भी जेना पुष्पो वसो रगवामां आवे छे, कोद्रव कुंगणी कुंशु मोटी कुंगनी वरक धान्य विशेष रालक नानी कुंगनी विशेष शण सर्षप अरसव अने भूक भी भूणीना भी जे सर्व अतना भीले होय छे ? उत्तरमां प्रभु कहे छे 'हता अत्थि' हाँ, गौतम ! ते कालमा भरतक्षेत्रमां जे सर्व अतना भीले होय छे परतु "णो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्व मागच्छन्ति" जे सर्व प्रकारने भीले ते कालना मनुष्येना लोगोपभोगना उपभोगमां आ वतां नथी, कायलु के ते कालना मनुष्ये कल्पवृक्षना पुष्पो अने इणोने आहार करे छे सू. ३०॥

मूलम्—अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइवा दरी-
इवा ओवायाइ वा पवायाइ वा विसमाइ वा विज्जलाइ वा ? णो इण्ठे
समट्ठे. भरहे वासे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए
आलिगपुक्खरेइ वा० । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे खाण्णइ
वा कंटगाइ वा तणाइ वा कयवराइ वा ? णो इण्ठे समट्ठे, ववगय खाणु-
कंटगतणकयवरा णं सा समा पण्णत्ता । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए
भरहे वासे डंसाइ वा मसगाइ वा जूआइ वा लिक्खाइ वा दिक्कुणाइ वा
आइ वा ?, णो इण्ठे समट्ठे, ववगयडंसमसगजूअलिक्खदिक्कुणपिसुआ
उवहव विरहिया णं सा समा पण्णत्ता । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए
भरहे वासे अहीइ वा अयगराइ वा ? हंता ! अत्थि णो चैव णं तेसिं
म याणं आबाहं वा जाव प गइ भइया णं ते बोलगगणा पण्णत्ता ॥
॥सू० ३१॥

। छाया — सन्ति खलु भदन्त । तस्यां समायां भरते वर्षे गर्त्ता इति वा, दर्ये इति वा,
अवपाता इति वा, प्रपाता इति वा, विषमानिति वा, विजलानिति वा, ? नो अयमर्थ-
समर्थः, भरते वर्षे बहुसमरमणीयो भूमिभाग प्रहसतः, तद्यथा नामकम्—आलिङ्गपुष्कर इति
वा० । सन्ति खलु भदन्त ! तस्यां समायां भरते वर्षे स्थानव इति वा कण्टका इति वा
तृणानीति वा कचवरा इति वा ? नो अयमर्थः समर्थः, व्यापगतस्थाणुकण्टक तृण कचवरा
खलु सा समा प्रहसता । सन्ति खलु भदन्त ! तस्यां समायां भरते वर्षे दशा इति वा म-
शका इति वा पिशुका इति वा ? नो अयमर्थः समर्थः, व्यपगतदशमक यूकालिक्षादिद्विकुण-
पिशुका, उपद्रवविरहिता खलु सा समा प्रहसताः । सन्ति खलु भदन्त । तस्यां समायां
भरते वर्षे अहय इति वा अजगरा इति वा ? हन्त ! सन्ति नो चैव खलु तेषां मनुजा-
नाम् आबाधा वा यावत् प्रकृतिभद्रकाः खलु व्यालकगणाः प्रहसताः ॥ ३१॥

टीका—‘अत्थि णं’ इत्यादि ।

‘अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइवा’ हे भदन्त ? सन्ति खलु
तस्यां समायां भरते वर्षे गर्त्ता इति वा ? गर्त्ताः ‘गड्डा-खड्डा’ इति भाषा प्रसिद्धाः,

‘अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहेवासे’ इत्यादि

टीकार्थ—‘अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइ वा दरीइ वा’ गौतम स्वामीने इस सूत्र द्वारा
प्रसुप्ते ऐसा पूछा है हे भदन्त क्या उस काल में सुषमसुषमा नामक आरे में इस भरत क्षेत्रमें गड्डे

‘अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइ वा दरीइवा’ इत्यादि सूत्र ३१॥
टीकार्थ—हे गौतम आ सूत्र पडे प्रसुप्ते आ आतने प्रश्न कर्त्ते छे के ‘अत्थि णं भंते ! तीसे
समाए भरहे वासे’ हे भदन्त । शु ते कालमां सुषम सुषमा नामना आराभां आ भरत क्षेत्रमां
३६

'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः । पुनर्गौतम स्वामी पृच्छति—'अत्थि णं भते ! तीसे समाए भरहे वासे सालीइ वा' हे भदन्त ! सन्ति खलु तस्यां समायां भरते वर्षे शालय इति वा ? शालयः कलमादि धान्यविशेषा , 'वीहीइ वा गोहमाइवा जवाड वा ज्वजवाइ वा' व्रीहिगोधूम यव यवयवा इति वा ? तत्र व्रीहिः धान्यविशेषः, गोधूमः—प्रसिद्धः, यवः प्रसिद्धः, यवयवः यवभेदः, एतेषाम् इतरेतरद्वन्द्वः, तथा 'कलायाइ वा मसूराइ वा मुग्गाइ वा मासोडवा तिलाड वा कुलत्थाइ वा णिफफावाड वा आलिसंदगाड वा अयसीड वा कुसुंभाड वा कोई-वाइ वा कंगुत्ति वा वरगाइ वा रालगाइ वा सणाइ वा सरिसवाइ वा मूलगवीयाइ वा' कलायमसूरमुद्गमासतिलकुलत्थनिष्पावालिसन्दकातसीकुसुम्भकोद्रवकहुवरकरालकशण सर्ष-पमूलक बीजानि वा ? तत्र कलायःवृत्तचणको' मटर' इति भाषा प्रसिद्धः. मसूरो धान्य विशेषः, मुद्गः 'मुँग' इति लोकप्रसिद्धो धान्यविशेषः, मापः 'उडद' इति भाषा प्रसिद्धो धान्य विशेषः, तिलः प्रसिद्धः, कुलत्थः—'कुलथी' इति भाषा प्रसिद्धो धान्य विशेषः, वरको धान्य-विशेषः, रालकः—कङ्गु विशेषः, एव, तत्र कङ्गुवृहच्छिगाः, रालकोऽल्पशिवा दूति भेदो बोध्यः, शणो धान्यविशेषः, सर्षपः 'सरसो' इति भाषा प्रसिद्धस्ते इति वा, तथा मूलकबीजानि—मूलकं—'मूली' इति भाषाप्रसिद्धं तस्य बीजानि । इत्थं गौतमस्वामिना पृष्टो भगवानाह— 'हता अत्थि' हन्त ! सन्ति, 'णोचेव णं'न चैव खलु तानि धान्यानि 'तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए' तेषां मनुजानां परिभोग्यतया 'हव्वं' हव्व्य—कदाचिदपि 'आगच्छति' आगच्छन्ति । यतस्ते मनुजाः कल्पवृक्षपुष्पफलाद्याहरका भवन्तीति ॥३०

अब श्रोगौतम स्वामी प्रमु से ऐसा पूछते हैं—हे भदन्त ! क्या उस कालमें भरत क्षेत्रमें शाल—कलमादि धान्यविशेष, व्रीहि धान्य, गोधूम गेहु. यव—जौ यवयव ज्वार या विशेष प्रकार के यव, कलाय—मटर, मसूर, मुद्ग मूग, मास उडद, तिल्ली, कुलत्थ कुलथी, निष्पाव वल्ल आलि-सन्दक चौला, अतसी अलसो कुसुम्भ कुसुम्भवृक्ष का बीज जिस के पुष्पो से वल्ल रंगजाता है कोद्रव क्रोद, कङ्गु बड़ी कागनी, वरक धान्यविशेष, रालक छोटीकागनीविशेष शण, सर्षप सरसो एवं मूलक बीज मूली के बीज ये सब बीज होते हैं / उत्तरमें प्रमुश्री कहते हैं 'हंता अत्थि' हँ, गौतम उस काल में भरत क्षेत्र में ये सब बीज होते हैं परन्तु "णो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्वमागच्छति" ये सब उन मनुष्यों के भोगोपभोग में काम नहीं आते हैं क्योंकि वे उस काल के मनुष्य कल्पवृक्ष के पुष्पो और फलों का आहार करते हैं ॥३०॥

यवयव जुआर अथवा विशेष प्रकारने। यव कलाय वषळा मसूर मुद्ग भग भाष अडड तिल कुलत्थ कणथी निष्पाव वल्ल आलिसन्दक येणा अतसी अलसी कुसुंभा-कुसुंभा वृक्षनां भी लेना पुष्पो वसो रगवामा आवे छे, कोद्रव दुगणी क शु मोटी कांगनी वरक धान्य विशेष रालक नानी कांगनी विशेष शण सर्षप सरसव अने भुजक भीन मूणीना भी ये सर्व अतना भीने होय छे ? उत्तरमां प्रमु कहे छे 'हंता अत्थि'हं, गौतम ! ते कालमा अस्तक्षेत्रमां ये सर्व अतना भीने होय छे परतु "णो चेव णं तेसिं मणुयाणं परिभोगत्ताए हव्व मागच्छन्ति" ये सर्व प्रकारने भीने ते कालना मनुष्येना लोगोपयोगना उपयोगमां आ वतां नथी, कारणु के ते कालना मनुष्ये कल्पवृक्षना पुष्पो अने इणोने आहार करे छे. सू. ३०॥

मूलम्—अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइवा दरी-
इवा ओवायाइ वा पवायाइ वा विसमाइ वा विज्जलाइ वा ? णो इण्ठे
समट्ठे. भरहे वासे बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए
आलिगपुक्खरेइ वा० । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे खाणूइ
वा कंटगाइ वा तणाइ वा कयवराइ वा ? णो इण्ठे समट्ठे, ववगय खाणु-
कंटगतणकयवरा णं सा समा पण्णत्ता । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए
भरहे वासे डंसाइ वा मसगाइ वा जूआइ वा लिक्खाइ वा दिक्कुणाइ वा
आइ वा ?, णो इण्ठे समट्ठे, ववगयडंसमसगजूअलिक्खदिक्कुणपिसुआ
उवहव विरहिया णं सा समा पण्णत्ता । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए
भरहे वासे अहीइ वा अयगराइ वा ? हंता ! अत्थि णो चैव णं तेसिं
मणुयाणं आबाहं वा जाव प गइ भइया णं ते बोलगगणा पण्णत्ता ॥
॥सू० ३१॥

छाया—सन्ति खलु भदन्त । तस्यां समायां भरते वर्षे गर्त्ता इति वा, दर्ये इति वा,
अवपाता इति वा, प्रपाता इति वा, विषमानिति वा, विजलानिति वा, ? नो अयमर्थः
समर्थः, भरते वर्षे बहुसमरमणीयो भूमिभाग प्रक्षत्तः, तद्यथा नामकम्—आलिङ्गपुष्कर इति
वा० । सन्ति खलु भदन्त ! तस्या समायां भरते वर्षे स्थाणव इति वा कण्टका इति वा
वृणानीति वा कचवरा इति वा ? नो अयमर्थः समर्थः, व्यापगतस्थाणुकण्टक वृण कचवरा
खलु सा समा प्रक्षत्ता । सन्ति खलु भदन्त ! तस्या समायां भरते वर्षे दशा इति वा म-
शका इति वा पिशुका इति वा ? नो अयमर्थः समर्थः, व्यपगतदंशमक यूकालिक्षादिक्कुण-
पिशुका, उपद्रवविरहिता खलु सा समा प्रक्षत्ता । सन्ति खलु भदन्त । तस्यां समायां
भरते वर्षे अहय इति वा अजगरा इति वा ? हन्त ! सन्ति नो चैव खलु तेषां मनुजा-
नाम् आबाधा वा यावत् प्रकृतिभद्रकाः खलु व्यालकगणाः प्रक्षत्ताः ॥ ३१॥

टीका—‘अत्थि णं’ इत्यादि ।

‘अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइवा’ हे भदन्त ? सन्ति खलु
तस्यां समायां भरते वर्षे गर्त्ता इति वा ? गर्त्ताः ‘गड्डा-खड्डा’ इति भाषा प्रसिद्धाः,

‘अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहेवासे’ इत्यादि

टीकार्थ—‘अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइ वा दरीइ वा’ गौतम स्वामीने इस सूत्र द्वारा
प्रसुप्ते ऐसा पूछा है हे भदन्त क्या उस काल में सुषमसुषसा नामक आरे में इस भरत क्षेत्रमें गड्डे

‘अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे गड्डाइ वा दरीइवा’ इत्यादि सूत्र ३१॥
टीकार्थ—हे गौतम आ सूत्र पडे प्रश्नने आ नातने। प्रश्न कर्त्तों छे के ‘अत्थि णं भंते ! तीसे
समाए भरहे वासे’ हे भदन्त ! शु ते कालमां सुषम सुषसा नामना आराभां आ भरत क्षेत्रमां
३६

‘दरीइवा ओवायाइ वा पवायाड विसमाड वा विज्जलाडवा’ दर्यवपात प्रपातविषमविजला-
नीति वा । तत्र—दरी=कन्दरा, अवपातः—अवपतन्ति जना यत्र सोऽवपातः, यत्र सप्रका-
शेऽपिचलन् जनः पतति सोऽवपातो बोध्यः, प्रपातः=भृगुः प्रपातस्त्वतटो भृगुः’
इत्यमरः विषमं आरोहावरोहौ यत्र स्थाने दुःशः भवतस्तत्स्थानं विषममित्युच्यते विज-
ल चिक्कणकर्दमसंवल्लिस्थानं, यत्र हि जनोऽतर्कित एव पततीति । ‘णो इणट्टे समट्टे’ नो
अयमर्थः समर्थः यतः खल्लु ‘भरहे वासे’ भरते वर्षे तस्यां समायां ‘बहुसमरमणिज्जे भूमि-
भागे पणत्ते’ ‘बहुसमरमणीयो भूमि भागः प्रज्ञप्तः । तत्र—औपम्यमाह—‘से जहा णामए’
तद्यथा नामकम् ‘आलिंगपुक्खरेइवा’ आलिङ्गपुक्कर इति वा । अयं वर्णकग्रन्थः पूर्ववद्
बोध्य इति । पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति ‘अत्थि ण भंते ! तीसे समाए भरहे वासे
खाणूइवा’ हे भदन्त सन्ति खल्लु तस्यां समायां भरते वर्षे स्थाणव इति वा ? स्थाणु
शाखापत्ररहितरुः ‘कंटगाइ वा तणाइ वा’ तत्र कण्टकाः प्रसिद्धाः, तृणानि प्रसिद्धानि,
कचवराः अवस्कराः ‘कचरा इति भाषा प्रसिद्धाः । भगवानाह—‘णो इणट्टे ट्टे’ नो अय-

होते है दरी कन्दराएँ होती है ? अवपात—दिन में भी चलता हुआ मनुष्य जिसमें गिर जाता है
ऐसे छिपे हुए गुप्त गढ़े होते हैं? प्रपात-भृगु होते है विषमस्थान-जहां चढ़ना और उतरना मुश्किल
से हो ऐसे स्थान होते है ? एव विजलस्थान—चिकनी कीचड़वाले स्थान होते है ? इसके उत्तरमें
प्रभु कहते है—हे गौतम । “णो इणट्टे समट्टे” यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् उस कालमें भरत क्षेत्रमें
ऐसे स्थान नहीं होते हैं, क्योंकि उस समय तो भरत क्षेत्रमें बहुसमरमणीय भूमिभाग होता है ।
‘से—जहाणामए अलिंगपुक्खरेइ वा०” और वह भूमिभाग ऐसा बहुसमरमणीय होता है कि जैसा
मृदंगका मुखपुट होता है, इस सम्बन्ध का वर्णन करने वाला सूत्रपाठ पहिले लिखा जा चुका है ।
अब पुनः गौतमस्वामी प्रभुसे ऐसा पूछते है—“अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे खाणूइ वा
कंटगतणय कयवराइ वा० इत्यादि” हे भदन्त ! उस काल में इस भरत क्षेत्र में क्या स्थाणु—
शाखा पत्र आदि से रहित वृक्ष होते है ? कंटक होते हैं ? कचवर—कूड़ा कर्कट आदि होता है ?

भाडाओडोय छे? दरी कंदराओ डोय छे? अवपातो द्विसे पबु थालता भाषुसे जेभां पडी नय
छे. जेवां गुप्त भाडाओ डोय छे? प्रपात भृगु डोय छे? विषमस्थानो न्या यदुपुं अने
उतपुं कंठु छे जेवा स्थानो डोय छे? अने विजलस्थानो यीकषा कडववाणा स्थानो डोय
छे? जेना जवाभमा प्रबु कडे छे, हे गौतम । ‘णो इणट्टे समट्टे’ आ अर्थ समर्थ नहीं
जेटके के ते कालमां भरतक्षेत्रमां जेवा स्थानो डोता नहीं केमके ते काले तो भरतक्षेत्र अहु
समरमणीय भूमिभागथी सुशोभित डोय छे. ‘से जहा णामए अलिंगपुक्खरेइ वा०” अने
ते भूमिभाग जेवा अहुसमरमणीय डोय छे के जेवा मृदंगने सुपुट डोय छे. जेनाथी
सम्बद्ध सूत्रपाठ पडेलां लभवामां आओये छे

इवे इसी गौतम प्रभुने आ रीते प्रश्न करे ‘अत्थि णं भंते तीसे ण भरहे वासे
खाणूइ वा कंटग तणय कयवराइ वा०’ इत्यादि हे भदन्त ! ते कालमां आ भरतक्षेत्रमां
शु स्थाणुओ शाखा पत्र रहित वृक्षी डोय छे ? कंटकां डोय छे ? वृक्ष वास डोय छे

मर्थ; समर्थः, यतो हे गौतम 'सा णं समा' सा सुषम सुषमाख्या समा खलु 'ववगय
खाणु कंटगतण कयचरा' व्यपगत स्थाणुकण्टकतृणकचवरा—व्यपगताः दूरीभूताः स्थाणु-
कण्टक तृणकचवरा यस्यां सा तथाभूता स्थाणुकण्टकादिरहितेत्यर्थः, 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः ।
पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति—'अत्थि णं भंते तीसे समाए भरहे वासे ढंसाइवा' हे
भदन्त सन्ति खलु तस्यां समाया भरते वपे दंशा इति वा दंशाः ढांस इति भाषा
प्रसिद्धाः 'मसगाइवा' मशका इति वा मशकाः 'मच्छर इति प्रसिद्धाः, 'जूआइवा
यूकाइति वा ' यूकाः जू इति भाषा प्रसिद्धाः, 'ल्लिक्खाइवा' लिक्खा इति वा 'लीस'
इति भाषा प्रसिद्धाः 'ढिक्कुणाड वा' ढिक्कुणा इति वा ढिक्कुणाः मत्कुणाः, 'मक्कुणए
ढिक्कुणा तहा ढंक्कणी पिहाणीए' इति देशीनाममाला 'पिसुआईवा' पिशुका इति वा ।
पिशुकाः 'पिस्सू सुल्ला' इति भाषाप्रसिद्धाः भगवानाह 'णो इण्ठे समट्टे' नो अयम-
र्थः समर्थः यतो हे गौतम 'सा णं समा' सा सुषम सुषमा समा खलु 'ववगयढंसमसग-
जूअल्लिक्खढिक्कुण पिसुआ' व्यपगतदशमशक यूक्खल्लिक्खढिक्कुणपिशुका अत एव 'उवढव-
विरहिया पण्णत्ता, उपद्रवरहिता प्रज्ञप्ताः । पुनर्गौतम स्वामी पृच्छति 'अत्थि णं भंते ।

इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—हे गौतम । "णो इण्ठे समट्टे" यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात्
उसकाल में भरत क्षेत्र में स्थाणु आदि कुछ भी नहीं है क्योंकि "ववगयखाणु कंटक०" सुषम-
सुषमा नाम का धारा स्थाणु, कण्टक, तृण और कचरा आदि से सर्वथा रहित ही होता है,
अब पुनः गौतमस्वामी प्रभु से ऐसा पूछते हैं—'अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे
ढंसाइ वा, मसगाइ वा जूआइ वा, ल्लिक्खाइ वा०, इत्यादि—हे भदन्त ! उसकालमें इस भरतक्षेत्र
में दंश—ढांस, मशक—मच्छर, यूक—जू, लिक्खा—लीस, ढिक्कुण—खटमल एवं पिशुक—पिस्सू होते हैं
क्या ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं हे गौतम । "णो इण्ठे समट्टे" यह अर्थ समर्थ नहीं है
अर्थात् उस काल में भरत क्षेत्र में ढांस, मच्छर आदि जीव नहीं होते हैं, क्योंकि "ववगय
ढंसमसकजुअ ल्लिक्ख०" वह काल ही ऐसा होता है कि जिसमें ये उपद्रवकारी जीव भरतक्षेत्र
में उत्पन्न नहीं होते हैं । पुनः अब गौतम स्वामी प्रभु से पूछते हैं "अत्थि णं भंते ! तीसे समाए

अने कथं कथरे। वगेरे डोय छे ? जेना ज्वाणमा प्रभु कडे छे हे गौतम । 'णो इण्ठे
समट्टे' आ अर्थ समर्थ नथी जेटले के ते काणमा भरतक्षेत्रमा स्थाणु वगेरे कथं पणु डोय
नथी केभके ववगय खाणु कंटक सुषमसुषमा नामे काण स्थाणु कंटक तृण कयचर वगेरेथी
सर्वथा रहित डोय छे हवे इरी गौतम प्रभुने जेनी रीते प्रश्न करे छे के 'अत्थि णं भंते !
तीसे समाए भरहे वासे ढंसाइ वा मसगाइ वा जूआइ वा ल्लिक्खाइ वा' इत्यादि" के
बाहन्त ! ते काणमा ते भरतक्षेत्रमा दंश मशक मच्छर यूक जू लिक्खा लीथ ढिक्कुण मांके
अने पिशुक डोय छे ? जेना ज्वाणमा प्रभु कडे छे,

हे गौतम । "णो इण्ठे समट्टे" आ अर्थ समर्थ नथी जेटले के ते काणमा भरतक्षेत्रमा
ढांस, मच्छर वगेरे एवे डोयतां नथी, कारण के "ववगय ढंसमसकलि ०, इत्यादि" ते
काण ज्वाणे डोय छे के जेमा जे उपद्रवकारी एवे भरतक्षेत्रमा उत्पन्न ज्वा यतां नथी
इरी हवे गौतम स्वामी प्रभुने प्रश्न करे छे के "अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे

तीसे समाए भरहे वासे अहीइवा' हे भदन्त सन्ति खलु तस्यां समायां मरते वर्षे अहय इति वा अहयः सर्पाः 'अयगगाइवा' अजगरा इति वा अजगराः प्रसिद्धाः । भगवानाह 'हंता अत्थि' हन्त सन्ति अहयोजगराश्च 'णो चेव ण तेसि मणुयाण आवाह वा जाव' नो चैव खलु तेषां मनुजानाम् आवाधाम् ईपद्वाधां वा यावत्—यावत्पदेन व्यावाधां वा छविच्छेद वा उत्पादयन्ति इति संग्राह्यम् ततः व्यावाधां विशेषेण वाधांवा छविच्छेदं चर्मोत्पादनं वा उत्पादयन्ति जनयन्ति । अत्र हेतुवाक्यमाह 'पगइभइया णं ते वालगगणा पणत्ता' प्रकृति भद्रकाः खलु ते व्यालरुगणा प्रज्ञप्ताः कथिता इति ॥सू० ३१॥

मूलम्—अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे डिंवाइ वा डम-
राइ वा कलहाइ वा वोलाइ वा खाराइ वा चइराइ वा महाजुद्धाइ वा महा-
संगामाइ वा महासत्थपडणाइ वा महापुरिसपडणाइ वा महारुहिरणि-
वडणाइ वा ? गोयमा ! णो इणहे समट्टे ववगयवेरानुबंधाणं ते म-
णुआ पणत्ता । अत्थि णं भंते ! तीसे समाए भरहे वासे दुब्भू-
याणीई वा कुलरोगाइ वा गामरोगाइ वा मंडलरोगाइ वा पोट्टरोगा-
इ वा सीसवेणयाइ वा कण्णोइ अच्छिणह दंतवेयणाइ वा कासोइ वा
सासाइ वा सोसाइ वा दाहाइ वा अरिसाइ वा अजीरगाइ वा दओ-
दराइ वा पंडुरोगाइ वा भगंदराइ वा एगाहियोइ वा वेयाहियाइ वा
तेयाहियाइ वा चउत्थाहियाइ वा इंदग्गहाइ वा धणुग्गहाइ वा खंदग्ग-
हाइ वा कुमारग्गहाइ वा जक्खग्गहाइ वा भूयग्गहाइ वा मत्थयसूलाइ
वा हिययसूलाइ वा पोट्टसूलाइ वा कुच्छिसूलाइ वा जोणिसूलाइ

भरहे वासे अहीइ वा अयगराइ वा", हे भदन्त । उस आरे में भरत क्षेत्रमें क्या सर्प एवं अजगर होते हैं ? उत्तरमें प्रसुश्री कहते हैं "हंता, अत्थि णो चेव णं तेसि मणुयाण आवाह वा जाव पगइ भइयाणं ते वालगगणा प०" हां गौतम । उस काल में भरत क्षेत्र में सर्प और अजगर ये सब होते हैं परन्तु वे उन मनुष्यों को थोड़ा सा भी कष्ट नहीं देते हैं और न वे किसी को विशेष पीड़ा ही देते हैं, क्योंकि वे सब सर्प आदि स्वभावतः ही भद्र होते हैं ॥३१॥

हीइ वा, अयगराइ वा डे भदन्त ! ते आरायां भरतक्षेत्रमा शु सर्पं अने अजगरे। डोय छे अवाणमां प्रभु कडे छे: "हंता, अत्थि णो चेव णं तेसि मणुयाण आवाहवा जाव पगइभइया णं ते वालगगणा प० डो, गौतम ! ते कालमा भरतक्षेत्रमा सर्पं अने अज-
गर अने सर्पं एवे। डोय छे पद्यु ते एवे। माणुसेने सडेअ पद्यु कष्ट आपता नथी अने डोअने विशेषे कष्ट पद्यु आपता नथी कश्चु डे अने सर्पं सर्पं वगेरे स्वभावतः भद्र डोय छे ॥सू० ३१॥

गाममारीइ वा जाव सण्णिवेसमारोइ वा पाणिकखया जणक्खया कुलक्खया
वसणब्भयमणारिया ? गोयमा ! णो इण्हे समहे, ववगयरोगायंका णं
ते म या पणत्ता समणोउसो ! ॥सू० ३२॥

छाया-सन्ति खलु भदन्त ! तस्यां समाया भरते वर्षे डिम्बा इति वा डमरा इति वा कलहा
इति वा बोला इति वा क्षारा इति वा वैराणीति वा महायुद्धानीति वा महासंग्रामा इति वा
महाशस्त्रपतनानीति महापुरुषपतनानीति वा महारुधिरनिपतनानीति वा गौतम ! नो
अयमर्थः समर्थः व्यपगतवैरानुबन्धाः खलु ते मनुजाः प्रहृष्टाः । सन्ति खलु भदन्त !
तस्यां समायां भरते वर्षे दुर्भूतानीति वा कुलवरोगा इति वा ग्रामरोगा इति वा मण्डलरोगा
इति वा पोद्दरोगा इति वा शीर्षवेदनेति वा कर्णौष्ठाक्षिनखदन्तवेदनेति वा कास इति वा
श्वस इति वा शोष इति वा दाह इति वा अर्श इति वा अजोर्णमिति वा दकोद्दरम् इति
वा पाण्डुरोग इति वा भगन्दर इति वा पेकाहिक इति वा द्वैयाहिक इति वा त्रैयाहिक
इति वा चतुर्थाहिक इति वा इन्द्र ग्रह इति वा धनुर्ग्रह इति वा स्कन्दग्रह इति वा कुमार
ग्रह इति वा यक्षग्रह इति वा भूतग्रह इति वा मस्तकशूलमिति वा हृदय शूलमिति वा
पोडशूलमिति वा कुक्षिशूलमिति वा योनिशूलमिति वा ग्राममारिरिति वा यावत्संनिवेश-
मारिरिति वा प्राणिक्षया जनक्षयाः कुलक्षया व्यवसनभूता अनार्याः गौतम ! नो अयमर्थ
समर्थः व्यपगतरोगातङ्का खलु ते मनुजाः प्रहृष्टाः श्रमणायुष्मन् ॥सू० ३२॥

टीका-‘अस्थिणं’ इत्यादि ।

‘अस्थिणं मंते ! तीसे समाए भरहे वासे डिंबाइवा’ हे भदन्त ! सन्ति खलु तस्यां
समायां भरते वर्षे डिम्बा इति वा ? डिम्बाः=भयानि, ‘डमराइवा’ डमरा इति वा ?
डमराः=शस्त्रे बाह्याभ्यन्तरा उपद्रवाः, ‘कलहाइवा बोलाइवा खाराइवा वइराइवा महाजु-
द्धाइवा’ कलह बोल क्षार वैर महायुद्धनीतिवा ? तत्र कलहः=वाचिकः, बोलः=बहुजनानां
सम्मिलित आर्त्तध्वनिः, क्षारः=अन्योऽन्यमात्सर्यम् वैरं-शत्रुता असहनतयाऽन्योऽन्यं

“अस्थि ण मंते ! तीसे समाए भरहे वासे डिंबाइ वा डमराइ वा’ इत्यादि ।

टीकार्थ-‘तव गौतमत्वामी ने प्रसु से ऐसा पूछा है-हे भदन्त ! क्या उस सुषम सुषमा नाम के
आरे में इस भरत क्षेत्रमें डिम्ब उपद्रव होते हैं ? डमर-राष्ट्र में भीतरी उपद्रव और बाहिरि उपद्रव
होते हैं ? “कलहबोल खारवहर महाजुद्धाइ वा महासंगामाइ वा महासत्थ पडणाइ वा महापुरिस-
पडणाइ वा ?” कलह वायुद्ध होता है ? बोल अनेक मनुष्यो की समिलितरूप में आर्त्तध्वनि होती

‘अस्थि णं मंते ! तीसे समाए भरहे वासे डिंबाइ वा डमराइ वा’ इत्या० । सू० ३२॥

टीकार्थ-‘हवे गौतमे प्रभुने जे जतने प्रश्न क्योँ छे हे भदन्त ! शुं ते सुषमसुषमानामना
आरामा आ भरतक्षेत्रमा डिंभा-उपद्रवो — डोय छे ? डमरा-राष्ट्रमा अंहरा अंहर
उपद्रवो अने आहरी उपद्रवो डोय छे ? “ हबोल खारवहर महाजुद्धाइ वा महासंगामाइ
वा महा सत्थपडणाइ वा महापुरिसपडणाइ वा । ” कलह-वायुद्ध डोय छे आल-ध्वनि-
मनुष्येना जेकी साथे बाघाट [अति ध्वनि] डोय छे आर-परपर धर्माभाव डोय छे वैर

हिंस्यहिंसक भाव इति, महायुद्धं व्यूहनिरपेक्षो व्यवस्थारहितो महारणः, 'महासंगामाइवा' महासङ्ग्रामा इतिवा ? महासङ्ग्रामाः-चक्रव्यूहादि रचनाविशिष्ट-व्यवस्थासहिता महारणाः, 'महासत्थपडमाइवा' महाशस्त्रपतनानीतिवा ; महाशस्त्राणि-अत्र शस्त्रशब्देन अस्त्राणि ग्रहन्ते तेन महाशस्त्राणां पतनानि । अत्र अस्त्राणि दिव्यान्यस्त्राणि नागवाणादीनि, अति विस्मयजनक विचित्रशक्तियुक्तत्वादेतेषां महाशस्त्रत्वम् तेषु महाशस्त्रेषु । नागवाणा अधिज्ये धनुषि समारोप्य प्रक्षिप्ताः ज्वालामालाऽऽकुलिता असह्योल्का दण्डरूपा, सन्तः शत्रुशरीरे सम्यङ्नापमूर्त्तयो भूत्वा शत्रु शरीराणि पाशरूपतया निवध्नन्ति । वायुवाणाश्च प्रचण्डं वायुमुत्पाद्य शत्रून् धूल्यादिभिरन्धीकृत्य युद्धाक्षमान् कुर्वन्ति । अग्निवाणास्तु प्रचण्डाग्नि ज्वालावर्षणेन शत्रून् निर्दहन्ति । तामसवाणाः शत्रुपक्षे निविडमन्धकार मुत्पाद्य-

है । खार-आपस में ईर्ष्याभाव होता है । महायुद्ध व्यूह रचना से हीन एवं व्यवस्था से रहित महारण होते हैं । महासंग्राम चक्रव्यूह रचना से सहित एवं विशेषव्यवस्था से युक्त ऐसे बड़े युद्ध होते हैं । महाशस्त्रो का पतन होता है । यहा शस्त्र शब्द से अस्त्रों का ग्रहण हुआ है ये अस्त्र नाग वाण आदि दिव्य अस्त्ररूप से यहां प्रकट किये गये हैं, इन्हें जो महाशस्त्र शब्द से कहा गया है उसका कारण यह है कि ये अति विस्मय जनक विचित्र शक्ति से युक्त होते हैं इनमें जो नाग वाण होते हैं वे जब प्रत्यञ्चायुक्त धनुष पर आरोपित कर छोड़े जाते हैं तब उनमें से ज्वालाएँ निकलती हैं, लकीरके रूपमें आकाशसे घिरे हुए तेजसमूहसे ये युक्त हो जाते हैं और फिर शत्रु के शरीर में प्रविष्ट होकर ये नाग के रूप में बनकर उस शत्रु के शरीर को चारों ओर से जकड़ लेते हैं वायु वाण जो होते हैं वे प्रचण्ड वायु को उत्पन्न करके शत्रु को घूँसि आदि के द्वारा मन्धा बना कर उसे युद्ध करने में असमर्थ बना देते हैं, अग्नि वाण जो होते हैं वे प्रचण्ड अग्नि ज्वाला की वर्षा करते हैं और उससे शत्रु को दग्ध कर देते हैं, तामसवाण जो होते हैं

परस्पर असहनशील होवाधी हिंस्यहिंसक भाव डोय छै ? महायुद्ध व्यूह रचनाधी रहित अने व्यवस्था वगरतु महारण डोय छै ? महासंग्राम-चक्रव्यूह रचना सहित तेमज विशेष व्यवस्था साथे महायुद्धो डोय छै, महाशस्त्रोतु पतन डोय छै, अर्ही शस्त्र शब्दधी अस्त्रतु पक्षु अस्त्रु थयेल छै. जे शस्त्रो अर्ही नाग वाणु वगेरे दिव्य अस्त्रोना रुपमां प्रगट करवामां आब्यां छै जेमना भाटे जे महाशस्त्र शब्दोना प्रयोग करवामां आब्यो छै तेतुं कारणु आ प्रभाषे छै के जे ज्यो अद्भूत शक्तिस पन्न डोय छै जेमां जे नागवाणो छै ते ज्यारे प्रत्यया युक्त धनुष पर आरोपित करीने छोडवामां आवे छै त्यारे तेमा ज्वालाज्यो नीकणे छै बीडीनां रुपमां आकाशमांथी नीचे पडता तेज समूहोधी जे संपन्न डोय छै अने शत्रुना शरीरमां प्रविष्ट थधने जेज्यो नाग रुपे परिष्कृत थाथ छै अने तेना शरीरने त्यारे तरङ्गी आबद्ध करी दे छै जे वायुवाणु डोय छै ते प्रचण्ड वायु ने उत्पन्न करीने शत्रुने पूण-भारी वगेरेधी अध जनावीने तेने युद्ध करवामा असमर्थ जनावी दे छै. जे अग्नि वाणु डोय छै ते प्रचण्ड अग्नि ज्वालाणी वर्षा करे छै अने तेनाधी शत्रुने दग्ध करी नाणे

तान् शत्रून् किङ्कर्त्तव्यविमूढान् कुर्वन्ति । गरुड पर्वतादि महास्त्राप्यपि स्वस्वनामानुरूप-
कार्याणि कृत्वा शत्रुदले विघ्नमुत्पादयन्तीति बोध्यम् ।

उक्तं च- “चित्रश्रेणिक ! ते बाणा भवन्ति धनुराश्रिताः ।

उल्कारूपाश्च गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥१॥

क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशत्वमागताः । आमरा ह्यस्त्रमेदास्ते यथाचिन्तितमूर्त्तयः ॥२॥

‘महा पुरिस पडणाड वा’ महापुरुषपतनानीति वा-महापुरुषपतनानि-महापुरुषाः-
राजप्रभृतयः, तेषां पतनानि-युद्धादौ कालधर्मप्राप्तयः, ‘महारुहिरण्वडणाड वा’ महा-
रुधिरनिपतनानीति वा ?, महारुधिराणां-राजादिरुधिराणां निपतनानि-प्रवाहरूपेण वह-
नानि । भगवानाह-‘गौयमा ! णो इण्ठे सम्ठे’ हे गौतम ! नो अयमर्थः समर्थः, ‘वव-
गयवेराणुबंधाण ते मणुया’ यतस्ते खलु मनुजा व्यपगतवैरानुबन्धा-व्यपगतो-द्रीभूतो
वैरस्य शत्रुताया अनुबन्धः-सम्बन्धो येभ्यस्ते तथाभूताः ‘पणत्ता’ प्रज्ञप्ताः । पुनर्गौतम-
पृच्छति-‘अत्थि णं मंते ! तीसे समाए भरहे वासे हुब्भूयाणीइ वा’ हे भदन्त ! सन्ति

वे शत्रुपक्ष में गहन अन्धकार उत्पन्न करके शत्रुओं को किङ्कर्त्तव्य विमूढ़ बना देते हैं, इसी तरह
जो गरुडास्त्र एव पर्वतास्त्र होते हैं वे भी अपने अपने नामके अनुरूप कार्य करके शत्रुदल में
विघ्न बाधाओं को उपस्थित करते हैं उक्तं च —

चित्रं श्रेणिक ! ते बाण भवन्ति धनुराश्रिताः । उल्कारूपाश्च गर्जन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥१॥

क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशत्वमागताः । आमरा ह्यस्त्रमेदास्ते यथाचिन्तितमूर्त्तयः ॥२॥

महापुरुषो का पतन होता है ? राजा आदि जनो को यहां महापुरुष शब्द से कहा
गया है तथा च राजा आदि महापुरुषों को उस काल में भरतक्षेत्र में युद्ध के अवसर में मृत्यु
होती है ? महारुधिर का पात होता है ? प्रवाहरूप से रक्तपात होता है ? इस प्रकार के इन
प्रश्नों के उत्तर में प्रभु गौतम से कहते हैं हे गौतम ! “णो इण्ठे सम्ठे” यह अर्थ समर्थ नहीं
है क्यों कि “ववगयवेराणुबंधाण ते मणुया पणत्ता” उस काल के मनुष्य वैरभाव से रहित
होते हैं, अब गौतमस्वामी पुनः ऐसा पूछते हैं “अत्थिण मंते ! तांसे समाए भरहे वासे हुब्भू-

छे. जे ताभस बाणु डोय छे ते शत्रु पक्षमा प्रगाढ अंधकार उत्पन्न करीने शत्रुओने कि
कर्त्तव्य विमूढ बनावी भूके छे आ प्रभाणे जे गरुडास्त्र अने पर्वतास्त्र डोय छे ते पक्षु जे
तपोताना नामनी विशेषता मुख्य कार्य करीने शत्रुदलमा अनेक नतनी विघ्न-बाधाओ
उत्पन्न करे छे. उक्तं च:

चित्रं श्रेणिक ! ते बाणा भवन्ति धनुराश्रिताः । उल्कारूपाश्च गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥१॥

क्षणं बाणाः क्षणं दण्डाः क्षणं पाशत्वमागताः । आमरा ह्यस्त्र मेदास्ते यथाचिन्तित मूर्त्तयः ॥२॥

। महापुरुषो पतन डोय छे ? राजा वगेरे दोकेने अही महापुरुष शब्द वडे स जोधित
करवाभा आओ छे. तेअ राजा वगेरे महापुरुषो ते क्षणमा भरततीर्थमा युद्धनासभ्ये
मृत्यु थाय छे ? महारक्तपात थाय छे ? प्रवाहरूपमा रक्तपात थाय छे ? आप्रभाणे जे प्रश्ने-
ना उत्तरमा प्रभु गौतमने कडे छे-हे गौतम ! “णो इण्ठे सम्ठे” आ अर्थ समर्थ नथी
केअके “ववगय वेराणुबंधा णं ते मणुया पणत्ता” ते क्षणमा मनुष्ये वैरभावथी रहित
डोय छे हेवे गौतम स्वामी करी आ नतने प्रश्न करे छे के “अत्थि णं मंते ! तीसे

खलु तस्यां समायां भरते वपे ? दुर्भूतानीति वा? दुर्भूतानी=दुष्टानि भूतानि=प्राणिनः,
धान्यादि हानिकारिणः शलभादयः, इत्य इति भावः,
इत्यथ—

अति वृष्टिरनावृष्टिर्मृषिकाः शलभाः शुकाः । अत्यासन्नश्च राजानः पडेता इत्य स्मृता ॥१॥
तथा - 'कुलरोगाइवा' कुलरोगा इतिवा ? कुलरोगाः=कुलपरम्परयाऽऽगता रोगाः,
'गामरोगाइवा' ग्रामरोगा इतिवा ? ग्रामरोगाः=ग्रामन्यापिनो रोगाः-विषूचिकादयः, मंडल
रोगाइवा' मंडलरोगा इतिवा ? मण्डलं=ग्रामसमूहस्तद्व्यापिनो रोगाः-विषूचिकादयः,
'पोट्टरोगाइवा' पोट्टरोगा इति वा ? पोट्टरोगाः-उदररोगाः, 'सीसवेयणाइवा' शीर्षवेद-
नेतिवा ? शीर्षवेदना-मस्तकपीडा, 'कण्णोद्वअच्छिणहदंतवेयणाइवा' कर्णौष्ठाक्षिनखदन्त-
वेदना इतिवा ? कर्णौष्ठाक्षिनखदन्ता प्रसिद्धाः, तत्र वेदनाः-पीडाः, 'कासाइवा' कास
इतिवा ? कासः-कासरोगः 'खांसी' इति भाषा प्रसिद्धः, 'सासाइवा' श्वास इति वा ?
श्वासः-श्वासरोगः, 'सोसाइ वा' शोष इति वा ? शोषः-क्षयरोगः, 'दाहाइ वा' दाह
इति वा ? दाहः-दाहरोगः, 'अरिसाइ वा' अर्श इति वा ? अर्शो-गुदाङ्कुरः, 'ववासीर,
मसा' इति भाषा प्रसिद्धः, 'अजीरगाइ वा' अजीर्णमिति वा ? अजीर्णम्-अजीर्णरोगः,
'दओदराइ वा' दकोदर मिति वा ? दकोदरं-जलोदरम् 'पंडुरोगाइ वा' पाण्डुरोग इति
वा ? पाण्डुरोगः प्रसिद्धः, 'भगदराइ वा' भगन्दर इति वा ? भगन्दरः प्रसिद्धः, 'एगाहि-

आणि वा कुलरोगाइ वा, गामरोगाइ वा, मंडल रोगाइ पोट्टरोगाइ वा, सीसवेयणाइ वा, कण्णोद्व
अच्छिणहदंत वेयणाइ वा, कासाइ वा सासाइ वा सोसाइ वा, हे भद्रन्त ! उस काल में भरत-
क्षेत्र में दुष्टभूत धान्यादि को हानि पहुँचाने वाले शलभ आदि रूप इतियां होते हैं ? उक्तं च—
"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मृषिकाः शलभा शुकाः । अत्यासन्नाश्च राजान पडेता इत्यः स्मृता" ॥१॥

कुलरोग-कुलपरम्परा से आये हुए रोग है ? ग्रामरोग ग्रामन्यापी रोग विषूचिका आदि हैं
मण्डलरोग अनेक ग्रामों में व्यापीरोग वगैरह होते हैं ? पोट्टरोग उदरन्याधि, शीर्षवेदना, ओष्ठ
वेदना, अक्षिवेदना, नखवेदना, एवं दन्तवेदना, ये सब वेदनाएँ होती हैं । लोगो में खासी होती
है श्वास रोग होता है क्षयरोग होता है "दाहाइ वा अरिसाइ वा, अजीरगाइ वा, दओदरा-
इवा पंडुरोगाइवा, भगंदराइवा, एगाहिआइ वा, वेआहिआइ वा, तेआहियाइ वा, चउरथ-

समाप भरहे वासे दुर्भूआणि वा कुलरोगाइ वा रोगाइवा, मंडलरोगाइवा, पोट्ट
रोगाइवा, सीसवेयणाइ वा, कण्णोद्व अच्छिणहदंत वेयणाइवा कासाइ वा सा वा सो
साइ वा' हे भद्रन्त ! ते क्षणे भरतक्षेत्र भां दुष्टभूतो-धान्यादिने नुकसान पडोआठनारा
शलभ वगैरे इतिआ-डोय छे ? उक्तं चः

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मृषिकाः शलभाः शुकाः । अत्यासन्नाश्च राजान पडेता इत्यः स्मृताः ॥१॥
कुलरोगा-कुलपरंपरागत रोग-डोय छे ग्रामरोग ग्रामन्यापीरोग-विषूचिका वगैरे
डोय छे मंडलरोग अनेक ग्रामों में व्यापीरोग थाय तेवा टोदर वगैरे रोग-डोय छे, पोट्ट
रोग-उदर व्याधि शीर्ष वेदना कण्ण वेदना ओष्ठ वेदना अस्थि वेदना नखवेदना अने
दन्तवेदना जे अर्षवेदनाओ डोय छे ? दोओने उधरस डोय छे ? श्वासरोग डोय छे, क्षय रोग
डोय छे, "दाहाइ वा अरिसाइ वा अजीरगाइ वा, दओदराइ वा पंडुरोगाइ वा भगंद-

याइ वा' एकाहिक इति वा ? एकाहिकः—एकदिवसान्तरेण जायमानो ज्वरः, 'वेया-
हियाइ वा' द्वैयाहिक इति वा ? द्वैयाहिकः—द्वि दिवसान्तरेण जायमानो ज्वरः, 'तेयाहिया
इ वा' त्रैयाहिक इति वा ? त्रैयाहिकः—दिवसत्रयान्तरेण जायमानो ज्वरः, 'चउत्थाहि-
याइवा' चतुर्थाहिक इति वा ? चतुर्थाहिकः—चतुर्थ दिवसं व्यवधाय जायमानो ज्वरः,
'इंदग्गहाइवा' इन्द्रग्रह इति वा ? इन्द्रग्रहः—इन्द्रावेशः, 'धणुग्गहाइवा' धनुर्ग्रहइति वा ध-
नुर्ग्रहः—वातविशेषः, 'खदग्गहाइवा' स्कन्दग्रह इति वा ? स्कन्दग्रहः—स्कन्दावेश, 'कुमार-
ग्गहाइवा' कुमार ग्रह इति वा ? कुमारग्रहः—कुमार नामक यक्षविशेषावेशः, 'जक्खग्गहा-
इवा' यक्षग्रह इति वा ? यक्षग्रहः—यक्षावेशः, 'भूयग्गहाइवा' भूतग्रह इति वा ? भूतग्रहः—
भूतावेश, एते इन्द्रग्रहादय उन्मादहेतवो बोध्या इति, तथा 'मत्थयसूलाइवा' मस्तक-
शूलमिति वा ? मस्तकशूलम्—मस्तके जायमानः शूल नामको रोगविशेषः, 'हियसूला-
इवा' हृदयशूलम् इति वा ? हृदयशूलं—हृदये जायमानः शूलरोगः. 'पोट्टसूलाइवा' पोट्ट-
शूल मिति वा ? पोट्टशूलम्—उदरे जायमान शूलरोगः, 'कुच्छिसूलाइवा' कुक्षिशूल मिति-

हिआइ वा " दाह्रोग होता है अशरीरोग-बन्नासीर होता है अजीर्ण होता है ? जलोदर होता है ?
पाण्डुरोग होता है ? भगन्दर होना है ? एक दिन छोडकर आनेवाला ज्वर होता है ? दो दिन छोड
कर आने वाला ज्वर होता है ? तीन दिन छोडकर आने वाला ज्वर होता है ? चार दिनों की
छोडकर आने वाला ज्वर होता है 'इंदग्गहाइ वा, धणुग्गहाइ वा खदग्गहाइ वा, कुमारग्गहाइ
वा, जक्खग्गहाइ वा, भूयग्गहाइ वा, मत्थयसूलाइ वा, हियसूलाइ वा, पोट्टसूलाइ वा, कुच्छि-
सूलाइ वा, जोणिसूलाइ वा, गाममारीइ वा, जाव सण्णिवेसमारीइ वा, पाणिकखया जणकखया
कुलकखया, वसणभूमयमणारिया" इन्द्रग्रह होता है ? धनुर्ग्रह होता है ? वातविशेष व्याधि होती है ?
स्कन्धग्रह होता है ? कुमारग्रह होता है ? यक्षग्रह होता है ? भूतग्रह होता है ? ये सब इन्द्रग्रह आदि उन्माद
के हेतु होते है, तथा मस्तकशूल होता है ? हृदयशूल होता है ? पोट्टशूल उदरशूल होता है, कुक्षि-

राइ वा पग्गहिआइ वा वेआहिआइ वा तेआहिआइ वा चउत्थाहिआइ वा" हाइ
रोग होय छे ? अशरीरोग होय छे ? अटठेके डरसुना रोग होय छे ? अणुणु होय छे ? अणो
डर होय छे ? पाणुरोग होय छे ? भगंतर होय छे ? अेक दिवस वयमां भूडी डर ने आवनार
अवर विशेष अटठे के अेकातरिये ताव डोकेने आवे छे, ? अे दिवस वयमां भूडीने आव
नार ताव डोकेने आवे छे, ? त्रय दिवस वयमां भूडीने आवनार ताव डोकेने आवे छे ? आर
दिवस वयमांभूडीने आवनार ताव डोकेने आवे छे ? 'इंदग्गहाइवा, धणुग्गहाइवा खदग्गहाइ
वा कुमारग्गहाइ वा जक्खग्गहाइ वा, भूयग्गहाइ वा मत्थयसूलाइवा हियसूलाइ वा
पोट्टसूलाइवा कुच्छिसूलाइवा जोणिसूलाइवा गाममारीइ वा जाव सण्णिवेसम-
रोइ वा पाणिकखया जणकखया कुलकखया वसणभूमयमणारिया ? इन्द्रग्रह होय छे ?
धनुर्ग्रह होय छे ? वात विशेष व्याधि होय छे ? स्कन्दग्रह होय छे ? कुमार ग्रह होय छे ? यक्ष
ग्रह होय छे भूतग्रह होय छे अे सर्व इन्द्रग्रह वगेरे उन्मादना हेतु होय छे ? तेभअ ते
ते कणना डोकेने मस्तक शूल होय छे ? हृदय शूल होय छे ? पोट्टशूल-उदरशूल होय

वा , कुभे गूळं - कुषी जायमानः शूलरोग , 'जाणिसूळड वा' योनि शूलमिति वा ! , यो-
निशूलं-योनी जायमानः शूलरोगः , 'गाममारीडवा' ग्राममारि रिति वा ? , ग्राममारिः-रो-
गविशेषेण ग्रामे बहूनां मरणम् , 'जाव' यावत्-यावत्पदेन-आकरमारि रिति वा ? , नगर-
मारीरिति वा ? , खेटमारि रिति वा ? , कर्बट मारि रिति वा ? मडम्ब मारिरिति वा ? , द्रो-
णमुख मारिरिति वा ? , पत्तनमारिरिति वा ? , आश्रममारिरिति वा ? , संवाहमारिरिति वा ? ,
इति संग्रहः , तथा 'सण्णिवेसमारी डवा' मंनिवेशमारिरिति वा ? , आकरादि सन्निवेशान्त
शब्दानामर्थाः पूर्वमुक्ताः , तेषु आकरादि सन्निवेशान्तेषु स्थानेषु मारिः-रोगविशेषेण
बहुनो मरणमित्यर्थः , तथा 'वमणब्भूयं' व्यसनभूताः-जनानामापद्रुताः , 'अणारिया' अ-
नार्याः-पापभूताः 'पाणिकखया' प्राणिकक्षयाः-गवादि प्राणिनां विनाशाः , 'जणवखया'
जनक्षयाः-मनुष्याणां विनाशाः , 'कुलकखया' कुलक्षयाः-वंशविनाशाश्च किं भवन्ति ? .
'भगवानाह-गोयमा ! णो इण्ढे समट्टे' हे गौतम ! नो अयमर्थः समर्थः , यतो 'समणा-
उसो !' हे आयुष्मान् श्रमण ! 'ते ण मणुया' ते खलु मनुजाः 'ववगयरोगायका' व्यप-
गतरोगातङ्काः-व्यपगताः-दूरीभूता रोगातङ्काः-पोडशविधा रोगा आतङ्काश्च येभ्यस्ते
तथाभूताः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता इति ॥३२॥

शूल होता है, योनिशूल होता है, रोगविशेष से ग्राम में अनेक जीवों का मरना होता है, यहाँ या-
वत् शब्द से "आकरमारि, नगरमारि, खेटमारि, कर्बटमारि, मडम्बमारि, द्रोणमुखमारि, पत्तन,
मारि, आश्रममारि, संवाहमारि" इन पदों का संग्रह हुआ है, तथा सन्निवेशमारि होती है ?
आकर से लेकर सन्निवेश पद के शब्दों का अर्थ पहिले कहा जा चुका है इन आकर आदि
से लेकर सन्निवेशतक के स्थानों में जो रोगविशेष के द्वारा अनेक जीवों को मरना है वह तत्तत्
मारि है तथा प्राणिकक्षय होता है ? गाय आदि पशुओं का बोगारी से विनाश होता है ? जनक्षय मनु-
ष्यों का किसी बोगारी आदि द्वारा अकाल मरण होता है ? कुलक्षय वंशविनाश होता है ? इसके
उत्तर में प्रभु कहते हैं "गोयमा णो इण्ढे समट्टे" हे गौतम यह अर्थ समर्थ नहीं है क्योंकि—
"ववगय रोगायका णं ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो" हे श्रमण आयुष्मन् ! १६ प्रकार के

छे ! कुक्षिशूल डोय छे ? योनिशूल डोय छे ? रोग विशेषधी आभमा धण्णां एवेत्तुं
भरषु थाय छे ? अडो' यावत् पदधी ' आकरमारि, नगरमारि, खेटमारि, कर्बटमारि,
मडम्बमारि, द्रोणमुखमारि पत्तनमारि, आश्रममारि संवाहमारि" ओ पढोने। संग्रह थयेव
छे तेमज सन्निवेश मारि डोय छे ? आकरधी सन्निवेश पद सुधीना सव पढोने। अर्थ
पडेव। स्पष्ट करवामा आवेव छे ओ आकरधी सन्निवेश सुधीना स्थानोमा ने रोग विशेषे
वडे धण्णां एवेत्तुं भरषु थाय छे , ते तत् तत् मारिना प्रभावधी ज थाय छे तेमज प्रा-
णिकक्षय थाय छे—गाय वगेरे पशुओने। माहगीधी विनाश थाय छे ? जनक्षय-माणुसोने।
कोई माहगी वगेरे वडे अकाल भरषु थाय छे ? कुलक्षय-वंश विनाश थाय छे ? ओना
ववाभमां प्रभु कडे छे "गोयमा ! णो इण्ढे समट्टे" हे गौतम ! आ अर्थ समर्थ नहीं है किंभडे—
'ववगय रोगायका णं ते मणुया पण्णत्ता समणा उसो" हे श्रमण आयुष्मन् ! सोण

सम्प्रति तेषां मनुजानां भवस्थिति शरीरोच्चत्वादि विषयमाह-

मूलम्- तीसे तं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं केवइयं कालं ठिई पणत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलि ओवमाइं उक्को-
सेणं तिण्णि पलि ओवमाइं । तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं
सरीरा केवइयं उच्चत्तेणं पणत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि
गाउयाइं उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं । तेणं भंते ! मणुया किं संघयणी
पणत्ता ? गोयमा ! वइरोसभणाराय संघयणी पणत्ता । तेसि णं भंते !
मणुयाणं सरीरा किं संठिया पणत्ता ? गोयमा ! समचउरंसं संठाणसंठिया
पणत्ता तेसि णं मणुयाणं वेळुप्पण्णा पिट्टकरंडयसया पणत्ता समणा
उसो ! तेणं भंते ! मणुया कोलमासे कालं किच्चा कहि गच्छंति कहि
उववज्जंति गोयमा ! छम्मासावसेसाउया जुयलगं पसवंति, एगूणपण्णं
राइंदियाइं सारक्खंति संगोवेति सारक्खित्ता संगोवेत्ता कासित्ता छीइत्ता
जंभाइत्ता अक्किट्ठा अव्वहिया अपरियाविया कालमासे कालं किच्चा
देवलोएसु उववज्जंति, देवलोयपरिगहाणं ते मणुया पणत्ता । तीसे णं
भंते ! समाए भरहे वासे कइविहा मणुस्सा अणुसज्जित्था ? गोयमा !
छव्विहा पणत्ता, तं जहा पम्हगंधा १ मियगंधा २ अममां ३ तेयतली
४ सहा ५ सणिचारी ६ ॥सू० ३३॥

छाया-तस्यां खलु भदन्त ! समायां भरते वर्षे मनुजानां कियन्तं कालं स्थितिं प्रहसताः ?
गौतम ! जघन्येन देशोनानि त्रीणि पत्थोपमानि, उत्कर्षेण त्रीणि पत्थोपमानि । तस्यां
खलु भदन्त ! समायां भरते वर्षे मनुजानां शरीराणि कियन्ति उच्चत्वेन प्रहसन्ति ?,
गौतम ! जघन्येन देशोनानि त्रीणि गव्यूतानि, उत्कर्षेण त्रीणि गव्यूतानि । ते खलु भदन्त !
मनुजाः किं संहनिनः प्रहसन्ताः ? गौतम ! वज्रत्रहसमनाराचसंहनिनः प्रहसताः । तेषां खलु
भदन्त ! मनुजानां शरीराणि किं संस्थितानि प्रहसन्तानि ? गौतम ! समचतुरस्रसंस्थान
संस्थितानि प्रहसन्तानि । तेषां खलु मनुजानां द्वे षट् पञ्चाशत् पृष्ठकरण्डकशते प्रहसन्ते

रोगो से और आतङ्को से ये सब रहित होते है अर्थात् रोग और आतङ्क सदा इनसे दूर रहा
करते है ऐसा आगम का कथन है ॥ ३२ ॥

प्रकारना रोगो अने आतङ्कोथी ते काणना दोको विडीन होय छे. ओटवे के सहा रोगो
अने आतङ्को अभनाथी इर रहे छे ओवु आगमनु कथन छे ॥सू० ३३॥

श्रमणायुष्मन् । ते खलु भवन्त ! मनुजाः कालमासे कालं कृत्वा न्व गच्छन्ति ! क्व उत्पद्यन्ते ? गौतम ! पण्मात्नावशेषायुषो युगलक प्रतुद्यते एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानो संरक्षन्ति संगोपयन्ति, सरक्ष्य संगोप्य कासित्वा श्रुत्वा जृम्भित्वा अफ्लिष्टा अव्यथिता अपरितापिता कालमासे कालं कृत्वा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते, देवलोकरपरिग्रहा खलु ते मनुजाः प्रवृत्ताः । तस्याः खलु भवन्त ! समायां भरते वर्षे कतिविधा मनुष्याः अन्वप-
जन् ? गौतम ! पट्टविधा प्रवृत्ता, तद्यथा पद्मगन्धा १ नृगगन्धाः २ अममा ३ तेजस्त-
लिनः ४ सहा ५ शनैश्चारिणः ६ ॥ सू० ३३ ॥

टीका—‘तीसे णं’ इत्यादि ।

‘तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता’ हे भदन्त ! तस्यां खलु समाया भरते वर्षे मनुजानां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ? भगवानाह—‘गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं’ हे गौतम ! जघन्येन देशोनानि त्रीणि पल्योपमानि, ‘उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं’ उत्कर्षेण च त्रीणि पल्योपमानि स्थितिस्तेषां मनुजानां प्रज्ञप्ता । अत्र ‘देशोनानि’ इति विशेषणं युगलिक स्त्रियमाश्रित्य बोध्यम् । देशोनता च पल्योपमासंख्येयभागन्यूनतया बोध्या । अथ शरीरावगाहनाविषये पृच्छति—‘तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं सरीरा

‘तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता’ इत्यादि ।

टीकाथ—‘तीसे णं भंते ! समाए भरहेवासे मणुयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता’ इस सूत्र द्वारा गौतमने प्रभु से ऐसा पूछा है—हे भदन्त ! उससुषमसुषमाकाल मे भरतक्षेत्र मे मनुष्यों की स्थिति कितने काल की होती है इसके उत्तर मे प्रभु कहते है—‘गोयमा जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलि ओवमाइं उक्कोसेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं’ हे गौतम उस सुषमसुषमाकाल के समय में भरतक्षेत्र के मनुष्यों की आयु जघन्य कुछ कम तीन पल्योपम की होती है और उत्कृष्ट कुछ कम तीन पल्योपम की होती है यहा कुछ कम जो तीन पल्योपम की आयु कही गई है वह युग-
लिक स्त्रियों की आयु की अपेक्षा लेकर कही गई है तथा पल्योपम के असख्यातवें भाग से जो हीनता है वही यहा कुछ कम के स्थान पर गृहीत हुई है अब गौतम शरीरावगाहना के सम्बन्ध

‘तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता’—इत्यादि सूत्र ३३ ॥

टीकाथ—आ सूत्र पडे गौतमने प्रभुने आजातने प्रश्न किये छे के-हे भदन्त ! ते सुषम सुषमा काणमा भरत क्षेत्रमा मनुष्येनी स्थिति केटला काणनी डोय छे ? तेना ज्वाअमा प्रभु कडे छे के-गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं तिण्णि पलिओवमाइं उक्कोसेणं-देसूणाइं तिण्णि पलि ओवमाइं हे गौतम ते सुषम सुषमा काणमा समयमा भरत क्षेत्रमा मनुष्येनु आयु जघन्य-कं’छक स्वल्प त्रषु पल्योपम केटलु’ डोय छे अने उत्कृष्टथी कं’छक कम त्रषु पल्योपम केटलु डोय छे अही ने कं’छक कम त्रषु पल्योपम केटलु आयु उडेवामा आवेल छे, ते युगलिक स्त्रियोना आयुनी अपेक्षाओ कडेवामा आवेल छे तेमअ पल्योपमना असख्यातमा भागथी ने हीनता छे ते अही कं’छक कमना स्थाने गृहीत थयेल छे हेवे गौतम शरीरावगाह

केवड्यं' हे भदन्त ! तस्यां खलु समायां भरते वर्षे मनुजानां शरीराणि क्रियन्ति=किं प्रमाणानि 'उच्चत्तेणं पण्णत्ता' उच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि ?, भगवानाह—'गोयमा ! जहण्णेणं देसुणाइं तिण्णि गाउयाइं' हे गौतम ! तेषां मनुप्याणां शरीराणि जघन्येन देशोनानि त्रीणि गव्यूतानि, 'उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं' उत्कर्षेण च त्रीणि गव्यूतानि उच्चत्व-माश्रित्य विज्ञेयानि । अत्रापि 'देशोनानि' इति विशेषणं युगलिकस्त्रियमाश्रित्य बोध्यम् । यद्यपि 'छ धणुसमूसियाओ' इति पूर्वमुक्तं, तेनैवावगाहना प्रतीता, तथापि जघन्योत्कृष्टता सूचनार्थं पुनरवगाहना सूत्रमुक्तमिति बोध्यम् । अथ संहननविषये पृच्छति—'ते ण भंते ! मणुया किं संघयणीपण्णत्ता' हे भदन्त । ते खलु मनुजाः किं सहननः—किं च तत् संहननं चेति किं सहनन, तदस्त्येपामिति किं संहनननः—किं सहननविशिष्टाः प्रज्ञप्ता ?, भगवानाह—'गोयमा ! वड्रोसभणाराय सघयणी पण्णत्ता' हे गौतम ! ते मनुजाः वज्र-ऋषभनाराचसंहननः प्रज्ञप्ताः । सम्प्रति संस्थानविषये पृच्छति—'तेसि णं भंते ! मणुयाणं सरीरा किं सठिया पण्णत्ता' हे भदन्त ! तेषां खलु मनुजानां शरीराणि किं संस्थितानि=किमाकाराणि प्रज्ञप्तानि ? । भगवानाह—'गोयमा ! समचउरंससंठाणसठिया

में प्रभु से पूछते हैं—'तोसे ण समाए भरहे वासे मणुयाण सरीरा केवड्य उच्चत्तेणं पण्णत्ता' हे भदन्त उस काल में भ्रतक्षेत्र में मनुष्यो के शरीर ऊचाई में कितने बडे थे ? उत्तर मे प्रभु कहते है "गोयमा जहन्नेणं तिण्णि गाउयाइं उक्कोसेण तिण्णि गाउयाइ" हे गौतम उस काल मे भरत क्षेत्र में मनुष्यो के शरीर जघन्य से और उत्कृष्ट से तीनकोश के थे । यहां पर भोजो उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना बतलाई गई है वह युगलिक स्त्रियो की अपेक्षा से ही बताई गई है "तेणं भंते मणुया किं सघयणी पण्णत्ता" हे भदन्त वे मनुष्य किस सहनन वाले होते कहे गये है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं "गोयमा वड्रोसभणाराय सघयणी पण्णत्ता" हे गौतम । वे मनुष्य वज्रऋषभनाराच सहनन वाले होते कहे गये है । "तेसि णं भंते ! मणुयाण सरीरा किं सठिया पण्णत्ता" हे भदन्त । उन मनुष्य के शरीर किस संस्थान वाले कहे गये है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते है "गोयमा ! समचउरंससंठाण सठिया" हे गौतम । उनका शरीर

ना विषे प्रभुने प्रश्न करे छे के 'तोसे णं भंते समाए भरहे वासे मणुयाणं सरीरा केवड्य उच्चत्तेणं पण्णत्ता' हे भदन्त ! ते कालमा भरत क्षेत्रमा भाषुसे शरीरनी जियथं भा केटवा दाणा इता ? उत्तरमा प्रभु कडे छे के - 'जहन्नेण तिण्णि गाउयाइ उक्कोसेण तिण्णि गाउयाइ हे गौतम ते काल मा भरत क्षेत्रमा भाषुसे जघन्य अने उत्कृष्टनी अपेक्षाअये त्रयु गाठि नेटवा इता. अही' जे उत्कृष्ट शरीरनी अवगाहना रूपमे करवाभा आवी छे ते युगलिक स्त्रीअनी अपेक्षाअये रूपमे करवाभा आवी छे, "तेणं भंते मणुया किं सघयणी पण्णत्ता ?" हे भदन्त ते मनुष्यो कथं जतना संहननवाणा होथ छे जेना जवाण मा प्रभु कडे छे के 'गोयमा ! वड्रोसभणाराय सघयणी पण्णत्ता हे गौतम । ते मनुष्यो वज्र ऋषभ नाराच संहननवाणा होथ छे 'तेसि णं भंते मणुयाणं सरीरा किं सठिया पण्णत्ता' हे भदन्त ! ते मनुष्योना शरीर कथं जतना संस्थानवाणा छे ? जेना

પણ્ણત્તા' હે ગૌતમ ! તે મનુજાઃ સમચતુરસ્રસસ્થાનસંસ્થિતાઃ—સમચતુરસ્ર=તુલ્યારોહપરિ-
 ણાહ, તત્ત્વ, સસ્થાન સમચતુરસ્રસસ્થાનં તેન સંસ્થિતાઃ । અથ પૃષ્ઠકરણ્ડક સંખ્યા-
 વિપયે પૃચ્છતિ—'તેસિ ણં' ડત્યાદિ । 'તેસિ ણં મણુયાણં વેછપ્પણા પિટ્ઠકરહયસયા' તેણં
 મનુજાનાં દ્વે પદ્ પચ્ચાશત્ પૃષ્ઠકરણ્ડકશતે=પદ્ પચ્ચાશદધિકા દ્વિગતસંખ્યકપૃષ્ઠકરણ્ડ-
 કાઃ 'પણ્ણત્તા' પ્રજ્ઞપ્તે । અત્ર સંહનનસંસ્થાપૃષ્ઠકરણ્ડકવિપયાણિ સૂત્રાણિ પૂર્વમુક્તાનિ ત-
 થાપ્યેણં પુનરુપાદાન તેણં સર્વેણા સંહનનાદિકં સમાન ભવતીતિ સ્વચનાયેતિ । પુનર્ગૌત-
 મસ્વામીપૃચ્છતિ—'તે ણં મતે ! મણુયા કાલમાસે' હે મદન્ત ! તે સ્વલુ મનુજાઃ કાલ-
 માસે મરણસમયે 'કાલ કિચ્ચા' કાલં કૃત્વા=મૃત્વા 'કહિં ગચ્છંતિ' ક્વ ગચ્છન્તિ=
 કસ્મિન્ લોકે પ્રયાન્તિ ? 'કહિ ઉવવજ્જંતિ' ક્વ ઉત્પદ્ધન્તે ? ભગવાનાહ—'ગોયમા !
 છમ્માસાવસેસાડયા' હે ગૌતમ ! પ્પમાસાવગેપાયુપ—પ્પમાસાવગેપં=પ્પમાસાવશિષ્ટમ્
 આયુર્યેણં તે તથાભૂતા કાલધર્મપ્રાપ્તૌ અવશિષ્ટપ્પમાસાઃ વિહિતપરભવાયુર્વન્ધાઃ સન્તસ્તે
 મનુજાઃ યથાસમય 'જુયલ્લં' યુગલક=યુગ્મ 'પસવતિ' પ્રમુવતે=જનયન્તિ । તદ્ યુગલમ્
 'પ્પગૂણપણ્ણ રાડંદિયાડં' ઇકોનપચ્ચાશદ્ રાત્રિન્દિવમ્=અહોરાત્રાન્ 'સારવલ્લંતિ' સંરક્ષન્તિ=

સમચતુરસ્ર સસ્થાન વાલા કહા ગયા હૈ વરાવર આરોહ ઓર પરિણાહ જિસકા હોતા હૈ ઉસકા
 નામ સમચતુરસ્ર સસ્થાન હૈ, "તેસિ ણ મણુઆણ વે છપ્પણા પિટ્ઠકરહયસયા પ્પણ્ણત્તા સમણા
 ડસો" હે શ્રમણ આયુષ્મન્ ! ડનકે પૃષ્ઠ કરણ્ડક ૨૫૬ હોતે હૈ, યચ્ચપિ યહ કથન પીછે ક્રિયા જા
 ચુકા હૈ, પરન્તુ ફિર મો જો યહા પર દુહ્ગયા ગયા હૈ ઉસકા કારણ ડન સબકા સહનનાદિ
 સવ સમાન હોતા હૈ ઇસ બાતકો સ્ચિત કરતા હૈ "તેણ મતે ! મણુયા કાલમાસે કાલ કિચ્ચા કહિં
 ગચ્છંતિ, કહિં ઉવવજ્જનિ" હે મદન્ત ! યે મનુષ્ય સમય પર મર કરકે કહા જાતે હૈ ? કહા ઉત્પન્ન
 હોતે હૈ ? ઉત્તર મેં પ્રમુ કહતે હૈ "ગોયમા ! છમ્માસાવસેસાડયા જુયલ્લયં પસવંતિ" હે ગૌતમ !
 જબ ડનકો આયુ છ માસ કી બાકી રહતો હૈ તબ પરભવ કો આયુ કા બન્ધ કરતે હૈ ઓર
 યુગલિક કો ઉત્પન્ન કરતે હૈ ફિર ઉસકો ઉત્પત્તિ કે ત્વાદ યે ઉસે યુગલિક કી "પ્પગૂણપણ્ણં

જનામ્મા પ્રમુ કહે છે કે 'ગોયમા સમચતુરસ્રસસ્થાન સંસ્થિતા હે ગૌતમ તેમજુ શરીર સ
 મચતુરસ્રસસ્થાનવાણુ કહેવામા આંધુ છે બરાબર આરોહ અને પરિણાહ જેમજુ
 હે ય છે તેણું નામ સમચતુરસ્ર સસ્થાન છે, 'તેસિણ મણુઆણ વેછપ્પણા પિટ્ઠ કરહય
 સયા પ્પણ્ણત્તા સમણાડસો' હે શ્રમણ આયુષ્મન્ ! તેમના પૃષ્ઠ કરહકો ૨૫૬ હોય છે જે કે
 આ જાતજુ કથન પહેલાં કરવામા આવેલ છે, પણ છતાંજે અહીં જે બીજી વખત કહેવામા
 આંધુ છે તેણું કારણ આ પ્રમાણે છે કે એમજુ સહનન વગેરે ખંધુ સમાન હોય છે. આ
 વાતને સ્ચિત કરવા માટે જ અહીં ઉપયુક્તકથનની બીજી વખત આવૃત્તિ કરવામા આવી
 છે 'તેણ મતે મણુયા કાલમાસે કાલ કિચ્ચા કહિં ગચ્છંતિ, કહિં ઉવવજ્જંતિ' હે મદન્ત
 એ મનુષ્યો યથા સમયે મૃત્યુ પ્રાપ્ત કરીને ક્યા બધ છે ક્યા ઉત્પન્ન થાય છે ? ઉત્તરમા પ્રમુ
 કહે છે કે 'ગોયમા છમ્માસાવસેસાડયા જુયલ્લયં પસવંતિ' હે ગૌતમ જ્યારે એમજુ આયુ છ
 માસ બેટલું બાકી રહે છે ત્યારે એ પરભવના આયુને બન્ધ કરે છે અને યુગલિકને ઉ-
 ત્પન્ન કરે છે યુગલિકની ઉત્પત્તિ પછી એજે યુગલિકજુ 'પ્પગૂણપણ્ણં રાડંદિયાડં સાર-

उचितोपचारादिना पालयन्ति, 'संगोवेति' सगोपयन्ति=अनाभोगेन हन्तस्त्वल्नादिभ्यः
सम्यक् रक्षन्ति, इत्थं 'सारस्वत्ता संगोवेत्ता' रक्ष्य सगोप्य च अन्तसमये 'कामित्ता'
कासित्वा=कासं कृत्वा, 'छोइत्ता' श्रुत्वा-छिकां कृत्वा, 'जभाइत्ता' जृम्भित्वा=जृम्भां कृत्वा
'अक्किट्टा' अक्किट्टाः=शारीरिरुक्लेगवर्जिताः, 'अव्वहिया' अव्वहियता 'अपरियाविया'
अपरितापिताः=स्वत परतो वाऽनुपजातकायमनःपरितापाः सन्तः 'कालमासे काल
किच्चा देवलोएसु' कालमासे काल कृत्वा देवलोकेषु भवनपतिमारभ्य ईशान पर्यन्त
देवलोकेषु 'उव्वज्जंति' उत्पद्यन्ते, 'देवलोयपरिग्गहाणं ते मणुया' यतस्ते खलु मनुजाः
देवलोकपरिग्रहाः=भवनपत्यादोगानान्तो देवलोरुः, तथाविधकालस्वभावात् तद्योग्यायुर्व-
न्धेन परिग्रह =अङ्गीकारो येषां ते तथाभूताः-देवलोकगामिन इत्यर्थः 'पण्णत्ता' प्रज्जप्ताः
-कथिताः । युगलिनो द्वि आयुपः पट्सु मासेसु भवशिष्टेषु परभवायुर्वध्नन्ति, अत
एतेषामायुस्त्रिभागादौ परभवायुर्वन्धाभाव उक्त इति । ते मनुजाः स्वसमायुष्केषु स्वही-

राइदियाइ सारस्वति, संगोवेति" ४९ रातदिन तक उचित उपाचार आदि से पालना करते है, देखभाल करते है इस प्रकार पालना और सरक्षण करके फिर ये ' कासित्ता छोइत्ता जभा-
इत्ता अक्किट्टा अव्वहिया अपरियाविया कालमासे कालं किच्चा देवलोएसु उव्वज्जंति " खांसी
लेकर, छोक लेकर और जभाई लेकर बिना किसी ऋष्ट के और बिना किसी परिताप के कालमास
में मरकर देवलोक मे भवनपति से लेकर ईशानपर्यन्त देवलोक में उत्पन्न होते है. क्योंकि
'देवलोयपरिग्गहिया ण ते मणुया पण्णत्ता" इनका जन्म देवलोक में ही होता है अन्य लोक
में मनुष्य नारक और तिर्यचलोक में नहीं होता है ऐसा आगम का आदेश है । युगलिक जन मुज्य-
मान आयु जब छ मास की वाकी रहती है तब परभव की आयु का बन्ध कहते है इसलिये इनके
परभव की आयु का बन्ध त्रिभाग में- अपनी आयु के त्रिभाग में नहीं होता है, ये स्वसमान
आयुवाले देवलोक में उत्पन्न होते है इसलिये इनका उत्पाद भवनपति से लेकर ईशानपर्यन्त के
देवलोकों में ही कहा गया है । इन युगलिक जीवों का अकाल मे मरण नहीं होता है ये अपने

कवति संगोवेति ४९ रात दिवस सुधी उचित उपचार वगैरथो दालन पालन करे छे, टेष
रेभ तेभ स लाल राणे छे, आ प्रभाषे दालन पालन तेभ स रक्षे करीने पछी जेजो
'कासित्ता छोइत्ता जभाइत्ता अक्किट्टा अव्वहिया अपरियाविया कालमासे कालं किच्चा देवलोप-
सु उव्वज्जंति' धरस भाधने, छींके भाधने अने भगसु भाधने वगर केछि पखु जतना
कठे वगर केछि पखु जतना परितापे कालमासमा मरखु पाभीने देवलोकेमा भवनपतिथी
माडीने ईशान पर्यंत देवलोकेमा उत्पन्न थाथ छे केभके 'देवलोय परिग्गहिया ण ते मणुया
पण्णत्ता' जन्म देवलोकेमा जेजो छे अन्य मनुष्य, नाक अने तिर्यचलोकेमा जेजो
जन्म थतो नथी जेजो आगमेना आदेश छे बुज्जमान आयु इ मास केटलु पाकी रहे
छे तथे युगलिया जेना परभवना आयुने अन्ध करे छे जेथी जेजो परभवना आयुने
अन्ध त्रिभागमा-पोताना आयुना त्रिभागमा-थतो नथी, जेजो समान आयुवाणा
लोकेमा के पोताना आयु करता हीन आयुवाणा देवलोकेमा जन्मअव्वेथु करे छे जेथी
जेजो उत्पाद भवनपतिथी माडीने ईशान पर्यंतना देवलोकेमा कडेवामा आवेले छे.

નાયુષ્કેપુ ત્રા સુરેપુ સમુત્પદ્યન્તે ડતિ તેપા ભવનપત્યાદીજાનાન્નેષ્વેત્ર મુરેપૃત્પત્તિસંભવ ડતિ । 'કાલમાસે કાલં કૃત્વા' ડતિ કથનેન તેપાં યુગલિકાનામકાલમરણાભાવ ડક્તઃ । 'યુગલિનો દિ સ્વાપત્યાનિ ંકાનપશ્ચાશદિવમાન મરલન્તિ સંગોપયન્તિ' ડત્યુક્તમ્ । તત્ર તે કિયત્સુ દિવસેપુ કોદશા ભવતિ ? ડત્યત્ર કેચિદેવમાહુઃ—

'સપ્તોત્તાનશયાલિહન્તિ દિવસાન્ સ્વાહ્ગુષ્ઠમાર્યાસ્તતઃ,
કૌ રિહ્લન્તિ પદૈસ્તતઃ કલગિરો યાન્તિ સ્વલલ્લિસ્તતઃ ।
સ્થેયોમિશ્ચ તતઃ કલાગણમૃતસ્તારુણ્યભોગોદ્ગતાઃ

સપ્તાહેન તતો ભવન્તિ સુદ્દગાદાનેડપિ યોગ્યાસ્તતઃ ॥૧॥ ડતિ । અયમર્થઃ—

આર્યાઃ=યુગલિનઃ સપ્ત દિવસાન્=જન્મદિવસાત્ સપ્તદિવસાવધિકાલ યાવત્ પ્રથમે સપ્તાહે ડત્તાનશયાઃ=શ્રતિવાલાઃ સન્તઃ સ્વાહ્ગુષ્ઠ લિહન્તિ-ચૂપન્તિ તતો દ્વિતીયે સપ્તાહે સપ્તદિવસાન્ યાવત્ પદૈઃ--ચરણૈઃ કૃત્વા કૌ-પૃથિવ્યાં રિહ્લન્તિ-રિહ્લન્તિ-જાનુષ્ટીકામ્યાં

અપત્યો કો ૪૧ દિન તક પાલ્તે હૈ ંર કનકા સરક્ષણ મરતે હૈ ંસા જા કહા ગયા હૈ— સો ડન દિનો મૈ ડન અપત્યો કો કયા સ્થિતિ હોતો રહતો હૈ, ડસ વિપય મૈ કિતનેક જનો કા ંસા કહના હૈ ।

"સપ્તોત્તાનશયા લિહન્તિ દિવસાન્ સ્વાહ્ગુષ્ઠમાર્યાસ્તતઃ,
કૌ રિહ્લન્તિ પદૈસ્તતઃ કલગિરો યાન્તિ સ્વલલ્લિસ્તતઃ ।
સ્થેયોમિશ્ચ તતઃ કલાગણમૃતસ્તારુણ્ય ભોગોદ્ગતા,
સપ્તાહેન તતો ભવન્તિ સુદ્દગાદાનેડપિ યોગ્યાસ્તતઃ ॥

હસકા અમિપ્રાય ંસા હૈ કિ ંયે યુગલિકજન જન્મ સે જન્મ લેતે હૈ તબ સે ૭ સાત દિન તક તો- અર્થાત્ પ્રથમ સપ્તાહ મે તો- ંપર કી ંર મુંહ કરકે સોતે ૨ અપને અંગુષ્ઠ કો ચૂસતે રહતે હૈ ફિર દ્વિતીય સપ્તાહ મૈ જમોન પર ંવ ઘુટનો કે વલ સરકને લગતે હૈ, તૃતીય સપ્તાહ મે ંયે

આ યુગલિક ંવેાનુ અકાલામા મરણ યતુ નથી ંયેં ંયોતોના અપત્યોનુ ૪૯ દિવસ સુધી લાલન-પાલન અને સંરક્ષણ કરે છે, ંવેુ જે કહેવામા આવ્યુ છે તો ંયે દિવસો માં ંયે અપત્યોની કેવી સ્થિતિ થતી રહે છે આ સ બધમાં કેટલાક લોકોનુ આ પ્રમાણે કહેવું છે કે

સપ્તોત્તાનશયા લિહન્તિ દિવસાન્ સ્વાહ્ગુષ્ઠમાર્યાસ્તતઃ.
કૌ રિહ્લન્તિ પદૈસ્તતઃ કલગિરો યાન્તિ સ્વલલ્લિસ્તતઃ ।
સ્થેયોમિશ્ચ તતઃ કલાગણમૃતસ્તારુણ્ય ભોગોદ્ગતા ॥
સપ્તાહેન તતો ભવન્તિ સુદ્દગાદાનેડપિ યોગ્યાસ્તતઃ ॥

ંયેના અમિપ્રાય આ પ્રમાણે છે કે ંયે યુગલાદિ જનો ન્યારથી જન્મ અહણુ કરે છે ત્યારથી ૭ દિવસ સુધી તો ંયેટલે કે પ્રથમ સપ્તાહ મા તો ઉપરની તરફ મો કરીને સૂતા સૂતા જ ંયોતોના અંગુષ્ઠને ચૂસતા રહે છે. પછી બીજા સપ્તાહમા પૃથ્વ -

सरन्ति । ततस्तत्तृतीये सप्ताहे सप्त दिवसान् यावत् कलगिरः-मधुरभाषिणो भवन्ति । ततश्चतुर्थे सप्ताहे सप्त दिवसान् यावद् स्खलद्भिः पदैः यान्ति-गच्छन्ति । ततः पञ्चमे सप्ताहे सप्त दिवसान् यावत् स्थैर्योभिः-अतिशयस्थिरैः पदैः यान्ति । ततः षष्ठे सप्ताहे कलागणभृतः-समस्तकलाधारिणो भवन्ति । ततः सप्तमे सप्ताहे तारुण्य-भोगोद्गता-तरुणावस्थोपयोगिभोगोन्मुखाः भवन्ति । केचित् पुनः मुद्गादानेऽपि-सम्यक्त्वग्रहणेऽपि योग्या भवन्ति इति । इदं यदुक्तं तत् सुपमसुपमायां आदिकालमपेक्ष्य बोध्यं, ततः परं तु किञ्चिदधिकमपि संभाव्यते इति । अत्र कश्चिदेवमपि शङ्केत-ननु तदानीं मृतक शरीराणां का स्थितिरासीत् ? इति चेत्, आह-तस्मिन् काले मृत-युगलिक शरीराणि भारण्डादिपक्षिणो नीडकाष्ठमिव समुत्पाटय नदीसागरादौ प्रक्षिपन्ति तथा जगत्स्वभाव्यात् । ननु उत्कृष्टतोऽपि धनुः पृथक्त्वप्रमाणशरीरैस्तैः पक्षिभिः स्वा-पेक्षया समुत्कृष्टप्रमाणानि मनुष्यशरीराणि समुत्पाटय कथं समुद्गादौ प्रक्षिप्यन्ते ?

मीठी वाणी बोलने लगते हैं चतुर्थ सप्ताह में ये सात दिन तक लडखडाते हुए पैरों से चलने लगते हैं, पांचवें सप्ताह में ये स्थिर हुए पैरों से चलने लगते हैं छठे सप्ताह में ये समस्त कलाओं को धारण करने वाले हो जाते हैं । सातवें सप्ताह में ये युवावस्थापन्न हुए भोगों को भोगने वाले हो जाते हैं और कितनेक सम्यग्दर्शन को ग्रहण करने के योग्य भी बन जाते हैं । यह जो कुछ कहागया है वह सुषम सुषमा आरक के प्रारम्भक समय को लेकर कहा गया है. क्योंकि इसके बाद तो इससे भी अधिक काम कर सकते होंगे ऐसी समावना होती है, यहां कोई ऐसी शंका कर सकता है कि उस समय अग्नि संस्कार आदि की अप्रादुर्भूतता में मृतक शरीरों को क्या स्थिति होती होगी ? तो इसके उत्तर में यही समझना चाहिये कि उस समय में मृतक युगलिक जीवों के शरीर को भारण्डादि पक्षी नीडकाष्ठा की तरह ऊठा कर के नदी सागर आदि में डाल देते होंगे क्योंकि उस समय के जगत् का ऐसा स्वभाव होता है, यदि फिर भी यहां

हमें पृथ्वी उपर पग तेमज धूटणुना णणे सरकवा मांडे छे त्रीण सप्ताहमां ज्येज्यो मधुर पाणी भालवा मांडे छे चतुर्थ सप्ताहमां ज्येज्यो सात दिवस सुधी लथडातां-लथडातां आलवा मांडे छे. पाचमा सप्ताहमां ज्येज्यो स्थिर थयेवा पगेथी आलवा मांडे छे छट्ठा सप्ताहमां ज्येज्यो सर्व कलाज्योमा विशारद थर्ध णय छे सातमां सप्ताहमां ज्ये सर्वे युवावस्थापन्न भोगोना उपलोकता थर्ध णय छे अने डेटवाक तो सम्यग्दर्शन ग्रहण करवा योग्य पणु थर्ध णय छे. अही ज्यो जे कर्ध कडेवामां आव्युं छे ते सुषम सुषमा आर-कना प्रारंभक समयने लधने कडेवामां आव्युं छे केमके ज्येना पछी तो ज्येना कर्ता पण वधारे कामे संभवी शके छे, ज्येवी संभावना थाय छे अही केध ज्येवी पणु शंका छेवावी शके छे के ते समये अग्नि संस्कार वगेरनी अप्रादुर्भूततामा मृतक शरीरोंनी केवी स्थिति थती हसे ? ते ज्येना उत्तरमां ज्येपु जे समयवुं जेधजे के ते समयमां मृतकयुग-लिक ज्येना शरीरने भारंठादि पक्षी नीडकाष्ठांनी जेम छेवावीने नदी-सागर वगेरमां नाणी देतां हसे केमके ते समयना जगत्ने ज्येवा स्वभाव होय छे. अही करी केध

इति च न शङ्क्यम्, केपांचित् पक्षिणाम् अरकापेक्षया यथासंभव बहुबहुतर बहुतम-
घनुः पृथक्त्वप्रमाणशरीरत्वेन तत्कालवर्ति युगलिक नरहस्त्यपेक्षयाऽधिकप्रमाणशरीरैस्तैः
पक्षिभिस्तेषां नराणां मृतशरीरसंवहनसंभवादिति ।

पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति—‘तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे कइविहा’ हे
भदन्त ! तस्यां खलु समायां भरते वर्षे कतिविधाः=कतिप्रकाराः कतिजानिया ‘मणुस्सा
अणु सज्जित्था’ मनुष्या अन्वपजन्=अनुपक्तवन्तः-कालात्कालान्तरमनुवृत्तवन्तः-सन्ततिभा-
वेनाभूवन्’ इत्यर्थः । भगवानाह-गोयमा ! छन्विहा पणत्ता’ हे गौतम ! पइविधाः मनु-
ष्याः प्रज्ञप्ताः, ‘त्तं जहा’ तद्यथा-‘पम्हगंधा’ पद्मगन्धाः- पद्मस्येव गन्धो येषां ते तथा-
पद्मगन्धवन्तो मनुष्या इत्यर्थः ‘मियगधा’ मृगगन्धाः- अत्र मृगशब्देन मृगमदः=कस्तू-

ऐसी आशंका की जावे कि उत्कृष्ट सभी घनु पृथक्त्व प्रमाण शरीर वाले उन पक्षियों द्वारा
अपनी अपेक्षा उत्कृष्ट प्रमाण वाले मनुष्य शरीरों को कैसे उठा कर समुद्र आदि में डालते होंगे ?
तो इसका उत्तर यही है कि कितनेक पक्षियों के शरीर का प्रमाण अरक की अपेक्षा यथा संभव
बहु, बहुतर और बहुतम घनु पृथक्त्व प्रमाण वाला होता है अतः तत्कालवर्ती युगलिक नर
और हस्ती की अपेक्षा उनके शरीर का प्रमाण अधिक होने से वे पक्षी उन मनुष्य के मृत
शरीर को उठा सकने में समर्थ हो जाते हैं ।

अब गौतम स्वामी प्रश्न से ऐसा पूछते हैं—‘तीसेण भंते ! समाए भरहे वासे कइविहा
मणुस्सा अणुसज्जित्था’ हे भदन्त ! उस काल में भरतक्षेत्र में कितने प्रकार के मनुष्य काल
से कालान्तर में सन्ततिभाव से उत्पन्न हुए ? इसके उत्तर में प्रश्न कहते हैं ‘गोयमा ! छन्विहा
पणत्ता तं जहा-पम्हगंधा, मियगधा, अममा, तेयतली, तहा, सणिचारी’ हे गौतम ! छ
प्रकार के मनुष्य उत्पन्न हुए, जैसे— पद्मगन्ध-पद्म की गन्ध के समान गंध से युक्त शरीर
वाले मनुष्य, मृगगन्ध-मृग की अर्थात् कस्तूरी की गन्ध के समान गंध से युक्त शरीर वाले

भीष्म शंका उठावी शके छे के उत्कृष्टथी पक्षु घनु पृथक्त्व प्रमाण शरीरवाणा ते पक्षीओ
पोताना करता उत्कृष्ट प्रमाणवाणा मनुष्य शरीरि ने डेवी रीते उठावी ने समुद्र
वगेरेमां नाभता हसे ? तो आने जवाब छे छे के डेटलाक पक्षीओना शरीरनु प्रमाण
अरकनी अपेक्षाओ यथासंभव अहु, अहुतर अने अहुतम घनुः पृथक्त्व प्रमाणवाणा होय छे,
ओथी तत्कालवर्ती युगलिक नरी अने हस्तीओनी अपेक्षाओ तेमना शरीरनु प्रमाण अधिक
होवाथी ते पक्षीओ ते मनुष्येना मृतशरीरिने उचकी शकवामां समर्थ होय छे

हवे गौतमस्वामी प्रश्न से करते छे ‘तीसेण भंते ! समाए भरहे वासे कइविहा मणु
स्सा अणुसज्जित्था’ हे भदन्त ते काले भरतक्षेत्रमां डेटला प्रकारना मनुष्ये कालथी काला-
न्तरमां सन्ततिभावथी उत्पन्न थया ? ओना जवाबमां प्रश्न कहे छे—‘गोयमा छन्विहा पणत्ता
त्तं जहा-पम्हगंधा, मिय गंधा, १, तेयतली, तहा सणिचारी’ हे गौतम ! छ प्रकार-
ना मनुष्ये ते काले उत्पन्न थया जेभके पद्मगन्ध-पद्मना गंध जेवा गंधथी युक्त शरीर
वाणा मनुष्ये, मृगगन्ध मृगनी ओटले के कस्तूरीना गंध जेवा गंधथी युक्त शरीरवाणा

रिका गृह्यते तस्येव गन्धो येषां ते तथा मृगमदगन्धवन्नो मनुष्या इत्यर्थः, 'अममा' अ-
ममाः=ममत्वरहिता मनुष्याः' 'तेयतली' तेजस्तलिनः तेजः=प्रभा तलं=रूपं तद्वयमस्ति
येषां ते तथा, कान्त्या रूपेण च युक्ता इत्यर्थः, 'सद्वा' सद्वाः=सद्विष्णवः-महन शीला
इत्यर्थः ५, 'सणिचारी' शनैश्चारिणः-शनैः=औत्सुक्याभावान्मद चरन्तीत्येव शीलाः, शनै-
र्गमनशीला इत्यर्थः ६, यथा पूर्वमेकाकाराऽपि मनुष्यजातिस्तृतीयारक प्रान्ते ऋषभदे
वेन उग्रभोगराजन्यक्षत्रियभेदैश्चतुर्था विभक्ता तथाऽत्रापि पद्मगन्धत्वादिगुणयोगात्ते
मनुष्याः स्वभावादेव पद्मगन्धादि भेदेन पद्मविधजातिमन्तो भवन्ति इति भावः ॥सू०३३॥
इति प्रथमारक वर्णनम्—

मूलम्— तीसे णं समाए चउहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले
वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं अणंतेहिं गंधपज्जवेहिं अणंतेहिं रसप
ज्जवेहिं अणंतेहिं फासपज्जवेहिं अणंतेहिं संघयणपज्जवेहिं अणंतेहिं सं
ठाणपज्जवेहिं अणंतेहिं उच्चत्तपज्जवेहिं अणंतेहिं आउपज्जवेहिं अणं-
तेहिं गुरुलहुपज्जवेहिं अणंतेहिं 'अगुरुलहुपज्जवेहिं अणंतेहिं उट्ठाणकम्म
बलवीरियपुरिसक्कार पस्सकमपज्जवेहिं अणंतगुणपरिहाणीए परिहायमाणे-
२ एत्थणं सुसमा णामं समा काले पडिवज्जिसु समणाउसो ? ॥सू३४॥

छाया—तस्याः खलु समायाश्चतसृषि सागरोपमकोटिकोटिभिः काले व्यतिक्रान्ते
अनन्तैः वर्णपर्यवैः अनन्तैः गन्धपर्यवैः अनन्तैः रसपर्यवैः अनन्तैः स्पर्शपर्यवैः अनन्तैः संह-
ननपर्यवैः अनन्तैः संस्थानपर्यवैः अनन्तैः उच्चत्वपर्यवैः अनन्तैः आयु पर्यवैः अनन्तैः

मनुष्य अमम-ममत्वरहित मनुष्य, तेज प्रभा और तल-रूप इन दोनों से युक्त हुए मनुष्य, सहि-
ष्णु-सहनशील मनुष्य एवं शनैश्चारी मनुष्य-औत्सुक्याभाव से मन्द मन्द गति वे चलने वाले
मनुष्य जिस प्रकार पूर्व में एक आरक वाली भी मनुष्य जाति तृतीय आरक के प्रान्त में
ऋषभ देव ने उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय के भेद से चार प्रकारों में विभक्त की उसी
प्रकार से यहा पर भी पद्मगन्धत्वादि गुण के योग से वे मनुष्य स्वभावत ही पद्मगन्ध आदि के
भेद से छह प्रकार की जाति वाले हो जाते हैं ॥३३॥

॥ प्रथम आरक वर्णन समाप्त ॥

मनुष्यो, अमम-ममत्वहीन मनुष्यो, तेजप्रभा अने तल रूप ज्येष्ठो अन्नेथी सम्पन्न मनु
ष्यो अने औत्सुक्याभावथी मद्-मद् गतिथी आलनारा मनुष्यो जेम पूर्वमा ज्येष्ठ आकार
वाणी मनुष्यजाति पक्षु तृतीय आरकना प्रान्तमा ऋषभदेवे उग्र भोग, राजन्य अने क्षत्रिय-
ना लोदथी आर प्रकारोमा विभक्ता करेत्त छे. तेमज्ज अही पक्षु पद्मगन्धादि गुणना योगथी
मनुष्य स्वभावथी ज् पद्मगन्धादि लोदथी छ प्रकारनी जातिवाणा थर्ध जय छे ॥३३॥
आ प्रथम आरकसुं वर्णन छे.

गुरुलघुपर्यवैः अनन्तैः अगुरुलघुपर्यवै अनन्तैः उत्थानकर्मवलवीर्यपुरुषकारपराक्रमपर्यवैः अनन्तगुणपरिहाण्या परिहीयमाणे २ अत्र खलु सुपमा नाम समा कालः प्रत्यपद्यत भ्रमणा युष्मन् ॥ सू० ३४ ॥

टीका- 'तीसे ण समाए' इत्यादि । 'तीसे' तस्याः=सुपमसुपमायाः 'णं' खलु 'समाए' समायाः 'चउहिं सागरोवम कोडाकोडीहिं' चतसृभिः सागरोपम-कोटीकोटीभिः कृत्वा 'काले वीइकंते' काले व्यतिक्रान्ते=चतुस्सागरोपम कोटीकोटी प्रमाणे काले व्यतीते सति कीदृशे तस्मिन् काले ? इत्याह-'अणंतेहिं' अनन्तैः-अनन्तसंख्यकैः 'वण्णपज्जवेहिं' वर्णपर्यवैः वर्णः-शुक्लपीत रक्त नील कृष्ण भेदात् पञ्चविधाः, कथिताः कपिशादयस्तु संयोगजन्या इति ते न विवक्षिताः, तेषां वर्णानां ये पर्यवाः पर्यायाः केवली बुद्धिकृता निर्विभागा भागा एकगुण शुक्लत्वादयस्तैः, 'अणंतेहिं गंधपज्जवेहिं' अनन्तैः, गन्धपर्यवैः, 'अणंतेहिं रसपज्जवेहिं' अनन्तैः रसपर्यवै, 'अणंतेहिं फासपज्जवेहिं' अनन्तैः स्पर्शपर्यवैः, 'अणंतेहिं सघयणपज्जवेहिं' अनन्तैः सहननपर्यवैः-सहननानि अस्थिनिचयरचना

द्वितीय आरक वर्णन—

"तीसे ण समाए चउहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले वीइकंते" इत्यादि ।

टीकार्थ-तीसे ण समाए चउहिं सागरोवमकोडाकोडीहिंकाले वीइकंते" जब चार कोडाकोडी सागर काल व्यतीत हो जाते है तब दूसरा अवसर्पिणी का काल प्रारंभ होता है. ऐसा यहा सम्बन्ध लगाना चाहिए प्रथम जो सुषम सुषमानामका काल है उसको स्थिति ४ चार कोडाकोडी सागरोपम की है, यह अवसर्पिणी काल का प्रथम भेद है अतः अवसर्पिणी काल में क्रमश आयुकाय आदि का प्रतिसमय हास हो जाता है. इसीलिये "अणतेहिं वण्ण पज्जवेहिं अणतेहिं गंधपज्जवेहिं, अणतेहिं रसपज्जवेहिं अणंतेहिं फास पज्जवेहिं" धीरे २ अनन्त वर्णपर्यायों का, अनन्त गन्ध पर्यायो का, अनन्त रसपर्यायो का, अनन्त स्पर्शपर्यायों का धीरे २ हास होते २ जब चार कोडा कोडा प्रमाण समय समाप्त हो जाता है, इसी प्रकार अनन्त सहननपर्यायो का, अनन्त सस्थानपर्यायो का, उच्चत्व पर्यायो का, अनन्त आयुपर्यायों का, अनन्त

द्वितीय आरक वर्णन

'तीसेण समाए चउहिं सागरोवम कोडाकोडीहिं काले वीइकंते' इत्यादि सूत्र ॥३४॥

टीकार्थ-"तीसेण समाए चउहिं सागरो" न्याये आर केडाकोडी सागर व्यतीत थर्ध न्ये छे त्थारे द्वितीय अवसर्पिणी काल प्रारंभ थाय छे. अही अवे स पध न्णवे नो-अ न्ण सुषम सुषमा काल छे तेनी स्थिति ४ केडाकोडी सागरोपम छे आ अवसर्पिणी कालने प्रथम भेद छे अथी अवसर्पिणी कालमा क्रमश आयु, काल वगेरेने प्रति समय हास थता न्ये छे अथवा भाटे ' अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं अणतेहिं गंध पज्जवेहिं अणंतेहिं रसपज्ज वेहिं अणंतेहिं फासपज्जवेहिं' धीमे धीमे अनन्त वर्णपर्यायिनो, अनन्तगन्ध पर्यायिनो, अनन्त रस पर्यायिनो अनन्त स्पर्शना पर्यायो हास थता थता न्याये आर केडाकोडी प्रमाण समय समाप्त थर्ध न्ये छे आ प्रमाणे अनन्त सहनन पर्यायिनो अनन्त सस्थान पर्यायिनो अनन्त उच्चत्व पर्यायिनो अनन्त आयुपर्यायिनो अनन्त शुरु-सुध पर्यायिनो अनन्त अशुद्ध सुध पर्या-

विशेषरूपाणि वज्रक्रुपभनाराच-वज्रर्षभनाराचार्द्धनाराचकीलिका सेवार्त्तभेदात् पइविधानि, अत्र चारके वज्रक्रुपभनाराचस्येव सद्भाव अन्येपामभावात्, तस्य वज्रक्रुपभनाराच-संहननस्य पर्यवास्तैः, 'अणतेहि सठाणपज्जवेहि' अनन्तैः सस्थानपर्यवैः—सस्थानानि=आकृतिरूपाणि समचतुरस्रन्यग्रोधसादि कुञ्जक वामन हुण्डभेदात् पइविधानि, अत्र चारके समचतुरस्रनामकं प्रथमं सस्थानं गृह्यते-अन्येपामभावात्, तानि तस्य समचतुरस्रनामकस्य सस्थानस्य पर्यवास्तै तथा 'अणतेहि उच्चत्त पज्जवेहि' अनन्तैः उच्चत्वपर्यवैः—उच्चत्व=शरीरोच्छ्रायः-प्रथमेऽरके च तत् त्रिगव्यूतप्रमाणं तस्य पर्यवैः, तथा 'अणतेहि आउप-

गुरुलघु पर्यायो का, अनन्त अगुरुलघु पर्यायो का, अनन्त उःथान कर्म बल वीर्ये पुरुषकार परा-क्रम पर्यायो का ह्रास होते २ जब चार कोडाकोडी प्रमाण प्रथम आरा अवसर्पिणो का समाप्त हो जाता है तब अवसर्पिणो काल का द्वितीय सुषमा नामका आरा इस भरतक्षेत्र में प्रारम्भ हो जाता है। यहाँ जो वर्णादिको की पर्यायो का कथन किया गया है वह केवलो भगवान् की बुद्धि के द्वारा किये गये निर्विभाग भागा को मानकर किया गया है. ये वर्णादि कों के निर्विभाग भाग एक गुण शुक्लत्वादि रूप पड़ते हैं, इस आरक में वज्रक्रुपभनाराच सहनन ही होता है, अन्य सहनन नहीं होते हैं, सहनन हृदियों की एक प्रकार की रचना विशेष का नाम है, ये सहनन वज्रक्रुपभनाराच सहनन, नाराच सहनन, अर्द्धनाराचसहनन, कीलिका सहनन और सेवार्त्तसहनन के भेद से ६ प्रकार के शास्त्रों में वर्णित हुए हैं, सस्थान नाम आकार का है ये भी ६ प्रकार के होते हैं— समचतुरस्रसस्थान, न्यग्रोधपरिमडलसस्थान, कुञ्जकसस्थान, वामन संस्थान, सादिसस्थान और हुण्डकसस्थान, इस आरक में समचतुरस्रनामका प्रथम संस्थान ही होता है. अन्य सस्थान नहीं। उच्चत्व से यहा शरीर की ऊँचाई गृहीत हुई है, प्रथम आरक में शरीर की ऊँचाई ३ तीन कोश की होती है और आयु का प्रमाण तीन पल्यो

येना अनन्त उःथान कर्मणवीर्यं पुरुषकारपराक्रम पर्याथिनो ह्रास यता यतां न्यादे ४ कोडा-कोडी प्रथम आरा अवसर्पिणीना समाप्त थथं जयंते त्यादे अवसर्पिणी काणने। द्वितीय सुषमाना-मक आरा या भरतक्षेत्रमा प्रारभ थथं जयंते अर्द्धीं जे वर्णादिकाना पर्याथिदुं कथन करवा-मां आवेलंते. ते केवली भगवाननी बुद्धि वडे करवामा आवेलं निर्विभाग भागोने मानीने करवामा आवेलंते. जे वर्णादिकाना निर्विभाग भाग जेक शुभ शुक्लत्वादि रूप पडेते या या रकथां वज्र क्रुपभनाराच सहनन जे होयंते अन्य सहननेना अभाव रडेते संहनन अस्थिजे नी जेक प्रकारनी रचना विशेषतु नाम जे जे सहनने शास्त्रोमा वज्रक्रुपभनाराच सहनन नपभनाराच सहनन, नाराचसहनन अर्द्धनाराच सहनन कीलिका सहनन जने सेवार्त्त सहननना जेहथी ६ प्रकारना वर्णित थयेला जे सस्थान आकारतु नाम जे. जेना पल्यु ६ प्रकारे जे. समचतुरस्रसस्थान न्यग्रोध परिमडलसस्थान कुञ्जक संस्थान वामन संस्थान सादिसस्थान जने हुण्डकसस्थान या आरकमा अन्य सस्थानो नहि पल्यु इकतं सम चतुरस्रनामकं प्रथमं सस्थानं जे होयंते. उच्चत्वथी अर्द्धीं शरीरनी उँचाई गृहीत थयेली जे प्रथम आरकमा शरीरनी उँचाई ३ गाँठ जेटली होयंते आयुदुं प्रमाणं त्रयु पल्यो

‘જ્જવેદિ’ અનન્તૈઃ આયુઃ પર્યવૈઃ આયુઃ—જીવિત, તદત્ર પ્રથમેડરકે ત્રિ પલ્યોપમપ્રમાણં ગૃહ્ય-
તે, તસ્ય પર્યવાસ્તૈઃ, તથા ‘અણંતેદિ ગુરુલ્લહુ પ્જ્જવેદિ’ અનન્તૈ ગુરુલ્લહુપર્યવૈ.—ગુરુલ્લહુનિ=
ગુરુલ્લહુદ્રવ્યાણિ-વાદર સ્કન્ધદ્રવ્યાણિ ઔદારિક વૈક્રિયાહારકતૈજસરૂપાણિ તેપાં પર્યવાસ્તૈ
તથા ‘અણંતેદિ અગુરુલ્લહુ પ્જ્જવેદિ’ અનન્તૈઃ અગુરુલ્લહુપર્યવૈઃ અગુરુલ્લહુનિ=અગુરુલ્લહુદ્રવ્યાણિ
સૂક્ષ્મદ્રવ્યાણિ તાનિ ચ પૌદ્ગલિકાન્યેચ ગ્રાહ્યાણિ અપૌદ્ગલિકપ્રહણે તુ ધર્માસ્તિકાયાદીના
મપિ ગ્રહણં પ્રસજ્યેત તતશ્ચ નેપામપિ પર્યવહાનિગપદ્ધેત, તાનિ અગુરુલ્લહુદ્રવ્યાણિ કાર્મણ
મનો ભાપાદિ દ્રવ્યાણિ તેપા પર્યવાસ્તૈઃ, તથા ‘અણંતેદિ ઉદ્ગાણ કમ્મવલ્લ વીરિયપુરિસકાર
પરવક્રમપ્જ્જવેદિ’ અનન્તૈ ઉત્થાનકર્મવલ્લવીર્યપુરુપકારપરાક્રમપર્યવૈ ઉત્થાનં—ચેષ્ટાવિશેષઃ,
કર્મ—અમણાદિક્રિયા વિશેષઃ, વલ્લં—શરીરસામર્થ્ય વીર્ય જીવભાવ, જીવત્વમિત્યર્થ પુરુપ-
કારઃ પૌરુપમ્ અભિમાનવિશેષઃ, પરાક્રમઃ—નિષ્પાદિતસ્વવિપયઃ પુરુપકાર એવ, એતેપાં
પર્યાયાસ્તૈશ્ચ કૃત્વા ‘અણંતગુણપરિહાણી’ અનન્તગુણપરિહાણ્યા અનન્તગુણાનામ્—અનન્તાનાં
જ્ઞાનદર્શનાદ્યનન્તાનાં નિર્વિભાગભાગાનાં વર્ણાદિપર્યવાનાં પરિહાણિઃ—અપચયસ્તયા પરિહા-

પમ કા હોતા હૈ. ગુરુ લ્હુ દ્રવ્ય સે વાદરસ્કન્ધદ્રવ્યરૂપ જો ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક એવ
તૈજસ શરીર હૈ ઊનકો પ્રહણ હુમા હૈ અગુરુલ્હુ દ્રવ્ય સે સૂક્ષ્મદ્રવ્યરૂપ જો પૌદ્ગલિક દ્રવ્ય હૈ
વે હી ગૃહીત હુપ હૈ, અપૌદ્ગલિક સૂક્ષ્મદ્રવ્ય નહીં યદિ ડનકા મી યહા પ્રહણ હોના માન લિયા
જાય તો ધર્માસ્તિકાયાદિક દ્રવ્યો કા મી પ્રહણ હોના માનના પડેગા તો ડસ તરહ સે ડનકે
પર્યાયો કી મી હાનિ હોને કા પ્રસજ્ઞ પ્રાપ્ત હોગા, અતઃ ડસ પ્રસગ કી નિવૃત્તિ કે લિયે અગુરુ-
લ્હુ દ્રવ્ય પદ સે કાર્મણ મનોભાપાદિ દ્રવ્યો કા હી પ્રહણ ક્રિયા જાનના ડાહિયે ડસ તરહ
વર્ણગુણ કી, ગન્ધગુણ કી, રસગુણ કી એવ સ્પર્શગુણ કી, જો પર્યાયે હૈ—કેવલી કે દ્વારા અપની
બુદ્ધિ સે ક્રિયે ગયે જો નિર્વિભાગ ભાગ હૈ—વે અનન્ત સહ્યક હૈ, સંહનન કી પર્યાયે અનન્ત હૈ,
સસ્થાન કી પર્યાયે અનન્ત હૈ, ઉચ્ચત્વ કી પર્યાયે અનન્ત હૈ, આયુ કર્મકી પર્યાયે અનન્ત હૈ,
ગુરુલ્હુ દ્રવ્યો કી પર્યાયે અનન્ત હૈ, ઉત્થાન-ચેષ્ટા વિશેષ રૂપ, કર્મ-અમણાદિ રૂપક્રિયા, શરીર

પમ નેટલું હોય છે. ગુરુ-લ્હુ દ્રવ્યથી વાદર સ્કન્ધ દ્રવ્ય રૂપ ને ઔદારિક વૈક્રિય આહારક
તેમજ તેજસ શરીર છે તેનું અહલ્લુ થયેલ છે અગુરુ લ્હુ દ્રવ્યથી સૂક્ષ્મ દ્રવ્ય રૂપ ને પૌદ્ગ
લિક દ્રવ્ય છે તેમજ ન અહલ્લુ થયેલ છે અપૌદ્ગલિક સૂક્ષ્મ દ્રવ્ય તું નહિ. ને એમનું પણ
અહીં અહલ્લુ કરવામાં આવે તેા ધર્માસ્તિકાયાદિક દ્રવ્યોનું પણ અહલ્લુ માનવું ન પડે
તેા આ પ્રમાણે એમની પર્યાયોની પણ હાનિ થવાની સ્થિતિ ઉપસ્થિત થશે એટલામાટે આ
પ્રસગની નિવૃત્તિ માટે અગુરુ લ્હુ દ્રવ્યપણા થી કાર્મણ અને મનો ભાવાદિ દ્રવ્યોનું અહલ્લુ
કરવામાં આવવું નેહજો આ પ્રમાણે વર્ણ ગુણની ગન્ધગુણની રસગુણની તેમજ સ્પર્શ-
ગુણની ને પર્યાયો છે—કેવલી વડે સ્વ બુદ્ધિથી કરવામાં આવેલ ને નિર્વિભાગભાગો છે તે
અન ત સંખ્યક છે સહનની પર્યાયો અન ત છે સસ્થાનની પર્યાયો અન ત છે ઉચ્ચત્વની પર્યાયો
અન ત છે આયુકર્મની પર્યાયો અન ત છે ગુરુલ્હુ દ્રવ્યોની અને અગુરુ લ્હુ દ્રવ્યોની પર્યા
યો અન ત છે ઉત્થાન—ચેષ્ટા વિશેષરૂપ કર્મ-અમણાદિ રૂપ ક્રિયા શરીર સામર્થ્યરૂપ બળ વીર્ય

यमाणे २, परिहीयमाणे परिहीयमाणे—नितान्तमपचयं गच्छति सति 'एत्थणं' अत्र -
अत्रान्तरे खलु 'सुसमा णामं समा काले' सुसमा नाम समा कालः त्रिकोटि सागरोपमप्रमाणः
अवसर्पिण्या द्वितीयोऽरकः । 'पडिबज्जिसु' प्रत्यपद्यत—प्रतिपन्नो लागत इति । यथेपाम
नन्तत्वम् अनुसमयमनन्तगुणहानिश्च भवति तदुच्यते, तथाहि—'तीसे णं समाए
उत्तमकडुपत्ताए' इति' इति प्रागुक्तोक्त्या सुसमसुसमा—काले कल्पद्रुमपुष्पफलादिगता
ये वर्णागन्धरसाद्यस्ते उत्कृष्टाः, तेषां केवली प्रज्ञया छिद्यमाना यदि निर्विभागा भागाः
क्रियन्ते तर्हि अनन्ता भागा भवन्ति । तेषां मध्यादनन्तभागात्मक एको राशिः प्रथमारक
द्वितीय—समये व्रुट्यति, एवं तृतीयादि समयेष्वपि वक्तव्यं यावत्प्रथमारकान्तिमसमय
पर्यन्तम् । इयमेव रीतिः अवसर्पिणी चरम समयं यावद् वोढ्या । अतएव—'अनन्त गुण-

सामर्थ्यरूप बल, वीर्य - जीव की शक्ति, पुरुषकार और पराक्रम की पर्याये भी अनन्त हैं, इन
सब अनन्त पर्यायो को केवली भगवान् ही जानते हैं सो इन सब पर्यायरूप अनन्त गुणों की
जब घीरे २ प्रतिमय हानि होते २ सुषम सुषमा नाम का प्रथम आरक समाप्त हो जाता है तब
३ तीन कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण वाला द्वितीय आरक की जिसका नाम सुषमा है
प्रारंभ होता है इन वर्णादि पर्यायो में अनन्तता और प्रत्येक समय में अनन्तगुण हानि जो
होती है उसे यहा स्पष्ट किया जाता है—सुषमसुषमा काल में कल्पद्रुम के पुष्प और फलादि
को में जो वर्ण, गन्ध और रसादि होते हैं वे उत्कृष्ट होते हैं । इनके यदि केवली की प्रज्ञासे
निर्विभाग भाग किये जावे—तो वे अनन्त भाग होते हैं इनके मध्य से अनन्त भागात्मक एक
राशि प्रथम आरक के द्वितीय समय में समाप्त हो जाती है, द्वितीय अनन्तभागात्मक राशि प्रथम
आरक के तृतीय समय में समाप्त हो जाती है इस प्रकार तृतीयादि अनन्तभागात्मकराशियां
प्रथम आरक के चतुर्थादि समयों में समाप्त होती रहती है सो इस प्रकार से इनके समाप्त होते
रहने का यह क्रम प्रथम आरक के अन्तिम समय तक जानना चाहिये, तथा इसी प्रकार का
यही क्रम अवसर्पिणी काल के अन्तिम समय तक चाल रहता है ऐसा जानना चाहिये, इस

शुषनी शक्ति पुपुषकार अने पराक्रमी पर्याये। पशु अन त छे ओ सर्व अन त पर्याये।
ने केवली ७ लक्ष्णे छे तो ओ सर्व पर्यायइय अन त शुष्णेथी न्यारे धीमे धीमे प्रतिमय
हानि थता थता सुषम सुषमा नामे प्रथम आरक समाप्त थर्ष लय छे त्यारे त्रषु कोडाकोडी
सागरोपम प्रभाषुशुक्त द्वितीय आरक के जेनुं नाम सुषमा छे ते प्रारंभ थाय छे ओ वर्णादि
पर्यायिमा अन तता अने इरेक समयमा अन तशुष्णे हानि जे होय छे तेनु अही २५००-
करषु करषामा आवे छे सुषम सुषमा भागमां कल्पद्रुमा अने तेमना पुष्पा तेमज इण वगेरे
मा जे वषु गन्ध अने रसादि होय छे ते उत्कृष्ट होय छे ओमना जे केवलीनी प्रज्ञाथी
निर्विभाग भाग करषामा आवे तो ते अन त भाग थाय छे ओमना मध्यथी अन तभागा-
त्मक ओके राशि प्रथम आरकना द्वितीय समयमा समाप्त थर्ष लय छे द्वितीय अन तभा-
गात्मक राशि प्रथम आरकना तृतीय समयमा समाप्त थर्ष लय छे आ प्रभाषे तृतीयादि
अन त भागात्मक राशियो प्रथम आरकना चतुर्थादि समयमा समाप्त थती रहे छे तो

પરિહાણ્યા' इत्यत्र अनन्तगुणानां परिहानिस्तया इति पष्ठी तत्पुरुषो न तु कर्मधारयः ।
गुणशब्दश्च भागपयायवाची आगमेषु प्रसिद्धः ।

नन्वेवं वर्णादीनाम् अनन्तगुणहान्या श्वेतादिवर्णानां गन्धादीनां च सर्वथोच्छेदः
प्रसज्येत, एतच्च प्रत्यक्षविरुद्धम् जातीयपुष्पादीं श्वेतवर्णस्य अन्यत्राण्यवर्णानां तथैव
गन्धादीनां सम्प्रत्यप्युपलभ्यमानत्वात् ? इति चेत्, आह—आगमे हि अनन्तकस्य अनन्त-
भेदा उक्ताः, तत्र हीयमानभागानाम् अनन्तकम् अल्पम् तदपेक्षया मौलराशेः—भागानन्तकं
बृहत्तरं बोध्यम् अतो न सर्वथोच्छेद इति । युज्यते च तेषां सर्वथोच्छेदाभावो भव्यवत्

तरह “अनन्तगुणपरिहाण्या” पद मे अनन्त निर्विभागभागो की परिहानि से ऐसा ही अर्थ करके
“अनन्तगुणानां परिहाण्या” में पष्ठी तत्पुरुष समास समझना चाहिये । कर्मधारय नहीं गुण शब्द
भाग अर्थ का वाचक है यह बात आगम में प्रसिद्ध है ।

यहां ऐसी शंका हो सकती है कि जब वर्णादिकों के अनन्तगुणों की हानि होती कही
गई है तो फिर इस तरह से इन श्वेतादि वर्णों का और गन्धादि गुणों का सर्वथा उच्छेद ही हो
जावेगा परन्तु ऐसा तो होने का नहीं क्योंकि वर्तमान काल में इन सब ही इन गुणों का जैसे
जातीय पुष्पादि में श्वेतवर्ण का, इसी तरह अन्यत्र भी अन्य अणों का एवं गन्धादिकों का सद्भाव
व तो देखा ही जाता है तो इस शंका का उत्तर ऐसा है कि आगम में अनन्त के भी अनन्त
भेद माने गये हैं इनमें हीयमानभागों का जो अनन्तक है वह तो अल्प है और इनमें मौलराशि
का जो भागानन्तक है वह बृहत्तर है इसलिये इनका सर्वथा उच्छेद नहीं हो सकता है । भव्य
की तरह इनके सर्वथा उच्छेद होने का प्रसङ्ग ही प्राप्त नहीं होता है अभी तक अनन्त काल से
भी भव्यों के सिद्ध अवस्थापन होते रहने पर भी और अनन्तकाल तक भी भव्य सिद्ध अवस्था-

આ રીતે એમની સમાપ્તિ સંભવ થી આ ક્રમ પ્રથમ આરકના અંતિમ સમય સુધી જાણવો
જોઈએ. તેમજ આ પ્રમાણે એ જ ક્રમ અવસર્પિણી કાલના અંતિમ સમય સુધી ચાલુ રહે
છે એવું પણ જાણવું જોઈએ. આ પ્રમાણે અનન્તગુણપરિહાણ્યા પદમા અનંત નિર્વિભા-
ગોની પરિહાનિથી એવો જ અર્થ અહીં કરીને અનન્તગુણાનાં પરિહાણ્યા માં પછી તત્પુરુષ
સમાસ સમજવો જોઈએ કર્મધારય નહિ શુષ્ક શબ્દ ભાગ અર્થનોવાચક છે આ વાત આ-
ગમમા પ્રસિદ્ધ છે.

અહીં એવી શંકા પણ ઉદ્ભવી શકે છે કે જ્યારે વર્ણાદિકોના અનંત ગુણોની હાનિ
થતી રહી છે એવું કહેવામાં આવ્યું છે તો પછી આ રીતે તો એ શ્વેતાદિ વર્ણોનો અને
ગન્ધાદિ ગુણોનો સર્વથા ઉચ્છેદ જ થઈ જશે પણ આવું થશે નહિ કેમકે વર્તમાન
કાળમાં એ સર્વ ગુણોનો—એમ જાતીય પુષ્પાદિમાં શ્વેતવર્ણોનો આ પ્રમાણે અન્ય પણ
અન્ય-અન્ય વર્ણોનો તેમજ ગન્ધાદિકોનો સદ્ભાવ તો જોવામાં આવે જ છે તો આ શંકા
નો જવાબ આ પ્રમાણે છે કે આગમમાં અનંતતાના પણ અનંત ભેદો માનવામાં આવ્યા છે.
એમાં હીયમાન ભાગો નો જ અનંતક છે તે તો અલ્પ છે અને એમનામાં જે મૂલરાશિનો
ભાગાન્તક છે, તે બ્રહ્મતર છે એથી એમના સર્વથા ઉચ્છેદનનો સંભવ નથી. ભવ્યની જેમ

यथा सिध्यत्स्वपि भव्येषु न तेषामनन्तकालेनापि निर्लेपना तथा सर्वजीवभ्योऽनन्तगुणानाम् उत्कृष्टवर्णादिगतभागानां न सर्वथोच्छेद इति । न च ते संख्याता एव सिध्यन्ति, इमे तु प्रतिसमयम् अनन्ता हीयन्ते इति महद्दृष्टान्तवैपम्यम् ? इति वाच्यम्, यतस्तत्रसिध्यतां भव्यानां यथा संख्यातता तथा सिद्धिकालोऽनन्तः एवमत्राऽपि यथा प्रतिसमयम् अनन्तानामेपां हीयमानता तथा हानिकालोऽवसर्पिणी प्रमाण एव ततः परम् उत्सर्पिणी प्रथमसमयादौ तेनैव क्रमेण वर्द्धन्ते वर्णादय इति सर्वे सुस्थितम् । 'अणतेहि

पन्न होते रहेगे फिर भी इनका सर्वथा उच्छेद जैसे नहीं होता है उसी प्रकार में सर्व जीवों की अपेक्षा अनन्तगुणो उत्कृष्ट वर्णादिगतभागों का सर्वथा उच्छेद नहीं होगा, ।

शंका-वे संख्यात ही सिद्ध होते हैं परन्तु ये तो प्रतिसमय अनन्तरूप में ही हीन होते रहते हैं, इस तरह जो भव्य का दृष्टान्त देकर आपने इनकी निर्लेपता का अभाव प्रतिपादित किया है-सो इस दृष्टान्त में तो इनको अपेक्षा बहुत बड़ी विषमता है-अर्थात् इस दृष्टान्त से वर्णादिकों के सर्वथा उच्छेद होने का जो प्रसङ्ग दिया गया है वह हटना नहीं है बना ही रहता है सो इस प्रकार की यह आशंका भी ठीक नहीं है-क्यों कि सिद्ध होनेवाले भव्य जीवों में जैसी संख्यातता है वैसी काल में संख्यातता नहीं है किन्तु वह सिद्ध काल तो अनन्त है इसी प्रकार प्रत्येक समय में अनन्त वर्णादि भावों में जैसी हीयमानता है क्योंकि वह उनका हानिकाल एव सर्पिणी प्रमाण ही है इसके बाद तो उत्सर्पिणी के प्रथम काल के प्रथम समय से लेकर अन्तिम काल के अन्तिम समय तक ये वर्णादि भाव इसी क्रम से वर्द्धमान होते रहते हैं । अतः किसी भी काल में इन वर्णादि भावोंका सर्वथा उच्छेद प्राप्त नहीं हो सकता है । 'अणतेहि उच्चत

अभनु सर्वथा उच्छेदनं थाय तेवो प्रसंगे न उपस्थितं यतो नथी आशं सुधी अनन्त-
कालयोः अन्त्ये सिद्ध अवस्थापन्नं यथा आन्यांश्च अने लविध्यमा पशु तेनो अनन्तकाल सुधी
सिद्ध अवस्थापन्नं यथा रडेते, छातां चो तेमनु सर्वथा उच्छेदनं यतु नथी, आ प्रभाषे
न सर्वलवोनी अपेक्षाञ्च अनन्तशुष्क उत्कृष्ट वर्णादिगत भागोऽनु सर्वथा उच्छेदनं यथे नहि-
शंका-तेनो तो संख्यात न सिद्ध होय छे, पशु चो तो प्रति समय अनन्तशुष्कमां न हीन
यथा रडे छे, आ प्रभाषे न अन्त्ये दृष्टान्त आपीने तमे अभनी निर्लेपतानो अभाव
प्रतिपादित क्यो छे, तो आ दृष्टान्तमा तो अभनी अपेक्षा पूषण विषमता छे, ओटवे के
आ दृष्टान्तयो वर्णादिकोना सर्वथा उच्छेद यथा संभधी न प्रसंग आपवामा आवेल छे तो
कायम न रडे छे तो आ नतनी आ आशंका पशु योग्य न कडेवाय केभके सिद्ध
यनारा अन्त्ये लवोमा नेवी संख्यातता छे तेवी कालमा संख्यातता नथी परंतु ते सिद्ध
काल तो अक्षिप्त छे आ रीते इदं समयमा अनन्त वर्णादि भावोमा नेवी हीयमानता छे,
ते तेमनो हानिकाल अवसर्पिणी प्रमाण न छे अना पछी तो उत्सर्पिणीना प्रथमकालना
प्रथम समयथी भाहीने अन्तिमकालना अन्तिम समय सुधी चो वर्णादि भावो चो न कभथी
वर्द्धमानं यथा रडे छे माटे कोछं पशु कालमा चो वर्णादिभावेनो सर्वथा उच्छेद प्राप्तं यथं
शकतो नथी.

परिहाण्या' इत्यत्र अनन्तगुणानां परिहानिस्तया इति षष्ठी तत्पुरुषो न तु कर्मधारयः । गुणशब्दश्च भागपयायवाची आगमेषु प्रसिद्धः ।

नन्वेवं वर्णादीनाम् अनन्तगुणहान्या श्वेतादिवर्णानां गन्धादीनां च सर्वथोच्छेदः प्रसज्येत, एतच्च प्रत्यक्षविरुद्धम् जातीयपुष्पादौ श्वेतवर्णस्य अन्यत्राण्यवर्णानां तथैव गन्धादीनां सम्प्रत्यप्युपलभ्यमानत्वात् ? इति चेत्, आह—आगमे हि अनन्तकस्य अनन्त-भेदा उक्ताः, तत्र हीयमानभागानाम् अनन्तकम् अल्पम् तदपेक्षया मौलराशेः—भागानन्तकं बृहत्तरं बोध्यम् अतो न सर्वथोच्छेद इति । युज्यते च तेषां सर्वथोच्छेदाभावो भव्यवत्

तरह “अनन्तगुणपरिहाण्या” पद में अनन्त निर्विभागभागों की परिहानि से ऐसा ही अर्थ करके “अनन्तगुणानां परिहाण्या” में षष्ठी तत्पुरुष समास समझना चाहिये । कर्मधारय नहीं गुण शब्द भाग अर्थ का वाचक है यह बात आगम में प्रसिद्ध है ।

यहां ऐसी शंका हो सकती है कि जब वर्णादिकों के अनन्तगुणों की हानि होती कही गई है तो फिर इस तरह से इन श्वेतादि वर्णों का और गन्धादि गुणों का सर्वथा उच्छेद ही हो जावेगा परन्तु ऐसा तो होने का नहीं क्योंकि वर्तमान काल में इन सब ही इन गुणों का जैसे जातीय पुष्पादि में श्वेतवर्ण का, इसी तरह अन्यत्र भी अन्य अणुओं का एवं गन्धादिकों का सद्भाव तो देखा ही जाता है तो इस शंका का उत्तर ऐसा है कि आगम में अनन्त के भी अनन्त भेद माने गये हैं इनमें हीयमानभागों का जो अनन्तक है वह तो अल्प है और इनमें मौलराशि का जो भागानन्तक है वह बृहत्तर है इसलिये इनका सर्वथा उच्छेद नहीं हो सकता है । भव्य की तरह इनके सर्वथा उच्छेद होने का प्रसङ्ग ही प्राप्त नहीं होता है अभी तक अनन्त काल से भी भव्यो के सिद्ध अवस्थापन्न होते रहने पर भी और अनन्तकाल तक भी भव्य सिद्ध अवस्था-

आ रीते ज्येभनी स्रभाप्ति स्रंभ धी आ क्म प्रथम आरकना अंतिम समय सुधी लक्षणे लोभ्ये. तेमज आ प्रभाषे ज्ये न क्म अपसर्पिष्ठी कालना अतिम समय सुधी आदू रहे छे ज्येपुं पक्षु लक्षुपु लोभ्ये. आ प्रभाषे अनन्तगुणपरिहाण्या पदमा अनंत निर्विभागेनी परिहानिथी ज्येवो न अर्थ अहक्षु करीने अनन्तगुणानां परिहाण्या भां पक्षी तत्पुरुष स्रभास स्रभवे लोभ्ये कर्मधारय नहि शुषु शण्ड भाग अर्थनोवाचक छे आ वात आगममा प्रसिद्ध छे.

अहीं ज्येवी श'कापक्षु उद्भववी शके छे के ज्यारे वक्षुदिकेना अनंत शुषुनी हानि थती रही छे ज्येपु कडेवामां आव्युं छे तो पक्षी आ रीते तो ज्ये श्वेतादि वक्षुनीं अने गन्धादि शुषुनीं सर्वथा उच्छेद न थर्थ नशे पक्षु आवु थशे नहि केमके वर्तमान क्षणमां ज्ये सर्व शुषुनीं—ज्येभ जातीय पुष्पादिमां श्वेतवक्षुनीं आ प्रभाषे अन्य पक्षु अन्य-अन्य वक्षुनीं तेमज ग'धादिकेना सद्भाव तो ज्येवामा आवे न छे तो आ श'का नोववाण आ प्रभाषे छे के आगममां अनंतताना पक्षु अनंत वेदो मानवामा आव्या छे. ज्येमां हीयमान भागे नो न अनंतक छे ते तो अदप छे अने ज्येभनामां न मौलराशिने भागान्तक छे, ते अहत्तर छे ज्येथी ज्येभना सर्वथा उच्छेदनो स'भव नथी. लोभ्यनी ज्येभ

यथा सिध्यत्स्वपि भव्येषु न तेषामनन्तकालेनापि निर्लेपना तथा सर्वजीवैभ्योऽनन्तगुणानाम् उत्कृष्टवर्णादिगतभागानां न सर्वथोच्छेद इति । न च ते संख्याता एव सिध्यन्ति, इमे तु प्रतिसमयम् अनन्ता हीयन्ते इति महद्दृष्टान्तवैपम्यम् ? इति वाच्यम्, यतस्तत्रसिध्यतां भव्यानां यथा संख्यातता तथा सिद्धिकालोऽनन्तः एवमत्रापि यथा प्रतिसमयम् अनन्तानामेषां हीयमानता तथा हानिकालोऽवसर्पिणी प्रमाण एव ततः परम् उत्सर्पिणी प्रथमसमयादौ तेनैव क्रमेण वर्द्धन्ते वर्णादय इति सर्वे सृस्थितम् । 'अणंतेहिं

पन्न होते रहेगे फिर भी इनका सर्वथा उच्छेद जैसे नहीं होता है उसी प्रकार मे सर्व जीवों की अपेक्षा अनन्तगुणो उत्कृष्ट वर्णादिगतभागों का सर्वथा उच्छेद नहीं होगा, ।

शंका-वे संख्यात ही सिद्ध होते हैं परन्तु ये तो प्रतिसमय अनन्तरूप में ही हीन होते रहते हैं, इस तरह जो भव्य का दृष्टान्त देकर आपने इनकी निर्लेपता का अभाव प्रतिपादित किया है-सो इस दृष्टान्त में तो इनकी अपेक्षा बहुत बड़ी विषमता है-अर्थात् इस दृष्टान्त से वर्णादिकों के सर्वथा उच्छेद होने का जो प्रसङ्ग दिया गया है वह हटना नहीं है बना ही रहता है । सो इस प्रकार की यह आशंका भी ठीक नहीं है-क्यों कि सिद्ध होनेवाले भव्य जीवों में जैसी संख्यातता है वैसी काल में संख्यातता नहीं है किन्तु वह सिद्ध काल तो अनन्त है इसी प्रकार प्रत्येक समय में अनन्त वर्णादि भावों में जैसी हीयमानता है क्योंकि वह उनका हानिकाल एव सर्पिणी प्रमाण ही है इसके बाद तो उत्सर्पिणी के प्रथम काल के प्रथम समय से लेकर अन्तिम काल के अन्तिम समय तक ये वर्णादि भाव इसी क्रम से वर्द्धमान होते रहते हैं । अतः किसी भी काल में इन वर्णादि भावोंका सर्वथा उच्छेद प्राप्त नहीं हो सकता है । 'अणंतेहिं उच्चत्त

अभन्तु सर्वथा उच्छेदनं थाय तेवो प्रसंगं न उपस्थितं यतो नथी आत्र सुधी अनन्त-
कालधी भव्यो सिद्ध अवस्थापन्नं यता आव्यां छे अने भविष्यमा पणु तेवो अनन्तकाल सुधी
सिद्ध अवस्थापन्नं यता रडेथे, छातां अे तेमनुं सर्वथा उच्छेदनं यतु नथी. आ प्रभाषे
न सर्वल्लवेनी अपेक्षां अने तशुषु उत्कृष्ट वर्णादिगत भागोतुं सर्वथा उच्छेदनं थथे नडि-
शका-तेवो तो संख्यात न सिद्ध होय छे, पणु अे तो प्रति समय अनन्त रूपमां न हीन
यता रडे छे, आ प्रभाषे न्ने भव्यतु दृष्टान्त आपीने तमे अेमनी निर्देयतानो अभाव
प्रतिपादितं क्यो छे, तो आ दृष्टान्तमा तो अेमनी अपेक्षा पूण न विषमता छे, अेटवे के
आ दृष्टान्तधी वर्णादिकोनां सर्वथा उच्छेदं यवा संभधी न्ने प्रसंग आपवासां आवेद छे ते
कायम न रडे छे तो आ जातनी आ आशंका पणु योग्य न कडेवाय केमके सिद्ध
यनारा भव्य ल्लवेमा न्नेवी संख्यातता छे तेवी काणमां संख्यातता नथी परंतु ते सिद्ध
काण तो अभिन्न छे आ रीते इरेक समयमां अनन्त वर्णादि भावोमा न्नेवी हीयमानता छे,
ते तेमनो हानिकाल अवसर्पिणी प्रभाषु न्ने अेना पछी तो उत्सर्पिणीना प्रथमकाणना
प्रथम समयधी मांडीने अ्ने तिमकाणना अ्ने अ्ने अ्ने सुधी अे वर्णादि भावो अे न्ने क्ने
वर्द्धमान यता रडे छे माटे कोथ पणु काणमां अे वर्णादिभावे.नो सर्वथा उच्छेद प्राप्तं यथ
शकते नथी.

‘उच्चत्तपञ्जवेहिं’ इति यदुक्तं, तत्रैवमाशङ्का संजायते तथाहि—उच्चत्वं शरीरस्य स्वावगाढ-
मूलक्षेत्रादुपरितननमः प्रदेशावगाहित्वं तत्पर्यवाश्र एकद्वित्रिप्रतरावगाहित्वादयोऽसं-
ख्यातप्रतरावगाहित्वान्ता असंख्याता एव, अवगाहना क्षेत्रस्यासंख्यातप्रदेशात्मकत्वात्,
कथं तर्हि एषा मनन्तत्वम् ? कथं चैतेऽनन्तभागपरिहाण्या परिहीयन्ते ? इति ।

अत्रोच्यते—प्रथमारके यत् प्रथमसमायोत्पन्नानामुत्कृष्टशरीरोच्चत्वं भवति ततो
द्वितीयादि समयोत्पन्नानां यावतामेकनमः प्रतरावगाहित्वलक्षणपर्यवाणा हानिस्तावत्
पुद्गलानन्तकं हीयमानं द्रष्टव्यम्, आधारहानावाधेयहानेरावश्यकत्वात् । तेन उच्चत्व-
पर्यवाणामप्यनन्तत्वं सिद्धं नमः प्रतरावगाहस्य पुद्गलोपचयसाध्यत्वादिति

‘उच्चत्वेहिं’ ऐसा जो कहा गया है सो वहां पर ऐसी आशंका हो सकती है कि स्वावगाढभूत मूल
क्षेत्र से लेकर ऊपर ऊपर तक का जो नमः प्रदेश है उस नमः प्रदेश में जो अवगाहिता हैं वही
शरीर की उच्चता है इस उच्चता की पर्याये एक दो तीन प्रतरावगाहित्व आदि असंख्यात प्रत-
रावगाहित्व तक होती है और ये असंख्यात ही होती है तात्पर्य इसका यही है कि जीव का
अवगाढ आकाश के एक प्रदेश से लेकर असंख्यातप्रदेश तक ही होता है क्योंकि लोकाकाश के
असंख्यात ही प्रदेश हैं तो फिर यहां पर पर्यायो में अनन्तता कैसे कही गई है और कैसे यह
अनन्तभागो की परिहानि से हीन कही गई है ? सो इस शंका का समाधान ऐसा है कि प्रथम
आरक के प्रथम समय में उत्पन्न हुए जीवो की जो शरीरोच्चता होती है उससे द्वितीयादि समयो
में उत्पन्न हुए जीवो की जितनी एक नमः प्रदेशावगाहित्व रूप पर्यायो की हानि होती है वह
अनन्तरूप में हीयमान होती है क्यों कि आधार की हानि में आधेय को हानि होना आवश्यक है,
इससे उच्चत्वादि पर्यायो में भी नमः प्रदेशावगाह पुद्गलोपचय साध्य होने से अनन्तता सिद्ध हो
जाती है । “अनन्तैः आयुः पर्यवैः” ऐसा जो कहा गया है सो वहां पर भी ऐसी आशंका हो

“अण्तेहि उच्चत्तपञ्जवेहिं” આમ જે કહેવામાં આવ્યું તે ત્યાં એવી શંકા થઈ શકે
કે સ્વાવગાઢ ભૂત મૂલ ક્ષેત્રથી માંડીને ઉપર-ઉપરનો જે નમઃ પ્રદેશ છે, તે નમઃ પ્રદેશમાં
જે અવગાહિત છે, તે જ શરીરનો ઉચ્ચતા છે, આ ઉચ્ચતાની પર્યાયો એક, બે, ત્રણ
પ્રતરાવગાહિત્વ આદિ અસંખ્યાત પ્રતરાવગાહિત્વ સુધી હોય છે અને એ અસંખ્યાત જ
હોય છે. તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે કે જીવનો અવગાહ આકાશના એકપ્રદેશથી માંડીને અ-
સંખ્યાત પ્રદેશ સુધી જ હોય છે કેમ કે લોકાકાશના અસંખ્યાતજ પ્રદેશો છે, તે પછી અહીં
પર્યાયોમાં અનંતતા શા માટે કહેવામાં આવી છે ? અને કેવી રીતે આ અનંતભાગોનાં
પરિહાનિથી હીન કહેવામાં આવા છે ? તે આ શંકાનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે કે પ્રથમ
આરકમાં પ્રથમ સમયમાં ઉત્પન્ન થયેલા જીવોની જે શરીરોચ્ચતા હોય છે તેનાથી દ્વિતી-
યાદિ સમયોમાં ઉત્પન્ન થયેલા જીવોની જેટલી એક નમઃ પ્રદેશાવગાહિત્વ રૂપ પર્યાયોની
હાનિ હોય છે તે અનંતરૂપમાં હીયમાન હોય છે કેમ કે આધારની હાનિમાં આધેયના
હાનિ આવશ્યક છે, એનાથી ઉચ્ચત્વાદિ પર્યાયોમાં પણ નમઃ પ્રદેશાવગાહપુદ્ગલોપચય
સાધ્ય હોવાથી અનંતતા સિદ્ધ થઈ જાય છે ‘અનન્તૈઃ આયુઃ પર્યવૈઃ’ આમ જે કહેવામાં

अनन्तैः आयुः पर्यवैः' इति यदुक्तम्, तत्रैवमाशङ्का जायते, तथाहि-पर्यवाणाम् एकसमयोना द्विसमयोना यावदसंख्येयसमयोनोत्कृष्टा स्थितिरिति पर्यवाः स्थितिस्थानतारतम्यरूपा असंख्येया एव, आयुः स्थिते रसंख्यातसमयात्मकत्वात्, तर्हि कथमुक्तम्-अनन्तैः आयुः पर्यवैः' इति, अत्राह- हीयमानस्थितिस्थानकारणोभूतानि अनन्तानि आयुः कर्मदलिकानि प्रतिसमयं परिहीयन्ते । तानि हीयमानानि अनन्तानि आयुः कर्मदलिकानि भवस्थितिकारणत्वात् आयुः पर्यवा एव, अतस्तेषाम् अनन्तत्वे नास्ति काऽपि विप्रतिपत्तिरिति ।

तथा- 'अनन्तैर्गुरुलघुपर्यवैः' इति यदुक्तं, तत्रगुरुलघु-पर्यवाः=औदारिक वैक्रियाहारकतैजसरूपाणां बादरस्कन्धद्रव्याणां पर्याया इति तत्र प्रकृते वैक्रियाहारकयोरनुपयोगः, तेन तत्राद्यसमये औदारिकशरीरमाश्रित्य उत्कृष्ट वर्णादयो बोध्याः, ततः परं

सकती है कि एक समय हीन, दो समय हीन, यावत् असंख्यात समय हीन जो उत्कृष्ट स्थिति होती है वही आयु की पर्याये है, इस स्थिति स्थानो की तरतमता को लेकर आयु की पर्याये असंख्यात ही हो सकती हैं, क्योंकि आयु की स्थिति असंख्यात समयरूप ही होती है, तो फिर आयु की पर्यायो में अनन्तता कैसे कही गई है ? तो इस शंका का समाधान ऐसा है कि हीयमानस्थितिस्थानकोके कारणीभूत जो आयुकर्मदलिक प्रतिसमय हीन होते हैं वे हीयमान अनन्त आयुकर्मदलिक भवस्थिति के कारणभूत होने से आयु के पर्यायरूप ही होते है अतः इनकी अनन्तता में कोई विप्रतिपत्ति नहीं है, "अनन्तैर्गुरुलघु पर्यवैः" ऐसा जो कहा गया है सो औदारिक वैक्रिय आहारक एवं तैजस रूप बादर स्कन्ध द्रव्यो की जो पर्याये हैं वे गुरु लघु पर्याय है । प्रकृत में वैक्रिय और आहारक पर्यायों का उपयोग नहीं लिया गया है । अतः प्रथम आरक में आद्यसमय में औदारिक शरीर को आश्रित करके उत्कृष्ट वर्णादिक जानना चाहिए इसके बाद वे उसी तरह से हीन होते जाते हैं । तथा तैजस शरीर को आश्रित करके आद्य-

आयु' छे, ते त्यां पण्य ज्येवी आशंका थर्ध शके छे के ज्येक समय हीन, जे समय हीन, यावत् असंख्यात समय हीन जे उत्कृष्ट स्थिति होय छे ते जे आयुनी पर्याय छे. आ स्थिति स्थानोनी तरतम्यता लधने आयुनी पर्याये असंख्यात जे थर्ध शके छे. केम के आयुनी स्थिति असंख्यात समय रूप जे होय छे. तो पछी आयुनी पर्यायेमां अनन्तता या माटे कहेवामां आवी छे ? तो आ शंकातुं समाधान आ प्रमाणे छे के हीयमान स्थिति स्थानकोना कारणभूत जे आयु कर्म दलिको प्रति समये हीन थता रहे छे तेज्यो हीयमान अनन्त आयु कर्म दलिक भवस्थितिना कारण भूत होवाथी आयुना पर्याय रूप जे होय छे ज्येथी ज्येभनी अनन्ततामां काँठ पण्य जातनी विपत्ति नथी. "अनन्तैर्गुरुलघुपर्यवै" आभ जे कहेवामां आयु' छे तो औदारिक वैक्रिय आहारक तेम जे तैजस रूप आहर स्कन्ध द्रव्योनी जे पर्याये छे ते गुरुलघु पर्याये छे. प्रकृतमां वैक्रिय अने आहारक पर्यायेना उपयोग करवामां आव्यो नथी. ज्येथी प्रथम आरकना आद्यसमयमा औदारिक शरीरने आश्रित करीने उत्कृष्ट वर्णादिक लक्षण ज्येथी. त्यारबाद तेज्यो ते प्रमाणे

તથૈવ હીયન્તે । તથા- તૈજસ શરીરમાશ્રિત્યાદ્યસમયે કપોતપરિણામક જાઠરાગ્નિરુત્કૃષ્ટઃ, તદનન્તરં હાન્યા મન્દ મન્દતરાદિ વીર્યકલ્પરૂપો ભવતીતિ

તથા- 'અનન્તૈરગુરુલ્લઘુપર્યવૈઃ, इत्युक्तम् । तत्र 'अगरुल्लगु द्रव्याणि=कार्मणमनोभाषादीनि पौद्गलिकानि सूक्ष्मद्रव्याणि' इत्यर्थः कृतः । तत्र कार्मणस्य सातवेदनीय शुभनिर्माण सुस्वर सौभाग्यादेयादि रूपस्य बहुस्थित्यनुभागप्रदेशकत्वेन, मनोद्रव्यस्य बहुग्रहणासन्दिग्धग्रहणझटितिग्रहण बहुधारणादि मत्वेन, भाषाद्रव्यस्य उदात्तत्व गम्भीरोपनीतरागत्वप्रतिपादनादविधायितादिरूपत्वेन च आदिरामये उत्कृष्टत्वं ततः परं क्रमेणानन्तापर्यवा हीयन्तेइति ।

તથા- 'અનન્તૈ રુત્થાનકર્મબલવીર્યપુરુષકારપરાક્રમપર્યવૈઃ' इत्युक्तम् । उत्थानादयः प्रथमसमये उत्कृष्टाः, ततः पर क्रमशो हीयन्ते इति बोध्यम् । अत्र प्रकृतविषये प्राचीना समय मे कपोत परिणामक जठर सबधी अग्नि उत्કૃષ્ટ होती है । इसके बाद द्वितीयादिक समयो में वह हानिरूप से होती हुई मन्द मन्दतर आदि वीर्य प्रभाव वाली होती जाती है ।

“અનન્તૈઃ અગુરુલ્લઘુપર્યવૈઃ” ऐसा जो कहा गया है सो इसका अर्थ कार्मण मनोवर्गणा और भाषा वर्गणा आदि रूप सूक्ष्म पौद्गलिक द्रव्य ऐसा किया है इनमें जो कार्मण द्रव्यरूप सूक्ष्म पुद्गल द्रव्य है एव उसमें जो सातावेदनीय, शुभनिर्माण, सुस्वर, सौभाग्य और आदेयादि प्रकृतियां है उनमें बहु स्थिति रूप, बहु अनुभाग रूप, बहुप्रदेशरूप जो बध है उस रूप से मनोद्रव्य का बहुग्रहणरूप से, असदिग्ध ग्रहणरूपसे, झटिति ग्रहणरूप से और बहुधारणादि मत्व रूप से, भाषा द्रव्य का उदात्तरूप से, गंभीर रूप से राग आदि रूप से आदि समय में उत्कृष्ट सच्य-ग्रहण होता है इसके बाद द्वितीयादि समयों में क्रमशः इनकी अनन्त पर्याय हीयमान होने लगती हैं ।

तथा-“अनन्तैरुत्थानकर्मबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमपर्यवैः” ऐसा जो कहा गया है सो इसका

જા હીન થતા જાય છે તેમ જ તૈજસ શરીરને આશ્રિત કરીને આદ્યસમયમાં કપોત પરિણામક જઠર સબધી અગ્નિ અતિ ઉત્કૃષ્ટ હોય છે, ત્યાર બાદ દ્વિતીયાદિક સમયોમાં તે હાનિરૂપમાં પરિણત થતી મન્દ મન્દતર વગેરે વીર્ય-પ્રભાવવાળી થતી જાય છે.

“અનન્તૈઃ અગુરુલ્લઘુપર્યવૈઃ” આમ કહેવામાં આવ્યું છે તેો આનો અર્થ કાર્મણ, અને મનોવર્ગણા અને ભાષાવર્ગણા આદિ રૂપ સૂક્ષ્મ પૌદ્ગલિક દ્રવ્ય આમ કરવામાં આવેલ છે. એમનામાં જે કાર્મણ દ્રવ્ય રૂપ સૂક્ષ્મ પુદ્ગલ દ્રવ્ય છે અને તેના જે સાતાવેદનીય, શુભ-નિર્માણ સુસ્વર, સૌભાગ્ય અને આદેયાદિ પ્રકૃતિયો છે, તેમનામાં બહુસ્થિતિરૂપ, બહુ અનુભાગ રૂપ, બહુ પ્રદેશરૂપ જે બન્ધ છે, તે રૂપથી મનોદ્રવ્યનું બહુશુષ્કરૂપથી, અસદિગ્ધ ગ્રહણ રૂપથી, ઝટિતિ ગ્રહણ રૂપથી અને બહુધારણાદિમત્વ રૂપથી, ભાષાદ્રવ્યનું ઉદાત્ત રૂપથી, ગંભીર રૂપથી રાગ આદિ રૂપથી આદિ સમયમાં ઉત્કૃષ્ટ-સચ્ય ગ્રહણ હોય છે ત્યાર બાદ દ્વિતીયાદિ સમયોમાં ક્રમશઃ એમના અનન્ત પર્યાયો હીયમાન થવા માટે છે

તથા-“અનન્તૈરુત્થાનકર્મબલવીર્ય પુરુષકારપરાક્રમપર્યવૈઃ” એવું જે કહેવામાં આવ્યું

गाथाः—संघयणं सठाणं, उच्चत्त आउय च मणुयाणं ।

अणुसमयं परिहायइ, ओसप्पिणी कालदोसेण ॥१॥

कोहमयमायलोभा, ओसन्नं वड्ढए य मणुयाणं ।

कूड तुल कूडमाणा, तेणाऽणुमाणेण सव्वंपि ॥२॥

विसमा अज्ज तुलाओ, विसमाणि य जणवएसु माणाणि ।

विसमा रायकुलाइं, तेण उ विसमाइ वासाइ ॥३॥

विसमेसु य वासेसु, हुत्ति असाराइं ओसहिबलाइ ।

ओसहि दुब्बलेण य, आउ परिहायइ णराणं ॥४॥

छाया—संहननं संस्थानम् उच्चत्वम् आयुश्च मनुजानाम् ।

अनुसमयं परिहीयते अवसर्पिणोकाल दोषेण ॥१॥

क्रोधमदमायालोभाः प्रायो वर्धन्ते च मनुजानाम् ।

कूटतुला कूटमाने तेनानुमानेन सर्वमपि ॥२॥

विषमा अद्य तुला विषमाणि च जनपदेषु मानानि ।

विषमाणि राजकुलानि तेन तु विषमाणि वर्षाणि ॥३॥

सात्पर्यं ऐसा है कि—प्रथम अवसर्पिणी काल मे उत्थान आदि प्रथम समय में उत्कृष्ट होते हैं इसके बाद क्रमशः ये द्वितीयादि समयों में हीन होते जाते हैं इस प्रकृत विषय में प्राचीन गाथाएँ इस प्रकार से है—

“संघयणं सठाणं उच्चत्त आउयं च मणुयाणं, । अणुसमयं परिहायइ, ओसप्पिणीकालदोसेण ॥१॥

कोह मयमायलोभा ओसन्नं वड्ढए य मणुयाणं । कूडतुल कूडमाणा तेणाऽणुमाणेण सव्वंपि ॥२॥

विसमा अज्जतुलाओ विसमाणि य जणवएसु माणाणि । विसमारायकुलाइ तेण उ विसमाइ वासाइ ॥३॥

विसमेसु य वासेसु हुत्ति असाराइ ओसहिबलाइ । ओसहि दुब्बलेण य आउ परिहायइ णराणं ॥४॥

छे तो आनु' तात्पर्यं आ प्रभाषे छे डे—प्रथम अवसर्पिणी कालमां उत्थान आदि प्रथम समयमां उत्कृष्ट होय छे त्पारभाइ—क्रमशः ओयो द्वितीयादि समयमां हीन थता नय छे, आ प्रकृतविषयमां प्राचीन गाथाओ आ प्रभाषे छे :

संघयणं सठाणं उच्चत्त आउयं च मणुयाणं,

अणुसमयं परिहायइ ओसप्पिणी कालदोसेण ॥१॥

कोहमयमाय लोभा ओसन्नं वड्ढए य मणुयाणं

कूडतुलकूडमाणा तेणंऽणुमाणेण सव्वेपि । २॥

विसमा अज्ज तुलाओ विसमाणि य जणवएसु माणाणि,

विसमा रायकुलाइ तेण उ विसमाइ वासाइ ॥३॥

विसमेसुय वासेसु हुत्ति असाराइ ओसहिबलाइ ।

ओसहि दुब्बलेण य आउ परिहायइ णराणं ॥४॥

વિપમેષુ ચ વર્ષેષુ ભવન્તિ અસારાણિ ઓપધિવલાનિ ।

ઓપધિદૌર્વલ્યેન ચ આયુ પરિહીયતે નરાણામ્ ॥૪૧॥ ઇતિ ।

एषा वर्णगन्धादिपर्यवाणां हानि रवसर्पिणीकालदोषेण बोध्या इय तु दुष्पमामाश्रित्य वाह-
ल्येन भवति शेषारकेषु तु यथासंभव विज्ञेयेति । ननु-‘नित्यद्रव्यस्यापि कालस्य कथं
हानि ?’ इति शङ्ककस्याशङ्कानिवारणार्थं भवता वर्णगन्धादि पर्यवाणां हानिर्निर्दिष्टा, वर्णादि
पर्यवाश्च पुद्गलधर्माः, हीयमानैस्तैः कालस्य हानिरसंभाव्या, नहि अन्यधर्मेहीयमानैः अपरस्य
हानिः क्वचिद् दृष्टा यद्यन्यधर्मेहीयमानैरपरस्य हानिः स्वीक्रियेत, तर्हि वृद्धाया वयोहानौ
युवत्या अपि वयोहानिः प्रसज्येत, न चैत्रं भवतीति चेत्, आह, कालो हि कार्यमात्रस्य
कारणमिति कार्यगतधर्मान् कारणेऽप्युपचर्य कालस्य हानिरुक्ते न काऽपि विप्रतिपत्ति-
रिति ॥सू० ३४॥

इनका भाव स्पष्ट है इन वर्ण गन्ध आदि पर्यायी की हानि अवसर्पिणी काल के दोष से होती है ऐसा जानना चाहिये, दुष्पमा आरक को आश्रित करके तो वर्ण गन्ध आदिको को हानि बहुत अधिक रूप में होती है शेष आरकों में यथा समव हो होती है ऐसा तीर्थकरों का आदेश है ।

काल को तो नित्य द्रव्य माना गया है फिर इसकी हानि कैसे होती है ? इस प्रकार शङ्का करने वाले की शङ्का को निवारण करने के निमित्त आपने जो वर्ण गन्ध आदि पर्यायो की हानि कही है सो यह कथन तो ठीक है क्योंकि वर्णादिकों की पर्यायें पुद्गलधर्मरूप हैं, परन्तु इन हीयमानों के द्वारा काल की हानि होना तो असंभवित है क्यों कि अन्य की हानि में अन्य की हानि नहीं होती है कहीं ऐसा तो देखा नहीं जाता है कि वृद्धा की वयो हानि में युवती के वय की हानि होती हो’ सो इसका उत्तर ऐसा है कि काल कार्यमात्र के परिवर्तन में कारण होता है इसलिये कार्यगत धर्मों का कारण में भी उपचार कर लिया जाता है अतः यहाँ पर इसी बात को लेकर काल की हानि कह दी गई है, इसमें विवाद जैसी कोई बात नहीं है ॥३४॥

એમનો ભાવ સ્પષ્ટ છે આ બધા વર્ણ ગન્ધવગેરે પર્યાયિની હાનિ અવસર્પિણી કાળના દોષથી થાય છે, એમ સમજવું ભેદ એ દુષ્પમા આરકને આશ્રિત કરીને તો વર્ણ ગન્ધ વગેરે આદિકોની હાનિ અત્યધિક રૂપમાં થાય છે. શેષ આરકોમાં યથાસંભવ જ થાય છે, એવી તીર્થકરોની આજ્ઞા છે

કાળને તો નિત્ય દ્રવ્ય માનવામાં આવેલ છે. તો પછી એને હાનિ કેવી રીતે થાય છે ? આ બાતની શંકા કરનારાઓની શંકાનું નિવારણ કરવા માટે તમે જે વર્ણ ગન્ધ વગેરે પર્યાયિની હાનિ બતાવેલ છે તો આ કથન તો ઠીક જ છે કેમ કે વર્ણાદિકોની પર્યાયિ પુદ્ગલ રૂપ છે, પણ આ હીયમાનો વડે કાળની હાનિ થવી એ તો અસંભવિત છે કેમ કે અન્યની હાનિમાં કોઈ અન્યની હાનિ થતી નથી કોઈ સ્વયં આણું તો જોવામાં આવતું નથી કે વૃદ્ધાની વયોહાનિમાં યુવતીના વયની હાનિ થતી હોય તો આનો જવાબ આ પ્રમાણે છે કે કાળ કાર્યમાત્રના પરિવર્તનમાં કારણભૂત હોય છે. એથી કાર્યગત ધર્મોના કારણમાં પણ ઉપચાર કરવામાં આવે છે એથી અહીં એ વાતને લઈને જ કાલની હાનિ કહેવામાં આવી છે એમાં વિવાદ જેવી કોઈ વાત નથી. ॥૩૪॥

मूलम्—जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसपिणीए सुसमाए
समाए उत्तमकट्टपत्ताए भरहस्स वासस्सकेरिसए आयारभावपडोयारे
होत्था ? गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए
आलिङ्गपुक्खरेइ वा, तं चेव जं सुसम सुसमाए पुव्ववण्णियं, णवरं णाणत्तं
चउधणुसहस्समूसिया एगे अट्टावीसे पिट्टकरंडुयसए, छट्टभत्तस्स
आहारट्टे, चउसट्ठि राइंदियाइं सारक्खंति, दो पलिओवमोइं आऊ, सेसं
तं चेव । तीसे णं समाए चउव्वहो मणुस्सा अणुसज्जित्था, जहा—एका ?,
पउरजंघा २, कुसुमा ३. सुसमणा ४, ॥सू३५॥

छाया—जम्बूद्वीपे खलु भदन्त । द्वीपे अस्या अवसर्पिण्याः सुपमायां समायाम्
उत्तमकाष्ठा प्राप्तायां भरतस्य वर्षस्य कीदृश आकारभावप्रत्यवतारोऽभवत् ?, गौतम !
बहुसमरमणीयो भूमिभागोऽभवत् तद्यथानामकम् आलिङ्गपुष्कर इति वा, तदेव यत्
सुषमसुषमायां पूर्ववर्णितम् नवरं नानात्वं चतुर्थेनुस्सहस्रोच्छ्रिता. एकम् अष्टाविंशं पृष्ठ
करण्डकशतं षष्ठभक्तस्य आहारार्थः, चतुष्पष्टि रात्रिन्दिवं संरक्षन्ति, द्वे पत्न्योपसे आयुः
शेष तदेव । तस्यां खलु समयां चतुर्विधा मनुष्याः अन्वपजन्, तद्यथा—एकाः १, प्रचुर-
जहाः २, कुसुमाः ३, सुसमणा ४, ॥ ३५ ॥

टीका—'जंबुद्वीवे णं' इत्यादि ।

गौतमस्वामी पृच्छति—'जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे' हे भदन्त ! जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे
'इमीसे' अस्याः वर्तमानाया 'ओसपिणीए' अवसर्पिण्याः 'सुसमाए समाए उत्तमकट्टप-
त्ताए' सुषमायां समायाम् उत्तमकाष्ठाप्राप्तायाम्—उत्कृष्ठावस्थामुपगतायां सत्यां 'भरहस्स
वासस्स केरिसए' भरतस्य वर्षस्य कीदृशः—किं प्रकारकः 'आयारभावपडोयारे' आकार-
भाव प्रत्यवतारःस्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः 'होत्था' अभवत् ? इति । भगवान् आह—
'गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे' हे गौतम ! बहुसमरमणीय—अत्यन्तसमो मनोरमश्च 'भूमिभागे'

टीका—“जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसपिणीए” इत्यादि ।

इस सूत्र द्वारा गौतम ने प्रसु से पूछा है “जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे०” हे भदन्त ! जब इस
जम्बूद्वीप में इस अवसर्पिणी के सुषमा नामक आरे को मौजूदगी में जब कि वह अपनी उत्कृष्ट
अवस्था में वर्तमान रहता है भरत क्षेत्र की स्थिति कैसी रहती है ? इसके उत्तर में प्रसु कहते
हैं—“गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहाणामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा त चेव जं

जंबुद्वीवेण भंते दीवे इमीसे ओसपिणीए, इत्यादि सूत्र—॥३५॥

टीका—आ सूत्र पठे गौतमे प्रश्नने आ ज्ञातने। प्रश्न कथं छे के “जंबुद्वीवेण भंते दीवे०” “हे
भदन्त ! ज्यारे आ जंबुद्वीपभा आ अवसर्पिणीना सुषमा नामक आरकनी हथातीआ ज्यारे
ते चोतानी उत्कृष्ट अवस्थाभा वर्तमान रहे छे, त्यारे भरतक्षेत्रनी स्थिति कैसी रहे छे ? ज्ञेना

ભૂમિભાગઃ=ભૂમિપ્રદેશઃ 'હોત્યા' અભવત્ । તત્ર દૃષ્ટાન્તમાહ—'સે જઠાનામણ' ઇત્યાદિ । 'સે જઠા ણામણ' તથથા નામકમ્ 'આલિંગપુક્કરેડ વા' આલિંગપુક્કર ઇતિ વા, ઇત્યાદિ સર્વ વર્ણન સુષમસુષમા સૂત્રવદ્ બોધ્યમ્ । એતદેવ દર્શયતિ સૂત્રકારઃ 'તં ચેવ જં સુસમ સુસમાણ પુવ્વવણ્ણિયં' તદેવ યત્ સુપમસુપમાયાં પર્વવર્ણિતમિતિ । સમ્પ્રતિ તતો વૈશિષ્ટ્યં પ્રતિપાદયતિ 'નવર' ઇત્યાદિ । ણવરં' નવરં=કેવલં 'ણાણત્ત' નાનાત્વં=મેદોડયમ્, યત્ સુષમસુષમાસમુત્પન્ના મનુજાઃ 'ચડધણુસહસ્સમૂસિયા' ચતુર્ધનુસ્સહસ્સોચ્છિતાઃ=ચતુસ્સહસ્-ધનુઃ પરિમાણોચ્ચાઃ ક્રોશદ્વયોઘ્નતાઃ પ્રજ્ઞસાઃ । તેપાં મનુજાનામ્ 'એગે' એકમ્ 'અઢ્ઢાવીસે-પિટ્ઠકરંડયસણ' અષ્ટાવિંશ પૃષ્ઠકરણ્ઢકશતમ્=અષ્ટાવિંશત્યધિકૈકશતસખ્યકાઃ પૃષ્ઠકરણ્ઢકાઃ ભવન્તિ । પ્રથમારકોત્પન્ન મનુજાપેક્ષયા સુપમારકોત્પન્નમનુજાનાં પૃષ્ઠકરણ્ઢકા અર્ધ ભવન્તી-તિ બોધ્યમ્ । તથા—તેપાં મનુજાનાં 'હ્હમ્મત્તસ્સ' પ્ષ્ઠમ્મત્તેડતિક્રાન્તે 'આહારઢ્ઢે' આહારાર્થઃ =આહારપ્રયોજનં સમુત્પદ્યતે । તથા તે મનુજાઃ 'ચડસઢ્ઠિં રાહ્દિયાઈ' ચતુષ્પષ્ઠિં રાત્રિન્દિવં સ્વાપત્યં 'સારક્કલ્લન્તિ' સંરક્ષન્તિ । અત્રેદં બોધ્યમ્—ચતુષ્પષ્ઠિદિવસાવશિષ્ટાસુપસ્તે મનુજાઃ અપત્યાનિ જનયન્તિ, તાનિ ચતુષ્પષ્ઠિદિવસાવધિસંરક્ષ્ય સંગોપ્ય પૂર્વોક્તપ્રકારેણ કાલધર્મ-

સુસમસુસમાણ પુવ્વવણ્ણિયં" હે ગૌતમ ! ઇસ કાલ ક્ષી ઉપત્થિતિ મેં ભરતક્ષેત્ર કા ભૂમિભાગ વહુ સમ રમણીય રહતા હૈ અત્યન્ત સમ ઔર મનોરમ હોતા હૈં યહા ઇસકા વર્ણન "આલિંગપુક્કર આદિ રૂપ સે પૂર્વ મેં સુષમસુષમા કે વર્ણન મેં કહે ગયે સૂત્ર કી તરહ સે કર લેના ચાહિયે । પરન્તુ ડસ કાલ કે સમય કે વર્ણન મેં ઔર ઇસ કાલ કે સમય કે વર્ણન મેં જો અન્તર હૈ વહ 'નવર" ઇસ પદ દ્વારા સૂચિત કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ ડમ કાલ મેં ઉત્પન્ન હુણ મનુષ્ય "ચડધણુસહસ્સમૂસિયા ંગે અઢ્ઢાવીસે પિટ્ઠકરંડયમણ, હ્હમ્મત્તસ્સ આહારઢ્ઢે ચડસઢ્ઠિં રાહ્દિયાઈ સારક્કલ્લન્તિ" ચારહજાર ઘનુષ કી અવગાહનાવાલે હોતે હૈં અર્થાત્-દો કોશ કે ડેવે શરીર વાલે હોતે હૈ, ૧૨૮ ઇનકે પૃષ્ઠ કરણ્ઢક હોતે હૈ, અવસર્પિણી કે પ્રથમ કાલ કે મનુષ્યો કે પૃષ્ઠકર-ણ્ઢક ૨૫૬ હોતે હૈ—તવ કિ ઇનકે પૃષ્ઠ કરણ્ઢક ડનસે આઘે હોતે હૈ, દો દિન કે વ્યતીત હો જાને

જવાબમા પ્રભુ કહે છે—'ગૌયમા ! વહુસમરમણિજ્ઞે ભૂમિભાગે હોત્યા સે જઠા ણામણ આલિંગ પુક્કરેડ વા તં ચેવ જં સુસમસુસમાણ પુવ્વવણ્ણિયં" હે ગૌતમ ! એ કાળમાં ભરતક્ષેત્રનો ભૂમિભાગ અહુસમરમણીય રહે છે, અતીવ સમ અને મનોરમ હોય છે અહીં આ ભૂમિ-ભાગનુ વણુન આલિંગ પુક્કર' વગરે રૂપમા પૂર્વમા સુષમ સુષમાના વણુનમાં કહેવામાં આવેલ સૂત્રની જેમ જ સમજી લેવુ જોઈ એ. પણ તે કાળના સમયના વણુનમાં અને આ કાળના સમયના વણુનમાં જે અન્તર છે તે 'નવરં' આ પદ વડે સૂચિત કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે તે કાળમા જન્મેલ મનુષ્ય 'ચડધણુસહસ્સમૂસિયા ંગે અઢ્ઢાવીસે પિટ્ઠ કરંડયસણ, હ્હમ્મત્તસ્સ આહારઢ્ઢે, ચડસઢ્ઠિં રાહ્દિયાઈ સાક્કલ્લન્તિ" ચાર હજાર ધનુષ જેટલી અવગા-હનાવાળા હોય છે એટલે કે જે આઠ જેટલા ઉચા શરીરવાળા હોય છે. ૧૨૮ એમના પૃષ્ઠ કરંડકા હોય છે અવસર્પિણીના પ્રથમકાળના મનુષ્યોના પૃષ્ઠ કરંડકા ૨૫૬ હોય છે.

युक्ता भवन्ति । तदपत्यानां सप्त अवस्थाक्रमाः—पूर्ववत् बोध्याः । तत्र प्रत्येकस्यामवस्थायां कालमानं नवदिनानि, अष्टौ घटयः, चतुस्त्रिंशत्पलानि, त्रिंशदधिकानि मसद्ग चाक्षराणि । सप्तभिर्विभक्ता चतुष्पष्टि दिवसाः पूर्वोक्तप्रमाणा एव लभ्यन्ते । पूर्वापेक्षया तेषामधिकसरक्षणकालः कालस्य हीयमानस्य सत्त्वेन उत्थानादीना हीयमानत्वान् उत्थानादीनामभिव्यक्तौ बहुतरदिवसानामपेक्षितत्वेन बोध्यः । एवमग्रेऽपि बोध्यमिति । तथा—तेषां मनुजानाम् आयुः=जीवितकालः 'दोपलिओवमाइं' द्वे पल्योपमे=द्विपल्योपमप्रमाणं भवति । अत्र सूत्रे गौतमस्त्रामिनः प्रश्नवाक्य ' भगवत उत्तरवाक्य च मृषमसृषमा सूत्रवद् बोध्यमिति । 'आऊ सेसं त चेव' इदमायुः प्रमाणं शरीरोच्छ्रयादिकं च मृषमाया आदि समये बोध्यम् । अतः पर क्रमेण हानिर्बोध्यति ।

पर इन्हें आहार की अभिलाषा होती है, अर्थात् दो दिन के बाद ये आहार करते हैं, ये अपने बाल बच्चों के समाल ६४ दिन रात तक करते हैं, "दो पलिओवमाइं आऊ सेस त चेव" इनकी आयु का काल दो पल्योपम प्रमाण होता है इनके बच्चों की अवस्था का क्रम जैसा पहिले कहा गया है वैसा ही यहां पर जानना चाहिए इनकी प्रत्येक अवस्था में कालमान नौ दिन का होता है, ८ घडिया होती हैं, ३४ पल होते हैं, कुछ अधिक १७ अक्षर होते हैं ६४ दिनो को सात से विभाजित करने पर यही प्रमाण आता है, इस कथन से सूत्रकार ने यह साबित किया है कि इनका सरक्षणकाल पूर्वकाल के सरक्षण काल को अपेक्षा है, काल की हीयमानता होने से यहां उत्थान आदि हीयमान होते हैं, इन उत्थान आदि की अभिव्यक्ति होने में बहुतर दिवसों की अपेक्षा रहा करती है, इसी तरह से आगे भी इनके सम्बन्ध में कथन जानना चाहिए, इनका आयुकाल दो पल्योपम प्रमाण होता है तथा इनके शरीर की ऊँचाई दो कोश की होती है इत्यादि रूप से जो ऐसा कहा गया है वह सब कथन सुषमा काल के आदि समय में कहा गया

अथारे ज्येभना पृष्ठ कर उडे तेभना करतां अडधा डोय छे जे द्विसो पसर थाय पछी ज्येभने आहारनी अभिलाषा थाय छे ज्येठले के जे द्विस पछी ज्येभो आहार अह्यु करे छे जे ज्ये पोताना भाणकेनी संभाण इउ द्विस-रात सुधी करे छे "दो पलिओवमाइं आऊ सेसं तं चेव" ज्येभना आयुधनी अवधि जे पल्योपम प्रमाण ज्येठली डोय छे ज्येभना भाणकेनो अवस्थाक्रम ज्येभ पडेलो कडेवामां आवेल छे तेभ ज संभज्ये ज्येभनी इरेके इरेक अवस्थामा काणमान नव द्विसतुं डोय छे, ८ धडीज्ये डोय छे, उउ पल डोय छे, कंठके पधारे १७ अक्षर डोय छे, ६४ द्विसने उ वडे विभाजित करीज्ये तो ज्ये ज प्रमाण आवे छे. आ कथन थी सूत्रकारे आ वात सिद्ध करी छे के ज्येभने सरक्षयु काण पूर्वकाणना संरक्षयु काणनी अपेक्षाज्ये छे. काणनी हीयमानता डोवाथी अही उत्थान आदि हीयमान डोय छे ज्ये उत्थान आदिनी अभिव्यक्ति डोवामां बहुतर द्विसोनी अपेक्षा रहे छे. आ प्रमाणे हवे पछी पयु ज्येभना संभ धमा आ रीते लयुवुं ज्येठले के ज्येभने ज्येभु-काण जे पल्योपम प्रमाण ज्येठली डोय छे, तेभ ज ज्येभना शरीरनी ल'आर्थ जे आठ ज्येठली डोय छे इत्यादि रूपमा जे आयु कथन करवामां आवेल छे ते ज्ये सुषमा काणना आदि

अथ भगवान् मनुष्य भेदानाह—‘तीसे णं’ इत्यादि । हे गौतम ! ‘तीसेण समाए’ तस्यां खलु समायां ‘चउव्विहा मणुस्सा’ चतुर्विधा मनुष्याः ‘अणुसज्जित्था’ अन्वपजन= अनुपक्तवन्तः, ‘तं जहा’ तद्यथा ‘एका’ एकाः=प्रधानाः श्रेष्ठा, एकशब्दस्यात्र संज्ञात्वान्न सर्वनामता १, ‘पउरजंघा’ प्रचुरजङ्घा=पीनजङ्घाः, न तु काकवत् तनुजङ्घा इति २, ‘कुसुमा’ कुसुमाः सौकुमार्येण कुसुमसदृशत्वात् ३, ‘सुसमणा’ सुशमनाःसुष्ठु शमन=शान्तभावो येषां ते तथा—अतिशान्ताः प्रतनुकपायत्वादिति ४, अत्र तद्गुणवैशिष्ट्यात् तत्तज्जातीयता बोध्येति पूर्वोक्तोत्पन्नपद्जजातीयमनुष्याणामत्रारकेऽभावादिमे मनुष्यास्ततोभिन्नजातीया एव भवन्तीति बोध्यम् ॥सू० ३५॥ इति द्वितीयारकः ॥

अथ तृतीयारकस्य स्वरूपं प्रतिपादयितुं प्रश्नोत्तरस्वरूपात्मकं सूत्रमाह—

मूलम्— तीसे णं समाए तिहि सागरोवम कोडाकोडीहि काले वीइ ककंते अणंतेहि वण्ण पज्जवेहिं जाव अणंतगुणपरिहाणीए परिहायमाणे परिहायमाणे एत्थ णं सुसमदुस्समा णामं समा पडिवज्जिसु समणाउसो सा णं समा तिहा विभज्जइ पढमे तिभाए १. मज्झिमे तिभाए २. पच्छिमे तिभाए ३. । जंबुद्वीवे णं भंते ! दीवे इमीसे ओसप्पिणीए

जानना चाहिए क्योंकि जैसे २ यह काल व्यतीत होता है वैसे २ आयु की हीनता होती जाती है, “तीसे णं समाए चउव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था” इस काल में ये चार प्रकार के मनुष्य होते हैं—“तं जहा एका, पउरजंघा, कुसुमा, सुसमणा” एकश्रेष्ठ, यहां यह एक शब्द संज्ञा रूप में प्रयुक्त हुआ है सर्वनामरूप में नहीं हमरे काकजङ्घा की तरह तनुजङ्घा वाले नहीं प्रत्युत पृष्ठ जङ्घा वाले, तीसरे पुष्प की तरह सुकुमारऔर चतुर्थ सुशमन—शान्तिभाववाले क्योंकि इनकी कषाय प्रतनु पतली होती है इस कारण ये अतिशान्त होते हैं’ पूर्व आरक में उत्पन्न हुए ६ प्रकार के पुरुषों का इस आरक में अभावरहता है इसलिए ये उनसे भिन्न ज्ञातीय ही होते हैं, अतः तत्तद्गुण विशिष्ट होने से इनमें तत्तज्जातीयता जाननी चाहिये, ॥३५॥

द्वितीय आरक का कथन समाप्त ॥

समयमा ङडेवामां आवेल्ले छे केम के नेम नेम आ काण व्यतीत थाय छे तेम तेम आयु वगरेनी हीनता थती लय छे “तीसेणं समाए चउव्विहा मणुस्सा अणुसज्जित्था” ओ काणमां आ प्रमाणे आर प्रकारना मनुष्यो ङाय छे—“तं जहा-एका पउरजंघा कुसुमा, सुसमणा” ओके श्रेष्ठ, अही आ ओके शब्द संज्ञा रूपमा प्रयुक्त थयेल्ले छे, सर्वनाम रूपमा नहि णील्ले काके अङ्घानी नेम तनु अङ्घावाणा नहि वल्ले पृष्ठअङ्घावाणा, त्रील्ले पुष्पनी नेम सुकुमार अने ओथा सुशमन-शांतिभाववाणा केम के नेमनी कषाय,प्रतनु-पातणी ङाय छे ओथी ओओ अतिशांत ङाय छे पूर्व आरकमां उत्पन्न थयेल्ले ६ प्रकारना पुडुपेतेना आ आरकमां अभाव रडे छे. ओथी ओओ तेमनाथी भिन्न जतीय अ ङाय छे ओथी ततद्द शुषु विशिष्ट ङेवा ङडेल्ले नेमनामां तत्तज्जातीयता लखुवी नेधं ओ, ॥३५॥
द्वितीय आरकतु कथन समाप्त

सुसमदुस्समाए समाए पढममज्झिमेसु तिभाएसु भरहस्स वासस्स केरि
सए आयारभावपडोयारे पुच्छा ? गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे
होत्था, सो चेव गमो जेयव्वो णाणत्तं दो धणुसहस्सोइं उड्डं उच्चत्तेणं चउ
सट्ठिपिट्ठकरंडगा चउत्थभत्तस्स आहारत्थे समुपज्जइ ठिई पलिओ-
वमं, एगूणसीइ रोइंदियाइं सारक्खंति संगोवेति जाव देवलोगपरिग्गहिया
णं ते मणुया पणत्ता समणाउसो ! । तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे
तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था ? गोयमा
बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था, से जहा णामए अल्लिगपुक्खरेइ
वा जाव मणीहिं उवसोमिए, तं जहा कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं
चेव तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमेतिभाए भरहे वासे मणुयाणं
केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था गोयमा ! तेसि मणुयाणं, छव्विहे
संघयणे, छव्विहे संठाणे, बहूनि धणुसयाणि उद्धं उच्चत्तेणं, जह-
ण्णेणं संखिज्जाणि वासाणि उक्कोसेणं असंखिज्जाणि वासाणि आउ
यं पालंति, पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी अप्पेगइया तिरियगामी
अप्पेगइया मणुस्सगामी अप्पेगइया देवगामी अप्पेगइया सिज्झंति जाव
सव्वदुक्खाणमंतं क रंति ॥सू० ३६॥

छाया—तस्यां खलु समायां तिसृभि सागरोपमकोटिकोटिभिःकाले व्यतिक्रान्ते
अनन्तैः वर्षपर्यवैः यावत् अनन्तगुणपरिहाण्या परिहीयमाणे परिहीयमाणे अत्र खलु सुषम-
दुष्पमा नाम समा प्रत्यपद्यत श्रमणायुष्मन् !, सा खलु समा त्रिधा विभज्यते—प्रथमस्त्रि-
भागः १, मध्यमस्त्रिभागः २, पश्चिमस्त्रिभागः ३ । जम्बूद्वीपे खलु भवन्त ! द्वीपे अस्याम्
अवसर्पिण्यां सुषमदुष्पमायाः समायाः प्रथममध्यमयोस्त्रिभागयोर्भरतस्य वर्षस्य कीदृश
आकारभावप्रत्यवतारः पृच्छा, गौतम ! बहुसमसमणीयो भूमिभागोऽभवत् स पव गमो
नेतव्यः, नानात्वे द्वे धनुस्सहस्रे उर्ध्वमुच्चत्वेन, तेषां च मनुजानां चतुष्पष्टिपृष्ठकरण्डकाः,
चतुर्थे भक्ते आहारार्थः, समुत्पद्यते, स्थितिः पत्थोपमम्, एकोनाशीतिं रात्रिन्दिवं संरक्षन्ति
संगोपयन्ति, यावत् देवलोकपरिवृद्धीताः खलु ते मनुजाः प्रकृता श्रमणायुष्मन् ! । तस्या-
खलु समायाः पश्चिमे त्रिभागे भरतस्य कीदृश आकारभावप्रत्यवतारोऽभवत् ?, गौतम !
बहुसमरमणीयो भूमि भागोऽभवत्, तद्यथानाम अल्लिगपुक्कर इति वा यावत् मणिमिरुप-
शोभितः तद्यथा—कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैव । तस्याः खलु समायाः पश्चिमे त्रिभागे भरते वर्षे
मनुजाना कीदृश आकारभाव प्रत्यवतारोऽभवत् ?, गौतम ! तेषां खलु मनुष्याणां षड्विधं

संहननं षड्विधं संस्थानं बहूनि धनुश्शतानि उर्ध्वमुच्चत्वेन, जघन्येय संख्येयानि वर्षाणि उत्कर्षेण असंख्येयानि वर्षाणि आयुष्कं पालयन्ति, पालयित्वा अप्येकके निरयगामिनः, अप्येकके तिर्यग्गामिन, अप्येकके मनुष्यगामिन, अप्येकके देवगामिनः, अप्येकके सिध्यन्ति यावत् सर्वदु खानामन्तं कुर्वन्ति ॥ ३६ ॥

टीका—‘तीसेणं’ इत्यादि ।

‘समणाउसो !’ हे आयुष्मन् ! श्रमण ! ‘तीसेण समाए तिहिं सागरोवम कोडा-कोडीहिं’ तस्याः खलु समायाः त्रिभिः सागरोपमकोटीकोटिभिः कृत्वा ‘काले वीइक्कंते’ काले व्यतिक्रान्ते सति, कीदृशे तस्मिन् काले ? इत्याह—‘अणंतेहि वणणपज्जवेहिं जाव’ अनन्तैः वर्णपर्यवैयावत् ‘अणतगुणपरिहाणीए परिहायमाणे परिहायमाणे’ अनन्तगुणपरिहाण्या परिहीयमाने परिहीयमाने इति, अत्र यावत् पदेन त्रयस्त्रिंशत्तमसूत्रोक्तः पाठः संग्राह्यः, ‘एत्थणं’ अत्र—अत्रान्तरे खलु ‘सुसमदुस्समा णाम समा पड्विज्जिसु’ सुषमदुष्पमा नाम समा प्रत्यपद्यत=प्रतिपन्नः—लगितः । ‘सा णं’ सा=सुषमदुष्पमा नाम खलु ‘समा तिहा’ समा त्रिधा=त्रिभिः प्रकारै ‘विभज्जइ’ विभज्यते=विभक्ता क्रियते । तमेव विभागमाह—‘पढमे’ इत्यादि । ‘पढमे तिभाए’ प्रथमस्त्रिभागः=तृतीयो भागः, ‘मज्झिमे-तिभाए’ मध्यमस्त्रिभागः, ‘पच्छिमे तिभागे’ पश्चिमः=अन्तिमस्त्रिभागः । अयं भावः—

तृतीयारक का स्वरूप कथन—

टीका—तीसे णं समाए तिहिं सागरोवम कोडाकोडीहिं काले वीइक्कंते’ इत्यादि ।

टीकार्थ—प्रभु गौतम को समझाते हुए कह रहे हैं—कि हे गौतम ! जब अनन्त वर्णपर्यायो का यावत् अनन्त पुरुषकार पराक्रम पर्यायो का धीरे २ ह्रास होते २ यह तीन सागरोपम प्रमाण वाला सुसमा नामका द्वितीय आरा समाप्त हो जाता है, तब “एत्थ ण सुसम दुस्समा णामं समा पड्विज्जिसु समणाउसो” हे श्रमण आयुष्मन् ! इस भारत क्षेत्र में सुषम दुष्पमा नामका तृतीय काल लगता है; “सा णं समा तिहा विभज्जइ, पढमे तिभाए १, मज्झिमे तिभाए २, पच्छिमे तिभाए ३” इस तृतीय काल को तीन विभागों में विभक्त किया गया है एक प्रथम त्रिभाग में, द्वितीय मध्यम त्रिभाग में और तृतीय पश्चिम त्रिभाग में तात्पर्य इसका यह है कि इस तृतीय काल के

तृतीय आरकेना स्वर्पदु कथन

‘तीसेण समाए तिहिं सागरोवम कोडा कोडीहिं काले वीइक्कंते’—इत्यादि ॥ सूत्र ३६ ॥
टीकार्थ—प्रभु गौतमने समभवता ढडे छे डे डे गौतम ! न्यारे अन तवणुं पर्यायोने। यावत् अन त पुरुषकार पराक्रम पर्यायोने धीमे धीमे ह्रास थता थता तथ साणरोपम प्रमाण सुषमा नामके द्वितीय आरके समाप्त थाय छे त्यारे “एत्थ णं सुसम दुस्समा णाम समा पड्विज्जिसु समणाउसो” डे श्रमण आयुष्मन् ! आ भारत क्षेत्रमा सुषमदुष्पमा नामके तृतीय काल प्रारंभ थाय छे सा णं समा तिहा विभज्जइ, पढमे तिभाए १, मज्झिमे तिभाए २, पच्छिमे तिभाए ३” आ तृतीय कालने तथ बाणोभां विभक्त करवाभां आवेद

एव गमः=पाठो नेतव्यः ज्ञातव्य इति । अत्र 'णाणत्तं' नानात्वं=पार्थक्यमेवं बोध्यम्, तथाहि—प्रथममध्यमयोस्त्रिभागयोर्वर्त्तमाना मनुष्या 'दो घणुसहस्साइं उइढं उच्चत्तेणं' द्वे घणुसहस्त्रे ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन प्रज्ञाताः । तथा 'तेसिं च मणुयाण चउसट्ठिं' तेषां च मनुष्याणां चतुष्पष्टिः=चतुष्पष्टि संख्यकाः 'पिट्ठकरंडुगा' पृष्ठकरण्डका भवन्ति । एवं च सुषमा समोत्पन्नमनुष्यापेक्षया एतेषां मनुष्याणां पृष्ठकरण्डकसख्या अर्धं भवतीति बोध्यम् । तथा—तेषां मनुष्याणाम् 'आहारत्थे' आहारार्थः=आहारप्रयोजनं 'चउत्थभत्तस्स' चतुर्थभक्ते व्यतिक्रान्ते 'समुप्पज्जइ' समुत्पद्यते—भवति । 'चउत्थ भत्तस्स' इत्यत्र सप्तम्यर्थे षष्ठी । एकदिनान्तरितस्तेपामाहारो भवतीति भावः । तथा तेषां 'ठीइ' स्थितिः आयुः स्थितिः 'पल्लिओवम' पल्योपमम्=एक पल्योपमं भवति । तथा ते मनुष्याः स्वापत्यानि 'एगूणासीइ' एकोनाशीति 'राइदियाइ' रात्रिन्दिवं 'सारक्खंति सगोवेति' सरक्षन्ति संगोपयन्ति । एकोनाशीति रात्रिन्दिवावशिष्टायुष्कास्ते मनुजा अपत्यानि प्रसुवते, तानि ते एकोनाशीति रात्रिन्दिवं यावत् संरक्षन्ति संगोपयन्तीति भावः । एतेषामपत्यरू-

हे गौतम ! सुषम दुष्पमा काल के प्रथम और मध्य के त्रिभागों में इस भरत क्षेत्र का भूमिभाग बहुसम रमणीय होता है, इत्यादि रूप से सब कथन इस समय का पूर्वोक्त रूप से ही समझ लेना चाहिये, परन्तु जो उस कथन से यहाँ से सम्बन्ध रखने वाले इस कथन में भिन्नता है वह ऐसी है—“णाणत्तं दो घणु सहस्साइ उइढं उच्चत्तेणं, तेसिं च मणुयाण चउसट्ठिं पिट्ठकरंडुगा, चउत्थभत्तस्स आहारत्थे समुप्पज्जइ, ठिई पल्लिओवमं, एगूणासीइं राइ दियाइ, सारक्खंति, सगोवेति, जाव देवलोग परिग्गहिया ण ते मणुया पण्णत्ता समणाउसो” कि इनके शरीर की ऊँचाई दो हजार घणुष की अर्थात् एक कोश की होती है, ६४ इनके पृष्ठ करण्डक होते हैं । एक दिन के अन्तर से इन्हें मूल लगती है. स्थिति १ एक पल्योपम की होती है ७९ रात दिन तक ये अपने अपत्यों-बच्चों की सार समाल करते हैं यावत्-फिर ये कालमास में मरकर देवलोक में जन्म धारण करते हैं । ऐसा हे श्रमण आयुष्मन् ! इन मनुष्यों के सम्बन्ध में कथन किया गया है। इनके

दो घणु सहस्साइ उइढ उच्चत्तेणं” हे गौतम ! सुषम दुष्पमा કાળના પ્રથમ અને મધ્યના ત્રિભાગોમાં આ ભરતક્ષેત્રનો ભૂમિભાગ બહુ સમરમણીય હોય છે. ઇત્યાદિ રૂપમાં આ સમયનું કથન બહુ પૂર્વોક્ત રૂપમાં જ સમજી લેવું જોઈએ પણ પૂર્વકથન કરતાં અહીં જે વિશેષતા છે તે આ પ્રમાણે છે “णाણત્તં દો ઘણુ સહસ્સાઈ ઉઈઢ ઉચ્ચત્તેણં, તેસિં ચ મણુયાણં ચઉસટ્ઠિં પિટ્ઠ કરંડુગા, ચઉત્થભત્તસ્સ આહારત્થે સમુપ્પજ્જઈ, ઠિઈં પલ્લિઓવમ, ઇગૂણાસીઈ, રાઈ દિયાઈ, સારક્ખંતિ, સંગોવેતિ, જાવ દેવલોગ પરિગ્ગહિયા ણ તે મણુયા પ્ણત્તા સમણાઉસો” એટલે કે એમના શરીરની ઊંચાઈ એ હજાર ઘણુષ જેટલી અર્થાત્ એક ગાઉ જેટલી હોય છે એમના પૃષ્ઠ કરંડકો ૬૪ હોય છે. એક દિવસના અંતરે એમને ભૂખ લાગે છે. ૧ એમની સ્થિતિ એક પલ્યોપમ જેટલી હોય છે ૭૯ રાત-દિવસ સુધી એ જો પોતાના અપત્યોની સંભાળ રાખે છે, યાવત્ પછી એઓ કાલમાસમાં મૃત્યુ પ્રાપ્ત કરીને દેવલોકમાં જન્મ-ધારણ કરે છે હે શ્રમણુ આયુષ્મન્ ! આણુ તે મનુષ્યોના સંબંધમાં વિશેષ

पाणां युगलिकानामपि सप्तावस्थाक्रमाः पूर्ववद् बोध्याः तत्रैकस्यामवस्थायाम् एकादश दिनानि सप्तघटत्रयः अष्टौ पलानि चतुर्गत्रिंशदक्षरोच्चारणपरिमितात् कालात् किञ्चिदधिक-श्रकालो भवतीति बोध्यम् । 'जाव' यावद्-यावत्पदेन 'संरक्ष्य सगोप्य कासित्वा क्षुत्वा जृम्भित्वा अक्लिष्टा अव्यथिता अपरितापिताःकालमासे कालं कृत्वा देवलोकेषु उत्पद्यन्ते' इति संग्राहम् । अर्थस्तु प्रागुक्त एव । एतेषां देवलोकोत्पादे हेतुमाह-'देवलोगपरिग्ग-हिया णं' इत्यादि । समणालसो ' हे आयुष्मन् ! श्रमण ! ते णं मणुया' ते मनुजाः खलु=निश्चयेन 'देवलोगपरिग्गहिया' देवलोक परिशृहीता भवन्तीति । अत्रेदं बोध्यम्-अस्याः समायाः प्रथममध्यमत्रिभागयोर्भिन्नजातीयमनुष्याणामनुपज्जाना जाति परम्परा नास्ति, तथाविधकालस्वाभाव्यात् । यत्तु-उग्गा भोगा रायन्न खत्तिया संगहो भवेच-उहा' इत्युच्यते तदस्याः समाया अन्त्यत्रिभागमपेक्ष्य बोध्यमिति । इत्थं सुपमसुपमायाः समायाः प्रथममध्यमत्रिभागौ वर्णयित्वा सम्प्रति अन्तिमत्रिभागविषये प्राह-'तीसे ण'

युगलिक अपत्यो की सात अवस्थाओ का क्रम जैसा पहिले कहा जा चुका है वैसा ही है, एक २ अवस्था में ११ दिन सात घडो आठ पल और ३४ अक्षरो के उच्चारण करने में जितना काल लगता है उससे कुछ अधिक काल है, यहा यावत्पद से "७९ दिन तक ये अपत्यो की रक्षा और पालन करके खांसी छीक और जंभाई लेकर बिना किसी क्लेश और व्यथा के प्राप्त किये काल मास में मर कर देवलोकों में उत्पन्न होते है" ऐसा पाठ गृहीत हुआ है, इसका कारण यह है कि इन्हे देवायु का ही बन्ध होता है और मनुष्यायु आदि का नहीं ।

इस तृतीय कालरूप आरे का प्रथम मध्य विभाग में भिन्न जातिय मनुष्यों की अनुष-ज्जना-जातिपरम्परा नहीं होती है, क्योंकि इस काल का ही ऐसा स्वभाव है, "यत्तु उग्गा भोगा रायन्न खत्तिया संगहो भवे चउहा" ऐसा जो कहा गया है वह इस तृतीय काल के अन्त्य त्रिभाग को लेकर कहा गया है, इस तरह से तृतीय कालके प्रथम त्रिभाग और मध्यम त्रिभाग

कथन करवाभां आवेल छे जेभना युगलिक अपत्योनी सात अवस्थाओने। कम जे रीते पडेवां कडेवाभा आवे। छे, ते रीते ज अडी' पखु कम समजवे। 'जेक जेक अवस्थाभां ११ दिवस, सात घडी, आठ पल अने उ४ अक्षरोना उच्चारणुभां जेटवै। समय लागे छे, तेना करता कर्क अधिक समय छे अडी यावत् पदथी ७९ दिवस सुधी जेजो अपत्योनी रक्षा अने पालन करे छे, खांसी, छीक अने अगासु' आर्धने वगर डेअ' पखु जातनी व्यथा के क्लेशे जेजो। काल मासभां मृत्यु प्राप्त करीने देवलोकभां उत्पन्न थाय छे, जेवे। पाठ स अडीत थयेल छे, आनु कारण आ प्रभावे छे के जेभने देवायुने ज बन्ध डेअ छे अने मनुष्यायु वगेरे ने। नही। आ तृतीय काण रूप आशाना प्रथम मध्यम त्रिभागभां भिन्न जातीय मनुष्योनी अनुषज्जना-जाति परंपरा होती नथी, केमके जे काणने। स्वभाव ज जेवे छे, "यत्तु उग्गा भोगा रायन्नखत्तिया संगहो भवे चउहा" आभ जे कडेवाभां आवेल छे ते आ तृतीय काणना अन्त्य त्रिभागने लधने कडेवाभा आवेल छे, आ रीते तृतीय काणना प्रथम त्रिभाग अने मध्यम त्रिभागनु वखुन करीने छे सूत्रकार अतिम

इत्यादि । गौतमस्वामी पृच्छति - 'तीसे ण भते ! समाए पच्छिमे' हे भदन्त ! तस्याः समायाः खलु पश्चिमे=अन्तिमे 'तिभाए' त्रिभागे 'भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे' भरतस्य वर्षस्य कीदृश आकारभावप्रत्यवतारः=स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः 'होत्था' प्रज्ञप्तः ? भगवानाह - 'गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था' हे गौतम ! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्त, 'से जहा णामए' तद्यथा नाम - 'आलिगपुक्खरेइ वा जाव मणीहिं उवसोमिए' आलिङ्गपुष्कर इति वा यावत् मणिभिरुपशोभितः । 'तं जहा' तद्यथा - 'कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव' कृत्रिमैश्चैवेति यावत्पद संग्राह्यं पाठः पूर्वतोऽवधार्य इति । पूर्वकालापेक्षयाऽत्रायं विशेषः - पूर्वकाले हि कृष्यादिकर्माणि न प्रवृत्तान्यमूवन् . भूमिरपि कृत्रिमैस्तृणैर्मणिभिश्चोपशोभिता नासीत्, अत्र काले तु कृष्यादि कर्माणि प्रवृत्तानि, भूमिश्च कृत्रिमैस्तृणैर्मणिभिश्चोपशोभिताऽभूदिति । पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति -

का वर्णन करके अब सूत्रकार अन्तिम त्रिभाग के विषय में कहते हैं - "तीसे ण भते ! समाए पच्छिमे तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था" इसमें गौतम ने प्रसु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त ! उस तृतीय काल के पश्चिम त्रिभाग में भरत क्षेत्र का स्वरूप कैसा हुआ है ? इसके उत्तर में प्रसु कहते हैं - 'गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे होत्था से जहाणामए आलिगपुक्खरेइ वा जाव मणीहिं उवसोमिए तं जहा कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव" हे गौतम ! तृतीय काल के पश्चिम त्रिभाग में भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहुसमरमणीय होता है और यह ऐसा बहुसमरमणीय होता है कि जैसा आलिग पुष्कर होता है, यावत् यह मणियों से उपशोभित होता है इन मणियों में कृत्रिम और अकृत्रिम मणि होते हैं. यहा यावत्पद संग्राह्य पाठ पूर्व में जैसा कहा गया है वैसा ही वह यहा ग्रहण किया गया जानना चाहिये. पूर्वकाल की अपेक्षा यहा यह विशेषता है कि पूर्वकाल में कृष्यादि कर्म चालू नहीं हुए थे, तथा भूमि भी कृत्रिम तृण और मणियों से उपशोभित नहीं थी, परन्तु इस काल में तो कृष्यादि कर्म चालू हुए, और भूमि कृत्रिम एवं अकृत्रिम तृण और मणियों से शोभित हुई "तीसे ण भते ! समाए पच्छिमे

त्रिभागना સ બંધમાં કહે છે "તીસેણં ભંતે ! સમાય પચ્છિમે તિભાપ્ ભરહસ્સ વાસસ્સ કેરિસપ્ આયારભાવપડોયારે હોત્થા" આમાં ગૌતમે પ્રશ્નને આ રીતે પ્રશ્ન કર્યો છે કે હે ભદન્ત ! તે તૃતીય કાળના પશ્ચિમ ત્રિભાગમાં ભરતક્ષેત્રનું સ્વરૂપ કેવું થયું હશે ? આના જવાબમાં પ્રશ્ન કહે છે - "ગોયમા ! વહુસમરમણિજ્જે ભૂમિમાગે હોત્થા સે જહાણામપ્ આલિંગ પુક્ખરેશ્વા જાવ મણીહિં ઉવસોમિપ્ તં જહા - કિત્તિમેહિં ચેવ અકિત્તિમેહિં ચેવ" હે ગૌતમ ! તૃતીય કાળના પશ્ચિમ ત્રિભાગમાં ભરતક્ષેત્રને ભૂમિભાગ બહુસમરમણીય હોય છે અને એ આલિંગ પુષ્કરવત્ બહુસમરમણીય હોય છે, યાવત્ આ મણિઓથી ઉપશોભિત હોય છે, આ મણિઓમાં કૃત્રિમ અને અકૃત્રિમ મણિઓ હોય છે અહીં યાવત્ પદ સંગ્રાહ્ય પાઠ પહેલા જે પ્રમાણે કહેવામાં આવેલ છે તે પ્રમાણે જ અહીં સમજવો. પૂર્વકાળની અપેક્ષા અહીં વિશેષતા આ પ્રમાણે છે કે પૂર્વકાળમાં કૃષ્યાદિ કર્મને પ્રારંભ જ થયો નથી. તેમજ ભૂમિ પણ કૃત્રિમ તૃણ અને મણિઓથી ઉપશોભિત ન હોતી પણ આ કાળમાં તે કૃષ્યાદિ કર્મો આદ્ય થઈ ગયાં હતા અને ભૂમિ કૃત્રિમ તથા અકૃત્રિમ તૃણ અને મણિ-

‘तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभाए भरहे वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडो-
यारे’ हे भदन्त ! तस्याः खलु समायाः पश्चिमे त्रिभागे भरते वर्षे मनुजानां कीदृश
आकारभाव प्रत्यवतारः=स्वरूपपर्यायप्रादुर्भावः ‘होत्था’ प्रज्ञप्तः ? भगवानाह—‘गोयमा !
तेसिं मणुयाणं छव्विहे संघयणे’ हे गौतम ! तेषां मनुजानां पृथिव्य सहननं भवति,
‘छव्विहे संठाणे’ पृथिव्यं च संस्थानं भवति । तथा ते मनुजा ‘बहूणि घणुसयाणि उद्ध
उच्चत्तेणं’ बहूनि धनुश्शतानि उर्ध्वमुच्चत्वेन भवन्ति । तथा ते मनुजाः ‘जहण्णेण संखि-
ज्जाणि वासाणि’ जघन्येण संख्येयानि वर्षाणि ‘उक्कोसेण असंखिज्जाणि वासाणि आउयं
पाल्लंति’ उत्कर्षेण च असंख्येयानि वर्षाणि आयुः पालयन्ति, ‘पालित्ता’ पालयित्वा
‘अप्पेगइया’ अप्येकके=केचित् ‘णियरगामी’ ‘निरयगामिनो=नारका भवन्ति, ‘अप्पेगइया’
अप्येकके ‘तिरियगामी’ तिर्यग्गामिनो भवन्ति, ‘अप्पेगइया मणुस्सगामी’ अप्ये-
कके मनुष्यगामिनो भवन्ति, ‘अप्पेगइया देवगामी’ अप्येकके देवगामिनो भवन्ति ‘अप्पे-
गइया सिज्झंति’ अप्येकके सिध्यन्ति=सकलकार्यकारितया सिद्धा भवन्ति ‘जाव’ याव-

तिभाए भरहे वासे-मणुयाणं केरिसए आयर भाव पडोयारे होत्था” अब गौतम ने प्रसु से पूछा
है हे भदन्त ! उस तृतीय काल के अन्तिम त्रिभाग में भरत क्षेत्र में मनुष्यों का स्वरूप कैसा होता
है ? इसके उत्तर में प्रसु कहते हैं—“गोयमा तेसिं मणुयाणं छव्विहे संघयणे, छव्विहे संठाणे,
बहूणि घणुसयाणि उद्धं उच्चत्तेणं जहण्णेणं संखिज्जाणि उक्कोसेणं असंखिज्जाणि वासाणि आउय
पाल्लंति०” हे गौतम ! इस काल के मनुष्यों के ६ प्रकार का सहनन एव छह प्रकार का सस्था
न होता है तथा इनके शरीर की ऊंचाई सैकड़ों धनुष की होती है इनकी आयु जघन्य से स-
ख्यात वर्ष की और उत्कृष्ट से असख्यात वर्षों की होती है इस आयु का पालन करके अर्थात्
इस आयु को पूर्णरूप से भोग करके इनमें से कितनेक तो मर कर नरक गति में जाते हैं,
कितनेक तिर्यञ्च गति में जाते हैं, कितनेक देवगति में जाते हैं और कितनेक मनुष्यगति में जाते

अथै शोभित थर्ध गध् हती “तीसे णं भंते ! समाए पच्छिमे तिभाए भरहे वासे
मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे होत्था” हवे गौतम प्रभुने जेवी रीते प्रश्न करे
छे के हे भदन्त ! ते तृतीय कालना अतिम त्रिभागमा भरतक्षेत्रमा मनुष्येषु स्वरुप केषु
डोय छे ? जेना ज्वाणमां प्रभु कडे छे: ‘गोयमा ! तेसिं मणुयाणं छव्विहे संघयणे,
छव्विहे संठाणे, बहूणि घणुसयाणि उद्ध उच्चत्तेणं जहण्णेणं संखिज्जाणि वासाणि उक्को-
सेणं असंखिज्जाणि वासाणि आउयं पाल्लंति०” हे गौतम ! आ कालना मनुष्येने ६
प्रकारना सहनने अने ६ प्रकारना सस्थाने डोय छे तेमज्जे जेमना शरीरनी जे थर्ध
से कडे धनुष जेटवी डोय छे, जेमना आयुष्यनी अवधि जघन्यथी सख्यात वर्षानी अने
उत्कृष्टथी असख्यात वर्षा जेटवी डोय छे आयुने भोगवीने जेटवी के सपूषु रीते आ
आयुने उपभोग करीने जेमाथी केटलाक तो नरक गतिमा जाय छे, केटलाक तिर्यग् गतिमां
जाय छे, केटलाक देवगतिमा जाय छे अने केटलाक मनुष्य गतिमा जाय छे, तेम ज्जे केटलाक
जेवा पषु डोय छे के जेजा सिद्ध अवस्थाने पषु प्राप्त करे छे अही यावत् पठथी

त्पदेन बुध्यन्ते मुच्यन्ते परिनिर्वान्ति इति संग्रहः । तत्र बुध्यन्ते=विमलकेवलालोकेन सकललोकालोकं जानन्ति, मुच्यन्ते=सर्वकर्मभ्यो मुक्ता भवन्ति 'परिनिर्वान्ति=समस्त-कर्मकृतविकाररहितत्वेन स्वस्था भवन्ति, तथा—'सञ्चदुक्श्राणं' सर्वदुःखानाम्=समस्त-क्लेशानाम् 'अंत' अन्तम्=नाशं करेति' कुर्वन्ति अव्याबाधसुखभाजो भवन्तीति भावः ।

ननु अस्याः समाया भागत्रयं कथं कृतम् ? इति चेत् आह—यथाः सुषमसुषमायाः समाया आदौ मनुष्याः त्रिपल्योपमायुष्कास्त्रिगव्यूत परिमितोधास्त्रिदिनान्तरितभोजना एकोनपञ्चाशद् दिनानि यावत् स्वापत्यपालकाश्च भवन्ति । ततः क्रमेण वर्णगन्धादिपर्य-वहान्या कालस्य हीयमानत्वेन सुषमायाः समाया आदौ मनुष्या द्विपल्योपमायुष्काः द्वि-गव्यूतोच्छ्रया द्विदिनान्तरित भोजनाश्चतुष्पष्टिम् अहोरात्रान् यावत् स्वापत्यपालकाश्च

हैं तथा कितनेक ऐसे भी होते हैं जो सिद्ध अवस्था को भी प्राप्त करते हैं, यह यावत् पद से "बुध्यते, मुच्यते परिनिर्वान्ति" इन पदों का संग्रह हुआ है विमल केवल ज्ञानरूप आलोक के द्वारा सकल लोकालोक को वे जानने लगते हैं, समस्त कर्मों से वे मुक्त—छूट जाते हैं और सम-स्त कर्मकृत विकारों से फिर वे रहित हो जाने के कारण स्वस्थ हो जाते हैं,—एवं समस्त दुःखों का नाश कर देते हैं अर्थात् अव्याबाध सुख के भोक्ता बन जाते हैं,

शका-इस काल के तीन भाग कैसे किये ? तो इसका उत्तर ऐसा है कि जिस प्रकार सुषमसुषमा काल की आदि में मनुष्य तीन पल्योपम की आयु वाले तीन कोश प्रमाण शरीर वाले एवं तीनदिन के अन्तर से भोजन करने वाले होते हैं—तथा ४९ दिन तक जीवित रहकर अपने युगलिक अपत्यो की सार सभाल करते हैं । फिर क्रम २ से यह काल जैसे २ हीन हो जाता है उस क्रम से वैसे वर्ण गंध आदि कों की पर्यायों की हानि हो जाती है. और जब यह प्रथम काल पूर्णरूप से समाप्त हो जाता है तब सुषमा नामक द्वितीय आरा प्रारम्भ हो जाता है. इस काल की आदि में मनुष्यों की आयु दो पल्योपम की होती है, दो कोश ऊँचा उनका शरीर

"बुध्यन्ते, मुच्यन्ते, परिनिर्वान्ति" आ पदोने स अहं यथेह छे विमल केवल ज्ञान ३५ आलोक वडे तेजो सकल लोकालोकने जाणुवा लागे छे समस्त कर्मोथी तेजो मुक्त थर्ध जाय छे, अने समस्त कर्मकृत विकारोथी तेजो रहित थर्ध जवाथी स्वस्थ थर्ध जाय छे, तथा समस्त दुःखोने नाश करे छे ओटले के अव्याबाध सुषमा लोकत गनी जाय छे

शंका—आ काणना त्रषु भागो केवी रीत करवामां आग्या छे ? तो जेने जवाण आ प्रभाषे छे के जेम सुषम-सुषमा काणना आदिमा मनुष्यो त्रषु पल्योपम जेटली आयुनी अवधिवाणा, त्रषु गाढ प्रभाषु शरीरवाणा तेमज त्रषु दिवसना अतरे बोजन करनारा होय छे तथा ४९ दिवस सुधी ज्वित रहनी पोताना युगलिक अपत्योनी सार सभाण करे छे. पछी यथाकमे आ काण जेम जेम हीन थतो जाय छे, ते ज कथी वषु, गंध आदिनी पर्यायोनी हानि थती जाय छे अने ज्यारे प्रथम काण स पूषु रीते समाप्त थर्ध जाय छे त्यारे सुषमा नामक द्वितीय आरकने प्रारंभथाय छे. आ काणना प्रारंभमा मनुष्योनु आयु-प्य जे पल्योपम जेटलु होय छे तेमनु शरीर जे गाढ जेटलु उच्यु होय छे जे दिवसना

भवन्ति, ततोऽपि क्रमेण वर्णगन्धादि पर्यवहान्या कालस्य हीयमानत्वेन सुपमदुष्पमायाः समाया आदौ मनुष्या एकपल्योपमायुष्का एकगव्यूतोच्छ्रया एकदिनान्तरितभोजना एको- नाशीति दिवसान् यावत् स्वापत्यपालकाश्च भवन्ति । ततः सुपमदुष्पमाया आद्यत्रिभा- गद्वयं यावत् वर्णगन्धादीनां नियतपरिहाण्या कालस्य हीयमानत्वेन क्रमेणाधिकाधिकं हीयमाना युगलिनोऽभूत् । अन्तिमत्रिभागे तु परिहाणिरनिश्चिता जातेति अस्याः समाया भागत्रयं कृतमिति ॥सू० ३६॥

होता है दो दिन के अन्तर से इन्हे आहार की इच्छा होती है चौ सठ रात दिन की जब इनकी आयु अवशिष्ट रहती है तब इनके युगलिक सतान का जन्म होता है. और ये ६४ दिन तक अपनी सतान की सार समाल करते रहते हैं इस तरह क्रम २ से जब इस काल की भी समाप्ति हो जाती है और वर्ण गन्धादिपर्यायों की भी पहिले आरे की अपेक्षा और अधिक हीनता हो जाती है-तब तृतीय काल जो सुषमदुष्पमा है उसका प्रारंभ होता है इस काल के प्रारंभ में मनुष्य एक पल्योपम की आयुवाले होते हैं, एक कोश का इनका शरीर होता है, और एक दिन के अन्तर से इन्हे आहार की अभिलाषा होती है. जब इनकी आयु ७९ दिन की बाकी रहती है- तब इनके युगलिक सतान का जन्म होता है, ये ७९ दिन तक उसका लालन पालन कर कालमास मे आनन्द के साथ अपने शरीर का परित्याग कर देव गति में जन्म लेते हैं. क्रम २ से जब यह तृतीय काल का त्रिभाग प्रमाण आद्य समय में व्यतीत हो जाता है और मध्य का भी इसी तरह से त्रिभाग प्रमाण समय समाप्त हो जाता है-इन दोनों त्रिभागों में वर्णादि पर्यायों की तो क्रमशः हानि होती ही रहती है-इन दोनों त्रिभागों में अधिकाधिकरूप से युगलिकों की हीनता आजाती है और फिर अन्तिम त्रिभाग में यह हीनता अनिश्चित रूप में आजाती है. इस कारण इस

अतरे तेभ्यो आहार अदृश्यं कर्तव्यं भवति, ६४ रात-दिवस भेट्वा आयुष्य अवशिष्टं रहति तेभ्यो युगलिक सतानं भवति तेभ्यो ६४ दिवसं सुधी पोतानां भाणकनी सार-संलाप कर्तव्यं रहति तेभ्यो अत्रिभागे यथाक्रमेण न्याये आ काणनी पल्यु समाप्तिं यथं भवति तेभ्यो वर्णगन्धादि पर्यायानां पल्यु-पडेवा आरकनी अपेक्षायो वधारे हीनता यथं भवति, तत्र तृतीय काणो सुषम दुष्पमा काणो, तेना प्रारंभं भवति ते काणना प्रारंभमा मनुष्यो एक पल्योपम भेट्वा आयुष्यवाणा होयते तेभ्यो गतिं भेट्वा सुधी शरीरं होयते तेभ्यो एक दिवसना अंतरे तेभ्यो आहार-अदृश्यं कर्तव्यं अभिलाषा भवति तेभ्यो सुधी आयुष्य ७९ दिवसं भेट्वा भागी रहति तेभ्यो युगलिक सतानं उत्पन्नं भवति तेभ्यो ७९ दिवसं सुधी तेषु लालन-पालनं करीने काल मासमां आनन्दपूर्वकं पोतानां शरीरमे छोडीने देवगतिमां जन्म प्राप्तं करेते. यथा- क्रमेण न्याये आ तृतीय काणतु त्रिभाग प्रमाण-आद्य समय व्यतीतं भवति तेभ्यो मध्यम पल्यु त्रिभाग प्रमाण समय व्यतीतं यथं भवति तेभ्यो अन्तिम त्रिभागमां वर्णादि पर्यायानां तो क्रमशः हानि भवति तेभ्यो अन्तिम त्रिभागमां अधिकाधिकं इष्यती युग- लिकानी ज हीनता आवी भवति तेभ्यो अन्तिम त्रिभागमां आ हीनता अनिश्चित

सुषम दुष्पमाया अन्तिमे त्रिभागे यथा लोकव्यवस्था जाता, तां प्रतिपादयति—
 मूलम्—तीसे णं समाए पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्टमभागाव-
 सेसे एत्थ णं इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्थो तं जहा सुमई १.
 पडिस्सुइ २. सीमंकरे ३. सीमंधरे ४. खेमंकरे ५. खेमंधरे ६.
 विमलवाहणे ७. चक्खुमं ८. जसमं ९. अभिचंदे १०. चंदामे ११.
 पसेणइ १२, मरुदेवे १३ णामी १४ उसमे १५ त्ति ॥सू० ३७॥

छाया—तस्याः खलु समायाः पश्चिमे त्रिभागे पल्योपमाष्टमभागावशेषे अत्र खलु
 इमे पञ्चदश कुलकरा समुदपद्यन्त, तद्यथा—सुमतिः १, प्रतिश्रुति २, सीमङ्कर ३, सीम-
 न्धर ४, क्षेमङ्करः ५, क्षेमन्धर ६, विमलवाहन ७, चक्षुष्मान् ८, यशस्वान् ९, अभिचन्द्र
 १०, चन्द्राम ११, प्रसेनजित् १२, मरुदेव १३, नाभिः १४, ऋषभः १५, इति ॥सू० ३७॥

टीका—‘तीसे णं’ इत्यादि—‘तीसे’ तस्या = सुषमदुष्पमायाः ‘णं’ खलु ‘समाए’
 समायाः ‘पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्टमभागावसेसे’ पश्चिमे त्रिभागे पल्योपमाष्टमभा-
 गावशेषे कृताष्टभागस्य पल्योपमस्य अष्टमे भागे अवशिष्टे सति, ‘एत्थ’ अत्र एतद-
 भ्यन्तरे ‘णं’ खलु ‘इमे, इमे वक्ष्यमाणाः ‘पण्णरस कुलगरा’ पञ्चदश कुलकरा = लोक-
 व्यवस्थाकारिणः कुलकरणशीलाः विशिष्ट बुद्धियुक्ताः पुरुषविशेषाः ‘समुप्पज्जित्था’
 समुदपद्यन्त = समुत्पन्नाः, ‘तं जहा’ तद्यथा—‘सुमई’ सुमतिरित्यादि पञ्चदशनामानि
 सूत्रोक्तानि बोध्यानि ।

तृतीय आरे के तीन त्रिभाग किये गये है ॥३६॥

इस आरे के अन्तिम त्रिभाग में जैसी लोक की व्यवस्था होती है अब सूत्रकार उसका
 प्रतिपादन करते हैं—‘तीसे ण समाए पच्छिमे विभाए पलिओवमट्टमभागावसेसे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—उस सुषम दुष्पमा नामके तृतीय आरे के अन्तिम त्रिभाग की समाप्ति होने में
 जब पल्योपम का आठवां भागमात्र समय बाकी रहता है तब ये “इमे पण्णरस कुलगरा समुप्प-
 ज्जित्था” १५ कुलकर उस समय उत्पन्न होते हैं—“त जहा” उनके नाम इस प्रकार से हैं—
 “सुमई १, पडिस्सुई २, सीमकरे ३, सीमंधरे ४, खेमंकरे, ५, खेमंधरे ६, विमलवाहणे ७, च-

क्षुषमा आवी णथे छे आ कारणाथी आ तृतीय आरकना त्रय त्रिभागो करवाभा आवेण छे ॥३६॥

टीका—आ आरकना अ तिम त्रिभागमां नेवी दोकणी व्यवस्था होय छे ते विषे छेवे
 सूत्रकार प्रतिपादन करे छे—

‘तीसे णं समाए पच्छिमे तिभाए पलिओवमट्ट भागावसेसे’ इत्यादि सूत्र ॥३७॥

टीकार्थ—ते सुषमदुष्पमा नामके तृतीय आरकना अ तिम त्रिभागनी समाप्ति थवाभा
 न्यारे पल्योपमने आठवां भाग मात्र बाकी रहे छे त्यारे अ “इमे पण्णरस कुलगरा समुप्प
 ज्जित्था” १५ कुलकरे ते समये उत्पन्न थय छे “तं जहा” तेभना नामे आ प्रमाणे छे
 ‘सुमई १, पडिस्सुइ २, सीमंकरे ३, सीमंधरे ४, खेमंकरे ५, खेमन्धरे ६, विमलवाहणे
 ८, चक्खुमं ८, जसमं ९, अभिचंदे १०, चंदामे ११, पसेणई १२, मरुदेवे १३, णामी १४,

ननु स्थानाङ्गादिपु-“जंबुद्वीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्तकुलगरा होत्था, तं जहा-पढमित्थ विमलवाहण १, चक्खुमं २, जसमं ३, चउत्थमभिचदे ४, तत्तो पसेणई ५, पुण, मरुदेवे ६, चेव नाभी ७ य ॥” इत्युक्तम्, अत्र तु पञ्चदश कुलकरा उक्ता इति परस्परमागमविरोधः ? इति चेत् आह-सूत्रगते वैचित्र्यात्तत्र सप्तैव कुलकरा उक्ता अत्र तु पञ्चदशेत्यदोष इति ।

ननु तथापि ‘अस्याः समायास्त्रुतीये त्रिभागे पल्योपमाष्टभागावशेषे पञ्चदश कुलकरा अभूवन्’ इति यदुक्तं तन्न संगच्छते, यतः पल्योपमं किल असत्कल्पनया चत्या-

क्खुमं ८, जसमं २, अभिचदे १०, चदामे ११, पसेणइ १२, मरुदेवे १३, णाभा १४, उसमे त्ति’ सुमति १, प्रतिश्रुत २, सीमंकर ३, सीमधर ४, क्षेमकर ५, क्षेमधर ६, विमलवाहन ७, चक्षुष्मान् ८, यशस्वान् ९, अभिचन्द्र १०, चन्द्राम ११, प्रसेनजित् १२, मरुदेव १३, नाभी १४, और ऋषभ १५, तात्पर्यं इस कथन का ऐसा है कि जब इस काल की समाप्ति होने में एक पल्योपम प्रमाण काल बाकी बचता है । तब इस पल्योपम प्रमाण काल के ८ भाग करना और ७ भाग प्रमाण पल्योपम जब समाप्त हो जावे और ८ वे भाग प्रमाण पल्योपम जब बाकी रहे तब इस समय में ये पन्द्रह कुलकर उत्पन्न होते हैं । ये लोक की व्यवस्था करने वाले होते हैं इसलिये इन्हें कुलकर कहा गया है, इनका काम कुलो की रचना करने का है । ये विशिष्टबुद्धिशाली होते हैं । अतएव इन्हें पुरुष विशेष भी कहा जाता है । यहां शका ऐसी हो सकती है कि स्थानाङ्ग आदि सूत्रों में “जंबुद्वीवेदीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त-कुलगरा होत्था”—तं जहा पढमित्थ विमलवाहण, २, चक्खुमं २, जसमं ३, चउत्थमभिचदे ४, तत्तो पसेणई ५, पुण मरुदेवे ६, चेव नाभी ७, इस पाठ के अनुसार ७ ही कुलकर इस भरतक्षेत्र में अवसर्पिणोकाल में हुए कहे गये । फिर आप यहां १५ प्रकट कर रहे हैं तो फिर

उसमे १५ त्ति” सुमति १, प्रतिश्रुत २, सीमंकर, सीमधर ४, क्षेमकर ५, क्षेमधर ६, विमलवाहन ७, चक्षुष्मान् ८, यशस्वान् ९, अभिचन्द्र १०, चन्द्राम ११, प्रसेनजित् १२, मरुदेव १३, नाभी, अने ऋषभ १५ आ कथनतु तात्पर्यं आ प्रमाणे छे के न्यारे आ काली समाप्ति थवाभां के छे पल्योपम प्रमाणे काग शेष रहे छे त्थारे आपल्योपम प्रमाणे काणना ८ लागे करवा अने सात भाग प्रमाणे पल्योपम न्यारे समाप्त थर्छे अथ अने ८ भाग प्रमाणे पल्योपम न्यारे शेष रही अथ त्थारे के समथभा के १५ कुलकरे उत्पन्न थाय छे के लोक-व्यवस्थापक होय छे केथी के केमने कुलकर कडेवाभां आवे छे केमनुं काम कुलोनी रचना करवानुं छे केओ बुद्धिशाली होय छे, केथी केमने पुरुष विशेष पद्य कडेवाभा आवे छे अही शंका केवी उद्भवे छे के ‘स्थानाङ्ग’ पगेरे सूत्रोभा “जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्तकुलगरा होत्था—तं जहा पढमित्थ विमलवाहण १, चक्खुमं २, जसमं ३, चउत्थमभिचदे ४, तत्तोपसेणई ५, पुण मरुदेवे ६, चेव नाभीय ७, आ पाठ सुअण ७ के कुलकर आ भरतक्षेत्रभा अवसर्पिणी काणभा थाय छे, आम कडेवाभा आन्थुं छे पछी तमे अही १५ ने उद्देध करी रखा

रिंशद्भागविभक्त कल्पनीयम् ते चत्वारिंशद् भागा अष्टभिर्भाज्यास्तत एकैको भागः पञ्चपञ्चभागयुक्तो भवति । तत्र यः पञ्चभागयुक्तोऽष्टमो भागस्तस्मिन् पञ्चदश कुलकरा भवन्तीत्यागतम् । तेषु पञ्चसु भागेषु चत्वारो भागाः पल्योपमदशमभागायुषाद्यस्य सुमतिनामकस्य कुलकरस्यायुषि गताः शेषः पल्योपमस्यैको भागः, तत्रासंख्येयपूर्वायुषो द्वादश कुलकराः, संख्येयपूर्वायुष्को नाभिः, एकोन नवतिपक्षाधिक चतुरशीतिलक्षपूर्वायुष्क ऋषभदेवश्च भवन्ति, एकस्मिश्चत्वारिंशत्तमे भागे क्रथ प्रतिश्रुत्यादीनां चतुर्दशकुलकराणां बृहत्तमायुर्जुषां सभावना इति चेत्, आह—एकस्मिश्चत्वारिंशत्तमे भगेऽसंख्येयानि पूर्वाणि भवन्ति, तानि च असंख्येयानि पूर्वाणि क्रमेण हीनहीनानि 'पडिस्सुई, सीमकरे, सीमंधरे, खेमंकरे, खेमधरे, विमलवाहणे, चक्खुमं, जसम, अभिचंदे, चंदाभे, मरुदेवे' प्रतिश्रुति सीमङ्कर सीमन्धर क्षेमङ्कर क्षेमन्धर विमलवाहन चक्षुष्मघशस्वदभिचन्द्र चन्द्राभप्रसेन-

यह परस्पर में आगमों में विरोध कैसा ? तो इस शका का समाधान ऐसा है कि सूत्र की गति विचित्र होती है अतः वहाँ सात ही कुलकर कहे गये हैं और यहाँ १५ कहे हैं, इसमें कोई दोष आने जैसी बात नहीं है । शका—आपने जो ऐसा कहा है कि इस काल का तृतीय त्रिभाग जब पल्योपम के ८वें भागमात्र अवशिष्ट रहता है तब १५ कुलकर उत्पन्न होते हैं सो यह कथन सगत नहीं होता है क्योंकि अमत्कल्पना से पल्योपम के ४० चालीस भाग कल्पित करना चाहिये । इन ४० चालीस भागों में ८ का भाग देने पर एक एक भाग ५—५ भागों से युक्त होता है । इस तरह ५ भाग युक्त जो आठवा भाग है उसमें १५ कुलकर उत्पन्न होते हैं वह बात आगम प्राप्त होती है । इन पाँच भागों में के ४ भाग तो पल्योपम के दशवें भाग प्रमाण आयुवाले आदि के सुमति नामके कुलकर की आयु में चले गये बाकी का पल्योपम का एक भाग और रहा—सो उसमें असख्यात पूर्व की आयुवाले शेष १२ कुलकर हुए इन में सख्यात पूर्व की आयुवाला नाभि हुआ और ८९ पक्ष अधिक ८४ लाख पूर्व की आयुवाला

छा तो आ आगमोभा परस्पर विरोध कैसा है ? तो आ शकानु समाधान आ प्रमाणों के सूत्रनी गति विचित्र होय है अथी त्या सात ७ कुलकर उडेवाभा आवेल है अने अडी १५ उडेवाभा आन्या है तेमां केरि पक्ष जातने होय नथी

शका—तमे के आम कहुं है के आ कानने तृतीय त्रिभाग न्यारे एक इक्त पद्योपमना ८ आठमा लाग नेटवी अवशिष्ट रहे है त्यारे १५ कुलकर उत्पन्न थाय है, तो आ कथन सगत थतुं नथी केमके असत्कल्पनाथी पद्योपमना ४० लागे कल्पित करवा नेधये के ४० लागेमा ८ ने लागकरवाथी एक लाग ५—५ लागेथी युक्त थाय है आ प्रमाणे ५ भाग युक्त के ८ मे लाग है तेमा १५ कुलकर उत्पन्न थाय है, आ वात आगमथी सिद्ध थाय है के पाथ लागेमांन आर लागे तो पद्योपमना इसमा लाग प्रमाणे आयुवाला आदिना सुमति नामना कुलकरना आयुमा नता रहा शेष पद्योपमने एक लाग आडी रहो हते, तेमां असख्यात पूर्वनी आयुवाला शेष १२ कुलकर थाय आमां सख्यात-

जिन्मरुदेवानां द्वादशानां कुलकराणामायुर्मानानि, 'णाशी' नाभेस्तु सन्ध्येयानि पूर्वाणि आयुर्मानम्, 'उसभे' ऋषभस्य चतुरशीति लक्षपूर्वाणि आयुर्मानम्, अवशिष्टाश्च एकोन-
नवतिपक्षा इत्येकस्मिन्नेव चत्वारिंशत्तमभागे चतुर्दशकुलकराणामस्ति सभावनेति न कश्चिद्
विरोध इति ॥३७॥

मूलम्—तत्थ णं सुमइ पडिस्सुइ सीमंकर सीमंधर खेमंकराणं एएसिं
पंचण्हं कुलगराणं हक्कारे दंडणोइ होत्था ते णं मणुआ हक्कारेणं दंडेणं
हया समाणा लज्जिया विलज्जिया वेड्ढा भीया तुसिणिया विण-
ओणया चिड्ढंति । तत्थ णं खेमंधरविमलवाहण चक्खुमं जसमं अभि-
चंदाणं एएसिं णं पंचण्हं कुलगराणं मक्कारे णामं दंडणीई होत्था
ते णं मणुया मक्कारेणं दंडेणं हया समाणा जाव चिड्ढंति तत्थ णं
चंदाभ पसेणइ मरुदेव उसभाणं एएसिं पंचण्हं कुलगराणं धिक्कारे

ऋषभदेव हुआ तो फिर एक ४० वें भाग में प्रतिश्रुत आदि १४ कुलकरो की कि जो बहुत
बड़ी आयुवाछे थे उत्पत्ति कैसे सम्भवित हो सकती है ? तो इस शंका का उत्तर ऐसा है कि
एक ४० वें भाग में असख्यात पूर्व होते हैं और ये असख्यात पूर्व क्रम से हीन हीन
होते हैं तथा प्रतिश्रुत, सीमंकर, सीमंधर, क्षेमंकर, क्षेमन्धर, विमलवाहन, चक्षुभन्, यगत्त्वान्,
अभिचन्द्र, चन्द्राम, प्रसेनजित और मरुदेव इन १२ कुलकरो की आयु के प्रमाण होते हैं ।
नाभि की आयु का प्रमाण सख्यात पूर्वों का था और ऋषभ की आयु का प्रमाण ८४ लाख
पूर्व का था । बाकी के कुलकरो को आयु का प्रमाण ८९ पक्षाधिक ८४ लाख पूर्व का था ।
इस तरह ४० वें भाग में १४ कुलकरो की उत्पत्ति की सम्भावना में क्या विरोध हो सकता
है ? अर्थात् कोई भी विरोध नहीं हो सकता है ॥३७॥

पूर्वना आयुष्यवाणा, नाभि यथा अने ८६ पक्ष अधिक ८४ लाख पूर्व जेटला आयुवाणा,
ऋषभदेव यथा तो पछी जेठ ४० भा भागमां प्रतिश्रुत आदि १४ कुलकरेानी के जेओ जूण
वाणा आयुष्यवाणा इता-उ पत्ति केरी रीते स लनी शके ? तो आ शकनेो उत्तर आ
प्रमाणे छे के जेठ ४० भा भागमा असख्यात पूर्वो डोय छे अने जे असख्यात पूर्वो
यथाकमे हीन-हीन डोय छे तेमज प्रतिश्रुति, सीमइ कर, सीमंधर, क्षेमंकर, क्षेमन्धर, विमल
वाहन, चक्षुभन् यगत्त्वान्, अक्षिचन्द्र, चन्द्राम, प्रसेनजित अने मरुदेव जे १२
कुलकरेानी आयुना प्रमाणे डोय छे नाभिनी आयुनु प्रमाणे सख्यात पूर्वोतु इतुं अने
ऋषभना आयुष्यनु प्रमाणे ८४ लाख पूर्वोतु इतुं शेष कुलकरेना आयुष्यनु प्रमाणे ८६
पक्षाधिक ८४ लाख पूर्वजेटले इतुं आ प्रमाणे ४० भागमा १४ कुलकरेानी उत्पत्तिनी
सम्भावनामा शु विरोधथल शके छे ? जेटले के केथ पक्ष जतनेो विरोध स लनी शके न
नहि ॥३७० उवा॥

णामं दंडणीईं होत्था ते णं मणुया धिक्कारेणं दंडेणं हया समाणा
जाव चिडंति ॥सू० ३८॥

छाया—तत्र खलु सुमति प्रतिश्रुति सोमङ्कर सीमन्धर क्षेमङ्कराणाम् पतेपां पञ्चानां
कुलकराणां हाकारो नाम दण्डनीतिरभवत् ते खलु मनुजा हाकरेण दण्डेन हता सन्तो
लज्जिता विलज्जिता व्यर्द्धा भीतास्तूष्णीका विनयावनतास्तिष्ठन्ति । तत्र खलु क्षेमन्धर
विमलवाहन चक्षुष्मव् यशस्वद भिचन्द्राणाम् पतेपां खलु पञ्चानां कुलकराणां माकारो
नाम दण्डनीतिरभवत्, ते खलु मनुजा माकारेण दण्डेन हताः सन्तो यावत् तिष्ठन्ति ।
तत्र खलु चन्द्राभप्रसेनजिन्मरुदेव नाभि ऋषभाणाम् पतेपां खलु पञ्चानां कुलकराणां
धिक्कारो नाम दण्डनीति रभवत्, ते खलु मनुजा धिक्कारेण दण्डेन हता सन्तो यावत्
तिष्ठन्ति ॥सू० ३८॥

एते कुलकरत्वं कथं कृतवन्तः ? इत्याह—

टीका—तत्थ णं' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र - तेषु पञ्चदशसंख्यकेषु कुलकरेषु
मध्ये 'णं' खलु 'सुमइ पडिस्सुइ सीमंकर सीमंधर खेमंकराणं एएसि पंचण्ह
कुलगराणं' सुमति प्रतिश्रुति सीमङ्करसीमन्धरक्षेमङ्कराणाम् एतेपां पञ्चानां
कुलकराणां काले 'हाकारे' हाकारो = 'हा' इत्यधिक्येपार्थकः शब्दस्तस्य करणम्
नाम 'दंडणीई' दण्डनीतिः - दण्डनं दण्डः = अपराधिनामनुशासनं तत्र नीति' =
न्यायः 'होत्था' अभवत् = समुत्पन्नः । अत्रेदं बोध्यम् तृतीयारकान्ते कालदोषेण
अल्पीभूतेषु कल्पवृक्षेषु सन्तु, तत्र तेषां युगलिकमनुजानां ममत्वे जायमाने ते कल्पवृक्षाः
तै र्मनुजैः स्वकीयत्वेन षरीशृहीताः । तत्रान्य परिशृहीते कस्मिंश्चित् कल्पवृक्षे केनचिद-

अब इन्होंने कुलकरता कैसे की-इस बात का कथन सूत्रकार करते हैं—

“तत्थ णं सुमइ, पडिस्सुइ सीमकर, सीमंधर, खेमंकराणं एएसि पंचण्ह”
इत्यादि ।

टीकार्थ—“तत्थ ण सुमइ पडिस्सुइ, सीमंकर, सीमंधर खेमंकराण एएसि पंचण्ह” इन
पन्द्रह कुलकरों में से सुमति, प्रतिश्रुत, सीमकर, सीमंधर और क्षेमकर इन पांच कुलकरों के
समय में “हाहाकार” इस नाम की दण्डनीति थी, “हा” यह शब्द अधिक्य का वाचक है ।
इसका करना हाहाकार है, अपराधियों को अनुशासन में लेना यह दण्ड है, इस दण्ड के लिये
जो नीति-न्याय है वह दण्डनीति है, यहाँ ऐसा समझ लेना चाहिये—तृतीय आरक के अन्त में
कालदोष के प्रभाव से जब कल्पवृक्ष थोड़े से रह गये—तब उन कल्पवृक्षों के ऊपर उन युगलिक

हुवे तेभण्णे कुलकरता केनी रीते करी ? आ वातदु सूत्रकार कथन करे छे—

‘तत्थणं सुमइ पडिस्सुइ सीमंकर सीमंधर खेमंकराणं एएसि पंचण्ह’—इत्यादि—सूत्र ॥३८॥
टीक थ—जे १५ कुलकरोमाथी सुमांत, प्रतिश्रुति सीम कर, सीमन्धर, अने क्षेम कर जे
पांच कुलकरोना ममथ नां ‘हाहाकार’ नामे दण्डनीति इती. ‘हा’ शब्द अधिक्येप वाचक छे जेतुं
करतु ‘इ हाकार’ छे अ । धीजाने अनुशासनमा राअवा जे दण्डना माटे जे नीति-न्याय
छे, ते दण्डनीति छे. अही आम स मञ्जु’ जेथजे तृतीय आरकता अंतमा काण दोषना

न्येन ममत्वेन परिगृह्यमाणे तेषु विवादः प्रावर्तत । ततस्ते मनुजाः विवाद निर्णयाय सर्वेभ्योऽधिकप्रभावशालिनं सुमतिं सर्वेषामाधिपत्ये व्यवस्थापयन् । ततः स सुमतिः सर्वेभ्यो यथायोग्यं कल्पवृक्षादीन् विभज्य प्रददौ । तत्र यः कश्चित् मर्यादा मतिचक्राम, तच्छासनाय स जातिस्मृत्या नीतिज्ञत्वेन हाकार दण्डनीतिं प्रावर्चयत् । तामेव दण्डनीतिं प्रतिश्रुत्यादयश्चत्वारोऽप्यनुकृतवन्तः इति । हाकारदण्डनीत्या ते कीदृशा अभूवन् । इत्याह—‘ते णं’ इत्यादि । ‘ते णं मणुया’ ते मनुजाः खलु ‘हकारेणं दडेणं हया’ हाकारेण दण्डेन हताः= अदृष्टपूर्वशासनानां तेषां दण्डादि घातेभ्योऽप्यधिकं मर्मघातिं तच्छासनमिदमिति आत्मानं हता इव मन्यमानाः ‘समाणा’ सन्तो ‘लज्जिया’ लज्जिताः=सामान्यतो लज्जायुक्ताः, ‘विलज्जिया’ विलज्जिताः=विशेषतो लज्जिताः, ‘वेह्वा’ व्यर्द्धाः=

मनुष्यों को ममत्वभाव हो गया सो उन्होंने उन्हें अपना २ कर मान लिया, उस पर जब कोई दूसरा युगलिक मनुष्य अधिकार जमाने लगा तो उनमें आपस में विवाद होना प्रारंभ हो गया । तब उन मनुष्यों ने विवाद का निर्णय कराने के लिये सब से अधिक प्रभावशाली सुमति कुलकर को सब के ऊपर अधिपति चुन लिया । तब सुमति कुलकर ने सब के लिये यथायोग्य कल्पवृक्षों का विभाग कर दिया और सब के लिये उन्हें वितरीत कर दिया । इनमें से जो कोई मर्यादा का उल्लङ्घन करता उसे अनुशासन में लेने के लिये उसने जाति स्मरेण ज्ञान के बल से नीतिज्ञ बनकर हाकार दण्ड नीति की प्रवृत्ति की, उसी दण्डनीति का अनुमरण प्रतिश्रुति आदि चार कुलकरों ने भी किया, “तेण मणुया हकारेणं दडेणं हया समाणा लज्जिया, विलज्जिया वेह्वा भीया तुसिणीया विणओणया चिद्वंति” वे मनुष्य उस हाकाररूप दण्ड से जब आहत हुए, तो अपने आपको हत हुए के जैसे मानते हुए पहिले तो सामान्यरूप से लज्जायुक्त बने फिर विशेषरूप से लज्जित हुए, व्यर्द्ध—अत्यन्त और अधिक लज्जित हुए क्योंकि उन्होंने पहिले कभी ऐसा शासन देखा नहीं था । अतः ऐसा यह शासन उनके लिये दण्डादिघात से भी अधिक मर्म-

आवेक कल्पवृक्ष पर जीने युगलिक मनुष्य अधिकार करना लाग्ये तो तेओभां पशु परस्पर विवाद प्रारंभ थथं गये । त्यारे ओ युगलिकोये विवाहना निर्णय भाटे सौथी ओषक प्रभाव शाली सुमति कुलकरने पोताना अधिपति तरीके चूटी दीधा सुमति कुलकरे सोना भाटे यथायोग्य कल्पवृक्षोनु विलाज्जन करी हीधुं ओना पछी केधं मर्यादानु उल्लंघन करतो । त्यारे तने अनुशासनमां राथवा भाटे तेमणे जाति स्मरषु ज्ञानना अणथी नीतिज्ञ थथने हाकार दण्डनीतिनी प्रवृत्ति प्रारंभ करी तेच दण्डनीतिनु अनुसरषु प्रतिश्रुति वगेरे चार कुलकरो ये पशु कथुं छे “तेण मणुया हकारेणं दडेण हया समाणा लज्जिया, विलज्जिया, वेह्वा भीया तुसिणीया विणओणया चिद्वंति” ते मनुष्यो न्यारे हाकार इप दण्डथी न्यारे आहत थया, त्यारे पोतानी जातने हुतना इपमा मानीने पडेवां तो सामान्य इपमा लज्जत थया पछी विशेष इपमां विलज्जत थया व्यर्द्ध—अत्यंत तेम न अधिक लज्जित थया, तेम के तेमणे पडेवां केधं पशु दिवसे आवुं शासन नेथुं नडेवां ओथी आ शासन तेमना भाटे दडादि घात करतां पशु वधारे मर्म घाती थथं

अतिशयलज्जिताः, 'भीया' भीताः=मययुक्ताः, 'तृमिणीया' तृष्णीकाः=मौनाः 'विणओच-
णया चिद्वन्ति' विनयावनताश्च तिष्ठन्ति, न तु धृष्टवत् निर्लेज्जाः निर्भयाः वाचाला अहङ्का-
रिणश्च भवन्ति । हाकारदण्डेन हतारते मनुजा हतसर्वस्वमिवाऽऽत्मानं मन्यमानाः पुनर-
पराधस्थाने न प्रवृत्ता अभूवन्निति । सम्प्रति तदनन्तरं या दण्डनीतिर्भूत् तां प्रतिपाद-
यति 'तत्थ ण खेमधर' इत्यादिना । 'तत्थ ण खेमधर विमलवाहण चक्खुम जसवं
अभिचंदाणं' तत्र खलु क्षेमन्धर विमलवाहन चक्षुष्मद्यशस्वद्-अभिचन्द्राणाम् 'एएसि णं
पंचण्हं कुलगराणं' एतेषां पञ्चानां कुलकराणं काले 'मकारे' माकारो-माकरणं माकरो 'णामं
दंडणीई होत्था' नाम दण्डनीतिरभवत् । 'ते ण मणुया मकारेणं दंडेणं हया समाणा जाव
चिद्वन्ति' ते खलु मनुजा माकारेण दण्डेन हताः सन्तो यावत् तिष्ठन्ति । यावत् पदेन 'ल-
ज्जिता विलज्जिताः' इत्यादि पाठः संग्राह्यः । अत्रेद बोध्यम् हाकारदण्डस्यातिपरिचयेन

घाती हुआ । इसलिये उसे अपने आपका घातक मानकर उन्हें अत्यन्त अधिक लज्जा से युक्त
होना पड़ता, हमारा अब क्या होगा इस प्रकार से भयभीत होकर उन्हें चुप रहना पड़ता
और अपनी गलती स्वीकार कर उन्हें विनयावनत बनना पड़ता, धृष्ट पुरुष की तरह वे न तो
निर्लेज्ज बनते, न निर्भय बनते, न वाचाल बनते और न अहंकारी बनते । इस तरह हाकार
दण्ड से हत हुए वे मनुष्य जिनका सर्वस्व हरण कर लिया है । ऐसा अपने आप को समझकर
फिर अपराध करने के स्थान पर प्रवृत्त नहीं होते थे, "तत्थ णं खेमधर विमलवाहण चक्खुमं
जसवं अभिचंदाण एएसि णं पंचण्हं कुलगराणं मकारे णामं दंडणीई होत्था" इस हाकार दण्ड
नीति के बाद क्षेमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान् एव अभिचन्द्र इन पांच कुलकरो के
काल में माकार नामकी दण्डनीति का प्रचलन हुआ । "मत करना" इस प्रकार की जो निषेधा-
त्मक नीति है वही माकार नाम की दण्डनीति है, इन क्षेमन्धर आदि पांच कुलकरो के समय में
जो मनुष्य दण्डनीय कार्य करता तो उसे माकार दण्डनीति से दण्डित किया जाता था—इससे

पश्युं ज्येष्ठता माटे तेने पोताना घातक इपमा मानीने तेज्यो अत्यंत लज्जित यता अने
कडेटा के डवे अमाडुं शुं थये ? आ प्रभाण्णे लयकीत थधने तेज्यो शुप णस्री रडेटा अने
पोतानी भूल क्खूल करी तेज्यो विनयावनत थधं जता धृष्ट माणसनी जेम तेज्यो नतो
निर्लेज्ज थता, न निर्भय थधनं रडेटा, न वाचाल बनता अने न अहंकारी बनता
आ प्रभाण्णे हाकार दंडणीई होत्था मनुष्यो के जेमनु सर्वस्व हरण करवाभां आण्थुं
छे. ज्येठुं मानीने इरी अपराध करवाना कार्यमा प्रवृत्त थता नडि, "तत्थ णं खेमधर
विमलवाहण चक्खुमं जसवं अभिचंदाणं पएसिणं पंचण्हं कुलगराणं मकारे णामं दंडणीई
होत्था" आ हाकार दंडनीति पछी क्षेमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्,
अने अभिचन्द्र ज्ये पांच कुलकराना कालमां माकार नामनी दंडनीतिवुं प्रचलन थथु.
'नडि करी' आ प्रकारनी जे निषेधात्मक नीति छे ते जे माकार नामनी दंडनीति छे. ज्ये
क्षेमधर आदि पांच कुलकराना समयमां जे मनुष्यो दंडनीय कार्य करता तेभने माकार
नामक दंडनीति शुज्ज दंडित करवाभां आवता ज्येथी ते अपराधी पूर्वनी जेमज्ज लज्जित

ततोऽभीतेषु युग्मिमानुजेषु सत्सु क्षेमन्धरः कुलकरस्तेषामनुशासनाय माकार दण्डनीतिं प्रवर्तितवान् तदनुयायिनो विमलवाहन-चक्षुष्मद् यशस्वदभिचन्द्रा अपि माकारमेव दण्डनीतिं प्रवर्तितवन्तः । तत्र महत्यपराधे माकारो दण्डः, सामान्यापराधे तु हाकार इति ।

अथ तदनन्तर कालभाविनः कुलकरा यां दण्डनीतिं प्रवर्तितवन्तः, तामाह-‘तत्थ ण’ इत्यादि । ‘तत्थ ण’ तत्र खलु ‘चदाम पसेणइ मरुदेव उसभाण एएसि णं पचण्ह कुलगारा णं’ चन्द्राभप्रसेनजिद् मरुदेव नाभि ऋषभाणाम् एतेषा खलु पञ्चानां काले ‘धिव्कारे’ धिव्कारे-धिव्करणं धिव्कारो ‘णामं दंडणीई होत्था’ नाम दण्डनीतिरभवत् । ‘ते णं मणुया धिव्कारेणं दंडेण हया समाणा जाव चिद्रुंति’ ते खलु मनुजा धिव्कारेण

वह पूर्व की तरह लज्जित, विलज्जित यदि विशेषणों वाला बन जाया करता था, यही बात यहां यावत्पद से समझाई गई है । तात्पर्य इस कथन का यही कि जब हाकार दण्ड अति-परिचिन हो चुका तो उससे उन लोगो में भय नहीं रहा-‘ते त मणुया मकारेण दंडेण हया समाणा जाव चिद्रुंति’ तत्र उन युगलिक मनुष्यों में भय का संचार रहे-वे अनुशासन से हीन न होनावे इस भाव को लेकर क्षेमन्धर कुलकर ने उनको अपने अनुशासन में रखने के लिये माकार नामकी दण्डनीति का प्रचलन किया । क्षेमन्धर के बाद इनके अनुयायी विमलवाहन, चक्षुष्मत्, यशस्वान्, और अभिचन्द्र इन चार कुलकरों ने भी इसी माकार दण्डनीति का प्रवर्तन किया, यह मानकर दण्डनीति का बहुत बड़े अपराध के होने पर ही किया जाता था, सामान्य अपराध में तो केवल हाकार दण्डनीति का प्रयोग होता था, इनके बाद में हुए कुलकरों ने जिस दण्डनीति की प्रवृत्ति को उसे अब सूत्रकार प्रकट करते हैं-‘तत्थ णं चदाम, पसेनह, मरुदेव, उसभाण एएसि ण पचण्हं कुलगाराण धिव्कारे णामं दंडणीई होत्था’ चन्द्राभ, प्रसेनजित मरुदेव, नाभि और ऋषभ इन पांच कुलकरों के काल में धिव्कार नामकी दण्डनीति प्रचलित हुई, इस दण्डनीति से इन कुलकरों के समय के मनुष्य दण्डित होते रहे यहां ऐसा समझना

विदन्निजत वगेरे विशेषणोऽथी युक्तं यथं जतो जे ज वात अह्नी यावत् पदथी कडेवामां अ वी छे. आ कथननुं तात्पर्यं आ प्रमाणे छे के न्यारे डाकार दंड अति परिचित थं गथे त्यारे ते दौकाभा ह उ प्रत्ये भय रह्यो नहि. तेज्यो अकीत थं गथां. त्यारे ते युगावक मनुष्योभा भयनु सयरषु रहे, तेज्यो अनुशासनहीन थं भय नहि, जे लावने लधने क्षेमन्धर कुलकरे तेभने पोताना अनुशासनमां राभवा भाटे ‘माकार’ नामक दंडनीति तु प्रचलन कथुं क्षेमन्धर पछी तेभना अत्रयाथी विमलवाहन, चक्षुष्मान्, अभिचन्द्र जे आर कुलकरोजे पषु जेज ‘माकार’ दंडनीतिनु प्रवर्तन कथुं आ ‘माकार’ दंडनीतिने प्रयोग जहुं ज भाटा अपराध जदल ज कश्वाभां आवतो सामान्य अपराध भाटे तो कउन ‘डाकार’ दंडनीतिने प्रयोग न थतो ‘डाकार’ दण्डनीति भाद कुलकरोजे जे दंडनीतिने प्रयोग कर्ये, ते विषे हवे सूत्रकार कडे छे- चन्द्राभ, प्रसेनजित, मरुदेव, नाभि अने ऋषभ जे पाच कुलकरोना कालमा ‘धिव्कार’ नामक दंडनीतिनु प्रचलन हतुं; आ दंडनीतिथी जे कुलकरोना समयना दौका ह डित थया, जेवुं अने समजहुं जेधजे. ‘माकार’

अतिशयलज्जिताः, 'भीया' भीताः=भययुक्ताः, 'तृमिणीया' तृष्णीकाः=मौनाः 'विणओव-
णया चिद्वन्ति' विनयावनताश्च तिष्ठन्ति, न तु धृष्टवत् निर्लज्जाः निर्भयाः वाचाला अहङ्का-
रिणश्च भवन्ति । हाकारदण्डेन हतास्ते मनुजा हतसर्वस्वमिवाऽऽत्मानं मन्यमानाः पुनर-
पराधस्थाने न प्रवृत्ता अभूवन्ति । सम्प्रति तदनन्तरं या दण्डनीनिरभूत् तां प्रतिपाद-
यति 'तत्थ ण खेम धर' इत्यादिना । 'तत्थ ण खेम धर विमलवाहण चक्खुम जसवं
अभिचंदाणं' तत्र खलु क्षेमन्धर विमलवाहन चक्षुष्मद्यशस्वद्-अभिचन्द्राणाम् 'एएसि णं
पंचण्हं कुलगराणं' एतेपां' पञ्चानां कुलकराणं काले 'मकारे' माकागे-माकरणं माकरो 'णामं
दंडणीई होत्था' नाम दण्डनीतिरभवत् । 'ते णं मणुया मकारेणं दंडेणं हया समाणा जाव
चिद्वन्ति' ते खलु मनुजा माकारेण दण्डेन हताः सन्तो यावत् तिष्ठन्ति । यावत् पदेन 'ल-
ज्जिता विलज्जिताः' इत्यादि पाठः संग्राह्यः । अत्रेदं बोध्यम् हाकारदण्डस्यातिपरिचयेन

घाती हुआ । इसलिये उसे अपने आपका घातक मानकर उन्हे अत्यन्त अधिक लज्जा से युक्त
होना पड़ता, हमारा अब क्या होगा इस प्रकार से भयभीत होकर उन्हें चुप रहना पड़ता
और अपनी गलती स्वीकार कर उन्हें विनयावनत बनना पड़ता, धृष्ट पुरुष की तरह वे न तो
निर्लज्ज बनते, न निर्भय बनते, न वाचाल बनते और न अहंकारी बनते । इस तरह हाकार
दण्ड से हत हुए वे मनुष्य जिनका सर्वस्व हरण कर लिया है । ऐसा अपने आप को समझकर
फिर अपराध करने के स्थान पर प्रवृत्त नहीं होते थे, "तत्थ णं खेमधर विमलवाहण चक्खुमं
जसम अभिचंदाण एएसि ण पंचण्ह कुलगराण मकारे णामं दंडणीई होत्था" इस हाकार दण्ड
नीति के बाद क्षेमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान् एवं अभिचन्द्र इन पांच कुलकरो के
काल में माकार नामकी दण्डनीति का प्रचलन हुआ । "मत करना" इस प्रकार की जो निषेधा-
त्मक नीति है वही माकार नाम की दण्डनीति है, इन क्षेमन्धर आदि पांच कुलकरो के समय में
जो मनुष्य दण्डनीय कार्य करता तो उसे माकार दण्डनीति से दण्डित किया जाता था—इससे

पड्युं अेटला भाटे तेने पोताना घातक रुपमा भानीने तेओ अत्यत लज्जित थता अने
कडिता के हवे अमाडु शुं थशे ? आ प्रभाणे लयलीत थधने तेओ चुप णसी रडिता अने
पोतानी भूल कभूल करी तेओ विनयावनत थर्ष जाता धृष्ट भाणुसनी नेम तेओ नतो
निर्लज्ज थता, न निर्भय थधनं रडिता, न वाचाल बनता अने न अहंकारी बनता
आ प्रभाणे हाकार दंडणीई होत्था मनुष्यो के नेमनु सर्वस्व हरण करवाभां आण्युं
छे. ओवु भानीने करी अपराध करवाना कार्यभां प्रवृत्त थता नहि, "तत्थ णं खेमधर
विमलवाहण चक्खुमं जसम अभिचंदाण एएसिणं पंचण्हं कुलगराणं मकारे णाम दंडणीई
होत्था" आ हाकार दंडनीति पछी क्षेमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वान्,
अने अभिचन्द्र ओ पांच कुलकरोना कणमा माकार नामनी दंडनीतितुं प्रचलन थथु.
'नहि करे' आ प्रकारनी ने निषेधात्मक नीति छे ते ल माकार नामनी दंडनीति छे ओ
क्षेमधर आदि पांच कुलकरोना समयभां ने मनुष्यो दंडनीय कार्य करता तेभने माकार
नामक दंडनीति सुण्ण दंडित करवाना आवता ओथी ते अपराधी पूर्वनी नेमल लज्जित

ततोऽभीतेषु युग्ममनुजेषु सत्सु क्षेमन्धरः कुलकरस्तेषामनुशासनाय माकार दण्डनीतिं प्रवर्तितवान् तदनुयायिनो विमलवाहन-चक्षुष्मद् यशस्वदभिचन्द्रा अपि माकारमेव दण्डनीतिं प्रवर्तितवन्तः । तत्र महत्यपराधे माकारो दण्डः, सामान्यापराधे तु हाकार इति ।

अथ तदनन्तर कालभाविनः कुलकरा या दण्डनीतिं प्रवर्तितवन्तः, तामाह-‘तत्थ ण’ इत्यादि । ‘तत्थ ण’ तत्र खलु ‘चदाभ पसेणइ मरुदेव उसमाणं एएसि णं पचण्ह कुलगारा णं’ चन्द्राभप्रसेनजिद् मरुदेव नामि ऋषभाणाम् एतेषां खलु पञ्चानां काले ‘धिव्कारे’ धिव्कारे-धिव्करणं धिव्कारो ‘णामं दंडणीई होत्था’ नाम दण्डनीतिरभवत् । ‘ते णं मणुया धिव्कारेणं दंडेण हया समाणा जाव चिट्ठति’ ते खलु मनुजा धिव्कारेण

वह पूर्व की तरह लज्जित, विलज्जित यदि विशेषणों वाला बन जाया करता था, यही बात यहां यावत्पद से समझाई गई है । तात्पर्य इस कथन का यही कि जब हाकार दण्ड अति-परिचिन हो चुका तो उससे उन लोगों में भय नहीं रहा-‘ते त मणुया मकारेण दंडेण हया समाणा जाव चिट्ठति’ तब उन युगलिक मनुष्यों में भय का संचार रहे-वे अनुशासन से हीन न होनावे इस भाव को लेकर क्षेमन्धर कुलकर ने उनको अपने अनुशासन में रखने के लिये माकार नामकी दण्डनीति का प्रचलन किया । क्षेमन्धर के बाद इनके अनुयायी विमलवाहन, चक्षुष्मत्, यशस्वान्, और अभिचन्द्र इन चार कुलकरों ने भी इसी माकार दण्डनीति का प्रवर्तन किया, यह मानकर दण्डनीति का बहुत बड़े अपराध के होने पर ही किया जाता था, सामान्य अपराध में तो केवल हाकार दण्डनीति का प्रयोग होता था, इनके बाद में हुए कुलकरों ने जिस दण्डनीति की प्रवृत्ति का उसे अब सूत्रकार प्रकट करते हैं-‘तत्थ णं चदाभ, पसेनइ, मरुदेव, उसमाण एएसि ण पचण्ह कुलगाराण धिव्कारे णामं दंडणीई होत्था’ चन्द्राभ, प्रसेनजित मरुदेव, नामि और ऋषभ इन पांच कुलकरों के काल में धिव्कार नामकी दण्डनीति प्रचलित हुई, इस दण्डनीति से इन कुलकरों के समय के मनुष्य दण्डित होते रहे यहा ऐसा समझना

विदन्निवृत्त वगेरे विशेषणार्थी युक्तं यथं जते। जे ज वात अह्नीं यावत् पहथी कडेवाभां अ वी छे। आ कथनतु तात्पर्यं आ प्रभाषे छे के न्यारे डाकार दंड अति परिचित यथं गथे त्यारे ते दौकाभा दंड प्रत्ये भय रह्यो नहि। तेज्जे अभीत यथं गथां। त्यारे ते युगलिक मनुष्योभा भयतु सचरष्य रहे, तेज्जे अनुशासनहीन यथं भय नहि, जे बावने लधने क्षेमन्धर कुलकरे तेभने पोताना अनुशासनभां राभवा भाटे ‘माकार’ नामक दंडनीति तु प्रचलन कथुं क्षेमन्धर पछी तेभना अनुयायी विमलवाहन, चक्षुष्मान् अभिचन्द्र जे आर कुलकरोजे पष्ये जे ‘माकार’ दंडनीतितु प्रवर्तन कथुं आ ‘माकार’ दंडनीतिने प्रयोग जहुं ज भाटा अपराध जदल ज करनाभां आवतो सामान्य अपराध भाटे तो इहन ‘डाकार’ दंडनीतिने प्रयोग ज थतो ‘डाकार’ दण्डनीति भाद कुलकरोजे जे दंडनीतिने प्रयोग कर्यो, ते विषे हवे सूत्रकार कडे छे- चन्द्राभ, प्रसेनजित, मरुदेव, नामि अने ऋषभ जे पाच कुलकराना कालया ‘धिव्कार’ नामक दंडनीतितु प्रचलन हुतुं आ दंडनीतिथी जे कुलकराना समयना दौका दंडित थया, जेपुं अगे समजहुं जेधजे ‘माकार’

दण्डेन हताः सन्तो यावत् तिष्ठन्ति । अत्रेदं बोध्यम्—माकार दण्डस्याप्यतिपरिचयेन ततो-
ऽमीतेषु युगिमनुजेषु सत्सु चन्द्राभः कुलकरस्तेषामनुशासनाय धिक्कारं दण्डनीतिं
प्रवर्तितवान् ।

तदुक्तम्—भागत्यल्पे नीतिमाद्यां द्वितीयां मध्यमे पुनः ।

महीयसि द्वे अपि ते, स प्रायुक्त महामतिः ॥१॥इति ।

ततस्तदनुयायिनः प्रसेनजिद् मरुदेव—नाभिऋषभाश्रत्वारोऽपि कुलकराः स्व स्वका-
ले तामेव दण्डनीतिमनुसृतवन्तः । तत्र महत्यपराधे धिक्कारो दण्डो मध्यमापराधे मकारो,
जघन्यापराधे तु हाकार इति । इतोऽनन्तरं भरतकाले कालस्वाभाव्याज्जनेषु महापराधि-
षु जातेषु परिभाषणाद्या चतुर्विधा दण्डनीतिरजायत । तदुक्तम्—

चाहिये—माकार दण्डनीति से जब मनुष्य अतिपरिचय में आगये तो फिर उन्हें उस दण्डनीति
का जैसा भय चाहिये वैसा भय नहीं रहा—अतः वे इस नीति के सम्बन्ध में निर्भय होते चले
गये, “तेषां मणुया धिक्कारेण दंडेण हया समाणा जाव चिट्ठंति” तब उन युगलिक मनुष्योंको
अनुशासित करने के लिये चन्द्राभ कुलकर ने धिक्कार नाम की दण्डनीति को चाढ़ किया—

तदुक्तम्—भागत्यल्पे नीतिमाद्यां द्वितीयां मध्यमे पुनः ।

महीयसि द्वे अपि ते स प्रायुक्त महामतिः ॥१॥

इन पांचो के बाद इन्हीं कुलकरो के अनुयायी प्रसेनजित्, मरुदेव, नाभि और ऋषभ
इन पांच कुलकरो ने अपनी २ शासन व्यवस्था के समय में इसी धिक्कार दण्डनीति का अनुसरण
किया जब युगलिक मनुष्यों से कोई महान् अपराध हो जाता तो उस समय वे धिक्कार दण्ड
से उन्हें दण्डित करते, मध्यम अपराध हो जाने पर माकार दण्ड से और जघन्य अपराध हो
जाने पर हाकार दण्ड से दण्डित करते । इनके बाद भरत काल में काल स्वभाव से जब मनुष्य
महापराधी होने लगे तो परिभाषण आदि चार प्रकार की दण्डनीति चाढ़ की गई ।

दंडनीतिथी ज्यारे दोळे अपतिपरिचित थर् ग्या त्यारे जे दंडनीतिने जेवे लय रडेवे
जेधजे तेवे लय जे दंडनीतिने रहो नही, जेथी तेजो जे नीतिना सण धमां निक्षय थर्
जेटवे के जेपरवा थर्ने रडेवा लाग्या. ते सभजे युगलिकोने अनुशासित करवा भाटे
चन्द्राभ नाभक कुलकरे ‘धिक्कार’ नाभक दंडनीति प्रचलित करी तदुक्तम् :

भागत्यल्पे नीतिमाद्यां द्वितीयां मध्यमे पुनः ।

महीयसि द्वे अपि ते स प्रायुक्त महामतिः ॥१॥

जे पांच कुलकरो पछी जे कुलकरोना अनुयायी प्रसेनजित्, मरुदेव, नाभि अने ऋषभ
जे पांच कुलकरोजे पोत-पोताना शासनकाणमां जे ‘धिक्कार’ दंडनीतिनुं जे अनुसरण
क्युं ज्यारे युगलिक मनुष्यो कोर् भडान् अपराध करता त्यारे ‘धिक्कार’ दंडनीति द्वारा
तेजोने दंडित करवाभा आवता, ज्यारे तेजो मध्यम अपराध करता त्यारे माकार दंडनीति
द्वारा अने जघन्य अपराध करता त्यारे हाकार दंडनीति द्वारा दंडित करवाभा आवता
त्यार भाई भरत काणमा काणना स्वभावथी ज्यारे मनुष्यो भडापराधी थवा लाग्या त्यारे
परिभाषण वगेरे चार प्रकारनी दंडनीतिजो प्रचलित थर् तदुक्तम् :-

परिभासणा उ पद्मा मंडलवंधत्ति होइ बीया य

चारग छवि छेयाई भरहस्स चउन्विहा नीई ॥१॥

छाया—परिभाषणा तु प्रथमा मण्डलबन्ध इति भवति द्वितीया च ।

चारके छविच्छेदादि, भरतस्य चतुर्विधा नीतिः ॥१॥इति॥ ॥६०३८॥

इत्थं पञ्चदशस्य कुलकरस्य ऋषभस्वामिनः चतुर्दश कुलकरसाधारणं कुलकरत्व-
मुपदर्श्य सम्प्रत्यस्य असाधारणपुण्यप्रकृत्युदयसमुद्भूतं त्रिजगज्जनपूजनीयतां प्रदर्श-
यितुं यथाऽस्मादेव लोके विशिष्ट धर्माधर्म संज्ञान्वयवहारा प्रवृत्ता अभूवन्ति दर्शयति—

मूलम्—णाभिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए कुच्छिसि एत्थ
णं उसमे णामं अरहा कोसलिए पढमराया पढमजिणे पढमकेवली पढम-
तित्थयरे पढमधम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी समुप्पज्जित्था । तएणं उसमे
अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्जे वसइ, वसित्ता
तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्जे वसइ;तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं
महारायवासमज्जे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरूप-
ज्जवसाणाओ बावेत्तरिं कलाओ चोसट्ठिं महिलागुणे सिप्पसयंच क
म्माणं तिण्णि वि पयाहियाए उवदिसइ, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए
अभिसिंचइ अभिसिंचित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्जे
वसइ वसित्ता जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स
णं चित्तबहुलस्स णवमीपक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं
चइत्ता सुवण्णं चइत्ता पुरं चइत्ता कोसं कोट्टागारं चइत्ता बलं चइत्ता वाहंणं
चइत्ता पुरं चइत्ता अंते उरं चइत्ता विउलधणकणगरयण मणिमोत्तिय संख
सिलप्पवालरत्तरयणसत्तसारसावइज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दायं दाइया
णं परिभाएत्ता सुदंसणाए सीयाए सदेवम या राए परिसाए समणु-
गम्ममाणमग्गे संखियचक्कियणंगलिय मुहमंगलिय पूसमाणब बद्धमा-
णग आइक्खगलंखमंख घंटियगणेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणु

तदुक्तम्—“परिभासणा उ पद्मा मंडलवंधत्ति होइ बीया य ।

चारग छवि छेयाई भरहस्स चउन्विहा नीई ॥१॥३८॥

परिभासणा उ पद्मा मंडलवंधत्ति होइ बीयाय ।

चारग छवि छेयाई भरहस्स चउन्विहा नीई ॥१॥ सूत्र ॥३८॥

णाहि मणामाहि उरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मंगल्लाहि सस्सि-
रियाहि हियगमणिज्जाहि हिययपल्हायणिज्जाहि कण्णमणिव्वुइकराहि
अपुणरुत्ताहि अट्टसइयाहि वग्गूहि अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता
य एवं वयासी-जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! धम्मणेणं अभीए परी-
सहोवसग्गाणं खंतिखमे भयभेखाणं धम्मे ते अविग्घं भवउत्तिकट्टु
अभिणंदंति य अभिथुणंति य तएणं उसभे अरहा कोसलिए
णयणमालासहस्सेहि पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एवं जाव
णिग्गच्छइ जहा उववाइए जाव आउलबोलवहुलं णमं करंते विणीयाए
रायहाणीए मज्जं मज्जेणं णिग्गच्छइ आसिय सम्मज्जिय सित्त इकपु-
प्फोवयारकलियं सिद्धत्थवणविउल रायमग्गं करेमाणे हयगयरहपहकरेण
पाइ चडकरेण य मंदं मंदं उद्धूयरेणुयं करेमाणे करेमाणे जेणेव
सिद्धत्थवण्णे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ उवाग-
च्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ
पच्चोरुहित्ता सयमेवाभरणाळंकारं ओमुयइ ओमुइत्ता सयमेव चउहिं अ
ट्टाहिं लोयं करेइ करिता छट्टेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेण
जोग वागएणं उग्गाणं भोगाणं राइन्नाणं खत्तियोणं चउहिं सहस्सेहिं
संविं एणं देवदुसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए
॥सू० ३९॥

छाया—नामैः खलु कुलकरस्य मरुदेवाया भार्यायाः कुक्षौ अत्र खलु ऋषभो नाम
अर्हन् कौशलिकः प्र ज. प्रथमजिनः प्रथमकेवली प्रथमतीर्थकरः प्रथमधर्मवरचातु-
रन्तश्चक्रवर्ती समुद्रपथत । ततः खलु ऋषभ अर्हन् कौशलिको विंशति पूर्वशतसहस्राणि
कुमारवासमध्ये ति, उषित्वा त्रिषष्टि पूर्वशतसहस्राणि महारा समध्ये वसति, त्रिष-
ष्टिशतसहस्राणि महाराजवासमध्ये वसन् लेखादिका गणितप्रधानाः शकुनरुतपर्यवसाना द्वा-
सप्तति कलाः चतुष्षष्टि महि गुणान् शिल्पशतं च कर्मणां त्रीण्यपि प्रजाहिताय उपदिशति,
उपदिश्य पुत्रशतं राज्यशते अभिविञ्चति, अभिविच्य त्रयस्त्रिंशत् पूर्वशतसहस्राणि महाराज-
वासमध्ये वसति उषित्वा यः स त्रीभ्माणां प्रथमे मासे प्रथम पक्षे चतुर्दशः, तस्य खलु
चतुर्दशस्य नवमीपक्षे दिवसस्य पश्चिमे भागे त्यक्त्वा द्विरण्यं, त्यक्त्वा सुवर्णं, त्यक्त्वा
कोशं कोष्ठागारं, त्यक्त्वा बलं, त्यक्त्वा वाहनं त्यक्त्वा पुरं त्यक्त्वा अन्तःपुरं, त्य-
क्त्वा विपुलघनं कनकरत्नमणि मौक्तिकशङ्खशिला रत्नरत्न सत्सारस्वापतेय, विच्छेद्य

विगोप्य, दायं दयिकानां परिभाज्य, सुदर्शनायां शिविकायां, सदेवमनुजासुरया परिपदा
समनुगम्यमानमार्गः शाह्निकचक्रिकलाह्नलिकमुन्मङ्गलिक पुण्यमाणव वर्द्धमानकाण्यायक
लह्नु मख घंटिकगणः तामिरिष्टामि कान्ताभिः प्रियाभिर्मनोक्षाभिर्मन आमीभिः उदारामिः
कल्याणीभि शिवाभिः धन्याभिः मङ्गल्याभि सश्रीकाभि- हृद्यगमनीयाभिः हृद्यप्रहादनी-
याभिः कर्णमनोनिवृत्तिकरोभिः अपुनरुक्ताभिः अर्थशक्तिकाभिः धाग्भिः अनवरतम् अभि-
नन्दन्तश्च अभिष्टुवन्तश्च पवमवादिपुः जय जय नन्द ! जय जय भद्र ! धर्मेण अभीतः
परीषहोपसर्गाणां क्षान्तिक्षमो भयभैरवाणां धर्मे ते अविध्न भवतु-इति कृत्वा अभिनन्दन्ति
च अभिष्टुवन्ति च । ततः खलु ऋषभः अर्हन् कौशलिको नयनमालासहस्रैः प्रेक्ष्यमाणः
प्रेक्ष्यमाण पवं यावन्निर्गच्छति, यथा औपपातिके यावत् आकुलबोलबहुलं नभः कुर्वन्
विनीताया राजधान्या मध्यमध्येन निर्गच्छति, आसिक्तसम्माजितसिक्तशुचिक पुष्पोपचार-
फलितं सिद्धार्थवनविपुलराजमार्गं कुर्वन् हयगजरथप्रकरेण पदातिचटकरेण च मन्दं मन्दम्
उद्धतरेणुकं कुर्वन् कुर्वन् यत्रैव सिद्धार्थवनम् उद्यान यत्रैव अशोकवरपादपः तत्रैव उपा-
गच्छति, उपागत्य अशोकवरपादस्य अध शिविकां स्थापयति, स्थापयित्वा शिविकातः
प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य स्वयमेवाभरणालङ्कारम् अवमुञ्चति, अवमुच्य स्वयमेव खतसु-
मिसुष्टिमिलोच्चं करोति, कृत्वा षष्ठेन भक्तेन अपानकेन आषाढादिभिर्नक्षत्रेण योगमुपागते
खलु उत्राणां भोगार्ना राजन्यानां क्षत्रियाणां चतुर्भिः सहस्रैः सार्धम् एक देवदूष्यमाशय
मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारतां प्रव्रजित ॥सू० ३९॥

टीका—‘णामिस्स णं’ इत्यादि । ‘णामिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए कुञ्छि-
सि’ नामेः कुलकरस्य मरुदेव्या भार्यायाः कुक्षौ ‘एत्थ’ अत्र अस्मिन् समये ‘णं’ खलु ‘उसमे

इस प्रकार से पन्द्रह कुलकरो में और ऋषभस्वामो में चतुर्दश कुलकरो को साधारण
कुलकरता प्रगट करके अब सूत्रकार इनमें असाधारण पुण्यप्रकृति के उदय से समुद्भूत त्रिनग-
ज्जनों द्वारा—पूजनीयता प्रगट करने के लिये जिस तरह इनसे ही लोकमें विशिष्ट धर्माधर्मसंज्ञारूप
व्यवहार चाह्य हुए इस बात को दिखाते हैं—

“णामिस्स णं कुलकरस्स मरुदेवाए भारियाए” इत्यादि ।

टीकार्थ—“णामिस्स णं कुलकरस्स मरुदेवाए भरियाए कुञ्छिसि एत्थणं उसमे णामं अरहा”
नामि कुलकर को मरुदेवी भार्या की कुक्षि में इस समय ऋषभ नाम के अर्हन्त—देव, मनुष्य

या प्रभाषे पदर कुलकरो अने ऋषभ स्वामीमा अतुर्दश कुलकरोनी साधारण कुलकरता
प्रकट करीने हवे सूत्रकार जेभनामा असाधारण पुण्य प्रकृतिना उदयथी समुद्भूत त्रिनगज-
ज्जनों वडे पूजनीयता प्रकट करवा भाटे जे रीते जेभना वडे जे दोकमा विशिष्ट धर्माधर्म
संज्ञा रूप व्यवहारो प्रकृतित थया, जे वातने स्पष्ट करे छे—

‘णामिस्स णं कुलगरस्स मरुदेवाए भारियाए’ इत्यादि सूत्र ॥३९॥

टीकार्थ—नामिकुलकरनी मरुदेवी भार्यानी कुक्षीमाथी ऋषभ नामना अर्हन्त देव, मनुष्य अने

णामं' ऋषभो नाम 'अरहा' अर्हन्=सदेव मनुजामुरनमस्कारार्हः 'समुपज्जित्था' ममुदपद्यत' समुत्पन्नः । स कीदृशः समुदपद्यत ? इत्याह—'कोसल्लिए' कौशलिकः=कोशलायां देश-विशेषे भवः, तथा 'पढमराया' प्रथमराजः प्रथमश्चासौ राजा चेति, इहावसर्पिण्यां नामि कुलकराज्ञप्तैर्युगलिकमनुजैः शक्रेण च सर्वतः प्रथममभिपिक्तत्वात् आदिराज इत्यर्थः तथा 'पढमजिणे' प्रथमजिनः प्रथमश्चासौ जिनश्चेति, रागादीनां प्रथमो जेता, यद्वा राज्यत्यागादनन्तरं द्रव्यतो भावतश्च साधुत्वे समुत्पन्ने सति प्रथमो मनःपर्यवज्ञानी, अस्यामवसर्पिण्यामस्यैव भगवतः सर्वतः प्रथमं मनःपर्यवज्ञानित्वात् । ननु स एव भगवान् अस्यामवसर्पिण्यां सर्वतः प्रथमम् अवधिज्ञानी मनः पर्यवज्ञानी केवलज्ञानी च जातः । जिनपदेन च अर्वाधमनःपर्यवकेवलज्ञानिनां सर्वेषामपि ग्रहणं भवति, तर्हि कथमत्र जिनपदेन मनः पर्यवज्ञानिमात्रं गृह्यते ? इति चेत्, आह-जिनपदेन अवधिज्ञानिनो ग्रहणे सत्रम् अक्रमबद्धं स्यात्, केवलज्ञानिनो ग्रहणे चोत्तरग्रन्थेन सह पौनरुक्त्यं स्यात्, अतो

और असुरों से नमस्कार करने योग्य आदि नाथ प्रभु उत्पन्न हुए, "कोसल्लिए" ये कौशलिक थे क्योंकि ये कोशला नामके देश विशेष में अवतरित हुए थे । "पढमराया" ये प्रथम राजा थे क्योंकि अवसर्पिणीकाल में नामिकुलकर के द्वारा आज्ञाप हुए युगलिक मनुष्यों ने और शक्रो ने इनका सर्वप्रथम अभिषेक किया था । "पढमजिणे" सर्व प्रथम ये अवसर्पिणी काल के जिन थे—क्योंकि रागादिको के ये ही सर्व प्रथम जेता थे, अथवा—राजत्याग के अनन्तर द्रव्य और भाव से साधुत्व के उत्पन्न होने पर ये प्रथम मनः पर्यवज्ञानी थे, क्योंकि इस अवसर्पिणीकाल में ये मन पर्यय के सर्वप्रथम अधिकारी हुए हैं शंका—जिनपद से तो समस्त अवधिज्ञानियो का, समस्त मनः पर्यवज्ञानियो का और केवल ज्ञानियो का ग्रहण हो जाता है तो फिर यहाँ पर जिन पद के द्वारा एक मन पर्यवज्ञानी का ही ग्रहण आपने क्यों किया है ? तो इस शंका का उत्तर ऐसा है कि यदि जिन पद से अवधिज्ञानो का ग्रहण माना जावे तो इस स्थिति में सूत्रमें अक्रमबद्धता आजावेगी, केवलज्ञानी का ग्रहण मानने पर उत्तरग्रन्थ के साथ पुनरुक्ति दोष आ-

असुरेथी नमस्करणीय आदिनाथ प्रभु उत्पन्न थया. ज्येज्यो 'कोसल्लिए' कौशलिक हुता, केभके ज्येज्यो कौशल नामके देश विशेषमां अवतरित थया हुता प्रथम राजा हुता, केभके अवसर्पिणी कालमां नामि कुलकर वडे आज्ञप्त थयेल युगलिक मनुष्येज्ये अने शक्रोज्ये सर्व प्रथम अभिषेक कथ्ये. अवसर्पिणी कालमां ज्येज्यो सर्वप्रथम जिन हुता केभ के रागादिके पर विजय भोगवनार सर्वप्रथम ज्ये ज हुता अथवा राज्य त्याग पछी द्रव्य अने भावथी साधुत्व उत्पन्न थया पछी ज्येज्यो प्रथम मन पर्यवज्ञानी हुता केभ के ज्ये अवसर्पिणी कालमां ज्येज्यो मनः पर्यवज्ञानना सर्वप्रथम अधिकारी थया

शंकाः—जिनपदथी तो समस्त अवधिज्ञानीज्येज्यो समस्त मनः पर्यवज्ञानीज्येज्यो अने केवल ज्ञानीज्येज्यो अदृष्ट थर्थ जय छे तो पछी अही जिन पद वडे तमे ज्येक मनः पर्यवज्ञानीज्ये ज अदृष्ट शा माटे कथ्ये छे ?

आ शंकेना 'अर्वाध आ प्रभाषे छे के जे जिनपदथी अवधिज्ञानीज्ये अदृष्ट मानवामा आवे' तो आ स्थितिमां सूत्रमा अक्रमबद्धता आवी जशे अने केवलज्ञानीज्ये अदृष्ट मान-

उत्र जिनपदेन मनःपर्यवज्ञानी एव गृह्यते इति । तथा 'पढम केवली' प्रथम केवली= प्रथमकेवलज्ञानी-आद्यसर्वज्ञ इत्यर्थः । तथा 'पढमत्तित्थयरे' प्रथमतीर्थकरः आद्यश्चतुर्वर्णस- ह्युस्थापकः, अतएव 'पढमधम्मवर चाउरंतचक्कवट्ठी' प्रथमधर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती-दान- शीलतपोभावैः चतसृणां नरकादि गतीनां चतुर्णां वा कषायाणामन्तो=नाशो यस्मात्, अथवा-चतस्रो गतिश्चतुर- कषायान् वा अन्त्यति=नाशयतीति, यद्वा-चतुर्भिर्दानशील- तपोभावैः कृत्वा अन्तो=रम्यः, अथवा-चत्वारः=दानादयः अन्ता=अवयवा यस्य, यद्वा चत्वारि=दानादीनि अन्तानि=स्वरूपाणि यस्य 'अन्तोऽवयवे स्वरूपे च' इति हेमचन्द्रः स चतुरन्तः, स एव चातुरन्तः, स एव चक्रं जन्म=जरामरणोच्छेदकत्वेन चक्रतुल्य- त्वात्, वरं च तत् चातुरन्तचक्रं वरचातुरन्तचक्रं, वरपदेन राजचक्रापेक्षयाऽस्य श्रेष्ठत्वं व्य- ज्यते, लोकद्वयसाधकत्वात् धर्म एव वरचातुरन्तचक्रं : धर्मवरचातुरन्तचक्रं तादृशस्य धर्मा- तिरिक्तस्यासंभवात् अत एव सौगतादिधर्माभासनिरासः, तेषां तात्त्विकार्थप्रतिपादकत्वा-

जावेगा । इसन्त्रिये यहाँ जिनपद से सिर्फ मन. पर्यय ज्ञानी का ग्रहण किया गया है, अवसर्पिणो काल में "पढमकेवली" ये ही सर्वप्रथम केवली हुए है, आद्यसर्वज्ञ हुए है । "पढमत्तित्थयरे" ये ही आद्य तीर्थकर प्रकृति के उदयवाले हुए है-सर्वप्रथम ये ही चतुर्विध सध के स्थापक हुए है, "पढमधम्मवरचाउरंतचक्कवट्ठी समुप्पज्जित्था" ये ही प्रथम धर्मवर चातुरन्त चक्रवर्ती हुए हैं-दान, शील, तप और भावो के द्वारा चार गतियों का अथवा चार कषायो का जिससे नाश हो जाता है, अथवा चार गतियों का और चार कषायो का जो विनाश कर देता है, अथवा दान, शील, तप और भावों से जो रम्य है, अथवा चार दानादिक जिसके "अन्तोऽव- यवे स्वरूपेच" इस हेमचन्द्र कोश के अनुसार अवयव हैं या जिसके स्वरूप हैं वह चतुरन्त है चतुरन्त ही चातुरन्त है, यह चातुरन्त ही जरा मरण का उच्छेदक होने से जन्म है, ऐसा जो श्रेष्ठ चातुरन्तचक्र है वही वर चातुरन्तचक्र है; वर पद से राजचक्र की अपेक्षा इसमें श्रेष्ठता व्यक्त की गई है । क्योंकि यह लोक द्वय का साधक होता है ऐसा चातुरन्त चक्र धर्म के

वाभा आवे तो उत्तर ग्रन्थनी साथे पुनरुक्ति होष आवी जशे ज्येथी ज अही जिनपदथी इकत मन पर्यवज्ञानीनु अदक्ष करवामा आवेल छे अवसर्पिणी कणमा इकत ज्येज्यो ज सर्वप्रथम केवली थया छे, आद्य सर्वज्ञ थया छे, ज्येज्यो ज आद्यतीर्थकर प्रकृतिना उदय- वाणा थया छे, चतुर्विध सधना स्थापक थया छे ज्येज्यो ज प्रथम धर्मवर चातुरन्त नरकादि गतिज्येज्योना अथवा चार गतिज्येज्योना अने चार नरकादि गतिज्येज्योना अथवा चार कषायोना जेनाथी नाश थक जय छे, अथवा चार गतिज्येज्योना अने चार कषायोने जे विनाश करे छे, अथवा दान, शील, तप अने भावोथी जे रम्य छे, अथवा चार दानादिक 'अन्तोऽवयवे स्वरूपे च' ज्ये हेमचन्द्र कोषना कथन मुज्जम अवयवो छे, अथवा जेना स्वरूपो छे, ते चतुरन्त छे चतुरन्त ज चातुरन्त छे, ज्ये चातुरन्त ज जरा मरणो उच्छेदक होवाथी जन्म छे, ज्येज्यो जे श्रेष्ठ चातुरन्त चक्रनी अपेक्षा ज्येमां श्रेष्ठता व्यक्त करवामा आवी छे तेम के ज्ये लोकद्वयना साधक होय छे, चक्रे छे ते ज चातुरन्त चक्रे छे. य पदथी ४३

भावेन श्रेष्ठत्वाभावात्, धर्मवरचातुरन्तचक्रेण वर्तितुं शीलं यस्य स धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती चक्रवर्त्तिपदेन पट्टखण्डाधिपति सादृश्यं व्यज्यते, तथाहि=चत्वारः-उत्तरदिशि हिमवान् शेषदिक्षु चोपाधिभेदेन समुद्रा अन्ताः-सीमानस्तेषु स्वामित्वेन भवञ्चातुरन्तः, चक्रेण रत्नरूपप्रहरणविशेषेण वर्तितुं शीलं यस्य स चक्रवर्ती, चातुरन्ताश्च ते चक्रवर्त्तिनश्चेति चातुरन्तचक्रवर्त्तिनः धर्मेण-न्यायेन वरः-श्रेष्ठः इतरतीर्थिकापेक्षयेति धर्मवरः 'धर्माः पुण्ययमन्याय स्वभावाचारसोपमाः' इत्यमरः, स चासौ चातुरन्तचक्रवर्ती चेति धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती, यद्वा-चातुरन्तं च तच्चक्रं चातुरन्तचक्रं वरं च तच्चातुरन्तचक्रं वरचातुरन्तचक्रं, धर्मोवरचातुरन्तचक्रमिव धर्मवरचातुरन्तचक्रं, तेन वर्त्तितुं वर्त्तयितुं वा शीलं यस्य स धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती, प्रथमश्चासौ धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती चेति प्रथमधर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तीति । प्रथमराजन्यादि विशेषणविशिष्टः स भगवान् ऋषभोऽर्हन् नाभिकुलकर भार्याया मरुदेव्याः कुक्षौ समुत्पन्नः इति भावः । 'तएण' ततः -जन्मग्रहणानन्तरं खलु 'उसभे अरहा कोसल्लिए' ऋषभोऽर्हन् कौशलिको 'वीस पुव्व

अतिरिक्त और कोई नहीं है । इससे सौगतादि धर्माभासों का निरास हो जाता है । क्योंकि उनमें यथार्थरूप से प्रतिपादकता नहीं है । अतः उन्हें श्रेष्ठता का स्थान प्राप्त नहीं हो सका है । धर्मवरचातुरन्तचक्र से वर्तने का जिसका स्वभाव है वह धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती है । "चक्रवर्ती" इस पद से छह खण्ड के अधिपति का सादृश्य व्यक्त किया गया है । जो उत्तर दिशा में रहा हुआ हिमवान् है वह और शेष दिशाओं में उपाधिभेद से वर्तमान जो समुद्र है वे इस भरत खण्ड को सीमा रूप हैं । इनमें जो स्वामिरूप से होता है वह चातुरन्त है तथा चक्र से रत्न रूप प्रहरण विशेष से वर्तन करने का जिसका स्वभाव है वह चक्रवर्ती है, "धर्माः-पुण्ययमन्याय स्वभावाचारसयमाः" इस अमरकोष के वचनानुसार धर्म-न्याय से जो इतर तीर्थियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है वह धर्मवर है । ऐसा धर्मवर जो चातुरन्तचक्रवर्ती है वह धर्मवर चातुरन्तचक्रवर्ती है ऐसे वे प्रथम राजत्वादि विशेषणों से विशिष्ट भगवान् ऋषभ अर्हन्त नाभिकुलकर की

अवस्था चातुरन्त चक्र धर्मातिरिक्त भीष्णु केर्ष नहीं. अनेथी सौगतादि धर्माभासोने निरास थई. नाथ छे, केभ के तेभनाभा यथार्थिक प्रतिपादकता नथी. अथी न तेअने श्रेष्ठतादुं स्थान प्राप्त थयुं तेथी. धर्मवर चातुरन्त चक्र मुञ्ज वतंवाणे अने स्वभाव छे, ते धर्म चातुरन्त चक्रवर्ती छे 'चक्रवर्ती' आ पदथी ६ थ ठना अधिपतिदुं सादृश्य व्यक्त करवामां आवेद छे. ते उत्तर दिशाभां आवेद हिमवान् छे ते अने शेष दिशाअोभा उपाधिभेदथी वर्तमान अे समुद्र छे ते आ भरतथ ठनी सीमा रूपमां छे विद्यमान छे अेमां अे स्वामि रूपे अे शासक होय छे ते चातुरन्त छे, तेभ न चक्रथा अेटवे के राग रूप प्रहरण विशेषथी वर्तन करवाने अेने स्वभाव छे ते चक्रवर्ती छे. "धर्माः पुण्ययमन्याय स्वभावाचारसोपमाः" अे 'अमरकोष'ना वचनानुसार धर्म-न्यायथी अे इतर तीर्थियोनी अपेक्षाअे श्रेष्ठ छे, ते धर्म वर छे. अेवो धर्मवर अे चातुरन्त चक्रवर्ती छे, ते धर्मवर चातुरन्त चक्रवर्ती छे अेवा ते प्रथम राज-न्यादि विशेषणोथी विशिष्ट भगवान् ऋषभ अर्हन्त नाभिकुलकरनी भार्या

सयसहस्साइं' विंशतिं पूर्वशतसहस्राणि—विंशतिलक्षपूर्वाणि 'कुमारवासमञ्जे' कुमारवास-
मध्ये कुमारेण—भावप्रधानत्वात् कुमारत्वेन वासः—अवस्थितिस्तन्मध्ये 'वसइ' वसति ।
विंशतिलक्षपूर्वाणि यावत् कुमारपदे स्थित इति भावः । 'वसित्ता' उपित्वा—कुमार-
पदे स्थित्वा 'तेवद्विं पुञ्चसयसहस्साइं' त्रिपष्टि पूर्वशतसहस्राणि—त्रिपष्टि-लक्षपूर्वाणि 'म
हारायवासमञ्जे' महाराजवासमध्ये—महाराजेन—भावप्रधानत्वात् महाराजत्वेन वसनं—
महाराजवासस्तन्मध्ये 'वसइ' वसति । तत्र स प्रजानामुपकाराय यत्कृतवांस्तदाह 'तेवद्विं'
इत्यादि । 'तेवद्विं पुञ्चसयसहस्साइं महारायवासमञ्जे वसमाणे' त्रिपष्टि पूर्वशतसहस्रा-
णि महाराजवासमध्ये वसन् स भगवान् ऋषभोऽर्हन् 'लेहाइयाओ' लेखादिकाः—लेखन्
अक्षरविन्यासः स आदौ यासां तास्तथा ताः, पुनः 'गणियप्पहाणाओ' गणिततप्रधा
नाः—गणितम्—अङ्कविद्या, तत्प्रधानं यासु तास्तथा ताः, तथा 'सउणरुयपञ्जवसाणाओ'
शकुनरुतपर्यवसानाः शकुनरुतं—पक्षिशब्दः पर्यवसाने—अन्ते यासां तास्तथाभूताः ताः,
'बावत्तरि' द्वाससति—द्वाससतिसंख्यकाः 'कलाओ' कलाः, 'चोसद्विं' चतुष्पष्टि—चतुष्प-

भार्या मरुदेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुए, "तएण उसमे अरहा कोसलिप वीसं पुञ्चसयसहस्साइ
कुमारवासमञ्जे वसइ" जन्म ग्रहण के अनन्तर उन कौशलिक ऋषभ अर्हन्त ने २० लाख
पूर्व कुमारकाल में समाप्त किये । अर्थात् २० लाख पूर्वतक ऋषभनाथ कुमार काल में रहे—
कुमार काल में इतने पूर्व तक "वसित्ता" रहने के बाद "तेवद्विं पुञ्चसयसहस्साइं महाराय
वासमञ्जे वसइ" फिर वे ६३ लाख पूर्वतक महाराज पद में रहे "तेवद्विं पुञ्चसयसहस्साइं महा-
रायवासमञ्जे वसमाणे लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपञ्जवसाणाओ बावत्तरि कलाओ
चोसद्विं महिल्लागुणे सिप्पसयं च कम्माणं तिण्णि वि पयाहियाए उवदिसइ" उस पद में रहकर
उन्होंने जो प्रजाजनो का उपकार किया वह अब "तेवद्विं" इत्यादि पदो द्वारा सूत्रकार
प्रगट करते है—६३ लाख पूर्वतक महाराज पद में रहकर उन ऋषभनाथ ने लेखादिक कलाओ
को—अक्षर विन्यास आदि रूप विद्याओ को गणित प्रधान—रूप कलाओ को, एव पक्षियों

मरुदेवीनी कुक्षिथी उत्पन्न थया 'तएणं उससेअरहा कोसलिप वीसं पुञ्चसयसहस्साइ
कुमारवासमञ्जे वसइ' जन्म पछी ते कौशलिक ऋषभनाथ अर्हन्ते २० लाख पूर्वकुमार कालमां
समाप्त कर्या, ओटले के २० लाख पूर्व सुधी ऋषभनाथ कुमार कालमा रह्या 'ओटला
पूर्व सुधी कुमारकालमां रह्या पछी तेओ ६३ लाख पूर्व सुधी महाराज पदे रह्या
ओ पद पर समासीन रह्हीने तेमओ ओ हीते प्रणने। उपकार कर्या ते विषे हुवे "ते
वद्विं" इत्यादि पदो वउे सूत्रकार कडे छे ६३ लाख पूर्व सुधी महाराज पद पर समा-
सीन रह्हीने ते ऋषभनाथे वैषादिक कलाओने। अक्षर विन्यास आदि रूप विद्याओने, गणित
प्रधान रूप कलाओने, तेमओ पक्षीओनी वाष्ठी समज्वा रूप अ तिस कलाओने, आ हीते
सर्वं उर कलाओने। तेमओ ६४ ओओनी कलाओने, अविद्याना साधनभूत कर्मोना
स कर्मोना विज्ञानशतने—शतसंख्यक कुलकरादि शिक्षेओने, आस सर्वंभणीने पुत्रुषोनी उर
कलाओने। ६४ ओओनी कलाओने अने विज्ञान शत रूप शिक्षेओने प्रकहित मांटे

ષ્ટિ સંખ્યકાન્ 'મહિલાગુણે' મહિલાગુણાન્ સ્ત્રીકલાઃ 'કમ્માણ' કર્મણાં—જીવિકાસાધનભૂતાનાં ચ મધ્યે 'સિપ્પસયં' શિલ્પશતં—વિજ્ઞાનશતમ્ શતસંખ્યકાનિ કુમ્ભકારાદિ શિલ્પાનીત્યર્થઃ, एतानि 'ત્રિણિવિ' ત્રીણ્યપિ 'પયાહિયાણ' પ્રજાહિતાય—લોકોપકારાય 'ઉવદિસઈ' ઉપદિશતિ । 'ત્રીણ્યપિ' इत्यत्र अपि शब्दः कला—महिलागुण—शिल्पशतानाम् एकपुरुषोपदिश्यमानतेति सूचनार्थम् । 'उपदिशति' इति वर्तमानकालत्वेन निर्देशः सर्वेषां माद्यतीर्थकराणामयमेव उपदेश प्रकार इति सूचयितुम् । यद्यपि कृषिवाणिज्यादयो बहवो जीविकासाधनप्रकाराः सन्ति, तथापि यत् शिल्पशतमेवात्र निर्दिष्टं तत् कृषिवाणिज्यादीनां पश्चादुत्पत्तिरिति सूचनायेति । ततश्च भगवता शिल्पशतमेवोपदिष्टं कृषिवाणिज्यादीनि तु पश्चात् समुद्भूतानीति विज्ञेयम् । अत एव आचार्योपदेशज शिल्पम् अनाचार्योपदेशजं कर्मेति प्रसिद्धम् ।

કી બોલી કો પહિચાનનેરૂપ અન્તિમ કલા તક કી ઇન સવ ૭૨ કલાઓ કો ઇવં ૬૪ સ્ત્રિયો કી કલાઓ કો, તથા જીવિકા કે સાધન ભૂત કર્મો કે બીચ મે વિજ્ઞાનશત કો—શત સંખ્યક કુમ્ભકારાદિ શિલ્પો કો—इस तरह लेखादिक रूप पुरुषो की ७२ कलाओ को, ६४ स्त्रियो की कलाओ को और विज्ञानशतरूप शिल्पो को प्रजाजनो-के हितके लिये उपदिष्ट किया, "त्रीण्यपि" में आया हुआ यह अपि शब्द यह सूचित करता है कि ये ७२ कलाएँ ६४ कलाएँ और शिल्पशत इन सब में एक पुरुष द्वारा उपदिश्यमानता है अर्थात् इनका सर्व प्रथम उपदेश इन्हीं ऋषभदेव ने दिया है । "उपदिशति" ऐसा जो वर्तमान कालिक का प्रयोग किया गया है उससे सूत्रकार ने यह सूचित किया है कि समस्त आद्यतीर्थकरों के उपदेश का प्रकार ऐसा ही होता है । यद्यपि कृषि, वाणिज्य आदि अनेक प्रकार के जीविका के साधन हैं तथापि यहां जो शिल्पशतमात्र का ही निर्देश करने में आया है वह इस बात को प्रगट करता है कि इनकी उत्पत्ति पश्चात् ही हुई है । इस तरह भगवान् ऋषभदेव ने तो शिल्पमात्र का ही उपदेश दिया है । कृषि वाणिज्यादि का नहीं—इनकी तो पीछे में ही उत्पत्ति हुई है । इसलिये—शिल्प आचार्योपदेशज है और कर्म अनाचार्योपदेशज है । अथवा—

ઉપદેશ કર્યો. "ત્રીણ્યપિઃ" માં આવેલ આ 'અપિ' શબ્દ આ સૂચિત કરે છે કે એ ૭૨ કલાઓ, ૬૪ કલાઓ અને શિલ્પ—શત એ સર્વેમાં એક પુરુષ વડે ઉપદિશ્ય માનતા છે. એટલે કે એ સર્વ કલાઓનો સર્વ પ્રથમ ઉપદેશ ઋષભદેવે જ કર્યો છે. "ઉપદિશતિ" એવો જ વર્તમાન કાલિક પ્રયોગ કરવામાં આવેલ છે તેનાથી સૂત્રકાર આ પ્રમાણે સૂચિત કરવા માંગે છે. સમસ્ત આદ્ય તીર્થકરો ના ઉપદેશનો પ્રકાર એવો જ હોય છે, જો કે કૃષિ, વાણિજ્ય વગેરે અનેક પ્રકારના ઇનિકાનાં સાધનો છે, તે પશુ અહીં માત્ર શિલ્પશતનો જ નિર્દેશ કરવામાં આવેલ છે, તે આ વાત પ્રકટ કરે છે કે એમણે પ્રચલન પછી જ થયું છે આ રીતે ભગવાન ઋષભદેવે તે શિલ્પ શત માત્રનો જ ઉપદેશ કર્યો છે, કૃષિ વાણિજ્યાદિ નો ઉપદેશ કર્યો નથી. એમનો આ વિષય તો પછી જ થયો છે એથી શિલ્પ આચાર્યોપદેશજ છે અને કર્મ અનાચાર્યોપદેશજ છે. અથવા—

अथवा—“तृणहार काष्ठहार कृषिवाणिज्यकान्यपि ।

कर्मण्यासूत्रयामास लोकानां जीविकाकृते ॥१॥” इति ।

प्राचीनोक्त्या कृषिवाणिज्यादीन्यपि भगवतैवोपदिष्टानीति विज्ञेयम् । ततश्च ‘कर्मणाम्’ इत्यत्र द्वितीयार्थे पृष्ठी । एवं च भगवान् जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानि कर्मणि-
शिल्पशतं च पृथगेवोपदिष्टवानिति बोध्यम् । कलानां लेखादिका द्वासप्ततिभेदाः तदर्थाञ्च
ज्ञातासूत्रस्य प्रथमाध्ययने विशतितमसूत्रे मत्कृतायाम् अनगारधर्माभूतवर्षिणीटीकायां
द्रष्टव्याः । चतुष्पष्टिः स्त्रीकलाश्चेमाः, नृत्यम् १, औचित्यं २, चित्रं ३, वादित्रं ४, मन्त्रः
५, तन्त्रं ६, ज्ञानं ७, विज्ञानं ८, दम्भः ९, जलस्तम्भः १०, गीतमानं ११, ताल-
मानं १२, मेघवृष्टिः १३, जलवृष्टिः १४, आरामरोपणम् १५, आकारगोपनम् १६
धर्मविचारः १७, शकुनसारः १८, क्रियाकल्पः १९, संस्कृतजल्पः २०, प्रासादनीतिः
२१, धर्मरीतिः २२, वणिकावृद्धिः २३, स्वर्णसिद्धिः २४, सुरभितैलकरण २५, लीला-

“तृणहार काष्ठहार कृषिवाणिज्यकान्यपि । कर्मण्यासूत्रयामास लोकानां जीविकाकृते ॥१॥”

इस प्राचीन उक्ति के अनुसार कृषि वाणिज्य आदि कर्म भी भगवान् के ही द्वारा उपदिष्ट
हुश हैं ऐसा जानना चाहिये । “कर्मणाम्” यह द्वितीयार्थ में पठ्ठी हुई है । अतः भगवान्
ने जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से अनेक प्रकार के कर्मों का और शिल्पशत
का अलग २ ही उपदेश दिया है ऐसा समझना चाहिये । कलाओं के लेखादिक जो
७२ भेद है और इनका जो अर्थ है वह सब मैंने ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन का जो
वीसमा सूत्र है उसकी टीका में खुलाशा किया है । अतः यह विषय वहां से अच्छी
तरह जाना जा सकता है । ६४ जो ब्रियो की कलाएँ हैं वे इस प्रकार से हैं—नृत्य १,
औचित्य २, चित्र ३, वादित्र ४, मन्त्र ५, तन्त्र ६, ज्ञान ७, विज्ञान ८, दम्भ ९, जलस्तम्भ
१०, गीतमान ११, तालमान १२, मेघवृष्टि १३, जलवृष्टि १४, आरामरोपण १५,
आकारगोपन १६, धर्मविचार १७, शकुनसार, १८, क्रियाकल्प १९, संस्कृतजल्प २०,

तृणहार काष्ठहार कृषिवाणिज्यकान्यपि ।

कर्मण्यासूत्रयामास लोकानां जीविका कृते ॥१॥

आ प्राचीन कथन शुभ्र कृषि वाणिज्यादि कर्मो पश्च भगवान् वडे न उपदिष्ट थया
छे, आस नक्षुषु लेधं छे. ‘कर्मणाम्’ आ द्वितीयार्थमा पृष्ठी थयेली छे. अथी भगवाने
जघन्य, मध्यम अने उत्कृष्टना लेदथी अनेक प्रकाराना कर्मोना अने शिल्पशतोना शुद्ध
शुद्ध स्वरूपमा न उपदेश कर्थे छे, आस समन्वयुं लेधं छे लेखादिकना रूपमा कला-
ओना ने ७२ लेहो छे अने अमना ने अर्थे छे, ते विषे मे ‘ज्ञातासूत्र’ ना प्रथम अध्य-
यनना, २० मा सूत्रनी टीकामा स्पष्टता करी छे. अथी आ सधधमा निशासुओ ते
अन्धनु अध्ययन करीने विशेष ज्ञान प्राप्त करी शके छे अथीओनी ६४ कलाओ आ प्रभाषि
छे १ नृत्य, २ औचित्य, ३ चित्र, ४ वादित्र, ५ मन्त्र, ६ तन्त्र, ७ ज्ञान, ८ विज्ञान,
९ दम्भ, १० जलस्तम्भ, ११ गीतमान, १२ तालमान, १३ मेघवृष्टि, १४ जलवृष्टि, १५
आराम रोपण, १६ आकारगोपन, १७ धर्मविचार १८ शकुनसार, १९ क्रियाकल्प, २०

સંચરણ ૨૬, હયગજપરીક્ષણ ૨૭, પુરુષસ્ત્રીલક્ષણં ૨૮, હૈમરત્નભેદઃ ૨૯, અષ્ટાદશ-
લિપિપરિચ્છેદઃ ૩૦, તત્કાલબુદ્ધિ ૩૧, વાસ્તુસિદ્ધિઃ ૩૨, કામવિક્રિયા ૩૩, વૈદ્યક-
ક્રિયા ૩૪, કુમ્ભભ્રમઃ ૩૫, સારિશ્રમઃ ૩૬, અઠ્ઠનયોગઃ ૩૭, ચૂર્ણયોગઃ ૩૮,
હસ્તલાઘવ ૩૯, વચનપાટવં ૪૦, ભોજ્યવિધિઃ ૪૧, (વાણિજ્યવિધિઃ ૪૧, મુખ
મળ્હનં ૪૨, શાલિખળ્હનમ્ ૪૩, કથાકથનં ૪૪, પુષ્પગ્રથન ૪૫, વક્રોક્તિઃ ૪૬, કા
વ્યશક્તિઃ ૪૭, સ્ફારવિધિવેષ ૪૮, સર્વભાષાવિશેષઃ ૪૯, અભિધાનજ્ઞાનં ૫૦, મૂષ્ણ
પરિધાનં ૫૧ મૃત્યોપચારઃ ૫૨, ગૃહાચારઃ ૫૩, વ્યાકરણં ૫૪, પરનિરાકરણં, ૫૫,
રન્ધનં ૫૬, કૈશવન્ધનં ૫૭, વીણાનાદઃ ૫૮, વિતળ્હાવાદઃ ૫૯, અઙ્કવિચારઃ ૬૦,
લોકવ્યવહારઃ ૬૧, અન્ત્યાક્ષરિકા ૬૨, પ્રશ્નપ્રહેલિકા ૬૩ ઇતિ । इह काश्चित् कलाः
સ્ત્રીપુરુષસાધારણા અપિ યત્ પૃથક્ પૃથક્ સ્ત્રીવિષયત્વેન પુરુષવિષયત્વેન ચોક્તાસ્ત્ર

પ્રસાદનીતિ ૨૧, ધર્મરીતિ ૨૨, વણિકાવૃદ્ધિ ૨૩, સ્વર્ણસિદ્ધિ ૨૪, સુરભિતૈલકરણ ૨૫,
લોલાસચગ્ણ ૨૬, હયગજપરીક્ષણ ૨૭, પુરુષસ્ત્રીલક્ષણ ૨૮, હૈમરત્નભેદ ૨૯, અષ્ટાદશલિપિ-
પરિચ્છેદ ૩૦, તત્કાલબુદ્ધિ ૩૧, વાસ્તુસિદ્ધિ ૩૨, કામવિક્રિયા ૩૩, વૈદ્યકક્રિયા ૩૪, કુમ્ભ-
ભ્રમ ૩૫, સારિશ્રમ ૩૬, અઠ્ઠનયોગ ૩૭, ચૂર્ણયોગ ૩૮, હસ્તલાઘવ ૩૯, વચનપાટવ ૪૦,
ભોજ્યવિધિ ૪૧, (વાણિજ્યવિધિ ૪૧) મુખમળ્હન ૪૨, શાલિખળ્હન ૪૩, કથાકથન ૪૪,
પુષ્પગ્રથન ૪૫, વક્રોક્તિ ૪૬, કાવ્યશક્તિ ૪૭, સ્ફારવિધિવેષ ૪૮, સર્વભાષાવિશેષ ૪૯, અમિ-
ધાનજ્ઞાન ૫૦, મૂષ્ણપરિધાન ૫૧, મૃત્યોપચાર ૫૨, ગૃહાચાર ૫૩, વ્યાકરણ ૫૪, પર-
નિરાકરણ ૫૫, રન્ધન ૫૬, કૈશવન્ધન ૫૭, વીણાનાદ ૫૮, વિતળ્હાવાદ ૫૯, અઙ્કવિચાર
૬૦, લોક વ્યવહાર ૬૧, અન્ત્યાક્ષરિકા ૬૨, એવ પ્રશ્નપ્રહેલિકા ૬૩, ઇન કલાઓ મેં કિતનોક
કલાઈં એસી મી હૈ જો સ્ત્રી ઓર પુરુષ મેં સમાનરૂપ સે હોતી હૈં, પરન્તુ જબ વે સ્ત્રી સબન્ધી હોતી
હૈં તો સ્ત્રીકલા કહલાતી હૈ, ઓર જબ પુરુષ સબન્ધી હોતી હૈં તો પુરુષકલા કહલાતી હૈં, ઇસ-

સ સ્કૃત ભદ્ર, પ્રાસાદનીતિ, ૨૨ ધર્મરીતિ, ૨૩ વણિકાવૃદ્ધિ, ૨૪ સ્વર્ણસિદ્ધિ, ૨૫ સુરભિ
તૈલ કરણ, ૨૬ લીલા સચરણ ૨૭ હયગજપરીક્ષણ, ૨૮ પુરુષ સ્ત્રી લક્ષણ, ૨૯ હૈમ-
રત્ન ભેદ, અષ્ટાદશલિપિપરિચ્છેદ, ૩૦ તત્કાલ બુદ્ધિ, ૩૧ વાસ્તુસિદ્ધિ, ૩૨ કામવિક્રિયા,
૩૩ વૈદ્યક ક્રિયા, ૩૪ કુમ્ભ ભ્રમ, ૩૫ સારિશ્રમ, ૩૬ અઠ્ઠનયોગ ૩૭ ચૂર્ણયોગ, ૩૮ હસ્ત
લાઘવ, ૪૦ વચન પાટવ, ૪૧ લોભવિધિ, (૪૧ વાણિજ્ય વિધિ), ૪૨ મુખમળ્હન, ૪૩
શાલિખળ્હન, ૪૪ કથાકથન, ૪૫, પુષ્પ ગ્રથન, ૪૬ વક્રોક્તિ, ૪૭ કાવ્યશક્તિ, ૪૮ સ્ફાર
વિધિવેષ, ૪૯ સર્વ ભાષા વિશેષ, ૫૦ અભિધાન જ્ઞાન, ૫૧ મૂષ્ણપરિધાન, ૫૨ મૃત્યોપચાર,
૫૩ ગૃહાચાર, ૫૪ વ્યાકરણ, ૫૫ નિરાકરણ, ૫૬ રન્ધન, ૫૭ કૈશવન્ધન, ૫૮ વીણા
નાદ, ૫૯ વિત ડાવાદ, ૬૦ અઙ્કવિચાર, ૬૧ લોકવ્યવહાર, ૬૨ અન્ત્યાક્ષરિકા અને ૬૩ પ્રશ્ન
પ્રહેલિકા એ કલાઓમાં કેટલીક કલાઓ એવી પણ છે કે જે સ્ત્રી અને પુરુષ બન્ને માટે
સમાન રૂપે હોય છે, પણ જ્યારે તે સ્ત્રી સંબંધી હોય છે, ત્યારે સ્ત્રી કલા કહેવાય છે અને
જ્યારે પુરુષ સંબંધી હોય છે ત્યારે તેની ગણના પુરુષ કલાના રૂપમાં થાય છે એથી એમ

पौनरुक्त्यशङ्का न कार्या, स्त्रीकलाविषयत्वेन पुरुषकलाविषयत्वेन च पृथग् पृथग् विवक्षणात्, अन्यथा स्त्रीकलापुरुषकला तदुभयकलाचेति कलानां भेदत्रयं विवक्षणीयं स्यादिति । शिल्पशतं यदुक्तं तत्र मूलशिल्पानि कुम्भशिल्पं लोहशिल्पं चित्रशिल्पं तन्तुवायशिल्पं नापिताशिल्पमिति पठ्यते । तत्र एकैकस्य भेदस्य विंशतिर्विंशति भेदा इति शिल्पशतम् । तदुक्तम्—

“पंचेव य सिप्पाइ घडलोह चित्तणत कासवए ।

इक्किक्कस्स य इत्तो वीसं वीसं भवे मेया ॥१॥”

छाया—पठ्यते च शिल्पानि घटलोह चित्र वस्त्र काश्यपानि ।

विंशति एकैकस्य च इतो विंशतिभेदाः ॥१॥ इति

ननु किं निमित्तं भगवता पञ्च मूलशिल्पानि प्रोक्तानि ? इति चेत्, आह—कालस्वभावेन युगलिकपुरुषेषु मन्दजाठराग्निषु जातेषु अपक्वौषधिषु भुज्यमानासु तदपरिपाकेन रुग्णप्रायास्ते युगलिकपुरुषाः संजाताः, ततस्तेषां दुर्दशामालोक्य दयार्द्रहृदयेन

लिये इनमें पुनरुक्ति की संभावना नहीं हो सकती है, यदि ऐसा न होता तो फिर स्त्री कला पुरुषकला और तदुभयकला इस तरह से कलाओं के तीन भेद विवक्षित होते परन्तु इस प्रकार से कलाओं के भेद विवक्षित नहीं हुए हैं । शिल्पशत ऐसा जो कहा गया है उसमें मूलशिल्प चित्रशिल्प, तन्तुवायशिल्प, और नापित शिल्प ये पांच भेद हैं, इनमें प्रत्येकशिल्प के २०-२० और भेद होते हैं, इस तरह शिल्पशत होते हैं ।

तदुक्तम्—पंचेव य सिप्पाइ, घडलोह चित्तणत कासवए ।

इक्किक्कस्स य इत्तो—बीस बीस भवे मेया ॥१॥

शंका—भगवान् ने किस निमित्त से पांच मूलशिल्प कहे हैं ? तो इस शंका का उत्तर ऐसा है कि जब युगलिक पुरुष मन्दजाठराग्नि वाले हो गये तब उन्होंने अपक्व औषधियाँ खाना प्रारंभ कर दिया । परन्तु वे भी उन्हें नहीं पची— इस कारण वे रुग्णप्राय रहने लगे ।

नामां पुनरुक्तिनी संभावना होई शकै नहि जे आभ न होत तो स्त्री कला, पुरुष कला अने तदुभयकलाना उभयां कलाओंना त्रयुल्लेहो विवक्षित होत परंतु कलाओंना आ रीते लेहो करवाभा आख्या नथी शिल्पशत जेपु जे कडेवाभा आख्या छे, तेमां मूलशिल्पना कुंभ शिल्प, लोहशिल्प, चित्र शिल्प तन्तुवाय शिल्प अने नापितशिल्प जे पाच लेहो छे जेमां हरैक शिल्पना २०-२० प्रकारो भीज पखु होय छे आ रीते शिल्पशत थर्ध जय छे, तदुक्तम्

पंचेव य सिप्पाइ घडलोह चित्तणत कासवए । इक्किक्कस्स य इत्तो वीसं वीसं भवे मेया ॥१॥

शंका—भगवाने क्या निमित्त से पांच मूल शिल्पो कहे छे ? तो आ शंकेना जवाब आ प्रमाणे करवाभा आवे छे के युगलिक पुरुषो मन्द जाठराग्निवाला थर्ध गया त्यारे तेमके अपक्व औषधीओसु सेवन करवा भाइयु, परंतु ते औषधीओने पखु तेओ पचावी शक्या नहि, जेथी तेओ प्रायः रुग्ण रहैवा लाग्या तेओनी आपी दुर्दशा जेधने भगवाने कथाई

ભગવતા તદ્રન્ધનાય રન્ધનસાધનપાત્રનિર્માણશિલ્પમુપદિદેશ । તત્ર ભગવાન્ સર્વતઃ પ્રથમં ઘટનિર્માણશિલ્પમુપદિષ્ટવાનિતિ પ્રથમં ઘટમૂલશિલ્પં સંજાતમિતિ ? । અનાર્યેભ્યઃ પ્રજાં રક્ષિતુ ક્ષાત્રિયાઃ શસ્ત્રપાણયસ્તિડ્ઠન્તુ ઇતિ ભગવતા લોહશિલ્પં દર્શિતમ્ ૨ । ચિત્રાદ્ગુરુલ્પવૃક્ષેષુ કાલસ્વભાવેન પરિક્ષીણેષુ ચિત્રશિલ્પમ્ ૩ । વસ્ત્રપ્રદાયિષુ કલ્પવૃક્ષેષુ પરિક્ષીણેષુ તન્તુવાય-શિલ્પમ્ ૪ । પૂર્વમવર્દ્ધમાનરોમનશ્ચાન્ કાલપ્રભાવેણ વર્દ્ધમાનરોમનશ્ચાન્ યુગલ્કિનો નરાન્ વીક્ષ્ય તેરોમનશ્ચૈસ્તેપાં વ્યાઘાતો મા ભૂદિતિ વિચાર્ય દયાર્દ્રહૃદયેન ભગવતા નાપિતશિલ્પં ચ પ્રદર્શિતમ્ ૫ ઇતિ । નન્તુ કર્મક્ષણાર્થમેવ અવશિષ્ટસત્કર્મણો ભગવન્તોડર્હન્તો વ્યાધિ-પ્રતીકારાર્થં ઐપલ્યમિવ સ્ત્યાદિ પરિગ્રહં સ્વીકુર્વતે, ન ત્વિતરે, કથં પુન નિરવઘ્નકરુચિ-

તવ એસી દુર્દશા અનેકી દેલકર દયાર્દ્રહૃદય વાલે ભગવાન્ ને અને ઔષધિયો કો પકાને કે લિયે પકાને મેં સારરહ્ન પાત્રો કે નિર્માણ રૂનેકોશિલ્પ ક્રમ કા ઉપદેશ દિયા, ઇસમેં સવસે પહિલે ઘટ નિર્માણરૂપ શિલ્પ કા ઉપદેશ દિયા, ઇસલિષ્ ઘટમૂલશિલ્પ સર્વ પ્રથમ હુઆ । અનાર્ય-જનોં સે પ્રજા કી રક્ષા કે લિયે ક્ષત્રિય જન અપને ૨ હાથોં મેં હયિયાર લિયે રહેં—ઈમકે લિયે પ્રમુ ને લોહ શિલ્પ કા ઉપદેશ દિયા, ચિત્રાદ્ગુજાત કે કલ્પવૃક્ષ જન્ન કાલસ્વભાવ કે કારણ નષ્ટ હો ગયે—તવ પ્રમુ ને ચિત્રશિલ્પ કા આદેશ દિયા, વલ્લોં કો દેને વાલે કલ્પવૃક્ષોં કે નષ્ટ હો જાને પર પ્રમુ ને તન્તુવાય શિલ્પ કા ઉપદેશ દિયા । પહિલે યુગલિક નરોં કે રોમ નલ્લ નહીં બઢતે યે પર અવ કાલ કે પ્રભાવ સે બઢે હુષ નલ્લ રોમ વાલે યુગલિક નરોં કો દેલકર અને નલ્લ રોમો સે અનેકા વ્યાઘાત ન હો જાય એસા વિચાર કર દયા સે જિનકા અન્ત' કરણ આર્દ્ર હો રહા હૈ એસે ભગવાન્ ને નાપિત શિલ્પકા ઉપદેશ દિયા ।

શકા—કર્મનષ્ટ કરને કે લિયે હી અવશિષ્ટ સત્કર્મવાલે ભગવાન્ અર્હન્ત વ્યાધિ કે પ્રતીકાર કે લિયે ઔષધિસેવન કે સમાન સ્ત્રી આદિરૂપ પરિગ્રહ કો સ્વીકાર કરતે હૈં । ઇતરજન એસા નહીં કરને, અત. નિરવઘકર્મ મેં હી રુચિવાલે ભગવાન્ સાવઘક્રિયા કે ઉપદેશ મેં કૈસે પ્રવૃત્ત હુષ ?

થઈને તે ઔષધીઓને પકવવા માટે પકવવામા સાધન રૂપ પાત્રોને બનાવવાની શિલ્પકલાને ઉપદેશ કર્યો એમા સૌથી પહેલાં ઘટ નિર્માણરૂપ શિલ્પકલાને ઉપદેશ કર્યો— એથી જ ઘટ મૂલ શિલ્પ સર્વ પ્રથમ અસ્તિત્વમાં આવ્યું અનાર્ય લોકોથી પ્રબળની રક્ષા કરવા માટે ક્ષત્રિયો પોત પોતાના હાથોમાં હથિયારો રાખવા લાગ્યા, એના માટે પ્રભુએ લોહ શિલ્પને ઉપદેશ કર્યો ચિત્રાંગ જાતના કલ્પવૃક્ષો બનાવે કાલ સ્વભાવના કારણે નાશ પામ્યા ત્યારે પ્રભુએ ચિત્ર શિલ્પને ઉપદેશ કર્યો વલ્લો આપનારા કલ્પવૃક્ષો બનાવે નાશ પામ્યા ત્યારે પ્રભુએ તન્તુવાય શિલ્પને ઉપદેશ કર્યો પહેલાં યુગલિક નરોના રોમ—નખ વધતા ન હતાં. પણ પછી કાળના પ્રભાવથી યુગલિક નરોના રોમ—નખો વધવા લાગ્યા ત્યારે તે નખ—રોમો થી તેમને વ્યાઘાત થાય નહિ તેમ વિચારીને દયાર્દ્રાન્તઃકરણ બગવાને નાપિત શિલ્પને ઉપદેશ કર્યો.

શકા—કર્મ નષ્ટ કરવા માટે જ અવશિષ્ટ સત્કર્મ વાળા ભગવાન અર્હન્ત વ્યાધિના પ્રતિકાર માટે ઔષધિ સેવન કરવામાં આવે છે. તેમ સ્ત્રી આદિ રૂપ પરિચ્છેને સ્વીકારે છે. ઇતર લોકો આવુ કરતા નથી. એથી નિરવઘ કર્મમા જ રુચિ ધરાવનારા

भवान् सावधक्रियोपदेशे प्रवृत्तः ? इति चेत्, आह कालप्रभावेण वृत्तिहीनेषु दीनेषु जनेषु सत्सु तद्दुर्दशामालोक्य करुणरससमाप्लुतस्वान्तो भगवान् वृत्तिहीना एते चौर्यादि दुर्वृत्तिभाजो मा भूवन्' इति विचार्य तेषां जीविकासाधनभूता कलाः ममुपदिदेति अवशिष्टसत्कर्मप्रभावेण भगवतामर्हतां स्व्यादि परिग्रह स्वीकरणमिव भगवत् आदिजिनस्य कलोपदेशकत्वमपि बोध्यमिति । एवं भगवतो राज्यधर्मप्रवर्तकत्वं दृष्टनिग्रहाय शिष्टपरिपालनाय विज्ञेयम् । अराजकत्वे हि मात्स्यन्यायप्रवृत्त्या लोके व्यवस्थाया नितरामभावः प्रसज्येत, ततश्च सर्वे दुर्वृत्तिभाज एव भवेयुरिति सर्वेषां दुर्गति रेव स्यात् इति दुर्गतिभाजो मा भूवन् मनुजा इति विचार्यैव भगवता आदिजिनेन राजधर्मोऽपि प्रवर्तितः । किं च सर्वेऽपि आदिजिना—प्रथम केवलिनः राजधर्ममपि प्रवर्तयन्तीति जीतव्य-

तो इसका उत्तर ऐसा है कि काल के प्रभाव से वृत्ति हीन हुए दीनजनों के हो जाने पर उनकी दुर्दशा के देखने से जिनका अन्त करण करुणा रस के प्रवाह से भर गया है ऐसे अर्हन्त भगवन्त ने यह सोचकर कि वृत्ति से विहीन हुए ये जन चौर्यादिरूप दुर्वृत्तिवाले न बन जावे' उनकी जीविका की साधनभूत कलाओं का उपदेश दिया । अवशिष्ट सत्कर्मके प्रभाव से भगवन्त श्री अर्हन्त प्रभु जिस प्रकार श्री आदिरूप परिग्रह को स्वीकार करते हैं उसी प्रकार से भगवान् आदिजिनका यह कला का उपदेश भी समझना चाहिये । इस तरह भगवान् में राजधर्म की प्रवर्तकता दुष्टों के निग्रह के लिये और शिष्टजनों के पालन के लिये हुई जाननी चाहिये । लोक में अराजक अवस्था में मात्स्यन्यायकी प्रवृत्ति के अनुसार व्यवस्था का अत्यन्त अभाव हो जाता है । इस हालत में समस्त जन दुर्वृत्ति वाले हो जाते हैं । अतः इन जीवों को दुर्गति का पात्र न होना पड़े ऐसा विचार करके भगवान् आदि जिन ने राजधर्म की भी प्रवृत्ति की, किंच—समस्त आदि जिन राजधर्म की भी प्रवृत्ति करते हैं ऐसा जीत व्यवहार है । इसी लिये इन आदि जिन ने भी राजधर्म प्रवर्तित किया ।

भगवान् सावध क्रियाना उपदेशमा केवी रीते प्रवृत्त तथा ? तो प्रश्नोना जवाब—आ प्रभाषे छे के कालना प्रभावथी वृत्तिहीन थयेला हीन होकेने जेधने, तेमनी दुर्दशा जेधने जेभनु अन्तःकरुण करुणा प्रवाहथी तरणेण थर् गथुं छे, तेवा अर्हन्त भगवाने वृत्तिहीन होके चौर्यादि रूप दुर्वृत्तिवाण थर् न जय आभ विचारिने तेमनी श्रविकाना साधनना रूपमां कलाजोने उपदेश थ्यो अवशिष्ट सत्कर्मना प्रभावथी भगवन्त श्री अर्हन्त प्रभु जे रीते श्री आदि रूप परिग्रहने स्वीकारे छे, ते रीते भगवान् आदि जिनने आ कलाने उपदेश पथु समजवे जेधजे आ प्रभाषे भगवानमां राज धर्मनी प्रवर्तकता दुष्टोना निग्रह मटे अने शिष्ट जनोना पालन मटे छे आभ समजवुं जेधजे. होकमा अराजक अनस्थामां मात्स्यन्यायनी प्रवृत्ति सुजय व्यवस्थाने न्यारे अत्यन्ताभाव थर् जय छे त्यारे सर्व होके दुर्वृत्तिवाण जनी जय छे जेथी श्रवे अराज रस्ते जय नहि, तेम विचार करिने भगवान् आदि जिने राज धर्मनी प्रवर्तना करी किंच, समस्त आदि जिनो राज धर्मनी प्रवृत्ति करे छे, जेवे छत व्यवहार छे. जेथी ज आ भगवान् आदि जिने पथु राजधर्मनी प्रवर्तना करी.

वहारः, अतश्चापि भगवता राजधर्मः प्रवर्तित इति । प्रकृतमनुसरामः—तथा, 'उवदिसित्ता' उपदिश्य=द्वाससर्ति पुरुषस्य कलाः चतुष्पष्टि महिलाशुणान शिल्पशतानि च प्रजाभ्य उपदिश्य 'पुत्तसयं' पुत्रशतं=भरत बाहुबलिप्रमुखान् पुत्रान् 'रज्जसए' राज्यशते=कोसलातक्षशिलादिपु शतसंख्यकेषु 'राज्येषु 'अभिसिचइ' अभिपिञ्चति, 'अभिसिचित्ता' अभिपिच्य 'तेसीइ पुव्वसयहस्साइ' त्र्यशीति पूर्वशतसहस्राणि=विंशतिपूर्वलक्षाणि कुमारवासस्य त्रिपष्टि पूर्वलक्षाणि महाराजवासस्येति त्र्यशीतिलक्षपूर्वाणि 'महारायवासमज्जे वसइ' महाराजवासमध्ये वसति । यद्यपि भगवतो महाराजवासस्त्र्यशीति लक्षपूर्वाणि न भवन्ति, किन्तु कुमारवासमहाराजवासयोः सम्मलितानि तावन्ति, पूर्वाणि भवन्ति, तथापि कुमारवासापेक्षया महाराजवासस्य प्राचुर्येण महाराजवास सम्बन्धित्वेनैव त्र्यशीतिलक्षपूर्वाणि विवक्षितानीति बोध्यम् । इत्थ कुमारवासमहाराजवासयोः त्र्यशीतिलक्षपूर्वाणि 'वसित्ता'उपित्वा 'जे से' यः सः प्रसिद्धो 'गिम्हाण' ग्रीष्माणं=ग्रीष्मऋतोः 'पढमे मासे' प्रथमे=आद्ये मासे चैत्रमासे 'पढमे पक्खे चित्तबहुले' प्रथमः पक्षः चैत्रबहुलः—चैत्रकृष्णपक्षः, 'तस्स णं चित्त बहुलस्स णवमी पक्खेण' तस्य सल्लु चैत्रबहुलस्य नवमी पक्षे=नवम्यां तिथौ 'दिवसस्स'

इस तरह से प्रसु ने ७२ पुरुषोक्ती कलाओं का ६४ स्त्रियों की कलाओं का और शिल्प-शत का प्रजाजनों के लिये "उवदिसित्ता" उपदेश देकर फिर उन्होंने "पुत्तसयं रज्जसए अभिसिचइ" भरत, बाहुबलि आदि अपने शतसंख्यक पुत्रों को कोसला, तक्षशिला आदि १०० एक सौ राज्यों के ऊपर अभिषेक किया, "अभिसिचित्ता" अभिषेक करके "तेसीइ पुव्वसयसहस्साइ महारायवासमज्जे वसइ" इस तरह ८३ लाख पूर्व—कुमार काल के २० लाख पूर्व और महाराज पद के ६३ लाख पूर्व तक के गृहस्थावस्था में रहे यहा इन दोनों पदों के कालको मिलाकर ८३ लाख पूर्व उन्होंने गृहस्थावस्था में अपना समय समाप्त किया—ऐसा जानना चाहिये इस तरह ८३ लाख पूर्व तक वे गृहस्था वस्थारूप महाराज पद में रहकर फिर "जे से गिम्हाण पढमे मासे पक्खे चित्तबहुले, तस्स णं चित्त बहुलस्स णवमी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे" ग्रीष्मऋतु के प्रथममास में चैत्रमास में कृष्णपक्ष में ९ नौमी तिथि में दिवस के पश्चिम

आ प्रभाणु प्रभुणो ७२ कलाओणे ६४ स्त्रीओणी कलाओणा अने शिल्पशताने प्रब्रज्जानो भाटे 'उपदिसित्ता' उपदेश करीने तेभणु 'पुत्तसयं' रज्जसए अभिसिचइ' भरत भाहुबलि वगेरे पोताना सोपुत्रोने कोसला तक्षशिला वगेरे १०० ओकसो राज्जे ५२ अभिषेक कर्यो छे. अभिसिचित्ता' अभिषेक करीने 'तेसीइ' पुव्वसयसहस्साइ महाराजवासमज्जे वसइ' आरीते ८३ लाख पूर्व—कुमार कालना २० लाख पूर्व अने महाराज पढना ६३ लाख पूर्व सुधी गृहस्थावस्थाभां रह्या अही आ आ णन्ने पढोना कालने मेणववाथी ८३ लाख पूर्व थाय छे तेभं समज्जु'ओ प्रभाणु ८३ लाख पूर्व तेओ गृहस्थावस्था ३५ महाराजपढमां रहीने ते पछी "जे से गिम्हाण पढमे मासे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स नवमी पक्खे णं दिवसस्स पच्छिमे भागे" ग्रीष्मऋतुना प्रथम महीना ओटवेके चैत्र मासमां कृष्ण पक्षमां नवमी तिथिमा दिवसना पाछला भागमा 'चित्त हिरणं' रज्जत—याहीने ओहीने

दिवसस्य 'पच्छिमे भागे' पश्चिमे भागे-उत्तार्द्ध भागे 'हिरण्यं' हिरण्य=रजतम् अघटित सुवर्णं वा 'चइत्ता' त्यक्त्वा परित्यज्य, सुवर्णं सुवर्णम्=अघटितं घटितं वा सुवर्णं 'चइत्ता' त्यक्त्वा 'कोसं' कोशं=भाण्डागारं 'कोष्ठागारं' कोष्ठागारं=धान्यागारं च 'चइत्ता' त्यक्त्वा, 'बलं' बलं=सैन्यं 'चइत्ता' त्यक्त्वा, 'वाहणं' वाहनम्=अश्वदिक 'चइत्ता' त्यक्त्वा 'पुरं' पुरं=नगर 'चइत्ता' त्यक्त्वा 'अंते उरं चइत्ता' अन्तः पुरं त्यक्त्वा, तथा 'विडल धणकणगरयणमणि-मोत्तियसंखसिलपवालरत्तरयणसतसारसावइज्जं' विपुलधनकनकरत्नमणिमौक्तिकशह्वशि-लाप्रवालरत्तरत्नसत्सारस्वापतेय-विपुल=प्रचुरं धनं-गवादिकं, कनकं-सुवर्णं, रत्नं-कर्केतनादिकं, मणिः=सूर्यकान्तादिः, मौक्तिकानि=मुक्ताफलाणि, शह्वः=दक्षिणावर्त्ताः, शिलाः=राजपट्टादिरूपाः, प्रवालानि=विद्रुमाणि, रत्तरत्नानि=पद्मरागाः, रत्नग्रहणेनैव पद्मरागस्यापि ग्रहणे सिद्धे पुनः रत्तरत्नग्रहणं तस्य प्राधान्यख्यापनार्थम्, एषां इन्द्रः, एतद्रूप यत् सत्सारस्वापतेयं-सन्=विद्यमानः सारो यस्मिंस्तत् सत्सारं तादृशं यत् स्वापतेयं=द्रव्यं तच्च 'चइत्ता' त्यक्त्वा, हिरण्यादिकं पूर्वोक्तं सर्वं ममत्वपरित्यागेन परित्य-ज्येति भावः, तथा 'विच्छइत्ता' विच्छर्द्धं ममत्वाकरणेन दूरीकृत्य, 'विगोवइत्ता' विगो-प्य-जुगुप्सितमेतद् हिरण्यादिकमिति विनिन्द्य, तथा 'दाइयाणं' दायिकानां दायदानां 'दायं परिभाएत्ता' परिभाज्य एकैकशो वित्तोर्यं, तदा याचकानामभावात्त्र दायिकग्रहणम्,

भाग में "चइत्ता हिरण्यं" रजत-चांदी को छोड़कर "चइत्ता-सुवर्णं" सुवर्ण को छोड़कर "चइत्ता कोसं कोष्ठागारं" कोश-भाण्डागार को छोड़कर, कोष्ठागार-धान्यमंडार को छोड़कर "चइत्ता बलं" बलसैन्य को छोड़कर "चइत्ता वाहणं" अश्वदिक वाहनो को छोड़कर "चइत्ता पुरं" पुर-नगर छोड़कर "चइत्ता अंतेउरं" अन्तः पुर-रणवास को छोड़कर "चइत्ता विडल धणकणग-रयणमणिमोत्तिय संखसिलापवालरत्तरयणसतसारसावइज्जं" प्रचुर गवादि रूप धन को छोड़कर, कनक-सुवर्ण को, कर्केतन आदि रत्नको, सूर्यकान्तादिरूप मणियों को मुक्ताफलो को शह्वों को, राजपट्टादिरूप शिलानों को, प्रवालों को, पद्मराग आदि रूप रत्न रत्नों को, इस प्रकार से सब सत्सारभूतद्रव्य को छोड़कर इन सबसे अपना ममत्वभाव हटाकर "विच्छइत्ता" ये सब जुगुप्सित हैं इस प्रकार से इन्हें "विगोवइत्ता" निन्दनीय समझकर और उस समय याचक-

'चइत्ता सुवर्णं' सेनाने छोडीने 'चइत्ता कोसं कोष्ठागारं' कोष बाण्डागारने छोडीने अटकेके धान्य मंडारने छोडीने 'चइत्ता बलं' बल-सैन्यने छोडीने 'चइत्ता वाहणं' अश्वदिकवाहनोने छोडीने 'चइत्ता पुरं' पुर-नगरने छोडीने 'चइत्ता अंतेउरं' अन्तःपुर-रणवासने छोडीने 'चइत्ता विडलधणकणगरयणमणिमोत्तियसंखसिलापवालरत्तरयणसतसारसावइज्जं' प्रचुर गवादिद्रव्य धनने त्यज्जने कनक-सुवर्णं, कर्केतन विगोरे रत्नोने सूर्यकान्तादि मणियोने अउकवाइणोने श जोने कनक-सेनाने, राजपट्टादिरूप शिलायोने, प्रवालोंने, पद्मराग विगोरे रत्न रत्नोने आ रीते अथा अ सत्सार इय द्रव्योने छोडीने अे अथाशी पौतानो ममत्व-भाव हटावीने 'विच्छइत्ता' आ अथा जुगुप्सित छे अे प्रभाषे तेभने 'विगोवइत्ता' निन्दनीय समझने अने ते संभये याचकोने अभाव होवाशी 'दायं दाइयाणं परिभाएत्ता'

तेऽपि निर्ममा भगवत् प्रेरिताः सन्त उपहाररूपेणैव तं जगृहुः । जिनानामयमेव जीतकल्पो यद् ग्रहीतृणाम् इच्छावधि दातव्यमिति । ननु जिनस्य याचकेच्छावधिदानं यदि जीतं, तर्हि साम्प्रतिक एक एव महेच्छो याचकः एकदिनदेयं सवत्सरदेय वा ग्रहीतुमिच्छेत् ? इति चेत् आह, प्रभु प्रभावेण तेषां तथाविधेच्छाया असंभवादिति । तथा—‘सुदसणाए’ सुदर्शनायां=सुदर्शना नाम्न्या ‘सीयाए’ शिविकायां समाखूढः । ‘समाखूढ’ इत्यध्याहार्यम् । तथा ‘सदेव मणुयासुराए’ सदेव मनुजासुरया—मनुजाश्च असुराश्चेति—मनुजासुराः देवैः सहिता मनुजासुरा यस्या सा तथा तथा ‘परिसाए’ परिषदा ‘समणुगम्ममाणमग्गे’ समणुगम्यमान मार्गोऽभूदित्यध्याहार्यम् । तत् एवं विध तं भगवन्तं ‘संखियचक्किय णगळियमुह-

जनो के अभाव होने से “दायं दाह्याण परिभाएत्ता” दायदों में इन्हें विभक्तकर “सुदंसणाए सीयाए” वे प्रभु सुदर्शना नामके रमणीय शिविका में आखूढ हो गये, जिस समय प्रभु ने दायदों को पूर्वोक्त द्रव्य विभक्त कर दिया था उस समय उन दायदों ने निर्मम होकर—भगवान् के द्वारा प्रेरित होकर—उपहाररूप से ही उस विभक्त द्रव्य को ग्रहण किया था जिनो का यही आचार है जीतकल्प है कि वे गृहीता जनो को उनकी इच्छा के अनुसार ही दान देते हैं ।

शंका—यदि याचक जनो को उनकी इच्छा के अनुसार ही दान देना जितेन्द्रदेव का आचार है तो उस समय का एक महती इच्छा वाला याचक एक दिन में देने योग्य या सवत्सर में देने योग्य दान को ग्रहण करने की इच्छा क्यों नहीं करता है ? तो इसका समाधान यही है कि प्रभु के दिव्य प्रभाव से याचक जनो में ऐसी इच्छा नहीं होती है कि एक दिन में दिये जाने योग्य दान या सवत्सर में दिये जाने योग्य दानको मैं ही पूरे रूप से ले लूँ । सुदर्शना शिविका पर आखूढ होकर जब प्रभु चले तो उस समय “सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे” उनके साथ साथ मनुष्यों को परिषदा कि जिसमें देव और असुर

हाथाहोमां ओने वडे”थी इधने ‘सुदंसणाए सीयाए’ सुदर्शना नामनी सुन्दर शिविकाभा तेओ आखूढ तथा ओ समये प्रभुओ हाथाहोमां पूर्वोक्त द्रव्य वडे”थी वीधुं ओ समये ओ हाथाहो ओ निर्मम भवत्व रहित थधने भगवान द्वारा प्रेरणने उ उ पदारूपे ओ वडे येदा द्रव्यने स्वीकारुं” ओनेने ओ न आचार छे : एत कथ्य छे, के तेओ वैनार ओनेने तेमनी धव्छा प्रभाणे न दान हे.

शंका—ओ याचक ओनेने तेमनी धव्छा प्रभाणे न दान आपसु ओवे ओनेन्द्रदेवने आचार छे, तो ते समयेने ओके महती धव्छा धरावनार याचक ओके ओके दिवस आपवा योग्य अथवा ओके वर्षमा आपवा योग्य दानने ओके साथे न अहंशु करवानी धव्छा केम करतो नथी ? आ शंकासु समाधान ओसु छे के प्रभुना दिव्य प्रभावथी याचक ओने.मां ओवी धव्छा न थती नथी के ओके दिवसमां आपवाभा आपनार दान अथवा ओके वर्षमा आपवाभां आपनार दानने हु पूरे पुरे वध वध

सुदर्शना शिविकाभा ओसीने न्यारे प्रभु आह्या तो ते समये ‘सदेवमणुयासुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे’ तेमनी साथे मनुष्येनी पश्चिदा के ओमां देवे ओने

मंगलियपूसमाणववद्धमाणग आइक्खगल्लसमखघंटियगणेहिं' शाङ्खिकं चाक्रिकलाङ्गलिकमु-
खमङ्गलिक पुण्यमाणववर्धमानकाख्यायक लद्धमह्वघाण्टिकगणाः-तत्र शाङ्खिकाः-शङ्खा-
दकाः, चक्रिकाः-चक्रभ्रामकाः, लाङ्गलिकाः-कण्ठावलम्बितस्वर्णादिमयहलधारिणो भट्ट-
विशेषाः, मुखमङ्गलिकाः-चाटुकारिणः, पुण्यमाणवाः मागधाः, वर्धमानकाः-स्कन्धारो-
पितनराः, आख्यायकाः-कथाकारकाः, लद्धाः-वंशाग्रमधिरुह्य क्रीडाकारिण , मद्धाः-चि-
त्रफलकहस्ताः, घण्टिकाः-घण्टावादकाः, तेषां गणाः-समूहाः 'ताहिं' ताभिः-प्रसिद्धाभिः
'इट्टाहिं' इष्टाभिः अभिलपणीयाभिः, 'कंताहिं' कान्ताभिः-क्रमनीयाभिः, 'पियाहिं'
प्रियाभिः-प्रियार्थमुक्तत्वात् हृदयाभिलपणीयाभिः, 'मणुण्णाहिं' मनोज्ञाभिः-सुन्दरोभिः
अत एव 'मणामाहिं' मन आमामिः-मनोगताभिः, 'उरालाहिं' उदारारभिः-उत्कृष्ट शब्दार्थ-
युक्ताभिः, 'कल्लाणाहिं' कल्याणीभिः-कल्याणार्थयुक्ताभिः, 'सिवाहिं' शिवाभिः-निरुपद्र-
वाभिः-शब्दार्थदोषरहिताभिरित्यर्थः, 'धण्णाहिं' धन्याभिः-'पुण्णाहिं' पुण्याभिः, 'मग-
ल्लाहिं' मङ्गल्याभिः-मङ्गलकरीभिः, 'सत्सिरियाहिं' सश्रीकाभिः-शब्दार्थालङ्कारयुक्तत्वात्

सम्मिलित धे चली, "सखिय" शाङ्खिकोने-शङ्ख बजाने वालों ने, "चक्रिय" चक्रिकोने चक्र
को घुमाने वालों ने "णगलिय" लाङ्गलिको ने-स्वर्ण निर्मित हलको कण्ठों में लटकाये हुए मनुष्यो
ने, "मुहमंगलिय" मुखमङ्गलिको ने चाटुकारियो ने, "पूसमाणव" पुष्पमाणवो ने-मागधो ने,
"वद्धमाणग" वर्धमानको ने अपने स्कन्धो पर जिन्हो ने पुरुषो को चढा रखा है ऐसे मनुष्यो
ने "आइक्खग" आख्यायको ने-कथा कारकजनों ने "लंख" लद्धो ने-वंश पर चढ़कर क्रीडा
करने वाले मनुष्यो ने, "मख" मद्धोने जिनके हाथो में चित्रफलक है ऐसे मनुष्यो ने एव "घंटि-
यगणेहिं" घण्टिको ने घण्टा बनाने वालों ने, "ताहि इट्टाहिं कंताहि पियाहि मणुण्णाहिं"
मणामाहि उरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मगल्लाहि सत्सिरियाहि हिययगमणिज्जाहि हियय-
पल्हायणिज्जाहि कण्णमणिव्वुहकराहि अपुणरुत्ताहि अट्टसइयाहि वग्गुहि अणवरय अभिणंदता'
प्रसिद्ध, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनभावनी, उत्कृष्ट शब्दार्थयुक्त, कल्याणार्थसहित, निरुपद्रव-

साथे इता ते षथा साथे आख्या 'संखिया' श षिठेओ ओट्ठेके श ष वगाडनाराओओ
'चक्रिय' चक्रिकेओ ओट्ठेके चक्रने इरववावाणाओओ 'णगलिय' लांगलिकेओ सोनाना भनेदा
डणने के डे लटकावेदा मनुष्येओ 'मुहमंगलिया' मुख मंगलिकेओ-चाटुकारीओओ.
'पूसमाणव' पुष्पमाणवेओ-विट्ठवलिनु' वच्चुंन करनार भागधेओ 'वद्धमाणग' वर्धमानकेओ-
भाधे पर पुंठेने ओसारनाओओ 'आइक्खग' आख्यायकेओ-कथा कारकेओ 'लख'
ल षेओओ ओट्ठे वांस पर यठीने ओलकर नाराओओ 'मख' म षेओओ के ओभना डेथेमा चित्र-
पट डेथे तेवा मनुष्येओ 'घंटियगणेहिं' घ टावगाड नाराओओ 'ताहि इट्टाहिं कंताहि पियाहि
मणुण्णाहि मणामाहि उरालाहि कल्लाणाहि सिवाहि धन्नाहि मगल्लाहि सत्सिरियाहि
हिययगमणिज्जाहि हिययपल्हावणिज्जाहि कण्णमणिव्वुहकराहि अपुणरुत्ताहि अट्ट
सइयाहि वग्गुहि अणवरयं अभिणंदत्ताय' प्रसिद्ध, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनभावनी,
उत्कृष्ट, शब्दार्थ युक्त, कल्याणार्थ सहित, निरुपद्रव शब्दार्थ दोष वगरनी, पवित्र,

शोभनाभिः अतएव 'ह्रिययगमणिज्जाहि' हृदयगमनीयाभिः—प्रसादगुणयुक्तत्वात् सुबोधाभिः, तथा 'ह्रिययपल्हायणिज्जाहि' हृदयप्रह्लादनीयाभिः—हृदयानन्दकरीभिः, अतएव 'कर्णमणिव्वुइकराहि' कर्णमनोनिर्वृतिरुरोभिः—कर्णमनः सुखकरीभिः तथा 'अपुणरुत्ताहि' अपुनरुक्ताभिः,—पुनरुक्तिदोषरहिताभिः, तथा 'अट्टसड्याहि' अर्थशक्तिकाभिः—अर्थशतयुक्ताभिः, एतादृशीभिः 'वग्गुहि' वाग्भिः=वाणीभि 'अणवरयं' अनवरतम्=अविच्छिन्नं-यथा स्यात्तथा 'अभिणंदंता' अभिनन्दयन्तः=सत्कुर्वन्तः 'अभियुणता' अभिषुण्वन्तः—प्रशंसन्तश्च 'एवं' एव=वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयासी' अवादिपुः=उक्तवन्तः । यदुक्तवन्तस्तदाह—'जय जय' इत्यादि । 'नदा' हे नन्द ! नन्दतीति नन्दः, तत्संबोधने, हे समृद्धिशालिन् , यद्वा नन्दयतीति नन्दः, तत्संबोधने, हे आनन्द दायिन् 'जय जय' जय जय=नितरां जयशाली भव 'भद्दा' हे भद्र=हे कल्याण शालिन् ! 'जय जय' जय जय=नितरां जयशाली भव । तथा 'धम्मणेण' धर्मेण=साधन-भूतेन धर्मेण 'परीसहोवसग्गाण' परीषहोपसर्गाणां=देवमनुष्य तिर्यक्कृतपरीषहोपसर्गोभ्यः, आपर्त्त्वात् पठ्वम्यर्थे षष्ठी, 'अभीए' अभीतो=भयरहितो भव, तथा 'भयमेरवाणं' भय भैरवाणां—भयावहा ये भैरवाः=घोराः प्राणिनस्ते भयभैरवास्तेषां भयङ्करप्राणिकृतोपद्रवाणां—'खंतिखमे' क्षान्तिक्षमः=क्षमापूर्वकं सहनकारी भव, 'धम्मे' धर्मे=चरित्रधर्मांराधने

शब्दार्थ दोष रहित, पवित्र, मङ्गलकारी, शब्दालंकार और अर्थालंकार से युक्त होने के कारण सश्रीक, अतएव हृदयगमनीय, हृदयप्रह्लादनीय, कर्ण और मन को आनन्द दायक, अपुनरुक्त सैकड़ों अर्थों वाली, ऐसी वाणियों से बार बार प्रसु का अभिनन्दन-सत्कार किया, उनकी प्रशंसा को फिर उन्होंने "एवं वयासी" इस प्रकार से कहना प्रारम्भ किया "जय जय पंदा" हे नन्द समृद्धिशालिन् अथवा हे आनन्ददायिन् ! आप अत्यन्त जयशाली हो "जय जय भद्दा" हे भद्र कल्याणशालिन् आप अत्यन्त जयशाली हो "धम्मणेण अभीए" साधनभूत धर्म के प्रभाव से देव, मनुष्य और तिर्यञ्चो द्वारा कृत परीषह और उपसर्गों से भयरहित-निडर हो, "परीसहोवसग्गाणं खंतिखमे" भयावह जो घोर प्राणी है—उनके द्वारा किये गये उपद्रवों के आप क्षान्तिक्षम—क्षमापूर्वक सहनकारी हो, "भय मेरवाणं धम्मे ते अविग्घ भवउ" चारित्र धर्म

मंगलकारी, शब्दालंकार अने अर्थालंकारથી युक्त होवाथी सश्रीक, अतएव हृदय गमनीय, कान अने मनने अत्यंत आनंदप्रद, अपुनरुक्त सेकड़ों अर्थवाणी जेवी वाञ्छितेथी वारंवार प्रसुनुं अखिनहन—सत्कार करुं तेमनी प्रशंसाकरी ते पछी तेज्येजे 'एवं वयासी' 'आ प्रभावे कडेवाने। प्रारंभ करुं 'जय जय पंदा' हे नन्द—समृद्धिशालिन् अथवा हे आनंद-दायिन् आप अत्यंत जयशाली थाव, 'जय जय भद्दा' हे भद्र कल्याणशालिन् आप अत्यंत जय शाली भने। 'धम्मणेण अभीए' साधन भूत धर्मना प्रभावथी देव, मनुष्ये अने तिर्यंजे द्वारा करवामां आवेल परीषह अने उपसर्गोथी भय रहित-निडर भने। 'परिसहोवसग्गाणं खंति खमे' भय कर जे घोर प्राणियो छे तेमनाथी करवामा आवेल उपद्रवोनां आप क्षान्तिक्षम—क्षमा पूर्वक सहन करनार भने। 'भयमेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ' आश्रि

'ते' त=तव 'अविघ्न' अविघ्नं 'भवतु' भवतु=विघ्नाभावोऽस्तु 'त्तिकद्दु' इति कृत्या-
इत्युच्चार्य पुनः पुनः 'अभिणंदति' अभिनन्दयन्ति-सत्कुर्वन्ति 'अभिथुवन्ति' अभिषुवन्ति-
प्रशंसन्ति च । 'तएणं' ततः तदनन्तरं खलु 'उसमे अरहा' ऋषभोऽर्हन् 'कोसलिए' कौशलिको
कोशलदेशोद्भवः 'णयणमालासहस्सेहिं' नयनमालासहस्रैः-नागरिकजनानां नयनपङ्क्ति-
सहस्रैः 'पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे' प्रेक्ष्यमाणः प्रेक्ष्यमाणः-भूयोभूयोऽवलोक्य-
मानः, 'एवं जाव णिग्गच्छइ' एवम्-अमुना प्रकारेण निर्गच्छति-इति पदं यावत्
पर्यन्तं वाच्यम्, कस्मात् ? इत्याह 'जहा उववाइए' यथा औपपातिके-औपपातिक-
सूत्रे कूणिकराजनिर्गमनं तथैवात्रापि वक्तव्यम् । तत्कथं वक्तव्यमिति सूचयितुमाह-
'जाव आउलबोलबहुलंणमं करंते विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ' यावत्
आउलबोलबहुलं नमः कुर्वन् विनीताया राजधान्या मध्यमध्येन निर्गच्छतीति । अत्र
यावत्पदेन 'हिययमाला सहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिणंदिज्जमाणे, मणोरहमालास-
हस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे,
कतिरुवसोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे, दाहिण हत्थेण बहूणं णरणारी-

की आराधना में आपके लिये किसी भी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो, "त्तिकद्दु अभिणंदति
य अभिथुणति य" इस प्रकार से कहकर फिर से उन्होने बारबार प्रभुको अभिनन्दन सत्कार किया
और प्रशंसा की, "तएणं उसमे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे"
इसके बाद वे कौशलिक ऋषभ अर्हन्त नगरिक जनों की हजारो नयनपङ्क्तियों के बार बार
लक्ष्य होते हुए "एवं जाव णिग्गच्छइ जहा उववाइए" औपपातिक सूत्र वर्णित कूणिक राजा के
निर्गमन की तरह "विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ" विनीता राजधानी के
बीचों बीच के मार्ग से होते हुए निकले "जाव आउलबोलबहुलं णमं करंते" पाठ में जो
यह यावत्पद आया है उससे औपपातिक सूत्र का यह पाठ सगृहीत हुआ है-"हिययमालास-
हस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे २ मणोरहमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २, वयणमालासहस्सेहिं अभिथु-
व्वमाणे २, कतिरुवसोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे २, दाहिणहत्थेणं बहूणं णरणारीसहस्साणं अंजलि-

धर्मनी आराधनामा आपने कौशल पञ्च प्रकारसु' विघ्न-भाधा न थाव 'त्तिकद्दु अभि-
णंदति य अभिथुणति य' आ प्रभाषु कहीने इरीथी तेओओ वार वार प्रथुसु अभिन = कथु',
सत्कार कथो अने प्रश सा करी 'तएणं उसमे अरहा कोसलिए णयणमाला सहस्सेहिं पिच्छिज्ज-
माणे पिच्छिज्जमाणे' ते पछी ने कौशलिक ऋषभ अर्हन्त नागरिक जनोनि हल्लरो नेत्र पं कित-
ओथी वार वार लक्ष्य थता थता 'एवं जाव णिग्गच्छइ जहा उववाइए' 'औपपातिक सूत्रमें
वर्णित कूणिक राजा का निर्गमननी जेभ 'विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ' विनीता
नामक राजधानीना मध्यमा आवेदा मार्ग पर थधने पसार थथा "जाव आउल बोल बहुल णामे
करंते" पाठमा अर्ही ने "यावत्" पद आवेद छे तेनांथी 'औपपातिक सूत्रने आ पाठ सूत्र
हीत थथेद छे-"हिययमाला सहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे २, मणोरहमाला सहस्सेहिं पिच्छि-
ज्जमाणे २, वयणमाला सहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे २ कतिरुवसोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे २,

शोभनाभिः अतएव 'हिययगमणिज्जाहि' हृदयगमनीयाभिः—प्रसादगुणयुक्तत्वात् सुबोध-
भिः, तथा 'हिययपल्हायणिज्जाहिं' हृदयप्रह्लादनीयाभिः—हृदयानन्दकरीभिः, अतएव 'क-
ण्णमणिव्वुइकराहिं' कर्णमनोनिर्वृतिरूरोभिः—कर्णमनः सुखकरीभिः तथा 'अपुणरुत्ताहिं'
अपुनरुक्ताभिः,—पुनरुक्तिदोषरहिताभिः, तथा 'अट्टसइयाहिं' अर्थशक्तिकाभिः—अर्थशत-
युक्ताभिः, एतादृशीभिः 'वग्गूहि' वाग्भिः=वाणीभि 'अणवरयं' अनवरतम्=अविच्छिन्नं-
यथा स्यात्तथा 'अभिणंदंता' अभिनन्दयन्तः=सत्कुर्वन्तः 'अभियुणता' अभिण्णुवन्तः—
प्रशंसन्तश्च 'एवं' एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयासी' अवादिपुः=उक्तवन्तः । यदुक्तवन्त-
स्तदाह—'जय जय' इत्यादि । 'नदा' हे नन्द ! नन्दतीति नन्दः, तत्संबोधने,
हे समृद्धिशालिन् , यद्वा नन्दयतीति नन्दः, तत्संबोधने, हे आनन्द दायिन् 'जय
जय' जय जय=नितरां जयशाली भव । 'भद्दा' हे भद्र=हे कल्याण शालिन् ! 'जय जय'
जय जय=नितरां जयशाली भव । तथा 'धम्मण' धर्मेण=साधन-भूतेन धर्मेण 'परीस-
होवसग्गाण' परीषहोपसर्गाणां=देवमनुष्य तिर्यक्कृतपरीषहोपसर्गोभ्यः, आर्पत्वात् पठ्च-
म्यर्थे षष्ठी, 'अभीए' अभीतो=भयरहितो भव, तथा 'भयभेरवाणं' भय भैरवाणां-
भयावहा ये भैरवाः=घोराः प्राणिनस्ते भयभैरवास्तेषा भयङ्करप्राणिकृतोपद्रवाणां-
'खत्तिखमे' क्षान्तिक्षमः=क्षमापूर्वकं सहनकारी भव, 'धम्मै' धर्मे=चरित्रधर्माधिपते

शब्दार्थ दोष रहित, पवित्र, मङ्गलकारी, शब्दालंकार और अर्थालंकार से युक्त होने के
कारण सश्रीक, अतएव हृदयगमनीय, हृदयप्रह्लादनीय, कर्ण और मन को आनन्द दायक,
अपुनरुक्त सैकड़ों अर्थों वाली, ऐसी वाणियों से बार बार प्रभु का अभिनन्दन-सत्कार किया,
उनकी प्रशंसा को फिर उन्होंने "एवं वयासी" इस प्रकार से कहना प्रारम्भ किया "जय जय
णदा" हे नन्द समृद्धिशालिन् अथवा हे आनन्ददायिन् ! आप अत्यन्त जयशाली हो "जय
जय भद्दा" हे भद्र कल्याणशालिन् आप अत्यन्त जयशाली हो "धम्मण अभीए" साधनभूत धर्म
के प्रभाव से देव, मनुष्य और तिर्यञ्चो द्वारा कृत परीषह और उपसर्गों से भयरहित-निडर हो,
"परीसहोवसग्गाणं खत्तिखमे" भयावह जो घोर प्राणी है—उनके द्वारा किये गये उपद्रवों के
आप क्षान्तिक्षम—क्षमापूर्वक सहनकारी हो, "भय भेरवाणं धम्मै ते अविघ्न भवउ" चारित्र धर्म

भंगलकारी, शब्दालंकार अने अर्थालंकारधी युक्त होवाधी सश्रीक, अतएव हृदय गमनीय,
हृदय अने मनने अत्यन्त आनन्दप्रद, अपुनरुक्त सैकड़ों अर्थवाणी अथवा वाणियोंधी बार-बार
प्रभु का अभिनन्दन-सत्कार कर्तुं तेमनी प्रशंसाकरी ते पछी तेअओ 'एवं वयासी' आ
प्रभाओ कहेवाने। प्रारंभ कर्तुं 'जय जय णदा' हे नन्द-समृद्धिशालिन् अथवा हे आनन्द-
दायिन् आप अत्यन्त जयशाली थाव, 'जय जय भद्दा' हे भद्र कल्याणशालिन् आप अत्यन्त
जय शाली अने। 'धम्मण अभीए' साधन भूत धर्मना प्रभावधी हेव, मनुष्यो अने तिर्यञ्चो
द्वारा करवाभा आवेल परीषह अने उपसर्गोधी अथ रहित-निडर अने। 'परिसहोवसग्गाणं
खत्ति खमे' अर्थकर जे घोर प्राणियो छे तेमनाधी करवाभा आवेल उपद्रवोना आप
क्षान्तिक्षम-क्षमा पूर्वक सहन करनार अने। 'भयभेरवाणं धम्मै ते अविघ्न' आदि

'ते' त=तव 'अविग्धं' अविघ्नं 'भवउ' भवतु=विघ्नाभावोऽस्तु 'त्तिरुट्टु' इति कृत्वा-
 इत्युच्चार्य पुनः पुनः 'अभिणदंति' अभिनन्दयन्ति-सत्कुर्वन्ति 'अभिधुवंति' अभिप्लुवन्ति-
 प्रशंसन्ति च । 'तएणं' ततः तदनन्तरं खलु 'उसमे अरहा' ऋषभोऽर्हन् 'कोसलिण' कौशलिको
 कोशलदेशोद्भवः 'णयणमालासहस्सेहिं' नयनमालासहस्रेः-नागरिकजनानां नयनपङ्क्ति-
 सहस्रैः 'पिच्छिज्जामाणे पिच्छिज्जमाणे' प्रेक्ष्यमाणः प्रेक्ष्यमाणः-भूयोभूयोऽवलोक्य-
 मानः, 'एवं जाव णिग्गच्छइ' एवम्-अमुना प्रकारेण निर्गच्छति-इति पदं यावत्
 पर्यन्तं वाच्यम्, कस्मात् ? इत्याह 'जहा उववाइए' यथा औपपातिके-औपपातिकरु-
 सूत्रे कूणिकराजनिर्गमनं तथैवात्रापि वक्तव्यम् । तत्कथं वक्तव्यमिति सूचयितुमाह-
 'जाव आउलबोलबहुलंणमं करते विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ' यावत्
 आकुलबोलबहुलं नभः कुर्वन् विनीताया राजधान्या मध्यमध्येन निर्गच्छतीति । अत्र
 यावत्पदेन 'हिययमाला सहस्सेहिं अभिणदिज्जमाणे अभिणदिज्जमाणे, मणोरहमालास-
 हस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे वयणमालासहस्सेहिं अभिधुव्वमाणे अभिधुव्वमाणे,
 कंतिरुवसोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे, दाहिणहत्थेण बहुणं णरणारी-

की आराधना में आपके लिये किसी भी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो, "त्तिरुट्टु अभिणदंति
 य अभिधुव्वति य" इस प्रकार से कहकर फिर से उन्होंने बारबार प्रभुको अभिनन्दन सत्कार किया
 और प्रशंसा की, "तएण उसमे अरहा कोसलिण णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे"
 इसके बाद वे कौशलिक ऋषभ अर्हन्त नगणिक जनों की हजारों नयनपङ्क्तियों के बार बार
 लक्ष्य होते हुए "एव जाव णिग्गच्छइ जहा उववाइए" औपपातिक सूत्र वर्णित कूणिक राजा के
 निर्गमन की तरह "विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ" विनीता राजधानी के
 बीचों बीच के मार्ग से होते हुए निकले "जाव आउलबोलबहुलं णमं करते" पाठ में जो
 यह यावत्पद आया है उससे औपपातिक सूत्र का यह पाठ सगृहीत हुआ है-"हिययमालास-
 हस्सेहिं अभिणदिज्जमाणे २ मणोरहमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २, वयणमालासहस्सेहिं अभिधु-
 व्वमाणे २, कंतिरुवसोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे २, दाहिणहत्थेणं बहुण णरणारीसहस्साणं संजलि-

धर्मनी आराधनामा आपने कैछि पशु प्रकारतु विघ्न-आधा न थाव 'त्तिरुट्टु अभि-
 णदंति य अभिधुव्वति य' आ प्रभाञ्जे कहीने इरीथी तेओओ वार वार प्रभुतु अभिनन्दयन्ति,
 सत्कार कर्ये अने प्रशंसा करी 'तएण उसमे अरहा कोसलिण णयणमाला सहस्सेहिं पिच्छिज्ज-
 माणे पिच्छिज्जमाणे' ते पछी ते कौशलिक ऋषभ अर्हन्त नागरिक जनोनि हजारे नेत्र पङ्क्ति-
 ओथी वार वार लक्ष्य थता थता 'एवं जाव णिग्गच्छइ जहा उववाइए' 'औपपातिक सूत्र'मे
 वसित इच्छिउक राजाना निर्गमननी ओभ 'विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ' विनीता
 नाभक राजधानीना मध्यमा आवेदा मार्ग पर थधने पसार थथा "जाव आउल बोल बहुलं णमं
 करते" पाठमा अही ने "यावत्" पद आवेद छे तेनांथी 'औपपातिक सूत्र'ना आ पाठ सु-
 गृहीत थथेद छे-"हिययमाला सहस्सेहिं अभिणदिज्जमाणे २, मणोरहमाला सहस्सेहिं पिच्छि-
 ज्जमाणे २, वयणमाला सहस्सेहिं अभिधुव्वमाणे २ कंतिरुवसोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे २,

सहस्साणं अंजलिमालासहस्साइ पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे मंजु मजुणा घोसेणं पडि
बुज्जमणे पडिबुज्जमाणे, भवणपंतिसहस्साइ समइच्छमाणे ममइच्छमाणे, ततीतलताल
तुडियगीयवाइयरवेणं महुरेण मणहरेणं जयसइघोसविसएणं मंजुमंजुणा घोसेणं य
पडिबुज्जमाणे अप्पडिबुज्जमाणे, कंदरगिरिविवरकुहरगिरिवरपासादुड्ढघणभवणदेवकुल-
सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर आरामुज्जाणकाणणसमप्पवपदेसभागे पडिसुयासयसहस्स-
संकुल करेते ह्यहेसिय हत्थिगुलगुलाइय रहघणघणसइमीसएण महया कलरवेणं य
जणस्स महुरेण पूरयंते सुगंधवरकुसुमचुण्णउव्विद्धवासरेणुकविल नमं करेते कालागुरु
कुंदुरुक्कतुरुक्कधूवनिवहेणं जीवलोगमिव वासयंते समंतओ खुभियचक्कवाल पउरज-
णवालबुड्ढपमुइयतुरियपहाविय विउलाउलबोलवहुल' इतिसग्राह्यम् ।

छाया-स्वस्य-हृदयमालासहस्रैरभिनन्द्यमानः अभिनन्द्यमानः मनोरथमालासहस्रैर्विस्पृश्यमा-
नो विस्पृश्यमानः, वचनमालासहस्रैः अभिष्टूयमानः अभिष्टूयमानः, कान्ति रूप सोभाग्य-
गुणैः अभिष्टूयमानः अभिष्टूयमानः कान्तिरूपसौभाग्यगुणैः प्रार्थ्यमानः प्रार्थ्यमानः
दक्षिणहस्तेन बहूना नरनारी सहस्राणाम् अञ्जलिमालासहस्राणि प्रतीच्छन् प्रतीच्छन्,
मंजु मजुना घोषेण प्रतिबुध्यमानः प्रतिबुध्यमानः, भवनपङ्क्ति सहस्राणि समति
क्रामन् समतिक्रामन्, तन्त्री तलतालव्रुटितगीतवादितरवेण मधुरेण मनोहरेण जयशब्द-
घोषविशदेन मञ्जुमञ्जुना घोषेण च प्रतिबुध्यमानः प्रतिबुध्यमानः, कन्दरगिरि
विवरकुहरगिरिवरपासादोर्ध्वधनभवनदेवकुलश्रृङ्गाट्कत्रिकचतुष्कचत्वरामोद्यानकानन सभा

मालासहस्साइ' पडिच्छमाणे २, मंजुमंजुणाघोसेण पडिबुज्जमाणे, भवणपतिसहस्साइ समइच्छ-
माणे २, तंतीतलतालतुडियगीयवाइयरवेण महुरेणं मणहरे ण जयसइघोसविसएणं मजुमजुणा-
घोसेणं पडिबुज्जमाणे अप्पडिबुज्जमाणे कंदरगिरि विवरकुहर गिरिवरपासादुड्ढघणभवणदेव कुल-
सिंघाडगतिग चउक्क चच्चर आरामुज्जाणकाणण समप्पवपदेसभागे पडिसुयासु सहस्ससकुलं
करेते ह्यहेसिय हत्थिगुलगुलाइयरहघण घण सइमीसएण महया कलरवेणं य जणस्स महुरेणं पूरयते
सुगंधवरकुसुमवण्णउव्विद्धवासरेणुकविल नम करेते कालागुरुकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवनिवहेण जीवलो-
गमिव वासयते समंतओ खुभियचक्कवालं पउरजणवालबुड्ढपमुइयतुरियपहाविय विउलाउलबोलवहुल''

वाहिणहत्थेण बहूण णरणारी सहस्साणं अंजलि माला सहस्साइ पडिच्छमाणे २ मंजुमंजुणा
घोसेण पडिबुज्जमाणे, भवणपंति सहस्साइ समइच्छमाणे २, तंतीतलताल तुडियगीय वाइ
यरवेणं महुरेणं मणहरेणं जयसइघोस विसएणं मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्जमाणे अप्पडि
बुज्ज णे कंदर गिरिविवर कुहर गिरिवर पासादुड्ढघणभवण देवकुल सिंघाडगतिगच-
उक्क चच्चर आरामुज्जाण काणण समप्पवपप देसभागे पडिसुयासुय सहस्स संकुलं करे
ते ह्यहेसिय हत्थि गुलगुलाइय रहघणघणसइमीसएणं महयाकलरवेणं य जणत्स महुरेणं
पूरयंते सुगन्धवर कुसुम चुण्ण उव्विद्धिवासरेणुकविलं नम करेते कालागुरु कु दुरुक्क
तुरुक्क धूव निवहेण जीवलोगमिव वासयंते समंतओ खुभिय चक्कवालं पउरजण बाल
पमुइयतुरिय पहाविय विउलाउलबोलवहुल'' आ पाठने २५०८थं अथे औपया-

प्रपाप्रदेशभागात् प्रतिश्रुतशतसहस्रसंकुलान् कुर्वन्, हयहैपित गजगुलगुलायित रथ-
घनघनशब्दमिश्रितेन महता कलरवेण च जनस्य मधुरेण पूरयन् सुगन्धवरकुसुमचूर्णो-
द्विद्धवासरेणुकपिलं नमः कुर्वन्, कालागुरुकुन्दुरुष्कतुरुष्फधूपनिवहेन जीवलोकमिव
वासयन् समन्ततः क्षुभितचक्रवालं प्रचुरजनवालवृद्धप्रमुदितत्वरितप्रधाचितविपुलाकुलवोल-
बहुलम् इति । 'आकुलवोलबहुलं' नमः कुर्वन् विनीताया राजधान्यामध्यमध्येन निर्ग-
च्छति' इति तु सूत्रे प्रोक्तमेव । अर्थस्तु औपपातिकसूत्रस्य मत्कृतपीयूषवर्षिणी टीका-
तोऽवगन्तव्यः । नवरं विनीतायाः=अयोध्याया इति । तथा 'आसियसम्मज्जियसित्त-
सुइकपुप्फोवयारकलियं' आसित्तसम्मार्जितसित्तं शुचिकपुप्पोपचारकलितम्-आसित्तम्-
ईषत्सित्तं सुगन्धिजलेन, ततः सम्मार्जितम्=अपनीतकचवरम्, सित्तं=सुगन्धितजलेन
सम्यक् प्रक्षालितम्, अतएव शुचिकं=शुद्धं, ततः पुप्पपुञ्जोपचारकलितं-पुप्पपुञ्जेन कृतो
य उपचारः=उपचरण शोभेति यावत् तेन कलितं=युक्तं 'सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं'
सिद्धार्थवनविपुलराजमार्गं=सिद्धार्थवनोद्यानगामिराजमार्गं 'करेमाणे' कुर्वन्, तथा 'हयगय-
रहपहकरेण' हयगजरथप्रकरेण=हयगजरथसमूहेन 'पाइक्कचडकरेण' पदाति चटकरेण=
पदाति समूहेन च 'मंदं मंदं' मन्दं मन्दं यथा स्यात्तथाः 'उद्धयरेणुय' उद्धयरेणुकम्=उद्धी-

इस पाठ का स्पष्टार्थ हमने उसी औपपातिक सूत्र की पीयूषवर्षिणी टीका में लिखा है सो वहीं
से इसे जान लेना चाहिये, उस समय "आसियसम्मज्जियसित्तसुइक पुप्फोवयारकलियं
सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं" सिद्धार्थवन उद्यान की ओर जाने वाला रास्ता सुगन्धित जल से
सित्त करवा दिया गया फिर उसे बुहार आदि से झाड़कर साफ सुथरा करवाया गया, कूड़ा
कचरा वहां से हटवा कर उसे दूर फिकवाया गया, पुनः सुगन्धित जल उस पर छिड़का गया,
इससे वह पहले की अपेक्षा और अधिक शुद्ध हो गया था, फिर जगह २ उस पर पुष्पो द्वारा
शोभा की गई थी, 'करेमाणे हय गय रहपहकरेण पाइक्क चडकरेण य" इस तरह जिनके प्रभाव
से वह सिद्धार्थवनोद्यानगामी राजमार्ग शुद्ध, साफ और अलंकृत किया गया है ऐसे वे आदिजिन
शिविका में विराजमान हुए, हय और गज समुदाय के साथ २ एवं पैदल चलने वाले सैनिक

तिक सूत्रनी पीयूष वर्षिणी टीकाभा कर्षी छे तो निजसु जनेअत्ते त्यांथी ज नक्षी देवे।
जेअत्ते ते वभते 'आसियसम्मज्जियसित्तसुइक पुप्फोवयारकलियं सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं'
सिद्धार्थवन तरइ जनार मार्गने पडेला सुगन्धित जल वडे सिकत करवामा आव्थे। अने
त्यार भाइ सावरणी वगेरेथी, कथरे साइ करवामा आव्थे। हतो पुजे त्यांथी लध देवामां
आव्थे। हतो अने छेवटे करी जील वार ते मार्गने सुगन्धित जल वडे सिकत करवामां
आव्थे। हतो ओथी ते मार्ग पडेला करतां वधारे शुद्ध थर्ध गये। हतो, अने त्यार भाइ
ते मार्ग पर ठेक-ठेकाणे पुण्ये वडे शोभा करवामा आव्थी हुती 'करेमाणे हयगयरहपहक
रेण पाइक्क चडकरेणय' आ प्रभ जे जेभना प्रभावथी ते सिद्धार्थवनोद्यान गाभी राज
मार्ग शुद्ध साइ अने अलंकृत करवामा आवेद छे, जेवा ते आदि जिन शिविका पर
आइद थथा अने त्यार भाइ हय अने गज तेभज पायदणथी परिवेष्टित थर्धने ते

यमानरेणुयुक्तं 'करेमाणे' कुर्वन् 'जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे' यत्रैव सिद्धार्थवनं उद्यानं, 'जेणेव' यत्रैव 'असोगवरपायवे' अशोकवरपादपः 'तेणेव उवागच्छइ', तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'असोगवरपायवस्स' अशोक वरपादपस्य, 'अहे' अधः=अधोभागे 'सीयं ठावेइ' शिविकां स्थापयति, 'ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ' स्थापयित्वा शिविकातः प्रत्यवरोहति-अवतरति 'पच्चोरुहित्ता' प्रत्यवरुह्य 'सयमेवाभरणालंकारं' स्वयमेव आभरणालङ्कारम्-आभरणानि च अलङ्काराश्चेति समाहारस्तत्, 'ओमुयइ' अवमुञ्चति-परित्यजति, 'ओमुइत्ता' अवमुच्य-घरित्यज्य 'सयमेव' स्वयमेव 'अट्ठाहिं' आस्थाभिः श्रद्धान्वितो भूत्वा 'चउहिं' चतसृभिः 'मुट्ठिहिं' मुष्टिभिः करणभूताभिः लोय' लोचं=केशोपनयनं 'करेइ' करोति । अन्यतीर्थकराणां साधूनां पञ्चभिर्मुष्टिर्मिलोच इति यदुक्तं, तत्रैयं वृद्धपरम्परा-भगवान्पद्म स्वामी प्रथममेकया मुष्ट्या इमंशुक्चर्चयोर्लोचमकरोत् । ततस्ति-

समूह के साथ २ धिरे हुए होकर जा रहे थे "मंदं मंदं उद्धतरेणुय करेमाणे करेमाणे जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ" उस मार्ग पर उस समय हय और गज समुदाय के पैरों के आघात से एवं पैदल चलने वाले सैन्य समूह के पदों के आघात से जमीन में जमी हुई धूलि धीरे २ से निकलकर मन्द मन्द रूप में उड़ती हुई नजर आती थी सिद्धार्थवनोद्यान के आते ही और उसमें भी जहाँ अशोक नाम का वर पादप था "आगच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ" वहाँ पहुँचते ही उसके नीचे प्रभु की पालकी खड़ी हो गई "ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ" पालकी नीचे रखते ही प्रभु उस शिविका से बाहर आगये, "पच्चोरुहित्ता सयमेवाभरणालंकारं ओमुयइ" बाहर आते ही प्रभु ने पहिरे हुए आभरणों को एव अलंकारों को अपने शरीर ऊपर से उतार दिया, "ओमुइत्ता सयमेव चउहिं अट्ठाहिं लोय करेइ" उतार कर उन्होंने श्रद्धायुक्त होकर चार मुष्टियों से केशों का लुञ्चन किया, अन्य तीर्थकरो ने साधु अवस्था धारण करने पर पांच मुष्टियों से लोच किया है ऐसा जो कहा है सो इस सम्बन्ध में वृद्धपरंपरा ऐसी है कि भगवान् ऋषभ स्वामी ने प्रथम एक मुष्टि से मूछ और दाढ़ों के बालों

शङ्काग' पर आस्था ते वभते 'मंदं मंदं उद्धतरेणुयं करेमाणे करेमाणे जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ' इत्य, गज अने पायदणना पदाघातधी ते भाग'नी जल वडे सिद्धतथेक्षी भूमिनी धूलि धीरे धीरे-मन्द मन्द रूपमा उडवा लागी आ रीने सिद्धार्थवनोद्यान अने तेमा पशु जयां अशोक नामक वर पादप इतु त्या तेजो आन्था त्या 'आगच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ' पडेयता न तेनी नीचे प्रभुनी शिविका ठावी रडी 'ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ' शिविका नीचे भूकतां न प्रभु तेमांथी अडार आन्था 'पच्चोरुहित्ता सयमेवाभरणालंकारं ओमुयइ' अडार आवता न प्रभुजे पडेरेखां आभरणे। तेमज अलंकारेने पोताना शरीर परथी उतार्या' अने 'ओ सा सयमेव चउहिं अट्ठाहिं लोय करेइ' त्यार जाड तेमणे श्रद्धा पूर्वक चार मुष्टियो वडे केश धुंयन कथुं, जीज तीर्थ'करे। जे साधु-अवस्था धारणु कर्या जाड पाच मुष्टियो वडे केशोव धुंयन कथुं' इतुं, जेवुं जे कडेवामां आन्थुं' छे, तो आ स प्रथमां वृद्ध परंपरा जेवी

सृष्टिमुष्टिभिः शिरस्थकेशान् यावत् लुञ्चति तावदिन्द्रोऽवशिष्यमाणामेकां मुष्टिं पवना-
न्दोलितां कनकावदातयोः प्रभुस्कन्धयोरुपरिलुठन्तीं मारकतीं घृतिमाविभ्रतीं परमरमणीयां
वीक्ष्य परमानन्दरससमप्लाव्यमानहृदयः शिरसाऽञ्जलिं वद्ध्वा एवमवादीत् भगवन् । इमां
केशमुष्टिमेव रक्षतु भदन्तो मय्यनुगृह्येति । एवं शक्रेणोक्तो भगवान् तां केशमुष्टिं तथैव
रक्षितवान् । महान्तो हि एकान्तभक्तिमतां प्रार्थनां वेद्विघटयन्तीति तेषां स्वभावसिद्धो
व्यवहारः । लुञ्चितांश्च तान् केशान् शक्रो हंसचित्रचित्रते वस्त्रे निधाय, एवं लोचं 'करिच्चा
कृत्वा 'देविदे देवराया भगवं सदोरयमुहपत्तिं रयहरणं, गोच्छगं, पडिग्गहं देवदूसं वर्त्थ
पडिच्छद्' देवेन्द्रो देवराजः भगवते सदोरकमुखवास्त्रकां, रजोहरणं गोच्छकं, पात्रं
देवदूप्यवस्त्रं च प्रयच्छति 'अपाणएण' अपानकेन-निर्जलेन 'छट्टेण भत्तेण' पण्ठेन भक्तेन=
उपवासद्वयरूपेण युक्तः, 'आसाढाहि' आपाढाभिः=उत्तराषाढाभिः 'णक्खत्तेण' नक्षत्रेण
सह 'जोगमुवागएण' योगमुपागते चन्द्रे खलु 'उग्गाणं' उग्राणां=स्वद्वारा आरक्षकत्वेन

का लोच किया, तीन मुष्टियो से शिर के बालों का लोच किया, इतने में बाकी बची हुई एक मुष्टि
को जो कि पवन के झोंकों से हिल रही थी और कनक के जैसे अवदात प्रभु स्कन्धो के ऊपर लोट
रही थी तथा देखने में जो मरकतमणि की जैसी कन्ति वाली थी परमरमणीय देखकर आनन्दरस
के प्रवाह से जिसका अन्त कारण हिलोरे के रहा है ऐसे इन्द्र ने दोनों हाथ जोड़कर प्रभु से
ऐसी प्रार्थना की कि हे भगवन् इस केशमुष्टि को मेरे ऊपर अनुग्रह करके आप रहने दें इसे न
उखाड़ें, प्रभुने इन्द्र की इस प्रार्थना से उस केशमुष्टि को वैसी वैसी रहने दी, जो महान् पुरुष
हुआ करते है वे एकान्तभक्तिवाले पुरुषों की प्रार्थना को विद्वनी नहीं करते हैं ऐसा उनका स्वभाव
सिद्ध व्यवहार हुआ करता है, लुञ्चित हुए उन केशो को शक्रेण हंसचित्र से विचित्र वस्त्र में
रखकर क्षीरसागर में निक्षिप्त कर दिया, "करिच्चा छट्टेण भत्तेण अपाणएण आसाढाहि णक्खत्तेण
जोगमुवाएणं उग्गाण भोगाणं राह्णनाणं खत्तियाणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देव दूसमादाय मुंढे

छे के भगवन् ऋषभ स्वामीके प्रथम एक मुष्टि वडे भूछ अने डाढीना वाणोत्तुं तु अन् कथुं
त्रलु मुष्टिओ वडे माथाना वाणोत्तुं तु अन् कथुं ओना पछी भाडीनी ओक मुष्टि के जे
पवनना जोकाथी डाढी रही हती अने कनकना जेवा अवदात प्रभुना रक्षेथे पर आणोती
रही हती तेभज् जेवाभा जे भरकतभखि सदश कातिवाणी हती, परभरभखीय ते दश्यने
जेधे ने आन ह रसना प्रवाहमां जेनुं अन्त करण तरणोण थधे रलु छे जेवा छन्द्रे गन्ने
हाथ जेडीने प्रभुने प्रार्थना करी के छे भगवन् । मारा उपर अनुग्रह करीने आ केश मुष्टिने
आप हवे रडेवा हो, हवे तुंअन करी नहि प्रभुओ छन्द्री प्रार्थानेने साखणीने ते
केशमुष्टिने ते प्रभाखे व रडेवा कीधी जे महान् पुरुषो होय छे ते ओकात भक्तिवाणो
पुरुषोनी प्रार्थानेने अक्षीकार करता नथी. जेवा तेभने स्वभाव होय छे तुंअित थयेला
ते वाणोने थके हस चित्रथी चित्रित थयेला वस्त्रमां भूडीने क्षीर सागरमां निक्षिप्त
करी कीधी 'करिच्चा छट्टेण भत्तेण अपाणएण आसाढाहि णक्खत्तेण जोगमुवागएण
उग्गाणं भोगाणं राह्णनाणं खत्तियाणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं देवदूसमादाय मुंढे भवित्ता

नियुक्तानां, 'भोगाणं' भोगानां=गुरुत्वेन व्यवस्थापितानां, 'राइन्नाण' राजन्यानां=वय-
स्यत्वेन स्वीकृतानां 'खत्तियाणं' क्षत्रियाणां=प्रजानां रक्षणार्थं नियुक्तानां 'चउहिं सहस्सेहिं
सद्धि एगं दूवदसं' चतुर्भिः सहस्रैः सह एकं देवदूष्य=दिव्यं वस्त्रम् 'आदाय' आदाय=
गृहीत्वा-परिधायेत्यर्थः, 'मुंडे भवित्ता अगाराओ' मुण्डो भूत्वा अगारात्=अगारं-गृह
परित्यज्य, 'अणगारियं' अनगारिताम्-अगार गृहं, तदस्यास्तीति अगारी=गृहस्थः, न
अगारी अनगारी साधुः, तस्य भावस्तत्ता-साधुत्वं, 'पव्वइए' प्रव्रजितः=प्राप्तः इति ।
एतावता भगवान् ऋषभदेवः इन्द्रप्रदत्तसदोरकमुखवस्त्रिकादि धर्मोपकरणानि गृहीत्वा
स्वयं दीक्षितोऽभूत्, तदनुसारिणः अन्येऽपि सहस्रचतुष्टयशिष्या इन्द्रप्रदत्ताधूपकरणादि
ग्रहणपूर्वकं स्वयं दीक्षिताः अभूवन्, ततश्च तैः सहस्रचतुष्टयशिष्यैः सह भगवान्
ऋषभदेवः गृहस्थाश्रमं परित्यज्य अनगारितां प्राप्तवान् इति फलितम् ॥६०३९॥

ततो भगवानृषभो यदकरोत्तदाह—

मूलम्—उसभेणं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी होत्था,
तेण परं अचेलेए । जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुंडे भवित्ता
गाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए
णिच्चं वोसट्टकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा-दिग्वा
वा जाव पडिलोमा वा अणुलोमावा । तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा जाव
कसेण वा कोए आउट्टेज्जा, अणुलोमा वंदेज्ज वा जाव पज्जुवासेज्ज
वा ते सव्वे सम्मं सहइ जाव अहियासेइ । तएणं से भगवं समणे जाए
ईरियासमिणं जाव परिट्टावणासमिणं मणसमिणं वयसमिणं कायसमिणं

भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए" इस प्रकार प्रभु के लोच करने के बाद निर्जल दो
उपवास किये; फिर उत्तराषाढानक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने पर अपने द्वारा आरक्षक रूप
से नियुक्त किये गये उग्रों की, गुरुरूप से व्यवस्थापित किये गये भोगों की, मित्ररूप से
स्वीकृत किये गये राजन्यों की और प्रजाजनों की रक्षा के लिये नियुक्त किये गये क्षत्रियों की
चतुः सहस्रों के साथ एक देवदूष्य को ग्रहण कर मुण्डित होकर, गृह का परित्याग कर अनगारि
अवस्थाको को धारणा किया ॥३९॥

अगाराओ अणगारियं पव्वइए" आ प्रभाणे प्रभुणे तु अनं कथां भाहं मे शेविहार उपवासो
कथां. पछी उत्तराषाढा नक्षत्रनी साथे चन्द्रनेो योग थये त्थारे पोताना वडे आरक्षक उपमां
नियुक्त करवामां आवेल उथोनी, गुरुइपमां व्यवस्थापित करवामा आवेल बोणेनी, मित्र-
इपमा स्वीकृत करवामा आवेल राजन्योनी अने प्रजा जनानी रक्षा भाटे नियुक्त करवामा
आवेल क्षत्रियोनी अतु सहस्रीनी साथे ओक देवदूष्यने स्वीकारिने, मुंडित थधने, धरने
परित्याग करीने, अनगारिता धारण करी ॥सूत्र उक्तं॥

मणगुत्ते जाव गुत्तवंभयारी अकोहे जाव अलोहे संते पसंते उवसंते प-
रिणिब्बुडे छिण्णसोए निरुवलेवे संखमिव णिरंजणे, जच्चकणगंवं जाय-
रूवे आदिरसपडिभागे इव पागडभावे, कुम्भो इव गुत्तिदिए, पुक्खरपत्त-
मिव निरुवलेवे गगणमिव निरालंबणे, अणिले इव णिरालए चंदो इव
सोमदंसणे, सूरु इव तेयंसो, विहग इव अपडिवद्धगामी, सागरो इव गं
भीरे, मंदरो इव अकंपे पुढवीविव सब्बफासविसहे, जीवोविव अप्पडिह-
यगइत्ति ॥सू० ४०॥

छाया—ऋषभः खलु अर्हन् कौशलिक संवत्सरं साधिकं चीवरधारी अभवत्, ततः
परम् अचेलकः । यभृत्प्रति च खलु ऋषभः अर्हन् कौशलिको मुण्डो भूत्वा अगारात् अन-
गारिता प्रव्रजितः, तत्प्रभृति च खलु ऋषभोऽर्हन् कौशलिका नित्य व्युत्सृष्टकाय, त्यक्तदेहो,
ये केचित् उपसर्गाः उत्पद्यन्ते, तद्यथा दिव्या वा यावत् प्रतिलोमा वा अनुलोमा वा, तत्र
प्रतिलोमा वेत्तेण वा यावत् कशेन वा काये आकुट्टयेत्, अनुलोमा वन्देत वा यावत् पर्यु-
पासीत वा, तान् सर्वान् सम्यक् सहते यावत् अभ्यास्ते । तत्र खलु स भगवान् भ्रमणो
जात ईर्यासमितो यावत् परिष्ठापनिका समितो मन समितो वाक्समित कायसमितो मनो
गुप्तो यावद् पुसब्रह्मचारी अकोधो यावत् अलोभः शान्तः प्रशान्त उपशान्तः परिनिवृत्त-
छिन्न स्तोता निरूपलेपः, शङ्खइव निरञ्जन, जात्यकनकमिव जातरूप आदर्श प्रतिभागइव
प्रकट भावः, कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः, पुष्करपत्रमिव निरूपलेपा, गगनमिव निरालम्बन अनल
इव निरालयः चन्द्र इव सौम्यदर्शन, सूर इव तेजस्वी, विहग इव अप्रतिवद्धगामी, सागर
इव गम्भीरः मन्दर इव अकम्पः पृथिवीव सर्व स्पर्श विषहः, जीव इव अप्रति बद्धगति
रिति ॥सू० ४०॥

‘उसमेण’ इत्यादि ।

टीका—‘उसमेणं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं’ ऋषभः खलु अर्हन् कौशलिकः
संवत्सरं साधिकं किंचिदधिकैक—संवत्सरं यावत् ‘चीवरधारी’ चीवरधारी=ब्रह्मधारी
‘होत्था’ अभवत्, ‘तेण परं’ ततः परम्=तदन्तरम् ‘अचेलए’ अचेलकोऽभवत् । ‘जप्प-

दीक्षित हो जाने पर प्रभु ने जो किया उसका कथन इस सूत्र द्वारा सूत्रकार करते
हैं—“उसमेण अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं” इत्यादि ।

टीकार्थ—“उसमेणं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी होत्था” उन कौशलिक
ऋषभ अर्हन्त ने कुछ अधिक एक वर्ष तक वस्त्र धारण किया “तेण परं अचेलए” इसके बाद वे

दीक्षा प्रहृष्टु कर्था पछी प्रभुणे ने कथुं तेनु कथन सूत्रकार आ सूत्र पडे करे छे—

टीकार्थ—‘उसमेण अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी होत्था’ ते कौशलिक
ऋषभनाथ अर्हन्त कंठिके पधारे ओक वर्षं पर्थन्त वस्त्रधारी रह्या. ‘तेण परं अचेलए’ ते

नियुक्तानां, 'भोगाणं' भोगानां=गुरुत्वेन व्यवस्थापितानां, 'राइन्नाण' राजन्यानां=व्यस्यत्वेन स्वीकृतानां 'खत्तियाणं' क्षत्रियाणां=प्रजानां रक्षणार्थं नियुक्तानां 'चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगं दूवदूसं' चतुर्भिः सहस्रैः सह एकं देवदूष्य=दिव्यं वस्त्रम् 'आदाय' आदाय=गृहीत्वा-परिधायेत्यर्थः, 'मुंडे भवित्ता अगाराओ' मुण्डो भूत्वा अगारात्=अगारं-गृह परित्यज्य, 'अणगारियं' अनगारिताम्-अगार गृहं, तदस्यास्तीति अगारी=गृहस्थः, न अगारी अनगारी साधुः, तस्य भावस्तत्ता-साधुत्वं, 'पव्वइए' प्रव्रजितः=प्राप्तः इति । एतावता भगवान् ऋषभदेवः इन्द्रप्रदत्तसदोरकमुखवस्त्रिकादि धर्मोपकरणानि गृहीत्वा स्वयं दीक्षितोऽभूत्, तदनुसारिणः अन्येऽपि सहस्रचतुष्टयशिष्या इन्द्रप्रदत्तसाधूपकरणादि ग्रहणपूर्वकं स्वयं दीक्षिताः अभूवन्, ततश्च तैः सहस्रचतुष्टयशिष्यैः सह भगवान् ऋषभदेवः गृहस्थाश्रमं परित्यज्य अनगारिता प्राप्तवान् इति फलितम् ॥६०॥३९॥

ततो भगवानृषभो यदकरोत्तदाह—

मूलम्—उसभेणं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी होत्था, तेण परं अचेलए । जप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च णं उसभे अरहा कोसलिए णिव्वं वोसड्डकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति, तं जहा-दिव्वा वा जाव पडिलोमा वा अणुलोमावा । तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा जाव कसेण वा कोए आउट्टेज्जा, अणुलोमा वंदेज्ज वा जाव पज्जुवासेज्ज वा ते सव्वे सम्मं सहइ जाव अहियासेइ । तएणं से भगवं समणे जाए ईरियासमिए जाव परिट्टावणासमिए मणसमिए वयसमिए कायसमिए

भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए" इस प्रकार प्रभु के लोच करने के बाद निर्जल दो उपवास किये; फिर उत्तराषाढानक्षत्र के साथ चन्द्र का योग होने पर अपने द्वारा आरक्षक रूप से नियुक्त किये गये उग्रो की, गुरुरूप से व्यवस्थापित किये गये भोगो की, मित्ररूप से स्वीकृत किये गये राजन्यो की और प्रजाजनों की रक्षा के लिये नियुक्त किये गये क्षत्रियों की चतुः सहस्रों के साथ एक देवदूष्य को ग्रहण कर मुण्डित होकर, गृह का परित्याग कर अनगारि अवस्थाको को धारणा किया ॥३९॥

अगाराओ अणगारियं पव्वइए" आ प्रभावे प्रभुजे लुअन कथां णाह मे येविहार उपवासे कथां, पछी उत्तराषाढा नक्षत्रनी साथे चन्द्रने योग थये त्थारे पोताना वडे आरक्षक रुपमां नियुक्त करवाभां आवेल उथोनी, गुरुरुपमा व्यवस्थापित करवाभा आवेल सोगोनी, मित्ररुपमा स्वीकृत करवाभा आवेल राजन्योनी अने प्रजा जनानी रक्षा भाटे नियुक्त करवाभा आवेल क्षत्रियोनी अतु सहस्रोनी साथे ओक देवदूष्यने स्वीकारीने, मुण्डित थधने, धरने परित्याग करीने, अनगारिता धारण करी ॥सूत्र ३६॥

मणगुत्ते जाव गुत्तवंभयारी अकोहे जाव अलोहे संते पसंते उवसंते प-
रिणिव्वुहे छिण्णसोए निरुवलेवे संखमिव णिरंजणे, जच्चकणगंवं जाय-
रूवे आदिस्सपडिभागे इव पागडभावे, कुम्भो इव गुत्तिदिए, पुक्खरपत्त-
मिव निरुवलेवे गगणमिव निरालंबणे, अणिले इव णिरालए चंदो इव
सोमदंसणे, सूरु इव तेयंसो, विहग इव अपडिबद्धगामी, सागरो इव गं
भीरे, मंदरो इव अकंपे पुढवीविव सव्वफासविसहे, जीवोविव अप्पडिह-
यगइत्ति ॥सू० ४०॥

छाया—ऋषभः खलु अर्हन् कौशलिक संवत्सरं साधिकं चीवरधारी अभवत्, ततः
परम् अचेलकः । यभृत्प्रति च खलु ऋषभः अर्हन् कौशलिको मुण्डो भूत्वा अगारात् अन-
गारिता प्रव्रजितः, तत्प्रभृति च खलु ऋषभोऽर्हन् कौशलिका नित्य व्युत्सृष्टकायः त्यक्तवेदो,
ये केचित् उपसर्गाः उत्पद्यन्ते, तद्यथा दिव्या वा यावत् प्रतिलोमा वा अनुलोमा वा, तत्र
प्रतिलोमा वेत्तेण वा यावत् कशेन वा काये आकुट्टयेत्, अनुलोमा वन्देत वा यावत् पयु-
पासीत वा, तान् सर्वान् सम्यक् सहते यावत् अभ्यास्ते । तत्र खलु स भगवान् भ्रमणो
जात ईर्यासमितो यावत् परिष्ठापनिका समितो मन समितो वाक्समित कायसमितो मनो
गुप्तो यावद् गृहब्रह्मचारी अक्रोधो यावत् अलोभः शान्तः प्रशान्त उपशान्तः परिनिर्वृत
छिन्न स्रोता निरूपलेपः, शङ्खइव निरञ्जन, जात्यरुनकमिव जातरूप आवर्श प्रतिभागइव
प्रकट भावः, कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः, पुष्करपत्रमिव निरूपलेपा, गगनमिव निरालम्बन अनल
इव निरालयः चन्द्र इव सौम्यदर्शन, सूर इव तेजस्वी, विहग इव अप्रतिबद्धगामी, सागर
इव गम्भीरः मन्दर इव अकम्पः पृथिवीव सर्व स्पर्श विषहः, जीव इव अप्रति बद्धगति
रिति ॥सू० ४०॥

‘उसमेण’ इत्यादि ।

टीका—‘उसमेणं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं’ ऋषभः खलु अर्हन् कौशलिकः
संवत्सरं साधिकं किचिदधिकैक—संवत्सरं यावत् ‘चीवरधारी’ चीवरधारी=ब्रह्मधारी
‘होत्था’ अभवत्, ‘तेण परं’ ततः परम्=तदन्तरम् ‘अचेलए’ अचेलकोऽभवत् । ‘जप्प-

दीक्षित हो जाने पर प्रसु ने जो किया उसका कथन इस सूत्र द्वारा सूत्रकार करते
हैं—‘उसमेण अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं’ इत्यादि ।

टीकार्थ—“उसमेणं अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी होत्था” उन कौशलिक
ऋषभ अर्हन्त ने कुछ अधिक एक वर्ष तक वस्त्र धारण किया “तेण परं अचेलए” इसके बाद वे

दीक्षा ग्रहण कर्था पछी प्रभुजे ने कथुं तेनुं कथन सूत्रकार आ सूत्र पठे करे, छ—
टीकार्थ—‘उसमेण अरहा कोसलिए संवच्छरं साहियं चीवरधारी होत्था’ ते कौशलिक
ऋषभानाथ अर्हन्त कर्तक पधारे जेक वर्ष पर्थन्त वस्त्रधारी रह्या. ‘तेण परं अचेलए’ ते

भिइं च णं' यत्प्रभृति=यत्समयादारभ्य च खलु 'उसमे अरहा' ऋपभोऽर्हन् 'कोसल्लिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइए' कौशलिको मुण्डो भूत्वाऽगारात् अनगारितां प्रव्रजितः, 'तप्पभिइ च णं' तत्प्रभृति तत्समयादारभ्य च खलु 'उसमे अरहा कोसल्लिए णिच्चं' ऋपभोऽर्हन् कौशलिको नित्यं=सर्वदा 'वोमट्टकाए' व्युत्सृष्टकायः व्युत्सृष्टः=शरीरसंस्कारपरित्यागात् विसर्जित कायः=शरीरं येन तथाभूत—शरीरसंस्कारपरिवर्जित इत्यर्थः, तथा 'चियत्त—देहे' त्यक्तदेहः त्यक्तः=परिपहसहनात् उज्झित इव देहो येन स तथा शरीर ममत्व रहित इत्यर्थः, एतादृशः सन् सर्वान् उपसर्गान् सम्यक् सहते यावत् अध्यास्ते इति परेणान्वयः । एतदेवाह—'जे केइ उवसग्गा' ये केचित् उपसर्गाः=उपद्रवा 'उप्पज्जति' उत्पद्यन्ते 'तं जहा' तद्यथा 'दिव्वा' दिव्याः=दिवि भवाः—देवसम्बन्धिन इत्यर्थः, 'वा' शब्दो विकल्पार्थे, 'जाव' यावत्—यावत्पदेन—'माणुसा वा तिरिक्ख जोणिया वा' मानुषा वा तैर्यग्योनिका वा इति संग्राहम्, तत्र मानुषा =मनुष्यसम्बन्धिनः, तैर्यग्योनिकाः=तिर्यग्योनिसम्बन्धिनो वा 'पडिलोमा वा' प्रतिकूला=विरुद्धा वा 'अणुलोमावा' अनुकूलाः अविरुद्धा वा । 'तत्थ' तत्र तयोर्मध्ये 'पडिलोमा' प्रतिलोमा उपसर्गा 'वेत्तेण' वेत्त्रेण वेत्त्रतादण्डेन, 'जाव' यावत्—यावत्पदेन "तयाए वा छियाए

अचेलक हो गये, "जप्पभिइ च ण उसमे अरहा कोसल्लिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए" जिस समय से कौशलिक ऋषभ अर्हन्त मुण्डित होकर अगार अवस्था को त्याग कर अनगार अवस्था में आये, "तप्पभिइ च ण उसमे अरहा कोसल्लिए णिच्च वोसट्टकाए चियत्त देहेजे केइ उवसग्गा उप्पज्जति" तबसे उन्होंने अपने शरीर का संस्कार (श्रृंगार) करना छोड़ दिया, वे त्यक्तदेह परीषर्हों के सहन करने से छोड़ दिये शरीर के जैसे हो गये—शरीर के महत्व हीन हो गये, "त जहा दिव्वा वा जाव पडिलोमा वा अणुलोमा वा" जो भी कोई उपसर्ग—उपद्रव उनके ऊपर आता चाहे वह देवों द्वारा किया गया होता यावत् मनुष्यकृत या तिर्यञ्चकृत होता वे उसे अच्छी तरह से सहन करते थे । यहा "वा" शब्द विकल्पार्थक है, "तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा जाव कसेण वा काए आउट्टेज्जा" इन उपसर्गों में यदि कोई उपसर्ग उनके विरुद्ध होता जैसे—यदि कोई उन्हें बेंत से पीटता, वृक्ष की छाल से निर्मित रस्सी से कठिन चाबुक से पीटता, या चिकनी कशा से पीटता, लता दण्ड से उन्हें मारता, केश—चमड़े के कोड़े से उन्हें मारता तो उसे भी ये बड़े शान्तभावों से सहन करते थे । "अणुलोमा वदेज्जा वा जाव पज्जुवा-

पणी तेज्जे। श्री अचेलक अनी गथा 'जप्पभिइ च ण उसमे अरहा कोसल्लिए मुंडे भवित्ता रामो अणगारियं पव्वइए' अन्वयार्थी कौशलिक ऋषभनाथ अर्हन्त मुण्डित थयने अगार अवस्थाने। त्याग करी अणुगार अवस्थामां आण्था 'तप्पभिइ च ण उसमे अरहा कोसल्लिए णिच्चं वोसट्टकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जति' त्वयार्थी तेज्जे। जे पीताना शरीरना संस्कार (श्रृंगार) करवानु छोडी दीधु, तेज्जे। त्यक्त देह अट्टेके परीषडे। सहन करवाथी त्यल दीधे। जे शरीर प्रत्ये ममत्वभाव जेमुजे जेवा अनी गथा. 'त जहा दिव्वा वा जाव पडिलोमा वा अणुलोमावा' जे केअ उपसर्ग—उपद्रव तेमना पर आवती ते आडे तो हेवा द्वारा करवाभा आवेल होय यावत् मनुष्यकृत अगार तिर्यञ्च द्वारा करवाभा आवेल होय ते अधाने तेज्जे। सारी रीते सहन करतां हुता अडीया 'वा शण्ड विकल्पार्थक' जे 'तत्थ पडिलोमा वेत्तेण वा जाव कसेण वा काए आउट्टेज्जा' आ उपसर्ग पैडी जे केअ उपसर्ग तेमनाथी

वा लयाए वा" त्वचा वा श्लक्ष्णकषेण वा लतया वा इति संग्राह्यम्, तत्र त्वचा शणाणि वृक्षत्वग्निर्मितया कशया वा 'छियाए'—'छिया' शब्दः श्लक्ष्णकशार्थे देशीशब्दः, ततश्च श्लक्ष्णकशेन चिक्कणकशया वा लतया लतादण्डेन वा, 'कसेण' कशेन चर्मयपठ्या वा, 'काए' काये शरीरे 'आउटटेज्जा' अकुट्टयेत् ताडयेदिति । तथा—'अणुलोमा' अनुलोमा उपसर्गाः 'वदेज्ज' वन्देत अभिवादयेद् वा 'जाव' यावत् यावत्पदेन—'पूएज्ज वा मक्का-रेज्ज वा सम्माणेज्ज वा कल्लाणं मंगलं देवयं चेडयं' पूजयेद् वा सत्कारयेद् वा सम्मानयेद् वा कल्याण मङ्गलं दैवतं चैत्यम्' इति । तत्र—पूजयेत् वा सद्वचनैः, सत्कारयेद् वा वस्त्रादिना, सम्मानयेद् वा अभ्युत्थानादिना मङ्गलं मङ्गलस्वरूपः, दैवतं देवस्वरूपः, चैत्यं ज्ञानस्वरूपः, इति धिया 'पज्जुवासेज्ज' पर्युपासोत् पर्युपासनां कुर्याद् वा, 'ते सव्वे' तान् द्विविधानप्युपसर्गान् स भगवान् 'सम्मं' सम्यक्-याथातथ्येन 'सहइ' सहते भयाकरणेन, निर्भयेनेत्यर्थः 'जाव' यावत् यावत्पदेन 'खमइ तित्तिक्खइ' क्षमते तित्तिक्षते—इति संग्राह्यम् तत्र क्षमते क्रोधाभावेन, तित्तिक्षते दैन्याकरणेन 'अहियासेइ' अध्यास्ते—अविचलतयेति । 'तएणं से भगवं समणे जाए' ततः खल्लु स भगवान् ऋषभः श्रमणो जातः ।

सेज्ज वा" इसी तरह यदि उनके ऊपर अनुकूल उपसर्ग आते—जैसे—कोई उनकी वदना करता, यावत् कोई उनकी पूजा—सद्वचनो से स्तुति करता, सत्कार—वस्त्रादि प्रदान कर या खड़े होकर उनके प्रति अपनी भक्तिप्रकट करता, उनका सम्मान करता—हाथ जोड़कर उनका आदर करता, इस बुद्धि से कि ये मंगल स्वरूप हैं, देवस्वरूप हैं और ज्ञान स्वरूप है यदि कोई उनकी पर्युपासना करता तो उस स्थिति में ये हर्षभाव युक्त नहीं होते "ते सव्वे सम्मं सहइ जाव अहियासेइ" इस तरह ये भगवान् श्रीआदिनाथ भूष इन प्रतिकूल परीषह और उपसर्गों को अच्छी तरह से रागद्वेष परिणति उत्पन्न हुए बिना—सहन करते थे, यहां यावत्पद से "खमइ तित्तिक्खइ" इन पदों का ग्रहण हुआ है। इन पदों से यह प्रकट किया गया है—कि इन क्षुदादि परीषहादिकों के

(पइइ डोय जेमके—जे क्काय केई तेमने नेतरथी भारतु अथवा वृक्षणी छालथी अणवेइ होरक्षथी के कठोर आणुक्थी तेमने भारतु अथवा थीकण्णा कशा—आणुक्थी भारतुं इता इ'उथी तेमने भारतु आणुक्थी तेमने भारतु तो तेने पण्णु अण्णो अत्थत्ता शत भावोथी सडन करता इता 'अणुलोमा वंदेज्जवा जाव पज्जुवासेज्जवा' जे जे प्रमाणे जे तेमनी उपर अनुकूल उपसर्ग आवे जेमके केई तेमने वफना करतु यावत् केई तेमनी पूजा करतु अर्थात् सद्वचनोथी स्तुति करतु सत्कार—वस्त्रादि प्रदान करीने अगर उभा रडीने तेमना प्रत्ये पोटानो भक्तिभाव अतावत् तेमनु सम्मान करतु इत्ये जेडीने तेमने आदर जेम भाणीने के तेजो मंगलस्वरूप छे देवस्वरूप छे, अने ज्ञान स्वरूप छे जे केई तेमनी पर्युपासना करतु तो जे स्थितिमा तेजो उपान्वित थता न इता 'ते सव्वे सम्मं सहइ जाव अहियासेइ' आ रीते जे भगवान् श्री आदिनाथ प्रणु आवा प्रतिकूल अनुकूल परीषहो अने उपसर्गोनि सारी रीते—जेटके के रागद्वेष रहित थधने—सडन करतो इता अही 'यावत् पदथी " इ तित्तिक्खइ" आ पदोनु अडणु थयु छे जे पदोथी जे प्रकट करवाभा आवेइ छे के जे परीषहा-

કોદશઃ શ્રમણો જાતઃ ? इत्याह - 'ईरिया समिए' इत्यादि । तत्र 'ईरियासमिए' ईर्या-समितः-ईरणम् ईर्या=व्रतिगमनं, तत्र समितः सम्यगेकीभावेन रागद्वेपराहित्येन वा इतः प्रवृत्तः, 'जाव' यावत्-यावत्पदेन-"भासासमिए, एसणासमिए, आयाणभंडमत्त-निकखेवणासमिए, उच्चारपासवणखेलजल्लसिंधाण" इति संग्राहम्, 'परिट्ठावणासमिए' इति मूलोक्तेन पदांशेन सह "उच्चारदि सिंधाणान्त" पदांशस्य सम्बन्धः । छाया तु-भापासमितः, एषणासमित, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमितः, उच्चारप्रसवणखेलजल्ल-शिङ्घाणपरिष्ठापनिकासमितः इति । तत्र-भापासमितः भाषणं भाषावचन तस्यां समितः=कार्कश्यदि रहित हितमितस्फोत्तमृदुवचनं यथा स्यात्तथा प्रवृत्तः, तथा एषणासमितः एषणा=गवेषणा ग्रहणैषणा परिभोगैषणादिलक्षणा, समितः, तत्र समितः-सम्यक् प्रकारेण यथास्थात्तथा प्रवृत्तः, सोपयोगं नवकोटिविशुद्धभिक्षाग्रहणशील इत्यर्थः, तथा-आदानभाण्ड

સહન કરને મેં ઇન્હે ક્રોધ કા અભાવ રહતા થા ઔર દીનતા કા અભાવ રહતા થા, યે તો અવિચલ ભાવ સે હી ઇન્હે સહતે થે, "તપ્પણ સે મગવં સમણે જાણ્ ઈરિયાસમિએ" યે ઋષભ એસે શ્રમણ બનેં કિ યે ઈર્યાસમિતિ કે પાલન મેં, "જાવ" યાવત્-ભાષાસમિતિ કે પાલન મેં, એષણાસમિતિ કે પાલન મેં, "પરિટ્ઠાવણાસમિએ" આદાન માણ્ડમાત્રનિક્ષેપણા સમિતિ કે પાલન મેં ઔર ઉચ્ચાર પ્રસવણખેલ જલ્લશિઙ્ઘાણપરિષ્ઠાપનિકા સમિતિ કે પાલન મેં રાગદ્વેષ સે રહિત પરિણતિ સે પ્રવૃત્ત રહે, વ્રતિગમન કા નામ ઈર્યાં હૈ. ઇસ ઈર્યાં મેં જો એકીભાવ સે અથવા રાગદ્વેષરહિતતા સે પ્રવૃત્ત હોના હૈ વહ ઈર્યાં સમિતિ હૈ. ઈર્યાંસમિતિ કા પાલન હૈ, કાર્કશ્ય આદિ સે રહિત હિત, મિત્ત, સ્ફીત, મૃદુવચન કા બોલના ભાષાસમિતિ હૈ, ભાષાસમિતિ કા પાલના હૈ, ગ્રહણૈષણા પરિભોગૈષણા-દિરૂપ ગવેષણા મેં જો ઉપયોગ પૂર્વક નવકોટિ વિશુદ્ધ ભિક્ષા કા ગ્રહણ હોના એષણાસમિતિ હૈ એષણાસમિતિ કા પાલન હૈ, માણ્ડ-વહ્લાદિ ઉપકરણ કા માત્ર-પાત્ર કા જો આદાન ગ્રહણ કરના

દિકેને સહન કરતી વખતે એએમા-ક્રોધને અભાવ રહેતો હતો અને દીનતાને અભાવ રહેતો હતો. એએ તો 'અધ્યાસ્તે' એટલેકે અવિચલ ભાવથી જ એ સર્વ પરોષહોને સહન કરતા હતા. 'તપ્પણ સે મગવ સમણે જાણ્ ઈરિયાસમિએ' એ ઋષભ એવા શ્રમણ બન્યા કે ઈર્યાં સમિતિના પાલનમા યાવત્ ભાષા સમિતિના પાલનમાં, એષણા સમિતિના પાલનમાં, 'પરિટ્ઠાવણા સમિએ આદાન ભાઠ માત્ર નિક્ષેપણ સમિતિના પાલનમા અને ઉચ્ચાર પ્રસવણ ખેલજલ્લ-શિઙ્ઘાણપરિષ્ઠાપનિકા સમિતિના પાલનમા રાગદ્વેષથી વિહીન પરિણતિથી એએ પ્રવૃત્ત રહ્યા. વ્રતિગમનનુ નામ ઈર્યાં છે. આ ઈર્યાંમા જે એકી ભાવથી અથવા રાગદ્વેષ રહિત થઈને પ્રવૃત્ત હોય છે, તે ઈર્યાં સમિત છે એટલે કે ઈર્યાં સમિતિનું પાલન છે. કાર્કશ્ય વગેરેથી રહિત હિત, મિત, સ્ફીત મૃદુ વચન બોલવું ભાષા સમિત છે એટલે કે ભાષા સમિતિનું પાલન છે અહલૈષણા પરિભોગૈષણાદિરૂપ ગવેષણામા જે ઉપયોગ પૂર્વક નવકોટિ વિશુદ્ધ ભિક્ષાનું ગ્રહણ છે, તે ગ્રહણ એષણા સમિત છે, એટલે કે એષણા સમિતિનું પાલન છે ભાઠ-વસ્ત્રાદિ ઉપકરણનું માત્ર પાત્રનું જે આદાન ગ્રહણ કરવું અને નિક્ષેપણ મૂકવું છે. તેમાં બરાબર

मात्र निक्षेपणासमितः, आदाने ग्रहणे, भाण्डमात्रयोः भाण्डस्य वस्त्राद्युपकरणस्य मात्रस्य पात्रस्य च निक्षेपणायां रक्षणे च समितः सुप्रत्युपेक्षितसुप्रमार्जितक्रमेण प्रवृत्तः, भाण्ड-मात्रयोः, मध्यमणिन्यायेन आदाने निक्षेपणायां चान्वयो बोध्य इति । तथा-उच्चार-प्रस्रवणखेलजल्लशिद्धानपरिष्ठापनिकासमितः, तत्र उच्चारः पुरिपं, प्रस्रवणं मूत्रं, खेलः श्लेष्मा, जल्लः देहमलं, शिद्धानं नासिकामलं तेषां परियुक्तः, तथा-'मणसमिप' मनः समितः कुशलमनोयोगप्रवर्त्तकः, 'भापासमितः' इत्युक्त्वा पुनर्यद् 'वाक्समितः' इति प्रोक्तं तद् द्वितीयसमितावत्यादरसूचनार्थं करणत्रयशुद्धिसूत्रे सरूपापूरणार्थं च बोध्यमिति । तथा 'कायसमिप' कायसमितः प्रशस्तकाययोगवानित्यर्थः । तथा 'मणगुत्ते' मनोगुप्तः अकुशल मनोयोगनिरोधकः, 'जाव' यावत्-यावत्पदेन-'वाग्गुप्तः कायगुप्तो गुप्तो गुप्तेन्द्रियः, इति संग्राह्यम् । तत्र वाग्गुप्तः अकुशल वाग्योगनिरोधकः, कायगुप्तः अकुशलकाययोगनिरोधकः, सत्प्रवृत्ति निरोधो गुप्तिरिति समिति गुप्त्यो-र्विशेषः, अतएव गुप्तः सर्वथा संवृतः, ततश्च गुप्तेन्द्रियः-गुप्तानि इन्द्रियाणि यस्य स

एवं निक्षेपण-धरना है उसमे देख भाळ कर एवं सुप्रमार्जित कर जो प्रवृत्त होना है वह आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपणसमिति है इस समिति का पालना है अर्थात् वस्त्रादिकों का और पात्रों का जो भूमि को देखकर और उसे प्रमार्जित कर धरना और देखकर और प्रमार्जित कर उनका उठाना यही आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणा समिति है इस समिति का पालना है. उच्चार-पुरीषोत्सर्गकरना, प्रस्रवण-पेशाब करना, श्लेष्मा का डालना, जल्ल-देह मैलका प्रक्षेपण करना, शिद्धान-नाक-छिकना इत्यादि रूप परिष्ठापनिका में जो समित होना है, वह उच्चार प्रस्रवण खेलजल्ल-शिद्धान परिष्ठापनिका समिति है, इस समिति का पालना है, इसका तात्पर्य यही है कि निर्जन्तु स्थान में मल मूत्रादि का त्याग करना सो उच्चारप्रस्रवणादिरूप समिति का पालन है, इसी तरह से वे भगवान् श्री आदिनाथ प्रभु 'मणसमिप, वयसमिप, कायसमिप, मणगुत्ते, जाव गुत्तवभयारी अकोहे जाव अलोहे सते पसते उवसते परिणिन्नुडे, छिणसोप, गिरुवळेवे,

नेधने तेम अ सुप्रमार्जित करीने प्रवृत्त होय छे ते आदान बाड मात्र (निक्षेपण समित छे. अट्टेके ते आदान बाड मात्र निक्षेपण समितितुं पालन छे. तात्पर्य आ प्रभाषे छे के वस्त्र दिके अने पात्रोने भूमिने नेधने अने तेने प्रमार्जित करीने भूषवां तेम अ नेधने अने प्रमार्जित करीने ते वस्त्रादिके अने पात्रोने उठाववां अ अ आदान बाड-मात्रनिक्षेपण समित छे अ समितितुं पालन छे उच्चार-पुरीषोत्सर्ग करवा. प्रस्रवण-वस्त्रादि करवा, श्लेष्म (इके) नाभवे अट्टे-देह-मलतुं प्रक्षेपण करवुं, शिद्धान-छीकभावी धत्यादिके परिष्ठापनिकाभा अ समित होय छे ते उच्चार प्रस्रवण खेल अट्टे शिद्धान परिष्ठापनिका समित छे, आ समितितुं पालन छे आतु तात्पर्य आ प्रभाषे छे के निर्जन्तु स्थानभा मल मूत्रादिना त्याग करवा ते उच्चार प्रस्रवणादि रूप समितितुं पालन छे. आ प्रभाषे ते आदिनाथ प्रभु 'मणसमिप, वयसमिप, कायसमिप, मणगुत्ते जाव, गुत्तवभयारी अकोहे जाव अलोहे सते पसते उवसते परिणिन्नुडे, छिणसोप, गिरुवळेवे,

तथा—इन्द्रियविषयेषु शब्दादिषु रागद्वेषराहित्येन प्रवृत्त इत्यर्थः । तथा 'गुत्तवंभ-
यारी' गुप्तब्रह्मचारी—गुप्त वसत्यादिभिर्गुप्तिभिः प्रयत्नपूर्वकं रक्षितं यद् ब्रह्म मैथुन-
विरमणलक्षण, तेन चरतीत्येवं शीलः—ब्रह्मचर्यरक्षणे सततप्रवृत्त इत्यर्थः, तथा—'अकोहे'
अक्रोधः क्रोधवर्जितः, 'जाव' यावत्—यावत्पदेन—'अमाणे अमाए' अमानः अमायः इति
पद द्वयं संग्राह्यम् । ततश्च मानवर्जितो मायावर्जितश्चेत्यर्थः, तथा 'अलोहे' अलोभः लोभ-
वर्जितः, क्रोधादिराहित्य स्थूलक्रोधाद्यपेक्षया बोध्यम् । सूक्ष्मक्रोधादीनां सूक्ष्म संपराय-
गुणस्थानकपर्यन्तं सद्भाव. अतः सूक्ष्मक्रोधादि सत्ता तु तत्काले भगवत असीदेवेति ।
अत एव 'सते' शान्तः शान्तकायवाग्मनोव्यापारत्वात्, अत एव 'पसंते' प्रशान्तः प्रकर्षेण
शान्तियुक्तः, तत एव 'उवसंते' उपशान्तः परीपहोपसर्गप्रादुर्भावेऽपि प्रशान्तियुक्तत्वाद्
धीरतया तत्सहनशील इत्यर्थः, अतएव 'परिणिवृद्धे' परिनिर्वृतः सकल सन्तापवर्जित-
त्वेन शीतलीभूतः, 'छिन्नसोए' छिन्न स्रोताः छिन्नसंसारप्रवाहः, 'छिन्नशोकः' इति
च्छायापक्षे—शोकरहित इत्यर्थः, तथा 'निरुवलेवे' निरूपलेपः द्रव्यभावमलरहितः, इत्थं

सखमिव णिरंजणे' मनः समित, वचः समित, कायसमित, मनोगुप्त यावत् गुप्तब्रह्मचारी,
क्रोधहीन यावत् लोभ हीन थे, शांत थे, प्रशान्त थे, उपशान्त थे, परिनिर्वृत थे, शोक रहित
थे, उपलेप रहित थे, शस्त्र की तरह निरञ्जन थे, यहा जो पांच समितियों से समित होने
के बाद मनः समित आदि विशेषणो वाला जो प्रभु को प्रकट किया गया है उसका तात्पर्य
ऐसा है कि वे कुशल मनोयोग के प्रवर्तक थे, इससे अशुभ चिन्तवन का उनमें सर्वथा अभाव
सूचित किया गया है. धर्मध्यान के ध्यातृत्व की उनमें पुष्टि को गई है । "वचः समित" पद
से भाषासमिति में उनको अत्यादरभाव था यह स्पष्ट किया गया है, तथा करणत्रयशुद्धि सूत्र
में सख्यापूरण के लिये इन वाकसमित पद का प्रयोग किया गया है । "कायसमितः" ऐसा
जो कहा गया है वह ईर्यापथ समिति में विशेष आदरभाव सूचित करने के लिये कहा गया है
क्यों कि ये प्रशस्तकाययोग वाले थे, ये अकुशल मनोयोग के निरोधक थे. इसलिये मनोगुप्त

सखमिव णिरंजणे' मनः समित वचः समित, कायसमित मनोगुप्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारी,
क्रोधहीन यावत् लोभहीन होता, शांत होता, प्रशान्त होता, उपशांत होता, परिनिर्वृत होता,
शोक विहीन होता, उपलेप रहित होता, शस्त्र की तरह निरञ्जन होता, अहीन के पंचसमि-
तियों के वडे समित तथा आदर मन समित वगेरे विशेषणोथी युक्त प्रभुने प्रकट कर-
वाभां आया छे, तेनु तात्पर्य आ प्रभाषे छे के तेजो कुशल मनोयोगना प्रवर्तक होता
ऐथी अशुभ चिन्तवनने। तेजो श्रीभां संपूषुं शीते अभाव सूचित करवाभां आवेद छे
धर्मध्यानना ध्यातृत्वनी तेजोश्रीभां पुष्टि करवाभा आवी छे. "वच समित" पदथी भाषा-
समितिभां तेजो श्रीने। अत्यादर भाव होता छे वात-स्पष्ट करवाभां आवी छे तेम न
करषु त्रय शुद्धि सूत्रभा संप्या पूरषु भाटे छे वाङ् समित पदने। प्रयोग करवाभां आवेद
छे. "कायसमितः" तेजु के कहेवाभा आण्युं छे, ते ईर्यापथ समितिभा विशेष आदर
भाव सूचित करवा भाटे कहेवाभा आवेद छे केमके तेजो श्री प्रशस्तकाययोगवाणा होता,

भगवतो वर्णनं सामान्येनाभिधाय सम्प्रति सोपमानं भगवतो वर्णनमाह—‘सखमिव’ इत्यादि । ‘सखमिव णिरंजणे’ शङ्ख इव निरञ्जनः निर्गतम् अञ्जनं जीवमालिन्यकरं कर्म यस्मात् स तथा, यथा शङ्खः शुभ्रो भवति तथैव विगतकर्ममलत्वात् स भगवानपि विशुद्धात्म-स्वरूप इत्यर्थः मूले ‘सखमिव’ इत्यत्र मकरोऽल्लक्षणिकः, तथा ‘जच्च कणग वा जाय-रूवे’ जात्यकनकमिव-विशुद्ध सुवर्णमिव जातरूपः, जातं रूपं स्वरूपं रागादि कुत्सित-द्रव्यविरहाद् यस्य स तथा, यथा-निर्गतमलं सुवर्णं सुदर्शनं भवति तथैवासौ रागादि

ये, यहां यावत्पद से “वाग्गुप्तः कायगुप्तः गुप्तः गुप्तेन्द्रियः” इन पदों का ग्रहण हुआ है, अकुशल-वाग्योग के निरोधक होने से ये वाग्गुप्त, अकुशल काययोग के निरोधक होने से ये कायगुप्त थे, सत्प्रवृत्ति का नाम समिति है और असत्प्रवृत्ति का निरोध करना गुप्ति है. यही गुप्ति और समिति में भेद है, अतएव ये गुप्त-सर्वथा सवृत्त थे, इसीलिये ये गुप्तेन्द्रिय थे—इन्द्रियों क विषय मूल शब्दादिकों में इनकी रागद्वेष से रहित ही प्रवृत्ति थी तथा ये गुप्त ब्रह्मचारी थे—ब्रह्मचर्य महाव्रत के संरक्षण में सदा ९ नौ कोटि से तल्लीन थे, तथा—“अक्रोधः” क्रोध रहित थे यहां यावत्पद से “अमाणे, अमाए, इन पदों का ग्रहण हुआ है. तथा च—ये मानवर्जित और मायावर्जित थे, “अलोभः” लोभ से रहित थे क्रोधादि कषायों से रहितता का यह कथन स्थूलक्रोधादि की अपेक्षा से किया गया जानना चाहिये क्योंकि १० वें सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान तक कषाय का सद्भाव सिद्धान्त ने माना है अतः सूक्ष्म क्रोधादि कषायों की सत्ता तो उस समय प्रसु में थी ही अत एव ये मन, वचन और काय के व्यापार की शान्ति होने से शान्त थे, प्रशान्त थे प्रकर्षरूप में शान्ति से युक्त थे और यही कारण था कि पहीषह और

तेजो अकुशल मनोयोगना निरोधक होता, जैसी व मनोगुप्त होता अही यावत् पदथी वाग्गुप्तः कायगुप्तः, गुप्तः गुप्तेन्द्रियः” आ पदोंना संग्रह करवाभां आवेद छे. अकुशल वाग्योगना निरोधक होता तेथी जैजो वाग्गुप्त होता अने अकुशल काययोगना निरोधक होवाथी कायगुप्त होता. सत्प्रवृत्तिना नाम समिति छे, अने असत्प्रवृत्तिना निरोध करवे शक्ति छे शक्ति अने समितिभां जे व वेद छे जैथी तेजो गुप्त सर्वथा सवृत्त होता जैथी व जैजो गुप्तेन्द्रिय होता इन्द्रियोंना विषयभूत शब्दादिकोंभां जैमनी रागद्वेषविहीन प्रवृत्ति व होती, तेमज जैजो गुप्त ब्रह्मचारी होता ब्रह्मचर्य महाव्रतना संरक्षणमा सर्वदा जैजो ९ कोटीथी तल्लीन होता. तेमज “अक्रोधः” क्रोध विहीन होता. अही यावत् पदथी ‘अमाणे, अमाए’ जे पदों संग्रह करवाया छे तेमज जैजो मानवर्जित अने माया वर्जित होता ‘अलोभ’ दोष रहित होता अही—क्रोधादि कषाय विहीन पक्षु संधी कथन स्थूल-क्रोधादिनी अपेक्षाजो करवाभां आवेद छे. केमके १० भा सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान सुधी कषायना सद्भाव सिद्धान्त मान्यो छे जैथी सूक्ष्म क्रोधादिक कषायोनी सत्ता तो ते वभते प्रभुभा होती व, जैथी तेजो मन, वचन अने कायना व्यापारनी शान्ति यथ ववाथी शान्त होता, प्रशान्त होता, प्रकर्ष रूपमा शान्ति युक्त होता जैथी व तेजो परीषद अने उपसर्गोना आकंभक्षु वभते धीर यथ वता अने तेथी तेजो तेमना आ-

उपसर्गों के जाने पर भी धीर हो जाने के कारण उन्हें ये सहन करने के स्वभाव वाले बन चुके थे; इन्हें किसी भी प्रकार का बाह्य और भीतर का आताप—सन्ताप—आकुल व्याकुल नहीं कर सकता था—उससे ये वर्जित थे इसलिए ये “परिनिर्वृतः” शीतलोभूत हो गये थे तथा “छिन्नस्रोताः” ये इसलिये कहे कये हैं कि इनका ससार प्रवाह सर्वथा छिन्न हो चुका था, “छिन्नशोकः” जब ऐसी “छिण्णसोए” पद को छाया रखी जावेगी तब ये शोकरहित ये ऐसा इसका अर्थ होगा, “निरूपलेपः” पद से यह सूचित किया गया है ये द्रव्यमल और भावमल इन दोनों प्रकार के मलो से रहित हो चुके थे, इस तरह सामान्य रूप से भगवान् का वर्णन कर अब सूत्रकार सोपमान भगवान् का वर्णन करते हैं—ये भगवान् “शङ्खमिवणिरञ्जन” जोव को मलीन करने वाला अञ्जन के जैसा कर्मरूप मैल जिनसे दूर हो गया है ऐसे थे, गङ्ग शुभ्र होता है इसी प्रकार कर्मरूप मैल के विगत हो जाने से प्रभु भी विशुद्ध आत्मस्वरूप वाले थे, “मूल में सखमिव” ऐसा जो पाठ कहा गया है सो यहा यह मकार अलाक्षणिक है “जच्च कण्ठं व निरूपलेवे” विशुद्ध सुवर्ण की तरह प्रभु रागादिक कुत्सित द्रव्यों के विरह हो जाने से शुद्ध स्वरूप से युक्त थे, निर्गतमल वाला सुवर्ण जैसा सुदर्शन होता है उसी प्रकार रागादिमलरहित होने से प्रभु भी सुदर्शन थे, “आदिरस पडिभागे इव पागडभावे” प्रभु आदर्श—दर्पण के प्रति विम्ब की तरह अनिगूहित अभिप्राय वाले थे, दर्पण में जैसा मुखादिक का आकार होता है। वैसा ही वह प्रतिविम्बित है उसी प्रकार से ऋषभदेव भी सर्वदा अनिगूहित अभिप्रायवाले थे,

कमलाने सहन करवा योग्य स्वभाव वाणा र्थ गया हुता. जेभने भडार के अंहरने। केर्ध पणु नतने। आताप—सताप—आकुल व्याकुल करी शकतो न हुतो। तेनाथी जेओ वरिंत हुता, जेथी ज ‘परिनिर्वृतः’ शीतली भूत र्थ गया हुता. तथा ‘छिन्नस्रोता’ जे ओ ओटलाभाटे कडेवाभां आवेल छे. के जेभने। ससार प्रवाह सर्वथा छिन्न सिन्न र्थ गये। हुते। ‘छिण्णसोए’ पदनी ‘छिन्नशोक’ जेवी छाया थये त्यारे जेओ शोक रहित हुता जेवे जेने। अर्थ थये, ‘निरूपलेपः’ पदथी आभ सूचित करवाभा आवेल छे के जेओ द्रव्यमल अने भावमल जे भन्ने प्रकारना भदोथी विहीन र्थ गया हुता. आ प्रभाषे सामान्य रूपमां भगवाननु वरुन करीने सूत्रकार हुवे सोपमान भगवाननु वरुन करे छे जे भगवान् ‘शङ्खमिव णिरञ्जनः’ एवने भलिन करनारा अंजनना जेवु कर्मरूप भले जेनाथी हर र्थ गयु छे, जेवा हुता. श भ शुभ्र होय छे. आ प्रभाषे कर्मरूप भलनाविनाशथी प्रभु पणु विशुद्ध आत्म स्वरूपवाणा हुता मूलमा ‘सखमिव’ जेवे जे पाठ छे तेभा आ मकार अलाक्षणिक छे “जत्यकनकमिव निरूपलेवः” विशुद्ध सुवर्णनी जेभ प्रभु रागादिक कुत्सित द्रव्य विहीन होवा भदल शुद्धस्वरूप युक्त हुता निर्गतभववाणुं सुवर्ण जेवु सुदर्शन होय छे ते सुण्ण प्रभु पणु रागादि मलरहित होवा भदल सुदर्शन हुता, “आदर्श प्रतिभागइव प्रक ” प्रभु आदर्श—दर्पणना प्रतिजिणनी जेभ अनिगूहित अभिप्राय वाणा हुता. दर्पणमा जेभ मुखादिकना आकार जेवु ज प्रतिजि अ. हेभाय छे, तेभज भगवान ऋषभदेव पणु सर्वदा अनिगूहित अभिप्रायवाणा हुता शकनी जेभ तेओ निगूहित

मलरहितत्वात् सुदर्शन इत्यर्थः, 'आदिरसपङ्क्तिभागे इव' आदर्श प्रतिभाग इव आदर्श-
दर्पणे यः 'पागडभागे' प्रतिभागः प्रतिविम्बः स इव प्रकटभावः प्रकट अनिगूहित भावः
अभिप्रायो यस्य स तथा, यथा दर्पणे यथास्थित मुखादेः प्रतिविम्बः प्रतिफलितो
भवति तथैव भगवान् ऋषभोऽपि सर्वदाऽनिगूहिताभिप्राय आसीत्, न तु शठ इव निगू-
हिताभिप्राय इति भावः । तथा 'कूर्मो इव गुत्तिदिष्ट' कूर्म इव गुप्तेन्द्रिय—यथा
कूर्मो भये समुपस्थिते चतुरश्ररणान् ग्रीवां च सगोपयति, तथैवासौ भगवान् शब्दादि
भयेभ्यः सर्वदा सगोपितपञ्चेन्द्रिय आसीदित्यर्थः । तथा 'पुक्खरपत्तमिव' पुक्खर-
पत्तमिव=कमलपत्तमिव 'निरुखलेवे' निरुखलेपः—उपलेपवर्जितः, यथा कमलपत्र पङ्केजात
जले संवर्द्धितमपि जलादुपरि निर्लिप्तं तिष्ठति, तथैवासौ भगवान् भोगे समुत्पन्नः
स्वजनादिषु संवर्द्धितोऽपि तस्मैहरूपलेपरहित इत्यर्थः । तथा 'गगगमिव निरालंबणे'
गगनमिव निरालम्बनः यथा—गगनम् अवष्टम्भरहितं भवति तथैवासौ भगवान् कुल-
ग्रामनगरादिनिश्चारहितोऽभूदित्यर्थः । तथा 'अनिले इव' अनिल इव=वायुरिव 'निरा-
लप' निरालयः=आलयवर्जितः, यथा वायुः सर्वत्र संचरणशीलत्वेन स्थानप्रतिबन्ध-

शठ की तरह निगूहित अभिप्रायवाले नहीं थे । "कूर्मो इव गुत्तिदिष्ट" कच्छप जिस प्रकार
भय के उपस्थित होने पर अपने चारों चरणों को और ग्रीवा को सकुचित कर लेता है उसी
प्रकार प्रभु भी शब्दादिकों में आसक्ति हो जाने के भय से सर्वदा अपनी पांचों ही इन्द्रियोंको
उनके विषयों से सगोपित—सुरक्षित रखे हुए थे, "पुक्खरपत्तमिव निरुखलेवे" प्रभु कमलपत्र की
तरह उपलेप से रहित थे, जिस प्रकार कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है और जल में संवर्द्धित
होता है तब भी वह जल के ऊपर ही रहता है और उससे निर्लिप्त बना रहता है उसी तरह
भगवान् भोग में उत्पन्न हुए और अपने सब विजनों के बीच में संवर्द्धित हुए फिर भी उनके
स्नेहरूपलेप से रहित थे, 'गगणमिव निरालंबणे' प्रभु आकाश की तरह अवलंबन से रहित थे,
आकाश बिना सहारे के जैसा रहता है उसी प्रकार प्रभु भी कुल ग्राम आदि की निश्चा से
रहित थे, "अणिले इव निरालप" वायु जिस प्रकार संचरण शील होने से बिना किसी रोक

अभिप्रायवाला न होता "कूर्म इव गुप्तेन्द्रियः" कच्छप जेभ बायावस्थाभां पोताना चारे
पग अने ग्रीवाने संकुचित करी नाणे छे तेमन् प्रभु पणु शब्दादि विषयोभा आसक्ति
न थछ अथ ते भयथी सहा पोतानी पञ्चेन्द्रियोने तेमना विषयोथी सगोपित—सुरक्षित
राभता छेता "पुक्खरपत्तमिव निरुखलेवः" प्रभु कमलपत्रनी जेभ उपलेपथी रहित छेता
जेभ कमल काइवमा छेत्तथ थाय छे अने पाण्ठीमा संवर्द्धित थाय छे, छतांजे ते जल उपर
रहे छे अने तेनाथी निर्लिप्त थछ ने रहे छे, तेमन् भगवान् भोगभां प्रकट थया अने
पोताना सभ विषयोनी वञ्छे रहिने सोटा थया छतांजे तेमना स्नेहइय थैपथी रहित छेता
'गगनमिव निरालंबणे' प्रभु आकाशनी जेभ आलभन विहोन छेता आकाश जेभ सहारा
वगर रहे छे तेमन् प्रभु पणु कुण, ग्राम वगैरेनी निश्चाथी रहित छेता "अणिले इव निरा-
लप" वायु जेभ संचरणशील होवाथी सर्वत्र विहरणशील होय छे, तेमन् प्रभु पणु अ

रहितो भवति, तथैवासी प्रभुरपि अप्रतिबन्धविहारित्वेन वसत्यादि प्रतिबन्धरहितोऽभूदित्यर्थः । तथा 'चदो इव सोमदसणे' चन्द्रइव सौम्यदर्शनः यथा चन्द्रः प्रियदर्शनत्वेन सर्वेषां मनोनयनाहादजनको भवति तथैवासी प्रभुरपि सर्वेषां मनोनयनानन्दकर आसीदित्यर्थः । तथा 'सूरो इव तेयसी' सूर इव तेजस्वी यथा—सूर्यः चन्द्रनक्षत्रादीनां तेजोऽपहारको भवति तथैवासी प्रभुरपि सकल परतीर्थिकतेजोऽपहारकोऽभूदित्यर्थः । तथा—'विहग इव अपडिबद्धगामी' विहग इव अप्रतिबद्धगामी—अप्रतिबद्धः=प्रतिबन्धरहितः सन् गच्छतीत्येव शीलः अप्रतिबद्धगामी—यथा—विहगः=पक्षी-प्रतिबन्धराहित्येन स्वावयवभूतपक्षसापेक्षः सर्वत्र विहरति तथैवासी भगवान् कर्मक्षय-सहायकारिषु अनेकेष्वनार्यदेशेषु परानपेक्षः सन् स्वशक्त्या विहरतीति भावः । तथा 'सागरो इव गंभीरे' सागर इव गम्भीरः यथा सागरोऽतलस्पर्शी भवति तथैवायं

टोक के सर्वत्र विहरणशील होती है उसी प्रकार प्रभु भी अप्रतिबन्ध विहारी होने के कारण स्थान के प्रतिबन्ध से रहित थे, अर्थात् वसति आदि में ममत्व रहित थे, "चदो इव सोम दसणे" चन्द्र की तरह प्रभु सौम्य दर्शनवाले थे चन्द्र जिस प्रकार से प्रिय दर्शनवाला होने के कारण समस्त जीवों के मन और नयनों को आह्लाद जनक होता है उसी तरह प्रभु भी समचतुरव्रसस्थान एवं वज्ररूपमसहनन के धारी होने से सब जीवों के मन और नेत्रों को आनन्द देने वाले थे "सूरो इव तेयसी" सूर्य की तरह प्रभु तेजस्वी थे सूर्य जिस प्रकार नक्षत्रादिकों के तेज का अपहारक होता है उसी प्रकार प्रभु भी सकल परतीर्थिकजनो के तेज के अपहारक थे, "विहगइव अपडिबद्धगामी" पक्षी की तरह प्रभु अप्रतिबद्ध गामी थे पक्षी जिस प्रकार प्रतिबन्ध रहित होने के कारण केवल अपने अवयवभूत पंखों के बल पर सर्वत्र विहार करता है उसी प्रकार प्रभु भी कर्मक्षय में सहायकारी अनेक अनार्यदेशों में परानपेक्ष होकर अपनी शक्ति के बल पर विहार करते थे 'सागरो इव गंभीरे' प्रभु समुद्रकी तरह गंभीर थे, सागर जिस प्रकार अगाध होने के कारण किसी के भी द्वारा तल स्पर्शी

प्रतिबन्ध विहारी होवा अहल स्थानना प्रतिबन्धथी रहित हुता, अेटले के वस्ती वगेरेमा भमत्व विहीन हुता 'चदो इव सोमदंसणे' प्रभु चन्द्रवत् सौम्यदर्शनवाणा हुता जेम चन्द्र प्रियदर्शी होवा अहल सर्व लोवोना मन अने नेत्रोने आह्लाद आपनार होय थे, ते मज प्रभु पणु समचतुरव्र सस्थान तेमज वज्र रूपम संहननना धारी होवाथी सर्व लोवोना मन अने नेत्रोने आनन्द पमाउनार थे "सूरइव तेजस्वी" प्रभु सूर्यनी जेम तेज स्वी हुता सूर्य जेम नक्षत्रादिहोना तेजने अपहर्ता होय थे तेमज प्रभु पणु समस्त परतीर्थिकजनोना तेजना अपहर्ता हुता. "विहग इव अपडिबद्धगामी" पक्षीनी जेम प्रभु अप्रतिबद्धगामी हुता पक्षी जेम प्रतिबन्ध रहित होवा अहल इकत योताना अवयवभूत पंखोना आधारे सर्वत्र विहार करे थे तेमज प्रभु पणु कर्मक्षयमा सहायकारी अनेक अनार्य देशोमा परानपेक्ष थर्छने स्वणण ना आधारे विहार करे थे 'सागरो इव गंभीरे' सागर जेम अगाध हो वाथी अतलस्पर्शी होय थे तेमज प्रभु पणु अतल स्पर्शी अेटले के गूढ

प्रभुरपि गम्भीराशय इत्यर्थः । अयं भावः—यथा समुद्रोऽगाधत्वान्न केनापि तलावच्छे-
देन स्पर्शनीयो भवति, तथैवासौ प्रभुरपि परैरज्ञातस्वाभिप्रायो निरुपमज्ञानवत्वेऽपि रहः
कृतदुश्चरितानामपरिस्रावित्वाद् हर्षशोकादिकारणसद्भावेऽपि तद्विकारादर्शनाद् वेति ।
तथा—‘मदरो इव अकंपे’ मन्दर इव अकम्पः यथा मन्दरपर्वतोऽकम्पो भवति तथैवासौ
प्रभुरपि स्वप्रतिज्ञातेषु तपःसंयमेषु द्वाशयन्त्वेन परीषहोपसर्गादिकृतवाधासंयुक्तोऽपि ततो-
ऽप्रच्यवनशील इति भावः । तथा ‘पुढवीविव सन्वफासविसहे’ पृथिवी इव सर्वस्पर्शविषहः -
यथा पृथिवी सर्वस्पर्शसहनशीलो भवति तथैव प्रभुरपि सर्वविधानुकूलप्रतिकूलस्पर्शसहनशी-
लो भवतीति तथा ‘जीवोविव अप्पडिहयगइत्ति’ जीव इव अप्रतिबद्धगतिरिति । यथा
जीवस्य कटकुड्यादिभिर्गतिप्रतिघातो न भवति तथैवास्य प्रभोरपि आर्यानार्यदेशेषु
संचरत परपाखण्डिकृतप्रतिघातो नाभूदित्यर्थः । इति शब्दो सन्दर्भपरिसमाप्तौ ॥सू०४०॥

नहीं होता है उसी तरह प्रभु भी दूसरों के द्वारा जिनका अभिप्राय जाना जाय ऐसे नहीं
थे । अथवा प्रभु निरुपम ज्ञानशाली थे, फिर भी एकान्त में कृत दुश्चरितो के अपरिस्रावो
होने के कारण हर्षशोकादि कारणों के सद्भाव में भी तद्विकार का उनमें अदर्शन रहता था,
इसलिये वे सागर के जैसे गंभीर थे, तथा “मदरो इव अकंपे मन्दर के समान प्रभु अकम्प
थे, जिस प्रकार मन्दर पर्वत भयंकर से भी भयंकर आघी के समक्ष अकम्प अडिग रहता है उसी
प्रकार प्रभु भी अपने द्वारा प्रतिज्ञात तपः संयमों के ऊपर द्वाशयवाले होने के कारण परीषह
और उपसर्ग आदि के द्वारा बाधा संयुक्त होने पर भी उनसे विचलित नहीं होते, पृथिवी को
तरह प्रभु “पुढवी विव सन्वफास विसहे” सर्व प्रकार के स्पर्शों के सहन कर्त्ता थे, पृथिवी जिस
प्रकार सर्व प्रकार के स्पर्शों को सहन करने वाली होती है उसी प्रकार से प्रभु भी सर्व प्रकार
के अनुकूल, प्रतिकूल स्पर्शों के सहन करने के स्वभाव वाले थे, “जीवोविव जपडिहयगइत्ति”
प्रभु जीव की तरह अप्रतिबद्ध गतिवाले थे, जीव की गति जिस प्रकार कट कुड्यादिकों द्वारा
प्रतिहत नहीं होती उसी प्रकार प्रभु का विहार भी आर्य अनार्य देशों में होता हुआ भी
पाखण्डियों द्वारा प्रतिघातयुक्त नहीं होता ॥४०॥

हता प्रभुने अभिप्राय केरुं लक्ष्मी शकता न होता अथवा प्रभु निरुपम ज्ञानशाली हता।
छतांजे कोडातमा कृत दुश्चरिताना अपरिस्रावी होवा महल हर्ष शोकादि कारणाना सहभा
वर्मा पणु तद् विषयक विकाराना तेजोश्रीमा अभाव रहेतो हतो ज्येथी न तेजो श्री साग
रनी जेम गंभीर हता तेमज मन्दरनी जेम अकम्प हता जेम मन्दर पर्वत लयंकरमां
लयंकर सभत आधी नी सामे अकम्प अडग रहे छे तेमज प्रभु पणु पोताना वडे प्रति-
ज्ञात तप संयमे। उपर देह आशयवाणा होवाथी परीषह अने उपसर्ग वगेरे वडे
बाधा संयुक्त होवा छनांजे तेमनाथी विचलित थता नथो, पृथिवीनी जेम प्रभु “सर्वस्पर्श
विषह” सर्व प्रकारना स्पर्शों ने सहन करनार हता पृथिवी जेम सर्व प्रकारना स्पर्शोंने
सहन करनारी छे तेमज प्रभु पणु सर्व प्रकारना अनुकूल-प्रतिकूल स्पर्शोंने सहन करी थडे
तेवा स्वभाववाणा हता। “जीव इव प्रतिबद्धगति” छपनी जेम प्रभु अप्रतिबद्धगतिवाणा
हता छपनी गति जेम कट कुड्यादि वडे प्रतिघात होती नथी तेमज प्रभुने विहार पणु आर्य
अनार्य देशोमा होय छे छतांजे ते पाखंडीजो वडे प्रतिघातयुक्त थतो नथी। ॥सू० ४०॥

मूलम्-णत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिवंधे । से पडिवंधे, चउ-
 विहे भवइ तं जहा दव्वओ, खित्तओ. कालओ, भावओ ! दव्वओ-
 इह खलु माया मे, पिया मे भाया मे भगिणी मे जाव संगंथसंथुआ
 मे, हिरण्णं मे, सुवण्णं मे जाव उवंगरणं मे अहवा समासओ सच्चित्ते
 वा अचित्ते वा मीसए वा दव्वजाए सेवं तस्स ण भवइ । खित्तओ-
 गामे वा णयरेवा अरण्णे वा खेत्ते वा खले वा गेहे वा अंगणे
 वा, एवं तस्स ण भवइ । कालओ थोवे वा लवे वा मुहुत्ते वा
 अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊण वा अयणे वा संवच्छरे वा
 अन्नयरे वा दीहकाले पडिवंधे एवं तस्स ण भवइ । भावओ-कोहे
 वा जाव लोहे वा भए वा हासे वा एवं तस्स ण भवइ । से णं भगवं
 वासावासवज्जं हेमंतगिम्हासु गामे एगराइए णयरे पंचरोइए ववगय-
 हाससोग अरइ भय परित्तासे णिम्ममे णिरहंकारे लहुभूए अगंथे वासी
 तच्छणे अदुट्ठे चंदणाणुलेवणे अरत्ते लेहुम्मि कंचणम्मि य समे इहलोए
 परलोए य अपडिबद्धे जीबियमरणे निरवकंखे संसारपाग्ामी कम्मसंग-
 णिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए विहरइ ॥सू० ४१॥

छाया—नास्ति खलु तस्य भगवत कुत्रापि प्रतिबन्धः । स प्रतिबन्धः चतुर्विधो
 भवति, तद्यथा—द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावत । द्रव्यत—इह खलु माता मे, पिता मे,
 मे, भगिनी मे, यावत् संग्रन्थसंस्तुता मे, हिरण्यं मे, सुवर्णं मे यावत् उपकरणं
 मे, अथवा समासतः—सच्चित्ते वा अचित्ते वा मिश्रके वा, स पवं तस्य न भवति । क्षेत्रतो
 ग्रामे वा नगरे वा अरण्ये वा क्षेत्रे वा खले वा गेहे वा अङ्गणे वा, पवं तस्य न भवति ।
 कालत—स्तोके वा लवे वा मुहूर्त्ते वा अहोरात्रे वा पक्षे वा मासे वा । वा अयने
 वा संवत्सरेवा दीर्घकाले प्रतिबन्ध, पवं तस्य न भवति । भावतः क्रोधे वा यावत् लोभे
 वा भये वा हासे वा पवं तस्य न भवति । स खलु भगवान् वर्षा वर्षा हेमन्तप्रोष्मयोः
 ग्रामे येकरात्रिको नगरे पाञ्चरात्रिको व्यपगतहासशोकारतिभयपरित्रासो निर्मसो ि -
 क्कारो लघुभूतः अग्रन्थो, वासीतक्षणे अद्विष्ट चन्दनानुलेपने अरक्त, लेष्टो काञ्चने च
 , इहलोकै परलोकै च अप्रतिबद्धः, जीवितमरणे निरवकाश्च संसारपार ि कर्मस-
 कुनिर्घातनार्थाय अभ्युत्ति णो विहरति ॥सू० ४१॥

अथ भगवतः श्रमणावस्था वर्णयति—

टीका—‘णत्थि णं’ इत्यादि । ‘णत्थि ण तरस भगवतस्स कत्थइ पडिबन्धे’ तस्य भगवतः खलु कुत्रापि करिंमश्चिदपि स्थाने प्रतिबन्धः ‘अयं मम अहमस्य’ इति मनोभावरूपो बन्धो नास्ति=नासीदिन्यर्थः । ‘अयं मम अहमस्य’ इति रूपश्च संसार एव । तदुक्तं—“अयं ममेति संसारो नाहं न मम निवृत्तिः । चतुर्भिरक्षरैर्बन्धः पञ्चभिः परमं पदम् ॥” इति । ‘से पडिबन्धे चउच्चिहे भवइ’ स च प्रतिबन्धश्चतुर्विधो भवति, ‘तं जहा-दब्बओ’ तद्यथा-द्रव्यतः=द्रव्यमाश्रित्य, ‘खित्तओ’ क्षेत्रतः=क्षेत्रमाश्रित्य ‘कालओ’ कालतः=कालमाश्रित्य, ‘भावओ’ भावतः=भावमाश्रित्येति । तत्र ‘दब्बओ’ द्रव्यतः=

भगवान् की श्रमणावस्था का वर्णन

“णत्थि ण तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबन्धे” इत्यादि ।

टीकार्थ—“तस्स भगवंतस्स” उन ऋषभनाथ भगवान् को “कत्थइ” कहीं पर भी “पडिबन्धे” यह मेरा है, मैं इसका हूँ, इस प्रकार का मानसिक विकाररूप भाव नहीं होता । क्यों कि मैं इसका हूँ, यह मेरा है इस प्रकार का भाव ही संसार है, तदुक्तम्—अयं ममेति संसारो नाहं न मम निवृत्ति” २ जह मेरा है इस प्रकार का भावही संसार है मैं न हन का हूँ और न यह मेरा है” इस प्रकार का जो भाव है वही संसार को निवृत्ति है, “चतुर्भिरक्षरैर्बन्धः पञ्चभिः परमं पदम्” चार अक्षरों द्वारा बन्ध होता है और पांच अक्षरों से परम पद प्राप्त होता है “अहमस्य, अयं मम” यहा चार चार अक्षर है इनसे जीव कर्मबन्ध का कर्त्ता होता है और “अहं अस्य न, अयं मम न” ये पांच अक्षर हैं, इनके अनुसार प्रवृत्ति करने वाले पुरुष को मुक्ति की प्राप्ति होती है, “से पडिबन्धे चउच्चिहे भवइ” वह प्रतिबन्ध चार प्रकार का होता है “तं जहा” जैसे—‘दब्बओ’ द्रव्य को आश्रित करके, ‘खित्तओ’ क्षेत्र को आश्रित करके, “कालओ” काल को आश्रित करके और “भावओ”

भगवान् की श्रमणावस्था का वर्णन

“णत्थि ण तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबन्धे” इत्यादि ॥सूत्र ४१॥

टीकार्थ—“तस्स म स्स” ते ऋषभनाथ भगवान् ने “कत्थइ” कहीं पर भी पण्य स्थाने ‘पडिबन्धे’ या भावों से हुए जो बन्धो “आ जततो मानसिक विकाररूप भाव उत्पन्न थतो. नहतो। केभडे हुं आतो छु आ भावो से आजततो भाव न संसार से, तदुक्तम्—“अयं ममेति संसारो नाहं न मम निवृत्ति” या भावो से अनेहुं अनेछु से भावसंसार से, तेम हुं अनेतो नथो अने से भावो नथो आ जततो से भाव से ते न संसारनी निवृत्ति से “चतुर्भिरक्षरैर्बन्धः पञ्चभिः परमं पदम्” चार अक्षरों वडे बन्ध थाय से अने पांच अक्षरों वडे परम पद प्राप्त थाय से “अहमस्य अयं मम” अही चार अक्षरों से अनेपांचो एव कर्म-बन्धनो कर्त्ता थाय से अने “अहं अस्य न, अयं मम न” से पांच अक्षरों से अने अक्षरों सुख भवृत्ति करनार पुरुषने मुक्तिनी प्राप्ति थाय से. “से पडिबन्धे चउच्चिहे भवइ” ते प्रतिबन्धना चार प्रकार से, “तं जहा” जेभडे “दब्बओ” द्रव्यने आश्रित करीने, “खित्तओ” क्षेत्रने आश्रित करीने “कालओ” कालने आश्रित करीने अने “भावओ” भावने आश्रित

द्रव्यमाश्रित्य प्रतिबन्धः 'इह खलु माया मे' इहलोके खलु माता मे-माता ममास्ति, एवं 'पिया मे' पिता मे, 'भाया मे' भ्राता मे, 'भगिनी मे' भगिनी मे 'जाव' यावत्-यावत्पदेन 'भज्जा मे, पुत्ता मे, धूआ मे, णत्ता मे, सुण्हा मे, सहिसयण' छाया-भार्या मे, पुत्रा मे, दुहितरो मे, नप्ता मे, स्नुपा मे, सखिस्वजन' इति संग्राहम् । तत्र-भार्या-पत्नी मे-ममास्ति, पुत्रा मे दुहितरः-पुत्र्या मे नप्ता-पौत्रो दौहित्रो वा मे, स्नुपा-पुत्र वधू मे, तथा 'संगंथ संथुया मे' संग्रन्थ संस्तुता मे सखिस्वजने-त्यस्य संग्रन्थसंस्तुता इत्यनेन सह सम्बन्धः, ततश्च-सखिस्वजनसंग्रन्थसंस्तुता इति पदम्, तत्र-सखा-मित्रं, स्वजनः-पितृव्यपुत्रादिः, सस्तुतः-पुनः पुनर्दर्शनेन परिचितः, सख्यादीनामितरेतरयोग द्वन्द्वः, ते च मे-मम सन्तीति । तथा-'हिरण्य मे' हिरण्यं मे 'सुवर्णं मे' सुवर्णं मे, 'जाव' 'कंस मे दूस मे धणं मे' छाया-कांस्य मे दूष्यं मे धनं मे' इति संग्राहम्, तथा 'उवगरणं मे' उपकरणं-पूर्वोक्तातिरिक्ता सामग्री मे इति । पुनः प्रकारान्तरेण द्रव्यतः प्रतिबन्धमाह-'अहवा' इत्यादि । 'अहवा' अथवा-द्रव्यतः प्रतिबन्धः 'समासवो' समासतः-संक्षेपतः 'सचित्ते वा' सचित्ते-द्विपदादौ 'अचित्ते वा' अचित्ते-

भाव को आश्रित करके "द्वन्द्ववो" द्रव्य को आश्रित करके प्रतिबन्ध इस प्रकार से है— "इह खलु माया में पिया मे, भाया मे, भगिणी मे" माता मेरी है, पिता मेरा है, भाई मेरा है, भगिनी मेरी है "जाव" यावत्पद से "भज्जामे, पुत्ता मे, धूआ में णत्ता मे, सुण्हा में सहिसयण" इन पदों के संग्रह के अनुसार भार्या मेरी है, पुत्र मेरे हैं, दुहिता-पुत्री मेरी है, नाती मेरा है, स्नुषा पुत्र वधू मेरी है, सखि-मित्र और स्वजन मेरे हैं, "सखिस्वजन" इस पद का "संगंथ संथुया मे" पद के साथ सम्बन्ध है. इससे सस्तुत-वार २ परिचित हुए सखि स्वजन पितृव्य पुत्र आदि ये सब मेरे हैं. तथा—"हिरण्यं मे" हिरण्य मेरा है, "सुवर्णं मे" सुवर्ण मेरा है "जाव" यावत्पद से गृहीत "कंस मे, दूस मे, धणं मे" इन पदों के अनुसार कासा मेरा है, दूष्य-वन्न-तम्बू आदि मेरे हैं, तथा "उवागरणं मे" उपकरण पूर्वोक्त वस्तुओं से अतिरिक्त सामग्री मेरी है । प्रकारान्तर से पुनः द्रव्य की अपेक्षा प्रतिबन्ध का कथन "अहवा समासवो सचित्ते वा अचित्ते वा मीसएवा दव्वजाए से त्त तस्स ण भवइ" अथवा द्रव्य की अपेक्षा

करने 'द्वन्द्ववो' द्रव्यने आश्रित करीने के प्रतिबन्ध थाय छे तेषु स्वइप आ प्रभाणु छे. 'इह खलु माया मे, पिया मे, भाया मे, भगिणी मे, माता भारी छे, पिता भारा छे, भाई भारा छे, भडेन भारी छे यावत् पदथी 'भज्जा मे, पुत्ता मे, धूआ मे, णत्ता मे, सुण्हा मे, सहिसयण' आ पदोना संग्रह सुवर्ण भार्याभारी छे पुत्र भारा छे, दुहिता-पुत्री भारी छे, नाती भारा छे 'सखिस्वजनः' आ पदोना 'संगंथ संथुया मे' आ पदनी साथे सखि छे, जोनाथी संस्तुत वारवार परिचित थयेल सखि-स्वजन पितृव्य काका पुत्र वगेरे अथा भारा छे. तेभन् 'हिरण्यं मे' हिरण्य थाही भाउं छे 'सुवर्णं मे' सुवर्ण-सोतुं भाउं छे 'जाव' यावत् पदथी गृह्यवस्तुथयेल 'कंस मे दूस मे धण मे' आ पदो प्रभाणु कांसु भाउं छे, दूष्य-वन्नो ताथू

हिरण्यादौ, 'मीसए वा' मिश्रके-हिरण्याद्यलङ्कृतद्विपदादौ 'द्वज्जाए' द्रव्यजाते-उक्ता-
तिरिक्तद्रव्यसमूहे भवति 'वा' शब्दाः समुच्चयद्योतकाः 'सेव' स-पूर्वोक्तः प्रतिबन्धः
'तस्स' तस्य-प्रभोः एव-ममेदमिति भावपूर्वकं 'ण भवइ' न भवति न आसीदिति ।
'खित्तओ' क्षेत्रतः प्रतिबन्धः 'गामे वा' ग्रामे वा 'णयरे वा' नगरेवा 'अरण्णेवा' अरण्येवा
'खेत्तेवा' क्षेत्रे-केदारे वा, 'खले वा' खले-धान्यमर्दनस्थाने वा 'गेहे वा' गेहे वा 'अंगणे
वा' अङ्गणेवा भवति, 'तस्स' तस्य प्रभोः क्षेत्रविषयः प्रतिबन्धः 'एवं' एवं-ममेदमिति
भावपूर्वकं 'न भवइ' न भवति-नासीदिति । तथा 'कालओ' कालतः प्रतिबन्धः 'थोवे
वा' स्तोके-सप्त प्राणात्मके 'लवेवा' लवे-सप्त स्तोकप्रमाणे वा, 'मुहुत्ते वा' मुहूर्त्ते-
सप्तसप्ततिलवमाने वा 'अहोरत्ते वा' अहोरात्रे-त्रिंशन्मुहूर्त्तमाने वा, 'पक्खे वा' पक्षे-पञ्च-
दशाहोरात्रात्मके वा, 'मासे वा' मासे-पक्षद्वयप्रमाणे वा, 'उऊए वा' ऋतौ मासद्वय-

प्रतिबन्ध सक्षेप से सचित्त द्विपद चतुष्पद आदि में अचित्त हिरण्य सुवर्णादि पुद्गलो में और मिश्रक
हिरण्य आदि से अलङ्कृतद्विपद आदि द्रव्यसमूह में होता है, यहां "वा" शब्द समुच्चयद्योतक
है. ऐसा यह प्रतिबन्ध ममत्वभाव उन प्रभु के नहीं था । "खित्तओ गामे वा णयरे वा अरण्णे
वा खेत्ते वा खले वा गेहे वा अंगणे वा एव तस्स ण भवइ" क्षेत्र की अपेक्षा प्रतिबन्ध ग्रामों
में, नगरों में, जंगलों में, खेतों में खलिहानों में, गृह में, अथवा अङ्गण में ममत्वभाव उन प्रभु
को नहीं था, "कालओ थोवे वा लवे वा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊए
वा अयणे वा सवच्छरे वा अन्नयरे वा दीहकाले पडिबधे, एवं तस्स न भवइ" तथा काल
की अपेक्षा प्रतिबन्ध ममत्वभाव उन प्रभु को एक स्तोक-सातप्राणात्मकसमयरूप काल में, एक
लव-सात स्तोक प्रमाणात्मक समयरूप काल में एक मुहूर्त्त में ७७ लवप्रमाण समय में, एक
अहोरात्र में तीस मुहूर्त्तप्रमाण समय में, एक पक्ष में १५ दिनरात्रप्रमाणसमय में, एक मास

वगेरे भारां छे, तेमञ्ज 'उच्चरणं मे' उपकरण-पूर्वोक्तवस्तुओधी णाडी रडेही सामग्री भारी
छे प्रकारान्तरधी पुनःद्रव्यनी अपेक्षाओ प्रतिषधत्तुं कथन-अहवा' समासओ सचित्ते वा
अचित्ते वा मीसए वा द्वज्जाए से त तस्स ण भवइ' अथवा द्रव्यनी अपेक्षा ओ प्रतिषध
सक्षेपधी सचित्त-द्विपद विगेरे अचित्त-हिरण्य सुवर्णादिमा अने मिश्रक हिरण्य विगेरे
धी शब्दागारेभ हाथि विगेरे द्रव्यसमूहमां होय छे. अही 'वा' शब्द समुच्चय द्योतक छे.
ओवो आ प्रतिबन्ध-ममत्वभाव-ते प्रभुमा न छेतो 'खित्तओ गामेवा नयरे वा अरण्णे वा
खेत्ते वा खले वा गेहे वा अंगणे वा एवं तस्स न भवइ' क्षेत्रनी अपेक्षाओ आभोमां, नगरोमां,
वनेमा, जेतरोमां, अणओमा धरोमा अगरे आंगणुमां ते प्रभुने प्रतिबन्ध न छेतो.
तेमञ्ज 'कालओ थोवे वा लवेवा मुहुत्ते वा अहोरत्ते वा पक्खे वा मासे वा उऊए वा
अयणे वा सवच्छरेवा अन्नयरे वा दीहकाले पडिबधे एवं तस्स न भवइ' कालनी अपेक्षाओ
ममत्वभाव ते प्रभुने ओकेस्तोक-सात प्राणात्मक कालमा, नछेतो ओके लव सात स्तोक प्रमा-
णात्मक समय ३५ कालमा, ओके मुहूर्त्त ७७ लव प्रमाणात्मक समयमां, ओके अहोरात्रमां-
तीस-मुहूर्त्त प्रमाणात्मक समयमां, ओके पक्षमा-१५ दिन-रात्र प्रमाणात्मक समयमां, ओके

प्रमाणे वा, 'अयणे वा' अयने-ऋतुत्रयप्रमाणे वा, 'संवच्छरे वा' सवत्सरे-अयनद्वयप्रमाणे वा 'अन्नयरे वा' अन्यतरस्मिन् वा 'दीर्घनाले' दीर्घनाले-वर्षशतादौ 'पड्विधे' प्रतिबन्धो भवति, अय प्रतिबन्धः 'तस्स' तस्य प्रभोः 'एवं एव-ममेदमिति भावपूर्वकं 'ण भवइ' न भवति-नासीदिति । तथा-'भावओ' भावतः प्रतिबन्धः 'कोहे वा' क्रोधे वा 'जाव' यावत्पदेन-'माणे वा मायाएवा' माने वा मायायां वा-इति संग्राहम्, तथा 'लोहे वा' लोभे वा 'भए वा' भये वा, 'हासेवा' हासे वा भवति, स प्रतिबन्धः 'तस्स' तस्य प्रभोः 'एवं' एवं-ममेदमिति भावपूर्वकं 'ण भवइ' न भवति-नासीदिति । 'से' स प्रतिबन्ध-रहितः 'णं' खलु 'भगवं' भगवान् 'वासावासवज्जं' वर्षावासवर्जं-वर्षासु-वर्षाकाले वासः-वसनं निवासस्तद्वर्जं-वर्षाकालं विहायेत्यर्थः शेषयोः 'हेमंतगिम्हासु' हेमन्तग्रीष्मयोः ऋत्वोः 'गामे एगराइए' ग्रामे एकरात्रिकः-एकरात्रपर्यन्त निवासकृत् 'णयरे पंचराइए' नगरे पाञ्चरात्रिको 'ववगयहाससोग अरइ भय परित्तासे' व्यपगतहासगोकारतिभयपरित्रासाः, व्यपगताः-दूरीभूता हासशोकारतिभयपरित्रासाः-हासः-हास्यं, शोकः प्रसिद्धः,

में पक्षद्वय प्रमाण समय में, एक ऋतु में मास द्वयप्रमाण समय में एक अयन में ऋतुत्रयप्रमाण समय में, एक सवत्सर में-अयनद्वय प्रमाण समय में अथवा और भी किसी लम्बे समयवाले वर्षशतादि रूपकाल में नहीं था, प्रतिबन्धशब्द का अर्थ ममत्वभाव है, ऐसा ममत्वभाव प्रभु को न द्रव्य में था, न क्षेत्र में था, और न काल में था, "भावओ-कोहे वा जाव लोहे वा भए वा हासे वा एव तस्स ण भवइ" इसी तरह भाव की अपेक्षा प्रतिबन्ध उन प्रभु को न क्रोध में था न "यावत्पद" प्राह्य मान में था, न माया में था, और न लोभ में था और न हास्य में ही था इस तरह प्रतिबन्ध रहित हुए वे प्रभु सिर्फ "से ण भगव वासा वासवज्जं" वर्षा-काल के समय को छोड़कर शेष "हेमंत गिम्हासु" हेमन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में "गामे एगराइए" ग्राम में एक रात्रपर्यन्त निवास करते थे, "णयरे पंचराइए" नगर में पांच रात्रि ये प्रभु पूर्वोक्त रूप से "ववगयहाससोगअरइभयपरित्तासे णिम्ममे णिरहंकारे", हास्य, शोक, अरति—

भासमा-जेपक्ष वाणा समयमा ज्येष्ठ ऋतुमा- जे मास प्रमाण समयमां, ज्येष्ठ अयनमा-त्रभु ऋतु प्रमाण समयमा, ज्येष्ठ संवत्सरमा-जे अयन प्रमाणवाणा समयमां अथवा भीज डोई पक्ष दीर्घ समयवाणा वर्ष शतादि रूप कालमा प्रतिबन्ध न हतो प्रतिबन्ध शब्दने अर्थ ममत्वभाव छे ज्येष्ठो ममत्वभाव प्रभुने द्रव्यमा क्षेत्रमा के कालमा न हतो 'भावओ कोहे वा जाव लोहे वा भए वा हासे वा एव तस्स ण भवइ' आ प्रमाणे जे भावनी अपेक्षाजे ते प्रभुने प्रतिबन्ध-ममत्वभाव- न क्रोधमा हतो, न यावत्पद प्राह्य-मानमां हतो न मायामा हतो न लोभमां हतो तेभ्य न हास्यमा हतो आ प्रमाणे प्रतिबन्ध रहित थयेला ते प्रभु इहेत 'से णंवं वासावासवज्जं' वर्षाकालमा समयने जाह करीने जाहीमा 'हेमंतगिम्हासु' हेमन्त अने ग्रीष्म ऋतुमा 'गामे एगराइए' आभमां ज्येष्ठ रात्र पथ 'त निवास करता हता 'णयरे पंचराइए' नगरमा पाथ रात्र पर्यन्त ज्येष्ठ प्रभु पूर्वोक्त प्रमाणे निवास करता हता 'ववगय हाससोगअरइभयपरित्तासे णिम्ममे निरहंकारे' हास्य, शोक, अरति मानसिक उद्वेग,

अरतिः—मनस उद्वेगः, भयं प्रसिद्धं, परित्राराः—आकस्मिक भय च यस्मात् स तथाभूतः, पुनः 'णिम्ममे' निर्ममः=ममत्वरहितः, 'गिरहकारः' अहङ्कार वर्जितः; अतएव 'लहुभूप' लघुभूतः=ऊर्ध्वगतिकः तत एव 'अगंथे' अग्रन्थः बाह्याभ्यन्तरग्रन्थिरहितः 'वासीतच्छणे' वासीतक्षणे वास्या=सूत्रधारोपकरणविशेषेण यत्तक्षणं—न्वच उत्पन्नन तत्रापि 'अदुष्टे' अद्विष्टः—द्वेषवर्जितः तथा 'चंदणाणुलेवणे' चन्दनाणुलेपने 'अरत्ते' अरक्तः—रागरहितः, कश्चिद् भगवतः शरीरत्वचं वास्या तक्ष्णुयात्, कश्चित् शरीरं चन्दनेनाणुलेपयेत्, भगवान् द्वेपराधराहित्येन सम इतिभावः तथा 'लेहुम्मि' लेष्टी=लोष्टे 'कंचणम्मिय' काञ्चने—सुवर्णे च 'समे' समः=लोभराहित्येन तुल्यः, 'इहलोए' इहलोक—मनुष्यलोक 'परलोए' परलोक—देवभवादी च 'अपडिबद्धे' अप्रतिबद्धः—मुखाराहित्येन अभिलाषरहितः, तथा 'जीवियमरणे' जीवितमरणे जीवितं च मरणं च जीवितमरणं तत्र 'निरवकंखे' निरवकाङ्क्षः—आकाङ्क्षा रहितः इन्द्रादिकृत सत्कारादिप्राप्तौ जीवितविषये

मानसिक उद्वेग, भय, और परित्राम आकस्मिक भय इनसे सर्वथा रहित बन चुके थे, निर्मम ममता रहित हो चुके थे, निरहंकार अहंकार से वर्जित हो चुके थे, अतएव ये "लहुभूप" इतने अधिक हल्के उर्ध्वगतिक बन चुके थे. कि इन्हें बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह को आवश्यकता ने अपने मे नहीं बाधा, "अगंथे वासी" अत निर्ग्रन्थ अवस्थायुक्त हुए इन प्रभु को अपने ऊपर "तच्छणे अदुष्टे" कुल्हाड़ाचलाने वाले के प्रति भी किसी प्रकार का द्वेष भाव नहीं था और अपने ऊपर "चंदणाणुलेवणे अरत्ते" चन्दन का लेप करने वाले के प्रति थोड़ा सा भी राग भाव नहीं था, किन्तु दोनों प्रकार के प्राणियों पर इन के हृदय में समभाव था रागद्वेष से रहित परिणाम था, "लेहुम्मि कंचणम्मिय समे" ये लोष्ट और काञ्चन में भेद बुद्धि से रहित हो चुके थे, "इहलोए" इसलोक मे मनुष्यलोक में एवं "परलोए परलोक देवभव आदि में "अपडिबद्धे" इनको अभिलाषा बिलकुल ध्वस्त हो चुकी थी, "जीवियमरणे निरवकंखे" जीवन और मरण में ये आकाक्षा रहित बन चुके थे, इन्द्रादि द्वारा सत्कार की प्राप्ति होने

अथ अने परित्राम-आकस्मिक अथवा सर्वथा रहितभनी गया होता निर्मम-ममताथी रहित थर्ष गया होता निरहंकार-अहंकार रहित थर्ष गया होता अथवा श्री "लहुभूप" अटला अथा हल्का-ऊर्ध्वगतिक-थर्ष गया होता के तेमने बाह्य अने आभ्यतर परिग्रहणी आवश्यकताअये पोतानामा अद्व कथा नही, 'अगंथे वासी' तेथी निर्ग्रन्थ अवस्था वाणा भनेला ते प्रभुने पोतानी उपर 'तच्छणे अदुष्टे' कुल्हाड़ाचलावनार पर पणु डोर्ष नतने। द्वेष भाव न इतो अने पोताना पर 'चंदणाणुलेवणे अरत्ते' अन्दनने। द्वेष करना। अत्ये जरा सरभो पणु राग भाव न इतो। परतु अने नतना प्राणीअो। तरक् तेमना हृदयमा सम भाव इतो-राग द्वेष-विहीन थर्ष गया होता 'लेहुम्मि कंचणम्मिय समे' तेअो टेषाणा अने सोनामा भेद बुद्धि विनाना थर्ष गया होता इहलोए' आ लोकमा-मनुष्य लोकमा अने 'परलोए' परलोक-देव भाव आदिमा अपडिबद्धे' अेभनी अभिलाषा पूषुत नाश पाभी इती जीवियमरणे निरवकंखे अवन अने मरणमा अेअो आकाक्षा रहित थर्ष गया होता,

दुस्सहपरीषहोपसर्गप्राप्तौ मरणविषये च वाञ्छारहितः इत्यर्थः, तथा 'ससारपारगामी' संसारपागामी-ससारस्य चतुर्विधगतिरूपस्य पारं गन्तुं शौक्यमस्येति तथा, निर्वाण गमनशील इत्यर्थः तथा 'कम्मसंगणिग्घायणट्टाए' कर्मसङ्गनिर्घातनार्थाय-कर्मणां यः सङ्गः-जीवप्रदेशैः सह अनादिका सम्बन्धस्तस्य निर्घातनार्थाय-निनाशाय 'अभ्युट्टिए' अभ्युत्थितः-समुद्युक्तः सन् 'विहरइ' विहरतीति ॥४० ४१॥

मूलम्-तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वास सहस्से विइक्कंते समाणे पुरिमतालस्स नयरस्स वहियो सगडमुहंसि उज्जाणंसि णिग्गोहवरपायवस्स अहे ज्ञाणंतसियाए वट्टमाणस्स फग्गुणबहुलस्स इक्कारसीए पुव्वण्हकालसमए अट्टमेणं भत्तेणं अपाणएणं उत्तरासाढाणक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अणुत्तरेणं णाणेणं जाव वरित्तेणं अणुत्तरेणं तवेणं बलेणं वीरिएणं आलएणं विहारेणं भावणाए खंत्तीए गुत्तीए मुत्तीए तुट्टीए अज्जवेणं महवेणं लाघवेणं सुचरियसोवचिय फल निव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए

पर इन्हें "मैं और अधिक जिन्दा रहूँ तो इस प्रकार के सत्कार प्राप्त करता रहूँ" ऐसी अभिलाषा स्वप्न में भी नहीं होती थी, तथा दुस्सह परीषह और उपसर्ग की प्राप्ति होने पर इनके मन में ऐसी भावना भी नहीं उठती थी कि "मैं बहुत ही शीघ्र मर जाऊ तो इन आपत्तियों से मेरा पिण्ड छूटे" प्रत्युत जीवन और मरण में इनमें समभावना थी, क्योंकि ये "ससार पारगामी" चतुर्विधगतिरूप जन्मजरामरण की व्याधिवाले इस ससार से पार जाने की कामना वाले थे अर्थात् समस्त कर्मों के क्षय से जायमान ऐकान्तिक आत्म शुद्धि रूप मुक्ति के पथिक थे, "कम्मसग णिग्घायणट्टाए अभ्युट्टिए विहरइ" इसी कारण कर्मों के अनादिकाळ से जीवप्रदेशों के साथ हुए सम्बन्ध को सर्वथा निर्मूल करने के लिये ये कटिबद्ध हुए थे ॥४१॥

उन्नादि वज्जे देवताज्जे वडे सत्कार पाभी 'हु' वधारे आयुध्ण लोअवीने आ प्रभाण्णे कथम सत्कार भेणवतो २हु' जेवी अत्थिआधा स्वप्नभां पण्ण जेभने थती नडती तथा दुस्सह परीषह अने उपसर्गानी प्राप्ति थता जेभना मनभां जेवी भावना पण्ण उत्पन्न थती न डती डे 'हु' जहदी भरण्ण पाभू तो' आ सव' आपत्तिज्जेथी भने सुक्ति भणे "आ प्रभाण्णे लवन अने भरण्ण प्रत्ये जेभना मनभां स'पूण्ण'त सभभावना-उत्पन्न थथ' थुकी डती डेभडे जेज्जे 'संसारपारगामी' संसारथी-चतुर्विधगति इप जन्मजरामरणनी व्याधिवाणा आ संसारथी पार जवानी कामनावाणा डता. अर्थात् समस्त कर्मोना क्षयथी जायमान जेकान्तिक आत्म शुद्धि इप सुक्तिना जेज्जे पथिक डता 'कम्मसंगणिग्घायणट्टाए अभ्युट्टिए विहरइ' जेथी जे कर्मोना अनादिकाळथी लव प्रदेशोनी साथे थथेल स'अ'धने स'पूण्ण'तः निर्मूल करवा भाडे जेज्जे जेकहम कटिबद्ध थथ' गया डता ॥४१॥

निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवस्नाणदंसणे समुप्पण्णे जिणे जाए के वली सव्वन्नु सव्वदरिंसी स णेरइयतिरियनरामरस्स लौगस्स पज्जवे जाणइ पासइ, तं जहा आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं भुत्तं कडं पडिसे- वियं आवीकम्मं रहो कम्मं तं कालं मणवयकाए जोगे एवमादी जीवाणवि सव्वभावे अजीवाणवि सव्वभावे मोक्खमग्गस्स विसुद्ध- तराए भावे जाणमाणे पासमाणे एस खलु मोक्खे मग्गे मम अण्णेसिं च जीवाणं हियसुहणिससेयसकरे सव्वदुक्खविमोक्ख परमसुहसमाणे भविस्सइ ॥सू० ४२॥

छाया—तरया खलु भगवत पतेन विहारेण विहरमाणस्य एकस्मिन् वर्षसहस्रे व्यतिक्रान्ते सति पुरिमतालस्य नगरस्य बहिः शकटमुखे उद्याने न्यग्रोधपादपस्याधोध्यानान्तरिकायां वर्तमानस्य फाल्गुनबहुलस्य एकादश्यां पूर्वाह्निककालसमये अष्टमेन भक्तेन अपानकेन उत्तराषाढानक्षत्रे योगमुपागते, अनुत्तरेण ज्ञानेन यावत् चारित्रेण, अनुत्तरेण तपसा- बलेन वीर्येण आलयेन विहारेण भावनया क्षान्त्या गुप्त्या मुक्त्या तुष्ट्या आर्जवेण मार्दवेन लाघवेन सुचरितसोपचितफलनिर्वाणमार्गेण आत्मानं भावयतोऽनन्तम् अनुत्तरं निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम्, जिनो जातः केवली सर्वज्ञः सर्वदर्शी स नैरधिकतिर्यङ्गरामस्य लोकस्य पर्यवान् जानाति पश्यति, तद्यथा—आगतिं गतिं स्थितिं च्यवनम् उपपातं भुक्तं कृतं प्रतिसेवितं आविष्कर्म रह कर्म, तस्मिन् तस्मिन् काले मनोवाक्कायान् योगान् एवमादीन् जीवानामपि सर्वभावान् अजीवानामपि सर्वभावान् मोक्षमार्गस्य विशुद्धतरकान् भावान् जानन् पश्यन्, एष खलु मोक्षमार्गो ममान्येषां च जीवानां हितसुखनिःश्रेयसकरः सर्वदुःखविमोक्षण परमसुखसमापन्नो भविष्यति ॥सू० ४२॥

टीका—‘तस्स ण’ इत्यादि । ‘तस्स णं’ तस्य—ऋषभस्य खलु ‘भगवंतस्स’ भगवतः एषणं’ एतेन—अनन्तरोक्तेन ‘विहारेणं’ विहारेण ‘विहरमाणस्स’ विहरमाणस्य—विचरतः ‘एगे वाससहस्से’ एकस्मिन् वर्षसहस्रे ‘विइक्कंते’ व्यतिक्रान्ते सति एक सहस्रवर्षेषु व्यतीतेषु ‘समाणे’ सत्सु ‘पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया’ पुरिमतालस्य नगरस्य बहिः पुरिम-

‘तस्स णं भगवंतस्स एषणं विहारेण विहरमाणस्स’ इत्यादि ।

टोकार्थ—‘तस्स णं भगवंतस्स एषणं विहारेण विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कंते समाणे’ इस तरह को परिणति में एकतान होकर विहार करते करते जब प्रसु का एक हजार वर्ष

‘तस्स ण भगवंतस्स एषणं विहारेणं’ इत्यादि

टीकार्थ—‘तस्स णं भगवंतस्स एषणं विहारेणं विहरमाणस्स एगे वाससहस्से विइक्कंते समाणे’ आ आतनी परिशुतीना अकेतान थर्धने विहार करता करता प्रशुने न्यादे अके हजार वर्षो पूरा थर्ध गथा त्यादे ‘पुरिमतालस्स नयरस्स बहिया सगडमुहंसि

तालनगराद् बहिःस्थिते 'सगडमुहंसि उज्जाणंसि णिग्गोहवरपायवस्स' शकटमुखे उद्याने न्यग्रोधवरपादपस्य वटवृक्षस्य 'अहे' अत्रः अत्रोभागे 'झाणतरियाए' ध्यानान्तरिकायाम् अन्तरस्य विच्छेदस्य वरणम् अन्तरिका. अथना अन्तरमेव आन्तर्यं तस्य त्रीन्वविचक्षा-याम् आन्तरी, सैव आन्तरिका ध्यानस्य आन्तरिका ध्यानान्तरिका पृथक्त्ववितर्क सविचारम् १, एकत्ववितर्कमविचारम् २, सूक्ष्मक्रियमप्रतिपाति ३, व्युच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ४, इति चतुश्चरणात्मरस्य शुक्लध्यानस्य आप्चरणद्वयध्यानानन्तरं चरमचरणद्वयस्य या अप्राप्तिः सा ध्यानान्तरिका, योगनिरोधरूपस्य तृतीयचतुर्चरणध्यागस्य चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनि केवलनि समवाचदानीं तस्य भगवतस्तदप्राप्तिर्वोध्या, एवं भूता या ध्यानान्तरिका तस्यां 'वट्टमाणस्स' वर्तमानस्य, 'फग्गुणवहुलस्स' फाल्गुणवहुलस्य फाल्गुणकृष्णपक्षस्य 'एक्कारसीए' एकादश्याम् एकादशी तिथौ 'पुव्वण्हकालसमए' पूर्वाह्नकालसमये अह्नः पूर्वो भागः पूर्वाह्नः, तद्रूपो यः कालसमयस्तस्मिन्. 'अपाणएणं अपानदेन निर्जलेन 'अट्टमेण भत्तेण' अष्टमेन भक्तेन युक्तस्येति गम्य तथा 'उत्तरा साढाणक्खत्तेण' उत्तरापादानक्षत्रे चन्द्रेण सह 'जोगमुवागएणं' योगम् उपागते प्राप्ते सति, अणुत्तरेणं' अनुत्तरेण क्षपत्रश्रेणि समारूढत्वेन केवलसामीप्यतः परमविशुद्धिप्राप्तत्वेन

का समय समाप्त हो चुका "पुरिमतालस्स नयरस्म बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि णिग्गोहवरपाय वस्स अहे झाणंतरियाए वट्टमाणस्स" तब पुरिमताल नगरके बाहर के शकट मुख नामके उद्यान में न्यग्रोध वृक्ष के नीचे ध्यानान्तरिका में विराजमान—पृथक्त्ववितर्क सविचार १, एकत्ववितर्क अविचार २, सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ३ और व्युच्छिन्नक्रियानिवृत्ति ४ भेदवाले शुक्लध्यान के आदि के दो भेदों के अनन्तर अन्त के दो भेदों की अप्राप्ति का नाम ध्यानान्तरिका है—क्योंकि इनकी प्राप्ति चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली को होती है, भगवान् के उस काल में इनकी अप्राप्ति थी, ऐसी इस ध्यानान्तरिका में स्थित "फग्गुण बहुलस्म इक्कारसीए पुव्वण्हकालसमए अट्टमेणं भत्तेण अपाणएणं" फाल्गुण कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन पूर्वाह्न काल के समय में अष्टम भक्त से जब प्रसु युक्त थे "उत्तरासाढा णक्खत्तेण जोगमुवागएणं" तब चन्द्र के साथ उत्तराषाढा नक्षत्र के योग में "अणुत्तरेणं णाणेणं जाव चरित्तेणं" अनुत्तरज्ञान से क्षपत्र श्रेणि पर आरूढ़ हुए जीव

णिग्गोहवरपायवस्स अहे झाणंतरियाए वट्टमाणस्स' पुरिमताल नगरनी अडार शकट मुख नामना उद्यानमा न्यग्रोध वृक्षनी नीचे ध्यानान्तरिकां विराजमानं वर्धं गथा. १ पृथक्त्ववितर्क सविचार, २ एकत्ववितर्क अविचार, ३ सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति, ४ व्युच्छिन्न क्रिया निवृत्ति ये रीते चार प्रकारना भेदवाणा शुक्लध्यानना पडेवाना ये भेदो नी पछी अन्तना ये भेदोनी अप्राप्तिनु' नाम ध्यानान्तरिका छे. केभके-तेनी प्राप्ति योडमा शुष्णस्थानमा रहेला केवलानेन थाय छे. भगवानने तेकाणे येनी अप्राप्ति हुटी येथी ते ध्यानान्तरिकांमा रहेला भगवान् 'फग्गुणवहुलस्स इक्कारसीए पुव्वण्हकालसमए अट्टमेणं भत्तेणं अपाणएणं' फाल्गुण महीनाना कृष्णपक्षनी एकादशीना द्विसे पूर्वाह्नकालना समयमां अष्टमभक्तथी युक्त हुंता त्थारे 'उत्तरासाढा णक्खत्तेण जोगमुवागएणं' -

च नास्ति उत्तरं प्रधानं छात्रस्थिकं ज्ञानं यस्मात्तदनुत्तरं तेन तथाभूतेन 'णाणेणं' ज्ञानेन, 'जाव' यावत्पदेन दर्शनेनेति संग्राह्यम्, अनुत्तरेणेत्यस्य तु दर्शनेत्याग्भ्य विहारेणेत्यन्त-पदेषु सर्वत्रान्वयः, ततश्च अनुत्तरेण क्षायिकभावापन्नेन दर्शनेन सम्यक्त्वेन, अनुत्तरेण क्षायिकभावापन्नेन 'चरित्तेणं' चारित्र्येण विरतिपरिणामेन, तथा 'अणुत्तरेण अनुत्तरेण सर्वोत्कृष्टेन 'तवेणं' तपसा द्वादशविधानशनेन, अनुत्तरेण 'बलेण' बलेन शारीरिक शक्त्या, अनुत्तरेण 'वीरिणं' वीर्येण सामर्थ्येन, अनुत्तरेण आलएणं' आलयेन निर्दोष वसत्या, अनुत्तरेण 'विहारेणं' विहारेण गोचर्यादौ दोषपरिहारपूर्वकं विचरणेन, अनुत्तरया 'भावणाए' भावनाया पदार्थानित्यत्वादिभावनाया, अनुत्तरया 'खत्तीए' क्षान्त्या क्रोध-निरोधेन, अनुत्तरया 'गुत्तीए' गुप्त्या मनोगुप्त्यादिरूपया, अनुत्तरया 'मुत्तीए' मुक्त्या निर्लोभतया अनुत्तरया 'तुट्टीए' तुष्ट्या सन्तोषेण, अनुत्तरेण 'अज्जवेणं' आर्जवेन मायानि-रोधेन अनुत्तरेण महवेण मार्दवेन माननिरोधेन अनुत्तरेण 'लाघवेण' लाघवेन क्रियानैपुण्येन

को ही नियम से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि उस समय जीव १२वें गुणस्थान के अन्त में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन कर्मोंका—समूल विनाश कर चुका होता है, अतः केवलज्ञान के वह ज्ञान बिलकुल समीप पहुँच जाता है, छद्मस्थावस्था का ज्ञान इस क्षायिक ज्ञान के समक्ष अविशुद्ध होता है और यह केवलज्ञान—क्षायिक ज्ञान—परम विशुद्धिवाला होता है—ऐसे केवलज्ञान के समीप पहुँचे हुए ज्ञान से, यावत्पदग्राह्य—अनुत्तर दर्शन से, अनुत्तर चारित्र से "अणुत्तरेणं तवेणं" तथा सर्वोत्कृष्ट तप से "बलेणं—वीरिणं आलएणं विहारेणं" अनुत्तर बल से, अनुत्तर निर्दोष वसति से, अनुत्तर विहार से—गोचरी आदि में दोष परिहार पूर्वक विचरण से, "भावणाए" अनुत्तर भावना से—पदार्थों सम्बन्धी अनित्यत्वादि विचारधारा से, "खत्तीए" अनुत्तर क्षान्ति से—क्रोध के निरोध से, "गुत्तीए" अनुत्तर मनोगुप्त्यादि रूप गुप्ति से, "मुत्तीए" अनुत्तर निर्लोभतारूप मुक्ति से, "तुट्टीए" अनुत्तर सतोष से, "अज्जवेणं" अनुत्तर आर्जव—माया

उत्तरापादा नक्षत्रना योगमा 'अणुत्तरेणं णाणेणं चरित्तेणं' अनुत्तरज्ञानथी क्षपकश्रेणी पर आइठ थथेला एवने नियमथी केवल ज्ञाननी प्राप्ति थाय छे केभके—ते सभये एवे १२ मां शुष्मस्थानना अ तमां ज्ञानावरणु, दर्शनावरणु अने अ तराय ओ कर्मोना सभूण विनाश करी युकेल होय छे तेथी केवणज्ञाननी णिलकल नलक ते पडोथी नय छे, छद्मस्थावस्थानुं ज्ञान आ क्षायिक ज्ञान पासे अविशुद्ध होय छे. अने ते—केवण ज्ञान—क्षायिकज्ञान परमविशुद्ध होय छे. एवा केवणज्ञाननी समीप पडोथेला ज्ञानथी यावत्पदग्राह्य—अनुत्तरदर्शनथी अनुत्तर चारित्रथी 'अणुत्तरेणं तवेणं' तथा सर्वोत्कृष्ट तपथी, 'बलेण वीरिणं आलएणं विहारेणं' अनुत्तर णथी, अनुत्तर निर्दोष वसतिथी, अनुत्तर—विहारथी गोचरी विचारेमां दोष निवृत्तिपूर्वक विचरणथी 'भावणाए' अनुत्तरभावनाथी पदार्थों सभंधी अनित्यत्वादि विचारधाराथी 'खत्तीए' अनुत्तरक्षान्तिथी—क्रोधना निरोधथी 'गुत्तीए' अनुत्तर मनोगुप्त्यादिरूप गुप्तिथी 'मुत्तीए' अनुत्तर निर्लोभताइय मुक्तिथी 'तुट्टीए' अनुत्तर सतोषथी 'अज्जवेणं' अनुत्तर आर्जव—माया निरोधथी, 'महवेणं' अनुत्तरमान-

अनुत्तरेण 'सुचरिय सोवचियफलनिष्वाणमग्गेण' सुचरितसोपचितफलनिर्वाणमार्गेण-सुचरितस्य सदाचरणस्य पुण्यस्य यत् सोपचितम्-उपचितेन उपचयेन सहितं सोपचितं पुष्टं यत्फलं परिणामो निर्वाणमार्गः असाधारणरत्नत्रयरूपस्तेन तथाभूतेन च 'अप्पाणं भावेमाणस्स' आत्मान भावयतः वासयतः 'अणंते' अनन्तम् निरवसानं विनाश-रहितत्वात्, 'अणुत्तरे' अनुत्तर सर्वोत्कृष्टं, तत् उत्कृष्टस्याभावात्, 'णिन्वाघाए' निर्व्या-घातं व्याघातवर्जित-कटकुड्यादिभिरप्रतिहतत्वात्, 'णिरावरणे' निरावरणम्-आवरण-वर्जितं क्षायिकत्वात्, 'कसिणे' कृत्स्नं-समग्रं सकलार्थग्राहकत्वात्, 'पणिपुण्णे' प्रति-पूर्णं-सर्वतः पूर्णं चन्द्रवत् सकलस्त्रांशयुक्तत्वात् इति अनन्तेत्यादिविशेषणविशिष्टं 'केवल

निरोध से, 'मद्वेणं' अनुत्तर माननिरोधरूप मार्दव से, "लाघवेणं" अनुत्तर लाघव से-क्रिया में नैपुण्य से और "सुचरिय सोवचियफलनिष्वाणमग्गेणं" अनुत्तर सुचरित सोपचितफलनिर्वाण मार्ग से-सुचरित-सदा-चरणरूप पुण्य का जो सोपचित-पुष्ट फल-निर्वाणमार्ग जो कि असाधारण रत्नत्रयरूप है उससे "अप्पाणं भावे माणस्स" अपने आपको भावित करते हुए "अणंते अणुत्तरे निष्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदसणे समुप्पण्णे" अनन्त, अनुत्तर, निर्व्या-घात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, केवलवरज्ञान दर्शन उत्पन्न हो गया, केवलवरज्ञानदर्शन के इन विशेषणों का साराश ऐसा है कि यह विनाश रहित होता है इसलिये अनन्त कहा गया है, सर्वोत्कृष्ट होता है इसलिये अनुत्तर कहा गया है, क्योंकि इससे उत्कृष्ट और ज्ञान दर्शन नहीं होता है। यह कट कुड्य आदि आवरणों द्वारा अप्रतिहत होता है इसलिये इसे व्याघातवर्जित कहा गया है, क्षायिकरूप होने से यह आवरण से वर्जित होता है इसलिये निरावरण कहा गया है, सकलार्थ का ग्राहक होता है-मूर्त पदार्थ और अमूर्त पदार्थ इन सबको यह ग्रहण करने-वाला होता है-इसलिये इसे कृत्स्न कहा गया है, सब तरफ से यह पूर्ण होता है-चन्द्र की तरह

निरोधरूप मार्दवथी 'लाघवेणं' अनुत्तर लाघवथी-क्रियाभा निपुण्यताथी अने 'सुच रियसोवचियफलनिष्वाणमग्गेणं' अनुत्तर सुचरित सोपचित फल निर्वाण मार्गथी सुच रित-सदाचरणरूप पुण्यत्तु ने सोपचिति-पुष्ट-फल-निर्वाण-मार्ग के ने असाधारण रत्नत्रयरूप छे, तेनाथी 'अप्पाणं भावेमाणस्स' पोतेपोताने भावित करता 'अणंते अणुत्तरे निष्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पण्णे' अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, केवलवर ज्ञानदर्शन उत्पन्न तथा केवलवर ज्ञान दर्शनना उपयुक्त विशेषणो साराश आ प्रमाणे छे के ने विनाश रहित होय छे अथी अनन्त कहेवामा आवेल छे, सर्वोत्कृष्ट होय छे अथी अनुत्तर कहेवामा आवेल छे, केमके अनाथी उत्कृष्ट ज्ञान-दर्शननी शक्यता न होती नथी ते कट, कुड्य वगैरे आवरणो द्वारा अप्रतिहत होय छे, अथी आने व्याघात वर्जित कहेवामा आवेल छे क्षायिकरूप होवार्थी आ आवरणथी वर्जित होय छे अथी ने निरावरण कहेवामा आवेल छे, ने सकलार्थना ग्राहक होय छे, मूर्त पदार्थ अने अमूर्त पदार्थ ने सर्वेने ने ग्रहण करना होय छे, अथी आने कृत्स्न कहेवामा आवेल छे अने चारे तरकी थी होय छे, चन्द्रनी नेम आ

वरणाणदंसणे' केवलवरज्ञानदर्शन-केवलम् अद्वितीयत्वात् असहायं वरं श्रेष्ठं ज्ञानं-सामान्यविशेषोभयात्मके ज्ञेयवस्तुनि विशेषावधारणरूपं, दर्शनं च सामान्यावधारणरूप-निर्विशेषं विशेषाणां ग्रहो दर्शनम्' इति वचनात्, तत्तथाभूतं 'समुत्पण्णे' समुत्पन्नम् समु-सम्यक् क्षायिकत्वेनावरणदेशस्याप्यभावाद्दुत्पन्नं मादुर्भूतमिति । अत्रेदं बोध्यम् यथा दूरात् विभिन्नजातीयवृक्षसमूहं तत्तज्जातीयवृक्षत्वेनानवधारितमवलोकयतो जनस्य सामान्येन यो वृक्षमात्रग्रहः स दर्शनमुच्यते, यत्पुनरासन्नप्रदेशात्तमेव विभिन्नजातीयं

यह सकल अपने अशो से युक्त होता है, इसलिये इसे प्रतिपूर्ण कहा गया है, ज्ञान को अद्वितीय होने से केवलपद से और अन्यज्ञानादिको की सहायता से रहित होने से वर-श्रेष्ठ कहा गया है, इस तरह का केवलज्ञान उन प्रभु के उत्पन्न हुआ, ज्ञान जो होता है वह सामान्य विशेषधर्मवि-शिष्ट वस्तु का विशेषरूप से निश्चय करनेवाला होता है और दर्शन जो होता है वह सामान्यरूप से ही वस्तु का जानने वाला होता है, "निर्विशेष विशेषाणां ग्रहो दर्शनम्" ऐसा कथन है जिस समय केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होते हैं उस समय आत्मा में आवरण का एक अंश भी मौजूद नहीं होता है; आवरण का सर्वथा अभाव हो जाता है । यहां इस प्रकार समझना चाहिये जब कोई मनुष्य दूर से विभिन्न जातिवाले वृक्षों के समूह को देखता है तब उसे यह प्रतीत नहीं होता है कि इस वृक्ष समूह में अमुक अमुक जाति के अमुक अमुक वर्ण आदि के वृक्ष हैं वहां तो सामान्यरूप से ही वृक्षत्व जाति का ज्ञान होता है, अतः ऐसा जो यह ज्ञान है इसी का नाम दर्शन है और जब वही मनुष्य पास में पहुँच जाता है तो उसे यह आमलकी है, यह ख-दिर है, यह पलाश है इत्यादि रूप से जो ज्ञान होता है वह विशेषग्राही ज्ञान कहा जाता है यही ज्ञान और दर्शन में भेद है ।

चोताना सर्वं अशोथी युक्तं होय छे, ओथी आने प्रतिपूर्णं कहेवाभां आवेल छे. ज्ञान अद्वितीय होवा भदल, केवल पदथी आने अन्य-ज्ञानादिकोनी सहायताथी रहित होवा भदल वर-श्रेष्ठ कहेवाभां आवेल छे आ-जातनुं केवल ज्ञान ते प्रभुने उत्पन्न थयुं ज्ञान जे होय छे ते सामान्य विशेष धर्म विशिष्ट वस्तुने विशेष रूपथी निश्चय करनारु होय छे. आने दर्शन होय छे ते सामान्य रूपथी ज वस्तुने जाणुनारु होय छे "निर्विशेष विशेषाणां ग्रहो दर्शनम्" आवुं कथन छे. जे समये केवल ज्ञान, केवल दर्शन उत्पन्न थाय छे, ते समये आत्मा आवरणुने ओक अश पणु विद्यमान होतो नथी ओटलेके आवरणुने सर्वथा अभाव थर्छ जाय छे अही आ प्रमाणे समजवु जेथं ओ के न्यारे केथं मनुष्य इरथी विभिन्न जातिवाला वृक्षाना समूहने जुओ छे त्यारे तेने ओवी प्रतीति थती नथी के आ वृक्ष समूहमा अमुक जातिना के अमुक-अमुक वर्ण आदिना वृक्षो छे त्यां तो जेनारने सामान्य रूपथी वृक्षत्व जातिनु ज ज्ञान थाय छे ओथी आवुं जे ज्ञान छे, ते ज दर्शन कहेवाय छे आने न्यारे ते ज जेनारी व्यक्ति पासे पहेंचे छे त्यारे तेने आ आमलकी छे, आ अदिर छे, आ पलाश छे वगेरे रूपथी ज्ञान थाय छे. ओ ज्ञान विशेषग्राही ज्ञान कहेवाय छे ज्ञान आने दर्शनमां आटले ज तक्षवत छे

वृक्षसमूहमुत्पत्तपतस्तत्तज्जातीयविशिष्टवृक्षग्रहः स ज्ञानमुच्यते । अयमेव ज्ञानदर्शनयो-
विशेषः । ननु ज्ञानदर्शनयोर्विशेषसामान्यग्राहित्वेन भेदे केवलज्ञानदर्शनयोः प्रत्येकं सक-
लार्थग्राहकता न स्यात्, युज्यते च एकैरस्य सकलार्थग्राहकत्वम् ? इति चेत्, आह—ज्ञान-
क्षणे केवलिनो ज्ञान सकलविशेषान् गृह्णन् प्रकाशते इति सकलविशेषरूपं सामान्यमपि
प्रतिभातमेव । दर्शनक्षणे तु दर्शनं सामान्यं गृह्णन् प्रकाशते इति सकलविशेषा अपि
प्रतिभाता एव, विशेषरहितस्य सामान्यस्य ग्रहणासंभवात् । अत एव 'निर्विशेषं विशे-
षाणां ग्रहो दर्शनम्' इत्युच्यते । अतो—ज्ञानदर्शनयोः प्रत्येकसकलार्थग्राहित्वं न विरु-
ध्यते । परमयं विशेषः ज्ञाने प्राधान्येन विशेषाः गौणत्वेन सामान्यं, दर्शने तु प्राधान्येन
सामान्यं गौणत्वेन विशेषा इति । अथ समुत्पन्नकेवलज्ञानी भगवान् यथा जातस्तदाह—
'जिणे जाए' इत्यादि । समुत्पन्नकेवलज्ञानी स भगवान् 'जिणे' जिने रागादिजेता

शंका—ज्ञान और दर्शन में विशेषग्राहकता और सामान्यग्राहकता की अपेक्षा से यदि
भेद माना जाता है तो फिर केवली के ज्ञान और दर्शन में प्रत्येक में सकलार्थ ग्राहकता नहीं बन
सकती है परन्तु वहाँ तो सकलार्थ ग्राहकता मानी गई है : तो इस शंका का उत्तर ऐसा है कि
केवली का ज्ञान ज्ञानक्षण में सकल विशेषों को ग्रहण करता हुआ ही प्रकाशित होता है सो उस
समय सकल विशेषरूप जो सामान्य है वह अप्रकाशित नहीं रहता है वह भी प्रकाशित हो जाता
है, इसी तरह जब दर्शन क्षण में दर्शन सामान्यका प्रकाशन करता है—तब सकलविशेष भी प्रका-
शित हो जाते हैं क्योंकि विशेषरहित सामान्य का ग्रहण होना असंभव है । इसलिये "निर्विशेष
विशेषाणां ग्रहो दर्शनम्" ऐसा कहा गया है । इसलिये ज्ञानदर्शन इन दोनों में से प्रत्येक में
सब लार्थग्राहकता विरुद्ध नहीं होती है । परन्तु विशेषता यही है कि ज्ञान में विशेष को प्रधानता
रहती है और सामान्य की गौणता रहती है और दर्शन में सामान्य की प्रधानता रहती है और
विशेष की गौणता रहती है । भगवान् को जब केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया—तब प्रभु "जिणे

शंका—ज्ञान અને दर्शनમાં વિશેષ ગ્રાહકતા અને સામાન્ય ગ્રાહકતાની અપેક્ષાથી બે
બેદ માનવામાં આવે તો પછી કેવલીના જ્ઞાન અને દર્શનમાં પ્રત્યેકમાં સકલાર્થ ગ્રાહકતા સિદ્ધ
થઈ શકતી નથી પરંતુ ત્યાં તો સકલાર્થ ગ્રાહકતા માનવામાં આવી છે ? તો આ શંકાના
જવાબમાં આમ કહી શકાય કે કેવલીનું જ્ઞાન ક્ષણમાં સકલ વિશેષણોને ગ્રહણ કરતાં કરતાં
પ્રકાશિત થાય છે, એટલા માટે તે સમયે સકલ વિશેષ રૂપ જે સામાન્ય છે તે અપ્રકાશિત
રહેતું નથી પણ તે પ્રકાશિત થઈ જાય છે આ પ્રમાણે જ્યારે દર્શનક્ષણમાં દર્શન સામાન્યનું
પ્રકાશન કરે છે ત્યારે સકલ વિશેષ પણ પ્રકાશિત થઈ જાય છે, કેમકે વિશેષ રહિત સામા-
ન્યનું ગ્રહણ થવું અસંભવ છે એથીજ "નિર્વિશેષ વિશેષાણાં ગ્રહો દર્શનમ્" આમ કહેવામાં
આવ્યું છે. એથી જ્ઞાનદર્શન એ બંનેમાંથી દરેકમાં સકલાર્થ ગ્રાહકતા વિરુદ્ધ હોતી
નથી. પણ વિશેષતા આ પ્રમાણે છે કે જ્ઞાનમાં વિશેષની પ્રધાનતા રહે છે. અને સામાન્યની
ગૌણતા રહે છે અને દર્શનમાં સામાન્યની પ્રધાનતા રહે છે અને વિશેષની ગૌણતા રહે છે.
ભગવાનને જ્યારે કેવળ જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું ત્યારે પ્રભુ "જિને જાણ" બિન—એટલે કે

‘जाए’ जातः, ततः स ‘केवली’ केवली श्रुतज्ञानादि सहायवर्जितज्ञानवान्, अतएव ‘सव्वन्नु’ सर्वज्ञः विशेषांशप्राधान्येन सर्वपदार्थज्ञाता, ‘सव्वदरिसी’ सर्वदर्शी सामान्यांश-प्राधान्येन सर्वपदार्थज्ञाता सन् स णेरइयतिरियनरामरस्स’ स नैरयिकतिर्यङ्गरामरस्य-नैरयिकाश्च नराश्च अमराश्चेति-नैरयिकतिर्यङ्गरामराः, तः सहितो यः स तस्य तथाभूतस्य ‘लोगस्स’ लोकस्य पञ्चास्तिकायात्मकक्षेत्रखण्डस्य, उपलक्षणात् अलो-कस्य नमः प्रदेशमात्रात्मकक्षेत्रविशेषस्यापि पञ्जवे’ पर्यायान् क्रमभाविस्वरूपविशेषान् ‘जाणइ’ जानाति केवळज्ञानेन, ‘पासइ’ पश्यति केवलदर्शनेनेति । तानेव पर्यायानाह-‘तं जहा’ इत्यादिना । ‘तं जहा’ तद्यथा ‘आगइ’ आगतिं नैरयिकदेवगतिभ्या च्यु-त्वा तिर्यग्योनौ मनुष्ययोनौ वा आगमनम् ‘गइ’ गतिं मनुष्यगतौ तिर्यगगतौ वा मृत्वा देवगतौ नारकगतौ वा गमनं, ‘ठिइ’ स्थितिं कायस्थितिं भवस्थितिं च ‘चवणं’ च्य वन देवलोकान्तरकाच्च च्युतिं, ‘उववायं’ उपपात देवगतौ नारकगतौ वा जन्म, ‘भुत्तं’

जाए’ जिन-रागादिकों के जेता हो गये, ‘केवली’ केवली हो गये-श्रुतज्ञान आदि की सहायता से वर्जित ज्ञान वाले बन गये, अतएव “सव्वन्नु” सर्वज्ञ-विशेषागों का प्रधानता को लेकर ममस्त पदार्थों के ज्ञाता बन गये, “सव्वदरिसी” सर्वदर्शी-सामान्यांश की प्रधानता लेकर सर्व पदार्थों के ज्ञाता दृष्टा बन गये, ‘स णेरइयतिरियनरामरस्स लोगस्स पञ्जवे जाणइ पासइ’ इस तरह वे प्रभु नैरयिक, तिर्यञ्च, नर, और देव इन से युक्त इस पञ्चास्तिकायात्मक लोक के और उपलक्षण से नमः प्रदेशमात्रात्मक अलोक के ज्ञाता दृष्टा बन गये अर्थात् लोक और अलोक की जो क्रम-भावी पर्यायें हैं उन सब के हस्तामलकवत् देखने जानने वाले हो गये, “तं जहा-आगइ गइ ठिइ चवणं उववाय भुत्तं कइं पडिसेवियं-आवीकम्म रहोकम्म” नैरयिक और देवगति से चव-कर मनुष्य अथवा तिर्यञ्च गति में आगमन के मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति में से मरकर देवगति अथवा नरकगति में गमन के कायस्थिति के, देवलोक से और नरकलोक से चवन के, देवगति में

रागादिकोंना विजेता-थई गया, केवली थई गया-श्रुतज्ञान वगेरेनी सहायताथी वज्जित ज्ञानवाणा थई गया जेथी तेजेथी ‘सव्वन्नु’ सर्वज्ञ-विशेषाशीनी प्रधानता लईने ममस्त पदार्थोंना ज्ञाता भनी गया ‘सव्वदरिसी’ सर्वदर्शी-सामान्यांशनी प्रधानता लईने सर्व पदार्थोंना ज्ञाता-दृष्टा-भनी गया ‘स णेरइयतिरियनरामरस्स लोगस्स पञ्जवे जाणइ पासइ’ आ प्रमाणे ते प्रभु नैरयिक तिर्यञ्च, नर अने देव जेभनाथी युक्त आ पञ्चास्ति-कायात्मक एव लोकना अने उपलक्ष्यथी-नमः प्रदेशमात्रात्मक अलोकना ज्ञाता-दृष्टा भनी गया अर्थात् लोक अने अलोकना जे कभलावी पर्यायि छे, ते सर्वना हस्तामलकवत् जेनारा अने ज्ञाता थई गया ‘तं जहा-आगइ गइ ठिइ चवण उववाय भुत्तं कइं पडिसेवियं भावि कम्म रहोकम्म’ नैरयिक अने देवगतिथी अथीने मनुष्य अथवा तिर्यञ्च गतिमा आग-मनना, मनुष्य गति अने तिर्यञ्च गतिमाथी मृत्यु पापीने देवगति अथवा नरकगतिमा गमनना, कायस्थितिना, देवलोकथी अने नरकलोकथी अवनना देवगतिमा अने नरकगतिमा गमनना, बुद्धता, जेका-तमा अशितना, कृतना-जेकांतमा कृत थीयादि कर्मना, प्रति सेवि-

भुक्तम् एकान्तेऽशितं, 'कडं' कृतं एकान्ते कृत चौर्यादि, 'पडिसेविय' प्रतिसेवितं मैथुनादि, 'आवीकम्मं' आविष्कर्म प्रकृतकृतम्, 'रहोक्कम्म' रहःकर्म एकान्तकृतमिति एतान् आगत्यादीन् पर्यायान् स भगवानृषभदेवः केवलज्ञानदर्शनेन जानाति पश्यतीत्यर्थः । तथा 'तं तं कालं' इत्यत्र प्राकृतत्वात्सप्तम्यर्थे द्वितीया, ततश्च 'त त काल मणवयकाए जोगे' तस्मिन् तस्मिन् काले मनोवाक्कायान् योगान् ऋणत्रयरूपान् 'एवमादी' एवमादीन् एवम्प्रकारान् 'जीवाणवि' जीवनामपि 'सव्वभावे' सर्वभावान् समस्तान् जीवधर्मान् 'अजीवाणवि सव्वभावे' अजीवानामपि सर्वभावान् समस्तान् जीवधर्मान् रूपादीन् जानन् पश्यन् विहरति, तथा 'मोक्खमग्गस्स' मोक्षमार्गस्य रत्नत्रयरूपस्य 'विसुद्धतराए' विशुद्धतरकान् अतिशयविशुद्धियुक्तान् कर्मक्षयहेतुभूतान् 'भावे' भावान् ज्ञानाचारादीन् 'जाणमाणे पासमाणे' जानन् पश्यन् तथा 'एस' एषः वक्ष्यमाणप्रकारको 'मोक्खमग्गे' मोक्षमार्गः रत्नत्रयात्मकः 'खलु'खलु निश्चयेन 'मम' मम उपदेशकस्य ऋषभस्य 'अण्णेसि च' अन्येषा मदतिरिक्तानां च 'जीवाणं' जीवानां

और नरकगति में जन्मके, भुक्तके—एकान्तमे आगत के, कृतके—एकान्त में कृत चौर्यादि कर्म के, प्रतिसेवित के—मैथुनादि कर्म के, आविष्कर्म के—प्रकृत में किये गये कर्म के, और रह कर्म के—एकान्त में आचरित कर्म के इस प्रकार से इन गति आगति आदि रूप पर्यायों के वे भगवान् साक्षात् ज्ञाता दृष्टा बन गये इसी तरह वे भगवान् "तं त काल मणवयकाए जोगे एवमादी जीवाणवि सव्वभावे अजीवाणवि सव्वभावे" समस्त जीवों के मन वचन काय रूप योगों के तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले और भी समस्त भावों के और अजीवों के समस्तभावों के—रूपादि अजीव धर्मों के—ज्ञाता दृष्टा बन गये "मोक्खमग्गस्स विसुद्धतराए भावे जाणमाणे पासमाणे" तथा—रत्नत्रयरूप मुक्तिमार्ग के अतिशय विशुद्धियुक्त—सकल कर्मों के क्षय में कारणभूत—भावोंके ज्ञानाचार आदिकों के ज्ञाता दृष्टा होते हुए "एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसि च जीवाण हिय सुहणिससेयसकरे सव्वदुक्ख विमोक्खणे परमसुह समाणणे भविस्सइ" यह रत्नत्रयात्मक मुक्ति मार्ग निश्चय से मुझ उपदेशक ऋषभ को एव मुझ से अतिरिक्त अन्य भव्य जीवों को हित सुख

तना—मैथुनादि कर्मना, आविष्कर्मना, प्रकृतमा करवाभा आवेश कर्मना अने रहः कर्मना—एकान्तमा आचरित कर्मना आ प्रमाणे आ गति—आगति आदि रूप पर्यायाना ते भगवान् साक्षात् ज्ञाता दृष्टा बनी गया आ रीते ते भगवान् 'तं तं कालं मणवयकाए जोगे एवमादी जीवाण वि सव्वभावे अजीवाण वि सव्वभावे' समस्त जीवोंना मन—वचन, कायरूपयोगाना तेभ्य तेमनाथी स भद्ध षीण पणु समस्त भावोंना अने अण्णवोना समस्त भावोंना इयादि अण्णव—धर्मोंना—ज्ञाता—दृष्टा बनी गया 'मोक्खमग्गस्स विसुद्धतराए भावे जाणमाणे' तेभ्य रत्नत्रय रूप मुक्ति मार्गना अतिशय विशुद्धियुक्त—सकल कर्मोंना क्षयमा कारणभूत—भावोंना—ज्ञाना आर आदिना ज्ञाता—दृष्टा धर्मे 'एस खलु मोक्खमग्गे मम अण्णेसि च जीवाण हियसुहणिससेयसकरे सव्वदुक्खविमोक्खणे परमसुहसमाणणे भविस्सइ' आ रत्नत्रयात्मक मुक्तिमार्ग निश्चय पूर्वक अने उपदेशक ऋषभनेतेभ्य भारा सिवाय षीण

'हियसुहृणिस्सेयसकरे' हितसुखनिःश्रेयसकरः, हितः परिणामशुभफलजनकः मुखम् आत्यन्तिकदुःखनिवृत्तिः, निश्रेयस कल्याणकरं सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षः, एतेषां करः कारक अत एव 'सव्वदुखविमोक्षणणे' सर्वदुःखविमोक्षणः सर्वदुःखेभ्यः शारीरमानससकलदुःखेभ्यो जीवान् विमोक्षयति दूरी करोतीति तथा शारीरमानससकलदुःखापनेतेत्यर्थः तत एव 'परमसुहसमाणणे' परमसुखसमापनः परमम् विनाशाभावात् सर्वोत्कृष्टं यत् सुखं सातं तत् सम् ग् याथातथ्येन आपयति प्रापयति ददाति यः स तथा परम सुखप्रदाता च 'भविस्सइ' भविष्यतीति जानन पश्यंश्च विहरतीनि । मूले हि 'सव्वन्नु सव्वदरिसी' इत्युक्तम् । तत्रोक्तं विचिकित्सा जायते केवलज्ञान केवलदर्शन च केवलज्ञान केवलदर्शनावरणयोः क्षीणमोहान्त्यसमय एव क्षीणत्वेन युगपदुत्पद्यते । ततश्च यथा 'सव्वन्नु सव्वदरिसी' इति ज्ञान प्राथम्यक्रमस्तथा 'सव्वदरिसीसव्वन्नु' इति दर्शनप्राथम्यक्रमोऽपि भवितुमर्हति, समानन्यायात् ' इति । अत्राह—'सव्वाभो लद्धीओ सागारोवउत्त-

नि श्रेयसकर है परिणाम मे शुभ है इसलिये हितरूप है, आत्यन्तिक दुःख की निवृत्तिरूप है इस लिए सुखकर है, और सकलकर्मों का क्षय करानेवाला है इसलिए नि श्रेयसकर है, इसी से सकल जीवों के शारीरिक, मानसिक समस्त दुःखों की निवृत्ति होती है इसी कारण यह सर्वदुःखविमोक्षणरूप कहा गया है और इसी से जीवों को अनन्त सर्वोत्कृष्ट जो सुख है उसका यह प्रदाता है पूर्व में हुआ है और आगे भी होगा, इस प्रकार से ज्ञाता दृष्टा बन गये यहां पर "सव्वन्नु सव्वदरिसी" जो ऐसा सूत्रपाठ कहा गया है उसमें ऐसी विचिकित्सा सदेह हो सकती है कि केवल ज्ञान और केवल दर्शन, केवलज्ञानावरण और केवल दर्शनावरण के क्षीणमोह नामके गुणस्थान के अन्त्य समय में ही क्षीण हो जाने से युगपत् उत्पन्न होते हैं तो फिर जिस प्रकार से सर्वज्ञ सर्व दर्शी ऐसे कथन में ज्ञान की प्रथमता का क्रम कहा गया होता है उसी प्रकार "सव्वदरिसी सव्वन्नु" ऐसा भी दर्शन की प्रथमता का क्रम हो सकता है ? इसके लिए समाधान ऐसा है

बन्ध लुपेना माटे हित-सुभ निःश्रेयस्कर छे, परिष्ठाभमा शुभ छे, जेथी हित इप छे. आत्यन्तिक दुःखनी निवृत्ति इप छे, जेथी सुभकर छे अने सकल कर्मेनि क्षय करनारे छे, जेथी निःश्रेयस्कर छे, जेथी न सकल लुपेना शारीरिक-मानसिक समस्त दुःखेनी निवृत्त थाय छे, जेटदा माटे न आ सर्वदुःखविमोक्षण इप कडेवामा आवेल छे अने जेथी न लुपेना अनन्त सर्वोत्कृष्ट के सुभ छे, ते सुभने आपनार जे न छे, भूतकालमां पण सुभ आपनार जे न भागं हती अने भविष्यमा पण सुभ आपनार जे न भागं थसे, आ प्रभाणे ज्ञाता-दृष्टा जनी गया अही "सव्वण्णू सव्वदरिसो" के आ जतनेो सूत्रपाठ कडेवामा आवेल छे, तेथी जेवी विचिकित्सा (स डेह) थर्ध शके छे के केवण ज्ञान अने केवण दर्शन केवण ज्ञानावरण अने केवण दर्शनावरणना क्षीण मोह नामना शुभस्थानना अन्त्य-समयमा न क्षीण थर्ध जेवाथी युगपत् उत्पन्न थाय छे, ते पछी जे प्रभाणे सर्वज्ञ सर्वदर्शी जेवा कथनमा ज्ञाननी प्रथमतानो कम कडेवामा आवेल छे ते प्रभाणे न "सव्वदरिसी सव्वन्नु" आ जतनेो पण दर्शननी प्रथमतानो कम संभवी शके छे ? आहुं समाधान आ

સ્સ ઉવવજ્જતિ ણો ઋણાગારોવઉત્તસ્સ' છાયા-સર્વા લબ્ધયઃ સાકારોપયુક્તસ્ય ઉપ-
પદ્યન્તે નો અનાકારોપયુક્તસ્ય-ઇત્યાગમપ્રમાણાત્ ઉત્પત્તિક્રમેણ સર્વદા જિનાનાં પ્રથમે
સમયે જ્ઞાન દ્વિતીયે સમયે દર્શનં ભવતીતિ સૂચયિતુ 'સબ્વન્નૂ સબ્વદરિસી' અયમેવ ક્રમઃ
સર્વત્ર સ્વીક્રિયતે । ઇતિ છદ્ધસ્થાનાં તુ પ્રથમે સમયે દર્શનં દ્વિતીયે સમયે જ્ઞાનમુત્પ-
દ્યતે ઇત્યપિ પ્રસદ્ગતો વિજ્ઞેયમ્ । 'પરમસુહસમાણણો' ઇત્યસ્ય 'પરમસુહસમાપન' છાયા
સમાપેઃ સમાણઃ ઇતિ પ્રાકૃતસૂત્રેણ સમાપેઃ સમાણાદેશાદ્ વોધ્યેતિ ॥૬૨॥

મૂલમ્-તણ્ણ સે ભગવં સમણાણં નિગ્ગંથાણય નિગ્ગંથીણય મહવ્વ-
યાઇં સભાવણગાઇં છવ્વ જીવણિકાણ ધમ્મં દેસેમાણે વિહરઇ, તં જહા
પુઠ્ઠવિકાઇણ ભાવણામેગં પંચ મહવ્વયાઇં સભાવણગાઇં માણિયવ્વાઇં તિ
ઉસમસ્સ ણં અરહઓ કોસલિયસ્સ ચરુગાસી ગણા ગણહરા હોત્થા ।
ઉસમસ્સ ણં અરહઓ કોસલિયસ્સ ઉસમસેણપામોક્કલાઓ તુ સીઇં
સમણસાહસ્સીઓ ઉક્કોસિયા સમણસંપયા હોત્થા । ઉસમસ્સ ણં અરહઓ
કોસલિયસ્સ વંભીસુંદરીપામોક્કલાઓ તિણિણ અજ્જિયા સયસાહસ્સીઓ
ઉક્કોસિયા અજ્જિયા સંપયા હોત્થા । ઉસમસ્સ ણં અરહઓ કોસલિયસ્સ

કિ “સબ્વાઓ લઢ્ઢીઓ સાગારોવઉત્તસ્સ ઉવવજ્જંતિ” જિતની મો લબ્ધિયા હોતો હૈં વે સાકારોપ-
યોગ મેં ઉપયુક્ત જીવ કે હોતી હૈ, “ણો ઋણાગારોવઉત્તસ્સ” અનાકાર ઉપયોગ વાલે કે નહીં
હોતી હૈં, એસા આગમ કા પ્રમાણ હૈ । ઉત્પત્તિક્રમ કી અપેક્ષા સર્વદા જિન પ્રમુ કો પ્રથમ સમય
મેં જ્ઞાન ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઓર દ્વિતીય સમય મેં દર્શન હોતા હૈ, ઇસ વાત કો સૂચિત કરને કે લિપ
“સબ્વન્નૂ સબ્વદરિસી” એસા હી સૂત્રપાઠ રહ્યા ગયા હૈં યહો ક્રમ સર્વત્ર હૈ । હા, જો જીવ છદ્ધ-
સ્થ હૈં ઉનેકે તો પ્રથમ સમય મેં દર્શન ઓર દ્વિતીય સમય મેં જ્ઞાન હોતા હૈં એસાં જાનના ચાહિપ
“પરમ સુહ સમાણણો” મેં સમાપિ કે સ્થાન મેં પ્રાકૃત સૂત્ર સે સમાણાદેશ હો જાતો હૈં તવ
“સમાણણ” એસા બન જાતો હૈ ॥૬૨॥

પ્રમાણે છે કે “સબ્વાઓ લઢ્ઢીઓ સાગારોવઉત્તસ્સ ઉવવજ્જંતિ” જેટલી લબ્ધિઓ
થાય છે તે સાકારોપયોગમાં ઉપયુક્ત હોવને થાય છે, “ણો ઋણાગારો સ્સ” અનાકાર
ઉપયોગવાળાને હોતી નથી એવું આગમતુ પ્રમાણ છે ઉત્પત્તિ ક્રમની અપેક્ષા સર્વદા જિન
પ્રભુના પ્રથમ સમયમાં જ્ઞાન ઉત્પન્ન થાય છે અને દ્વિતીય સમયમાં દર્શન હોય છે એ
વાતને સૂચિત કરવા માટે “સબ્વન્નૂ સબ્વદરિસી” એવો જ સૂત્રપાઠ રાખવામાં આવેલ
છે. એ જ ક્રમ સર્વત્ર છે પણ તે એવો છદ્ધસ્થ છે, તેમને તો પ્રથમ સમયમાં દર્શન અને
દ્વિતીય સમયમાં જ્ઞાન હોય છે આમ બધાં જ બોધ એ પરતુ બધારે “પરમસુહ સમાણણો”
માં સમાપિના સ્થાનમાં પ્રાકૃત સૂત્રથી સમાણાદેશ થઈ બાય છે ત્યારે “સ ” એવું
રૂપ થઈ બાય છે ॥૬૨॥

सेज्जंसपामोक्त्वाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साह-
 स्सीओ उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था । उसभस्स णं अरहवो
 कोसलियस्स सुभद्दापामोक्त्वाओ पंच समणोवासिया सयसाहस्सीओ
 चउपण्णं च सहरसा उक्कोसिया समणोवासिया संपया होत्था । उसभस्स
 णं अरहओ कोसलियरस अजिणाणं जिणसंकासाणं सब्बक्खरसंनिवाईणं
 जिणोविव अवितहं वागस्माणणं चत्तारि चउदसपुव्वीसहस्सा अद्धड्ढमा
 या सया उक्कोमिया चउदसपुव्वी संपया होत्था । उसभस्स णं अरहओ
 कोसलियस्स णव ओहिणाणिसहस्सा उक्कोसिया ओहिणाणिसंपया
 होत्था । उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं जिणसहस्सा, वीसं
 वेउव्वियसहस्सा छच्चसया उक्कोसिया जिणसंपया वेउव्वियसंपया य
 होत्था, बारसबिउलमइसहस्सा छच्चसया पण्णासा, बारसवाइसंपया
 छच्चसया पण्णासा । उसभरस णं अरहओ कोसलियस्स गइकल्लाणाणं
 ठिइकल्लाणाणं आगमेसि भद्दाणं बावीसं अणुत्तरोववाइयाणं सहस्सा णव
 य सया उक्कोसिया अ त्तरोववाइयसंपया होत्था । उसभस्स णं अरहओ
 कोसलियस्स वीसं समणसहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जियासहस्सा
 सिद्धा सट्ठि अंतेवासिसहस्सा सिद्धा । अरहओ णं उसभस्स बहवे अंते-
 वासी अणगारा भगवंतो अप्पेइया मासपरियाया जहा उववाइए सब्बओ
 अणगारवण्णओ जाव उद्धं जोणू अहोसिरा झाणकोट्टोवगया संजमेणं
 तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति । अरहओ णं उसभस्स दुविहा अंत-
 करभूमी होत्था तं जहा-जुगंतकरभूमी य परियाअंतकरभूमीय । जुगंतक-
 रभूमी जाव असंखेज्जाइं पुरिसजुगाइं परियाअंतकरभूमी अंतो हुत्तपरि-
 याए अंतमकासी ॥सू० ४३॥

छाया-तत खलु स भगवान् भ्रमणानां निर्ग्रन्थानां च निर्ग्रन्थीनां च पञ्च महा-
 व्रतानि समावनकानि षट् च जीवनिकायान् धर्मं देशयन् विहरति, तद्यथा-पृथिवीकायि-
 कान् भावनागमेन पञ्च महाव्रतानि समावनकानि भणितव्यानीति । ऋषभस्य खलु अर्हतः
 कौशलिकस्य चतुरशीतिर्गणा गणधरा अभवन्, ऋषभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य ऋषभ-

सेनप्रमुखाश्चतुरशीतिः णसाहस्य. उत्कृष्टा श्रमणसम्पदोऽभवन् । ऋषभस्य खलु अर्हत कौशलिकस्य ब्राह्मीसुन्दरीप्रमुखाः तिस्रः आर्यिकाशतसाहस्यः उत्कृष्टा आर्यिका सम्पदोऽभवन् । ऋषभस्य खलु अर्हत कौशलिकस्य श्रेयांसप्रमुखास्तिस्रः श्रमणोपासक शतसाहस्यः पञ्च च साहस्यः उत्कृष्टाः श्रमणोपासकसम्पदोऽभवन् । ऋषभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य सुभद्राप्रमुखाः पञ्च श्रमणोपासिकाशतसाहस्यश्चतुष्पञ्चाशच्च सहस्राणि उत्कृष्टा. श्रमणोपासिकासम्पदोऽभवन् । ऋषभस्य खलु अर्हत कौशलिकस्य अजिनानां जिनसंकाशानां सर्वाक्षरसन्निपातिनां जिनस्येव अचितथं व्यागृणतां चत्वारिचतुर्दशपूर्वी-सहस्राणि अर्द्धाष्टमानि च शतानि उत्कृष्टाश्चतुर्दशपूर्वीसम्पदोऽभवन् । ऋषभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य नव अवधिज्ञानिसहस्राणि उत्कृष्टा अवधिज्ञानिसम्पदोऽभवन् । ऋषभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य विंशतिजिनसहस्राणि, विंशतिर्वैकुण्ठिकसहस्राणि पद् च शतानि उत्कृष्टा जिनसम्पदो वैकुण्ठिकसम्पदश्चाभवन्, द्वादशविपुलमतिसहस्राणि पद् च शतानि पञ्चाशत्, द्वादशवादिसहस्राणि पद् च शतानि पञ्चाशत् । ऋषभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य गतिकल्याणानां स्थितिकल्याणानाम् आगमिष्यद्दृष्टाणां द्वाविंशतिरनुत्तरोप-पातिकानां सहस्राणि नव च शतानि उत्कृष्टा अनुत्तरोपपातिकसम्पदोऽभवन् । ऋषभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य विंशतिः श्रमणसहस्राणि सिद्धानि, चत्वारिंशत् आर्यिकासह-स्राणि सिद्धानि, पष्टिरन्तेवासिसहस्राणि सिद्धानि । अर्हत खलु ऋषभस्य वहवः अन्तै-षासिन अनगारा भगवतः अप्येकके मासपर्याया, यथा औपपातिके सर्वकः अणगार वर्णको यावत् ऊर्ध्वजानव अधःशिरसो ध्यानकोष्ठोपगताः संयमेन तपसा आत्मानं भाव-यन्तो विहरन्ति । अर्हतः खलु ऋषभस्य द्विविधाऽन्तकरभूमिरभवत्, तद्यथा युगान्तकर-भूमि पर्यायान्तकरभूमिश्च । युगान्तकरभूमिर्यावदसंख्येयानि पुरुषयुगानि, पर्यायान्तकरभूमिः अन्तर्मुहूर्त्तपर्याये अन्तमकार्षीत् ॥सू० ४३॥

टीका—‘तए ण’ इत्यादि । ‘तएणं से भगवं’ ततः खलु स भगवान् ऋषभः ‘समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य’ श्रमणानां निर्ग्रन्थानां च निर्ग्रन्थीनां च श्रमणेभ्य निर्ग्रन्थेभ्यः श्रमणीभ्यो निर्ग्रन्थीभ्यश्च ‘सभावणगाइ’ सभावनकानि. ईर्यादिसमिति भाव-नासहितानि ‘पंचमहव्वयाइ’ पञ्चमहाव्रतानि प्राणातिपातविरमणादि परिग्रहविरमणा-न्तानि पञ्चसंख्यकानि महाव्रतानि, तथा ‘छच्च जीवणिकाए’ षट् च जीवनिकायान्=

“तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य” इत्यादि ।

टीकार्थ—‘तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य’ इसके बाद उन श्रमण भगवान् ऋषभ देव ने श्रमण निर्ग्रन्थों को एवं निर्ग्रन्थियों को “पंच महव्वयाइ” सभावणगाइ” पांच २ भावनाओं सहित पांच महाव्रतों का “छच्च जीवणिकाए धम्म देसेमाणे विहरइ, तं

‘तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य, इत्यादि ।

टीकार्थ—‘तए णं से भगवं समणाणं निग्गंथाण य निग्गंथीण य’ त्थार भाइ ते श्रमणु भगवान् ऋषभदेवे श्रमणु निर्ग्रंथेने तेमण् निर्ग्रंथीणेने ‘पंचमहव्वयाइ सभाव-णगाइ’ पांच पांच भावनाओं सहित पांच महाव्रतोंने। ‘छच्च जीवणिकाए धम्म देसे माणे

पृथिव्यादिव्रसान्तान् जीवनिकायान् इत्येवं रूप 'धम्मं देसेमाणे' धर्मं देशयन्=उपदि-
 शन्=विहरति । अत्र धर्मं प्रस्तावे यत् पङ्जीवनिकायाः प्रोक्ताः तद् जीवनिकायपरि-
 ज्ञानं विना सम्यग् महाव्रतपालनं न संभवतीति सूचयितुमितिबोध्यम् । ननु प्राणाति-
 पातविरमणलक्षणे प्रथमे महाव्रतेऽयं नियमः संभवति, परन्तु मृषावादादिषु चतुर्षु महा-
 व्रतेषु नायं नियमः संभवेत्, भाषाविभागादि परिज्ञानाधीनत्वात्तेषाम् ? इति चेत्,
 आह-महावनस्य पर्यन्तवर्तिवृक्षवद् मृषावादविरमणादीनि चत्वारि महाव्रतान्यपि प्राणाति-

जहा-पुढविकाइए भावणागमेण पंच महव्वयाइ सभावणागाड' माणियव्वइत्ति" पट्टविधजीवनिकायो
 का-पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय-इनका उपदेश
 दिया, अहिंसा महाव्रत, सत्यमहाव्रत, अचौर्यमहाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत और परिग्रहत्याग महाव्रत
 ये पांच महाव्रत है इन महाव्रतों की अराधना के लिये प्रत्येक महाव्रत की ५-५ भावनाएँ
 कही गई है, इनका वर्णन अन्य आगमों में है, यहाँ पर धर्मोपदेश के प्रकरण में जो ६ जीव
 निकायों के सम्बन्ध में कथन आया है उसका कारण यह है कि जब तक छ जीवनिकायों के
 स्वरूप का परिज्ञान नहीं होगा-तब तक महाव्रतों का परिपालन अच्छी तरह से नहीं हो सकता
 है, इस बात की सूचना के लिये यहाँ पर छ जीवनिकायों का कथन किया गया है,

शंका-प्राणातिपात विरमण रूप अहिंसा महाव्रत में यह नियम संभवित होता है,
 परन्तु मृषावादादि विरमणरूप चार सत्यमहाव्रतादिकों में यह नियम संभवित नहीं होता है क्यो
 कि इन चार महाव्रतों में तो भाषा आदि के परिज्ञान की आवश्यकता होती है, इनके परिज्ञान
 हुए विना सत्यमहाव्रतादिकों का परिपालन यथार्थरूप में नहीं बन सकता है, सो शंका का स-
 माधान ऐसा है-महावन के पर्यन्तवर्तिवृक्षों की वाड़ की तरह मृषावादविरमणादि जो चार

विहरइ, तं जहा-पुढविकाइए भावणागमेणं पंचमहव्वयाइं माणियव्वइत्ति" पट्टविधजीवनिकायो
 कायेनो-पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने त्रसकायने उपदेश
 आये। अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत अने परिग्रह
 त्याग महाव्रत ओ पांच महाव्रतों ओ आ महाव्रतोंनी आराधना भाटे इरेके-इरेके महाव्रतोंनी
 पांच-पांच भावनाओंो कडेवामां आवीं छे, ओमनु' वधु'न अन्य आगम अन्थेमां छे, अही'
 धर्मोपदेशकना प्रकरणमा ओ ६ लवनिकायेना स भ धमां कथन आवेल छे, तेनु' कारणु आ
 प्रभाणु छे के तथा सुधी ६ लवनिकायेना स्वइपनु परिज्ञान थशे नहि, त्यां सुधी महाव्रतोंनुं
 परिपालन सारी रीते थई शकथे नहि ओ वातने सूचित करवा भाटे अही ६ लवनिकायेनु'
 कथन करवामां आवेल छे

शंका :-प्राणातिपात विरमण इय अहिंसा महाव्रतमा ओ नियम संभवित होय छे
 परतु मृषावादादि विरमण इय चार सत्य महाव्रतादिकोंमा ओ नियम संभवित थतो नथी
 केभके ओ चार महाव्रतोंमा तो भाषां वगेरेना परिज्ञाननी आवश्यकता होय छे, ओमना
 परिज्ञान विना सत्य महाव्रतादिकोंनु परिपालन यथार्थ इयमा थई शकतु नथी आ प्रभाणु-
 उपयुक्त शंकांनुं समाधान थई शके छे महाव्रतना पर्यन्तवर्ति' वृक्षोंनी वाडनी ओम मृषा-

पातविरमणलक्षणस्य प्रथममहाव्रतस्यैव रक्षणाणि, तथाहि मृपावादविरमणयुक्तो मुनिः परनिन्दा विरतत्वात् कुलवध्वादीनामर्हिसको भवति, अदत्तादानविरमणयुक्तो धनस्वामिनां सचित्तजलफलादीनां च अर्हिसको भवति, मैथुनविरमणयुक्तो नवलक्षपञ्चेन्द्रियादीनां, परिग्रहविरमणयुक्तश्च शुक्तिककस्तूरीमृगादीनां च अर्हिसको भवतीति जीवनिकायपरिज्ञानं सर्वेष्वपि महाव्रतेषु समुपयोगीति । धर्मस्वरूपमेव विवृणोति 'तं जहा' तद्यथा 'पुढवि काइए' पृथिवीकायिको जीवनिकायः, सूचामात्रत्वात् सूत्रस्यात्र लाघवार्थं 'पृथिवीकायिक इत्येवोपात्त, ततश्च-अष्कायिकः तेजस्कायिको वायुकायिको वनस्पतिकायिकस्त्रसकायिक-' इति संग्राहम्, तथा-'सभावणागमेण' सभावनाकानि=ईर्यासमित्यादि भावना युक्तानि 'पंचमहव्याइं' 'पञ्च महाव्रतानि 'सभावणागाइं' सभावनागमेन=आचाराङ्गद्वि-

महाव्रत है वे प्राणातिपात-विरमणरूप प्रथम अर्हिसा महाव्रत के ही रक्षक है जो मुनि मृपावाद विरमणरूप चार महाव्रतों से युक्त होता है वह परनिन्दाविरत हो जाने के कारण कुलवध्वादिकों का अर्हिसक हो जाता है, अदत्तादान विरमण वाला मुनि धनस्वामियों के सचित्त जल फलादिकों का अर्हिसक हो जाता है, मैथुनविरमणयुक्त मुनि नौ लाख-पञ्चेन्द्रियों की हिंसा से रहित हो जाता है और परिग्रह विरमण वाला मुनि शुक्तिक कस्तूरीमृगादिकों का अर्हिसक हो जाता है, इस तरह से जीवनिकायों का परिज्ञान सब ही महाव्रतों में समुपयोगी है, सूत्र सूचामात्र होता है इससे यहां आये हुए पृथिवीकायिक पद से अष्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक और त्रसकायिक इन ५ निकायों का ग्रहण हो जाता है ईर्यासमिति आदि भावनाओं से युक्त पांच महाव्रत पालने का जो प्रभु ने उपदेश दिया है सो उन भावनाओं को जानने के लिए आचाराङ्ग द्वितीयश्रुतस्कंध सूत्र के अन्तर्गत भावना नामक अध्ययनवर्ती जो पाठ है उसे हृदयङ्गम कर लेना चाहिए, उसी के अनुसार पांच भावनाओं सहित इन पांच महाव्रतों का परिपालन करना चाहिए,

वाहादि विरमण्युक्ति ने चार महाव्रतों से ते प्राणातिपात-विरमणरूप प्रथम अर्हिसा महाव्रतना ७ रक्षक से ने मुनि मृपावादविरमणरूप चार महाव्रतोंकी युक्त होय से, ते परनिन्दा विरत होवाथी कुल वध्वादिकों का अर्हिसक थर्ध नय से अदत्तादान विरमण्युक्ति मुनि धनस्वामीओंना सचित्त ७७ इलादिकोंना अर्हिसक थर्ध नय से. मैथुन विरमण युक्त मुनि नव लाख पञ्चेन्द्रियोंनी हिंसाथी रहित थर्ध नय से अने परिग्रह विरमण्युक्ति मुनि शुक्ति कस्तूरी मृगादिकोंना अर्हिसक थर्ध नय से. आ प्रभाणे लव-निकायोंनु' परिज्ञान सर्वमहाव्रतोंमां समुपयोगी से. सूत्र सूचामात्र होय से तथी अर्ही' आवेदा पृथिवीकायिक पदथी अष्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक अने त्रसकायिक से पांच निकायोंनु अर्हिसक थाय से. ईर्यासमिति आदि भावनाओंथी युक्त पांच महाव्रत पालवाने ने प्रभुसे उपदेश आये से, तो ते भावनाओंना ज्ञान भाटे आचारांग सूत्रना श्रीश्रुतस्कंधमा ने भावना नामना अध्ययनवर्ती' पाठ से, तेने हृदय जम करवे लेध से. ते मुने ७ पांच भावनाओं सहित से पांच महाव्रतोंनु' परिपालन करवु लेधसे.

तीयश्रुतस्कन्धान्तर्गतभावनानामकाध्ययनवर्तिपाठानुसारेणात्र 'भाणियव्वाइंति' भणित-
व्यानि=वक्तव्यानीति । नन्वत्र सूत्रे उद्देशकोटौ 'पंचमहव्वयाइं सभावणगाइं छच्च जी-
वणिकाए' इत्युक्तम् निर्देशकोटौ तु 'पुढविकाइए भावणागमेणं पंच महव्वयाइं सभावणगाइं
भाणियव्वाइंति' इति वैपरीत्येनोक्तम् इति पूर्वोक्तेः पश्चादुक्तिर्विरुध्यते ? इति चेत्,
आह-उद्देशकोटौ पश्चादुक्तानामपि पृथिवीकायिकादीनां निर्देशकोटौ यत्प्रथमत उपादानं
तत् स्वल्पवक्तव्यतया 'सूचीकटाह' न्यायेन विचित्रा सूत्राणां कृतिराचार्यस्य' इति
न्यायेन वा बोध्यमिति । ननु यथा यतिधर्मः प्रोक्तः तथैव भगवता गृह्णधर्मसंविग्न-
पाक्षिकधर्मावपि वक्तव्यौ मोक्षाद्गत्वात्, यदुक्तम्—“सावज्जजोगपरिवज्जणा उ सव्वुत्तमो
जइधम्मो । वीओ सावगधम्मो, संविग्गपक्खपहो ॥१॥”

छाया—सावद्ययोगपरिवर्जनानु सर्वोत्तमो यतिधर्मः ।

द्वितीयः श्रावकधर्मः तृतीयः संविग्न पक्षपथः ॥१॥ इति,

शंका—इस सूत्र में उद्देश्यकोटि में “पंच महव्वयाइं सभावणगाइं छच्च—जीवणिकाए”
ऐसा पाठ कहा गया है और निर्देशकोटि में “पुढविकाइए भावणागमेण पंच महव्वयाइं
सभावणगाइ भाणियव्वाइति” ऐसा पाठ कहा है—सो इस प्रकार विपर्यय कथन से परस्पर
में पश्चात् उक्त भी पृथिवीयायिक आदिकों का निर्देशकोटि में जो प्रथमतः उपादान किया
गया है वह उनके सम्बन्ध में स्वल्पवक्तव्यक्ता होने के कारण “सूची कटाह” न्याय के अनुसार
किया गया है आचार्यजन की सूत्रों की रचना विचित्र होती है ।

शंका-भगवान् ने जिस प्रकार यति धर्म कहा है उसी प्रकार उन्होंने को गृहस्थधर्म
और संविग्नपाक्षिक धर्म भी कहना चाहिये था, क्योंकि ये दो धर्म भी परम्पाररूप से मोक्ष
के कारणभूत हैं । तदुक्तम्—“सावज्जजोगपरिवज्जणा उ सव्वुत्तमो जइधम्मो । वीओ साव-
गधम्मो तइओ संविग्गपक्खपहो ॥१॥ जिसमें मन, वचन, काय, कृत,, कारित और अनु-
मोदना से सर्व सावद्ययोग का परिवर्जन हो जाता है वह यतिधर्म है, इससे उत्तरता श्रावक

शंका.—आ सूत्रमां उद्देश्ये क्वाटिमा “पंच महव्वयाइं सभावणगाइं छच्चजीवणिकाए”
अवे पाठ क्खेवामां आवेल्ले छे, अने निर्देशे क्वाटिमां “पुढविकाइए भावणागमेणं पंचमह-
व्वयाइ सभावणगाइ भाणियव्वाइ ति” अवे पाठ छे. तो आ ज्ञातना विपर्यय कथनधी
परस्पर पाठोमां अंतर आवे छे तो आ अंतरनुं कारणु शु ?

उत्तर :-उद्देश्ये क्वाटिमा पश्चात् उक्त पक्ष पृथिवी कायिक आदिक्वाटुं निर्देशे क्वाटिमां
जे प्रथमतः उपादान करवामा आवेल्ले छे ते अमेना संघ धमा स्वल्पवक्तव्यता होवाथी
“सूची कटाह” न्याय अनुभव करवामा आवेल्ले छे आचार्यजनोनी सूत्र-रचना विचित्र
होय छे.

शंका :-भगवाने जे प्रमाणे यति धर्म क्खेवा छे, ते प्रमाणे जे गृहस्थ धर्म अने
संविग्न पाक्षिक धर्म विषे पक्ष निरूपण करवुं जेठतुं इतुं केमके अमे। अने धर्म पक्ष
परंपरा इपथी मोक्षना कारणभूत छे. तदुक्तम् :-सावज्जजोगपरिवज्जणा उ सव्वुत्तमो
जइधम्मो, वीओ सावगधम्मो तइओ संविग्गपक्खपहो ॥१॥ जेमां मन-वचन-काय, कृत-

અત્રાહ — સર્વસાવધવર્જનીયત્વેન દેશનાયાં પ્રથમં યતિધર્મસ્ય દેશનીયત્વાત્, મોક્ષ-
પથસ્યાત્યાસન્નત્વાત્, શ્રમણસંઘસ્ય પ્રથમં વ્યવસ્થાપનીયત્વાચ્ચ સર્વતઃ પ્રથમં યતિધર્મોપ-
દેશો ભગવતા કૃતઃ, તતસ્તદ્ગ્ભૂતૌ શ્રાવકધર્મ સવિગ્નપાક્ષિકધર્માવપિ ભગવતા સમુપ-
દિષ્ટાવેવ, અત એવ તૌ શાસ્ત્રેપુ સમુપલભ્યેતે, ભગવદ્નુપદિષ્ટત્વે તુ તયો નામાપિ શ્રોતુમ-
શક્યમ્ । અત્ર તુ શ્રમણધર્મસ્યૈવ યદુપાદાનં તલ્લાઘવાર્થમુક્તમ્ । અતઃ શ્રાવકધર્મયતિધર્મા-
વપિ ભગવદુક્તત્વે નાત્ર સંગ્રાહ્યાવેવેતિ । અથ ભગવત્કૃતધર્મોપદેશપ્રભાવેણ વ્રહ્મો ભગવદ-
નુયાયિનો જાતા, તેપાં યાવન્તઃ સંઘા-જાતાસ્તાનાહ—‘ઉસમસ્સ ણં’ ઇત્યાદિના । ‘ઉસ-
મસ્સ ણં અરહઓ કોસલિયસ્સ ચરુરાસીગણા ગણહરા હોત્થા’ ઋપમસ્ય ચલ્લુ અર્હતઃ
કૌશાલિકસ્ય ચતુરશીતિર્ગણાઃ ચતુરશીતિર્ગણધરાશ્ચ અભવન્ । અત્રેદ વોધ્યમ્—યસ્ય
ભગવતો યાવન્તો ગણા ભવન્તિ તસ્ય તાવન્ત એવ ગણધરા ભવન્તિ । તદુક્તં—‘જાવડ્યા
જસ્સ ગણા તાવડ્યા ગણહરા તસ્સ’ છાયા—યાવન્તો યસ્ય ગણાસ્તાવન્તો ગણધરાસ્તસ્ય

કા ધર્મ ઔર સવિગ્નપાક્ષિક કા ધર્મ હૈ, સો ઇસ શ કા કા સમાધાન એસા હૈ કિ સર્વપ્રથમ
પ્રમુ દેશના મૈં યધિધર્મ કા હી વ્યાખ્યાન કરતે હૈ, ક્યોકિ વહી દેશનીય બતલાયા ગયા હૈ.
ઇસકા કારણ મો યહો હૈં કિ યતિધર્મ મૈં હો સર્વ પ્રકાર સે સાવધયોગ કા પરિહાર હોતા હૈ.
ઇસી સે વહ મોક્ષપથ કે અત્યાસન્ન હોતા કહા ગયા હૈં । શ્રાવકધર્મ ઔર સવિગ્ન પાક્ષિક
ધર્મ યે દો ધર્મ યતિધર્મ કે અજ્ઞમૂત કહે ગયે હૈં સો ઇનકા મો પ્રમુ ને ઉપદેશ દિયા હી હૈ.
યદિ એસા ન હોતા તો શાસ્ત્રો મૈં જો ઇનકા વર્ણન ક્રિયા ગયા મિલતા હૈ વહ નહીં મિલતા ।
યહાં પર જો યતિધર્મ કા હી ઉપાસન ક્રિયા ગયા હૈ વહ લાઘવ કે લિયે ક્રિયા ગયા હૈ
ઇસલિયે શ્રાવકધર્મ ઔર યતિધર્મ યે દોનો ધર્મ ભગવદુપદિષ્ટ હોને સે યહો પર સમ્રાહ્ય હી હૈં ।
ભગવાન્ દ્વારા ઉપદિષ્ટ હુણ ધર્મોપદેશ કે પ્રભાવ સે અનેક મનુષ્ય ઉનકે અનુયાયી હો ગયે ।
“ઉસમસ્સ ણં અરહઓ કોસલિયસ્સ ચરુરાસી ગણા ગણહરા હોત્થા” ઉસ સમય ઉન કૌશ

કાશિત અને અનુમોદનાથી સર્વ સાવધયોગનુ પરિવર્જન થઈ બચ છે તે યતિ ધર્મ છે એનાથી
ઉતરતો શ્રાવક ધર્મ અને સવિગ્ન પાક્ષિક ધર્મ છે તેા આ શંકાનુ સમાધાન આ પ્રમાણે
છે કે સર્વ પ્રથમ પ્રભુ દેશનામા યતિ ધર્મનુ જ વ્યાખ્યાન કરે છે, કેમકે તે જ દેશનીય
કહેવામા આવેલ છે આનુ કારણ આ પ્રમાણે છે કે યતિ ધર્મમાં જ સર્વ પ્રકારથી
સાવધયોગને પરિહાર થાય છે એથી જ તે મોક્ષપથને અત્યાસન્ન છે, એવું કહેવાય છે
શ્રાવક ધર્મ અને સવિગ્નપાક્ષિક ધર્મ એઓ બન્ને ધર્મો યતિ ધર્મના અગમ્ય કહેવામા
આવેલ છે, પ્રભુએ એમને પશુ ઉપદેશ આપેલો જ છે જો એવુ ન હોત તો શાસ્ત્રોમાં
જે એમનું વર્ણન મળે છે તે ગણત નહિ. અહીં જે યતિ ધર્મનુ ઉપાદાન કરવામા આવેલ
છે તે લાઘવના માટે કરવામા આવેલ છે, એથી જ શ્રાવક ધર્મ અને યતિ ધર્મ એઓ
બન્ને ધર્મો ભગવદુપદિષ્ટ હોવાથી અહીં સંગ્રાહ્ય જ છે ભગવાન્ દ્વારા ઉપદિષ્ટ ધર્મોપ-
દેશના પ્રભાવથી ઘણા મનુષ્યો તેમના અનુયાયીઓ થઈ ગયા, ‘ઉસમસ્સ ણં અરહઓ કોસ-
લિયસ્સ ચરુરાસી ગણા ગણહરા હોત્થા’ તે સમયે તે કૌશાલક અપભ પ્રભુને ૮૪ ગણુ અને

इति । भगवतः साधुसंख्यामाह—‘उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेणपामो-
 क्खाओ चुलसीई समणसाहस्सीओ’ ऋषभस्स खल्ल अर्हतः कौशलिकस्य ऋषभसेन
 प्रमुखाश्चतुरशीतिः श्रमणसाहस्यः=चतुरशीतिसहस्रसंख्यकाः श्रमणाः ‘उक्कोसिया समण-
 संपया होत्था’ उत्कृष्टाः श्रमणसम्पदं अभवन् । साध्वी संख्यामाह—‘उसभस्स णं
 अरहओ कोसलियस्स वंभी सुन्दरी पामोक्खाओ तिण्णि अज्जियासयसाहस्सीओ’
 ऋषभस्य खल्ल अर्हतः कौशलिकस्य ब्राह्मी सुन्दरी प्रमुखाः तिस्रः आर्यिकाशतसाहस्यः
 त्रिलक्षसंख्यकाः उत्कृष्टाः साध्वयः ‘उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था’ उत्कृष्टाः
 आर्यिकासम्पदोऽभवन्, श्रावकसंख्यामाह—‘उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सेज्जस-
 पामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ’ ऋषभस्य खल्ल अर्हतः कौशलिकस्य
 श्रेयांसप्रमुखा तिस्रः श्रमणोपासकसाहस्यः ‘पंच य साहस्सीओ’ पञ्च साहस्यश्च=
 पञ्चसहस्राधिकलक्षत्रयपरिमिता श्रावकाः ‘उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था’ उत्कृष्टाः
 श्रमणोपासकसम्पदोऽभवन् । श्राविकासंख्यामाह—‘उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स
 सुभहा पामोक्खाओ पंच समणोवासियासयसाहस्सीओ—चउप्पणं च सहस्सा’ ऋषभस्य
 खल्ल अर्हतः कौशलिकस्य सुभद्राप्रमुखाः पञ्च श्रमणोपासिकाशतसाहस्यः चतुष्पञ्चाशच्च
 साहस्यः=चतुष्पञ्चाशत्सहस्राधिकपञ्चलक्षसंख्यकाः ‘उक्कोसिया समणोवासिया संपया

लिक ऋषभ प्रमु के ८४ गण एवं ८४ गणघर हो गये, ऐसा नियम है कि “जावइया जस्स गणा
 तावइया गणहरा तस्स” कि जिसके जितने गण होते हैं उतने उनके गणघर होते हैं, भगवान्
 आदिनाथ के ८४ गण थे इसी कारण इनके ८४ गणघर कहे गये हैं, “उसभस्स णं अरहओ
 कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चुलसीई समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था”
 इन प्रमु के ऋषभसेन आदि ८५ हजार श्रमण थे, “उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वंभी
 सुन्दरी पामोक्खाओ तिण्णि अज्जिया सयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया सपया होत्था”
 ब्राह्मी सुन्दरी आदि ३ तीन लाख आर्यिकाएँ थी, “उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सेज्जस
 पामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ उक्कोसिया समणोवासग-
 सपया होत्था” तीन ३ लाख ५ हजार श्रेयांसप्रमुख श्रावक थे, “उसभस्स णं अरहओ कोस-
 लियस्स सुभहा पामोक्खाओ पंच समणोवासियासयसाहस्सीओ चउप्पणं च सहस्सा उक्कोसिया

३४ गणघरों थथ गया, ऐसे नियम थे कि “जावइया जस्स गणा तावइया गणहरा तस्स”
 येभने येठवा गणो डोय थे, तेभने तेठवा गणघरों डोय थे भगवान् आदिनाथने ८४
 गणों डोय थेथी ५ येभने ८४ गणघरों डोयवाभा आवेद थे, “उसभस्स णं अरहओ
 कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चुलसीई समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया
 होत्था ये प्रमुने ऋषभसेन वगेरे ८४ हजार श्रमणों डोय। ‘उसभस्स णं अरहओ कोस-
 लियस्स वंभी सुन्दरी पामोक्खाओ तिण्णि अज्जियासयसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया
 संपया होत्था’ ब्राह्मी सुन्दरी वगेरे ३ अथु लाख आर्यिकों डोय। ‘उसभस्स णं अरहओ
 कोसलियस्स सेज्जसपामोक्खाओ तिण्णि समणोवासगसयसाहस्सीओ पंच य साहस्सीओ
 उक्कोसिया समणोवासगसंपया होत्था’ अथु लाख पाथु हजार श्रेयांस वगेरे श्रावकों
 डोय। ‘उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स सुभहापामोक्खाओ पंचसमणोवासिया सयसा-

होत्था' उत्कृष्टा श्रमणोपासिका सम्पदोऽभवन् । चतुर्दशपूर्वीसंख्यामाह—'उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स अजिणाणं' ऋपभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य अजिनानां=जिन-
 भिन्नानां छत्रस्थानामित्यर्थः, 'जिणसंकासाणं' जिनसकासानां=जिनसदृशानां 'सव्वक्खर-
 रसनिवाईणं' सर्वाक्षरसन्निपातिनाम्—सर्वाणि च तानि अक्षराणि अकारादीनि, तेषां सन्नि-
 पाताः=द्वयादिसंयोगाः, ते च अनन्तत्वात् अनन्ताः, ते विद्यन्ते ज्ञेयत्वेन येषां ते तथा
 तेषां सर्वाक्षरसंयोगविदामित्यर्थः, तथा 'जिणो विव' अत्र पठ्यर्थे प्रथमा, ततश्च 'जिणो
 विव' जिनस्येव=प्राप्तकेवलज्ञानस्येव केवलश्रुत-केवलिनः प्रज्ञापनायां तुल्यत्वात् 'अवि-
 तहं' अवितथं=यथार्थं 'वागरमाणाणं' व्यागृणतां=व्याकुर्वतां 'चत्तारि चउदसपुव्वीसहस्सा
 अद्धट्टमा य सया' चत्वारि चतुर्दशपूर्वीसहस्राणि अर्द्धाष्टमानि च शतानि=सार्द्धसप्तशता-
 धिकचतुस्सहस्रसंख्यकाश्चतुर्दशपूर्विणः 'उक्कोसिया चउदसपुव्वीसंपया होत्था' उत्कृष्टाः
 चतुर्दशपूर्विसम्पदोऽभवन् । अवधिज्ञानिसंख्यामाह—'उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स
 णव ओहिणाणिसहस्सा' ऋपभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य नव, अवधिज्ञानि सहस्राणि=
 नव संख्यका अवधिज्ञानिनः 'उक्कोसिया ओहिणाणिसंपया होत्था' उत्कृष्टा अवधि-
 ज्ञानि सम्पदोऽभवन् । जिनसंख्यां वैकुर्विकसंख्यां चाह—'उसभस्स णं अरहओ कोस-
 लियस्स वीसं जिणसहस्सा' ऋपभस्स खलु अर्हतः कौशलिकस्य विंशतिः जिनसहस्राणि=

समणोवासिया सपया होत्था" पाच ५ लाख ५४ हजार सुभद्राप्रमुख श्रमणोपासिकाएँ—श्रविकाएँ
 थीं, "उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स अजिणाणं जिणसकासाण सव्वक्खरसनिवाईण जिणो-
 विव अवितहं वागरमाणाण चत्तारि चउदस पुव्वीसहस्सा अद्धट्टमा य सया उक्कोसिया चउदस-
 पुव्वीसपया होत्था" सर्वाक्षरसंयोग वेदी, जिनभिन्न, जिनसदृश एवं जिनकी तरह अवितथ
 अर्थ की प्ररूपणा करने वाले ऐसे चतुर्दश पूर्वधारी ४ हजार ७ सातसौ ५० पचास थे,
 चतुर्दश पूर्वधारी श्रुतकेवली होते हैं, प्रज्ञापना में केवली और श्रुतकेवली तुल्य होते हैं, इसी
 कारण यहां पर "जिनस्येव अवितथ व्यागृणता" ऐसा पाठ कहा गया है । "उसभस्स णं
 अरहओ कोसलियस्स णव ओहिणाणिसहस्सा उक्कोसिया ओहिणाणि सपया होत्था" 'नौ
 हजार अवधिज्ञानी थे, "उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीस जिणसहस्सा" २० वीस

हस्तीओ चउत्पण्णं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासिया संपया होत्था' पांच लाख
 श्रमण उभर सुभद्रादिश्रमणोपासिकाओ—श्रविकाओ इती उसभस्स अरहओ कोसलियस्स
 अजिणाण जिणसंकासाणं सव्वक्खरसनिवाईणं जिणोविव अवितहं वागरमाणाणं चत्तारि
 चउदसपुव्विसहस्सा अद्धट्टमा य सया उक्कोसिया चउदसपुव्वी संपया होत्था' सर्वाक्षर
 संयोगज्ञाता, अनभिन्न पद्य अनमरीया तेमज्ज अननी जेम अवितथ अर्थनी प्रइयधु
 करवावाणा ओवा १४ औदपूर्वने धारणु करनारा यार इभर ७ सातसो ५० पचास इता.
 औदपूर्वने धारणु करनारा श्रुत केवली समान इय छ जेम कहुं छे तेथीज्ज अहीयां
 'जिनस्येव अवितथ व्यागृणता' ओवे। पाठ कडेव छे 'उसभस्स ण अरहओ कोस-
 लियस्स णव ओहिणाणिसहस्सा उक्कोसिया ओहिणाणिसंपया होत्था' ९ नव इभर
 अवधिज्ञानीथे। इता 'उसभस्स ण अरहओ कोसलियस्स वीसं जिणसहस्सा' वीस इभर

विंशतिसहस्राणि जिनानः, तथा-‘वीसं वेडव्वियसहस्सा छच्चसया’ विंशतिः वैकुर्विकसह-
स्राणि पद् च शतानि=पद्शताधिकविंशतिसहस्रसंख्यका वैक्रियलब्धिमन्तश्च ‘उक्कोसिया
जिणसंपया वेडव्वियसंपयाय होत्था’ उत्कृष्टा जिनसम्पदो वैकुर्विकसम्पदश्च अभवन् ।
विपुलमत्तिसंख्यां वादिसंख्यां च प्राह-‘वारस विडलमइसहस्सा छच्च सया पण्णासा’
ऋषभस्य खलु अर्हतः कौशलिकस्य द्वादश विपुलमत्तिसहस्राणि पद् च शतानि पञ्चाशत्
पञ्चाशदधिक घट् शताधिक द्वादशसहस्रसंख्यकाः विपुलमतयो, वारस वाडसहस्सा छच्च
सया पण्णासा’ द्वादशवादिसहस्राणि पद् च शतानि पञ्चाशत् पञ्चाशदधिकपद्शताधिक
द्वादशसहस्रादिनश्च उत्कृष्टा विपुलमत्तिसम्पदो वादिसम्पदश्चाभवन् । अनुत्तरोपपातिक-
संख्यामाह-‘उसमस्स ण अरहओ कोसलियस्स गइ कल्लाणाण’ ऋषभस्य खलु अर्हतः
कौशलिकस्य गतिकल्याणानां गतौ देवगतौ कल्याण दिव्यसातोदयत्वात् येषां ते तथा
‘ठिइकल्लाणाणं’ स्थितिकल्याणानां स्थितौ देवायूरूपस्थितौ कल्याणम् अप्रवीचारसुख-
स्वामित्वात् येषां ते तथा तेषाम्, तथा आगमेसि महाणं’ आगमिष्यद् भद्राणाम्-आग-
मिष्यति देवभवानन्तरमागामिनि मनुष्यभवे सेत्स्यमानत्वात् भद्रं मोक्षरूपं कल्याणं येषां
ते तथा तेषां ‘वावीस अणुत्तरोइयाणं सहस्सा णव य सया’ द्वाविंशतिः अनुत्तरोप-

हजार जिन थे, “वीस वेडव्वियसहस्सा छच्च सया उक्कोसिया जिणसंपया वेडव्वियसंपया य
होत्था” वैक्रियलब्धिवाले २० हजार ६ छसौ थे, “वारह विडलमइसहस्सा छच्चसया पण्णासा”
१२ बारह हजार ६ सौ ५० पचास विपुलमत्ति मनः पर्यय ज्ञानी थे, और “वारह वाडस-
हस्सा छच्च सया पण्णासा” इतने ही वादी थे । “उसमस्स ण अरहओ कोसलियस्स गइ-
कल्लाणाण, ठिइकल्लाणाणं आगमेसिमहाणं वावीस अणुत्तरोववाइयाणं सहस्सा णव य सया
उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था” उन कौशलिक ऋषभ अर्हन्त के गति कल्याणों की-
देवगति में दिव्य सातोदय से कल्याण वालों की संख्या तथा स्थिति कल्याणवालों की-देवायु-
रूप स्थिति में अप्रवीचार सुख के स्वामी होने से कल्याण वालों की संख्या एवं आगमिष्य-
भद्रों की देवभव के अनन्तर आगामी मनुष्यभव में जिनका मोक्षरूप कल्याण होता है

एने इत्ता ‘वीसं वेडव्वियसहस्सा छच्चसया उक्कोसिया जिणसंपया वेडव्वियसंपयाय
होत्था’ वैक्रियलब्धवाणा वीस हजार छसौ इत्ता. ‘वारसविडलमइसहस्सा छच्च सया
पण्णासा’ पार हजार छसौ पचास विपुलमत्ति मनःपर्यय ज्ञानीये इत्ता. अने ‘वारस-
वाडसहस्सा छच्चसया पण्णासा’ अने अट्ठाव वादीये इत्ता ‘उसमस्स ण अरहओ कोस-
लियस्स गइकल्लाणाणं, ठिइकल्लाणाणं, आगमेसिमहाणं वावीसं अणुत्तरोववाइयाणं सह-
स्सा णव य सया उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था’ अे कौशलिक ऋषभ अर्हं तने
गतिकल्याणवाणाओनी देवगतिमां दिव्य सातोदयथी कल्याणवाणाओनी स ष्या तथा स्थिति-
कल्याणवाणाओनी देवायुरूप स्थितिमा अप्रविचार सुभना स्वामी होवाथी कल्याणवाणाओनी
स ष्या तेभ्य आगमिष्यभद्रोनी-देवभवना पछी आवनारा मनुष्य भवमां जेभनां मोक्ष
इप कल्याण थाय छे, जेभनी स ष्या अने अनुत्तरोपपातिहेनी स ष्या २२६०० वावीस

पातिकानां सहस्राणि नत्र च शतानि नवगताधिक द्वाविंशतिसप्तसंख्यका अनुत्तरोप-
पातिकाः 'उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था' उत्कृष्टा अनुत्तरोपपातिक संपदो-
ऽभवन् । अथ सिद्धसंख्यामाह—'उसभस्स ण अरहओ कोसलियस्स वीसं समणसहस्सा
सिद्धा' ऋषभस्य खलु अर्हत कौशलिकस्य विंशतिः श्रमणसहस्राणि सिद्धानि—विंशति
सहस्रसंख्यकाः श्रमणाः सिद्धाः, तथा 'चत्तालीस अज्जियासहस्सा सिद्धा' चत्वारिंशत्
आर्यिकासहस्राणि सिद्धानि—चत्वारिंशत्सहस्रसंख्यका आर्यिकाः सिद्धाः, इत्थं च श्रम-
णार्यिकोभयसंख्यामीलने 'सद्धि अंतेवासिसहस्सा सिद्धा' षष्टिः अन्तेवासिसहस्राणि
सिद्धानि—षष्टिसहस्रसंख्यकाः अन्तेवासिनः सिद्धा इत्यर्थः । अथ भगवतोऽन्तेवासिवर्णन-
माह—'अरहओ णं' इत्यादि । 'अरहओ ण उसभस्स बहवे अंतेवासी' अर्हतः खलु ऋषभस्य
बहवोऽन्तेवासिनः—शिष्या 'अणगारा' अनगाराः—साधवो 'भगवंतो' भगवन्तः सकल-
मान्याः, तत्र 'अप्पेगइया' अप्येकके=केचित् 'मासपरियाया' मासपर्यायाः—मासं पर्यायो
येषां ते तथा—एकमासिक दीक्षापर्याययुक्ताः, इतः परम् 'एकमासिका' इत्यारभ्य ऊर्ध्व
जानवः' इति पर्यन्तं सर्वम् अनगारवर्णनम् औपपातिकसूत्रतोऽवसेयम्, अमुमेवार्थं सूच-
यति—'जहा उववाइए सव्वओ अणगारवण्णओ जाव' इति, तथा 'उद्धं जाणू' उर्ध्वं जानवः
ऊर्ध्वं जानुनी येषां ते तयोक्ताः—ऊर्ध्वीकृत जानव इत्यर्थः, अयं भावः—शुद्धपृथिव्यासन
वर्जनादौपग्रहिक निपद्याया अभावाच्चोत्कुटुकासना इति, तथा 'अहोसिरा' अधः शिरसः—

उनकी सख्या, एवं अनुत्तरोपपातिकों की सख्या २२९०० थी, "उसभस्स णं अरहओ
कोसलियस्स वीसं समणसहस्सा सिद्धा" २० हजार श्रमणसिद्धों की सख्या थी, "चत्तालीस
अज्जिया सहस्सा सिद्धा" आर्यिका सिद्धों की सख्या ४० चालीस हजार थी, इस प्रकार
श्रमणसिद्ध और आर्यिका सिद्ध इन दोनों की सख्या ६० साठ हजार की थी "सद्धि अन्ते-
वासो सहस्सा सिद्धा" अन्तेवासी सिद्ध ६० हजार थे "अरहओ णं उसभस्स बहवे अंते-
वासी अणगारा भगवंतो" इनमें ऋषभ भगवान् के अन्तेवासी-शिष्य अनगार साधु सकलजनों
द्वारा पूज्य थे, "अप्पेगइया मासपरियाया" इनमें कितनेक अन्तेवासी एक मास की दीक्षा वाळे
थे, "जहा उववाइए सव्वओ अणगार वण्णओ जाव उद्धं जाणू" वहा से लेकर "उर्ध्वजा-
नव," तक का सब अनगार वर्णन औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिये । शुद्ध पृथिवीरूप

६०२ नवसेनी इती 'उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स वीसं समणसहस्सा सिद्धा'
वीसं २० ६०२ श्रमणसिद्धो स भया इती 'चत्तालीसं अज्जियासहस्सा सिद्धा' आर्यिका
सिद्धोनी स भया ४० आणीस ६०२नी इती आरीते श्रमणु सिद्ध अने आर्यिकासिद्ध
अने अनेनी स भया ६० साधे ६०२नी इती. 'सद्धि अंतेवासी सहस्सा' अंते-
वासी सिद्ध साधे ६०२ इती 'अरहओ उसभस्स बहवे अंतेवासी अणगारा भगवंतो'
तेमा ऋषभभगव नना अंतेवासी—शिष्य—अनगार साधु सकलजने द्वारा पूज्य इती.
'अप्पेगइया मासपरियाया' तेमां डेट्ठाके अंतेवासी अके मासनी दीक्षावाणा इती.
'जहा उववाइए सव्वओ अणगारवण्णओ जाव उद्धं जाणू' आ पाठथी आनीने

अधोमुखः ऊर्ध्वतिर्यग्दृष्टिविक्षेपरहिता इत्यर्थः, तथा 'ज्ञानकोट्योवगया' ध्यानकोट्योपगताः ध्यानरूपो यः कोष्ठः कुसूलस्तम् उपागताः तत्र प्रविष्टाः कोष्ठके यथा धान्यं निक्षिप्तं न विकीर्णं भवति, एवमेव तेऽनगारा ध्यानकोष्ठकोपगताः सन्तो विषयाप्रचारितदृष्टयो भवन्तीति भावः, एवं विधास्तेऽनगाराः 'संजमेणं' संयमेन=सप्तदशविधेन 'तवसा' तपसा=द्वादशविधेन च 'अप्पाण भावेमाणा' आत्मान भावयन्तो=वासयन्तो 'विहरंति' विहरन्ति=तिष्ठन्तीति । संयम-तपसोश्चात्र ग्रहणं तयोः प्रधानतया मोक्षाङ्गत्वसूचनार्थम्, तत्र संयमस्य नवीनकर्मानुपादानहेतुत्वेन तपसश्च पुराणकर्मनिर्जराहेतुत्वेन मोक्षप्रधानाङ्गत्वम् । नवीनकर्मासंग्रहणात् पुरातनकर्मक्षणाच्च सकलकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो भवत्येवेति । तथा—'अरहओ ण उसमस्स

आसन को छोड़ने से और औपग्राहिक निषदा के अभाव से जो उत्कृष्टक आसन वाले साधु जन हैं वे उर्ध्वजानु साधुजन है, "अहो सिरा" जो नीचा मुँह करके तपस्या में लीन रहते हैं वे अधः शिराः साधुजन है इनकी दृष्टि ऊपर की ओर नहीं जाती है. जो साधुजन कोष्ठक में रखा हुआ धान्य जिस प्रकार विकीर्ण नहीं होता है इसी प्रकार "ज्ञान कोट्योवगया" ध्यानरूपी कोष्ठक में विराजमान रहते है, इनको दृष्टि विषयों की ओर प्रचारित नहीं होती है वे अनगार ध्यानकोष्ठकोपगत कहे जाते हैं । "संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति" इस प्रकार के ये सब अनगार सतरह प्रकार के संयम से और १२ प्रकार के तप से अपनी आत्मा को भावित करते थे. यहा जो संयम और तप का ग्रहण हुआ है वह प्रधानता से उनमें मोक्षाङ्गत्व की सूचना के निमित्त से हुआ है. क्योंकि संयम के द्वारा नवीन कर्मों का आगमन रोका जाता है और तप के द्वारा संचित हुए कर्मों की निर्जरा की जाती है इस कारण इनमें मोक्ष कारणता प्रधान है. यह तो निश्चित है कि नवीन कर्मों का आगमन तो होता नहीं और पुराने संचित कर्मों की निर्जरा होती रहे तो इस तरह से सकल कर्मक्षयरूप

'उर्ध्वजानवः' पर्यन्तनु तमाभ अनगारवर्षुन औपपातिसूत्रथी समञ्ज लेवुं शुद्ध पृथिवी रूप आसनने छोड़वाथी अने औपग्राहिक निषदाना अभावथी जे उत्कृष्टक आसनवाणा साधुजनो छे ते सवे उर्ध्वजानु साधुजनो छे जे 'अहोसिरा' नीचुं में करीने तपस्यामां लीन रहे छे ते अधः शिराः साधुजनो छे. अमनी दृष्टि उपरनी तरफ जाती नथी. जे साधुजनो कोष्ठकमां भूकेल धान्य जेम विकीर्ण थतुं नथी ते ज प्रकारे 'ज्ञानकोट्योवगया' ध्यान रूपी कोष्ठकमां विराजमान रहे छे, तेमनी दृष्टि विषयानी तरफ प्रचारित थती नथी-तेवा अनगारने ध्यान कोष्ठकोपगत कहेवामा आवेल छे 'संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति' आ प्रमाणे जे सवे अनगारो १७ प्रकारना सधमथी अने १२ प्रकारना तपथी चोताना आत्माने भावित करता हता अही जे संयम अने तपतु अहंथ थथेल छे ते प्रधानताथी तेमनामा मोक्षाङ्गत्व नी सूचना भाटे थथेल छे केमके संयम द्वारा नवीन कर्मोतु आगमन रोक्वामा आवेल छे अने तप द्वारा संचित थथेला कर्मोनी निर्जरा करवामा आवेल छे जेथी अमनामा मोक्षाङ्गता प्रधान छे आ वात तो निश्चित छे के नवीन कर्मोतु आगमन तो थाथ नही अने जूना संचित कर्मोनी निर्जरा थती रहे तो आ प्रमाणे

‘દુવિહા’ અર્હતઃ સ્વલ્પ ઋપમસ્ય દ્વિવિધા=દ્વિપ્રકારા ‘અંતકરભૂમિ’ અન્તકરભૂમિઃ-અન્તસ્ય=મવાન્તસ્ય મોક્ષસ્ય કરા અન્તકરાઃ મોક્ષગામિનસ્તેપાં ભૂમિઃ=કાલઃ ‘હોત્યા’ અમવત્ । કાલો હિ સર્વાધારઃ, અત આધારત્વસામ્યેનાત્ર કાલો ભૂમિત્વેન વિવક્ષિત ઇતિ । તામેવાન્તકરભૂમિમાહ-‘ત જહા’ ઇત્યાદિ । ‘તં જહા’ તદ્યથા ‘જુગંતકરભૂમીય’ યુગાન્તકરભૂમિઃ-યુગં=પશ્ચવર્ષાત્મકઃ કાલઃ, કૃતયુગાદિરૂપો વા કાલઃ, અયં ચ યુગરૂપઃ કાલઃ ક્રમિકો ભવતિ તથૈવ ગુરુશિષ્યપ્રશિષ્યપરમ્પરાઽપિ ક્રમિકા, અતો ગુરુશિષ્યપરમ્પરાઽપિ યુગશબ્દે-નેહ વિવક્ષિતા । તયા ગુરુશિષ્યપ્રશિષ્યપરમ્પરયા સમુપલક્ષિતા યા અન્તકરભૂમિઃ=મોક્ષ-ગામિકાલઃ સા યુગાન્તકરભૂમિઃ । તથા ‘પરિયાઅંતકરભૂમીય’ પર્યાયાન્તકરભૂમિઃ-પર્યાયઃ=તીર્થકૃતઃ કેવલિત્વકાલઃ, તદપેક્ષયા અન્તકરભૂમિઃ=મોક્ષગામિકાલપર્યાયઃ । અય ભાવઃ-લઘ્વકેવલજ્ઞાનસ્ય ભગવતો યાવતિ કેવલિત્વપર્યાયે વ્યતીતે મોક્ષં ગન્તું પ્રવૃત્તા

મોક્ષ જીવ કો પ્રાપ્ત હો હી જાતા હૈ । “અરહઓ ણં” ઉસમસ્સ દુવિહા અન્તકરભૂમી હોત્યા” ડન આદિનાથ પ્રમુ કે અન્તકર મોક્ષગામી જીવો કા કાલ દો પ્રકાર કા હુઆ, કાલ સર્વાધાર હોતા હૈ અતએવ આધાર કી સામ્યતા કો લેકર કાલ કો યહા ભૂમિરૂપ સે કહ દિયા હૈ “ત જહા” વહ દ્વિપ્રકારતા ઇસ પ્રકાર સે હૈ “જુગંતકર ભૂમીય” ઇક યુગાન્તકર ભૂમિ ઓર “પરિયા-અતકરભૂમિ ય, દૂસરી પર્યાયાન્તકર ભૂમિ, પાચ વર્ષ પ્રમાણ કાલ કા નામ યુગ હૈ અથવા કૃત-યુગાદિરૂપ કાલ કા નામ યુગ હૈ યહ યુગરૂપ કાલ ક્રમિક હોતા હૈ ઇસલિયે યુગશબ્દ સે ગુરુશિષ્યપ્રશિષ્ય પરમ્પરા મી વિવક્ષિત હો જાતી હૈ. ઇસ ગુરુશિષ્યપ્રશિષ્યપરમ્પરા સે સમુપલક્ષિત જો અન્તકર ભૂમિ હૈ મોક્ષગામી જીવો કા કાલ હૈ વહ યુગાન્તર ભૂમિ હૈ તીર્થકર કા જો કેવલિત્વ પર્યાય કા કાલ હૈ વહ પર્યાય હૈ ઇસ અપેક્ષા જો મોક્ષગામી જીવો કા કાલ હૈ વહ પર્યાયાન્તકર ભૂમિ હૈ, ઇસકા તાત્પર્ય ઇસા હૈ જન ભગવાન્ કો કેવલજ્ઞાન હો ચુકા ઓર ડસ અવસ્થા મેં ડનકી જિતની કેવલી અવસ્થારૂપ પર્યાય વ્યતીત હો ચુકી ડસ સમય મેં જિતને

સકળકર્મક્ષયરૂપ મોક્ષ જીવને પ્રાપ્ત થઈ જ નાય છે. “અરહઓ ણં” ઉસમસ્સ દુવિહા અત-કરભૂમી હોત્યા તે આદિનાથ પ્રમુને અન્તકર-મોક્ષગામી જીવોને કાળ-બે પ્રકાર નો થયો કાળ સર્વાધાર હોય છે. એથી આધારની-સામ્યતાને લઈને કાળને અહીં ભૂમિ રૂપમાં કહે-વામાં આવેલ છે. ‘તં જહા’ તે દ્વિ પ્રકારતા આ પ્રમાણે છે. “જુગંતકરભૂમીય” એક યુગાન્તકર ભૂમિ અને બીજી “પરિયાઅંતકરભૂમી ય પર્યાયાન્તકર ભૂમિ પાંચ વર્ષ પ્રમાણ કાળનું નામ યુગ છે. અથવા કૃતયુગાદિરૂપ કાળનું નામ યુગ છે આ યુગ રૂપ કાળ-ક્રમિક હોય છે. આ પ્રમાણે ગુરુશિષ્ય પ્રશિષ્ય પર પરા પણ ક્રમિક હોય છે એથી જ યુગ શબ્દથી ગુરુ શિષ્ય પ્રશિષ્ય પર પરા પણ વિવક્ષિત થઈ નાય છે આ ગુરુ શિષ્ય પ્રશિષ્ય પર પરાથી સમુપલક્ષિત જે અંતકર ભૂમિ છે. મોક્ષ ગામી જીવોને કાળ છે, તે યુગાન્તકર ભૂમિ છે. તીર્થ કરનો જે કેવલિત્વ પર્યાય કાળ છે તે પર્યાય છે. એ અપેક્ષાએ જે મોક્ષગામી જીવોને કાળ છે તે પર્યાયાન્તકર ભૂમિ છે. આનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે કે જ્યારે ભગવાનને કેવળ જ્ઞાન થઈ ચૂક્યું અને તે સ્થિતિમા તેમની જેટલા કેવલી અવસ્થા રૂપ પર્યાયવ્યતીત થઈ

अनगराः स कालः पर्यायान्तकरभूमिरिति । अथ युगान्तकरभूमि पर्यायान्तकरभूम्योः प्रमाणप्ररूपणयाह—‘जुगंतकरभूमी’ युगान्तकरभूमि हि ‘असंखेज्जाइ पुरिसजुगाहं’ असंख्येयानि पुरुषयुगानि ‘जाव’ यावत्=असंख्येयपुरुषपरम्परापरिमिताऽभवत् । तथा ‘परिया अंतकरभूमी’ पर्यायान्तकरभूमिरेपाऽभवत् यत् भगवत् ऋषभस्य ‘अतोमुहुत्तपरियाए’ अन्तर्मुहुत्तपर्याये=केवलज्ञानस्य अन्तर्मुहुत्तप्रमाणे पर्याये व्यतीते सति ‘अंतमकासी’ अन्तम्=भवान्तम् अकार्षीत्=अकरोत् मुक्तिं गतो न तु ततः प्राक् कश्चिज्जीवः । भगवतोऽन्तर्मुहुत्तप्रमाणे केवलपर्याये सति तन्माता मरुदेवी मुक्तिं गतेति बोध्यम् ॥सू० ४३॥

यस्मिन् यस्मिन्नक्षत्रे जन्मादि कल्याणकानि भगवतो जानानि तन्नक्षत्रप्रदर्शन पुरस्सरं भगवतो जन्मकल्याणकादीन्याह—

मूलम्—उसमेणं अरहा पंत्र उत्तरासाढे अभीइछेहे होत्था, तं जहा-
उत्तरासाढाहिं चुए चइत्ता गवमं वक्कंते, उत्तरासाढाहिं जाए उत्तरासाढाहिं
राया भिसेयं पत्ते उत्तरासाढाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं
पव्वइए, उत्तरासाढाहिं अणंते जाव समुप्पण्णे, अभीइणा परिणिवुए
॥ सू० ४४ ॥

छाया—ऋषभः खलु अर्हन् पञ्चोत्तराषाढः अभिजित्पण्डोऽभवत् तद्यथा—उत्तराषा-
ढासु च्युतप्रच्युत्वा गर्भं व्युत्क्रान्तः, उत्तराषाढासु जातः उत्तराषाढासु राज्याभिवेक प्राप्तः
उत्तराषाढासु मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः, उत्तराषाढासु अनन्त यावत्

मोक्ष में जाने के लिए अनगर प्रवृत्त हुए वह काल पर्यायान्त कर भूमि है, “जुगंतकरभूमी जाव असखेज्जाइ पुरिसजुगाहं” इनमें जो युगान्तकर भूमि है वह असख्यात पुरुषपरम्पराप्रमित होता है तथा “परियायतकरभूमि अतो मुहुत्तपरियाए अंतमकासी” पर्यायान्तकरभूमि ऐसी है कि भगवान् ऋषभ के केवली होने की पर्याय का अन्तर्मुहुत्तप्रमाण समय व्यतीत होने पर जिस जीव ने अपने भवका अन्त कर दिया होता है मोक्ष में वह जीव पहुँच जाता है—इसके पहिले कोई जीव मोक्ष प्राप्त नहीं करता है, ऐसा वह समय पर्यायान्तकर भूमि रूप कहा गया है, ऋषभनाथ की केवलिपर्याय जब एक अन्तर्मुहुत्तप्रमाण काल व्यतीत हो चुकी थी उस समय में उनकी माता मरुदेवा मुक्ति चली गई थी ॥ ४३॥

युक्त्या तं सभयमा नेट्वा मोक्षमा जनारा अनगारेो प्रवृत्त थया, ते काल पर्यायान्तकर भूमि छे. “जुगंतकरभूमी जाव असंखेज्जाइ पुरिसजुगाहं” अेभनाभा ने युगान्तकर भूमि छे ते असंख्यात पुरुष पर परा प्रमित होय छे तथा “परियायतकरभूमी अंतोमुहुत्तपरियाए अंतमकासी” पर्यायान्तकर भूमि अेवी छे के भगवान् ऋषभने केवली थवानी पर्यायने अन्तर्मुहुत्त प्रमाण सभय व्यतीत थर्थ जवा आह ने एवे पोताना भवने अन्त करी हीथे छे, ते एव मोक्षमा पडेवाी जाय छे अेना पडेवा केर्थ एव मोक्ष प्राप्त करतो नथी. अेवा ते सभय पर्यायान्तकर भूमि इप कडेवामा आवेव छे ऋषभनाथना केवलि पर्याय न्यादे केठ अन्तर्मुहुत्त प्रमाण काण व्यतीत थर्थ युक्त्या डता, ते सभये तेमनी माता मरु देवा मुक्ति प्राप्त करी चुकी डती. ॥४३॥

સમુત્પન્નમ્, અભિજિતા પરિનિર્વૃત્ત ॥૨૧॥

ટીકા—‘ઉસમેળ’ ઇત્યાદિ । ‘ઉસમેળં અરહા પંચ ઉત્તરાસાદે’ ઋપમઃ સ્વલ્લુ અર્હન્ પશ્ચોત્તરાપાદઃ પશ્ચસુ ઉત્તરાપાદાસુ ચ્યવનજન્મરાજ્યાભિપેકદીક્ષાજ્ઞાનલક્ષણાનિ પશ્ચ-કલ્યાણકાનિ યસ્ય સ તથાભૂતઃ, ‘અમીહછદ્દે’ અભિજિતપટ્ટઃ—અભિજિતિ નક્ષત્રે પઠ્ઠ= નિર્વાણલક્ષણં પઠ્ઠ કલ્યાણ યસ્ય સ તથાભૂતશ્ચ ‘હોત્યા’ અભવત્ । તદેવાહ—‘ત જહા’ તથથા ‘ઉત્તરાસાદાહિં’ ઉત્તરાપાદાસુ નક્ષત્રે ‘ચુપ’ ચ્યુતઃ=સર્વાર્થસિદ્ધિ નામ્નો મહાવિમાના-ન્નિર્ગતઃ, ‘ચહ્ત્તા’ ચ્યુત્વા ‘ગવ્મં વવકતે’ ગર્મ વ્યુત્ક્રાન્તઃ=મરુદેવાયાઃ કુક્ષી, અવતીર્ણઃ । તથા—‘ઉત્તરાસાદાહિં જાપ’ ઉત્તરાપાદાસુ જાતઃ=ગર્ભાન્નિપ્ક્રાન્તઃ. ‘ઉત્તરાસાદાહિં રાયા-ભિસેય પત્તે’ ઉત્તરાપાદાસુ રાજ્યાભિપેકં પ્રાપ્તઃ, ‘ઉત્તરાસાદાહિ મુદે મવિત્તા અગારાઓ’

જિન ૨ નક્ષત્ર મેં જન્માદિક કલ્યાણક ભગવાન્ કે હુણ હૈં ઁન ૨ નક્ષત્રો કે પ્રદર્શન પૂર્વક અવ સૂત્રકાર પ્રભુ કે જન્મકલ્યાણક કા કથન વહતે હૈ—“ઉસમેળં અરહા પચઉત્તરાસાદે” ઇત્યાદિ ।

ટીકાર્થ—“ઉસમેળ અરહા પંચ ઉત્તરાસાદે” ઋપમનાથ ભગવાન્ પાચ ઉત્તર નક્ષત્રો મેં ચ્યવન કલ્યાણ વાલે, જન્મકલ્યાણ વાલે, રાજ્યાભિપેક કલ્યાણ વાલે ઔર દીક્ષા કલ્યાણ વાલે હુણ હૈં, તથા “અમિહ છદ્દે હોત્યા” અભિજિત્ નામકે નક્ષત્ર મેં વે નિર્માણ કલ્યાણ વાલે હુણ હૈ “ત જહા” ઇસો વિષય કા સ્પષ્ટો કરણ અવ સૂત્રકાર કરતે હુણ કહતે હૈ—“ઉત્તરાસાદેહિં ચુપ ચહ્ત્તા ગવ્મં વવકતે ઉત્તરાસાદાહિ જાપ” ઋપમનાથ ભગવાન્ સર્વાર્થસિદ્ધિ નામકે મહાવિમાનસે ઉત્તરાપાદ નક્ષત્ર મેં નિર્ગત હોકર ઁસો ઉત્તરાપાદ નક્ષત્ર મે મરુદેવાકી કુક્ષિ મેં અવતીર્ણ હુણ, ઉત્તરાપાદ નક્ષત્ર મેં હો વે રાજ્યપદ મેં અભિષેક હુણ, “ઉત્તરાસાદાહિં મુદે મવિત્તા અગારાઓ અણગારિય પવ્વહ્પ” ઉત્તરાપાદનક્ષત્ર મેં હો વે મુણ્ઢિત હોકર અગારાવસ્થા સે અનગારાવસ્થામેં પ્રવ્રજિત હુણ ઔર

બે બે નક્ષત્રમાં જન્માદિક કલ્યાણક ભગવાનને થયાં છે તે નક્ષત્રોને પ્રદર્શિત કરીને હવે સૂત્રકાર પ્રભુના જન્મકલ્યાણકનું કથન કરે છે :

‘ઉસમેળં અરહા-પંચ ઉત્તરાસાદે’ ઇત્યાદિ સૂત્ર ॥૨૧॥

ટીકાર્થ—“ઉસમેળ અરહા પંચ ઉત્તરાસાદે” ઋપમનાથ ભગવાન્ પાંચ ઉત્તરાપાદ નક્ષ-ત્રોમા ચ્યવન કલ્યાણવાળા જન્મકલ્યાણવાળા, રાજ્યાભિપેક કલ્યાણવાળા અને દીક્ષાકલ્યાણ-વાળા થયા છે, તથા ‘અમિહ છદ્દે હોત્યા’ અભિજિત નામના નક્ષત્રમાં તેઓ નિર્વાણ કલ્યાણ વાળા થયા છે. ‘ત જહા’ એ વિષે સ્પષ્ટતા કરતા હવે સૂત્રકાર કહે છે કે ‘ઉત્તરાસાદાહિં ચુપ ચહ્ત્તા ગવ્મં વવકતે ઉત્તરાસાદાહિ જાપ’ ઋપમનાથ ભગવાન્ સર્વાર્થસિદ્ધિ નામના મહાવિ-માનથી ઉત્તરાપાદ નક્ષત્રમાં નિર્ગત થઈ ને તે ઉત્તરાપાદ નક્ષત્રમાં જ મરુદેવાની કુક્ષિમાં અવતીર્ણ થયા. ઉત્તરાપાદ નક્ષત્રમાં જ તેઓ રાજ્યપદે અભિષેકિત થયા ‘ઉત્તરાસાદાહિં મુદે મવિત્તા અગારાઓ અણગારિય પવ્વહ્પ’ ઉત્તરાપાદ નક્ષત્રમાં જ તેઓ મુકિત થઈને અમારા

उत्तरापादासु मुण्डो भूत्वा अगारात्=अगार गृहं परित्यज्य 'अणगारियं' अनगारितां=साधुत्वं 'पव्वइए' प्रव्रजितः=प्राप्तः, 'उत्तरासाढाहिं अणंते जाव समुप्पण्णे' उत्तरापादासु अनन्तं यावत् समुत्पन्नम् । अत्र यावत्पदेन—'अणुत्तरेण निव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे' छाया—अनुत्तर निर्व्याघात निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूर्णं केवल-वरज्ञानदर्शनम् इति संग्राह्यम्, अर्थास्त्वेपामेकचत्वारिंशत्तमसूत्रे (४१) विलोकनीया इति । तथा 'अभीइणा' अभिजिति नक्षत्रे 'परिणिव्वुए' परिनिर्वृत्तः=सिद्धिं गत इति ॥सू०४४॥

मूलम्—उसभेणं अरहा कोसलिए वज्जरिसहनारायसंघयणे समच-उरंसंठाणसंठिए पंच धणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं होत्था । उसभेणं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता तेवडि पुव्वसयसहस्साइं महाराज्जवासमज्झे वसित्ता तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगास्वासमज्झे वसित्ता मुंढे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए । उसभेणं अरहा एग वासहस्सं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं वासमहस्सूणं केवलिपरियायं पाउणित्ता एगं पुव्वसयसहस्सं बहुपडिपुण्णं सामण्णपरियायं पाउणित्ता चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता, जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माहबहुलस्स तेरसो पक्खेणं दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अट्ठावयसेलसिहरंसि चोदसमेणं भत्तेणं अपाणएणं संपलियंकनिसण्णे पुव्वाण्हकालंसमयंसि अभीइणा णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं समदूसमाए समाए एगूण णवउइ-ईहिं पक्खेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंतेजाव सव्वदुक्खप्पहीणे ॥सू०४५

छाया—ऋषभ खलु अर्हन् कौशलिको वज्रऋषभनाराचसंहननः समचतुरस्रसंस्थान संस्थित पञ्च धनुश्शतानि ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन अभवत् । ऋषभः खलु अर्हन् विद्यति पूर्वशतसहस्राणि कुमारवासमध्ये उषित्वा त्रिषष्टिं पूर्वशतसहस्राणि महाराज्यवासमध्ये

उत्तरासाढाहिं अणंते जाव समुप्पण्णे" उत्तरापादा नक्षत्र में ही उन्होने अनन्त यावत् केवल-वरज्ञान दर्शन प्राप्त क्रिये, यहाँ यावत्पद से—'अणुत्तरेण निव्वाघाए, निरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे, केवलवरणाण दंसणे" इन पदों का ग्रहण हुआ है, इन पदों का अर्थ जानने के लिए ४१ वें सूत्र को देखना चाहिये, 'अभीइणा परिणिव्वुए' ऋषभनाथ प्रसुका निर्वाण अभिजित् नामके नक्षत्र में हुआ ॥४४॥

वस्थाथी अनगारावस्थाया प्रव्रजित् तथा 'उत्तरासाढाहिं अणंते जाव समुप्पण्णे' अने उत्तरासाढा नक्षत्रमा च तेभ्यो अन त यावत् केवलवरज्ञान इति नेनी आप्तिं केशी अही यावत् पदो "अणुत्तरेण निव्वाघाए, निरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे, केवलवरणाण दंसणे" आ पदो अहेयु तथा छे. आ पदोना अर्थने नालुवा माटे ४१ भां सूत्रने लेवु लेध अे 'अभीइणा परिणिव्वुए' ऋषभनाथ प्रसुका निर्वाण अभिजित् नामना नक्षत्रमा थयु. ॥सूत्र-४४॥

उपित्वा त्र्यशीतिं पूर्वशतसहस्राणि अगारयासमध्ये उपित्वा मुण्डो भूत्वा अगारात् अन-
गारितां प्रव्रजितः । ऋषभः खलु अर्हन् एकं वर्षसहस्रं छन्नस्थपर्यायं पालयित्वा, एकं पूर्व-
शतसहस्रं वर्षसहस्रानां केवलपर्यायं पालयित्वा, एकं पूर्वशतसहस्रं बहुप्रतिपूर्णं श्रामण्यपर्यायं
पालयित्वा चतुरशीतिं पूर्वशतसहस्राणि सर्वायुष्कं पालयित्वा, य स हेमन्तानां तृतीयो
मासः पञ्चमः पक्षो माघवहुलः, तस्य खलु माघवहुलस्य त्रयोदशी पक्षे खलु दशभिरनगार-
सहस्रैः साद्धं संपरिवृत अष्टापदशैलशिखरे चतुर्दशेन भक्तेन अपानकेन संपल्यङ्क निपण्णः
पूर्वाह्निकालसमये अभिजित्- नक्षत्रेण योगमुपगते खलु सुपमदुष्पमायाः समायाः पकोन
नवत्यां पक्षेषु शेषेषु कालगतो व्यतिक्रान्तो यावत् सर्वदुःखप्रहोणः ॥सू० ४५॥

टीका—‘उसमे णं’ इत्यादि । ‘उसमेण अरहा कोसलिए वज्जरिसहणारायसंघयणे’
ऋषभः खलु अर्हन् कौशलिको वज्र^रभनाराचसंहननः वज्रं=कीलिकाकारमस्थि, ऋषभः=
तदुपरि परिवेष्टनपट्टाकृतिकोऽस्थिविशेषः, नाराचम्=उभयतो मर्कटबन्धः, तथा च द्वयो-
रस्थनोरुभयतो मर्कटबन्धनेन बद्धयोः पट्टाकृतिना तृतीयेनास्थना परिवेष्टितयोरुपरि तद्-
स्थित्रयं पुनरपि दृढीकर्तुं तत्र निखात कीलिकाकारं वज्रनामकमस्थि यत्र भवति तद्
वज्रऋषभनाराचम् संहन्यन्ते=दृढीक्रियन्ते शरीरपुद्गला येन तत् संहननम्=अस्थिनिचयः
वज्रऋषभनाराचं संहननं यस्य स तथाभूतः, पुनः ‘समचउरंससंठाणसंठिए’ समचतुरस्रसं-

अथ सूत्रकार प्रसु से सबन्धित शरीरसहनन आदि का, कुमारादि कालों को स्थिति का
और दीक्षा ग्रहण आदि कल्याणको का कथन करते हैं—

“उसमे ण अरहा कोसलिए वज्जरिसहणारायसंघयणे” इत्यादि ।

टीकार्थ “उसमेण अरहा कोसलिए वज्जरिसहणाराय संघयणे” कौशलिक वे ऋषभ अर्हन्त वज्र
ऋषभनाराच सहनन वाले थे, इस सहनन में कीलिका के आकार की जो हड्डी होती है उसका
नाम वज्र है, उसके ऊपर परिवेष्टनकरने वाली पट्टी के जैसी जो दूसरी हड्डी होती है उसका नाम
ऋषभ है, दोनों तरफ जो मर्कटबन्ध है उसका नाम नाराच है, तथा जिस संहनन में दोनों
हड्डियों के उपर जो कि दोनों ओर से मर्कटबन्ध द्वारा जकड़ी हुई होती है एव पट्टी के जैसी
तृतीय हड्डी से जो परिवेष्टित रहती हैं. इन तीनों हड्डियों को मजबूत करने के लिये उनमें कीलिका
के आकार जैसी एक वज्र नाम की हड्डी टुकी हुई होती है, इसी कारण इस संहनन का नाम

इसे सूत्रकार प्रशुधी संपद्ध शरीर संहनन वगेरेतु कुमारादि कालोनी स्थितिनुं अने
दीक्षा अहंषु वगेरे कल्याणकोनुं कथन करे छे :

‘उसमेण अरहा कोसलिए वज्जरिसहणारायसंघयणे’- इत्यादि-सूत्र-॥४५॥

टीकार्थ—कौशलिक ते ऋषभ अर्हन्त वज्र ऋषभनाराच-संहननवाणा हुता, ये संहननमा
दृढीकाना आकारनी वे अस्थि होय छे तेनु नाम वज्र छे. ते अस्थिनी उपर परिवेष्टन
करनारी पट्टी जेवी भील अस्थि होय छे तेनु नाम ऋषभ छे अन्ने तरङ्गे जे मर्कट-
बन्ध छे, तेनु नाम नाराच छे तथा जे संहननमा गेड डाडकाज्योनी उपर के जे अन्ने
आणुधी मर्कट बन्ध वडे जकडायेल होय छे, अने पट्टिना जेवी त्रीण डाडकाधी जे वीं-
गायेल रहे छे, आ त्रये डाडकाज्योने मजबूत करवा भाटे तेसां भीलानां आकार जेनुं जेक

स्थानसंस्थितः—समाः=तुल्याः अन्यूनाधिकाः चतस्रः अस्त्रयो हस्तपादोपर्यधोरूपाश्चत्वारोऽपि विभागाः शुभलक्षणोपेता यस्य संस्थानस्य तत् समचतुरस्र=तुल्यारोहपरिणाहं, तच्च तत् संस्थानम्=आहारविशेषः, तेन संस्थितः युक्तः, तथा 'पंच घणुसयाइं' पञ्चधनुश्शतानि 'उद्धं उच्चत्तेणं होत्था' ऊर्ध्वमुच्चत्वेन अभवत्=आसीदिति । इत्थं भगवतः शरीरवर्णनमभिधाय सम्प्रति कुमारवासमध्येदि स्थितिं छद्मस्थत्वादिपर्यायांश्च प्रदर्शयन् निर्वाणकल्याणमाह—'उसमेणं अरहा वीसं' इत्यादि । 'उसमेणं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं' ऋषभः खलु अहंन् विंशतिपूर्वशतसहस्राणि=विंशतिलक्षपूर्वाणि 'कुमारवासमज्झे वसित्ता' कुमारवासमध्ये उपित्वा-स्थित्वा, 'तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं' त्रिपट्ठिं पूर्वशतसहस्राणि=त्रिपट्ठिलक्षपूर्वाणि 'महाराजवासमज्झे वसित्ता' महाराज्यवासमध्ये उपित्वा, इत्थं 'तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं' त्र्यशीतिं पूर्वशतसहस्राणि=त्र्यशीतिलक्षपूर्वाणि 'अगारवासमज्झे' अगारवासमध्ये=गृहस्थत्वे 'वसित्ता' उपित्वा, ततो 'मुंढे भवित्ता अगाराओ' मुण्डो भूत्वा

वज्रऋषभनाराच संहनन है, जिसके द्वारा शरीर पुद्गल दृढ किये जाते हैं उसका नाम संहनन है यहसंहनन अस्थिनिचयरूप होता है. भगवान् ऋषभनाथ का यही संहनन था "समचउरंससंठाण संठिप" संस्थान—समचतुरस्र था, जिस-संस्थान में हाथ, पैर, ऊपर और नीचे का भाग ये चारों अवयव सम अन्यूनाधिक प्रमाण वाले होते हैं तथा शुभलक्षणो से युक्त होते हैं, उस संस्थान का नाम समचतुरस्र संस्थान है, "पंच घणुसयाइं उद्धं उच्चत्तेणं होत्था" इनके शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष की थी, "उसमेणं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता" ये ऋषभनाथ जिनेन्द्र २० बीस लाख पूर्वतक कुमारवस्था में रहे, "तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महाराज वासमज्झे वसित्ता" ६३ लाख पूर्व तक महाराजा के पद पर रहे, "तेसीइ पुव्वसयसहस्साइ अगारवासमज्झे वसित्ता" इस तरह ८३ लाख पूर्व तक ये गृहस्थावस्था में रहे, "मुंढे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वहए" बाद में ये मुण्डित होकर अगारावस्था को छोड़कर अनगारावस्था

पञ्च नामनु डाउडुं जेसारेल होय छे. आकारबुथी न आ संहननु नाम पञ्च ऋषभ नाराच संहनन छे जेना वडे शरीरना पुद्गलदे। मन्थूत क्शवामां आवे छे ते संहनन कडेवाय छे जे संहनन अस्थि समूह रूप होय छे भगवान् ऋषभनाथनुं जे न संहनन छत्तुं 'समचउरंससंठाण संठिप' तेभनुं संस्थान समचतुरस्र छत्तुं जे संस्थानमां हाथ, पैर, ऊपर अने नीचेना भाग आ थारे अवयव सम-अन्यूनाधिक प्रमाण वाणा होय छे अने शुभ लक्षणेथी युक्त होय छे ते संस्थाननुं नाम समचतुरस्र संस्थान छे 'पंच घणु उद्धं उच्चत्तेणं होत्था' तेभना शरीरनी उचाई ५००-याथ सो धनुषनी छती 'उसमेणं अरहा वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता । आ ऋषभनाथ जेनेन्द्र २० बीस लाख पूर्व पर्यन्त कुमार अवस्थामा रहा. 'तेवट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं' महाराजवास-मज्झे वसित्ता' आ प्रभाण्णे ६३ लाख पूर्व सुधी महाराज पद पर गिराव्या त्थार आह 'तेसिइ पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता । ८३ लाख पूर्व सुधी तेओ गृहस्था-

अगारात्=अगारं परित्यज्य 'अणगारियं पन्वइए' अनगारितां प्रव्रजितः=प्राप्तः । इत्थं गृहीतप्रव्रज्य 'उसमेणं अरहा एगं वाससहस्सं' ऋषभः खल्ल अहंन् एकं वर्षसहस्सम्=एक सहस्रवर्षाणि 'छउमत्थपरियाय पाउणित्ता' उन्नस्थपर्यायं पालयित्वा=समाप्य, ततः 'एगं पुन्वसयसहस्सं वाससहस्सणं' एकं=पूर्वशतसहस्र वर्षसहस्रोनम्=एक सहस्रवर्षन्यूनैक-लक्षपूर्वाणि 'केवल्लिपरियाय' केवल्लिपर्यायं=केवल्लित्त्वा 'पाउणित्ता' पालयित्वा=समाप्य, इत्थं च 'एगं पुन्वसयसहस्सं बहुपडिपुण्णं' एक पूर्वशतसहस्र बहुप्रतिपूर्णम्=अखण्डिता-नि एकलक्षपूर्वाणि 'सामण्णपरियायं पाउणित्ता' श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा, ततश्च 'चउरा-सीइं पुन्वसयसहस्साइं' चतुरशीतिं पूर्वशतसहस्राणि=चतुरशीतिलक्षपूर्वाणि 'सव्वाउयं' सर्वायुष्कं=संपूर्णमायुः 'पालइत्ता' पालयित्वा=समाप्य 'जे से हेमताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहवहुळे' यः स हेमन्तानां तृतीयो मासः पञ्चमः पक्षो माघवहुलः=माघकृष्णपक्षः, 'तस्सणं माहवहुलस्स तेरसीपक्खेणं' तस्य माघवहुलस्य त्रयोदशीपक्षे=त्रयोदशी तिथौ खल्ल 'दसहिं अणगारसहस्सेहिं' दशभिः अनगारसहस्रैः=दशसहस्रसंख्यकैरनगारैः 'सद्धिं संपरिवुडे' सार्द्धं सम्परिवृत्तः, 'अट्टावयसेलसिहरंसि' अष्टापदशैलशिखरे=अष्टापदनामकपर्व-

में प्रव्रजित हो गये, "उसमेण अरहा एग वाससहस्सं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता" ये इस अवस्था में एक हजार वर्ष तक छवस्थ रहे, "एग पुन्व सयसहस्सं वाससहस्सणं केवल्लिपरियायं पाउ-णित्ता" एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्वतक केवल्लिपर्याय का इन्होंने पालन किया, "एग पुन्वसयसहस्सं बहुपडिपुण्णं सामण्णपरियाय पाउणित्ता" इस तरह पूरे एक लाख पूर्वतक श्रामण्य पर्याय का पालन करके इन्होंने अपनी "चउरासीइं पुन्वसयसहस्सं सव्वाउय पालइत्ता" ८४ लाख वर्ष की पूरी आयु समाप्त कर फिर ये "जे से हेमताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहवहुळे, तस्स णं माहवहुलस्स तेरसी पक्खेणं" हेमन्त-ऋतु के माघकृष्ण पक्ष में त्रयोदशी के दिन "दसहिं अणगारसहस्सेहिं सद्धिं" दश हजार मुनियों से सम्परीवृत्त हुए "अट्टावयसेल सिहरंसि" अष्टापद शैलशिखर से "चोदसमेणं भत्तेण" निर्जल छह उपवास करके "सपल्लियं क-

वस्थाभां रक्षा. त्थार भाइ 'मुंडे भवित्ता अगारात्तो अणगारियं पन्वइए तेओ। सु डित थर्ध ने अगारावस्थाने। ओट्ठे के अहस्सपञ्चाने त्याग करीने अनगार अवस्था धारण करी अर्थात् प्रव्रजित थर्ध गथा 'उसमेणं अरहा एगं वास सहस्सं छउमत्थ परियायं पाउणित्ता' तेओ आ अवस्थाभां ओक डेअर वर्ष पर्यन्त छवस्थरइया. 'एगं पुन्वसयसहस्सणं केवल्लिपरियायं पाउणित्ता' ओक डेअर वर्ष न्यून ओक लाख वर्ष पर्यन्त ओमणे केवलि पर्यायतु' पालन कथुं "एगं पुन्वसयसहस्सं बहु पडिपुण्णं सामण्णपरियायं पाउणित्ता' आ प्रमाणे पूरा ओक लाख वर्ष सुधी श्रामण्य पर्यायतु' पालन करीने ओमणे पोतातुं 'चउरासीइं पुन्वसयसहस्सं सव्वाउयं पालयित्ता' ८४ लाख पूर्वतु संपूर्ण आयु समाप्त करीने पछी 'जे से हेमताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहवहुळे, तस्स णं माह-बहुलस्स तेरसी पक्खे णं' हेमन्त ऋतुना माघ कृष्ण पक्षभां तेरसने दिवसे 'दसहिं अण-गारसहस्सेहिं सद्धिं' दस डेअर मुनियोथी युक्त थर्ध ने "अट्टावयसेलसिहरंसि" अष्टापद

तश्चिखरे 'चोद्दसमेण भक्तेण अपाणएणं' चतुर्दशेन भक्तेन अपानकेन=निर्जलैः पद्भिरुप-
वासैः युक्त इत्यध्याहार्यम्, तथा='संपलियंकणिसण्णे' सम्पल्यङ्कनिपण्णः=पद्मासनोपविष्टः
सन् 'पुव्वण्हकालसमयसि' पूर्वाह्नकालसमये 'अभीइणा णक्खत्तेण जोगमुवागएण' अभि-
जिता नक्षत्रेण सह योगमुवागते खल्लु, चन्द्रे इत्यध्याहार्यम्, तथा 'सुसमदुसमाए समाए
एगूणणवडईहिं पक्खेहिं' सुषम दुष्पमायाः समायाः एकोननवतौ पक्षेषु=सार्धाष्टमासा-
धिकेषु त्रिषु वर्षेषु 'सेसेहिं' शेषेषु सत्सु 'कालगए' कालगतः=मरणधर्मं प्राप्तः, 'वीइक्कंते'
व्यतिक्रान्तः=जन्मजरामरणादिलक्षणं संसारम् व्यतिगतः 'जाव' यावत्-यावत्पदेन 'समु-
द्धतः छिन्नजातिजरामरणबन्धनः सिद्धो बुद्धो मुक्तोऽन्तकृतः परिविर्द्धतः' इति संग्राह्यम् ।
तत्र-समुद्धातः स=सम्यक् पुनरावृत्तिराहित्येन उत्=उर्ध्वं लोकाग्रलक्षणं स्थानं यातः=प्राप्तः,
न पुनरन्यतैर्यिकवत् पुनरवतारी, उक्तं च तैः—

“ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्तारः परमं पदम् ।

गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भवं तीर्थनिकारतः ॥१॥ इति

निसण्णे" पर्यङ्कासन से "पुव्व ण्ह" पूर्वाह्न "कालसमयसि" काल के समय "अभीइणा णक्खत्तेण"
अभिजित नक्षत्र के साथ "जोगमुवागएणं" चन्द्रयोग में मुक्ति पधारे, जब ये मोक्ष पधारे उस
समय "सुसम दुसमाए समाए एगूण णवडईहिं पक्खेहिं सेसेहिं" चतुर्थ काल के ३ वर्ष ८॥ मास
बाकी थे, इस प्रकार "कालगए वीइक्कंते जाव सव्व दुक्खपहीणे" जन्म, जरा, मरण आदि लक्षण
वाले संसार का परित्याग कर वे प्रभु यावत् सर्व दुःखों से प्रहीण हो गये, यहा यावत्पद से
"समुद्धातः छिन्नजातिजरामरणबन्धन सिद्धो बुद्धो मुक्तोऽन्तकृतः परिविर्द्धतः" इस पाठ का
ग्रहण हुआ है । इस पाठ का भाव इस प्रकार है—प्रभु उस लोकाग्ररूप स्थान पर पहुँचे कि
फिर जहाँ से कभी भी वापिस उन्हें यहाँ पर नहीं आना पड़ता है । अतः अन्य तीर्थिकों
ने जो ऐसा कहा है कि "ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्तारः परम पदम् । गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि

शैव शिष्यार्थी 'चोद्दसमेण भक्तेण' निर्जल ७ उपवास करीने 'संपलियक निसण्णे'
पर्यङ्कासनसे 'पुव्वण्हं पूर्वाह्न कालसमयसि' कालना समये 'अभीइणा णक्खत्तेण' अभि-
जित नक्षत्रार्थी साथे 'जोगमुवागएणं' यद्रामानोयोग थये त्यारे तेओ श्रीमुक्तिगामि थया.
न्यारे तेओ श्री मुक्ति पधार्था त्यारे 'सुसम दुसमाए समाए एगूणणवड ईहिं पक्खेहिं
सेसेहिं' यतुथ कालना उ त्रषु वर्षे अने ८॥ साडा आठ मास आडि डता आ प्रभाणु
'कालगए वीइक्कंते जाव सव्व दुक्खपहीणे' जन्म, जस, मरषु आदि लक्षणवाणा
स सारने परित्याग करीने ते प्रभु यावत् सर्वदुःखोपायी प्रहीण थय गथा अडी यावत् पदधी
"समुद्धातः छिन्नजातिजरामरणबन्धन सिद्धो बुद्धो मुक्तोऽन्तकृतः परिविर्द्धतः" आ
याड अदषु थयेद छे आ पाठने भाव आ प्रभाणु छे न्यार्थी करी वार कोर्ध पषु दिवसे
तेओश्रीने पाडा अडी आववातु थाय नडि जेवा ते दोकाअइय स्थान पर तेओश्री पधार्था
ज्येथी अन्य तीर्थिको जे आ प्रभाणु कल्लु छे के "ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्तारं परमं
पदम् । गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि भवं तीर्थनिकारत ॥१॥ ते मुक्ति अने आगमथी सवथा

तथा छिन्नजातिजरामरणबन्धनः छिन्नं विनाशितं जातिजरामरणरूपं बन्धनं, तर्द्धतुभूतकर्मणां विनाशाद् येन स तथाभूतः, तथा सिद्धः कृतार्थः, बुद्धः ज्ञातममस्ततत्त्वः, मुक्तः भवोपग्राहिकर्मा शोभ्यो विनिर्गतः, अन्तकृतः अन्तः भवान्तः कृतो येन स तथाविधः अपुनर्भव इत्यर्थः, परिनिवृतः कर्मकृतसकल सन्तापरहितत्वात् समन्ताच्छीतीभूतः, अतएव 'सन्वदुक्खप्पहीणे' सर्वदुःखप्रहीणः सर्वाणि-शारीरमानसानि दुःसानि प्रहीणानि यस्य स तथा विनष्टसकलशारीरमानसदुःखश्च जातः इति ॥सू० ४५॥

अथ भगवति निवृत्ते देवा यत्कृतवन्तस्तदाह-

मूलम्—जं समयं च णं उसभे अरहा कोसलिए कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, तं समयं च णं सक्कस्स देविंदस्म देवरन्नी आसणे चलिए । तए णं से सक्के देविंदे देवराया आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भयवं तित्थयर ओहिणा आभोएइ. आभोइत्ता एव वयासी-परिणिव्वुए खलु जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे उमहे अरहा कोसलिए, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं सक्काणं देविंदाणं देवरा-

भवं तीर्थनिकारत' ॥१॥ वह सर्वथा युक्ति और आगम से विरुद्ध है, प्रभु ने जानि जरा मरण रूप बन्धन का विनाश इसलिये कर दिया कि इनके हेतुभूत कर्मों का उन्होंने विनाश कर दिया था । प्रभु कृतार्थ होने के कारण सिद्ध हो गये कहे गये हैं, भवोपग्राहिक कर्मा शों से विनिर्गत । हो जाने के कारण प्रभु को मुक्तरूप से प्रकट किया गया है । अब प्रभु का पुनः संसार में जन्म नहीं होगा । इस कारण उन्हे अन्तकृत कहा गया है, कर्मजन्य सकल संतापोसे रहित होने के कारण प्रभु में सब तरफ से शीतलता आगई थी इसलिये उन्हे परिनिवृत कहा गया है, शारीरिक, मानसिक समस्त दुःखों से प्रभु सर्वथा रहित हो चुके थे इसलिये उन्हे सर्वदुःखप्रहीण प्रकट किया गया है ॥४५॥

विबुद्धं च प्रभुञ्जे जति जरा मरणा इय बन्धनने। विनाश जेटवा भाटे कथो के जेमना हेतुभूत कर्मोना तेजोश्रीञ्जे विनाश करी हीधो हतो कृतार्थं होवा पहल प्रभु सिद्ध इये प्रसिद्धं च। समस्त तत्त्वोना ज्ञाता होवा पहल प्रभु बुद्ध कहेवामां आवेल च बोवापग्राहिक कर्मांशोथी विनिर्गत होवाथी प्रभुने मुक्त इयमा प्रकट करवामां आवेल च हवे स सारमां करी वार प्रभुने जन्म कदापि थशे नहिं, जेथी ज तेजोश्रीने अन्तकृत कहेवामां आवेल च। कर्म जन्य समस्त संतापोथी रहित होवा पहल प्रभुमां सर्व रीते शीतणता आवी गर्ह हती जेथी ज तेमने परिनिवृत्त कहेवामां आवेल च शारीरिक मानसिक समस्त दुःखोथी प्रभु सर्वथा विहीन थर्ह थूक्या हता जेटवा भाटे तेजोश्रीने सर्वदुःख प्रहीणना इयमां प्रकट करवामां आवेल च ॥सूत्र-४५॥

ईणं तित्थगराणं परिनिव्वाणमहिमं करित्ते, तं गच्छामि णं अहंपि
 भगवओ तित्थगरस्स परिनिव्वाणमहिमं करेमि त्ति कट्ठु वंदइ णमंसइ,
 वंदित्ता णमंसित्ता चउरासीए सोमाणियसाहस्सीहिं तायत्तीसाए ताय-
 तीसएहिं, चउहिं लोगपालेहिं जाव चउहिं चउरासीईहिं आयरक्खदेव-
 साहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं सोहम्मकप्पवासीहिं वेमाणीएहिं देवेहिं दे-
 वीहिं य सद्धिं संपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियमसंखेज्जाणं दीवस-
 मुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स
 सरीरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता विमणे णिराणं दे अंसुपुण्णणयणे
 तित्थयरसरीरयं तिकखुत्तो ओयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता णच्चासण्णे
 णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ ॥ सू० ४६ ॥

छाया—यस्मिन् समये च खलु ऋषभोऽर्हन् कौशलिक कालगतो व्यतिक्रान्त
 समुदातः छिन्नजातिजराभरणवन्धनः सिद्धो यावत् सर्वदुःखप्रहीणः, तस्मिन् समये च खलु
 शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलितं। तत खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराज आसन
 चलितं पश्यति, इष्ट्वा अर्वाधि प्रयुनक्ति, प्रयुज्य भगवन्तं तीर्थकरम् अर्वाधिना आभोगयति,
 आभोग्य पद्मवादीत्-परिनिवृत्तः-खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे ऋषभोऽर्हन् कौशलिकः,
 तद्जीतमेतत् अतीतप्रत्युत्पन्नमनागतानां शक्राणां देवेन्द्राणां देवराजानां तीर्थकराणां परि
 निर्वाणमहिमानं कर्तुम् तद् गच्छामि खलु अहमपि भगवतस्तीर्थकरस्य परिनिर्वाणमहिमानं
 करोमीति कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा चुतुरशीत्या सामानिकसाहस्रीभिः,
 त्रयस्त्रिंशता त्रयस्त्रिंशकैः, चतुर्भिलोकपालैर्यावत् चतसृभिः चतुरशीतिभिः आत्तरक्षक-
 देवसाहस्रीभिः, अन्यैश्च बहुभिः सौधर्मकल्पवासिभिः वैमानिकैः देवैर्देवीभिश्च साद्यं सम्परि-
 वृतस्तया उत्कृष्टया यावत् तिर्यगसंब्येयानां द्वीपसमुद्राणां मध्यमध्येन यत्रैव अष्टापद-
 पर्वतो यत्रैव भगवतस्तीर्थकरस्य शरीरकं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य विमना निरानन्दः
 अश्रुपूर्णनयनः तीर्थकरशरीरकं त्रिकृत्व आदक्षिण प्रदक्षिणं करोति, कृत्वा नात्यासन्ने नाति
 दूरे श्शुश्रूषमाणो यावत् पर्युपास्ते ॥४६॥

भगवान् के मुक्ति में चले जाने पर देवोंने जो कुछ किया उसे यहां सूत्रकार प्रकट
 करते हैं—“जं समय च णं उसमे अरहा क्रोसल्लिए कालगए” इत्यादि ।

टीकार्थ—“जं समय च णं उसमे अरहा कोसल्लिए कालगए वीइवकंते समुज्जाए छिण्णजाइ-

भगवान् मुक्तिमा पधार्था अने त यछी देवाणे ने कथं कथुं, तने अही सूत्रकार
 प्रकट करे छे : जं समयं च णं उसमे अरहा कोसल्लिए कालगए-इत्यादि-॥सूत्र-४६॥
 टीकार्थ—“जं समयं च णं उसमे अरहा कोसल्लिए कालगए विइवकंते समुज्जाए छिण्ण

टीका—‘जं समयं च’ इत्यादि । मूले ‘जं समयं’ ‘तं समयं’ इत्युभयत्र प्राकृत-
त्वात् सप्तम्यर्थे द्वितीया, ततश्च ‘जं समयं च णं उसमे अरहा—कोसलिए कालगए वीइ-
क ते समुज्जाए छिण्ण जाइजरामरणबंधणे—सिद्धे बुद्धे’ यस्मिन् समये च खलु ऋषभो-
ऽहंन् कौशलिकः कालगतो व्युत्क्रान्तः समुधातः छिन्नजातिजरामरणबन्धनः सिद्धो बुद्धो
‘जाव’ यावत्, यावत्पदेन—‘मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः’ इति पदत्रयं संग्राह्यम्, तथा
‘सव्व दुक्खप्पहीणे’ सर्वदुःखप्रहीणः, ‘कालगतादिसर्वदुःख प्रहोणान्तगन्दानां व्याख्या-
ऽत्रैव चतुश्चत्वारिंशत्तमे सूत्रेऽवलोकनीया, ‘तं समयं च णं सकस्स देविंदस्स देवरण्णो
आसणे चलिए’ तस्मिन् समये च खलु शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलितं=
कम्पितम् । ‘तए ण—से सक्के देविंदे देवराया आसणं चलियं पासइ’ ततः खलु स शक्रो
देवेन्द्रो देवराजः आसनं चलित पश्यति=भवलोकयति, ‘पासित्ता’ दृष्ट्वा ‘ओहिं’ अवधिम्
अवधिज्ञानं ‘पउंजइ’ प्रयुनक्ति=व्यापृणाति, ‘पउंजित्ता’ प्रयुज्य=अवधिज्ञानं व्यापृत्य
‘मयवं तित्थयरं ओहिणा’ भगवन्तं तीर्थंकरम् अवधिना=अवधिज्ञानेन ‘आभोएइ आभो-
गयति=पश्यति, ‘आभोइत्ता’ आभोग्य=दृष्ट्वा ‘एवं’ एवं=वक्ष्यमाणं वचनम् ‘वयासी’
अवादीत्=उक्तवान् ‘परिणिव्वुए’ परिनिर्वृतः=कर्मकृतसकलसन्तापरहितत्वात् समन्ताच्छी-
तलीभूतः ‘खलु जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए’ खलु जम्बूद्वीपे

जरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे’ वे कौशलिक ऋषभ अर्हत जिस समय मुक्ति में
गये अर्थात् कालगत आदि सर्व दुःख प्रहोणान्त तक के विघेदणो से जब वे युक्त हो चुके “त
समयं च ण सकस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणे चलिए” उम समय देवेन्द्र देवराज शक्र का
आसन कम्पायमान हुआ, “तएण से सक्के देविंदे देवराया आसणं चलियं पासइ” शक्रने
जब कम्पित होते हुए अपने आसन को देखा तो उसी समय उसने अपने अवधिज्ञान को
व्यापारित किया “पासित्ता” व्यापारित कर “ओहिं पउंजइ पउजित्ता मयवं तित्थयरं आभोएइ”
उसने उस अवधिज्ञान से तीर्थंकर प्रभु को देखा, “आभोइत्ता” देखकर फिर वह “एवं वयासी”
इस प्रकार कहने लगा “परिणिव्वुए खलु जंबुद्वीवेदीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए” जम्बू-
द्वीप नामके द्वीप में स्थित भरतक्षेत्र में कौशलिक ऋषभ अर्हत परिनिर्वृत हुए हैं—कर्मकृत सकल

जाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे’ ते कौशलिक ऋषभ अर्हत ने समये
मुक्तिमा पधायी—अर्हते के कालगत वगेरे सर्वदुःख प्रहीणान्त मुधीना विशेषणोत्थी न्यारे
तेओश्री युद्धत थर्ध युद्धया ‘तं समयं च णं सकस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणे चलिए’ ते
समये देवेन्द्र देवराज शक्रने आसन कम्पायमान थयु ‘तएण से सक्के देविंदे देवराया
आसणं चलियं पासइ’ शके न्यारे पोतना आसनने कम्पायमानथतु नेथु त्यारे ते
क्षणे तेणे पोताना अवधि ज्ञानने व्यापारित कथु ‘पासित्ता’ व्यापारित करीने ‘ओहिं पउं-
जइ पउजित्ता’ मयवं तित्थयरं आभोएइ’ तेणे ते अवधि ज्ञानथी तीर्थंकर प्रभुने नेया ‘आभो-
इत्ता’ तीर्थंकर प्रभुने नेधने ते ‘एवं वयासी’ आ प्रभाणे कडेवा लाग्या ‘परिणिव्वुए खलु
जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए’ जम्बूद्वीपनामना द्वीपमा आवेल भरतक्षेत्र

द्वीपे भरते वर्षे ऋषभोऽर्हन् कौशलिक 'तं' तदेतत् 'तीय पञ्चुप्पणमणागयाण' अतीत-
 प्रत्युत्पन्नानागतानाम्=भूतवर्तमानमविष्यत्कालजातानां 'सक्काण देविंदाणं देवराडणं
 तित्थगराण परिनिव्वाणमहिम' शक्राणां देवेन्द्राणां देवराजानां तीर्थकराणां परिनिर्वाण-
 महिमानं=तीर्थकरसम्बन्धिपरिनिर्वाणमहोत्सवं 'करित्तए' कर्त्तु 'जीयमेयं' जीतं=जीत-
 व्यवहारो वर्त्तते, 'तं' तत्=तस्माद् हेतोः अहंपि भगवओ तित्थगरस्स परिणिव्वाण-
 महिमं करोमि' तद् गच्छामि खलु अहमपि भगवतस्तीर्थकरस्य परिनिर्वाण महिमानं करोमि
 'त्तिकट्ठ' इति कृत्वा=इत्युत्त्वा 'वंदइ' वन्दते=स्तौति 'णमंसइ' नमस्यति=प्रणमति
 'वंदिता णमंसिता' वन्दित्वा नमस्यित्वा 'चउरासीए सामाणिय साहस्सीहिं' चतुरशीत्या
 सामानिकसाहस्सीभिः=चतुरशीति सहस्रसंख्यकैः सामानिकदेवैः, 'तायत्तीसाए' त्रय
 ख्रिशता=त्रयस्त्रिंशत्संख्यकैः 'तायत्तीसाएहिं' त्रायस्त्रिंशकैः गुरुस्थानीयैर्देवैः, 'चउहिं' चतु-
 र्भिः=चतुस्तंख्यकैः 'लोगपालेहिं' लोकपालैः=सोमयम-व्रुणकुवेरमंजुकै लोकोपालैः.
 'जाव' यावत्-यावत्पदेन-'अट्टहिं' अगमहिंसीहि सपरिवाराहिं तिहिं परिमाहिं सत्तिहिं

सतापो से रहित हो गये हैं इसलिये वे समन्तात् शीतलीभूत बन गये है, "तं जीयमेय तीयपडु-
 प्पण मणागयाणं सक्काणं देविंदाण देवराडणं तित्थगराणं परिनिव्वाणमहिम करित्तए" अतः समस्त
 अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्काल सबधी इन्द्रो का यह जीत-व्यवहार है कि वे तीर्थकर प्रभु के
 निर्वाणगमन महोत्सव को करें, "त गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स परिनिव्वाणमहिम
 करित्तए" इसलिये मैं भी भगवान् तीर्थ कर ऋषभदेव के निर्वाणगमनोत्सव करने के लिये जाता
 हू "तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स-परिनिव्वाणमहिमं करेमिच्चि कट्ठ वदइ णमंसइ,
 वंदित्ता णमंसित्ता चउरासीए सामाणिय साहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसाएहिं, चउहिं लोगपालेहिं
 जाव चउहिं चउरासीईहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं सोहम्मकप्पवासीहिं वेमाणि-
 एहिं देवेहिं देवीहि य सद्धि सपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियमसखेज्जाण दीवसमुदाणं
 मज्झंमज्जेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स सररीए तेणेव उवागच्छइ, उवा-

भा. कौशलिक ऋषभ अर्हन् तं परिनिवृत्तं तथा छे.-कर्मकृत सकल सतापोधी रहितं वर्धं गया
 छे. अथी तेभा समन्तात् शीतलीभूत भनी गया छे 'तं जीयमेयं तीयपडुप्पन्नमणागयाणं
 सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं परिनिव्वाणमहिमं करित्तए' तेथी सधुणा अतीत, अनगत
 अने वर्तमान काल सबधी इन्द्रोना आ एत व्यवहार छे के-तेभा तीर्थ कर प्रभुने निर्वाण
 गमन भडेत्सवडेअये 'तं गच्छामि णं अहं पि भगवओ तित्थगरस्स परिनिव्वाणमहिमं
 करित्तए' तेथी हुं पणु भगवान् तीर्थकर ऋषभदेवनेो निर्वाण भडेत्सव करव. अउ 'तं
 गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स परिनिव्वाण महिमं करेमिच्चि कट्ठ वंदइ णमं-
 सइ वंदित्ता णमंसित्ता चउरासीए सामाणिय साहस्सीएहिं तायत्तीसाए तायत्तीसाएहिं
 चउहिं लोगपालेहिं जाव चउहिं चउरासीईहिं आयरक्ख देवसाहस्सीहिं अण्णेहिय बहूहिं
 सोहम्म कप्पवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देविहिय सद्धि सपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए जाव
 तिरियमसखेज्जाण दीवसमुदाणं मज्झं मज्जेणं जेणेव अट्ठावयपव्वए जेणेव भगवओ

टीका-‘जं समयं च’ इत्यादि । मूले ‘जं समयं’ ‘तं समयं’ इत्युभयत्र प्राकृत-
त्वात् सप्तम्यर्थे द्वितीया, ततश्च ‘जं समयं च णं उसभे अरहा-कोसलिए कालगए वीड-
कते समुज्जाए छिण्ण जाइजरामरणबंधणे-सिद्धे बुद्धे’ यस्मिन् समये च खलु ऋषभो-
ऽर्हन् कौशलिकः कालगतो व्युत्क्रान्तः समुद्रातः छिन्नजातिजरामरणवन्धनः सिद्धो बुद्धो
‘जाव’ यावत्, यावत्पदेन-‘मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः’ इति पदत्रय संग्राह्यम्, तथा
‘सव्व दुक्खप्पहीणे’ सर्वदुःखप्रहीणः, ‘कालगतादिसर्वदुःख प्रहोणान्तशब्दानां व्याख्या-
ऽत्रैव चतुश्चत्वारिंशत्तमे सूत्रेऽवलोकनीया, ‘तं समयं च णं सकस्स देविदस्स देवरणो
आसणे चलिए’ तस्मिन् समये च खलु शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलितं=
कम्पितम् । ‘तए ण-से सक्के देविदे देवराया आसणं चलियं पासइ’ ततः खलु स शक्रो
देवेन्द्रो देवराजः आसनं चलित पश्यति=भवलोकयति, ‘पासित्ता’ दृष्ट्वा ‘ओहिं’ अवधिम्
अवधिज्ञानं ‘पउंजइ’ प्रयुनक्ति=व्यापृणाति, ‘पउंजित्ता’ प्रयुज्य=अवधिज्ञानं व्यापृत्य
‘भयवं तित्थयरं ओहिणा’ भगवन्तं तीर्थंकरम् अवधिना=अवधिज्ञानेन ‘आभोएइ’ आभो-
गयति=पश्यति, ‘आभोइत्ता’ आभोग्य=दृष्ट्वा ‘एवं’ एवं=वक्ष्यमाणं वचनम् ‘वयासी’
अवादीत्=उक्तवान् ‘परिणिव्वुए’ परिनिर्वृतः=कर्मकृतसकलसन्तापरहितत्वात् समन्ताच्छी-
तलीभूतः ‘खलु जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए’ खलु जम्बूद्वीपे

जरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे” वे कौशलिक ऋषभ अर्हत जिस समय मुक्ति में
गये अर्थात् कालगत आदि सर्व दुःख प्रहोणान्त तक के विशेषणो से जब वे युक्त हो चुके “त
समयं च णं सकस्स देविदस्स देवरणो आसणे चलिए” उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र का
आसन कम्पायमान हुआ, “तएण से सक्के देविदे देवराया आसणं चलियं पासइ” शक्रने
जब कम्पित होते हुए अपने आसन को देखा तो उसी समय उसने अपने अवधिज्ञान को
व्यापारित किया “पासित्ता” व्यापारित कर “ओहिं पउंजइ पउजित्ता भयवं तित्थयरं आभोएइ”
उसने उस अवधिज्ञान से तीर्थंकर प्रभु को देखा, “आभोइत्ता” देखकर फिर वह “एवं वयासी”
इस प्रकार कहने लगा “परिणिव्वुए खलु जंबुद्वीवेदीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए” जम्बू-
द्वीप नामके द्वीप में स्थित भरतक्षेत्र में कौशलिक ऋषभ अर्हत परिनिर्वृत हुए है-कर्मकृत सकल

जाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे’ ते कौशलिक ऋषभ अर्हत ने समये
मुक्तिमा पधाय-ओट्ठे के कालगत वगेरे सर्वदुःख प्रहोणान्त सुधीना विशेषणोथी न्यारे
तेओश्री युक्त थर्ध थुकथा ‘तं समयं च णं सकस्स देविदस्स देवरणो आसणे चलिए’ ते
समये देवेन्द्र देवराज शक्रो आसन कम्पायमान थयु ‘तएण से सक्के देविदे देवराया
आसणं चलियं पासइ’ शक्रे न्यारे पोतना आसनने कम्पायमानथतुं नेथु त्यारे तेथ
क्षणे तेणे पोताना अवधि ज्ञानने व्यापारित कथु ‘पासित्ता’ व्यापारित करीने ‘ओहिं पउं-
जइ पउजित्ता’ भयवं तित्थयरं आभोएइ’ तेणे ते अवधि ज्ञानथी तीर्थं कर प्रभुने नेथा ‘आभो-
इत्ता’ तीर्थंकर प्रभुने नेधने ते ‘एवं वयासी’ आ प्रभाणे कडेवा दाग्था ‘परिणिव्वुए खलु
जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे उसहे अरहा कोसलिए’ जम्बूद्वीपनामना द्वीपमां आवेल भरतक्षेत्र

द्वीपे भरते वर्षे ऋषभोऽहंन् कौशलिकः 'तं' तदेतत् 'तीय पञ्चुप्पणमणागयाण' अतीत-
 प्रत्युत्पन्नानागतानाम्=भूतवर्तमानमविष्यत्कालजातानां 'सक्काण देविंदाणं देवराईणं
 तित्थगराण परिनिव्वाणमहिम' शक्काणां देवेन्द्राणां देवराजानां तीर्थकराणां परिनिर्वाण-
 महिमानं=तीर्थकरसम्बन्धिपरिनिर्वाणमहोत्सवं 'करित्तए' कर्त्तुं 'जीयमेयं' जीतं=जीत-
 व्यवहारो वर्त्तते, 'तं' तत्=तस्माद् हेतोः अहंपि भगवओ तित्थगरस्स परिणिव्वाण-
 महिमं करोमि' तद् गच्छामि खलु अहमपि भगवतस्तीर्थकरस्य परिनिर्वाण महिमानं करोमि
 'त्तिकट्टु' इति कृत्वा=इत्युत्त्वा 'वंदइ' वन्दते=स्तौति 'णमंसइ' नमस्यति=प्रणमति
 'वंदित्ता णमंसित्ता' वन्दित्वा नमस्यित्वा 'चउरासीए सामाणिय साहस्सीहिं' चतुरशीत्या
 सामानिकसाइस्सीभिः=चतुरशीति सहस्रसंख्यकैः सामानिकदेवैः, 'तायत्तीसाए' त्रय
 ख्लिशता=त्रयख्लिशत्संख्यकैः 'तायत्तीसएहिं' त्रयख्लिशकैः गुरुस्थानीयैर्देवैः, 'चउहिं' चतु-
 र्भिः=चतुस्संख्यकैः 'लोगपालेहिं' लोकपालैः=सोमयम-वरुणकुवेरसंज्ञकै लोकापालैः.
 'जाव' यावत्-यावत्पदेन-'अट्टहिं' अगमदिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं सत्तिहिं

सतापो से रहित हो गये हैं इसलिये वे समन्तात् शीतलीभूत बन गये है, "तं जीयमेय तीयपडु-
 प्पण मणागयाणं सक्काणं देविंदाण देवराईणं तित्थगराणं परिनिव्वाणमहिम करित्तए" अतः समस्त
 अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्काल सबधी इन्द्रो का यह जीत-व्यवहार है कि वे तीर्थकर प्रभु के
 निर्वाणगमन महोत्सव को करें, "तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स परिनिव्वाणमहिम
 करित्तए" इसलिये मैं भी भगवान् तीर्थ कर ऋषभदेव के निर्वाणगमनोत्सव करने के लिये जाता
 हूँ "तं गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स-परिनिव्वाणमहिमं करेमिच्छि कट्टु वदइ णमंसइ,
 वंदित्ता णमंसित्ता चउरासीए सामाणिय साहस्सीहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं, चउहिं लोगपालेहिं
 जाव चउहिं चउरासीईहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं सोहम्मकप्पवासीहिं वेमाणि-
 एहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं सपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए जाव तिरियमसखेज्जाणं दीवसमुदाणं
 मज्झमज्झेणं जेणेव अट्टावयपव्वए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स सरौरए तेणेव उवागच्छइ, उवा-

मां कौशलिक ऋषभ अहंन् त परिनिवृत्तं तथा ऐ.-कर्मकृत सकल सतापोथी रहित थर्त्त गथा
 ऐ. ऐथी तेभा समन्तात् शीतलीभूत भनी गथा ऐ 'तं जीयमेयं तीयपडुप्पणमणागयाणं
 सक्काणं देविंदाणं देवरायाणं परिणिव्वाणमहिमं करित्तए' तेथी सधणा अतीत, अनागत
 अने वर्तमान काल सबधी धम्मोने आ एत व्यवहार ऐ के-तेभा तीर्थ कर प्रभुने निर्वाण
 गमन महोत्सवउत्सवे 'तं गच्छामि णं अहं पि भगवओ तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं
 करित्तए' तेथी हु पथ भगवान् तीर्थ कर ऋषभदेवने निर्वाण महोत्सव करव' आठि 'तं
 गच्छामि णं अहंपि भगवओ तित्थगरस्स परिणिव्वाण महिमं करेमिच्छि कट्टु वंदइ णमं-
 सइ वंदित्ता णमंसित्ता चउरासीए सामाणिय साहस्सीएहिं तायत्तीसाए तायत्तीसएहिं
 चउहिं लोगपालेहिं जाव चउहिं चउरासीईहिं आयरक्ख देवसाहस्सीहिं अण्णेहिय बहूहिं
 सोहम्म कप्पवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देविहिय सद्धिं सपरिवुडे ताए उक्किट्ठाए जाव
 तिरियमसखेज्जाणं दीवसमुदाणं मज्झ मज्झेणं जेणेव अट्टावयपव्वए जेणेव भगवओ

अणीएहिं' छाया-अष्टभिरग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिः, तिसृभिः परिवद्धिः सप्तभिरनीकै ' इति संग्राह्यम्, तत्र-अष्टभिः अग्रमहिषीभिः=पद्मा १. शिवा २ शची ३ अञ्जः ४अमला ५ अप्सरा ६ नवमिका ७ रोहिणी ८ इत्यष्टसंख्याभिरग्रममहिषीभिः क्रीदशीभिराभिः इत्याह-सपरिवाराभिः=षोडशसहस्र-षोडश-परिवार सहिताभिरिति, तथा तिसृभिः परिवद्धिः=वाह्यमध्याभ्यन्तररूपाभिस्त्रिसंख्याभिः परिपद्धिः, तथा सप्तभिः अनीकैः=हयगजरथ सुभट-वृषभ गन्धर्व नाट्यरूपैः सप्तभिः सैन्यैः तथा सप्तभिः अनीकाधिपतिभिः, तथा 'चउहिं चउरासोहिं आयरक्ख देवसाहस्सीहिं' चतसृभिः चतुर्गतीभिः आत्मरक्षकदेवसाहस्त्रीभिः=चतसृषु दिक्षु प्रत्येकस्यां दिशि वर्तमानैः चतुरगतीमहस्रैः चतुरगती सहस्रात्मरक्षक देवैः, तथा-'अणोहि य वहुहिं सोइम्मकप्पवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहि देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे' अन्यैश्च बहुभिः सौधर्मकल्पवासिभिः वैमानिकदेवैः, तादृशीभिर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः=संपरिवेष्टितः 'ताए' तथा=देवसम्बन्धिन्या 'उक्किट्टाए' उत्कृष्टया=प्रशस्तविहायोगतिषु श्रेष्ठया, जाव' यावत्-यावत्पदेन-'तुरियाए चवलाए चडाए जवणाए उद्धुयाए सिग्घाए देवगईए वीईवयमाणे' छाया-त्वरितया चपलया चण्डया जवनया उद्धूतया शिघ्रया दिव्यया देवगत्या व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन्' इति संग्राह्यम् । तत्र-त्वरितया मनोजन्यौत्सुक्यवशात् चपलया-कायव्यापारचापल्यात् चण्डया=तीव्रया श्रमजनितग्लान्यभावात् जवनया अत्युत्कृष्टगतिमन्वात् उद्धूतया=उत्कृष्टया-त्रायुगतेरिवोकटत्वात्, शिघ्रया=निरवच्छिन्नशीघ्रत्वगुणयोगात् एतादृश्या दिव्यया=देवजनोचितया देवगत्या=देवसम्बन्धिन्या गत्या करणभूताया व्यतिव्रजन् व्यति-

गच्छित्ता विमणे निराणंदे अंसुपुण्णयणे तित्थयरमरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता णञ्चासण्णे णाइदूरे सुस्सुसमाणे जाव पज्जुवासइ" इस प्रकार कहकर उस शक्रने वन्दना की, नमस्कार किया, वदना नमस्कार करके अपने ८४ हजार सामानिक देवों के साथ ३३ त्रायस्त्रिंशक देवों के साथ वावत्-सपरिवार आठ अपनी पट्टरानियों के साथ प्रत्येक-दिशा के ८४-८४ हजार आत्मरक्षक देवों के साथ और इसी तरह से और भी दूसरे सौधर्मकल्पवासो देव देवियों के साथ शक्र अपनी उत्कृष्ट प्रशस्त विहायोगति में भी श्रेष्ठ दिव्य देवगति से चलता २ तिर्यगू असख्यात द्वीप समुद्रों के ठीक मध्यभाग से होता हुआ जहा अष्टापद पर्वत था

तित्थधरस्स सरीरप तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता विमणे निरानन्दे अंसुपुण्णयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता णञ्चासण्णे णाइदूरे सुस्सुसमाणे जाव पज्जुवासइ' आ प्रभाषे कइने अे शकं प्रभुने वडना करी नमस्कार कया वडना नमस्कार करीने पोताना ८४ हजार सामानिक देवानी साथे उउ त्रायस्त्रिंशक देवानी साथे यावत् सपरिवार आठ पोतानी पट्टराणीथे साथे इरेक दिशाना ८४ हजार ८४ हजार आत्म रक्षक देवानी साथे अने आ प्रभाषे जीण पणु सौधर्म कल्पवासी देव-देवियोंनी साथे ते शकं पोतानी उत्कृष्ट प्रशस्त विहायोगतिमा पणु अेठ दिव्य अेवी देवगतिथी आइतो आइतो तिर्यगू असंख्यात द्वीप समुद्रोंनी अराणर मध्यभागमां थरने तथा अष्टापद पर्वत

व्रजन्=गच्छन् 'तिरियमसंखेज्जाण'तिर्यगसखयेयानां तिर्यग्लोकवर्तिनाम् असंखयेयानां 'दीवसमुदाणं' द्वीपसमुद्राणां द्वीपानां समुद्राणां च 'मज्झ मज्झण' मध्यमध्येन=गति-शयमध्यभागेन 'जेणेव' यत्रैव=यस्मिन्नेव प्रदेशे 'अट्टावयपव्वए' अष्टापदपर्वतः तत्र च पर्वते 'जेणेव' यत्रैव-यस्मिन्नेव भागे 'भगवओ तित्थगरस्स सरीरए' भगवत स्तीर्थकरस्य शरीरकं 'तेणेव उवागच्छइ' तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'विमणे' विमनाः-शोकाकुलितचित्तः, अतएव 'णिराणंदे' निरानन्दः-आनन्दवर्जित, 'अंसुपुण्णणयणे' अश्रुपूर्णनयनः-अश्रुपरिपूर्णनयनः 'तित्थयरसरीरय' तीर्थकरशरीरकं-भगवत् ऋषभदेवस्य निष्प्राणं शरीरं 'तिवखुत्तो' त्रिकृत्व-वारत्रयम् 'आगाहिण पयाहिणं करेइ' आदक्षिणप्रदक्षिण करोति, 'करित्ता' कृत्वा 'णच्चासण्णे णाइदूरे-त्तातिसमीपे नात्तिदूरे किन्तु समुचितस्थाने 'सुसुद्धसमाणे' शुश्रूषमाणः सेवमानः मांसाशिप्राणिभ्यो रक्षन्नित्यर्थः, 'जाव' यावत्-यावत्पदेन-णमंसमाणे अभिमुहे त्रिण-

जहा भगवान् तीर्थकर का शरीर था वहां आया 'वहा पर आकर वह शोकाकुलित चित्त वाला बन गया उसके मन से आनन्द बाहर निकल गया उसकी आँसुओं में आँसु भर आये उसने निष्प्राण उस तीर्थकर शरीर की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वह समुचित स्थान पर बैठ गया, मांसाशिप्राणियों से उस शरीर की रक्षा करता हुआ वह इन्द्र बार २ उस शरीर को प्रणाम करने लगा-पञ्चाङ्गनमन पूर्वक नम्रीभूत होने लगा और विनय के साथ दोनों हाथ जोड़कर उस शरीर के पास समुख बैठ गया।

गति सूत्र में जो यावत्पद है उससे "तुरियाप, चवलाप, चंडाप, जवणाप, उदधूयाप, सिग्घाप, दिव्वाप, देवगईप, वीईवयमाणे २" इस पाठ का यहा ग्रहण हुआ है मनोजन्य औत्सुक्य के वश से उसको वह गति त्वरा से युक्त थी, कायव्यापार की चपलता से 'वह चपल थी, श्रम जनितग्लानि के अभाव से वह तीव्र थी, इससे ऊँची-उत्कृष्ट-और कोई गति नहीं हो सकती है, इस कारण 'वह जवना थी, वायु की गति की तरह वह उत्कट थी, इस-

हता न्यां भगवान् तीर्थकरत्तु शरीर इत्तु तथा गथा तथा ज्ज ने ते शोकाकुलित चित्तवाणा थथ गथा तेभना चित्तमांथी आनंदं धुस थथ गथो तेभनी आंथो आसुथी लीज्ज ग-त्तेणे निष्प्राण्येवा ते तीर्थकरना शरीरनी त्रषु प्रदक्षिणुत्तो करी अने त्थार भाइ ते उचित स्थान पर भेसी गथो, मांसलक्षक प्राणियोथी ते शरीरनी रक्षा करतो तेथं'द्र वार वार ते शरीरने प्रणाम करवा लाग्यो पंचांग नमन पूर्वक नम्रीभूतथा लाग्यो अने सविनय अन्नेइथ ज्जेडीने ते शरीरनी नल्लक भेसी गथो।

गति सूत्रमा जे यावत्पद आवेल छे तेथी 'तुरियाप चवलाप, चंडाप, जवणाप, उदधू-याप, सिग्घाप, दिव्वाप, देवगईप वीईव जे २" आ पाठने स थइ थयो छे मनोजन्य औत्सुक्य ने वीधि तेनी ते गति त्वरायुक्त इती काय व्यापारनी चपलताथी ते चपल इती श्रमजनित ग्लानिना अभावथी ते तीव्र इती. अनाथी उच्चतम-उत्कृष्ट-गति वील्ल होय ज नइ. कथी ने जवना इती. वायुनी गतिनी 'जेम ते उत्कट इती.

अणीर्हि' छाया-अष्टभिरग्रमहिपीभिः सपरिवाराभिः, तिसृभिः परिवर्द्धिः सप्तभिरनीकैः' इति संग्राहम्, तत्र-अष्टभिः अग्रमहिपीभिः=पद्मा १, शिवा २ शत्रो ३ अञ्जः ४ अमला ५ अप्सरा ६ नवमिका ७ रोहिणी ८ इत्यष्टसंख्याभिरग्रममहिपीभिः क्रीडशीभिराभिः इत्याह-सपरिवाराभिः=पोडशसहस्र-पोडश-परिचार सहिताभिरिति, तथा तिसृभिः परिवर्द्धिः=ब्राह्ममध्याभ्यन्तररूपाभिस्त्रिसंख्याभिः परिपद्धिः, तथा सप्तभिः अनीकैः=हयग-जरथ सुभट-वृषभ गन्धर्व नाट्यरूपैः सप्तभिः सैन्यैः तथा सप्तभिः अनीकाधिपतिभिः, तथा 'चउर्हि चउरासोर्हि आयरक्ख देवसाहस्सीर्हि' चतसृभिः चतुःशीतिभिः आत्मरक्षकदेवसाहस्त्रीभिः=चतसृषु दिक्षु प्रत्येकस्यां दिशि वर्तमानैः चतुरशीतिमहस्रैः चतुरशीति सहस्रात्मरक्षक देवैः, तथा-'अणोहि य वहुर्हि सोहम्मकप्पवासीर्हि वैमाणिएर्हि देवेहि देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे' अन्यैश्च बहुभिः सौधर्मकल्पवासिभिः वैमानिकदेवैः, तादृशीभिर्देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः=संपरिवेष्टितः 'ताए' तथा=देवसम्बन्धिन्या 'उक्किट्टाए' उत्कृष्टया=प्रशस्तविहायोगतिषु श्रेष्ठया, जाव' यावत्-यावत्पदेन-'तुरियाए चवलाए चडाए जवणाए उद्धूयाए सिग्घाए देवगईए वीईवयमाणे' छाया-त्वरितया चपलया चण्डया जवनया उद्धूतया शिघ्रया दिव्यया देवगत्या व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन्' इति संग्राहम् । तत्र-त्वरितया मनोजन्यौत्सुक्यवशात् चपलया-कायव्यापारचापल्यात् चण्डया=तीव्रया श्रमजनितग्लान्यभावात् जवनया अत्युत्कृष्टगतिमन्वात् उद्धूतया=उत्कृष्टया-त्रायुगतेरिवोकटत्वात्, शीघ्रया=निरवच्छिन्नशीघ्रत्वगुणयोगात् एतादृश्या दिव्यया=देवजनोचितया देवगत्या=देवसम्बन्धिन्या गत्या करणभूताया व्यतिव्रजन् व्यत्ति-

गच्छित्ता विमणे निराणदे अंसुपुण्णयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेइ, करित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सुसमाणे जाव पञ्जुवासइ" इस प्रकार कहकर उस शक्रने वन्दना की, नमस्कार किया, वदना नमस्कार करके अपने ८४ हजार सामानिक देवों के साथ ३३ त्रायस्त्रिंशक देवों के साथ यावत्-सपरिवार आठ अपनी पट्टरानियो के साथ प्रत्येक-दिशा के ८४-८४ हजार आत्मरक्षक देवों के साथ और इसी तरह से और भी दूसरे सौधर्मकल्पवासी देव देवियों के साथ शक्र अपनी उत्कृष्ट प्रशस्त विहायोगति में भी श्रेष्ठ दिव्य देवगति से चलता २ तिर्यग् असख्यात द्वीप समुद्रों के ठीक मध्यभाग से होता हुआ जहा अष्टापद पर्वत था

तित्थयरस्स सरीरप तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता विमणे निरानन्दे अंसुपुण्णयणे तित्थयरसरीरयं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सुसमाणे जाव पञ्जुवासइ' आ प्रभाषे कडोने ओ शकं प्रथुने वंढना करी नमस्कार कया वंढना नमस्कार करीने पोताना ८४ हजार सामानिक देवानी साथे ३३ त्रायस्त्रिंशक देवानी साथे यावत् सपरिवार आठ पोतानी पट्टराणीथो साथे इदंके दिशाना ८४ हजार ८४ हजार आत्म रक्षक देवानी साथे अने आ प्रभाषे भीण पणु सौधर्म कल्पवासी देव-देवियेनी साथे ते शकं पोतानी उत्कृष्ट प्रशस्त विहायोगतिमा पणु श्रेष्ठ दिव्य ज्येथी देवगतिथी आसतो आसतो तिर्यग् असख्यात द्वीप समुद्रोंनी परापर मध्यभागमा थडने ज्या अष्टापद पर्वत

ब्रजन्=गच्छन् 'तिरियमसंखेऽजाणं'तिर्यगसंख्येयानां तिर्यग्लोक्वर्तिनाम् असंख्येयानां 'दीवसमुद्राण' द्वीपसमुद्राणां द्वीपानां समुद्राणां च 'मञ्ज्र मञ्ज्रण' मध्यमध्येन=साति-
शयमध्यभागेन 'जेणेव' यत्रैव=यस्मिन्नेव प्रदेशे 'अट्टावयपटाए' अप्रापदपर्वतः तत्र
च पर्वते 'जेणेव' यत्रैव-यस्मिन्नेव भागे 'भगवओ नित्थगरस्स सरीरए' भगवत्
स्तीर्थकरस्य शरीरकं 'तेणेव उवागच्छइ' तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य
'विमणे' विमनाः-शोकाकुलितचित्तः, अतएव 'णिराणंटे' निगानन्दः-आनन्दवर्जित,
'अंसुपुण्णणयणे' अश्रुपूर्णनयनः-अश्रुपरिपूर्णनयनः 'तित्थयसरीरय' तीर्थकरशरीरकं-
भगवत् ऋद्धभदेवस्य निष्प्राणं शरीरं 'तिक्खुत्तो' त्रिकृत्व-वारत्रयम् 'आगहिण
पयाहिणं करेइ' आदक्षिणप्रदक्षिण करोति, 'करित्ता' कृत्वा 'णच्चासण्णे णाडदूरे-
नातिसमीपे नातिदूरे किन्तु समुचितस्थाने 'सुस्ससमाणे' शुश्रूषमाणः सेवमानः
मांसाशिप्राणिभ्यो रक्षन्नित्यर्थः, 'जाव' यावत्-यावत्पदेन-णमंसमाणे अभिमुहे त्रिण-

जहा भगवान् तीर्थकर का शरीर था वहां आया 'वहा पर आकर वह शोकाकुलित चित्त वाला
बन गया उसके मन से आनन्द बाहर निकल गया उसकी आँखों में आंसु भर आये उसने
निष्प्राण उस तीर्थकर शरीर की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वह समुचित स्थान पर बैठ गया,
मांसाशिप्राणियों से उस शरीर की रक्षा करता हुआ वह इन्द्र बार २ उस शरीर को प्रणाम
करने लगा-पञ्चाङ्गनमन पूर्वक नम्रीभूत होने लगा और विनय के साथ दोनों हाथ जोड़कर
उस शरीर के पास समुद्र बैठ गया ।

गति सूत्र में जो यावत्पद है उससे "तुरियाए, चवलाए, चंडाए, जवणाए, उदधूयाए,
सिग्घाए, दिव्वाए, देवगईए, वीईवयमाणे २" इस पाठ का यहा ग्रहण हुआ है मनोजन्य
औत्सुक्य के वश से । उसको वह गति त्वरा से युक्त थी, कायव्यापार की चपलता से । वह
चपल थी, श्रम जनितग्लानि के अभाव से वह तीव्र थी, इससे ऊँची-उत्कृष्ट-और कोई गति
नहीं हो सकती है, इस कारण वह जवना थी, वायु की गति की तरह वह उत्कट थी, इस-

इतो न्यां भगवान् तीर्थकरन् शरीर इत्तुं त्या गया त्यां न्छ ने ते शोकाकुलित चित्तवाणा
थछ गया तेमना चित्तमाथी आनंद छुत्त थछ गथे तेमनी आंणे आसुथी बीब्बध ग-तेणे
निष्प्राण्येवा ते तीर्थकरना शरीरनी त्रधु प्रदक्षिणाओ करी अने त्यार आद ते उचित
स्थान पर जेसी गथे, मांसभक्षक प्राणियोथी ते शरीरनी रक्षा करतो तेधद्र वार वार ते
शरीरने प्रणाम करवा लाग्ये पयांश नमन पूर्वक नम्रीभूतथवा लाग्ये अने सविनय
अन्नेसाथ जेईने ते शरीरनी नल्लक जेसी गथे

गति सूत्रमां जे यावत्पद आवेल छे तेथी 'तुरियाए चवलाए, चंडाए, जवणाए, उदधू-
याए, सिग्घाए, दिव्वाए, देवगईए वीईवयमाणे २" आ पाठने सथइ थये छे
भनेजन्य औत्सुक्य ने बीधे तेनी ते गति त्वरायुक्त इती साथ व्यापारनी चपलताथी
ते चपल इती श्रमजनित ग्लानिना अभावथी ते तीव्र इती जेनाथी उच्चतम-उत्कृष्ट-
अनि भील छेय न्छे. जेथी ने जवना इती. वायुनी गतिनी जेभ ते उत्कट इती.

एणं पञ्जलिउडे' छाया-नमस्यन् अभिमुखे विनयेन प्राञ्जलिपुटः, इति संग्राह्यम्, तत्र नमस्यन् पञ्चाङ्गनमनपूर्वकं प्रणतो भवन् अभिमुखे-सम्मुखे विनयेन सविनयं प्राञ्जलिपुटः अञ्जलीकृतकरयुगलः 'पञ्जुवासड' पर्युपास्ते तिष्ठति ॥६० ४६॥

इत्थं भगवत्कलेवरसमीपागमनरूपां शक्रवक्तव्यतामुक्त्वा सम्प्रतीशानेन्द्रादिवक्त-

लिये वह उदधूत थी, निरवच्छिन्न शीघ्रत्व गुण के योग से वह शीघ्ररूप थी, तथा देवजनोचित होने से वह दिव्य थी, तिर्यग् असख्यात द्वीप समुद्रो को पार करता हुआ वह शक्र आया सो इसका तात्पर्य ऐसा है कि तिर्यग्लोकवर्ती असख्यात द्वीप समुद्र शास्त्र में कहे गये हैं तिर्यग्यलोक का तात्पर्य मध्यलोक से है इस मध्यलोक में जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र असख्यात २ हैं ऐसी जिनेन्द्र की वाणी है । त्रायस्त्रिंशत् देव ३३ ही होते हैं और ये गुरुस्थानीय होते हैं, सोम, यम, वरुण और कुवेर इस तरह से ये चार लोकपाल कहे गये हैं । आठ अग्रमहिषियो के नाम इस प्रकार से हैं—पद्मा १, शिवा २, शची, ३, अञ्जू ४, अमला ५, अप्सरा ६, नवमिका ७, और रोहिणी ८, इन एक २ पट्ट देवियों का परिवार १६—१६ हजार प्रमाण है, बाह्यपरिषदा, मध्यपरिषदा और अम्यन्तर परिषदा के भेद से इसकी ३ परिषदाएँ होती है, अनीक—सेना सात प्रकार की कही गई है—हय, गज, रथ, सुमट, वृषभ, गन्धर्व, और नाट्य चार दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ८४—८४ हजार आत्मरक्षक देव रहते हैं इसीलिये यहां चारो दिशाओं के चार चौरासी हजार अर्थात् तीन लाख छिहत्तर हजार आत्मरक्षक देव कहे गये हैं ॥४६॥

इस प्रकार से भगवान् के कलेवर के समीप शक्र के आगमन की वक्तव्यता को प्रकट करके,

ज्येष्ठी ते उधूत इती. निरवच्छिन्न-शीघ्रत्व शुचिना योग्यी ते शीघ्र रूप इती तेभ्य देवजनोचित उवाची ते दिव्य इती तिर्यग् असख्यात द्वीप समुद्रोने पार कर्त्तीने ते शक्र आये इती आनु तात्पर्य आ प्रभाषे छे. के तिर्यग् लोकवर्ती असख्यात द्वीप समुद्र शास्त्रमा कडेवामा आवेत्त छे -तिर्यग् लोकतुं तात्पर्य मध्यलोक थाय छे. जे मध्य-लोकमा जम्बूद्वीप वगेरे द्वीपो अने लवण समुद्र वगेरे समुद्रो असख्यात २ छे. ज्येष्ठी जिनेन्द्रनी वाणी छे त्रायस्त्रिंशत् देवो उउ ज थाय छे, अने ज्येष्ठी गुरुस्थानीय उवाय छे. सोम, यम, वरुण अने कुवेर आ रीते जे चार लोकपालो कडेवामा आवेत्त छे. आठ अग्र महिषीज्योना नाम आ प्रभाषे छे १ पद्मा, २ शिवा, ३ शची, ४ अञ्जू, ५ अमला, ६ अप्सरा, ७ नवमिका अने ८ रोहिणी जे जेक-जेक पट्टदेवीज्योना परिवार १६-१६ हजार प्रभाषे छे. बाह्य परिषदा, मध्य परिषदा अने आभ्यन्तर परिषदाना लोकथी आनी ३ परिषदाज्यो थाय छे अनीक-सेना सात प्रकारनी कडेवामा आवेत्त छे, हय, गज, रथ, सुमट, वृषभ, गन्धर्व अने नाट्य चार दिशाज्योमाथी करैक दिशांमां ८४-८४ हजार आत्मरक्षक देवो रहै छे ज्येष्ठी अही चारै चार दिशाज्योना चार चौरासी हजार आत्मरक्षक देवो कडेवामा आवेत्त छे. ॥४६॥

आ प्रभाषे भगवानना कलेवरनी पासै शक्रना आगमननी वक्तव्यताने प्रकट करीते उवे

व्यतामाह—

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तर-
 छलोगाहिवई अट्टावीसविमाणसयसहस्साहिवई सूळपाणी वसहवाहणे
 सुरिंदे अरयंबस्वत्थधरे जाव विउलोइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। तए णं
 तरस ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो आसणं चलइ। तएणं से ईसाणे जाव
 देवराया आसणं चलियं पासइ पासित्ता ओहि पउंजइ पउंजित्ता भयवं
 तित्थयरं ओहिणा आभोएइ आभोइत्ता जहा सक्के नियगपरिवारेणं
 भाणेयव्वो जाव पज्जुवासइ। एवं सव्वे देविंदा जाव अच्चुए नियग-
 परिवारेणं भाणेयव्वा। एवं जाव भवणवासीणं इंदा वाणमंतराणं सोलस
 जोइसियाणं दोण्णिण णियगपरिवारा णेयव्वा ॥ सू० ४७ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये ईशानो देवेन्द्रो देवराज उत्तरार्द्धलोकाधिपतिः
 अष्टाविंशतिविमानशतसहस्राधिपतिः शूलपाणिर्वृषभवाहन सुरेन्द्र अरजोऽम्बरवस्त्रधरो
 यावद् विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहरति। तत खलु तस्य ईशानस्य देवेन्द्रस्य
 देवराजस्य आसनं चलति। ततः खलु 'स ईशानो यावत् देवराजः आसनं चलितं पश्यति,
 षट्पा अवधिं प्रयुङ्क्ते, प्रयुज्य भगवन्तं तीर्थकरम् अवधिना आभोगयति, आभोग्य यथा
 नो निजकपरिवारेण भणितव्यो यावत् पर्युपास्ते। एवं सर्वे देवेन्द्रा यावत् अच्युतो
 निजकपरिवारेण भणितव्याः। एवं यावद् भवनवासिनामिन्द्रा व्यन्तराणां षोडश, ज्योतिष्काणां
 द्वौ, निजकपरिवारा नेतव्याः ॥सू०४७॥

टीका—'तेण कालेण' इत्यादि। 'तेणं कालेण तेणं समएणं ईसाणे' तस्मिन् काले
 तस्मिन् समये ईशानः ईशाननामकः 'देविंदे देवराया उत्तरछ लोगाहिवई' देवेन्द्रो देवराजः
 उत्तरार्द्धलोकाधिपतिः उत्तरार्द्धदेवलोकस्वामी, 'अट्टावीसविमाणसयसहस्साहिवई' अष्टाविंशति

एव सूत्रकार ईशान इन्द्र की वक्तव्यता का कथन करते हैं—

“तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे” इत्यादि।

टीकार्थ—“तेण कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरछ लोगाहिवई अट्टावीसवि-
 माण सयसहस्साहिवई” उस काल में और उस समय में उत्तरार्द्धलोक के अधिपति देवेन्द्र देवराज
 ईशान इन्द्र का जो कि २८ लाख विमानों का अधिपति है, “सूलपाणी” हाथ में जिसके शूल

सूत्रकार ईशान इन्द्रनी वक्तव्यतासु कथन करे छे

‘तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे’—इत्यादि—सूत्र ४७

टीकार्थ—“तेण कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरछलोगाहिवई अट्टा-
 वीसविमाणसयसहस्साहिवई” ते काले अने ते समये उत्तरार्धं लोकना अधिपति देवेन्द्र
 देवराज ईशान इन्द्रसु—के जे २८ लाख विमानोना अधिपति छे, ‘सूलपाणी’ हाथमां जेभ

एणं पंजलिउडे' छाया-नमस्यन् अभिमुखे विनयेन प्राञ्जलिपुटः, इति संग्राह्यम्, तत्र नमस्यन् पञ्चाङ्गनमनपूर्वकं प्रणतो भवन् अभिमुखे-सम्मुखे विनयेन सविनयं प्राञ्जलिपुटः अञ्जलीकृतकरयुगलः 'पञ्जुवासइ' पर्युपास्ते तिष्ठति ॥सू० ४६॥

इत्थं भगवत्कलेवरसमीपागमनरूपां शक्रवक्तव्यतामुत्त्वा सम्प्रतीशानेन्द्रादिवक्त-

लिये वह उदधूत थी, निरवच्छिन्न शीघ्रत्व गुण के योग से वह शीघ्ररूप थी, तथा देवजनोंचित होने से वह दिव्य थी, तिर्यग् असख्यात द्वीप समुद्रो को पार करता हुआ वह शक्र आया सो इसका तात्पर्य ऐसा है कि तिर्यग्लोकवर्ती असख्यात द्वीप समुद्र शास्त्र में कहे गये हैं तिर्यग्लोक का तात्पर्य मध्यलोक से है इस मध्यलोक में जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र असख्यात २ हैं ऐसी जिनेन्द्र की वाणी है । त्रायस्त्रिंशत् देव ३३ ही होते हैं और ये गुरुस्थानीय होते हैं, सोम, यम, वरुण और कुवेर इस तरह से ये चार लोकपाल कहे गये हैं । आठ अग्रमहिषियों के नाम इस प्रकार से हैं—पद्मा १, शिवा २, शची, ३, अञ्जू ४, अमला ५, अप्सरा ६, नवमिका ७, और रोहिणी ८, इन एक २ पट्ट देवियों का परिवार १६—१६ हजार प्रमाण है, बाह्यपरिषदा, मध्यपरिषदा और अभ्यन्तर परिषदा के भेद से इसकी ३ परिषदाएँ होती हैं, अनीक—सेना सात प्रकार की कही गई है—हय, गज, रथ, सुभट, वृषभ, गन्धर्व, और नाट्य चार दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ८४—८४ हजार आत्मरक्षक देव रहते हैं इसीलिये यहाँ चारो दिशाओं के चार चौरासी हजार अर्थात् तीन लाख छिहत्तर हजार आत्मरक्षक देव कहे गये हैं ॥४६॥

इस प्रकार से भगवान् के कलेवर के समीप शक्र के आगमन की वक्तव्यता को प्रकट करके

ज्येथी ते उदधूत इती. निरवच्छिन्न-शीघ्रत्व गुणना योगथी ते शीघ्र रूप इती तेभज देवजनेचित होवाथी ते दिव्य इती तिर्यग् असख्यात द्वीप समुद्रोने पार करीने ते शक्र आये इती आनु तात्पर्य आ प्रमाणे छे के तिर्यग् लोकवर्ती असख्यात द्वीप समुद्र शास्त्रमां कहेवामां आवेल छे—तिर्यग् लोकानु तात्पर्य मध्यलोक थाय छे. जे मध्य-लोकमां जम्बूद्वीप वगेरे द्वीपे अने लवण समुद्र वगेरे समुद्रो असख्यात २ छे. जेवी जिनेन्द्रनी वाणी छे त्रायस्त्रिंशत् देवो उउ ज थाय छे, अने ज्येथो गुरुस्थानीय होय छे सोम, यम, वरुण अने कुवेर आ रीते जे चार लोकपालो कहेवामा आवेल छे. आठ अग्र महिषीज्योना नाम आ प्रमाणे छे १ पद्मा, २ शिवा, ३ शची, ४ अञ्जू, ५ अमला, ६ अप्सरा, ७ नवमिका अने ८ रोहिणी जे जेक-जेक पट्टदेवीज्योना परिवार १६—१६ हजार प्रमाणे छे. बाह्य परिषदा, मध्य परिषदा अने अभ्यन्तर परिषदाना कहेथी आनी ३ परिषदाज्यो थाय छे अनीक-सेना सात प्रकारनी कहेवामा आवेल छे, हय, गज, रथ, सुभट, वृषभ, गन्धर्व अने नाट्य चार दिशाज्योमांथी करेक दिशाभा ८४—८४ हजार आत्मरक्षक देवो रहे छे ज्येथी अही चार चार दिशाज्योना चार चौरासी हजार आत्मरक्षक देवो कहेवामा आवेल छे. ॥४६॥

आ प्रमाणे भगवानना कलेवरनी पासो शक्रना आगमननी वक्तव्यताने प्रकट करीने हुवे

व्यतामाह—

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तर-
द्धलोगाहिवई अट्टावीसविमाणसयसहस्साहिवई सूलपाणी वसहवोहणे
सुरिंदे अरयंबरवत्थघरे जाव विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ । तए णं
तरस ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो आसणं चलइ । तएणं से ईसाणे जाव
देवराया आसणं चलयं पासइ पासित्ता ओहि पउंजइ पउंजित्ता भयवं
तित्थयरं ओहिणा आभोएइ आभोइत्ता जहा सक्के नियगपरिवारेणं
भाणेयव्वो जाव पज्जुवासइ । एवं सव्वे देविंदा जाव अच्चुए नियग-
परिवारेणं भाणेयव्वा । एवं जाव भवणवासीणं इंदा वाणभंतराणं सोलस
जोइसियाणं दोणिण णियगपरिवारा णेयव्वा ॥ सू० ४७ ॥

छाया — तस्मिन् काले तस्मिन् समये ईशानो देवेन्द्रो देवराज उत्तरार्द्धलोकाधिपतिः
अष्टाविंशतिविमानशतसहस्राधिपतिः शूलपाणिर्वृषभवाहन सुरेन्द्र अरजोऽम्बरवल्गधरो
यावद् विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहरति । तत खलु तस्य ईशानस्य देवेन्द्रस्य
देवराजस्य आसनं चलति । ततः खलु स ईशानो यावत् देवराजः आसनं चलितं पश्यति,
दृष्ट्वा अर्धाधि प्रयुङ्क्ते, प्रयुज्य भगवन्तं तीर्थकरम् अवधिना आभोगयति, आभोग्य यथा
ते निजकपरिवारेण भणितव्यो यावत् पर्युपास्ते । एवं सर्वे देवेन्द्रा यावत् अच्युतो
निजकपरिवारेण भणितव्याः । एवं यावद् भवनवासिनामिन्द्रा व्यन्तराणां षोडश, जोतिष्काणां
द्वौ, निजकपरिवारा नेतव्याः ॥सू०४७॥

टीका—‘तेण कालेण’ इत्यादि । ‘तेणं कालेण तेणं समएणं ईसाणे’ तस्मिन् काले
तस्मिन् समये ईशानः ईशाननामकः ‘देविंदे देवराया उत्तरद्ध लोगाहिवई’ देवेन्द्रो देवराजः
‘उत्तरार्द्धलोकाधिपतिः उत्तरार्द्धदेवलोकस्वामी, ‘अट्टावीसविमाणसयसहस्साहिवई’ अष्टाविंशति

अथ सूत्रकार ईशान इन्द्र की वक्तव्यता का कथन करते हैं—

“तेण कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे’ इत्यादि ।

टीकार्थ—‘तेण कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरद्ध लोगाहिवई अट्टावीसवि-
माण सयसहस्साहिवई’ उस काल में और उस समय में उत्तरार्द्धलोक के अधिपति देवेन्द्र देवराज
ईशान इन्द्र का जो कि २८ लाख विमानों का अधिपति है, ‘सूलपाणी’ हाथ में जिसके शूल

सूत्रकार ईशान ईन्द्रनी वक्तव्यतानु कथन करे छे

‘तेण कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे’-इत्यादि—सूत्र ४७

टीकार्थ—‘तेण कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया उत्तरद्धलोगाहिवई अट्टा-
वीसविमाणसयसहस्साहिवई’ ते काल अने ते समये उत्तरार्ध लोकना अधिपति देवेन्द्र
देवराज ईशान ईन्द्र-के के २८ लाख विमानोंना अधिपति छे, ‘सूलपाणी’ हाथमां केअ

વિમાનશતસહસ્રાધિપતિઃ અષ્ટાવિંશતિલક્ષસંખ્યકવિમાનસ્વામી' 'શૂલપાણી' શૂલપાણિઃ શૂલહસ્તઃ 'વસહવાહને' વૃષભવાહનઃ વૃષભો વાહનં યસ્ય સ તથા વૃષભયાનવાન્ 'સુરિંદે' સુરેન્દ્રઃ સ્વર્લોકવાસિ દેવસ્વામી 'અરયંવરવત્થધરે' અરજોઽમ્બરવસ્ત્રધરઃ અરજોઽમ્બરં નિર્મલાકાશં, તત્સદૃશ સ્વચ્છં યદ્ વસ્ત્રં વસન તસ્ય ધરઃ ધારકઃ 'જાવ' યાવત્ યાવત્પદેન 'આલહ્યમાલમઝડે' ણવહેમચારુચિત્તચંચલકુંડલવિલિહિજ્જમાણગલ્લે મહિદ્વિપ મહજ્જુહ્પ મહાવલ્લે મહાજસે મહાણુભાવે મહાસુક્ષ્મે માસુરવોદી પલંબવણમાલધરે ઈસાણકમ્પે ઈસાણવહિસપ વિમાણે સુહમ્માપ સમાપ ઈસાણંસિ, સીહાસણંસિ સે ણં અટ્ટાવીસાપ વિમાણાવાસસયસાહસ્સીણં અસીઈપ સામાણિયસાહસ્સીણં તાયત્તીસાપ તાયત્તીસગાણ ચઝણં લોગપાલાણ અટ્ટણં અગ્ગમહીસીણ સપરિવારાણં તિણ્હ પરિસાણં સત્તણં અણીયાણં સત્તણં અણીયાહિવર્ણં ચઝણં અસીઈણ આયરક્કલદેવસાહસ્સીણ અણ્ણેસિં ચ ઈસાણકમ્પવાસીણં સત્તણં દેવાણ દેવીણ ય આહેવન્નચં પોરેચ્ચં સામિત્તં મટ્ટિતં મહત્તરગત્તં આણાઈસગ્ગસેણાવચ્ચં કારેમાણે પાલ્લેણાણે મહ્યાહયણટ્ટગીયવાહ્યતંતીતલતાલતુહિયઘણમુહ્ગપહુપ્પવાહ્યરવેણં'

હૈ "વસહવાહને" વાહન જિસકા વૃષભ હૈ, આસન કંપાયમાન હુઆ ઈસે સુરેન્દ્ર વિશેષણ સે જી અભિહિત ક્રિયા ગયા હૈ વહ યહ પ્રકટ કરતા હૈ કિ યહ ઈશાન ઈન્દ્ર ઈશાન સ્વર્ગવાસી દેવલોકોં કા પૂર્ણ રૂપ સે આધિપત્ય કરતા હૈ યહ સદા "અરયંવર વત્થધરે" અરજોઽમ્બરવસ્ત્ર પહિનતા હૈ—નિર્મલ આકાશ કા રક્ત જૈમા સ્વચ્છ હોતા હૈ વૈસા હી ઈસકે દ્વારા પહિને ગયે વસ્ત્રોં કા વર્ણ માં સ્વચ્છ—નિર્મલ હોતા હૈ યહા "જાવ" યાવત્પદ સે આલહ્યમાલમઝડે, ણવહેમચારુચિત્તચંચલકુંડલવિલિહિજ્જમાણગલ્લે, મહિદ્વિપ, મહજ્જુહ્પ, મહાવલ્લે, મહાજસે, મહાણુભાવે, મહાસુક્ષ્મે, માસુરવોદી, પલંબવણમાલધરે, ઈસાણ કમ્પે, ઈસાણવહિસપ, વિમાણે, સુહમ્માપ, સમાપ ઈસાણંસિ સીહાસણંસિ, સે ણ અટ્ટાવીસાપ વિમાણાવાસસયસાહસ્સીણં અસીઈપ સામાણિયસાહસ્સીણ તાયત્તીસાપ તાયત્તીસગાણ ચઝણં લોગપાલાણં અટ્ટણં અગ્ગમહિસીણં સપરિવારાણં તિણ્હ પરિસાણ સત્તણં અણીયાણં સત્તણં અણીયાહિવર્ણં ચઝણં અસીઈણ આયરક્કલ દેવસાહસ્સીણં અણ્ણેસિં ચ

ના શૂલ છે 'વસહવાહને' વૃષભ જેમનુ વાહન છે. આસન કંપાયમાન થયું આને સુરેન્દ્ર વિશેષણથી જે અભિહિત કરવામાં આવેલ છે તે આ પ્રકટ કરે છે કે આ ઈશાન ઈન્દ્ર ઈશાન સ્વર્ગવાસી દેવલોકોંનુ પૂર્ણ રૂપમા આધિપત્ય કરે છે એ સદા 'અરયંવરવત્થધરે' અરજ અમ્બર વસ્ત્ર ધારણ કરે છે, એ નિર્મલ આકાશનો રંગ જેમ સ્વચ્છ હોય છે, તેમજ આ ઈન્દ્રે પહરેલા વસ્ત્રોનો વર્ણ પણ સ્વચ્છ—નિર્મલ હોય છે અહીં 'જાવ' યાવત્ પદથી 'આલહ્ય માલમઝડે, ણવહેમચારુચિત્તચંચલકુંડલવિલિહિજ્જમાણગલ્લે, મહિદ્વિપ, મહજ્જુહ્પ, મહાવલ્લે, મહાજસે, મહાણુભાવે, મહાસુક્ષ્મે, માસુરવોદી, પલંબવણમાલધરે, ઈસાણકમ્પે, ઈસાણવહિસપ, વિમાણે, સુહમ્માપ સમાપ, ઈસાણંસિ સીહાસણંસિ, સેણં અટ્ટાવીસાપ વિમાણાવાસસયસાહસ્સીણં અસીઈપ સામાણિયસાહસ્સીણં તાયત્તીસાપ, તાયત્તીસગાણ ચઝણં લોગપાલાણં અટ્ટણં, અગ્ગમહિસીણં સપરિવારાણ, તિણ્હં પરિસાણ સત્તણં અણીયાણ સત્તણં અણીયાહિવર્ણં' ચઝણં અસીઈણ આયરક્કલદેવસાહસ્સીણ અણ્ણેસિં ચ ઈસાણ

छाया—आलगितमालामुकुटो नवहैमचारुचित्रचञ्चलकुण्डलविलिख्यमानगल्लो महर्द्धिको महाद्युतिको महाबलो महायशाः महानुभावो महासौख्यो भास्वरशरीरः प्रलम्बचनमालाधरः ईशानकल्पे इशानावतंसके विमाने सुधर्मायां सभायाम् ईशाने सिंहासने, स खलु अष्टात्रिंशतेः विमानावासशतसाहस्रीणाम् अशीतः सामानिरुसाहस्रीणां त्रयस्त्रिंशतस्त्रायस्त्रिंशकानां चतसृणाम् अशीतीनाम् आत्सरक्षकदेवसाहस्रीणाम् अन्येषां च ३शानकल्पवासिनां देवानां देवोनां च आधिपत्यं पौरपत्यं स्वामित्वं भर्तृत्व महत्तरकत्व आङ्गेश्वरसेनापत्यं कारयन् पालयन् महता अहतनादयगीतवाद्यतन्त्रीतलतालत्रुटितघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण—इति संग्राहम् । तत्र—आलगितमालामुकुटः—आलगतौ—स्वस्वोचितस्थाने धृतौ मालामुकुटौ—मालाकिरीटश्च येन स तथाभूतः पुनः नवहैमचारुचित्रचञ्चलकुण्डलविलिख्यमानगल्लः—नवेनूतने हैम—स्वर्णमये चारुणी—मनोहरे चित्रे—अद्भुते चञ्चले—कायव्यापारवशात् कम्पमाने ये कुण्डले—कुण्डलद्वयं, ताभ्यां विलिख्यमानः—घृष्यमाणो गल्लः—कपोलो यस्य स तथाभूतः पुनः—महर्द्धिकः महती—विशाला ऋद्धि विमानादिसमृद्धिर्यस्य स तथा—सातिशयविमानादिसमृद्धियुक्त इत्यर्थः, तथा—महाद्युतिकः—महती द्युति—शरीराभरणादिसम्बन्धि महादीप्ति समन्वित इत्यर्थः, महाबलः—महत्—सातिशय बल शारीरं सामर्थ्यं यस्य

ईसाणकम्पवासीण देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भद्धित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महया ह्य णट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुहंगपड्डुप्पाइयरवेण” इस पाठ का ग्रहण हुआ है इसका भाव इस प्रकार से है—माला और मुकुट जो कि यथोचित स्थान धारण किये गये थे वे बड़े ही इसके सुहावने प्रतीत होते हैं इसने जो कुण्डलकानों में पहिने हुए थे वे नवीन थे, सोने के बने हुए थे, मन को हरण करने वाले थे, बड़े अनोखे थे और शरीर के व्यापार के वश से चञ्चल होते रहते थे, इसलिये उसके दोनो कपोल इसके द्वारा घृष्यमाण होते रहते थे। इसकी विमानादिरूप समृद्धि अल्प नहीं थी—किन्तु महती—बड़ी थी, इसलिये यह सातिशय विमानादि समृद्धिवाला यहा प्रकट किया गया है। इसके शरीर की और शरीर के ऊपर घांण किये गये आमरणादिको की द्युति विशिष्ट प्रभा सपन्न थी। इसका शारीरिक सामर्थ्य सातिशय था अर्थात् पर्वत आदि को ऊखाड देने में इसे जग

कम्पवासीण देवाणं देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भद्धित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाह्यणट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडिय घण मुहंगपड्डुप्पाइयरवेण” आ पाठ अद्भुत कर्वाभां आवेत्तं छे. आ पाठेनां लाव आ प्रभात्ते छे—यथा स्थाने धारण कर्वाभां आवेत्तां भाणां अने मुकुटं पृथक् अ सुहर लागता हुनां अत्ते अ नवीन कुंडलै कानेभां धारण करेत्तां हुता, ते नवा हुता अने ते कुंडलै सुवर्णना हुता भने।हर हुता अद्भुत हुता अने शरीरना डलन—यलनथी डालता हुता अथी तेना अने कपोलै तेनाथी घर्षित यता हुता अनी विमानादि उप समृद्धि अदध नडोती पण पुष्कण प्रभात्ता हुती अथी अ अने अही सातिशय विमानादि समृद्धिवान तरीके प्रकट कर वामा आवेत्तं छे अने शरीरनी अने शरीर पर धारण कर्वाभां आवेत्तां आभरणादिडेनी धृति विशिष्ट प्रभा सपत्त हुती. अने शारीरिक सामर्थ्य सातिशय हुतं, अट्टे के पवत

देवानां देवीनां च आधिपत्यम् अधिपतित्वम् पौरपत्यं पुरपतित्वं, स्वामित्वं स्वाम्यं, भर्तृत्वम् महत्तरकत्वम् आज्ञेश्वरसेनापत्यम् आज्ञाया ईश्वरः आज्ञेश्वरः, सेनायाः पतिः सेनापतिः आज्ञेश्वरश्चासौ सेनापतिश्चेति आज्ञेश्वरसेनापतिस्तस्य भावस्तत्त्वं च कारयन् पाल्यंश्च महता विशालेन अहतनाटयगीतवाद्यतन्त्रीतलतालत्रुटितघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण अहतो निरवच्छिन्नो यो नाटयगीतवाद्यतन्त्रीतलतालत्रुटितघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवः तत्र नाटयं नटकर्म, गीतं प्रसिद्धम् तथा पटुभिः पटुपुरुषैः प्रवादितानि यानि तन्त्रीतलतालत्रुटितघनमृदङ्गरूपाणि वाद्यानि, एतेषां यो रवः शब्दस्तेन सहितान् 'विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ' विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहरति । 'अहतनाटयगीतवाद्य' इत्यादिपदे 'वाद्य' शब्दस्य पूर्वनिपातः 'पटुप्रवादित' शब्दस्य परनिपातश्च आप्तत्वाद् बोध्य इति । 'तएणं' ततः भगवतः शरीरत्यागानन्तरं खलु 'तस्स ईसाणस्स देविदस्स देवरन्नो आसणं चलइ' तस्य ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य आसनं चलति । 'तएणं से ईसाणे' ततः खलु स ईशानो 'जाव' यावत् यावत्पदेन 'देवेन्द्रो देवराज इति' संग्राह्यः, तथा 'देवराया आसणं चलियं पासइ' देवराजः आसनं चलितं पश्यति, 'पासित्ता ओहिं पउंजइ'

का अधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, एवं आज्ञेश्वर सेनापत्य करवाता हुआ उनकी परिपालना करता हुआ सतत निरवच्छिन्न रूप से होने वाले नाट्य के गीतों के साथ २ पटुपुरुषों द्वारा बजाये गये तन्त्री, तलताल, त्रुटित आदि रूप बाजो को तुमुल चित्ताकर्षक ध्वनि से युक्त "विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ" विपुल भोगभोगों को भोगता हुआ अपना समय आनन्द के साथ व्यतीत करता रहता है. यहां "अहतनाट्य गीतवाद्य" आदि पद में वाद्य शब्द का पूर्वनिपात और "पटुप्रवादित" शब्द का परनिपात आर्ष होने से हुआ है ।

भगवान् ने जब अपने शरीर का परित्याग कर दिया था "तएणं तस्स ईसाणस्स देविदस्स देवरन्नो आसणं चलइ" उस समय इस देवेन्द्र देवराज ईशान इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ "तएणं से ईसाणे जाव देवराया आसणं चलियं पासइ" कम्पायमान हुए आसन

अनेक ईशानदेवद्वैतवासी देव-देवीयो पर आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, तेभ्य आज्ञेश्वर सेनापत्यना इपमा शासन करते। तेभ्यो परिपालना करते, सतत निरवच्छिन्न इपथो अमिनीत यथा नाट्य ना गीतोनी साथे-साथे पटु पुरुष वडे वगाडवाभां आवेत्ता तत्रो, तत्र ताल त्रुटि आदि इप वाद्यत्रोनी तुमुल चित्ताकर्षक ध्वनि थो युक्त 'विउलाइं भोगभोगाइं—भुंजमाणे विहरइ' विपुल भोग भोगोने उपभोग करते। पोतानो समय भुण्णथो पसार करते हुनो. अहो 'अहत नाट्य गीतवाद्य' आदि पदभा वाद्यशब्द नो पूर्वनिपात अने "पटुप्रवादित" शब्दोने परिनिपात आर्ष डोवाथी थयेल छे. भगवाने त्त्यारे पोताना शरीरने परित्याग कर्यो, 'तएणं तस्स ईसाणस्स देविदस्स देवरन्नो आसणं चलइ' ते समये आ देवेन्द्र देवराज अ ईशान इन्द्रनु आसन कम्पायमान थयु 'तएणं इसणे जाव देवराया आसणं चलियं पासइ' त्त्यारे ईशान देवे कम्पायमान थयेल आसन ने जेथु 'पासित्ता' जेधने तेथे पोताना 'ओहिं पउंजइ' अधि ज्ञानने उपयुक्त कथुं

दृष्ट्वा अवधिं प्रयुनक्ति, 'पञ्जित्ता भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ' प्रयुज्य भगवन्तं तीर्थकरम् अवधिना आभोगयति नि ० लते, 'आभोइत्ता' आभोग्य निरीक्ष्य शक्रेन्द्रवत् सकलपरिवारसमन्वितोऽष्टापदपर्वते समागत्य वन्दन नमस्कारपूर्वकं भगवन्तं पर्युपास्ते एतदेव सूचयितुमाह—मूले 'जहा सक्के नियगपरिवारेण भाणेयव्वो जाव पञ्जुवासइ' इति 'एवं' एवम्—अनेन प्रकारेण 'सव्वे' सर्वे वैमानिका 'देविदा' देवेन्द्राः 'जाव अच्चुए' यावदच्युतः—अच्युतपर्यन्ता 'णियगपरिवारेण' निजकपरिवारेण—स्व स्व परिवारेण सहिता 'भाणेयव्वा' भणितव्याः । 'एव' एवम्—अनेन प्रकारेण—वैमानिकेन्द्रप्रकारेण 'जाव' यावत्—सर्वे यावच्छब्दोऽत्र सर्वार्थे न तु संग्रहार्थे, संग्राह्यपदाभावात्, 'भवणवासीणं इदा' भवनवासिनाम् इन्द्राः—विंशतिरपि भवनवासीन्द्राः निज निज परिवारेण सहिता वक्तव्याः, तथा 'वाणमंतराणं' वानव्यन्तराणां—व्यन्तरजातीयानां देवानामपि 'सोलस' षोडश—षोडश संख्यका इन्द्रा कालादयो 'जोइसियाणं दोणिणं' ज्योतिष्कदेवानां चन्द्रसूर्य द्वौ इन्द्रो नियगपरिवारेण जेयव्वा' निजनिजपरिवारेण सहिता वक्तव्याः, ननु

को देखा "पसित्ता ओहिं पञ्जए" देखकर उसने अपने अवधिज्ञान को उपयुक्त किया "पञ्जित्ता" उपयुक्त करके उसने "भयव तित्थयरं ओहिणा आभोएइ" तीर्थकर भगवान् को उस अवधिज्ञान द्वारा देखा "आभोइत्ता" देखकर "जहासक्के नियगपरिवारेण भाणेयव्वो जाव पञ्जुवासइ" वह शक्रेन्द्र की तरह सकल परिवार सहित अष्टापद पर्वत पर आगया और वहा आकर के उसने वन्दन नमस्कार पूर्वक भगवान् को पर्युपासना की "एवं सव्वे वि देविदा जाव अच्चुए णियगपरिवारेण भाणेयव्वा" इसी प्रकार से अच्युत देवलोक तक के समस्त इन्द्र अपने २ परिवार सहित अष्टापद पर्वत पर आये ऐसा कहना चाहिए, यहा यावत् शब्द सर्वार्थ मे प्रयुक्त हुआ है समग्रार्थ में नहीं क्योकि यहा पर सम्राह्य पदो का अभाव है, "एव जाव भवणवासीणं इदा वाणमंतराणं सोलस" इसी तरह भवनवासियो के २० इन्द्र, व्यन्तरों के १६ कालादिक इन्द्र, और "जोइसियाणं दोणिणं" ज्योतिष्कों के चन्द्र और सूर्य ये दो इन्द्र, "णियग परिवारा जेयव्वा" अपने २ परिवार सहित इस अष्टापद पर्वत पर ऐसा कहना चाहिये. यहाँ शका

'पञ्जित्ता' उपयुक्त करीने तेबु 'भयवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ' तीर्थकर भगवान् को ते अवधिज्ञान वडे दर्शन कर्या 'आभोइत्ता' दर्शन करीने ते 'जहा सक्के नियगपरिवारेण भाणेयव्वो जाव पञ्जुवासइ' शक्रेन्द्र की जेभ सकल परिवार सहित अष्टापद पर्वत पर आवी गये। अने त्या आवीने तेबु वन्दन नमस्कार पूर्वक भगवान् को पर्युपासना करी 'एवं सव्वे देविदा जाव अच्चुए णियगपरिवारेण भाणेयव्वा' याव प्रभाबु अच्युत देव लोकपर्यन्तना सधणा इन्द्रो पैत पैताना परिवार सहित अष्टापद पर्वत पर आव्या जेभ इडेवु ओधेओ अही यावत् शब्द सर्वार्थभा प्रयुक्ता थयेव छे समग्रार्थभा नही केमके अही संग्रह करेवा पडोने। अलाव छे 'एव जाव भवणवासीणं इदा वाणमंतराणं सोलस' जेभ प्रभाबु भवनवासीयोना वीस इन्द्र, व्यन्तर हेवो ना १६ सौण कण विगेरे इन्द्र अने 'जोइसियाणं दोणिणं' ज्योतिष्केना चंद्र अने सूर्य ओ ओ इन्द्र 'णियगपरिवारा जेयव्वा' पैत पैताना परिवार साथे आ अष्टापद पर्वत पर आव्या, जेभ इडेव ओधेओ, अही था ओ जतनी

स्थानाङ्गाद्यागमेषु द्वात्रिंशत्सख्यका व्यन्तरेन्द्रा उक्ताः, इह तु षोडश कथमुच्यन्ते : इति चेत्, आह—यद्यपि व्यन्तरेन्द्रा द्वात्रिंशत्सख्यकाः सन्ति, परन्तु न ते सर्वे ऋद्ध्यादि सम्पन्ना भवन्ति । तत्र ये महर्द्धिकाः कालादयः प्रधानव्यन्तरेन्द्रास्ते इह विवक्षिताः, ये तु अल्पमहर्द्धिका अणपन्नीन्द्रादयस्ते इह गौणत्वान्न विवक्षिताः तेषामविवक्षणे न कापि विप्रतिपत्तिः कार्याः, यतो विचित्रा सूत्रकृतौ शैली भवति । अत एवोत्तमपुरुषपरिगणनायां प्रतिवासुदेवानामुत्तमपुरुषत्वेऽपि क्वचित् आगमे तत्परिगणना न कृता । यथा समवायाङ्गे 'भरहेरवपसु णं वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणीए चउवणं चउवणं उत्तमपुरिसा उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जिति वा, उप्पज्जिस्संति, 'तं जहा—चउवीसं तित्थयरा वारस चक्कवट्ठी नव वलदेवा नव वासुदेवा' छाया—भरतैरवतयोः खल्ल वर्षयोः एकैकस्यासुत्स-

ऐसी की जा सकती है कि स्थानाङ्ग आदि सूत्रों में ३२ व्यन्तरो के इन्द्र कहे गये हैं फिर यहा पर १६ ही इनके इन्द्र क्यों कहे गये है ? सो इसका समाधान ऐसा है कि यद्यपि व्यन्तरेन्द्र ३२ ही कहे गये हैं परन्तु यहां जो १६ प्रकट किये गये हैं—वे यह बतलाते हैं कि व्यन्तरो के ३२ इन्द्र सब समान ऋद्धि आदि वाले नहीं है किन्तु कालादिक १६ इन्द्र ही महान् ऋद्धिवाले हैं इसलिये ये प्रधान व्यन्तरेन्द्र हैं और इसी कारण इन्हें यहां विवक्षित किया गया है. अल्प-ऋद्धि वाले अणपन्नीन्द्रादिकों को नहीं विवक्षित किया गया है. उन्हें तो गौण ही रक्खा गया है. इसलिये इस प्रकार के कथन में कोई विप्रति पत्ति जैसी बात नहीं समझनी चाहिये क्योंकि सूत्रकारों की शैली विचित्र प्रकार की होती है, इसी का यह प्रभाव है कि जब उत्तम पुरुषों की परिगणना की गई तो उसमें प्रतिवासुदेव को उत्तम पुरुष होने पर भी किसी २ आगम में परिगणना नहीं की गई है, जैसा कि समवायाङ्ग में "भरहेरवपसु णं वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणीए चउवणं चउपणं उत्तमपुरिसा उप्पज्जिसुवा उपज्जिति वा, उप्पज्जिस्संति वा तं जहा—चउवीसं तित्थयरा,

शका कयी शकाय के स्थानाग विगरे सूत्रोमा व्यन्तरेवेना उर षत्रीस धंद्र कडेवाभां आवेल छे तो पछी अही तेना १६ सोणज धंद्र केस कडथा छे ? आश'कानु' समाधान ओषु' छे के—जे के व्यन्तर देवेनी संख्या उर ७ छे परंतु अही जे १६ प्रकट करवा-भां आओया छे ते आम भतावे छे के व्यन्तरेना उर धंद्रो सर्व समान ऋद्धि आदि थी सुकत नहीं पक्ष कालादिक १६ धंद्रो ७ महान ऋद्धिवाणा' छे ओथी ओओ। प्रधान व्यन्त-रेन्द्रो छे अने ओथी ७ ओमने। अही' उद्वेष करवाभा आओया छे. अदप ऋद्धिवाणा अणपन्नीन्द्रादिकेनो अही' उद्वेष करवाभा आओया नहीं तेभतु' स्थान गौण ७ मान-वमा आओयु छे ओथी आ जतना कथनभां केछ' विप्रतिपत्ति जेवी वात समजवी योअ्य नहीं, केभके सूत्रकारेनी शैली विचित्र प्रकारनी होय छे. ओनेज ओ प्रभाव छे, के न्यारे उत्तम पुरुषेनी परिगणना करवाभां आवी तो तेभां प्रतिवासुदेव उत्तम पुरुष होवा छता केछ' आगमेभा तें प्रभाषे तेनी परिगणन्य करवाभा आवी नहीं. जेभ के 'समवा-याङ्ग' भा "भरहेरवपसु णं वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणीए चउवणं चउपणं पुरिसा उप्पज्जिसु वा उपज्जिति वा, उप्पज्जिस्संति वा तं जहा— वीसं तित्थयरा

र्षिण्यां चतुष्पञ्चाशत् चतुष्पञ्चाशत् उत्तमपुरुषाः उदपद्यन्त वा, उत्पद्यन्ते वा, उत्पत्स्यन्ते वा, तद्यथा चतुर्विंशतिस्तोर्यकराः, द्वादश चक्रवर्तिनो नव बलदेवा नव वासुदेवा इत्यत्र प्रतिवासुदेवा उत्तमपुरुषत्वेन न संगृहीता इति । तथा 'जोइसियाणं दोणिण' ज्योतिष्काणां द्वौ इन्द्रौ=चन्द्र सूर्यौ, चन्द्रसूर्याविति जात्याश्रयेण बोध्यम्, व्यक्त्याश्रयेण तु ते असंख्याताः एते भवनवासिनां व्यन्तराणां ज्योतिष्काणां च इन्द्रा 'णियमपरिवारा' निजकपरिवाराः स्व स्व परिवारेण सहिता 'जेयन्वा' नेतव्याः—भणितव्याः । यथा स्वपरिवारेण सहितः शक्रः समागतस्तथैव सर्वे इन्द्राः स्व स्व परिवारेण सहिताः समागत्य सविधि भगवन्तं प्रणम्य नाति दूरे नाति निकटे कृताञ्जलयः साश्रुनयना स्थिता इति ॥सू० ४७॥

इत्थं चतुष्पष्टाधिन्द्रेषु समागतेषु शक्रो देवेन्द्रो यत्कृतवांस्तदाह—

मूलम्—तए णं सक्के देविंदे देवराया बहवे भवणवइवाणमंतर-
जोइसवेमणिण देवे एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! णंदण-
वणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकड्डाइं साहरह, साहरित्ता तओ चिइगा-
ओ एह, एगं भगवओ तित्थयस्स, एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं

वारस चक्रवर्ती, नव बलदेवा, नव वासुदेवा" इस पाठ में प्रतिवासुदेव उत्तमपुरुषरूप से परिगणित नहीं किये गये हैं। ज्योतिष्क देवों के जो चन्द्र और सूर्य ऐसे दो इन्द्र कहे गये हैं वे जाति के आश्रयण से कहे गये हैं—नहीं तो वैसे तो ये व्यक्ति की अपेक्षा असंख्यात हैं। इन भवनवासियों के, व्यन्तरो के और ज्योतिष्कों के इन्द्र अपने २ परिवार से सहित होकर यहाँ आये ऐसा कह लेना चाहिये, जिस प्रकार अपने परिवार से युक्त होकर शक्र आया उसी प्रकार से समस्त इन्द्र भी अपने २ परिवार सहित होकर आये और वे सब के सब सविधि भगवान् को नमस्कार कर न उनके अति समाप बैठे और न उन से अति दूर ही बैठे। किन्तु यथोचित स्थान पर आकर बैठे उस समय उनके दोनों हाथ भक्ति के वश से अंजलिरूप में जुड़े हुए थे एवं आँसुओं में उन सब की शोक के अश्रु भरे हुए थे ॥४७॥

वारस चक्रवर्ती, नव बलदेवा, नव वासुदेवा" आ पाठमां प्रतिवासुदेवो उत्तमपुरुष इत्यथी परिगणित करवामा आओया नथी। ज्योतिष्क देवेना ने चन्द्र अने सूर्य ओवा ने इन्द्रो कडेवामा आवेल छे ते अतिना आश्रयथी कडेवामा आवेल छे। आम तो ते व्यक्तितनी अपेक्षा ओ असंख्यात छे। ओ भवनवासीओना, व्यन्तराना अने ज्योतिष्काना इन्द्रो पोतपोताना परिवारानी साथे अने आओया, ओवुं कडेवुं ओछओ। नेम पोताना परिवारथी सयुक्त थधने शक आओया ते प्रमाणे न सर्वे इन्द्रो पणु पोत-पोताना परिवारथी सयुक्त थधने आओया अने तेओ। सर्वे सविधि भगवानने नमन करीने ओकडम तेमनी पासे पणु नहि तेम तेमनाथी वधारे इर पणु नहि आ प्रमाणे योग्य स्थाने ओसी गया तेसभये तेमना अने ओथी। अकितवश अंजलि इये संयुक्त हुता तेमनी आणेमाथी अश्रुधाराओ प्रवाहित थध रही हुती। ॥४७॥

पिण्यां चतुष्पञ्चाशत् चतुष्पञ्चाशत् उत्तमपुरुषाः उदपधन्त वा, उत्पधन्ते वा, उत्पत्स्यन्ते वा, तद्यथा चतुर्विंशतिस्तीर्थकराः, द्वादश चक्रवर्तिनो नव बलदेवा नव वासुदेवा इत्यत्र प्रतिवासुदेवा उत्तमपुरुषत्वेन न संगृहीता इति । तथा 'जोइसियाणं दोणिण' ज्योतिष्काणां द्वौ इन्द्रौ=चन्द्र सूर्यौ, चन्द्रसूर्याविति जात्याश्रयेण बोध्यम्, व्यक्त्याश्रयेण तु ते असंख्याताः एते भवनवासिनां व्यन्तराणां ज्योतिष्काणां च इन्द्रा 'णियगपरिवारा' निजकपरिवाराः स्व स्व परिवारेण सहिता 'णेयव्वा' नेतव्याः—भणितव्याः । यथा स्वपरिवारेण सहितः शक्रः समागतस्तथैव सर्वे इन्द्राः स्व स्व परिवारेण सहिताः समागत्य सविधि भगवन्तं प्रणम्य नाति दूरे नाति निकटे कृताञ्जलयः साश्रुनयना स्थिता इति ॥सू० ४७॥

इत्थं चतुष्पष्टाविन्द्रेषु समागतेषु शक्रो देवेन्द्रो यत्कृतवांस्तदाह—

मूलम्—तए णं सक्के देविदे देवराया बहवे भवणवइवाणमंतर-
जोइसवेमणिए देवे एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! णंदण-
वणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकडाइं साहरह, साहरित्ता तओ चिइगा-
ओ रएह, एगं भगवओ तित्थयरस्स, एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं

वारस चक्रवर्दी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा" इस पाठ में प्रतिवासुदेव उत्तमपुरुषरूप से परिगणित नहीं किये गये हैं. ज्योतिष्क देवो के जो चन्द्र और सूर्य ऐसे दो इन्द्र कहे गये हैं वे जाति के आश्रयण से कहे गये हैं—नहीं तो वैसे तो ये व्यक्ति की अपेक्षा असंख्यात है । इन भवनवासियों के, व्यन्तरों के और ज्योतिष्को के इन्द्र अपने २ परिवार से सहित होकर यहां आये ऐसा कह लेना चाहिये, जिस प्रकार अपने परिवार से युक्त होकर शक्र आया उसी प्रकार से समस्त इन्द्र भो अपने २ परिवार सहित होकर आये और वे सब के सब सविधि भगवान् को नमस्कार कर न उनके अति समाप बैठे और न उन से अति दूर ही बैठे. किन्तु यथोचित स्थान पर आकर बैठे उस समय उनके दोनो हाथ भक्ति के वश से अजलिरूप में जुड़े हुए थे एवं आँसुओं में उन सब की शोक के अश्रु भरे हुए थे ॥४७॥

वारस चक्रवर्दी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा" आ पाठमां प्रतिवासुदेवा उत्तम पुरुष इथी परिगणित करवामा आव्या नथी ज्योतिष्क देवाना जे चन्द्र अने सूर्य जेवा जे इन्द्रो कडेवामा आवेदां छे ते जातिना आश्रयथी कडेवामा आवेदां छे. आम तो ते व्यक्तितनी अपेक्षा जे असंख्यात छे. जे भवनवासीजोना, व्यन्तराना अने ज्योतिष्काना इन्द्रो पौतपौताना परिवाराना साथे अत्रे आव्या, जेवुं कडेवुं जेछजे. जेभ पौताना परिवारथी स युक्त थधने शक आव्या ते प्रमाणे जे सर्वे इन्द्रो पण पौत-पौताना परिवारथी स युक्त थधने आव्या अने तेजो. सर्वे सविधि भगवानने नमन करीने जेकहम तेमनी पौसे पण नहि तेम तेमनाथी वधाइे हर पण नहि आ प्रमाणे योग्य स्थाने जेसी गया तो सभये तेमना, अन्ने हाथे। अकितवश, अजलि इपे स युक्त छेता तेमनी आजोमांथी अश्रुधारज्जे प्रवादित थध रही छती. ॥४७॥

अणगाराणं । तएणं ते भवणवइ जाव वेमाणिया देवा णंदणवणाओ सरसाइं गोसीसवरचंदणकट्टाईं साहरंति, साहरित्ता तओ चिइगाओ रंति— एणं भगवओ तित्थयरस्स, एणं गणहराणं, एणं अवसेसाणं अणगाराणं । तएणं से सक्के देविदे देवराया अभिओगे देवे सहावेइ, सहावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! खीरोदगसमुद्दाओ खीरोदगं साहरह । तएणं ते अभिओगा देवा खीरोदगं साहरंति ॥ सू० ४८ ॥

छाया—ततः खलु शक्रो देवेन्द्रो देवराजो बहून् भवनपतिव्यन्तरज्योतिपवैमानिकान् देवान् पवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः नन्दनवनात् सरसानि गोशीर्षवरचन्दनकाष्ठानि समाहरत, समाहृत्य तिस्रः चितिका रचयत, एकां भगवतस्तीर्थकरस्य, एकां गणधरस्य, एकाम् अवशेषाणाम् अनगाराणाम् । ततः खलु ते भवनपति यावद् वैमानिका देवा नन्दनवनात् सरसानि गोशीर्षवरचन्दनकाष्ठानि 'समाहरन्ति, समाहृत्य तिस्रः चितिका रचयन्ति—एकां भगवतस्तीर्थकरस्य, एकां गणधराणाम्, एकाम् अवशेषाणां अनगाराणाम् । ततः खलु स ज्ञो देवेन्द्रो देवराज आभियोग्यान् देवान् शब्दयति, शब्दयित्वा पवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! क्षीरोदकसमुद्रात् क्षीरोदकं समाहरत । ततः खलु ते आभियोग्या देवाः क्षीरोदकसमुद्रात् क्षीरोदकं समाहरन्ति ॥४८॥

टीका—'तए णं से सक्के' इत्यादि । 'तए णं' ततः=चतुष्पष्टीन्द्रसमागमनानन्तरं खलु 'सक्के देविदे देवराया बहवे भवणवइ वाणमंतर जोइसवेमाणिए' शक्रो देवेन्द्रो देवराजः बहून् भवनपतिव्यन्तरज्योतिपवैमानिकान् चतुर्विधान् 'देवे' देवान् 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण—'वयासी' अवादीत्=उक्तवान् 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !' क्षिप्रमेव=शीघ्रमेव भो देवानुप्रियाः । यूय 'णंदणवणाओ सरसाइं' नन्दनवनात् सरसानि=स्नि-

इस प्रकार ६४ इन्द्रो के उपस्थित हो जाने पर शक्र देवेन्द्र ने जो किया उसका कथन इस प्रकार है—“तएणं सक्के देविदे देवराया बहवे” इत्यादि ।

टीकार्थ—इसके बाद “तएणं सक्के देविदे देवराया बहवे भवणवइ वाणमंतरजोइस वेमाणिए देवे एवं वयासी” देवेन्द्र देवराज शक्र ने उन उपस्थित हुए समस्त ६४ परिवार सहित भवनपति, धानव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवेन्द्रोसे ऐसा कहा—“खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! नंदणवणाओ सरसाइं गोसीसचंदणकट्टाईं साहरह” भो देवानुप्रिय ! तुम सब शोभ ही नन्दन-

आ प्रभाषे ६४ इन्द्रो न्यारे उपस्थित थर्ध गथा त्यारे शक देवेन्द्रे ने कथुं तेनुं कथन आ प्रभाषे छे —‘तए ण सक्के देविदे देवराया बहवे’-इत्यादि सूत्र ॥४८॥
टीकार्थ—त्यार भाइ ‘तए ण सक्के देविदे देवराया बहवे भवणवइवाणमंतर जोइसिय वेमाणिए देवे एवं वयासी’ देवेन्द्र देवराज शक ते उपस्थित थथेला समस्त-६४, परिवार सहित भवनपतिओ न्यतरे। न्योतिष्के। तेभण वैमानिक देवेन्द्रोने. आ प्रभाषे कथुं ‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया नंदणवणाओ सरसाइं गोसीसचंदणकट्टाईं साहरह’ छे देवा-

ग्धानि न तु रक्षाणि, 'गोसीसवरचंदणकट्टाई' गोशीर्षवरचन्दनकाष्ठानि—गोशीर्ष= गोशीर्ष नाम्ना प्रसिद्धं यद्वरं=श्रेष्ठं चन्दनं तस्य काष्ठानि 'साहरह' समाहरत=समानयत 'साहरिचा' समाहृत्य 'तओ चिइगाओ' तिस्र चितिकाः=चितात्रयं 'रएह' रचयत, तत्र 'एगं' एकां चितिकां 'भगवओ तित्थयरस्स' भगवतस्तीर्थकरस्य कृते रचयत, 'एगं' एकां चितिकां 'गणहरस्स' गणधराणां कृते, 'एगं' एकां च चितिकाम् 'अवसेसाण' अवशेषाणां तीर्थकरणधरभिन्नानाम् 'अणगाराणं' अनगाराणां—साधूनां कृते रचयत । 'तए णं ते भवणवइ जाव वेमाणिया' ततः खलु ते भवनपति यावद् वैमानिकाः भवनपतिव्यन्तर ज्यौतिष वैमानिका 'देवा णदणवणाओ सरसाइं—गोसीसवरचंदणकट्टाई साहरंति' देवा नन्दनवनात् सरसानि गोशीर्षवरचन्दनकाष्ठानि समाहरन्ति, 'साहरिचा' समाहृत्य 'तओ चिइगाओ रंति' तिस्रः चितिकाः रचयन्ति । 'एगं भगवओ तित्थयरस्स' तत्रैकां चितिकां भगवतस्तीर्थकरस्य ऋषभदेव स्वामिनः कृते, 'एग गणहराणं' एकां चितिकां गणधराणां कृते, 'एगं अवसेसाणं—अणगाराणं' एकां च चितिकाम् अवशेषाणाम् अनगाराणां कृते रचयन्ति । 'तएणं से सक्के देविदे देवराया आभिथोगे' ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराज अभियोग्यान्=किङ्करभूतान् 'देवे' देवान् 'सद्दावेइ' शब्दयति, 'सद्दाविचा' शब्दयित्वा 'एवं' एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयासी' अवादीत्—उक्तवान् 'खिप्पामेव'

बनसे सरस गोशीर्षचन्दन की लकड़ियों को लाओ और "साहरिचा" लाकरके "तओ चिइगाओ रएह" तीन चिताओं की रचना करो, इनमें "एगं भगवओ तित्थयरस्स" एक प्रभु तीर्थकर की, "एगं गणहरस्स" एक गणधर की और "एगं अवसेसाण अणगाराणं" एक अवशेष अनगारों की' तब उन भवनपति से लेकर समस्त वैमानिक देवों ने नन्दन वन में जाकरके वहाँ से सरस गोशीर्षचन्दन की लकड़ियों को लेकर पूर्वोक्त तीन चिताओं की रचना की, एक भगवान् तीर्थ कर के लिये, दूसरी गणधरो के लिये और तीसरी इन दोनों से भिन्न शेष अनगारों के लिये "तएणं से सक्के देविदे देवराया आभिथोगे देवे सद्दावेइ" इसके बाद देवेन्द्र देवराजशक्र ने अभियोग्य जाति के देवों को बुलाया—"सद्दाविचा एवं वयासी—" बुलाकर उसने ऐसा कहा

जुप्रिया. तमे सर्वे भणीने शीघ्र नन्दन वनमांथी सरस गोशीर्षचन्दनना लाकडाओ लावे। अने 'साहरिचा' लावीने 'तओ चिइगाओ' त्रयुचित्ताओ तैयार करे। 'एग भगवओ तित्थयरस्स' ओके प्रभु तीर्थकर भाटे 'एगं गणहरस्स' ओके गणधर भाटे अने 'एग अवसेसाण अण गाराण' ओके अवशेष अनगारो भाटे. त्थार भाद ते भवनपतिओथी मांझीने सर्व वैमानिक देवओ नन्दन वनमां ओधने त्थीथी सरस गोशीर्ष चन्दनना लाकडाओ लावीने पूर्वोक्त त्रयु चित्ताओनी रचना करी ओके भगवान तीर्थकर भाटे, ओके गणधरो भाटे अने ओके ओओ भन्नेथी भिन्न शेष अनगारो भाटे 'तएण से सक्के देविदे देवराया आभिथोगे देवे सद्दावेइ' त्थार भाद देवेन्द्र देवराज शक्रे आभिथोग्य जातिना देवोने ओलाथ्या 'सद्दाविचा एवं वयासी' ओलाथी ने तेभने आ प्रभाओे कथु—'खिप्पामेव ओ देवाणुण्यिया खिरोदगसं-

शीघ्रमेव 'भो देवाणुप्पिया !' भो देवानुप्रियाः । यूयं 'खीरोदगसमुद्राओ' क्षीरोदक समुद्रात् 'खीरोदक' क्षीरोदकं 'साहरह' सम'हरत = समानयत 'तए णं से आभियोगा देवा' ततः खलु ते आभियोग्या देवाः क्षीरोदकसमुद्रात् 'खीरोदगं' क्षीरोदकं 'साहरंति' समाहरन्ति—समानयन्ति इति ॥४८॥

मूलम्—तए णं से सक्के देविदे देवराया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हाणेइ ण्हाणित्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेणं अणुलिंपइ,—अणुलिंपित्ता हंसलक्खणं पडसाडयं णियंसेइ णियंसित्ता संव्वालंकारविभूसियं करेइ, तए णं से भवणवइ जाव वेमाणिया गणहरसरीरगाइं अणगारसरीरगाइंपि खीरोदगेणं ण्हावेति ण्हावित्ता सरसेणं गोसीसवरचंदणेणं अणुलिंपति अणुलिंपित्ता अहयोइं दिव्वाइं देवदूसजूयलाइं णियंसंति णियंसित्ता संव्वालंकारविभूसियोइं करेति, तए णं से सक्के देविदे देवराया ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! ईहामिग, उसभ—तुरय जाव वणलयभत्तिचित्ताओ तओ सिबियाओ विउब्बेह, एगं भगवओ तित्थयरस्स एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं, तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिया तओ सिबियाओ विउब्बंति, एगं भगवओ तित्थयरस्स एगं गणहराणं एगं अवसेसाणं अणगाराणं, तए णं से सक्के देविदे देवराया विमणे णिराणंदे अंसुपुण्णणयणे भगवओ तित्थयरस्स विणड्ड जम्मजरामरणस्स सरोरगं सीयं आरु हेइ आरुहित्ता चिइगाए ठवेइ, तए णं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिया

“खिप्पमेव भो देवाणुप्पिया खीरोदगसमुद्राओ खीरोदगं साहरह” हे देवानुप्रियो । तुम शीघ्र ही क्षीरोदक समुद्र पर जाओ और वहां से क्षीरोदक लेकर आओ इस प्रकार इन्द्र की आज्ञा सुनकर 'तए णं से आभियोगा देवा खीरोदगं साहर ति' आभियोग्य जाति के देव क्षीरोदक समुद्र पर गये और वहां से क्षीरोदक लेकर वापिस आगये ॥४८॥

हामो खीरोदगं साहरह' हे देवानुप्रिय, तमे शीघ्र क्षीरोदक समुद्र पर जाओ अने त्याथी क्षीरोदक लध आवो आ प्रभाणे इन्द्रनी आज्ञा साधणीने 'तए णं से आभियोगा देवा खीरोदगं साहरंति' ते सर्व आभियोग्य जातिना हेवो क्षीरोदक समुद्र पर गया अने त्याथी क्षीरोदक लध ते पाछा आओ ॥४८॥

देवा गणहराणं अणगाराणय विण्डु जम्मजरामरणं सरीरगाइं सीयं
आरुहेति आरुहिता चिइगाए ठवेति ॥सू० ४९॥

छाया—तत खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजस्तीर्थकरशरीरकं क्षीरोदकेन स्नपयति
स्नपयित्वा सरसेण गोशीर्षवरचन्दनेनानुलिम्पति अनुलिप्य हंसलक्षणं पटशाटकं निवासयति-
निवास्य सर्वालङ्कारविभूषितं करोति, तत खलु ते भवनपति यावद् वैमानिका गणधर
शरीरकाणि अनगारशरीरकाण्यपि क्षीरोदकेन स्नपयन्ति स्नपयित्वा सरसेन गोशीर्षवर-
चन्दनेनानुलिम्पन्ति, अनुलिप्य अहतानि दिव्यानि देवदूष्ययुगलानि निवासयन्ति निवास्य
सर्वालङ्कारविभूषितानि कुर्वन्ति, ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजस्तान् बहून् भवनपति
यावद् वैमानिकान् देवानेवमवदत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः । ईहामृगवृषभ-तुरग-यावद्
वनलता भक्तिचित्रास्तिस्रः शिविका विकुरुत, (तत्र) एका भगवते तीर्थकराय एकां गण-
धरेभ्यः एकामवशेषेभ्योऽनगारेभ्यः, तत खलु ते बहवः भवनपति यावद् वैमानिकास्तिस्रः
शिविकां विकुर्वन्ति, (तत्र) एकां भगवते तीर्थकराय, एका गणधरेभ्यः, एकामवशेषेभ्यो-
ऽनगारेभ्यः, ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो विमना निरानन्दोऽश्रुपूर्णनयनो भगवत-
स्तीर्थकरस्य चिनष्टजन्मजरामरणस्य शरीरकं शिविकायामारोपयति आरोप्य चित्तिकायां
स्थापयति, तत खलु ते बहवो भवनपति यावद् वैमानिका देवा गणधराणामनगाराणां च
चिनष्टजन्मजरामरणानां शरीरकाणि शिविकायामारोपयन्ति आरोप्य चित्तिकायां स्था-
पयन्ति ॥सू० ४९॥

टीका—‘तएणं’ इत्यादि । ततः—तदनन्तरं-क्षीरोदकसंहरणानन्तरं ‘से’ सः—
पूर्वोक्तः ‘सक्के’ शक्रः ‘देविदे’ देवेन्द्रः ‘देवराया’ देवराजः ‘तित्थयरसरीरगं’ तीर्थकर
शरीरकं—जिनकलेवरं ‘खीरोदगेणं’ क्षीरोदकेन—क्षीरसागरानीतजलेन ‘ण्णाणेइ’ स्नपयति—
स्नापितं करोति ‘ण्हाणित्ता’ स्नपयित्वा ‘सरसेणं’ सरसेन—सुगन्धबन्धुरेण ‘गोसीसवर-
चन्दणेणं—गोशीर्षवरचन्दनेन—देववृक्ष—सम्भवगोशीर्षारुयोत्तम चन्दनेन ‘अणुलिंविइ’ अनु-
लिम्पति—अनुलिप्तं करोति ‘अणुलिपित्ता’ अनुलिप्य ‘हंसलवखणं’ हंसलक्षणं—हंसवच्छे-
द-

धव क्षीरोदक आजाने के बाद शक्र की कृति का वर्णन करते हैं—‘तएणं से सक्के
देविदे देवराया’ इत्यादि ।

टीकाथ—‘तए ण से सक्के देविदे देवगया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हाणेइ’
इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र ने तीर्थकर के शरीर को उस क्षीरोदक से स्नान कराया और
‘ण्हाणित्ता’ स्नान करा करके फिर उसे ‘सरसेण गोसीसचन्दणेणं अणुलिंविइ’ गोशीर्ष नाम के श्रेष्ठ

क्षीरोदक वध आश्या भाह शकनी कृतिनुं वधुं न करे छे—

‘तएण से सक्के देविदे देवराया’—॥इत्यादि—सूत्र ॥४९॥

शब्दार्थ—‘तए ण से सक्के देविदे देवराया तित्थगरसरीरगं खीरोदगेणं ण्हाणेइ’
त्याश्रयणी देवेन्द्र देवराज शक्रे तीर्थकर ना शरीरने ते क्षीरोदकथी स्नानकरायुं अने ‘
वित्ता’ स्नान करायी तेने ‘सरसेण गोसीसचन्दणेण अणुलिंविइ’ गोशीर्षनामना श्रेष्ठ य इति

तवर्णं 'पडसाडयं' पटशाटकं-शाटकवस्त्र 'णियंसेइ' निवासयति-परिधापयति 'णियसित्ता'
 निवास्य-परिधाय 'सव्वालंकारविभूसिय' सर्वाभरणसमलङ्कृतं 'करेइ' करोति 'तएणं'
 ततः-तदनन्तरं भगवच्छरीरस्य शक्रकर्तृक सर्वालङ्कारविभूषितोत्तरानन्तरम् खलु 'ते'
 ते 'भवणवइ जाव वेमाणिया' भवनपति यावद् वैमानिकाः भवनपति चाणमंतरं ज्योति-
 ष्क वैमानिका देवा 'गणहरसरीरगाइ' गणधर शरीरकाणि गणधरकलेवराणि 'अणगार
 सरीरगाइ' अनगारशरीरकाणि अनगाराः साधवस्तच्छरीरकाणि तत्कलेवराणि 'खीरोद-
 गेण' क्षीरोदकेन-क्षीरसागरानीतजलेन 'ण्हावेति' स्नपयन्ति 'ण्हावित्ता' स्नपयित्वा 'सर-
 सेण' सरसेन सुगन्धिना 'गोसीसचंदणेणं' गोशीर्षचन्दनेन 'अणुलिपति' अनुलिम्पन्ति
 'अणुलिपित्ता' अनुलिप्य 'अहयाइ' अहतानि-अखण्डितानि 'दिव्वाइ' दिव्यानि-स्वर्गी-
 याणि उत्तमानि 'देवदूसज्जुयलाइ' देवदूष्ययुगलानि देवपरिधेयवस्त्रद्वयानि, इह बहुवचन
 प्रत्येकाणि गणधरानगारशरीराण्यपेक्ष्य 'णियंसति' निवासयन्ति परिधापयन्ति 'णियंसित्ता'
 निवास्य परिधाप्य 'सव्वालंकारविभूसियाइं' सर्वालङ्कारविभूषितानि सर्वाभरणासमलङ्कृतानि
 'करेति' कुर्वन्ति तएणं' ततः तदनन्तरं खलु गणधरानगारशरीराणां भवनपत्यादिकर्तृ-

चन्दन से अनुलिप्त किया "अणुलिपित्ता" अनुलिप्त करने के बाद फिर "हंस लक्ष्मणं पडसाडयं
 'णियंसेइ"। उसे हंस के जैसे श्वेतवर्णवाले शाटक वस्त्र से सुसज्जित किया, "णियसित्ता"
 सुसज्जित करने के बाद फिर उसे "सव्वालंकारविभूसियं करेइ" समस्त अलंकारों से विभूषित
 किया, भगवान् के शरीर के विभूषित किये जाने के बाद "तए णं से भवणवइ जाव वेमाणिया
 गणहर सरीरगाइं अणगार सरीरगाइंपि खीरोदगेणं ण्हावेति ण्हावित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं
 'अणुलिपित्ता' अहयाइ दिव्वाइं देवदूसज्जुयलाइं णियंसति णियंसित्ता सव्वालंकारविभूसियाइं करे-
 ति" भवनपति से लेकर वैमानिक तक के देवों ने गणधर के शरीरों को और अनगार के शरीरों
 को भी क्षीरोदक से स्नानयुक्त किया. स्नानयुक्त करके फिर सरस गोशीर्षक नामक श्रेष्ठचन्दन
 से अनुलिप्त किया, अनुलिप्त करके अहत दिव्य देवदूष्ययुगल उन शरीरों पर धरे-पहिराये,
 'देवदूष्य युगलों के पहिराने के बाद फिर उन्होंने उन शरीरों को समस्त प्रकार के अलंकारों से

नो द्वेष कथं 'अणुलिपित्ता' अहनेने द्वेष करीने तेने 'हंसलक्ष्मणपडसाडयं णियसेइ'
 हंसना जेवा सइत वषुवाण वस्त्रथी सुसज्जित कथुं 'णियंसित्ता' सुसज्जित करीने
 तेने 'सव्वालंकारविभूसियं करेइ' सधणा अलंकारेथी शोभायमान कथु भगवानना
 शरीरने विभूषित कथं पछी 'तएणं से भवणवइ जाव वेमाणिया गणहरसरीरगाइ अणगार
 सरीरगाइं खीरोदगेणं ण्हावेति ण्हावित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिपित्ता अहयाइ
 दिव्वाइ देवदूसज्जुयलाइं णियंसति णियंसित्ता सव्वालंकारविभूसियाइ करेति' पछी भवन
 प्रतिथी आर सोने वैमानिक पर्यन्त ना देवोओ गणधरना शरीरने अने अनगारेना
 शरीरने पषु क्षीरोदकथी स्नान कराव्यु ते सर्वने स्नान करावने पछी सरस गोशीर्ष
 नाममाहितम अहनेथी द्वेषकरीने देवदूष्य युगल ते शरीरपर पहिराव्या.
 देवदूष्य युगल वस्त्रोधारषु कराव्या पछी तेओओ ओ शरीरने सधणा अलंकारेथी

क लिङ्करणानन्तरं 'से' सः-पूर्वोक्तः अलङ्कृतजिनकलेवरः 'सक्के' शक्रः 'देविंदे' देवेन्द्रः 'देवराया' देवराजः 'ते' तान्-अलङ्कृतगणधरानगारकलेवरान् 'वहवे' वहून्-अनेकान् 'भवणवइ जाव वेमाणिए' भवनपति यावद् वैमानिकान् भवनपतिवाणमन्तरज्यो-तिष्क वैमानिकान् 'देवे' देवान् 'एव' 'एवम्' वक्ष्यमाण वचनम् 'वयासी' अवदत्-अववीत् 'खिप्यामेव' क्षिप्रमेव शीघ्रमेव 'भो देवाणुप्पिया !' भो देवानुप्रियाः ? हे महानुभावाः । 'इहामिग उसभ तुरग जाव वणलयभत्तिचित्ताओ' ईहामृगवृषभ तुरगयावदनलता भक्ति-चित्राः-ईहामृग वृषभ तुरगनस्कामरविहग व्यालक किन्नररुररुशरभचमरकुञ्जरवनलता भक्ति-चित्राः-तत्र-ईहामृगः वृकाः, वृषभा-बलीवर्दाः, तुरगाः,-अश्वाः नराः-मनुष्याः, मकराः-ग्राहाः, विहगाः-पक्षिणः, व्यालकाः-सर्पाः किन्नराः-व्यन्तरदेवाः, रुरवः-मृगाः, शरभाः अष्टापदाः, चमरा-चमर गावः कुञ्जराः-हस्तिनः, वनलताः-प्रसिद्धः, एतासां या भक्तयः रचनाविशेषाः, ताभिश्चित्राः-अद्भुताः 'तओ' तिस्रः त्रिसंख्याः 'सिवियाओ' शिविकाः याप्ययानानि 'पालखी' इति प्रसिद्धाः 'विउव्वेह' विकुरुत वैक्रियशक्तयोत्पादयत तत्र 'एग' एकां-शिविकां 'भगवओ' भगवते 'तित्थगरस्स' तीर्थकराय-जिनाय 'एगं' एकाम् अपरां द्वितीयां शिविकाम् 'गणहराणं' गणधरेभ्यः गणिभ्यः 'एग' एकाम् अन्यान्

विभूषित क्रिया, "तएणं से सक्के देविंदे देवराया ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी-" इसके बाद उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने उन समस्त भवनपति देवों से लेकर यावत् वैमानिक देवों से इस प्रकार कहा-"खिप्यामेव भो देवाणुप्पिया ! ईहामिग उसभ तुरग जाव वणलय भत्तिचित्ताओ तओ सिवियाओ विउव्वेह" हे देवानुप्रियो ! आपलोग ईहामृग, वृषभ, तुरग यावत् वनलताओं के चित्रों से चित्रित तीन शिविकाओं की विकुर्वणा करो. इनमें एक भगवान् तीर्थकर के लिये और एक अवशेष अनगारों के लिये "तएणं ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिया तओ सिवियाओ विउव्वंति" इस प्रकार से इन्द्रप्रदत्त आज्ञा के अनुसार उन भवनपति देवों से लेकर वैमानिक तक के देवों ने तीन शिविकाओं की विकुर्वणा की "एगं भगवओ तित्थगरस्स" इनमें एक तीर्थकर के लिये की गई, "एगं गणहराणं" एक गणधरों के

अलङ्कृत कथा. 'तएणं से सक्के देविंदे देवराया ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी' ते पक्षी ओ देवेन्द्र देवराज शक्र ओ सधणा भवनपति देवो यावत् वैमानिक देवाने आ प्रभाणे कथु 'खिप्यामेव भो देवाणुप्पिया ईहामिगउसभंतुरग जाव वणलय भत्तिचित्ताओ सिवियाओ विउव्वेह' हे देवानुप्रियो आप धंडामृग, वृषभ, तुरग यावत् वनलताओ ना चित्रोथी चित्रित ओवी त्रयु शिविकाओ अर्थात् पालखीओनी विकुर्वणु कशवे ते पक्षी ओक भगवान् तीर्थकरने माटे ओक गणधरे माटे अने ओक पाक्षीना अनगारो माटे 'तएणं ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिया तओ सिवियाओ विउव्वंति' आ प्रभाणे धरे आपेव आज्ञानुसार ओ भवनपति देवोथी लधने वैमानिक पर्यन्तना देवोओ त्रयु पालखी-ओना विकुर्वणु करी. 'एगं भगवओ तित्थगरस्स' ते पक्षी ओक भगवान् तीर्थकरने माटे अनावेसइता. 'एगं गणहराणं' ओ गणधरे माटे 'एगं अत्रसेनागं अनगाराण' त्रीण

तृतीयां शिविकाम् 'अवसेसाणं' अवशेषेभ्यः जिनगणधरातिरिक्तेभ्यः अणगाराणं अनगारेभ्यः विकुरुतेति पूर्वेणान्वयः 'तएणं' तत-तदन्तरं खलु शिविकात्रयविकरणार्थशक्राज्ञानन्तरम् 'ते' ते शक्राज्ञानताः 'बहवे' बहवः 'भवणवइ जाव वेमाणिया' भवनपति याव-द्वैमानिकाः भवनपतिज्योतिष्कव्यन्तरवैमानिकाः देवाः 'नओ' तिस्रः 'सिधियाओ' शिविकाः 'विउव्वंति' विकुर्वन्ति, 'तएणं' ततः तदन्तरं खलु शिविकात्रयविकरणानन्तरम् 'से' सः 'सक्के' शक्रः 'देविंदे' देवेन्द्रः 'देवराया' देवराजः 'विमणे' विमनाः—विपण्ण-चित्तः 'णिराणंदे' निरानन्द आनन्दरहितः दुःखी 'असुपुण्णयणे' अश्रुपूर्णनयन वाष्पा-कुलनेत्रः 'भगवओ' भगवत 'तित्थयरस्स' तीर्थकरस्य 'विणट्टजम्मजरामरणस्स' विनष्ट जन्मजरामरणस्य जन्मवार्धक्यमृत्युरहितस्य भगवत इत्यनेन सम्बन्धः तस्य 'सरीरगं' शरीरकं—कलेवरं 'सीयं' शिविकायाम् अत्र मूले सप्तम्यर्थे द्वितीया प्राकृतजन्या 'आरुहेइ' आरोपयति—आरूढं करोति 'आरुहित्ता' आरोप्य—आरूढं कृत्वा भगवत्कलेवर 'चिइगाए' चित्तिकायाम्—चित्तायाम् 'ठवेइ' स्थापयति 'तएणं'—ततः—तदन्तरं भगवच्छरीरस्य चित्तायां स्थापनानन्तरम् 'ते' ते—वैक्रियशक्त्योत्पादितशिविकात्रयाः 'बहवे' बहवः अनेके 'भवणवइ जाव वेमाणिया' भवनपति यावद्वैमानिकाः—भवनपतिज्योतिष्कव्यन्तर वैमानिकाः 'देवा' देवाः 'गणहराणं' गणधराणां गणिनाम् 'अणगाराणं' अनगाराणाम् 'य' च 'विणट्टजम्मजरामराणां' विनष्टजन्मजरामरणानां—जन्मवार्धक्यमृत्युरहितानां 'सरीर-गाइं' शरीरकाणि 'सीयं' शिविकायां द्वितीयायां तृतीयायां च 'आरुहेति' आरोपयन्ति—

लिये की गई और "एग अवसेसाणं अणगाराणं" एक शेष अनगारो के लिये की गई, इसके बाद "तएणं से सक्के देविंदे देवराया विमणे णिराणंदे असुपुण्णयणे भगवओ तित्थयरस्स विणट्टजम्मजरामरणस्स सरीरगं सीयं आरुहेइ" उस देवेन्द्र देवराज शक्र ने विमनस्क और निरानन्द होते हुए अश्रुपूर्णनयनों से भगवान् तीर्थकर के की जिन्होंने जन्म, जरा और मरण को विनष्ट कर दिया है शरीर को शिविका में आरोपित किया, "आरुहित्ता" शिविका में आरोपित करके फिर "चिइगाए ठवेइ" उसे उसने चित्ता में रखा, इसके अनन्तर "तएणं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिया देवा गणहराण अणगाराणय विणट्टजम्मजरामराणाण सरीरगाइ सीयं आरुहेति" उन भवनपति देवो से लेकर वैमानिक तक के देवो ने गणधरों और अनगारों

एक भाषीना अनगारे भाटे रखवाया आवी ते पछी 'तए णं से सक्के देविंदे देवराया विमणे णिराणंदे असुपुण्णयणे भगवओ तित्थयरस्स विणट्टजम्मजरामरणस्स सरीरगं सीयं आरुहेइ' ओ देवेन्द्र देवराज शक्र विमनस्क अने निरानन्द अनी ने आशुओथी भरेवा नेत्रो वडे भगवान् तीर्थकर के ओओओ जन्म जरा अने मरखुने विनाश करेले छे तेभना शरीरने पावपी भां पधराओथुः 'आरुहित्ता' पावपी भां पधरावी ने ते पछी 'चिइगाए ठवेइ' तेने शक्रे चित्ता पर भुंछुं थ्यारभाइ 'तएणं ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिया देवा गणहराण अणगाराणय विणट्टजम्मजरामराणाण सरीरगाइ सीयं आरुहेति ते भवनपति

આરુઢાનિ કુર્વન્તિ 'આરુહિતા' આરોપ્ય=આરુઢીકૃત્ય 'ચિડગા' ચિતિકાયાં ચિતાયા 'ઠવેતિ' સ્થાપયન્તિ-નિવેશયન્તિ ॥૬૦ ૪૯॥

અથ ચિતાયાં ભગવદાદિકલેવરસ્થાપનાનન્તરં શક્રાદિકૃતિમાહ—

મૂલમ્—તણં સે સવ્કે દેવિદે દેવરાયા અગ્નિકુમારે દેવે સદાવેઙ્ગ સદાવિત્તા એવં વયાસી—સ્વિપ્પામેવ મ્હો દેવાણુપ્પિયા તિત્થયરચિડગા એ જાવ અણગારચિડગા એ અગ્નિકાયાં વિઠવ્વહ વિઠવ્વિત્તા એયમાણત્તિયં પચ્ચપ્પિણહ, તણં તે અગ્નિકુમારા દેવો વિમણા નિરાનંદા અંસુપુણ્ણ ણયણા તિત્થયરચિડગા એ જાવ અણગારચિડગા એ ય અગ્નિકાયાં વિઠવ્વંતિ તણં સે દેવિદે દેવરાયા વાઠકુમારે દેવે સદાવેઙ્ગ સદાવિત્તા એવં વયાસી સ્વિપ્પામેવ મ્હો દેવાણુપ્પિયા ! તિત્થયરચિડગા એ જાવ અણગારચિડગા એ ય વાઠકાયાં વિઠવ્વહ વિઠવ્વિત્તા અગ્નિકાયાં ઉજ્જાલેહ તિત્થયરસરીરગં ગણહરસરીરગાં અણગારસરીરગાં ચ જ્ઞામેહ તણં તે વાઠકુમારા દેવા વિમણા નિરાનંદા અંસુપુણ્ણ ણયણા તિત્થયરચિડગા એ જાવ વિઠવ્વંતિ અગ્નિકાયાં ઉજ્જાલેતિ તિત્થયરસરીરગં જાવ અણગારસરીરગાણિ ય જ્ઞામેતિ

કે કિ જિન્હોને જન્મ જરા ઓર મરણ કો સર્વથા વિનષ્ટ કર દિયા હૈ શરીરો કો ઝિવિકા મેં આરોપિત કિયા, ઓર "આરુહિતા" આરોપિત કરકે ફિર ડન્હોને "ચિડગા ઠવેતિ" ડન જરીગો કો ચિતા મેં રક્ષ દિયા, ઈહામ્મગ—નામ વૃક કા હૈ, વૃષભ નામ બલીવર્દ કા હૈ, તુરગ નામ ઘોડેકા હૈ નર નામ મનુષ્ય કા હૈ, મકર નામ ગ્રાહ કા હૈ, વિહગ નામ પક્ષી કા હૈ, વ્યાલક નામ સર્પકા હૈ કિન્નર વ્યન્તરજાતિ કે દેવવિશેષો કા નામ હૈ, રુરુ નામ મૃગ કા હૈ, શરભ નામ અષ્ટાપદ કા હૈ, ચમર નામ ચમરી ગાય કા હૈ, કુહ્મર નામ હાથી કા હૈ જગલ કી લતાઓ કા નામ વનલતા હૈ ॥૪૯॥

દેવોથી ઝાડી ને વૈમાનિક સુધીના દેવોએ કે જેમણે જન્મ જરા અને મરણ ને સર્વથા વિનષ્ટ કરી દીધા છે એવા ગણધર અને અનગારોના શરીરોને ઝિવિકામા આરોપિત કર્યાં અને 'આરુહિતા' આરોપિત કરીને પછી તેમણે 'ચિડગા ઠવેતિ' શરીરોને ચિતા પર મૂકી દીધા, ઈહામ્મગ, વૃકનુ નામ છે વૃષભ, બલીવર્દનુ નામ છે. તુરગ, નામ ઘોડાનું છે નર, મનુષ્યનુ નામ છે મકર, આહનુ નામ છે. વિહગ, પક્ષીનું નામ છે. વ્યાલક, સર્પનું નામ છે કિન્નર, વ્યન્તર જાતિના દેવ વિશેષનુ નામ છે રુરુ, મૃગનું નામ છે શરભ, અષ્ટાપદનુ નામ છે, ચમર, ચમરી ગાયનું નામ છે કુન્જર, હાથીનુ નામ છે વનલતા, જંગલી લતાઓ નુ નામ છે. ॥ સૂત્ર ૪૬ ॥

तएणं से सक्के देविंदे देवराया ते वहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अगुरुतुरुक्कघयमधुं च कुंभग्गसो य भारग्गसो य साह रह, तएणं ते भवणवइ जाव तित्थयर जाव भारग्गसो य साहरंति, तएणं से सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भा देवाणुप्पिया ! तित्थयर चिइगं जाव अणगारचिइगं च खीरोदगेणं णिब्बावेह, तएणं ते मेहकुमारा देवा तित्थयरचिइगं जाव णिब्बावेति, तएणं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, चमरे असुरिंदे असुरराया हिड्डिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, बली वइरोयणिंदे वइरोयणराया हिड्डिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिया देवा जहारिहं अवसेसाइं, अंगमंगाइं, केइ जिणभत्तीए केइ जीयमेयंति कट्टु केइ धम्मोत्ति कट्टु गेण्हंति सू० ॥५०॥

छाया—ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजोऽग्निकुमारान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायामग्निकायं विकुरुत, विकृत्य पतामाह्नसिकां प्रत्यर्पयत, ततः खलु तेऽग्निकुमारा देवा विमनसो निरानन्दा अश्रुपूर्णनयनास्तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायां चाग्निनायं विकुर्वन्ति, ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो वायुकुमारान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवाणुप्रियाः ! तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायां च वायुकुमारं विकुरुत विकृत्य अग्निकायमुज्ज्वलयत तीर्थकर शरीरकं गणधरशरीरकाणि अनगारशरीरकाणि च ध्मापयत, ततः खलु ते वाउकुमारा देवा विमनसो निरानन्दा अश्रुपूर्णनयनास्तीर्थकरचित्तिकायां यावत् विकुर्वन्ति अग्निकायमुज्ज्वलयन्ति तीर्थकरशरीरकं यावदनगारशरीरकाणि च ध्मापयन्ति, ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजस्तान् बहून् भवनपति यावद् वैमानिकान् देवान् पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायामगुरुतुरुक्क घृतमधु च कुम्भाग्रशश्च भाराग्रशश्च संहरत, ततः खलु ते भवनपति यावत् तीर्थकर यावद् भाराग्रशश्च संहरन्ति, ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो मेघकुमारान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! तीर्थकरचित्तिकां यावदनगारचित्तिकां च क्षीरोदकेन निर्वापयत, ततः खलु ते

આરુઢાનિ કુર્વન્તિ 'આરુહિતા' આરોપ્ય=આરુઢીકૃત્ય 'ચિદ્ગાણ' ચિતિકાયાં ચિતાયાં 'ઠવેતિ' સ્થાપયન્તિ-નિવેશયન્તિ ॥૬૦ ૪૯॥

અથ ચિતાયાં ભગવદાદિકલેવરસ્થાપનાનન્તરં શક્રાદિકૃતિમાહ—

મૂલમ્—તણં સે સક્કે દેવિદે દેવરાયા અગ્ગિકુમારે દેવે સદ્દાવેદ્દ સદ્દાવિત્તા એવં વયાસી—સ્વિપ્પામેવ મો દેવાણુપ્પિયા તિત્થયરચિદ્દગાણે જાવ અણગારચિદ્દગાણે અગ્ગણિકાયાં વિઠ્ઠવ્વહ વિઠ્ઠવિત્તા એયમાણત્તિયં પચ્ચપ્પિણહ, તણં તે અગ્ગિકુમારા દેવા વિમણા નિરાનંદા અંસુપુણ્ણણયણા તિત્થયરચિદ્દગાણે જાવ અણગારચિદ્દગાણે ય અગ્ગણિકાયાં વિઠ્ઠવંતિ તણં સે દેવિદે દેવરાયા વાઠ્ઠકુમારે દેવે સદ્દાવેદ્દ સદ્દાવિત્તા એવં વયાસી સ્વિપ્પામેવ મો દેવાણુપ્પિયા ! તિત્થયરચિદ્દગાણે જાવ અણગારચિદ્દગાણે ય વાઠ્ઠકાયાં વિઠ્ઠવ્વહ વિઠ્ઠવિત્તા અગ્ગણિકાયાં ઉજ્જાલેહ તિત્થયરસરીરગં ગણહરસરીરગાં અણગારસરીરગાં ચ જ્ઞામેહ તણં તે વાઠ્ઠકુમારા દેવા વિમણા નિરાણંદા અંસુપુણ્ણણયણા તિત્થયરચિદ્દગાણે જાવ વિઠ્ઠવંતિ અગ્ગણિકાયાં ઉજ્જાલેતિ તિત્થયરસરીરગં જાવ અણગારસરીરગાણિ ય જ્ઞામે તિ

કે કિ ત્રિન્હોને જન્મ જરા ઓર મરણ કો સર્વથા વિનષ્ટ કર દિયા હૈ શરીરો કો શિબિકા મેં આરોપિત ક્રિયા, ઓર "આરુહિતા" આરોપિત કરકે ફિર ડન્હોને "ચિદ્ગાણ ઠવેતિ" ડન શરીરો કો ચિતા મેં રક્ષ દિયા, ઈહામૃગ—નામ વૃક કા હૈ, વૃષભ નામ બલીવર્દ કા હૈ, તુરગ નામ ઘોડેકા હૈં નર નામ મનુષ્ય કા હૈ, મકર નામ ગ્રાહ કા હૈ, વિહગ નામ પક્ષી કા હૈ, વ્યાલક નામ સર્પકા હૈ કિન્નર વ્યન્તરજાતિ કે દેવવિશેષો કા નામ હૈ, રુરુ નામ મૃગ કા હૈં, ગરભ નામ અષ્ટાપદ કા હૈ, ચમર નામ ચમરી ગાય કા હૈ, કુહ્મર નામ હાથી કા હૈ. જગલ કી લતાઓ કા નામ વનલતા હૈ ॥૪૯॥

દેવોથી માડીને વૈમાનિક સુધીના દેવોએ કે જેમણે જન્મ જરા અને મરણને સર્વથા વિનષ્ટ કરી દીધા છે એવા ગણધર અને અનગારોના શરીરોને શિબિકામા આરોપિત કર્યા અને 'આરુહિતા' આરોપિત કરીને યહી તેમણે 'ચિદ્ગાણ ઠવેતિ' શરીરોને ચિતા પર મૂકી દીધા, ઈહામૃગ, વૃકતુ નામ છે વૃષભ, બલીવર્દતુ નામ છે તુરગ, નામ ઘોડાતુ છે નર, મનુષ્યતુ નામ છે મકર, ગ્રાહતુ નામ છે. વિહગ, પક્ષીતુ નામ છે. વ્યાલક, સર્પતુ નામ છે કિન્નર, વ્યન્તર જાતિના દેવ વિશેષતુ નામ છે રુરુ, મૃગતુ નામ છે શરભ, અષ્ટાપદતુ નામ છે, ચમર, ચમરી ગાયતુ નામ છે કુંજર, હાથીતુ નામ છે. વનલતા, જગલી લતાઓ તુ નામ છે. ॥ સૂત્ર ૪૬ ॥

तएणं से सक्के देविदे देवराया ते बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए अगुरुतुरुक्कघयमधुं च कुंभग्गसो य भारग्गसो य साहरह, तएणं ते भवणवइ जाव तित्थयर जाव भारग्गसो य साहरंति, तएणं से सक्के देविदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भा देवाणुप्पिया ! तित्थयर चिइगं जाव अणगारचिइगं च खीरोदगेणं णिव्वावेह, तएणं ते मेहकुमारा देवा तित्थयरचिइगं जाव णिव्वावेति, तएणं से सक्के देविदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ ईसाणे देविदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, चमरे असुरिदे असुरराया हिड्डिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ, बली वइरोयणिदे वइरोयणराया हिड्डिल्लं वामं सकहं गेण्हइ, अवसेसा भवणवइ जाव वेमाणिया देवा जहारिहं अवसेसाइं, अंगमंगाइं, केइ जिणभत्तीए केइ जीयमेयंति कट्टु केइ धम्मोत्ति कट्टु गेण्हंति सू० ॥५०॥

छाया—ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजोऽग्निकुमारान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवाणुप्रियाः ! तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायामग्निकायं विकुरुत, विकृत्य पतामाञ्जसिकां प्रत्यर्पयत, ततः खलु तेऽग्निकुमारा देवा विमनसो निरानन्दा अश्रुपूर्णनयनास्तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायां चाग्निफलयं विकुर्वन्ति, तत खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो वायुकुमारान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवाणुप्रिया ! तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायां च वायुकुमारं विकुरुत विकृत्य अग्निकायमुज्ज्वलयत तीर्थकर शरीरकं गणधरशरीरकाणि अनगारशरीरकाणि च ध्यापयत, तत खलु ते वाउकुमारा देवा विमनसो निरानन्दा अश्रुपूर्णनयनास्तीर्थकरचित्तिकायां यावत् विकुर्वन्ति अग्निकायमुज्ज्वलयन्ति तीर्थकरशरीरक यावदनगारशरीरकाणि च ध्यापयन्ति, तत खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजस्तान् बहून् भवनपति यावद् वैमानिकान् देवान् पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवाणुप्रियाः ! तीर्थकरचित्तिकायां यावदनगारचित्तिकायामगुरुतुरुक्क घृतमधुं च कुम्भाग्रशश्च भाराग्रशश्च संहरत, ततः खलु ते भवनपति यावत् तीर्थकर यावद् भाराग्रशश्च संहरन्ति, ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराजो मेहकुमारान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवाणुप्रियाः ! तीर्थकरचित्तिकां यावदनगारचित्तिकां च क्षीरोदकेन निर्वापयत, ततः खलु ते

मेघकुमारा देवस्तीर्थकरचित्तिकां यावन्नित्वापयन्ति, ततः खलु स देवेन्द्रो देवराजो भगवत्स्तीर्थकरस्य उपरितनं दक्षिण सक्थि गृह्णन्ति, ईशानो देवेन्द्रो देवराज उपरितनं वामं सक्थि गृह्णन्ति, चमरोऽसुरेन्द्रोऽसुरराजोऽधस्तनं दक्षिणं सक्थि गृह्णन्ति, बली वैरोचनेन्द्रो वैरोचनराजोऽधस्तनं वामं सक्थि गृह्णन्ति, अवशेषा भवनपति यावद् वैमानिका देवा यथार्हमवशेषाणि अङ्गाङ्गानि, केचिज्जिनभक्त्या केचिज्जोतमेतदिति कृत्वा केचिद् धर्म इति कृत्वा गृह्णन्ति ॥सू० ५०॥

टीका—‘तएण से सक्के’ इत्यादि ।

ततः तदनन्तर भगवदादिशरीराणां तत्तच्चितासु संस्थापनानन्तरम् खलु सः—पूर्वोक्तः शक्रः ‘देविदेः’ देवेन्द्रः ‘देवराया’ देवराज. ‘अग्निकुमारे’ अग्निकुमारान् ‘देवे’ देवान् ‘सद्वावेइ’ शब्दयति ‘सद्वावित्ता’ शब्दयित्वा—आहूय ‘एवं’ एव-वक्ष्यमाणम् ‘वयासी’ अवदत् ‘खिप्पामेव’ क्षिप्रमेव—शीघ्रमेव ‘भो देवानुप्पिया !’ भो देवानुप्रियाः ! हे महानुभावाः ! ‘तित्थयरचिइगाए’ तीर्थकरचित्तिकायाम् ‘जाव’ यावत्—यावत्पदेन—‘गणहरचिइगाए’ इति संग्राह्यम् तस्य ‘गणधरचित्तिकायाम्’ इति छाया, गणधरचित्तायामिति तदर्थः, ‘अणगारचिइगाए’ अनगारचित्तिकायाम् अनगारचित्तायाम् ‘अगणिकायं’ अग्निकायम्—अग्निम् ‘विउव्वह’ विकुरुत—वैक्रियशक्त्योत्पादयत ‘विउव्वित्ता चिकृत्य—

चित्ता में भगवान् आदि के शरीरों को रखने के अनन्तर शक्र आदिकों ने जो काम क्रिया उसे इस सूत्र द्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं —“तए णं से सक्के देविदे देवराया अग्निकुमारे” इत्यादि ।

टीकार्थ—“तएण” भगवान् आदिनाथ आदि के शरीरों को चिताओं में रखने के बाद “देविदे” देवेन्द्र “दवराया” देवराज “सक्के” शक्रने “अग्निकुमारे देवे” अग्निकुमार देवो को “सद्वावेइ” बुलाया “सद्वावित्ता” बुलाकर “एवं वयासी” उन देवो से उसने ऐसा कहा—“भो देवानुप्पिया” हे देवानुप्रियो ! आपलोग “तित्थयरचिइगाए” तीर्थकर की चिता में यावत् “गणहरचिइगाए” गणधरो की चिता में और “अणगारचिइगाए” अनगारों की चिता में “अगणिकायं विउव्वह” अग्निकाय को—अग्नि की—विकुर्वणा करो—विक्रियाशक्ति से अग्नि को उत्पन्न करो ‘विउव्वित्ता’

चित्ताभा भगवान् आदिना शरीराने स्थापित करीने शक वगेरेणे ७ ४ ४ ४ ४ ४ तेने
आ सूत्र वडे सूत्रकार प्रकट करे छे

‘तएण’ से सक्के देविदे देवराया अग्निकुमारे’ इत्यादि ॥सूत्र ५० ॥

शब्दार्थ—(तएण) भगवान् विगेरेना शरीराने चिताओ पर भूकथा आठ (देविदे) देवेन्द्र (देवराया) देवराज (सक्के) शक्रे (अग्निकुमारे) अग्नि कुमार देवाने (सद्वावेइ) भो देवानुप्पिया (सद्वावित्ता) भो देवावीने (एव वयासी) ते देवाने तेणे आ प्रभाणे कथु—(भो देवानुप्पिया) हे देवानुप्रियो, तमे (तित्थयरचिइगाए) तीर्थकरनी चिताभा यावत् ‘गणहरचिइगाए’ गणधरानी चिताभां अने (अणगारचिइगाए) अनगारानी चिताभां (अगणिकाय विउव्वह) अग्निकायनी—अग्निनी विकुर्वणा करे, विक्रिया शक्तिथी अग्नि ने उत्पन्न करे (विउव्वित्ता)

वैक्रियशक्त्योत्पाद्य 'एयमाणत्तियं' एतामाज्ञप्तिकाम् इमामाज्ञां पालितां सतीम् 'पञ्च-
 प्पिणह' प्रत्यर्पयत् अस्माभिर्भवदाज्ञामग्निविकरणकार्यं कृतमिति मदाज्ञा पूर्णा निवेद्यत
 'तएणं' ततः—तदनन्तरम् खलु अग्निकुमारान्प्रति शक्रस्याग्निकायविक्रमगाज्ञानन्त-म् 'ते'
 ते शक्राज्ञप्ताः 'अग्निकुमारा' अग्निकुमाराः 'देवा' देवाः 'विमणा' विमनमः विपण्णचित्ताः
 'गिराणंदा' निरानन्दाः—आनन्दरहिताः दुःखिनः सन्तः अतएव 'अंशुपुण्णयणा' अश्रु-
 पूर्णनयना—वाष्पाकुलनेत्राः 'तित्थयरचिइगाए' तीर्थकरचित्तिकायाम् 'जाव' यावत्—याव-
 त्पदेन—'गणहरचिइगाए' इति सग्रहो बोध्यः, तस्य 'गणधरचित्तिकायाम्' इति छाया
 गणधरचित्तायामिति तदर्थः, 'अणगारचिइगाए य' अनगारचित्तिकायां च 'अगणिकाय'
 अग्निकायम्—अग्निं 'विउव्वंति' विकुर्वन्ति, 'तएण' तदनन्तरम् अग्निकुमार देवैः अग्नि-
 कायविकुर्वणानन्तरम् 'से देविंदे देवराया' सः देवेन्द्रः देवराजः 'वाउ कुमारे देवे सदा-
 वेह' वाउकुमारदेवान् शब्दयति, आह्वयति 'सदावित्ता' आहूय 'एवं वयासी' एवमवदत्—
 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया' क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः 'तित्थयरचिइगाए जाव अणगार-
 चिइगाए' तीर्थकरचित्तिकायां यावत् अनगारचित्तिकायां 'वाउकायं' वायुकायम् 'विउव्वह'

वैक्रियशक्ति से अग्नि को उत्पन्न करके "एयमाणत्तियं" फिर इस मेरी आज्ञा की "यह पालित
 की जा चुकी है"—इस प्रकार से "पञ्चप्पिणह" हमे खबर दो "तएणं" इसके अनन्तर "ते
 अग्निकुमारा देवा" उन अग्निकुमार देवों ने खेद—खिन्न चित्त होने हुए, आनन्द रहित चित्त
 होते हुए और अश्रुपूर्णनेत्र होते हुए तीर्थकर की चिता में, यावत् गणधरों की चिता में और
 "अणगारचिइगाए" शेष अनगारों की चिता में "अगणिकायं विउव्वंति" अग्निकाय की विकुर्वणा
 शक्ति से उत्पत्ति की 'तएण' अग्निकुमार देवोंने तीर्थकरादिके शरीर में अग्निकाय को विकुर्वणा
 करने के बाद 'से देविंदे देवराया' वह देवेन्द्र देवराज ने 'वाउकुमारदेवे सदावेह' वायुकुमार
 देवों को बुलाया 'सदावित्ता' बुलाकर 'एव वयासी' उन वायु कुमार देवों को इस प्रकार कहा
 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया' हे देवानुप्रिय शीघ्रहो 'तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए'

वैक्रिय शक्तित्थी अग्नि उत्पन्न करीने (एयमाणत्तिय) पछी आ भारी आज्ञानु अक्षरशः
 पालन थर्ष अथ त्थारे 'आज्ञानु यथावत् पालन थर्ष गयुं छे' अये प्रभाणे (पञ्चप्पिणह)
 अभने अणर आपो. (तएण) त्थार भाह (ते अग्निकुमारा देवा) ते अग्निकुमार देवाअये
 जेह भिन्न चित्तवाणा थर्षने अर्थात् आनन्द विहीन थर्षने अने अश्रुपूर्ण नेत्रवाणा थर्ष
 ने तीर्थकरनी चित्तामा यावत् गणधरनी चित्तामा अने (अणगारचिइगाए) शेष अन
 गारनी चित्ता मा (अगणिकायं विउव्वंति) अग्निकायनी विकुर्वणु शक्तित्थी उत्पत्ति करी
 'तएण' अग्निकुमार देवाअये तीर्थ करहिना शरीरेमा अग्निकायनी विकुर्वणुशक्तित्थी
 उत्पत्तिर्थावाह 'से देविंदे देवराया ते देवेन्द्र देवराअे 'वाउकुमारे देवे सदावेह' वायुकुमार
 देवाने आहवाअ्या "सदावित्ता" आहवाअीने 'एव वयासी' आ प्रभाणे कथु "खिप्पामेव भो
 देवाणुप्पिया" हे देवानुप्रिये अह्दिथी "तित्थयरचिइगाए जाव अणगारचिइगाए" तीर्थ कर
 नी चित्तामा यावत् शेष अनगारनी चित्तामा 'वाउकायं' वायुकायने 'विउव्वह विकुर्वंति

विकुर्वन्त 'विउञ्चित्ता' विकुर्वन्-उत्पाद्य 'अग्निकायं' अग्निम् 'उज्जालेह' उज्ज्वलयत-
 प्रदीपयत प्रदीप्य 'तित्थगरसरीरगं' तीर्थकरशरीर 'गणहरसरीरगाड' गणधरशरीरकाणि
 'अणगार सरीरगाड' अनगारशरीरकाणि च 'ज्ञामेह' ध्यापयत-तएण शक्राज्ञा श्रवणानन्तरम्
 'ते'ते-पूर्वोक्ताः 'वाउकुमारा' वायुकुमाराः'देवा' देवा 'विमणा'विमनसः विपण्ण हृदयाः
 'णिराणंदा' निरानन्दाः आनन्दरहिताः दुःखाकुलाः अतएव 'अंमुपुण्णयणा' अश्रुपूर्ण-
 नयना वाष्पाकुलनेत्राः 'तित्थयर चिड्गाए' तीर्थकरचित्तिकायां जिनचित्तायाम् 'जाव'
 यावत्-यावत्पदेन-'गणहरचिड्गाए अणगारचिड्गाए य अग्गिकायं' इत्यस्य सग्रहः,
 तस्य च 'गणधरचित्तिकायाम् अनगारचित्तिकायाम्' चाग्निकायम् इतिच्छाया, गणि-
 चित्तायाम् अनगारचित्तायाम् अग्निमिति तदर्थः 'विउञ्चति' विकुर्वन्ति वैक्रियशक्त्योत्पा-
 दयन्ति, तथा 'अग्गिकायं' अग्निकायम्-अग्निम् 'उज्जाले ति' उज्ज्वलयन्ति प्रदीपयन्ति
 प्रदीप्तेन चाग्निना 'तित्थयरसरीरगं' तीर्थकरशरीरक 'जाव' यावत्-यावत्पदेन 'गणहर-
 सरीरगाड' इत्यस्य सग्रहः, तस्य च 'गणधरशरीरकाणि' इतिच्छाया, गणधर कलेव-
 राणीति तदर्थः, 'अणगारसरीरगाणि य' अनगारशरीरकाणि च 'ज्ञामेति' ध्यापयन्ति-
 संयोजयन्ति 'तएण' ततः तदनन्तरं खलु जिनादिशरीरेषु दहनसंयोजनानन्तरम् 'से'

तीर्थकर की चिता में यावत् अनगार की चिता में 'वाउक्कायं' वायुकायको 'विकुर्वन्' विकुर्वित
 करो 'विउञ्चित्ता' वैक्रियशक्ति से उत्पन्न कर के 'अग्निकाय' अग्निकायको 'उज्जालेह' प्रदीप्त
 करो प्रदीप्त करके 'तित्थगरसरीरगं' तीर्थकरके शरीर को 'गणहरसरीरगाड' गणधरो के शरीर
 को एवं 'अणगार सरीरगाड' शेष अनगार के शरीर को 'ज्ञामेह' अभिसयुक्त करो 'तएणं ते
 वाउकुमारा देवा विमणा निराणंदा अंमुपुण्णयणा' इसके बाद उन वायुकुमार देवो ने विमनस्क
 एवं आनन्द रहित होकर तथा नेत्रो में जिनके अश्रु भरे हुए हैं ऐसे होकर 'तित्थगरचिड्गाए'
 जिनेन्द्रदेव की चिता में 'जाव' यावत्-गणधरो की चिता में एवं अनगारो की चिता में अग्नि-
 काय की विकुर्वणा को, तथा "अग्गिकाय उज्जालेति" उसे प्रदीप्त किया, प्रदीप्त हुई उस अग्नि
 के साथ फिर उन्होंने "तित्थगरसरीरग" तीर्थकर के शरीर को "जाव" यावत्-गणधरो के

करो 'विउञ्चित्ता' वैक्रिय शक्तिसे वायुकायने उत्पन्नकरने 'अग्निकाय' अग्निकायने 'उज्जालेह'
 प्रदीप्त करो अथे प्रभाषे अग्निकायने प्रदीप्त करीने 'तित्थगरसरीरगं' तीर्थ करनी
 शरीरने यावत् 'गणहरसरीरगाड' गणधरोना शरीरने तेभञ्ज 'अणगारसरीरगाड' शेषअन-
 गारोना शरीरने 'ज्ञामेह' अभिसयुक्तकरो (तएण ते वाउकुमारा देवा विमणा निराणंदा
 अंमुपुण्णयणा) त्थार णाह ते वायुकुमार देवोअथे विमनस्क तेभञ्ज आनन्द विहीन थधने
 तेभञ्ज अश्रुषीना नेत्रोथी (तित्थगरचिड्गाए) जिनेन्द्रनी चित्तामा (जाव) यावत् गणध-
 रोनी चित्तामा तेभञ्ज अनगारोनी चित्तामा अग्निकायनी विकुर्वणा करो तेभञ्ज (अग्गिकायं
 उज्जालेति) तेने प्रदीप्त करीं. प्रदीप्त थथेह ते अग्निनी साथे तेभञ्जे (तित्थगरसरीरगं)
 तीर्थकरनी शरीरने यावत् गणधरोना शरीरने (अणगार सरीरगाणि) अनगारोना शरीरने

सः पूर्वोक्तः 'सक्के' शक्रः 'देविदे' देवेन्द्रः 'देवराया' देवराजः 'ते' तान्-पूर्वोक्तान् 'बहवे' बहून् अनेकान् 'भवणवइ जाव वेमाणिया' भवनपति यावद्वैमानिकान् भवनपतिज्योतिष्कव्यन्तरवैमानिकान् 'देवे' देवान् 'एवं' एवं-वक्ष्यमाणं 'वयासी' अवदत् 'खिप्पामेव' क्षिप्रमेव-शीघ्रमेव 'भो देवाणुप्पिया !' भो .देवानुप्रियाः ! हे महानुभावाः 'तित्थगरचिइगाए' तीर्थकरचितिकाया जिनचितायाम् 'जाव' यावत्-यावत्पदेन 'गणहरचिइगाए', इति संग्राह्यम्, तस्य च 'गणधरचितिकायामितिच्छाया, गणधरचितायामिति तदर्थः, 'अणगारचिइगाए' अनगारचितिकायाम् अनगारचितायाम् 'अगुरुतुरुक्कवयमधुं च' अगुरुतुरुक्कघृतमधु च तत्रागुरु-अगुरु, तुरुक्क-यावनधूपविशेषः 'लोहवानं' इति ख्यातः, घृतं-प्रसिद्धं मधु चैतेषां समाहारद्वन्द्वे कृते तथा अगुरुयावनधूपघृतमधूनि च 'कुंभगसो' कुम्भाग्रशः-अनेकघटप्रमाणमधुर्वादि 'य' च-पुनः 'भारगसो' 'भाराग्रशः' अनेकभारप्रमाणं 'य' च-'साहरह' आनयत 'तएणं' ततः-तदनन्तरम् खलु अनेक कुम्भभारप्रमाणागुर्वाधानयनाज्ञानन्तरम्, 'ते' ते-आज्ञप्ताः 'भवणवइ जाव' भवनपति यावद्-भवनपति ज्योतिष्कव्यन्तरवैमानिका देवा 'तित्थयर जाव भारगसो' तीर्थकर यावद् भाराग्रशः तीर्थकरेत्यारभ्य 'भाराग्रशश्च' इति पर्यन्तपदानां संग्रहोऽत्र बोध्यः, तथाहि-तीर्थकरचि-

शरार को "अणगारसरीरगाहं" अनागारो के शरीर को "ज्ञामेति" सयुक्त क्रिया 'तएण' इस तरह अग्नि के साथ जिनादिको के शरीर जब सयुक्त हो चुके तब 'से सक्के' उस शक्रने "देविदे देवराया" जो देवो का इन्द्र और उनका राजा था "बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एवं वयासी" उन सब भवनपति से लेकर वैमानिक तक के देवों से-इस प्रकार कहा "खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया" हे देवानुप्रियो ! आप लोग बहुत ही जल्दी से "तित्थगरचिइगाए जाव गणहरचिइगाए अगारचिइगाए" तीर्थकर की चिता में यावत् गणधरो की चिता में एव शेष अनगारो की चिता में 'अगुरु तुरुक्क वयमधु च कुंभगसो य भारगसो य साहरह' अगुरु, तुरुक्क, घृत और मधुको अनेक कुम्भप्रमाण और अनेक भार प्रमाण में डालने के लिये ले आओ "तएण ते भवणवइ जाव तित्थगर जाव भारगसो" तब वे भवनपति से लेकर वैमानिक तक के समस्त देवगण तीर्थकर की चिता में, गणधरो की चिता में और शेष अनगारो की चिता में

(ज्ञामेति) अग्नि स युक्त कथा (तएण) आ प्रभाषे अग्नि नी साथे जिनादिकेना शरीरे न्यारे स युक्त थर्क गथा त्यारे (से सक्के) ते शक्र (देविदे देवराया) हे देवोने धन्द्र अने तेने। शक्र हुतो (बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे एव वयासी) तेषु सर्व भवनपतिओधी भाडीने वैमानिक सुधीना देवोने आ प्रभाषे कल्लु (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया) हे देवानुप्रियो तमे अककम शीघ्रनाथो (तित्थगर चिइगाए जाव गणहरचिइगाए अणगार चिइगाए) तीर्थकरनी चितामा यावत् गणधरोनी चितामां तेमत्र शेष अनगारोनी चितामां (अगुरु तुरुक्कवयमधु च कुंभगसो य भारगसो य साहरह) अगुरु, तुरुक्क घृत अने मधुने अनेक कुल प्रभाषु अने अनेक भार प्रभाषुमा नाथवामाटे लावो. (त एणं ते भवणवइ जाव तित्थगर जाव भारगसो) त्यारे ते भवनपतिधी भाडीने वैमानिक

तिकायां गणधरचितिकायाम् अनगारचितिकायाम् अगुरुत्वरूपघृतमधु च कुम्भाग्रशथ
 भाराग्रशथेति पर्यवसितम्, 'साहरंति' संहरन्ति-आनयन्ति 'तएणं' ततः-तदनन्तरम् खलु
 कुम्भभाराग्रप्रमाणानुर्वादिसहरणानन्तरम् 'से' सः-पूर्वोक्तः 'सक्के' शक्रः 'देविंदे' देवेन्द्रः
 'देवराया' देवराजः 'मेहकुमारे' मेघकुमारान् 'देवे' देवान् 'सद्दावेड' शब्दयति-आमन्त्र-
 यति 'सद्दावित्ता' शब्दयित्वा आमन्त्र्य 'एवं' एवं-वक्ष्यमाणम् 'वयासी' अवदत् 'खिप्पा-
 मेव' क्षिप्रमेव 'भो देवाणुप्पिया !' भो देवानुप्रियाः । हे महानुभावाः ! 'तित्थयर चि-
 इगं' तीर्थकरचितिकाम् 'जाव' यावत्-यावत्पदेन 'गणहरचिइगं' इति संग्राह्यम् तस्य च
 गणधरचितिकाम् इतिच्छाया, गणधरचितामिति तदर्थः 'अणगारचिइगं च' अनगारचि-
 तिकां च अनगारचिता च 'खीरोदगेणं' क्षीरोदकेन-क्षीरसमुद्रत आनीतजलेन 'णिब्बा-
 वेह' निवापयत-विध्यापयत 'तएणं' ततः-तदनन्तरं खलु क्षीरोदकेन जिनादि चिता
 निर्वापणाज्ञानन्तरम्, 'ते' ते-आज्ञप्ताः 'मेहकुमारा' मेघकुमाराः 'देवा' देवाः 'तित्थयर-
 चिइगं' तीर्थकरचितिका 'जाव' यावत्-यावत्पदेन 'गणहरचिइगं' अणगारचिइगं य' इत्य-
 स्य समग्रः, तस्य च 'गणधरचितिकामनगार चितिकां च' इतिच्छाया, 'गणधरचितमन-
 गारचितां चेति तदर्थः 'णिब्बावेत्ति' निर्वापयन्ति विध्यापयन्ति 'तएणं' ततः-तदनन्तरं
 खलु क्षीरोदकेन जिनादि चिता निर्वापणानन्तरम् 'से' सः-पूर्वोक्तः 'देविंदे' देवेन्द्रः

हालने के लिये अनेक कुप प्रमाण ओर अनेक भार प्रमाण अगुरु, तुरुष्क, घृत और मधु ले
 आए "तएणं सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेड" इसके बाद देवेन्द्र देवराज उम
 शक्रने मेघकुमार देवो को बुलाया "सद्दावित्ता एवं वयासी" और बुलाकर उनमे ऐसा कहा-
 "खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थयरचिइगे जाव अणगार चिइगं च" हे देवानुप्रियो ! आप
 लोग शीघ्र ही तीर्थकर की चिता को यावत् गणधरो की चिता को एवं शेष अनगारों की चिता
 को 'खीरोदगेणं णिब्बावेह' क्षीरसागर से लाये हुए जल से बुझा दो "तएणं ते मेहकुमारा देवा
 तित्थयरचिइगं जाव गणहरचिइगं अणगारचिइगं य णिब्बावेत्ति" तब उन मेघकुमार देवो ने
 तीर्थकर की चिताको यावत् गणधरो की चिताको अनगारों की चिता को क्षीरसागर से लाये

सुधीना समस्त देवगणोच्चे तीर्थ करनी चितामा, गणधरानी चितामा अने शेष अनगारानी
 चितामा नाश्रवामाटे अनेक कुंभ प्रमाण अने अनेक भार प्रमाण अशुद्ध तुङ्ग, घृत
 अने मधु लक्ष आल्या (तए ण सक्के देविंदे देवराया मेहकुमारे देवे सद्दावेड) त्थार भाई
 देवेन्द्र देवराज ते शक्रे मेघकुमार देवाने बोलाया. "सद्दावित्ता एवं वयासी" अने बोला-
 वीने तेमने आ प्रमाणे कथुं "खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तित्थयरचिइगे जाव अणगार
 चिइगं च" हे देवानुप्रियो ! आप सबे शीघ्र तीर्थ कर नीचिता ने यावत् गणधरानी
 चिताने तेमने शेष अनगारानी चिताने "खीरोदगेणं णिब्बावेह" क्षीरसागरमाथी लक्ष
 आवेला जलथी शांत करे "तएणं ते मेहकुमारा देवा तित्थयरचिइगं जाव गणहरचिइगं
 अणगारचिइगं य णिब्बावेत्ति" त्थार ते मेघकुमार देवाने तीर्थ करनी चिताने यावत् गण
 धरानी चिताने अने अनगारानी चिताने क्षीर सागर माथी लक्ष आवेला याणी चडे शांत

'देवराया' देवराजः 'भागवभो' भगवता 'तित्थयरस्स' तीर्थकरस्य 'उवरिल्ल' उपरितन
'दाहीणं' दक्षिणं 'सकह' सक्थि—ऊरुम् दक्षिणभागस्थोरुसम्बन्ध्यस्थि 'गेण्हइ' गृह्णाति
तथा 'ईसाणे' ईशानः 'देविंदे' देवेन्द्रः 'देवराया' देवराजः 'उवरिल्लं' उपरितन 'वामं'
वामं 'सकह' सक्थि—ऊरुम् वामभागस्थोरुसम्बन्ध्यस्थि 'गेण्हइ' गृह्णाति तथा 'चमरे'
चमरः 'असुरिंदे' असुरेन्द्रः 'असुराया' असुरराजः 'हिट्टिल्लं' अधस्तनं 'दाहिणं' दक्षिण
'सकहं' सक्थि—ऊरु दक्षिणभागस्थोरुसम्बन्ध्यस्थि 'गेण्हइ' गृह्णाति 'बली' बली 'वइरो-
यणिंदे' वैरोचनेन्द्रः 'वइरोयगराया' वैरोचनराजः 'हिट्टिल्लं' अधस्तनं 'सकहं' सक्थि—
ऊरुम् अधस्तनभागस्थोरुसम्बन्ध्यस्थि 'गेण्हइ' गृह्णाति—चिनोति 'अवसेसा' अवशेष ।
अवशिष्टाः शक्राद्यतिरिक्ताः 'भवनवइ जात्र वेमाणिया' भवनपति यावद्वैमानिकाः—
भवनपतिज्योतिष्कव्यन्तरवैमानिकाः 'देवा' देवाः 'जहारिहं' यथार्हं=यथायोग्यम् यथा
स्यात्तथा 'अवसेसाइं' अवशेषाणि—अतिरिक्तानि शक्रादि गृहीतातिरिक्तानि 'अंगमंगाइं'

हुए जल से बुझा दिया "तएणं से देविंदे देवराया भगवभो तित्थयरस्स उवरिल्ल दाहिण सकहं
गेण्हइ" जब क्षीरसागर के जल से वे तीर्थकर आदि को चिताएँ अच्छी तरह बुझ गई तो
फिर उस देवेन्द्र देवराज ने भगवान् तीर्थकर की उपरितन दक्षिण हड्डी को—दक्षिण भागस्थ
उरु सम्बन्धि हड्डी को उठाया 'ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ' देवेन्द्र देवराज
ईशान इन्द्र ने उपरितन वामभाग के उरु को हड्डी को उठाया तथा "चमरे—असुरिंदे असुर-
राया हिट्टिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ' असुरेन्द्र असुरराज चमर ने अधस्तन दक्षिण हड्डी को—
दक्षिणभागस्थ उरु सम्बन्धी अस्थि को उठाया 'बली वइरोयणिंदे वइरोवणराया हिट्टिल्ल सकहं
गेण्हइ' वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि ने अधस्तन हड्डी को—अधस्तन भागस्थ उरु सम्बन्धी
अस्थि को उठाया "अवसेसा' बाकीके—शक्रादिको से अतिरिक्त भवनपति से लेकर वैमानिक तक
के देवो ने "जहारिहं अवसेसाइ अंगमंगाइं" यथायोग्य अवशिष्ट अंगों की हड्डियों को उठा

करी "तएणं से देविंदे देवराया भगवभो तित्थयरस्स उवरिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ"
न्याये क्षीरसागरना पाणीथी ते तीर्थंकर वगेरेनी चिताये। स पूषुं रीते आदवाधं गधुं
त्याय भाह ते देवेन्द्र देवराजे भगवान् तीर्थंकरनी उपरितन दक्षिण अस्थिने—दक्षिण भाग
स्थ ते स अ धि अस्थिने वीधी "ईसाणे देविंदे देवराया उवरिल्लं वामं सकहं गेण्हइ"
देवेन्द्र देवराज ईशान इन्द्रे उपरितन वामभागनी अस्थिने वीधी तेभ्य "चमरे असु
रिंदे असुरराया हिट्टिल्लं दाहिणं सकहं गेण्हइ" असुरेन्द्र असुरराज चमरे अधस्तन
दक्षिण अस्थिने—दक्षिण भागस्थ तत् स अ धी अस्थिने—वीधी "बली वइरोयणिंदे वइ-
रोवणराया हिट्टिल्लं सकहं गेण्हइ" वैरोचनेन्द्र वैरोचन राज अस्थिने अधस्तन
अस्थिने—अधस्तन भागस्थ तत् स अ धी अस्थिने वीधी "अवसेसा" शेष—शक्रादिके शिवा-
यना—भवनपतिथी भाडीने वैमानिक सुधीना देवोये "जहारिहं अवसेसाइं अंगमंगाइं"
यथायोग्य अवशिष्ट अंगोना अस्थियोने उठावया शंकाहके द्वारा गृहीत अस्थियो शिवा-

अङ्गाङ्गानि प्रत्येकमङ्गानि सर्वाङ्गास्थोनि गृह्णाति तत्र 'केइ' केचित् देवाः 'जिणभत्तीए' जिनभत्तया—जिनानुरागेन गृह्णाति 'केइ' केचित् देवाः 'जीयमेयं' जीतमेतत्—जीताख्यः कल्पोऽयम् 'इतिकद्दु' इति कृत्वा इति बुध्वा गृह्णाति 'केइ' केचित् 'धम्मोत्ति कद्दु' अस्माकमयं धर्म इति कृत्वा इति बुध्वा 'गेण्हति' गृह्णाति ॥सू०५०॥

अथास्थिसंचयनविध्यनन्तरजातं विधिमाह—

तए णं से सक्के देविदे देवराया बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारिहं एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया.' सव्वरयणामए मह-इमहालए तओ चेइयथूमे करेह, एगं भगवओ तित्थयरस्स चिइगाए एगं णहरचिइगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए, तएणं ते बहवे जाव करेति, तएणं ते भवणवइ जाव वेमाणिया देवा तित्थयरस्स परि-णिव्वाणमहिमं करेति, करित्ता जेणेव नंदीसरवरे दीवे तेणेव उवा-च्छंति, तएणं से सक्के देविदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए अट्टा-हियं महामहिमं करेइ, तएणं सक्कस्स देविदस्स देवरायस्स चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपव्वएसु अट्टाहियं महामहिमं करेति, ईसाणे देविदे देवराया उत्तरिल्ले अंजणगे अट्टाहियं महामहिमं करेति चमरो य दाहिणिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगपव्वएसु बली पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु, तएणं ते बहवे भवणवइवाणमंतर जाव अट्टाहियाओ महा—महियाओ करेति करित्ता जेणेव साइं २ विमाणाइं जेणेव साइं २ भवणाइं जेणेव साओ २ भाओ सुहम्माओ जेणेव सगा २ माणवगो चेइयखंभा तेणेव

लिया, इनमें "केइ" कितनेक देवोने 'जिणभत्तीए' जिनेन्द्र की भक्ति से 'केइ जीयमेयं' इति कद्दु' कितनेक देवों ने यह जीत नामका कल्प है इस अभिप्राय से 'केइ धम्मोत्ति कद्दु गेण्हति' कितनेक देवों ने हमारा यह धर्म है इस ख्याल से उन हृद्दियों को उठाया ॥सू०५०॥

यनी अस्थिओने—दीधी. ओभांथी (केइ) डेट्ठाक देवोओ "जिणभत्तीए" जिनेन्द्रनी अइत्थी 'केइ जीतमेयं इति कद्दु' डेट्ठाक देवोओ आ अतनाभक कल्प छे आ अभिप्रायथी "केइ धम्मोत्ति कद्दु गेण्हंति" डेट्ठाक देवोओ अभाारी आ इरअ छे, आ अयादथी ते अस्थि-ओने उठाव्या. ॥सूत्र, ५०॥

उवागच्छन्ति उवागच्छिता वडरामएसु गोलवृत्तसमुग्गएसु जिणसकहाओ
पक्खिवन्ति अग्गेहि वरेहि मल्लेहि ण अच्चेति अच्चिता विउलाइं
भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरन्ति सू० ५१

छाया—ततः खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराज बहून् भवनपति यावद् वैमानिकान्
देवान् यथार्हमेवमवदत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! सर्वरत्नमयान् महतिमहत्स्त्रीन् चैत्य-
स्तूपान् कुरुत तत्र एकं भगवतस्तीर्थकरस्य चित्तिकायाम्, एकं गणधरचित्तिकायाम्
एकमवशेषाणामनगाराणाम् तत खलु ते बहवो यावत् कुर्वन्ति, ततः खलु ते बहवो
भवनपति यावद् वैमानिका देवास्तीर्थकरस्य परिनिर्वाणमहिमानं कुर्वन्ति, कृत्वा यत्रैव
नन्दीश्वरवरो द्वीपः तत्रैव उपागच्छन्ति, तत खलु स शक्रो देवेन्द्रो देवराज पौरस्त्ये-
ऽञ्जनकपर्वते अष्टाह्निकं महामहिमानं कुर्वन्ति, तत खलु शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य
चत्वारो लोकपालाः चतुर्षु दधिमुखकपर्वतेषु अष्टाह्निकं महामहिमानं कुर्वन्ति, ईशानो
देवेन्द्रो देवराजः औत्तराहेऽञ्जनकेऽष्टाह्निकं तस्य लोकपालाश्चतुर्षु दधिमुखकेषु अष्टाह्निकं
चमरश्च दक्षिणात्येऽञ्जनके तस्य लोकपाला दधिमुखकपर्वतेषु, बलि पश्चिमेऽञ्जनके तस्य
लोकपाला दधिमुखकेषु, तत खलु ते बहवो भवनपतिव्यन्तर यावत् अष्टाह्निकान् महा-
महिम्न कुर्वन्ति कृत्वा यत्रैव स्वानि २ विमानानि यत्रैव स्वानि २ भवनानि यत्रैव स्वाः
२ समा सुधर्मा. यत्रैव स्वकाः २ माणवका चैत्यस्तम्भाः तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य
षष्ठमयेषु गोलवृत्तसमुद्गकेषु जिनसक्थोनि प्रक्षिपन्ति, प्रक्षिप्य अस्यैर्वरेमाल्यैश्च गन्धैश्चा-
चन्ति अचित्वा विपुलान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहरन्ति । सू० ५१॥

टीका—‘तए णं से सक्के’ इत्यादि । ततः तदनन्तरं—जिनादि सक्थिग्रहणानन्तरम्
खलु सः—पूर्वोक्तः शक्रः ‘देविदे’ देवेन्द्रः ‘देवराया’ देवराजः ‘बहवे’ बहून्—अनेका-
न् ‘भवणवइ जाव वेमाणिए’ भवनपति यावद्वैमानिकान् भवनपतिव्यन्तरञ्चोतिष्क

इस प्रकार से जब वे चतुनिकाय के देव हृद्दियो का चयन कर चुके तब क्या हुआ—
इस बात को अब सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘तएणं से सक्के देविदे देवराया बहवे भव-
णवइ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—‘तएणं’ हृद्दियों के चयन हो चुकने के बाद ‘सक्के देविदे देवराया’ देवेन्द्र देवराज
शक्र ने ‘बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारिहं एव वयासी’ उन समस्त भवनपति से लेकर

आ प्रभाञ्जे न्यारे ते अतुनिंकाथना देवेअजे अस्थिअानु अथन करी वीधु त्यार
भाह शु थथुं. आ वातने डवे सूत्रकार प्रकट करे छे—

‘त एण से सक्के देविदे देवराया बहवे भवणवइ’ इत्यादि, सूत्र ॥५१॥

शुद्धार्थ—‘त एण’ अस्थिअाना अथन भाह “सक्के” देविदे देवराया” देवेन्द्र देवराज
शक्र “बहवे भवणवइ जाव वेमाणिए देवे जहारिहं एव वयासी” ते समस्त भवनपति

वैमानिकान् 'देवे' देवान् 'जहारिहं' यथाहं यथायोग्यम् 'एव' एवम्-वक्ष्यमाणम् 'वयासी' अवदत्-अब्रवीत् 'भो देवाणुष्पिया' भो देवानुप्रियाः हे महाजुभावाः ! 'सञ्चरयणामए' सर्वरत्नमयान् सर्वात्मना रत्नमयान् 'महडमहालए' महातिमहतः— अतिविस्तीर्णान् (तओ) त्रीन् (चेइअथूमे) चैत्यस्तूपान् चैत्याः चित्तानन्दकास्तूपा-श्चैत्यस्तूपास्तान् (करेह) कुरुत सम्पादयत चित्तात्रयभूमिष्विति शेषः तत्र (एग) एकं चैत्यस्तूपम् (भगवओ) भगवतः (तित्थगरस्स) तीर्थकरस्य (चिइगाए) चित्तिका-यां चिताभूमौ कुरुत (एगं) एकं चैत्यस्तूपम् (गणहरचिइगाए) गणधरचित्तिकायां गणचित्ताभूमौ कुरुत (एग) एकं तदन्य तृतीयं चैत्यस्तूपम् (अवसेसाणं) अवशेषा-णाम् अवशिष्टानाम् (अणगाराणं) अनगाराणां साधूनां (चिइगाए) चित्तिकायां चि-ताभूमौ कुरुत, (तए) ततः तदनन्तरम्—चैत्यस्तूपत्रयकरणानन्तरम् (ण) खलु (ते) ते आज्ञप्ताः (बहवे) बहवः अनेके (जाव) यावत् यावत्पदेन "भवनपतिव्यन्तरज्यो तिष्कवैमानिकाः सर्वरत्नमयान् महातिमहतस्त्रीन् चैत्यस्तूपान्" इति संग्राह्यम् (करेति) कुर्वन्ति सम्पादयन्ति (तए) ततः तदनन्तरम् चैत्यस्तूपत्रयकरणानन्तरम् (णं)

वैमानिक तब के देवों से यथायोग्य रूप से इस प्रकार कहा—'भो देवाणुष्पिया ! सञ्चरयणामए महड महालए तओ चेइअथूमे करेह' हे देवानुप्रियो ! तुम लोग समस्त रत्नों के बने हुए—सर्वात्मना—रत्नमय ऐसे तीन चैत्य स्तूपों की—चित्त को आनन्द उपजाने वाले—स्तूपों की चिता त्रय भूमियों में रचना करो 'एग भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए एग गणहरचिरगाए एगं अव सेसाण अणगाराणं चिइगाए' इनमें एक चैत्य स्तूप, तीर्थकर भगवान् की चिता में, एक गणधरों की चिता में, और एक अवशेष अनगारों की चिता में 'तएण—ते बहवे जाव करेति' इसके बाद उन भवनपति से लेकर वैमानिक तब के देवों ने जहाँ जहाँ चैत्य स्तूप बनाने को कहा गया था वहाँ वहाँ उन तीन सर्व रत्नमय चैत्य स्तूपों की रचना कर दी 'तएण ते बहवे भव-णवह जाव वैमाणिया देवा तित्थगरस्स परिणिव्वाणमहिमं' इस के बाद उन समस्त भवनपति

ओधी भाडीने वैमानिक सुधीना देवाने यथायोग्य रूपमां आ प्रभाषे कलुं—'भो देवाणुष्पिया ! सञ्चरयणामए महडमहालए तओ चेइअथूमे करेह' हे देवानुप्रियो ! तमे सर्वरत्न-निर्मित ओटके के सर्वात्मना रत्नमय ओवा त्रषु चैत्य स्तूपोनी—चित्तने आनन्द आपे तेवा स्तूपोनी—चित्तात्रय भूमिपर रचना करे। 'एगं भगवओ तित्थगरस्स चिइगाए, एगं गणहर चिइगाए एगं अवसेसाणं अणगाराणं चिइगाए' ओमा ओक चैत्यस्तूप तीर्थकर भगवान नी चितामा ओक गणधरानी चितामां अने ओक अवशेष अनगारानी चिता मां तैथार करे। 'तएणं ते बहवे जाव करेति' तयार भाड ते भवनपतिथी भाडीने वैमानिक सुधीना देवाने ज्या ज्या चैत्य स्तूपो तैथार करवा भाटे कहेवामा आओउ डटुं, त्या त्या सर्व रत्न मय त्रषु चैत्य स्तूपोनी रचना करी। 'त एणं ते बहवे भवणवह जाव वैमाणिया देवा तित्थ

खलु (ते) ते (वहवे) वहवः अनेके (भवनवड जाव चेमाणिआ) भवनपति यावद्वैमा-
निकाः (भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकाः (देवा) देवाः (तित्थगरस्स) तीर्थकरस्य
जिनस्य (परिणिव्वाणमहिमं) परिनिर्वाणमहिमानं मोक्षगमनोत्स५ (करेति) कुर्वन्ति
(करित्ता) कृत्वा (जेणेव) यत्रैव मूले सप्तम्यर्थे तृतीया प्राकृतत्वजन्मा बोध्या (नदीसरवरे)
नन्दीश्वरवरः तदारुयः (दीवे) द्वीपः (तेणेव) तत्रैव अत्रापि मूले प्राकृतत्वादेव
सप्तम्यर्थे तृतीया (उवागच्छति) उपागच्छन्ति (तए) ततः तदन्तरं भवनपत्यादीनां
नन्दीश्वरद्वीपोपगमनानन्तरम् (णं) खलु (से) सः पूर्वोक्तः (सक्के) शक्रः (देविदे)
देवेन्द्रः (देवराया) देवराजः (पुरच्छिमिल्ले) पोरस्त्य-पूर्वदिग्भवे (अजणगपव्वए)
अञ्जनकपर्वते (अट्टाहिअं) अष्टाहिकम् अष्टाभिर्दिनैः सम्पाद्यम् (महामहिमं) महामहि-
मानं महोत्सवं (करेति) कुर्वन्ति सम्पादयन्ति (तए) ततः शक्रस्याष्टाहिक भगवन्नि-
र्वाण महिमकरणानन्तरम् (णं) खलु (सक्कस्स) शक्रस्य (देविदस्स) देवेन्द्रस्य (देव-
रायस्स) देवराजस्य सम्बन्धिनः (चत्तारि) चत्वारः (लोगपाला) लोकपालाः (चउ-
सु) चतुर्षु (दहिमुहगपव्वएसु) दधिमुखरूपवर्ततेषु (अट्टाहियं) अष्टाहिकं (महामहिमं)
महामहिमानं (करेति) कुर्वन्ति (ईसाणे) ईशानः (देविदे) देवेन्द्र. (देवराया) देवराजः

से लेकर वैमानिक तक के चतुर्विध निकाय के देवों ने तीर्थकर भगवान् के निर्वाण कल्याण
की महिमा मोक्ष गमन का उत्सव किया "करित्ता जेणेव नन्दी सरवरे दीवे तेणेव उवागच्छन्ति"
मोक्षगमन का उत्सव करने के बाद वे चतुर्विध निकाय के देव फिर जहां पर नन्दीश्वर नामका
द्वीप था वहां पर गये "तए ण सक्के देविदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए—अट्टाहियं
महामहिमं करेति" वहा जाकर देवेन्द्र देवराज शक्र ने पूर्वदिशा में स्थित अंजनक पर्वत पर
अष्टाहिका महोत्सव—जो कि आठ दिनों तक लगातार होता रहता है—किया "तएण
सक्कस्स देविदस्स देवरायस्स चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपव्वएसु अट्टाहियं महामहिमं
करेति" इसके बाद देवेन्द्र देवराज शक्र के चार लोकपालों ने चार दधिमुख पर्वतों पर अष्टा-
हिका महोत्सव किया "ईसाणे देविदे देवराया उत्तरिळे अंजणगे अट्टाहियं" देवेन्द्र देवराज

गरस्स परिणिव्वाणमहिमं करेइ" त्थार आह ते समस्त भवनपतिथो भांडीने वैमानिक सुधी
ना चतुर्विध निकायना देवाणे तीर्थकर भगवानना निर्वाणु कल्याणनी भुद्धिमानो—मोक्षगम-
नोत्सवनी आयोजना करी 'करित्ता जेणेव नदीसरवरे दीवे तेणेव उवागच्छन्ति' मोक्ष
गमनना उत्सव आह ते चतुर्विध निकायना देवा तथा नदीश्वर नाणे द्वीप इतो त्यां गथा
'त पणं सक्के देविदे देवराया पुरच्छिमिल्ले अंजणगपव्वए अट्टाहियं महामहिमं करेति'
त्या ण्ठने देवेन्द्र देवराज शक्र पूर्व दिशाभा स्थित अंजनक पर्वत पर अष्टाहिका उत्सव
के आठ दिवस सुधी लगातार उरवातो रहे छे—ते भडोत्सनी आयोजना करी 'त पणं सक्क-
स्स देविदस्स देवरायस्स चत्तारि लोगपाला चउसु दहिमुहगपव्वएसु अट्टाहियं महामहिमं
करेति' त्थार आह देवेन्द्र देवराज शक्रनात्थार लोकपालाणे चार दधिमुख पर्वतो पर अष्टाहिका

(उत्तरिल्ले) औत्तराहे उत्तरदिग्भवे (अंजणगे) अञ्जनके अञ्जननामकपर्वते (अट्टाह्मि-
यं) अष्टाह्निकं महिमानं करोति (तस्स) तस्येशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सम्ब-
न्धिनः (लोगपाला) लोकपालाः (चउसु) चतुर्षु (दहिमुहगेसु) दधिमुखकेषु दधि-
मुखपर्वतेषु (अट्टाह्मियं) अष्टाह्निकं महामहिमानं कुर्वन्ति (चमरो अ) चमरश्चासुरेन्द्रो-
सुरराजः (दाह्मिणिल्ले) दक्षिणात्ये दक्षिणदिग्भवे (अंजणगे) अञ्जनके अञ्जनपर्वते
अष्टाह्निकं महामहिमानं करोति (तस्स) तस्य चमरस्यासुरेन्द्रस्यासुरराजस्य सम्बन्धिनः
(लोगपाला) लोकपालाः (दहिमुहगपव्वएसु) दधिमुखकपर्वतेषु अष्टाह्निकं महामहिमानं
कुर्वन्ति (बली)बलिः वैरोचनेन्द्रो वैरोचनराजः (पच्चत्थिमिल्ले) पश्चिमे (अजणगे)
अञ्जनके अञ्जनपर्वते अष्टाह्निकं महामहिमानं करोति (तस्स) तस्य बलेः सम्बन्धिनः
(लोगपाला) लोकपालाः (दहिमुहगेसु) दधिमुखकेषु दधिमुखपर्वतेषु अष्टाह्निकं महा-
महिमानं कुर्वन्ति (तए) ततः-तदन्तरं शक्रादिवलिपर्यन्तेन्द्राणामष्टाह्निकं महामहिमक-
रणानन्तरम् (णं) खलु (ते) ते पूर्वोक्ताः (बहवे) बहव अनेके (भवणवडवाणमंतर
जाव) भवनपति व्यन्तर यावत् भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कवैमानिकाः (अट्टाह्मिआओ)
अष्टाह्निकान् (महामहिमाओ) महामहिमानः, मूले प्राकृतत्वात्स्त्रीत्वम् (करेति) कुर्व-

ईशान ने उत्तरदिशा के अञ्जन नाम के पर्वत पर अष्टान्हिक महोत्सव किया 'तस्म लोगपाला
चउसु दहिमुहेसु गट्टाहिय करे ति' देवेन्द्र देवराज ईशान के चार लोकपालों ने चार दधिमुख
पर्वतो पर अष्टान्हिक महोत्सव किया, "चमरो य दाह्मिणिल्ले अंजणगे तस्सलोगपाला दहिमुह-
पव्वएसु" असुरेन्द्र असुरराज चमर ने दक्षिण दिशा के अञ्जनपर्वत पर अष्टान्हिक
महोत्सव किया और उसके लोकपालों ने चार दधिमुखपर्वतो पर अष्टान्हिक महोत्सव किया
"बली" वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि ने "पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु"
पश्चिमदिशा के अञ्जन पर्वत पर अष्टान्हिक महोत्सव किया और उसके चार लोकपालो ने दधिमुख
पर्वतो पर अष्टान्हिक महोत्सव किया, तएणं ते बहवे भवणवडवाणमंतर जाव अट्टाहियाओ
महामहिमाओ करेति" इस तरह जब शक्र से लेकर बलिक के इन्द्र अष्टान्हिका महोत्सव कर

महोत्सव कर्था 'इसाणे देविदे देवराया उत्तरिल्ले अंजणगे अट्टाहियं देवेन्द्र देवराज ईशाने
उत्तर दिशाना अञ्जन नामक पर्वत पर अष्टाह्निक महोत्सव कर्था 'तस्स लोगपाला च-
उसु दहिमुहेसु अट्टाहिय करे ति' देवेन्द्र देवराज ईशानना चार लोकपालोअे चार दधिमुख
पर्वतो पर अष्टाह्निक महोत्सव कर्था 'चमरोअ दाह्मिणिल्ले अंजणगे तस्स लोकपाला दहि-
मुहगव्वएसु असुरेन्द्र असुरराज अमरे दक्षिण दिशा ना अञ्जन पर्वत पर अष्टाह्निक
महोत्सव कर्था अने तेना लोकपालोअे दधिमुख पर्वतो पर अष्टाह्निक महोत्सव कर्था
वैरोचनेन्द्र वैरोचन राज बलिअे 'पच्चत्थिमिल्ले अंजणगे तस्स लोगपाला दहिमुहगेसु'
पश्चिम दिशाना अञ्जन पर्वत पर अष्टाह्निक महोत्सव कर्था अने तेना चार लोकपालोअे
दधिमुख पर्वतो नी उपर अष्टाह्निक महोत्सव कर्था 'तएणं ते बहवे भवणवडवाणमंतर
जाव अट्टाहियाओ महामहिमाओ करे ति आ प्रभाअे जयादे शकथी भाडीने बलि सुधीन

न्ति (करित्ता) कृत्वा (जेणेव) यत्रैव (साडं २) स्वानि २ निजानि २ विमाणाडं) विमानानि (जेणेव) यत्रैव (साडं २) स्वानि २ (भवणाड) भवनानि (जेणेव) यत्रैव (साओ २) स्वाः २ (समाओ) सभा (गुहम्माओ) मुधर्माः देववभाः (जेणेव) यत्रैव (सागा २) स्वकाः २ निजाः (माणवगा) माणवकाः माणवकानामान अन्यर्थ (चेइअखंभा) चैत्यस्तम्भाः आहादकस्तम्भाः (तेणेव) तत्रैव (उवागच्छति) उपागच्छन्ति (उवागच्छिता) उपागत्य (वइरामएसु) वज्रमयेषु (गोलवटसमुग्गएसु) गोलवृत्तसमुद्गकेषु वर्तुलाकारभाजनविशेषेषु (जिनसकहाओ) जिनसकहाओ मूले स्त्रोत्वं प्राकृतत्वमूलकम् (पक्खिवन्ति) प्रक्षिपन्ति स्थापयन्ति (पक्खिवित्ता) प्रक्षिप्य-संस्थाप्य जिनसक्खियदशनादि (अग्गेहि) अग्र्यैः उत्तमैः अग्रैरितिच्छाया पक्षे प्रत्यग्रैः (वरेहिं) वरैः प्रकृष्टैः महद्भिरित्यर्थः (मल्लेहि) माल्यैः (अ) च (गंघेहि अ) गन्धैश्च (अच्चेति) अर्चन्ति पूजयन्ति (अच्चित्ता) अर्चित्वा पूजयित्वा (विउलाइं) विपूलान् (भोगभोगाईं) भोगभोगान् भोग्यभोगान् मूले नपुसकत्वं प्राकृतत्वमूलकम् (सुंजमाणा) शुक्जानाः अनुभवन्तः

शुके तव भवनपति से लेकर वैमानिक तक के समस्त देवो ने अष्टान्हिका महोत्सव क्रिया 'करित्ता जेणेव साह २ विमाणाह जेणेव साह २ भवणाइं जेणेव साओ २ समाओ सुहम्माओ जेणेव साण २ माणवगा चेइयखंभा तेणेव उवागच्छति' अष्टान्हिका महोत्सव करके फिर वे सब के सब इन्द्रादिक देवलोक जहां अपने २ विमान थे, जहां अपने २ भवन थे जहां अपनी २ सुधर्मा समाए थी और जहां अपने २ माणवक नामके चैत्यस्तम्भ थे वहां पर गये, "उवागच्छिता" वहां जाकर "वइरामएसु गोलवटसमुग्गएसु जिनसकहाओ पक्खिवन्ति" उन्होंने वज्रमय गोलवृत्त समुद्गको में-वर्तुलाकार भाजनविशेषों में उन जिनेन्द्र की हड्डियों को रख दिया "पक्खिवित्ता अग्गेहि वरेहिं मल्लेहि य गंघेहि अच्चेति" रख करके फिर उन्होंने उत्तम या नवीन श्रेष्ठ बड़ी २ माल्यो से एवं गन्ध द्रव्यों से उनकी पूजा की "अच्चित्ता विउलाइ भोगभोगाइ सुंजमाणा विहरंति" पूजन

छन्दोमे अष्टाष्टिडक भडोत्सवो सम्पन्न कथा त्यारे भवनपतिथी भाडीने वैमानिक सुधीना सर्व देवोमे अष्टाष्टिडक भडोत्सवो कथा 'करित्ता जेणेव साह २ विमाणाह जेणेव साइं साइं भवणाइं जेणेव साओ २ समाओ सुहम्माओ जेणेव साण २ माणवगा चेइयखंभा तेणेव उवागच्छति अष्टाष्टिडक भडोत्सव करीने पछी ते सर्व छन्दोदिक तथा पोत-पोताना विमानो इता तथा पोत पोताना भवनो इता, तथा पोत पोतानो मुधर्मा सभाओ इती अने तथा पोतपोताना माणवक नामे चैत्य स्तम्भोइता, तथा गथा, 'उवागच्छिता तथा अछने 'वइरामएसु गोलवटसमुग्गएसु जिनसकहाओ पक्खिवन्ति तेभुं वज्रमय गोलवृत्त समुद्गकेमा-वर्तुलाकार भाजन विशेषाभा-ते जिनेन्द्रनी अस्थियोने प्रस्थापिन कथा. 'पक्खिवित्ता अग्गेहि वरेहिं मल्लेहि य गंघेहि अ अच्चेति' प्रस्थापित करीने पछी तेभुं उत्तम के नवीन श्रेष्ठ भीटी-भाटी भाणोओथी तेभुं गन्ध द्रव्योथी तेभुनी पूजा करी 'अच्चित्ता, विउलाइ भोगभोगाइ सुंजमाणा विहरंति' पूजन करीने पछी तेओ सर्वे

(વિહરતિ) વિહરન્તિ આસતે । નનુ ચારિત્રાદિ ગુણરહિતમ્ય જિનશરીરસ્ય જિનસક્થ્યા-
દેશ્ચ પૂજનમનુચિતમ્ । ઇતિ વેન્મૈત્રમ્—ભાવજિનો યથા વન્ધ્યસ્તથા નામસ્થાપના દ્રવ્ય
જિના અપિ વન્ધ્યાસ્તદા દ્રવ્યજિનરૂપસ્ય જિનશરીરસ્ય ભાવજિનરૂપજિનશરીરાવયવ-
સક્થ્યાદીનાં ચ વન્ધ્યત્વમિતિ તન્નાનુચિતમ્, જિનશરીરાવયવમકથ્યાદેર્ભાવજિનરૂપત્વેના
વન્ધ્યત્વે ગર્ભતયોત્પન્નમાત્રસ્ય “સમણે ભગવં મહાવીરે” ઇત્યાદ્યમિલાપેન સૂત્રકૃતાં
સૂત્રકરણં શક્રાણાં શક્રસ્તવનપ્રયોગાદિકં ચાનુચિતં સ્યાદિતિ, અતएव જિનસક્થ્યાદ્યા-
શાતનાભયશીલા દેવાસ્તત્ર કામાસેવનાદો ન પ્રવર્તન્ત ઇતિ ॥૫૧॥

ઇતિ તૃતીયારક સમાપ્તઃ

કરકે ફિર વે સબ કે સવ અપને ૨ સ્થાનો પર રહતે હુए આનન્દ કે સાથ ત્રિપુલ્લ ભોગભોગો
કો ભોગને મેં લગ ગયે, યહા પર એસી શકા હો સકતો હે—ચારિત્રાદિ ગુણ રહિત જિન શરીર
કા ઓર જિન હૃદિયોં કા પૂજન કરના અનુચિત હૈ—સો ઇસકા ઉત્તર એસા હૈં કિ જિસ પ્રકાર
સે ભાવજિન વન્ધ્ય હોતે હૈ ઉસો પ્રકાર સે નામ જિન, સ્થાપના જિન ઓર દ્રવ્ય જિન મો વન્ધ્ય
હોતે હૈ, ઇસ તરહ દ્રવ્યજિનરૂપ જિન શરીર કા ભાવજિનરૂપ જિનશરીર કા તથા ઉનકે અવયવ
મૂત અસ્થિ આદિકોં કા વન્ધન કરના કોઈ અનુચિત નહોં હૈ યદિ એસા કહા જાય કિ જિન
શરીર કે અવયવમૂત હૃદિયોં આદિ મેં ભાવજિનરૂપતા નહોં રહતી હૈ ઇસલિયે ઉન્હે વન્ધ્ય નહોં
માનના ચાહિયે તો ઇસકા સમાધાન એસા હૈ કિ જબ જિન ગર્ભ મેં આતે હૈં તો ઉસ સમય જો
“સમણે ભગવં મહાવીરે” ઇસ પ્રકાર સે સૂત્રોં કી રચના કરતે હૈં તથા ઇન્દ્ર ઉનકા સ્તવન કરતે
હૈં યહ સબ અનુચિત માના જાના ચાહિયે, પરન્તુ નહોં માના ગયા હૈ, ઇસો પ્રકાર જિન
સક્થ્યાદિ કી આશાતના કે મય સે ડરે હુए દેવ વહા કામસેવન આદિ કાર્ય મેં પ્રવૃત્તિ
નહોં કરતે હૈં ॥૫૧॥

॥ તૃતીયારક સમાપ્ત ॥

પોતપોતાના સ્થાનો પર નિવાસ કરતા આનન્દ પુર્વક ત્રિપુલ્લ ભોગ-ભોગો ભોગવવા લાગ્યા.
અહીં એથી શકા થઈ શકે કે ચારિત્રાદિ ગુણ વિહીન જિન શરીરનું અને જિન અસ્થિ
ઓતું પૂજન કરવું અનુચિત છે, તો આનો જવાબ આ પ્રમાણે છે કે જેમ ભાવજિન વન્ધ્ય
હોય છે તેમજ નામ જિન સ્થાપનાજિન અને દ્રવ્યજિન પણ વન્ધ્ય હોય છે આ પ્રમાણે
અજિન રૂપ જિન શરીરનું ભાવાજિન રૂપ શરીરનું તેમજ તેમના અવયવમૂત અસ્થિ
આદિકોતું વન્ધન કરવું કોઈ પણ રીતે અનુચિત નથી જો આ પ્રમાણે કહેવામા આવે કે
જિન શરીરના અવયવમૂત અસ્થિ વગેરેમાં ભાવજિન રૂપતા રહેતી નથી, એથી તેમને વન્ધ્ય
ગણવા યોગ્ય નથી તો આનું સમાધાન આ પ્રમાણે છે કે જ્યારે જિન ગર્ભમા આવે છે
તો તે વખતે જે સમણે ભગવં મહાવીરે આ પ્રમાણે સૂત્રોની રચના કરે છે. તેમજ ઇન્દ્ર
તેમનું સ્તવન કરે છે તો આ બધું અનુચિત ગણાવું કોઈએ પણ આવું માનવામાં આવ્યું
નથી એથી જ જિન અસ્થિ વગેરેની આશાતના ના ભયથી સત્રસ્ત થયેલા દેવો ત્યાં કામ
સેવન વગેરે કામમા પ્રવૃત્તિ કરતા નથી ॥ સુત્ર ૫૧ ॥

તૃતીયારક સમાપ્ત

अथ चतुर्थारकस्वरूपं निरूपयति-

मूलम्—तीसे णं समाए दोहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं काले
 वीइक्कंते अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं तहेव जाव अणंतेहिं उट्टाणकम्म
 जाव परिहायमाणे २ एत्थ णं दूसमसुसमा णामं समा काले पडिबज्जि
 समणाउसो ! तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगार-
 भावपडोआरे पण्णत्ते ? गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते,
 से जहाणामए आलिगपुक्खरेइ वा जाव मणीहि उवसोभिए, तं जहा
 कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव, तीसे णं भंते ! समाए भरहे मणुआणं
 केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा ! तेसिं मणुयाणं, विव्हे
 संघयणे छेव्विहे संठाणे बहूइं धणूइं उच्छं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं
 उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउअं पालेति पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी
 जाव देवगामो अप्पेगइया सिज्जंति जाव सब्बदुक्खाणमंतं करेति, तीसे
 णं माए तआ वंसा स प्पज्जित्था, तं जहा-अरहंतवंसे १ चक्क वट्ठि
 वंसे २ दसाखंसे ३ तीसेणं समाए तेवीसं तित्थयरा इक्कारसचक्कवट्ठी णव
 व देवा णव वा देवा स प्पज्जित्था ॥सू० ५२॥

छाया-तस्यां खलु समायां द्वाभ्यां सागरोपमकोटीभ्यां काले व्यतिक्रान्ते अनन्तैर्बर्षा-
 पर्यवैः त यावदन्तैः उत्थानकर्म यावत् परिहोयमान. २ अत्र खलु दुष्प्रसङ्गमा
 समा कालः प्रत्यपद्यत भ्रमणाऽऽयुष्मन्। तस्यां खलु भदन्त। समायां भरतस्य वर्षस्य कीदृश
 आकारमावप्रत्यवतारः प्रकृतः?, गौतम! बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रकृतः, स यथा कः
 आलिङ्गपुच्छरमितिवा यावत् मणिमिरुपशोभितः, तद्यथा-कृत्रिमैर्ब्रह्मैव अकृत्रिमैर्ब्रह्मैव, त
 खलु भदन्त ! त्यां भरते मनुजानां कीदृशक आकारमावप्रत्यवतारः प्रकृतः?, गौतम !
 तेषां मनुजानां षड्विधं संहननं षड्विधं संस्थानं बहूनि घनूनि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन जघम्येना-
 न्तर्मुहूर्त्तम् उरुर्ध्वेण पूर्वकोट्यायुक्तं पालयन्ति पालयित्वा अप्येकके निरयगामिनो यावत्
 देवगामिनः अप्येकके सिध्यन्ति बुध्यन्ते यावत् सर्वदुक्खानामन्त कुर्वन्ति, तस्यां खलु यां
 त्रयो वंशाः समुदपद्यन्त, तद्यथा-अर्हद्वंशः १ चक्रवर्तिवंशः २ दशार्हद्वंशः ३ तस्यां खलु
 समायां त्रयोविंशतिस्तीर्थकरा एकादश चक्रवर्तिनो नव बलदेवा नव वासुदेवाः समुदप-
 द्यन्त ॥ सू० ५२ ॥

टीका—“तीसेण समाए” इत्यादि—तस्याम् पूर्वोक्तायां खलु समायां काले (दोहिं) द्वाभ्यां (सागरोवमकोडाकोडीहिं) सागरोपमकोटाकोटीभिः सागरोपमकोटाकोटीद्वयेनेति पदद्वयस्यार्थः, ‘प्रमिते’ इतिशेषः, तस्यानन्तरवर्तिना ‘काले’ इत्यनेन सम्बन्धः ‘काले’ काले समये ‘वीडवकते’ व्यतिक्रान्ते व्यतीते सति ‘अणनेहिं अनन्ते’ ‘वण्णपज्जवेहिं’ वर्णपर्यवे—वर्णा—शुक्लादयस्ते च पर्यवाः पर्याया गुणा वर्णपर्यवास्तैस्तथा शुक्लादिवर्णरूपगुणैः ‘पर्यवः पर्यायः, गुणः, विशेषः, धर्म’ इत्येते समानाथकाः, ‘तहेव’ तथैव द्वितीयारकप्रतिपत्तिक्रमवद् बोध्यम्, ‘जाव’ यावत् ‘अणंतेहिं’ अनन्तैः ‘उट्ठाणकम्म जाव’ उत्थानकर्म यावत् उत्थानकर्मबलवीर्यपुरुषकार पराक्रमैरनन्तगुणपरिहान्या ‘परिहायमाणे २’ परिहीयमानः २ ‘एत्थ’ अत्र अत्रान्तरे ‘णं’ खलु (दूसमसुसमा) दुष्पमसुपमा ‘णामं’ नाम ‘समा’ कालः (पडिवज्जिसु) प्रत्यपद्यते (समणाउसो)। अमणाऽऽयुष्मन् ! हे श्रमण ! हे आयुष्मन् ! अथ पूर्वाकवद् भरतस्वरूपं निरूपयितुं संवदति (तीसेणं भंते !) तस्यां खलु भदन्त ! हे महानुभाव ! (समाए) समायां काले (भरहस्स) भरतस्य तदारूपस्य (वासस्स) वर्षस्य (केरिसए) कीदृशकः—कीदृशः (आगारभावपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारः स्वरूप—तद्गतपदार्थसहितप्रादुर्भावः (पण्णत्ते) प्रज्ञप्तः ? (ओयमा !)

अब सूत्रकार चतुर्थारक का स्वरूप कहते हैं

‘तीसेण समाए दोहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं’ इत्यादि सूत्र—५२—

टीकार्थ—जब दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण तृतीय काल समाप्त हो गया तब (अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं तहेव जाव अणंतेहिं उट्ठाण कम्म जाव परिहायमाणे २ एत्थ णं दूसम सुसमा णामं ममा काले पडिवज्जिसु समणाउसो) अनन्त शुक्लादिगुण रूप पर्यायों की हीनता वाला यावत् अनन्त उत्थान, बल वीर्य, पुरुषकार पराक्रम रूप पर्यायों की हीनता वाला दुष्पमसुपमा नामका चतुर्थ काल हे श्रमण आयुष्मन् ! प्रारम्भ हुआ यहाँ यावत् शब्द से द्वितीय आरक में जिस प्रकार से वर्णपर्यायों से लेकर पुरुषकार पराक्रम तक का पाठ कहा गया है—वैसा ही वह सब पाठ यहाँ पर भी कह लेना चाहिये “तीसेण भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगार-

इवे सूत्रकार चतुर्थारकतु स्वरूप कहे छे—

‘तीसेण समाए दोहिं सागरोवमकोडाकोडीहिं’—इत्यादि सूत्र ॥ ५२ ॥

टीकार्थ—अथरे णे कोटा कोटी सागरोपम प्रमाण तृतीय काल समाप्त थये। त्त्यारे (अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं तहेव जाव अणंतेहिं उट्ठाणकम्म जाव परिहायणे २ एत्थ णं दूसम सुसमा णामं समा काले पडिवज्जिसु समणाउसो) हे श्रमण आयुष्मन् अनन्त शुक्लादिगुण रूप पर्यायों की हीनता वाला यावत् अनन्त उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम रूप पर्यायों की हीनता वाला दुष्पम सुपमा नामक चतुर्थ काल प्रारम्भ थये। अही यावत् पश्ची द्वितीय आरकमां नेम वणुं पर्यायिणी भाडीने पुरुषकार पराक्रम सुधीने पाठ अहंथ थये छे तेमज्ज ते पाठ अही पणुं अहंथ थयेद छे। “तीसे णं भंते ! समाए भर वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते” हे भदन्त ! आ चतुर्थ कालमा भरत

गौतम ! तस्य (बहुसमरमणिञ्जे)बहुसमरमणीयः अत्यन्तसमतलोऽत एव रमणीयः सुन्दरः (भूमिभागे) भूमिभागः भूमिप्रदेशः (पण्णत्ते) प्रज्ञप्तः स कीदृशः इत्याह—‘से’ स (जहाणामए) यथानामरुः (आलिगपुक्खरेइ वा) आलिङ्गपुष्करमिति वा—आलिङ्गः—मुरजो वाद्य-विशेषः तस्य पुष्करं—चर्मपुट तदत्यन्तसमतलं भवतीति तच्चुल्यसमतलत्वात् तदेवइति-शब्दो हि सादृश्यार्थरुः, वा शब्दः समुच्चयार्थकः, एवमग्रेपि (जाव) यावत्—यावत्पदेन—‘मुइंगपुक्खरेइ वा सरतलेइव वा, करतलेइ वा, चंदमंडलेइ वा, सूरमंडलेइ वा आर्यंसमंडलेइ वा, उरव्वमचम्मेइ वा, उपभचम्मेइ वा, वराहचम्मेइ वा, सीहचम्मेइव वा, वग्घचम्मेइ वा, मिगचम्मेइ वा, छागलचम्मेइ वा, दीवियचम्मेइ वा, अणेगसंकुकीलगसहस्स-वितह णाणाविह पंचवण्णेहि” इति संग्राह्यम्, तच्छाया—“मृदङ्गपुष्करमिति वा, सरस्तलमिति वा, चन्द्रमण्डलमिति वा, सूरमण्डलमिति आदर्शमण्डलमिति वा, उरभ्रचर्ममिति वा, वृषभचर्ममिति वा वराहचर्ममिति वा, सिंह चर्ममिति वा, व्याघ्रचर्ममिति वा, मृगचर्ममिति वा छागलचर्ममिति वा द्वीपिक-चर्ममिति वा, अनेकशङ्कुकीलकसहस्सविततः नानाविधपठ्ठचवर्णैः” इति, एतद्व्याख्या राज-प्रश्नीयसूत्रस्य पञ्चदशसूत्रस्य मत्कृतसुबोधिनो टीकातो बोध्या, (मणीहिं) मणिभिः (उवसो-

भावपडोयारे पण्णत्ते” हे मदन्त ! इस चतुर्थकाल में भरत क्षेत्र का स्वरूप कैसा कहा गया है ? इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु श्री कहते हैं—‘गोयमा ! बहुसरमणिञ्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहा-मए अलिगपुक्खरेइवा जाव मणीहिं उवसोमिए’ हे गौतम ! उस चतुर्थ काल में इस भारतक्षेत्र की भूमि अत्यन्त समतल वाली थी अत एव वह रमणीय—सुन्दर थी वह ऐसी समतल वाली थी कि जैसा मुरज मृदंग नामक वाद्य विशेष का चर्मपुट समतल वाला होता है० यहा इति शब्द सादृश्यार्थक है और वा शब्द समुच्चयार्थक है यहा पर यावत् शब्द से—‘मुइंगपुक्खरेइवा, सर-तले इवा, करतलेइवा, चंदमंडलेइवा, सूरमंडलेइवा, आर्यंसमण्डलेइवा, उरव्वमचम्मेइवा, उसभ-चम्मेइवा, वराहचम्मेइव, सीहचम्मेइवा, वग्घचम्मेइवा, मिगचम्मेइवा, छागलचम्मेइवा, दीविय-चम्मेइवा, अणेगसकुकीलग सहस्सवितए णाणाविह पंचवण्णेहि” इस पाठ का ग्रहण हुआ है इस पाठ के पदों की व्याख्या राजप्रश्नीय सूत्र के १५वे सूत्र की सुबोधिनी टीका से जान लेना

क्षेत्रना स्वरूप विषे शुं कडेवामां आब्बुं छे ? तो आ प्रश्नना जवाबमां प्रभु कडे छे—‘गोयमा ! बहुसरमणिञ्जे भूमिभागे पण्णत्ते, से जहाणामए अलिगपुक्खरेइ वा जाव मणीहिं उवसोमिए” हे गौतम, ते चतुर्थ कालमां ते भरत क्षेत्रनी भूमि अत्यन्त समतल छती, जेथी ते रमणीय सुहर छती, मुरज नामक वाद्य विशेषना चर्मपुट जे प्रभाणे समतल वाणी होय छे, ते प्रभाणे जे ते भूमि समतलवाणी छती अही ‘इति’ शब्द सादृश्यार्थक छे अने ‘वा’ शब्द समुच्चयार्थक छे अही यावत् शब्दथी “मुइंगपुक्खरेइ वा, सरतलेइ वा करतलेइ वा, चंदमंडलेइ वा, सूरमंडलेइ वा आर्यंसमंडलेइ वा उरव्वमचम्मेइ वा, उसभचम्मेइ वा, वराहचम्मेइ वा, वग्घचम्मेइ वा, सीहचम्मेइ वा, मिगचम्मेइ वा, छागलचम्मेइवा, दीवियचम्मेइवा, अणेग संकुकीलगसहस्सवितए णाणाविह पंचव-ण्णेहि” आ पाठ संग्रहीत थये छे. आ पाठना पहोनी व्याख्या ‘राजप्रश्नीय सूत्र’ ना सूत्र नं. १५ नी सुबोधिनी टीका पस्थी जेथी देवी जेथी जे ते भूमि अनेक प्रकारना

मिष्ट) उपशोभितः—अलङ्कृतः, (तं जहा) तद्यथा (किञ्चित्मेहिं चैव अकिञ्चित्मेहिं चैव) कृत्रिमै-
 अकृत्रिमैश्चैव—स्वाभाविकैः कारुणिकैश्च मणिभिरुपशोभित इत्यर्थः, इति भरतर्षभभू-
 मिभागवर्णनम् अथ दुष्पमसुपमाकालोत्पन्नभरतक्षेत्रभवमनुजान् वर्णयितुं सवदति (तीसे)
 तस्या दुष्पमसुपमायां(णं) खलु (भंते !) भदन्त ! हे महानुभावः (समाए) समायां
 काले (भरहे) भरते-भरतक्षेत्रे वर्षे (मणुयाणं) मनुजानां मनुष्याणां (केरिसए) कीदृशकः—
 कीदृशः (आयारभावपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारः—स्वरूपसंहननसंस्थानोच्चत्वादि प-
 दार्थसहितप्रादुर्भावः (पण्णत्ते) प्रज्ञप्तः ? अस्य प्रश्नस्योत्तर मगवानाह— (गोयमा !)
 गौतम ! (तेसिं) तेषां दुष्पमसुपमासमोत्पन्नभरतवर्षीयाणाम् (मणुयाणं) मनुजानां (छ-
 व्विहे) षड्विधं पट्प्रकारकं (संघयणे) सहननं-शरीरं(छव्विहे) षड्विधं (संठाणे) संस्थानम्
 आकारः (बहूइं) बहूनि- अनेकानि (धणूइं) धनूषि (उद्धं) ऊर्ध्वम् (ऊच्चत्तेण) उच्च-
 स्वेन प्रज्ञप्तम् तच्च ते (जहण्णेण) जघन्येन- अपकर्षेण (अंतोमुहुत्तं) अन्तर्मुहूर्तम् (उक्को
 सेणं) उत्कर्षेण-उत्कृष्टतया (पुव्वकोडोआउअं) पूर्वकोट्ययुष्कम्- पूर्वकोटिमायुः (पालेत्ति)

चाहिये० वह भूमि अनेक प्रकार के पाचवर्णों के मणियों से उपशोभित थी “किञ्चित्मेहिं चैव अ-
 किञ्चित्मेहिं चैव” इन मणियों में कृत्रिम मणि भी थे और अकृत्रिम मणि भी थे इस प्रकार से चतुर्थ
 काल के समय की भूमिकावर्णन कर अब सूत्रकार इस चतुर्थ काल में उत्पन्न हुए मनुष्यों का
 वर्णन करने के लिये कहते हैं—“तीसे णं भंते ! समाए भरहे वासे मणुयाणं केरिसए आयारभाव-
 पडोयारे पण्णत्ते” इसमें गौतम प्रभु से ऐसा पूछते हैं—हे भदन्त उस चतुर्थ काल के मनुष्यों का
 स्वरूप कैसा कहा गया है ? अर्थात् इनका स्वरूप सहनन, संस्थान एवं उच्चत्वादि पदार्थ
 सहित प्रादुर्भाव कैसा बतलाया गया है इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु कहते हैं—“गोयमा तेसिं
 मणुयाणं छव्विहे संघयणे” हे गौतम चतुर्थ काल के मनुष्यों के ६ प्रकार का सहनन कहा गया
 है—तथा वह “बहूइं धणूइं उद्ध उच्चत्तेणं” अनेक धनुष का ऊचाह वाला कहा गया है. इस
 काल के मनुष्यों की आयु जघन्य से “अंतोमुहुत्तं” एक अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट से “पुव्व-
 कोडो आउअं पालेत्ति” एक पूर्वकोटि की कही गई है इतनी बड़ी आयु को भोगकर “अप्ये-

पांच वर्षों ना मञ्जुश्रीयाः उपशोभित इति “किञ्चित्मेहिं चैव अकिञ्चित्मेहिं चैव” ये मञ्जु-
 श्रीयाः कृत्रिम मञ्जुश्रीयाः पञ्च इति अने अकृत्रिम मञ्जुश्रीयाः पञ्च इति आ प्रभाषे अतुर्थ
 कालना समयनी भूमिनु वषुन करीने डेवे सूत्रकार आ अतुर्थ कालमा उत्पन्न थयेत
 भाषुसेनु वषुन करवा भाटे आ प्रभाषे कडे छे—“तीसेणं भन्ते ! समाए भरहे वासे
 याणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते” आमां गौतमस्वामी प्रभुने आ प्रभाषे प्रश्न करे
 छे के डे डे बहन्त ते अतुर्थ कालना भाषुसेनु स्वरूप केवु कडेवामा आण्यु छे ? आ प्रश्न
 ना उत्तरमां प्रभु कडे छे—“गोयमा ! तेसिं मणुयाणं छव्विहे संघयणे” डे गौतम ! अतुर्थ
 कालना भाषुसे ना ६ प्रकारना सहनन कडेवामा आण्यु छे तेमश्च त बहूइ धणूइ उद्ध
 त्तेणं” अनेक धनुषो जेटली उथाई धरावता इता. आ कालना भाषुसे नुं आयु जघ-
 न्यथी “अंतोमुहुत्तं” अक अन्तर्मुहूर्तनी अने उत्कृष्टथी “पुव्वकोडो आउअं पालेत्ति” अक

पालयन्ति अनुभवन्ति (पालित्वा) पालयित्वा तत्र (अप्येगइया) अप्येकके केचित् (गिरय-
गामी) निरयगामिनः नरकगामिनः (जाव) यावत्- यावत्पदेन- "तिर्यग्गामिनः मनुष्य
गामिनः" इति संग्राह्यम्, (देवगामी) देवगामिनः (अप्येगइया) अप्येकके केचित् मनुजा-
(सिञ्चन्ति) सिध्यन्ति सिद्धि प्राप्नुवन्ति (बुञ्चन्ति) बुध्यन्ते- बोध केवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति
'जाव' यावत्- "मुच्चन्ति, परिणिष्वाअति" इति संग्राह्यम्, तस्य "मुच्यन्ते परिनिर्वा-
न्ति" इतिच्छाया, तत्र मुच्यन्ते इत्यस्य सकलकर्मबन्धान्मुक्ता भवन्तीत्यर्थः, परिनिर्वा-
न्ति- पारमार्थिकसुखं प्राप्नुवन्ति, 'सव्वदुक्खाणमत्' सर्वदुःखानामन्तं नाशं 'करेति'
कुर्वन्ति, अथ पूर्व समाप्तो विशेषमाह- 'तीसे' तस्यां 'णं' खलु 'समाए' समायां काले
'तओ' त्रयः- त्रिसंख्याः 'वसा' वंशाः वंशा इव वशाः प्रवाहा- आवलिकाः, न तु सन्ता-
नरूपाः परम्परा परस्परं पितृपुत्रपौत्रप्रपौत्रादिव्यवहाराभावात् 'समुप्पज्जित्था' समुदप-
घन्त- समुत्पन्ना अभूवन् 'तं जहा' तद्यथा 'अरहंतवसे' अर्हद्वंशः १ 'चक्रवट्टिवसे' चक्रवर्ति-
वंशः २ 'दसारवंसे' दशार्हवंशः ३ तत्र दशार्हवंशः- दशार्हणा बलदेववासुदेवानां वंशो
दशार्हवंशः, यदत्र दशारंशवदेन बलदेववासुदेवयोर्ग्रहणं तदुत्तरसूत्रबलादेव बोध्यम्,

गइया" कि तनेक जीव "गिरयगामी" नरकगामी होते हैं, "जाव" यावत् कितनेक जीव तिर्यग्गामी
होते हैं, कितनेक जीव मनुष्य गामी होते हैं और कितनेक जीव "देवगामी" देवगामी होते हैं.
तथा कितनेक जीव सिञ्चन्ति" सिद्धि गति को प्राप्त होते हैं. 'बुञ्चन्ति' जाव मुच्चन्ति, परिणिष्वा-
अन्ति" कितनेक केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं, यावत् सकल कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं
और पारमार्थिक सुख को प्राप्त कर लेते हैं "सव्वदुक्खाणमत् करेति" आर समस्त दुःखों का
अन्त कर देते हैं 'तीसे समाए तओ वंसा समुप्पज्जित्था-तं जहा-अरहंतवसे चक्रवट्टिवसे २
'दसारवंसे' उस काल में ३ तीन वंश उत्पन्न हुए-एक अर्हद्वंश दूसरा चक्रवर्ति वंश और तीसरा
दशार्हवंश इन अर्हन्त प्रभु की जो वंश, है वह अर्हद्वंश और चक्रवर्ती का जो वंश है वह चक्रवर्ति
वंश है तथा बलदेव और वासुदेवों के वंश को दशार्ह वंश कहा गया है. यहा पर जो दशार

पूर्व काटि नेट्ठु कहेवामा आवे छे. आट्ठु दीधं आयु लोगवीने "अप्येगइया" केट्ठाक
एवे. "गिरयगामी" नरक गामी होय छे जाव यावत् केट्ठाक एवे तिर्यग्गामी होय
छे केट्ठाक एवे मनुष्यगामी होय छे अने केट्ठाक एवे "देवगामी देवगामी होय छे.
तेमज्ज केट्ठाक एवे "सिञ्चन्ति सिद्धिगतिने प्राप्त करे छे. "बुञ्चन्ति जाव मुच्चन्ति परि-
णिष्वाअन्ति केट्ठाक एवे केवलज्ञानने प्राप्त करे छे यावत् सकल कर्मोना बंधनोत्थी मुक्ता
थरु जाय छे, पारमार्थिक सुखने प्राप्त करे छे "सव्वदुक्खाणमत् करेति" अने समस्त
दुःखोना अन्त करी नाये छे 'तीसे समाए तओ वंसा समुप्पज्जित्था तं जहा अरहंतवसे
चक्रवट्टिवसे २ दसारवंसे' ते काणमा तथु वंशो उत्पन्न थया-अेक अर्हद्वं वंश, भीजे
चक्रवर्ति वंश तीजे दशार्ह वंश अे तथे मा ने अर्हद्वन्त प्रभुने। वंश छे, ते अर्हद्वंश
अने चक्रवर्तीने ने वंश छे ते चक्रवर्ती वंश छे. तेमज्ज बलदेव अने वासुदेवना वंशने
दशार्ह वंश कहेवामा आवे छे अही ने दशा शब्दथी अलहव वासुदेवतु अद्वेषु करवामा

અન્યથા દશાર્હશબ્દેન વાસુદેવાનામેવ પ્રતિપાદ્યતયા ગ્રહણં સ્યાદિતિ 'અહ્ય ચ દસારાણં' इति वचनात्. यद्यपि प्रतिवासुदेववंशोऽत्र नोक्तः तथापि उपलक्षणात् सोऽपि ग्राह्यः, तदनुक्तौ कारणं च उपाङ्गानामङ्गानुयायित्वमिति स्थानाङ्गे वशत्रयस्यैव प्रतिपादनात्, तत्-कारणं च प्रतिवासुदेवानां वासुदेववध्यतया पुरुषोत्तमत्वानभ्युपगम इति वृद्धा आहुः एतदेवाह—'तीसेणं समाए तेवीसं तित्थयरा इक्कारस चक्रवट्टी णव वलदेवा णव वासुदेवा' इति "तस्यां समायां त्रयोविंशतिस्तीर्थकरा एकादश चक्रवर्तिनः ऋषभगरतयोभृती यारके जननात्, नन वलदेवा नव वासुदेवाः, तत्र वासुदेवापेक्षया वलदेवानां ज्येष्ठत्वेन प्रागु-पादानम्, एवं चोपलक्षणात्प्रति वासुदेववंशोऽपि ग्राह्य 'समुपजित्था' समुदयन्त । सू० ५२॥ इति चतुर्थाऽरक उक्त. ४ ।

શબ્દ સે વલદેવ ઔર વાસુદેવ કા ગ્રહણ ક્રિયા ગયા હૈ વહ ઉત્તર સૂત્ર ક વલ સે હા ગ્રહણ ક્રિયા ગયા હૈ નહોં તો ફિર પ્રતિપાદ્ય હોને કે કારણ વાસુદેવો કા હી ગ્રહણ હોના ચાહિયે થા 'અહ્યચ દસારાણં' હસ વચન કે અનુસાર યદાપિ યહાં પર પ્રતિ વાસુદેવ કા વગ નહોં કહા ગયા હૈ તથાપિ ઉપલક્ષણ સે વહ મી યહા પર ગ્રાહ્ય હૈ ઉસે જો યહા સ્પષ્ટ રૂપ સે નહોં કહા ગયા હૈ ઉમકા કારણ ઉપાઙ્ગ અઙ્ગાનુયાયી હોતે હૈં હસ નિયમ કે અનુસાર સ્થનાઙ્ગ મે વશત્રય કા પ્રતિપાદન હૈં તથા પ્રતિ વાસુદેવ વાસુદેવ કે દ્વારા વધ્ય હોતે હૈં હસ કારણ ઉન્હે ઉત્તમ પુરુષોં મેં પરિગણિત નહોં ક્રિયા ગયા હૈં એસા વૃદ્ધ કહતે હૈં ઉસ ચતુર્થ ઙ્ગલ મેં હી તેવીસ તિ-થયરા ઇક્કારસ ચક્રવટ્ટી ણવ વલદેવા" ૨૩ તીર્થકર ૧૧ ચક્રવર્તી ની વલદેવ ઔર ની વાસુદેવ હોતે હૈં યહા ૨૩ તીર્થકર હસલિયે કહે ગયે હૈં ફિ ઋષભદેવ ભરત ક્ષેત્ર મેં તૃતીય આરક મેં હુય હૈં વાસુદેવ કી અપેક્ષા વલદેવ જ્યેષ્ઠ હોતે હૈં હસલિયે ઉન્હે પાઠ મેં પ્રથમ કહા ગયા હૈં હસ તરફ ઉપલક્ષણ સે પ્રતિવાસુ-દેવ કા વંશ મી ગૃહીત હુઆ જાનના ચાહિયે—ચતુર્થ આરક સમાપ્ત—૫૨

આવેલ છે તે ઉત્તર સૂત્રના બળથી અહણ કરવામા આવેલ છે, નહીં તર પછી પ્રતિપાદ્ય હોવાને લીધે વાસુદેવોનુ જ અહણ થયું. એક જો અહ્ય ચ દસારાણં આ વચન મુજબ યદપિ અત્રે પ્રતિ વાસુદેવને વંશ કહેવામાં આવેલ નથી, તથાપિ ઉપલક્ષણથી તેનુ પણ અહીં અહણ થયું છે તેને જો અત્રે સ્પષ્ટ રૂપમા પ્રદર્શિત કરવામાં આવેલ નથી. તેનું કારણ ઉપાંગ અંગાનુયાયીજો હોય છે. આ નિયમ મુજબ સ્થનાંગ મા વશત્રય નુ પ્રતિપાદન છે તેમજ પ્રતિવાસુદેવ વાસુદેવ વડે વધ્ય હોય છે, તેથી તેમની ઉત્તમ પુરુષોમા પરિગણના કરવામાં આવી નથી એવું વૃદ્ધો કહે છે તે ચતુર્થ ઙ્ગલ મા જ "તેવીસ તિત્થયરા ઇક્કારસ ચક્રવટ્ટી ણવ વલદેવા" ૨૩ તીર્થ કરો, ૧૨ ચક્રવર્તીઓ, નવ બળદેવો અને નવ વાસુદેવો હોય છે અહીં તીર્થ કરો એટલા માટે કહેવામાં આવેલ છે કે ઋષભ દેવ ભરતક્ષેત્રમાં તૃતીય આરકમા થયા છે વાસુદેવની અપેક્ષા બળદેવ જ્યેષ્ઠ હોય છે. એથી તેમને પાઠમા પ્રથમ કહેવામા આવેલ છે આ પ્રમાણે ઉપલક્ષણથી પ્રતિવાસુદેવને વશ પણ ગૃહીત થયો છે, તેમ સમજવું. ૫૨

ચતુર્થ આરક સમાપ્ત—

अथ पञ्चमोऽरको वर्ण्यते—

मूलम्—तीसे णं समाए एक्काए सागरोवमकोडाकोडीए वायाली साए वाससहस्सेहि ऊणिआए काले वीइक्कंते अणंतेहि वण्णपज्जवेहि तहेव जाव परिहाणोए परिहायमाणे २ एत्थणं दुसमा णामं समा काले पड्विज्जिस्सइ समणाउसो ! तीसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसिए आगारभावपडोयारे भविस्सइ ? गोयमा ! बहुसमस्मणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ से जहाणामए आलिङ्गपुक्खरेइव वा सुइंगपुक्खरेइ वा जाव णाणामणिपंचवण्णेहि कित्तिमेहि चेव अकित्तिमेहि चेव तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स मणुआणं केरिसिए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते ? गोयमा ! तेसि मणुयाणं छव्विए संघयणे छव्विए संठाणे बहु ईओ रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं आउअं पालेति पालित्ता अप्पेगइआ णिरयगामि जाव सब्बदुक्खाणमंतं करेन्ति, तीसेणं समाए पच्छिमे तिभाए गणधम्मे पासंडधम्मे रायधम्मे जायतेए धम्मचरणे अवोच्छिज्जिस्सइ ॥सू० ५३॥

छाया—तस्यां खलु समायामेकया सागरोपमकोटाकोट्या द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैरुनितायां काले ध्यतिक्रान्तेऽनन्तैर्वर्णपर्यवैः तथैव यावत् परिहान्या परिधीयमानः २ अत्र खलु दुष्पमा नाम समा काल प्रतिपत्स्यते श्रमणाऽऽयुषमन् । तस्यां खलु भवन्त ! समायां भरतस्य वर्षस्य कीदृशक आकारभापप्रत्यवतारो भविष्यति ? गौतम ! बहुसमस्मणीयो भूमिभागे भविष्यति, स यथालामकः आलिङ्गपुष्करमिति वा मृदङ्गपुष्करमिति वा यावद् नानामणि पञ्चवर्णैः कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैव, तस्यां खलु भवन्त ! समायां भरतवर्षस्य मनुजानां षड्विधं संहननं षड्विधं संस्थानं बह्व्यो रत्नयः ऊर्ध्वमुच्चत्वेन जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम् उत्कर्षेण सातिरेकं वर्षशतमायुष्कं पालयन्ति पालयित्वा अप्येकके निरयगामिनो यावत् सर्वदुःखानामन्तं कुर्वन्ति, तस्याः खलु समायाः पश्चिमे त्रिभागे गणधर्मः पाण्डधर्मो राजधर्मो जाततेजाः धर्म चरणं च व्युच्छेत्स्यते ॥ ५३ ॥

टीका—“तीसे णं समाए” इत्यादि-तस्यां दुष्पमसुषमायां खलु समायां काले (एक्काए) एकया एक संख्यया (सागरोवमकोडाकोडीए) सागरोपमकोटाकोट्या- एकेन कोटाकोटि

पचम आरक का वर्णन—

‘तीसे णं समाए एक्काए सागरोवम’—इत्यादि सूत्र-५३

टीकार्थ—उस काल में जब ४२ हजार वर्ष कम एक कोटा कोटी सागरोपम प्रमाण वाला चतुर्थकाल समाप्त हो चुका तब धीरे धीरे “अणंतेहि वण्णापज्जवेहि तहेव जाव परिहाणीए परि-

सागरोपमेनेति पदद्वयार्थः (वायालीसाए) द्विचत्वारिंशता (वाससहस्सेहिं) वर्षसहस्रैः द्विचत्वारिंशत्सहस्रवर्षैरितिपदद्वयार्थः (अणिआए) अनितायां न्यूनीभूतायां समायामिति पूर्व-
णान्वयः, तस्यां तद्रूपे (काले) काले (वीङ्कंते) व्यतिक्रान्ते- व्यतीते सति (अणंतेहिं)
अनन्तैः अन्तरहितैः वर्णपञ्जवेहिं वर्णपर्यवैः शुक्लादि- वर्णविशेषैः (तहेव) तथैव चतु-
र्थारकवदेव (जाव) यावत् गन्धपर्यवैरित्यारभ्य अनन्तबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमैरनन्तगु-
णेति यावत्पद संग्राह्यम्, तत्रानन्तगुणेत्यस्याग्रेतनेनान्वयः (परिहाणीए) परिहान्या-अन-
न्तगुणपरिहान्या अनन्तगुणहासेन एषां व्याख्या द्वितीयारकवर्णने गता (परिहायमाणेर)
परिहीयमानः २ हसन २ काल उपतिष्ठति (एत्थ) अत्र अत्रान्तरे (णं) खल्लु (दूसमा) दू-
ष्पमा (णामं) नाम (समा) (काले कालः)(पडिवज्जिस्सइ) प्रतिपत्स्यते उपस्थास्यति अत्र
वक्तुरपेक्षया भविष्यकालनिर्देशः(समणाउसो)श्रमणाऽऽयुष्मन् ! हे श्रमण ! हे आयुष्मन् !
अथ दुष्पमायां भरतस्वरूपं निरूपयितुं संवदति (तीसे) तस्यां दुष्पमायां समायां (णं) खल्लु
(भंते) भदन्त! महानुभावः (समाए) समायां (काले भरहस्स) भरतस्य (वासस्स) वर्षस्य
(केरिसए) कीदृशकः कीदृशः (आगारभावपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारः, इदं प्रा-
ग्वत् (पण्णत्त) प्रज्ञप्तः । अस्य प्रश्नस्योत्तरं भगवानाह—(गोयमा !) गौतम ! (बहुसमर-
मणिज्जे) बहुसमरमणीयः अत्यन्तसमतलोऽत एव रमणीयः- सुन्दरः (भूमिभागे) भूमि-
भागः भूमि प्रदेशः (भविस्सइ) भविष्यति (से) सः भूमिभागः (जहाणामए) यथानामकः

हायमाणे” अन्तरहित वर्णपर्याय के यावत् गन्धपर्याय के अनन्त बल वीर्य पुरुषकार पराक्रम
अनन्तगुणरूप से घट जाने पर ‘समणाउसो’ हे श्रमण आयुष्मन् ! ‘एत्थ ण दूसमा णाम
समा काले पडिवज्जिस्सइ’ इस भरत क्षेत्र में दुष्पमा नामका पाचवा काल लगेगा यहाँ
पर यह भविष्यत्काल का निर्देश वक्ता की अपेक्षा से किया गया है । ‘तीसेण भंते ! समाए
भरहस्स केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते’ हे भदन्त ! इस पंचम काल के समय में भरत
क्षेत्र का आकार भाव प्रत्यवतार—स्वरूप—कैसा कहा गया है इस गौतमके प्रश्न के उत्तर में प्रभु
कहते हैं—“गोयमा बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ, से जहाणामए आलिङ्गपुक्सरेइ वा

पञ्चम आरकतु वषुंन

‘तीसेण समाए पक्काए सागरोवम’—छत्यादि सूत्र—५३

टीकाथ—ते काणे न्यारे ४२ हजार वर्ष कभ ओक डेाटी डेाटी सागरोपम प्रमाणुवाणे।
अतुर्थे काण सभास थये त्यारे धीमे धीमे “अणंतेहिं वर्णपञ्जवेहिं तहेव जाव परिहा-
णीए परिहायमाणे” अन्त रहित वषुंनपर्यायिना यावत् गन्ध पर्यायिना अनन्त गणवीथे
आयुष्मन् ! ‘एत्थ ण दूसमाणाम समा काले पडिवज्जिस्सइ’ आ भरतक्षेत्रमा दुष्पमा नामना
पांचमा काण नेा प्राार के थये अही भविष्यकाणने उद्देश्य वक्तानी अपेक्षाओ करवाभां
आवेद छे ‘तीसेण भंते समाए भरहस्स केरिसए आगारभावपडोयारे पण्णत्ते’ हे भद-
न्त ! आ पञ्चम काणने सभयभां भरतक्षेत्रना आकार भाव प्रत्यवतार—स्वरूप—केतु कडे-
वाभां आवेद छे ? गौतमना आ प्रश्नना न्याय भा प्रभु कडे छे—बहुसमरमणिज्जे भूमि

(आलिङ्गपुक्खरेइ वा) आलिङ्ग पुष्करमिति वा आलिङ्गः—मुरजो वाद्यविशेषः, तस्य पुष्करं चर्मपुटं तदत्यन्तसमतलं भवतीति तत्तुल्यसमतलत्वात्तदेव इति । इति शब्दोहि सादृश्यार्थकः वा शब्दः समुच्चयार्थकः, एवयग्रेऽपि (मुद्गंगपुक्खरेइ वा) मृदङ्गपुष्करमिति वा (जाव) यावत् इह यावत्पदेन 'सरतलेइ वा' इत्यादीना सङ्ग्रहः ५१ एकपञ्चाशत्तमसूत्रे कृतस्तदनुसारेण बोध्यः, तेषां व्याख्या च तद्वत् (णाणामणिपंचवर्णेह) नानामणिपञ्चवर्णैः नाना-नानाविधैः मणिभिः क्रीदशैः पञ्चवर्णैः कृष्णनीलशुक्लहारिद्रलोहितैः पुनः कोदशैस्तैः (कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव) कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैव रचितैः स्वाभाविकैश्च मणिभिरुपशोभितो भूमिभागो भरतवर्षस्य भविष्यतीति प्रयोगः पृच्छकापेक्षया, अत्र भूमेर्वहुसमरमणीयत्वादिकं चतुर्थारकतो हीयमान २ कालक्रमेणात्यन्त हीन बोध्यम्, ननु "खाणुबहुले विसमबहुले" इत्यादिनाऽधस्तनसूत्रेण लोकप्रसिद्धेन च विरुध्यते

मुद्गंगपुक्खरेइ वा जाव सरतलेइवा' हे गौतम उस समय में उस भरत क्षेत्र का भूमिभाग ऐसा अत्यन्त समतलवाला, रमणीय होगा जैसा कि वाद्यविशेष मुरज [मृदंग] का पुष्कर—चर्मपुट अत्यन्त समतल वाला होता है मृदङ्ग का मुख समतल वाला होता है. यहां "इति" शब्द सादृश्यार्थक है और "वा" शब्द समुच्चयार्थक हैं. इस तरह से इन शब्दों के सम्बन्ध में आगे भी जानना चाहिये. यहां यावत्पद से "सरतलेइवा" इत्यादि पद का संग्रह हुआ है यह संग्रह ५१ वे सूत्र में किया गया प्रकट किया है भरतक्षेत्र का यह भूमिभाग (णाणामणि पंच वर्णेहिं कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव) अनेक प्रकार के पांच वर्णों वाले कृत्रिम मणियों से एवं अकृत्रिम मणियों से उपशोभित होगा यहा पृच्छक की अपेक्षा से भी यह भविष्यत्काल का प्रयोग हुआ है यहा भूमिभाग में बहुसमरणीयता आदि चतुर्थ आरक की अपेक्षा होयमान हीयमान कालक्रम के अनुसार अत्यन्त हीन जाननीचाहिये यहां ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये—"खाणु बहुले विसम बहुले" इत्यादि सूत्र द्वारा पंचम काल में भरतक्षेत्र की भूमि स्थाणु बहुल आदि रूप

भागे भविस्सह से जहा णामप आलिङ्गपुक्खरेइ वा मुद्गंगपुक्खरेइ वा जाव सरतलेइवा) हे गौतम ते समये आ भरत क्षेत्रने भू-भाग जेवो अत्यन्त समतल, रमणीय थशे जेवो के वाद्यविशेष मुरज (मृदंग) ने, पुष्कर-चर्मपुट अत्यन्त समतल होय छे. मृदंगतु मुख समतल होय अही "इति" शब्द सादृश्यार्थक छे अही 'वा' शब्द समुच्चयार्थक छे अ. प्रमाणे आ शब्दोना संभंधमां आगण पथु लक्षणुं नेछे. अही यावत् पदथी "सरतलेइवा" इत्यादि पदोनु ग्रहण थथुं छे जेकावन (५१) मा सूत्रमां यावत् पदथी अहीत सव' पदो प्रकट करवामां आवेल छे भरतक्षेत्रने आ भूमिभाग (णाणामणि पंचवर्णेहिं कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव) अनेक प्रकारना पाच वर्णोवाणा कृत्रिम भण्डिओ तेभज अकृत्रिम भण्डिओथी उपशोभित थशे- अही पृच्छकनी अपेक्षाओ पथु भविष्यत्कालने प्रयोग करवामा आवेल छे आ क्षेत्रना भूमिभागनी बहुसमरमणीयता वगेरे चतुर्थ आरकनी अपेक्षाओ हीयमान कालक्रम अनुसार अत्यन्त हीन समजथी. अही आ जतनी शक थवी न नेछे के 'खाणु बहुले विसमबहुले' इत्यादि सूत्र वडे पंचमकालमां भरत

इति चेन्मैवम्- बहुलशब्देन स्थाणुकण्टकविषमतादीनां प्राचुर्यमुक्तं नहि पण्ठारक इवैकान्तिकत्वम् तेन क्वचिन्महानदीगङ्गादितटादी महारामादी वैताढ्यगिरो निकुञ्जादी वा बहु समरमणीयत्वादिद्रुमुपलभ्यते एवेति न विरोधः, अथ दृष्पमाकालजातानां भरतवर्षीयमनुजानामाकारादिकान् निरूपयितुं संवदति (तीसे) तस्यामित्यादि प्राग्वात् नवरं (बहुईओ) बह्वः (रमणीयो) रम्यः- हस्ताः ऊर्ध्वगुञ्जत्वेन समदरतोन्नतत्वात्, यद्यपि कोषे रत्निशब्दो बद्धमुष्टिकहस्तार्थकस्तथापि स्वभिद्धान्तपरिभाषयाऽत्र पूर्णहस्तपरो गृह्यते । ते मनुजाः (जहण्णेणं) जघन्येन अपकृष्टतया (अंतोमुहुत्तं) अन्तर्गृह्यत्तम् (उक्कोसेणं) उत्कर्षेण उत्कृष्टतया (साइरेगं) सातिरेकं किञ्चिदधिकरुसहितम् (वाससय) वर्षशतम् शतं

से वर्णित की गई है फिर यहां आप बहुसमरमणीय आदि पद द्वारा उसमें बहुसमरमणीयता का कथन कैसे करते हैं ? क्योंकि सूत्र में बहुलपद प्रयुक्त हुआ है सो यह पद यह प्रकट करता है कि इस काल में स्थाणु कण्टक, विषमता आदि की प्रचुरता रहेगी. परन्तु छठे आरक की तरह यह इनकी प्रचुरता एकान्त रूप से यहां नहीं रहेगी इससे कहीं २ महानदी गङ्गा आदि के तटादि में बड़े बड़े वगीचा आदि को में वैताढ्यगिरि के निकुञ्जादिको में बहुसमरमणीयता भूमिभाग में उपलब्ध हो ही रही है अतः प्रतिपादन में कोई विरोध जैसी बात नहीं है.

अब इस काल में उत्पन्न हुए मनुष्यों का आकार निरूपण करने के निमित्त सूत्रकार कहते हैं इसमें गौतम ने प्रभु से ऐसा पूछा है—(तीसेणं भंते समाए भरहस्स वासस्स मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते) हे भदन्त उस काल के भरतक्षेत्र के मनुष्यों का आकार-भाव प्रत्यवतार—सहनन, सस्थान, शरीर की ऊंचाई आदि—कैसा होगा इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं । (गोयमा तेसि मणुयाणं छव्विहे सघयणे, छव्विहे सठाणे बहुईओ रयणीओ उद्धं उच्चत्तेण जहण्णेण अतोमुहुत्त उक्कोसेण साइरेगं वाससयं आउय पाळैत्ति) हे गौतम उस समय के

क्षेत्रनी भूमि स्थाणु अहुल आदि इपथी वखिण्त करवामा आवेल छे ता पछा अही तमे अहुसमरमणीय वगेरे पद वडे तेमा अहुसमरमणीयतातु कथन केवी रीते करे छे ? केमके सूत्रमा अहुलपद प्रयुक्त थयेल छे ता आ पद आवात् रूपए करे छे के आ काणमा स्थाणु कटक, विषमता वगेरेनी प्रचुरता रहेसे. पछु छटा आरकनां जेम आ जेमनी प्रचुरता जेकात इपमा अही रहेसे नही. जेथी यत्र-यत्र महानदी गंगा वगेरेना तटादिमा मोटा मोटा अगीआज्योमा, वैताढ्यगिरिना निकु अदिठोमा अहुसमरमणीयता भूमिभागमा उपलब्ध थई ज रही छे. जेथी प्रतिपादनमा केछ पछु रीते विशेध छे जेवु लागतु नथी डवे सूत्रकार आ काणमा उत्पन्न थयेला मनुष्येना आकार निरूपण करवाना हेतुथी कडे छे. आ अअध मा गौतम प्रभुने आम प्रश्न करे छे—(तीसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे पण्णत्ते) हे भदन्त ! ते काणमा भरतक्षेत्रना मनुष्येना आकार भाव-प्रत्यवतार-सहनन, सस्थान शरीरना उचाई वगेरे केवा डसे ? जेना जवाअ मा प्रभु कडे छे—(गोयमा ! तेसि मणुयाणं छव्विहे संघयणे छव्विहे सठाणे बहुईओ रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतो मुहुत्तं उक्कोसेण साइरेगं वाससयं आउयं पाळैत्ति)

वर्षाणि किञ्चिदधिकानि (आउथ) आयुष्कम् आयुः (पालेति) पालयन्ति अनुभवन्ति (पालित्ता) पालयित्वा अनुभूयायुस्तत्र (अप्पेगइया) अप्येकके केचित् (णिरयगामी) निरयगामिनः (जाव) यावत् अत्र यात्रत्पदेन— “तिर्यग्गामिनः, मनुष्यगामिनः देवगामिनः, अप्येकके सिध्यन्ति बुध्यन्ते मुच्यन्ते परिनिर्वान्ति” इत्येषां सङ्ग्रहो बोध्यः एतद्व्याख्याऽव्यवहितपूर्वकृता ग्राह्या, (सव्वदुक्खाणमंतं) सर्वदुःस्वानामन्तं नाशं (करेति) कुर्वन्ति, पुनरपि दुष्पमायाः समायाः पश्चिमत्रिभागे निजज्ञाति प्रभृति धर्मव्युच्छेदनार्थमाह— (तीसे) तस्याः दुष्पमायाः (णं) खलु (समाए) समायाः कालस्य (पच्छिमे) पश्चिमे पाश्चात्ये अन्तिमे (तिभागे) त्रिभागे भागत्रये अशत्रितये (गणधम्मं) गणधर्मं समुदायधर्मः

मनुष्यो के ६ प्रकार का सहनन होगा छह प्रकार का सस्थान होगा—इत्यादिरूप से वह सब कथन पहिले कहे गये जैसा ही जानना चाहिये विशेष उनको सात हाथ की ऊँचाई वाला शरीर होगा यद्यपि कोष में बद्धमुष्टि हाथ को “रत्ति” शब्द से कहा गया है, फिर भी सिद्धान्त की परिभाषा के अनुसार यहा पूरे हाथ को ही रत्ति शब्द से पकड़ा गया है यहां के मनुष्य उस काल में जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की आयुवाले और उत्कृष्ट से कुछ अधिक १ सौ वर्ष की आयु वाले होंगे इतनी आयु को भोगकर (अप्पेगइया) कितनेक मनुष्य (णिरयगामी) नरकगामी होंगे (जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेति) यावत्—कितनेक तिर्यग्गतिगामी होंगे कितनेक मनुष्यगतिगामी होंगे कितनेक देवगतिगामी होंगे, तथा कितनेक “मिध्यन्ति” सिद्धिपद को प्राप्त करेंगे “बुध्यन्ति” केवल ज्ञान से चराचर लोका का अवलोकन करेंगे “मुच्यन्ते” समस्त कर्मों से रहित हो जावेंगे “परिनिर्वान्ति—शीतीभूत हो जावेंगे और समस्त दुस्त्रों का अन्त करदेगे पंचम काल में जो जीवों के मुक्ति प्राप्त करने का यह कथन किया है वह चतुर्थ आरे में उत्पन्न हुए जीव का ही समझना चाहिये. पंचम आरे में उत्पन्न हुए जीवों का नहीं (तीसेण समाए

हे गौतम ! ते कालना मनुष्याना ६ प्रकारना सहनना हसे, ६ प्रकारना सस्थाना हसे, वगेरे इथमां आ भुं कथन पडेला जे प्रमाणे कडेवाभा आबु छे, तेमज समल देवुं जधमे विशेष तेमनुं सात हाथनी उगार्थ वाणुं शरीर हसे जे के के शमा भद्धमुष्टि हथने ‘रत्ति’ कडेवाभां आवेल छे. यथ सिद्धान्तनी परिभाषा मुज्जम अहीं आभा हाथने ‘रत्ति’ शब्द वडे मानवाभां आवेल छे. अहींना मनुष्या ते कालमा जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त जेटहुं आयुष्य धरावता अने उत्कृष्ट करता कंठके वधारे जेक सौ वर्ष जेटहुं आयुष्य धरा वनारा हसे, आटहुं आयुष्य लोगवीने (अप्पेगइया) केटलाक मनुष्या (णिरयगामी) नरकगामी थसे. (जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेति) यावत् केटलाक तिर्यग्गतिगामी थसे, केटलाक मनुष्यगति गामी थसे केटलाक देवगतिगामी थसे तेमज केटलाक ‘सिध्यन्ति’ सिद्धिपदने प्राप्त करसे ‘बुध्यन्ति’ केवण ज्ञानथी चराचर लोकज अवलोकन करसे “मुच्यन्ते” समस्तकर्मोथी रहित थथ जसे. ‘परिनिर्वान्ति’ शीतीभूत थथ जसे अने समस्त दुःषोणो अन्त करसे पचमकालमां लवेःनी मुक्ति प्राप्त करवा संभंधी ज आ कथन अत्रे स्पष्ट करवाभा आवेल छे ते चतुर्थ आराभां उत्पन्न थयेल लवे आटे ज समजव जेध-

નિજજ્ઞાતિધર્મઃ (પાસંડધર્મે) પાલ્લવ ધર્મઃ—શાક્યા-દિ ધર્મઃ (રાજધર્મે) રાજધર્મઃ નિગ્રહાનુગ્રહાદિ નૃપધર્મઃ (જાય તેષુ) જાતતેજાઃ અગ્નિઃ સે હિ અતિમિતગ્ને મુપમસુપમાદૌ અતિરૂક્ષે દુષ્પમદુષ્પમાદૌ ચ નોન્પદ્યત ઇતિ, અગ્નેરનુસ્પાદાદગ્નિનિમિતકો રન્ધનાદિ વ્યવહારોઽપિ (ધર્મચરણે) ધર્મચરણ ચરણધર્મઃ-સંયમરૂપો ધર્મઃ, પ્રાકૃતત્ત્વાદન્ન પદવ્યત્યયઃ (અ) ચ ચકારાદ્ ગચ્છવ્યવહારોઽપિ (વોચ્છિજ્જિસ્સડ) વ્યુચ્છેત્સ્યતે વ્યુચ્છેદં પ્રાપ્યતિ વ્યુચ્છિન્તો ભવિષ્યતિ, સમ્યક્ત્વધર્મસ્તુ કેપાઞ્ચિત્સમ્ભવત્યપિ, વિલ્લવાસ્તવ્યાનાં હિ અતિવિલ્લપ્ત્વેન ચારિત્રાસમ્ભવઃ, અતએવ પ્રજ્ઞપ્ત્યામુક્તમ્— “ઓસણ્ણ ધમ્મસન્નપ્પબ્ભટ્ટા” ઇતિ ‘અવસન્ન ધર્મસન્નપ્રમૃષ્ટાઃ ઇતિચ્છાયા ધર્માસક્તિપ્રમૃષ્ટાઃજના અવસન્નમ્ શિથિલં સમ્યક્ત્વં પ્રાપ્નુવન્તિ ઇત્યર્થઃ ઇતિ સમ્યક્ત્વ ક્વચિત્પ્રાપ્યતેઽપિ પ્રાયઃ ઇતિ પઠ્ઠમો અરકઃ ॥ સૂ. ૫૩ ॥

અથ પઠ્ઠારક નિરૂપયિતુમુપક્રમતે—

મૂલમ્—તોસે ણં સમાણે વકવીસાણે વાસસહસ્સેહિં કાલે વિઙ્ગકંતે અણંતેહિં વણ્ણપજ્જવેહિં ગંધપજ્જવેહિં રસપજ્જવેહિં ફાસપજ્જવેહિં જાવ પરિ

પશ્ચિમે ત્રિભાગે ગણધર્મે પાસંડધર્મે રાયધર્મે જાયતેષુ ધર્મચરણે અવોચ્છિજ્જિસ્સડ) ઉસ કાલ મેં પાશ્ચાત્ય ત્રિભાગ મેં અંશત્રિતય મેં—ગણધર્મ—સમુદાયધર્મ—નિજજ્ઞાતિધર્મ—પાલ્લવધર્મ—શાક્યાદિ-ધર્મ—નિગ્રહાનિગ્રહાદિરૂપ નૃપધર્મ, જાતતેજ—અગ્નિ, ધર્માચરણ—સંયમરૂપધર્મ, એવ ગચ્છવ્યવહાર યહ સર્વ વ્યુચ્છિન્ન હો જાવેગા અગ્નિ જવ રહેગી નહીં તો અગ્નિનિમિત્તક જો રન્ધનાદિ વ્યવહાર હૈ વહ મી સર્વ વ્યુચ્છિન્ન હો જાવેગા. હા કિતનેક જીવોં કે સમ્યક્ત્વરૂપ ધર્મ હોતા રહેગા. પરન્તુ વિલોં મેં રહનેવાલોં કે અતિવિલ્લપ્ત હોને કે કારણ ચારિત્ર નહીં હોગા. ઇસલિયે પ્રજ્ઞાપના મેં “ઓસણ્ણ ધમ્મસન્નપ્પબ્ભટ્ટા” ધર્માસક્તિ સે બ્રહ્મ મનુષ્ય શિથિલ સમ્યક્ત્વ કો પ્રાપ્ત કરતે હૈં એસા કહા ગયા હૈ તાત્પર્ય કહને કા યહી હૈ કિં કિન્હોં કિન્હોં જીવ કે ઇસ કાલ મે મી સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત હોતા રહેગા ॥ સૂ. ૫૩ ॥

પથમ આરામા ઉત્પન્ન થયેલા જીવો માટે આ કથન રજૂ કરવામા આવેલ નથી (તીસેણે ત્ય પશ્ચિમે ત્રિભાગે ગણધર્મે પાસંડધર્મે રાયધર્મે જાયતેષુ ધર્મચરણે અવોચ્છિજ્જિસ્સડ) તે કાળમા પાશ્ચાત્ય ત્રિભાગમાં અંશત્રિતયમાં—ગણધર્મ—સમુદાય ધર્મ—નિજજ્ઞાતિધર્મ—પાલ્લવધર્મ—શાક્યાદિધર્મ—નિગ્રહાનિગ્રહાદિરૂપ નૃપધર્મ, જાત તેજ—અગ્નિ, ધર્માચરણ—સંયમરૂપધર્મ અને ગચ્છ વ્યવહાર એ સર્વે ઇન્દ્રિય-વિચ્છિન્ન થઈ જશે અગ્નિ જ્યારે રહેશે નહીં ત્યારે અગ્નિ નિમિત્તક જે રન્ધનાદિ વ્યવહાર છે, તે પણ સંપૂર્ણરૂપમા ઇન્દ્રિય-વિચ્છિન્ન થઈ જશે હા કેટલાક જીવો ને સમ્યક્ત્વ રૂપધર્મ થતા રહેશે. પણ બિલોમાં રહેનારાઓ માટે અતિવિલ્લપ્ત હોવા બદલ ચારિત્ર હશે નહિ. એથી જ પ્રજ્ઞાપનામાં “ઓસણ્ણ ધમ્મસન્નપ્પબ્ભટ્ટા” ધર્માસક્તિથી બ્રહ્મ મનુષ્ય શિથિલ સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરે છે. આમ કહેવામાં આવેલ છે. તાત્પર્ય કહેવાનું આ પ્રમાણે છે કેટલાક જીવોને તેતે કાળમા પણ સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થતું રહેશે. ॥૫૩॥

होयमाणे२ एत्थणं दूसमदममाणामं समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो
तोसे णं भंते समाए उत्तमकट्टपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिस्सए आयार
भावपडोयारे भविस्सइ ? गोयमा ! काले भविरसइ हाहोभूए भंभाभूए
कोलोहलभूए समाणुभावेण य खरफरुसधूलिमइला दुब्बिसहो वाउला
भयंकरा य वाया संवट्टगा य वाइंति इह अभिक्खणं धूमाहिति अ दिसा
समंता रुस्सला रेणुकलुसतमपडलणिरालोआ समयलुक्खयाए णं अहिअं
चंदा सीअं मोच्छिहिति अहिअं सूरिआ तविस्संति, अदुत्तरं च णं गोयमा!
अभिक्खणं अरसमेहा विरसमेहा खारमेहा खत्तमेहा अग्गिमेहा विज्जुमेहा
विसमेहा अजवणिज्जोदगा वाहिरोगवेदणोदीरणपरिणापसलिला अम-
णुण्णपाणिअगा चंडा निलपहततिक्खधाराणिवातपउरं वासं वसिहिति, जे
णं भरहे वासे गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमगयं जणवयं
चउप्पयगवेलए खहयरे पक्खिसंधे गामारण्णप्पयारणिरए तसे अ पाणे
बहुप्पयारे रुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लिपवालंकरमादीए तणवणस्सइकाइए
ओसहीओ अ विद्धं सेहिति पव्वयगिरि डोंगरुत्थलभट्टिमादीए अ वेयड्ड-
गिरिविज्जे विरावेहिति, सलिलबिलविसमगत्तणिण्णुण्णयाणि अ गंगासिं-
धुवज्जाइं समीकरेहिति, तोसे णं भंते! समाए भरहस्स वासस्स भूमीए
केरिस्सए आगा रभावपडोआरे भविस्सइ ?, गोयमा! भूमी भविस्सइ इंगा-
लभूआ मुम्मुरभूआ छारिअभूआ तत्तकवेल्लुअभूआ तत्तसमजाइभूआ
धूलिबहुला रेणुबहुला पंकबहुला पणयबहुला चलणिवहुला बहूणं धरणि
गोअराणं सत्ताणं दुण्णिक्कमायावि भविस्सइ । तोसेणं भंते ! समाए
भरहे वासे मणुआणं केरिस्सए आयारभावपडोआरे भविस्सइ ?, गोयमा !
मणुआ भविस्संति दुरूवा दुब्बणा दुगंधा दुरसा दुफासा अणिट्टा अकंता
अप्पिआ असुभा अमणुण्णा अमणामा हीणस्सरा दीणस्सरा अणिट्टस्सरा
अकंतस्सरा अपियस्सरा अमणामस्सरा अमणुण्णस्सरा अणादेज्जवयण.
पच्चायाता णिल्लज्जा कूडकवडकलहवंधवेरनिरया मज्जायातिकमप्पहाणा

अकज्जणिच्चुज्जुया गुरुणिओगविणयरहिया य विकलरूवा परूढणहकेस.
 मंसुरोमा काला खरफरुससमावण्णा फुट्टसिरा कविलपलियकेसा बहुण्हा.
 रुणिसंपिणद्धदुहंसणिज्जरूवा संकुडिअवलीतरंगपरिवेदिअंगमंगा जरापरि.
 णयव्व थेरगणरा पविश्लपधिसडिअदंतसेदी उव्वडघडमुहा विसमणयणवंक
 णासा वंकरली विगयभेसणमुहा ददुदुविकिडिभसिअभफुडिअफरुसच्छवी
 चित्तलंगमंगा कच्छूरवसराभिभूआ खरतिअखणक्खकंडूइअविकयतणू टोल
 गतिविसमसंधिवंधणा उक्कडुअट्टिअविभत्तदुव्वलकुसंघयणकुप्पमाणकुत्तं-
 ठिआ कुरूवा कुट्टाणासणकुसेज्जकुभोइणो असुइणो अणेगवाहिपीडि-
 अंगमंगा खलंत विव्वभलमई णिरुच्छाहा सत्तपरिवज्जिया विगयचेट्टा
 णट्टतेआ अभिक्खणं सीउण्हखरफरुसवायविज्जडिअमलिणपंसुरओ गुडि
 अंगमंगा बहुकोहमाणमायालोभा वहुमोहा असुभदुक्खभागी ओसण्णं
 धम्मसण्णसम्मत्तपरिभट्टा उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता सोलसवीसइवास-
 परमाउसो बहुपुत्तणत्तुपरियाल पणयवहुला गंगासिंधूओ महाणईओ वेयडुं
 च पव्वयं नीसाए बावत्तरिं णिगोअवीअं बीअमेत्ता विलवासिणो मणुआ
 भविस्संति, ते णं मंते! मणुआ किमाहारिस्संति?गोयमा! ते णं कालेणं तेणं
 समएणं गंगासिंधूओ महाणइओ रहपहमित्तवित्थराओ अक्खसोअप्पमा-
 णमेत्तं जलं वोज्जिहिति सेवि अ णं जले बहुमच्छकच्छभाईण्णे णो चेवणं
 आउबहुले भविस्सइ। तएणं ते मणुया सूरुग्गमणमुहुत्तंसि अ सूरत्थमणमुहु-
 त्तंसि अ बिलेहितो णिद्धाइस्संति बिलेहितो णिद्धाइत्ता मच्छकच्छमे
 थलाइं गाहेहिति मच्छकच्छमे थलाइं गाहेत्ता सीआतवतत्तेहिं मच्छक-
 च्छमेहिं इक्कवीसं वाससहस्साइं वित्ति कप्पेमाणा विहरिस्संति। ते णं
 मंते ! मणुआ णिस्सीला णिव्वया णिग्गुणा णिम्मेरा णिप्पच्चक्खाणपो-
 सहौववासा ओसण्णं मंसाहारा मच्छाहारा खुट्टाहारा कुणिमाहारा काल-
 मासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिति कहिं उव्वज्जिहिति, गोयमा !ओ

सण्णं णरगतिस्त्रिखजोणिएसु उववज्जिहिंति । तीसे णं भंते समाए सीहा
वग्घो बिगा दीविआ अच्छा तरस्सा परस्सरा सरभसियाल त्रिराडसुणगा
कोलसुणगा ससगा चित्तगा तिल्ललगा ओसण्णं पंसाहारा सच्छाहारा
खोहाहारा कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहि गच्छिहिंति कहिं
उववज्जिहिंति ? गोयमा ! ओसण्णं णरग-तिस्त्रिखजोणिएसु उववज्जि-
हिंति, तेणं भंते । ढंका कंका पीलगा मग्गुगा सिही ओसण्णं पंसाहारा
जाव कहिं उववज्जिहिंति ? गोयमा ! ओसण्णं णरगतिस्त्रिखजोणिएसु
जाव उववज्जिहिंति ॥सू० ५४॥

छाया-तस्यां खलु समायामेकविंशत्या वर्षसहस्रै (प्रमिते) काले व्यतिक्रान्ते अन-
न्तैर्वर्णपर्यवैर्गन्धपर्यवै रसपर्यवैः स्पर्शपर्यवैः यावत् परिहीयमानः २ अत्र खलु दुष्पमदु-
ष्यमा नाम समा कालः प्रतिपत्स्यते श्रमणाऽऽयुष्मन् । तस्या खलु भदन्त ! समायामुत्त-
मकाष्ठाप्रासायां भरतस्य वर्षस्य कीदृशकः आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति, गौतम !
कालो भविष्यति द्वाहाभूतो भम्माभूतः कोलाहलभूतः समानुभावेन च खरपरुषधूलिम-
लिना दुर्विषहा व्याकुला भयङ्कराश्च वाताः संवर्तकाश्च वान्ति, इह अभीक्ष्णं २ धूमायि-
ष्यन्ते दिशः समन्तात् रजस्वला रेणुकलुषतमःपटलनिरालोकाः समयरुक्षतया खलु
अधिकं चन्द्राः शीतं मोक्ष्यन्ति अधिकं सूर्यास्तप्यन्ति, अथोत्तरं च खलु गौतम ! अभी-
क्ष्णमरसमेघा विरसमेघाः क्षारमेघा शूत्रमेघा अग्निमेघा त्र्यद्युन्मेघा विषमेघा अयापनीयो-
दकाः व्याधिरागवेदनोदीरणा परिणामसलिला अमनोक्षपानीयकाः चण्डानिलप्रहततीक्ष्णघा-
रानिपातप्रचुरं वर्षं वर्षिष्यन्ति, येन भरतवर्षे प्रामाकरनगरखेटकर्वटमडम्बद्रोणमुखपत्त-
नश्रमगतं जनपदं चतुष्पद्मगवेलकान् खचरान् पक्षिसंघान् प्रामारण्यप्रचारनिरतान् प्रसांश्च
प्राणान् बहुप्रकारान् वृक्षगुच्छगुल्मलतावल्लीप्रवालाङ्कुरादिकान् दृग्वनस्पतिकायिकान् ओष-
धींश्च विश्वसयिष्यन्ति, पर्वतगिरिदुङ्गरोत्स्थलभ्राष्ट्रादिकान् च वैताल्यगिरिवर्जान् विला-
पयिष्यन्ति, सलिलविलविषमगर्तनिम्नोन्नतानि च गङ्गासिन्धुवज्जानि समीकरिष्यन्ति,
तस्यां खलु भदन्त ! समायां भरतस्य वर्षस्य भूमेः कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारः प्रहसः?,
गौतम ! भूमिर्भविष्यति अकारभूता मुर्मुर्भूता क्षारिकभूता तप्तकवैल्लुकभूता तप्त समज्यो-
तिभूता धूलिबहुला रेणुबहुला पङ्कबहुला प्रणयबहुला चलनि बहुला बहूनां धरणि गोचाराणां
सत्त्वानां दुर्निष्कमा चापि भविष्यति, तस्या खलु भदन्त ! समायां भरते वर्षे मनुजानां कीद-
ृशक आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति ? गौतम ! मनुजा भविष्यन्ति दूरूरा दुर्वर्णा दुर्गन्धा
दूरसा दुःस्पर्शा अनिष्टा अकान्ता अप्रिया अशुभा अमनोक्षा अमनोऽमा हीनस्वरा दीनस्वरा
अनिष्टस्वरा अकान्तस्वरा अप्रियस्वरा अमनोऽमस्वरा अमनोऽक्षस्वरा अनादेयवचनप्रत्याजाता
निलज्जा कूटकपटकलह्वन्धवैरनिरता मर्यादातिक्रमप्रधाना अकार्यनित्योद्यता गुरुनियोगविनय-

हिताश्च विकलरूपाः परूढनखकेशश्मश्रुरोमाणः कालाः सरपरुपश्यामवणाः भ्रष्टशिरस कपिल-
 पलितकेशा बहुस्नायुनि संपिनद्धदुर्देशनीयरूपाः सङ्कुटि(चि)त वलीतरङ्गपरिवेष्टिनाङ्गाङ्गा
 जरापरिगता इव स्थविरकनरा प्रविरलपरिपण्णदन्तश्रेणयः उद्गटघटामुखा विपमनयनव-
 क्रनासा वक्रवलयः विकृतभीषणमुखा दद्रुविकिटिभसिधमस्फुटितपरुच्छवय चित्रलाङ्गाङ्गाः
 कच्छकसरा (कण्डुविशेषा) भिभूता खरतीक्ष्णनखरुण्डूयितविकृतनतनवः टोलाकृति विपम
 सन्धिबन्धना. उत्कट्टुकास्थिऋविभक्तदुर्वलकुसहननकुप्रमाणकुसंस्थिता कुरूपा कुस्थाना-
 ऽऽसनकुशय्यकुभोजिन. अशुचय अनेऋव्याधिपोडिताङ्गाङ्गास्खर्लाद्वहलगतय निरुत्साहाः
 खस्वपरिवर्जिता विगतचेष्टाः नष्टतेजस. अभीक्ष्ण शीतोष्णखरपरुपत्रातमिश्रित मलिनर्पासुर-
 जोगुण्डिताङ्गाङ्गाः बहुकाघमानमायालोभाः बहुमोहाः भृशुभदु खभागिनः अवसन्नं धर्मसङ्घा
 सम्यक्त्वपरिभ्रष्टा उत्कपेण रतिन प्रमाणमात्राः पोडशचि शतिवर्षपरमायुषः बहुपुत्रनत्पृ-
 परिवारप्रणयबहुलाः गङ्गासिन्धूमहानद्यो वैताड्य च पर्वत निश्रया टाससातेःनिगोदा वीजं
 वीजमात्राः विलवासिनो मनुजा भविष्यन्ति, ते खलु भदन्त मनुजा किमाहरिष्यन्ति ?,
 गौतम ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये गङ्गासिन्धूमहानद्यौ रथपथमात्रविस्तारे अक्षस्रोत
 प्रमाणमात्रं जलं वक्ष्यत तदपि च जल बहुमत्स्यकच्छपाकीर्णम् नैव खल्वप्य बहुलं भविष्यति
 ततः खलु ते मनुजा सुरास्तमनमुहूर्ते च विलेभ्यो निर्धाघिष्यन्ति विलेभ्यो निर्धाव्य मत्स्य-
 कच्छपान् स्थलानि ग्रहिष्यन्ति मत्स्यकच्छपान् स्थलानि ग्राहयित्वा शीतातपतप्तैः मत्स्य-
 कच्छपैरेकविंशति वर्षसहस्राणि वृत्त कल्पयन्तो विहरिष्यन्ति । ते खलु भदन्त ! मनुजाः
 निः शीलाः निर्घृताः निर्गुणाः निर्मर्यादाः निष्प्रत्यास्थानपोषघोपवासाः अवसन्नं मासाहारा.
 मत्स्याहाराः क्षौद्राहाराः कुणपाहाराः कालमासे कालं कृत्वा क्व गमिष्यन्ति क्व उपपत्स्यन्ते?,
 गौतम ! अवसन्नं नरकतिर्यग्योन्योरुपपत्स्यन्ते । तस्या खलु भदन्त ! समाया सिंहा. व्याघ्राः
 वृकाः द्वीपिका ऋक्षाः तरक्षाः पराशराः (खड्गिनः) शरमशृगालविडालश्वान (शुनका)
 कोल शुनकशशका चित्रका चिदलका (ध्वापदाः) अवसन्नं मासाहाराः मत्स्याहारा क्षौद्रा-
 हारा कुणिपाहाराः कालमासे कालं कृत्वा क्व गमिष्यन्ति क्व उपपत्स्यन्ते ?, गौतम !
 अवसन्नं नरकतिर्यग्योन्योरुपपत्स्यन्ते !, ते खलु भदन्त ! डङ्का कङ्का पिलका मद्गुका
 शिखिनः अवसन्नं मांसाहारा यावत् क्व गमिष्यन्ति क्व उपपत्स्यन्ते ?, गौतम ! अव-
 सन्नं नरकतिर्यग्योन्यो यावत् उपपत्स्यन्ते ॥ सू० १४ ॥

टीका—“तीसे ण समाए” इत्यादि—तस्यां दुष्पमायां खलु समायां ‘काले

अब छोटा आरक का प्रारम्भ करते हैं—

‘तीसेणं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं’ इत्यादि सूत्र—५४—

• टीकार्थ—अवसर्पिणी का दुष्पमा नामका पाँचवां आरक जो कि २३ हजार वर्षका कहा

हुवे छोटा आरक। प्रारंभ करोगे छोटे।

‘तीसेणं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं’ इत्यादि सूत्र—५४

टीकार्थ—अवसर्पिणीने दुष्पमानामके पाचव्यां आरके के जे २३ हजार वर्ष के टैवै।

एकवीसाए, एकविंशत्या एकविंशतिसंख्यकै (वाससहस्सेहि) वर्षसहस्रैः प्रमिते (काले) काले समये (विङ्कते) व्यक्तिक्रान्ते व्यतीते (अणतेहि) अनन्तैः निरवधिकैः (वण्णपज्जवेहि) वर्णपर्यवैः वर्णपर्यायै (गन्धपज्जवेहि) गन्धपर्यवैः गन्धपर्यायैः (रसपज्जवेहि) रसपर्यवैः रसपर्यायैः (फासपज्जवेहि) स्पर्शपर्यवैः स्पर्शपर्यायैः (जाव) यावत् अत्र यावत्पटेन (अणतेहि) सघयणपज्जवेहि अणतेहि संटाणपज्जवेहि अणतेहि उच्चत्तपज्जवेहि अणतेहि अगुरुलहुपज्जवेहि अणतेहि उट्टाणकम्मबलवारिअपुरिसक्कारपरक्कमपज्जवेहि अणतगुणपरिहाणीए) एषां पदानां सग्रहो बोध्यः एतच्छाया—अनन्तैः संहननपर्यवैः अनन्तैः संस्थानपर्यवैः अनन्तैरुच्चत्वपर्यवैः अनन्तैरायुपर्यवैः अनन्तैर्गुरुलघुपर्यवैः अनन्तैरुत्थानकर्मबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमपर्यवैः अनन्तगुणपरिहान्या इति एतदीयोऽर्थः द्वितीयारके सुषमाकालवर्णनप्रसङ्गे उक्त इति ततो ग्राह्यः (परिहायमाणे २) परिहीयमानः २ हानिं गच्छन् २ काल उपस्थितो भवति, (एत्थ) अत्र अत्रान्तरे (णं) खल्ल (दूसमदूसमा) दुष्पमदुष्पमा एतन्नाम्नी (णाम) नाम प्रसिद्धा (समा) समो काल अमुमेवार्थं स्पष्टीकर्त्तुमाह (काले) कालः समयः (पाड्विज्जिस्सइ) प्रतिपत्स्यते उपस्थास्यति (समणाउसो) श्रमणाऽऽयुष्मन् ! हे श्रमण हे आयुष्मन् ! (तीसे) तस्यां दुष्पमदुष्पमायां (णं) खल्ल (भंते) भदन्त हे महाज्जुभाव (समाए) समायां कालापरपर्यायाम् यद्वा । (उत्तमकट्टपत्ताए) इत्यस्य उत्तमकट्टप्राप्तायाम् इतिच्छाया तत्पक्षे परमकट्टप्राप्तायाम् इत्यर्थः (भरहस्स) भरतस्य भरत-

हे जब व्यतीत हो जावेगा और कालक्रम से (अणतेहि वण्णपज्जवेहि गन्धपज्जवेहि रसपज्जवेहि फासपज्जवेहि जाव परिहायमाणे २ एत्थणं दूसमदूपमागामं समा काले पड्विज्जिस्सइ समणाउसो) अनन्तवर्णपर्यायै, अनन्त गन्धपर्यायै, अनन्त रसपर्यायै अनन्तस्पर्श पर्यायै, और यावत्पटग्राह्य (अणतेहि सघयणपज्जवेहि, अणतेहि संटाणपज्जवेहि) अनन्त संहनन पर्यायै, अनन्त संस्थानपर्यायै, (अणतेहि अगुरुलहुपज्जवेहि अणतेहि उट्टाणकम्मबलवीर्यपुरिसक्कार परक्कमपज्जवेहि अणतगुणपरिहाणीए) अनन्त अगुरुलघुपर्यायै अनन्तउत्थान कर्म, बल, वीर्य पुरुषकार पराक्रम पर्यायै अनन्तगुणरूप से घटती जावेगी तब हे श्रमण आयुष्मन् ! दुष्पमदुष्पमा नामका छटा आरा प्रारम्भ हो जावेगा (तीसे णं भंते समाए उत्तमकट्टपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभाव-

ठडेवाभा आवेद छे न्यारे व्यतीत थय् नथे अने कालकभथी (अणतेहि वण्णपज्जवेहि गन्धपज्जवेहि रसपज्जवेहि फासपज्जवेहि जाव परिहायमाणे २ एत्थणं दूसमदूसमा णामं समा काले पड्विज्जिस्सइ समणाउसो) न्यारे अनन्तवर्ण पर्यायै, अनन्त गन्धपर्यायै, अनन्त रस पर्यायै, अनन्त स्पर्श पर्यायै, अने यावत्पट ग्राह्य (अणतेहि सघयणपज्जवेहि अणतेहि संटाणपज्जवेहि) अनन्त संहनन पर्यायै, अनन्त संस्थान पर्यायै, (अणतेहि अगुरुलहुपज्जवेहि अणतेहि उट्टाणकम्मबलवीर्यपुरिसक्कारपरक्कमपज्जवेहि अणत गुणपरिहाणीए) अनन्त अगुरुलघु पर्यायै, अनन्त उत्थानकर्म, बलवीर्य, पुरुषकार पराक्रम पर्यायै, अनन्त दुष्पमा घटित थता नथे न्यारे हे श्रमण आयुष्मान् ! दुष्पम दुष्पमानाभक छट्टो आरे आरंभ थथे. "तीसेणं भंते ! समाए उत्तम कट्टपत्ताए भरहस्स वासस्स केरि-

नाम्नः (वासस्स) वर्षस्य (केरिसए) कीदृशकः कीदृश (आयारभावपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारः प्रागुक्तार्थकमिदम् (भविस्सइ) भविष्यति अस्य प्रश्नस्योत्तरं भगवानाह— (गोयमा) गौतम (काळे) कालः (भविस्सइ) भविष्यति स कीदृशः? इत्याह (हाहाभूए) हाहाभूतः हाहेत्याकारक दुःखार्त्तलोकैः क्रियमाणं शब्दं भूतः प्राप्तः भू प्राप्तावात्मनेपदीतिभूषातोः क्त प्रत्ययान्तोऽयम्, स पुनः (भंभाभूए) भम्भाभूतः भम्भा-भेरी सेव भूतः जातः जनक्षयहेतुकशून्यत्वात् भेरीसदृशान्तःशून्यः स पुनः (कोलाहलभूए) कोलाहलभूतः कोलाहलम् आर्त्तपक्षिरुतं भूतः प्राप्तस्तथा (समाणुभावेण) समानुभावेन समा-कालविशेषः तस्यानुभावः सामर्थ्यम् समानुभावस्तेन तथा कालविशेषप्रभावेन (अ) च चशब्दोऽत्र वाच्यान्तरसूचनार्थः (खरफरुसधूलिमइला) खरपरुधूलिमलिनाः खरेषु कठोरेषु परुषाः कठोरा खरपरुषा परमकठोरा ते चतेधूलिमलिनाः धूलिभिः रजोभिः मलिनाः मलाकुलाः वाताः इत्यग्रेतनेनान्वयः ते कीदृशाः? इत्याह (दुव्विसहा) दुर्विषहा अतिदुः सहाः तथा (वाउला) व्याकुलाः व्याकुलयन्तीति व्याकुलाः व्याकुलोकारकाः अतएव (भयकरा) भयङ्कराः भयोत्पादकाः य च (वाया) वाताः वायव (सवट्टगा) संवर्तकाः तृणकाष्ठादीनामेकदेशादेशान्तरे स्थापकाः (य) च वाता इति पूर्वेण सम्बन्धः (वाइंति) वान्ति गच्छन्ति इह (इह) आस्यां

यडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त इस अवसर्पिणीकाल के इस दुष्पम दुष्पमानामके कालके समय में जब कि यह अपनी उत्कृष्टस्थिति भी आ जावेगा भरत क्षेत्र का आकार भाव प्रत्यवतार—स्वरूप कैसा होगा? इस प्रश्न के उत्तर में प्रभु श्री कहते हैं—(गोयमा! काळे भविस्सइ हाहाभूए भंभाभूए, कोलाहलभूए, समानुभावेण य खरफरुसधूलिमइला दुव्विसहा वाउला भयकरा य वाया सवट्टगाय वाइंति) हे गौतम! यह काल ऐसा होगा कि इसमें दुःख से त्रस्त हुए लोक हाहाकार करेंगे मेरी की तरह यह काल जनक्षय की हेतु मृत होने के कारण भीतर में शून्य रहेगा यह कोलाहलभूत होगा ऐसा ही इसकाल का प्रभाव कहा गया है इस में जो वायु वहेगा वह कठोर से कठोर होगा घुलि से मलिन होगा, दुर्विषह—दुःख से सहन करने योग्य—होगा, व्याकुलता का उत्पादक होगा भयप्रद होगा इस वायु का नाम संवर्तक वायु होगा—क्योंकि यह तृणकाष्ठादिको एक देश से देशान्तर में पहुंचाने वाला होगा (इह अभिक्खणं घुमाहित्तिअदिसा समता रउस्सला

सप आयारभावपडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त! आ अवसर्पिणी कालना आ दुष्पम दुष्पमा नामना कालना समयमा न्यारे आ पौतानी उत्कृष्टस्थिति सुधी पडोयणी नथे त्थार भरतक्षेत्रने आकार भाव प्रत्यवतार-स्वरूप केवा इथे? आ प्रश्नना न्वाणमां प्रभु कडे थे—(गोयमा! काळे भविस्सइ हा हा भूए भंभाभूए कोलाहलभूए, समानुभावेण य खर फरुस धूलिमइला दुव्विसहा वाउला भयकरा य वाया संवट्टगा य वाइंति) हे गौतम ओ काल केवा थथे के केमां दुःखथी स त्रस्त थथेवा लोके हाहाकार करे लोकीनी नेम ओ काल जनक्षयने हेतुभूत होवाभइल भीतरमा शून्य रहेथे ओ हाहाहलभूत थथे केवा न आ कालने प्रभाव कडेवामा आवेद थे केमां ने वायु पडेथे ते कठोरमां कठोर इथे, धूलिथी मलिन इथे दुर्विषह-दुःखथी सह्य इथे व्याकुलता उत्पन्न करे तेवा इथे, भयप्रद इथे, आ वायुयुं नाम संवर्तक वायु इथे, केभडे ओ तृण-काष्ठादिकोने केके देशमाथी

दुष्पमदुष्पमायां समायाम् (अभिवृत्तं) अभीक्षणमभीक्षणम् चारंवारम् (धूमार्हिति) धूमयि-
 ष्यन्ते धूममुद्गिरिष्यन्ति (अ) च (दिशा) दिशाः कीदृशो दिशः ? (समंता रउस्सला) सम-
 न्ताद् रजस्वला सर्वतो रजोयुक्ताः तथा (रेणुकलुसतमपडलणिरालोआ) रेणुकलुपतमपडल-
 निरालोकाः रेणुभिः रजोभिः कलुपाः म्लानाः अतएव तमःपडलनिरालोकाः तमःपडलेन
 अन्धकारसमूहेन निरालोकाः=प्रकाशवर्जिताः । तथा अस्यां दुष्पमदुष्पमायां समायाम्
 (समयलुक्खयाएणं) समय रुक्षतया समयस्य=कालस्य रुक्षतया खलु=निश्चयेन(अहियं)
 अधिकं प्रचुरम्=अपथ्यं वा (सीयं)शीत=हिमं(चदा) चन्द्राः (मोच्छिहिति) मोक्ष्यन्ति-
 पातयिष्यन्ति वर्षयिष्यन्ति तथा (अहियं) अधिकम् अहितवा यथा स्यात्तथा (सूरिया) सूर्याः
 (तविस्सति) तप्स्यन्ति ताप मोक्ष्यन्ति । अयं भावः-कालरौक्ष्येण जीवानां शरीराणि
 रुक्षाणि भविष्यन्ति, ततश्च तेषां जीवानां शीतोष्णजनितोऽधिकः पराभवो भविष्यतीति ।
 अथ पुनर्यद् दुष्पमदुष्पमायां समायाम् भविष्यति तदाह-(अदुत्तरं) इत्यादि। (अदुत्तरं च णं)
 अथोत्तरम् एतदनन्तरम् अग्रेच खलु (गोयमा) हे गौतम । (अभिवृत्तं) अभीक्षणं=पुनः
 पुनः (अरसमेहा) अरसमेघाः-अरसाः-रसरहिताश्च ते मेघाश्चेति, स्वादुरसवर्जितजलवर्षिमेघा

रेणुकलुसतमपडलणिरालोआ समयलुक्खयाएणं अहियं चन्दा सीअ मोच्छिहिति, अहियं सूरिआ
 तविस्सति) इस दुष्पमदुष्पमा काल में दिशाएँ निरन्तर घूमके जैसीप्रतीत होगी अर्थात् दिशाएँ
 घूमका वमन करनेवाली होगी चारों ओर से इनमें घुलि घुलि ही छाई रहेगी इस कारण वे
 अन्धकार से युक्त होने के कारण प्रकाश से रहित बन जायेगी तथा इस दुष्पम दुष्पमाकाल में
 काल के अनुसार रुखापन होने के कारण (अहियं सीअ चन्दा.) अधिक मात्रा में या अपथ्यरूप
 में अर्थात् सहन न की जासके इस रूप में हिम की वर्षा चन्द्र करेगे सूर्य इतनी अधिक उष्णता
 की वर्षा करेंगे कि जिसे सहन करना बड़ा भारी कठिन हो जायगा तात्पर्य यह है काल की
 रुक्षता के निमित्त से जीवों के शरीर रुक्ष होंगे, अतः शीत और उष्ण की अधिकता से जीवों
 को महान् कष्ट का सामना करना होगा. (अदुत्तरं) इसके बाद (गोयमा !) हे गौतम (अभिवृत्तं)

देशान्तरमा पडोआडनार डेशे (इह अभिवृत्तं धूमार्हितिअदिशा समंता रउस्सला रेणुकलु
 सतमपडलणिरालोआ समयलुक्खयाएणं अहियं चन्दा सीअं मोच्छिहिति अहियं सूरिआ
 तविस्सति) ये दुष्पम दुष्पमाकाणमां दिशाओ सनत धूम-ओवी प्रतीत थशे ओटवे के दिशाओ
 धूमनु वमन करनारी थशे ओमेर ओमां धूण न् उवाध रहेशे. ओथो ते अंधकारावृत्त थवाथी
 प्रकाश रहित थर्ध न् थशे तथा ओ दुष्पम दुष्पमाकाणमा काण सुन्य रक्षता डोवा गडव
 (अहियसीयं चन्दा.) अधिकमात्रामां अथवा अपथ्यरूपमा ओटवे के सहन न थर्ध थके ओ
 रूपमा अ-द्र हिम-वर्षा करशे सूर्य ओटवी थधी मात्रामा उष्णतानी वर्षा करशे के ते असह्य
 थर्ध पडशे तात्पर्य आ प्रभाषे छे के कालनी रक्षताने दीधि ओवोना शरीरेशे रक्ष थशे ओथी
 शीत अने उष्ण अन्ने अधिक डोवाथी ओवोने महान् कष्ट थशे (अदुत्तरं) त्यार आड(गोयमा

इत्यर्थः, (विरसमेहा) विरसमेघाः—जलीयरसविरुद्धरसयुक्तजलवर्षिमेघाः, अमुमेवार्थं स्पष्ट-
प्रतिपत्तये प्राह—(खारमेहा) क्षारमेघाः सर्जादिक्षारसदृशरसयुक्तजलवर्षिमेघाः(खत्तमेहा)
खात्रमेघाः—कारीपरसमयजलवर्षिमेघाः(अग्निमेहा) अग्निमेघाः—अग्निवहाहकारिजलवर्षि-
मेघाः (विज्जुमेहा) विद्युन्मेघाः—विद्युत्पातकारिणो मेघाः (विसमेहा) विषमेघा—विषवत्प्रा-
णघातकजलवर्षिमेघाः (अजवणिज्जोदगा) अयापनीयोदकाः अयापनीय—निर्वाहायोग्यम्
उदकं—जलं येषां ते तथा निर्वाहायोग्यजलवर्षिणो मेघाः, (वाहिरोगवेदणोदीरणपरिणामस-
लिला) व्याधिरोगवेदनोदीरणपरिणामसलिलाः—व्याधयः चिरकालघातिनः कुष्ठादयः रोगाः
—सद्योघातिनः शूलादयः' तज्जनिता या वेदना—व्यथा, तस्या उदीरणम्—अप्राप्तेऽपिसमये
उदयावलिकायां प्रवेशनं तदेव परिणामः—परिपाको यस्य तादृशं सलिलं जलं येषां तथा
व्याध्यादिकारि जलवर्षका मेघाः, अतएव (अमणुण्णपाणिअगा) अमनोज्ञपानीयकाः—अम-
नोज्ञम्=अरुचि र पानीयक=जलं येषां ते—अरुचिजलवर्षिणो मेघाः, एवविधाः सर्वे मेघाः
(चंडानिलपहततिक्खधारा—णिवायपाउरं) चण्डानिलप्रहततीक्ष्णधारा—निपात—प्रचुरम्—
चण्डानिलेन=प्रचण्डवायुना प्रहतानां=प्रकीर्णानां विक्षिप्तानां तीक्ष्णधाराणां—बलवद्धारणां
यो निपातः=निपतनं, स प्रचुरो=बहुलो यस्मिन् स तथा तम्(वासं)वर्ष=वृष्टिं(वासिर्हिति)
वर्षिष्यन्ति । अनेन वर्षणेन यद् भविष्यति तदाह 'जे णं भरहे' इत्यादि । (जे णं)येन वर्ष-

वार वार (अरसमेहा विरसमेहा खारमेहा खत्तमेहा अग्निमेहा विज्जुमेहा विसमेहा अजवणि-
ज्जोदगा) स्वादुरसवर्जित जलवर्षिमेघ—जलीय रस से विरुद्ध रसयुक्त जलवर्षी मेघ, खारमेघ—सर्जा-
दिसार सदृश रसयुक्त जलवर्षीमेघ खारमेघ कारीपरस सदृश जलवर्षी मेघ अग्निमेघ—अग्नि तुल्य
दाहकारी जलवर्षी मेघ, विद्युत्मेघ—विद्युत्पात कारी मेघ, विषमेघ विषके जैसे प्राणघातक जल वर-
सानेवाले मेघ, निर्वाह के अयोग्य जल को वरसानेवाले अयापनीयोदक मेघ, (वाहिरोगवेद-
णोदीरणपरिणामसलिला) असमय में चिर कालघाती कुष्ठादिक रोग रूप परिणामोत्पादक
जल वाले मेघ, सद्योघाती शूलादि वेदनाकारक जलवाले मेघ कि जिनका (अमणुण्णपाणि
अगा) पानी अरुचि कारक होगा—ऐसे अरुचिकारक जल को वरसाने वाले मेघ, ऐसी वर्षा करेगे

हे गौतम ! (अभिवृत्तं) वार वार (अरसमेहा विरसमेहा खारमेहा खत्तमेहा अग्निमेहा
विज्जुमेहा विसमेहा अजवणिज्जोदगा) स्वादुरस वर्जित जलवर्षी मेघो—जलीय रसशी विरुद्ध
रसयुक्त जलमेघो, खारमेघो—सर्जादि सारसदृश रसयुक्त जलवर्षी मेघो, खारमेघो—कारी
रससदृश जलवर्षी मेघो, अग्नि मेघो—अग्नि तुल्य दाहकारी जलवर्षी मेघो, विद्युत्मेघो—विद्यु-
त्पात कारी मेघो, विषमेघो—विष जेवी प्राणु घातक जलवृष्टि करनारा मेघो निर्वाह—अयोग्य
जलवृष्टि करनारा अयापनीयोदक मेघो(वाहिरोगवेदणोदीरणपरिणामसलिला)असमयमा चिर-
कालघाती कुष्ठादिक रोगरूप परिणामोत्पादकजलयुक्त मेघो, सद्योघाती शूलादि वेदना कारक
जलयुक्त मेघो, अनेन (अमणुण्णपाणि अगा) प्राणु अरुचिकारक थरो, जेवी अरुचिकारक
जलवृष्टि करनारा मेघो, जेवी वर्षा करथे हे जेभां वृष्टिधारा प्रथं उ पवनना आघातोथी

जेन पूर्वोक्ता मेघा(भरहे वासे)भारते वषे (गामागर-णगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-सम-गयं)ग्रामाकरनगर-खेट-कर्वट-मडम्ब द्रोणमुख-पट्टना-श्रम-गतं, तत्र -ग्रामो-वृत्तिवेष्टितः आकरः-सुवर्णारत्नाद्युत्पत्तिस्थानम्, नगरम्-अष्टादशकरवर्जितम् खेटं-धूलि-प्राकारपरि-क्षिप्तम् कर्वटम्-कुत्सितनगरं, मडम्बं-सार्धक्रीशडयान्तर्ग्रामान्तररहितम्, द्रोणमुखं जलस्थ-लपथोपेतो जननिवासः पत्तनं समस्तवस्तुप्राप्तिस्थानम्, तद् द्विविधं जलपत्तनं स्थलपत्तनं चेत्ति, निगमः=प्रभूततरवणिग्जननिवासः आश्रमः=यः पूर्वं तापसैरावासितः पश्चादपरो-ऽपि जनो यत्रागत्य वसति सः, एतेषां द्रव्यः, तत्रगतं=स्थितं (जणवयं) जनव्रजं=जनसमूहं विध्वंसयिष्यन्तीत्यग्रेण सम्बन्धः । तथा-ग्रामादिगतान् (चउप्पय-गवेलए)चतुप्पदगवेल-कान् चतुप्पदाः=महिष्यादयः गावः=गोजातीयाः पशवः, एलकाः=मेपास्तान् तथा(खहयरे) खेचरान् वैताल्यवासिनो विद्याधरान् पुनः(पक्खिसंघे) पक्षिसंघान् पक्षिसमूहान् अथवा(खह यरे पक्खिसंघे)खेचरान् पक्षिसंघान्-आकाशचारिणः पक्षिसमूहान् तथा(गामारणपयारणि-

कि जिस में जल की धारा प्रचण्ड पवन की चपेटों से इधर उधर विसर जावेगी और जनो की ऊपर तीक्ष्ण विशिष्ट आघातों को वह करानेवाली होगी (जे णं भरहे वासे, गामागरणगरखेडक-व्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमगयं जणवयचउप्पयगवेलए खहयरे पक्खिसंघे) इस वृष्टि से भरत क्षेत्र में स्थित वृत्तिवेष्टित ग्रामों में, आकर-सुवर्णादिकी खानों में अष्टादश करवर्जित नगरो मे, धूलि प्राकार परिक्षिप्त खेटों ग्रामों में, कुत्सितनगर रूप कर्वटों में अट्टाह कोश के भीतर २ ग्रामान्तर रहित मडम्बों मे, जलीय मार्ग से युक्त जननिवासरूप द्रोणमुखों में समस्त वस्तुओं की प्राप्ति के स्थान भूत पत्तनों में-जलपत्तनों में एवं स्थलपत्तनों में दोनो प्रकार के पत्तनों में, प्रभूततर वणि-ग्जनों के निवासभूत निगमों में पूर्व मे तापसजनों द्वारा आवासित पश्चात् और दूसरे जन जहां आकर रहने लग गये हैं, ऐसे स्थानरूप आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों का वे मेघ विनाश करेंगे । तथा उन ग्रामादिकों मे रहे हुए चतुप्पदों का महिषी आदिकों का गोजातीय पशुओंका एलकों-मेघो का खेचरो-वैताल्यगिरिवासी विद्याधरों का (पक्खिसंघे) पक्षिसमूहो का अथवा

आम तेभ वेराळं जशे अने ते दौके उपर ते तीक्ष्ण विशिष्ट आघातो करनारी थशे. (जे णं भरहे वासे, गामागरणगरखेडकव्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमगयं जणवयचउप्पयगवेलए खहयरे पक्खिसंघे) आ वृष्टिथी भरतक्षेत्रमां स्थित वृत्ति वेष्टित आभोमा, आकर सुवर्ण-दिनी आभोमा, अष्टादश करवर्जित नगरोमां, धूलि प्राकार परिक्षिप्त भेट आभोमा, कुत्सित नगर इप कर्वटोमा, अदी गाँनि अ हर आभान्तर रहित मडम्बोमां, जलीय मार्गथी युक्त जननिवास इप द्रोणमुषोमा, समस्तवस्तुओनी प्राप्तिना स्थान भूत पत्तनोमा, जलपत्तनो-मा अने स्थल पत्तनोमां-अने प्रकारना पत्तनोमा, प्रभूततर वणिग्जनोना निवासभूत निग-मोमां, पडेवां तापसजनों द्वारा आवासित अने तत्पश्चात् भील दौके जथा आवीने रहेवा लाग्था होय जेवा स्थान इप आश्रमोमां रहेनारा भाषुसोना ते मेघो विनाश करशे तेभज ते आमा दिकोमा रहेनारा चतुप्पदोना माहिषी वगेरेना, गोजातीय पशुओना, एलको-मेघोना-पेशरो-वैताल्यगिरि निवासी विद्याधरोना (पक्खिसंघे) पक्षी-समूहोना अथवा आकाश-

रण तसे अ पाणे बहुप्पयारे) ग्रमारण्यप्रचारनिरतान् त्रसांश्च प्राणान् बहुप्रकारान् ग्रामेषु
 अरण्येषु च यः प्रचारः—संचारस्तत्र निरतान्=तत्परान् बहुप्रकारान्=अनेकविधान् त्रसान्
 प्राणान् द्वीन्द्रियादीन् प्राणिनश्च तथा(रुक्ख-गुच्छ-गुम्म लय-वल्ली पवालं-कुरमादीए)वृक्षः-
 गुच्छ गुल्म-लय वल्लिप्रवालाङ्कुरादिकान्, तत्र वृक्षाः-आम्नादयः गुन्नाः वृन्ताकीप्रभृतयः
 गुल्मा =नवमालिकादयः, लताः=अशोकलतादयः, वल्लयः वालुङ्कादयः प्रवालाः प्रवालाः
 पल्लवाःअङ्कुराः शाल्यादीनाम् अभिनवोद्भेदाः एते आदौ येषां ते तथा तान् वृक्षाद्यङ्कुरान्त
 प्रभृतान्(तणवणस्मडकाइए) तृणवनस्पतिकायिकान् तृणवद् वनस्पतय तृणवनस्पतयः, त
 एव कायाः=शरीराणि ते विद्यन्ते येषां ते तथा तान् बादरवनस्पतिकायिकान् तृणसाधर्म्यं
 चात्र बादरत्वेन, सूक्ष्माणां तेषां तैरुपधातासंभवादिति, तथा (ओसहीओ य) ओषधीः
 शाल्यादिरूपाश्च (विद्धं सेहिति) विध्वंसयिष्यन्ति-नाशयिष्यन्ति । तथा-ते मेघाः(वेयड्ढगि-
 रिवज्जे) पर्वतगिरिडुङ्गरोत्स्थलभ्राष्टादिकान्—तत्र पर्वतनतात्-उत्सवविस्तारणात् पर्वताः
 क्रीडापर्वताः गृणन्ति-शब्दायन्ते जन निवासभूतत्वेनेति गिरयः डुङ्गानि धूल्युच्छ्रयरूपाणि
 भ्राष्ट्राः पांस्वादिवर्जितभूमयः तत एतेषां द्वन्द्वे ते अदिर्येषान्ते तथा तान् आदि शब्दात्
 प्रासादशिखरादि परिग्रहः वैतड्यगिरिवर्जान् शाश्वतान् वैताड्यान् वर्जयित्वा(पव्वय-गिरि-
 ङोंगरुत्थल भट्टिमादीए) पर्वतगिरि डुङ्गरोत्स्थलभ्राष्ट्रादीन् तत्र-पर्वताः पर्वणां तननाद्=

आकाशचारो पक्षियों की (गामारण्यपरारणिरए तसे अ पाणे बहुप्पयारे) ग्राम एवं नंगल में
 चलने फिरने वाले अनेक प्रकार के त्रसजोवो का—द्वीन्द्रियादिक प्राणियों का (रुक्खगुच्छ गुम्म-
 लतावल्ली पवालकुरमादीए) आम्नादिक वृक्षों का, वृन्ताकी आदि गुच्छो का नवमल्लिका आदि
 गुल्मो का अशोकलता आदि लताओ का वालुङ्गी आदि वल्लियो का फलस्वरूप प्रवालों का
 और शालि आदिकों के नवीन उद्भेदरूप अङ्कुरों का इत्यादि तृणवनस्पति कायिकरूप बादर
 वनस्पतिकायिकों का (सूक्ष्मवनस्पतिकायिको नहीं क्योंकि इनके द्वारा इनका विनाश नहीं हो
 सकता है) तथा (ओसहीओय) शाल्यादिरूप औषधियों का वे मेघ (विद्धंसेहिति) विनाश करेगें
 तथा वे मेघ (वेयड्ढगिरिवज्जे पव्वय गिरिङोंगरुत्थल भट्टिमादीए अविरावेहिति) शाश्वत पर्वत वैताड्य-
 गिरि को छोड़कर ऊर्जयन्त वैमार आदि क्रीडा पर्वतों को गोपालगिरि चित्रकूट आदि पर्वतों को

आरी पक्षीओने। (गामारण्यपरारणिरए तसे अ पाणे बहुप्पयारे) ग्राम अने नंगलोमां
 विथरनारा अनेक प्रकारना त्रसजोवोना—द्वीन्द्रियादिक प्राणीओने। (रुक्खगुच्छगुम्मलतावल्ली
 पवालंकुरमादीए) आम्नादिक वृक्षोने, वृन्ताकी वगेरे गुच्छोने। नवमल्लिका वगेरे गुल्मोने।
 अशोकलता आदि लताओने। वालुङ्गी वगेरे वल्लीओने। पल्लवइय प्रवालोने अने शालि
 वगेरेना नवीन उद्भेद इय अङ्कुरोने—तृणवनस्पति कायिक इयमादर वनस्पति कायिकोने।
 (सूक्ष्मवनस्पति कायिकोने नडि केभके तेमना वडे ओमने। विनाश थड शके तेम नथी) तेमअ
 (ओसहीओय) शाल्यादिइय औषधियोने। ते मेघा 'विद्धसेहितो' विनाश करथे तेमअ ते
 मेघा। (वेयड्ढगिरिवज्जे पव्वयगिरिङोंगरुत्थलभट्टिमादीए अविरावेहिति) शाश्वत पर्वत
 वैताड्य गिरिने आड करीने उर्जयन्त वैमार वगेरे क्रीडा पर्वतने। गोपालगिरि चित्रकूट

विस्तारणात् पर्वताः=क्रीडापर्वता उज्जयन्तवैभागदयः, गिरयः गृणन्ति शब्दायन्ते जनं
निवासभूतत्वेनेति गिरयः गोपालगिरि चित्रकूटप्रभृतयः इद्गानि शिलासमूहाः चोसमूहा
वा सन्त्येष्विति इद्गाराः शिलोन्चय मात्ररूपाः उत्स्थलानि=उन्नतानि स्थलानि घृन्सिम्भू
हरूपाणि, भ्राष्ट्राः=पांस्यादिवर्जिता भूमयः, तत्र एपां द्वन्द्वः ते आदौ येषां ते तथा तान्
प्रासादशिखरादीनां संग्रहः, एतान् सर्वान् । (विरावेद्विति) विद्रावयिष्यन्ति-नागयिष्यन्ति ।
तथा ते मेधाः(गंगासिंधुवज्जाइ)गङ्गासिन्धुवर्जानि-शाश्वत नदीं गङ्गां सिन्धुं च वर्जयित्वा
(सलिलविलविसमगत्तणिष्णुण्णयाइ) सलिलविलविषमगर्त्तः निम्नोन्नतानि सलिलविलानि
भूनिर्क्षराः, विषमगर्त्ताः दुष्पूरश्चभ्राणि, तथा निम्नोन्नतानि निम्नानि च तानि उन्नतानि
चेति तथा तानि उच्चावचानीत्यर्थः, एपां द्वन्द्वस्तानि सलिलविलप्रभृतीनि सर्वाणि जल-
स्थानानि(समीकरेद्विति) समीकरिष्यन्ति समानानि करिष्यन्तीति । अथ गौतमस्वामी पुनः
पृच्छति (तीसेणं भंते) इत्यादि । (तीसे णं भंते ! समाए) तस्यां खलु भदन्त ! समायां
हे भदन्त ! तस्यां खलु दुष्पमदुष्पमायां समायां(भरहस्स वासस्स)भारतस्य वर्षस्य (भूमिए)
भूमेः (केरिसए)कीदृशकः(आगारभावपडोयारे)आकारभावप्रत्यवतारः आकाराः आकृतयः,
मावाः पर्याया. तेषां प्रत्यवतारः आविर्भावो(भविस्सइ)भविष्यति ? । भगवानाह—
(गोयमा !)हे गौतम ! तस्यां दुष्पमदुष्पमायां समायां(भूमी)भूमिः(भविस्सइ)भविष्यति,

शिला समूह जहां होते है या चोर समूह जिन में निवास करते हैं ऐसे झगरी को-वड़ी २
शिलाओं वाली उन्नतटेकरियो को, धूलि समूहरूप उन्नत स्थलो को, और पांसु आदि से रहित
वडे पठारो को इत्यादि समस्त स्थानों को नष्ट कर देगे (सलिलविलविसमगत्तणिष्णुण्णयाणि
अ गगा सिंधु वज्जाइ समीकरेति) शाश्वत नदी गगा और सिन्धु को छोड़कर जमीन के ऊपर
के झरनो को, विषम गड्डो को,—नीचे २ पसरे हुए पात्रों के द्रह को, तथा नीचे ऊचे जल स्थानो
को पन सब को बराबर बना देगे—समान—एकसा—कर देगे (तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स
वासस्स भूमिए केरिसए आगारभावपडोयारे भविस्सइ) अब गौतम प्रभु से ऐसा पृच्छते है—हे
भदन्त ! उस दुष्पम दुष्पमा नाम के आरे में भरत क्षेत्र का आकार भाव प्रत्यवतार-स्वरूप
कैसा होगा ? इसके उत्तर में प्रभु कहते है—(गोयमा ! भूमी भविस्सइ इंगालमूवा, मुम्मुर भुवा

वगेरे पर्वतानो, शिलासमूह न्या डोय छे अथवा चोर समूहो जेमा निवास करे छे जेवा
पर्वतानो, भोटी-भोटी शिलाओ वाणा उन्नत टेकरीओनो, धूलिसमूह रूप उन्नत स्थलानो
अने पांसु आदिसे रहित विशाल पठारानो तेभअ समस्त स्थानानो नाश करेथे (सलिल
विलविसमगत्तणिष्णुण्णयाणिअ गंगासिन्धुवज्जाइ समीकरेति) शाश्वत नदी गंगा अने
सिन्धुने जाह करेने पृथ्वी उपरना ओतोने, विषम आडाओ ने, नीचे प्रसरेला पाषुनीना
द्रहोने, तेभअ नीचे ओ छे अलस्थानोने ते सरपा करी नाअथे समान करी नाअथे (तीसेणं
भंते ! समाए भरहस्स वासस्स भूमिए केरिसए आगारभावपडोयारे भविस्सइ हे गौतम
प्रभुने आ प्रभाओ पृछे छे— हे भदन्त ! ते दुष्पमानामना आरामां भरतक्षेत्रना आकार-
भाव प्रत्यवतार-स्वरूप केवुं छेथे ? जेना अवाणमा प्रभु कडे छे—(गोयमा ! भूमिभवि-

कीदृशी भूमिर्भविष्यति? इत्याह (इंगालभूया) अद्गारभूता अद्गारः ज्वालारहिताग्निपिण्डस्तद्वद्
 भूता- तत्सदृशी, (मुम्भुरभूया) मुम्भुरभूता तुपाग्निरूपा (छारियभूया) क्षारिकभूता भस्मस-
 दृशी (तत्तकवेल्लुअभूया) तप्तकटाहसदृशी 'कवेल्लुअ' इति कटाहार्थे देशी शब्दः (तत्तसमजो-
 इभूया) तप्तसमज्योतिर्भूता-तप्तेन तापेन समो यो ज्योतिः=अग्निः स तप्तसमज्योतिः=
 सर्वदेशावच्छेदेन समानज्वालवान् अग्निः तद्भूताः=तत्सदृशी (धूलिवहुला) धूलिवहुला-
 धूलिः=पांशुः, सा बहुला=प्रचुरा यस्यां सा धूलिभूयिष्ठा (रेणुवहुला) रेणुवहुला-रेणुः=
 वालुका, सा बहुला=प्रचुरा यस्यां सा-वालुकाभूयिष्ठा (पंकवहुला) पङ्कवहुला पङ्कः=कर्दमो
 बहुलो यस्यां सा प्रचुरकर्दमयुक्ता (पणयवहुला) पनकवहुला-पनकः=प्रतलकर्दमो बहुलो
 यस्यां सा प्रचूरप्रतलकर्दमयुक्ता, (चलणिवहुला) चलनीवहुला-चलनी-चग्नप्रमाणः कर्दमः
 सा बहुला यस्यां सा तथा-चरणप्रमाणकर्दमेन प्रचुरतया युक्ता, अतएव (बहुणं) बहुनां (धर-
 णिगोचराणं) धरणिगोचराणं पृथ्वीस्थितानां (सत्ताणं) सत्त्वानां प्राणिनां (दुग्निक्कमायावि)
 दुग्निक्कमा दुःखेन निष्क्रमो=निष्क्रमणं यस्याः सा दुरतिक्रमणीया चापि (भविस्सइ)
 भविष्यति । गौतमस्वामी पुनः पृच्छति (तीसेण भंते ! समाए) तस्यां खलु भदन्त !

छारिअभूआ तत्तकवेल्लुअभूआ तत्तसमजोइ भूआ धूलिवहुला रेणुवहुला, पणयवहुला, चलणि-
 बहुला, बहुणं धरणिगोचराणं सत्ताण दुग्णिक्कमायावि भविस्सइ हे गौतम ! उस दुष्पम
 दुष्पमा काल में यह भूमि अद्गार भूत ज्वालारहित अग्निपिण्ड जैसी, मुम्भुररूप तुपाग्नि जैसी
 क्षारिकभूत-गर्म र भस्म जैसी, तप्त कटाह जैसी 'कवेल्लुअ' यह देशी शब्द है और कटाह
 अर्थका वाचक है तप्तसमज्योति जैसी-सम्पूर्ण देश में समान ज्वालावाली अग्नि जैसी होगी
 एवं प्रचुर पांशुवाली होगी, प्रचुररेणु वाली होगी प्रचुर पङ्कवाली होगी प्रचुर पनक-पतले क्रीचड
 वाली होगी, पैर जिसमें समस्त डूब नावे ऐसी प्रचुर कर्दम वाली होगी. अतएव चलने वाले
 मनुष्यों को इसके उपर चलने फिरने में बड़ा भारी कष्ट होगा-वे बड़ी मुश्किल से इस के ऊपर
 चलफिर सकेंगे (तीसेणं भन्ते ! समाए भरहे वासे मणुयाण केसरिए आचारभावपडोयारे

इंगालभूआ, मुम्भुरभूआ छारिअभूआ तत्तकवेल्लुअभूआ तत्तसमजोइभूआ धूलिवहुला
 रेणुवहुला, पंकवहुला, पङ्कवहुला, चलणि बहुला धरणि गोचराणं सत्ताण दुग्णिक्कमायावि
 भविस्सइ हे गौतम ! ते दुष्पम दुष्पमा कालमा आ भूमि अंगारभूत ज्वालारहित अग्नि
 पिण्ड जैसी मुम्भुर रूप तुपाग्नि जैसी क्षारिकभूत गर्म भस्म जैसी, तप्तकटाह जैसी 'कवेल्लुअ'
 आ देशी शब्द छे अने कटाह अर्थवाचक छे-तप्तसमज्योति जैसी स पूरु देशमा समान
 ज्वालावाणी अग्नि जैसी थये अने प्रचुर पांशुवाणी थये प्रचुररेणुवाणी थये, प्रचुरपंक-
 वाणी थये. प्रचुर पनक-पातणा कडववाणी थये, पण जेमा स पूरु देशमा ऐसी नय जेवा
 प्रचुर कडववाणी थये. जेथी आदनारा भाषुसेने जेनी उपर अवर-अवर करवाभां बारे कष्ट
 थये तेजो मुश्किलीथी जेनी उपर अवर-अवर कर। शक्ये (तीसेण भंते ! समाए भरहे वासे
 मणुयाण केरिसए आचारभावपडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त ! ते कालमा भरत क्षेत्रमा भाषः

समायां हे भदन्त! तस्यां खलु दुष्पमदुष्पमायां समायां (भरहे वासे) भारते वर्षे (मणुयाणं) मनुजानां (केरिसए) कीदृशः (आयारभात्रपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारो (भविस्सइ) भविष्यति ? । भगवानाह - (गोयमा !) हे गौतम ! तस्या दुष्पमदुष्पमायां समाया (मणुआ) मनुजाः (भविस्संति) भविष्यन्ति, कीदृशास्ते मनुजा भविष्यन्ति ? इत्याह—(दुरूवा) दुरूपाः दुष्टम्=अशोभनं रूपम् आकारो तेषां ते तथा अशोभनाकृतिकाः (दुवणगा) दुर्वर्णाः दुष्टो वर्णो तेषां ते तथा दुष्टवर्णयुक्ताः (दुगंधा) दुर्गन्धाः=दुर्गन्धयुक्तशरीराः (दुरसा) दूरमाः=दुष्टरसयुक्ताः (दुफासा) दुस्पर्शाः=कठोरादिदुष्टस्पर्शयुक्ताः अतएव (अणिट्ठा) अनिष्टाः=अनभिलषणीयाः अनिष्टमपि किञ्चित् कमनीय भवतीत्यत आह - (अकंता) अकान्ताः=अकमनीयाः अकमनीयमपि किञ्चित्कारणवशात् प्रीतये भवतीत्यत आह—(अप्पिया) अप्रियाः=अप्रीतिस्थानभूताः, अप्रियत्वं च तेषां कस्मात् ? इत्याह—(असुभा) अशुभा=शुभभावरहिता अशुभा अपि केचिन् आन्तरिकसंवेदनेन शुभरूपेण ज्ञायन्ते इत्यतस्तन्निपेधाय प्राह—अमनोज्ञाः मनोज्ञाः=शुभत्वेन मनोविषयोभूताः, न मनोज्ञाः—अमनोज्ञाः—मनसाऽपि शुभतयाऽप्रतीयमानाः, अमनोज्ञा

भविस्सइ) हे भदन्त ! उस काल में भारत क्षेत्रमे मनुष्यो का स्वरूप कैसा होगा ? उत्तर में प्रमु कहते है—(गोयमा! मणुआ भविस्संति) दुरूवा, दुवणगा, दुगंधा, दुरसा, दुफासा, अणिट्ठा, अकंता, अप्पिया, असुभा, अमणुण्णा, अमणामा, हीणस्सरा, दीणस्सरा, अणिट्ठस्सरा, अकंतस्सरा, अपियस्सरा, अमणामस्सरा, अमणुण्णस्सरा अणादेज्जवयणपच्चायाया णिलज्जा, कूडकवडकलहवंधवेरनिरया मज्जायातिकमप्पहागा अकज्जणिच्चुज्जुया गुरुणिओगविणयरहियाय) हे गौतम ! उस दुष्पम दुष्पमा कालके मनुष्य अशोभन रूपवाले अशोभन आकृति वाले, दुष्ट वर्णवाले, दुष्टगन्ध वाले—दुर्गन्धयुक्त शरीरवाले दुष्टरस युक्त शरीरवाले एवं दुष्टस्पर्शयुक्त शरीरवाले होंगे अत एव वे अनिष्ट अनभिलषणीय-होंगे अनिष्ट होने से वे अकान्त अकमनीय होंगे अकमनीय होने से वे अप्रीति के स्थानभूत होंगे, क्योंकि ये शुभभावों से रहित होंगे अमनोज्ञ होंगे—ये शुभ हैं—इस रूप से ये मन के विषयभूत नहीं होंगे अर्थात् इन्हें देखकर मन यह कभी नहींविचारेगा किये शुभ है! तथा स्मरण

हे भगवन् ते कालमां भारत क्षेत्रमा भाष्यसेतु स्वरूपं केवुं इति ? अथाभमा प्रमु कहे छे—(गोयमा ! मणुआ भविस्संति) दुरूवा, दुवणगा, दुगंधा, दुरसा, दुफासा, अणिट्ठा, अकंता, अप्पिया, असुभा, अमणुण्णा अमणामा, हीणस्सरा, दीणस्सरा, अणिट्ठस्सरा, अकंतस्सरा, अपियस्सरा, अमणामस्सरा, अमणुण्णस्सरा, अणादेज्जवयणपच्चायाया णिलज्जा, कूडकवडकलहवंधवेरनिरया मज्जायातिकमप्पहाणा अकज्जणिच्चुज्जुया गुरुणिओगविणयरहियाय) हे गौतम ! ते दुष्पमाकालमा मनुष्यो अशोभन रूपवाणा, अशोभन आकृति वाणा, दुष्टवर्णवाणा, दुष्टगन्धवाणा—दुर्गन्धयुक्त शरीरवाणा, दुष्टरसयुक्तशरीरवाणा अने दुष्ट स्पर्शयुक्त शरीरवाणा थरी. अथी तेओ अनिष्ट-अनभिलषणीय-थरी. अनिष्ट होवाथी तेओ अकान्त-अकमनीय थरी अकमनीय होवाथी तेओ अप्रीतिना स्थान भूत थरी. केभके ओओ अशुभभावनाओथी रहित थरी अमनोज्ञ थरी-ओओ शुभ छे—आ इपमां

अपि पदार्थाः कदाचित् स्मरणावस्थायां मनोज्ञा इवाभान्ति अतएवाह—(अमणामा)
 अमनोऽमाः—मनसा अम्यन्ते=गम्यन्ते स्मरणावस्थायां ये ते मनोऽमाः, न मनोऽमा
 इत्यमनोऽमा स्मरणावस्थायांमपि मनसः प्रतिकूला इत्यर्थः, अथवा—एकार्थका एते
 शब्दा अतिशयानिष्टतासूचनाय । तथा—(हीणस्सरा) हीनस्वराः—हीनः स्वरो येषां ते
 तथा—रुग्णस्वरसदृशस्वरयुक्ताः (दीणस्सरा) दीनस्वराः दीनः स्वरो येषां ते तथा—दीन
 जनस्वरसदृशस्वरयुक्ताः (अणिट्टस्सरा) अनिष्टस्वराः—अनिष्टः श्रवणारमणीयः स्वरो येषां
 ते तथा कर्णकटुस्वरयुक्ताः अतएव (अप्पियस्सरा) अप्रियस्वराः—अप्रियः स्वरो येषां ते तथा
 कर्णप्रियस्वरयुक्ताः अतएव (अमणुण्णस्सरा) अमनोज्ञस्वराः=अशोभनस्वरयुक्ताः, तथा
 (अमणामस्सरा) अमनोऽमस्वराः=सर्वथा मनः प्रतिकूलस्वरयुक्ताः, तथा—(अणादेज्जवयणप-
 च्चायाया) अनादेयवचनप्रत्यायाताः—अनादेयम्=अशोभनत्वाद्स्पृहणीयं वचन प्रत्यायातं=
 जन्म च येषां ते तथा—अस्पृहणीयवचना अस्पृहणीयजन्मानश्चेत्यर्थः, तथा (णिल्लज्जा)
 निर्लज्जाः=लज्जारहिताः (कूडकवडकलहवध्वंधवरनिरया) कूट कपट कलहवध्वन्धवैरनि-
 रताः—कूट=कूटद्रव्यं भ्रान्तिजनकद्रव्यं, कपटः=परप्रतारणाय वेपान्तरकरणं, कलहः युद्धं,

अवस्थामें भी ये मनके प्रतिकूल ही प्रतिभासित होंगे अथवा ये सब शब्द अतिशयरूप से अनि-
 ष्टता को ही सूचना करने के लिये पर्यायवाचीरूप से प्रयुक्त हुए हैं । तथा इनका जो स्वर होगा
 वह रुग्ण व्यक्ति के स्वर के जैसा होगा, दीनजनों का जैसा स्वर होता है वैसा इनका स्वर
 होगा, सुनने में कानो को इन का स्वर अरमणीय होगा इसलिए ये अनिष्ट स्वर वाले होंगे
 कर्णकटुस्वर से ये युक्तहोंगे अत एव ये अप्रिय स्वरवाले होंगे. इनका स्वर मन को बिलकूल नहीं
 रुचेगा इसलिये ये अमनोज्ञ स्वरवाले होंगे इनके स्वर की याद आनेपर भी मगलानि से भर
 जावेगा इसलिये ये अमनोऽमस्वर वाले होंगे इनके वचन सुनने तककी भी इच्छा कोई नहीं करेगा.
 और न कोई इनके जन्मपाने की सराहना ही करेगा, ये सब लज्जाहीन होंगे कूटमें-भ्रान्ति जनक
 द्रव्य में, कपट में—पर को प्रतारण करने के लिये वेपान्तर कर ने में—कलह—झगडा लड़ाई कर

ओओ मनना विषयभूत थशे नहि अर्थात् ओमने जेधने कोरि पणु इवसे आ नतने
 विचार नही थशे के ओओ शुभ छे तेमज्जर स्मरण्य अवस्थाभां पणु ओओ मनभाटे प्रति-
 कूलज्ज प्रतिभासित थशे. अथवा ओ अधा शब्दो अतिशय रूपमां अनिष्टताने ज्ज सूचित
 करवा भाटे अत्रे पर्यायवाचीना रूपमा प्रयुक्त थयेदा छे. तेमज्ज ओमने जे स्वर थशे
 ते दुग्ण्य व्यक्तिना स्वर जेने थशे हीनजनाने जेवोस्वर डोय छे, तेवो ओमने स्वर
 थशे माने भाटे ओमने स्वर अरमणीय थशे ओटले के कर्ण कटु शब्द तेओ उच्चारथे
 ओथी ओओ अनिष्ट स्वरवाणा थशे. कर्ण कटु स्वरथी ओ युक्त थशे, ओथी ओओ अप्रिय-
 स्वरवाणा थशे. ओमने स्वर मनने णिल्लकुल गमथे नहि तेथी ओओ अमनोज्ञ स्वरवाणा
 थशे ओमना स्वरनी स्मृति थती ज्ज मन गलानि युक्त थथि ज्जथे ओथी ओओ अमनोऽम
 स्वरवाणा थशे ओमना वचनने सांभणवानी पणु कोरि धृच्छा करथे नहि, अने ओमना
 जन्म ने लधने पणु कोरि सराहना करथे नहि ओओ सर्वे निर्लज्ज थशे कूटमा-भ्रान्ति

वधः चपेटादिभिस्ताडनं, वन्धः=रञ्जुभिर्नियमनम्, वैरः=शत्रुता, एषां द्वन्द्वः, तत्र निरता-
 =संलग्नाः, तथा (मज्जायातिक्कमप्पहाणा) मर्यादाऽतिक्रमप्रधानाः-मर्यादा-व्यवस्था,
 तस्या अतिक्रमे-उल्लङ्घने प्रयानाः-प्रमुखाः (अरुञ्जणिच्चुञ्जुया) अकार्यनित्योद्युक्ता-
 अकार्ये-अरुर्त्तव्ये कर्मणि नित्य सर्वदा उद्युक्ताः-सलग्नाः, तथा (गुरुणिओगविणयरहिया)
 गुरुनियोगविनयरहिताः गुरुणां-मातापित्रादिकाना यो नियोगः-नियोजनं सयोजन, तत्र
 यो विनयः विनीततातन्नियोगरवीकाररूपा तेन रहिताः-मातापित्रादि गुरुजनाङ्गोऽल्लङ्घका
 इत्यर्थः (य) च-पुनः (विकलरूवा) विकलरूपाः-विकलम्-असपूर्णं रूपम्-आकारो येषां
 ते तथा नेत्राद्यङ्गवैकल्येन असम्पूर्णाङ्गोपाङ्गाः, तथा (परुढणहकेसमसुरोमा) परुढनखकेश-
 श्मश्रुरोमाणः-परुढानि संस्काराभावात् प्रकृष्टतया वृद्धि गतानि नखकेशश्मश्रुरोमाणि येषां
 ते तथा (काला) कालाः कृष्णवर्णाः कृतान्तवत् क्रूरा वा (खरफरुससामवण्णा) खरपरुप-
 श्यामवर्णाः-खरपरुषाः-प्रकृष्टकठोरम्पर्शाश्च ते श्यामवर्णा-श्यामवर्णवन्तश्च ये ते तथा-
 स्पर्शतः सातिशयकठोरा वर्णतश्च नीलीभाण्डे निक्षिप्तोत्क्षिप्तवस्त्रवत् नीला इत्यर्थः. तथा

ने में, वध चपेटा आदि द्वारा ताडना-करनेमें वन्ध में-रञ्जु आदि द्वारा दूसरों को बाधने में,
 वैर में शत्रुता करने में, ये सलग्न रहेंगे-ऐसे कार्यों में ये विशेषरूप से रत रहा करेंगे। मर्यादा-
 व्यवस्था-के अतिक्रमण करने में ये कटिबद्ध रहेंगे। एव माता पिता आदिरूप गुरुजनो की विन
 यादि क्रिया करना उनको आज्ञा मानना आदि बातों को ये परवाह तक भी नहीं करेंगे। (विक-
 लरूवा) इनके अङ्गोपाङ्ग पूर्ण नहीं होंगे किसीन किसी अङ्ग उपाङ्ग से ये हीन रहेंगे तथा
 (परुढणहकेसमसुरोमा) इनके नख वड़े रहेंगे, इनके मस्तक के बाल सस्कार रहित होने से
 बड़े रहेंगे। दाढ़ी के बाल और मूँछों के बाल भी आवश्यकता से अधिक वृद्धिगत होंगे (काला
 खरफरुससामवण्णा, फुड्डिसिरा, कपिलपलियकेसा, बहुण्हारुणि सपिणद्ध दुद सणिञ्जरूवा सकुडि-
 अबलितरंगपरिवेदिअंगमंगा जरा परिणयन्व थेरगणरा पविरलपविसइ अ दंतसेढी, उन्मडघडमुहा)
 वर्णमें बिलकुल काले होंगे, अथवा कृतान्त की तरह क्रूर होंगे इनके शरीर का स्पर्श बहुत अधिक

जनक द्वयमां, कपटमा-परने प्रताशु कर्वाभाटे वेषा-तर कर्वाभा, कलह-कलह-कंकास कर,
 वामां, वध चपेटा आदि द्वारा ताडना कर्वाभा अथमां रञ्जु आदि द्वारा भील्लोने भाध
 वामां, वैरमां शत्रुता कर्वाभां ओओ। सलग्न रहेशे ओवा कार्यो भा तेओ। विशेष रूपथी
 रत रहेशे. मर्यादा-व्यवस्था-के अतिक्रमण कर्वाभा ओओ। कटिबद्ध रहेशे तेमन् माता-
 पिता वगेरे गुरुजनोनी विनयादि क्रिया कर्वाभा, तेमनी आज्ञा मानथी वगेरे वातोनी
 ओओ। परवा हरेशे नडी (विकलरूवा) ओमना अगोपागे। पृथु थेशे नडि कर्षने कौध
 अंग उपागथी ओओ। हीन रहेशे तेमन् (परुढणहकेसमसुरोमा) ओमना माथाना वाण
 सस्कार रहित होवाथी मोटा रहेशे दाढी अने मूँछोना वाण पथु आवश्यकता कर्ता वधा रे
 मोटा रहेशे (काला खरफरुससामवण्णा, फुड्डिसिरा, कपिलपलियकेसा बहुण्हारुणि सपि
 णद्धदुदसणिञ्जरूवा संकुडिअबलितरंगपरिवेदिअंगमंगा जरापरिणयन्वथेरगणरा पविरल-
 पविसइ अ दंतसेढी, उन्मडघडमुहा) ओओ। पृथुभा साव काणा थेशे, अथवा कृतान्तनी

(फुट्टिसिरा) स्फुटितशिरसः स्फुटितानि—रेखावच्चात् स्फुटितानीच शिरांमि-मस्तकानि-येपां ते तथा—रेखायुक्त शिरस इत्यर्थः, तथा (कविलपल्लिकेशा) कपिलपलितकेशाः कपिलाः-कपिलवर्णाः धूम्रवर्णाः पलिताः—श्वेतवर्णाश्च केशा येपा ते तथा धूम्रवर्णश्चैतवर्णकेशधारिणः (बहुणहारुणिसंपणद्ध दुद्मणिज्जलूवा) बहु स्नायु-निसंपिनद्ध दुर्दर्शनीयरूपा बहुभिः—बहुसख्यकाभि स्नायुभिः-अङ्गप्रत्यङ्गन्धवन्धनरूपाभिः वस्नगाभिः निसंपिनद्धाः—अतोव संनिवद्धाः, अतएव दुर्दर्शनीयरूपाः दुर्दर्शनीय रूप येपा ते तथा—अगोम-नाकृत्तिकाः, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः. तथा (संकुडिअवलीतरंगपरिवेद्वियंगमगा) संकुटितवलीतरङ्गपरिवेष्टिताद्गाद्गाः—वलय रेखात्मकास्त्वग्निकारास्ताहां ये तरङ्गा=परम्पराः तैः परिवेष्टितानि—व्याप्तानि अङ्गानि—अत्रयवा यस्मिस्तद् वलीतरङ्गपरिवेष्टिताद्गम्, संकुटितं—संकोचमुपगत तथाविधमद्ग येपा ते तथा रेखायुक्तसंकुचितगरीरा इत्यर्थः, अतएव (जरापरिणयञ्च येरगगरा) जरापरिणता इव स्थविरकनरा—वार्धक्यमुपगता वृद्धनरा इव प्रतीयमानाः वृद्धमादृश्यमेव प्रकटयति (पविग्लपरिसडियदस-सेढी) प्रविरल—परिश्रित दन्तश्रेणयः प्रविरलाः—पृथक् पृथक् स्थिता परिशाटिताः—परिशाटमुपगता दन्तश्रेणिः दन्तपक्ति येपा ते तथा—सान्तरालपरिपतितदन्तश्रेणियुक्ता इत्यर्थः, अतएव (उब्भडघटमुद्गा) उद्भटघटमुखाः—उद्भट—विकट घटमुखमिव मुखं येपां ते तथा अल्पदन्तवच्चेन घटमुखतुल्यमुखयुक्ताः, तथा—(विसमणयणवक्कासा) विपमनय, नवक्रनासाः विपमे—अतुल्ये नयने—नेत्रे वक्का—कुटिला नासा - नासिका च येपा ते तथा

कठोर होगा तथा नीत्रो भाण्ड में वारर डालने से जैसा वस्त्र में नील रंग गहरा जम जाता है वैसा ही गहरा वट श्यामवर्ण-गोत्र रंग-इनकेजरों का होगा इनके मस्तक रेखाओं से युक्त होंगे इनके मस्तक के जो केश होंगे वे कपित वर्णवाले—चूनेके जैसे वर्णवाले और सफेद रंग के होंगे इनको आकृति अनेक स्नायु जाल से घिरी हुई रहने के कारण दुर्दर्शनीय रहेगी इनका अङ्ग-रेखात्मक बलियो को परम्परा से-झुरियों से व्याप्त रहेगा सकोच युक्त होगा अतएव ये ऐसे देखने पर प्रतीत होंगे कि मानो वृद्धावस्था से आलङ्कितवृद्धजन हो है इनको दन्त पङ्क्ति विरल होगी और वह भी सड़ी हुई होगी—या परिपतित होगी. इनका मुख इससे ऐसा लगेगा कि मानो यह घड़े का हिं विकृत मुख है. (विसमणयणवक्कासा) इनके दोनो नेत्र बराबर नहीं होंगे-अतुल्य होंगे और नाक इनको कुटिल होगी(वक्काञ्जी विगयमेपणमुद्गा) वक्का विकार बाग होने से एवं-

जेम-इर थशे जेमना शरीरनेो रुपशं जेकहम वधारे कठोर थशे तेमने नीलीभाडभां वार वार जेपोणवाथी जेम वस्त्रभा नीलरग घेरो जमी जप छे तेवो ज घेरो श्यामवर्णु नील-रंग-जेमना शरीरनेो थशे जेमना मस्तके रेखाओथी युक्त थशे, जेम ॥ मस्तकनी वाण कपिलवर्णुवाणा धुमाडाना जेवावर्णुवाणा अने सईह रगवाणा थशे जेमनी आकृति अनेक स्नायुजाल वेष्टित छे वाधी हुइ शनीयरडेथे. जेमनु अग रेखात्मक करयलीओथी ष्याम रडेथे, स केथ युक्त थशे जेथी जेवामा जेवा लागथे जे के जल्ले वृद्धावस्थाथी आदि गित थशेव वृद्धजन ज छे जेमनी इतपक्ति विरल थशे अने ते पणु सडी गथेनी इशे अथना थदिपतिन थशे जेमनु मुप जेनाथी जेवु लागथे के जल्ले ते घडातु ज विकृत मुप छे. (विसमणयणवक्कासा) जेमना अने नेत्रो बराबर नही इशे अतुल्य इशे अने

विपमनेत्रकुटिलनासिका युक्ता इत्यर्थः, तथा (वक्रवलीविगयभेसणमुहा) वक्रवली विकृत-
 भीषणमुखा-वक्र-कुटिलं वलीविकृतं-वलीविकारधुक्तम् अतएव भीषण भयानकं मुखं येषा
 ते तथा-कुटिलत्वेन रेखा विकारोपगतत्वेन च भयानकमुखयुक्ताः, (ददुकिटिम-सिन्धु
 फुडिअफरुसच्छवी) ददु-किटिम-सिन्धु-स्फुटित-परुप-च्छवयः ददु किटिमिसिन्धुमानि
 कुष्ठभेदाः, तैः स्फुटिता परुपा कठोरा च छविः शरीरचर्म-येषां ते तथा-ददुकिटिमिसि-
 ध्मेति रोगत्रयजनित स्फुटितकठोरशरीरचर्मधारिण इत्यर्थः, अतएव(चित्तलंगमंगा)चित्र-
 लाङ्गाङ्गाः-चित्रलानि कर्षुराणि अङ्गानि भवयवा यस्मिस्तादृशम् अङ्गं शरीरं येषां ते तथा-
 कर्षुरवर्णावयवयुक्तशरीरा इत्यर्थः, तथा (कच्छुखसराभिभूया) कच्छुखसराभिभूताः-कच्छुः
 पामा, खसरः कण्डुरोगविशेषः ताभ्याम् अभिभूता व्याप्ताः, अतएव (खर-तिक्खणक्ख-
 कंङ्कइय विक्रय-तणू)खरतीक्ष्णनखकण्डूयितविकृततनवः-खरा कर्कशाः तीक्ष्णा निदिताः
 ये नखास्तैर्यत् कण्डूयितं कण्डूयन तेन निकृता विकारमुपगता सत्रणा तनु शरीरं येषां त
 तथाभूताः कर्कशनिश्चितनख कण्डूयनजनितत्रणयुक्तगरीरा इत्यर्थः तथा-(टोलगतिविसम-
 सन्धिबंधणा)टोलगतिविपमसन्धिबन्धनाः-टोलाः=जन्तुविशेषाः, देशीयोऽय शब्दः, तेषां
 गतिरिव गतिर्येषां ते तथा उप्रादिजन्तुगतिसदृशगतियुक्ताः, तथा-विपमाणि=त्रैपम्यमुप-
 गतानि असमानि सन्धिबन्धनानि=सन्धिरूपाणि बन्धनानि येषां ते तथा, पदद्वयस्य कर्म-
 धारयः तथा-(उक्कुडुअट्टिअविमत्तदुब्बलकुसंधयणकुप्पमाणकुसठिआ) उक्कुडुकारिथकविम-
 त्तदुर्वलकुसंधननकुप्पमाणकुसस्थिताः-उक्कुडुकानि यथास्थान स्थितिरहितानि यानि अस्थि-

कुटिल होने से इन का मुख देखने में भयङ्कर होगा (ददुकिटिमिसिन्धुफुडिअ परुसच्छवी) इनके
 शरीर का चमड़ा दाद, किटिम-खाल, सिन्धु-सेहूआ इन चर्मविकारो से भरा हुआ होगा अतएव
 वह बहुत ही अधिक कठोर होगा, और इसी कारण उसके शरीर का हरएक अवयव चित्रल-
 वरुण होगा (कच्छु खसराभिभूया)कच्छु पामा और खसर कण्डुरोग से इनका शरीर व्याप्त रहेगा अत
 एव (खर-तिक्खणक्ख-कंङ्कइय-विक्रय-तणू)खर-कर्कश एव तीक्ष्ण नखों द्वारा खुजाया गया उनका
 शरीर विकृत-रता हुआ होगा और जगह २ उभमें घात्र होंगे(टोल गति-विपम सन्धिबन्धणा) इन
 की चाल उप्रादि की चाल जैसी-होगी सन्धिबन्धन इनके विषम होंगे (उक्कुडु अट्टिअविमत्त दुब्बल
 कुसंधयणकुप्पमाण कुसठिआ) इन के शरीर-की अस्थिया उक्कुडु-यथास्थान की स्थिति से

अभेद नाक कुटिल इति (वक्रवलीविगयभेसणमुहा) अभेद मुख करवली अथी (वक्रुत
 तेभश्च कुटिल डोवाथी जेवापा लय कर दागशे (ददुकिटिमिसिन्धुफुडिअपरुसच्छवी)
 अभेदना शरीरनु यामदु, ददु, किटिम-पाण, सिन्धु विगेरे विकारोथी व्याप्त थशे, अथी
 ते धल्लु ७ कठोर इति अने अथी ७ ते शरीरने हरेके हरेके अवयव त्रिपल-कपूर-इति,
 (कच्छुखसराभिभूया) कच्छु पामा अने खसर-कण्डुरोगथी व्याप्त रडेथे अथी (खर-तिक्खण-
 णक्खकंङ्कइय-विक्रय-तणू) खर-कर्कश अने तीक्ष्ण नखो वडे अन्वाणेल्लु अभेद शरीर
 विकृत थर्थ अथेल्लु इति अने ठेक ठेकाएले तेभा धा इति (टोलगतिविसमसन्धिबन्धणा)
 अभेदनी यल उक्कुडुअट्टिअनी अथी थशे अभेदना सन्धिबन्धन विषम इति (उक्कुडु-
 अट्टिअविमत्तदुब्बलकुसंधयणकुप्पमाणकुसठिआ) अभेदना शरीरनी अस्थिअो उक्कुडु-
 यथास्थाननी स्थितिनी रहित इति, अने विभक्तपरस्परभा सन्धिअथी रहित थशे अथी

कानि कीकसानि 'हड्डो' ति प्रसिद्धानि, तानि विभक्तानि परस्परमसङ्क्षेपेण स्थितानि
 येषां ते तथा, पुनः-दुर्बला = बलरहिताः, कुसहननाः = कुत्सितसहननाः सेवार्त्तसहनन-
 युक्ता इत्यर्थः, कुप्रमाणा कुत्सित-हीन प्रमाण येषां ते तथा हीनप्रमाणयुक्ताः कुसं-
 स्थिता कुत्सिताकारयुक्ताः, एषां पदानां कर्म शारय . अतएव (कुरूवा) कुरूवाः कुत्सि-
 तरूपयुक्ताः, तथा-(कुट्टाणागण-कुसेज्जकुमोइणो) कुस्थानासनकुगय्या कुभोजिनः-
 कुस्थाने=कुत्सितस्थाने आसनम्=उपवेशन येषां ते कुस्थानामना, कुत्सिता गय्या
 येषां ते कुशय्याः, कुत्सित भुञ्जते ये ते कुभोजिनः=कृत्स्मितान्नभक्षणशीलाः, एषां,
 पदानां कर्मधारयः, तथा (असुइणो) अभुञ्चय = शुद्धिरहिताः, 'अश्रुतयः' इतिच्छायापक्षे
 शास्त्रज्ञानवर्जिता इत्यर्थः (अणेगवाहिपीलिअंगमगा) अनेह्वयाविपीडिताङ्गाङ्गाः अनेक
 व्याधिभि = बहुविधैरोगैः पीडितानि=व्यथामुपगतानि अङ्गानि=अवयवा यरिमस्तत्तादृश-
 मङ्गं=शरीरं येषां ते तथा-विविधव्याधिपरिपीडितशरीर इत्यर्थः । तथा (खल्लतविम्भ-
 लगई) खल्लद् विह्वलगतयः-खल्लन्ती=सचलन्ती विह्वला=विकलवा अशक्ता च गतिर्येषां
 ते तथा मदोन्मत्तवद् गमनशीला इत्यर्थः, तथा (णिरुच्छाहा) निरुत्साहाः=उत्साहरहिताः
 (सत्तपरिवज्जिया) सत्त्वपरिवर्जिताः=आत्मबलवर्जिताः अतएव (विगयचेट्टा) विगतचेष्टाः
 विगताः चेष्टा येषां ते तथा चेष्टा रहिता इत्यर्थः, तथा-(नट्टतेआ) नट्टतेजसः-नष्टानि

रहित होगी, और विभक्त-परस्पर में सङ्क्षेप से रहित-होगी ये सब के सब दुर्बल बलरहित,
 कुसहनन कुत्सित सहननवाले-सेवार्त्त सहननवाले और कुप्रमाण-हीन प्रमाणवाले होंगे तथा कुस-
 स्थित-कुत्सित आकारवाले होंगे अतएव ये कुरूप-कृत्सितरूप युक्तहोंगे तथा ये(कुट्टाणासन-
 कुसेज्जकुमोइणो) खोटी गन्दी जगह में उठेंगे और बैठेंगे इनका विस्तर-या शय्या कुत्सित होगी
 तथा ये कुत्सित अन्न भोजी होंगे (असुइणो) शुद्धिसे ये रहित होंगे या शास्त्र ज्ञान से ये रहित
 होंगे(अणेगवाहि पीलीअंगमगा) इनके शरीरका प्रत्येक अवयव अनेक व्याधियों रोगों से प्रसित
 होगा (खल्लंत विम्भल गई) मदोन्मत्त पुरुष का गतीकी तरह इनकी गती होगी अर्थात् मदोन्मत्त की
 गति लड़खड़ाती होती है ऐसी ही इनकी गति होगी (णिरुच्छाहा) इनमें किसी भी प्रकार का
 उत्साह नहीं-होगा (सत्तपरिवज्जिया) सत्त्व-आत्मबल से ये रहित होंगे (विगयचेट्टा) चेष्टा इनकी

सर्वे दुर्बलबलरहित, कुसहनन कुत्सित सहननवाला-सेवार्त्त सहननवाला अने कुप्रमाण-
 हीन प्रमाणवाला थरे तथा कुप्रस्थित-कुत्सित आकारवाला थरे ओथी ओओ कुप्र-कुरूपा
 कुत्सितरूपयुक्त थरे तेमअ ओओ (कुट्टाणासनकुसेज्जकुमोइणी) अराअ-गंई अथामा उठै-
 ओसशे ओमनी शय्या कुत्सितरुशे (असुइणो) शुद्धिथी ओओ रहित रुशे अथवा शास्त्र-
 ज्ञानथी ओओ रहित रुशे (अणेगवाहिपीलिअंगमगा) ओमना शरीरने इरैके इरैके अवयव
 अनेकविध व्याधिया-रोगीथी अभिन हुगे. (खल्लंतविम्भलगई) मदोन्मत्त पुरुषनी गतिनी
 ओम ओमनी गति रुशे ओटवे के मदोन्मत्तनी गति वथइती डोय छे ओवी अ ओमनी गति
 रुशे (णिरुच्छाहा) ओमनामां केअ पण्ज नानने उत्साह नरुई रुशे (सत्तपरिवज्जिया) अत्व-
 आत्म अणथी ओओ रहित रुशे (विगयचेट्टा) ओमनी चेष्टा नष्ट थरु अथे अर्थात् ओओ केअ

तेजांसि येषां ते तथा-निष्प्रभा इत्यर्थः, तथा (अभिक्लृणं) अभीक्षणं=सतत (मीउण्ह खर-फरुस-वाय-विज्झडिअ-मल्लिण-पंसुर-ओ-गुंडियंगमंगा) शीतोष्ण खर-परुप-वात-मिश्रित-मल्लिण-पांसुर-जोऽवगुण्ठिताद्वाद्वाः शीताः=शीतस्पर्शाः, उष्णः=उष्णस्पर्शाः, एराः, तीक्ष्णाः, परुषाः,=कठोरा ये वाताः, वायवस्तैः मिश्रितानि=व्याप्तानि, 'विज्झडिय' इति मिश्रितार्थे देशी शब्दः, अतएव मल्लिनानि मालिन्यमुपगतानि, तथा-पांसुरजोऽवगुण्ठितानि पांसवो=धूल्यस्तेषां यानि रजांसि=ब्रह्मरूपाणास्तैरवगुण्ठितानि अद्धानि अवयवा यस्मिंस्तादृशमद्गं शरीरं येषां ते तथा-शीतोष्णखरपरुष्याप्तत्वेन मल्लिना धूलिब्रह्ममांशसंबलिशरीराश्चेत्यर्थः, तथा-बहुकोहमाणमायालोभा) बहुक्रोधमानमायालोभा-बहवः क्रोधमानमायालोभा येषां ते तथा-प्रचुरक्रोधमानमायालोभयुक्ताः(बहुमोहा) बहुमोहाः प्रचुरमोहयुक्ताः, (असुभदुःखभागी) अशुभदुःखभागिनः-नास्ति शुभं शुभकर्म येषां ते अशुभाः शुभकर्मवर्जिताः, अतएव दुःखभागिनः- दुःखभाजः, पदद्वयस्य कर्मधारयः, तथा-(ओसणं) बाहुल्येन (धम्मसण्णसम्मत्तपरिबमद्दा) धर्मसंज्ञासम्यक्त्वपरिभ्रष्टाः धर्मसंज्ञा धर्मश्रद्धा सम्यक्त्वं जिनमताभिरुचिस्ताभ्यां परिभ्रष्टाः च्युताः, बाहुल्यग्रहणेन कदाचिदेते सम्यग्दृष्टयो अपि भवन्तीति सूचितम्, तथा-(उक्कोसेणं) उत्कर्षेण (रयणिप्पमाणमे-

नष्ट हो जावेगी अर्थात् ये किमी भी प्रकार को चेष्टा वाले नहीं होंगे चेष्टा से रहित ही होगा (नट्टु तेव्वा) इनका शरीर फीका कान्ति रहित ही होगा, (अभिक्लृणं सीउण्हखरफरुसवायविज्झडिअ मल्लिणपंसुरओगुंडियंगमंगा) इनका शरीर निरन्तर शीतस्पर्श वाली उष्णस्पर्श वाली, तीक्ष्ण, कठोर, वायु से व्याप्त रहेगा अत एव वह मल्लिनता युक्त होगा और धूलि के छोटे छोटे कणों से वह अवगुण्ठित रहेगा (बहु कोहमाणमायालोभा) इनके क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषाये प्रचुर मात्रामें रहेगें (बहुमोहा) मोह ममता-इनमें बहुत अधिक होगी (असुभदुःखभागी) शुभ कर्मों से ये रहित होंगें इमल्लिये दुःखों के ही ये पात्र होंगें, तथा-(ओसण्ण धम्मसण्ण सम्मत्तपरिबमद्दा) ये प्रायः कर धर्मश्रद्धा और सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होंगे यद्वा जो प्रायः शब्द प्रयुक्त हुआ है उस से यह प्रगट किया गया है कि कदाचित् ये सम्यग्दृष्टि भी होंगे। तथा-(उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता)

पणु नतन्नी येष्टावाणा थशे नही-येष्टारहित थशे (नट्टुतेव्वा) ऐभनु शरीर शीक -
 कांति रहित हेशे (अभिक्लृणं सीउण्हखरफरुसवायविज्झडिअमल्लिणपंसुरओगुंडियंग-
 मंगा) ऐभनु शरीर निरन्तर शीतस्पर्शवाणा, उष्णस्पर्श वाणा, तीक्ष्ण, कठोर वायुथी व्याप्त
 रहेशे, ऐथी ते मल्लिनता युक्त हेशे अने धूलिना नाना-नाना कणो थी ते अवशु कित
 रहेशे (बहु कोहमाणमायालोभा) ऐभने क्रोध, मान, माया अने लोभ ऐ कषाये प्रचुर
 मात्रामां रहेशे. (बहु मोहा) मोह ममता-ऐभनामा पणु ७ पधारै प्रभाषुमा थशे, (असु-
 भदुःखभागी) शुभकर्मैथी ऐथो रहित हेशे ऐथी ऐथो इ भभागी थशे तथा (ओसण्ण-
 धम्मसण्णसम्मत्तपरिबमद्दा) ऐथो प्राय धर्म, श्रद्धा अने सम्यक्त्वथी परिभ्रष्ट हेशे अही
 ऐ प्राय शब्दवाची 'ओसण्ण' शब्द प्रयुक्त थयेत्त छे तेनाथी आ वात प्रकट करवाभा
 आवी छे के कदाचित् ऐथो सम्यग्दृष्टि सम्पन्न पणु थगे तथा (उक्कोसेणं रयणिप्पमाण-

कानि क्रीकसानि 'हड्डो' ति प्रसिद्धानि, तानि विभक्तानि परस्परमसंछेपेण स्थितानि
 येषां ते तथा, पुनः-दुर्वला = बलरहिताः, कुसहननाः = कुत्सितसहननाः सेवार्त्तिसहनन-
 युक्ता इत्यर्थः, कुप्रमाणा कुत्सित-हीन प्रमाण येषां ते तथा हीनप्रमाणयुक्ताः कुसं-
 स्थिता कुत्सिताकारयुक्ताः, एसां पदानां कर्मधारय . अतएव (कुरुवा) कुरुवाः कुत्सि-
 तरूपयुक्ताः, तथा-(कुट्टाणासण-कुसेज्जकुमोइणो) कुस्थानासनकुशय्या कुभोजिनः-
 कुस्थाने = कुत्सितस्थाने आसनम् = उपवेगन येषां ते कुस्थानामना, कुत्सिता शय्या
 येषां ते कुशय्याः, कुत्सित भुञ्जते ये ते कुभोजिनः = कृत्स्नितान्भक्षणशीलाः, एसां,
 पदानां कर्मधारयः, तथा (अमुइणो) अमुच्चय = शुद्धिरहिताः, 'अश्रुतयः' इतिच्छायापक्षे
 शास्त्रज्ञानवर्जिता इत्यर्थः (अणेगवाहिपील्लिअंगमगा) अनेकव्याधिपीडिताङ्गाङ्गाः अनेक
 व्याधिभिः = बहुविधैरोगैः पीडितानि = व्यथामुपगतानि अङ्गानि = अवयवा यस्मिंस्तत्तादृश-
 मङ्गं = शरीरं येषां ते तथा-त्रिविधव्याधिपरिपीडितगरीर इत्यर्थः । तथा (खल्लतविम्भ-
 लगई) खल्लद् विह्वलगतयः-खल्लन्ती = सचलन्ती विह्वला = विचलवा अशक्ता च गतिर्येषां
 ते तथा मदोन्मत्तवद् गमनशीला इत्यर्थः, तथा (णिरुच्छाहा) निरुत्साहाः = उत्साहरहिताः
 (सत्तपरिवज्जिया) सत्त्वपरिवर्जिताः = आत्मबलवर्जिताः अतएव (विगयचेट्टा) विगतचेष्टाः
 विगताः चेष्टा येषां ते तथा चेष्टा रहिता इत्यर्थः, तथा-(नट्टतेआ) नट्टतेजसः-नष्टानि

रहित होंगी, और विभक्त-परस्पर में संछेप से रहित-होगी ये सब के सब दुर्वल बलरहित,
 कुसहनन कुत्सित सहननवाले-सेवार्त्त सहननवाले और कुप्रमाण-हीन प्रमाणवाले होंगे तथा कुस-
 स्थित-कुत्सित आकारवाले होंगे अतएव ये कुन्दप-कुत्सितरूप युक्तहोंगे तथा ये(कुट्टाणासण-
 कुसेज्जकुमोइणो) खोटी गन्दी जगह में उठेंगे और बैठेंगे इनका विस्तर-या शय्या कुत्सित होगी
 तथा ये कुत्सित अन्न भोजी होंगे (अमुइणो) शुद्धिसे ये रहित होंगे या शास्त्र ज्ञान से ये रहित
 होंगे(अणेगवाहि पीलीअंगमगा) इनके शरीरका प्रत्येक अवयव अनेक व्याधियो रोगो से प्रसित
 होगा (खल्लत विम्भल गई) मदोन्मत्त पुरुष का गतीकी तरह इनकी गती होगी अर्थात् मदोन्मत्त की
 गति लड़खड़ाती होती है ऐसी ही इनकी गति होगी (णिरुच्छाहा) इनमें किसी भी प्रकार का
 उत्साह नहीं-होगा (सत्तपरिवज्जिया) सत्त्व-आत्मबल से ये रहित होंगे (विगयचेट्टा) चेष्टा इनकी

सबे दुर्बलबलरहित, कुसहनन कुत्सित सहननवाला-सेवार्त्त सहननवाला अने कुप्रमाण-
 हीन प्रमाणवाला थगे तथा कुप्रस्थित-कुत्सित आकारवाला थगे अथी अथी कुप्र-कट्टपा
 कुत्सितइयुक्ता थगे तेभज्ज अथी (कुट्टाणासणकुसेज्जकुमोइणी) भराभ-गंटी जय्यामा उठेंगे-
 भेससे अथनी शय्या कुत्सितइसे (अमुइणो) शुद्धिथी अथी रहित इसे अथवा शास्त्र-
 ज्ञानथी अथी रहित इसे (अणेगवाहिपील्लिअंगमगा) अथनी शरीरने इरेके इरेक अवयव
 अनेकविध व्याधिअ-रोगीथी अथिन इसे, (खल्लतविम्भलगई) मदोन्मत्त पुरुषनी गतिनी
 जेभ अथनी गति इसे अथी के मदोन्मत्तनी गति लथइती होथ छे अथी ज् अथनी गति
 इसे (णिरुच्छाहा) अथनीमां केथ पथ्ज्ज नतनी उत्साह नइइ इसे (सत्तपरिवज्जिया) सत्त्व-
 आत्म बलथी अथी रहित इसे (विगयचेट्टा) अथनी चेष्टा नष्ट थथ्ज्ज अथी अथी केथ

तेजांसि येषां ते तथा-निष्प्रभा इत्यर्थः, तथा (अभिकल्पणं) अभीक्षणं=सतत (सीउण्ह खर-फरुस-वाय-विज्झद्धिअ-मल्लिण-पंसुर-ओ-गुं-डियंगमंगा) शीतोष्ण खर-परुष-वात-मिश्रित-मल्लिन-पांशुर-जोऽवगुण्ठिताद्वाद्वाः शीताः=शीतस्पर्शाः, उष्णः=उष्णस्पर्शाः, खराः, तीक्ष्णाः, परुषाः,=कठोरा ये वाताः, वायवस्तैः मिश्रितानि=व्याप्तानि, 'विज्झद्धिय' इति मिश्रितार्थे देशी शब्दः, अतएव मल्लिनानि मालिन्यमुपगतानि, तथा-पांसुरजोऽवगुण्ठितानि पांसवो=धूलयस्तेषां यानि रजांसि=सूक्ष्मरूपास्तेरवगुण्ठितानि अन्नानि अवयवा यस्मिंस्तादृशमद्ग शरीरं येषां ते तथा-शीतोष्णखरपरुषव्याप्तत्वेन मल्लिना धूलिसूक्ष्मांशसंबलिशरीराश्चेत्यर्थः, तथा-बहुकोहमाणमायालोभा)बहुक्रोधमानमायालोभा-बहवः क्रोधमानमायालोभा येषां ते तथा-प्रचुरक्रोधमानमायालोभयुक्ताः(बहुमोहा) बहुमोहाः प्रचुरमोहयुक्ताः, (असुभदुःखभागी) अशुभदुःखभागिनः-नास्ति शुभं शुभकर्म येषां ते अशुभाः शुभकर्मवर्जिताः, अतएव दुःखभागिनः- दुःखभाजः, पदद्वयस्य कर्मवारयः, तथा-(ओसण्णं) बाहुल्येन (धम्मसण्णसम्मत्तपरिब्रमट्ठा) धर्मसंज्ञासम्यक्त्वपरिभ्रष्टाः धर्मसंज्ञा धर्मश्रद्धा सम्यक्त्वं जिनमत्ताभिरुचिस्ताभ्यां परिभ्रष्टाः च्युताः, बाहुल्यग्रहणेन कदाचिदेते सम्यग्दृष्टयो अपि भवन्तीति सूचितम्, तथा-(उक्कोसेणं) उत्कर्षेण (रयणिप्पमाणमे-

नष्ट हो जावेगी अर्थात् ये किमी भी प्रकार को चेष्टा वाले नहीं होंगे चेष्टा से रहित ही होगा (नद्वेत्तेआ) इनका शरीर फीका कान्ति रहित ही होगा, (अभिकल्पणं सीउण्हखरफरुसवायविज्झद्धिअ मल्लिणपंसुरओगुं-डियंगमंगा) इनका शरीर निरन्तर शीतस्पर्श वाली उष्णस्पर्श वाली, तीक्ष्ण, कठोर, वायु से व्याप्त रहेगा अत एव वह मल्लिनता युक्त होगा और घूँच के छोटे छोटे कणों से वह अवगुण्ठित रहेगा (बहु कोहमाणमायालोभा) इनके क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषाये प्रचुर मात्रामें रहेगी (बहुमोहा) मोह ममता-इनमें बहुत अधिक होगी (असुभदुःखभागी) शुभ कर्मों से ये रहित होंगे इसलिये दु खों के ही ये पात्र होंगे, तथा-(ओसण्ण धम्मसण्ण सम्मत्तपरिब्रमट्ठा) ये प्राय कर धर्मश्रद्धा और सम्यक्त्व से परिभ्रष्ट होंगे यद्वा जो प्राय शब्द प्रयुक्त हुआ है उस से यह प्रगट किया गया है कि कदाचित् ये सम्यग्दृष्टि भी होंगे। तथा-(उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता)

पद्य न्तनी चेष्टावाणा थरी नही-चेष्टारहित थरी (नद्वेत्तेआ) अभेदु शरीर की कृ-
 षांति रहित हरी (अभिकल्पणं सीउण्हखरफरुसवायविज्झद्धिअमल्लिणपंसुरओगुं-
 डियंगमंगा) अभेदु शरीर निरन्तर शीतस्पर्शवाणा, उष्णस्पर्श वाणा, तीक्ष्ण, कठोर वायुशी व्याप्त
 रहेगी, अथी ते मल्लिनता युक्त हरी अने धूलिना नाना-नाना कणो थी ते अवशुभित
 रहेगी (बहु कोहमाणमायालोभा) अभेने क्रोध, मान, माया अने लोभ अे कषाये प्रचुर
 मात्रामें रहेगी (बहु मोहा) मोह ममता-अभेनामा अहु ७ पधारै प्रभाष्यमा थरी, (असु-
 भदुःखभागी) शुभकर्मोथी अेअो रहित हरी अथी अेअो दु अभागी थरी तथा (ओसण्णं-
 धम्मसण्णसम्मत्तपरिब्रमट्ठा) अेअो प्राय धर्म, श्रद्धा अने सम्यक्त्वथी परिभ्रष्ट हरी अही
 अे प्राय शब्दवाची 'ओसण्ण' शब्द प्रयुक्त थयेव अे. तेनाथी आ वात प्रकट करवाभा
 आपी अे के कदाचित् अेअो सम्यग्दृष्टि सम्पन्न पद्य थरी तथा (उक्कोसेणं रयणिप्पमाण-

त्ता) रत्निप्रमाणमात्राः रत्निः हस्तः-चतुर्निगत्यङ्गुलप्रमाणगतप्रमाणा मात्रा परिमाणं
 येषां ते तथा हस्तप्रमाणगरीरा इत्यर्थः, तथा-(सोलसवीसइवासपरमाउसो) षोडशवि-
 शतिवर्ष परमायुष्मः षोडशभ्यो वर्षेभ्य आरभ्य निरसति वर्षाणि यावत् उत्कृष्टायुष्काः,
 तथा (बहुपुत्तणत्तुपरियाळपणयबहुला) बहुपुत्रनत्तुपरिवारप्रणयबहुलाः बहवः=प्रचुरा ये
 पुत्रा नृपारः-पौत्रा दौहित्राश्च तद्रूपो यः परिवारस्तत्र बहवः=प्रचुरः प्रणयः=स्नेहो येषां
 ते तेषां-पुत्रपौत्रादिरूपपरिवारे प्रचुरप्रीतिमन्त इत्यर्थः, स्तल्पेनैव कालेन यौवनोद-
 यान् अल्पेऽप्यायुषि ते प्रचुरपुत्रपौत्रादिसम्पन्ना भवन्तीति । एवं भूतास्ते मणुजा भवि-
 ष्यन्तीति । ननु तदानीं तेषां गृहाद्यभावेन ते क्व निवसन्तीत्याजङ्गामपनेतुमाह (गंगा
 सिंघुओ महाणईओ वेयड्ड व पव्वयं नोसाए) गङ्गासिन्धु महानद्यौ वैताढचं च पर्वत
 निश्राय-गङ्गासिन्धु महानद्यौ वैताढचं च पर्वत निश्राय गङ्गासिन्धुमहानद्यौ वैताढचस्य
 पर्वतरय च निश्रां कृत्वा 'वावत्तरि णियोगवीयं वीयमेत्ता विलवासिणो मणुजा भवि-
 रसति' द्वासप्ततिर्निगोदवीजं वीजमात्रा विलवासिनो मनुजा भविष्यन्ति द्वासप्ततिसख्यका
 विलवासिनो=विलेपु निरसनशीला मनुजाः=मनुष्या भविष्यन्ति, कीदृशा एते भवि-
 ष्यन्ति ? इत्याह-निगोदवीजं-निगोदानां=भविष्यन्मनुजकुटुम्बानां वीजमिव=कारणमिव,
 भविष्यतां मनुजानां हेतुभूतत्वादेते निगोदवीजमित्युच्यन्ते इतिबोध्यम्, तथा चैते

इनके शरीर का ऊंचाई उत्कृष्ट से ४ अंगुल प्रमाण—एक हाथ की होगी (सोलसवीसइवासपरमाउ
 सो) इनकी उत्कृष्ट आयु १६वर्ष से लेकर २०वर्ष तक होगी (बहुपुत्तणत्तुपरियाळपणयबहुला)
 अनेक पुत्र एवं नातीरूप परिवार में प्रचुर प्रणय-स्नेह-से ये युक्त होंगे क्यों कि थोड़े से ही
 काल में ये यौवनावस्थावाले होजावेगे इस कारण अल्प आयु में भी ये प्रचुर पुत्र पौत्रादिपरि-
 वार वाले होजावेगे यदि यहा पर कोई ऐसी आशंका करे कि उससमय में इनके गृहादि के
 अभाव से इनका निवास कहा पर होगा तो इस शङ्का की निवृत्ति के लिये सूत्रकार कहते हैं
 (गंगासिंघुओ महाणईओ वेयड्ड व पव्वयं नोसाए वावत्तरि णियोगवीयं वीयमेत्ता विलवासिणो
 मणुजा भविस्सति) ये गंगा और सिन्धु जो महानदिया हैं उनके एवं वैताढय पर्वत के सहारे
 पर रहेंगे विलवासी मनुष्य ७२ होंगे इन से फिर भविष्यत् मनुष्यों के कुटुम्बों की सृष्टि होगी

मेत्ता) ओमना शरीरनी उचाई उत्कृष्टथी २४ अंगुल प्रमाण्य ओक हाथ नेटही हगे (सोल-
 सवीसइवास परमाउसो) ओमनी उत्कृष्ट आयु १६ वर्षथी भाडीने २० वर्ष सुधी हशे (बहु
 पुत्तणत्तुपरियाळपणयबहुला) अनेक पुत्र अने पौत्ररूप परिवारभा प्रचुर प्रणय-स्नेहथी
 ओओ यौवनावस्था सम्पन्न थई थशे ओथी अल्प आयुभा पण्य ओओ प्रचुर पुत्र पौत्रादि
 परिवार वाणा थई नशे ने अही ओई ओवी आशंका करे के ते समयभा ओमने गृहा-
 दिना अभावथी ओओ निवास क्यां करशे ? तो आ शंकानी निवृत्ति भाटे सूत्रकार कडे
 छे- (गंगासिंघुओ महाणईओ वेयड्ड व पव्वयं नोसाए वावत्तरि णियोगवीयं वीयमेत्ता
 विलवासिणो मणुजा भविस्सति) ओओ गंगा अने सिंधु तेमज वैताढय पर्वतना
 आधारे रहेल विलवासी मनुष्यो ७२ हशे ओमनाथी इरी भविष्यत् मनुष्योना कुटुम्बानी-

बीजमात्राः—बीजस्येव मात्र परिमाण येषां तथा, स्वरूपतः स्वरूपा इत्यर्थः । हे गौतम ! दुष्पमदुष्पमायां समायां 'दुरूवा' इत्यारभ्य 'विलवामिनः' इत्यन्तविशेषणपदैर्निरूपिता मनुजा भविष्यन्तीति भवद्भिर्विज्ञेयम् । पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति—(तेणं भंते मणुआ किमाहरिस्सति?) ते खलु भदन्त ! मनुजाः किमाहरिष्यन्ति, हे भदन्तः ! दुष्पमदुष्पमासमोत्पन्ना मनुष्या किंविधमाहारं कुर्वन्ति ? इति गौतम स्वामिनः प्रश्नः । भगवानाह (गोयमा) हे गौतम ! (तेणकालेणं तस्मिन् काले दुष्पमदुष्पमालक्षणे काले (तेण समएण) तस्मिन् समये दुष्पमायाः प्रान्तभागे (गगासिन्धुओ महाणईओ) गङ्गासिन्धु महानद्यौ, कीट्ठयौ महानद्यौ ? (रहपहमित्तवित्थराओ) रथपथमात्रविस्तरे—रथस्य पन्था रथपथः रथगमनमार्गः, तत्परिमाणो विस्तरो विस्तारो ययोस्ते तथाविधे, (अक्खसोयपमाणमेत्त) अक्षमोतः प्रमाणमात्रम् अक्षः=चक्रं तस्य यत् स्रोतो—रन्ध्रं तत्प्रमाणा = तत्परिमाणा मात्रा= प्रमाणम् अवगाहनाप्रमाणं यस्य तत्तथाविधं (जलं) जलं (वोच्चिहिंति) वक्षतः । गङ्गासिन्धोर्महानद्योर्विस्तारो रथपथमात्रप्रमाणो जलावगाहप्रमाणं रथचक्रस्रोतःपरिमितं च भवतीति बोध्यम् इति भावः । (से वि य ण जले) तदपि च जलं (बहुमच्छकच्छभाइण्णे)

ये स्वरूप से स्वरूप होंगे इस तरह है गौतम । दुष्पमदुष्पमा काल में 'दुरूवा' पद से लेकर 'विलवामिनः' इस अन्तिम विशेषण रूप पदो तक के पदों द्वारा हमने छठवे आरे—काल के मनुष्यों का वर्णन किया अब गौतम स्वामी पुनः प्रश्न से ऐसा पूछते हैं—(तेण । भंते मणुआ कमा हरिस्सति) हे भदन्त ! वे छट्टे आरे के मनुष्य कैसा आहार करेंगे ? उत्तर में प्रश्नकहते हैं (गोय मा। तेणं कालेण तेण समएणं गगा सिन्धुओ महाणईओ) हे गौतम ! उमकाल में और उस समय में गगा एवं सिन्धु नाम की दो नदियां रहेंगी ये नदियां (रहपहमित्तवित्थराओ) रथ के गमन मार्ग का जितना प्रमाण होता है उतने प्रमाण के विस्तार वाली होंगी (अक्खसोयपमाणमेत्ता) इन में रथ के चन्द्र के छिद्र के बराबर जिसकी अवगाहना का प्रमाण होगा इतना जल बहता रहेगा अर्थात् इनकी गहराई बहुत थोड़ी होगी, रथ के चक्र के छेद की जितनी गहराई होती है उतनी गहराई वाला उनमें जल रहेगा (से वि य णं जले बहु मच्छकच्छभाइण्णे णो चेव

सुष्टि थसे ओओ स्वइपमां स्वइप इसे आ प्रभाण्णे हे गौतम ! दुष्पमदुष्पमाकाणमां 'दुरूवा' पदथा भाडीने 'विलवामिनः' आ अन्तिम विशेषण रूप पदो सुधीना पदो वडे अमोओ छुआ आराना पभतना मनुष्योओ वधुं न कञ्चुं छे इवे गौतम स्वामी इरीथो प्रभुश्रीने प्रश्न करे छे—(तेणं भंते ! मणुआ किमाहरिस्सति) हे भदन्त ! ते छुआ आराना मनुष्यो केवे आहार करे ? अवाअमा प्रभु कडे छे—(गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं गगा सिन्धुओ महाणईओ) हे गौतम ! ते काणमा अने ते सभयमां गंगा अने सिन्धु नामे के नदीओ इसे ओ अने नदीओ (रहपहमित्तवित्थराओ) रथना गमन मार्गं तु जेट्ठु प्रभाण्णं डोय छे, तेट्ठवा प्रभाण्णं जेट्ठवा विस्तारवाणी इसे, (अक्खसोयपमाणमेत्त) अने नदीओमां रथना अन्धना छिद्रं तुइय जेनी अवगाहनाओ प्रभाण्णं इसे, तेट्ठु पाणी वडेओ रहेसे. जेट्ठवे के ओ अनेनी वाडार्थं साव ओओ इसे रथना अकेना छिद्रनी जेट्ठवी वाडार्थं डोय

बहुमत्स्यकच्छपाकीर्ण बहभिः मत्स्यैः कच्छपैश्च आकीर्ण=व्याप्तम् प्रचुरमीनकर्मव्याप्तं भविष्यति । तथा—(णो चैव णं आउवहुळे भविस्सह) नो चैव खलु अब्वहुल भविष्यति = तज्जल च सजातीयअफ्कायवहुलं नैव भविष्यति । अत्रेत्थं कश्चित् शङ्कते भुल्लहिमव- त्यरकव्यवस्था नास्तीति पूर्वाचार्यैः प्रतिपादितम् तर्हि तद्गतपत्रहृदाद् निर्गतयोर्गङ्गा- सिन्धुनदीप्रवाहयोर्नियतत्वेन पूर्वोक्तरूपौ प्रवाहौ कथं सगच्छेते ? इत्यत्राह—गङ्गाप्रा- त्कुण्डान्निर्गमानन्तरं क्रमेण कालप्रभाववशाद् भरतभूमौ प्रचण्डतापैरपरजलेषु शुष्केषु समुद्रप्रवेशे गङ्गासिन्ध्वोः सूत्रोक्त प्रमाणजलावशेषे तावन्मात्रजलादित्त्व तयोरिति न कश्चिद् दोषः । (तएणं) ततः खलु=जलस्याल्पत्वात् खलु (ते मणुया) ते मनुजाः (सूरुगमणमुहुत्तंसि अ सूरत्थमणमुहुत्तंसि अ) मरोद्गमनमुहुत्ते च सूरस्तमनमुहुत्ते च = सूर्योदयकाले सूर्यास्तकाले च (विलेहितो) विलेभ्यः 'णिद्धाडस्सति' निर्धाविष्यन्ति=त्वरितगत्या गमिष्यन्ति विलेहितो (णिद्धाडत्ता) विलेभ्यो निर्धाव्य

णं आउवहुळे भविस्सह) उसमें भी अनेक मत्स्य और कच्छप रहेंगे इस जल में सजातीय अफ्काय के जीव नहीं होंगे हां कोई ऐसी आशंका कर सकता है—भुल्लहिमवान् पर्वत पर अरक व्यवस्था नहीं है वहां जो पद्म नामका हृद है उससे ही ये गङ्गा और सिन्धु नाम की नदियां निकली हैं अतः इन नदियों का प्रवाह नियत होता है फिर पूर्वोक्त रूप से आपने इनके जो प्रवाह कहे हैं वे कैसे कहे हैं ? तो इस आशंका का उत्तर है—गङ्गा प्रपात कुण्ड से निर्गमन के अनन्तर क्रमशः काल के प्रभाव से भरतक्षेत्र में प्रचण्ड ताप द्वारा अन्य जलो के शुष्क हो जाने पर समुद्र के प्रवेश के समय इन गङ्गा और सिन्धु नदियों में पूर्वोक्त प्रमाण वला जल अवशेष रहता है अतः ये उतने ही प्रमाण वाले जल को बढाती हैं अतः इममें शङ्क जैमो कोड बात नहीं है । (तएणं ते मणुया सूरुगमणमुहुत्तंसि अ सूरत्थमणमुहुत्तंसि अ विलेहितो णिद्धाडस्सति) वे बिलवासी मनुष्य जब सूर्योदय होने का समय होगा तब और जब सूर्यास्त होने का समय होगा तब अपने अपने बिलोसे बाहर निकलेगे और (विलेहितो णिद्धाडत्ता) बिलोसे वेग पूर्वक

छे तेट्ठी ७'डाड ७ेट्ठुं पाष्ठी अेननाभां रडेशे (से वि य णं जले बहुमच्छकच्छमाइणं णो चैव णं आउवहुळे भविस्सह) तेभां पण्ण अनेक मत्स्यो अने कच्छपो रडेशे अे पाष्ठीभां सजातीय अफ्कायना ७वे। नडि थशे अडी' डैड आ प्रभाणे शंका करी शके के धुल्लहिम- वान् पर्वत पर अरक व्यवस्था नहीं त्या ७े पद्म नामक हृद छे. तेभांथी ७ गंगा अने सिन्धु नामक नदीयो नीकणी छे अेथी आ नदीयोने। प्रवाह नियत होय छे तो पष्ठी पूर्वोक्त इपथी आपे अेमना ७े प्रवाहो कछा छे, ते कया आधारे कछा छे ? तो आ आशंकांने ७वाय आ प्रभाणे छे—गंगा प्रपातकु डथी निर्गमन पष्ठी कुमश. काणना प्रभाव थी भरतक्षेत्रभां प्रचण्ड ताप द्वारा अन्य जलाशयो शुष्क थथ नय त्यारे समुद्र प्रवेश ना समये, अे गंगा अने सिन्धु नदीयोभां पूर्वोक्त प्रभाणु वाणु पाष्ठी अवशिष्ट रहे छे. अेथी अेयो तेट्ठा ७ प्रभाणुवाणा ७णने प्रवाहित करे छे, अेथी अडी शंका ७ेवी डैड वात नहीं

(तएणं ते मणुया सूरुगमणमुहुत्तंसि अ सूरत्थमणमुहुत्तंसि अ विलेहितो णिद्धाडस्सति) ते बिलवासी मनुष्यो न्यारे सूर्योदय थवाने। समय थशे त्यारे अने न्यारे सूर्यास्त थवाने।

(मच्छकच्छमे) मत्स्यकच्छपान् जन्नाद् गृहीत्वा (थलाइं गाहेहिति) स्थलानि ग्राहयिष्यन्ति=तटदेशे समानयिष्यन्ति. (मच्छकच्छमे थलाइं गाहेत्ता) मत्स्यकच्छपान् स्थलानि ग्राहयित्वा=मत्स्यकच्छपान् तटप्रदेशे समानोय (सीआतवतचेहिं) शीता-तपतप्तैः रात्रौ शीतेन दिवसे चातपेन तप्तैः=धुष्करसैः (मच्छकच्छमेहिं) मत्स्यकच्छपैः (इक्कवीस वाससहस्साः) एक्कमिंशतिं वर्षमहन्नाणि (वित्तिं कप्पे माणा) वृत्तिं कल्पयन्तः = जीविकां कुर्वन्तो (विहरिस्सति) विहरिष्यन्ति=स्थास्यन्ति । दुष्पमदुष्पमाया समायामग्ने विध्वंसेन आममत्स्यकच्छपानाम् अतिरसाना तज्जठराग्निना परिपाका-संभवेन तत्कालसमुत्पन्ना मनुजास्तान् मत्स्यकच्छपान् शीतातपतप्तानेव मोक्षयन्ते इत्युक्त 'सीयातवतचेहिं' इति । पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति-(तेण भते ! मणुया) ते खलु भदन्त ! मनुजाः=हे भदन्त ! ते पश्वरकोत्पन्ना मनुष्याः (णिस्सीला) निस्सीलाः

निकलकर वे (मच्छकच्छमे) मत्स्यो और कच्छपों को जल से पकडेगे और पकड़कर (थलाहिंगा-हेहिति) उन्हें ये जमीनपर- तट प्रदेश पर-बाहर-ले आवेगे (मच्छकच्छमे थलाइं गाहेत्ता सीआतवतचेहिं मच्छकच्छमेहिं इक्कवीस वाससहस्साइ वित्ति कप्पेमाणा विहरिस्सति) फिर ये उन मच्छकच्छपो को रात में शीत में और दिन में धूप में सुखावेगे इस प्रकार करने से उनका रस जब शुष्क हो जावेगा-अर्थात् वे सब शुष्क हो जावेंगे तब ये उनसे अपनी क्षुधा की नि-वृत्ति करेगे इस तरह से ये आरे की स्थिति जो २१ हजार वर्ष की है वहा तक करते रहेंगे । तात्पर्य यही है कि छठे आरे में अग्निका तो विध्वंस हो जावेगा और आम-गीले-मच्छकच्छपों को तो कि जिनमें रस की अधिकता रहती है इनकी जठराग्नि पचा नहीं सकेगी इस कारण उस काल में उत्पन्न हुए मनुष्य उन मत्स्य कच्छपो को शीत और आतप में ढालकर उन्हें सुखाकर ही स्वावेंगे यही बात "सीयातवतचेहिं" पाठ द्वारा प्रकट की गई है ।

समथ उथे त्यारे पोत-पोताना भिदोभाथी षडार नीकणशे अने (विलेहितो णिज्जाइत्ता) भिदोभाथी वेग पूर्वक नीकणीने तेओ (मच्छकच्छमे) मत्स्ये अने कच्छपोने पाण्णीभांथी, पकडशे अने पकडीने (थलाहिं गाहेहिति) तेभने जमीन उपर तट प्रदेश उपर-षडार लथ आवशे (मच्छकच्छमे थलाइं गाहेत्ता सीआतवतचेहिं मच्छकच्छपेहिं इक्कवीस वास-सहस्साइ वित्ति कप्पेमाणा विहरिस्सति) पथी ओओ ते मच्छकच्छपोने रात्रेशीतमां अने दिवसमा तडकांमां सूडवशे आ प्रभाण्णे करवाथी तेभनो रस न्यारे शुष्क थथ जशे, ओटले के तेओ सर्वे शुष्क थथ जशे, त्यारे ओओ तेभनाथी पोतानीं पुबुक्षा मटाडशे आ प्रभाण्णे आ आरानी स्थिति २१ हजार वर्षे ओटली छे त्या सुधी ओओ तेभ करता रडेथे तात्पर्य आ प्रभाण्णे छे के छडा आरामा अग्निने विनाश थथ जशे अने आम-हीना-मच्छ-कच्छपोने के तेभनामा रसनी अधिकता रडे छे, तेभनी जठराग्नि पचावी शकशे नही आ कारण्णे ते काणमा उत्पन्न थयेला मनुष्ये ते मत्स्य कच्छपोने शीत अने आतपमा नाथीने तेभने सूकवीने ज आशे ओ ज वात "सीयातवतचेहिं" पाठ वडे प्रकट करवामां आवां छे उवे गौतम स्वामी इरी प्रभुने आ प्रभाण्णे पूछे छे-(तेण भंते ! मणुया) हे भदन्त !

= शीलवर्जिताः दुराचाराः (णिव्वया) निर्व्रताः = महाव्रताणुव्रतवर्जिताः अनुव्रतमूल-
गुणरहिता इत्यर्थः, (णिग्गुणा) निर्गुणाः = उत्तरगुणवर्जिताः (णिम्मेरा) निर्मर्यादाः =
कुलादिमर्यादापरिवर्जिताः, (णिप्पच्चक्खाणपोसहोववासा) तत्र निष्प्रत्याख्यानपोपथोप-
वासाः प्रत्याख्यानानि = पौरुष्यादिनियमाः, पोपथोपवासाः अष्टम्यादि पर्वोपवासाः,
तेभ्यो निष्क्रान्ता ये ते तथा पोरुष्यादि नियमान् अष्टम्यादिपर्वोपवासाश्च आनाचरन्तः,
(ओसण्णं) वाहुल्येन (मंसाहारा) मामाहाराः = मांसभक्षिणः पञ्चादीनां मास भक्षणशीलाः
(मच्छाहारा) मत्स्याहागः = मत्स्यभोजिनः (खुड्ढाहारा) क्षुद्राहाराः = तुच्छाहाराहरणका-
रिणः तथा (कुणिमाहारा) कुणयाहाराः = वसादि दुर्गन्धाहारकारिणः मन्तः (कालमासे काल
किच्चा) कालमासे कालं कृत्वा (कहिं गच्छिहिति) न्न गमिष्यन्ति = कस्मिन् स्थाने गतिं
करिष्यन्ति ? (कहिं उव्वज्जिहिति) क्व उपपत्स्यन्ते = कुत्र जनिष्यन्ते ? इति । भगवानाह
(गोयमा) हे गौतम ! (ओसण्णं) वाहुल्येन (णरगतिरिक्खजोणिण्णु) नरकतिर्यग्गतियु
(गच्छिहिति) गमिष्यन्ति = गतिभाजो भविष्यन्ति (उव्वज्जिहिति) उपपत्स्यन्ते = उत्प-
त्तिभाजो भविष्यन्ति । पुन गौतमस्वामी पृच्छति—(तीसे ण भंते ! समाए) तस्यां

अत्र गौतम स्वामी पुनः प्रभु से ऐसा पूछते हैं—“तेणं भन ! मणुगा” हे भदन्त ! ये
छठे आरे में उत्पन्न हुए मनुष्य जो कि (णिस्साला) शील से वर्जित दुराचार वाले होंगे
(णिव्वया) महाव्रत और कणुव्रतों से रहित रहेंगे—अनुव्रत और मूलगुणों से रहित रहेंगे—
(णिग्गुणा) उत्तर गुणों से रहित रहेंगे (णिम्मेरा) कुलादि मर्यादा से परिवर्जित रहेंगे (णिप्पच्च-
क्खाणपोसहोववासा) पौरुषि आदि नियमों के और अष्टमी आदि पर्व सम्बन्धी उपवासों
के आचरण में रहित रहेंगे, (ओसण्ण मसाहारा मच्छाहारा खुड्ढा हारा, कुणिमा हारा)
प्रायः मास ही जिनका आहार होगा मत्स्यों को जो खावेंगे, तुच्छ आहार करेंगे और
वसादि दुर्गन्ध आहार करनेवाले होंगे (कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिति, कहिं उव्व
ज्जिहिति) कालमास में मरकर कहां पर जावेंगे ? कहा पर उत्पन्न होंगे ? इसके उत्तर में
प्रभु कहते हैं—(गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिण्णु गच्छिहिति उव्वज्जिहिति) हे गौतम !
प्रायः कर के ये नरक गति और तिर्यञ्च गति में जावेंगे और वहीं पर उत्पन्न होंगे पुनः

ये छठे आराभां उत्पन्न थयेला मनुष्ये के जेथे (णिस्साला) शील वर्जित दुराचारी थये
(णिव्वया) महाव्रतोथी डीन थये—अनुव्रतो अने भूणशुद्धोथी रहित डुथे (णिग्गुणा) उत्तम
शुद्धोथी रहित डुथे, (णिम्मेरा) कुलादि मर्यादा थी परिवर्जित डुथे (णिप्पच्चक्खाणपोस-
होववासा) पौरुषि वगेरे नियमो अने अष्टमी वगेरे पर्व संधी उपवासोना आचरण
थी रहित थये (ओसण्णं मसाहारा मच्छाहारा खुड्ढाहारा कुणिमाहारा) प्राय मा-नाहारी
थये, मत्स्यभक्षी थये, तुच्छ आहार करेथे अने वसादि दुर्गन्ध आहार भक्षी थये (काल
मासे काल किच्चा कहिं गच्छिहिति कहिं उव्वज्जिहिति) काल मासमा मरथे प्राय करीने
क्या जेथे ? क्या उत्पन्न थये ? जेना जवाभमा प्रभु कहे छे—गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्ख-
जोणिण्णु गच्छिहिति उव्वज्जिहिति हे गौतम ! प्राय करीने जेथे नरक गति अने तिर्यञ्च
गतिमां जेथे अने त्या ज उत्पन्न थये करी गौतम स्वामी प्रभुने प्रश्न करे छे

खलु भदन्त ! समायां (मीहा) सिंहाः (वग्धा) व्याघ्राः (विगा) वृकाः (दीविया) द्वीपिकाः
 (अच्छा) ऋक्षाः= भल्लूकाः (तरक्खा) तरभाः व्याघ्रजातिविशेषाः वन्यपशुविशेषः
 (परस्सरा)पराशरा 'गेडा, इति भाषा प्रसिद्धाः (सरभसियालविरालमुणगा) शरभ-
 शृगालविडालशुनका-तत्र शरभाः = अष्टापदा, शृगालाः = जम्बूका विडालाः-
 मार्जाराः शुनकाः कुक्कूगः एतेषां पदानामितरेतग्योगद्वन्द्वः तथा (कोलमुणगा)
 कोलशुनकाः=आणया शूकरा (ससगा) गशका = (चित्तगा) चित्रका तथा
 (चिल्ललगा) चिल्ललका=श्रापदविशेषा, । एते सर्वे जन्तवः । ओसण्ण (वाहुल्येन
 मंसाहारा) मांसाहाराः (मच्छाहारा) मत्स्याहाराः (खोदाहारा) क्षुद्राहाराः क्षुद्रं=
 तुच्छम् आहारो येषां ते तथा नीरसधान्याहारिण इत्यर्थः (कुणिमाहारा)
 कुणपाहाराः-कुणपः=शबः तस्य मांसादिरपि कुणपः, स आहारो येषां ते तथा-
 मांसवसाद्याहारिणश्च सन्तः (कालमासे कालं किञ्चा) कालमासे कालं कृत्वा (कहिं
 गच्छिंहिति ? कहिं उववज्जिंहिति) क्व गर्मिभ्यन्ति ? क्व उत्पत्स्यन्ते ? इति गौतमस्वा-
 मिनः प्रश्नः। भगवानाह-(गोयमा) हे गौतम ! एते सिंहादयः (ओसण्णं) प्रायः=वाहुल्येन
 (णरगतिरिक्खजोणिएसु) नरकतिर्यग्योनिकेषु जीवेषु (गच्छिंहिति उववज्जिंहिति)

गौतम स्वामो प्रभु से पूछते हैं- " तीसेणं भंते । समाए सोहा वग्धा विगा, दाविया,
 अच्छा, तरक्खा, परस्सरा) हे भदन्त ! उस छट्टे आरे मे शेर, व्याघ्र, वृक, द्वीपिक, चीता,
 रीछ, तरक्ष-व्याघ्रजातिका हिंसक जानवर विशेष और परस्पर-गेडा, हाथी, (सरभसियालविर-
 लमुणगा) तथा शरभ-अष्टापद-शृगाल-विडाल-मार्जार शुनक-कुत्ते (कोलमुणगा जंगली
 कुत्ते, (ससगा) खरगोश, (चित्तगा) चित्रक, (चिल्ललगा) चिल्ललक-श्रापदविशेष ये सब जानवर
 (ओसण्ण) प्राय करके (मंसाहारा) मासाहारा (मच्छाहारा) मत्स्याहारी (खोदाहारा)
 क्षुद्राहारी नीरसधान्य आहारी (कुणिमाहारी) कुणव-शबके आहारो तथा मांसवसा आदि
 के आहारी होते हैं-तो ये सब भी (कालमासे कालं किञ्चा कहिं गच्छिंहिति कहिं उववज्जि-
 हिति) कालमास में मरण कर के कहा जावेगे कहां उत्पन्न होंगे । इसके उत्तर में प्रभु कहते
 है (गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु) हे गौतम ! ये सब पूर्वोक्त मासाहारादि विशेषण

भंते ! समाए सीहा वग्धा, विगा, दीविया, अच्छा, तरक्खा, परस्सरा) हे भदन्त ! ते छट्टे
 आशमा सिंहा, वाघ, वृक, व्याघ्र, चीता, रीछ, तरक्ष-वाघनीलतपु, हिंसक जानवर विशेष
 अने परस्पर-गेडा, हाथी (सरभसियालविरालमुणगा) तथा शरभ-अष्टापद, शृगाल,
 विडाल-मार्जर, शुनक-कुत्तारो (कोलमुणगा) वन्य इतर, (ससगा) खरगोश, (चित्तगा)
 चित्रक, (चिल्ललगा) चिल्ललक-श्रापदविशेष आ अथा प्राणीओ (ओसण्णं) प्राय करीने
 (मंसाहारा) मासाहारी (मच्छाहारा) मत्स्याहारी (खोदाहारा) क्षुद्राहारी-नीरस धान्य
 आहारी (कुणिमाहारा) कुणव-शब-आहारी तेमए मांस-वसा आदिना आहारी होथ
 छे तो पछी ओ अथा (कालमासे कालं किञ्चा कहिं गच्छिंहिति कहिं उववज्जिंहिति) काल
 मासमा मरण प्राप्त करीन क्या जशे ? क्या उत्पन्न थशे ? ओना जवाअमा प्रभु कडे छे-
 (गोयमा ! ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु) हे गौतम ! ओओ सर्वे पूर्वोक्त मासाहारादि

गमिष्यन्ति उपपत्स्यन्ते इति ॥ पुनर्गौतमस्यामी पृच्छति (ने णं भंते ! ढंका कंका पीळगा मग्गुआ सिही) ते खलु भदन्त । ढंकाः कंकाः पीळकाः मद्गुकाः शिखिनः, तत्र-ढंकाः=काकविशेषाः, कंकाः=लोहपृष्ठाभ्याः पक्षिणः—‘लोहपृष्णु कङ्कः स्यात्’ इत्यमरः, पीळकाः, पक्षिविशेषाः, मद्गुकाः=जलवायमाः, शिखिनः=मयूराः, त एते पक्षिणः (ओसण्णं) प्राय (मांसाहारा जाव) मांसाहारा यावत् यावत्पदेन—‘मत्स्याहाराः क्षुद्राहाराः कुणपाहाराः’ इति पदत्रयं संग्राह्यम् मांसाहारादि विविष्टाः सन्तः (कहि गच्छिहिति कहि उववज्जिहिति ?) क्व गमिष्यन्ति क्व उत्पत्स्यन्ते ? । भगवानाह—(गोयमा) हे गौतम ! (ओसण्ण) प्रायः णरगतिरिक्खजाणिएसु) नरकतिर्यग्योनिकेषु (जाव) यावत् (उववज्जिहिति) उत्पत्स्यन्ते यावत्पदेन—‘गमिष्यन्ति’ इति संग्राह्यम् ॥ सू० ५४ ॥

पट्टारकः प्ररूपितः, तत्प्ररूपणेन अवसर्पिणीकालोऽपि प्ररूपितः. सम्प्रति पूर्वोदिष्टा मुत्सर्पिणीं तत्प्रथमारकादि प्ररूपणापूर्वरूपं प्ररूपयति—

मूलम्—तोसे ण समाए डक्कवोसाए नाममहरसेहि काले वीइ-क्कंते आगमिस्माए उरसप्पिणीए सावणवहुलपडिवए वालवकरणंसि अभीइणक्खत्ते चोइस पढमसमये अण्तेहि वण्णपज्जवेहे जाव अणंत गुणपरिवद्धीए पग्गिचुद्धेमाणे २ एत्थ णं दूसपदूसमा णामं समा पडिव. जिजस्सइ समणाउसो ! तोसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरि-

वाक्ये व्याघ्र आदि जानवर प्रायः करके नरकगति या तिर्यग्गतात में मरण कर के जावेंगे वहाँ पर उत्पन्न होंगे । (तेणं भंते ढंका कंका पीळगा, मग्गुआ सीही) हे भदन्त ! ढंका—काकविशेष, कक-वृक्ष फोडा पक्षी, मद्गु-जल कौवा, एवं शिखी- मयूर, (ओसण्णं मांसाहारा जाव कहि गच्छिहिति, कहि उववज्जिहिति) ये सब पक्षी, जो को प्रायः मांस का आहार करते हैं, यावत्-मत्स्यो का आहार करते हैं क्षुद्राहार करते हैं, कुणपाहार करते हैं कालपास में मर कर कहा जावेंगे! कइ उद्गन्न होंगे इसके उत्तर में प्रभु कहने हैं—(गोयमा) ओसण्णं णरगतिरिक्खजाणिएसु) हे गौतम! ये जीव प्रायः करके नरक और तिर्यग्योनिकों में (जाव गच्छिहिति) होंगे यावत् जावेंगे एवं वहाँ पर (उववज्जिहिति) उत्पन्न होंगे ॥सू० ५४॥

विशेषणो वाणा सि'ड, वाघ वगेरे'प्राणीओ। धल्लु' करीने नरक गति अथवा तो तिर्यग्गतिमां भरषु प्राप्त करीने जशे अने त्यां ज उत्पन्न थशे (तेणं भंते ढंका, कंका पीळगा मग्गुआ सिही) हे भदन्त ! ढंका—काक विशेष, कक पृक्ष शैड पक्षी (मगवी) मद्गु जल कौवा अने शिखी—मयूर (ओसण्णं मांसाहारा जाव कहि गच्छिहिति कहि उववज्जिहिति) ओ अधा पक्षीओ के ओओ। प्राय मांसाहार करे छे, यावत् मत्स्याहार करे छे, क्षुद्राहार करे छे, कुणपाहार करे छे, कालमासमा मृत्यु प्राप्त करीने थया जशे ? थया उत्पन्न थशे ? ओना जवापमा प्रभु कहे छे—(गोयमा) ओसण्णं णरगतिरिक्खजाणिएसु) हे गौतम ! ओ ओवा प्राय नरक अने तिर्यग्ग योनिकेमा (जाव) यावत् (गच्छिहिति) जशे अने त्याज (उववज्जिहिति) उत्पन्न थशे, ॥५४॥

सए आगारभावपडोयारे भविस्सइ ? गोयमा । काले भविस्सइ हाहाभूए
मंभाभूए, एवं सो चेव दूसमदूममावेदओ णेयव्वो । तीसे णं समाए
एक्कवीसाए वाससहस्सेहि काले विइक्कंते अणंतेहि वण्णपज्जवेहि
जाव अणंतगुणपरिवुद्धीए परिवद्धेमाणे परिवद्धेमाणे एत्थ णं दूसमा
णामं समो काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो । ॥सू० ५५॥

छाया—तस्या खलु समायाम् एकविंशत्या वर्षसहस्रैः काले व्यतिक्रान्ते आगमि-
ष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां श्रावणबहुलप्रतिपदि बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे चतुर्दशप्रथमसमये
अनन्तैर्वर्णपर्यवैयावत् अनन्तगुणपरिवृद्धया परिवर्द्धमानः परिवर्द्धमानः, अत्र खलु दुष्पम-
दुष्पमा नाम समा कालः प्रतिपत्स्यते, श्रमणायुष्मन् । । तस्यां खलु भदन्त । समायां भर-
तस्य वर्षस्य कीदृश आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति ? गौतम ! कालो भविष्यति
हाहाभूतो मंभाभूतो एव स एव दुष्पमदुष्पमावेष्टको नेतव्यः तस्याः खलु समायां एकविं-
शत्या वर्षसहस्रैः काले व्यतिक्रान्ते अनन्तैर्वर्णपर्यवैयावत् अनन्तगुणपरिवृद्धया परिवर्द्धमानः
परिवर्द्धमानः, अत्र खलु दुष्पमा नाम समा कालः प्रतिपत्स्यते श्रमणायुष्मन् ॥ सू० ५५ ॥

टीका—“तीसेणं समाए” इत्यादि । (समणाउसो !) श्रमणायुष्मन् । हे आयुष्मन्
श्रमण ! (तीसेण समाए) तस्याः खलु समायाः=अवसर्पिण्यवयवरूपायां दुष्पमानाम्भ्याः
(इक्कवीसाए वाससहस्सेहिं) एकविंशत्या वर्षसहस्रैः प्रमिते (काले वीइक्कते) काले
व्यतिक्रान्ते सति (आगमिस्साए उस्सप्पिणीए) आगमिष्यन्त्याम्=आगामिन्याम् उत्सर्पि-
ण्याम् (सावणबहुलपडिवए) श्रावणबहुलप्रतिपदि=पूर्वावसर्पिण्या आयादपूर्णिमान्तिम

इस प्रकार छठे आरे की प्ररूपणा करदेने से अवसर्पिणा काल प्ररूपण हो जाता है । अब
सूत्रकार पूर्वोद्धिष्ट काल अवसर्पिणी काल की उमके प्रथमारक आदि की प्ररूपणा करते हुए प्ररू-
पणा करते है । तीसेणं समाए इक्कवीसाएवाससहस्सेहिं काले वोइक्कंते—इत्यादि सूत्र—५५

टीकार्थ—(समणाउसो) हे श्रमण आयुष्मन् ! (तीसेण समाए) उस अवसर्पिणा के अवयवरूप दुष्पमा
नामक आरे की (इक्कवीसाए वाससहस्सेहिं वोइक्कते) २१ इक्कास हजार वर्ष रूप स्थिति के समाप्त
हो जाने पर अर्थात् २१ हजार वर्ष का पचम काल निकल जाने पर (आगमिस्साए उस्सप्पिणीए)
आने वाले उत्सर्पिणी काल में (सावणबहुलपडिवए) श्रावण मास की कृष्णपक्ष की प्रतिपदा-

आ प्रभाषे छट्ठा आरानी प्रइपण्णा करवाथी अवसर्पिणी कालणी प्रइपण्णा थर्ध न्य छे
इवे सूत्रकार पूर्वोद्धिष्ट अवसर्पिणी कालणी तेना प्रथम आरक वगेरेनी प्रइपण्णा करे छे—

तासे णं समाए इक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले विइक्कंते—इत्यादि—सूत्र ॥५५॥

टीकार्थ—(समणाउसो) हे श्रमण आयुष्मन् ! (तीसे णं समाए) ते अवसर्पिणीना
अवयव रूप दुष्पमा नामक आरानी (इक्कवीसाए वाससहस्सेहिं वीइक्कते) २१ हजार
वर्ष रूप स्थिति न्यारे सरूपूथं थर्ध न्ये अष्टद्वे के २१ हजार वर्षने पचमकाल नीकणी
न्ये (आगमिस्साए उस्सप्पिणीए) त्तारे आगण आवनारा उत्सर्पिणी कालमां—सावणबहुल-

समये परिसमाप्तेः श्रावणमासस्य कृष्णप्रतिपत्तिर्था (बालवकरणंसि) बालवकरणे=बालव नामके करणे (अभीङ्गकखत्ते) अभिजिन्नक्षत्रे चन्द्रेण साद्धं योगसुपागते सति. (चौदसपदम-समये)चतुर्दश प्रथम समये चतुर्दशानां कालविशेषाणां यः प्रथमः समय उच्छ्वासो निःश्वासो वा तस्मिन्-चतुर्दशकालविशेषाणां प्रारम्भक्षणे. चतुर्दशकालविशेषास्तु निःश्वासादुच्छ्वासात् वा गणनीयाः, तथाहि निःश्वासउच्छ्वासावा १, प्राणः २, स्तोकः ३, लवः ४, मुहूर्त्तम् ५, अहोरात्रः ६, पक्षः ७, मासः ८, ऋतुः ९, अयनम् १०, संवत्सरः ११, युगं १२, करणं १३, नक्षत्रम् १४ इति । समयस्य निर्विभागत्वेनाद्यन्तव्यवहाराभावादाव लिकायाश्चाव्यवहार्यत्वाद्त्र समयपदेन निःश्वासोच्छ्वासयोरेकतरग्रहणम् । अत्रेद बोध्यम्

तिथि में पूर्व अवसर्पिणीकाल के आपाढ मास की पूर्णिमा रूप अन्तिम समय की परिसमाप्ति होने पर (बालवकरणंसि अभीङ्गकखत्ते) बालव नामके करणमें चन्द्रके साथ अभिजित् नक्षत्रका योग होनेपर (चौदसपदमसमये) चौदह कालों का जो उच्छ्वास या निःश्वास रूप प्रथम समय है उस समय (अणंतेहि वण्णपज्जवेहि जाव अणंतगुणपरिवहणीए परिवहणमाणे २पत्थण दूसम दूममा णामं समा पडिवज्जिसइ)अनन्त वर्ण पर्यायों से यावत्- अनन्त गन्ध पर्यायों से, रस पर्यायों से अनन्त स्पर्श पर्यायों से, सहनन पर्यायों से अनन्त सस्थान पर्यायों से अनन्त उच्चत्व पर्यायों से अनन्त आयुष्क पर्यायों से अनन्त गुरुलघुपर्यायों से अनन्त उत्थान, कर्म, बल वीर्य, पुरुषकार पर्यायों से अनन्त गुण वृद्धि वाला होता हुआ दुष्मदुष्पमा नाम का काल प्रारम्भ होगा. चौदह प्रकार के काल इस प्रकार से हैं निःश्वास अथवा उच्छ्वास १ प्राण २ स्तोक ३ लव ४ मुहूर्त्त ५, अहोरात्र ६ पक्ष ७मास ८ ऋतु ९, अयन १०, संवत्सर ११ युग १२ करण १३, और नक्षत्र १४ समय काल का निर्विभाग अंश है-इसलिये इसमें आदि अन्त का व्यवहार नहीं होता है तथा आवलिका रूप काल में अव्यवहार्यता है इसलिये

पडिवप) श्रावण मासनी कृष्णपक्षनी प्रतिपदा तिथिमा पूर्व अवसर्पिणी काणना अपाढ मासनी पूर्णिमा तिथि इय अतिम समयनी समाप्ति थर्ध जशे (बालवकरणसि अभीङ्गकखत्ते) बालव नामना कर्षणमां चन्द्रनी साथे अबिजित् नक्षत्रनी योग थशे त्पारे (चौदसपदमसमये) चतुर्दश काणोने जे उच्छ्वास के निःश्वास इय प्रथम समय छे ते समये (अणंतेहि वण्णपज्जवेहि, जाव अणंत गुणपरिवहणीए परिवहणमाणे २ पत्थणं दूसमदूस-माणामं समा पडिवज्जिसइ) अनंतवर्ण पर्यायिणी, यावत् अनंत गन्ध पर्यायिणी, अनंतरस पर्यायिणी अनंत स्पर्श पर्यायिणी, अनंत सहनन पर्यायिणी, अनंत सस्थान पर्यायिणी, अनंत उच्चत्व पर्यायिणी, अनंत आयुष्क पर्यायिणी अनंत गुरुलघु पर्यायिणी, अनंत उत्थान, कर्म, बल-वीर्य पुरुषकार पर्यायिणी, अनंत गुण वृद्धि युक्त थने। आ दुष्मदुष्पमा नामनी काण प्रारंभ थशे चतुर्दश प्रकारना काणे। आ प्रमाणे छे निःश्वास अथवा उच्छ्वास (१) प्राण (२) स्तोक (३) लव (४), मुहूर्त्त (५), अहोरात्र (६), पक्ष (७), मास (८) ऋतु (९) अयन (१०), संवत्सर (११) युग (१२) कर्षण (१३) अने नक्षत्र (१४) समय अने निर्विभाग अश छे। ज्येथी ज्येमा आदि अतने व्यवहार थते। नथी तथा आ-

एतेषां चतुर्दशानां कालविशेषाणां य प्रथमसमयः स एवोत्सर्पिणी प्रथमारकप्रथमसमयः अवसर्पिणी सम्बन्धिनामेषां निःश्वासादि चतुर्दशानां कालविशेषाणां द्वितीयाषाढपौर्णमासो चरमसमय एव परिसमाप्तत्वात् । अत्रेदमायातम् यद्वा खलु अवसर्पिण्यादि महाकालः प्रथमतः प्रवृत्तौ भवति तदैव खलु तदवान्तरभूताः सर्वेऽपि निःश्वासादयश्चतुर्दशकालविशेषा युगपत्प्रवृत्ता भवन्ति, ततश्च स्वस्व प्रामाण्यसमाप्तौ ते समाप्तिं गच्छन्ति, एवं प्रवर्त्तमानाः समाप्नुवन्तश्च ते निःश्वासादिकालविशेषा महाकालपरिसमाप्तौ समाप्तिं गच्छन्तीति । अत्रेदं कथित् सन्दिहति ऋतुराषाढादौ प्रवर्त्तते इति शास्त्रे कथितम्, उत्सर्पिणी च श्रावणादौ प्रवर्त्तते इत्यत्र प्रोच्यते, ततश्च य एव चतुर्दशानां कालविशेषाणां प्रथम

समय पद से यहां पर उच्छ्वास निःश्वास में से एक तर का ग्रहण किया गया है और यहां से चतुर्दशकाल विशेषोंकी गणना की गई है यहां ऐसा समझना चाहिये इन चौदह कालों का जो प्रथम समय है वही उत्सर्पिणी काल के प्रथम आरक का प्रथम समय है क्योंकि अवसर्पिणीकाल सम्बन्धी इन चौदह निःश्वासादि काल विशेषों की द्वितीय आषाढ पौर्णमासो के चरम समय में ही परिसमाप्ति हो जाती है । तात्पर्य इस कथनका ऐसा है—जब अवसर्पिणी आदि रूप महा काल प्रथमतः प्रवृत्त होता है उसी समय तदवान्तरभूत सब ही निःश्वासादिरूप चौदह काल विशेष युगपत् प्रवृत्त होते हैं और जब अपना प्रमाण समाप्त हो जाता है तब वे सब ही निःश्वासादिरूप चौदह काल विशेष युगपत् प्रवृत्त होते हैं और जब अपना प्रमाण समाप्त हो जाता है तब वे सब समाप्त हो जाते हैं इस प्रकार से प्रारम्भ हुए और समाप्त हुए वे निःश्वासादि कालविशेष महाकाल की परिसमाप्ति होते ही समाप्ति को प्राप्त हो जाते हैं यहां कोई ऐसी आशंका करता है कि ऋतु आषाढ की आदि में प्रवृत्त होती है ऐसा शास्त्र में कहा गया है और तुम यहां ऐसा कहते हो कि उत्सर्पिणी श्रावण मास की आदि में प्रवृत्त होती

‘वदिकाश्चकाणना अव्यवहार्यता छे, जेथी समयपदथी अही उच्छ्वास निःश्वासमांथी अकेतरनुं अहेषु करवामां आवेद छे अने अहीथी चतुर्दशकाण विशेषाणी गणना करवामां आवी छे, जेवु अही समयनुं लेधये जे चतुर्दश कालीने जे प्रथम समय छे तेज उत्सर्पिणी काणना प्रथम आरकने प्रथम समय छे, केभडे—अवसर्पिणीकाण संंधी जे चतुर्दश निःश्वासादि काण विशेषाणी द्वितीय आषाढ पौर्णमासीना चरम समयमां जे परिसमाप्ति थर्ध लय छे तात्पर्य आ कथननुं आ प्रमाणे छे के ज्यारे अवसर्पिणी आदिश्च महाकाण प्रथमतः प्रवृत्त थाय छे ते जे समये तदवान्तर भूत सर्व निःश्वासादि रूप चतुर्दश काण विशेष युगपत् प्रवृत्त थाय छे अने ज्यारे पोतपोतानुं प्रमाणे समाप्त थर्ध लय छे त्यारे तेजो मथा जे समाप्त थर्ध लय छे, आ प्रमाणे प्रारंभ थयेद अने समाप्त थयेद ते निःश्वादि काण विशेष महाकाणनी परिसमाप्ति थता जे समाप्त थर्ध लय छे, अही कथ जेवी आशंका करे छे के ऋतु अषाढनी आदिमां प्रवृत्त होय छे, जेवुं

समयः स एव उत्सर्पिण्याः प्रथमसमय इति न संगच्छते, ऋत्वर्धस्य परिसमाप्तत्वादिति । अत्राह—श्रावणादिः प्रावृद्, आश्विनादिर्वर्षाः, मार्गशीर्षादिः शरत्, माघादि हेमन्तः, चैत्रादिर्वसन्तः ज्येष्ठादि ग्रीष्मः—इति रूपेण ऋतुक्रमस्याचार्यप्रोक्तत्वेनागमसम्मतत्वानुमानात् कस्मिन्नपि पक्षे न कश्चिद् दोष इति । (अणंतेहिं वणपज्जवेहिं) अनन्तैर्वर्णपर्यवैः=अनन्तसंख्यकैर्वर्णपर्यायैः (जाव) यावत्—यावत्पदेन (अणंतेहिं गंधपज्जवेहिं, अणंतेहिं रसपज्जवेहिं: अणंतेहिं फासपज्जवेहिं: अणंतेहिं संघयणपज्जवेहिं: अणंतेहिं सठाणपज्जवेहिं अणंतेहिं उच्चत्तपज्जवेहिं अणंतेहिं आउपज्जवेहिं अणंतेहिं गुरुलहुपज्जवेहिं अणंतेहिं अगुरुलहुपज्जवेहिं अणंतेहिं उट्ठाणकम्मवल्लवीरियपुरिसक्कारपज्जवेहिं) इति सग्राह्यम् । छाया—अनन्तैर्गन्धपर्यवैः अनन्तै रसपर्यवैः अनन्तैः स्पर्शपर्यवैः अनन्तैः संहननपर्यवैः अनन्तैः सस्थानपर्यवैः अनन्तैः उच्चत्वपर्यवैः अनन्तैः आयुः पर्यवैः अनन्तैर्गुरुलघुपर्यवैः अनन्तैरुत्थानकर्म-वल्ल-वीर्य-पुरुषकारपर्यवैः इति । एतानि पदानि पूर्वं व्याख्यातानि । एतैरनन्तसंख्यकवर्णनादिभिः कृत्वा (अणंतगुणपरिवद्धीए) अनन्तगुणपरिवृद्ध्या (परिवृद्धे माणे २) परिवर्द्धमानः २ सन् (एत्थ णं) अत्र खल्लु=अत्रान्तरे खल्लु (दूसमदूसमाणाम) दूप्पमदुप्पमा नाम (समा काले) समा कालः (पडिवज्जिस्सइ) प्रतिपत्स्यते=प्राप्तो भविष्यति । इति । भगवदुक्तौ गौतमस्वामी पृच्छति—तीसेणं भते !' इत्यादि (भंते !) हे भदन्त ! (तीसेणं समाए) तस्यां खल्लु समायां (भरहस्स वासस्स) भरतस्य वर्षस्य (केरिसए) कीदृशकः=किंविधः (आगारभावपडोयारे)

है अतः जो ही चौदह कालों का आदि समय है वही उत्सर्पिणी का प्रथम समय है ऐसा कथन सगत नहीं होता है क्योंकि आधी ऋतु की परिसमाप्ति होजाती है तो इसका समाधान ऐसा है कि—श्रावणादि प्रावृद् आश्विनादि वर्षा, मार्गशीर्षादि शरत्, माघादि हेमन्त, चैत्रादि वसन्त, और ज्येष्ठादि ग्रीष्म ऋतु हैं । इस रूप से आचार्य ने ऋतुकम कहा है अतः आगम सम्मत अनुमान से इस पक्ष में भी कोई दोष नहीं है ।

अब गौतम स्वामी प्रश्न से ऐसा पूछते हैं—(तीसे णं भने ममाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त इस उत्सर्पिणी काल के प्रथम आरे में भरत क्षेत्र का

शाब्दिक कथन है अने तमे अर्धीं आम कडे। छे के उत्सर्पिणी श्रावण भासना आदीभां प्रवृत्त थाय छे अथी ने चतुर्दश कालेना आदी समय छे ते न उत्सर्पिणीने। प्रथम समय छे, जेवु कथन सगत लागतुं नथी केभके अर्धीं ऋतुनी परिसमाप्ति थयं नथ छे तो आ शंकातु समाधान आ प्रभावे छे के श्रावणादी प्रावृत्त आश्विनादि वर्षा मार्गशीर्षादि शरत् माघादि हेमन्त, चैत्रादि वसन्त अने ज्येष्ठादि ग्रीष्मऋतु छे जे रीते आचार्यो जे ऋतु केभतु वल्लं कथुं छे अथी आगमसम्मत अनुमानथी आ पक्षमां डेअं पणु अतने। दोष नथी

हे गौतम स्वामी प्रश्नने आ प्रभावे पूछे छे के

(तीसेणं भंते समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त ! आ उत्सर्पिणी कालेना प्रथम आरामा भरतक्षेत्रने। केवे। आकार-भाव-प्रत्यवतार

आकारभाव-प्रत्यवतारो (भविस्सइ) भविष्यति ? । भगवानाह (गोयमा !) गौतम !
 (काले भविस्सइ) कालो भविष्यति (हाहाभूए भंभाभूए) हाहाभूतो भंभाभूत. (एव सो
 चेव दूसमदूसमा वेढओ) स एव दुष्पम दुष्पमावेष्टकः=भवसर्पिणी वर्णनप्रसङ्गे पूर्वमुक्तः
 सकलोऽपि दुष्पमदुष्पमावर्णकग्रन्थसन्दर्भो (णेयव्वो) नेतव्यः=उन्नेय । इत्थं दुष्पम-
 दुष्पमां समां वर्णयित्वा सम्प्रति दुष्पमां वर्णयति 'तोसेणं' इत्यादि । (समणाउसो !) हे
 श्रमणायुष्मन् ! (तीसेणं समाए) तस्याः=दुष्पमदुष्पमायाः खलु समायाः (एक्कवीसाए
 वाससहस्सेहिं) एकविशत्या वर्षसहस्रैः प्रणिते (काले वीइक्कंते) व्यतिक्रान्ते=व्यतीते
 सति (अणंतेहि वणणपज्जवेहिं) अनन्तैर्वर्णपर्यवैः (जाव) यावत्-यावत्पदेन-(अणंतेहिं
 रसपज्जवेहिं) इत्यादीनि पूर्वोक्तानि सकलान्यपि पदानि संग्राह्याणि, ततश्च अनन्तवर्णर-
 सादि पर्यायाणामित्यर्थः (अणतगुणपरिवुद्धोए) अनन्तगुणपरिवृद्ध्या (परिवद्धेमाणे २)
 परिवर्द्धमानः परिवर्द्धमानः सन् (एत्थ णं) अत्र खलु उत्सर्पिण्या (दूसमा णामं समा काले)
 दुष्पमा नाम समा कालः (पडिवज्जिस्सइ) प्रतिपत्स्यते=आगमिष्यतीति ॥५५॥

कैसा आकार भाव प्रत्यवतार स्वरूप होगा इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं-(गोयमा) हे गौतम !
 (काले भविस्सइ, हाहाभूए भंभाभूए एवं सोचेव दूसमदूसमा वेढओ) यह काल ऐसा होगा
 कि जैसा अवसर्पिणी काल के वर्णन में छठे आरे का वर्णन हाहाभूत भंभाभूत आदि पदों
 द्वारा किया जा चुका है अतः जैसा वर्णन वहाँ किया गया है वैसा ही वह वर्णन इस प्रसङ्ग
 में यहाँ पर भी जानलेना चाहिये इस प्रकार से उत्सर्पिणी के प्रथम आरे रूप दुष्पम दुष्पमा
 का वर्णन करके अब सूत्रकार इनके द्वितीय आरे का वर्णन के प्रसङ्ग में कहते हैं-(तीसेण समाए
 एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं कठे विइक्कंते) जब उत्सर्पिणी का यह दुष्पमदुष्पमा नाम का
 १ प्रथम काल जो कि २१ हजार वर्ष का है समाप्त होजावेगा तब (अणंतेहिं वणणपज्जवेहिं
 जाव अणंतगुणपरिवुद्धोए परिवद्धेमाणे एत्थणं दूसमा णाम समा काले पडिवज्जिस्सइ) तब धीरे
 २ काल के प्रभाव से अनन्त शुष्कादिवर्ण पर्यायों से यावत् -अनन्त रस आदि पूर्वोक्त पर्यायों
 से अनन्तगुण परिवर्द्धित होता हुआ दूसरा दुष्पमा नाम का आरंभ होगा ॥५५॥

એટલે કે સ્વરૂપ થશે એના જવાબમાં પ્રભુ કહે છે-(ગોયમા ! કાલે ભવિસ્સइ, હાહાભૂપ,
 મંભાભૂપ एवं सो चेव दूसमदूसमावेढओ) એ કાળ એવો થશે કે એવો અવસર્પિણી કાળના
 વર્ણનમાં છઠ્ઠા આરાનું વર્ણન હા હાભૂત, ભંભાભૂત વગેરે પદોવડે રચાઈ કરવામાં આવેલ,
 છે. એથી જ પ્રમાણે ત્યાં વર્ણન કરવામાં આવેલ છે તેવું જ વર્ણન આ પ્રસંગે અહીં પણ
 બધી લેવું જોઈએ આ પ્રમાણે ઉત્સર્પિણીના પ્રથમ આરા રૂપ દુષ્પમ દુષ્પમાનું વર્ણન કરીને
 હવે સત્રકાર એના દ્વિતીય આરાના વર્ણન-પ્રસંગમાં કહે છે-(તીસેણં સમાપ પવ્કવીસાપ
 વાસસહસ્સેહિં કાલે વિइक्कंते) ત્યારે ઉત્સર્પિણીને આ દુષ્પમ દુષ્પમા નામને ૧ પ્રથમ
 કાળ કે જે ૨૧ હજાર વર્ષ જેટલો છે સમાપ થઈ જશે ત્યારે (અણંતેહિં વણ્ણપજ્જવેહિં જાવ
 અણંતગુણપરિવુદ્ધીપ પરિવદ્ધેमाणે એત્થણં દૂસમા ણામં સમા કાલે પડિવજ્જિસ્સइ) ત્યારે ધીરે
 ધીરે કાળના પ્રભાવથી અનંત શુષ્કલાદિ વર્ણ પર્યાયથી યાવત-અનંત રસ આદિ પૂર્વોક્ત
 પર્યાયથી અનંત શુષ્ક પરિવર્દિત, થતો બીજો દુષ્પમા નામક આરાનો આરંભ થશે. ॥૫૫॥

अस्या उत्सर्पिणी दुष्पमायाः अवसर्पिणी दुष्पमाया वैशिष्यमाह-

मूलम्- तेणं कालेणं तेणं समएणं पुक्खलसंवट्टए णामं महामेहे पाउ
 ष्मविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं तदणुरूवं च णं विकखंभवाहल्लेणं
 तए णं से पुक्खलसंवट्टए महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ खिप्पामेव
 पतणतणाइत्ता. खिप्पामेव पविज्जुआइस्सइ, खिप्पामेव पविज्जुआइत्ता,
 खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघंसत्तरत्तं वासं
 वासिस्सइ, जे णं भरहस्स वासस्स मूमिभागं इंगालभूयं मुम्मुरभूयं छारि
 यभूयं तत्तकवेल्लुगभूयं तत्तसमजोइभूयं णिव्वाविस्सतित्ति । तंसि च
 णं पुक्खलसंवट्टगंसि महामेहंसि सत्तरत्तं णिवत्तितंसि समाणंसि एत्थणं
 खीरमेहे णामं महामेहे पाउष्मविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं तद-
 रूवं च णं विकखंभवाहल्लेणं ! तए णं से खीरमेहे णामं महामेहे खिप्पा
 मेव पतणतणाइस्सइ जाव खिप्पामेव जुगमुसलमुट्ठि जाव सत्तरत्तं वासं
 वासिस्सइ, जेणं भरहवासस्स भूमीए वण्णं गंधं रसं फासं च जणइस्सइ,
 तंसि च णं खीरमेहंसि सत्तरत्तं णिवत्तितंसि समाणंसि इत्थणं घयमेहे णामं
 महामेहे पाउष्मविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं. तदणुरूवं च णं विकखं-
 भवाहल्लेणं । तएण से घयमेहे महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ जाव
 वा वासिस्सइ, जे णं भरहस्स वासस्स भूमीए सिणेहभावं जणइस्सइ तंसि
 च णं घयमेहंसि सत्तरत्तं णिवत्तितंसि समाणंसि एत्थणं अमयमेहे णामं
 महामेहे पाउष्मविस्सइ भरहप्पमाणमित्तं आयामेणं जाव वासं वासिस्सइ
 जे णं भरहेवासे रुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वगहरितओसहि पवालं
 रमाइए तणवणस्सइकाइए जणइस्सइ तेसिं च णं अमयमेहंसि सत्तरत्तं णिव-
 त्तितंसिसमाणंसि एत्थ णं रसमेहे नामं महामेहे पाउष्मविस्सइ भरहप्पमाण-
 मित्ता आयामेणं जाव वासं वासिस्सइ जेणं तेसिं बहूणं रुक्खगुच्छ- म्म-
 वलि -तण-पव्वग हरित-ओसहि.पवालं-कुरमादीणं-तित्त-कडुय-
 लय-कसाय-अंबिल-मुहुरे पंचविहे रसविसेसे जणइस्सइ । तए णं भरहे
 वासे भविस्सइ परूढ-रुक्ख-गुच्छ गुम्म-लय-वल्लि-तणपव्वयग-

हरि -ओसहिण उवचिय-तय-पत्तपवालंकुर-पूफ-फल समुद्रण सुहो
वभोगे यावि भविस्सइ ॥ सू ५६ ॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये पुष्करसंवत्तको नाम महामेघ प्रादुर्भवि-
ष्यति-भरतप्रमाणमात्र आयामेन तद्वनुरूपं च खलु विष्कम्भवाहल्येन । ततः खलु स
पुष्करसंवत्तको महामेघः क्षिप्रमेव प्रस्तनिष्यति, क्षिप्रमेव प्रस्तन्य क्षिप्रमेव प्रविद्योतिष्यते,
क्षिप्रमेव प्रविद्युत्य क्षिप्रमेव युग-मुसल-मुष्टि-प्रमाण-मात्राभिर्घांराभि ओघमेघं सप्त-
वर्षं वर्षिष्यति यः खलु भरतस्य वर्षस्य भूमिभागम् अङ्गारभूतं मुमुक्षुभूतं शारिकभूत
तत्रकटाहभूत तप्तसमज्योतिभूत निर्वापयिष्यतीति । तस्मिंश्च खलु पुष्करसंवत्तके महामेघे
रात्रं निपतिते सति अत्र खलु क्षीरमेघो नाम महामेघः प्रादुर्भविष्यति भरतप्रमाणमात्र
आयामेन तद्वनुरूपश्च खलु विष्कम्भवाहल्येन । ततः खलु स क्षीरमेघो नाम महामेघः
क्षिप्रमेव प्रस्तनिष्यति यावत् क्षिप्रमेव युगमुसलमुष्टि यावत् सप्तरात्रं वर्षं वर्षिष्यति, यः
खलु भरतवर्षस्य भूमौ वर्षं गन्ध रसं स्पर्शं च जनयिष्यति, तस्मिंश्च खलु क्षीरमेघे सप्त-
रात्रं निपतिते सति अत्र खलु घृतमेघो नाम महामेघ प्रादुर्भविष्यति भरतप्रमाणमात्र
आयामेन तद्वनुरूपश्च खलु विष्कम्भवाहल्येन । ततः खलु घृतमेघो नाम महामेघः क्षिप्रमेव
प्रस्तनिष्यति यावत् वर्षं वर्षिष्यति, यः खलु भरतस्य वर्षस्य भूमौ स्नेहभावं जनयिष्यति,
तस्मिंश्च खलु घृतमेघे सप्तरात्रे निपतिते सति अत्र खलु अमृतमेघो नाम महामेघ प्रादु-
र्भविष्यति भरतप्रमाणमात्र आयामेन, यावद् वर्षं वर्षिष्यति, यः खलु भारते वर्षे वृक्ष-
गुल्म-लता-वल्ली-दृण-पर्वत-हरितकौ-षधिप्रवाला-इन्द्रादिकान् दृणवनस्पतिऋषिकान्
जनयिष्यति, तस्मिंश्च खलु अमृतमेघे सप्तरात्रं निपतिते सति अत्र खलु रसमेघो नाम
महामेघः प्रादुर्भविष्यति भरतप्रमाणमात्र आयामेन यावद् वर्षं वर्षिष्यति यः खलु तेषां
बहूनां वृक्ष-गुल्म-गुच्छलता-वलि-दृण-पर्वतग-हरितौषधि-प्रवाला-इन्द्रादिकानां तिक-
कडुक-कषाया-म्ल-मधुरान् पत्रविविधान् रसविशेषान् जनयिष्यति । ततः खलु भरतं वर्षं
भविष्यति प्ररूढ वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लता-वल्ली-दृण-पर्वतक-हरितकौ-षधिकम् उपचित्त-
त्वक्पत्र-प्रवाला-इन्द्र-पुष्प-फल-समुदित-सुखोपभोग चापि भविष्यति ॥सू॥ ५६॥

टीका—‘तेणं कालेणं’ इत्यादि । (तेणं कालेणं) तस्मिन् काले=उत्सर्पिण्या द्वितीयार-
कलक्षणे (तेणं समरणं) तस्मिन् समये=उत्सर्पिणीगतद्वितीयारकप्रथमसमये (पुक्खलसंव-

इस उत्सर्पिणी के दुष्प्रमा आरे में अवसर्पिणी के दुष्प्रमा आरे की अपेक्षा जो विशिष्टता
है उसका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं ।

तेणं कालेणं तेणं समरणं पुक्खलसंवट्टणं गामं महामेहे’ इत्यादि.

टीकार्थ—इस उत्सर्पिणी के द्वितीय आरक रूप दुष्प्रमा काल में—इसकाल के प्रथम

आ उत्सर्पिणीना दुष्प्रमा आराभां अवसर्पिणीना दुष्प्रमा आरानी अपेक्षाये ७ विशि-
ष्टता छे तेनु वषुंन करता सूत्रकार कडे छे—

‘ते णं कालेणं तेणं समरणं पुक्खलसंवट्टणं गामं महामेहे’ इत्यादि सू. ५६॥

દુષ્ણામ) પુષ્કલસંવર્તકો નામ-પુષ્કલં=સકલમ્ અથુભાનુભાવરૂપં ભારતવર્ષીયપૃથિવી રૌક્ષ્યદાહાદિકં પ્રગસ્તેન સ્વોદકેન સંવર્તયતિ=દૂરિકરોતિ યઃ સઃ-એતન્નામકો (મહામેહે) મહામેઘઃ (પાઠ્ઠમવિસ્સહ) પ્રાદુર્ભવિષ્પતિ=ઉત્પત્સ્યતે । ક્રિયત્પ્રમાણ ઉત્પત્સ્યતે ? इत्याह- (भरहृष्पमाणमित्ते आयामेणं) भरतप्रमाणमात्र आयामेन=दैर्घ्येण भरतक्षेत्रप्रमाणः एकसप्तत्यधिकं चतुश्शतोत्तरचतुर्दशसहस्रयोजन प्रमाण इत्यर्थः, (तयणुरूवं च णं विकल्पं भवाहल्लेण) तदनुरूपं च खलु विष्कम्भवाहल्लेन-विष्कम्भेण=विस्तारणं वाहल्लेन=स्थौल्येन च खलु=निश्चयेन तदनुरूपः=भरतक्षेत्रप्रमाणानुरूपः । 'तयणुरૂवं' इत्यत्रार्पत्वान्नपुंसकत्वम् एवमग्रेऽपि (तएणं) ततः खलु (से पुक्खलमवदृए) पुष्कलसंवर्तकો नाम (महामेहे) महामेघः पर्जन्यादीन् त्रान् मेघानपेक्ष्य महान्=विशालो मेघो महामेघः (खिप्पामेव) क्षिप्रमेव=झटित्येव (पतणतणाइस्सइ) प्रस्तनिष्यति=प्ररूपेण गर्जिष्यति, (खिप्पामेव पतणतणाइत्ता)

સમય મેં-પુષ્કલસવર્તક નામકા (મહામેહે) મહામેઘ (પાઠ્ઠમવિસ્સહ) પ્રકટ હોગા 'પુષ્કલસવર્તક-એસા જો મહામેઘ કા નામ કહા ગયા હૈં વહ ગુણાનુરૂપ નામ હૈ ક્યોકિ ભરત ક્ષેત્ર કી પૃથિવી કી રુક્ષતા કો દાહકતા આદિ કો જો કિ હસમેં અવસર્પિણી કે છુટે આરે મેં ઓર ઉત્સર્પિણી કે પ્રથમ આરક મેં આગહ થી પ્રશસ્ત અપને ઉદક કે દ્વારા દૂર કર દેતા હૈ । (મરહૃષ્પમાણમિત્તે આયામેણં તયણુરૂવં ચ ણ વિકલ્પમવાહલ્લેણ) હસ પુષ્કલસવર્તક મહામેઘ કા પ્રમાણ જિતના ભરત ક્ષેત્ર કા પ્રમાણ હૈ ઉતના હોગા અર્થાત્ યહ ૧૪૪૭૧ યોજન કા લમ્બા હોગા તથા ભરત ક્ષેત્ર કા જિનના વિષ્કમ્મ ઓર સ્થૌલ્ય હૈ ઉતને હી પ્રમાણવાલા હસકા વિષ્કમ્મ ઓર સ્થૌલ્ય હોગા-“તયણુરૂવ” મેં જો નપુસક લિહ્ન કા નિર્દેશ ક્રિયા ગયા હૈ વહ આર્ષ હોને સે ક્રિયા ગયા હૈ હસી તરહ સે આગે મી જાનના ચાહિયે, (તણ સે પુક્કલસવદૃપ મહામેહે ક્ષિપ્પામેવ પતણતણાહસ્સહ ક્ષિપ્પામેવ પવિજ્જુમાહસ્સહ) હસકે ચાદ વહ પુષ્કલ સવર્તક-પર્જન્યા દિ ત્રીનમેઘોં કી અપેક્ષા વિશાલતાવાલા મહામેઘ વહુત હી શીઘ્રતા સે ગર્જના કરેગા (ક્ષિપ્પામેવ

ટીકાથ-આ ઉત્સર્પિણીના દ્વિતીય આરક રૂપ હૃષ્પમાકાળમાં-આ કાળના પ્રથમ સમયમાં પુષ્કલ સવર્તક નામક (મહામેહે) મહામેઘ (પાઠ્ઠમવિસ્સહ) પ્રકટ થશે પુષ્કલસવર્તક એવુ જે મહામેઘનુ નામ આપવામાં આવેલ છે, તે ગુણાનુરૂપ નામ છે કેમકે ભરતક્ષેત્રની પૃથિવીની રુક્ષતાને-દાહકતા આદિને કે જે એમાં અવસર્પિણીના છૂટા આરામાં અને ઉત્સર્પિણીના પ્રથમ આરકમાં આવી ગઇ હતી-તેને તે મહામેઘ પોતાના પ્રશસ્ત ઉદકવડે દૂર કરી દે છે (મરહૃષ્પમાણમિત્તે આયામેણં “તયણુરૂવં ચ ણ વિકલ્પમવાહલ્લેણ” આ પુષ્કલસવર્તક મહામેઘનુ પ્રમાણ જેટલું ભરતક્ષેત્રનુ પ્રમાણ છે તેટલુ થશે એટલે કે આ ૧૪૪૭૧ યોજન જેટલો લાખો થશે તેમજ ભરતક્ષેત્રનો જેટલો વિષ્કંભ અને સ્થૌલ્ય છે તેટલા જ પ્રમાણ જેટલો આનો વિષ્કંભ અને સ્થૌલ્ય થશે તયણુરૂવ” મા જે નપુસકલિગને। નિર્દેશ કરવામાં આવેલ છે તે આર્ષ હોવાથી કરવામાં આવેલ છે, આ પ્રમાણે જ આગળ પણ સમજવું જોઇએ (તણ ણ સે પુક્કલસવદૃપ મહામેહે ક્ષિપ્પામેવ પતણતણાહસ્સહ ક્ષિપ્પામેવ પવિજ્જુમાહસ્સહ) ત્યાર બાદ તે પુષ્કલ સવર્તક-પર્જન્યાદિ ત્રણ મેઘોની અપેક્ષાએ વિશાલતાવાળો

क्षिप्रमेव प्रस्तन्य=प्रगर्ज्य (खिप्पामेव) क्षिप्रमेव (पविञ्जुआइस्सइ) प्रविद्योतिप्यते=विद्यु-
 द्भिर्युक्तो भविष्यति (खिप्पामेव पविञ्जुआइत्ता) क्षिप्रमेव प्रविद्युत्य (खिप्पामेव) जुगमु-
 सलमुद्विप्पमाणमित्तिहिं युगमुसलमुद्विप्पमाणमात्राभिः युगं=रथ शकटाद्यद्भूतं 'जूआ'
 इति लोकप्रसिद्धम्, मुसलं=प्रसिद्ध, मुष्टिं=वद्धाङ्गुलिकः पाणिः, एतत्प्रमाणा मात्रा यासां
 तामिस्तथाभूताभिः (धाराहिं) धाराभिः (ओहमेहं) ओघमेघम्-ओघेन=सामान्येन प्रवृत्तो
 मेघो यस्मिंस्तत्तथाविधं (सत्तरत्तं) मत्तरात्र=सप्ताहोरात्रान् (वास) वर्षं=वृष्टि (वासिस्सइ)
 वर्षिष्यति करिष्यति (जे ण) यः खलु=यो महामेघः खलु (भरहस्स वासस्स) भरतस्य
 वर्षस्य (भूमिभाग) भूपदेश कोदशं भूभागम् ? उत्पाह -'इंगालभूयं' इत्यादि । (इंगालभूय)
 अङ्गारभूतम्=अङ्गारसदृशं (मुम्भुरभूय) मुम्भुरभूतम्=विस्फुटितप्रदेशाङ्गारतुल्यं (छारियभूय)
 क्षारिकभूतम्=मस्मीभूतं (तत्तकवेल्खुगभूयं) तत्तकटाहभूतं=संतप्तकटाहसदृशमिति । एता-
 दृशं भूभागं (णिग्वाविस्सत्ति) अनर्वापिष्यतीति=शमयिष्यतीति । (तंसि च णं पुक्ख-
 लसंवट्टगंसि महामेहंसि) तस्मिंश्च खलु पुक्खलसंवर्तके महामेघे (सत्तरत्तं)सप्तरात्रं=सप्ता-
 होत्रान् निरन्तरं (णिवत्तितसि समाणसि) निपतिते सति (एत्थ णं) अत्र खलु (खोरमेहे
 णामं महामेहे) क्षोरमेघो नाम महामेघः (पाउभविस्सइ) प्रादुर्भविष्यति=उत्पत्स्यते (भर-

पतणतणाइत्ता) गर्जना करके (खिप्पामेव पविञ्जुआइस्सइ) फिर वह शीघ्र ही विद्युतो-
 विजलियों से युक्त हो जावेगा अर्थात् उसमें-विजलिया चमकेगी (खिप्पामेव पविञ्जुआइत्ता खिप्पा-
 मेव जुगमुसलमुद्विप्पमाणमित्तिहिं ओघमेघ सत्तरत्त वास वासिस्सइ) विजलियों के चमकने बाद
 फिर वहां महामेघ जुआ प्रमाण, मुसल प्रमाण तथा मुष्टि प्रमाण वाली धाराओं से सात दिन रात
 तक कि जिनमें सामान्य रूप से मेघ का सद्भाव रहेगा वर्षा करता रहेगा (जेणं भरहस्स वासस्स
 भूमिप सिणेहमावं जणइस्सइ) यह मेघ भरत क्षेत्र के भू प्रदेश को कि जो अङ्गार के जैसा एवं
 तुषाग्नि के जैसा बन रहा था और मस्मीभूत हो चुका था तथा तप्त कटाह के जैसा जल रहा
 था बिलकुल शान्त कर देगा-शीतल कर देगा-(तंसि च ण पुक्खलसवट्टगंसि महामेहंसि) इस प्रकार
 उस पुक्खल संवर्तक महामेघ के (सत्तरत्तं णिवत्तितसि समाणसि) सात दिन रात तक निरन्तर वर-

महामेघ अतीव शीघ्रताथी गर्जना करे (खिप्पामेव पतणतणाइत्ता) गर्जना करीने (खि-
 प्पामेव पविञ्जुआइस्सइ) पछी ते शीघ्र विद्युतोथी युक्त थशे जेट्ठे के तेमांथी वीरणी
 ओ अमकशे (खिप्पामेव पविञ्जुआइत्ता खिप्पामेव जुगमुसलमुद्विप्पमाणमित्तिहिं ओघमेघ-
 सत्तरत्त वासं वासिस्सइ) वीरणीओना अमकवा भाइ पछी ते महामेघ थूका प्रभाणु, भूसल
 प्रभाणु तथा मुष्टि प्रभाणु जेवी धाराओथी सात दिवस सुधी के जेमां सामान्यइपथी मेघ-
 नेा सद्वभाव रडेथे वर्षा करतो रडेथे (जे णं भरहस्स वासस्स भूमिप सिणेहमावं जणइस्सइ)
 आ मेघ भरतक्षेत्रना भूपदेशने के जे अ गार जेवे। तेमअ तुषाग्नि जेवे थर्थ रथी छे अने
 भरमीभूत थर्थ थूथे। छतो तथा तप्त कटाहनी जेम सणगी रथी छतो तेने सग्णुत्ताः शान्त
 करथे, शीतल करथे (तंसि च णं पुक्खलसवट्टगंसि महामेहंसि) आ प्रभाणु ते पुक्खलसवर्तक
 महामेघ (सत्तरत्तं णिवत्तितसि समाणसि) सात दिवस-रात्रि सुधी सतत वरसथे त्थार भाइ

इप्पमाणमेत्ते आयामेण) भरतप्रमाणमात्र आयामेन (तयणुरूवं च णं विक्खंमवाहल्लेणं) तदनु रूपश्च खलु विक्कम्भवाहल्लेन । (तए णं) ततः खलु (से खीरमेहे णामं महामेहे) स क्षीरमेघो नाम महामेघः (खिप्पामेव) क्षिप्रमेव (पतणतणाइस्सइ) प्रस्ननिप्यति, (जाव खिप्पामेव जुगमुसल्लमुट्ठि जाव सत्तरत्त वासं वासिस्सइ) यावत् क्षिप्रमेव युगमुसल्लमुट्ठि यावत् सप्तरात्र वर्षं वर्षिप्यति । अत्र यावत्पदसंग्राहयार्णि पदानि अस्मिन्नेव सूत्रे पूर्वोक्तानि अनुसन्नेयानि, व्याख्याऽपि तत एवाऽवबोध्येति । (जे णं) यः खलु क्षीरमेघो नाम महामेघः खलु (भरहवासस्स भूमीए) भरतवर्षस्य भूमेः (वण्णं गन्धं रसं फासं च जणइस्सइ) वर्णं गन्धं रसं स्पर्शं च जनयिप्यति । वर्णादयश्चात्र शुभा एव ग्राह्या, येभ्यो लोकः सुखमनुभवति, अशुभवर्णादयस्तु प्राक्कालिकाः सन्त्येवेति । अत्रेदं शङ्कते—यदि क्षीरमेघः शुभवर्णादीन् जनयति, तदा तरुपत्रादिषु नीलो वर्णः, जम्बूफलादिषु कृष्णो, मरीचादिषु कटुको रसः कारवेल्लादिषु तिक्तः, चरणकादिषु रूक्षः स्पर्शः, सुवर्णादिषु

सने पर (एत्थण खीरमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ) फिर यहां क्षीरमेघ नाम का महामेघप्रकटित होगा (भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं) इसको भी लम्बाई भरत क्षेत्र प्रमाण जितनी होगी (तयणुरूवं च णं विक्खंमवाहल्लेण) और भरत क्षेत्र प्रमाण ही इसका विक्कम्भ और वाहल्य होगा (तएण से खीरमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ) वह क्षीरमेघ बहुत ही जल्दी गर्जना करेगा (जाव खिप्पामेव जुगमुसल्लमुट्ठि जाव सत्तरत्त वासं वासिस्सइ) यावत् वह बहुतही शीघ्रता के साथ विजुलियों को चमकावेगा और बहुत ही शीघ्र फिर वह जुमा प्रमाण मुसल्ल प्रमाण और मुट्ठि प्रमाण वाली घराओं से सात दिन रात तक वर्षा करता रहेगा (जे णं भरहवासस्स भूमीए वण्णं गन्धं रसं फासं च जणइस्सइ) इससे वह क्षीरमेघ भरत क्षेत्र की भूमि के वर्ण, गंध रस, और स्पर्श को शुभ बनादेगा—क्योंकि इसके पहिले वहां के वर्णादिक अशुभ थे यहा कोई ऐसी आशंका कर सकता है कि यदि क्षीर मेघ शुभवर्णादिको को कर देता है तो फिर तरुपत्रादिको में नील, जम्बूफलादिको में कृष्णवर्ण, मरीचादिको में कटु रस, करेला

एत्थ णं खीरमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ) अही क्षीरमेघ नामक महामेघ प्रकट थये (भरहप्पमाणमेत्ते आयामेणं) अनी ए भाधं पथु भरतक्षेत्रना प्रभाषु णेट्ठी थये (तयणुरूवं च णं विक्खंमवाहल्लेणं) अने भरतक्षेत्र प्रभाषु ञ् अनेो विष्कल अने भाहल्य थये (तएण से खीरमेहे णामं महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ) ते क्षीर मेघ नामनेो महामेघ भहु ञ् शीघ्र गर्जना करथे (जाव खिप्पामेव जुगमुसल्लमुट्ठिजाव सत्तरत्त वासं वासिस्सइ) यावत् ते अतीव शीघ्रताथी वीज्जणीओ अभकावथे अने भहु ञ् शीघ्रताथी ते थुका प्रभाषु, भूसल्ल प्रभाषु अने मुट्ठि प्रभाषु णेट्ठी धाराओथी सात द्विपस—रात्रि सुधी वर्षा करतो रडेथे (जे णं भरहवासस्स भूमीए वण्णं गन्धं रसं फासं च जण) अथी ते क्षीरमेघ भरतक्षेत्रनी भूमिना वष्णुं, गन्धं, रसं अने स्पर्शंने शुभ बनावी देशे केभडे अनेो पहिले त्थाना वष्णुदिके अशुभ हुतां . अही केधं अवी आशंका करी शके छे के जे क्षीरमेघ वष्णुदिकेने शुभ करी डे छे तो थकी तरु-पत्रादिकेभा नील, ञ् यूसलादिकेभा कृष्ण वष्णुं, मरीचादिकेभा

शुरु', क्रकचादिषु स्वरः—इत्याद्योऽशुभवर्णादयः कथं संभवन्ति ? इति चेदाह—यद्यपि नीलाद्योऽशुभपरिणामा , तथापि तेऽनुकूलवेद्यतया शुभा एव । यथा श्वेतो वर्णो यद्यपि शुभ एव, तथापि कुष्ठादिगतः प्रतिकूलवेद्यतयाऽशुभ एव भवतीति । (तंसि च णं खीरमेहसि सत्तरत्तसि णि वत्तितंसि समाणसि) तस्मिंश्च खलु क्षीरमेघे सप्तरात्रं निपतिते सति (एत्थ णं) अत्र खलु (घयमेहे णामं महामेहे) घृतमेघो नाम महामेघः (पाउब्भविस्सइ) प्रादुर्भविष्यति (भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं, तयणुरूवं च णं विक्खमेणं) भरतप्रमाणमात्र आयामेन तदनुरूपश्च खलु विष्कभवाहस्येन (तएणं से घयमेहे णाम महामेहे) ततः खलु स घृतमेघो नाम महामेघ (खिप्पामेव) क्षिप्रमेव (पतणतणाइस्सइ) प्रस्तनिष्यति (जाव वास वासिरसइ) यावत् वर्षं वर्षिष्यति, (जे णं भरहस्स वासस्स भूमिए सिणेहभावं जणइस्सइ) यः खलु भरतस्य वर्षस्य भूमौ स्नेहभावं=स्निग्धतां जनयिष्यति (तंसि च णं घयमेहसि सत्तरत्तं णि वत्तितंसि समाणसि) तस्मिंश्च खलु घृतमेघे सप्तरात्रं निपतिते सति, (एत्थण) अत्र

आदि में तिक रस चणा आदि में रूक्ष स्पर्श, सुवर्ण आदिको में गुरुस्पर्श, क्रकच, करोत, आदि में कठोर स्पर्श, इत्यादि ये अशुभ वर्णादिक कैसे सम्भवित होते हैं ? तो इसका उत्तर ऐसा है— कि यद्यपि नीलादिक अशुभ परिणाम रूप हैं परन्तु ये अनुकूल वेद्य होने के कारण शुभ ही हैं, जैसे श्वेतवर्ण यद्यपि शुभ ही होता है, परन्तु जब यह कुष्ठादिगत होता है तो वह प्रतिकूल वेद्य होने से अशुभरूप ही होता है (तसि णं खीरमेहसि सत्तरत्तसि णि वत्तितंसि समाणसि) जब वह क्षीरमेघ सात दिन राततक बराबर—निरन्तर-वसता रहेगा—तब उसके अनन्तर ही (घयमेहे णाम महामेहे) यहां घृतमेघ नाम का महामेघ (पाउब्भविस्सइ) प्रकट होगा यह मेघ भी (भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं तयणुरूवं च णं विक्खमेणं बाहल्लेण) भरत क्षेत्र—प्रमाण लम्बा होगा और भरतक्षेत्र प्रमाण ही चौड़ा और मोटा होगा (तएण से घयमेहे णाम महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ) प्रकट होने के बाद ही वह घृतमेघ गर्जना करेगा—(जाव वास वासिरसइ) यावत् वर्षा करेगा (जे णं भरहस्स वासस्स भूमिए सिणेहभावं जणइस्सइ) इससे भरत क्षेत्र की भूमि में स्नेह भाव—

कटुरस, कारेला वगेरेभा तिकतरस, अण्णा आदिमां इक्ष-स्पर्श, सुवर्ण आदिकेभा गुरुस्पर्श कथं-करवत वगेरेभा कठोर स्पर्श वगेरे अशुभ वर्णादिके केवी रीते संभवित होय छे ? तो आने जवाण आ प्रभाषे छे के नीलादिक जे के अशुभपरिणाम रूप छे पण्ण जे जे अनुकूल वेद्य होवाथी शुभ न छे जे श्वेतवर्ण शुभ न होय छे, परन्तु अथारे जे कुष्ठादिगत होय छे तो ते प्रतिकूल वेद्य होवाथी अशुभ रूप गणाय छे (तसि णं खीरमेहसि सत्तरत्तसि णि वत्तितंसि समाणसि) अथारे ते क्षीरमेघ सात दिवस अने रात सुधी सतत वर्षतो रहेशे, त्थारभाह (घयमेहे णामं महामेहे) अही घृतमेघ नामक महामेघ (पाउब्भविस्सइ) प्रकट थेशे आ मेघ पण्ण (भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं तयणुरूवं च णं विक्खमेणं बाहल्लेणं) भरतक्षेत्र प्रभाषे जेटवी थोडाथ वाणे अने विशाण हेशे. (तएण से घयमेहे णाम महामेहे खिप्पामेव पतणतणाइस्सइ) प्रकट थवाभाह ते घृतमेघ गण-ना करेशे (जाव वास वासिरसइ) यावत् वर्षा करेशे. (जे णं भरहस्स वासस्स भूमिए सिणेहभावं जणइस्सइ)

खलु (अमयमेहे णाम महामेहे पाउम्भोरोमड भरहप्पमाणमित्ते आयामेणं जाव वासं वा-
सिस्सइ) अमृतमेवो नाम महामेघः प्रादुर्भविष्यति भरतप्रमाणमात्र आयामेन यावद्
वर्षं वर्षिष्यति (जे णं) यः खलु=योऽमृतमेघः खलु (भरहे वासे) भरते वर्षे (रुक्ख-गुच्छ-
गुम्म-लय-वल्लि- तण- पव्वग-हरितग-ओसहिपवाल--कुरमाइए) वृक्ष-गुच्छ-
गुल्म-लता-बल्ली-तृण-पर्वग-हरितगो-पधि- प्रवालाङ्कुगदिकान्-वृक्षाः-शाखिनः,
गुच्छाः=स्तवका गुल्माः स्कन्धरहिता वनस्पतिविशेषाः, लताबल्लीति पदद्वयं यद्यपि
समानार्थक तथापि कथंचिद् भेदमुपादाय पदद्वयमुपात्तम्, तृणानि=उशीरादीनि, पर्वगाः
=पर्वजा इक्षुप्रभृतयः हरितकानि=दूर्वादीनि, ओप-यः=शाल्यादयः, प्रवालाः=पल्ल-
वाः, अङ्कुरा. =त्रीणादिवीजसूचय, उत्पेते आदौ=प्रारम्भे येषां ते तथा तान् (तणवण-
स्सइकाइए) तृणवनस्पतिकायिकान् वादरवनस्पतिकायिकान् (जणइस्सइ) जनयिष्यति=
उत्पादयिष्यति (तंसि च ण अमयमेहंसि) तस्मिंश्च खलु अमृतमेवे सत्तरत्तं णिवत्तिंतंसि
समाणसि) सप्ररात्रं निपतिते सति. (एत्थ णं) अत्र खलु पठचमो (रसमेहे णाम महा-

स्निग्धताहो जावेगी (तंसि च ण अमयमेहंसि सत्तरत्तं णिवत्तिंतंसि समाणसि) इस तरह यह वृत्तमेघ
सात दिन रात तक लगातार वर्षता रहेगा इसी के अनन्तर (एत्थण अमयमेहे पाउम्भ-
विस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेण जाव वासं वासिस्सइ) यहा अमृतमेघ नामका महामेघ
प्रकट होगा यह लम्बाई में चौड़ाई में और स्थूलता में भरतक्षेत्र की लम्बाई चौड़ाई एवं
स्थूलता के ही बराबर होगा यह भी सात दिन रात तक अमृत की वरसा करता
रहेगा (जे ण भरहे वासे रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरितग-ओसहि-पवाल
कुरमाइए) यह मेघ भरत क्षेत्र में वृक्षों को, गुच्छों को, स्कन्ध रहित वनस्पतिविशेषों को,
लताओं को, बल्लियों को, उशीरादिक तृणों को, पर्वज इक्षु आदिकों को दूर्वादिक हरी
वनस्पति को, शाली आदिक औषधियों को, पत्ते आदिरूप प्रवाल को ब्रह्मि आदि वीज सूवी-
मृत अङ्कुरों को इत्यादि बादर वनस्पति कायिकों को उत्पन्न करेगा (तंसि च णं अमयमेहंसि-

आथी भरतक्षेत्रनी भूमिमां स्नेहभाव-स्निग्धता यथं ज्ञेशे, (तंसि च ण अमयमेहंसि सत्तरत्तं
णिवत्तितंसि समाणसि) आ प्रभाण्णे आ धृतमेघ सातदिवस अने रात सुधी सतत वर्षते।
रहेशे त्थारभाह (एत्थ ण अमयमेहे पाउम्भविस्सइ भरहप्पमाणमित्ते आयामेण जाव वासं
वासिस्सइ) अही अमृतमेघ नामक मंडामेघ प्रकट थेशे आ मेघ ल भाई पडोणाई अने
स्थूलतामा भरतक्षेत्र नेटको ल भाई, पडोणाई अने स्थूलवाणो थेशे आ पणु सात दिवस
अने रात सुधी अमृतनी वर्षां करेशे (जे ण भरहे वासे रुक्ख-गुच्छ गुम्म-लय-वल्लि-तण
पव्वग-हरितग-ओसहि-पवालंकुरमाइए) आ मेऽ भरत क्षेत्रमा वृक्षीने, गुच्छीने, स्कन्ध-
रहित वनस्पति विशेषीने, लताओंने, वल्लिओंने अशीरादिक तृणोने, पर्वज इक्षु आदि
कोने इर्वादि लीली वनस्पतिने, शाली आदिक औषधिओंने, पादडा आदि रूप प्रवालीने,
त्रीडि आदि भीज सूवीभूत अङ्कुरोने इत्यादि बादरवनस्पतिकायिकोने उत्पन्न करेशे (तं
सि च णं अमयमेहंसि सत्तरत्तं णिवत्तितंसि समाणसि) आ प्रभाण्णे अमृतमेघ सात दिवस अने

मेहे) रसमेधो नाम महामेघः (पाउब्भविस्सइ) प्रादुर्भविष्यति (भरहृप्पमाणमित्ते आयामेणं) भरतप्रमाणमात्रं आयामेन (जाव वासं वासिस्सइ) यावद वर्षं वर्षिष्यति (जे णं) यः खलु (तेसिं) तेषां=पूर्वोक्तानां (वहूणं) वहूनां=बहुसंख्यकानां (रुक्ख-गुच्छ गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालं-कुरमाईणं) वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लता-वल्ली-तृण-पर्वग हरितौ-पथि-प्रवाला-कुंरादीनां (तित्त-कडुय-रुमाय-महुरे) तिक्त-कटुक-कषायाम्ब-मधुरान् (पचविहे रसविसेसे) पञ्चविधान् रसविशेषान्-तिक्तादीन् पञ्च-प्रकारान् रसान् (जणइस्सइ) जनयिष्यति=उत्पादयिष्यति । पञ्चविधेषु रसेषु तिक्ती रसो निम्बादिषु, कटुको मरीचादिषु, कषायो हरोतक्यादिषु, अम्लश्चिञ्चादिषु, मधुरश्च शर्करादिषु बोध्यः । लवणरसस्य मधुरादि समर्गजत्वेन न पृथगुपन्यासः । पञ्चानां प्रयोजनं यद्यपि सूत्रे एव प्रोक्तं तथापि स्फुटतरप्रतिपत्तये पुनरुप्यत्रोच्यते तथाहि-पुष्कल-

सत्तरत्त णिवत्तिसि समाणंसे) इस प्रकार से यह अमृतमेघ सात दिन रात तक वरमता रहेगा-इमी के भीतर (एत्थणं रसमेहे णामं मह मेहे पाउब्भविस्सइ) यहा एक और महामेघ प्रकट होगा- जिसका नाम रसमेघ होगा. यह रसमेघ भी (भरहृप्पमाणमित्ते आयामेण जाव वास वासिस्सइ) । लम्बाई चौड़ाई एव स्थूलता में भरत क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई और स्थूलता के बराबर का होगा और यह भी भरतक्षेत्र की भूमिपर सात दिन रात तक लगातार वर्षता रहेगा (जेण वहूण रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालंकुरमाईणं तित्त, कडुय-कसाय-अंबिल-महुरे) यह रस मेव अनेक वृक्षां मे, गुच्छों मे, गुल्मों मे, लताओं मे वल्लियों में, तृणों में पर्वतो में हरित दुर्वादिकों में औषधियों में प्रवालो मे और अकुरादिकों मे तिक्त, कटुक, कषायला, आम्ल और मधुर (पचविहे रसविसेसे) इन पांच प्रकार के रसविशेषों को (जणइस्सइ) उत्पन्न करेगा. इन पांच प्रकार के रसों मे तिक्तरसनिम्ब आदिकों में, कटुक रस मरीच आदिकों में कषायरस हरोतकी आदिकों में, अम्लरस चिञ्चा ईमली आदिकों मे और मधुर रस शर्करा आदिकों में होता है लवणरस मधुरादि के समर्ग से उत्पन्न होता है.

रात सुधी वर्षतो रडेशे. आनी अहर ७ (एत्थ णं रसमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ) अही अक णीजे महामेघ प्रकट थेशे जेनु नाम रसमेघ डेशे आ रसमेघ पषु (भरहृप्प माणमित्ते आयामेणं जाव वासं वासिस्सइ) लंभाई, पडोण्ण्णं अने स्थूलतामां भरतक्षेत्रना प्रमाण्ण्णं डेशे आ पषु भरतक्षेत्रनी भूमिपर सात दिवस अने रात सुधी सतत वर्षतो रडेशे । जेण वहूण रुक्खगुच्छ गुम्मलय वल्लि तण पव्वग हरित ओसहि पवालंकुरमाईणं तित्त, कडुय कसायअंबिल महुरे) अ रसमेघ अनेक वृक्षांमा, गुच्छांमा, गुल्मांमा, लतांमा, वल्लिंमा, तृणंमा पर्वतोमा, हरित दुर्वादिकेमां, औषधिंमां, प्रवालींमा अने अंकुरादि-केमा तिक्त, कटुक, कषायला, आम्ल अने मधुर (पचविहे रसविसेसे) अ पांच प्रकारना रसवि-शेषेने (जणइस्सइ) उत्पन्न करेशे अ पांच प्रकारना रसोमा तिक्तरस नि ण आदिकेमां, कटुक रस मरीच आदिकेमा कषायरस हरोतकी आदिकेमा, अम्लरस चिञ्चा आ इमली आदिकेमा अने मधुररस शर्करा आदिकेमा डेशे अ लवणरस मधुरादिकेमा स सर्गथी उत्पन्न थाय अ अथी

मेहे) रसमेघो नाम महामेघः (पाउब्भविस्सइ) प्रादुर्भविष्यति (भरहृप्पमाणमित्ते आयामेणं) भरतप्रमाणमात्रं आयामेन (जाव वासं वासिस्सइ) यावद् वर्षं वर्षिष्यति (जे णं) यः खलु (तेसिं) तेषां=पूर्वोक्तानां (बहूणं) बहूनां=बहुसंख्यकानां (रुक्ख गुच्छ गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालं-कुरमाईण) वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लता-वल्ली-तृण-पर्वग हरितौ-पधि-प्रवाला-कुंरादीनां (तित्त-कडुय-कसाय-महुरे) तिक्त-कटुक-कषायाम्ब-मधुरान् (पचविहे रसविसेसे) पञ्चविधान् रसविशेषान्-तिक्तादीन् पञ्च-प्रकारान् रसान् (जणइस्सइ) जनयिष्यति=उत्पादयिष्यति । पञ्चविधेषु रसेषु तिक्ततो रसो निम्वादिषु, कटुको मरीचादिषु, कषायो हरोतक्यादिषु, अम्लश्चिञ्चादिषु, मधुरश्च शर्करादिषु बोध्यः । लवणरसस्य मधुरादि समर्गजत्वेन न पृथगुपन्यासः । पञ्चाना प्रयोजनं यद्यपि सूत्रे एव प्रोक्तं तथापि स्फुटतरप्रतिपत्तये पुनरप्यत्रोच्यते तथाहि-पुष्कल-

सत्तरत्त णिवत्तिसि समारणसे) इम प्रकार से यह अमृतमेघ सात दिन रात तक बरसता रहेगा-इमी के भीतर (एत्थणं रसमेहे णामं मह मेहे पाउब्भविस्सइ) यहा एक और महामेघ जकट होगा- जिसका नाम रसमेघ होगा. यह रसमेघ मा (भरहृप्पमाणमित्ते आयामेण जाव वास वासिस्सइ) । लम्बाई चौड़ाई एवं स्थूलता में भरत क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई और स्थूलता के बराबर का होगा और यह भी भरतक्षेत्र की भूमिपर सात दिन रात तक लगातार वर्षता रहेगा (जेण बहूण रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालं-कुरमाईणं तित्त, कडुय-कसाय-अंबिलि-महुरे) यह रस मेव अनेक वृक्षां मे, गुच्छों मे, गुल्मों मे, लताओं मे वल्लियों में, तृणों में पर्वतो मे हरित दुर्वादिकों में औषधियों में प्रवालो मे और अकुरादिकों में तिक्त, कटुक, कषायला, आम्ल और मधुर (पचविहे रसविसेसे) इन पांच प्रकार के रसविशेषो को (जणइस्सइ) उत्पन्न करेगा. इन पाच प्रकार के रसो मे तिक्तरसनिम्ब आदिको मे, कटुक रस मरीच आदिकों में कषायरस हरोतकी आदिकों मे, अम्लरस चिञ्चा ईमली आदिको मे और मधुर रस शर्करा आदिकों में होता है लवणरस मधुरादि के समर्ग से उत्पन्न होता है.

रात सुधी वर्षतो रडेशे. आनी अ इर व (एत्थ णं रसमेहे णामं महामेहे पाउब्भविस्सइ) अही अेक भीजे महामेघ प्रकट थसे जेतु नाम रसमेघ डथे आ रसमेघ पषु (भरहृप्पमाणमित्ते आयामेणं जाव वासं वासिस्सइ) लंभाई, पडोणाई अने स्थूलतामा भरतक्षेत्रना प्रमाण जेटवो डथे आ पषु भरतक्षेत्रनी भूमिपर सात दिवस अने रात सुधी सतत वर्षतो रडेशे (जेण बहूण रुक्खगुच्छ गुम्मलय वल्लि तण पव्वग हरित ओसहि पवालंकुरमाईणं तित्त, कडुय कसायअंबिलि महुरे) अे रसमेघ अनेक वृक्षांमा, गुच्छांमा, गुल्मांमा, लताओमा, वल्लिओमा, तृणोमा पर्वतोमा, हरित दुर्वादिओमा, औषधिओमां, प्रवालोमा अने अंकुरादि-ओमा तिक्ता, कटुक, कषायला, आम्ल अने मधुर (पचविहे रसविसेसे) अे पाच प्रकारना रसवि-शेषोने (जणइस्सइ) उत्पन्न करथे अे पाच प्रकारना रसोमा तिक्तरस निम्ब आदिओमा, कटुक रस मरीच आदिओमा कषायरस हरोतकी आदिओमा, अम्लरस चिञ्चा आमली आदिओमा अने मधुररस शर्करा आदिओमा डोय छे लवणरस मधुरादिओना समर्गथी उत्पन्न थाय छे अेथी

खलु (अमयमेहे णाम मयमेहे पाउम्भवेरमः भरहृत्पमाणमित्ते आयामेणं जाव वासं वा-
सिस्सइ) अमृतमेवो नाम महामेघः प्रादुर्भविष्यति भरतप्रमाणमात्र आयामेन यावद्
वर्षं वर्षिष्यति (जे णं) यः खलु=योऽमृतमेघः खलु (भरहे वासे) भरते वर्षे (रुक्ख-गुच्छ-
गुम्म-लय-वल्लि- तण- पव्वग-हरितग-ओसहिपवाल-कुरमाइए) वृक्ष-गुच्छ-
गुल्म-लता-वल्ली-तृण-पर्वग-हरितकौ-पधि- प्रवालाङ्कुरादिकान्-वृक्षाः=शाखिनः,
गुच्छाः=स्तवका गुल्माः स्कन्धरहिता वनस्पतिविशेषाः, लतावल्लीति पदद्वयं यद्यपि
समानार्थक तथापि कथचिद् भेदमुपादाय पदद्वयमुपात्तम्, तृणानि=उशीरादीनि, पर्वगाः
=पर्वजा इक्षुप्रभृतयः हरितकानि=दूर्वादीनि, ओषध्यः=शाल्यादयः, प्रवालाः=पल्ल-
वाः, अङ्कुराः=त्रीह्यादिवीजसूचय, इत्येते आदौ=प्रारम्भे येषां ते तथा तान् (तणवण-
स्सइकाइए) तृणवनस्पतिकायिकान् वादरवनस्पतिकायिकान् (जणइस्सइ) जनयिष्यति=
उत्पादयिष्यति (तंसि च ण अमयमेहंसि) तस्मिंश्च खलु अमृतमेघे सत्तरत्तं णिवत्तितंसि
समाणसि) सप्ररात्रं निपतिते सति, (एत्थ णं) अत्र खलु पठ्चमो (रसमेहे णामं महा-

स्निग्धताहो जावेगी (तसि च णं घयमेहंसि सत्तरत्त णिवत्तितंसि समाणसि) इस तरह यह घृत्तमेघ
सात दिन रात तक लगातार वर्षता रहेगा इसी के अनन्तर (एत्थण अमयमेहे पाउम्भ-
विस्सइ भरहृत्पमाणमित्ते आयामेण जाव वास वासिस्सइ) यहां अमृतमेघ नामका महामेघ
प्रकट होगा यह लम्बाई में चौड़ाई में और स्थूलता में भरतक्षेत्र की लम्बाई चौड़ाई एव
स्थूलता के ही बराबर होगा यह भी सात दिन रात तक अमृत की वरसा करता
रहेगा (जे ण भरहे वासे रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरितग-ओसहि-पवाल
कुरमाइए) यह मेघ भरत क्षेत्र में वृक्षों को, गुच्छों को, स्कन्ध रहित वनस्पतिविशेषों को,
लताओं को, बल्लिओं को, अशीरादिक तृणों को, पर्वज इक्षु आदिकों को दूर्वादिक हरी
वनस्पति को, शाली आदिक औषधियों को, पत्ते आदिरूप प्रवालो को ब्रह्मि आदि बीज सूचो-
भूत अङ्कुरो को इत्यादि बादर वनस्पति कायिकों को उत्पन्न करेगा (तंसि च णं अमयमेहंसि-

आधी भरतक्षेत्रनी भूमिमा स्नेहभाव-स्निग्धता यथं भवे, (तंसि च णं घयमेहंसि सत्तरत्त
णिवत्तितंसि समाणसि) आ प्रभाण्णे आ धृतमेघ सातदिवस अने रात सुधी सतत वर्षता
रहेशे त्थारभाह (एत्थ ण अमयमेहे पाउम्भविस्सइ भरहृत्पमाणमित्ते आयामेण जाव वासं
वासिस्सइ) अङ्गी अमृतमेघ नामक मडांमेघ प्रकट थेशे आ मेघ ल भाधं पडोणाधं अने
स्थूलतामा भरतक्षेत्र नेटवी ह भाधं, पडोणाधं अने स्थूलवाणे थेशे आ पणु सात दिवस
अने रात सुधी अमृतनी वर्षा करेशे (जे ण भरहे वासे रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण
पव्वग-हरितग-ओसहि-पवाल-कुरमाइए) आ ये भरत क्षेत्रमा वृक्षोने, गुच्छोने, स्कन्ध-
रहित वनस्पति विशेषोने, लताओने, वहिदओने अशीरादिक तृणोने, पर्वज इक्षु आदि
ओने दूर्वादिक लीली वनस्पतिने, शाली आदिक औषधिओने, पादडा आदि इय प्रवालोने,
त्रीह्मि आदि औष सूचोभूत अङ्कुरोने इत्यादि बादरवनस्पतिकायिकोने उत्पन्न करेशे (तं
सि च णं अमयमेहंसि सत्तरत्त णिवत्तितंसि समाणसि) आ प्रभाण्णे अमृतमेघ सात दिवस अने

मेहे) रसमेघो नाम महामेघः (पाठम्भविस्सइ) प्रादुर्भविष्यति (भरहृष्पमाणमित्ते आयामेणं) भरतप्रमाणमात्रं आयामेन (जाव वासं वासिस्सइ) यावद् वर्षं वर्षिष्यति (जे णं) यः खलु (तेसिं) तेषां=पूर्वोक्ताना (बहूणं) बहूनां=बहुसंख्यकाना (रुक्ख गुच्छ गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालं-कुरमाईणं) वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लता-वल्ली-तण-पर्वग हरितौ-पधि-प्रवाला-कुरादीनां (तित्त-कट्ठय-हमाय-महुरे) तिक्त-कटुक-कषायाम्ब-मधुरान् (पचविहे रसविसेसे) पञ्चविधान् रसविशेषान्-तिक्तादीन् पञ्च-प्रकारान् रसान् (जणइस्सइ) जनयिष्यति=उत्पादयिष्यति । पञ्चविधेषु रमेषु तिक्तो रसो निम्बादिषु, कटुको मरीचादिषु, कषायो हरीतक्यादिषु, अम्लश्चिञ्चादिषु, मधुरश्च शर्करादिषु बोध्यः । लवणरसस्य मधुरादि समर्गजत्वेन न पृथगुपन्यासः । पञ्चानां प्रयोजनं यद्यपि सूत्रे एव प्रोक्तं तथापि स्फुटतरप्रतिपत्तये पुनरप्यत्रोच्यते तथाहि-पुष्कल-

सत्तरत्त णिवत्तिसि समणंसे) इम प्रकार से यह अमृतमेघ सात दिन रात तक बरसता रहेगा-इमी के भीतर (एत्थणं रसमेहे णामं मह मेहे पाठम्भविस्सइ) यहा एक और महामेघ प्रकट होगा- जिसका नाम रसमेघ होगा. यह रसमेघ भा (भरहृष्पमाणमित्ते आयामेण जाव वास वासिस्सइ) । लम्बाई चौड़ाई एव स्थूलता में भरत क्षेत्र की लम्बाई, चौड़ाई और स्थूलता के बराबर का होगा और यह भी भरतक्षेत्र की भूमिपर सात दिन रात तक लगातार वर्षता रहेगा (जेण बहूण रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरित-ओसहि-पवालंकुरमाईणं तित्त, कट्ठय-कसाय-अंबिल-महुरे) यह रस मेघ अनेक वृक्षा में, गुच्छों में, गुल्मों में, लताओं में वल्लियों में, तणों में पर्वतों में हरित दुर्वादिकों में औषधियों में प्रवालों में और अकुरादिकों में तिक्त, कटुक, कषायला, आम्ब और मधुर (पचविहे रसविसेसे) इन पांच प्रकार के रसविशेषों को (जणइस्सइ) उत्पन्न करेगा इन पांच प्रकार के रसों में तिक्तरसनिम्ब आदिकों में, कटुक रस मरीच आदिकों में कषायरस हरीतकी आदिकों में, अम्बरस चिञ्चा ईमली आदिकों में और मधुर रस शर्करा आदिकों में होता है लवणरस मधुरादि के समर्ग से उत्पन्न होता है.

रात सुधी वर्षतो रडेसे. आनी अहर ७ (एत्थ णं रसमेहे णामं महामेहे पाठम्भविस्सइ) अही अेक भीजे महामेघ प्रकट थसे जेनु नाम रसमेघ डसे आ रसमेघ पषु (भरहृष्प माणमित्ते आयामेण जाव वासं वासिस्सइ) लंभाई, पडेणार्थि अने स्थूलताभा भरतक्षेत्रना प्रभाषु जेटेही डसे आ पषु भरतक्षेत्रनी भूमिपर सात दिवस अने रात सुधी सतत वर्षतो रडेसे (जेण बहूण रुक्खगुच्छ गुम्मलय वल्लि तण पव्वग हरित ओसहि पवालंकुरमाईणं तित्त, कट्ठय कसायअंबिल महुरे) अे रसमेघ अनेक वृक्षाभा, गुच्छाभा, गुल्माभा, लताओभा, वल्लिओभा, तणोभा पर्वतोभा, हरित दुर्वादिओभा, औषधियोभा, प्रवालोभा अने अकुरादि-ओभा तिक्त, कटुक, कषायला, आम्ब अने मधुर (पचविहे रसविसेसे) अे पाच प्रकारना रसवि-शेषेने (जणइस्सइ) उत्पन्न करसे अे पाच प्रकारना रसोभा तिक्तरस निम्ब आदिकोभा, कटुक रस मरीच आदिकोभा कषायरस हरीतकी आदिकोभा, अम्बरस चिञ्चा आम्बली आदिकोभा अने मधुररस शर्करा आदिकोभा डेय से लवणरस मधुरादिकोना स समर्थी उत्पन्न थाय से अेथी

सर्वकर्त्ताभिष्य प्रथममेघस्य प्रयोजनं भरतभूमिर्दाहोपगमः, द्वितीयस्य क्षीरमेघस्य भरतभूमौ वर्णादिजननम्, तृतीयस्य घृतमेघस्य भरतभूमौ स्निग्धतासंपादनम्, ननु क्षीरमेघेनैव शुभवर्णगन्धादि निष्पत्तौ सत्यां तत्सह भाविनी स्निग्धताऽपि स्वयमेवायातेति घृतमेघो निष्प्रयोजनः ? इति चेदाह—क्षीरमेघेन शुभवर्णगन्धादीनामुत्पत्तौ तत्सहभाविनी स्निग्धता भरतभूमौ यद्यपि स्वयमेवायाति तथापि प्रचुरतरस्निग्धतासंपादनमेव घृतमेघप्रयोजनम्, दृश्यते चापि क्षीरादधिका स्निग्धता घृते इति न कश्चिद् दोष इति । चतुर्थस्य अमृतमेघस्य वृक्षाद्युत्पादनं प्रयोजनं पञ्चमस्य च रसमेघस्य वृक्षादिषु यथायोग्य रसोत्पाद-

इसलिये उसका स्वतन्त्ररूप से कथन नहीं किया गया है पाच मेघो का प्रयोजन यद्यपि सूत्र में ही कह दिया गया है तथापि स्फुटतर प्रतिपत्ति के लिये फिर से यहां वह कहा जाता है. पुष्कल सर्वात्क प्रथममेघका भरतक्षेत्रकी भूमिका दाहशमित करना यह प्रयोजन है द्वितीय क्षीरमेघ का भरतक्षेत्र की भूमि में शुभवर्णादिका उत्पन्न करना यह प्रयोजन है तृतीय घृतमेघ का भरतक्षेत्र की भूमि में स्निग्धता को उत्पत्ति करना यह प्रयोजन है ।

शंका—घृतमेघका जो प्रयोजन आपने भरतक्षेत्र को भूमि में स्निग्धता का आपादन करने रूप प्रकट किया है सो जब क्षीरमेघ से ही शुभवर्ण शुभगन्ध आदि की भरतक्षेत्र की भूमि में निष्पत्ति हो जायगी तो शुभवर्ण गन्धादि के साथ होने वाली स्निग्धताभी अपने आप आ जावेगी फिर इस घृतमेघका प्रयोजन तो कुछ ही रहता नहीं है इसे निष्प्रयोजन मानने की क्या आवश्यकता है ? सो इसका समाधान ऐसा है कि यह बात ठोक है कि शुभवर्णादिकों की निष्पत्ति में तत्सहभाविनी स्निग्धता का संपादन करना ही घृतमेघ का प्रयोजन है यह बात तो प्रत्यक्ष से ही प्रतीत होती देखी जाती है कि क्षीर से अधिक स्निग्धता घृत में है इत्यादि. अतः घृतमेघ का काम निष्फल नहीं है—सफल है—चतुर्थ जो अमृतमेघ है—उसका

स्वतन्त्ररूपमा कथन करवामा आन्धु नथी, पाच मेघानुं प्रयोजन जे के सूत्रमां न स्पष्ट करवामां आन्धुं छे तो पञ्च स्फुटतर प्रतिपत्ति माटे क्षीरमेघ अर्थात् विषे स्पष्टता करवामां आवेल छे पुष्कल सर्वात्क प्रथममेघनुं प्रयोजन भरतक्षेत्रनी भूमिमां दाह शमित करवे। ते छे अर्थात् क्षीरमेघनुं प्रयोजन भरतक्षेत्रनी भूमिमां शुभ वर्णादिक उत्पन्न करवाइप. तृतीय मेघनुं प्रयोजन छे भरतक्षेत्रनी भूमिमां स्निग्धतानी उत्पत्ति करवीते

शंका—तमे घृतमेघनुं प्रयोजन ज्यारे भरतक्षेत्रनी भूमिमां स्निग्धतानुं आपादन करवुं जेनुं प्रकट करेले छे तो क्षीरमेघथी न ज्यारे शुभवर्ण, शुभगन्ध जेरेनी भरतक्षेत्रनी भूमिमां निष्पत्ति थप ज्ये तो शुभवर्ण गन्धादिनी साथे आपनारी स्निग्धता पञ्च आपमेणे न आवी ज्ये तो पछी आ घृत मेघनुं प्रयोजन तो कथं हेभातु न नथो तो शु ज्येने निष्प्रयोजन मानवामा कथं वाधो छे ? तो आ शंकातुं समाधान आ प्रमाणे छे के जे के शुभवर्णादिकानी निष्पत्तिमां तत्सहभाविनी स्निग्धता आपमेणे न आवी ज्ये छे पञ्च प्रचुरतर स्निग्धतानुं संपादन करवुं घृतमेघनुं प्रयोजन छे जे वान तो स्पष्ट न छे के क्षीर करता वधारे स्निग्धता थीमां छे ज्येथी घृतमेघनुं काम निष्फल नथी सक्षण छे. चतुर्थ जे अमृतमेघ छे, तेनुं प्रयोजन

नम् । ननु अमृतमेघेन वनस्पतौ जनिते सति वर्णादिसहितस्यैव वनस्पतेरुपलभ्यमानत्वेन वर्णादि सह भाविनो रसस्यापि सुतरागुत्पत्तौ रसमेघो निष्प्रयोजनः ? इति चेदाह—यद्य-
प्यमृतमेघेन सामान्यरस उत्पाद्यते तथापि स्वस्वयोग्यरसनिष्पादन रसमेघस्यैवेति न क-
कश्चिदोप इति । इत्थं पञ्च भिर्मेघै स्वस्वकार्ये सपादिते सति यादृशं भरतवर्षस्वरूप भावि
तदुच्यते—तएणं, इत्यादि । (तए णं) ततः खलु (भरहे वासे) भरतं वर्षं पउढ—रुक्ख-
गुच्छ—गुम्म—लय—वल्लि—तण—पव्वग—हरित—ओसहिण) प्ररूढ वृक्ष—गुच्छ—गुल्म लता—
वल्लो तृण पर्वग—हरितौ—पधिकं प्ररूढा—समुत्पन्नाः वृक्षगुच्छादिहरितौपध्यन्ता यत्र
तत्तादृशं (भविस्सइ) भविष्यति, तथा—(उवचिय तयपत्त—पवालं—कुर—पुप्फ—फल—समु-

प्रयोजन वृक्षादि को उत्पादन करना है. और पांचवा जो रसमेघ है उसका प्रयोजन वृक्षादिकां में यथायोग्य रस का उत्पन्न करना है ।

शंका—जब अमृत मेघ से ही भरतक्षेत्र की भूमि में वनस्पति का उत्पादन हो जाता है तो वर्णादि सहित ही उनका उत्पादन होता है. वर्णादि रहित रूप में तो उनका उत्पादन होता नहं है । फिर जब वर्णादि सहित ही उनका उत्पादन होता है तो वर्णादि सहभावी जो रस है वह तो उनमें अपने आप ही उत्पन्न हो जाता होगा फिर रस को उत्पन्न करने वाला रस महामेघ का मानना निष्प्रयोजन प्रतीत होता है— सो ऐसी शंका ठीक नही है—क्योंकि स्व स्व योग्य रस का निष्पादन करना ही इस रस महामेघ का काम है वैसे तो अमृत मेघ से सामान्यतः रस उत्पन्न करा हो दिया जाता है । इस तरह से इन पांच मेघों द्वारा अपना अपना कार्य सपादित हो जाने पर जैसा भारत वर्ष का आगे स्वरूप हो जाता है अब सूत्रकार उसीका कथन करते हैं— (तएणं भरहे वासे पउढ रुक्ख—गुच्छ—गुम्म—लय—वल्लि—तण—पव्वग—हरित—ओसहिण भविस्सइ) इसके बाद भरतक्षेत्र जिसमें वृक्ष से लेकर हरित औषधि तक

वृक्षादिकानां उत्पत्तिं कर्त्वीं, अने पाचमे ळे रसमेघे, तेनुं प्रयोजन वृक्षादिकेभ्यं यथायोग्य रसोत्पत्तिं कर्त्वीं ते ळे.

शंका—अथारे अमृत मेघथी ळ भरत क्षेत्रनी भूमिभा वनस्पतिषुं उत्पादन थर्ध ळय ळे. वनस्पति वर्णादि सहितं उत्पन्न थाय ळे वर्णादि रहितेषुं वनस्पतिषुं उत्पादन थर्धुं नथी वर्णादि सहितं ळ अथारे तेभनुं उत्पादन थाय ळे तो वर्णादि सहभावां ळे रस ळे तेपषु तेभनाभा आप मेणे ळ उत्पन्न थथे ळ तो ळे परिस्थितिभां रसने उत्पन्न करनारा रस महामेघषु कथन अही निष्प्रयोजन प्रतीत थाय ळे अथी शंका पषु अही योग्य नथी. केभके स्व—स्व रसनु निष्पादन कर्त्तुं ळे ळ ळे रसमहामेघषुं काम ळे, आभ तो अमृत मेघथी ळ सामान्यत रस उत्पन्न कराववाभां आवे ळे. आ प्रमाणे आ पाये मेघो वडे पोत पोताना कार्य संपादित थर्ध गया पही भरतषुं स्वरुप केषु ळथे ? ळे संप्रथमा सूत्रकार कडे ळे— (तए णं भरहे वासे परूढरुक्ख—गुच्छ—गुम्म लय—वल्लि—तण—पव्वग—हरितओसहिण भविस्सइ) त्थार भाड ळेभां वृक्षथी भाडीने हरित औषधी सुधी वनस्पतिषो उत्पन्न थर्ध सुकी ळे ळेषु भरतक्षेत्र वर्ष थर्ध ळथे तेभं (उवचिय—तय पत्त—पवालं—कुर—पुप्फ—फल—

इए) उपचिन-त्वक्-पत्र-प्रगालाङ्कुर-पुष्प-फल-समुदितम् तत्र उपचितानि=परि-
पुष्टानि यानि त्वक्पत्रप्रगालाङ्कुरपुष्पफलानि-त्वक्=त्वचा-वल्कलम्, पत्रं=पण, प्रवालं=
किसलयम्, अङ्कुरः=अभिनवोद्भिद् ब्रीह्यादि बीजसूचिः, पुष्पं=प्रसूनं फलं=प्रसिद्धम्, एते-
षामितरेतरयोगद्वन्द्वः तानि तथोक्तानि तैः समुदितं-व्याप्तम्, अत एव (सुहोवभोगे यावि)
सुखोपभोगं-सुखेन=अनायासेन उपभोगस्त्वक्पत्रादीनां यस्मिस्तत्तथाविधं चापि (भवि-
स्सइ) भविष्यति । एतेनोत्सर्पिण्या द्वितीयारके भरतवर्षे वनस्पतीनां, वनस्पतिषु च
पुष्पफलानां सत्ता प्रदर्शिता, ततश्च भरतवर्षस्य सुखोपभोगता सूचितेति ॥ सू० ५६ ॥

अथोत्सर्पिणी दुष्पमाकालसभवा मनुष्यास्तादृश भरतवर्षं दृष्ट्वा किं करिष्यन्ति ?

इत्याह—

सूत्रम्— तए णं ते मणुया भरहं वासं परूढ-गुच्छ-गुम्म-लय
-वल्लि-तण-पव्वय-हरिय-ओसहीयं-उवचिय-तय-पत्त-पवालं-कुर
-पुष्फ-फल-समुइयं सुहोवभोगं जायं जायं चावि पासिहिंति, पासित्ता
बिलेहिंतो णिद्धाइस्संति, णिद्धाइत्ता हट्टतुट्ठा अण्णमण्णं सदाविस्संति,
सदावित्ता एवं वदिस्संति जाए णं देवाणुप्पिया ! भरहे वासे परूढ-
रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वय-हरिय जाव सुहोवभोगे तं
जे णं देवाणुप्पिया ! अम्ह केइ अज्जप्पभिइ असुभं कुणिमं आहारं
आहारिस्सइ से णं अणेगाहिं छायाहिं वज्जणिज्जेत्ति कट्टु संठिइं ठवे
स्संति ठवित्ता भरहे वासे सुहं सुहेणं अभिरममाणा अभिरममाणा
विहरिस्संति ॥सू० ५७॥

वनस्पतिया उत्पन्न हो गई है ऐसा हो जावेगा—तथा उवचिय-तय-पत्त-पवाल-कुर-पुष्प-फल
-समुदितम्) परिपुष्ट वल्कलो, पत्रो, किसलयो, अङ्कुरो, ब्रीहो आदिके बीजो के अग्रभागो, पुष्पो,
और फलो से व्याप्त होकर (सुहोवभोगे यावि भविस्सइ) जिसमें त्वक् पत्रादि का उपभोग अना-
यास से है ऐसा वह भरतक्षेत्र हो जावेगा. इस तरह के इस कथन से उत्सर्पिणी के इस द्वितीय
आरक में भरतक्षेत्र में वनस्पतियों का सङ्गाव और उनमें पुष्पफलादिको का सङ्गाव प्रकट किया
गया है और इससे उसमें सुखोपभोगता बतलाई गई है । ५६॥

समुदितम्) परिपुष्ट वल्कलो यादृशाओ, किसलयो, अङ्कुरो, ब्रीहो वगैरेणा, णील्लेणा अथ-लागोःपुष्पो
अने कूल विगैरेथी व्याप्त यथने (सुहोवभोगे यावि भविस्सइ) नेमा त्वक् पत्रादिकेने। उपभोग
अनायास रूपमा यथं शक्ये अथे तं भरतवर्षं यथे. आ अतना आ कथयथी उत्सर्पिणीना
अे द्वितीय आरकमा भरतक्षेत्रमा वनस्पतिअेना सहभाव अने तेअेमा पुष्पफलादिकेने। सङ्-
गाव प्रकट करवाभा आवेत्त अे अने अथी तेअेमा सुखोपभोगता अताववाभा आवेत्त अे । ५६॥

छाया—ततः खलु ते मनुजा भरत वर्षं प्ररूढगुच्छं गुल्मलता वल्लीतृणपर्वग हरितौप-
धिकम् उपचित त्वक्पत्र-प्रवाला इकुर-पुष्प-फल-समुदितं सुहोवभोगं जात चापि द्रव्य
न्ति दृष्ट्वा विलेभ्यो निर्धाविष्यन्ति निर्धाव्य दृष्ट्वा अन्योऽन्य शब्दयिष्यन्ति शब्दयित्वा
पवं वदिष्यन्ति जातं खलु देवानुप्रिया भरत वर्षं प्ररूढ-वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लता वल्ला
तृणपर्वग हरित यावत् सुखोरभोगम् तद् यः खलु देवानुप्रिया अस्माकं कोऽपि अप्रभृति
अशुभं कुणपम आहारम् आहरिष्यति स खलु अनेकाभिश्छायाभिर्जनीय इति कृत्वा
संस्थितिं स्थापयिष्यन्ति स्थापयित्वा भरते वर्षे सुखं सुखेन अभिरममाणा अभिरममाणा
विहरिष्यन्ति सू०५७।

टीका—“तए णं” इत्यादि । (तए णं) ततः खलु (ते मणुया) ते मनुजाः=
भरतवर्षस्थितास्तत्कालीना मनुष्याः (भरहं वासं) भरत वर्षं (परूढ-गुच्छं गुल्म-लय वल्लि
तण-पव्वय हरिय-ओसहीयं) प्ररूढ-गुच्छ-गुल्म-लता-वल्ली-तृण-पर्वग-हरितौ-पधि
कम् (उवचिय-तय-पत्त-प्रवालं-कुर-पुष्प-फल-समुदयं) उपचित-त्वक्पत्र-प्रवाला-
इकुर-पुष्प फल-समुदितं (सुहोवभोगं) सुखोपभोगं (जाय जायं चावि) जात जातं
चापि=प्राचुर्येण समुत्पन्नं चापि (पासिहिति) द्रश्यन्ति=अवलोकयिष्यन्ति, ‘परूढ गुच्छं’

अब सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि उत्सर्पिणी के दुष्पमाकाल में उत्पन्न हुए ये मनुष्य इस प्रकार के भारत वर्ष को देखकर क्या करेंगे—

“तए णं ते मणुया भरह वासं परूढ गुच्छ-गुल्म-लय-वल्लि” इत्यादि—५७—

टीकार्थ—भरत क्षेत्र में स्थित हुए तत्कालीन वे मनुष्य (भरह वास) भरतक्षेत्र को (परूढ गुच्छ
गुल्मलयवल्लि तण पव्वय हरिय ओसहीय) प्ररूढ गुच्छों वाला, प्ररूढ गुल्मोंवाला, प्ररूढ लताओं
एवं वल्लियों वाला प्ररूढ तृण और पर्वज वनस्पतियों वाला, प्ररूढ हरित और औषधियोंवाला
(उवचिय तय पत्तप्रवाल कुरपुष्पफलसमुदयं) उपचित हुए छालों के समूह उपचित पत्तों के
समूह वाला, उपचित हुए प्रवालों वाला, उपचित हुए अकुरों वाला, उपचित पुष्पों वाला,
उपचित हुए फलोंवाला, अतएव (सुहोवभोगं जायं जायं चावि पासिहिति) देखेगे तो

इसे सूत्रकार को स्पष्ट करे छे के उत्सर्पिणी ना दुष्पमा कालमा उत्पन्न थयेला ओ
मनुष्यो ओ प्रकारना भरतवर्षने लेधने शु करये ?

‘तए णं ते मणुया भरतं वासं परूढगुच्छगुल्मलयवल्लि’ इत्यादि सूत्र ॥५७॥

टीकार्थ—भरतक्षेत्रमा स्थित थधने-तत्कालीन ते मनुष्ये। (भरह वासं) भरतक्षेत्र (परूढ गुच्छ
गुल्मलयवल्लितणपव्वय हरियओसहीयं) प्ररूढशुद्धोवाणु प्ररूढशुद्धोवाणु, प्ररूढ लताओ आने
वल्लियो वणु, प्ररूढ तृष्य आने पर्वज वनस्पतियोवाणु, प्ररूढ हरित आने औषधियोवाणु
(उवचियतयपत्तप्रवालंकुरपुष्पफलसमुदयं) उपचित थयेली छालोना समूह वाणु उपचित
थयेला पासिहितोना समूहवाणु, उपचित थयेला अकुरोवाणु उपचित पुष्पोवाणु प्रवाल
वाणु आने उपचित थयेला इदोवाणु उपचित थयेल अकुरोवाणु उपचित थयेल
पुष्पोवाणु आने उपचित थयेल इदोवाणु ओथी (सुहोवभोगं जाय जायं चाव पासिहिति) ते

इत्यादि—‘सुहोवभोगं’ इत्यन्तपदत्रयस्यार्थः पञ्चपञ्चाशत्तमे सूत्रेऽवलोकनीय इति (पासि-
त्ता) दृष्ट्वा=अवलोक्य (बिलेभ्यः (णिद्धाइस्सन्ति) निर्धाविष्यन्ति=निर्गमिष्यन्ति (णिद्धा-
इत्ता) निर्धाव्य=निर्गम्य (दृष्टुद्वा) दृष्टुष्टाः—दृष्टाः=आनन्दिताश्च ते तुष्टाः=सतोषमुप-
गताश्चेति तथा—आनन्द संतोषं चोपगता इत्यर्थः (अण्गमणं) अन्योन्यम् परस्परं (सदा-
विति) शब्दयन्ति, (सदावित्ता) शब्दयित्वा (एवं वदिस्सन्ति) एवं वदिष्यन्ति=कथयि-
ष्यन्ति, किं कथयिष्यन्ति ? इत्याह ‘जाए णं’ इत्यादि । (जाए णं) जातं खलु (देवाणु-
प्पिया !) देवानुप्रियाः (भरहे वासे) भरतं वर्षे (परुद्ध-रुक्ख-गुच्छं-गुम्म-लय-वल्लि-
तण-पव्वय-हरिय जाव सुहोवभोगे) परुद्ध-वृक्ष-गुच्छ-गुल्म-लता-वल्लि-तृण-पर्वग-
हरित यावत् सुखोपभोगम्, (त जे ण देवाणुप्पिया अम्हं केइ) तद् यः खलु देवानु-
प्रियाः ! भस्माकं कश्चित्=हे देवानुप्रियाः भरतवर्षस्य वृक्षागुच्छगुल्मलतादिसंपन्नत्वेन
सुखोपभोग्यत्वात् अस्माकं मध्ये यः कश्चित् (अज्जप्पमिइ) अद्यप्रभृति=अद्यारभ्य (असुमं
कुणिमं आहार) अशुभं कुणपम् आहारम्=अप्रशस्तं मांसाहारम् (आहारिस्सइ) आहरिष्यति
(से णं) स खलु (अणेगाहिं छायाहिं) एनेकाभिश्छायाभिः=अनेकसख्यक पुरुषच्छाया

यह क्षेत्र सुख से उपभोग करने योग्य हो चुका है इस प्रकार का (पासित्ता) ख्याल करके वे
(बिलेहितो णिद्धाइस्सन्ति) अपने अपने बिलो से बाहर निकल आवेगे, और (णिद्धाइत्ता) बाहर
निकल कर के फिर वे (दृष्टुद्वा अण्गमणं सदाविति) बड़े ही आनन्द से और सतोष से
युक्त हुए आपस में एक दूसरेके साथ विचार विनिमय करेंगे (सदावित्ता एवं वदिस्सन्ति
विचार विनिमय करके फिर वे इस प्रकार से एक दूसरे से कहेंगे (जाएण देवाणुप्पिया !
भरहे वासे परुद्धरुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वय-हरिय-जाव सुहोवभोगे) हे देवानुप्रियो !
भरत क्षेत्र वृक्षों से, गुच्छों से, गुल्मों से, लताओं से, वल्लियो से, तृणों से एवं हरित दूर्वादिकों
से युक्त होकर सुखोपभोग बन गया है (त जे णं देवाणुप्पिया अम्हं केइ अज्जप्पमिइ असुमं
कुणिम आहारं आहारिस्सइ) अतः अब जो कोई है देवानुप्रियो ! हम लोगों में से आज से
लेकर अशुभ, अप्रशस्त—आहार करेगा (से णं अणेगाहिं छायाहिं वज्जणिज्जति) वह अनेक पुरुषों

अनुभूयन्ते ऽथे ऽथा क्षेत्र सुखोपभोग्यं यथं युक्तं छे ते आ रीते (पासित्ता) ख्याल करीने तेओ।
(बिलेहितो णिद्धाइस्सन्ति) पांतपोताना भिद्धोभाथी षडार नीकणी आवशे अने (णिद्धाइत्ता)
षडार निकणीने पछी तेओ। (दृष्टुद्वा अण्गमणं सदाविति) षडुअ आन हित अने स तुष्ट
थथेलां तेओ। परस्परं ओक-भीलनी साथे विचार विनिमय करीने (सदावित्ता, एवं वदि-
स्सन्ति) विचार विनिमय करीने पछी तेओ। आ प्रभाषे ओक भीलने कडेसे (जए ण देवाणु
प्पिया ! भरहे वासे पडुद्धरुक्खगुच्छगुम्मलयवल्लितणपव्वयहरिय जाव सुहोवभोगे) हे
देवानुप्रियो। भारतक्षेत्रन कोथा, गुच्छाथी, गुल्माथी लताओथी वल्लिओथी तेमअ हरित हर
वृद्धिओ थी युक्त यथने सुखोप भोग्य अनी गथु छे (तज्जेण देवाणुप्पिया अम्हं केइ अज्जप्प
मिइ असुम कुणिम आहारं आहारिस्सइ) ओथी हवेथी आपणांभाथी केअ पणु अे हे देवा-
नुप्रियो। अशुभ-अप्रशस्त ओडार कराठ (से ण अणे गाहिं छायाहिं वज्जणिज्जति) ते अनेक

प्रमाण व्यवधाय (वञ्जणिज्जेत्ति कट्टु) वर्जनीया इति कृत्वा स्वस्वसमूहतः पृथक्करणीयाः तत्संसर्गः सर्वथा वर्जनीय इति निश्चित्य (संठिडं ठवेस्सति) संस्थितिं स्थापयिष्यन्ति व्यवस्थां करिष्यन्ति (संठिडं ठवेत्ता) संस्थितिं स्थापयित्वा (भरहे वासे) भरते वर्षे (सुह सुहेणं) सुखं सुखेन सुखं यथा स्यात्तथा सुखेन—अनायासेन (अभिरममाणा २) अभिरममाणाः २—क्रोडन्तः २ (विहरिस्सन्ति) विहरिष्यन्ति कालं यापयिष्यन्ति ॥ सू० ५७ ॥

मूलम्—तीसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्म केरिसए आयार—भावपडोयारे भविस्सइ ? गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविस्सइ जाव कित्तिमेहिं चेव अकित्तिमेहिं चेव । तीसेणं भंते ! समाए मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ? गोयमा ! तेसिणं मणुयाणं छच्चिहे संघयणे छच्चिहे संठोणे बहुईओ रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं साइरेगं वाससयं आउयं पालेहिंति, पालित्ता अप्पे गइया णिरयागामी जाव अप्पेगइया देवगामी ण सिज्झन्ति ॥ सू० ५८ ॥

छाया—तस्यां सल भदन्त ! समायां भरतस्य वर्षस्य कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति ? गौतम ! बहुसमरमणोयो भूमिभागे भविष्यति यावत् कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैव । तस्यां खलु भदन्त समायां मनुजानां कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति ? गौतम ! तेषां खलु मनुजानां, षड्विधं संहननं, षड्विधं सस्थानं बद्धि रत्नी उर्ध्वमुच्चवत्वेन, जघन्येन, अन्तर्मुहूर्त्तम् उत्कर्षणं सातिरेकं वर्षशतम् आयुष्कं पालयिष्यति, पालयित्वा अध्येकके निरयगामिनो यावत् अध्येकके देवगामिनः न सिद्ध्यन्ति ॥ ५८ ॥

की छाया प्रमाण में वर्जनीय हो जावेगा—अर्थात् हम लोग अपने समुदाय से उसे पृथक्कर देगे और उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखेगे. इस प्रकार (कट्टु) से निश्चयकरके (संठिडं ठवेस्सति) वे व्यवस्था करेगे । इस प्रकार की (संठिडं ठवेत्ता भरहे वासे) व्यवस्था करके फिर वे (सुह सुहेणं अभिरममाणा २ विहरिस्सति) इस भरत क्षेत्र में बड़े ही आनन्द के साथ बिना किसी बाधा के विविध प्रकार की क्रीडाओं को करते हुए अपने समय को निकालेगे ॥ ५७ ॥

इस उत्सर्पिणी के दुष्पमाकाल में भरत क्षेत्र के और उसमें स्थित मनुष्यों के आकार भाव

अनेक पुत्रोने छाया प्रभाषुमां वर्जनीय थर्ध नय ज्येठवे के अने तेने पोताना समुदाय-माथी लुहा लुहा करी मूकीशु अने तेना साथे केध पशु नतनेो संभंध करीशु नडीं आ प्रभाषे । नश्चय करीने (संठिडं ठवेस्सति) तेजो व्यवस्था करेशे. आ प्रभाषे (संठिडं ठवेत्ता भरहे वासे) व्यवस्था करीने पछी ते (सुह सुहेण अभिरममाणा २ विहरिस्सति) आ भरत क्षेत्रमा भइ न आनंदपूर्वकं बाधा रहितथरने विविध प्रकारनी क्रीडाओ करतां पोताना सम-यने व्यतीत करेशे ॥ ५७ ॥

उत्सर्पिणीना दुष्पमाकालमा भरत क्षेत्रना अने तेमां स्थित मनुष्यना आकारभाव

टीका—“तीसे णं भंते !” इत्यादि । (तीसे णं भंते ! समाए) तस्यां खलु भदन्त
समायां ! हे भदन्त उत्सर्पिणी संबन्धिण्यां दुष्पमायां समायां (भरहस्स वासस्स) भग-
तस्य वर्षस्य=भरतक्षेत्रस्य (केरिसए आयारभावपडोयारे) कीदृशक आकारमात्रप्रत्यवतारः
प्रज्ञप्तः=प्रखितः ? (बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविसस्सइ) बहुसमरमणीयो भूमिभागे
भविष्यति (जाव कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव) यावत् कृत्रिमैश्चैव अकृत्रिमैश्चैव । अत्र
यावत्पदेन (से जहा नामए आलिगपुक्खरेइ वा) इत्यारभ्य (कित्तिमेहिं चैव) इत्यवधिकः
पाठः संग्राह्य इति । गौतमस्वामी पुनः पृच्छति—(तीसेणं भंते ! समाए) तस्यां खलु
भदन्त । समायां=दुष्पमायां समायां (मणुयाणं) मनुजानां (केरिसए) कीदृशकः (आया-
रभावपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति ? भगवानाह (गोयमा ।) गौतम !
(तेसि णं मणुयाणं) तेषां खलु मनुजानां (छव्विहे) पड्विधं=पटप्रकारकं (संघयणे)

प्रत्यवतार के विषय में सूत्रकार कथन करते हैं ‘तीसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए’ ।

टीकार्थ—गौतम ने प्रसु से ऐसा पूछा है (तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आया-
रभावपडोयारे भविसस्सइ) हे भदन्त ! उत्सर्पिणी सम्बन्धी इस दुष्पमा काल में भरत क्षेत्र का आकार
भाव का प्रत्यवतार स्वरूप—कैसा होगा ? इस प्रकार गौतम के पूछने पर प्रसु ने कहा है (गोय-
मा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविसस्सइ) हे गौतम ! उस काल में भरत क्षेत्र का भूमिभाग बहु
समरमणीय होगा (जाव कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव) यावत् वह कृत्रिम अकृत्रिम मणियों से
सुशोभित होगा यहाँ यावत्पद से यही “आलिगपुक्खरेइवा” इस पाठ से लेकर “कित्तिमेहिं चैव”
तक का पाठ गृहीत हुआ है अब गौतम प्रसु से ऐसा पूछते हैं—(तीसे णं भंते ! समाए मणुयाण
केरिसए आयारभावपडोयारे भविसस्सइ) हे भदन्त ! उस दुष्पमा नाम के बारे में मनुष्यों का आकार
भाव का प्रत्यवतार स्वरूप कैसा होगा ? इसके उत्तर में प्रसु कहते हैं—(गोयमा ! तेसिणं मणुयाणं
छव्विहे संघयणे छव्विहं सठाणे, बहुईओ रयणीओ उहं उच्चत्तेणं) हे गौतम ! उन मनुष्यों के

प्रत्यवतार ना सम्बन्धमा सूत्रकार कथन करे छे—

‘तीसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए, इत्यादि सूत्र १८

टीकार्थ—गौतम ने प्रसु से आ प्रभावे प्रश्न कर्था (तीसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स
केरिसए आयारभावपडोयारे भविसस्सइ) हे भदन्त उत्सर्पिणी सम्बन्धी अये दुष्पमा काणमा
भरत क्षेत्रना आकारभावना प्रत्यवतार अट्ठे के स्वरूप केसु इथे ? आ प्रभावे गौतमस्वामीअये
प्रश्न कर्था पछी प्रसुअये कल्लु (गोयमा ! बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे भविसस्सइ) हे गौतम !
अये काणमा भरत क्षेत्रना भूमिभाग बहुसमरमणीयथये (जाव कित्तिमेहिं चैव अकित्तिमेहिं चैव)
यावत् ते कृत्रिम अकृत्रिम मणुअयेथी सुशोभित थये अही यावत् पडवी “आलिगपुक्खरेइवा”
पाठथी लईने “कित्तिमेहिं चैव” सुधाने पाठ गृहीत थये अये इने गौतम स्वामी अये प्रसुअये
(तीसेणं भंते ! मणुयाणं केरिसए आयार भाव पडोयारे हे भदन्त ! ते दुष्पमा नामक आराम
मनुष्ये ना आकार भावना प्रत्यवतार (अट्ठे के स्वरूप केसु इथे ? अयेना अवे अमा प्रसुअये
(गोयमा ! तेसिणं मणुयाणं छव्विहे संघयणे, छव्विहं सठाणे बहुईओ रयणीओ उहं उच्चत्तेणं)

संहनन शरीरास्थिरचना भविष्यति, (छन्विहं) पइविश्रं पट्टप्रकारकम् (संटाणं) संस्थानम्
 आकारो भविष्यति, तथा ते मनुजाः (बहुइओ रयणीओ) बद्दी रत्नीः (उदृढ उच्चतेणं)
 ऊर्ध्वगुच्चत्वेन भविष्यति, तथा (जहण्णेणं) जघन्येन (अंतोमुहुत्तं) अन्तर्मुहूर्त्तम् (उक्को-
 सेणं) उत्कर्षेण (साइरेगं वाससयं) सातिरेकं वर्षशतं किञ्चिदधिकं वर्षगतम् (आउयं)
 आयुष्क जीवितकालं (पालेहिंति) पालयिष्यन्ति, (पालित्ता) पालयित्वा (अप्पेगइया)
 अप्येकके केचित् (णिरयगामी) निरयगामिन नारका (जाइ) यावत्-यावत्पदेन-अप्ये-
 कके तिर्यग्गामिनः अप्येकके मनुष्यगामिन इति संग्राह्यम्, तथा-(अपेगइया देवगामी)
 अप्येकके देवगामिनो भविष्यन्ति, परन्तु तत्र काले संजाता मनुष्याः (ण सिज्झंति)
 न सिध्यन्ति सिद्धिगतिगामिनो न भवन्तीति ॥ सू० ५८ ॥

अथ दुष्पमसुषमां समां वर्णयति—

मूलम्-तीसेणं समाए एककवोसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कंते
 अणंतेहिं वण्णपज्जवहि जाव परिवड्ढेमाणे २ एत्थणं दूसमसुसमा णामं
 समा काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो तीसे णं भंते ! समाए भरहस्स
 वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ? गोयमा । बहुसमर-
 मणिज्जे जाव अकित्तिमेहिं चैव । तेसि णं भंते ! मणुआणं केरिसए
 आयारभावपडोयारे भविस्सइ ? गोयमा ! तेसिणं मणुयाणं छव्विहे संघ
 यणे, छव्विहे संठाणे, बहुइं धणूइं उच्छं उच्चत्तेणं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं

६ प्रकार का तो सहनन होगा, ६ प्रकार का सस्थान होगा और शरीर की ऊँचाई अनेक हस्त
 प्रमाण होगी. (जहण्णेणं अतोमुहुत्तं उक्कोसेणं साइरेग वाससय आउय पालेहिंति) इनकी आयु
 का प्रमाण जघन्य से एक अन्तर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट कुछ अधिक १०० वर्ष का होगा (पालित्ता
 अप्पेगइया णिरयगामी, जाव अप्पेगइया देवगामी) आयु की समाप्ति के अनन्तर कितनेक तो इनमें
 से नरकगति में जावेंगे यावत् कितनेक तिर्यग्गति में जावेगे, कितनेक मनुष्यगति में जावेगे और
 कितनेक देवगति में जावेगे परन्तु (न सिज्झंति) सिद्धगति में कोई नहीं जावेगा ॥सू० ५८॥

हे जीतभ ! ते मनुष्येने ६ प्रकारनु तो सहनन थसे, ६ प्रकारनु सस्थान थसे अने शरीरनी
 लीयाई अनेक हस्त प्रमाणे डेटवी हसे (जहण्णेणं अतोमुहुत्त उक्कोसेण साइरेग वास-
 सयं आउय पालेहिंति) अेभनी आयुष्यनु प्रमाणे जघन्यथी अेक अतर्मुहूर्त्तनु अने
 उक्कंते वधारे १०० वर्षे डेटु हसे (पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, जाव अप्पेगइया
 देवगामी) आयुष्यनी समाप्ति पछी डेटवाक तो अेभनाभाथी नरक गतिमा १७थे यावत्
 डेटवाक तिर्यग् गतिमा जेथे, डेटवाक मनुष्य गतिमा जेथे अने डेटवाक देवगतिमा जेथे
 पथु (न सिज्झंति) सिद्धगति केई भेणवी शकथे नहि ॥ ५८ ॥

उक्कोसेण पुव्वकोडी आउयं पालेहिंति, पालित्ता अप्पेगइआ णिस्यगामी जाव अंत करेहिंति । तीसेणं समाए तओ वंसा समुपज्जिस्संति, तं जहा-
तित्थगरवंसे चक्कवट्टिवंसे दसाखंसे । तीसेणं समाए तेवीसं सित्थगरा,
एक्कारस चक्कवट्टी णव बलदेवा णव वासुदेवा समुपज्जिस्संति । सू० ५९।

छाया—तस्यां खलु समायाम् एकविंशत्या वर्षसहस्रैः काले व्यतिक्रान्ते अनन्तैर्वर्णपर्यवैर्या
वत् परिवर्द्धमान परिवर्द्धमान' अत्र खलु दुष्पमसुपमा नाम समा काल प्रतिपत्स्यते श्रमणा-
युष्मन् ! तस्यां खलु भदन्त ! समायां भरतस्य वर्षस्य कीदृश आकारभावप्रत्यवतारो भवि-
ष्यति ? गौतम ! बहुसमरमणीयो यावत् अकृत्रिमैश्चैव । नेपां खलु भदन्त ! मनुजानां कीदृशक
आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति ? । गौतम ! तेषां खलु मनुजानां पइविध संहननं पइविध
संस्थानं बहूनि धनूपि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण पूर्वकोटोम् आयुष्क
पालयिष्यन्ति पालयित्वा अध्येकके निरयगमिना यावत् अन्तं करिष्यन्ति । तस्यां खलु
समायां त्रयो वशा समुत्पत्स्यन्ते तद्यथा—तीर्थकरवंश' चक्रवर्त्तिवंश २, दशार्हवश- तस्यां
खलु समायां त्रयोविंशति स्तोर्थकराः एकदश चक्रवर्त्तिनः नव बलदेवाः नव वासुदेवा
समुत्पत्स्यन्ते ॥ सू ५९।

टीका - “तीसे णं समाए” इत्यादि । (समणाउसो) श्रमणायुष्मन् हे आयुष्मन्
श्रमण (तीसेणं समाए) तस्यां खलु समायाम् (एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं) एकविंशत्या
वर्षसहस्रैः प्रमिते (काले वीइक्कते) काले व्यतिक्रान्ते (अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं) अन-
न्तैर्वर्णपर्यवैः (जाव) यावत्—यावत्पदेन (अणंतेहिं गधपज्जवेहिं) इत्यरभ्य (अणंतपरिवु-
इहीए) इत्यन्तः पाठः संग्राह्यः, (परिवड्ढेमाणे२) परिवर्द्धमानः २ (एत्थ ण) अत्र खलु=
अस्मिन् भरते वर्षं खलु (दूसमसुसमा णामं समा काले) दुष्पमसुपमा नाम समा कालः

॥ उत्सर्पिणी के दुष्पमसुपमा का वर्णन—

‘तीसे णं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कते’ इत्यादि सूत्र—५९

टीकार्थ—(समणाउसो) हे आयुष्मन् श्रमण (तीसेणं समाए) उम उत्सर्पिणी में (एक्कवीसाए
वाससहस्सेहिं) २१ हजार वर्ष प्रमाण वाला जब (काले वीइक्कते) यह दुष्पमा नाम का द्वितीय काल
समाप्त हो जावेगा तब (अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव परिवड्ढेमाणे२ एत्थण दूसमसुसमा णामं समा
काले पडिवज्जिस्सइ) अनन्त वर्ण पर्यायों से यावत् अनन्त गध आदि पर्यायों से अनन्त गुण रूप में

उत्सर्पिणीना दुष्पमसुपमानुं वण्णं—

‘तीसेणं समाए एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं काले वीइक्कते इत्यादि सूत्र ॥५९॥

टीकार्थ— (समणाउसो) हे आयुष्मन् श्रमण ! (तीसे णं समाए) ते उत्सर्पिणीमां
(एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं) २१ हजार वर्ष प्रमाणवाले न्याये (काले वीइक्कते) ये
दुष्पमा नामके द्वितीयकाल समाप्त यद्यं न्ये त्थारे (अणंतेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव परिवड्ढे-
माणे २ एत्थ ण दूसमसुसमा णामं समा काले पडिवज्जिस्सइ) अनंत वण्ण पर्यायों से यावत्
अनंत गध आदि पर्यायों से अनंत शुभ रूपों वृद्धिगत यतो आ भारतक्षेत्रमां दुष्पम

(पण्डित्जिज्ञस्सइ) प्रतिपत्स्यते समापन्नो भविष्यति । (तीमेणं भंते ! समाए) तस्यं खलु भदन्त ! समायां (भरहस्स वासस्स) भरतस्य चर्पस्य (केरिसए) कीदृशकः (आया रभावपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारो (भविस्सइ) भविष्यति ? इति गौतम प्रश्ने भगवानाह—‘गोयमा ! गौतम ! (बहुसमरमणिज्जे जाव अक्कित्तिमेहिं चैव) बहुसमरमणीयो यावत् अकृत्रिमैश्चैव । अत्र यावत्पदेन (भूमिभागे भविस्सइ) इत्यरभ्य (क्वित्तिमेहिं चैव) इत्यन्त ! पाठः संग्राह्यः । पुनर्गौतमस्वामी पृच्छति तेसिणं भंते ! मणुयाणं) तेषां खलु भदन्त ! मनुजानां हे भदन्त ! तेषामुत्सर्पिणीदुष्पम सुपमाकालभाविनां मनुष्याणां (केरिसए आया रभावपडोयारे) कीदृशक आकारभाव प्रत्यवतारो (भविस्सइ) भविष्यति ? । भगवानाह— (गोयमा !) गौतम (तेसि णं मणुयाण) तेषां खलु मनुजानां (छव्विहे संघयणे) पइविधं संहनन (छव्विहे सठाणे पइविधं सस्थानं च भविष्यति, तथा-ते मनुजाः (बहुइं धणूइं उइं उच्चत्तेणं) वहूनि

वृद्धि गत होता हुआ इस भरत क्षेत्र में दुष्पमसुपमा नाम का तृतीय काल प्राप्त हो जावेगा (तीसेण भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आया रभावपडोयारे भविस्सइ) गौतमने प्रश्नु से ऐसा पूछा है कि हे भदन्त ! जब यह काल भरतक्षेत्र में अवतीर्ण हो जावेगा तो भरतक्षेत्र का आकार भाव का प्रत्यवतार स्वरूप कैसा होगा? इस प्रश्न के उत्तर में प्रश्नु ने कहा है हे गौतम! इस आरे में भरतक्षेत्र का भूमिभाग बहु सम रमणीय होगा यावत् अकृत्रिम पंचवर्णों के मणियों से वह उपशोभित होगा. यहा यावत्पद से “भूमिभागे भविस्सइ” यहां से लेकर “क्वित्तिमेहिं चैव” तक का पाठ गृहीत हुआ है. अब गौतमस्वामी पुनः प्रश्नु से ऐसा पूछने हैं— (तेसिणं भंते ! मणुयाणं केरिसए आया रभावपडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त ! इस काल के मनुष्यों का स्वरूप कैसा होगा ? इसके उत्तर में प्रश्नु कहते हैं— (गोयमा ! तेसिणं मणुयाणं छव्विहे संघयणे छव्विहे सठाणे बहुइ धणूइं उइं उच्चत्तेणं) हे गौतम ! उत्सर्पिणी के दुष्पमासुपमा कालभावी मनुष्यों के छह प्रकार के संहनन होंगे छह प्रकार के सस्थान होंगे—तथा इनके शरीर की

सुषमानाभक तृतीय काल प्राप्त थये (तोसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आया रभावपडोयारे भविस्सइ) गौतमे प्रश्नुने आ प्रभाषे प्रश्न कर्ये के हे भदन्त ! आये अये काल भरतक्षेत्रमा अवतीर्ण थर्थ जये त्थारे भरतक्षेत्रमा आकार-भावने। प्रत्यवतार अेटवे के रूपइय डेवुं इहे ? आ जतना प्रश्नमा जवाअभां प्रश्नु कडे छे—हे गौतम ! अये आरामां भरतक्षेत्रमा भूमिभाग अहुं समरमणीय थये. यावत् अकृत्रिम पायवर्णोना भव्विओथी ते उपशोभित थये अही यावत् पइथी (भूमिभागे भविस्सइ) अहीथी भाडीने (क्वित्तिमेहिं चैव) सुधीना पाठं गृहीत थये छे इवे गौतम स्वामी पुन प्रश्नुने आ जतने। प्रश्न करे छे—(तेसि णं भंते ! मणुयाणं केरिसए आया रभावपडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त ! आ कालमा मनुष्योनु रूपइय डेवुं इहे ? अयेना जवाअभां प्रश्नु कडे छे—(गोयमा ! तेसि णं मणुयाणं छव्विहे संघयणे छव्विहे सठाणे बहुइं धणूइं उइं उच्चत्तेणं) हे गौतम ! उत्सर्पिणीना दुष्पमा सुपमा कालभावी मनुष्योना इ प्रकारना संहनना थये, इ प्रकारना सस्थाना

धनूपि उर्ध्वमुच्चत्वेन भविष्यन्ति, तथा-(जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं पुव्वकोडी) जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तम् उत्कर्षेण पूर्वकोटिम् (आउय) आयुष्क (पालेहिंति) पालयिष्यन्ति (पालित्ता) पालयित्वा (अप्पेगइया णिरयगामी जाव अंतं करेहिंति) अप्येककं निरयगामिनो यावत् अन्तं करिष्यन्ति, यावत्पदसग्राहपाठमनुसृत्यैवमर्थो बोध्यस्तथाहि-केचिद् मनुष्या नरकगामिनो भविष्यन्ति, केचित् तिर्यग्गामिनो भविष्यन्ति, केचिन्मनुष्यगामिनः केचिच्च देवगामिनो भविष्यन्ति, केचिच्च सिद्धिगतिगामिनो भविष्यन्तीति । तस्यां समाया ये मनुष्यवंशाः प्रचलिष्यन्ति तानाह-(तीसेणं समाए) तस्यां खल्लु समाया (तओ वंसाः) त्रयो वंशाः (समुप्पज्जिस्संति) समुत्पत्स्यन्ते समुत्पन्ना भविष्यन्ति (तं जहा) तद्यथा-(तित्थगरवंसे) तीर्थकरवंशः तीर्थङ्करसन्तानपरम्परा (चक्कवट्टिवंसे) चक्रवर्तिवंशः चक्रवर्तिसन्ततिपरम्परा, (दसारवंसे) दशार्हवंशः यदुवंशश्चेति । तस्यां समायां कियत्तिकयत्संख्येयं चाश्चक्रवर्त्यादयः समुत्पत्स्यन्ते ? इत्याह-(तीसेणं भंते ! समाए) तस्यां

ऊंचाई अनेक धनुष प्रमाण होगी, (जहण्णेण अतो मुहुत्त उक्कोसेण पुव्वकोडी आउय पात्रेहिंति) इनकी आयु जघन्य से एक अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट से एक पूर्वकोटि तक की होगी (पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, जाव अंतं करेहिंति) इतनी लम्बी आयु का भोग करके जब ये मरेंगे तो इनमे से कितनेक मनुष्य तो नरक में जावेगे और किननेक मनुष्य यावत् समस्त शारीरिक और मानमिक दुखों का विनाश करेगे यहाँ यावत्पद से सम्राह पाठ इस प्रकार से हैं-“केचित् मनुष्या. नरक गामिनो भविष्यन्ति, केचित् तिर्यग्गामिनो भविष्यन्ति, केचित् मनुष्यगामिनो भविष्यन्ति केचित् देवगामिनो भविष्यन्ति, केचित् सिद्धगतिगामिनो भविष्यन्ति” इस यावत्पद गृहीत पाठ का अर्थ स्पष्ट है. (तीसेण समाए तओ वता समुप्पज्जिस्संति) उस उत्सर्पिणी काल के इस तृतीय आरक में तीन वंश उत्पन्न होंगे-(तं जहा) जो इस प्रकार से है-(तित्थगरवंसे, चक्कवट्टिवंसे) एक तीर्थकर वंश, द्वितीय चक्रवर्ती वंश तृतीय दशार्ह वंश-यदुवंश (तीसे ण समाए

थशे तेम च ओमना शरीरणी विथाई अनेक धनुष प्रमाणे ढेट्ठी इशे (जहण्णेणं अतो मुहुत्त उक्कोसेणं पुव्वकोडी आउयं पालेहिंति) ओमनुं आयुष्य जघन्यथी ओक अन्तर्मुहूर्त्तं ढेट्ठुं अने उत्कृष्टथी ओक पूर्वकोटि सुधी इशे (पालित्ता अप्पेगइया णिरयगामी, जाव अंतं करेहिंति) आट्ठु हीधं आयुष्य बोगवीने न्यारे ओओ मरषु पाभशे त्यारे ओमना-भांथी डेट्ठाक मनुष्यो तो नरकमा जशे अने डेट्ठाक मनुष्यो यावत् समस्त शारीरिक अने मानसिक दुखोने विनाश करशे अही यावत् पढथी संग्राह पाठ आ प्रभाषु छे-“केचित् मनुष्याः नरकगामिनो भविष्यन्ति, केचित् तिर्यग्गामिनो भविष्यन्ति, केचित् मनुष्यगामिनो भविष्यन्ति, केचित् देवगामिनो भविष्यन्ति केचित् सिद्धगतिगामिनो भविष्यन्ति, यावत् पढथी गृहीत ओ पाठोने अर्थ स्पष्ट ज छे. (तोसेणं समाए तओ वसा समुप्पज्जिस्संति) ते उत्सर्पिणी कालना ओ तृतीय आरकभां त्रषु वशो उत्पन्न थशे (तं जहा) ते आ प्रभाषु छे (तित्थगरवंसे, चक्कवट्टि वंसे, दसारवंसे) ओक तीर्थकर वंश, द्वितीय चक्रवर्ती वंश अने तृतीय दशार्ह वंश यदुवंश. (तीसेणं समाए तेवीसं

खलु भदन्त ! समायां (तेवीसं तित्थगरा) त्रयोविंशतिस्तीर्थकराः (एकरकारम चरुवट्टी)
एकादश चक्रवर्तिनः (णव वलदेवा) नव वलदेवाः नवसंख्यका वलदेवाः (णव वासुदेवा)
नव वासुदेवाः नवसंख्यका वासुदेवाश्च (समुपपज्जिस्सन्ति) समु-पत्स्यन्ते उत्पन्ना भवि-
ष्यन्तीति ॥ सू० ५९ ॥

अथ सुषमदुष्पमाकालं वर्णयति—

मूलम्—तीसे णं, समाए सागरोवमकोडाकोडीए वायालोमाए
वाससहस्सेहिं ऊणियाए काले वीइक्कन्ते अणन्तेहिं वण्णपज्जवेहिं जाव
अणन्तगुणपरिवुद्धीए परिवुद्धेमाणे २ एत्थ णं सुषमदूसमा णायं समा-
काले पडिवज्जिस्सइ समणाउसो ! सा णं समा तिहा विभजिस्सइ—पढमे
तिभागे, मज्झिमे तिभागे पच्छिमे तिभागे । तीसे णं भन्ते ! समाए पढमे
तिभाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे भविस्सइ ? गोयणा !
बहुसमरमणिज्जे जाव भविस्सइ, मणुयाणं जावेव ओसप्पिणी पच्छिमे
तिभागे वत्तव्वया सा भाणियव्वा, कुलगरवज्जा उसभसामिवज्जा । अण्णे-
पढन्ति.तंजहा तीसे णं समाए पढमे तिभाए इमे पण्णरस कुलेगरा समुपज्जि
स्सन्ति तं जहा—सुमइं जाव उसभे सेसं तं चेव दंडणोइओ पडिलोमाओ
णेयव्वाओ. तीसे णं समाए पढमेतिभागे रायधम्मं जाव धम्मचरणे य
वोच्छिज्जिस्सइ । तीसे णं समाए मज्झिमपच्छिमेसु तिभागेषु जाव पढम-
मज्झिमेसु वत्तव्वया ओसप्पिणीए सा भाणियव्वा । सुसमा तहेव, सुस-
मासुसमावि तहेव जाव छव्विहा मणुस्सा अणुमज्जिस्सन्ति जाव सण्णि
चारी ॥ सू० ६० ॥

छाया—तस्यां खलु समायां सागरोपमकोटो कोट्यां द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रै वनिकायां
काले व्यतिक्रान्ते अनन्तै वर्णपर्यवैर्यावत् अनन्तगुणपरिवुद्ध्या परिवर्द्धमान परिवर्द्धमान अत्र
तेवीस तित्थगरा, एकरकारस, चक्रवट्टी, णव वलदेवा, णर व सुदेवा समुपज्जस्सन्ति) इत
उत्सर्पिणी काल के इस तृतीय आरक में २३ तीर्थकर ११ चक्रवर्ती, नौ वलदेव, और नौ
वासुदेव उत्पन्न होंगे ॥५९॥

तित्थगरा, एकरकारस चक्रवट्टी णव वलदेवा णव वासुदेवा समुपज्जिस्सन्ति) ते उत्सर्पिणी
छाया अ तृतीय अ राभा २३ तीर्थकर, ११ अक्षरतीर्थ, नव वलदेवो अने नव वासुदेवो
उत्पन्न थशे. ॥ ५६ ॥

खलु सुषमदुष्पमानाम समा कालः प्रतिपत्स्यते श्रमणायुष्मन् । सा खलु समा त्रिधा विभक्तस्यते प्रथमस्त्रिभागः १ मध्यमस्त्रिभागः पश्चिमस्त्रिभागः । तस्यां खलु भदन्त । समायां प्रथमे त्रिभागे भरतस्य वर्षस्य कीदृशक आकारभावप्रत्यवतारो भविष्यति गौतम । बहुस-मरमणो यो यावद् भविष्यति मनुजानां या एव उत्सर्पिण्यां पश्चिमे त्रिभागे वक्तव्यता सा भणितव्या कुलकरवर्जा ऋषभस्वामिवर्जा । अन्ये पठन्ति तस्यां खलु समायां प्रथमे त्रिभागे इमे पञ्चदश कुलकराः समुत्पत्स्यन्ते तद्यथा सुमति यावद् ऋषभः शेष तदेव दण्डनोतय प्रतिलोमा नैतव्या तस्या खलु समायां प्रथमे त्रिभागे राजधर्मो यावत् धर्मचरणं च व्युच्छेत्स्यति । तस्यां खलु समाया मध्यमपश्चिमयोस्त्रिभागयोर्भावत् प्रथममध्यमयोर्वक्तव्यता अवसर्पिण्यां सा भणितव्या सुषमा तथैव सुषमसुषमा तथैव यावत् पट्टविधा मनुष्या अनु सङ्क्षयन्ति यावत् संज्ञिचारिणः ॥सू० ६०॥

टीका— “तीसेणं समाए” इत्यादि । (समणाउसो) श्रमणायुष्मन् । हे आयुष्मन् ! (तीसेणं समाए) तस्यां खलु समायां तस्यां दुष्पमसुषमायां खलु समायां (सागरोवमकोडाकोडीए) सागरोपमकोटीकोट्यां (बायालीसाए वाससहस्सेहि) द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः द्विचत्वारिंशत्सहस्रवर्षैः (ऊणियाए) ऊनिकायां न्यूनायां (काले वीइ ककंते) कालव्यतिक्रान्ते व्यतीते सति—द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोने दुष्पमासुषमारूप काले व्यतीते सति (अणंतेहि वण्णपज्जवेहि जाव अणंतगुणपरिवुइहीए परिवुइडेमाणे २) अनन्तै वर्णपर्यवैर्यावत् अनन्तगुणपरिवृद्ध्या परिवर्द्धमानः २, यावत् पदेनात्र ‘अणंतेहि गधपज्जवेहि’ इत्यादि पूर्वोक्तः पाठः संग्राह्यः (एत्थ णं) अत्र खलु अस्मिन् भरतक्षेत्रे खलु(सुसमदु समा णामं समा काले) सुषमदुष्पमानाम समा कालः उत्सर्पिण्याश्चतुर्थारकक्षणः कालः

‘तीसेणं समाए सागरोवम कोडाकोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहि, इत्यादि

टीकार्थ—हे आयुष्मन् श्रमण ! उत्सर्पिणी के ४२ हजार वर्ष का १ सागरोपम कोटाकोटि प्रमाणवाले इस तृतीय आरक की परिसमाप्ति हो जाने पर (अणंतेहि वण्णपज्जवेहि जाव अणंतगुण परि बुइहीए परिवुइडे माणे २ एत्थण सुसमदुसमा णामं समा काले पडिवाज्जिसइ समणाउसो) अनन्त वर्णपर्यायों से यावत् अनन्तगुण वृद्धिसे वर्द्धित होता हुआ इस भरतक्षेत्र में सुषम दुष्पमानामका चतुर्थ आरक लगेगा अवतरित होगा (सा ण समा तिहा विभज्जिस्सइ) इस आरक

‘तीसेण समाए सागरोवम कोडा कोडीए बायालीसाए वाससहस्सेहि इत्यादि सूत्र ॥६०॥

टीकार्थ—हे आयुष्मन् श्रमण ! उत्सर्पिणीना ४२ हजार वर्ष १ सागरोपम कोटाकोटि प्रमाणवाला या तृतीय आरकनी न्याये परिसमाप्ति यथ न्यये न्याये (अणंतेहि वण्णपज्जवे हि जाव अणंतगुणपरिवुइहीए परिवुइडेमाणे २ एत्थण सुसमदुसमा णामं समा काले पडिवाज्जिसइ समणाउसो) अनन्तवर्ष पर्यायों से यावत् अनन्त गुणवृद्धिसे वर्द्धमान ये भरतक्षेत्रमा सुषमदुष्पमानामके चतुर्थ आरक लागे अटके के अवतरित थये (सा ण समा तिहा विभज्जिस्सइ) ये आरकना त्रय लागे थये (पठमे त्रिभागे, मज्झमे त्रिभागे पच्छिमेति भागे) येभा येके प्रथम त्रिभाग थये, द्वितीय मध्यमत्रिभाग थये अने तृतीय पश्चिम

(पडिग्जिस्सइ)प्रतिपत्स्यते प्राप्तो भविष्यति । अस्याः समाया भागत्रयं भवतीति तद् दर्शयतिसाणं' इत्यादि । (सा णं समा तिहा विभज्जिस्सइ)१ खलु समा त्रिधा विभद्ध्यते सा सुषमदुष्पमारूपा समा भागत्रयेण विभक्ता भवति । तत्र प्रत्येकभागं नामनिर्देश पूर्वकमाह—'पढमे तिभागे, इत्यादि । (पढमे तिभागे मज्झिमे तिभागे, पच्छिमे तिभागे) प्रथमस्त्रिभागो, मध्यमस्त्रिभागो पश्चिमस्त्रिभाग इति । 'त्रिभाग' इत्यस्य 'तृतीयो भाग इत्यर्थः । एव सुषमदुष्पमायाः समाया भागत्रयं प्रदर्श्य सम्प्रति प्रथमत्रिभागस्याकारभावं जिज्ञासमानो गौतमस्वामी पृच्छति—'तीसे णं भंते' । इत्यादि । (तीसे णं भंते । समाए) तस्याः खलु भदन्त ! समायाः (पढमे तिभाए) प्रथमे त्रिभागे (भरहस्स वासस्स) भरतस्य वर्षस्य (केरिसए) कीदृशकः (आगारभावपडोयारे) आकारभावप्रत्यवतारो (भविस्सइ) भविष्यति ? । भगवानाह—(गोयमा ।) गौतम ! (बहुसमरमणिज्जे) बहुसमरमणीयो (जाव) यावद् (भविस्सइ) भविष्यति । अत्र यावत्पदेन स एव वर्णनक्रमः संग्राहो योऽवसर्पिण्याः सुषमदुष्पमा समा निरूपणावसरे भरतक्षेत्रस्य वर्णनक्रमो वर्णित इति । मनुष्याणां विषये गौतमप्रश्नो भगवदुत्तरं च अवसर्पिण्याः

के तीन भाग होंगे (पढमेतिभागे, मज्झिमे ति भागे, पच्छिमे तिभागे) इन में एक प्रथम त्रिभाग होगा द्वितीय मध्यम त्रिभाग होगा और तृतीय पश्चिम त्रिभाग होगा इनमेंसे जो 'पढमेतिभाए' प्रथम त्रिभाग है—तीसरा भाग है— (तीसेण भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे भविस्सइ) हे भदन्त ! उस प्रथम त्रिभाग में भरत क्षेत्र का स्वरूप कैसा होगा ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं— (गोयमा ।) बहु समरमणिज्जे जाव भविस्सइ) हे गौतम ! प्रथम त्रिभाग में भरत क्षेत्र का मृगिभग बहुत समरमणीय होगा । यहां यावत्पद से वही वर्णन क्रम संग्राह हुआ है जो अवसर्पिणी के सुषमा आरक के दुषमा आरक के निरूपण के समय में भरत क्षेत्र का वर्णित किया गया है (मणुयाणं जा चेव ओसप्पणीए पच्छिमे वत्तव्वया सा भाणियव्वा कुलगरवज्जा उसमसामिवज्जा) अवसर्पिणीसम्बन्धी सुषमदुष्पमा के पश्चिम त्रिभाग में जैसा मनुष्यों का वर्णन किया गया है वैसा ही वर्णन कुल करके वर्णन को और ऋषभस्वामी के वर्णन को छोड़ कर यहां पर भी कर लेना चाहिये क्यों कि अवसर्पिणी के सुषमदुष्पमा के पश्चिम त्रिभाग में जिन दण्डनीतियों प्रवृत्ति कुलकरो ने की है और ऋषभस्वामी ने जो अन्तपाक आदि क्रियाओं का और शिल्प

त्रिभाग यशे ओभाथी ने (पढमे तिभाए) प्रथम त्रिभाग छे अर्थात् त्रिमे भाग छे, (तीसेणं भंते ! समाए भरहस्स वासस्स केरिसए आगारभावपडोयारे भविस्सइ) छे भदन्त ! ते प्रथम त्रिभागभाभरतक्षेत्रनु सुवइथ डेवु इशे ? ओना न्वाणमां प्रभु डडे छे—(गोयमा बहुसमरमणिज्जे जाव भविस्सइ) छे गौतम ! प्रथम त्रिभागभा भरतक्षेत्रने भूमिभाग बहुसमरमणीय यशे अही यावत् पढथी ते प्रभाण्णे न वल्लुनं कम संग्राह यशे डे ने प्रभाण्णे अवसर्पिणीना सुषम—दुषमा आरकना निइपणु सभयमां भरतक्षेत्रनु वल्लुनं करवामां आण्थु छे (मणुयाण जा चेवओसप्पणीए पच्छिमे वत्तव्वया सा भाणियव्वा कुलगरवज्जा उसमसामिवज्जा) अवसर्पिणीसंभन्धी सुषम दुष्पमाना पश्चिम त्रिभागभा नेवु मनुष्येणु वल्लुनं करवामां आण्थुं छे,

सुपमदुष्पमायाः पश्चिमत्रिभागवर्णनप्रसङ्गे मनुष्यविषये यादृशो गीतमप्रश्नः यादृशं च भगवदुत्तरं तत्सर्वमिहापि कुलकरवर्णनम् ऋषभस्वामिवर्णनं च परित्यज्य संग्राह्यम् । एतदेव दर्शयति (मणुयाणं जा चेव ओमपिगीए पच्छिमे वत्तव्या मा भाणियव्वा कुळगरवज्जा उसभसामिवज्जा) मनुजानां याचैव अवसर्पिण्यां पच्छिमे त्रिभागे वक्तव्यता सा भणितव्या कुलकरवर्जा ऋषभस्वामिवर्जा इति । अयं भावः अवसर्पिणी सम्बन्धि सुपमदुष्पमायाः पश्चिमत्रिभागे काले यादृशं मनुजानां वर्णनं गत तादृशमेव वर्णनमत्रापि वक्तव्यम् , परन्तु कुलकरवर्णनम् ऋषभस्वामिवर्णनं चात्र न वक्तव्यम् यतोऽवसर्पिण्याः सुपमदुष्पमायाः समायाः पश्चिमे त्रिभागे या दण्डनीत्यादयः कुलकरैः प्रवर्त्यन्ते, ऋषभस्वामिना च या अम्नगाकादिक्रियाः शिल्पकलाश्चोपदर्श्यन्ते ताश्चोत्सर्पिण्याः सुपमदुष्पमायाः समायाः प्रथमे त्रिभागे न प्रवर्त्यन्ते न चाप्युपदर्श्यन्ते । अयं भावः उत्सर्पिण्या द्वितीयां रके ये कुलकरा भवन्ति तत्प्रवर्तितदण्डनीत्यादीनामेव चतुर्थारकेऽनुवृत्तिर्भवति पाकादिक्रियाणां शिल्पकलानां चापि पूर्वप्रवृत्तानामेव तत्रानुवृत्तिर्भवतीति तत्तत्प्रतिपादकपुरुषानावश्यकतेति अवसर्पिणीतृतीयारक पश्चिमत्रिभागकालवर्णने कुलकरवर्णनमृषभस्वामिवर्णनं च वर्जयित्वा सर्वं वाच्यमिति । अथवा—‘ऋषभस्वामिवर्जा’ इत्यस्य ‘ऋषभस्वामिवर्जा’ का उपदेश क्रिया है वे सब उत्सर्पिणी के सुषमदुष्पमा नामके प्रथम त्रिभागमें प्रचलित नहीं हुई और न उपदिष्ट ही हुई हैं तात्पर्य कहने का यह है उत्सर्पिणी के द्वितीय आरक में जो कुलकर होते हैं उनके द्वारा प्रवर्तित दण्डनीत्यादिकों की ही चतुर्थ आरक में अनुवृत्ति होती है तथा पूर्वप्रवृत्त ही पाकादि क्रियाओं को भी और शिल्प कलाओं को भी वहाँ पर अनुवृत्ति होती है इसीलिये यहा इनके प्रतिपादक पुरुषों की अनावश्यकता प्रकट की गई है और ऐसा कहा गया है कि अवसर्पिणी के सुषम दुष्पमा के पश्चिम त्रिभाग के वर्णन के समय मनुष्यों का जैसा वर्णन किया गया है वैसा वह सब वर्णन कुलकर और तीर्थकर ऋषभस्वामी के वर्णन को छोड़कर कहलेना चाहिये अथवा “ऋषभस्वामी वर्जा” का अभिप्राय ऋषभस्वामी

तेषु न वक्ष्यन् इकत कुलकरना तेभन ऋषभ स्वामीना वक्ष्यन्ने जाह करीने अह्नी पक्षु समञ्जसुं जेधजे केभके अवसर्पिणीना सुषम दुष्पमाना पश्चिम त्रिभागमा जेटला प्रकाशनी इंडनीतिज्योनी प्रवृत्ति कुलकराजे करेही छे अने ऋषभ स्वामीजे जे अन्तपाक वगेरे किया ज्योने अने शिल्पकलाज्योने उपदेश कर्ये छे ते अक्षु उत्सर्पिणीना सुषमदुष्पमाना प्रथम त्रिभागमा प्रचलित थयुं नथी अने उपदिष्ट पक्षु थयुं नथी तात्पर्य आ प्रम जे छे के उत्सर्पिणीना द्वितीय आरकमां जे कुलकर डोय छे, तेभना वडे प्रवर्तित इंडनीति वगेरेनी न थतुथे आरकमां अनुवृत्ति डोय छे तेभ न पूर्वप्रवृत्त पाकादि क्रियाज्योनी अने शिल्प कलाज्योनी पक्षु त्यां अनुवृत्ति थती जेटला भाटे अह्नी ज्येभना प्रतिपादक पुरुषोनी अनावश्यकता प्रकट करवाभा आनी जे अने जेषुं कडेवांमां अ थ्युं जे के अवसर्पिणीना सुषम दुष्पमाना पश्चिम त्रिभागना वक्ष्यन् अमये मनुष्योतु जे प्रभाजे वक्ष्यन् करवाभा आवेछु छे, तेषु न वक्ष्यन् कुलकर अने तीर्थ कर ऋषभस्वामीना वक्ष्यन्ने जाह करीने समञ्जसुं

म्यभिलापवर्जा' इति भावः । ततश्च ऋषमस्वामिनोऽभिलाप वर्जयित्वा भद्रकृन्नामकस्य तीर्थङ्करस्याभिलापो वक्तव्य इत्यभिप्रायः । अत्रेदं बोध्यम्—उत्सर्पिण्यां चतुर्विंशति तमतीर्थकृतोऽभिलापोऽवसर्पिण्यां संजातस्य प्रथमतीर्थकरस्य सदृशः प्रायस्त्वं भद्र कृतीर्थं वरवर्णने कलाद्युपदेशाभिलापाभावेन बोध्यमिति । अत्र कुलकरविषये वाचनाभेद-माह—'अण्णे पठति' इत्यादि । (अण्णे पठति) अ य पठन्ति—अपरे आचार्या एवं पाठभेदं वदन्ति, तथाहि—(तीसे णं समाए पढमे तिभाए इमे पण्णरस कुलगरा—सुप्पज्जिस्संति, तं जहा सुमई जाव उसमे, सेसं तं चेव) तस्यां खलु समायां प्रथमे त्रिभागे इमे पञ्चदश कुलकराः समुत्पत्स्यन्ते, तद्यथा—सुमतिर्यात्रद्वयम्, शेषं तदेव । अयमिहाभिप्रायः केषां चिन्मते उत्सर्पिणीसम्बन्धिसुषमदुष्पमायाः प्रथमे त्रिभागे सुमतिमारभ्य ऋषमपर्यन्ताः

संबन्धी अभिलाप है. सो इस अभिलाप को छोड़ कर भद्रकृत नामके तीर्थंकर का अभिलाप कहना । इस कथन का तात्पर्य ऐसा है कि उत्सर्पिणी के २४ वे तीर्थंकर का अभिलाप प्राप्त करके अवसर्पिणी में उत्पन्न हुए प्रथम तीर्थंकर के जैसा ही कहना चाहिये क्यों कि इन दोनों में प्राय करके समान शोभता है । अभिलाप की प्रायः समानता है ऐसा जो कहा गया है वह भद्रकृत तीर्थंकर के वर्णन में कलादिक के उपदेश के अभिलाप के अभाव से कहा गया है ऐसा जानना चाहिये यहा कुलकर के विषयमें जो वाचनाभेद है उसे सूत्रकार "अण्णे पठति" इस सूत्र द्वारा प्रकट करते हैं — इसमें उन्होंने यह समझाया है कि कितनेक आचार्य ऐसा पाठ भेद कहते हैं — (तीसे णं समाए पढमेतिभाए इमे पण्णरसकुलगरा समुपज्जिस्सति त जहा सुमई जाव उसमे सेस तचेव) उत्सर्पिणी सम्बन्धी सुषमदुष्पमा के प्रथम त्रिभाग में ये १५ कुलकर उत्पन्न होंगे जैसे सुमति यावत् ऋषभ अर्थात् प्रथम सुमति कुलकर और अन्तिम ऋषभ कुलकर बाकी के जो १३ मध्यके ओर कुलकर है उनका नाम पूर्व में प्रकट ही करदिया गया है तथा इन १५ कुलकरों में से ५-५ कुलकरों द्वारा जो जो दण्डनोंती चाख की जाती है

ने। अथवा 'ऋषमस्वामीवर्जा' ने। अभिप्राय ऋषभस्वामी संबंधी अभिलाप है, तो ये अभिलापने भाह करीने भद्रकृतनामके तीर्थंकरने अभिलाप कडेवा आ कथनतुं तात्पर्य आ प्रमाणे छे के उत्सर्पिणीना २४ मा तीर्थंकरने अभिलाप प्राप्त करीने अवसर्पिणीमां उत्पन्न थयेव प्रथम तीर्थंकरने जेवा व अभिलाप कडेवा जेधये धारणु के जेज्या अन्नेमा धणु करीने समानशीलता छे, अभिलापनी प्रायः समानता छे आम जे कडेवामां आवेल छे, ते भद्रकृत तीर्थंकरने वरुणमां कलादिकना उपदेशना अभिलापना अभावथी कडेवामां आवेल छे जेपु समश्रुतु जेधये अही कुलकरना संबन्धमां जे वाचना बेह छे, तेने सूत्रकार "अण्णे पठति" जे सूत्र वडे प्रकट करे छे तेमणे आम समलण्युं छे के डेटलाक आचार्य जेवा पाठलेदने उल्लेख करे छे—(तीसे णं समाए पढमेतिभाए इमे पण्णरस कुलगरा समुज्जिस्सति तं जहा सुमई जाव उसमे सेसं तं चेव) उत्सर्पिणी संबंधी सुषमदुष्पमाना प्रथमत्रिणां जे १५ कुलकर उत्पन्न थये जेमे के सुमति यावत् ऋषभस्वामी जेटले के प्रथम सुमति कुलकर अने अन्तिम ऋषभस्वामी कुलकर शेष जे १३ मध्यना जीअ कुलकरे छे,

પશ્ચદશસંખ્યકાઃ કુલકરા વર્ણનોયાઃ । एतेषु चञ्चदगसु कुलकरेषु सर्वप्रथमः सुमतिः सर्वा
 न्तिमश्च ऋषभः, मध्यस्थिताश्च त्रयोदश कुलकराः पूर्वोक्तनामान एव । तथा पञ्चभि
 कुलकरैर्या या दण्डनीतय प्रवर्त्यन्ते तास्ता अपि पूर्वोक्ता एवावसेना इति । अतः परो
 यो विशेषस्तमाह 'दङ्गणीईओ' इत्यादि । (दङ्गणीईओ पडिलोमाओ जेयच्वाओ) दण्डनी-
 तयः प्रतिलोमा नेतव्याः—अवसर्पिणी सम्बन्धिसुषमदुष्पमायामेकैः कुलकरपञ्चककृता या
 या दण्डनीतयः प्रोक्ता., तत्प्रतिकूला दण्डनीतयोऽत्र वक्तव्या इति । अयं भावः
 अवसर्पिण्याः सुषमदुष्पमायां प्रथमकुलकरपञ्चकसमयेऽपराधस्याल्पत्वेन हाकारो दण्डम् ।
 द्वितीयकुलकरपञ्चकसमये तु जघन्यमध्यमरूपापराधद्वयस्य सद्भावत् माकार-हाकार-रूपं
 दण्डद्वयम् । तृतीयकुलकरपञ्चकसमये तृत्कृष्टमध्यमजघन्यरूपापराधत्रयसद्भावत् जघन्येऽ
 पराधे हाकारो दण्ड, मध्यमे माकारो दण्डम्, उत्कृष्टे तु धिक्कारो दण्डमिति । उत्सर्पि-
 ण्यां सुषमदुष्पमायाः प्रथमे त्रिभागे प्रथमकुलकरपञ्चकसमये त्वपराधस्य जघन्यमध्यमो-
 त्कृष्टतया जघन्ये अपराधे हाकारो मध्यमे माकारः उत्कृष्टे तु धिक्कारः । द्वितीयकुलकर

वह भी पूर्व में प्रकट कर दी गई है परन्तु इन दण्ड नीतियोंमें जो उत्सर्पिणी काल के इस आरे
 के प्रयोग में भिन्नता है वह इस प्रकार से है —(दण्डणोईओ पडिलोमाओ) अवसर्पिणी के सुषम
 दुष्पमा में प्रथम कुलकर पञ्चक के समय में अपराध की अल्पता होने से हाकार दण्डणीति प्रयुक्त
 हुई है । द्वितीय कुलकर पञ्चक के समयमें जघन्य और मध्यम अपराधों के सद्भाव से हाकार
 और माकार ये दो दण्ड नीतियां प्रयुक्त हुई है तथा तृतीय कुलकर पञ्चक के समय जघन्य,
 मध्यम और धिक्कार ये तीनों ही दण्डनीतियां प्रयुक्त हुई हैं ऐसा पहिले प्रकट किया जा
 चुका है - परन्तु उत्सर्पिणी के इस सुषमदुष्पमा नाम के आरे में प्रथम त्रिभाग में प्रथम कुलकर
 पञ्चक के समय में तीनों प्रकारके अपराधों के सद्भाव से जघन्य अपराध में हाकार, मध्यम अप
 राध में माकार और उत्कृष्ट अपराध में धिक्कार इन तीनों दण्डनीतियों से, द्वितीय कुलकर पञ्चक

तेजना नामो पडेલાં પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે તથા એ ૧૫ કુલકરોમાંથી ૫, ૫ કુલકરો
 વડે જે-જે દંડનીતિ ચાલુ કરવામાં આવે છે, તે પણ પહેલાં પ્રકટ કરવામાં આવી છે પણ
 એ દંડનીતિઓમાંથી જે ઉત્સર્પિણી કાલના એ આરાના પ્રયોગમાં ભિન્નતા છે. તે આ
 પ્રમાણે છે—(દણ્ડણોઈઓ પડિલોમાઓ) અવસર્પિણીના સુષમ દુષ્પમામાં પ્રથમ કુલકર પચ-
 કના સમયમાં અપરાધની અલ્પતા હોવાથી હાકાર દંડનીતિ પ્રયુક્ત થયેલી છે દ્વિતીય
 કુલકર પચકના સમયમાં જઘન્ય અને મધ્યમ અપરાધોના સદ્ભાવથી હાકાર અને માકાર
 એ બે દંડનીતિઓ પ્રયુક્ત થઈ છે તથા તૃતીય કુલકર પચકના જઘન્ય, મધ્યમ અને
 ઉત્કૃષ્ટ અપરાધોના સદ્ભાવથી હાકાર, માકાર અને ધિક્કાર એ ત્રણે દંડનીતિઓ પ્રયુક્ત
 થયેલી છે આ પ્રમાણે પહેલાં પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે. પણ ઉત્સર્પિણીના એ સુષમ-
 દુષ્પમા નામક આરામાં પ્રથમત્રિભાગમાં પ્રથમ કુલકર પચકના સમયમાં ત્રણે પ્રકારના
 અપરાધોના સદ્ભાવથી જઘન્ય અપરાધમાં હાકાર મધ્યમ અપરાધમાં માકાર અને ઉત્કૃષ્ટ
 સમયમાં ધિક્કાર એ ત્રણે દંડનીતિઓથી, દ્વિતીય કુલકર પચકના સમયમાં જઘન્ય અને મધ્યમ

पञ्चकसमयऽपराधस्य जघन्यमध्यमत्वेन जघन्येऽपराधे हाकारो मध्यमे च माकारः । तृतीयकुलकरपञ्चकसमये त्वपराधस्य जघन्यत्वेन हाकारमात्रं दण्डमिति । 'दंडणीऽओ' इत्यस्योपलक्षणत्वेन शरीरप्रमाणायुष्क प्रमाणादिकं चापि यथासमं प्रातिज्योम्येन विज्ञेयमिति । 'अण्णे पढंति' इत्यादि रूपस्य वाचनान्तरीयपाठस्यायमभिप्रायः- राजधर्मस्य कालप्रभावेण अत्रारके क्रमशो व्यवच्छेदात् जनानां च भद्रप्रकृतिकत्वेनाल्पापराधकारित्वाद्, राज्ञां चाऽप्यनुग्रहदण्डत्वादपराधदण्डयोरत्रारकेऽल्पता भविष्यति । ततोऽरिष्टनामचक्रवर्तिकुलोत्पन्नाः पञ्चदश कुलकरा भविष्यन्ति, तदितरे च राजानस्तद्व्यवस्थापितमर्यादारक्षका भविष्यन्ति । ततः कालक्रमेण सर्वेऽप्यहमिन्द्रत्वं प्रतिपन्ना भविष्यन्ति । अत्र य ऋषमनामा सर्वान्तिमः कुलकरः स ऋषभाभिधतीर्थकरादन्योऽत्रसेयः । तत्र काले च तत्स्थानीयोऽन्तिमस्तीर्थकरो भद्रकृन्नामा भविष्यति । अयं च प्रस्तुतारके एकोनव-

के समय मे जघन्य ही अपराध के सद्भाव से हाकार और माकार दण्डनातियो से एव तृतीय कुलकर पञ्चक के समय में केवल जघन्य ही अपराध के रहजाने के कारण एक हाकार ही दण्ड नीति से काम लिया जाता है (दण्डणीईओ) यह पद उपलक्षण रूप है इस कारण शरीर प्रमाण, आयुष्क प्रमाण, आदि की भी यथासमव प्रति लोमता है यह बात प्रकट को गइ जाननी चाहिये (अण्णे पढंति) इत्यादि रूप वाचनान्तरीय पाठ का यह अभिप्राय है - राजधर्म का कालप्रभाव से इस आरक में क्रमश. व्यवच्छेद हो जावेगा क्योंकि मनुष्य धीरे-धीरे भद्र प्रकृतिवाले हो जावेंगे इससे उनमें अल्पापराधकारिता आती जावेगी राजाजन भी तीव्र दण्ड देने वाले नहीं होंगे इसलिये अपराध और दण्ड की अल्पता हो जावेगी अरिष्ट नामक चक्रवर्ती के कुल में उत्पन्न हुए १५ कुलकर होंगे इनसे भिन्न जो राजाजन होंगे वे उन कुलकरों को व्यवस्थापित मर्यादा रक्षक होंगे धीरे-धीरे जैसा जैसा काल व्यतीत होता जावेगा वैसे सब मनुष्य अहमिन्द्रत्व को प्राप्त होते जावेगे इसमें सर्वान्तिम ऋषभ नाम का कुलकर होगा - इस काल में अन्तिम तीर्थकर भद्रकृत नाम का होगा अवसर्पिणो काल के इस आरे में जैसे चौबीस तीर्थकरों मे से

अपराधना सद्भावथी हाकार अने माकार इ डनीतिओथी तेमज तृतीय कुलकर पञ्चकना समयमा केवल जघन्य अपराध ज शेष रहैवाथी ओक हाकार इ डनीतिथी काम अदाववामा आवे छे. (दण्डणीईओ) ओ पद उपलक्षण रूप छे. ओथी शरीर प्रमाण, आयुष्क प्रमाण, वगेरेनी पक्षु यथा संभव प्रतिबोधमता छे. ओ बात प्रकट करवामा आवेकी छे (अण्णे पढंति) इत्यादि रूप, वाचनान्तरीय पाठने ओ अभिप्राय छे- राजधर्मने काव प्रभावथी ओ आरकमां क्रमशः व्यवच्छेद थर्ष जशे केमके नाषुस धीमे-धीमे भद्र प्रकृतिवाणा थर्ष जशे ओथी तेमनामा अल्पापराध कारिता आवती जशे राजओ पक्षु तीव्र दंड आपनारा नहि थशे. ओथी अपराध अने इ डनी अल्पता थर्ष जशे, अरिष्ट नामक चक्रवर्तीना कुलमा उत्पन्न थशे। १५ कुलकरे थशे ओमनाथी भिन्न जे राजओ थशे, तेओ ते कुलकरेनी व्यवस्थापित मर्यादाना रक्षक थशे धीमे-धीमे जेम-जेम काण व्यतीत थतो जशे तेम-तेम सर्व मनुष्ये। अहमिन्द्रत्वेन प्राप्त करता जशे, ओमा सर्वान्तिम ऋषभ नामक कुलकर थशे, ओ काणमां

त्या पक्षरतिक्रान्ते समुत्पत्स्यते इत्यगमेऽभिहितम् । अवसर्पिणीकाले यः प्रथमस्तीर्थकर
स्तत्स्थाने उत्सर्पिण्यां चतुर्विंशतितमस्तीर्थङ्करो भवतीति बोध्यम् । इह ये पठच्चदग कुल-
कराः प्रोक्ताः, तत्र अन्यान्यागमे अन्यमन्य नामोपलभ्यते, तथाहि स्थानाङ्गस्य सप्तमे
स्थानके सप्त कुलकराः प्रोक्ताः, तत्र सुमतिनाम नोक्तं, दशमे तु दश कुलकराः प्रोक्ताः,
परन्तु तत्र 'सुमति' इति नाम प्रोक्तं, 'सुमति' इति आर्षशैल्या प्रसाध्य तच्छाया 'सुमति'
इति कथंचिद् भविष्यति, तथापि तन्नाम तत्र पृष्ठकुलकरस्थाने पठितं, न तु प्रथमतीर्थ,
करस्थाने । अत्रैव प्रथमे त्रिभागे किं किं वस्तु व्युच्छेदं प्राप्स्यतीति जिज्ञासायामाह 'तीसे
णं समाए पढमे तिभागे रायधम्मे जाव धम्मचरणे य वोच्छिज्जिस्सइ' इति । तस्यां खलु

प्रथम तीर्थकर आदिनाथ हुए कहे गये है वैसे ही चौबीस तीर्थकर यहां पर भी होंगे पर यहा
इनकी उत्पत्ति पहिला चौबीसमां तीर्थकर होगा फिर तेबीसमां तीर्थकर होगा इस रूप से होगी
इस तरह ऋषभनाथ भगवन् का स्थानीय अन्तिम चौबीसमां तीर्थकर जो होगा उसकानाम भद्रकृत
होगा यह इप काल में ८९ पक्ष प्रमाण जब यह काल व्यतीत हो जावेगा तब होगी ऐसा
आगम में कहा गया है अवसर्पिणी काल में जो प्रथम तीर्थकर है उसके स्थान में उत्सर्पिणी
काल में २४ वां तीर्थकर होता है यहां जो १५ कुलकर कहे गये है उनके भिन्न २ दूसरे
आगमों में नाम पाये जाते है । जैसे—स्थानाङ्ग के सप्तम स्थानक में सात कुलकर कहे हुए है—
सो उनमे सुमति कुलकर एमों नाम नहीं है दशम स्थानक में १० कुलकर कहे हुए है सो
वहां सुमति ऐसा नाम कहा गया है यदि आर्षशैली से ऐसा कहा गया है हम इस बात को
मान कर सुमति के स्थान मे सुमति ऐसाहो जायगा यह मान ले तब भी यह नाम वहा छठे
कुलकर के स्थान में पठित हुआ है प्रथम तीर्थकर के स्थान में नहीं । (तीसेण समाए पढमे
तिभाए रायधम्मे जाव धम्मचरणे अवोच्छिज्जिस्सइ) उत्सर्पिणी के इस चतुर्थ वारक मे प्रथम

अन्तिम तीर्थकर भद्रकृत नामे थशे. अवसर्पिणी कालना जे आरामां जेम २४ तीर्थकर-
माथी प्रथम तीर्थकर आदिनाथ थया छे, आम कडेवाभा आओयुं छे, तेमज २४ तीर्थकरो
अही पख थशे परंतु अही जेमनी उत्पत्ति पडेवा २४ भा तीर्थकर थशे, त्थारभाह
२४ भा तीर्थकर थशे आ कुमथी तीर्थकरो थशे. आ प्रभाणे ऋषभनाथ लगवानना स्थानीय
अन्तिम २४ भा तीर्थकर जे थशे तेतुं नाम भद्रकृत थशे, जे आ कालमा ८९ पक्ष प्रभाण
ज्यारे आ काल व्यतीत थर्ष जशे त्थारे थशे आम आगमतु वचन छे अवसर्पिणी
कालमा जे प्रथम तीर्थकर छे, तेना स्थाने उत्सर्पिणी कालमां १४ तीर्थकर डोय छे. अही
जे १५ कुलकरो कडेवाभा आवेव छे, तेमना भिन्न-भिन्न भाव आगमाभा नामे जेवा भणे छे
जेम के 'स्थानाङ्ग'ना सप्तम स्थानकमां सात कुलकरो थया छे जेपुं कडेवाभा आओयुं छे तो
तेजोभा सुमति कुलकर जेपु नाम नथी १०भा स्थानकमा १० कुलकरो कडेवाभा आओया छे 'त्या
सुमति जेपु नाम कडेवाभां आओयुं छेजे आर्ष शैलीथी जेपु कडेवाभा आओयुं छे जेम अमेआ
वात भानीजे तो सुमतिना स्थाने सुमति जेपु थर्ष जशे. जेपु भानी लधजे तो पख जे नाम

समायाम् प्रथमे त्रिभागे राजधर्मोयावद् धर्मचरणं च व्युच्छेत्स्यति विनाशं प्राप्स्यति, अत्र यावत्करणात् गणधर्मः पाखण्डधर्मश्च ग्राह्यः, अथ शेषं विभागद्वयवक्तव्यतां प्रतिपादयितुमाह 'तीसेण समाए मञ्जिमपच्छिमेसु तिभागेसु जाव पढममञ्जिमेसु वत्तव्वया ओसप्पिणीए सा भाणियव्वा' इति, तस्यां खलु समायां मध्यमपश्चिमयोस्त्रिभागयोः यावत् प्रथममध्यमयोः - अर्थयोजनेन औचित्यात् मध्यमप्रथमयोरित्यत्रसेयम्, अन्यथा शुद्धप्रातिलोम्यासंभवेन अर्थानुपपत्तिरापद्येत । या वक्तव्यता अवसर्पिण्यामुक्ता सा भणितव्या, इत्येवं रीत्या चतुर्थारकः सम्पन्नः, अथ पञ्चमपट्टौ आरकौ अतिदिशन्नाह - 'सुसमा तहेव सुसमासुसमावि तहेव जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जिस्संति जाव सण्णिचारी' इति, सुषमा-पञ्चमसमास्वरूपः कालः, तथैव अवसर्पिणी द्वितीयारकवद् बोध्या, सुषमसुषमा षष्ठसमालक्षणः कालः पट्टारक इत्यर्थः साऽपि तथैव- अवसर्पिणी प्रथमारकवद् बोध्या, कियत्पर्यन्तमत्र विज्ञातव्यमिति जिज्ञासायामाह-यावत् पद्विधाः मनुष्याः अनुसंक्ष्यन्ति संततिधारया अनुवर्तिष्यन्ति यावत् शनैश्चारिणः, संज्ञिचारिण इति भावः । अत्र यावत्पदान् पूर्वोक्ताः पद्मगन्ध्याद्य एव ग्रहोक्तव्याः ॥ सू० ६० ॥

इतिश्री वक्षविरुयात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषा कलित-ललितकलापालपक-

प्रविशुद्धगद्यपद्यानैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्री-शाह छत्रपतिकोल्हापुर-

रायप्रदत्त-जैनशास्त्राचार्य, -पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-वालब्रह्मचारी

जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचितायां

श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रस्य प्रकाशिकाख्यायां व्याख्यायां

॥ द्वितीयवक्षस्कारः समाप्तः ॥

त्रिभाग में राजधर्म यावत् गणधर्म, पाखण्ड धर्म नष्ट हो जावेगे (तीसे णं समाए मञ्जिमपच्छिमेसु तिभापसु जाव पढममञ्जिमेसु वत्तव्वया ओसप्पिणीए सा भाणियव्वा) इस आरक के मध्यम और पश्चिम त्रिभाग की वक्तव्यता अवसर्पिणी के चतुर्थ आरक के प्रथम और मध्यम के त्रिभाग जैसी है । सुसमा तहेव (सुसमासुसमा वि तहेव जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जिस्संति जाव सण्णिचारी) सुषमा और सुषमा सुषमा काल का वक्तव्यता जैसी अवसर्पिणी काल की प्ररूपणा करते समय कही गई है वैसी ही है । ॥ ६० ॥

द्वितीयवक्षस्कार का वर्णन समाप्त ।

त्या छत्रपतिकोल्हापुरना स्थानभां पठितथेद्युं छे प्रथम तीर्थं करुना स्थानभां नहि (तीसे णं समाए पढमे तिभाप रामधर्मे जाव धम्मचरणेअ वोच्छिज्जिस्संति) उत्सर्पिणीना ओ अतुथ आरकभां प्रथम त्रिभागभां राजधर्म यावत् गणधर्म, पाखण्डधर्म नाशं यावत्से (तीसे णं समाए मञ्जिमपच्छिमेसु तिभापसु जाव पढममञ्जिमेसु वत्तव्वया ओसप्पिणीए सा भाणियव्वा) ओ आरकभना मध्यम अने पश्चिम भागनी वक्तव्यता अवसर्पिणीना अतुथ आरकना प्रथम अने मध्यमना त्रिभाग जेवी छे (सुसमा तहेव सुसमासुसमा विसुतहेव जाव छव्विहा मणुस्सा अणुसज्जिस्संति जाव सण्णिचारी) सुषमा अने सुषमा सुषमा कालनी वक्तव्यता जे प्रभावे अवसर्पिणी कालनी अरूपणा करता कहेवाभा आवी छे, तेवी जे छे ॥ ६० ॥

श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रस्य प्रकाशिकाख्यायां व्याख्यायां

तृतीय वक्षस्कारः प्रारम्भयते

अथ वर्ण्यमानस्यैतद्वर्षस्य नाम्नः प्रवृत्ति निमित्त प्रष्टुकामः गौतमः प्रह- "से-
केणद्वेणं" इत्यादि ।

मूलम्-से केणद्वेणं भंते ! एवं वुच्चइ भरहेवासे २ ? गोयमा !
भरहे णं वासे वेअद्धस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चोदसुत्तरं जोअणसयं
एक्कारस्स य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अवाहाए लवणसमुदस्स उत्तरेणं
चोदसुत्तरं जोअणसयं एक्कारस्स य एगूणवीसइभाए जोअणस्स अवाहाए
गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं दाहिणद्ध
भरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं चीणी याणामं रायहाणी
पणत्ता, पाइणपडीणाययो उदीणदाहिणविच्छिन्ना दुवालस जोयणा-
यामा णवजोअण विच्छिण्णा धणवइमति णिम्माया चामीयरपागारा णाणा
मणि पंचवणकविसीसग परिमंडिआभिरामा अलकापुरी संकासा पमुइय
पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूआ रिद्धित्थिमिअ समिद्धा पमुइयजण-
जाणवया जाव पडिक्खा ॥ सू० १ ॥

छाया-तत् केनार्थेन भदन्त ! एव मुच्यते भरतवर्षम् २? गौतम ! भरते खलु वर्षे वैताढ्यस्य
पर्वतस्य दक्षिणेन चतुर्दशोत्तरं योजनशतम् एकादशचैकोन विंशति भागान् योजनस्याबा-
धया लवणसमुद्रस्योत्तरेण चतुर्दशोत्तरं योजनशतम् एकादशचैकोनविंशतिभागान् योजनस्या
बाधया गङ्गाया महानाद्या पश्चिमेन सिन्धुः महानाद्याः पौरस्त्येन दक्षिणार्द्धभरतमध्यम
तृतीयभागस्य बहुमध्यदेशभागे, अत्र खलु विनीता नाम राजधानी प्रशस्ता पूर्वापरयी दिशोराय-
ता उत्तरदक्षिणयो विस्तीर्णा द्वादश योजनायामा, नवयोजन विस्तीर्णा धनपतिमत्या नि-
मिता चामीकरप्राकारा, नानामणि पच्चवर्णकपिशीर्षपरिमण्डिताऽभिरामा अलकापुरी
संकाशा, प्रमुदितप्रकीडिता, प्रत्यक्षं देवलोकभूता, ऋद्धित्तिमित समृद्धा प्रमुदितजनजानपदा
यावत् प्रतिरूपा ॥ सू० १ ॥

टीका "सेकेणद्वेणं" इत्यादि । (से केणद्वेणं भंते ! एवं वुच्चइ भरहे वासे अथ स-
म्पूर्णभरतक्षेत्रस्वरूपश्रवणानन्तरं गौतमः पृच्छति तत्केनार्थेन खलु भदन्त ! एवमु-

* तृतीय वक्षस्कार का वर्णन प्रारम्भ *

से केणद्वेणं भंते एवंवुच्चइ भरहेवासे २-इत्यादि सूत्र-

तृतीय वक्षस्कार २. वृत्तं प्रारंभ

से केणद्वे णं भंते ! एव वुच्चइ भरहेवासे-इत्यादि सूत्र-१

च्यते भरतवर्ष २ ? इति अस्मिन् क्षेत्रे भरतचक्रवर्ती आसीद् अतएवास्य भरतं वर्षमिति नाम जातम् इति भगवान् प्रदर्शति—‘गोयमा’ इत्यादि—‘गोयमा ! भरहे णं वासे वेयह्वस्स पव्वयस्स दाहिणेणं’ भगवानाह—हे गौतम ! भरते खलु वर्षे वैताढ्यस्य पर्वतस्य दक्षिणे दक्षिदिग्बर्ति भागे इत्यर्थः ‘चोद्दसुत्तर जोयणसयं एक्कारसय एगूणवीसइभाए जोयणस्स अवाहाए’ चतुर्दशोत्तरं योजनशतम् एकादशचैकोनविंशतिभागान् योजनस्य अवाधया अन्तरं कृत्वा ‘लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं चोद्दसुत्तरं जोयणसयं एक्कारसय एगूणवीसइभाए जोयणस्स अवाहाए’ तथा लवणसमुद्दस्योत्तरे दक्षिणलवणसमुद्दस्य उत्तरेभागे, चतुर्दशोत्तरं योजनशतम् एकादश चैकोनविंशतिभागान् योजनस्य अवाधया—अन्तरं कृत्वा, पूर्वापरसमुद्रयो र्गङ्गा सिन्धुभ्यां व्यवहितत्वान्न तद्विवक्षां कृत्वा ‘गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं’ गङ्गाया महा- नद्या पश्चात्त्ये पश्चिमायाम् ‘सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं’ सिन्धुवा महानद्याः पूर्वस्यां दिशि ‘दाहिणद्धभरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए’ दक्षिणार्द्धभरतस्य मध्यमत्.

टीकार्थ— १ इस सूत्र द्वारा श्री गौतम स्वामीने प्रसु से इस प्रकार पूछा है—किं (से केणट्टेणं मंते । एवं बुच्चइ भरहे वासे २) हे भदन्त ! इस भरत क्षेत्र का नाम भरत क्षेत्र ऐसा किम कागण से रखा गया है ? इसके उत्तर में प्रसु श्री कहते है (गोयमा ! भरहे णं वासे- वेयह्वस्स पव्वयस्स दाहिणेणं चोद्दसुत्तरं जोयणसयं एक्कारसय एगूणविसइभाए जोयणस्स अवाहाए लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं) हे गौतम ! भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत के दक्षिण भाग में—११४^१/_{१९} योजन के अन्तराल से तथा दक्षिण लवण समुद्र के उत्तर भाग में—११४

^१/_{१९} योजन के अन्तराल से (गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं) गंगा नदी की पश्चिमदिशामें (सिन्धूए महाणईए पुरत्थिमेणं) सिन्धुनदीकी पूर्वदिशामें (दाहिणद्धभरहमज्झिल्लतिभागस्स

टीकार्थ—आ सूत्र वडे गौतमस्वामीञ्जे प्रभुने आ प्रभाण्णे प्रश्न कथों छे के (से केणट्टेणं मंते एवं बुच्चइ भरहेवासे २) हे भदन्त ! आ भरतक्षेत्रं नाम भरतक्षेत्रे अरीने शा कारण्णी प्रसिद्ध थयुं छे ? अना लवणभां प्रभु कडे छे (गोयमा ! भरहेणं वासे वेयह्वस्स दाहिणेणं चोद्दसुत्तर जोयणसयं एक्कारसय एगूणवीसइभाए जोयणस्स अवाहाए लवणसमुद्दस्स उत्तरेणं) हे गौतम ! भरतक्षेत्रना वैताढ्य पर्वतना दक्षिणभागथी ११४^१/_{१९} योजनना अंतरालथी तेमज्झ दक्षिण लवण समुद्रना उत्तरभागभां ११४-१११^१/_{१९} योजनना अंतरालथी (गंगाए महाणईए पच्चत्थिमेणं) गंगा महानदीनी पश्चिम दिशामा (सिंधूए महाणईए पुरत्थिमेणं) सिन्धु नदीनी पूर्व दिशामा (दाहिणद्धभरहमज्झिल्लतिभागस्स बहुमज्झदेसभाए) अने दक्षिणार्द्ध भरतना मध्यतृतीय भागना षड् मध्यप्रदेश भागमा (एतथ णं विणीआ णाम रायहाणी पण्णत्ता) विनीता नामक एक राजधानी कडेवामा आवेळ छे ११४ योजननी उत्पत्ति—ने प्रकार आ प्रभाण्णे छे भरतक्षेत्रने विस्तार पर ६।६।१६ योजन जेट्ठे छे वैताढ्यपर्वतने व्यास ५० योजन जेट्ठे छे तो आने भरतक्षेत्रना विस्तारमाथी आह करीजे तो ४७६-६।१६ योजन शेष

तीयभागस्य बहुमध्यदेशभागे, 'एत्थणं विणीआ णाम रायहाणी पणत्ता' अत्र खलु एतादृशे किञ्च क्षेत्रे विनीता अयोध्या नाम्नी राजधानी प्रजप्ता । साधिक चतुर्दशाधिक योजनशताङ्कोत्पत्ति प्रकारः प्रदर्श्यते—तथाहि भरतक्षेत्रम् षड्विंशत्यधिकपञ्चशतानि ५२६ योजनानि पृष्ठ ६ कला योजनैकोनविंशतिभागरूपा विस्तृतम्, अस्मात् पञ्चाशत् ५० योजनानि वैताढ्यगिरिव्यासरूपाणि शोधयन्ते, जातम् ४७६ $\frac{६}{१९}$ कलाः, दक्षिणोत्तरभरतार्द्धयो विभजनया एतस्यार्द्धे २३८ $\frac{३}{१९}$ कलाः, इयतो दक्षिणार्द्धभरतव्यासाद् 'उदीणदाहिणवित्थिन्ना' इत्यादि वक्ष्यमाणवचनात् विनीताया विस्ताररूपाणि नव योजनानि शोधयन्ते, जातम् २२९ $\frac{३}{१९}$ कलाः, अस्य

बहुमध्यदेशभागे) और दक्षिणार्ध भरत के मध्यम—तृतीय भागके बहुमध्य देशभाग में (एत्थ णं विणीआ णाम—रायहाणी पणत्ता) विनीता नाम की एक बहुत प्रसिद्ध राजधानी कही गई है । ११४ योजन की उत्पत्ति का प्रकार ऐसा है—भरत क्षेत्र का विस्तार ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन का है वैताढ्य पर्वतका व्यास चोडाह् ५० योजन का है सो इसे भरत क्षेत्रके वि

स्तार में से घटा देनेपर ४७६ $\frac{६}{१९}$ योजन रह जाते हैं । दक्षिणार्ध भरत और उत्तरार्ध भरत में इन्हें

विभक्त करने पर २३८ $\frac{३}{१९}$ योजन आते है । अब दक्षिणार्ध भरत व्यास मे से विनीता के विस्ताररू-

प नौ योजन घटाने पर २२९ $\frac{३}{१९}$ आते हैं । इसके मध्य भाग में नगरी है सो इस प्रमाण को आ

घा करने पर ११४ योजन प्रमाण आजाता है बचे हुए एव योजन के १९—भाग करने पर और उनमें ३ कलाओं को मिलाने पर हुए—२२ को आघा करने पर ११ कला आजाती है यह विनीता नामकी नगरी (पाईण पडोणायया) पूर्व से पश्चिम तक लम्बी है (उदीणदाहिणवित्थिन्ना)

रहे छे दक्षिणार्ध भरत अने उत्तरार्ध भरतमा अभने विभक्त करीये तो २३८-३१६ योजन थाय छे हवे दक्षिणार्ध भरतव्यासमाथी विनीताना विस्तार ३५ नव योजन आह करीये तो २२६-३१९ आवे छे अने मध्यभागमा नगरी छे, तो आ प्रमाणुने अधुं करीये तो ११४ योजन प्रमाण आवी लय छे शेष तेमज योजनाना १६ भाग करवाथी अने तेमा ३ कलाओ उमेरवाथी २२ थाय अने हवे २२ ना छे भाग करीये तो तेना अधीं ११ कलाओ आवी लय छे अने विनीता नामे नगरी (पाईण पडोणायया) पूर्वाथी पश्चिम सुधी बाणी

च मध्यमगे नगरोत्पद्गरणे ११४ चतुर्दशोत्तरयोजनशनम् जातम् अवशिष्टस्यैकस्य योजनस्य एकोनविंशतिभागेषु कलात्रयक्षेत्रे सति जाताः २२ तदर्द्धम् ११ एकादशकला इति, तामेव विशेषणैर्विशिनष्टि— 'पार्श्व पड्डीणायया' इत्यादि । 'पार्श्व पड्डीणायया' पूर्वापरयो दिशोरायता 'उदीणदाहिणवित्थिन्ना' उत्तरदा क्षिणयो विस्तीर्णा 'दुवालस जोयणायामा' द्वादशयोजनायामा 'णवजोयणवित्थि- ण्णा' नत्र योजनविस्तीर्णा 'धणवइमतितिण्ममाया' धनपतिमत्या उत्तरदिक् पालबुद्धया निर्मिता, निपुणशिल्पविरचितस्यातिसुन्दरत्वात् 'चामीयरपागारा' चामीकरप्राकारा स्वर्णमयप्राकारयुक्ता 'णाणामणिपंचवण्णा कविसोसगपरिमंडियाभिरामा' नानामणिपञ्चवर्णकपिशीर्षकपरिमण्डिता अतएवाभिरामा मनोहरा 'अलकापुरीसकासा' अलकापुरीसंकाशा—धनदपुरीसन्निभा 'पमुइयपक्कीलिया' प्रमुदितप्रकीडिता, प्रमुदित- जनयोगात् नगर्यापि 'तात्स्थयात् तद्व्यपदेश' इति न्यायात् प्रमुदिता तथा प्रकीडिता

और उत्तर से दक्षिण तक चौड़ी है (दुवालसजोयणायामा) इस तरह इसकी लम्बाई १२—यो- जन की है (णवजोयण वित्थिणा) और नौ योजन की इसकी चौड़ाई है । (धणवइमति णिम्मया) कुवेर ने उत्तर दिशा के अधिपति ने—इसे रचा है (चामीयरपागारा) स्वर्णमय—प्राकार से यह यु- क्त है (णाणामणि पंचवण्ण कविसोसगपरिम डियाभिरामा) पांचवर्णवाछे अनेक मणियों से इसके कगुरे बने हुए हैं उनसे यह परिमंडित है अतः देखने में यह बड़ी सुन्दर लगती है. (अल- का पुरी सकासा) इसलिये यह ऐसी प्रतीत होती है कि मानो यह धनद—कुवेर—की ही नगरी है. (पमुइय पक्कीलिया) यहाँ पर रहने वाले सदा प्रसन्नचित—रहते हैं और अनेक प्रकार की क्रीडाओं के रसमें सराबोर—रहते हैं—इस कारण यह नगरी भी उनके सम्बन्ध से प्रमुदित और प्रकीडित बनी रहती है. (पञ्चकख देवलोगभूया) देखने वालों के लिये यह नगरी साक्षात् देव- लोक के समान लगती है (रिद्धित्थिमियसमिद्धा) यह नगरी विभव, भवन आदि के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए हैं इसमें रहने वालों को स्वचक्र और परचक्र का विलकूल भय नहीं रहता है तथा धन

छे. (उदीणदाहिणवित्थिन्ना) अने उत्तरथी दक्षिण्य सुधी पडोणा छे (दुवालसजोयणायामा) आ प्रमाणे अनी ल भाध १२ ये।जन जेटली छे (णवजोयणवित्थिण्णा) अने नव ये।जन जेटली अनी पडोणाध छे (धणवइमति णिम्मया) उत्तर दिशाना अधिपति कुवेरे अनी रचना करी छे (चामीयरपागारा) स्वर्णमय प्राकारथी अे युक्त छे (णाणामणि पञ्चवण्ण कविसोसगपरिमंडियाभिरामा) पाच वणुवाणा अनेक मण्णुअेथी अेना कांगराअे। अनेला छे तेमनाथी अे परिमंडिन छे अेथी जेवामा अे भूषण सुहर लागे छे (अलकापुरी संकासा) अेथी अे अेवी प्रतीत थाय छे के जण्णे अे धनद—कुवेर—नी नगरी छे, (पमुइय पक्कीलिया) अहाँ रहनेनारा सवँदा प्रसन्नचित रह छे अने अनेक प्रकारनी क्रीडाअे।ना रसभा भजन रह छे अेथी आ नगरी पणु तेमना सभधथी प्रमुदित अने प्रकीडित रह छे. (पञ्चकख देवलोगभूया) जेनाराअे। भाटे अे नगरी साक्षात् देवलोक जेवी लागे छे, (रिद्धित्थिमियसमिद्धा) अे नगरी विभव, भवन आदि वडे समृद्धि सम्पन्न थय

क्रीडावन्तस्तादृशा ये जनास्तद्योगान्नगर्ग्यपि प्रक्रीडिता 'पञ्चकखं देवलोगभूया प्रत्यक्षं देवलोकभूता साक्षाद्देवलोरुसमाना, 'रिद्धित्थिमियसमिद्धा, ऋद्धस्तिमित समृद्धा ऋद्धा विभवभवनादिभि वृद्धिमुपगता स्तिमिता—स्त्रपरचक्रभयगहिता स्थि- रेति यावत्, समृद्धा धनधान्यसमेवितात्प्रमुदिता जना नागरिकाः, 'पमुइय जण जाणवया, प्रमुदितजन जानपदा 'जाव पडिरूवा, यावत् प्रतिरूपा, प्रमुदितजनजा- नपदेति विशेषणं प्रमुदितप्रक्रीडितेति विशेषणस्य हेतुभूततया न पौनरुक्त्यमि- त्यलमधिकपल्लवितेन ॥सू० १॥

नन्वेव प्रस्तुत भरतक्षेत्रस्य नाम प्रवृत्तिः ऋथं जाता ? इत्याह—“तत्थणं इत्यादि मूलम्—तत्थ णं, विणोवाए रायहोणीए भरहे णामं राया चाउरंत चक्कवट्ठी समुप्पजित्था, गहया हिमवंत महंतमलयमंदर जाव रज्जं पसासे माणे विहरइ । विइओ गमो रायवण्णगस्स इमो, तत्थ असंखेज्ज कालवासं तरेण उप्पज्जए जसंसो उत्तमे अभिजाए सत्तवीरिय परक्कमगुणे पसत्थ वण्ण सरसार संघयणतनुगबुद्धिधारणमेहासंठाण सीलप्पगई पहाणगारव- च्छायागइए अणेगवयणप्पहाणे तेअ आउबलवीरियजुत्ते अञ्जुसिरघणणि- चिअलोह संकलणाराय वइरउसह संघयण देहधारी झस ? मिंगार २ जुग ३ बद्धमाणग ४ भहमाणग ५ संख ६ छत्त ७ वीअणि ८ पडाग ९ चक्क १० णंगल ११ मुसल १२ रह १३ सोत्थिअ १४ अंकुस १५ चंदा १६ इच्च १७ अग्गि १८ जूय १९ सागर २० इंदज्जय २१ पुहवि २२ पउम २३ कुंजर २४ सीहासण २५ दंड २६ कुम्भ २७ गिरिवर २८ तुरगवर २९ वरमउह ३० कुंडल ३१ णंदावत्त ३२ धणु ३३ कौंत ३४ सागर ३५ भवणविमाण ३६ अणेगलक्खण पसत्थ सुविभत्त चित्तकर

धान्य आदि की वृद्धि के कारण यहां के समस्त नागरीक जन सदा आनन्द—आनन्द में ही डूबे रहते हैं । (जाव पडिरूवा) इस कारण यावत् यह नगरी प्रतिरूप है— अन्य नगरी हमके जैसी नहीं है— 'अनुपमरूपवाली है प्रमुदितजनजानपदा' यह विशेषण " प्रमुदितप्रक्रीडित" इस विशेषण का हेतु-भूत है. इस कारण यहां पुनरुक्ति दोष नहीं आता है ॥ १ ॥

छे, जेभा रडेनाराजेने स्वयंके अने पर अकने। अय जेकहम लागतो नथी, तेमन धन- धान्य आदिनी समृद्धिने बोधे अही रडेनारा सर्व नागरिके सपदा आनंद भजन व रडे छे, (जाव पडिरूवा) जेथी यावत जे नगरी प्रति इय छे, जीए केई नगरी जेना जेवी समृद्ध नथी. जे अनुपम इयवती छे, "प्रमुदितजनजानपदा" जे विशेषण "प्रमुदितप्रक्रीडित" जे विशेषण भाटे हेतुभूत छे. जेथी अहा पुनरुक्ति दोष नथी, ॥ सू० १ ॥

चरणदेसभागे उद्धामुह लोमजाल सुकुमालणिद्ध मउओवत्त पसत्थलोम
 विरइअमिखिच्छच्छणविउलत्रच्छे देसखेत्तसुविभत्तदेहधारी तरुणरवि
 रस्सिबोहिअवरकमल विबुद्धगवभवण्णे ह्यपोसणकोससण्णिभ पसत्थ पि
 ड्डत णिरुवलेवे पउमुप्पलकुंदजाइजूहियवर चंपगणागपुप्फसारंगतुल्लगंधी
 छत्तीसा अहिअ पसत्थ पत्थिवगुणेहिं जुत्ते अव्वोच्छिण्णातपत्त पागड
 उभयजोणी विसुद्धणिअगकुलगयणपुण्णचंदे चंदे इव सोमयाए णयणमण
 णिवुइकरे अक्खोमे सागरोव थिमिए धणवइव्व भोगसमुदयसईव्वयाए
 समरे अपराइए परम विक्रमगुणे अमर वई समाण सरिसरूवे मणुअवई
 भरहचक्कवट्टी भरहं भुंजइ पणड्डसत्त ॥ सू० २ ॥

छाया- तत्र खलु विनीताया राजधान्या भरतो राजा चातुरन्तचक्रवर्ती समु-
 दपद्भ्यत, महाहिमवन्महन्मलयमन्दरयावद्राज्य प्रशासयन् विहरति । द्विनोयो गमो राज-
 वर्णकस्यायम् तत्र असंख्येयकाल वर्षान्तरेण उत्पद्यते वशस्वी, उत्तमः, अभिजान- सत्त्ववीर्य-
 पराक्रमगुणः प्रशस्त सारसंहननतनुकुबुद्धिधारणमेधा संस्थानशीलप्रकृतिक प्रधानगौर
 वच्छायागतिक अनेक वचन प्रधानः, तेज आयु र्वलवीर्ययुक्त. अशुपिर घणनिचित-
 लोहसुद्धलनाराचवर्ज्यम संहननदेहधारी ह्यप १ युग २ भृङ्गार ३ वर्द्धमानक ४ भद्रासन
 ५ शङ्ख ६ छत्र ७ व्यजन ८ पताका ९ चक्र १० लङ्गूल ११ मुसल १२ रथ १३ स्वस्तिका
 १४ कुक्कुश १५ चन्द्रा १६ वित्या १७ ग्नि १८ धूप सागरे २० न्द्रध्वज २१ पृथ्वी २२ पद्म
 २३ कुब्जर २४ सिंहासन २५ २६ कूर्म २७ गिरिवर २८ तु रगवर २९ वरमुकुट ३० कुण्डल
 ३१ नन्द्यावर्त ३२ धनु ३३ कुन्त २४ सागर ३५ भवन विमाना ३६ नेकलक्षण प्रशस्त सुविभ
 क चित्रकरचरणदेशभागः ऊर्ध्वमुखलोमजाल सुकुमाल स्निग्ध मृदुकावर्त प्रशस्त लो
 मधिरचित श्रीवत्सच्छन्नविपुलवक्षस्कः, देशक्षेत्र सुविभक्तदेहधारी, तरुणरविरश्मि बोधि-
 तवरकमल विद्ध गर्भवर्ण, ह्यपोसनकोशसन्निभपृष्ठान्तनिरूपलेप, पदमोत्पल कुन्द
 जाति यूथिकवरचम्पकनाग पुष्प सारङ्गतुल्य गन्धो, षट्त्रिंशता अधिक प्रशस्त पार्थिव-
 गुणैर्युक्त अव्यवच्छिन्नातपत्र., प्रकटोभययोनिक . विशुद्ध निजककुलगगन पूर्णचन्द्र इव सो-
 मतया नयनमनसो निवृत्तिकरः, अक्षोभ, सागर इव स्तिमित, धनपति रिव भोग समुद
 सद् द्रव्यतया, समरे अपराजितः, परम विक्रमगुण., अमरपतिसमान सहशरूप, पनुमपति.
 महत्तचक्रवर्ती भरत मुक्ते प्रणष्टशत्रुः ॥ सू० २ ॥

टीका-‘तत्थण विणीयाए रायहोणीए भरहे णाम . राया तत्र खलु विनीतायाम्
 अयोव्याया राजधान्या भरतो नाम राजा, सच वासुदेवोऽपिस्यात् तथा साम-
 न्तादिरपि स्यात् अतस्तथोर्व्यावृत्त्यर्थमाह-‘चाउरतचक्रवट्टी’ चातुरन्तचक्रवर्ती, चत्वा-

रोऽन्ताः—पूर्वापरदक्षिणसमुद्रास्त्रयः चतुर्थो हिमवान् इत्येवं स्वरूपास्ते सन्ति वश्यतया अस्येति चातुरन्तः सचासी चक्रवर्ती चेति चातुरन्तचक्रवर्ती 'समुष्प-ज्जित्था, समुदपद्यत आसीदित्यर्थः स कीदृशः ? इत्याह—'महयाहिमवंतमहं मलय मंदर जाव रज्ज पसासेमाणे विहरइ, महाहिमवन्महन् मलयमन्दर यावद्राज्यं प्रशा-सयन् विहरति, यावत्पदात् प्रथमोपाङ्गतः, माहिदसारे इत्यारभ्य समग्री राजवर्णको ग्राह्यः राजा औपपतिके एकादश सूत्रे द्रष्टव्यः तथाहि—महाहिमवान् हैमवत हरि-वर्षक्षेत्रयो विर्भाजकः कुल पर्वतः तद्वत् महान् तथा मलयमन्दरमहेन्द्राणां पर्वतविशेषाणा सार इव सारो यस्य स तथा अन्तर्वलं यद्वा मलयादिरिवमारः प्रधानो यः स तथा पर्वतानां तद्ध्ये मलयादयः पर्वतविशेषाः प्रधानास्तथाऽयमपि अन्य नरेन्द्राणां मध्ये प्रधान इतिभावः, एतादृशविशेषणविशिष्टः राजा राज्यं प्रशासयन् पालयन् विहरति इत्यत एव भरतं वर्षमिति नन्वेवमपि शाश्वती भरतनाम प्रवृत्तिः

तत्स्थणंविणीयाए रायहाणीए भरहेणाम'—इत्यादि सूत्र २—

टीकार्थ—उस विनीता नाम की राजधानी मे (भरहेणाम राया चाउरतचक्रवद्वी समुष्पज्जित्था) भरत नाम का चातुरन्त चक्रवर्तीराजा उत्पन्न हुआ—पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिग्बर्ता तान समुद्र और चतुर्थ हिमवान् पर्वत जिस राजा के आधीन होते हैं वह चातुरन्त कहलाता है, ऐसा चातुरन्त चक्रवर्ती राजा जो होता है वह चातुरन्त चक्रवर्ती राजा कहा जाता है । (महया हिमवत महत्तमलयमंदर जाव रज्जं जाव पसासे माणे विहरइ) यह चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा हिमवान् पर्वत के, मलय पर्वत के, मंदर पर्वत के और महेन्द्र पर्वत के जैसा विशिष्ट अन्तर्वल वाला था- अथवा मलयादि पर्वतों के जैसा प्रधान था ये मलयादि पर्वत अन्य पर्वतों के बीच में प्रधान रूप से परिगणित हुए हैं इसी -तरह से यह राजा भी अन्य राजाओं के बीच में प्रधान रूप से उल्लिखित होता था ऐसा यह राजा यावत् राज्य—का शासन करता हुआ—हर तरह से उसका संरक्षण और संभाल करता हुआ आनन्द से रहता था इस कारण-इस क्षेत्र का नाम भरत क्षेत्र ऐसा हुआ—

तत्स्थणं विणीयाए रायहाणीए भरहेणाम'—इत्यादि सूत्र—॥२॥

टीकार्थ—त विनीता नामक राजधानीमे (भरहेणाम राया चाउरत चक्रवद्वी समु-ष्पज्जित्था) भरत नामे एक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा उत्पन्न थये। पूर्व-पश्चिम अने दक्षिण दिग्बर्ता त्रय समुद्रो अने चतुर्थ हिमवान् पर्वत के राजानी अधिनतामे होय छे। ते चातुरन्त छे जेवे के चातुरन्त चक्रवर्ती राजा होय छे, तेने चातुरन्त चक्रवर्ती राजा कहेवामे आवे छे। (महया हिमवंतमहत्तमलयमंदर जाव रज्जं जाव पसासे माणे विहरइ) जे चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा हिमवान् पर्वतना, मलय पर्वतना, मंदर पर्वतना अने महेन्द्र पर्वतना जेवु विशिष्ट अन्तर्वल धरावतो हतो अथवा मलयादि पर्वतानी जेभ ते प्रधान हतो जे मलयादि पर्वतः अन्य पर्वतना प्रधान रूपमे परिगणित थया छे, आ प्रमाणे जे जे राजा पशु अन्य राजाओनी मध्ये प्रधान रूपमे उल्लिखित थये हतो जेवे ते राजा यावत् राज्य—शासन सँभाणतो, हरैक रीते तेनु संरक्षण अने तेनी संभाण करतो

श्रूयते तत् कथम् ? तदभावे च 'सेत्तं' इत्यादि वक्ष्यमाणं निगमनमपि असम्भवी-
त्याङ्ग्य प्रकारान्तरेण तत्तत्कालाभवि भरत चक्रवर्त्युद्देशेन राजवर्णकमाह - 'विडभो गमो
राजवर्णगस्स इमो' द्वितीयो गमः पाठविशेषो राजवर्णकस्यायम् 'तत्थ असंखेज्ज
'कालवासंतरेण उप्पज्जए' तत्र तस्यां विनीतायाम् नगर्यां, अमंखेयः कालो यं
वर्षे स्तानि वर्षाणि असंखेयानीत्यर्थः तेषामन्तरेण असंख्यातकालनन्तरम् अयमर्थ
प्रवचने हि कालस्यासंखेयता असंखेयैरेव वर्षे व्यर्थवद्भवति अन्यथा समयापेक्षया-
ऽसंखेयायुक्तत्वं व्यवहारप्रसङ्गः, तेनासंखेयवर्षात्मकासंखेयकाले गते एकस्माद्
भरतचक्रवर्तिनोऽपरोभरतचक्रवर्ति यतः प्रकृतक्षेत्रस्य भरतेति नाम प्रवर्त्तते स उत्प-

शका- यह ठीक है जो भरत क्षेत्र इस प्रकार के नामकरण में आपने कारण बताया है
परन्तु शाश्वती जो भरत क्षेत्र" इस नाम की प्रवृत्ति सुनी जाती है वह कैसे सगत होती है
यदि ऐसी बात न हो तो फिर "से त्तं इत्यादिरूप से जो निगमन सूत्र है वह असंभवित हो
जाता है ? तो इस जंका के समाधान निमित्त सूत्रकार प्रकारान्तर से तत्काल भावी भरत नाम
चक्रवर्ती के वर्णन के उद्देश्य से राजा का वर्णन करते हैं- "विडभो गमो राजवर्णगस्स इमो"
जो वर्णन इस प्रकार से है- (तत्थ असंखेज्जकालवासंतरेण उप्पज्जए जससो उच्चमे अभिजाए
सत्तवीरिय परक्कमगुणे) उस विनीता में असंख्यात काल तक के अनन्तर - जो काल वर्षों
द्वारा असंख्यात होता है ऐसे वे वर्ष असंख्यात होते हैं- उन असंख्यात वर्षों के बाद जिस से
इस क्षेत्र का नाम भरत ऐसा प्रचलित होता है ऐसा भरत चक्रवर्ती उत्पन्न होता है. यहा
जो काल में वर्षों की अपेक्षा लेकर असंख्यातता प्रकट की गई है सो प्रवचन की मान्यतानु-
सार ही प्रकट की गई है क्योंकि प्रवचन में असंख्यात वर्षों को लेकर ही काल में असंख्यात
काल का व्यवहार हुआ है समयों की अपेक्षा काल में असंख्यातता का व्यवहार कल्पित

आन ह पूर्वक रहते। हते। अथी अ क्षेत्रनु नाम भरतक्षेत्र अेषुं थयुं छे. शंका-आ
परान्तर छे के भरतक्षेत्रनु नाम प्रचलित थयु तेमां तमे आ कारण स्पष्ट कथुं यथु शाश्वती
जे भरतक्षेत्र अे नामनी प्रवृत्ति सांभणवाभा आवे छे, ते केवी रीते संगत थर् शके ?
जे अे वात डोय नहि तेा पछी 'सेत्तं' इत्यादि रूपमा जे निगमन सूत्र छे. ते असंभ-
वित थर् भय छे ? तेा अे शंका ना समाधान माटे सूत्रकार प्रकारान्तरथी तत्काल भावी
भरत नामक चक्रवर्तीना वषुं नने अनुलक्षीने राजनुं वषुं न करे छे- "विडभो गमो राजवर्ण-
गस्स इमो" ते वषुं न आ प्रभाषे छे- (तत्थ असंखेज्जकाल वासंतरेण उप्पज्जए जससो,
उच्चमे अभिजाए सत्तवीरिय परक्कमगुणे) ते विनीता नगरीमा असंखे काण पछी- जे काण
वर्षी द्वारा असंख्यात डोय छे, अेना ते वर्षी असंख्यात डोय छे- ते असंख्यात वर्षी
पछी- जेना वडे आ क्षेत्रनु नाम भरत आ नामे प्रख्यात थयुं, अेवा ते भरत चक्रवर्ती राज
उत्पन्न थाय छे अही जे काणमा वर्षीनी अपेक्षाअे असंख्यातता प्रकट करवाभा आवी छे,
ते प्रवचननी मान्यतानुसार जे प्रकट करवाभा आवी छे केमके प्रवचनमा असंख्यात वर्षीने
वर्णने जे काणमा असंख्यात काणने व्यवहार थये छे समयोनी अपेक्षाअे काणमा असं-

घते इति सच कीदृश इत्याह—‘जसंसी उत्तमे अभिजाए, यशस्वी कीर्त्तिमान् उत्तमः शलाकापुरुषत्वात् अभिजातः कुलीनः श्रौतृपभादिवंश्यत्वात् ‘सत्त्ववीरिय परक्कमगुणे, सत्त्व—साहसं वीर्यम्—आन्तरं बलम्, परक्रमः शत्रुविनासनशक्तिः एते गुणा यस्य स सत्त्ववीर्यपराक्रमगुणः एतेन राज्योचितसर्वातिशायि गुणवत्त्वमुक्तम् पसत्त्ववृण्णसरसार-संघयण तनुगबुद्धिधारण मेहासंठाण सीलप्पई’ प्रशस्तवर्णं स्वरसार संहनन तनुकवुद्धिधारणमेधा संस्थान शील प्रकृतिः, तत्र प्रशस्ताः—तत्कालवर्त्ति जनापेक्षया श्लाघनीयाः वर्णः देहकान्तिः, स्वरो ध्वनिः सारः शुभपुद्गलोपचयजन्धो घातुविशेषः, संहननम् अस्थिनिचयरूपम् तनुकं शरीरम् धारणा अनुभूतार्थधारणाशक्तिः मेधा हेयोपादेयधीः, संस्थानं यथास्थानमङ्गोपाङ्गविन्यासः शीलम् आचारः प्रकृतिस्वभावः, एतेषां द्वन्द्वोत्तरं प्रशस्ता वर्णादयोऽर्थाः यस्य स तथेति बहुव्रीहिः ‘पहाणगारवच्छायागईए,

क्रिया जावे तो फिर इस काल मे मनुष्यो में असख्यता युष्कत्व का व्यवहार प्रसङ्ग प्राप्त होता है अतः काल में असख्येयता असख्यात वर्षों की अपेक्षा से ही मानना चाहिये इस तरह जब असख्यात वर्षों तक असख्यात काल व्यतीत हो चुके तब एक भरत चक्रवर्ती के बाद दूसरा भरत चक्रवर्ती कि जिससे भरत क्षेत्र का भरत ऐसा नाम प्रचलित होता है उत्पन्न होता है यह भरत चक्रवर्ती (जसंसी उत्तमे अभिजाए) यशस्वी कृति संपन्न होता है, उत्तम शलाका पुरुष होने से—श्रेष्ठ होता है तथा अभिजात—कुलीन होता है क्यों कि यह ऋषभादि का वंशज होता है (सत्त्ववीरियपरक्कमगुणे) इसमें सत्त्व साहस वीर्य आन्तर बल, पराक्रम—शत्रु विनाशन शक्ति ये सब गुण होते हैं इम पद द्वारा उसमें राजन्य के उचित सर्वाति शायी गुणवत्ता प्रगट की गई है (पसत्त्व वृण्ण सर सार संघयण तनुगबुद्धिधारण मेहा संठाण सीलप्पई) अन्य राजाओं की अपेक्षा इमका वर्ण देहकान्ति, स्वर ध्वनि, सार शुभपुद्गलोपचय जन्य घातुविशेष, संहनन अस्थिनिचय तनु शरीर धारणा अनुभूत अर्थ की धारणा शक्ति

ज्याततानो व्यवहार यथे नथी. जे समथनी अपेक्षाजे काणमा अस ज्जाततानो व्यवहार उद्विपत करवामां आवे तो पछी जे काणमा मनुष्योमा अस ज्यातायुष्कत्वनेो व्यवहार प्रसङ्ग प्राप्त थाय छे जेथी काणमा अस ज्ज्येयता अस ज्जात वर्षोनी अपेक्षाथी ज मानवी जेठे जे आ रीते ज्यारे अस ज्जात वर्षो सुधी अस ज्जात वर्षो व्यतीत थर्ध यूक्या त्जारे जेठ भरत चक्रवर्ती पछी थिजे भरत चक्रवर्ती—जे जेमनाथी भरतक्षेत्रनु नाम भरत आ प्रभाजे प्रख्यात थाय छे—उत्पन्न थाय छे जे भरत चक्रवर्ती (जसंसी उत्तमे अभिजाए)—यशस्वी—कीर्त्ति संपन्न होय छे, उत्तम शलाका पुरुष होवाथी—श्रेष्ठ होय छे तेमज्ज अलिजत कुलीन होय छे. जेभजे जे ऋषभादिक्क वश ज् होय छे (सत्त्ववीरिय परक्कमगुणे) जेमा सत्त्व—साहस वीर्य—आन्तर बल, पराक्रम—शत्रु विनाशन शक्ति जे सर्वे शुष्ण होय छे जे पद वडे तेमां राजन्यना उचित सर्वाति शायी शुष्ण वत्ता प्रकट करवामां आवी छे (पसत्त्व वृण्ण सरसार संघयण तनुग बुद्धिधारण मेहा संठाण सीलप्पई) अन्य राजाओंकी अपेक्षा जेना वर्षो—देह कान्ति, स्वर—ध्वनि, सार शुभ पुद्गलोपचय जन्य घातु विशेष, संहनन—अस्थिनिचय

अत्रापि द्वन्द्वोत्तरं प्रधाना अनन्यवर्तिनो गौरवादयोऽर्था यस्य स प्रधानगौरवच्छा-
यागतिः, तत्र गौरवम् अभिमानः छाया शरीरशोभा, गतिः संचरणमिति, 'अणे-
गवयणप्पहाणे' अनेकवचनप्रधानः अनेकवाचनिकेषु श्रेष्ठः सकलवक्तृश्रेष्ठा इत्यर्थः वच-
नप्रकारश्चायम् "सत्यं शौचमनायासः मङ्गलं प्रियवादिता इत्यादि । 'तेषु आउबलवी-
रियजुत्ते' तेजआयुबलवीर्ययुक्तः तत्र तेजः परैरसहनीयः प्रतापः अयुर्वलं पुरुषायुषं वीर्यम्
आत्म समुत्थं तैः युक्तः एतेन जरारोगादिनोपहतवीर्यत्व नास्येति सिद्धम् 'अञ्जुसि-
रणणिचिय लोहसकळणारायवहरउसहसंघयण देहधारी, अशुपिरघणनिचितलोहशङ्क
लनाराचवज्रर्पभसंहननदेहधारी, तत्र अशुपिरा निच्छिद्रा अतएव घननिचिता अत्य
न्तघना या लोहशङ्कला तदिव नाराचवज्ररूपं प्रसिद्धा वज्रशृषभनाराचं संहननं यत्र
त तथात्रिं देह धरतीत्येवं शीलः, 'क्षस १ जुग २ भिंगार ३ बद्धमाणग ४ भदमा-
णग ५ शख ६ छत्त ७ वीअणि ८ पडाग ९ चक १० णगल ११ मुसल १२ रह १३
सोत्थिय १४ अंकुस १५ चंदा १६ इच्च १७ अग्गि १८ जूय १९ सागर २० इदञ्जय

वच्छायागहए) गौरव-स्वाभिमान-छाया शरीर शोभा और गति असाधारण ये सब इसमें
असाधारण होते हैं । (अणेगवयणप्पहाणे) यह सकल वक्ताओं में श्रेष्ठ वक्ता होता है । (तेषु
आउबलवीरियजुत्ते) तेज-जिसे दूसरे जन सहन नहीं कर सकें ऐसे प्रताप, आयु, बल, और
वीर्य से यह युक्त होता है । इससे जरा रोग आदि से यह उपहत वीर्य वाला नहीं होता है
यह बात सिद्ध होती है (अञ्जुसिरघणणिचिय लोहसकळणारायवहरउसहसंघयणदेहधारी)
निच्छिद्र अतएव अत्यन्त घनी जो लोह शृङ्खला उसके जैसा इनका वज्र शृषभ नाराच सहनन
वाला देह होता है (क्षस १ जुग २ भिंगार ३ बद्धमाणग ४ भदमाणग ५ सख ६ छत्त ७
वीअणि ८ पडाग ९ चक १० णगल ११ मुसल १२, रह १३, सोत्थिय १४ अंकुस १५,
चंदा १६, इच्च १७, अग्गि १८, जूय १९, सागर २०, इदञ्जय २१, पुहवि २२, पडम

तनु-शरीर, धारणा-अनुभूत अर्थानी धारणा शक्ति-मेधा-डेयोपादेयविवेक बुद्धि स स्थान
अज्ञोपांगनि-यास, शील-आचार अने प्रकृति-स्वभाव ओ सवे' तत्कालवती' अनुभोनी
अपेक्षा श्लाघनीय-प्रशंसानीय डोय छे (पहाणगारवच्छायागहए) गौरव-स्वाभिमान-छाया
शरीर शोभा अने गति असाधारण ओ सवे' ओभा असाधारण डोय छे. (अणेग वयणप्प-
हाणे) ओ सकल वक्ताओंमें श्रेष्ठ वक्ता डोय छे. (तेषुआउबलवीरियजुत्ते) तेज-अने
भीअ आयुसे सहन करी शके नहिं ओवे। प्रताप, आयु, अण अने वीर्यथी ओ युक्त डोय
छे ओथी जरारोग आदिथी ओ उपहत-वीर्यवाणे। अने। नथी ओ वात सिद्ध थाय छे
(अञ्जुसिरघणणिचिय लोहसकळणारायवहरउसहसंघयणदेहधारी) निच्छिद्र ओथी अत्यंत
सा-द्र ओ दोहं शु अला डोय छे तेना ओवे। ओने। वज्रशृषभ, नाराच संहननवाणे
देह डोय छे (क्षस १, जुग २, भिंगार ३, बद्धमाणग ४, भदमाणग ५, सख ६,

१ सत्यं शौचमनायास मङ्गलं प्रियवादिता' इत्यादि ये वक्ता के गुण कहे गये हैं ।
२ "सत्यं शौचमनायास मङ्गलं प्रियवादिता' वगेरे वक्ताना शुष्वा कडेवाभा आन्था छे,
६६

द्यते इति सच कीदृश इत्याह—'जसंसी उत्तमे अभिजाए, यशस्वी कीर्त्तिमान उत्तमः शलाकापुरुषत्वात् अभिजातः बुलीनः श्रीऋषभादिर्वंश्यत्वात् 'सत्त्ववीरिय परक्कमगुणे, सत्त्वं—साहसं वीर्यम्—आन्तरं बलम्, परक्रमः शात्रुविनाशनशक्तिः एते गुणा यस्य स सत्त्ववीर्यपराक्रमगुणः एतेन राज्योचितसर्वातिशायि गुणवत्त्वमुक्तम् पसत्त्ववण्णसरसार-संघयण तनुगबुद्धिधारण मेहासंठाण सीलप्पई' प्रशस्तवर्ण स्वरसार संहनन तनुकुवुद्धिधारणमेधा संस्थान शील प्रकृतिः, तत्र प्रशस्ताः—तत्कालवर्त्ति जनापेक्षया श्लाध-नीर्याः वर्णः देहकान्तिः, स्वरो ध्वनिः सारः शुभपुद्गलोपचयजन्म्यो धातुविशेषः, संहननम् अस्थिनिचयरूपम् तनुकं शरीरम् धारणा अनुभूतार्थधारणाशक्तिः मेधा हेयो-पादेयधीः, संस्थानं यथास्थानमङ्गोपाङ्गविन्यासः शीलम् आचारः प्रकृतिस्वभावः, एतेषां द्वन्द्वोत्तरं प्रशस्ता वर्णादयोऽर्थाः यरय स तथेति बहुव्रीहिः 'पहाणगारवच्छायागइए,

किया जावे तो फिर इस काल मे मनुष्यो मे असख्याता युक्त्व का व्यवहार प्रसङ्ग प्राप्त होता है अतः काल में असख्येयता असख्यात वर्षों की अपेक्षा से ही मानना चाहिये इस तरह जब असख्यात वर्षों तक असख्यात काल व्यतीत हो चुके तब एक भरत चक्रवर्ती के बाद दूसरा भरत चक्रवर्ती कि जिससे भरत क्षेत्र का भरत ऐसा नाम प्रचलित होता है उत्पन्न होता है यह भरत चक्रवर्ती (जसंसी उत्तमे अभिजाए) यशस्वी कीर्त्ति संपन्न होता है, उत्तम शलाका पुरुष होने से—श्रेष्ठ होता है तथा अभिजात—कुलीन होता है क्योंकि यह ऋषभादि का वंशज होता है (सत्त्ववीरियपरक्कमगुणे) इसमें सत्त्व साहस वीर्य आन्तर बल, पराक्रम—शात्रु विनाशन शक्ति ये सब गुण होते हैं इम पद द्वारा उसमें राजन्य के उचित सर्वाति शायी गुणवत्ता प्रगट की गई है (पसत्त्व वण्ण सर सार संघयण तनुगबुद्धिधारण मेहा संठाण सीलप्पई) अन्य राज्ञाओं की अपेक्षा इमका वर्ण देहकान्ति, स्वर ध्वनि, सार शुभपुद्गलोपचय जन्य धातुविशेष, संहनन अस्थिनिचय तनु शरीर धारणा अनुभूत अर्थ की धारणा शक्ति

ख्याततामे व्यवहार थये नथी. जे समयानी अपेक्षाये काणमा अस ख्याततामे व्यवहार कल्पित करवामा आवे तो पथी जे काणमा मनुष्येमा अस ख्यातायुक्त्वेने व्यवहार प्रसङ्ग प्राप्त थाय छे जेथी काणमा अस ख्येयता अस ख्यात वर्षोनी अपेक्षाथी जे मानवी जेष्ठजे आ रीते न्यारे अस ख्यात वर्षो सुधी अस ख्यात वर्षो व्यतीत थर्ग चूक्या त्पारे जेठ भरत चक्रवर्ती पथी थोजे भरत चक्रवर्ती—जे जेमनाथी भरतक्षेत्रनु नाम भरत आ प्रभाणे प्रख्यात थाय छे—उत्पन्न थाय छे जे भरत चक्रवर्ती (जसंसी उत्तमे अभिजाए)—यशस्वी—कीर्त्ति संपन्न होय छे, उत्तम शलाका पुरुष होवार्थी—श्रेष्ठ होय छे तेमज अभिजात बुलीन होय छे. केमके जे ऋषभादिक्क वश जे होय छे (सत्त्ववीरिय परक्कमगुणे) जेमा सत्त्व—साहस वीर्य—आन्तर भण, पराक्रम—शात्रु विनाशन शक्ति जे सर्वे शुष्ण होय छे जे पढे वडे तेमां राजन्यना उचित सर्वाति शायी शुष्ण वत्ता प्रकट करवामा आवी छे (पसत्त्व वण्ण सरसार संघयण तनुग बुद्धिधारण मेहा संठाण सीलप्पई) अन्य राज्ञेयानी अपेक्षा जेना वषु—देह कान्ति, स्वर—ध्वनि, सार शुभ पुद्गलोपचय जन्य धातु विशेष, संहनन—अस्थिनिचय

अत्रापि द्वन्द्वोत्तरं प्रधाना अनन्यवर्तिनो गौरवादयोऽर्था यस्य स प्रधानगौरवच्छा-
यागतिकः, तत्र गौरवम् अभिमानः छाया शरीरशोभा, गतिः संचरणमिति, 'अणे-
गव्यणप्पहाणे' अनेकवचनप्रधानः अनेकवाचनिकेषु श्रेष्ठः सकलवक्तृश्रेष्ठा इत्यर्थः वच-
नप्रकारश्चायम् "सत्य शौचमनायासः मङ्गलं प्रियवादिता इत्यादि । 'तेय आउवलवी-
रियजुत्ते' तेज आयुबलवीर्ययुक्तः तत्र तेजः परैरसहनीयः प्रतापः अयुर्बलं पुरुषायुषं वीर्यम्
आत्म समुत्थं तैः युक्तः एतेन जरारोगादिनोपहतवीर्यत्व नास्पेति सिद्धम् 'अञ्जुसि-
रघणणिचिय लोहसंकलणारायवहरउसहसंघयण देहधारी, अशुपिरघणनिचितलोहशङ्क
लनाराचवज्रर्षमसंहननदेहधारी, तत्र अशुपिरा निच्छिद्रा अतएव घननिचिता अत्य-
न्तघना या लोहशङ्कला तदिव नाराचवज्ररूपमं प्रसिद्धा वज्ररूपभनाराचं संहननं यत्र
त तथाविधं देह धरतीत्येवं शीलः, 'झस १ जुग २ भिंगार ३ बद्धमाणग ४ भद्मा-
णग ५ सख ६ छत्त ७ वीअणि ८ पडाग ९ चक १० णगल ११ मुसल १२ रह १३
सोत्थिय १४ अंकुस १५ चंदा १६ इच्च १७ अगि १८ जूय १९ सागर २० इंदञ्जय

वच्छायागइए) गौरव—त्वाभिमान—छाया शरीर शोभा और गति असाधारण ये सब इसमें
असाधारण होते हैं। (अणेगव्यणप्पहाणे) यह सकल वक्ताओं में श्रेष्ठ वक्ता होता है। (तेय
आउवलवीरियजुत्ते) तेज—जिसे दूसरे जन सहन नहीं कर सकें ऐसे प्रताप, आयु, बल, और
वीर्य से यह युक्त होता है। इससे जरा रोग आदि से यह उपहत वीर्य वाला नहीं होता है
यह बात सिद्ध होती है (अञ्जुसिरघणणिचिय लोहसंकलणारायवहरउसहसंघयणदेहधारी)
निच्छिद्र अतएव अत्यन्त घनी जो लोह शृङ्खला उसके जैसा इनका वज्र रूपम नाराच सहनन
वाला देह होता है (झस १ जुग २ भिंगार ३ बद्धमाणग ४ भद्माणग ५ सख ६ छत्त ७
वीअणि ८ पडाग ९ चक १० णगल ११ मुसल १२, रह १३, सोत्थिय १४ अंकुस १५,
चंदा १६, इच्च १७, अगि १८, जूय १९, सागर २०, इंदञ्जय २१, पुहवि २२, पउम

तनु-शरीर, धारणा-अनुभूत अर्थनी धारणा शक्ति-मेधा-छेथे। पाहेयविवेकञ्च पुद्धि स स्थान
अंगोपांगविन्यास, शील-आचार अने प्रकृति-स्वभाव अने सर्वे तत्कालवती मनुष्यानी
अपेक्षा श्लाघनीय-प्रशंसायुक्त डोय अने (पहाणगारवच्छायागइए) गौरव-त्वाभिमान-छाया
शरीर शोभा अने गति असाधारण अने सर्वे शोभा असाधारण डोय अने (अणेग वयणप्प-
हाणे) अने सकल वक्ताओंमें श्रेष्ठ वक्ता डोय अने (तेयआउवलवीरियजुत्ते) तेज-अने
शील भावसे सहन करी शकें नहि अने प्रताप, आयु, अण अने वीर्य अने युक्त डोय
अने अथी नरादेश आदिथी अने उपहत-वीर्यवाणे थने। नथी अने वात सिद्ध थाय अने
(अञ्जुसिरघणणिचिय लोहसंकलणारायवहरउसहसंघयणदेहधारी) निच्छिद्र अथी अत्यन्त
सांद्र अने लोह शंभला डोय अने तेना अने अनेना वज्ररूपम, नाराच संहननवाणे
देह डोय अने (झस १, जुग २, भिंगार ३, बद्धमाणग ४, भद्माणग ५, सख ६, छत्त

१ सत्य शौचमनायास मङ्गल प्रियवादिता' इत्यादि ये वक्ता के गुण कहे गये हैं।

२ "सत्य शौचमनायास मङ्गल प्रियवादिता' वगेरे वक्ताना शुष्ठा कहेवाभा आल्या अने,
६६

२१ पुहवि २२ पउम २३ कुंजर २४ सीहासण २५ दंड २६ कुम्म २७ गिरिवर २८
 तुरगवर २९ वरमउड ३० कुंडल ३१ णंदावत्त ३२ घणु ३३ कौत ३४ गागर ३५
 भवणविमाण ३६ अणेगलक्खण पसत्थसुविभत्तचित्तरुचरणदेसभाए' तत्र ज्ञानो मीनः
 १ युगं शकटाङ्गविशेषः २, भृङ्गारो. जलभाजनविशेषः ३, वर्द्धमानक शरावः ४,
 भद्रासनम् ५, शङ्खो दक्षिणावर्त्तः ६, छत्रं प्रसिद्धम् ७, व्यजन व्यजनकम् 'पंखा
 इतिप्रसिद्धम् ८ पताका ९ चक्रम् १० लाङ्गलम् हलम् ११, मुमलम् १२, रथ १३,
 स्वस्तिकम् १४, अकुंशः १५, चन्द्रः १६, आदित्या १७, गनी प्रसिद्धौ १८ यूयो
 यज्ञस्तम्भः १९, सागर समुद्रः २०, इन्द्रध्वजः २१, पृथ्वी २२, पद्म २३, कुञ्जरः
 प्रसिद्धाः २४, सिंहासनम् २५, दण्ड २६, कूर्म २७, गिरिवर २८, तुरगवर २९,
 वरमुकुट ३०, कुण्डलानि व्यक्तानि ३१, नन्धावर्त्तः प्रतिदिग् नवकोणकः स्वस्तिकः
 ३२, घनुः ३३, कुन्तः भल्लुकः ३४, गागरः स्त्रीपरिधानविशेष ३५, भवनविमा-
 नम् ३६, एतेषां द्वन्द्वोत्तरम् एतानि प्रशस्तानि माङ्गल्यानि, सुविभक्तानि अतिशयेन

२३, कुंजर २४, सीहासण २५, दंड, २६, कुम्म २७, गिरिवर २८, तुरगवर २९, वरमउड
 ३०, कुण्डल ३१, णंदावत्त ३२, घणु ३३, कौत ३४, गागर ३५, भवणविमाण ३६,
 (अणेगलक्खण पसत्थसुविभत्तचित्तरुचरणदेसभाए) इनकी हथेलियों में और पगथलियों में एक
 हजार प्रशस्त एवं विभक्त रूप में रहे हुए सुलक्षण होते हैं उनमें से कितने सुलक्षणों के
 त्रिलोक गम—इस प्रकार से है—ज्ञान—मीन—युग—जुआ—गंगार जलभाजनविशेष, वर्द्धमानक
 शराव—भद्रासन, दक्षिणावर्त्त शंख छत्र व्यजन—पंख, पताका चक्र लांगल, हल मुसल, रथ,
 स्वस्तिक, अकुश, चन्द्र, आदित्य, सूर्य, अग्नि यूप—यज्ञस्तम्भ, सागर—समुद्र, इन्द्रध्वज,
 पृथिवी, पद्म, कुञ्जर,—हस्ती—सिंहासन दण्ड कूर्म—कलुभा. गिरिवर श्रेष्ठपर्वत तुरगवर—श्रेष्ठ
 घोड़ा, वरमुकुट, कुण्डल, नन्धावर्त्त, — हर एक दिशा में नौकोणों वाला स्वस्तिक, घनुष, कुन्त,
 भल्लुक— भाला, गागर— स्त्री परिधान विशेष, और भवन विमान इन पदार्थों के वहाँ जो चिह्न

७, बीअणि ८, पडाग ९, चक्र १०, णंगल ११, मुसल १२, रह, १३, सोत्थिय १४, अकुस
 १५, चंदा १६, इच्च १७, अग्नि—१८, जूय—१९, सागर २०, इंदुज्जय २१, पुहवि २२, पउम
 २३, कुंजर २४, सीहासण २५, दंड २६, कुम्म २७, गिरिवर २८, तुरगवर २९, वरमउड
 ३० कु डल ३१, णंदावत्त ३२, घणु—३३, कौत ३४, गागर ३५, भवणविमाण ३६, अणेग-
 लक्खण पसत्थसुविभत्तचित्तरुचरणदेसभाए) ओमनी दुश्रेणीओमा अने पगना तणी-
 याभा ओके हनार प्रशस्त तेभज विभक्त रूपमां रडेला सुलक्षणेो डोय छे तेओमाथी
 डेटलांक सुलक्षणेो आ प्रभाणे छे—अम—मीन, युग—जुआ, गंगार—गल भाजन विशेष
 वर्द्धमानक—शराव, भद्रासन, दक्षिणावर्त्त शंख, छत्र, व्यजन—पंखो, पताका, चक्र, लांगल,
 हल, भूसल रथ, स्वस्तिक, अकुश चन्द्र, आदित्य, सूर्य, अग्नि, यूप—यज्ञस्तम्भ, सागर—
 समुद्र, इन्द्रध्वज, पद्म, कुंजर—हस्ती सिंहासन, दंड, कूर्म कायणेो, गिरिवर—श्रेष्ठ पर्वत,
 तुरगवर—श्रेष्ठ घोडा, वरमुकुट, कुंडल, नन्धावर्त्त—हरैक दिशाभां नव भूषाओो वाणेो स्वस्तिक
 घनुष, कुन्त, भल्लुक—भालो, गागर—स्त्री परिधान विशेष अने भवन—विमान, ओ यदार्थोना

विविक्तानि, यानि अनेकानि अष्टोत्तरसहस्रप्रमाणानि लक्षणानि तैश्चित्रो-विस्मयकरः कर चरणयोर्देशभागो यस्य स तथा, तीर्थकृतामिव चक्रवर्तिनामपि अष्टाधिक सहस्रलक्षणानि भवन्ति उक्तं च—

मूलम्—“पागय मणुआणं वत्तीसं लक्खणानि अट्टसयं ।”

बलदेव वासुदेवाणं अट्टसहस्रं चक्रवर्ति तित्थगराणं ॥१॥

छाया— “प्राकृत मनुजानां द्वात्रिंशलक्षणानि अष्टशतम् ॥”

बलदेव वासुदेवानाम् अष्टसहस्रं चक्रवर्ति तीर्थकराणाम् ॥” इति

उद्धामुहलोमजालसुकुमालणिद्धमउभावत्तपसत्थलोमविरइअसिरिवच्छण्णविउलवच्छे तत्र ऊर्ध्वमुखं भूपेरुद्धच्छताम् अंकुराणामिल येषां तानि ऊर्ध्वमुखानि यानि लोमानि तेषां जालं समूहो यत्र स तथा सुकुमालस्निग्धानि नवनीतपिण्डादि-द्रव्याणि तद्वत् मृदुकानि कोमलानि तथा आवर्त्तैः दक्षिणावर्त्तैः प्रशस्तानि माङ्गल्यानि यानि लोमानि तैर्विरचितो यः श्रीवत्सः चिह्नविशेषः ततः पूर्वपदेन कर्म-धारयः तेन छन्नम् आच्छादितं युक्तमित्यर्थः विपुल वक्षो वक्षस्थलं यस्य स तथा ‘देसखेत्तसुविभत्तदेहधारी’ देशक्षेत्रसुविभत्तदेहधारी, देशे कोशलदेशादौ, क्षेत्रे तदेक-

अङ्कित होते हैं वे सब आपस में एक दूसरे से अलग ५ होते हैं और मंगलकारी होते हैं । इन चिह्नों से युक्त उनके हाथ और पैर बड़े सुहावने लगते हैं । १००८ लक्षण जिस प्रकार से तीर्थकरों के होते हैं वैसे ही वे चक्रवर्तियों के भी होते हैं उक्तं च—

पागय मणुआण वत्तीसलक्खणानि अट्टमय ।

बलदेववासुदेवाणं अट्टसहस्रं चक्रवर्ति तित्थगराणं” ॥१॥

(उद्धामुह लोमजालसुकुमालणिद्धमउभावत्त पसत्थलोमविरइअसिरिवच्छण्णविउलवच्छे) इनका वक्षःस्थल विपुल होता है और वह ऊर्ध्वमुखवाले, तथा नवनीत पिण्डादि के जैसे मृदुता-वाले एव दक्षिणावर्त्त वाले ऐसे प्रशस्त बालों से— रोमों से चित्त— बनेहुए श्रीवत्सचिह्न विशेष से आच्छादित— युक्त रहते हैं (देस खेत्त सुविभत्तदेहधारी) देश— कोशल देश आदि में और क्षेत्र उसके अवयवभूत विनीता आदि नगरी में यथास्थान जिसमें अवयवों की रचना हुई है

चिह्नो त्या अङ्कित होय छे, ते अर्धां परस्पर — ओङ्क-भीमथी अलग-अलग होय छे, अने मणु कारी होय छे अने चित्रोथी सम्पन्न तेमना हाथ अने पग अतीव सु डर लागे छे १००८ लक्षणे नेम तीर्थकराने होय छे, तेम न् अने अर्धा लक्षणे चक्रवर्तीओने पणु होय छे कथु छे—

पागय मणुआण वत्तीस लक्खणानि अट्टसयं ।

बलदेव वासुदेवाण अट्टसहस्रं चक्रवर्ति तित्थगराणं ॥ १ ॥

(उद्धामुहलोम जाल सुकुमालाणिद्धमउभावत्तपसत्थलोमविरइअसिरिवच्छण्णविउलवच्छे) नेमनु वक्षस्थल विपुल होय छे अने ते ऊर्ध्वमुखवाला तेमन नवनीत पिण्डादिना नेम मृदुतावाणा अने दक्षिणावर्त्तवाणा अने प्रशस्तवाणोथी-युक्त रहे छे (देस खेत्त सुविभत्तदेह

देशभूतविनीतानगर्यादौ सुविभक्तौ यथास्थानविनिविष्टावयवो यो देहस्तं धरतीत्येवं
शीलः भरतक्षेत्रे तत्कालावच्छेदेन न भरतचक्रतोऽपरमुन्द्राकृतिरभूदित्यर्थः 'तरुण
रविरस्सिबोहियवरकमलविबुद्धगन्धवर्णो' तरुणरविरस्मिन्बोधितत्रकमलविबुधगर्मवर्ण तरु-
णरविरस्मिभिः उद्गच्छत्सूर्यकिरणैः बोधितं विकसितं यद्वरकमलं श्रेष्ठकमलं तस्य
विबुधो विकस्वशो यो गर्भो मध्यभागस्तद्वर्णः शरीरकान्तित्यस्य स तथा काञ्चन-
वर्णशरीर इत्यर्थः ह्यपोसणकोससण्णिभपसत्थपिट्ठं तणिरुवलेवे' ह्यपोसन कोशप-
न्निभपृष्ठान्तिरुपलेपः ह्यपोसनं हयापान तदेव कोशडव कोशः सुगुप्तत्वात् तत्स-
न्निभः प्रशस्तः पृष्ठस्य पृष्ठभागस्य अन्तः चरमभागोऽपानं तत्र निरुपलेपो लेपरहित
पुरीषकत्वात् 'पउमुप्पलकुदजाइजूहियवरचंपगणागपुप्फसारंगतुल्लगधी' पद्मोत्पल कुन्द-
जातियुथिकवरचम्पकनागपुष्पसारङ्गतुल्यगन्धी तत्र पद्मं प्रसिद्धम्, उत्पलं कमलविशेषः,
'कुन्दजाति युथिहाः प्रसिद्धपुष्पविशेषाः वरचम्पक-राजचम्पकः, नागपुष्पं नाग-
केसरकुमुदम्, सारङ्ग-पदैकदेशे पदसमुदायग्रहणात् सारङ्गपदेन सारङ्गमदः कस्तूरीति
प्रसिद्धः। एतेषां तुल्यो गन्धः यस्य स तथा, सुगन्धयुक्तदेह इत्यर्थः 'छत्तीसा अहिअ पसत्थ
पत्थिवगुणेहिं जुत्ते' पद्मत्रिंशता अधिक प्रशस्तपार्थिवगुणैर्युक्तः, ते च गुणास्तावत्

ऐसा उनका देह एक ही होता है अर्थात् उम काल में ऐसा सुन्दर आकार वाला शरीर किसी-
का नहीं होता है (तरुणरविरस्सिबोहियवरकमलविबुद्धगन्धवर्णो) इनके शरीर की कान्ति
तरुण रवि से— निकलते हुए सूर्य की किरणों से विकसित हुए कमल के गर्भ के वर्ण की जैसी
होती है अर्थात् सुवर्ण के जैसा वर्णवाला इनका शरीर होता है. (ह्यपोसणकोससण्णिभ
पसत्थ पिट्ठं तणिरुवलेवे) इनका जो गुदा भाग होता है वह घोड़े के गुदाभाग की तरह
पुरीष से अलिप्त रहता है (पउमुप्पलकुदजाइजूहियवरचंपगणागपुप्फसारंगतुल्लगधी) इनके
शरीर की गन्ध पद्मउत्पल, कुन्द— चमेली या मौरघा का पुष्प, वर चम्पक— राजचम्पक— नाग
पुष्प— नागकेशर— एवं सागङ्ग— पदैकदेश में पदसमुदाय के ग्रहण के अनुसार कस्तूरी—
इनकी जैसी गंध होती है वैसी होती है (छत्तीसाअहिअ पसत्थ पत्थिवगुणेहिं जुत्ते) ३६

घारी)देशकेशल, देश आदिभा अने क्षेत्र तेना अत्रयवभूत विनीता आदि नगरीमां यथास्थान
जेमां अवयवोनी रचना थर्ध छे, जेवो तेमनेो देह जेक जे होय छे जेटवे के ते काणमां
जेवासु हर आकारवाणेो देह कोधनेय नथी होतो (तरुणरविरस्सिबोहियवरकमलविबुद्ध-
गन्धवर्णो) जेमना शरीरनी कान्ति तरुण रविथी नीकणता सूर्यना किरणोथी विकसित कमल-
ना गर्भना वर्ण जेवी होय छे जेटवे के सुवर्ण जेवा वर्णवाणेो जेमनेो देह होय छे.
(ह्यपोसण कोससण्णिभपसत्थपिट्ठं तणिरुपलेवे) जेमनेो जे गुदाभाग होय छे ते वेडाना
गुदाभागनी जेम पुरिषथी अलिप्त रहे छे (पउमुप्पलकुद जाइ जूहियवरचंपगणागपुप्फ
सारंगतुल्लगधी) जेमना शरीरनी गंध पद्म, उत्पल, कुन्द—चमेली के भोगशाना पुष्प, वर
चम्पक, राजचम्पक, नागपुष्प—नागकेशर तेमज सारङ्ग—पदैक देशमा पदसमुदायना अह्य
मुज्जम कस्तुरीनी जेवी गंध होय छे, तेवी होय छे (छत्तीसा अहिअपसत्थपत्थिव

‘अव्यङ्गो १, लक्षणपूर्णा २, रूपसप्तियुक्तनुः ३, उत्पत्त्यारम्भ तात्त्विकः सात्त्विको नृपः ३६ इत्यन्ताः पञ्चविंशत्परिमिता विज्ञेयाः ‘अव्योच्छिन्नगतपत्ते’ अव्यञ्चित्त्वनान-
पत्रः, अव्यञ्चित्त्वनम्—अखण्डितमातपत्रं यस्य स तथा एरुत्तराज्ययागीत्यर्थः
एतेनास्य पितृपितामहक्रमागतराज्यभोक्तृत्वं सूचितम् अथवा तस्य प्रभुत्वं केनापि
बलीयसा रिपुणा न व्यञ्चित्त्वनमिति सूचितम् । ‘पागडउभयजोणी’ प्रकटोभययो-
निकः, प्रकटे विशदावदाततया जगद्विख्याते उभययोन्यौ मातृपितृपक्षरूपे यस्य
तथा, निर्मलजननीजनकोभयपक्षवानित्यर्थः अतएव ‘विमुद्दणिअगकुञ्जगयणपुण्ण-
चंदे इव सोमयाए णयणमणणिव्वुईकरे’ तत्र विथुदं कञ्जकरहितं यन्निकककुञ्जं
तदेव गगनं तत्र पूर्णचन्द्र इव सोमतया मृदुस्वभावेन नयनमनसो निर्वृत्तिकरः
आनन्दकरः, ‘अक्खोभे’ अक्षोभः भयरहितः, ‘सागरोवधिमिए’ सागर इव स्थितमितः

अधिक प्रशस्त पार्थिव गुणो से ये युक्त होते हैं वे गुण इस प्रकार से हैं— अव्यङ्ग १ लक्षणा-
पूर्ण २ रूपसप्तियुक्त शरीर ३, यहा से लेकर तात्त्विक और सात्त्विके तक इस प्रकार ये ३६
हो जाते है । ‘अव्योच्छिन्न तत्ते’ इसका एकत्र राज्य होता है, इसलिए इनका राज्य पितृ
पितामह की वश परम्परा से चला हुआ जाता है यह बात इस बात से सूचित की गई है अथवा
इनका प्रभुत्व किसी अन्य बलिष्ठ शत्रु के द्वारा छिन्न भिन्न नहीं किया जा सकता है ऐसा
भी समझा जा सकता है । (पागडउभयजोणी) इन के मातृ पितृ पक्ष जगत में विख्यात होता
है । (विमुद्दणिअगकुञ्जगयणपुण्णचंदे इव सोमयाए णयणमणणिव्वुईकरे) अत एव ये
अपने कलङ्क विहीन कुलरूप गगन मंडल में मृदु स्वभाव के कारण पूर्ण चन्द्र मण्डल की तरह
नेत्र और मन को आनन्द करने वाले होते है । (अक्खोभे सागरोव धिमिए घणवइव्व भोग

गुणेहि लुत्ते) ३६ अधिक प्रशस्त पार्थिवशुभोत्थी व्योम्ना स पन्न डोय छे ते शुभो अव्यङ्ग
लक्षणापूर्ण ३५ पत्ति युक्तशरीर त्याथीदधने सात्त्विक सुधी व्ये शुभोत्थी ३६ स पत्ति थथ नय
छे ‘अव्योच्छिन्नगतपत्ते’ व्येत्तु व्येत्तत्र राज्य डोय छे व्येत्तु राज्य पितृ-पितामहोत्थी वश
परपराथी आत्थु आवतु डोय छे, व्ये वान व्येत्थी सूचित करवामा व्येत्थी
छे अथवा व्येत्तु प्रभुत्व डोय पत्ति व्येत्थी शत्रु वडे छिन्न-भिन्न करी शक्यतु नथी व्येत्तु
पत्ति सभल शक्ये छीत्थे (पागडउभयजोणी) व्येत्तु मातृ-पितृपक्ष जगतमा विख्यात
डोय छे (विमुद्दणिअगकुञ्जगयण पुण्णचंदे इव सोमयाए णयणमणणिव्वुईकरे) व्येत्थी
व्येत्थी पितृपितामह कुल कुलीन कुल ३५ गगनम उणमा मृदुस्वभावेने दीधे पूष्णं व्येत्तु म उणनी

१ अव्यङ्गो १ लक्षणापूर्णो २ रूपसप्तियुक्तनुः ३ अमदो ४ जगदोजस्वी ५ यगस्वीव ६ कपोलह्वत् ७ । कला-
सुकृतकर्मा ८ च सुद्वाराजकुलेन्द्रव ९ । वदानुगः १० विशाति ११ अ पुजारागी १२ प्रजा गुरु १३ ।
समर्थन दुमर्थाना त्रयाणा सममात्रया १४ । कोशवान् १५ सत्यसन्धान १६ चेरदग् १७ दूरमत्रदग् १८
आसिद्धि कर्मो योगी १९ च प्रवीण शास्त्र २० शास्त्रयो २१ । निग्रहा २२ नुग्रहपरो २३ निलंबश्च दूर-
शिष्टयो २४ उपायार्जित राज्य श्री २५ दुनिशौण्डो २६ ध्रुवजयी २७ । न्यायप्रियो २८ न्यायवेत्ता २९
व्यसमानाग्न्यासक ३० । अचर्मवीर्या ३१ गाम्भीर्यो ३२ दार्य ३३ चातुर्यभूषित ३४ प्रणयाधिकक्रोध
३५ तात्त्विको नृप ३६

सागरप्रस्तावात् क्षीरसमुद्रादिः स इव स्तिमितः स्थिरश्चिन्ताकल्लोलवर्जितो न पुन-
र्हीयमानवर्धमानकल्लोललवणसमुद्रइवास्थिरस्वभाव इत्यर्थः 'घणवडव्य भोगसमु-दयस-
ह्वययाए' धनपतिरिव कुबेर इव भोगस्य समुदयः—सम्पदुदयस्तेन सह सद्-
विद्यमान द्रव्य यस्य स भोगसमुदय सद्द्रव्यन्तस्य भावस्तत्ता तथा, भोगोपयोगि
भोगाङ्ग समृद्ध इत्यर्थः (समरे अपराइए) समरे—संग्रामे अपराजितः—पराजयमप्राप्तः
(परमविक्रमगुणे) परमविक्रमगुणः उत्कृष्टपराक्रमगुणयुक्तः (अमरवहसमाणसरिसरूवे)
अमरतेः शक्रस्य समानं सहशमत्यर्थतुल्यं रूपं यस्य सोऽमरपति समानसदृशरूपः, इन्द्र-
समानरूपसम्पत्तिमानित्यर्थः (मणुअवई) मनुजपतिः नगराधिपतिः (भरहचक्रवर्ती) भरत-
चक्रवर्ती उत्पद्यते इति पूर्वेण सम्बन्धः, अथोत्पन्नः सन् किं कुरुते इत्याह—(भरह)
इत्यादि (भरहं भुंजइ पणट्टसत्तू) अनन्तरसूत्रे एव प्रदर्शितस्वरूपो भरतचक्रवर्तीभरतं
भुङ्क्ते—शास्तीति, प्रणष्टशत्रुरिति स्पष्टम्, अत इदं भरतक्षेत्रं मुच्यते इति निगमनमग्रे
वक्ष्यते ॥ सू० २ ॥

समुदयसह्वययाए समरे अपराइए परमविक्रमगुणे अमरवह समाणसरिसरूवे) निर्भय होते
है, क्षीरसमुद्र आदि को तरह ये चिन्ता रूप कल्लोलो से वर्जित रहते हैं कल्लोलों से हीयमान
वर्धमान लवण समुद्र को तरह ये अस्थिर स्वभाव वाले नहीं होते हैं कुबेर के जैसे ये भोगों के
समुदाय में अपने विद्यमान द्रव्यों को खर्च करने वाले होते हैं अर्थात् विद्यमान द्रव्य के अनु-
सार ये भोगोपभोगों को भोगने वाले होते हैं । समराङ्गण में इन्हे कोई परास्त करने वाला
नहीं होता है— ये अपराजित होते हैं । क्योंकि ये जिस पराक्रम गुण से युक्त होते हैं वह उन-
का उत्कृष्ट होता है । उनका रूप शक्र के समान बहुत ही अविष्क सुन्दर होता है । (मणुअ-
वई भरहचक्रवर्ती भरहं भुंजइ पणट्टसत्तू) इस प्रकार के इन पूर्वोक्त समस्त विशेषणों से सप-
न्न मनुजाधिपति भरत चक्रवर्ती इस भरत क्षेत्र का शासन करते हैं उस समय इनका कोई भी
शत्रु प्रतिपक्षी—नहीं रहता है समस्त शत्रुगण नष्ट हो जाता है इस कारण हे गौतम ! इस
क्षेत्रका नाम भरत क्षेत्र इस प्रकार से कहने में आया है ॥२॥

जेम नेत्र अने मनने आनंठ आपनार डोय छे. (अक्खोमे सागरोव धिमिप घणव-
ह्वव भोगसमुदयसह्वययाए समरे अपराइए परमविक्रमगुणे अमरवहसमाण
सरिसरूवे) निर्भय डोय छे, क्षीरसमुद्र वगेरेनी जेम जेजो अचिन्ताइय कल्लोलाडोथी
वर्जित रहे छे कल्लोलाडोथी हीयमान, वर्धमान लवण समुद्रनी जेम जेजो अस्थिर स्वभा-
ववाणा डोता नथी कुबेरनी जेम जेजो भोगोना समुदायभा योताना विद्यमान द्रव्योने
अर्थ करता डोय छे अटके के विद्यमान द्रव्य भुञ्जण जेजो भोगोपभोगोने भोगवनार
डोय छे रणुगणभा जेजो अपराजित डोय छे इमके जेजो जे पराक्रम शुष्णथी युक्त
डोय छे, ते तेभने। उत्कृष्टडोय छे तेभनु' इय शक जेवुं अतीव सुहर डोय छे. (मणुअवई
भरहचक्रवर्ती भरहं भुंजइ पणट्टसत्तू) आ प्रभावे जे पूर्वोक्त समस्त विशेषणोथी
सम्पन्न मनुजाधिपति भरत चक्रवर्ती' जे भरतक्षेत्रनु' शासन करे छे ते समथे जेभने
कई पणु शत्रु प्रतिपक्षी रहेतो नथी समस्त शत्रुजोने। विनाश थं जाय छे जेथी छे
गौतम ! आ क्षेत्रनु नाम भरत क्षेत्र कहेवामा आणु' छे ॥ २ ॥

अथ प्रस्तुत भरतस्य दिग्विजयादिवक्तव्यतामाह—(तए णं) इत्यादि ।

मूलम्—तए णं तस्स भरहस्स रण्णोअण्णया कयाइ आउहघर-
 सालाए दिव्वे चक्करयणे समुप्पज्जित्था, तए णं से आउहघरिए भरहस्स रण्णा
 आउहघरसालाए दिव्वं चक्करयणं समुप्पणं पासइ पासित्तो हट्टतुड्ढ चित्त-
 माणांदिए नंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहिअए
 जेणामेव दिव्वे चक्करयणे तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता त्तिकखुत्तो आ
 याहिणं पयाहिणं करेइ करित्ता करयल जाव कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ
 करित्ता आउहघरसालाओ पडिणिकखमइपडि णिकखमित्ता जेणामेव वाहिरि
 आ उवट्ठाणसाला जेणामेव भरहेराया तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
 करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवाणु
 प्पियाणं पिअइयाए पियं णिवेएमो पियं भे भवउ, तए णं से भरहेराया तस्स
 आउहघरिअस्स अंतिए एअमट्ठं सोच्चाणिसम्म हट्ट जाव सोमणस्सिए वि
 असिअवरकमलणयणवयणे पयलिअवरकडग तुरिअ केऊर मउड कुंडलहार,
 विरायंतरइअवच्छे पालंब पलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरिअं चवलं
 णरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्टेइ, अब्भुट्टित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ
 पच्चोरुहित्ता पाउआओ ओमुअइ ओमुइत्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ
 करित्ता अंजलिमउलिअगगहत्थे चक्करयणाभिमुहे सत्तट्टपयाइं अणुग-
 च्छइ अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ अंचित्ता दाहिणं जाणु धरणितलंसि
 णिहट्टु करयल जाव अंजलिं कट्टु चक्करयणस्स पणामं करेइ करित्ता
 तस्स आउहघरिअस्स अहामालिअं मउडवज्जं ओमोअं दलइ दलित्ता
 विउलं जीविआरिहं पीइदाणं दलइ दलित्ता सक्कारेइ सम्माणेइ सक्करेत्ता
 सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ पडिविसज्जित्ता सोहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे
 सण्णिसण्णे । तए णं से भग्हे राया कोडंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं
 वयामी खिप्पामेव भो देवा प्पिआ! विणीअं रायहाणि सन्भिभतर बोहिरिअं
 आसिअ संमज्जिअ सित्त सुइगरत्थं तरवीहिअं मंचाइमंचकविअं णाणाविह

रागवसणऊसिअन्नयपडागाइपडागमंडिअं लाउल्लोइअमहिअं गोसीस सरस
 रत्त चंदणकलसं चंदणघरसुकय जावगंधुद्धुआभिरामं सुगंधवरगंधिअं गंध
 पट्टिभूअं करेह कारवेह करेत्ता कारवेत्ताय एयमाणत्तिअं पच्चप्पिणह ।
 तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता इड्ड० करयल जाव
 एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति पडिसुणित्ता भरहस्स
 अंतिआओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता विणीअं रायहाणीं जाव करेत्ता
 कारवेत्ता य तमाणत्तिअं पच्चप्पिणंति । तएणं णं से भरहे राया जेणेव
 मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्तो मज्जणघरं अणुपविसइ अणु
 पविसित्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे विचित्तमणिरयण कुट्टिमतले रमणिज्जे
 ण्हाणमंढवंसि णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे
 सुहोदएहि गंधोदएहि पुप्फोदएहि सुद्धोदएहिअ पुण्णे कल्लाणगपवर
 मज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउअसएहि बहुविहेहि कल्लाणगपवरमज्ज-
 णावसाणे पम्हल सुकुमालगंधकासाइअ ल्हिअंगे सरससुरहि गोसीस
 चंदणाणलित्तगत्ते अहयसुमहग्घद्सरयणसुसंबुडे सुइमालावण्णगविलवणे
 आविद्धमणिसुवण्णे कप्पिअहारद्धहार तिसरिअपालंबलंबमाणकडिसुत्त सुक
 य सोहे पिणद्ध गेविज्जगअंगुलिज्जगललिअगयललियकयाभरणे णाणामणि
 कडगतुडिअथंमिअभूए अहिअसस्सिरीए कुंडलउज्जोइआणणे मउडदित्त-
 सिरए हारोत्थय सुकयवच्छे पालंबपलंबमाण सुकयपडउत्तरिज्जे मुहि
 ओ पिंगलंगुलिए णाणामणिकणगविमलमहरिहणिउणोअविअमिसि
 मिसितविइअ सुसिलिड्डविसिड्डलड्डसंठिअ पसत्थ आविद्ध वीखलए
 किं बहुणा ? कप्परुक्खए चेव अलंकिअ विभूसिए णरिदे सकोरट जाव
 चक्कन्नामर वालवीअंगे मंगलजयसहकयालोए अणेगगणणायग दंणणा
 यग जाव द्अ संधिवाल सद्धि संपरिवुडे धवल महामेहणिग्गए इव जाव
 ससिब्ब पियदंसणे णखई धूवपुप्फ गंधमल्लहत्थगए मज्जणघराओ पडिणि
 क्वमइ पडिणिक्खमि त्ता जेणेव चक्करयणे तेणामेव पहारेत्थ गमणाए ॥३॥

छाया—तत खलु तस्य भरतस्य राज्ञोऽन्यदा कदाचिद् आयुधगृहशालायां दिव्यं चक्ररत्नं समुत्पन्नं, ततः खलु स आयुधगृहिको भरतस्य राज्ञः आयुधगृहशालायां दिव्यं चक्ररत्नम् समुत्पन्नं पश्यति, दृष्ट्वा च हृष्टं तुष्टं चित्तमानन्दितः नन्दितः प्रीतिमनाः परम-सौमनस्यितः हर्षपशविसर्पद्दहृदयः यत्रैव दिव्यं चक्ररत्नं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य त्रिः कृत्वा आदक्षिणप्रदक्षिणं करोति, कृत्वा करतलं यावत् कृत्वा चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति, कृत्वा आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव घाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य करतलं यावत् जयेन विजयेन वर्द्धयति, वर्द्धयित्वा एवमवादीत्—एवं खलु देवानुप्रियाणाम् आयुधगृहशालायां दिव्यं चक्ररत्नं समुत्पन्नं तदेतत् खलु देवानुप्रियाणां प्रियार्थं तथै प्रियं निवेदयामः प्रियं भवतां भवतु, ततः खलु स भरतो राजा तस्य आयुधगृहिकस्य अतिके पतमर्थम् श्रुत्वा निशम्य हृष्टं यावत् सौमनस्यितः विकसितवरकमलनयनवदनः प्रचलितवरकटकवृटितकेयूर-मुकुटकुण्डलहारविराजमानरतिदवक्षस्कं प्रालम्बप्रलम्बमानघोलद् भूषणधरः ससम्भ्रमं त्वरितं चपलं नरेन्द्रः सिंहासनाद्भ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय पादपीठात् प्रत्यवरोधति, प्रत्यवरोध्या पादुके अवमुञ्चति, अवमुच्य एकशटिकम् उत्तरासङ्गं करोति कृत्वा अञ्जलिमुकुलिताग्रहस्तं चक्ररत्नाभिमुखं। षष्टपदानि अनुगच्छति, अनुगत्य घामं जानुम् आकुञ्चयति, अकुञ्च्य दक्षिणं जानुं धरणीतले निहत्य करतलं यावदञ्जलिं कृत्वा चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति, कृत्वा तस्यायुधगृहिकस्य यथा मालितं मुकुटवर्जम् अवमोचकं ददाति, दत्त्वा सत्कारयति, सन्मानयति, सत्कृत्य सन्मान्य प्रतिविसर्जयति, प्रतिविसर्ज्य सिंहासनवरगतं पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः । ततः खलु स भरतो राजा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! विनीतां राजधानीं साभ्यन्तरवाहिरिकाम् आसिक्तसंमार्जितसिक्तशुचिकरथ्यान्तरवीथिकाम् मञ्चातिमञ्चकलिताम् नानाविधरागवसनोच्छ्रितभजपताकातिपताकमण्डिताम्, लापितोल्लोचितमहितां लिप्तोल्लोचितमहिताम्बा, गोशीर्षसरसरकचन्दनकलशाम् चन्दनगृहसुकृतं यावदगन्धोद्धृताभिरामाम् सुगन्धवरगन्धिताम् गन्धवर्तिभूताम् एतामाह्वयति प्रत्यर्पयति ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः भरतेन राज्ञा एव मुक्तां सान्तं दृष्टुष्टुं करतलं यावत् एवं स्वामिन् ! आज्ञायाः विनयेन वचनं प्रतिशण्वन्तं प्रतिश्रुत्य भरतस्य अंतिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति प्रतिनिष्क्रम्य विनीतां राजधानीं यावत् कृत्वा कारयित्वा च तामाह्वयति प्रत्यर्पयन्ति । ततः खलु स भरतो राजा यत्रैव मण्डनगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य मण्डनगृहम् अनुप्रविशति अनुप्रविश्य समुक्लिताकुलाभिरामे विचित्रमणित्तकुट्टिमतले रमणीये स्नानमण्डपे नानामणिरत्नमकितचित्रे स्नानपीठे सुखनिषण्णः शुभोदकैः सुखोदकैर्वा गन्धोदकैः पुष्पोदकैः शुद्धोदकैश्च, पुन कल्याणकारिबरम विधिना मज्जितः तत्र कौतुकशतैः बहुविधैः कल्याणक प्रवरमज्जनावसाने पद्ममलसुकुमालगन्धकाषायिकी रुक्षिताङ्ग सरससुरभिगोशीर्षचन्दनानुलिप्तगात्रः अहत हार्धदुष्यरत्नसुसंवृत्त शुचिमालावर्णकविलेपन आविद्ध-

मणिसुवर्णः कल्पितद्वाराद्द्वारत्रिसरिकप्रालम्बप्रलम्बमानकटिसूत्रसुकृतशोभः, पिनद्धत्रैवे
यकाऽङ्गुलीयक ललिताङ्ग कललितक चाभरण, नानामणिकटकत्रुटिकस्तम्भिनभुजः अधिक-
सश्रीकः, कुण्डलोदघोतितानन 'मुकुटदीप्तशिरस्कः, द्वावस्तृतसुकृतवक्षस्क, प्रलम्ब-
प्रलम्बमान सुकृतपटोद्योरीयक; मुद्रिकापिङ्गलाङ्गुलिकः नानामणि कनकविमल माहा-
र्घनिपुण 'ओम्बवि' परिकर्मित' मिसमिसेत' दीप्यमाना विरचितसुश्लिष्टविशिष्टलष्ट-
संस्थितप्रशस्ताविद्ध वीरचलयः, किं बहुना कल्पवृक्षक इव अलङ्कृतो विभूषितप्रच नरेन्द्रः
सकोरण यावत् चतुश्चामर वालवीजिताङ्गः, मङ्गल जय जय शब्दकृतालोक, अनेक गण
नायक दण्डनायक यावत् दूतसन्धिपालै साद्ध संपरिचृतः धवलमहामैघ निर्गत इव यावत्
शशीव प्रियदर्शनो नरपति धूपपुष्पगन्धमाद्यहस्तगतो मञ्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति,
प्रतिनिष्काम्य यत्रैव चक्ररत्न तत्रैव प्रधारितवान् गमनाय ॥ सू ३ ॥

टीका—“तए णं” इत्यादि । ‘तए णं’ ततोमाण्डलिकत्वप्राप्त्यनन्तर खलु
‘तस्स भरहस्स रण्णो’ तस्य भरतस्य राज्ञः ‘अण्णया कयाइ’ अन्यदा कदाचित्—अन्यस्मिन्
कस्मिंश्चित् काले माण्डलिकत्वं पालयतः वर्षसहस्रेगते सति ‘आउहघरसालाए’ आयुधगृ
हशालायां शस्त्रागारशालायाम् ‘दिव्वे चक्करयणे समुप्पज्जित्था’ दिव्य चक्ररत्नं समुदप-
घत=समुत्पन्नम् ‘तए णं’ ततश्चक्ररत्नोत्पत्तेरनन्तरं खलु ‘से आउहघरिए’ स आयुध-
गृहिकः-आयुधगृहशालारक्षकः ‘भरहस्स रण्णो आउहघरसालाए दिव्वं चक्करयण समुप्पणं
पासइ’ भरतस्य राज्ञ आयुधगृहशालायां दिव्यं चक्ररत्नं समुत्पन्न पश्यति ‘पासित्ता’
दृष्ट्वा ‘हट्टतुट्टचित्त माणंदिए’ हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः, हृष्टतुष्टः—अतीघतुष्टः तथा चित्तेन
आनन्दितः अत्र मकार आर्पत्वात्, यद्वा हृष्टतुष्टम्—अत्यर्थं तुष्टं हृष्ट वा—‘अहो मया इदमपूर्वं

“भरतचक्रवर्ती का दिग्विजयादि का वर्णन”

,तएणं भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ’ इत्यादि —सूत्र ३

टीकार्थ—(तरूण) माण्डलिकत्व प्राप्ति के अनन्तर (तस्स भरहस्स) उस भरत की (अण्णया
कर्याइ) किसी एक समय जब को माण्डलिकत्व पदमें रहते रहने एक हजार वर्ष व्यतीत होगये
तब—(आउहघरसालाए) शस्त्रागारशालामें (दिव्वे चक्करयणे समुप्पज्जित्था) दिव्य चक्ररत्न
उत्पन्न हुआ (तएण से आउहघरिए भरहस्स रण्णो आउह घरसालाए दिव्वं चक्करयण समु-
प्पणं पासइ) जब आयुधशाला के रक्षक ने भरत की आयुधशाला में दिव्य चक्ररत्न उत्पन्नहु-
आ देखा तो (पासित्ता) देखकर वह (हट्ट तुट्ट चित्तमाणदिए नदिए पीइमणे परमसोमण

“भरत चक्रवर्तीनी दिग्विजयादिनु वञ्चुन”

‘त एण तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ’ इत्यादि —सू० ४

टीकार्थ—(तए णं) माण्डलिकत्व प्राप्ति पछी (तस्स भरहस्स) ते भरतनी (अण्णया
कर्याइ) कोइ ओक समये न्यारे माण्डलिकत्व पद पर समाप्तीन रहैतां ओक हजार वर्ष
व्यतीत थई गया त्यारे (आउहघरसालाए) शस्त्रागारशालामें (दिव्वे चक्करयणे समुप्प-

दृष्ट' मिति विस्मितं तुष्टं 'सुष्टु जातं यन्मयैव प्रथममिदमपूर्वं दृष्ट यन्नवेदनेन स्वप्र
 शुभां प्रीतिपात्रं करिष्यतो'ति सन्तोपमापन्नं यत्र तद् यथास्यात्तथा आनन्दितः प्रमोद
 प्रकर्षतां प्राप्त इत्यर्थः 'नंदिष' नन्दितः मुखप्रसन्नतादिभावैः समृद्धिसुपगतः 'पीडमणे'
 प्रीतिमनाः प्रीतिः मनसि यस्य स तथा 'परमसोमणास्सिए' परम सौमनस्यितः, परमं
 सौमनस्यं सुमनस्कत्वं जातमस्येति परमसौमनस्यित, एतदेव व्यनक्ति 'हरिसवसविस-
 र्पद्दृहदयः, हर्षवशेन विसर्पद् उल्लसद् हृदयं यस्य स तथा, एतादृशः आयुधशालारक्षकः
 'जेणामेव दिव्वे चक्ररयणे तेणामेव उवागच्छइ' यत्रैव दिव्यं चक्ररत्न तत्रैवोपागच्छति,
 'उवागच्छिता' उपागत्य 'तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ' त्रिःकृत्वः—त्रीन् वारान्
 आदक्षिणप्रदक्षिणं दक्षिणहस्तादारभ्य प्रदक्षिणं करोति, 'करेत्ता' कृत्वा च 'करयल जाव-

स्सिए हरिसवसविसर्पमाणहिमए जेणामेव दिव्वे चक्ररयणे तेणामेव उवागच्छइ) दृष्ट तुष्ट—
 अत्यन्त तुष्ट हुआ और चित्त में आनन्दित हुआ यहा प्राकृत होने के कारण मकार लाक्षणिक
 है अथवा वह दृष्ट तुष्ट हुआ इसका तात्पर्य ऐसाभी होता है कि वह बहुत अधिक तुष्ट हुआ और
 यह मैंने अपूर्व ही वस्तु देखो है इस ख्याल से विस्मित भी हुआ तथा बहुत अच्छा हुआ जो मुझे
 ही इस अपूर्व वस्तु के सर्व प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है अबतो मैं इस बात को
 खबर अपने स्वामी के निकट भेजूंगा — और उनका प्रीतिपात्र बनने का सौभाग्य प्राप्त करूँगा—
 इस प्रकार के विचार से वह सतुष्ट हुआ और आनन्द युक्त हुआ तथा नन्दितहुआ मुख प्रसन्न-
 ता आदि भावों से वह समृद्धि को प्राप्त हुआ उसके मन में परम प्रीति जगी (परमसोमणास्सि-
 ए) वह परम सौमनस्यित हुआ हर्ष के वश से उसका हृदय उछलने लगा और फिर वह जहा
 पर वह दिव्य चक्ररत्न था वहा पर गया(उवागच्छिता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ कार-
 ता करयल जाव कट्टु चक्ररयणस्स पणाम करेइ) वहाँ जाकर के उसने तीनवार आदक्षिण प्रद-
 क्षिण किया दक्षिण हाथ की तरफ से लेकर वायें हाथ की तरफ तीन प्रदक्षिणाएँ की तीन प्रद-
 क्षिणा करके फिर उसने करतल यावत् करके चक्ररत्न को प्रणाम किया यहाँ यावत्पद से "करयल

जित्था) दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न थयु (तए णं से आउहघरिए भरहस्स रण्णो आउह
 घरसालाय दिव्वं चक्ररयणसमुपपणं पासइ) न्यारे आयुध शाणाना रक्षके भरतनी आयुध-
 शाणानां दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न थयेत्तुं जेयु तो (पासित्ता) जेधने ते (दृष्टतुष्टचित्तमाणं
 दिप नंदिप पीडमणे परमसोमणास्सिए हरिसवसविसर्पमाणहिमए जेणामेव दिव्वे चक्रक-
 रयणे तेणामेव उवागच्छइ) दृष्ट-तुष्ट अत्य त तुष्ट थये अने चित्तमा आनन्दित थये।
 अही प्राकृत डोवाथी मकार लाक्षणिक छे अथवा ते दृष्ट तुष्ट थये जेत्तुं तात्पर्य आ
 प्रभाणे पण थय छे के ते जहुं ज वधारे तुष्ट थये अने जे अपूर्व वस्तु ज जेध छे
 जे विचारथी विस्मित पण थये तथा जहुं ज सारु थयु के जे सर्व प्रथम जे अपूर्व
 वस्तुना दर्शनने लास भने ज जये। हुवे तो जे वातनी जणु हु मारा स्वामीने करीश
 जे जतना विचारथी ते स तुष्ट थये अने आनन्द युक्त थये तेम ज नन्दित थये। सुभ
 प्रसन्नता आदि भावों से ते समृद्धिने प्राप्त थये। तेना मनमा परम प्रीति जगी (परम

कद्दु चक्रयणस्स पणामं करेइ' अत्र यावत्पदात् 'करयल पडिग्गहिअं दसणह सिरसावत्तं मत्थए अंजलि' इति संग्राहम्, करतलपरिगृहीतं दशनखं सिरसावत्तं मस्तके अठ्जलिं कृत्वा, करतलाभ्यां परिगृहीतः करतलपरिगृहीतस्तं, दशकरद्वयसम्बन्धिनो नखाः समुदिता यत्र तं, शिरसि मस्तके आवर्त्तः—आवर्त्तनं प्रादक्षिण्येन परिभ्रमणं यस्य तं तादृश मस्तके अठ्जलिं कृत्वा चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति 'करेत्ता' कृत्वा च 'आउह घरसालाओ पडिणिकखमइ' आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति 'पडिणिकखमित्ता' प्रतेनिष्क्रम्य निर्गत्य च 'जेणामेव बाहिरिआ उवट्टाणसाला जेणामेव भरहे राया तेणामेव उवागच्छइ' यत्रैव बाहिरिका आभ्यन्तरापेक्षया बाह्या, उपस्थानशाला आस्थानमण्डपः यत्रैव च भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य च 'करयल जाव जएणं विजएणं वद्धावेइ' अत्रापि 'करयल जाव'त्ति करतल परिगृहीतं दशनखं सिरसावत्तं मस्तके अठ्जलिं कृत्वा जयेन विजयेन वर्द्धयति—स आयुधगृहिको जयविजयाभ्यां त्वं वर्द्धस्व' इत्याशिषं ददातीत्यर्थः 'वद्धावित्ता एवं वयासी' वर्द्धयित्वा च एवमवादीत्—एवं वक्ष्यमाण

पडिग्गहिअ दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि" इस पाठक समग्र हुआ है इसका भाव ऐसा है कि चक्ररत्न को प्रणाम करते समय उसने दोनो हाथों की अंजलि इस प्रकार की बनाई कि जिसमें १० अंगुलियों के नख आपस में मिल जावें इस प्रकारसे अंजलि बनाकर उसने उस अंजलि को मस्तक की दाहिनी ओर से बाई ओर तीन बार फिराया—इस ढंग से उसने उसे प्रणाम किया (करित्ता आउहघरसालाए पडिणिकखमइ पडिणिकखमिता जेणामेव बाहिरिआ उवट्टाणसाला जेणामेव भरहे राया तेणामेव उवागच्छइ) प्रणाम करके फिर वह उस आयुधशालासे बाहर निकला और निकल कर जहाँ बाहिरी उपस्थानशाला (बाहरी कचहरी थी और उसमें जहाँ भरत राजा बैठे थे वहाँ पर आया (उवागच्छित्ता) वहा आकरके (करयल जाव जएण विज-

लोमणस्सिप) ते परम सीमनस्थित थये—इधविश्वथी तेनु हृदय उछणवा दाग्गुं अने पथी ते न्यां ते दिव्य चक्ररत्न इत्तु' त्यां गथे। (उवागच्छित्ता तिकखुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ करित्ता करयल जाव कद्दु चक्रयणस्स पणामं करेइ) त्यां न्धने तेणु त्रयु वार आहक्षिषु प्रहक्षिषु करी—हक्षिषु हाथ तरक्षी लधने डाया हाथ तरक्ष त्रयु प्रहक्षिषुओ करी त्रयु प्रहक्षिषुओ करीने पथी तेणु करतल यावत् करीनं चक्ररत्नने प्रथाम कथां अडी' यावत् पदथी (करयलपडिग्गहिअ दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि) आ पाठने स'अह थयेडो छे. येने। आव आ प्रभाणु छे के चक्ररत्नने प्रथाम करती वथते तेणु अन्ने हाथेनी अ'अणि आ प्रभाणु अनावी के नेमां १० आगणीओना नणे। परस्पर मणी नय आ प्रभाणु अ'अणि अनावीने तेणु ते अ'अणिने मस्तकनी अ'अणी आणुथी डाणी आणु त्रयु वथत इस्वी. आ दीते तेणु प्रथाम कथां. (करित्ता आउहघरसालाए पडिणिकखमइ पडिणिकखमित्ता जेणामेव बाहिरिआ उवट्टाणसाला जेणामेव भरहे राया तेणामेव उवागच्छइ) प्रथाम करीने पथी ते आयुध शालाभांथी अहार नीकथे। अने नीकणीने न्यां अहार

प्रकारेण उक्तवान्, किं तदित्याह—'एव खलु देवाणुप्पियाणं आउहधरमात्थाए दिव्वे चक्ररयणे समुप्पण्णे तं एयणं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पिय णिवेएमो पिय भे भवउ' एवं खलु इत्थमेव यदुच्यते मया तद् सर्वथा सत्यमेव यद्देवानुप्रियाणाम् आयुधगृह्णात्थायां शस्त्रागारशालायां चक्ररत्न समुत्पन्न तदेतत् खलु देवानुप्रियाणा प्रियार्थनार्य=प्रीत्यर्थं प्रियम् इष्टं निवेद्यामः एतत् प्रियनिवेदनं प्रियम् 'भे' भवता भवतु ततो भरतः किं कृतवान् इत्याह—'तए ण' इत्यादि । 'तए णं से भरहे राया तस्स आउहधरिअस्स अंतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव सोमणस्सिए' ततः खलु स भरतो राजा तस्य आयुधगृहीकस्य अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्ट यावत् सोमनस्यित, तत आयुधगृह्णस्य आयुधशालारक्षकस्य अन्तिके समीपे एतं चक्ररत्नोत्पत्तिरूपम् अर्थं श्रुत्वा निशम्य हृद्यप्रधार्यं इष्ट यावत्सोमनस्यितः, अत्र यावत्पदात् पूर्ववद् बोध्यम् । तथा—'वियसियवरकमलणयणवयणे' विकसितवरकमलनयनवदनः तत्र—विकसिते वरकमलवन्नयनवदने यस्य स तथा—प्रफु-

एणं वद्धावेह) उसने पूर्वोक्तानुसार भरत राजा को प्रणाम किया और आपकी जय हो आपकी विजय हो इस प्रकार जय विजय के शब्दों को उच्चारण करते हुए उसने उन्हे बधाई दी (वद्धावित्ता एव वयासी) बधाई देकर के फिर उसने ऐसा कहा— (एवं खलु देवाणुप्पियाणं आउहधरसालाए दिव्वे चक्ररयणे समुप्पण्णे) हे देवानुप्रिय ! आपकी आयुधशाला में आज दिव्यचक्ररत्न उत्पन्न हुआ है (तं एयणं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पिय णिवेएमो) तो हे देवानुप्रिय ! मैं आप की प्रीति के लिये आया हूँ (पिय भे भवउ तएणं से भरहे राया तस्स आउहधरिअस्स अंतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव सोमणस्सिए) यह मेरे द्वारा निवेदित हुआ अर्थ आपको प्रिय हो इस प्रकार उस आयुधशाला के मनुष्य से सुनकर के और उसे हृदय में धारण करके वह भरत राजा हृष्ट यावत् सोमनस्यित हुआ यहा पर भी यावत्पद से पूर्वोक्त पाठ गृहीत हुआ है । (वियसियवरकमलणयणवयणे पयल्लिअवरकडगतुडिअकेऊर मउड कुंडल हारविरायतरहवच्छे पालवपलंबमाण षोलंत मूषण घरे) उसके सुन्दर दोनों नेत्र और मुख श्रेष्ठ कमल के जैसे विकसित हो गये, चक्ररत्न की उत्पत्ति के श्रवण से जनित

उपस्थान शाणा इती (अहुर कथइरी इती) अने तेभा नया भरत राज भेडा इती त्या गथो. (उवागच्छित्तो) त्या अर्थने (करयल जाव जपण विजयणं वद्धावेह) तेणे पूर्वोक्ता-नुसार भरत राजने प्रथाम कथां अने तभारेो जय थायेो, तभारेो जय थायेो, आ प्रभाणेो जय--विजय शब्देो उच्यारता तेणे तेभने वधाभष्ठी आपी (वद्धमवित्ता एवं वयासी) वधाभष्ठी आपी ते पष्ठी तेणे कल्लु (एवं खलु देवाणुप्पियाणं आउहधरसालाए दिव्वे चक्ररयणे समुप्पण्णे) हे देवानुप्रिय ! तभारी आयुधशाणाभा आयेो दिव्य चक्ररत्न उत्पन्न थयुं छे (तं एयणं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियणिवेएमो) तेो हे देवानुप्रिय ! हे तभारी भासे येो छंठ अर्थं विषे निवेदन क'वां अ.येो छु. (पिय भे भवउ तए णं से भरहे राया तस्स आउहधरोअस्स अंतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव सोमणस्सिए) भारा वडे

ल्लवरपङ्कजलोचनमुखः, तथा—'पयलियवरकडगतुडियकेऊरमउडकुंडलहारविरायंतरइअ
वच्छे'प्रचलितवरकटकत्रुटिकेयूरमुकुटकुण्डलहारविराजमानरतिदवक्षस्कः, तत्र प्रचलितानि
चक्ररत्नोत्पत्तिश्रवणजनितसम्भ्रमातिशयात् कम्पितानि वरकटके प्रधानबलये त्रुटिके बाहु-
रक्षकौ केयूरे वाहोरेव भूपगविशेषौ मुकुटं कुण्डले च यस्य स तथा सिंहालोकनन्यायेन
भूयः प्रचलितशब्दस्य ग्रहणात् प्रचलितशरेण विराजमानरतिदम् आनन्ददं वक्षो यस्य स
तथा पश्चात् पदद्वयस्य कर्मधारयः, 'पालंबपल बंमाणघोलंतभूसणधरे' प्रालम्ब प्रलम्बमान
घोलद्भूषणधरः, तत्र प्रलम्बमानः सम्भ्रमादेव प्रालम्बो ह्रमकं यस्य स प्रालम्बप्रलम्ब-
मानः, घोलद् दोलायमान भूषण धरित य स घोलद्भूषणधरःततः पदद्वयस्य कर्मधारयःअत्र
'पालंबपलंबमाण' इत्यत्र पदव्यतिक्रमः आर्पत्वात् एतादृशः सन् भरतो राजा 'ससंभ्रम
तुरियं चवल सिंहासणाओ अब्भुट्टेइ' ससंभ्रमं सादर सोत्सुकं वा त्वरितं—मानसोत्सुक्यं वा
यथास्यात्तथा चपलं—कार्योत्सुक्यं यथास्यात्तथा नरेन्द्रो भरतः सिंहासनादभ्युत्तिष्ठति
'अब्भुट्टित्ता' अभ्युत्थाय 'पायपीढाओ' पादपीठात् पदासनात् 'पच्चोरुइ' प्रत्यवरोहति
अवतरति 'पच्चोरुहित्ता पाडआओ ओमुइ' प्रत्यवरुह्य अवतीर्य पादुके पादत्राणे अव-
मुञ्चति त्यजति 'ओमुइत्ता' अवमुच्य त्यक्त्वा 'एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ' एकःशाटो

अत्यंत सभ्रम के वश से हाथों के श्रंष्ट कटक, त्रुटिक— बाहुरक्षक, मुकुट और कुण्डल चञ्चल
हों उठे वक्षस्थल पर विराजित हार हिलने लगा गले में लटकती हुई लम्बी २ पुष्पमालाएं
चञ्चल हो उठी अनेक आभूषण आनन्दातिरेक के मारे शरीर में कसकने लगे इस प्रकार से वह
प्रफुल्लित नेत्र और मुखवाला होकर एव कटक, कुण्डल तथा लटकती हुई मालाओं को शरीर
पर धारण कर (ससंभ्रमं तुरियं चवलं णरिंद) बड़ी उतावल से या बड़ीउत्कठा से अपने कार्य की
सिद्धि में चञ्चल जैसा बन कर वह भरत राजा (सिंहासणाओ अब्भुट्टेइ) सिंहासन से उठा
(अब्भुट्टित्ता पायपीढाओ पच्चोरुइ) और उठकर वह पाद पीठ पर पैर रख कर नीचे उतरा
(पच्चोरुहित्ता पाडआओ ओमुइ) नीचे उतर करके उसने दोनों पैरो में पहिरी हुई खडार्क
को उतार दिया— (ओमुइत्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ) खडार्कओं को उतार कर फिर

निवेदित अथ तमने प्रिय थाओ। आ प्रभाषे ते आशुधशाणाना भाषुसनावथन साधणीने
अने तेने हृदयभां धारषु करीने ते भरत राजा हृष्ट थावत सौमनस्यत थयो. अहीं पषु
थावत पदथी पूर्वोक्त पाठ गृहीत थयेदो छे (वियसियवरकमलणयणवयणे पयलिअवर
गतुडियकेऊर कुंडलहारविरायंतरइवच्छे पालंबपलबमाणघोलंत भूसणधरे) तेना
अन्ने सुंइर नेत्रो अने शुभ श्रेष्ठ कभणनी जेम विकसित थथ गया अकरत्ननी उत्पत्ति-
जनित अत्यंत संभ्रमता व शथी हाथेना श्रेष्ठ कटक, त्रुटिक—बाहुरक्षक, मुकुट अने कुंडलो
अथय थथ गया. वक्षस्थल—स्थित हार हाथेना हाथे। गणामा लटकती लांणी—लाणी पुष्प
भागो। अथय थथ गथ अनेक आभूषणो। आनदातिरेकथी शरीरभां सणकवा हाथ्यां आ
प्रभाषे ते प्रफुल्लित नेत्र अने शुभवाणे। थथने तेमअ कटक, कुंडल तथा लटकती भाण-
ओने शरीर पर धारषु करीने (ससंभ्रमं तुरियं चवलं णरिंद) अकहम उतावणथी अथवा

यत्र स एकशाटकम् अखण्डशाटकम् अस्यूतमित्यर्थः करोति 'करेत्ता' कृत्वा 'अंजलिमुडलि अगहत्थे' अञ्जलिना मुकुलितौ कुहमलाकारीकृतौ अग्रहस्तौ हस्ताग्रभागौ येन सोऽञ्जलि-मुकुलिताग्रहस्तः 'चक्ररयणाभिमुहे' चक्ररत्नाभिमुखे भूत्वा 'सत्तट्टपयाइं अणुगच्छइ' सप्तवा अष्टौ वा पदानि अनुगच्छति सिंहासनादग्रे गच्छति 'अणुगच्छिता' अनुगत्य 'वामं जाणु अंचेइ' वामं जानुम् आकुञ्चयति—ऊर्ध्वं करोति 'अंचेत्ता' आकुच्य—ऊर्ध्वं कृत्वा 'दाहिणं जाणु धरणीतलंसि णिहट्टु करयल जाव अंजलिं कट्टु चक्ररयणस्स पणाम करेइ' दक्षिणं जानु धरणीतले निहत्य—निवेश्य करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्त मस्तके अञ्जलि कृत्वा चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति 'करेत्ता' कृत्वा 'तस्स अउहघरिअस्स अहामालिअं मउडवज्जं ओमोअं दलइ' तस्याऽऽयुधगृहिकस्य 'यथामालितं' यथा धारितं यथा परिहितम् अवमुच्यते—परिधीयते यः सोऽवमोचकः—आभरणविशेषस्तं मुकुट वर्जं मुकुटं विना सर्वभूषणं ददाति, मुकुटस्य राजचिह्नालङ्कारत्वेनादेयत्वात् 'दलिता'

उसने एक शाटिक— विनाजुड़ाहुआ— उत्तरासङ्ग धारण किया— (करिता अंजलि मउलिअगह हत्थे चक्ररयणाभिमुहे सत्तट्टपयाइं अणुगच्छइ) उत्तरासङ्ग धारण करके फिर उसने अपने दोनो हाथों को कुहमलाकारीकृत किया और चक्ररत्न की तरफ ऊन्मुख होकर वह— (सत्तट्ट पयाइ अणुगच्छइ) सात आठ पैर आगे चला—(अणुगच्छिता वामं जाणुं अजेइ, अचेत्ता दाहिण जाणु धरणो तलंसि णिहट्टु करयल जाव अंजलिं कट्टु चक्ररयणस्स पणामं करेइ) आगे चलकर उसने फिर अपने बायें जानु को ऊंचा किया ऊंचा करके फिर उसने अपने दक्षिण जानु को जमीन पर रखा और करतल परिगृहीतवाली, दश नखों के आपस में जोड़ने वाली ऐसी अञ्जलि को तीनवार आदक्षिण प्रदक्षि करते हुए चक्ररत्न को प्रणाम किया (करेत्ता तस्स

अतीव उल्लंघनी ते पोताना कार्यनी सिद्धिमां यच्च न्नेवे। यधने ते भरत राज (सिंहा-सणामो अब्भुट्टेइ) सिंहासन उपथी जेवे। थथे। (अब्भुट्टिता पायपीढाओ पच्चोरुहइ) अने जेवा थधने ते पादपीठ उपर पग भूकीने नीचे उतर्ये। (पच्चोरुहत्ता पाजयाओ ओमुयइ) नीचे उतरिने तेवे अन्ने पगेमां पडेरेवी पाहुकाओ उतारी नाथी। (ओमुइत्ता पगसाडिअं उत्तरासंग करेइ) पाहुकाओ उतारीने पछी तेवे अेक शाटिक-वगर सिवेत्तु—उत्तरासंग धारणु कथुं—(करिता अंजलिमुडलिअगहत्थे चक्ररयणाभिमुहे सत्तट्टपयाइ अणुगच्छइ) उत्तरासंग धारणु करिने पछी तेवे पोताना अन्ने हाथेने कुइमदां करे करिने अने यकरत्न तरेइ उन्मुप थईने ते (सत्तट्टपयाइं अणुगच्छइ) सात-आठ उगता आगण वधे। (अणुगच्छिता वाम जाणु अंचेइ अचेत्ता दाहिणं जाणु धरणीतलंसि णिहट्टुकरयल जाव अंजलि कट्टु चक्ररयणस्स पणामं करेइ) आगण वधीने करे तेवे पोतानी डानी अनु (धू टथु)ने जेवे करिने पछी तेवे पोतानी जमणी अनु (धू टथु)ने पृथ्वी पर भूकी अने करतल परिगृही-तवाणी, दशनभेने परस्पर नेडनारी अेवी अ अदिकरिने त्रयुवार आदक्षिणु प्रदक्षिणु करतां यकरत्नने वदन कथां (करेत्ता तस्स अउहघरिअस्स अहामालिअं मउडवज्जं ओमोअं दलइ दल विडलं जीविआरिहं पीइवाण दलइ) वदन करिने पछी ते भरत राजां

दत्त्वा 'विउलं जीविआरिहं पीइदाणं दल्लइ' विपुलं—प्रचुरं जीविकार्हम्—आजीविकायोग्यं प्रीतिदानं ददाति 'दल्लित्ता' दत्त्वा 'सक्कारेइ सम्माणेइ' सत्कारयति वस्त्रादिना सन्मानयति वचनबहुमानेन 'सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता' सत्कृत्य सन्मान्य च 'पड्डिविसज्जेइ' प्रतिविसर्जयति स्वस्थानगमनाय समादिशति । 'पड्डिविसज्जेत्ता' प्रतिविसर्ज्य 'सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे' सिंहासनवरगतः श्रेष्ठसिंहासनस्थितः पूर्वाभिमुखः सन्निषण्णः उपविष्टः । अथ भरतो यत्कृतवान् तदाह—'तएणं' इत्यादि । 'तएणं से भरहे राया कोडुं वियपुरिसे सहावेइ' ततः खलु स भरतो राजा कौटुम्बिकपुरूपान् शब्दयति अह्वयति 'सहावेत्ता' शब्दयित्वा च 'एवं वयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् किमुक्तवानित्याह—'खिप्पामेव' इत्यादि 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! विणीयं रायहाणि सच्चिन्तरवाहिरियं' क्षिप्रमेव शीघ्रमेव भो देवानुप्रियाः ! विनीतां राजधानीं साभ्यन्तरवाह्या अन्तर्वाह्याम् अन्तर्वाह्यभागसहिता 'आसिय समज्जियसित्त सुइगरत्थं तरवीहियं' तत्र आसित्त संमाजित्त सित्त शुचिक रथ्यान्तर वीथिकाम् आसित्ता गन्धो-

अउहघरिअस्म अहामालिअ मउडवज्ज ओमोऊ दल्लइ दल्लइता विउलं जीविआरिहं पीइदाणं दल्लइ) प्रणाम करके फिर उस भक्त राजा ने उस आयुष गृहिक के लिये अपने मुकुट को छोड़ कर वाकी के सब पहिरे आमूषण उनार कर दे दिये और भविष्य में उसकी आजीविका चलती रहे इसके योग्य विपुल प्रीतिदान दिया (दल्लित्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता, पड्डिविसज्जेइ, पड्डिविसज्जेत्ता सीहासण वरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे) विपुल प्रीतिदान देकर फिर उसने उसका वस्त्रादि के द्वारा सन्मानक्रिया, बहुमान द्वारा उसका सन्मान किया इस प्रकार उसका सत्कार और सन्मान करके फिर उसने उसे विसर्जित कर दिया विसर्जित करके फिर वह अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वदिशा की आत

ते आयुष गृहिकने पोताना मुकुट सिवाय धारणु करेदां भधा आभूषणो। उतारीने आपीहीधां अने भविष्यमा तेनी आलुविका आदती रहें ते प्रभाणु विपुल प्रभाणुमा प्रीतिदान आयु' (दल्लित्ता सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता, सम्माणेत्ता पड्डिविसज्जेइ, पड्डिविसज्जेत्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे) विपुल प्रीतिदान आपीने तेणु तेनु वस्त्रादिक वडे सन्मान कथुं, बहुमान वडे तेनु सन्मान कथुं. आ प्रभाणु तेने सत्कार अने सन्मान करीने पछी तेणु तेने विचरित करी हीधो विचरित करीने पछी ते पोत ना श्रेष्ठ सिंहासन उपर पूर्व दिशा तरइ शुभ करीने सारी रीते भेसी गथे। (तएण से भरहे राया कोडु वियपुरिसे सहावेइ) त्थार भाइ ते भरत राजाणे पोताना कौटुम्बिक भाणुसेने भेदाण्था (सहावित्ता एवं वयासी) अने भेदापीने तेभने तेणु आ प्रभाणु कथ (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ? विणीयं रायहाणि सच्चिन्तरवाहिरियं आसियसमज्जियसित्त सुइगरत्थं तरवीहियं मंचाई मंचकल्लिअ) हे देवानुप्रियो ! तभे सो शीघ्र विनीता राजधानी ने अहर अने अहारथी केकहभ स्वच्छ करे, सुग धित पाणीथी सि चित करे, सावरेणीथी क्यरे साइ करे, जेथी राजभार्गे अने अवा-तरभार्गे सारी रीते स्वच्छ थर् भजे. इहं-

दकादिभिरीपत्सिक्ता, संमार्जिता संमार्जनैः परिस्कृता अतएव शुचिका संमृष्टा रथ्या राजमार्गोऽन्तरवीथी च अवान्तरभागो यस्यां सा तथा ताम् 'मंचाडमंचकलियं' तत्र मञ्चातिमञ्चकालिताम् मञ्चाः-मालकाः दर्शकजनोपवेशनार्थम् अतिमञ्चाः तेषामप्युपरि ये तैः कलिता युक्ता ताम् 'णाणाविह रागवसण ऊसिअन्नयपडागाडपडागमंडियं' तत्र नानाविधो रागो-रञ्जनं येषु तानि वसनानि वस्त्राणि येषु तादृशा ये उच्छिद्रता उर्ध्वीकृता ध्वजाः-सिंहगरुडादिरूपकोपलक्षिता वृहत्पट्टरूपाः पताकाश्च तदितररूपाः, अतिपताकाः तदुपरि वर्त्तिन्यः पताकास्ताभिर्मण्डिताम् 'लाउल्लोडयमहियं' तत्र लापितोल्लोचितमहितां यद्वा लिप्तोल्लोचितमहिताम्, तत्र लापित छगणादिना लेपनम्, उल्लोचितं सैटिकादिना कुब्जादिषु धवलनं ताभ्यां महितमिव महितं शोभितं प्रासादोदियस्यां सा तथा ताम्, यद्वा लिप्तं छगणादिना, उल्लोचितम् उल्लोच युक्तं प्रासादादियस्यां सा तथा ताम् 'गोसीसरसररत्तचंदणकलस' गोशीर्षसरसरक्तचन्दनकलशां तत्र गोशीर्षैः सरसरक्तचन्दनैश्च युक्ताः शोभार्थं कलशाः यस्यां ताम् 'चंदणघटसुकय जाव गंधुदधुयाभिराम' चन्दनघटसुकृत यावद्गन्धोधूताभिरामाम् अत्र यावत्पदेन 'चंदण घट

मुह करके अच्छी तरह से बैठ गया (तएण से भरहे राया कोडुंबियपुरिसे सदावेइ) बादमे उस भरत राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया (सदावित्ता एव वयासी) और बुलाकर उनसे उसने ऐसा कहा - (स्त्रिपामेव भो देवाणुप्पिया विणीअं रायहाणि सभितरवाहिरिअं आसिय समब्जियसित्तसुइगरत्थंतरवीहियं मचाइमचकलियं) हे - देवानुप्रियो ! आपलोग बहुत ही जल्दी विनीता राजधानी को भीतर और बाहर से बिल्कुल साफ सुथरी करो सुगंधित पानी से उसे सिञ्चित करो, बुहारी से कूड़ा कचरा निकाल कर उसकी सफाई करो की जिससे राजमार्ग और अवान्तर मार्ग अच्छी तरह साफ सुथरे हो जावें दर्शकजनो के बैठने के लिये मंचों के ऊपर मंचों को सुसज्जित करो (णाणाविहरागवसणऊसिम श्यपडागाडपडागमंडियं) अनेक प्रकार के रंगों से रंगे हुए वस्त्रों की ध्वजाओं से पताकाओं से - कि जिनमें सिंह गरुड आदि के चिह्न बने हो तथा अतिपताकाओं से - इन पताकाओं के उपर फहरातो हुइ बड़ीर लम्बी पताकाओं से - उसे मण्डित करो (लाउल्लोडयमहियं) जिनकी नीचेकी जमीन गोबर आदि से लिपी हो और चूने की कलई से जिनकी दीवारें पुती हों ऐसे प्रासादादिको वाली उसे बनाओ (गोसीसरसररत्तचंदणकलस) शोभा के निमित्त हर एक दरवाजे पर ऐसे कलशों को रखो कि जो गोशीर्षचन्दन से और रक्तचंदन से उपलित हो (चदनघटसुकय जाव गंधुदधुयाभिराम)

केने जेसवा भाटे मंचोनी उपर मंचोने सुसज्जित करे। (णाणाविहरागवसणऊसिअन्नयपडागाडपडागमंडियं) अनेक जातना र गोशी रंगाओला वस्त्रोनी ध्वजओथी - पताकाओथी के जेनीअ'हर सि ड, गुडु वगेरेना अहो होय तेमअ अति पताकाओथी - जे पताकाओनी उपर करकती अहुअ मोठी - मोठी लाभी पताकाओथी - विनीता नगरीने मंडित करे। (ला उल्लोडय महिय) जेभनी नीथेनी अूमि छाश्च वगेरेथी लिप्त होय अने यूनानी कलधथी

सुकयतोरण पडिदुवारदेसभायं आसत्तोसत्तविउलवड्वग्धारिय मल्लदामकलावं पंचवण-
सरस सुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं, कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवड्डञ्जंतमघमघत
गंधुद्धुयाभिरामं' इति पर्यन्तं ग्राह्यम् । तत्र चन्दनघटसुकृततोरणप्रतिद्वारदेशभागाम्,
तत्र चन्दनघटाश्च सुकृतानि सुण्डुकृतानि सुण्डुतया निवेशितानि तोरणानि च प्रतिद्वार-
देशभागे यस्याः सा तथा ताम् यत्र प्रतिद्वारे चन्दनयुक्त घटाः सुण्डुतोरणानि च सन्ती-
त्यर्थः, आसक्तोत्सक्त विपुलवृत्तावतारितमाल्यदामकलापाम्, तत्र आसक्तो भूमिसंसक्तः,
उत्सक्तः—उपरि संसक्तः, विपुलो विस्तीर्णः, वृत्तो वर्तुलो गोलकारः, उपरिदेशात् अव-
तारितः प्रलम्बमानीकृतः, माल्यानि पुष्पाणि तेषां दामानि मालाः तेषां माल्यदाम्नां
कलापः—समूहो यस्यां सा तथा ताम् पचवर्णसरससुरभिमुक्कत पुष्पपुञ्जोपचारकलिताम्,
तत्र पञ्चवर्णानि कृष्णनीलादि पञ्चवर्णयुक्तानि सरसानि सुरभीणि सुगन्धीनि च तानि
युक्तानि विक्रीर्णानि यानि पुष्पाणि तेषां पुञ्जैरुपचाराः—रचनाविशेषाः, तैः कलितां
युक्ताम्, कालागुरुप्रवरकुन्दरुक्कतुरुक्कधूपदह्यमानातिशयगन्धोद्धुताभिरामाम्, तत्र काला-
गुरु प्रवरकुन्दरुक्कतुरुक्काः श्रेष्ठगन्धद्रव्यविशेषाः प्रसिद्धाः, धूप प्रसिद्धः एते दह्यमाना
अग्नौ प्रक्षिप्यमाणास्तेषां 'मघमघंत' अतिशयितो यो गन्धः उद्धृतः—सर्वतः प्रसृतः तेन

प्रत्येक द्वार पर चन्दन के घड़ो को तोरण के आकार में स्थापित करो यहा यावत्पदसे "चंदण
घडसुकय तोरण पडिदुवारदेसभायं आसत्तोसत्तविउलवड्वग्धारिय मल्लदामकलाव, पचवणसर-
ससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिय, कालागुरुपवर कुंदरुक्क तुरुक्क धूवड्डञ्जंतमघमघत गंधुद्धुयाभि-
रामं) इस पाठ का सग्रह हुआ है . इसका भाव ऐसा है किऐसी लटकती हुई
मालाओं के समूह से इस नगरी को अलङ्कृत करो कि जो मालाओं का समुदाय
ऊपर नीचे दोनों ओर से पानी के छिड़काव से तर हो रहा हो विस्तीर्ण हो गोल हो और
ऊपरकी ओर नीचे की ओर लटकता हुआ हो, नगरी में ऐसे पाच वर्णों के पुष्पों दिखाओ कि जो
सुरभित हो सुगंधित हों— एवं सरस हों—शुष्क नहीं हो नगरी को और अधिक सुगंधित बनाने
के लिये कालागुरु, प्रबलश्रेष्ठकुन्दरुक्क और तुरुक्क—लोमान, इन सबघुषों को सुगंधित द्रव्य

नेमनी दीवाढो दीपेढी डोय जेवा प्रासादिकेवाणी ते नगरीने जनावीने (गोलीस सरस-
रत्तचंदणकलसं) शोभा—निमित्त हरेक द्वार पर जेवा कणशो भूके के जेजे गोशीधं
अन्हन अने रक्त अंहनथी उपक्षिप्त डोय. (चंदणघडसुकय जाव गंधुद्धुयाभिराम) हरेक
द्वार पर अंहनना कणशोने तोरणना आकारमां स्थापित करे। अही यावत् पढथी (चंदणघड-
सुकयतोरणपडिदुवारदेसभाय आसत्तोसत्तविउलवड्वग्धारियमल्लदामकलाव, पंचवण सरस
सुरभिमुक्क पुप्फ पुंजोवयारकलियं, कालागुरु, पवरकुंदरुक्कतुरुक्कधूवड्डञ्जंत मघम-
घंत गंधुद्धुयाभिराम) आ पाठने सग्रह थयेदी छे. जेने भाव आ प्रभावे छे के जेवी
लटकती भाणाजेना सभूडोथी आ नगरीने अलङ्कृत करे। के जे नाणाजेना सयुहाये। उपर
नीचे अने तरङ्गी पाणीना छटकावथी तराओण थधं न्हा डोय, ते विरतीथं डोय,
'गोण' डोय अने उपरथी नीचे लटकती डोय, आ नगरीमा जेवा पाथवजेना पुषेने विधीथं

अभिरामाम् । अतएव 'सुगंधवरगंधियं' सुगन्धवरगन्धिताम् 'गंधवट्टिभूयं' गन्धवर्त्तिभूताम् सुगन्धवर्त्तिकारूपाम् ईदृशविशेषणविशिष्टाम् 'करेह कारवेह' कुरुत स्वयम् कारयत परः 'करेत्ता, कारवेत्ता' य कृत्वा कारयित्वा च 'एय माणत्तियं पच्चप्पिणह' एतामाज्ञप्तिकांप्रत्यर्पयत एतामाज्ञप्तिम्—आज्ञां प्रत्यर्पयत समर्पयत ततस्ते किं कुर्वन्तीत्याह—'तएणं' इत्यादि । 'तए ण ते कोडुवियपुरिसा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा' ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः भरतेन राज्ञा एवमुक्ताः सन्तः ततो भरताज्ञानन्तर ते कौटुम्बिकपुरुषाः राजसेवकाः भरतेन राज्ञा एवमुक्तप्रकारेणोक्ताः सन्तः 'हट्टं करयल जाव' दृष्टाः करतल यावत् तत्र दृष्टाः करतल यावत् परिगृहीतं दशनखं शिरसावत्तं मस्तके अञ्जलि-कृत्वा 'एव सामित्ति ! आणाए विणएण वयणं पडिसुणंति' एवं स्वामिन् ! आज्ञाया विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति एवं स्वामिनः यथाऽऽयुष्मन्तः आदिशन्ति तथेति कृत्वा आज्ञायाः विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति स्वीकुर्वन्तीति ततस्ते किं कुर्वन्तीत्याह—'पडिसु-णिच्चा भरहस्स अंतियाओ पडिणिव्वमति' प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य भरतस्य राजोऽन्तिकत्वात्

विशेषो को — अग्नि में जलाओ एवं अतिशयरूप से इनके निकले हुए धूम की गन्ध से उसे सु-गंधो का भंडार बनाओ "सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह कारवेह" यहीवात इन पदों द्वारा विशेषरूप से पुष्ट की गई है 'करेह' क्रियापद का अर्थ है आप सब इस बात को स्वयं करो तथा "कारवेह" दूमरो से भी कराओ "करेत्ता कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह" इस प्रकार आदेश देने के बाद उस चक्रवर्ती ने उनसे साथर मैं ऐसा कहा कि "हमें तुम लोंग" यह सब कहागया काम हमने पूरा कर लिया" इसबात की खबर देना (तएणं त कोडुविय पुरिसा भरहेणं रण्णा एवंवुत्ता समाणा हट्टं करयलजाव एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति" इस प्रकार से अपने अधिपति भरत राजा द्वारा आज्ञापित हुए वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत ही अधिक प्रसुद्धित हुए उन्हो ने दोनो हाथों को पूर्वोक्तरूप से जोड़ कर के एव उनकीकृत अञ्जलिको मस्तक पर दाहिनी ओर से बाईं ओर को घुमाकर

करेह के जे सुरभित होय, सुगंधित होय तेमज सरस होय ओटवे के शुभ न होय. नगरीने अतीव सुगंधित बनाववा भाटे कालागुरु, श्रेष्ठ कुन्दशुभ्र अने तुरुष-दीपान ओ सर्वधूपोने—सुगंधित द्रव्य विशेषोने—अग्निभा पधराओ अने अतिशय रूपमां ओमनार्थी नीकणता धूमनी गंधथी तेने सुगंधने बहार बनावी हे। "सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह कारवेह" ओज वात ओ पढोवडे विशेष रूपमा पुष्ट करवाभा आवी छे. "करेह" क्रिया पढने अर्थ छे—तमे सौ भणीने ओ काम जाते करे तथा 'कारवेह' भीलओ पासेथी पशु करवे। 'करेत्ता कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह' आ प्रभाषे आदेश आपीने ते अकंपती—ओ तेमने आम कछु के काम पुरु' थाय ओटवे तमे सवे' अमने आ रीते अमर आपी के तमे जे काम अमने सोपेहुं ते अम सारी रीते पुर कथुं छे (तएणं तं कोडु वियपुरिसा भरहेण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टं करयल जाव एवं सामित्ति आणाए वयणं पडिसुणंति) आ प्रभाषे योताना अधिपति भरत राजा द्वारा आज्ञापित थयेदा ते कौटु-

प्रतिनिष्क्रामन्ति 'पडिणिकखमिता, विणीयं रायहाणि जाव करेता कारवेत्ताय तमाणत्तिय पच्चप्पिणंति' प्रतिनिष्क्रम्य च विनीतां राजधानीं यावत्पदेनानन्तरोक्तसकलविशेषण-विशिष्टां कृत्वा कारयित्वा च तामाज्ञां भरतस्य प्रत्यर्पयन्ति । अथ भरतः किं कृत-वानित्याह—'तए णं से' इत्यादि । 'तए णं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवा-गच्छइ' ततः खलु स भरतो राजा यत्रैव मज्जनगृहम् स्नानगृहम् तत्रैवोपागच्छति 'उवाग-च्छित्तामज्जणघरं अणुपविसइ' उपागत्य च मज्जनगृहं-स्नानगृहम् अनुप्रविशति 'अणुपविसि-त्ता समुत्ताजालाकुलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि' अनुप्रविश्य समुक्तेन मुक्ताफलयुक्तेन जालेन गवाक्षेन आकुलो व्याप्तोऽभिरामश्च यः तस्मिन्, विचि-त्रमणिरत्नमयम् 'कुट्टिमतल' वद्धभूमिका यत्र स तथा तस्मिन्, अत एव रमणीये स्नान मण्डपे 'णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि, ण्हाणपीडंसि सुहणिसण्णे' नानाविधानां मणीनां

के अपने स्वामी की प्रदत्त आज्ञा को विनय पूर्वक स्वीकार किया (पडिसुणित्ता भरहस्स-अंतियाओ पडिणिकखमंति) आज्ञा को स्वीकार करके फिर वे भरत महाराज के पास से वापिस चले आये (पडिणिकखमिता विणीयं रायहाणि जाव करेत्ता कारवेत्ताय तमाणत्तिय पच्चप्पिणंति) वापिस आकर उन्होने विनीताराजधानी को जिस प्रकार से सुसज्जित आदि करने के लिए भरत राजा ने उन्हो से कहा था उसी प्रकार से पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट करके और उस भरताज्ञा को पूर्ण सधजाने की स्वर भरत महाराज के पहुँचादो (तए ण से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे, तेणेव उवागच्छइ) अपनी आज्ञा पूर्ण रूप से सम्पादित हो गई जान कर भरत महाराज स्नान शाला की ओर गये (उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ) वहा आकर वे उस स्नान गृह के भीतर प्रविष्ट हुए (अणुपविसित्ता समुत्ताजालाकुलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि) प्रविष्ट होकर वे मुक्ताजाल से व्याप्त गवाक्षों वाले तथा जिसका कुट्टिमतल अनेकमणिओ एवं रत्नों से खचित हो रहा है ऐसे स्नान मंडप में रहे हुए (ण्हाणपीडंसि णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि) स्नानपीठ पर जो कि अनेक

भिन्नक पुद्गलो भहुञ्च प्रमुदित थया तेओओे पूर्वोक्त रुपमा अन्ने डोथोनी अन्नेदि अनावीने तेने भस्सक पर भमणी तरक्षी डोपी तरक्ष ईरवीने पोताना स्वामीओ आपेदी आशा अविनय स्वीकारी (पडिसुणित्ता भरहस्स अंतियाओ पडिणिकखमंति) आशा स्वीकारीने पछी ते भरत मंडारोण पासेथी पाछा आओया (पडिणिकखमिता विणीयं रायो हाणि जाव करेत्ता कारवेत्ता य तमाणत्तिय पच्चप्पिणंति) पाछा आपीने तेमणे भरतशालाओ ने रीते आदेश आपेदी। ते सुअण विनीता राजधानीने सारी रीते सुअण करीने अने करवीने तेमण काम स पूणु थवानी अत्र भरत मंडारोण पासे पडोआडी (तए ण से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे, तेणेव उवागच्छइ) पोतानी आशाओ सम्भूणु रीते पावन थय गथुं छे, ओ सुअना साखणीने ते भरत मंडारोण स्नानशाणा तरक्ष गथा (उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ) त्या अने तेओ ते स्नानगृहमा प्रविष्ट थया (अणुपविसित्ता समुत्ताजाला-कुलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि) प्रविष्ट थयने ते मुक्ताजाल

रत्नानां च भक्तयो यथौचित्येन रचनास्ताभिः चित्रे विचित्रे, स्नानपीठे स्नानयोग्यासने सुखेन निषण्णः उपविष्टः 'सुहोदर्हि, गंधोदर्हि, पुष्पोदर्हि, शुद्धोदर्हि य' शुभोदकैः तीर्थोदकैः यद्वा सुखोदकैः नात्युष्णैः नतिशीतैः, गन्धोदकैः तत्र चन्दनादिमिश्रितजलः पुष्पोदकैः कुसुमवासितैः शुद्धोदकैः—स्वच्छपवित्रजलैश्च 'मज्जिए' इत्यग्रेण नह सम्बन्धः तथा 'पुण्ण कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए तत्थ कोउयसएहि, बहुविहेहि' पूर्ण-कल्याणकारिप्रवरमज्जनविधिना मज्जनविधिपूर्वकं मज्जितः स्नपितोऽन्तःपुरवृद्धामिरिनि बोध्यम् । कथम् इत्याह—(तत्थ) इत्यादि । (तत्थ कोउयसएहि बहुविहेहि) तत्र स्नानावसरे कौतुकानां—रक्षादिनां शतैः, यद्वा कौतुहलिकजनैः स्वसेवा सम्यक् प्रयोगार्थं दस्यमानैः कौतुकशतैः आश्चर्यजनककथानकरूप कुतूहलैः, बहुविधैः,—अनेकप्रकारैः सह स्नपितः अथ स्नानानन्तरविधिमाह—(कल्लाणग) इत्यादि । (कल्लाणग पवर मज्जणावसाणे) कल्याणकप्रवरमज्जनावसाने—स्नानानन्तरम् (पम्हलसुकुमारगंधकासाइअ ल्हिअगे) पक्ष्मलसुकुमारगन्धकापायिकीरुक्षिताङ्गः, तत्र पक्ष्मलया—पक्ष्मलया अतएव गुकुपारया सुकोमलया गन्धप्रधानया कापायिकया कापायेण पीतरक्तवर्णाश्रय रजनीय वस्तुना-रक्ता कापायिकी तथा कपायरक्तया शाटिकयेत्यर्थः रुक्षितं रुक्षीकृतं प्रोच्छ्रितमि-

प्रकार की मणि से और रत्नों द्वारा कृत चित्रों से विचित्र है (सुहृन्निषण्णे) आनन्द पूर्वक विराजमान हो गये (सुहोदर्हि गंधोदर्हि पुष्पोदर्हि शुद्धोदर्हि अ पुण्णकल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए)वहा पर उन्हे शुभोदकों से तीर्थोदकोंसे अथवा न अतिगरम और न अति ठंडा ऐसे पानी से गन्धोदकों से चन्दनादि मिश्रित जल से पुष्पोदकों से फूल सुवासितपानी से और शुद्धोदकों से स्वच्छ पवित्र जल से पूर्ण कल्याणकारी प्रवरमज्जन विधिपूर्वक अन्त पुर की वृद्धास्त्रियो ने स्नान कराया (तत्थ कोउयसएहि बहुविहेहि कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हल सुकुमारगंधकासाइअ ल्हिअगे) वहां स्नान के अवसर मे कौतुहलिक जनोने अनेक प्रकार के कौतुक दिखाये जिन मे अपने द्वारा की गई सेवा के सम्यक् प्रयोग दिखाये गये थे जब कल्याणकारक सुन्दर—श्रेष्ठ—स्नान क्रिया समाप्त हो चुकी तब उसके बाद उनका शरीर पक्ष्मल रूपेँ वाली सुकुमार सुगंधित तौलिये से पोछा गया और फिर (मरस सुरहेगोसीस-

थी आस गवाक्षोवाणा तेभञ्ज अनेक मण्डियो अने रत्नोथी आस्यत कुट्टिभतववाणा म उपमां भूकेवा (पहाणपीठसि णाणामणिभत्तिच्चिसंसि) स्नान पीठ पर के अने अनेक प्रकारना मण्डियो अने रत्नो द्वारा कृतचित्रोथी विचित्र छे (सुहृन्निषण्णे) आनन्द पूर्वक विराजमान अर्थ गया (सुहोदर्हि गंधोदर्हि पुष्पोदर्हि शुद्धोदर्हि अ पुण्णकल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए) तथा तेमण्णे शुभोदकथी—तीर्थोदकथी अथवा वधारे न विष्णु अने न वधारे अति शीत ज्येवा शीतल पाणीथी गन्धोदकथी चन्दनादि मिश्रित पाणीथी, पुष्पोदकथी पुष्पसुवासित पाणीथी अने शुद्धोदकथी स्वच्छ पवित्र जलथी पूषु कल्याणकारी प्रवर मज्जनविधिपूर्वक अन्त-पुरनी वृद्धास्त्रीओअे स्नान करावु (तत्थ कोउयसएहि बहुविहेहि कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमारगंधकासाइअ ल्हिअगे) तथा स्नान करवाना अवसरमा कौतुहलिक

त्यर्थः अङ्गं यस्य स तथा (सरससुरद्विगोमीसचंदणाणुलित्तगत्ते) सरससुरभिगोशीर्ष-
चन्दानुलिप्तगात्रः, रसेन सहिताः सरसास्तैः सुरभिगोशीर्षचन्दनैरनुलितं गात्रं यस्य
स तथा, (अहयसुमहग्घदुस्सरयणसुसंबुडे) अद्वतं मलमूपिकादिभिरनुपद्रुतम् सुमहार्घं बहु-
मूल्यकं यद्दुष्यरत्नं प्रधानवस्त्रम् तत्सुसंबृतं मुष्टुपरिहितं येन स तथा, अत्र च वस्त्रसूत्रं
पूर्वं योजनीयं चन्दनसूत्रं पश्चात्, नहि स्नानोत्थित एत्र चन्दनेन वपुर्विलिम्पतीति विधि-
क्रमः (सुइमाला वण्णगविलेवणे) शुचिमालावर्णं विलेपनः शुचि पवित्रं माला पुष्प
माला वर्णकविलेपनं मण्डनकारि कुङ्कुमादि विलेपनं एतद् द्रव्यं यस्य स तथा, पूर्व
सूत्रे वपुः सौगन्ध्यार्थमेव विलेपनमुक्तम् अत्र तु वपुर्मण्डनायेति विशेषः (अविद्धमणि-
सुवण्णे) आविद्धानि परिहितानि मणिसुवर्णानि येन स तथा, अनेन रजताद्यलङ्कारनिषेधः
सूचितः, मणिसुवर्णालङ्कारानेव विशेषत आह-(कप्पियहारद्वहारतिसरिय पालंबपलंबमाण
कडिसुत्तमुकय सोहे) कल्पितहारार्द्धं द्वारत्रिसरिकप्रालम्बमान कटिसूत्रसुकृतशोभः, तत्र-
कल्पितो यथास्थानं विन्यस्तो हारः-अष्टादश सरिकः, अर्द्धहारः-नवसरिकः त्रिसरिकश्च

चदणाणुलित्तगत्ते) उनके शरीर पर सरस सुरभि गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया (अहयसुमहग्घ
दुस्सरयणसुसंबुडे) फिर मल मूपिका आदि से अनुद्रुत एवं वेशकी कीमती द्रव्य रत्न-प्रधान-
वस्त्र उसे पहिराया गया (सुइमाला वण्णगविलेवणे) अच्छी पवित्र मालायों से और मण्डन कारी
कुङ्कुम आदि विलेपनों से वह युक्त किया गया यहाँ वस्त्र सूत्र की योजना पहिले करना चाहिये
और चन्दन सूत्र की पश्चात् -क्योंकि स्नान से उठाहुआ व्यक्ति उठने ही चन्दन से लेप करता
है ऐसा विधिक्रम नहीं है ।

तथा पूर्वसूत्र में शरीर को सुगंधित करने के लिये ही विलेपन कहा गया है और यहाँ उसे
माण्डित करने के लिये विलेपन कहा गया है (आविद्धमणिसुवण्णे) मणि और सुवर्ण के बने
हुए आभूषण उसे पहिराये गये (कप्पियहारद्वहारतिसरियपालम्बमाणकडिसुत्तमुकयसोहे)
इनमें हार अट्टारह लरका हार नौ लरका अर्द्धहार, और त्रिसरिक-हार ये सब यथास्थान

अनेको अनेक प्रकारना डोटुके भताओया, जेमां पोताना वडे करवाभा आवेकी सेवाओना
सन्धक प्रयोगो भताववामां आओया, ज्यारे कथ्याणुकारक सुन्दर श्रेष्ठ-स्नानक्रिया पूरी थर्थ
थूकी त्यारे तेमने देह पक्षममल-इवावाणा-सुकुमार सुगंधित दुवालथी छुषवामां आओये
अने त्यार आह (सरससुरद्विगोमीस चंदणाणुलित्तगत्ते) तेमना देह पर सरस सुरभि
गोशीर्ष चन्दनने लेप करवामां आओये (अहयसुमहग्घदुस्सरयणसुसंबुडे) त्यार आह मल
मूपिका वगेरथी अनुपद्रुत तेमज्ज अहुमूद्य दूष्यरत्न-प्रधान-वस्त्रो तेने पहरेओया, (सुइमा
लावण्णगविलेवणे) श्रेष्ठ पवित्र मालाओथी अने मण्डनकारी कुङ्कुम आदि विलेपनेथी ते
युक्त करवामां आओया अही वस्त्रसूत्रनी योजना पहिले करवी जेथजे अने अदन सूत्रनी
तत्पश्चात् केमके स्नान पछी तरत ज व्यक्त चन्दनने लेप करे छे, जेवो विधिक्रम नथी
तेमज्ज पूर्वसूत्रमा शरीरने सुगंधित करवा माटे ज विलेपन कडेवाभा आवेल छे अने अही
तेने मंडित करवा माटे विलेपन कडेवाभा आवेल छे. (आविद्धमणिसुवण्णे) मणु अने

हारएव येन स कल्पितहाराद्धहारत्रिमरिकः, प्रलम्बमानः प्रालम्बो-श्रुम्बनक यस्य स प्राल-
म्बप्रलम्बमानः लम्बायमानश्रुम्बनकयुक्तः तथा (पालवपलंबमाण) प्रालम्बप्रलम्बमान इत्यत्र
पदव्यत्ययः आप्तत्वात् तथा-कटिसूत्रेण-कट्या भरणेन सुप्टुक्रता शोभा यस्य स कटि-
सूत्रसुकृतशोभः, ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः, अथवा कल्पितहारादिभिः सुकृता शोभा
यस्य स तथा (पिण्डगेविज्जग अंगुलिज्जगल्लियक्याभरणे) पिण्डानि-वद्धानि
त्रैवेयकाणि कण्ठाभरणानि अङ्गुलीयकानि अङ्गुलीयाभरणानि येन स पिण्डत्रैवेयका-
ङ्गुलीयकः, तथा ललिते सुकुमारे अङ्गके मुद्गादौ ललितानि शोभावन्ति कचानां-केशा-
नाम् आभरणानि-पुष्पादीनि यस्य स ललिनाङ्गक ललितकचाभरणः, ततः कर्मधारयः,
अत्रोक्तद्वयविशेषणेन आभरणाङ्कारकेशालङ्कारौ उक्तौ । अथ सिद्धावलोकन्यायेन पुनरपि आभ-
रणालङ्कार वर्णयन्नाह - (णाणामणिकडगतुडिय थंभियमुए) नानामणिकटकट्टिकस्तम्भित-
श्रुजः नानामणीनां कटकट्टिकैः-हस्तवाहाभरणविशेषैर्वहुत्वात् स्तम्भिता विव स्तम्भितौ
श्रुजौ यस्य स तथा (अहियसस्सिरीए) अधिकसश्रीकः, अत्यन्तशोभासहितः (कुण्डल-
उज्जोइआणणे) कुण्डलोद्योतिताननः कुण्डलाभ्याम् उद्योतित-प्रकाशितमाननं मुखं
यस्य स तथा (मउडदित्तिसिरए) मुकुटदीप्तशिरस्कः मुकुटेन दीप्तं प्रकाशितं शिरो यस्य
स तथा (हारोत्थय सुकयवच्छे) हारावस्तुतसुकृतवक्षस्कः हारेण अवस्तुतम् आच्छादितं

उसे पहिराये गये लटकताहुआं श्रुम्बनक उसे पहिरायागया कटिमूत्र उसे पहिराय गया इस
से उसकी शोभा में चार चांद लग गये (पिण्डगेविज्जग अंगुलिज्जग ललिअगय ललि-
अक्याभरणे णाणामणि कडगतुडिअथंभियमुए) त्रैवेयक-कण्ठाभरण-पहिराये गये, अंगु-
लियों में अङ्गुलीयक अंगुठियां पहिरायी गईं तथा सुकुमार मस्तकादि के उपर शोभावाले
केशों के आभरण रूपपुष्पादिक निहितरूपे गये (णाणामणिकडग तुडिय थंभियमुए)
नाना मणियों के बने हुए कटक और त्रुटित उसकी मुजाओं में पहिराये गये (अहिय-
सस्सिरीए) इस तरह की सजावट से उनकी शोभा और अधिक हो गई (कुण्डल उज्जोइ-
आणणे) उसका मुखमण्डल कुण्डलों की मनोहर कान्ति से प्रकाशित होगया (मउड-
दित्तिसिरीए) मुकुट को झल झलाती दीप्ति से उनका मस्तक चमकने लगा हारोत्थयसु-

सुवर्णं निर्मित आभूषणो तेने पडेरान्था (कपिअहारद्धहारतिसरिअपालवमाणकवि-
सुत्तसुकय सोहे) आभूषणोभा डार-अडार सेरने। डार नव सेरने। अद्धं डार अने त्रिसरिअ
डार अे अथा तेने यथा स्थान पडेरवनाभा आन्था तेथी तेनी शोभा चार गण्णी वधी
गर्ध (पिण्डगेविज्जगअंगुलिज्जगल्लियअगय ललिअक्याभरणे णाणामणिकडगतुडिअथंभि-
अमुए) त्रैवेयक-क डालरणे। पडेरवनाभा आन्था, आंगणीअोभा अंगुलीयक मुद्रिकाअो पडेरवी
तेभञ्ज सुकुमार मस्तकादि उपर शोभा स यन्नवाणोना आभारण रूप पुष्पादिके धारण्य
डरान्था (णाणामणि कडग तुडियथंभियमुए) अनेक भण्णियोथी निर्मित कटक अने त्रुटित
तेनी लुण्णोअोभा पडेरान्था (अहियसस्सिरीए) आ प्रभाणे सल्लवटथो तेनी शोभा धण्णी
वधी गर्ध (कुण्डलउज्जोइआणणे) तेनु सुअभ डण्ण डुडोनी मनोडर कान्तिथी प्रकाशित थथ

तेनैव हेतुना दर्शकजनानां सुकृतम् आनन्दप्रदं वक्षो यस्य स तथा । (पालंबपलंब
माणसुक्यपडउत्तरिञ्जे) प्रलम्बप्रलम्बमानसुकृतपटोत्तरीय प्रलम्बेन दीर्घेण प्रलम्बमाने-
न-दोलायमानेन सुकृतेन सुष्ठु निर्मितेन पटेन-वस्त्रेण उत्तरीयम् उत्तरासन्नो यस्य स
तथा (मुहियापिगलगुलीए) मुद्रिकापिङ्गलाङ्गुलिकः मुद्रिकाभिः अङ्गुलीयकैः पिङ्गलाः
पिङ्गलवर्णा अङ्गुल्यो यस्य स तथा णाणामणि कणगविमल महरिह णिउणोयविय
मिसि मिसितविरइय सुसिलिद्विसिद्वलद्वमठियपसत्थआविद्धवीरवलए) नानामणि कन
कविमलमहार्थं निपुण परिकर्मित दीप्यमान विरचित सुश्लिष्टविशिष्ट लष्टसंस्थित
प्रशस्ताविद्ध वीरवल्यः । तत्र नानामणि जटितसुवर्णम् अतएव विमलं स्वच्छं महार्थं
बहुसुल्यकं निपुणन शिल्पिना (ओयविय) ति, परिकर्मितम् (मिसि मिसित) त्ति, दीप्य-
मानं विरचितं-निर्मितं सुश्लिष्टं सुसन्धिविशिष्टम् लष्टं मनोहरं संस्थितं संस्थानं
यस्य तत् तथा, पश्चात्पूर्वपदैः कर्मधारयः, एवं विधं प्रशस्तम् आविद्धम् पग्हित वीर-
वल्यं येन स तथा तदन्योऽपि यः कश्चित् वीरव्रतधारी भवेत् तदा स मां विजित्य
मोचयत्येतद्वलयमिति स्पर्द्धया यत् परिधीयते तद्वीरवलयमित्युच्यते (किं बहुणा) किं

कयवच्छे हार से आच्छादित हुआ उनका वक्षस्थल दर्शकजनों को आनन्दप्रद बन गया
(पालंब पलंबमाणसुक्यपडउत्तरिञ्जे) झूलते हुए लम्बे सुकृत पट से उसका उत्तरासन्नकिया
गया अर्थात् बहुत ही सुन्दर लम्बे लटकते हुए वस्त्रका दुपटा उनके कंधे पर सजाया गया
था जो कि हवा के मन्द २ झोके से हिल रहा था (मुहियापिगलगुलीए) जो मुद्रिकाएं
-अंगुठियां उसकी अंगुलियों में पहिराई गई थीं उनसे उसको वे सब अंगुलियां पिङ्गलवर्णवाली
प्रतीत होने लगी णाणामणि कणगविमलमहरिहणिउणोअविअमिसिमिसित विरइ अ सुसिलिद्वि
विसिद्वि लद्व सठिअ पसत्थ आविद्धवीरवलए) अनेक मणियों से खचित सुवर्ण का वीरवलय जो
किस्वच्छ और वेश कीमती था, निपुण शिल्पी द्वारा जिसका निर्माण हुआ था, सन्धि जिसकी
बड़ी सुन्दर थी, देखने में जो बड़ा सुहावना था, उसने अपने हाथ में पहिरा हुआ था जो
कोई वीरव्रत धारी योद्धा मुझे परास्त करके मेरे इस वीर वलय को मुझ से छुड़ा लेगा वही इस

अथु' (मउडदित्तिसरीए) भुशुटनी अणउणती द्वीप्पिथी तेमनु भस्तक अमकवा दाअथु (हारो
त्थय सुकयवच्छे) ङारथी आच्छादित थयेदु तेनु' वक्षस्थल दर्शके भाटे आनन्द प्रद भनी
अथु (पालंब प णसुक्यपडउत्तरिञ्जे) अुवता दाभा सुकृत पटथी तेने। उत्तरासन्नं
अनावीने पडेशववाभां आअये अेटले के अहुअ सुहर दाभा लटकता वञ्चोने। दुपट्टी तेना
अला पर भूकवाभा आअये। ते दुपट्टी पवनना भद भद ओकाअेथी ङादी रदो
दवा (मुहियापिगलगुलीए) ने मुद्रिकाअे। अ गूडीअे। तेनी आगणीअे। पडेशववाभा
आवी इती तथी तेनी अधी आगणीअे। पीतवसुंवाणी देआती इती (णाणामणिकणग
विमलमहरिहणिउणाअविअमिसिमिसित विरइअसुसिलिद्वि विसिद्वि लद्व संठिअ पसत्थ
आविद्धवीरवलए) अनेक भाअेअे। वडे अथित सुवसुंअु स्वअअ अने अहुभूद्वय
के अेनु' निर्भाअु उत्तम शिदपीअेअे अथु' इतु', नेनी सधि अत्थंत सुंहर -

बहुना वर्णितेन (कप्परुक्खए चैव अलंक्रियविभूसिए) कल्पवृक्ष एव अलङ्कृतो विभूषितश्च, तत्र कल्पवृक्ष पत्रादिभिरलङ्कृतः फल पुष्पादिभिश्च विभूषितः राजा तु मुकुटादिभिरलङ्कृतः वस्त्राभरणादिभिश्च भूषित इति (णरिंदे) नरेन्द्रः (मकोरट जाव चउचामर वालवीइअंगे) सकोरण्ट यावत् चतुश्चामर वालवीजिताङ्गः अत्र यावन्करणात् (मकोरंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण) इति ग्राह्यम्. सकोरण्टानि-कोरण्टाभिधान कुसुमरतवकवन्ति, कोरण्टपुष्पाणि हि पीतवर्णानि मान्दान्ते गोभार्थं दीयन्ते, मालायै हितानि माल्यानि-पुष्पाणि तेषां दामानि माला यत्र तत्तथा, एवं विधेन छत्रेण ध्रियमाणेन, विराजमान इति चतुर्णाम् अग्रतः पृष्ठतः पार्श्वयोश्च वीज्यमानत्वात् चतुः सङ्ख्यकानां चामराणां बालैर्वीजितम् स्पर्शितमङ्ग यस्य स तथा शिरसि ध्रियमाणेन कोरण्ट सपीतकुसुमस्तवकयुक्तपुष्पमालासुसज्जितछत्रेण विराजमानः चतुसंख्याक चामर वालवीजितशरीरश्चेत्यर्थः (मंगल जय जय सद्दकयालोए) मङ्गल जय जय शब्दकृतालोकः मङ्गलभूतो जयजयशब्दो जनैः कृतः आलोके दर्शने संसार में विशिष्ट वीर माना जायगा इस प्रकार को स्पर्शा से जो वज्र धारण किया जाता है

वही वीरवलय कहा गया है। (किंवहुणा) और अधिक क्या कहा जावे (कप्परुक्खएचैव अलंक्रियविभूसिएणरिंदे सकोरंटजाव चउचामर वालवीइअंगे) इस तरह वह नरेन्द्र मुकुट आदि को द्वारा अलंकृत हुआ और वस्त्राभरणादिकों द्वारा भूषित हुआ वस्त्रादिकों द्वारा अलंकृत हुए और फल पुष्पादि को द्वारा विभूषित हुए कल्पवृक्ष के जैसा प्रतीत होने लगा उम समय उमके मस्तक ऊपर यावत्पद द्वारा गृहीतपदों के अनुसार कोरंट पुष्पों स्तवकों की माला से युक्त छत्र धारियों ने ताने हुए थे। चामर ढोरनेवाले उनके पीछे पीछे और सम्मुख खड़े होकर एवं दाईं बाईं ओर खड़े होकर चामर ढोर रहे थे। इसलिये वालों से उसका शरीर स्पर्शित हो रहा था (मंगल जय जय सद्दकयालोए) उनके दिसते ही लोग जय हो जय हो इस प्रकार के

जेवामा जे अत्यत सुंदर दागतु इत्तु, तेष्णि प्यातना हाथमा पडेथुं इत्तुं वीरमतधानी थोद्धो मने पराञ्जित करीने मारा आ वीरवलयने मारी पासेथी लूटवी देशे, तेज थोद्धा आ संसारमां विशिष्ट वीर तरीके प्रसिद्ध थथे आ नतनी स्पर्धाथी जे वलय धारणु करवामां आवे छे. तेने ज वीरवलय कडेवामा आवे छे (किं बहुणा) अने पधारें शुं कहीअे. (कप्परुक्खए चैव अलंक्रियविभूसियणरिंदे सकोरंट जाव चउचामर वालवीइअंगे) आ प्रभाषे ते नरेन्द्र सुशुट वगेरेथी अलङ्कृत थथे. अने वस्त्राभरणादि-केथी भूषित थथे ते वस्त्रादिकेथी अलङ्कृत अने इणपुष्पादिकेथी विभूषित थथेद कल्पवृक्षनी जेम शोभवा दाअेथे ते समथे तेना मस्तक उपर यावत् पद द्वारा गृहीत पदो सुलभ केरट पुष्पेना स्तवकेनी मालाथी युक्त छत्रो छत्रधारीअेअे तागेदा इना आभर ढेणनाअेअे तेनी पाछण अने सम्मुख जेमा थथेने तेमज डाणी अने जमणी भाअु जेमा थथेने आभर ढेणता इता. अेथी आभरेनावाणेथी नेने देह स्पर्शित थथे रक्षी इतो (मंगलजय जयसद्दकयालोए) तेने जेता ज बोडो 'जथ थाअो, जथ थाअो'

सम्मुखे सति यस्य स तथा (अणेगगणनायग दंडणायग जाव दूय सन्धिवाल सद्धि संपरिवुडे) अनेक गणनायकदण्डनायक यावत् दूत सन्धिपालै सार्द्ध संपरिवृत्तः, अनेके गणनायकाः—मल्लादिगणमुख्याः, दण्डनायकाः—तन्त्रपालाः (कोष्ठपाल) यावत् (ईसर तलवर माडंबियकोडु वियमंतिमहामति गणग दोवारिय अमच्च चेडपीढमहणगरणिगम सेट्टि सेणावड सत्थावाह) इति ग्राह्यम्, तत्र ईश्वराः—युवराजाः अणिमाद्यैश्वर्ययुक्ता वा, तलवराः—परितुष्टनृपदत्तपट्टबन्धविभूषिता राजसदृशाः, माडम्बिकाः—छिन्नमडग्वाधिपाः, कौटुम्बिकाः—कुटुम्बमुख्याः, मन्त्रिणः महामन्त्रिणः, गणकाः—गणितज्ञा भण्डारिका वा, दौवारिकाः—प्रतीहाराः, अमात्याः—राज्यकार्याधिष्ठायका, चेटाः पादमूलिका दासा वा, पीठमर्दाः—आस्थाने आसन्नामन्न सेवकाः समवयस्का इत्यर्थः, नगरम् तात्स्थ्यात्तद् व्यपदेशेन नगरनिवासिप्रभृतय, निगमाः वणिजः श्रेष्ठिनः—श्रीदेवताध्यासित सौवर्णपट्टभूषितोत्तमाङ्गाः, अथवा नगराणां निगमानां च वणिग्वासानां श्रेष्ठिनो महत्तराः, सेनापतयः—चतुरङ्गसैन्यनायकाः, सार्थवाहाः—

माङ्गलेक शब्दों का उच्चारण करने लगने. (अणेग गणनायगदंड ण यग जाव दूयसधि-वाल सद्धि संपरिवुडे) अनेक गणनायकों से अनेकदण्ड नायको से, यावत्—“ईसर तलवर माडंबियकोडुंबिय मति महामती गणदोवारिय अमच्च चेड पीढमहणगरनिगमसेट्टि सेणावड सत्थावाह” अनेक ईश्वरों से,—युवराजो से, अथवा अणिमादिरूप ऐश्वर्य से युक्तघनी पुरुषों से अनेक तलवरो से—परितुष्ट हुए नृप के द्वारा प्रदत्त पट्टबन्ध से विभूषित हुए राजा जैसे पुरुषों से, अनेक माडम्बिकों से—छिन्न मडग्वाधिपतियो से, अनेक कुटुम्ब के मुखियों से, अनेक मंत्रियों से अनेक महामंत्रियो से, अनेक गनकों से गणितज्ञों से, अथवा भण्डारियों अनेक द्वारपालो से अनेक अमार्यों से, राजकर्य के अधिष्ठायकों अनेक चेटों से नोहर चाकरों से अनेक पीठमर्दों से—समवयस्क अङ्गक्षकों से, अनेक नगरनिवासियों से, अनेक निामों से वणिजनों से अनेक श्रेष्ठियो से,—श्री देवता से युक्त पट्टबन्ध जिनके मस्तक पर सुशोभित है ऐसे नगर

आ प्रमाणे भागद्विः शब्देना उच्यते। करत्वा दाग्या (अणेगगणनायगदंडणायग जाव दूयसन्धिवालसद्धि संपरिवुडे) अनेक गणनायकोथी, अनेक दंडनायकोथी यावत् (ईसर तलवर माडुंबिय कोडुंबियमति महामति गणदोवारिय अमच्च चेडपीढमहणगरणिगमसेट्टि सेणावड सत्थावाह) अनेक ईश्वरोथी, युवराजोथी अथवा अणिमादि ३५ ऐश्वरोथी युक्त घनी पुरुषोथी, अनेक तलवरोथी परितुष्ट थयेला नृप वडे प्रदत्त पट्टबन्धोथी विभूषित थयेला रत्न जेवा पुरुषोथी, अनेक माडम्बिकोथी—छिन्न मडग्वाधिपतियोथी, अनेक कुटुम्बना मुखियोथी, अनेक मंत्रियोथी अनेक महामन्त्रीयोथी, अनेक गणकोथी, गणितज्ञोथी अथवा भण्डारीयोथी, अनेक द्वारपालोथी, अनेक अमार्योथी राज्यकार्यना अधिष्ठायकोथी, अनेक चेटोथी नोहरोथी अनेक पीठमर्दोथी समवयस्क अंगरक्षकोथी अनेक नगरनिवासियोथी, अनेक निगमोथी वणिजोथी, अनेक श्रेष्ठियोथी श्रीदेवताथी युक्त पट्टबन्धोथी अथवा मस्तक पर सुशोभित छे जेवा नगर श्रेष्ठियोथी अनेक सेनापतियोथी चतुरंग

सार्धनायकाः, दूताः—देशान्तरवासि राजादेशनिवेदकाः, सन्धिपालाः—राज्यमन्धिररक्षकाः
 एतेषां द्वन्द्वः तैः सार्द्धं सपरिवृत्तः समन्तात् परिकरितः नृपतिः मञ्जनगृहात् परि-
 निष्क्रामतीति सम्बन्धः किं भूतः (धवलमहामेह णिगण इव जाव ससिन्धु पिय-
 दसणे) धवलमहामेष निर्गत इव यावत् शशिरिवप्रियदर्शनः तत्र धवलमहामेषः—स्वच्छ-
 शरन्मेषः तस्मान्निर्गतः शशीव चन्द्र इव प्रियदर्शनः, अत्र यावत्पदात् (गहगणदि-
 प्पन्तरिक्खतारागणानां मञ्जे) ग्रहगणदीप्यमान ऋक्षतारागणानां मध्ये तथा च यथा
 चन्द्रः शरदभ्रपटलनिर्गत इव ग्रहगणानां दीप्यमानऋक्षाणां शोभमान नक्षत्राणां,
 तारागणानां च मध्ये वर्त्तमान इव प्रियदर्शनो भवति तथा भरतोऽपि सुधा व्रज्जी-
 कृत मञ्जनगृहान्निर्गतो ऽनेकगणनायकादि परिवार मध्ये वर्त्तमानो प्रियदर्शनोऽभवे-
 दितिभावः, पुनः क्रीदशो नृपतिः प्रतिनिष्क्रामतीत्याह— (धूपपुष्प गन्धमल्लहृत्यग-
 ण) धूप पुष्पगन्धमाल्यहस्तगतः, तत्र धूपपुष्पगन्धमाल्यानि सुगन्धद्रव्योपरकरणानि
 हस्तगतानि यस्य स तथा तत्र धूपो दशाङ्गादिः, पुष्पाणि प्रफुल्ल कुसुमानि गन्धाः

सेठों से, अनेक सेनापतियों से चतुरङ्गसैन्य के नायकों से, अनेक मार्थवाहों से सार्ध के नायक
 अनेक दूतों से—देशान्तर वामी राजादेशनिवेदकों से, एवं अनेक सन्धिपालों से- राज्यसन्धि
 रक्षकों से, विराहुआ वह नृपति मञ्जनगृह से बाहर निकला (धवलमहामेह णिगण इव जाव
 ससिन्धु पियदसणे) उम समय वह देखने में ऐसा प्रिय प्रतीत होता था कि जैसा धवल
 महामेष से निर्गत चन्द्र देखने में प्रिय प्रतीत होता है. यहा यावत्पद से "गहगणदिप्पत
 रिक्खतारागणानां मञ्जे" इम पाठ का ग्रहण हुआ है. इमका भाव ऐसा है कि निसप्रकार
 शरदभ्रपटल के भीतर से निकलता हुआ चन्द्रमण्डल देदिप्यमान नक्षत्रों एवं तारागणों के
 मध्य में वर्त्तमान होता हुआ प्रियदर्शनवाला होता है उसी तरह भरत राजा भी सुधाघरलोक
 मञ्जनगृह से निकलने पर अनेक गणनायकादि परिवार जनों के बीच में वर्त्तमान हुए प्रियदर्श-
 नवाले हुए (धूपपुष्पगन्धमल्लहृत्यगण. मञ्जनघराओ पाडिणिक्खमह) मञ्जनगृह से बाहर
 निकलते समय उमके हाथ में धूप दशाङ्गादि धूप, प्रफुल्लित कुसुम गन्ध द्रव्य और माल्य—

सैन्यना नायकोथी, अनेक सार्ध वाडोथी सार्धना नायकोथी, अनेक दूतोथी देशान्तरवासी
 राजदेश निवेदकोथी तेमञ् अनेक सन्धिपालोथी राज्यसन्धिरक्षकोथी वीटणाथेदो ते नृपति
 मञ्जन गृह (सनानगृह)थी अकार आओये। (धवल महामेहणिगण इव जाव ससिन्धु पिय
 दसणे) ते समये ते जेवामा जेवो प्रिय लागते हने। के जेवो धवल महामेषथी निर्गत
 चन्द्र जेवामा प्रिय लागे छे अही यावत् पदथी (गहगणदिप्पतरिक्खतारागणानां मञ्जे)
 आ पाठ अहंथ थये छे आने भाव आ प्रभाषे छे के जेम शरदभ्रपटलमाथी निसन
 चन्द्रमण्डल देदिप्यमान नक्षत्रो तेमञ् तारागणोनी वन्थे सुशोभित प्रियदर्शनीय छे थ छे,
 तेमञ् भरत राज पञ्च सुधा धवलीकृत मञ्जन गृहमाथी अकार नीकणीने अनेक गणनायकादि
 परिवारनी दोडोनी वन्थे सुशोभित थते। प्रियदर्शी थये। (धूप पुष्प गन्धमल्लहृत्यगण
 मञ्जनघराओ पडिणिक्खमह) मञ्जन गृहमाथी नीकणीनी वन्थे तेना डोथोमा धूप दशाङ्गादि
 धूप प्रफुल्लित कुसुम, गन्ध द्रव्य अने माल्य अथित पुष्यो जे अथा सुगन्धित पदार्थो हना

गन्धद्रव्याणि माल्यानि ग्रथितपुष्पाणि एताणि हस्ते गतानि -प्राप्तानि यस्य स तथा (मञ्जनघराशो पडिणिकखमिदं) मञ्जनगृहात्प्रतिनिष्क्रामति (पडिणिकखमिन्ना) प्रति-
निष्क्रम्य (जेणेव आउहघ/सालाजेणेव चक्ररयणे तेणामेव पहारेत्थ गमणाए) यत्रैव
आयुधगृहशाला यत्रैव च चक्ररत्न तत्रैव प्रधागितवान गमनाय-गन्तुं कामः प्रावर्तत
इत्यर्थः ॥ सू० ३ ॥

अथ भगवत्तगमनानन्तर यथा तदनुचराश्चक्रुस्तथाऽऽह 'तए णं' इत्यादि ।

मूलम्-तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बहवे ईसरपभिइओ अप्पे-
गइया पउमहत्थगया अप्पेगइया उप्पलहत्थगया जाव अप्पेगइया सय
सहस्सपत्तहत्थगया भरहं रायाणं पिट्ठओ २ अणुगच्छंति । तए णं तस्स
भरहस्स रण्णो बहूइओ-‘खुज्जाचिलाइवामणिवडभीओ बव्वरी वउसि-
याओ । जोणियपल्हवियाओ इसिणिय थारुकणियाओ ॥१॥ लासिय
लउसिय दमिलीसिंहलितह आस्वी पुलिदीय । पक्कणि बहलो मुरंडी
सव्वरीओ पारसीओय ॥ २ ॥ अप्पेगइया वंदणकलसहत्थगयाओ चंगेरी
पुप्फ पडलहत्थगयाओ भिगार आदंसथालपातिसुपइट्टगवायकग्ग करंड-
पुप्फचंगेरीमल्लवण्ण चुण्णगंधहत्थगयाओ वत्थ आभरण लोमहत्थय
चंगेरीपुप्फपडलहत्थगयाओ जाव लोमहत्थगयाओ अप्पेगइयाओ सीहा-
सणहत्थगयाओ छत्त चामरहत्थगयाओ तिल्लसमुग्गयहत्थगयाओ—
-तेल्ले कौट्टसमुग्गे पत्तेचेए अंतगरमेला य ।

हरियाले हिंगुलए मणोसिला सासव समुग्गे ॥ १ ॥

अप्पेगइयाओ तालियंटहत्थगयाओ अप्पेगइयाओ धूवकडुच्छुय
हत्थगयाओ भरहं रायाणं पिट्ठओ २ अणुगच्छंति तए णं से भरहे राया
सव्विड्डीए सव्वबलेण सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं मव्वविभूसाए सव्व-

ग्रथित पुष्प ये सब सुगन्धिन सन्ना था (पडिनिक्खमिन्ना) मञ्जनगृह से निकलकर वे
(जेणेव आउहघरसाला) जहा उनको अ युधयशाला थी (जेणेव चक्ररयणे) और उपमे म
जहा पर चक्ररत्न था (तेण मेव पहारेत्थ गमणाए) उसी ओर वे चलने लगे । ३ ।

(प डिणिकखमिन्ना) मञ्जनगृहमाथी नोक्खीने ते (जेणेव आउहघरसाला) तथा तेभन्नी
आयुधशाला इती, (जेणेव चक्ररयणे) अने तेभा पद्य तथा चक्ररत्न इत्तु (तेणामेव पहारेत्थ
गमणाए) ते तरङ्ग तेओ आसिया लाया ॥ ३ ॥

विभूर्इए सव्वत्थपुप्फपल्लालंकोरविभूमाए सव्वतुडिय मद्दमणियाएणं
महया इड्डीए जाव महया वरतुडि अजमगपवाइएणं संख पणवपद्रह भेरि-
द्वल्लरिखरमुहिमुजमुइंगदुंहुहि निग्घोसणाइएणं जेणेव आउहघरसाला
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आल्लोए चक्करयणस्स पणामं करेइ
करेत्ता जेणेव चक्करयणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता लोमहत्थयं
परामुसइ परामुसित्ता चक्करयणं पमज्जइ पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए
अब्भुक्खेइ अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसत्तदणेणं अणुलिपइ अणुलि-
पित्ता अग्गहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहि य अच्चिणइ पुप्फारुहणं मल्ल-
गंधवण च्चुणवत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ करित्ता अच्छेहे सण्हेहिं
सेएहिं रयणामएहिं अच्छरसातंडुलेहे चक्करयणस्स पुरओ अट्टमंगलए
आलिहइ तं जहा-सोत्थियसिग्विच्छ णंदियावत्त वद्धमाणग भद्दासण
मच्छकलसदंप्पण अट्टमंगलए आलिहित्ता काऊगं करेइ उवयारंति किंते ?
पाद्रलमल्लियचंपग असोगपुण्णोगचूय मंजरिणवमालियवकुलतिलगकणवी
र न्द कोज्जय कोरंठय पत्तदमणयवग्गसुरहि सुगंधगंधियस्स कयग्गहगहि-
यकरयलपबमट्टविप्पमुक्कस्स दसद्धवणस्स कुसुमणिगरस्स तत्थ चित्तं
जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिगरं करेत्ता चंदप्पभवइरवेरुलिय विमलदंडं
कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूव; गंधुत्तमाण-
विच्छं च धूववाट्टे विणिग्गुअंतं वेरुलियमयं करुच्छुयं पग्गहेत्तु; पयते
धूव दहइ, दहेत्ता सत्तट्टपयाइं पच्चसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वामं जाणुं
अंचेइ जाव पगामं करेइ, करित्ता आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ पडि-
णिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिआ उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवा
गच्छइ उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसीअइ सण्णि
सीएत्ताअट्टारससेणिपसेणीओ सदावेइ सदावेत्ता एवं वयोसी खिप्पामेव;
भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं उक्कर उक्किट्टं अदिज्जं अमिज्जं अभट्टप-
वेसं अदंडकोदंडिमं अधरिंमं गणिआवरणाउइज्ज कलियं अणेगतालाय;

राणचरियं अणदूधु अमुङ्गं अमिलायदामं पमुङ् य पक्कीलियसपुरजण-
जाणवयं वि जयवेज्जयं चक्ररणस्स अट्टाहियं महामहिमं करेहि करित्ता
ममेअ माणत्तिय खिप्पामेव पच्चाप्पिण्ह तएणं ताओ अट्टासस सेणिप्प
सेणीओ भरहेणं रन्ना एवं वुत्ताओ समाणीओ हट्टाओ जाव विणएणं
पडिमुगांति पडिमुणित्ता भरहस्म रण्णो अंतिआओ पडिणिक्खमेति
पडिणिक्खपित्ता उस्सुक्कं उक्कर जाव करेति य कारवेति य करेत्ता
कारवेत्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता जाव
तमाणत्तियं पच्चाप्पिणंति ॥ सू० ४ ॥

छाया— ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञो बहव ईश्वर प्रभृदयः अप्येके पद्महस्तगताः
अप्येके उत्पलहस्तगताः, यावत् अप्येके शतसहस्र पत्रहस्तगता, भरत राजान पृष्टतः पृष्टतोऽ
नुगच्छन्ति । ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञो बहव्यः— कुब्जाः चिलातयो वामनिका वडमिका
वर्षय्यो बकुशिका जोनिक्य । पल्हविका. ईसिनिकाः थारुकिनिकाः ॥१॥ लासिक्यो लकु-
शक्योद्रविडयः सिहलय आरव्य पुलिन्द्रयः । पक्कण्यो बहल्यो मुरूण्डय शबर्यः पारसीकाः
॥२॥ अप्येकिकाः वन्दनकलशहस्तगता चगेरीपुष्पपटलहस्तगता भृङ्गारादशस्थालपात्रो सुप्र-
तिष्ठक घातकरकरत्नकरण्डपुष्पचंगेरीमाल्य वणचूर्णगन्धहस्तगताः यावत् लोमहस्तगताः
अप्येकिका सिंहासनहस्तगता, छत्रचामरहस्तगता, तैलसमुद्रक हस्तगताः,

तैलं कोष्ठसमुद्गकं पत्र चोयं च तगरम् पला च
हरिताल द्विद्वगुलक मनः शिला सर्षपसमुद्गम् ॥ १ ॥

अप्येकिकास्तालवृन्त हस्तगता, अप्येकिका धूपकहच्छुकहस्तगता भरत राजान
पृष्टतः पृष्टतोऽनुगच्छन्ति, ततः खलु स भरतो राजा सर्वद्वेषा सर्वद्वेष्या सर्वबलेन सर्व-
समुदयेन सर्वादरेण सर्वविभूषया सर्वविभूत्या, सर्ववस्त्रपुष्पमालयालङ्कारविभूषया सर्ववृदि-
तशस्त्रसन्निवादेन महत्या ऋद्ध्या यावद् महता वरवृदितयमकसमक प्रवादितेन शङ्खपणवप
टह मेरी झरुळरी खरमुखीमुरजसृदङ्गदुन्दुभिनिर्घोषनादितेन यत्रैव आयुधगृहशाला तत्रैवो-
पागच्छति उपागत्य आलोके चक्ररत्नस्य प्रणाम करोति, कृत्वा यत्रैव चक्ररत्न तत्रैवोपा-
गच्छति, उपागत्य लोमहस्तक परामृशति परामृश्य चक्ररत्नं प्रमाजंयति प्रमाज्यं दिव्यया
उदकधारया अभ्युक्षति, अभ्युक्ष्य सरसेन गोशीर्षचन्दनेनानुलिम्पति, अनुलिप्य अग्नौ वैरै
र्षनेषु माल्यैश्चार्यति पुष्पारोपण माल्यगन्धवर्णचूर्णवस्त्रारोपणमाभरणारोपणं करोति
कृत्वा अच्छै प्रलक्ष्यै प्रवेतैः रजतमये अच्छरसतण्डुलैः चक्ररत्नस्य पुरतोऽष्टाष्टमङ्गलकानि
आलिखति तद्यथा—स्वस्तिक श्रीवत्सनन्धावर्त्तवर्द्धमानक भद्रासनमत्स्यकलशदर्पणाष्टकमङ्गल-
कानि आलिख्य कृत्वा करोति उपचारमिति कोऽसौ (उपचार) ?

पाटलमल्लिकचम्पया शोकपुन्नागभास्रमञ्जरी नवमालिक बहुलतिलककणवीरकुन्द-
कुञ्जक कोरण्टक पत्रदमनकधरसुरभिसुगन्धगन्धितस्य करग्रहगृहातकरतलप्रभ्रष्टविप्रमुक्त-
स्य दशार्द्धवर्णस्य कुजुमनिकरस्य तत्र चित्र जानूसैधप्रमाणमात्रम् अधघिनिकर कृत्वा
चन्द्रप्रभवज्रवैदूर्यविमलदण्डम् काञ्चनमणिरत्नभक्तिचित्रम्, कृष्णागुरुप्रवरकुन्दुरुफक्तुरुफक
धूपगन्धोत्तमानुविद्धं विनिर्मुञ्चन्तम्, वैदूर्यमयं कङ्कलुक प्रगृह्य 'प्रयत.' धूप वहति, दग्धा
सप्ताष्ट पदानि प्रत्यपसर्पति, प्रत्यपसर्प्य वामं जानुम् अञ्चति, यावत् प्रणामं करोति, कृत्वा
आयुधगृहशालतः प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव वाहिरिका उपत्स्थानशाला यत्रैव सिद्धा
सर्नं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य सिद्धासनवरगत पौरस्त्याभिमुखं सन्निपीदति, सन्निपद्य
अष्टादशश्रेणिप्रश्रेणीः शब्दयति, शब्दयित्वा पवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ।
उच्छुल्काम् उत्कराम् उत्कृष्टाम् अदेयाम् अमेयाम् अभटप्रवेशिकाम् अदण्डकुवण्डिमाम् अध-
रिमाम् गणिकावर नाटकीयकलिताम् अनेकतालाचरानुचरिताम् अनुद्धूतमृदङ्गाम् अम्लान-
माल्यशस्नीम् प्रमुदिनप्रकोडितसपुरजनजानपदाम्, विजयवैजयिकीम्, चक्ररत्नस्य अष्टा-
हिकां महामहिमां, कुरुत, कृत्वा मम पतामाह्वितिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयत । तत खलु ता
अष्टादश श्रेणिप्रश्रेण्य भरतेन राज्ञा पवमुक्ता सत्य' हृष्टाः यावत् विनयेन प्रतिशृण्वन्ति,
प्रतिशृण्व्य भरतस्य राज्ञ अन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य उच्छुल्काम् उत्कराम्
यावत् कुर्वन्ति च कारयन्ति च कृत्वा कारयित्वा यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छन्ति
उपागत्य यावत् तामाह्वितिकां प्रत्यर्पयन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—“तएणं” इत्यादि । (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो बहवे ईसरपभिइओ) ततः
खलुः तस्य भरतस्य राज्ञो बहव इश्वरप्रभृतयः ततो भरतस्य गमनसमये खलु तस्य
भरतस्य राज्ञो बहवो जना ईश्वरप्रभृतयः तलवरादारभ्य सन्धिपालान्ता यावत्पद सग्राह्याः
पूर्ववत् (अप्येगइया पउमहत्थगया) अप्येके पद्महस्तगताः करगृहीतकमलाः (अप्येगइया
उपपलहत्थगया) अप्येकके उत्पलहस्तगताः उत्पलानि कमलप्रमेदाः तानि हस्तगतानि

‘तएणं तस्स भरहस्स रण्णो’—इत्यादि सू०-४

टीकार्थ—(तएणं तस्स भरहस्स रण्णो बहवे ईसर पभिइओ) उस भरत राजा के चलने के
समय उसके अनेक ईश्वर आदिजन तलवर से लेकर सधिपाल तक के समस्त मनुष्य—(भरहं
रायाण पिट्ठओ २ अणुगच्छन्ति) उस भरत राजा के पिछे चलने लगे. इनमें से (अप्येगइया पउम-
हत्थगया) कितनेक व्यक्तियों के हाथ में पद्म था (अप्येगइया उपपलहत्थगया) कितनेक व्यक्तियों

‘तए ण तस्स भरहस्स रण्णो’—इत्यादि सूत्र-॥ ४ ॥

टीकार्थ—(तए ण तस्स भरहस्स रण्णो बहवे ईसर पभिइओ) ते भरत राजा आइया लाइये ते
सभये अनेक ईश्वर आदि तलवरेथी माडीने सधिपाल सुधीना सर्व मनुष्ये । (भरहं रायाण
पिट्ठओ २ अणुगच्छन्ति) ते भरत राजानी पाछण-पाछण आइया लाइया. ये मनुष्येमांथी
(अप्येगइया पउमहत्थगया) डेटलाक मनुष्येना हाथेमा पद्मो इता । (अप्येगइया उपपल
हत्थ गया) डेटलाक मनुष्येना हाथेमा उपपल इता । (जाव अप्येगइया सयसहस्सपत्तहत्थ-

येषां ते तथा (जाव अप्पेगइया सयसहस्सपत्तहत्थगया) यावत्पदेन (अप्पेगइया कुमु-
यहत्थगया अप्पेगइया नल्लिण हत्थगया अप्पेगइया सोगंधिय हत्थगया, अप्पेगइया
पुंडरीयहत्थगया, अप्पेगइया सहस्सपत्तहत्थगया (इति संग्राह्यम्, तथा च अप्पेके कुमुद-
हस्तगताः, अप्पेके नल्लिनहस्तगताः, अप्पेके सौगन्धिकस्तगताः, अप्पेके पुण्डरीकहस्तगताः
अप्पेके सहस्रहस्तगताः, अप्पेके शतसहस्रपत्रहस्तगताः, लक्षपत्रकमलहस्तगताः (भरह
रायाण पिट्टओ अणुगच्छति) भरतं राजानं पृष्ठतः पृष्ठतः पृष्ठभागे क्रमेण अनुगच्छन्ति अनु-
अनुयान्ति । (तएणं तस्स भरहस्स रण्णोवहुईओ) ततः सामन्तं नृपानुगमनानन्तरम् तस्य
भरस्य राज्ञः सम्बन्धिन्यो बह्व्यो दास्यो भरतं राजानं पृष्ठतः पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति इतिपूर्वेण
सम्बन्धः कास्ता इत्याह—

(खुज्जा चिलाइ वामणि वडभीओ वब्बरी वडसियाओ ।

जोणियपल्हवियाओ ईसिणियथारु किणियाओ ॥१॥

लासिअलउसिज्ज दमिलीसिंहलि तह आरबी पुलिंदीअ ।

पक्कणि बहलिमुंरंडी सबरीओ पारसीओअ ॥२॥

के हाथ मे उत्पल था — (जाव अप्पेगइया सयसहस्सपत्त हत्थगया) यावत् कितनेक व्यक्तियो*
के हाथ में कुमुद था, कितनेक व्यक्तियो के हाथ में नल्लिन था, कितनेक व्यक्तियो* के हाथ में
सौगंधिक था कितनेक व्यक्तियो के हाथ में पुण्डरीक था, कितनेक व्यक्तियो के हाथ में सहस्र
पत्रो वाला कमल था और कितनेक व्यक्तियो के हाथ में शत सहस्र पत्रो वाला कमल था (त-
एणं तस्स भरहस्स रण्णो वहुईओ खुज्जा चिलाइवामणि वडभीओ वब्बरीवडसियाओ जोणिय
पल्हवियाओ इसिणिय थारु किणियाओ ॥१॥ — लामिअलउसिज्ज दमिली पिहलो तह आरबी
पुलिंदीअ । पक्कणि बहलिमुंरंडी सबरीओ पारसीओअ ॥२॥ इन सब सामन्त नृपो* के पीछे-

गया) यावत् केटलाक मनुष्येना हाथेमा कुमुदो इति, केटलाक माणुसेना हाथेमा नल्लिन
इति, केटलाक मनुष्येना हाथेमा सौगंधिको इति, केटलाक मनुष्येना हाथेमा पुंडरीको
इति, केटलाक मनुष्येना हाथेमा सहस्रहस्तकमले इति अने केटलाक मनुष्येना हाथेमा
शत-सहस्रहस्तकमले इति? (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो वहुईओ खुज्जा चिलाइ
वामणिवडभीओ वब्बरीवडसियाओ, जोणियपल्हवियाओ ईसिणिय थारु किणियाओ ॥१॥
लासिअलउसिज्जदमिलीतह आरबी पुलिंदीअ । पक्कणि बहलिमुंरंडी सबरीओ पारसीओअ २

१ यहाँ यावत्पद से “अप्पेगइया कुमुयहत्थगया, अप्पेगइया नल्लिण हत्थगया, अप्पेगइया सोगंधिय हत्थ
गया, अप्पेगइया पुंडरीय हत्थगया, अप्पेगइया सहस्सपत्त हत्थगया” इस पाठ का संग्रह हुआ है ये सब
यद्यपि कमल के ही मेद है परन्तु इनमें क्या मेद है यह अन्य ग्रन्थों में लिखा जा चुका है अतः वहाँ
से यह विषय जान लेना चाहिये

१ अ. ३। यावत्पदार्थी “अप्पेगइया कुमुदहत्थगया, अप्पेगइया, नल्लिण हत्थगया, अप्पेगइया
सौगंधिय हत्थगया, अप्पेगइया पुंडरीय हत्थगया, अप्पेगइया सहस्सपत्तहत्थगया” आ
पाठने संग्रह थये छे ओ अधां ले के कमलना व प्रकारे छे, छतांओ ओमनामां शे ले
छे. ओ वात अन्य ग्रन्थेमां स्पष्ट करवामां आवी छे ओथी ते अथेमाथी ओ विषे लक्ष्मी
देवुं लेईजे.

छाया—कुब्जाश्चिलात्यो वामनिका वडभिका बर्वर्यो वकुशिकाः ।

जोनिक्यः पलहविका ईसिनिकाः थारुकिनिकाः ॥१॥

लासिक्यो लकुसिक्यो द्रविड्यः सिंहल्य आरव्यः पुलिन्द्र्यः ।

पक्कण्यो बहल्यो मुरुण्ड्यः शवर्यः पारसिकाः ॥२॥

तत्र कुब्जाः चक्रजङ्घाः, चिलात्यः चिलातदेशोद्भवाः, वामनिकाः, अतिलघु-
शरीराः लघून्नतहृदयकोष्ठावा' वडभिकाः महडकोष्ठा चक्राधः कायावा बर्वर्यो-बर्वर-
देशोत्पन्नाः, वकुशिकाः—वकुशदेशोद्भवा जोनिक्यो-जोनकदेशजाः, पलहविका पलहवदे-
शोत्पन्ना, ईसिनिकाः, ईसिनिक देशभवाः, थारुकिनिकाः थारुकिनदेशोत्पन्ना, लासिकि-
न्यो—लासकदेशोद्भवाः, लकुशदेशजाः, द्रविड्यो—द्रविडदेशजाः, सिंहल्यः—सिंहलदेशजाः
आरव्यः—आरवदेशजाः, पुलिन्द्र्यः पुलिन्द्रदेशजाः, पक्कण्यः पक्कणदेशजाः, बहल्यो बह-
लिदेशजाः, मुरुण्ड्यो मुरुण्डदेशजाः, शवर्यः-शवरदेशजाः, पारसीकाः—पारसदेशजाः,
अत्र चिलात्यादयोऽष्टादश पर्वोक्तानुसारेण तत्तद्देशोद्भवत्वेन तत्तन्नामिकाः, कुब्जादयस्तु
तिक्तो विशेषणभूता विज्ञातव्याः, अथ यथा प्रकारेणोपकरणेन ताः भरतमनुजगमुस्तथा
चाह—(अप्पेगइया) इत्यादि । (अप्पेगइया वंदणकलसहत्थगयाओ) अप्येकिका वन्द-
नकलसहस्तगताः, तत्र वन्दनकलशाः—मङ्गल्य घटा हस्तगता यासां तास्तथा (चगेरीपुप्फ-

२ जिनकी जंघाएं वक्र है जो चिलात देश में उत्पन्न हुई है तथा जो अनिलघु शरीर वाली हैं
अथवा जिनका नाभि से नाचे का शरीर भाग वक्र है ऐसी बर्वर देश की दासियां, वकुश देश
की दासियां, जोनक देश की दासियां, पलहव देश की दासियां, ईमनिक देश की दासियां,
थारुकिन देश की दासियां, लासक देश की दासियां, लकुश देश की दासियां, द्रविड देश की दासियां
सिंहल देश की दासिया, अरव देश की दासियां, पुलिन्द्र देश की दासियां पक्कण देशकी दासि-
या बहली देश को दासीया, मुरुण्डदेश की दासीयां, शबर देश की दासीयां, पारस देश की दा-
सीयां, इस प्रकार की ये १८ देशोकी दासियां—चली (अप्पेगइया वदणकलसहत्थगयाओ
चंगेरी पुप्फपडलहत्थगयाओ) इनमें से कितनीक स्त्रियों-दासियो के हाथ में मङ्गल कलश

ओ सरे' सामन्त नृपोनी पाछण नेमना साथणे वकं छे, नेओ चिलात
देशमां उत्पन्न थरं छे, तेमने नेओ अति लघु शरीरवाणी छे अथवा नेमनु' नाबिधी
नीयेतु' शरीर वकं छे, नेवी भभर देशनी दासीओ, वकुश देशनी दासीओ, जोनक देशनी
दासीओ, पलहवदेशनी दासीओ ईसिनिक देशनी दासीओ, थारुकिता देशनी दासीओ, लासक
देशनी दासीओ लकुश देशनी दासीओ, द्रविड देशनी दासीओ सिंहल देशनी दासीओ,
अरव देशनी दासीओ, पुलिन्द्र देशनी दासीओ, पक्कण्य देशनी दासीओ, बहलि देशनी
दासीओ, मुरुण्डदेशनी दासीओ शबर देशनी दासीओ, पारस देशनी दासीओ, आ प्रभाओ
अदार देशनी दासीओ आलवा लागी (अप्पेगइया वंदण कलसहत्थगयाओ चंगेरी पुप्फ
पडलहत्थगयाओ) ओ दासीओमांथी इटवीक दासीओना हाथेमां मंगण कणशे हता,
इटवीक दासीओना हाथेमां इलानी नानी छाभडीओ हती अने तेमा अनेके मतना
७०

पडलहत्यगयाओ) चङ्गेरी पुष्पपटलहस्तगता, तत्र चङ्गेर्या पुष्पपटलं चङ्गेरीपुष्पपटलम् चङ्गेरी कुसुमममूह तत् हस्तगतं यासां तास्तथा (मिगार आदंसथालपात्रीसुपइदृगवाय- करगरयणकरंडपुष्फचंगेरी मल्लवण्णचुण्णगंधहत्यगयाओ) भृङ्गारादर्शस्थालपात्रीसुप्र- तिष्ठकवातकरकरत्नकरण्डपुष्प चङ्गेरीमाल्यवर्णचूर्णगन्धहत्यगता, तत्र भृङ्गारकः (झारी) ति भाषा प्रसिद्धः आदर्श दर्पणः स्थाल महतीस्थाली, पात्री लघुस्थाली सुप्रतिष्ठा सुस्थापनं भवति यस्मिन् स सुप्रतिष्ठकः पूर्णघटाद्याधारमात्रविशेषः वातकरकः घटविशेषः रत्नकरण्डः (करंडिया) इति भाषाप्रसिद्धो रत्नाधारपात्रविशेषः, अनः परं नवरं पुष्प चङ्गेरीतः आभ्य माल्यादिपदत्रिशेषितास्नत्तच्चङ्गेर्यो ज्ञातव्या स्तथा च पुष्पचङ्गेरीमा- ल्यचङ्गेरी, वर्णचङ्गेरी, चूर्णचङ्गेरी, गन्धचङ्गेरी एता हस्तगता यासां तास्तथा (वत्थ आम- रणलोमहत्ययचंगेरी पुष्फपडलहत्यगयाओ) वस्त्राभरणलोमहस्तक चङ्गेरी पुष्पपटलह- स्तगताः तत्र लोमहस्तक वद्धमयूरपिच्छसमूहः पुष्पपटल पुष्पसमूहः अतिरिक्तानि प्रसि-

थे. कितनीक दासियो के हाथ में चंगेरी में पुष्पो का समूह था. (मिगार आदंस थाल पाति सुपइदृगवायकरगरयणकरंडपुष्फचंगेरी मल्लवण्णचुण्णगंधहत्यगयाओ) कितनीक दासियो के हाथ में भृङ्गारकथा-झारी थी. कितनीक दासियो के हाथ में आदर्श-दर्पण था. कितनीक दासियो के हाथ में स्थाल-बडेर थाल थे कितनीक दासियो के हाथ में छोटोर थालियां थी, कितनीक दासियो के हाथ में सुप्रतिष्ठ पूर्ण घटो आदि के आवार भूत पात्रविशेष-थे कितनीक दासियो के हाथ में वातकरक-घटविशेष-थे, कितनीक दासियो के हाथ में रत्न करण्ड-रत्नो को रखने के पात्र विशेष-थे इसी तरह से किन्हींर दासियो के हाथ में पुष्प चंगेरी, किन्हींर दासियो के हाथ में वर्ण चङ्गेरी, किन्हींर के हाथ में चूर्ण चङ्गेरी और किन्हींर के हाथ में गन्ध चङ्गेरी थी (वत्थ आमरणलोमहत्यय चंगेरी पुष्फ पडल हत्यगयाओ जाव लोमहत्य गयाओ) किन्हींर दा- सियो के हाथ में वद्ध थे, किन्हींर दासियो के हाथ में आमरण थे किन्हींर दासियो के हाथ

पुष्पे। इति (मिगार आदंस थाल पाति सुपइदृगवायकरगरयणकरंडपुष्फचंगेरी मल्लवण्णचुण्णगंधहत्यगयाओ) केटलीक दासीओना हाथेमां, भृङ्गारके। इति, केटलीक दासीओना हाथेमां-आदर्श-दर्पणो इति केटलीक दासीओना हाथेमां स्थादी-भोटा-भोटा थोणे। इति केटलीक दासीओना हाथेमां नानी-नानी थाणीओ इति केटलीक दासीओना हाथेमा सुप्रतिष्ठके-पुष्प घट-वगेरेना आधार भूतपात्र विशेष इति केटलीक दासीओना हाथेमा वातकरक-घट विशेष-इति केटलीक दासीओना हाथेमां रत्न करण्ड-रत्नोने भूकवा मटेना पात्र विशेषे इति आ प्रभाणे अ केटलीक दासीओना हाथेमा पुष्पनी नानी छाभडीओ, केटलीक दासीओना हाथेमा रगभरेली नानी छाभडीओ, केटलीक दासीओना हाथेमा यूसुं भरेली नानी छाभडीओ अने केटलीक दासीओना हाथेमां सुगन्ध-पहायो भरेली नानी छाभडीओ इति. (वत्थ आमरण लोमहत्ययचंगेरी पुष्फप हत्यगयाओ जाव लोमहत्यगयाओ) केटलीक दासीओना हाथेमां वस्त्रे इति केटलीक दासीओना हाथेमां आभरणे। इति, केटलीक दासीओना हाथेमा वामहस्तके इति. केटलीके भयुरना पिच्छ-

द्धान्येव तानि हस्तगतानि यामां तास्तथा (जावन्नीमहत्थगयाओ) यावत् लोमहस्तगताः
 आवद्धमयूरपिच्छहस्तगताः, इत्यर्थः (अप्येगइयाओ सीहासणहत्थगयाओ) अप्येकिका
 सिहासन हस्तगता (छत्तचामरहत्थगयाओ) अप्येकिकाः छत्रचामर हस्तगताः (तिल्लसमु
 गय हत्थगयाओ) तथा अप्येकिकाः तैल समुद्राः तैल भाजन विशेषास्तद्द्रस्तगताः अत्र
 समुद्रक सङ्ग्रहमाह—

तेल्लेकोट्टे समुग्गे पत्ते चोएअ तगरमेला य

हरिआले हिंगुलए मणोसिलासासवसमुग्गे ॥१॥

तेलं कोष्टसमुद्रकः पत्र चोयं च तगरम् एला च ।

हरिताल द्विङ्गुलकं मनः शिला सर्पपसमुद्गः ॥१॥

एवम् कोष्टसमुद्गाः कोष्टभाजनविशेषाः तद्द्रस्तगताः, एवं पत्रसमुद्गक
 हस्तगताः, चोय समुद्गरुहस्तगताः तगरसमुद्गरुहस्तगताः, एलासमुद्गरुहस्तगताः,

में लोम हस्तक थे—मयूर के पिच्छो को बनी हुई मयूरपिच्छिकाएँ—थी किन्हीं २ दासियों के हाथ
 में पुष्पपटल—पुष्पसमूह—था बाकी के इस सूत्रगत पद सुगम है । (जाव लोमहत्थगयाओ)
 तथा कितनीक दासिया ऐसी थी कि जिनके हाथ में यावत् आवद्ध मयूरपिच्छो की पोटलिया
 थी (अप्येगइयाओ सीहासणहत्थगयाओ) कितनीक दासिया ऐसी थी कि जिनके हाथ में
 सिहासन था (छत्तचामरहत्थगयाओ) कितनीक दामिया ऐसी थी कि जिनके हाथ में
 छत्र, चमर ये दोनो बर ए थी, (तिल्लसमुगयहत्थगयाओ) कितनीक दामिया ऐसी थी कि
 जिनके हाथ में तेल के रखने का पात्र विशेष था समुद्र शब्द का अर्थ पात्र विशेष है. समुद्रक
 का संग्रह इस गाथा द्वारा इस प्रकार से कहा गया है —

तेल्ले, कोट्टसमुग्गे पत्ते चोए अ तगर मेलाय ।

हरिआले हिंगुलिए मणोसिला सासवसमुग्गे ॥१॥

इस के अनुसार कितनीक दासियों के हाथ में कोष्टसमुद्रक थे, कितनीक दासियों के हाथ में
 पत्र समुद्रक थे, कितनीक दासियों के हाथ में चोय समुद्रक थे, कितनीक दासियों के हाथ में

कैथी निर्मित मयूर (पिच्छकाओ) इती कटलीक दासीओना हाथेमा पुष्पपटलो-पुष्प समूहो
 इता आ सूत्रना शेष पदोनी व्याख्या सरल छे (जाव लोमहत्थगयाओ) तेमके कटलीक
 दासीओ ओवी इती के नेमना हाथेमा यावत् आवद्ध मयूर पिच्छेनी पोटलीओ इती,
 (अप्येगइयाओ सीहासणहत्थगयाओ) कटलीक दासीओ ओवी इती के नेमना हाथेमा
 सिहासणे इता तथा (छत्तचामर हत्थगयाओ) कटलीक दासीओओवीइती के नेमना हाथेमा
 छत्र, चामर ओ अन्ने वस्तुओ इती (तिल्लसमुगय हत्थगयाओ) कटलीक दासीओ ओ
 के नेमना हाथेमा तेल भरवाना पात्र विशेष इ ॥ 'समुद्ग' शब्दने अर्थ पात्र
 विशेष थाय छे 'समुद्ग'ने संग्रह आ गाथा वडे आ प्रभ छे २५०८ करवा । मन्नावेले छे
 तेल्ले, कोट्टसमुग्गे पत्ते चोए अ तगर मेलाय ।

हरिआले हिंगुलिए मणोसिला सासवसमुग्गे ॥ १ ॥

हरिताल समुद्रक हस्तगताः हिङ्गुलकसमुद्रक हस्तगताः, मनः शिला समुद्रकहस्त-
गताः सर्पसमुद्रकहस्तगता इति ।

(अप्येगइयाओ तालिअंटहत्थगयाओ अप्येगइयाओ धूव कडुच्छुयहत्थगयाओ भरहं
रायाणं पिट्टओ २ अणुगच्छंति) अप्येकिकाः तालवृन्तहस्तगताः, तत्र तालवृन्त-व्यजनं
यासां तास्तथा, अप्येकिकाः धूपकडुच्छुकहस्तगताः=धूपाधान कडुच्छुकपात्रपाणय', भरत
राजानं पृष्ठतः पृष्ठतोऽनुगच्छन्ति । अथ यया समुद्र्या भरतो राजा आयुधशालागृहं गत-
वान् तामाह—(तएणं) इत्यादि (तएण से भरहे राया) ततः खलु स भरतो राजा (जेणेव
आउहघरसाला तेणेव उवागच्छइ) यत्रैव आयुधगृहशाला तत्रैवोपागच्छतीति अग्रेण
सम्बन्धः सः किम्भूतस्तत्राह—(सन्विइढिए) सर्वद्वर्या—सकलालङ्कारादिरूपया लक्ष्म्या युक्त
इति गम्यं पुनः (सन्वजुइए) सर्वधृत्या सर्वदीप्त्या (सन्ववलेण) सर्ववलेन—सर्वसैन्येन,
(सन्वसमुदएणं) सर्वसमुदयेन—परिवारादि समुदायेन (सन्वायरेण) सर्वादरेण चक्ररत्न-
भक्तिबहुमानेन (सन्वविभूसाण) सर्वविभूषया सर्वशोभया (सन्वविभूर्इए) सर्वविभूत्या सर्व-
सम्पत्त्या सह तथा (सन्ववत्थपुप्फमल्लालंकारविभूसाए) सर्ववस्त्रपुष्प माल्यालंकारविभू-
षया (सन्वतुडिय सहसण्णिणाएण) सर्वत्रुटितशब्दसंनिनादेन सर्वेषा त्रुटिताना नूर्याणां
वाद्यविशेषाणां यः शब्दो घ्वनिर्यश्च सं=सङ्गतो निनादः=प्रतिध्वनिस्तेन, अथ सर्वशब्देन
अल्पीयोऽपि निर्दिष्टं भवति ततश्च न तथा विभूतिर्वर्णिता भवतीति आशङ्कमानं प्रत्याह—
(महया इइढीए) इत्यादि । (महया इइढीए जाव) महत्या ऋद्ध्या यावत्, तत्र ऋद्धिरैश्व-
र्यम् यावत्पदात् धृत्यादि परिग्रहः (महया वरतुडियजमगसमगपवाइएणं) महता वरत्रुटित-

हरिताल समुद्रक थे, कितनीक दासियो के हाथ में हिङ्गुलक समुद्रक (डबूशा) थे कितनीक
दासियों के हाथ में मन शिला समुद्रक थे और कितनीक दासियों के हाथ में सर्प समुद्रक
थे इसी तरह से कितनीक दासियों के हाथ में (तालिअट हत्थगयाओ) तालपत्र — पंखा —
व्यजन — बीजना — था — (अप्येगइया धूव कडुच्छुय हत्थगयाओ) और कितनीक दासियों के
हाथ में धूप रखने के कडाह थे (भरहं रायाणं पिट्टओ २ अणुगच्छते) ये सब दासियां भी
भरत राजा के पीछे चल रही थी (तए ण से भरहे राया सन्विइढीए सन्वजुइए सन्ववलेण —
सन्वसमुदएणं सन्वायरेणं सन्वविभूसाए सन्वविभूर्इए सन्व वत्थ पुप्फ गंध मल्लालंकारविभूसाए

ओ मुज्ज केटलीक दासीओना हाथेमा के।०० समुद्रगके डता केटलीक दासीओना
हाथेमां पत्र समुद्रगके डता केटलीक दासीओना हाथेमा योय समुद्रगके डता केटलीक
दासीओना हाथेमा तगर समुद्रगके डता केटलीक दासीओना हाथेमा हरिताल समुद्रगके
डता केटलीक दासीओना हाथेमां हिगुलक समुद्रके डता, केटलीक दासीओना हाथेमां
मन-शिला समुद्रगके डता अने केटलीक दासीओना हाथेमा सर्प समुद्रगके डता आ
प्रमाणे केटलीक दासीओना हाथेमा (तालिअटहत्थगयाओ) तालवृत्रो-प भाओ-डता,
(अप्येगइया धूवकडुच्छुयहत्थगयाओ) अने केटलीक दासीओना हाथेमा धूप भुक्वानी
कडुओ डती (भरह रायाणंपिडओ २ अणुगच्छति) ओ सर्वे दासी पणु भरत राजानी

यमकसमक प्रवादितेन तत्र महता-वृद्धता वरत्रुटिताना श्रेष्ठ तुर्याणां यमकसमक युग पत्रवादितं प्रवादनं शब्दकरणं तेन (संखपणवपडहमेरिञ्जल्लरिखरमुहि मुग्ग मुडंग दुर्दुहि निग्घोसणाइएणं) शङ्खपणवपटह मेरीञ्जल्लरीखरमुखीमुरजमृदङ्गदुन्दुहिनिर्घोपनादितेन, तत्र शङ्खः-प्रसिद्धः, पणवो लघुपटहः, पटहस्तु स एव महान् (ढोल) इति भाषा प्रसिद्धः, मेरी ढक्का, झल्लरी=बलयाकारा (झालर) इति भाषा प्रसिद्धा, खग्मुखी=कादला मिधो-

सन्वतुडिअ सह सण्णिणएणं महया इड्ढीअ जाव महया वरतुडिअ जमगमगपवाइएणं सस्स पणवपडहमेरिञ्जल्लरिखरमुहि - मुरज मुडंगदुन्दुहिणिग्घोसणाइएण जेणेव आउडघासाला तेणेव उवागच्छइ) इस तरह के ठाट बाट से चलता हुआ वह भरत राजा जहा पर आयुध शाला थी वहां पर आया . ऐसा यहा सम्बन्ध लगा लेना चाहिये । भरत राजा के सम्बन्ध में सूत्रकार कथन करते हुए कहते हैं कि उस समय वह भरत राजा समस्त अलङ्कारों से विभूषित था इसलिये सम्पूर्ण दासि से वह चमक रहा था । समस्त सेना उसके साथ चल रही थी । समस्त परिवार उसका उसके साथ साथ था । चक्ररत्न के भक्ति के प्रति बहुमान उसके हृदय में हिलोरे ले रहा था, आदरणीय जन के या आदरणीय वस्तु के दर्शन करने के लिये जिस वेष-भूषा से जाना चाहिए ऐसे समस्त वेषभूषा से वह सुसज्जित था इस तरह वह भरत राजा अपनी समस्त राज्यविभूति के साथ आयुधशाला में आने के लिये चला आ रहा था समस्त बल,— पुष्पमाल्य एवं अलङ्कारों से विभूषित हुए उस भरत राजा के आगेर भिन्न प्रकार के बाले बनते हुए आ रहे थे । इनकी ध्वनि और प्रतिध्वनि से पुरस्कृत हुए एवं अपनी महर्दिक यावत् धृति आदि से सौभाग्य की पराकाष्ठा को प्राप्त हुए वे भरत राजा बड़े जोर से एक साथ बजाए गये श्रेष्ठ शंख, — पणव, — लघुपटह, पटह — विशाल, पटह — ढोल, मेरी, — झालर, खरमुखी मृदङ्ग,

पाछण पाछण आदी रडी डती (तप ण से भरहे राया सन्विड्ढीअ सन्वज्जुइअ सन्व वलेण सन्व समुदपण सन्वायरेण सन्वविभूसाप सन्वविभूर्इअ सन्ववत्थपुण्फगंधमल्लाल कारविभूसाप सन्वतुडिअसहसंणणणएण महया इड्ढीअ जाव महया वरतुडिअजमगसमग पवाइएण संखपणवपडह मेरिञ्जल्लरिखरमुहिमुरजमुग्ग मुडुहिणिग्घोसणाइएण जेणेव आउडघरसाला तेणेव उवागच्छइ) आ नतना डडभाडथी आसतो ते भरत राजा न्या आयुध शाला डती, त्या गथे. आ नतने अर्थ अत्रे समल्ल देवे ओधये भरत राजाना सम्बन्धमा सुत्रकार कथन करे छे ते समथे ते भरत राजा सर्व अलङ्कारेथी विभूषित डते. ओथी ते सम्पूष्णं दीप्तिथी प्रकाशित थड रह्यो डते. सम्पूष्णं सैन्य तेनी साथे-साथे आदी रधु डतु तेने. समथ परिवार तेनी साथे साथे आसतो डते. तेना हृदयमां चक्ररत्न प्रत्ये अतीव भक्ति तेमअ बहुमान उत्पन्न थया आदरणीय जन अथवा आदरणीय वस्तुना ध्यान माटे अ वेषभूषाथी जपुं ओधये ओवी समस्त वेषभूषाथी सुसज्ज डते आ प्रमाणे ते भरत राजा पौतानी समस्त राज्या विभूतिनी साथे आयुधशाला तरङ्ग जड रह्यो डते. समस्त वस्त्रे, पुष्पमाल्य तेमअ अलङ्कारेथी विभूषित थयेदा ते भरत राजानी आगण भिन्न-भिन्न प्रकारना वाजये वाजता

वाद्यविशेषः, मुरजो, मृदङ्गश्च वाद्यविशेषौ दुन्दुभिः वाद्यविशेष एव, एषां निर्घोषनादितेन, तत्र निर्घोषो महाध्वनिर्नादितं च प्रतिध्वनिस्तेन सद्यत्रैव आयुशाला तत्रैवोपागच्छति (उवागच्छित्ता आलोए चक्ररयणस्स पणामं करेइ) उपागत्य आलोके दर्शने सत्येव चक्ररत्नस्य प्रणामं करोति, चक्ररत्नं प्रणमतीत्यर्थः, आयुधवगस्य देवार्घिपुतत्वात् (करेत्ता जेणेव चक्ररयणे तेणेव उवागच्छइ) कृत्वा प्रणामं विधाय यत्रैव चक्ररत्नं तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता लोमहृत्थयं परामुसइ) उपागत्य लोमहृत्तकं परामृगति-समीपं गत्वा लोमहृत्तकं मयूरपिच्छप्रमार्जनिकाम्, परामृशति गृह्णाति (परामृसित्ता चक्ररयणं पमज्जइ) परामृशय गृह्णात्वा चक्ररत्नं प्रमार्जयति, (पमज्जित्ता) प्रमार्ज्यं (दिग्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ) दिव्ययोदकधारया अभ्युक्षति सिञ्चति प्रक्षालयतीत्यर्थः (अब्भुक्खित्ता) अभ्युक्ष्य प्रक्षालय (सरसेण गोसीसचदणेणं अणुलिपइ) सरसेन सुन्दरेण गोशीर्षचन्दनेन-एतन्नामकं श्रेष्ठचन्दनविशेषेण अनुलिम्पति चर्चयति (अणुलिपित्ता) अनुलिम्प्य (अग्गेहिं वरेहिं गघेहिं मल्लेहिं अच्चिणइ) अग्नैः नूतनैः, वरैः श्रेष्ठैर्गन्धैर्माल्यैश्च अर्चयति (अच्चिणित्ता) अर्चयित्वा (पुफ्फारुहणं मल्लगंधवण्णचुण्णवत्थारुहणं आभ-

और दुन्दुभि इन सबको ध्वनि और प्रतिध्वनि के साथर जहा पर आयुधशाला थी वडा पर आये । (उवागच्छित्ता आलोए चक्ररयणस्स पणामं करेइ) वहां पर आकर के उन्होने उस चक्ररत्न के दिखने पर उसे प्रणाम किया । क्यों'कि यह देवाधिष्ठित था । (करेत्ता जेणेव चक्ररयणे तेणेव उवागच्छइ) प्रणाम करके फिर वे जहा पर वह चक्ररत्न था वहा पर गये । (उवागच्छित्ता लोमहृत्थयं परामुसइ, परामृसित्ता चक्ररयणं पमज्जइ, पमज्जिता दिग्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ) वहां जाकर उन्होने मयूर पिच्छ को बनी हुई प्रमार्जनी को उठाया , उठाकर उससे उन्होने चक्ररत्न की सफाई की । सफाई करके फिर उन्होने उस पर निर्मल जल की धारा छोड़ी (अब्भुक्खित्ता सरसेण गोसीसचदणेण अनुलिपइ) जल धारा करके फिर उन्हो ने उस पर सरस गोशीर्ष चंदन से छेप किया - (अणुलिपित्ता अग्गेहिं वरेहिं गघेहिं मल्लेहिं अच्चिणइ) छेप करके अग्रनवीन एवं श्रेष्ठ गन्धद्रव्यों से और पुष्पों से उन्हो ने उसको पूजा की (अच्चिणित्ता पुफ्फारुहणं मल्लगंधवण्ण-

हता तेमनी ध्वनि प्रतिध्वनिथी पुरस्कृत थयेत्ता तेमज्ज येतानी महद्धिं यावत् धुति आहित्थी सौख्ययनी पराकाष्ठाये पडोत्थेत्ता तं धरत रात्ता णडुअ जेत्थी ज्येडी साथे वग्गाहाज्येत्ता श्रेष्ठ शोभा, पणुर-लधुपटइ, पटइ-विशाण, पटइ-ढोत्ता, वेरी-आत्तर, अरमुणी मृदंगं अने दुडुली ज्ये सुवर्णी ध्वनि अने प्रतिध्वनिनी साथे साथे न्या आयुधशाला हती त्यां ते रात्ता आत्थे (उवागच्छित्ता आलोए चक्ररयणस्स पणामं करेइ) त्यां पडोत्थीने तेजे ते चक्ररत्नने जेठने प्रणामं करी केमके ते देवाधिष्ठितं हतु, (करेत्ता जेणेव चक्ररयणे तेणेव उवागच्छइ) प्रणाम करीने पछी ते न्यां चक्ररत्नं हतु त्यां गथे. (उवागच्छित्ता लोमहृत्थयं परामुसइ, परामृसित्ता चक्ररयणं पमज्जइ पमज्जित्ता दिग्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ) त्यां जउने तेजे मयूरपिच्छं निर्मितं प्रमार्जनीने हाथभा लोपी अने तेना वडे तेजे चक्ररत्ननी सक्षार्थ करी सक्षार्थ करीने पछी तेजे तेनी उपर निर्मलं जणधारा छोडी,

रणारुहणं करेइ) पुष्पारोपणं मान्यगन्धवर्णं चूर्णवस्त्रारोपणम् आभरणारोपणं करोति, पुष्पारोपणं माल्यारोपणम्, गन्धारोपणं वर्णारोपणं चूर्णारोपणं वस्त्रारोपणम् आभरणारोपणं करोति (करित्ता) कृत्वा (अच्छेहि सण्हेहि सेपहि रयणामपहि अच्छरसातडुलेहि चक्ररयणस्स पुरओ अट्टट्ट मगलए आलिहइ) अच्छैः श्लक्ष्णैः श्वेतैः रजतमयैः अच्छरसतण्डुलैश्चक्ररत्नस्य पुरतः अष्टाष्टमङ्गलकानि आलिखति, तत्र-पुष्पाधारोपणं विधाय अच्छैः निर्मलैः श्लक्ष्णैः अतिचिक्रणैः श्वेतैश्चेत रजैः, रजतमयैः, रजतनिर्मितैः, अतएव अच्छरसतण्डुलैः चक्ररत्नस्य पुरतः, अष्टाष्टमङ्गलकानि आलिखति, तान्येव दर्शयति-(तं जहा) तद्यथा (सोत्थिय) इत्यादि । (सोत्थियसिरिवच्छणदिभावत्तवद्धमाणग भद्रासणमच्छकलसदप्पणअट्टमंगलए) स्वस्तिक १ श्रीवत्स २ नन्द्यावर्त्त ३ वर्द्धमानक ४ भद्रासन ५ मत्स्य ६ कलश ७ दर्पणा ८ ए मङ्गलकानि, इमानि अष्टमङ्गलकानि (आलिहित्ता) आलिख्य आकारविशेषकरणेन (काऊणं) कृत्वा-अन्तर्वर्णकादि भरणेन पूर्णानि विधाय (करेइ उवयारंति) करोति उपचारमिति उपचारं करोतीति (कित्ते) इति कोऽसौ उपचारः ? तमेव दर्शयति-(पाडलमल्लिअ चंपग-

चुण्ण वत्थारुहण आभरणारुहणं करेइ) पूजा करके फिर उन्होने उसपर पुष्प चढाये मालाएँ चढाई गन्ध द्रव्य चढाया, सुगंधित चूर्ण चढाया, वस्त्र चढाया, और आभरण चढाये । (करित्ता अच्छेहि सण्हेहि सेपहि रयणामपहि अच्छरसातडुलेहि चक्ररयणस्स पुरओ अट्टट्ट मगलए अ लिहइ) पुष्पादि चढाकरके फिर उन्हो ने उस चक्ररत्न के समक्ष स्वच्छ स्निग्ध,श्वेत ऐसे रजतमय स्वच्छ सरस तदुलो से - चावलों से - आठ२ मङ्गल द्रव्य लिखे । (त जहा) उन मङ्गल द्रव्यों के नाम . इस प्रकार से है - (सोत्थिय सिरिवच्छणदिभावत्त वद्धमाणग भद्रासण मच्छकलस दप्पण अट्ट मगलए) स्वस्तिक १, श्री वत्स २, नन्द्यावर्त्त ३, वर्द्धमानक ४, भद्रासन ५, मत्स्य ६, कलश ७, और दर्पण ८, इन आठ मंगल द्रव्योंको (आलिहित्ता) लिख करके (काऊण करेइ उवयारंति) तथा उनके भीतर आकारादिवर्णों को लिखकर के इस प्रकार से उनका उपचारकिया - (कित्ते) जैसे - (पाडल मल्लिअचंपगअसोक पुण्णागाचुअ मंजरिणवमालिअ

(अभुक्खित्ता सरसेण गोसीस चंदणेण अनुलिपइ) अणधारा कर्था पथी तेणे तेनी उपर गोपाथं अन्दनत्तं देपन कथुं (अणुलिपित्ता अणोहि वरेहि गंधेहि मल्लेहि अक्षिणइ) देप करीने अअनवीन तेमअ अेअ गन्ध द्रव्येथी अने पुष्येथी तेणे तेनी पूजा करी (अक्षिणित्ता पुष्पारुहणं मल्लगधवर्णचुण्णवत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ) पूजा करीने पथी तेणे तेनी उपर पुष्ये अढव्या, मागाओ ध रणु करावी गन्ध द्रव्येथी अढव्यां, सुगन्धित यूप्यं अढव्यु, वस्त्र अढव्यु अने अ अरणे। अढव्या (करित्ता अच्छेहि सण्हेहि सेपहि रयणामपहि अच्छरसातडुलेहि चक्ररयणस्सपुरओ अट्टट्ट मगलए आलिहइ) पुष्प वर्णे अढवाने तेणे ते अकरत्तना सामे स्नग्ध, स्निग्ध, श्वेत येवा रजतमय स्नग्ध सरस तडुलेथी-येआओथी आठ आठ मंगल द्रव्ये आदेथ्या (त जहा) ते मंगल द्रव्येना नामे आ प्रभाणे छे-(सोत्थिय' सिरिवच्छ णदिभावत्तवद्धमाणमच्छकलसदप्पण अट्ट-

असोगपुष्पाग च्यमंजरीणवमालिभवकुलतिलगकणवीरकुंद कोज्जयकोरंटयपत्तदमणयवर-
सुरहिसुगंधगंधिअस्स) पाटलमल्लिकचम्पकाशोकपुन्नागाअमञ्जरीनवमालिका वकुलतिल-
ककणवीरकुन्दकुञ्जककोरण्टकपत्रदमनकवरसुरभिसुगन्धगन्धितस्य इत्यादि पृथन्तपदानां
(पुष्पनिकरस्य) इत्यग्रेण सम्बन्धः, तत्र पाटलं—पाटलपुष्पम् मल्लिका—विचकिलपुष्पम्
(वेली) इति भाषायां प्रसिद्धम्, चम्पकाशोकपुन्नागाः प्रसिद्धाः आम्रमञ्जरी वकुलः
केसरः तिलको यः ह्यीकटाक्षनिरीक्षितो विकसति तत्पुष्पम्, कणवीरकुन्दे प्रसिद्धे
कुञ्जकं कूब इति नाम्ना वृक्षविशेषस्तत्पुष्पम्, कोरण्टकं—तन्नामक पुष्पविशेषः पत्राणि
मरुवक पत्रादीनि दमनकः स्पष्टः एतैर्वरसुरभिः—अत्यन्त सुरभिः तथा सुगन्धाः
शोभनचूर्णास्तेषां गन्धो यत्र स तथा तस्य (कयगगहगहियकरयलपम्भट्टविष्पमुक्कस्स)
कचग्रहग्रहीतकरतलप्रभ्रष्टविप्रमुक्तस्य युवत्याः पञ्चाङ्गुलिभिः. केशेषु ग्रहण कचग्रहः
तन्न्यायेन गृहीतस्तथातदनन्तरं करतलाद्विप्रमुक्तः सन् प्रभ्रष्टः (पतितः) तस्य (दसद्ध-
वण्णस्स) दशाद्धवर्णस्य पञ्चवर्णस्य (कुसुमणिगरस्स) कुसुमनिकरस्य पुष्पपुञ्जस्य (तत्थ
चिच्चं जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिनिकरं करेत्ता) तत्र चित्रं जानुस्सेधप्रमाणमात्रम् अव-

वकुलतिलग करणवीरकुद कोज्जय कोरंटय पत्तदमणयवरसुरहि 'सुगन्धगन्धिअस्स कयगगहगहि-
यकरयल पम्भट्टविष्पमुक्कस्स दसद्धवण्णस्स — पुष्पणिगरस्स) हर एक मंगल द्रव्य के चित्र के
भितर बनाये गये प्रत्येक वर्ण पर उसने पाटल पुष्पों को गुलाब के फूलों को चढ़ाया । मल्लिका
मोषरा — के पुष्पों को चढ़ाया, चम्पक वृक्ष के पुष्पों को चढ़ाया , अशोक वृक्ष के पुष्पों को
चढ़ाया, पुनाग वृक्ष के पुष्पों को चढ़ाया, आम्र वृक्ष की मंजरी चढ़ायी, नवमल्लिका, वकुल,
तिलक, कणवीर—कनेर—कुन्द—कुञ्जक, कोरट, मरुवा, और दमनक इन सबके पुष्पों को
चढ़ाया । ये सब पुष्प अपनी सुगंधित गंध से महक रहे थे—मर्थात् ताजे थे—कुम्हलाये हुए
नहीं थे । जिस प्रकार सदाय होकर युवा पुरुष अपनी तरुण' भार्या के राति काल में बहुत धिमे से
हाथ द्वारा केशग्रह करलिया करता है और बाद में उसे छोड़ देता है । उसी प्रकार से चढाते
समय भरत राजा ने उन पुष्पों को पांचो अंगुलियों से पकड़ कर के उन लिखित वर्णादि के ऊपर

मंगलय) स्वस्तिक १, श्रीवत्स ३, नन्धावत्ता ३, वर्द्धमानक ४, लद्दासन ५, भत्स्य ६,
६, कणश ७ अने हर्षण ८, ये आठ मंगल द्रव्येने (आलिहिता) लभीने (काऊणं करेइ)
उच्यारति) तेमअ तेमनी अ हर अकारादि वल्लेनि लभीने आ प्रभाषे तेमनो उपचार कथे
(किं ते) जेम के (पाटलमल्लिक चपगअसोक पुष्पागच्यमंजरीणवमालिभवकुलतिलगकण
वीरकुंदकोज्जयकोरंटयपत्तदमणयवप सुरहिसुगंधगंधिअस्स कयगगहगहियकरयलपम्भट्टविष्प
मुक्कस्स दसद्धवण्णस्स पुष्पणिगरस्स) हरेक हरेक मंगल द्रव्येना चित्रनी अ हर भनाववामां
आवेदा हरेक हरेक वल्लुं उपर तेखे पाटल पुष्पो अढाव्यां, मल्लिका—मोगराना पुष्पो अढाव्यां
अभ्यक वृक्षना पुष्पो अढाव्यां, अशोक वृक्षना पुष्पो अढाव्या, पुनाग वृक्षाना पुष्पो अढाव्या
आम्रवृक्षानी मंजरीयो अढावी, नवमल्लिका, वकुल, तिलक, कणवीर कनेर, कुन्द, कुञ्जक,
कोरंट, मरुवा अने दमनक ये सर्वना पुष्पो अढाव्यां ये सर्वे पुष्पो ताजा हुन

धिनिकर कृत्वा तत्र चक्ररत्नपरिकरभूम्या चित्रम् आश्चर्यजनक जानृत्सेधप्रमाणेन जङ्घा यावदुच्चत्रप्रमाणेन प्रमाणोपेतपुरुषस्य चतुरङ्गुलचरणस्य चतुर्विंशत्यङ्गुल-जानृत्सेधसंमेलनेनाष्टाविंशत्यङ्गुलरूपेण समाना मात्रा यस्य स तथा तम् अत्रधिना मयीदया निकरं विस्तारं कृत्वा निधाय (चंद्रप्पभवहरवेरुलिभाविमलदंडं) चन्द्रप्रमवज्र-वैदूर्यविमलदण्डम्, तत्र चन्द्रप्रभाः चन्द्रकान्तमणयः वज्राणि-हीरकमणयः-वैदूर्याणि तन्नामक मणयः तद्वत् तन्मयो वा विमलो दण्डो यस्य स तथा तम् (कंचणमणि-रयणभक्तित्तं) काञ्चनमणिरत्नभक्तित्तं चित्रम् । तत्र काञ्चनमणिरत्नानां भुवर्णमणिरत्न-विशेषाणां भक्तयः-विभक्तयो रचना ताभिश्चित्रम् (कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कध्रुवगं-धुत्तमाणुविद्धं च ध्रुववर्द्धिं) कृष्णागुरुप्रवरकुंदुरुक्कतुरुक्कध्रुपगन्धोत्तमानुविद्धां च ध्रुप-वर्द्धिम् तत्र कृष्णागुरुप्रवरकुंदुरुक्कतुरुक्कतागा तत्तन्नामकसुगन्धिद्रव्यविशेषाणां यो ध्रुपो गन्धोत्तमः सौरभोत्कृष्टः तेन अनुविद्धा व्याप्ता तां ध्रुपवर्द्धिं ध्रुपश्रेणिं च (विणिम्भु-यत्तं) विनिम्भुश्चन्तं त्यजन्त (वेरुलियमयं कडुच्छुयं परगहेत्तुपयते ध्रुवं दहइ) वैदूर्य-

चढाया । वे पुष्प पांच वर्णों के थे । (तत्थ चित्त जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिणीगरं करेत्ता) इन पुष्पों को वहाँ उसने इतनी मात्रा में चढाया को वहाँ उनकी ऊँचाई जानु के प्रमाण के बराबर अर्थात् २८ अंगुल प्रमाण हो गई- इसतरह आश्चर्यकारक चढाये हुए फुलों की माला चढा करके उस भरत राजा ने (चंद्रप्पभवहरवेरुलिभविमलदंड कंचणमणिरयणभक्तित्त-कालागुरुपवर कुंदुरु-क्कतुरुक्क ध्रुवगधुत्तमाणुविद्धं च-ध्रुववर्द्धिं) फिर चन्द्रकान्त मणियों के, हीरा के एवं वैदूर्यम-णियों के जैसे विमल दण्डवाले अथवा इन मणियों से निर्मित-हुए दण्ड वाले एवं काञ्चन और मणिरत्नों से जिस में अनेक प्रकार के चित्रों की रचना हो रही है और जो काला गुरु, प्रव-र कुंदुरुक्क से बनी हुई ध्रुप की उत्तम गंध से-व्याप्त होरहा है तथा जो ध्रुप कीश्रेणि को (वि-णिम्भुयत्तं) निकाल रहा है ऐसे (वेरुलियमयं कडुच्छुयं परगहेत्तु) वैदूर्य मणि के बने हुए ध्रुप दहन पात्र को हाथ में लेकर के (पयते) बड़ी सावधानी से आदर पूर्वक उसने (ध्रुवं दहइ)

न हता जेम युवा पुरुष सह्य थर्धने रतिकाल वधते पीतानी तदृषी भायाना केशो धीशेथी पीताना हाथमा पकडे छे अने त्यार भाह छोडी दे छे, तेज प्रभाषे भरत राजजे पुष्पो अढावती वधते ते पुष्पोने पाथे आगणीओथी पकडीने ते क्षिप्रित वधुदिकनी उधर अढाव्यां ते पुष्पो पाथ वधुदोना हतां, (तत्थ चित्तं जाणुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिणीगरं करेत्ता) जे पुष्पोने तेथे त्या आटकी अधी मात्रामा अढाव्या के त्या तेमनी उथार्ध अनुना प्रभाषे सुधी ओटके २८ अशुल प्रभाषे थर्ध गर्ध, आ प्रभाषे सारी जेथी आश्चर्यकारक मात्रामा पुष्पो अढावीने ते भरत राजजे (चंद्रप्पभवहरवेरुलिभविमलदंड कंचणमणिरयणभक्तित्तं कालागुरु-पवरकुंदुरुक्कतुरुक्कध्रुवगंधुत्तमाणुविद्धं च ध्रुववर्द्धिं) त्यार भाह अन्द्रकाल भण्डिओना हीराना तेमज वैदूर्यभण्डिओना जेवा विभज हंडवाणा अथवा जे भण्डिओथी निर्मित हंडवाणा तेमज काञ्चन अने मणिरत्नोथी जेमा अनेक प्रकारना चित्रोनी रचना थर्ध रही छे अने जे कालागुरु प्रवर कुंदुरुक्क अने कुंदुरुक्क निर्मित ध्रुपनी उत्तम सुज धिथी जे व्याप्त छे अने

मय कडुच्छुक प्रगृह्य प्रयतो धूपं ददति, तत्र वैदूर्यमयं वैदूर्यरत्नघटितम्, कडुच्छुकं-
 धूपाधानरूपात्रं प्रगृह्य गृह्णीत्वा (प्रयत्नः) आद्रियमाणो धूपं ददति (दहेत्ता) दग्ध्वा
 (सत्तद्वपयाइं पच्चोसक्कइ) सप्ताष्टपदानि प्रत्यवष्वक्कति परावर्त्तते, तत्र धूप दग्ध्वा
 प्रमार्जनादि हेतु विभेषेण सन्निधीयमानचक्ररत्ने अत्यासन्नतया मत्क्रुताशातना माभू-
 यादित्यभिप्रायेण स राजा सप्ताष्टपदानि प्रत्यपसर्षति पश्चादपसरति इत्यर्थः (पच्चो-
 सक्कित्ता) प्रत्यवष्वक्कय परावर्त्तय (वाम जाणु अंचेइ जाव पणामं करेइ) वामं जानुम्
 अञ्चति यावत् प्रणामं करोति, तत्र वाम जानुम् अञ्चति आकुञ्चयति ऊर्ध्वं करोति
 यावत्करणात् (दाहिणं जाणुं धरणियलसि निहट्टइ करयलपरिगहिय दसनहं सिर-
 सावत्तं मत्थए अंजलि) इति संग्रहः, दक्षिणं जानु धरणी तले निहत्य करतल परि-
 गृहीतं दशनखं शिरसावत्तं मस्तके अञ्जलि कृत्वा प्रणामं करोति मनोऽभीष्टार्थं सिद्धि-
 दायकमिदमितिबुद्ध्या प्रीतः सन् प्रणमतीत्यर्थः (करेत्ता) प्रणाम कृत्वा (आउहघर-
 सालाओ पडिणिकखमइ) आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति (पडिणिकख-

धूप जलाया । (दहेत्ता सत्तद्वपयाइं पच्चोसक्कइ) धूप जलाकर फिर वह वहाँ से सात आठ पग पीछे लौटा अर्थात् मेरे द्वारा किसी भी प्रकार से चक्ररत्न की अशातना न हो जावे इस ख्याल से वह धूप जलाकर पीछे वहाँ से सात आठ पैर दूर हो गया (पच्चोसक्कित्ता वाम जाणु अंचेइ) वहाँ से ७-८ पैर दूर हो कर उसने अपनी बाइ जानु को ऊपर उठाया (जाव पणाम करेइ) यावत् प्रणाम क्रिया यहाँ यावत्पदसे (दाहिणी जाणुं धरणियलसि निहट्टइ करयलपरिगहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि) इस पाठ का संग्रह हुआ है इस पाठका तात्पर्य ऐसा है कि जब उसने अपनी बाइ जानु को ऊपर की ओर उठाया—तब उसने अपनी दाहिनी जानु को—भूतल पर रखा और दशो नख अंगुलियों के परस्पर में मिल जावे इस ढंग से अंजलिबना कर और उसे दाहिनी ओर से बाई ओर तक मस्तक के ऊपर से तीन बार घुमाकर प्रणामक्रिया (करेत्ता) प्रणाम करके (आउहघरसालाओ पडिणिकखमइ) फिर वह आयुध शाला से बाहर निकला (पडिणिकखमित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला

ओभांथी धूपनी श्रेणीओ (विणिस्सुयत्तं) नीकणी रडे छे ओवा (वेरुलियमयं कडुच्छुकं पग्गहेत्तु) वैदूर्यमखिनिमित्त धूपदहन पात्रने हाथमां वधने (पयत्ते) अडुअ सावधानी पूर्वकं तेमअ आदर पूर्वकं तेषु (धूपं ददइ) धूपने तेमा सणगाओ। (दहेत्ता सत्तद्वपयाइं पच्चोसक्कइ) धूप सणगावीने पछि ते त्याथी सात-आठ पगदां पाछा इथी, ओट्ठे के भा' वडे केअं पणु रीते अक्षरत्ननी अशातना न थाय ओे विचारथी ते धूप सणगावीने पछी सात-आठ पगदां त्याथी दूर भसी गये। (पच्चोसक्कित्ता वामं जाणु अंचेइ) त्यांथी सात-आठ पगदां पाछा भसीने तेषु पौताना डाभा धूटणुने उपर उठाओ। (जाव पणामं करेइ) यावत् प्रणाम कर्था, अही यावत् पदथी (दाहिणं जाणुं धरणियलसि निहट्टइ करयल परिगहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि) आ पाठने। स अर्थ थये छे आउ तात्पर्य अ प्रभावे छे के न्यारे तेषु पौताना डाभा धूटणुने उपर उठाओ। त्यारे तेषु पौताना अमणु धूटणुने पृथ्वी उपर भूकथे। अने आगणीओना इथे इश नथे। परंपर सम्भदित कर्त्तने पछी

मिता) प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य (जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ) यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासन तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छिता) उपागत्य (सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसिअइ) सिंहासनवरगत पौरस्त्याभिमुखः पूर्वदिशाभिमुखः सन्निपीदति उपविशति (सण्णिमोउत्ता) सनिपध (अट्टारससेणिप्पसेणीओ सहावेइ) अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणिः शब्दयति तत्र अष्टादश श्रेणीः—कुम्भकारादिप्रकृतीः, प्रश्रेणीः—तदवान्तरभेदान् शब्दयति आह्वयति (सहावेत्ता एव वयासी) शब्दयित्वा एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेणाऽवादीत् उक्तवान् । अष्टादशश्रेणिश्रेणयश्रेणाः

(कुमार १ पट्टइल्ला २ सुवण्णकाराय ३ सूवकारा य ४ गंधव्वा ५ कामवगा ६ मालाकाराय ७ कच्छकरा ८ ॥१॥

तंबोलिआ ९ य एए नवप्पयाराय नारुआ भणिआ ।

अहण णवप्पयारे कारुअ वण्णे पयक्खामि ॥२॥

चम्मयरु १ जंतपीलग २ गंधिअ ३ छिपाय ४ कंसकारे ५ य ।

सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला ८ धीवर ९ वण्णाइ अट्टदस ॥३॥

सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसीअइ) वहा आकर वह पूर्वदिशा की ओर मुँह करके उस सिंहासन पर बैठ गया (सण्णिसीइत्ता) बैठकर (अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सहावेइ) उसने अष्टादश श्रेणी प्रश्रेणी को प्रजाजनों को बुलाया—(सहावेत्ता एव वयासी) और बुलाकर उन से ऐसा कहा—वे अष्टादश श्रेणि प्रश्रेणि इस प्रकार से है—“कुमार १ पट्टइल्ला २ सुवण्णकारा ३ य सूवकाराय ४ गंधव्वा ५, कासवगा ६ मालाकाराय ७ कच्छकरा ८ ॥ १ ॥—तंबोलियाय एए नवप्पयारा य नारुआ भणिआ” अहण णवप्पयारे कारुअवण्णे पयक्खामि ॥२॥ चम्मयरु १ जंतपीलग २ गंधिअ ३ छिपाय ४ कंसकारे ५ य, सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला ८ धीवर ९ वण्णाइ अट्टदस ॥३॥ चित्रकार आदिक भी इन्हीं में अन्तर्भूत हो जाते हैं । उस भरत

अञ्चि अनापीने ते अञ्चिने अमणी तरक्ष्ठी उापी तरक्ष् मस्तकं उपर त्रषु वार ईरपीने प्रषुअ कथा (करेत्ता) प्रषुअ करीने (आउहघरसालाओ पड्डिणिकखमइ) त्थार आह ते आसुधशाणाभांथी अहार नीउणी गथे। (पड्डिणिकखमिता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ) अहार नीउणीने पथी ते न्या आह उरस्थानशाणा भेसवानी न्या इती अने तेभा पषु न्या सिंहासन इतुं त्यां आये। (उवागच्छिता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसीअइ) त्यां आवीने ते पूर्वदिशा तरक्ष् भुअ करीने ते सिंहासन उपर भेसी गथे। (सण्णिसीइत्ता) भेसीने (अट्टारससेणिप्पसेणीओ सहावेइ) तेणे अष्टादश श्रेणी-प्रश्रेणिना प्रभजनेने जेलाव्या (सहावेत्ता एवं वयासी) अने जेलावीने तेभने आ प्रभाणे कहु ते अष्टादश श्रेणि प्रश्रेणिना प्रभजने आ प्रभाणे छे—(कुमार १- पट्टइल्ला २, सुवण्णकारा ३, य सूवकाराय ४, गंधव्वा ५, कामवगा ६ मालाकाराय ७, कच्छकरा ८ ॥ १ ॥ तंबोलियाय एए नवप्पयाराय नारुआ भणिआ अहण णवप्पयारे कारुअवण्णे पयक्खामि ॥२॥ चम्मयरु १ जंतपीलग २, गंधिअ ३ छिपाय ४, कंसकारे ५ य, सीवग ६ गुआर ७, भिल्ला ८, धीवर ९ वण्णाइ अट्टदस ॥३॥ चित्रकारो वगेरे पषु अमनाभा अन्तर्भूत थथ न्य छे ते भरत राज्ञे पौरुषेने

चित्रकारादयोऽपि एतेष्वेवान्तर्भवन्ति, अथ पौरजनान् प्रति क्रिमवादीत् इत्याह—
 (खिप्पामेव) इत्यादि । (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं उक्कर उक्किट्ठं अदिज्जं
 अमिज्जं अभडप्पवेस अदडकोदडिमं अधरिमं गणियावरणाडइज्ज कलिय अणेग तालाय-
 राणुचरियं अणुद्धुयमुहंगं अमिलायमल्लदामं पमुह्य पक्कीलिय सपुरजणजाणवयं विजय-
 वेजइयं चक्करयणस्स अट्टाहियं महामहिमं करेह करित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पा-
 मेव पच्चप्पिणह) क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! उच्छुल्लकाम् उत्कराम् उत्कृष्टाम् अदे-
 याम् अमेयाम् अभटप्रवेशाम् अदण्डकुदण्डिमाम् अधरिमाम् गणिकावरनाटकीयकलि-
 ताम् अनेरुतालाचरानुचरिताम् अनुद्धूतमृदङ्गाम् भस्मानमाल्यदाम्नीम्, प्रमुदित-
 प्रक्रीडितसपुरजनजानपदाम्, विजयवैजयिकीम्, चक्ररत्नस्य अष्टाहिका महामहि-
 माम्, कुरुत, कृत्वा मम एतामाज्ञप्तिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयत, तत्र क्षिप्रमेव भो देवा-
 नुप्रियाः ! चक्ररत्नस्य अष्टानाम् अह्नां समाहारोऽष्टाहं तदस्ति यस्यां महामहिमायां
 सा अष्टाहिका तां महामहिमां कुरुतेति कृत्वा मम एताम् अग्रवर्त्तिनीमाज्ञप्तिकां क्षिप्र-
 मेव शीघ्रमेव प्रत्यर्पयत समर्पयत इति चाग्रेण सम्बन्धः, अथ क्रमशः विशेषणानि
 व्याख्यायते उच्छुल्लकामित्यादि तत्र उन्मुक्तं त्यक्तं शुल्कं विक्रेतव्य वस्तु प्रति राज-
 देयं द्रव्यं यस्यां सा तथा ताम् एवमुत्कराम्, तत्र उन्मुक्तः करो गवादीन् प्रति
 प्रतिवर्षं राजदेयं द्रव्यं यस्यां सा तथा ताम् एवम् उत्कृष्टाम्, तत्र उत्=उत्सृक्तं कृष्टं-
 कर्षण-लभ्यवस्तु ग्रहणाय आकर्षणमित्यर्थः यस्यां सा तथा ताम् अदेयामिति, विक्रय

राजा ने उन पौरजनों से क्या कहा सो प्रकट किया जाता है —(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ।
 उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्ठं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेस अदडकोदडिमं अधरिमं गणियावरणा
 डइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरियं अणुद्धुयमुहंगं अमिलाय मल्लदामं पमुह्यपक्कीलिय सपुर-
 जणजाणवयं विजयवेजइयं चक्करयणस्स अट्टाहियं महामहिमं करेह करित्ता ममेयमाणत्तिये
 खिप्पामेव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही अष्टाहिका महोत्सव करो—इस में विक्रय
 वस्तु पर जो राज्य कर—बुगो लगती है उसे माफ करदो गाय आदि के ऊपर जो प्रतिवर्षं राज
 देय द्रव्य लिया जाता है उसे भी उन्मुक्त कर दो लभ्यवस्तु को ग्रहण करने के लिये जो भूमि

अट्ठे के नगरवासीयोने शु कल्लु ते विषे हवे रूपे करवाभां आवे छे डे—(खिप्पामेव
 भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्क उक्कर उक्किट्ठं अदिज्जं अभडप्पवेस अदडकोदडिमं अधरिमं
 गणियावरणाडइज्जकलियं अणेग तालायराणुचरियं अणुद्धुयमुहंगं अमिलाय मल्लदामं
 पमुह्य पक्कीलिय सपुरजणजाणवयं विजयवेजइयं चक्करयणस्स अट्टाहियं महामहिमं
 करेह करित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तमे अष्टाहिका महो-
 त्सव करो। तमां विक्रेत वस्तु पर ने राज्य कर देस ले छे तेने माके करी हो। गाय
 वगेरे उपर ने हर वर्षे राज्य देव्य देवामां आवे छे तेने पणु माके करी हो। लभ्य वस्तुने
 अहणु करवा भाटे ने भूमि वगेरने जोडवाभा आवे छे, तेने पणु आठ दिवस भाटे अ ध करी
 हो तथा नेना उपर ने अर्ध पणु लेणु देणु डोय ते पणु अ ध करी छे अथवा तो आ महोत्सव

निषेधेन न विद्यते देयम्, दातव्यं द्रव्यं यस्यां सा तथा ताम् न केनापि कस्मै अपि देयमित्यर्थः, अगेधामिति, क्रयविक्रयनिषेधेनैव अविद्यमानमातव्याम्, अभटप्रवेशा मिति, न विद्यते भटानां राजपुरुषाणाग् आज्ञादायिनां प्रवेशः कुटुम्बगृहेषु यस्यां सा तथा ताम्, अदण्डकुण्डिमामिति, दण्डेन लभ्यं द्रव्यं दण्ड्यः कुदण्डेन निर्वृत्तं कुदण्डिमं-राजद्रव्यं तन्नास्ति यस्यां सा तथा ताम्, तत्र दण्डो यथापराधं राजग्राह्यं द्रव्यं कुदण्डस्तु राजकर्मचारिणां प्रज्ञाद्यपराधात् अपराधिनो महत्यपराधे अल्पम् अल्पा-पराधे चाधिकं यथोचितरहितं राजग्राह्यं द्रव्यम् इति विज्ञेयम्, अधरिमामिति (अविद्यमान धरिमम्=ऋणद्रव्यं यस्यां सा तथा ताम् उत्तमर्णाधर्मणाभ्याम् ऋणार्थम् अन्योन्यं न विवदनीय मत्तः द्रव्यं नीत्वा मुत्कलनीय दातव्यमित्यर्थः गणिकावर-नाटकीय कलितामिति) गणिकावरैः त्रिलासिनीप्रधानैः नाटकीयैः नाटकप्रतिबद्ध-पात्रैः कलिता शोभिता या सा तथा ताम्, नाटकादि शोभितामित्यर्थः अनेकताला चरानुचरितामिति, तत्र (अनेके ये तालाचराः प्रेक्षाकारि विशेषास्तैरनुचरिताम्-आसेविताम् अनुद्धूतमृदङ्गामिति) अनु=आनुरूप्येण मृदङ्गसम्बन्धि विधिना उद्धूताः

बौरह का जीतना होता है उसे भी आठ दिन के लिये बन्द कर दो जिस पर जिस का कुछ भी लेना देना हो उसे भी बन्द कर दो अथवा इस महोत्सव के होने तक कोई रोजगार-व्यापार-आदि न करे ऐसी राजाज्ञा की घोषणा कर दो क्रय विक्रय के निषेध हो जाने के कारण कोई भी व्यक्ति नापने, गिनने आदि की वस्तु के लेन देन का व्यवहार न करे, आज्ञा प्रदान करने वाले राजपुरुषो का कुटुम्बी जनो के गृहों में प्रवेश न हो अपराध हो जाने पर दण्ड रूप में जो अपराध के अनुसार अपराधो से राजद्रव्य लिया जाता है वह न लियाजावे राज्य कर्मचारियों के द्वारा छोटे बड़े अपराध हो जाने पर जो उनसे जुर्माना के रूप में थोड़ा या बहुत इच्छानुसार दण्ड वसूल किया जाता है उसे न लिया जावे-कर्जदार से कर्ज देने वाला व्यक्ति अपने ऋण को वसूल करने के लिये विवाद न करे किन्तु वह द्रव्य मुझ से लेकर दिया जावे और उनके झगडे को शान्त कर दिया जावे । त्रिलासिनियों के नाटकीय पुरुषो द्वारा हम में खूब धार्मिक नाटक किया जावे, इस उत्सव को देखने के लिये अनेक जन आठ रात दिन इस उत्सव में मृदङ्ग बजि होती रहे, जो मालाएँ इस

थाय त्या सुनी डोई पळू ज्ञानो वेपार वगेरे थाय नहिं ज्येची राजज्ञानी घोषणा करी हो क्रय-विक्रय उपर प्रतिबध थई गया पठी डोई पळू माळस भापी शक्य डे गळी शक्य ज्येची पाधी वस्तु ज्येची आप-ले पध करी हो आज्ञा प्रदान करतार राज पुत्रुषो नो कुटुम्बी जनोना गृहोभा प्रवेश न थाय अपराध थई ज्ञथ तो दंड रूपमा जे अपराध मुज्जम अपराधी पासेथी राजद्रव्य लेवाभां आवे छे, ते लेवानु पध करी हो राज्य कर्मचारीजो वडे नांना-मोटा अपराधो महस तेमनी पासेथी दंड स्वरूप जे ते दंड पळू थोडु-बळु दंडा मुज्जम दंड वसूल करवाभा आवे छे, ते लेवाभां न

चित्रकारादयोऽपि एतेष्वेवान्तर्भवन्ति, अथ पौरजनान् प्रति निमवादीन् इत्याह - (खिप्पामेव) इत्यादि । (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्क उक्कर उक्कि उक्क अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेस अदडकोदडिमं अधरिमं गणियावरणाडइज्ज कलिय अणेग तालाय-राणुचरियं अणुद्धुयमुइंगं अमिलायमल्लदाम पमुइय पक्कीलिय सपुरजणजाणवयं विजयवेजइयं चक्करयणस्स अट्टाहियं महामहिमं करेह करित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह) क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! उच्छुल्काम् उत्कराम् उत्कृष्टाम् अट्टेयाम् अमेयाम् अभट्टप्रवेशाम् अदण्डकुदण्डिमाम् अधरिमाम् गणिकावरणाटकीयकलिताम् अनेकतालाचरानुचरिताम् अनुद्धूतमृदङ्गाम् अम्लानमाल्यदाम्भीम्, प्रमुदितप्रकीडितसपुरजनजानपदाम्, विजयवैजयिकीम्, चक्ररत्नस्य अष्टाहिका महामहिमाम्, कुरुत, कृत्वा मम एतामाक्षितिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयत, तत्र क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! चक्ररत्नस्य अष्टानाम् अहां समाहारोऽष्टाहं तदस्ति यस्यां महामहिमायां सा अष्टाहिका तां महामहिमां कुरुतेति कृत्वा मम एताम् अग्रवर्तिनीमाक्षितिकां क्षिप्रमेव शीघ्रमेव प्रत्यर्पयत समर्पयत इति चाग्रेण सम्बन्धः, अथ क्रमशः विज्ञेयानि व्याख्यायते उच्छुल्कामित्यादि तत्र उन्मुक्तं त्यक्तं शुल्कं विक्रेतव्यं वस्तु प्रति राजदेयं द्रव्यं यस्यां सा तथा ताम् एवमुत्कराम्, तत्र उन्मुक्तः करो गवादीन् प्रति प्रतिवर्षं राजदेयं द्रव्यं यस्यां सा तथा ताम् एवम् उत्कृष्टाम्, तत्र उत्=उत्मुक्तं कृष्टं-कर्षण-लभ्यवस्तु ग्रहणाय आकर्षणमित्यर्थः यस्यां सा तथा ताम् अदेयामिति, विक्रय

राजा ने उन पौरजनों से क्या कहा सो प्रकट किया जाता है —(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया । उस्सुक्कं उक्करं उक्किउक्कं अदिज्जं अमिज्जं अभडप्पवेस अदडकोदडिमं अधरिमं गणियावरणाडइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरियं अणुद्धुयमुइंगं अमिलाय मल्लदाम पमुइयपक्कीलिय सपुरजणजाणवयं विजयवेजइयं चक्करयणस्स अट्टाहियं महामहिमं करेह करित्ता ममेयमाणत्तिये खिप्पामेव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही अष्टाहिका महोत्सव करो—इस मे विक्रय वस्तु पर जो राज्य कर—खुगो लगती है उसे माफ करदो गाय आदि के ऊपर जो प्रतिवर्ष राज देय द्रव्य लिया जाता है उसे भी उन्मुक्त कर दो लभ्यवस्तु को ग्रहण करने के लिये जो भूमि

जो देवे के नगरवासीओं ने शु कछु ते विषे डवे स्पष्ट करवाभा आवे छे के—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्क उक्कर उक्किउक्कं अदिज्जं अभडप्पवेसं अदडकोदडिमं अधरिमं गणियावरणाडइज्जकलियं अणेग तालायराणुचरियं अणुद्धुयमुइंगं अमिलाय मल्लदामं पमुइय पक्कीलिय सपुरज वयं विजयवेजइयं चक्करयणस्स अट्टाहियं महामहिमं करेह करित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह) हे देवानुप्रियो ! तमे अष्टाहिका महोत्सव उन्मेवो तेमां विक्रेय वस्तु पर ने राज्य कर टेकस दे छे तेने माफ करी हो गाय वजेरे उपर ने हर वर्षे राज्येय द्रव्य देवाभा आवे छे तेने पक्षु माफ करी हो द्रव्य वस्तुने अडक्षु करवा माटे ने भूमि वजेरने जोडवाभा आवे छे, तेने पक्षु आठ दिवस माटे भ ध करी हो तथा नेता उपर ने क'ध पक्षु देषु देषु डोय ते पक्षु भ ध करी छे अथवा तो आ महोत्सव

निषेधेन न विद्यते दण्ड, दातव्यं द्रव्य यस्या सा तथा ताम् न केनापि कर्म
 अपि देयमित्यर्थः, अगमाभिति, क्रयविक्रयनिषेधेनैव अविद्यमानमातव्याम्, अगदप्रवेशा
 मिति, न विद्यते भयाना राजपुरुषाणाम् आज्ञादायिनां प्रवेशः कुटुम्बगृहेषु यस्या
 सा तथा ताम्, अदण्डकुदण्डिमामिति, दण्डेन लभ्य द्रव्यं दण्डयः कुदण्डेन निर्वृत्तं
 कुदण्डिमं-राजद्रव्यं तन्नास्ति यस्यां सा तथा ताम्, तत्र दण्डो यथापराधं राजग्राह्यं
 द्रव्यं कुदण्डस्तु राजकर्मचारिणा प्रज्ञाद्यपराधात् अपराधिनो महत्यपराधे अल्पम् अल्पा-
 पराधे चाधिकं यद्योचितरहितं राजग्राह्यं द्रव्यम् इति विज्ञेयम्, अधगिमामिति
 (अविद्यमान वरिमम्=ऋणद्रव्य यस्यां सा तथा ताम् उत्तमर्णाधर्मणाभ्याम् ऋणार्थम्
 अन्योन्यं न विवर्नीय मत्तः द्रव्यं नीत्वा मुत्कलनीय दातव्यमित्यर्थः गणिकावर-
 नाटकीय कलितामिति) गणिकावरैः त्रिलासिनीप्रधानैः नाटकीयैः नाटकप्रतिबद्ध-
 पात्रैः कलिता शोभिता या सा तथा ताम्, नाटकादि शोभितामित्यर्थः अनेकताला
 चरानुचरितामिति, तत्र (अनेके ये तालाचराः प्रेक्षाकारि विशेषास्तैरनुचरिताम्-
 आसेविताम् अनुद्धृतमृदङ्गामिति) अनु=आनुरूप्येण मृदङ्गसम्बन्धि विधिना उद्धृताः

बौरह का जीतना होता है उसे भी आठ दिन के लिये बन्द कर दो जिस पर जिस का कुछ
 भी लेना देना हो उसे भी बन्द कर दो अथवा इस महोत्सव के होने तक कोई
 रोजगार-व्यापार-आदि न करे ऐसी राजाज्ञा की घोषणा कर दो क्रय विक्रय के निषेध
 हो जाने के कारण कोई भी व्यक्ति नापने, गिनने आदि की वस्तु के लेन देन का व्यव
 वहार न करे, आज्ञा प्रदान करने वाले राजपुरुषों का कुटुम्बी जनो के गृहों में प्रवेश न
 हो अपराध हो जाने पर दण्ड रूप में जो अपराध के अनुसार अपराधो से
 राजद्रव्य लिया जाता है वह न लियाजावे राज्य कर्मचारियों के द्वारा छोटे बड़े अपराध हो जाने
 पर जो उनसे जुर्माना के रूप में थोड़ा या बहुत इच्छानुसार दण्ड वसूल किया जाता है उसे न
 लिया जावे-कर्जदार से कर्ज देने वाला व्यक्ति अपने ऋण को वसूल करने के लिये विवाद न करे
 किन्तु वह द्रव्य मुझ से ठेकर दिया जावे और ऊनके झगडे को शान्त कर दिया जावे । त्रिला-
 सिनियों के नाटकीय पुरुषों द्वारा डम में खूब धार्मिक नाटक किया जावे, इस उत्सव को
 देखने के लिये अनेक जन आठ रात दिन इस उत्सव में मृदङ्ग बजि होती रहे, जो मालाएँ इस

थाय त्या सुधी कोठ पळू जनना वेपार वगेरे थाय नाई जेवी राजज्ञानी घोषणा करी
 हो क्रय-विक्रय उपर प्रतिबंध थळ गया पणी कोठ पळू भावसु भापी शक्य हे गणुी
 शक्य जेवी गधी वस्तुजेनी आप-वे पध करी हो आज्ञा प्रदान करतार राज पुसुषे
 ने कुटुभी जनाना गृहोभा प्रवेश न थाय. अपराध थळ जय तो दंड इपमां जे
 अपराध मुज्ज अपराधी पासेथी राजद्रव्य लेवामा आवे छे, ते देवानु पध करी हो
 राज्य कर्मचारीमे वडे नाना-मोटा अपराधो पधक्ष तेमनी पासेथी दंड स्वरूप जे ते
 कर्ष पळू थोडु-वळु धरुछा मुज्ज दंड वसूल करवामा आवे छे, ते देवामां न

कलाकौशलदर्शनार्थमूर्ध्वे क्षिप्ता मृदङ्गा यस्यां सा तथा ताम् । अम्लानमाल्यदाम्नी-
मिति तत्र अम्लानानि म्लानिरहितानि माल्यदामानि पुष्पमालाः यस्यां सा तथा
ताम्, म्लानपुष्पमालाः निःसार्य अभिनवाः २ दीयन्ते इत्यर्थः (प्रमुदितप्रक्री-
डितसपुरजनजानपदामिति) तत्र प्रमुदिताः सानन्दाः प्रक्रीडिताः क्रीडितुमारब्धा
सपुरजनाः अयोध्यावासिजनसहिताः जनपदाः कोशलदेशवासिनो जना यत्र सा तथा
ताम्, विजयवैजयिकीमिति, तत्र अतिशयेन विजयो विजय-विजयः स प्रयोजनं यस्यां
सा तथा ताम् अस्मिन्नायुधरत्ने सम्यगाराधिते सति तत् रत्नं मदभीष्ट मनोरथं महाविज-
यरूपं सर्वथा साधयिष्यतीति बुद्ध्या विजय प्रयोजनमुक्त्वा अष्टादिकां महामहिमां कुरुतेति
(तए णं ताओ अट्टारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रन्ना एवं बुत्ताओ समाणीओ हट्टाओ
जाव विणएणं पडिसुणेंति) ततः खलु ता अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणयः भरतेन राज्ञा एवमुक्ताः
सत्यः हूष्टाः यावद् विनयेन प्रतिशृण्वन्ति, अत्र यावत्पदात् करतलपरिगृहीतं दशनखं

उत्सव के समय हृष्ट उधर लटक्यायी जावे वे म्लान न होने पावे “पमुदम पक्कीलिम सपुरजण-
जाणवयं” हर एक विनितावासी जन इम उत्सव में मुदित मन बन कर कोशल देश वासियों के
साथ २ नाना प्रकार की क्रीडाएँ करे “विजयवेजङ्गं” ऐसे इस अष्टादिका महोत्सव की इस
आयुधरत्न की अच्छी तरह से आराधना करने के निमित्त आयोजना करो । क्योंकि यह आयु
धरत्न अब सम्यक् प्रकार से आराधित हो जावेगा तो नियम से वे इससे मुझे इच्छित विजय रूप
फलकी प्राप्ति होजावेगी । इस प्रकार से व्यवस्था करके फिर हमने आपकी आज्ञानुसार इस
महोत्सव सफल करने की व्यवस्था करली है ऐसी शीघ्र ही खबर हमे दो (तएण ताओ अट्टारस
सेणिप्पसेणीओ भरहेण रन्ना एव बुत्ताओ समाणीओ हट्टाओ जाव विणएण पडिसुणेंति) इस
प्रकार से भरत राजा के द्वारा कहे गये वे श्रेणि प्रश्रेणिरूप प्रजाजन हर्ष से बहुत अधिक आन-
न्दित हुए सतुष्ट हुए एव भरत राजा की आज्ञा को उन्हाने विना अनुनय किए स्वीकार
लिया स्वीकार करते समय उन सबने दौनो हाथो को बड़ी विनय के साथ जोडो यहा पर

आवे कर्त्तार पासेथी कर्त्त आपनार भाषस पोताना ऋषुणी वसूलात करना भाटे विवाह
करे नहि-पणु ते द्रव्य मारी पासेथी लधने आपी हे अने आ प्रभाणे ते उगडाने अंत
थाय विवासिनीओना नाटकीय पुरुषो वडे अये उत्सवमा उत्तम धार्मिक नाटके बनववामां
आवे अये उत्सवने लेवा भाटे धणुा लोके आवे रात-दिवस अये उत्सवमा मृद ग-ध्वनि थते।
रहे अये भाणाओने उत्सवमां आभतेम लटकाववामां आवे ते म्लान थाय नहि (पमुदमप-
क्कीलिम सपुरजणजाणवयं) हरेक विनितावासीजन अये उत्सवमां मुदित मनवाणे। थधने
देशलदेशवासीओनी साथे साथे अनेकविध डीडाओ करे (विजय वेजङ्गं) आ प्रभाणे अअष्टादिके
भङ्गेत्सवथी अये आयुध २ लनी सारी रीते आराधना करवा भाटे आयोजना करे। केभके अये आयु-
धरत्न न्यारे सारी रीते आराधित थधं जशे त्यारे नियमथी ओना वडे अने धम्मिष्ठत विजय इप
क्षणनी प्राप्ति थधं जशे आ प्रभाणे व्यवस्था करीने पछी व्यवस्था थर्ष गयानी अने अणर
आये। (त एण ताओ अट्टारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रन्ना एव बुत्ताओ समाणीओ
हट्टाओ जाव विणएणं पडिसुणेंति) आ प्रभाणे भरत राज वडे आरापित थयेला ते श्रेणि
प्रश्रेणि इप प्रमजन हर्षथि अत्यधिक आन हित थया, अंतुष्ट थया अने भरत राजनी
आज्ञाने तेभणे वगर केधं थणु नतनी आना डानीओ स्वीकारी लीधी आज्ञा स्वीकार करती

शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वेति ग्राह्यम् विनयेन प्रतिश्रुण्वन्ति विनयपूर्णिं रामात्रप्तिका स्वीकुर्वन्ति इत्यर्थः (पडिसुणित्ता) प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य (भरहस्स अतियाओ पडिणिक्खमैति) भरतस्य राज्ञः अन्तिकत्वात् समीपात् प्रतिनिष्कामन्ति निर्गच्छन्ति 'परिणिक्खमिच्चा' प्रतिनिष्काम्य-निर्गम्य (उम्मुक्कं उक्करं जाव करेति य कारवेति य) उच्छुल्काम् उत्तरां यावत्कुर्वन्ति च कारयन्ति च भरताजानुसारेण । (करेत्ता कारवेत्ता) कृत्वा कारयित्वा च (जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) यत्रैव भरतो राजा तत्रोपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) यावत् ताम् आज्ञप्तिकाम् आज्ञां प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्तीति ॥ सू० ४ ॥

यावत्पद से (करतलपरिगृहीत दशनख शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा) ऐसा पाठ सप्रहीत हुआ है । (पडिसुणित्ता) भरत राजा की आज्ञा को स्वीकार करके (भरहस्स रण्णो अतियाओ पडिणिक्खमैति) फोर वे सबके सब भरत राजा के पाससे वापिस अपने स्थान पर लौट आग (पडिणिक्खमिच्चा उम्मुक्कं उक्करं जाव करेति य कारवेति य) लौटकरके उन्होंने भरत राजा की आज्ञानुसार नगरी में अष्टाहिका महोत्सव किया और करवाया जिस प्रकार से इस महोत्सव को उच्छुल्का आदि रूप से व्यवस्था करने को आज्ञा राजाने दी थी वैसी ही वह सब व्यवस्था उन्होंने उस की और करवायी । (करेत्ता कारवेत्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) इस उत्सव को करके और कराके फिर वे जहाँ पर भरत राजा था वहाँ पर आये (उवागच्छित्ता जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) वहाँ आकर हे राजा जैसी आज्ञा महोत्सव करने कराने की आपने दी थी उसी के अनुसार हमलोगो ने उसे किया है और कराया है ऐसी खबर उन्होंने राजा को आकर के देदी ॥ ४ ॥

वअने तेभण्णे पोताना अन्ने हाथेथी सविनय प्रभाण्णु कर्था, अह्मी यावत् पक्षी (करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा) अवे पाठ सप्रहीत थये छे (पडिसुणित्ता) भरत राजानी आज्ञाने स्वीकार करीने (भरहस्सरण्णो अतियाओ पडिणिक्खमैति) पक्षी तेण्णे सवे भरत राजा पासेथी पाछा पोत-पोताना स्थान पर आवी गया (पडिणिक्खमिच्चा उम्मुक्कं उक्कर जाव करेति य कारवेति य) पाछा करीने तेभण्णे भरतराजानी आज्ञा सुश्रुण्व नगरीमा अष्टाहिका महोत्सव अज्जये, अने अज्जवाये, जे प्रभाण्णे अवे महोत्सवनी उच्छुल्क वगेरे रुपथी व्यवस्था करवानी अज्ञा राजाअवे आपी हुती तेवी ज व्यवस्था तेभण्णे ते उत्सवमां करी अने करवडावी (करेत्ता कारवेत्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) अवे उत्पवने अज्जवावी ने पक्षी ज ॥ ते भरत राजा हुने त्या आण्था (उवागच्छित्ता जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) त्या आवीने तेभण्णे राजाने आ प्रभाण्णे अज्ज आपी के हे राजा महोत्सव अज्जववानी जेवी आज्ञा आपथीजे आपी हुती ते सुश्रुण्व अओजे ते महोत्सव अज्जये छे, अने अज्जवाये छे ॥ ४ ॥

कलाकौशलदर्शनार्थमूर्ध्वं क्षिप्ता मृदङ्गा यस्यां सा तथा ताम् । अम्लानमाल्यदाम्नी-
मिति तत्र अम्लानानि म्लानिरहितानि माल्यदामानि पुष्पमालाः यस्यां सा तथा
ताम्, म्लानपुष्पमालाः निःसार्य अभिनवाः २ दीयन्ते इत्यर्थः (प्रमुदितप्रक्री-
डितसपुरजनजानपदामिति) तत्र प्रमुदिता सानन्दाः प्रक्रीडिताः क्रीडितुमारब्धा
सपुरजनाः अयोध्यावासिजनसहिताः जनपदाः कोशलदेशवासिनो जना यत्र सा तथा
ताम्, विजयवैजयिकीमिति, तत्र अतिशयेन विजयो विजय-विजयः स प्रयोजनं यस्यां
सा तथा ताम् अस्मिन्नायुधरत्ने सम्यगाराधिते सति तत् रत्नं मदभीष्ट मनोरथं महाविज-
यरूपं सर्वथा साधयिष्यतीति बुद्ध्या विजय प्रयोजनमृत्त्वा अष्टाहिकां महामहिमां कुरुतेति
(त ए ण ताओ अट्टारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रन्ना एवं बुत्ताओ समाणीओ हट्टाओ
जाव विणएणं पडिसुणेंति) ततः खलु ता अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणयः भरतेन राज्ञा एवमुक्ताः
सत्यः ह्रूष्टाः यावद् विनयेन प्रतिशृण्वन्ति, अत्र यावत्पदात् करतलपरिगृहीतं दशनखं

उत्सव के समय इधर उधर लटकायी जावे वे म्लान न होने पावे “पमुद्म पक्कीलिअ सपुरजण-
जाणवयं” हर एक विनितावासी जन इम उत्सव में मुदित मन बन कर कोशल देश वासियों के
साथ २ नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करे “विजयवेजइयं” ऐसे इस अष्टान्हिका महोत्सव की इस
आयुधरत्न की अच्छी तरह से आराधना करने के निमित्त आयोजना करो । क्योंकि यह आयु
धरत्न अब सम्यक् प्रकार से आराधित हो जावेगा तो नियम से वे इससे मुझे इच्छित विजय रूप
फलकी प्राप्ति होजावेगी । इस प्रकार से व्यवस्था करके फिर हमने आपकी आज्ञानुसार इस
महोत्सव सफल करने की व्यवस्था करली है ऐसी शीघ्र ही खबर हमे दो (तएण ताओ अट्टारस
सेणिप्पसेणीओ भरहेण रन्ना एव बुत्ताओ समाणीओ हट्टाओ जाव विणएणं पडिसुणेंति) इस
प्रकार से भरत राजा के द्वारा कहे गये वे श्रेणि प्रश्रेणिरूप प्रजाजन हर्ष से बहुत अधिक आन-
न्दित हुए सतुष्ट हुए एव भरत राजा की आज्ञा को उन्होंने बिना अनुनय किए स्वीकार
लिया स्वीकार करते समय उन सबने दोनो हाथो को बड़ी विनय के साथ जोडो यहा पर

आवे कर्त्तार पासेथी कर्त्त आपनार भावस पोतानः ऋण्णी वसूलात् करना भाटे विवाह
करे नहि-पणु ते द्रव्य भारी पासेथी लधने आपी हे अने आ प्रभाणु ते अगडाने अंत
थाय विवासिनीओना नाटणीय पुरुषो वडे ओ उत्सवमा उत्तम धार्मिक नाटके बनववामां
आवे ओ उत्सवने लेवा भाटे धणु लोके आवे रात-द्विस ओ उत्सवमा मृद ग-ध्वनि थते।
रडे ने भाणाओने उत्सवमा आभतेम लटकाववामां आवे ते म्लान थाय नहि (पमुद्मप-
क्कीलिअ सपुरजणजाणवयं) दरेक विनितावासीजन ओ उत्सवमां मुदित मनवाणे। यधने
देशदेशवासीओनी साथे साथे अनेकविध क्रीडाओ करे (विजय वेजइयं) आ प्रभाणु अअष्टाहिकां
महोत्सवथी ओ आयुध २ तनी सारी रीते आराधना करवा भाटे आयोजना करे। केभडे ओ आयु-
धरत्न ज्यारे सारी रीते आराधित थध जशे त्यारे नियमथी ओना वडे भने धम्मिअ विजय रूप
इण्णी प्राप्ति थध जशे आ प्रभाणु व्यवस्था करीने पछी व्यवस्था थर्ष गयानी अने अगड
आथे। (त ए ण ताओ अट्टारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रन्ना एव बुत्ताओ समाणीओ
हट्टाओ जाव विणएणं पडिसुणेंति) आ प्रभाणु भरत राजा वडे आज्ञापित थओदा ते श्रेणि
प्रश्रेणि रूप प्रमज्जन हर्षथि अत्यधिक आन हित थया, सतुष्ट थया अने भरत राजानी
आज्ञाने तेभणु वगर केरि थणु जतनी आना कानीओ स्वीकारी लीथी। आज्ञा स्वीकार करती

शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वेति ग्राह्यम् विनयेन प्रतिश्रुण्वन्ति विनयपूर्विरामाज्ञप्तिरिति स्वीकुर्वन्ति इत्यर्थः (पडिसुणिता) प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य (भरहस्स अतियाओ पडिणिकखमैति) भरतस्य राज्ञः अन्तिकत् समीपात् प्रतिनिष्कामन्ति निर्गच्छन्ति 'परिणिक्ख-मिता' प्रतिनिष्कम्य-निर्गम्य (उम्मुक्कं उक्कर जाव करेति य कारवेति य) उच्छुल्काम् उत्तरां यावत्कुवेनि च तारयन्ति च भरताज्ञानुपारेण । (करेत्ता कारवेत्ता) कृत्वा कार-यित्वा च (जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) यत्रैव भरतो राजा तत्रोपागच्छन्ति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) यावत् ताम् आज्ञप्तिकाम् आज्ञां प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्तीति ॥ सू० ४ ॥

यावत्पद से (करतलपरिगृहीत दशनख शिरसावर्तं मस्तके अंजलिं कृत्वा) ऐसा पाठ समझीत हुआ है । (पडिसुणिता) भरत राजा की आज्ञा को स्वीकार करके (भरहस्स रणो अतियाओ पडिणिकख-मैति) फौर वे सबके सब भरत राजा के पाससे वापिस अपने स्थान पर लौट आण (पडिणिकख-मिता उम्मुक्कं उक्कर जाव करेति अ कारवेति अ) लौटकरके उन्होंने भरत राजा की आज्ञानुसार नगरी में अष्टाहिका महोत्सव किया और करवाया जिस प्रकार से इस महोत्सव को उच्छुल्का आदि रूप से व्यवस्था करने को आज्ञा राजाने दी थी वैसी ही वह सब व्यवस्था उन्होंने उस की और करवायी । (करेत्ता कारवेत्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) इस उत्सव को करके और कराके फिर वे जहाँ पर भरत राजा था वहाँ पर आये (उवागच्छित्ता जाव तमा-णत्तियं पच्चप्पिणंति) वहाँ आकर हे राजा जैसी आज्ञा महोत्सव करने कराने की आपने दी थी उसी के अनुसार हमलोगो ने उसे किया है और कराया है ऐसी खबर उन्होंने राजा को आकर के देदी ॥ ४ ॥

वभते तेमण्णे पोताना अन्ने ह्यथेथी अविनय प्रभाण्णु कथां अह्मी यावत् पथी (करतल-परिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अंजलिं कृत्वा) अवे पाठ समझीत थये छे (पडिसु-णिता) भरत राजानी आज्ञाने स्वीकर करीने (भरहस्सरणो अतियाओ पडिणिकखमैति) पथी तेण्णे अवे भरत राजा पासथी पाछा पोत-पोताना स्थान पर आवी गया. (पडि-णिकखमिता उम्मुक्कं उक्कर जाव करेतिअ कारवेतिअ) पाछा करीने तेमण्णे भरतराजानी आज्ञा सुण्ण नगरीमा अष्टाहिका महोत्सव अण्णये अने अण्णवाण्णे, जे प्रभाण्णे अवे महोत्सवनी उम्मुक्क वगेरे इथथी व्यवस्था करवानी अज्ञा राजाअवे आपी हुती तेवी जे व्यवस्था तेमण्णे ते उत्सवमां करी अने करवावावी (करेत्ता कारवेत्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) अवे उत्पवने अण्णवावी ने पथी ज॥ ते भरत राजा हुने त्था आण्णा (उवागच्छित्ता जाव तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) त्यां आवीने तेमण्णे राजाने आ प्रभाण्णे अण्णर आपी के हे राजा महोत्सव अण्णवानी जेवी आज्ञा आपथीजे आपी हुती ते सुण्ण अण्णे ते महोत्सव अण्णये छे, अने अण्णवाण्णे छे ॥ ४ ॥

अथ अष्टाह्निका महामहिमा समाप्त्यनन्तर किमभवदित्याह—“तए णं” इत्यादि ।

मूलम्—तएणं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्ख-
मिक्खा अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहरससंपरिवुडे दिव्वत्तुडियसइसण्णि-
णाएणं आपूरेते चेव अंबरतलं विणीयाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं
णिगच्छइ णिगच्छिता गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलणं पुरत्थिमं
दिस्सि मागहतित्थाभिमुहे पयाते आविहोत्था, तएणं से भरहे राया
तं दिव्वं चक्करयणं गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलणं पुरत्थिमं दिस्सि
मागह तित्थाभिमुहं पयातं पासइ पासेत्ता हट्टतुट्ट जाव हियए कोडुंबिय-
पुरिसे सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभि
सेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवरजोहकलियं चाउरगिणि सेणं
सण्णाहेह, एतमाणत्तियं पच्चप्पिणह, तएणं ते कोडुंबिय जाव पच्चप्पि-
णंति, तएणं से भरहे राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवा-
गच्छिता मज्जणघरं अ पविसइ, अणुपविसेत्ता समुत्तजालाभिरामं
तहेव जाव धवलमहामेह णिग्गाए इव ससिक्ख पियदंसणे णरवई मज्ज
णघराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमिक्खा हयगयरहपवरवाहणभट्टचड-
गरपहकर संकुलाए सेणाए पहिअकिट्टी जेणेव वाहिरिआ उवट्टाणसाला
जेणेव अभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता अंजण
गिरिकडगसण्णिभं गयवइं णरवई दुरुढे । तएणं से भरहाहिवे
णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे कुंडलउज्जोइआणणे मउडदित्त-
सिरए णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मरुयरायवसभकप्पे अब्भ
हिय रायतेअलच्छीए दिप्पमाणे पसत्थ मंगलसएहिं संथुव्वमाणे
जयसइकयालोए हत्थिखंधवग्गाए मकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्ज-
माणेणं सेयवर चामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं २ जक्ख सहस्ससंपरिवुडे
वेसमणि चेव धणवई अमर वइसण्णिभाइ इट्ठीए पहियकित्तो गंगाए

महाणईए दाहिल्लेणं क्लेणं गामागरणगरखेडकञ्चडमंडव दोण-
मुहंपट्टणासमसंवाहसहस्समंडिय थिमियमेइणीयं वसुहं अभिजिण-
माणे २ अग्गाइं वराइं स्यणाइं पडिच्छमाणे २ तं दिव्वं चक्करयणं
अणुगच्छमाणे २ जोयणंतरियाहि वसहोहि वसमाणे २ जेणेव मागह-
तित्थे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मागहतित्थस्स अदरसामंते
दुवालसजोयणायामं णव जोयणविच्छिण्णं वरणगरसरिच्छं विजय-
खंधावारनिवेसं करेइ करित्ता वड्डइरयणं सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी
रिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! ममं आवासं पोसहसालं च करेइ करित्ता
ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि तए णं से वड्डइरयणे भरहेणं रण्णा एवं
ते समाणे हड्डतुड्ड चित्तमाणंदिए पीइमणे जाव अंजलिं कट्टु एवं सामी
तहत्ति आणाए विणएण वयणं पडिसुणेइ पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णे-
आवसहं पोसहं सालं च करेइ करित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पि-
णंति, तएणं से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चो-
रुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता
पोसहसालं अणुपविसइ अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ पमज्जित्ता
दब्भसंथारगं संथरइ संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ दुरुहित्ता मागह-
तित्थकुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगिण्हइ पगिण्हित्ता पोसहसालाए
पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववयगमालावण्णगविलेवणे
णिक्खित्तसत्थमुसले दब्भसंथारोवगए एगे अबीए अट्टमभत्तं पडिजा-
गरमाणे २ विहरइ । तएणं से भरहे राया अट्टमभत्तंसि परिण-
ममाणंसि पोसह सालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया
उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कोडुवियपुरिसे सदावेइ
सदावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया हयगयरह पव-
रजोहकलियं चाउरगिणिं सेणं सण्णाहेह चाउग्घंटं आसरहं पडिक-
प्पेह तिट्टुक मज्जणघरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता समुत्त तहेव जाव

धवलमहामेहणिग्गए जाव मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमिन्ता
हयगयरहपवरवाहण जाव सेणावइ पहियकित्ती जेणेव बाहिरिया उवडा-
णसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरेहे तेणेव उवागच्छइ उवाग-च्छित्ता
चाउग्घंटे आसरेहं दुरुहे ॥ सू० ५ ॥

छाया—ततः खलु तद्विष्य चक्ररत्नम् अष्टाहिकायां महामहिभार्या निर्वृतायां सत्याम्
आयुधगृहशालात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य अन्तरिक्षं प्रतिपन्नं यक्षसहस्रसंपरि-
वृतम्, दिव्यवृष्टिनशब्दसन्निनादेन आपूरय दिवास्वरतलं विनीताया राजधान्या. मध्य-
मध्येन निर्गच्छति निर्गत्य गङ्गाया महानद्या दाक्षिणात्येन कूलेन पौरस्थां दिशं मागध-
तीर्थाभिमुखं प्रयातं अप्यभवत्, ततः खलु स भरतो राजा त दिव्य चक्ररत्नं गङ्गाया
महानद्या दाक्षिणात्येन कूलेन पौरस्थां दिशं मागधतीर्थाभिमुखं प्रयात पश्यति, दृष्ट्वा दृष्ट-
तुष्ट यावद्भूदय' कौटुम्बिकपुरषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवा-
नुप्रियाः ! आभिषेक्य हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयन् हयगजरथप्रवरयोधकलितां चातुरङ्गिणीं
सेनां सन्नाहयत्, पतामाहसिकां प्रत्यर्पयत्, ततः खलु ते कौटुम्बिक यावत् प्रत्यर्पयन्ति,
ततः खलु स भरतो राजा यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य मज्जनगृहम् अनु-
प्रविशति अनुप्रविश्य समुक्जालाभिरामं तथैव यावत् धवलमहामेघ निर्गत इव शशीव
प्रियदर्शनो नरपति. मज्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य हयगजरथप्रवरवाहन 'चउगर
पहकरत्ति' विस्तारबृन्दसंकुलया सेनया प्रथितकीर्तिं यत्रैव वाहिरिका उपस्थानशाला यत्रै-
वाभिषेक्यं हस्तिरत्न तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अज्जनगिरिकटकसन्निभं गजपति नरपति
दुरुहे । तत खलु स भरताधिपो नरेन्द्रः द्वारावस्तृतसुकुतरतिद्वक्षस्कः कुण्डलोद्
द्योतितानन' मुकुटदीप्तशिरस्कः नरसिंहो नरपति नरेन्द्रो नरचूषभः मरुद्राजवृषभकल्पः
अभ्यधिकराजतेजो लक्ष्म्या दीप्यमान प्रशस्तमङ्गलशतैः संस्तूयमानः जयशब्दकृतालोक
हस्तिस्कन्धवरगतः सकोरुण्टमाल्यदास्ना छत्रेण ध्रियमाणेन इत्रैतवरचामरैरुद्वयमानैः २ पक्ष
सहस्रसंपरिवृत' वैश्रमणइव घनपति. अमरपतेः सन्निभया ऋद्ध्या प्रथितकीर्तिः गङ्गाया
महानद्या' दाक्षिणात्ये कूले ग्रामाकरनगरस्यैष्ट कर्बट मडम्ब द्रोणमुख पत्तनाऽऽश्रमसंवाह-सह-
स्रमण्डितां स्तिमितमेदनीकां वसुधाम् अभिजयन् अभिजयन् अग्राणि वराणि रत्नानि प्रती-
च्छन् २ तद्विष्यं चक्ररत्नम् अनुगच्छन् अनुगच्छन् योजनान्तरिताभिर्वसतिभिर्वसन् वसन्
यत्रैव मागधतीर्थं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य मागधतीर्थस्याऽदूरसामन्ते द्वादशयोजनायामं
नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशं विजयस्कन्धावारनिवेशं करोति कृत्वा वर्द्धकिरत्न
शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ममावासं पौषघ i च कुरु
कृत्वा मम पतामाहसिकां प्रत्यर्पय, ततः खलु स वर्द्धकिरत्नो भरतेन राज्ञा पवमुक्तः सन्
दृष्टुष्ट चित्तानन्दितः प्रीतिमनाः यावत् अज्जलिं कृत्वा एवं स्वामिन् तथेति आह्वया
विनयेन वचनं प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य भरतस्य राज्ञः आवास पौषघशालां च करोति,
कृत्वा पतामाहसिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयति, तत खलु स भरतो राजा आभिषेक्यात् हस्ति-
रत्नात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यबद्ध यत्रैव पौषघशाला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य पौषघशाला-
मनुप्रविशति, अनुप्रविश्य पौषघशालां प्रमाज्जयति प्रमाज्ज्यं दर्भसंस्तारकं संसृणाति,

सस्नीर्य दूर्ध्वसस्तारक दुरूहति, दुरूह्य मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टमभक्तं प्रगृणाति, प्रगृह्य पौषधशालायां पौषधिकः ब्रह्मचारी उन्मुक्तमणिसुवर्णं व्यपगतमालाघर्णकविलेपनः निक्षिप्तशस्त्रमुसलः दूर्ध्वसस्तारोपगत एक अद्वितीय अष्टमभक्तं प्रतिजाग्रत् प्रतिजाग्रत् विहरति । ततः खलु स भरतो राजा अष्टमभक्ते परिणमतिपौषधशालातः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव वाहिरिका उपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य कोट्टुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! ह्यगजरथप्रवरयोधकलितां चतुरङ्गिणो सेनां सन्नाहयत चातुर्घण्टम् अध्वरथ प्रतिकल्पयत इति कृत्वा मञ्जनगृह-मनुप्रविशति, अनुप्रविश्य समुक्त तथैव यावत् घवलमहामेघ निर्गतो यावन् मञ्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य ह्यगजरथप्रवरवाहन यावत् सेनापति प्रयितकीर्ति यत्रैव वाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव चातुर्घण्टोऽध्वरथस्तत्रैवोपागच्छति उपागत्य चातुर्घण्टम् अध्वरथ दुरूहे ॥ सू० ५ ॥

टीका—“तए णं” इत्यादि । ‘तए णं से दिव्वे चक्ररयणे अट्टाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ’ ततः तदनन्तरं खलु तद्विष्यं चक्ररत्नम् अष्टाहिकाया महामहिमायां महोत्सवरूपायाम् निवृत्तायां सत्याम् आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति (पडिणिक्खमित्ता) प्रतिनिष्क्रम्य (अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्स संपरिवुडे) अन्तरिक्षप्रतिपन्नं नभः प्राप्तं यक्षसहस्रसंपरिवृतं चक्रधरचतुर्दशरत्नानां प्रत्येक देवसहस्राधिष्ठितत्वात् (दिव्वतुडियसहस्रणिणाएणं आपू-

‘तएणं से दिव्वे चक्ररयणे अट्टाहियाए महामहिमाए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं से दिव्वे चक्ररयणे) इसके बाद वह चक्ररत्न जब की (अट्टाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए) अष्टाहिका महोत्सव अच्छी तरह से समाप्त हो चुका (आउहघरसालाओ) आयुधगृहशाला से (पडिणिक्खमइ) निकला (पडिणिक्खमित्ता) निकलकर वह (अंतलिक्खपडिवण्णे) अन्तरीक्ष आकाश में अधर चलने लगा (जक्ख सहस्ससंपरिवुडे) वह १ हजार यक्षों देवों से घिरा हुआ था क्योंकि चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से प्रत्येक रत्न १

‘ त एणं से दिव्वे चक्ररयणे अट्टाहियाए महामहिमाए’ - इत्यादि सूत्र - ५ ॥

टीकार्थ (त एणं से दिव्वे चक्ररयणे) त्थार भा० ते अकंरत्त न्थारे (अट्टाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए) अष्टाहिका महोत्सव सारी रीते सम्पन्न थइ थूथे (आउहघरसालाओ) आयुध गृहशालाथी (पडिणिक्खमइ) नीकथु (पडिणिक्खमित्ता) नीकजाने ते (अंतलिक्खपडिवण्णे) अतरीक्ष आकाशमा अद्धर आलवा दागुथु (जक्ख सहस्ससंपरिवुडे) ते अकं डणर थुथे-देवेथी पविट्ठ डण्णं, केअके अकवतीना थतुदंश रत्तेभांथी इरेक रत्त अकं डणर देवेथी अधिष्ठित डोय थे (दिव्वतुडिय सहस्रणिणाएणं आपूरे) ते चैव अंवरत्तं विणीयाए रायहाणीए मञ्जं मञ्जेणं

धव महामेहणिग्गए जाव मज्जणघराओ पडिणिक्वमइ पडिणिक्वमित्ता
ह्यगयरहपवरवाहण जाव सेणावइ पहियकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्टा-
णसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरेहे तेणेव उवागच्छइ उवाग-च्छित्ता
चाउग्घंटे आसरेहं दुरूहे ॥ सू० ५ ॥

छाया—ततः खलु तद्विव्य चक्ररत्नम् अष्टाद्विकायां महामहिमायां निर्वृतायां सत्याम्
आयुधगृहशालात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य अन्तरिक्षं प्रतिपन्नं यक्षसहस्रसंपरि-
वृतम्, दिव्यवृष्टिनशब्दसन्निनादेन आपूरय दिवाम्बरतल विनीताया राजधान्या मध्य-
मध्येन निर्गच्छति निर्गत्य गङ्गाया महानद्या दक्षिणात्येन कूलेन पौस्त्यां दिशं मागध-
तीर्थाभिमुखं प्रयातं अप्यभवत्, ततः खलु स भरतो राजा त दिव्य चक्ररत्नं गङ्गाया
महानद्या दक्षिणात्येन कूलेन पौरस्त्यां दिशं मागधतीर्थाभिमुखं प्रयातं पश्यति, दृष्ट्वा दृष्ट-
तुष्ट यावद्धृदयं कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत्—क्षिप्रमेव भो देवा-
नुप्रियाः ! आभिषेक्य हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत ह्यगजरथप्रवरयोधकलितां चातुरङ्गिणीं
सेनां सन्नाहयत, पतामाश्रितिकां प्रत्यर्पयत, ततः खलु ते कौटुम्बिक यावत् प्रत्यर्पयन्ति,
ततः खलु स भरतो राजा यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य मज्जनगृहम् अनु-
प्रविशति अनुप्रविश्य समुक्तजालाभिरामं तथैव यावत् धवलमहामेघ निर्गत इव शशीव
प्रियदर्शनो नरपतिः मज्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य ह्यगजरथप्रवरवाहनं 'चउगर
पहकरत्ति' विस्तारवृन्दसंकुलया सेनया प्रथितकीर्तिः यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला यत्रै-
वाभिषेक्यं हस्तिरत्नं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य अज्जनगिरिकटकलन्निभं गजपतिं नरपतिं
दुरूहे । ततः खलु स भरताधिपो नरेन्द्रः द्वारावस्तृतसुकतरतिद्वक्षस्कः कुण्डलोद्
द्योतिताननं मुकुटदीप्तशिरस्कं नरसिंहो नरपतिं नरेन्द्रो नरवृषभः मरुद्राजवृषभकल्पः
अभ्यधिकराजतेजो लक्ष्म्या दीप्यमान प्रशस्तमङ्गलशतैः संस्तूयमानः जयशब्दकृतालोक
हस्तिस्कन्धवरगतः सकोरण्टमालयदान्ना छत्रेण ध्रियमाणेन इवेतवरचामरैरुद्धयमानैः २ पक्ष
सहस्रसंपरिवृत वैश्रमणश्च घनपतिः अमरपतेः सन्निभया ऋद्धया प्रथितकीर्तिः गङ्गाया
महानद्या दक्षिणात्ये कूले ग्रामाकरनगरपेटे कर्बट मडम्ब द्रोणमुख पत्तनाऽऽश्रमसंवाहसह-
स्रमण्डितां स्तिमितमेदनीका वसुधाम् अभिजयन् अभिजयन् अग्र्याणि वराणि रत्नानि प्रती-
च्छन् २ तद्विव्यं चक्ररत्नम् अनुगच्छन् अनुगच्छन् योजनान्तरिताभिर्वसतिभिर्वसन् वसन्
यत्रैव मागधतीर्थं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य मागधतीर्थस्याऽदूरसामन्ते द्वादशयोजना
नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशं विजयस्कन्धावारनिवेशं करोति कृत्वा वर्द्धकिरत्न
शब्दयति शब्दयित्वा एवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ममावासं पौषधं । च कुरु
कृत्वा मम पतामाश्रितिकां प्रत्यर्पय, ततः खलु स वर्द्धकिरत्नो भरतेन राज्ञा एवमुक्तः सन्
दृष्टुष्ट चित्तानन्दितः प्रीतिमना यावत् अब्जलिं कृत्वा एव स्वामिन् तथेति आज्ञाया
विनयेन वचनं प्रतिश्रुणोति, प्रतिश्रुत्य भरतस्य राज्ञः आवास पौषधशालां च करोति,
कृत्वा पतामाश्रितिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयति, ततः खलु स भरतो राजा आभिषेक्यात् हस्ति-
रत्नात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति उपागत्य पौषधशाला-
मनुप्रविशति, अनुप्रविश्य पौषधशालां प्रमार्जयति प्रमार्ज्यं वर्ध्मसंस्तारकं संस्वणाति,

संस्तीर्य दूर्भसंस्तारकं दुरूहति, दुरूह्य मागघतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति, प्रगृह्य पौषघशालायां पौषधिकः ब्रह्मचारी उन्मुक्तमणितुवर्णं द्यपगतमालावर्णकचिलेपनः निक्षिप्तशस्त्रमुसलः दूर्भसंस्तारोपगत एक अद्वितीय अष्टमभक्तं प्रतिजाग्रत् प्रतिजाग्रत् विहरति । ततः खलु स भरतो राजा अष्टमभक्ते परिणमतिपौषघशालातः प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया ! ह्यगजरथप्रवरयोघकलितां चतुरङ्गिणो सेनां सन्नाहयत चातुर्घण्टम् अश्वरथं प्रतिकल्पयत इति कृत्वा मञ्जनगृहमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य समुक्त तथैव यावत् घवलमहामेघ निर्गतो यावत् मञ्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य ह्यगजरथप्रवरवाहन यावत् सेनापति प्रथितकीर्ति यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला यत्रैव चातुर्घण्टोऽश्वरथस्तत्रैवोपागच्छति उपागत्य चातुर्घण्टम् अश्वरथं दुरूहे ॥ सू० ५ ॥

टीका—“तए णं” इत्यादि । ‘तए णं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउह्वरसालाओ पडिणिक्खमइ’ ततः तदनन्तरं खलु तदिव्यं चक्ररत्नम् अष्टाहिकायां महामहिमायां महोत्सवरूपायाम् निर्वृत्तायां सत्याम् आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति (पडिणिक्खमिच्चा) प्रतिनिष्क्रम्य (अंतलिक्खपडिणणे जक्खसहस्स संपरिवुडे) अन्तरिक्षप्रतिपन्नं नभः प्राप्तं यक्षसहस्रसंपरिवृतं चक्रधरचतुर्दशरत्नानां प्रत्येक देवसहस्राधिष्ठितत्वात् (दिव्वतुडियसहसण्णिणाएणं आपू-

‘तएणं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए’ इत्यादि ।

टीकार्थ—(तएणं से दिव्वे चक्करयणे) इसके बाद वह चक्ररत्न जब की (अट्टाहियाए महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए) अष्टाहिका महोत्सव अच्छी तरह से समाप्त हो चुका (आउह्वरसालाओ) आयुधगृहशाला से (पडिणिक्खमइ) निकला (पडिणिक्खमिच्चा) निकलकर वह (अंतलिक्खपडिणणे) अन्तरीक्ष आकाश में अघर चलने लगा (जक्ख सहस्ससंपरिवुडे) वह १ हजार यक्षों से घिरा हुआ था क्योंकि चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से प्रत्येक रत्न १

‘त एणं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए’ - इत्यादि सूत्र - ५ ॥

टीकार्थ (त एणं से दिव्वे चक्करयणे) त्थार भाद ते य्कंरत्तं न्थारे (अट्टाहियाए महामहिमाए नि व्त्ताए समाणीए) अष्टाहिका महोत्सव सारी रीते सम्पन्न थर्धं य्कथे। (आउह्वरसालाओ) आयुध गृहशालाथी (पडिणिक्खमइ) नीकंथु (पडिणिक्खमिच्चा) नीकणाने ते (अंतलिक्खपडिणणे) अंतरीक्ष आकाशमा अद्धर थालवा लात्थु (जक्ख सहस्ससंपरिवुडे) ते येकं ह्णर थ्क्षे-हेवेथी परिवृत्तं ह्तुं, केभके य्कवतीं ना थत्तुहंश रत्तेभांथी हरेक रत्तं येकं ह्णर हेवेथी अधिष्ठित होथे छे (दिव्वतुडिय सहसंणिणाएणं आपूरे ते चैव अंबरतलं विणीयाए रायहाणीए मञ्जं मञ्जेणं

रेंते चेव अंवरतलं विणीयाए रायहाणोए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ) दिव्यत्तुटितशब्द सन्निनादेन दिव्यानां देवकृतानां त्रुटितानां तूर्याणां वाद्यविशेषाणां यः शब्दो-ध्वनिः यश्च सङ्गतो निनादः प्रतिध्वनिस्तेन आपूरयदिवाम्बरतलं शब्दव्याप्तं नभः कुर्वदिवे-त्यर्थः विनीतायाः राजधान्याः मध्यं मध्येन-मध्यदेशभागेन निर्गच्छति (णिगच्छत्ता) निर्गत्य (गंगाए महाणइए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिंसि मागहत्तित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था) गङ्गायाः-गङ्गानाम्ब्याः महानधाः दाक्षिणात्ये दक्षिणभागवर्त्तिनि कूले-समुद्र-पार्श्ववर्त्तिनि तटे इत्यर्थः उभयत्र णं शब्दो वाक्यालंकारे अयं भावः विनीता समश्रेणी हि पूर्वदिशि वहन्ती गङ्गा मागधतीर्थस्थाने पूर्वसमुद्रं प्रविशति तच्च तटं दक्षिणभागवर्त्तित्वेन दाक्षिणात्यमिति व्यवह्रियते । अतएव दाक्षिणात्येन कूलेन पौरस्त्यां पूर्वां दिशं मागधती-र्थाभिमुखं प्रयातं चलितम् अप्यासीत् (तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयणं गंगाए महाणइए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिंसि मागहत्तित्थाभिमुह पयातं पासइ) ततः

हजार देवों से अधिष्ठित होता है । (दिव्यत्तुटियसदसण्णिणाएणं आपूरेंते चेव अंवरतलं विणी-याए रायहाणोए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ) उस समय अम्बरतल दिव्यवाजों के निनाद एवं प्रतिनिनादों से गूंज रहा था अतएव ऐसा प्रतीत होता था कि मानों यह चक्ररत्न ही आकाशको शब्द से व्याप्त हुआ जैसा कर रहा है । इस तरह से आकाश में अक्षर चलता हुआ वह चक्ररत्न विनीता राजधानी के ठीक बीच में से होकर निकल (णिगच्छत्ता) निकलकर वह (गंगाए महाणइए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिंसि मागहत्तित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था) गंगामहानदी के दक्षिणदिशावर्ती कूल से होता हुआ पूर्वदिशा को ओर रहे हुए मागधतीर्थ की तरफ चला । यहा सूत्र में दोनों "णं" वाक्यालंकार में प्रयुक्त हुए हैं । विनीता की समश्रेणि में पूर्वदिशा की ओर वहती हुई गंगा मागधतीर्थ स्थान में पूर्व समुद्र में गिरती है अतः वह तट-दक्षिण भागवर्ती होने के कारण (दाक्षिणात्य) इस पद से व्यवहृत हुआ है । इसी कारण यहाँ ऐसा कहा गया है (तएणं से भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयणं गंगाए महाणइए दाहिणिल्लेणं कूलेणं

णिगच्छइ) ते वभते अ भर तण दिव्य वाज्जेना निनाद अने प्रतिनिनादोथी शु जित धरं रद्धुं हुत्तुंओथी ओवु दागतुं हुत्तुं के नल्ले ओ अक्षरत्न न आकाशने शण्हित करी रद्धुं छे आ प्रभावे आकाशमां अक्षर आलतुं ते अक्षरत्न विनीता राजधानीनी ठीक वच्चे धरने पसार थयु 'णिगच्छत्ता' पसारधरने ते (गंगाए महाणइए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिंसि मागहत्तित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था) गंगा महानदीनी दक्षिण दिशा-तरङ्गना किना राथी पसार थतुं पूर्वं दिशा तरङ्गना मागध तीर्थ तरङ्ग आलवा दाग्युं अही सूत्रमां अने 'णं' वाक्यालंकारमां प्रयुक्त थयेल छे विनीतानी समश्रेणिमां पूर्वं दिशा तरङ्ग वडैती गंगा मागध तीर्थस्थानमां पूर्वसमुद्रमां भणे छे ओथी ते तट दक्षिण भागवती होवा अहल "दाक्षिणात्य" ओ पदथी व्यवहृत थयेल छे ओथी न अही आ प्रभावे कडेवाभा आण्युं छे (तएणं से भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयणं गंगाए महाणइए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुर-त्थिमं दिंसि मागहत्तित्थाभिमुहं पयातं पासइ) अतः राज्ञे न्यारे ते दिव्य अक्षरत्नने गंगा

खलु स भरतो राजा तद्विष्य चक्ररत्नं गङ्गाया महानद्या दाक्षिणात्येन कूलेन पौरस्त्या-
पूर्वां दिशं मागधतीर्थाभिमुखं प्रयातं चलितं पश्यति (पासित्ता) दृष्ट्वा (दृष्टुदृ जाव हियए
कोडुबियपुरिसे सदावेइ) हृष्टतुष्ट यावद्दहृदय इति हृष्टतुष्ट श्रित्तानन्दितः परमसौमनस्यितः
हर्षवशविसर्पद्दहृदयः कौटुम्बिकपुरुषान् शन्दयति आह्वयति (सदावेत्ता) शन्दयित्वा
(एवं वयासी) एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् कथितवान् (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !
आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिक्कप्पेह) क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! आभिपेक्कयम् अभिपेक्क
योग्यं हस्तिरत्नं पट्टहस्तिनं प्रतिकल्पयत-सज्जीकुरुत (हयगयरहपवरजोहकलियं चाउरं-
गिणिंसेणं सण्णाहेह) हयगजरथप्रवरयोधकलितां चातुरङ्गिणीं सनां सन्नाहयत सज्जी
कुरुत (एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) एतामाज्ञप्तिकाम् आज्ञां प्रत्यर्पयत (तए णं ते कोडुंबिय
जाव पच्चप्पिणंति) ततः खलु ते कौटुम्बिक यावत्प्रत्यर्पयन्ति तथा च ते कौटुम्बिक पुरुषाः

पुरत्थिम् दिशि मागहत्तित्थाभिमुह पयायं पामइ) भरत राजा ने जब उस दिव्य चक्ररत्न को गंगा
महानदी के दक्षिणदिशा के तट से पूर्वदिशाकी ओर वर्तमान मागध-तीर्थकी तरफ से जाता
हुमा देखा तो (पासित्ता) देखकर वह (दृष्टुदृ जाव हियए कोडुंबियपुरिसे सदावेइ) हृष्ट और
तुष्ट हुआ, चित्तमें आनन्दित एव परम सौमनस्यित हुवे उसने हर्ष से उछलते हुए हृदय सपन्न
बनकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुझाया और (सदावेत्ता) बुलाकर उनसे (एव वयासी) ऐसा
कहा-(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिक्कप्पेह) हे-देवानुप्रियो ! तुम लोग
शीघ्र ही अभिषेक योग्य प्रधान हाथी को-पट्ट हाथी-को सुज्जित करो । (हयगयरहपवर जो
हकलियं चाउरंगिणि सेणं सण्णाहेह) तथा-हय-गज-रथ प्रवर-योधायों से युक्त चातुरंगिणीसेना
को सुसज्जित करो । (एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) जैसी आज्ञा यह मैंने तुमको दी है उसके
अनुसार सब काम करके फिर हमें खबर दो । (तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति)
भरत राजा के द्वारा इस प्रकार से आज्ञित हुए वे कौटुम्बिक जन हृष्ट तुष्ट हुए एव चित्त

महानदीना दक्षिण दिशाना तटथी पूर्वा दिशाना तश्च वर्तमान मागध तीर्थं तश्च अर्तुं ज्ञेयुं तो
(पासित्ता) ज्ञेधने ते (दृष्टुदृ जाव हियए कोडुंबिय पुरिसे सदावेइ) हृष्ट अने तुष्ट थयो.
श्रित्तमां आनन्दित तेभञ्च परम सौमनस्यित थर्धने, उपाविष्ट थर्धने कौटुम्बिक पुरुषोने
आज्ञायां अने (सदावेत्ता) आज्ञाधीने तेष्णे (एव वयासी) आ प्रभाण्णे कथुं-(खिप्पामेव भो
देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिक्कप्पेह) उ देवानुप्रियो ! तमे यथाशीघ्र अभि-
षेक योग्य प्रधान हाथीने-पट्टहाथीने सुसज्ज करे। (हयगयरह पवर जोहकलियं चाउ-
रंगिणि सेणं सण्णाहेह तेभञ्च उध-गज-रथ-प्रवर योद्धात्थेथी युक्ता चातुरंगिणी सेनाने
सुसज्ज करे। (एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) जेवी आज्ञा मे तभने करी छे ते सुज्जणं भु
काम सम्पन्न करीने पछी अने सूचना आपो। (त ए णं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव पच्च-
प्पिणंति) भरत राजा वडे आ प्रभाण्णे आज्ञास थयेत्ता ते कौटुम्बिक जनो हृष्ट-तुष्ट थया अने

भरतेन राज्ञा एवं उक्ताः सन्तः हृष्टतृप्तिचित्तानन्दिताः राज्ञोक्तं सर्वमाभिषेक्य हस्तिसेनादि
सज्जीकरणरूपं कार्यं कृत्वा राज्ञे तामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्तीति, (तएणं से भरहे राया
जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) ततः खलु स भरतो राजा यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवो-
पागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (मज्जणघरं अणुपविसइ) मज्जनगृहमनुप्रविशति,
(अणुपविसित्ता) अनुप्रविश्य, (समुत्तजालाभिरामे तद्देव जाव धवलमहामेहणिगणए इव ससि-
व्व पियदसणे णवरई मज्जनघराओ पडिणिकखमइ) समुत्तजालाभिरामे तथैव यावत्
धवलमहामेघ निर्गत इव शशीव प्रियदर्शनो नरपतिः मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति, तत्र
समुक्तेन मुक्ताफल्गुक्तेन जालेन गवाक्षेण अभिरामः सुन्दरो यस्तस्मिन् तथैव यावत्प-
दात् विचित्रमणिरत्नकुट्टिमतले अतएव रमणीये एतादृशविशेषणविशिष्टे स्नानमण्डपे
नानामणिरत्नभक्तिचित्रे स्नानपीठे सुखेनोपविश्य स्नपितः स्नानानन्तरं च धवलमहामे-
घात् स्वच्छशरन्मेघात् निर्गत इव शशीव चन्द्रइव प्रियदर्शनो नरपतिः भरतो राजा मुधा-
धवलीकृतात् मज्जनगृहात्प्रतिनिष्क्रामतीतिभावः (पडिणिकखमित्ता) प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य

में आनन्दित हुए और राजा भरत ने जैसा करने का उन्हे आदेश दिया था वैसा सब
उन्होंने करके पीछे इसकी खबर भरत राजा के पास भेज दी (तएणं से भरहे राया जेणेव
मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद वे भरत राजा जहा पर स्नानगृह था—वहा पर गये
(उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालाभिरामे तद्देव जाव धवल-
महामेहणिगणए इव ससिव्व पियदसणे णवरई मज्जणघराओ पडिणिकखमइ) वहाँ जाकर वे मज्ज-
नगृह में प्रविष्ट हुए। प्रविष्ट होकर वे उस स्नान मंडप में कि जिसकी खबरकियां मुक्ताफल से
खचित हो रही हैं और इसी कारण जो बड़ा मनोरम बना हुआ है, एवं यावत्पदानुसार जो
विचित्र मणिरत्नो की भूमिवाला है रखे हुए नानामणियो की रचनावाले स्नान पीठ पर सुख से
बैठ गये। वहाँ पर उन्होंको अच्छी तरह से स्नान कराया गया स्नान के बाद फिर वे भरत
राजा धवल महामेघ—स्वच्छ शरद काल के मेघ से निर्गत शशी—चन्द्रमा की तरह उस मज्जन-
गृह से बाहर निकले। उस समय वे देखने में बड़े ही सुहावने लग रहे थे। (पडिणिकखमित्ता-

चित्तमा आनन्दितं तथा आने राजा भरते ने प्रमाणे करवाने। तेभने आदेश आये। हतो,
ते अधु-सम्पन्न करीने तेभणे भरत राजानी यासे सूचना भोक्षी (त एणं से भरहे
राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) त्थार भाइ ते भरत राजा तथा स्नान गृहं हंतुं, त्थी
गया। (उवागच्छित्ता जेणेव मज्जणघरं तेणेवयअणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालाभिरामे
तद्देव जाव धवल महामेहणिगणए इव ससिव्व पियदसणे णवरई मज्जणघराओ पडिणि-
कखमई) तथा जेने ते मज्जन गृहमा प्रविष्ट तथा प्रविष्ट थएने ते जेनी पारीये।
मुक्ताफलोथी अचित्ते छे अने ज्येथी ज जे अतीव मनोरम लागे छे तेमज्ज यावत् पदानु-
सार जे विचित्र मणिरत्नोनी भूमिवाणुं छे ज्येवा. मंडपमां भूकेला नाना मण्ज्योथी
अचिन स्नान पीठ उपर सुअपूर्वकं ज्येसी ज्येवा. तथा ते राजने सारी रीते स्नान कराव
वार्मा आण्युं. स्नान कराये। भाइ ते भरत राजा धवल महामेघ—स्वच्छ शरद प्रादीन
मेघथी निर्गत शशी—चंद्र—नी जेभ ते मज्जनगृहमाथी अहार नीकण्या. ते सभये तेज्ये

(हयगयरहपवरवाहणभङ्गचङ्गरपहकरसंकुलाए सेणाः पहियकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छट्) हयगजरथप्रवरवाहनभट्ट-चङ्गरपहकर सकुलया सेनया प्रथितकीर्त्तिः यत्रैव बाह्योपस्थानशाला यत्रैव आभिषेक्यं हस्तिरत्नं तत्रैवोपागच्छति, तत्र हयगजरथाः प्रवराणि वाहनानि भटाः—योद्धारः तेषां (चङ्गरपहकरत्ति) विस्तारवृन्दम् तेन सकुलया व्याप्तया सेनया साद्धं प्रथितकीर्त्तिः विख्यातकीर्त्तिमान् भरतो राजा यत्रैव बाह्योपस्थानशाला यत्रैव च आभिषेक्यम् अभिषेकयोग्यं हस्तिरत्नं पट्टहस्तिवरः तत्रैवोपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (अंजणगिरिकडगसन्निभं गयवईं णरवईं दुरूढे) अञ्जनगिरिकटकसन्निभं गजपतिं नरपतिर्दुरूढे, तत्र अञ्जनगिरेः—अञ्जनपर्वतस्य कटको नितम्बभागः तत्सन्निभं गजपतिं—राजकुञ्जरं नरपतिं भरतो दुरूढे—आरूढ इति ।

अथ गजारूढश्च राजा चक्ररत्न प्रदर्शितमार्गे गच्छति कीदृश्या क्रद्ध्या तदाह—(तए णं से) इत्यादि । (तए णं से भरहादिवे णरिंदे) ततः खलु स भरताधिपो नरेन्द्रः (हारोत्थय सुकयरइयवच्छे) हारावस्तृत सुकृतरतिदवक्षस्कः तत्र हारेण अवस्तृतम् आच्छादितम् अतएव सुकृतं मनोहरं तेनैव हेतुना रतिदं प्रदर्शकजनानामानन्दप्रदं वक्षो यस्य स तथा (कुंडलउज्जोइयाणणे) कुण्डलोद् द्योतिताननः कुण्डलाभ्यामुद्द्योतितं—प्रकाशितम् आननं मुखं यस्य स तथा (मडडदित्तसिरए) सुकृटदीप्तशिरस्कः, सुकृटेन दीप्तं प्रकाशितं शिरो मस्तक यस्य स तथा (णरसीहे) नरसिंहः शूरत्वात् (णरवईं)

हयगयरहपवरवाहणभङ्गचङ्गरहपहकरसकुलाए सेणाए पहियकित्ती जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव अभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छट्) मञ्जनग्रह से बाहर निकलकर वे भरत राजा कि जिनकी कीर्ति हय—गज, रथ—श्रेष्ठ—वाहन—और योद्धाओं के विस्तृत वृन्द से व्याप्त सेना के साथ विख्यात हैं जहां बाह्य उपस्थानशाला थी और उसमें भी अभिषेक योग्य हस्तिरत्न था—पट्टहाथी था—वहां पर आये । (उवागच्छित्ता) वहां आकरके (अंजण गिरि कडगसन्निभं गयवईं णरवईं दुरूढे) वे नरपति अञ्जनगिरि के कटकनितम्बभाग—के जैसे गजपति पर अरूढ हो गये (तएणं से भरहादिवे णरिंदे हारोत्थय सुकयरइयवच्छे कुंडलउज्जोइयाणणे मडडदित्तसिरए णरसी

जेवामां अतीव सोढाभत्या आगता इति। (पडिणिकखमिच्चा हयगयरहपवरवाहण उग रंपहकर संकुलाए सेणाए पहियकित्ति जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव अभि-सेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छट्) मञ्जनगृहमांथी अहार नीकणीने ते भरत राजा के जेमनी कीर्ति हय—गज रथ—श्रेष्ठ वाहन अने योद्धाओंना विस्तृत वृन्दथी व्याप्त सेना साथे विख्यात छे—ते तथा बाह्य उपस्थान शाला इती अने तेमां पथु तथा अभिषेक योग्य हस्तिरत्न इत्तु अट्टवे के पट्ट हाथी इती—त्यां आत्था (उवागच्छित्ता) त्यां आपीने (अंजणगिरिकडगसन्निभं गयवईं णरवईं दुरूढे) ते नरपति अञ्जन गिरिना कटक-नितम्ब भाग—जेवा गजपति उपर समाईद थईं गया (तएणं से भरहादिवे णरिंदे हारोत्थयसुकयरइयवच्छे कुंडलउज्जोइयाणणे मडडदित्तसिरए णरसीहे णर-

नरपतिः स्नामित्वात् (णरिंदे) नरेन्द्रः परमैश्वर्ययोगात् (णरवसहे] नरवृषभः स्वीकृत
 कृत्य संपादकत्वात् (मरुअरायवसभकप्पे) मरुद्वाजवृषभकल्पः, तत्र मरुतो देवाः व्यन्तरा-
 दयस्तेषां राजानः इन्द्रास्तेषां मध्ये वृषभाः मुख्याः सौधर्मेन्द्रादयस्तत्कल्पः तत्सदृश
 इत्यर्थः (अम्भहियरायतेअलच्छीए दिप्पमाणे) अभ्यधिक राजतेजो लक्ष्म्या दीप्य-
 मानः (पमत्थ मंगलसएहिं संथुव्वमाणे) प्रशस्तमङ्गलशतैः संस्तूयमानो वन्दिभिरिति
 (जय सइं कयालोए) जय शब्दकृतालोकः जयशब्दः कृतः आलोके दर्शने सत्येव
 यस्य स तथा (हत्थिखंधवरगए) हस्तिस्कन्धवरगतः प्राप्तः (जेणेव मागहतित्ये
 तेणेव उवागच्छइ) यत्रैव मागधतीर्थं तत्रैवोपागच्छति केन सह तत्राह—‘सकोरंट मल्ल-
 दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं’ सकोरंटमाल्यदाना छत्रेण धियमाणेन सह ‘सेयवर—

हे णरवह णरिंदे णरवसहे मरुअरायवसभकप्पे अम्भहियरायतेअलच्छीए दिप्पमाणे) इसके
 बाद वे भरताधिप नरेन्द्र कि जिनका वक्षःस्थल हार से व्याप्त हो रहा है, इसी कारण जो बड़ा
 ही सुहावना लग रहा है और देखनेवाले मनुष्यों के लिए आनन्दप्रद हो रहा है, मुखमण्डल
 जिनका दोनों कर्ण के कुण्डलों से उद्योतित हो रहा है मुकुट से जिनका मस्तक चमक
 रहा है शूवीर होने के कारण जो मनुष्यों में सिंह के जैसे प्रतीत हो रहे हैं, स्वामी होने से जो
 नर सभाम के प्रतिपालक—बने हुए हैं, परम ऐश्वर्य के योग से जो मनुष्य में इन्द्र के तुल्य
 गिने जा रहे हैं, स्वकृत कृत्य के संपादक होने के कारण जो नर वृषभ मानेजा रहे है व्यन्त-
 रादिक देवों के इन्द्रों के बीच में जो मुख्य—जैसे बने हुए है—बहुत अधिक राजतेज की
 लक्ष्मी से जो चमक रहे हैं (पमत्थमंगलसएहिं संथुव्वमाणे) वन्दिजनों द्वारा उच्चरित सैकड़ों
 मंगलवाचक शब्दों से जो संस्तुत हो रहे है तथा (जयसइकयालोए) आपकी जय हो, जय
 हो, इस प्रकार से जो दिखते ही लोगों द्वारा कृत शब्दों से पुरस्कृत क्रिये जा रहे हैं (हत्थिखं-
 धवरगए) अपने पट्ट हाथी पर बैठे हुए (जेणेव मागहतित्ये तेणेव उवागच्छइ) जहाँ पर

वहाँ णरिंदे णरवसहे मरुअरायवसभकप्पे अम्भहियरायतेअलच्छीए दिप्पमाणे) त्थाः १७६
 ते-आराधिपति नरेन्द्र के जेभनु वक्षस्थल हारथी व्याप्त थर् रहुं छे, ज्येथी जे भहुं
 व-सोडाभणुं वागी रहुं छे, अने जेनारा मनुष्यो भाटे जे आनंद प्रद थर् रहुं छे, मुप
 =संसण जेभना अन्ने कथुंना कुंसणोथी उद्योतित थर् रहुं छे, मुकुटथी जेभनु मस्तक
 अमकी रहुं छे, शूवीर होवाथी जे मनुष्योभा सिंसवत प्रतीत थर् रहुं छे, स्वामी
 होवाथी जे नर सभाभा भाटे प्रति-पालक इप छे, परम ऐश्वर्यना योगथी जे मनुष्योभा
 ईन्द्र तुल्य गणुय छे, स्वकृत कृत्यना संपादक होवाथी जे नर-वृषभ तरीके प्रच्यत-छे,
 व्यन्तरादिक देवाना ईन्द्रोनी वत्थे जे मुप्य जेवा छे, अत्यधिक राज तेजनी लक्ष्मीथी जे
 तेजस्वी थर् रहुं छे (पसत् लसपहिं संथुव्वमाणे) वन्दिजनेा वडे उच्चरित सैक-
 आधिक भंगण वाचक शब्दोथी जे संस्तुत थर् रहुं छे, तेभज (जय सहकयालोए)
 ‘तमादी ज्य थाओ, ज्य थाओ’ आ प्रभाणु जेभना दर्शन थतां ज जे लोके वडे
 भ गण शब्दोथी पुरस्कृत थर् रहुं छे (हत्थिख गए) यताना पट्ट हाथी उपर
 जेडेवा (जेणेव मागहतित्ये तेणेव उवागच्छइ) जथा त मागध तार्थ इतु, त्या अ

चामराहिं उदधुव्रमाणीहिं' तथा श्वेतवर चामरैरुतध्रुयमानैः २ सह व्रोज्यमानैः सह इति 'जक्खसहस्ससपरिवुडे' यक्खसहस्ससपरिवृत्तः, यक्षाणा देवविशेषाणां महत्ताभ्यां, संपरिवृत्तः चक्रवर्त्तिशरीरस्य व्यन्तरदेव सहस्रद्वयाधिष्ठितत्वात् 'वेसमणे चैव धणवड' वैश्रमण इव धनपतिः धनस्वामी कुवेर इव 'अमरवड मण्णभाए इइहीए पहियक्कित्ती' अमरपति सन्निभया इन्द्रसदृश्या ऋद्ध्या प्रथितकीर्त्तिः विस्तृतकीर्त्तिः 'गंगाए महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं' गङ्गायाः महानद्याः दाक्षिणात्येन दक्षिणदिगम्स्थितेन कूलेन तटेन 'गामागरनगरखेटकक्खडमडवदोणमुहपट्टागामसंवाहमडस्समडिय' ग्रामा करनगरखेटकक्खडमडवदोणमुखपत्तनाऽऽश्रमसंवाहसहस्रपण्डिताम्, तत्र-ग्रामः-वृत्ति-वेष्टितः, आकरः सुवर्णरत्नाद्युत्पत्तिस्थानम् नगर प्रसिद्धम् खेटम्-धुल्लिप्राकारपरि-

वह मागध तीर्थ था वहा पर धाये जिम समय ये भरत राजा हाथी के ऊपर बैठे हुए इस तीर्थ की तरफ आ रहे थे—उस समय इनके ऊपर—सकोरंट कोरंट पुष्पों की माला से युक्त छत्र छत्रधारियों ने तान रक्खा था (सेयवरचामराहिं उदधुव्रमाणीहिं २ जक्खसहस्ससपरिवुडे वेसमणे चैव धणवई अमरवडसन्निभाए इइहीए पहियक्कित्ती) इसके ऊपर चामर दोर ने बाँधे जन चार २ श्वेत श्रेष्ठ चामर दोर रहे थे क्योंकि चक्रवर्ती का शरीर दो हजार देवों से अधिष्ठित होता है कुवेर के जैसे ये धन के स्वामी थे और इन्द्र के जैसे ऋद्धि से ये विस्तृत कीर्ती वाले थे (गंगा महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं) ये महानदी गंगा के दाक्षिणात्यकूल से पूर्वदिग्वर्ती मागधतीर्थ की ओर चले उस समय ये (गामागरनगर खेटकक्खडमडवदोणमुह पट्टासम) वृत्ति वेष्टितग्रामों से, सुवर्ण रत्नादिक की उत्पत्ति स्थान रूप आकरों से, नगरों से, धुल्लिके प्राकार से परिवेष्टित खेटों से, क्षुद्र प्राकार से वेष्टित कर्बटों से ढाई कोश तक प्रामान्तर से रहित मडम्बो (छोटा गाम) से, जल मार्ग एवं स्थल मार्ग से युक्त जननिवास रूप द्रोण-

ये वपते ओ भरत राजा हाथी ऊपर सवार थएने ओ तीर्थ तरफ आवी रह्या हता, ते सभये तेमनी ऊपर सकोरंट-कोरंट पुष्पानी भागाथी युक्त छत्र छत्रधारीओओ ताण्णी राण्यु हतुं (सेयवरचामराहिं उदधुव्रमाणीहिं २ जक्खसहस्ससपरिवुडे वेसमणे चैव धणवई अमरवड सन्निभाए इइहीए पहियक्कित्ती) ओनी ऊपर थभर दोणनाराओओ चारवार श्वेत-श्रेष्ठ चामर दोणी रह्या हता ओ हणर देवोथी तेओ आवृत हता केभडे. चक्रवर्त्तुं शरीर ओहणर देवोथी अधिष्ठित होय छे कुवेर ओवा ओओ धनस्वामी हता अने छरना ओवी ऋद्धिथी ओओ विस्तृत कीर्त्तिवाया हता. (गंगा महाणईए दाहिणि-ल्लेणं कूलेणं) ओओ महानदी गंगाना दाक्षिणात्य कूलथी पूर्व दिग्वर्ती मागध तीर्थ तरफ खाना थया ते सभये ओओ (गामागरनगरखेटकक्खडमडवदोणमुहपट्टासम) वृत्त वेष्टित ग्रामोथी, सुवर्ण रत्नादिकना उत्पत्ति स्थान इय आकरोथी, नगरथी, धुल्लिना प्राकारोथी परिवेष्टित ओटोथी, क्षुद्र प्राकारवेष्टित कर्बटोथी, अदी गाँउ सुधी ग्रामान्तर-रहित मडम्बोथी, जलमार्ग अने स्थलमार्गोथी युक्त जननिवास इय

वेष्टितम्, कर्बटम् क्षुद्रप्राकारवेष्टितं लघु नगरम्, मडम्बं—सार्द्धकोशद्वयान्तरेण ग्रामान्तरर-
हितम्, द्रोणमुखं—जलस्थलपथोपेतो जननिवासः, पत्तनं-समस्तवस्तु प्राप्तिस्थानम् शकटा-
दिभिर्नौभिर्वा यद्गम्यं, तत्पत्तनम्, यत् केवलं नौभिरेव गम्यं तत् पट्टनम् उक्तं च—

“पत्तनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव च । नौभिरेव च यद्गम्यं पट्टनं तत् प्रचक्षते ॥१॥

आश्रमः—तापसैरावासितः पश्चादपरोऽपि जनस्तत्रागत्य वसति, सवाहः—कृषी-
वलैर्धान्यरक्षार्थं निर्मितं दुर्गभूमिस्थानम्, पर्वतशिखरस्थितजननिवासः समागतप्र-
भूतपथिकजननिवासो वा तेषां सहस्रैर्मण्डिताम् (धिमियमेङ्गीयं वसुहं अभिजि-
णमाणे अभिजिणमाणे) स्तिमितमेदनीकां वसुधाम् अभिजयन् अभिजयन्, तत्र नृप-
स्य प्रजापि यत्स्यात् स्तिमिता भयरहितत्वेन स्थिरा मेदिनी—मेदिन्याश्रितजनो
यस्यां सा तथा ताम् एवंविधां वसुधाम् अभिजयन् अभिजयन् तत्रत्याधिप वशी-
करणेन स्ववशे कुर्वन् २ इत्यर्थः । (अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे)
अग्र्याणि वराणि अत्यन्तमुत्कृष्टानि रत्नानि तत्तज्जातिप्रधानवस्तुनि प्रतीच्छन् प्रतीच्छन्
गृह्णन् २ (तं दिव्यं चक्ररयणं अणुगच्छमाणे अणुगच्छमाणे) तदिव्यं चक्ररत्नम् अनु-
गच्छन् अनुगच्छन् चक्ररत्नप्रदर्शितमार्गेण चलन् चलन्नित्यर्थः (जोयणंतरियाहिं

मुखो से समस्त वस्तुओं की प्राप्ति के स्थान रूप पत्तनों से अथवा शकटादि से या नौका से
गम्यरूप पत्तनों से केवल नौका से ही गम्यरूप पट्टनों से तपसी जनो द्वारा आवासित पश्चात्
अपरजन द्वारा भी ठहरने योग्य ऐसे आश्रमो से कृषीवलौ पर्वतशिखर स्थित जननिवासरूप
अथवा समागत प्रभूत पथिक जन निवासरूप सवाहो से मण्डित (धिमियमेङ्गीयं वसुहं अभिजिण
माणे २) ऐसी स्थिर प्रजाजनोवाली वपुधा को वहाँ के अधिपति को अपने वश में करते हुए
(अग्गाइ वराइ रयणाइं पडिच्छमाणे २) एवं उनसे नजराने के रूप में उत्कृष्ट रत्नों को-तत्तज्जा-
ति में प्रधान मूल वस्तुओं को स्वीकार करते हुए (त दिव्य चक्ररयणं अणुगच्छमाणे) तथा
चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित मार्ग से चढ़ने हुए (जोयणंतरियाहिं वराइं रयणाइं वसुमाणे वसमाणे) और

द्रोणु सुषोधी, समस्त वस्तुओंका प्राप्ति स्थान रूप पत्तनोथी अथवा शकटादिथी अथवा
नौकाओथी गम्य रूप पत्तनोथी, इत्त नौकाओथी अ गम्यइ । पट्टनोथी, तापसी जने
वडे आवासित तेम अ अपर जने वडे पणु निवास योग्य अथवा आश्रमोथी, कृषकी वडे
धान्यरक्षार्थं निर्मित दुर्गभूमि रूप सवाहोथी अथवा पर्वत शिखर स्थित जन
निवास रूप अथवा समागत प्रभूत पथिक जन निवास रूप सवाहोथी मंडित (धिमिय
मेङ्गीयं वसुहं अभिजिणमाणे २) अथवा स्थिर प्रजावाणी वसुधाने, त्याना अधिपतिने
पोताने अ न करता (अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे २) तेमअ तेमनी पासेथी
नगराणाना रूपमा उत्कृष्ट रत्नाने—तत्तज्जातिप्रधान मूल वस्तुओंके स्वीकारता स्वीकारता
(त दिव्य चक्ररयणं अणुगच्छमाणे) तेमअ चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित मार्गोथी आश्रिता
(जोयणंतरियाहिं वसुधीहिं वसमाणे) अने अके अके अथवा उपर पोताने पडाव

(१) पत्तनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेवच नौभिरेवच यद्गम्यं पट्टनं तत् प्रचक्षते”

वसहीहि वसमाणे वसमाणे) योजनान्तरिताभिर्धर्मतिभिः— विश्रामैः वसन् वसन् एक-
स्माद्विश्रामात् चतुः क्रोशात्मकं योजनं गत्वा परं विश्रामम् उपादत्ते इत्यर्थः (जेणेव
मागहतित्थे तेणेव उवागच्छइ) यत्रैव मागधतीर्थं तत्रैव उपागच्छति (उवागच्छित्ता)
उपागत्य (मागहतित्थस्स अदूरसामंतं दुवालसजोयणायामं णव जोयणवित्थिणं
वरणगरसरिच्छ खंधावारनिवेशं करेइ) मागधतीर्थस्य अदूरसामन्ते दूरं च सामन्तं
च दूरसामन्तं नोऽन्यत्र नातिदूरे नातिमभीषे यथोचितस्थाने द्वादशयोजनायामं नव-
योजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशं विजयस्खंधावारनिवेशं भैरवनिवासस्थानं करोति (क-
रित्ता) कृत्वा (वड्ढइरयण सहावेइ) वर्द्धकिरत्तन—सूत्रधारमुत्थं शब्दयति आह्वयति
(सहावित्ता) वर्द्धयित्वा (एव वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !) एव वक्ष्यमाण-
प्रकारेण अनादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! (मम आवासं पोसहसालं च करेहि)
मम कृते आवासं निवासस्थानं पौषधशाला च कुरु (करित्ता) कृत्वा (ममेदमाण-

एक एक योजन पर अपना पडाव डालने हुए (जेणेव मागहतित्थे तेणेव उवागच्छइ) जहा वह
मागधतीर्थ था वहा पर आये (उवागच्छित्ता) वहा आकर के इन्होने (मागहतित्थस्स अदूरसामने
दुवालसजोयणायामं णव जोयणवित्थिणं वरणगरसरिच्छ विजयखंधावारनिवेश करेइ) उस मागध-
तीर्थ के अदूरसामंत प्रदेश में—न अतिदूर और नहि अति निकट ऐसे उचित स्थान में—अपने—नौ
योजन का विस्तार वाला एव १२ योजन की लम्बाई वाला कटक को—सैन्य का—निवासस्थान
बनाया अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाणवाले स्थानपर अपना सैन्य ठहराया (करित्ता वड्ढइरयणं सहावेइ)
उप स्थान पर सैन्य ठहराकर फिर उसने सूत्रधारों के मुखिया को बुलाया (सहावित्ता एवं
वयासी) और बुलाकर उससे ऐसा कहा—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मम आवासं पोसहसा-
लं च करेहि) हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही मेरे लिए एक निवास स्थान और पौषधशाला का
निर्माण करो (करित्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि) निर्माण करके फिर मुझे मेरी आज्ञा के अनु-

नाशता (जेणेव मागहतित्थे तेणेव उवागच्छइ) जथा मागध तीर्थं इत्तु, त्यां गया
(उवागच्छित्ता) त्यां आधीने तेभण्णे (मागहतित्थस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं
णव जोयणवित्थिणं वरणगरसरिच्छ विजय खंधावार निवेश करेइ) ते मागध तीर्थं नी
अदूरमभीषं प्रदेशमां—अर्थात् न अति दूर के न अति निकट जेवा उचित स्थानमा-
पोताना नव योजन विस्तार वाला अने भार योजन लम्बाई वाला कटक—सैन्य—तुं
निवास स्थान बनाओ जेठके के पूर्वोक्त प्रमाणवाला स्थानमां तेण्णे पोताना सैन्येना पडाव
नाओ. (करित्ता वड्ढइरयणं सहावेइ) ते स्थान पर सेनाने मुझाम आधीने पछी तेण्णे
सूत्रधारोना मुखिया ने बोलाओ (सहावित्ता एव वयासी) अने बोलावीने तेण्णे आ
प्रमाणे कहुं— (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मम आवासं पोसहसालं च करेहि) हे
देवानुप्रिय ! तमे शीघ्र भारा भाटे जेक निवास स्थान अने पौषधशाला तुं निर्माण करो.
(करित्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि) निर्माण करीने पछी अने जे आज्ञा मुझाम काम

त्तियं पञ्चपिण्णाहि) मम एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयेति (तएणं से वद्दइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्ट चित्तमाणंदिए पीईमणे जाव अंजलिं कट्टु एवं सामी तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ) ततः खल्ल स वर्द्धकिरत्तो भरतेन राज्ञा एवमुक्तः सन् ह्रष्टतुष्ट चित्तानन्दितः प्रीतिमनाः यावत् पदात् कर-तलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवं स्वामिन् तथेति इत्युत्त्वा आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशणोति अङ्गी करोति (पडिसुणित्ता) प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य (भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ) भरतस्य राज्ञ आवासं पौष-घशाळां च करोति (करित्ता) कृत्वा सम्पाद्य (एयमाणत्तियं खिप्पामेव पञ्चपिण्णाति) एताम् उक्तविधाम् आज्ञप्तिकां राजाज्ञा क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयति परावर्तयति (तए णं से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पञ्चोरुहइ) ततः खल्ल स भरतो राजा आभिषेक्यात् इस्तिरत्तात् प्रत्यवरोहति अवत्तरति (पञ्चोरुहित्ता) प्रत्यवरुह्य अवतीर्य

साँर काम हो जाने की खबर दो—(त एण से वद्दइरयणे भरहेण रण्णाएवं वुत्ते समाणे हट्ट तुट्ट चित्तमाणंदिए पीईमणे जाव अंजलिं कट्टु एव सामी तहत्ति सामी आणाए विणएणं वयणं पां-सुणेइ) इस प्रकार भरत के द्वारा कहा गया वर्द्धकिरत्तन हट्टतुष्ट होता हुआ अपने चित्त में आनन्दित हुआ उसके मनमें प्रीति जगी यावत् अंजलिको जोड़कर उसने फिर ऐसा कहा है स्वामिन् । जैसी आपने आज्ञा दी है उसी के अनुसार काम होगा इस तरह कहकर उसने प्रभु की आज्ञा को बड़ी विनय के साथ स्वीकार किया (पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ) आज्ञा स्वीकार कर के फिर उसने वहाँ से आकर भरत राजा के निमित्त निवास स्थान और पौषघशाळा का निर्माण किया (करित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पञ्चपिण्णाति) निर्माण कार्य समाप्त होते ही फिर उसने राजा की आज्ञायथावत् पालित हो चुकी है . इसकी खबर शीघ्र ही भरत राजा के पास पहुँचा दी । (तएणं से भरहे राया आभिसेक्काओ-हत्थिरयणाओ पञ्चोरुहइ) भरत राजा अपनी कृताज्ञानुसार कार्य पूरा हुआ सुनकर अभिषेक

सम्पन्नं थर्धं ज्ञान्णी सूथना आपो (त एण से वद्दइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ट-तुट्ट चित्तमाणंदिए पीईमणे जाव अंजलिं कट्टु एव सामी तहत्ति सामी आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ) अ प्रमाणे भरत राजा वडे आज्ञप्त ते वर्द्धकिरत्तन हट्ट-तुष्ट थतो पेताना चित्तमा अनन्दि । थथो तेना मनमा प्रीति उत्पन्न थर्धं यावत् अ जलिं जेडीने पत्ती तेवे आ प्रमाणे कथुं-डे स्वामिन् । जे प्रमाणे आपत्तीजे अज्ञा करी छे, ते मुज्जम काम सम्पन्न थथे आ प्रमाणे कडीने तेवे प्रभुणी आज्ञाने अहुज विनय पूर्वक स्वीकार करी (पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ) आज्ञा स्वी-कार करीने पत्ती तेवे त्याथी आपीने भरत राजा भाटे निवास स्थान अने पौषघशाळा तु निर्माण कथुं (करित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पञ्चपिण्णाति) निर्माण कार्य सम्पन्न थता ज तेवे राजाज्ञानु पालन थर्धं यूपु छे ते अजेणी अजर राजा पासे पडोयाडी (त एणं से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पञ्चोरुहइ) भरत मंडारान पेतानी आज्ञा

(जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छड) यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति (उपागच्छिता) उपागत्य (पोसहसालं अणुपविसह) पौषधशाला मनुप्रविगति (अणुपविसिता) अनुप्रविद्य (पोसहसालं पमज्जड) पौषधशाला प्रमार्जयति (पमज्जिता) प्रमाज्ये (दम्भसंथारगं संथरह) दम्भसंस्तारकं दम्भासनं विस्तारयति (सथरिता) मंस्नीये (दम्भसंथारगं दुरुद्धड) दम्भसंस्तारकम् अर्धतृणहस्तपरिमितं दम्भासनम् दुरुद्धति आगेहनि उपविगति (दुरुद्धिता) आरुह्य (मागहतिथकुमारस्स देवस्स अट्टमभक्तं पणिण्हइ) मागधतीर्थकुमारस्य साधनाय अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति तत्र अष्टमभक्तमिति उपवासत्रयमुच्यते तद् अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति (पणिण्हिता) प्रगृह्य (पोसहसालाए पोसहिए, वंभयागी, उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे, निक्खित्तसत्थमुसले, दम्भसंथारोवगए एगे अबीए अट्टमभक्तं पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे) पौषधशालाया पौषधिरुः पौषधवान् ब्रह्मचारी उम्मुक्कमणिसुवर्णः—त्यक्तमणिसुवर्णाभरणः, व्यपगतमालावर्णकविलेपनः, तत्र व्यपगतानि त्यक्तानि मालावर्णकविलेपनानि—सक् चन्दनविलेपनानि येन स तथा, निक्षिप्त-

योग्य पट्ट होथी से नाचे उनरे ओर (जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छड) जहा पौषधशाला थो उस ओर वळ दिये (उवागच्छिता पोसहसालं अणुपविसह) वटां आकर वे पोषधशाला में प्रविष्ट हुए (अणुपविसिता) प्रविष्ट होकर उन्होने (पोसहसालं पमज्जड) पौषधशाला का प्रमार्जन किया । (पमज्जिता दम्भसंथारग संथरह) प्रमार्जन करके फिर वहा पर उन्होने अडाई हाथ का दर्भ का आसन बिछाया (सथरिता दम्भसंथारगं दुरुद्धड) बिछाकर फिर वे बैठ गये (दुरुद्धिता मागहतिथकुमारस्स देवस्स अट्टमभक्तं पणिण्हइ) वहा बैठ कर उन्होने मागधतीर्थ कुमार को साधना के लिये तीन उपवास धारण किये (पागण्हिता पोसहसालाए पोसहिए वमयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले दम्भसंथारोवगए जो अबीए अट्टमभक्तं पडिजागरमाणे २) तीन उपवास धारण करके वे पोषधशाले, ब्रह्मचारी एव उम्मुक्कमणि सुवर्णाभरणवाले होगये उन्होने सक् चन्दनविलेपन सब छोड़

मुक्कमणिसुवर्णं अथ सन्धन् यथ चूक्युं छे ते वात सालागाने अलिपेक योग्य पट्टहाथी उपरथी नीचे उत्तरां अने (जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छड) तथा पौषधशाला इती ते तरइ रवाना तथा (उवागच्छिता पोसहसालं अणुपविसह) तथा आवीने तेओ पौषधशालामा प्रविष्ट तथा, (अणुपविसिता) प्रविष्ट थधने तेभणे (पोसहसालं पमज्जड) पौषधशालाम् प्रमार्जनं क्युं (पमज्जिता दम्भसंथारगं संथरह) प्रमार्जनं करीने पथी तेभणे त्यां ओढी हाथ प्रमाखु जेट्ठु दम्भासनं पाथयुं (सथरिता दम्भसंथारगं दुरुद्धड) पाथरीने पथी तेओ ते आसन उपर ओसी गरा (दुरुद्धिता मागहतिथ कुमारस्स देवस्स अट्टमभक्तं पणिण्हइ) त्या ओसीने तेभणे मागधतीर्थ कुमारनी साधना भाटे त्रषु उपवासो धारणं कथां (पणिण्हिता पोसहसालाए पोसहिए वमयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे अबीए अट्टमभक्तं पडिजागरमाणे) त्रयु उपवासो—अट्टम धारणं करीने तेओ पौषधशालां वमयारी अने उम्मुक्कमणि सुवर्णाभरणवाणा थध तथा तेभणे सक् चन्दन विलेपन वगेइ

त्तियं पञ्चपिणाहि) मम एतामाज्ञसिकां प्रत्यर्पयेति (तएणं से बद्धइरयणे भर-
हेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्टतुट्ट चित्तमाणंदिए पीईमणे जाव अंजलिं कट्टु
एवं सामी तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ) ततः खल्ल स वर्द्धकिरत्तो
भरतेन राज्ञा एवमुक्तः सन् हृष्टतुष्ट चित्तानन्दितः प्रीतिमनाः यावत् पदात् कर-
तलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवं स्वामिन् तथेति इत्यु-
त्त्वा आज्ञया विनयेन वचनं प्रतिशृणोति अङ्गी करोति (पडिसुणित्ता) प्रतिश्रुत्य
स्वीकृत्य (भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ) भरतस्य राज्ञ आवासं पौष-
धशालां च करोति (करित्ता) कृत्वा सम्पाद्य (एयमाणत्तियं खिप्पामेव पञ्चपिणाति)
एताम् उक्तविधाम् आज्ञसिकां राजाज्ञा क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयति परावर्तयति (तए णं से
भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ) ततः खल्ल स भरतो राजा
आभिषेक्यात् हस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति अवत्तरति (पच्चोरुहित्ता) प्रत्यवरुह्य अवतीर्य

सर् कां काम हो जाने की खबर दो—(त एणं से बद्धइरयणे भरहेण रण्णाएव वुत्ते समाणे हट्ट तुट्ट
चित्तमाणदिए पीईमणे जाव अंजलिं कट्टु एव सामी तहत्ति सामी आणाए विणएणं वयणं पाट-
सुणेइ) इस प्रकार भरत के द्वारा कहा गया वर्द्धकिरत्तन हट्टतुष्ट होता हुआ अपने चित्त में
आनन्दित हुआ उसके मनमें प्रीति जगी यावत् अंजलिको जोड़कर उसने फिर ऐसा कहा है
स्वामिन् ! जैसी आपने आज्ञा दी है उसी के अनुसार काम होगा इस तरह कहकर उसने
प्रभु की आज्ञा को बड़ी विनय के साथ स्वीकार किया (पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो आव-
सहं पोसहसालं च करेइ) आज्ञा स्वीकार कर के फिर उसने वहाँ से आकर भरत राजा के निमि-
त्त निवास स्थान और पौषधशाला का निर्माण किया (करित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पञ्चपि-
णति) निर्माण कार्य समाप्त होते ही फिर उसने राजा को आज्ञायथावत् पालित हो चुकी है .
इसकी खबर शीघ्र हो भरत राजा के पास पहुँचा दी । (तएणं से भरहे राया आभिसेक्काओ-
हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ) भरत राजा अपनी कृताज्ञानुसार कार्य पूरा हुआ सुनकर अभिषेक

सम्पन्न थर्धं न्वानीं सूयना आपो (त एणं से बद्धइरयणे भरहेणं रत्ता एवं वुत्ते समाणे
हट्ट-तुट्ट चित्तमाणंदिए पीईमणे जाव अंजलिं कट्टु एव सामी तहत्ति सामी आणाए
विणएणं वयणं पाटिसुणेइ) अ प्रमाणे भरत राजा वडे आज्ञासे ते वर्द्धकिरत्तन हृष्ट-तुष्ट
थते पानाना चित्तमा अ नत्ति थते तेना मनमा प्रीति उत्पन्न थर्धं यावत् अ भक्ति
लोपीने पथी तेणे आ प्रमाणे कथु-डे स्वामिन् ! जे प्रमाणे आपश्रीजे अज्ञा करी छे,
ते बुद्धि अम सम्पन्न थथे आ प्रमाणे कडीने तेणे प्रभुनी आज्ञाने अहुन विनय पूर्वक
स्वीकार करी (पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो आवसहं पोसहसालं च करेइ) आज्ञा स्वी-
कार करीने पथी तेणे त्याथी आपीने भरत राजा माटे निवास स्थान अने पौषधशाण तु
निर्माणे कथुं (करित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पञ्चपिणति) निर्माणे कार्य सम्पन्न थता
अ तेणे राजाज्ञातु पालन थर्धं युक्तु छे ते अगेनी अजर राजा पासे पडोयाडी (त एणं
से भरहे राया आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ) भरत महाराज पानानी आज्ञा

(जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ) यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति (उवागच्छिता) उपागत्य (पोसहसालं अणुपविसइ) पौषधशाला मनुप्रविगति (अणुपविसिता) अनुप्रविश्य (पोसहसालं पमज्जइ) पौषधशाला प्रमार्जयति (पमज्जिता) प्रमाज्यं (दम्भसंधारणं संथरइ) दम्भसन्तारकं दम्भसंनं निस्तारयति (मथरिता) मंस्तीर्यं (दम्भसंधारणं दुरुइ) दम्भसन्तारकम् अर्धतृणहस्तपरिमितं दम्भसंनम् दुरुइति आरोहति उपविगति (दुरुहिता) आरुह्य (मागहतिथकुमारस्स देवस्स अट्टमभक्तं पणिण्हइ) मागधतीर्थकुमारस्य साधनाय अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति तत्र अष्टमभक्तमिति उपवासत्रयमुच्यते तद् अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति (पणिण्हिता) प्रगृह्य (पोसहसालाए पोसहिए, वंभयागी, उम्मुक्कमणिमुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे, निक्खित्तसत्थमुसले, दम्भसंधारोवणए एगे अबीए अट्टमभक्तं पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे) पौषधशालाया पौषधिकः पौषधवान् ब्रह्मचारी उम्मुक्कमणिमुवर्णः—त्यक्तमणिमुवर्णाभरणः, व्यपगतमालावर्णकविलेपनः, तत्र व्यपगतानि त्यक्तानि मालावर्णकविलेपनानि—सक् चन्दनविलेपनानि येन स तथा, निक्षिप्त-

योग्य पद होशो से नाँचे उनरे ओर (जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ) जहाँ पौषधशाला थो उस ओर चल दिये (उवागच्छिता पोसहसालं अणुपविसइ) वहाँआकर वे पौषधशाला में प्रविष्ट हुए (अणुपविसिता) प्रविष्ट होकर उनके उन्होंने (पोसहसालं पमज्जइ) पौषधशाला का प्रमार्जन किया । (पमज्जिता दम्भसंधारण संथरइ) प्रमार्जन करके फिर वहा पर उन्होंने अढाई हाथ का दर्भ का आसन बिछाया (मथरिता दम्भसंधारण दुरुइइ) बिछाकर फिर वे बैठ गये (दुरुहिता मागहतिथकुमारस्स देवस्स अट्टमभक्त पणिण्हइ) वहा बैठ कर उन्हो ने मागधतीर्थ कुमार को साधना के लिये तीन उपवास धारण किये (पाणिण्हिता पोसहसालाए पोसहिए वभयागी उम्मुक्कमणिमुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले दम्भसंधारोवणए गो अबीए अट्टमभक्तं पडिजागरमाणे २) तीन उपवास धारण करके वे पौषधशाले-, ब्रह्मचारी एव उम्मुक्कमणि मुवर्णाभरणवाले होगये उन्होने सक् चन्दनविलेपन सब छोड़

मुष्ण कार्य सम्पन्न थई चूकथु छे ते वात साधनाने अलिपेक योग्य पदुहाथी उपरथी नीचे उतरां अने (जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ) तथा पौषधशाला छती ते तरइ रवाना थया (उवागच्छिता पोसहसालं अणुपविसइ) तथा आवीने तेओ। पौषधशालां प्रविष्ट थया. (अणुपविसिता) प्रविष्ट थईने तेभे (पोसहसालं पमज्जइ) पौषधशालां प्रमार्जनं कथुं (पमज्जिता दम्भसंधारणं संथरइ) प्रमार्जन करीने पछी तेपे तयां अदी हाथ प्रमाषु अट्टेइ दर्भसंनं पाथयुं (संथरिता दम्भसंधारणं दुरुइइ) पाथरीने पछी तेओ। ते आसन उपर भेसी ग ॥ (दुरुहिता मागहतिथ कुमारस्स देवस्स अट्टमभक्तं पणिण्हइ) तथा भेसीने तेभे मागधतीर्थ कुमारनी साधना भाटे तथु उपवासो धारणु कथां (पणिण्हिता पोसहसालाए पोसहिए वभयागी उम्मुक्कमणिमुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे अबीए अट्टमभक्तं पडिजागरमाणे) तथु उपवासो-अट्टम धारणु करीने तेओ। पौषधशालां ब्रह्मचारी अने उम्मुक्कमणि मुवर्णाभरणवाणा थई गथा तेभे सक्-चन्दन विलेपन वगेइ

शस्त्रमुसलः, निक्षिप्तं हस्ततो त्रिमुक्तं शस्त्रं मुसलं च येन स तथा, दूर्भसंस्तारोपगनः
 सार्धद्वयहस्तपरिमितदूर्भासनोपविष्टः एकः आन्तर व्यक्तरागादि सहायवियोगात्,
 अद्वितीयः तथात्रिध पदात्यादि सहायविरहात् अष्टमभक्तं प्रतिजाग्रन् प्रतिजाग्रन्
 पालयन् पालयन् विहरति तिष्ठति (तए णं से भरहे राया अष्टमभक्तसि परिणम-
 माणंसि पोसहसालाभो पडिणिकखमइ) ततः खलु स भग्नो राजा अष्टमभक्ते परि-
 णमति पूर्यमाणे परिपूर्णप्राये सति पोषणशालानः प्रतिनिष्क्रामति-निर्गच्छति (पडि-
 णिकखमित्ता) प्रतिनिष्क्रम्य (जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ)
 यत्रैव बाह्योपस्थानशाला तत्रैवोपागच्छति (उवागच्छिता) उपागत्य (कोडुवियपुरि
 से सदावेइ) कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति आह्वयति (सदावित्ता) शब्दयित्वा आह्वय
 (एवं वयासी) एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया
 (हयगजरहपवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेइ) क्षिप्रमेव शीघ्रमेव भो देवाणु-
 प्रियाः ! हयगजरहपवरयोधकलित्तम्-अश्वहस्तिरथप्रवरसैनिकैः युक्ता चातुरङ्गिणीं सेनां

दिया हाथ से शस्त्र छोड़ दिया मुसल छोड़ दिया २॥दाई हाथ प्रमाण दर्भसन पर विराजमान
 वे आन्तरिक व्यक्त रागादिक के परिहार कर देने से एक अद्वितीय - होगये उनके पास में उस
 समय सेना आदि का एक भी जन नहीं रहा इस प्रकार से उन्होंने सविधि पोषण का पालन
 किया (तएणं से भरहे राया अष्टमभक्तसि परिणम माणंसि पोसहसालाभो पडिणिकखमइ । सविधि
 पोषणका जब वे पालन कर चुके अर्थात् उसकी आराधना समाप्त हो चुकी - तब वे पोषण-
 शाला से बाहर आये (पडिणिकखमित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ)
 पोषणशाला से बाहर आकर फिर वे जहाँ बाह्य उपस्थान शाला थी वहाँ पर आये (उवाग-
 च्छिता कोडुवियपुरिसे सदावेइ) वहाँ आकरके उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया (सदा-
 वित्ता एवं वयासी-) बुलाकरके के उनसे उन्होंने ऐसा कहा-(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ।
 हय गय रह पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेइ) हे देवानुप्रियो ! तुमलोग शीघ्र-ही

सर्वे त्यल्ल दीधा हाथमाथी शस्त्र त्यल्ल दीधु, मुसल त्यल्ल दीधु, आठ हाथ प्रमाण दर्भसन
 उपर विराजमान ते भरत महाराज आन्तरिक व्यक्त रागादिकना परिहारथी अद्वितीय धर्म
 गया तेभनी पासो ते समये सेना वगेरे ने। जोक पणु भाषुस हुतो नहि आ प्रसाणु
 तेभणु यथाविधि पोषणनु पालन कथुं (त एण से भरहे राया अष्टमभक्तसि परिणम-
 माणंसि पोसहसालाभो पडिणिकखमइ) यथाविधि ज्यारे ते पोषणनु पालन करी यूथो
 जेट्टे के तेनी आराधना पूरी थऽ चूरी त्यारे तेजे। पोषणशालाभाथी अडार आण्यो
 (पडिणिकखमित्ता जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) पोषणशालाभाथी
 अडार आणीने पग्री तेजे। ज्यथा बाह्य उपस्थान शाला हुती त्या आण्यो, (उवागच्छिता
 कोडु वियपुरिसे सदावेइ) त्या आणीने तेभणु कौटुम्बिक पुरुषीने बोलाण्यो (सदावित्ता
 एव वयासी) बोलाणीने तेभणु आ प्रमाणु कलु (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया । हय गय
 रह पवर जोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेइ) हे देवानुप्रियो ! तमे शीघ्रमेव हयं

सन्नाहयत-सज्जी कुरुत, (चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पेह) तथा चतन्नो घण्टा अवल-
म्बिता यत्र स तथा तादृशम् अश्वरथम्, अश्ववहनीयो रथः अश्वरथः तं प्रतिरुल्प-
यत सज्जी कुरुत (त्तिकरुट्टु मज्जनघरं अणुपविसइ) इतिक्रत्वा मज्जनगृहमनुप्रविशति
(अणुपविसित्ता) अनुप्रविश्य (समुत्त तद्देव जाव धवलमहामेह णिग्गए जाव मज्जनघराओ
पडिणिकखमइ) समुत्त तथैव यावन् धवलमहामेघ निर्गतो यावन् मज्जनगृहात् प्रति-
निष्क्रामति, तत्र समुत्तजालाकुलामिगामे इत्यादि विशेषणविशिष्टे स्नानमण्डपे
नानामणिरत्नभक्तिचित्रे स्नानपीठे सुखेनोपविश्य स्नपितः स्नानानन्तरं च धवलमहा-
मेघान्निर्गतः शशीय प्रियदर्शनो नरपतिः भरतः सुधाधवलीकृतात् मज्जनगृहात् प्रति-
निष्क्रामतीति भावः (पडिणिकखमित्ता) प्रतिनिष्क्रम्य (द्वयगयरहपवरवाहण जाव
सेणावइ पहियकित्ति जेणेव वाहिरिया उवट्टाणमाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव
उवागच्छइ) द्वयगजरथप्ररवाहनं यावत् सेनापतिप्रथितकीर्त्तिः यत्रैव वाद्योपस्थानमाला
यत्रैव चातुर्घटोऽश्वरथः तत्रैवोपागच्छति, व्याख्या च पूर्ववत् बोध्या (उवागच्छित्ता)
उपागत्य (चाउग्घंटं आसरहं) चातुर्घण्टम् अश्वरथं दुरूढे आरोहति स्म इति ॥सू० ५॥

हय गज, रथ एव श्रेष्ठ याघाओ से युक्त सेना को तैयार करो—(चाउग्घंटं आसरहं पडिकप्पेह)
तथा जिसमें चार घंटे लटकर रहे हो ऐसे अश्वरथ को—अश्वो द्वारा चरने वाले रथ को मज्जन
करो (त्तिकरुट्टु) इस प्रकार कहकर वे (मज्जनघरं अणुपविसइ) स्नान गृह में प्रविष्ट हो गये
(अणुपविसित्ता समुत्त तद्देव जाव धवल महामेहणिग्गए जाव मज्जनघराओ पडिणिकखमइ) वहां
जाकर वे पूर्वोक्त मुक्ता जाला कुल आदि विशेषणों से अभिराम स्नान मंडप में रखे हुए पूर्वोक्त”
नानामणि भक्तिचित्रं” विशेषणवाक्ये स्नान पीठ पर आनन्द के साथ बैठ गए वहां पर उन्हें स्नान
कराया गया—स्नान करने के बाद वे धवलमेघ से निर्गत चन्द्र मण्डल की तरह उक्त स्नान
घर से बाहर निकले (पडिणिकखमित्ता हय गय रह पवर वाहण जाव सेणावइ पहियकित्ति
जेणेव वाहिरिया उवट्टाणमाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) इन सूत्र पदों की

गज, रथ तेमज्जी वीर श्रेष्ठ येकधाओथी युक्त सेना तैयार करे। (चाउग्घंटं आसरहं पडिक-
प्पेह) तेमज्जी जेमां चार घंटाओ लटकी रह्ता डोय, जेवा रथने अश्वोथी यदाववामा
आवे जेवा रथ ने अणुपविसइ करे, (त्तिकरुट्टु) आ प्रभाण्णे कहीने ते (मज्जनघरं अणुप-
विसइ) स्नान गृहमा प्रविष्ट थया. (अणुपविसित्ता समुत्त तद्देव जाव धवल महामेहणिग्गए
जाव मज्जनघराओ पडिणिकखमइ) त्या जेधने ते पूर्वोक्त मुक्ताजाल कुल आदि विशेष-
णवाक्योथी अभिराम स्नानमंडप मा भूडेवा पूर्वोक्त “नानामणि भक्तिचित्रं” विशेषणवाक्यो
स्नान पीठ उपर आनन्द पूर्वोक्त भेसी थया त्या तेमने स्नान कराववामां आण्थु. स्नान
कर्या पछी तेओ धवल मेघथी निर्गत चन्द्र मंडलनी जेम ते स्नानगृहमाथी अहार नीक-
एथा (पडिणिकखमित्ता हय गय रह पवर वाहण जाव सेणावइ पहियकित्ति जेणेव
वाहिरिया उवट्टाणमाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ) जे सूत्रपदोनी

अथ कृतस्नानादि विधिर्भरतो यच्चक्रे तदाह 'तएणंसे' इत्यादि

मूलम्— तएणं से भएहे राया चाउग्घटं आसरहं दुरूढे समाणे
 हएगयरहपवरजोहकलियाए सद्धिं संपाखुडे महया भडचडगरपह-
 गरवंदपरिक्खित्ते चक्कग्यणदेसियमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुयाय-
 मग्गे महया उक्किड्ढ सीहणायवोलकलकलरवेणं पक्खुभिय महासमु-
 द्दरवभूयंपिव करेमाणे २ पुरत्थिमदिसामिमुहे मागहतित्थेणं लव-
 णसमुद्धं ओगाहइ जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला, तएणं से भरहे
 राया तुरगे निगिण्हई निगिण्हित्ता रहं ठवेइ ठवित्ता धणुं परामुसइ
 तएणं तं अइरुभगय बालचंदइंदधणुसंकासं दरियदपियददधण-
 सिगरइयसारं उरगवरपवरगवलपवरपरपरहुयभमरकुलणीलिणिद्धं धंत-
 धोयपट्टं णिउणोवियमिसिभिरित मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं
 तडित्तरुणकिरणतवणिज्जबद्धचिंधं दहरमलयगिरिसिहरकेसरचामरबालद्ध
 चंदचिंधं कालहरियरत्तपीयसुक्किल्ल बहुण्हारुणि संपिणद्ध-
 जीवं जीवियंतकरणं चलजीव धणुं गहिऊण से णरवई उसुंच वरवइर-
 कोडियं वइरसारतोडं कंचनमणिकणगरयणधोइड्ड सुकयपुंखं अणेगम-
 णिरयणविधिहसुविरइयनामचिंधं वइसाहं ठाईऊणट्टाणं आयतकण्णायतं
 च काऊण उसुमुदारं इमाइं वयणाइं तत्थ भाणिय से णरवई—हंदि सुणं
 तु भवंतो बाहिरओ खलु सरस्स जे देवा । णागासुरा सुवण्णा तेसिं
 खु णमो पणिवयाणि ॥१॥ हंदि सुणंतु भवंतो अब्भितरओ सरस्स
 जे देवा णागासुरा सुवण्णा सव्वे मेते विसयवासी ॥२॥ इति कट्टु
 उसुं णिसिरइत्ति—'परिगरणिगरिअमज्झो वाउद्ध्युय सोभमाणकोसेज्जो
 चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥३॥ तं चंचलायमाणं

व्याख्या पहिले को गइ व्याख्या के ही अनुरूप है (उवागच्छित्ता चाउग्घटं आसरहं दुरूढे)
 अश्वरथ के पास पहुंचकर कर वह उस पर बैठ गया ॥५॥

व्याख्या पढेलां इरवाभा आवेल व्याख्या सुअअ न छे (उवागच्छित्ता चाउग्घटं आसरहं
 दुरूढे) अश्वरथ पास पढेथीने तेज्जे तेनी ७५२ सवार थया ॥ ५ ॥

पंचमिचंदोवमं महाचार्य । छज्जइ वामे हत्ये णरवइणोनंमि विजयमि
 ॥४॥ तए णं से सरे भग्हेणं रण्णा णिसइहे समाणे खिण्णामेव दुवाल--
 सजोयणाइं गंता मागहत्तित्थाधिपतिस्स देवस्स भवणंसि निवइए,
 तएणं से मागहत्तित्थाहिवई देवे भवणंसि सरं णिवइअं पामइ
 पासित्ता आसुरुत्ते रुत्ते रुहे चंडिकिए कुविए मिसिमिसेमाणे ति-
 वलियं भिउडिं णिडाले साहइ साहरित्ता एवं वयासी-केस णं भो
 एस अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउइसे हिरिसिरि-
 परिवज्जिए जेणं मम इमाए एयाणुरूवाए दिव्वाए देविद्धीए दिव्वाए
 देवजुईए दिव्वेणं दवाणुभावेणं लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए
 उप्पि अप्पुस्सुए भवणंसि सरं णिसिरइत्तिकट्टु सीहासणाओ
 अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता जेणेव से णामाहयंके सरे तेणेव उवागच्छइ,
 उवागच्छित्ता तं णामाहयंके सरं गेणइ णामंके अणुप्पवाएइ णामंके
 अणुप्पवाएमाणस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए चित्तिए पत्थिए मणोगए
 संकप्पे समुप्पज्जित्था उप्पणे खलु भो जंबुदीवे दीवे भरहे वासे भरहे
 णामं राया चाउरंतचक्कवट्ठी तं जोयमेयं तीय पच्चुपण्णमणागयाणं
 मागहत्तित्थकुमाराणं देवाण गइणमुवत्थाणीयं करेत्तए तं गच्छमि णं
 अहपि भरहस्स रण्णो उवत्थाणीयं करेमित्तिकट्टु एव संपेहेइ ॥सू० ६॥

छाया—तत खलु स भरतो राजा चातुर्घण्टम् अश्वरथमारूढः सन् हयगजस्थ प्रव-
 रयोधकलितया सार्द्धं संपरिवृतं महाभटचङ्गरपदकरवृन्दपरिक्षित चक्ररत्नादेशित-
 मार्गं अनेकराजवरसहस्रानुयातमार्गः, महता उत्कृष्टसिंहनादबोलकलकलरवेण प्रक्षु-
 भितमहासमुद्ररवभूतमिव कुर्वन्नपि पौरस्यदिगभिमुखो मागधतीर्थेन लवणसमुद्रम् अव-
 गाहते यावत् तस्य रथवरस्य कूर्परो आर्द्रो स्याताम्, तत खलु स भरतो राजा तुर-
 गान् निगृह्णाति, निगृह्य रथ स्थापयति स्थापयित्वा घनुः परामृशति, ततः खलु तत् थञ्चि-
 रोद्धतवालचन्द्रेन्द्रघनुःसकाशं वरमहिषहृत्तदपिपतद्वदधनशृङ्गाप्रसारम्, वरगवरप्रवर ग ।
 लप्रवळपरमृनभ्रमरकुलनीलोस्निग्धधमातघौतपृष्ठम्, निपुणौपित देदोप्यमान मणिरत्नघण्टि
 काजालपरिक्षिप्तम्, तडित्तरुणकिरणतपनीयबद्धचिह्नम्, वर्द्धमलयगिरिशिखरकेसरचामर
 बालार्द्धचन्द्रचिह्नम् कालहरितरक्तपीत शुक्ल बहुस्नायुसम्पन्नद्विजीवम्, जीवितान्तकरणम्,
 चलजीवम्, स नरपति घनु, इषु च गृहीत्वा वरवज्रकीटिकम्, वज्रसारतुण्डम् कञ्चनम-
 ति करत्नघौतेष्टसुकृतपञ्जम्, अनेकमणिरत्नविविधसुविरचितनामचिह्नम्, वैशाखम्,

स्थानं स्थित्वा इषु ओदारम् अयनरुर्णायन कृत्वा तत्र इमानि वचनानि स नरपतिर-
भाषीत् हन्दि । शृण्वन्तु भवन्तो बहिष्मन्तु खलु शरस्य ये देवाः । नागासुराः सुपर्णाः
तेभ्यः खलु नमः प्रणिपनामि ॥१॥

हन्दि । शृण्वन्तु भवन्तोऽभ्यन्तरन शरस्य ये देवा
नागासुरा सुपर्णाः सर्वेते मम विययवासिनः ॥२॥

इति कृत्वा इषु विसृजति, परिकरनिगडितमभ्यः, घातोद्भूतशोभमानकौशेयः
चित्रेण धनुर्वरेण शोभते इन्द्र इव प्रत्यक्षम् ॥३॥ तं चञ्चलायमान पञ्चमीचन्द्रोपमं महा
बापम् राजते वामे हस्ते नरपते तस्मिन् विजये ॥४॥ तत खलु व शरो भरतेन राज्ञा
निसृष्टः सन् क्षिप्रमेव द्वादश योजनानि गत्वा मागधतीर्थाऽधिष्ठते देवस्य भवने निपतितः,
ततः खलु स मागधतीर्थाधिपतिदेवो भवने शरं निपतितं पश्यति, दृष्ट्वा आशुक्लन्तः, रुष्ट,
षाण्डिक्रियत, कुपितः, क्रोधाग्निना दीप्यमानः, त्रिबलिकां भृकुटिं संहरति संहृत्य पवम-
घादीत् क खलु भो पषः अप्रार्थितप्रार्थिकः दुरन्तप्रान्तलक्षण, हीनपुण्यचातुर्दश, ही
श्री परिवर्जितः य खलु मम अस्या पतद्रूपाया दिव्यायाः, देवऋद्धयाः, दिव्याया देव-
द्युतेः, दीव्येन देवानुभावेन लब्धाया प्राप्तया अभिलसमन्वागताया उपरि उत्सुकः भवने शरं
निसृजतीति कृत्वा विहासनाद्भ्युत्थिष्ठनीनि, अभ्युत्थाय यत्रैव स नामादृताङ्क शरस्तत्रै-
वोपागच्छते उपाग य तं नामाहनाङ्कं शरं गृह्णाति, नामाङ्कमनुग्राहयति नामाङ्कमनुग्रा-
हयतोऽयम् पतद्रूपं आभ्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः मनोगत स ह्यव समुद्रपथेन उत्पन्न-
खलु भो । जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे भरतो नाम राजा चातुरन्तचक्रवर्ती तत् जीतमेव
अतीत प्रत्युत्पन्नानागतानां मागधतीर्थकुमारानां देवानां राज्ञाम् उपस्थानिकं कर्तुम् तत्
गच्छामि खलु अहमपि भरतस्य राज्ञ उपस्थानिकं करोमि, इति कृत्वा पवं संप्रक्षते ॥सू०६॥

टीका— “तएणं से” इत्यादि । ‘तए ण से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं
दुरूढे समाणे’ ततः खलु स भरतो राजा चतस्रो घण्टाः सन्ति अस्येति चातुर्घण्टः चतु-
र्घण्टायुक्तस्वम् अश्वरथ दुरूढे आरूढः सन् ‘हयगजरथप्रवरजोहकलियाए सद्धिं संपरिवुडे’
हयगजरथप्रवरयोधकलितया सद्धिं संपरिवृत्तः, तत्र हयगजरथप्रवरयोधैः कलितया युक्तया

टीकार्थ—‘तएणं से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं’ इत्यादि सूत्र-६-

टीकार्थ—(तएणं) इसके अनन्तर (से भरहे राया) वह भरतराजा (चाउग्घंट आसरह) चार
घण्टों से युक्त अश्वरथ पर (दुरूढे समाणे) आसीन होकर (लवणसमुद्धं ओगाहइ) लवण समुद्र में
प्रवेश किया ऐसा यद्वा सम्बन्ध है । (हयगजरथप्रवरजोहकलियाए सद्धिं संपरिवुडे) उस समय उसके

‘त एणं से भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं’ इत्यादि ॥ सूत्र—६ ॥

टीकार्थ—(त एण) त्थार भा६ (से भरहे राया) ते भरत राजा (चाउग्घंटं आसरह)
आरथ प्रयोधी युक्त अश्वरथ उपर (दुरूढे समाणे) आसीन थपने (लवणसमुद्धं ओगाहइ)
लवण समुद्रमा परिष्ठ थया. जेवा अने सम्बन्ध छे (हयगजरथप्रवरजोहकलियाए
सद्धिं संपरिवुडे) ते सपथे तेनी जेथे सेना छणी ते सेनाभा इथ-वेडा, ज... २१॥

सेनया सार्धं सपरिवृतः-सपरिवेष्टितः, तथा 'महया गडचडगरपहगरवंदपरिविखत्ते'
महाभटचडगरपहकरवृन्दपरिहितः, तत्र महाभटानां संग्रामामिलापि महायोधानाम्
'चडगरचि' विस्तृताः विनिधाः 'पहगरचि' समूहाः तेषां यद् वृन्दं तेन परिहितः—
परिकारितः 'चक्ररयणदेसियमग्गे' चक्ररत्नदेजितमार्गः; तत्र—चक्ररत्नेन देजितः प्रद-
र्शितो मार्गो यस्मै स तथा 'अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे' अनेकगजनसहस्राणु-
यातमार्गः, तत्र अनेकेषां राजवराणां मुकुटधारिराजानां सहस्रं गनुयातः अनुगतो मार्गः-
पृष्ठभागो यस्य स तथा 'महया उक्किट्ट सीहणायबोलकलकलरवेणं पक्खुभिय महा-
समुहरवभूयं पिव करेमाणे २ पुरत्थिमदिसाभिमुहे मागहतित्थेणं लवणसमुहं ओगाहड'
महता उत्कृष्ट सिंहनाद बोल कलकलरवेण प्रक्षुभित महासमुद्रवभूतमिव कुर्वन् २ पौरस्त्य-
दिग्भिमुखो मागधतीर्थेन लवणसमुद्रम् अवगाहते, तत्र—महता त्रिशालेन उत्कृष्टिः आन-
न्दध्वनिः, सिंहनादः प्रसिद्धः बोलः अव्यक्तध्वनिः, कलकलश्च तदितरो ध्वनिः तल्लक्ष-
णो यो रवः शब्दः तेन प्रक्षुभितः महावायुवशात् उत्कल्लोलो यो महासमुद्रस्तस्य रवभू-
तमिव महासमुद्रशब्दमयमिव आकाश कुर्वन् पूर्वदिग्भिमुखो मागध नाम्ना तीर्थेन
तीर्थपाश्वर्भागेन लवणसमुद्रमवगाहते प्रविशति । कियत् अवगाहते इत्याह—'जाव से'

साथ सेना थी उस सेना में अधिकसंख्यक हय—घोड़ा—गज—हाथी—रथ, और श्रेष्ठ योधा थे ।
इन सब से वह घिरा हुआ था (महया भट चडगर पहगरवंदपरिविखत्ते) ग्हासग्रामाभिलापी योधाओं
का परिकर उसके साथ चल रहा था (चक्ररयणदेसियमग्गे) गन्तव्यस्थान का मार्ग उसे चक्ररत्न
बतला जाता था (अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे) अनेक मुकुटधारी हजारों श्रेष्ठराजा उसके
पिछे चल रहे थे । (महया उक्किट्ट सीहणाय बोलकलकलरवेणं पक्खुभिय महासमुहरवभूयंपिव
करेमाणे २ पुरत्थिमदिसाभिमुहे मागहतित्थेणं लवणसमुहं ओगाहड) उत्कृष्ट सिंहनाद के जैसे
बोल के कल कल शब्द से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों समुद्र अपनी कल्लोलमालाओं
से ही क्षुभित हो रहा है और यह उस क्षुभित हुए समुद्र का ही गर्जन शब्द है इसमें आकाश
मंडल गुंज उठा था जब वह लवण समुद्र में प्रवेश करने जा रहा था तब वह पूर्व दिशा की

रथ अने श्रेष्ठ योद्धाओं के साथ सर्वथी आवृत्त थयेके ते (महया भटचडगरपह-
गरवंदपरिविखत्ते) महा संग्रामाभिलापी योद्धाओंने परिकर (समूह) तेनी साथे—साथे
याही रह्यो केते। (चक्ररयणदेसियमग्गे) गन्तव्य स्थानने मार्ग ते चक्ररत्न बतलवतु
केतु (अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे) अनेक मुकुटधारी हजारों श्रेष्ठ राजाओं तेनी पाछण
पाछण याही रह्यो केते। (महया उक्किट्ट सीहणायबोलकलकलरवेणं पक्खुभियमहा
समुहरवभूयं पिव करेमाणे २ पुरत्थिमदिसाभिमुहे मागहतित्थेणं लवणसमुहं ओगाहड)
उत्कृष्ट सिंहनाद जेवा अवाजना केल—केल शब्दथी जेवी प्रतीति थय रही केती के लखे
समुद्र योतानी केकेके, भाणाओथी क्षुभित न थय रह्यो होथ अने जे ते क्षुब्ध समुद्रनी
गजानाने ज शब्द छे जेथी आकाश मंडल गुंज उठे केते जेथे ते लवण समुद्रमां
प्रविष्ट थवा जय रह्यो केते। त्यारे ते पूर्व दिशा तरफ मुण करीने मागध तीर्थमां थयने

इत्यादि । 'जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला' यावत् तस्य रथवरस्य कूर्परौ आर्द्रौ स्या-
ताम्, तत्र-रथवरस्य कूर्पराविव कूर्परी कूर्पराकारत्वात् रथचक्रावयवौ आर्द्रौ भवेताम्
'तए णं से भरहे राया तुरगे निगिण्हई' ततः खलु स भरतो राजा तुरगान् अवान्
निगृह्णाति-स्थिरीकरोति 'निगिण्हिच्चा' तुरगान् निगृह्य 'रह ठवेइ' रथं स्थापयति 'ठवेत्ता
स्थपयित्वा 'धणुं परामुसइ' धनुः परामुशति स्पृशति गृह्णातीत्यर्थः 'तए णं' ततः
खलु ततो-धनुः परामर्शानन्तरं खलु स नरपतिः इमानि वक्ष्यमाणानि वचनानि 'भा-
णीयत्ति' अभाणीन् इति सम्बन्धः किं कृत्वा इत्याह-धनुर्गृहीत्वा धनुश्च किमाकारकं
तत्राह-तत् धनुः 'अइरुग्गयवालचंदइंदधणुसंकासं' अचिरोद्गतवालचन्द्रेन्द्रधनुः संका-
शम्, तत्र अचिरोद्गतः तत्कालोदितः यो वालचन्द्रः-शुक्लपक्ष द्वितीयाचन्द्रस्तेन

ओर मुंह करके मागघ तीर्थ से होकर लवण समुद्र मे प्रविष्ट हुआ था । (जाव से रहवरस्स
कुप्परा उल्ला) जब वह लवणसमुद्र में प्रविष्ट हुआ तो वह इतना ही गहरा वहा था कि उसके
रथ के पहियों के अवयव ही गीले हो पाये (तए णं से भरहे राया तुरगे निगिण्हई) भरत राजा
ने अपने रथ के घोड़ों को रोक दिया (निगिण्हिच्चा रह ठवेइ) घोड़ों के रुकते ही रथ भी खड़ा
हो गया (ठवेत्ता धणुं परामुसइ) रथ के खड़े होते ही भरत महाराजा ने अपने धनुष को उठाया
(तए णं) इसके बाद उस भरत राजा ने इस प्रकार से कहा ऐसा यहां सम्बन्ध है । जिस धनुष
को भरत राजा ने उठाया था उसकी विशेषता प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं-
(अइरुग्गय वालचंद इंदधणुसंकास दरियदप्पिय दढघणसिगरइयमारं उरगवरपवरणवल पवर
परपरहुयममरकुलणीलणिद्धं) उसका अकार अचिरोद्गत वालचन्द्र के जैसा एवं इन्द्र धनुष
के जैसा था । यहां अचिरोद्गत वालचन्द्र से शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्र गृहीत हुआ
है क्योंकि यही पतला और विशेषरूप में वक्र धनुष के जैसा होता है । इसी तरह से वर्षाकाल
के समय जो गगन में इन्द्रधनुष उदना हुआ दिखलाई देता है वह भी इन्द्रधनुष के जैसा ही

लवण समुद्रमा प्रविष्ट थये इते। (जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला) ज्यारे ते लवण
समुद्रमा प्रविष्ट थये त्यारे ते आटवे। ज् जि डो इते। के तेनाथी तेना रथना अकेना अप-
येवे। ज् बीना थई शक्या। (तए णं से भरहे राया तुरगे निगिण्हई) भरत राजाये पीताना
रथना घोडाये। रेकी दीधा। (निगिण्हिच्चा रह ठवेइ) घोडाये अटक्या नेथी रथ पल्लु उलो-
रथी। (ठवेत्ता धणु परामुसइ) रथ उले। रथी के तरन ज् भरन राजाये पीताना 'धनु-
ष्यने उडांथुं' (त ए णं) त्यार भाद ते भरत राजाये आ प्रम णे उल्लु-येवे। आ स्थाने
स अंध छे जे धनुषने भरतराजाये उडांथुं हुनु, तेनी विशेषता प्रकट करता सूत्रकार
उहे छे—(अइरुग्गयवालचंदइंदधणुसंकासं दरियदप्पियदढघणसिगरइयमार उरगवर पव-
रणवल पवर परपरहुय ममरकुलणीलणिद्धं) तेना आकार अचिरोद्गत वालचन्द्र जेने।
तेमज् इन्द्र धनुष जेवे हुने। अहुं अचिरोद्गत अलक्ष्यथी शुक्ल पक्षनी द्वितीयाये।
अद्रुगृहीत थये छे केमके जे पातणे। अने विशेष रूपमा वक्र धनुष जेवे डाय छे आ
प्रमाणे वर्षाकालना समये जेम गगनमा इन्द्रधनुष उदगत थतुं जेवा मां आवे छे तेम त

तथा इन्द्रधनुषा च अतिवक्रतया सकाश सदृश यत्तत्तथा, पुनश्च 'अरग' इतिदरिग दृश्येय दद्वघणसिपरइअसार' वरमहिप दृप्नदृप्पिनदृद्वघनशृङ्गरतिदमारम्, तत्र दृ तद्वर्षितः मज्जान-
 दर्पातिशय यो वरमहिपः बाहद्विपोत्तमः तस्य दृद्वं निगिदपुग्दन्तानप्यन्नम् अनपद घन-
 छिद्ररहितं यत् शृंग रतिद-रमणीयं तद्वत् सार सश्रेष्ठ तत्सदृशमापरयुक्तमित्यर्थः
 पुनश्च कीदृशम् 'उरगवरपरगवल वरपरहुयभमरकुलणीच्छिद्ररहितं गोगपट्ट' उरगवरप्रवर-
 गवलप्रवरपरभृतभ्रमरकुलनीलीस्निग्धध्मातयौतपृष्ठम्, तत्र उरगवरो-भुजगश्रेष्ठः प्रवरगवल
 प्रधानमहिपशृङ्गम्, प्रवरपरभृतः श्रेष्ठकोकिलः, भ्रमरकुल मगुकरममूहः, नीली-गुलिका
 एतानीव स्निग्ध कालकान्तियुक्तं, ध्मातमिव ध्मातम्-तेजसा जाज्वल्यमानं धौतमिव
 धौत-निर्मलं पृष्ठ पृष्ठभागो यस्य तत्तथा 'णिउणोत्रिय मिसि मिसितमणिरयण-
 घंटियाजालपरिक्लिप्त' निपुणोपित देदीप्यमानमणिरत्नघण्टिका जालपरिक्षिप्तम्,
 तत्र-निपुणेन-शिलिपना ओपिताः उज्ज्वलितः अतएव देदीप्यमानाः मणिरत्नघण्टिका
 तासां यज्जालं समूहः तेन परिक्षिप्तं वेष्टितं यत्तत्तथा, पुनश्च कीदृशम् 'तडित्तरुणकि-
 रणतवणिज्जबद्धचिध' तडित्तरुणकिरणतपनीयबद्धचिह्नम्, तत्र तडिदिव विधुदिव-
 तरुणाः नवीनाः किरणा यस्य तत्तथा, एवं विधस्य तपनीयस्य मुवर्णरय सम्बन्धीनि
 तपनीयमयानीत्यर्थः बद्धानि चिह्नानि यत्र तत्तथा चाकचिक्ययुक्त नानाविधसुवर्ण-
 चिह्नयुक्तमित्यर्थः 'पुनश्च-दद्वरमलयगिरिसिहरकेसरचामरबालद्वचदचिध' दद्वर मलयगिरि-

वक्र होता है अतः धनुष की वक्रता प्रकट करने के लिये इन दोनों का साम्य यहां बतलाया गया है। तथा अहकार से गर्बीले हुए श्रेष्ठ महिप के निबिडपुद्गलों से निष्पन्न अतएव छिद्ररहित ऐसे रमणीय शृङ्ग के जैसे मजबूत एवं श्रेष्ठ नाग की प्रधान महिप शृङ्ग की श्रेष्ठ कोकिल की भ्रमर कुलकी एवं नीली गुटिका की जैसी काली कान्ति वाले (धन धोयपट्ट) तेज से जाज्वल्यमान, तथा निर्मल पृष्ठ भाग वाले (णिउणोत्रियमिसिमिसित मणिरयणघंटियाजालपरिक्लिप्त) निपुण शिलियों द्वारा उज्ज्वलित की गई अतएव देदीप्यमान ऐसी मणिरत्न घण्टिकाओं के समूह से वेष्टित (तडित्तरुणकिरणतवणिज्जबद्धचिध) विजली के जैसी नवीन किरणों वाले सुवर्ण से निर्मित जिसमें चिह्न हैं (दद्वर मलयगिरिसिहरकेसरचामरबालद्वचदचिध) दद्वर

पञ्च इन्द्रधनुष जेवो ज वक्र होय छे जेथी धनुषनी वक्रता प्रकट करवा भाटे जे अन्नेनी समानता अही रूपट करवाभां आवी छे तेभज अहकारथी गर्वित थयेला श्रेष्ठ महिपना निभिड पुद्गदोथी निष्पन्न जेथी छिद्ररहित जेवा रमणीय शृंग जेवा सुदृढ अने श्रेष्ठ नागनी प्रधान महिपश्च गनी श्रेष्ठ कोकिलनी, भ्रमर कुलनी तेभज नीली गुटिक जेवी काणी हातिवाणा (धंत धोयपट्ट) तेज थी जज्वल्यमान, तथा निर्मल पृष्ठभागवाणा (णिउणोत्रियमिसिमिसितमणिरयणघंटियाजालपरिक्लिप्त) निपुण शिलिपयो वडे उज्वलित करवाभा आवी जेथी देदीप्यमान जेवी मणिरत्न घण्टिकाज्येना समूहोथी वेष्टित (तडित्तरुणकिरणतवणिज्जबद्धचिधं) विधुत जेवा नवीन किरणोवाणा सुवर्णथी निर्मित जेभा जिहो छे (दद्वरमलयगिरिसिहरकेसरचामरबालद्वचदचिधं) दद्वर अने मलयगिरिना

शिखरकेमरचामरवागर्द्धचन्द्रचिह्नम्, तत्र दर्दरमलय नामकगिर्योः—यानि शिखराणि तत्सम्बन्धिनी गे केसराः—तत्रत्य सिंहस्कन्धकेशाः चामरगालाः—चमरगोपुच्छकेशाः एते तथा अर्द्धचन्द्राश्च खण्डचन्द्रप्रतिबिम्बानि चित्ररूपाणि एतादृशानि चिह्नानि यत्र तत्तथा, धनुषि सिंहकेशरवन्धनं शौर्यातिशयख्यापनार्थं, चामरवालवन्धम् अर्द्धचन्द्रचित्रम् च शोभातिशय दर्शनार्थमिति विज्ञेयम्, पुनश्च 'कालहरियरत्तपीयसुक्किल्लबहुणहारुणि संपिण्डजीवं' कालहरितरक्तपीतशुक्ल—बहुस्नायुसंपिनद्धजीवम्, तत्र कालहरितरक्तपीतशुक्लवर्णाः याः बहवः स्नायवः शरीरान्तर्बर्तिनाडीविशेषाः तामिः संपिनद्धा—वद्धा जीवा प्रत्यञ्चा यस्य तत्तथा 'जीवियन्तकरणम्' जीवितान्तकरणं रिपूणां जीवनाशकम् 'चरुजीवं' चलजीवम्, चला चञ्चला जीवा प्रत्यञ्चा यस्या तत्तथा एतादृशं पूर्वोक्तानेकविशेषणविशिष्टम् 'धणुं गह्विज्जण से णरवई उमु च' स नरपतिः धनुः इपु बाणं च गृहीत्वा, पूर्वोक्तानि पदानि धनुषो विशेषणानि साम्प्रतं बाणविशेषणानि प्राह—'वरनइरकोडियं' वरवज्रकोटिकम्, तत्र वरवज्रमय्यौ श्रेष्ठहीरकजटितौ कोटयौ उभयप्रान्तौ यस्य स तथा ताम्, पुनश्च 'वइरसारतोडं' वज्रसारतुण्डम् वज्रवत् सारम् अभेद्यत्वेन अभङ्गुरं तुण्डम् अग्रभागो यस्य स तथा तम्, पुनश्च कीडशम् 'कंचणमणिकणगरयणधोइट्टसुक्यपुंखं' काञ्चनमणिकनकरत्नधौतेष्टसुकृतपुङ्खम्, तत्र—काञ्चनेति काञ्चनखचिताः मणयः कनकेति कनकखचितानि रत्नानि प्रदेशविशेषे यस्य सः तथा धौत इव धौतो निर्मलत्वात् इष्टो धानुष्काणामभिमतः सुकृतो विपुणशिल्पिना निर्मितः पुङ्खः पृष्ठभागो यस्य स तथा तम् 'अणेगमणिरयण—विविहसुविरइयनामचिंध' अनेकमणिरत्नविविधसुविरचितनामचिह्नम्, तत्र अनेकैः मणिरत्नैः विविधं—नानाप्रकारं सुविरचितं निर्मितं नामचिन्हं भरतचक्रिनामवर्णपङ्क्तिरूपं यत्र स तथा तम् एतादृशविशेषणविशिष्टम् इपुं गृहीत्वा पुनः किं कृत्वा तत्राह

और मलयगिरि के शिखर के सिंहस्कन्धकेश, चामर वाल चामर गोपुच्छ केश एवं अर्द्धचन्द्र ये जिसमें चिह्नरूप से बने हुए हैं। (काल हरियरत्तपीय सुक्किल्ल बहुणहारुणिसंपिण्डजीवं) कालादिवर्णवाली स्नायुओं से जिसकी प्रत्यञ्चा बँधी हुई है। (जीवियन्तकरणं चलजीवं धणुं गह्विज्जण) जो शत्रुओं के जीवन का अन्त करने वाला है तथा जिसकी प्रत्यञ्चा चंचल है ऐसे धनुष को हाथ में लेकर (स णरवइ) उस भरत राजा ने (उमुंच वरवइरकोडियं वइर सारतोड, कंचणमणिकणगरयणधोइट्टसुक्यपुंखं अणेगमणिरयणविविहसुविरइयनामचिंध वइसाहं

शिखरना सिंह स्कन्ध त्रिकुर, आमर-भालयम, गोपुच्छत्रिकुर तेभञ्च अर्द्ध चन्द्र ये चिन्डो नेनां चिन्ड इपे अकिर छे (कालहरियरत्तपीय सुक्किल्ल बहुणहारुणि संपिण्डजीवं) भवादि वर्युं युक्त स्नायुयोथी निमित्त नेमां प्रत्यञ्चा आपद्ध छे. (जीविजनकरण चलजीवं धणु गह्विज्जण) ने शत्रुयोना एवनभाटे अन्तकर छे तेभञ्च नेनी प्रत्यञ्चा अयण छे, जेवा धनुषने हाथमां धेने (स णरवइ) ते भरत राजाये (उमुचवरवइरकोडियं वइर सारतोड, कंचणमणिकणगरयणधोइट्टसुक्यपुंखं अणेगमणिरयण-

खलु निश्चयेन नमोऽस्तु विभक्ति परिणामात् तान् प्रणिपतामि-नमस्करोमि । यद्यपि नम इति पदेनैव नमस्कारस्य गतार्थता स्यात्तथापि 'प्रणिपतामि' इति पुनरुक्तिर्भरतचक्रिणो भक्त्यतिशयख्यापनाय अनेन शश्रयोगाय साहाय्यकारकाणां बहिर्भागवासिनां देवानां सम्बोधनमुक्त्वा अथाभ्यताभागवर्त्ति देवान् सम्बोधयितुमाह- 'हृदि सुणंतु भवंतो अर्बिभतरओ सरस्स जे देवा । णागा सुरा सुवण्णा सव्वे मे ते विसयवासी ॥ २ ॥ 'हृदि' इति सम्बोधने हे देवाः । शृण्वन्तु भवन्तोऽभ्यन्तरतः आभ्यन्तराः शरस्य ये देवा नागा असुराः सुपर्णाः सर्वे ते मे-मम विषयवासिनः- मम देशवासिनः तान् प्रणिपतामीति सम्बन्धः । तथा च सर्वे एते देवा मदाज्ञा वशंवदत्वेन मत्प्रयुक्तस्य शरश्रयो-गस्य सर्वथा सहायकत्वेन स्थास्यन्तीति बुद्ध्या नमस्करणम् । यद्यपि एते देवा राज्ञ

कुमार इन सबके लिये नमस्कार करता हूँ यद्यपि यहा पर प्रयुक्त नम शब्द से ही नमस्कार करने की बात आ जाती है, परन्तु फिर भी जो "पणिवयामि" शब्द का प्रयोग किया है । वह भरत चक्री की भक्ति की अतिशयता ख्यापन करने के लिये किया गया है । इस तरह सर प्रयोग के लिये साहाय्य करने वाले बहिर्भाग वासी देवों को संबोधित करके अब वह आभ्यन्तरं वर्ती देवों का संबोधन करता है- (हृदि सुणंतु भवंतो अर्बिभतरओ सरस्स जे देवा-णागासुरा सुवण्णा सव्वे मेते विसयवासो ॥२॥-यहां "हृदि" पद सम्बोधन में प्रयुक्त हुआ है । मेरे में रहनेवाले जो नागकुमार, असुरकुमार, सुवर्णकुमार नाम के देव हैं-वे सब सुन-मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ । यहां जो चक्रवर्ती ने ऐसा कहा है उसका अभिप्राय ऐसा है कि ये सब देव मेरी आज्ञा के वशवर्ती होने के कारण मेरे द्वारा छोड़े गये बाण के सब प्रकार से सहायक होंगे ही इस कारण मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ । यद्यपि कोई ऐसी आशंका यहां करे कि जब ये देव राजा के आधिपति होने रूप से निर्धारित है तो फिर उन्हें नमस्कार करना उसका अनुचित है ।

हु नागकुमार, असुर कुमार, सुवर्ण कुमार ये सब भाटे नमस्कार करु छुं जे के अही प्रयुक्त 'नम' शब्दथी न नमस्कार करवानी बात आवी जय छे पखु छतांजे जे "पणिवयामि" शब्दने प्रयोग करवामां आवेल छे ते भरत अहीनी लक्षितानी अतिशयता यथापन करवा भाटे कडेवामां आवेल छे आ प्रभाण्णे पाखु प्रयोगमा सहायलूत थनारा अहिर्भागवासी देवोने स आधिपति करीने हुवे ते आलयतरवती देवोने सम्बोधन करे छे. (हृदि सुणंतु भवंतो अर्बिभतरओ सरस्स जे देवा-णागासुरा सुवण्णा सव्वे मंते विसयवासी ॥ २ ॥ अही "हृदि" पद सम्बोधन भाटे प्रयुक्त थयेल छे मारा देशमा रहनेनारा जे नागकुमार, असुरकुमार, सुवर्णकुमार नामक देवा छे, तेज्जे सबे सावणो-हु ते मने सबने नमस्कार करे छुं अही जे चक्रवर्ती जे आ प्रभाण्णे कहु छे तेनो अभिप्राय आ प्रभाण्णे छे के जे सबे देवा मारी आज्ञा सुज्ज अलनारा छे. तेथी मारावडे छोडवामां आवेल पाखुने सबे रीते सहायलूत थये जे अथी हु तेमने नमस्कार करे छुं जे के अडो केरि अथी करी थके तेम छे के जयारे जे देवा राजने आधिपति

आज्ञा वशंवदत्वेन निर्धारिता स्तर्हि तस्य नमस्कारोऽनुपपन्नः इति नोद्भावनीयम्, क्षत्रियाणां शस्त्रस्य नमस्कार्यत्वे व्यवहारदर्शनात् चक्ररत्नस्यैव, तेन तदधिष्ठातृणामपि स्वाभिमत कार्यसाधकत्वेन नमस्कारस्येष्टत्वात् 'इति कट्टु उगुं निसिरइत्ति' इति कृत्वा-निवेद्य इपुं-बाण निस्सृजति मुञ्चति । भरतस्यैतत्प्रस्ताववर्णनाय गाथा द्वयमाह-
परिगरणि ,रियमज्झो वाउद्धुय सोभमाणकोसेज्जो ।

चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥ ३ ॥

तं चंचलायमाणं पंचमि चंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे णरवइणो तंमि विजयंमि ॥ ४ ॥

छाया- परिगरणिगडितमथ्यो वातोद्धूतगोभमानकोशेयः । चित्रेण धनुर्वरेण शोभते इन्द्र इव प्रत्यक्षम् । ३ । तं चञ्चलायमान पञ्चमी चन्द्रोपमं महाचापम् । राजते वामे हस्ते नरपतेस्तस्मिन् विजये । ४ । तत्र परिकरेण-मल्लकच्छवन्धेन युद्धो-चित्तवस्त्रवन्धविशेषेण, निगडितं-मुवद्धं मध्यं-मध्यभागः कटिभागो यस्य स तथा

सो यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि चक्ररत्न की तरह जब क्षत्रियों को शस्त्र नमस्कार्य हैं तो जो उनके अधिष्ठात्यक देव हैं उन्हें राजा नमन करे इसमें कोई अनुचित बात नहीं है । कारण कि वे भी राजा के अभिमत कार्य में साधक होते हैं । (इति कट्टु इपुं निसिरइत्ति) ऐसा कहकर उसने बाण को छोड़ दिया । भरत के इसी प्रस्ताव को वर्णन करने के लिये ये दो गाथाएँ कही गई हैं—

परिगरणिगरियमज्झो वाउद्धुयसोभमाणकोसेज्जो ।

चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥१॥

तं चंचलायमाणं पंचमि चंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे णरवइणो तंमि विजयंमि ॥२॥

जिस प्रकार आखाड़े में उतरते समय पहिलवान अपनी कांछ को बांधछेता है उसी प्रकार मागधतीर्थेश के साधने के लिये धनुष पर बाण चढा कर छोड़ने के समय उस भरत राजा ने

छे न तो पशु तेमने नमस्कार करवा उचिन कडेवाय नकि तो आ शंका भराभर नहीं केम के चक्ररत्न नी जेम ज्यारे क्षत्रियोने शस्त्र नमस्कार्य छे तो तेमना अधिष्ठात्यक देव छे, तेमने राजा नमन करे तेमा केई अनुचित बात नहीं कारण के तेमो पणु राजाना अभिमत कार्यमां साधक होय छे (इति कट्टु इपुं निसिरइत्ति) आ प्रभाणु कडीने तेणु पाणु छोडी दीधु . भरतना जे प्रस्ताव ने स्पष्ट करवा भाटे आ जन्ने गाथाजो कडेवामां आवी छे—

परिगरणिगरियमज्झो वाउद्धुय सोभमाणकोसेज्जो ।

चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥१॥

तं चंचलायमाणं पंचमि चंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे णरवइणो तंमि विजयंमि ॥२॥

जे प्रभाणु अभाडांमां उतरती वभते पडेदवान कछोटो भांधे छे, तेमज्ज मागध तीर्थेशने साधना भाटे धनुष उपर पाणु यडावीने छोडती वभते ते भरत राजजे पणु योता-

खलु निश्चयेन नमोऽस्तु विभक्ति परिणामात् तान् प्रणिपतामि-नमस्करोमि । यद्यपि नम इति पदेनैव नमस्कारस्य गतार्थता स्यात्तथापि 'प्रणिपतामि' इति पुनरुक्तिर्भरतचक्रिणो भक्तयतिशयख्यापनाय अनेन शरप्रयोगाय साहाय्यकारकाणां बहिर्भागवासिनां देवानां सम्बोधनमुक्त्वा अथाभ्यन्तरभागवर्ति देवान् सम्बोधयितुमाह- 'हृदि सुणंतु भवंतो अर्द्धिभतरओ सरस्स जे देवा । णागा सुरा सुवण्णा सव्वे मे ते विसयवासी ॥ २ ॥ 'हृदि' इति सम्बोधने हे देवाः ! शृण्वन्तु भवन्तोऽभ्यन्तरतः आभ्यन्तराः शरस्य ये देवा नागा असुराः सुपर्णाः सर्वे ते मे-मम विषयवासिनः- मम देशवासिनः तान् प्रणिपतामीति सम्बन्धः । तथा च सर्वे एते देवा मदाज्ञा वशंवदत्वेन मत्प्रयुक्तस्य शरप्रयोगस्य सर्वथा सहायकत्वेन स्थास्यन्तीति बुद्ध्या नमस्करणम् । यद्यपि एते देवा राज्ञ

कुमार इन सबके लिये नमस्कार करता हूँ यद्यपि यहाँ पर प्रयुक्त नमः शब्द से ही नमस्कार करने की बात आ जाती है, परन्तु फिर भी जो "पणिवयामि" शब्द का प्रयोग किया है । वह भरत चक्री की भक्ति की अतिशयता ख्यापन करने के लिये किया गया है । इस तरह शर प्रयोग के लिये साहाय्य करने वाले बहिर्भाग वासी देवों को संबोधित करके अब वह आभ्यन्तर वर्ती देवों का संबोधन करता है- (हृदि सुणंतु भवंतो अर्द्धिभतरओ सरस्स जे देवा-णागासुरा सुवण्णा सव्वे मेते विसयवासो ॥२॥-यहाँ "हृदि" पद सम्बोधन में प्रयुक्त हुआ है । मेरे मे रहनेवाले जो नागकुमार, असुरकुमार, सुवर्णकुमार नाम के देव हैं-वे सब सुन-मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ । यहाँ जो चक्रवर्ती ने ऐसा कहा है उसका अभिप्राय ऐसा है कि ये सब देव मेरी आज्ञा के वशवर्ती होने के कारण मेरे द्वारा छोड़े गये बाण के सब प्रकार से सहायक होंगे ही इस कारण मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ । यद्यपि कोई ऐसी आशंका यहाँ करे कि जब ये देव राजा के आघिन होने रूप से निर्घातित है तो फिर उन्हें नमस्कार करना उसका अनुचित है ।

हु नागकुमार, असुर कुमार, सुवर्ण कुमार ओ सर्व भाटे नमस्कार कहु छुं ओ के अही प्रयुक्त 'नम' शब्दथी न नमस्कार करवानी बात आवी जथ छे पणु छताओ ओ "पणिवयामि" शब्दने प्रयोग करवामा आवेल छे ते भरत चक्रीनी लक्षितनी अतिशयता जथा यन करवा भाटे कडेवामा आवेल छे आ प्रमाणे णाणु प्रयोगमा सहायलूत थनारा णडि-भागवासी देवाने स आघिन करीने हवे ते आलयतरवतीं देवाने सम्बोधन करे छे. (हृदि सुणंतु भवंतो अर्द्धिभतरओ सरस्स जे देवा-णागासुरा सुवण्णा सव्वे मंते विसयवासी ॥ २ ॥ अही "हृदि" पद सम्बोधन भाटे प्रयुक्त थयेल छे मारा देशमां रहनेवारा ओ नागकुमार, असुरकुमार, सुवर्णकुमार नामक देवो छे, तेओ सर्वे साबणो-हुं ते मने सर्वने नमस्कार कहुं छुं अही ओ चक्रवर्ती ओ आ प्रमाणे कहु छे तेनो अलिप्राय आ प्रमाणे छे के ओ सर्वे देवो मारी आज्ञा सुजण अलनारा छे. तेथी मारावडे छोडवामा आवेल णाणुने सर्व रीते सहायलून थये न ओथी हुं तेमने नमस्कार कहु छुं ओ के अही कहुं ओरी जथा करी थके तेम छे के जथा ते देवो राजने आधी-

आज्ञा वशंवदत्त्वेन निर्धारिता स्तर्हि तस्य नमस्कारोऽनुपपन्नः इति नोद्भावनीयम्।
क्षत्रियाणां शस्त्रस्य नमस्कार्यत्वे व्यवहारदर्शनात् चक्ररत्नस्येव, तेन तदधिष्ठातृणामपि
स्वाभिमत कार्यमाधकृत्वेन नमस्कारस्येष्टत्वात् 'इति कट्टु उमुं निसिरइत्ति' इति
कृत्वा-निवेद्य इपुं-बाण निसृजति मुञ्चति । भरतस्यैतत्प्रस्ताववर्णनाय गाथा द्वयमाह-

परिगरणि ,रियमञ्जो वाउद्ध्य सोभमाणकोसेज्जो ।
चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥ ३ ॥

तं चंचलायमाणं पंचमि चंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे णरवइणो तंमि विजयंमि ॥ ४ ॥

छाया- परिकरनिगडितमभ्यो वातोद्धृतशोभमानकौशेयः । चित्रेण धनुर्वरेण
शोभते इन्द्र इव प्रत्यक्षम् । ३ । तं चञ्चलायमान पञ्चमी चन्द्रोपमं महाचापम् ।
राजते वामे हस्ते नरपतेस्तस्मिन् विजये । ४ । तत्र परिकरेण-मल्लकच्छबन्धेन युद्धो-
चितवस्त्रबन्धविशेषेण, निगडितं-सुवद्धं मध्यं-मध्यभागः कटिभागो यस्य स तथा

सो यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि चक्ररत्न की तरह जब क्षत्रियों को शस्त्र नमस्कार्य हैं तो जो उनके अधिष्ठायाक देव है उन्हें राजा नमन करे इसमें कोई अनुचित बात नहीं है । कारण कि वे भी राजा के अभिमत कार्य में साधक होते हैं । (इति कट्टु इमुं निसिरइत्ति) ऐसा कहकर उमने बाण को छोड़ दिया । भरत के इसी प्रस्ताव को वर्णन करने के लिये ये दो गाथाएँ कही गई हैं-

परिगरणिगरियमञ्जो वाउद्ध्यसोभमाणकोसेज्जो ।

चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥१॥

त चंचलायमाणं पंचमि चंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे णरवइणो तंमि विजयंमि ॥२॥

जिस प्रकार आखाड़े में उतरते समय पहिलवान अपनी काँछ को बांधनेता है उसी प्रकार मागधतीर्थेश के साधने के लिये धनुष पर बाण चढ़ा कर छोड़ने के समय उस भरत राजा ने

छे न तो पञ्जी तेमने नमस्कार करवा उचित कहेवाथ नडि तो आ शंका भराभर नहीं
डेम के अक्षरत नी जेम ज्यारे क्षत्रियोने शस्त्र नमस्कार्य छे तो तेमना अधिष्ठायाक देव
छे, तेमने राजा नमन करे तेमा कौंछ अनुचित वात नहीं करणु डे तेज्जे पणु राजना
अभिमत कार्यमां साधक डोथ छे (इति कट्टु इमुं निसिरइत्ति) आ प्रभाणु कहीने तेणु पाणु
छोडी दीधुं. भरतना जे प्रस्ताव ने स्पष्ट करवा भाटे आ भन्ने गाथाज्जे कहेवामां आवी छे-

परिगरणिगरियमञ्जो वाउद्ध्यसोभमाणकोसेज्जो ।

चित्तेण सोभए धणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥१॥

तं चंचलायमाणं पंचमि चंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे णरवइणो तंमि विजयंमि ॥२॥

जे प्रभाणु आभाठांमां उतरती वभते पडेसवान कछोटो पांघे छे, तेमज्ज भागध तीर्थे
शने साधना भाटे धनुष उपर पाणु अढावीने छोटती वभते ते भरत राजजे पणु पीता-

वातेन-प्रस्तावात् समुद्रपवनेन उद्धूतम्-उत्क्षिप्तं शोभमानं कौशेयं-वस्त्रविशेषो यस्य स तथा, चित्रेण धनुर्वरेण शोभने 'स भरतः' इन्द्र इव प्रत्यक्षम् साक्षान् नत्प्रागुक्त स्वरूपं महोत्थापं चञ्चलायमानं सौदामिनीयमानम्, आरोपित गुणत्वेन पञ्चमीचन्द्रोपमम्, पञ्चमीचन्द्र उपमा यत्र तम् 'छज्जइ' राजते प्रकाशते, कुत्र इत्याह-वाम हस्ते नरपते श्रक्रिणो भरतस्य तस्मिन् विजये मागधतीर्थेश साधनरूपो । 'तए णं से सरे भरहेणं रण्णा णिसिद्धे समाणे खिप्पामेव दुवाळसजोयणाइं गंता मागहतित्थाहिवइस्स देवस्स भवणंसि निवइए' ततः खलु स शरो भरतेन राज्ञा निरुष्टः सन् क्षिप्रमेव द्वादशयोजनानि गत्वा मागधतीर्थाधिपतेः देवस्य भवने निपतितः 'तए णं से मागहतित्थाहिवई देवे भवणंसि सरं णिवइयं पासइ' ततः खलु स मागधतीर्थाधिपतिः देवो भवने स्वकीय स्थाने शरं निपतितं पश्यति 'पासित्ता' दृष्ट्वा आसुरत्ते' आशु शीघ्र रक्तः क्रोधोदयाद् स्फुरितकोपानलः 'रुठ्ठे चंडिकिए' रुष्टः- उदितक्रोधः चाण्डि-

भी अपनी घोती को काँछ को बाँध लिया था इससे उसके शरीर का मध्य भाग कटि भाग सुदृढ बन्धन से बद्ध हो जाने के कारण बहुत मजबूत हो गया था अथवा - युद्धोचित वस्त्र बन्धन विशेष से उसका मध्यभाग कटिभाग बँधा हुआ था इसने जो कौशेय वस्त्र विशेष पहिर रक्खा था वह समुद्र के पवन से घेरिरे उस समय हिल रहा था अतः वाम हाथ में धनुष लिये हुए वह भरत राजा प्रत्यक्ष इन्द्र के जैसा प्रतीत हो रहा था । तथा वाम हाथ में जो पूर्वोक्तरूप से वर्णित धनुष था वह विजली की तरह चमक रहा था- एवं शुक्ल पक्ष की पचमी तिथि के चन्द्र जैसा प्रतीत हो रहा था. (तएणं से सरे भरहेणं रण्णा णिसिद्धे समाणे खिप्पामेव दुवाळसजोयणाइं गंता भोगहतित्थाहिवइस्स देवस्स भवणंसि निवइए) जब भरत राजा ने वह बाण छोडा तो छूटते ही १२ योजन तक जाकर मागधतीर्थ के अधिपति देव के भवन में पड़ा । (तएणं से मागहतित्थाहिवई भवणंसि सर निवइय पासइ) उस मागधतीर्थाधिपति देव ने ज्योंही अपने भवन में गिरेदुरु बाण को देखा तो (दृष्ट्वा) देखकर (आसुरत्ते रुठ्ठे चंडिकिए कुविए मिमभिसेमाणेनि) वह क्रोध से

नी घातीनी काँछने बाधी दीधी ऐथी तेना शरीरनेा मध्यभाग अटके ऊँ कटिभाग सुदृढ बन्धनथी आबद्ध थई अवा महल महुँअ मज्जुत थई गये। अथवा युद्धोचित वस्त्र बन्धन विशेषथी तेना मध्यभाग कटिभाग आबद्ध हुते। ऐथे ने कौशेय वस्त्र विशेष धारणु करैहुँ हुतु, ते समुद्रना पवनथी धीमे-धीमे ते वपते डादी रधु हुतु' ऐथी डाभा हाथमां धनुष धारणु करैल ते भरत राजा प्रत्यक्ष इन्द्र जेवे। लागते हुते। तथा वाम हस्तमां ने पूर्वोक्त उपमां वर्णित धनुष हुतु ते विद्यत नी जेम अमकी रधु हुतु तेमज्ज शुक्लपक्षनी पंचमी तिथिना चन्द्र जेवु लागतुं हुतु, (तएणं से सरे भरहेणं रण्णा णिसिद्धे समाणे खिप्पामेव दुवाळसजोयणाइं गंता मागहतित्थाहिवइस्स देवस्स भवणंसि निवइए) अथारे भरत राजाजे बाण छोडथु' तो छूटता अ १२ योजन सुधी अछने मागध तीर्थना अधिपति देवना भवनमां पडथु. (तएणं से मागहतित्थाहिवई भवणंसि सर निवइय पासइ) ते मागध तीर्थाधिपति देवे अथारे येताना भवनमां पडेहुँ बाणु जेथु ते।

वियतः—सञ्जातचाण्डिक्यः अतिक्रोधयुक्त इत्यर्थः, 'कुत्रिण' कुपितः—प्रवृद्ध क्रोधो-
 दयः 'मिसमिसेमाणे त्ति' कोपाग्निना दीप्यमान इव दन्तरोष्ठ दशन मिसमिसशब्दं
 कुर्वाण इत्यर्थः 'तिवलियं भिउडिं णिडाळे साहरइ' त्रिपलिकां तिम्रो वलयः प्रकृष्ट
 क्रोधोदितललाटरेखा रूपा यस्यां सा तथा ता तथाविधा भृकुटिं संहरति निवेद्यति
 आर्कषयतीत्यर्थः 'संहरित्ता' संहरत्य 'एव वयामी' एवमगदीत् उक्तवान् 'कम णं' इत्यादि
 'केस ण' भो एस अपत्थियपत्थए दुरतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउडसे हिरिसिरि-
 परिवज्जिए जेणं मम इमाए एयाणुरुवाए दिव्वाए देविद्धीए दिव्वाए देवजुईए
 दिव्वेणं दिव्वाणुभावेण लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पि अप्पुस्सुए भवणसि
 सरं णिसिरइत्ति कट्ठु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ' कः खलु भो एपः अप्रार्थितप्रार्थकः
 दुरन्तप्रान्तलक्षण हीनपुण्णचातुईश ह्री श्री परिवर्जितः यः खलु मम अस्या एतदू-
 पायाः दिव्यायाः देवश्रद्धयाः दिव्याया देवद्युतेः दिव्येन देवानुभावेन लब्धायाः
 प्राप्ताया अभिसमन्वागताया उपरि आत्मना उत्सुकः भवने शरं निसृजतीति कृत्वा

रक्त-आग-बबूला हो गया—क्रोध के उदय से जग गई हे क्रोध रूपी अग्नि जिसकी ऐसा बन
 गया—जिसने यह वाण फेंका है उसके ऊपर व गुत्सेमें भर गया —अत एव उसके रूपमें रौद्र-
 भाव प्रकटने लग गया और उदित क्रोध के वशवर्ती होकर वह दातों से अपने होठों को ढसता
 हुआ मिसमिसाने लग गया (तिवलियं भिउडिं णिडाळे साहरइ) उसी समय उसकी भृकुटि
 त्रिवाल युक्त होकर ललाट पर चढ़ गई — टेढ़ी हो गई (सहरित्ता एवं वयासी) भृकुटि ललाट
 पर चढ़ाकर वह फिर ऐसा सोचने लगा (केसणं भो एस अपत्थियपत्थए दुरतपंतलक्खणे
 हीणपुण्णचाउडसे हिरिसिरिपरिवज्जिए जेणं मम इमाए एयाणुरुवाए दिव्वाए देविद्धीए दिव्वाए
 देवजुईए दिव्वेणं देवाणुभावेण लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पि अप्पुस्सुए भवणसि सरं-
 णिसिरइत्ति कट्ठु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ) अरे ! ऐसा यह— कौन अप्रार्थित प्रार्थी—मरण का
 अभिलाषी हुआ है — अर्थात् ऐसा कौन है जो मेरे साथ युद्ध का अभिलाषी होकर अपनी अक्राल

(हृष्टा) क्रोधने (आसुरत्तेरुद्धे वंडक्किप कुविय मिसमिसे माणेत्ति) ते क्रोधधी रक्त थधं गथे।
 क्रोधना उदयधी क्रोध रूपी अग्नि नेभां प्रकट थथे छे जेवे। ते थधं गथे। जेथे आ णाणु
 ई कथुं तेनी उपर ते क्रोधाविष्ट थधं गथे। क्रोधी तेना रूपभां रौद्रभाव अणकवा दागथे। अने
 क्रोधवशवर्ती थधने ते हांत पीसवा दागथे। अने डोड करवा दागथे। (तिवलियं भिउडिं
 णिडाळे साहरइ) ते वथते तेनी भृकुटि त्रिवाल युक्त थधं गधं ललाट उपर थडी गधं-
 पके थधं गधं (संहरित्ता एव वयासी) भृकुटि ललाट पर चढावीने तेथे आ प्रभाणु
 निचार कथे। (केस णं भो एस अपत्थियपत्थए दुरतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउडसे
 हिरिसिरिपरिवज्जिए जे णं मम इमाए एयाणुरुवाए दिव्वाए देविद्धीए दिव्वाए देवजुईए
 दिव्वेणं देवाणुभावेण लद्धाए पत्ताए अभिसमण्णागयाए उप्पि अप्पुस्सुए भवणसि
 सरं णिसिरइत्ति कट्ठु सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ) अरे ! आ डोणु अप्रार्थित प्रार्थी—
 मरणाभिलाषी थथे छे जेट्ठे डे जेवे। डोणु छे डे जे भारी साथे युद्ध करवा तैयार थथे।

સિંહાસનાદમ્બુચ્છિષ્ઠિતિ इति, तत्र कः खलु अनिद्दिष्टनामकः भो इति सम्बोधने देवानां मध्ये एषः—बाणप्रयोक्ताः, अप्रार्थितप्रार्थक इति, अप्रार्थितम्—अमनोरथगोचरीकृतम् प्रस्तावात् मरणं तस्य प्रार्थकौऽभिलाषी, यो मया सह युयुत्सुः स मरणमभिवाञ्छतीतिभावः, दुरन्तप्रान्तलक्षण इति तत्र दुरन्तानि दुष्टावसानानि प्रान्तानि—तुच्छानि लक्षणानि यस्य स तथा अशुभलक्षणसम्पन्न इत्यर्थः हीनपुण्यचातुर्दश इति, हीनायां पुण्यचातुर्दश्यां जातो हीनपुण्यचातुर्दशः कृष्णचातुर्दशी जात इत्यर्थः, ही श्री परिवर्जित इति, ह्रिया—लज्जया श्रिया शोभया च परिवर्जितः—रहितः यः खलु मम अस्याः प्रत्यक्षानुभूयमानायाः दिव्यायाः प्रधानायाः देवद्वर्थाः देवानाम् ऋद्धिः धनरत्नादिसम्पत् देवद्विः तस्याः, दिव्याया देवद्युतेरिति, देवानां द्युतिर्देवद्युतिः—देवशरीराभरणादिसम्पत् तस्याः तथा दिव्येन देवानुभावेन देवभवप्रभावेण लब्धायाः—जन्मान्तरोपार्जितपुण्येन स्थायत्तीप्राप्तायाः—अधुनोपस्थिताया अभिसमन्वागतायाः भोग्यत्वेन अधीनया उपरि अल्पोत्सुकः प्राणत्राणोत्साहवर्जितः, यो मम भवने शरं निमृजति बाणं प्रक्षिपति इति कृत्वा इत्युक्त्वा सिंहासनादम्बुच्छिष्ठि (अम्बुद्वित्ता) अम्युत्थाय (जेणेव से णामाहयंके सरे तेणेव उवागच्छइ) यत्रैव नामा-

મૃત્યુ કો વુછા રહા હૈ મેરો સમક્ષમેં વહ કુલક્ષગો હૈ અશુભ લક્ષણો વાલા હૈ હોન પુણ્ય ચાતુર્દશ હૈ હીન — પુણ્યવાળી ચતુર્દશો મેં — કૃષ્ણ ચતુર્દશો કે દિન — ડસકા — જન્મ હુઆ હૈ તથા વહ શ્રો હો સે રહિત હૈ કિ જિસને મેરો હમ પ્રત્યક્ષ મેં અનુભૂયમાન પ્રધાન દેવદ્વિ — ધનરત્નાદિરૂપ સમ્પત્તિ કે ઊપર, દેવદ્યુતિ કે ઊપર — દેવ શરીર, આભરણાદિ કો કાન્તિ કે ઊપર જો કિ મૈને દિવ્ય દેવાનુભાવસે—જન્માન્તરોપાર્જિત પુણ્ય સે અપને અધોન કી હૈ તથા જિસકે ભોગને કા મુક્ષે હી અધિકાર હૈ બાણ કા વાર કિયા હૈ—જ્ઞાત હોતા હૈ વહ અલ્પોત્સુક હૈ—પ્રાણ ત્રાણ કે ઉત્સાહ સે વર્જિત હો ચુકા હૈ—નહીં તો ડસે મેરે ભવન મેં બાણ છોડ્ડને કા કયા અધિકાર થા ઈસા સોચ કર વહ શીઘ્ર હી સિંહાસન સે ડઠ બેઠા (અમ્બુદ્વિત્તા જેણેવ સે ણામાહર્યંકે સરે તેણેવ ડવાગ-
ચ્છહ) ઔર ડઠ કર વહ જહાં પર વહ નામાક્ષિત બાણ પડા હુઆ થા વહાં પર આયા—(ડવાગ-

છે, અને પોતાના અકાલ મૃત્યુને ઊભાવી રહ્યો છે. મને લાગે છે કે તે કુલક્ષણી છે, અશુભ લક્ષણો વાળો છે, હીનપુણ્ય ચાતુર્દશ છે.—હીન પુણ્યવાળી ચતુર્દશીમાં—કૃષ્ણ ચતુર્દશીના દિવસે તેનો જન્મ થયો છે તેમજ તે શ્રી-હી થી રહિત છે કેમકે તેને મારી આ પ્રત્યક્ષ-માં અનુભૂયમાન પ્રધાન દેવદ્વિ—ધનરત્નાદિરૂપ સમ્પત્તિ ઉપર—દેવ દ્યુતિ ઉપર—દેવ શરીર, આભરણાદિની કાંતિ ઉપર કે જે મેં દિવ્ય દેવાનુભાવથી જન્માન્તરોપાર્જિત પ્રાણ પુણ્યથી સ્વાધીન બનાવી છે તેમજ જેને ભોગવવા નો અધિકાર મને જ પ્રાપ્ત થયેલો છે—બાણ પ્રહાર કર્યો છે મને લાગે છે કે તે અલ્પોત્સુક છે, પ્રાણત્રાણના ઉત્સાહથી વર્જિત થઈ ચૂક્યો છે, નહીં તર તે મારી ઉપર બાણ છોડવાનું સાહસ જ કેવી રીતે કરી શકે ? આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તે તરત જ સિંહાસન ઉપરથી ઉભો થઈ ગયો. (અમ્બુદ્વિત્તા જેણેવ ણામાહંકે સરે તેણેવ ડવાગચ્છહ) અને ઉભો થઈને તે ન્યા તે નામાક્ષિત બાણ પડેલું

हताङ्कः नामाङ्कितः शरः तत्रैवोपागच्छति, तत्र नामरूपोद्धतः-अपण्डितः अङ्कः-
चिन्हं यत्र स तथा नामाङ्कित इत्यर्थः (उवागच्छित्ता) उपागत्य (तं णामाह्यक
सरं गेण्हइ) तं नामाहताङ्कं शरं गृह्णाति (णामंक्रं अणुप्पवाएइ) नामाङ्कम् अनु-
प्रवाचयति वर्णानुपूर्वीक्रमेण पठति (णामक अणुप्पवाएमाणस्म इमे एयान्त्वे अञ्ज-
त्थिए चिंतीए पत्थिए कप्पिए मणोगए मंक्पे समुप्पज्जित्था) नामाङ्कम् अनुप्र-
वाचयतोऽयं वक्ष्यमाण एतद्रूपो वक्ष्यमाणस्वरूप आध्यात्मिकः चिन्तितः प्रार्थितः
कल्पितः मनोगतः संकल्पः समुदपद्यत, तत्र आत्मनि अधि अध्यात्म तत्र भवः
आध्यात्मिकः आत्मविषय इत्यर्थः अङ्कुरइव चिन्तित इति, संकल्पश्च द्विधा ध्याना-
त्मकः चिन्तात्मकश्च तत्राद्यः स्थिराध्यवसायलक्षणः, द्वितीयश्चलाध्यवसायलक्षणः,
अस्मिन् पक्षे चिन्तितः-चिन्तात्मकः चेतसोऽनवस्थितत्वात् प्रार्थितः-प्रार्थनाविषयः अयं
मे मनोरथः फज्जान् भूयादित्थमिच्छापात्मक इत्यर्थः पुष्पित इव कल्पितः = स एव

च्छित्ता तं णामाह्यकं सरं पगेण्हइ) वडा आकर के उमने उम नामाङ्कित वाण को अपने
हाथ में उठा लिया । (णामंक्रं अणुप्पवाएइ) और नाम के अक्षरों को वाचा (णामंक्रं अणुप्प-
वाएमाणस्स इमेएयावे अञ्जत्थिए पत्थिए मणोगए सरूपे समुपजेत्था) नामाङ्कन अक्षरों
को वाचते हुए उसे ऐसा वक्ष्यमाण स्वरूप वाला आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, कल्पित, मनो-
गत, संकल्प उत्पन्न हुआ । वइ संकल्प आत्मा में उत्पन्न हुआ इसलिए उसे आध्यात्मिक कहा
है चिन्ता युक्त होने से वह चिन्तित था । संकल्प दो प्रकार का होता है-एक ध्यानात्मक और
दूसरा चिन्तात्मक । इनमें पहिला स्थिर अव्यवसायरूप होता है । क्यों को यह तथाविध दृढ
सहननादिगुण वालो के होता है, दूसरा चञ्चलव्यवसायरूप होता है । और यह तथाविध दृढसं-
ननादि गुणवालों से भिन्न जीवों के होता है उनमें से यह संकल्प चित्त की अनवस्थितिरूप होने
से चिन्तित था ऐसा संकल्प अनभिच्छापात्मक भी हो सकता है । इसके अर्थे कहा गया है कि
नहीं यह उमका संकल्प प्रार्थित था अभिच्छावा जन्य था अर्थात् यह मेरा संकल्प फज्जानी होगा

इत्थं त्थीं गथे. (उवागच्छित्ता तं णामाह्यकं सरं गेण्हइ) तदा अने तेणु ते नामा-
ङ्कित भाणुने चोत्ताना हाथमा वीधुं (णामंक्रं अणुप्पवाएइ) अने नामना अक्षरो वाच्या,
(णामंक्रं अणुप्पवाएमाणस्स इमे एयान्त्वे अञ्जत्थिए पत्थिए मणोगए संक्पे समुप्पज्जित्था)
नामाङ्कित अक्षरो वाचीने तेने जेवो वक्ष्यमाण स्वरूप वाणी आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित
कल्पित, मनोगत संकल्प उत्पन्न थये ते संकल्प आत्माभां उत्पन्न थये जेथी तेने
आध्यात्मिक कहेवामां आव्थे छे चिन्तायुक्त होवा भदल ते चिन्ति हुतो संकल्प
के प्रकारना होय छे-जेक ध्यानात्मक अने जीजे चिन्तात्मक जेमा प्रथम स्थिर अव्यवसाय
रूप होय छे केमके जे तथाविध दृढ संहननादि गुणवाणोने थाय छे जीजे संकल्प
अव्यवसाय रूप होय छे अने ते तथाविध दृढ संहननादि गुणवाणोने भिन्न जेवो
ने होय छे, तेमनामा आ संकल्प चित्तनी अनवस्थिति रूप होवा भदल चिन्तित हुतो.
जेवो संकल्प अनभिच्छापात्मक पणु थर्थ थके जेथी कहेवामा आवेल छे के आ संकल्प

व्यवस्थायुक्तः सर्वाथा राजयोग्यापहारप्रदानेन मया राजा सत्कार्यः इति कार्याकरेण विचारः द्विपत्रित इव मनोगतः न बहिर्वचनेन प्रकाशितः एवंविधः संकल्पः समुद्रपथतः तमेवाह—(उप्यण्णे खलु भो) उत्पन्नः खलु निश्चयेन भो इत्यामन्त्रणे (जम्बूद्वीवे दीवे भरहे णामं राया चाउरंतचक्रवर्ती) जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे भरते नाम राजा चातुरन्तचक्रवर्ती (तं जीयमेयं तीय पञ्चुप्यण्णमणागयाणं मागहतित्यकुमाराणं देवाणं राईणमुवत्थाणीयं करेत्तए) तत् तस्माज्जीतमेतत् अतीतप्रत्युत्पन्नानागतानां मागधतीर्थकुमाराणाम्, मागधतीर्थस्य अधिपतयः कुमाराः मागधतीर्थकुमाराः तेषां तन्नामकानां राज्ञां नरदेवानाम् उपस्थानिकं प्राभृतं कर्तुम् (तं गच्छामि ण अहं पि भरहस्स रण्णो उवत्थाणीयं करेमि त्तिकट्टु एवं सपेहेइ) तत् गच्छामि खलु अहमपि भरतस्य राज्ञश्चक्रिण उपस्थानिकं करोमि इति कृत्वा इति मनसि विचिन्त्य एवं वक्ष्यमाणं निजऋद्धिसारं संप्रेक्षते पर्यालोचयति ॥६०॥ ६॥

ततः किं करोति इत्याह— “संपेहेत्ता” इत्यादि ।

मूलम्—संपेहेत्ता हारं मउडं कुंडलाणि य कडगाणि य तुडियाणि य वत्थाणि य आभरणानि य सरं च णामाहयकं मागहतित्योदगं च गेण्हइ

ऐसा अभिलाषा वाला था तथा उसने इसे अभी तक मन में ही रखा था बाहिर किसी को वचन द्वारा नहीं कहा था—इसलिये वह मनोगत था (उप्यण्णे खलु भो जम्बूद्वीवे दीवे भरहे णाम राया चाउरंतचक्रवर्ती) ओह ! जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र में चा रन्त चक्रवर्ती भरत नाम का राजा उत्पन्न हुआ है—(तं जीयमेयं तीयपञ्चुप्यण्णमणागयाणं मागहतित्यकुमाराण देवाणं राईणमुवत्थाणीय करेत्तए) अतः अतीत प्रत्युत्पन्न मागध तीर्थ के अधिपति कुमारों का यह जीत-परम्परागत व्यवहार-है कि वे उसे नजराना-मेट-उपस्थित करें—(त गच्छामि अहं पि भरहस्स रण्णो उवत्थाणीयं करेमि त्तिकट्टु एवं सपेहेइ) तो अब मैं चरु और चक्रकर भरत राजा को नजराना उपस्थित करूँ इस प्रकार से विचार करके फिर उसने नजराना प्रदान करने के योग्य वस्तुओं के सम्बन्ध में विचार किया— ॥६॥

तेने आर्थित्तं हतो अने ते अभिलाषाअन्थ हतो ओटवे के ओ भारे। स कल्प इत्थादी थो ओपी अभिलाषा युक्त हतो तेअ तेणे अत्थार सुधी तेने पोताना मनमा ७ राअथो हतो। अहार क्काली पासेपथ वचन द्वारा प्रकट करी न हतो, ओथी ते मनोगत हतो (उप्यण्णे खलु भो जम्बूद्वीवे दीवे भरहे णामं राया चाउरंतचक्रवर्ती) ओह ! जम्बूद्वीपमा भरत क्षेत्रमा आतुरन्त चक्रवर्ती भरत नामे राजा उत्पन्न थये। छे (त जीयमेयं तीयपञ्चुप्यण्णमणागयाण मागहतित्यकुमाराणं देवाणं राईण उवत्थाणीयं करेत्तए) ओधी अतीत प्रत्युत्पन्न मागध तीर्थना अधिपति कुमारेने। आ अत-पर परागत व्यवहार-छे के तेओ तेने नजरालु (मेट) करे (तं गच्छामि अहमपि भरहस्स रण्णो उवत्थाणीयं करेमि त्तिकट्टु एवं सपेहेइ) तो अब मैं चरु और चक्रकर भरत राजा को नजराना उपस्थित करूँ इस प्रकार से विचार करके फिर उसने नजराना प्रदान करने के योग्य वस्तुओं के विषे विचार करी ॥ ६॥

गिगिहत्ता ताए उक्किह्वाए तुडियाए चवलाए जयणाए सीहाए भिग्घाए
उड्डुयाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव भरहे गया
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता अंतलिक्खपडिवरणे सखिखिगीयाइं पंच
वण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए कस्यलपरिग्गहियं दमणहं सिर जाव अंजलि
कट्टे भरहं रायं जएणं विजएण वद्धावेत्ता एवं वयासी अभिजिणं देवा-
णुप्पिएहिं केवलकप्पे भग्हे वासे पुरत्थिमेणं मागहत्तियेराए तं अहण्णं
देवाणुप्पियाणं तिसयवासी अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्ती किंकरे आ-
हण्णं देवाणुप्पियाणं पुरत्थिमिल्ले अंतवाले तं परिच्छंतु णं देवाणुप्पिया !
ममं इमेयारूवं पीइदाणं त्तिकट्टे हारं मउडं कुंडलाणि य कडगाणि य
जाव मागहत्तियोदगं च उवणेइ, तएणं से भरहेराया मागहत्तियकु-
मारस्स देवस्स इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ पडिच्छिता मागहत्तियकु-
मार देवं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ
तएण से भरहे राया रहं परावत्तेइ, परावत्तेत्ता मागहत्तियेणं लवणम-
मुहाओ पच्चुत्तरइ पच्चुत्तरित्ता जेणेव विजयखंधावार्रणवेसे जेणेव
बाहिरिया उवहाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता तुरए गिगिहइ
गिगिहत्ता रहं ठवेइ ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव
मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता मज्जणघरं अणुपविसइ अणु-
पविसित्ता जाव ससिक्खं पिपदंसणे णस्वई मज्जणघराओ पडिणिक्ख-
मइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता
भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ पारित्ता भोयणमंडवाओ
पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवहाणसाला जेणेव
सीहासणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे
णिसीयइ णिसीइत्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सहावेइ सहवित्ता एवं
वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उरु ककं उक्करं जाव मागहत्तिय-
कुमारस्स देवस्स अट्टाहियं महामहिमं करेइ करित्ता मम एयमाणित्तियं

पञ्चपिणह, तएणं ताओ अट्टारससेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं
 बुत्ताओ समाणीओ हट्ट जाव करेति करित्ता एयमाणत्तियं पञ्चपि-
 णंति, तएणं. से दिव्वे चक्करयणे वइरामयतुंवे लोहियक्खामयारए
 जंबुणयणे मीए णाणामणिखुरप्पथालपरिगए मणिमुत्ताजालभूसिए
 सणंदिघोसे सखिंखिणीए दिव्वे तरुणरविमंडलणिमे णाणामणिर-
 यणघंटियाजालपरिक्खित्ते सव्वाउअसुरभि कुसुम आसत्तमल्लदामे
 अंतलिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्वतुडियसइसण्णिणादेणं
 पूरेते चेव अंवरत्तलं णामेण य सुदंसणे णरवइस्स पढमे चक्करयणे माग
 हतित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए
 आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता दाहिणपञ्चत्थिमं
 दिसे वरदामतित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था ॥सू०७॥

छाया—संप्रेक्ष्य हारं मुकुटं कुण्डलानि च वृष्टिकानि च वस्त्राणि च आभरणानि
 च शरं च नामाहताङ्कं मागधतीर्थोदकं च गृह्णाति गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया त्वरया चपलया
 चपलया यत्नया सिंहया उद्धृतया दिव्यया देवगत्या व्यतिव्रजन् यत्रैव भरतो राजा तत्रैव
 उपागच्छति, उपागत्य अन्तरिक्षप्रतिपन्नः सर्किकिणीकानि पञ्चवर्णानि वस्त्राणि पवरप-
 रिहितः करतलपरिवृहीतशिरयावत् अञ्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन बर्द्धयति,
 बर्द्धयित्वा पवमवादीत्, अभिजितं खलु देवानुप्रियैः केवलकल्पं भरतं वर्षं पौरस्त्ये मागधतीर्थ-
 मर्यादया तद्वहं खलु देवानुप्रियाणाम् विषयवासी अहं देवानुप्रियाणामाज्ञप्तिकिङ्करः अहं
 देवानुप्रियाणां पौरस्त्योऽन्तपालः तत् प्रतीच्छन्तु खलु देवानुप्रिया' मम पतद्रूपं प्रीतिदानम्
 इति कृत्वा हारं मुकुटं कुण्डलानि च कटकानि च यावत् मागधतीर्थोदकं च उपनयति,
 ततः खलु स भरतो राजा मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य इदमेतद्रूपं प्रीतिदानं प्रीतिच्छति प्रतीष्य
 मागधतीर्थकुमारं देव सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य च प्रतिविसर्जयति ततः
 खलु स भरतो राजा रथं परावर्त्तयति, परावर्त्त्य मागधतीर्थेन लवणसमुद्रात् प्रत्यवतरति
 प्रत्यवतीर्य यत्रैव विजयस्कन्धावारनिवेशो यत्रैव बाह्या उपास्थानशाला तत्रैवोपागच्छति,
 उपागत्य तुरगान् निगृह्णाति निगृह्य रथं स्थापयति, स्थापयित्वा रथात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरोह्य
 यत्रैव मञ्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य मञ्जनगृहमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यावत् शशीव
 प्रियदर्शनो नरपतिः मञ्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव भोजनमण्डपस्तत्रैवोपा-
 गच्छति उपागत्य भोजनमण्डपे सुखासनवरगतं अष्टमभक्तं पारयति पारयित्वा भोजनमण्डपात्
 प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति
 उपागत्य सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखो निषीदति, निषय अद्यावत् प्रप्रेणीः

शब्दयति शब्दयिता णामादीन श्रिप्रमेन भो देवानुप्रिया । उन्नु-त्ताम् उन्नुगं यावन्
 मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टादिना महामहिमा कुम्भ वृन्ना मम पनामाग्निर्का प्रत्यर्पयन्
 तत खलु ताः अष्टादश श्रेणिप्रश्रणय भर्तेन राजा परम्, उक्ता सन्य हृष्टयाचन कुर्वन्नि.
 कृत्वा पतामाग्निर्का प्रत्यर्पयन्ति नत गलु तद्विव्य चक्ररत्न वज्रमय तुम्बं लोहितक्ष
 रत्नमयारक जाम्बूनद् नेमि नानामगिभुरप्रस्थालपरिगतं मणिमुक्ताजालभूषितम्, सनन्दि
 धोपम् सकिर्द्विणीकम्, दिव्यम् तम्परविमडलनिभम्, नाना-मणिरत्नघण्टिकाजालपरि-
 शिष्टम् सर्वं सुरभिक्षुसुमासक्त मात्यदाम अन्तरिक्ष प्रतिपन्नम् यक्षसद्वरत्रहं परिवृत्तम्, दिव्य
 वृटितशब्द सन्निनादेन पूरयद्विव च अम्बरतलम् नाम्ना च सुदर्शनम् नरपते. प्रगमम्
 चक्ररत्नम्, मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टादिनाया महामहिमाया निवृत्ताया सत्याम् आयु-
 धगृहशालत प्रतिनिष्कामति प्रतिनिक्रम्य दक्षिणपश्चिमा दिश वरदामनीथाभिमुख्य प्रयातं
 चलितं चाप्यभवत् ॥सू० ७॥

टीका—(संपेहेत्ता) इत्यादि ।

(संपेहेत्ता) संप्रेक्ष्य-पर्यालोच्य (हारं मउडं कुंडलाणि य कडगाणि य तुडियाणि
 य वत्थाणि य आभरणानि य सरं च णामाहयंकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ) हारम्-
 अष्टादशादिसरिकमुक्ताहारम् तत्र मुकुटं-शिरोभूषणम्, कुण्डलानि च, कर्णभूषणानि,
 कटकानि च- हस्ताभरणानि, व्रुटितानि च बाह्याभरणानि, वस्त्राणि च नानामणि-
 रत्नादि खचित परिधेयपट्टवस्त्राणि भरतस्य प्रत्यर्पणाय शरं-बाणं च, नामाहताङ्गं
 भरतेति नामाङ्कितचिन्हं शरं च मागधतीर्थोदकं च-राज्याभिषेकोपयोगि मागधतीर्थजलं
 च एतानि गृह्णाति (गिण्हत्ता) गृहीत्वा (ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए जयणाए
 सीहाए सिग्घाए उद्धूयाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव भरहे
 राया तेणेव उवागच्छइ) तथा उत्कृष्टया त्वरितया चपलया जया सिंघया शीघ्रया उद्धू-
 तथा दिव्यया देवगत्या व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति,

'संपेहेत्ता हारं मउडं कुंडलाणि य' इत्यादि सू०-७

टीकार्थ—(संपेहेत्ता) अच्छी तरह से विचार करके (हारं मउडं कुंडलाणि य कडगाणि य तुडि-
 याणि य वत्थाणि य आभरणानि य सरं च णामाहयंकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ) उसने हार, मुकुट,
 कुण्डल, कटक, व्रुटित-बाहुके आभरण, नानामणिरत्नादिक से खचित पहिरने योग्य वस्त्र भरत के
 नाम से अङ्कित बाण एवं मागधतीर्थ का राज्याभिषेकोपयोगी उदक लिया—(गिण्हत्ता ताए
 उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए जयणाए सीहाए सिग्घाए उद्धूयाए दिव्वाए देवगईए वीईवय-

'संपेहेत्ता हारं मउडं कुंडलाणिय' इत्यादि सू० ७ ॥

टीकार्थ—(संपेहेत्ता)सारी रीति विचार करीने (हारं मउडं कुंडलाणिय कडगाणि य तुडिया-
 णिय, वत्थाणिय आभरणानि य सरं च णामाहयंकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ) तेणे हार, मुकुट,
 कुंडल, कटक, व्रुटित-बाहुना आभरण विशेष नानामणि रत्नादिकथी अचित पहेरवा योग्य
 वस्त्रो भरतना नामथी अ कित भाष्य तेम अ मागधतीर्थ'तु' राज्याभिषेक योग्य उदक जे
 अथी वस्तुणे। वीथी (गिण्हत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए जयणाए सीहाए सि-
 ग्घाए उद्धूयाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) जे
 ७६

पञ्चपिणह, तएणं ताओ अट्टारससेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं
 वुत्ताओ समाणीओ हट्ट जाव करेति करित्ता एयमाणत्तिथं पञ्चपि-
 णंति, तएणं. से दिव्वे चक्करयणे वइरामयतुंबे लोहियक्खामयारए
 जंबुणयणे मीए णाणामणिसुरप्पथालपरिणए मणिमुत्ताजालभूसिए
 सणंदिघोसे सखिखिणीए दिव्वे तरुणरविमंडलणिभे णाणामणिर-
 यणघंटियाजालपरिक्खित्ते सव्वाउअसुरभि कुसुम आसत्तमल्लदामे
 अंतल्लिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिखुडे दिव्वतुडियसइसण्णिणादेणं
 पूरेते चेव अंवरतलं णामेण य सुदंसणे णरवइस्स पढमे चक्करयणे माग
 हतित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए
 आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता दाहिणपञ्चत्थिमं
 दिसे वरदामतित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था ॥सू०७॥

छाया—संक्षेप्य द्वार मुकुटं कुण्डलानि च वृष्टिकानि च वस्त्राणि च आभरणानि
 च शर च नामाहताङ्क मागधतीर्थोदक च गृह्णाति गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया त्वरया चपलया
 चपलया यत्नया सिद्धया उद्धृतया दिव्यया देवगत्या इतिव्रजन् यत्रैव भरतो राजा तत्रैव
 उपागच्छति, उपागत्य अन्तरिक्षप्रतिपन्नः सर्किकिणीकानि पञ्चवर्णानि वस्त्राणि पवरप-
 रिहितः करतलपरिगृहीतशिरयावत् अञ्जलिं कृत्वा भरतं राजान जयेन विजयेन वर्द्धयति,
 वर्द्धयित्वा पद्मवादीत्, अभिजितं खलु देवानुप्रियायैः केवलकल्पं भरत वर्षे पौरस्त्ये मागधतीर्थ-
 मर्यादया तद्दहं खलु देवानुप्रियाणाम् विषयवासो अह देवानुप्रियाणामाज्ञप्तिकिङ्करः अह
 देवानुप्रियाणां पौरस्त्योऽन्तपालः तत् प्रतीच्छन्तु खलु देवानुप्रिया' मम पतद्रूपं प्रीतिदानम्
 इतिकृत्वा द्वारं मुकुटं कुण्डलानि च कटकानि च यावत् मागधतीर्थोदकं च उपनयति,
 ततः खलु स भरतो राजा मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य इदमेतद्रूपं प्रीतिदानं प्रीतिच्छति प्रतीष्य
 मागधतीर्थकुमारं देव सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सन्मान्य च प्रतिविसर्जयति ततः
 खलु स भरतो राजा रथं परावर्त्तयति, परावर्त्थं मागधतीर्थेन लवणसमुद्रात् प्रत्यवतरति
 प्रत्यवतीर्थं यत्रैव विजयस्कन्धावारनिवेशो यथैव बाह्या उपास्थानशाला तत्रैवोपागच्छति,
 उपागत्य तुरगान् निगृह्णाति निगृह्य रथं स्थापयति, स्थापयित्वा रथात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य
 यत्रैव मञ्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य मञ्जनगृहमनुप्रविशति, अनुप्रविश्य यावत् शशीव
 प्रियदर्शनो नरपतिः मञ्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव भोजनमण्डपस्तत्रैवोपा-
 गच्छति उपागत्य भोजनमण्डपे सुस्नासनवरगत अष्टमभक्तं पारयति पारयित्वा भोजनमण्डपात्
 प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासनं तत्रैवोपागच्छति
 उपागत्य सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखो निपीदति, निषद्य अष्टादश

शब्दयति शब्दयिन्ना णामादान निप्रतेत भा देवानुप्रिया । उन्नुत्ताम उन्नुत्ता यात्रन
 मागधतीर्थकुमारस्य दे ।स्य अष्टादश मन्नामतिमा कुम्भे त्वा मम पनामाग्निका प्रत्युपयन
 तत खलु ताः अष्टादश त्रेणिप्रथणय भगतेन राजा एवम्, उक्ता मन्य एष्टयात्रन कुर्वन्ति,
 कृत्वा पतामाग्निका प्रत्युपयन्ति नत गलु तद्विष्य चकरन्न पत्रमय तुम्ब लोहितान्ध
 रत्नमयारक जाम्बूनद् नेमि नानामगिश्रुप्रस्थालपरिगतं मणमुक्ताजालभूषितम् स्वर्नाद्
 धौपम् सकिङ्किणीकम्, दिव्यम् तस्मिन्निमडलनिभम्, नाना-मणिरत्नशण्डिकाजालपरि-
 क्षिप्तम् सर्वं सुरभिक्षुसुमानक्त माल्यदाम अन्तरिक्ष प्रतिपन्नम् यक्षसत्त्वरं परिच्युतम्, दिव्य
 शुद्धिशब्द सन्निनादेन पूरयदिव च अम्यरतलम् नाप्ता च तुदशनम् नरपते, प्रथमम्
 चकरत्नम्, मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टादशिकाया मन्नामतिमाया निनुत्ताया न्य्याम् आयु-
 यगृहशालत प्रतिनिष्कामति प्रतिनिरुम्य दक्षिणपश्चिमा दिशं चरदामनीथाभिमुग्य प्रयानं
 चलितं चाप्यभवत् ॥सू० ७॥

टीका—(संपेहेत्ता) इत्यादि ।

(संपेहेत्ता) संप्रेक्ष्य-पर्यालोच्य (हारं मउडं कुंडलाणि य कडगाणि य तुडियाणि
 य वत्थाणि य आभरणानि य सरं च णामाहयकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ) हारम्—
 अष्टादशदिसरिकमुक्ताहारम् तत्र मुकुटं-शिरोभूषणम्, कुण्डलानि च, कर्णभूषणानि,
 कटकानि च— हस्ताभरणानि, त्रुटितानि च बाह्याभरणानि, वस्त्राणि च नानामणि-
 रत्नादि खचित परिधेयपट्टवस्त्राणि भरतस्य प्रत्युपपणाय शर-पाणं च, नामाहताङ्कं
 भरतेति नामाङ्कितचिह्नं शरं च मागधतीर्थोदकं च—राज्याभिषेकोपयोगि मागधतीर्थजलं
 च एतानि गृह्णाति (गिण्हत्ता) गृहीत्वा (ताए उक्किट्टाए तुरियाए चवलाए जयणाए
 सीहाए सिग्घाए उद्धूमाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव भरहे
 राया तेणेव उवागच्छइ) तथा उत्कृष्टया त्वरितया चपलया जया सिहया शीघ्रया उद्धू-
 तथा दिव्यया देवगतया व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति,

‘संपेहेत्ता हार मउडं कुंडलाणि य’ इत्यादि सू०-७

टीकार्थ—(संपेहेत्ता) अच्छी तरह से विचार करके (हार मउडं कुंडलाणि य कडगाणि य तुडि-
 याणि य वत्थाणि य आभरणानि य सरं च णामाहयकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ) उसने हार, मुकुट,
 कुण्डल, कटक, त्रुटित-बाहुके आभरण, नानामणिरत्नादिक से खचित पहिरने योग्य वस्त्र भरत के
 नाम से अङ्कित बाण एवं मागधतीर्थ का राज्याभिषेकोपयोगी उदक लिया—(गिण्हत्ता ताए
 उक्किट्टाए तुरियाए चवलाए जयणाए सीहाए सिग्घाए उद्धूमाए दिव्वाए देवगईए वीईवय-

‘संपेहेत्ता हारं मउडं कुंडलाणिय’ इत्यादि सू० ७ ॥

टीकार्थ—(संपेहेत्ता)शारीरी रीते विचार करीने (हारं मउडं कुंडलाणिय कडगाणि य तुडिया-
 णिय, वत्थाणिय आभरणानि य सरं च णामाहयकं मागहतित्थोदगं च गेण्हइ) तेषु हार, मुकुट,
 कुंडल, कटक, त्रुटित-बाहुना आभरणेषु विशेष नानामणि रत्नादिकथी अखित पहिरवा योग्य
 वस्त्रो धारतना नामथी अङ्कित बाणु तेभ च मागधतीर्थजलं राज्याभिषेक योग्य उदकं जे
 षधी वस्तुषो षधी (गिण्हत्ता ताए उक्किट्टाए तुरियाए चवलाए जयणाए सीहाए सि-
 ग्घाए उद्धूमाए दिव्वाए देवगईए वीईवयमाणे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) जे
 ७६

तत्र तथा उत्कृष्टया गत्या त्वरया आकूलया न स्वाभाविन्या, चपलया ज्ञायतोऽपि चण्डया, जवनया वेगवत्या मिहया—तद्वाह्यस्यैर्येण, उद्वूनया— दर्पातिशयेन जयिन्या विपक्षजेतृत्वेन छेक्या निपुगया दिव्यया देवगत्या आकाशमार्गगमनेन व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति (उवागच्छित्ता) उपागत्य (अतल्लिखलपडिवण्णे सख्लिखिणीयाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिण्ण करयलपरिगहिय दसणह सिर जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जणं विजणं वद्धावेइ) अन्तरिक्षप्रतिपन्नः सर्किणिणीकानि पञ्चवर्णानि वस्त्राणि प्रवरं परिहितः करतलपरिशृङ्गीतं दशनखं शिरयावत् अज्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन वर्द्धयति, तत्र अन्तरिक्षप्रतिपन्न आकाशगतो देवानामभूमिचारित्वात् सर्किणिणीकानि—क्षुद्रघण्टिका सहितानि पञ्चवर्णानि च कृष्णनीलपीतरक्तशुक्लवर्णानि च वस्त्राणि प्रवर विधिपूर्वकं यथा स्यात् तथा परिहितः

माणेर जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) इन सब उपहार करने योग्य वस्तुओं को लेकर वह उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, अति महान् वेग से आरम्भ होने के कारण सिंहगामि जैसी शीघ्रतावाली, उद्धृत दिव्य देवगति द्वारा चलता चलता जज्ञ भग्न राजाथा वहा पर आया गति के इन विशेषणों की व्याख्या पहिले का जा चुकी है । (उवागच्छित्ता अंतल्लिखलपडिवण्णे सख्लिखिणीयाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिण्ण करयलपरिगहियं दसणह सिरयावत् जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जणं विजणं वद्धावेइ) वहां आकरके उसने क्षुद्रघण्टिकाओं से युक्त ऐसे पांच वर्णों वाले वस्त्रों को पहिरे हुए ही आकाश में खड़े-खड़े दश नख जिसमें मिल जावें ऐसी अंगुली करके और उसे मस्तक पर धर करके भरत राजा को जय विजय शब्दों का उच्चारण करते हुए ही वधाई दी यहां जो उसे क्षुद्र घण्टिकाओं से युक्त वस्त्र पहिरे हुए प्रकट किया गया है उसका तात्पर्य यही है कि उसने उन घण्टिकाओं से उत्थित शब्दों द्वारा यह प्रकट सर्वजन समक्ष किया मैं आपका प्रकटरूप में सेवक हूँ गुप्तरूप में नहीं (वद्धावित्ता एव वयासी) वधाई

सर्वे उपहार योग्य वस्तुओं को लेने से उत्कृष्ट, त्वरित, चपल अति महान् वेगधी आरम्भ होवाथी सिंह अति जेवी शीघ्रतावाणी, उद्धृत दिव्य देवगतिथी आलने—आलने नथी भारतराज हतो, त्या आन्थो गतिना ओ सवे विशेषणोनी व्याख्या पडेला क्स्वाभा आपी छे (उवागच्छित्ता अंतल्लिखलपडिवण्णे सख्लिखिणी आइ पंचवण्णाइं वत्थाइ पवरपरिहिण्ण करयलपरिगहियं दसणह सिर जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जणं विजणं वद्धावेइ) त्यां आपीने तेणे क्षुद्र घण्टिकाओथी युक्त ओवा पायवण्णोवाण. वस्त्रे पडेरीने आकाशभा ज जिहा रडीने दसनणे जेमां स युक्त थर्ध लय ओरी अज्जली जनापीने अने तेने मस्तक उपर भूरीने भारत राजने जय-विजय शब्दो साथे अलिनंदन वधाभणी आन्थी अडी जे क्षुद्र घण्टिकाओ युक्त वस्त्रो पडेरेला छे, ओवो उद्वेष्य छे तेनु तात्पर्य आ प्रभाणे छे के तेणे ते घण्टिकाओथी उत्थित यथा शब्दो वडे ओज वत भव लोको समक्ष प्रकट करीके हु तभारे प्रकट रूपमा सेवक छ, गुप्त रूपमा नहि (वद्धावित्ता एव वयासी) अलि-

तत्र तथा उत्कृष्टया गत्या त्रया आकूल्या न स्वामानिन्या, चपलगा मायतोऽपि चण्डया, जवनया वेगवत्या पिहया—तद्वाद्द्वैत्यैर्येण, उद्बुनया— दर्पातिजयेन जयिन्या विपक्षजेतृत्वेन छेक्या निपुण्या दिव्यया देवगत्या आकाशमार्गगमनेन व्यतिव्रजन् व्यतिव्रजन् यत्रैव भरतो राजा तत्रैव प्रागच्छति (उवागच्छिता) पागत्य (अतल्लिखलपडिवण्णे सखिखिणीयाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिण करयलपरिगहिय दसणहं सिर जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जणं विजणं वद्धावेइ) अन्तरिक्षप्रतिपन्नः सर्किणिणीकानि पञ्चवर्णानि वस्त्राणि प्रवरं परिहितः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरयावत् अज्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन वद्धयति, तत्र अन्तरिक्षप्रतिपन्न आकाशगतो देवानामभूमिचारित्वात् सर्किणिणीकानि—क्षुद्रघण्टिका सहितानि पञ्चवर्णानि च कृष्णनोलपोतरक्तशुक्लवर्णानि च वस्त्राणि प्रवरं विधिपूर्वकं यथा स्यात् तथा परिहितः

माणेर जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) इन सब उपहार करने योग्य वस्तुओं को लेकर वह उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, अति महान् वेग से आरम्भ होने के कारण सिंहगामि जैसी शीघ्रतावाली, उद्भूत दिव्य देवगति द्वारा चलता चलता जहां भग्न राजाथा वहां पर आया गति के इन विशेषणों की व्याख्या पहिले को जा चुकी है। (उवागच्छिता अंतलिखलपडिवण्णे सखिखिणिआइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिण करयलपरिगहियं दसणह सिरजावत्त जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जणं विजणं वद्धावेइ) वहां आकरके उसने क्षुद्रघण्टिकाओं से युक्त ऐसे पांच वर्णों वाले वस्त्रों को पहिरे हुए ही आकाश में खड़े-खड़े दश नख जिसमें मिल जावें ऐसी अंगुली करके और उसे मस्तक पर धर करके भरत राजा को जय विजय शब्दों का उच्चारण करते हुए ही बधाई दी यहां जो उसे क्षुद्र घण्टिकाओं से युक्त वस्त्र पहिरे हुए प्रकट किया गया है उसका तात्पर्य यही है कि उसने उन घण्टिकाओं से उत्थित शब्दों द्वारा यही प्रकट सर्वजन समक्ष किया मैं आपका प्रकटरूप में सेवक हूँ गुप्तरूप में नहीं (वद्वावित्ता एवं वयासी) वधाई

सर्वे उपहार योग्य वस्तुओं लक्ष ने ते उत्कृष्ट, त्वरित, अपण अति महान् वेगशी आरम्भ होवाथी सिद्ध गति जेवी शीघ्रतावाणी, उद्भूत दिव्य देवगतिथी आलतो—आलतो न्यां भरतराज हतो, त्या आये। गतिना जे सर्वे विशेषणोनी व्याख्या पडेला करवामा आवी छे (उवागच्छिता अंतलिखलपडिवण्णे सखिखिणी आइ पंचवण्णाइं वत्थाइ पवरपरिहिण करयलपरिगहियं दसणह सिर जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जणं विजणं वद्धावेइ) त्यां आवीने तेजे क्षुद्रघण्टिकाओंथी युक्त जेवा पायवणोवाण वस्त्रे पडेरीने आकाशमा जे जेला रहीने दसनजो जेमा अयुक्त थर्ष लय जेवी अज्जली जनावीने अने तेने मस्तक उपर मूडीने भरत राजने जय-विजय शब्दो साथे अलिन दत वधामणी आया अही जे क्षुद्र घण्टिकाओं युक्त वस्त्रो पडेरेला छे, जेवो उद्वेग छे तेनु तात्पर्य आ प्रमाणे छे के तेजे ते घण्टिकाओंथी उत्थित थता शब्दो वडे जेव वान सर्व लोको समक्ष प्रगट करीके हु तभारे प्रगट इपमा सेवक छु, गुप्त इपमा नहि (वद्वावित्ता एवं वयासी) अलि-

धारितः । किमुक्तं भवति इत्याह किंकिणी ग्रहणेन तस्य, किंकिणी समुत्थगन्धेन सर्वजन-
समस्तं सेवकोऽस्मि न तु गुप्तरूपेणेति ज्ञापनार्थम्, करतलपरिमृहीतं दशनग्रं गिरमात्रं
मस्तकेऽञ्जलि कृत्वा भरतं राजानं चक्रिणं जयेन विजयेन जयविजयगन्धेन चर्द्धयति
'वद्धावित्ता' चर्द्धयित्वा' एवं व्रयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादात् 'अभिजिष्णं देवा-
णुप्पिण्हि केवलकल्पे भरहे वासे पुरत्थिमेणं मागहत्तिथमेराए त अहण्णं देवाणुप्पियाणं
विसयवासी अहण्णं देवाणुप्पियाण आणत्तीकिंकरे अहण्ण देवाणुप्पियाणं पुरत्थिमिल्ले
अंतवाले तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! ममं इमेयारूवं पीडदाणं तिकट्टु हारं मउडं
कुंडलाणि य कडगाणि य जाव मागहत्तिथोदग च उवणेइ' अभिजित खलु देवानुप्रियैः
केवलकल्पं भरतं वर्ष पौरस्त्ये मागधतीर्थमर्यादया तदहं खलु देवानुप्रियाणां विपय-
वासी, अह खलु देवानुप्रियाणां पौरस्त्योऽन्तपालः तत्प्रतीच्छन्तु देवानुप्रियाः ! ममे-
दम् एतद्रूप प्रीतिदानम् । इतिकृत्वा हार मुकुटं कुण्डलानि च यावत् मागधतीर्थोदकं
च उपनयति 'देवाणुप्पिण्हि' देवानुप्रियैः—'केवलकल्पे' केवलकल्पं—केवलज्ञानसदृश सम्पू-

देकर के फिर उसने ऐसा कहा—(अभिजिष्ण देवाणुप्पिण्हि केवलकल्पे भरहे वासे पुरत्थिमेणं
मागहत्तिथमेराए तं अण्ण देवाणुप्पियाण विसयवासी अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्ती किंकरे
अहण्णं देवाणुप्पियाणं पुरत्थिमिल्ले अतवाले तं पडिच्छंतुणं देवाणुप्पिया मम इमेयारूवं पीड-
दाण तिकट्टु हारं मउडं कुंडलाणिय कडगाणिय जाव मागहत्तिथोदग च उवणेइ) आप देवानु-
प्रिय के द्वारा केवल कल्प-ममस्त-भरत क्षेत्र पूर्व दिशा में मागधतीर्थ तक अच्छी तरह से जीत
लिया गया है, मैं आप देवानुप्रिय के द्वारा जिते गए देश का निवासी हूँ, मैं आपका आज्ञाप्ति
किंकर हूँ मैं आप देवानुप्रिय का पूर्व दिशा का अन्तपाल हूँ इसलिये आप देवानुप्रिय मेरे इस
प्रीतिदान को—मेरा का—स्वीकार करें ऐसा कह कर उसने उसके लिये हार, मुकुट, कुण्डल,
कटक यावत् मागध तीर्थ का उदक दे दिया । पौरस्त्य अन्तपाल शब्द का भावार्थ ऐसा है कि
पूर्व दिशा में आपके द्वारा जो शासित देश है उस देश को मैं शत्रुओं आदिके द्वारा जायमान

नन्दन आपीने पछी तेणे आ प्रभाणे कछु— अभिजिष्णं देवाणुप्पिण्हि केवलकल्पे भरहे
वासे पुरत्थिमेणं मागहत्तिथमेराए तं अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी अहण्णं देवाणु-
प्पियाणं आणत्तीकिंकरे अहण्णं देवाणुप्पियाण पुरत्थिमिल्ले अतवाले तं पडिच्छंतु णं देवा-
णुप्पिया ! ममं इमेयारूवं पीडदाणं तिकट्टु हारं मउड कुण्डलाणि य कडगाणि य जाव माग-
हत्तिथोदगं च उवणेइ, आप देवानुप्रिय वडे केवल कल्प—ममस्त—भरतक्षेत्र पूर्व दिशा में
मागधतीर्थ सुधी सारीरीते अतीवैवामां आण्णुं छे हुं आप देवानुप्रिय वडे विजित
देशानो निवासी छु हुं आपश्रीनो आज्ञाप्ति किंकर छु हुं आप देवानुप्रियनो पूर्व
दिशानो अंतपाल छु अथी आप देवानुप्रिय भारा आ प्रीतिदाननो—लेटनो स्वीकारकरो आ
प्रभाणे कछीने तेणे तेमना भाटे हार, मुकुट, कुंडल, कटक यावत् मागधतीर्थतु उदक
ओ सवे वस्तुओ अपित करी. पौरस्त्य अन्तपाल शब्दनो भावार्थ आ प्रभाणे छे के
पूर्व दिशाभा आप वडे शासित वे देश छे. ते देशनो हुं शत्रुओ वगेरे द्वारा जायमान

र्णमित्यर्थः 'भरहे वासे' भरतं वर्षं भरतक्षेत्रम् 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्ये पूर्वस्यां दिशि खलु 'मागहतित्थमेराए' मागधनीर्थमर्थादया गागप्रतीर्थपर्यन्तम् 'अभिजिण' अभिजित खलु निश्चयेन 'तं' तस्मात् कारणात् अरण्य' अह खलु देवाणुप्पियाणं' देवानु-प्रियाणां भवतां 'विसयवासी' विषयवासी देशवामी 'अहण्णं' अतएव अहं खलु 'देवाणुप्पियाणं' देवानुप्रियाणाम् 'आणत्तिकिंकरे' आज्ञाप्तिकिङ्करेः-आज्ञाकारी सेवकः 'अहण्णं' अहं खलु 'देवाणुप्पियाणं' देवानुप्रियाणाम् 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्यः-पूर्वदिक् सम्बन्धी 'अंतवाले' अन्तपालः, अन्नं-त्वदाज्ञप्तिदेश सम्बन्धिन पालयति रक्षयति रि-प्वादि सर्वोपद्रवेभ्य इति अन्तपालः-त्वदादेशरक्षकोऽस्मि 'तं' तत् तस्मात् कारणात् 'पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया' प्रतीच्छन्तु-गृह्णन्तु खलु भो देवानुप्रियाः ! 'ममं' मम 'इमं' इदं पुर उपस्थापितम् 'एयारूव' एतद्रूपं प्रत्यक्षानुभूयमानस्वरूपम् 'पीइदाणं' प्रीतिदानम् उपहाररूपम् 'तिकट्टु' इति कृत्वा इति विज्ञप्य 'हारं' हार-मुक्ताहारम् 'मउडं' मुकुटम् 'कुंडलाणि य' कुण्डलानि च 'कडगाणि य' कटकानि च हस्तभूषणानि च यावत् नामाङ्कितबाणम् 'मागहतित्थोदगं च' मागधनीर्थोदकं च-राज्याभिषेकोपयोगि माग-धतीर्थजलं च 'उवणेइ' उपनयति-भरतचक्रिणे प्राभृती करोति अर्पयतीत्यर्थः, 'तएणं से भरहे राया मागहतित्थकुमारस्स देवस्स इमेयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ' ततस्त-दनन्तरं खलु स भरतो राजा मागधतीर्थकुमारनाम्नो देवस्य इदम् एतद्रूपं प्रीतिदानं प्रतीच्छति स्वीकरोति 'पडिच्छित्ता' प्रतीप्य स्वीकृत्य 'मागहतित्थकुमारं देव सक्कारेइ सम्माणेइ' मागधतीर्थकुमार देव सत्कारयति अनुगमनादिना सन्मानयति मधुरवचना-दिना 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सन्मान्य च 'पडिविसज्जेइ' प्रति विसर्जयति स्वस्थानगमनाय अनुमन्यते 'तएणं से भरहे राया रहं परावत्तेइ' ततः खलु स भरतो

उपद्रवो से रक्षा करने वाला हूँ यहां यावत् शब्द से नामाङ्कित बाण गृहीत हुआ है । (तएणं से भरहे राया मागहतित्थकुमारस्स देवस्स इमं एयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ) भरत राजा ने भी मागधतीर्थ कुमार देव के इस प्रकार के इस प्रीतिदान को-भेट को-स्वीकार कर लिया(पडि-च्छित्ता मागहतित्थकुमार देवं सक्कारेइ, सम्माणेइ) भेट स्वीकार करके फिर उस भरत राजा ने उस मागधतीर्थ कुमार का अनुगमनादि द्वारा सत्कार किया और मधुर वचनादि द्वारा सन्मान किया (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) सत्कार एव सन्मान करके फिर उसे विसर्जित

उपद्रवोपधी रक्षाकरनाए छु अही यावत् शब्दधी नामाङ्कित बाणतु अक्षु थयुं छे (तएणं से भरहे राया मागहतित्थकुमारस्स देवस्स इम एयारूवं पीइदाणं पडिच्छइ) भरत राजाये पणु मागध तीर्थकुमार देवना आ जतना ये प्रीतिदान (भेट) ने स्वीकार कथे (पडि-च्छित्ता मागहतित्थकुमार देवं सक्कारेइ, सम्माणेइ) भेटने स्वीकार करीने पछी ते भरत राजाये ते मागध तीर्थ कुमारने अनुगमनादि द्वारा सत्कार कथे अने मधुर वचनादि द्वारा तेनु सन्मान कथुं (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) सत्कार अने सन्मान करीने पछी तेने विहाय आपी (त एणं से भरहे राया रहं परावत्तेइ) त्थार आह ते

राजा रथ परावर्त्तयति निनर्त्तयति 'परावर्त्तित्ता' पगवर्त्त्य 'मागहत्तित्थेणं लवणसमुदाओ पच्चुत्तरइ' मागप्रतीर्थेन लवणसमुदात् प्रत्यवतरति 'पच्चुत्तरित्ता' प्रत्यवतीर्थ 'जेणेव विजयसंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव विजयस्कन्धावारनिवेशो यत्रैव च बाह्या उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'तुरए णिगिण्हइ' तुरगान् निगृह्णाति—स्थिरी करोति 'निगिण्हित्ता' निगृह्य 'रहं ठवेइ' रथं स्थापयति 'ठवित्ता' स्थापयित्वा 'रहाओ पच्चोरुहइ' रथात् प्रत्यवगोहति अवतरति 'पच्चोरुहित्ता' प्रत्यवरुह्य 'जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव मज्जनगृह तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'मज्जणघर अणुपविसइ' मज्जनगृहम् अनुप्रविशति 'अणुपविसित्ता' अणुप्रविश्य 'जाव ससिन्व पियदंसणे' यावत् शशीव प्रियदर्शनः 'णरवई मज्जणघराओ पडिणिकखमई' नरपतिः मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति अत्र पूर्व-

कर दिया । (तएणं से भरहे राया रहं परावचेइ) इसके बाद उस भरत राजा ने अपने रथ को छोटाया (परावर्त्तित्ता मागहत्तित्थेणं लवणसमुदाओ पच्चुत्तरइ) और लौटाकर मागधतीर्थ से होता हुआ वह लवण समुद्र से वापिस भरत क्षेत्र को ओर आ गया (पच्चुत्तरित्ता जेणेव विजयसंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) और आकर के वह जहा पर विजयस्कन्धावार का निवेश था—पडाव पडा हुआ था और उसमें भी जहां पर बाह्य उपस्थान शाला थी वहां पर आया । (उवागच्छित्ता तुरए णिगिण्हइ) वहां आकरके उसने घोड़ों को रोक दिया (निगिण्हित्ता रह ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) घोड़ो को रोक करके उसने फिर रथ खड़ा कर दिया । रथ के खड़े होते ही वह उस रथ से निचे उतरा और उतरकर फिर वह जहा पर स्नानगृह था वहा पर आया (उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ) वहां आकर वह स्नानगृह में प्रविष्ट हुआ (अणुपविसित्ता जाव ससिन्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिकखमई) वहां प्रविष्ट होकर उसने पूर्ववत् स्नान क्रिया स्नान करने के अनन्तर फिर धवल महामेघ से निकलते हुए चन्द्र के

भरत राजाએ પોતાના રથને પાછો વાળ્યો (પરાવર્ત્તિત્તા માગહત્તિત્થેણં લવણસમુદાઓ પચ્ચુત્તરइ) અને પાછો વાળીને માગધ તીર્થમાંથી પસાર થઈ ને તે લવણ સમુદ્ર તરફથી પાછો ભરત ક્ષેત્ર તરફ આવી ગયો. (પચ્ચુત્તરિત્તા જેણેવ વિજયસંધાવારણિવેસે જેણેવ બાહિરિયા ઉવટ્ટાણસાલા તેણેવ ઉવાગચ્છइ) અને આવીને તે જ્યાં વિજય સંધાવાર-નિવેશ હોનો—પડાવ હતો, અને તેમાં પણ જ્યાં બાહ્ય ઉપસ્થાન શાળા હતી ત્યાં આવ્યો. (ઉવાગચ્છિત્તા તુરए णिगिण्हइ) ત્યાં આવીને તેણે ઘોડાઓને ઉભારાખ્યા. (નિગિણ्हિત્તા રહં ઠવેइ ઠવિત્તા રહાઓ પચ્ચોરુહइ પચ્ચોરુહિત્તા જેણેવ મજ્જણઘરે તેણેવ ઉવાગચ્છइ) ઘોડાઓને ઉભારાખીને પછી તેણે રથ ઊભોરાખ્યો. રથ ઊભો રહેતા જ તે રાજા રથ ઉપરથી નીચે ઉતર્યો અને નીચે ઉતરી ને પછી જ્યાં સ્નાનગૃહ હતું—ત્યાં ગયો. (ઉવાગચ્છિત્તા મજ્જણઘર અણુ-પવિસइ) ત્યાં આવીને તે સ્નાનગૃહમાં પ્રવિષ્ટ થયો. (અણુપવિસિત્તા જાવ સસિન્વ પિયદંસણે ણરવई મજ્જણઘરાઓ પડિણિક્કખમई) ત્યાં પ્રવિષ્ટ થઈને તેણે પૂર્વવત્ સ્નાન કર્યું, સ્નાન

वत् स्नानविधयनन्तरं धवलमहामेघान्निर्गच्छन् चन्द्र इव सुधाधवलीकृतमञ्जनगृहात् प्रिय-
दर्शनः स राज्ञः चक्री निर्गच्छतीति भावः 'पण्डित्वा' प्रतिनिष्क्राम्य निर्गत्य
'जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव भोजनमण्डपस्तत्रैवोपागच्छति 'उवाग-
च्छित्ता' उपागत्य 'भोयणमंडवसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ' भोजनमण्डपे सुखा-
सनवरगतः सन् अट्टमभत्तं पारयति उपवामत्रयानन्तरं पारणा करोतीत्यर्थः 'पारित्ता'
पारयित्वा पारणां कृत्वा 'भोयणमंडवाओ पण्डित्वा' भोजनमण्डपान् प्रतिनिष्क्रामति
'पण्डित्वा' प्रतिनिष्क्राम्य निर्गत्य 'जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे
तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव बाह्य उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासन तत्रैवोपागच्छति 'उवाग-
च्छित्ता' उपागत्य 'सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ' सिंहासनवरगतः पौरस्त्या-
भिमुखः पूर्वाभिमुखः निपीदति उपविशति 'णिसीइत्ता' निपद्य उपविश्य 'अट्टारः सेणि-
प्पसेणीओ सदावेइ' अष्टादश श्रेणि प्रश्रेणीः शब्दयति आह्वयति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा
आहूय 'एवं वयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् अथ क्रियमादीत् इत्याह—

जैसे प्रिय दर्शन वाला वह भरत राजा उस सुधाधवली कृत स्नान घर से बाहर आया । (पण्डित्वा-
पण्डित्वा जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ) स्नान घर से बाहर आकर के फिर वह जहा
भोजन शाला थी वहां पर आया (उवागच्छित्ता भोयणमंडवसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ)
वहां आकर के उसने भोजन मंडप में सुखासन पर बैठ कर अष्टमभक्तकी पारणा की (पारिता
भोयणमंडवाओ पण्डित्वा) पारणा कर के फिर वह भोजन शाला से बाहर आया (पण्डि
णित्वा जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ) बाहर आकर
के फिर वह जहा बाह्य उपस्थानशाला थी और उसमें भी जहां पर सिंहासन था वहा परआया
(उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ) वहा आकर के वह पूर्वदिशा की ओर
मुँह करके सिंहासन पर बैठगया (णिसीइत्ता अट्टारः सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) बैठकर फिर उसने
१८ श्रेणि प्रश्रेणियो को बुलाया—(सदावित्ता एवं वयासी) बुलाकर उसने ऐसा कहा—स्वप्पामेव

करीने पछी धवलमहामेघानी निष्पन्न चन्द्र जेणेव प्रियदर्शी ते भरत राजा ते सुधाधवलीकृत
स्नानगृहमाथी अट्टार आये। (पण्डित्वा जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ)
स्नान घरमाथी अट्टार नीकणीने पछी ते जथा बोधनशाला इती त्या गये। (उवागच्छित्ता
भोयणमंडवसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ) त्या आवीने ते बोधन मंडपमा सुखासन
उपर भेठो अने त्यार आइ तेणे अष्टम भक्तानी पारणा करी (पारित्ता भोयणमंडवाओ
पण्डित्वा) पारणा करीने पछी बोधन शालामाथी अट्टार आये। (पण्डित्वा जेणेव
बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ) अट्टार आवीने पछी ते जथा
बाह्य उपस्थान शाला इती अने तेमा पछु जथा सिंहासन इतु त्या आये। (उवागच्छित्ता
सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ) त्या आवीने ते पूर्व दिशा तर्क मुख करीने
सिंहासन उपर भेठो गये। (णिसीइत्ता अट्टारः सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) जेसीने पछी
तेणे १८ श्रेणि-प्रश्रेणिना बोधोने बोधोया, (सदावित्ता एवं वयासी) बोधोवाणीने आ प्रभाणे

'खिष्णामेव भो ! देवाणुप्पिया' इति, क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! 'उस्सुक्कं उक्कर जाव मागधत्तित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहियं महामहिम करेह' उच्छुल्लकाम् उच्छुल्लकाम् यावत्त मागधतीर्यकुमारस्य देवस्य विजयोपलक्षिकाम् अष्टादिकां अष्टादिनमम्पाद्यां महामहिमां महान् महिगा यस्यां ण ताम् कुरुत तत्र-उच्छुल्लकामिति उन्मुक्तः-त्यक्तः शुल्लः राजकीयदेयद्रव्यं यस्यां ण ताम् गान् पदान् उच्छुल्लन्दि सर्वं विगोषणा-गिष्ठां कुरुतेति सम्बन्धः 'करित्ता' कृत्वा 'एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह' एतामज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्ति । 'तए ण तामो अट्टाससेणिप्पसेणीओ भरहेण रण्णा एवं बुत्ताओ समाणीओ इद्व जान करेति' ततः खलु ता अष्टादश श्रेणि प्रश्रंणयः भरतेन रात्रा एवम् उक्ता आज्ञप्ताः सत्यः हृष्ट यावत् तुष्टानन्दितहृदयाः राजोदितामष्टादिकां कुर्वन्ति 'करित्ता' कृत्वा 'एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति' एतामज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्ति । 'तए णं से दिव्वे चक्करयणे' ततः खलु तत् दिव्यं चक्ररत्नम् 'वडरामय तुंवे' वज्रमयतुम्बम्, तत्र वज्रमयं हीरकखचितं तुम्बम्-अरकनिवेशस्थानं यत्र तत्तथा पुनः कीदृशम्

भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं उक्कर जाव मागधत्तित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहियं महामहिम करेह) है देवानुप्रियो ! तुम सब मिलकर मागधतीर्य कुमार देवके विजय के उपलक्ष में आठदिन तक खूब ठाट बाटसे उत्सवकरो इसमें राजकीय देव द्रव्य माफ करो, चुह्नी(नकात)वगैरह प्रजाजनोसे नालिया जाये ऐसी व्यवस्था करो (करित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) यह सब करके फिर मुझे इसकी खबर दो (तएणं तामो अट्टारस सेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं बुत्ताओ समाणीओ इद्व जान करेति) इस प्रकार भरतराजाद्वारा आज्ञप्त किये वे अष्टादश श्रेणिजन बहुत ही हर्षित एवं तुष्ट चित्त हुए राजोदित आठदिन तक के महामहोत्सवकरने में तल्लीन होगये (करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) महामहोत्सव करके" हमने आपकी आज्ञानुसार सब काम विधिवत् करलिया है" इस बात की खबर राजा के पास पहुँचती (तएण से दिव्वे चक्करयणे वडरामय तुंवे) इसके बाद

कथं- (खिष्णामेव भो देवाणुप्पिया ! उस्सुक्कं उक्करं जाव मागधत्तित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहियं महामहिम करेह) हे देवानुप्रियो ! तमे भो भणीने मागध तीर्यं कुमार उपर विन्त्य मेणोये। ते उपलक्ष्यमा आठ दिवस सुधी भहुं न ठाठ-माठथी उत्सव करो. येभां राजकीय देव द्रव्य माफ करो, प्रणजने। पासेयी कर देवाभां न आवे, आ जननी व्यवस्था करो. (करित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) आ अथु करीने पछी भने सूचना आपो. (तएणं तामो अट्टारससेणिप्पसेणीओ भरहेणं रण्णा एवं बुत्ताओ समाणीओ इद्व जान करेति) आ प्रभाणु भरत राजा वडे आज्ञप्त थयेता ते अष्टादश श्रेणि-प्रभेणु जने। भहुं न हर्षित तेग न तुष्टचित्त थया तेये। राजेदित आठ दिवस सुधीना मडा मडो-त्सवनी व्यवस्थाभां तहदीन थर्ध थया (करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) मडा मडो-त्सव कायं सम्पन्न करीने तेमथे राजा पासे आ जननी सूचना भो कही है अपीजे आपशीनी आसा सुखम सर्व मडा मडोत्सव कायं यथाविधि सम्पन्न कथुं छे. (तएण से दिव्वे चक्करयणे वडरामयतुंवे) त्वार जाह ते अकरत्त के जेनु अरक-निवेश स्थान वज्रमय

'लोहियक्ख रयणमयारए, लोहिनाक्षरत्नमयारकम्, लोहिताक्षा रत्नमया अरका यत्र तत्तथा पुनः कीदृशम् 'जंबूणयणेमिए' जाम्बूनदनेमिकम् जाम्बूनदं रक्तसुवर्णं तन्मयो नेमिः धारा यत्र तत्तथा 'णाणामणि खुरप्पथालपरिगए' नानामणि क्षुरप्रस्थालपरिगतम्, तत्र नानामणिमयम् अन्तः क्षुरपाकारत्वात् क्षुरप्ररूपं स्थालम्-अन्तः परिधिरूपं तेन परिगतं यत्तत्तथा 'मणिमुत्ताजालभूसिए' मणिमुक्ताजालाभ्यां भूषितम्, नन्दिः-भम्भामृदङ्गादि द्वादशविधतूर्यसमुदायस्तस्य घोषस्तेन सहितं यत्तत्तथा, पुनः कीदृशम् 'सखि खिणीए' सक्किङ्किणीकम्, किङ्किणीभिः-क्षुद्रघण्टिकाभिः सहित सक्किङ्किणीकम्, पुनः कीदृशम् 'दिव्वे' दिव्यम्, दिव्यमिति विशेषणस्य प्रागुक्तत्वेऽपि प्रशस्तताऽऽतिशय रूपापनार्थं पुनः कथनम् 'तरुणरविमंडलणिमे' तरुणरविमण्डलनिभम्, तत्र तरुणरवेर्मण्डलसदृशम् मध्याह्नसूर्यसदृशम् तेजोयुक्तं गोत्राकारं च 'णाणामणिरयणघट्टियाजालपरिक्खित्ते' नानामणिरत्नघण्टिकाजालपरिक्षिप्तम् तत्र नानामणिरत्नघण्टिकानां यत् जालं

वह दिव्यचक्ररत्न की जिसका अरक निवेशस्थान वज्रमय है आयुध गृहशाळा से बाहर निकला ऐसा सम्बन्ध यहां लगा लेना चाहिये अब वह चक्ररत्न कैसा था-इसी सम्बन्ध में दिये गये पदों को व्याख्या की जाती है- (लोहियक्खामयारए) इसके जो अरकये वे लोहिताक्षरत्न के बने हुए थे (जंबूणयणेमीए) इसकीनेमि-चक्र धारा-जाम्बूनद सुवर्ण की बनी हुई थी (णाणामणिखुरप्पथालपरिगए) यह अनेक मणियों से निर्मित अन्तः परिधिरूप स्थाल से यह युक्त था (मणिमुत्ताजालपरिमूमिए) मणिऔर मुक्ताजालों से यह परिभूषित था (सणदिघोमे) द्वादश प्रकार के भम्भामृदङ्ग आदि तूर्य समूह की जैसी आवाज होती है ऐसी इस की आवाज थी (सखि खिणीए दिव्वे तरुणरविमंडलणिमे, णाणामणिरयणघट्टियाजालपरिक्खित्ते क्षुद्र घण्टिकाओं से यह विराजित है। यह दिव्य अतिशय रूप में प्रशस्तथा मध्याह्न सूर्य जिस प्रकार तेजोविशेष से युक्त रहता है उसी प्रकार के तेजोविशेष से यह युक्त था गोत्र आकार वाला था अनेक मणियों एवं रत्न की घण्टिकाओं के समूह से यह सर्व ओर से व्याप्त था (पन्वोउयसुग्भि-

ए, आयुधशाणाभांथी षडार नीकल्लु जेवे सणध अही ण्णी देवे लोधिजे. हवे ते अकरत्तं डेवु इत्तुं जे सणधमा जे पढो आप्पामा आत्था जे तेमनी व्य.त्था करवामां आवे जे (लोहियक्खामयारए) जेना जे अरको इत्ता ते वे हिताक्षरत्नोना इत्ता (जंबूणयणेमीए) जेनी नेमि-अकधारा-जम्बूनद सुवर्णीनी अनेवी इत्ती (णाणामणि खुरप्प थालपरिगए) ते अनेक भञ्जिओथी निर्मित अन्त परिधि रूप स्थाल थी युक्त इत्तु (मणि मुत्ताजालपरिमुसिए) भञ्जि अने मुक्ताजालौथी जे परिभूषित इत्तु (सणदिघोसे) द्वादश प्रकारना भम्भामृदङ्ग वगेरे तूर्य-समूह ने जेवे अवाज होय जे, जेवे जेना अवाज इत्ती. (सखिखिणीए दिव्वे, तरुणरविमंडलणिमे, णाणामणिरयणघट्टियाजालपरिक्खित्ते) क्षुद्रघट्टिकाओथी जे विराजित इत्तु जे दिव्य अतिशय रूपमा प्रशस्त इत्तु मध्याह्न ने सूर्य जेभ तेजोविशेषथी समन्वित होय जे. तेभज जे अकरत्त पञ्च तेजोविशेषथी समन्वित इत्तु जे गोल आअर वाणु इत्तु, अनेक भञ्जिओ तेभज रत्नोनी घट्टिकाओना समूहथी जे आरे आणुओथी व्याप्त इत्तु, (सन्वोउयसुग्भिकुसुमवासत्तमल्लदामे, अंतलिक्खपडिव्वने,

समूहस्तेन परिक्षिप्तं सर्वतो व्याप्तं यत्तत्तथा 'सन्वोउयसुरभिकुमुम आसत्तमल्लदामे'
 सर्वर्तुक सुरभिकुसुमासक्तमाल्यदामम्, सर्वेषाम् ऋतूनां सम्बन्धीनि यानि सुरभि कुसु-
 मानि-सुगन्धिपुष्पाणि तैः आभक्ताः-युक्ता माल्यदामानः पुष्पमाला यत्र तत्तथा 'अंत-
 लिखलपडिवणणे' अन्तरिक्षप्रतिपन्नम्-गगनतलगतम् 'जकसहस्स सपरिवुडे' यक्षस-
 हससंपरिवृतम् यक्षे'त व्यन्तरदेवनिकायः, 'दिव्वतुडियसदसण्णिणाटेणं पूरेते चेव
 अंवरतलं' दिव्यत्रुटितशब्दसन्निनादेन पूर्यदिव अम्बरतलम्, तत्र दिव्यानाम् त्रुटितानां
 तुर्यवाद्यविशेषाणां यः शब्दः ध्वनि यश्च सङ्गतो निनादः प्रतिध्वनिः तेन अम्ब-
 रतल पूर्यदिव 'णामेणय सुदंसणे' नाम्ना च सुदर्शनम् 'णरवडस्स पढमे चक्करयणे'
 नरपतेः चक्रिणो भरतस्य प्रथमम् आद्यं प्रगन च सर्वरत्नेषु वैरिजये सर्वत्रामोष-
 शक्तिरत्वात् चक्ररत्नम् 'मागहत्तित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहिमाए महामहिमाए णिव्व-
 चाए समाणीए आउहधरसालाओ पडिणिकखमड' मागधतीर्थकुमारस्य देवस्य विज-
 योपलक्षे अट्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्याम् आयुषगृहशालातः प्रतिनिष्क्रा-
 मति निर्गच्छति 'पडिणिकखमिता' प्रतिनिष्क्रम्य 'दाहिणपच्चत्थिम दिसिं वरदाम-
 तित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था' दक्षिणपाश्चात्यां-दक्षिणपश्चिमां दिशम् नैऋत्य-
 कोणमाश्रित्य वरदामतीर्थाभिमुखं प्रयातं-चलितं चाप्यभवत् ॥६० ७॥

कुसुम आसत्त मल्लदामे अंतलिखलपडिवन्ने, जकसहस्सपरिवुडे) समस्त ऋतुओं के सुरभित
 कुसुमों को निर्मित मालाओ से यह सुशोभित था, आकाश में ठहरा हुआ था हजार यक्षों से
 यह परिवृत था (दिव्य त्रुटिमहदपण्णणाएणं पूरेते चेव अंवरतलं णामेणं सुदंसणे णरवडस्स पढ
 मे चक्करयणे) दिव्यनूर्य वाद्यविशेषो के शब्द से एवं उनकी सगत ध्वनियों से अम्बर तल को भर
 सा रहा था, नाम इनका सुदर्शन था ऐसा यह भरत चक्रवर्ती का-प्रथम-आद्य, तथा सर्वरत्नों
 में श्रेष्ठ वैरिजनों के विजय करने में सर्वत्र अमोष शक्ति वाला होने से प्रधान चक्ररत्न था ऐसा
 यह चक्ररत्न (मागहत्तित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहिमाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउह-
 धरमालाओ पडिणिकखमड) जब मागधतीर्थ कुमार को भरत चक्रवर्ती ने अपने वश में कर लिया
 तब उसके उपलक्ष में क्रिये आठदिन के महामहोत्सव के निष्पन्न हो जाने पर आयुषशाला गृह

जकसहस्सपरिवुडे) सर्वं ऋतुओना सुरभित कुसुमानी भागाओथी ओ सुशोभित इत्तु .
 ओ आकाशमां अवस्थित इत्तु सद्धस्य यक्षोथी ओ परिवृत इत्तु (दिव्वतुडियसदस-
 ण्णिणाएणं पूरेते चेव अंवरतलं णामेणं सुदंसणे णरवडस्स पढमे चक्करयणे) दिव्यनूर्य
 वाद्य विशेषेणां शब्दथी तेभञ्ज तेभनी सगत ध्वनिओथी ते अंवरतलने पूरित करत्तु इत्तु
 ओत्तु ओ भरत चक्रवर्ती'तु प्रथम-आद्य तेभञ्ज सर्वरत्नेमां श्रेष्ठ, वैरिओ उपर विजय भेज-
 पवामां सर्वत्र अमोष शक्ति धरावनार डोवाथी ओ प्रधान चक्ररत्न इत्तु ओत्तु आ चक्ररत्न
 (मागहत्तित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहिमाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहधरसालाओ
 पडिणिकखमड) न्यारे मागधतीर्थ कुमारने भरत चक्रवर्ती'ओ पेताना पशमां करी दीथी
 थार थार ते अ न दना उपलक्ष्यमा आठ दिवसने महामहोत्सव सम्पन्न करवामां आओ,

छाया—तत खलु स भरतो राजा तद्विव्य चक्ररत्न दक्षिण पाश्चात्या दिश वरदामतीर्थाभिमुखं प्रयात चापि पश्यति, दृष्ट्वा दृष्ट तुष्ट० कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा पवम् अवादीत्-क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया । ह्यगजरथप्रवरत्रातुरंगिणीं सेना सन्नाहयत अभिपेक्ष्य हस्तिरत्नं प्रतिरूपयत इति कृत्वा मज्जनगृहम् अनुप्रविशति अनुप्रविश्य तेनेव क्रमेण यावत् धरलमहामेघनिर्गतो यावत् प्रवेनवरचामरं रुद्रयमानै रुद्रयमानं हस्तपाशित वरफलज्ज प्रवरपरिकरखेट रुवरवर्मकवचमादयवहसकलित उत्कट वरमुकुटकिरीट पताक वज्रवैजयन्ती चामर चलच्छत्रान्यकारकलित, असि क्षेपिणी रज्ज चाप नाराज कणक कल्पनीशूललगुडभिन्दिपालघनुस्तूणशरप्रहरणैश्च कालनीलरुधिरपीत शुषलानेकचिह्नशतसन्निविष्टम् आस्फोटितसिंहनाद सैदित ह्य हेपित हस्तिगुलगुलायितानेकरथशतसहस्रानुकरणशब्दनिहन्यमानशब्दसहितेन यमकसमकभम्भादोरम्भा फवणिता खरमुखो मुकुन्द शङ्खिका पिरलीवच्चक परिवारिणी वंशवेणु त्रिपञ्ची महती कच्छपो भारतीरिगसिरिका तलताल कांस्यताल करघानोत्थितेन, महता शब्दसन्निनादेन सकलमपि जीवलोकं पूरयन् चलवाहनसमुदयेन पवम् यक्षसश्स्त्रपरिवृत्तो वैश्रमणो धनपतिरिव अमरपति सन्निभया क्रद्धया प्रथितकीर्तिः ग्रामाकरनगरखेटकवट तथैव शेषं यावत् विजयस्कन्धावारनिवेशं करोति, कृत्वा वर्द्धकिरत्नं शब्दयति, शब्दयित्वा पवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय । मम आवासं पौषधशाला च कुरु मम पतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पय ॥ सू० ८ ॥

टीका—‘तए णं’ इत्यादि । ‘तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं’ ततः खलु स भरतो राजा तद्विव्यं चक्ररत्नम् ‘दाहिणपच्चत्थिमं दिंसि’ दक्षिणपाश्चात्यां दक्षिणपश्चिमां दिशं नैऋत्यकोणं प्रति ‘वरदामतित्थाभिमुहं पयातं चावि पासइ’ वरदामतीर्थाभिमुखं प्रयातं चापि पश्यति ‘पासित्ता’ दृष्ट्वा ‘दृष्ट तुष्ट० कोडुंबियपुरिसे सदावेड’ दृष्टतुष्टचित्तानन्दितः सन् कौटुम्बिकपुरुषान् प्रधानराजसेवकान् शब्दयति आह्वयति ‘सदावित्ता’ शब्दयित्वा—आह्वय ‘एव वयासी’ एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्—

‘तएणं भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं’, इत्यादि

टीकार्थ—(तएणं) इसके बाद (भरहे राया) भरत राजा ने जब (त दिव्वं चक्करयणं) उस दिव्य चक्ररत्न को (दाहिण पच्चत्थिमं दिंसि वरदामतित्थाभिमुहं पयातं चावि पासइ) दक्षिण-पश्चिम दिग्बर्ती नैऋत्यकोण की ओर वरदाम तीर्थ की तरफ जाते हुए देखा—तब (पासित्ता दृष्ट तुष्ट कोडुंबियपुरिसे सदावेड) देखकर अपने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को, प्रधान सेवकों को बुलाया (पदावित्ता एवं वयासी) और बुलाकर उसने ऐसा कहा—(विपामेव भो देवाणुप्पिया । ह्य-

‘तएणं भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं’ इत्यादि सू० ॥८॥

(त एणं) त्थार भा० (भरहे राया) भरत राजा ने अथवा (तं दिव्वं चक्करयणं) ते चक्ररत्नने (दाहिणपच्चत्थिमं दिंसि वरदामतित्थाभिमुहं पयातं चावि पासइ) दक्षिण पश्चिम दिग्बर्ती नैऋत्य कोण तरफ वरदाम तीर्थ तरफ जातां लेखु त्थार (पासित्ता दृष्ट तुष्ट कोडुंबिय पुरिसे सदावेड) लेखने लेखे पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने, प्रधान राज सेवकाने बुलाव्या.

उक्तवान् 'खिप्पामेव भो देवानुप्पिया !' क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः । 'हयगयरहपवर-
चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह', हयगजरथप्रवरचातुरङ्गिणो सेनां सन्ताहयत-सज्जीकुरुत
'आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह' आभिषेक्यं हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत 'त्तिकट्टु मज्जणघरं
अणुपविसइ' इतिकृत्वा इति कथयित्वा मज्जनगृहम् अनुप्रविशति 'अणुपविसित्ता' अनु-
प्रविश्य 'तेणेव क्रमेणं जाव धवलमहामेहणिग्गए' तेनैव क्रमेण पूर्वोक्तस्नानाधिकारसूत्र-
परिपाट्या स्नानादिविधिं समाप्य यावत् धवलमहामेघनिर्गतश्चन्द्र इव सुधाधवलीकृत
मज्जनगृहात् स चक्री-भरतो निर्गच्छतीतिभावः । तदनन्तरं नरपतिश्चक्री भरतो गजपति-
मारोहति केन सहित आरोहतीत्याह-'जाव सेयवर चामराहिं उड्डुव्वमाणीहिं उड्डुव्वमणीहिं'
यावत् सकोरण्टमाल्यदाग्ना छत्रेण ध्रियमाणेन सहितस्तथा श्वेतवरचामरः अग्रतः पृष्ठतः
पार्श्वयोश्च चतुर्भिः प्रकारकैः स्वच्छश्रेष्ठ चामरैरुडूयमानै-रुडूयमानैः-वीज्यमानैर्वीज्यमानैः
सहितः स नरपतिः गजपति मारोहति इतिभावः । अथ यथाभूतो भरतो वरदामतीर्थ

गय रह पवर चाउरंगिणिं सेणं-सण्णाहेह) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र हो हय-घोड़ा
ओं से हाथियों से रथों से एव प्रबल श्रेष्ठ योधाओं से युक्त चातुरंगिणी सैन्य की तैयारी करो-
अर्थात् उसे सजाकर तैयार रखो तथा (आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह तिकट्टु मज्जणघरं
अणुपविपइ) आभिषेक्य-राजा के सवारी के योग्य हस्तिरत्न को भी सजाओ । ऐसा कहकर
वह मज्जनगृह में-स्नानघर में- प्रविष्ट हो गया-(अणुपविसित्ता) मज्जनगृह में प्रविष्ट होकर
(तेणेव क्रमेणं जाव धवलमहामेहणिग्गए जाव सेयवरचामराहिं उड्डुव्वमाणीहिं २) वह भरत चक्री
पूर्वोक्त स्नानाधिकार सूत्र परिपाटी के अनुसार स्नानादिविधि को परिसमाप्त कर के यावत् धवल-
महामेघ से निर्गत चन्द्रकी तरह धवलीकृत उस मज्जनगृहसे निकला और निकल कर फिर वह
गजपति पर आरोह हुआ जब वह गजपति पर बैठ गया तब उसके ऊपर छत्रधारियों नेकोरन्ट
पुष्पो की मालाओं से युक्त छत्र तान दिये । तथा आगे से पिछे से और दोनों पार्श्व भागों से

(सहावित्ता पवं वयासी) अने ओलावीने तेमने आ प्रभाणे कट्टु -(खिप्पामेव भो देवानु-
प्पिया ! हयगयरहपवरचाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह) हे देवानुप्रियो ! तमे यथा
शीघ्र हयो-घोडा, गज, रथ तेमज प्रवर श्रेष्ठ योद्धाओथी युक्त चातुरंगिणी सेना सुसज्जित
करे। अटवे के तेने सुखकर करीने तैयार राणे। तथा-(आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह
त्तिकट्टुमज्जणघरं अणुपविसइ) आभिषेक्य राजनी सवारीयोग्य हस्तिरत्नने यथ सुखकर
आम कडीने ते मज्जन गृहमा-स्नान गृहमा प्रविष्ट थये। (अणुपविसित्ता) मज्जन गृहमां
प्रविष्ट थर्धने (तेणेव क्रमेणं जाव धवलमहामेहणिग्गए जाव सेयवरचामराहिं उड्डुव्वमा-
णीहिं २) ते भरत अकन्ती पूर्वोक्त स्नानाधिकार सूत्र परिपाटी सुखम स्नानादिक विधिने
वतावीने यावत् धवल महामेघथो विनिर्गत चन्द्रकी जेम धवली कृत ते मज्जन गृहमाथी
अंडार नीकलेथे अने नीकलीने पथी ते गजपति उपर आइठ थये। न्यारे ते गजपति
उपर भेसी गथे। तयारे तेनी उपर छत्रधारकोजे केरट पुष्पेनी मालाओथी युक्त छत्रो
ताएथ। तेमज आगम-पाछम अने अने पार्श्वभाग तरह आभर टाणनाराओजे अवेत

प्राप्तः यथा च वरदामतीर्थे स्कन्धावारनिवेशमकरोत्तथाह-अत्र सूत्रे वाक्यद्वयं, तत्र चादि-
वाक्ये 'तदेव सेस' इत्यतिदेशपदेन सूचिते सूत्रे 'जेणेव वरदामतित्ये तेणेव उपागच्छड'
इत्यनेन अन्वयः कार्यः स भरतो यत्रैव वरदामतीर्थं तत्रैव उपागच्छति, द्वितीयवाक्ये
च 'विजयखंधावारणिवेसं करेइ' इत्यनेनान्वयः किं लक्षणः स राजा इत्याह 'माइय'
इत्यादि 'माइय वरफलय पवरपरिगर खेडयवरवम्म कवयमाढीमहस्सकल्लिए' हस्त-
पाशित वरफलक प्रवरपरिकरखेटकवर वर्म्मकवयमाढयसहस्सकल्लिनः, तत्र-'माइय' चि
देशीयशब्दः हस्तपाशितार्थे तेन हस्तपाशित वरफलक 'ढाल' इति नाम्नाल्लोके प्रसिद्ध
येषां ते तथा प्रवरः परिकरः-प्रगाढगात्रिकारन्वः खेटक च वशशलाकादिमय येषां ते
तथा वरवर्म्मकनचमाढयः-सन्नाहविशेषा येषां ते तथा ततः पदत्रयस्य कर्म गारयः तेषां
सहस्रैः-वृन्दवृन्दैः समूहैः कलितो युक्तो यः स तथा, राज्ञां हि सग्रामप्रयाणसमये
युद्धाङ्गानां सह सञ्चरणस्यावश्यकत्वात् पुनश्च कीदृशः 'उक्कडवरमउडतिरीडपडागल्लयवेज-
यंति चामरचलंतछत्तंधयारकल्लिए' उक्कडवरमुकुटकिरीटपताकध्वजवैजयन्ती चामरचल-

उसके ऊपर चामर ढोरने वालों ने श्वेत चामर ढोरना प्रारम्भ करा दिया। अब सूत्रकार यह प्रकट
करते हैं कि वह भरत चक्रो कैमा होकर वरदामतीर्थ पर गया और जिस तरह से उसने वरदा-
मतीर्थ पर अपने स्कन्धावार को ठहराया तथा वह भरत चक्रो कैमा था? अब पहिले भरत चक्रो
के सम्बन्ध में ही विशेषणों द्वारा उसकी विशेषता प्रकट की जाती है। (माइय वरफलय पवरप-
रिगर खेडय वरवम्मकवयमाढीसहस्सकल्लिए) यहाँ "माइय" यह देशी शब्द है और यह हाथ में
पकड़ने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस तरह जिन्होंने अपने-अपने हाथों में वरफलय-ढाल
के रखी है, श्रेष्ठ कम्मर बन्ध से जिनका कटिभाग खूब कसकर बन्धा हुआ है। तथा वंश की
शलाकाओं से निर्मित जिनके खेटके-बाण है, एवं दृढवद्ध कवच-जहर वस्त्र-से जो सज्जित
हैं ऐसे हजारों योधियों से वह भरत चक्रो युक्त था (उक्कड वरमउड तिरीडपडाग जय वैजयंति
चामरचलंतछत्तंधयारकल्लिए) उन्नत एवं प्रवर-श्रेष्ठ मुकुट-राजचिह्नविशेषित शिरोभूषण किरीट

श्रेष्ठ आभूषण ढाणवा माइया. इवे सूत्रकार जे वात प्रकट करे छे छे ते भरत चक्रो कैमा अर्थ
ने वरदाम तीर्थ ऊपर गये अने केनी रीते तेणे वरदाम तीर्थ ऊपर पोताना स्कन्धावारने।
पडाव नाथ्ये तेमज ते भरतचक्रो कैमा इतो । इवे सर्वप्रथम विशेषणे। वडे भरतचक्रोना
स भधभां ज विशेषना प्रकट करता सूत्रकार कहे छे (माइयवर फलय पवरपरिगरखेडयवर-
वम्मकवय माढीसहस्सकल्लिए) अही 'माइय' जे देशी शब्द छे अने जे हाथमा पकडवा
भाटेना अर्थमा प्रयुक्त थयेव छे आ प्रभाणे जेभणे पोत-पोताना हाथेमां वरइल्लो-
ढाढील्ल रानी छे, श्रेष्ठ कम्मर धयी जेभने। कटि भाग जहुं ज कसने आधवामा आथ्ये।
छे तेमज व शनी शलाकाओथी निर्मित जेभना जेटके-आथ्ये।-छे-तेमज हंडे जहुं कवच-
अर्थात् जे भज्जुत कवचथी सुसज्जित छे जेवा सहजो थोदाओथी ते भरतचक्रो युक्त
इतो. (उक्कड वरमउडतिरीडपडागल्लयवेजयंति चामरचलंतछत्तंधयारकल्लिए) उन्नत
तेमज प्रवर श्रेष्ठ मुकुट-राजचिह्न-विशेषित शिरोभूषण किरीट-सदृश शिरोभूषण यथाहा-

चञ्चनान्धकारकलितः, तत्र-उत्कटवराणि उम्नतप्रवराणि मुकुटानि राजचिन्हविशेषित-
शिरोभूषणानि किरीटानि मुकुटसदृशशिरोभूषणानि पताका लघुपटरूपा, ध्वजा बृहत्पट-
रूपाः वैजयन्त्यः पार्श्वतः लघुपताकिकाद्वयसंयुक्ताः पताका एव, चामराणि तथा चञ्च-
त्राणि च तेषां सम्बन्धि यदन्धकारं-जायारूपम् तेन कलितः युक्तः, अत्र अन्धकारशब्देन
मुकुटादीनां छाया गृह्यते, तेन आत्मजनितक्लेशग्रहिन इति भावः पुनर्भरतमेव विशिनष्टि-
(असिखेवणि खग्गचावणारायकणयकण्णिमूललउडभिडिमाअधणुहतोणसरपहरणेहि य)
असिखेपणी खङ्गचावणाराचकणकल्पनी शूललगुडभिन्दिपालधनुस्तण शरप्रहरणैश्च
(ग्रहिए) सयुक्तः तत्र असयः-खड्गविशेषाः क्षिप्यन्ते सीसकगुटिका याभिरिति क्षेपिण्यः
(गोफण) इति लोकाप्रसिद्धा, खन्नाः सामान्यतः, चापाः धनुषि नाराचाः-सर्वलोह-
बाणाः, कणकाः बाणविशेषाः कल्पन्यः लघुखड्गाः शूलानि प्रसिद्धानि लगुडाः
यष्टिविशेषाः भिन्दिपालाः हस्तक्षेप्याः महाफला दीर्घा आयुधविशेषाः, धनुषि वंशमय-
बाणासनानि, तूणाः-तुणीराः बाणकोशा इत्यर्थः, शरा-सामान्य बाणाः इत्यादिभि
प्रहरणैश्च किमाकारकैरुक्तप्रहरणैः कलित इत्याह (कालणील) इत्यादि (कालणील रुहिर
पीय मुक्किल्ल अनेगचिधसयसण्णिविट्ठे) काल नीलरुधिरपीतशुक्लानेकचिन्हशतसन्नि-

मुकुट सदृश शिरोभूषण पताका-लघुपताकाएँ, ध्वजाएँ बडोर पताकाएँ, वैजयन्ति-पार्श्वभाग में
छोटीर दो पताकाओ से युक्त पताकाएँ, चामर एव छत्र इनकी छाया से वह युक्त है (यहां अंध-
कार पद से मुकुटादिकों की छाया गृहित हुई है अतः इस प्रकार के रुधन से आत्मजनित क्लेश
से रहित वह भरत चक्री प्रकट किया गया है) (असिखेवणि खग्ग चाव णारायकणय कप्पणि-
सूल लउडभिडिमालधणुह तोण सरपहरणेहिय) असि-तलवार विशेष, क्षेपणी-गोफन, खङ्ग
सामान्य तलवार, चाप-धनुष, नाराच-सर्प रूप से बने हुए लोहे के बाण, कणक-बाणविशेष
कल्पनी लघुखड्ग, शूल, लगुड-यष्टि विशेष, भिन्दिपाल-वल्गम महाफलवाला लम्बा आयुधविशेष
धनुष-वंशमय बाणासन, तूण-भाथा, शर-सामान्य बाण, इन सब प्रहरणों से जो कि (काल-
णील रुहिर पीय मुक्किल्ल अणेगचिधसयसण्णिविट्ठे) काले, नीले, लाल, पीछे और सफेद

लघुपताकाओ, ध्वजाओ-विशाण पताकाओ वैजय ती-पार्श्वभागमा नानी-नानी ये पताका-
ओथी युक्त पताकाओ चामर तेमए छत्र ये सर्वनी छायाथी ते युक्त डोर, (अही अवकार
पदथी मुकुटादिकैनी छाया गृहीत थई छे, ओथी आ जतना कथनथी आत्म लनि क्लेशथी
रहित ते भरतयका प्रकट कवामा आवेस छे) (असिखेवणिखग्गचावणारायकणयकप्पणि
सूललउडभि डिमालधणुहतोण सरपहरणेहिय) असि-तलवार विशेष, क्षेपणी गोकुषु,
अङ्ग-सामान्य तलवार चाप-धनुष, नाराच-आयु' दोष उनु अनेउ अ'षु, कलुक-आषु-
विशेष, कल्पनीलघु-अङ्ग-शूल लगुड-यष्टि विशेष भिन्दिपाल-वल्गम-महाफलके युक्तमुहीध
आयुधविशेष धनुष-वंशमय बाणासन तूण-तुणीर, शर-सामान्य बाण, ये सर्व प्रहरणोथी
के ने (कालणीलरुधिरपीय मुक्किल्ल अणेगचिधसयसण्णिविट्ठे) काल, नीला, लाल, पीला
अने श्वेत रंगोमा अनेक सङ्को चिहोथी युक्त डता ओटके के ये सर्व चिन्हा जतिनी

विष्टम्, तत्र-रुधिरशब्दो रक्तार्थे प्रयुक्तः तेन कालनीलरक्तपीतशुक्लवर्णानि जातितः पञ्चवर्णानि व्यक्तिस्तु तदवान्तरभेदात् अनेकरूपाणि यानि चिन्हगतानि तानि सन्नि-
 विष्टानि स्थापितानि यस्मिन् तत्तथा तत् यथास्यात्तथेति क्रियाविशेषणनया बोध्यम् ।
 कोऽर्थः ? राज्ञां हि शस्त्राध्यक्षास्तत्तज्जातीयतत्तद्देशीयशस्त्राणां तस्यैव परिज्ञानाय
 शस्त्रकोशेषु उक्तरूपाणि चिन्हानि निवेशयन्ति गस्त्रेषु च तत्तद्दर्शमयान कोशान कुर्व-
 न्तीत्यर्थः, पुनश्च राजसामग्री कथनद्वारा भरतराजानमेव विशिनष्टि (अप्फोडिय सीहणाय
 छेलिय ह्यहेसिय हस्तिगुलगुलाइय अणेग रहसयसहस्सघणघणेतणीहम्ममाण-
 सहसहिणण) आस्फोटित सिंहनादसंदिह ह्यहेपित हस्तिगुलगुलायितानेकरथशत-
 सहस्रघनघनेति निहन्यमानशब्दसहितेन, तत्र आस्फोटितं भुजास्फोटरूपं सिंहनादः
 सिंहस्येव शब्दकरणम् 'छेलिय' त्ति संदिहं हर्षोत्कर्षेण सीत्कारकरणम् ह्यहेपितम्
 हणहणेति तुरङ्गशब्दः, हस्तिगुलगुलायितं-गजगर्जितम् अनेकानि यानि रथशतसह-
 स्राणि लक्षपरिमितानि तेषाम् 'घणघणेत' त्ति घणघणशब्दः, अयं स्थानामनुकरणशब्दः
 तथा निहन्यमानानामश्वानां च तोत्रादि शब्दास्तैः सहितेन तथा 'जमगसमगभंभा-

रंगो के अनेक सैकड़ो चिन्हों से युक्त थे अर्थात् ये सब चिह्न जातो की अपेक्षा पाच वर्णों के ही
 थे परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा अवान्तर भेदों को लेकर ये सैकड़ों की सख्या में थे क्योकि ऐसा
 देखा जाता है कि राजाओं के शस्त्राध्यक्ष तत्तज्जातीय तत्तद्देशीय शस्त्रों के परिज्ञान के निमित्त
 शस्त्रकोशों के ऊपर उक्तरूप वाले चिह्न बना देते हैं और गस्त्रों के ऊपर भी तत्तद्दर्शमय अनेक
 चिह्न कर दिया करते हैं ऐसे शस्त्रों से वह भरत चक्रो युक्त था, तथा (अप्फोडियसीहणाय
 छत्रिय ह्यहेसियहस्तिगुलगुलाइय अणेगरहसयसहस्सघणघणेतणीहम्ममाणसहसहिणण) जब
 भरत चक्रो इस सब युद्ध सामग्री से युक्त हुआ चला जा रहा था उस समय उसके साथ के
 कितनेक योद्धाजन मुजाओं को ठोकते हुए साथ में चल रहे थे। कोहर योद्धा जन सिद्ध के जैसे
 शब्दों की ध्वनी करते हुए चले जा रहे थे। कोहर योद्धा हर्ष के उत्कर्ष से सीत्कार शब्द करते
 हुए आगे बढ़ रहे थे। साथ में घोड़ाओं की हिनडिनाहट के शब्द गूजरहे थे। हस्तिगुलगुलायित
 हाथियों की चिंघाह होती जा रही थी, लाखों रथों की चित्कारध्वनि निकल रही थी ।

अपेक्षाके पाच वर्णोंना ल होता, परतु व्यक्तानी अपेक्षाके अवान्तर भेदथी के सहस्त्रोनी
 संख्यामां होता केभके आभ भेवामा आवे छे के राज्ञोना शस्त्राध्यक्ष तत्तज्जातीय, तत्त-
 देशीय शस्त्रोना परिज्ञान-निमित्त शस्त्रकोशोनी उपर उपयुक्त चिन्डो बनावी हे छे अने
 शस्त्रोनी उपर पञ्च तत्तद्दर्शमय अनेक चिन्डो करी नाथे छे जेवा शस्त्रोथी ते भरत यकी
 युक्त हुता. तेभज (अप्फोडियसीहणाय छेलियह्यहेसिय हस्ति गुलगुलाइय अणेगरहसय-
 सहस्स घणघणेतणीहम्ममाणसहसहिणण) अथारे भरत यकी आ पधी युद्ध-सामग्रीथी
 सुखलज थर्धने लर्थ रह्यो हुता, ते सभथे तेनी साथेना केटलाक योद्धाके लुलजो ठोकता
 जोटवे के युद्ध भाटे अमे तत्पर छीजे आ नतने भाव व्यक्त करता साथे आवी रह्या
 हुता केटलाक योद्धाके सिंङ जेवी गलना करता आवी रह्या हुता, केटलाक योद्धाके
 लुपविष्ट गजने सीत्कार शब्द करनी-करता आगण धपी रह्या हुता. घोडाकेना लुधुलुटथी
 दिशाके साथ थर्ध ल्ही हुनी इस्ति गुलगुलायित-इथीकेनी यीलथी मडागण्ड थर्ध रह्यो।

होरंमकिर्णिता खरमुखीमुगुंदसंखिय पिरली।च्चगपरिवाइणि वंसवेषुविपंचि महति कच्छविभिरियारिगसिरिगतलतालकंसतालकरघाणुत्थिपण' यमरुसमकमम्भाहोरम्भा-क्वणिता खरमुखी मुकुन्दशङ्खिका पिरली।च्चकपरिवादिनी वंसवेषुविपञ्ची महती कच्छपी भारती रिगसिरिकानलनालकांस्यतालकरध्मनोत्थितेन, तत्र 'जमगस-मगे' ति-युगद्वाद्यमानेभ्यः भम्भा-ढक्का, होरम्भा-मडाढक्का, क्वणिता-काचिद् वीणा खरमुखीकाहलीति प्रसिद्धाः, मुकुन्दो मुरजविशेषः, शङ्खिका-लघुशङ्खरूपा पिर-ली।च्चकौ-तृणरूपवाद्यविशेषौ, परिवादिनी सप्ततन्त्रीवीणा वंशः-प्रसिद्ध, वेणुवंश विशेषः, विपञ्चीतिनन्त्री वीणा महतीसप्ततन्त्रीका कच्छपी-कच्छपाकारो वाद्यविशेषः, भारतीवीणा, रिगसिरिका-घर्षमाणगादित्रविशेषः, तलं-हस्तपुटं तालाः वाद्यवि-शेषः, कांस्यतालाः-प्रसिद्धाः, करध्मानं-परस्परं हस्तताडनम् एतेभ्यो वादितवाद्यवि-शेषेभ्य उत्थितेन निःसृतेन उत्पन्नेनेत्यर्थ 'महया सहस्रिण्णादेण' महता शब्द-सन्निनादेन तत्र महता विपुलेन शब्दसन्निनादेन ध्वनिप्रतिध्वन्यात्मकेन 'सयलमवि

सईसजनो द्वारा घोड़ों को ताडनां के निमित्त प्रयुक्त क्रिये गये कोड़ो का आवाज भरी रही थी। तथा (जमगसमग मभा होरंम किर्णित खरमुखी मुगुंदसंखियपिरली वच्चग परि वाइणि वसवेषु विपंचि महतिकच्छ विभिरिया रिगसिरिगतलतालकंसतालकरघाणुत्थिपण) एक साथ बजाये गये मंभा-ढक्का, होरम्भा-मडाढक्का, क्वणिता-वीणा, खरमुखी-काहली, मुकुन्द-मुरज विशेष, शङ्खिका-छोटी शंखी, पिरली, वच्चक(ये दोनों वाद्यविशेष घासके तृणों से बनाये जाते हैं) परिवादिनी-सप्ततन्त्री वीणा, वंश-वांसुरी, वेणु-विशेष प्रकार की वांसुरी, विपञ्ची-वीणा महती-कच्छपी-सात तारोंवाली कच्छपकेजैसे आकार की वीणा-तमूरा, भारती वीणा, रिगसि-रिका घिसने पर जो बजता है ऐसा वाद्यविशेष, तल हथेली की आवाज, जिसे ताल कहा जाता है कांस्यताल एव करध्मान-भापस में हाथों का ताडन इन सबके उत्पन्न हुए (महया सह सन्निनादेन) विपुल शब्दों की ध्वनि एवं प्रतिध्वनि होतीचारही थी इससे (मयत्रमवि जीवलयं

हता. सार्धं से। वडे धाडाओनी ताडना-निमित्त से धाडाओ हटकारी रखा हता तेने। अवाज थर्ध रही हने। तेमत्र (जमग-समग मंभा होरंम किर्णित खरमुखी मुगुंद संखियपिरलीव-च्चग परिवाइणि वंसवेषुविपंचि महति कच्छविभिरियारिगसिरिग तलतालकंसतालकर घाणुत्थिपण) ओझी साथे वगाडवामां आवेला ल'ला-ढक्का, डोरला-मडाढक्का, क्वणित-वीणा अरमुखी-काहली, मुकुन्द-मुरज विशेष, श'जिका-छोटी-श'भी, विरली, वच्चक (ओओ भन्ने वाद्य-विशेषे घासना तृणोथी अतावनामा आवे छे.) परिवादिनी-सप्ततन्त्री वीणा, -व श वांसणी वेणु-विशेष प्रकारणी-वांसणी, वि।ची-वीणा, महती-कुच्छपी-साततारोवाणी अक्षप जेवा आकारवाणी वीणा, तथूरो, भारती वीणा, रिगसिरिका-घमवाथी जे वागे छे जे अतनुं वाद्यविशेष, तत्र-कुथेरीना अवाज के जेने ताल छेवामा आवे छे, कांस्यताल तेमत्र कर-ध्मान-परस्पर डाथोनु ताडन, जे अर्थी उत्पन्न थयेला (महया सहस्रिण्णादेन) विपुल शब्दोने। ध्वनि अने प्रतिध्वनि शब्द थर्ध रही हता ओथी (सयलमवि जीवलयं पूरयते)

जीवलोयं पूरयंते' सरुलमपि जीवलोकं पूरयन् 'बलवाहणसमुदणं' बलवाहनसमु-
दयेन, तत्र बलं चातुरङ्गसैन्यम्, वाहनं-शिविकादि, एतयोः क्रमेण यः समुदयः समूहः
तेन युक्तो भरतः पुनश्च कीदृशः 'एवं जक्खसहस्सपरिवुडे वेसमणे चेव धणवई' एवम्
अणुना प्रकारेण 'जक्ख सहस्सपरिवुडे' यक्षसहस्रपरिवृतः यक्षाणां देवविशेषाणां सहस्र
संपरिवृतः 'वेसमणे चेव धणवई' वैश्रमणः धनपतिरिव कुवेर इव सम्पत्तिशाली भरतोऽपि
यक्षसहस्रद्वयसंपरिवृतः चक्रवर्त्तिशरीरस्य व्यन्तरदेव सहस्रद्वयाधिष्ठितत्वादितिभावः
तथा 'अमरवइ सण्णिभाए इह्दीए पहियकित्ती' अमरपतेः इन्द्रस्य सन्निभया सदृश्या
ऋद्ध्या प्रथितकीर्त्तिः, प्रख्यातकीर्त्तिः 'गामागरणगरखेडकब्बडतहेव सेसं जाव
विजयखंघावारणिवेसं करेइ' अत्र 'तहेव सेसं' इत्यतिदेशपदेन सूचितानि यावत्
पदान्तरगतानि च सर्वाणि विशेषणानि सुलभतया ज्ञानार्थम् एकीकृत्य लिख्यन्ते यथा
'गामागरणगरखेडकब्बडमडंबदोणमुह पट्टणासमसंवाहसहस्समंडियं थिमियमेइणीयं वसुहं
अभिजिणमाणे अभिजिणमाणे अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे
तं दिव्वं चक्ररयणं अणुगच्छमाणे अणुगच्छमाणे जोयणंतरियाहिं वसहीहिं वसमाणे
वसमाणे जेणेव वरदामतिन्थे तेणेव उवागच्छइ' ग्रामाऽऽकर नगरखेटकर्वटमडम्बद्रोणमु-
खपत्तनाश्रमसंवाहसहस्रमण्डितां स्तिमितमेदनीकां वसुधाम् अभिजयन् अभिजयन् अग्र्याणि
वराणि रत्नानि प्रतीच्छन् प्रतीच्छन् तद्विन्ध्यं चक्ररत्नम् अनुगच्छन् अनुगच्छन्
योजनान्तरिताभिर्वसतिभिर्वसन् वसन् यत्रैव वरदामतीर्थः तत्रैव उपागच्छति तत्र ग्रामः-
प्रसिद्धः, आकरः-खनिः नगरं प्रसिद्धम् 'खेड' खेटम्-धूलिप्राकारयुक्तं लघुनगरम्,

पूरयंते) वह भरत चक्री सकल जीवलोक को व्याप्त कर रहा था तथा (बलवाहणसमुदण) बल
-चतुरङ्ग सैन्य और वाहन शिविकादि के समुदाय से वह भरत चक्री युक्त था (एवं जक्खसह-
स्सपरिवुडे, वेसमणे चेव धणवई) अतएव हजार यक्ष से परिवृत हुए धनपति के जैसा सम्पत्ति
शाली वह भरत चक्री प्रतीत होता था क्योंकि चक्रवर्तीका शरीर दोहजार व्यन्तर देवों से अधि-
ष्ठित होता है (अमरपति सण्णिभाइ इह्दीए पहियकित्ती गामागरणगरखेडकब्बड तहेव सेसं
जाव विजयखंघावारणिवेसं करेइ) तथा इन्द्र के जैसी ऋद्धि से वह भरत चक्री प्रख्यात कीर्त्ति
वाला था इस तरह होता हुआ वह भरतचक्री हजारों ग्रामों से हजारों खानों से-सुवर्णादि के

ते भरत चक्री सकल जीवलोकने व्याप्त करी रहो हुतो, तथा (बलवाहणसमुदणं) बल-
चतुरंग सैन्य अने वाहन-शिविकाद्योः वगेरेना समुदायथी ते भरत चक्री युक्त हुतो (एवं
जक्खसहस्सपरिवुडे, वेसमणे चेव धणवई) अथी सहस्र यक्षेथी परिवृत थयेथो ते राज
धनपति जेवो सम्पत्तिशाली वागतो हुतो, डेभडे चक्रवर्तीनु शरीर मे डुनर व्यन्तर देवेथी
अधिष्ठित होय छे (अमरपतिसण्णिभाए इह्दीए पहियकित्ती गामागरखेडकब्बड तहेव
सेसं जाव विजयखंघावारणिवेसं करेइ) तथा इन्द्र जेवी ऋद्धिथी ते भरत चक्री प्रख्यात
कीर्त्तिवाणो हुतो आ प्रमाणे सुसन्न थधने ते भरत चक्री सहस्रो ग्रामेथी सहस्रो भाण्णेथी

यद्वा नदीभिः पर्वतैर्वा वेष्टित नगरम्, 'कव्वड' कर्वटं कुत्सितनगरम् 'मडव' मडम्बो ग्रामविशेषः यस्य चतुर्दिक्षु, सार्धयोजनद्वयपर्यन्तं द्वितीय ग्रामो न भवेत् सः 'दोणमुह' द्रोणमुखम्, जलस्थलमार्गकं नगरम् 'पट्टण' पत्तनम्—सर्ववस्तु प्राप्तिस्थानम् 'आसम' आश्रमः तापसादे निवासस्थानम् 'संवाह' सवाहः दुर्गविशेषः यत्र कृषीवलाः धान्यादीनि रक्षितुं स्थापयन्ति एतेषां 'सहस्स मंडियं' सहस्रैर्मण्डिताम् 'थिमियमेइणीयं' स्तिमितमेदिनीकाम्, स्तिमिता स्थिरा मेदिनी जनसमूहः यस्यां सा तथा ताम् 'वसुहं' वसुधाम् 'अभिजिणमाणे' २ अभिजयन् अभिजयन् अन्यराजाधिकारात् बलात् स्वाधिकारे आनयन् २ 'अग्गाइ' वराइ रयणाइ पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे' अग्न्याणि प्रधानानि वराणि श्रेष्ठानि रत्नानि प्रतीच्छन् प्रतीच्छन्—स्वीकुर्वन् स्वीकुर्वन् 'तं दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे अणुगच्छमाणे' तद्विव्य चक्ररत्नम् अनुगच्छन् अनुगच्छन् तत्पृष्ठतो व्रजन् व्रजन् 'उवागच्छइ' उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'वरदामतित्थस्स अदूरसामते दुवाळसजोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं विजयखंधावारणिवेसं करेइ' वरदामतीर्थस्य 'अदूरसामन्ते

उत्पत्तिस्थानोसे—धूलि प्राकार युक्त हजारो लघुनगरो' से अथवा नदियो' से या पर्वतो' से परिवेष्टित नगरो' से, हजारो कर्वटो से—कुत्सिननगरो' से चारो दिशाओ में सार्धयोजन द्वय तक द्वितीय ग्राम रहित मडम्बो से, जलस्थल मार्गवाले द्रोणमुखो से सर्ववस्तुओं की प्राप्ति के स्थान-मूतपत्तनो' से, आश्रमोसे—तापसादिके निवासभूत स्थानो से तथा जहां पर कृषकवर्ग धान्यादिको के रक्षानिमित्त स्थापित करते है ऐसे सवाहो से मण्डित, एवं जनसमूह जिसमें स्थिर है ऐसी मेदिनी—वसुधा को अपने अधिकार में लेता २ तथा श्रेष्ठ रत्नो को नजराने के रूप में स्वीकार करता २ तथा दिव्य चक्ररत्न के पीछे २ चलता २ तथा एक योजन के अन्तराल से पडाव डालता २ जहा वरदाम तीर्थ था वहां पर आया । यहां पर इस पूर्वोक्त व्याख्या का मूल पाठ ऐसा है—(गामागरणगरखेडकव्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमसवाहसहस्समण्डियं थिमियमेइणीयं, वसुहं अभिजिणमाणे २ अग्गाइ वराइ रयणाइ पडिच्छमाणे २ त दिव्वं चक्करयणं अणुगच्छमाणे २

सुवर्णादिकाना उत्पत्ति स्थानोथी धूलि प्राकार युक्त सहस्त्रो लघु नगरो,थी अथवा नदीओथी के पर्वतोथी परिवेष्टित नगरोथी सहस्त्रो कर्वटोथी—कुत्सित नगरोथी, चारो दिशाओमां सार्धयोजनद्वय सुधी द्वितीय ग्राम रहित मडम्बोथी, जल स्थल मार्गवाणा द्रोणाशुभोथी सर्ववस्तुओ भूषी शके ओवा प्राप्ति स्थान भूत पत्तनोथी आश्रमोथी—तापसादिना निवास-भूत स्थानोथी तेभज् न्यां कृषकवर्ग धान्यादिकानी रक्षा माटे निर्मित करे छे ओवा सवा-होथी, मंडित तेभज् जनसमूह जेमां स्थिर छे ओवी मेदिनी—वसुधाने पोताने अधीन बनावतो। तेभज् श्रेष्ठ रत्नाने नजराणाना स्वइपमां स्वीकार करतो—तेभज् दिव्य चक्ररत्ननी पाछण—पाछण आक्षतो आक्षतो तथा ओके योजनना अंतरालथी पडाव नाथतो—नाथतो न्यां वरदाम तीर्थ' इतुं त्यां आओओ अही ओ पूर्वोक्त व्याख्याने मूलपाठ आ प्रभाषे छे—(गामागरणगरखेडकव्वडमडंबदोणमुहपट्टणासमसवाहसहस्समण्डियं थिमियमेइणीयं, वसुहं अभिजिणमाणे २ अग्गाइ वराइ रयणाइ पडिच्छमाणे २ त दिव्वं चक्करयणं अणुग-

नातिदूरे नातिसमीपे यथोचितस्थाने द्वादशयोजनायामं नत्रयोजनविस्तोर्णं विजय-
स्कन्धावारनिवेशं करोति 'करित्ता' कृत्वा 'वद्धइरण सदावेइ' वर्द्धकिरत्नं शब्दयति
आह्वयति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा आह्वय 'एव वयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अत्रादीत्
उक्तवान् 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मम आवसहं पामहसालं च करेहि ममेय
य माणत्तियं पच्चप्पिणाहि' क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! मम आवासं पौषधशालां च कुरु
मम एतामाज्ञप्तिंकां प्रत्यर्पय ॥सू०८॥

अथ राऽऽज्ञप्त्यनन्तरं कीदृशं वर्द्धकिरत्नं कीदृशं च वैतथिकमाचचारेत्याह—“तए
णं से” इत्यादि ।

मूलम्—तए णं से आसमदोणमुहगामपट्टणपुरवरखंधावारगिहा-
वणविभागकुसले एगासीति पयेसु सव्वेसु चैव वत्थूसु णेगगुणजाणए
पंडिए विहिण्णू पणयालीसाए देवयाणं वत्थुपरिच्छाए णेमिपासेसु
भत्तसालासु कौट्टणिसु य वासघरेसु य विभागकुसले छेज्जे वेज्जे य

जोयणतरियाहि वसहीहि वसमाणे वसमाणे जेणेव वरदामतित्ये तेणेव उवागच्छइ) वहा आकर
के उसने वरदामतीर्थ के न अतिनिकट और न अतिदूर किन्तु यथोचितस्थान में १२ योजन
चौड़ा और नौ योजन लंबा ऐसा अपना विजयस्कन्धावार ठहरादिया इस सम्बन्ध में पाठ
ऐसा है—(उवागच्छित्ता वरदामतित्थस्स अदूरसामंने दुवाळमज्जोयणायामं णवज्जोयणवित्थिन्नं
विजयखंधावारणिवेसं करेइ) इतने विस्तोर्णं स्कन्धावार को ठहराकर फिर उसने अपने (वद्धइ-
रणं सदावेइ) वर्द्धकी रत्न को बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी) उसे बुलाकर के फिर उसने ऐसा
कहा—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मम आवसहं पोसहसालं च करेहि, ममेय माणत्तियं पच्चपि-
णाहि) हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही मेरे निमित्त एक आवास और एक पौषधशाला बनाओ
फिर इसकी बन जानेपर मुझे खबर दो ॥सू०८॥

छममाणे २ जोयणंतरियाहि वसहीहि वसमाणे वसमाणे जेणेव वरदामतित्ये तेणेव उवा-
गच्छइ) त्या आवीने तेणे वरदाम तीर्थनी न अतिनिकट अने न अतिदूर पणु यथोचित
स्थान पर १२ योजन चौडा आणि नवयोजन दीर्घ अशा विस्तृत क्षेत्रमा विजय स्कन्धा-
वार नाथो आ संबंधमा पाठ आ प्रभाणे छे—(उवागच्छित्ता वरदामतित्थस्स अदूर-
सामंने दुवाळमज्जोयणायामं णवज्जोयणवित्थिन्नं विजयखंधावारणिवेसं करेइ) आवा विस्तीर्णं
स्कन्धावार (सैन्य) ने पाठव नाथी ने पछी तेणे पोताना (वद्धइरणं सदावेइ) वर्द्धकी
रत्नने ओढावो. (सदावित्ता एवं वयासी) तेने ओढावीने पछी राजाणे आ प्रभाणे कर्णु
(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! मम आवसहं पोसहसालं च करेहि ! ममेय माणत्तियं पच्चपि-
णाहि) हे देवानुप्रिय ! तमे यथा शीघ्र मारा माटे अके आवास नेअकेक पौषधशाला
बनावडावे अने पछी अने सूचना आपो. ॥८॥

दाणकम्मे पहाणबुद्धी जलयाणं भूमियाण य भायणे जलथलगुहासु जंते
परिहासु य कालनाणे तहेव सद्दे वत्थुप्पएसे पहाणे गब्भिणि कण्ण-
रुक्खवल्लिवेदियगुणदोसविआणए गुणङ्गे सोलसपासायकरणकुसले
चउसट्ठि विकप्पवित्थियमई णंदावत्तेय वद्धमाणे सोत्थिय रुअग तह
सव्वआ भद्दसण्णिवेसे य बहु विसेसे उद्दंडिय देवकोट्टदारुगिरि
खायवाहणविभागकुसले

इय तस्स बहु गुणङ्गे थवइरयणे णरिंदचंदस्स ।
तवसंजमनिविट्ठे किं करवाणी तुवट्ठाई ॥१॥
सो देव कम्म विहीणा खंधावारं णरिंदवयणेणं ।
आवसहभवणकलियं करेइ सव्वं मुहुत्तेणं ॥२॥

करेत्ता पवरपोसहघरं करेइ करित्ता जेणेव भरहे राया जाव एत-
माणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ, सेसं तहेव जाव मज्जणघराओ पडि-
णिक मइ पडिणिक मित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चार-
गंधंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ ॥सू०९॥

— ततः खलु तद्भाश्रमद्रोणमुखग्रामपत्तनपुरस्वरस्कन्धावारगृहापणविभागकुशलम्
एकाशीतिपदैषु सर्वेषु चैव वास्तुषु अनेकगुणज्ञायकं पण्डितम्, विचिह्नम् पञ्चचत्वारि-
ंशतो देवानां वास्तुपरीक्षायानां वास्तुपरिच्छेदे वा नेमिपाश्वेषु भक्तशालासु कोट्टनीषु च
वा द्वेषु च विभागकुशलम् छेद्ये वेद्ये च दानकर्माणि प्रधानबुद्धि, जलगानां भूमिकानां
च भाजन जलस्थलगुहासु यन्त्रेषु परिखासु च कालज्ञाने तथैव शब्दे वास्तुप्रदेशे प्रधा-
नम्, गब्भिणो कन्यावृक्षवल्लिवेष्टितगुणदोषविज्ञायकं गुणाढय षोडशप्रासादकरणकुशलं चतुः-
षष्टिविकल्पविस्तृतमति नन्धावर्ते च वर्द्धमाने स्वस्तिके रुचके तथा सर्वतोभद्रसन्निवेशे
च बहुविशेषम् उद्दण्डिरुदेवकोट्टदारुगिरिखातवाहनविभागकुशलम्—

एतत् तस्य बहुगुणाढयं स्थपतिरत्नं नरेन्द्रचन्द्रस्य ।

तपः संजमनिविष्ट किं करवाणि इत्युपतिष्ठते ॥ १ ॥

तद् देवकर्मविधिना स्कन्धावारं नरेन्द्रवचनेन ।

आवासमघनकलितं करोति सर्वं मुहुत्तेन ॥ ५ ॥

कृत्वा प्रवरपोषधगृहं करोति, कृत्वा यत्रैव भरतो राजा यावत् एताम् आह्नतिकां
क्षिप्रमेव प्रत्यर्पयति, शेषं तथैव यावत् मज्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्काम्य यत्रैव
बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव चातुर्वर्ण्यदोऽङ्करथः तत्रैव उपागच्छति ॥ सू०९॥

टीका—“तए णं से” इत्यादि । ‘तए णं से’ ततः खलु तत् वर्द्धकिरत्नमहम्
 ‘किंकरवाणां तु वडाइ’ किंकरवाणि किं करोमि आदिशन्तु देवानुप्रिया मया किं कर्त्तव्य
 मित्युक्त्वा भरतचक्रिसमीपे उपतिष्ठते इत्यग्रेण सम्बन्धः । कीदृशं वर्द्धकिरत्नमित्याह-
 ‘आसमदोणमुह’ इत्यादि ‘आसमदोणमुहगामपट्टणपुरवरखंवावारगिहावणविभागकुसले’
 आश्रमद्रोणमुखग्रामपत्तनपुरवरस्कन्धावारगृहापणविभागकुसलम्, तत्र-आश्रमादायः एत-
 स्मात्पूर्वं अष्टमसूत्रे व्याख्यातार्थाः, स्कन्धावारगृहापणाः प्रमिद्धा एव एतेषां विभागे
 विभागरूपेण रचनायां कुशलं निपुणम्, अथवा—

“पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः ।

श्वपचादयोऽन्त्यजान्तास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥१॥”

इत्यादि योग्यायोग्यस्थानविभागज्ञम्, पुनश्च कीदृशम् ‘एगासीतिपदेसु सव्वेसु
 चैव वत्थूसु जोगगुणजाणए पंडिइए’ एकाशीति पदेसु सर्वेष्वेव वास्तुषु अनेऋगुणजायकं
 पण्डितम्, तत्र एकाशीतिः पदानि विभागाः विभक्तव्यवास्तुक्षेत्रभागाः तानि यत्र तानि
 तथा एवंविधेषु वास्तुषु गृहभूमिषु सर्वेष्वेव एव शब्दात् चतुःषष्टिपदशतपदरूपेषु

‘तएणं से आसम दोणमुहगामपट्टणं—इत्यादि० सूत्र -९

टीकार्थ—इसके बाद उस वर्द्धकि रत्न ने “मै क्याकरू, मेरे योग्य आप देवानुप्रिय
 आदेशदे—मुझे क्या करना चाहिये ऐसा कहकर वह भरत चक्रो के पास पहुँचा ऐसा यहाँ
 सम्बन्ध है” वह वर्द्धकी रत्न कैसा था—इस सम्बन्ध में सूत्र द्वार आने विचार को प्रकट करते हुए
 कहते हैं— (आसमदोणमुहगामपट्टणपुरवरखंवावारगिहावणविभागकुसले) वह वर्द्धकिरत्न
 आश्रमद्रोणमुखग्राम, पत्तन, पुरवर, स्कन्धावारगृहापण इनको विभाग रूप से रचना करने में निपुण
 था, अथवा—“पुरभवनग्रामाणां ये कोनास्तेषु निवसतां दोषाः । श्वपचादयोऽन्त्यजान्तास्तेष्वेव
 विवृद्धिमायान्ति ॥१॥ इत्यादि कथन के अनुसार योग्यायोग्य स्थान के विभागका जानने वाला
 था (एगासीतिपदेसु सव्वेसु चैव वत्थूसु जोगगुणजाणए पंडिइए) तथा ८१ विभाग-विभक्तव्य वास्तु-
 क्षेत्र खण्डवाली ऐसी गृह भूमियो में तथा इसी प्रकारकी ६४ खण्ड वाली और १०० पद-खण्डवाली

‘तएणं से आसमदोणमुहगामपट्टणं—इत्यादि, ॥सू०९॥

टीकार्थ— त्थार अह ते वर्द्धकि रत्ने ‘हुं शुं कुरु, हुं देवानुप्रिय ! अने आपथ्री भारो
 योग्य आदेश आपो, आरे शुं कुरु’ जेधं अये ? आभ कडुनी ते भरत अकी राज पासे गथो.
 आ रीते अही सजध छे, ते वर्द्धकी रत्न केवो हुने ? आ स’अ’धमा सूत्रकार पौताना
 विचारो आ प्रभाषे व्यक्त करे छे—(आसमदोणमुहगामपट्टणपुरवरखंवावारगिहावणविभाग-
 कुसले) ते वर्द्धकीरत्न आश्रम द्रोणमुखग्राम, पत्तन, पुरवर, स्कन्धावार, गृहापण अये सर्वनी
 विभाग रूपमा रथना करवायां निपुण हुते। अथवा

‘पुरभवनग्रामाणां ये कोनास्तेषु निवसतां दोषाः ।

श्वपचादयोऽन्त्यजान्तास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥१॥

इत्यादि कथन मुज्जम योग्यायोग्य स्थानन विभागने ते ज्ञाना हुने। (एगासीति
 पदेसु सव्वेसु चैव वत्थूसु जोगगुणजाणए पंडिइए) तेभज ८१ विभाग विभक्तो। वास्तुक्षेत्र
 अ’डवाणी अथी गृहभूमिकाओंमां तथा अथ प्रकारनी ६४ अ’डवाणी अने १०० पद अ’ड

वास्तुषु च अनेकेषां गुणानामुपलक्षणत्वाद् दोषाणां च ज्ञायकम् सदसद् विवेकिनी बुद्धिः पण्डा पण्डाद्धिर्यस्येति पण्डितम् सातिशयबुद्धियुक्तम् 'विहिण्णू पणयालीसाए देवयाणं' विधिज्ञं पञ्चचत्वारिंशतो दैवतानाम् उचितस्थाननिवेशनादिविधिज्ञमित्यर्थः तथा 'वस्थु परिच्छाए' वास्तुपरीक्षायां च विधिज्ञमिति योज्यम् तद्विधिश्च "गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम् । यद्यूनमनिष्टं तत् समे समम् घन्यमधिकं चेत् ॥२॥ इत्यादि, अथवा वास्तूनां परिच्छेदे आच्छादन कटकम्बादिभिरावरणं तत्र विधिज्ञम्, यथास्थान-कटकम्बादिनिनियोजनात् तथा—'जेमिपासेसु भत्तसालासु कोट्टणिसु य' नेमिपासवेषु सम्प्रदायगम्येषु स्थानेषु भक्तशालासु—रसवतीशालासु कोट्टनीषु, कोट्टं—दुर्गं स्थायिराज-सत्कं नयन्ति प्रापयन्ति आगन्तुकराज्ञामिति व्युत्पत्त्या कोट्टन्यः-याः कोट्टग्रहणाय प्रति-कोट्टमित्तय उत्थाप्यन्ते तासु तथा—'वासघरेसु य विभागकुसले' तथा वासगृहेषु शयन-गृहेषु विभागकुशलं—यथौचित्येन विभागकरणे निपुणम्, तथा 'छेज्जे वेज्जे य दाणकम्मे पहाणवुत्ती' छेधे वेधे च दानकर्मणि प्रधानबुद्धिः, तत्र छेधं—छेदनाहं काष्ठादि, वेध्यं

गृहभूमियो में अनेक गुण एवं दोषों का ज्ञाता था, पण्डित था—सदसद का विवेक करने वाली बुद्धिरूप पण्डा से युक्त था सातिशय बुद्धिवाला था (विहिण्णू पणयालीसाए देवयाण) ४५ देवताओं को उचित स्थान में बैठाने आदि की विधि का ज्ञाता था (वस्थुपरिच्छाए) वास्तु परीक्षा में विधिज्ञया—वह विधि इसप्रकार से है—“गृहमध्ये हस्तमित खात्वा परिपूरित पुनः श्वभ्रम्, यद्यूनमनिष्ट तत् समे समं घन्यमधिकं चेत् ॥१॥—इत्यादि—अथवा—मकानो को ऊपर से ढकने में जो ढकने के काम में आने वाले कटक कम्ब आदिरूप आवरण है, उस सम्बन्ध में विधिज्ञया (जेमि पासेसु भत्तसालासु कोट्टणिसु य वासघरेसु य विभागकुसले) सम्प्रदायगम्य नेमिपासवों में, भक्त-शालाओं में—भोजन घरों में, कोट्टनियो में कोट्टग्रह के लिये जो प्रतिकोट्टमित्तियां उठाई जाती है उनमें तथा शयन गृहों में यथोचित रूप से विभाग करने में कुशल था, तथा—छेज्जे, वेज्जे,

वाणी गृहभूमिकाओना अनेक गुणु तेभञ्ज दोषोने ते ज्ञाता हुने। पडि१ हुते सद् असद् विवेक करनारी बुद्धिश्च य दाधी ते युक्त हुते। ओट्टे के सातिशय बुद्धिवाणो हुते, (विहिण्णू पणयालीसाए देवयाणं) ४५ देवताओने योग्य स्थाने जेसाठवा वगेरे विधिने ते ज्ञाता हुते। (वस्थु परिच्छाए) वास्तु परीक्षाया विधिज्ञ हुते। ते विधि आ प्रभाणु छे—

“गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम्,

यद्यूनमनिष्ट तत् समे समं घन्यमधिकं चेत् ॥१॥

इत्यादि अथवा मकानोने उपरथी आच्छादित करवा माटे उपयोगी जेवा कटकम्बा आदि, ३५ आवरणो छे ते सभंधमा विधिज्ञ हुते। (जेमिपासेसु भत्तसालासु कोट्टणिसु य वासघरेसु य विभागकुसले) सम्प्रदाय गम्य नेमि पार्श्वमा, लक्षत शालाओमा लोभनगृहोमा केट्टनीओमा—कोट्ट अड माटे किल्लाने सरकरवा जे प्रति कोट्टमित्तियो उठाववाभां आवे छे, ते सभंधमां तेभञ्ज शयन गृहोमा यथोचित ३५थी विभाग करवाभां ते कुशल हुते, तेभञ्ज (छेज्जे, वेज्जे, अ दाणकम्मे, पहाणवुत्ती, जलयाण भूमियाणय भायणे जलथल गुहासु जतेसु

वेधनाहं तदेव, दानकर्म—अङ्कनार्थं गैरिकरक्तद्रव्येण रेखादानकर्म तत्र प्रधानबुद्धि विशेषज्ञम्, विशेषरूपेण ज्ञायकमित्यर्थः, पुनश्च कीदृशम् 'जलयाणं भूमियाण य भायणे, जलगानां जलगतानां भूमिकानां जलोत्तरणार्थरूपघाकरणाय भाजनं यथोचित्येन विभाजकम्, च शब्दः समुच्चये उन्मग्नानिमग्नानद्युत्तरे तस्यैतादृशसामर्थ्यस्य सुप्रतीतत्वात् पुनश्च कीदृशम् 'जलयलगुहासु जंतेसु परिहासु य कालनाणे तदेव सदे वत्थुप्पएसे पहाणे' जलस्थलगुहासु यन्त्रेषु परिखासु च कालज्ञाने तथैव शब्दे वास्तुप्रदेशे प्रधानम्, तत्र जलस्थलगुहासु—जलस्थलयोः सम्बन्धिनीषु गुहासु इव गुहासु सुगद्गास्वित्यर्थः तथा यन्त्रेषु घटीयन्त्रादिषु, परिखासु प्रतीतासु, च शब्दः समुच्चये कालज्ञाने चिकीर्षितवास्तु प्रशस्ता-प्रशस्तलक्षणपरिज्ञाने "वैशाखे श्रावणे माघे, फाल्गुणे क्रियते गृहम् । शेषमासेषु न पुनः, पौषो वाराहसम्मतः ॥१॥ इत्यादिके तथैवेति वाच्यान्तरसंग्रहे शब्दे शब्दशास्त्रे सर्वकलाव्युत्पत्ते रेतन्मूलकत्वात्, वास्तुप्रदेशे—गृहक्षेत्रैकदेशे "ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यमाणेयाम् । नैऋत्यां भाण्डोपस्करोऽर्थधान्यानि मारुत्याम् ॥१॥" इत्यादि

अ दाणकम्भे, पहाणबुद्धी, जलयाण भूमियाण य भायणे जलयलगुहासु जतेसु परिहासुअ कालनाणे) छेदन करने योग्य काष्ठादि, वेधने योग्यकाष्ठादि एवं दानकर्म—अङ्कनार्थं गैरिक धातु से रक्त कियेहुए डोरे से निशानी करना—इन सब में प्रधान बुद्धि वाला था अर्थात् इन सबको विशेषरूप से जाननेवाला था . . यथोचितरिति से विभाजक था जलसम्बन्धी एवं स्थल सम्बन्धी गुफाओं की जैसी गुफाओं में—सुरङ्गों में, घटोयंत्रादिकों में, परिखाओं में—खातिकाओं में, काल ज्ञान में चिकीर्षित वास्तु के प्रशस्त अप्रशस्तरूप परिज्ञान में—जैसे—"वैशाखे श्रावणे, माघे, फाल्गुने क्रियते गृहम् । शेषमासेषु न पुनः पौषो वाराहसम्मतः ॥१॥ (तदेव सदे वत्थुप्पएसे पहाणे गविभणिकण्णरुक्ख वल्लिवेदिअ गुणदोसविआणए गुणइडे) इसीतरह शब्द शास्त्र में अर्थात् व्याकरण शास्त्रमें वास्तु प्रदेश में—ग्रह क्षेत्रके एकदेशमें—जैसे—"ऐशान्यां देवगृहं महानस चापि कार्यमाणेयाम्" । नैऋत्या भाण्डोपस्करोऽर्थधान्यानि मारुत्याम् ॥१॥ इत्यादिरूप से गृहावयवविभाग में

परिहासुअ कालनाणे) छेदन करवा योग्य काष्ठादि, वेधन योग्य काष्ठादि तेमञ्च दानकर्म—अङ्कनार्थं गैरिक धातुथी रक्त करवामां आवेदा ने डोराथी निशानी करवी—वगेरे कामां ते प्रधान बुद्धिवाणे हुतो अर्थात् ये सर्वे ने ते विशेष रूपमां लक्ष्यतो हुतो यथाचित रीतिथी विभाजक हुतो, अह स मधी तेमञ्च स्थण संभंधी शुक्ष्माणी जेवी शुक्ष्मांमां—सुरंगोमां घटीयंत्रादिकोमां, परिखाओमां आतिकाओमां, काणज्ञानमा, चिकीर्षित वस्तुना प्रशस्त, अप्रशस्त रूप परिज्ञानमा जेभडे—

वैशाखे श्रावणे माघे, फाल्गुने क्रियते गृहम् ।

शेषमासेषु न पुनः पौषो वाराहसम्मतः ॥१॥

(तदेव सदे वत्थुप्पएसे पहाणे गविभणिकण्णरुक्खवल्लिवेदिअ गुणदोसविआणए गुणइडे) आ प्रभाषे शब्द शास्त्रमां जेटवे डे व्याकरण शास्त्रमां वास्तुप्रदेशमा—गृहक्षेत्रनां जेके देशमा—जेभडे—"ऐशान्यां देवगृहं महानस चापि कार्यमाणेयाम् । नैऋत्यां भाण्डोपस्करोऽर्थधान्यानि मारुत्याम् ॥ इत्यादि रूपथी गृहावयवविभागमा, शास्त्रोक्त विधि-

गृहावयवविभागे शास्त्रोक्तविधिविधाने प्रधानं मुख्यम्, पुनश्च कीदृशम् 'गर्भिणीकण्ठ-
रुक्खवल्लिवेद्विय गुणदोषविभाण' गर्भिणी कन्यावृक्षवल्लिवेष्टितगुणदोषविज्ञायकम्,
तत्र-गर्भिण्यः-जातगर्भा वलयः फलाभिमुखवल्लय इत्यर्थः कन्या इव कन्याःअफलाः
अथवा दूरफलावा वलयः वृक्षाश्च वास्तुक्षेत्रप्ररूढाः वल्लिवेष्टितानि-भावे कप्रत्ययवि-
धानात् वल्लिवेष्टनानि वास्तु क्षेत्रोद्गतवृक्षेषु आरोहणानि एतेषां ये गुणदोषास्तेषां
विज्ञायक विशेषरूपेण जानति, ते चेमे "गर्भिणी वल्लिर्वास्तुप्ररूढा आसन्नफलदा
कन्या च सा तत्रैव नासन्नफला, वृक्षाश्च प्लक्षवटाश्चत्थोदुम्बराः प्रशस्ताः आसन्नाः
कण्टकिनोरिपुमयदा" इत्यादि, प्रशस्तद्रुमकाष्ठं वा गृहादि प्रशस्तम् वल्लिवेष्टितानि

स्तवल्लिसम्बन्धीनि प्रशस्तानि गृहमहीषु न चाप्रशस्तवल्लिसम्बन्धीनि पुनश्च
'गुणद्वे' गुणादचम् प्रज्ञाधारणाबुद्धिहस्तलाघवादिगुणयुक्तम्, तथा 'सोलसपासायकरण-
कुसणे' षोडश प्रासादकरणकुशलम्, तत्र षोडश प्रासादाः सान्तनस्वस्तिकादयो भूपति-
गृहाणि तेषां करणे कुशलं निपुण मित्यर्थः, तथा 'चउसद्विविकल्पवित्थियमई' चतुः
षष्टिविकल्पविस्तृतमतिः, तत्र-चतुःषष्टिविकल्पाः गृहाणां वास्तुप्रसिद्धा तत्र विस्तृता
अमूढा मतिर्यस्य तच्चया, विकल्पानां चतुःषष्टिरेवम्-प्रमोदविजयादीनि षोडशगृहाणि

शास्त्रोक्तविधिविधान में वह प्रधान था मुख्य था गर्भिणी वेलों के अर्थात् फलाभि मुखवेलों के,
कन्या के जैसी अफल-अथवा दूरफल वाली वेशों के और वृक्षों के- वास्तु क्षेत्र प्ररूढ वृक्षों
के ऊपर वल्लियों के वेशों के गुण और दोषों का जानने वाला था, जैसे-गर्भिणी वल्लि
र्वास्तु प्ररूढा आसन्नफलदा कन्याच सा तत्रैव नासन्नफला, वृक्षाश्च प्लक्षवटाश्चत्थोदु-
म्बरा प्रशस्ता आसन्ना कण्टकिनो रिपुमयदा" इत्यादि "प्रशस्तद्रुमकाष्ठं वा गृहादि प्रशस्तं, वल्लि
वेष्टितानि प्रशस्तवल्लिसम्बन्धीनि प्रशस्तानि गृहमहीषु न चाप्रशस्तवल्लिसम्बन्धीनि" वह बर्द्ध
कीरत्न गुणाद्वयथा-प्रज्ञाधारणाबुद्धिसे एव हस्तलाघवादि गुण से युक्त था (सोलसपासायकरणकु-
सले) सान्तन स्वस्तिक आदि के भेद से सोलहप्रकार के प्रासादों के भूपतिगृहों, के बनाने में वह
कुशल था (चउसद्विविकल्पवित्थियमई) वास्तुशास्त्रप्रसिद्ध ६४ प्रकार के गृहों के निर्माण में वह
अमूढमतिवाला था ६४प्रकार के गृह इस प्रकार से है-"प्रमोदविजयादीनि षोडशगृहाणि पूर्व

विधानमां ते प्रधान इतो, मुख्य इतो सगर्भासताम्योना अष्टवे के इणाभिगुण लताम्योना,
कन्या जेवी अइण अथवा हर इणवाही लताम्योना अने वृक्षोना वास्तुक्षेत्र अइठवृक्षोनी उपरनी
लताम्यो वेष्टनेना शुभ अने दोषोना ते ज्ञाता इतो, जेभके गर्भिणी वल्लिर्वास्तुप्ररूढा आसन्न
फलदा, कन्या च सा तत्रैव नासन्नफला, वृक्षाश्च प्लक्षवटाश्चत्थोदुम्बरा प्रशस्ताः आसन्ना
कण्टकिनो रिपुमयदाः इत्यादि "प्रशस्तद्रुमकाष्ठं वा गृहादि प्रशस्त, वल्लिवेष्टितानि
प्रशस्तवल्लिसम्बन्धीनि प्रशस्तानि गृहमहीषु न चाप्रशस्तवल्लिसम्बन्धीनि" ते बर्द्धकी
रत्न गुणाद्वय इतो, प्रज्ञा-धारणा बुद्धिथी तेभश्च इस्तलाघवादि शुभोथी युक्त इतो तेभश्च
(सोलस पासायकरणकुसले) सान्तन स्वस्तिक वगेरेना वेदथी सोण प्रकारना प्रासादोना
भूपतिगृहोना निर्माणे क्रमं ते कुशल इने। (चउसद्विविकल्पवित्थिय मई) वास्तु शास्त्र
प्रसिद्ध ६४ प्रकारना गृहोना निर्माणे अमूढ मतिवालो इतो. ६४ प्रकारना गृहो आ

पूर्वद्वाराणि स्वस्तनादीनि षोडशदक्षिणद्वाराणि धनदादीनि, षोडश उत्तरद्वाराणि दुर्भगादीनि षोडश पश्चिमद्वाराणि पुनश्च कीदृशम् 'णंदावत्तेय वद्धमाणे सोत्थिय रुयग तह सब्बओमह सण्णिवेसे य बहुविसेसे' नन्धावर्त्ते-गृहविशेषे एममग्रेतने विशेषणेष्वपि, च शब्दः समुच्चये, वर्द्धमाने स्वस्तिके रुचिके तथा सर्वतोभद्रसन्निवेशे च बहुविशेषः प्रकारो ज्ञेयतया कर्त्तव्यतया च यस्य तत् बहुविशेषम्, नन्धावर्त्तादिगृहविशेषस्त्वयं वराहोक्तः

“नन्धावर्त्तमल्लिन्दैः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तगतैः ।

द्वारं पश्चिममस्मिन् विहाय शेषाणि कार्याणि ॥१॥

इत्यादि पुनश्च कीदृशम् 'उद्दण्डिय देव कोट्टदारुगिरिखायवाहणविभागकुसले' उद्दण्डिकदेवकोट्टदारु गिरिखातवाहनविभागकुशलम्-तत्र ऊर्ध्वं दण्डे भवं उद्दण्डिकः-ध्वजः देवा इन्द्रादि प्रसिद्धाः, कोट्टः उपरितनगृहम्, धान्यकोष्ठो वा, दारुणि- वास्तुचित-काष्ठानि, गिरयो-दुर्गादिकरणार्थं जनावासयोग्याः पर्वताः, खातानि-पुष्करिण्यादिकानि वाहनानि शिविकादीनि एतेषां विभागे कुशलम्-सर्वथा निपुणम् 'इअ तस्स बहुगुणद्धे थवइ रयणे णरिदचंदस्स' इत्युक्तप्रकारेण बहु गुणाढ्यं तस्य नरेन्द्रचन्द्रस्य भरतचक्रिणः स्थपतिरत्नं वर्द्धकिरत्नम् 'तवसयमनिव्विट्ठे किं करवाणी तु वट्ठाई' तपः सयमाभ्यां

द्वाराणि, स्वस्तनादीनि षोडश दक्षिणद्वाराणि, धनदादीनि षोडश उत्तरद्वाराणि, दुर्भगादीनि षोडश पश्चिमद्वाराणि" णंदावत्ते य वद्धमाणे सोत्थियरुयगतह सब्बओमहसण्णिवेसेय बहुविसेसे) नन्धावर्त्त, वर्द्धमान, स्वस्तिक, रुचिक तथा सर्वतोभद्रसन्निवेश इनके निर्माण कार्यं में वहबहुत विशेषज्ञ था-नन्धावर्त्तादिगृहविशेषके सम्बन्धमें वराह ने ऐसा कहा है—

नन्धावर्त्तमल्लिन्दैः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तगतैः ।

द्वारं पश्चिममस्मिन् विहाय शेषाणि कार्याणि ॥१॥ इत्यादि

(उद्दण्डियदेवकोट्टदारुगिरिखायवाहणविभागकुसले) उद्दण्डिक-ध्वज, इन्द्रादिक देव, ऊपर का गृह-कोष्ठ, अथवा धान्यकोष्ठ दारु-गृह के योग्य काष्ठ, कोठ आदि बनाने के लिये जनावासयोग्य पर्वत, खात-पुष्करिणी आदि एवं वाहन शिविकादिक-इनके विभाग में वह कुशल था, (इय तस्स बहुगुणद्धे थवइरण्ये णरिदचंदस्स-तवसजमनिव्विट्ठे किं करवाणीतु वट्ठाई) इस पूर्वोक्त प्रकार

प्रमाणे छे- प्रमोदविजयादीनि षोडश गृहाणि पूर्वद्वाराणि, स्वस्तनादीनिषोडश दक्षिण द्वाराणि धनदादीनि षोडश उत्तरद्वाराणि दुर्भगादीनि षोडश पश्चिमद्वाराणि णंदावत्ते य वद्धमाणे सोत्थियरुयगतह सब्बओमह सण्णिवेसेय बहुविसेसे) नन्धावर्त्त, वर्द्धमान स्वस्तिक रुचिक तेभञ्च सर्वतोभद्रसन्निवेशे ओ सर्वेना निर्माणे कार्यंभां ते भूषण विशेषज्ञ छेतो नन्धावर्त्तादि गृहविशेषना सम्बन्धमां वराहो आ प्रमाणे कथ्ये छे—

नन्धावर्त्तमल्लिन्दैः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तगतैः

द्वारं पश्चिममस्मिन् विहाय शेषाणि कार्याणि ॥१॥ इत्यादि ।

(उद्दण्डिय देवकोट्टदारुगिरिखायवाहणविभागकुसले) उद्दण्डिक-ध्वज, इन्द्रादिक देव, ऊपर का घर-कोष्ठ, अथवा धान्य कोष्ठ, दारु-योग्य कोष्ठ, कोठ वगैरे जनावास योग्य पर्वत, खात-पुष्करिणी वगैरे तेभञ्च वाहन-शिविकादिक-ओभना विभागमां ते कुशल छेतो (इयतस्स बहुगुणद्धे थवइरण्ये णरिदचंदस्स-तव संजमनिव्विट्ठे किं करवाणी तु ई) ओ पूर्वोक्त प्रकार सुभञ्च अनेक शुभ सम्पन्न ते भरतचक्र-स्थपितरत्न-वर्द्धकिरत्न के जेने

निर्विष्टं लब्धमिति किं करवाणीत्यादि तु प्राग्योजितमेव । 'सो देव कम्मविहिणा खंधावारणरिंदवयणेणं । आवसहभवणकलियं करेइ सव्वं मुहुत्तेणं ॥२॥ तद् वर्द्धकिरत्तन्म् देवकर्मविधिना देवकृत्यप्रकारेण चिन्तितमात्रकार्यकरणरूपेणेत्यर्थः स्कन्धात्वारं नरेन्द्र-वचनेन आवासा राज्ञां गृहान् भवनानीतरेपां तैः कलितं करोति सर्वं मुहुत्तेन निर्विलम्ब-मित्यर्थः 'करेत्ता' कृत्वा 'पवरपोसहघरं करेइ' प्रवरपौषधगृहं करोति—श्रेष्ठ पौषधशालां निर्माति 'करित्ता' कृत्वा 'जेणेव भरहे राया जाव एतमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ' यत्रैव भरतो राजा यावत्पदात् तत्रैवोपागच्छति एतां राज्ञां पूर्वोक्ताम् आज्ञप्तिकाम् आज्ञां क्षिप्रमेव शीघ्रमेव राज्ञे प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्ति 'सेसं तहेव जाव मज्जनघराओ पडिणि क्खमइ' शेषं तथैव पूर्ववदेव यावत् पदात् स राजा स्नानार्थं मज्जनगृहं प्रविष्टवान् स्नपितः सन् यथा धवलमहामेघान्निर्गतश्चन्द्र इव सुधाधवली कृतमज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रा-

के अनुसार अनेक गुणो से युक्त ऐसा वह भरत चक्री का स्थपितरत्न-वर्द्धकिरत्न कि जिसे भरत चक्री ने तप एव सयम से प्राप्त किया है कहने लगा—कहिये मैं क्या करू—(सो देवकम्मविहिणा-खंधावारणरिंदवयणेणं—आवसहभवणकलियं करेइ सव्वं मुहेत्तेणं) इस प्रकार कहकर वह राजा के पास आगया और उसने चिन्तित मात्र कार्य करने की अपनी शक्ति के अनुसार नरेन्द्र के लिए प्रासाद और दूसरो के लिए भवनों को एक मुहूर्त्त में तयार कर दिया (करेत्ता पवर पोसहघर करेइ) यह सब काम एक ही मुहूर्त्त में निष्पन्न करके फिर उसने एक सुन्दर पौष-धशाला तयार करदी—(करित्ता जेणेव भरहे राया जाव एतमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ) यथो-चित रूप से पौषधशाला निष्पन्न करके फिर वह जहाँ पर भरतचक्री थे वहा गया और राजा को पूर्वोक्त आज्ञाकी पूर्ति की खबर शीघ्र ही उन्हें कर दी. (सेस तहेव जाव मज्जनघराओ पडिणिक्खमइ) इसके बाद का शेष कथन पूर्वोक्त रूप से ही है यावत् वह स्नानगृह से बाहिर निकला यहाँ तक का यही यावत्पदसे "स राजा स्नानार्थं मज्जनगृहं प्रविष्टवान् स्नपितः सन् यथा धवलमहामेघान्निर्गतश्चन्द्र इव सुधा धवलीकृत मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति" इस पाठ का

भारतव्यूहमे तप तेभ्य स यमथी प्राप्त करेइ ते छे—तेवधंकीरत्तन कडेवा वाग्थो—यावो हुं शुं कडु ? (सो देवकम्मविहिणा खंधावारणरिंदवयणेणं—आवसहभवणकलियं करेइ सव्वं मुहुत्तेणं) आ प्रभाणे कडीने ते राजा पासे आवी गथो, अने तेणे चोतानी चि तितमात्र कोथं करवाणी हैवी शक्ति मुअभ नरेन्द्र भाटे प्रासाद अने शीलओ भाटे लवनेओ एक भूङ्खत्तीमां न निर्मित करी दीधा. (करेत्ता पवरपोसहघर करेइ) ओ अधु काम ओकेअ भूङ्खत्तीमा निष्पन्न करीने पछी तेणे ओके सुकर पौषधशाला तयार करी दीधी (करित्ता जेणेव भरहे राया जाव एतमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणइ) यथोचित रूपमा पौषधशाला निष्पन्न करीने पछी ते कथां भारतव्यूहो इना त्यां गथो अने राजानी पूर्वोक्त आज्ञा पूरी करी छे, ओवी राजने सूचना आपी (सेसं तहेव जाव मज्जनघराओ पडिणिक्खमइ) ओना पछीतु कथन पूर्वोक्त रूपमा न छे यावत् स्नानगृहमाथी ल्हार नीकल्यो, अडी सुधीने अने यावत् पडथी "स राजा स्नानार्थं मज्जनगृहं प्रविष्टवान् स्नपितः सन् यथा

मणि-निर्गच्छति 'पडिणिमखमिता' प्रतिनिष्कम्य-निर्गत्य 'जेनेव वाहिरिया उपस्थाण-
साला जेनेव चाउग्वंटे आसरहे नेणेव उपागच्छइ' यत्रैव वागा उपस्थानशाळा यत्रैव चातुर्घटं
चत्वारो घण्टा अस्य तत् तगा एवं मूनमध्वरय तत्रैव उपागच्छति, स भगतो राजेति ॥६९॥

सूक्तम्-उवागच्छिता तदणं तं धरणितात्तरामणलुत्तुं ततो बहुलकस-
णपसत्थं हिमवंतकंदरगिवाय संवद्धिवचित्तिणिसदलियं जम्बुणय
सुकयदूवरं कणयदंडियारं पुलयवरिंद गीलसासगपवालफलिहवस्यणले-
दुमणिविदुमविभूसियं अडयालीसाररइयतवणिज्जपट्टसंगहियजुत्तुवं
पघसियपसियनिम्मियनवपट्टपुट्टपरिणिट्टियं विसिट्टलट्टणवलोहवद्धकम्मं
हरिपहरणरयणसरिसचक्कं कक्केयणइंदनीलसामगसुसमाहियवद्धजा-
लकडगं पसत्थवित्थिन्नसमधुरं पुरवरं च गुत्तं सुकिरण तवणिज्जजुत्त-
कलियं कंकटयणिजुत्तकप्पणं पहरणाणुजायं खेडगकणग धणुमंडलग-
वरसत्तिकोततोमरसरस य बत्तीसतोणपरिमंडिअं कणगरयणचित्तं जुत्तं
हलीसुहबलागगयदंतचंदमोत्तियतणसोल्लिय कुदकुडयवरसिंदुवार-
कंदलवरफेणणिगरहारकासप्पगासधवलेहिं अमरमणपवणजेइणचवल-
सिग्घगामोहिं चउहिं चामराकणगविभूसिअंगेहि तुरंगेहि सच्छत्तं-
सज्झयं सघटं सपडागं सुकयसंधिकम्मं सुसमाहिय समणकणगगंभी-
रतुल्लघोसं वरकुप्परं सुचक्कं वरनेमीमंडलं वरधारातोडं वरवइसबद्ध-
तुवं वरकंचणभूसियं वरायरियणिम्मियं वरतुरगसंपउत्तं वरसारहि -
संपग्गहियं वरपुरिसे वरमहारह दुरूढे आरूढे पवरस्यणपरिमंडियं
कणयत्तिखिणीजालसोभियं अउज्झं सोयाधणिकणगतवियपंकय
जासुअणजलणजलियसुयतांडरागं गुंजद्धबंधुजीवगरत्तहिंगुलगणि-

ग्रहण हुआ है। प्रतिनिष्कम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाळा यत्रैव चातुर्घटं अश्वरथं तत्रैव उपा-
गच्छति " स्नानगृहसे बाहर निकलकर फिर वह भरतचक्रो अपनी बाह्यउपस्थानशाळामें जहां पर
चातुर्घट अश्वरथ था वहां पर आया ॥९॥

तत्रैव इव सुधाधवलोकित मज्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति" आ पाठ अदृष्टु धये। छे
प्रतिनिष्कम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाळा यत्रैव चातुर्घटं अश्वरथ तत्रैव उपागच्छति"
स्नानगृहभांभी अकार नीकलीने यत्री ते अस्तयथी पोतानी भाह्य उपस्थान शाळाभां न्यां
चातुर्घट अश्वरथ इतो त्यां आये ॥९॥

गरसिंदूररुइलकुंकुमपारेवयचलणणयणकाइलदसणावरणरइतातिरे रत्ता-
 सौगकणगकेसुयगयतालुसुरिंदगोवगसमप्पभप्पगासं विंबफलसिलप्प-
 वालउड्डितसूरसरिसं सव्वोउअसुरहिकुसुमआसत्तमल्लदामं ऊसियसेय-
 जं यं महामेहरसियगंभीरणिद्धघोसं सत्तुहिअयकंपणं पभाए य
 सस्सिरीयं णामेणं पुहविविजयलंभंति विस्सुतं लोगविस्सुत-
 जसोऽहयं चाउग्घंटं आसरहं पोसहिए णरवईं दुरूढे तएणं से
 भरहे राया चाउग्घंटं आसरहं दुरूढे समाणे सेसं तहेव दाहिणाभि-
 मुहे वरदामतित्थेण लवणसमुदं ओगाहइ जाव से रहवरस्स कुप्परा
 उल्ला जाव पीइदाणं से णवरं चूडामणिं च दिव्वं उरत्थगेविज्जं
 सोणिअसुत्तगं कडगाणि य तुडियाणि य जाव दाहिणिल्ले अंतवाले
 जाव अट्टाहियं महामहिमं करेइ, करित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ,
 तए णं से दिव्वे चक्करयणे वरदामतित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहियाए
 महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्ख-
 मइ पडिणिक्खमित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे जाव पूरन्ते चेव अंबरतलं
 उत्तरपच्चत्थिमं दिस्सिं पभासतित्थाभिमुहे पयाते यावि होत्था, तएणं
 से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव उत्तरपच्चत्थिमं दिस्सिं
 तहेव जाव पच्चत्थिमदिसाभिमुहे पभासतित्थेण लवणसमुदं ओगा-
 हेइ, ओगाहित्ता जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला जाव पीइदाणं से
 णवरं मालं मउडिं मुत्ताजालं हेमजालं कडगाणिय तुडियाणि य आभ-
 रणाणि य सरं च णामाहयंकं पभासतित्थोदगं च गिण्हइ गिण्हित्ता
 जाव पच्चत्थिमेणं पभासतित्थमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी
 ण पच्चत्थिमिल्ले अंतवाले, सेसं तहेव जाव अट्टाहिया निव्वत्ता
 ॥सू०१०॥

छाया— उपागत्य तत खलु तं धरणितलगमनलघु ततो बहुलक्षणप्रशस्तं हिमवद्
 कन्दरान्तरनिर्घातसंघर्षितचित्रतिनिशदलिकं जाम्बूनदलुक्तकूर्धरं कनकदण्डिकार पुलकव-
 रेन्द्र नीलसासकप्रवालस्फटिकवररत्न लेडुमणिविद्रुमधिभूषितम्, अष्टाचत्वारिंशदररचित-
 तपनीय पद्मसंघटीत युक्ततुम्भम्, प्रघर्षित प्रसितनिर्मित नवपद्मपृष्ठपरिनिष्ठितम् विशिष्ट

लघुनवलोहवर्णकर्मणि हरिप्रहणरत्नसदृशचक्रम् फर्कयनेन्द्रीनोलशस्यरुसुममाहितवद्धजाल-
 कटकम् प्रशस्तविस्तोर्णसमधुरम्, पुरवर च गुणम्, सुकिरणतनीययोःरुकरलितम्,
 कंकटकनियुकरुच्यनम्, प्रहरणानुयातम्, रोटककणकघनुर्मण्डलागवरशाक्तकुन्ततोमर-
 शरशतद्वात्रिशत्तणपरिमण्डितम्, कनकरत्नचित्रम्, युक्तम्. हलीमुखवलाकगजदन्तचन्द्र-
 मौक्तिकमखिलकापुष्पकुन्दकुटजवरसिन्दुवारकन्दलवरफेननिकरदारकाशप्रकाशघवलै. अमर-
 मनःपवनजयि चपलशीघ्रगामिभि चतुर्भिः चामराकनकविभूषिताङ्गकै तुरगै, सच्छत्र
 सध्वजं सघण्टं सपताक सुकृतसन्धिकर्माणम् सुममाहित समरकगकगम्भोरुत्पद्योपम्,
 वरकूर्पर सुचक्रं वरनेमीमण्डलं वरधूस्तुण्ड वरवज्रवद्धतुस्य वरकाञ्चनभूषित वराचायं
 निर्मितं वरतुरगसम्प्रयुक्तं वरसारथिसुसंप्रगृहोत वरपुरुषो वरमहारथ दुरुडे आरूढे
 प्रवररत्नपरिमण्डितं कनककीङ्किणीजालशोभितम् अयाध्य सौदामिनो कनकरत्नपद्मत्रपाकु-
 सुमन्वलितशुकतुण्डरागं गुञ्जार्द्धवन्धुजीवकरकतहिङ्गुलकनिकरसिन्दूररुचिरकुङ्कुमपारावत-
 चरणनयनकोकिलदशनावरणरतिदासतिरक्ताशोककनककिशुकगजतालसुरेन्द्रगोपकसमप्रभ-
 प्रकाशम् विम्बफलशीलाप्रवालोत्तिष्ठत्सरसदृश सर्वर्तुकसुरभिकुसुमासक्तमाव्यदामानम्
 उच्छ्रितप्रवेतध्वजं महामेघरसितगम्भीरस्निग्धघोष शशुहृदयकम्पन प्रभाते च मर्थाक नाम्ना
 पृथ्वीविजयलाभमिति विश्रुतं लोकविश्रुतयशाः, अहतम्, चातुर्घण्टमश्वरथं नरपति दुरुडे,
 तत खलु स भरतो राजा चातुर्घण्टमश्वरथं दुरुडे सन् शेषं तथैव दक्षिणाभिमुखो
 वरदामतीर्थेन लवणसमुद्रमवगाहते यावत् तस्य रथवरस्य कूर्परौ आद्रौ भवत यावत्
 प्रीतिदानं तस्य, नवरं चूडामणिं दिव्यम् उरस्थप्रैवेयकं श्राणिसूत्रकं कटकानि च वृष्टि-
 कानि च यावत् दक्षिणात्याऽन्तपाल यावत् अष्टाहिकां महामहिमा कुर्वन्ति, कृत्वा
 पतामाहृषितकां प्रत्यर्पयन्ति, ततः खलु तदिव्यं चक्ररत्नं वरदामतीर्थकुमारस्य अष्टाहिकाया
 महामहिमायां निवृत्तायां सत्याम् आयुधगृहशालात प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य अन्तरिक्ष-
 प्रतिपन्नं यावत् पूर्यदिव अम्बरतलम् उत्तरपाश्चात्यां दिशं प्रभासतीर्थोभिमुखं प्रयातं
 चाप्यभवत्, ततः खलु स भरतो राजा तदिव्यं चक्ररत्नं यावत् उत्तरपाश्चात्यां दिशं
 तथैव यावत् पश्चिमदिशाभिमुखो प्रभासतीर्थेन लवणसमुद्रम् अवगाहते, अवगाह्य यावत्
 रथवरस्य कूर्परौ आद्रौ यावत् प्रीतिदानं तस्य नवरं मालां मौलिम्, मुक्ताजालं हेमजालं
 कटकानि च वृष्टिकानि च आभरणानि च शरं च नामाहताङ्कं प्रभासतीर्थोद्कं च गृह्णाति,
 गृहीत्वा यावत् पाश्चात्ये प्रभासतीर्थमयाद्या अहं खलु देवानुप्रियाणा विषयवासी यावत्
 पाश्चात्योऽन्तपाल शेषं तथैव यावत् अष्टाहिका निवृत्ता ॥सू० १०॥

टीका—“उवागच्छित्ता तर्पणं” इत्यादि । उपागत्य ततः खलु ‘तं’ तं प्रसिद्धम्
 ‘वरपुरिसे वरमहारं दुरुडे’ वरपुरुषो भरतचक्री वरमहारथं दुरुडे इत्यग्रे सम्बन्धः, कीदृशं
 (उवागच्छित्ता तर्पणं तं धरणितलगमणलहु) इत्यादि सू. १० ॥

टीकार्थ—(उवागच्छित्ता) वहां आकरके वह वर पुरुष भरतचक्री उस वरमहारथ पर सवार

‘उवागच्छित्ता तर्पणं न धरणितलगमणलहु’ इत्यादि ॥सू०॥

टीकार्थ—(उवागच्छित्ता) तथा आधीने ते वर पुरुष भरत चक्री ते वरमहारथ उपर सवार

महारथमित्याह—'धरणितलगमणलहुं' धरणितलगमने लघुं शीघ्रं-शीघ्रगामिनम् 'बहु लक्ष्मणपसत्थं' बहुलक्षणप्रशस्तम् अनेकशुभलक्षणसंयुक्तम्, पुनश्च कीदृशम् 'हिमवन्त कंदरंतरणिवायसवद्वियचित्तिणिसदलियं' हिमवतः कन्दरान्तरनिर्वात संवर्द्धितचित्र-तिनिशदलिक्रम, तत्र-हिमवतः क्षुद्रहिमालयगिरेः निर्वातानि-वायुरहितानि यानि कन्द-रान्तराणि तत्र संवर्द्धिताश्चित्राः विविधास्तनिशा रथरचनात्मकवृक्षविशेषाः त एव दलिकानि दारुणि यस्य तम्, तिनिशनामकं सुचारुदारुनिर्मितम् 'कंदरंतरणिवाय' इति मूले पदव्यत्ययः आर्पत्वात् 'जंबूणय सुकयकूवरं' जाम्बूनदं सुकृतकूवरम् तत्र-जाम्बूनदं जम्बूनदनामकं सुवर्णम् तेन सुकृतं सुघटितं कूवरं युगन्वरं यत्र (तथा युआ इति भाषा प्रसिद्धम्) तम् 'कणय दंडियारं' कनकदण्डिकारम्, तत्र कनकदण्डिकाः—कनकमयलघु-दण्डरूपा अरा यत्र स तथा तम्, पुनश्च कीदृशम् 'पुलयवरिंदणीलसासगपवालफलिहवर-णयणलेदुमणिविद्रुमविभूसियं' पुलकवरेन्द्र नीलसासकप्रवालस्फटिकरत्नलेष्टुमणिविद्रु-मविभूषितम्, तत्र पुलकानि वरेन्द्रनीलानि सासकानि रत्नविशेषाः प्रवालानि स्फटिक-वरत्नानि च प्रसिद्धानि, लेष्टवो विजातीय रत्नानि, मणयः—चन्द्रकान्तादयः विद्रुमः

हुआ—ऐसा आगेके पदके साथ सम्बन्ध है अब यहा पहिले यह प्रकट क्रिया जाता है कि वह महारथ कैसा था—(धरणितलगमणलहुं) वह पृथिवी तल पर चरने मे बहुत शीघ्रता वाला था (बहुलक्ष्मण पसत्थं, हिमवत कंदरंतरणिवाय सवद्वियचित्तिणिसदलियं) अनेक शुभलक्षण गोसे वह युक्त था हिमवान् पर्वत के वायुरहित भीतर के कन्दरा प्रदेशों में संवर्द्धित हुए विविध रथ रचनात्मक तिनिश वृक्षविशेषरूप काष्ठ से वह बना हुआ था (कंदरंतरणिवाय) इस मूल पद में आर्ष होने से पदव्यत्यय हो गया है. (जंबूणयसुकयकूवरं) जम्बूनद नामक सुवर्ण का हमका युगन्वर—जुआ था. (कणयदंडियारं) इसके अरककनक मय लघु दण्डरूपमें थे (पुलयवरिंदणीलसासगपवालफलिहवरणयणलेदुमणिविद्रुमविभूसियं) पुलक, वरेन्द्र नीलमणि, सासक, प्रवाल, स्फटिकमणि, लेष्ट-विजातिरत्न चन्द्रकान्त आदि मणि एवं विद्रुम इन सब प्रकार के रत्नादिकों से वह विभूषित था (अड्यालीसाररहयतवणिज्जपट्टसगहियजुत्तुबं)

थये आ लतने आगणनापड साथे संधं छे. अत्रे पडेला अे प्रकट करवाभां आवे छे केते महाराज केवे हुते। (धरणितलगमणलहुं) ते पृथिवीतल उपर शीघ्र गतिथी आलनार हुते। (बहुलक्ष्मणपसत्थं, हिमवतकंदरंतरणिवाय संवद्विय चित्तिणिसदलियं) अनेक शुभलक्षणोथी ते युक्त हुते। हिमवान् पर्वतना वायुरहित अहरना कहरा प्रदेशोभा संवर्द्धित थयेला विविध रथरथनात्मक तिनिश वृक्षविशेषरूप काष्ठथी ते अनेको हुते। (कंदरंतरणिवाय) अे मूलपडभा आर्ष होवाथी पदव्यत्यय थयेल छे. (जंबूणयसुकयकूवरं) जम्बूनद नामक सुवर्ण निर्मित अे रथनी धूसरी हुती (कणयदंडियारं) अेना अरके कनकमय लघुदंड रूपभां हुती। (पुलयवरिंदणीलसासगपवालफलिहवरणयणलेदुमणिविद्रुमविभूसियं) पुलक, वरेन्द्रनीलमणि, सासक, प्रवाल, स्फटिकमणि, लेष्टु विजातिरत्न, चन्द्रकान्त आदि मणि तेमअ विद्रुम अे सर्व प्रकारना रत्नादिकोथी ते विभूषित हुते। (अड्यालीसाररहय ट्टतवणिज्जप

प्रालविशेषः तं विभूषितः तथा तम् 'अड्यालीसागरडयतवणिज्जपट्टमंगहिय जुन तुवं' अष्टाचत्वारिंशदरश्चिन तपनीय पट्टमंगृहीन युक्तनुम्बम्, तत्र -रचिताः -गुण्टुनिमिताः प्रतिदिशं द्वादश र सङ्खावात् उभयत्र अष्टाचत्वारिंशदग यत्र ते तथा, अत्र 'अड्यालीसागरडय' इति मूलसूत्रे 'रडय' इति निशेषणस्य पूर्वं प्रयोक्तव्ये परनिपातः प्राकृतत्पान तथा तपनीयपट्टैः रक्तध्वगमयपट्टिकः लोके महल इति प्रसिद्धः संगृहीते दृढीकृते तथा युक्ते यथा-योग्ये नाति लघुनी नाति महती ततः पदत्रयस्य कर्मधारये कृते सति एतादृशे तुम्बे यस्य स तथा तम् 'पधसिय पसिय निम्मिय नव पट्टपुट्टपरिणिट्टियं' प्रघर्षितप्रसित-निर्मित नवपट्टपृष्ठपरिनिष्ठितम्. तत्र प्रघर्षिनाः-प्ररूपेण घृष्टाः प्रसिता प्रकरेण वद्धा ईदृशा निमिताः निवेजिताः नवाः नूतनाः पट्टाः पट्टिका यत्र तत् तथाविधं यत्पृष्ठ चक्रपरिधिरूपं गोत्राकाररूप 'हाल' इति प्रसिद्धम्. तत्परिनिष्ठितं नुनिप्पन्नं कार्यनिर्वाहकत्वेन यस्य स तथा तम् 'विसिट्ट लट्टणवल्लोहवद्धकम्म' विशिष्टलट्टणवल्लोहवद्धकर्माणम्, तत्र विशिष्टलट्टे-अतिमनोहरे नवे नवीने लोह वयं लोहश्चर्मरज्जुके तयोः कर्मकार्यं वर्तते यत्र स तथा तम् पुनश्च कीदृशम् 'हरिपहरणरयणसरिसचक्रं' हरिप्रहरणरत्न सदृशचक्रम्, तत्र हरिः वासुदेवः तस्य प्रहरणरत्नं चक्ररत्नं तत्सदृशे चक्रे चक्रद्वयं स तथा तम्, पुनश्च 'कक्केयणइंदनीलसासगसुसमाहियवद्धजालकडगं' कर्केतनेन्द्रनील-

प्रत्येक दिशा में १२-१२-होनेसे ४८ इममें अर थे रक्त स्वर्णमय पट्टको से महलुओ से-दृढीकृत तथा उचित्त इमके दोनो तुवे थे (पधसियपसियनिम्मिय नवपट्टपुट्टपरिणिट्टियं) इसका पुठी में जो पट्टिकाए लगी हुई थी-वे प्रघर्षित थी-खुब-घिसी हुई थी-अच्छी तरह से उसमें बद्ध थी और अजीर्ण थी, नवीन थी (विसिट्टलट्टणवल्लोहवद्धकम्म) विशिष्ट लट्ट-अति मनोहर-नवीन लोहे से इममें काम किया गया था अर्थात् मजबूती के लिए जगह २ इसमें-नवीन नवीन लोहे की कोले एवं उनकी सुन्दर पत्तिये लगी हुई थी अथवा टीका के अनुसार इमके अवयव नवीन लोहे से एव नवीन चर्म की रज्जुओं से जकडे हुए थे ऐसा अर्थ होता है । (हरिपहरणरयणसरिसचक्र) इसके दोनो पहिये वासुदेव के चक्ररत्नके जैसे गोल थे (कक्केयणइंदणील सासग सुसमाहिय वद्धजालकडगं) इसमें जो जालसमूह था वह कर्केतन चन्द्रकान्तादि मणियो-से, इन्द्रनील-

सगहियजुत्तुवं) दशैक दिशायां १२-१२ आभ अधा मणीने ४८ ओभां अरक इता. रक्त स्वर्णमय पट्टकोशी-महलुओगी-दृढीकृत तेमञ्ज उच्चि १ येना अन्ने तु भा इता (पधसियपसियनिम्मियनवपट्टपुट्ट परिणिट्टियं. येनी पुठीमा ने पट्टिकाओ इती ते प्रघर्षित इती भूण ४ धसाओली इती सारी रीते तेमा अर इती अने अलुभु इती, नवीन इती. (विनिट्ट लट्टणवल्लोह वद्धकम्म) विशिष्ट-लट्ट-अति मनोहर-नवीन दोष उथी तेमा काम करेणु इतु ओट्टे के मञ्जुपूती भाटे स्थान-स्थानमा तेमा नवीन-नवीन दोष उनी भीलीओ तेमञ्ज पत्तियो लागेही इती अथवा टीका अुभुण तेना अवयवो नवीन दोष उथी तेमञ्ज नवीन अर्भानी रञ्जुओशी आभद्ध इता आवो अर्थ थाय छे (हरिपहरणरयणसरिसचक्रं) येना अन्ने पैडाओ वासुदेवना अकरत्न ओवा गेण इता (कक्केयण इदणोल सासग सुसमाहिय वद्धजालकडगं) ओभां ने अल समूह इता ते कर्केतन चन्द्रकान्तादि, मणियोशी-इन्द्रनील-

शस्यकमुसमाहितवद्धजालकटकम् , तत्र कर्केतनः—चन्द्रकान्तादिमणिः, इन्द्रनीलः—इन्द्रइव
नीलः श्यामः खत्वादर पृथ्वीकायात्मकनोलरत्नविशेषः, शस्यकः—रत्नविशेषः रत्नत्रयं सुष्टु
सम्यग् आहितं निवेशितं कृतसुन्दरसंस्थानमित्यर्थः ईदृशं वद्धं जालकटकं जालकसमूहो
यत्र स तथा तम्, तथा 'पसत्थ वित्थिन्न समधुरं' प्रशस्तविस्तीर्णसमधूरम् प्रशस्ता वि-
स्तीर्णा समा वक्रता रहिता धूर्यत्र स तथा तम् तथा 'पुरवरं च गुत्तं' पुरवरं च गुत्तम्
पुरमिव गुत्तं श्रेष्ठरूमिः सुरक्षितम् समन्ततः अयं भागः गृहेहि प्रायः सर्वतो लोहादि-
मयी आवृत्तिर्भवति, प्रवरदृष्टान्तकथनेनायमर्थः सम्पद्यते यथा पुरम् अस्त्र शस्त्र सेनादि
भिसुरक्षितं तथा रथोऽपि सुरक्षितस्तम्, पुनश्च कीदृशम् 'सुकिरणतवणिज्ज जुत्तकलियं'
सुकिरणतपनिययोक्त्रकलितम्, तत्र सुकिरणं सुष्टु कान्तिकं यत्तपनीयं सुवर्णं तन्मयां
योक्त्रां तैः कलितस्तथा तम्, योक्त्रेण हि वोद्द्रुकन्धे युग्मं बध्यते इति 'कंकटयणिजुत्त-
कप्पणं' कंकटकनियुक्तकल्पनम्, कंकटकाः—सन्नाहा कवचास्तेषां नियुक्ता स्थापिता कल्पना
रचना यत्र स तथा तम् यथाशोभं तत्र सन्नाहाः स्थापिताः सन्तीतिभावः, तथा—'पह
रणाणुजायं' प्रहरणानुयातम्, प्रहरणैशस्त्रैरनुयातो भृत्युक्तः इत्यर्थः स तथा तम्, एत-
देव व्यक्ति आह—'खेटककणगधणुमंडलगववरसत्तिकोततोमरसरस य बत्तिसतोण-
परिमंडियं' खेटककनकधनुर्मण्डलाग्रवरशक्तिकुन्ततोमरशरशतद्वात्रिशतूणपरिमण्डितम् ,
तत्र खेटकानि फलकानि 'ढाल' इति भाषा प्रसिद्धानि कणकाः—वाणविशेषाः धनुं-

मणियों से एवं शस्यक—रत्नविशेष—से सुन्दर आकारवाला बना हुआ था (पसत्थवित्थिन्नस-
मधुरं) इसकी धुरा— अग्रभाग प्रशस्त थी, विस्तीर्ण थी और सम—वक्रतारहित थी (पुरवरं
च गुत्तं) श्रेष्ठ पुरकी तरह यह सुरक्षित था (सुकिरण तवणिज्जुत्तकलियं) सुष्टु किरण-
वाले तपनीय सुवर्ण की इसकी बैलों के गलो में ढालने वाली रस्सी थी (कंकटयणिजुत्त-
कप्पणं) कंकटक—सन्नाह कवचो की इसमें रचना हों रही थी तात्पर्य इसका यही है कि
इसकी विशिष्ट शोभा बढ़ाने के लिए इसमें जगह २ कवच स्थापित हो रहे थे (पहरणाणुजाय)
प्रहरणों से— अज्ञ शस्त्र आदिकों से भरा हुआ था. जैसे—(खेटककणगधणु मडलगववरसत्तिकोत
तोमरसरस य बत्तिस तोणपरिमंडियं) इसमें खेटक—ढाळे—रखी हुई थी, कणक—विशेष
प्रकार के बाण रखेहुए थे धनुष रखे हुए थे, मण्डलाग्र—विशेष प्रकार की तलवारें रखी हुई थी

खम्बुद्वीपेथी तेभञ्ज शस्यक—रत्न विशेषथी सुन्दर आकारवाणे। इतो. (पसत्थ वित्थिन्न
समधुरं) जेनी धुरा (अग्रभाग) प्रशस्त इती, विस्तीर्ण इती अने सम—वक्रता रहित इती
(पुरवर च गुत्तं) श्रेष्ठ पुरनी जेभ जे सुरक्षित इतो. (सुकिरण तवणिज्जुत्तकलियं) अण-
दोना अणामां नाभेदी राथ सुष्टु किरणवाणा तपनीय सुवर्णनी अनेदी इती (कंकटयणि-
जुत्तकप्पणं) कंकटक—सन्नाह कवचोनी जेभां रचना यथ रही इती तात्पर्य आनु आ
प्रमाणे छे के जेनी विशिष्ट शोभावृद्धि भाटे जेभा स्थान—स्थान उपर कवचो स्थापित करेला
इतां (पहरणाणुजायं) प्रहरणेथी—अस्त्र—शस्त्र आदिकेथी परिपूरित इतो जेभके—(खेटक-
कणगधणु मडलगववरसत्तिकोततोमरसरस य बत्तिसतोणपरिमंडियं) जेभां जेटक—ढाळे-

वि प्रसिद्धानि मण्डलाग्राः खड्गविशेषाः वरशक्तयः त्रिशूलानि कुन्ताः भल्ला इति प्रसिद्धाः तोमराः बाणविशेषाः शराणां शतानि येषु तादृशा ये द्वात्रिंशत्तृणाः भस्त्रकास्तैः परिमण्डितो यः स तथा तम् तथा 'कणगरयणचित्त' कनकरत्-चित्रम्. सुवर्ण रत्नविशेषैः परिमण्डितम् तथा 'जुत्तं' युक्तं तुर्गैरित्यग्रेण सम्बध्यते तुर्गैः किं विशिष्टैरित्याह' हर्ला-गृहबलागगयदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिअकुंदकुडचवरसिंदुवारकंदलवरफेणणिगरहासकासप्पगासधवलेहिं' हलीमुखवलाकगजदन्तचन्द्रमौक्तिक 'तणसोल्लिअ' मल्लिका पुष्प कुन्दकुट-जवरसिन्दुवारकन्दल वरफेननिकरहारकाशप्रकाशधवलैः, तत्र—हलीमुखं रुद्धिगम्यम्, वलाको वकः गजदन्तचन्द्रौ-प्रसिद्धौ मौक्तिकम् मुक्ताफलम् 'तणसोल्लिअत्ति' मल्लिकापुष्पं कुन्दम् श्वेतपुष्पविशेषः कुटजानि कुटजपुष्पाणि, वरसिन्दुवाराणि निर्गुण्डीपुष्पाणि कन्दलानि कन्दलनामकवृक्षविशेषपुष्पाणि वरफेननिकरः वरफेनसमूहः हारो मुक्ताहारः काशाः तृणविशेषास्तेषां प्रोक्तानां यः प्रकाशः उज्ज्वलता तद्वत् धवलैः धवलवर्णैः, पुनश्च कीदृशैः 'अमरमणपवणजइणचवलसिग्घगामीहिं' अमरमनःपवनजयिचपलशीघ्रगामिभिः, तत्र अमराः देवा मनांसि चित्तानि पवनो वायुः तान् वेगेन जयति इति

वर शक्ति-त्रिशूल रखे हुए थे. किन्तु-भाले रखे हुए थे, तोमर-विशेष प्रकार के बाण रखे हुए थे, सै रूढ़ों सामान्य बाण जिनमें रखे हुए हैं ऐसे ३२ भाये इसमें रखे हुए थे. (कणगरयणचित्त) इसमें जो चित्रबने हुवे थे वे कनक और रत्नो द्वारा अतिरमणीय बने हुए थे. (हलीमुखवला-गगयदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिय कुंदकुडयवरसिंदुवारकंदलवरफेणणिगरहासकासप्पगासधवलेहिं) इसमें जो 'जुत्त' घोड़े जुते हुए थे-वे हलीमुख, बगला, गजदन्त, चन्द्रमा—मौक्तिक, मल्लिका पुष्प, कुन्दकुष्प, कुटजपुष्प, निर्गुण्डी पुष्प, कन्दल नामक वृक्षविशेष के पुष्प, सुन्दर फेन का समूह, हार, -मुक्ताहार और काश-तृणविशेष इनकी जैसी-उज्ज्वलता वाले थे-अर्थात् धवल वर्ण के थे (अमरमणपवणजइणचवलसिग्घगामीहिं) जैसी देवों की, मनकी, वायुकी, गति होती है उस गति को भी परास्तकरनेवाली इनको चपलताभरी शीघ्र गति थी. उस गति से

भूकेली इती कृष्क-विशेष प्रकारना आणो भूकेला इता धनुष भूकेला इता, म उवाअ-विशेष प्रकारनी तलवारो भूकेली इती वरशक्ति-त्रिशूल भूकेला इतां कुंत-भालाओ-भूकेला इता. तोमर-विशेष प्रकारना आणो भूकेला इता सइसो सामान्य आणो जेमा भूकेला से, जेमा उर तृणीरो जेमा भूकेला इता (कणगरयणचित्त) जेमा जे शिरो भनेला इता, ते कनक अने रत्ननिर्मित डोवाथी अत्यंत रमणीय लागताइता (हलीमुखवलागदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिय-कुंदकुडयवरसिंदुवारकंदलवरफेणणिगरहासकासप्पगासधवलेहिं) जेमां जे ' ' घोडाओ जेतरेला इता, ते हलीमुख, बगला, गजदन्त, चन्द्रमा, मौक्तिक, मल्लिका कुटज पुष्प, निर्गुण्डी पुष्प कंदल नामक वृक्षविशेषना पुष्प, सुन्दर शीघ्र समूह हा अने काश-तृण विशेष जे सवे पक्षी जेवा उज्ज्वलता वाणा इतां जेटवे श्रुवाणा इता (अमरमणपवणजइण चवल सिग्घगामीहिं) जेवी देवोनी, मननी, व डोय छे, तेमनी गति ने पक्ष परास्त करनारी जेमनी अणताभरी शीघ्र गति

शस्यकमुममाहितवद्धजालकटकम् , तत्र कर्केतनः—चन्द्रकान्तादिमणिः, इन्द्रनीलः—इन्द्रइव
नीलः श्यामः खरवादर पृथ्वीकायात्मकनीलरत्नविशेषः, शस्यकः—रत्नविशेषः रत्नत्रयं सुष्ठु
सम्यग् आहितं निवेशितं कृतसुन्दरसंस्थानमित्यर्थः ईदृशं वद्धं जालकटकं जालकसमूहो
यत्र स तथा तम्, तथा 'पसत्थ वित्थिन्न समधुरं' प्रशस्तविस्तीर्णसमधुरम् प्रशस्ता वि-
स्तीर्णा समा वक्रता रहिता धूर्यत्र स तथा तम् तथा 'पुरवरं च गुत्तं' पुरवरं च गुत्तम्
पुरमिव गुप्तं श्रेष्ठदूरमिव सुरभितम् समन्ततः अयं भावः रथेहि प्रायः सर्वतो लोहादि-
मयी आवृत्तिर्भवति, प्रवरदृष्टान्तकथनेनायमर्थः सम्पद्यते यथा पुरम् अस्त्र शस्त्र सेनादि
भिसुरक्षितं तथा रथोऽपि सुरक्षितस्तम्, पुनश्च कीदृशम् 'सुकिरणतवणिञ्ज जुत्तकलियं'
सुकिरणतपनिययोक्त्रकलितम्, तत्र सुकिरणं सुष्ठु कान्तिकं यत्तपनीयं सुवर्णं तन्मयां
योक्त्रां तैः कलितस्तथा तम्, योक्त्रेण हि वोद्द्रस्कन्वे युगं वध्यते इति 'कंकटयण्डिजुत्त-
कप्पणं' कंकटकनियुक्तकल्पनम्, कंकटकाः—सन्नाहा कवचास्तेषां नियुक्ता स्थापिता कल्पना
रचना यत्र स तथा तम् यथाशोभं तत्र सन्नाहाः स्थापिताः सन्तीतिभावः, तथा—'पह
रणाणुजायं' प्रहरणानुयातम्, प्रहरणैशस्त्रैरनुयातो भृत्युक्तः इत्यर्थः स तथा तम्, एत-
देव व्यक्ति आह—'खेडगकणगधणुमंडलगवरसत्तिकोततोमरसरस य वत्तिसतोण-
परिमंडियं' खेटककनकधनुर्मण्डलाग्रवरशक्तिकुन्ततोमरशरशतद्वान्निशचूणपरिमण्डितम् ,
तत्र खेटकानि फलकानि 'ढाल' इति भाषा प्रसिद्धानि कणकाः—वाणविशेषाः धनुं-

मणियों से एवं शस्यक—रत्नविशेष—से सुन्दर आकारवाला बना हुआ था (पसत्थवित्थिन्नस-
मधुरं) इसकी धुरा— अग्रभाग प्रशस्त थी, विस्तीर्ण थी और सम—वक्रतारहित थी (पुरवरं
च गुत्तं) श्रेष्ठ पुरकी तरह यह सुरक्षित था (सुकिरण तवणिञ्जुत्तकलियं) सुष्ठु किरण-
वाले तपनीय सुवर्ण की इसकी बैलो के गले में डालने वाली रस्सी थी (कंकटयण्डिजुत्त-
कप्पणं) कंकटक—सन्नाह कवचो की इसमें रचना हों रही थी तात्पर्य इसका यही है कि
इसकी विशिष्ट शोभा बढ़ाने के लिए इसमें जगह २ कवच स्थापित हो रहे थे (पहरणाणुजायं)
प्रहरणो से— अब शस्त्र आदिकों से भरा हुआ था जैसे—(खेडगकणगधणु मंडलगवरसत्तिकोत
तोमरसरस य वत्तिस तोणपरिमंडियं) इसमें खेटक—ढाले—रखी हुई थी, कणक—विशेष
प्रकार के बाण रखे हुए थे धनुष रखे हुए थे, मण्डलाग्र—विशेष प्रकार की तलवारें रखी हुई थी

दमस्त्रिओथी तेभञ् शस्यक—रत्न विशेषथी सुष्ठु आकारवाणेो इतो. (पसत्थ वित्थिन्न
समधुरं) ओनी धुरा (अग्रभाग) प्रशस्त इती, विस्तीर्ण इती अने सम—वक्रता रहित इती
(पुरवर च गुत्तं) श्रेष्ठ पुरनी ओम ओ सुरक्षित इतो (सुकिरण तवणिञ्जुत्तकलियं) यण-
डोना गणामां नापेक्षी राश सुष्ठु किरणवाणेो तपनीय सुवर्णनी अनेलो इती (कंकटय णि-
जुत्तकप्पणं) कंकटक—सन्नाह कवचोनी ओभां रचना थई रही इती तात्पर्य आनुं आ
प्रमाणे छे के ओनी विशिष्ट शोभावृद्धि भाटे ओभा स्थान—स्थान उपर कवचो स्थापित करेला
इतां (पहरणाणुजायं) प्रहरणेथी—अस्त्र—शस्त्र आदिकेथी परिपूरित इतो ओमके—(खेडग
कणगधणु मंडलगवरसत्तिकोततोमरसरस य वत्तिसतोणपरिमंडियं) ओभां पेटक—ढाले-

वि प्रसिद्धानि मण्डलाग्राः खड्गविशेषाः वरशक्तयः त्रिशूलानि कुन्नाः भल्ला इति प्रसि-
द्धाः तोमराः बाणविशेषाः शराणां शतानि येषु तादृगा ये द्वात्रिंशत्तृणाः भस्त्रकास्तैः
परिमण्डितो यः स तथा तम् तथा 'कणगरयणचित्त' कनकरत्नचित्रम्, मुञ्चर्ण रत्नविशेषः
परिमण्डितम् तथा 'जुत्तं' युक्तं तुर्गैरित्यग्रेण सम्बध्यते तुर्गैः किं विंशष्टैरित्याह' हली-
मुहबलागगयदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिअकुंदकुडयवरसिंदुवारकंदलवरफेणणिगरहासकासप्प-
गासधवळेहिं' हलीमुखवलाकगजदन्तचन्द्रमौक्तिक 'तणसोल्लिअ' मल्लिका पुष्प कुन्दकुट-
जवरसिन्दुवारकन्दल वरफेननिकरहारकाशप्रकाशधवलैः, तत्र—हलीमुखं रुद्धिगम्यम्, वलाको
वकः गजदन्तचन्द्रौ-प्रसिद्धौ मौक्तिकम् मुक्ताफलम् 'तणसोल्लिअत्ति' मल्लिकापुष्पं कुन्दम्
श्वेतपुष्पविशेषः कुटजानि कुटजपुष्पाणि, वरसिन्दुवाराणि निर्गुण्डीपुष्पाणि कन्दलानि
कन्दलनामकवृक्षविशेषपुष्पाणि वरफेननिकरः वरफेनसमूहः हारो मुक्ताहारः काशाः
तृणविशेषास्तेषां प्रोक्तानां यः प्रकाशः उज्ज्वलता तद्वत् धवलैः धवलवर्णैः, पुनश्च
कीदृशैः 'अमरमणपवणजङ्घणचवलसिग्घगामीहिं' अमरमनःपवनजयिचपलशीघ्रगा-
मिमिः, तत्र अमराः देवा मनांसि चित्तानि पवनो वायुः तान् वेगेन जयति इति

वर शक्ति-त्रिशूल रखे हुए थे. किन्तु—भाळे रखे हुए थे, तोमर-विशेष प्रकार के बाण रखे हुए
थे, सैरुद्धो सामान्य बाण जिनमें रखे हुए है ऐसे ३२ भाषे इसमें रखे हुए थे. (कणगरयणचित्त)
इसमें जो चित्रवने हुवे थे वे कनक और रत्नो द्वारा अतिरमणीय बने हुए थे. (हलीमुखवला-
गगयदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिय कुंदकुडयवरसिंदुवारकदलवरफेणणिगरहासकासप्पगासधवळेहिं)
इसमें जो 'जुत्त' घोड़े जुते हुए थे—वे हलीमुख, बगला, गजदन्त, चन्द्रमा—मौक्तिक, मल्लिका
पुष्प, कुन्दकुष्प, कुटजपुष्प, निर्गुण्डी पुष्प, कन्दल नामक वृक्षविशेष के पुष्प, सुन्दर फेन
का समूह, हार,—मुक्ताहार और काश-तृणविशेष इनकी जैसी—उज्ज्वलता वाले थे—अर्थात्
धवल वर्ण के थे (अमरमणपवणजङ्घणचवलसिग्घगामीहिं) जैसी देवी की, मनकी, वायुकी,
गति होती है उस गति को भी परास्तकरनेवाली इनको चपलताभरी शीघ्र गति थी. उस गति से

भूकेली इती ऋषुक-विशेष प्रकारना आण्णे भूकेला इती धनुष भूकेला इती, भडवाअ-विशेष
प्रकारनी तलवारो भूकेली इती वरशक्ति-त्रिशूल भूकेला इतां कुंत-लालाओ-भूकेला इता.
तोमर-विशेष प्रकारना आण्णे भूकेला इता सद्धो सामान्य आण्णे नेमा भूकेला ने, जेवा
उर तल्लीरो जेमा भूकेला इता (कणगरयणचित्त) जेमां ने चित्रो भनेला इता, ते कनक अन
रत्ननिर्मित डोवाथी अत्यंत रमणीय लागताइता (हलीमुखवलागदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिय-
कुंदकुडयवरसिंदुवारकदलवरफेणणिगरहासकासप्पगासधवळेहिं) जेमां ने 'जुत्त' घोडाओ
अतरैला इता, ते हलीमुख, बगला, गजदन्त, चन्द्रमा, मौक्तिक, मल्लिका पुष्प, कुन्द पुष्प,
कुटज पुष्प, निर्गुण्डी पुष्प कंदल नामक वृक्षविशेषना पुष्प, सुन्दर शीघ्र समूह हार-मुक्ताहार
अने काश-तृण विशेष जे सव पदार्थो जेवा उज्ज्वलता वाजा इतां अटवे के धवलव-
र्णवाजा इता (अमरमणपवणजङ्घणचवलसिग्घगामीहिं) जेवी देवीनी, मननी, वायुनी गति
डोय छे, तेमनी गति ने पण परास्त करनारी जेमनी चपलताभरी शीघ्र गति इती, ते

शस्यकमुसमाहितवद्धजालकटकम् , तत्र कर्केतनः-चन्द्रकान्तादिमणिः, इन्द्रनीलः-इन्द्रइव
नीलः श्यामः खल्वाद्दर पृथ्वीकायात्मकनीलरत्नविशेषः, शस्यकः-रत्नविशेषः रत्नत्रयं सुष्ठु
सम्यग् आहितं निवेशितं कृतसुन्दरसंस्थानमित्यर्थः ईदृशं वद्धं जालकटकं जालकसमूहो
यत्र स तथा तम्, तथा 'पसत्थ वित्थिन्न समधुरं' प्रशस्तविस्तीर्णसमधुरम् प्रशस्ता वि-
स्तीर्णा समा वक्रता रहिता धूर्यत्र स तथा तम् तथा 'पुरवरं च गुत्तं' पुरवरं च गुत्तम्
पुरमिव गुप्तं श्रेष्ठुरमिव सुरक्षितम् समन्ततः अयं भावः ग्येहि प्रायः मर्वतो लोहादि-
मयी आवृत्तिर्भवति, प्रवरदृष्टान्तकथनेनायमर्थः सम्पद्यने यथा पुरम् अस्त्र शस्त्र सेनादि
मिसुरक्षितं तथा रथोऽपि सुरक्षितस्तम्, पुनश्च क्रीदशम् 'सुकिरणतवणिज्जुत्तकलियं'
सुकिरणतपनिययोक्त्रकलितम्, तत्र सुकिरणं सुष्ठु कान्तिकं यत्तपनीयं सुवर्णं तन्मयां
योक्त्रां तैः कलितस्तथा तम्, योक्त्रेण हि वोद्द्रस्कन्धे युगं वध्यते इति 'कंकटयणिजुत्त-
कप्पणं' कंकटकनियुक्तकल्पनम्, कंकटकाः-सन्नाहा कवचास्तेषां नियुक्ता स्थापिता कल्पना
रचना यत्र स तथा तम् यथाशोभं तत्र सन्नाहाः स्थापिताः सन्तीतिभावः, तथा-'पह
रणाणुजायं' प्रहरणानुयातम्, प्रहरणैशस्त्रैरनुयातो भृतयुक्तः इत्यर्थः स तथा तम्, एत-
देव व्यक्ति आह-'खेडगकणगधणुमंडलगवरसत्तिकौततोमरसरस य वत्तिसतोण-
परिमंडियं' खेटककनकधनुर्मण्डलाग्रवरशक्तिकुन्ततोमरशरशतद्वात्रिंशत्तूणपरिमण्डितम् ,
तत्र खेटकानि फलकानि 'ढाल' इति भाषा प्रसिद्धानि कणकाः-वाणविशेषाः धनुं-

मणियों से एवं शस्यक-रत्नविशेष-से सुन्दर आकारवाला बना हुआ था (पसत्थवित्थिन्नस-
मधुरं) इसकी धुरा- अग्रभाग प्रशस्त थी, विस्तीर्ण थी और सम-वक्रतारहित थी (पुरवरं
च गुत्तं) श्रेष्ठ पुरकी तरह यह सुरक्षित था (सुकिरण तवणिज्जुत्तकलियं) सुष्ठु किरण-
वाले तपनीय सुवर्ण की इसकी बेलों के गलों में ढालने वाली रस्सी थी (कंकटयणिजुत्त-
कप्पणं) कंकटक-सन्नाह कवचों की इसमें रचना हो रही थी तात्पर्य इसका यही है कि
इसकी विशिष्ट शोभा बढ़ाने के लिए इसमें जगह २ कवच स्थापित हो रहे थे. (पहरणाणुजायं)
प्रहरणों से- अब शस्त्र आदिकों से भरा हुआ था जैसे-(खेडगकणगधणु मण्डलगवरसत्तिकौत
तोमरसरस य वत्तिस तोणपरिमंडियं) इसमें खेटक-ढाले-रखी हुई थी, कणक-विशेष
प्रकार के बाण रखे हुए थे धनुष रखे हुए थे, मण्डलाग्र-विशेष प्रकार की तलवारें रखी हुई थी

लभञ्जिओथी तेभञ् शस्यक-रत्न विशेषथी सुष्ठु आकारवाणो इतो. (पसत्थ वित्थिन्न
समधुरं) ओनी धुरा (अग्रभाग) प्रशस्त इती, विस्तीर्ण इती अने सम-वक्रता रहित इती
(पुरवरं च गुत्तं) श्रेष्ठ पुरनी तेभ ओ सुरक्षित इतो. (सुकिरण तवणिज्जुत्तकलियं) अण-
होना गणामां नाभेदी राथ सुष्ठु किरणवाणा तपनीय सुवर्णनी अनेदी इती (कंकटयणि-
जुत्तकप्पणं) कंकटक-सन्नाह कवचोनी ओभां रचना यथे रही इती तात्पर्य आनु आ
प्रभाञ्जे छे के ओनी विशिष्ट शोभावृद्धि भाटे ओभा स्थान-स्थान उपर कवचो स्थापित करेला
इतां. (पहरणाणुजायं) प्रहरणोथी-अस्त्र-शस्त्र आदिकोथी परिपूरित इतो तेभके-(खेडग
कणगधणु मण्डलगवरसत्तिकौततोमरसरस य वत्तिसतोणपरिमण्डियं) ओभा खेटक-ढाले-

षि प्रसिद्धानि मण्डलाग्राः खड्गविशेषाः वरगतयः त्रिशूलानि कुन्ताः भल्ला इति प्रसि-
द्धाः तोमराः बाणविशेषाः शराणां शतानि येषु तादृशा ये द्वात्रिंशत्तृणाः भस्त्रकास्तैः
परिमण्डितो यः स तथा तम् तथा 'कणगरयणचित्त' कनकरत्नचित्रम् मृत्पर्णरत्नविशेषः
परिमण्डितम् तथा 'जुत्त' युक्तं तुर्गैरित्यग्रेण सम्बन्ध्यते तुर्गैः किं विशिष्टैरित्याह 'हली-
मुहबलागयदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिअकुंदकुडयवरसिंदुवारकंदलवरफेणणिगरहासकासप्प-
गासधवलेहिं' हलीमुखबलाकगजदन्तचन्द्रमौक्तिक 'तणसोल्लिअ' मल्लिका पुष्प कुन्दकुट-
जवरसिन्दुवारकन्दल वरफेननिकरहारकाशप्रकाशधवलैः, तत्र—हलीमुखं रुद्धिगम्यम्, बलाको
वकः गजदन्तचन्द्रौ-प्रसिद्धौ मौक्तिकम् मुक्ताफलम् 'तणसोल्लिअत्ति' मल्लिकापुष्पं कुन्दम्
श्वेतपुष्पविशेषः कुटजानि कुटजपुष्पाणि, वरसिन्दुवाराणि निर्गुण्डीपुष्पाणि कन्दलानि
कन्दलनामकवृक्षविशेषपुष्पाणि वरफेननिकरः वरफेनसमूहः हारो मुक्ताहारः काशाः
तृणविशेषास्तेषां प्रोक्तानां यः प्रकाशः उज्ज्वलता तद्वत् धवलैः धवलवर्णैः, पुनश्च
कीदृशैः 'अमरमणपवणजइणचवलसिग्घगामीहिं' अमरमनःपवनजयिचपलशीघ्रगा-
मिभिः, तत्र अमराः देवा मनांसि चित्तानि पवनो वायुः तान् वेगेन जयति इति

वर शक्ति—त्रिशूल रखे हुए थे. किन्तु—भाले रखे हुए थे, तोमर—विशेष प्रकार के बाण रखे हुए
थे, सैरुद्धो सामान्य बाण जिनमें रखे हुए है ऐसे ३२ भांथे इसमें रखे हुए थे (कणगरयणचित्त)
इसमें जो चित्रवने हुवे थे वे कनक और रत्नो द्वारा अतिरमणीय बने हुए थे. (हलीमुहबला-
गयदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिय कुंदकुडयवरसिंदुवारकदलवरफेणणिगरहासकासप्पगासधवलेहिं)
इसमें जो 'जुन' षोड्हे जुते हुए थे—वे हलीमुख, बगला, गजदन्त, चन्द्रमा—मौक्तिक, मल्लिका
पुष्प, कुन्दकुष्प, कुटजपुष्प, निर्गुण्डी पुष्प, कन्दल नामक वृक्षविशेष के पुष्प, सुन्दर फेन
का समूह, हार,—मुक्ताहार और काश—तृणविशेष इनकी जैसी—उज्ज्वलता वाले थे—अर्थात्
धवल वर्ण के थे (अमरमणपवणजइणचवलसिग्घगामीहिं) जैसी देवों की, मनकी, वायुकी,
गति होती है उस गति को भी परास्त करनेवाली इनको चपलताभरी शीघ्र गति थी. उस गति से

भूकेली इती ऋषुक-विशेष प्रकारना आणो भूकेला इती धनुष भूकेला इती, म उवात्र-विशेष
प्रकारनी तलवारो भूकेली इती वरशक्ति-त्रिशूल भूकेला इतां कुंत-लालाओ-भूकेला इता.
तोमर-विशेष प्रकारना आणो भूकेला इता सइसो सामान्य आणो नेमा भूकेला हे, अत्र
उर तृष्णीशे ओमा भूकेला इता (कणगरयणचित्त) ओमां ने चित्रे अनेला इता, ते कन्क अन
रत्ननिर्मित डोवार्थी अत्यंत रमणीय लागताइता (हलीमुहबलागदंतचंद्रमोत्तियतणसोल्लिय-
कुंदकुडयवरसिंदुवारकदलवरफेणणिगरहासकासप्पगासधवलेहिं) ओमां ने 'जुत्त' वार्थाओ
नेतरला इता, ते हलीमुख, बगला, गजदन्त, चन्द्रमा, मौक्तिक, मल्लिका पुष्प, कुन्द पुष्प,
कुटज पुष्प, निर्गुण्डी पुष्प कदल नामक वृक्षविशेषना पुष्प, सुन्दर शीघ्र समूह हार—मुक्ताहार
अने काश—तृष्ण विशेष ओ सब पदार्थो नेवा उज्ज्वलता वाणा इतां ओटले के धवलव-
र्णवाणा इता (अमरमणपवणजइण चवल सिग्घगामीहिं) नेवी देवनी, मननी, वायुनी गति
डोय छे, तेमनी गति ने पण परास्त करनारी ओमनी चपलताभरी शीघ्र गति इती, ते

अमरमनःपवनजयिनः अतएव चपलं शीघ्रम् अतिशयशीघ्रं गामिनो गमनशीलाः इति चपलशीघ्रगामिनः. अमरमनःपवनजयिनश्चते चपलशीघ्रगामिनश्चेति ते तथा तैः पुनश्च कौटुम्भैः 'चउर्हि चामरा ऋणगविभूसिअंगेहिं' चतुर्भिः चतुः संन्यातैः चामरैः तथा कनकैश्च त्रिभूषितमङ्गं येषां ते तथा तैः, अत्र चामरशब्दस्य स्त्रोत्पत्तौ आपेत्पत्तौ 'तुग्मेहिं' पतादशविशेषणविशिष्टैः तुरंगैः अश्वैः युक्तं रथमिति पूर्वमेवोक्तम्. अथ पुनारयं विशिनष्टि 'सच्छत्त' सच्छत्रम् छत्रेण सहितम् 'सज्जयं' सध्वजम् ध्वजैः सन्धितम् 'सघटं' सघण्टम् घण्टाभिः सहितम् 'सपडागं' सपताकम् पताकाभिः सहितम् 'सुकयसंधिकम्म' सुकृत-सन्धिकर्माणम् सुकृतं सुपटु निर्मितं सन्धिकर्षं सन्धियोजन यत्र स तथा तम् 'सुसमाहिय समरकणगगभीरघोसं' सुसमाहितसमरकनकगम्भीरघोषम्, तत्र-सुसमाहितः-सुपटु यथोचित स्थाननिवेशितो यः समरकणकः-संग्रामवाद्यविशेषः तस्य वीराणां वीररसोत्पादकत्वेन तुल्यो गम्भीरो घोषः गम्भीरात्मकध्वनिर्यस्य स तथा तम् 'वरकुप्परं' वरकूर्परम् वरे कूर्परो कूर्पराकारौ पिञ्जनके इति प्रसिद्धे रथावयवौ यस्य स तथा तम् 'सुचक्कं वरनेमी मंडलं' सुचक्रम् वरनेमीमण्डलम्-प्रधानचक्रधारावृत्तम् 'वरधारातोडं' वरधूस्तुण्ड वरे शोभमाने धूस्तुण्डे धून्वीकूर्वरे अवयवविशेषौ यस्य स तथा तम् 'वरवरवद्धतुंबं, तत्र-वर-

वेगपूर्वक इनके चलने का स्वभाव था (चउर्हि चामराऋणगविभूसिअंगेहिं) चार चामरो से एव कनको से इन का अंग विभूषित था, यहाँ चामर शब्द को जो—स्त्रीलिङ्ग में लिखा गया है वह आर्ष होने से लिखा गया है ऐसे विशेषणविशिष्ट घोड़ों से युक्त वह रथ था तथा (सच्छत्तं, सज्जयं, सघटं, सपडागं, सुकयसंधिकम्म, सुसमाहिय समरकणगगभीरघोसं, वरकुप्परं) यह रथ छत्र सहित था, ध्वजा सहित था, घटाओं से युक्त था, पताकाओंसे सहित था, सधियों की इसमें अच्छी तरह से योजना की गई थी जैसा घोष यथोचित स्थानविशेष में नियोजित संग्राम वाद्यविशेष का होता है उसी प्रकार का इसका गम्भीरघोष था इसके कूर्पर दोनों अवयवविशेष—बड़े सुन्दर थे (सुचक्कं वरनेमीमंडलं) सुन्दरचक्रधार वाले इसके सुन्दर दोनों (वरधारातोड) इसके युग के दोनों कोने बड़े सुन्दर थे (वरवरवद्धतुंब) इसके दोनों

गतिशील आसवानी ऐभनी टेव इती (चउर्हि चामराऋणगविभूसिअंगेहिं) चार अभशैशी तेभश्च इनकैशी ऐभना अ गो विभूषित इता अही 'आमर' यत्तने ने स्त्रीलिङ्गमां प्रयुक्त करवाभां आवेद छे, ते आर्ष होवाथी प्रयुक्त करेद छे ऐश विशेषणविशिष्ट घोडाऐथी ते रथ युक्त इतो. तथा (सच्छत्तं सज्जयं सघटं सपडागं सुकयसंधिकम्मं सुसमाहिय समरकणग गम्भीरघोसं वरकुप्परं) ऐ रथ छत्र सहित इतो, ध्वजा सहित इतो, घंटा-ऐथी युक्त इतो. पताकाऐथी सहित इतो, ऐभा सधियोंनी योजना सरसरीते करवाभां आवी इती. जेवो घोष यथोचित स्थान-विशेषमां नियोजित संग्रामवाद्यविशेषनो होथ छे, ते प्रमाणेनो ऐनो गभीर घोष इतो. ऐना कूर्परी-भन्ने अवयव विशेषो—अतीव सुन्दर इतां, (सुचक्कं वरनेमीमंडलं) सुन्दर चक्रयुक्त ऐतु नेमी मंडल इतु. (वरधारा तोडं) ऐना युगना भन्ने शूवाऐा अतीव सुन्दर इता (वरवरवद्धतुंबं) ऐना भन्ने तुंभ श्रेष्ठवत्-

वज्रवद्धतुम्बम्, वरवज्रैः-श्रेष्ठहीरकैः चद्रं तुम्बे यस्य स तथा तम् 'वरकंचणभूसियं वर-
काञ्चनभूपितम् श्रेष्ठमुष्णभूपितम् 'वरायग्यनिम्मियं' वराचार्यः प्रधानशिल्पी तेन
निर्मितः 'वरतुरगरांपउत्तं' वरतुरगसंप्रयुक्तम् वरतुरगैः श्रेष्ठैः संप्रयुक्तः युक्तः स तथा
तम् 'वरसारहिमुसंपगहियं' वरसारधिमुसंप्रगृहीतम्, वरेण-निपुणेन साग्यिना मुसंप्र-
गृहीतः स्वायत्तिकृतो यः स तथा तम् 'वरपुरिसे' इत्यादि तु पूर्वमेव योजितम् वरपु-
रूप श्रेष्ठपुरुषः सुराजा भरत उक्तं विशिष्ट रथमारूढे इति 'दुरूढे आरूढे' इत्यत्र समा-
नार्थक पदद्वयोपादानं पदसंज्ञाधिपति भरतचक्रो मुखपूर्वकम् रथमारूढ इति ज्ञापनार्थं
विज्ञेयम् उक्तमेवार्थं पुनः रथविषये ग्राह- 'पवररयणपरिमडियं' इत्यादि प्रवररत्नपरिम-
ण्डितम् उत्तमरत्नैः परिशोभितम्-युक्तम् 'कणयखिखिणीजालसोभियं' कनककिङ्किणी-
जालशोभितम् सुवर्णनिर्मितकिङ्किणीममूहभूपितम् 'अउञ्ज' अयोध्यम्-अनभिभवनीयम्
पराभवरहित पुनश्च कीदृशम् 'सोयामणि कणगतवियपंकयजासुअणजलणजलियसुअतोडरागं'
सांदामिनीकनकतप्तपङ्कजजपाकुसुमज्वलनज्वलितधुरुतुण्डरागम्, तत्र सांदामिनी
विद्युत् तप्त यत् कनक सुवर्णम् तच्चानलोत्तीर्णं रक्तवर्णं भवति पङ्कज कमलम्, तच्च सामा-
न्यतो रक्त वर्ण्यते 'जासुअण' त्ति जपाकुसुमं-रक्तवर्णविशिष्टजपाकुसुमनामकपुष्पविशेषः
'जलणजलिय त्ति' ज्वलनज्वलितः ज्वलितज्वलनः प्रदीप्ताग्निः अत्र पदव्यत्ययः प्राकृ-

तुंब श्रेष्ठ वज्ररत्न से बद्ध थे (वरकंचणभूसिय) यह श्रेष्ठ सुवर्ण से भूषित था (वरायग्यनि-
म्मियं) यह श्रेष्ठ शिल्पी के द्वारा बनाया गया था (वरतुरगसंपउत्तं) श्रेष्ठ घोड़े इसमें जुते
थे (वरसारहिमुसंपगहियं) श्रेष्ठ निपुण सारथि द्वारा यह चलाया जाता था, ऐसे इन विशेषणों
से विशिष्ट (वरमहारहं) उस श्रेष्ठ महारथ पर (वर पुरिसे) वह सुराजा छलंडके अधिपतिभरत
(दुरूढे आरूढे) बैठा यहां समानार्थक दुरूढ और आरूढ ये जो दो पद प्रयुक्त साथ २ किये
गये हैं सो वे ये प्रकट करते हैं भरत चक्री उस रथ पर सुख पूर्वक बैठा (पवररयणपरिमडियं)
यह रथ उत्तम रत्नों से शोभित था (कणयखिखिणीजालसोभियं) सुवर्ण की बनी हुई छोटी-२
घंटिकाओं से यह शोभित था (अउञ्जं) इसका कोई भी शत्रु परामव नहीं कर सकता था
(सोयामणिकणगतवियपंकयजासुअणजलणजलियसुअतोडरागं) इसकी रक्तता सांदामिनी-

रत्नथी आणद्ध इता. (वरकंचणभूसियं) ओ रथ श्रेष्ठ सुवर्णथी भूषित इतो. (वरायग्यनि-
म्मियं) ओ श्रेष्ठ शिल्पी द्वारा निर्मित इतो. (वरतुरगसंपउत्तं) श्रेष्ठ घोडाओ ओमां जोतरेल
इता. (वरसारहिमुसंपगहियं) श्रेष्ठ निपुण सारथि द्वारा ते डाकवामां आवतो इतो ओवा ओ
विशेषणोथी विशिष्ट (वरमहारहं) ते श्रेष्ठ महारथ उपर (वरपुरिसे) ते सुराण छ भ डाधिपति
भरत (दुरूढे आरूढे) सवार थयो अही समानार्थक दुइठे अने आइठे ओ ओ पदे साथे-
साथे प्रयुक्त करवामां आवेल छे, तेथी आम प्रकट थाय छे के भरतचक्री ते उपर सुअपूर्वक
थेठे (पवररयणपरिमडियं) ते रथ उत्तमरत्नोथी शोभित इतो. (कणयखिखिणीजालसोभियं)
सुवर्णनी नानी-नानी घंटिकाओथी ते सुशोभित इतो. (अउञ्जं) ओ शत्रुओथी अन्ये इतो.
(सोयामणिकणगतवियपंकयजासुअणजलणजलिय सुअतोडरागं) ओनी रक्तता सांदामिनी

तत्वात् 'सुअतोडरागं' शुकतुण्डम् शुकमुखम् एतेषां राग इव रागो रक्तता यस्य स तथा तम् 'पुनश्च कीदृशम् 'गुंजद्वबंधुजीवग रत्तहिंशुलग गिगर सिंदूररुइलकुंकुमपारेवय चरण-णयण कोइलदसनावरणरइतातिरेगरत्तासोग कणग केसुय गयताल्लसुरिंदगोवगसमप्पमप्पगासं' गुठजार्दबन्धुजीवकरत्तहिंशुलकनिकर सिन्दूररुचिरकुड्कुमपारावतचरणनयनकोकि-लदशनावरणरतिदातिरक्ताशोककनककिंशुक गजताल्ल सुरेन्द्रगोपकसमप्रभप्रकाशम्, तत्र गुठजार्दम् रक्तिकार्धरागभागः बन्धुजीवकं द्विप्रहरविकाशिरक्तपुष्पम्, रक्तः संमर्दितो हिंशुलकनिकरः सिंदूरम् प्रसिद्धम्, रुचिरं मनोह्रं चाक्यचिकथरक्ततायुक्तम् कुड्कुमम् पारावत-चरणः कपोतचरणः, नयनकोकिलः कोकिलनयनद्वयम् अत्र पदव्यत्ययः आर्पत्वात् दशनावरणम् अधरोष्ठः, रतिदो मनोहरः अतिरक्तः अधिकारुणोऽत्यन्तलालिमायुक्तोऽ-शोकः अशोकतरुः, इदृश च तथैव कनकं किंशुकं पलाशपुष्पम् तथा गजताल्ल हस्तिताल्ल सुरेन्द्रगोपको वर्षासु रक्तवर्णः क्षुद्रजन्तुः विशेषः एभिः समा-सदृशी प्रभा-छविः तथा एवंविधः प्रकाशः तेजः समूहो यस्य स तथा तम्, पुनश्च कीदृशम् । 'विम्बफलसिलप्प-वाल उट्टितसूरसरिसं' विम्बफलश्लीलप्रवाल यद्वा शिलाप्रवालोत्तिष्ठतसूरसदृशम् तत्र विम्ब-फल-प्रसिद्धम् 'सिलप्पवाल' चि अत्र अश्लील शब्द इव श्रियं लातीति श्लीलम् एवंविधं यत्प्रवालं श्लीलप्रवाल परकर्मितविद्रुमः यद्वाशिलाप्रवालं शिलाशोधितविद्रुमः तथा उत्तिष्ठत्सूरः-उद्गच्छत्सूर्यः तेषां सदृशो यः स तथा तम्, 'सन्वोउय सुरहि कुसुमभासत्त-मल्लदामं' सर्वर्तुकसुरभिकुसुमासत्तमाल्यदामानम्, तत्र सर्वर्तुकानि-पद् ऋतुभवानि यानि

विजलो, तप्त सुवर्ण-अग्नि से उसी समय निकले हुए सुवर्ण पद्मज-रक्तमल, जपाकुसुम, प्रदीप्त अग्नि और शुककी चोंच इनकी रक्तता जैसी थी (गुजद्व बंधुजीवग, रत्तहिंशुलग गिगर, सिंदूर रुहर कुकुम, पारेवयचरणयणकोइलदसनावरणरइतातिरेगरत्तासोगकणगकेसुय-गयताल्लसुरिंदगोवगसमप्पमप्पगासं) इसको छवि और तेज प्रकाश रक्तीके अर्धभाग बन्धु-जीवक-द्विप्रहरप्रकाशीरक्त पुष्प, रत्तहिंशुलक, निकर, सिन्दूर, रुचिरकुंकुम, पारावतचरण, कोकि-लनेत्र, दशना वरण-अधरोष्ठ, रतिद मनोहर, एवं अतिरक्त अशोक वृक्ष, कनक किंशुक पुष्प, गजताल्ल, एवं सुरेन्द्रगोपक -जुगनु, इन सबकी छवि और तेजः प्रकाश के जैसा था (विम्ब फल-मिलप्पवालउट्टितसूरसरिस सन्वोउयसुरहिकुसुमभासत्तमल्लदामं, उत्तिष्ठत्सूर्यः) यह रथ

विष्णुत्, तप्तसुवर्ण-अग्निभाथी तस्त य पडार काढेला सुवर्ण, पंकज-रक्त कमल, जपाकु-सुम प्रदीप्त अग्नि अने पोपटनी अंशु जेनी इती (गुजद्व बन्धुजीवग, रत्तहिंशुलगगिगर सिंदूररुहर कुकुम परिवयचरणयण कोइलदसनावरणरइतातिरेगरत्तासोगकणग केसु-यगयताल्लसुरिंदगोवगसमप्पमप्पगासं) जेनी छवि अने जेनु तेज प्रकाश रतीने अध-भाग, बन्धु लवक-द्वि प्रहर प्रकाशी रक्त पुष्प, हिंशुलक, निकर, सिद्धर, रुचिर कंक, पारावत चरण, कोकिल नेत्र, दशनावरण-अधरोष्ठ, रतिद मनोहर, अतिरक्त अशोक वृक्ष, कनक किंशुक पुष्प, गजताल्ल तेमज सुरेन्द्र गोपक अटले के अधीत जे सर्व जेनु इत्तुं. (विम्बफलसिलप्पवालउट्टितसूरसरिसं सन्वोउयसुरहिकुसुम भासत्तमल्लदामं उत्ति-

सुरभिणि कुपुमानि अग्रयिन ममुान्यपुष्पाणि मालपदानानि-ग्रयिनपुष्पाणि यत्र म
 तथा तम् 'ऊमियसेयञ्जय' उच्छ्रितश्चेतश्चजम् उच्छ्रितः ऊर्ध्वीकृतश्चेत-वजो यत्र स
 तथा तम् 'महामेहरसिय-गभीरणिद्धघोस' महामेहरसितगम्भीरस्निग्धघोषम्, महामेघस्य
 यद्रसितं -गर्जितं तद्गद गम्भीरः स्निग्धः स्नेहरसयुक्तः घोषो यस्य स तथा तम्
 'सत्तुहिययकंपणं' शत्रुहृदयकम्पनम्, शत्रुहृदयकम्पजनकम् 'पभाएय' प्रभाते च अष्टम-
 तपःपारणकं दिवसे प्रातः काले आमन्नपारितपोपध्वत्रतः सन् नरपतिः अश्वत्थं दुरूढे
 इत्यग्रे सम्बन्धः कीदृश रथम् इत्याह 'सस्मिरीय' सश्रीकं शोभायुक्तम् 'णामेणं पुहवि-
 विजयलभतिविस्सुतं' नाम्ना पृथ्वीविजयलाभमिति विश्रुत प्रसिद्धम्, रथेऽस्मिन् समारूढः'
 सन् पुरुषो भूविजय लभते इति सान्त्वथेऽयम् 'अहय' अहतम् सर्वावयवयुक्तम् 'चाउग्घटं
 चातुर्घण्टं चतस्रो घण्टा यस्य स तथा तम् 'आसरहं' अश्वरथम्, कीदृशां राजेन्याह-
 'पोसहिए' पौषधिकः आसन्नपारितपोपध्वत्रतः पुनश्च कीदृशः 'लागविस्सुतजसो' लोक-
 विश्रुतयशाः लोकविख्यातकीर्तिः 'णरवई' नरपतिः चक्री भरतः सर्वविशेषणत्रिगिष्टमश्वरथं
 दुरूढे आरूढ इति । अथ रथारोहानन्तरं भरतः किं कृतवान् इत्याह-'तएणं से' इत्यादि
 'तएणं से भरहे राया चाउग्घटं आसरहं दुरूढे समाणे सेसं तहेव' ततः खलु स भरतो राजा

विषफल कुंदरीफल, शिलाप्रवाल-परिकर्मितविद्रुम, यद्वा शिलाशोधित विद्रुम, एवं उगता हुआ सूर्य
 इनका जैसा रंग होता है वैसे ही रंग वाला था, समस्त शत्रुओं के पुष्पो के मात्राएँ इस
 पर पड़ी हुई थी, इसके ऊपर बहुत उन्नतश्चेतध्वजा फहरा रही थी (महामेहरसिय गंभीर-
 गिद्धघोस) महामेघ की गर्जना के जैसा इसका गभीर स्निग्ध घोष था, (सत्तुहिययकं-
 पणं) शत्रुजनके हृदय को यह कपकपी छुडने वाला था (पभाए अ सस्मिरीय णामेणं
 पुहविजयलभति विस्सुतं लागविस्सुतजसोऽहयचाउग्घटं आसरह पोसहिए णरवई दुरूढे,
 तएणं से भरहे राया चाउग्घटं आसरह दुरूढे सेस तहेव दाङ्गिणमुहेण वरदामतित्येणं
 लवणसमुहं ओगाहइ) प्रातः काल जबकि अष्टम (तेला) तपस्या का पारणा था और पौषधका
 पारणा किये हुए बहुत समय नहीं हुआ था ऐसा वह नरपति शोभायुक्त तथा पृथिवी—
 विजयलाम इम नाम से प्रसिद्ध एवं सर्वावयवयुक्त ऐसे उस चार घंटाओं से सहित अश्वरथ पर

असेयञ्जय) अथ णि षड्धण, कुंदरीफल, शिला प्रवाल-परिकर्मित विद्रुम, अथवा शिला-
 शोधित विद्रुम, तेभञ्ज उदित सूर्य जेवा र गवाणो इतो. समस्त शत्रुओंना पुष्पानी भाणाओ
 अथ उपर पडेली इती अथ उपर अेकहम उन्नत अेक श्चेत ध्वजा इरकी रही इती
 (महामेहरसियगम्भीरणिद्धघोस) महामेघनी गर्जना जेवा ओना स्निग्ध घोष इतो.
 (सत्तुहिययकंपण) शत्रुओंना हृदयेने ते क पावनार इतो (पभाए अ सस्मिरीयं णामेणं
 पुहविजयलभति विस्सुतं लागविस्सुतजसोऽहयचाउग्घटं आसरहं पोसहिए णरवई
 दुरूढे तएणं से भरहे राया चाउग्घटं आसरहं दुरूढे सेस तहेव दाङ्गिणामुहेणं वरदामति-
 त्येणं लवणसमुहं ओगाहइ) प्रातः समये न्यारे अष्टम तपस्यानी पारणा इती अने पौषधनी
 पारणाने पणु वधारे समय थये न इतो, जेवा समये शोभायुक्त ते नरपति पृथिवी विजय

चातुर्घण्टम् अश्वरथम् आरूढः सन् शेषं तथैवेति वचनात् 'हयगयरहपवरजोहकलियाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरपहगरवंदपरिक्खित्ते चक्ररयणदेसियमग्गे अणेग गयनर-सहस्साणुयायमग्गे महया उक्किट्ट सीहणायबोलकलकलवेणं पक्खुभिय महासमुद्रव-भूयं पिव करेमाणे' इत्यन्तं ग्राह्यम् हयगजरथप्रवरयोधकलितया सद्धिं संपरिवुतः महाविस्तारवत्समूहवृन्दपरिक्षिप्तः चक्ररत्नादेशितमार्गः अनेकराजवरसद्दस्त्राणुयात्-मार्गः महता उत्कृष्ट सिहनाद बोलकलकलरवेण प्रक्षुभितमहासमुद्रवभूतमिव कुर्वन् कुर्वन् 'दाहिणाभिमुहे वरदामतित्थेणं लवणसमुद्द ओगाहइ' दाक्षिणात्यभिमुखो वरदामतीर्णेण-व-रदामनाम्नाऽवतरणमार्गेण लवणसमुद्रमवगाहने प्रविशति कियद्दूर लवणसमुद्रमवगाहते इत्याह- 'जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला' यावत् तस्य रथवरस्य कूर्पर्सी-कूर्पराकारो रथा-वयवौ आर्द्रौ स्याताम् आर्द्रौभूतौ भवेताम् 'जाव पीइदाणं से' यावत् प्रीतिदानं तस्य वरदामतीर्थाधिपदेवस्य अत्रापि यावत् पदात् मागधदेवसाधनाधिकारोक्त प्रीतिदानपर्य-न्तं स्रजं ग्राह्यम् विलोकनीय च अत्रैव तृतीय वक्षस्कारे ६-७ सूत्रे

चढा "लोयविस्सुयजसो" यह भरतचक्री का विशेषण है और इसका अर्थ लोक में जिसका यश विख्यात है ऐसा है "पोसहिए" यह भी भरतचक्री का विशेषण है और इसका अर्थ पौष-घ्नत को पारणा किये जिसे विशेष समय नहीं हुआ है ऐसा है ।

"तएण से भरहे राया" इत्यादि- जब भरत महाराजा अश्वरथ पर बैठ चुके-तब वे "हयगयरहपवरजोहकलियाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगर पहगरवंदपरिक्खित्ते चक्र-रयणदेसियमग्गे, अणेगराजन्यवर सहस्साणुयायमग्गे, महया, उक्किट्ट सीहणाय बोलकलकलरवेणं पक्खुभिय महासमुद्रवभूयपिव करेमाणे" इस पूर्वकथित पाठ के अनुसार दक्षिणदिशा की ओर मुँह किये हुए वरदाम नाम के अवतरण मार्ग से होकर लवण समुद्र में उतरे (जाव से रह वरस्स कुप्परा उल्ला) यावत् उनके उस रथ के कूर्पराकारवाले रथावयव ही गीले हो पाये इतना दूर तक ही वे उस लवण समुद्र में गये (जाव पीइदाणं से) यावत् वहाँ पर यावत्पद से मागध

बाबा ओ नामथी प्रसिद्ध तेमभ सर्वावयव युक्त ओवा ते थार ध टाओथी भंरित रथ उपर सवार थये। "लोयविस्सुयजसो" ओ भरतचक्री भाटे प्रयुक्त विशेषणु छे. अने ओने। अर्थ छे दोकथ्यात्. 'पोसहिए' ओ पणु भरतचक्री भाटे प्रयुक्त विशेषणु छे. अने ओ विशेषणु शब्दने। अर्थ छे-ओने पौषघ्नतनी पारणु पछी अधिक समय थये। नथी 'तएण से भरहे राया' इत्यादि, नथारे ते भरत राम अधरथ उपर सवार थर्थ गये। थ्यारे तओ। (हयगयरहपवरजोहकलियाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरपहगरवंदपरिक्खित्ते चक्र-रयणदेसियमग्गे अणेगराजन्यवरसहस्साणुयायमग्गे महया उक्किट्ट सीहणाय बोलकलकलरवेण पक्खुभिय महासमुद्रवभूयपिव करेमाणे) ओ पूर्व कथित पाठ सुभ्रम दक्षिण दिशा तरङ्ग सुभ्र करीने वरदाम नामक अवतरण मार्गथी पसार थर्थने लवण समुद्रमां प्रविष्ट थया जाव से रहवरस्स कुप्परा उल्ला'यावत् तेमना रथना कूर्पराकार वाणा रथावयवो-ओ बीना थया ओटल हर सुधीलवणु सुभ्रमा गया (जाव पीइदाणं से) यावत् त्या तेमणे

'प्रीतिदानं मे' प्रीतिदानं तस्य तार्थगजदेस्य स भग्नः स्वीकरोतीतिभावः ततः स चक्रो भरतः तं देव सत्कारयति सम्मानयति प्रतिविपर्जयति च भक्तिपूर्वकं वरदामती-
 र्थाधिपदेवः भरताय किं किमर्पयति इत्याह 'णवरं चूडामणिं य दिव्यं उरत्थगेविज्जग
 सोणिअसुत्तगं कडगाणि य तुडियाणि य' मागधतीर्थाधिप देवकुमागपेक्षया नवरम्
 अय विशेषो चूडामणिं च दिव्य गनादर सर्वविपापह सर्वविपहरणकरम् शिरोभूषणविशेषम्
 सुकुट तथा उग्रथ वक्षस्थल तत्र भूषणविशेषम् ग्रैवेयकं ग्रीवाभरणं श्रोणिसूत्रकं कटिमे-
 खलाम् कंदोरा इति भाषा प्रसिद्धम् कटकानि च हस्ताभरणानि त्रुटिकानि च बाह्याभर-
 णानि च क्रियद्दूरपर्यन्तं वक्तव्यामित्याह—'जाव दाक्षिणिल्ले अंतवाले' इति यावदाक्षिणा-
 त्योऽन्तपाल इति अत्र प्रीतिदानं ददाति गजा च प्रीतिदानं स्वीकरोति वाक्यप्राभृतौ
 पदौकभरतकृततत्स्वीकरणतीर्थाधिपदेवसन्मानेन विसर्जनरथपरावृत्ति स्कन्धावारप्रत्या-
 गमन मञ्जनगृहगमनस्नानभोजनकरणश्रेणिप्रश्रेणि शब्दनादि प्रतिपादकसूत्रं वक्तव्यम्,
 मागधदेवसाधनाधिकारोक्तं सर्वं नेयमितिभावः क्रियत्पर्यन्तमित्याह—अत्र यावत्पदात् अत्र-

देव के अधिकार में कहा गया प्रीतिदान तक का सूत्रपाठ गृहीत हुआ है। इसे यहीं पर तृतीय
 वक्षस्कार के ६-७-वे सूत्र में देखलेना चाहिये। इस प्रीतिदान को स्वीकार करने के बाद
 भरत चक्रीने उस देव का सत्कार किया सम्मान किया—और फिर उसे विसर्जित कर दिया भक्ति
 पूर्वक वरदामतीर्थाधिप देव ने भरत चक्री के लिये क्या र दिया—इसे यों जानना चाहिये—
 (णवरं चूडामणिं य दिव्यं उरत्थगेविज्जग सोणिअसुत्तगं कडगाणि य तुडियाणि य) मागध-
 तीर्थाधिप देवकुमार को अपेक्षा वरदामतीर्थाधिप देवने चूडामणि, जो कि दिव्य था सर्व प्रकार
 के विषो का हरने वाला था। ऐसा शिरोभूषण दिया। वक्षःस्थल का भूषणदिया, ग्रैवेयक
 ग्रीवा का आभरण दिया, श्रेणिसूत्रक—कटिमेखला दी। कटक दिये और बाहु के आभरणदिये।
 और फिर उसने कहा कि मैं आपका यावत् दाक्षिणात्य उदन्त पालह यहां वह प्रीतिदान देता
 है। राजा उस प्रीतिदान को स्वीकार कर लेता है तो इन सब के सम्बन्ध में आगत सूत्रपाठ

वरदाम तीर्थाधिप देवतुं प्रीतिपादन स्वीकार करेले छे अहीं यावत् पहथी मागध देवना
 अधिकारमां वषिँत प्रीतिदान सुधीना सूत्रथ क संगृहीत थयेदो छे जे विषयने लगतुं वथुं न
 आ अथना तृतीय वक्षस्कारना सूत्र ६ अने ७ माथा नली वेतुं जेधये जे प्रीतिदानने
 स्वीकार कर्या पछी भरतचक्रीजे ते देवताने सकुट तेमज सम्मानित करीने पछी तेमनु विसर्जन
 करी दीधुं। वरदाम तीर्थाधिप देवे भरतचक्री माटे लक्षितपूर्वकं शु-शु आभ्यु, जे विषे स्पष्टता
 करतां सूत्रकार कहे छे—(णवरं चूडामणिय दिव्यं उरत्थगेविज्जगं सोणिअसुत्तगं कडगाणि य
 तुडियाणि य) मागधतीर्थाधिप देवकुमारनी अपेक्षा वरदामतीर्थाधिप देवे चूडामणि—के जे दिव्य
 तेमज सर्वप्रकारना विषोने हरनार हने, जेवु शिरोभूषण आभ्युं ते देवे वक्षः स्थलनु आभू-
 षणु आभ्युं। ग्रैवेयक ग्रीवानु आभरणु आभ्युं श्रेणिसूत्रक—कटिमेखला आपी। कटके आभ्या
 अने बाहुना आभरणे। आभ्या अने त्थार पाड तेथे कहुं के हु आपश्रीना यावत् दाक्षि-
 णात्य उदन्तपाल छुं अहीं ते प्रीतिदान आपे छे, राजा ते प्रीतिदानने स्वीकार करी दे छे

નિગ્રહરથસ્થાપનધનુઃપરામર્શવાગોલ્કેપ ક્રોપીત્પાદ્મોપાપનયનનિજદ્વિસાર પ્રીતિદાન
 સ્ત્રાણિ માગતીર્થદેવસ્ત્રાણિકારવદ્ વિજ્ઞેયાનિ તવર “જાવ અદ્વાહિય મહામહિમં કરેતિ”
 અઘ્તાદશ શ્રેણિપ્રશ્રેણયોઽઘ્તાહિકા મહામહિમાં કુર્વન્તિ ‘કરિત્તા’ કૃત્વા વરદામતીર્થોપિપટેસ્ય
 વિજયોપલક્ષિકામઘ્તાહિકાં મહામહિમામ્-મહાન્ મહિમા યસ્યા મા તથા તાં કુર્વન્તિ
 વિધાસ્યન્તિ વિધાય ‘પ્યમાણત્તિયં પચ્ચવ્વિપ્વિર્ણતિ’ એતાં ભરતાદિઘ્તામાજતિકાં સ્વસ્વામિભ્યો
 ભરતેભ્યઃ પ્રત્યર્પયન્તિ પરાવર્તયન્તિ તદનુ અથ પ્રભાસ તીર્થોપિપસાધનાયો વિજયાણ-
 પક્રમતે-‘તણ’ ઇત્યાદિ ‘તણં સે દિવ્વે ચક્રકરયણે વરદામતિત્થકુમારસ્સ દેવસ્સ અદ્વા-
 હિયાપ મહામહિમાપ નિવ્વત્તાપ સમાણીપ આઠહરસાલાકો પહ્ણિનિક્લમઙ’ તતઃ સ્વલ્લ
 ત્હિવ્યં ચક્રરત્ન વરદામતીર્થકુમારસ્ય દેવસ્ય અઘ્તાહિયાયાં મહામહિમાયા નિવૃત્તાયાં સત્યામ્

માગધતીર્થ કુમાર કે પ્રકરણ મેં જૈસા કહા ગયા હૈ વૈસા હી યહા પર વહ સવ કથન સમ-
 શ્લેના યાહિયે । અર્થાત્ વરદામતીર્થ કુમાદેવ ભરત ચક્રી કે લિયે શિગેમૂયણાદિક મેટ મેં દેતા
 હૈ । વહ ઉસે સ્વીકાર કર લેતા હૈ । ભરત ચક્રી ડમકા સન્માનદિ કર વિસર્જન કર દેતા હૈ ।
 ફિર વહ વઘાં સે અપને રથ કો લોટા લેતા હૈ ઓર અપને સ્કન્ધાવાર મેં આ જાતા હૈ । વહાં
 આકર વહ મજ્જન ગૂહ મેં ચલા જાતા હૈ વઘાં સ્નાન કરકે મોજન શાલા મેં આકર વહ મોજન
 સે નિવૃત્ત હોકર કે શ્રેણિપ્રશ્રેણિ જનો કો બુલગતા હૈ ઇત્યાદિ પચ કથન યહાં માગધતીર્થકુમાર
 દેવ કે પ્રકરણાનુસાર હો હૈ । (જાવ અદ્વાહિયં મહામહિમં કરેતિ) યાવત્ વે સવ શ્રેણિપ્રશ્રેણિજન
 વરદામતીર્થોપિ દેવ કે વિજયોપલક્ષ્ય મેં આઠદિન કા મહોત્સવ કરતે હૈ (કરેત્તા) ઓર યહ
 સવ કરકે ફિર વે નરેશ ભરત ચક્રો કો (પ્યમાણત્તિય પચ્ચવ્વિર્ણતિ) ડસ ક્ષી-કાર્ય હો જાને ક્ષી
 સ્વર દે દેતે હૈ (તણં સે દિવ્વે ચક્રકરયણે વરદામતિત્થકુમારસ્સ દેવસ્સ અદ્વાહિયાપ મહા-
 મહિમાપ નિવ્વત્તાપ સમાણીપ આઠહરસાલાકો પહ્ણિનિક્લમઙ) ડસ તરહ વરદામતીર્થો-
 પિદેવ કુમાર કે વિજયોપલક્ષ્ય મેં ક્રિયા ગયા વહ ૮ દિન કા મહામહોત્સવ જવ નિષ્પન્ન

તો આ સંબંધમાં આગત સૂત્રપાઠ માગધતીર્થ કુમારના પ્રકરણમાં જે પ્રમાણે કહેવામાં
 આવેલ છે એજરીતે અહીં પણ તે સર્વકથન બાણી લેણુ બાધજે. એટલે કે વરદામતીર્થ કુમાર દેવ
 ભરતચક્રી માટે શિરોભૂષણાદિક ઉપહારના રૂપમાં આપે છે તે ઉપહાર ભરતચક્રી સ્વીકાર કરી
 લે છે ભરતચક્રી તે દેવણું સન્માન આહિ કરીને વિસર્જન કરી દે છે ત્યાર બાદ તે ત્યાંથી
 પોતાનો રથ યાછે વાળે છે અને પોતાના સ્કન્ધાવારમાં આવી બાધ છે. ત્યાં આવીને તે
 મજ્જનશાળામાં જનો રહે છે ત્યાં સ્નાન કરીને લોબનશાળામાં આવીને તે લોબનથી
 નિવૃત્ત થઈને શ્રેણિ-પ્રશ્રેણિ જનોને યોગાવે છે ઇત્યાદિ સર્વકથન અહીં માગધતીર્થકુમાર
 દેવ ના પ્રકરણુ સુખ જ છે. (જાવ અદ્વાહિયં મહામહિમં કરેતિ) યાવત્ તે સર્વ શ્રેણિ-
 પ્રશ્રેણુ જનો વરદામતીર્થોપિ દેવના વિજયોપલક્ષ્યમાં આઠ દિવસનો મહોત્સવ કરે છે
 (કરિત્તા) અને મહોત્સવણું આયોજન સંપૂર્ણ કરીને પછી તેઓ પોતાના નરેશ ભરતચક્રીને
 (પ્યમાણત્તિય પચ્ચવ્વિર્ણતિ) એ બાબતની બાધ કરે છે. (તણં સે દિવ્વે ચક્રકરયણે
 વરદામતિત્થકુમારસ્સ દેવસ્સ અદ્વાહિયાપ મહામહિમાપ નિવ્વત્તાપ સમાણીપ આઠહરસાલા-

आयुधगृहशाळान्तः प्रतिनिष्क्रामति 'पड्डिणिकस्त्रमिच्छा' प्रतिनिष्क्रम्य 'अंतलिक्खपड्डिवण्णे जाव पुरंते चेव अंबरतल उत्तरपच्चत्थिमं दिंसि पमासतित्थाभिमुहे पयाएयावि होत्था' अंतरिक्षप्रतिपन्नं गगनगतं यावन् दिव्यत्रुटित्वाद्यविशेषणशब्दमन्निनादेन अम्बरतल पूर्यदिव उत्तरपाश्चात्याम् उत्तरपश्चिमां वायवी दिशं प्रभासतीर्थाभिमुखं प्रयात चाप्यभवत्, अत्र शुद्धदक्षिणवर्त्तिनो वरदामतीर्थतः शुद्धपश्चिमवर्त्तिनि प्रभासे गमनाय इत्थमेव पथः सरलत्वात्, अन्यथा वरदामतः पश्चिमागमने अनुवारिधिवेळं गमनेन प्रभासतीर्थ-प्राप्तिः दूरेण स्यात् इति, प्रभासनाम तीर्थं यत्र सिन्धुनदी समुद्रं प्रविशति, 'तएण से भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयणं जाव उत्तरपच्चत्थिमं दिंसि तहेव जाव पच्चत्थिमदिसा-भिमुहे पमासतित्थेणं लवणसमुद्धं ओगाहेइ' ततः खलु स भरतो गजा तद्विव्य चक्ररत्नं यावदुत्तरपाश्चात्याम् उत्तरपश्चिमां वायवीं दिशं प्रभासतीर्थाभिमुखं प्रयात प्रयाणं कुर्वन्तं पश्यतीति यावत्पदाद् बोध्यम् यत्र यवत्पदात् 'पासड' इत्यारभ्य पूर्ववत्सर्वं ग्राह्यम्

हो चुकता है—तब वह दिव्य चक्ररत्न आयुधगृह शाळा से बाहर निकलता है। (पड्डिणिकस्त्रमिच्छा अंतलिक्खपड्डिवण्णे जाव पुरंते चेव अंबरतलं उत्तर पच्चत्थिमं दिंसि पमासतित्थाभिमुहे पयाए यावि होत्था) वहां से बाहर निकल कर वह आकाश तल में यावत् रहता हुआ ही दिव्य त्रुटित वाद्यविशेष के शब्द सन्निनाद से अम्बर तल को भरतार सा उत्तर पाश्चात्यदिशा की ओर अर्थात् वायव्यदिशा में रहे हुए प्रभासतीर्थ की ओर चलने लगता है। क्योंकि वहां से यहां आनेका यही सीधा सरल रास्ता है। अन्यथा वरदामतीर्थ से पश्चिमागमन में यदि समुद्र की वेला से होकर प्रभासतीर्थ में जाया जावे तो इससे प्रभासतीर्थ बहुत दूर पड़ जाता है। यह प्रभासतीर्थ जहां सिन्धु नदी समुद्र में प्रवेश करती है वहीं पर है। (तएण से भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयणं जाव उत्तरपच्चत्थिमं दिंसि तहेव जाव पच्चत्थिमदिसाभिमुहे पमासतित्थेण लवणसमुद्धं ओगाहेइ) इसके बाद वह भरतचक्री जब अपने दिव्य चक्ररत्न को उत्तर पाश्चात्य-

लाओ पड्डिणिक इ) आ प्रभासे वरदाम तीर्थाधिपति हेव कुमारना विअथे। पड्डिणिकस्त्रमिच्छां प्रारब्ध इहंवांमां आवेत्ते ते आठ दिवसने। मडोत्सव समाप्त थये त्थारे ते दिव्य चक्ररत्न आयुध गृहशाळामाथी षडार नीकणे छे (पड्डिणिकस्त्रमिच्छा अंतलिक्खपड्डिवण्णे जाव पुरंते चेव अंबरतलं उत्तरपच्चत्थिमं दिंसि पमासतित्थाभिमुहे पयाए याविहोत्था) त्यांथी षडार नीकणीने ते आकाशतलमां यावत् स्थित रहीने अ दिव्य त्रुटित वाद्यविशेषना शब्द सन्निनादथी अम्बर तलने सम्पूरित करतुं उत्तर पाश्चात्यदिशा तरश् ओटले के वायव्य दिशा तरश् आवेला प्रभासतीर्थ तरश् आलवा लागे छे, केमके अर्द्धीथी त्या पडोअवाने सीधा-सरल रस्ते ओअ छे जे वरदामतीर्थथी पश्चिमागमनमा समुद्र-वेला उपर धरने प्रभास-नीर्थ तरश् प्रयाण करवामा आवे तो अथी प्रभासतीर्थ परांस इर थर पडे छे आ प्रभा-सतीर्थ अथा सिन्धु नदी समुद्रमा प्रवेशे छे त्यां अ छे (तएण से भरहे राया त दिव्वं चक्ररयणं जाव उत्तरपच्चत्थिमं दिंसि तहेव जाव पच्चत्थिमदिसाभिमुहे पमासतित्थेणं लवण-समुद्धं ओगाहेइ) त्थार भाड ते भरतचक्री अथारे पोताना दिव्य चक्ररत्नने उत्तर पाश्चात्यदिशा-

तथैव पूर्वोक्तानुसारेणैव यावत् पश्चिमदिशाभिमुखं प्रभासतीर्थेण लवणसमुद्रमवगाहते—
 प्रविशति 'ओगाहिता' अवगाह्य कियत्पर्यन्तमवगाहते इत्याह 'जाव से रहवरस्स कुप्परा
 उल्ला' यावत्तस्य रथवरस्य कूर्परौ कूर्पराकाररथावयवविशेषौ आर्द्रौ स्याताम् जातौ कियत्
 पर्यन्तं वक्तव्यमित्याह 'जाव पीइदाणं' प्रीतिदानपर्यन्तं मागधदेवसाधनाधिकारोक्तं सूत्रं
 ग्राह्यम् 'से' प्रभासतीर्थाधिपदेवस्य प्रीतिदानं चक्री भरतः स्वीकरोतीतिभावः पूर्ववत् सर्व
 ग्राह्यम् परन्तु प्रीतिदानम् 'णवरं वरदामतीर्थाधिपदेवापेक्षया अयं विशेषः तमेव दर्शयति—
 'मालं मउडिं मुत्ताजालं हेमजालं कडगाणिय तुडियाणि ओभरणाणिय सरं च णामा-
 हयंके पभासतित्थोदगं च गिण्हइ' तत्र 'मालं' मालां—रत्नमालाम् 'मउडिं' मुकुटम्
 'मुत्ताजालं' मुक्ताजालं दिव्यमौक्तिकम् 'हेमजालं' कनकराशिमम्, कटकानि च हस्ताभरणानि,
 त्रुटिकानि च—बाहाभरणानि नामाहताङ्कं शरं च प्रभासतीर्थोदकं च गृह्णाति 'गिण्हिता'
 गृहीत्वा 'जाव पच्चत्थिमेणं पभासतित्थमेराए' यावत् पाथात्ये पश्चिमदिग्भागे प्रभास-

दिशा—वायवीविदिशा की ओर प्रभासतीर्थ की तरफ जाता हुआ देखता है—तो वह पहिले जैसा
 कहा जा चुका है उसी तरह से सब कार्य करता है और पश्चिमदिशाकी ओर सम्मुख होकर
 वह प्रभासतीर्थ से लवण समुद्र में प्रवेश करता है। (ओगाहिता जाव से रहवरस्स कुप्परा
 उल्ला) वहां वह इतनी ही दूर जाता है कि जिससे उसके रथ के कूर्पराकार वाले अवयवही
 गोले हो पाते हैं। (जाव पीइदाणं से णवरं मालं मउडिं मुत्ताजालं हेमजालं कडगाणिय अ तुडि-
 आणिय ओभरणाणि अ सरं च णामाहयंके पभासतित्थोदगं च गिण्हइ) वहां पहुँच कर वह अपने
 घोड़ों को ठहरा लेता है और रथ को खड़ा कर लेता है रथ के खड़ा होते ही वह धनुष को
 हाथ में लेकर उस पर बाण का आरोपण करता है। और फिर उसे छोड़ता है वह बाण
 प्रभासतीर्थाधिप देव के भुवन में जाकर पड़ता है। प्रभासतीर्थाधिप देव कुमार को भवन में
 खड़े हुए बाण को देख कर क्रोध जगता है। जब उसका क्रोध शान्त हो जाता है तब वह अपनी
 ऋद्धि के अनुसार भरत चक्रों के पास आकर उनको शरण स्वीकार करलेता है और इस उप-

वायवी विदिशा तरश् ओटवे के प्रभासतीर्थ तरश् प्रभाषु कस्तु गुवे छे त्थारे पडेवां कहुं
 छे ते प्रभाषु अ ते सर्वकार्यं सम्पन्न करे छे अने पश्चिम दिशा तरश् सम्भुष थधने ते
 प्रभासतीर्थथी लवण समुद्रमा प्रवेश करे छे (ओगाहिता जाव से रहवरस्स कुप्पराउल्ला)
 त्यां ते ओटवे इर सुधी गमन करे छे के ओथी तेना रथना कूर्पराकारवाणा अवथवे अ भीना
 थधं शके छे (जाव पीइदाणं से णवरं मालं मउडिं मुत्ताजालं हेमजालं कडगाणिय
 अ तुडिआणिय ओभरणाणि अ सरं च णामाहयंके पभासतित्थोदगं च गिण्हइ) त्यां पडेवा-
 नीने ते पोताना बोडाओने थोभावे उ अने रथने ओलो राथ्यो रथ ओलो राथीने तरत्त
 च ने पोताना हाथमा धनुष ले छे अने ने धनुष उपर आषुन आरे। थु करे छे अने
 त्थारे भाह भाषु लक्ष्य तरश् छोडे छे ते भाषु प्रभासतीर्थाधिपदेवकुमारना भवनमा पडे छे,
 पोताना भवनमा पडेवा भाषुने लेधने ते कथित थधं जय छे त्थारे तेना क्रोध शान्त
 थधं जय छे त्थारे ते पोतानी ऋद्धि मुअण अस्तथकीनी पासे आवीने तेभवं शरथु स्वीकारे

तीर्थमर्यादया 'अहृणं देवाणुप्पियाणं विसयवासी जाव पच्चत्थिमिल्ले अंतवाळे' अहं खलु देवानुप्रियाणां पाश्चात्योऽन्तपालः 'सेसं तहेव जाव अट्टाहिया निव्वत्ता शेपम् उक्ता-तिरिक्तं प्रीतिदानोपहोकेन स्वीकरणमुरसन्मानन विसर्जनादि तथैव मागधतीर्थाधिपमुरा-धिकार इव वक्तव्य यावत् अष्टाहिका निवृत्ता ॥सू० १०॥

अथ सिन्धुदेवी साधनाधिकारमाह—'तएणं से' इत्यादि ।

मूलम्— तएणं से दिव्वे चक्करयणे पभासतित्थकुमारस्स देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ प-डिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जाव पूरंते चेव अंवस्तलं सिंधूए महा-णईए दाहिणिल्लेणं कूलं पुरच्छिमं दिसिं सिंधुदेवीभवणाभिमुहे पयाते यावि होत्था । तएणं स भरहे राया तं दिव्व चक्करयणं सिंधूए महाणईए

लक्ष्य में वह उनके लिये प्रीतिदान देता है । इस प्रीतिदान में वह जैसा पहिले कहा गया है वह (से णवरं मालं मउडिं मुत्ताजाल हेमजाल कडगाणि य तुडियाणि य आभरणाणि य सरंच) इत्यादि सूत्र द्वारा प्रकट कर दिया गया है—प्रीतिदान में उसने रत्न माला मुकुट, दिव्य मौक्तिक कनकराशि—कटक हस्ताभरण त्रुटिक बाह्याभरण, नामाङ्कित बाण और प्रभास तीर्थ का जलदिया (गिण्हत्ता जाव पच्चत्थिमेणं पभासतित्थमेराए अहृणं देवाणुप्पियाणं विसयवासी जाव पच्च-त्थिमिल्ले अंतवाळे सेसं तहेव जाव अट्टाहिया निव्वत्ता) भरतचक्री ने इस प्रीतिदान को स्वीकार करलिया । फिर उसने उसका सन्मान सत्कार किया और बाद में उसे विसर्जित करदिया बाद में भरत चक्री वहां से अपने रथ को लौटाकर जहां अपनी सेना का पड़ाव हुआ था वहा आगया । इत्यादि सब कथन जैसा मागधतीर्थाधिप देव के प्रकरण में लिखा जा चुका है । वैसा ही यहां पर कह लेना चाहिये यावत् अष्ट दिवस का महोत्सव समाप्त होगया ॥१०॥

छे अने छे उपलक्ष्यमां ते तेभना भाटे प्रीतिदान आपे छे छे प्रीतिदानमां नेभ पडेत्ता कडेवाभां आ०युं छे भधुं (से णवर मालं मउडिं मुत्ताजाल हेमजाल कडगाणिय तुडियाणि य आभरणाणि य सरंच) एत्यादि सूत्र वडे प्रकट करवाभां आवेत्ता छे. प्रीतिदानमां तेष्से रत्नभाणा मुकुट दिव्य मौक्तिक कनकराशि कटक हस्ताभरण त्रुटिक—भाहु आभरण नामाङ्कित भ.धु अने प्रभासतीर्थंनु न्ण अने सव'वस्तुओ आपी. (गिण्हत्ता जाव पच्चत्थिमेणं पभास तित्थमेराए अहृणं देवाणुप्पियाणं विसयवासी पच्चत्थिमिल्ले अन्तवाळे सेसं तहेव अट्टाहिया निव्वत्ता) भरतचक्री अने प्रीतिदानने स्वीकार कर्ये पछी तेष्से तेनुं सन्मान कथुं तेने सत्कार कर्ये अने पछी तेनुं विसर्जन कथुं त्थार भाह भरतचक्री त्थार्थी पोताना रथने पाछे वाणीने न्यां सेनाने पडाव हतें त्यां आ०ये एत्यादि सव' कथन नेषुं माग-धतीर्थदेवना प्रकरणमां रूपट करवाभा आ०यु छे तेनुं न अत्रे नष्ठी देषुं नेधंओ यावत् भाह दिवसने भडोत्सव समाप्त थये. ॥१०॥

दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिंसिं सिंधुदेवीभवणाभिमुहं पयात् पा-
 सइ, पासित्ता हट्टतुट्ट चित्त तहेव जाव जेणेव सिंधूए देवीए भवणं तेणे
 व उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिंधूए देवीए भवनस्स अदूगसामंते दुवाल-
 जोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं वरनगरसरिच्छं विजयखंधावारणिवेसं
 करेइ जाव सिंधुदेवीए अट्टमभत्तं पगिण्हइ पगिण्हित्ता पोसहसालाए
 पोसहिए बंभयारी जाव दब्भसंधारोवगए अट्टमभत्तिए सिंधुदेविं मणसि
 करेमाणे चिट्ठइ । तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि
 सिंधूए देवीए आसणं चलइ, तएणं सा सिंधुदेवी आमणं चलियं पासइ
 पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भरहं रायं ओहिणा आभोएइ, आभोए
 त्ता इमे एआरूवे अब्भत्थिए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पं समुप्पज्जि
 तथा उप्पण्णे खलु भो जंबुद्वीवेदीवे भरहे वासे भरहे णामं गया चाउरंत
 चक्करवट्ठी. तं जीयमेयं तोअ पच्चुप्पणमणागयाणं सिंधूणं देवीणं भर
 हाणं राईणं उवत्थाणियं करेत्तए, तं गच्छामिं णं अहंपि भरहस्स रण्णा
 उवत्थाणियं करोमिं त्ति कट्ठ कुंभट्टसहस्सं रयणचित्तं णाणामणि कणगर-
 यणभत्तिचित्ताणि य दुवे कणगभद्दासणाणि य कडगाणि य तुडियाणि
 य जाव आभरणाणि य गेण्हइ गेण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव एवं वयासी
 अभिजिएणं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे अहण्णं देवाणु-
 प्पियाणं विसयवासिणी अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्तिकिकरी तं पडि-
 च्छंतु णं देवाणुप्पिया ! मम इमं एयारूवं पीइदाणं तिकट्ठ कुंभट्टसहस्सं
 रयणचित्तं णाणामणि कणग कडगाणि य जाव सो चैव गमो जाव पडि-
 विसज्जेइ तएणं से भरहे गया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्ख-
 मित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता ण्हाए कयवलि-
 कम्मे जाव जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 भोयणमंडवंसि सुहासवरगए अट्टमभत्तं परियादियइ परियादिएत्ता जाव
 सोहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ णिसीएत्ता अट्टारससेणि प्पसे-
 णीओ सहावेइ सइवित्ता जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तिं
 पच्चप्पिणंति ॥सू० ११॥

छाया—तत खलु तद् दिव्य चक्ररत्न प्रभासतीर्थकुमारस्य अष्टादिकायां महामहि-
मायां निवृत्ताया मयायाम् आयुधगृहशालान् प्रतिनिष्कामति, प्रतिनिष्काम्य यावत् पर्यदिव
अश्वरत्नं सिन्धुवा महानद्या दक्षिणात्येन कूलेन पौरस्त्यां दिशं सिन्धुदेवी भवनाभिमुखं
प्रयातं चाप्यभवत् । तत खलु स भरतो राजा तद्विषयं चक्ररत्नं सिन्धुवा महानद्या दक्षि-
णात्येन कूलेन पौरस्त्या दिशं सिन्धुदेवी भवनाभिमुखं प्रयातं पश्यति, दृष्ट्वा दृष्टुष्ट चित्त
तथैव यावत् यत्र सिन्धुवा देव्या भवनं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य सिन्धुवाः देव्याः
भवनस्य अदूरसामन्ते द्वादश योजनयामं नद्ययोजनविस्तराणं वरनगरसदृशम् विजयकन्धावार-
निवेशं करोति यावत् सिन्धुदेव्या अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति, प्रगृह्य पौषधशालाया पोषधिको
ब्रह्मचारी यावद् दर्भसंस्तारकोपगतं अष्टमभक्तिकं सिन्धुदेवीं मनसि कुर्वन् तिष्ठति ।
ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञोऽष्टमभक्ते परिणमति सिन्धुवा देव्या आसनं चलितं,
ततः खलु सा सिन्धु देवी आसनं चलितं पश्यति, दृष्ट्वा अर्घ्यं प्रयुनक्ति, प्रयुज्य भरत
राजानम् अवधिना आभोगयति, अथमेतद्रूपं आध्यात्मिकश्चिन्तितं प्राथिनो मनोगतं सङ्कल्प-
समुदपद्यत, उत्पन्नः खलु भो जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे भरतो नाम राजा चातुर्वन्तचक्रवर्ती
तज्जीतमेतत् अनीतवर्तमानानागतानां सिन्धुगां देवीनां भरता राजाम् उपस्थानिकं
कर्तुम्, तद्गच्छामि खलु अहमपि भरतस्य राज्ञ उपस्थानिकं करोमीति कृत्वा कुम्भाष्टमद्वय-
रत्नचित्रं नानामणिकनकरत्ने च छे कनकभद्रासने च कटकानि च वृट्टिकानि च यावत्
आभरणानि च गृह्णाति, गृहीत्वा तया उत्कृष्टया यावत् अभिजितं खलु देवानुप्रियैः केव-
लकल्पे भरत वर्षम् अहं खलु देवानुप्रियाणां विषयवार्सिणी, अहं खलु देवानुप्रियाणाम् आश्र-
यति किङ्करी तन्प्रतीच्छन्तु खलु देवानुप्रियाः । ममेकम् पतद्रूपं प्रीतिदानमिति कृत्वा कुम्भा-
ष्टसहस्रं रत्नचित्रं नानामणिकनक कटकानि च यावत् स पव गमः यावत् प्रनिविसर्जयति,
ततः खलु स भरतो राजा पौषधशालात प्रतिनिष्कामति, प्रतिनिष्काम्य यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैव
उपागच्छति, उपागत्य स्नात कृतबलिकर्मा यावत् यत्रैव भोजनमण्डपस्तत्रैव उपागच्छति,
उपागत्य भोजनमण्डपे सुखासनवरगतं अष्टमभक्तं यावत् सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखो
निषीदति निषद्य अष्टादशश्रेणीप्रश्रेणी शब्दयति, शब्दयित्वा यावद् अष्टादिकायां महामहि-
मायां तामाश्रयित्वा प्रत्यर्पयन्ति ॥ सू० ११॥

टीका— “तएणं से” इत्यादि । ‘तएणसे दिव्ये चक्ररयणे प्रभासतित्थकुमार-
देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडि-

सिन्धु देवी साधनाधिकार कथन—

‘तएण से दिव्ये चक्ररयणे प्रभासतित्थकुमारस्स’ इत्यादि सूत्र ॥११॥

टीकार्थ— इस प्रकार से वह दिव्य चक्ररत्न प्रभासतीर्थ कुमार के विजयोपलक्ष्य में क्रिये
आठ दिन तक के महामहोत्सव समाप्त हो जाने पर (आउहघरसालाओ पडिणिव्वमइ) आयु

सिन्धुदेवी साधनाधिकार कथन

‘त एण से दिव्ये चक्ररयणे प्रभासतित्थकुमारस्स’ इत्यादि सूत्र—॥११॥

टीकार्थ—आ प्रभासे ते दिव्य चक्ररत्न प्रभासतीर्थकुमारना विषयोपलक्ष्यमां आयो (त
आठ दिवसनेो मडोत्सव समाप्त थर्थ गथो त्यारे (आउहघरसालाओ पडिणिव्वमइ) आयुध

दाहिणिल्लेणं कूल्लेणं पुरत्थिमं दिमिं सिंधुदेवीभवणाभिमुहं पयात् पा-
 सइ, पासित्ता हट्टतुट्ट चित्त तहेव जाव जेणेव सिंधूए देवीए भवणं तेणे
 व उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिंधूए देवीए भवनस्स अद्दसामंते दुवाल-
 जोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं वरनगरसरिच्छं विजयखंधावारणिवेसं
 करेइ जाव सिंधुदेवीए अट्टमभत्तं पगिण्हइ पगिण्हित्ता पोसहसालाए
 पोसहिए बंभयारी जाव दब्भसंथारोवगए अट्टमभत्तिए सिंधुदेविं मणसि
 करेमाणे विट्टइ । तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि
 सिंधूए देवीए आसणं चलइ, तएणं सा सिंधुदेवी आमणं चलयं पासइ
 पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भरहं रायं ओहिणा आभोएइ, आभोए
 त्ता इमे एआरूवे अब्भत्थिए चित्तिए पत्थिए मणोगए संकप्पं समुप्पज्जि
 तथा उप्पण्णे खलु भो जंबुद्वीवेदीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंत
 चक्करवट्ठी. तं जीयमेयं तोअ पच्चुप्पणमणागयाणं सिंधूणं देवीणं भर
 हाणं राईणं उवत्थाणियं करेत्तए, तं गच्छामि णं अहंपि भरहस्स रण्णा
 उवत्थाणियं करोमि त्ति कट्टु कुंभट्टसहस्सं रयणचित्तं णाणामणि कणगर-
 यणभत्तिचित्ताणि य दुवे कणगभद्दासणाणि य कडगाणि य तुडियाणि
 य जाव आभरणाणि य गेण्हइ गेण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव एवं वयासी
 अभिजिएणं देवाणुप्पिएहिं केवलकप्पे भरहे वासे अहण्णं देवाणु-
 प्पियाणं विसयवासिणी अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्तिकिकरी तं पडि-
 च्छंतु णं देवाणुप्पिया ! मम इमं एआरूवं पीइदाणं तिकट्टु कुंभट्टसहस्सं
 रयणचित्तं णाणामणि कणग कडगाणि य जाव सो चेव गमो जाव पडि-
 विसज्जेइ तएणं से भरहे राया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्ख-
 मित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता प्हाए कयवलि-
 कम्मे जाव जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता
 भोयणमंडवंसि सुहासवरगए अट्टमभत्तं परियादियइ परियादिएत्ता जाव
 सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ णिसीएत्ता अट्टारससेणि प्पसे-
 णीओ सद्दावेइ सद्दवित्ता जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तियं
 पच्चप्पिणंति ॥सू० ११॥

छाया—तत खलु तद् दिव्य चक्ररत्न प्रभासतीर्थकुमारस्य अष्टादिकायां महामहि-
मायां निवृत्ताया मन्त्र्याम् आयुत्रगृहशालान प्रतिनिष्कामति, प्रतिनिष्काम्य यावत् पर्यदिव
अम्बरतले सिन्ध्या महानया दक्षिणात्येन कृत्वेन पौरस्त्या दिशं सिन्धुदेवी भवनाभिमुखं
प्रयातं चाप्यभवत् । तत खलु स भरतो राजा तद्विषयं चक्ररत्न सिन्ध्या महानया दक्षि-
णात्येन कृत्वेन पौरस्त्या दिशं सिन्धुदेवी भवनाभिमुखं प्रयातं पश्यति, दृष्ट्वा दृष्टुष्ट चित्त
तथैव यावत् यत्र सिन्ध्या देव्या भवन तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य सिन्ध्याः देव्याः
भवनस्य अदूरसामन्ते द्वादश योजनयामं नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशम् विजयकन्धावार-
निवेशं करोति यावत् सिन्धुदेव्या अष्टमभक्त प्रगृह्णानि, प्रगृह्य पौषधशालाया पौषधिको
ब्रह्मचारी यावद् दर्भसंस्तारकोपगत अष्टमभक्तिक सिन्धुदेवीं मनसि कुर्वन् निष्ठति ।
ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञोऽष्टमभक्ते परिणमति सिन्ध्या देव्या आसनं चलितं,
ततः खलु सा सिन्धु देवी आसन चलितं पश्यति, दृष्ट्वा अगधि प्रयुनक्ति, प्रयुज्य भरत
राजानम् अवधिना आभोगयति, अयमेतद्रूपं आध्यात्मिकश्चिन्तित प्राथिनो मनोगत सङ्कल्प-
समुदपद्यत, उत्पन्नः खलु भो जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्ष भरतो नाम राजा चातुःस्तचक्रवर्ती
तज्जीतमेतत् अतीतवर्तमानानागतानां सिन्धूनां देवीनां भरता राजाम् उपस्थानिकं
कर्तुम्, तद्गच्छामि खलु अहमपि भरतस्य राज उपस्थानिकं करोमीति कृत्वा कुम्भाष्टसदृश
रत्नचित्रं नानामणिकनकरत्ने च छे कनकभद्रासने च कटकानि च वृष्टिकानि च यावत्
आभरणानि च गृह्णाति, गृहीत्वा तया उत्कृष्टया यावत् अभिजितं खलु देवानुप्रियैः केव-
लकल्पं भरत वर्षम् अहं खलु देवानुप्रियाणां विपयवासिणी, अहं खलु देवानुप्रियाणाम् आह-
प्ति किङ्करी तन्प्रतीच्छन्तु खलु देवानुप्रियाः । ममेकम् पतद्रूपं प्रीतिदानमिति कृत्वा कुम्भा-
ष्टसदृशं रत्नचित्रं नानामणिकनक कटकानि च यावत् स पव गमः यावत् प्रनिविसर्जयति,
ततः खलु स भरतो राजा पौषधशालात प्रतिनिष्कामति, प्रतिनिष्काम्य यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैव
उपागच्छति, उपागत्य स्नात- कृतबलिकर्मा यावत् यत्रैव भोजनमण्डपस्तत्रैव उपागच्छति,
उपागत्य भोजनमण्डपे सुखासनवरगत अष्टमभक्तं यावत् सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखो
निषीदति निषद्य अष्टादशश्रेणीप्रश्रेणी शब्दयति, शब्दयित्वा यावद् अष्टादिकायां महामहि-
मायां तामाह्वयित्वा प्रत्यर्पयन्ति ॥ सू० ११॥

टीका— “तएणं से” इत्यादि । ‘तएणसे दिव्ये चक्ररयणे प्रभासतित्थकुमार-
स्स देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडि-

सिन्धु देवी साधनाधिकार कथन—

‘तएणं से दिव्ये चक्ररयणे प्रभासतित्थकुमारस्स’ इत्यादि सूत्र ॥११॥

टीकार्थ— इस प्रकार से वह दिव्य चक्ररत्न प्रभासतीर्थ कुमार के विजयोपलक्ष्य में क्रिये
आठ दिन तक के महामहोत्सव समाप्त हो जाने पर (आठहघरसालाओ पडिणिकसमइ) आयु

सिन्धुदेवी साधनाधिकार कथन

‘त एण से दिव्ये चक्ररयणे प्रभासतित्थकुमारस्स’ इत्यादि सूत्र—॥११॥
टीकार्थ—आ प्रभासे ते दिव्य चक्ररत्न प्रभासतीर्थ कुमारना सिन्धुपलक्ष्यमां आयो (आठ
आठ दिवसने भडोत्सव समाप्त थधं गथो यारे (आठहघरसालाओ पडिणिकसमइ) आयुध

णिक्खमइ' ततः खलु तद्विष्य चक्ररत्नं प्रभासतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टादिकायां अष्ट-
दिवसावसानं यस्या सा ताम् महामहिमायां निवृत्ताया सत्याम् आयुष्यगृहज्ञान्यातः प्रतिनिष्क्रा-
मति निर्गच्छति 'पडिणिक्खमित्ता' प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य 'जाव पूरेंते चैव अंवरतलं'
यावत् दिव्यत्रुटित नामकवाधविशेषशब्दसन्निनादेन अम्बरतल गगनतल पूर्यदिव 'सिंधूए
महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिस्सि सिंधुदेवी भवणाभिमुखे पयाते यावि
होत्था' सिन्ध्वाः महानद्याः दक्षिणात्येन दक्षिणेन कूलेन पौरस्त्या पूर्वा दिशम् सिन्धु-
देवी भवनाभिमुखं प्रयात चाप्यभवत्, अयं विशेषः पूर्वी दिशमित्यत्र पश्चिमदिग्घूर्तिनः
प्रभासतीर्थत आगच्छन् वैताढ्यगिरिकुमारदेव सिसाधयिपया तद्वासकृताभिमुखं जिग्मीपुः
प्रथमतः अनुपूर्वमेव याति स तच्च दिग्विभागज्ञानं नरुराहति भाषा प्रसिद्धं जम्बूद्वीप-
प्रकाशकपत्रे द्रष्टव्यम् ततः सुतरां ज्ञानं भविष्यति सिन्धुदेवी गृहामिमुखं च चक्र-
रत्नं प्रयातम् ननु सिन्धुदेवी भवनम् अत्रैव सूत्रे उत्तरभरतार्द्धमध्यखण्डे सिन्धु-
कुण्डे सिन्धुद्वीपे वक्ष्यते तत्कथमत्र तत्सम्भव इति चेन्न महर्द्धिकदेवीना मूलस्था-

धगृह शाला से बाहर निकला (पडिणिक्खमित्ता जाव पूरेंते चैव अंवरतल सिंधूए महाणईए
दाहिणिल्लेणं कूलेण पुरत्थिमं दिस्सि सिंधुदेवी भवणाभिमुखे पयाए यावि होत्था) निकल कर वह
यावत्— दिव्यत्रुटित नामक वाधविशेष के शब्द सन्निनाद द्वारा गगन तल को भरता भरता
सा सिन्धु महानदी के दक्षिण कूल से होता हुआ पूर्वदिशामें सिन्धुदेवी के भवन की ओर चला ।
“पूर्वदिशामें” जो ऐसा कहा है सो उसका तात्पर्य ऐसा है कि पश्चिमदिग्घूर्ती प्रभास तीर्थ
से आता हुआ भरतचक्रो वैताढ्यगिरि कुमार देव को वश करने की इच्छा से उसके वासभूत
कूट की तरफ जाने का अभिलाषी होता है । सो पहिले उसे पूर्वदिशा में ही जाना होता है ।
यह दिग्विभागका ज्ञान जम्बूद्वीप के नक्षो से अच्छी तरह हो जाता है । सिंधुदेवी के घर की
तरफ चक्ररत्न चला ऐसा जो यहां कहा गया है सो सिन्धुदेवी के भवन का कथन तो इसी
सूत्र में उत्तर भरतार्ध के मध्यम खण्डार्ध सिन्धु कुण्ड में सिन्धुद्वीप में कहा जावेगा तो फिर

गृहशाणाभाथी षडार नीकण्यु. (पडिणिक्खमित्ता जाव पूरेंते चैव अंवरतल सिंधूए
महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेण पुरत्थिमं दिस्सि सिंधु देवी भवणाभिमुखे पयाए याविहोत्था)
नीकणीने ते यावत् दिव्य त्रुटित नामक वाधविशेषना शब्द सन्निनाद वडे गगनतलने स्रग्पू
रित करतुं सिन्धु महानदीना दक्षिण कुलथी पसार थधने पूर्व दिशामां । सिन्धु देवी नां
भवन तरक्ष् आद्यु “पूर्व दिशामां” आतुं जे कथन छे तेहुं तात्पर्य आ प्रभाषि छे के
पश्चिम दिग्घूर्ती प्रभासतीर्थ तरक्ष्थी आवते। भरतचक्रो वैताढ्यगिरि कुमारदेवने वश करवानी
इच्छाथी तेना वासभूत भूकूट तरक्ष् जवा अभिलाषा करे छे जेथी पडेलां पूर्व दिशा तरक्ष्
ज तेहुं जवानु थाय छे जे दिग्विभय भागनुं ज्ञान जम्बूद्वीपना मानचित्रथी सारी पडे
थधं जय छे. सिन्धु देवीना घर तरक्ष् यकरत आद्यु. आभे जे वषुंन करवामा आब्यु छे
ते। सिन्धु देवीना भवननुं कथन तो जेज सूत्रमां उत्तर भरतार्धना मध्यम षडमां सिंधु
कुंडमा सिन्धुद्वीपमां वक्ष्यवामां आवशे ज तो पछी अही तेना सइबाव था भाटे कथो

नादन्यत्रापि भवनादिगम्भवेन नानुपपन्नेः, यथा प्रथममर्गव्य गोधर्मन्द्राग्रमद्रिपीणा सौधर्मादि देवलोके विमानमद्भावेपि नन्दीश्वरे कुण्डलेवा राजधान्यः, अस्या एव देव्या असंख्येयतमे द्वीपे राजधान्यः सिन्धुवावर्त्तनकृते च प्रासादावतमक इति. एव च सिन्धु-द्वीपे देवीभवनमद्भावेऽपि सूत्रवलादत्रापि तदस्तीति ज्ञायते, तदनु भवतः किं कृतवान इत्याह—'तएण' इत्यादि 'तएण मे भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयणं सिघूण महाणईण दाहिणिल्लेण कूलेणं पुरगन्धम दिग्गिं सिघु देवी भवनाभिमुखं पयाय पासड' ततः खलु स भारती राजा तदिव्यं चक्ररत्न सिन्धुवा महानद्यः दाक्षिणात्येन दक्षिणेन कूलेन तीरेण पौरत्या पूर्वाम् दिशं सिन्धुदेवी भवनाभिमुखं प्रगातं पश्यति 'पासित्ता' इत्थं 'इद्वुत्तु चित्त तहेव जाव' इत्थं चित्तानन्दितः अतिशयप्रमोदमापन्नः सन् चक्री-

यहां उसका सद्भाव होना कैसे कहा ? उत्तर—महर्द्धिकदेवियों के भवन मूलस्थान से अन्यत्र भी होते हैं इसलिये ऐसा कथन यहा अयुक्त नहीं है । जैसे सौधर्मादि इन्द्रों की अप्रमहद्विपियों के विमान सौधर्मादि देवलोको में होते हैं फिर भी नन्दीश्वर द्वीप में अथवा कुण्डल द्वीप में इनकी राजधानियां हैं, अथवा इसी सिन्धुदेवी की राजधानी असंख्यातवे द्वीप में है और सिद्धावर्त्तन कृत में इसका प्रासादावर्त्तमक है । इसी तरह सिन्धु द्वीप में सिन्धु देवी के भवन का सद्भाव होने पर भी इसी सूत्र के बल से अन्यत्र भी वह है ऐसा जाना जाता है ऐसा होने पर भी "सिन्धुए देवीए भवणस्स अदूरसामंते" इत्यादि वक्ष्यमाण सूत्र पाठ—“खंघावारे निवेसं करेइ” यहां तक का सगत बैठ सकेगा, नहीं तो वह भी विघटित हो जावेगा ।

(तएणं से भरहे राया त दिव्वं चक्ररयणं सिघूण महाणईण दाहिणिल्लेण कूलेणं पुर-त्थिमं दिग्गिं सिघुदेवी भवणाभिमुखे पयाय पासड) जब भरत राजाने उस दिव्य चक्ररत्न को सिन्धु महानदी के दक्षिण तट से होते हुए पूर्वदिशा में सिन्धु देवी के भवन की ओर जाते हुए देखा तो वह (पासित्ता) देखकर (इद्वुत्तु चित्त तहेव जाव जेणेव सिघूए देवीए भवणं तेणेव

हे ? उत्तरमहर्द्धिक देवीज्योना भवनो मूलस्थानथी अन्यत्र पणु डोय छे. जेथी आ कथन अही अयुक्त नथी जेभ सौधर्मादि इन्द्रोनी अग्रमहद्विपियोना विमानो सौधर्मादि देवलो-कमा डोय छे छताजे नन्दीश्वर द्वीपमा अथवा कुण्डलद्वीपमा जेभनी राजधानीज्यो छे. अथवा जेव सिन्धुदेवीनी राजधानी असंख्यातमा द्वीपमा छे अने सिद्धावर्त्तन कृतमा आणु प्रासादावतसक छे जेव रीते सिन्धुद्वीपमा सिन्धु देवीना भवननो सद्भाव छे छतां जे जेव सूत्रना जणथी अन्यत्र पणु तेनी सद्भावना छे जेवुं जणुवामां आवे छे जेवुं डोय तो जे "सिन्धुए देवीए भवणस्स अदूरसामंते" इत्यादि वक्ष्यमाण सूत्रपाठ "खंघावारे निवेसं करेइ अही सुधीनो सगत थर्थ पश्ये नही तो ते पणु विघटित थर्थ जशे

(तएणं से भरहे राया तं दिव्यं चक्ररयणं सिघूण महाणईण दाहिणिल्लेण कूलेणं पुरत्थिमं दिग्गिं सिघुदेवी भवणाभिमुखे पयाय पासड) अथारे भरत राजाने त दिव्य चक्र-रत्नने सिन्धु महानदीना दक्षिण तट उपर थर्थने पूर्वदिशामा सिन्धु देवीना भवन तरक्ष-जतुं जेथु तो ते (पासित्ता) जेथने (इद्वुत्तुचित्त तहेव जाव जेणेव सिघूए देवीए भवणं

णिक्त्वमइ' ततः खलु तद्विष्य चक्ररत्नं प्रभासतीर्थकुमारस्य देवस्य अष्टाहिकायां अष्ट-
दिवसावसान यस्या सा ताम् महामहिमाया निवृत्ताया सत्याम् आयुवगृहशाश्वतः प्रतिनिष्क्रा-
मति निर्गच्छति 'पडिणिक्खमिन्ता' प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य 'जाव पूरेंते चैव अंवरतलं'
यावत् दिव्यत्रुटित नामकवाद्यविशेषशब्दसन्निनादेन अम्बरतल गगनतल पूर्यदिव्य 'सिंधूप
महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेणं पुरत्थिमं दिसिं सिंधुदेवी भवणाभिमुहे पयाते यावि
होत्था' सिन्ध्वा महानद्याः दाक्षिणात्येन दक्षिणेन कूलेन पौरस्त्या पूर्वा दिशम् सिन्धु-
देवी भवनाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, अयं विशेषः पूर्वं दिग्मित्यत्र पश्चिमदिग्भूर्वर्तिनः
प्रभासतीर्थत आगच्छन् वैताड्यगिरिकुमारदेव सिमाधयिपया तद्वासकृटाभिमुखं जिग्मीषुः
प्रथमतः अनुपूर्वमेव याति स तच्च दिग्विभागज्ञानं नकराइति भाषा प्रसिद्धं जम्बूद्वीप-
प्रकाशकपत्रे द्रष्टव्यम् ततः सुतरां ज्ञानं भविष्यति सिन्धुदेवी गृहाभिमुखं च चक्र-
रत्नं प्रयातम् ननु सिन्धुदेवी भवनम् अत्रैव खत्रे उत्तरभरतार्द्धमध्यखण्डे सिन्धु-
कुण्डे सिन्धुद्वीपे वक्ष्यते तत्कथमत्र तत्सम्भव इति चेन्न महर्द्धिकदेवीना मूलस्था-

धगृह शाखा से बाहर निकला (पडिणिक्खमिन्ता जाव पूरेंते चैव अंवरतल सिंधूप महाणईए
दाहिणिल्लेणं कूलेण पुरत्थिमं दिसिं सिंधुदेवी भवणाभिमुहे पयाए यावि होत्था) निकल कर वह
यावत्— दिव्यत्रुटित नामक वाद्यविशेष के शब्द सन्निनाद द्वारा गगन तल को भरता भरता
सा सिन्धु महानदी के दक्षिण कूल से होता हुआ पूर्वदिशामें सिन्धुदेवी के भवन की ओर चला ।
“पूर्वदिशामें” जो ऐसा कहा है सो उसका तात्पर्य ऐसा है कि पश्चिमदिग्वर्ती प्रभास तीर्थ
से आता हुआ भरतचक्री वैताड्यगिरि कुमार देव को वश करने की इच्छा से उसके वासमूल
कूट की तरफ जाने का अभिलाषी होता है । सो पहिले उसे पूर्वदिशा में ही जाना होता है ।
यह दिग्विभागका ज्ञान जम्बूद्वीप के नक्शे से अच्छी तरह हो जाता है । सिंधुदेवी के घर की
तरफ चक्ररत्न चला ऐसा जो यहा कहा गया है सो सिन्धुदेवी के भवन का कथन तो इसी
सूत्र में उत्तर भरतार्ध के मध्यम खण्डार्ध सिन्धु कुण्ड में सिन्धुद्वीप में कहा जावेगा तो फिर

गृहशाखाभाथी अहार नीकण्यु. (पडिणिक्खमिन्ता जाव पूरेंते चैव अंवरतल सिंधूप
महाणईए दाहिणिल्लेणं कूलेण पुरत्थिमं दिसिं सिंधु देवी भवणाभिमुहे पयाए याविहोत्था)
नीकणीने तो यावत् दिव्य त्रुटित नामक वाद्यविशेषना शब्द सन्निनाद वडे गगनतलने सम्भू-
रित करतुं सिन्धु महानदीना दक्षिण कूलथी पसार थडने पूर्व दिशामा सिन्धु देवी ना
भवन तरक आद्यु “पूर्व दिशामा” आतुं के कथन छे तेतुं तात्पर्य आ प्रभाषे छे के
पश्चिम दिग्वर्ती प्रभासतीर्थ तरकथी आवतो अस्तथकी वैताड्यगिरि कुमारदेवने वश करवानी
पुच्छाथी तेना वासभूत भूकट तरक जवा अभिलाषा करे छे ओथी थडेला पूर्व दिशा तरक
ज तेतुं जवातु थाय छे के दिग्विभाग भागतुं ज्ञान जम्बूद्वीपना मानचित्रथी सारी थडे
थड जय छे. सिन्धु देवीना घर तरक अकरन आद्यु. आभ के वरुन करवामां आव्यु छे
तो सिन्धु देवीना भवनतुं कथन तो ओज सूत्रमा उत्तर भरतार्धना मध्यम अडमां सिंधु
कुंडमा सिन्धुद्वीपमां वक्ष्यवामां आवशे ज तो पछी अछी तेना सद्भाव सा माटे कही

नादन्यत्रापि भवनाद्विगम्यभवेन नानुपपत्तेः, यथा पद्ममन्त्रमन्त्रमौर्धमन्त्राद्यग्रमहिषीणां सौधर्मादि देवलोके विमानमद्भावेपि नन्दीश्वरे कुण्डलेत्रा राजधान्यः, अस्या एव देव्या असंख्येयतमे द्वीपे राजधान्यः सिन्धुवावर्त्तनकूटे च प्रासादावतसक इति, एव च सिन्धु-द्वीपे देवीभवनमद्भावेऽपि सूत्रवलादत्रापि तदस्तीति ज्ञायते, तदनु भरतः किं कृतवान् इत्याह—‘तपण’ इत्यादि ‘तपण मे भरहे राया तं दिवं चक्ररयणं सिधूप महाणईए दाहिणिल्लेण कूलेण पुग्ग्मि दिमि सिधु देवी भवनाभिमुखं पयात पासड’ ततः खलु स भारती राजा नदिव्यं चक्रत्न सिन्धुवा महानद्यः दाक्षिणात्येन दक्षिणेन कूलेन तीरेण पौरस्त्यां पूर्वाम् दिशं सिन्धुदेवी भवनाभिमुखं प्रगात पश्यति ‘पासित्ता’ दृष्ट्वा ‘इदुत्तु चित्त तहेव जाव’ दृष्टुष्ट चित्तानन्दितः अतिशयप्रमोदमापन्नः सन् चक्री-

यहां उसका सद्भाव होना कैसे कहा ? उत्तर—महर्द्धिकदेवियों के भवन मूलस्थान से अन्यत्र भी होते हैं इसलिये ऐसा कथन यहां अयुक्त नहीं है । जैसे सौधर्मादि इन्द्रों की अग्रमहिषियों के विमान सौधर्मादि देवलोको में होते हैं फिर भी नन्दीश्वर द्वीप में अथवा कुण्डल द्वीप में इनकी राजधानीयां हैं, अथवा इसी सिन्धुदेवी की राजधानी असख्यातवे द्वीप में है और सिद्धावर्त्तन कूट में इसका प्रासादावर्त्तसक है । इसी तरह सिन्धु द्वीप में सिन्धु देवी के भवन का सद्भाव होने पर भी इसी सूत्र के बल से अन्यत्र भी वह है ऐसा जाना जाता है ऐसा होने पर भी “सिन्धूप देवीए भवणस्स अदूरसामंते” इत्यादि वक्ष्यमाण सूत्र पाठ—“खंघावारे निवेस करेइ” यहां तक का सगत बैठ सकेगा, नहीं तो वह भी विघटित हो जावेगा ।

(तपण से भरहे राया तं दिवं चक्ररयणं सिधूप महाणईए दाहिणिल्लेण कूलेण पुर-त्थिमं दिमि सिन्धुदेवी भवणाभिमुहे पयायं पासड) जब भरत राजाने उस दिव्य चक्ररत्न को सिन्धु महानदी के दक्षिण तट से होते हुए पूर्वदिशा में सिन्धु देवी के भवन की ओर जाते हुए देखा तो वह (पासित्ता) देखकर (इदुत्तु चित्त तहेव जाव जेणेव सिधूप देवीए भवणं तेणेव

छे ? उत्तरमहर्द्धिक देवीज्योना भवने मूलस्थानथी अन्यत्र पशु होय छे, जेथी आ कथन अही अयुक्त नथी जे सौधर्मादि इन्द्रोनी अग्रमहिषिज्योना विमानो सौधर्मादि देवलो-कमां होय छे छतांजे नन्दीश्वर द्वीपमा अथवा कुण्डलद्वीपमा जेमनी राजधानीज्यो छे, अथवा जे सिन्धुदेवीनी राजधानी असख्यातमा द्वीपमां छे अने सिद्धावर्त्तन कूटमां आयु प्रासादावतसक छे जे रीते सिन्धुद्वीपमा सिन्धु देवीना भवनने सद्भाव छे छतां जे जे सूत्रना जणथी अन्यत्र पशु तेनी सद्भावना छे जेवुं जणवामां आवे छे जेवुं होय तो जे “सिन्धूप देवीए भवणस्स अदूरसामंते” इत्यादि वक्ष्यमाण सूत्रपाठ “खंघावारे निवेस करेइ अही सुधीने सगत थर् पडथे नही तो ते पशु विघटित थर् जेथे

(तपण से भरहे राया तं दिवं चक्ररयणं सिधूप महाणईए दाहिणिल्लेण कूलेण पुरत्थिमं दिमि सिन्धुदेवी भवणाभिमुहे पयायं पासड) जेथे भरत राजा जे त दिव्य चक्र-रत्नने सिन्धु महानदीना दक्षिण तट उपर थर्ने पूर्वदिशामा सिन्धु देवीना भवन तर-कूट जेथे तो ते (पासित्ता) जेथेने (इदुत्तुचित्त तहेव जाव जेणेव सिधूप देवीए भवणं

पौषशालायां पौषधिकः—पौषव्रतवान् अतएव 'वभयारी' ब्रह्मचारी 'जाव दन्मम-
थारोवगए' यावद्दर्भसंस्तारकोपगतः सार्द्धद्वयहस्तपरिमितदर्भासने उपविष्टः सन् अत्र
यावत्पदात् उन्मुक्तमणिसुवर्ण इत्यादि सर्वं पूर्वोक्तं ग्राह्यम् अष्टमभक्तिकः—कृताष्टमतपाः
सिन्धुदेवीं मनसि कुर्वन् तिष्ठति । 'तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि
सिधूए देवीए आसनं चलइ' ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञोऽष्टमभक्ते परिणमति—
परिपूर्णप्राये जाते सगच्छति सति सिन्ध्वा देव्या आसनं सिंहासनं चलति 'तएणं
सा सिंधु देवी आसनं चलयं पासइ' ततः खलु सा सिन्धुदेवी आसनं—स्वसिंहासनं
चलितं पश्यति 'पासित्ता' दृष्ट्वा 'ओहिं पउजइ' अवधिं प्रयुंक्ते—अवधिना ज्ञानेन पश्य-
ति 'पउजित्ता' प्रयुज्य 'भरहं राय ओहिणा आभोएइ' भरत राजानम् अवधिना
अवधिज्ञानेन, अभोगयति उपयुक्ते जानातीत्यर्थः 'आभोइत्ता' आभोग्य उपयुज्य ज्ञात्वा
तस्याः सिन्धुदेव्याः 'इमे एयारूवे अज्झत्थिए चित्तिए कप्पिए पत्थिए मणोगए
संकप्पे समुप्पज्जित्था' अयमेतद्रूपो वक्ष्यमाणस्वरूपः, आध्यात्मिकः आत्मगत अङ्कुर

वाला अतएव ब्रह्मचारी भरत चक्रो २॥ हाथ प्रमाण दर्भासन पर पूर्वोक्त मणिसुवर्णदि सबका
परित्याग करके बैठ गया, और सिन्धु देवी का मनमें ध्यान करने लगा । (तएणं तस्स भरहस्स
रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि सिधूए देवीए आसनं चलइ) जब उस भरत राजा को अष्टम
भक्तकी तपस्या पूरी होने को आई कि उसी समय सिन्धु देवी का आसन कंपायमान हुआ । (तएणं
सा सिंधु देवी आसनं चलयं पासइ) सिन्धु देवीने ज्यों ही कंपित हुए अपने आसन को देखा तो
(पासित्ता ओहिं पउजइ) उसी समय उसने अपने अवधि ज्ञान को जोड़ा—अर्थात् अवधिज्ञान का
प्रयोग किया (पउजित्ता भरहं राय ओहिणा आभोएइ) अवधिज्ञान का प्रयोग करके उसने उसके
द्वारा भरत राजा को देखा (आभोइत्ता इमे एयारूवे अज्झत्थिए चित्तिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे
समुप्पज्जित्था) राजा को देखकर उसे आध्यात्मिक चितितकल्पितप्रार्थितमनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ ।
संकल्प के इन विशेषणों की व्याख्या पीछे की जा चुकी है । इन विशेषणों का तात्पर्यार्थ ऐसा है—

पोसहिप वंभयारी जाव दन्मसंथारोवगए अट्टमभत्तिप सिंधुदेविं मणसि करेमाणे चिद्धइ)
त्रयु उपवास वर्धने ते पौषध व्रतवाणे ज्येथी ब्रह्मचारी भरतचक्रो अदी हाथ प्रमाण दर्भा-
सन उपर पूर्वोक्त मणि सुवर्णादि सर्वने। परित्याग करीने भेसी गये। अने सिन्धु देवीतुं
मनमां ध्यान करवा लाग्ये। (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि
सिधूए देवीए आसनं चलइ) अथारे ते भरत राजानी अट्टम भक्तानी तपस्था समाप्त थवा
आवीं के तेज्ज समये सिन्धु देवीतुं आसनं कंपायमान थयु (तएणं सा सिन्धु देवी
णं चलयं पासइ) सिंधु देवीजे अथारे पोतानु आसनं कंपित थतुं जेथुं के (पासित्ता
ओहिं पउजइ) तरेत जे तेथे पोताना अवधिज्ञानने जेठयुं अट्टे के तेथे पोताना अवधि-
ज्ञानने। प्रयोग कर्ये। (पउजित्ता भरहं राय ओहिणा आभोएइ) अवधिज्ञानने। प्रयोग करीने
तेथे तेना वडे भरतराजने जेथे। (आभोइत्ता इमे एयारूवे अज्झत्थिए चित्तिप कप्पिए पत्थिए
मणोगए प्पे समुप्पज्जित्था) राजाने जेधने तेना मनमां आध्यात्मिक, चितित, प्रार्थित

षट्खंडाधिपति भरतस्तथैव यावत् अत्र यावत् पदात् नन्दितः प्रीतिमानाः, परमसौमस्यितः
 हर्षवशविसर्पद् हृदय इति ग्राह्यम् एतादृशो भरतः 'जेणेव सिंधूए देवीए भवणं तेणेव
 उवागच्छइ' यत्रैव सिन्धुदेव्या भवनं निवासस्थानम् तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छित्ता'
 उपागत्य 'सिंधूए देवीए भवणस्स अदूरसामंते' सिन्ध्वा देव्या भवनस्य अदूरसामन्ते
 नातिदूरे नातिसमीपे यथोचितस्थाने 'दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं वरणगर-
 सरिच्छं विजयखंधावारणिवेसं करेइ' द्वादश योजनायाम, नव योजनविस्तीर्णं वरनगरसदृश
 विजयस्कन्धावारनिवेशं सेनानिवेशं करोति 'जाव सिंधु देवीए आट्टमभत्तं पणिणइ' अत्र
 यावत्पदात् वर्द्धकिरत्नशब्दायनपौषधशाला निर्माणनादि सर्वं ग्राह्यम्, तेन पौषधशालायां
 सिन्धुदेव्याः साधनाय भरतो राजा अष्टमभत्तं प्रगृह्णाति 'पणिणित्ता' प्रागृह्य 'पोसहसालाए
 पोसहिए बंभयारी जाव दब्भसंधारोवगए अट्टमभत्तिए सिन्धुदेवि मणसि करेमाणे चिट्ठइ'

उवागच्छइ) बहु आनन्दित एवं सतुष्ट चित्त हुआ यहां यावत् शब्द से—नन्दितः प्रीतिमाना-
 परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद् हृदयः" इन पदों का संग्रह हुआ है। इन पदों की व्याख्या
 यथास्थान की जा चुकी है। ऐसे विशेषणों से विशिष्ट वह भरतचक्रो जहां पर सिन्धु देवी का
 भवन था—निवासस्थान था वहां पर आया (उवागच्छित्ता) आकर के (सिंधूए देवीए भवणस्स
 अदूरसामंते) उसने सिन्धुदेवी के भवन पास ही यथोचितस्थान में (दुवालसजोयणायामं णव
 जोयणवित्थिन्नं, वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारणिवेस करेइ) अपना १२योजन लम्बा और
 नौ योजन चौड़ा श्रेष्ठनगर के जैसा विजयस्कन्धावार निवेश किया—सेना का पडाव डाला (जाव
 सिंधु देवीए अट्टमभत्तं पणिणइ) यहां यावत् पद से वर्द्धकि रत्न को बुलाना, पौषध शाला का निर्मा-
 ण आदि कार्यों के निर्माण आदि सम्बन्ध कहना इत्यादि सब कथन पूर्व में किये गये कथन के
 अनुसार समझ लेना चाहिये। पौषधशाला में बैठकर भरत राजाने सिन्धु देवी को अपने वश में
 करने के लिये तीन उपवास किये। (पणिणित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी जाव दब्भ-
 संधारोवगए अट्टमभत्तिए सिंधु देवि मणसि करेमाणे चिट्ठइ) तीन उपवास लेकर वह पौषध व्रत

तेणेव गच्छइ) ते राजा अतीव आनन्दित तेभञ्ज संतुष्ट चित्तवाणो थये अही' यावत्
 शुभइथी "नन्दितः प्रीतिमाना परमसौमस्यित हर्षवशविसर्पद् हृदयः" ये पदोना संशुद्ध
 थये छे ये पदोनी व्याख्या यथास्थाने करवाभा आवेस छे येवा विशेषणोथी विशिष्ट
 ते भरतचक्रो न्यां सिन्धु देवीनुं भवनं इत्तु—निवासस्थानं इत्तु त्या आव्ये। (उवागच्छित्ता)
 त्यां आवीने (सिंधूए देवीए भवणस्स अदूरसामंते) तेणे सिन्धु देवीना भवननी यासे न
 यथोचित स्थानमा (दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं, वरणगरसरिच्छं विजय-
 खंधावारणिवेसं करेइ) पोताने। १२ योजन लांबे। अने ९ योजन पडोणे। श्रेष्ठ नगर
 नेवे। निञ्जय स्कन्धावार निवेश कथे—अट्टमे के पडाव नाथ्ये। (जाव सिंधुदेवीए अट्टमभत्तं
 पणिणइ) अही यावत् पथी वर्द्धकिरत्नने पोताव्ये, पौषधशाणानु निर्माण करीत्यु छे त्यादि
 पूर्व वरिष्ठित सर्व कथन अध्याहृत करी लेवुं अर्थये पौषधशाणामा येसीने भरत राजाये
 सिन्धुदेवीने पोताना वशमां करवा भाटे तसु उपवासो। कथां (पणिणित्ता पोसहसालाए

पौषशालायां पौषविक्रः—पौषव्रतवान अतएव 'वभयागी' ब्रह्मचारी 'जाव दम्भ-
थारोवगए' यावद्दर्भसंस्तारकोपगतः सार्द्धद्वयहस्तपरिमितदम्भासने उपविष्टः सन् अत्र
यावत्पदात् उन्मुक्तमणिसुवर्ण इत्यादि सर्वं पूर्वोक्त ग्राह्यम् अष्टमभक्तिकः—कृताष्टमतपाः
सिन्धुदेवीं मनसि कुर्वन् तिष्ठति । 'तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि
सिधूप देवीए आसनं चलइ' ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञोऽष्टमभक्ते परिणमति—
परिपूर्णप्राये जाते सगच्छति सति सिन्ध्वा देव्या आसन सिंहासन चलति 'तएणं
सा सिंधु देवी आसनं चलयं पासइ' ततः खलु सा सिन्धुदेवी आसनं—स्वसिंहासनं
चलितं पश्यति 'पासित्ता' दृष्ट्वा 'ओहिं पउजइ' अवधिं प्रयुंक्तं—अवधिना ज्ञानेन पश्य-
ति 'पउंजित्ता' प्रयुज्य 'भरहं राय ओहिणा आभोएइ' भरत राजानम् अवधिना
अवधिज्ञानेन, अभोगयति उपयुङ्क्ते जानातीत्यर्थः 'आभोइत्ता' आभोग्य उपयुज्य ज्ञात्वा
तस्याः सिन्धुदेव्याः 'इमे एयारूवे अञ्जत्थिए चितिए कप्पिए पत्थिए मणोगए
संकल्पे समुप्पज्जित्था' अयमेतद्रूपो वक्ष्यमाणस्वरूपः, आध्यात्मिकः आत्मगत अङ्कुर

वाला अतएव ब्रह्मचारी भरत चक्रो २॥ हाथ प्रमाण दर्भासन पर पूर्वोक्त मणिसुवर्णादि सबका
परित्याग करके बैठ गया, और सिन्धु देवी का मनमें ध्यान करने लगा । (तएणं तस्स भरहस्स
रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि सिधूप देवीए आसनं चलइ) जब उस भरत राजा को अष्टम
भक्तकी तपस्या पूरी होने को आई कि उसी समय सिन्धु देवी का आसन कंपायमान हुआ । (तएणं
सा सिंधु देवी आसनं चलयं पासइ) सिन्धु देवीने ज्यों ही कंपित हुए अपने आसन को देखा तो
(पासित्ता ओहिं पउजइ) उसी समय उसने अपने अवधि ज्ञान को जोड़ा—अर्थात् अवधिज्ञान का
प्रयोग किया (पउंजित्ता भरहं राय ओहिणा आभोएइ) अवधिज्ञान का प्रयोग करके उसने उसके
द्वारा भरत राजा को देखा (आभोइत्ता इमेएयारूवेअञ्जत्थिएचितिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकल्पे
समुप्पज्जित्था) राजा को देखकरउसेआध्यात्मिक चितितकल्पितप्रार्थितमनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ ।
संकल्प के इन विशेषणों की व्याख्या पीछे की जा चुकी है । इन विशेषणों का तात्पर्यार्थ ऐसा है—

पोसहिप बंभयागी जाव दम्भसंथारोवगए अट्टमभत्तिए सिंधुदेविं मणसि करेमाणे चिदइ)
ब्रह्म उपवास बर्धने ते पौषध व्रतवाणे। ओथी ब्रह्मचारी भरतचक्रो अठी हाथ प्रभाषु दर्भा-
सन उपर पूर्वोक्त मणिसुवर्णादि सर्वने। परित्याग करीने जेसी अथे। अने सिन्धु देवीसुं
भनभां ध्यान करवा लाग्ये। (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि
सिधूप देवीए आसनं इ) अथादे ते भरत राजानी अट्टम भक्तानी तपस्या समाप्त थवा
आनी के तेज समथे सिन्धु देवीसुं आसन कंपायमान थयुं (तएणं सा सिन्धु देवी
आसनं चलयं पासइ) सिंधु देवीके अथादे पोतासुं आसन कंपित थतुं जेथुं के (पासित्ता
ओहिं पउंजइ) भरत ज तेथे पोताना अवधिज्ञानने जेठयुं जेठके के तेथे पोताना अवधि-
ज्ञानने। प्रयोग कर्ये। (पउंजित्ता भरहं राय ओहिणा आभोएइ) अवधिज्ञानने। प्रयोग करीने
तेथे तेना वडे भरतराजने जेथे। (आभोइत्ता इमे एयारूवे अञ्जत्थिए चितिए कप्पिए पत्थिए
मणोगए संकल्पे समुप्पज्जित्था) राजने जेधने तेना भनभा आध्यात्मिक, चितित, प्रार्थित

इव, ततः चिन्तितः पुनः पुनः स्मरणरूपो विचारो द्विपत्रित इव कल्पितः स एव व्यवस्थायुक्तः महतोऽस्याऽनुरूपं सत्कारविशेषं-करिष्यामीति कार्याकारेण परिणतो विचारः पल्लवितः इव ३, प्रार्थितः-स एव इष्टरूपेण स्वीकृतः पुष्पित इव ४, मनोगतः सङ्कल्पः मनसि दृढरूपेण स्थितः 'इदमेव मया कर्तव्यम्' इति विचारः फलित इव ५, समुदपद्यत-समुत्पन्नः स च कः सङ्कल्प इत्याह-'उत्पण्णे खलु भो जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंतचक्रवट्टी, तं जीयमेय तीय पच्चुपण्णमणागयाणं सिधूणं देवीणं भरहाणं राईणं उवत्थाणीय करेत्तए' उत्पन्नः खलु भो जम्बूद्वीपे-जम्बूद्वीप नामक द्वीपे भरते वर्षे भरतो नाम राजा चातुरन्तचक्रवर्त्ती समा-

किं जिम प्रकार बीज भूमि में रहकर पहिले अङ्कुर के रूप में पनपता है उसी प्रकार यह सकल्प भी आत्मा में अङ्कुर रूपमें उदमुत हुआ अतः उसे अध्यात्म पद से यहा विशेषित किया गया है । यह बार २ उसके स्मरण में जब आने लगा तब यह द्विपत्रित उसी अङ्कुर की तरह चिन्तित पद से विशेषित किया गया है । जब यही सकल्प "इम महान् पुरुष का मै 'इसी के अनुरूप सत्कार करूंगा" इस प्रकार की व्यवस्था वाला बन गया तब यह कल्पित पद से विशेषित किया गया है । ऐसा करने से ही मेरा काम फलित हो सकेगा । इन प्रकार इष्ट रूप से यह मान्य हो चुका तब यह प्रार्थित पद से विशेषित किया गया है । तथा इस विचार रूप संकल्प को उसने जब तक वचन द्वारा बाहिर प्रकाशित नहीं किया-तब तक वह मनोगत रहने के कारण मनोगत बनारहा इसलिये उसे मनोगत पद से विशेषित किया गया है । (उत्पण्णे खलु भो जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे भरहे णामं राया चाउरंत चक्रवट्टी तं जीयमेयं तीय पच्चुपण्णमणागयाणं सिधूणं देवीणं भरहाणं राईणं उवत्थाणिअं करेत्तए) जंबूद्वीप नाम के द्वीप में

मनोगत संकल्प उत्पन्न थयो. संकल्पना ओ उद्वेष्टित विशेषणोनी व्याख्या पडेला स्थल करवाभां आवी छे. ओ विशेषणोत्तुं तात्पर्य आ प्रभाणे छे-के जेम भी भूमिभां रड्डीने पडेलां अङ्कुरना रूपभां उद्भववे छे ते ज प्रभाणे ओ संकल्प पणु आत्माभां अङ्कुरना रूपभां उद्भूत थयो. ओथी ते संकल्पने प्रथम अध्यात्म पदथी अही विशेषित करवाभा आवेल छे. ओ न्यारे वारवार तेना स्मरणभां आववा लाग्ये त्यारे ओ द्विपत्रित ते अङ्कुरनी जेम चिन्तित पदथी विशेषित करवाभा आवेल छे न्यारे ओ संकल्प "ओ महापुरुषने ऊ ओना अनु रूप सत्कार करीश" ओ जातनी व्यवस्थायुक्त थई गयो त्यारे ते संकल्प कल्पित पदथी विशेषित करवाभा आवेल छे आ प्रभाणे करवाथी ज भारु काम इक्षित थई शक्ये आ रीते ओ संकल्प इष्ट रूपथी मान्य थई गयो त्यारे ते प्रार्थित पदथी विशेषित करवाभा आवेल छे तेमज ओ विचाररूप संकल्पने तेणे न्यां सुधी वचन द्वारा अहार प्रगट कर्ये नडीं त्यां सुधी ने मनोगत होवाथी मनोगत नामथी स बोधि न थये ओथी ज तेने मनोगत पदथी विशेषित करवाभा आवेल छे (उत्पण्णे खलु भो जंबुद्वीवे दीवे भरहे वासे भरहे णाम राया चाउरंतचक्रवट्टी तं जीयमेय तीय पच्चुपण्णमणागयाण सिधूणं देवीणं भरहाणं राईणं उवत्थाणिअं करेत्तए) जंबूद्वीप नामना द्वीपभां भरतक्षेत्रभा भरत नामे राजा

याति-तज्जीतमेतत् आचार एषः अतीतवर्तमानानागताना सिन्धुनां सिन्धुनाम्नीनां देवीनां भरतानां राजाम् औपस्थानिकं नजरणा इति लोके प्रसिद्धं प्राभृतं कर्तुं वर्तते इति 'तं गच्छामि ण अहं पि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमि त्तिरुट्टु कुंभट्टसहस्सरयणचित्तं णाणामणि कणगरयणभत्तिचित्ताणिय देवगणभद्रासणाणि य कडगाणिय तुडियाणिय जाव आभरणाणिय गेण्हइ गिण्हत्ता' तद्वच्छामि खलु अहमपि भरतस्य राजश्र-क्रिणः उपस्थानिकं प्राभृतं करोमीति कृत्वा मनसि विचार्य 'कुंभट्टसहस्स रयणचित्तं कुम्भाट्टसहस्सरत्नचित्रम्-कुम्भानामष्टोत्तरं सहस्रं रत्नचित्रम् नानामणिकनकरत्नभक्तिचित्रं च द्वे सुवर्णभद्रासने च नानामणिकनकरत्नानां भक्तिःविविधरचना तथा चित्रे विचित्रे च द्वे सुवर्णभद्रासने कटकानि च हस्ताभरणानि त्रुटिकानि च बाह्याभरणानि यावदाभरणानि च गृह्णाति गृहीत्वा 'ताए उक्किट्ठाए जाव एवं वयासी' तथा उत्कृष्टया गत्या यावत् पदात् त्वरया आकूलया न स्वाभाविन्या चपलया कायतोऽपि चण्डया, रौद्रया अत्युत्कर्षयोगेन, सिंहया तद्दार्ढ्यं स्थैर्येण, उद्धृतया दर्पातिशयेन जयिन्या विपक्षजेतृत्वेन

भरत क्षेत्र में भरत नाम का राजा उत्पन्न हुआ है। तो अतीत अनागत एव वर्तमान सिन्धु देवियों का यह कुल परम्परा का आचार है कि वे उन भरत के चक्रवर्तियों को नजराना प्रदान करे अतः (गच्छामिणं अहं पि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमि त्ति कट्टु कुंभट्टसहस्सरयणचित्तं णाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताणिय देवगणभद्रासणाणि य कडगाणिय तुडियाणि य जाव आभरणाणिय गेण्हइ) मैं जाऊँ और मैं भी उन भरत महाराजा को भेंट प्रदान करूँ ऐसा विचार करके उसने १००८ कुंभ और नानामणियों एवं कनक रत्न की रचना से जिसमें अनेक चित्र हो रहे हैं ऐसे दो भद्रासन, तथा कटक हस्ताभरण, और त्रुटित-बाहु के आभरणों को उसने लिया (गिण्हत्ता ताए उक्किट्ठाए जाव एवं वयासी) उन्हें लेकर वह उसे उत्कृष्ट आदि विशेषणोंवाली गति से चलती-र जहाँ पर सेना का पडाव रखकर भरत महाराजा था वहाँ

उत्पन्न थयो छे. अतीत अनागत तेभज् वर्तमान सिन्धुदेवीयोने छे कुलपरंपरागत आचार छे के तेयो ते भरतना चक्रवर्तियोने नजरणा प्रदान करे माटे (गच्छामिणं अहं पि रण्णो उवत्थाणिय करेमि त्ति कट्टु कुंभट्ट सहस्सरयणचित्तं णाणामणिकणगरयणभत्तिचित्ताणिय देवगणभद्रासणाणि य कडगाणिय तुडियाणि य जाव आभरणाणिय गेण्हइ) कुंभ अने कुंभ पद्यु ते भरत राजने नजरणा प्रदान करुं आम विचार करीने तेणे १००८ कुंभो अने अनेक भद्रियो तेभज् कनक, रत्नानी रचनाथी जेभा अनेक चित्रो भंडित छे जेवा छे उलम भद्रासने तेभज् कटक-हस्ताभरणो अने त्रुटित-बाहुना आभरणो जे सर्व आभूषणो तेणे वीधा (गिण्हत्ता ताए उक्किट्ठाए जाव एवं वयासी) सर्व आभूषणोने वर्धने ते उत्कृष्ट वर्गेरे विशेषणोवाणी गतिथी आसती-आसती न्यां भरत राज हुतो, त्यां आवी. गतिना उत्कृष्ट वर्गेरे विशेषणो यावत् पक्षी गृहीत थयेदा छे ते आ प्रभाणे छे-“त्वरया चपलया, चण्डया, रौद्रया, सिंहया, उद्धृतया, जयिन्या, उक्कया, दिव्यया” त्यां

छेरुया निपुणया दिव्यया देवगत्या आकाशमार्गगमनेन व्यतिवजन् यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य अन्तरिक्षप्रतिपन्ना सा सिन्धुदेवी करतल यावदञ्जलि कृत्वा जयविजयशब्देन वर्द्धयति वर्द्धयित्वा एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवती क्रियुक्तवती इत्याह— 'अभिजिपणं' इत्यादि 'अभिजिपणं देवाणुप्पिपहिं केवलकप्पे भरहे वासे अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासिणी अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्तिकिकरी त पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! मम इमं प्यारुवं पीइदाणं त्तिकट्टु कुंमट्टसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणगकडगाणिय जाव सो चैव गमो जाव पडिविसज्जेइ' अभिजितं खलु देवानुप्रियैः श्रीमद्भिः केवलकल्पं-केवलज्ञानसदृशं सम्पूर्णं भरतं वर्षम् भरतक्षेत्रम् तेन हेतुना अहं खलु देवानुप्रियाणां भवतां विषयवासिनी देशवासिनी अहं खलु देवानुप्रियाणाम् आज्ञाप्तिकिङ्करी आज्ञाङ्किता सेविका तत् तस्मात् प्रतीच्छन्तु गृहन्तु खलु देवानुप्रियाः ! मम इदमेतद्रूपं प्रीतिदानम् इति कृत्वा कथयित्वा कुम्भाष्टसहस्रं रत्नचित्रम् अष्टोत्तरसहस्रपरिपूरितं कुम्भं तथा नानामणिकनकरत्नभक्तिचित्रे

पर आयी—वे उत्कृष्ट आदि गनि के, जो विशेषण पद यावत्पद से गृहीत हुए है वे इस प्रकार से हैं—त्वरया, चपलया, चण्डया, रौद्रया, सिंहया, उदधृतया, जयिन्या, छेरुया, दिव्यया,' वहा आकरके वह आकाश मार्ग में ही स्थित रही नीचे नहीं उतरी वहाँ खड़ी-२ उसने दोनों हाथों की अञ्जलि बनाकर और उसे मस्तक पर रखकर पहिले भरत महाराजाको जयविजय शब्दों से वधाई दी । वधाई देकर फिर उसने इस प्रकार उनसे कहा—(अभिजिपणं देवाणुप्पिपहिं केवलकप्पे भरहे वासे अहण्णं देवाणुप्पियाण विसयवासिणी अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्तिकिकरी तं पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! मम इमं प्यारुवं पीइदाणं त्तिकट्टु कुंमट्टसहस्स रयणचित्तं णाणामणिकणगकडगाणिय जाव सोचैव गमो जाव पडिविसज्जेइ) आप देवानुप्रिय ने केवल कल्प—सम्पूर्ण भरत क्षेत्र—जीत—लिया है । मैं भी आप देवानुप्रिय के ही देश की निवासिनी हूँ— अतः आप देवानुप्रिय की मैं आज्ञाकिङ्करीहूँ—आज्ञाकी सेविकहूँ इसलिये आप देवानुप्रिय मेरे द्वारा दिये गये इस प्रीतिदान को स्वीकार करें । ऐसा निवेदन करके उसने १००८ कुम्भों तथा नानामणियों, कनक एवं रत्नों से जिनमें रत्नों

आवीने ते आकाश मार्गमा ज अवस्थित रही नीचे उतरी नहीं' त्या ऐसी रहिने ज तेणे धरने हाथीनी अ जल्ले धरानीने अने ते अजल्लिने भरतक पर भूमीने सर्व प्रथम भरत राजाने अथ—विजय शब्दोंकी वधाभङ्गी आपी. वधाभङ्गी आपीने पडी तेणे आ प्रभाणे कथु— (अभिजिपण देवाणुप्पिपहिं केवलकप्पे भरहे वासे अहण्ण देवाणुप्पियाण विसयवासिणी अहण्णं देवाणुप्पियाणं आणत्तिकिकरी त पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! मम इमं प्यारुवं पीइदाणं त्तिकट्टु कुंमट्टसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिकणग कडगाणिय जाव सोचैव गमो जाव पडिविसज्जेइ) आप देवानुप्रिये केवलकल्प—प्र पूषुं भरतक्षेत्रं एतु वीधुं छे. इ पधु आप देवानुप्रियना देशमा ज रहिनारी छु अथी आप देवानुप्रियनी ज इ आज्ञा किङ्करी छु—आज्ञानी सेविका छु' अथी आप देवानुप्रिय मारा वडे आपवामा आवेल आ प्रीतिदानने अकथु करे आ प्रभाणे निवेदन करिने तेणे १००८ कुंभो तथा नानामणियो,

च द्वे कनकमद्रासने गिहासनद्वय कटकानि च यावत् स एव मागधदेवगमोऽत्रानुम-
र्त्तव्यः यावत् प्रतिविसर्जयति यावन्पद्रात् स भरतः प्रीतिदन स्वीकरोति ततस्तां देवीं
सत्कारयति सन्मानयति प्रतिविर्जयति च स्वस्थानगमनाय अनुमन्यते त्राणप्रयोगमन्तरेणैव
सिन्धुदेव्याः साधनं जात मितिभावः तदुत्तरविधिमाह—‘तपणं’ इत्यादि ‘तपण से भरहे
राया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ’ ततः खलु स भरतो राजा पौषधशालातः प्रति-
निष्क्रामति निर्गच्छति ‘पडिणिक्खमिच्चा’ प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य ‘जेणेव मज्जनघरे तेणेव
उवागच्छइ’ यत्रैव मज्जनगृह—स्नानगृहम्, तत्रैव उपागच्छति ‘उवागच्छिच्चा’ उपागत्य
‘ण्हाए कयवलिकम्ममे जाव जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ’ स्नातः कृतवलि-
कर्मा—काकेभ्यो दत्तान्नभागः सन् यावत् यत्रैव भोजनमण्डपस्तत्रैव उपागच्छति ‘उवा-
गच्छिच्चा’ उपागत्य ‘भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं परियादियइ’ भोजन

हो रही हैं ऐसे दो कनक मय मद्रासनों को, दो कटकों को एवं झुटितों की भेट रूप में महा-
राजा भरत चक्री के लिये प्रदान किये । यहां पर मागध देव के प्रकरण में कहा गया सब विषय
यावत्पद से गृहीत हुआ है—अतः सिन्धु देवी द्वारा प्रदत्त सब नजराना महाराजा भरतचक्रों ने
स्वीकार कर लिया । और फिर उनका सम्मान और सत्कार के साथ उसने सिन्धु देवी को विमजित
कर दिया यहां यह विशेष कथन जानना चाहिये कि महाराजा भरतचक्री ने जो सिन्धुदेवी को
वश में किया है वह बिना त्राण के प्रयोग के किया है (तपणं से भरहे राया पोसहसालाओ
पडिणिक्खमइ) इस के बाद भरतचक्री पौषधशाला से बाहर आये (पडिणिक्खमिच्चा जेणेव
मज्जनघरे तेणेव उवागच्छइ) और बाहर आकर के वे जहां पर स्नान गृहथा वहां पर गये ।
(उवागच्छिच्चा ण्हाए कयवलिकम्ममे जाव जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ) वहां जाकर
उन्होंने स्नान क्रिया और स्नान करके बलिकर्म किया —काक आदिकों के लिये अन्न का
विभाग किया । फिर वे वहां भोजन मंडप में आये (उवागच्छिच्चा भोयणमंडवंसि सुहासन-
वरगए अट्टमभत्तं परियादियइ) वहां आकर के वे उस भोजन मंडप में सुहासन से बैठ

कनक तेभञ्ज रत्नेथी जेमां रचना थई रही छे जेवा छे कनक मद्रासनो, छे कटके
तेभञ्ज झुटितो भरतचक्रीने अर्थेषु कथां अही भगधदेवना प्रकश्युमां वसिंत समस्त विषय
यावत् पदथी गृहीत थयेदी छे आभ सिन्धु देवी द्वारा प्रदत्त सब नजराना भरतचक्रीजे
अक्षय करी दीधी अने पछी सम्मान अने सत्कार साथे तेणे सिन्धुदेवीने विमजित करी दीधी
अही छे विशेष कथन जाणवु जेथजे के भरतचक्रीजे जे सिन्धुदेवीने वशमा करीधी ते
जाणु नाप्रयोग बिना ज (तपणं से भरहे राया पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ) त्थार जाह
भरतचक्री पौषधशालाभाथी अहार आया (पडिणिक्खमिच्चा जेणेव मज्जनघरे तेणेव उवा-
गच्छइ) अने अहार आवीने तथां स्नान गृह इतुं तथां गया. (उवागच्छिच्चा ण्हाए कयवलिकम्ममे
जाव जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ) तथां जेथने तेभजे स्नान कथुं अने स्नान
करीने अलिकम कथुं अट्टवे के काक वगेरे भाटे अन्नो भाग कथां पछी ते तथाथी जोअन
मंडपमां आया (उवागच्छिच्चा भोयणमंडवंसि सणवरगए अट्टमभत्ते परियादियइ) तथां

मण्डपे सुखासनवरगतः अष्टमभक्तं परिपारयति, 'परियादिएत्ता' परिपार्य 'जाव सीहासनवरगतः श्रेष्ठसिंहासनोपविष्टः 'पुरत्याभिमुहे गिसीयइ' पोरस्त्याभिमुखः निपीदति उपविशति 'गिसीएत्ता' निपद्य उपविश्य 'अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ' अष्टदश श्रेणि-प्रश्रेणीः शब्दयति आह्वयति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा आह्वय 'जाव अट्टाहियाए महामहि-माए तमाणत्तिय पच्चप्पिणत्ति' यावत्ताः श्रेणि प्रश्रेणयोऽष्टाहिकाया महामहिमायाः ताम् आह्वयित्वा प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्ति यथाऽष्टाहिकोत्सवः कृत इति ॥सू०११॥

अथ वैताड्यसुरसाधनमाह- "तएणं से" इत्यादि ।

मूलम्- तएणं से दिड्वे चक्करयणे सिंघूए देवीए अट्टाहीयाए महामहीमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहधरसालाओ तहेव जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसिं वेयद्धपव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था. तए णं भरहे राया जाव जेणेव वेयद्धपव्वए जेणेव वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंवे दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं वरणगरसरिच्छं विज-यखंधावारनिवेसं करेइ करित्ता जाव वेयद्धगिरिक्कुमारस्स देवस्स अट्टम-भत्तं पणिण्हइ पणिण्हित्ता पोसहसालाए जाव अट्टमभत्तिए वेयद्धगिरि-कुमारं देवं मणसि करेमाणे चिट्ठइ तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तसि

गये-और बैठकर उन्होंने अष्टमभक्त की पारणा की (परियादियत्ता जाव सीहासनवरगए पुरत्याभिमुहे गिसीयइ) अष्टम भक्तकी पारणा करके सिंहासन पर बैठ गये (गिसीएत्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) सिंहासन पर बैठकर फिर उन्होंने १८ श्रेणी प्रश्रेणिजनो को बुझाया (सदावित्ता) बुलाकरके (जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तिय पच्चप्पिणत्ति) यावत् उन श्रेणी प्रश्रेणिजनो ने आठ दिन का महामहोत्सव किया । और इसकी खबर "हमलोगोने आठ दिन का महामहोत्सव कर लियाहै । ऐसी खबर पीछे राजा के पास भेजदी ॥सू०११॥

आधीने ते बोझन म उपमा सुभासन पूर्वक भेसी गया अने भेसीने तेभने अष्टम भक्तनी पारणा करी. (परियादियत्ता जाव सीहासनवरगए पुरत्याभिमुहे गिसीयइ) अष्टम भक्तनी पारणा करीने पछी ते यावत् पूर्वदिश तरह सुभ करीने सिंहासन उपर भेसी गया (गिसीएत्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) सिंहासन उपर भेसीने पछी तेभणे १८ श्रेणि प्रश्रेणिजनोने बोलाया (सदावित्ता) बोलाधीने (जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तिय पच्चप्पिणत्ति) यावत् ते श्रेणि-प्रश्रेणिजनोने आठ दिवसने महामहोत्सव करी अने महामहोत्सव सुभत्त थरं बधानी सूचना राजने आपी ॥११॥

परिणममाणंसि वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं चलइ एवं सिंधु-
गमो पेयव्वो, पीईदाणं आभिसेक्कं रयणालङ्कारं कडगाणि य तुडि-
याणि य वत्थाणि य आभरणणि य गेण्हइ, गिण्हत्ता, ताए उक्कि-
ट्टाए जाव अट्टाहियं जाव पच्चप्पिणंति । तएणं से दिव्वे चक्करयणे
अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं
तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था, तएणं से भरहे राया तं दिव्वं
चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिमगुहाभिमुहं पयातं पासइ, पा-
सित्ता हट्टतुट्ट चित्त जाव तिमिसगुहाए अदूरसामंते दुवालस जोय-
णायामं णवजोयणवित्थिन्नं जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणि-
ण्हइ पणिण्हत्ता पोसहसालाए पोसहीए वंभयारी जाव कयमालगं देवं
मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्टइ तएणं तस्स भरहस्स रणो अट्टमभत्तंसि
परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ तहेव जाव वेयद्ध-
गिरिकुमारस्स णवरं पीईदाणं इत्थीरयणस्स तिलगचोइसं भंडालंकारं कड-
गाणि य जाव आभरणणि य गेण्हइ गिण्हत्ता उक्किट्टाए जाव सक्का-
रेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ जाव भोयणमंडवे
तहेव महामहिमा कयमालस्स पच्चप्पिणंति ॥१२॥

छाया-ततः खलु तद्दिव्यं चक्ररत्नं सिन्ध्वा देव्याः अष्टाहिकायां महामहिमार्या निवृ-
त्तायाम्, सत्याम्, आयुधगृहशालात तथैव यावत् उत्तरपौरस्त्यां दिशं वैताढ्य-
मिसुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः खलु स भरतो राजा यावत् यत्रैव वैताढ्यपर्वतः
यत्रैव वैताढ्यस्य पर्वतस्य दक्षिणात्ये नितम्बे तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यवैताढ्यस्य पर्व-
तस्य दक्षिणात्ये नितम्बे द्वादशयोजनायामं नवयोजनविस्तीर्णं वरणगरसदृशं विजय-
स्कन्धावारनिवेशं करोति, कृत्वा यावत् वैत गिरिकुमारस्य देवस्य अष्टमभक्तं प्रगृ-
ह्णाति प्रगृह्य पौषधशालायां यावत् अष्टमभक्तिकः वैताढ्यगिरिकुमारं देवं मन्त्रिं कुर्वन्
तिष्ठति, तत खलु तस्य भरतस्य राज्ञः अष्टमभक्ते परिणमति वैतं गिरिकुमारस्य देवस्य
आसनं चलति, पव सिन्धुदेव्या गमो नेतव्य, प्रीतिदानम् आभिषेक्यम् रत्नालङ्कार
कटमानि च व्रुटिकानि च वस्त्राणि आभरणानि च गृह्णाति गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया यावत्
अष्टाहिकां यावत् प्रत्यर्पयन्ति । तत खलु तद्दिव्यं चक्ररत्नम् अष्टाहिकायां महामहिमार्यां
निवृत्तायां सत्यां यावत् पाश्चात्यां दिशं तिमिसगुहाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः खलु
स भरतो राजा तद्दिव्यं चक्ररत्नं यावत् पाश्चात्यां दिशं तिमिसगुहाभिमुखं प्रयातं पश्यति,

मण्डपे सुखासनवरगतः अष्टमभक्तं परिपारयति, 'परियादियत्ता' परिपार्य 'जाव सीहासनवरगतः श्रेष्ठमिहासनोपविष्टः 'पुरत्याभिमुहे गिसीयइ' पोरस्त्याभिमुखः निपीदति उपविशति 'गिसीयत्ता' निपद्य उपविश्य 'अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ' अष्टादश श्रेणि-प्रश्रेणीः शब्दयति आह्वयति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा आह्वय 'जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तिय पच्चप्पिणत्ति' यावत्ताः श्रेणि प्रश्रेणयोऽष्टाहिकाया महामहिमायाः ताम् आह्वयित्वा प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्ति यथाऽष्टाहिकोत्सवः कृत इति ॥सू०११॥

अथ वैताल्यसुरसाधनमाह- "तएणं से" इत्यादि ।

मूलम्- तएणं से दिञ्चे चक्करयणे सिंघूए देवीए अट्टाहीयाए महामहीमाए णिव्वत्ताए समाणीए आजहघरसालाओ तहेव जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसिं वेयद्धपव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था. तए णं भरहे राया जाव जेणेव वेयद्धपव्वए जेणेव वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं वरणगरसरिच्छं विज-यखंधावारनिवेसं करेइ करित्ता जाव वेयद्धगिरिक्कुमारस्स देवस्स अट्टम-भक्तं पणिण्हइ पणिण्हित्ता पोसहसालाए जाव अट्टमभत्तिए वेयद्धगिरि-कुमारं देवं मणसि करेमाणे चिट्ठइ तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि

गये-और बैठकर उन्होंने अष्टमभक्त की पारणा की (परियादियत्ता जाव सीहासनवरगए पुरत्याभिमुहे गिसीयइ)-अष्टम भक्तकी पारणा करके सिहासन पर बैठ गये (गिसीयत्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) सिहासन पर बैठकर फिर उन्होंने १८ श्रेणी प्रश्रेणिजनों को बुझाया (सदावित्ता) बुलाकरके (जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तियं पच्चप्पिणत्ति) यावत् उन श्रेणी प्रश्रेणीजनों ने आठ दिन का महामहोत्सव किया । और इसकी खबर "हमलोगोने आठ दिन का महामहोत्सव कर लियाहैं । ऐसी खबर पीछे राजा के पास मेजदी ॥सू०११॥

आवीने ते बोअन म डपभा सुभासन पूर्वक भेसी गया अने भेसीने नेभने अष्टम भक्तनी पारणा करी (परियादियत्ता जाव सीहासनवरगए पुरत्याभिमुहे गिसीयइ) अष्टम भक्तनी पारणा करीने पछी ते यावत् पूर्वदिश तरहे सुभ करीने सिंहासन उपर भेसी गया (गिसीयत्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) सिंहासन उपर भेसीने पछी तेभणे १८ श्रेणि प्रश्रेणिजनेने बोदाआ (सदावित्ता) बोदावीने (जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तियं पच्चप्पिणत्ति) यावत् ते श्रेणि-प्रश्रेणिजनेओ आठ दिवसने महांभडोत्सव कथेँ अने महांभडोत्सव सम्पन्न थई जवानी सूचना राजने आपी ॥११॥

परिणममाणंसि वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं चलइ एवं सिंधु-
 गमो णेयव्वो, पीईदाणं आभिसेक्कं रयणालङ्कारं कडगाणि य तुडि-
 याणि य वत्थाणि य आभरणाणि य गेण्हइ, गिण्हत्ता, ताए उक्कि-
 डाए जाव अट्टाहियं जाव पच्चप्पिणंति । तएणं से दिव्वे चक्करयणे
 अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं
 तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था, तएणं से भरहे राया तं दिव्वं
 चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहं पयातं पासइ, पा-
 सित्ता हट्टतुट्ट चित्त जाव तिमिसगुहाए अदूरसामंते दुवालस जोय-
 णायामं णवजोयणवित्थिन्नं जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगि-
 ण्हइ पगिण्हत्ता पोसहसालाए पोसहीए वंभयारी जाव कयमालगं देवं
 णसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ तएणं तस्स भरहस्स रणो अट्टमभत्तंसि
 परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ तहेव जाव वेयद्ध-
 गिरिकुमारस्स णवरं पीईदाणं इत्थीरयणस्स तिलगंचोइसं भंडालंकारं कड-
 णि य जाव आभरणाणि य गेण्हइ गिण्हत्ता उक्किडाए जाव सक्का-
 रेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ जाव भोयणमंडव्वे
 तहेव महामहिमा कयमालस्स पच्चप्पिणंति ॥१२॥

छाया-ततः खलु तद्विव्यं चक्ररत्नं सिन्ध्वा देव्याः अष्टाहिकायां महामहिमार्या निवृ-
 त्तायाम्, सत्याम्, आयुधगृहशालात तथैव यावत् उत्तरपौरस्त्यां दिशं वैताढ्य-
 णिमिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः खलु स भरतो राजा यावत् यत्रैव वैताढ्यपर्वतः
 यत्रैव वैताढ्यस्य पर्वतस्य दक्षिणात्ये नितम्बे तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यवैताढ्यस्य पर्व-
 तस्य दक्षिणात्ये नितम्बे द्वादशयोजनायामं नवयोजनविस्तीर्णं वरणगरसदृशं विजय-
 स्कन्धावारनिवेशं करोति, कृत्वा यावत् वैत गिरिकुमारस्य देवस्य अष्टमभक्तं प्रगृ-
 ह्णाति प्रगृह्य पौषधशालायां यावत् अष्टमभक्तिकः वैताढ्यगिरिकुमारं देवं मनसि कुर्वन्
 तिष्ठति, तत खलु तस्य भरतस्य राज्ञः अष्टमभक्ते परिणमति वैताढ्यगिरिकुमारस्य देवस्य
 आसनं चलति, पव सिन्धुदेव्या गमो नेतव्यं, प्रीतिदानम् आभिषेक्यम् रत्नालङ्कार
 कटमानि च व्रुटिकानि च वस्त्राणि आभरणानि च गृह्णाति गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया यावत्
 अष्टाहिकां यावत् प्रत्यर्पयन्ति । तत खलु तद्विव्यं चक्ररत्नम् अष्टाहिकायां महामहिमार्या
 निवृत्तायां सत्यां यावत् पाश्चात्यां दिशं तिमिसगुहाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः खलु
 स भरतो राजा तद्विव्यं चक्ररत्नं यावत् पाश्चात्यां दिशं तिमिसगुहाभिमुखं प्रयातं पश्यति,

मण्डपे सुखासनवरगतः अष्टमभक्तं परिपारयति, 'परियादिएत्ता' परिपार्य 'जाव सीहासनरगनः श्रेष्ठसिंहासनोपविष्टः 'पुरत्याभिमुहे णिसीयइ' पोरस्त्याभिमुखः निपीदति उपविशति 'णिसीएत्ता' निपद्य उपविश्य 'अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ' अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणीः शब्दयति आह्वयति 'सदाविता' शब्दयित्वा आह्वय 'जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तिय पच्चप्पिणंति' यावत्ताः श्रेणि प्रश्रेणयोऽष्टाहिकाया महामहिमायाः ताम् आङ्गितिकां प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्ति यथाऽष्टाहिकोत्सवः कृत इति ॥सू० ११॥

अथ बैताढ्यसुरसाधनमाह- 'तएण से' इत्यादि ।

मूलम्- तएणं से दिञ्चे चक्करयणे सिंघूए देवीए अट्टाहीयाए महामहीमाए णिव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ तहेव जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसिं वेयद्धपव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था. तए णं भरहे राया जाव जेणेव वेयद्धपव्वए जेणेव वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वेयद्धस्स पव्वयस्स दाहिणिल्ले णितंबे दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिन्नं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेसं करेइ करित्ता जाव वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगिण्हइ पगिण्हित्ता पोसहसालाए जाव अट्टमभत्तिए वेयद्धगिरिकुमारं देवं मणसि करेमाणे चिट्ठइ तएणं तस्स भरहस्स रणो अट्टमभत्तंसि

गये-और बैठकर उन्होंने अष्टमभक्त की पारणा की (परियादियत्ता जाव सीहासनवरगप पुरत्याभिमुहे णिसीयइ) अष्टम भक्तकी पारणा करके सिंहासन पर बैठ गये (णिसीएत्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) सिंहासन पर बैठकर फिर उन्होंने १८ श्रेणी प्रश्रेणिजनों को बुझाया (सदाविता) बुलाकरके (जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) यावत् उन श्रेणी प्रश्रेणीजनों ने आठ दिन का महामहोत्सव किया । और इसकी खबर "हमलोगोंने आठ दिन का महामहोत्सव कर लियाई । ऐसी खबर पीछे राजा के पास भेजदी ॥सू० ११॥

आवीने ते बोअन भ डपभा सुभासन पूर्वकं ऐसी गया अने ऐसीने नेभने अष्टम भक्तानी पारणा करी. (परियादियत्ता जाव सीहासनवरगप पुरत्याभिमुहे णिसीयइ) अष्टम भक्तानी पारणा करीने पछी ते यावत् पूर्वदिशं तरइ सुभ करीने सिंहासन उपर ऐसी गया (णिसीएत्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सदावेइ) सिंहासन उपर ऐसीने पछी तेभणे १८ श्रेणि प्रश्रेणिजनोंने बोलाया (सदाविता) बोलावीने (जाव अट्टाहियाए महामहिमाए तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति) यावत् ते श्रेणि-प्रश्रेणिजनोंने आठ दिवसने भडाभडोत्सव करी. अने भडाभडोत्सव सम्पन्न थई जवानी सूचना राजने आयी ॥११॥

परिणममाणंसि वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं चलइ एवं सिंधु-
गमो जेयव्वो, पीईदाणं आभिसेक्कं रयणालङ्कारं कडगाणि य तुडि-
याणि य वत्थाणि य आभरणाणि य गेण्हइ, गिण्हत्ता, ताए उक्कि-
ट्टाए जाव अट्टाहियं जाव पच्चप्पिणंति । तएणं से दिव्वे चक्करयणे
अट्टाहियाए महायंहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिस्सि
तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था, तएणं से भरहे राया तं दिव्वं
चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिस्सि तिमिसगुहाभिमुहं पयातं पासइ, पा-
सित्ता हट्टतुट्ट चित्त जाव तिमिसगुहाए अदूरसामंते दुवालस जोय-
णायामं णवजोयणवित्थिन्नं जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगि-
ण्हइ पगिण्हत्ता पोसहसालाए पोसहीए बंभयारी जाव कयमालगं देवं
णसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि
परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ तहेव जाव वेयद्ध-
गिरिकुमारस्स णवरं पीईदाणं इत्थीरयणस्स तिलगंचोइसं भंडालंकारं कड-
गाणि य जाव आभरणाणि य गेण्हइ गिण्हत्ता उक्किट्टाए जाव सक्का-
रेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ जाव भोयणमंडवे
तहेव महामहिमा कयमालस्स पच्चप्पिणंति ॥१२॥

छाया-ततः खलु तद्विष्यं चक्ररत्नं सिन्धुवा देव्याः अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृ-
त्तायाम्, सत्याम्, आयुधगृहशालात तथैव यावत् उत्तरपौरस्त्यां दिशं वैताढ्य-
पर्वताभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः खलु स भरतो राजा यावत् यत्रैव वैताढ्यपर्वतः
यत्रैव वैताढ्यस्य पर्वतस्य दक्षिणात्ये नितम्बे तत्रैवोपागच्छति, उपागत्यवैताढ्यस्य पर्व-
तस्य दक्षिणात्ये नितम्बे द्वादशयोजनायाम् नवयोजनविस्तीर्णं धरणगरसदृशं विजय-
स्कन्धावारनिवेशं करोति, कृत्वा यावत् वैताढ्यगिरिकुमारस्य देवस्य अष्टमभक्तं प्रगृ-
ह्णाति प्रगृह्य पौषधशालायां यावत् अष्टमभक्तिकं वैताढ्यगिरिकुमारं देवं मनसि कुर्वन्
तिष्ठति, ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञः अष्टमभक्ते परिणमति वैताढ्यगिरिकुमारस्य देवस्य
आसनं चलति, पञ्च सिन्धुदेव्या गमो नेतव्यं, प्रीतिदानम् आभिषेक्यम् रत्नालङ्कार-
कटमानि च त्रुटिकानि च वस्त्राणि आभरणानि च गृह्णाति गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया यावत्
अष्टाहिकां यावत् प्रत्यर्पयन्ति । ततः खलु तद्विष्यं चक्ररत्नम् अष्टाहिकायां महामहिमायां
निवृत्तायां सत्यां यावत् पाश्चात्या दिशं तिमिसगुहाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत्, ततः खलु
स भरतो राजा तद्विष्यं चक्ररत्नं यावत् पाश्चात्यां दिशं तिमिसगुहाभिमुखं प्रयातं पश्यति,

दृष्ट्वा हृष्टतुष्ट चित्त यावत् तिमिस्रगुहाया अद्दृ सामन्ते द्वादशयोजनायामं नवयोजनविस्तीर्णं यावत् कृतमालस्य देवस्य अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति, प्रगृह्य पौषधशालाया पौषधिको ब्रह्मचारी यावत् कृतमालकं देव मनसि कुर्वन् तिष्ठति, ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञः अष्टमभक्ते परिणमनि कृतमालस्य देवस्य आसनं चलति तथैव यावत् वैताढ्यगिरिकुमारस्य नवरं प्रीतिदानं स्त्रीरत्नस्य तिलकचतुर्दशं भाण्डालकारं कटकानि च यावत् आभरणानि च गृह्णाति, गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया यावत् सत्कारयति, सन्मानयति, सत्कार्यं सम्मान्य प्रति-
विपर्जयति यावत् भोजनमण्डपे, तथैव महामहिमां कृतमालस्य प्रत्यर्पयन्ति ॥सू० १२॥

टीका—‘तपणं से इत्यादि ‘तप णं से दिव्वे चक्ररयणे सिंधूए देवीए अट्टा-
हियाए महामहिमाए णिवत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ तहेव जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसिं वेयद्धपव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था” ततः खलु तद्विन्यं चक्ररत्नं सिन्ध्वाः सिन्धुनाम्न्याः देव्याः विजयोपलक्षिकायाम् अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्याम् आयुधगृहशालातस्तथैव पूर्ववदेव निष्कामति—प्रतिनिष्कम्य यावत् अनेक वाद्य-
विशेषाणां ध्वनि प्रतिध्वन्यात्मकशब्दैः गगनतलं पूरयदिव उत्तरपौरस्त्याम्—उत्तरपूर्वां दिशम् ईशानकोणवैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत् प्रस्थित जातम् सिन्धुदेवी भवनतो वैताढ्यपुरसाधनार्थं वैताढ्यपुरावासभूतं वैताढ्यकूटं गच्छतश्चक्ररत्नस्य ईशान-
दिश्येव सुष्ठु पन्था ‘तपणं से भरहे राया जाव जेणेव वेयद्धपव्वए जेणेव वेयद्ध

तपणं से दिव्वे च रयणे सिंधूए देवीए” इत्यादि । सूत्र—१२—

टीकार्थ—तपण से दिव्वे चक्ररयणे) इसके बाद वह दिव्य चक्ररत्न (सिंधूए देवीए अट्टाहियाए महामहिमाए णिवत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ तहेव जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसिं वेयद्धपव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था) सिन्धुदेवी के विजयोपलक्ष्य में कृत महामहोत्सव समाप्त हो जाने पर आयुध गृहशाला से पूर्व की तरह ही बाहर निकला और निकलकर यावत् अनेक वाद्यविशेषों के ध्वनि प्रतिध्वनिरूप शब्दों द्वारा गगनतलको भरता-रसा उत्तर पूर्व दिशा में—ईशान कोण में स्थित वैताढ्य पर्वत को ओर चला सिन्धु देवी के भवन से वैताढ्यपुरसाधन के लिये वैताढ्यपुरावासभूत वैताढ्यकूट की ओर जाते हुए चक्ररत्नको ईशानदिशामें ही सरल

‘तपण से दिव्वे चक्ररयणे सिंधूए” इत्यादि सूत्र ॥१२॥

टीकार्थ— (तपणं दिव्वे चक्ररयणे) त्या२ भा६ ते ।६०थे चक्ररत्न (सिंधूए देवीए अट्टाहियाए महामहिमाए णिवत्ताए णीए आउहघरसालाओ तहेव जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसिं वेयद्ध-
पव्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था) सिन्धुदेवीना (विजयोपलक्ष्यमा जे महामहोत्सव आये-
नित करेनामा आये। ते न्यारे सम्पन्न थयं गये। त्यारे ते पडेत्तानी जेम जे आयुधगृह-
शालाभाथी षडार नीकप्ये। अने नीकगीने यावत् अनेक वाद्य विशेषाना ध्वनि प्रतिध्वनि
रूप शब्दो द्वारा गगनतलने सम्भुरित करतु उत्तर पूर्व दिशाम्—ईशान कोणमां स्थित
वैताढ्य पर्वतणी तरहं आएथुं। सिन्धु देवीना भवनथी वैताढ्यपुर साधन भाटे वैताढ्य-
पुरावासभूत वैताढ्यकूट तरहं प्रयाथु करतां चक्ररत्नने ईशानदिशामां ज सरलता थयं

पञ्चयस्स दाह्णिणिल्ले णितंवे तेणेव उवागच्छड' ततः खलु स भरतो गन्ता यावन् यत्रैव
 वैताढ्यः पर्वतः यत्रैव च वैताढ्यस्य पर्वतस्य दक्षिणात्यो दक्षिणार्द्धभरतपार्श्ववर्ती
 नितम्बः मूलभागस्तत्रैव उवागच्छति, अत्र यावत्पदात् वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयात्न चक्र-
 रत्नं पश्यति, दृष्ट्वा दृष्टतुष्ट चित्तानन्दः परमसौमनस्यत भरतो राजा इति संग्राह्यम्
 'उवागच्छत्ता' उपागत्य 'वेयद्धस्स पञ्चयस्स दाह्णिणिल्ले णितंवे दुवाल्लसज्जोयणायामं
 णवज्जोयणवित्थिन्नं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेशं करेइ' वैताढ्यस्य पर्वतस्य
 दक्षिणात्ये दक्षिणार्द्धभरतपार्श्ववर्तिनि नितम्बे मूलभागे द्वादशयोजनायामं द्वादश
 योजनदैर्घ्यं नवयोजनविस्तीर्णं पट्टत्रिंशत्तमक्रोशविस्तीर्णम्, वरनगरमदृशं-श्रेष्ठनगरतुल्यम्
 विजयस्कन्धावारनिवेश सेनानिवेशम्, करोति 'करित्ता' कृत्वा 'जाव वेयद्धगिरि-
 कुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ' अत्र यावत्पदात् वर्द्धकिरन्नशब्दापन पौषधशाला
 विधापनादि सर्वं नेतव्यम्, तेन पौषधशालायां वैताढ्यगिरिकुमारस्य देवस्य साधनायेति

रास्ता पडा इसो छिये वह इस मार्ग से गया (तएण से भरहे राया जाव जेणेव वेयद्ध
 पव्वए जेणेव वेयद्धस्स पञ्चयस्स दाह्णिणिल्ले णितवे तेणेव उवागच्छड) डमके बाद वह भरत
 चकी यावत् जहां पर वैताढ्य पर्वतथा, और जहां पर वैताढ्य पर्वतका दक्षिणात्य दक्षिणार्द्ध
 भरतका पार्श्ववर्ती नितम्ब था—मूलभागथा-वहा पर आया—यहां यावत्पद से यह पाठ गृहीतहुआ
 है—“ वैताढ्य पर्वताभिमुखं प्रयात्नं चक्ररत्नं पश्यति दृष्ट्वा दृष्ट तुष्ट- चित्तानन्दितः परमसौमन-
 स्यितः भरतो राजा” । (उवागच्छत्ता वेयद्धस्स पञ्चयस्स दाह्णिणिल्ले णितंवे-दुवाल्लस ज्जोय-
 णायामं णवज्जोयणवित्थिन्न वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेशं करेइ) वहां आकर के उसने
 वैताढ्य पर्वत के दक्षिणात्य नितम्ब पर दक्षिणार्द्ध भरत पार्श्ववर्ती मूल भाग पर—१२
 योजन की लंबाई वाले और ७ योजन की चौड़ाई वाले श्रेष्ठ नगर तुल्य विशाल सैन्य
 का पडाव डाला (करित्ता जाव वेयद्धगिरीकुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ) पडाव डाल
 कर यावत् उसने वैताढ्य गिरि कुमार देव को साधन करने के लिए अष्टम भक्त का व्रत

अथी न ते आ भागंथी गथुं (त एण से भरहे राया जाव जेणेव वेयद्धपव्वए जेणेव
 वेयद्धस्स पञ्चयस्स दाह्णिणिल्ले णितवे तेणेव उवागच्छड) त्याऽथाऽ ते भरतचकी यावत्
 न्यां वैताढ्य पर्वतं इते। अने न्यां वैताढ्य पर्वतने। दक्षिणात्य दक्षिणार्द्ध भरतपार्श्व-
 वर्ती" नितम्ब-मूलभाग इतो त्या आये। अही यां यावत् पदथी आ पाठ गृहीत थये।
 छे—“वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयात्नं चक्ररत्नं पश्यति दृष्ट्वा, दृष्ट तुष्ट चित्तानन्दितः परमसौ-
 मनस्यितः भरतो राजा” । (उवागच्छत्ता वेयद्धस्स पञ्चयस्स दाह्णिणिल्ले णितंवे दुवाल्लस-
 जोयणायामं णवज्जोयणवित्थिन्नं वरणगरसरिच्छं विजयखंधावारनिवेशं करेइ) त्या आवीने
 तेथे वैताढ्य पर्वतने। दक्षिणात्य नितम्ब पर दक्षिणार्द्ध भरत पार्श्ववर्ती मूल भाग पर
 १२ योजन लंबाई व चौड़ाईवाले अने नव योजन लंबाईवाले श्रेष्ठ नगर तुल्य विशाल
 सैन्यने। पडाव नाथ्ये। (करित्ता जाव वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ) पडाव
 नाथीने यावत् तेथे वैताढ्यगिरि कुमार देवनी साधना भाटे अष्टमभक्त व्रत धारण्य कथुं.

शेषः अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति 'पगिण्हत्ता' प्रगृह्य 'पोसहसालाए जाव अट्टमभत्तिए वेयद्ध-
गिरिकुमारं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिद्धइ' पौषधशालायां यात्रत्तरणात् पौषधिकः
पौषधव्रतवान् अतएव ब्रह्मचारी दर्भसंस्तारज्ञोपगतः साद्धद्वयहस्तपरिमित दर्भासनने
उपविष्टः उन्धुत्तमणिसुवर्णाळङ्कार इत्यादि सर्वं पूर्वोदतं ग्राह्यम् अष्टमभक्तिकः कृताष्टम-
तपाः, वैताढ्यगिरिकुमारं देवं मनसि कुर्वन् कुर्वन् ध्याय ध्यायंस्तिष्ठति । 'तए णं
तरस भरहरस रण्णो अट्टमभत्तसि परिणममाणसि वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं
चलइ' ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञः अष्टमभक्ते परिणमति परिपूर्णप्राये जायमाने
सति वैताढ्यगिरि कुमारस्य देवस्य आसनं सिंहासनम्, चलति 'एवं सिंधुगमो जेयव्वो'
एवं सिंधुदेव्याः गमः सदृशपाठो नेतव्यः—स्मृतिपथम् आनयितव्यः इदं च सिंधु-
देव्या अतिदेशकथनं तद्वाणव्यापारमन्तरेणैवायमपि साध्यः उति सादृश्यख्यापनार्थं
तथा च वैताढ्यगिरिकुमारो देवः रसिंहासनं चलितं पश्यति, दृष्ट्वा अवधिं प्रयुङ्क्ते

धारण-क्रिया (पगिण्हत्ता पोसहसालाए जाव अट्टमभत्तिए वेयद्धगिरिकुमारं देवं मणसि करेमाणे र
चिद्धइ) अष्टमभक्त को धारण करके पौषधशाला में पौषधव्रत वाले अत एव ब्रह्मचारी तथा
दर्भ के सहारे पर आसीन—२॥ हाथ प्रमाण दर्भासन पर स्थित—एव मणिमुक्ता आदि के
अलङ्कारों से विहीन हुए ऐसे उस महाराजा भरत चक्रा ने पूर्व में कहे अनुसार वैताढ्य-
गिरी कुमार का मन में ध्यान करना प्रारम्भ किया (तएण तरस भरहरस रण्णो अट्टमभत्तसि
परिणममाणसि वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं चलइ) इसके बाद महाराजा भरत चक्री
का जब अष्टम भक्त समाप्त प्रायः होने को आया तब (एव सिंधुगमो जेयव्वो) इसके
बाद जैसा-सिंधु देवी के साधन प्रकरण में कहा गया है वैसा कथन यहां जानना—चाहिये अर्थात्
जिस प्रकार भरत चक्री ने सिंधु देवी को विना वाण के वश में किया उसी प्रकार से
इसे भी विना—वाण के वश में किया इस तरह जब वैताढ्यगिरी कुमार देवने अपना
आसन कर्पण होते हुए देखा तो देखकर— उसने अपने अवधि को उपयुक्त किया उससे

(पगिण्हत्ता पोसहसालाए जाव अट्टमभत्तिए वेयद्धगिरिकुमारं देवं मणसिकरेमाणे र
चिद्धइ) अष्टमभक्त धारण करीने पौषधशालाया पौषधव्रतवाणा ज्येथी ब्रह्मचारी तेभज्ज
दर्भाना सहारा उपर समासीन २॥ हाथ प्रमाण दर्भासन उपर स्थित मणिमुक्ता आदि
अलंकाराथी विहीन थयेवा ज्येवा ते भरतचक्रो पूर्वमां कइया मुज्जण ज वैताढ्यगिरि कुमारदेवना
ध्यानमां जेकथित्त थर्ध गणा (तएण तरस भरहरस रण्णो अट्टमभत्तसि परिणममाणसि
वेयद्धगिरिकुमारस्स देवस्स आसणं चलइ) तयार भाइ ज्येथारे भरतचक्रोनु अष्टमभक्त व्रत
समाप्त प्रायः ज इत्तु तयारे वैताढ्यगिरि कुमार देवतुं आसनं कपायमानं थयुं (एवं सिंधु-
गमो जेयव्वो) तयार भाइ जे प्रभाण्णे सिंधु देवीना प्रःसुभा कइवाया आण्युं छे ते प्रभाण्णे
ज अड्डी पणु समज्जणु जोटथे छे जेम भरतचक्रो जे सिंधुदेवीने वजर भाण्णे ज वशमां करी
तेभज्ज ते वैताढ्यगिरि कुमार देवने पणु पोताना शमा कथां आ प्रभाण्णे ज्येथारे वैताढ्य
गिरि कुमार देवे पोतानुं आसनं कर्पितं थतुं ज्येथुं तो आ जेधने तेण्णे पोताना अवधि-

प्रयुज्य भरतं राजानम् अत्रधिज्ञानेन आभोगयति जानाति आभोग्य ज्ञात्वा तस्य वैता-
 ढ्यगिरिकुमारस्य देवस्य अयमेतद्रूपो नक्ष्यमाण स्वरूपः आध्यात्मिकः—आत्मगत अङ्कुर
 इव, ततश्चिन्तितः पुनः पुनः रमरणरूपो विचारो द्विपत्रित इव कल्पितः—रु एव व्यवस्था
 युक्तः विचारः पल्लवित इव ३, प्रार्थितः स एचेष्टरूपेण स्वीकृतः पुष्पित इव ४, मनो-
 गतः संकल्पः मनसि दृढरूपेण विषयः सत्कारार्हस्य तत्साधित मदायचीकृत सत्कार-
 वस्तुभिस्तद्योग्यं सत्कारं करिष्यामि, इति विचारः फलित इव ५, सधुत्पन्नः, स च कः
 सङ्कल्प इत्याह—उत्पन्नः खलु भो जम्बूद्वीपे द्वीपे—जम्बूद्वीपनामके द्वीपे भरते वर्षे भरतो
 नाम राजा चातुरन्तचक्रवर्ती तज्जीतमेतत् जीताचार एषः अतीतदर्चमानानागतानां
 वैताढ्यगिरिकुमाराणां देवानां भरतानां राज्ञाम् उपस्थानिकं प्राभृत कर्तुं वर्त्तने इति,
 तद्वच्छामि खलु अहमपि भरतस्य राजश्चक्रिण उपस्थानिकं करोमीति विचार्य 'पीडदाणं
 अभिसेवकं रयणालंकारं कडगाणि य तुडियाणि य वत्थाणि य आभरणाणि य गेण्हइ'
 प्रीतिदानम् अभिषेक्यम्—अभिषेकयोग्यं राजपरिधेयम्, रत्नालंकार मुकुटम्, कटकानि
 च हस्ताभरणानि, त्रुटिकानि च बाह्याभरणानि, वस्त्राणि च आभरणानि च गृह्णाति
 'गिण्हत्ता' गृहीत्वा 'ताए उक्किट्ठाए जाव अट्ठाद्विय जाव पच्चप्पिणंति' तथा उत्कृष्टया

उसने भरत राजा को अपना ध्यान करते हुए देखा—जाना तब उस वैताढ्य गिरि कुमार
 देव के मन में ऐसा आध्यात्मिकचिन्तित, कल्पित प्रार्थित पुष्पित, मनोगत, संकल्प विचार
 प्रकट हुआ कि जंबूद्वीप में भरत क्षेत्र में भरत नाम का चातुरन्त चक्रवर्ती महाराजा
 उत्पन्न हुआ है तो अतीत, अनागत, वर्तमान काल के समस्त वैताढ्यगिरी कुमार देवों
 का ऐसा परम्परा से चला आया यह आचार व्यवहार है कि वे उसे नजराना दें तो मैं
 चढ़ और उसे भेट करूँ ऐसा विचारकर (पीडदाणं अभिसेवकं रयणालंकारं कडगाणिय
 तुडियाणिय वत्थाणिय आभरणाणिय गेण्हइ) उसने प्रीतिदान में देने के निमित्त अभिषेक-
 योग्य राजपरिधेय रत्नालंकार—मुकुट कटक त्रुटिक वस्त्र, और आभरण लिये (गिण्हत्ता
 ताए उक्किट्ठाए जाव पच्चप्पिणंति) और लेकर वह उत्कृष्ट आदि विशेषणों वाली गति

ज्ञानेन उपयोग कर्त्थो. अधिज्ञानभां तेषु भरतयुक्ती शब्दने तेना न ध्यानभां दीन ज्ञेया.
 त्थाइ ते वैताढ्यगिरि कुमार देवना मनभां जेवे आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित,
 पुष्पित, मनोगत संकल्प—विचार प्रकट थयो के नं युद्धीप नामके द्वीपभा, भरतक्षेत्रभा भरत
 नामे चातुरन्त चक्रवर्ती राज उत्पन्न थयो छे तो अतीत, अनागत, वर्तमान कालना सर्व
 वैताढ्यगिरि कुमार देवोंने व श पर पराथी जेवे आचार—व्यवहार थादतो आवे छे के ते
 चक्रवर्ती जेवा भरत शब्दने नजरालु आपे तो हुं नउ अने तेने नजरालु आपु आभ
 विचार करीने (पीडदाणं अभिसेवक रयणालंकार कडगाणिय तुडियाणिय वत्थाणिय आभ-
 रणाणि य गेण्हइ) ते वैताढ्यगिरि कुमार देवे शब्दने प्रीतिदानभा आपना भाटे अभिषेक
 योग्य राजपरिधेय—रत्नालंकार, मुकुट, कटक, त्रुटिक, वस्त्र अने आभरणो जीया (गिण्हत्ता
 ताए उक्किट्ठाए जाव आट्ठाद्वियं जाव पच्चप्पिणंति) अने ते सर्व लक्षणे ते उत्कृष्ट आदि

गत्या यावत् अष्टाहिकां महामहिमां यावत् प्रत्यर्पयन्ति—समर्पयन्ति, अत्र प्रथमो यावच्छब्दः उक्तातिरिक्त विशेषणसहितां गतिं प्रीतिवाक्यं प्राभृतोपनयनग्रहणे सुरसन्मानन विसर्जने स्नानभोजने श्रेणि प्रश्रेण्यामन्त्रण बोधयति, द्वितीयस्तु यावच्छब्दः अष्टाहिकाऽऽदेशदानकरणे इति सूचयति ।

अथ तमिश्रा गुहाधिपकृतमाल सुरसाधनार्थमुपक्रमते

‘तए ण’ इत्यादि ‘तए णं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था’ ततः खलु तद्विव्य चक्ररत्नम् अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्याम् अर्थाद् वैताढ्यगिरिकुमारस्य देवस्य विजयोपलक्षिकायां यावत् पाश्चात्यां पश्चिमां दिशं तमिस्रागुहाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत् प्रस्थितमभूत् प्रस्थितजातम् वैताढ्यगिरिकुमारसाधनस्थानस्य तमिश्रायाः पश्चिमवर्तित्वात् ‘तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहं पयातं पासइ’ ततः खलु स भरतो राजा तद्विव्यं चक्ररत्न यावत्

से चल कर जहा पर महाराजा भरत नरेश था वहा पर आया इत्यादि और सब आगे का कथन महामहोत्सव करने तक और उसकी भरत नरेशको सूचना देने तक का यहां पर करछेना चाहिये । यह सब कथन पीछे लिखा ही जा चुका है अतः वहीं से इसे देख लेना चाहिये यही बात यहां पर आये हुए यावत् शब्द सूचित करता है ।

तमिश्रा गुहाधिप कृतमालदेव साधन वक्तव्यता—(तएणं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था) जब वैताढ्यगिरिकुमार देव के विजयोपलक्ष्य में ८ दिन का महामहोत्सव समाप्त हो चुका तब वह दिव्य चक्ररत्न पश्चिमदिशा में वर्तमान तमिस्रा गुहा की तरफ प्रस्थित हुआ क्यों कि वैताढ्यगिरीकुमार को साधन करने का स्थान तमिस्रा गुहा की पश्चिम दिशा में है (तएणं से भरहे राया त दिव्वं चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमि-

विशेषज्ञोपाणी गतिथी आदीने जयां भरत नरेश इतो त्यां आओ, पत्यादि आगणतुं सर्वं कथन—महामहोत्सव सम्पन्न करवा तेमज ते उत्सवनी पूषुथवाणी भरत नरेशने सूचना आपवा सुधीनुं अहीं लक्ष्मी देवु जोधओ. ओ अधु कथन पढेलां स्पष्ट करवामां आओ न छे ओथी अधु त्याथी न लक्ष्मी देवु जोधओ अही यावत् पदथी ओन वात स्पष्ट करवामा आवी छे

तमिश्रागुहाधिप कृतमालदेवसाधनवक्तव्यता

(त एणं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था) जयादे वैताढ्यगिरि कुमार देवना विजयोपलक्ष्यमां ८ दिवसने महामहोत्सव सम्पन्न थधं युक्त्यो त्यादे ते दिव्य चक्ररत्न पश्चिम दिशाभा वर्तमान तमिस्रागुहाणी तरफ प्रस्थित थयुं केमके वैताढ्यगिरि कुमारने साधनातुं स्थान तमिस्रा गुहाणी पश्चिम दिशाभा छे (तएण से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयण

पाश्चात्यां पश्चिमां दिशं तमिस्रागुहाभिमुखं प्रयातं—प्रस्थितं पश्यति 'पामित्ता' दृष्ट्वा
 'हृदुतुदुचित्त जाव तिमिसगुहाए अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं णव जोयणवित्थिण्णं
 जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगिण्हइ' हृष्टुष्ट चित्तानन्दितः यावत् परमसौमनस्यिनः
 स भरतः तमिस्रागुहायाः अदूरसामन्ते नातिदूरे नातिसमीपे उचितस्थाने द्वादशयोजना-
 यामं नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशं विजयस्कन्धावारनिवेश सेनानिवेशं करोति 'ऋग्गित्ता'
 कृत्वा यावत् पदात् वर्द्धकिरत्नशब्दापनपौषधशालाविधापनादि सर्वं नेतव्यम्, तेन
 पौषधशालायां कृतमालस्य देवस्य साधनाय अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति 'पगिण्हित्ता' प्रगृह्य
 'पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव कयमालगं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ'
 पौषधशालायां पौषधिकः पौषधव्रतवान् अतएव ब्रह्मचारी यावत्करणत् दूर्भसंस्तारको-
 पगतः सार्द्धद्वयहस्तपरिमित दूर्भासने उपविष्टः, उन्मुक्तमणिसुवर्णालङ्कार इत्यादि सर्वं

सगुहाभिमुखं प्रयातं पासह) जब भरत राजा ने उम दिव्य चक्ररत्न को यावत् पश्चिमदिशा
 में तमिस्रा गुहा की ओर जाते देखा तो (पासित्ता) देखकर वह (हृदुतुदु चित्त जाव तिमिस-
 गुहाए अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिण्णं जाव कयमालस्स देवस्स
 अट्टमभत्तं पगिण्हइ) हर्षित एवं सतोषित हुआ यावत् उसने तमिस्रा गुहा के पास में
 ही न उससे- अधिक दूर और न उसके अधिक निकट—किन्तु समुचित स्थान में ही—१२
 योजन के लंबे एवं नौ योजन विस्तार वाले अपने विशाल सैन्य का पडाव डाला यावत् कृतमाल
 देव को साधने के निमित्त उस ने अष्टम भक्त को तपस्या को स्वीकार की यहा यावत्
 शब्द से वर्द्धकिरत्न का बुलाना पौषधशाला के बनाने का आदेश देना आदि आदि
 पूर्वोक्त—सब प्रकरण लगा लेना चाहिये (पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव
 कयमालगं देवं मणसिकरेमाणे २ चिट्ठइ) इस प्रकार पौषधशाला में पौषध व्रतको धारण कर एवं
 ब्रह्मचर्यव्रत वाला वह भरत नरेश यावत् कृतमाल- देव का मन में ध्यान करने लगा यहां
 यावत् शब्द से "दूर्भासनसंस्तारकोपगतः उन्मुक्तमणिसुवर्णालङ्कारः" इत्यादि पूर्वोक्त सब पाठ

जाव पञ्चवित्थिमं दिसि तिमिसगुहाभिमुखं प्रयातं पासह) अथारे भरत राजा ने ते दिव्य
 चक्ररत्नने यावत् पश्चिम दिशाभा तमिस्रा गुहा तरके अतु नेथु तो (पासित्ता) नेभने ते
 (हृदुतुदु चित्त जाव तिमिसगुहाए अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिण्णं
 जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगिण्हइ) हर्षित तेभं सतोषित चित्त थयेथे।
 यावत् तेथे तमिस्रा गुहानी पास अ तेनाथी वधारे इर पथु नहि अने अधिक निकट पथु
 नहि पथु सभुचित्त स्थानभा—१२ योजन अटले लाणे अने नव योजन प्रभाषु पडोणा पोताना
 विशाल सैन्यने पडाव नाथो. यावत् कृतमालदेवने साधवा माटे तेथे अष्टमभक्तनी तपस्या
 स्वीकार करी अही यावत् शब्दथी वर्द्धकिरत्नने आदावणे, पौषधशालाना निर्माणे माटे
 तेने आदेश आपणे वगैरे पूर्वोक्त सर्व प्रकरणे अध्याहृत करणु नेथेथे (पगिण्हित्ता
 पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव कयमालगं देवं मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ) आ प्रभाषु
 पौषधशालाभा पौषधव्रतवाणे तेभं ब्रह्मचारी भरत नरेश यावत् कृतमाल देवसु भनभा

गत्या यावत् अष्टाहिकां महामहिमां यावत् प्रत्यर्पयन्ति—समर्पयन्ति, अत्र प्रथमो यावच्छब्दः उक्तातिरिक्त विशेषणसहितां गतिं प्रीतिवाक्यं प्राभृतोपनयनग्रहणे सुरसन्मानन विसर्जने स्नानभोजने श्रेणि प्रश्रेण्यामन्त्रण बोधयति, द्वितीयस्तु यावच्छब्दः अष्टाहिकाऽऽदेशदानकरणे इति सूचयति ।

अथ तमिश्रा गुहाधिपकृतमाल सुरसाधनार्थमुपक्रमते

‘तए ण’ इत्यादि ‘तए णं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था’ ततः खलु तदिव्य चक्ररत्नम् अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्याम् अर्थाद् वैताड्यगिरिकुमारस्य देवस्य विजयोपलक्षिकायां यावत् पाश्चात्यां पश्चिमां दिशं तमिस्रागुहाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत् प्रस्थितमभूत् प्रस्थितजातम् वैताड्यगिरिकुमारसाधनस्थानस्य तमिश्रायाः पश्चिमवर्त्तित्वात् ‘तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहं पयातं पासइ’ ततः खलु स भरतो राजा तदिव्यं चक्ररत्न यावत्

से चल कर जहां पर महाराजा भरत नरेश था वहा पर आया इत्यादि और सब आगे का कथन महामहोत्सव करने तक और उसकी भरत नरेशको सूचना देने तक का यहां पर करकेना चाहिये । यह सब कथन पीछे लिखा ही जा चुका है अतः वहाँ से इसे देख लेना चाहिये यही बात यहा पर आये हुए यावत् शब्द सूचित करता है ।

तमिश्रा गुहाधिप कृतमालदेव साधन वक्तव्यता—(तएणं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था) जब वैताड्यगिरिकुमार देव के विजयोपलक्ष्य में ८ दिन का महामहोत्सव समाप्त हो चुका तब वह दिव्य चक्ररत्न पश्चिमदिशा में वर्तमान तिमिस्रा गुहा की तरफ प्रस्थित हुआ क्यों कि वैताड्यगिरिकुमार को साधन करने का स्थान तिमिस्रा गुहा की पश्चिम दिशा में है (तएणं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमि-

विशेषणोवाणी गतिथी आलीने न्यां भरत नरेश इतो त्यां आण्ये, धत्यादि आगणनु' सर्व कथन—मंडामडोत्सव सम्पन्न करवा तेमए ते उत्सवनी पूज्यथवाणी भरत नरेशने सूचना आपवा सुधीनु' अही' लणी देवु नेधये. ओ अधु कथन पडेवां स्पष्ट करवामां आण्यु न्ने येथी अधु त्याथी न्ने लणी देवु नेधये अही यावत् पदथी येण वात स्पष्ट करवामा आणी छे

तमिश्रागुहाधिप कृतमालदेवसाधनवक्तव्यता

(त एणं से दिव्वे चक्करयणे अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए जाव पच्चत्थिमं दिसिं तिमिसगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था) न्यारे वैताड्यगिरि कुमार देवना विन्योपलक्ष्यमां ८ दिवसने। मंडामडोत्सव सम्पन्न थधं युक्तो त्यारे ते दिव्य चक्ररत्न पश्चिम दिशाभा वर्तमा । तिमिस्रागुहाणी तरफ प्रस्थित थयु कभडे वताड्यगिरि कुमारने साधवानु' स्थान तमिस्रा गुहाणी पश्चिम दिशाभां छे (तएण से भरहे राया तं दिव्व चक्करयण

पाश्चात्यां पश्चिमां दिशं तमिस्रागुहाभिमुखं प्रयातं—प्रस्थित पश्यति 'पासित्ता' दृष्ट्वा
 'हृदुतुदुचित्त जाव तिमिसगुहाए अदूरसामने दुवालसजोयणायामं णव जोयणवित्थिन्न
 जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभक्तं पगिण्हइ'हृष्टुष्टु चित्तानन्दितः यावत् परममोमनस्यिनः
 स भरतः तमिस्रागुहायाः अदूरसामन्ते नातिदूरे नातिसमीपे उचितस्थाने द्वाद्गयोजना-
 यामं नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशं विजयस्कन्धावारनिवेग सेनानिवेशं करोति 'ऋग्गित्ता'
 कृत्वा यावत् पदात् वर्द्धकिरत्नशब्दापनपौषशालाविधापनादि सर्वं नेतव्यम्, तेन
 पौषशालायां कृतमालस्य देवस्य साधनाय अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति 'पगिण्हित्ता' प्रगृह्य
 'पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव कयमालगं देवं मणसि करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ'
 पौषशालायां पौषधिकः पौषधव्रतवान् अतएव व्रतचारी यावत्करणात् दर्भसंस्तारको-
 पगतः सार्द्धद्वयहस्तपरिमित दर्भासने उपविष्टः, उन्मुक्तमणिसुवर्णालङ्कार इत्यादि सर्वं

सगुहाभिमुखं पयात् पासइ) जब भरत राजा ने उम दिव्य चक्ररत्न को यावत् पश्चिमदिशा
 में तमिस्रा गुहा की ओर जाते देखा तो (पासित्ता) देखकर वह (हृदुतुदु चित्त जाव तिमिस-
 गुहाए अदूरसामने दुवालसजोयणायाम णवजोयणवित्थिण्ण जाव कयमालस्स देवस्स
 अट्टमभक्त पगिण्हइ) हर्षित एवं सतोषित हुआ यावत् उसने तमिस्रा गुहा के पास में
 ही न उससे- अधिक दूर और न उसके अधिक निकट—किन्तु समुचित स्थान में ही—१२
 योजन के लंबे एवं नौ योजन विस्तार वाले अपने विशाल सैन्य का पड़ाव डाला यावत् कृतमाल
 देव को साधने के निमित्त उस ने अष्टम भक्त को तपस्या को स्वीकार की यहा यावत्
 शब्द से वर्द्धकिरत्न का बुलाना पौषशाला के बनाने का आदेश देना आदि आदि
 पूर्वोक्त—सब प्रकरण लगा लेना चाहिये (पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव
 कयमालगं देव मणसिकरेमाणे २ चिट्ठइ) इस प्रकार पौषशाला में पौषध व्रतको धारण कर एवं
 व्रतचर्यव्रत वाला वह भरत नरेश यावत् कृतमाल- देव का मन में ध्यान करने लगा यहां
 यावत् शब्द से "दर्भासनसस्तारकोपगतः उन्मुक्तमणिसुवर्णालङ्कारः" इत्यादि पूर्वोक्त सब पाठ

जाव पञ्चत्थिम विसि तिमिसगुहाभिमुखं पयातं पासइ) अथारे भरत राजा ने ते दिव्य
 चक्ररत्नने यावत् पश्चिम दिशाभा तमिस्रा गुहा तरहे अतु जेथु तो (पासित्ता) जेभने ते
 (हृदुतुदुचित्त जाव तिमिसगुहाए अदूरसामने दुवालसजोयणायाम णवजोयणवित्थिण्ण
 जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभक्तं पगिण्हइ) हर्षित तेभअ संतोषित थित थथेथे।
 यावत् तेथे तमिस्रा गुहानी पासि अ तेनाथी वधारे इर पथु नहि अने अधिक निकट पथु
 नहि पथु अशुचित स्थानभां—१२ योजन जेटथे लाणे अने नव योजन प्रमाथु पडोणा पोताना
 विशाण सैन्यने पडाव नाथो यावत् कृतमालदेवने साधवा माटे तेथे अष्टमभक्तनी तपस्या
 स्वीकार करी अही यावत् शब्दथी वर्द्धकिरत्नने आदाववे, पौषधशाणाना निर्माथु माटे
 तेने आदेश आपवे वगेरे पूर्वोक्त सर्व प्रकरण अथार्द्धत करतु जेथेथे (पगिण्हित्ता
 पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव कयमालगं देव मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ) आ प्रमाथु
 पौषधशाणामा पौषधव्रतवाणे तेभअ व्रतचारी भरत नरेश यावत् कृतमाल देवसु मनभा

ग्राह्यम् अष्टमभक्तिकः कृताष्टमतपाः कृतमालकं देवं मनसि कुर्वन् ध्यायं २ स्तिष्ठति 'तए
णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि कयमालस्स देवस्स आसणं चलइ'
ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञश्चक्रवर्त्तिनः अष्टमभवते परिणमति परिपूर्णप्राये जायमाने
सति कृतमालस्य देवस्य आसनं सिंहासनं चलति 'तदेव जाव वेयद्धगिरिकुमारस्स' तथैव
पूर्ववदेव यावत् वैताढ्यगिरिकुमारस्य सदृश पाठो नेतव्यो यावत्पदात् सर्वं प्राग्वत्
'णवरं पीइदाणं इत्थीरयणस्स तिल्लचोइसं मंडालंकारं कडगाणि य जाव आभरणाणि
य गेण्हइ' नवरम् अयं विशेषः स्त्रीरत्नस्य कृते तिलकं-ललाटाभरणं रत्नमयं चतुर्दशं
यत्र तत्तिलकचतुर्दशम् ईदृश भाण्डालङ्कार शब्दस्य प्राकृतत्वात् अलङ्कारशब्दस्य परनिपाते
संस्कृते पूर्वनिपातोचितत्वात् अलङ्कारभाण्डम् आभरणकरण्डकम्, कटकानि च स्त्रीपुरुष-
साधारणानि बाह्याभरणानि यावत् आभरणानि च गृह्णाति, चतुर्दशाभरणानि चैवम् 'हार
१ द्वहार २ इग ३ कणय ४ रयण ५ मुत्तावली ६ उ केऊरे ७ । कडए ८ तुडिए ९

ग्रहण हुआ जानना चाहिये (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि
कयमालदेवस्स आसणं कपइ) जब उम भरत राजा को अष्टम भक्त को तपस्या समाप्त
होने के सन्मुख हुआ तब कृतमाल देव का आसन कंपायमान हुआ, (तदेव जाव वेयद्धगिरि
कुमारस्स) यहा पर इस समय वैताढ्यगिरिकुमार देव के प्रहरण में जैसा कथन किया जा
चुका है वह सब यहां पर समझ लेना चाहिए (णवर पीइदाणं इत्थीरयणस्स तिल्लचोइसं
मंडालंकारं कडगाणि अ जाव आभरणाणि अ गेण्हइ) प्रीतिदान मे वहां के कथन से यहां अन्तर
है और वह-इस प्रकार से है-प्रीतिदान में उमने भरत राजा को देने के लिये स्त्रीरत्न
के निमित्त रत्नमय १४ ललाट-आभरण जिसमें है ऐसे अलङ्कार भाण्ड को-आभरणकरण्डक
को-स्त्री पुरुष साधारण कटक को, यावत् आभरणों को लिया वे १४ आभरण इस प्रकार
से हैं-(हार १द्वहार ५ इग ३ कणय ४रयण २ मुत्तावली ६ उ केऊरे ७ कडए ८ तुडिए ९
मुदा १० कुडल ११ वरसुत्त १२ चूलमणि १३ तिलय १४) (पणिहत्ता ताए उक्किट्ठाए

ध्यान करना चाहिये, अही यावत् शब्दही 'द्वर्मासनसंस्तारकोपगः उन्मुक्तमणिसुवर्णालङ्कारः'
धृत्यादि पूर्वोक्त सर्वं पाठ संगृहीत थये छे (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि
परिणममाणंसि कयमालदेवस्स आसणं कपइ) अथारै ते भरत राजानी अष्टमभक्त तपस्या
समाप्त थवा आवी ते समये कृतमालदेवजु आसन कंपायमान थयुं (तदेव जाव वेयद्धगिरि
कुमारस्स)अही वैताढ्यगिरि कुमारदेवना प्रकरणुमा जे प्रभाण्णे कथन कडेवामा आण्ठुं छे, ते अंधु
अही 'समञ्ज देवुं जेधंजे (णवरं पीइदाणं इत्थीरयणस्स तिल्लचोइसं मंडालंकारं कडगाणि
अ जाव आभरणाणि अ गेण्हइ) प्रीतिदानना कथनमा अही' ने कथन करता अंतर छे अने
ते अंतर आ प्रभाण्णे छे-प्रीतिदानमा तेले भरत राजाने आपवा भाटे स्त्रीरत्नभाटे रत्नमय
१४ ललाट-आभरण्णे जेमा छे जेवा अक्षंकार लाल-आभरण्ण कर डक,-स्त्री पुरुष साधारण
कटक, यावत् आभरण्णे लीधा ते १४ आभरण्णे आ प्रभाण्णे छे-(हार १, द्वहार २, इग
३, कणय ४, रयण ५, मुत्तावली ६, उ केऊरे ७, । कडए ८, तुडिए ९, मुदा १०, कुडल

मुद्रा १० कुंडल ११ उरसुत्त १५ च्चलमणि १३ तिलयं ॥१४॥१॥' नि तावत् पर्यन्त
वक्तव्यं यावद् भोजनमण्डपे भोजनम्, तत्रैव मगधसुरस्येव महामहिमा अष्टाहिका कृत-
मालस्य प्रत्यर्पयन्त्याज्ञां श्रेणिप्रश्रेणयः इति ॥१२॥

मूलम्--तएणं से भरहे राया कयमालस्य अट्टाहियाए महामहिमा
ए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सदावेय सदावेत्ता एवं वयासीं
गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिया ! सिंधुए महाणईए पच्चत्थिमिल्लं णिक्खुडं
ससिंधुसागग्गिरिमैरागं समविसमणिक्खुडाणि य ओ अवेहि ओअवे
त्ता अग्गाइं वराइं रथणाइं पडिच्छाहि अग्गाइं वराइं रथणाणि पडि-
च्छित्ता ममेयमणत्तियं पच्चप्पिणाहि तएणं से सेनावईं वलस्सं णेया
भरहे वासंमि विस्सुयजसे महावलपरक्कमे महप्पा ओअंसी तेयलक्खण
जुत्ते मिलक्खुभासाविसारए चित्त चारुभासी भरहे वासंमि णिक्खुडाणं
निण्णाण य दुग्गमाणे य दुप्पवेसाण य वियाणए अत्थसत्थकुसले
रथणं सेणावईं सुसेणे भरहेणं रण्णा एवं वत्ते समाणे हट्टतुट्ट चित्तमाणं-
दिए जाव करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कदट्टु
एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता
भरहस्स रण्णे अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सए
आवासे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता कोडंबियपुरिसे सदावेइ,

जाव सक्कारेइ- सम्माणेइ) इन सब आभरणों को लेकर वह कृतमाल देव उस देव प्रसिद्ध
उत्कृष्ट आदि विशेषणों वाली गति से चलता हुआ महाराजा भरत राजा के पास आया
इत्यादि सब कथन यहाँ वे श्रेणिप्रश्रेणिजन हम आठ दिन का महामहोत्सव कर चुके हैं
ऐसी स्वर पीछे भरत नरेश को देते हैं यहाँ- तरु का जैसा पढ़ि ले किया जा चुका
वैसा ही कथन कर लेना चाहिये ॥१२॥

११, उरसुत्त १२, च्चलमणि १३, तिलयं १४) पणिणित्ता ताए उक्किट्ठाय जाव सक्कारेइ
सम्माणेइ) ओ सर्व आभरणोंने लधने ने कृतमालदेव ते देवप्रसिद्ध उत्कृष्ट आदि विशेषणो-
वाणी गतिथी आहतो आहतो ते भरत राजा पांसे आयो इत्यादि सर्वकथन अही' ते श्रेष्ठी-
प्रश्रेष्ठी जनो-अमे ८ दिनसने मडाभडोत्सव सम्पन्न कथो छे ओवी सूयना भरतयहीने
आये छे. अही सुधी पडेलानी जेभज पधु कथन जण्णी देवु जेधजे ॥१२॥

सद्वावित्ता एवं वयोसी खिप्पामेव भो देवाणुप्पियाः आभिसेक्कं
 हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगयरहपवर जाव चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह
 त्तिकट्ट जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता मज्जणघरं
 अणुपविसइ अणुपविसित्ता ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउय मंगलपा-
 यच्छित्ते मनद्धवद्धवम्मियकवए उप्पिलिय सरासणपट्टिए पिणद्ध गेविज्ज
 वद्ध अविद्ध विमलवरच्चिंधपट्टे गहियाउहप्पहरणे अणेगगणनायग
 दंडनायग जाव सद्धिं संपरिबुडे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमा-
 णेणं मंगलजयसद्धकयालोलोए मज्जणघराओ पडिणिकखमइ पडि-
 णिकखमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाण साला जेणेव आभिसेक्के हत्थि-
 रयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुढे ।
 तए णं से सेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरंट मल्लदामेणं छत्तेणं
 धरिज्जमाणेणं हयगयरहपवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं
 संपरिबुडे महया भडचडगरपहगर वंदपरिक्खित्ते महया उक्किट्टि सीह-
 णाय बोलकलकलसद्धेणं समुद्धरवभूयंपिव करेमाणे करेमाणे सव्विच्छीए
 सव्वज्जुईए सव्वबलेणं जाव निग्घोसनाइएणं जेणेव सिंधु महाणई
 तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चम्मरयणं परामुसइ तएणं तं सिरिच्छ
 सग्गिसख्वं मुत्ततारद्धचंदचित्तं अयलमकंपं अमेज्जकवयं जंतं सलिला
 सागरेसु य उत्तरणं दिव्वं चम्मरयणं सणसत्तरसाईं सव्व धण्णाइं जत्थ
 राहंति एगदिवसेण वावियाइं वासं णारुण चक्कवट्टिणा परा मुंढे दिव्वे
 चम्मरयणे दुवालस्स जोयणाइं तिरियं पवित्थरइ तत्थ साहियाइं तएणं से
 दिव्वे चक्करयणे सुसेणसेणावइणा परामुट्ठे समाणे खिप्पामेव णावा-
 भूए जाए आविहोत्था तएणं से सुसेणे सेणावइ स खंधावारबलवाहणे
 णावाभूयं चम्मरयणं दुरुहइ दुरुहित्ता सिंधु महाणइ विमलजलतुंगवीचिं
 णावाभूएणं चम्मरयणेणं सबलवाहणे ससेणे समुत्तिण्णे तओ महाणइ
 मुत्तरित्तु सिंधुं अप्पडिहयसासणे अ सेणावइ कर्हिचिं गामगरणगर पव्व-

याणि खेडकवडमडंवाणि पट्टणाणि सिंहलए वव्वरए य सव्वं च अंगलोयं
 बलायोलोयं च परमरम्मं जवणदीवं च पवरमणिरयणग कोसागारम्मपिच्छं
 आरबके रोमके य अलसंड विसयवासी य पिकखुरे कालमुहे जोणएय उत्तर-
 वेयद्ध संसियाओ य मेच्छजाइ बहुप्पगारा दाहिण अवरेण जाव सिंधु साग-
 रंतो त्ति सव्वपवर कच्छं चओ अवऊण पडिणिअत्तो बहुसमरमणिज्जे य
 भूमिभागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे ताहे ते जणवयाण णगराण पट्टणा
 णयजे य ताहिं सामिया पभूया आगरपत्ती य मंडलपतीय पट्टणपती य
 सव्वे घेत्तूण पाहुडाइ आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य वत्थाणि य महरिहा
 णि अण्णं च जं वरिद्धं गयारिहं जं च इच्छिअव्वं एअं सेणावइस्स उवणं
 तिमत्थयकयंजलिपुडा पुणरवि काऊण अंजलिं मत्थयंमि पणयातुद्धमे
 म्हे ज्थ सामियादेवयव सरणा गया भो तुव्वम विसयवासिणोत्ति विजयं
 जंप माणा सेणावइणा जहारिहं ठविउ पृइअ विसज्जिआणिअत्ता सगाणि
 णगराणि पट्टणाणि अणुपविट्ठा, ताहे सेणावई सविणओ घेत्तूण पाहु-
 डाइं आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य पुणरवि तं सिंधुनामधेज्जं
 उत्तिण्णे अणहसासणबले, तहेव भरहस्स रण्णो णिवेएइ णिवेइत्ता य
 अप्पिणित्ता य पाहुडाइं सक्कारिय सम्माणिए सहरिसे विसज्जिए सगं
 पढंमंडव मइगए, ततेणं सुसेणे सेणावई ण्हाए कयवलि कम्मे कयकोउय-
 मंगलपायच्छित्ते जिमिअमुत्तरागए समाणे जाव सरसगासीसवंदणु-
 विखत्तगायसरीरे उप्पि पासायवराए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं वत्तीसइ
 वद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणी संपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे २ महया ह्यण-
 ट्टगीअवाइअ तंतीतलतालतुडिअघणमुइंगपडुप्पवाइअरवे णं इट्टे सह-
 फरिसरसरूवगंधे पंचविहे माणुस्सए काम भोगे भुंजमाणे विहरइ सू० १३॥

छाया—ततः खलु स भरतो राजा कृतमालस्य अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां
 सत्यां सुषेण सेनापति शब्दयति शब्दयित्वा पंचमवादीन्—गच्छ खलु भो देवानुपिय ! सि-
 ष्वा महानद्यां पाश्चात्यं निष्कुटं ससिंधुसागरगिरिमर्यादं समविषमनिष्कुटानि च साधय,
 ८४

साधयित्वा अग्रथाणि वराणि रत्नानि प्रतीच्छ, अग्रथाणि वराणि रत्नानि प्रतीष्य ममैतामा-
 ज्ञप्तिकां प्रत्यर्पय, ततः खलु स सेनापतिः बलस्य नेता भरते वर्षे विश्रुतयशाः, महाबल-
 पराक्रम, महात्मा, ओजस्वी तेजोलक्षणयुक्तः, म्लेच्छभाषाविशारदः, चित्रचारभाषी, भरते
 वर्षे निष्कुटानां निम्नानां च दुर्गमानां च दुष्प्रवेशानां च विज्ञायकः, अस्त्रशस्त्रकुशलः अर्थशास्त्र
 कुशलो वा रत्नं सेनापतिः सुषेणं भरतेन राज्ञा पव मुक्तं सन् दृष्टुष्ट चिचानन्दितः यावत्
 करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्चं मस्तके अजलिं कृत्वा पवं स्वामिन् । तथेति आह्वा
 याः धिनयेन वचनं प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य भरतस्य राज्ञः अन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति प्रति-
 निक्रम्य यत्रैव स्वस्य आवासः तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति
 शब्दयित्वा पवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय । आभिषेक्य हस्तिरत्नं प्रतिकल्पय ह्यगजरथ
 प्रवर यावत् चातुरङ्गिणो सेनां सन्नाह्य इति कृत्वा यत्रैव मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति
 उपागत्य मज्जनगृहमनुप्रविशति अनुप्रविश्य स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तं,
 सन्नद्धबद्धवर्मितकवच, उत्पीडितशरासनपट्टिकः, पितृप्रैवेयबद्धाविद्ध विमलवरचिह्नपटः,
 गृहीतायुधप्रहरणं, अनेक गणनायक दंडनायक यावत्सार्द्धं संपरिवृतं सकोरण्डमाव्यदाग्ना
 छत्रेण ध्रियमाणेन मङ्गल जयशब्दकृतालोको मज्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव
 बाह्या उपस्थाशाला यत्रैव आभिषेक्यं हस्तिरत्नं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य आभिषेक्यं हस्ति-
 रत्नं दुरुद्धः । ततः खलु स सुषेणः सेनापतिः हस्तिस्कन्धवरगत सकोरण्ड माव्यदाग्ना छत्रेण
 ध्रियमाणेन ह्यगजरथप्रवरयोधकलितया चातुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं संपरिवृतः महता भट
 'चङ्गपहगर' विस्तारवृन्दं परिक्षिप्तं महतोत्कृष्टसिहनाद् बोलकलकलशब्देन समुद्ररवभूतमिव
 कुर्वन् कुर्वन् सर्वसिद्धिः सर्वद्युतिक सर्वबलेन यावत् निर्घोषनादेन यत्रैव सिन्धु महानदी
 तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य चर्मरत्नं परामृशति, ततः खलु तत् श्रीवत्ससदृशम् मुक्तताराद्धं
 चन्द्रचित्रम् अचलम् अकम्पम् अमेघकवचम् यत् तत् ललिलासु सागरेषु चोत्तरणं दिव्य चर्म-
 रत्नम् शणसप्तदशानि सर्वधान्यानि यत्र रोहन्ने एकदिवसेनोत्तानि, वर्षे राज्ञा चक्रवर्तिना
 परामृष्टं दिव्यचर्मरत्नं द्वादशयोजनानि तिर्यक् प्रविस्तृणाति तत्र साधिकानि, ततः खलु
 तदिव्यं चर्मरत्नं सुषेण सेनापतिना परामृष्टं यत् क्षिप्रमेव नौभूतं जातं चाप्यभवत् । ततः
 खलु स सुषेणः सेनापतिः सस्कन्धावारबलवाहनः नौभूतं चर्मरत्नम् आरोहति, आरुह्य
 सिन्धु महानदीं विमलजलतुङ्गवीचिं नौभूतेन चर्मरत्नेन सवलवाहनः स सैन्य समुत्तीर्णः, ततो
 महानदीं सिन्धुमुत्तीर्य अप्रतिहतशासनश्च सेनापति' क्वचित् ग्रामाकरनगरपर्वतान् खेट
 कर्षटमडम्बानि पत्तनानि सिंहलकान् बर्बरकर्षिच सर्वं च अङ्गलोकं बलावलोकं च परम-
 रम्यम्, यवनद्वीपं च प्रवरमणिरत्नकोशागारसमृद्धम्, आरवकान् रोमकर्षिच अलसण्ड
 विशयवासिनश्च पिक्कुरान् कालमुखान् जोनकांश्च उत्तरवैताल्यसंश्रिनाश्च म्लेच्छजाती
 र्बहुप्रकारा, दक्षिणापरेण यावत् सिन्धुसागरान्त इति, सर्वप्रवर कच्छं च 'ओअवेडण'
 साधयित्वा प्रतिनिवृत्तो बहुसमरमणीये च भूमिभागे तस्य कच्छस्य सुखनिषण्णः,
 तस्मिन् काले ते जनपदानां नगराणां पत्तनानां च ये च स्वामिका' प्रभूताः आकरपत-
 यश्च मण्डलपतयश्च पत्तनपतयश्च सर्वे गृहीत्वा प्राभृतानि आभरणानि भूषणानि
 रत्नानि च वस्त्राणि च महार्घाणि अन्ये च यद्वरिष्ठं राजाहं यच्च पृथ्व्यम् पतत् सेनापते

रूपनर्यान्त, मस्तककृताञ्जलिपुटाः, पुनरपि मस्तके अञ्जलिं कृत्वा प्रणता यूय मस्मा-
कमत्र स्वामिन देवतामिव शरणागता. स्मो वयं युष्माकं विषयवासिन इति विजय जल्पन्त'
सेनापतिना यथार्हं स्थापिताः पूजिता विसर्जिताः निवृत्ताः स्वकानि स्वकानि नगराणि पत्तनानि
अनुप्रविष्टाः । तस्मिन् काले सेनापतिः सचिनयो गृहीत्वा प्राभृतानि आभरणानि भूषणानि
रत्नानि च पुनरपि तां निधुनामधेयामुत्तीर्णः अक्षतशासनचलः तथैव भरतस्य राज्ञो
निवेदयति निवेदयित्वा च प्राभृतानि अर्पयित्वा च (स्थित.) सत्कारित सम्मानित सहर्षः
विसृष्टः स्वकं पटमण्डपमधिगतः । ततः खलु सुषेणः सेनापतिः स्नात कृतबलिकर्मा
कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः जिमितभुक्तयुत्तरागतः सन् यावत् सरसगोशीर्षचन्दनोक्षित
गात्रशरीरः उपरि प्रासादवरगतः स्फुटद्भिः मृदङ्गमस्तकै द्वित्रिंशद्वद्वैर्नाटकै वरत-
रुणी सप्रयुक्तैः उपनृत्यमानः २, उपगीयमानः २, उपलभ्य (लाभ्य) मान २, महताऽह-
तनाट्य गीतवादि तन्त्री तल ताल श्रुटित घनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण इष्टान् शब्दस्पर्श
रसरूपगन्धान् पर्चावधान् मानुष्यकान् कामभोगान् भुञ्जानो विहरति ॥सू० १३॥

टीका—'तए णं से' इत्यादि । 'तए णं से भरहे राया कयमालस्स अट्टाहियाए
महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सदावेइं' ततः खलु स भरतो राजा
चक्रवर्ती कृतमालस्य विजयोपलक्षिकायाम् अट्टाहिकायां महामहिमाया निवृत्तायां समा-
सायां सत्याम् सुषेणं सुषेणनामकं सेनापतिं शब्दयति अहयति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा
आहूय 'एवं वयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिया !
सिंधुए महाणइए पच्चत्थिमिल्लं णिक्खुइ ससिंधु सागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुइ-
णियओ अवेहि' गच्छ खलु भो देवानुप्रिय ! सेनापते सुषेण ! सिन्ध्वा महानद्याः पाश्चात्यं—

'तएणं से भरहे राया कयमालस्स अट्टाहियाए'—इत्यादि सूत्र—१३-

टीकार्थ—जब श्रेणि प्रश्रेणिजनो ने कृतमाल देव को साधने के निमित्त किये गये भरत राजा
को उनके द्वारा आदिष्ट आठ दिन तक के महामहोत्सव हो जाने की खबर दे दी तब भरत-राजा
ने (सुसेण सेणावइं सदावेइं) सुषेण नाम के सेनापति को बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी) और
बुलाकरके उससे ऐसा कहा—('गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिय ! सिंधुए महाणइए पच्चत्थिमिल्लं
णिक्खुइ ससिन्धुं सागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुइणि अ ओअवेहि) हे देवानु प्रिय ! तुम

'तएणं से भरहे राया कयमालस्स अट्टाहियाए' इत्यादि—सूत्र—॥१३॥

टीकार्थ—कृतमालदेवने साध्या पछी भरत महाराज्जे श्रेणी प्रश्रेणी जनोने आठ दिवसने।
महामहोत्सव आयोजित करवानी आज्ञा आपी भरत महाराज्ज्जे आज्ञा सुषेण महामहोत्सव
सम्पूर्य थई जवानी राज्जने अजर आपी त्पारे भरत राज्ज्जे (सुसेण सेणावइं सदावेइं)
सुषेण नामक सेनापतिने ओलाओ। (सदावित्ता एवं वयासी) अने ओलावीने तेने आ
प्रमाणे छुं (गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिया ! सिंधुए महाणइए पच्चत्थिमिल्लं णिक्खुइ
ससिन्धुं सागरगिरिमेरागं समविसमणिक्खुइणि अ ओअवेहि) हे देवानु प्रिय ! तमे

पश्चिमदिग्दर्शनं निष्कृतं कोणस्थितभरतक्षेत्रखण्डरूपम्, इदं चक्रैर्विभाजकैर्विभक्तमित्याह—
 'सिन्धु सागरगिरिमेरागं' इति सिन्धुसागरगिरिमर्यादम् तत्र पूर्वस्यां दक्षिणस्यां च
 सिन्धुर्नदी पश्चिमायां सागरः—पश्चिमसमुद्रः उत्तरस्यां गिरिवैताहयः एतैः कृता मर्यादा
 विभागरूपा तथा सहितम् यत् तत्तथा एभिः कृतविभागमित्यर्थः 'समविसमणिक्खुडाणि य'
 समविषमनिष्कृतानि च समानि च समभूमिभागवर्त्तानि विषमणि च—दुर्गभूमिभागवर्त्तानि
 च यानि निष्कृतानि अवान्तरक्षेत्रखण्डरूपाणि तानि तथा 'ओअवेहि' साधय तत्र विजयं
 कुरु अस्मद् आज्ञां प्रवर्तय 'ओअवेत्ता' साधयित्वा 'अग्गाइ' वराइ रयणाइ पडिच्छाहि'
 अय्याणि सद्यस्कानि वराणि प्रधानानि रत्नानि स्वस्वजातौ उत्कृष्टवस्तूनि प्रतीच्छ गृहाण
 'पडिच्छित्ता' प्रतीष्य गृहीत्वा 'ममेय माणत्तियं पच्चप्पिणाहि' मम एतामाज्ञप्तिकां प्रत्य-
 र्पय ततो भरतेन आज्ञापिते सति सुषेणो सेनापतिः यादृशो गुणी यथा च कृतवान्
 तथाऽऽह—'तए णं से सेणावई बलस्स जेया भरहे वासंमि विस्सुयजसे महाबलपरक्कमे
 महप्पा ओअसी तेअलक्खणजुत्ते मिलक्खुभासाविसारए चित्तचारुभासी' ततः खलु स
 सुषेणः सेनापतिः बलरय हस्त्यादिस्कन्धरूपस्य नेता स्वामी स्वातन्त्र्येण प्रवर्तकः भरते

सिन्धु महानदी के पश्चिमदिग्दर्शनं भरतक्षेत्र खण्डरूप निष्कृत प्रदेश को जो कि पूर्व में और दक्षिण
 दिशा में सिन्धु महानदी के द्वारा, पश्चिम—दिशा में पश्चिम समुद्र के द्वारा और उत्तर दिशा में
 वैताहयनामक गिरि के द्वारा विभक्त हुआ है तथा वहां के सम विषमरूप—अवान्तर क्षेत्रों को हमारे
 अधीन करो अर्थात् वहां जाकर तुम हमारी आज्ञा के वशवर्ती उन्हें बनाओ (ओअवेत्ता अग्गाइ
 वराइ रयणाइ पडिच्छाहि) हमारी आज्ञा के वशवर्ती उन्हें बनाकर वहां से तुम श्रेष्ठ नवीन रत्नों
 को—अपनी र जाति में उत्कृष्ट वस्तुओं को—ग्रहण करो (पडिच्छित्ता ममेयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि)
 ग्रहण करके फिर हमें हमारी इस आज्ञा की पूर्ति हो जाने की खबर दो (तते णं से सेणावई
 बलस्स जेया भरहे वासंमि विस्सुयजसे महाबलपरक्कमे महप्पा ओअसी तेअलक्खणजुत्ते मिलक्खु
 भासा विसारए चित्तचारुभासी) उस प्रकार से भरत के द्वारा आज्ञित हुआ वह सैन्य का नेता

सिन्धु महानदीना पश्चिम दिग्दर्शनं भरतक्षेत्र अंशरूप निष्कृत प्रदेशने के जे जे पूर्वमां अने
 दक्षिणमां सिन्धु महानदी वडे पश्चिम दिशांमां पश्चिम समुद्र वडे अने उत्तर दिशांमां
 वैताहय नामक गिरि वडे विभक्त छे, तेभज त्यांना जीअ सम—विषम रूप अवान्तर क्षेत्रोने
 अभाहे अधिन करै. अर्थात् त्यां जेने तमे अमारी आज्ञावर्ती तेभने अनाओ
 (ओअवेत्ता अग्गाइ वराइ रयणाइ पडिच्छाहि) अमारी आज्ञा वशवर्ती अनावीने त्यांशी तमे
 नवीन रत्नोने हरेक प्रकार्णी उत्कृष्टवस्तुओने अडुषु करै (पडिच्छित्ता ममेयमाणत्तियं पच्च-
 प्पिणाहि) अडुषु करीने पत्री आज्ञा पूरी थवानी अमने सूचना आपो. (त एणं सेणावई बलस्स
 जेया भरहे वासंमि विस्सुयजसे महाबलपरक्कमे महप्पा ओअसी तेअलक्खणजुत्ते मिलक्खु-
 भासाविसारए चित्तचारुभासी) आ प्रमाणे भरत द्वारा आज्ञित थयेवै ते सेनापति सुषेणु के
 जेने। यश भरतक्षेत्रमा प्रख्यात छे जेना जेना प्रतापशी भरतनी सेना अशकभशाही मान-

वर्षे विश्रुतयशाः- विख्यातकीर्तिः, महाबलपराक्रमः-महतः बलस्य सैन्यस्य भरतचक्रवर्ति-
सम्बन्धिनः, पराक्रमो यस्मात् स तथा, एतेन 'ओअंमी' इति पदेन पौरुषवृत्त्यम्
'महत्पा' महात्मा उदात्तस्वभावः विपुलाशयवान् 'ओअंसी' ओजस्वी आत्मना वीर्याधिकः
प्रकर्षान्मशक्तवान् 'तेअलखखणजुत्ते' तेजो लक्षणयुक्तः तेजसा शरीरेण लक्षणैश्च सत्त्वा-
दिभिः सम्पन्नः प्रशस्तगुणयुक्तः 'मिलखुभासाविमारए' म्लेच्छभाषाविशारदः म्लेच्छ-
भाषासु-पारसी आरबी प्रमुखासु विशारदः पण्डितः अतएव 'चित्त चारुभासी' चित्र-
चारुभाषी चित्रं विविधं चारु गुणोपेतं भाषते इत्येव शीलः आग्राम्यापि गुणोपेतभाष-
णशीलः पुनश्च 'भरहे वासमि निक्खुडणं निण्णाण य दुग्गमाण य दुप्पवेसाण य विआणए
अत्थसत्थकुसले रयण सेणावई सुसेणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ट तुट्ट
चित्तमाणदिए जाव करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्त मत्थए अंजलि कट्टु एव
सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ' भरतेवर्षे भरतक्षेत्रे निष्कुटानाम्
अवान्तरक्षेत्रखण्डरूपाणाम्, निम्नानां च गम्भीरस्थानाम् दुर्गमानां च दुःखेन गन्तु
शक्यानाम्, दुष्प्रवेशानां च दुःखेन प्रवेष्टुं शक्यानां भूभागानां विज्ञायकः तद्भासीव
प्रचार चतुरः, अस्त्रशस्त्र कुशलः तत्र अस्त्रं बाणादिरुः शस्त्र खड्गादिकं तत्र कुशलः प्रसिद्धः

सुषेण सेनापति कि जिस का भरत क्षेत्र में यज्ञ प्रख्यात है जिससे भरत की सेना पराक्रम शाली
मानी जाती है जो स्वयं तेजस्वी है जिस का स्वभाव उदात्त है-विपुल आशय-वाला है शरीर सवंधी
तेज से, एवं सत्त्वादि लक्षणो से जो सपन्न है म्लेच्छभाषाओं का-पारसी आरबी, आदि भाषाओं
का जो विशिष्ट ज्ञाता है और इसी से जो विविध प्रकार की भाषाओं को सुन्दर ढंग से बोलना
है (भरहे वासमि निक्खुडणं निण्णाण य दुग्गमाण य दुप्पवेसाण य विआणए अत्थसत्थकुसले
रयण सेणावई सुसेणे-भरहेण रण्णा एव वुत्ते समाणे हट्ट तुट्ट चित्तमाणदिए जाव करयलपरिग्ग-
हिय दसणहं सिरसावत्त मत्थए अंजलि कट्टु एवं सामी ! तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडि-
सुणेइ) जो भरत क्षेत्र में अवान्तर क्षेत्र खण्ड रूप निष्कुटों जिस में हरेक कोई प्रवेश नहीं कर
सके गंभीर-स्थानों का दुर्गम स्थानों का एवं जिनमें प्रवेश बड़ी कठिनाई से किया जा सके ऐसे
स्थानों का विज्ञायक है विशेष रूप से जानने वाला है अल्ल शस्त्र सत्त्वादि में बाणादिरूप अल्ल एवं

बाणा आये छे. जे स्वय तेजस्वी छे, जेने स्वभाव उदात्त छे. विपुल आशय बाणो छे
शरीर संधी तेजथी तेमन्न सत्त्वादि लक्षणोथी जे सपन्न छे. म्लेच्छ भाषाओ शारसी,
आरबी पगेरे भाषाओने जे विशिष्ट ज्ञाता छे ज्यथी न जे विविध प्रकारनी भाषाओने
सुंदर ढंगथी बोली शके छे (भरहे वासमि निक्खुडणं निण्णाण य दुग्गमाण य दुप्पवेसाणय-
विआणए अत्थसत्थ कुले रयण सेणावइ सुसेणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ट-तुट्ट चित्त-
माणदिए जाव करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्त मत्थए अंजलि कट्टु एव सामी 'तहत्ति
आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ) जे भरत क्षेत्रमा अवान्तर क्षेत्र अउ इप निष्कुटोके जेमां
हरेक कोइ प्रवेशी शके नहि, जेवा गंभीर स्थानो, दुर्गम स्थानो के जेमां प्रवेश करवु अतीव दुष्कर
कार्य छे. तेवा स्थानोने विज्ञापके छे. विशेष रूपथी लक्षणकार छे. अस्त्र शस्त्र सत्त्वादिमां आशुहि

अर्थशास्त्रकुशलो वा अर्थशास्त्रं नीतिशास्त्रादि तत्र कुशलः निपुणः रत्नं रत्नस्वरूपः सेनापतिः—सर्वं सेनाप्रधानः सुषेण—तन्नामको भरतेन राज्ञा चक्रवर्तिना एवमुक्तः सन् हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः यावत् पदात् नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः, करतलपरिशुद्धीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा तत्र करतलाभ्यां पश्चिद्गृहीतो यस्तं तथा दशरद्वयसम्बन्धिनो नखाः समुदिताः तत्र स तथा तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवमुक्तवान् एत्रं स्वामिन् ! यथा श्रीमान् आदिशति तथेति तथास्तु इति कृत्वा आज्ञायाः स्वामिशासनस्य विनयेन विनयपूर्वकं वचनं प्रतिशृणोति स्वीकरोति 'पडिसुणित्ता' प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य 'भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिकखमइ' भरतस्य राज्ञः अन्तिकात् समीपात् प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छते (पडिणिकखमित्ता) प्रतिनिष्क्रम्य 'जेणेव सए आवासे तेणेव उवागच्छति' यत्रैव स्वस्य आवासः निवासस्थानं तत्रैव उपागच्छति आगच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य स सुषेणः—'कोडुंबियपुरिसे सदावेइ' कौटुम्बिकपुरूपान् शब्दयति आह्वयति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा आहूय 'एवं वयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् ।

खड्गादिरूप शस्त्र के द्वारा प्रहार करने में—कुशल है अथवा अर्थ शास्त्र में निपुण है इसी-कारण उसे सेनापतिरत्न कहा गया है ऐसे उस सेनापतिरत्न सुषेण से भरतचक्री ने जब पूर्वोक्त रूप से कहा तो वह अपने स्वामी की बात को सुनकर बहुत ही अधिक हर्षित एव सतुष्ट चित्त हुआ "यहां प्रयुक्त हुए-यावत्पद से " नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः ॥ इन पदों का ग्रहण हुआ है उसने दोनों हाथों को दशों नख जिभमें मिलजावें ऐसे अञ्जलि के रूप में करके—और उसे मस्तक पर से घुमा करके उस प्रकार से कहा-हे स्वामिन् । आपकी आज्ञा हमें प्रमाण है इस प्रकार कहकर उमने स्वामी के आज्ञा के वचनों को विनय के साथ स्वीकार कर लिया (पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिकखमइ) स्वीकार करके फिर वह भरत राजा के पास से चला आया—(पडिणिकखमित्ता जेणेव सए आवासे तेणेव उवागच्छइ) वहां से आकर वह जहां अपना घर था वहां आया—(उवागच्छित्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेइ) वहां आकर के उस सुषेण ने अपने को कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी) बुला कर फिर उनसे उसने

इयं शास्त्रं तेमञ्जलगादि इयं शास्त्रं वडेप्रहार करवामा जे कुशल छे अथवा अर्थशास्त्रमां निपुण छे, अथवा तेने सेनापतिरत्न कडेवामां आवेल छे, अथवा ते सेनापतिरत्न सुषेणने ते भरतचक्रीजे न्याये पूर्वोक्त इयमा कहुं त्यारे ते पोताना स्वामीनी वातने सांभणीने पूणञ्ज डपित तेमञ्ज अंतुष्ट चित्त थये अही प्रयुक्त थयेव यावत् पदथी (नन्दित प्रीतिमना परम सौमनस्यित) जे पदानु अडुषु थयु छे ते सेनापतिजे णने हाथाना दश नखे जेमां स युक्त थर्थ नय तेम अ नखाना इयमां अनवीने अने तेने मस्तके इरवीने आ प्रमाणे कहुं—हे स्वामीन् ! आपनी आज्ञां मारा माटे प्रमाणे इय छे आम कडीने तेजे स्वामीनी आज्ञाना वचने। स विनय स्वीकारी लीधा (पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो अंतियाओ पडिणिकखमइ) स्वीकार करीने थछी ते भरत राजा पासथी जेतो रदो, (पडिणिकखमित्ता जेणेव सए आवासे तेणेव उवागच्छइ) त्याथी आवीने ते न्या पोतानु धर हटुं त्या आव्ये। (उवागच्छित्ता कोडुंबिय

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह' क्षिप्रमेव भो देवानु-
प्रियाः ! आभिषेक्यम् अभिषेकयोग्यं हस्तिरत्नं प्रधानहस्तिनं प्रतिकल्पयत सञ्जीकुरुत
'हयगयरहपवर जाव चउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह' हयगजरथप्रवर यावत् पदात् योधकलितां
चातुरङ्गिणीं सेनां सन्नाहयत सन्नद्धां कुरुत 'त्तिकट्टु' इतिकृत्वा 'जेणेव मज्जणघरे तेणेव
उवागच्छह' यत्रैव मज्जनगृहं स्नानगृहं तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'मज्जण-
घरं अणुपविसिद्ध' मज्जनगृहम् अनुप्रविशति 'अणुपविसित्ता' अनुप्रविश्य 'ण्हाए' स्नातः
'कयबलिकम्मे' कृतबलिहर्मा-कृत बलिहर्म येन स तथा वायसादिभ्यो दत्तान्नभागः 'कय-
कोउयमंगलपायच्छित्ते' कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः-कृतं कौतुकेन कुतूहलेन मङ्गलं पापगा-
न्त्यर्थं प्रायश्चित्तं च येन स तथा 'सन्नद्ध शरीरारोपणात् वद्धं कसावन्धनतः वर्म्म लोह
कत्तञ्जरूपं सञ्जातमस्येति निर्मितम् एतादृशं कवचं तनुत्राण यस्य स तथा, पुनश्च कीदृशः
सुषेणः 'उप्पीलियसरासणपट्टिए' उत्पीडितशरासन पट्टिकः उत्पीडिता-गाढ गुणारोपणाद्

ऐसा कहा—(खिप्पामेव-भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्क हत्थिरयण पडिकप्पेह) हे देवानुप्रियो ! तुम
लोग बहुत ही शीघ्र अभिषेक योग्य प्रधान हस्ती को सज्जित करो (हयगयरहपवर जाव
चउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह) तथा हय, गज रथ, प्रवर, पदाति जनों से युक्त चातुरंगिणी सेना को
सज्जित करो (इति कट्टु जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छह ऐसा आदेश अपने कौटुम्बिक पुरुषों
को देकर वह जहाँ पर स्नान गृह था वहाँ पर आगया (अणुपविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे) वहाँ
पर आकर के उसने स्नान किया और बलिहर्म किया काक आदिको के लिये अन्न का वित-
रण किया (कयकोउय मंगलपायच्छित्ते) कौतूहल से मंगल और दुस्वप्न शान्त्यर्थं प्रायश्चित्त
किया (सन्नद्धवद्ध वर्म्मिय कवण) शरीर पर आरोपण कर के वर्मितलोह के मोटे २ तारों से
निर्मित हुए कवच को कसा बन्धन से बांधा-खूब-जकड़ कर शरीर पर बन्धन से बद्ध कर
पडिरा (उप्पीलियसरासणपट्टिए) धनुष पर बहुत ही मजबूती के साथ प्रत्यञ्चा का आरोपण

पुरिसे सद्दावेह) त्या आवीने ते सुषेणु पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने पोलाया (सद्दावित्ता
पवं वयासी) पोलावीने पथी ते सुषेणु तेभने आ प्रभाणु कथु-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !
आभिसेक्क हत्थिरयण पडिकप्पेह) हे देवानु प्रियो ! तमे दोडे ओकहम शीघ्र अभिषेक
योग्य प्रधान हस्तिने सुषेणुत्त करे। (हयगयरहपवर जाव चउरंगिणिं सेणं
सण्णाहेह) तेभणु हय, गज, रथ, प्रवर पदाति जनेथी युक्त अेवी चतुरंगीणी सेना
सुषेणुत्त करे। (इतिकट्टु जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छह) पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने अेवे।
आदेश आवीने ते ल्यां स्नान गृहं हंतु त्या आवी गये। (अणुपविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे)
त्या आवीने तेणु स्नान कथुं अने अलिकभं कथुं काक वगेरे माटे अन्ननु वितरणु कथुं
(कयकोउयमंगलपायच्छित्ते) कौतूहलथी मंगल अने दुस्वप्न शान्त्यर्थं प्रायश्चित्त कथुं
(सन्नद्धवद्ध वर्म्मिय कवण) शरीर पर आरोपणु कधीने वर्मित दोधुडना मोटा मोटा
तारोणी निर्मित कवचने कसा बन्धनथी आबद्ध कथुं अेट्ठे के ओकहम मज्जुतीथी
कवचने आधु (उप्पीलिय सरासणपट्टिए) धनुष उपर धूम्य मज्जुतीथी प्रत्ययानु

दृढीकृता शरासनपट्टिका धनुर्दण्डो येन स तथा 'पिणद्धगेविज्जवद्ध आविद्ध विमलवरचिंधपट्टे' पिणद्धग्रैवेयवद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टः, पिणद्धं ग्रैवेयं—ग्रीवात्राणकं ग्रीवाभरणं वा येन स तथा वद्धो—ग्रन्थिदानेन आविद्धः परिहितो मस्तकावेष्टनेन विमलवरचिह्नपट्टो वीरातिवीरता सूचकवस्त्रविशेषो येन स तथा, पिणद्धग्रैवेयश्चासौ वद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टश्चेति स तथा 'गहियाउहप्पहरणे' गृहीतायुधप्रहरणः गृहीतानि आयुधानि प्रहरणानि च शास्त्रास्त्राणि येन स तथा, आयुधप्रहरणयोस्तु क्षेप्याक्षेप्यकृतो विशेषो बोध्यः, तत्र क्षेप्यानि बाणादीनि आक्षेप्यानि खड्गादीनि, अथवा गृहीतानि आयुधानि प्रहरणाय येन स तथेति । 'अणेगणनायक दंडनायक जाव सद्धिं सपरिवुडे' अनेक गणनायकदण्डनायक यावत् संपरिवृतः तत्र अनेके—बहवः गणनायकाः मल्लादि गणमुख्याः, दण्डनायकाः तन्त्रपालाः, यावत् पदात् ईश्वरतलवरमाडम्बिककौटुम्बिकमन्त्रिमहामन्त्रि गणकदौवारिकाऽमात्यचेटपीठमर्दनगरनिगमश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहसन्धिपालाः ग्राह्याः तैः सार्द्धं संपरिवृतः—युक्तः पुनः कीदृशः सुषेणः 'सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेणं' सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रिय-

किया (पिणद्धगेविज्जवद्ध आविद्ध विमलवरचिंधपट्टे) गले में हार पहिरा तथा—मस्तक पर अच्छी तरह से गांठ से बांधकर विमल वर चिन्ह पट्ट—वीरातिवीरता का सूचक—वस्त्र विशेष—बांधा (गहियाउहप्पहरणे) हाथ में आयुध और प्रहरण लिए—आयुध और प्रहरण में क्षेप्या क्षेप्यकृत विशेषता है और कोह विशेषता नहीं है । बाणादिक क्षेप्य और खड्ग आदि आक्षेप्य है । अथवा प्रहरण के लिये—शत्रुओं पर प्रहार—करने के लिये जिसने आयुधको लिये है ऐसा भी अर्थ 'गृहीतायुधप्रहरण' इस पद का हो सकता है "अणेग गणनायक दंडनायक जाव सद्धिं सपरिवुडे, इस समय यह अनेक गणनायकों से—मल्लादिगण मुख्यजनों से अनेक दंडनायकों से अनेक तन्त्रपालों से, यावत्पदगृहीत अनेक ईश्वरों से अनेक तलवरों से अनेक माडम्बिकों से अनेक कौटुम्बिकों से, अनेक मन्त्रियों से अनेक महामन्त्रियों से अनेक गणों से अनेक दौवारिकों से अनेक अमात्यों से अनेक चेटों से अनेक पीठमर्दों से अनेक नगर निगम के श्रेष्ठियों से

आरोपण कर्तुं' (पिणद्धगेविज्जवद्ध आविद्ध विमलवरचिंध पट्टे) गणानां डार धारण कर्त्तुं मस्तक उपर सारी रीते गांठ आधीने विमलवर चिन्ह पट्ट - वीरातिवीरता सूचक वस्त्र विशेष आंध्युं (गहियाउहप्पहरणे) हाथमां आयुध अने प्रहरणे। लीधां आयुध अने प्रहरणमां क्षेप्याक्षेप्यकृत विशेषता छे, पीछे हाथ विशेषता नहीं, आणु वगेरे क्षेप्य अने षडंग वगेरे आक्षेप्य छे, अथवा - प्रहरण मा? - शत्रुओ उपर प्रहार करवा नाटे नेवे आयुधो धारण कर्त्ता छे, जेवो पणु अर्थ (गृहीतायुधप्रहरण) आ पहने। अर्थ शके छे (अणेग गणनायक दंड नायक जाव सद्धिं संपरिवुडे) ते समये ओ अनेक गण नायकोथी—मल्लादिगण मुख्य जनोथी, अनेक दंड नायकोथी, अनेक तन्त्रपालोथी, यावत् यह गृहीत अनेक ईश्वरोथी, अनेक तलवरौथी, अनेक माडम्बिकोथी, अनेक कौटुम्बिकोथी, अनेक मन्त्रीओथी अनेक महामन्त्रियोथी, अनेक गणोथी, दौवारिकोथी, अनेक अमात्योथी, अनेक चेटोथी, अनेक पीठमर्दोथी, अनेक नगर निगमना श्रेष्ठियोथी, अनेक सेनापति-

माणेन तत्र सकोरण्टानि कोरण्टनामककुसुमरतवक्रयुक्तानि कुसुमपुष्पाणि हि पीतवर्णानि मालान्ते शोभार्थं दीयन्ते मालायै हितानि माल्यानि—पुष्पाणि तेषां दामानि मालाः यत्र तत् तथा एवंविधेन छत्रेण आतपनिवारकेण ध्रियमाणेन शिरसि (विराजमानः) 'मंगलजयसदकयालोए' मङ्गलजयशब्दकृतालोकः, मङ्गलभूतः जयशब्दः कृत आलोकैर्दर्शने सति यस्य स तथा एवंभूतः सुपेणः 'मञ्जणघरालो पड्डिणिकखमड' मञ्जर्जनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति निःसरति 'पड्डिणिकखमिता' प्रतिनिष्क्रम्य निगृत्य 'जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला सभाशाला यत्रैव आभिषेक्यम् अभिषेकयोग्य हत्थिरयणं 'तेणेव उवागच्छइ' तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुढे' आभिषेक्यं हस्तिरत्नं दुरुढम् आरूढः 'तए णं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए' ततः खलु स सुपेणः—सुपेणनामकः सेनापतिः हस्तिस्कन्धवरगतः प्राप्तः 'सकोरंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण' सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन सह 'विराजमानः' पुनः कीदृशः 'हयगयरहपवर जोह कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे' हयगजरथप्रवरयोधकलितया अश्वहस्ति-

अनेक सेनापतियो से अनेक सार्थवाहो से और अनेक सन्धिपालो से युक्त हो गया था (सकोरंट मल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण) कोरंट पुष्पो के माला से युक्त ऊपर ताने गये छत्ते से यह सुशोभित हो रहा था (मंगलजयसदकयालोए) इसके दिखते ही लोग मंगलकारी जय २ शब्द का उच्चारण करने लग जाते ऐसा यह सुपेण सेनापति रत्न (मञ्जणघराओ पड्डिणिकखमड) स्नानगृहसे बाहर निकला (पड्डिणिकखमिता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) बाहर निकल कर यह उपस्थानशाला में आया वहां आकर फिर यह जहां आभिषेक्य हस्तिरत्न था वहां पर गया (उवागच्छिता आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुढे) वहां जाकर यह आभिषेक्य हस्तिरत्न के ऊपर सवार हो गया—(तएणं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण हयगयरह पवर जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे) इस के अनन्तर वह सुपेण सेनापति हाथों के स्कन्ध पर अच्छी तरह

।।थी, अनेक सार्थवाहो।।थी अने अनेक-सन्धिपालोथी युक्त-थई गयो-इतो। (सकोरंट मल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण) कोरंट पुष्पनी मालाथी युक्त उपर ताण्णवामा आवेत्थी ये सुशोभित थई रहो इतो। (मंगल जयसदकयालोए) अने अनेतां न् दोको. मंगल-अथ-अथ शब्दोच्चार करवा होगता अवे। सुपेण सेनापतिरत्न (मञ्जणघराओ पड्डिणिकखमड) स्नान गृहमाथी अहार नीकयो (पड्डिणिकखमिता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) अहार नीकणेने ये उपस्थानशालांमा आव्यो आपीने पथी ये अथा आभिषेक्य इस्तिरत्न इत्तुं त्यां आव्यो। (उवागच्छिता आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुढे) त्यां अर्थने ये आभिषेक्य इस्तिरत्न उपर सवार थई गयो (तएणं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरंटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण हयगयरहपवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे) अने। पथी ते सुपेण

दृढीकृता शरासनपट्टिका धनुर्दण्डो येन स तथा 'पिण्डगेविज्जबद्ध आविद्ध विमलवरचिघपट्टे' पिण्डग्रैवेयबद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टः, पिण्डं ग्रैवेयं—ग्रीवात्राणकं ग्रीवाभरणं वा येन स तथा बद्धो—ग्रन्थिदानेन आविद्धः परिहितो मस्तकावेष्टनेन विमलवरचिह्नपट्टो वीरातिवीरता सूचकवस्त्रविशेषो येन स तथा, पिण्डग्रैवेयश्चासौ बद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टश्चेति स तथा 'गहियाउहृप्पहरणे' गृहीतायुधप्रहरणः गृहीतानि आयुधानि प्रहरणानि च शास्त्रास्त्राणि येन स तथा, आयुधप्रहरणयोस्तु क्षेप्याक्षेप्यकृतो विशेषो बोध्यः, तत्र क्षेप्यानि बाणादीनि आक्षेप्यानि खड्गादीनि, अथवा गृहीतानि आयुधानि प्रहरणाय येन स तथेति । 'अणेगणनायक दंडनायक जाव सद्धि संपरिवुडे' अनेक गणनायकदण्डनायक यावत् संपरिवृतः तत्र अनेके—बहवः गणनायकाः मल्लादि गणमुख्याः, दण्डनायकाः तन्त्रपालाः, यावत् पदात् ईश्वरतलवरमाडम्बिककौटुम्बिकमन्त्रिमहामन्त्रि गणकदौवारिकाऽमात्यचेटपीठमर्दनगरनिगमश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहसन्धिपालाः ग्राह्याः तैः सार्द्धं संपरिवृतः—युक्तः पुनः कीदृशः सुषेणः 'सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेण धरिज्जमाणेणं' सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण त्रिय-

किया (पिण्डगेविज्जबद्ध आविद्ध विमलवरचिघपट्टे) गले में हार पहिरा तथा—मस्तक पर अच्छी तरह से गांठ से बाधकर विमल वर चिन्ह पट्ट—वीरातिवीरता का सूचक—वस्त्र विशेष—बांधा (गहियाउहृप्पहरणे) हाथ में आयुध और प्रहरण लिए—आयुध और प्रहरण में क्षेप्या क्षेप्यकृत विशेषता है और कोह विशेषता नहीं है । बाणादिक क्षेप्य और खड्ग आदि आक्षेप्य है । अथवा प्रहरण के लिये—शत्रुओं पर प्रहार—करने के लिये जिसने आयुधको लिये है ऐसा भी अर्थ 'गृहीतायुधप्रहरण' इस पद का हो सकता है "अणेग गणनायक दंडनायक जाव सद्धि संपरिवुडे, इस समय यह अनेक गणनायकों से—मल्लादिगण मुख्यजनों से अनेक दंडनायकों से अनेक तन्त्रपालों से, यावत्पदगृहीत अनेक ईश्वरों से अनेक तलवरों से अनेक माडम्बिकों से अनेक कौटुम्बिकों से, अनेक मन्त्रियों से अनेक महामन्त्रियों से अनेक गणको से अनेक दौवारिकों से अनेक अमात्यों से अनेक चेटों से अनेक पीठमर्दकों से अनेक नगर निगम के श्रेष्ठियों से

आशेषु कथुं. (पिण्डगेविज्जबद्ध आविद्ध विमलवरचिघ पट्टे) गणाभा डार धारणु कथुं भरुतक उपर सारी रीते गांठ भाधीने विमलवर चिन्ह पट्ट - वीरातिवीरता सूचक वस्त्र विशेष भांध्यु (गहियाउहृप्पहरणे) हाथमां आयुध अने प्रहरणो लीधां आयुध अने प्रहरणुमां क्षेप्याक्षेप्यकृत विशेषताअ छे, भीलु कौंथ विशेषता नहीं, भाषु वगेरे क्षेप्य अने भांडग वगेरे आक्षेप्य छे. अथवा - प्रहरणु भाटे - शत्रुको उपर प्रहार करवा नाटे वेवे आयुधो धारणु कथुं छे कोवेो पयु अर्थ (गृहीतायुधप्रहरणः) आ पहनेो थर्थ शके छे (अणेग गणनायक दंड नायक जाव सद्धि संपरिवुडे) ते समयै को अनेक गणु नायकोथी—मल्लादिगणु मुख्य जनोथी, अनेक दंड नायकोथी, अनेक तन्त्रपालोथी, यावत् पद गृहीत अनेक ईश्वरोथी, अनेक तलवरुथी, अनेक माडंभिकोथी, अनेककौटुंभिकोथी, अनेक मन्त्रीयोथी अनेक महामन्त्रियोथी, अनेक गणुकोथी, दौवारिकोथी, अनेक अमात्योथी, अनेक चेटोथी, अनेक पीठमर्दकोथी, अनेक नगर निगमना श्रेष्ठियोथी, अनेक सेनापति-

माणेन तत्र सकोरुण्टानि कोरुण्टनामककुसुमरतवक्रयुक्तानि कुसुमपुष्पाणि हि पीतवर्णानि मालान्ते शोभार्थं दीयन्ते मालायै हितानि माल्यानि-पुष्पाणि तेषां दामानि मालाः यत्र तत् तथा एवंविधेन छत्रेण आतपनिवारकेण ध्रियमाणेन शिरसि (विराजमानः) 'मंगलजयसहकयालोए' मङ्गलजयशब्दकृतालोकः, मङ्गलभूतः जयशब्दः कृत आलोकैर्दर्शने सति यस्य स तथा एवंभूतः सुषेणः 'मञ्जुणधरालो पडिणिकखमड' मञ्जुनगृहात् प्रतिनिष्क्रामति निःसरति 'पडिणिकखमिता' प्रतिनिष्क्रम्य निमृत्य 'जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेवं आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव वाह्या उपस्थानशाला समाशाला यत्रैव आभिषेक्यम् अभिषेकयोग्यं हत्थिरयणं 'तेणेव उवागच्छइ' तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छत्ता' उपागत्य आभिसेककं हत्थिरयणं दुरुढे' आभिषेक्यं हस्तिरत्न-दुरुढम् आरूढः 'तए णं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए' ततः खलु स सुषेणः-सुषेणनामकः सेनापतिः हस्तिस्कन्धवरगतः प्राप्तः 'सकोरुण्टमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण' सकोरुण्टमाल्यदान्ना छत्रेण ध्रियमाणेन सह 'विराजमानः' पुनः कीदृशः 'हयगयरहपवर जोह कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे' हयगजरथप्रवरयोधकलितया अश्वहस्ति-

अनेक सेनापतियो से अनेक सार्थवाहो से और अनेक सन्धिपालो से युक्त हो गया था (सकोरुण्ट मल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण) कोरुण्ट पुष्पों के माला से युक्त ऊपर ताने गये छत्ते से यह सुशोभित हो रहा था (मंगलजयसहकयालोए) इसके दिसते ही लोग मंगलकारी जय २ शब्द का उच्चारण करने लग जाते ऐसा यह सुषेण सेनापति रत्न (मञ्जुणधराओ पडिणिकखमड) स्नानगृहसे बाहर निकला (पडिणिकखमिता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) बाहर निकल कर यह उपस्थानशाला में आया वहाँ जाकर फिर यह जहाँ आभिषेक्य हस्तिरत्न था वहाँ पर गया (उवागच्छत्ता आभिसेककं हत्थिरयणं दुरुढे) वहाँ जाकर यह आभिषेक्य हस्तिरत्न के ऊपर सवार हो गया-(तए णं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरुण्टमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण हयगयरह पवर जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे) इसके अनन्तर वह सुषेण सेनापति हाथों के स्कन्ध पर अच्छी तरह

आधी, अनेक सार्थवाहोथी अने अनेक-स धिपाणोथी युक्त-थई गथो इतो. (सकोरुण्ट मल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण) कोरुण्ट पुष्पानी मालाथी युक्त उपर ताण्णवामा आवेइ छत्रथी ओ सुशोभित थई रहो इतो. (मंगल जयसहकयालोए) अने अनेतां ल दौके. मंगलकारी लथ-लथ शब्दोच्चार करवा लागता अथो. सुषेण सेनापतिरत्न (मञ्जुणधराओ पडिणिकखमड) स्नान गृहमांथी अहार नीकलोथो (पडिणिकखमिता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) अहार नीकलोने ओ उपस्थानशालांमां आवो आनीने पछी ओ लथा आभिषेक्य इस्तिरत्न इतुं त्यां आवो (उवागच्छत्ता आभिसेककं हत्थिरयणं दुरुढे) त्यां लथने ओ आभिषेक्य इस्तिरत्न उपर सवार थई गथो (तए णं से सुसेणे सेणावई हत्थिखंधवरगए सकोरुण्टमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण हयगयरहपवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धि संपरिवुडे) अने पछी ते सुषेण

श्रेष्ठयोधयुक्तया चतुरङ्गिण्या सेनया साद्धं भ्रवहस्तिरथपदाति सेनया सह संपरिवृतः
 : 'महया भडचडगरपडगरवंदपरिविखचे' महता भटविस्तारघुन्दपरिश्रितः तत्र
 महता विपुलेन, भटाः-योद्धारस्तेषां 'चडगरपडगरचि' विस्तार वृन्दम् तेन परिश्रितः
 सैन : 'महया उक्किट्टिसीहणाय बोळकळकळसदेणं समुद्वरवभूर्यपिव करेमाणे करेमाणे
 सन्विद्धीए सन्वज्जूईए सन्ववलेणं जाव निग्घोमनाइएणं जेणेव सिंधू महाणई तेणेव
 'गच्छइ' उवागच्छिता चम्मरयणं पगामुइ' ता उत्कृष्टः सिंहनाद बोळकळकळ-
 शब्देन द्रवभूतमि कुर्वन् २ सर्वद्धर्चा सर्वधुत्या, 'बलेन यावत् निर्घोपनादेन सह
 'व सिन्धुर्महानदी तत्रैवोपागच्छति उपागत्य, महतामहता रवेण उत्कृष्टिः-आन-
 न्दध्वनिः, सिंहनादः प्रसिद्धः, बोळो वर्णरहितो ध्वनिः कळकळश्च तदितरो ध्वनिः, तल्ल-
 लो यः शब्दः रवः तेन समुद्रवभूतमि प्राप्तमिव दिग्मण्डलं कुर्वन् कुर्वन् सर्वद्धर्चा
 सर्वधुत्या, सर्वबलेन, तत्र-सर्वद्धर्चा सर्वया समस्तया ऋद्ध्या आमरणादि रूपया लक्ष्म्याः
 : तथा 'धुत्या सर्वकान्त्या सर्वबलेन सर्वसैन्येन एवं यावत् निर्घोपनादेन वाद्यवि-
 शेषशब्देन सह वर्त्तमानः स सुषेणः यत्रैव सिन्धुर्महानदी 'वोपागच्छति 'उवागच्छिता'

से बैठा हुआ कोरंट पुष्पो की माला से विराजित भ्रियमाण छत्र से सुशोभित हुआ तथा
 हय रथ एवं प्रवर योधाओं से सहित चतुरंगिणी सेना से विरा हुआ (महया
 म रपहगरवंदपरिविखचे) विपुल योद्धाओं के विस्तृत वृन्द से युक्त हुआ जहाँ पर
 सिन्धु नदी थी वहाँ पर आया-इस प्रकार से वहा संबंध लगा लेना चाहिये साथ में चलने वाली
 चतुरंगिणी सेना की (उक्किट्टिसीहणाय बोळ-कळकळसदेणं समुद्वरवभूर्यपिव करेमाणे २
 सन्विद्धीए सन्वज्जूईए सन्ववलेणं जाव निग्घोमनाइएणं जेणेव सिन्धू महाणई-तेणेव उवागच्छइ)
 उत्कृष्ट आनन्द ध्वनि से सिंहनाद से अव्यक्त ध्वनि से एवं कळ कळ शब्द से समुद्र ही मानों
 गर्ज रहा है इस प्रकार से यह दिग् मण्डल को क्षुभित करता जा रहा था इस तरह अपनी पूर्ण
 विभूति से एवं सर्व धुनि से तथा सर्व बल से यावत् वाद्य विशेष के शब्दों से युक्त हुआ यह सु-
 षेण सेनापति रत्न जहाँ पर सिन्धु नदी थी वहा पर आ पहुँचा (उवागच्छिता चम्मरयणं परा

सेनापति हाथीना स्कन्ध उपरसारी रीते ठेठेडो डोरंट पुष्पेणी भाजाथी विश्रित, भ्रिय-
 भाषु छत्रथी सुशोभित थयेडो तेमञ्ज-डय, गञ्, रथ, तेमञ्ज प्रवर योद्धाज्योथी युक्त तथा
 अतुरंगिणी सेनाथी परिवृत थयेडो (म म रप वंदपरिविखचे) विपुल योद्धा-
 ज्योना विस्तृतवृन्द्थी युक्त थयेडो, ज्यां सिन्धु नदी डती, त्यां आण्यो आ प्रभाषे अडीं
 संबंध लाषी डेवे। जेधजे साथे आलनारी अतुर गिणी सेनानी (उक्किट्टिसीहणाय बोळ-
 कळकळसदेणं समुद्वरवभूर्य पिव करेमाणे २ सन्विद्धीए ज्जूईए सन्व वलेणं जाव
 निग्घोमनाइएणं जेणेव सिन्धुमहाणइ तेणेव उवागच्छइ) उत्कृष्ट आनन्द ध्वनिथी, सिं-
 नादथी, अव्यक्त ध्वनिथी तेमञ्ज डल-डल शब्दथी, लाषे डे समुद्र ज गञ्ना करी रथी
 डेय, आ प्रभाषे जे दिग्मंडलने क्षुभित करतो प्रयाषु करी रथी डतो आ प्रभाषे पैतानी
 पूरु विभूतिथी तेमञ्ज सर्वधुतिथी तथा सपं जणथी यावत् वाद्यविशेषना शब्दोथी युक्त

उपागत्य चर्मरत्नं परामृशति स्पृशति, चर्मरत्नवर्णनमाह—‘तए णं’ इत्यादि ‘तए णं तं’ ततः खलु तच्चर्मरत्नम् ‘सिरिवच्छसरिसरूपं’ श्रीवत्ससदृशरूपम् तत्र श्रीवत्ससदृश माङ्गलिकस्वस्तिकविशेषः श्रीवत्साकारं रूपं यस्य तम् तथा

ननु अस्य श्रीवत्साकारत्वे चत्वारोऽपि प्रान्ताः समविषमाः भवन्ति तथा च अस्य चर्मरत्नस्य किरातकृतवृष्टिशुपद्रवनिवारणार्थं तिर्यग् विस्तृतेन वृत्ताकारेण छत्ररत्नेन सह क्रथं सङ्घटनास्यादिति चेन्न स्वतः श्रीवत्साकारमपि सहस्रदेवाधिष्ठितत्वात् यथाऽवसरं चिन्तित्वाकारमेव भवतीत्यनुपपत्त्यभावात् ‘मुत्ततारद्ध चंदचित्तं’ मुक्त ताराद्धचन्द्रचित्रम्, तत्र मुक्तानां मौक्तिकानां ताराणां तारकाणाम् अर्द्धचन्द्राणां च चित्राणि—आलेख्याणि यत्र तत्तथा पुनः कीदृशं चर्मरत्नम् ‘अचलमकम्पं’ अचलमकम्पम्, चञ्चलता रहितम् अकम्पं कम्परहितम् तत्र—अचलम् अकम्पम् द्वौ सदृशार्थकौ शब्दौ अतिशय सूचकौ तथा च अत्यन्तदृढपरिमाणं भरत-

मुसह) वहां आकर के इसने चर्मरत्न का स्पर्श किया (तएणं तं सिरिवच्छसरिसरूपं मुत्ततारद्ध चदचित्तं अचलमकम्पं अमेग्गकवयं) वह चर्मरत्न श्रीवत्स के जैसे आकार वाला था माङ्गलिक स्वस्तिक विशेष का नाम श्रीवत्स है यहाँ ऐसी आशंका हो सकती है कि जब वह चर्मरत्नका श्री वत्स के जैसे-आकार था तो श्रीवत्स के तो चारों प्रान्त समविषम होते हैं फिर इसकी किरातकृत वृष्टि रूप उपद्रव को निवारण करने के लिये विस्तृत किये गये गोल आकार वाले छत्र के साथ सङ्घटना कैसे होसकेगी ? तो इस आशंका (समाधान ऐसा है कि वह चर्मरत्नस्वतः तो श्री वत्स के जैसे आकारवाला है परन्तु देवाधिष्ठित होने के कारण यह यथावसर चिन्तित आकार वाला हो जाता है इसलिये इस कथन में कोई अनुपपत्ति जैसी बात नहीं है। इस चर्मरत्न में मुक्ताओं के और अर्द्धचन्द्र के चित्र बने हुए थे। यह अचल और अकम्प होता है यद्यपि अचल और अकम्प ये दोनों शब्द समानार्थक है इसलिये जहां समानार्थक दो शब्द आते हैं वे अतिशय के सूचक होते हैं इस तरह भरतचकी का सकल सैन्य भी यदि उसे चलाना कैंपाना चाहे तो

थयेदो ते सुषेणु सेनापतिरत्न न्यां सिन्धु नदी इती त्यां पडोन्थो. (उवागच्छित्ता चम्मर- यणं परामुसह) त्यां पडोन्थीने तेसु चर्मरत्नने स्पृशं कथो (त एणं तं सिरिवच्छसरिसरूपं मुत्ततारद्ध चदचित्तं अचलमकम्पं अमेग्ग) ते चर्मरत्न श्रीवत्स जेवा आकारवाणु इतुं भांगलिक स्वस्तिक विशेषतुं नाम श्रीवत्स छे अर्द्धी जेवी आशंका थर्धं शके तेभ छे के न्यादे ते चर्मरत्न श्रीवत्सना जेवा आकारवाणु इतु तो श्रीवत्सना तो आदे आर प्रान्तो सम- विषम होय छे तो पृथी जे किरातकृत वृष्टिशुप उपद्रवना निवारण भाटे विस्तृत करवाया आवेल गे। वाक्यत छत्रनी साथे सङ्घटना केनी रीते थर्धं शकशे ? तो जे आशंकातुं समाधान आ प्रभावे छे के ते चर्मरत्न स्वतः तो श्रीवत्सना आकार जेवुं छे यद्य देवाधिष्ठिक होवाथा जे यथावसर चिन्तित आकारवाणु थर्धं नय छे, जेथी आ कथनभां कौण अनुपपत्ति जेवी बात नहीं, चर्मरत्नभां मुक्ताज्जेना तारकाज्जे। अने अर्द्धचन्द्रना चित्रो भनेला छे, जे अचल अने अकम्प होय छे जे के अचल अने अकम्प अन्ने शब्दो समानार्थक छे जेथी न न्या समानार्थक जे शब्दो आवे छे त अतिशय सूचक होय छे, आ प्रभावे भरतचकीनी संपूर्ण

योधयुक्तया चतुरङ्गिण्या सेनया सार्द्धं अश्वहस्तिरथपदाति सेनया सह संपरिवृतः
 : 'महया भटचडगरपहगरवदपरिक्लिप्ते' महता भटविस्तारवृन्दपरिक्षिप्तः तत्र
 महता विपुलेन, मटाः—योद्धारस्तेषां 'व रपहगरत्ति' विस्तार वृन्दम् तेन परिक्षिप्तः
 सेन : 'महया उक्किट्टिसीहणाय बोलककलसदेणं समुद्वरवभूर्यपिव करेमाणे करेमाणे
 सच्चिदीए सच्चज्जूईए सच्चबलेणं जाव निग्घोमनाइएणं जेणेव सिंधू महाणई तेणेव
 'उवागच्छि' उवागच्छिता चम्मरयणं परागुमई' । उत्कृष्टः सिंहाद बोलककलकल-
 शब्देन द्रवभूतमि कुर्वन् २ सर्वद्वर्चा सर्वद्युत्या, 'बलेन यावत् निर्घोपनादेन सह
 'व सिन्धुर्महानदी तत्रैवोपागच्छति उपागत्य, महतामहता रवेण उत्कृष्टिः—आन-
 न्दध्वनिः, सिंहादः प्रसिद्धः, बोलो वर्णरहितो ध्वनिः कलकलश्च तदितरो ध्वनिः, तल्ल-
 लो यः शब्दः रवः तेन समुद्रवभूतमि प्राप्तमिव दिग्मण्डलं कुर्वन् कुर्वन् सर्वद्वर्चा
 सर्वद्युत्या, सर्वबलेन, तत्र—सर्वद्वर्चा सर्वया समस्तया ऋद्ध्या आभरणादि रूपया लक्ष्म्याः
 : तथा 'द्युत्या सर्वकान्त्या सर्वबलेन सर्वसैन्येन एवं यावत् निर्घोपनादेन वाद्यवि-
 शेषशब्देन सह वर्तमानः स सुषेणः यत्रैव सिन्धुर्महानदी तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छिता'

से बैठा हुआ कोरंट पुष्पो की माला से विराजित ध्रियमाण छत्र से सुशोभित हुआ तथा
 हय गज रथ एवं प्रवर योधाओं से सहित चतुरंगिणी सेना से विरा हुआ (महया
 भ रपहगरवदपरिक्लिप्ते) विपुल योद्धाओं के विस्तृत वृन्द से युक्त हुआ जहाँ पर
 सिन्धु नदी थी वहाँ पर आया-इस प्रकार से यहा संबंध लगा लेना चाहिये साथ में चलने वाली
 चतुरंगिणी सेना की (उक्किट्टिसीहणाय बोलककलसदेणं समुद्वरवभूर्यपिव करेमाणे २
 सच्चिदीए सच्चज्जूईए सच्चबलेण जाव निग्घोमनाइएणं जेणेव सिंधू महाणई-तेणेव उवागच्छि)
 उत्कृष्ट आनन्द ध्वनि से सिंहाद से अव्यक्त ध्वनि से एवं कल कल शब्द से समुद्र ही मानों
 गर्ज रहा है इस प्रकार से यह दिग् मण्डल को क्षुभित करता जा रहा था इस तरह अपनी पूर्ण
 विभूति से एवं सर्व धुनि से तथा सर्व बल से यावत् वाद्य विशेष के शब्दों से युक्त हुआ यह सु-
 षेण सेनापति रत्न जहाँ पर सिन्धु नदी थी वहाँ पर आ पहुँचा (उवागच्छिता चम्मरयणं परा

सेनापति हार्थीना स्कन्ध उपरसारी रीते छेठेदो। डेरंट पुष्पोनी भाजाथी विशजित, ध्रिय-
 भाषु छत्रथी सुशोभित थयेदो। तेमन्-डय, गज, रथ, तेमन् प्रवर योद्धाओथी युक्त तथा
 चतुरंगिणी सेनाथी परिवृत थयेदो। (म म रथ वदपरिक्लिप्ते) विपुल योद्धा-
 ओना विस्तृतवृन्दथी युक्त थयेदो, ज्थां सिन्धु नदी हती, त्यां आओयो. आ प्रभाषे अडी'
 संभंध लषी देवे। जेधओ साथे आलनारी चतुरंगिणी सेनानी (उक्किट्टिसीहणाय बोल-
 ककलकलसदेणं समुद्वरवभूर्य पिव करेमाणे २ सच्चिदीए ज्जूईए सच्च बलेणं जाव
 निग्घो इएण जेणेव सिन्धुमहाणई तेणेव उवागच्छि) उत्कृष्ट आनन्द ध्वनिथी, सिंहा-
 नादथी, अव्यक्त ध्वनिथी तेमन् कल-कल शब्दथी, लषे डे समुद्र ज गज'ना करी रह्यी
 होय, आ प्रभाषे ओ दिग्मण्डले क्षुभित करतो। प्रभाषु करी रह्यी हतो। आ प्रभाषे योतानी
 पूषु विभूतिथी तेमन् सव'क्षुतिथी तथा सव' अणथी यावत् वाद्यविशेषना शब्दोथी युक्त

उपागत्य चर्मरत्नं परामुशति स्पृशति, चर्मरत्नवर्णनमाह—'तए णं' इत्यादि 'तए णं तं' ततः खलु तच्चर्मरत्नम् 'सिरिवच्छसरिसरूपं' श्रीवत्ससदृशरूपम् तत्र श्रीवत्ससदृशं माङ्गलिकस्वस्तिकविशेषः श्रीवत्साकारं रूपं यस्य तम् तथा

ननु अस्य श्रीवत्साकारत्वे चत्वारोऽपि प्रान्ताः समविषमाः भवन्ति तथा च अस्य चर्मरत्नस्य किरातकृतवृष्ट्युपद्रवनिवारणार्थं तिर्यग् विस्तृतेन वृत्ताकारेण छत्ररत्नेन सह कथं सङ्घटनास्यादिति चेन्न स्वतः श्रीवत्साकारमपि सहस्रदेवाधिष्ठितत्वात् यथाऽत्रसरं चिन्तिताकारमेव भवतीत्यनुपपत्त्यावात् 'मुत्ततारद्ध चंदचिचं' मुक्त ताराद्धचन्द्रचित्रम्, तत्र मुक्तानां भौक्तिकानां ताराणां तारकाणाम् अर्द्धचन्द्राणां च चित्राणि—आळेख्याणि यत्र तत्तथा पुनः क्रीडशं चर्मरत्नम् 'अयलमकंपं' अचलमकम्पम्, चञ्चलता रहितम् अकम्पं कम्परहितम् तत्र—अचलम् अकम्पम् द्वौ स त्र्यकौ शब्दौ अतिशय सूचकौ तथा च अत्यन्तदृढपरिमाणं भरत-

सुसह) वहाँ आकर के इसने चर्मरत्न का स्पर्श किया (तएणं तं सिरिवच्छसरिसरूपं मुत्ततारद्ध चदचिचं अयलमकंपं अमेवञ्जकवयं) वह चर्मरत्न श्रीवत्स के जैसे आकार वाला था माङ्गलिक स्वस्तिक विशेष का नाम श्रीवत्स है यहाँ ऐसी आशंका हो सकती है कि जब वह चर्मरत्नका श्री वत्स के जैसे-आकार था तो श्रीवत्स के तो चारों प्रान्त समविषम होते हैं फिर इसकी किरातकृत वृष्टि रूप उपद्रव को निवारण करने के लिये विस्तृत किये गये गोल आकार वाले छत्र के साथ सङ्घटना कैसे होसकेगी ? तो इस आशंका (समाधान ऐसा है कि वह चर्मरत्नत्वतः तो श्री वत्स के जैसे आकारवाला है परन्तु देवाधिष्ठित होने के कारण यह यथावसर चिन्तित आकार वाला हो जाता है इसलिये इस कथन में कोई अनुपपत्ति जैसी बात नहीं है। इस चर्मरत्न में मुक्ताओं के और अर्द्धचन्द्र के चित्र बने हुए थे। यह अचल और अकम्प होता है यद्यपि अचल और अकम्प ये दोनों शब्द समानार्थक है इसलिये जहाँ समानार्थक दो शब्द आते हैं वे अतिशय के सूचक होते हैं इस तरह भरतचकी का सकल सैन्य भी यदि उसे चलाना कॅपाना चाहे तो

थयेदो ते सुपेष्णु सेनापतिरत्न न्यां सिन्धु नदी इती त्या पडोन्थो. (उपागच्छित्ता चर्मर- यणं परामुस्र) त्यां पडोन्थीने तेष्णे चर्मरत्नने स्पृशं कथो (न एणं तं सिरिवच्छसरिस मुत्ततारद्ध चचिचं अयलमकंपं अमेवञ्ज) ते चर्मरत्न श्रीवत्स जेवा आकारवाणु इतुं भांगलिक स्वस्तिक विशेषतुं नाम श्रीवत्स छे अही ज्येनी आशंका थर्ध शके तेम छे के न्यारे ते चर्मरत्न श्रीवत्सना जेवा आकारवाणु इतुं तो श्रीवत्सना तो आरे चार प्रान्ते सम- विषम होय छे तो पथी ज्ये किरातकृत वृष्टिउप उपाद्रवना निवारण भाटे विस्तृत करवामां आवेळ गोलाकृत छत्रनी साथे सङ्घटना केवी शीते थर्ध शकेशे ? तो ज्ये आशंकातुं समाधान आ प्रभावे छे के ते चर्मरत्न स्वतः तो श्रीवत्सना आकार जेवुं छे यणु देवाधिष्ठिक होवाथां ज्ये यथावसर चिन्तित आकारवाणु थर्ध नाथ छे. ज्येथी आ कथनमां केळ अनुपपत्ति जेवी वात नथी चर्मरत्नमां मुक्ताज्येना तारकाज्ये। अने अर्द्धचन्द्रना चित्रो जनेला छे. ज्ये अचल अने अकम्प होय छे ज्ये के अचल अने अकम्प जन्ने शण्डे समानार्थक छे ज्येथी न न्या समानार्थक जे शण्डे आवे छे त अतिशय सूचक होय छे. आ प्रभावे भरतचकीनी संपूष्ण

चक्रिसकलसैन्याक्रान्तत्वेऽपि न मनागपि कम्पते इति भावः पुनः कीदृशं चर्मरत्नम् 'अमे-
 उजकवयं' अमेघकवचम् अमेघं दुर्भेद्यं कवचमिव अमेघकवचम्-वज्रपञ्जरमिव दुर्भेदमिति भावः
 'जंतं सलिलासु सागरेषु य उत्तरणं' सलिलासु सागरेषु च उत्तरणयन्त्रम्, तत्र सलिलासु
 नदीषु सागरेषु समुद्रेषु चोत्तरणयन्त्रं, पारगमनोपायभूतम् 'दिव्यं चक्रकरणं' दिव्यं देव-
 कृतप्रातिहार्यं देवकृतं स्तुति सम्पन्नमित्यर्थः चर्मरत्नं चर्मसु प्रधानम् अनलजलादिभिरनुप-
 घात्यवीर्यत्वात् पुनः 'सणसत्तरसाइं सव्वघण्णाइं जत्थ रोहंति एगदिवसेण वाविभाइं' यत्र
 शणसप्तदशानि सर्वधान्यानि रोहन्ते एकदिवसेनोप्तानि, तत्र शणं-शणधान्यम् सप्तदशं-
 सप्तदश-संख्यापूरकं येषु तानि शणसप्तदशानि सर्वधान्यानि यत्र रोहन्ते ज्ञायन्ते एक-
 दिवसेनोप्तानि, एयं सम्प्रदायः गृहपतिरत्नेन अस्मिश्चर्मणि धान्यानि सूर्योदये उप्यन्ते
 अस्तसमये च लूयन्ते इति, सप्तदश धान्यानित्विमानि, "सालि १ जव २ वीहि ३

भी वह जरा सा भी कंपित नई, हो सकता है-यही बात यहां सूचीत की गई है जिस प्रकार
 वज्र पञ्जर दुर्भेद्य होता है, उसी प्रकार, से यह भी दुर्भेद्य था (जंतं सलिलासु सागरेषु य उत्तरणं)
 इसके बल से चक्रवर्ती का, समस्त कटक-नदीयो, को, और सागरों को, समुद्रों को-पार कर देता
 है। अर्थात् नदियों के, और समुद्रों के, पार करने में यह एक आयुस्सूत-यंत्र है-। (दिव्यं चर्मर-
 यणं सणसत्तरसाइं सव्वघण्णाइं जत्थ रोहंति, एगदिवसेण वाविभाइं-) यह देव कृत परि-
 हार्य रूप होता है-देवकृतस्तुति सम्पन्न होता है। अनलजलादि से इसका उपघात नहीं हो
 सकता है क्योंकि यह ऐसी ही शक्ति सम्पन्न होता है अतः यह समस्त प्रकार के चर्मों में
 प्रधान होने से चर्मरत्न कहा गया है। इसके बोधेयमे, शण और १७ प्रकार के धान्य ही एक
 दिन में उत्पन्न हो जाते हैं। फलित हो जाते हैं। शण धान्यका नाम शण है। ऐसा सम्प्रदाय है
 कि गृहपति रत्न द्वारा इस चर्मरत्न पर सूर्योदय के समय धान्य बोदिये जाते हैं, और अस्त के
 समय में काटलिये जाते हैं उन १७ प्रकार के धान्यों के नाम इस प्रकार से हैं-"सालि १जव

सेना-पञ्चाब्जे-तेना-व्याहित करवा-कपित करवा प्रयत्न करे तो पशु ते सडे ज पशु कपित
 थड-शके नडि-जे-ज वात-अत्रे सूचिन करवाभा आवी छे जेभ वज्र पञ्जर दुर्भेद्य डोय
 छे, तेभजे जे 'पशु दुर्भेद्य डेतु. (जंतं सलिलासु सागरेषु य उत्तरणं) जेना जणथी थक
 वर्ती'तु' समस्त कटक नदीयोने अने सागरे ने, समुद्रोने पार करी नथ छे. जेटवे के
 नदीयो अने समुद्रोने पार करवाभाटे जे जेक महेत्त्वपशु यत्र छे. (दिव्य चर्मरयण
 सणसत्तरसाइं सव्वघण्णाइं जत्थ रोहंति एगदिवसेण वाविभाइं) जे देवकृत परिहार्य रूप
 डोय छे. देवकृत स्तुति सम्पन्न डोय छे. अनलजला वगैरथी जेना उपघात थड शकते
 नथी हेभके जे जेवी ज शक्तिथ सम्पन्न डोय छे. आभ जे समस्त प्रकारना चर्मोभां
 प्रधान डोवांथी चर्मरत्न कहेवाभां आव्युं छे जेना वडे वयित शषु-अने १७ प्रकारना
 धान्यो जेक द्विवसभां ज उत्पन्न थड नथ छे-इति थड नथ छे शषु धान्यतुं नाम शषु छे
 जेयो सम्प्रदाय (रिवाज) छे कि गृहपति-रत्न वडे जे चर्मरत्न उपर सूर्योदय समये धान्यो
 वपिन करवाभा आवे छे अने सूर्यास्त थाय ते समये धान्योनी लक्षणी करवाभा आवे छे

कुहव ४ रालय ५ तिल ६ मुग ७ मास ८ चवल ९ चिणा १० । तुअरि ११ मसूरि १२
कुलत्या १३ गोहुम १४ गिप्फाव १५ अयसि १६ सणा १७ ॥१॥ सूर्ये उदिते सति
प्रथमप्रहरे उष्यन्ते, द्वितीय प्रहरे जलादिना दीयते तृतीय प्रहरे धान्यानि पक्वानि भवन्ति
चतुर्थे प्रहरे ल्यन्ते निष्पूयन्ते ततो यथास्थानं सेनाविभागे तत्तत्स्थाने प्रेष्यन्ते इति ।
शालिः १ प्रसिद्धः, जवः २ प्रसिद्ध, व्रीहिः ३ धान्यविशेषः, कोद्रवः ४ प्रसिद्धः, रालय
५ धान्य विशेष, तिलः ६, मुद्गः ७, मासः ८, चवलः ९ चौला इति प्रसिद्धः, चणकः

२वीहिं ३ कुहव ४ रालय ५ तिल ६ मुग ७ मास ८ चवल ९ चिणा १० । तुअरि ११ मसूरि १२
कुलत्या १३ गोहुम १४ गिप्फाव १५ अयसि १६ सणा १७ ॥१॥

सूर्य के उदय होने पर प्रथम प्रहर में ये धान्य जो दिये जाते हैं द्वितीय प्रहार में इन्हें
जलादि देकर बढ़ाया जाता है, तृतीय प्रहर में ये पक्व हो जाते हैं और चतुर्थ प्रहर में ये
काटलिये जाते हैं । फिर यथास्थान ये सेना विभाग में जगहर भेज दिये जाते हैं । शालिनाम्
धान्य का है । जव-जौ कानाम है । व्रीहि एक प्रकार का धान्य विशेष होता है । कोद्रव-कोदों
का नाम है यह बुन्देल खण्ड प्रान्त में बहुत अधिक होता है । तथा आदि वासियो में इसके खाने
का बहुत अधिक प्रचार है । रालि यह भी एक प्रकार का अनाज विशेष है । खाने में यह बहुत
हल्का होता है । यह बीमारी में पथ्य के रूप में प्रयुक्त होता है । तिल जिसे तिछी कहते हैं-
तिछी भी एक प्रकार का अनाज है-इस का तेल निकाल कर और इसके लड्डु बनाकर लोग
खाने के काम में इसका व्यवहार करते हैं । मुद्ग-मुंग का नाम है । मास-उडद का नाम है
चवल चौला का नाम है । इसके मुंगाड़ा बड़े अच्छे एवं स्वादिष्ट बनते हैं । लोग इसे सिन्हा-
कर और उस में नमक मसाला मिलाकर खाते हैं । चणक नाम चना का है । तुअर जिसे

ते १७ प्रकारना धान्यो आ प्रभाषे छे-“शालि १, जव २, व्रीहि ३, कुहव ४, रालय ५,
तिल ६, मुग ७, मास ८, चवल ९, चिणा १० । तुअरि ११, मसूरि १२, कुलत्या १३,
गोहुम १४, गिप्फाव १५, अयसि १६, सणा १७ ॥

सूर्योदय थाय के तरत न प्रथम प्रहरमा जे धान्यो वयित करवामां आवे छे, भीला
प्रहरमा जेभने पाष्ठी वगेरथो सिन्धित करीने वद्धित करवामां आवे छे, त्रीला प्रहरमां जे
धान्यो परिपक्व थई नथ छे, अने चतुर्थ प्रहरमा जेभनी ललषी करवामां आवे छे, पष्ठी
सेना विभागमां यथास्थान ठेक ठेकाछे जे धान्योने भेकली आपवामा आवे छे, शाली
धान्यनु नाम छे, जव-जवनु नाम छे, व्रीहि जेक प्रकारनु धान्य विशेष डोय छे, कोद्रव
कोदरातु नाम छे आ धान्य बुन्देल अउ प्रान्तमां भहु न थाय छे, तेसज आदिवासी
लोक जे धान्यने भावामां भूम न उभोग करे छे रात्रि जे पषु जेक प्रकारनु अन्न
विशेष छे, पथवामां जे भहु न हटकु डोय छे आ धान्य बीमारीमा पथ्यना रूपमां प्रयुक्त
थायछे तिल जेने तल कडी जे छीजे, तिल पषु जेक प्रकारनु अन्न छे, आ भांधी तेल कालीन
अने अनाथी लारवा जनावीने लोको भाय छे, मुद्ग-मगनु नाम छे, मास-अडदनु नाम
छे जव-चौलानु नाम छे जे शैलीने पषु अवाय छे शैकवाथी जे स्वादिष्ट थई नथ छे,

૧૦ ચણા ઇતિ પ્રસિદ્ધમ્ તૂવરિકા ૧૧ ત્વર ઇતિ ભાષા પ્રસિદ્ધમ્, મસૂરઃ ૧૨ પ્રસિદ્ધઃ, કુચ્છઃ ૧૩ પ્રસિદ્ધઃ, ગોધૂમઃ ૧૪ પ્રસિદ્ધઃ, નિષ્પાવઃ ૧૫ ધાન્યવિશેષઃ, અતસી ૧૬ ધાન્યવિશેષઃ, 'અલસી' પ્રસિદ્ધઃ, શણઃ ૧૭ ધાન્યવિશેષઃ, અન્યત્ર ચતુર્વિંશતિરપિ ઉક્તાનિ, લોકે ચ ક્ષુદ્રધાન્યાનિ બહૂનિ, પુનશ્ચર્મરત્નસ્ય વિશેષણમાહ—'વાસં' ઇત્યાદિ 'વાસં ણાઊઞ ચક્રવટ્ટિણા પરામુદ્દે દિવ્વે ચમ્મરયણે દુવાલસજોયણાહં તિરિઅં પવિત્થરહ' વર્ષ—જલદ-વૃષ્ટિં જ્ઞાત્વા રાજ્ઞા ચક્રવર્તિના ભરતેન પરામુષ્ટં—સ્પૃષ્ટમ્ દિવ્યં ચર્મરત્ન દ્વાદશ યોજનાનિ અષ્ટાચત્વારિંશક્રોશકાનિ તિર્યક્ પ્રવિસ્તૃતાણિ વર્દ્ધતે, નજુ દ્વાદશયોજનાવધિ તસ્થુષ્ચક્ર-વર્તિ સ્કન્ધાવારસ્ય અવકાશાય દ્વાદશયોજનપ્રમાણમેવ ઇદં વિસ્તૃત યુજ્યતે કિમધિક

બરહર કહા જાતા હૈ ધાન્ય વિશેષ હૈ ઇસકી ડાલ ગુલાચીરંગ કી હોતી હૈ તથાસ્થાને મે યહ સુપાન્ય હોતી હૈ । કુચ્છઃ નામકુચ્છથો કા હૈ—યહ જંગલો ધાન્ય હૈ વિના બોયે ચૌમાસે મેં યહ પૈદા હોતી હૈ ગોધૂમ નામ ગેહં કા હૈ નિષ્પાવ યહ મી એક પ્રકાર કા ધાન્ય વિશેષ હૈ—હમકા આકાર સેમ—બાલોર કે બીજ કે જૈસા હોતા હૈ । ગુજરાત તરફ ઇસકા મોજન મેં ચાક્ર કે રૂપ મેં બહુત પ્રયોગ દેસને મેં આતા હૈ । અતસી યહ મી એક પ્રકાર કા ધાન્ય વિશેષ હૈ । યહ તિલ્લી કી તરહ નુક્રીલા ઓર ચપટા હોતા હૈ । પરતિલ્લી સે બઢાહોતા હૈ ઇસે માષા મે અલસી કહા જાતા હૈ । શણ મી યહ મી એક પ્રકાર કા ધાન્યવિશેષ હૈ । કહીં કહીં ધાન્યો કી સંખ્યા ૨૪ મી કહી ગહ હૈ ક્યોંકિ લોક મેં ક્ષુદ્ર ધાન્ય બહુત હૈ (વાસં ણાઊઞ ચક્રવ-દિણા પરામુદ્દે દિવ્વે ચમ્મરયણે દુવાલસજોયણાહં તિરિઅં પવિત્થરહ) વર્ષા કી આગમન દેશ કર—જાન કર—ભરત ચક્રવર્તી દ્વારા સ્પૃષ્ટ હુમા વહ દિવ્ય ચર્મરત્ન કુલ અધિક ૧૨યોજના તક તિર્યક્ વિસ્તૃત હો ગયા । યહાં એસી આશંકા હો સકતી હૈં કિ ચક્રવર્તી કા સૈન્ય તો

લોકો અને રાષ્ટ્રીને અને તેમાં મીઠું—મસાલા મિશ્ર કરીને ખાય છે એ ચલુક—ચલુકાનુ નામ છે. તુઅર—તુવેરને કહે છે. એ પણ ધાન્યવિશેષ છે. મસૂર પણ એક પ્રકારનું અન્ન વિશેષ છે. એની ઢાળ શુભાળી રંગની થાય છે. તેમજ ખાવામાં એ સુપાન્ય હોય છે કુલ્છ નામ—કળથીનું છે એ જંગલી ધાન્ય છે વધિત કર્યાં. વગર જ ચતુર્માસમાં એ ઉત્પન્ન થઈ બધ છે ગોધૂમ—ધઉનું નામ છે. નિષ્પાવ એ પણ એક પ્રકારનું અન્ન વિશેષ છે એને આકાર સેમ—વાલોળનાળી જેવો હોય છે ગુજરાતમાં એને લોળનમાં શાકના રૂપમાં બહુ જ પ્રયોગ એવામાં આવે છે. અતસી આ પણ એક પ્રકારનું અન્ન વિશેષ છે. એ તલ જેવું અણીદાર અને ચપટું હોય છે પણ તલ કરતા મોટું હોય છે. અને ભાવામાં અલસી કહેવામાં આવે છે. શણ આ પણ એક પ્રકારનું ધાન્ય વિશેષ છે કેટલાક સ્થાનોમાં ધાન્યોની સંખ્યા ૨૪ જેટલી પણ કહેવામાં આવી છે કેમકે લોકમાં ક્ષુદ્ર ધાન્યોની સંખ્યા વધારે છે. (વાસં ણાઊઞ-ચક્રવટ્ટિણા પરામુદ્દે દિવ્વે ચમ્મરયણે દુવાલસજોયણાહ તિરિઅં પવિત્થરહ) વર્ષાનું આગ-મન એઈને—અણીને—ભરતચક્રી વડે સ્પૃષ્ટ થયેલુ તે દિવ્ય ચર્મરત્ન કષ્ટક વધારે ૧૨ યોજન સુધી તિર્યક વિસ્તૃત થઈ ગયું અન્ને એવી પણ આશંકા થઈ શકે કે ચક્રવર્તીનું સૈન્યતો ૧૨ યોજન જેટલા વિસ્તારવાળું હતું જ તો પછી તેટલા વિસ્તારવાળા સૈન્યને પણ એ

विस्तारेण इति चेन्न चर्मच्छत्रयोः अन्तराल पूरणाय तथोक्तत्वात् इति 'तत्थ साहियाइं' तत्र उत्तरभरत-मध्यखण्डवर्ति किरातकृतमेघोपद्रवनिवारणादि कार्ये साधिकानि किञ्चिदधिकानि 'तएणं से दिव्वे चम्मरयणे सुसेणसेणावइणा परामुट्टे समाणे सिप्पामेव णावाभूए जाए यावि होत्था'ततः खलु तद्विव्यं चर्मरत्नं सुषेणसेनापतिना परामुट्टं स्पृष्टं सत् क्षिप्रमेव शीघ्रमेव नोभूतं महानद्युत्ताराय नो तुल्य जातं चाप्यभवत्-नावाकारेण जातम्, 'तएणं से सुसेणे सेणावई सखधावारबलवाहणे णावाभूय चम्मरयण दुरुहइ, ततः चर्मरत्न नो भवना-नन्तरं खलु स सुषेणः सेनापतिः-सेनानीः सस्कन्धावारबलवाहनः स्कन्धावारस्य-सैन्यस्य ये बलवाहने हस्त्यादि चतुरङ्ग शिबिकादि रूपे ताभ्यां सह वर्तते यः स तथा एवं भूतःसन् नोभूत चर्मरत्नं दुरूह आरुह्य सिंधु महाणइं' सिंधुं सिन्धुनाम्नीं महानदीम् विमलजलतुङ्ग वीचिम्, विमञ्जलस्य स्वच्छोदकस्य तुङ्गाः अत्युच्चाः वीचयः कल्लोलाः यस्यां सा तथा ताम् 'णावाभूएणं चम्मरयणेणं' नोभूतेन चर्मरत्नेन 'सबलवाहणे' सबलवाहनः बलवाहनाभ्यां हस्त्यादि चतुरङ्गशिबिकादिरूपाभ्यां सह वर्तते यः स तथा 'सेणे' ससेनः सेनास-

१२ बारह योजन के विस्तार वाला ही था तो फिर उतने विस्तार वाले सैन्य को अपने भीतर स्थान देने के लिये चर्मरत्न को भी उतना ही बढ़ना चाहिये था यह अधिक क्यों बढ़ा १५ योजन प्रमाण ही इसे बढ़ना चाहिये था । तो इसका उत्तर ऐसा है कि यह जो इतना बड़ा सो चर्म और छत्र के अन्तराल को पूरा करने के लिये ही बढ़ा (तत्थ सहियाइ) यही बात इस सूत्र पाठ द्वारा पुष्ट की गई है—उत्तर भरत मध्यखण्डवर्ती किरात द्वारा कृत मेघ के उपद्रव को रोकने के लिये ही यह १२ योजन प्रमाण से कुछ अधिक विस्तृत हुआ । (तएणं से दिव्वे चम्मरयणे सुसेणसेणावइणा परामुट्टे समाणे सिप्पामेव णावाभूए जाए) वह दिव्य चर्मरत्न सुषेण सेनापति द्वारा स्पष्ट होता हुआ शीघ्र ही नौका रूप हो गया । (तएणं से सुसेणे सेणावई सखधावारबलवाहणे णावाभूयं चम्मरयणं दुरूहइ) इसके अनन्तर वह सुषेण सेनापति स्कन्धावार के बल और बाहन—हस्त्यादि चतुरंग एवं शिबिकादि रूप बाहन से युक्त हुआ उस नोभूत चर्मरत्न पर सवार हो गया (दुरूहिता सिंधु महाणइं विमलजलतुङ्गवीचिं णावा-

दिव्य चर्मरत्ननी अइर स्थान आपवा माटे तेने पख्ख आट्ठुं अ विस्तृत करडुं अ ओधंओ तो ओना अवाअ आ प्रभाषे छे के ओ के उपयुक्त प्रभाषे नेट्ठुं विस्तृत थयुं ते तो अर्थ अने छत्रना अंतरालने इर करवा अ विस्तृत थयुं इतुं (तत्थसहियाइ) ओ अ वात ओ सूत्रपाठ वडे पुष्ट करवाभा आवी छे. उत्तर भारत अ उवती किरात द्वारा कृत मेघना उपद्रवने रोकवा माटे अ ओ १२ योजन प्रभाषधी कर्क वधारे विस्तृत थयुं इतुं. (त एणं से दिव्वे चम्मरयणे सुसेणसेणावइणा परामुट्टे समाणे सिप्पामेव णावाभूए जाए) ते दिव्य चर्मरत्न सुषेण सेनापति वडे स्पृष्ट यती अ ओकडम नौका इय थर्धं गयुं. (त एणं से सुसेणे सेणावई सखधावारबलवाहणे णावाभूयं चम्मरयणं दुरूहइ) ओना पथी ते सुषेण सेनापति स्कन्धावारना अण (सेना, अने व डन-हस्त्यादि चतुरंग तेअ शिबिकादि इय वाहनथी युक्त थयेथे। नौका इय ते चर्मरत्न उपर सवार थर्धं गयो. (दुरूहिता सिंधुमहाणइं विमलजलतुङ्गवीचिं णावाभूएणं चम्मरयणेणं सबलवाहणे ससेणे

हितः सुषेन नामा सेनापतिः 'समुत्तिण्णे' नदी समुत्तीर्णः ततो महाणई मुत्तरितुं 'सिंधु अप्पडिहय सासणेय सेणावई, ततो महानदीं सिन्धुमुत्तीर्य अप्रतिहतशासनः-अखण्डिताञ्च सेनापतिः 'कहिं चि गामागरणगरपव्वयाणि' क्वचिद् ग्रामाकरनगरपर्वतान् 'खेटकव्वड-मडंबाणि' अत्रापि क्वचिच्छब्दस्य लम्बन्धस्तेन क्वचित् खेटकर्बटमडम्बानि, तत्र खेटाः धूलिका प्राकारवेष्टितनगरम् कर्बटः कुत्तिसतनगरम् मडम्बः ग्रामविशेषः सार्द्धक्रोशद्वयान्तर्ग्रामान्तररहितः यस्य चतुर्दिक्षु-पट्टणानि' सर्ववस्तुप्राप्तस्थानानि तथा सिंहलए सिंहलकान् सिंहलदेशोद्भवान् 'बव्वरए' बर्बरदेशोत्पन्नान् 'सव्वं च' सर्वं च 'अंगलोयं बलायालोयं च' अङ्गलोक बलाकालोकं च 'परमरम्मं' परमरम्यम् एतद्वयम् म्भेच्छ जातीय निवासस्थानम् 'जवणदीवं च' यवनद्वीपं च द्वीपविशेषम् चकाराः समुच्चयार्थाः क्रोदशं द्वीपम् 'पवरमणिरयण कणगकोसागारसमिद्धं' प्रवरमणि रत्नकनककोशागारसमृद्धम् तत्र प्रवराणां श्रेष्ठानां मणि रत्नकनकानां कोशागाराणि भाण्डाराणि तैः समृद्धम् 'आरबके' आरबकान् आरबदेशोद्भवान् 'रोमकेय' रोमकांश्च रोमकदेशोत्पन्नान् 'अलसंडविसयवासीय' अलसण्डविषयवा-

मूएणं चम्मरयणेणं सबलवाहणे ससेणे समुत्तिण्णे) उस पर सवार होकर भरत महाराजा की आज्ञा का पालक वह सिन्धु महानदी को कि जिसमें निर्मल जल की वढ़ी तरंगे उठ रही हैं अपने बल एवं वाहन के साथ उस नौका मृत चर्मरत्न से पार कर गया । (तबो महाणइ मुत्तरितु सिन्धु अप्पडिहयसासणे अ सेणावई कहिं चि गामागरणगर पव्वयाणि खेट कव्वडमडंबाणि पट्टणाणि सिंहलए बव्वरए अ सव्वं च अंगलोयं बलायालोयं च परमरम्मं जवणदी पवरमवणि-रयणकणगकोसागार समिद्धं) सिन्धु महानदी को पार करके जिस की आज्ञा अखंडित है ऐसा वह सेनापति कहीं पर ग्राम, नगर पर्वतों को कहीं पर खेट कर्बट, मडंबो को कहीं कहीं पर पट्टनों को तथा सिंहलकों को -सिंहल देश में उत्पन्न हुए मनुष्यों को बर्बरकों को बर्बर देश में उत्पन्न हुए मनुष्यों को म्लेच्छ जातियजन के आश्रयभूत तथा प्रवर मणिरत्न एवं कनक के भाण्डारों अतएव परम रम्य ऐसे अंग लोक को, बलावलोक को तथा यवनद्वीपको (आरबक)आरबकों को अरबदेश के निवासियों को, (रोमकेय) रोमक देश के निवासियों को

त्तिण्णे) ते नौका उपर सवार थईने भरतनी आज्ञाने पालक ते जेभां (नर्मण जलना विशाण तरंगे उठी रखा छे जेवी सिंधु महानदीने पेताना अण (सैन्य) अने वाहन साथे पार करी गये। (तबो महाणईमुत्तरितु सिन्धु अप्पडिहयसासणे अ सेणावई कहिं चि गामागरणगरपव्वयाणि खेटकव्वडमडंबाणि पट्टणाणि सिंहलए बव्वरए अ सव्वं च अंगलोय बलायालोयं च परमरम्मंजवणदी पवरमवणिरयणकणग कोसागारसमिद्धं) सिंधु महानदी पार करीने जेनी आज्ञा अखंडित छे, जेवे ते सेनापति कथांक ग्राम, नगर पर्वताने कथांक पेट-कर्बट, मडम्बाने कथांक पट्टनाने तेमज सिंहलकाने-सिंहल देशभां उत्पन्न थयेवा मनुष्योने, अरबदेशने-अरब देशभां उत्पन्न थयेवा मनुष्योने, म्लेच्छ जातीयलोकाना अश्रयभूत तेमज प्रवरमणिरत्न तथा कनकना बांडारो अतएव परमरम्य जेवा अण लोकाने, अलाव लोकाने तेमज यवनद्वीपने (आरबक) आरबकाने-अरबदेशभां निवास करनारा लोकाने

सिनश्च अलसण्डनामक देशवामिनः 'पिक्खुरे' पिक्खुरान 'कालमुहे' कालमुहान 'जोण एय' जोणकांश्च म्लेच्छविशेषान् 'ओअवेऊणत्ति पदेन यागःअथ एतः गाधितैरजेपमपि निष्कुटं भरतखण्डसाधितं नवेत्याह—'उत्तरवेअद्द संसियाओ य' उत्तरवैताढ्यर्माश्रिताश्च तत्र उत्तरः उत्तरदिग्भर्त्ती वैताढ्यः इदं हि दक्षिणसिन्धुनिष्कुटान्तेन अस्मात् वैताढ्यः उत्तरस्यां दिशि वर्तते इति, तं सश्रिताश्च तदुपत्यक्तायां स्थिताश्च उत्तरवैताढ्यनिवासिनः कीदृशाः 'मेच्छजाइ बहुप्पगारा' म्लेच्छ-जातीर्बहुप्रकाराः उक्तव्यतिरिक्ता इत्यर्थः 'दाहिण अवरेण' दक्षिणापारेण-नैऋतकोणेन 'जाव सिंधुसागरं तोत्ति' यावत् सिन्धु सागरान्त इति सिन्धुनदीसङ्गतःसागरःमध्यमपदलोपी समासः स एव अन्तःपर्यवसानं तावदवधि इति भावः 'सव्वपवरकच्छं च' सर्वं प्रवरं-सर्वश्रेष्ठं कच्छं च कच्छदेशम् 'ओअवेऊण' साधयित्वा स्वाधीनं कृत्वा विजित्य 'पड्डिणिअत्तो' प्रतिनिवृत्तः पश्चात् 'बहुसमरमणिज्जेय भूमिभागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे' पश्चात् बहुसमरमणीये च भूमिभागे 'तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे' पश्चात् बहुसमरमणीये च भूमिभागे तस्य कच्छदेशस्य सुखेन निपण्णः निर्वाधस्थाने स्थितः इत्यर्थः स सुषेणः सेनापतिरिति । ततः किं जातमित्याह—'ताहे' इत्यादि 'ताहे' तस्मिन् काले ते इति तदस्योत्तरवाक्ये 'सव्वे घेचूण' इत्यत्र व्यवहरितः सम्बन्धो बोध्यः 'जणवयाण' जनपदानां देशानाम् 'णगराण पट्टणाण य' नगराणां पत्तनानां च 'जे य तहिं सामिया'ये च तत्र तस्मिन् निष्कुटे कोणवर्त्ति-

(अलसंडविसय वासीअ) और अलसण्ड देश निवासियों को तथा (पिक्खुरे)पिक्खुरांको (कालमुहे) कालमुखों का (जोणए अ) जोणकों को—म्लेच्छविशेषों को, तथा (उत्तरवेअद्दसमिआओ य मेच्छजाइ बहुप्पगारा दाहिण अवरेण जाव सिंधुसागर तोत्ति सव्वपवरकच्छं च ओअवेऊण) उत्तर वैताढ्य में संश्रित—उसकी तलहरी हरी में बसी हुई—अनेक प्रकार की म्लेच्छ जाति को नैऋत कोण से लेकर सिन्धुनदी जहां सागर में मिली है वहां तक के समस्त प्रदेश को और सर्वश्रेष्ठ कच्छ देश को अपने ब्रह्म में करके (पड्डिणिअत्तो) पीछे लौट आया (बहुसमरमणिज्जे अ भूमिभागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे) और लौटकर वह सुषेण सेनापति कच्छदेश के बहुसमरमणीय भूमिभाग में आकर के सुखपूर्वक ठहर गया । (ताहे तेहंजणवयाण णगराण पट्टणाण य जे अ

(रोमकेअ) रोमके देशना निवासीओने (अलसंडविसय वासी अ) अने अलसंडदेश निवासीओने तथा (पिक्खुरे) पिक्खुराने, (कालमुहे) कालमुहे ने (जोणए अ) जोणकेने—म्लेच्छ विशेषकेने तथा (उत्तरवेअद्दसमिआओ य म्लेच्छजाइ बहुप्पगारा दाहिण अवरेण जाव सिंधुसागरं तोत्ति सव्वपवरकच्छं च ओअवेऊण) उत्तर वैताढ्यमां संश्रित—तेनी तणेटीअभा निवास करती अनेक प्रकारनी म्लेच्छ जातिओने तेमअ नैऋत्य काल्पुथी मांडीने सिंधु नदी अथां सागरमां भणे छे त्यां सुधीना सर्व प्रदेशने अने सर्वश्रेष्ठ कच्छ देशने पोताना पथमां करीने ते (पड्डिणिअत्तो) पीछे आवी गये। (बहुसमरमणिज्जे अ भूमिभागे तस्स कच्छस्स सुहणिसण्णे) अने अ वीने ते सुषेण सेनापति कच्छ देशना अतीव समरमणीय भूमि भागमा आवी ने सुखपूर्वक रोकाध गये। (ताहे ते जणवयाण णगराण पट्टणाण य जेअ तहिं सामिया पभूआ आगरपती अ मडलपती अ पट्टणपती अ सव्वे-

भरतक्षेत्रखण्डरूपे स्वामिकाः चक्रवर्त्तिसुषेण सेनान्योरपेक्षया अल्पद्विकृत्वेनाज्ञातस्वामिनः
इत्यज्ञातार्थे क प्रत्ययः 'पभूया आगरपत्तीय' प्रभूताः आकरपत्तयश्च तत्र ये च प्रभूताः
बहवः आकराः सुवर्णाद्युत्पत्तिभुवस्तेषां पतयः 'मंडलपत्तीय' मण्डलपतयश्च देशकार्य-
नियुक्ताः मण्डलपतयः 'पट्टणपत्तीय' पत्तनपतयश्च 'सब्बे चेतूण' ते सर्वे गृहीत्वा
आदाय 'पाहुडाई आभरणाणि भूसणाणि रयणाणि य वत्थाणिय महरिहाणे अण्णं
च जं वरिट्ठं रायारिहं जं च इच्छिअब्ब एयं सेणावइस्स उवणेति मत्थयकयंजलिपुडा'
प्राभृतानि उपायनानि आभरणानि—अङ्गपरिधेयानि भूषणानि उपाङ्गपरिधेयानि रत्नानि
च वस्त्राणि च महाघाणि च बहुमूल्यकानि अन्यच्च यद्वरिष्ठ प्रधानं वस्तुद्विस्तिरथादिकं
राजाई राजोपनयनयोग्यं यच्च एष्टव्यम् अभिलाषयोग्यम् एतत्सर्वं पूर्वोक्तं सेनापतेः—
सेनापतिं सुषेणमुपनयन्ति उपद्वौक्यन्ति मस्तककृताञ्जलिपुटाः सन्तः पुणरवि काऊण
अंजलिं मत्थयंमि पणया' ते तत्रत्य स्वामिनः दत्तप्राभृतोत्तरकाले परावर्त्तनसमये
पुनरपि भूयोऽपि मस्तके अञ्जलिं कृत्वा प्रणताः नम्रत्वमुपागताः 'तुम्भे अम्हेऽस्थ

ताहिं समि प्रा पभूया आगरपतो अ मंडलपती अ पट्टणपती अ सब्बेचेतूण पाहुडाई, आभ-
रणाणि, भूसणाणि, रयणाणि, वत्थाणि अ, महारिहाणि अण्ण च जं वरिट्ठं रायारिहं जं च
इच्छिअब्बं अ सेणावइस्स उवणेती मत्थयकयंजलिपुडा) तत्र जो जनपदों के, नगरों के, पट्टनों के
वहा चक्रवर्ति एवं सुषेण की अपेक्षा अल्प ऋद्धि वाले होने से अज्ञात स्वामी थे (अल्पार्थ
में यहां क प्रत्यय हुआ है) स्वर्णादिकों की उत्पत्ति के स्थानों के जो स्वामी थे। मण्डलपति थे,
एव पत्तनपति थे वे बहुमूल्य प्राभृतों-भेटों-को ले लेकर बहुमूल्य आभरणों को लेकर बहुमूल्य-
भूषणों-ऊपाङ्ग परिधियों को ले लेकर बहुमूल्य रत्नादिकों को ले लेकर बहुमूल्य वस्त्रों को लेकर
तथा अन्य और भी वरिष्ठ हस्ति रथ आदिक राजा को भेट में देने योग्य वस्तुओं को एवं
चाहना के योग्य चीजों को ले लेकर सेनापति सुषेण के पास आये। और दोनों हाथ को
जोड़ कर लाई हुई अपनी वस्तुओं को उसे भेट के रूप में प्रदान को। (पुनरवि काऊण
अंजलिं मत्थयंमि पणया तुम्भे अम्हेऽस्थ समिआ) तदा लौटते समय उन्होने पुनः अंजलि करके

चेत्तूण, पाहुडाई आभरणाणि भूसणाणि, रयणाणि, वत्थाणि अ, महारिहाणि, अण्ण
च जं वरिट्ठं रायारिहं जं च इच्छिअब्बं अ सेणावइस्स उवणेति मत्थयकयंजलिपुडा)
त्यारे ने जनपदोंना, नगरोंना, पट्टनोंना त्यां यकवतीं अने सुषेणुनी अपेक्षा अल्पऋद्धि-
वाणा होवार्थी अज्ञात स्वामी हुता (अही अल्पार्थभां 'क' प्रत्यय थये छे) सुवर्णा-
दिकोंनी उत्पत्ति ना स्थानोंना ने स्वामीओ हुता मण्डलपतिओ हुता तेमअ पत्तनपतिओ
हुता तेओ सर्वं बहुमूल्यवान् प्राभृता - भेटोंने लधने बहुमूल्यवान् आभरणोंने लधने
बहुमूल्यवान् भूषणों - उपाङ्ग परिधिओने लधने, बहुमूल्यवान् रत्नादिकोंने लधने, बहु-
मूल्यवान् वस्त्रोंने लधने तेमअ अन्य कटलाक वरिष्ठ हुस्ति, रथ वगेरे राजने लेटभा आपवा
योग्य वस्तुओने तेमअ गभी अथ अने नेगववानी छच्छा थाय ज्येवी योग्य वस्तुओने
लधने सेनापति सुषेणुनी पास आन्था अने अने हाथ नेडीने साथे लावेवी वस्तुओ।

सामिथा देवयंत्र सरणागयामो तुभं विसयवासिणोत्ति विजयं जंपमाणा' यूयमस्माकम्
 अत्र स्वामिकाः—स्वामिनः देवतामिव शरणागतास्मो वय युष्माकं विपयवासिनः
 देशवासिनः भवद्भिः अस्मद्देशविजीतत्वात् भवतामेवायं देश इति, इतिविजयं—विजयसूचकं
 वचो जल्पन्तः तदनु सेनापतिः किं कृतवान् इत्याह—'सेणावहणा जहारिहं ठविय प्इय
 विसज्जिया णिअत्ता सगाणि णगराणि पट्टणाणि अणुपविट्ठा' सेनापतिना सुपेण माम्ना
 यथाहं यथौचित्येन स्थापिताः नगराद्याधिपत्यादि पूर्वकार्येषु नियोजिताः ततः पृजिताः
 वस्त्रादिभि आदरसूचकवचोभिश्च विसर्जिताः स्वस्थानगमनायानुज्ञाताः निवृत्ता—प्रत्यावृत्ता
 सन्तः स्वकानि निजानि नगराणि पत्तनानि च अनुप्रविष्टाः गताः विसर्जनानन्तर सेना-
 पतिर्यत् कृतवान् तदाह— 'ताहे' इत्यादि । 'ताहे सेणावई सविणयो वेत्तूण पाहुडाइं

और उसे मस्तक पर लगा करके बड़ी नम्रतासे युक्त होकर ऐसा कहा की—आप हमारे स्वामी
 है । (देवयंत्र व सरणागयामो) हम देवता की तरह आपकी शरण में आये हुए हैं (तुभं विसयवा-
 सिणोत्ति विजयं जयमाणा सेणावहणा—जहारिहं ठविय प्इय विसज्जिया णियत्ता सगाणि णगराणि
 पट्टणाणि अणुपविट्ठा) हम आपके ही देशवासी है आप यद्यपि हमारे देश से विजातीय है तो भी
 यह देश अपना ही है । इस प्रकार से विजय सूचक वचन कहते हुए उन सब को सेनापति
 ने उनके ही नगराधिपत्यादिरूप पूर्व के प्रस्थापित अपने अपने अधिकार स्थानों पर यथावत्
 प्रस्थापितकर के उनको वहाँ से विसर्जित कर दिये विसर्जित करने के पहले सुपेण सेनापति ने
 उन सभी को यथायोग्य वस्त्रादि अर्पित कर उनका सत्कार किया. एवं आदर पूर्वक के
 वचनों द्वारा उनका सम्मान किया इस प्रकार अपने अपने स्थान पर जाने के लिए सेनापति के
 द्वारा विसर्जित हुए वे अधिकारी आदिजन अपने अपने नगर एवं पत्तनादि में जा बसे उनके
 जाने के अनन्तर सेनापतिने क्या किया उस विषय में सूत्रकार कहते हैं—(ताहे सेणावई सविणयो

तेनी समक्ष बैठना इपभां भूकी (पुणरवि काळण अज्जलि मत्थर्यमि पणया तुभं अग्हे
 ऽरथ समिथा) तेभञ्ज पाछा वणती वथते तेमञ्जे अज्जि वनावोने अने तेने मस्तके
 भूकीने भूमञ्ज नञ्ज पञ्जे आ प्रभाञ्जे कञ्जु -के आपञ्ची अमारा स्वामी छे । (देवयंत्र व सर-
 णागयामो) अग्हे देवताञ्जोनी तेम आपना शरञ्जे आञ्ज्या छीञ्जे. (तुभं विसयवासिणो
 त्ति विजयं जपमाणा सेणावहणा जहारिहं ठविय प्इय विसज्जिया णियत्ता सगाणि
 णगराणि पट्टणाणि अणुपविट्ठा) अग्हे आपञ्चीना देशेना अ रहनेनारा छीञ्जे आपञ्ची
 जे के अमारा देशथी विवत्तिय छे छता अे आ देश आपञ्चीना अ छे. आ प्रभाञ्जे विनय
 सूचक वचनेो कडेनारा तेञ्जे सर्वने सेनापति सुपेञ्जे तेमना अ नगराधिपत्यादि इप पूर्व
 प्रस्थापित होइअे उपर यथावत् आळु राथीने तेमने विसर्जित करी छीषा. विसर्जित
 कथां पडेकां सेनापति सुपेञ्जे तेमने वस्त्रादि अपीने तेमनेो सत्कार करी अने आदर पूर्वक
 वचनेो वडे तेमनु सन्मान कञ्जुं छतु. आ प्रभाञ्जे पोत पोताना स्थानेो उपर अवा माटे
 सेनापति वडे विसर्जित करवामा आवेका ते सर्व अधिकारी वगेरे होइके पोत पोताना नगरे
 तेमञ्ज पत्तनेो तस्के जता रक्षा. तेञ्जे सर्व जता रक्षा त्थारभाह सेनापतिञ्जे थुं कञ्जुं अे

આમરગાણિ રચનાણિય પુનરવિ ત સિંધુનામધેજ્જં ઉત્તિળ્ળે અળહસાસળબલ્લે તહેવ મરહ-
સ્સ રળ્ળો ણિવેદ્દ' તસ્મિન્ કાલ્લે સેનાપતિઃ-સેનાનીઃ સુષેળઃ સવિનયઃ અન્તર્ઘૃતસ્વામિ-
મક્તિકઃ સન્ 'ધેતૂળ' ઘૃતીન્વા પ્રામૃતાનિ આમરગાણિ મૂપનાનિ રત્નાનિ ચ પુનરપિ મૂ-
યોડપિ તાં સિન્ધુનામધેયામ્ મઠાનદીમુત્તીર્ણઃ 'અળહસાસળબલ્લે' અક્ષતશાસનબલ્લઃ, તન્ન
અળહ શબ્દોડક્ષતપર્યાયો દેશીશબ્દસ્તેન અળહમ્ અક્ષત ક્વચિદપિ અલ્લખિડિત-શાસનમ્
આજ્ઞા બલ્લં ચ યસ્ય સ તથા 'તહેવ' મરહસ્સ રન્નો' તથૈવ યથાર સ્વયં સ્વાધીનં કૃત્તન્નાન્
તથા ૨ મરતસ્ય રાજ્ઞઃ-મરતાથ રાજ્ઞે નિવેદયતિ-કથયતિ 'ણિવેદ્દતા ય' નિવેદ્ય ચ નિવે
દનં કૃત્વા 'અપ્પિણિત્તા ય પાહુહાઈ' પ્રામૃતાનિ ંર્પયિત્વા ચ પ્રસ્થિતઃ તતો મરતો યત્કૃ-
તવાન્ તદાહ- 'સવ્કારિય સમ્માણિય સહરિસે વિમઙ્ગિય સગં પડમંહવમહ્ગ' તતઃ

ધેતૂળ પાહુહાઈ આમરગાણિ મૂપનાણિય પુનરવિ તં સિંધુનામધેજ્જં ઉત્તિળ્ળો) વિનય પૂર્વક જિસને
અપને હૃદય મૈ સ્વામી મક્તિ ધાર્ણ કા યો એસે સુપેળ સેનાપતિ ને મેટ મેં પ્રાપ્ત હુય સમી
પ્રામૃતોકો અર્થાત્ આમૂષણાદિ કો ંવં રત્નો કો લેકર સિંધુનદી કો પાર કી (અળયસા
સળબલ્લે) વહ સુપેળ સેનાપતિ અક્ષત શાસન ંવ અક્ષતબલ્લ વાલા થા યહા 'અળહ' યહ શબ્દ દેશી
હૈ ંવં અક્ષત કા વાચક હૈ શાસન શબ્દ કા અર્થ આજ્ઞા ંવં બલ્લા અર્થ સૈન્ય હૈ ઈસ પ્રકાર
અક્ષત શાસન ંવ બલ્લ યુક્ત સુપેળ સેનાપતિ ને (મરહસ્સ રળ્ળો ણિવેદ્દ) જિસ ક્રમ સે વિજય
પ્રાપ્ત ક્રિયા ંસે યથાક્રમ સમી ઘૃત્તાંત ંા કરકે મરત રાજ્ઞા સે કહે-(ણિવેદ્દતા ય અપ્પિણિત્તા
ય પાહુહાઈ સવ્કારિય સમ્માણિય સહરિસ વિસઙ્ગિય) સવ સમાચાર કહ કર ંર ંેટમેં
પ્રાપ્ત સવ વસ્તુંઓ કો મરત કે લિયે દેકર કે ંનકે દ્વારા પ્રચુર દ્રવ્યાદિસે સત્કારિત હુંઆ
ંર બહુમાન સૂચક શબ્દોં સે ંર વસ્ત્રા દિકોસે સમ્માનિત હુંઆ વહ સુપેળ સેનાપતિ
હર્ષસહિત વિસઙ્ગિત હોકર-(સગપડમંહવમહ્ગ) ંપને પટમંહપમેં-દિવ્ય પટકૃતમહપ મે અથવા

સંબધમા સૂત્રકાર કહે છે-(તાહે સેનાવહસવિળ્ળઓ ધેતૂળ પાહુહાઈ આમરગાણિ મૂપનાણિ-
ય પુનરવિ ત સિંધુનામધેજ્જં ઉત્તિળ્ળો) વિનય સહિત ંેણે પોતાના હૃદયની અહર સ્વામિની
મહિત ધરણ કરી રાખી છે ંેવા તે સુષેળ સેનાપતિએ લેટમાં પ્રાપ્ત કરેલા સવ પ્રામૃ
તોને આભરણોને ભૂષણોને તેમજ રત્નોને લઈને તે સિંધુ નદીને પાર કરી (અળયસાસળ
બલ્લે) તે સુષેળ સેનાપતિ અક્ષત શાસન તેમજ અક્ષત અળ સમ્પન્ન હોતો અહીં "અળહ"
આ શબ્દ દેશી શબ્દ છે ંને અક્ષતનો પર્યાયવાચી છે શાસન શબ્દનો અર્થ આજ્ઞા ંને
અળનો અર્થ સૈન્ય છે આ પ્રમાણે અક્ષત શાસન ંને અળ સમ્પન્ન થયેલા તે સુષેળ
સેનાપતિએ (મરહસ્સ રળ્ળો ણિવેદ્દ) ંે કમથી વિજય પ્રાપ્ત કર્યો હોતો તે કમથી અધા
સમાચારો વિગતવાર રાખને કહ્યા. (ણિવેદ્દતા ય અપ્પિણિત્તા ય પાહુહાઈ સવ્કારિય અસમ્માણિય
સહરિસ વિસઙ્ગિય) સવ સમાચારો કહીને ંને લેટમાં પ્રાપ્ત સવ વસ્તુઓ કહીને ંને
મરત રાખને આપી ને તથા તેમના વડે પ્રચુર દ્રવ્યાદિથી સત્કૃત થઈને બહુમાન સૂચક
શબ્દોથી ંને વસ્ત્રાદિકોથી સમ્માનિત થઈને તે સુષેળ સેનાપતિ હર્ષસહિત રાજા પાસેથી
વિસઙ્ગિત થઈને (સગ પડમંહવમહ્ગ) પોતાના મહપમા દિવ્ય પટકૃત મહપમાં અથવા

प्रभुणा स्वामिना भरतेन गुपेणः सेनापतिः सत्कारितः प्रचुम्ब्रव्यादिभिः, सम्मानितो बहुमानवचनादिभिः वस्त्रादिभिश्च अतएव सवर्षः प्राप्तप्रचुम्ब्रसत्कारत्वात् विसृष्टः स्वस्थान-गमनाय अनुज्ञातः सन् स-सेनापतिः स्वकं निजं पटमण्डपं-दिव्यपटकृतमण्डपं मध्यम-पदलोपी समासः पटमण्डपोपलक्षित प्रासादं वा सुपेणः सेनापतिः अतिगतः प्राविशत् 'तएणं सुसेणे सेणावईण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्तं' ततः खल्ल स सुपेणः सेनापतिः स्नातः कृतवलिकर्मा-नायसादिभ्यां दत्तान्न भागः कृतकौतुक मङ्गलप्रायश्चित्तः सन् 'जिमिय भुत्तत्तरागए समाणे जाव' जिगितः अतएव राजविधिना, भुत्तयुत्तरं-भोजनोत्तरकाले आगतः सन् उपवेशनस्थाने, अत्र यावत् पदात् 'आ-यंते चोक्खे परमसुई भूए' इतिग्राह्यम् . आचान्तः शुद्धोदकेन कृतस्तमुखशीचः चोक्षो लेपसिक्थाद्यपनयने, अतएव परमशुचीभूतः इदं च पदत्रयम् भुत्तत्तरागए समाणे' इति पदात् पूर्वयोज्यम् तथैव शिष्टजनक्रमस्य दृश्यमानत्वात् पुनः सेनापतिः कीदृशोऽभूत् इत्याह-सरस गोसीस इत्यादि'सरसगोसीस चदणाणुक्खित्तगायसरीरे, सरस-गोशीर्षचन्दनोक्षितगा

पटमंडप से उल्लक्षित प्रासादमें—आगया (तएण से सुमेणे सेणावई ण्हाए कयवलिकम्मे कयको-उयमंगलपायच्छित्ते) वहा जाकर के उस सुपेण सेनापति ने स्नान किया बलिकर्म किया—काक आदि कों के लिये अन्न का विभागकिया—कौतुक मंगल प्रायश्चिन क्रिया(जिमियभुत्त-त्तरागए समाणे) बाद में राजविधि के अनुसार भोजन किया भोजन करनेके बाद फिर वह उपवेशन स्थान में आया—यहा यावत्पद से—“आयते, चोक्खे परमसुईभूए” इन पदों का ग्रहणहुआ है भोजन कर चुकने पर शुद्ध जल से हाथ मुह धोना इसकानाम आचान्त है शरीर पर पड़े हुए स्नाने के सीत आदि को दूर करना—इसका नाम चोक्ष है इस प्रकार सब प्रकार से शरीर को हाथ—मुह आदि धोकर और उसपर पड़े हुए भोजन के अंश को हटाकर बिल कुल साफ सुथरा बनालेना इसका नाम परमशुची भूत होना है इस पदत्रय की योजना “भुत्तत्तरागए समाणे” इस पद से पूर्व करनी चाहिये क्योंकि शिष्टजनों में इसी प्रकार का क्रम देखा गया है। (सरसगोसीसचदणाणुक्खित्तगायसरीरे)

पटम ऽपथी उपलक्षित प्रासादमा आपी गये। (तएण से सुसेणे सेणावई ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते) त्या आपीने ते सुमेण्ण सेनापतिणे स्नानं कथुं अलिकमं कथुं - हाक वगेरेने भाटे अन्नं दाया अर्पित करीने कौतुकमंगल अने प्रायश्चित्त कथा (जिमिय भुत्तत्तरागए समाणे) तस्माद् राजविधिं मुत्तयं बोधनं कथुं बोधनं करीने पछी ते उपवेशन स्थानमा आये अही यावत् पदथी (आयंते चोक्खे परमसुई भूए) ओ पदोत्तुं अहं च यथे बोधनं कथां पछी शुद्धं पक्षीथी हाथं मे धोवा ते आचान्तं कहेवाय छे. शरीर उपर पडेवा बोधनना सीत वगेरे दूर करवा ते चोक्ष कहेवाय छे आ प्रभाणु सवरीते हाथं मे वगेरे स्वच्छ करीने अने शरीर उपर पडेवा बोधनना कथोने हटापीने शरीरने अकहम स्वच्छ बनायी लेवु तेवु नाम परम शुचीभूत छे. ओ पदत्रयनी बोधना (भुत्तत्तरागए समाणे) ओ पदोनी पूवे करवी अपेक्षित छे केस के शिष्ट लोकमां

रीरः तत्र सरसेन गोशीर्षचन्दनेन उक्षिप्ताः सिक्ताः गात्रे शरीरे भवा गात्राः शरीरा-
वयवाः वक्षःप्रभृतयो यत्र शरीरे तदेव भूतं शरीरं यस्य स तथा अत्र यच्चन्दनेन सेचनमु-
क्तम् तत् मागेश्रमजनितवपुस्नापव्यपाहाय 'उष्णि पासायवरगण' उपरि प्रासादवरगतः
प्रासादवरं प्राप्तः स सेनापतिः सुषेणः 'फुट्टमाणेहिं' स्फुट्टङ्गिरिव अतिरभसा, स्फालन-
वशात् विदलङ्गिरिव मुईगमत्थएहिं' मृदङ्गपस्तकैः तत्र मृदङ्गानां मृदङ्ग नामक चाद्य विशेषाणां
मस्तकानीवमस्तकानि उपरितनभागाः उभयपार्श्वे चर्मोपनद्धपुटानीति तैः 'वत्तीसइ वद्धेहिं'
तथा द्वात्रिंशताऽभिनेतव्यप्रकारैः पात्रैर्वा बद्धैः उपसम्पन्नै 'णाडएहि' नाटकैः प्रसिद्धैः
तथा 'वरतरुणी संपउत्तेहिं' वरतरुणीभिः सुभगाभिः स्त्रोभिः संप्रयुक्तैः प्रारब्धैः
'उवणच्चिज्ज माणे २' उपनृत्यमानः २ नृत्यविषयी क्रियमाण तदभिनयपुरस्सर नर्त-
नात्, 'उवगिज्जमाणे २' उपगीयमानः २ तद्गुणग्रामात् 'उवलाळि (ळमि) ज्जमाणे'
उपलाळिज्यमानः तदीप्सि गार्थसम्पादनात् महयाहयणट्ट गीय वाइय तंतीतलतालतुडिय-

जब सुषेण सेनापति भोजनादिकार्य से बिल कुल निवृत्त होकर निश्चिन्त हो चुका—तब
उसके शारीरिक अवयवो पर सरसगोशीर्ष चंदन छिडका गया यहा जो "गात्र शरीर"
एकार्थक—वाचक दोशब्द प्रयुक्त हुए हैं सो इनमें गात्र शब्द का अर्थ—शारीरिक अवयव
है ऐसे छातो आदिअवयव जिसके शरीर में है वह "सरसगोशीर्षचन्दनोत्क्षिप्तगात्रशरीरः"
है यहां जो चन्दन से सेचन होना कहागया है वह इस बात को प्रगट करने के लिए
कहा गया है कि उस चन्दन के सेचन से सुषेण सेनापति को जो मार्ग में चलने के
कारण शारीरिक श्रम जन्यताप हुआ वह शान्त होगया (उष्णि पासायवरगण) इसके बाद
वह सुषेण सेनापति अपने श्रेष्ठ प्रासाद में पहुंचा वहा पर उसने पांच प्रकार के मनुष्य
संबंधे कामभोगो को भोगा ऐसा सम्बन्ध यहां लगा लेना चाहिये (फुट्टमाणेहिं मुईगम-
त्थएहिं वत्तीसइवद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणीसपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे २ उवगिज्जमाणे २

आ जतने कुम जेवामा आवे छे (सरस गोशीर्षचंदनाणुत्क्षिप्तगायशरीरे) अथारे
सुषेण सेनापति बोअनादि कार्यथो अेकदम निश्चिन्त थध गयो—अथारे तेना शारीरिक अवयवो
उपर सरस गोशीर्ष चन्दन छाटवामां आवु अही' जे (गायशरीर) अे अेकाथक वाचक
अे शब्दो प्रयुक्त थथा छे ते अेमा गात्र शब्दने अर्थ शारीरिक अवयवो छाती विगेरे
जेना शरीरमा छे ते अे 'सरस गोशीर्ष चन्दनोक्षित गात्र शरीर' छे, अही जे अन्दनथी
सि जित थथेलु अेवु कडेवामा आवु छे ते आ वातने प्रकट करवा माटे कडेवामा
आवु' छे ते अन्दनना सेचनथी सुषेण सेनापतिने जे मार्गमां आलवाथी शारीरिक
श्रम जन्य ताप थथे ते उपशमित थध जाय (उष्णि पासायवरगण) त्यार भाद ते
सुषेण सेनापति पोताना श्रेष्ठ प्रासाद मा गयो त्यां तेणे पाच प्रकारना मनुष्य स थधी
काम भोगोने बोअव्या अेवो स थध अत्रे लक्षणे (फुट्टमाणेहिं मुईगमत्थएहिं वत्तीस-
इवद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणिसंपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे २ उवगिज्जमाणे २ उवला
ळिज्जमाणे महयाहयणट्टगीअवाहित तंतीतलतालतुडिय घणसुर ग पटुप्पवाइयरवेण

घणमुद्गपडुप्पवाइयरवेणं' महताऽहतनाट्य-गीतवादितात्तलतालनूर्यघनमृदङ्ग पडुप्पवा-
दित्तरवेण तत्र महता-प्रधानेन ब्रहता वा रवेणेति सम्बन्धः अहतः अनुवद्धो रवस्येति
विशेषणम् नाट्यं नृत्तं तेन युक्तं नाट्यगीतं तच्च वादितानि च तानि शब्दवन्ति कृतानि
तन्त्री च वीणा तल्ली च हस्तौ तान्ताश्च कशिकातुडियन्ति, तूर्याणि च पटहादीनि
वादिततन्त्रीतलतालतूर्याणि तानि च तथा घनो मेघः तदाकारो यो मृदङ्गो ध्वनिगाम्भीर्यं
साधर्म्यात् स चासौ पडुना दक्षेण प्रवादितश्च यः स घनमृदङ्गपडुप्रवादितः सचेति इन्द्रे तेषां
रवः शब्दः तेन करणभूतेन अथवा 'आहयत्ति' आख्यानक प्रतिबद्धं यन्नाटकं तेन युक्तं यत्तद्
गीतम् शेषं तथैव इह च मृदङ्गग्रहणं तूर्येषु मध्ये तस्य प्रधानत्वात् । 'इद्रे इष्टान्' इच्छावि-
षयी कृतान् 'सहफरिस रसरुवंगंधे' शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् 'पंचविहे' 'पठचविधान्'
'माणुस्सए' मनुष्यकान् मनुष्यसम्बन्धिनः 'काममोगे' कामभोगान् कामांश्च भोगांश्च

उचल्लिञ्जमाणे २ महया हयणङ्गीभवदितर्ततीतल ताल तुडेअ घण मुद्गपडुप्पवाइयरवेणं इद्रे
सहफरिसरसरुवंगंधे पंचविहे माणुस्सए काममोगे भुञ्जमाणे विहरइ) जिस समय वह अपने श्रेष्ठ
प्रासाद पर पहुँचा उस समय वहाँ पर मृदङ्ग बजाये जा रहे थे ३२ प्रकार के अभिनयों से
युक्त नाटक उसके निमित्त पात्रों द्वारा किये जा रहे थे इन नाटकों में काम करने वाली
नाटकिय वस्तुओं को अभिनय द्वारा प्रकट करने वाली सुन्दर २ तरुण स्त्रियाँ थी वे उसमें
नृत्य करती थी उसे यह सेनापति देखता था जिस बात को यह चाहता था उसी बात के
अनुरूप नृत्यादी क्रियाओं से वे उसके मन को अनुरजित करती थी नाटक में गाये गये
गीतों के अनुसार ही उन नाटकों में बाजे बजाये जा रहे थे तन्त्री भी बजायी जा रही थी,
ताल भी दिये जा रहे थे पटह बजाये जा रहे थे घन के जैमो मृदङ्गों की ध्वनि निकल रही
थी इन सब वादितों को बजाने वाले वादक जन अपनी अपनी वाद्य क्रिया में बहुत अधिक
दक्ष थे इननाटकों में जो गीत गाये जाते थे वे सब नाटकीय आख्यातकों के सम्बन्ध से सम्ब-
न्धित थे इस तरह यह सुषेण सेनापति अपनी इच्छा के अनुसार पाँच प्रकार के शब्द,

इद्रे सहफरिसरसरुवंगंधे पंचविहे माणुस्सए काममोगे भुञ्जमाणे विहरइ) के समये
ते पौताना श्रेष्ठ प्रासाद उपर पहुँच्यो ते वभते त्या मृदङ्गे वगाडवामां आवी रइयां
इता तेना माटे ३२ प्रकारना अभिनयोथी युक्त नाटके विविध पात्रो वडे कणववामां
आवा रइया इता, जे नाटकेनी कथा वस्तुज्जेने विविध प्रकारना अभिनयोथी सुहर तडुष्ण
ओज्जे तेमां नृत्य करी रही इती. तेने ते सेनापति जेतो इतो. जे वातने जे सेनापति
धम्भते ते सुज्जणे ज ते स्त्रिज्जे नृत्यादि क्रियाज्जे वडे तेना मनने रञ्जित करती इती
नाट्यमां गावामा आवता गीतो सुज्जणे ज ते नाटकेमां वाधो वगाडवामा आवी रइया
इता, तत्री पष्ण वगाडवामा आवी रही इती, ताल पष्ण आपवामां आवतो इतो पटहो
वगाडवामा आवी रइया इता, वाहणे जेवा गलीरमृदङ्गोमाथी ध्वनि नीकणी रइयो
इतो जे सर्व वादितो वगाडनार वाडक कलाकरी पौतानी कणामां षडु ज इक्ष इता ते सर्व
नाटकेमां जे गीत आवामां आवता इता ते सर्व नाटकीय आख्यानकेथी सम्बन्धित
इता आ प्रभाजे ते सुषेण सेनापति पौतानी धम्भामुज्जणे पाथ प्रकारना शण्डो रूपथं,

इति प्राप्तसङ्गान् तत्र शब्दरूपे तामौ स्पर्शरसगन्धा भोगा इति समयपरिभाषा,
'श्रृंजमाणे' श्रृंजानः अनुमन् स सेनापतिः सुषेणो निहरतीति ॥६०१३॥

अथ तमिस्रा गुहाद्वारोद्घाटनायोपक्रमते 'तएणं से' इत्यादि ।

मूलम-तएणं से भरहे राया अण्णया कयाई सुसेणं सेणावइं सदा-
वेइ सदावित्ता एवं वयासी गच्छणं खिप्पामेच भो देवाणुप्पिया तिमिस-
हाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेहि विहाडित्ता मम एय-
माणत्तियं पच्चप्पिणाहि त्ति, तएणं से सुसेणे सेणावईं भरहेणं रण्णा एवं
वुत्ते समाणे हट्टतुट्टं त्रित्तमाणंदिए जाव कश्यलपरिग्गाहियं सिरसावत्तं
मत्थए अंजलिं कट्टु जाव पडिसुणेइ पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णो अंति-
याओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव सए आवासे जेणेव पोस-
हसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता दब्भसंथारगं सथरइ, जाव कय-
मालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी
जाव अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ पडि-
णिक्खमित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयप्रंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पा-
वेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे
धूवपुप्फगंधमल्लहत्थगए मज्जणघराआ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता
जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव पहारेत्थ
गमणाए तएणं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहवे राईसरतलवरमाडंबिय
जाव सत्थनाहप्पभिययो अप्पेगइया उप्पलहत्थगया जाव सुसेणं सेणावइं
पिट्ठओ२ अणुगच्छंति, तएणं तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बह्वईओ
खुज्जाओ चिलाइआओ जाव इंगिअ चित्तिअ पत्थिअ विआणिआउ
णिउणकुसलाओ विणीआओ अप्पेगइआओ कलसहत्थगयाओ
जाव अणुगच्छंतीति । तएणं से सुसेणे सेणावईं सव्विच्छीए सव्वजुईए

स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से संबंधित पाच प्रकार के मनुष्यमव मे भोगने के योग्य काम भोगों
को भोगने लगा ॥१३॥

२३, ३५ अने ७ धर्मी स म धित पाच प्रकारना मनुष्य अवमा भोगववा योग्य काम भोगो
भोगववा लाग्यो. ॥१३॥

जाव णिग्घोसणाइएणं जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स
 कवाडा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ करित्ता
 लोमहत्येणं पमज्जइ पमज्जित्ता दिव्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ
 अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचगुलितले चच्चए दलइ दलित्ता
 अग्गेहि वरेहिं गंधेहिय मल्लेहिय अच्चिणित्ता पुष्फारुहणं जाव
 वत्थारुहणं करेइ करित्ता आसत्तोसत्त विपुल वट्ट जाव करेइ करित्ता अच्छे
 हिं सण्हेहिं रयणामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं तिमिस्स गुहाए दाहिणिल्लस्स
 दुवारस्स कवाडं पुरओअट्टट्टमंगलए आलिहइ तं जहा सोत्थिय सिग्घिच्छ
 जाव कयग्गहगहिअ करयलपब्भट्ट चंदप्पभवइरवेरुलिअ विमिल दंडं जाव
 धूवं दलयइ दलयित्ता वामं जाणुं अंचेइ अंचित्ता करयल जाव मत्थए
 अंजलिं कट्टु कवाडाणं पणामं करेइ करित्ता दंडरयणं परासुसइ तएणं त
 दंडरयणं पंच लइअं वइरसारमइअं विणासणं सब्बसत्तुसेण्णाणं खंधावारे
 णरवइस्स गट्टुदरिविसमपब्भारगिखिरपवायाणं समीकरणं संतिकरं हित-
 करं रण्णोअइयइच्छिअमणोरहपूरगं दिव्व मप्पडिहयं दंडरयणं गहाय
 सत्तट्टपयाइं पच्चोसक्कइ पच्चोसक्कित्ता तिमिस्सगुहाए दाहिणिल्लस्स
 दुवारस्स कवाडे दंडरयणेणं महया महया सद्देणं तिक्खुत्तो आउडेइ तएणं
 तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेणे सेणावइणा दंडरयणेणं
 महया महया सद्देणं तिक्खुत्तो आउडिआ समाणा महया महया सद्देणं
 कौचारवं करेमाणा सरसरस्स सगाइं सगाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था तएणं
 से सुसेणे सेणावई तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेइ
 विहाडित्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव
 भरहं रायं करयलपरिग्गहियं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं
 वयासी विहाडिआणं देवाणुप्पिया तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवार-
 स्स कवाडा एयणं देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो पियं मे भवउ तएणं
 से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अंतिए एयमडं सोच्चा निसम्म

हृदुद्व चित्तमाणंदिण जाव हिअए सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ
सक्कारित्ता सम्माणि । कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी
खिप्पामेव भो देवा प्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हयगय-
रह पवर तहेव जाव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवरं णरवई दुरुढे ॥सू० १४॥

१—ततः खलु स भरतो राजा अन्यदा कदाचित् सुषेणं सेनापतिं शब्दयति शब्दयित्वा
पथमवादीत् गच्छ खलु क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय । तमिस्रा गुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य
कपाटौ विघाटय, हि मम एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पय इति, ततः खलु स सुषेण सेना-
पति भरतेन राज्ञा पथमुक्तः सन् दृष्टुष्ट चित्तानन्दित' यावत् करतलपरिगृह्यते शिरसावर्त्त
मस्तके अञ्जलिं कृत्वा त् प्रतिशृणोति, प्रतिश्रुत्य भरतस्य राज्ञ अन्तिकत् प्रतिनिष्कामति
प्रतिनिष्कम्य यत्रैव स यत्रैव पौषधशाला तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य दर्भसंस्ता-
रकं संस्तृणाति, यावत् कृत स्य देवस्य अष्टमभक्तं प्र णति, पौषधशालायां पौषधिकः
ब्रह्मचारी यावत् अष्ट ते परिणमति, पौषधशालातः प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य यत्रैव
मज्जनगृहं तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य स्नात' कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्त शु-
द्धप्रावेशानि मङ्गलानि णि प्रवरपरिहित अल्प घाभरणाच्छतशरीरः धूपपुष्पग-
न्धमाल्यहस्तगत मज्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य यत्रैव तमिस्राया गुहाय द्वारस्य
कपाटौ तत्रैव गमनाय प्रधारितवान् ततः खलु तस्य सुषेणस्य सेनापते बह्व्यो राजेश्वर-
तलवरमाडम्बिक यावत् सार्थव तयः अप्येकका उत्पलहस्तगता यावत् सुषेणं सेना-
पतिं पृच्छतः २ अनुगच्छन्ति, ततः खलु तस्य सुषेणस्य सेनापतेः बह्व्यः कुब्जाः चिलात्या'
यावत् इङ्गितचिन् विंतिविद्वायिकाः निपुणकुशला- विनीता' अप्येकका कलशहस्त-
गताः यावद् अनुगच्छन्तीति । ततः खलु स सुषेणः सेनापति सर्वद्वर्था सर्वयुत्या सर्वद्यु-
त्यावा यावत् निर्घोषनादितेन यत्रैव तमिस्रागुहाया दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ तत्रैव
उपागच्छति उपागत्य आलोकै ण करोति, कृत्वा लोमहस्तकं परामृशति परामृश्य
तमिस्रागुहायाः दाक्षिणात्यस्य स्य कपाटौ लोमहस्तकेन प्र णति प्रमार्ज्य दिह
उदकधारया अभ्युक्षति, अभ्युक्ष्य सरसेन गोशीर्षचन्दनेन चर्चितं पञ्चांगुलितलं ददाति कृत्वा
अग्न वरैर्गन्धैश्च माल्यैश्च णति णित्वा पुष्पारोपणं यावत् वस्त्रारोपणं करोति कृत्वा
आसक्तो विपुलवर्त यावत् करोति कृत्वा अञ्जैः प्रलक्ष्णैः रजतमयैः आच्छरसतण्डुलैः
तमिस्रागुहायाः दाक्षिणात्यस्य क णोः पुरत अष्टाष्टमङ्गलानि आलिखति
तत् स्वस्तिकं श्रीवत्स यावत् क हीतकरतल 'प्रभ्रष्ट चन्द्रप्रभवज्वलैर्हयैर्विमलदण्डं यावत्
धूपं दहति, जातुम् अञ्जति अङ्गि । करतल यावत् मस्तके अञ्जलिदकृत्वा कपाटयोः
प्रणामं करोति कृत्वा दण्डरत्नं परामृशति, ततः तत् दण्डरत्न पञ्चलतिक वज्रसार-
मयं विनाशनं सर्वशत्रुसेनानां, स्कन्धावारे नरपते गर्तवरीविषमप्राग्भार गिरिवर प्रपातानां
शिकरणं शान्तिकरं शु हितंकर णो इदं प्लितमनोरथ पूरकं दिव्यमप्रतिहतम,
दण्डरत्नं गृहीत्वा सप्तंष्ट पदानि वष्कते वष्कय तमिस्रागुहाया- दाक्षिणात्यस्य
द्वारस्य कपाटौ दण्डरत्नेन । २ शब्देन त्रि कृत्वः आङ्कुश्यति' ततः खलु तमिस्रागु-
हायाः दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ सुषेणसेनापतिना, दण्डरत्नेन महता २ शब्देन

त्रिकृत्वः आकुट्टितौ सन्तौ महता शब्देन कौ चारवं कुर्वन्तौ 'सरसरस्स' अनुकरणशब्देन, स्वके स्थाने प्रत्यवाप्विक्रषाताम्, स्वकाभ्यां स्थानाभ्यां प्रत्यवस्त्वतौ इति वा ततः खलु स सुपेण' सेनापतिः तमिस्रागुहायाः दक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ विघाटयति विघाटय यत्रैव भरतो राजा तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य यावत् भरतं राजान करतलपरिवृष्टीतं जयेन विजयेन वर्द्धापयति वर्द्धापयित्वा पद्यम् अवादीत्-विघाटितौ खलु देवानुप्रिय ! तमिस्रागुहायाः दक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ, पतदेव देवानुप्रियाणां प्रियं निवेदयाम-प्रियं भवतां भवतु ततः खलु स भरतो राजा सुपेणस्य सेनापते' अन्तिके पतम् अर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः यावद् हृदयः सुपेण सेनापतिं सत्कारयति सन्मानयति, सत्कार्यं सन्मान्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा पद्यम् अवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! आभिषेक्यम् हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत ह्यगजरथप्रवर तथैव यावद् अञ्ज-नगिरिकूटसन्निभं गजवरं नरपतिः दूरुढे ॥सू० १४॥

टीका—'तएणं से इत्यादि

'तएणं से भरहे राया अण्णया कयाई सुसेणं सेणावई सदावेइ' ततः खलु स भरतो राजा अन्यदा कदाचित् अन्यस्मिन् कस्मिश्चित् काले सुपेणं सेनापतिं शब्दयति आह्वयति 'सदाविच्चा एवं वयासी' शब्दयित्वा आहूय, एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'गच्छणं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया' गच्छ खलु क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! 'तिसिसगुहाए

। तमिस्रागुहाद्वार का उद्घाटन—

'तएणं से भरहेराया अण्णया कयाई'—इत्यादि सू० १४ ॥

टीका—'तएणं से भरहे राया अण्णया कयाई' एकदिन की बात है कि भरत राजा (सुसेणं सेणावई सदावेइ) सुपेण सेनापति को बुलाया— (सदाविच्चा एवं वयासी) बुलाकर उस से ऐसा कहा—(गच्छणं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तिसिसगुहाए दक्षिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहावेहि) हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही जाओ—और तमिस्रागुहा के दक्षिण भाग के द्वार के किंवदों को खोलो (विहाविच्चा) और खोल कर (मम प्यमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि) मुझे पिछे खबर दो—

तमिस्रागुहाद्वार उद्घाटन—

'तएणं से भरहे राया अण्णया कयाई' इत्यादि

टीका—(त एणं से भरहे राया अण्णया कयाई) जो कुछ दिवसनी बात छे हे भरत राजाजो (सुसेणं सेणावई सदावेइ) सुपेण सेनापतिने भोलाओ। (सदाविच्चा एवं वयासी) भोलापीने तेने आ प्रभाणे कथुं (गच्छणं खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! तिसिसगुहाए दक्षिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहावेहि) हे देवानु प्रिय ! तमे शीघ्र जावे आने तमिस्रागुहाना दक्षिण भागना द्वारना कवाडेने उद्घाटित करे। (विहाविच्चा) उद्घाटित करीने (मम प्यमाणत्तियं

दाहिणिल्लस्स दुवारस्स क्वाढे विहाडेहि' तमिस्रागुहायाः दाक्षिणात्यस्य- दक्षिणभागस्य द्वारस्य कपाटौ विघाटय-सम्बद्धौ उत्पाटय 'विहाडित्ता' विघाटय उद्धाटय 'मम एय-माणत्तियं पच्चप्पिणाहि त्त' मम एताम् उक्तप्रकारामाज्ञप्तिकाम् आज्ञां प्रत्यर्पय समर्पय इति 'तएणं से सुसेणे सेणावइ भरहेणं रण्णा एवं बुत्ते समाणे' ततः खलु स सुषेणः सेनापतिः भरतेन राज्ञा एवम् उक्तप्रकारेणोक्तः सन् 'इद्धुत्तु चित्तमाणदिण जाव' हृष्टतुष्ट-चित्तानन्दितः यावत् पदात् नन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः इति संग्राह्यम् 'करयल परिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अंजलिं कट्ठु जाव पडिसुणेइ' करतलपरिगृहीतं शिरसावत्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा यावत् पदात् एव स्वामिन् ! यथा श्रीमान् भवान् आदिशति तथा-ऽस्तु इति कृत्वा अज्ञायाः विनयेन वचनं प्रतिश्रुणोति स्वीकरोति 'पडिसुणिता' प्रतिश्रुत्य स्त्रीकृत्य स सुषेणः सेनापतिः 'भरहस्स रण्णे अंतियाओ पडिणिक्खमइ' भरतस्य राज्ञः अन्तिकत्वात् समीपात् प्रतिनिष्क्रामति निस्सरति, 'पडिणिक्खमिता' प्रतिनिष्क्रम्य निःसृत्य

(तएणं से सुसेणे सेणावइ भरहेणं रण्णा एवं बुत्ते समाणे हइ तुद्ध चित्तमाणदिण जाव करयल परिग्गहियं दसणह सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु जाव पडिसुणेइ) इस प्रकार से अपने स्वामी भरत राजा के द्वारा आज्ञित हुआ सुषेण सेनापति हृष्ट तुष्ट होता हुआ चित्त में आनन्दित हुआ यहा यावत्पद से " प्रीतिमनाः परमसौमनस्यतः" इनपदों का ग्रहण हुआ है उसने उसी समय अपने दोनो हाथों कीअंगुली इस प्रकार से बनाइ कि जिसमें अंगुलियों के दशों हि नख एक दूसरी अंगुली के नखों के साथ लग गये उस अजली को उसने अपने मस्तक पर रखा-ओर यावत्- "हेस्वामिन् ! आपने जो मुझे आदेश दिया है मैं उसको उसी प्रकार से पालन करुंगा" इस प्रकार कह कर उसने प्रसु की प्रदत्त आज्ञा बड़ी विनय के साथ स्विकार करली (पडिसुडित्त भरहस्स रण्णे अंतियाओ पडिणिक्खमइ) प्रसु की आज्ञा स्विकार करके फिर वह

पच्चप्पिणाहि) पछी भने अण्ण-आपो (त एणं से सुसेणे सेणावइ भरहेणं रण्णा एव बुत्ते समाणे हइ तुद्ध चित्तमाणदिण जाव करयलपरिग्गहियं दसणह सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्ठु जाव पडिसुणेइ) आ प्रभाण्णे पैताना स्वामी भरत राजा वडे आज्ञप्तं थयेत्ते। ते सुणेण्ण सेनापति हृष्ट-तुष्ट तेमण्ण चित्तमा आनन्दित थये। यावत् पडथी 'प्रीतिमना' परमसौमनस्यतः 'ओ पडोत्तु' अहण्ण थयु छे तेण्णे तरतण्ण पैताना अण्णे ढाथेणी आंगणीओ। ओपी रीते अनापी डे नेथी आंगणीओना हथेइथ नणे। हरेके हरेके नअनी साथे सलग्न थथं गथा ते अण्णदिने तेण्णे पैताना मस्तकं उपर भूथी अने यावत्-डे स्वामिन् आपथीओ भने ने आदेशे आपथे छे, हुं ने आदेशत्तुं यथावत् पालन करीथ आ प्रभाण्णे कडीने तेण्णे प्रभुनी आज्ञा विनयपूर्वकं स्वीकारी वीथी (पडिसुणित्ता भरहस्स रण्णे अंतियाओ पडिणिक्खमइ) प्रभुनी आज्ञा स्वीकारीने पछी ते तरतण्ण अण्ण आपी गथे। 'पडिणिक्खमिता जेणेव सपभावासे जेणेव पैसहसाला तेणेव उवागच्छ' अण्ण आपीने ते नथां पैताने।

‘जेणेव सए आवासे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ’ यत्रैव स्वस्य स्वकीयस्य
 आवासः—निवासस्थान यत्रैव पौषधशाला तत्रैव उपागच्छति ‘उवागच्छित्ता’ उपागत्य स
 सुषेणः सेनापतिः ‘दम्भसंथारगं संथरइ’ दम्भसंस्तारक सार्द्धं द्वयहस्तपरिमितं दर्भासनं
 संस्तृणाति विस्तृणाति ‘जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगिण्हइ’ यावत् करणात्
 वर्द्धकिरत्नशब्दापनपौषधशाला विधापनादि सर्वं ग्राह्यम्, तेन पौषधशालायां कृतमालस्य
 देवस्य साधनाय अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति ‘पगिण्हित्ता’ प्रगृह्य ‘पोसहसालाए पोसहिए वंभ-
 यारी जाव अट्टमभत्तसि परिणममाणसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ’ पौषधशालायां
 पौषधिकः पौषधव्रतवान् अतएव ब्रह्मचारी यावत् पदात् उन्मुक्तमणिसुवर्णालङ्कार इत्यादि
 संग्राह्यम् अष्टमभक्ते परिणमति ‘परिण्णे जायमाने सति’ पौषधशालातः प्रतिनिष्क्रामति,
 ‘पडिणिक्खमित्ता’ प्रतिनिष्क्रम्य ‘जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ’ स सुषेणः सेनापतिः

वहां से शीघ्र ही बाहर आगया—(पडिणिक्खमित्ता जेणेव सए आवासे जेणेव पोसहसाला तेणेव
 उवागच्छइ) वहां आकर वह जहां पर अपना आवास था और जहां पर पौषधशाला थी - वहां
 पर आया (उवागच्छित्ता दम्भसंथारगं संथरइ) वहां आकर के उसने २॥ हाथ प्रमाण दर्भासन
 बिछाया— (जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगिण्हइ) यावत् कृतमालदेव को वश में करने के
 लिए उसने अष्टमभक्त की तपस्या धारण करली यहां यावत् में पदसे वर्द्धकिरत्न का बुलाना,
 पौषधशाला का निर्माण करने का आदेश देना आदि सब प्रकरण जैसा पिछे लिखा जा चुका
 है वैसाही यहां गृहीत हुआ है(पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव अट्टमभत्तसि
 परिणममाणसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ) अष्टम भक्त को तपस्या धारण करके पौषध शाला
 में पौषधव्रत वाला बहुब्रह्मचारी यावत् मणिमुक्तादि केअलङ्कारों से रहित बनकरकृतमालदेव का मनमें
 ध्यान करने लगा यहां पर जैसा कि पूर्व प्रकरण में लिखा जाचुका है वह सब ग्रहण कर लेना
 चाहिये जब सुषेण सेनापति का गृहीत अष्टम भक्त का तप समाप्त हो चुका तब वह पौषध-
 शाला से बाहर निकला—(पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) और बाहर निकल

आवास अने नया पौषधशाला डली त्या आलो (उवागच्छित्ता दम्भसंथारगं संथरइ) त्यां
 आनीने तेणे २॥ हाथ प्रमाणे दर्भासन पाथयुं (जाव कयमालस्स देवस्स अट्टमभत्तं पगिण्हइ)
 यावत् कृतमाल देवने वशमां करवा माटे तेणे अष्टम भक्तनी तपस्या धारण करी बीधी
 अही यावत् पदथी वर्द्धकिरत्नने घालाववे, पौषधशालाना निर्माणमाटे तेने आदेश आपवे
 वगेरे सर्व घटनाओके नेनाविषे पडेवां स्पष्ट करवामां आवेल छे ते अत्रे पथु समजवी
 (पगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए वंभयारी जाव अट्टमभत्तसि परिणममाणसि पोसहसा-
 लाओ पडिणिक्खमइ) अष्टम भक्तनी तपस्या धारण करीने पौषधशालामां पौषधव्रत वाणे
 ते अष्टयारी यावत् मणिमुक्तादि अलंकारथी रहित अनेवे। ते मनमां कृतमालदेवतु ध्यान
 करवा लाग्ये अही ने प्रमाणे पूर्वप्रकरणमा स्पष्ट करवामां आल्यु छे ते प्रमाणेतु अथन
 अहं करवुं नोधके न्यारे सुषेण सेनापतिनी अष्टमभक्त तपस्या समाप्त थर् गर्थ त्यारे

यत्रैव मञ्जनगृहं-स्नानगृहं तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'ण्हाए कयबलिकम्मे' स्नातः कृतबलिकर्मा वायसादिभ्यो दत्तान्न भागः पुनः कीदृश 'कयकोउयमंगलपायच्छित्ते' कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः पुनश्च 'सुद्धप्पावेसाइ मंगलाइं वत्थाइं पवरपरिहिए' शुद्ध प्रावेशानि सभा प्रवेशयोग्यानि मङ्गलानि-मङ्गलकारकाणि वस्त्राणि प्रवराणि परिहितः परिगृहीतः 'अप्पमहग्घाभरणालंकिरिय सरीरे' अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरः तत्र अल्पम् अल्पभारं महार्घं बहुमूल्यकमाभरण तेन अलङ्कृत शोभित शरीरं यस्य स तथा एवम् 'धूपपुप्फगंधमल्लहत्थगए' धूपपुष्पगन्धमाल्यहस्तगतः तत्र धूपपुष्पगन्धमाल्यानि हस्ते गतानि यस्य स यथा एवंभूतः सेनापतिः 'मञ्जणघराओ पडिणिकखमइ' मञ्जनगृहात् स्नानगृहात् प्रतिनिष्क्रमति निःस्सरति 'पडिणिकखमिन्ता' प्रतिनिष्क्रम्य निःसृत्य 'जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स क्वाडा तेणेव पहारेत्थ गमणाए' यत्रैव तमिस्रागुहायाः दाक्षिणात्यस्य दक्षिणभागवर्तिनो द्वारस्य कपाटौ कपाटश्च कपाटश्च त्रिषु स्यादरर न ना इति वाचस्पतिः तत्रैव गमनाय प्रवारि तवान् गमनसकल्पं कृतवान्

कर वह जहा स्नान गृह था वडा पर गया-(उवागच्छिता) वडा जाकर के (ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते)उमने स्नान क्रिया बलिकर्म क्रिया-काक आदिकों के लिये अन्न का वितरण क्रिया फिर कौतुक मंगल प्रायश्चित्त किये-बादमें (सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइ पवरपरिहिए) नभामें प्रवेश करने के लायक, मङ्गल कारक सुन्दर वस्त्रों को पहिरा (अप्पमहग्घाभरणालंकिरियसरीरे धूपपुष्पगंधमल्लहत्थगए-मञ्जणघराओ पडिणिकखमइ) शरीर पर अल्प पर कीमत में बहुत मूल्य वाले आभरणों को धारण किया हाथ में धूप, पुष्प गंध, एवं मालाएँ लीं इस प्रकार से मज घज कर वडा स्नान घर से बाहर आया (पडिणिकखमिन्ता जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स क्वाडा तेणेव पहारेत्थ गमणाए) बाहर आकर वह जहां पर तिमिस्रागुहा के दक्षिण भागवर्ता द्वारो के किवाड थे उस ओर चल दिया-(तएण तस्स सुसेणस्स सेणावइस्स बहवे) उस समय उस सुषेण-सेनापति के अनेक

ते पौषधशाणाभाथी अडार नीकण्ये। (पडिणिकखमिन्ता जेणेव मञ्जणघरे तेणेव उवागच्छइ अने अडार नीकणीने न्था स्नान गृह इतु त्या गये। (उवागच्छिता) त्या अर्थने (ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते) तेण्हे स्नाना कथुं अनेपछी अली कर्म कथुं अेटडे के डाक पगेरेने अन्न वितरित कथुं त्यारआड कौतुक मंगल अने प्राश्चित्त विधि सम्पन्न करी. अेना पछी (सुद्धप्पावेसाइ वत्थाइ पवरपरिहिए) सभाभा प्रवेश करवा येअथ मंगल कारक वस्त्रो पडेया (अप्पमहग्घाभरणालंकिरियसरीरे धूप पुष्पगंधमल्ल हत्थगए मञ्जणघराओ पडिणिकखमइ) शरीरे उपर अल्प रथु अहुमूढ्य आभारथु धारथु कर्था हाथमां धूप पुष्प गंध तेमज साणाअो दीधी अने आ प्रभाणे सुसज्जत थर्धने ते स्नानगृहमांथी अडार आये। (पडिणिकखमिन्ता जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स क्वाडा तेणेव पहारेत्थ गमणाए) अडार आवी ते न्था तिमिस्रागुहाना दक्षिण भागवर्ती द्वारना कपाटो डता ते तरक रवाना थये। (त एण तस्स सुसेणस्स सेणा स बहवे) ते सभथे ते सुषेण

'तए णं तस्स सुसेणस्स सेणावड्ढम वहवे राडसरतलवरमाड्ढविय जाव सत्थवाहप्पभियओ'
 तत' तमिस्रागुहागमनसङ्कल्पानन्तर खल्ल तस्य सुपेणस्य सेनापतेः वहवः गजेश्वर तलवर
 माड्ढम्बिक यावत् कौटम्बिक इभ्यश्रेष्ठी यावत् सार्थवाहप्रभृतयः सेनापति मनुगच्छन्तीत्य-
 ग्रेण सम्बन्धः अत्र यावत् पदात् गणनायक दण्डनायक मन्त्रिमहामन्त्रीत्यादयः पूर्वोक्ताः
 सर्वे ग्राह्या. 'अप्पेगइया उत्पलहत्थगया जाव सुसेणं सेणावड्ढ पिट्ठओ २ अणुगच्छन्ति'
 राजेश्वरादीनां मध्ये अप्येके उत्पलहस्तगताः—उत्पलानि कमलानि हस्ते येषां ते तथा,
 एवं सर्वाण्यपि विशेषणानि अत्र भरतस्य चक्ररत्नपूजां कर्तुमुद्यतस्येव वाच्यानि यावत्
 पदात् आयके कुसुमहस्तगताः अप्येके नलिन हस्तगताः, अप्येके सौगन्धिक हस्तगताः
 अप्येके पुण्डरीकहस्तगताः अप्येके सहस्रपत्रहस्तगताः इति संग्राह्यम् एते एवभूताः
 सन्तः सुपेणं सेनापतिं पृष्ठतः २ अनुगच्छन्ति यान्ति 'तएण तस्स सुसेणस्स सेणाव-
 इस्स बहूइओ खुज्जाओ चिलाइयाओ जाव इंगियचितियपत्थियविआणिआउ णिउण-

(राडसरतलवरमाड्ढविय जाव सत्थवाहप्पभियओ अप्पेगइया उत्पलहत्थगया जाव सुसेण सेणावड्ढं
 पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छन्ति) राजेश्वर तलवर मडम्बिक यावत् सार्थवाह आदि जन उस सुपेण
 सेनापति के पीछे यावत् उत्पल को लिये हुए चल रहे थे. यहां प्रथम यावत् शब्द से 'गण-
 नायक, दण्ड नायक' मन्त्री, महामन्त्री आदि जनों का ग्रहण हुआ है, इनमें कितनेक तो अपने
 अपने हाथों में उत्पल लिये हुए थे 'तथा द्वितीय यावत् पदानुसारः' कितनेकने अपने अपने हाथों
 में कुसुम लिये हुए थे, कितनेकने अपने अपने हाथों में नलिन—कमल विशेष—लिये हुए थे.
 कितनेकने अपने अपने हाथोंमें सौगन्धिक—कमल विशेष लिये हुए थे कितनेकने अपने अपने
 हाथों में पुण्डरीक लिए हुए थे कितनेकने अपने अपने हाथों में सहस्रदलों वाला कमल
 लिये हुए थे" इन पदों का ग्रहण हुआ है। (तएण तस्स सुसेणस्स सेणावड्ढस्स बहूइओ
 खुज्जाओ चिलाइयाओ जाव इंगिय चितिय पत्थिय विआणिआउ निउणकुसलाओ विणीयाओ

सेनापतिना अनेक (राडसर तलवर माड्ढविय जाव सत्थवाहप्पभियओ अप्पेगइया उत्पलहत्थ
 गया जाव सुसेण सेणावड्ढं पिट्ठओ पिट्ठओ अणुगच्छन्ति राजेश्वरी, तलवारी, मांडडिके यावत्
 सार्थवाह वगेरे डोके ओ सुपेण सेनापतिनी पाछण—पाछण यावत् उत्पलो लधने आली
 रक्षा होता. अही प्रथम यावत् शब्दथी गणनायके, दंड नायके, मन्त्रीओ, महामन्त्रीओ
 वगेरेओ अडधु थयु छे अमा डेटलाक डोके। तो पोत पोताना हाथेमां उत्पलो लधने
 आली रक्षा होता. तेमअ द्वितीय यावत् पदानुसार डेटलाक पोत पोताना हाथेमां पुणे
 लधने आली रक्षा होता. डेटलाक पोताना हाथेमा नलिनो—कमल विशेषो—लधने आलता
 होता. डेटलाक हाथेमा सौगधिके (कमल विशेष) लधने आलता होता डेटलाक हाथेमा
 पुंडरिके लधने आलता होता डेटलाक पोताना हाथेमां. सहस्रदल कमणे लधने आलता
 होता. ओ पदे अडधु थया छे (तएण तस्स सुसेणस्स सेणावड्ढस्स बहूइओ खुज्जाओ
 चिलाइयाओ जाव इंगिय चितिय पत्थिय विआणिआउ निउणकुसलाओ विणीयाओ

कुसलाओ विणीआओ अप्पेगइयाओ कलसहत्थगयाओ जाव अनुगच्छंतीति' न केवलं राजेश्वरप्रभृतयः सुषेणं सेनापति मनुगच्छन्ति अपितु किङ्करी जना अष्टादश दास्यः अपि कास्ता इत्याह कुब्जाः-बक्रजङ्घाः, चिलात्याः-चिलातदेशोद्भवाः यावत्पदात् वामनिकाः वडभिकाः, बर्बर्यः बकुशिकाः, जोनिक्यः, पल्हविका इत्यादयोऽष्टादश तत्तदेशोद्भवत्वेन तत्तन्नामिकाज्ञेयाः, कुब्जा वामनिका वडभिका इत्येतात्स्त्रस्तु विशेषणभूताः इत्यादिपूर्ववत् तत्र पूर्वापेक्षयाऽय विशेषः किं लक्षणाश्चेत्यः ? 'इंगीय चितिय पत्थियविआणिआऊ' इङ्गितचिन्तितप्रार्थितचिन्नायिकाः, तत्र इङ्गितेन नयनादि चेष्टयैव कथनादिभिः चिन्तितं प्रशुणा मनसि संकल्पितं यद्यत् प्रार्थित तस्य विज्ञायिकाः याः ताः तथा, तथा निपुणकुशलाः अत्यन्त कुशलाः, तथा विनीताः आज्ञाकारिण्यः अप्येकिकाः

अप्पेगइयाओ कलसहत्थगयाओ जाव अनुगच्छन्ति) केवल सुषेण सेनापति के पीछे पीछे राजेश्वर आदि जनमडलीही नहीं चल रही थ। कन्तु उनके पछे पीछे १८ प्रकार की दासियां भी चल रही थी-उनके नाम इस प्रकार से हैं-कोई कोई दासियां चिलात देशोद्भवाथी, इसलिये उन्हें चिलात कहा गया है। यावत्पद से गृहीत कोईकोई दासियां बर्बर देश की थी इसलिये उन्हें बर्बरी कहा गया है कोई बकुश देश को थी इसलिये उन्हें बकुशिका कहा गया है कोई कोई जोनिक देश की थी इसलिये उन्हें जोनिकी कहा गया है कोई कोई पल्हवदेशकी थी इसलिये उन्हें पल्हविका कहा गया है इनमें कितनीक दासियां कुब्जा वक्र जङ्घाओ वाली थी, कितनीक वामन-बोने शरीर वाली थी। और कितनीक दासियां वडभिका थी ये सब चेष्टियां-दासियां नयनादिकी चेष्टा से ही कथन की तो बात दूर ही रही प्रभु के द्वारा चिन्तित मन में संकल्पित किये गये विषय को, तथा प्रार्थित विषय को जान जाती थी तथा ये अपने काम में निपुण कुशल-अत्यन्त कुशल थी साथ साथ में

अप्पेगइयाओ कलसहत्थगयाओ जाव अनुगच्छन्ति) सुषेण सेनापतिनी पाछण पाछण इकत राजेश्वर वगेरे जनमडणी न आवी रही हुती जेवु नथी पणु तेनी पाछण १८ प्रकारनी दासीओ पणु आवी रही हुती तेमना नाम आ प्रभाणे छे, डेटवीक दासीओ चिलात देशोद्भवा हुती, जेथी तेमने चिलात कडेवामा आवे छे, यावत् पदथी गृहीत डेटवीक दासीओ अर्बर देशनी हुती, जेथी तेमने अर्बरी कडेवामा आवी छे, डेटवीक दासीओ अकुश देशनी हुती, जेथी तेमने अकुशी कडेवामा आवी छे, डेटवीक दासीओ जोनिक देशनी हुती जेथी तेमने जोनिकी कडेवामा आवी छे डेटवीक दासीओ पल्हव देशनी हुती जेथी तेमने पल्हविका कडेवामा आवी छे जे दासीओमा डेटवीक दासीओ कुण्ण वक्रजङ्घाओ वाली हुती, डेटवीक वामन डीगणु शरीरवाणी, डेटवीक दासीओ वडभिका हुती, जे अर्धी दासीओमाथी कर्षक कथा पडेवां न नयनादिनी चेष्टाओथी, प्रभु वडे चि तितमनमा संकल्पित करवामा आवेवा विषयने तथा प्रार्थित विषयने आणी देती हुती, जे दासीओ चेताना काममा निपुण कुशल-अत्यंत कुशल हुती, जे दासीओ विनीत अने आज्ञा कारिणी पणु हुती: जेमा डेटवीक दासीओमा हाथेमा अन्दनना कणथे हुता अडी यावत् पदथी पूर्वे-

कलशहस्तगताः यावत् अनुगच्छन्ति, यावत् पदात् पूर्वोक्तं सर्वं ग्राह्यम् 'तएण मे मुसेणे सेणावई सन्विद्धीए सन्वजुइ जाव णिग्घोसणाइएणं जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव उवागच्छइए' ततः तमिस्रागुहाभिमुखगमनान्तरं खलु स स्रपेणः सेनापतिः सर्वद्ध्यां सर्वया ऋद्ध्या आभरणादि रूपया लक्ष्म्या तथा सर्वद्यूत्या सर्वकान्त्या युक्तः सन् यावन्निर्घोपनादितेन पूर्वोक्तसमस्तवाद्यसहित निर्घोप नामक वाद्यविशेषशब्देन यत्रैव तमिस्रागुहाया दक्षिणात्यस्य-दक्षिणभागवर्तिनो द्वारस्य कपाटौ तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य-कपाटसमीपमागत्य 'आलोए पणाम करेइ' आलोके दर्शनमात्रे एव कपाटयोः प्रणाम करोति 'करित्ता' कृत्वा 'लोमहत्थग परामुसइ' लोमहस्तकं प्रमार्जनिकां परामृशति हस्तेन स्पृशति गृह्णातीत्यर्थः 'परामुसित्ता' परामृश्य गृहीत्वा 'तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे लोमहत्थेणं पमज्जइ' तमिस्रा गुहायाः दक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ लोमहस्तकेन प्रमार्जनिकया प्रमार्जयति 'पमज्जित्ता' प्रमार्ज्य 'दिग्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ' दिव्यया उदकधारया अभ्युक्षति सिंचति स्नपयतीत्यर्थः, 'अब्भुक्खित्ता' अभ्युक्ष्य सिंचित्वा

ये विनीत आज्ञा कारिणी श्री. इनमें कितनीक दासियों के हाथ में चन्दन के कलश थे. यहां यावत्पद से पूर्वोक्त सब विषय गृहीत हुआ है . (तएणं से मुसेणे सेणावई सन्विद्धीए सन्वजुइए जाव णिग्घोसणाइएणं जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव उवागच्छइ) इस प्रकार वह सुषेण सेनापति अपनी समस्त ऋद्धि से और समस्त धृति से युक्त हुआ यावत् बाजों के गडगडाहट के साथ साथ जहा पर तिमिस्रा गुहा के दक्षिण द्वार के किवाड़ ये वहां पर आ पहुचा. (उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ , करित्ता लोमहत्थगं परामुसइ,) वहां आकर उसने उन कपाटों को दिखते ही प्रणाम किया प्रणाम करके फिर उसने लोमहस्तक प्रमार्जनिका— को उठाया (परामुसित्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे लोमहत्थेणं पमज्जइ) उसे उठाकरके उसने तिमिस्रा गुहा के दक्षिण दिग्वर्तीद्वारके कपाटों को साफ किया—(पमज्जित्ता)साफ करके (दिग्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ) फिर उन पर उसने दिव्य—उदक की धारा छोडी अर्थात् दिव्य उदक धारा के उन पर छोटे

उक्त सर्वविषय संगृहीत थये। थे. (त एणं से मुसेणे सेणावई सन्विद्धीए सन्वजुइए जाव णिग्घोसणाइए णं जेणेव तिमिस गुरहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा तेणेव उवागच्छइ) आ प्रभावे ते सुषेणु सेनापति पोतानी समस्त ऋद्धिअने समस्तधृतिथी युक्त थयेदे यावत् वाधोना ध्वनि साथे तथा तिमिस्रा गुहाया दक्षिणु द्वारना कभाड डतात्या आवी पडोअथा. 'उवागच्छित्ता आलोए पणामं करेइ करित्ता लोमहत्थगं परामुसइ) त्यां आवीने तेणे ते कभा डाने लेधने प्रथाम कथां प्रथाम करीने पछी तेणे लोम हस्तकं प्रमार्ज्जित्ता डायमां दीधी. 'परामुसित्ता तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे लोमहत्थेणं पमज्जइ) डायमां धने तेणे तिमिस्रा गुहाया दक्षिणु दिग्वतीं द्वारना कपाटाने साइ कथां(पमज्जित्ता) साइ करीने 'दिग्वाए उदगधाराए अब्भुक्खेइ) पछी तेणे तेमनी उपर दिव्य उदक धारा छोडी ओटवे हे

‘सरसेणं गोसीसचंदणेण पंचगुलितले चच्चए दलइ’ सरसेन रससहितेन गोशीर्ष-
चन्दनेन गोरोचनमिश्रितचन्दनविशेषेण चर्चितम् अनुलिप्तम् पञ्चाङ्गुलितलं ददाति
‘दलइत्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिय मल्लेहिय अच्चिणेइ’ अग्रैः—अपरिशुक्तैः अभिनवैरित्यर्थः
वरैः श्रेष्ठैः गन्धैश्च माल्यैश्च अर्चयति स सुषेणः सेनापतिः कपाटौ पूजयति ‘अच्चिणित्ता’
अर्चयित्वा ‘पुष्कारुहणं जाव वत्थारुहणं करेइ’ पुष्पारोपणम् यावत् वस्त्रारोपणम् यावत्
पदात् माल्यारोपणं वर्णारोपणं चूर्णारोपणम् आभरणारोपणं करोति ‘करित्ता’ कृत्वा
‘आसत्तो सत्तविपुलवट्ट जाव करेइ’ आसत्तोत्सक्तविपुलवर्त्तयावत्करोति तत्र आसक्तः आ
अवाङ्मुखः अधोमुखो भूत्वा सक्तः भूमौ संलग्नः उत्सक्तः उ—उपरि सबद्धः यः विपुलः
विशालः वर्त्तः गोलाकारः यावत् चाक्यचिक्ययुक्तः मुक्तादामविलम्बिविम्बः, चितानः
चंदनवा इति भाषाप्रसिद्धः सः सौन्दर्यादि गुणग्रामगरिष्ठो यथा स्यात् तथा करोति-स-
योजयति । ‘करित्ता’ कृत्वा ‘अच्छेहि’ अच्छैः विमलैः ‘सण्हेहि’ श्लक्ष्णै अतिप्रतलै चि -

दिये(अम्बुक्खेत्ता सरसेणं गोसीसचदणेणं पंचगुलितले चच्चए दलइ) दिव्य उदक धारा के छीटे
देकर फिर उसने सरस गोशीर्षचन्दन से—गोरोचनमिश्रित चन्दन से—अनुलिप्त पञ्चाङ्गुलितल दिया
अर्थात् गोशीर्ष चन्दन के बहा पर हाथे लगाये—(अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिय मल्लेहिय अच्चिणेइ)
इमके बाद फिर उस सुषेण सेनापतिने उन कपाटों की अभिनव श्रेष्ठ गन्धों से और माल्याओं से
पूजा की (अच्चिणित्ता पुष्कारुहणं जाव वत्थारुहण करेइ) पूजा करके फिर उसने उनके ऊपर
पुष्पों का आरोहण यावत् वस्त्रों का आरोहण किया । यहां यावत्पद से “माल्यारोपणं वर्णा-
रोपणं चूर्णारोपणं आभरणारोपणं करोति” इस पाठ का समग्र हुआ है (करित्ता आसत्तोसत्त-
विपुल वट्ट जाव करेइ) इन सब वस्तुओं का बहा पर आरोपण करके फिर उसने उनके ऊपर
एक चन्द्रवा ताना जो आकार में गोल था । तथा विस्तृत था । नीचेकी ओर उसकामुख
यावत् वह चाक्यचिक्य से युक्त था । मुक्ता दाम से वह विशिष्ट था । तथा जिस प्रकार से
उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि हो—इस ढंग से वह सजाया गया था । (करित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं

दिव्य उदकधाराणां तेभन्ती उपर छाटा नाभ्या (अम्बुक्खेत्ता सरसेण गोसीसचदणेणं पंचगुलि-
तले चच्चए दलइ) उदक धाराणां छाटा इधने पछी तेणु सरस गोशीर्ष चन्दन थी गोरोचन
मिश्रित चन्दन थी अनुलिप्त पञ्चाङ्गुलितल अट्टे हे गोशीर्ष चन्दनना त्यां हाथना थापाओ
लगाओ (अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिय मल्लेहिय अच्चिणेइ) त्थार आइ ते सुषेणु सेनापतिओ
कपाटोनी अभिनव श्रेष्ठगन्धोथी अत्ते भाणाओथी पूजा करी ‘अच्चिणित्ता पुष्कारुहणं जाव
वत्तं हणंकरेइ’ पूजा करीने तेणु तेभन्ती उपर पुष्पोत्तु आरोहणु यावत् वस्त्रोत्तु आरोपणु
कथुं” अडीयायःवत्पइथी (माल्यारोपणं वर्णारोपणं चूर्णारोपणं आभरणारोपणं करोति) आ पाठ
ने। स अइ थयो छे (करित्ता आसत्तो सत्त विपुल वट्ट जाव करेइ) ओ सर्वं वस्तुओत्तु
तेभन्ती उपर आरोपणु करीने पछी तेणु तेभन्ती उपर अइ विस्तृत, तेभन् गोण अइरवा
आंथो ते अइरवाना नीयेने। भाग आक्यचिक्यथी (अभकडार) युक्त इतो। तेभन् ने रीते
ते अइरवाना सौन्दर्यभा अभिवृद्धि थाय ते रीते तेने सुसन्धिजत करवाना आंथो इतो।

णैरित्यर्थः 'सेएहिं' श्वेतै रययामएहिं' अञ्छरसतण्डुलैः तत्र अञ्छो निर्मलो रसो विम्बो येषां ते अञ्छरसाः प्रत्यासन्न वस्तु प्रतिविम्बाधारभूता इव अतिविमला इति भावः एवं भूतैः तण्डुलैः 'तिमिस्रगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाणं पुरओ अट्टट्ट मंगलए आलिहइ' तमिस्रागुहायाः दाक्षिणात्यस्य दक्षिणदिग्वर्तिनो द्वारस्य कपाटयोः पुरतः अग्रे अष्टाष्टमङ्गलकानि स्वस्तिकादयोऽष्टाष्टमाङ्गल्यवस्नुनि आलिखति अत्र चाष्टाण्टेति वीष्णावचनात् प्रत्येकमष्टौ अष्टौ आलीखतीति विज्ञेयम्, तान्येव अष्टप्रदर्शयन्ते 'तं जहा सोत्थिय सिरिवच्छं जाव' इति तद्यथा स्वस्तिक १ श्री वत्स २ यावत् नन्दिकावर्त्त ३ वर्द्धमानक ४ भद्रासन ५ कलश ६ मत्स्य ७ दर्पणानि अष्टमङ्गलकानि 'आलिहिचा'

रययामएहिं अञ्छरसातडुलेहिं तिमिस्सगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाणं पुरओ अट्टट्ट मंगलए आलिहइ) चन्द्रवा को किवाडो के ऊपर बाधकर फिर उसने स्वच्छ महीन चांदी के चावलों से कि जिनमें स्वच्छता के कारण पास में रही हुई वस्तुओं का प्रतिविम्ब पड़ता था । तिमिस्रगुहा के दक्षिण द्वारवर्ती उन किवाडो के समक्ष आठ आठ मंगल द्रव्यों का आलेखन किया अर्थात् प्रत्येक मंगल द्रव्य आठ आठ की संख्या में लिखे । "तं जहा" वे आठ मंगल द्रव्य इस प्रकार से हैं—(सोत्थिय-सिरिवच्छं जाव कयगह गहिय करयलपम्भट्टचंदप्पभवइरवेरुल्लिय-विमलदइ) स्वस्तिक, श्री वत्स यावत्-नन्धावर्त्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण । यहा यावत् पद से इस पाठ का ग्रहण हुआ है । (आलिहिचा काऊरं करेइ, उवयारत्ति कित्ते पाडलमल्लिय चपगअसोग पुण्णाग च्यूमजरीणवमल्लिय वकुलतिलग कणवीर कुंदकोज्जय कोरंटय पत्तदमणयवरसुरहि सुगघगघियस्स) इस पाठ का अर्थ इस प्रकार से है—एक एक मङ्गल द्रव्य को आठ आठ रूप में लिखकर फिर उसने उन पर रंग भरा रंग भरकरके फिर उसने उन सब का इस प्रकार से उपचार किया गुलाबके फूल, बेलाके फूल, चम्पकके फूल, बशोकेके फूल,

करित्ता अञ्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अञ्छरसातडुलेहिं तिमिस्स गुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाणं पुरओ अट्टट्टमंगलए आलिहइ) अंडरवाने कपाटोनी उपर आधीने पछी तेणे स्वच्छ जीष्वा चांदीना योआथी के के योआयोमां स्वच्छताने बीधि पांसे भूडेवी वस्तुओनु प्रतिभिंअ पछी रथुं डतुं 'तिमिस्र गुहाणा दक्षिण द्वारवर्ती' ते कपाटोनी सामे आठ आठ मंगल द्रव्योनु आलेखन कथुं ओटले के प्रत्येक मंगल द्रव्य आठ आठ ओटवी संख्यामा लप्या (तं जहा) ते आठ मंगल द्रव्यो आ प्रभाणे छे. (सोत्थिय—सिरिवच्छं जाव कयगहगहियकरयलपम्भट्ट ? चंदप्पभवइरवेरुल्लिय विमलदइ) स्वस्तिक, श्रीवत्स यावत् नन्धावर्त्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य अने इपंथु अही' यावत् पडथी आ पाठेना स अड थये छे, (आलिहिचा काऊरं करेइ, उवयारत्ति कित्ते पाडलमल्लिय चपग असोग पुण्णाग च्यू मंजरीणवमल्लिय वकुल तिलगकणवीर कुंदकोज्जय कोरंटय पत्त दमणयवरसुरहि सुगघगघियस्स) आ पाठेना अर्थ आ प्रभाणे छे—जेक जेक-मंगल द्रव्यने आठ आठ रूपमां लप्यीने तेणे तेमनी उपर रंग बरयो रंग बशीने पछी ते तेणे ते सर्वना आ प्रभाणे उपचार कथो शुद्धाणना पुष्पो वेदाना पुष्पो, अ पकना पुष्पो

आखिल्य आकार कृत्वा 'काऊरं' अन्तवर्णकादि भरणेन पूर्णानि कृत्वा 'करेइ उवयारं
 त्ति' करोति उपचारमिति कोऽसौ उपचार इत्याह 'किते' ! कोऽसौ तत्राह— 'पाडलम-
 ल्लिय चंपग असोग पुण्णाग चूयमजरी णवमालिय बकुलतिलग कणवीरकुंदकोज्जय
 कोरटय पत्तदमणय वरसुरहि सुगंधगंधियस्स' पाटल मल्लिका चम्पकाशोक पुन्नाग
 चूतमठजरी नवमालिका बकुलतिलक कणवीरकुन्द कुब्जक कोरण्टकपत्रदमनक वरसुरभि
 सुगन्धगन्धिकस्य तत्र पाटल-पाटलपुष्पम् (गुलाब) इति प्रसिद्धम् मल्लिका-मल्लिका
 विरुचितपुष्पम् (बेलीति) भापाप्रसिद्धम् चम्पका शोकपुन्नागाः पुष्पविशेषाः, चूतम-
 ठजरी आम्रमञ्जरी, बकुलः केसरो यः स्त्रीमुख सीधुसिक्तो विकसति तत्पुष्पम्, तिलको
 यः स्त्रीरुटाक्षनिरीक्षितो विकसितो भवति तत्पुष्पम्, कणवीर कुन्दे प्रसिद्धे, कुब्जकम्,
 कूगो नाम वृक्षविशेषस्तत्पुष्पम्, पत्राणि दमनकः पुष्पविशेषः एतैः वरसुरभिः अत्यन्त
 सुरभिः तथा सुगन्धाः शोभनचूर्णां तेषां गन्धो यत्र स तथा तस्य अत्र तद्वितलक्षण
 इक् प्रत्ययः ततः विशेषणद्वयस्य कर्मधारयो बोध्यः इदञ्च कुसुम निकरस्येत्यस्य
 विशेषणम् यावत् पद्ग्राह्यम्, पुनश्च 'कयग्गहगहिय करयल पठमठ्ठ चंदप्पभवइरवेरुलिय-
 विमलदड जाव धूवं दलयड' कचग्रहग्रहीत करतल प्रभ्रष्ट चन्द्रप्रभवज्वैडूर्यविमलदड
 यावत् धूपं दहति, अत्र कचग्रहेत्यादेः प्रभ्राटेत्यन्तस्य कचग्रहग्रहीत करतलविप्रसुक्त
 प्रभ्रष्टस्य दशार्द्धवर्णस्य पठचवर्णस्य कुसुमनिकरस्य पुष्पपुञ्जस्य तत्र चित्र जानूत्सेध-
 प्रमाणमितम् अवधिनिकरं कृत्वा एतावत्पर्यन्तं तात्पर्यम्, तत्र कचग्रहो त्रिंशत्सार्थ
 युवत्याः पठचाङ्गुलिभिः केशेषु ग्रहणं तन्न्यायेन गृहीतः तथा तदनन्तरं करतलाद्वि
 प्रसुक्तः सन् प्रभ्रष्टः पतितः तस्य तथा दशार्द्धवर्णस्य पठचवर्णस्य कुसुमनिकरस्य पुष्प-
 राशेः तत्र ऋपाटपरिकरभूपो जानूत्सेधप्रमाणमितम् जानुं यावदुच्चत्वप्रमाणपरिमितम्
 अष्टाविंशत्यंगुलरूपम् अवधिनिकरम् अवधिना मर्यादया निकरं विस्तारकृत्वा 'चंदप्प
 वइरवेरुलियविमलददं जाव धूवं दहइ' चन्द्रप्रभाः चन्द्रकान्ताः वज्राणि-हीरकाः वैडू-
 र्याणि वैडूर्यनामक रत्नानि वज्रठचमणि रत्नभक्तिचित्रमित्यारभ्य कडुच्छुकं प्रगुण

पुन्नागके फूल, आम्रकी मञ्जरी, बकुलकी केशर-तिलक के पुष्प, कनेर के पुष्प, कुब्जक के
 पुष्प, दमनक मरुवां-के पुष्प जो कि बहुत ही सुगंध से युक्त होते हैं उन पर चढाये इसके
 बाद उसने कचग्रह की तरह गृहीत पश्चात् करतल से प्रभ्रष्ट दशार्द्ध वर्ण वाले पुष्पनिकर
 का वहां पर जानूत्सेधप्रमाण परिमित ढेर कर दिया फिर जिसका दंड चन्द्रकान्त वज्र एव वैडूर्य
 से निर्मित हुआ है तथा यावत्पद गृहीत जिस में काञ्चन मणि और रत्नों से नाना प्रकार के

अशोकना पुष्पो पुन्नागना पुष्पो, आम्रनी मञ्जरी, बकुलना केशर, तिलकना पुष्पो, कनेर
 ना पुष्पो कुब्जकना पुष्पो, दमनक मरुवाना पुष्पो हे जेथो अतीव सुगंधित होय छे. तेमनी
 उपर चढाव्या त्यारभाह तेथे कच ग्रहणी जेम गृहित पश्चात् करतलथी प्रभ्रष्ट दशार्द्ध-
 वर्णना पुष्प निकरने। त्यां जानूत्सेध प्रमाणे परिमित ढगळो कथे पछी जेमनी हांटी
 चन्द्रकान्त, वज्र तेमज वैडूर्यथी निर्मित थयेली छे तेमज यावत् पद गृहीत जेभां कायन मणी

प्रयतः इत्यन्तं ग्राह्यम् एतादृश विशेषणविशिष्टम् 'कञ्जुचुकं' धूपाधानपात्रम् प्रगृह्य ग्रहीत्वा 'प्रयतः' सादरः आद्रियमाणो-धूपं ददाति दहतीत्यर्थः 'दहिता' दग्ध्वा 'वाम जाणुं अचेड दाहिणं जाणुं धरणियलसि निहदुडु' इत्यपि ग्राह्यम् तथा च वाम जानुम् अञ्चति ऊर्ध्व-ङ्करोती, दक्षिणं जानुं धरणीतले निहत्य स्थापयि वा पातयित्वा 'करयल जाव मत्थए अजलि कदुडु कवाडाण पणामं करेइ' करतल परिगृहीत दशनखं शिरसा-वतं मस्तकं अञ्जलिङ्कृत्वा कपाटयोः प्रणामं करोति नमनीय वस्तुनः उपचारं क्रियमाणे आदावन्ते च प्रणामस्य शिष्टव्यवहारौचित्यात् 'करित्ता' कृवा' दंढरयण परामुसड' दण्डरत्न परामुगति स्पृशति गृह्णा-ति 'तएणं तं दंढरयणं' ततः तदनु दण्डरत्नस्पर्शानन्तर खलु तदण्डरत्न कीदृश तदित्याह 'पंचलइयं' पञ्चलतिकम् पञ्चलतिक्राः कत्तलिकारूपाः अवयवा यत्र तत्तया पुनश्च कीदृशम् 'वइर सारमइअ वज्ज सारमयम् वज्जस्य यत्तारं प्रधानद्रव्यं तन्मयम्-तद् घटितम् वज्जस्य यत्तारं प्रधानद्रव्यं तन्मयम्-तद् घटितम् वज्जवद् पुनश्च 'विणासणं सव्वसत्तु सेणणाणं' सर्वशत्रु सेनानां विनाशनं विनाशकम् पुनश्च कीदृशम् 'खंधावारे णरवइस्स गइइरि विसमपम्भारगिरिवरपवायाणं समीकरणं' स्कन्धावारे नरपतेः गच्छदरी विपमप्राग्भारगि-

चित्र बनाये गये है ऐसे धूपकटाह को हाथ में लेकर बड़ी सावधानी से उगमें धूप जलाई (दहिता वाम जाणु अंचेइ दाहिण जाणु धरणियलसि निहदुडु करयल जाव मत्थए अंजलि कदुडु कवाडाण पणामं करेइ) धूपजला कर फिर उसने अपनी बाई जानु को घुटने को जमीन से ऊपर रखा और दक्षिण जानु को जमीन पर स्थापित किया और दोनों हाथों की इस ढग से अंजलि बनाइ कि जिसमें दशों अंगुलियों के नख आपस में मिल जावे ऐसी अंजलि बनाकर उसने उस अंजलि को मस्तक पर रखकर दोनों किवाड़ों को प्रणाम किया क्योंकि नमनीय वस्तु के उपचार में आदि और अन्त में उसे प्रणाम किया जाता है ऐसा शिष्ट जनों का व्यवहार है । (करित्ता दंढरयण परामुसइ) प्रणाम करके फिर उसने दण्डरत्न को उठाया (तएणं तं दंढरयणं पंचलइअ वइरसारमइअं विणासणं सव्व सत्तुसेणणाणं खधावारे णरवइस्स गइइरिविसमपम्भारगिरिवरपवायाणं समीकरणं सत्तिकरं सुमकर हितकरं रणो हियइच्छिय मणोरहपूरग दिव्वमपपडि-

अने रत्नेधी विविध प्रकारना चित्रो तोयार करवाभां आल्या छे जेवा धूपकटाह-धूपधानीने हाथभां लधने भूषण सावधानीधीते धूप कटाहभां धूप सणगांथे। (दहिता वामं जाणुं अंचेइ दाहिणं जाणुं धरणियलसि निहदुडु करयलजाव मत्थए अजलि कदुडु कवाडाण पणामं करेइ) धूप सणगावीने पछी तेछे पोताना वाय दूटणु ने जमीन उधर स्थापित कये। अने अने कथानी आ प्रभाछे सुद्धा अनावी के जेभां इशे इश आगणीओना नणे। परस्पर बेगा शर्ध जय जेवी आगणीनी सुद्धाअनावीने तेछे ते अजलीने मस्तक उपर भूकी अने अने कपाटे। नेप्रथाम कथां केभके नमनीय वस्तुना उपचारमा आहि तेभज अंतमा तेने प्रथाम करवाभा आवे छे, जेवा शिष्टाचार छे। (करित्ता दंढरयणं परामुसइ) प्रथाम करीने तेछे इंड रत्नने उंडांथुं (त एणं तं दंढरयणं पंचलइअवइरसारमइअं विणासणं सव्वसत्तुसेणणाणं खंधावारे णरवइस्स गइइरि विसमपम्भारगिरिवरपवायाणं समीकरणं सत्तिकरं सुमकर हितकरं रणोहिय इच्छिय मणोरहपूरगं दिव्वमपपडिहयं दंढरयणं गहाय सत्तु पयाइ पच्चोसकइ) जे इंडना अवयवे। पचलतिक-कत्तलिका इप इता। जे इंड रत्न वज्जना सारधी अनेइ इतुं। सर्व शत्रुओ तेभज तेमनी सेनाओने ते विनष्ट करनार इतुं रत्नना

रिवरप्रपातानां समीकरणम् तत्र नरपतेः राज्ञः स्कन्धवारे सेनासमूहसन्निवेशे प्रस्तावाद्
 गन्तुं प्रवृत्ते सति गर्तः गङ्गा, इति भाषाप्रसिद्धम् दरी कन्दरा विषमः उन्नताऽवनता
 प्राग्भाराः प्रकृष्टभाराः गिरिवराःअत्र गिरिशब्देन क्षुद्रगिरयो ग्राह्याः ये यात्रोन्मुखानां राज्ञां
 गच्छन्तः सैन्यसमूहस्य विघ्नकराः सन्ति प्रपाताः गच्छतां जनानां स्वलनहेतवः पाषा-
 णाः तेषां समीकरणम् समभागापादकम् 'संतिकरं' शान्तिकरम् उपद्रवशान्तिकारकम् ननु
 यदि उपद्रवोपशामकं तत् तर्हि सति दण्डरत्ने सगरसुतानां ज्वलनप्रभ नागधिप कृतोपद्रवः
 कथं नोपशाम इति चेन्न सोपक्रमोपद्रव विद्रावण एव तस्य सामर्थ्यात् अनुक्रमोपद्रव
 विद्रावणे सर्वथा तस्य सामर्थ्याभावात् अतएव विजयमाने वीरदेवे कुशिष्यमुक्ता तेजोलेख्या
 सुनक्षत्र सर्वांनुमतो अनगारो मस्मतां निनायः, 'शुभकरं' शुभकरम्—कल्याणकरम् 'हितकरं'
 हिनकरम् उक्तैरेव गुणो रूपकारकारकम्, पुनः क्रीडशम् 'रणो हिय इच्छियमणोरहपूरगं'

हयं दंडरयण गहाय सत्तद्रूपयाइ पञ्चोसकरुइ) इसदण्ड के अवयव-पञ्चलति का कत्तलिका
 रूप थे—यह दण्डरत्न वज्र के सार से बना हुआ था समस्त शत्रुओं का और उनकी
 सेनाओं का यह विनाश करने वाला था ! राजा के सेना समूह के सन्निवेश में—पडाव
 में गड्ढों को दरीयों को,—कन्दराओं को—ऊँचे नीचे छोटे छोटे पर्वतों को, यात्रा के सम्मुख
 होकर जानेवाले राजाओं की सेना के फिसलकर गिरने में—कारणभूत होते हैं ऐसे
 पाषाणों को यह सम कर देता है तथा यह—शान्तिकर होता है—उपद्रवों को दूर कर
 देता है । यहा ऐसी आशका हो सकती है कि यदि यह दण्डरत्न उपद्रवों को शान्त
 करने की शक्तिवाला है तो दण्डरत्न के होने पर भी सगर के पुत्रोंका ज्वलनप्रभनागाधिप
 द्वारा किया गया उपद्रव शान्त क्यों नहीं हो पाया तो इसका समाधान ऐसा है की यह
 दण्डरत्न—सोपक्रम उपद्रवों को ही शान्त करने में शक्ति वाला होता है । अनुपक्रम
 उपद्रवों को शान्त करने की शक्तिवाला नहीं होता है इसलिए वीर देव के विद्यमान होने
 पर कुशिष्यमुक्त—तेजोलेख्या ने सुनक्षत्र और सर्वांनुमति नामक दो अनगारों को मस्म कर
 दिया । यह चक्ररत्न शुभकर कल्याणकर होता है एवं हितकर उक्तगुणों द्वारा उपकार

सैन्य-समूहने सन्निवेशमा पडावमा आडाओने इरियोने उ दराओने उ आ नीचा पर्वताने
 यात्रा करती वभते रान्तओनी सेना ओभना उपस्थी लपस्त्री पडे ओवा पाषाणोने ओ अभ
 करी नाभे छे तेमअ ओ शान्तिकर डोय छे उपद्रवोनु' उपशमन करे छे अही' ओवी
 शंका थाय छे के ओ ओ दंडरत्न उपद्रवोने शान्त करी शके ओवी शक्ति धरावतु' डोय तो
 दंडरत्न डोय तो पक्षु सगरना पुत्रोनु ज्वलन प्रभनागाधिप वडे करवासां आओय ते वभते
 उपद्रवनु उपशम केम थयु' नही तो आ शंकातु समाधान आ अभाषे छे के आ दंड
 रत्न सोपक्रम उपद्रवो ने शान्त करवा समर्थ डोय छे अनुपक्रम उपद्रवोने शान्त करवानी
 शक्ति ओभां होती नथी अने ओथी अ वीरदेव विद्यमान छेता छतां ओ कुशिष्य
 मुक्ततेओ देखाने सुनक्षत्र अने सर्वांनुमती नामक ओ अनगारे ने लक्ष्म करी नाभ्या. ओ
 यकरत्न शुभकर-उत्थाणु कर डोय छे. तेमअ हितकर डोय छे (रणो हिय इच्छिय मणोरह

राज्ञः चक्रवर्तिनो हृदयेच्छ्रुतमनोरथपूररुम्, गुहाकपटोदघाटनादिकार्यकरणसमर्थत्वात्
 'दिव्यं' दिव्यम्—यक्षसहस्राधिष्ठितमित्यर्थः 'अप्पडिहयं' अप्रतिहतम्—क्वचिदपि प्रति-
 घातमनापन्नम् 'दंडरयणं' दण्डरत्नम्—दण्डनामकं रत्नम् 'गहाय' हस्ते गृहीत्वा 'सत्त-
 ट्ठपयाईं पच्चोसक्कई' सप्ताष्टपदानि प्रत्यवप्त्रप्फुत्ते अपसर्पति स सुषेणः सेनापति
 रिति अत्र सेनापतेः सप्ताष्टपदापसरणं प्रजिहीषोः दृढतरप्रहारकरणाय 'पच्चोसक्कित्ता'
 प्रत्यवप्त्रप्त्रय—सप्ताष्टपदानि अपसृत्य 'तिमिस्सगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे
 दंडरयणेणं महया महया सहेणं तिक्खुत्तो आउडेइ' तमिस्रगुहायाः दाक्षिणात्यस्य
 दक्षिणभागवर्तिनो द्वारस्य कपाटौ दण्डरत्नेन महता महता शब्देन त्रिःकृत्व—त्रीन्
 वारान् आकुट्टयति ताडयति अत्र इत्थंभूतलक्षणे इति तृतीया, यथा प्रकारेण महान्
 शब्दः उत्पद्यते तथा प्रकारेण ताडयतीत्यर्थः ततः किं जातमित्याह—'तएण' इत्यादि

करनेवाला होता है। (रणो द्वियहच्छिय मणोरहपूरग) चक्रवर्ती के हृदय में वर्तमान—इच्छित
 मनोरथ को पुरा करने वाला है क्यों की यहा गुहा के कपाटों के उद्घाटन आदि कार्योंको करता है।
 (दिव्यं) यक्ष सहस्र से यह अधिष्ठित होने के कारण दिव्य कहा जाता है (अप्पडिहयं) यह
 कहीं भी प्रतिघात को प्राप्त नहीं होता है इसलिए अप्रतिहत कहा गया है इस प्रकार के इन
 पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त (दंडरयणं गहाय दण्डरत्न को हाथ में लेकर) सत्तट्ठपयाईं पच्चोसक्कई-
 वह सुषेण सेनापति सात आठ पैर पीछे हटा यहां जो प्रतिनिहीषसुषेण सेनापति का सात
 आठ पैर पीछे हटना प्रकट किया गया है वह उसके द्वारा दृढतर प्रहार प्रकट करने के लिए
 कहा गया है (पच्चोसक्कित्ता) सात आठ पैर पीछे हटकर के (तिमिस्सगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवा-
 रस्स कवाडे दंडरयणेणं महया २ सहेणं तिक्खुत्तो आउडेइ) फिर उम सुषेणसेनापतिने
 तिमिस्रगुहा के दक्षिण दिग्वर्ती द्वार के किवाड़ों को दण्डरत्न से जोर जोरसे जिससे शब्दों
 का निकलना हो इस रूप से तीनवार ताडित किया—किवाड़ों पर तीन बार जोर २ से दण्ड

पूरगं) चक्रवर्ती' ना हृदयमां विद्यमानं इच्छित मनोरथतु को चक्ररत्न पूरक होय छे. केभडे
 को चक्ररत्न शुक्राना कपाटोने उद्घाटित करवा वगेरे कार्यो करे छे (दिव्यं) यक्षसहस्रोधी को
 अधिष्ठित होवा अद्वैत दिव्य कडेवाभां आवे छे (अप्पडिहयं) को चक्ररत्न कोर्ध. पञ्चुत्थाने
 प्रतिघात इशाने पाभर्तुं नथी कोथी न कोने अप्रिहत कडेवाभा आवे छे. आ प्रभाषे को
 पूर्वोक्त विशेषणोधी युक्त (दंडरयणं गहाय) दंडरत्नने हाथनां लधने (सत्तट्ठ पयाईं
 पच्चोसक्कई) ते सुषेणु सेनापति सात आठ उगला पाछे अस्थो अढी' ने प्रतिहीषु-
 सुषेणु सेनापतिने सात आठ उगलां पीछे उठ करवानु लभ्यु छे ते तेना वडे दृढतर प्रहार
 प्रकट करवा माटे कडेनाभा आवे छे (पच्चोसक्कित्ता) सात आठ उगला पाछे असीने 'तिमिस्स
 गुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे दंडरयणेणं महया २ सहेणं तिक्खुत्तो आउडेइ)
 पडां ते सुषेणु सेनापतिने तिमिस्र शुक्राना दक्षिण दिग्वर्ती' द्वारना कपाटोने दंड रत्नधी
 जोर-जोरधी के नेनाथी शब्द थाय कोवी रीते त्रयु वार ताडित कर्थां. कोटवे के कभाडे उपर

‘तएणं तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेणसेणवइणा दंडरयणेणं महया महया सहेणं कौचारवं करेमाणा’ ततः आकुट्टनादनु खल्लु तमिसगुहायाः दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ सुषेणनाम्ना सेनापतिना दण्डरत्नेन महता महता शब्देन त्रिः कृत्वः—त्रीन् वारान् आकुट्टितौ सन्तौ महता महता शब्देन दीर्घतरनिनादिनः क्रौंचस्य पक्षिविशेषस्येव बहुव्यापित्वात् य आरवः शब्दः तं कुर्वाणौ ‘सरसरस्स ति अनुकरणशब्दस्तेन तादृशं शब्दं कुर्वाणौ ‘सगाइं सगाइं’ स्वके स्वके—स्वकीये स्वकीये ‘ठाणाइं’ स्थानेऽवष्टम्भभूततोडुकूपे ‘पच्चोसक्कित्था’ प्रत्यवाष्वाष्किषाताम् स्वस्थानात् प्रत्यपससर्प्यतुः ‘तएणं से सुसेणे सेणावई तिमिसगुहाए दाहिणिल्लदुवारस्स कवाडे विहाडेइ’ ततः कपाटप्रत्यपसर्पणादनु खल्लु स सुषेणः सेनापतिः तमिसगुहायाः दाक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ विघाटयति उद्घाटयति यद्यपि इदं सूत्रमावश्यरुचूर्णो वर्द्धमानसुरिकृतादिचरिते च न दृश्यते, तदाऽव्यवहित पूर्वसूत्रे एव कपाटोद्घाटनम् अभिहितम्, यदि चैतत्सूत्रादर्शानुसारेण इदं सूत्रमावश्यं न्या-

रत्न पटका (तएणं तिमिस गुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेणसेणावइणा दंडरयणेणं महया २ सहेणं तिखुत्तो आउडिया समाणा महया २ सहेणं कोचारवणं वरेमाणा) इसतरह-तिमिस गुहा के दक्षिणदिग्वर्ती द्वार के किवाड़े जो कि सुषेण नामक सेनापति रत्न के द्वारा तीन बार दण्ड रत्न के पटकने से जोर जोर का शब्द जिस प्रकार निकले इस ढंग से पटकने पर, दीर्घतर शब्द करनेवाले क्रौंच पक्षी की आवाज की तरह आवाज करते हुए तथा (सरसरस्स सगाइं २ ठाणाइं) सर सर इस तरह का शब्द करते हुए अपने स्थान से विचलित हो गये—सरक गये (तएणं से सुसेणे सेणावई तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेइ) इसके बाद उस सुषेण सेनापतिने तिमिस गुहाके दक्षिण दिग्वर्ती किवाड़ों को उद्धाटितकर दिया यद्यपि यह सूत्र आवश्यक चूर्णों में और वर्द्धमान सुरि कृतादि चरित्र में नहीं उपलब्ध होता है इसकारण अव्यवहित पूर्व सूत्र में ही कपाटोद्घाटन कहा गया है ऐसा जानना चाहिए। और यदि

त्रक्षु वार जेर—जेरथी द डरत्त पछाडथे। (तएण तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सुसेणसेणावइणा दंडरयणेणं महया २ सहेणं तिखुत्तो आउडिया समाणा २ सहेणं कोचारवं करेमाणा) आ प्रभाण्णे तिमिसा शुक्ष्णा दक्षिणु दिग्गतीं दारना कभाडो के जेभने सुषेणु सेनापतिणे त्रक्षु वार द ड रत्तना जेर जेरथी शब्द थाय तेम प्रताडित कथां अने प्रताडित थवाथी दीर्घतर अवाण करनारा कौच पक्षिनी जेभ अवाण करता तथा (सरसरस्स सगाइं २ ठाणाइं) सर सर आ प्रभाण्णे शब्द करता पोताना स्थानथी विचलित थर्ष गया जेट्ठे के कभाडो पोताना स्थान परथी भसी गया। (तएणं से सुसेणे सेणावई तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेइ) त्थारणाइ ते सुषेणु सेनापतिणे तिमिस शुक्ष्णा दक्षिणु दिग्गतीं कभाडो,ने उद्घाटन कथां जेके आ सूत्र आवश्यक बुद्धिभां अने वर्द्धमान सुरिकृतादी आरित्रभां उपलब्ध थर्तु नथी जेथीअ अव्यवहित पूर्व सूत्रभां अ कपाटोद्घाटन कडेवाभा आव्युं छे अने जे जे अत्र अदीं

ख्येयं भवेत्तदा पूर्वसूत्रे सगाइ सगाई ठाणाई' इत्यत्र अर्पितान् पञ्चमी व्याख्येया
 तेन स्वकाभ्यां स्थानाभ्या कपाटद्वयसम्मीलनारपदाभ्यां प्रत्यवरत्नताविति कञ्चिद्धि
 कसेतावित्यर्थः तेन विघाटनार्थकमिदं न पुनरुक्तमिति 'विहाडेत्ता' विघाटय 'जेणेव
 भरहे राया तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव भरतो राजा तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छत्ता'
 उपागत्य 'जाव भरह राय करयल परिगहियं जएणं विजएणं वद्धावेड' सुपेणः सेनापति
 यावत् भरतं राजामं स्वरत्रामिनम्, करतलपरिगृहीतं दशनख गिरमावतं मस्तके अञ्ज
 लिङ्कृत्वा जयेन विजयेन-जयविजयशब्दाभ्यां वद्धयति-अशीर्वचनं ददाति 'वद्धावे-
 त्ता एवं वयासी' वद्धयित्वा एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'विहाडिया णं
 देवाणुप्पिया निमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाए जणं देवाणुप्पियाणं पियं
 णिवेएमो पियं मे भवउ' विघाटितौ-उत्पाटितौ खलु हे देवानुप्रियाः । हे प्रभवः । तमि-
 स्नागुहायाः दक्षिणात्यस्य दक्षिणभागवत्तिनो द्वारस्य कपाटौ एतत्खलु देवानुप्रियाणां
 देवानुप्रियेभ्यः प्रभुभ्यः प्रियं निवेदयामः, अत्र निवेदकस्य सेनापतेरेकत्वात् क्रियायाम्

यह सूत्र यहा कहा गया है तो इसके अनुसार 'सगाइ सगाइ ठाणाइ' यहा पर पचमी
 विभक्ति ममस्त कर वे दातो किवाइ अपने अपने स्थान से कुछ खुलगये ऐसा ममज्ञना चाहिये,
 इस कारण पुनरुक्ति का दोषयहां नहीं आता है । (विहाडेत्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवा-
 गच्छइ) किवाइ को खोलकर फिर वह सुषेण सेनापति जहाभरत राजा थे वहा पर गया
 (उवागच्छत्ता जाव भरह राय करयलपरिगहियं जएणं विजएणं वद्धावेड) वहां जाकर
 महाराजा उसने यावत् भरत राजा को दोनो हाथ जोड़कर जय विजय शब्दो द्वारा वधाई दी
 (वद्धावेत्ता एव वयासी) वधाई देकर उसने उनसे ऐसा कहा (विहाडियाण देवाणुप्पिया ।
 तिमिसगुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडा एजणं देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो पियं मे भवउ)
 हे देवानुप्रिय । निमिसगुहाके दक्षिदिशवर्ती द्वार के किवाड उद्धाटित हो चुके है मैं इस देवाणु-
 प्रिय के प्रिय अर्थको आप से निवेदन करता हूं यह आप के लिए इष्ट सपादक होवे "णिवे-

कडेवाभा आण्यु छे ते सुजण (सगाइ सगाइ ठाणाइ) अही पंचमी विभक्ति समष्टने
 ते भन्नेकभाडे पोताना स्थान पर थी थोडा उधडी गया जेभ समज्जु आकारणुथी अही
 पुनरुक्ति दोष थतो नथी (विहाडेत्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) कभाडेने
 उद्धाटित करीने पछी ते सुषेणु सेनापति जया भरत राजा हुतो त्या गथे (उवागच्छत्ता
 जाव भरत राय करयलपरिगहियं जएणं विजएणं वद्धावेड) त्यां जधने तेणु यावत्
 भरत राजने भन्ने हाथ जोडीने जय विजय शब्द वडे वधामथी आपी (वद्धावेत्ता एव
 वयासी) वधामथी आपीने तेभने आ प्रभाणु निवेदन करु "विहाडियाण देवाणुप्पिया तिमिस
 गुहाए दाहिणिल्लस्स दुवारस्स कवाडाए जणं देवाणुप्पियाणं पियं णिवेएमो पियं मे भवउ)
 हे देवानुप्रिय ! निमित्त गुडाना दक्षिणु दिग्गतीं क्षरना कभाडे उद्धाटित थध गयां छे,
 हु देवानुप्रिय ! आपश्रीना प्रिय अर्थने आपश्री समस्त निवेदन करु छु जे आपश्री भाटे
 उष्ट संपादक थाल्यो 'णिवेएमो' भां जे अहुवचनने। प्रथेग करवासा आवेद छे ते समस्त

एकवचनस्यौचित्येन यन्निवेदयाम इत्यत्र बहुवचनं तत्सपरिकरस्यापि आत्मनो निवेदकत्व
ख्यापनार्थं तच्च बहुनामेकवाक्यत्वेन प्रत्योत्पादनार्थम् अथवा अस्मदो द्वयोश्चेति सूत्रेण
एकत्वे द्वित्वे च विवक्षिते बहुवचनम् इति बोध्यम् ऐतत्, प्रियम् इष्टं-अमीष्ट भे भवतां
भवतु ततो भरतः किं कृतवान् इत्याह—‘तएणं’ इत्यादि ‘तएणं से भरहे राया सुसेणस्स
सेणावइस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्टतुट्ट चित्तमाणंदिए जाव हियए सुसेणं
सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ’ ततः—कपाटोद्घाटननिवेदनानन्तरं खलु स पदखंडा-
धिपति भरतो राजा सुषेणस्य सेनापतेः अन्तिके समीपे एतमर्थं कपाटोद्घाटन-
निवेदनानन्तरं खलु स भरतो राजा सुषेणस्य सेनापतेः अन्तिके समीपे एतमर्थं
कपाटोद्घाटनारूपं श्रुत्वा निश्चम्य हृदये अवधार्य हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः यावद्हृदयः
सुषेणं—तन्नामानं सेनापतिं सत्कारयति बहुमूल्य द्रव्यादिभिः सन्मानयति प्रियवचो
भिः, सन्मानयति प्रियवचोभिः ‘सक्कारित्ता सम्माणित्ता’ सत्कार्यं सन्मान्य च
‘कोट्टुंबियपुरिसे सद्दावेइ’ कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति आह्वयति ‘सद्दावित्ता एवं

एमो” मैं जो बहुवचन का प्रयोग किया गया है वह समस्तपरिकर सहित सेनापति के निवेदन
करने को प्रकटकरने के लिए किया गया है अर्थात् सब परिवार मिलकर सेनापति के मुखसे यह
शुभ संवाद का अपनेराज भरत से निवेदन का रहे हैं ऐसा जानना चाहिए अथवा—“अस्मदो
द्वयोश्च” इस सूत्र से एकत्वअथवा द्वित्व विवक्षित होने पर भी बहुवचन प्रयुक्त होजाता
है. इसके अनुसार यहाँ बहुवचन प्रयुक्त हुआ है। (तएणं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स
अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्ट तुट्ट चित्तमाणदिए जाव हियए सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ
सम्माणेइ) इसके बाद महतराजाने सुषेण सेनापति से इस अपने अमीष्ट अर्थ संपादित होने
की बात सुनी तो वह उसे सुनकर और उसे हृदय से निश्चिय कर हृष्ट तुष्ट चित्तानन्दित हुआ
यावत् उसका हृदय आनन्द से उछलने लगा और उसने उसी समय सुषेणसेनापति का बहुमूल्य
द्रव्यादि प्रदान करके सत्कार किया और प्रियवचनों द्वारा उसका सन्मान किया (सक्का-
रित्ता सम्माणित्ता कौटुंबियपुरिसे सद्दावेइ) सत्कार सन्मान करके फिर उसने कौटुम्बिक पुरुषों

परिकर सहित सेनापतिना निवेदन करवा भाटे प्रकट करवाभा आवेक छे ओटले के समस्त
परिकर भणीने सेनापतिना सुभधी को शुभ संवाद पोवाना राजा भरतने निवेदन करे छे
आम समग्रजु नेछे को अथवा अस्मदोद्वयोश्च को सूत्रधी ओकत्व अथवा द्वित्व विवक्षित
होवा छताओ बहुवचन प्रयुक्त थज लय छे को सुभय अडी बहुवचन प्रयुक्त थयेक छे
(तएणं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा निसम्म हट्ट तुट्ट
चित्तमाणंदिए जाव हियए सुसेण सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ) तयार भाक भरत राजाओ
सुषेण सेनापतिना सुभधी स्वाभिष्ट अर्थ संपादित थवा सुभधी वात साभणी अने ते
थछी तेवात हृदयमा निश्चिय करीने ते राजा हृष्ट—तुष्ट चित्तानन्दित थये यावत् तेउं
हृदय आनंदधी छिगवा लाग्यु अने तेणे तेज समथे सुषेण सेनापतिना बहुमूल्य द्रव्य
आदिप्रदान करीने सत्कार क्ये अने प्रियवचनोधी तेउ सन्मान क्युं. (सक्कारित्ता

वयासी' शब्दयित्वा आह्वय एं वक्ष्यमाण प्रकारेण अवादीत् ऊक्तवान् 'खिप्पामेव भो देवानुप्पिया।' क्षिप्रमेव भो देवानुप्पियाः ! 'आभिसेरुं हत्थिरयणं पडिकप्पेह' अभिषेकयोग्य-अभिषेकयोग्य पट्टहस्तिनं रां हस्तिप्रधानमित्यर्थः हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत् सञ्जीकुरुत् 'हयगयरहपवर तहेव जाव अंजनगिरिकूडसण्णिमं गयवर णरवई दूरुडे' हयगजरथ प्रवर तथैव यावत् अञ्जनगिरिकूटमन्निभम् अञ्जनपर्वतकूटवत् कृष्णवर्णमुच्चं च गजवरं हस्तिश्रेष्ठं नरपतिः भरतो राजा दूरुडे आरूढः सन् यत्कृतवान् तदाह ॥ सूत्र १४ ॥ गजरूढः सन् नृपतिः यत्कृतवान् तदाह - 'तए णं' इत्यादि ।

मूलम्-तएणं से भरहे राया मणिरयणं परामुसइ तोतं चउ रंगुलप्प-माणमित्तं च अणग्घं तांसिअं छलंसं अणोवमजुइं दिव्वं मणिरयण पतिसमं वेरुलिअं सव्वभूअकंतं जेणय मुद्धागएणं दूक्ख ण किंचि जाव हवइ आरोगे य सव्वकालं तेरिच्छिअ देवमाणुसकयाय उवसग्गा सव्वे ण करेति तस्स दुक्खं संगामेऽपि असत्थवज्झो होइ णरोमणिवरं धरेतो ठिय जोव्वण केसअवड्डियणहो हवइ य सव्वभयविप्पमुक्को तं मणिरयणं गहाय से णरवई हत्थिरयणस्स दाहिणिल्लाए कुंभोए णिक्खिवइ तएणं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे जाव अमरवइसण्णिभाए इद्धीए पहियकित्ती मणिरयणकउज्जोए चक्करयणदेसियमग्गे अणे-गरायसहस्साणुयायमग्गे महया उक्किड्ढ सीहणाय बोलकलरवेणं समु-दूदरवभूअंपिव करेमाणे करेमाणे जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले

को बुलाया- (सदावित्ता एव वयासी) बुलाकर उनसे उसने ऐसा कहा- (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया । आभिषेकं हत्थिरयणं पडिकप्पेह) हे देवानुप्पियो । तुम बहुत ही जल्दी आभिषेक्य हस्तिरत्न को- अभिषेक योग्य प्रधान हस्ति को सजाओ (हय गयरह पवर तहेव जाव अंजन-गिरि कूडसण्णिमं गयवइ णरवई दूरुडे) इसके बाद हय, गज, रथ प्रवर यावत् अंजनगिरि के कूट जैसे श्रेष्ठ हस्ती पर भरतराजा आरूढ हुआ -॥१४॥

सम्मानिता कोडंबिय पुरिसे लद्धवेह) सत्कार तेमथ स-मान करीने पछी तेणे कीटुं भिक्खु पुग्घोने भोलाया (सदावित्ता एव वयासी) भोलायीने ते पुग्घोने तेणे आ प्रभाणे कल्लुं (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! आभिषेकं हत्थिरयणं पडिकप्पेह) हे देवानुप्पियो ! तमे अहुं थीम आभिषेक्य इत्थं रत्नने अभिषेक योग्य प्रधान हस्तीने सुसज्जित करे। (हयगयरह पवर तहेव जाव अंजनगिरि कूडसहण्णिमं गयवइ णरवई दूरुडे) त्थार भाह हय, गज, रथ, प्रवर यावत् अंजन गिरिना कूट भेवा श्रेष्ठ हस्ती उपर भरतराज आरूढ थयो. ॥ सू १४ ॥

दुवारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तिमिसगुहं दाहिणिल्लेणं दुवारेणं
 अईइ ससिव्व मेहंधयारनिवहं । तएणं से भरहे राया छत्तलं दुवालसंसिअं
 अट्टकण्णियं अहिगरणिसंठियं अट्ट सोवण्णिय कागणिरयणं परामुसइत्ति
 तएणं तं चउरंगुलप्पमाणमित्तं अट्टसुवण्णं च विसहरणं अउलं चउरंस-
 संठाणसंठिअं समतलं भाणुम्माणजोगा जतोलागे चरति सब्वजणपन्नवगा
 णइव चंदो णइव तत्थ सूरे ण इव अग्गी णइव तत्थ मणिणो तिमिरणासेंति
 अंधयारे जत्थ तयं दिव्वं भावजुत्तं दुवालसजोयणाइ तस्स लेसाउ विवद्धंति
 तिमिरणिगरपडिसेहिआओ रत्तिं च सब्वकालं खंधावारे करेइ आलोअं
 दिवसभूअं जस्स पभावेण चक्कवट्टी तिमिसगुहं अतीति सेण्णसहिए
 अभिजेतुं वितियमद्धभरहं रायवरे कागणिं गहाय तिमिसगुहाए पुरच्छि-
 मिल्लपच्चत्थिमिल्लेसुं कडएसुं जोयणंतरियाइं पंचधणुसयविकखंभाइं
 जोयणुज्जोयकराइं चक्कणेमी संठियाइं चंदमंडलपडिणिकासाइं एगूण
 पण्णं मंडलाइ आलिहमाणे आलिहमाणे अणुप्पविसइ तएणं सा तिमिस
 गुहा भरहेणं रण्णा तेहिं जोयणंतरिएहिं जाव जोयणुज्जोयकरेहिं एगूण
 पण्णाए मंडलेहिं अलिहिज्जमाणेहिं आलिहिज्जमाणेहिं खिप्पामेव
 आलोगभूया दिवसभूया जाया यावि होत्था ॥सू०१५॥

छाया—ततः खलु स भरतो राजा मणिरत्नं परामृशति 'तोतं' इति सम्प्रदायगम्यम्
 चतुरंगुलप्रमाणमितं च अनर्घम् , व्यस्रम् , षडंसम्, अनुपमतिद्युति दिव्यम् , मणिरत्नपति-
 समम् , वैदूर्यं सर्वभूतकान्तम् , येन च नृद्धंगतेन न दुःखं किञ्चित् यावद् भवति आरोग्यं
 च सर्वकालम् , तिर्यक्त्वेव मनुष्यकृताः उपसर्गाश्च सर्वे न कुर्वन्ति तस्य दुःखम् , समामेऽपि
 अशस्त्रवध्यो भवति 'नरो मणिवरं धरन् स्थितयौवनकेशावस्थितनखी भवति च सर्वभय-
 विप्रमुक्तः तत् मणिरत्नं गृहीत्वा स नरपतिः हस्तिरत्नस्य दाक्षिणात्ये कुम्भे निक्षिपति ,
 ततः खलु स भरताधिपो नरेन्द्रो हारावस्तुत सुकृतरतिदवक्षस्कः यावत् अमरपतिसन्नि-
 भया क्रद्धया (युक्तः) प्रथितकीर्त्ति मणिरत्नकृतोद्योत चक्ररत्नदेशितमार्गः अनेकराज सह-
 स्त्रानुयातमार्गं महतोत्कृष्टसिंहनादबोलकलकलरवेण समुद्ररवभूतामिव कुर्वन् यत्रैव तमि-
 स्नागुहाया दाक्षिणात्ये द्वाः तत्रैवोपागच्छति उपागत्य तमिस्नागुहां दाक्षिणात्येन द्वारेणा-
 स्येति शशीव मेघान्धकारनिवहम् । ततः खलु स भरतो राजा षट्पल द्वादशाक्षरमष्टक-
 णिकम् अक्षिरणिसंस्थितम् अष्ट सौवर्णिकम् काकणीरत्नम् परामृशति । ततः खलु तत् चतु-
 रङ्गुलप्रमाणमितम् अष्टसुवर्णं च विषहरणम् अतुलं चतुरस्रसंस्थानसंस्थितं समतलं मानोन्मा-

नयोगाः यतो लोके चरन्ति सर्वजनप्रजापकाः नापि नन्दो नरा तत्र सूर्यं नराऽग्निःनर्वा
 तत्र मणयः तिमिरं नाशयन्ति अन्धकारे यत्र तक्तुं दिव्य प्रभावयुक्तं द्वात्रिंशद्योजनानि तस्य
 लेख्या विवर्द्धन्ते तिमिरनिकरप्रतिपेधिका रत्नं च सर्वकालं रक्तधावारे वारोति दिवस
 भूतम् आलोकं करोति ' यस्य प्रभावेण चक्रवर्ती तमिस्रा गुहाम् अत्येति सैन्यमहिना द्वि
 तीयमर्द्धभरतम् अभिजेतुम् राजपरः काष्णो गृहोत्वा तमिस्रागुहाया. पोरस्त्यपाश्चात्ययो
 कटकयोः योजनानन्तरितागि पञ्चधनुः शतत्रिंशद्भागि योजनोद्यानकराणि चक्रनेमि सस्थि
 तानि चन्द्रमण्डल प्रतिनिकाशानि एकोनपञ्चाशत् मण्डलानि आत्रिजन् अनुप्रविशति, तत
 क्लु सा तमिस्रागुहा भरतेन राज्ञा तैर्याजनान्तरितैः गवद् योजनोद्यातकरैरेकोनपञ्चाजना
 मण्डलैः आलिख्यमानैः आलिख्यमानैः क्षिप्रमेव आलोक भूता उद्योतं भूता दिवसभूता
 जाता चाप्यभवत् ॥ सू. १५ ॥

टीका-‘तएणं से’ इत्यादि । ‘तएणं से भरहे राया मणिरयणं परामुसइ’ ततो
 गजारोहणानन्तरं खलु स भरतो राजा मणिरत्न परामृशति हस्तेन स्पृशति किं विशिष्ट
 तदित्याह-‘तोतं, इति सम्प्रदायगम्यं विशिष्टाकार सम्पन्नम् सुन्दरम् तथा ‘चउरगुलपमा-
 णमित’ चतुरगुलप्रमाणमात्रं च तत्र चतुरगुलप्रमाणा मात्रा दैर्घ्येण यस्य तत्तथा चशब्दाद्
 द्वयंगुलपृथुलमिति प्राह्यम् तदेवाह ‘चउरगुलो दुअंगुलपिहुलोअमणी’ इति ‘अणघ,
 अनर्धम्-अमूल्यं न केनापि तस्यार्थः मूल्यं कर्तुं शक्यते इत्यर्थः पुनः कीदृशम् ‘तंसिअं’

हाथी के ऊपर बैठकर भरतराजाने क्या किया सो कहते हैं—

तएणं से भरहे राया मणिरयणं— इत्यादि सू-१५—

टीकार्थ-‘तएण से भरसे राया मणिरयणं परामुसइ’ भरत राजा ने जब कि वह गज श्रेष्ठ पर
 अरूढ हो चुका तत्पश्चात् मणिरत्न को छुआ यह मणिरत्न -(तोतं चउरंगुलपमागमितं च अणघं
 तंसिअं छलंस अणोवमजुइ दिव्वं मणिरयणपतिसम वेरुलिय सव्वभूयकंतं) तोत था इम पद का अर्थ
 सम्प्रदाय गम्य है अर्थात् विशिष्ट आकार से युक्त सुंदरता वाला तथा प्रमाण में यह चार अंगुल का
 था, अर्थात् यह चार अंगुल का लम्बा था और दो अंगुल का मोटा था क्योंकि ‘चउरंगुलो
 दु अंगुल पिहुलयमणी’ ऐसा कहाग या है. अनर्थ्य था-इसका मूल्य नहीं था - अमूल्य था-

हाथी के ऊपर बैठकर भरत राजाने जो कार्य किये तेनुं वखुंन करे छे.

टीकार्थ-‘(ते एणं से भरहे राया मणिरयण इत्यादि) सू १५

(त एण से भरहे राया मणिरयण परामुसइ) अर्थसे भरत राजा गज श्रेष्ठ हस्ती
 रत्न पर आइठ थध गयो त्थार णाह तेण्णे भखिरत्नने। स्पशं कथेो अे भखिरत्न (तोतं
 चउरंगुलपमाणमित्त च अणघ तंसिय छलस अणोवमजुइ दिव्वं मणिरयणपतिसम
 वेरुलियं सव्वभूयकंतं) तोत इतु ‘तोत’ पहने। अर्थ सम्प्रदाय गम्य छे तेमअ प्रमा-
 णमा अे भखिरत्न थार अशुल अेटलु इतु अटवे के अे थार अशुल अेटलुं वाणु अने
 अे अशुल प्रमाण माहु इतु केअके ‘चउरंगुलो दुअंगुल पिहुलयमणी, आ प्रमाणे उडेवाभा
 आणु छे अे भखिरत्न अनर्थ्य इतु. अेनी कीमत थध शके तेम न इतु अर्थात्

त्र्यस्रम् तिस्रोऽस्रयः क्रोटयो क्रोणाः यत्र तत्तथा ईद्रशं सत् 'छलंस पडस्रं पट्कोटिकम् लोकेऽपि प्रायो वैदूर्यस्य मृदङ्गाकारत्वेन प्रसिद्धत्वान्मध्ये उन्नतवृत्तत्वेनान्तरितस्य सहजपिद्धस्य उभयान्तरितोऽस्त्रिपस्य सत्त्वात् ननु पडस्रमित्यनेनैव सिद्धे त्र्यस्र पडस्रमित्युक्ति' किमर्था इति चेन्न उभयोरन्तरयो निरन्तरक्रोटिपट्टकभवने नापि पडस्रनायाः सम्भवात् तद्व्यपच्छेदार्थम् त्र्यस्र सत् पडस्रमित्युक्तेः तथा 'अणो वपजुइ' अनुपपद्युति अनुपमा द्युति र्यस्य तत्तथा पुनः कीदृशम् 'दिव्यं' दिव्यम्-मणिरयण-पतिपमं' मणिरत्नपतिसमम् मणिरत्नेषु पूर्वाक्तेषु पतिसमम् श्रेष्ठम् सर्वोत्कृष्टत्वात् 'वेरु लिअं' वैदूर्यम् वैदूर्यजातीयम् 'सव्वभूयकंतं' सर्वभूतकान्तम् सर्वेषां भूतानां कान्तं-काम्यम् सकलजनमनोहाररुम् इत्यर्थः 'जेणय मुद्वागएणं दुक्खं ण किञ्चि जाव हवइ' येन च मुद्द-गतेन शिरोधृतेन हेतुभूतेन न किञ्चिद् यावद् दुःखं भवति जायते 'आरोगे य सव्व कालं, आरोग्यं नैरुअं च सर्काल भवति, तेरिच्छ अ देवमाणुसकयाय उवसग्गा सव्वेण

कोई इसकी कोमत नहीं कर सकता था, आहार मे यह तिक्रोण था-निखूटा था परन्तु यह षट् पेडा था लोक में भी प्रायः वैदूर्यमणि मृदङ्गाकार रूप से प्रसिद्ध है इससे बीच में उन्नत वृत्त हो जाने के कारण आजु बाजु मे त न तीन कोटिका सदभाव स्वभावतः आजाता है, यहाँ ऐसी आशंका तो होसकती है कि जब यह षट्पेडा कहा गया है तो फिर इसे तिखूटा कहने का क्या कारण है ? तो इसका उत्तर यह है कि आजु बाजु में भी षट् पेडता का सद्भाव इस तरह से न बन जावे इस बात को निराकरण करने के लिये "त्र्यस्र" पद स्वतन्त्र रूप से कहा गया है, अर्थात् यह तिखूटा होता हुआ भी षट् पेडा था द्युति अनुपम थी यह दिव्य था मणि एव रत्नों में यह सर्वोत्कृष्ट होने से उनका पतिसम था यह वैदूर्यजाती का था, यह सर्वभूत-कान्तथा, - समस्त प्राणियों की चाहना के योग्य था-(जेण य मुद्वागएण दुक्खं न किञ्चि जाव हवइ, आरोगे अ सव्वकालतिरिच्छिय देवमाणुसकया य सव्वे ण करंति तस्स दुक्खं) इसे मस्तक

अमुस्य ङतुं ज्येनी केडपणुरीते किंमत थधंशकतीनडती आकारमा जे त्रिकोणु ङतुं पणु ज्ये षट्पेडा ङतु डोकरमा पणु वैदूर्यमणि मृदङ्गाकार रूपमां प्रसिद्ध छे अ ज्येथी अ वज्येथी उन्नत वृत्त डोवाथी अन्ने तरक्षथी त्रणुत्रणु कोटीना सहभाव स्वभावतः आवी जय छे, अत्रे ज्येवी आशंका थधं शके तेम छे के ज्यारे ज्ये षट्पेडा कडेवामा आवेड छे, तो पछी आने त्रणु पुणुवाणु शा कारणथी कडेवामा आवेड छे ? तो आ शंकाको जवाप आ प्रमाणे छे के अन्ने तरक्ष षट्पेडतानी सहभावना थधं न जय तेना भाटे अ 'त्र्यस्र' पडतु कथन अत्रे स्वतन्त्र रूपमा करवामा आवेड छे जेटले के आ त्रणु पुणुथु' ङतु छतां षट्पेडा ङतु आ रत्ननी द्युति अनुपम डती ज्ये दिव्य ङतु मणि तेमअ रत्नोमा ज्ये सहोत्कृष्ट डोवा अडल पतिसम ङतु ज्ये वैदूर्यं जतिडु ङतु ज्ये सर्व भूतकान्त ङतुं समस्त प्राणीज्योनी आडना योग्य ङतु (जेणय मुद्वागएणं दुक्खं न किञ्चि जाव हवइ आरोगेअ सव्वकालतिरिच्छिय देवमाणुसकया य सव्वे ण करंति तस्स दुक्खं) ज्ये रत्नने मस्तक उपर धारणु करवाथी धारणु कर्ता ने केड पणु जतनी तकलीके के थिता

करंति तस्स दुःखं' तिर्यङ् देवमनुष्यकृताः च शब्दस्य व्यवहितसम्बन्धादुपसर्गाश्च
सर्वे न कुर्वन्ति तस्य मणिरत्नधारकस्य दुःखम् 'संगामे वि असत्थवज्झो होइ' संग्रा-
मेऽपि अशस्त्रवध्यो भवति तत्र संग्रामेऽपि बहुविरोधिसमरे अल्पविरोधियुद्धे वा न
शस्त्रवध्योऽशस्त्रवध्यः शस्त्रैर्वध्यो न भवति. 'णरो मणिवर धरंतो ठिय जोव्वण केव अवट्टिय
णहो हवइ सव्वभयविप्पमुक्को' नरो मणिवर धरन् स्थितयौवनकेशावस्थितनखो
भवति च सर्वभयविप्रमुक्तः तत्र नरो मणिवरं मणिश्रेष्ठ धरन् दधत् स्थितविन-
श्वरभावमनापन्नं यौवन युवत्वं यस्य स तथा केशैः सहावस्थिताः अवर्द्धिष्णवो नखा
यस्य स तथा स्थितयौवनश्चासौ केशावस्थितनखश्चेति स्थितयौवनकेशावस्थितनखः
तथा सर्वभयविप्रमुक्तः सकलत्रासविमुक्तश्च भवति. 'तं मणिरयणं गहाय से णरवई हत्थिर
यणस्स दाहिणिल्लाए कुंभीए णिक्खिवइ' तत् पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट मणिरत्नं गृही
त्वा इस्ते गृहीत्वा स नरपतिः भरतः इस्तिरत्नस्य गजश्रेष्ठस्य दाक्षिणात्ये दक्षिण-
भागवर्तिनि कुम्भे निक्षिपति निबध्नाति कुंभीए इत्यत्र स्त्रीत्वं प्रकृतत्वात् 'तएणं से
भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे' ततः खलु स भरताधिपो नरेन्द्रः नरपतिः

धारण कर्ता को किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होता है अर्थात् इसके मस्तकपर धारण करते-
समस्त दुःख धारण कर्ता के नष्ट हों जाते हैं सदा काल धारण कर्ता नीरोग रहता है इममणि-
रत्न को धारण करनेवाले के ऊपर किसी भी समय तिर्यञ्च देव और मनुष्य कृत उपसर्ग
जरा सा भी कष्ट नहीं दे सकते हैं. (संगामे वि असत्थवज्झो होइ णरो मणिवरं धरंतो ठियजो-
व्वणकेस अवट्टियणहो हवइ अ सव्वभयविप्पमुक्को) संग्राम में भी बड़े से बड़े युद्ध में भी इस
रत्न को धारण किये हुए मनुष्य शस्त्रों द्वारा भी बध्यनहीं हो सकता है धारण कर्ता का यौवन
सदाकाल स्थिर रहता है इसके नख और केश नहीं बढ़ते हैं. यह सर्व प्रकार के भय से रहित
होता है (तं मणिरयणं गहाय से णरवई हत्थिरयणस्स दाहिणिल्लाए कुंभीए णिक्खिवइ) इस प्रकार
के इन पूर्वोक्त विशेषणों वाले मणिरत्न को लेकर उस नरपतिने उसे इस्तिरत्न के दाहिने कुम्भ
में बांध दिया (तएणं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे जाव अमरवइ सण्णिभाए

थती नथी अट्ठे के अने धारण करता अ धारण करना सर्व दुःखो नाश पाये छे
धारण करना सदाकाल निरोगी रहे छे अे मणि रत्नने धारण करना उपर के
पक्ष समथे तिर्यञ्च देव अने मनुष्यकृत उपसर्गोनी अक्षर थती नथी (संगामे वि असत्थ-
वज्झो होइ णरो मणिवर धरंतो ठियजोव्वणकेस अवट्टियणहो हवइअ सव्वभय-
विप्पमुक्को) संग्राममा पणु अय करमा अय कर युद्ध मा पणु अे रत्नने धारण करना
मनुष्य शस्त्र वडे पणु वध्य थर्थ शकते नथी धारण करनारतु यौवन सदा काल स्थिर रहे
छे तेना नप अने बाण वधता नथी ते सर्व प्रकारना अथेथी सुकत रहे छे (तं मणि-
रयण गहाय से णरवई हत्थिरयणस्स दाहिणिल्लाए कुंभीए णिक्खिवइ) आ प्रभावे
ते पूर्वोक्त विशेषणो वाणा मणिरत्नने लधने ते नरपतिअे इस्ती रत्नना दक्षिण तरङ्गना
कुम्भ स्थगमा आधी दीधु (तएणं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए सुकयरइयवच्छे

हारावस्तुतः धृतमुक्तादिहारः पुनः कीदृशः 'सुकय रइयवच्छे' सुकृतरतिद्वक्षस्कः सुकृतं सुरोत्या रचितम् चतुष्पष्टि शरहारादिभिः भतएव रतिद् प्रमोदजनकं वक्षो यस्य स तथा पुनश्च 'जात्र आमरवइ सन्निभाए इक्षीए पहियकिक्ती मणिरयणकउज्जोए' तत्र अमरपति सन्निभया-इन्द्रतुल्यया ऋद्ध्या-आभरणादिरूपया लक्ष्म्या युक्तः तथा प्रथितकीर्तिः विख्यातयशाः तथा मणिरत्नकृतोद्योतः मणिरत्नकृतप्रकाशःपुनश्च कीदृशो राज भरतः 'चक्ररयणदेसिय मग्गे अणेगराय सहस्साणुयायमग्गे' चक्ररत्नदेशितमार्गः चक्ररत्नेन देशितः प्रदर्शितो मार्गो यस्मै स तथा, तथा अनेकराजसइसत्तानुगातमार्गः अनेकराजसइ चैरनुचलितमार्गः चक्ररत्नप्रदर्शितानुसारेण गच्छतो भरतस्य अनु पश्चात् मुकुटधारिण अनेके राजानः प्रचलन्तीत्यर्थः पुनश्च कीदृशः 'महया उक्किट्ठ सीहणाय वोळकलकलरवेणं समुद्रवभूय पिव करेमाणे जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ' महतोत्कृष्ट सिंहादवांलकलकलरवेण समुद्रवभूतामिव कुर्वन् कुर्वन् यत्रैव तमिस्रागुहाया दाक्षिणत्यं द्वारं तत्रैवोपागच्छति तत्र महता विशालेन उत्कृष्टः सिंहादः वोळो अव्यक्तध्वनिः) वर्णरहितध्वनि तथा कलकलश्च तदितरोव्यक्तध्वनिः तल्लक्षणो यो रवः शब्दः तेन समुद्रवं भूतमिव समुद्रव प्राप्तमिव गुहामिति गम्यम्, अत्र भूगतौ इति सौत्रो धातुः तस्मात्क प्रत्यये भूतामिति कुर्वाणः२ यत्रैव तमिस्रागुहायाः दाक्षिणत्यं-दक्षिण-भागवर्ति द्वारं तत्रैवोपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य स राजा भरतः 'तिमिसगुहं

इक्षीए पहियकिक्ती मणिरयणकउज्जोए चक्ररयणदेसियमग्गे अणेगरायसहस्साणुअयमग्गे महया उक्किट्ठ सीहणायवोळकलकलरवेणं समुद्रवभूयपिव करमाणे २ जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ) गले में वारण किया है मुक्तादिका हार जिसने, तथा चौ सठ लरके हार से जिसका वक्षस्थल प्रमोदजनक हो रहा है यावत् अमरपति को जैसी ऋद्धि से जिसकी कीर्ति विख्यात हो रही है आभरणादि रूप कान्ति से जिसके चारो ओर उद्योत फैल रहा है. चक्ररत्न जिसे गन्तव्य मार्ग का निर्देश कर रहा है. जिसके पीछे पीछे हजारों राजा चल रहे हैं जोर जोर से सैन्य जनादि द्वारा किये गये समुद्र के रव जैसे सिंहाद के शब्दों से अव्यक्त शब्दों से और कल कल रव से दिङ्मडल को व्याप्त करता करता वह भरत राजा जहां पर तिमिस्रागुहा का दक्षिणदिगवर्ती द्वार था वहां पर आया (उवागच्छिता तिमिसगुहं दाहिणिल्लेणं

जात्र अमरवइ सण्णिभाया इक्षीए पहियकिक्ती मणिरयणकउज्जोए चक्ररयणदेसिय मग्गे अणेगरायसहस्साणुयायमग्गे महया उक्किट्ठसीहणाय वोळकलकलरवेणं समुद्रवभूयं) पिव करेमाणे २ जेणेव तिमिसगुहाए दाहिणिल्ले दुवारे तेणेव उवागच्छइ) श्रीवार्तां जेषु मुक्तादिनो डार धारणु कर्ये छे तेमण ६४ लडीना डारथो जेनु वक्षस्थण प्रमोदजनक थध रहुं छे. यावत् अमरपति जेवी ऋद्धिथी जेनी कीर्ती विख्यात थध रही छे आभरणादि-कतिथी जेनी आरे आणुजे प्रकाश व्याप्त थाय छे जेने गन्तव्य मार्ग थक निर्दिष्ट करी रहेल छे जेनी पाछण पाछण हुजारे राजज्यो आलो रहा छे जेना सैन्यना प्रयाणुथी सधुध तेमण सिंहाद जेवा अवाणथी दिग् भंडण व्याप्त थध रहुं छे जेवा ते भरत राज

दाहिल्लेण दुवारेण अईइ ससिन्व मेहंधयारनिवहं' तमिस्रागुहां दाक्षिणात्येन द्वारेणा-
त्येति प्रविशति शशीव चन्द्रइव मेधान्धकारनिवहं मेघजनितान्धकारसमूहं शशीव चन्द्रइव
प्रविशतीत्यर्थः 'तएण से भरहे राया छत्तलं' ततः गुहाप्रवेशानन्तरं खलु म भरतो
राजा षट् तल्लम् चत्वारि चतस्रु दिक्षु द्वे तूर्ध्वमधश्चेत्येवं षट् संख्यकानि तल्लानि यत्र
तत्तथा तानि च त्रिपध्यखण्डरूपाणि यैर्भूमौ अधिपमनया तिष्ठन्ति इति, पुनः कीदृशम्
'दुवालसंसिअं' द्वादशाक्षम् 'अट्टकण्णियं' अष्टकर्णिकम् कर्णिकाः क्रोणाः यत्र अश्रित्रयं
मिलति तेषां चाधः उपरि प्रत्येकं चतुर्णो सद्भावात् अष्टकर्णिकम् 'अट्टिगरणिसंठिअं'
अधिकरणिसंस्थितम् अधिकरणिः सुवर्णकारोपकरणं तद्वत् संस्थितं संस्थानं यस्य तत्तथा,
तत् सदृशाकार समचतुरस्रत्वात्, आकृतिस्वरूपं निरूप्य अत्य तौल्यमानमाह—'अट्टसोव-
ण्णियं' अष्ट मौर्वणिक्कम् अष्टसुवर्णमानं यस्य तत्तथा, तत्र सुवर्णमानमिदम् चत्वारि मधुर-
तृणफलान्येकः श्वेतसर्षपः षोडश श्वेतसर्षपा एक धान्यमापफळ द्वे धान्यमापफळे एकाः
गुठ्ठा पठ्चगुठ्ठाः एकः कर्ममाशः षोडश कर्ममापकाः एकः सुवर्णः' इति एतादृशै
रष्टमिः सुवर्णैः काकणीरत्नं निष्पद्यते इति चाधिकारे 'एतानि च मधुरतृणफलादीनि
भरतचक्रवर्तिकालसम्भवीन्येव गृह्णन्ते, अन्यथा कालभेदेन तद्वैषम्यसम्भवे काकणीरत्नं
सर्वचक्रिणां तुल्यं न स्यात्, तुल्यं वेष्यते तदि' त्येतस्मादनुयोगद्वारवृत्तिवचनात् एत-
द्देशीयादेव स्थानाङ्गवृत्तिवचनात्

'चउरगुलो मणी पुण तस्सद्धं चेष होइ विच्छिण्णो ।

चउरंगुलप्पमाणा सुवण्णवर कागणी नेया' ॥१॥

द्वारेण अईइ ससिन्व मेहंधयारनिवहं) वहां आकरके वह जैसे चन्द्र मेघ जनित अन्धकार में
प्रविष्ट होता है. उसी तरह से तिमिस्रागुहा में दक्षिण द्वार से प्रविष्ट हुआ (तएण से भरहे राया
छत्तलं दुवालसंसिअं अट्टकण्णियं अट्टिगरणिसंठिअं अट्टसोवण्णियकागणिरयण परामुसइ) इसके
बाद उस भरत राजा ने छह तलवाले— चार दिशाओं के चार तल ओर ऊपर नीचे के दो तल
इस प्रकार से छह तलवाले १२ कोटीवाले आठ कोनों वाले, अधिकरिणो सुवर्णकार जिस लोहे
की बनी हुई पिण्डी पर धरकर सुवर्ण चांदी आदी को हथोड़े से कूटता पीटता है— उस पिण्डी
के जैसे अकार वाले आठ वर्णों का जितना वजन होता है उतने वजन वाले ऐमा काकणी

न्यां तिमिस्रा गुहाय दक्षिण दिग्पतीय द्वार इत्त त्या आये। (उवागच्छित्ता तिमिस्र-
गुहं दाहिल्लेण दुवारेण अईइ ससिन्व मेहंधयारनिवहं) त्या आवीने ते जेम चन्द्र
मेघजनित अंधकारमा प्रवेशे छे तेमज ते तिमिस्रा गुहाया दक्षिण द्वारोत्थे प्रवेष्ट थये।
(तएण भरहे राया छत्तलं दुवालसंसियं अट्टकण्णियं अट्टिगरणिसंठिअं अट्टसोवण्णिय
कागणिरयण परामुसइ) त्यार आठ भरत राजजे ६ तल वाणा थार (१२ जेना थार तल
अने उपर नीचेना छे तल, आ प्रभाजे ६ तल वाणा १२ कोटीवाणा आठ पुण वाणा
अधिकरणी-सुवर्णकार दोषुडनी जनेली जे पीडी उपर भूमीने सुवर्ण-आदी जेने
इथोडीथी इटे पीटे छे ते पिडी जेवा आकारवाणा जेटले के (अरेणु जेवा) आठ सुवर्णवु'

अत्राङ्गुलं प्रमाणाङ्गुलं ज्ञातव्यम् सर्वं चक्रवर्तिनामपि काकण्यादि रत्नानां तुल्यप्रमाणत्वात् इति' मलयगिरि कृतवृद्धत् संग्रहणी वृद्धद्विचित्रवचनाच्च केचन अस्य प्रमाणाङ्गुलनिष्पन्नत्वम्, केचिच्च 'एगमेगस्स ण रण्णो चाउरंत चक्कवट्टिणो अट्ठ सोवण्णिणए कागणि रयणे छत्तले दुवालसंसिए अट्ठकागिणिए अहिगरणिस ठाणसंठिए पण्णत्ते, एगमेगा कोडीउस्सेहंगुलविकखंभा तं समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठंगुलं' इत्यनुयोगद्वारं सूत्रबलादुत्सेधाङ्गुलनिष्पन्नत्वम् केऽपि च एतानि सप्तैकेन्द्रियरत्नानि सर्वं चक्रवर्तिना मात्माङ्गुलेन ज्ञेयानि शेषाणि तु सप्तपञ्चकेन्द्रियरत्नानि तत्कालिकपुरुषोचित मानानीति प्रवचनसारोद्धारवृत्तिबलादात्माङ्गुलनिष्पन्नत्वमाहुः, अत्र च पक्षत्रये तत्त्वं निर्णयः सर्वविद्वेद्यः, अत्र च ग्रन्थगौरवभिया बहुवक्तव्यं नोच्यते इति । एतावद्विशेषणविशिष्टम् 'कागणिरयण परामुसह च्चि' काकणीरत्नं परामृशति स्पृशति गृह्णातीत्यर्थः इति । अस्य ग्रहणानन्तरं स भरतो राजा यत् कृतवान् तदाह—'तएण त चउरंगुलप्पमाणमिच्चं' ततः परामर्शनान्तर खलु तत् काकणी रत्नं राजवरो गृहीत्वा यावदेकोनपञ्चाशतं मण्डलानि आलिखन् आलिखन् अनुप्रविशतीत्युत्तरेण सम्बन्धः, 'चउरंगुलप्पमाणमिच्चं' चतुरङ्गुलप्रमाणमात्रम्, अस्यैकैका अश्वितुरङ्गुलप्रमाणविष्कम्भा द्वादशाप्यश्रयः प्रत्येक चतुरङ्गुलप्रमाणा भवन्तीत्यर्थः, अस्य समचतुरस्रत्वादायामो विष्कम्भश्च प्रत्येकं चतुरंगुलप्रमाण इत्युक्तं भवति, यैवास्त्रिरुर्ध्वीकृता आयाम प्रतिपद्यते सैव तिर्यग्व्यवस्थापिता विष्कम्भभाग् भवतीत्यायामविष्कम्भयोरेकतरनिर्णयेऽपि अपरनिर्णयः स्यादेवेति सूत्रे विष्कम्भस्यैव ग्रहणम्, तद्ग्रहणे चायामोऽपि गृहीत एव, समचतुरस्रत्वात्तस्येति, तदेवं सर्वतश्चतुरङ्गुलप्रमाणमिदं सिद्धम् तथा 'अट्ठ सुवण्णं च' अष्टसुवर्णं च अष्टभिः सुवर्णैः निष्पन्नम् अष्टसुवर्णम् अष्टसुवर्णं मूलद्रव्येण निष्पन्न मित्यर्थः चकारो विशेषणसमुच्चये सर्वत्र तथा 'विसहरणं' विषहरणम् विषं जङ्गमादि भेदभिन्नं तस्य हरण तावद् जंगमविषनाशक-

रत्न को उसने उठाया (तएणं तं चउरंगुलप्पमाणमिच्चं अट्ठसुवण्णं च विसहरणं अतुल चउरंसठाणसठिअं, समतल माणुम्माण जोगा जतो लोणे चरति) इस रत्न को जो १२—अश्रियां कोटिया थीं वे प्रत्येक चार चार ४—४—अङ्गुल की थीं । इस तरह इसकी लंबाई और चौड़ाई चार—चार अङ्गुल प्रमाण होने से यह काकणीरत्न समचतुरस्र कहा गया है इसका वजन आठ सुवर्ण सौनैया के वजन बगबर था तथा यह जङ्गमादि नख दातो के विष को दूर करनेवाला था इसके जैसा और कोई रत्न नहीं था यह समतल वाला था इसी रत्न से जगत में

नेटहु' वजन डोय छे तेटदा वजन वाणा जेवा अङ्गुली रत्नने 'उडांयु (तएणं त चउरंगुलप्पमाणमिच्चं अट्ठ सुवण्णं च विसहरणं अतुल चउरसंठाणसंठिअं समतलं माणुम्माणजोगा जतो लोणे चरति) जे रत्ननी जे १२ अश्रीओ-कोटीओ इती ते हरैके ४-४ अ शुद्ध नेटकी इती आ प्रमाणे जेनी लभाअं अने पडेणार्थं थार थार अ शुद्ध प्रमाणे डोवाथी जे अङ्गुली रत्न समचतुरस्र कडेवाभा आवेअ छे जेतु वजन आठ सुवर्ण सौनैयाना वजन नेटहु' इतु तेमज जे जंगमादि नख-दांताना विषने हर हरनार इतु जेना

मित्यर्थः सुवर्णाणु तुणानां मध्ये विपहरणस्य प्रसिद्धत्वाद् अस्य हि तथाविध स्वर्णमय
 यादिति 'अउलं' अनुलम् तुलारहितमनन्यसदृशमित्यर्थः अनुपममित्यर्थः पुनः कीदृशम्
 'चउरससंठाणसंठियं' चतुरस्रसस्थानसस्थितमिति विशेषणं तु पूर्वोक्ताधिकरणि दृष्टान्तेन
 मान्यमिति न तु अधिकरणि दृष्टान्ते भाव्यमाने नारय पूर्वोक्ता चतुरङ्गुलता उप-
 पद्यते अधिकरणेरधः सकुचितत्वेन विपमचतुरत्वादित्याह— 'रामतल' समतलम्—समानि
 न न्यूनाधिकानि तलानि यस्य तत्तथा अथ काकणी रत्नमेव यच्छब्दगर्भिमतवाक्य
 द्वारा विशिनष्टि 'माणुम्माण जोगा जतो लोमे चरति' मानोन्मानयोगाः यतो लोके चरन्ति,
 तत्र यतः काकणीरत्नात् मानोन्मान (प्रमाण) योगाः एते मानविशेषव्यवहारा लोके
 चरन्ति प्रवर्तन्ते इत्यर्थः तत्र मानं—धान्यमान सेतिरु कुडवादि, रसमानं चतुः पष्टिकादि
 उन्मान कर्पणलादि खण्डगुडादि द्रव्यमानहेतुः, उपलक्षणात् सुवर्णादिमानहेतुः प्रतिमान-
 मपि ग्राह्यं गुञ्जादि, किं विशिष्टास्ते व्यवहाराः : 'सव्वजणपणवगा' सर्वजनप्रज्ञापकाः
 सर्वजनानाम् अधमणोत्तमणानां प्रज्ञापकाः—मेय द्रव्याणामियत्तानिर्णायकाः अयमाशयः
 यथा सम्प्रति आसज्जनकृतनिर्णयाङ्क कुडवादिमानं जनप्रत्यायक व्यवहारप्रवर्तकं च
 भवति तद्वच्चक्रवर्ति काले कारणिकपुरुषैः काकणिरत्नाङ्कितं तत्तादृशं भवेदित्यर्थः मा-
 हात्म्यान्तरमाह—'णइव चंदो ण इव तत्थ सूरे ण इव अग्गी ण इव तत्थ मणिणो तिमिरं
 णासेति अंधयारे जत्थ तयं दिव्वं भावजुत्तं' नापि चन्द्रः नवा तत्र सूर्यः नवा अग्निः
 नवा तत्र मणयः तिमिरं नाशयन्ति,, यत्रान्धकारे तद्वत् दिव्यं प्रभावयुक्तम् तत्र नापि
 चन्द्रो नवा सूर्यस्तत्र तिमिरम् अन्धकारं नाशयतीति योजनीयम्, अत्र इवाक्यालङ्कारे
 एवं सर्वत्र, नवाऽग्नि दीपादि गतः नवा मणयः तत्र तिमिरं नाशयन्ति, प्रकाशं कर्तुं न
 शक्नुवन्तीत्यर्थः, यत्रान्धकारे अन्धकारयुक्तत्वेनाभेदोपचारात् अन्धकारवति गिरिशुहादीं
 तद्वत् तत् काकणीरत्न दिव्यं प्रभावयुक्तं तिमिरं नाशयति, अथेदं कियत् क्षेत्रं प्रकाशय-
 तीत्याह—'दुवालस जोयणाइं तस्स लेसाउ विवद्धेति' द्वादशयोजनानि तस्य काकणीरत्न-
 स्य लेस्याः—प्रमाः विवर्द्धन्ते' अमन्दाः सत्यः प्रकाशयन्तीत्यर्थः किं विशिष्टा, लेस्याः

उस समय मान और उन्मान के व्यवहार होते थे (सव्व जण पणवगा) जो जनता को मान्य होते थे । (ण इवचंदो, ण इव तत्थ सूरे ण इव अग्गी ण इव तत्थ मणिणो तिमिरं णासेति अंध-यारे तत्थ तय दिव्वं भावजुत्तं दुवालसजोयणाइं तस्स लेसाउ विवद्धेति तिमिरणिगरपडिसोहियाओ) जिस गिरिगुफादिगत अन्धकार को चन्द्र-सूर्य अग्नि या और दूसरे मणियो का प्रकाश नष्ट

नेवु ओल्लु कोरि रत्न इत्तुं न नही ओ समतलवाणु इत्तुं ओ रत्नथी न नगतमां ते पभते मान अने उन्मानना व्यवहारो सम्पन्न थता हुता. (सव्वजणपणवगा) ने न-ताने मान्य हुता. (णइव चंदो णइव तत्थ सूरे, ण इव अग्गी ण इव तत्थ मणिणो तिमिरं णासेति अंधयारे तत्थ तयं दिव्वं भावजुत्तं दुवालसजोयणाइं तस्स लेसाउ विवद्धेति तिमिरणिगरपडिसोहियाओ) ने गिरिशुहाना अधकारने चन्द्र सूर्य अग्नि के अन्ध ओल्लु ओल्लुना प्रकाश नष्ट करी शकता नही ओ अधकारने ओ प्रभावशापी

प्रभाः इत्याह—‘तिमिरगिरपरिसेहियाओ’ तिमिरनिकरप्रतिषेधिकाः तमिस्रागुहायाः पूर्वाग्ना द्वादशयोजनविस्तारयोस्तासा प्रसरणात् ‘रत्तिं च सन्वकाल खंधावारे करेइ आलायं दिवसभूयं जरस पभावेण चक्रवट्टी तिमिसगुहं अतीति सेणसहिण् अभिजेत्तुं वि-
 तियमद्धभरहं’ अत्र प्रथमं न यच्छब्दाभ्याहारत् अर्थशास्त्रिभक्तिपरिमाणाच्च यद्रत्नं रात्रौ रात्रिं रात्रावत्यर्थः चा वाक्यान्तरारम्भार्थः सर्वकालं स्कन्धावारे दिवसभूत दिवस-
 सदृशं यथा दिवसे आलोकं स्तथा रात्रौ अपीत्यर्थः आलोकं करोति—प्रकाशयति यस्य प्रभावेण चक्रवर्त्ती तमिस्रां गुहाम् अत्येति प्रविशति सैन्यसहितो द्वितीय मर्द्धभरतमभि-
 जेतुम् उत्तरभरतं वशोकर्त्तुम् ‘रायवरे काकणिं गहाय तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लपच्च-
 त्थिमिल्लेसुं कडएसु’ राजवरः चक्रवर्त्ती भरतः काकणीं—पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात्
 काकणीरत्नं गृह्णत्वा आदाय तमिस्रागुहायाः पौरस्त्यपाश्चात्ययोः कपाटयोः—भित्तयोः
 प्राकृतत्वाद् द्विवचने बहुवचनम् ‘जोयणंतरियाइं पंचधणुसयविकखंभाइं जोयणुज्जयकराईं
 चक्कणेमी सठियाइं चंदमंडलपडिणिकासाइं एगूणपण्ण मंडलाइ आलिहमाणे आलि-
 हमाणे अणुप्पविसइ’ योजनान्तरितानि प्रमाणांगुलनिष्पन्नयोजनमपान्तराले मुक्त्वा

नहीं कर सकता था उस अन्धकार को यह प्रभावशाली देवाधिष्ठित काकणीरत्न नष्ट कर देता था इस काकणी रत्न की प्रमा—१२ योजन तक के क्षेत्र को प्रकाशित कर देती है (रत्तिं च सन्वकालं खंधावारे करेइ, आलोकं दिवसभूयं जरस पभावेण चक्रवट्टी तिमिसगुहं अतीति सेणसहिण् वितियमद्धभरहं) यह रत्न चक्रवर्ती के सैन्य में दिवस के जैसा ही रात्रि में प्रकाश देता है— उत्तर भरत को वश करने के लिए इसी के प्रकाश में ही चक्रवर्ती तमिस्रागुहा में सैन्य— सहित प्रवेश करता है (रायवरे काकणिं गहाय तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लपच्चत्थिमिल्लेसुं कडएसु जोयणंतरियाइं पंचधनुसयविकखंभाइं) ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों वाले काकणी रत्न को लेकर चक्रवर्ती ने तिमिस्रगुहा के पूर्व ओर पश्चिमदिग्वर्ती हिवाडो की भीत में एक एक योजन के अन्तरालको और पांचसौ धनुष के विस्तार को छोड़कर (जोयणुज्जय कराईं चक्कणेमी सठियाइ चंदमंडल- पडिणिकासाइं एगूणपण्णं मंडलाइं आलिहमाणे आलिहमाणे २) ४९ मंडललिखे—बनाये ये मंडल

काकणी रत्न नष्ट करतुं इत्तुं अे काकणी रत्ननी प्रभा १२ योजन प्रभाय विस्तारवाणा क्षेत्रने प्रकाशित करती इती. (रत्तिं च सन्वकालं खंधावारे करेइ आलोकं दिवसभूयं जरस पभावेण चक्रवट्टी तिमिसगुहं अतीति सेणसहिण् वितियमद्धभरहं) अे रत्न अकवर्तीना सैन्यमा रात्रीमा दिवस नेटवै ७ प्रकाश आपतु इत्तुं उत्तर भारतने वशमां करवा माटे अेना प्रकाशमाअ अकवतीं तमिस्र गुहामां सैन्यसहित प्रवेश करे छे रायवरे काकणि गहाय तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लपच्चत्थिमिल्लेसु कडएसुं जोयण- तरियाइं पंचधणुसयविकखंभाइ अेवा पूर्वोक्त विशेषणो वाणा काकणीरत्नने लधने अकवतीं तिमिस्र गुहाना पूर्व अने पश्चिम दिग्वतीं कभाटोनी हिवाडमा अेक अेक अन्तरालने अने ५०० धनुषने विस्तारने त्यल्लने (जोयणुज्जयकराइ चक्कणेमी सठियाइं चंदमंडलपडिणिकासाइं एगूणपण्णं मंडलाइ आलिहमाणे २) ४९ मणो अणुप्प-

कृतानि इत्यर्थः पठचधनुः शतविष्कम्भाणि-ध्वगाहनापेक्षया उत्सेधागुलनिष्पन्नपञ्च-
 धनुःशतमानविष्कम्भाणि, वृत्तत्वात् विष्कम्भग्रहणेन आयामोऽपि तावानेवावगन्तव्यः,
 उत्सेधांगुलप्रमोद्यमानाग्राहना केन चक्रिणा भरतेन हस्तान् तत्क्षरणीत्वेन क्रिय
 माणत्वान्मण्डलानाम्, अयं च मण्डलावगाहः स्व स्व प्रकाश्य योजनमध्ये एव गण्यते
 अन्यथा ४९ मण्डलानामवगाहे विण्डी क्रियमाणे गुहाभित्तयो रायामः उक्तः प्रमाणाधि-
 कप्रमाणः प्रसज्येतेति, अतएव च योजनोद्योतकराणि योजनमात्रक्षेत्रप्रकाशकानि,
 यावन्मण्डलान्तरालं तावन्मण्डलप्रकाश्यं गुहाभित्तिक्षेत्रमित्यर्थः, चक्रनेमिसंस्थितानि
 चक्रस्य नेमिः-परिधिः तत्संस्थितानि तत्सस्थानि वृत्तानीत्यर्थः तथा चन्द्रमण्डलप्रति-
 निकाशानि, चन्द्रमण्डलस्य प्रतिनिकाशानि भास्वरत्वेन सदृशानि 'एगुणपण्णं मंडलाइं'
 एकोनपठचाशतं मण्डलानि वृत्तसुवर्णरेखारूपाणि, काकणीरत्नस्य सुवर्णमयत्वात्
 'आलिहमाणे आलिःमाणे' आलिखन् आलिखन् विन्यस्यन् विन्यस्यन् 'अणुपविसइ'
 अनुप्रविशति गुहामिति बोध्यम्, वीप्सावचनमाभिक्षयद्योतनार्थम्, मण्डलालिखनक्रम-
 श्चायं गुहायां प्रविशन् भरतः पाश्चात्यपान्थजनप्रकाशकणाय दक्षिणद्वारे पूर्वदिक्रपाटे

एक २ योजन की भूमितक प्रकाश देते थे इनका आकार चक्रनेमि के जैसा तथा भास्वर
 होने के कारण चन्द्रमंडल के जैसा था इस तरह के मंडलों का आलेखन करता २ वह भरत-
 चक्री (अणुपविसइ) गुहा में प्रविष्ट हुआ (तएण सा तिमिसगुहा भरहेण रण्णा तेहिं जोयणं तरि-
 पहिं जाव जोयणुज्जोयकरेहिं एगुणपण्णाए मंडलेहिं आलिहिव्वमाणेहिं २ खिप्पामेव आलोम-
 मूया उज्जोयमूया जाया यापि होत्था) इस तरह वह तमिस्रागुहा उन एक योजन के अन्तराल
 से बनाये गये यावत् एक योजन तकप्रकाश देनेवाले उन ४९ उंचास लिखे गए मंडलों से
 आलोकित हो उठी उद्योतीत हो उठी और जैसे उसमें दिवस का प्रकाश हो गया हो ऐसी होकर
 वह चमक उठी क्योंकि काकणी रत्नसुवर्णमय होता है इसलिये ये जो मंडल उससे लिखे गये वे
 वृत्त और हिरण्यरेखारूप थे ये किस २ गुहा के द्वार आदि में लिखे गये इसका स्पष्टीकरण इस
 प्रकार से है पाश्चात्य पान्थजनों को प्रकाश देने के लिए दक्षिण द्वार में पूर्वदिक्रपाट में प्रथम-

मंडलो बनाव्या. अे म डलो अेक-अेक योजन अेटवी भूमीने प्रकाशित करे छे अे म डलोने।
 आकार चक्रनेमि जेवो तेमज भास्वर होवथी च-न्द्रम डण जेवो डतो. आ लतना म डलोनुं
 आलोपन करतो करतो ते भरतचक्री (अणुपविसइ) शुडामा प्रविष्ट थथे। (त एणं सा तिमिस-
 गुहा भरहेण रण्णा तेहिं जोयणतरिपहिं जाव जोयणुज्जोयकरेहिं एगुणपण्णाए मंडलेहिं आलि-
 हिव्वमाणेहिं आलिहिव्वमाणेहिं खिप्पामेव आलोममूया उज्जोयमूया जाया यापि होत्था) आ
 प्रभाण्णे ते विभसु शुडा अेक योजनना अतरावथी अनारवामा आवेदा थावत् अेक योजन
 सुधी प्रकाश पाथरनार ते ४९ म डणोथी आलोकित थर्थ गर्थ अने लण्णे के तेमा दिवसने।
 प्रकाश थर्थ गथे होथ तेम प्रकाशित थर्थ गर्थ केमुके काकणीरत्न सुवर्णमय होय छे. अेथी
 अे म डणो जेने रत्नउडे लभवामा आल्या डनां ते वृत्त अने हिरण्य रेखा इय डता अे
 मंडलो कर्थ कर्थ शुडाना द्वार वगेरे उपर लभवामा आल्या अेडुं स्पष्टीकरण्ण आ प्रभाण्णे

प्रथमं योजनमुत्तवा मण्डलं मालिखति ततो गोमूत्रिकान्यायेन उत्तरतः पश्चिमदिक्क-
पाटतोड्डके तृतीययोजनादौ द्वितीय मण्डलमालिखति, ततस्तेनैव न्यायेन पूर्वदि-
क्कपाटतोड्डके चतुर्थयोजनादौ तृतीयम् ततः पश्चिमदिग्भित्तौ पञ्चमयोजनादौ चतुर्थं
ततः पूर्वदिग्भित्तौ षष्ठयोजनादौ पञ्चम, ततः पश्चिमदिग्भित्तौ सप्तमयोजनादौ षष्ठम्,
ततः पूर्वदिग्भित्तौ अष्टमयोजनादौ सप्तमम्, एवं तावद् वाच्यं यावदष्टचत्वारिंशत्तमम्
उत्तरदिग्द्वारसत्कपश्चिमदिक्कपाटे प्रथमयोजनादौ एकादश्यात्तमं चोत्तरदिग्द्वारसत्क-
पूर्वदिक्कपाटे द्वितीययोजनादौ मालिखति, एवमेकस्यां पित्तं पञ्चवित्तिः अपरस्यां-
चतुर्विंशतिरित्येकोनपञ्चाशत् मण्डलानि भवन्ति. एतानि च खलु गुहायां निर्यग्य द्वादशयो-
जनानि प्रकाशयन्ति, ऊर्ध्वांशभागेन चाष्टौ योजनानि, गुहाया विस्तरोच्चत्वस्य चक्रमेण
एतावत् एव सद्भावात्, अग्रतः पृष्ठतश्च योजनं प्रकाशयन्तीति ।

योजन को छोड़कर प्रथम मंडल उसने लिखा हमने बाद गोमूत्रिकान्याय से उत्तर दिशा में
पश्चिमदिक्कपाटतोड्डक में उसने तृतीय योजन को आदि में द्वितीय मंडल लिखा हमी न्याय के
अनुसार उसने पूर्वदिक्कपाटतोड्डक में चतुर्थयोजन की आदि में तृतीय मंडल लिखा इसके बाद
पश्चिमदिग्भित्ति में पाचवे योजन को आदि में चतुर्थ मंडल लिखा इसके बाद पूर्वदिग्भित्ति में छठे
योजन की आदि में पांचवा मण्डल लिखा इसके बाद पश्चिमदिग्भित्ति में सातवे योजन की आदि
में छठामण्डल लिखा इसके बाद पूर्वदिग्भित्ति में आठवे योजन को आदि में सातवां मंडल
लिखा इस तरह लिखते लिखते उसने उत्तर दिग्द्वार के पश्चिम दिक्कपाट में प्रथमयोजन की
आदि में ४८ अहनालीस वा मंडल लिखा और ४९ वा मंडल उत्तरदिग्द्वार के पूर्वदिक्कपाट
में द्वितीय योजन की आदि में लिखा इस प्रकार से एकभित्ति में २५ मंडल और दूसरीभित्ति
में २४ मंडल लिखे गए मिलकर ४९ मंडल हो जाते हैं । ये मंडल गुहा में तिरछे रूप में बारह

छे. पाश्चात्य पाथज्जोनेप्रकाश आपवा भाटे इक्षिण्य द्वारमा पूर्वदिक्कपाटमा प्रथम योजनने
त्यज्जोने प्रथम मंडल तेणे षष्ठ्यु त्पारभाह गोमूत्रिकान्यायथी अर्थात् यावता मण्डना सूत्रना
नेवा आकारथी उत्तरदिशां पश्चिम दिक्कपाटतोड्डकमा तेणे तृतीय योजनना प्रारंभमा द्वितीय
मंडल षष्ठ्यु जे न्याय मुज्जम तेणे पूर्वदिक्कपाट तोड्डकमा चतुर्थ योजनना प्रारंभमा
तृतीय मंडल षष्ठ्यु त्पारभाह पश्चिम दिग्भित्तिमा पाचमा योजनना प्रारंभमा तेणे
चतुर्थ मंडल षष्ठ्यु त्पारभाह पूर्व दिग्भित्तिमा ६ ठा योजनना प्रारंभमा पाचमु मंडल
षष्ठ्यु त्पारभाह पश्चिम दिग्भित्तिमा सातमा योजनना प्रारंभमा ६ ठु मंडल षष्ठ्यु. त्पारभाह
पूर्वदिग्भित्तिमा आठमा योजनना प्रारंभमा प्रातमु मंडल षष्ठ्यु आ प्रभाणे षष्ठ्यां
षष्ठ्यां तेणे उत्तर दिग्द्वारना पश्चिम दिक्कपाटमा प्रथम योजनमाना प्रारंभमा ४८मु मंडल
षष्ठ्यु. अने ४३मु मंडल तेणे उत्तरदिग्ना पूर्वदिक्कपाटमा द्वितीय योजनना प्रारंभमा
षष्ठ्यु आ प्रभाणे जेक भित्तिमा २५ मंडल अने भीण भित्तिमा २४ मंडलो
षष्ठ्यामा आन्या आम जेनेना अरवाणो ४६ मंडलो थर्ध जय छे जे मंडलो गुहामा
पकाकारमा १२ योजन सुधी अने ८ योजन सुधी छे तथा नीचे प्रकाश पाथरे छे. केम

ननु गोमूत्रिका विरचनक्रमेण मण्डलालिखने कथमेपां योजनान्तर्गितत्वम् । यद्येक-
मितिगतमण्डलापेक्षया तर्हि योजनद्वयान्तर्गितत्वमापद्येन अन्यथा द्वितीय मण्डलस्यैकमि-
त्तिगतत्वप्रसङ्गः तथा सति गोमूत्रिकाभङ्गः अन्यभित्तिगतमण्डलापेक्षया तु तिर्यक्
साधिक द्वादश योजनान्तरितत्वमिति चेन्न पूर्वभित्तौ प्रथमं मण्डलमालिखति, ततस्त-
त्सम्मुखप्रदेशापेक्षया योजनातिक्रमे द्वितीयमण्डलमालिखति, ततस्तत्सम्मुख प्रदेशा-
पेक्षया योजनातिक्रमे पूर्वभित्तौ तृतीयमण्डलमालिखतीत्यादि क्रमेण मण्डलकरणात्
गोमूत्रिकारत्वस्य योजनान्तरितत्वस्य च सुव्यक्ततया सर्वस्य सुस्थत्वात्, अथ पञ्चाशद्

योजन तक और ऊँचे नीचे आठ योजन तक प्रकाश देते हैं क्योंकि गुहाका विस्तार और उच्चता
क्रम से इतनी ही हैं । ये मंडल आगे और पीछे एक योजन तक प्रकाश देते हैं—

शङ्का—यदि चक्रवर्तीतिमिस्रा गुहा में गोमूत्रिका (चलने वेलवेमूतके जैमा आकार) के
आकार में ४९ मंडल लिखता है तो फिर इनमें एक एक योजन के अन्तर से लिखने की जो
बात कही गई है वह सघती नहीं है यदि एक भित्तिगत मंडल की अपेक्षा योजनान्तरिता मानी
जावे तो फिर इस तरह से योजनद्वय से अन्तरितता की आपत्ति आती है यदि ऐसा न माना-
जाय तो फिर द्वितीय मंडल में एक भित्तिगतता का प्रसङ्ग प्राप्त होगा । इस तरह से होने में गो-
मूत्रिका के आकार का होना नहीं बन सकता और यदि अन्यभित्तिगत मण्डल की अपेक्षा गोमूत्रि-
का का आकार कहा जावे तो फिर तिर्यक् में १२ योजन से अधिक को अन्तरितता हो जाती है

उत्तर— यह भरत चक्रवर्ती पूर्वदिग्गतभित्ति में प्रथम मंडल लिखता है इसके बाद उसके
सम्मुख प्रदेश की अपेक्षा एक योजन छोड़कर द्वितीय मंडल लिखता है फिर उसके सम्मुख प्रदेश में
एक योजन छोड़कर पूर्वभित्ति में तृतीय मंडल लिखता है इत्यादि क्रम से मण्डल करने से वे गोमूत्रिका
के आकार के और एक योजन से अन्तरितता वाले हो जाते हैं । पचास योजन का लंबाई वाली

के शुक्राने विस्तार अने तेनी उच्चता कभथी आटही न छे. जे मंडल आगण अने
पाछण जेक योजन सुधी प्रकाश पाथरे छे,

शंका :- जे चक्रवर्ती तिमिस्र शुक्रां गोमूत्रिकाना अर्थात् (यावता षणहना सुतरने।
जेवो आकार शाय छे तेवा) आकारमा ४९ मंडल लपे छे तो पछी जेभने जेक-जेक
योजनना अंतरथी लभवानी जे वात कडेवामा अची छे, ते अराअर भंभ जेसती नथी.
जे जेक भित्तिगत मंडलनी अपेक्षाजे योजनान्तरिता मानवामा आवे तो पछी आ प्रभाजे
योजन द्वयथी अन्तरिततानी आपत्ति आवे छे जे आ प्रभाजे मानवामा आवे नहि तो
पछी मंडलमा जेक भित्तिगतताने प्रसङ्ग प्राप्त थये ? आ प्रभाजे थाय तो गोमूत्रिकाना
आकारनी सभावना न शक्य नथी अने जे अन्यभित्तिगत मंडलनी अपेक्षा गोमूत्रिकाने
आकार कडेवामा आवे तो पछी तिर्यक्मा १२ योजनथी अधिकनी अन्तरितता थर्थ जय छे.

उत्तर :- जे अरत चक्रवर्ती पूर्वदिग्गतभित्तिमा प्रथम मंडल लपे छे त्यार भाद तेना
समुभ प्रदेशनी अपेक्षाजे जेक योजन विस्तार छोडीने द्वितीय मंडल आडेजे छे पछी
तेनी भावेना प्रदेशमा जेक योजन विस्तार त्यछने पूर्वभित्तिमा तृतीय मंडल लपे छे.

प्रथमं योजनमुत्तमा मण्डल मालिखति ततो गोभूत्रिकान्यायेन उत्तरतः पश्चिमदिक्क-
पाटतोड्डके तृतीययोजनादौ द्वितीय मण्डलमालिखति, ततस्तेनैव न्यायेन पूर्वदि-
क्कपाटतोड्डके चतुर्थयोजनादौ तृतीयम् ततः पश्चिमदिग्भित्तौ पञ्चमयोजनादौ चतुर्थं
ततः पूर्वदिग्भित्तौ षष्ठयोजनादौ पञ्चम, ततः पश्चिमदिग्भित्तौ सप्तमयोजनादौ षष्ठम्,
ततः पूर्वदिग्भित्तौ अष्टमयोजनादौ सप्तमम्. एवं तावद् वाच्यं यावद्दृष्टत्वारिंशत्तमम्
उत्तरदिग्द्वारसत्कपश्चिमदिक्कपाटे प्रथमयोजनादौ एकानपञ्चाशत्तम चोत्तरदिग्द्वारसत्क-
पूर्वदिक्कपाटे द्वितीययोजनादौ आलिखति, एवमेकस्यां पित्तौ पश्चिमदिग्भित्तिः अपरस्यां-
चतुर्विंशतिरित्येकोनपञ्चाशत् मण्डलानि भवन्ति, एतानि च खलु गुहाया निर्यग् द्वादशयो-
जनानि प्रकाशयन्ति, ऊर्ध्वांशभागेन चाष्टौ योजनानि, गुहाया विस्तरोच्चत्वस्य चक्रमेण
एतावत् एव सद्भावात्, अग्रतः पृष्ठतश्च योजन प्रकाशयन्तीति ।

योजन को छोड़कर प्रथम मंडल उसने लिखा इमके बाद गोभूत्रिकान्याय से उत्तर दिशा में
पश्चिमदिक्कपाटतोड्डक में उसने तृतीय योजन को आदि में द्वितीय मंडल लिखा इमी न्याय के
अनुसार उसने पूर्वदिक्कपाटतोड्डक में चतुर्थयोजन की आदि में तृतीय मंडल लिखा इसके बाद
पश्चिमदिग्भित्ति में पाचवें योजन को आदि में चतुर्थ मंडल लिखा इसके बाद पूर्वदिग्भित्ति में छठे
योजन की आदि में पाचवां मण्डल लिखा इसके बाद पश्चिमदिग्भित्ति में सातवें योजन की आदि
में छठामण्डल लिखा इसके बाद पूर्वदिग्भित्ति में आठवें योजन की आदि में सातवा मंडल
लिखा इस तरह लिखते लिखते उसने उत्तर दिग्द्वार के पश्चिम दिक्कपाट में प्रथमयोजन की
आदि में ४८ मंडलाकीस वा मंडल लिखा और ४९ वां मंडल उत्तरदिग्द्वार के पूर्वदिक्कपाट
में द्वितीय योजन की आदि में लिखा इस प्रकार से एकभित्ति में २५ मंडल और दूसरीभित्ति
में २४ मंडल लिखे गए मिलकर ४९ मंडल हो जाते हैं । ये मंडल गुहा में तिरछे रूप में बारह

छे. पाश्चात्य पाथलनेनेप्रकाश आपवा माटे इक्षिण्य द्वारमा पूर्वदिक्कपाटमा प्रथम योजनने
त्यलने प्रथम मंडल तेणे लक्ष्युं त्पारभाह गोभूत्रिकान्याययो अर्थात् यावता मण्डलना सूत्रना
नेवा आकारथी उत्तरदिग्भां पश्चिम दिक्कपाटतोड्डकमा तेणे तृतीय योजनना प्रारंभमा द्वितीय
मंडल लक्ष्युं ये न्याय सुश्रुत तेणे पूर्वदिक्कपाट तोड्डकमा चतुर्थ योजनना प्रारंभमा
तृतीय मंडल लक्ष्युं त्पारभाह पश्चिम दिग्भित्तिमा पाथमा योजनन प्रारंभमा तेणे
चतुर्थ मंडल लक्ष्युं त्पारभाह पूर्व दिग्भित्तिमा ६ ६। योजनना प्रारंभमा पाथ्यु मंडल
लक्ष्युं त्पारभाह पश्चिम दिग्भित्तिमा सातमा योजनना प्रारंभमा ६६ मंडल लक्ष्युं. त्पारभाह
पूर्वदिग्भित्तिमा आठमा योजनना प्रारंभमा प्रातयु मंडल लक्ष्युं आ प्रभाणे लक्ष्युं
लक्ष्युं तेणे उत्तर दिग्द्वारना पश्चिम दिक्कपाटमा प्रथम योजनमाना प्रारंभमा ४८मु मंडल
लक्ष्युं. अने ४३मु मंडल तेणे उत्तरदिग्द्वारना पूर्वदिक्कपाटमा द्वितीय योजनना प्रारंभमा
लक्ष्युं आ प्रभाणे एक भित्तिमा २५ मंडल अने भील भित्तिमा २४ मंडला
लक्ष्युंमा आण्था आम ननेना सरवाणो ४६ मंडला यथं लक्ष्युं ये मंडलां शुक्रमां
वकाकारमां १२ योजन सुधी अने ८ योजन सुधी लक्ष्युं तथा नीचे प्रकाश पाथरे छे. डेम

ननु गोमूत्रिका विरचनक्रमेण मण्डलालिखने कथमेपां योजनान्तरितत्वम् । यद्येक-
 भित्तिगतमण्डलापेक्षया तर्हि योजनद्वयान्तरितत्वमापद्येन अन्यथा द्वितीय मण्डलस्यैकभि-
 त्तिगतत्वप्रसङ्गः तथा सति गोमूत्रिकाभङ्गः अन्यभित्तिगतमण्डलापेक्षया तु तिर्यक्
 साधिक द्वादश योजनान्तरितत्वमिति चेन्न पूर्वभित्तौ प्रथमं मण्डलमालिखति, ततस्त-
 त्सम्मुखप्रदेशापेक्षया योजनातिक्रमे द्वितीयमण्डलमालिखति, ततस्तत्सम्मुख प्रदेश-
 अपेक्षया योजनातिक्रमे पूर्वभित्तौ तृतीयमण्डलमालिखतीत्यादि क्रमेण मण्डलकरणात्
 गोमूत्रिकारत्वस्य योजनान्तरितत्वस्य च सुव्यक्ततया सर्वस्य सुस्थत्वात्, अथ पञ्चाशद्

योजन तक और ऊँचे नीचे आठ योजन तक प्रकाश देते हैं क्योंकि गुहाका विस्तार और उच्चता
 क्रम से इतनी ही हैं । ये मंडल आगे और पीछे एक योजन तक प्रकाश देते हैं—

शङ्का—यदि चक्रवर्तीलिखिता गुहा में गोमूत्रिका (चलने बेलने मूनके जैमा आकर) के
 आकार में ४९ मंडल लिखता है तो फिर इनमें एक एक योजन के अन्तर से लिखने की जो
 बात कही गई है वह सघती नहीं हैं यदि एक भित्तिगत मंडल की अपेक्षा योजनान्तरिता मानी
 जावे तो फिर इस तरह से योजनद्वय से अन्तरितता की आपत्ति आती है यदि ऐसा न माना-
 जाय तो फिर द्वितीय मंडल में एक भित्तिगतता का प्रसङ्ग प्राप्त होगा । इस तरह से होने में गो-
 मूत्रिका के आकार का होना नहीं बन सकता और यदि अन्यभित्तिगत मण्डल की अपेक्षा गोमूत्रि-
 का का आकार कहा जावे तो फिर तिर्यक् में १२ योजन से अधिक को अन्तरितता हो जाती है

उत्तर— यह भरत चक्रवर्ती पूर्वदिग्गतभित्ति में प्रथम मंडल लिखता है इसके बाद उसके
 सम्मुख प्रदेश की अपेक्षा एक योजन छोड़कर द्वितीय मंडल लिखता है फिर उसके सम्मुख प्रदेश में
 एक योजन छोड़कर पूर्वभित्ति में तृतीय मंडल लिखता है इत्यादि क्रम से मण्डल करने से वे गोमूत्रिका
 के आकार के और एक योजन से अन्तरितता वाले हो जाते हैं । पचास योजन को लंबाई वाली

के शुद्धाने विस्तार अने तेनी उच्चता कभथी आटवी न छे, जे भ'उणे आगण अने
 पाछण जेक योजन सुधी प्रकाश पाथरे छे,

शंका :- जे चक्रवर्ती लिखित शुद्धां गोमूत्रिकाना अर्थात् (चाहता जणहना सुतरने।
 जेवा आकार थाय छे तेवा) आकारमा ४९ म'उणे लपे छे तो पछी जेअने जेक-जेक
 योजनना अंतरथी लपवानी जे वात कहेवामा अनी छे, ते अराअर अ'ध जेसती नथी
 जे जेक भित्तिगत म'उणनी अपेक्षाजे योजनान्तरिता मानवामा आवे तो पछी अ' प्रभाजे
 योजन द्वयथी अन्तरिततानी आपत्ति आवे छे जे आ प्रभाजे मानवामा आवे नहि तो
 पछी म'उणमां जेक भित्तिगतताने प्रसंग प्राप्त थये ? आ प्रभाजे थाय तो गोमूत्रिकाना
 आकारनी स'भावना न शक्य नथी अने जे अन्यभित्तिगत म'उणनी अपेक्षा गोमूत्रिकाने
 आकार कहेवामा आवे तो पछी तिर्यक्मां १२ योजनथी अधिकनी अन्तरितता थछि जाय छे,

उत्तर - जे भरत चक्रवर्ती पूर्वदिग्गतभित्तिमा प्रथम म'उण लपे छे तयार जाह तेमा
 स'मुथ प्रदेशनी अपेक्षाजे जेक योजन विस्तार छोडीने द्वितीय म'उण आलेजे छे पछी
 तेनी आभेना प्रदेशमा जेक योजन विस्तार त्यछने पूर्वभित्तिमा तृतीय म'उण लपे छे;

યોજનાયામાયાં ગુહાયામ્ એકોન પચ્ચાશતા મળ્ડલૈર્યત્પ્રકાશકરણમુક્ત તસ્યાર્થસ્ય સુક્ષ્મપ્રતિ-
પત્તયે સક્ષપેળ મળ્ડલપશ્ચકસ્ય સ્થાપનાં દર્શયતિ યથા- ? ? ? ? એવ પદ્કોષ્ટકપરિકલ્પિત
ષ્ઠ્યયોજનક્ષેત્રે એકસ્મિન પક્ષે ત્રીણિ અન્ય તુ દ્વે એત્યુભય સમ્પેઠને પશ્ચમળ્ડલાનિ
એવમનેન ગોમૂત્રિકા મળ્ડલકવિરચનક્રમેળે પચ્ચાશદ્ યોજનાયામાયાં ગુહાયામૈકોનપચ્ચા-
શતોઽપિ મળ્ડલકાનાં સ્થાપના આકારઃ સ્વય વિદ્નેયેતિ । અથ પ્રકૃતં પ્રસ્તૂયતે- 'તણ્'
ઇત્યાદિ । તણ સા તિમિસગુહા ભરદેળેળ રળ્ણા તેદિં જોયળંતરિપિદિં જાવ જોયળુજ્જો-
યકરેદિં એમૂળવળ્ણાએ મંડલેદિ આલિહિજ્જમાળેદિં આલિહિજ્જમાળેદિં સ્વિપ્પામેવ આલો-
ગમૂયા ઉજ્જોયમૂયા દિવસમૂયા જાયા યાવિહોત્થા' તતો મળ્ડલાલિખનાનન્તરં ખલ્લ
સા તમિસા ગુહા ભરતેન રાજા તૈઃ યોજનાન્તરિતૈઃ યાવઘોજનોઘોતકરૈઃ એકોનપચ્ચા-
શતા મળ્ડલૈગલિલ્પમાનૈરાલિલ્પમાનૈઃ સિપમેવ આલોકં સૌર પ્રકાશં મૂતા પ્રાતા, અત્ર
મૂગતૌ ઇતિ સોત્ર ગાતોઃ ક્ત પ્રત્યયઃ એવમ્ ઉઘોતં ચાન્દ્રપ્રકાશંમૂતા કિં વહુના ? દિવસ-

ગુફા મેં જો ૪૯ મંડલ કરને કી બાત કહી ગઈ હૈ- વહ અચ્છી તરહ સે સમજ મેં આ જાવે ઇસકે
લિયે સૂત્રકાર ને પાંચ મંડલોં કી સ્થાપના સસ્કૃત ટીકા મેં દિસા કરકે સમજાયા હૈ-ઇસ તરહ ષ્ઠ
કોષ્ટક પરિકલ્પિત ષ્ઠ યોજનવાલે ક્ષેત્ર મેં એક પક્ષ મેં ત્રીન ઔર અન્યત્ર દો મંડલ લિલ્પે જાતે
હૈ દોનોં કા જોડ પાંચ હો જાતા હૈ । ઇસીતરહ ગોમૂત્રિકા કે આકાર વાલે મંડલો કી રચના
કે ક્રમ સે ૫૦ યોજન પ્રમાણ વાલી ગુહા મેં ૪૯ મંડલોં કી સ્થાપના સ્વય હી સમજ ઠેના
ચાહિએ (તણ સા તિમિસગુહા ભરદેળેળ રળ્ણા તેદિં જોયળંતરિપિદિં જાવ જોયળુજ્જોય-
કરેદિં એમૂળવળ્ણાએ મળ્ડલેદિ આલિહિજ્જમાળેદિં ૨ સ્વિપ્પામેવ આલોગમૂયા ઉજ્જોયમૂયા દિવસમૂયા
જાયાયાવિહોત્થા) એક ૨ યોજન કે અન્તરાલ સે, યાવત્ એક ૨ યોજન તક પ્રકાશ દેનેવાલે
હન ૪૯ મળ્ડલોં કો ઇસ પ્રકાર સે લિલ્પને કે બાદ વહ તિમિસગુહા વહુત હો શોત્ર આલોકમૂત
હો ગઈ ઉઘોતમૂત હો ગઈ ઔર દિવસ કે જૈસી હોગઈ યહાં અપિશબ્દ સમાવના અર્થ મેં પ્રયુક્ત

ઇત્યાદિ કમથી મડળો આલેખવાથી ગોમૂત્રિકાના આકારના અને એક યોજન જેટલી અત-
સ્તિતાવાળા થઈ જાય છે. ૫૦ યોજન જેટલી લખાઈવાળી ગુહામાં જે ૪૯ મડળો લખવાની
વાત કહેવામાં આવી છે તે સારી રીતે સમજમાં આવી જાય એ હેતુથી સૂત્રકારે આ પ્રમાણે
પાંચ મંડળોની સ્થાપના સસ્કૃત ટીકામાં કરીને સમજાવવા પ્રયત્ન કર્યો છે આ રીતે ષ્ઠ કોષ્ટક
પરિકલ્પિત ષ્ઠ યોજનવાળા ક્ષેત્રમાં એક પક્ષમાં ત્રણ અને અન્યત્ર બે મડળો લખવામાં આવે છે
અન્નેનો સરવાળો પાંચ થઈ જાય છે આ પ્રમાણે ગોમૂત્રિકાના આકારવાળા મડળની રચના
કમથી ૫૦ યોજન પ્રમાણવાળી ગુહામાં ૪૯ મડળોની સ્થાપના આપ મેળે જ સમજ લેવી
જેઈએ. (તણ સા તિમિસગુહા ભરદેળેળ રળ્ણા તેદિં જોયળંતરિપિદિં જાવ જોયળુજ્જોય-
કરેદિં એમૂળવળ્ણાએ મળ્ડલેદિ આલિહિજ્જમાળેદિર સ્વિપ્પામેવ આલોગમૂયા ઉજ્જોયમૂયા
દિવસમૂયા જાયા યાવિ હોત્થા) એક-એક યોજનના અતરાલથી યાવત્ એક-એક યોજન મુખી
પ્રકાશ પાથરનારા એ ૪૯ મંડળોને આ પ્રમાણે લખવાથી તે તિમિસ ગુહા અતીવ શીઘ્ર આલોક
ભૂત થઈ ગઈ, અને દિવસના જેવી ઘઈ પ્રકાશિત થઈ ગઈ અહીં 'અપિ' શબ્દ સંભાવનાના

भूता दिनमदृशी जाता चासीत्, च समुच्चये अपिः सम्भावनायाम्, तेन नेय गृहा मण्डलप्रकाशपूर्णं किन्तु सम्भाव्यते आलोकभूता, एवमग्रतनपदद्वयमपि तथाहि नेयं गुहा मण्डलप्रकाशपूर्णं अपि तु सम्भाव्यते उद्योतभूता तथा नेयं गुहा मण्डलप्रकाशपूर्णं अपि तु सम्भाव्यते दिवसभूता इति ॥सू० १५॥

अथान्तर्गुह वर्तमानयोः परपारं जिगमिषूणां प्रतिबन्धकीभूतयो रुन्मग्नानिमग्नानामकनद्योः स्वरूपं प्ररूपयितुकामः प्राह - "तीसे णं" इत्यादि ।

मूलम्-तीसे णं तिमिसगुहाए बहुमच्छ देसभाए एत्थणं उम्म-
गगणिमग्नजलाओ णामं दुवे महाणईओ पणत्ताओ जाओणं तिमिस
गुहाए पुरच्छिमिल्लाओ भित्तिकडगाओ पवूढाओ समाणीओ पच्च-
त्थिमेणं सिंधु महाणइं समप्पेंति, से केणड्डेणं भंते ! एवं बुच्चइ उमग्ग-
णिमग्नजलाओ महाणइओ ?, गोयमा ! जणं उमग्गजलाए महाणईए
तणंवा पत्तंवा कड्डं वा सक्करं वा आसे वा हत्थी वा रहे वा जोहे वा
मणुस्से वा पक्खिप्पइ तणं उमग्गजला महाणई तिकखुत्तो आहुणिअ
२ एगंते थलंसि एडेइ, जणं णिमग्गजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा
कड्डं वा सक्कर वा जाव मनुस्से वा पक्खिप्पइ तणं णिमग्गजलामहाणई
तिकखुत्तो आहुणिअ आहुणिअ अंतो जलंसि णिमज्जावेइ, से तेणट्टेणं
गोयमा ! एवं बुच्चइ उमग्गणिमग्गजलाओ महाणईओ, तएणं से भरहे
राया चक्करयणदेसियमग्गे अणेगराय० महया उक्किट्ट सीहणाय जाव
करेमाणे करेमाणे सिंधूए महाणईए पुरच्छिमिल्लेणं कूडेणं जेणेव
उम्मग्गजला महाणई तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वद्धइरयणं सहावेइ
सहावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाप्पिया ! उम्मगणिमग्गजलासु

हुआ है इससे यह समझाया गया है कि वह गुफा मण्डल प्रकाश से पूर्ण नहीं हुई किन्तु रेसी
समावना होती है कि वह मंडल प्रकाश से पूर्ण सी होगई इसी तरह आलोकादि पदों के सम्ब-
न्ध में भी जानना चाहिये ॥१५॥

अर्थमा प्रशुप्त थयेत्तं छे जेनाथी आम समन्तववामां भाव्यु छे के ते शुक्ल म उण प्रकाशथी
परिपूष्णं थ। नहि पणु ज्येवी संभावना छे के ते म उणोना प्रकाशथी परिपूष्णं डोय ज्येवी
धर् १४ २।। रीते आ लोकादि पदोना स भ धमा पणु लक्ष्मी देवु जेधं जे. ॥, सूत्र-१५ ॥

महाणईसु अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे अयस्समकंपे अभेज्जकवए सालंब-
णबाहाए सव्वस्यणामए सुहसंकमे करेहि करेत्ता मम एअमाणत्तियं
खिप्पामेव पच्चपिणाहि तएणं से वद्धइस्यणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे
हट्टतुट्टच्चित्तमाणंदिए जाव विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता खिप्पामेव
उम्मग्गजलासु महाणईसु अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे जाव सुहसंकमे करेइ
करित्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव एयमा-
णत्तियं पच्चपिणइ तएणं से भरहे राया सखंधावारबले उम्मग्गणिम्मग्ग-
जलाओ महाणईओ तेहिं अणेगखंभसयसण्णिविट्ठेहिं जाव सुहसंकमेहिं
उत्तरइ, तएणं तीसे तिमिस्सगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सयमेव
महया महया कौचारवं करेमाणा रससरस्सग्गाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था
॥सू० १६॥

छाया—तस्याः खलु तिमिन्नागुहायाः बहुमध्यवेशभागे अत्र खलु उन्मग्ननिमग्नजले
नाम्न्यो द्वे महानद्यौ प्रज्ञप्ते, ये खलु तिमिन्नागुहाया- पौरस्थ्यात् भित्तिकरुकात् प्रव्यूढे
सत्यौ पाश्चात्येन सिन्धु महानदीं समाप्तुतः, अथ केनार्थेन भवन्त ! पवमुच्यते उन्मग्नजल-
निमग्नजले महानद्यौ ? इति गौतम ! यत् खलु उन्मग्नजलाया महानद्यां तृणं वा पत्रं वा
काष्ठं वा शर्करा वा अक्षौ वा हस्ती वा रथो वा योधो वा मनुष्यो वा प्रक्षिप्यते तत्
खलु उन्मग्नजला महानदी त्रिः कृत्वः आधूय आधूय पकान्ते स्थले छर्दयति यत् खलु
निमग्नजलायां महानद्यां तृणं वा पत्रं वा काष्ठं वा शर्करा वा यावत् मनुष्यो वा प्रक्षिप्यते
तत् खलु निमग्नजला महानदी त्रिः कृत्वः आधूय आधूय अन्तर्जले निमज्जयति अथ तेनार्थेन
गौतम ! पवमुच्यते उन्मग्नजलनिमग्नजले महानद्यौ, ततः खलु स भरतो राजा चक्ररत्न
देशितमारोः अनेकराज० महता उत्कृष्टसिंहनाद यावत् कुर्वन् कुर्वन् सिन्धवा महानद्यः
पौरस्थ्ये कूटे यत्रैव उन्मग्नजला महानदी तत्रैव उपागच्छति उपागत्य वर्द्धकिरत्न शब्दयति
शब्दयित्वा पवमवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! उन्मग्ननिमग्नजलयो महानद्योः अनेक
स्तम्भशतसन्निविष्टौ अबलाकम्पौ अभेद्यकवचौ सालम्बनबाहौ सर्वरत्नमयी सुखसंक्रमौ
कुरुष्व, कृत्वा मम पताम् आह्नितिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पय, तत खलु तत् वर्द्धकिरत्नं भरतेन
राज्ञा पवमुक्तं सत् हृष्टतुष्टचित्तानन्वितं यावद् धिनयेन प्रतिश्रुनोति, प्रातिश्रुत्य क्षिप्रमेव
उन्मग्ननिमग्नजलयो महानद्योः अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टौ यावत् सुखसंक्रमौ करोति, कृत्वा
यत्रैव भरतो राजा तत्रैवोपागच्छति, उपागत्य यावत् पतामाह्नितिका प्रत्यर्पयति, तत
खलु स भरतो राजा स स्तम्भावारबल उन्मग्ननिमग्नजले महानद्यौ ताभ्याम् अनेक स्त
म्भशतसन्निविष्टाभ्यां यावत् सुखसंक्रमाभ्याम् उत्तरति, ततः खलु तस्या स्तमिन्नागुहाया
उत्तराहस्य द्वारस्य कपाटौ स्वयमेव महता क्रौञ्चारवं सरस्सरत्ति कुर्वाणो स्वके स्वके
स्थाने प्रत्यवाष्वाष्किषाताम् ॥सू० १६॥

टीका "तीसेणं" इत्यादि 'तीसेणं तिमिसगुहाए बहुमज्जदेसमाए एत्थणं उन्मगणिमग्नजलाओ णामं दुवे महाणईओ पणत्ताओ' तस्याः खलु तिमिसगुहाया बहु-मध्यदेशभागे अत्र खलु दक्षिणद्वारतः तोडडक समेनैकविंशतियोजनेभ्यः परतः उत्तरद्वारतः तोडडकसमेनैकविंशतियोजनेभ्योऽर्वाक् च उन्मग्ननिमग्नजले नाम्न्यो उन्मग्नजलानिमग्नजला नाम्न्यो द्वे महानद्यौ प्रज्जप्ते 'जाओणं तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लाओ भित्तिकडगाओ पवूहाओ समाणीओ पच्चत्थिमेण सिंधुं महाणइं समप्पेति' ये खलु तिमिसगुहायाः पौरस्त्यात् भित्तिकटकात् भित्तिप्रदेशात् प्रव्यूढे निर्गते सत्यो पाश्चात्येन कटकन विभिन्नेन सिंधु महानदीं समाप्नुतः प्रविशत इत्यर्थः 'से केणट्टेणं मंते ! एवं बुच्चइ उन्मगणिमग्नजलाओ महाणईओ ?' अथ केनार्थेन भदन्त ! एव मुच्यते उन्मग्नजलनिमग्नजले महानद्यौ इति १, 'गोयमा ! जणं उन्मग्नजलाए महाणईए तणं वा पत्त वा कट्टं वा सक्करं वा आसे वा हत्थी वा जोहे वा मणुस्सेवा पक्खिवइ' गौतम ! यत् खलु उन्मग्न-

गुहा के भीतर वर्तमान उन्मग्ना और निमग्नादियों के स्वरूप का कथन

टीकार्थ :—'तीसेणं तिमिसगुहाए बहुमज्जदेसमाए एत्थणं'—इत्यादि—सूत्र—१६—

(तीसेण तिमिसगुहाए बहुमज्जदेसमाए) उस तिमिसगुहाके बहु मध्य देश में (उन्मगणिमग्नजलाओ णामं दुवे महाणईओ पणत्ताओ) उन्मग्ना और निमग्ना नाम की दो महानदियां कही गई हैं ये दो नदिया दक्षिण द्वार के तोडक से २१ योजन आगे और उत्तर द्वार के तोडक से २१ योजन पहिले है । (जाओ ण तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लाओ भित्तिकडगाओ पवूहाओ समाणीओ पच्चत्थिमेणं सिंधुमहाणइं समप्पेति) तिमिसा गुहा के पौरस्त्यभित्ति कटक से भित्ति प्रदेश से निकलती हुई पाश्चात्य भित्तिप्रदेश से होकर सिंधु महानदी में प्रवेश करती है (से केणट्टेणं मंते ! एवं बुच्चइ उन्मगणिमग्नजलाओ महाणईओ) हे भदन्त ! इन नदियों का उन्मग्ना और निमग्ना ऐसा नाम किस कारण से कहा गया है ? इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं—(गोयमा ! जणं उन्मग्नजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्टं वा सक्करं वा आसे वा हत्थी वा जोहेवा मणुस्सेवा पक्खिवइ) हे गौतम ! जिस कारण से उन्मग्ना महानदी में

शुक्राभां (वधमान उन्मग्ना अने निमग्ना नदीओ)ना स्वरूपलु कथन :-

टीकार्थ—(तीसेणं तिमिसगुहाए बहुमज्जदेसमाए) ते तिमिस शुक्राभां बहु मध्य देशभां (उन्मग्न निमग्नजलाओ णामं दुवे महाणईओ पणत्ताओ) उन्मग्ना अने निमग्ना नामे ओ महानदीओ छे ओ ओ नदीओ दक्षिण द्वारना तोडकथी २१ योजन आगण अने उत्तर द्वारना तोडकथी २१ योजन पडेलां छे. (जाओण तिमिसगुहाए पुरच्छिमिल्लाओ भित्तिकडगाओ पवूहाओ समाणीओ पच्चत्थिमेणं सिंधुमहाणइं समप्पेति) तिमिस शुक्राभां पौरस्त्यभित्ति कटकथी—भित्ति प्रदेशथी नीकणीने ओ नदीओ पाश्चात्य भित्ति प्रदेशभां थप ते सिंधु महानदीभां प्रवेश करे छे (से केणट्टेणं मंते ! एवं बुच्चइ उन्मगणिमग्नजलाओ महाणईओ) हे भदन्त ! ओ नदीओ)ना उन्मग्ना अने निमग्ना ओवा नामे शा कारणथी पटथा छे ? ओ)ना ज्वाअभां प्रभु कहे छे (गोयमा ! जणं उन्मग्नजलाए महाणईए तणं वा पत्तं वा कट्टं वा सक्करं वा आसे

જલાયાં મહાનદ્યાં તૃણં વા પત્રં વા કાષ્ઠં વા શર્કરા વા પાપાણસુખ્દઃ, અશ્વો વા હસ્તી વા રથો વા યોધો વા સુમટઃ, મનુષ્યો વા પ્રક્ષિપ્યતે 'તૃણં ઉન્મગ્ગજલા મહાણઈ તિવલ્લુત્તો આહુણિઅ ઇગતે થલંસિ ઇદેઈ' તત્ તૃણાદિકં સ્વલ્લુ ઉન્મગ્ગજલા મહાનદી ત્રિઃ કૃત્વઃ ત્રીન્ વારાન્ આધૂય આધૂય ભ્રમયિત્વા ભ્રમયિત્વા જલેન સદાઽઽહત્યાહત્યેત્યર્થઃ; ઇકાન્તે જલપ્રદેશાદ્દ્વીપસિ સ્થલે સ્થાને નિર્જલપ્રદેશે સ્થાને 'ઇદેઈ' હૃદયતિ તીરે પ્રક્ષિપતિ इत्यર્થઃ; તુમ્બીફલમિવ શિલાઃ ઉન્મગ્ગજલે ઉન્મજ્જતીત્યર્થઃ; અત ઇવોન્મજ્જતિ શિલાદિકમ્ અસ્માદિતિ ઉન્મગ્ગમ્ 'કૃદ્ બહુલમિતિ અપાદાને ક્ત પ્રત્યયઃ; ઉન્મગ્ગનં જલં યસ્યાં સા ઉન્મગ્ગજલા, અથ દ્વિતીયા નામાન્વર્થઃ; 'જણં ણિમગ્ગજલાઈ મહાણઈઈ તૃણં વા પત્રં વા કદ્દ

તૃણપત્ર કાષ્ઠ, પથર કે ટુકડે, અશ્વ, હાથી, યોધા અથવા સામાન્ય કોઈ મો મનુષ્ય હા ૩ દિયે જાવે તો વહ ઉન્મગ્ગના મહાનદી ત્રી વાર ઉન્ને ઇધર ઉધર ઘુમા-૨ કર ઇકાન્ત જલ પ્રદેશ સે દૂર કિસી સ્થલ મેં-નિર્જલ પ્રદેશ મેં-હાલ દેતી હૈ તુમ્બી ફલ જિસ પ્રકાર પાની મેં ઉતરાતા ઉતરાતા તીરપર લગ જાતા હૈ ઇસી પ્રકાર ઇસી મેં ગિરા હુઆ હર ઇક પદાર્થ ઉતરાતા ઉતરાતા તીર પર લગ જાતા હૈ ઇસ કારણ હૈ ગૌતમ ! ઇસ નદી કા નામ ઉન્મગ્ગના ઇસા કહા ગયા હૈ । (જણં ણિમગ્ગજલાઈ મહાણઈઈ તૃણં વા પત્રં વા કદ્દવા સક્કરં વા જાવ મણુસેવા પક્ષિલવહ) જિસ કારણ સે નિમગ્ગના મહાનદી મેં તૃણ, પત્ર, કાષ્ઠ પથર કે છોટે ટુકડે, અશ્વ હાથી, યોધા અથવા સામાન્ય કોઈ મો મનુષ્ય હાલ દિયે જાવે તો વહ નિમગ્ગના નામ કી મહાનદી ત્રી વાર ઉન્ને ઇધર ઉધર ઘુમા ઘુમા કર અપને હો મીતર કર હેતી હૈ ઇસ કારણ ઇસકા નામ નિમગ્ગના ઇસા કહા ગયા હૈ । યહી વાત (સે તેણદ્વેણ ગોચમા ! ઇવ બુચ્ચઈ ઉન્મગ્ગણિમગ્ગજલાઓ મહાણઈઓ) ઇમ પાઠ દ્વારા કહો ગઈ હૈ । પૂર્વમેં "કૃદ્-બહુલમ્" સૂત્ર સે અપાદાન મેં ઘૌર યહાં અધિકરણ મેં ક્ત પ્રત્યય હુમા હૈ । યે દોનોં નદિયાં ત્રીન

વા હસ્તી વા જોદ્દે વા મણુસે વા પક્ષિલવહ) હે ગૌતમ ઉન્મગ્ગ મહાનદીમા તૃણ, પત્ર, કાષ્ઠ, પથરના કકડા, અશ્વ, હાથી, યોદ્દા અથવા સામાન્ય કોઈ પશુ મનુષ્ય નાખવામાં આવે તો તે ઉન્મગ્ગના નદી તેમને આમ-તેમ ફેરવી તે એકાત જળ પ્રદેશમા-ફર કોઈ સ્થળમા-નિર્જળ પ્રદેશમાં નાખી દે છે. તૃણી ઇળ જેમ પાણીમા તરતું તરતું કિનારે પહોચી બાય છે, તેમજ એ નદીમા પડેલી ઠરેકે ઠરેકે વસ્તુ તરતી-તરતી કિનારે પહોચી બાય છે એથી જ હે ગૌતમ ! એ નદીનું નામ ઉન્મગ્ગના કહેવામાં આવ્યું છે (જણ ણિમગ્ગજલાઈ મહાણઈઈ તૃણ વા પત્રં વા કદ્દ વા સક્કર વા જાવ મણુસેવા પક્ષિલવહ) જે કારણથી નિમગ્ગના મહાનદીમા તૃણ પત્ર, કાષ્ઠ, પથરના નાના-નાના કકડા અશ્વ, હાથી યોદ્દા અથવા સામાન્ય કોઈ પશુ મનુષ્ય નાખવામાં આવે તો નિમગ્ગના નામક મહાનદી ત્રણ વખત તેમને આમ-તેમ ફેરવીને ચોતાની અંદર જ સમાવી દે છે એથી જ એ મહાનદીનું નામ નિમગ્ગના કહેવામાં આવ્યું છે. એ જ વાત (સે તેણદ્વેણ ગોચમા ! પર્વ બુચ્ચઈ ઉન્મગ્ગણિમગ્ગજલાઓ મહાણઈઓ) એ પાઠ વડે બ્યક્ત કરવામાં આવી છે પૂર્વમા 'કૃદ્-બહુલમ્' સૂત્રથી અપાદાનમા અને અહી અધિકરણમા 'ક્ત' પ્રત્યય થયેલ છે એ બન્ને નદીઓ ત્રણ

वा सकरं वा जाव मणुस्से वा पक्खिप्पड' यत् खलु निमग्नजलाया महानद्यां तृणं वा पत्रं वा काष्ठं वा शर्करा वा यावत् पान् अश्वो वा इस्ती वा रथो वा योधो वा मनुष्यो वा प्रक्षिप्यते 'तृणं निमग्नजला महानदी तिव्खुत्तो आहुणिअ आहुणिअ अतो जलंसि निमज्जावेइ' तत् पूर्वोक्तं वस्तु जात खलु निमग्नजला महानदी त्रिः कृत्वः अधुयाधूय त्रीन् वारान् भ्रमयित्वा भ्रमयित्वा अन्तर्जलम् जलमध्ये किं ' निमज्जयति अत एव निमज्जयत्यस्मिन् तृणादिकमखिलं वस्तु जातमिति निमग्नम्, बहुलनचनादधिकरणे क्त प्रत्ययः, निमग्न जलं यस्यां नद्याम् सा निमग्नजला, से तेणहृठेणं गोयभा एवं बुच्चइ उन्मग्ननिमग्न जलाओ महानइओ' अथ तेनार्थन गौतम ! एवमुच्यते उन्मग्नानमग्नजले महानद्यौ इति, अनयोश्च यथाक्रमम् उन्मज्जकत्वे वस्तु स्वभाव एव इमे च द्वे अपि त्रियोजनविस्तरे गुहाविस्तारायामे अन्योऽन्यं द्वियोजनान्तरे बोध्ये द्वियोजनम् अन्तरम् अनयो यथा गुहामध्यदेशवर्तित्वं तथा सुलभबोधाय स्थापनया दर्शयते यथा-

॥४१७॥३॥३॥१७७॥

॥४१७

॥

अथ दुरवगाहे नद्यौ विबुध्य भरतो यच्चकार तदाह- 'तृणं' इत्यादि 'तृणं से भरहे राया चक्ररयणदेसियमग्गे अणेगरायसहस्साणुयायमग्गे' ततः खलु स भरतो राजा चक्ररत्नदेशितमार्गः चक्ररत्नेन देशितो दर्शितो मार्गो यस्मै स तथा, तथा-अनेकराजसहस्रानुयातमार्गः तत्र अनेकैः राजसहस्रैरनुयातः-अनुचलितो मार्गो यस्य स तथा, चक्ररत्नप्रदर्शितमार्गमनुसृत्य गच्छतः चक्रवर्ति भरतस्य पश्चात् अनेके राजानः प्रयान्तीत्यर्थः। 'महाया उक्किट्ट सीहणाय जाव करेमाणे करेमाणे' महतोत्कृष्ट 'सिंहनाद यावद् बोलकल-

योजन की विस्तार वाली है गुहा का आयाम और विस्तार जैसा इनका विस्तार और आयाम है तथा ये दो-२ योजन के अन्तर वाली हैं। गुहा के मध्यदेश में ये हैं। इनकी स्थापना इस प्रकार से है-॥४१७॥३॥३॥१७७॥

जब भरत ने इन दोनों नदियों को ॥४१७ दुरावगाह जाना तो उसने क्या किया इस बात को सूत्रकार समझाते हुए कहते हैं-(तृणं से भरहे राया चक्ररयणदेसियमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे) चक्ररत्न से जिसे मार्ग दिखाया जा रहा है, एव जिसके पीछे-२ हजारों राजा महाराजा चल रहे हैं ऐसा वह भरत राजा (महाया उक्किट्ट सीह-

योजन जेटली विस्तारवाणी छे. शुक्ष्णा आयाम अने विस्तार जेवा ज ओमना विस्तार अने आयाम छे. तेमज्जे ओ महानदीओ जे योजन जेटला अतरवाणी छे. शुक्ष्णा मध्य देशभा ओ महानदीओ छे ओमनी स्थापना आ प्रभाणे छे- ॥ ४ १७ ॥ ३ ॥ ३ ॥ ३ ॥ १७ ४ ॥ ज्यारे भरतराजजे अन्ने नदीओने ॥ ४ १७ दुरावगाह जेणी त्यारे तेजे शु' कथुं ओ वातने सूत्रकार स्पष्ट करता छडे छे के (तृणं से भरहे राया चक्ररयणदेसियमग्गे अणेगरायवरसहस्सानुयायमग्गे) चक्ररत्नथी जेने मार्ग भताववाभां आवी रह्यो छे अने तेनी ७ण-पाछण डेनारे राज-महाराजओ आली रह्यो छे, जेवो ते भरत

कलरवेण समुद्ररवं भूतामिव प्राप्तामिव गुहामितिगम्यम् कुर्वन् कुर्वन् सिंधूए महाणईए पुरच्छिमिल्लेणं कूडेणं जेणेव उम्मग्गजला महाणई तेणेव उवागच्छइ' सिन्ध्वा महानद्याः- पौरस्त्ये कूले पूर्वतटे उभयत्र णं शब्दो वाक्यालङ्कारे अयमर्थः तमिस्राया अधो भागे वहन्ती सिन्धुस्तमिस्रा पूर्वकटकमवधीकृत्यैवेति, उन्मग्नाऽपि पूर्वकटकान्निर्गताऽस्ती- त्युभयोरेकस्थानतासूचनार्थं ऋमिदं सूत्रम्, यत्रैवोन्मग्नजला महानदी तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'वद्धइरयण सहावेइ' वर्द्धकिरत्तं शब्दयति आह्वयति 'सहा- वित्ता एवं वयासी' शब्दयित्वा आह्वय, एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् किम- वादीत् इत्याह—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उम्मग्गणिमग्गजलासु महाणइसु अणेग- खंभसयसण्णिविट्ठे अयलमकंपे अमेज्जकवए सालंबणवाहाए सव्वरयणामए सुहसकमे करेइ' क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिय ! उन्मग्गनिमग्गजलयो महानद्योः अनेकस्तम्भशतसन्नि-

णाय जाव करेमाणे २ सिंधूए महाणईए पुरच्छिमिल्लेणं कूडेणं जेणेव उम्मग्गजला महाणई तेणेव उवागच्छइ) जोर-२ से सेनाजनके एवं साथ में चलनेवाले राजा महाराजाओं के सिंहनाद के जैसे बोल से अव्यक्तध्वनि से— एवं कल कल रव से समुद्र के जैसे रव की प्राप्त हुई न हो मानो ऐसी गुहा को करता करता सिंधु महानदी के पूर्व तट पर जहां उन्मग्ना नदी थी वहां पर आया (उवागच्छिता वद्धइरयणं सहावेइ) वहां आकर के उसने वर्द्धकिरत्त को बुलाया तमिस्रागुहा के अधोभाग में तमिस्रा के पूर्व कटक की अवधि करके ही सिन्धु महानदी वहती है तथा उन्मग्ना महानदी भी तमिस्रा के पूर्व तट से निकली है इसलिये दोनों नदियों का समागम यहाँ हो जाता है (सहावित्ता एवं वयासी) वर्द्धकी रत्त को बुला करके उसने ऐसा कहा (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उम्मग्गणिमग्गजलासु महाणइसु अणेगखंभसय सण्णिविट्ठे अयलमकंपे अमेज्जकवए सालंबणवाहाए सव्वरयणामए सुहसकमे करेइ) हैं देवानुप्रिय ! तुम ही उन्मग्ना और निमग्ना महानदियों के ऊपर अनेक सैकड़ों खंभो से युक्त, अचल,

२।७ (महया उक्किट्ट सीहणाय जाव करेमाणे २ सिंधूए महाणईए पुरच्छिमिल्लेणं कूडेणं जेणे व उम्मग्ग जला महाणई तेणेव उवागच्छइ) सेना तेभञ्ज २।७ महाराजाओंकी तीन आद्यथी थता सिंहेनाइ जेवा अव्यक्त ध्वनिथी तथा उदारवथी समुद्रनी जेवा ध्वनिने प्राप्त थयेइ नु डोय जेवी शुक्षणे सुभरित-ध्वानत करतो ते राजा सिंधु महानदीना पूर्व तट उपर के जेवा उन्मग्ना नदी हुती त्या आव्ये (उवागच्छिता वद्धइरयणं सहावेइ) त्या आवीने तेजे वर्द्धकिरत्तने (सुधार) जेवा आव्ये तमिस्रा शुक्षणा अधो भागमा तमिस्राना पूर्वकटकनी अवधि करी ने ज सिंधु महानदी वडे छे तेभञ्ज उन्मग्ना महानदी पधु तमिस्राना पूर्वतटथी नीकणी छे. जेथी जेने नदीजेनेो अत्रे सभागभ थधं जथ छे. (सहावित्ता एवं वयासी) वर्द्धकिरत्त ने जेवावीने ते राजाजे तेने आ प्रभाजे छहु—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उम्मग्ग- मग्गजलासु महाणइसु अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे अयलमकंपे अमेज्जकवए सालंबणवाहाए सव्वरयणामए सुहसकमे करेइ) छे देवानुप्रिय ! तमे शीघ्र उन्मग्ना अने निमग्ना नदीनी उपर अनेक उलारे स्त जेवाणा अथइ अकंप तेभञ्ज हुठे ध्वयनी जेभ अलेइ जेवा जे

विष्टौ सुखसंक्रमौ सेतु द्वयं कुरुष्वेत्यग्रे सम्बन्धः कीदृशी तौ इत्याह—अनेकानि स्तम्भगतानि तेषु सन्निविष्टौ—सुसंस्थितौ अथवा अनेकानि स्तम्भगतानि सन्निविष्टानि सलग्नानि ययोः तौ तथा अत एवाचलौ महाबलाक्रान्तत्वेऽपि न स्वस्थानाच्च लतः अकम्पौ दृढौ अथवा अचलो गिरिस्तद्वद् अकम्पौ मकारोऽलाक्षणिकः भ्रमेद्य-कवचाविव भ्रमेद्यकवचौ दृढौ अभेद्यसन्नाहौ जलादिभ्यो न भेदं यातौ जलादिभिरपि अभेद्यौ इत्यर्थः, ननु अनन्तरोक्तविशेषणाभ्यामुत्तरतां जनानां तदुपरि पातशङ्काया अभावेऽपि उभयपार्श्वयो जलपातशङ्का स्यादेवेत्याह—सालम्बनवाहौ इति, सालम्बने—उपरिगच्छतां जनानामवलम्बनभूतेन दृढतरमित्तिरूपेण आलम्बनेन सहितौ वाहौ—उभयपार्श्वौ ययोस्तौ तथा, तथा 'सञ्चरयणामप' सर्वरत्नमयौ—सर्वात्मना रत्नमयौ यद्वा सर्वजातीय रत्नयुक्तौ तथा 'सुहसंक्रमे' सुखसंक्रमौ सुखेन संक्रमः—पादविक्षेपो यत्र तौ इदृशी संक्रमौ सेतु कुरुष्व 'करिन्ता' कृत्वा 'मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि 'मम एताम् आज्ञप्तिकां क्षिप्रमेव शीघ्रमेव प्रत्यर्पयेति । अथ स वर्द्धकिरत्ननामः किं कृतवान् इत्याह 'तएण' इत्यादि 'तएणं से वद्धइरयणे भरहेणं रण्णा एव वुत्ते समाणे द्दुत्तुच्चित्तमाण्दिणं जाव विणएण पडिसुणेह' ततः खलु तत् वर्द्धकिरत्नं भरतेन राज्ञा एवम् उक्त प्रकारेण उक्तं—कथितं सत् दृष्टुच्चित्तमानन्दित यावत् विनयेन प्रतिश्रृणोति स्वीकरोति 'पडिसुणिन्ता' प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य 'खिप्पामेव उम्मगणिमगजलासु महाण-

अकप तथा दृढकवचके जैसे अभेद्य ऐसे दो पुलों को बनाओ इनपुलों के उभयपार्श्व में आलम्बन हो जिससे उन महानदियों में उनके ऊपर से चलनेवालों में कोई गिर न सके (सञ्चरयणामप) दोनों पुल सर्वात्मना रत्नमय हों अथवा सर्वजाति के रत्नों द्वारा निर्मित हुए हों और जिन पर सुखपूर्वक गमनागमन हो सके (करिन्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि) ऐसे दो पुल जब तुम बनाकर तैयार करलो तब हमे इसकी पीछे खबर जल्दी से दो (तएण से वद्धइरयणे भरहेणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे द्दुत्तुच्चित्तमाण्दिणं जाव विणएण पडिसुणेह) उस वर्द्धकि रत्न ने अपने स्वामी भरत राजा को आज्ञा को सुना तो वह बहुत ही अधिक हर्षित एवं चित्त में आनन्दित हुआ और यावत् बड़ी विनय के साथ उसने उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली (पडिसुणिन्ता खिप्पामेव उम्मगणिमगजलासु महाणईसु अणेण खंभसयसण्णि-

पुढौ तैयार करे। ओ पुढौना उलयपार्श्वो भा आस अने। डोय डे नेथी तेभनी उपर थधने पसार थनार डैधपञ्च ते महानदीयोभा पडेनहि (सञ्चरयणामप) ओ अने पुढौ सर्वात्मना रत्नमय डोय अथवा सर्व जतिना रत्ने। द्वारा निर्मित डोय डे नेथी तेभनी उपरथी सुभ पूर्वक गमन-आगमन थध थके. (करिन्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि) ओवा अन्ने पुढौ न्यारे तैयार थध जय थ्यारे तरत न् अभने सूथना आपो (तएण से वद्धइरयणे भरहेण रण्णा एव वुत्ते समाणे द्दुत्तुच्चित्तमाण्दिणं जाव विणएण पडिसुणेह) वर्द्धकिरत्ने (सुथारे) न्यारे पोताना स्वाभीनी आज्ञा आसणी ते। ते अतीव हर्षित तेभञ्चित्तमां आनन्दित थये। यावत् अतीव विनयताथी तेणे पोताना स्वाभीनी आज्ञा स्वीकारी वीधी (पडिसुणिन्ता खिप्पामे उम्मगणिमगजलासु महाणईसु अणेणखंभसयसण्णिविहे जाव सुदयं कमे

ईसु अणेगखभसयसणिविद्वे जाव सुहसंकमे करेइ' क्षिप्रमेव उन्मग्ननिमग्नजलयो
 महानद्योः अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टौ यावत् अचलौ अकम्पौ अमेधऋवचौ साल-
 म्वनवाही पर्वरत्नमयौ सुखमंक्रमा सेतु-सेतुद्वयं करोति 'करिन्ता' कृत्वा जेणेव भरहे
 राया तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव भरतो राजा तत्रैव तत् वर्द्धकिरत्नम् स वर्द्धकिः उपाग
 च्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'जाव एयमाणत्तियं पञ्चपिणइ' यावत् पूर्वोक्ताम्
 एताम् राज्ञोक्तप्रकारिकाम् आश्रितिकां (आज्ञां) प्रत्यर्पयति समर्पयति, ननु उन्मग्नजला
 जलस्थोन्मज्जकत्वस्वभावसिद्धत्वात् न्यं तत्र संक्रमार्थकशिलास्तम्भादिन्यासः सुस्थिरो
 भवति ? सच दीर्घपट्टशालाकारो न च जलोपरि काष्ठादिमयः सम्भवति तस्या सार-
 त्वेन भारासहत्वात् इति चेन्नवर्द्धकिरत्नकृतत्वेन दिव्यशक्ते रचिन्त्यशक्तित्वात्,
 लोक उत्तरति, गुफा च तावन्तं कालमपावृतैनास्ने मण्डलान्यपि तथैव तिष्ठन्ति चक्रव-

विद्वु जाव सुहसंकमे करेइ) भरत राजा की आज्ञा को स्वीकार करके उसने शीघ्र ही
 उन्मगना और निमगना नदी के ऊपर पूर्वोक्त अनेक सैकड़ों खम्भों आदि विशेषणों से युक्त
 दो पुल बना दिये (करिन्ता जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) दो पुलों को बनाकर
 फिर वह जहाँ पर भरत राजा विराजमान थे वहाँ पर आया (उवागच्छित्ता) वहाँ आकर
 के (जाव एयमाणत्तियं पञ्चपिणइ) उसने पुलों के पूर्णरूप से निर्माण हो जाने की भरत राजा
 को खबर दे दी—यहाँ पर ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए कि उन्मगना नदी का तो स्वभाव
 ऐसा है कि जो भी पदार्थ उसमें गिर जाता है वह उसके ऊपर ही रहता है डूबता
 नहीं है तो फिर सेतु बनाने के लिये ढाले गये पदार्थ उसमें कैसे नीचे पहुँच गये और कैसे वहाँ
 वे स्थिर होकर जम गये । ये पुल वर्द्धकिरत्न ने बनाये होते हैं इसलिये उसकी शक्ति
 अचिन्त्य होने के कारण वे वहाँ पर सुस्थिर रहते हैं और इनके ऊपर से लोक उतरते
 रहते हैं तथा चक्रवर्ती के जीवन तक गुफा खुली हुई रही आती है. और उसमें वे सब
 मण्डल धर्यों के त्यों उतने ही काल तक बने रहते हैं जब चक्रवर्ती दिवंगत हो जाता है

करेइ) भरत राजांनी आज्ञा स्वीकारिने तेणे तत्र न उन्मगना अने निमगना नदींनी उपर
 डेवरी स्तंभो वगेरेथी पूर्वोक्त विशेषणथी युक्त जेवा ते रमणीय पुढी भनाव्या (करिन्ता
 जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) ते पुढी भनावीने पछी ते ज्या भरत राजा विद्यमान
 होता त्या आव्ये (उवागच्छित्ता) आवीने (जाव एयमाणत्तियं पञ्चपिणइ) तेणे ते पुढी
 आज्ञा सुश्रुण न तयार थर्ष गया छे, जेवी भरत राजाने सूचना आपी अही' जेवी आज्ञा
 करपी योग्य नथी ते उन्मगना नदी तो स्वभावे न जेवी छे ते वस्तु तेभा पडी जाय
 छे, ते तेनी उपर न रहे छे, डूबती नथी. तो पछी पुल भनाववा भाटे नाथवाभा आवेदी
 वस्तुजो तेभा नीचे सुधी देवी रीते पडोंची अने त्या देवी रीते स्थिर थर्षने जागी गर्ष.
 जे पुढी वर्द्धकिरत्न भनावे छे जेथी तेनी शक्ति अचिन्त्य होवाथी तेजो त्या सुस्थिर
 न रहे छे अ तेभनी उपर थर्षने होके पार उतरता रहे छे तेभन चक्रवर्तीना जीवन-
 काण सुधी शुभा शुद्धी न रहे छे तेभा ते सवे' मंडणी तेना जीवनकाण सुधी यथावत

त्तिनि परलोके गते संयमे गृहीते सति पट्मासपर्यन्तम् भुङ्क्षितं सेतुद्वयं तिष्ठति सारो-
द्धारवृत्तेरभिप्रायः, त्रिषष्टीयाचितचरितेतु-

‘उद्घाटितं गुहाद्वारं गुहान्तं मण्डलानि च ।

तावत् तान्यपि तिष्ठन्ति यावज्जीवति चक्रभृत् ॥१॥ इत्युक्तम्

‘तपणं से भरहे राया सखंधावारबले उन्मग्ननिमग्नजलाओ महार्णईओ तेहि
अणेगखंभसयसणिणिविद्वेहि जाव सुहसंकमेहि उत्तरइ’ ततः खलु स भरतो राजा
सस्कन्धावारबलः स्कन्धावाररूपबलसहितः, सैन्यान्वितः उन्मग्ननिमग्नजले महानद्यो
ताभ्याम् अनेकस्कन्धशतसन्निविष्टाभ्यां यावत् अचलाभ्यामकम्पाभ्याम् अभेद्यकवचाभ्यां
सालम्बनवाहाभ्यां सर्वरत्नमयाभ्यां सुखसंक्रमाभ्याम् उत्तरति परपार गच्छति, एवम्
उत्तरतो गच्छति, राजराजे भरते उत्तरद्वारे यज्जातं तदाह - ‘तपणं तीसे’ इत्यादि
तपण तीसे तिमिस्सगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स क्वाडा सयमेव महयार महयार कौचारवं
करेमाणा सरसरस्सग्गाइं सरसरस्सग्गाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था’ ततो नद्यतिक्रमणान-
न्तरं खलु तस्या स्तमिसागुहाया औत्तराहस्य द्वारस्य कपाटी स्वयमेव सेनापति दण्ड-
रत्नाघातमन्तरेण ‘महयार महयार’ इति सूत्रदेशेन पूर्वसूत्रस्मरणेन ‘महयार महयार

या सयम गृहीत कर लेता है तब वे छह माह तक सुरक्षित रहते हैं. ऐसा सारोद्धार वृत्ति
का अभिप्राय है तथा त्रिषष्टीया चरित्र में तो-

उद्घाटितं गुहा द्वारं गुहान्तंमण्डलानि च । तावत् तान्यपि तिष्ठन्ति यावज्जीवति चक्रभृत् ॥१॥

ऐसा कहा है (तपणं से भरहे राया सखंधावारबले उन्मग्ननिमग्नजलाओ महार्णईओ तेहि
अणेगखंभसयसणिणिविद्वेहि जाव सुहसंकमेहि उत्तरइ) इसके बाद भरतराजा अपनी पूर्ण सेनासहित उन
उन्मग्न निमग्न नामकी नदियों कोउन अनेक सैकड़ों खमो वाले पुलों के ऊपर से होकर
आनन्द पूर्वक पार कर गया यहा यावत् शब्द से पुलों के जो विशेषण ऊपर में कहे गये हैं
वे गृहीतहुए हैं (तपणं तीसेण तिमिस्स गुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्सक्वाडा सयमेव महयार
कौचारवं करेमाणा सरसरस्सग्गाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था) दोनों नदियों को पार करके

प्रकाश पाथरता रहे छे न्यारे अकेवतीं दिव गत थछ नय छे. अथवा संयम गृहीत करी
वे छे त्यारे ते ६ मास सुधी सुरक्षित रहे छे. ज्येवे सारोद्धार वृत्तिने अभिप्राय छे.
तथा ‘त्रिषष्टीया चरित्रमा तो-

उद्घाटितं गुहाद्वारं गुहान्तंमण्डलानि च । तावत् तान्यपि तिष्ठन्ति यावज्जीवति चक्रभृत्
आम कछु छे (तपणं से भरहे राया सखंधावारबले उन्मग्ननिमग्नजलाओ महार्णईओ तेहि
अणेगखंभसयसणिणिविद्वेहि जाव सुहसंकमेहि उत्तरइ) त्यार बाद भरत राजा पोटाना
स पुलं सैन्यनी साथे उन्मग्न अने निमग्न नदीयोने तेमना अनेक स्त बोवाणा पुट्टी
ऊपर थधने आनंदपूर्वक पार करी गये. अही यावत् शब्दथी पुट्टीना ने विशेषणोऊपर
कहेगया आंथा छे, ते गृहीत थथा छे (तपणं तीसेण तिमिस्सगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स
क्वाडा सयमेव महयार कौचारवं करेमाणा सरसरस्सग्गाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था) अन्ने

ईसु अणेगखंभसयसणिविद्वे जाव सुहसंक्रमे करेइ' क्षिप्रमेव उन्मग्ननिमग्नजलयो
 र्महानद्योः अनेकस्तम्भशतसन्निविष्टौ यावत् अचलौ अकम्पौ अमेधकवचौ साल-
 म्वनबाहौ पर्वरत्नमयौ सुखपंक्रमां सेतु-सेतुद्वयं करोति 'करिचा' कृत्वा जेणेव भरहे
 राया तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव भरतो राजा तत्रैव तत् वर्द्धकिरत्नम् स वर्द्धकिः उपाग
 च्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'जाव एयमाणत्तियं पञ्चपिणइ' यावत् पूर्वोक्ताम्
 एताम् राज्ञोक्तप्रकारिकाम् आज्ञप्तिकां (आज्ञां) प्रत्यर्पयति समर्पयति, ननु उन्मग्नजला
 जलस्थोन्मज्जकत्वस्वभावसिद्धत्वात् इत्थं तत्र संक्रमार्थकशिलास्तम्भादिन्यासः सुस्थिरो
 भवति ? सच दीर्घपट्टशालाकारो न च जलोपरि काष्ठादिमयः सम्भवति तस्या सार-
 त्वेन भारासहत्वात् इति चेन्नवर्द्धकिरत्नकृतत्वेन दिव्यशक्ते रचिन्त्यशक्तित्वात्,
 लोक उत्तरति, गुफा च तावन्तं कालमपावृतैनास्ने मण्डलान्यपि तथैव तिष्ठन्ति चक्रव-

विद्वु जाव सुहसकमे करेइ) भरत राजा की आज्ञा को स्वीकार करके उसने शीघ्र ही
 उन्मगना और निमगना नदी के ऊपर पूर्वोक्त अनेक सैकड़ों खम्भों आदि विशेषणों से युक्त
 दो पुल बना दिये (करिचा जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) दो पुलों को बनाकर
 फिर वह जहाँ पर भरत राजा त्रिराजमान थे वहाँ पर आया (उवागच्छित्ता) वहाँ आकर
 के (जाव एयमाणत्तियं पञ्चपिणइ) उसने पुलों के पूर्णरूप से निर्माण हो जाने की भरत राजा
 को खबर दे दी—यहाँ पर ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए कि उन्मगना नदी का तो स्वभाव
 ऐसा है कि जो भी पदार्थ उसमें गिर जाता है वह उसके ऊपर ही रहता है हूबता
 नहीं है तो फिर सेतु बनाने के लिये डाले गये पदार्थ उसमें कैसे नीचे पहुँच गये और कैसे वहाँ
 वे स्थिर होकर जम गये । ये पुल वर्द्धकिरत्न ने बनाये होते हैं इसलिये उसकी शक्ति
 अचिन्त्य होने के कारण वे वहाँ पर सुस्थिर रहते हैं और इनके ऊपर से लोक उतरते
 रहते हैं तथा चक्रवर्ती के जीवन तक गुफा खुली हुई रही आती है और उसमें वे सब
 मण्डल ज्यों के त्यों उतने ही काल तक बने रहते हैं जब चक्रवर्ती दिवंगत हो जाता है

करेइ) भरत राजा की आज्ञा स्वीकार करने के लिये तबत न उन्मगना अने निमगना नदी की उपर
 दुन्मगना अने निमगना नदी के ऊपर पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त दो पुल बनाये (करिचा
 जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) दो पुलों को बनाकर वहाँ पर आया (उवागच्छित्ता) वहाँ
 आकर के (जाव एयमाणत्तियं पञ्चपिणइ) के लिये पुलों के पूर्णरूप से निर्माण हो जाने की भरत राजा
 को खबर दे दी—यहाँ पर ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए कि उन्मगना नदी का तो स्वभाव
 ऐसा है कि जो भी पदार्थ उसमें गिर जाता है वह उसके ऊपर ही रहता है हूबता
 नहीं है तो फिर सेतु बनाने के लिये डाले गये पदार्थ उसमें कैसे नीचे पहुँच गये और कैसे वहाँ
 वे स्थिर होकर जम गये । ये पुल वर्द्धकिरत्न ने बनाये होते हैं इसलिये उसकी शक्ति
 अचिन्त्य होने के कारण वे वहाँ पर सुस्थिर रहते हैं और इनके ऊपर से लोक उतरते
 रहते हैं तथा चक्रवर्ती के जीवन तक गुफा खुली हुई रही आती है और उसमें वे सब
 मण्डल ज्यों के त्यों उतने ही काल तक बने रहते हैं जब चक्रवर्ती दिवंगत हो जाता है

तिनि परलोके गते सयमे गृहीते सति पट्मासपर्यन्तम् मुग्धितं सेतुद्वयं तिष्ठति सारो-
द्धारवृत्तेरभिप्रायः, त्रिषष्टियाचितचरितेतु-

“उद्घाटितं गुहाद्वारं गुहान्तं मण्डलानि च ।

तावत् तान्यपि तिष्ठन्ति यावज्जीवति चक्रभृत् ॥१॥ इत्युक्तम्

‘तपण से भरहे राया सखधावारबळे उन्मग्ननिमग्नजलाभो महानद्यो तेहिं
अणेगखमसयसणिविद्वेहिं जाव सुहसंकमेहिं उत्तरइ’ ततः खलु स भरतो राजा
सस्कन्धावारबलः सस्कन्धावाररूपबलसहितः, सैन्यान्वितः उन्मग्ननिमग्नजले महानद्यो
ताभ्याम् अनेकस्कन्धशतसन्निविष्टाभ्यां यावत् अचलाभ्यामरुम्पाभ्याम् अभेद्यकवचाभ्यां
सालम्बनवाहाभ्यां सर्वरत्नमयाभ्यां सुखसंक्रमाभ्याम् उत्तरति परपार गच्छति, एवम्
उत्तरतो गच्छति, राजराजे भरते उत्तरद्वारे यज्जातं तदाह - ‘तपणं तीसे’ इत्यादि
तपण तीसे तिमिससगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सयमेव महया महया कौचारवं
करेमाणा सरसरस्सग्गाइ सरसरस्सग्गाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था’ ततो नद्यतिक्रमणान-
न्तरं खलु तस्या स्तमित्तागुहाया औत्तराहस्य द्वारस्य कपाटौ स्वयमेव सेनापति दण्ड-
रत्नाघातमन्तरेण ‘महया महया’ इति सूत्रदेशेन पूर्वसूत्रस्मरणेन ‘महया महया

या सयम गृहीत कर लेता है तब वे छह माह तक सुरक्षित रहते हैं। ऐसा सारोद्धार वृत्ति
का अभिप्राय है तथा त्रिषष्टिया चरित्र में तो-

उद्धारितं गुहा द्वारं गुहान्तमण्डलानि च । तावत् तान्यपि तिष्ठन्ति यावज्जीवति चक्रभृत् ॥१॥

ऐसा कहा है (तपणं से भरहे राया सखधावारबळे उन्मग्ननिमग्नजलाभो महानद्यो तेहिं
अणेगखमसयसणिविद्वेहिं जाव सुहसंकमेहिं उत्तरइ) इसके बाद भरतराजा अपनी पूर्ण सेनासहित उन
उन्मग्न निमग्न नामकी नदियों कोउन अनेक सैकड़ों खभो वाले पुलों के ऊपर से होकर
आनन्द पूर्वक पार कर गया यहाँ यावत् शब्द से पुलों के जो विशेषण ऊपर में कहे गये हैं
वे गृहीतहुए हैं (तपणं तीसेण तिमिस गुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्सकवाडा सयमेव महया
कौचारवं करेमाणा सरसरस्सग्गाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था) दोनों नदियों को पार करके

प्रकाश पाथरता रहे छे न्यारे अकवतीं दिवंगत थलं नथ छे अथवा सयम गृहीत करी
दे छे त्यारे ते ६ मास सुधी सुरक्षित रहे छे. जेवे सारोद्धार वृत्तिने अभिप्राय छे.
तथा त्रिषष्टिया चरित्रमा तो-

उद्घाटितं गुहाद्वारं गुहान्तमण्डलानि च । तावत् तान्यपि तिष्ठन्ति यावज्जीवति चक्रभृत्
आम कहुं छे (तपणं से भरहे राया सखधावारबळे उन्मग्ननिमग्नजलाभो महानद्यो तेहिं
अणेगखमसयसणिविद्वेहिं जाव सुहसंकमेहिं उत्तरइ) त्यारे माह भरत राजा याताना
सपूषं सैन्यानी साथे उन्मग्नना अने निमग्नना नदीयोने तेमना अनेक स्तंबोवाणा पुढे।
ऊपर थधने आनन्दपूर्वक पार करी गये। अही यावत् शब्दथी पुढेना जे विशेषणोऊपर
कहेवाया आन्था छे, ते गृहीत थथा छे (तपणं तीसेण तिमिसगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स
कवाडा सयमेव महया कौचारवं करेमाणा सरसरस्सग्गाइं ठाणाइं पच्चोसक्कित्था) अन्ने

सद्देण' महता महता शब्देन इति बोध्यम्, क्रीञ्चारवम् क्रीञ्चस्य - पक्षिविशेषस्यैव बहुव्यापित्वात् य आरवः शब्दः तं कुर्वाणा कुर्वन्तौ 'सरसरस्सत्ति' अनुकरणशब्दस्तेन तादृशं शब्दमनुकुर्वन्तौ कपाटौ इत्यर्थः 'सगाइं सगाइं' स्वके स्वके स्वकीये त्वकीये 'ठाणाइं' स्थाने अवष्टम्भभूततोड्करूपे, 'पच्चोसक्कित्था' प्रत्यवाष्वाष्किपाताम् प्रत्य-
र्पससर्पत्तुः ॥सू० १६॥

अथोत्तरभरतार्द्धविजयं विवक्षुस्तत्र विजेतव्यजनस्वरूपमाह "तेणं काछेणं" इत्यादि ।

मूलम्-तेणं कालेणं तेणं समएणं उत्तरड्डुभरहे वासे बहवे आवाडाणामं चिलाया परिवसंति, अड्डा दित्ता वित्ता विच्छिण्णविउलभव-
णसयणासणजाणवाहणाइन्ना बहुधणबहुजायरूपरयया आओगपओग-
संपउत्ता विच्छड्डिअ पउरभत्तपाणा बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूया
बहुजणस्स अपरिभूआ सूरा वीरा विकंता विच्छिण्णविउलबलवाहणा
बहुसु समरसंपराएसु लद्धलक्खा याविहोत्था, तएणं तंसिमावाडचिला-
याणं अण्णया कयाईं विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउभवित्था, तं
जहा. अकाले गज्जियं अकाले विज्जुआ अकाले पायवा पुप्फंति
अभिक्खणं अभिक्खणं आगासे देवयाओ णच्चंति, तएणं ते आवाड-
चिलाया विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भूआइं पासंति पासित्ता
अण्णमण्णं सदावेत्ती सदावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया !
अम्हं विसयंसि बहूइं उप्पाइअसयाइं पाउब्भूयाइं तं जहा अकाले
गज्जिअं अकाले विज्जुआ अकाले पायवा पुप्फंति अभिक्खणं अभिक्खणं
आगासे देवयाओ णच्चंति; तं ण णज्जइं णं देवाणुप्पिया ! अम्हं
विसयस्स के मन्ने उवहवे भविस्सईं त्तिकट्टु ओहयमणसंकप्पा
चित्तासोगसागरं पविट्ठा करयलपल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया भूमिगय-

तिमिन्न गुफाके समीप जाने के बाद उस तिमिन्नगुहा के उत्तर दिशा के द्वार के किवार सर सर
शब्द जोर जोरसे क्रोच पक्षी के जैसा सर सर करते हुए अपने आप अपने अपने स्थानसे
सरक गये खुल गये ॥सू १६॥

नदीझाने पार करीने पक्षी गुहानो समीप आब्या त्थार ते तिमिन्न गुहानो उत्तर दिशाना द्वारना
डभाडे जोर-जोरथी क्रोच पक्षी जेवा सर-सर ध्वनि करता करता पोटानी भेजे ज पोटानी
स्थान परथी सरकी गया अट्टवे के खुली गया ॥ १६ ॥

दिद्विआ झिआयंति, तएणं से भरहे राया चक्करयणदेसियमग्गे जाव
समुहरवभूअं पिव करेमाणे करेमाणे तिमिसगुहाओ उत्तरिल्लेणं दारेणं
णीति ससिब्व मेहंधरयाणिवहा तए णं ते आवाडत्रिलाया भरहस्स रण्णे
अग्गाणीअं एज्जमाणं पासंति पासित्ता आसुरत्ता रुद्धा चंडिकिआ
कुविआ मिसिमिसेमाणा अण्णमण्णं सहावेति सहावित्ता एवं वयासी
एसणं देवाणुप्पिया ! केइअप्पत्थिअपत्थए दुसंतपतलक्खणे हीणपुण्ण-
चउद्दसे हिरिसिस्सिस्सिज्जए जेणं अग्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्व.
मागच्छइ त तहाणं घत्तामो देवाणुप्पिआ जहाणं एस अग्हं विसयस्स
उवरिं विरिएणं णो हव्वमागच्छइ तिकदट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एअमट्ठं
पडिसुणेंति पडिसुणित्ता सण्णद्धबद्धवम्मियकवआ उप्पीलिअसरासण-
पट्टिआ पिणद्धर्गेवज्जा बद्ध आविद्धवीमलवर्राचधपट्टा गहिआउहप्प
हरणाजेणेव भरहस्स रण्णे अग्गाणीअं तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता
भरहस्स रण्णे अग्गाणीएण सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था तएणं ते आवाड-
चिलाया भरहस्स रण्णे अग्गाणीअं हयमहिअपवस्वीरघाइय विवाडि-
अचिंधद्धयपडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति ॥सू० १७॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये उत्तरार्द्धभरते वर्षे बहव आपाता नाम किराता
परिवसन्ति, आढ्याः दृप्ता वित्ताः विस्तीर्णविपुलभवनशयनासनयानवाहनाकीर्णाः
बहुधनबहुजातरूपरजताः आयोगप्रयोगसंप्रयुक्ताः चिच्छदितप्रचुरभक्तपाना बहुदासीदा-
सगोमहिषगवेलकप्रभूताः बहुजनेन अपरिभूताः शूराः वीराः विक्रान्ताः विस्तीर्णविपुलबल-
वाहनाः बहुषु समरसपरायेषु लब्धलक्षाभ्राप्यमवन् ततः खलु तेषाम् आपातकिरातानाम्
अन्यथा कदाचित् विषये बहूनि औत्पातिकशतानि प्रादुरभूवन् तद्यथा अकाले गज्जितम्
अकाले विद्युतः अकाले पादपा' पुष्यन्ति अमीक्षणम् अमीक्षणम् आकाशे देवताः नृत्यन्ति,
ततः खलु ते आपातकिराताः विषये बहूनि औत्पातिकशतानि प्रादुर्भूतानि पश्यन्ति दृष्ट्वा
अन्योऽन्ये शब्दयन्ति शब्दयित्वा पथमवादिषु पथं खलु देवानुप्रिया अस्माकं विषये बहूनि,
औत्पातिकशतानि प्रादुर्भूतानि तद्यथा अकाले गज्जितम् अकाले विद्युत अकाले पादपाः
पुष्यन्ति अमीक्षणम् अमीक्षणम् आकाशे देवताः नृत्यन्ति तन्न ह्यायते खलु देवानुप्रियाः ।
अस्माकं विषयस्य को मन्ये उपद्रवो भविष्यति इति कृत्वा अपद्रवतमन संकल्पाः चिन्ताशोक
सागरे प्रविष्टाः करतलपर्यस्तमुखाः आर्त्तध्यानोपगता भूमिगनदृष्टिका' ध्यायन्ति ततः खलु स
मत्नो राजा चक्ररत्नदेशितमार्गः यावत् समुद्ररथभूतामिव कुर्धन् तमिच्छागुहात औतराद्देण

द्वारेण निरैति शशीव मेघान्धकारनिघहात् तत्र खलु ते आपातकिराता भरतस्य राक्षः
अग्रानीकम् पञ्जमाणं पश्यन्ति दृष्ट्वा आशुरुपता रुष्टा चण्डिद्वियता मिसिमिलेमाणा दीप्य-
माना अन्धोन्मं शब्दयन्ति शब्दयित्वा पद्ममवादिषु एष देवानुप्रिया कश्चिद् अप्राथित-
प्रार्थकः दुरस्तप्रान्तलक्षणः हीनपुण्यचातुर्दशः ही ओ परिवर्जित' योऽस्माक विषयस्योपरि
वीर्येण हन्यम् आगच्छति तत् तथा खलु क्षिपामो देवानुप्रियाः यथा खलु पवोऽस्माकं
विषयस्योपरि वीर्येण नो शीघ्रमागच्छेत् इति कृत्वा अन्धोऽन्यस्याऽन्तिके पतमर्थं प्रतिशु-
ष्यन्ति प्रतिश्रुत्य सन्नद्धवद्वर्मितकवचा' उत्पीडितशरासनपट्टिका पिनद्धप्रैवेया यस्माद्विष्-
विमल्लवरचिन्हपट्टा गृहीतायुधप्रहरणाः यत्रैव भरतस्य राक्ष अग्रानीकं तत्रैवोपागच्छन्ति
उपागत्य भरतस्य राक्षोऽग्रानीकेन सार्द्धं संग्रल्लनाश्रवाप्यभूवन् तत' खलुते आपातकिराता
भरतस्य राक्षोऽग्रानीकं हतमयितप्रवरवीरघातितविपतितच्चिलञ्चजपताकं कृच्छ्रप्राणोपगतं
विद्योद्विधि प्रतिषेधयन्ति । सू० १७॥

तेणं कालेणं तेणं समपणं उत्तरद्वह भरहे वासे " इत्यादि.

टीकार्थ - "तेणं कालेणं" इत्यादि । 'तेणं कालेणं तेणं समपणं उत्तरद्वहभरहे
वासे बहवे आवाहा णाम चिळाया परिवसन्ति' तस्मिन् काले-तृतीयारक्रमान्ते तस्मिन्
समये यत्र समये भरतः उत्तरभरतार्द्धं विजेतुं तस्मिन्नातो निर्याति उत्तरार्द्धभरते उत्त-
रार्द्धभरतनाम्नि वर्षे क्षेत्रे अपाताः -अपाता इति नाम्ना किराताः परिवसन्ति, कीदृशा-
स्ते ? 'अद्वा' आख्याः धनिनः 'दित्ता' दृष्टाः -दर्पवन्तः 'वित्ता' वित्ताः वित्तजा-
तीयेषु प्रसिद्धाः 'विच्छिण्णविडलभवनसयणासणजाणवाहणाइन्ना' विस्तीर्णविपुल-
भवनशयनासनयानवाहनाकीर्णाः, तत्र विस्तीर्णविपुलानि अति विपुलानि भवनानि
येषां ते तथा शयनानि शय्यादीनि, आसनानि फलकादीनि यानानि रथादीनि वाहना-
नि अश्वादीनि आक्रोर्णानि जातीगुणसम्पन्नानि येषां ते तथा ततः कर्मधारयः 'बहुधण-

"तेणं कालेणं तेणं समपण उत्तरद्वहभरहे वासे" इत्यादि सूत्र -१७ ॥

(तेणं कालेणं तेणं समपणं) उस काल में और उस समय में (उत्तरद्वहभरहे वासे)
उत्तरार्ध भरत क्षेत्र में (बहवे आवाहा णाम चिळाया परिवसन्ति) अनेक आपात नाम के
किरात रहते थे (अद्वा दित्ता वित्ता विच्छिण्णविडलभवनसयणासणजाणवाहणाइन्ना) ये किरात
जन अनेक विस्तीर्ण भवनों वाले थे अनेक विस्तृत शयन और आसन वाले थे बड़े २ रथों के थे
अधिपति थे और अनेकबड़े बड़े वाड़े जो उत्तमोत्तम जाति के थे वे इनके पासमें थे (बहुधणबहु-

टीकार्थ—(तेणं कालेणं तेणं समपणं) ते कालमा अने ते समयमां (उत्तरद्वहभरहे वासे)
उत्तरार्ध भरत क्षेत्रमां (बहवे आवाहा णाम चिळाया परिवसन्ति) अनेक आपात नामके किरातो
रहेता हुता (अद्वा दित्ता वित्ता विच्छिण्ण विडलभवन सयणासणजाणवाहणाइन्ना) ये किरात
जाके अनेक विस्तीर्ण भवनोवाणा हुता, अनेक विस्तृत शयनो अने आसनोवाणा हुता
भोटा रथोना ओओ अधिपति हुता अने अनेक उत्तमोत्तम जातिना भोटा-भोटा वाडोओ
ओमनी पासे हुता (बहुधण बहुजायकवरधया) अधिभ, धरिभ येय अने परिच्छेदना

'बहुजायरुवरयया' बहुधनबहुजातरूपरजताः, तत्र बहुप्रभूतं धनम् गणिमधरिममेय-परिच्छेधभेशत् चतुर्विधम्, जातरुजरजतानि स्म्यरूपानि च येषां ते तथा 'आओग-पओगसंपउत्ता' आओग प्रओगसंप्रयुक्ताः, तत्र आओगः-द्विगुणादि वृद्धयर्थं प्रदान प्र-ओगश्च कञ्चान्तरं तौ संप्रयुक्ताौ व्यापारिनी यैरने तथा 'विच्छद्विपउरभत्तपाणा' वि-च्छद्वितप्रचुरभत्तपानाः, तत्र विच्छद्विते त्यक्ते बहुजनभोजनावशेषतया विच्छद्वितवती विभूतिमती विविधमक्षयमोज्य चोष्य श्रेण्येयाहारभेदयुक्ततया प्रचुरे भत्तपाने येषां ते तथा यद्वा विच्छद्विते-सञ्जातविच्छद्वे सविस्तारे बहुप्रकात्वात् प्रचुरे प्रभूते भत्तपाने अन्नपानीये येषां ते तथा, 'बहुदासीदास गोमहिसगवेलगण्पभूया' बहुदासी दासगोमहिस-गवेलकप्रभूताः, तत्र बहवो दासीदासाः येषां ते तथा गो महिषाश्च प्रसिद्धाः गवेलकाः उरभ्राः एते प्रभूता येषां ते तथा, अत्र पदद्वयस्य कर्मधारयः 'बहुजणस्स अपरिभूया' बहुजनेन अपरिभूताः-व्याप्ताः, सूत्रे षष्ठो आर्षत्वात् 'सूरा' शूराः प्रतिज्ञान निर्वाहणे दाने वा 'वीरा' वीराः संग्रामे 'विक्रंता' विक्रान्ताः-भूमण्डलाक्रमणसमर्थाः 'विच्छिण्ण-

जायरुवरयया), गणिमधरीम, मेय, और परिच्छेध के भेद से चार प्रकार के धन से ये युक्त थे श्रेष्ठपुवर्ण एवं चांदी के ये मालीक थे (आओगपओगसंपउत्ता) आओग में धन संपत्ति आदि के बढ़ाने में एवं अनेक कलाओं में ये विशेष पटु थे (विच्छद्विपउरभत्तपाणा) इनके यहाँइतने अधिक आदमी भोजनकरते थे कि उनके उच्छिष्ट प्रचुर मात्रा में भत्तपान बचा रहता था. (बहु दासी दास गोमहिसगवेलगण्पभूया बहुजणस्स अपरिभूया) इनके पास घर पर काम करने वाले अनेकदास एवं दासियां थी तथा अनेक गायें एवं अनेक महिवियां-भैंसे-और भेड़ें थे इनका अनेक जन मिलकर भी परामभ करने में समर्थ नहीं हो सकते ऐसे ये बलिष्ठथे (सूरा, वीरा, विक्रंता, विच्छिण्णविउलबलवाहणा) ये प्रतिज्ञात अर्थ के निर्वाह करने में शूर थे एवं दानदेने में अथवा संग्राम में ये वीर थे विक्रान्त - भूमंडल के आक्रमणकरने में - ये समर्थ थे इनका

बेहथी थार प्रकारना धनथी तेओ युक्त हुता श्रेष्ठ सुवष्णु तेमश्चादीना ओ मालिक हुता. (आओगपओगसंपउत्ता) आओगमा धनसंपत्ति वगेरेनी वृद्धिमां तेमश्च अनेक कला-ओमां ओ दोके विशेष पटु हुता (विच्छद्विपउरभत्तपाणा) ओमने त्या ओटला अर्थां दोके ओशन करता हुता के तेमना उच्छिष्टमा प्रचुर मात्रामा भत्तपान वधत्तु हुत्तु. (बहुदासीदासगोमहिसगवेलगण्पभूया बहुजणस्स अपरिभूया) ओमनी पासे घर काम करनाराओमां अनेक दासी तेमश्च अनेक दासीओ हुती अनेक गाथे, महिषीओ ओटले से से हुती अने बैटाओ हुता अनेक दोके मणीने पष्णु ओमने इरावी शकता नहुता. ओवा ओ दोके भणवाणा हुता (सूरा वीरा विक्रंता विच्छिण्णविउलबलवाहणा) ओओ प्रतिज्ञात अर्थने निर्वाह करना भाटे शूर हुता दान करवाभा अथवा संग्राममा ओ दोके वीर हुता. विक्रंत-भूम उण पर आक्रमण करवाभां ओओ समर्थ हुता ओमनी सेना अने गवादि इप भलवाहन हु अथी अनाकुग डोवाथी अतिविपुल हुता (बहुसु समर संपरापसु

विउलबलवाहणा' विस्तीर्णविपुलबलवाहनाः, तत्र विस्तीर्णविपुलानि -अति विशालानि बलवाहनानि सैन्यानि गवादिकानि च दुःखाऽनाकुलत्वाद् येषां ते तथा 'बहुसु समर-संपराएसु लङ्गलक्खा' बहुषु समरसम्परायेषु, अनेन चातिभयानकत्वं सूचितम्, समर-रूपेषु सम्परायेषु युद्धेषु लब्धलक्षाः अमोघहस्ताश्चाप्यभवन् सामान्यतो युद्धेषु च वलगना-दिरूपेषु केचन लब्धलक्षाः भवेद्युः पर तद् व्यञ्जयेदाय समरेषु इत्युक्तम् अथ यत्तेषां मण्डले जातं तदाह-'तर्णं' इत्यादि । 'तर्णं तेसिमावाडचित्रायाण अण्णया कयाई विसर्यंसि बहुई उप्पाइयसयाई पाउम्भवित्था' तत् इति कथान्तरप्रबन्धे खलु तेषाम् आपातकिरातानाम् अन्यदा कदाचिद् चक्रवर्त्यागमनकालात् पूर्वम्, अत्र तेषामित्येतावतैव उक्तेन प्रकरणात् विशेष्य ग्राही यत् आपातकिरातानामित्युक्तम् तद्विस्मरणशीलानां विनेयानां व्युत्पादनार्येति विषये देशे बहूनि औत्पातिकशतानि उत्पातसत्कशतानि अरिष्ट अशुभ-सूचकनिमित्तशतानोत्पर्थः प्रादुरभूवन्-प्रकटीबभूवुः प्रकटीजानानि 'त जहा अकाले गज्जियं अकाले विज्जुया अकाले पायवा पुप्फंति अभिक्खणं अभिक्खणं आगासे देवयाओ णच्चंति' तद्यथा अकाले प्राष्टद् कालव्यतिरिक्तकाले गज्जितम् मेघगर्जना जाता अकाले विद्युतः विद्युत्कृताः जाताः अकाले स्वस्वपुष्पकालव्यतिरिक्तकाले पादपाः पुष्यन्ति पुष्पयुक्ता भवन्ति अभीक्षणम् अभीक्षणम् पुनः-पुनः आकाशे देवताः-भूतविशेषाः नृत्य-

सैन्य और गवादीरूपबलवाहनदुःख से अनाकुल होने के कारण अतिविपुल था (बहुसु समर-संपराएसु लङ्गलक्खा याविहोत्था) समरूप युद्धों में-अतिभयानकसंप्रामों में इनके हाथ अपने लक्ष से कभी विचलित नहीं होतेथे वलगन आदि रूप पाधारण युद्ध में कितनेकव्यक्ति लब्ध लक्ष वाले होते है परन्तु ये तो भयकर से भयंकर युद्ध में भी अपने लक्ष्य को वेधने में शक्ति शाली थे -हस्तलाघववाले थे. (तर्णं तेसिमावाडचित्रायाणं अण्णया कयाई विसर्यंसि बहुई उप्पाइयसयाई पाउम्भवित्था) एक समय की बात है कि उन आपात किरातों के देश में चक्रवर्ती के आगमन से पहिले सैकड़ों अशुभ सूचकनिमित्त प्रकट होने लगे (तं जहा) जो इसप्रकार से हैं -(अकाले गज्जियं, अकाले विज्जुया, अकाले पायवा पुप्फंति, अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ णच्चंति) अकाल में वर्षाकाल के विनाकाल में मेघों का गर्जन होना,

लक्षलक्खा याविहोत्था) समरूप युद्धोंमा-अति भयानक संप्रामोमा, अनेना हाथो पोताना लक्ष्य परथी कदापि विचलित थता नहि वलगन वगेरे संधारण युद्धोंमां कटलाक लोको लब्ध लक्ष्यवाणा होय छे, परंतु आ आपात किरातो तो लय करमां लय कर ओटवे के मडा लय कर युद्धोंमां पशु लक्ष्य वेवन करवाभा पशु शक्ति शाली हुता. ओटवे के हस्तलाघववाणा हुता (तर्णं तेसिमावाडचित्रायाणं अण्णया कयाई विसर्यंसि बहुई उप्पाइयसयाई पाउम्भवित्था) ओऽ वभतनी वेत छे के ते आपात किरातोना देशमा चक्रवर्तिना आगमन पहिलेवा हुमरे अशुभसूचक निमित्तो प्रकट थवा लाग्या (तं जहा) ओ आ प्रमाणे छे-(अकाले गज्जियं, अकाले विज्जुया, अकाले पायवा.पुप्फंति अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ णच्चंति) अकाल मा-वर्षाकाल विना ओ मेघगर्जना थयी अकालमा वि-

न्ति, अथ ते आपातकिराताः किं कृतवन्त इत्याह— 'तएणं' इत्यादि 'तएण ते आवाड-
चिलाया विसयंसि बहुइं उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं पासंति' ततः उत्पातभवनानन्तरं
खलु ते आपातकिराताः विषये देशे बहुनि औत्पातिकशतानि प्रादुर्भूतानि पश्यन्ति
अवलोकयन्ति 'पासित्ता' दृष्ट्वा 'अणमणं सदावेति' अन्योऽन्यम् परस्परं शब्दयन्ति
आ न्ति 'सदावित्ता एवं वयासी' शब्दयित्वा आह्वय एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अत्रादिपुः
उक्तवन्तः, किमुक्तवन्तः कीदृशाश्च ते अभूवन् इत्याह—'एवं खलु' इत्यादि 'एवं खलु
देवाणुप्पिया ! अम्हं विसयंसि बहुइं उप्पाइयसयाइ पाउब्भूयाइं तं जहा-अकाले गज्जिय
अकाले विज्जुआ अकाले पायवा पुप्फति अभिक्खणं अभिक्खणं आगासे देवयाओ
णच्चति' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण खलु निश्चये देवानुप्रिया ऋजुस्वभावाः ! अस्माकं
विषये देशे बहुनि औत्पातिकशतानि प्रादुर्भूतानि प्रकटीभूतानि, तद्यथा—अकाले गज्जितम्
अकाले विधुतः अकाले पादपाः पुष्यन्ति, अभीक्षणम् अभीक्षणम् आकाशे देवताः—भूतवि
शेषाः नृत्यन्ति 'तं णणज्जइ णं देवाणुप्पिया ! अम्हं विसयस्स के मन्ने उवदवे भविस्सइ
त्तिकद्रइ ओहयमणसकप्पा चित्तासोगसागर पविट्ठा करयलपल्लत्थमुहा अट्टज्जाणोवगया

अकाल में विजलियों का चमकना अकाल में वृक्षों का पुष्पित होना, अकाल में बार २
भूतों का नर्तन होना, (तएणं ते आवाडचिलाया विसयंसि बहुइं उप्पायसयाइं पाउब्भूयाइं
पासंति) जब उन आपात किरातों ने अपने देश में इन अनेक अशुभ सूचक उत्पातों को
होते देखा तो (पासित्ता अणमणं सदावेति सदावित्ता एवं वयासी) देखकर उन्होंने
एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर आपस में इस प्रकार से कहना प्रारम्भ किया ।
(एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं विसयंसि बहुइं उप्पायसयाइं पाउब्भूयाइं) हे देवानुप्रियो !
देखो हमारे देश में अनेक सैकड़ों उत्पात प्रकट हो गये हैं—(तं जहा) जैसे—(अकाले गज्जिय,
अकाले विज्जुआ, अकाले पायवा पुप्फति, अभिक्खण-२ आगासे देवयाओ नच्चति) अकाल
में गर्जना होती है, अकाल में विजुलियां चमकती हैं, अकाल में वृक्ष पुष्पित होते हैं, और बार-२
आकाश में मृतादि देव नाचते हैं (तं णणज्जइ णं देवाणुप्पिया ! अम्हं विसयस्स के मन्ने उवदवे

णीओ अमड्डी अकाणमा वृक्षो पुष्पित थया, आकाणमा वार वार भूत-त्रेताणु नर्तन थवु (तएण
ते आवाडचिलाया विसयंसि बहुइं उप्पायसयाइं पाउब्भूयाइं) अथारे ते आपात किराताओ
पोताना देशमा ओ अनेक अतना अशुभ सूचक उत्पातो थता ओथा तो (पासित्ता अणमण
सदावेति, सदावित्ता एवं वयासी) ओधने तेमणे ओक णीणने ओहाओया अने ओहाओने
परपर ओवी रीते कडेवा हाओया के (एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं विसयंसि बहुइं उप्पाय-
सयाइ पाउब्भूयाइं) हे देवानुप्रियो ! ओओ, अमारो देशमा अनेक सैकड़ो उत्पातो प्रकट
थया ओ (तं जहा) ओभके—(अकाले गज्जियं, अकाले विज्जुआ, अकाले पायवापुप्फति,
अभिक्खणं २ आगासे देवयाओ नच्चति) अकाणमा ओधोनी ओना थथ ओ, अकाणमा
वीणणीओ अमडे ओ अकाणमा वृक्षो पुष्पित थथ ओ अने वार-वार आकाश मां भूतादि
देवा नाओ ओ (तं णणज्जइ णं देवाणुप्पिया ! अम्हं विसयस्स के मन्ने उवदवे भविस्सइत्ति
ऋइ ओहयमणसकप्पा चित्तासोगसागरं पविट्ठा करयलपल्लत्थमुहा अट्टज्जाणोवगया भूमि-

ભૂમિગયદિદ્વિઆ સ્થિઆયંતિ' તન્નજ્ઞાયતે દેવાનુપ્રિયાઃ ! શ્રમાકં ત્રિપયસ્ય કો મન્યે
 इति वितर्कार्थे निपातः तेन मन्ये इति सम्भावयामः उपद्रवो भविष्यति इति कृत्वा अप
 हतमनःसंकल्पाः विमनस्काः चिन्ताशोकसागरे चिन्तया राज्यभ्रंशघनापहारादि चिन्तनेन
 यः शोक एव दुष्पारत्नात् सागरस्तत्र प्रणिष्टाः 'करयल पलहत्थमुहा' करतलपर्यस्तमुखाः
 करतले पर्यस्तं निवेशित मुख यैस्ते तथा, 'अट्टज्झाणोवगया' आर्त्तध्यानोपगताः 'भूमि-
 गयदिद्विआ' भूमिगतदृष्टिकाः 'स्થિઆયંતિ' ધ્યાયંતિ આર્તધ્યાનં કુર્વન્તિ આપતિતે સક્કટે
 ક્રિક્કત્તવ્ય મિતિ ચિન્તયન્તીતિ, અથ પ્રસ્તુતમાનં ભરતસ્ય ચરિત માહ—'તપણ' इत्यादि ।
 'તપણસે' મરહે રાયા ચક્કરયણદેસિમમગ્ગે જાવ સમુદ્દરવમ્મૂયં પિવ કરેમાણે કરેમાણે
 તિમિસગુહાઓ ઉત્તરિલ્લેણં દારેણ ણીતિ સસિવ્વ મેહ્ધયારણિવહા' તતઃ આપાતકિરા-
 તાનાં ઉત્પાતચિન્તનસમયે યલ્લુ સ ભરતો રાજા ચક્કરત્નાદેશિતમાર્ગઃ યાવત્ અનેકરાજ-
 મહસાનુયાતમાર્ગઃ મહતોત્ક્રુષ્ટ સિંહનાદવોલ્લકલકલરવેણ સમુદ્દરવમ્મૂયામિવ પ્રાપ્તામિવ
 ગુહાં કુર્વન્ કુર્વન્ તમિસાગુહાતઃ ઔત્તરાહેણ દારેણ નિરેતિ નિર્યાતિ કસ્માત્ ક ઇવ

ભવિસ્સદ્ધિત્તિ કદ્દુ ઓહ્યમણસકલ્પો ચિંતા સોગસાગરં પલિદ્ધા કરયલપલહત્થમુહા અટ્ટજ્ઞાણોવગયા
 ભૂમિગયદિદ્વિયા સ્થિઆયંતિ) તો હે દેવાનુપ્રિયો ! પતા નહીં પડતા હૈ કિ હમારે વેશ મેં ક્યા
 ઉપદ્રવ હોને વાલા હૈ. હિસ પ્રકાર કહકર ઘે સવ કે સવ અપહત મનઃ સકલ્પવાળે હોકર
 વિમનસ્ક વન ગયે, ઓર રાજ્યભ્રંશ, ઓર ઘનાપહાર હોને આદિ કી ચિન્તા સે આકુલિત હોકર
 શોક સાગર મેં ડૂબ ગયે તથા આર્તધ્યાન સે હોકર ઘે અપનીર હયેછી પર મુલ્લ રલ્લકર બેઠ
 ગયે ઓર નીચે કી ઓર દષ્ટિ લગાકર વિચાર કરને લગે કિ અવ હમેં ક્યા કરના ચાહિય
 (તપણં સે મરહે રાયા ચક્કરયણદેસિયમગ્ગે જાવ સમુદ્દરવમ્મૂયપિવ કરેમાણે ૨ તિમિસગુહાઓ
 ઉત્તરિલ્લેણં દારેણ ણીતિ સસિવ્વ મેહ્ધયારણિવહા) હિસકે બાદ વહ ભરત રાજા કિ
 જિસકે આગે ૨ કા રાસ્તા ચક્કરત્ન ઘતાતા જાતા હૈ યાવત્ જિસકે ઘીછે ૨ હજારો રાજા
 ચલ રહે હેં જોર જોર સે સિંહનાદ કે જૈસી અવ્યક્તધ્વનિ સે ઇવં કલ્લ કલ્લ કે શબ્દ સે ગુહા

ગયદિદ્વિયા સ્થિઆયંતિ) તો હે દેવાનુપ્રિયો! કંઈ પણ અખર નથી પડતી કે અમારા દેશમાં
 કંઈ ભતનો ઉપદ્રવ થવાનો છે આ પ્રમાણે કહીને તેઓ સર્વે અપહત મનઃ સકલ્પવાળા થઈ
 ને વિમનસ્ક બની ગયા અને રાજ્ય ભ્રંશ અને ઘનાપહાર આદિની ચિંતા થી આકુલિત
 થઈને શોક સાગરમાં નિમગ્ન થઈ ગયા તેમજ આર્તધ્યાન થી યુક્ત થઈ ને તેઓ યોત
 યોતાની હથેળીઓ ઉપર એ રાખીને બેસી ગયા અને નીચેની તરફ ઢાંટ રાખીને વિચાર
 કરવા લાગ્યા કે હવે અમારે શુ કરવું જોઈએ (તપણં સે મરહે રાયા ચક્કરયણદેસિય
 મગ્ગે જાવ સમુદ્દરવમ્મૂયપિવ કરેમાણે ૨ તિમિસગુહાઓ ઉત્તરિલ્લેણં દારેણ ણીતિ સસિ-
 વ્વ મેહ્ધયારણિવહા) ત્યાર બાદ તે ભરત રાજા કે જેને આગળનો માર્ગ ચક્કરત્ન નિહિત
 કરવું બાધ છે યાવત્ જેની પાછળ પાછળ હજારો રાજાઓ ચાલી રહ્યા છે—નેર—નેરથી
 સિંહ નીહ જેવા અવ્યક્ત ધ્વનથી તેમજ કલ્લ કલ્લના શબ્દથી શુક્રને સમુદ્રનેવા શબ્દથી

शशीव चन्द्र इव मेघान्धकार निवहात् मेघतमः सम्रहात् । 'तएण ते आवाडचिन्नाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं एज्जमाणं पासंति' ततो गुहातो निर्गमनानन्तरं खलु ते आपात-
 क्रिताः भरतस्य राज्ञः अग्रानीकं सैन्याग्रभागम् 'एज्जमाणं' इयदागच्छन् पश्यन्ति
 'पासित्ता' दृष्ट्वा 'आसुरुत्ता' आशुरुत्ताः शीघ्रक्रुद्धाः 'रुद्धाः' तोपरहिताः 'चंडिकिकाया'
 चाण्डिकियताः रोपयुजाः 'मिसिमिसेमाणा' क्रोधवशात् दीप्यमानाः 'अण्णमण्ण सदावे-
 ति' अन्योऽन्य शब्दयन्ति अह्वयन्ति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा आह्वय 'एवं वयासी' एवं
 वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादिपुरिति किमवादिपुरित्याह - 'एसणं' इत्यादि 'एमणं देवानु-
 प्पिया ! केइ अपत्थियपत्थए दुरतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउहसे हिरिसिरिपरिव-
 ज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स उवरि विरिएणं हव्वमागच्छ' एषः खलु देवानुप्रियाः ।
 कश्चित् अज्ञातनामकोऽप्रार्थितप्रर्थकः दुरन्तप्रान्तलक्षणः हीनपुण्यचातुर्दृशीः ह्री श्री परि-
 वर्जितः यः खलु अस्माकं विषयस्य देशस्य उपरि वीर्येण आत्मशक्त्या 'हव्वं ति' शीघ्र-

को समुद्र के शब्द से व्याप्त हुई जैसे करता २ उम तिमिल गुफा के उत्तर दिशा के द्वार
 से मेषकृत अंधकार कि समूह से चन्द्रमा को तरह निहत्ता (तएणं ते आवाडचिन्नाया भरहस्स
 रण्णो अग्गाणीअं एज्जमाणं पासंति) उन आपात किरातोने भरत राजा की अग्रानीक को-
 सैन्याग्रभाग को आते हुए देखा- (पासित्ता आसुरुत्ता रुद्धा चंडिकिकाया कुविया मिसिमिसेमाणा
 अण्णमण्ण सदावेति) देखकर वे उसी समय क्रुद्ध हो गये. रुष्ट-तोपरहित हो गये, रोष
 से युक्त हो गये, और क्रोध के वश से लाल पीले हो गये इसी स्थिति में उन्होंने एक
 दूसरे को बुलाया और (सदावित्ता एवं वयासी) बुलाकर इस प्रकार कहा (एसणं देवानुप्पिया !
 कोइ (अपत्थियपत्थए दुरतपंतलक्खणे हीणपुण्णचाउहसे हिरिसिरिपरिवज्जिए जेणं अम्हं
 विसयस्स उवरि विरिएणं हव्व मागच्छ) हे देवानुप्रियो ! यह अज्ञात नामवाला कोई
 व्यक्ति कि जो अपनी मौत का चाहना कर रहा है , तथा दुरन्त प्रान्त लक्षणों वाला है
 एवं जिस का जन्म हीन पुण्यवाली कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में हुआ है तथा जो लज्जा एव

व्याप्त करता ते तमिन्ना शुक्ष्णा उत्तर दिशाना द्वारथी भेषकृत अंधकारना समूहमांथी अन्ध-
 भानी जेम नीकंथे (तएणं ते आवाडचिन्नाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीअं एज्जमाणं पासंति)
 ते आपात किरातोने भरत राजानी अग्रानीकने सैन्याग्रभाग ने- आवतो जेथे. (पासित्ता
 आसुरुत्ता रुद्धा चंडिकिकाया कुविया मिसिमिसेमाणा अण्णमण्ण सदावेति) जेधने तेथे तरतल
 क्रुद्ध थध गया, रुष्ट तोपरहित थध गया रोषथी युक्त थध गया अने क्रोधाविष्ट थधने लाल पीला
 थध गया जेवी स्थितिमा तेमजे जेक पीअने ग्रीलाव्या अने (सदावित्ता एवं वयासी) ग्रीलावीने
 परस्पर आ प्रभाजे क्खुं (एसणं देवानुप्पिया ! केइ अपत्थियपत्थए दुरतपंतलक्खणे हीणपुण्ण-
 चाउहसे हिरि सिरिपरिवज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स उवरि विरिएणं हव्व मागच्छ) हे देवानु-
 प्रियो जे अज्ञातनाम धारी केधं पुरुष के जे पोताना मृत्युने आम त्री रहेल ते दुरत प्रान्त
 लक्षणो वाणी के अने जेने जन्म हीन पुण्यवाणी कृष्ण पक्षनी चतुर्दशी ना दिनेसे थथेक के
 तथा जे लज्जा अने लक्ष्मी थी हीन थे- अमारा देश उपर पोतानी शक्ति पडे आकंभयु

मागच्छन्ति 'तं तहाणं घत्तामो देवाणुप्पिया ! जहाणं एस अम्हं विसयस्स उव्वरिं विरिणं णो हव्वमागच्छइ त्ति कट्टु अणमणस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति' तत्तस्मात्तथा खल्ल इमं भरतराजानमित्यर्थः 'घत्तामो त्ति' क्षिपामो दिशोदिशि विकीर्णं सैन्यं कुर्म इत्यर्थः हे देवानुप्रियाः ! यथा खल्ल एषोऽस्माकं विषयस्योपरि वीर्येण आत्मशक्त्या नो 'हव्वं' शीघ्रमागच्छेदिति कृत्वा विचिन्त्यान्योऽन्यस्यान्तिके समीपे एतमर्थं प्रतिश्रुत्य ओमिति प्रतिपाद्य 'सण्णद्धवद्धवम्मियकवया' सन्नद्धवद्धवर्मितकवचाः, तत्र सन्नद्धशरीरारोपणात् बद्धं कषात्रन्धनतः वर्म्मं लोहकत्तलादिरूपं सज्जातमस्येति वर्म्मितम् एतादृशं कवचं तनुत्राणं येषां ते तथा, पुनश्च कीदृशास्ते 'उप्पील्लियसरासणपट्टिया' उत्पीडितशरासनपट्टिकाः, तत्र उत्पीडिता -गाढ गुणारोपणात् दृढीकृता शरासनपट्टिका धनुर्दण्डो यैस्ते तथा, पुनश्च कीदृशाः 'पिणद्धगेविज्जा' पिणद्धग्रैवेयाः तत्र पिणद्धं ग्रैवेयं ग्रीवात्राणकं 'बद्ध आविद्ध विमलवरचिंघपट्टा' बद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टाः, तत्र बद्धो ग्रंथ दानेन आविद्धः -परिहितो मस्तकावेष्टनेन विमलवरचिह्नपट्टो वीरातिवीरतासूचकवस्त्र

लक्ष्मी से रहित हुआ है हमारे देश के ऊपर अपनी शक्ति द्वारा आक्रमण करने के लिये आ रहा है (तं तहाणं घत्तामो देवाणुप्पिया ! जहाणं एस अम्हं विसयस्स उव्वरिं विरिणं णो हव्वमागच्छइ) तो देखो हमलोग अब इसे ऐसा कर दें कि जिससे इसकी सेना हर एक दिशा में छिप जाय अर्थात् इस की सेना इधर उधर भग जाय और यह हमारे देश के ऊपर आक्रमण न कर पावे (त्तिकट्टु अणमणस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति) ऐसा विचार करके उन्होंने कर्तव्यार्थ का निश्चय कर लिया (पडिसुणित्ता सण्णद्ध वद्धवम्मिय कवया उप्पील्लियसरासणपट्टिया पिणद्धगेविज्जा वद्धियाविद्ध विमलवरचिंघपट्टा) और कर्तव्यार्थ का निश्चय करके वे सबके सब कवच को पहिर कर सन्नद्ध हो गये अपने २ हाथों में उन्होंने ज्या (दोरी) का आरोपण करके घनुष ले लिया ग्रीवा में ग्रीवा का रक्षक ग्रैवेयक पहिर लिया तथा वीरातिवीरता का

करण आनी रह्यो छे. (त तहाणं घत्तामो देवाणुप्पिया ! जहाणं एस अम्हं विसयस्स उव्वरिं विरिणं णो हव्वमागच्छइ) तो देखो हमलोग अब इसे ऐसा कर दें कि जिससे इसकी सेना हर एक दिशा में छिप जाय अर्थात् इस की सेना इधर उधर भग जाय और यह हमारे देश के ऊपर आक्रमण न कर पावे (त्तिकट्टु अणमणस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति) ऐसा विचार करके उन्होंने कर्तव्यार्थ का निश्चय कर लिया (पडिसुणित्ता सण्णद्ध वद्धवम्मिय कवया उप्पील्लियसरासणपट्टिया पिणद्धगेविज्जा वद्धियाविद्ध विमलवरचिंघपट्टा) और कर्तव्यार्थ का निश्चय करके वे सबके सब कवच को पहिर कर सन्नद्ध हो गये अपने २ हाथों में उन्होंने ज्या (दोरी) का आरोपण करके घनुष ले लिया ग्रीवा में ग्रीवा का रक्षक ग्रैवेयक पहिर लिया तथा वीरातिवीरता का

विशेषो यैस्ते तथा, पुनश्च कीदृशास्ते किराताः 'गह्मिआउहृप्पहरणा' गृहीतायुधप्रहरणाः, तत्र गृहीतानि आयुधानि प्रहरणानि च यैस्ते तथा, प्रहरणयोस्तु क्षेप्याक्षेप्यकृतो विशेषो बोध्यः, तत्र क्षेप्यानि बाणादीनि अक्षेप्यानि खन्नादीनि बोध्यग्नि, अथवा गृहीतानि आयुधानि प्रहरणाय यैस्ते तथा, एवंभूता आपातकिराताः 'जेणेव भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं तेणेव उवागच्छन्ति' यत्रैव भरतस्य राज्ञोऽग्रानीकं तत्रैवोपागच्छन्ति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'भरहस्स रण्णो अग्गाणीएण सद्धिं सपलगा यावि होत्था' भरतस्य राज्ञः अग्रानीकेण सैन्याग्रभागेन सार्द्धम् योद्धुं संप्रकम्पनाश्चाप्यभूवन् 'तएणं ते आवाडचिळाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं ह्यमहियपवरवीरघाइअ विवडिअ चिधद्वयपडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति' ततः तदनन्तरं खलु ते आपातकिराताः भरतस्य राज्ञः अग्रानीकं सैन्याग्रभागं कीदृशं तत् इतमथितप्रवरवीरघातितचिह्नध्वजपताकम् तत्र केचिद् हताः केचिद् मथिताः केचिद् घातिताश्च वीराः श्रेष्ठयोद्धारो यत्र तत्तथा एवं विपतिता नष्टाः ध्वजाः गरुडध्वजादयः पताकाश्च तदित्तरध्वजाः सन्ति चिह्नं यत्र तत्तथा पश्चात्पदद्वयस्य कर्मधारयः अत्र पूर्वपदे घातितशब्दस्य प्रवरवीरशब्दात् पूर्वं प्रयोक्तव्यत्वे परप्रयोगः प्राकृतत्वात् तथा कृच्छ्रप्राणोपगतम्

सूचक विमलवर चिह्नं पट मस्तक पर धारण कर लिया. (गह्मिआउहृप्पहरणा) और अपने अपने हाथों में उन सबने आयुध एवं प्रहरण उठा लिये । इस प्रकार से योद्धाओं के वेष से सज्जित होकर वे (जेणेव भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं तेणेव उवागच्छन्ति) जहाँ पर भरत राजा का अग्रानीक (सैन्य) था—वहाँ पर पहुँच गये । (उवागच्छित्ता भरहस्स रण्णो अग्गाणीएण सद्धिं सपलगा याविहोत्था) वहाँ पर पहुँच कर उन्होंने भरत राजा के अग्रानीक के साथ युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया (तएणं ते आवाडचिळया भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं ह्यमहियपवरवीरघाइअ विवडिअचिधद्वयपडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति) उस युद्ध में उन्होंने—आपातकिरातो ने—भरत नरेश को अग्रानीक को ऐसा बना दिया—कर दिया—कि जिसमें कई श्रेष्ठवीर योधा मारे गये, कई श्रेष्ठ वीर योधाओंको जरूरीकर दिये गये, एवं कई श्रेष्ठ वीर योधा आघा-

करीने धनुषो हाथमां ढीधा अीवाभा अीवारक्षक अेवेयक पडेरी ढीधुं वीरातिवीरता सूयक विमलवर चिह्नं पट मस्तक पर धारण करुं (गह्मिआउहृप्पहरणा) तेमणे पातानां हाथेमां आयुधे अने प्रहरणे ढीधां आ प्रभाणे येांदाओना वेषमां सुसभअ थधने तेओ (जेणेव भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं तेणेव उवागच्छन्ति) अथा भरत राजाने सैन्याग्रभागं इतो त्यां पडेअथा (उवागच्छित्ता भरहस्स रण्णो अग्गाणीएण सद्धिं संपलगा यावि होत्था) त्यां पडेअथीने तेमणे भरतराजाना अग्रानीक साथे युद्ध करवानी शरुआत करी (त एणं ते आपातचिळाया भरहस्स रण्णो अग्गाणीयं ह्यमहियपवरवीरघाइअ विवडिअ चिधद्वय पडागं किच्छप्पाणोवगयं दिसोदिसिं पडिसेहिंति) ते युद्धमां तेमणे भरतनरेशनी अग्रानीकना डेटहाक श्रेष्ठ वीराने मारी नाअथा डेटहाक वीर येांदाओ अवाथा अने डेटहाक वीर येांदाओने आघात युक्त करी ढीधा तेमअ तेमनी प्रधान गरुड चिह्नवाणी ध्वजओ अने

तत्र कृच्छ्रेण कण्ठेण प्राणान् उपगतं-प्राप्तम् कथमपि धृतप्राणमित्यर्थः दिशोदिशि दिशः सकाशादपरदिशि स्वाभिमतदिक् त्याजनेन अपरभ्यां दिशि इत्यर्थः प्रतिषेधयन्ति युद्धान्निवर्तयन्ति इत्यर्थः ॥सू० १७॥

इतो भरतसेन्ये किं जातमित्याह "तएणं से" इत्यादि ।

मूलम्-तएणं से सेणाबलस्स णेआ वेदो जाव भरहस्स रणो अग्गाणीअं आवाडाचिलाएहि हयमहियपवरवीर जाव दिसोदिसं प-डिसोहयं पासइ पासित्ता असुरुत्ते रुट्ठे चंडिकिकए कुविए मिसिमिसे माणे कमलामेलं आसरयणं दुरूहइ दुरूहित्ता तएणं तं असीइमंगुलनू-सिअं णवणउइमंगुलपरिणाहं अड्डसयमंगुलमायतं वत्तीसमंगुलमूसिअसिरं चउरंगुलकन्नागं वीसइ अंगुल बाहागं चउरंगुलजाणूकं सोलस अंगुल-जंघागं चउरंगुलमूसिअखुर मुत्तोलीसंवत्तवालेअमज्झं ईसिं अंगुल-पणयपट्टं संगयपट्टं संगयपट्टं सुजायपट्टं पसत्थपट्टं विसिद्धपट्टं एणी-जाणुणय वित्थयथद्धपट्टं वित्तलयकसणिवाय अंकेल्लण पहारपरिव-ज्जिअंगं तवणिज्जथासगाहिलाणं वरकणगसुफुल्लथासगविचित्तरयण-रज्जुपासं कंचणमणिकणगपयरगणाणाविहघंटिआजालमुत्तिआजालएहि परिमडियेणं पट्टेण सोभमाणेण सोभमाणं कक्केयणइंदनीलमरगय गल्लमुहमंडणइअ आविद्धमाणिक्कसुत्तगविभूसिअं कणगामय पउम-सुकयतिलकं देवमइविकप्पिअं सुखरिंदवाहणजोग्गा वयं सुरूपं दूइज्ज-माणपचचारुचमरामेलगं धरेतं अणब्भवाहं अमेलणयणं कोकासिअ बहलपत्तलच्छं सयावरणनवकणगतविअतवणिज्जेतालुजीहासयंसिरिया-मिसेअ घोणं पोक्खरपत्तमिव सलिलबिंदुजुअं अचंचलं चंचलसरीर चाक्खवरंगपरिञ्चायगोविव हिंलीयमाणं हिंलीयमाणं खुरचरणचच्चपुडेहि

तवाळे कर दिये गये. तथा उनका प्रधान गरुड चिह्नवालो ध्वजार्य और इनसे मिन्न सामान्य ध्वजार्य भी नष्ट कर दी गई । इससे वे किसी भा तरह से कथकथमपि जीवित बने रहकर-बड़ी मुश्किल से अपने प्राणों को बचाकर-वहा से भाग गये और दूसरी ओर चले गये ॥१७॥

तेनाथी निम्न सामान्य ध्वजान्नेने नष्ट करी दीधी अथी तेमनामाथी शेष सैनिके कथ कथमपि प्राणु अथावीने त्याथी पलायन थर्त गया अने थील तरह जाता रथा ॥१७॥

धरणिअलं अभिहणमाणं अभिहणमाणं दोविअ चलणे जमगपमगं
मुहाओ विणिग्गमंतं व सिग्घयाए सुलाणतंतु उदग्गयवि णिग्गाए पक्कमंतं
जाइकुलरूपपच्चयपसत्थवारसावत्तगविसुद्धलक्खणं सुकुलप्पमृअं मेहा-
विमद्दयविणीयं अणुअतणुअसुकुमाल लोमनिद्धच्छवि सुजाय अणर-
मणपवणगरुलजइणचवलसिग्घगामि इसिमिव खंतिखमए सुसीमद्विव
पच्चक्खया विणीयं उदग्गहुतवहपासाणपंसुकदमससक्कर सवालुइल्लत-
डकडेग विसमपव्भागिरिदिरीसु लंघण पिल्लणणित्थारणासमत्थं अचंड-
पाडियं दंडपाति अणंसुपाति अकालतालुंच कालहेसिं जिय निद्दगवेसगं
जिअ परिसहं जच्चजातीअं मल्लिहाणि सुगपत्त सुवण्ण कोमलं मणा-
भिरामं कमलामेलं णामेणं आसग्घणं सेणावई कमण समभिरूढे कुवलय-
दलसामलं च रयणिकरमंडलनिभं सत्तुजणविणासणं कणगरयणदंडं
णवमालिअ पुप्फसुरहिगंधि णाणामणिलयभत्तिचित्तं च पद्दोतमिसि-
मिसित तिक्खधारं दिव्वं खग्गरयणं लोके अणोवमाणं तं च पुणो वंस-
रुक्खसिगड्ढिदंत कालायसविपुल्ललोहदंडकवरखइरभेदकं जाव सव्वत्थ
अप्पडिहय किं पुण देहेसु जंगमाणं पण्णासंगुलदीहो सोलससे
अंगुलाइं विच्छिण्णो । अद्धंगुल सोणीको जेड्ढर्पमाणो असो भणिओ
॥१॥ असिरयणं णखइस्स हत्थाओ तं गहिऊण जेणेव आवाडचिलाया
तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आवाडचिलाएहिं सद्धिं संपलग्गे आवि
होत्था । तएणं से सुसेणे सेणावई ते आवाडचिलाए हयमहिअ
पवखीरघाइअ जाव दिसो दिसिं पडिसेहेइ ॥सू० १८॥

छाया- ततः खलु स सेनाबलस्य नेता वेष्टको यावत् भरतस्य राज्ञोऽग्रानीकम् आपात-
क्रान्तेः हतमथितप्रवरवीर यावत् दिशोद्दिशि प्रतिषेधितं पश्यति, दृष्ट्वा आशुस्तः रूपः
चाण्डकियत कुपित मिसिमिसेमाणः कमलामेलम् अश्वरत्नं दूरोद्धति, दूरुह्य ततः खलु-
तम् अशीत्यङ्गुलोच्छ्रितम् नवनघत्यङ्गुलपरिणाहम् अष्टशताङ्गुलायतम् द्वात्रिंशद्गुलोच्छ्रि-
तशिरस्क चतुरङ्गुलकर्णकं विंशत्यङ्गुलोच्छ्रितखुरं मुक्तोलीसंवृतवलितमध्यम् ईषदङ्गुलो-
प्रणतपृष्ठ संनतपृष्ठं संद्रुतपृष्ठं सुजातपृष्ठं प्रशस्तपृष्ठं विशिष्टपृष्ठम् पणा जानूनतविस्तृत-
स्तवपृष्ठ वेत्रलताकशानिपाताद्देहलणप्रहारपरिवर्जिताङ्गम् तपनीय स्थासकाहिलाणम्
वरकनकसुपुष्पस्थासकविचित्ररत्नरज्जुपार्श्व कान्वनमणिकनकप्रवरक नानाबिधघण्टिका-

जालमौक्तिकजालकैः परिमण्डितेन पृष्ठेन शोभमानेन शोभमानम् कर्केतनेन्द्रनीलमरकतम-
सारगल्लमुखमण्डनरचितम् आविद्धमाणिष्यसूत्रकविभूपितं कनकमयपद्मसुकृततिलकं देव-
मतिविकल्पितं सुरवरेन्द्रवाहनयोग्याव्रजम् सुरूपं द्रव्यपञ्चचारुचामरमेलकं धरत् अनध्र-
बाहम् अमेलनयनम् कोकासितवहलपत्रलाक्षं सदाधरणमधकनकतप्तपनीयतालुजिह्वाऽऽस्यं
श्रीकाऽभिवेकघोणं पुष्करपत्रमिव सलिलविन्दुयुतम् असञ्चलं चञ्चलशरीरं चोक्षचक्र-
परिप्राजक इव अभिलीयमानम् अभिलीयमान खुरचरणचञ्चपुटैः धरणीतलम् अभिध्न-
दभिध्नवद्वावपि चरणौ यमकसमकुमुदाद्विनिर्गमदिव शीघ्रतया मृणालतन्तूदकमपि निश्चाय
निश्चाय प्रकामत् जातिकुलरूपप्रत्ययप्रशस्तद्वाद्वावर्त्तकविशुद्धलक्षण सुकुलप्रसूतं मेधावि-
भद्रकविनीतम् अणुकतनुकसुकुमारलोमस्निग्धच्छवि सुजातामरमन पवनारुडजयिचपल,
शीघ्रगामीऋषिमिव क्षान्तिक्षमया सुशोभ्यमिव प्रत्यक्षताविनीतम् उदकहुतवहपापाणपा-
शकईमसशर्करसवालुकतटकटकविषमप्राग्भारगिरीदरीपु लंघणप्रेरणानिस्तारणासमर्थम् अचण्ड
पातित दण्डपाति अनश्रुपाति अकालतालु च कालहेपि जितनिद्रम् गवेषकम् जितपरि-
पहम् जात्यजातीयम्, माल्लघ्राणम्, शुक्रपत्रसुवर्णकोमलम्, मनोऽभिरामं कमलामेलम् अश्व-
रत्नं सेनापतिः क्रमेण समभिरुह कुवलयदलद्वयामल च रजनीकरमण्डलनिभम् शत्रूजन-
विनाशनम् कनकरत्नदण्डम् नवमालिकापुष्पसुरभिगन्धि नाना मणिलताभक्तिचित्रम् च
प्रघौत 'मिसिमिसित' तीक्ष्णधारम् दिव्य खड्गरत्नम् लोके अनुपमानम् तच्च पुनर्वशरु-
क्षशृङ्गास्थिदन्त कालायसविपुललोहदण्डकरवज्रमेढकं यावत् सर्वत्राप्रतिहतम् किं पुनर्जङ्ग-
भानां देहेषु पञ्चाशदङ्गुलानि दीर्घः स षोडशङ्गुलानि विस्तार्णः । अर्द्धाङ्गुलश्लोणिक ज्येष्ठ
प्रमाणोऽसि मंजितः ॥१॥ तत् असिरत्नं नरपते' हस्तात् गृहीत्वा यत्रैव आपातकिराता
स्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य आपातकिरातेभ्यः सार्द्धम्, संप्रलग्नश्चाप्यभवत् ॥ ततः
खलु स सुषेणः सेनापतिस्तानापातकिरातान् हतमथितप्रवरवीरघातित यावद् दिशोदिशि
प्रतिषेधयति ॥सू०१८॥

टीका—“तण्णं से” इत्यादि

‘तण्णं से सेण स्स णेशा वेढो जाव भरहस्स रण्णो भग्गाणीयं आवाडचिळा-
एहिं ह्यमहियपवरवीर जाव दिसोदिसिं पडिसेहिं पासइ’ ततः स्वसैन्य प्रतिषेधनाद-
नन्तरं स सेनाबलस्य-सेनारूपस्य बलस्य नेता स्वामीवेष्टकः वस्तुमात्रविषयकोऽत्र

भरत सैन्य में क्या हुआ— इसका कथन—

‘तण्णं से सेणा स णेया वेढो जाव भरहस्स’ इत्यादि—सू० १८॥

टीकार्थ—(तण्णं से सेणाबलस्य णेया) जब सेना रूप बल के नेता सुषेण नामकसेनापति
ने (भरहस्स रण्णो) भरत महाराजा के (भग्गाणीयं आवाडचिळाएहिं ह्यमहियपवरवीरघाट्यजाव
दिसोदिस पडिसेहिं पासइ) अप्रानीक को आपात किरातों के द्वारा हतमथित प्रवर वीर

भरत सैन्यमां शुं थयु ? ते अंभ धमां कथन :

‘त ण्णं से सेणा स णेया वेढो भरहस्स’ इत्यादि—सूत्र—१८ ॥

टीकार्थ—(त ण्णं से सेणा स्स णेया) न्याये सेनाइय भणना नेता सुषेण सेनापतिजे
(भरह रण्णो) भरत राजाना (भग्गाणीयं डचिळाएहिं हियपवरवीरघाट्य

सेनानी सत्कः सम्पूर्णं पूर्वोक्तो ग्राह्यः स सुषेणः यावत् भरतस्य राज्ञोऽग्रानीकम् अग्र-
सैन्यसमूहम् आपातकिरातैः इतमथित प्रवरवीरघातित यावत् प्रतिपेधित यावत्पदात् 'विडिय
चिधद्वयपडाग किच्छप्पाणोवगयं' इति ग्राह्यम् तथा च केचित् हताः केचित् मथिताः
ताश्च प्रवरवीरा यत्र तत्तथा, एवं विपतितचिह्नध्वजपताकम् विपतिताः अष्टाः चिह्नप्रधानाः
ध्वजाः गरुडध्वजादयः पताकाः तदितरध्वजाः सन्ति यत्र तत्तथा एवं कृच्छ्रप्राणोपगतम्
कृच्छ्रेण कष्टेन प्राणान् उपगतं प्राप्तम् कथमपि धृतप्राणमित्यर्थः दिशोदिशि अभिप्रे-
तदिशोऽस्यां दिशि प्रतिपेधितम् आपातकिरातैः युद्धान्निवारितम् अग्रानीकं सैन्यसमूहं
पश्यति भरतस्य सुषेण नामा सेनापतिः 'पासित्ता' दृष्ट्वा 'आसुररुत्ते रुद्रे चंडिकिकए
कुविए मिसिमिसेमाणे कमलामेळं आसरयणं दुरुहइ' आशुफ्तः शीघ्रं क्रुद्धः रूष्टः
तोषरहितः चाण्डिकियतः रोपयुक्तः कुपितः क्रुद्धः मिसिमिसेमाणः कोपातिशयात्
दीप्यमानः-जाज्वल्यमानः कमलामेळं नामाश्वरत्नं दुरोहति आरोहति 'दुरुहिचा' दुरुह-
आरुह्य अथ अश्वरत्नवर्णनमाह—'तण्णं तं असीइमंगुलमूसिअं' इत्यारभ्य 'सेणावई
कमेण सममिरुडे' इत्येतदन्तेन सूत्रेण पदयोजना तत इति क्रियाक्रमसूचकं वचनं तं
प्रसिद्धगुणं नाम्ना कमलामेळम् अश्वरत्नं सेनापतिः क्रमेण सन्न दि परिधानविधिना
सममिरुडः, आरुडः कीदृशम् अश्वरत्नमित्याह—'असीइमंगुलमूसिअं' इति, अशीत्यङ्गु-
लोच्छ्रितम् अशीत्यङ्गुलानि उच्छ्रितम् तित्यङ्गुप्रमाणकम् अङ्गुलं यवमानम् इति

वाला—जिसमें अनेक योधाओको मार दिये गये हैं और अनेक श्रेष्ठयोद्धाओकोजिस में घायल कर
दिये गये हैं—ऐसा देखा "यहां यावत् पद से" विविडियचिधद्वयपडागं, किच्छप्पाणोवगयं" इन
पूर्वोक्तविशेषणों का ग्रहण हुआ है। तो (पासित्ता) देखकर ही वह (आसुररुत्ते, रुद्रे, चंड
विकए, कुविए, मिसिमिसेमाणे कमलामेळं आसरइं दुरुहइ) एक साथ ही अत्यंत क्रुध हो गया,
उसे थोडा सा भी सतोष नहीं रहा, स्वभाव में उसके रोष भर गया इस तरह वह कुपित और
कोप के अतिशय से जलता हुआ कमलामेळ नाम के अश्वरत्न पर सवार हुआ। अश्वरत्न
का वर्णन—(असीइमंगुलमूसिअं) यह अश्वरत्न ८० अरसी अंगुल ऊंचा था। एक यव का
जितना प्रमाण होता है, उतने ही प्रमाण वाला एक अंगुल होता है ऐसा वाचस्पति का मत है

जाव दिशो दिशि पडिसेहिअं पासइ) अग्रानीकने आपात किराने। वडे इतमथित प्रवर वीर
शुक्र डे जेभा अनेक योद्धाओ हवाया छे तेमअ अनेक योद्धाओ धवाया छे— तेम जेधुं.
अही यावत् पदथी ("विविडियचिधद्वयपडाग किच्छप्पाणोवगयं") जे पूर्वोक्त विशेषणोनु
अहंशु थशु छे. ते। (पासित्ता) जेधने ते (आसुररुत्ते, रुद्रे, विकए, कुविय, मिस-
मिलेमाणे कमलामेळं आसरइं दुरुहइ) ते जेकहम कुद्ध थई गये। तेने थोडा पथु स'तोष
रहो नहि तेना स्वभावमा रोष भरअ गये। आ प्रभाजे ते कुपित अने कोपना अतिशय
आवेशथी प्रवसित थते। कमलामेळ नामक अश्वरत्न उपर सवार थये। ते अश्वरत्नछं
वधुंन आ प्रभाजे छे— (असीइ मंगुलमूसिअं) जे श्रेष्ठअथ ८० जे'अी अशुध जे'ये हते।

વાચસ્પતિઃ તત્ર અદ્વૈ બૌદ્ધલક્ષ્ણાત્ ઉલ્લઃ અદ્વૈગુલ્ ચાત્ર માનવિશેષઃ 'ઘવળઉદમંગુલપરિણાહં, નવનવત્યદ્વૈગુલપરિણાહમ્ તત્ર નવનવત્યદ્વૈગુલાનિ-एकोनशताङ्गुलप्रमाणः परिणाहो मध्यपरिधिर्भ्यस्य तत्तथा पुनः कीदृशम् 'अद्वसयमंगुलमायतं' अष्टशताङ्गुलमायतम् अष्टोत्तरशताङ्गुलानि आयत दीर्घम्, सर्वत्र मकारोऽलाक्षणिकः, तुरगाणां तुङ्गात्वं खुरत आरभ्य कर्णावधि परिणाहः विशालता पृष्ठपाश्वोदरान्तरावधि आयामो मुखदापुच्छमूलम् उक्तं च परासरेण-

“मुखदापेचकं दैर्घ्यं पृष्ठपाश्वोदरान्तरात् ।

आनाह उच्छ्रयः पादाद्, विज्ञेयो यावदासनम् ॥१॥

તત્રોચ્ચત્વસહ્સ્વ્યામેલનાય સાક્ષાદેવ સૂત્રકૃદાહ-‘વત્તીસ મંગુલમૂસિઅસિરં’ દ્વાત્રિંશદ્વૈગુલોચ્છિત્તશિરસ્કમ્ તત્ર દ્વાત્રિંશદ્ અદ્વૈગુલાનિ દ્વાત્રિંશદગુલપ્રમાણમ્ ઉચ્છિત્તં શિરો યસ્ય તત્તથા. પુનઃ કીદૃશમ્ ‘ચતુરંગુલકન્નાગં’ ચતુરદ્વૈગુલકર્ણકમ્-ચતુરદ્વૈગુલપ્રમાણકર્ણકમ્ હ્રસ્વકર્ણસ્ય જાત્યતુરગલક્ષણત્વાત્, અનેન કર્ણયોરુચ્ચત્વેન અસ્યાશ્વ-

અજ્ઞ શબ્દ સે હલ પ્રત્યય કરને પર અજ્ઞુલ શબ્દ કી નિષ્પત્તિ હોતી હૈ । યહ એક પ્રકાર કા માન વિશેષ હૈ । (ઘવળઉદમંગુલપરિણાહં) હસ અશ્વરત્ન કી મધ્યપરિધિ ૯૯ નન્નાણુ અંગુલ પ્રમાણથી । (અદ્વસમંગુલમાયત) ૧૦૮ એક મી ઝાઠ અંગુલ કો હસકાં લખાઈ થી । યહા સર્વત્ર મકાર અલાક્ષણિક હૈ-ઘોઢો કી ઝઞાઈ કા પ્રમાણ ખુર સે લેકર કાન તક નાપો જાતી હૈ પરિણાહ વિશાલતા-પૃષ્ઠ ભાગ સે લેકર ઉદર તક માની જાતો હૈ । તથા આયામ-મુલ્લ સે લેકર પુચ્છ કે મૂલ તક ગિની જાતી હૈ । પરાસર ને રેસા હો કહા હૈ—

मुखदापेचकं दैर्घ्यं पृष्ठपाश्वोदरान्तरात् । आनाह उच्छ्रयः पादाद् विज्ञेयो यावदासनम् ॥१॥

(વત્તીસમગુલમૂસિઅસિરં) ૩૨ અંગુલ પ્રમાણ હસ અશ્વરત્ન કા મસ્તક થા (ચતુરંગુલકન્નાગં) ચાર અંગુલ પ્રમાણ હસકે કર્ણ થે । હોટે કાન શ્રેષ્ઠ ઘોઢે હોને કે ચિન્હ માને જાતે હૈ । હસી સે ઘોઢે કા યૌવન સ્થિર રહતા હુઆ કહા ગયા હૈ । યહા પર યોજના

એક યવતું જેટલુ પ્રમાણુ હોય છે, તેટલા પ્રમાણુવાળો એક, અશુલ હોય છે એવો વાચસ્પતિનો મત છે. અ ગ શબ્દને ‘ઉલ્લ’ પ્રત્યય કરવાથી અંગુલ શબ્દની નિષ્પત્તિ થાય છે એ એક પ્રકારનું માપ વિશેષ છે. (ઘવળઉદમંગુલપરિણાહ) એ અશ્વરત્નની મધ્ય પરિધિ ૯૯ નન્નાણુ અશુલ પ્રમાણુવાળી હતી (અદ્વસયમંગુલમાયતં) ૧૦૮ એક સેા આઠ અશુલ જેટલી એમની લખાઈ હતી. અહીં સર્વત્ર મકાર અલાક્ષણિક છે થોડાઓની જિઆઈતુ પ્રમાણુ ખરીથી કાન સુધી માપવામાં આવે છે પરિણાહ-વિશાલતા-પૃષ્ઠભાગથી માંડીને ઉદર સુધી માપવામાં આવે છે તેમ જ આયામ-મુખથી માંડીને પૂછના મૂળ સુધી માપવામાં આવે છે પરાસરે આ પ્રમાણુ જ કહ્યું છે—

मुखदापेचकं दैर्घ्यं पृष्ठपाश्वोदरान्तरात् । आनाह उच्छ्रयः पादाद् विज्ञेयो यावदासनम् ॥

(વત્તીસ મગુલમૂસિઅસિરં) ૩૨ ખત્રીસ અશુલ પ્રમાણુ એ અશ્વરત્નનું મસ્તક હતું (ચતુર ગુલકન્નાગ) ૪૨ અશુલ પ્રમાણુ એના કર્ણ (કાન) હતા, નાનો કાન શ્રેષ્ઠ થોડાના લક્ષણ

रत्नस्य स्थिरयौवनत्वमभिहितं शङ्कुकर्णत्वात् अत्र योजनायाः क्रमप्राधान्येन पूर्वम्
कर्णविशेषणं ज्ञेयं पश्चात् शिरसः अश्वश्रवसो मूर्ध्नि उच्चतरत्वात् पुनः कीदृशम् 'वीसइ
अंगुलवाहागं' त्रिंशत्यङ्गुलवाहाकम्, २० त्रिंशत्यङ्गुलप्रमाणा वाग-शिरोभागाधोवर्ती
जानूरोरुपरिवर्ती प्राक्चरणभागी यस्य तत्तथा 'चउरंगुलजाणूकं' ४चतुरङ्गुलजात्रुकम्
तत्र चतुरङ्गुलप्रमाणं जानु वाहुजंघासन्धिरूपोऽवयवो यस्य तत्तथा, तथा 'सोल-
सअगुलजंघागं' षोडशाङ्गुलजंघाकम् तत्र १६षोडशाङ्गुलप्रमाणा जंघा-जान्त्रधोवर्ती खुरा-
वधिरवयवो यस्य तत्तथा, पुनश्च कीदृशम् 'चउरंगुलमूसियखुरं' चतुरगुलोच्छ्रित-
खुरम्, तत्र ४चतुरङ्गुलोच्छ्रिताः खुराः पादतलरूपाः अवयवा यस्य तत्तथा, एषामव-
यवानामुच्चत्वमीलने सर्वसङ्ख्या ८० अशीत्यङ्गुलरूपा, मकारः सर्वत्रालाक्षणिकः सम्प्रति
अवयवेषु लक्षणोपेतत्वं सूचयति 'मुत्तोलिसवत्तवलयमज्ज' मुत्तोलो संवृत्तवलयमध्यम्
तत्र मुत्तोलोनाम अथ उपरि च सङ्कीर्णा मध्ये तु ईषद्विशाला कोष्ठिका तद्वत् संवृत्त
सम्यग्वर्तुलं वलितं वलनस्वभावं नतुस्तन्धं मध्यं यस्य तत्तथा परिणाइस्य मध्यपरि-
धिरूपस्यात्रैव चिन्त्यमानत्वादुचिता इयमुपमा 'ईसि अंगुलपणयपट्टं' ईषदङ्गुलप्रण-

की क्रम प्रधानता लेकर पहिले कर्ण का विशेषण पश्चात् शिर का विशेषण जानना । क्योंकि
षोड़े के दोनों कान मस्तक की आपेक्षा उच्च होते हैं । (वीसइ अंगुलवाहागं) इसकी
शिरोभाग के अधोवर्ती और दोनों जानुओं के उपरिवर्ती ऐसा चरणों का प्रथम भाग-
गर्दन के नीचे का भाग २० वीस अंगुल प्रमाण था (चउरंगुलजाणूकं सोलसअगुल जंघागं) चार
अंगुल प्रमाण इसका जानु था—बाहु और जंघा का सन्धिरूप अवयव था । १६ सोलह अंगुल
प्रमाण इसकी जंघा थी—जानु के नीचे का खुरो तक का अवयवरूप भाग था (चउरंगुल-
मूसियखुरं) चार अंगुल ऊँचे इसके खुर थे । (मुत्तोलिस वत्तवलयमज्ज) मुत्तोलो—नीचे
ऊपर में सर्कीण तथा मध्य में थोड़ी विशाल ऐसी कोष्ठिका के जैसा इसका अच्छी तरह से
गोल एवं वलित वलन स्वभाव को स्तम्भ स्वभाव का नहीं मध्य भाग था (ईसि अंगुल

मनाथ छे, ज्येनाथी न घोडानु यौवन स्थिर रहे छे, आम ठडेवाय छे अही ज्येनानी
केम प्रधानता लधने यहेलां कथुं (कान)नु विशेषणु अने त्थार भाड शिरनु विशेषणु लधनुं
जेधजे. केमके घोडाना जने काने। शिरनी अपेक्षाय्जे जिया डोय छे (वीसइ अंगुलवाहागं)
ज्येनी भाडा- (शिरोभागना अधोवर्ती अने जने जानुज्येना उपरने अरथेना प्रथम
भाग-श्रीवानी नीचेना भाग) २० वीस अंगुल प्रमाणु हुती. (चउरंगुल जाणूक सोलस अंगुल-
जंघागं) चार अंगुल प्रमाणु ज्येनी जानुभाग हुतो—जेठले के भाहु अने जंघाना सधि
इय अवयव हुतो १६ सोल अंगुल प्रमाणु ज्येनी न घा हुती—जेठले के जानुनी नीचेना पुर
शुधीने। अवयव इय भाग हुतो. (चउरंगुलमूसियखुरं) चार अंगुल उंची ज्येनी परीजो
हुती (मुत्तोलोस वत्तवलयमज्ज) मुत्तोलो—नीचे—उपरमा थकीणु तथा मध्यमा कंठके
विशाल ज्येनी कोष्ठिका जेवे ज्येना सारीरीते गोल तेम न वलित-वलन स्वभावने, नहि के

तपृष्ठम् तत्र ईषदङ्गुलं यावत् प्रणतं नन्तुमारब्धम् अतिप्रणतस्योपवेष्टु दुस्खान्नहत्वात्
 पृष्ठम् पर्याणस्थानं यस्य तत्तथा आरोहकसुखावहपृष्ठकमित्यर्थः, पुनः कीदृशम्
 'संणयपट्टं' संनतपृष्ठम् तत्र सम्यग् अधोऽधः क्रमेण नतं पृष्ठं यस्य तत्तथा,
 तथा 'संगयपट्टं' संगतपृष्ठम् संगतदेहप्रमाणोचितं पृष्ठं यस्य तत्तथा, तथा 'सुजाय-
 पट्टं' सुजातपृष्ठम् सुजात जन्मदोषरहितं पृष्ठं यस्य तत्तथा, तथा 'पसत्थपट्टं' प्रश-
 स्तपृष्ठम् तत्र प्रशस्त शालिहोत्रलक्षणानुसारि पृष्ठं यस्य तत्तथा, किं बहुना : 'विसि-
 द्दपट्टं' विशिष्टपृष्ठं प्रधानपृष्ठम् भणितं पृष्ठे पर्याणस्थानवर्णनम्, अथ तत्रैवावशिष्ट-
 भागं विशिनष्टि 'एणीजाणुणयवित्थयथदपट्टं' एणीजाणुन्नताविस्तृतस्तब्धपृष्ठम् तत्र
 एणी हरिणी तस्याः जानुवदुन्नतम् उभयपार्श्वयो विस्तृतं च चरमभागे स्तब्धं सुदृढं
 पृष्ठं यस्य तत्तथा, पुनः कीदृशम् 'वित्तलयकसणिवाय अंकेल्लणपहारपरिवज्जिअंगं' वेत्र-
 लता कशानिपाताङ्केल्लणप्रहारपरिवर्जिताङ्गम् तत्र वेत्रो जलवंशः लता वेणुलता चर्मदण्डः
 'चावुक' इति प्रसिद्धः, तेषां निपातैस्तथा अङ्केल्लणप्रहारैः तर्जनकप्रहारैः तर्जन-
 कविशेषाघातैश्च परिवर्जितम् अश्ववाहमनोऽनुकूलचरित्वात् अङ्गं यस्य तत्तथा, तथा 'तव-
 णिज्जयासगाहिलान्णं' तपनीयस्थासगाहिलान्णम्, तत्र तपनीयमयाः 'सुवर्णमयाः' स्था-

पणयपट्टं संणयपट्टं सुजायपट्टं पसत्थपट्टं विसिद्धपट्टं) जत्र आरोहक इसके ऊपर बैठता था
 तो इसका पृष्ठ भाग थोड़े से अंगुल प्रमाण तक झुक जाता था । वह पृष्ठ भाग इसका नीचे
 नीचे के क्रम से नत था, संगत था—देह प्रमाण के अनुरूप था, सुजात था—जन्म दोष
 रहित था—तथा प्रशस्त था—शालिहोत्र लक्षण के अनुसार था—अधिक क्या कहें—वह पृष्ठ
 भाग इसका एक विशिष्ट ही प्रकार का पृष्ठ था (एणुजाणुणयवित्थय थद पट्ट वित्तलयक
 सणिवाय अंकेल्लणपहारपरिवज्जिअंगं) वह पृष्ठ हमका हरिणीकी जंघाओं की तरह उन्नत
 था—और दोनों पार्श्व भागों में विस्तृत था एवं चरम भाग में स्तब्ध था—सुदृढ था । इसका
 शरीर वेत्र, या लता, या कशा—कोडा, इनके आघातों से तथा इसी प्रकार के और भी जो
 तर्जनक विशेष हैं उनके आघातों से परिवर्जित था । क्योंकि इसको चाल अपने उपर सवार

स्तब्ध स्वभावने—अने। मध्यभाग डते। (ईसि अंगुलपणयपट्टं संणयपट्टं सुजायपट्टं
 पसत्थपट्टं विसिद्धपट्टं) न्यारे आरोहक अनेनी उपर ऐसता त्यारे अने। पृष्ठभाग क ईक
 अंगुल प्रमाथु ँट्टे। नअ थई नते। डते। ते पृष्ठ भाग अे अश्वने। नीचे—नीचेना—कभथी
 नत डते। संगत डते। देह प्रमाथानुइप डते। सुजात डते।—जन्म दोषथी रहित डते।,
 प्रशस्त डते। शालिहोत्रना लक्षण सुजप डते। वधारे थु कडीअे ते अश्वने। पृष्ठभाग
 अेक विशिष्ट प्रकारने। अ डते। (एणु जाणुणय वित्थय थदपट्ट वित्त लयकसणिवाय
 अंकेल्लणप परिवज्जिअंगं) ते अश्वने। पृष्ठभाग हरिणीनी जंघाअेनी अेम उन्नत
 डते। अने अने पार्श्वभागोभा विस्तृत डते। तेम अ चरम भागभा स्तब्ध डते। सुदृढ
 डते। अे अश्वनु शरीर वेत्र, लता के कशा (कोडा) अे सर्वना आघातोथी तेमअे अे नतना
 भीन तअनेक विशेषो डाय छे। तेमना आघातोथी परिवर्जित डतुं। केभके अेनी आल,

सकाः-दर्पणाकाराः अश्वालङ्कारविशेषा यत्र तदेवंविधम् अहिलाणं मुखसंयमनविशेषो यस्य तत्तथा सुवर्णमयलगामयुक्तमित्यर्थः तथा 'वरकणगसुफुल्लथासगविचित्रयणरञ्जुपासं' वरकनकसुपुष्पस्थासकविचित्ररत्नरञ्जुपाश्वम् तत्र वरकनकमयानि सृष्टु शोभमानानि पुष्पाणि स्थासकाश्च अश्वालङ्कारविशेषाः तैर्विचित्रा रत्नमयी रञ्जुः पार्श्वयोः पृष्ठोदरान्तवर्त्यवयवविशेषयोर्यस्य तत्तथा वध्यन्ते हि पट्टिकाः पर्याणदृढीकरणार्थमश्वाकनामुभयोः पार्श्वयोरिति तथा 'कंचणमणिकणगपवरगणाणाविह घटिआजालमुत्तिआजालएहिं' काश्चनमणिकनकप्रवरकनानाविधघण्टिकाजालमौक्तिकजालैः तत्र काश्चनयुतमणिमयानि केवल कनकमयानि च प्रवरकाणि पत्रिकाभिधानभूषणानि अन्तराऽन्तरा येषु तानि तथाभूतानि नानाविधानि घण्टिकाजालानि मौक्तिकजालानि च तैः 'परिमंडियेणं पट्टेण सोभमाणेण सोभमाणं' परिमण्डितेन विभूषितेन पट्टेन शोभमानेन शोभमानम् 'कक्केयणइंदनीलमरगरमसारगल्लमुहमंडणरइअं' कर्केतनेन्द्रनीलमरकतमसारगल्लमुसमंडलरचितम् तत्र कर्केतनः रत्नविशेषः इन्द्रनीलः इन्द्रधनुर्वत् नीलः इषत् नीलवर्णरत्नविशेषः अतसीवर्णवत्, मरकतः-नील-रत्नविशेषः दुर्वावर्णवत् मरतगल्लः एकप्रकारक रत्नविशेष तैः रचितं सज्जितं निर्मितं मुखमण्डलं यस्य तत्तथा तत् अथवा अस्य स्थापि-

हुए चक्रवर्ती के मनोऽनुकूल होती थी। (तवणिज्जथासगाहिलाणं) इसके मुख ऊपर की ओर लगाया था वह सुवर्णनिर्मित स्थासको से—दर्पणाकारके अलङ्कारों से युक्त थी, (वरकणगसुफुल्लथासगविचित्रयणरञ्जुपास) इसकी तंगरूप जो रस्ती थी वह रत्नमय थी एवं वरकनकमय सुन्दर पुष्पों से तथा स्थासकों से अलंकारविशेषों से विचित्र थी (कंचणमणिकणगपयरगणाणाविह घटियाजालमुत्तियाजालएहिं परिमंडियेणं पट्टेण सोभमाणेण सोभमाणं) काश्चन युक्तमणिमय और केवल कनकमय ऐसे पत्रक नामके अनेक भूषण बीच—२ में जिनमें जरे हुए हैं ऐसे अनेक प्रकार के घण्टिकाजालों से तथा मौक्तिक जालों से परिमंडित सुन्दर पृष्ठ से जो सुशोभित है। (कक्केयण इंदनीलमरगरमसारगल्लमुहमंडणरइअं) कर्केतन इन्द्रनीलमणि, मरकतमणि, एवं मसारगल्ल इन सबसे जिसका मुखमंडलसज्जित किया गया है।

येनी उपर सवार थयेदा अकवतीना मन मुअथ न थती हती (तवणिज्जथासगाहिलाणं) येनी मुअनी ने लगाम हती ते सुवणुं निर्मित स्थासकोथी दर्पणाकारना अलंकारोथी युक्त हती. (वरकणव सुफुल्लथासगविचित्रयणरञ्जुपासं) येनी तंग इथ ने राथहती ते रत्नमय हती तेअ वर कनकमय सु हर पुष्योथी तथा स्थासकोथी अलंकार विशेषोथी विचित्र हती (कंचणमणिकणगपयरगणाणाविह घटियाजालमुत्तियाजालेहिं परिमंडियेणं पट्टेण सोभमाणेण सोभमाणं) काश्चन युत मणिमय अने इकत कनकमय येवा पत्रकेना अनेक आभुषणो मध्यमा नेमनामां न्हित छे, येवा अनेक प्रकारना घटिका लोथी तेअ मौक्तिक लोथी परिमंडित सुंदर पृष्ठथी ने सुशोभित छे (कक्केयण इंदनीलमरगरमसारगल्ल मुहमंडणरइअं) कर्केतन-इन्द्रनीलमणि मरकतमणि तेअ मसारगल्ल ये सवेथी नेतु मुअ म हथी सज्जित करवाभा आवेल छे अथवा ये पूर्वोक्त स्थापितकर्केतनाहि रत्नोभा नेना

તેષુ ઉક્ત રત્નચિત્રેષુ 'પ્રૈતિત્રિવિમ્વિત્તાનિ' અનેકમુખમણ્ડલાનિ તૈઃ રચિતં સુશોભિતમ્ પુનઃ કીદશમરત્નમ્ 'આવિદ્ધમાણિક્યકસુત્તગવિભૂસિયં' આવિદ્ધમાણિક્ય સૂત્રકવિભૂષિતમ્ તત્ર આવિદ્ધમાણિક્યં રત્નકમ્ અશ્વમુખભૂષણવિશેષસ્તેન વિભૂષિતં શોભિતમ્ 'કળગમયપ-
 ડમસુકયતિલકં' કનકમયપદ્મસુકૃતતિલકમ્ તત્ર કનકમયપદ્મેન સુષ્ટુકૃતં તિલક યસ્ય તત્તથા 'દેવમહવિકૃષ્ણિયં' દેવમતિવિકૃષ્ણિયમ્ તત્ર દેવમત્યા દેવચાતુર્યેણ વિવિધપ્રકારેણ કલ્પિતં સૃષ્ટમ્ 'સુરવરિંદવાહનજોગ્ગાવયં' સુરવરેન્દ્રવાહનયોગ્યવજ્રમ્, તત્ર સુરવરેન્દ્રવાહનમ્
 ઉચ્ચૈઃ શ્રવા ઇન્દ્રસ્ય અશ્વઃ તસ્ય યોગ્યઃ મણ્ડલીકરણાભ્યાસઃ ગોલાકારભ્રમણરૂપગમનં તસ્યેતિભાવઃ તસ્યાઃ વ્રજમ્ પ્રાપકમ્ વ્રજગતાવિત્યસ્માદ્ ચ પ્રત્યયઃ તથાઃ 'સુરૂવં' સુરૂ-
 પમ્-સુન્દરમ્ પુનઃ કીદશમ્ 'દૂહ્જમાણપચચારુચામરામેલગં ધરેતં' દ્રવત્ પશ્ચચા-
 રુચામરમેલકં ધરત્ તત્ર દ્રવન્તિ ઇતસ્તતો દોલાયમાનાનિ સહજ ચશ્ચલાન્નત્વાદ્ ગલમા-
 લમૌલિકર્ણદ્વયમૂલનિવેશિતત્વેન પશ્ચસહ્યકાનિ યાનિ ચારુણિ ચામરાણિ તેષાં મેલકઃ
 એકસ્મિન્ મૂર્દ્ધનિસદ્ગમસ્તં ધરત્ વહત્, મૂલે ચામરા ઇત્યત્ર સ્ત્રીનિર્દેશઃ સમયસિદ્ધ એવ

અથવા-ઇન પૂર્વોક્ત સ્થાપિત કર્કેતનાદિ રત્નો મેં જિસકે અનેક મુખમંડલ પ્રતિવિન્વિત હો રહે
 હૈં, ઇસસે જો વહા સુહાવના લગ રહા હૈં । (આવિદ્ધ માણિક્યકસુત્તગવિભૂસિય) જિસમેં માણિક્ય
 લગે હુપ હૈ એસે સૂત્રક અશ્વમુખ ભૂષણવિશેષ સે જો વિભૂષિત હૈ (કળગમય પડમસુકયતિલકં)
 કનકમયપદ્મ સે જિસકે મુખ ઉપર અશ્ચી તરહ સે તિલક કિયા ગયા હૈ (દેવમહવિકૃષ્ણિયં)
 દેવોને અપની બુદ્ધિ કી ચતુરાઈ સે જિસકી રચના કી હૈ (સુરવરિંદવાહનજોગ્ગાવયં સુરૂવં
 દૂહ્જમાણ પચચારુચામરામેલગં ધરેતં) સુરેન્દ્ર ઇન્દ્ર કા જો વાહનમૂત અશ્વ હૈ જિસકા કિ નામ
 ઉચ્ચૈશ્રવા હૈ । ડસકો જો યોગ્યા -મણ્ડલાકારરૂપ ભ્રમણ-ગોલાકારભ્રમણરૂપ ગમન-ડસ
 ગમન કો યહ પ્રાપ્ત કરનેવાલા હૈ । અર્થાત્ ઇસકી ચાલ ઇન્દ્ર કે ઘોડા જૈસી હૈ । યહ વહા
 સુન્દર હૈ-અશ્ચે રૂપ વાલા હૈ । પાચ સ્થાનો મેં ગલે મેં માલ મેં, મૌલિ મેં, ઓર દોનો કાનો મેં
 નિવેશિત હલ્તે હુપ પાંચ સુન્દર ચામરોં કે મિલાપ કો જો મસ્તક પર ધારણ કરતા હૈ ।
 યહા મૂલ મેં ચામર શબ્દ કો જો ક્ષીલિજ્ઞ રૂપ સે કહા ગયા હૈ વહ સ્વ સમય મેં ઇસકી એસી

અનેક મુખમંડલો પ્રતિબિંબિત થઈ રહ્યા છે, એથી તે અતીવ સોહાવણી લાગી રહ્યો છે
 (આવિદ્ધમાણિક્યકસુત્તગવિભૂસિયં) જેમા માણિક્ય બંધિત છે, એવા સૂત્રક અશ્વમુખ ભૂષણ
 વિશેષ- થી જે વિભૂષિત છે. (કળગમય પડમસુકયતિલકં) કનકમય પદ્મથી જેના મુખ
 ઉપર ચારી રીતે તિલક ડરવામા આવેલ છે. (દેવમહવિકૃષ્ણિય) દેવોથી પોતાની બુદ્ધિની
 કૃશલતાથી જેની રચના કરી છે (સુરવરિંદવાહનજોગ્ગા વય સુરૂવં દૂહ્જમાણ પચ ચાર
 ચામરામેલગં ધરેતં) સુરેન્દ્ર - ઇન્દ્રનો જે વાહનમૂત અશ્વ છે, જેનું નામ ઉચ્ચૈ શ્રવા છે-
 તેની જે યોગ્યા- મણ્ડલાકાર રૂપ ભ્રમણ- ગોલાકાર ભ્રમણ રૂપ ગમન- તે ગમનને કો
 પ્રાપ્ત કરનાર છે. એટલે કે એ અશ્વની ચાલ ઇન્દ્રના અશ્વ જેવી છે. એ અશ્વ અતીવ સુન્દર
 છે. સુન્દર રૂપવાળો છે પાચ સ્થાનોમા-ગળામા, માલમા, મૌલિમા અને બન્ને કાનોમા નિવે
 શિત હાલતા પાંચ સુન્દર ચામરોના મિલાપને જે મસ્તક ઉપર ધારણ કરે છે અહી મૂળમાં

गौडमतेन वा चामरा इत्यावन्तः शब्दः अथ देवभक्तिविकल्पितादि विशेषणविशिष्ट
 उच्चैःश्रवानाम शक्रहयोऽपि स्यादित्याह—'अणभवाह' अनभ्रवाहम्—अनभ्रचारि अत्र
 वाहः अथवा अनभ्रवाहम् अत्रे-आकाशे अनागामि इत्यर्थः इन्द्रतुर्गस्तु अकाशमार्गगामी
 एतावान् भेदः इन्द्राश्चस्तदन्यम् 'अभेक्षणयणं' अभेक्षणयनम्—अभेले असंकुचिते
 नयने यस्य तत्तथा अतएव 'कोकासिबहलपत्तलच्छ' कोकासिते विक्रमिते वहले
 हृदे अनश्रुपातित्वात् पत्रले—पक्ष्मवती न तु ऐन्द्र लुप्तिकरोगवशाद्रोमरहित अक्षिणी यस्य
 तत्तथा 'सयावरणनवकणगतवियतवणिज्जतालुजीहासयं' सदावरणनवरुनकृतप्ततपनीयता-
 लुजिहास्यम् तत्र सदावरणे शोभार्थं दंशमशकादिरक्षार्थं वा प्रच्छादनपटे नवरुनकानि
 नव्यस्वर्णानि यस्य तत्तथा स्वर्णतन्तु स्यूत प्रच्छादनपटमित्यर्थः, तप्ततपनीय तापित
 रक्तसुवर्णम् तद्वद् अरुणं तालुजिहे यत्र तदेवंविधमास्यं मुखम् यस्य तत्तथा ततः पूर्व-
 विशेषणेन कर्मधारयः पुनः कीदृशम् 'भिरिआभिसेअघोणं' श्रीकाभिषेकघोणम् तत्र श्री-
 काया लक्ष्म्या अभिषेकः अभिषेचनं नाम शरीरलक्षण घोणायां नासिकायां यस्य तत्तथा
 'पोक्खरपत्तमिरसल्लिब्बिदुजुयं' पुष्करपत्रमिव सल्लिब्बिन्दुयुतम् यथा पुष्करपत्रं कमलपत्रं

हो प्रसिद्धि है इसलिये कहा गया है। अथवा गौड के मतानुसार चामर शब्द आवन्त
 है इसलिये इसे यहा आवन्त कहा गया है। (अणभवाह) यह अश्वरत्न अनभ्रचारी था।
 इन्द्र का अतिप्रिय उच्चैःश्रवा नाम का घोड़ा अत्रचारी होता है। पर यह ऐसा नहीं था।
 (अभेक्षणयणं, कोकासियबहलपत्तलच्छं, सयावरणनवकणगतवियतवणिज्जतालुजीहासयं) इसकी
 दोनो अर्खें असंकुचित थीं। अतएव वे विक्रसित थीं, वहल-हृद-थीं, और पत्रल— पक्ष्मवती थीं।
 दशमशकादि के निवारण करने के लिये या शोभा के लिये इसके प्रच्छादन पट में नवीन स्वर्ण
 के तार गुये हुए थे। अर्थात् हमका जो प्रच्छादन पट था वह स्वर्ण के तंतुओं का बना हुआ
 था। तथा इसके मुख के तालु और जिहा ये दोनो तापितरक्त सुवर्ण की तरह अरुण थे।
 (सिरियामिसेअघोणं) लक्ष्मी के अभिषेक का शारीरिक लक्षण इसकी नासिका के उपर था।

आमर शब्दने जे अर्खि ग वाचक कहेवाभां आवेल छे, ते तत्कालीन समयभा जेनी जेवी
 न प्रसिद्धि हती जेथी आम कहेवाभां आवेल छे. अथवा गौडना मत प्रमाणे आमर शब्द
 आभन्त शब्द छे जेथी न जेने अर्खी आभन्त कहेवाभां आवेल छे. (अणभवाह) जे
 श्रेष्ठ अश्व अनभ्रचारी हतो. इन्द्रने उच्चैः श्रवा नामक अश्व अत्रचारी होय छे परतु
 जे अश्व आकाशचारी न हतो. अभेक्षणयण कोकासियबहलपत्तलच्छं, सयावरणनवक-
 णगतवियतवणिज्जतालुजीहासयं) जेनी भन्ने आपो असंकुचित हती जेथी ते विक-
 सित हती अहल- हृद हती अने पत्रल- पक्ष्मवती हती दश मशकादि ना निवारण भाटे
 अथवा शोभा भाटे जेना प्रच्छादन पटमा नवीन स्वर्णना तारे अर्चित हता. जेटहे के जे
 प्रच्छादन पट हतु ते स्वर्णना तंतुजोथी निर्मित हतु तेभज जेना सुभना तालु अने
 जिहा जे भन्ने तापित रक्त सुवर्णनी जेभ अरुणु हतां (सिरियामिसेअघोणं) लक्ष्मीना
 अभिषेकजु शारीरिक लक्षण जेनी नासिका उपर हतु. (पोक्खरपत्तमिवसल्लिब्बिदुजुयं)

जलान्तरस्थं वाताहतजलविन्दुयुतं भवति तदेवमपि सलिलं पानीयं लावण्यमित्यर्थः तस्य विन्दवः छटास्तैर्युतम् अत्र विन्दुग्रहणेन प्रत्यङ्गं लावण्य सूचितम् लोकेऽपि प्रसिद्धमेतत् मुखेऽस्य पानीयमिति 'अचचलं' अचञ्चलम् स्वामिकार्ये स्थिरम् साधुवाहित्वात् 'चञ्चलशरीरं' चञ्चलशरीरम् ज्ञातीस्वभावात् अथ यदि चञ्चलशरीरं तदाऽमेध्य अपवित्र वस्तुष्वपि स्वाङ्गप्रवर्त्तकं स्यादित्याह—'चोक्खचरगपरिव्वायगोविण् हिलीयमाणं हिलीयमाणं' चोक्खचरकपरिव्राजक इव अभिलीयमानम् अभिलीयमानम् तत्र चोक्खः कृतस्नानादिना पवित्रः चरको—गट्टिमिक्षाचरः यः द्वित्रिः संघीभूतः सन् भिक्षां चरति स त्रिदण्डी संन्यासि विशेष इत्यर्थः एतादृशः यथा पवित्रः संघीभूतः भिक्षाचरपरिव्राजकः अशुचि ससर्गशङ्कया कुस्मितस्थानतः आत्मानं पृथक् करोति तथा इदमपि अश्वरत्नम् कुत्सितस्थानमार्गं परित्यजन् पवित्रस्थानसुगम्यमार्गमेवावलम्बते इति भावः परिव्राजको मस्करो भिक्षुः, ततश्चरकसहितः परिव्राजकः चरकपरिव्राजकः प्रथमा द्वितीयार्थे तेन चरकपरिव्रा-

(पोकखरपत्तमिव सलिलविन्दुयुतं) जिप प्रकार कनल पत्र सलिलविन्दुओं से युक्त होता है । उमी प्रकार इसका प्रत्येक शरीरिक अवयव लावण्य की विन्दुओं से—छटाओं युक्त था । सत्रिल शब्द से यहा अश्वरत्न के पक्ष से पानोय—लावण्य—गृहीत हुआ है । लोक में भी "अस्य मुखे पानोयं" ऐसा व्यवहार होता देखा जाता है । (अचचलं) स्वामी के कार्य में यह चञ्चलता से रहित था स्थिरथा—(चञ्चलशरीर) परन्तु ज्ञातीस्वभाव से ही यह शरीर में चञ्चलतावाला था (चोक्खचरगपरिव्वायगोविण् हिलीयमाणं २ खुरचलणचच्चपुडेहिं धरणिअलं अभिहणमाण २ दोविय चलणे जमगसमगं) जिस प्रकार चोखा स्नानादि से शुद्धशरीरवाला—चरक—सन्धासी—मस्करो अशुची पदार्थ के ससर्ग हो जाने की शका से—अर्थात् अपवित्र पदार्थ का संसर्ग मुझे न हो जावे—इस तरह अपने को सुरक्षित रखता है कुत्सित स्थान से अपने को दूर रखता है उसी तरह यह अश्वरत्न भी उबड़ खाबड़ अथवा कुत्सित—अपवित्र—स्थानों को छोड़ता हुआ जो पवित्र स्थान और सुगम्य स्थानमार्ग होते हैं उन्हीं का अवलम्बन कर चलता है—चलते

जेम ठमलपत्र सलिल विन्दुजोथी युक्त होय छे तेमजे जेना शरीरने इरेके इरेके अवयव लावण्यना विन्दुजोथी—छटोथी युक्त हतो, सलिल शब्दथी अही अश्वरत्नना पक्षमां पानीय—लावण्य गृहीत थयेल छे, दोउभा पक्ष "अस्य मुखे पानीयं" भा जतने व्यवहार जेवाभा आवे छे (अचचलं) स्वामीना कार्यमां जे अश्व याचयेथ रहित हतो, स्थिर हतो (चञ्चलशरीर) परंतु जति स्वभावथी जे जे अश्वतु शरीर याचयेथ युक्त हंतु (चोक्ख चरग परिव्वायगोविण् हिलीयमाण २ खुरचलणचच्चपुडेहिं धरणिअलं अभिहणमाण २ दोविय चलणे जमगसमगं) जेम जेभा—स्नानादिथी शुद्ध शरीर वाणो—चरक—सन्धासी मस्करो अशुचि पदार्थना ससर्गनी आशंकाथी जेटदेके अपवित्र पदार्थना ससर्ग भने न थाय—आम पोतानी जतने सुरक्षित राखे छे कुत्सित स्थानोथी पोतानी जतने इर राखे छे तेमजे जे अश्वरत्न पक्ष हंथा—नीचा अथवा कुत्सित—अपवित्र स्थानोने त्यछने जे पवित्र स्थान अने सुगम्य स्थान मार्गो होय छे ते मार्गोने अवलम्बने जे आवे छे.

जकमिव प्राकृतशैल्या अकार प्रश्लेषात् अभिलीयमानम् अभिलीयमानम्-अथुचिमंसर्गग-
ङ्ग्या आत्मान संवृण्वत् संवृण्वत् संगोपयत् संगोपयत् तथा 'खुरचलणचच्चपुटेहि धरणिणयलं
अभिहयमाणं अभिहयमाणं' खुरचरणचच्चपुटैः धरणितलम् अभिघ्नदाभिघ्नन्, तत्र खुरप्र-
धानाश्रयणाः खुरचरणास्तेषां चच्चपुटाः आघातविशेषास्तैर् धरणितलम् अभिघ्नदभिघ्नत्
खुराभिघातविशेषैः पुरोवर्त्तिं भूमितलं क्षोभयत् क्षोभयत् तारयत् तारयत् इत्यर्थः उक्तं च
'यः खुरैः खनेत्पृथिवीमश्वो लोकोत्तरस्मृतः' इति योऽश्वः पृथिवीं खनति स श्रेष्ठो अश्व
उच्यते इत्यर्थः अश्ववारप्रयोगनर्त्तितो हि द्वयोऽग्रपादौ उदस्यति, तत्रास्यशक्तिं विशेषण-
द्वारेण दर्शयति 'दो वि अचलणे जमगसमगं मुहाओ विणिग्गमंतव' द्वावपि च चरणौ
यमकसमकं युगपद् मुखाद्विनिर्गमदिव निस्सारयदिव अयमर्थः ? इदमश्वरत्नम् अग्रपादा-
वूर्ध्वं न यत्तया मुखान्तिकं प्रापयति यथाजन उत्प्रेक्षते इमौ चरणौ मुखाद्विनिर्गमयतीति
चोत्प्रेक्षा पुनः क्रियान्तरदर्शनेनैतद्विशिनष्टि 'सिग्घयाए मुलाणतन्तु उदगमविणि-
स्साए पक्कमंतं' शीघ्रतया मृणालतन्तूदकेऽपि निश्राय प्रक्रामत्, तत्र शीघ्रतया लाघव
विशेषेण मृणालं कमलनालं तस्या तन्तुः—सूत्राकारोऽवयवविशेषः सच उदकं च तेऽपि
निश्राय अवलम्ब्य अन्यद् दुर्गादिकं प्रक्रामत् सञ्चरत् अयमर्थः—यथा अन्येषां सञ्च-
रिष्णुनां जलचरादीनां मृणालतन्तूदके पादावष्टम्भकेन भवतः तथा नास्येति, सूत्रे चैकव-

समय यह अपने खुर टापो - प्रधानता वाले - चरणों से - पैरों से - पुरोवर्ती भूमि को आघात
युक्त करता २ अर्थात् - क्षुभित करता २ चाल चलता है उक्तं च - " यः खुरैः - खनेत्पृथिवी-
मश्वो लोकोत्तरः स्मृतः." जब यह अपने ऊपर सवार हुए पुरुष के द्वारा नचाया जाता है
तब यह अपने आगे के दो पैरों को एक साथ ऊपर को उठाता है - सो उस समय ऐसा ही
प्रतीत होता है कि मानो उसके ये दोनों पैर एक साथ ही (मुहाओ विणिग्गमंतं व) इसके
मुख से निकल रहे हैं (सिघाए मुणालततु उदगमवि णिस्साए पक्कमंतं) इसकी गती इतनी
अधिक लाघवविशेष से युक्त होती है कि मृणाल तन्तु और जल ये दोनों भी इसके चलने में सहाय
भूत हो जाते हैं तात्पर्य यही है कि यह थल की तरह जल के ऊपर भी अचिछतरह चल सकता
है और कमल नाल के ऊपर भी सरलता से चल लेता है न वह चलते समय पानी में डूबता है

आलता-आलता ओ पोताना भुरोथी पुरोवतीं भूमिने ताडितं करो-करोते ओटवे के भूमिने
क्षुभं करो-करोते आले ओ उक्तं च—“यः खुरैः खनेत्पृथिवीमश्वो लोकोत्तरः स्मृतः”
अथारे ओ अथ पोताना उपर आइठ पुषु वडे नथाववाभा आवे ओ थारे ओ पोताना
आगणना ओ पगेने ओकी साथे उपर उठावे ओ तो ते वभते आभ प्रतीत थाय ओ के नथे
के ओना ओ भ-ने पगे ओकी साथे व (मुहाओ विणिग्गमंतं व) ओना शुभमाथी नीकणी
न रथा होय ! (सिग्घाए मुणालततु उदगमविणिस्साए पक्कमंतं) ओनी गति आटवी
अथी लाघव विशेष युक्त होय ओ के मृषाल ततु अने पाणी ओओ भ-ने पषु ओनी
आलभा सहायभूत थता हुता तात्पर्य आ प्रभाषे ओ के ओ स्थणनी ओभ पाणी उपर
पषु आली शकते हुतो, अने कभणनालनी उपर पषु आली शकते हुतो ते आलती वभते

જજ્ઞાન્તરસ્થ વાતાહતજલ્બિન્દુયુત ભવતિ તદેવમપિ સલિલં પાનીય લાવણ્યમિત્યર્થઃ
તસ્ય બિન્દવઃ છટાસ્તૈર્યુતમ્ અત્ર બિન્દુગ્રહણેન પ્રત્યક્કં લાવણ્ય દ્વચિતમ્ લોકેઽપિ પ્રસિ-
દ્ધમેતત્ મુલ્હેઽસ્ય પાનીયમિતિ 'અચ્ચલં' અચ્ચલમ્ સ્વામિકાર્યે સ્થિરમ્ સાધુવાહિત્વાત્
'ચ્ચલસરીરં' ચ્ચલશરીરમ્ જ્ઞાતીસ્વભાવાત્ અથ યદિ ચ્ચલશરીરં તદાઽમેઘ્ય અગ્નિત્ર
વસ્તુષ્ણપિ સ્વાક્ષરપરિત્રાજકં સ્યાદિત્યાહ—'ચોક્ષવરગપરિત્રાયાગોવિવ દિલીયમાણં દિલી-
યમાણ' ચોક્ષવરકપરિત્રાજક ઇવ અભિલીયમાણમ્ અભિલીયમાણમ્ તત્ર ચોક્ષઃ કૃતસ્નાના-
દિના પત્રિત્રઃ ચરનો—ગાટિમિક્ષાચરઃયઃ દ્વિત્રિઃ સંઘીભૂતઃ સન્ મિક્ષા ચરતિ સ ત્રિદ્વંડી
સંન્યાસિ વિશેષે इत्यર્થઃ एतादृशः यथा पवित्रः संघीभूतः भिक्षाचरपरित्राजकः अशुचि
ससर्गशङ्कया कुस्मितस्थानतः आत्मानं पृथक् करोति तथा इदमपि अश्वरत्नम् कुत्सि-
तस्थानमार्गं परित्यजन् पवित्रस्थानमुगम्यमार्गमेवावलम्बते इति भावः परित्राजकौ मस्करी
भिष्णुः ततश्चरकसहितः परित्राजकः चरकपरित्राजकः प्रथमा द्वितीयार्थे तेन चरकपरित्रा-

(પોક્ષરપત્તમિવ સલિલ્લિન્દુજ્યુત) જિપ પ્રકાર કનલ પત્ર સલિલ્લિન્દુઓં સે યુક હોતા હૈ । ડસી
પ્રકાર ઇસકા પ્રત્યેક શરોરિક અવયવ લાવણ્ય કી લિન્દુઓં સે—છટાઓં યુક થા । સલિલ શબ્દ
સે યહા અશ્વરત્ન કે પક્ષ સે પાનોય—લાવણ્ય—ગૃહોત હુમા હૈ । લોક મેં મી "અસ્ય મુલ્હે પાનોયં"
એસા વ્યવહાર હોતા દેસા જાતા હૈ । (અચ્ચલં) સ્વામી કે કાર્ય મેં યહ ચ્ચલતા સે રહિત થા
સ્થિરથા- (ચ્ચલસરીર) પરન્તુ જાતીસ્વભાવ સે હી યહ શરીર મેં ચ્ચલતાવાલા થા (ચોક્ષવર-
ગપરિત્રાયાગોવિવ દિલીયમાણં ૨ સ્વરચલણચ્ચપુલેહિં ધરણિમલં અભિહ્ણમાણ ૨ દોવિય
ચલ્ણે જમગસમગં) જિસ પ્રકાર ચોક્ષા સ્નાનાદિ સે શુદ્ધશરીરવાલા —ચરક —સંન્યાસી -મસ્કરી
અશુચી પદાર્થ કે સસર્ગ હો જાને કી શકા સે -અર્થાત્ અપવિત્ર પદાર્થ કા સંસર્ગ મુક્તે ન
હો જાવે - ઇસ તરહ અપને કો સુરક્ષિત રક્ષતા હૈ કુત્સિત સ્થાન સે અપને કો દૂર રક્ષતા હૈ
ડસી તરહ યહ અશ્વરત્ન મી ડબહ સ્લાબહ અથવા કુત્સિત -અપવિત્ર -સ્થાનો કો છોડતા હુમા
જો પવિત્ર સ્થાન ઓર મુગમ્ય સ્થાનમાર્ગ હોતે હૈં ડન્હીં કા અવલમ્બન કર ચલતા હૈ- ચલતે

એમ કમલપત્ર સલિલ ભિન્દુઓથી યુક્ત હોય છે તેમજ એના શરીરને દરેકે દરેક અવયવ
લાવણ્યના ભિન્દુઓથી— ક્ષોથી યુક્ત હોતો. સલિલ શબ્દથી અહીં અશ્વરત્નના પક્ષમાં
પાનીય— લાવણ્ય ગૃહીત થયેલ છે. લોકમાં પણ "અસ્ય મુલ્હે પાનીયં" આ બાતને વ્યવહાર
નેવામાં આવે છે (અચ્ચલં) સ્વામીના કાર્યમાં એ અશ્વ ચાચલ્ય રહિત હોતો, સ્થિર હોતો
(ચ્ચલસરીર) પરંતુ બાતિ સ્વભાવથી જ એ અપવતુ શરીર ચાચલ્ય યુક્ત હોતું (ચોક્ષ
વરગ પરિત્રાયાગોવિવ દિલીયમાણ ૨ સ્વરચલણચ્ચપુલેહિં ધરણિમલ અભિહ્ણમાણ ૨
દોવિય ચલ્ણે જમગસમગ) એમ એના— સ્નાનાદિથી શુદ્ધ શરીર વાળો— ચરક— સંન્યાસી
મસ્કરી અશુચિ પદાર્થના સસર્ગની આશંકાથી એટલેકે અપવિત્ર પદાર્થને સસર્ગ મને ન
થાય— આમ પાતાની બાતને સુરક્ષિત રાખે છે કુત્સિત સ્થાનોથી પાતાની બાતને દૂર રાખે
છે તેમજ એ અશ્વરત્ન પણ ઉચા—નીચા અથવા કુત્સિત— અપવિત્ર સ્થાનોને ત્યજીને જે
પવિત્ર સ્થાન અને મુગમ્ય સ્થાન માર્ગો હોય છે તે માર્ગોને અવલમ્બીને જ ચાલે છે

जकमिव प्राकृतशैल्या अकार प्रभ्रलेपात् अभिलीयमानम् अभिलीयमानम्-अशुचिसंसर्गश-
ङ्क्या आत्मान संवृण्वत् संवृण्वत् संगोपयत् संगोपयत् तथा 'खुरचलणचच्चपुढेहि धरणिणयलं
अभिहयमाणं अभिहयमाणं' खुरचरणचच्चपुटैः धरणितलम् अभिघ्नदाभिघ्नन्, तत्र खुरप्र-
धानाश्रणाः खुरचरणास्तेषां चच्चपुटाः आघातविशेषास्तै धरणितलम् अभिघ्नदभिघ्नन्
खुराभिघातविशेषैः पुरोवर्त्ति' भूमितलं क्षोभयत् क्षोभयन् त्वारयत् त्वारयत् इत्यर्थः उक्तं च
'यः खुरैः खनेत्पृथिवीमश्वो लोकोत्तरस्मृतः' इति योऽश्वः पृथिवीं खनति स श्रेष्ठो अश्व
उच्यते इत्यर्थः अश्ववारप्रयोगनर्त्तितो हि हयोऽग्रपादौ उदस्यति, तत्रास्यशक्तिं विशेषण-
द्वारेण दर्शयति 'दो वि अचलणे जमगसमगं मुहाओ विणिगगमंतव' द्वावपि च चरणौ
यमकसमकं युगपद् मुखाद्विनिर्गमदिव निस्सारयदिव अयमर्थः ? इदमश्वरत्नम् अग्रपादा-
वूर्ध्वं न यत्तथा मुखान्तिकं प्रापयति यथाजन उत्प्रेक्षते इमौ चरणौ मुखाद्विनिर्गमयतीति
चोत्प्रेक्षा पुनः क्रियान्तरदर्शनेनैतद्विशिनष्टि 'सिग्घयाए मुलाणतन्तु उदगमविणि-
स्साए पक्कमंतं' शीघ्रतया मृणालतन्तूदकेऽपि निश्राय प्रक्रामत्, तत्र शीघ्रतया लाघव
विशेषेण मृणालं कमलनालं तस्या तन्तुः—सूत्राकारोऽवयवविशेषः सच उदकं च तेऽपि
निश्राय अवलम्ब्य अन्यद् दुर्गादिकं प्रक्रामत् सश्वरत् अयमर्थः—यथा अन्येषां सञ्च-
रिष्णुनां जलचरादीनां मृणालतन्तूदके पादावष्टम्भकेन भवतः तथा नास्येति, सूत्रे चैकव-

समय यह अपने खुर टापी - प्रधानता वाले - चरणों से - पैरों से - पुरोवर्ती भूमि को आघात
युक्त करता २ अर्थात् - क्षुभित करता २ चाल चलता है उक्तं च - " यः खुरै - खनेत्पृथिवी-
मश्वो लोकोत्तरः स्मृतः" जब यह अपने ऊपर सवार हुए पुरुष के द्वारा नचाया जाता है
तब यह अपने आगे के दो पैरों को एक साथ ऊपर को उठाता है - सो उस समय ऐसा ही
प्रतीत होता है कि मानो उसके ये दोनों पैर एक साथ ही (मुहाओ विणिगगमंत व) इसके
मुख से निकल रहे हैं (सिघाए मुणालततु उदगमवि णिस्साए पक्कमंत) इसकी गती इतनी
अधिक लाघवविशेष से युक्त होती है कि मृणाल तन्तु और जल ये दोनों भी इसके चलने में सहाय
भूत हो जाते हैं तात्पर्य यही है कि यह थल की तरह जल के ऊपर भी अचिछतरह चल सकता
है और कमल नाल के ऊपर भी सरलता से चल लेता है न वह चलते समय पानी में डूबता है

यावतां—यावता ओ पोताना पुरोवर्ती पुरोवर्ती भूमिने ताडितं करो—करो ओटवे के भूमिने
क्षुभं करो—करो यावे छे उक्तं च—“यः खुरै खनेत्पृथिवीमश्वो लोकोत्तर स्मृतः”
अथारे ओ अश्व पोताना उपर आइडे पुरुष वडे नचाववाभा आवे छे थारे ओ पोताना
आगणना ओ पगेने ओकी साथे उपर उडावे छे तो ते वभते आम प्रतीत थाय छे के नखे
के ओना ओ अन्ने पगे ओकी साथे न (मुहाओ विणिगगमंत व) ओना शुभभाथी नीकणी
न रक्षा डोय । (सिग्घाए मुणालततु उदगमविणिस्साए पक्कमंतं) ओनी गति आटवी
अभी लाघव विशेष युक्त डोय छे के भूषाल ततु अने पाणी ओओ अन्ने पक्ष ओनी
यावता सहायभूत थता इता तात्पर्य आ प्रभावे छे के ओ स्थणनी ओम पाणी उपर
पक्ष यावी शकतो इतो, अने कमणनालनी उपर पक्ष यावी शकतो इतो ते यावती वभते

ચનમાર્ષત્વાત્, તથા 'જાઙ્ કુલરૂવપચ્ચયપસત્થવારસાવત્તગવિસુદ્ધલક્ષણ' જાતિ કુલરૂપ-
પ્રત્યયપ્રશસ્તદ્વાદશાવર્ત્તકાવેશુદ્ધલક્ષણમ્ તત્ર જાતિઃ—માતૃપક્ષઃ કુલં પિતૃપક્ષઃ રૂપં મદાકાર-
સસ્થાનં તેપાં પ્રત્યયોવિશ્વાસો યેભ્યઃ તે ચ તે પ્રશસ્તાઃ પ્રદક્ષિણાવહત્વાત્ શુભસ્થાનસ્થિ-
તત્વાચ્ચ યે દ્વાદશાવર્ત્તો દેવમણિના નઃ ચક્રાકાર ગોલાકારાઃ ચિહ્નવિશેષાસ્તે સન્તિ યત્ર
તત્તથા વહુત્રીદિલક્ષણઃ ક પ્રત્યયઃ, વિશુદ્ધાનિ દોષાવર્જિતાનિ લક્ષણાનિ અશ્વશાસ્ત્ર
પ્રસિદ્ધાનિ યસ્ય તત્તથા, તતઃ પદદ્વયસ્ય કર્મધારયઃ, તત્ર દ્વાદશાવર્ત્તોશ્ચ ઇમે વરા-
હોક્તાઃ—યે પ્રપાણગલકર્ણસંસ્થિતાઃ, પૃષ્ઠમધનયનો પરિસ્થિતાઃ । ઓષ્ઠ સક્થિ મુજકુક્ષિ
પાર્શ્વગાસ્તે લલાટસહિતાઃ સુશોભનાઃ ॥૧॥ પ્રપાણમ્ ૧ ગલઃ ૨ કર્ણો ૩ પૃષ્ઠમ્ ૪
મધ્યમ્ ૫ નયને ૬ ઓષ્ઠો ૭ સક્થિની ૮ મુજો ૯ કુક્ષિઃ ૧૦ પાર્શ્વો ૧૧ લલાટમ્ ૧૨
પ્રતાનિ દ્વાદશ સ્થાનાનિ તુરગસ્ય પ્રતેષુ સ્થાનેષુ સ્થિતા અપિ આવર્ત્તોઃ દ્વાદશૈવ
સુશોભનાઃ ભવન્તિ તથાહિ—અત્ર વૃત્તિલેશઃ પ્રપાણમ્ ૧ ઉત્તરોષ્ઠતલમ્ ગલઃ ૨
કળ્ઠઃ યત્રસ્થિત આવર્ત્તો દેવમણિ નામા હયાનાં મહાલક્ષણતયા પ્રસિદ્ધઃ કર્ણો ૩
પ્રસિદ્ધો પ્રતેષુ સ્થાનેષુ સસ્થિતાઃ તયા પૃષ્ઠમ્ ૪ પર્યાણસ્થાનમ્ મધ્યં ૫ પ્રસિદ્ધમ્

और न कमल नाल तन्तु उसकी गति से छिन्न भिन्न होते हैं । (जाइ कुलरूपपच्यय पसत्थ वार-
सावत्तग विसुद्ध लक्षणं सुकुलप्पसूत्रं, मेहाविमदयविणीभं, मणुयतणुय सुकुमाललोमनिद्धच्छवि)
जाति-मातृ पक्ष-कुल-पितृ पक्ष एवं रूप - सुन्दराकार सस्थान-इनका विश्वास जिनसे होता है
ऐसे जो प्रशस्त द्वादश आवर्त हैं उनसे यह युक्त था तथा अश्व-शास्त्र प्रसिद्ध विशुद्ध लक्षणों से
यह सहित होता है, एवं सुकुल प्रसूत था वराहोक्त द्वादश आवर्त इस प्रकार से है—ये प्रपाण
गल - कर्ण संस्थिताः पृष्ठ - मध्य नयनोपरिस्थिताः, ओष्ठ-सक्थि मुजकुक्षि पार्श्वगास्ते ललाट सहिताः
सुशोभना ॥१॥ प्रपाण - ऊपर के ओष्ठ के तल का नाम है, सो हम प्रपाण गल -कण्ठ के ऊपर
जो आवर्त होता है उसका नाम देवमणि है और वह आवर्त अश्व के महान होने का लक्षण
माना गया है इसी तरह दोनों कानों के ऊपर, पृष्ठ भाग के ऊपरतथा पृष्ठ के मध्य में, दोनों

પાણીમાં પણ રૂપતો ન હતો અને ઠમળનાલ તતુ તેની ગતિથી છિન્નવિછિન્ન પણ થતા
ન હોતા. (જાઙ્ કુલરૂવપચ્ચયપસત્થ વારસાવત્તગ વિસુદ્ધલક્ષણં સુકુલપ્પસૂત્રં, મેહાવિમદય
વિણીભં, મણુય તણુય સુકુમાલ લોમનિદ્ધચ્છવિ) જાતિ—માતૃપક્ષ-કુળ, પિતૃપક્ષ અને ૩૫-
સુન્દરાકાર સસ્થાન—એ સર્વનો જેમનાથી વિશ્વાસ થાય છે, એવા જે પ્રશસ્ત દ્વાદશ આવર્તો
છે તેમનાથી એ યુક્ત હતો. તેમજ અશ્વશાસ્ત્ર પ્રસિદ્ધ વિશુદ્ધ લક્ષણોથી એ સહિત હતો
અને એ સુકુળ-પ્રસૂત હતો. વરાહ-ઉક્ત દ્વાદશ આવર્તો આ પ્રમાણે છે—

ये प्रपाण गलकर्णसंस्थिता पृष्ठ मध्य नयनोपरिस्थिता ।

ओष्ठसक्थि मुजकुक्षि पार्श्वगास्ते ललाटसहिताः सुशोभना ॥१॥

પ્રપાણ—ઉપરના ઓષ્ઠતલનું નામ છે તે. એ પ્રપાણ ગલ-કઠની ઉપર જે આવર્ત
હોય છે, તેનું નામ દેવમણિ છે અને એ આવર્ત અશ્વની શ્રેષ્ઠતા (મહત્તા)નું લક્ષણ માન-
વામાં આવે છે. આ પ્રમાણે બન્ને કાનોની ઉપર પૃષ્ઠ ભાગની ઉપર તેમજ પૃષ્ઠના મધ્યમાં

नयने ६ अपि प्रसिद्धे तदुपरि स्थिताः तथा ओष्ठौ ७ प्रसिद्धौ सक्थिनी ८ पाश्चा-
त्यपादयोः जानूपरिभागः श्रुजौ ९ प्राक्पादयोर्जानूपरिभागः कुक्षिः १० अत्र वामो
दक्षिणकुक्ष्यावर्त्तस्य गर्दितत्वात् पाश्र्वौ ११ प्रसिद्धौ तद्गताः ललाटं १२ प्रसिद्धं तेन
सहिताः अत्र कर्णनयनादि स्थानानां द्विसङ्ख्याकत्वेऽपि जात्यपेक्षया द्वादशैव स्था-
नानि स्थानभेदानुसारेण स्थानिभेदा अपि आवर्त्ताः द्वादशैवेति तत् तत्स्थानेषु
स्थिताः सन्तः सुशोभनाः—सुभ्रञ्जणा भवन्ति, अन्यत्र स्थानेषु नेत्यर्थः तथा—‘सुकुल-
प्पद्मं’ सुकुलप्रसूनम् इयशास्त्रोक्तक्षत्रियाश्चपि त्रिकम्, तथा ‘मेहाविमहयविणीभं’ मेधा-
विमद्रकविनीतम् तत्र मेधावि बुद्धिमान् स्वामिपद संज्ञादि प्राप्तार्थधारकम् भद्रकम् अदु-
ष्टम् विनीत स्वामीष्टकारित्वात् अत्र समाहारद्वन्द्वत्वात् एकवद्भावः, तथा ‘अणु
अतणुअसुकुमाललोमनिद्धच्छर्वि’ अणुकतनुकानाम् अतिसूक्ष्माणां सुकुमाराणां सुकोम-
लानां लोम्नां स्निग्धश्लाघनीया छविः कान्ति र्यत्र तत्तथा, पुनः कीदृशम् ‘सुजाय-
अमरमणपवणगरुडजङ्घणचवलसिग्धगामी’ सुजातामरमनःपवनगरुडजयिचपलशीघ्रगामि’तत्र
सुष्ठुयार्तं गमनं यस्य तत्तथा, अमरमनः पवनगरुडाः देवचित्तवायुगरुडाः प्रसिद्धाः तान्
वेगाधिक्येन जयतीति अमरमनःपवनगरुडजयि, अतएव चपलशीघ्रगामि च अतिशीघ्र-
गतिकम् पश्चात्पदद्वयस्य कर्मधारयः, तथा कीदृशम् ‘इसिमिव खंतिखमए’ ऋषिमिव

आँसों के ऊपर, दोनों ओष्ठों के ऊपर, पीछे के दोनों पैरों के घूटना के ऊपर, आगे के पैरों
के दोनों घूटना के ऊपर, कुक्षि के ऊपर, दाईं बाईं ओर तथा ललाट के ऊपर ये आवर्त्त होते हैं।
ये कर्णनयनादि १२ स्थान हैं इन पर ये १२ आवर्त्त विह्व विशेष होते कहे गए हैं। यह
अम्बरत्न मेधावि था स्वामी के पैर के सकेत से स्वामी के भाव को समझ जानेवाला था, भद्रक
था, अदुष्ट था विनीत था, अपने मालोक के इष्ट अर्थ का सपादक होने के कारण नम्र था
इसके शरीर के ऊपरजो रौमराजि थी- वहबहुत ही अधिक सूक्ष्म एव सुकुमार थी- तथा
स्निग्ध थी (सुजाय अमरमणपवणगरुडजङ्घणचवलसिग्धगामी) यह बड़ीहि सुन्दर चाल चलता
था -तथा अपने वेग की अधिकता से यह अमर- देव, मन, पवन और गरुड इनके गमन
वेग को भी जीत लेने वाला था, इस तरह यह अत्यंत चपल और शीघ्रगामो थ (इ इ वि

अन्ने आँसोनी उपर, अन्ने ओष्ठोनी उपर, पाछणना अन्ने पणोना घूटणु उपर, आगणना
पणोना घूटणु उपर, कुक्षिनी उपर, डाणी अने नभष्ठी तरहे तेमज ललाटना उपर अने
आवर्तो होय छे अने कणु-नयन वगेरे १२ स्थानो छे, अने अधानी उपर अने १२ आवर्त्ता
अह विशेष होय छे—अनेव कडेवासां आवे छे, अने अम्बरत्न मेधावी हुतो, स्वामीना पणना
सकेत मात्रथी स्वामीना भावने अने समञ्ज जतो हुतो अने अद्रक हुतो अने अदुष्ट हुतो
अने विनीत हुतो, पोताना माँलिकना छिष्ट अर्थाने अभ्याहउ होवाथी अने नम्र हुतो अने
शरीरनी उपर अने रौमराजि हुती, ते पूण न सूक्ष्म अने सुकुमार हुती, नभ न स्निग्ध
हुती (सुजाय अमरमणपवणगरुडजङ्घण चवलसिग्धगामि) अने सुँदर आल आलतो हुतो
पोताना वेगनी अधिकताथी अने अमर-देव, मन, पवन अने गरुडना गमन वेगने पणु छुपी

पतति इत्येवं शीलं दण्डपाति अतर्कितमेव प्रतिपक्षस्कन्धावारे पतनशीलम् अनेनास्यो-
त्पतनस्वभावोऽपि सूचितः, तथा 'अणंसुपाति' अनश्रुपाति तत्र मार्गादि चलनजनित-
श्रमेषु नाश्रुपातयतीत्येवं शीलम् अनश्रुपाति तथा 'अकालतालुं च' अकालतालु-
अश्यामतालुकम् श्यामतालुवर्जितं पूर्वं रक्ततालुत्वे वर्णितेऽपि यत्पुनकालतालु इति
विशेषणं तत्तालुनः श्यामत्वम् अतितरामपलक्षमिति तन्निषेधख्यापनार्थम् च समुच्चये
तथा 'कालहेसि' कालहेषि, तत्र काले अराजकानां राजनिर्णयार्थके अधिवासनादिके
समये हेषते—शब्दयतोत्येवं शीलं कालहेषि अशुभसमयसूचक तथा 'जियनिदं गवेसगं'
जितनिद्रं गवेषकम् तत्र जितनिद्रा आलस्यं येन तत् जितनिद्रं त्यक्तालस्य मित्यर्थः
आलस्य वर्जितम् कार्येषु अप्रमादित्वात् यथा श्रुतार्थे व्याख्यायमाने इयशास्त्रविरोधः

दंडपाति अणंसुपाति अकालतालुं च कालहेसि जियनिदं गवेसगं) यह अचन्द्र पाती-था दण्ड-
पाती था तात्पर्यं यही है कि यह विनाविचारे ही प्रतिपक्ष को सेना में दण्ड की तरह आक्रमण
करने के स्वभाव वाला था। यह अनुश्रुपाती था दुर्दान्त शत्रु सेना को भी देखकर यह कभी
आंसु नहीं बहाता था अथवा मार्गादि चलन जन्य श्रम के वशवर्ती हुआ यह कभी घब-
डाहट से अपनी आंखों से आंसु नहीं निकालता था इसका तालु कृष्णता से वर्जित था
समयानुसार ही यह हिनहिनाहट करता था असमय में नहीं अथवा काल में अराजकों
के राजनिर्णयार्थक अधिवासनादिक के समय में यह अशुभ का सूचक शब्द किया करता
था (जियनिदं गवेसगं) यह निद्राविजित नहीं था किन्तु इसने ही निद्रा को आलस्य को अपने
वश में कर लिया था। अर्थात् यह आलस्य रहित था—और गवेषक था। मूत्र पुरीष के उत्सर्ग
के समय में यह उचित और अनुचित स्थान की खोज करने वाला था "जितनिद्र" का
अर्थ इसने निद्रा जीत ली थी—अर्थात् इसे निद्रा नहीं आती थी ऐसा ही अर्थ मान लिया
जावे तो फिर "सदैव निद्रावशगा, निद्रान्छेदस्य संभवः, जायते सगरे प्राप्ते कर्करस्य च मक्षणे"

होती. (अचन्द्रपादिय दंडपाति अणं ति अकाल तालुं च कालहेसि जियनिदं गवेसगं) ये
अचन्द्रपाती होती-दंडपाती होती, ओटदे के ये वगर विचार कथे न प्रतिपक्षिनी सेना
उपर दंडनी नेम आक्रमण करवाना स्वभाववाणे होती ये अनश्रुपाती होती इदं शत्रु-
सेनाने जेधने पक्षु ये कदापि रडते न होते. अथवा मार्गादियचलन जन्य श्रमथी पीडित
थधने ये कदापि व्याकुण थधने रडते न होते. येनो तालुभाग कृष्णताथी वर्जित होती.
ये समयानुसार न हलुहलुट करती होती. ओटदे के असमयमा ये हलु हलुहलुट नहि करती
होती अथवा कालमां अराजकेना राजनिष्पथार्थके अधिवासनादिकेना समयमा ये अशुभ
सूचक शब्द करती होती (जियनिदं गवेसगं) ये निद्राविजित नहोती पक्षु ओषु न निद्राने
आलस्यने पोताना पथमा करी लीधां हतां ओटदे के आलस्यथादि रहित होती. ये गवेषक
होती मूत्र पुरीषना उत्सर्गं समये ये उचित अने अनुचित स्थाननी शोध करनार होती.
' जितनिद्र ' ने अर्थ ओषु निद्रा लती लीधी हती ओटदे के आने निद्रा नहि आवती
हती, ओषु न अर्थ मानी देवामा आवे तो—

पतति इत्येवं शीलं दण्डपाति अतर्कितमेव प्रतिपक्षरूपावारे पतनशीलम् अनेनास्यो-
त्पतनस्वभावोऽपि सूचितः, तथा 'अणंसुपाति' अनश्रुपाति तत्र मार्गादि चलनजनित-
श्रमेषु नाश्रुपातयतीत्येवं शीलम् अनश्रुपाति तथा 'अकालतालुं च' अकालतालु-
अश्यामतालुकम् श्यामतालुवर्जितं पूर्वं रक्ततालुत्वे वर्णितेऽपि यत्पुनकालतालु इति
विशेषणं तत्तालुनः श्यामत्वम् अतितरामपलक्षमिति तन्निषेधख्यापनार्थम् च समुच्चये
तथा 'कालहेसि' कालहेषि, तत्र काळे अराजकानां राजनिर्णयार्थके अधिवासनादिके
समये हेषते—शब्दयतीत्येवं शीलं कालहेषि अशुभसमयसूचक तथा 'जिअनिहं गवेसगं'
जितनिद्रं गवेषकम् तत्र जितनिद्रा आलस्यं येन तत् जितनिद्रं त्यक्तालस्य मित्यर्थः
आलस्य वर्जितम् कार्येषु अप्रमादित्वात् यथा श्रुतार्थे व्याख्यायमाने इयशास्त्रविरोधः

दंडपाति अणंसुपाति अकालतालुं च कालहेसि जियनिह गवेसगं) यह अचण्ड पाती-था दण्ड-
पाती था तात्पर्यं यही है कि यह विनाविचारे ही प्रतिपक्ष को सेना में दण्ड की तरह आक्रमण
करने के स्वभाव वाला था। यह अनुश्रुपाती था दुर्दान्त शत्रु सेना को भी देखकर यह कभी
भाँसु नहीं बहाता था अथवा मार्गादि चलन जन्य श्रम के वशवर्ती हुआ यह कभी घब-
डाहट से अपनी भाँसों से भाँसु नहीं निकालता था इसका तालु कृष्णता से वर्जित था
समयानुसार ही यह हिनहिनाहट करता था असमय में नहीं अथवा काल में अराजकों
के राजनिर्णयार्थक अधिवासनादिक के समय में यह अशुभ का सूचक शब्द किया करता
था (जियनिहं गवेसगं) यह निद्राविजित नहीं था किन्तु इसने ही निद्रा को आलस्य को अपने
वश में कर लिया था। अर्थात् यह आलस्य रहित था—और गवेषक था। मूत्र पुरीष के उत्सर्ग
के समय में यह उचित और अनुचित स्थान की खोज करने वाला था "जितनिद्र" का
अर्थ इसने निद्रा जीत ली थी—अर्थात् इसे निद्रा नहीं आती थी ऐसा ही अर्थ मान लिया
जावे तो फिर "सदैव निद्रावशगा, निद्राच्छेदस्य संभवः, जायते सगरे प्राप्ते कर्करस्य च मक्षणो"

हती. (अचण्डपाडिय दंडपाति अणं ति अकाल तालुं च कालहेसि जियनिहं गवेसगं) ये
अचण्डपाती हतो-हण्डपाती हतो, अेटदे के अे वगर विचार कथे न प्रतिपक्षिनी सेना
वपर ह डनी नेम आकभषु करवाना स्वभाववाणे हतो अे अनश्रुपाती हतो। दुर्दा त शत्रु-
सेनाने लेधने पषु अे कदापि रडते न हतो। अथवा मार्गादियचलन जन्य श्रमशी पीडित
थधने अे कदापि व्याकुण थधने रडते न हतो। अेनो तालुभाग कृष्णताथी वर्जित हतो।
अे समयानुसार न डषुडषुडट करतो। हतो। अेटदे के असमयमा अे डषु डषुडट नडि करतो।
हतो अथवा कालमां अराजकेना राजनिषुंथार्थक अधिवासनादिकेना समयमां अे अशुभ
सूचक शब्द करतो। हतो। (जियनिहं गवेसगं) अे निद्राविजित नहोतो। पषु अेषु न निद्राने
आलस्यने पोताना वशमा करी दीधां हतां अेटदे के आलस्यादि रहित हतो। अे गवेषक
हतो। मूत्र पुरीषना उत्सर्गं समये अे उचित अने अनुचित स्थाननी शोध करनार हतो।
'जितनिद्र' नो अर्थ अेषु निद्रा लती दीधी हती अेटदे के अने निद्रा नडि आवती
हती, अेवो न अर्थ मानी देवामां आवे तो—

तथाहि—“सदैव निद्रावशगा, निद्राच्छेदस्य सम्भवः ।

जायते सङ्गरे प्राप्ते, कर्करस्य भक्षणे ॥१॥ इति,

यद्वा जितनिद्रत्वं रणावसरप्राप्तत्वाद् अश्वरत्नत्वेनाल्पनिद्राकत्वाच्च, तथागवे-
षकं—मूत्रपुरीषोत्सर्गादौ उचितानुचितस्थनान्वेषकम् तथा ‘जिअपरिसह’ जितपरीषहं
तातपाघातुरत्वेपकम् तथा ‘जिअपरिसह’ शीतातपाघातुरत्वेऽपि अखिन्नम् रणाङ्गणे शत्र-
पीडितेऽपि खिन्नतावर्जितम् तथा ‘जच्चजातीयं’ जात्यजातीयम् तत्र जात्या प्रधाना
मातृ ‘क्षस्तत्र भवं जात्यजातीयम् निर्दोषमातृकमित्यर्थः, निर्दोषवितृकत्वं तु प्रागुक्तमेव,
ईदृग्गुणयुक्ताह अश्वः समये स्वामिने न द्रुहति तथा ‘मल्लिहाणि’ मल्लिघ्राणम् तत्र
मल्लिः विचकिलकुसुमं तद्वच्छुभ्रम् धवलमित्यर्थः ये श्लेष्मवर्जितं दुर्गन्धिवर्जितअश्ले-
ष्मत्वेनानाविलमपूतिगन्धि च घ्राणं— प्रोथो यस्य तत्तथा, इकारः प्राकृत शैलीभवः तथा
‘सुगपत्सुवर्णकोमलं’ शुक्रपत्रसुवर्णकोमलम्, तत्र शुक्रपत्रवत् शुक्रपिच्छवत् सुष्ठु वर्णो
यस्य तत्तथा, कोमलं च कायेन, ततः पदद्वयस्य कर्मधारयः, तथा ‘मणोभिरामं’ मनो-
ऽभिः समम् अतिसुन्दरम् तथा ‘कमलामेलं णामेणं आसरयणं सेणावह कमेण समभिरूढे’

लामेलं नाम्ना अश्वरत्नं सेनापतिः क्रमेण समभिरूढः आरूढः इति पूर्ववद् व्याख्ये-
यम् इति । ततः सेनापतिः सुषेणः किं कृतवान् इत्याह—‘कुवलय’ इत्यादि सम्प्रति खङ्ग-
रत्नस्वरूपम् वर्णयति ‘कुवलयदलसामलं च’ कुवलयदलश्यामलम् नीलोत्पलदल शम्

इस हय शास्त्र से विरोध आता है । अथवा जितनिद्रत्व का भाव ऐसा भी हो सकता है,
कि समर के अवसर को प्राप्ति के समय में अश्वरत्न होने से यह अल्पनिद्रा होता था । (जित
परिसह) शीत आतप आदि जन्य क्लेशों को यह कुछ भी नहीं गिनता था, (जच्चजातीयं)
यह शुद्ध मातृपक्षका था (मल्लिहाणिसुगपत्सुवर्णकोमलं मणोभिरामं) मोँघरे के पुष्प के जैसे
इसकी नाक थी । अर्थात् श्लेष्मा नाक के मैल आदि से विहीन थी शुक्र के पंखे के जैसा
इसका सुहावन वर्ण था और यह शरीर से कोमल था तथा मनोऽभिराम—अति सुन्दर था
ऐसे (कमलामेलं णामेणं आसरयणं सेणावह कमेण समभिरूढे) कमलामेलक नाम के अश्वरत्न
पर सुषेण सेनापति आरूढ हुआ ।

सदैवनिद्रावशगा निद्राच्छेदस्य सम्भवः । जायते सङ्गरे प्राप्ते कर्करस्य च भक्षणे ॥
आम ओ हयशास्त्रथी विरुद्ध हेभाथ छे. अथवा जितनिद्रत्व भाव ओवे। पक्ष सँवपी शके
हे सँभर ना अवसरनी प्राभिना सपथमा अश्वरत्न डोवाथी ओ अल्पनिद्रा छेतो। डतो।
(जित परिसह) शीत, आतप वगेरे जन्य क्लेशेने ओ तुच्छ सँभरतो। डने। (जच्च
तीय) ओ शुद्ध मातृपक्षने। डते। (मल्लिहाणि सुगपत् सुवर्णकोमल मणोभिराम)
मोअराना पुष्प ओपी ओनी नासिका डती ओटके के श्लेष्मा—नाकना मल आदिथी ओनी नासिका
रहित डती. शुक्रना पांथ ओवे। ओने सोडाभवे। वधुं डते। ओ शरीरथी सुकामण डते। तेभ
ओ मनोभिराम ओटके के अति सुंदर डते। ओवा (लामेलं णामेणं आसरयणं सेणावह
कमेण समभिरूढे) कमलामेलक नामक अश्वरत्न उपर ते सुषेण सेनापति सवार थये।

પમાનમ્ ઉપમાવર્જિતમ્ અન્યસદ્દશત્વાભાવાત્ 'તં ચ પુળો' તત્ત્વ પુનર્બહુગુણમસ્તીતિ શેષઃ
 કીદશમ્ ' વંસરુક્ષસિંગદ્વિદંતકાલાયસ વિપુલ્લોહદંડકવરવશ્રમેદકં' વંશવૃક્ષશૃંગાસ્થિ-
 દન્તંકાલાયસ વિપુલ્લોહદંડકવરવજ્રમેદકમ્, તત્ર વશાઃ પ્રસિદ્ધાઃ રુક્ષાઃ - વૃક્ષાઃ શૃંગાણિ
 મહિષાદીનામ્ અસ્થીનિ પ્રસિદ્ધાનિ દન્તાઃ હસ્ત્યાદીનાં કાલાયસં લોહં વિપુલ્લોહદંડ-
 કશ્ચ વરવજ્ર હોરકજાતીયં તેષાં મેદકમ્ અત્ર વજ્રકથનેન દુર્ભેદ્યાનામપિ મેદકત્વમુક્તમ્
 કિં બહુના ? 'જાવ સન્વત્થ અપ્પહિહયં' યાવત્સર્વત્રાપ્રતિહતમ્ દુર્ભેદેડપિ વસ્તુનિ અમોઘ-
 શક્તિકમિત્યર્થઃ 'કિં પુણ દેહેસુ જંગમાણં' કિં પુનર્જર્જમાના ચરાણાં પથુમનુષ્યાદીનાં
 દેહેષુ, અત્ર યાવત્ત્વદો ન સદ્ગ્રાહકઃ કિન્તુ મેદકશક્તિ પ્રકર્ષોક્તયેડવધિ સ્વચનાર્થમ્
 અથ તસ્ય માનમાહ- 'પણ્ણાસંગુલદીહો સોલસસે અંગુલાઈ વિચ્છિણ્ણો' પશ્ચાશ્વદહુલાનિ
 દીર્ઘો યઃ ષોઢશાહુલાનિ વિસ્તીર્ણઃ તથા 'અદ્દંગુલસોળીકો' અદ્દાંગુલશ્રોણિકઃ તત્ર

અળોવમાળં) સસાર મેં યહ અનુમેય માના ગયા હૈ । ક્યોંકિ હસકે જૈસે ઓર કોઈ પદાર્થ નહી
 હૈ (તંચ પુળો વંસરુક્ષસિંગદ્વિ દતકાલાયસ વિપુલ્ લોહદંડકવરવશ્રમેદક) યહ વંશ-વાસ, રુક્ષ-
 વૃક્ષ-શૃંગ-મહિષાદિકોં કે સીંગ, હદ્ધિયાં, હાથી આદિકોંકે દાંત, કાલાયસ હસ્પાત જૈમા લોહા,
 ઓર વશ્ વજ્ર હન સબ કો મેદ દેતા હૈ । વજ્ર કે કથન સે યહા યહ પ્રગટ ક્રિયા ગયા હૈ
 કિ યહ દુર્ભેદ પદાર્થોં કા મી મેદક હોતા હૈ । ઓર તો ક્યા-(જાવ સન્વત્થ અપ્પહિહયં)
 યાવત્ યહ સર્વત્ર અપ્રતિહત હોતા હૈ । હસ દુર્ભેદ વસ્તુ કે મેદ મેં મી હસકી શક્તિ જબ
 અમોઘ હોતી હૈ તો (કિંપુણ દેહેસુ જંગમાણં) ફિર જગમ જોવોં કે દેહ કે વિદારણ કરને
 મેં તો હસકી જાત હી ક્યા કહની યહ તો ઝને ખેત કી મૂઠી કી તરહ હી કાટ દેતા હૈ ।
 યહાં યાવત્પદ સંગ્રાહક નહીં હૈ કિન્તુ મેદક શક્તિ કો પ્રકર્ષતા કી અવધિ કા સૂચક હૈ ।
 (પણ્ણાસંગુલદીહો સોલસ અંગુલાઈ વિચ્છિણ્ણો) યહ અસિરત્તન ૫૦ પચાસ અંગુલકા લમ્બા હોતા
 હૈ ઓર ૧૬ સોલહ અંગુલ કા ચૌઢા હોતા હૈ । (અદ્દંગુલસેળીકો) તથા અધે અંગુલ કી

તે દિવ્ય અસિરત્તન હતુ (લોગે અળોવમાળં) સંસારમાં એ અનુપમેય માનવામાં આવેલ
 છે કેમકે એના જેવો અન્ય કોઈ પદાર્થ છે જ નહિ (તં ચ પુળો વંસરુક્ષસિંગદ્વિદંત
 ક વિપુલ્લોહદંડકવરવશ્રમેદક) એ વશ-વાસ રુક્ષ-વૃક્ષ, શૃંગ-મહિષાદિકોના
 સિંગ, અસ્થિ-હાથી વગેરેના દાંત, કાલાયસ-હસ્પાત જેવું લોહક અને વરવજ્ર એ
 સર્વેસું ભેદન કરે છે વળતા કથનથી એને આ વાત સ્પષ્ટ કરવામા આવી છે કે એ દુર્ભેદ
 પદાર્થોને પણ ભેદી શકે છે અને બીજું તો શુ (જાવ સન્વત્થ અપ્પહિહયં) યાવત્ એ સર્વત્ર
 અપ્રતિહત હોય છે. આ પ્રમાણે દુર્ભેદવસ્તુના ભેદનમાં પણ એની શક્તિ ન્યારે અમોઘ
 હોય છે તો (કિં પુણ દેહેસુ જંગમાણં) પછી જંગમ જીવો ના દેહોને વિદીર્ષી કરવામાં તો
 વાત જ થી કહેવી એ તો તેમને સહેજમાંજ કાપી-નાખે છે અહી યાવત્ પદ સંગ્રાહક
 નથી પણ ભેદક શક્તિની પ્રકર્ષતાની અવધિ સૂચવે છે (પણ્ણાસંગુલદીહો સોલસઅંગુલાઈ
 વિચ્છિણ્ણો) એ અસિરત્તન ૫૦ પચાસ અંગુલ લાંબુ હોય છે. અને ૧૬ અંગુલ જેટલું
 પહોળુ હોય છે (અદ્દંગુલસેળીકા) તથા અર્ધા અંગુલ જેટલી એની ગાંઠ હોય છે (જેઠ-

अर्द्धाङ्गुलप्रमाणा श्रोणिः बाह्व्यं पिण्डो यस्य स तथा, तथा 'जेट्टुप्पमाणो असी मणिओ'
ज्येष्ठप्रमाणोऽसिर्मणितः तत्र ज्येष्ठम्— उत्कृष्ट प्रमाणं यस्य स तथा, एवंविधः सोऽसि-
र्मणितः— कथितः 'असिरयणं णरवइस्स इत्थाओतं गहिऊण जेणेव आवाडचिळाया
तेणेव उवागच्छइ' उक्त विशेषणविशिष्टम् तत् असिरत्नं सेनापतिः सुषेणो नरपतेः
हस्तात् गृहीत्वा यत्रैव आपातकिराताः तत्रैवोपागच्छति, अस्योत्तरवाक्यस्य योजना तु
प्रागेव कृता 'उवागच्छत्ता' उपागत्य 'आवाडचिळाएहिं सद्धिं संपलग्गे यावि होत्था'
आपातकिरातैः सार्द्धं संपलग्नाश्चाप्यभवत् योद्धुमिति शेषः, अथ सेनापतेरायोधनादनन्तरं
किं जातमित्याह— 'तएणं' इत्यादि 'तएणं से सुसेणे सेणावई ते आवाडचिळाए ह्यमहिय
पवरवीरघाइअ जाव दिसोदिसिं पडिसेहेइ' ततः— आयोधनादनन्तरं युद्धानन्तरम् स
सुषेणः सेनापतिः तान् आपातकिरातान् हतमथितप्रवरवीरघातित यावत्पदात् 'विहडिअ
चिधद्धय पडागे किच्छप्पाणोवगए' इति ब्राह्म्यं दिशोदिशि प्रतिषेधयति अस्य व्याख्या
प्रागेव स्पष्टीकृता ॥ सू० १८ ॥

इमकी मोटाई होती हैं । (जेट्टुप्पमाणो असी मणिओ) इस प्रकार का यह प्रमाण उत्कृष्ट
रूप असि-तलवार-का कहा गया है । ऐसे (असिरयणं णरवइस्स इत्थाओ त गहिऊण जेणेव
आवाडचिळाया तेणेव उवागच्छइ) असिरत्न को नरपति के हाथ से लेकर वह सुषेण सेनापति
जहां पर आपात किरात थे, वहां पर गया ऐसे इस उत्तर वाक्य की योजना हमने पहिले ही
प्रगट कर दी है (उवागच्छत्ता आवाडचिळाएहिं सद्धिं संपलग्गे याविहोत्था) वहा पर जाकर
आपातकिरातो के साथ उसका युद्ध छिड़ गया (तएणं सुसेणे सेणावई ते आवाडचिळाए
ह्यमहियपवरवीरघाइअ जाव दिसो दिसिं पडिसेहेइ) युद्ध छिड़ जाने के बाद उस सुषेण
सेनापति ने उन आपातकिरातो को कि जिनके अनेक प्रवर वीर योद्धा जन हतमथित एवं
घातित हो चुके हैं तथा जिनकी गरुड आदि चिह्न वाली ध्वजाएँ और पताकाएँ जमीन
के उपर गिर चुकी है । और जिहो ने वही मुक्किल से अपने प्राणों को बचा पाया है ।
एक दिशा से दूसरी दिशा में भगा दिया—इधर उधर खदेड़ दिया ॥ १८ ॥

प्पमाणो असी मणिओ) आ प्रमाणे अथ प्रमाणे उत्कृष्ट ३५थी असि-तलवारत्नना संधमां
कडेनाभा आवेव छे अथ (असिरयणं णरवइस्स इत्थाओ त गहिऊण जेणेव आवाड
चिळाया तेणेव उवागच्छइ) अथ असिरत्नने नरपतिना हाथमाथी लधने ते सुषेण सेनापति
अथ आपात किरातो इत) त्या गथे आ प्रमाणे अथ पडेवा स्पष्ट कथुं अ छे
(उवागच्छत्ता आवाडचिळाएहिं सद्धिं संपलग्गे यावि होत्था) त्या लधने तेणे आपात
किरातो साथे युद्धने आरंभ कथे। (तएण से सुसेणे सेणावई ते आवाडचिळाए
ह्यमहियपवरवीरघाइअ जाव दिसो दिसिं पडिसेहेइ) युद्ध आरंभ तथा आह ते सुषेण
सेनापतिने ते आपात किरातोने-के जेभना अनेक प्रवरवीर योद्धाओ इत-मथित अने
घातित थर्ष गथा छे, तेभन जेभनी गरुड वगेरेना (चिह्नवागी ध्वजाओ अने पताकाओ
पृथ्वी उपर पडी गथा छे अने जेभणे अहुं अ सुरकेबीथी पोताना प्राणोनी स्वरक्षा करी
छे-अथ दिशांमाथी भीछ दिशांमां नसाडी भूकथा-अभ-तेम तगडी भूकथा. ॥ सूत्र १८ ॥

अथ ते किं कुर्वन्तीत्याह — 'तएण ते इत्यादि

मूलम्—तएणं ते आवाडचिलाया सुसेण सेनावइणा हयमहिया जाव पडिसेहिया समाणा भीआ तत्था वहिआ उव्विग्गा संजायभया अत्थामा अबला अवीरिआ अपुरिसक्कारपरक्कमा अधारणिज्जमिति कद्दु अणे-गाइं जोअणाइ अवक्कमंति, अवक्कमित्ता एगयओ पिलायंति, मिला-इत्ता जेणेव सिंधू महानई तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता वालुआ संथारए संथरेंति, संथरित्ता वालुआ संथारए दुरुहंति दुरुहित्ता अट्टम-भत्ताइ पगिण्हंति पगिण्हित्ता वालुआ संथारोवगया उत्ताणगा अट्टमभ-त्तिआ जे तेसि कुलदेवया मेहमुहाणामं णागकुमारा देवा ते मणसी करेमाणा करेमाणा चिट्ठंति । तएणं तेसिमावाडचिलायाणं अट्टम भत्तंसि परिणममाणंसि मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं आसणाइं चलंति, तएणं ते मेह हा णागकुमारा देवा आसणाइं चलिआइं पासंति पसित्ता रोहिं पउंजंति पउंजित्ता आवाडचिलाए ओहिणा आभोएंति अभोइत्ता णमण्णं सदावेति सदावित्ता एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिआ !

हीवे दीवे उत्तरद्ध भरहे वासे आवाडचिलाया सिंधूए महाणईए वालुआ संथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभत्तिआ अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णाग मारे देवे मणसी करेमाणा करेमाणा चिट्ठंति, तं सेअं खलु देवा-प्पिआ ! अम्हं, आवाडचिलायाणं अंतिए पाउब्भवित्तए त्तिकद्दु अण्ण-मणस्स अंतिए एअमट्ठं पडिसुणेंति पडि णेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरिआए जाव वीतिवयंमाणा वीतिवयमाणा जेणेव जंबुहीवेदीवेउत्तरद्ध भरहे वासे जेणेव सिंधू महाणई जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छि-त्ता अंतलिव्वपडिवण्णा सखिखिणिआइ पंच वण्णाइं पवरपरिहिआ ते आवाडचिलाए एवं वयासी—हभो आवाडचिलाया । जण्णं तुब्भे देवाणु-प्पि । वालुआ संथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभत्तिआ अम्हे लदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा करेमाणा चिट्ठह

तएणं अम्हे मेहमुहो णागकुमरा देवा तुब्भं कुलदेवया तुम्हं अंति
 अण्णो पाउब्भूआ तं वदह णं देवाणुप्पिआ ! किं करेमो केव मे सणसाइए
 तएणं ते आवाडचिलाया मेहमुहाणं णागकुमाराणं देवाणं अंतिए एअ-
 महुं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्टचित्तमाणंदिआ जाव हिअआ उट्टाए
 उट्टेन्ति, उट्टेत्ता जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तणेव उवागच्छंति
 उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं जाव मत्थए अंजलिं कदट्टु मेहमुह
 णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेति वद्धावित्ता एवं वयासी-एसणं
 देवाणुप्पिए ! केइ अपत्थिअपत्थए दुरतपंतलक्खणे जाव हिरिसिरि-
 परिवज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स उवरिं वीरिएणं हव्वमागच्छइ, तं तहा
 णं घत्तेह देवाणुप्पिआ ! जहा णं एस अम्हं विसयस्स उवरिं वीरिएणं णो
 हव्वमागच्छइ, तएणं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा ते आवाडचिलाए
 एवं वयासी-एस णं भो देवा प्पिआ ! भरहे णामं राया चाउरंतचक्क-
 वट्टी महिद्धीए जाव महासोक्खे, णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा
 दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा
 सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा मंतप्पओगेण वा उट्टवित्तए पडि-
 सेहित्तए वा, तहाविअ णं तुब्भं पिअट्टयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गं
 करेमो त्तिकट्टु तेसि आवाडचिलायाणं अंतिआओ अवक्कमंति,
 अवक्कमित्ता वेउव्विअ समुग्घाएणं समोहणंति, सम्मोहणित्ता मेहाणीअं
 विउव्वंति विउव्वित्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयक्खंधावारणिवेसे तेणेव
 उवागच्छंति उवागच्छित्ता उप्पि विजयक्खंधावारणिवेसस्स खिप्पामेव
 पतणुतणायंति. खिप्पामेव विज्जुयायति. विज्जुयाइता खिप्पामेव जुगमु-
 सलमुट्टिप्पमाणमेत्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासिउं पवत्ता
 यावि होत्था ॥सू० १९॥

छाया-तत खलु ते आपातकिराताः सुपेण सेनापतिना हतमथिता यावत्प्रतिषेधिता-
 सन्तो भीता त्रस्ताः व्यथिताः लडिग्नाः सञ्जातमया अस्थामान अवलाः भवीर्याः अपुद-
 पकारपरक्रमा' अघारणीयमिति कृत्वा अनेकानि योजनानि अपक्रामन्ति, अपक्रम्य एकतो

मिलन्ति मिलित्वा यत्रैव सिन्धुर्महानदी तत्रैवोपागच्छति उपागत्य वालुकासंस्तारकान् संस्त-
णन्ति संस्तीर्य वालुकासंस्तारकान् दुरुहन्ति, दुरुह्य अष्टमभक्तानि प्रगृह्णन्ति, प्रगृह्य वालुका
संस्तारोपगताः उत्तानकाः अवसनाः अष्टभक्तिकाः ये तेषां कुलदेवता मेघमुखाः नाम्ना
नागकुमाराः देवास्तान् मनसि कुर्वन्त स्तिष्ठन्ति । ततः खलु तेषाम् आपातकिरातानाम्
अष्टमभक्ते परिणमति सति मेघमुखानां नागकुमाराणां देवानामासनानि चलिन्ति, ततः खलु ते
मेघमुखाः नागकुमाराः देवाः आसनानि चलितानि पश्यन्ति, दृष्ट्वा अवधिं प्रयुञ्जन्ति प्रयुज्य
आपातकिरातान् अवधिना आभोगयन्ति, आभोग्य अन्योऽन्यं शब्दयन्ति शब्दयित्वा पवम्
अवादिषुः एवं खलु देवानुप्रियाः ! जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धभरते वर्षे आपातकिराताः सिन्ध्वां
महानद्यां वालुकासंस्तारकान् उपगताः उत्तानकाः अवसनाः अष्टमभक्तिकाः अस्मान् कुल-
देवतान् मेघमुखानामकान् नागकुमारान् देवान् मनसि कुर्वाणा मनसि कुर्वाणा स्तिष्ठन्ति,
तत् श्रेय खलु भो देवानुप्रियाः ! अस्माकम् आपातकिरातानाम् अन्तिके प्रादुर्भविमुमिति-
कृत्वा अन्योऽन्यस्यान्तिके पतमर्थं प्रनिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य तथा उत्कृष्टया त्वरितया यावद्
त्र्यतिव्रजन्तो द्यतिव्रजन्तो -यत्रैव जम्बूद्वीपो द्वीपो यत्रैव उत्तरभरतार्द्धं वर्षं यत्रैव सिन्धु-
र्महानदी यत्रैव आपातकिराताः तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य अन्तरिक्षप्रतिपन्नाः सकि-
किणोकानि पञ्चवर्णानि वस्त्राणि प्रवराणि परिहितास्तान् आपातकिरातान् पवमवादिषुः
हं भो आपातकिराताः ! यत् खलु यूयं देवानुप्रियाः ! वालुकासंस्तारकोपगताः नका
अवसना अष्टमभक्तिका अस्मान् कुलदेवता मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् मनसि कुर्वाणा
मनसि कुर्वाणा स्तिष्ठत, ततः खलु वयं मेघमुखा नागकुमारा देवा युष्माकं कुलदेवता
युष्माकमन्तिकं प्रादुर्भूता तद्वदत खलु देवानुप्रियाः ! किं कुर्म किं वा भवतां मनः स्वा-
दितम्, ततः खलु ते आपातकिराताः मेघमुखानां नागकुमारानां देवानामन्तिके पतमर्थं
श्रुत्वा निश्चम्य हृष्ट तुष्ट चित्तानन्दिता यावद्दृष्ट्या उत्थया उत्तिष्ठन्ति, उत्थाय यत्रैव
मेघमुखा नागकुमारा देवास्तत्रैव उपागच्छन्ति, उपागत्य करतलपरिगृहीतं यावत् मस्त-
के अङ्गलिं कृत्वा मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति, वर्द्धयित्वा प-
वमवादिषुः पव खलु देवानुप्रियाः ! कः अप्रार्थितप्रार्थक दुरन्तप्रान्तलक्षणः यावत् द्वी
श्री परिवर्जितः यः खलु अस्माकं विषयस्योपरि वीर्येण हृद्यमागच्छति, तं तथा खलु प्र-
क्षिपत हे देवानुप्रिया ! यथा खलु पव अस्माकं विषयस्योपरि वीर्येण नो हृद्यमागच्छति
ततः खलु ते मेघमुखा नागकुमारा देवाः तान् आपातकिरातान् पवमवादिषुः पव खलु
भो देवानुप्रियाः ! भरतो नाम राजा चातुरन्तचक्रवर्ती महर्द्धिको यावन्महासौम्य नो
खलु पव शक्य केनचिद्देवेन वा दानत्रेण वा किन्नरेण वा क्रिपुरुषेण वा महोरगेण वा
गंधर्वेण वा शस्त्रप्रयोगेण वा अग्निप्रयोगेण वा मन्त्रप्रयोगेण वा उपद्रवयितुं वा प्रतिषे-
धयितुं वा तथापि च खलु युष्माकं प्रियार्थतायै भरतस्य राष्ट्र उपसर्गं कुर्मः इति कृत्वा
तेषाम् आपातकिरातानाम् अन्तिकादपक्रामन्ति अपक्रम्य वैक्रियसमुद्घातेन समबभूवन्ति
समवहत्य मेघानीकं विकुर्वन्ति विकुर्व्यं यत्रैव भरतस्य राष्ट्रं विजयस्कन्धावारनिवेशं
नत्रैवोपागच्छन्ति उपागत्य विजयस्कन्धावारनिवेशस्योपरि क्षिप्रमेव प्रतनुस्तनायन्ते क्षि-
प्रमेव विद्युशायन्ते त्रिशुदायित्वा क्षिप्रमेव युगमुसलमुष्टिपमाणमिताभिर्घोरामिः ओष-
मेवं राष्ट्रं वर्षं वर्षितुं प्रवृत्तश्चाप्यभवत् ॥ सू० १९ ॥

टीका- 'तए ण से' इत्यादि । 'तए णं से आवाडचिलाया भुसेण सेणावइणा ह्यमहिया जाव पडिसेहिया समाणा भीया तत्था वहिया उव्विग्गा संजायभया अत्थामा अबला अवीरिआ अपुरिसपरक्कमा अधारणिज्जमिति कट्टु अणेगाइं जोयणाइं अवक्कमंति' ततः खलु ते आपातकिराताः सुषेणसेनापतिना हतमथिताः- केचित् हताः केचिन्मथिता इत्यर्थः यावत्पदात् केचित् घातिताश्च प्रवरवीराः येषु ते हतमथितघातितप्र- वीराः एव विपतितचिह्नध्वजपताकाः भ्रष्टचिह्न प्रधान महाध्वजलघुध्वजाः एवं कृच्छ्रा- णोपगताः यावत्प्रतिषेधिताः निवारिताः सन्तो भीताः - भययुक्ताः त्रस्ताः प्रबलघात- व्याप्तत्वात् कातरत्वं प्राप्ताः प्रबलसेनापतिपराक्रमदर्शनात् व्यथिताः- प्रहारैरार्द्रिताः प्रत्यङ्गव्रणव्याप्तत्वात् उद्विग्नाः, अथ पुनर्नानेन सार्द्धं युध्यामहे इत्याशयवन्तः सञ्जात- मयाः-सम्यक् प्राप्तत्रासाः भाविसन्तानकृतविजयाशारहितत्वात् अस्थामानः- युद्धे स्थातुं

तएण ते आवाडचिलाया सुसेणसेणावइणा' - इत्यादि सूत्र-१९-

टीकार्थ- 'तएण' (ते आवाडचिलाया) इसके बाद वे आपातकिरात जो कि (सुसेणसेणा- वइणा ह्यमहिया जाव पडिसेहिया समाणा) सुषेण सेनापति द्वारा हत, मथित, घातित प्रवर- योधाओं वाले हो चुके थे और युद्ध स्थल छोड़कर अपने प्राणों को लेकर भाग गये थे वे अब (भीआ, तत्था, वहिया, उव्विग्गा, सजायभया अत्थामा, अबला, अवीरिया, अपुरिसक्कारपर- क्कमा अधारणिज्जमिति कट्टु अणेगाइं जोयणाइं अवक्कमंति) भयभीत बनचुके थे प्रबल आघात से व्याप्त हो जाने से सेनापति के प्रबल पराक्रम को देखने से त्रस्त हो चुके थे-कातर भाव की प्राप्त हो चुके थे, प्रत्यङ्ग में घावों से व्याप्त होने से प्रहारों द्वारा व्यथित बने हुए थे, अब फिर हम इसके साथ युद्ध नहीं करेंगे इस प्रकार के आशयवाले हो जाने के कारण उद्विग्न बन गये थे । तथा भाविसन्तानकृत विजयाशा से रहित हो चुकने से उनमें अच्छी तरह से भय समा चुका था । ऐसी सामर्थ्य अब उनमें नहीं रह गई थी जो वे युद्ध में उसके समक्ष

(तपण ते आवाडचिलाया सुसेणसेणावइणा - इत्यादि ॥ सूत्र १९ ॥

टीकार्थ- (त एणं ते आवाडचिलाया) त्थार भाड ते आपात किरातो के जेओ-सुसेण सेणा- वइणा ह्यमहिया जाव पडिसेहिया समाणा) सुषेण सेनापति धणुअ हत, मथित, घातित प्रवर योधाओ वाणा थधं युद्धया हता अने युद्ध स्थण छोडीने पोताना प्राणोनी रक्षा भाटे नासी गया हता, जेवा तेओ (भीआ, तत्था, वहिया, उव्विग्गा, संजायभया, अत्थामा, अबला, अवीरिया, अपुरिसक्कारपरक्कमा, अधारणिज्जमिति कट्टु अणेगाइं जोयणाइं अव ंति) भयत्रस्त थधं गया हता, प्रणण आघाताथी व्याप्त थधं ज्वाथी सेनापतिना प्रणण परा- क्रमने जेवा थी-त्रस्त थधं गया हता कातर थधं गया हता, प्रत्यग्गा घानाप्रहारो व्याप्त हता तेथी तेओ प्रहारो द्वारा व्यथिन थधं युद्धया हता हवे अने ओनी साथे युद्ध नहि करीओ आ आतना निश्चयवाणा थधं ज्वाथी तेओ उद्विग्न जनी गया हता, तेभज भावि- सन्तानकृत विजयाशाथी रहित थधं युद्धया हता तेथी तेभनाभा स पूणुपणु भय व्याप्त थधं युद्धयो हतो जेवुं सामर्थ्य हवे तेभनाभा रहु ज न हतु के जेथी पीणु वणत तेनी

विकलाः सर्वतो बलवर्जितत्वात् अवलाः— शारीरिकशक्तिविकलाः अवीर्याः— वीर्यरहिताः आत्मसमुत्पन्नोच्छ्वासवर्जितत्वात्, अपुरुषपराक्रमाः— पुरुषकारपराक्रमरहिताः सर्वसाधनवर्जितत्वात् अधारणीयं धारयितुमशक्यं परबलमिति शत्रुपैन्योग्ने स्थानुमसमर्था इति कृत्वा अनेकानि योजनानि अपक्रामन्ति पलायन्ते ततः किं कुर्वन्ति इत्याह— 'अवक्कमिक्ता' इत्यादि । 'अवक्कमिक्ता' अपक्रम्य पलायित्वा 'एगयथो मिलायति' एकतः— एकस्मिन्स्थाने मेलयन्ति— एकत्रो भवन्ति, 'मिलाएत्ता' मेलयित्वा— एकत्रीभूय 'जेणेव सिंधु महाणई तेणे उवागच्छन्ति' यत्रैव सिन्धुर्महानदी तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छिक्ता' उपागत्य 'वाळुया सथारए संथरेंति' वाळुकासंस्थारकान् संस्वृणन्ति सिकतामयान् संस्तारकान् कुर्वन्ति 'संथरिक्ता' संस्तार्य 'वाळुयासंथारए दुरूहंति' वाळुकासंस्तारकान् दूरोहन्ति आरोहन्ति उपविशन्ति 'दुरूहिक्ता' दूरुह्य आरुह्य उपविश्य 'अट्टमभक्ताइं पगिण्हंति' अष्टमभक्तानि प्रगृह्णन्ति, 'पगिण्हिक्ता' प्रगृह्य 'वाळुयासंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभक्तिआ' वाळुकासंस्तारोपगताः प्राप्तवाळुकासंस्ताराः उत्तानकाः ऊर्ध्वमुखशायिनः अवसनाः— नग्नाः वस्त्ररहिताः परमातापनाकप्रमनु भवन्त इत्यर्थः, अष्टमभक्तिकाः दिनत्रयमनाहारिणः ये आपातकिराताः

शिरं तक उठा सके, वे विलकूल शारीरिक शक्ति से हीन हो गये थे । इसलिये उनसे आत्म समुत्पन्न उच्छ्वास विहाले चुका था, सर्वसाधनों से वर्जित हो जाने के कारण वे पुरुषकार और पराक्रम से इकदम रहित हो चुके थे । और परबल का सामना करना अब सर्वथा अशक्य है इस ख्याल से वे अनेक योजनों तक दूर भाग गये थे । (अवक्कमिक्ता एगयथो मिलायन्ति) भागकर फिर वे एक स्थान पर एकत्रित हुए (मिलाएत्ता जेणेव सिंधु महाणई तेणेव उवागच्छन्ति) और एकत्रित होकर फिर वे सबके सब जहाँ पर सिन्धु महानदी थी वहाँ पर आये । (उवागच्छिक्ता वाळुकासंथारए संथरेंति) वहाँ आकरके उन्होंने सिकतामय संतारकों को किया, (संथरिक्ता वाळुया संथारए दुरूहंति) सिकतामय संथारकों को करके फिर वे सबके सब अपने वाळुकामय संथारों के ऊपर बैठ गये (दुरूहिक्ता अट्टमभक्ताइं पगिण्हंति) बैठकर वहाँ पर उन्होंने अष्टम भक्त को तपस्या धारण करली । (पगिण्हिक्ता

साथे तेजो मांशु जे यु करी शके तेमनी शारीरिक शक्ति अ'पुष्प'पणे नाश पायी होती, जेथी तेमनामाथी आत्मसमुत्पन्न उच्छ्वास समाप्त थई चूक्यो होती सर्वसाधनेषी वर्जित थई जेवाथी तेजो पुरुषकार अने पराक्रमथी साव रहित थई चूक्या होती परमाण साथे लडवुं हेवे सर्वथा अशक्य छे जे विचारथी तेजो अनेक योजने सुधी हू नाथी गया होता. (अवक्कमिक्ता एगयथो मिलायन्ति) नाथीने पछी तेजो जेक स्थाने जेकत्र थई गया (मिलाएत्ता जेणेव सिंधु महाणई तेणेव उवागच्छन्ति) अने जेकत्र थईने पछी तेजो सर्वे जयां सिन्धु महानदी होती त्या आल्या. (उवागच्छिक्ता वाळुकासंथारए संथरेंति) त्या पछोथी तेमणे वाळुकांमय संस्तारके जनाल्या (संथरिक्ता वाळुया संथारए दुरूहंति) वाळुकांमय संस्तारकेने जताथीने पछी तेजो सर्वे येतयेताना वाळुकांमय संस्तारकेने जेते जेते कुलदेवथा कथी. (पगिण्हिक्ता वाळुयासंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभक्तिया जे तेसि कुलदेवथा

'तेसिं कुलदेवया मेहमुहाणामं णागकुमारा देवा ते मणसी करेमाणा करेमाणा चिट्ठंति'
 तेषाम् आपातकिरातानाम् कुलदेवताः कुलवत्सलः मेघमुखाः नाम्ना नागकुमाराः देवा-
 स्तान् मनसि कुर्वन्तो मनसि कुवन्तस्तिष्ठन्तीति, अथ ते देवाः किं कृतवन्तः इत्याह—
 'तए णं तेसिमावाडचिन्तायानं अट्टमभत्तांस परिणममाणसि मेहमुहाणं णागकुमाराण देवाणं
 आसणाइं चलति' ततः चेतसि चिन्तनानन्तरं खलु तेषामापातकिरातानाम् अष्टमभक्ते परि-
 णमति परिपूर्णप्राये सति मेघमुखाना नागकुमाराणा देवानामासनानि सिंहासनानि चलन्ति
 'तएणं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा आसणाइं चाळयाइं पासंति' ततः आसनचलनानन्तरं
 खलु ते मेघमुखा नागकुमारा देवा आसनानि चलितानि पश्यन्ति 'पासित्ता' दृष्ट्वा 'ओहिं
 पउजति' अवधिं प्रयुज्जन्ते—अवधिज्ञानमवलम्बन्ते इत्यर्थः 'पउजित्ता' प्रयुज्य अवधिज्ञान-
 मवलम्ब्य 'आवाडचिन्ता ओहिणा आभाएति' अवधिना-अवधिज्ञानेन आपातकिरातान्

वालुयासथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभत्तिया जे तेसिं कुलदेवया मेहमुहाणामं णाग-
 कुमारा देवा ते मणसा करमाणा करमाणाचिट्ठंति) उस अष्टम भक्त को तपस्या को धारण
 करते हुए एव वालुका के सथारे पर बैठे हुए वे नग्न बन कर ऊपर की ओर मुंह करके
 तीन दिन तक अनाहारावस्था में रहे । और उस तपस्या में उन्होंने जा उनके मेघमुख
 नाम के कुलदेवता से उनका ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया । (तएणं तेसिमावाड-
 चिन्तायानं अट्टमभत्तिसि परिणममाणसि मेहमुहाणं णागकुमाराण देवाणं आसणाइं चलति)
 जब उन आपातकिरातो को अष्टम भक्त को तपस्या समाप्त होने को आई तब उन मेघ मुख
 नाम के नागकुमार देवा के आसन कपायमान हुए (तएणं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा
 आसणाइं चलिआइं पासति) उन मेघमुख नाम के नागकुमारो ने जब अपने-२ आसना
 को कपित हुआ देखा-तो (पासित्ता) देखकर उन्होंने (ओहिं पउजंति) अपने-२ अव-
 धिज्ञान को उपयुक्त किया (पउजित्ता आवाडचिन्ता ओहिणा आभाएति) अवधिज्ञान को
 उपयुक्त करके उनमेघमुख नाम के नागकुमार देवा ने अवधिज्ञान से आपातकिरातो को देखा

मेहमुहाणामं णागकुमारा देवा ते मणसी करेमाणा २ चिट्ठंति) ते अष्टमभक्तानी तपस्या
 धारण करता अने वालुकाभय सथारा उपर बैठेला तेथो नग्न थपने उपरनी तरफ में
 करीने त्रष्टु द्विस मुधी अनाहार अवस्थामा रहा. अने ते तपस्यामा तमष्टे जे तेमना
 मेघमुभनामे कुण देवता हता तेमनु ध्यान कथुं. (तएणं तेसिमावाडचिन्तायानं अट्टम
 भत्तिसि परिणममाणसि मेहमुहाणं णागकुमाराण देवाणं आसणाइं चलति) अथारे ते आपात
 किरातोनी अष्टमभक्तानी तपस्या समाप्त थप जवा आनी अथारे ते मेघमुभनाभक्त नागकुमार
 देवाना आसने क पायमान थथा (तएणं ते मेहमुहाणागकुमारा देवा आसणाइं चलिआइं
 पासति) अथारे ते मेघमुख नामके देवाथे पोत-पोताना आसना एक पित थता जेथे ते
 (पासित्ता) जेथे तेमष्टे (ओहिं पउजंति) पोत पोतानु अवधिज्ञान स प्रयुक्त कथुं (पउ
 जित्ता आवाडचिन्ता ओहिणा आभाएति) अवधिज्ञानने उपयुक्त करीने ते मेघमुभना-
 भक्त नागकुमार देवाथे पोतपोताना अवधिज्ञानथा आपातकिराता न जेथे (आभोइत्ता

आभोगयन्ति जानन्तीत्यर्थः 'आभोइत्ता' आभोग्य-तान् ज्ञात्वा 'अणमण्णं सदावेत्ति' अन्योऽन्यं देवान् देवाः शब्दयन्ति आह्वयन्ति 'सदावित्ता' शर्द्धायत्वा तान् आह्वय 'एवं वयासी' एवं वक्ष्यमाणरीत्या अत्रादिपुः उक्तवन्तः किमुक्तवन्तः, इत्याह- 'एवं खलु देवाणुप्पियाः' एवम् इत्थमस्ति खलुः-निश्चये देवानुप्रियाः ! 'जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्धभरहे वासे आवाडचिळाया सिधुए महाणईए वालुया संथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभत्तिया अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा करेमाणा चिद्धंति' जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्तरार्द्धे भरते वर्षे आपातकिराताः सिन्ध्वा महानद्यां वालुकासंस्तारकान् उपगताः प्राप्ताः उत्तानकाः ऊर्ध्वमुखाः ऊर्ध्वमुखशायिनः अवसनाः नत्तरहिताः अष्टमभक्तिकाः दिनत्रयमनाहारिणः अस्मान् कुलदेवताः मेघमुखान् मेघमुखनामकान् नागकुमारान् देवान् मनसि कुर्वाणाः मनसि कुर्वाणस्तिष्ठन्तीति 'तं सेअं खलु देवाणुप्पिया ?' तम् श्रेयः खलु भोदेवानुप्रियाः ! 'अम्ह आवाडचिळायाणं अंतिए पाउम्भवित्तएत्तिकद्दु अणमण्णस्स अंतिए एयमट्टं पडिमुणेंति' अस्माकम् आपातकिरातानामंतिके प्रादुर्भवितुं समीपे प्रकटीभवितुमिति कृत्वा पर्यालोच्य अन्योऽन्यस्यान्तिके एतमर्थम् अनंतरोक्तमभिधेयं प्रतिशृण्वन्ति अभ्यु-

(आभोइत्ता अणमण्ण सदावेत्ति) देखकर उन्होंने फिर आपसमे एक दूसरे को बुलाया (सदावित्ता एव वयासी) और बुलाकर आपस मे इस प्रकार से बातचीत की (एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्वीवेदीवे उत्तरद्धभरहे वासे आवाडचिळाया सिधुए महाणईए वालुयासंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभत्तिया अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा करेमाणा चिद्धंति) हे देवानुप्रियो ! सुनो-जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में उत्तरार्द्ध भरत क्षेत्र में आपात चिळात नामवाले सिधु महानदी के ऊपर वालुका निर्मित सस्तारको पर अष्टम भक्त के तपस्या करते हुए बैठे हैं उन्होंने वज्रों का बिलकूल त्याग कर दिया है. और आकाश की ओर वे अपने-अपने मुख को ऊपर करके अपने कुलदेवता हम मेघकुमार नाम के नागकुमार देवों का ध्यान कर रहे हैं (त सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं आवाडचिळायाणं अंतिए पाउम्भवित्तएत्तिकद्दु अणमण्णस्स अंतिए एयमट्टं पडिमुणेंति) इसलिये हे देवानुप्रियो ! हमलोगों का

अणमण्ण सदावेत्ति) जोईने तेभण्णे पछी परस्पर ऐक-धीअने णोक्षाव्या (सदावित्ता एवं वयासी) जोक्षावीने तेभण्णे परस्पर आ प्रभाण्णे वातो करी. (एवं खलु देवाणुप्पिया ! जम्बुद्वीवे दीवे उत्तरद्धभरहेवासे आवाडचिळाया सिधुए महाणईए वालुया संथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभत्तिया अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा चिद्धंति) हे देवानुप्रियो ! सांभोण, जम्बूद्वीप नामके द्वीपमां उत्तरार्द्ध भरतक्षेत्रमां आपातकिरातासिधु महानदीनी उपर वालुका निर्मित सस्तारको उपर अष्टमभक्तानी तपस्या करता जेहा छे तेभण्णे वस्त्रोना साव त्याग कर्यो छे अने आकाश तरफे मो करीने पोलाना कुण देवता ओटलेके आपण्णा सर्वनु ध्यान करी रक्षा छे (तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं आवाडचिळायाणं अंतिए पाउम्भवित्तएत्तिकद्दु अणमण्णस्स अंतिए एयमट्टं पडिमुणेंति) ओटला भाटे हे देवानुप्रियो ! आ स्थितिमा आपण्णा सर्वनु आ कर्तव्य छे हे देवे अशे

पगच्छन्ति परस्परं साक्षीकृत्य प्रतिज्ञातं नार्यमवश्यं कर्त्तव्यमिति दृढी भवतीत्यर्थः 'पडि
मुणेत्ता' प्रतिश्रुत्य अभ्युपगत्य 'ताए उक्किट्टाप तुरियाए जाव वीत्तियमाणा वीत्तिय-
माणा जेणेव जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्ध भग्देवाने जेणेव सिंधु महाणई जेणेव आवाडचिलाया
तेणेव उवागच्छन्ति' ते देवाश्चनया उत्कृष्टया त्वरितया यावत् चपल्या चण्डया पिहया दि-
व्यया देवगत्या व्यतिव्रजन्तो यत्रैव जम्बूद्वीपो द्वीपो यत्रैव उत्तरभरताद्धं वर्षं यत्रैव सिन्धु-
र्महानदी यत्रैव चापातकिगताः तत्रैवोपागच्छन्ति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'अंतलिकख-
पडिवण्णा सखिखिणियाइ पंचवण्णाइ वत्थाइं पवरपरिहिया ते आवाडचिलाए एव वयामी'
अंतरिक्षप्रतिपन्ना. आकाशमार्गावलम्बनः सखिखिणीकानि पञ्चवर्णानि शुक्लनीलादि
पञ्चवर्णयुक्तानि वस्त्राणि प्रवराणि परिहृताः सन्तः तान् आपातकिरातान् एवं वक्ष्यमाण-
प्रकारेण अवादिपुः उक्तवन्तः, किमुक्तवन्त-इत्याह 'हभो' इत्यादि 'हभो आवाडचिलाया !
जणं तुम्हे देवाणुप्पिया ! वालुयासथारोवगया उत्ताणगा अवमणा अट्टमभत्तिया अम्हे

कर्त्तव्य है कि अब हमलोग उन आपातकिरातो के पास चले इस प्रकार से आपस में विचार
करके उनलोगों ने उनके पास आने का निश्चय कर लिया (पडिमुणेत्ता ताए उक्किट्टाप
तुरियाए जाव वीत्तियमाणा-वीत्तियमाणा जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छन्ति) पूर्वोक्तरूप से
निश्चय करके फिर वे उस उत्कृष्ट त्वरित दिव्य देवगति से चलते २ जहाँ पर जम्बूद्वीप
नाम का द्वीप था और उसमें भी जहाँ पर उत्तरार्द्ध भरत क्षेत्र था और उममें भी जहा
पर सिंधु नाम की महानदी थी वहाँ पर आये (उवागच्छिता अंतलिकखपडिवण्णा सखिखि-
णियाइ पंचवण्णाइ वत्थाइं पवरपरिहिया ते आवाडचिलाए एव वयामी) वना आकर के
नोचे नहीं उतरे किन्तु आकाश में ही रहे और वहाँ से उन्होंने जोकि क्षुद्र घंटिप्राओं से
युक्त श्रेष्ठ बलों को अच्छी तरह से अपने-२ शरीर पर धारण किये हुए हैं उन आपातकिरातो
से ऐसा कहा—(ह भो ! आवाडचिलाया ! जणं तुम्हे देवाणुप्पिया वालुयासथारोवगया
उत्ताणगा अवमणा अट्टमभत्तिया अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा-२
चिट्ठह) हे आपातकिरातो ! जो तुम लोग देवानुप्रिय वालुका निर्मित संथारों के ऊपर नग्न

सर्वे ते आपातकिरातो पासे नधये आ प्रभाण्णे परस्पर विचार करीने तेभण्णे तेभन्नी पासे
जवानो निश्चय करी लीधो (पडिमुणेत्ता ताए उक्किट्टाप तुरियाए जाव वीत्तियमाणा २
जेणेव जंबुद्वीवे दीवे उत्तरद्धभरहे वासे जेणेव सिंधू महाणई जेणेव आवाडचिलाया तेणेव
उवागच्छन्ति) आ प्रभाण्णे निश्चय करीने पछी तेण्णे सर्वे उत्कृष्ट त्वरित यावत् दिव्य देव-
गतिथी आसता-आसता जयां जंभूद्वीप इतो आने तेमा पण्ण जया उत्तरार्द्धं भरतक्षेत्रहेतुं
अने तेमा पण्ण जया सिंधु नामक महानदी इती त्यां आण्णया (उवागच्छिता अंतलिकख
पडिवण्णा सखिखिणियाइ पंचवण्णाइ वत्थाइ पवरपरिहिया ते आवाडचिलाए एवं वयामी
त्यां पडोअीने तेण्णे नीये नडि उतरता आकाशमा ज स्थिर रक्षा आने त्याथी ज तेभण्णे
के जेभण्णे क्षुद्रघटिकाण्णोथी युक्त श्रेष्ठबल्लोने सारी रीते पोताना शरीर उपर धारण करी
राज्या छे जेवा नागकुमारदेवोअे-ते आपात किरातो ने आ प्रभाण्णे कछु—(ह भो ! आवा

कुलदेव ए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा करेमाणा चिद्धइ' हंभो ! इति सम्बोधने आपातकिराताः यत् णं वाक्यालङ्कारे यूयं देवानुप्रियाः ! वालुका सस्तारकोपगताः उत्तानकाः अवमनाः अष्टमभक्तिकाः अस्मान् कुलदेवताः मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् मनसि कुर्वाणाः मनसो कुर्वाणास्तिष्ठत 'तएणं अम्हे मेहमुहा णागकुमारा देवा तुम्ह कुलदेवया तुम्हं अंतिअण्ण पाउब्भूया' ततो वयं मेघमुखा नागकुमारा देवा युष्माकं कुलदेवता सन्तो युष्माकमन्तिकं प्रादुर्भूताः-प्रकटीभूताः 'तंवदह ण देवाणुप्पिया ! किं करेमो केव मे मणसाइए' तद्वदत खलु देवानुप्रियाः ! किं कुर्मः किं कार्यं विदमः किंवा 'मे' भनतां मनः स्वादितं मनोऽभीष्टम् अथ कुलदेवता प्रश्नानन्तर ते आपातकिराताः यदभिलषितवन्तः तदाह-'तएणं' इत्यादि 'तएणते आवाडचिलाया मेहमुहाणं नागकुमाराणं देवाणं अंतिए एयमदु सोच्चा णिसम्म हदुत्तुच्चित्तमाणदिया जाव हियया उट्ठाए उट्ठेत्ति' ततः खलु ते आपातकिराताः मेघमुखानां नागकुमाराणां देवानामन्तिके एतमर्थं प्रोक्तवचनं श्रुत्वा निश्चय

बनकर आकाश की ओर मुंह करके अट्टम भक्त की तपस्या कर रहे हो और अपने कुलदेवता मेघमुख नाम के नागकुमार देवों का मन में ध्यान कर रहे हो (तएणं अम्हे मेहमुहा णागकुमारा देवा तुम्हं कुलदेवया तुम्हं अतिअण्णं पाउब्भूया) सो हमारे मेघमुख नाम के नागकुमार देव जो कि तुम्हारे कुलदेवता हैं तुम लोगों के पास आये हैं (तं वदह णं देवानुप्पिया ! किं करेमो केव मे मणसाइए ?) तो हे देवानुप्रियो आपलोग कहिये हम लोग क्या करे आपलोगों का मनोभीष्टित क्या है क्या—आपकी अभिलाषा है ? (तएणं ते आवाडचिलाया मेहमुहाणं नागकुमाराणं देवाणं अतिए एयमदु सोच्चा णिसम्म हदुत्तुच्चित्तमाणदिया जाव हियया उट्ठाए उट्ठेत्ति) इस प्रकार का कथन जब उन आपातकिरातों ने उन मेघमुख नाम के नागकुमार देवों से सुना तो यह सुन कर और उसका अच्छी तरह से निश्चय कर वे सब आपातकिरात वहे ही हर्षित हुए और बड़े ही संतुष्ट हुए यावत् उनका हृदय हर्ष के वश

अचिलाया जण्णं तुम्हे देवाणुप्पिया वालुयासंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभक्तिया अम्हे कुलदेवप मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा २ चिद्धह) हे आपातकिरातो ! हे भेओ देवानुप्रिय तमे वालुका निर्मित स थाराओ। उपर आसीन थने नग्न अवस्था मां आकाश तरहे मे करीने अट्टमभक्तानी तपस्या करी. रक्षा छो अने पोताना कुलदेवता मेघमुखनामक नागकुमार देवानु मनमा ध्यान करी रक्षा छो (त प्रण अम्हे मेहमुहा णागकुमारा देवा तुम्हं कुलदेवया तुम्हं अतिअण्णं पाउब्भूया) तो अमे तभारा कुलदेवता मेघमुख नामक नागकुमार देवा तभारी साथे प्रकट तथा छीओ (तं वदह णं देवाणुप्पिया ! किं करेमो केव मे मणसाइए ?) तो हे देवानुप्रियो ! गोदो, अमे तभारा भाटे शु करीओ तभारो मनोरथ शे। छे ? तभारी अभिलाषा अभारी समक्ष प्रकट करे। (तएणं ते आवाडचिलाया मेहमुहाणं नागकुमाराणं देवाणं अतिए एयमदु सोच्चा णिसम्म हदुत्तुच्चित्तमाणदिया जाव हियया उट्ठाए उट्ठेत्ति) आ प्रभाषेनु कथन आपात किरातोओ मेघमुख नामक नागकुमार देवाना सुभनी सांभणीने अने ते सण धमा सारी रीते निश्चय करीने तेओ

हृदि अवधार्य हृद्यतुष्टिचित्तानन्दिताः यावत् हृदयाः परमसौमनस्यताः स तः उत्थया
 उत्थानम् उत्था ऊर्ध्वं भवनं तया उत्तिष्ठति ऊर्धी भवन्तीत्यर्थः 'उद्धिता' उत्थाय 'जेणेव
 मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छन्ति' ते आपातकिराता यत्रैव मेहमुखा नागकु-
 मारा देवा तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छन्ति' उपागत्य 'करयलपरिग्गहिय जाव मत्थए
 अंजलिं कद्दु मेहमुहे णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेंति' करतलपरिगृहीतं यावन्
 दशनखं शिरसावच्चं मस्तके अठजलिं कृत्वा मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् जयेन विज-
 येन च जयविजयशब्दाभ्यां वर्द्धयन्ति 'वद्धावित्ता' वर्द्धयित्वा 'एवं वयासी' एव वक्ष्यमाण-
 प्रकारेण अवादिषुः उक्तवन्तस्ते आपातकिराताः, किमुक्तवन्त इत्याह- 'एसणं देवाणुप्पिया!
 केइ अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलक्खणे जाव हिरिसिरिपरिवज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स
 उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ' हे देवानुप्रियाः ! एष खलु कः अप्रार्थितप्रार्थकः अप्रार्थितम्
 अमनोरथगोचरीकृतं मरणमिति भावः तस्य प्रार्थको अभिलाषी, तथा दुरन्तगन्तलक्षणः,
 दुरन्तानि दुष्टावसानानि प्रान्तानि तुच्छानि लक्षणानि यस्य स तथा यावत्पदात् हीनपुण्य

से उल्लेखने लगा-यहा यावत्पद ते "परम सौमनस्यता सन्तः" इन पदों का ग्रहण हुआ है
 वे सबके सब स्वयं खड़े हुए (उद्धिता जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छन्ति)
 और ऊठकर फिर वे जहां पर मेघमुख नाम के नागकुमार देव थे वहा पर आये (उवाग-
 च्छिता करयलपरिग्गहिय जाव मत्थए अंजलिं कद्दु मेहमुहे णागकुमारं देवे जएणं विजएणं
 वद्धावेंति) वहा आकरके उन्होंने दानों हाथों को अंजलि बनाकर यावन् उसे मस्तक पर धर
 कर उन मेघमुखनागकुमार देवों को जय विजय शब्दों से वधाई दी (वद्धावित्ता एव वयासी)
 और वधाई देकर फिर उन्होंने ३. से ऐसा कहा- (एसणं देवाणुप्पिए केइ अपत्थियपत्थिए
 दुरंतपंतलक्खणे जाव हिरिमिग्गिग्गिजए जेणं अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ)
 हे देवानुप्रिय ! यह कौन है जो हमारे देश पर जबरदस्ती आक्रमण करके बिना मौत के अपनी
 मौत का अभिलाषी हो रहा है पता पड़ता है कि हीन पुण्य चतुर्दशी में जन्म हुआ है यह

अवे अतीव हृषित तेभञ्ज स तुष्णं तथा यावत् तेभनां हृद्ये हृषिवेशथी उल्लणवा दाण्यां
 अही यावत् पदथी (परमसौमनस्यता सन्तः) अे पडेणु अहंथु थयु छे तेअो अवे
 णिभा थया (उद्धिता जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छन्ति) अने णिभाथधने
 ण्ठी तेअो न्यां मेघमुभ नामके नागकुमारो इता त्या आण्था (उवागच्छिता करयल-
 परिग्गहीयं जाव मत्थए अंजलिं कद्दु मेहमुहे णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेंति) त्या
 पडेण्थी ने तेभण्णे अन्ने दाशेण्णी अ ऋद्धि अनावीने यावत् ते अल्लि ने मस्तके उपर भूमी
 ने ते मेघमुभनागकुमार देवाने अथ-विजय शब्दोधी वधाभण्णी आपी. (वद्धावित्ता एव
 वयासी) अने वधाभण्णी आपीने तेभण्णे ते देवाने आ प्रभाण्णे क्खु- (एसणं देवाणुप्पिए
 केइ अपत्थियपत्थिए दुरंतपंतलक्खणे जाव हिरिसिरिपरिवज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स
 उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ) हे देवानुप्रिय ! अे केषु छे ? हे ने अभाग वतन उपर
 धातात् आकभण्णु करीने वगर मृत्युअे पोताना मृत्युने आभत्रण्णु आपी रह्य छे अेम

कुलदेव ए मेघमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा करेमाणा चिद्दह' हभो । इति सम्बो-
धने आपातकिराताः यत् णं वाक्यालङ्कारे यूयं देवानुप्रियाः ! बालुका सस्तारकोपगताः
उत्तानकाः अवमनाः अष्टमभक्तिकाः अस्मान् कुलदेवताः मेघमुखान् नागकुमारान् देवान्
मनसि कुर्वाणाः मनसो कुर्वाणास्तिस्रस्त 'तएण अम्हे मेहमुहा णागकुमारा देवा तुम्भ कुल-
देवया तुम्हं अतिअण्ण पाउब्भूया' ततो वयं मेघमुखा नागकुमारा देवा युष्माकं कुलदेवता
सन्तो युष्माकमन्तिकं प्रादुर्भूताः-प्रकटीभूताः 'तंवदह ण देवाणुप्पिया ! किं करेमो केव मे
मणसाइए' तद्वदत् खल्ल देवानुप्रियाः ! किं कुर्मः किं कार्यं विदध्मः किंवा 'भे' भनतां मनः
स्वादितं मनोऽभीष्टम् अथ कुलदेवता प्रश्नानन्तरं ते आपातकिराताः यदभिलषितवन्तः
तदाह—'तएणं' इत्यादि 'तएणते आवाडचिळाया मेहमुहाणं नागकुमाराणं देवाणं अतिए
एयमद्व सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्टचित्तमाणदिया जाव हियया उट्टाए उट्टेति' ततः खल्ल ते
आपातकिराताः मेघमुखानां नागकुमाराणां देवानामन्तिके एतमर्थं प्रोक्तवचनं श्रुत्वा निश्चय

बनकर आकाश की ओर मुंह करके अष्टम भक्त की तपस्या कर रहे हो और अपने कुल-
देवता मेघमुख नाम के नागकुमार देवों का मन में ध्यान कर रहे हो (तएणं अम्हे मेहमुहा
णागकुमारा देवा तुम्भ कुलदेवया तुम्भ अतिअण्णं पाउब्भूया) सो हमारे मेघमुख नाम के
नागकुमार देव जो कि तुम्हारे कुलदेवता हैं तुम लोगों के पास आये हैं (तं वदह णं
देवानुप्पिया ! किं करेमो केव मे मणसाइए ?) तो हे देवानुप्रियो आपलोग कहिये हम लोग
क्या करे आपलोगों का मनोभीष्टित क्या है क्या—आपकी अभिलाषा है ? (तएणं ते आवाड-
चिळाया मेहमुहाणं नागकुमाराणं देवाणं अतिए एयमद्व सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ट चित्तमाणदिया
जाव हियया उट्टाए उट्टेति) इस प्रकार का कथन जब उन आपातकिरातों ने उन मेघमुख नाम
के नागकुमार देवों से सुना तो यह सुन कर और उसका अच्छी तरह से निश्चय कर वे सब
आपातकिरात बड़े ही हर्षित हुए और बड़े ही संतुष्ट हुए यावत् उनका हृदय हर्ष के वश

डचिळाया जणं तुम्हे देवाणुप्पिया बालुयासंथारोवगया उत्ताणगा अवसणा अट्टमभक्तिया
अम्हे कुलदेवए मेहमुहे णागकुमारे देवे मणसी करेमाणा २ चिद्दह) हे आपातकिरातो !
हे भेओ देवानुप्रिय तमे बालुका निर्मित स थाराओ। उपर आसीन थधने नग्न अवस्था
मां आकाश तरङ्ग में करीने अष्टमभक्तानी तपस्या करी. रक्षा छो अने पोताना कुलदेवता
मेघमुखनाभक नागकुमार देवो तु मनमां ध्यान करी रक्षा छो (त एण अम्हे मेहमुहा णाग-
कुमारा देवा तुम्भं कुलदेवया तुम्भ अतिअण्णं पाउब्भूया) तो अमे तभारा कुलदेवता
मेघमुख नाभक नागकुमार देवो तभारी सामे प्रकट थथा छीओ (त वदह णं देवाणुप्पिया !
किं करेमो केव मे मणसाइए ?) तो हे देवानुप्रियो ! जोओ, अमे तभारा भाटे शु करीओ
तभारे भनो. रथ शे। छे ? तभारी अभिलाषा अभारी समक्ष प्रकट करे। (तएणं ते आवा-
डचिळाया मेहमुहाणं नागकुमाराणं देवाणं अतिए एयमद्वं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्टचित्तमाणं
दिया जाव हियया उट्टाए उट्टेति) आ प्रभाषेतु कथन आपात किरातोओ मेघमुख नाभक
नागकुमार देवोना मुखनी सांक्षणीने अने ते सण धमा सारी रीते निश्चय करीने तेओ।

हृदि अवधार्य हृद्यतुष्टिचित्तानन्दिताः यावत् हृदयाः परमसौमनस्यताः सन्तः उत्थया
 उत्थानम् उत्था ऊर्ध्वं भवनं तग उत्तिष्ठति ऊर्ध्वी भवन्तीत्यर्थः 'उत्तिष्ठा' इत्याय 'जेणेव
 मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छन्ति' ते आपातकिराता यत्रैव मेहमुखा नागकु-
 मारा देवा तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छन्ति' उपागत्य 'करयलपरिगहिय जाव मत्थए
 अंजलिं कट्टु मेहमुहे णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेंति' करतलपरिगृहीतं यावत्
 दशनखं शिरसावत्तं मस्तके अठजलिं कृत्वा मेघमुखान् नागकुमागन् देवान् जयेन विज-
 येन च जयविजयशब्दाभ्यां वर्द्धयन्ति 'वद्धावित्ता' वर्द्धयित्वा 'एवं वयासी' एव वक्ष्यमाण-
 प्रकारेण अवादिषुः उक्तवन्तस्ते आपातकिराताः, किमुक्तवन्त इत्याह- 'एसणं देवाणुप्पिया।
 केइ अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलकखणे जाव हिरिसिरिपरिवज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स
 उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ' हे देवानुप्रियाः ! एष खलु कः अप्रार्थितप्रार्थकः अप्रार्थितम्
 अमनोरथगोचरीकृतं मरणमिति भावः तस्य प्रार्थको अभिलाषी, तथा दुरन्तान्तलक्षणः,
 दुरन्तानि दुष्टावसानानि ग्रान्तानि तुच्छानि लक्षणानि यस्य स तथा यावत्पदात् हीनपुण्य

से उछलने लगा-यहा यावत्पद ते "परम सौमनस्यता सन्तः" इन पदों का ग्रहण हुआ है.
 वे सबके सब स्वयं खड़ेहुए (उद्विष्ठा जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छन्ति)
 और ऊठकर फिर वे जहाँ पर मेघमुख नाम के नागकुमार देव थे वहाँ पर आये (उवाग-
 च्छिता करयलपरिगहिय जाव मत्थए अंजलिं कट्टु मेहमुहे णागकुमार देवे जएणं विजएणं
 वद्धावेंति) वहाँ आकरके उन्होंने दोनों हाथों की अंजलि बनाकर यावत् उसे मस्तक पर धर
 कर उन मेघमुखनागकुमार देवों को जय विजय शब्दों से वधाई दी (वद्धावित्ता एव वयासी)
 और वधाई देकर फिर उन्होंने उ.से ऐसा कहा- (एसणं देवाणुप्पिए केइ अपत्थियपत्थिए
 दुरंतपंतलकखणे जाव हिरिसिरिपरिगज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ)
 हे देवानुप्रिय ! यह कौन है जो हमारे देश पर जवर्दस्ती आक्रमण करके 'वेना मौत के अपनी
 मौत का अभिलाषी हो रहा है पता पड़ता है कि हीन पुण्य चतुर्दशी में जन्म हुआ है यह

सर्वे अतीव हर्षित तेभञ्ज स तुष्ठी तथा यावत् तेभनां हृदये हृषविशथी उछणवा लाग्यां
 अही यावत् पथी (परमसौमनस्यता सन्तः) जे पडोनु अक्षय्य थयु छे तेज्जे भवे
 षिभा तथा (उद्विष्ठा जेणेव मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छन्ति) अने षिभाथभने
 ष्ठी तेज्जे ल्यां मेघमुअ नामके नागकुमारे। इता त्या आण्था (उवागच्छिता करयल-
 परिगहियं जाव मत्थए अंजलिं कट्टु मेहमुहे णागकुमारे देवे जएणं विजएणं वद्धावेंति) त्या
 पडोथी ने तेभणे अने दाथेनी अ अलि भनावीने यावत् ते अ अलि ने मस्तके उपर भूझी
 ने ते मेघमुअनागकुमार देवाने लथ-विलथ शब्दाथी वधाभषी आपी. (वद्धावित्ता एव
 वयासी) अने वधाभषी आपीने तेभणे ते देवाने आ प्रभाणे कथु- (एसणं देवाणुप्पिए
 केइ अपत्थियपत्थिए दुरंतपंतलकखणे जाव हिरिसिरिपरिवज्जिए जेणं अम्हं विसयस्स
 उवरिं विरिएणं हव्वमागच्छइ) हे देवानुप्रिय ! जे केषु छे ? हे जे अभाग पतन उपर
 पडात् आक्रमण करीने वगर भृत्युजे पोता। भृत्युने आभ तथु आपी रह. छे जेभ

चातुर्दशः हीनायां पुण्य चतुर्दश्यां जातो हीनपुण्य चातुर्दशः, तत्र चतुर्दशी खलु त्रिचिर्ज-
न्माश्रिता पुण्या शुभा च भवति साऽतिभाग्यवती जन्मनि भवति अत आक्रोशता इत्य-
मुक्ता तथा हीनः इत्यर्थः, तथा ही श्रीपरिवर्जितः द्विया लङ्जया श्रिया शोभया परिव-
र्जित. यः खलु अस्माकं विषयस्य देशस्योपरि वीर्येण आक्रमणात्मकशक्त्या ह्यं शीघ्रमाग-
च्छति आक्रमति 'त तहाणं घत्तेह देवाणुप्पिया ! जहाणं एस अम्हं विसयस्स उवरिं चिरि-
एणं णो हवमागच्छइ' है देवानुप्रियाः ! तत् तथा तेन प्रकारेण खलु ऐनम् 'घत्तेह' प्रसि-
पत दूरीकुरुन यथा खलु एषः अस्माकं विषयस्योपरि वीर्येण ह्यं नागच्छेत् अथ यन्मे-
घमुखा उक्तवन्तस्तदाह—'त एणं ते' इत्यादि'तएणंते मेहमुहा णागकुमारा देवा ते आवाड-
चिआए एवं वयासी' ततः खलु ते मेघमुखा नागकुमारा देवाः तान् आपातकिरातान्
एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादिषुः कथितवन्तः 'एसणं भो देवाणुप्पिया ! भरहे णामं

शुभलक्षणों से हीन है केवल दुष्टावसानवाले कुछ लक्षणों से ही यह युक्त प्रतीत होता है. यह निर्लज्ज है एव श्री—शोभा से रहित है. जिसके जन्म समय में चतुर्दशी तिथि पूण्या और शुभ होती है वह अति भाग्यवान् होता है अतिभाग्यशाली के जन्म समय में ही ऐसी चतुर्दशी होती है यह शब्द जब अधिक क्रोध का आवेग बढ़ा जाता है तब कहा जाता है, (तं तहाणं घत्तेह देवाणुप्पिया ! जहाणं एस अम्हं विसयस्स उवरिं चिरिएणं णो हवमागच्छइ) इसलिये हे देवानुप्रिया ! इसे तुम इस प्रकार से दूर करो कि जिससे यह हमारे देश के ऊपर जबर्दस्ती आक्रमण नहीं कर पावे (तएणं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा ते आवाडचिआए एवं वयासी एसणं भो देवाणुप्पिया ! भरहे णामं राया चाउरंतचक्कवट्टी महिद्धिए महज्जुइए जाव महासोकखे, णो खलु एस सक्को केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किपुस्सिणेण वा महोरगेण वा गघवेण वा सत्थप्पओगेण वा मत्तप्पओगेण वा उह्वित्तए पडिसेहित्तएवा) उन आपातकिरतों

लागे छे के जेने। जन्म हीन पुण्य चतुर्दशीना हिवसे थयेदो छे जे शुभलक्षणोथी हीन छे. इकत दुष्टावसानवाणा कुछ लक्षणोथी जे जे युक्त प्रतीत थाय छे. जे निर्लज्ज छे तेभज श्री—शोभा—थी रहित छे जेना जन्म समयमां चतुर्दशी तिथि पुण्यकारक जेने शुभ डोय छे ते अति भाग्यवान् डोय छे. अति भाग्यशालीना जन्म समये जेवी चतुर्दशी डोय छे. जेवा अर्थ वाचक जे शब्द ज्यारे क्रोधावेग बधी जाय छे त्यारे व्यंग्य भाकडेवाभां आवे छे. (तं तहाणं घत्तेह देवाणुप्पिया ! जहाणं एस अम्हं विसयस्स उवरिं चिरिएणं णो मागच्छइ) जेथी छे देवानुप्रिय ! आने तजे जेवी रीते दूर नसाडी भूके के जेथी जे अमारा वतन उपर इरीथी जहात् आकंभु करी शके नहीं. (त एणं ते मेहमुहा णागकुमारा देवा ते आवाडचिआए एवं वयासी—एसणं भो देवाणुप्पिया ! भरहे णाम राया चाउरंतचक्कवट्टी महिद्धिए महज्जुइए जाव महासोकखे, णो खलु एस ते केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किपुस्सिणेण वा महोरगेण वा गघवेण वा सत्थप्पओगेण वा मत्तप्पओगेण वा उह्वित्तए पडिसेहित्तए वा) ते आपात किराताना शुभशी आ प्रभाषे वात संभाषीने ते मेघमुख नामक नागकुमार देवाजे तेभने आ प्रभाषे कथे

राया चाउरंतचक्रवट्टोमहिद्धीए महज्जुइए जाव महासोक्खे' भो देवानुप्रियाः एपः खल्ल भरतो नाम राजा चातुरन्तचक्रवर्ती चत्वारोऽन्ताः पूर्वापरदक्षिणसमुद्रास्त्रयः चतुर्थो हिमवान् इत्येवं स्वरूपास्ते वश्यतयाऽस्य सन्तीति चातुरन्तः ततश्चक्रवर्त्तिपदेन कर्मधारयः तथा महर्द्धिकः महती ऋद्धिर्निधानादिर्यस्य स तथा, तथा महाधुतिकः अत्यन्तकांतिमानः आभरणरत्नादि सम्पन्नः यावन्महासौख्यः यावत्पदात् 'महाबले महाजसे' महाबलशाली-महायशस्कः अतिमुखसम्पन्नः 'णो खल्ल एस सक्को केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधर्वेण वा सत्थप्पओगेण वा अग्गिप्पओगेण वा मतप्पओगेण वा उहवित्तए पडिसेहित्तए वा' उक्तविशेषणविशिष्टः एप भरतो नो खल्ल शक्यः केनचित् देवेन वा दानवेन वा किन्नरेण वा किंपुरुषेण वा व्यन्तरदेव विशेषेण महोरगेण वा गन्धर्वेण वा शस्त्रप्रयोगेण वा खड्गादिशस्त्रेण वा अग्निप्रयोगेण वा मन्त्र-प्रयोगेण वा, त्रयाणामपि उत्तरोत्तरबलाधिक इति, उपद्रवयितुं वा उपद्रवं कर्तुंभ्ना प्रतिषे-धयितुं वा निषेधयितुं वा युष्मदेशाक्रमणतो निवर्त्तयितुमिति, सर्वत्र वा शब्दः समुच्चयार्थः

के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर उन मेघमुख नाम के नागकुमारो ने उनसे ऐसा कहा— हे देवानुप्रियो ! यह भरत नाम का महाराजा है. यह पूर्व अपर और दक्षिण इन तीन समुद्रों का और चतुर्थ हिमवान् इन चार रूप अन्तो का वश करनेवाला है इसलिए यह चातुरन्त चक्रवर्ती कहा गया है इसको निधानादि ऋद्धि बहुत ही चढ़ी बड़ी हुई है. आभरणादिको की कान्ति से सदा यह प्रकाशित रहता है. यावत् यह महा सौख्य का भोक्ता है. यहां यावत्पद से "महाबले, महाजसे" इन पदो का संग्रह हुआ है यह किसो भी दानव के द्वारा, या किसी भी किन्नर के द्वारा या किसी भी किंपुरुष के द्वारा, या किसी भी महोरग के द्वारा या किसी भी गंधर्व के द्वारा शस्त्र प्रयोग से या अग्नि प्रयोग से या मन्त्र प्रयोग से उपद्रवित नहीं किया जा सकता है । और न यह यहां से छोटाया ही जा सकता है । "शस्त्रेभ्योऽग्निस्तस्मान्मन्त्रो बलाधिक." इस कथन के अनुसार उत्तरोत्तर बलाधिक्य प्रकट करने के लिये" शस्त्र प्रयोग से या अग्नि प्रयोग से या मन्त्र प्रयोग से" ऐसा कहा है । यहां सर्वत्र वा शब्द समुच्च

हे देवानुप्रियो ! ये भरत नामे राजा थे. ये पूर्व अपर अने दक्षिण ये त्रये समुद्राने अने चतुर्थ हिमवान ने ये चार सीमा रूप अन्ताने वशमां करनाए थे अथी अने चातुरन्त चक्रवर्ती कहेवाभा आवेसुं थे. अनी निधान आदि रूप ऋद्धि अतीव विपुला थे. आभरणादिकोनी कान्तिथी ये सर्वदा प्रकाशित रहे थे. यावत् ये महासौख्यभोक्ता थे. अही यावत् पडथी 'महाबले, महाजसे' ये पदोसु अडथु थयुं थे ये केअं पयुं देव वडे के केअं पयुं किन्नर वडे के केअं पयुं किंपुरुष वडे के केअं पयुं महोरग वडे के केअं पयुं गन्धर्व वडे, शस्त्रप्रयोगथी के अग्निप्रयोगथी तेमन्त्र मन्त्रप्रयोग थी उपद्रवित थई शकते। नथी तथा अने अही थी पाछापयुं ईश्वरी शकता नथी "शस्त्रेभ्योऽग्निस्तस्मान्मन्त्रो बलाधिकः" ये कथन सुण्ण उत्तरोत्तर बलाधिक्य प्रकट करवाभाटे "शस्त्र प्रयोगथी के अग्नि प्रयोग थी के मन्त्र प्रयोगथी 'आ प्रभावे कहेवाभां आणुं थे. अही सर्वत्र वा शब्द समुच्च-

‘तहावि अ णं तुष्मं पियद्दुयाए भरहस्स रण्णो उवसग्ग करेमोत्तिकट्टु तेसि आवाडच्चिलायाणं अंतियाओ अवक्कमंति’ तथापि इत्थमसाध्ये कार्ये सत्यपि च खलु युष्माक प्रियार्थतायै प्रीत्यर्थं भरतस्य राज्ञः उपसर्गं कुर्म इति कृत्वा तेषामापातकिरातानामान्तकाद् अपक्रामन्ति यान्ति इति प्रतिज्ञातवन्तः ततः किं कृतवन्तस्ते देवा इत्याह ‘अवक्कमिच्चा’ अपक्रम्य ‘वेडव्वियसमुग्घाएण सम्मोहणति’ इत्यादि वैक्रियसमुद्घातेन उत्तरवैक्रियार्थकप्रयत्न-विशेषेण समवघ्नन्ति आत्मप्रदेशान् विक्षिपन्ति शरीराद् बहिर्विकिरतीत्यर्थः ‘समोहणित्ता मेहाणीअं विडव्वंति’ समवहत्य आत्मप्रदेशान् विक्षिप्य तैरात्मप्रदेशैर्गृहीतैः पुद्गलैः मेघानोकम् अभ्रपटलं विकुर्वन्ति निर्मान्ति ‘विडव्वित्ता जेणेय भरहस्स रण्णो विजयक्ख-धावारनिवेशे तेणेव उवागच्छति’ विकुर्व्य मेघपटलं निर्माय यत्रैव भरतस्य राज्ञो विजय-स्कन्धावारनिवेशः तत्रैव उपागच्छन्ति ‘उवागच्छित्ता उप्पि विजयक्खंधावारनिवेशस्स खिप्पामेव पतणुत्तणायति खिप्पामेव विज्जुयायंति’ उपागत्य विजयस्कन्धावारनिवेश-स्योपरि क्षिप्रमेव प्रतनु यथा स्यात् तथा स्तनायन्ते शब्दायन्ते क्षिप्रमेव त्रिद्युदायन्ते

यार्थक है। (तहाविण तुष्मं पियद्दुयाए भरहस्स रण्णो उवसग्ग करेमोत्ति कट्टु तेसि आवाड-चिल्लियाणं अंतियाओ अवक्कमंति) फिर भी हमलोग तुम्हारी प्रीति के लिये भरत राजा को उपसर्गान्वित करेंगे, ऐसा कह कर वे मेघमुख नाम के नागकुमार देव उन आपातकरातों के पास से चक्रे गये। (अवक्कमिच्चा वेडव्वियसमुग्घाएणं सम्मोहणति) चले जाकर उन्होने वैक्रिय समुद्धात द्वारा अपने आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकाला (समोहणित्ता मेहाणीअं विडव्वनि) शरीर से बाहिर निकाल कर फैलाए गये उन आत्म प्रदेशों द्वारा गृहीत पुद्गलों से उन्होने अभ्रपटल की विकुर्वणा की (विडव्वित्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयक्खधावारनिवेशे तेणेव उवागच्छति) अभ्रपटल विकुर्वणा करके फिर वे जहा भरत नरेश के स्कन्धावार का निवेश था, वहा पर गये (उवागच्छित्ता उप्पि विजयक्खंधावारनिवेशस्स खिप्पामेव पतणु-त्तणायंति खिप्पामेव विज्जुयायंति) वहां जाकर वे विजयस्कन्धावार के निवेश के ऊपर ऊपर

यार्थक छे (तहावि णं तुष्मं पियद्दुयाए भरहस्स रण्णो उवसग्ग करेमोत्ति कट्टु तेसि आवाड-चिल्लियाणं अंतियाओ अवक्कमंति) छताये अमे तमारी प्रीतिने वश थधने भरतराअने उपसर्गान्वित करीशु आम कहीने ते मेघमुख नामक नागकुमार देवे ते आपातकिशतानी पासथी जता रधा। (अवक्कमिच्चा वेडव्वियसमुग्घाएणं सम्मोहणति) त्यां जधने तेभण्णे वैक्रिय समुद्धात वडे पोताना आत्म प्रदेशोने शरीरमा थी जडार काठया (समोहणित्ता मेहाणीअं विडव्वति) शरीरमाथी जडार काठीने प्रसूत करेला ते आत्म प्रदेशो वडे गृहीत पुद्गलौथी तेभण्णे अभ्रपटलनी विकुर्वणा करी (विडव्वित्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयक्खंधावारनिवेशे तेणेव उवागच्छति) अभ्रपटलनी विकुर्वणा करीने पथी तेण्णे जया भरतनरेशने स्कन्धावार निवेश छने। त्या पडोअया (उवागच्छित्ता उप्पि विजयक्खंधावारनिवेशस्स खिप्पामेव पतणु-त्तणायंति खिप्पामेव विज्जुयायंति) त्यां जधने विजय स्कन्धावारना निवेशनी उपर थीथीमे जणना करवा लाग्यां अने शीघ्रताथी अभ्रवा लाग्या विद्युत्नी जेभ आथरथु करवा

विद्युद्वाचन्ति विज्जुयायति विज्जुयायित्ता त्रिपामेव जुगमुसलमुट्टिप्पमाणमेत्ताहि धाराहि ओघमेघ सत्तरत्तं वास वासिउं पवत्ता यावि होत्था' विद्युदायित्ता क्षिप्रमेव युगमुसलमुट्टि-
प्रमाणमिताभिः धाराभिः ओघमेघ सप्तगत्रं सप्तगत्रिप्रमाणकालेन वर्षं वर्षितुं प्रवृत्ता
श्राप्यभवन् ॥१९॥

इति व्यतिरुदरे सम्बन्धे यद्भरताधिपः करोति तदाह—'तएणं से भरहे' इत्यादि

मूलम्—तएणं से भरहे गया उप्पि विजयक्खंधावारस्स जुगमु-
सलमुट्टिप्पमाणमेत्ताहि धाराहि ओघमेघं सत्तरत्तं वामं वासमाणं पासइ
पासित्ता चम्मरयणं परामुसइ तए णं तं सिखिच्छसरिसरुव वदो भाणि-
यव्वो जाव दुवालसजोयणाइं तिरिअं पवित्थरइ तत्थ सोहियाइं तएणं
से भरहे गया सक्खंधावारखले चम्मरयणं दुरूहइ दुरूहेता दिव्वं छत्त-
रणं परामुसइ तएणं णवणउइसहस्स कंचणसलागपग्धिंडियं महरिहं
अउज्झं णिव्वणसुपसत्थविसिद्धलड्डकंचणसुपुड्डदंडं मिउरा यवट्ट लड्ड अर-
विद कण्णिअ समाणरूवं वत्थिएसे अ पंजरविगइअं विविहभत्तिचित्तं
मणिमुत्त पवाल तत्तवणिज्ज पंचवणिणअघोअग्गण रूवरइणं रयणमगीई-
समोप्पणाक्कप्पकारमणुरंजिएल्लिअं रायलच्छिच्चिंधं अज्जुण सुवण्ण पंडुर-
पच्चत्थुअपट्टेसभागं तहेव तवणिज्ज पट्ट धम्मंत परिगय अहिअ ससिसरीअं
सारययणिअरविमलपडिपुण्णचंदमंडलसमाणरूवं णरिंदवामप्पमाणपग-
इवित्थदं कुमुदसंडधवलं रणो संचारिमं विमाणं सूरातववायवुट्टिदोसाण
य खयकरं तवगुणेहि लद्धं अहयं बहुगुणदाणं उऊण विवरीअसुहकयच्छायं ।
छत्तरयणं पहाणं सुदुल्लहं अप्पपुण्णाणं ॥१॥ पमाणराईण तवगुणाण
फलेगदेसभागं विमाणवासे वि दुल्लहतरं वग्घारिअमल्लदामकलावं

इत्के-२ रूप में गर्जने लगे । और शीघ्रता से चमकने लगे—विजली के जैसे आचरण करने
लगे (विज्जुयायित्ता त्रिपामेव जुगमुसलमुट्टिप्पमाणमेत्ताहि धाराहि ओघमेघं सत्तरत्तं वासं
वासिउं पवत्तायावि होत्था) फिर वे विजलियों को चमकाकर बहुत ही शीघ्रता से युग मुसल,
एवं मुट्टि प्रमाण परिमित धाराओं से सात दिन तक पुष्कलसवर्तक मेघादिको बरसाते रहे ॥१९॥

व.३५। (विज्जुयायित्ता त्रिपामेव जुगमुसलमुट्टिप्पमाणमेत्ताहि धाराहि ओघमेघं सत्तरत्तं वासं
वासिउं पवत्तायावि होत्था) पृथी तेष्वा विद्युते। अमकापी ने अकृष्टम शीघ्रतायै युग-मुसल,
तेभ्य मुट्टि प्रभाषु परिमित धाराओथी सात-द्विस सात सुधी पुष्कल प्रभाषुथी सवर्तक
मेघादिकेने वरसावता रक्षा ॥१९॥

साग्यधवल्लभमरग्यणिगग्पगासं दिव्यं छत्तरयणं महिवइस्स धरणियल-
पुण्णइंदो । तएणं से दिव्वं छत्तरयणे भरहेणं रण्णा परामुट्ठे समाणे
खिप्पामेव दुवालसजोयणाइं पवित्रथइ साहिआइं तिरिअं ॥ सू० २०॥

छाया—ततः खलु स भरता राजा विजयस्कन्धावारस्योपरि युगमुशलमुष्टिप्रमाण-
मिताभिः धाराभिः ओघमेघ सप्तरात्रं वर्ष वर्षन् पश्यति, दृष्ट्वा चर्मरत्नं परामृशति, ततः
खलु तत् श्रोवत्ससदृशरूप वेष्टको भणितव्यो यावन् द्वादशयाजनानि निर्यक् प्रविस्तृणाति
तत्र साधितानि, ततः खलु स भरतो सस्कन्धावारबलं चर्मरत्नं दूरोहति दुरूह्य दिव्यं
छत्ररत्नं परामृशति, ततः खलु नवनवतिसहस्रकाञ्चनशलाकापरिमण्डितम् महार्हम्
अयोध्यम् निर्घणसुप्रशस्तविशिष्टलष्टकाञ्चनसुपुष्टण्डम् मृदुराजतवृत्तलष्टारविन्दकर्णिका
समानरूप वस्तिप्रवेशच्च पञ्जरविराजितं विविधभक्तिचित्रं मणिमुक्ताप्रवालतप्ततपनीय-
पञ्चवर्णिक्र द्योतरत्नरूपपरचितरत्नमरीचिसमर्पणा रूषकरानुगञ्जित राजलक्ष्मीचिह्नम् अर्जुन-
सुवर्णपाण्डुरप्रत्यवस्तृतपृष्ठदेशभाग तथैव तपनीय पद्मधम्मायमानपारगतम् अधिक सश्रीकं
शारदरजनिकरविमलपनिपूर्णचन्द्रमण्डलममानरूपम् नरेन्द्रव्यायामप्रमाणप्रकृतिविस्तृत
कुमुदसङ्घवलं राक्षः संचारिम सुरातपवातवृष्टिदोषाणा च क्षयकरम् तपोगुणैः लब्धम्
अहत बहुगुणदानम् क्रतुविपरीत सुखकृतच्छायम् छत्ररत्नं प्रधानं सुदुर्लभमल्पपुण्यानाम् ॥१॥
प्रमाणराज्ञा तपोगुणानां फलैकदेशभाग विमानवासेऽपि दुर्लभतर प्रलम्बितमाल्यदामकलापं
शारदधवलाभ्ररजनिकरप्रकाशं दिव्यं छत्ररत्नं भरतेन राज्ञा परामृष्ट सत् क्षिप्रमेव द्वादशयो-
जनानि साधिकानि तिर्यक् प्रविस्तृणाति ॥सू० २०॥

टीका—“तएण से भरहे” इत्यादि । ‘तएण से भरहे राया उप्पि विजयक्खंधा-
वारस्स जुगमुसलमुष्टिप्पमाणमेत्ताहि धाराहि ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासमाणं पासइ’ ततो
दिव्यवर्षानन्तरं खलु स भरतो राजा विजयस्कन्धावारस्य स्वसैन्यानि कस्योपरि युगमु-
शलमुष्टिप्रमाणमिताभिः धाराभिः सप्तरात्रं सप्तरात्रिप्रमाणकालेन वर्षं वर्षन्तम् ओघ-
इस अवसर पर महाराजा भरत ने क्या किया इसका कथन—

टीकार्थ—(तएण से भरहे राया उप्पि विजयक्खंधावारस्स जुगमुसलमुष्टिप्पमाणमेत्ताहि
धाराहि ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासमाणं पासइ) जब भरत महाराजने अपने विजय स्कन्धावार
निवेश के ऊपर युग, मुशल एवं मुष्टि प्रमाण परिमित धाराओं से पुष्कल सर्वांक अधिकार में
कथित बरसा के माफिक सात दिन रात तक बरसते हुए मेघों को देखा तो (पासिता
ये सभये भरत नरेशे शु कथुं—ये संघ धमा कथन

टीकार्थ—(तएण से भरहे राया उप्पि विजयक्खंधावारस्स जुगमुसलमुष्टिप्पमाणमेत्ताहि
हि ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासमाणं पासइ) कथादे भरतशब्द ये पौताना विजय स्कन्धावार-
ना निवेशे ऊपर, मुशल तेमश् मुष्टि प्रमाण परिमित धाराओंथी पुष्कल सर्वांक अधिकारभां
कथित वृष्टि भुञ्ज सात-दिवस रात सुधी बरसता मेघो ने जेथा तो (पासिता चर्मरत्नं

मेघं-गुणलधारवृष्टिप्रदमेघ पश्यति 'पासित्ता चम्मरयणं परामुसइ' दृष्ट्वा चर्मरत्न परामृशति स्पृशति गृह्णाति 'तएणं तं सिरिवच्छसरिसरुवं वेढो भाणियव्वो जाव दुवालसजोयणाइं तिरिअं पवित्थरइ तत्थ साहियाइं' ततः परामर्शनन्तर खलु श्रीवत्ससदृशरूप तत् चर्मरत्नं 'वेढो' वेष्टकः वस्तुमात्रविषयको भणितव्यो यावत् द्वादशयोजनानि तत्र साधिकानि तिर्यक् प्रविस्तृणाति 'तएणं से भरहे राया सखधारवले चम्मरयणं दुरुहइ' ततः खलु स भरतो राजा सस्कन्धावारवलः चर्मरत्न दुरोहति 'दुरुहित्ता दिव्वं छत्तरयण परामुसइ' दुरुह दिव्य-सहस्रदेवाधिष्ठितं छत्ररत्न परामृशति स्पृशति अथ कीदृशं छत्ररत्नमित्याह— 'तएणं णवणउइसहस्सकंचनमलागपरिमडिय' ततः खलु नवनवतिसहस्रकाञ्चनशलाका परिमण्डितम्, तत्र नवनवतिसहस्रप्रमाणाभिः काञ्चनमयशलाकाभिः परिमण्डितम्, तथा 'महरियं' महार्घं बहुमूल्यकं तथा 'अउउइ' अयोध्यम्-अस्मिन् दृष्टे सति नहि विपक्षम-दानां शस्त्रमुत्तिष्ठते इतिभावः, पुनः कीदृशं तत् 'णिव्वणसुपसत्थविसिट्ठलट्ठकंचणसुपुट्टदंडं' निर्वणसुप्रशस्तविशिष्टलष्टकाञ्चनसुपुट्टदण्डम् तत्र निर्वणः छिद्रादिदोषरहितः सुप्रशस्तः

चम्मरयणं परामुसइ) देखकर उसने चर्मरत्न को उठाया—(तएणं तं सिरिवच्छसरिसरुवं वेढो भाणियव्वो०) इस चर्मरत्न का रूप श्रीवत्स के जैसा होता है. इसका वेष्टक वर्णन जैसा पहिले किया गया है वैसा ही यहां पर भी कर लेना चाहिए—यावत् उसने इस चर्मरत्न को कुछ अधिक १२ योजन तक तिरछे रूप में विस्तृत कर दिया—फैलादिया बिछादिया (तएणं से भरहे राया सखंधावारवले चम्मरयणं दुरुहइ दुरुहित्ता दिव्वं छत्तरयणं परामुसइ) इसके बाद भरत महाराजा अपने स्कन्धावाररूपबल सहित उस चर्मरत्न पर चढ़ गया—और चढ़ करके फिर उसने छत्ररत्न को उठाया—(तएणं णवणउइ सहस्सकंचणसलागपरिमडियं महारियं अउउइ णिव्वणसुपसत्थविसिट्ठलट्ठकंचणसुपुट्टदंडं) यह छर्म रत्न ९९ नन्नाणु हजार काञ्चन शलाकाओं से परिमण्डित था । बहुमूल्य वाला था, इसे देख लेने पर विपक्षके भटोंके शस्त्र फिर उठते नहीं थे ऐसा यह अयोध्य था, निर्वण था, छिद्रादि दोषों से रहित था—समस्त लक्षणों से युक्त होने के कारण सुप्रशस्त था । विशिष्टलष्ट—मनोहर था । अथवा—इतना बड़ा छत्रदुर्वह हो

परामुसइ) ओधने तेणे अर्भरत्नने उपाड्यु (त एणं तं सिरिवच्छसरिसरुवं वेढो भाणि- यव्वो०) ओ अर्भरत्ननु इय श्रीवत्स नेट्टु डोय छे ओना वेष्टक विषे पडेतां ने प्रभाणे वणुंन करवाभा आण्यु छे ते प्रभाणे न अही समल्ल देवु नेधंओ यावत् तेणे ते अर्भ रत्नने कंधंके अधि १२ आर येअन सुधी आसां इपभा विस्तृत करी हीधु (तएणं से भरहे राया सखंधावारवले चम्मरयणं दुरुहइ दुरुहित्ता दिव्वं छत्तरयणं परामुसइ) त्यारणाइ भरतराज पोताना स्कन्धावार इय भल सहित ते अर्भरत्न उपर थदी गया अने थदीने पधी तेणे अर्भरत्नने उडाण्यु. (तएणं णवणउइसहस्सकंचणसलागपरिमडियं महारिइ अउउइ णिव्वणसुपसत्थ विसिट्ठलट्ठकंचणसुपुट्टदंडं) ओ छत्ररत्न ९९ नन्वाणु डनार कायन शला काओधी परिमंडित इत्तुं अहु सुख्यवान इत्तुं, ओने नेया भाइ विपक्षना भटाना शस्त्रे उठता नथी. ओधुं ओ अयोध्य इत्तुं, निर्णय इत्तुं छिद्रादि दोषाथी ओ रहित इत्तुं अमस्त

सर्वलक्षणोपेतत्वात् विशिष्टलष्टः मनोहरः यद्वा विशिष्टः अति भारतया एकदण्डेन दुर्वहत्वात् प्रतिदण्डसहितः ईदृशच्चयो लष्टः काठचनमयः सुपुष्टोऽतिदारसहस्रत्वात् दण्डो यत्र तत्, तथा, तथा 'मिउरायय वट्ट लट्ट अरविदकण्णियसमाणरूवं' मृदुराजन वृत्तलष्टारविन्द- कर्णिका समानरूपम्, तत्र मृदु कोमलं घृष्टमृष्टत्वात् राजतं रजतसम्बन्धि वृत्तलष्ट यदरविन्दं तस्य कर्णिका वीजकोशस्तेन समानं श्वेतत्वाद्दृन्तत्वाच्च रूपम् आकारो यस्य तत्तथा, तथा 'वत्थिपपसे पजरविराइयं' वस्तिप्रदेशे पठजरविराजितम् वस्तिप्रदेशो नाम छत्र- मध्यभागवर्ती दण्डप्रक्षेपस्थागरूपः तत्र पञ्जरेण पठजरारारेण विराजितम् चः समुच्चये तथा 'विविधभक्तिचित्तं' विविधभक्तिचित्रम्, तत्र विविधाभिः भक्तिभिः विञ्चित्तिभो- रचना प्रकारैश्चित्रं चित्रकर्म यत्र तत् तथा पुनश्च कीदृशम् 'मणिमुत्तपवालतत्ततवणिज्ज पचवणियधोयरयणरूवरइय' मणिमुक्ताप्रवालतत्ततपनीय पठचवर्णिकधौतरत्नरूपपरचि- तम्, तत्र मणयः चन्द्रकान्तादयः मुक्ताप्रवाले प्रसिद्धे तत्त मूरोत्तीर्णं यत्तपनीयं रक्त- सुवर्णं पठचवर्णिकानि शुक्लनीलादिपठचवर्णयुक्तानि धौतानि शाणोत्तारेण दीप्तिमति

जाने के कारण एक दण्ड के द्वारा धारण योग्य नहीं हो सकता है इसलिये एक एक दण्डे- वाळा होने से यह विशिष्ट लष्ट था। इममें जो दण्ड लगे हुए थे वे अति भार सहनेवाले होने के कारण अति सुपुष्ट थे और सुवर्णनिर्मित थे (मिउराययवट्ट लट्ट अरविदकण्णियस- माणरूवं) यह छत्र ऊँचा और गोल था—इसलिये इसका आकार चादी के बने हुए मृदु गोल कमल की कर्णिका के जैसा था (वत्थिपपसे अ पंजरविराइयं) यह वस्ति प्रदेश में जिसमें दण्ड पोया हुआ रहता है उस वस्ति प्रदेश में अनेक शलाकामों से युक्त हो जाने के कारण पजर के जैसा—पीजरे के जैसा—प्रतीत होता था (वि.वह भक्तिचित्त) इस छत्र में अनेक प्रकार के चित्रों की रचना हो हो रही थी उससे यह बड़ा सुहावना लगता था. (मणिमुत्तपवालतत्ततवणिज्जपचवणियधोयरयणरूवरइयं) इसमें पूर्णकञ्जादिरूपमङ्गल्य वस्तुओं के जो आकार बने हुए थे वे चन्द्रकान्त आदि मणियों से, मुक्तियों से, प्रवालों

लक्षणोपेती युक्त होवा गहल अे सुप्रशस्त इतुं विशिष्ट लष्ट मनोहर इतु अथवा आटलु (वशास छत्र दुर्वह थथ अवाथी अेक इ इ द्वारा धारणु योग्य न होतुं अेथी अे अनेक इ इवाणु होवाथी अे (विशिष्ट लष्ट इतु अेभा अे इंडा इता त अतिभारने अभा शकता होवाथी अति सुपुष्ट इता अने सुवर्णु निर्मित इता (मिउराययवट्ट लट्ट अरविदकण्णिय असमाणरूवं) अे छत्र उन्नत अने गोल इतु अेथी अेना आकार आदीथी निर्मित मृदुगोल कभणनी कर्णिका अेवे इते। (वत्थिपपसे अ पजरविराइयं) अे वस्तिप्रदेशभा अेभा इ इ पराववाभा आवे अे. ते वस्ति प्रदेशभा अनेक शलाकाअेथी युक्त होवाथी पाअरा अेपुं लागतु इतु (विविधभक्तिचित्त) अे छत्रभा अनेक प्रकारना अित्रेनी रचना करवाभा आवी इती अेथी अे अतीव सोडाभणु लागतु इतु. (मणिमुत्तपवाल तत्त तवणिज्जपचव- णियधोयरय रइय) अेभा पूणु कणशाडि इय म गण वस्तुअेना अे आकार अनेला अे ते चन्द्रकान्त वगेरे भणु अेथी युक्ताअेथी, प्रवालोथी तत्त संध्याभांथी गहल कडेला

कृतानि रत्नानि प्राग् वर्णितस्वरूपाणि तैः रचितानि रूपाणि पूर्णकण्ठशादि चत्वारि महा
माङ्गल्य वस्तुनामाकाराः यत्र तत्तथा, मूले रचितशब्दस्य पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तथा
'रयणमरीई समोष्पणा कप्पकारः गुरंजिएल्लिय' रत्नमरीचिसमर्पणाकल्पकारानुरञ्जितम्
तत्र रत्नानां चन्द्रकान्तादि मणीनां मरीचि अतुलतेजः प्रभा तस्याः समर्पणा समारचना
तस्यां कल्पकाराः विधिकारिणः परिकर्मकारिण इत्यर्थः विशिष्टशोभाकारिणः तरनुसम्प्र-
दायक्रमं रञ्जितं यथोचितस्थाने रङ्गदानात् मकारोऽलाक्षणिकः तथा 'रायलच्छिचिंध' राजल
क्ष्मीचिन्हयुक्तम् 'अञ्जुणसुवण्णपडुरपच्चत्थुअपट्टदेशभागं' अर्जुनसुवर्णपाण्डुरप्रत्यवस्थितपट्टदेश-
भागम्' तत्र अर्जुनाभिधेयं नामकं यत्पाण्डुरसुवर्णं तेन प्रत्यवस्थितः-आच्छादितः पृष्ठभागो
यस्य तत्तथा, पाण्डुरशब्दस्य पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात् 'तद्देव तवणिज्जपट्टधम्मंतपरि-
गयं' तथैव तपनीयपट्टध्मायमानपरिगतम्, तत्र तथैव विशेषणान्तरप्रारम्भे ध्मायमानं
तत्कालध्मातं तत्कालतापितं यत्तपनीय सुवर्णं तस्य पट्टः तेन परिगतं परिवेष्टितम् चतु-
र्ष्वपि प्रान्तेषु रक्तसुवर्णपट्टा योजिताः सन्तीतिभावः अत्र ध्मायमानशब्दस्य पदव्यत्ययः
प्राकृतत्वात् अत एव 'अहिय सस्सिरीयं' अधिक सश्रीकम्-बहुशोभापम्पन्नम्, तथा 'सार-
यरयणियरविमलपडिपुण्णचंदमंडलसमाणरूवं' शारदरजनिकरविमलप्रतिपूर्णचन्द्रमण्डल
समानरूपम्, तत्र शारदः शरत्कालिको यः रजनिकरः चन्द्रः तद्वद्विमलं निर्मलम् अतएव
प्रतिपूर्णचन्द्रमण्डलसमानरूपं शारधपूर्णमावदुज्ज्वल ततो विशेषणसमासः 'णरिंद्वास-
प्पमाणपगइवित्थंडं' नरेन्द्रव्यामप्रमाणप्रकृतिविस्तृतम्, तत्र नरेन्द्रः भरतस्तस्य व्यामः

से, तस-सांचे में से निकले गये सुवर्ण से एव शुक्ल नीलपीत आदि पंचवर्णों से तथा शण
पर कसकर दीति शाली किये गये रत्नों से बनाये हुए थे. (रयणमरीई समोष्पणा
कप्पकारमणुरंजिएल्लियं) इसमें जगह जगह रत्नों की किरणों की रचना करने में दक्ष
पुरुषों से क्रमशः रग भराहुआ था. (रायलच्छिचिंध, अञ्जुणसुवण्ण पडुरपच्चत्थुयपट्टदेश-
भागं) राजलक्ष्मी के इस पर चिन्ह अंकित थे अर्जुन नाम के पाण्डुर स्वर्ण से इसका
पृष्ठ देश आच्छादित था (तद्देव तवणिज्ज पट्टधम्मंतपरिगयं) इमो तरह यह चारों कोनों में
रक्तसुवर्ण पट्ट से नियोजित किया हुआ था । (अहियसस्सिरीयं) अतएव यह बहुत अधिक
सुन्दरता से युक्त बना हुआ था । (सारययणियर विमलपडिपुण्णचंदमंडलसमाणरूवं)

सुवर्णथी तेमञ्च शुक्लनील आदि पांच वर्णोंथी तेमञ्चशाष्णु उपर धनीने हीमिशाली बनावे
ला रत्नोथी बनावेला होता (रयण मरीई समोष्पणाकल्पकार मणुरंजिएल्लियं) येमां रत्नोनी
किरणोनी रचना करवाभां कुशग पुत्रोथी स्थान-स्थान उपर क्रमशः रंगभरेदो होता
(रायलच्छिचिंध अञ्जुणसुवण्णपडुरपच्चत्थुयपट्टदेशभागं) राजलक्ष्मीना येनी उपर
यिहो अंकित होता अर्जुन नामके पांडुर स्वर्णथी येना पृष्ठ भाग समाच्छादित होता
(तद्देव तवणिज्जपट्टधम्मंतपरिगयं) आ प्रभाषे ये आरे आरे भूषणोभां रक्त-सुवर्ण
पट्टथी नियोजित करवाभां आवेले हुतु (अहिय सस्सिरीयं) येथी ये अतीव मौन-द्वय
युक्त भनेले हुतु (सारययणियरविमलपडिपुण्णचंदमण्डलसमाणरूवं) शरत्काली

सर्वलक्षणोपेतत्वात् विशिष्टलघुः मनोहरः यद्वा विशिष्टः अति भारतया एकदण्डेन दुर्वहत्वात् प्रतिदण्डसहितः ईदृशश्च यो लघुः काठचनमयः सुपुष्टोऽतिधारसहस्रत्वात् दण्डो यत्र तत्, तथा, तथा 'मिउरायय वट्ट लट्ट अरविंदकण्णियसमाणरुवं' मृदुराजत वृत्तलघुारविन्द-कर्णिका समानरूपम्, तत्र मृदु कोमलं घृष्टमृष्टत्वात् राजतं रजतसम्बन्धि वृत्तलघु यदरविन्दं तस्य कर्णिका बीजकोशस्तेन समानं श्वेतत्वाद्वृन्तत्वाच्च रूपम् आहारो यस्य तत्तथा, तथा 'वत्थिपपसे पजरविराइयं' वस्तिप्रदेशे पठजरविराजितम् वस्तिप्रदेशो नाम छत्र-मध्यमागवर्ती दण्डप्रक्षेपस्थानरूपः तत्र पञ्जरेण पठजराकारेण विराजितम् चः समुच्चये तथा 'विविधमत्तिचित्त' विविधभक्तिचित्रम्, तत्र विविधाभिः भक्तिभिः विच्छित्तिभी-रचना प्रकारैश्चित्रं चित्रकर्म यत्र तत् तथा पुनश्च कीदृशम् 'मणिमुत्तपवालतत्तवणिज्ज पचवणिणयधोयरयणरुवरइयं' मणिमुक्ताप्रवालतत्तपनीय पठवर्णिकधौतरत्नरूपपरचित्तम्, तत्र मणयः चन्द्रकान्तादयः मुक्ताप्रवाले प्रसिद्धे तप्त मूगोत्तीर्णं यत्तपनीयं रक्त-सुवर्णं पठवर्णिकानि शुक्लनीलादिपठवर्णयुक्तानि धौतानि शाणोत्तारेण दीप्तिमति

जाने के कारण एक दण्ड के द्वारा धारण योग्य नहीं हो सकता है इसलिये एक एक दण्ड-वाला होने से यह विशिष्ट लघु था। इममें जो दण्ड लगे हुए थे वे अति भार सहनेवाले होने के कारण अति सुपुष्ट थे और सुवर्णनिर्मित थे (मिउराययवट्ट लट्ट अरविंदकण्णियस-माणरुवं) यह छत्र ऊँचा और गोल था—इसलिये इसका आकार चादी के बने हुए मृदु गोल कमल की कर्णिका के जैसा था (वत्थिपपसे अ पंजरविराइयं) यह वस्ति प्रदेश में जिसमें दण्ड पोया हुआ रहता है उस वस्ति प्रदेश में अनेक शलाकामों से युक्त हो जाने के कारण पजर के जैसा—पीजरे के जैसा—प्रतीत होता था (वि.वह मत्तिचित्त) इस छत्र में अनेक प्रकार के चित्रों की रचना हो रही थी उससे यह बड़ा सुहावना लगता था. (मणिमुत्तपवालतत्तवणिज्जपचवणिणयधोयरयणरुवरइयं) इसमें पूर्णकण्ठादिरूपमङ्गल्य वस्तुओं के जो आकार बने हुए थे वे चन्द्रकान्त आदि मणियों से, मुक्तियों से, प्रवालों

लक्षणोपेतो युक्तो होवा गहल ओ सुप्रशस्त इतु विशिष्ट लघु मनोहर इतु अथवा आटलु (वशाह छत्र दुर्वह थय अवाथी ओक दंड द्वारा धारण योग्य न होतुं अथी ओ अनेक दंडवाणु होवाथी ओ विशिष्ट लघु इतु ओमा ने दंडा इता १ अतिभारने थमी शकता होवाथी अति सुपुष्ट इता अने सुवर्ण निर्मित इता (मिउराययवट्ट लट्ट अरविंदकण्णियसमाणरुवं) ओ छत्र उन्नत अने गोल इतु अथी ओना आकार आदीथी निर्मित मृदुगोल कभणनी कर्णिका नेवे इते। (वत्थिपपसे अ पजरविराइयं) ओ वस्तिप्रदेशमा नेमा दंड पराववाभां आवे छे. ते वस्ति प्रदेशमा अनेक शलाकाओथी युक्त होवाथी पांजरा नेपु लागतु इतु (विविधमत्तिचित्त) ओ छत्रमा अनेक प्रकारना चित्रानी रचना करवाभा आवी इती अथी ओ अतीव सोढामलु लागतु इतु. (मणिमुत्तपवाल तत्त वणिज्जपचवणिणयधोयरयणरुवरइयं) ओमा पूष्णं कण्ठादि इय मणय वस्तुओना ने आकारे अनेला छे ते चन्द्रकान्त वगेरे मण्युने थी युक्ताओथी, प्रवालोथी तप्त मंयाभांथी गहल कडेला

कृतानि रत्नानि प्राग् वर्णितस्वरूपाणि तैः रचितानि रूपाणि पूर्णरत्नशादि चत्वारि महा
 माङ्गल्य वस्तुनामाकाराः यत्र तत्तथा, मूले रचितशब्दस्य पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात्, तथा
 'रयणमरीई समोष्पणा कल्पकारः गुरंजिएल्लियं' रत्नमरीचिसमर्पणाकल्पकारानुरञ्जितम्
 तत्र रत्नानां चन्द्रकान्तादि मणीनां मरीचि अतुलतेजः प्रभा तस्याः समर्पणा समारचना
 तस्यां कल्पकाराः विधिकारिणः परिकर्मकारिण इत्यर्थः विशिष्टशोभाकारिणः तरनुसम्प्र-
 दायक्रमं रञ्जितं यथोचितस्थाने रङ्गदानात् मकारोऽच्छाक्षणिकः तथा 'रायलच्छिचिंध' राजल
 क्ष्मीचिन्हयुक्तम् 'अञ्जुणसुवर्णपङ्कुरपच्चत्थु अपट्टदेवभाग' अर्जुनसुवर्णपाण्डुरप्रत्यवस्थितपट्टदेश-
 भागम्' तत्र अर्जुनाभिधेय नामकं यत्पाण्डुरसुवर्णं तेन प्रत्यवस्थितः-आच्छादितः पृष्ठभागो
 यस्य तत्तथा, पाण्डुरशब्दस्य पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात् 'तद्देव तवणिज्जपट्टधम्मंतपरि-
 गयं' तथैव तपनीयपट्टध्मायमानपरिगतम्, तत्र तथैव विशेषणान्तरप्रारम्भे ध्मायमानं
 तत्कालध्मांतं तत्कालतापितं यत्तपनीय सुवर्णं तस्य पट्टः तेन परिगतं परिवेष्टितम् चतु-
 र्ध्वपि प्रान्तेषु रक्तसुवर्णपट्टा योजिताः सन्तीतिभावः अत्र ध्मायमानशब्दस्य पदव्यत्ययः
 प्राकृतत्वात् अत एव 'अहिय सस्सिरीयं' अधिक सश्रीकम्-बहुशोभासम्पन्नम्, तथा 'सार-
 यरयणियरविमलपडिपुण्णचंदमंडलसमाणरूवं' शारदरजनिकरविमलप्रतिपूर्णचन्द्रमण्डल
 समानरूपम्, तत्र शारदः शरत्कालिको यः रजनिकरः चन्द्रः तद्वद्विमलं निर्मलम् अतएव
 प्रतिपूर्णचन्द्रमण्डलसमानरूपं शारद्यपूर्णमावदुज्ज्वल ततो विशेषणसमासः 'णरिंदवास-
 प्पमाणपगइवित्थंडं' नरेन्द्रव्यामप्रमाणप्रकृतिविस्तृतम्, तत्र नरेन्द्रः भरतस्तस्य व्यामः

से, तस-सांचे में से निकले गये सुवर्ण से एव शुक्ल नीलपीत आदि पंचवर्णों से तथा शाण
 पर कसकर दीप्ति शाली किये गये रत्नों से बनाये हुए थे (रयणमरीई समोष्पणा
 कल्पकारमणुरंजिएल्लियं) इसमें जगह जगह रत्नों की किरणों की रचना करने में दक्ष
 पुरुषों से क्रमशः रंग भराहुआ था. (रायलच्छिचिंधं, अञ्जुणसुवर्ण पंडुरपच्चत्थुयपट्टदेवस-
 भागं) राजलक्ष्मी के इस पर चिन्ह अंकित थे अर्जुन नाम के पाण्डुर स्वर्ण से इसका
 पट्ट देश आच्छादित था (तद्देव तवणिज्ज पट्टधम्मंतपरिगयं) इसी तरह यह चारों कोनों में
 रक्तसुवर्ण पट्ट से नियोजित किया हुआ था । (अहियसस्सिरीयं) अतएव यह बहुत अधिक
 सुन्दरता से युक्त बना हुआ था । (सारयरणियर विमलपडिपुण्णचंदमंडलसमाणरूवं)

सुवर्णार्थी तेमञ्ज शुक्लानील आदि पांच वर्णोंथी तेमञ्जशाणु उपर धनीने हीमिशाली बनावे
 ला रत्नोथी बनावेला हता (रयण मरीई समोष्पणाकल्पकार मणुरंजिएल्लियं) ओभां रत्नोनी
 किरणोनी रचना करवाभां कुशाण पुरुषोथी स्थान-स्थान उपर क्रमशः रंगभरेदो हते।
 (रायलच्छिचिंधं अञ्जुणसुवर्णपंडुरपच्चत्थुयपट्टदेवभागं) राजलक्ष्मीना ओनी उपर
 अहो अंकित हता अर्जुन नामक पांडुर स्वर्णार्थी ओने पृष्ठ भाग समाच्छादित हते।
 (तद्देव तवणिज्जपट्टधम्मंतपरिगयं) आ प्रभाणु ओ आरे आर भूषाओभां रक्त-सुवर्ण
 पट्टथो नियोजित करवाभां आवेदु हतु (अहिय सस्सिरीयं) ओथो ओ अनीव सो-द्वय
 युक्त अनेदु हतुं. (सारयरणियरविमलपडिपुण्णचंदमण्डलसमाणरूवं) शरत्काली

तत्र अइतं न केनापि रणे खण्डितम् तथा बहुगुणदान वहूनां गुणानाम् ऐश्वर्या-
दीनां दानं यस्मै तत्तथा, तथा ऋतूना विपरीतसुखकृतच्छायम्, ऋतूना हेमन्तादीनां
विपरीता अथवा षष्ठी षष्ठ्याः पञ्चम्यर्थे व्याख्यानेन ऋतुभ्यो विपरीता उष्णत्तो शीता
शीतत्तो उष्णा अतएव सुखकृता कृतसुखा सुखदायिनी छाया यस्य तत्तथा, अत्र कान्तस्य
परनिपातो 'जातिकालसुखादेर्नवेत्यनेन सूत्रेण विकल्पविधानात्, एतादृशं छत्ररत्नम्
छत्रेषु उत्कृष्टं प्रधानं छत्रगुणोपेतत्वात् छत्रेषु ये शुभगुणाः तैः युक्तत्वात् पुनः कीदृशम्
सुदुर्लभम् अल्पपुण्यानाम् विशिष्टपुण्यरहितानाम् ॥१॥ 'पमाण राईण तवगुणाण फलेग-
देसभागं विमाणवासे वि दुल्लहतरं' पुनः कीदृशम् प्रमाणराज्ञां तपोगुणानां फलैकदेश-
भागं विमानवासेऽपि दुर्लभतरम्, तत्र प्रमाणराजानाम् स्वस्वकालोचितशरीरप्रमाणोपेत-
राज्ञाम्, तपोगुणानां फलैकदेशभागम् अयमर्थः— चक्राधिपपूर्वाजितम् तपसां फलं सर्वस्वं
नवनिधानचतुर्दशरत्नादिषु विभक्तं तस्मात्कारणात् तदेकदेशभूतमिदं छत्ररत्नं विमान-

क्रिया है अपने आपको विशिष्ट योधा माननेवाला कोई भी रणवीर इसे रण में खण्डित नहीं कर
सकता है यही बात सूत्रकार ने अहत पद द्वारा प्रकट की है. अनेक ऐश्वर्य आदिगुणों का
यह दाता है इसके धारण करनेवाले को शीतकाल ऋतु जैसा सुख प्राप्त होता है. (छत्त-
रयण पहाणं सुदुल्लहं अल्पपुण्याण) ऐसा यह प्रधान छत्ररत्न अल्पपुण्यवाले जीवों को प्राप्त
नहीं होता है (पमाण राईण तवगुणाण, फलेगदेसभागं विमाणवासे वि दुल्लहतरं वगधारिय-
मल्लदामकलावं सारयधवल्लभरयणिगरप्पगास दिव्वं छत्तरयणं महिवइस्स धरणिमल-
पुण्णइंदो) अपने-अपने काल के अनुसार शरीर प्रमाणोपेन राजाओं के तपोगुणों का
यह एक प्रकार का फल माना गया है तात्पर्य कहने का यह है कि चक्र के अधिपतिओं
द्वारा जो पूर्व में तपस्याएँ की जाती हैं, उनका फल नौनिधि एवं चौदह रत्नादिक के रूप
से विभक्त हो जाता है—अर्थात् चक्रवर्तियों को नौनिधिया एवं चौदहरत्न प्राप्त होते हैं उन
रत्नों में यह छत्र भी एक रत्न माना गया है ऐसा यह छत्ररत्न विमानों में वास करनेवाले

योद्धाभाननार डोर्ध पणु रणुवीर आने रणुभा अडित करी शकतो नथी सूत्रकारे ओत्र वात
'अहत' पद वडे प्रकट करी छे अनेके ऐश्वर्य वगेरे शुष्णाने ओ आपनाइं छे. ओने धारणु
करनारने शीतकाणभा उष्णु ऋतुनी जेम अने उष्णु ऋतुभां शीत ऋतुनी जेम सुभ प्राप्त
थाय छे, (छत्तरयणं पहाणं सुदुल्लहं अल्पपुण्याण) ओर्धु ओ प्रधान छत्ररत्न अल्प पुष्णुओदय
वाण. एवात्माओने प्राप्त थतुं नथी. (पमाणराईण तव गुणाण फलेगदेसभागं विमाणवासे
वि दुल्लहतर वगधारियमल्लदामकलावं सारय धवल्लभरयणिगरप्पगास दिव्वं छत्तरयणं
महिवइस्स धरणिमलपण्णइंदो) योत-योताना काण सुभ्रभ शरीर प्रमाणोपेत रत्नओना
तपोशुष्णानु ओ ओके अतनु इण भानवामां आवे छे. कडेवातु तात्पर्य आ प्रमाणु छे के
अकेना अधिपतिओ वडे जे पूर्वभां तपस्याओ आचरवामा आवे छे, तेभनु इण नवनिधि
अने अतुर्दश रत्नादिकना, इपमा विभक्त थर्ध नय छे. ओटवे के अकेवतीओने नवनिधि
ओ अने अतुर्दश रत्ना प्राप्त थाय छे ते रत्नाभा ओ छत्रने पणु ओक रत्न-मानवामां आवे

તિર્યક્ પ્રસારિતોભયબાહુપ્રમાણો માનવિશેષસ્તેન પ્રમાણેન પ્રકૃત્યા સ્વભાવેન વિસ્તૃ-
તમ્ તથા 'કુમુદસંહધવલં' કુમુદસંહધવલમ્ તત્ર કુમુદાનિ-ચન્દ્રવિકાશીનિ શ્વેતકમલાનિ
તેષાં ષ્ણ્વો વનં તદ્વત્ ધવલમ્ 'રણ્ણો સંચારિમં વિમાણં' રાજ્ઞો ભરતસ્ય 'સંચારિમં ત્તિ'
સશ્ચરણશીલં જન્મ વિમાનમ્ આશ્રયિણાં સુખાવહત્વાત્ તથા 'સૂરાતવવાયવુદ્ધિદોસાણય-
સ્વયકરં' સૂરાતવવાતવૃષ્ટિદોષાણાં ચ ક્ષયકરમ્, તત્ર સૂરાતવવાતવૃષ્ટયઃ પ્રસિદ્ધાસ્તાસાં
યે દોષાસ્તેષાં ક્ષયકરમ્, એતચ્છત્રચ્છાયસમાશ્રિતાનાં ઠિ વિષાદિ દોષા અપિ ન પ્રભવન્તી-
તિભાવઃ, 'તવ ગુણેઠિં લઘ્વં' તપોગુણેઃ-પૂર્વજન્માર્ચીર્ણતપોગુણમહિમ્ના લઘ્વં ભરતે
નેતિ, અથ ગાથા પ્રબન્ધેન વિશેષણાન્યાહ-સૂત્રકારઃ

અહયં બહુગુણદાણં ઉચ્ચુણ વિવરીય સુહકયચ્છાયં ।

છત્તરયણં પઠાણં સુદુલ્લહ અપ્પપુણ્ણાણ ॥૧॥

છાયા - અહતં બહુગુણદાનમ્ શ્વેતુનાં વિપરીતસુખકૃતચ્છાયમ્ ।

છત્તરેત્તં પ્રધાનં સુદુર્લભમલ્પપુણ્યાનામ્ ॥૧॥

શરત્કાલીન વિમલ પ્રતિપૂર્ણ ચન્દ્રમણ્ડલ કે જૈસા હસકા રૂપ યા । (ખરિંદવામપ્પમાણ પગહવિત્થઈ)
હસકા સ્વાભાવિક વિસ્તાર-નરેન્દ્ર ભરત કે દ્વારા ફેલાયે ગયે દોનો હાથો કે વરાવર યા ।
સાધિક દ્વાદશયોજન ક્રા જો પ્રમાણ હસકા કથન ક્રિયા ગયા હૈ વહ કારણ પાકર યહ
ઇતના અધિક ફેલ જાતા હૈ । હમ અપેક્ષા કહા ગયા હૈ । (કુમુદસંહધવલ, રણ્ણો સંચારિમં-
વિમાણં સુગતવવાયવુદ્ધિદોસાણં ય સ્વયકરં તવગુણેઠિલઘ્વં-અહયં બહુગુણદાણં ઉચ્ચુણ વિવરીય સુહ-
કયચ્છાયં) કુમુદ કે વન કે જૈસે ધવલ યા મહારાજા ભરત કા યહ સચરણશીલ વિમાન
સ્વરૂપ યા સૂર્ય તાપ વાત ઓર વૃષ્ટિ કે દોષો કા વિનાશક યા. અથવા-સૂર્યતાપ વાત ઓર વૃષ્ટિ
કા ઇવં વિષાદિ જન્ય દોષો કા યહ વિનાશ કરને વાલા યા ક્યોકિ હસકો છાયા મેં આશ્રિત
હુપ પ્રાણિયો કે વિષાદિજન્ય સવ દોષ શાન્ત હો જાતે હૈં. વે કુલ્લ મી અપના પ્રમાવ નહીં
દિલ્લા સકતે હૈ ભરત ને હસે પૂર્વજન્મ મેં આચરિત ક્રિયે ગયે તપોગુણ કે પ્રમાવ સે લઘ્વ

વિમલં પ્રતિપૂર્ણ ચન્દ્રમ ડળ જેવુ એવું રૂપ હતું (ખરિંદવામપ્પમાણપગહવિત્થઈ) એને
સ્વાભાવિક વિસ્તાર નરેન્દ્રભરત વડે પ્રસૂત બને હાથોની ખરાબર હતો. સાધિક દ્વાદશયોજ
નતુ જે પ્રમાણ છત્તરેત્તં વિષેશ્વન કરવામાં આવેલ છે તે કારણ ઉપસ્થિત થતાં જ એ
આટલુ બધુ વિસ્તૃત થઈ બન્ય છે એ અપેક્ષાએ કહેવામાં આવેલ છે (કુમુદસંહધવલ
રણ્ણો સંચારિમં વિમાણં સૂરાતવવાયવુદ્ધિદોસાણં ય સ્વયકરં તવગુણેઠિલઘ્વં અહયં બહુગુણ
દાણ ઉચ્ચુણ વિવરીય સુહકયચ્છાયં) કુમુદવન જેવું એ ધવલ હતું. રાજા ભરતનું એ સચ-
રણશીલ વિમાનસ્વરૂપ હતું. સૂર્યતાપ, વાત અને વૃષ્ટિના દોષોનું એ વિનાશ કરનાર હતું.
અથવા સૂર્યતાપ, વાત અને વૃષ્ટિને તેમજ વિષાદિજન્ય દોષોને એ વિનષ્ટ કરનાર હતું.
કેમકે એની છાયામાં આશ્રિત થયેલાં પ્રાણીઓના વિષાદિ જન્ય સર્વદોષો શાન્ત થઈ બન્ય
છે તેઓ સ્વસ્થમાત્રામાં પણ પોતાનો પ્રભાવ બતાવી શકતા નથી ભરતે એને પૂર્વજન્મમાં
આચરિત કરવામાં આવેલા તપોગુણના પ્રભાવથી ઉપલબ્ધ કરેલું છે પોતાની બાતને વિશિષ્ટ

તત્ર અહતં ન કેનાપિ રણે સ્વખિંદતમ્ તથા વહુગુણદાનં વહૂનાં ગુણાનામ્ એશ્વર્યા-
 દીનાં દાનં યસ્મૈ તત્તથા, તથા ઋતૂનાં વિપરીતસુખકૃતચ્છાયમ્, ઋતૂનાં હેમન્તાદીનાં
 વિપરીતા અથવા ષષ્ઠી ષષ્ટ્યાઃ પશ્ચમ્યર્થે વ્યાખ્યાનેન ઋતુભ્યો વિપરીતા ઉષ્ણર્ત્તો શ્વીતા
 શીતર્ત્તો ઉષ્ણા અતએવ સુખકૃતા કૃતસુખા સુખદાયિની છાયા યસ્ય તત્તથા, સૂત્ર કાન્તસ્ય
 પરનિપાતો 'જાતિકાલસુખાદેર્નવેત્યનેન સૂત્રેણ વિકલ્પવિધાનાત્, ઇતાદૃશં છત્રરત્નમ્
 છત્રેષુ ઉત્કૃષ્ટં પ્રધાનં છત્રગુણોપેતત્વાત્ છત્રેષુ યે શુભગુણાઃ તૈઃ યુક્તત્વાત્ પુનઃ કીદૃશમ્
 સુદુર્લભમ્ અલ્પપુણ્યાનામ્ વિશિષ્ટપુણ્યરહિતાનામ્ ॥૧॥ 'પમાણ રાઈણ તવગુણાણ ફલેગ-
 દેસભાગં વિમાણવાસે વિ દુલ્લહતરં' પુનઃ કીદૃશમ્ પ્રમાણરાજ્ઞાં તપોગુણાનાં ફલૈકદેશ-
 ભાગં વિમાણવાસેઽપિ દુર્લભતરમ્, તત્ર પ્રમાણરાજાનામ્ સ્વસ્વકાલોચિતશરીરપ્રમાણોપેત-
 રાજ્ઞામ્, તપોગુણાનાં ફલૈકદેશભાગમ્ અયમર્થઃ— ચક્રાધિપૂર્વાર્જિતમ્ તપસાં ફલં સર્વસ્વં
 નવનિધાનચતુર્દશરત્નાદિષુ વિભક્તં તસ્માત્કારણાત્ તદેકદેશભૂતમિદં છત્રરત્નં વિમાન-

ક્રિયા હૈ અપને આપકો વિશિષ્ટ યોધા માનનેવાલા કોહ મી રણવીર હસે રણ મેં સ્વખિંદત નહીં કર
 સકતા હૈ યહી બાત સૂત્રકાર ને અહત પદ દ્વારા પ્રકટ કી હૈ. અનેક એશ્વર્ય આદિગુણોં કા
 યહ દાતા હૈ હસકે ધારણ કરનેવાલે કો શીતકાલ ઋતુ જૈસા સુખ પ્રાપ્ત હોતા હૈ. (છત્ત-
 રયણ પહાણં સુદુલ્લહ અલ્પપુણ્યાણ) એસા યહ પ્રધાન છત્રરત્ન અલ્પપુણ્યવાલે જીવોં કો પ્રાપ્ત
 નહીં હોતા હૈ (પમાણ રાઈણ તવગુણાણ, ફલેગદેસભાગં વિમાણવાસે વિ દુલ્લહતરં વઘારિય-
 મલ્લદામકલાવં સારયઘવલ્લભરયણિગરપ્પગાસ દિવ્વં છત્તરયણં મહિવહસ્સ ધરણિમલ-
 પુણ્યહંદો) અપને-અપને કાલ કે અનુસાર શરીર પ્રમાણોપેન રાજાઓં કે તપોગુણોં કા
 યહ એક પ્રકાર કા ફલ માના ગયા હૈ તાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ ચક્ર કે અધિપતિઓં
 દ્વારા જો પૂર્વ મેં તપસ્યાઈ કો જાતી હૈ, ડનકા ફત્ર નૌનિધિ એવ ચૌદહ રત્નાદિક કે રૂપ
 સે વિભક્ત હો જાતા હૈ—અર્થાત્ ચક્રવર્તિયો કો નૌનિધિયા એવ ચૌદહરત્ન પ્રાપ્ત હોતે હૈ ડન
 રત્નો મેં યહ છત્ર મી એક રત્ન માના ગયા હૈ એસા યહ છત્રરત્ન વિમાનો મેં વાસ કરનેવાલે

પોદ્ધામાનનાર કોઈ પણ રણવીર આને રણુમા ખડિત કરી શકતો નથી સૂત્રકારે એજ વાત
 'અહત' પદ વડે પ્રકટ કરી છે અનેક એશ્વર્ય વગેરે ગુણોને એ આપનાર છે. એને ધારણ
 કરનારને શીતકાળમાં ઉષ્ણ ઋતુની જેમ અને ઉષ્ણ ઋતુમાં શીત ઋતુની જેમ સુખ પ્રાપ્ત
 થાય છે, (છત્તરયણં પહાણં સુદુલ્લહં અલ્પપુણ્યાણ) એવુ એ પ્રધાન છત્રરત્ન અલ્પ પુણ્યોદય
 વાળા જીવાત્માઓને પ્રાપ્ત થતું નથી. (પમાણરાઈણ તવ ગુણાણ ફલેગદેસભાગં વિમાણવાસે
 વિ દુલ્લહતરં વઘારિયમલ્લદામકલાવં સારય ઘવલ્લભરયણિગરપ્પગાસ દિવ્વં છત્તરયણં
 મહિવહસ્સ ધરણિમલ્લવણ્યહંદો) પોત-પોતાના કાળ સુજ્ઞ શરીર પ્રમાણોપેત રાજાઓના
 તપોગુણોં એ એકે જાતનું કેળ માનવામાં આવે છે. કહેવાનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણુ છે કે
 એકના અધિપતિઓ વડે જે પૂર્વમાં તપસ્યાઓ આવરવામાં આવે છે, તેમનું કેળ નવનિધિ
 અને ચતુર્દશ રત્નાદિકના, રૂપમાં વિભક્ત થઈ જાય છે. એટલે કે એકવર્તીઓને નવનિધિ
 ઓ અને ચતુર્દશ રત્નો પ્રાપ્ત થાય છે તે રત્નોમાં એ છત્રને પણ એક રત્ન-માનવામાં આવે

वासैऽपि देवत्वेऽपि दुर्लभतरम्, तत्र चक्रवर्तित्वस्यासम्भवात्, तथा 'वगधारिभ्रम-
ल्लदामकलाव' प्रलम्बितमल्लदामकलापम् तत्र 'वगधारिभ्रम' प्रलम्बितो लम्बमानार्थवा-
चकः लम्बतयाऽवलम्बितो माल्यदाम्नां पुष्पमालानां कलापः समूहो यत्र तत्तथा, सर्वतः
पुष्पमालावेष्टित इत्यर्थः, तथा- 'सारथ धवलभ्रमरयणिगरूपगासं' शारदधवलभ्रमरजनिकर-
प्रकाशम्, तत्र शारदानि- शरत्कालिकानि धवलानि अभ्राणि वार्दलानि तद्वत् प्रकाशः-
उद्द्योतो यस्य तत्तथा 'दिव्यं छत्ररथं महिवडसस धरणियलपुण्ड्रदो' पूर्वोक्त सर्ववि-
शेषणविशिष्टम् दिव्यं सहस्रदेवाधिष्ठितं छत्ररत्नं महीपतेः भरतस्य धरणितलस्य पूर्णेन्दु-
रिभ्र- पूर्णचन्द्र इव पूर्णेन्दु वर्त्तते । 'तएणं से दिव्वे छत्ररथे भरहेण रण्णा परामुट्टे स-
माणे खिप्पामेव दुवालसजोयणाइं पवित्थरइ साहियाइं तिरियं' ततः खलु तत् दिव्यं
छत्ररत्नं भरतेन राज्ञा परामुष्टं स्पृष्टं गृह्यते सत् सिप्रमेय द्वादशयोजनानि अष्टाचत्वारिं-
शत् क्रोशान् साधिकानि तिर्यक् प्रविस्तृणाति, साधिकत्वं परिपूर्णचर्मरत्नविधायक-
त्वेन, अन्यथा किरातकृतवृष्ट्युपद्रवः स्वसैन्यस्य दुर्वारः स्यादिति । सू० २०॥

अथ छत्ररत्न प्रविस्तरणानन्तरं भरतो यत् कृतवान् तदाह- "तए णं से" इत्यादि ।

देवों को अत्यन्त दुर्लभ कहा गया है, क्योंकि वहां पर चक्रवर्तित्व पद को प्राप्ति होती नहीं
मानी गई है, यह छत्ररत्न पुष्पों की मालाओं से युक्त रहता है-अर्थात् इसके ऊपर चारों
ओर लम्बी २ पुष्पों की मालाएं लटकती रहती हैं । इसका उद्योत शरत्कालिक धवल मेघों
के- जैसा तथा शरत्कालिक चन्द्र के जैसा है. ऐसा यह पूर्वोक्त विशेषणोंवाला छत्र रत्न
महोपति राजा का, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो यह धरणितल का पूर्णचन्द्रमण्डल ही है ।
इस छत्ररत्न की रक्षा करनेवाले एक देव होते हैं । (तएणं से दिव्वे छत्ररथे भरहेण रण्णा
परामुट्टे समाणे खिप्पामेव दुवालसजोयणाइं पवित्थरइ साहियाइं तिरियं) जब भरत राजा
ने इस छत्र को छुआ-तो शीघ्र ही कुछ अधिक १२ योजन तक तिरछे रूपमें विस्तृत
हो गया -ऊपर तन गया-॥सू०२०॥

छत्ररत्न के विस्तृतहो जाने के बाद भरत ने क्या क्रिय इसका वर्णन-

छे. ओदुं ओ छत्ररत्न विमानोभां वास करनारा देवेने पणु अत्यत दुर्लभ कहेवाभा आ-
वेद छे केमके देवेने अकवर्तित्वपदनी प्राप्ति थती नथी त्यां ओ छत्ररत्न पुष्पमाणाओथी
युक्त रहे छे ओटले के ओनी उपर थोभेर दांणी-दांणी पुष्पानी माणाओ लटकती रहे छे
ओने उद्योत शरत् कालिक धवल मेघो जेयो तथा शरत् कालिक चन्द्र जेयो डोय छे, ओदु
ओ पूर्वोक्त विशेषणोंवाला महीपति भरतनु छत्ररत्न ओदुं लागतु छुट्टे के लणु ओ धरणि
तलतु पूर्णचन्द्रमण्डल ज न डोय, ओ छत्ररत्ननी रक्षा करनारा ओके उलार देवे डोय छे,
(तएण से दिव्वे छत्ररथे भरहेण रण्णा परामुट्टे समाणे खिप्पामेव दुवालसजोयणाइ
पवित्थरइ साहियाइं तिरियं) भरत राजा ओ ओ छत्रने रूपथं कथे के तरत ज ओ कथे
वधारे १२ थो ज न सुधी वकाशरभां विस्तृत थथे गथुं-उपर आच्छादित थथे गथुं ॥२०॥

मूलम्- तएणं से भरहे राया छत्तरयणं खंधावारस्सुवरिं ठवेइ,
 ठवित्ता मणिरयणं परामुसइ वेढो जाव छत्तरयणस्स वत्थिभागंसि ठवेइ,
 तस्स य अणतिवर चारुखं सिलणिहि अत्थमंत मेत्त सालि जय गोहु
 ममुग्गमासतिलकुलत्थ सड्ढिग निप्पावचणगकोइव कोत्थुंभरिकंगुवरग-
 रालग अणेग धण्णावरणहारिअग अल्लगमूलगहलिहलाउअतउसतुंत्र-
 कालिगकविट्ठ अंब अंबिलिअ सब्बणिप्पायए सुकुसले गाहावइरयणेत्ति
 सब्बजणवोस्सुअगुणे । तए णं से गाहावइरयणे भरहस्स रण्णो तद्वि-
 सप्पइण्णणिप्पाइअपूइआणं सब्ब धण्णाणं अणेगाइं कुंभसहस्साइं उवट्ठ-
 वेत्ति, तए णं से भरहे राया चम्मरयणसमारूढे छत्तरयणसमोच्छन्ने मणि-
 रयणकउज्जोए समुग्गयभूएणं सुहं सुहेणं सत्तरत्तं परिवसइ- 'णवि से
 खुहा णविलिअं णेव भयं णेव विज्जए दुक्खं । भरहाहिवस्स रण्णो खंधा-
 वारस्स वि तहव ॥सू० २१॥

छाया- ततः खलु स भरतो राजा छत्ररत्नं स्कन्धावारस्यां परि स्थापयति स्थापयि-
 त्वा मणिरत्नं परामृशति वेष्टको धावत् छत्ररत्नस्य वस्तिभागे स्थापयति, तस्य च अन्-
 तिवर चारुरूपम् शिलानिहितार्थवन्मात्रं शालि 'शिलानिहितास्तमयन्मित्रशालि' वा यावद्
 गोधूममुद्गमाषतिलकुलत्थषण्डिकनिष्पावचणककोद्रवकुस्तुम्भरो कङ्क वरट्टारालकानेकधान्य
 वरण हरितकार्दकमूलक हरिद्रालावुक त्रपुषतुम्बकलिङ्गकपित्थामाम्लिक सर्वं निष्पादकम्,
 सुकुशलं सर्वजनविश्रुतगुणम् । ततः खलु तत् गृहपतिरत्न भरतस्य राज्ञः तद्वित्तप्रकार्णे
 निष्पादितं पूतानां सर्वधान्यानामनेकानि कुम्भसहस्राणि उपस्थापयति, ततः खलु स भरतो
 राजा चर्मरत्नसमारूढः छत्ररत्नसमवच्छन्नः मणिरत्नकृतोद्योतः समुद्गकेभूत इव सुखं
 सुखेन सत्तरात्रं परिवसति नापि तस्य क्षुत् नव्यलीकं नैव भयं नैव विद्यते दुःखम्, भरता-
 धिपस्य राज्ञः स्कन्धावारस्यापि तथैव ॥सू० २१॥

टीका- "तएणं से" इत्यादि । 'तए णं से भरहे राया छत्तरयणं खंधावारस्सुवरिं
 ठवेइ' ततः खलु स भरतो राजा छत्ररत्नं स्कन्धावारस्य नियमितस्थानस्थितद्वादशयो-

'तएणं से भरहे राया छत्तरयणं खंधावारस्सुवरिं ठवेइ' इत्यादि सूत्र - २१-

टीकार्थ- 'तएणं से भरहे राया छत्तरयणं खंधावारस्सुवरिं ठवेइ' इस तरह भरत महाराजा

छत्ररत्नं निस्तृतं यथु त्थार भाह भरते शुं कथुं-ते विशेषेण-

'तएणं से भरहे राया छत्तरयणं खंधावारस्सुवरिं ठवेइ' इत्यादि सूत्र-२१॥

टीकार्थ- (तएणं से भरहे राया रयणं खंधावारस्सुवरिं ठवेइ) भा प्रभ. ७७ भरतराजो

जनावधिकसैन्यसमूहस्योपरि स्थापयति 'ठवित्ता मणिरयणं परामुसइ' स्थापयित्वा मणिरत्नं पामृशति-स्पृशति गृह्णाति 'वेदो जाव त्ति' अत्र मणिरत्नस्य चेष्टको वर्णको यावदिति सम्पूर्णा वक्तव्यः पूर्वोक्तः, स च 'तोतं चउरंगुलप्पमाणं' इत्यादिकः 'परामुसित्ता' परामृश्य 'छत्तरयणस्स वत्थिभाग ठवेइ' चर्मरत्नच्छत्ररत्न सम्पुटमिलननिरुद्ध सूर्यचन्द्राद्यालाके सैन्येऽहर्निशमुद्योतार्थं छत्ररत्नस्य वस्तिभागे अत्र वस्ति शब्देन अवयवरूपोऽर्था गृह्यते तेन छत्रस्य अवयवविशेषे शलाकामध्यभागे मणिरत्नं स्थापयति, नन्वेवं सकलसैन्यानामवरोधे जाते सति कथं तेषां भोजनादि विधिरित्याशङ्कमानं प्रत्याह- गृहपतिरत्नं सर्वमत्र पानादिकं निष्पाद्य सर्वा भोजनव्यवस्थां करोतीति अत्रे

ने जब अपने स्कन्धावार के ऊपर छत्ररत्न को तान दिया- तब इसके बाद उसने (मणिरयणं परामुसइ) मणिरत्न का उठाया (वेदो जाव छत्तरयणस्स वत्थिभागास ठवेइ) इस मणिरत्न का यहां सम्पूर्णवर्णकपाठ " तातं चउरंगुलप्पमाणं" यहा तक जैसा पहले कहा गया है वैसा ही कहना चाहिए- उस मणिरत्न का उठा करके उसे उसने छत्ररत्न के वस्तिभाग में- शलाकाओं के मध्य में रख दिया कि चर्मरत्न- आर छत्ररत्न के परस्पर में मिल जाने से उस समय सूर्य और चन्द्र का प्रकाश निरुद्ध हो गया था इसलिये सैन्य में अहर्निश प्रकाश बना रहे इस आशय से उसने मणिरत्न को छत्ररत्न को शलाकाओं के मध्यभाग में रख दिया (तस्सय अणतिवरं चारुरुव सिलणिहि अत्थमत मेत्तसालि जव गोहम सुग्ग मास तिलकुलत्थ सट्टुगानप्फवचणगकोहव कोथुमारकंगुवरगरालग अणेगवण्णावरण हारिअगअल्लग मूळगाहल्लिहाउमतउस तुव कालिग कविट्ट अंबअंबिलिअ सच्चणिप्फायप) अब सूत्रकार चक्रवर्ती के सैन्य को भोजनादिविधि की व्यवस्था करने वाले गृहपतिरत्न के सम्बन्ध में यहां से यह कथन प्रारम्भ करते हैं- इसमें ऐसा कहा गया है कि चक्रवर्ती के पास एक गृहपतिरत्न भी होता है

अथारे पोताना रुक्धावारणी उपर छत्ररत्न ताष्ठी दीधु त्थारे तेष्से (मणिरयणं परामुसइ) मणिरत्न ने उठोयु. (वेदो जाव छत्तरयणस्स वत्थिभागासि ठवेइ) ओ मणिरत्न विशेष अही सम्पूर्ण वर्णक पाठ 'तोतं चउरंगुलप्पमाणं' अही सुधी नेम कडेवाभां आयुं' छे, तेरुं अ समज्जुं जेधुं ओ ते मणिरत्नने उठावीने तेष्से ते मणिरत्नना वस्तिभागभां-शलाकाओना मध्यभा भूमी दीधु केमके अमरत्न अने छत्ररत्नने परस्पर भगवाथी ते समये सूर्य अने चन्द्रने प्रकाश रोकाओ गये। हतो ओथी सैन्यभां अहर्निश प्रकाश क्षयम रहे ते भाटे तेष्से मणिरत्नने छत्ररत्ननी शलाकाओना मध्यभागभा भूमी दीधु हतुं. (तस्सय अणति वरं चारुरुव सिलणिहि अत्थमत मेत्तसालि जव गोहम सुग्ग मास तिलकुलत्थ सट्टुगानप्फवचणगकोहव कोथुमारकंगुवरगरालग अणेगवण्णावरण हारिअगअल्लग मूळगाहल्लिहाउमतउस तुव कालिग कविट्ट अंबअंबिलिअ सच्चणिप्फायप) हवे सूत्रकार चक्रवर्तीना सैन्यनी भोजनादि विधिनी व्यवस्था करनेपर गृहपति रत्नना अर्थभां अहीथी कथन प्रारंभ करे छे ओ कथनभां आ प्रभाषे कडेवाभां आयुं छे के चक्रवर्तीनी पास ओक गृहपतिरत्न होय छे अने ओ रत्न अक्षवर्तीना विशाल सैन्य

વક્ષ્યતે તાદૃશ ગૃહપતિરત્નસ્યૈવ વિશેષણાનિ દર્શયિતું પ્રથમમનતિવર વિશેષણં દર્શયન્નાહ
 'તસ્ય ચ અણતિવરં' इत्यादि, इदं च अनतिवरम् इत्यादि पदम् अग्रे वक्ष्यमाणगृहपति रत्न-
 पदस्य विशेषणम् तथा च तस्य च भर्तस्य अनतिवरम्-अतिवरम्-अतिप्रधानं वस्तु
 अपरं नास्ति यस्मात् तच्चथा सर्वोत्कृष्टमित्यर्थः; तथा 'चारुखं' चारुरूपम्-प्रसिद्धम् अतीव
 सुन्दराकृतिकं गृहपतिरत्नं कतिविधानि अत्रानि निष्पादयति तत्राह-'सिलणिहि अ अत्थ-
 मंत मेत् सालि जवगोहूममुमामासतिलकुलत्थसद्विगनिष्पावत्णगक्रोद्दवकोत्थुंभरिकंगुवर-
 गराळ्य अणेगधण्णावरणहारिअग अल्लगमूलग इल्लिदळाउअतउसतुंबकाळिग कविद्व अंब
 अंबिल्लिअ सव्व णिष्कायए' शिलानिहितार्थं यन्मात्र 'अस्तमन्मित्र' वा शालि जव गोधूम-
 मुद्रमाषतिलकुलत्थषष्टिकनिष्पावचणकक्रोद्रव कुस्तुम्भरीकहु 'वरग' वरट्ट राळकाने-
 कधान्यावरणहारितकार्द्रकमूलकहरिद्राऽलाबुक त्रपुपतुंबकलिङ्गकपित्यान्न इम्मिक सर्वनिष्पा-
 दकम्, तत्र शिला इव शिला अतिस्थिरत्वेन चर्मरत्नं तत्र निहितमात्राणां उप्पमात्राणां
 न तु लोकप्रसिद्ध भूमिखेटनप्रभृति कर्मसापेक्षाणाम् 'अत्थमंत त्ति' अर्थवतां प्रयोजना-
 र्थिनां भोजनादियोग्यानां शाल्यादीनां निष्पादकमित्यग्रे सम्बन्धः शाल्यादीनाम्
 'अत्थमंतमेत् त्ति' अस्तमयति मित्रे सूर्ये सायंकाले इत्यर्थः, उभयत्र व्याख्याने सूत्रे

और वही चक्रवर्ती के इस विशाल सैन्य के भोजनादिकी सुचारु रूपसे व्यवस्था करता है यह
 गृहपतिरत्न अनतिवर- होता है- इसके जैसा और कोई श्रेष्ठ नहीं होता अर्थात् यह सर्वोत्कृष्ट
 होता है तथा यह रूप में भी बड़ा ही सुन्दर होता है यह इतने प्रकार के अन्न को पकाता है
 पैदा करता है जैसे "सिलणिहि" आदि यह पढिळे प्रकट कर दिया गया है कि प्रातः काल तो
 चर्मरत्न पर अन्न बोया जाता और शाम को वह काट लिया जाकर खाने के योग्य बना दिया
 जाता है "सिलणिहि अत्थमंतमेत्सालि" यहां "शिलापद" से चर्मरत्न गृहीत हुआ है क्योंकि
 अतिस्थिर होने से वह शिला के जैसी एकशिला को मानलिया गया है इस चर्मरत्न पर ही
 बीज बोया जाता है जैसा कि लोक में भूमिका जोतना आदिरूप- कार्य किया जाता है
 ऐसा यहां कुछ भी नहीं किया जाता है यहां तो सिर्फ बीज उसमें डाला कि इतने ही

भाટે લોજનાહિની સુવ્યવસ્થિત રીતે વ્યવસ્થા કરે છે એ ગૃહપતિરત્ન અનતિવર હોય છે
 એના જેવું બીજું કોઈ પણ શ્રેષ્ઠ હોતું નથી એટલે કે એ રત્ન સર્વોત્કૃષ્ટ હોય છે તેમજ
 એ રૂપમાં પણ અતીવ સુંદર હોય છે એ એટલી જાતના અન્નોને પકવે છે-ઉત્પન્ન કરે
 છે. એમકે-'સિલાણિહિ' વગેરે એ બધા અન્નો વિષે એ સુત્રમાંજ પહેલા અર્થા કરવામાં
 આવી છે એ આ પ્રમાણે રત્નની એ વિશેષતા છે કે સવારે એ ચર્મરત્ન ઉપર અન્ન વાવ
 વામાં આવે છે અને સંધ્યાકાળે તેની લક્ષણી કરવામાં આવે છે અને તે લોજન યોગ્ય થઈ
 જાય છે 'સિલાણિહિ અત્થમંતમેત્સાલિ' અહીં શિલા પદથી ચર્મરત્ન ગૃહીત થયેલું છે.
 કેમકે અતિસ્થિર હોવા બદલ આ શિલા જેવી એક શિલા માની લેવામાં આવી છે. એ ચર્મ
 રત્ન ઉપર જ બી વાવવામાં આવે છે એમ લોકમાં ભૂમિ વગેરે ને ખેડીને બી વાવવામાં આવે
 છે, એવું કંઈ પણ અહીં કરવામાં આવતું નથી. એની ઉપર તો બી નાખ્યું કે આટલાથી

પદવ્યસ્યયેન નિર્દેશઃ પ્રાકૃતત્વાત્ પ્રથમપ્રહરે વપતિ દ્વિતીયપ્રહરે સિંચતિ તૃતીય પ્રહરે પરિપાચયતિ ચતુર્થ પ્રહરે નિષ્પાદિતમન્નપાનાદિકમુપભોગાય સર્વત્ર પ્રેપયતીતિભાવઃ । તત્ર શાલયઃ યવાઃ હયપ્રિયાઃ ગોધૂમાઃ મુદ્રાઃ માપાસ્તિલાઃ કુલ્ત્યાઃ પ્રસિદ્ધા દ્વા ષષ્ટિકાઃ ષષ્ટચહોરાત્રૈઃ પરિપચ્ચમાના સ્તન્દુલાઃ નિષ્પાવાઃ ધાન્યવિશેષાઃ વલ્લાઃ ચ-
ળકાઃ કોદ્રવાઃ પ્રસિદ્ધાઃ 'કોત્યુ મરિત્તિ' કુસ્તુમ્ભર્યો ધાન્યવિશેષાઃ કઙ્ગુ ધાન્યવિ-
શેષાઃ બૃહચ્ચિરસ્કાઃ 'વરગ ત્તિ' વરદ્વાઃ રાલકાઃ ધાન્યવિશેષાઃ અલ્પશિરસ્કાઃ ઉપલક્ષ-
ણાત્ મહૂરાદયોઽન્યેઽપિ ધાન્યમેદાઃ ગ્રાહ્યાઃ, અનેકાનિ ધાન્યા इति ધાન્યાપત્રાણિ વરણો
વનસ્પતિવિશેષઃ તત્પત્રાણિ પત્તપ્રમૃતીનિ યાનિ હરિતકાનિ પત્રશાકાનિ મેઘનાદવાસ્તુલ-

માત્ર સે વહ સવ ફૂલ પક કર શામતક તૈયાર હો ગયા ઓર ફિર વહ ભોજન કે યોગ્ય
વન ગયા હસ તઘ કા યહ સવ કામ ગૃહપતિરત્ન કે હી આધીન હોતા હૈ યહી વાત
“ચર્મરત્ને ચ સુક્ષેત્ર હ્વોત્પત્તિ દિવામુલ્લે, સાય ધાન્યાન્યજાયન્ત ગૃહિરત્નપ્રમાવત.” હસ શ્લોક
દ્વારા હૈમચન્દ્રાચાર્ય ને પ્રકટ કી હૈ યહ ગૃહપતિરત્ન હમ ચર્મરત્ન પર પ્રથમ પ્રહર મેં શાલિ
આદિ બીજોં કા વપન કરના હૈ દ્વિતોય પ્રહર મેં ઉન્હેં પાની દેતા હૈ તૃતીય પ્રહર મેં ઉન્હેં
પકાતા હૈ ઓર ચતુર્થ પ્રહર મેં નિષ્પાદિત ડસ અન્નાદિ સામગ્રી કો ઉપભોગ કે લિયે સર્વત્ર
સેના મેં મેજ દેતા હૈ જિસ અનાજ કો યહ ગૃહપતિરત્ન નિષ્પાદિત કરકે મેજતા હૈ- ડસ
અનાજ કે નામ હસ પ્રકાર સે હૈ- શાલિ- ધાન્ય- જિસમેં સે ચાવલ તૈયાર હોતે હૈ યવ- જોં ગો-
ધૂમ- ગેદુ, મુદ્ર- મૂંગ માસ- ડહ્દ તિલ- તિલી- કુલ્ત્ય- કુલથી, ષષ્ટિક-૬૦ અહોરાત મેં
પકકર તૈયાર હોનેવાલા તન્દુલ, નિષ્પાવ- ધાન્યવિશેષ, વલ્લ ચળક- ચના, કોદ્રવ- આદિવાસિયો
કા ભોજ્ય- પદાર્થ કોદોં કુસ્તુમ્ભરી- ધાન્યવિશેષ, કઙ્ગુ- કાવનો વરગસ્તિ- વરદ્, રાલક
અલ્પશિરસ્ક ઉપલક્ષણ સે મહૂર આદિ ઓર મો અનેક ધાન્યવિશેષ, વરણવનસ્પતિવિશેષ, પત્ર-
શાક આદિરૂપ હરિતકાય, આર્દ્રક- આદો, મૂલક- મૂઝી, હરિદ્રા- હલ્દી, અલાબુક- તૂમઝી

જ સ્વ.ધ.કાગ મુધી તે પાકીને તૈયાર થ) ગયુ અને પછી તે લોળન માટે યોગ્ય થઇ ગયુ
એ પ્રમાણેનુ એ સર્કાર્ય ગૃહપતિ રત્નનેજ આધીન હોય છે એ જ વાત-

ચર્મરત્ને ચ સુક્ષેત્ર હ્વોત્પત્તિ દિવામુલ્લે । સાયં ધાન્યાન્યજાયન્તં ગૃહિરત્ન પ્રમાવત' ।।

એ શ્લોક વડે આચાર્ય હેમચન્દ્રે પ્રકટ કરી છે. એ ગૃહપતિરત્ન એ ચર્મરત્ન ઉપર
પ્રથમ પ્રહરમાં શાલિ વગેરે બીજોનુ વપન કરે છે બીજા પ્રહરમા તેમને પાણીથી સિંચિત
કરે છે ત્રીજા પ્રહરમાં તેમને પકવે છે અને ચતુર્થ પ્રહરમા નિષ્પાદિત તે અન્નાદિ સામગ્રી
ને ઉપભોગ માટે સર્વત્ર સેનામાં મોકલી આપે છે. જે અન્ન ને એ ગૃહપતિરત્ન નિષ્પા-
દિત કરીને મોકલે છે, તે અન્નોના નામે આ પ્રમાણે છે-શાલિ ધાન્ય-જેમાથી ચોખા તૈયાર
થાય છે. યવ-જવ, ગોધૂમ-વહી, મુદ્રગ-મૂંગ, માપ-અડક, તિલ-તલ, કુલ્ત્ય-કલથી, ષષ્ટિક
૬૦ અહોરાતમાં પાકીને તૈયાર થનાર તન્દુલ, નિષ્પાવ-ધાન્ય વિશેષ, વલ્લચણક-ચણા, કોદ્રવ
આદિવાસી લોકોનુ અન્ન-કોદો, કુસ્તુ ભરી-ધાન્યવિશેષ કુશુ-કાંગ વરગસ્તિ-વરક, રાલક-
અલ્પશિરસ્ક ઉપલક્ષણથી મહૂર વગેરે અનેક ધાન્યવિશેષો વરણ-વનસ્પતિ વિશેષ, પત્રશાક

कादीनि, पूर्वं च कुस्तुम्भरीशब्देन धान्यभेदः संगृहीतः अनेकधान्यः वरणो वनस्पति-
विशेषः इदानो तत्पत्राणां भक्ष्यत्वेन पत्रशाखेषु सङ्ग्रह इति न पौनस्त्यम् 'अल्लगमूलग-
हरिदन्ति' आर्द्रकहरिद्रे प्रसिद्धे मूलक इतिदन्तकम्, कन्दमूलशाके कथिते, अथ फलशा-
कान्याह-अलाबुक्तं तुम्बिः इति-कर्कटिक त्रपुशं तुम्बकं तुम्बिभेदः चिर्मटजातीयं तुम्बक
लिङ्ग कपित्थाम्रा इम्बिकः प्रसिद्धाः इदमपि फलशाकोपलक्षणम् अलाबु तुम्बयोर्लम्बत्व-
वृत्तत्वकृतो भेदः, स च तज्जातीयबीजकृत इति, सर्वशब्देन चोक्तातिरिक्तशाकादीनां संग्रहः,
एतेषां शाल्यादीनां निष्पादकम् उत्पादकं गृहपतिरत्न गाथापतिरत्नमित्यर्थः कौटुम्बिक
रत्नमित्यग्रे सम्बन्धः । ननु यदि गृहपतिरत्नम् अचिरक्रियया मन्त्रसंस्क्रियया धान्यादिकं
निष्पादयति तर्हि किं चर्मरत्ने बीजवपनेन ! तन्निरपेक्षतयैव तत् निष्पादयतुः तस्य दि-
व्यशक्तिकत्वादिति चेन्मैवम् इतरकारणकलापसंघटनपूर्वकत्वेनैव कारणस्य कार्यजनकत्व-
नियमात्, अतएव सूर्यपाकरसवतीकारा नलादयः सूर्यविद्यामहिम्ना रसवतीं परिपचन्तो-
ऽपि तन्दुलसूपशाकपवारारि सामग्रीरपेक्षन्ते इति अतएव सन्तोपि चर्मरत्नादयो गौण-

ककडी, त्रपुष, तुंबक-तुंमडा, लिङ्ग-मातुलिङ्ग, कपित्थ-कैथ आम्र-आम, अंबलिक-इमली-या-
आबला आदि इन सब पदार्थों को कन्दमूलशाकों को पत्रशाकों को फलशाकों को और
अनाजो को यह गृहपतिरत्न उत्पन्न करता है इस गृहपतिरत्न को दूसरे शब्दों में
गाथापतिरत्न और कौटुम्बिकरत्न भी कहा गया है यहा ऐसी शंका हो सकती है कि जब
यह गृहपतिरत्न बहुत ही शीघ्ररूप से मंत्रशक्ति के बलपर धान्यादिक निष्पन्न कर लेता है तो
फिर चर्मरत्न पर बीज बोने की क्या आवश्यकता है वह तो विना चर्मरत्न के भी उन्हे उत्पन्न
कर सकता है क्योंकि ऐसी ही उसकी दिव्यशक्ति है । उत्तर इसका ऐसा है कि कार्य
का जो जनक होता है वह दूसरे कारण कलापो की संघटना पूर्वक ही विवक्षित कार्य
का उत्पादक होता है यदि ऐसा न माना जावे तो सूर्यपाक रसवती बनाने वाले नला-
दिक सूर्यविद्या के प्रभाव से रसवती को पकाते हुए भी तन्दूल-सूप-दाल-आदि सामग्री

आदि उप हरितकाय, आर्द्रक-आहु, मूलक-मूला हरिद्रा-हलहूर, आलाबुक्त-तुंमडी, ककडी,
त्रपुष, तुंमक-तुंमडा, लिङ्ग-मातुलिङ्ग, कपित्थ-कैथ, आम्र-आम, अंबलिक-आमलीके
आमला वगैरे ओ सर्व पदार्थोने कन्दमूल शाकोने, पत्रशाकोने, फलशाकोने अने अनाजोने
ओ गृहपतिरत्न उत्पन्न करे छ ओ गृहपतिरत्न ने भीला संघटोभां गाथापतिरत्न अने कौटु-
म्बिकरत्न पक्षु कहेवामा आवे छ अही ओवी शंका यद्य शक्ये के न्यारे ओ गृहपतिरत्न
अतीव शीघ्र रूपमा मन्त्रशक्तिना अणे धान्य आदि निष्पन्न करीछि छे तो पक्षी चर्मरत्न
उपर वपित करवानी शी आवश्यकता छे, ते तो वगर चर्मरत्ने पक्षु भी उत्पन्न करीने
पक्षी शक्ये तेम छे केमके ओवी न तेनामा दिव्य शक्ति छे, ओने नवाभ आ प्रभाणे छे
के कार्योने न जनक होय छे, ते भीला कारण कलापोनी संघटनापूर्वक न विवक्षित कार्यो-
त्पादक होय छे, ने आ प्रभाणे मानवामा आवे नहि तो सूर्यपाक रसवती अनावनाश
नलादिक सूर्यविद्याना-प्रभावथी रसवतीने पकवे छे छतां ओ तन्दूल-सूप-दाल वगैरे साम

कारणं भवन्ति गाथापतिरत्नस्तु प्रधानम् नहि प्रधानोऽप्रधानं तिरस्करोति किन्तु तत्सहकारेणैव कार्यं करोति अर्थात् चर्मरत्नस्यैकदेशे बोजवपनं करोति तावतैव सकलकार्यस्य सिद्धिर्भवतीति भावः । अतएव पुनः कीदृशम् 'सुकुसले' सुकुशलम् अतिनिपुणं निजकार्यविधाविति 'गाहावइरयणे चि सञ्जणवीस्सुअगुणे' गृहपतिरत्नमिति सर्वजनविश्रुतगुणम्, तत्र गृहपतिरत्नम् इति अमुना प्रकारेण सर्वजनेषु विश्रुताः विख्याताः गुणाः यस्य तत्तथा ईदृश विशेषणविशिष्टं गृहपतिरत्नं यदवमरोचितं कृतवान् तदाह—'तएणं' इत्यादि । 'तएणं से गाहावइरयणे भरहस्स रण्णो तद्विससत्तद्विससत्तस्मिन् प्रकीर्णकानाम् उप्पानां निष्पादितानां परिपाकदशाः प्रापितानां पूतानां निर्बुसीकृतानां सर्वधान्यानाम् अनेकानि 'कुम्भसहस्त्राणि' कुम्भानां राशिरूपमानविशेषाणां सहस्त्राणि उपस्थापयति उपढी-

की अपेक्षावाले क्यों हुए इसलिये यह मानना चाहिये— कि मौजूद भी चर्मरत्नादिकतो गौण कारण ये और गाथापति प्रधान कारण या प्रधान कारण अप्रधान— गौण कारण का तिरस्कार नहीं करता है किन्तु उनकी सहायता के बल से ही अपना कार्य करता है यह गाथापति चर्मरत्न के एकदेश में ही बोजवपन करता है परन्तु इतने से ही सकल कार्य की सिद्धि हो जाती है यह गाथापति रत्न सुकुशल था इसी कारण अपने कार्यमें बहुत अधिक निपुण कहा गया है (गाहावइरयणेत्ति सञ्जणवीस्सुअगुणे) इस तरह का सर्जनो में प्रसिद्ध है गुण जिसके ऐसा यह गाथापति होता है इन पूर्वोक्त विशेषणो से विशिष्ट इस गाथापति रत्न ने उस अवसर पर जो किया—उसे (तएणं से गाहावइरयणे) इत्यादि सूत्र द्वारा सूत्रकार ने प्रकट किया है—इसमें यह बतलाया है कि जब चर्मरत्न और छत्ररत्न इन दोनों का मिलान तो चुका तब उस गृहपतिरत्न ने भरत महाराजा के लिये उसीदिन बोये गये और उसीदिन पक कर तैयार होने पर फाटे गये तथा निर्बुस किये गये समस्त धान्यो के हजारों कुम्भ अर्पणकरदिये कुम्भ यह एक

श्रीनी अपेक्षावाणा केम थया अथी आम भानवुं जे-अथे के अमरत्नादिकनी विधमानता तो गौण कारणे उता अने गाथापति प्रधान कारणे उता. प्रधान कारणे अप्रधान अटवे के गौण कारणे ने तिरस्कार (अनाहर) करी शके नहीं. यद्यु तेमनी सहायतानां अणेर पोतानु काम करे छे अथे गाथापति अमरत्नना अके देशमाअ जीववपन करे छे यद्यु अटवे मात्र थी अ सकल कार्यनी सिद्धि थय अथ छे अथे गाथा पतिरत्न-(सुकुसले) अथी अ पोताना कार्यमां अतीव निपुण कहेवामा आवेल छे. (गाहावइरयणे चि सञ्जणवीस्सुअगुणे) अथे सर्वजनो मां सुप्रसिद्ध छे गुण अना छे अथे अथे गाथापति होय छे. अथे पूर्वोक्त विशेषणोथी विशिष्ट अथे गाथापतिरत्ने ते अवसरे अे कथं कथुं तेने (तएण से गाहा वइरयणे) इत्यादि सूत्र वडे सूत्रकारे प्रकट करेव छे अथे अथे प्रकट करवामा आवेल छे के अथे अथे अमरत्न अने छत्ररत्न अथे अने रत्नोनु मिलान थय अथु त्यादे त गृहपतिरत्ने भरत राजा माटे ते अथे द्विवसेवावेव अने ते अथे द्विवसे पकथीने तैयार थयेवता तेमअ लक्ष्मी

कयति अर्पयति अनुयोगद्वारसूत्रोक्तं कुम्भमानं त्वेवम् “दो असईओ पसईओ दोपसइओ
 सेइआ चत्तारि सेइआओ कुडओ चत्तारि कुडया पत्थो, चत्तारि पत्थया आढच, चत्तारि
 आढ्या दोणो, सट्टि आढ्याइं जहणणए कुंमे असोति आढ्याइं मज्झिमए कुंमे, आढ्यसयं
 उक्कोसए कुंमेत्ति ” व्याख्यानं चात्र-तथाहि-अत्राशति अवाङ्मुखहस्ततलरूपमुष्टिः
 तत् णं धान्यमपि अशतिरेवोच्यते, द्वे अशती प्रसृतिः नावाकारतया व्यवस्थापिता प्रा-
 ज्ञलकरतलरूपोच्यते, द्वे प्रसृती सेतिका मागधदेशप्रसिद्धो मानविशेष नतु इह प्रसिद्धा
 तस्याः प्रस्थ चतुर्गुणत्वात्, चत्तारः सेतिका कुडवः पल्लिका समानो माप्यमानविशेषः
 चत्वारः कुडवाः प्रस्थो माणक समानंमाप्यम् चत्वारः प्रस्थाः आढकः सेतिका प्रमाणः
 चत्वारः आढकाः द्रोणः चतुः सेतिका प्रमाणः षष्ठ्याः आढकैः पञ्चदशभिः जघन्यः
 कुम्भः अशीत्या आढकैःविंशत्या द्रोणैः मध्यमः कुम्भः, तथा आढकानां शतेन पञ्चविंशत्या

प्रकार का नाप होता है अनुयोगद्वारसूत्र में इसकी परिभाषा इस प्रकार से कही गई है—
 “दो असईओ पसईओ दो पसइओ सेइआ चत्तारि सेइआओ कुडओ चत्तारि कुडया पत्थो चत्तारि
 पत्थया आढचं चत्तारि आढच —दोणो सट्टि आढ्याइं जहणणए कुंमे, असोति आढ्याइं मज्झिमए
 कुंमे, आढ्यसयं उक्कोसए कुंमेत्ति” इसका तात्पर्य यह है—हाथ की हथेली को नीची करके
 जो मुष्टि बांधी जाती है इसका नाम असति है। इस असति में जितना धान्य आता है उसे ही
 यहां असति कहा गया है। दो असतियों को—एक प्रसृति होती है इसका आकार नाव के आ-
 कार जैसा होता है हथेली सीधी करके फैलाने पर हथेली नाव के आकार की बन जाती है।
 इसी का नाम एक प्रसृति है। इस प्रसृति में जितना अनाज भरने पर बनता है उतना ही अ-
 नाज एक प्रसृति प्रमाण कहा गया है। दो प्रसृतियों की एक सेतिका होती है यह मगध देश
 प्रसिद्ध तौल विशेष का नाम है यह यहा प्रसिद्ध नहीं है। चार सेतिकों का एक कुडव होता
 है चार कुडवों का एक प्रस्थ होता है चार प्रस्थों का एक आढक होता है। चार आढकों का

करवाभा आवेला, निर्धुस करवाभा आवेला सकल धान्येना हजारा कुलो अर्पण करी
 दीया कुंभ ओ ओक प्रकारनु माप छे ‘अनुयोग द्वार’ सूत्रमा ओ मापनी परिभाषा आ
 प्रमाणे करवाभा आवी छे “दो असईओ पसइओ दो पसइओ सेइआ चत्तारि सेइआओ कुडओ
 चत्तारि कुडया पत्थो, चत्तारि पत्थया आढच, चत्तारि आढ्या दोणो सट्टि आढ्याइं जहणणए
 कुंमे असोति आढ्याइं मज्झिमए कुंमे आढ्यसयं उक्कोसए कुंमेत्ति “आनु तात्पर्य” आ
 प्रमाणे छे के हाथनी हथेली ने नीची करीने ने भूही पाणवाभा आवे छे, तेनु नाम ‘असति’
 छे ओ ‘असति’मां नेटलु धान्य समाप छे, तेने न अही अशति कडेवाभा आवेल छे ओ
 अशतिओनी ओक प्रसृति थाय छे ओने आकर नावना जेवो डोय छे हथेली सीधी करीने
 पडोणी करीओ तो ते नावना आकार जेवी थर्ध जाय छे ओनु’ न नाम ओक प्रसृति छे,
 ओ प्रसृतिमा नेटलु अनाज छे, तेटलु अनाज ओक प्रसृति प्रमाणे कडेवाभा आवे छे,
 ओ प्रसृतिओनी ओक सेतिका डोय छे अ मगध देश प्रसिद्ध तौल विशेषनु नाम छे ओ
 तौल अही प्रसिद्ध नहीं यार सेतिकों ने ओक कुडव डोय छे. चार कुडवोंना ओक-
 प्रस्थ डोय छे यार प्रस्थाने ओक आढक डोय छे यार आढकों ने ओक द्रोण डोय छे. ६०

દ્રોણેઃ ઉત્કૃષ્ટઃ કુમ્ભઃ ઇતિ, અત્ર ચ 'સન્વધળ્ણાણં તિ' સૂત્રમુપલક્ષણપરં તેન અન્યદપિ યત્સૈન્યસ્ય મોજ્યોપયોગિ વસ્તુ તત્તર્વમુપનયતિ, એવ સતિ તત્ર ભરતઃ કથં ક્રિયત્કાલં ચ સ્થિતવાનિત્યાહ—'તણ્ણં સે ભરહે રાયા ચમ્મરયણસમારુઢે છત્તરયણસમોચ્છળ્ણે મણિ-રયણકલ્લજ્જોણ સમુગ્ગયમૂણ્ણં સુહં સુહેણં સત્તરત્ત પરિવસહ' તતઃ ગૃહપતિરત્ત્ન કૃતધા-ન્યોપસ્થાપનાનન્તરં સ ભરતઃ ચર્મરત્નારુઢઃ છત્તરત્તનેન સમવચ્છળ્ણઃ—આચ્છાદિતો મણિ-રત્નકૃતોઘોતઃ સમુદ્ધકસમ્પુટ મૂત ઇવ પ્રાપ્ત ઇવ, અત્ર મૂગર્તો ઇતિ સોત્રધાતોઃ ક્ત પ્રત્યયઃ સુહંસુહેન સપ્તરાત્રં સપ્તદિનાનિ યાવત્ પરિવસતિ, એતદેવ વ્યક્તીકુર્વન્નાહ—'ળવિ સે સુહાણ' ઇત્યાદિ 'ળવિ સે સુહાણ વિલ્લિંઝં ણેવ મયં ણેવ વિજ્જણ દુક્ખં ।

અરહાહિવસ્સ રણ્ણો સ્વધાવારસ્સ વિ તહેવ ॥૧॥

અયમર્થઃ—નાપિ 'સે' તસ્ય ભરતાધિપસ્ય રાજ્ઞઃ 'સુહા' શુત્ ક્ષુધા વુશુક્ષા 'ળ વિલ્લિંઝં' ન વ્યલીક દૈન્યમિત્યર્થઃ નૈવ વિદ્યતે દુઃક્ખમ્ સ્કન્ધાવારસ્યાપિ તથૈવ યથા ભરતસ્ય ન ક્ષુદાદિ તથા સૈન્યસમૂહસ્યાપિ નૈત્યર્થઃ ॥૨૧॥

એક દ્રોણ હોતા હૈ । ૬૦ સાઠ આઢકો કા એક જઘન્ય કુમ્મ હોતા હૈ । ૮૦ આઢકો કા એક મધ્યમ કુમ્મ હોતા હૈ ૧૦૦ આઢકો કા એક ઉત્કૃષ્ટ કુમ્મ હોતા હૈ । "સન્વધળ્ણાણ" એસા કથન ઉપલક્ષણ રૂપ હૈ । ઇસસે ઓર મી જો સૈન્ય કે મોજન મેં ઉપયોગી વસ્તુ હોતી થી વહ સબ વહ દેતા થા(તણ્ણ સે ભરહે રાયા ચમ્મરયણસમારુઢે છત્તરયણસમોચ્છળ્ણે મણિરયણકલ્લજ્જો-ણ સમુગ્ગયમૂણ્ણં સુહં સુહેણ સત્તરત્ત પરિવસહ) ઇસ તરહ વહ ભરત નરેશ ઉસ વરસાત કે સમય ચર્મરત્ન પર બૈઠા હુઆ ઓર છત્ર રત્ન સે સુરક્ષિત હુઆ મણિરત્ન દ્વારા પ્રદત્ત ઉઘોત મેં સુસ પૂર્વક સાત દિન રાત તક રહા (ળવિસે સુહાણ વિલ્લિંઝં ણેવ મયં ણેવ વિજ્જણદુક્ખ અરહાહિવસ્સ રણ્ણો સ્વધાવારસ્સ વિ તહેવ) ઇતને સમય તક ભરત કો ન ક્ષુધાને સતાયા, ન દીનતા ને સતાયા ન મય ને સતાયા ઓર ન દુઃક્ખ ને હો સતાયા યહો અવસ્થા ભરત કે સૈન્ય કી મી રહા ઇસ તરહ સાત દિન તક ભરત વહાં આનન્દ કે સાથ નિર્મયપનેસે અપને સ્કન્ધાવાર મેં રહા ॥૨૧॥

સાઠ આઢકોનુ એક જઘન્ય-પ્રમાણ કુલ હોય છે. ૮૦ આઢકોનોએક મધ્યમ કુલ હોય છે ૧૦૦ આઢકોનો એક ઉત્કૃષ્ટ કુલ હોય છે 'સન્વ ધળ્ણાણ" એવુ કથન ઉપલક્ષણુ ૨૫ છે. ઓનાથી આમ સૂચિત કરવામા આવે છે કે ભોજન માટે સૈન્ય ને ધીણુ યથુ જે વસ્તુઓ જોઈતી હતી તે વસ્તુઓને એ આપતુ હતુ (તણ્ણ સે ભરહે રાયા ચમ્મરયણસમારુઢે છત્તરયણ સમોચ્છળ્ણે મણિરયણકલ્લજ્જોણ સમુગ્ગયમૂણ્ણં સુહ સુહેણ સત્તરત્ત પરિવસહ) આ પ્રમાણે તે ભરત નરેશ તે વર્ષાના સમયમા અર્મરત્ન ઉપર બેઠેલો અને છત્રરત્નથી સુરક્ષિત થયેલો મણિરત્ન દ્વારા પ્રદત્ત ઉઘોતમા સુખપૂર્વક સાત-દિવસ રાત્રિ સુધી રહ્યો (ળ વિ સે સુ વિલ્લિંઝં ણેવ મયં ણેવ વિજ્જણ દુક્ખ અરહાહિવસ્સ રણ્ણો સ્વધાવારસ્સ વિ તહેવ) આટલા સમય સુધી ભરતને ન ક્ષુબ્ધા એ સતાવ્યો, ન દીનતાએ સતાવ્યો, ન ભયે સતાવ્યો અને ન દુઃખે સતાવ્યો અને એ પ્રમાણે ભરતની સેનાની યથુ સ્થિતિ રહી આ પ્રમાણે સાત દિવસ સુધી ભરત ત્યા આનન્દ પૂર્વક પોતાના સ્કન્ધાવારની સાથે રહ્યો ॥૨૧॥

ततः किं जातमित्याह—'तएणं तस्स' इत्यादि ।

मूलम्—तए णं तस्म भरहस्स रण्णो सत्तरत्तंसि परिणममाणंसि
 इमेयारूवे अज्जत्थिए चित्थिए कप्पिए पत्थिए मणागए संकप्पे समुप्प-
 ज्जित्था केसणं भो ! अपत्थियपत्थए दुरत्तपंतलक्खणे जाव परिवज्जिए
 जेणं ममं इमाए एयाणुरूवाए जाव अभिसमण्णागयाए उप्पिं विजय-
 खंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठि जाव वासं वासइ । तएणं तस्स भरहस्स
 रण्णो इमेयारूवं अज्जत्थियं चित्थियं कप्पियं पत्थियं मनोगयं संकप्पं समु-
 प्पणं जाणित्ता सोलसदेवसहस्सा सण्णज्झिउं पव्वत्ता यावि होत्था तएणं
 ते देवा सण्णद्धबद्धवम्मियकवया जाव गहिआउहप्पहरणा जेणेव ते
 मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता. मेहमुहे
 णागकुमारे देवे एवं वयासी हंभो ! मेहमुहा णागकुमारा ! देवा अप्प-
 त्थियपत्थगा जाव परिवज्जिया किण्णं तुब्भि ण याणह भरहं रायं चाउरंत-
 चक्कवट्ठि महिद्धियं जाव उद्वित्तए वा पडिसेहित्तए वा तहावि ण तुब्भे
 भरहस्स रण्णो विजयखंधावारस्स उप्पिं जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं
 धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासह, तं एवमवि गते इत्तो खिप्पामेव अव-
 क्कमह अहव णं अज्ज पासह, चित्तं जीवलोगं, तएणं ते मेहमुहा णाग-
 कुमारा देवा तेहिं देवेहिं एवं बुत्ता समाणा भीया तत्था वहिआ उव्विग्गा
 संजायभया मेघानीकं पडिसाहरंति पडिसाहरित्ता जेणेव आवाडचिल्लाया
 तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता आवाडचिल्लाए एवं वयासी एसणं देवाणु-
 प्पिया ! भरहे राया महिद्धिए जाव णो खलु एस सक्का केणइ देवेण
 वा जाव अग्गिप्पओगेण वा जाव उद्वित्तए वा पडिसेहित्तए वा
 तहावि अ णं ते अम्हेहिं देवाणुप्पिया ! तुब्भं पियट्ठयाए भरहस्स रण्णो
 उवसग्गे कए, तं गच्छह णं तुब्भे देवानुप्पिया ! ण्हाया कयवलिकम्मा
 कयकोउयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइ
 वगइं रयणाइं गहाय पंजलिउढा पायवडिआ भरहं रायाणं सरणं उवेह,

पणिवइअवच्छला खलु उत्तमपुरिसा णत्थि मे भरहस्स रण्णोअंतिया-
 ओ भयमिति कट्टु, एवं वदित्ता जामेव दिस्सि पाउब्भुया तामेव
 दिस्सि पडिगया । तएणं ते आवाडचिलाया मेहमुहेहे णागकुमारेहिं देवेहिं
 एवं वुत्ता सपाणा उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठित्ता णहाया कयवलिकम्मा कयको-
 उयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं
 रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल-
 परिग्गहियं जाव मत्थए अंजलि कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धाविति
 वद्धावित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणंति, उवणित्ता एणं वयासी- 'वसुहर
 गुणहर जयहर हिरिमिरि धिकित्तिधारकणरिंद । लक्खणसहस्सधारक
 रायमिदं णेत्थिरं धारे ॥१॥ हेयवइ गयवइ णरवइ णवणिहिं बइ
 भरहवांस पढमवई । वत्तीस जणत्रयसहस्सरायसामी चिरंजीव ॥२॥
 पढमणरीसर ईसर हिअ ईसर महिलिआ सहस्साणं । देवसय साहसीसर
 चोद्दस रयणी सर जसंसी ॥३॥ सागर गिरि मेरागं उत्तर वाईण-मभिजिअं
 तुमए । ता अम्हे देवाणुप्पियस्स विसए परिवसामो ॥४॥ अहोणं देवाणु-
 प्पियाणं इट्ठो जुई जसेबले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे
 देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठाणं देवाणुप्पिया णं इट्ठो
 एवं चेव जाव अभिसमण्णागए, तं खामेम णं देवाणुप्पिया खमंतु णं
 देवाणुप्पिया खंतुमरहतुणं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जोभुज्जो एवं करणयाए
 त्तिकट्टु पंजलिउडा पायवडिआ भरहं रायं सरणं उवैति । तएणं से
 भरहे राया तस्सि आवाडचिलायाणं अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छंति
 पडिच्छित्ता ते आवाडचिलाए एवं वयासी गच्छहणं भो तुब्भे ममं बाहु-
 च्छाया परिग्गहिया णिब्भया णिहव्विग्गा सुहं सुहेणं परिवसह, णत्थि
 मे कत्तो वि भयमत्थि त्तिकट्टु सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारेत्ता सम्मा
 णेत्ता पडिविसज्जेइ । तएणं से भरहे राया सेणं सेणावइं सदावेइ
 हावित्ता एवं वयासी गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिया । दौच्चपि सिधुए

महाणइए पचवत्थिमणिवखुहं ससिंधुसागरगिरिमैरागं समविसम णिवखु-
 ङाणि अ ओअवेहि ओअवित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि
 पडिच्छित्ता मम एय माणत्तियं खिप्पामेव पचचपिणाहि जहा दाहिणिलस्स
 ओयवणं तहा सव्वं भाणिव्वं जाव पचचणुभवमाणो विहरंति ॥सू० २२।

छाया—ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञः सप्तरात्रे परिणमति अयमेतद्द्रोपोऽभ्यर्थित
 चिन्तितः कल्पित प्रार्थित मनोगतः सङ्कल्पः समुदपद्यत, क स खलु भोः । अप्रार्थितप्रार्थको
 दुरन्तप्रान्तलक्षणो यावत् परिवर्जित य खलु मम अस्थामेतद्द्रोपाया यावदमिसमन्वाग-
 तायाम् उपरि विजयस्कन्धावारस्य, युगमुसलमुष्टि यावत् वर्षं वर्षति । ततः खलु तस्य
 भरतस्य राज्ञ इदमेतद्द्रूपम् अभ्यर्थितं चिन्तितं कल्पितं प्रार्थितं मनोगतं संकल्पं समुत्पन्न
 ज्ञात्वा षोडशदेव सहस्राः सन्नद्धुं प्रवृत्ताप्यभवन्, ततः खलु ते देवा सन्नद्धयद्धर्मितकवचाः
 यावत् गृहीतायुधप्रहरणाः यत्रैव ते मेघमुखा नागकुमाराः देवास्तत्रैव उपागच्छन्ति,
 उपागत्य मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् पवमवादीत् हभो ! मेघमुखा नागकुमाराः ।
 देवाः अप्रार्थितप्रार्थकाः यावत् परिवर्जिताः किं खलु यूयं न जानीथ भरत राजान चातु-
 रन्तचक्रवर्त्तिन महर्द्धिकं यावत् उपद्रवयितुं वा प्रतिषेधयितुं वा, तथापि खलु यूयं भर-
 तस्य राज्ञो विजयस्कन्धावारस्योपरि युगमुसलप्रमाणमिताभिर्घाराभि ओघमेघं सप्त-
 रात्रं वर्षं वर्षत, तत् पवमपि गते इत क्षिप्रमेव अपक्रामत अथवा खलु अद्य पश्यत चित्रं
 जीवलोकम्, तत खलु ते मेघमुखा नागकुमारा देवा ते देवैः पवमुक्ताः सन्तः भोता अस्ता
 धाविता उद्विग्ना सज्जानभयाः मेघानीकं प्रतिसंहरन्ति, प्रतिसंहृत्य यत्रैव आपातकिराता
 तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य आपातकिरातान् पवमवादिषुः पषः खलु देवानुप्रिया । भर्तो
 राजा महर्द्धिको यावत् नो खलु एष शक्यते केनापि देवेन वा यावत् अग्निप्रयोगेण
 वा यावत् उपद्रवयितुं वा प्रतिषेधयितुं वा तथापि च खलु अस्माभिः देवानुप्रिया । युष्माक
 प्रीत्यर्थं भरतस्य राज्ञ उपसर्गं कृतः तद्गच्छत देवानुप्रियाः । यूयं स्नाताः कृतबलिकर्माण
 कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता आर्द्रपटशाटकाः अवचूलकनियत्याः अग्रथाणि वराणि
 रत्नानि गृहीत्वा प्राञ्जलिहृताः पादपतिताः भरत राजानं शरणम् उपेत प्रणिपतितवत्सलाः
 खलु उत्तमपुरुषा नास्ति भवतां भरतस्य राज्ञोऽन्तिकाद् भयमिति कृत्वा पत्रम् उदित्वा
 यामैव दिशं प्रादुर्भूता नामैव दिशं प्रतिगता । ततः खलु ते आपातकिराता मेघमुक्त्वा
 नागकुमारे देवैः पवमुक्ता सन्त उत्थया उत्तिष्ठन्ति, उत्थाय स्नाताः कृतबलिकर्माणः कृत-
 कौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता आर्द्रपटशाटका अवचूलकनियत्याः अग्रथाणि वराणि रत्नानि
 गृहीत्वा यत्रैव भरतो राजा तत्रवोपागच्छन्ति उपागत्य करतलपरिगृहीतं यावत् मस्तके
 अञ्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन वद्धयन्ति वर्द्धयित्वा अग्रथाणि वराणि रत्नानि
 उपनयन्ति उपनीय पवमवादिषु

हे वसुधर ! गुणधर ! जयधर ! ही श्री धृति कीर्त्तिधारक !
 नरेन्द्र लक्षण सहस्रधारक ! नः राज्यमिदं चिर धारय ॥१॥

पणिवइअवच्छला खलु उत्तमपुरिसा णत्थि मे भरहस्स रण्णोअंतिया-
 ओ भयमिति कट्ठु, एवं वदित्ता जामेव दिस्सि पाउव्भूया तामेव
 दिस्सि पडिगया । तएणं ते आवाडचिलाया मेहमुहेहि णागकुमारेहि देवेहि
 एवं वुत्ता समाणा उट्ठाए उट्ठेति, उट्ठित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयको-
 उयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं
 रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता करयल-
 परिग्गहियं जाव मत्थए अंजलिं कट्ठु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धाविति
 वद्धावित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं उवणेति, उवणित्ता एणं वयासी- 'वसुहर
 गुणहर जयहर हिरिसिरि धिकित्तिधारकणरिंद । लक्खणसहस्सधारक
 रायमिदं णेविरं धारे ॥१॥ हंयवइ गयवइ णरवइ णवणिहि बंइ
 भरहवांस पढमवई । वत्तीस जणवयसहस्सरायसामी चिरंजीव ॥२॥
 पढमणरीसर ईसर हिअ ईसर महिलिआ सहस्साणं । देवसय साहसीसर
 चोदस रयणी सर जसंसी ॥३॥ सोगर गिरिमेरागं उत्तर वाईण-मभिजिअं
 तुमए । ता अम्हे देवाणुप्पियस्स विसए परिवसामो ॥४॥ अहोणं देवाणु-
 प्पियाणं इट्ठो जुई जसेबले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे
 देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठाणं देवाणुप्पिया णं इट्ठो
 एवं चेव जाव अभिसमण्णागए, तं खामेम णं देवाणुप्पिया खमंतु णं
 देवाणुप्पिया खंतुमरहतुणं देवाणुप्पिया ! णाइ भुज्जोभुज्जो एवं करणयाए
 त्तिकट्ठु पंजलिउडा पायवडिआ भरहं रायं सरणं उवेति । तएणं से
 भरहे राया तेसिं आवाडचिलायाणं अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छंति
 पडिच्छित्ता ते आवाडचिलाए एवं वयासी गच्छहणं भो तुब्भे ममं बाहु-
 च्छाया परिग्गहिया णिब्भया णिहव्विग्गा सुहं सुहेणं परिवसह, णत्थि
 मे कत्तो वि भयमत्थि त्तिकट्ठु सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारेत्ता सम्मा
 णेत्ता पडिविसज्जेइ । तएणं से भरहे राया सेणं सेणावइं सहावेइ
 सहावित्ता एवं वयासी गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिया ! दौच्चपि सिघुए

महाण्ड्ण पञ्चत्थिमणिकखुडं ससिंधुसागरगिरिमैरागं समविसम णिकखु-
डाणि अ ओअवेहि ओअवित्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि
पडिच्छित्ता मम एय माणत्तियं खिप्पोमेव पञ्चपिणाहि जहा दाहिणिलस्स
ओयवणं तथा सव्वं भाणिव्वं जाव पञ्चणुभवमाणो विहरंति ॥सू० २२।

छाया—ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञः सप्तरात्रे परिणमति अयमेतद्रूपेऽभ्यर्थित
चिन्तितः कश्चित् प्रार्थित' मनोगतः सङ्कल्प समुदपद्यत, क स खलु भोः । अप्रार्थितप्रार्थको
दुरन्तप्रान्तलक्षणो यावत् परिवर्जित य खलु मम अस्थामेतद्रूपायां यावदभिसमन्वाग-
तायाम् उपरि विजयस्कन्धावारस्य, युगमुसलमुष्टि यावत् वर्षे वर्षति । ततः खलु तस्य
भरतस्य राज्ञ इदमेतद्रूपम् अभ्यर्थितं चिन्तितं कश्चित् प्रार्थितं मनोगत संकल्पं समुत्पन्नं
ज्ञात्वा षोडशदेव सहस्राः सन्नद्धुं प्रवृत्ताप्यभवन्, ततः खलु ते देवा सन्नद्धवद्धवमितकवचाः
यावत् गृहीतायुधप्रहरणाः यत्रैव ते मेघमुखा नागकुमाराः देवास्तत्रैव उपागच्छन्ति,
उपागत्य मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् पवमवादीत् इभो ! मेघमुखा नागकुमाराः !
देवाः अप्रार्थितप्रार्थकाः यावत् परिवर्जिताः किं खलु यूय न जानीथ भरत राजान चातु-
रन्तचक्रवर्तिन महर्द्धिकं यावत् उपद्रवयितुं वा प्रतिषेधयितुं वा, तथापि खलु यूयं भर-
तस्य राज्ञो विजयस्कन्धावारस्योपरि युगमुसलप्रमाणमिताभिर्घोरामि ओघमेघं सप्त-
रात्रं वर्षे वर्षत, तत् पवमपि गते इत क्षिप्रमेव अपक्रामत अथवा खलु अद्य पश्यत चित्रं
जीवलोकम्, तत खलु ते मेघमुखानागकुमारा देवा ते देवैः पवमुक्ताः सन्तः भोता व्रस्ताः
वाधिता उद्विग्ना सज्जानभयाः मेघानीकं प्रतिसंहरन्ति, प्रतिसंहृत्य यत्रैव आपातकिराता
तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य आपातकिरातान् पवमवादिषुः पव' खलु देवानुप्रिया । भक्तो
राजा महर्द्धिको यावत् नो खलु एष शक्यते केनापि देवेन वा यावत् अग्निप्रयोगेण
वा यावत् उपद्रवयितुं वा प्रतिषेधयितुं वा तथापि च खलु अस्माभिः देवानुप्रिया ! युष्माक
प्रीत्यर्थं भरतस्य राज्ञ उपसर्गं कृतः तद्रच्छत देवानुप्रियाः ! यूयं स्नाता कृतबलिकर्माण
कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता आर्द्रपटशाटकाः अवचूलकनियत्था' अग्रथाणि वराणि
रत्नानि गृहीत्वा प्राञ्जलिकृताः पादपतिताः भरत राजानं शरणम् उपेत प्रणिपतितवत्सलाः
खलु उत्तमपुरुषा नास्ति भवतां भरतस्य राज्ञोऽन्तिकाद् अथमिति कृत्वा पवम् उदित्वा
यामेव दिशं प्रादुर्भूता' नामेव दिशं प्रतिगता । ततः खलु ते आपातकिराता मेघमुक्त्वा
नागकुमारे देवैः पवमुक्ता सन्त उत्थया उत्तिष्ठन्ति, उत्थाय स्नानाः कृतबलिकर्माणः कृत-
कौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ता आर्द्रपटशाटका अवचूलकनियत्थाः अग्रथाणि वराणि रत्नानि
गृहीत्वा यत्रैव भरतो राजा तत्रवोपागच्छन्ति उपागत्य करतलपरिगृहीतं यावत् मस्तके
अञ्जलि कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन वद्धयन्ति वद्धयित्वा अग्रथाणि वराणि रत्नानि
उपनयन्ति उपनीय पवमवादिषु

हे वसुधर ! गुणधर ! जयधर ! ही श्री धृति कीर्त्तिधारक !

नरेन्द्र लक्षण सहस्रधारक ! नः राज्यमिदं चिर धारय ॥१॥

हृदयपते ! गजपते ! नरपते ! नवनिधिपते ! भरतवर्ष प्रथमपते !
 द्वात्रिंशज्जनपदसहस्रत्रराज स्वामिन् ! चिरं जीव ॥२॥
 प्रथम नरेश्वर ! ईश्वर ! महिलिका सहस्रत्राणां हृदयेश्वर !
 देवशतसहस्रत्राणामोश्वर ! चतुर्दशरत्नेश्वर ! यशस्विन् ॥३॥
 सागरगिरिमर्यादम् उत्तरावाचीन मभिजितं त्वया ।
 तस्माद् वयं देवानुप्रियस्य विषये परिव्रजामः ॥४॥

अहो खलु देवानुप्रियाणाम् ऋद्धि वृत्तिर्यशो बलं वीर्यं पुरुषकार पराक्रमः दिव्या
 देववृत्तिः दिव्यो देवानुभावो लब्धः प्राप्त अभिसमन्वागत तत् दृष्ट्वा खलु देवानुप्रिया
 णाम् ऋद्धिः पवमेव यावत् अभिसमन्वागत, तत् क्षमयाम खलु देवानुप्रिया । क्षमन्तां
 खलु देवानुप्रिया । क्षन्तु महन्तु खलु देवानुप्रिया । नैव भूयोभूय पवं करणतायै इति
 कृत्वा प्राञ्जलिकृता. पादपतिता भरत राजानं शरणमुपयान्ति, ततः खलु स भरतो राजा
 तेषाम्पातकिरातानामध्याणि वराणि रत्नानि प्रतिच्छति प्रतीच्छय तानापातकिरातान्
 पवमवादीत् गच्छत खलु भो । यूय मम बाहुच्छायया परिगृहीता निर्भया' निहद्विग्ना सुखं
 सुखेन परिषसत, नास्ति भवतां कुतोऽपि भयमस्तीति कृत्वा सत्कारयति, सम्मानयति
 सत्कार्यं सम्मान्य प्रतिविसर्जयति । तत् खलु स भरतो राजा सुषेणं सेनापतिं शब्दयति ।
 शब्दयित्वा पवमवादीन् गच्छ खलु भो देवानुप्रिय । द्वितीयमपि सिन्धवा महानद्याः पश्चिमं
 निष्कुट ससिन्धुसागरगिरिमर्यादं समविषमनिष्कुटानि च 'ओभवेहि' साघय साघयित्वा
 अध्याणि वराणि रत्नानि प्रतीच्छति प्रतीष्य मम पतामाज्ञासिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पय यथा दाक्षि-
 णात्यस्य 'ओभवणं' साधनम् तथा सर्वं भणितव्यम् यावत् प्रत्यनुभवन् विहरति ॥सू०२२॥

टीका—“तएणं तस्स भरहस्स” इत्यादि । ‘तएणं तस्स भरहस्स रण्णो सत्तर-
 त्तसि परिणममाणंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चित्थिए कप्पिए पत्थिए मणोगए सकप्पे
 समुप्पज्जित्था’ तत्तदनन्तरं खलु तस्य भरतस्य राज्ञः सप्तरात्रे परिणमति सति अय-
 मेतद्रूपः सप्तसु रात्रिषु व्यतीतासु वर्षानिरोधविषयको विचारो भरतस्य मनसि एवं
 वक्ष्यमाणप्रकारेण जातः तत्र प्रथमम् ‘अज्झत्थिए’ आध्यात्मिक आत्मनि जातोऽङ्कुर

‘तएणं तस्स भरहस्स रण्णो सत्तरत्तसि परिणममाणंसि’ इत्यादिसूत्र-२२

टीकार्थ—(तएणं तस्स भरहस्स रण्णो) जब भरतराजा के वहां रहते २ (सत्तरत्तसि परिणम-
 माणंसि)सात दिन रात समाप्त हो चुके तब (इमेयारूवे अज्झत्थिए चित्थिए कप्पिए पत्थिए मणो-
 गए सकप्पे समुप्पज्जित्था)उमे ऐसा मनोगत सरूप उत्पन्न हुआ यहां सकल्प के ‘आध्यात्मिक,
 चिन्तित, कल्पित, प्राथित’ इन विशेषणां की जगह २ न्याह्या कर दी गई हैं अतः वहीं से इसे

‘तएणं तस्स भरहस्स रण्णो सत्तरत्तसि परिणममाणंसि’ इत्यादि सूत्र २२॥

टीकार्थ—(त एणं तस्स भरहस्स रण्णो) न्याये भरत राजने त्या २हेतां-२हेतां (सत्त-
 रत्तसि परिणममाणंसि) सात दिवस-अने २त्रिओ. पूरी थर्त् त्यारे-(इमेयारूवे अज्झ-
 त्थिए चित्थिए कप्पिए पत्थिए मणोगए सकप्पे समुप्पज्जित्था) तने ओवे। मनोगत अंकेध

इव' १ तदनु 'चित्ति' चिन्तितः पुनर्वर्षानिरोधविषयक विचारः स्मर्यमाणो द्विपत्रित
 इव जातः२ तदनु 'कल्पि' कल्पितः स एव वर्षानिरोधविषयको विचारः व्यवस्था
 युक्त मेवं वर्षानिरोधं करिष्यामीति कार्याकारेण परिणतः पल्लवित इव जातः३
 ततः 'पत्थि' प्रार्थितःस एव विचार इष्टरूपेण स्त्रीकृतः पुष्पित इव सवृत्तः ४ ततः
 'मणोग' संकल्पे' मनोगतः सकल्पः मनसि दृढरूपेण निश्चयः मया इत्थमेव वर्षा-
 निरोधः कर्त्तव्य इति विचारः फलित इव ५ 'समुष्पज्जित्था' समुदपद्यत । एतादृशो
 विचारो वर्षानिरोधविषयकः समभवदिति । तदेवाह-- केसणं' इत्यादि 'केस णं भो !
 'अपत्थियपत्थ' दुरंतपंतलकखणे जाव परिवज्जिण जेणं ममं इमाए एआणुखाए
 जाव अभिसमण्णागयाए उप्पि विजयखंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठि जाव वास वासइ ?
 कः एषः खल्ल भोः सैनिका शृणुत ! अप्रार्थितप्रार्थकः तत्र अप्रार्थितम् अमनो-
 रथगोचरीकृत प्रसङ्गात् मरणं तस्य प्रार्थकः मरणेच्छुरित्यर्थः, तथा दुरन्तप्रान्तल-
 क्षणः दुरन्तानि दुष्टावसानानि प्रान्तानि तुच्छानि लक्षणानि यस्य स तथा अर्थात्
 अशुभलक्षणयुक्त. यावत् पदात् 'हीनपुण्णचाउइसे, हिरिसिरिपरिवज्जिण' इति ग्राह्यम्
 'हीनपुण्णचाउइसे' हीनपुण्यचातुर्दशः हीनायां पुण्यचतुर्दश्यां जातः जन्म यस्य स इति
 हीनपुण्य-चातुर्दशः चतुर्दशीतिथिर्जन्माश्रिता पुण्या शुभा च भवति तथा रहितः अत
 आक्रोशता इत्यमुक्ता तथा 'हिरिसिरिपरिवज्जिण' हीश्रीपरिवर्जितः ह्रिया लज्जया
 श्रिया शोभया परिवर्जितः, यः खल्ल मम अस्यामेतद्रूपायां यावद्विन्यायां देवानामिव
 ऋद्धिः देवस्य वा राज्ञ ऋद्धिर्देवर्द्धिं स्तस्यां सत्याम् एवं दिव्यायां देवधुतौ देवस्य वा
 राज्ञो धुतिः दिव्येन देवानुभावेन देवानामिव योऽनुभावः प्रभावस्तेन सह लब्धायां
 प्राप्तायामभिसन्वागतायां सत्याम् उपरि स्कन्धावारस्य-द्वादश योजनस्थितसैन्यसमूहस्य

देखलेनी चाहिये । (केस ण भो ! अपत्थियपत्थि' दुरतपंतलकखणे जाव परिवज्जिण जेणं मम
 इमाए ए आणुखाए जाव अभिसमण्णागयाए उप्पि विजयखंधावारस्स जुगमुसलमुट्ठि जाव वास
 वासइ) अरे ! यह कौन ऐसा अपनी अकाल मृत्यु की चाहना वाला तथा दुरन्त प्रान्त लक्षणों
 वाला यावत् निर्लेज्ज शोभाहीन व्यक्ति है, जो मेरी इस कुलपरम्परागत दिव्य देवर्द्धि के-देवोक्ती
 जैसी ऋद्धि के होने पर, दिव्य देवधुति एव दिव्य देवानुभाव के होने पर भो सेना के ऊपर युग,

उद्देश्ये-अर्द्धी स ३६५-॥ "आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित ये विशेषण स भू
 षीत तथा छे येमनी व्याख्या अ अथमां अनेक स्थाने करवाभां आवी छे येथी निराशु
 जेनाये त्याथी ये विशेषे लक्ष्मी देवु (केस ण भो ! अपत्थियपत्थि' दुरंतपंतलकखणे जाव
 परिवज्जिण जे ण मम इमाए एआणुखाए जाव अभिसमण्णागयाए उप्पि विजयखंधावार-
 स्स जुगमुसलमुट्ठि जाव वास वासइ) अरे ! ये केषु पोटानी अकाण मृत्युनी धरुता कर
 नार तेम' दुरंत प्रान्त लक्षणो वाणो यावत् निर्लेज्ज शोभा हीन भावुस छे के के
 भारी आ कुल परंपरागत दिव्य देवर्द्धिने-देवो जेवी ऋद्धि होवा छताये, दिव्य
 देवधुति तेम' दिव्य देवानुभाव होवा छता ये, भारी सेना उपर युग; मुसण तेम' मुट्ठि
 ३००

'जुगमुसलमुष्टि जाव त्ति' युगमुसलमुष्टिप्रमाणमात्राभिधाराभिः वर्षं वर्षति वृष्टिं करोति । प्रचण्डवृष्टिं करोतीत्यर्थः 'तए ण तस्स भरहस्स रण्णो इमेयाख्वं अब्भत्थिय चित्थिय कप्पियं पत्थिय मणोगय संकप्पं समुप्पणं जाणित्ता सोलसदेवसहस्सा सण्णञ्जिउं पवत्ता यावि होत्था', ततः उक्तचिन्तासमुत्पत्त्यनन्तरं खलु तस्य भरतस्य राज्ञः इममेतद्रूपम्-एतादृशम् अभ्यर्थितं चिन्तितं कल्पितं प्रार्थितं मनोगतं संकल्प समुत्पन्नं ज्ञात्वा चतुर्दशरत्नाधिष्ठायाकदेवसहस्राणि चतुर्दश द्वे सहस्रे स्वाङ्गाधिष्ठातृ देवभूते इत्येवं षोडश देवसहस्राः सन्नद्धं प्रवृत्ताश्चाप्यभवन् सङ्ग्रामं कर्तुम् उद्यता अभूवन् जाताः कथं सन्नद्धं प्रवृत्ता इत्याह-'तएण ते देवाः सण्णद्धवद्धवम्मियकवया जाव गहि आउहप्पहरणा जेणेव ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छति' ततः खलु ते षोडशसहस्रसंख्यका देवाः सन्नद्धवद्धवर्मितकवचाः सन्नद्धं शरीरारोपणात् वद्ध कसा-बन्धनतः अतएव वर्म्म लोहकत्तलादि रूपं सञ्जातमस्येति वर्म्मितम् शरीरे संलग्नीकृतम् एतादृशं कवचं शरीरत्राणकं येषां ते तथा तथा यावत् पदात् उत्पीडितशरासनपट्टिकाः पिनद्धग्रैवेयबद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टाश्च तत्र उत्पीडिताः गाढं गुणारो-

मुसल एवं मुष्टि प्रमाण जलधाराओं से यावत् बरसा बरसा रहा है ? (तए णं तस्स भरहस्स रण्णो इमेयाख्वे अब्भत्थियं चित्थिय कप्पियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पणं जाणित्ता सोलसदेवसहस्सा सण्णञ्जिउं पवत्ता यावि होत्था) इस प्रकार के आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मनोगत उद्भूत हुए भरत राजा के संकल्प को जान कर के १६ हजार देव-१४ रत्नों के १४ हजार और अपने शरीर के रक्षक २ हजार देव इस प्रकार से मिलकर १६ हजार देव संग्राम करने के लिये उद्यत हो गये (तए णं ते देवा सण्णद्धवद्धवम्मियकवया जाव गहिआउहप्पहरणा जेणेव ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छति) तब वे देव सन्नद्धवद्ध वर्मित कवच यावत् गृहीत आयुध प्रहरण होकर जहाँ वे मेषमुख नामके नागकुमार देव थे वहाँ पर आये 'सण्णद्धवद्धगहिआ उहप्पहरणा' इन पदों की व्याख्या पीछे कई जगह की जा चुकी है अतः वहीं से इसे देखने की चाहिये यहाँ यावत्पदसे 'उत्पीडितशरासनपट्टिकाः पिनद्धग्रैवेयबद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टाश्च' इन

प्रभाष्य जलधाराओंकी यावत् वृष्टि करी रहे व छे 'त एणं तस्स भरहस्स रण्णो इमेयाख्वे अब्भत्थियं चित्थिय कप्पियं पत्थियं मणोगयं संकप्पं समुप्पणं जाणित्ता सोलसदेवसहस्सा सण्णञ्जिउं प यावि होत्था) आ जतना आध्यात्मिक शि'तित प्रार्थित मनोगत उद्भूत थयेदा भरत नरेशना संकल्प ने लक्ष्मी ने १६ हजार देवो-१४ रत्नोना १४ हजार अने तेमना शरीरना रक्षक छे हजार आ प्रभाष्ये मणीने १६ हजार देवो संग्राम करवा उद्यत थर्थ गया (तएणं ते देवा सण्णद्धवद्धवम्मियकवया जाव गहिआउहप्पहरणा जेणेव ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेणेव उवागच्छति) तारे ते देवो सन्नद्ध वद्ध वर्मित कवच यावत्-गृहीत आयुध प्रहरण वाणा थर्थ ने लया ते मेषमुख नामे नाग कुमार देवो हता त्यां पडोआया. "सण्णद्धवद्धगहिआउहप्पहरणा" ओ पदोनी व्याख्या पाछण अनेके स्थाने करवाभा आवी छे ओथी जि'सासुअनोओ त्याथी लक्ष्मी देवु' अही

पणात् ढहीकृताः शरासनपट्टिकाः धनुर्दण्डाः यैः ते तथा, तथा पिनद्धं परिधृतं ग्रैवेयकं
 ग्रीवात्राणकं ग्रीवाभरणं वा यैस्ते तथा, बद्धो ग्रन्थिदानेन आविद्धः परिहितो मस्तकावे-
 ष्टनविमलवरचिह्नपट्टो वीरातिवीरतासूचक वस्त्रविशेषो यैः ते तथा पश्चाद्भयोः कर्मधारयः
 तथा गृहीतायुधप्रहरणाः गृहीतानि आयुधानि प्रहरणानि च यैस्ते तथा आयुधप्रहरण-
 योस्तु क्षेप्याक्षेप्यकृतो विशेषो बोध्यः तत्र क्षेप्यानि चाणादीनि, अक्षेप्यानि खड्गादीनि
 अथवा गृहीतानि आयुधानि प्रहरणाय यैस्ते तथा, एवंभूताः सन्तः यत्रैव मेघमुखाः
 नागकुमारा देवा आसन् तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'मेहमुहे णागकुमारे
 देवे एवं वयासी' मेघमुखान् नागकुमारान् देवान् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादिषुः
 'हंभो ! मेहमुहा णागकुमारा ! देवा अप्पत्थियपत्थगा जाव परिवज्जिआ क्किण्णं तुब्भि
 ण जाणह भरहं रायं चाउरंतत्त्वक्कवट्ठिं महिद्धियं जाव उद्वित्तए वा पडिसेहित्तए वा
 तहावि णं तुब्भे भरहस्स रण्णो विजयखंधावारस्स उप्पि जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं
 धाराहिं ओघमेघ सत्तरत्तं वासं वासह' हंभो ! मेघमुखाः नागकुमाराः ! देवाः अप्रा-
 र्थितप्रार्थकाः मरणेच्छवः यावत् पदात् दुरन्तप्रान्तलक्षणाः हीनपुण्यचातुर्दशाः ह्री श्री
 परिवर्जिताः हीनपुण्यचातुर्दशाः पुण्य चतुर्दशीतिथिजन्मरहिताः ह्री श्री परिवर्जिताः

पदोंका सग्रह हुआ है। इन पदों की व्याख्या यथास्थान की जा चुकी है अतः वहीं से यह भी
 देखी जा सकती है (उवागच्छित्ता) वहा आकर के (मेहमुहे णागकुमारे देवे एवं वयासी) उन्होने
 मेघमुख नामके उन नागकुमार देवासे इस प्रकार कहा—(हंभो ! मेहमुहा णागकुमारा देवा !
 अप्पत्थियपत्थगा जाव परिवज्जिआ क्किण्णं तुब्भि ण जाणह भरहं रायं चाउरंतत्त्वक्कवट्ठिं महिद्धियं
 जाव उद्वित्तए वा पडिसेहित्तए वा तहावि ण तुब्भे भरहस्स रण्णो विजयखंधावारस्स उप्पि जुग-
 मुसल मुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं ओघमेघं सत्तरत्तं वासं वासह) हे मेघमुख नामके नागकुमार
 देवो ! हमें ज्ञात होता है कि तुम अब अकाल में ही अपनी मृत्यु के अभिलाषी बन गये हो
 तुम्हारे सब के लक्षण ये अभीष्टार्थक साधन नहीं हैं। वे सर्वथा तुच्छ है तुम्हारा जन्म हीन पुण्य
 चतुर्दशी का हुआ प्रतीत होता है तुम सब के सब बिलकुल बेशरम हो और शोभा से तिरस्कृत

यावत् पदथी "उत्पीडितशरासनपट्टिकाः पिनद्धग्रैवेयबद्धाविद्धविमलवरचिह्नपट्टाश्च"
 को पढोने अ अर्थ थयो छे. को पढोनी व्याख्या पधु यथास्थाने करवाभां आवी छे. निशा-
 सुभ्भोको त्याथी भाषी देवु (उवागच्छित्ता) त्या पडोथीने (मेहमुहे णागकुमारे देवे एवं
 वयासी) तेभणे मेघमुख नामके नागकुमार देवे ने आ प्रभाणे क्खु—(हंभो ! मेह
 मुहा णागकुमारा देवा ! अप्पत्थियपत्थगा जाव परिवज्जिआ क्किण्णं तुब्भि ण जाणह
 भरहं रायं चाउरंतत्त्वक्कवट्ठिं महिद्धियं जाव उद्वित्तए वा पडिसेहित्तए वा तहावि णं
 तुब्भे भरहस्स रण्णो विजयखंधावारस्स उप्पि जुगमुसलमुट्ठिप्पमाणमित्ताहिं धाराहिं
 ओघमेघ सत्तरत्तं वासं वासह) हे मेघमुख नामके नागकुमार देवे ! अमने भयर छे, हे
 तभे डवे अप्पकाणमां अ भरणु पाभसे तभारा सवना आ लक्षणे! अभीष्टार्थक साधन-
 नथी आभ सवथा तुच्छ छे. तभारे जन्म हीन-पुण्य चतुर्दशीना दिवसे थयेदो प्रतीत थय

सन्तः किमिति प्रश्ने न जानीथेत्यत्र काकुपाठेन व्याख्येयम् तेन न जानीथ किं यूयम् ! अपि तु जानीथ भरतं राजानं चातुरन्तचक्रवर्तिनम् आचतुःसमुद्रान्तकरग्राहिणम् महर्द्धिकं महती ऋद्धिर्यस्य स तथा त लक्ष्मीसम्पन्न मित्यर्थः यावत् पदात् 'महज्जुइए महाणुभावे महासोक्खे' इति विशिष्टम् यदेप न कैश्चिदपि देवदानवादिभिः शस्त्रप्रयोगादिभि रूपद्रवयित्त वा प्रतिषेधयित्तुवा नश्यते इति, तथापि खलु जगत्यजय्य जेतुमशक्यं जानतोऽपि खलु यूय-मेघमुखाः नागकुमाराः भरतस्य राज्ञो विजयस्कन्धावारस्योपरि युगमुसलमुष्टिप्रमाणमात्राभि धाराभिः ओघमेवं सप्तरात्रं सप्तगत्रिप्रमाणकालेन वर्ष वर्षत 'तं एवमवि गते इत्तो खिप्पामेव अवक्कमह अहव ण अज्ज पासह चित्तं जीवलोगं' तत् तस्मात् एवमपि गते अतोते अविचारितकार्ये कृते सत्यपि किं बहु अधिक्षिपामः ? इतः स्थानात् क्षिप्रमेव पश्चात्तापपूर्वकं स्वपराधं क्षमापयन्तः अपक्रामत अपयात् दूरम-पसरतेत्यर्थः अथवा विकल्पान्तरे खलु यदि नापक्रामत तर्हि अद्य साम्प्रतमेव पश्यत

किये हुए हो क्या तुम चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजा को नहीं जानते हो—तुमने नहीं सुना है कि वह आसमुद्रान्त करग्राही है। महती ऋद्धि वाला है यावत् वह महाद्युति वाला महाप्रभाव वाला, महासौख्य का भोक्ता है किमी भी देव दानव आदि में ऐसी शक्ति नहीं है जो राजा-दिको द्वारा उसे उपद्रव युक्त कर सके या यहां से उसे पीछे वापिस कर सके इस प्रकार से इस जगत में अजेय हुए भरत राजा को जानते हुए भी आपलोग उसकी सेना के ऊपर युग मुसल, एवं मुष्टि प्रमाण जैसी जलधाराओ से पुष्कल सवर्तक मेघ की तरह सात दिन से वृष्टि बरसा रहे हो (त एवमविगते इत्तो खिप्पामेव अवक्कमह, अहव ण अज्ज पासह चित्तं जीवलोगं) तुमने यह काम बिना विचारे हो किया है अब हम डम पर तुम्हें कितना तिरस्कृत करे अब तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम सब इस स्थान से अपने अपराध की पश्चात्ताप पूर्वक क्षमा मागते हुए शीघ्र ही चले जाओ। यदि नहीं जाते हो अभी ही तुम सब चित्र जीव लोक को—वर्तमान भव से अन्य

छे. तमे सवे' निर्वाण छे. अने शोभाथी तिरस्कृत थयेदा छे. शु तमे—चातुरन्त चक्रवर्ती भरत राजाने जानता नथी तमने अजर नथी के ते भरत नृपति आसमुद्रान्त कर ग्राही छे. ते महती ऋद्धिवान् छे यावत् ते महाद्युतिवान् महा प्रभाववान् अने महासौख्य भोक्ता छे. ओउ पणु देव, दानव पणेरैमा जेवी शक्ति छे न नहि के जे शस्त्रादिको वडे तेने उपद्रव युक्त करी शके अथवा तो तेने अहीथी पाछा हठावी शके आ प्रभाषे आ जणतमां अजेय ते भरत राज ने जानुवा छतांजे तमे ते राजानी सेना उपर युग, मुसल तेमंज मुष्टि प्रमाण जेवी जणधाराओथी पुष्कल सवर्तक मेघनी जेम सात-दिवस रात्रि थो वृष्टि बरसावी रखा छे. (त एवमविगते इत्तो खिप्पामेव अवक्कमह, अहव ण अज्ज, पासह चित्तंजीवलोगं) तमे आ काम वगर विचार्ये न क्यु' छे अमे तमने केटवा प्रभाषु मां तिरस्कृत करीजे हवे तमाथी बलाध जोमा न छे के तमे सवे' आ स्थानथी पाताना अपराधनी पश्चात्ताप पूर्वक क्षमायाचना करता यथाशीघ्र अहीथी पलायन थर्ष जाओ. जे तमे अहीथी नथो नही' तो हसण्यां न सवे' सिन्न एव बोक्खे—जेटवे के वर्तमान भवमांथी अन्य भवने—अहाए मृत्यु ने पाभशे। (तपण ते महसुहा जागकुमारा

चित्रं जीवलोकम् वर्तमानभवादन्यं भवम् अपमृत्युं प्राप्नुतेत्यर्थः 'तएणं ते मेहमुहा
णागकुमारा देवा तेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा भीया तत्था वहिया संजायभया मेघा-
नीकं परिसाहरंति' ततः खलु ते मेघमुखा नागकुमारा देवाः तैः षोडशसहस्रसंख्य
कैः देवैरेवमुक्ताः सन्तः भीताः त्रस्ताः वधिताः सज्जातभया मेघानीकम्-घनदं प्रति
संहरन्ति अपहरन्ति 'परिसाहरित्ता जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति' प्रतिसंहृत्य-
यत्रैव आपातकिराताः तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छित्ता आवाडचिलाए एवं वयासी' उपा-
गत्य मेघमुखाः नागकुमाराः आपातकिरातान् एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अत्रादिपुः उक्तवन्तः
किमुक्तवन्त इत्याह—'एस णं देवाणुप्पिया ! भरहे राया महद्धिण जाव णो खलु एस सक्का
केणइ देवेण वा जाव अग्गिप्पआगेण वा जाव उवद्वित्तए वा पडिसोहित्तए वा तहावि
अ णं ते अम्हेहिं देवाणुप्पिया ! तुब्भं पिअट्टयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गे कए' हे देवानुप्रियाः
एषः खलु भरतो राजा महर्द्धिको यावत् महासौख्यः चातुरन्तचक्रवर्ती वर्त्तते न खलु

भव को—अकाल मृत्यु को—देखते हो (तएण ते मेहमुहा णागकुमारा देवा तेहिं देवेहिं एवं वुत्ता
समाणा भीया तत्था वहिया संजायभया मेघानीकं परिसाहरंति) इस प्रकार से उन १६ हजार
देवों द्वारा डाटे गये वे मेघमुख नाम के नागकुमार देव बहुत ही अधिक रू। में भयभीत हो
गये त्रस्त हो गये व्यथित या बाधित हो गये, और सजात भयवाले बन गये अतः उसी समय
उन्होंने घनघटा को अपहृत कर लिया (परिसाहरित्ता जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छंति)
अपहृत करके फिर वे जहाँ पर आपात किरात ये वहा पर आये (उवागच्छित्ता आवाडचिलाए
एव वयासी) वहा आकर के उन्होंने उन आपात किरातों से ऐसा कहा—(एस ण देवाणुप्पिया !
भरहे राया महद्धिण जाव णो खलु एस सक्का केणइ देवेण वा जाव अग्गिप्पआगेण वा जाव उव-
वित्तए वा पडिसोहित्तए वा तहावि अ णं ते अम्हेहिं देवाणुप्पिया ! तुब्भं पिअट्टयाए भरहस्म रण्णो
उवसग्गे कए) हे देवानुप्रियो ! यह भरतराजा है और यह महर्द्धिक है यावत् महासौख्य सग्न
है । चातुरन्तचक्रवर्ती हैं यह किसी भी देव द्वारा यावत् किसी भी दानव द्वारा या किसी भी

देवा तेहिं देवेहिं एव वुत्ता समाणा भीया तत्था वहिया संजायभया मेघानीकं परिसाह-
रति) आ प्रभाणु ते १६ हजार देवो वडे धिक्कृत थयेवा ते मेघमुख नामक नागकुमार
देवो अतीव भय संत्रस्त थर्ध गया, व्यथित के वधित थर्ध गया, अने सजातभय वाणा
भनी गया अथी ते~ क्षणु तेभणु घन घटाअोने अपहृत करी लीधी (परिसाहरित्ता
जेणेव आवाडचिलाया तेणेव उवागच्छति) अपहृत करीने पछी तेअो नथा आपात
किरातो इता त्या गया (उवागच्छित्ता आवाडचिलाए एव वयासी) त्या अर्ध ने तेभणु
आपात किरातोने आ प्रभाणु कहुं (एसणं देवाणुप्पिया ! भरहे राया महद्धिण जाव णो
खलु एस सक्का केणइ देवेण वा जाव अग्गिप्पआगेण वा जाव उवद्वित्तए वा पडिसोहित्त
ए वा तहाविअ णं ते अम्हेहिं देवाणुप्पिया ! तुब्भं पिअट्टयाए भरहस्स रण्णो उवसग्गे
कए) हे देवानुप्रियो ! ये भरत राजा छे ये महर्द्धिक छे ये यावत् महासौख्य सग्न
छे, ये चातुरन्त चक्रवर्ती छे ये कौर्ध पणु देव वडे यावत् कौध पणु दानव वडे अथवा

एषः केनापि देवेन वा यावत् दानवेन वा किन्नरेण वा किंपुरुषेण महोरगेण वा गन्धर्वेण वा शस्त्रप्रयोगेण वा अग्निप्रयोगेण वा यावत् मन्त्रप्रयोगेण वा उपद्रवयितु वा प्रतिषेधयितुं वा युष्मद्देशाक्रमणतो निवर्त्तयितुम् तथापि इत्थमसाध्ये कार्ये सत्यपि च खलु अस्माभिर्देवानुप्रियाः ! युष्माकं प्रीत्यर्थं भरतस्य राज्ञः उत्सर्गः कृतः 'तं गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय पंजलिउडा पायवडिआ भरह रायाणं सरणं उवेह' तत् तस्मात् गच्छत खलु देवानुप्रियाः ! यूयम् आपातकिराताः स्नाताः कृतबलिकर्माणः वायसादिभ्यो दत्तान्नभागाः कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः तथा आर्द्रपटशाटकाः आर्द्रौ सद्यः स्नानवशाज्जलमिश्रितौ पटशाटकौ उत्तरीयपरिधाने येषां ते तथा एतेन सेवाविधौ अविलम्बः सूचितः, तथा 'अवचूलकनियत्था' अवचूलकम् अधोमुखाञ्चलम्-मुत्कलाञ्चलम् यया स्यात् तथा नियत्थं नियमितं येषां ते तथा प्रक्षरज्जल वस्त्र परिधाय गन्त व्यमित्यर्थः अनेनावद्धकच्छत्वं सूचितं तदुपदर्शनेन स्वदन्यं सूचितमिति । बद्धकच्छत्वदर्शने हि शूरत्वसूचक उत्कटत्वसम्भावनाया जनप्रसिद्धत्वात् अत्र्याणि बहुमूल्यकानि वराणि श्रेष्ठानि रत्नानि गृहीत्वा प्राञ्जलिकृताः कृतप्राञ्जलयः पदपतित्ताः चरणन्यस्तमस्तकाः

किन्नर द्वारा या किसी भी किंपुरुष द्वारा या किसी भी महोरग द्वारा या किसी भी गधर्व द्वारा शस्त्र प्रयोग से या अग्नि प्रयोग से यावत् मन्त्र प्रयोग से न उपद्रवित किया जा सकता है और न आपके देश परसे आक्रमण करने से हटाया ही जा सकता है । परन्तु फिर भी हमने जो इस प्रकार के असाध्य होने पर भी इस भरतराजा के ऊपर उपद्रव किया है वह केवल आपकी प्रीति के निमित्त ही किया है (तं गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय पंजलिउडा पायवडिआ भरह रायाणं सरणं उवेह) तो अब हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और स्नान करो बलि कर्म करो एवं कौतुक मंगल प्रायश्चित्त करो । यह सब करके फिर तुम सबके सब गीले घोंती दुपट्टे पहिने ही उनके प्रान्त भागो से जल जमीन पर गिरता जावे ऐसी अवस्थावाले होकर

कैथं पणु किन्नर वडे अथवा कैथं पणु किंपुरुष वडे के कैथं पणु महोरग वडे के कैथं पणु गधर्व वडे कैथं पणु शस्त्र प्रयोग थी के अग्नि प्रयोगथी यावत् मन्त्र प्रयोगथी ओ उपद्रवित करवाभा आवी शकतो नथी तेमज ओ नरेशने तमारा देश परथी आक्रमण करता हुठानी पणु शकथ नहि असाध्य होवा छताओ अमे ओ भरत नरेश उपर उपद्रव कर्यो छे, ते मात्र तमारी प्रीति ने लथ ने ज 'त गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणिअच्छा अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय पंजलिउडा पायवडिआ भरह रायाणं सरणं उवेह) तो हुवे हे देवाउ प्रियो ! तमे जओ अने स्नान करे, अलिकर्म सम्पन्न करे तेमज कौतुक मंगल प्रायश्चित्त करे, ओ सर्व सम्पन्न करीने पछी तमे अथा बीना घोंती-हुपट्टा पहरीने ज ओटवे के जे घोंती-हुपट्टाओना प्रान्त भागोभा थी पछी जमीन उपर टपकी रह्यु होथ ओवी

भरतं राजानं शरणमुपेयात् स्त्रीकर्तव्यम् इत्यर्थः 'पणिवड्यवच्छला खलु उत्तमपुरिसा णत्थि मे भरहस्स रण्णो अंतियाओ भयमिति कट्टु, एवं वदित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तायेव दिसिं पड्डिगया'प्रणिपतितवत्सलाः प्रणम्रजनानुरागिणः खलु निश्चये उत्तमपुरुषा भवन्ति अतः नास्ति मे भवतां भरतस्य राज्ञोऽन्ति ऋद्धयमिति कृत्या आपातकिरातान् प्रति उक्तरीत्या उादिश्य यस्याः दिशः प्रादुर्भूता आगतवन्तः तामेवदिशं प्रतिगताः प्रतिगतवन्त परावर्तिताः इत्यर्थः ते मेघमुख्ता नागकुमागः इति अथ भग्नेच्छा म्ळेच्छा आपातकिराताः यच्चक्रुः तदाह—'तएणं' इत्यादि । 'तए णं ते आवाडचिळाया मेहमुहेहिं नागकुमारेहिं देवेहिं एवंवुत्ता समाणा उट्टाप उट्टेति' ततः खलु ते आपातकिराताः मेघमुखैः नागकुमारैः देवैः एवमुक्ताः सन्तः उत्थया उत्थानेन उत्तिष्ठन्ति 'उट्टित्ता ण्हाया कयवलिकम्मा' उत्थाय स्नाताः कृतबलिकमाणः वायसादिभ्यो दत्तान्नभागाः 'कयकोउय मंगळपायच्छित्ता' कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्ताः 'उल्लपडसाडगा' आर्द्रपटशाटकाः 'ओचूलगणियच्छा'अवचूलकनियत्था सन्तः प्रक्षरञ्जलं वस्त्रं परिधाय 'अग्गाईं वराईं रयणाईं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति' अट्टयाणि वराणि रत्नानि गृहीत्वा यत्रैव भरतो

तथा बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नो को लेकर एवं हाथो को जोडकर भरतराजा की शरण में जाओ वहां जाकर तुम सब उनके पैरो में गिर जाना (पणिवड्यवच्छला खलु उत्तमपुरिसा णत्थि मे भरहस्सरण्णो) उत्तमपुरुष जो होते है वे प्रणिपतित वत्सल होते हैं—अपने प्रति झुकनेवाले जनो में अनुरागी होते हैं इसलिये आपलोगो को भरत नरेश के पास अब कोई भय नहीं है । इस प्रकार से आपात किरातो को समझा बुझाकर वे जिस दिशा से आये थे उसी दिशा तरफ चले गये अब जिनकी इच्छा पर पानी फिरे गया है ऐसे उन म्ळेच्छ आपातकिरातो ने जो किया वह इस प्रकार से है—(तए णं ते आवाडचिळाया मेहमुहेहिं नागकुमारेहिं देवेहिं एव वुत्ता समाणा उट्टाप उट्टेति) अब मेघमुख नामके नागकुमारों के द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से समझाये गये वे आपातकिरात अपने आप उठे (उट्टित्ता ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूल-

स्थितिभा ७, बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नोने लथ ने तेभञ्ज हाथ जोडीने भरत राजानी शरणभूं लथो त्या लथने तमे सर्व तेना भुगोभां पडी लथो. (पणिवड्यवच्छला खलु उत्तमपुरिसा णत्थि मे भरहस्सरण्णो) ने उत्तम पुरुषो होय छे, ते प्रणिपतित वत्सल होय छे तेभनी सामे लथो नञ्ज थथ ने लथ छे तेथो तेभना अनुराग ने भेणवे छे जेथी तमे सर्व भरत नरेश नी पासो लवो हवे त्या डोळ लथ तभने नथी आ प्रभ छे आपात किरातोने सभलवीने ते देवो ने दिशाभाथी आन्था हता, ते दिशा तरफ ल लता रथा. हवे जेभनी छच्छा उपर पाखीं र्शी वणु छे जेवा ते म्ळेच्छ आपातकिरातो जे ने थथ थथु ते आ प्रभाणे छे (तए णं ते आवाडचिळाया मेहमुहेहिं नागकुमारेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा उट्टाप उट्टेति) एवं मेघमुख नामः नागकुमारो वडे पूर्वोक्त प्रकारधी सभ लववाभा आवेला ते आपात किरातो पेतानी भेगे उभा थथा (उट्टित्ता ण्हाया कयवलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता उल्लपडसाडगा ओचूलगणियच्छा अग्गाईं

राजा तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छिता करयलपरिगहियं जाव मत्थए अंजलिं कद्दु भरहं रायं जएण विजएणं वद्धाविति' उपागत्य करतलपरिगृहीत यावत् दशनखं शिरसावर्त्त मस्तके अञ्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति 'वद्धावित्ता' वर्द्धयित्वा 'अग्गाइ वराइं रयणाइं उवणेंति, उवणित्ता एवं वयासी' अग्र्याणि वराणि रत्नानि उपनयन्ति प्राभृति कुर्वन्ति उगनीय प्राभृतीकृत्य एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण ते आपातकिराताः आवादिषु, उक्तवन्तः, किमुक्तवन्त इत्याह- 'वसुहर' इत्यादि 'वसुहर गुणहर जयहर हिरिसिरिधी कित्तिधारकरिंद । लक्खणसहस्सधारक ! रायमिदं जे चिरंधारे ॥१॥ हे वसुधर द्रव्यधर पट्खण्डवर्त्तिद्रव्यपते ! अथवा तेजोधर ! गुणधर औदार्यादि गुणधारक ! जयधर विद्वेषिभिरघर्षणीयः शत्रुविजयकारक ह्री श्री धी कीर्त्तिधारक नरेन्द्र तत्र ह्रीः-

गणियञ्छा अग्गाइं वराइ रयणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति) और उठ कर फिर उन्होंने स्नान किया बलिकर्म किया कौतुक मगल, प्रायश्चित्त क्रिये और फिर वे सबके सब जिनके अप्रभागों से पानी निचुडता हुआ चला जा रहा है ऐसे अधोवस्त्रो को पहिरे हुए ही बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नो को लेकर जहा पर भरत नरेश था वहा पर आये (उवागच्छिता करयलपरिगहियं जाव मत्थए अंजलिं कद्दु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धाविति) वहां आकरके उन्होंने दोनो हाथो को जोड़कर और उसकी अंजुलि की मस्तक पर घुमाकर भरतनरेश को जय विजय शब्दों द्वारा वधाई दी (वद्धावित्ता अग्गाइ, वराइं रयणाइ उवणेंति) और वधाइ देकर फिर उन्होंने बहुमूल्य श्रेष्ठरत्नो को भेट के रूप में उनके समक्ष रख दिया (उवणित्ता एव वयासी) भेट के रूप में रत्नो को रख कर फिर उन्होंने ऐसा कहा—(वसुहर ! गुणहर ! जयहर ! हिरिसिरि धी कित्तिधारक णरिंद—लक्खणसहस्स धारक ! रायमिदं जे चिरं धारे) हे वसुधर—पट्खण्डवर्त्ति द्रव्यपते ! अथवा हे तेजो धर ! हे गुणधर—औदार्य शौर्यादिगुण धारक ! हे जयधर—शत्रुओ द्वारा अघर्षणीय ! शत्रुविजय

वराइ रयणाइ गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति) અને ઉભા થઇ ને તેમણે સ્નાન કર્યું, બલિકર્મ કર્યું અને કૌતુક મંગળ, પ્રાયશ્ચિત્ત કર્યા અને પછી તેઓ સર્વે ભેમના અગ્રભાગોથી પાણી ટપકો કહ્યું છે એવા અધોવસ્ત્ર પહેરીને જ, બહુ મૂલ્ય શ્રેષ્ઠ રત્નોને લઈને જ્યાં ભરત નરેશ હતો, ત્યાં આગ્યા (ઉવાગચ્છિતા કરયલપરિગહિયં જાવ મત્થપ અંજલિં કદ્દુ ભરહં રાયં જણં વિજણં વદ્ધાવિત્તિ) ત્યાં પહોંચીને તેમણે બંને હાથ ભેડી ને અને તે હાથોની અંજલિને મસ્તક ઉપર ફેરવી ને જય વિજય શબ્દો વડે તેને વધામણી આપી, (વદ્ધાવિત્તા અગ્ગાઈ વરાઈ રયણાઈ ઉવણેતિ) અને વધામણી આપીને તેમણે બહુમૂલ્ય શ્રેષ્ઠ રત્નો ભેટના રૂપમાં તેની સમક્ષ મૂકી દીધાં (ઉવણિત્તા એવં વયાસી) ભેટના રૂપમાં રત્નો મૂકી ને પછી તેમણે આ પ્રમાણે કહ્યું—(વસુહર ! ગુણહર ! જયહર હિરિ સિરિ ધી કિત્તિધારક ! ણરિંદ—લક્કણસહસ્સધારક ! રાયમિદં જે ચિરં ધારે) હે વસુધર—પટ્ખંડવર્તિ દ્રવ્યપતે ! અથવા હે તેજોધર ! હે ગુણધર ! ઔદાર્યશૌર્યાદિ ગુણધારક ! હે જયધર ! શત્રુઓવડે અઘર્ષણીય ! શત્રુ વિજય કારક ! હે હ્રી, શ્રી—લક્ષ્મી, ધૃતિ સતોષ, કીર્તિ વશના ધારક ! હે નરેન્દ્ર લક્ષણ સહસ્ત્ર ધારક ! અથવા—હે નરેન્દ્ર—નરેન્દ્ર

लज्जा श्रीः-लक्ष्मीः धृतिः- धैर्यम् कीर्तिः यशः एतेषां धारकः नरेन्द्र नरस्वामिन् लक्षण-
सहस्रधारक । तत्र लक्ष्यन्ते चिह्नयन्ते यैः तानि लक्षणानि हस्तादि विद्याधनजीवितरेखा
रूपाणि तेषां तद्वत् तस्य धारकः तस्य सम्बोधने हे लक्षणसहस्रधारक ! 'रायमिदं जे
चिरंधारे' नः अस्माकम् इदम् राज्यं चिरंधारय पालय अस्मदेशाधिपतिर्भव चिरं कालं
यावदिति गाथार्थः ॥१॥

“हयवइ गयवइ णरवइ णवणिहिवइ भरहवासपढमवई ।

बत्तीस जणवय सहस्सराय सामी चिरं जीव ॥२॥”

हे हयपते ! हे गजपते ! हे नरपते ! नवनिधिपते ! हे भरतवर्षप्रथमपते !
द्वात्रिंशज्जनपदसहस्राणां द्वात्रिंशदेशसहस्राणाम् ये राजानः तेषां स्वामिन् । चिरं जीव
चिरकालं जीवनं धारय अयम् अस्या गाथाया अर्थः ॥२॥

कारक ! हे ह्री श्रीलक्ष्मी, धृति संतोष, कीर्ति—यश के धारक ! नरेन्द्रलक्षणसहस्रधारक !
अथवा—हे नरेन्द्र नर-स्वामिन् ! हे लक्षणसहस्रधारक ! विद्या, धन, जीवन आदि को हजारों
रेखाओं को चिह्नों को धारण करने वाले ! आप हमारे इस राज्य का चिर काल तक पालन
करो—आप हमारे देश के चिरकाल तक अधिपति बनो ॥१॥

‘हयवइ गयवइ णरवई णवणिहिवइ भरहवास पढमवई ।

बत्तीसजणवयसहस्सरायसामी चिरं जीव ॥२॥

पढमणरीसर ईसर हिअईसर महिलियासहस्साणं ।

देवसयसाहसीसर चोदहरयणीसर जसंसी ॥३॥

सागरगिरिमेरागं उत्तरवाईणमभिजिअं तुमए ।

ता अम्हे देवाणुप्पियस्स विसए परिवसामो ॥४॥

हे हयपते ! हे गजपते ! हे नरपते ! हे नवनिधिपते ! हे भरतक्षेत्रप्रथमपते ! हे द्वात्रि-
शज्जनपदसहस्र नरपति स्वामिन् ! आप चिरकाल तक इस घरा घाम पर जीवितरहे ॥२॥

मिन् ! हे लक्ष्मी सहस्र धारक—विद्या, धन, वज्ररेणी हजारे रेखाओं वि-होने धारणु।
करना । आपश्री अमारा ये राज्यतु चिरकाल सुधी पालन करो, आपश्री अमारा देशना
चिरकाल सुधी अधिपति बने। ॥१॥

“हयवइ गयवइ णरवइ णवणिहिवइ भरहवासपढमवई ।

बत्तीस जणवय सहस्सरायसामी चिर जीव ॥२॥

पढमणरीसर इसर हिअईसर महिलिया सहस्साणं ।

देवसय साहसीसर चोदहरयणीसर जसंसी ॥३॥

सागर गिरि मेराग उत्तरवाईण मभिजिअ तुमए ।

ता अम्हे देवाणुप्पियस्स विसए परिवसामो ॥४॥

हे हयपते ! हे गजपते ! हे नरपते ! हे नवनिधिपते ! हे भरत क्षेत्र प्रथमपते !
हे द्वात्रिंशज्जन पद सहस्र नरपति स्वामिन् ! आपश्री चिरकाल सुधी आ धराधाम
१०१

“पद्मगरीसर ईसर हियईसर महिलिया सहस्त्राणं ।

देवसयसाहसीसर चोदस रयणीसर जसंसी ॥३॥”

हे प्रथमनरेश्वर ! हे ऐश्वर्यधर ! हे महिलिकासहस्राणां चतुःषष्टि स्त्रीसहस्राणां हृदयेश्वर प्राणवल्लभ ! देवशतसहस्राणां रत्नाधिष्ठातृमागधतीर्थाधिपादि देवलक्षाणा-मीश्वर ! चतुर्दशरत्नेश्वर ! चक्ररत्नछत्ररत्नादीमधिपते ! यशस्विन् ! इति तृतीय गायार्थः ॥३॥

“सागरगिरिमेरागं उत्तरवाईण मभिजिअं तुमए ।

ता अम्हे देवाणुप्पियस्स विसए परिवसामो ॥४॥

तथा ‘सागरगिरिमेरागं’ सागरगिरिमर्यादम् तत्र सागरः पूर्वापरदक्षिणारूपः समुद्रः, गिरिः-हिमवान् तयोः मर्यादा अवधिर्यत्र तत् सागरगिरिमर्यादम् पूर्वापरदक्षिणदिक्जये समुद्रावधिकम् उत्तरतो हिमाचलावधिकम् यत् ‘उत्तरवाईणमभिजिअं तुमए’ उत्तगवाचीनम् उत्तरार्द्धदक्षिणार्धभरतं सम्पूर्णभरतमित्यर्थः तत् त्वयाऽभिजितम् स्वायत्तीकृतम् ‘ता’ तस्मात् ‘अम्हे’ वयम् देवानुप्रियस्य विषये देशे परिवसामः युष्माकं प्रजारूपेण निवसामः इत्यर्थः इति चतुर्थगाथाया अर्थः बोद्धव्यः ॥४॥

‘अहो णं देवाणुप्पियाणं इड्ढीजुई जसे वळे वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए’ तत्र अहो इति आश्चर्ये खलु देवानुप्रियाणाम् श्रीमतां ऋद्धिः सम्पत् धृतिः प्रभा यशः कीर्तिः बलं शारीरिकशक्तिः वीर्यम् आत्मशक्तिः

हे प्रथम नरेश्वर ! हे ईश्वर ऐश्वर्यधर ! हे चतुष्पष्ठीसहस्रनारीहृदयेश्वर हे रत्नाधिष्ठायक, मागध तीर्थाधिपादिदेवलक्षेश्वर ! हे चतुर्दशरत्नाधिपते ! हे यशस्विन् ! ॥३॥ आपने पूर्व, एव पश्चिम, दक्षिण समुद्र तक के एव क्षुद्रहिमाचलतक के उत्तरार्द्ध दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र को भावा में भूतवदुपचार की अपेक्षाकर के अपने वश में कर लिया है अत अब हम आप देवानुप्रिय के ही देश में रहने वाले बन गये हैं । हम आपकी ही प्रजा रूप हो गये हैं ॥४॥-‘अहो णं देवाणुप्पियाणं इड्ढीजुई जसे वळे वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वा देवजुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए’ यहां-अहो यह शब्द आश्चर्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । आप देवानुप्रिय की ऋद्धि-सम्पत्, धृति, प्रभा यश-कीर्ति, बल शारीरिक शक्ति, वीर्य-आत्मशक्ति, पुरुषकार-पौरुष और परा-

उपर अलित रहे। ॥२॥ हे प्रथम नरेश्वर ! हे ईश्वर ऐश्वर्यधर ! हे चतुष्पष्ठी सहस्र नारी हृदयेश्वर ! हे रत्नाधिष्ठायक, मागधतीर्थाधिपादि देवलक्षेश्वर ! हे चतुर्दश रत्नाधिपते हे यशस्विन् ॥३॥ आपश्रीजे पूर्व, पश्चिम दक्षिण समुद्र सुधीना तेमए क्षुद्र हिमा-चल सुधीना उत्तरार्द्ध-दक्षिणार्द्ध भरतने-परिपूष्ण भरत क्षेत्र ने-बावीमां भूतवदुपचारनी अपेक्षाजे पोताना वशमां करी वीधु छे जेथी हुवे अजे सवे आप देवानुप्रियना ए देश-वासी थथ गथा छीजे अजे आपश्रीनी प्रभा थथ गथा छीजे ॥४॥ (अहोणं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसे वळे वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए) अही ‘अहो’ जे शब्द आश्चर्य अर्थमा प्रयुक्त थयेल छे, आप देवा-

पुरुषकारः पौरुषं पराक्रमं विक्रमः, ऋद्ध्यादोनि आश्चर्यकारकाणि कुत इत्याह—'दिव्या देवजुड' इत्यादि । दिव्या सर्वोत्कृष्टा देवस्येव द्युतिः यस्य स देवद्युतिः एवं दिव्यो देवानुभावो देवानुभागो वा लब्धः प्राप्तः अभिसमन्वागतो देवधर्मप्रसादादिति, परतः श्रुतेऽपि गुणातिशये आश्चर्योत्पत्तिः स्यात् दृष्टे तु सुतरामित्याशयेनाह—'तं दिट्टा' इत्यादि 'तं दिट्टा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी एवं चेव जाव अभिसमण्णागए' तद् दृष्टा खलु देवानुप्रियाणाम् ऋद्धि सम्पत्, चक्षुः प्रत्यक्षेण अनुभूता श्रवणतो दर्शनस्यातिसंवादकत्वात् अद्भ्युत्तार्थ्यजनकत्वात् एवं चैवेति उक्तन्यायेन दृष्टा देवानुप्रियाणां द्युतिः, एवं यशो बलादिकमपि दृष्टमित्यादि वक्तव्यम्, यावदभिसमन्वागत इतिपदे यावत्पदसंग्रहस्तु 'इड्ढी-जसे बले वीरिए' इत्यादिकम् अनन्तरोक्त एव बोध्यम् 'तं खामेमु णं देवाणुप्पिया !' तत् क्षमयामः खलु देवानुप्रियाः ! वयम् 'खमंतु णं देवाणुप्पिया !' भवद्बालचेष्टितं क्षमन्तां देवानुप्रियाः । 'खंतुमरहतु णं देवाणुप्पिया ।' क्षन्तु मर्हन्तु क्षमां कर्तुं योग्या

क्रम विक्रम ये सब ही बड़े आश्चर्यकारक है, क्योंकि आपकी सर्वोत्कृष्ट देव के जैसी द्युति है, सर्वोत्कृष्टदेव के जैसा आपका प्रभाव है, यह सब आपने देव एवं धर्म के प्रसाद से ही लब्ध किया है, प्राप्त किया है और अभिसमन्वागत किया है दूसरों के मुख से गुणातिशय के सुनने पर आश्चर्य होता है परन्तु जब वह स्वयं आखो से देखलिया जाता है तो आश्चर्य की सीमा नहीं रहती है । (तं दिट्टाणं देवाणुप्पियाणं इड्ढी एव चेव जाव अभिसमण्णागए, तं खामेमु णं देवाणुप्पिया खमंतु णं देवाणुप्पिया । खंतुमरहतु णं देवाणुप्पिया ।) हमलोगों ने आप देवानुप्रिय की ऋद्धि अपनी आखों से देखली है इसी प्रकार से आप का यश बल और वीर्य भी देखलिया है- यहा यावत्पदं से 'इड्ढी जसे बले' इन्हीं पदों का संग्रह हुआ है इसलिये हे देवानुप्रिय! हम अपने अपराधों को आप से क्षमा करवाते हैं क्योंकि हमें पश्चात्ताप हो रहा है हमारे इस बालचेष्टित क्रियाको आप देवानुप्रिय क्षमा करें आप देवानुप्रिय । हमे क्षमा करने के योग्य है, क्योंकि आप बहुत बड़े सदा-

प्रियनी ऋद्धि-सम्पत् द्युति, प्रभा-यश-कीर्ति, भण, शारीरिक शक्ति, वीर्य-आत्मशक्ति, पुरुषकार-पौरुष अने पराक्रम विक्रम अने सर्वे अतीव आश्चर्य कारक छे केमके आपश्रीनी सर्वोत्कृष्ट देवना जेवी द्युति छे, सर्वोत्कृष्ट देवना जेवो आपश्रीना प्रभाव छे, अने पधु आप श्रीअे देवधर्मना प्रसाद थी न भेणोयु छे, प्राप्त कयुं छे अने अभिसमन्वागत कयुं छे 'णीमओना भुअथी शुष्णातिशयनी वात सांभणवाथी आश्चर्यं थाय छे पधु न्यारे ते शुष्ोना आगार ने आपो थी जेठं अे त्यारे असीम आश्चर्यं थाय छे (तं दिट्टा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी एव चेव जाव अभिसमण्णागए, तं खामेमु णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया । खंतुमरहतु णं देवाणुप्पिया ।) अने सर्वे लोकोअे आप देवानुप्रियनी ऋद्धि स्व अक्षु-ओथी जेठं लीधी छे अे प्रभाअे तभारा यश भण अने वीर्यं पधु अने जेठं लीधी छे, अही यावत् पदथी "इड्ढी जसे बले" अे पदोना संग्रह थयो छे, ओथी हे देवानुप्रिय ! अमना थयेल अपराध पहल अने सर्व आप श्री पासेथी क्षमा याचीअे छीअे अमने भारे पश्चात्ताप थछे रओ छे अभारी भण-अेष्टाअेने आप देवानुप्रिय क्षमा करे। आप देवानुप्रिय !

भवन्तु देवानुप्रियाः ! 'णाइ भुज्जो भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु पंजलि उडा पायवडिभा भरहं रायं सरणं उविति' 'णाइ' त्ति नैव 'आइ' इति निपातोऽवधारणे निश्चयार्थं भूयो भूय चारंवार एवं करणतायै सम्पत्स्यामहे एवमपराश्रं न करिष्यामः इति भावः इतिकृत्वा प्राञ्जलि-कृताः बद्धाञ्जलिपुटाः पादपतिताः भरत महाराजान् शरणम् उपयान्ति प्राप्नुवन्ति ।

अथ प्रसन्नताऽभिमुखभरतकृत्यमाह—'तएणं से' इत्यादि 'तएणं से भरहे राया तेसिं आवाडचिळायाणं अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छंति पडिच्छित्ता ते आवाडचिळाए एवं वयासी' ततः खल्लु स भरतो राजा तेषामापातकिरातानाम् अश्याणि वराणि रत्नानि प्रतीच्छति स्वी करोति, 'िष्य-स्वीकृत्य तानापातकिरातान् एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'गच्छह णं भो तुब्भे ममं बाहुच्छाया परिग्गहिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहं सुहेण परिवसह' गच्छत खल्लु भोः ! देवानुप्रियाः ! यूय स्वस्थानमिति शेषः, बाहुच्छायया परिगृहीताः स्वीकृताः मया शिरसि दत्तहस्ताः इत्यर्थः निर्भयाः भयरहिताः निरुद्विग्नाः उद्वेगरहिताः सन्तः सुख सुखेन अतिशयसुखेन परिवसतः निवानं कुरुन 'णत्थि मे कत्तो वि भयमत्थि त्ति

शय वाले हैं । (णाइ भुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु पंजलिउडा पायवडिया भरह र यं सरणं उविति) अब हमलोग भविष्य में ऐसा नहीं करेंगे ऐसा कह कर उन आपातकिरातो ने दोनो हाथो को जोड़ कर उनकी अजलि बनाई और फिर वे भरत राजा के पैरो में पतित हो गये-गिर गये इस तरह वे भरत की शरण में प्राप्त हो गये. (तए णं से भरहे राया तेसिं आवाडचिळायाणं अग्गाइ वराइं रयणाणि पडिच्छति, पडिच्छित्ता ते आवाडचिळाए एव वयासी) उन भरत राजाने उन आपात किरातो को भेट स्वरूप प्रदान किये गये अग्र-बहुमूल्य वर श्रेष्ठ रत्नो को स्वीकार कर-लिया और स्वीकार करके फिर उसने उन आपात किरातो से ऐसा कहा- (गच्छहणं भो तुब्भे ममं बाहुच्छाया परिग्गहिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहं सुहेण परिवसह) हे देवानुप्रियो ! अब आप-लोग अपने २ स्थान पर जाओ आप सब मेरी बाहु छाया से परेगृहीत हो चुके हो निर्भय होकर एवं उद्वेगरहित होकर सुखपूर्वक रहो (णत्थि मे कत्तो वि भयमत्थिति कट्टु सक्कारेइ, सम्माणेइ)

अभने क्षमा करवा थोथ्ये छे केभके आप श्री भटान् सदाशय सम्पन्न छे (णाइ भुज्जो एवं क त्ति कट्टु पंजलिउडा पायवडिया भरहं राय सरणं उविति) इवे पथी अविध्यमां अभे आम नडि करीये आ प्रभाण्णे क्खीने ते आपातकिरातोणे जन्ने डायोने जेडीने अंजलि जनावी अने पथी तेण्णे सर्वं भरत राजाना चरयोभा पडी अथा आम तेमण्णे नदेश भरतनु शरण्यु प्राप्त कथुं (तए णं भरहे राया तेसिं आवाडचिळायाणं

इ वराइं रयणाणि पडिच्छंति, पडिच्छित्ता ते आवाडचिळाए एव वयासी) ते भरत राजाणे ते आपात किरातोना से ट स्वइय भूकेदा-अअथ-अहुभूइय अने श्रेष्ठ रत्नोने स्वीकरी कीधां अने स्वीकार करीने पथी तेण्णे ते आपात किरातोने आ प्रभाण्णे क्खु—(गच्छह णं भो तुब्भे ममं बाहुच्छाया परिग्गहिया णिब्भया णिरुव्विग्गा सुहं सुहेण परिवसह) हे देवानु-प्रियो ! इवे तमे सर्वं पीत-पीताना स्थाने प्रयाण्य करे तमे जथा मारी णाहु छायाथी पशियुडीत थडं चूक्या छे. इवे निर्भय थडने तेम न उद्वेग रहित थडने सुभपूर्वक रहो.

कट्टु सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ' नास्ति 'भे' भवतां
 कुतोऽपि कस्मादपि भयमस्ति इति कृत्वा इत्युक्त्वा सत्कारयति आसनादिना सम्मानयति
 मधुरवचनादिना सत्कार्यं सम्मान्य प्रतिविसर्जयति स्वस्थानगमनाय अतिदिशति प्रेषयति ।
 'तएण से भरहे राया सुसेणं सेणावइ सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी' ततः आपात-
 चिलातानां गमनानन्तरं खलु स पटखंडाधिपतिः भरतो राजा सुसेणं सेनापतिं शब्दयति
 आह्वयति शब्दयित्वा आहूय एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'गच्छाहि ण भो
 देवाणुप्पिया ! दोच्च पि सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमं णिक्खुडं ससिंधुसागरगिरिमे-
 रागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेहि, गच्छ खलु भो देवानुप्रिय ! सुपेण सेना-
 पते ! द्वितीयमपि पूर्वसाधितनिष्कुटापेक्षया अन्यं सिन्ध्वाः महानद्या पश्चिम-पश्चिमभाग-
 वर्त्ति निष्कुट कोणस्थितभरतक्षेत्ररुण्डरूपम् इदं च कैर्विभक्तमित्याह-ससिंधुसागर
 गिरिमर्यादम् तत्र-सिन्धुः नामा महा नदी सागरः पश्चिमसमुद्र. गिरिः उत्तर/त क्षुल्लहिमव-
 द्विरिः दक्षिणतो वैताड्यगिरिश्च एतैः कृता मर्यादा विभागरूपा तथा सहितं यत्त-
 तया, एतैः कृतविभागमित्यर्थः 'समविसमणिक्खुडाणि य' समविषमनिष्कुटानि च
 तत्र समानि समभूमिभागवर्त्तीनि विषमाणि च दुर्गभूमिभागवर्त्तीनि यानि निष्कुटानि

आपलोगों को किसी से भी अब भय नहीं रहा है ऐसा कह कर उन भरत राजा ने उन्हें सत्कृत
 और सम्मानित किया (सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ) सत्कृत सम्मानित करके फिर उन्हो-
 ने उन्हें अपने २ स्थानों पर चढे जाने का आदेश दे दिया (तएण से भरहे राया सुसेणं सेणावइ
 सद्दावेइ) इसके बाद भरत राजाने सुषेण सेनापति को बुलाया-और (सद्दावित्ता एवं वयासी)
 बुलाकर उससे ऐसा कडा (गच्छाहि ण भो देवाणुप्पिया ! दोच्चपि सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमं
 णिक्खुडं ससिंधु सागरमेरागं समविसमणिक्खुडाणि अ ओअवेहि) हे देवानुप्रिय! अब तुम पूर्वसा-
 धित निष्कुट की अपेक्षा द्वितीय सिन्धु महानदी के पश्चिम भागवर्ती कोणमें स्थित भरतक्षेत्र में जाओ
 यह सिन्धु नदी पश्चिमदिगवर्ती समुद्र तथा उत्तर में क्षुल्लहिमवत्गिरि और दक्षिण में वैताड्यगिरि
 इनसे विभक्त हुआ है और वहां समभूमिभागवर्ती एव दुर्गभूमि भागवर्ती जो अवान्तर क्षेत्ररुण्ड-

(णत्थि मे कत्तो वि भयमत्थि ति कट्टु सक्कारेइ, सम्माणेइ) तभने हुवे डै।धने। पणु लथ
 नथी आभ कहीने भरत राजाके तेभने सत्कृत अने सम्मानित कर्या (सक्कारित्ता सम्माणित्ता
 पडिविसज्जेइ) सत्कृत अने सम्मानित करीने पछी तेबु तेभने पोतपोताना स्थाने जवाने।
 आदेश आये। (तएण से भरहे राया सुसेणं सेणावइ सद्दावेइ) त्थार भाइ भरत राजाके
 सुषेण सेनापति ने जेलायी ने आ प्रभाके कथु-(गच्छाहि ण भो देवाणुप्पिया ! दोच्चपि
 सिंधूए महाणईए पच्चत्थिमं णिक्खुडं ससिंधुसागरमेरागं समविसमणिक्खुडाणि
 अ ओअवेहि) हे देवानुप्रिय ! हुवे तभे पूर्वसाधित निष्कुटनी अपेक्षा द्वितीय सिन्धु
 महानदीना पश्चिमभागवर्ती डै।धुमा स्थित भरतक्षेत्रमा जये। जे क्षेत्र सिंधु नदी पश्चिम
 दिगवर्ती समुद्र तथा उत्तरमा क्षुल्ल हिमवत गिरि अने दक्षिणमा वैताड्य गिरि जेमनाथी
 स विभक्त थयेल छे अने तथा समभूमि भागवर्ती तेभजे दुर्गभूमि भागवर्ती जे अवान्तर

अवान्तरक्षेत्रखण्डरूपाणि तानि तथा 'ओअवेहि' साधय तत्र विजय कृत्वाऽस्मदाज्ञां प्रवर्त्तय 'ओअवेत्ता अग्गाइं वराइं रयणाइं पडिच्छाहि' साधयित्वा विजित्य अट्टयाणि वराणि प्रधानानि रत्नानि स्व स्वजातौ उत्कृष्टवस्तूनि प्रतीच्छ गृहाण 'पडिच्छित्ता' प्रतीप्य गृहीत्वा 'मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि' ममैताम् उक्तानुसारिणीम् आज्ञप्तिकां क्षिप्रमेव प्रत्यर्पय समर्पय 'जहा दाहिणिल्लस्स ओअवणं तथा सच्चं भाणियच्चं जाव पच्चणुभवमाणे विहरंति' यथा दाक्षिणात्यस्य सिन्धुनिष्कुटस्य 'ओअवणं' साधनं 'तहा सच्चं भाणियच्चं' तथा सर्वे भणितव्यं तावत्सर्वे भणितव्यं वक्तव्यम् 'जाव पच्चणुभवमाणा विहरंति' तावद्भक्तव्यं यावत्सेनानीर्भरतविष्टः पञ्चविधान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरतीति ॥६०२२॥

तदनन्तर किं जात मिति निरूपयन्नाह—

मूलम्-तए णं दिव्वे चक्कस्यणे अणया कयाइ आउहघससालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता अंतलिक्खपडिण्णे जाव उत्तरपुरच्छिम्मं दिसें चुल्लहिमवंतपव्वयाभिमुहे ययाते यावि होत्थो, तएणं से भरहे राया तं दिव्वं चक्कस्यणं जाव चुल्लहिमवंतवासहरपव्वयस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं जाव चुल्लहिवंतगिस्कुमास्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ, तहेव जहा मागहतित्थस्स जाव समुहरवभूअंपिव करेमाणे करेमाणे

रूप निष्कुट हैं वहा पर विजय प्राप्त कर हमारो आज्ञा को स्थापितकरो (ओअवेत्ता अग्गाइ वराइ रयणाइ पडिच्छाहि) ऐसा करके बहुमूल्य श्रेष्ठ रत्नों को अपनी २ जाति में श्रेष्ठ-उत्कृष्ट वस्तुओं को भेदरूप में स्वीकार करो (पडिच्छित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि) स्वीकार करके मेरी इस आज्ञा की पूर्ति हो जाने की पीछे हमें खबर दो (जहा दाहिणिल्लस्स ओअवणं तथा सच्चं भाणियच्चं जाव पच्चणुभवमाणा विहरंति) जैसा दाक्षिणात्य-दक्षिणदिग्गती-सिन्धुनदी निष्कुट के विजय करने का प्रकरण "यावत् पच्चणुभवमाणा विहरंति" इस सूत्र पाठ तक कहा जा चुका है वैसा ही वह सब प्रकरण यहा भी कहलेना चाहिये ॥२२॥

क्षेत्र ७ अर्द्धनिष्कुट छे त्यां विजय प्राप्त करी अमारी आज्ञा त्या स्थापित करे। (ओअवेत्ता अग्गाइ वराइ रयणाइ पडिच्छाहि) आम करीने अर्द्धमूल्य श्रेष्ठ रत्नोने-पोतपातानी नतिमा श्रेष्ठ-उत्कृष्ट वस्तुओने भेद रूपमा स्वीकार करे। (पडिच्छित्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि) स्वीकार करीने मारी आ आज्ञातुं पालन पूर्यंतीते करीने पछी अमने सूचना आपो। (जहा दाहिणिल्लस्स-ओअवणं तथा सच्चं भाणियच्चं जाव पच्चणुभवमाणा विहरंति) तेषु दाक्षिणात्य-दक्षिणदिग्गतीं सिन्धु नदी निष्कुटना विजय-प्रकरण "यावत् पच्चणुभवमाणा विहरंति" ओ सूत्रपाठ सुधी कडेवाभां आवेल छे तेषु ७ अर्द्ध प्रकरण अने पञ्च सभणु लोछओ. ॥२२॥

उत्तरदिसाभिमुहे जेणेव चुल्लहिमवतवासहरपव्वए तिक्खुत्तो रहसिरेणं
 फुसइ फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हित्ता तहेव जाव आयतकण्णायतं
 च काऊण उसुमुदारं इमाणि वयणाणि तत्थ भाणीअ से णरवई जाव सव्वे
 मे ते विसयवासित्ति कट्टु उद्धं वेहासं उसुं णिसिरइ परिगरणिगरणिअम-
 ज्जे जाव तएणं से सरे भरहेणं रण्णा उद्धं वेहासं णिसट्ठे समाणे खिप्पामेव
 बावत्तरिं जोयणाइं गंता चुल्लहिमवंतगिरिक्कुमारस्स देवस्स मेराए णिवइए
 तएणं से चुल्लहिमवंतगिरिक्कुमारे देवे मेराए सरं णिवइअं पासइ पासित्ता
 आसुरत्ते रुट्ठे जाव पीइदाणं सव्वोसहिं च मालं गोसीसचंदणं कडगाणि
 जाव दहोदगं गेण्हइ गेण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव उत्तरेणं चुल्लहिमवंतगि-
 रिमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पियाणं
 उत्तरिल्ले अंतवले जाव पडिविसज्जेइ ॥ सू० २३ ॥

छाया-ततः खलु तदिव्य चक्ररत्नम् अन्यदा कदाचित् आयुधगृहशालात प्रतिनि-
 ष्कामति प्रतिनिष्क्रम्य अन्तरिक्षप्रतिपन्नम् यावत् उत्तरपौरस्त्या त्रिंशो क्षुद्रहिमवत्पर्वता-
 भिमुखं प्रयातं चाप्यभवत् । तत खलु स भरतो राजा तदिव्यं चक्ररत्नं यावत्क्षुद्रहिमव-
 द्दिरिकुमारस्य देवस्य अष्टमभक्त प्रगृह्णाति तथैव यथा मागवनीर्थस्य यावत् समुद्रव-
 भूतमिव कुर्वन् कुर्वन् उत्तरदिशाभिमुखं यत्रैव क्षुद्रहिमवद्वर्षघरपर्वतः तत्रैव उपाग-
 च्छति उपागत्य क्षुद्रहिमवद् वर्षघरपर्वतः त्रिंशो कृत्व रथशिरसा स्पृशति, स्पृष्ट्वा तुर-
 गानू निगृह्णाति निगृह्य तथैव यावत् आयतकर्णायतं च कृत्वा इषुमुदारम् इमानि
 वचनानि तत्र अभाणीत् स नरपतिः यावत् सर्वे मे ते विषयवासीति कृत्वा ऊर्ध्वं विहा-
 यसि इषु निस्तृजति परिकरनिगडितमध्ये यावत् तत खलु स शर भरतेन राज्ञा ऊर्ध्वं
 विहायसि निस्तृष्ट सन् क्षिप्रमेव द्वासप्ततिं योजनानि गत्वा क्षुद्रहिमवद्दिरिकुमारस्य देव-
 स्य मर्यादायां निपतितः ततः खलु स क्षुद्रहिमवद्दिरिकुमारो देव मर्यादायां शर निपतित
 पश्यति दृष्ट्वा आशुक्तो रुष्टो यावत् प्रीतिदानं सर्वौषधीश्च मालां गोशीर्षवन्दनं च कद-
 कानि यावत् द्रहोदकं च गृह्णाति गृहीत्वा तथा उत्कृष्टया यावत् उत्तरस्यां क्षुद्रहिमव-
 द्दिरिमर्यादायाम् अहं खलु देवानुप्रियाणां विषयवासी यावत् अहं खलु देवानुप्रियाणाम्
 औत्तराहोऽन्तपालो यावत् प्रतिविसर्जयति ॥सू० २३॥

टीका—‘तएणं’ इत्यादि

‘तएणं तं चक्करयणे अण्णया कयाड आउडघरसालाओ पडिणिक्खमइ’ ततः

‘तएणं से दिव्वे चक्करयणे अण्णया कयाइ’ इत्यादि ॥२३॥

टीकार्थ—इस तरह उत्तरदिग्दर्ती निष्कुटो का विजय करने के बाद से (दिव्ये चक्करयणे) वह दिव्य

औत्तराहसिन्धुनिष्कुटसाधनानन्तरं खलु तद्विष्यं चक्ररत्नम् अन्यदा कदाचित् अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् समये आयुष्यगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति निस्सरति इत्यर्थः 'पडिणिक्लमिक्ता' निःसृत्य प्रतिनिष्क्रम्य वहिर्निर्गत्य' अंतलिक्खपडिवण्णो जाव उत्तरपुरत्थिम दिस्सि चुल्लहिमवत्पण्वयाभिमुहे पयाते यावि होत्था' अन्तरिक्षप्रतिपन्नम् गगनदेशस्थित यावत्पदात् यक्षसहस्रपरिवृत दिव्यत्रुटितवाद्यविशेषशब्दसन्निनादेन अम्बरतलं पूरयदिष एतेषां पदानां सङ्ग्रहः उत्तरपौरस्त्यायां दिशि ईशाने कोणे क्षुद्रहिमवत्पर्वताभिमुखं क्षुद्रहिमाचलगिरिसमुख प्रयात गतं चाप्यभवत् 'तएणं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयणं जाव चुल्लहिमवतवासहरपण्वयस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं जाव चुल्लहिमवतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ' ततः खलु स भरतो राजा तद् दिव्यं चक्ररत्नं यावत् अभिक्षुद्रहिमवद्गिरि प्रयातं दृष्ट्वा कौटुम्बिकपुरुपाज्ञापनं हस्तिरत्नप्रतिकल्पनं सेनासन्नाहनं स्नानविधानं हस्तिरत्नारोहणं मार्गागतपुरनगरदेशाधि वशीकरणं

चक्ररत्न (अण्णया कय इं) किसी एक समय (आउहघरसालाओ) आयुष्यगृहशाला से (पडिणिक्लमइ) निकला और (पडिणिक्लमिक्ता अंतलिक्खपडिवन्ने जाव उत्तरपुरत्थिमं दिस्सि चुल्लहिमवत पण्वयाभिमुहे पयाए यावि होत्था) निकलकर वह आकाश प्रदेश से ही-ऊपर रहकर ही-यावत् उत्तर पूर्वदिशा में-ईशान विदिशा में क्षुद्रहिमवत् पर्वत की तरफ चला यहा यावत्पद से—“जक्खसहस्स सरिवुडे दिव्व तुडियसहसणिणाएणं पूरंते चैव अंबरतल” इन पदों का सग्रह किया गया है. (तएण से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयण जाव चुल्लहिमवतवासहरपण्वयस्स अदूर सामंते दुवालसजोयणायामं जाव चुल्लहिमवतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ) क्षुद्र हिमवत पर्वत की ओर जाते हुए उस दिव्य चक्ररत्न को देखकर भरत राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाना, उन्हें आज्ञा देना, हस्तिरत्न की तैयारी करवाना, सेना की तैयारी करवाना फिर स्नान करना, हस्तिरत्न पर आरोहण करना, मार्गागत पुर के नगर के एवं देश के अधिप-

‘तएणं से दिव्वे चक्करयणे अण्णया कयाइ’ इत्यादि सूत्र-॥२३॥

टीका—आ प्रभाषे उत्तर दिग्वातीं निष्कुटे उपर विषय भेगव्या भाट (से दिव्वे च यणे) ते दिव्य चक्र रत्न (अण्णया कयाइ) के अंतर्लिके वपते (आउहघरसालाओ) आयुष्य गृह शालाभांथी (पडिणिक्लमइ) अट्टार नीक्खुं अने (पडिणिक्लमिक्ता अंतलिक्ख पडिवन्ने उत्तरपुरत्थिम दिस्सि चुल्लहिमवतपण्वयभिमुहे पयाए यावि होत्था) अट्टार नीक्खीने ते आकाश प्रदेशथी अ अट्टे के अदूर रहीं अ यावत् उत्तर-पूर्व दिशाभां-ईशान विदिशाभां-क्षुद्र हिमवत् पर्वतनी तरक् याएयु अडी यावत् पडथी—“जक्खसहस्स संपरिवुडे दिव्वतुडियसहसणिणाएणं पूरंते चैव अंबरतल” अे पढोने अ अट्टे थये छे. (तएणं से भरहे राया तं दिव्वं चक्करयण जाव चुल्लहिमवतवासहरपण्वयस्स अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं जाव चुल्लहिमवतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टमभत्तं पणिण्हइ) क्षुद्र हिमवत् पर्वत तरक् प्रथाषु करता ते दिव्यचक्ररत्नने लेधने भरत राजा अे कौटु (अक पुशेने गोलोव्या अने तेभने आज्ञा आपी-तमे हस्तिरत्नने तैयार करे सेना तैयार करे,

त्प्राभृतस्वीकरणं चक्ररत्नानुगमनं योजनानन्तरितवसतिवसनं च करोतीत्यादि पिण्डार्थः प्रथमयावत्पदग्राह्यः, अत्र यावत्पदात् एतावद् वृत्तान्तं ज्ञातव्यम् ततः क्षुद्रहिमवद्वर्षधरपर्व- तस्य अदूरसामन्ते क्षुद्रहिमवद्गिरिसमापे द्वादश योजनायामम् अष्टाचत्वारिंशत्क्रोशपरि- मित्तायामम् अत्र यावत्पदं नव योजनविस्तीर्णादि विशेषणं विशिष्टं स्कन्धावार निवेशयति वर्द्धकिं त्वं शब्दयति, पौषधशालां विधापयति पौषधं च करोतीत्यादि विज्ञेयम् क्षुद्रहिमव- द्दिरिकुमारस्य देवस्य साधनाय पौषधशालायाम् अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति इत्यर्थः । 'तद्देव जहा- मागहत्तित्थस्स जाव समुहरवभूर्यपिव करेमाणे करेमाणे उत्तरदिसामिमुहे जेणेव चुल्लहिमवंत- वामहरपव्वया तेणेव उवागच्छइ' अत्र 'तद्देव' तथैव इति पदवाच्यम् अष्टमभक्तप्रतिजागरणं

तियों का वश में करना उनके द्वारा प्रदत्त भेट स्वीकार करना चक्ररत्न के पीछे २ चलना एक २ योजन के अन्तर से पढाव डालना" इत्यादिरूप से यहा सब कथन जैसा कि पीछे किया जाचुका है. कर लेना चाहिये यही बात यहां पर आगत प्रथम यावत्पद ने प्रकट की है चक्रवर्ती भरत राजा ने क्षुद्रहिमवत्पर्वत के अदूर सामन्तस्थान में अर्थात् उसके पास में १२ बारह योजन की लम्बाई वाले और नौ योजन की चौड़ाई वाले अपने कटक को ठहरा दिया यहां पर आगत पद से" नव योजन विस्तीर्ण आदि"पूर्वोक्तविशेषणों का ग्रहण हुआ है फिर उसने अपने वर्द्धकीरत्न को बुलाया उससे पौषधशाला बनाने को कहा- उसने पौषधशाला का निर्माण कर दिया उसमें स्थित होकर भरत ने पौषध किया इत्यादि- सब कथन जान लेना चाहिये इस तरह सर्व कार्य हो चुकने के बाद भरत राजा ने पौषधशाला में बैठ कर क्षुद्र हिमवद्दिरिकुमार देव को साधने के लिये अष्टम भक्त की तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया (तद्देव जहा मागहत्तित्थस्स जाव समुद- रवमूर्यपिव करेमाणे २ उत्तरदिसामिमुहे जेणेव चुल्लहिमवतवासहरपव्वए तेणेव उवागच्छइ) यहां

भार्गवत पुरना, नगरना तेभञ्ज देशना अधिपतिओने वशमा करे, ते अधिपतिओने वे'ट स्वइये वे कथं आपे ते स्वीकार करे, अकुरत्तणी पाछण-पाछण यावो, ओक योजनना अन्तरथी तसे पडाव नाओ." इत्यादि रूपमा अत्रे अधुं कथन जेभ पडेवां कडेवामा आओथुं छे तेवु सभञ्जवु जेधओ जेञ्ज वात अही प्रयुक्त प्रथम 'यावत्' यह द्वारा प्रकट कर- वाभा आवी छे अकवतीं भरत राजाओ क्षुद्र हिमवत्पर्वतना अदूर साम त स्थानमां अर्थात् तेनी पासे १२ योजन जेटकी लमाधवाणा अने ९ योजन जेटको पडोणाध वाणा पोताना कटकने पडाव नाओ. अही आवेला आगत पदथी-"नव योजन विस्तीर्ण" वगेरे "पूर्वा- क्त विशेषणोत्तु अहंथु थयुं छे त्थार भाह तेवु पोताना वर्द्धकिरत्न ने ओलाओ. अने तेने पौषधशालावु निर्माण करवा माटे कहुं वर्द्धकिरत्नने आज्ञा सुञ्जत तरत न पौषध शाला बनानी आपी तेमा स्थित थपने भरत नरेशे पौषध व्रत कयुं. इत्यादि अधुं कथन जेवु जेधओ, आ प्रभावे सव'कार्यो पूरा थधं जया पछी भरत राजाओ पौषधशा- लाभा जेसीने क्षुद्र हिमवद् गिरि कुमार देवने साधवा माटे अष्टम भक्तनी तपस्या प्रारंभ करी (तद्देव जहा मागहत्तित्थस्स जाव समुहरवभूर्यपिव करेमाणे २ उत्तरदिसामिमुहे जेणेव चुल्लहिमवतवासहरपव्वए तेणेव उवागच्छइ) अही प्रयुक्त "तथैव" यह पडे "अष्ट-

तत्समापनं कौटुम्बिकाज्ञापनं सेनासज्जीकरणम् अश्वरथप्रतिकल्पन स्नानविधानम् अश्वर-
थारोहणं चक्ररत्नमार्गानुगमनं च करोतीत्यादि विज्ञेयम् तथैव मागधतीर्थस्य मागधतीर्थ-
राजदेवस्य यावद् समुद्ररवभूतामिव समुद्ररवं प्राप्तमिव भूगतौ इति सौत्रो धातुः तस्मात्
क्तः सैन्यसमुत्थ कल ङ्करवेण पृथिवीमण्डलं कुर्वन् कुर्वन् उत्तरदिगभिमुखो यत्रैव क्षुद्रहि-
मवर्धधरपर्वतः तत्रैव उपागच्छति समीपं याति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'सुल्लङ्घिमवतवा-
सहरपन्वयं तिक्वुत्तो रहसिरेणं फुसइ' क्षुद्रहिमवद् वर्षधरपर्वतं त्रिःकृत्वः त्रीन् वारान् र-
थाग्रभागेन काकमुखेन स्पृशति अतिवेगप्रवृत्तस्य वेगिपदार्थस्य पुरस्थ प्रतिबन्धकमित्या-
दि संघटने त्रिस्ताडनेन वेगपातदर्शनादत्र त्रिरित्युक्तम् 'फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ' स्पृष्ट्वा वे-
गप्रवृत्तान् तुरगान् चतुरः अश्वान् निगृह्णाति स्थापयति 'णिगिण्हित्ता तदेव जाव आयत-
कण्णायत च काज्ज उमुमुदारं इमाणि वयणाणि तत्थ भणीअ से णरवई जाव सव्वे

आगत "तथैव" पद के द्वारा वाच्य "अष्टमभक्त के दिनो में जगना फिर उसका समापन करना कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर उन्हें आज्ञा देना, सेना को तैयारी करवाना, अश्वरथ की तैयारी करके उसे उपस्थित करने की बात कहना, स्नान करना, अश्वरथ पर सवार होना चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर गमन करना इत्यादि ये सब कार्य हुए हैं अर्थात् भरत चक्रवर्ती ने पहिले कहे गये अनुसार ही इन सब कार्यों को किया ऐसा जानना चाहिये—

यावत् सैन्य समुत्थ कल २ रव से मानो पृथिवी मंडल पर समुद्र का रव हो आकर व्याप्त हो गया है इस तरह से पृथिवी मंडल को करता २ वह भरत राजा उत्तर दिशा को ओर बढ़ता हुआ जहा पर क्षुद्रहिमवान् पर्वत था वहां पर आया (उवागच्छित्ता सुल्लङ्घिमवतवासहरपन्वयं तिक्वुत्तो रहसिरेणं फुसइ) चूंकि अश्वरथ का वेग तीव्र था इससे क्षुद्र हिमवत्पर्वत से रथ का शिरोभाग तीन बार टकराया (फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ) अश्वरथ का अग्रभाग जब क्षुद्रहिमवत्पर्वत से तीन बार टकरा गया— तब उसने वेग से चलते हुए चारों घोड़ों को थामलिया (णिगिण्हित्ता

भ अक्षतना द्विवसोभां लगरणुं कश्चु, पथी तेनु सभापनं कश्चु, कौटुम्बिक पुरुषोने जे।लावी ने तेभने आज्ञा आपवी, सेना सुसज्ज करववी, अश्वरथनी तैयारी करीने तेने उपस्थित करवानी आज्ञा आपवी, स्नान कश्चु, अश्वरथ उपर सवारी कश्ची, चक्ररत्न द्वारा प्रदर्शित मार्ग उपर गमन कश्चु "इत्यादि सर्वं कार्यो सम्पन्नं कथां आभ सम्भणु भरत नरेशे पडेडां कथा सुल्लं ७ जे सर्वं कार्यो ने सम्पन्नं कथां जेवु" "तथैव शब्दनु" तात्पर्यं छे

यावत् सैन्य समुत्थ कल-कल निनाहथी लक्ष्णेके पृथ्वीमंडल उपर समुद्र गमनं ७ आवी ने व्याप्त थई न अशु डोय आ प्रभाण्णे पृथ्वीमंडल ने पोताना सैन्य संचारणथी सुभरित करतो ते भरत नरेश उत्तर दिशा तरङ्ग प्रथाणुं करतो ज्यां क्षुद्र हिमवत् पर्वत इतो त्यां पडेअथे। (उवागच्छित्ता सुल्लङ्घिमवतवासहरपन्वयं तिक्वुत्तो रहसिरेणं फुसइ) अश्वरथनी गति तीव्र इती तेथी क्षुद्रहिमवत् पर्वत थी ते अश्वरथने। शिरोभाग त्रय वार अथडायो। (फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ) अश्वरथने। अग्र भाग न्यारे क्षुद्र हिमवत्पर्वतने त्रय वार अथडायो। तयारे तेण्णे वेगथी आक्षता थारे बोडोअने शैक्षया। (णिगिण्हित्ता तदेव

मे ते विसयवासीत्ति कट्टु उद्ध वेहासं उसु णिसिरइ परिगरणिगरिअमज्जे जाव' चतुरोपि-
 तुरगान् निगृह्य तथैव मागधतीर्थाधिकारवदेव यावद् आयतकृणायतं इपुमुदारमिति अत्र
 'तदेव' ति वचनात् रथस्थापनं धनुर्ग्रहण बाणग्रहणं च वक्तव्यम् ततः तम् उदारम् उद्धटम्
 इषुं बाणं यावदायतकृणायतम् आयतं प्रयत्नयुक्तं यथा भवति तथा कर्णं यावत् कर्णपर्यन्त-
 म् आयतम् आकृष्ट कृत्वा तत्र इमानि वचनानि अभाणीत् स नरयतिः अत्र यावत् पदेन 'हं-
 दि सुणतो भवतो' इत्यादि गाथाद्वयं वाच्य सर्वे मे ते देशवासिनः इति पर्यन्तम् एतस्य
 विशेषतो व्याख्यानं तृतीयवक्षस्कारे पष्ठसूत्रे विलोकनीयम् इति कृत्वा इत्युच्चार्य ऊर्ध्वम्
 उपरि विहायसि आकाशे क्षुद्रहिमवद्गिरिकुमारस्य तत्रावाससंभवात् इषुं बाणं निस्तृजति
 म्रुञ्चति 'परिगरणिगरिअमज्जो जावत्ति' अत्र यावत्पदात् बाणमोक्षप्रकरणाधीतं परिपूर्णं
 गाथाद्वयं वक्तव्यमिति तथा च—

तदेव जाव आयतकृणायतं च काऊण उसुमुदारं इमाणि वयणाणि तत्थ भणीअ से णरवई जाव स-
 व्वमेते विसयवासीत्ति कट्टु उद्ध वेहासं उसु णिसिरइ परिगरणिगरिअमज्जे जाव) चारो घोडो
 को थाम कर के मागधतीर्थाधिकार में कहे गये अनुसार उसने फिर अपने घनुष को उठाया
 बाण को उठाया फिर बाण को घनुष पर स्थापित किया और फिर उसने घनुष पर आरोपित
 करके उस उदारउद्धट घनुष को कान तक खेंचा कान तक घनुष खेचकर फिर उसने इस प्रकार
 के इन वचनों को कहा— "हंदि सुणतो भवतो" ये वचन पूर्वोक्त इन दो गाथाओं में प्रकट कर
 दिये गये हैं सो वे ही वचन "सर्व आप लोग मेरे देश निवासी हैं यहापर भी कहलेना चाहिए
 इनकी व्याख्या तृतीय वक्षस्कारमें छठवें सूत्र में की गई है सो वही से इसे जानलेनी चाहिये
 ऐसा कहकर उसने अपने बाण को ऊपर आकाशमें छोड़ा क्यों कि वही पर क्षुद्रहिमवद्विरि कुमार
 का आवास था ॥ "परिगरणिगरिअमज्जो जावत्ति" यहां यावत्पद से— "बाणमोक्षप्रकरण में
 कथित परिपूर्णगाथाद्वय कहलेनी चाहिये । तथा च—

जाव आयतकृणायतं च काऊण उसुमुदारं इमाणि वयणाणि तत्थ भणीअ से णरवई जाव
 सव्व मेते विसयवासीत्ति कट्टु उद्ध वेहासं उसुं णिसिरइ परिगरणिगरिअमज्जे जाव)
 थारे घोडाओने थ भावीने मागधतीर्थाधिकारमां कथा सुअण तेष्से पोताना धनुष ने हाथमा
 बीधु . भाणु हाथमा बीधु, भाणु ने धनुष उपर स्थापित कथुं अने पछी धनुष उपर आरो-
 पित करीने ते उदार उद्धट धनुष कान धुधी ओथी ने पछी तेष्से आ प्रभाणु कथुं—'हंदि
 सुणतो भवतो' ओ वचने। पूर्वोक्त ओ मे गाथाओमां प्रकट करवामां आवेद छे, तो ओ न
 वचने—'आप सर्वं मारा देशवासी छे। अही पणु समज्जा जेधओ, ओ वचनेनी व्याख्या
 तृतीय वक्षस्कार'मा ६ ठा सूत्रमा कहेवामां आवी छे तो निहासुओ त्यांथी न भाणुवा यत्ता
 करे आम कहीने तेष्से पोताना भाणुने उपर आकाशमा छोडथुं डेअके त्यांणु क्षुद्र हिमवद्
 गिरि कुमारने। आवास छेते।

'परिगरणिगरिअमज्जो जावत्ति' अही यावत् पदथी "भाणु मोक्ष प्रकरणमां कथित
 परिपूर्णं गाथाद्वय कहेवी जेधओ—

परिगरणिगरिभ मज्झो वाउद्धम सोममाणकोसेज्जो ।

चित्तेण सोमए घणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥१॥

त च्चलायमाणं पंचमिचंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे नरवइणो तंमि विजयंमि ॥२॥

छाया-परिकरनिगडितमध्यो वातोद्धृत शोभमानकौशेयः ।

चित्रेण शोभते धनुर्वरेणेन्द्र इव प्रत्यक्षम् ॥१॥

तच्चञ्चलायमाणं पञ्चमो सन्द्रोपमं महाचापम् ।

राजते वामे हस्ते नरपते स्तस्मिन् विजये ॥२॥

बाणं मुञ्चन् भरतः क्रीदशः इत्याह—'परिकर' इत्यादि । परिकरनिगडितमध्यः इति तत्र परिकरः मल्लकच्छवन्धः युद्धोचितवस्त्रवन्धविशेषस्तेन निगडितं सुवद्धं मध्यं मध्यभागो यस्य स तथा, तथा, वातोद्धृतं शोभमानकौशेयः वातेन समुद्रवातेन पवनेन उद्धृतम् उत्क्षिप्तं शोभमानं कौशेयं वस्त्रविशेषो यस्य स तथा अवशिष्टपदानि प्रसिद्धान्येव' ततः किं जातमित्याह—'तए ण से' इत्यादि । 'तए णं से सरे भरहेणं रण्णा उद्धं वेहासं गिसइडे समाणे खिप्पामेव वावत्तरिं जोयणाइं गंता चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स मेराए णिवइए' ततः खलु स शरो-

परिगरणिगरिभमज्झो वाउद्धमोममाण कोसेज्जो । चित्तसोमए घणुवरेण इंदोव्व पच्चक्ख १.१॥

तं चंचलायमाणं पंचमिचंदोवमं महाचावं । छज्जइ वामे हत्थे नरवइणो तंमि विजयंमि ॥२॥

बाण को छोड़ते समय भरत महाराजा कैसा प्रतीत हुआ—यही बात इस गाथाद्वय में प्रगट की गई है—जिस समय भरत राजा ने बाण छोड़ा उस समय उसने मल्ल की तरह अपनी कच्छा को अच्छी तरह से बांधलिया था कटियाग कोभी खूब अच्छी तरह से कसकर बांध लिया था उसके द्वारा धारणाकिये कौशेय वस्त्र उस समय समुद्र की उत्थ वायु से घीमे घीमे कपित हो रहा था, अतः वह उस धनुषधर से ऐसा प्रतीत होता था, कि मानो साक्षात् इन्द्र ही यहाँ उपस्थित हुआ है । बाकी के गाथोक्त पदो को व्याख्या सुगम है । (तए णं से सरे भरहेणं

तथा च-परिगरणिगरिभमज्झो वाउद्धम सोममाणकोसेज्जो ।

चित्तेण सोमए घणुवरेण इंदोव्व पच्चक्खं ॥१॥

त च्चलायमाण-पंचमिचंदोवमं महाचावं ।

छज्जइ वामे हत्थे नरवइणो तंमि विजयंमि ॥२॥

बाणु छोड़ती वधते भरत नरेश देवो मुशोभित थये, ओअ वात ओ उपयुंइत गाथा द्वयभां प्रकट करवाभां आवी छे. ओ समये भरत राजाओ बाणु छोड़थु ते समये तेथु मल्ल (पडेलवान) नी ओम पोतानी कच्छा ने सारी रीते पाधी दीधी कभरने पणु सारा रीते कस्तीने पाधी दीधी तेथु कौशेय वस्त्र धारणु करेथु छतु. ते वस्त्र समुद्रमाथी प्रवाहित थला वायुथी मड-मड इपे. कपित थई रणुं छतु ओथी धनुषधारी ते राजा, ओम लागती छती के लणु साक्षात् इन्द्र अ तथा उपस्थित थये. न डोय शेष गाथोइत पढोनी व्याख्या सुगम छे. (तएणं से सरे भरहेणं रण्णा उद्धं वेहासं गिसइडे समाणे खिप्पामेव वावत्तरिं जोयणाइं

भरतेन राज्ञा ऊर्ध्वं विहायसि निस्पृष्टो युक्त सन् क्षिप्रमेव शीघ्रमेव द्वासप्ततिं योजनानि गत्वा क्षुद्रहिमवन्तगिरिकुमारस्य देवस्य मर्यादायाम् अवधिभूतोचितस्थाने निपतितः 'तए- णं से चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारे देवे मेराए सरं णिवड्यं पासइ' ततः खलु स क्षुद्रहिमवन्तगिरि- कुमरो देवः मर्यादायां शरं निपतित पठ्यति 'पासित्ता' दृष्ट्वा आसुररुत्ते रुट्टे जाव पीइदाणं सन्वोसहिं च मालं गोसीसचंदणं कडगाणि जाव दहोदगं च गेण्हइ' आसुररुत्तो रुट्ट इत्यदि विशेषणविशिष्टो यावत्करणात् भ्रुकुटिं करोति अधिक्षिपति भरतेति नामाङ्कितं शरं गृह्णाति ना म च वाचयति इत्यादि ग्राह्यं प्रीतिदानं सर्वोषधोः फलपाकान्तवनस्पतिविशेषान् राज्या भिषेकादि योग्यान्, माला कल्पद्रुमपुष्पमालाम् गोशीर्षचन्दनं च हिमवत्कुञ्जमयं कटकानि यावत्पदात् त्रुटितानि बाह्याभरणानि वस्त्राणि आभरणानि भरतेति नामाङ्कित शरं चेति-

रणा उद्ध वेहास णिसट्टे समाणे खिप्पामेव वावत्तरि जोयणाइं गंता चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारस्स देवस्स मेराए णिवड्ये) ऊपर आकाश में भरत महाराजा के द्वारा छोड़ा गया वह बाण शीघ्र हो ७२ बहत्तर योजन तक जाकर क्षुद्र हिमवन्त कुमार देव के स्थान की हद में पड़ा (तए णं से चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारे देवे मेराए सरं णिवड्यं पासइ) बाण को अपनी हदमें पड़ा हुआ जब उस क्षुद्रहिमवन्तगिरिकुमार देव ने देखा तो (पासित्ता आसुररुत्ते रुट्टे जाव पीइदाणं सन्वोसहिं च मालं गोसीसचदणं कडगाणि जाव दहोदगं च गेण्हइ) देखकर वह इकदम क्रोध से लाल हो गया । रुष्ट हो गया यावत् शब्द से यहा ऐसा पाठ गृहीत हुआ है उसकी मृकृटो चढ़ गई, उसने बाण- फेकने वाले का तिरस्कार किया तथा भरत इस नाम से अङ्कित उस बाण को उसने उठा लिया और उस पर लिखे हुए नाम को उसने वांचा" इत्यादि पूर्वोक्त पाठ गृहीत हुआ है । तब फिर उसने भरत महाराजा को मेट मे देने के लिए सर्वौषधियो को फलपाकान्तवनस्पतिविशेषो को जो कि राज्याभिषेकादि के योग्य थे । कल्पवृक्ष के पुष्पो को माला को, गोशीर्ष चन्दन को, कटकों को यावत्पदगृहीत त्रुटितो को— बाहुओ के आभरणो को— वस्त्रो को एवं 'भरत' इस नाम से

गता चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारस्स देवस्स मेराए णिवड्ये) ७२ आकाशमा भरत राजा वडे सुइं त आणु शीघ्र ७२ योजन सुधी न्धने क्षुद्र हिमवन्तकुमार देवना स्थाननी सीमां मा पड्युं. (तए णं से चुल्लहिमवन्तगिरिकुमारे देवे मेरा ए सरं णिवड्यं पासइ) न्यादे ते क्षुद्र हिमवन्त गिरि कुमारे आणु ने पोतानी सीमांमां पडेहु जेयु ते। (पासित्ता आसुररुत्ते रुट्टे जाव पीइदाणं सन्वोसहिं च मालं गोसीसचंदणं कडगाणि जाव दहोदगव गेण्हइ) न्धने ते जेइकदम क्रोधथी राने जेण थथ गये रुष्ट थथ गये यावत् शब्द थी अडी' आ प्रमाणे पाठ स गृहीत थये छे—तेनी लुट्टी वड थथ गथ तेजे आणु अदावनाःरने। तिर- स्कार कर्था. अने भरत नामाङ्कित ते आणुने तेजे उपाड्यु. तथा ते आणु ७२ जेजेवा नामने तेजे वाच्युं' इत्यादि पूर्वोक्त पाठ अत्रे गृहीत थये छे त्थारभाइ तेजे भरतराज ने जे ट मा अर्पित करवा माटे सर्वौषधियोने इण्य कान्त वनस्पति विशेषोने के जे राज्याभिषे- कादि विधियो माटे आवश्यक होय छे कल्पवृक्षना पुष्पोनी मागाने, गोशीर्ष' चन्दनने, कटकेने, यावत् पदथी स गृहीत त्रुटितोने— बाहुओना आभरणोने वस्त्रोने, भरतनामाङ्कित

ग्राह्यं द्रहोदकं च पद्म द्रहोदकं गृह्णाति गिण्हिता' गृहोत्वा 'ताए उक्किट्टाए जाव उत्तरेणं चु-
ल्लहिमवतगिरिमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पियाणं उत्तरिल्ले
अतवाले जाव पड्विसज्जइ' तथा उत्कृष्टया यावत् पदेन दे. गत्या व्यतिव्रजति भरतान्ति
कमुपपर्वति विज्ञापयति चेति विज्ञेयम् उत्तरस्या क्षुद्रहिमवद्विरेः मर्यादायाम् अहं खलु देवा-
नुप्रियाणं विषयवासी यावत्पदात् अहं खलु देवानुप्रियाण किंकर इति ग्राह्यम्, अहं खलु
देवानुप्रियाणाम् औत्तगहो लोकपालः अत्र यावत्पदात् प्रीतिदानमुपनयति तद् भरतः
प्रतीच्छति देवं सत्कारयति सम्मानयति इति ग्राह्यम्, तथा कृत्वा च प्रतिविसर्जयति
निजभवनगमनाय आज्ञापयतीत्यर्थः ॥ सू. २३ ॥

अथ अधिहोत्साहात् अष्टभक्तं तपस्तीरयित्वा क्रतुगणक एव अवधिप्राप्त दिग्विज-
याङ्क कर्तुकामः श्री ऋषभभूः ऋषभकूटगमनाय उपक्रमते " तएण से " इत्यादि ।

मूलम्—तए ण से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हिता रहं परा-
वत्तेइ परावत्तित्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता उसह-
कूडं पव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ णिगि-

अङ्कित बाण को तथा पद्महृद के जल को साथ में लिया । (गेण्हिता ताए उक्किट्टाए जाव
उत्तरेणं चुल्लहिमवतगिरिमेराए अहण्ण देवाणुप्पियाणं विषयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पि-
यणं उत्तरिल्ले अतवाले जाव पड्विसज्जइ) और लेकर वह उस प्रसिद्ध देवगति से भरत के
पास चला वहां पहुँचकर उसने उनसे ऐसा निवेदन किया—उत्तरदिशा में क्षुद्र हिमवत्
पर्वत को हृद में—मैं आप देवानुप्रिय के अधीनस्थ देश का निवासी हूँ । यहां यावत्पदसे
“अहं खलु देवानुप्रियाणा किंकर.” इस पाठ का ग्रहण हुआ है । मैं आप देवानुप्रियका
उत्तर दिशा का लोकपाल हूँ यहा यावत् पद से “प्रीतिदानमुपनयति, तद् भरत प्रतीच्छति,
देवं सत्कारयति, सम्मानयति” इन पदों का समग्र हुआ है । सत्कार सम्मानकर फिर वह
भरत नरेश उसे विसर्जित कर देता है—अपने भवन में जाने के लिए उसे आज्ञा देता है ॥२३॥

भाष्य ने तथा पद्महृदना जल ने साथे लीधा (गिण्हिता ताए उक्किट्टाए जाव उत्तरेण
चुल्लहिमवतगिरिमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पियाणं
उत्तरिल्ले अंतवाले जाव पड्विसज्जइ) अने लक्ष ने ते पोतानी सुप्रसिद्ध देव गतिथी
भरत र.ज. पास जात्रा रवाना थये त्या पडोथोने तेणे ते राब्बने आ प्रभाणे विनति
करी के हे देवानुप्रिय । उत्तर दिशाभां क्षुद्र हिमवत पर्वतानी सोभाभा स्थित तेभज आप
श्रीना अधीनस्थ देशने हु निवासी छु अही यावत् पदथी “अहं खलु देवानुप्रियाणां
किंकरः ” आ पाठ स गृहीत थये छे. हु आप देवानुप्रियने उत्तर दिशा तरङ्गने दिक्षपाल
छु अही यावत् पदथी “प्रीतिदानमुपनयति, तद् भरतः प्रतीच्छति, देवं सत्कारयति, सम्मा-
नयति” अये पढोने स अक्ष थये छे सत्कार तथा सम्मान करीने ते भरतेन्द्र राब्ब तेने
विसर्जित करी हे छे पोताना भवना जवानी तेने आज्ञा आपे छे ॥२३-२३॥

णिहत्ता रहं ठवेइ ठवित्ता छत्तलं दुवालमंमिअं अट्टकण्णिअं अहिगरणि-
संठिअं सोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइ परामुसित्ता उसभकूडस्स
पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लंसि कडगंसि णामगं आउडेइ-ओसप्पिणी इमीसे
तइआए समाइ पच्छिमे भाए । अहमंसि चक्रवट्ठी भरहो इअ नामधि-
ज्जेणं ॥१॥ अहमंसि पढमगया अहयं भरहाहिवो णस्वरिंदो । णत्थिमहं
पडिसत्तु जिअं मए भारहं वासं ॥२॥ इति कट्टु णामगं आउडेइ णामणं
आउडित्ता रहं परावत्तेइ परावत्तित्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव
बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव चुल्ल-
हिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टाहिआए महामहिमाए णिवत्ताए समा-
णीए आउहघरसालाओ पडिणिवत्तमइ पडिणिवत्तमित्ता जाव दाहिणं
दिसिं वेअद्धपव्वयाभिमुहे पयाते याविं होत्था ॥सू० २४॥

छाया-ततः खलु स भरतो राजा तुरगान् निगृह्णाति निगृह्य रथं परावर्त्तयति परा-
वर्त्य यत्रैव ऋषभकूटं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य ऋषभकूटं पर्वतं त्रिः कृतव' रथशिरसा
स्पृशति स्पृष्ट्वा । तुरगान् निगृह्णाति निगृह्य रथं स्थापयति स्थापयित्वा पट्टतलं द्वादशा-
स्रिकम् अष्टास्रिकम् अधिकरणसंस्थितं सौवर्णिकं कोकणीरत्नं परामृशति परामृश्य
ऋषभकूटस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये कटकं नामकम् आजुडति-अवसरिण्या अस्यां तृतीयाया-
समायाः पञ्चमे भागे । अहमस्मि चक्रवर्त्ती भरत इति नामधेयेन ॥१॥ अहमस्मि प्रथम
राजा अहं भरनाधिपो नरवरेन्द्र । न स्मि मम प्रतिशत्रुं जितं मया भारत वर्षम् ॥२॥
इति कृत्वा नामकम् आजुडति नामकम् आजुडथ रथं परावर्त्तयति परावर्त्य यत्रैव विजय-
स्कन्धावारनिवेशो यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति उपागत्य यावत्
क्षुद्रहिमवद् गिरिकुमारस्य देवस्य अष्टादिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्याम् आयुध-
गृहशालात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य दक्षिणां दिशं वैताडय रथंताभिमुखं प्रयाते चाप्य-
भवत् ॥सू० २४॥

टीका - "तएणं से" इत्यादि ।

'तएणं से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हित्ता रह परावत्तेइ' ततः हिमवत्सा-

भरत का ऋषभकूट की ओर गमन—

'तएण से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ' - इत्यादि सू० २४

टीकार्थ— (तएणं) हिमवत् माघन करने के बाद (से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ) उस

भरत महाराजानु ऋषभकूटं तत्रैव प्रयाणु

तएण से भरहे राया तुरए-णिगिण्हइ "इत्यादि ॥सू० २४

टीकार्थ—(तएण) हिमवतनी अधना कथां याइ (से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ) ते

ग्राह्यं द्रहोदकं च पद्म द्रहोदकं गृह्णाति गिण्हित्ता' गृहोत्वा 'ताए उक्किट्टाप जाव उत्तरेणं चु-
ल्लहिमवतगिरिमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाणं विसयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पियाणं उत्तरिल्ले
अतवाले जाव पड्विसज्जइ' तथा उत्कृष्टया यावत् पदेन दे.गत्या व्यतिव्रजति भरतान्ति
कमुपमर्पति विज्ञापयति चेति विज्ञेयम् उत्तरस्यां क्षुद्रहिमवद्विरेः मर्यादायाम् अह खलु देवा-
नुप्रियाणं विषयवासी यावत्पदात् अहं खलु देवानुप्रियाण किंकर इति ग्राह्यम्. अह खलु
देवानुप्रियाणाम् औत्तरगहो लोकपालः अत्र यावत्पदात् प्रीतिदानमुपनयति तद् भरतः
प्रतीच्छति देवं सत्कारयति सम्मानयति इति ग्राह्यम्, तथा कृत्वा च प्रतिविसर्जयति
निजभवनगमनाय आज्ञापयतीत्यर्थः ॥ सू. २३ ॥

अथ अधिहोत्सःहात् अष्टभक्तं तपस्तीरयित्वा कृतगणक एव अवधिप्राप्त दिग्विज-
याङ्क कर्तुंकामः श्री ऋषभभूः ऋषभकूटगमनाय उपक्रमते " तएण से " इत्यादि ।

मूलम्—तए ण से भग्हे राया तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हित्ता रहं परा-
वत्तेइ परावत्तित्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता उसह-
कूडं पव्वयं तिक्खुत्तो रहसिरेणं फुसइ फुसित्ता तुरए णिगिण्हइ णिगि-

अङ्कित बाण को तथा पद्मद्वय के जल को साथ में लिया । (गेण्हित्ता ताए उक्किट्टाप जाव
उत्तरेणं चुल्लहिमवतगिरिमेराए अहण्ण देव णुप्पियाणं विमयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पि
यणं उत्तरिल्ले अंतवाले जाव पड्विसज्जइ) और लेकर वह उस प्रसिद्ध देवगति से भरत के
पास चला वहां पहुँचकर उसने उनसे ऐसा निवेदन किया—उत्तरदिशा में क्षुद्र हिमवत्
पर्वत को हृद मे—मैं आप देवानुप्रिय के अधीनस्थ देश का निवासी हूँ । यहा यावत्पदसे
“अह खलु देवाणुप्रियाणा किंकर ” इस पाठ का ग्रहण हुआ है । मैं आप देवानुप्रियका
उत्तर दिशा का लोकपाल हूँ यहा यावत् पद से “प्रीतिदानमुपनयति, तद् भरत प्रतीच्छति,
देवं सत्कारयति, सम्मानयति” इन पदों का संग्रह हुआ है । सत्कार सम्मानकर फिर वह
भरत नरेश उसे विसर्जित कर देता है—अपने भवन में जाने के लिए उसे आज्ञा देता है ॥२३॥

आषु ने तथा पद्मद्वयना ऋष ने साथे लीधा (णिगिण्हित्ता ताए उक्किट्टाप जाव उत्तरेण
चुल्लहिमवतगिरिमेराए अहण्णं देवाणुप्पियाण विसयवासी जाव अहण्णं देवाणुप्पियाणं
उत्तरिल्ले अंतवाले जाव पड्विसज्जइ) अने लड ने ते पोतानी सुप्रसिद्ध देव गतिथी
भरत राजा पासो जावा रवाना थयो त्या पडोयोने तेणे ते राजने आ प्रभाणे विनति
करी डे डे देवानुप्रिय । उत्तर दिशाभां क्षुद्र हिमवत पर्वतनी सीमाभा स्थित तेमज्ज आप
श्रीना अधीनस्थ देशने। हु निवासी छु अडो यावत् पदथी “अह खलु देवानुप्रियाणां
किंकरः ” आ पाठ स गृह्णात थयो छे. हु आप देवानुप्रियने। उत्तर दिशा तरङ्गेने दिक्षपाल
छु अडो यावत् पदथी “प्रीतिदानमुपनयति, तद् भरतः प्रतीच्छति, देवं सत्कारयति, सम्मा-
नयति” ओ पडोने सङ्ग थयो छे सत्कार तथा सम्मान करीने ते भरतेन्द्र राज तेने
विसर्जित करी डे छे पोताना भवराभा ज्वानी तेने आज्ञा आये छे ॥सूत्र-२३॥

णिहत्ता रहं ठवेइ ठवित्ता उत्तलं दुवालमंमिअं अट्टकणिणअं अहिगरणि-
संठिअं सोवणिणअं कागणिस्यणं परामुसइ परामुसित्ता उसभकूडस्स
पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लंसि कडगंसि णामगं आउडेइ-ओसप्पिणी इमीसे
तइआए समाइ पच्छिमे भाए । अहमंसि चक्रवट्टी भरहो इअ नामधि-
ज्जेणं ॥१॥ अहमंसि पढमगया अहयं भरहाहिवो णस्वरिंदो । गत्थिमहं
पडिसत्तू जिअं मए भारहं वासं ॥२॥ इति कट्टु णामगं आउडेइ णामणं
आउडित्ता रहं परावत्तेइ परावत्तित्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव
बाहिरिया उवड्डाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव चुल्ल-
हिमवंतगिरिक्कुमारस्स देवस्स अट्टाहिआए महामहिमाए णिवत्ताए समा-
णौए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जाव दाहिणं
दिसिं वेअद्धपव्वयाभिमुहे पयाते यावि होत्था ॥सू० २४॥

छाया-तत. खलु स भरतो राजा तुरगान् निगृह्णाति निगृह्य रथं परावर्त्तयति परा-
वर्त्य यत्रैव ऋषभकूट तत्रैव उपागच्छति उपागत्य ऋषभकूट पर्वतं त्रिः कृत्व रथशिरसा
स्पृशति स्पृष्ट्वा । तुरगान् निगृह्णाति निगृह्य रथं स्थापयति स्थापयित्वा पट्टतलं द्वादश-
स्रिकम् अष्टाङ्गिकम् अधिकरणसंस्थित सौवर्णिक कोकणीरत्न परामृशति परामृश्य
ऋषभकूटस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये कटकै नामकम् आजुडति-अवसर्पिण्या अस्या दृतीयायाः
समाया पश्चिमे भागे । अहमस्मि चक्रवर्ती भरत इति नामधेयेन ॥१॥ अहमस्मि प्रथम
राजा अह भरनाधिपो नरवरेन्द्र । न स्मि मम प्रतिगन्तु जितं मया भारत वर्षम् ॥२॥
इति कृत्वा नामकम् आजुडति नामकम् आजुडय रथ परावर्त्तयति परावर्त्य यत्रैव विजय-
स्कन्धावारनिवेशो यत्रैव बाहिरिका उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति उपागत्य यावत्
क्षुद्रहिमवद् गिरिक्कुमारस्य देवस्य अष्टाहिकायां महामहिमाया निवृत्तार्या सत्याम् आयुध-
गृहशालात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्क्रम्य दक्षिणां दिशं वैताडय रवंताभिमुखं प्रयाते चाप्य-
भवत् ॥सू० २४॥

टीका - "तएणं से" इत्यादि ।

'तएणं से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ णिगिण्हित्ता रह परावत्तेइ' ततः हिमवत्सा-

भरत का ऋषभकूट की और गमन—

'तएण से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ' - इत्यादि सू० २४

टाकार्थ— (तएणं) हिमवत् माधन करने के बाद (से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ) उस

भरत महाराजानु ऋषभकूट तः इ प्रयात्यु

तएण से भरहे राया तुरए-णिगिण्हइ "इत्यादि ॥सू० २४

टीकार्थ—(तएणं) हिमवतनी अधुना कथां याव (से भरहे राया तुरए णिगिण्हइ) ते

घनानन्तर खलु स भरतो राजा तुरगान् चतुरोऽपि अथान् निगृह्णाति चतुर्षु मध्ये दक्षिणपार्श्वस्थतुरगौ आकर्षति वामपार्श्वस्थतुरगौ पुरम्करोतीत्यर्थः अश्वान् निगृह्य रथ परावर्त्तयति निवर्तयति 'परावत्तित्ता' परावर्त्त्य निवर्त्य 'जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव ऋषभकूटम् तन्नामकः पर्वतः तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'उसहकूड पव्वय तिव्वुत्तो रहसिरेण फुसइ' ऋषभकूट पर्वतं त्रिः कृत्वः वारत्रयं रथ-शिरसा रथाग्रभागेन स्पृशति परामृशति 'फुमित्ता तुरए णिगिण्हइ' स्पृष्ट्वा परामृश्य तुरगान् निगृह्णाति अनिरोधयति 'णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ' अश्वान् निगृह्य रथं स्थापयति 'ठवित्ता' स्थापयित्वा 'छत्तलं दुवालसंसिअं अट्टकण्णिअं अहिगरणिसंठिअं सोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइ' स भरतो राजा काकणीरत्न परामृशति गृह्णातीत्युत्तरेण सम्बन्धः किं विशिष्टं तदित्याह—'छत्तल, पट्तलम् तत्र चत्वारि चतस्रपु दिक्षु द्वे तूर्ध्वमधश्चेत्येव षट् पट् संख्याघानि तलानि अधोभागा यत्र तत्तथा तानि च अत्र मध्यखण्डरूपाणि चैर्भूमौ अविषमतया तिष्ठन्तीति, तथा 'दुवालसंसिअं' द्वादशाल्पिद्रु द्वादश अधः उपरि तिर्यक् चतस्रूपि दिक्षु प्रत्येकं चतस्रणामस्त्रीणां सद्भावात् अस्यः कोटयः आकार-

भरत राजा ने घोड़ो को खड़ा किया—दक्षिण पार्श्वस्थ घोड़ो को खेचा और वाम पार्श्वस्थ घोड़ो को आगे किया—इस तरह से करके उसने (रथ परावत्तेइ) रथ को लौटाया (परावत्तित्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ) रथ को लौटाकर मोड़कर जहा ऋषभकूट था वह वहां पर आया (उवागच्छित्ता उसहकूटं पव्वय तिव्वुत्तो रहसिरेण फुसइ) वहां आकर के उसने ऋषभकूट पर्वत का रथ के अग्रभाग से तीन बार स्पर्श किया (फुमित्ता तुरए णिगिण्हइ) तान बार स्पर्श करके फिर उसने घोड़ो को चलने से रोका— (णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ) घोड़ो को रोक कर उसने रथ खड़ा किया (ठवित्ता छत्तल दुवालसंसिअं अट्टकण्णिअं अहिगरणिसंठिअं सोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइ) रथ खड़ा करके उसने काकणी रत्न को उठाया—यह काकणीरत्न ६ तलौ वाला होता है—चार दिशाओ में ४ तल और ऊपर नीचे में १-१ तल—इस तरह से इसके ये ६ तल होते हैं—तथा इममें १२ कोटिया होती है— ये कोटियां एक प्रकार के आकार विशेषरूप होती है। आठ

भरत महाराजको घोडाओ ने ऊसा राख्या, दक्षिण पार्श्वस्थ घोडाओने जे आ अने वाम-पार्श्वस्थ घोडाओने आगण कर्था, आ प्रमाळे करीने तेणे (रथ परावत्तेइ) रथने पाछे ईरथे (परावत्तित्ता जेणेव उसहकूडे तेणेव उवागच्छइ) रथने पाछे ईरथीने ते भरत नरेश ज्यां ऋषभकूट हुतो त्या गथे (उवागच्छित्ता उसहकूडं पव्वय तिव्वुत्तो रहसिरेण फुसइ) त्यां पडोथीने तेणे ऋषभकूट पर्वतने रथना अग्र भागथी त्रयु वभत स्पर्श कर्था (फुमित्ता तुरए णिगिण्हइ) त्रयु वभत स्पर्श करीने पछी तेणे घोडाओने ऊसा राख्या (णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ) घोडाओने राडीने तेणे रथ ऊसे राख्ये (ठवित्ता छत्तलं दुवाल-संसिअं अट्टकण्णिअं अहिगरणिसंठिअं सोवण्णिअं कागणिरयणं परामुसइ) रथ ऊसे राखीने तेणे काकणी रत्नने हाथभा हीधु जे काकणी रत्न ६ तल वाणु होय छे आर दिशाओभां ४ तल अने उपर-नीचे जेक-जेक तण आ प्रमाळे सर्वां भणीने जे रत्नने ६ छ तण होय छे, जे रत्नभां १२ कोटियो होय छे, जे कोटियो जेक प्रकारना आकार

विशेषाः यत्र तत्तथा पुनःकीदृशम् 'अष्टकृष्णिकम्' अष्टकृष्णिकम् कृष्णिका कोणा । यत्र अत्रिन्नयं मिलति तेषां चाध उपरि प्रत्येक चतुर्णां सद्भावात् अष्टकृष्णिकाः यत्र तत्तथा पुनश्च 'अहिगरणिसंठिअं' अधिकरणिसंस्थितम् अधिकरणिः—सुवर्णकारोपकरणं 'एरण' इति भाषाप्रसिद्धम् तद्वत् सस्थित-संस्थानम् आकारविशेषो अवयवसन्निवेशो यस्य तत्तथा तत् सदृशकार मित्यर्थः समचतुरस्रत्वात् पुनश्च कीदृशम् 'सोवर्णियं' सौवर्णिकं सुवर्णमयम् अष्टसुवर्णमयत्वात्, तत्र केच अष्ट सुवर्णा इत्याह—'चत्वारि मधुरतृणफलान्येकः श्वेतसर्षपः षोडशश्वेतसर्षपाः एकं धान्यमाषफलं ! द्वे धान्यमाषफले एका गुठजाः एकः कर्ममापकः षोडशकर्ममापका एकः सुवर्ण इति, एतादृशैरष्टभिः सुवर्णैः काकणीरत्नं निष्पद्यते इति एतादृशविशेषणविशिष्टं काकणीरत्नं परामृशति गृह्णाति 'परामुसित्ता' परामृश्य काकणीरत्नं गृहीत्वा 'उसभकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लसि कडगंसि णामगं आउडेइ ? ऋषभकूटस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पूर्वभागवर्तिनि कटकके मध्यभागे नामकं नामैव नामकम् स्वार्थे कः आजुडति सम्बद्धं करोति लिखतीत्यर्थः केन प्रकारेण लिखतीत्याह—गाथा-

इसके कोने होते हैं— जहां तीन कोटिया मिलती है । ये आठ कोने रूप कृष्णिकाएं उनके नीचे ऊपर प्रत्येक में ४-४ होती है । इस काकणी रत्न का संस्थान अधिकरणी जैसा होता है जिसे एरण कहा गया है । इस पर सुवर्णकार सोनेचांदी के आभूषणों को कूट २ कर बनाता है । यह समचतुरस्र होता है इसीलिये इसे एरण के जैसा कहा गया है । (सोवर्णियं) यह अष्ट सुवर्णमय होता है । ये अष्टसुवर्ण इस प्रकार से निष्पन्न होते हैं—चार मधुर तृण फलों का एक श्वेत सर्षप होता है । सोलह श्वेतसर्षपों का एक उडद के दाने के समान का वचन होता है । दो उडदों के बराबर वजनवाली एक गुठजा—रत्ति होती है । और १६ रत्तियों का एक सुवर्ण होता है— ऐसे आठसुवर्ण के बराबर इसका वजन होता है । (परामुसित्ता) इस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट काकणीरत्न को लेकर (उसभकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लसि कडगंसि णामगं आउडेइ) उसने ऋषभकूट पर्वत के पूर्व भागवर्ती कटक पर— मध्यभाग में— अपना नाम लिखा— "नामकं" में

विशेष रूप डोय छे जे रत्नने आठ भूषाओ डोय छे त्यां त्रय कोटियो भले छे जे आठ भूषाओनां रूपमां जे इच्छिकाओ डोय छे, तेमनी नीचे अने उपर प्रत्येक मां ४, ४ भूषाओ डोय छे. जे काकणी रत्ननु संस्थान अधिकरणी जेवु डोय छे जेने जेरणु कडेवांमां आवे छे सुवर्णकार जेनी उपर सुवर्णु चांदीना आभूषणो इटी-इटीने तैयार करे छे. जे समचतुरस्र डोय छे. जेथी ज जे रत्नने जेरणुजेलु कडेवांमा आंयु छे (सोवर्णियं) जे अष्ट सुवर्णुमय डोय छे जे अष्ट सुवर्णो आ प्रभावे निष्पन्न डोय छे चार मधुर तृणु कृषोनु जेक श्वेत सरसव डोय छे. १६ श्वेत सरसवतुं वजन जेक उडद परापर डोय छे जे अडदोनी परापर वजनवाणी जेक गुठ-रत्ति डोय छे १६ रत्तियोनु जेक सुवर्णु डोय छे. जेवा आठसुवर्णुनी परापर जेनु वजन डोय छे (परामुसित्ता) आ जतना विशेषणोथी विशिष्ट काकणी रत्नने लभने (उसभकूडस्स पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लसि कडगंसि णामगं आउडेइ) तेषु ऋषभकूट पर्वतना पूर्वभागवर्ती कटक उपर मध्य भागमां-पोतानुं नाम लभ्यु- १०३

દ્વયમ્ 'ઓસપ્પિણી' इत्यादि 'ओसपिणी इमीसे तइयाए समाए पच्छिमे भाए' 'ओस-
पिणी' अवसर्पिण्याः अत्र पृष्ठी लोपः प्राकृतत्वात् अस्याः तृतीयायाः समाया. तृतीयार-
कस्य पश्चिमे भागे तृतीये भागे इत्यर्थः । अहमंसि चक्रवट्टी भरहो इअ नामधिज्जेण ॥१॥
द्वितीय गाथामाह—अहमस्मि चक्रवर्ती भरत इति नामधेयेन नाम्ना 'अहमंसि पढमराया,
अहयं भरहाइवो णरवरिंदो । णत्थि मह पडिसत्तु जिअं मए भारहं वासं ॥२॥ अहमस्मि
प्रथमराजा प्रथमशब्दस्य प्रधानपर्यायत्वात्, अहं भरताधिपः-भरतक्षेत्राधिपः नरवराः-
सामन्तादयः तेषामिन्द्रः नास्ति मम प्रतिशत्रुः-प्रतिपक्षः जित मया भारतं वर्षम् ॥२॥
'त्ति कट्टु' इति कृत्वा 'णामगं आउडेइ' नामकम् आजुडति लिखति अस्य सूत्रस्य
निगमार्थकत्वान्न पौनरुक्त्यम् 'णामगं आउडित्ता रह परावत्तेइ' नामकम् आजुड्य लिखि-

स्वार्थ में "क" प्रत्यय किया गया है— अपने नामको उस भरत नरेश ने किस प्रकार से लिखा
इसे प्रगट करने वाली ये दो गाथाएँ हैं—

“ओसपिणी इमीसे तइयाए समाइ पच्छिमे भाए । अहमंसि चक्रवट्टी भरहो इअ नामधिज्जेण ॥
अहमंसि पढमराया अहयं भरहाहिवो णरवरिंदो । णत्थिमहं पडिसत्तु जिअं मए भारहं वास ॥२॥

इनका अर्थ इस प्रकार से है—इस अवसर्पिणी काल के तृतीय आरे के पश्चिम भाग में—
तृतीय भाग में— मैं भरत नाम का चक्रवर्ती हुआ हूँ, १ और मैं ही यहाँ— भरत क्षेत्र में कर्म-
भूमि के प्रारम्भ में सर्व प्रथम राजा हुआ हूँ । यहाँ प्रथम शब्द प्रधानपर्याय का वाची है ।
सामन्त आदि का मैं इन्द्र के जैसा इन्द्र हूँ मेरा कोई शत्रु नहीं है । मेरे षट् खण्डमण्डित भरत
क्षेत्र में मेरा अखण्ड साम्राज्य स्थापित हो चुका है । (इति कट्टु णामगं आउडेइ) इस प्रकार से
उसने अपना परिचयात्मक नाम लिखा (णामग आउडित्ता रहं परावत्तेइ) नाम लिख करके फिर

“नामकं” भां स्वार्थं भां 'क' प्रत्यय लगावामां आवेत्तं छे, पोતાतु नाम ते भरत नरेशे
डेवी रीते लब्धु आने प्रकट કરવા માટે આ બે ગાથાઓ છે—

ओसपिणी इमीसे तइयाए समाइ पच्छिमे भाए ।

अहमंसि चक्रवट्टी भरहो इ अ नामधिज्जेण ॥१॥

अहमंसि पढमराया अहयं भरहाहिवो णरवरिंदो ।

णत्थिमह पडिसत्तु जिअं मए भारहं वास ॥२॥

એ ગાથાઓને અર્થ આ પ્રમાણે છે— એ અવસર્પિણી કાળના તૃતીય આરકના પશ્ચિમ-
ભાગમાં— તૃતીય ભાગમાં— હું ભરત નામે ચક્રવર્તી થયો છું ॥૧॥ અને હું જ અહીં
ભરતક્ષેત્રમાં કર્મભૂમિના પ્રારંભમાં સર્વપ્રથમ રાજા થયો છું, અહીં પ્રથમ શબ્દ પ્રધાનનો
પર્યાય વાચક છે. એટલે કે પ્રથમ શબ્દનો અર્થ પ્રધાન અથવા સુખ્ય થાય છે. સામન્ત
વગેરેમાં હું ઈન્દ્ર જેવો છું, મારો કોઈ શત્રુ નથી, ષટ્ ખંડ મહત્ત આ ભરતક્ષેત્રમાં મારે
અખંડ સામ્રાજ્ય સ્થપાઈ ચૂક્યું છે. (इति कट्टु णामगं आउडेइ) આ પ્રમાણે તેણે
પરિચયાત્મક પોતાનું નામ લખ્યું (ણામગં આડહિત્તા રહ પરાવત્તેઈ) નામ લખીને પછી
તેણે ત્યાંથી પોતાના રથને યાછો વાળ્યો. (परावत्तिता जेणेष विजयसंघावारणिवेसे जेणेष

त्वा रथं परावर्त्तयति 'परावर्त्तित्ता' परावर्त्त्य 'जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव विजयस्कन्धावारनिवेशो यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'जाव' अत्र यावत्पदात् तुरगान् निगृह्णाति रथं स्थापयति ततः स्थनात् प्रत्यवरोहति मञ्जनगृह प्रविशति प्रविश्य स्नाति मञ्जनगृहात्प्रतिनिष्क्रामति भुङ्क्ते बाह्योपस्थानशालायां सिंहासने उपविशति श्रेणी प्र-श्रेणीःशब्दयति क्षुद्रहिमवद्गिरिकुमारस्य देवस्य अष्टाहिकाकरणम् अष्टदिनपर्यन्तंमहामहोत्सवं सन्दिशति ताश्च कुर्वन्ति आज्ञप्तिकां च प्रत्यर्पयन्तीति ग्राह्यम् 'चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिवत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिवल्लमइ' ततश्च तद्विष्य चक्ररत्नम् क्षुद्रहिमवद्गिरिकुमारस्य देवस्य अष्टाहिकायां तदेव विजयोप-लक्षिताष्टदिनपर्यन्तायां महामहिमायां महोत्सवविशेषायां निवृत्तायां सत्याम् आयुधगृ-हशालतः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति 'पडिणिवल्लमिता' प्रतिनिष्क्रम्य . 'जाव दाहिणि

उसने वहाँ से अपने रथ को लौटाया (परावर्त्तित्ता जेणेव विजयखंधावारणिवेसे जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) रथ को लौटाकर फिर वह जहां पर विजयस्कन्धावार का प-डाव पड़ा हुआ था, और उसमें भी जहां पर बाह्य उपस्थानशाला थी वहां पर आया । (उ-वागच्छित्ता जाव चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिवत्ताए समाणीए आउह-घरसालाओ पडिणिवल्लमइ) वहां आकर के उसने यावत् क्षुद्रहिमवत्गिरिकुमार नाम के देव के विजयोपलक्ष्य में आठ दिन तक महामहोत्सव किया जब आठ दिन का महामहोत्सव समाप्त हो चुका— तब वह चक्ररत्न आयुधशाला से बाहर निकला— यहाँ जो "यावत्"शब्द का प्र-योग हुआ है उससे "तुरगान् निगृह्णाति,— रथं स्थापयति, ततः प्रत्यवरोहति, मञ्जनगृहं प्रवि-शति, स्नाति, मञ्जनगृहात्प्रतिनिष्क्रामति, भुङ्क्ते बाह्योपस्थानशालाया—सिंहासने उपविशति, श्रेणीप्रश्रेणी शब्दयति, क्षुद्रहिमवद्गिरिकुमारस्य देवस्य अष्टाहिका करणं अष्टदिनपर्यन्तं स-न्दिशति, ताश्च कुर्वन्ति, आज्ञप्तिकां च प्रत्यर्पयन्ति" इस पाठ का ग्रहण हुआ है । इन पदों की

बाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) रथने पाछे वाणीने पछी ते ज्यां विजय खंधावारणे। पडाव डतो अने तेभा पछु ज्यां बाह्य उपस्थान शाला डती त्या आये। (उवागच्छित्ता जाव चुल्लहिमवंतगिरिकुमारस्स देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिवत्ता-ए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिवल्लमइ) त्या आणीने तेणे यावत् क्षुद्र हिमवंत गिरिकुमार नामक देवना विजयोपलक्ष्यमां आठ दिवस सुधी महाभडोत्सव उये। ज्यारे आठ दिवसने। महाभडोत्सव समाप्त थध गये। त्यारे ते चक्ररत्न आयुध शालाभांशी पडाव नीकपुंथुं अडी जे 'यावत्' शब्दने। प्रयोग करवाभां आवेक छे, तेनाथी 'तुरगान् निगृह्णाति रथं स्थापयति, ततः प्रत्यवरोहति, मञ्जनगृहं प्रविशति, स्नाति, मञ्जनगृहात्प्रतिनिष्क्रामति, भुङ्क्ते, बाह्योपस्थानशालायां सिंहासने उपविशति, श्रेणीप्रश्रेणि शब्दयति, क्षुद्रहिमवद् गिरिकुमारस्य देवस्य अष्टाहिकाकरणं अष्टदिनपर्यन्तं सन्दिशति, ताश्च कुर्वन्ति, आज्ञप्तिकांच प्रत्यर्पयन्ति' जे पाठ संगृहीत थये छे, जे पढोनी व्याख्या, पडेला यथास्थाने

दिसि वेयद्धपञ्चयाभिमुहे पयाते यावि होत्था' तद्विचक्ररत्नम् दक्षिणां दिशमुद्दिश्य
वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयात चाप्यासीत् चाप्यभवत् ॥६०२४॥

मूलम्—तए णं से भरहे राया तं दिव्वं चक्कस्यवणं जाव वेअद्धस्स
पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंबे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता वेअद्धस्स
उत्तरिल्ले णितंबे दुवालजौयणायामं जाव पोसहसालं अणुपविसइ जाव
णमिविणमीणं विज्जाहरराईणं अट्टमभत्तं पगिण्हइ पगिण्हित्ता पोसह-
सालाए जाव णमिविणमि विज्जाहररायाणो मणसी करेमाणे २ चिद्धइ,
तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टमभत्तंसि पणिममाणंसि णमिविणमी वि-
ज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइअ मई अण्णमण्णस्स अतिअं पाउब्भवति,
पाउब्भवित्ता एवं वयासी उप्पण्णे खलु भो देवाणुप्पिया ! जंबुद्वीवे दीवे भरहे
राया चाउरंतचक्कवट्टी तं जीअमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं विज्जाह-
राइणं चक्कवट्टीणं उवत्थाणिअं करेत्तए, तं गच्छमो णं देवाणुप्पिया !
अम्हे वि भरहस्स रण्णो उवत्थाणिअं करेमो इति कट्टु विणमीणाऊणं
चक्कवट्टी दिव्वाए मईए चोइअमई माणुम्माणप्पमाणजुत्तं तेअस्सि ख-
लक्खणजुत्तं ठिअजुव्वणकैसवट्टिअण्हं सव्वरोगणासणि वल्लकरिं
इच्छिअसोउण्हकासजुत्तं-तिसु तणुअं तिसु तंबं तिवलीगतिउण्णयं
तिगंभीरं । तिसु कालं तिसु सेअं तिआयतं तिसुअविच्छिण्णं ॥१॥
समसरीरं भरहे वासंमि सव्वमहिलप्पहाणं सुंदरथणजघणवरकरचलण ण-
यण सिरसिजदसणजणहिअस्मणमणहरिं सिंगारागार जाव जुत्तो-
वयारकुसलं अमरवट्टणं सुरूवं रूवेणं अणुहरति सुभदंमि जोव्वणे वट्टमाणि
इत्थीरयणं णमी अ रयणाणि य कड्ढाणि य तुडिआणि य गेण्हइ, गेण्हित्ता

व्याख्या पूर्व में यथास्थान की जा चुकी है। अत वही से ज्ञात कर लेनी चाहिये। (पडिणि-
क्खमित्ता जाव दाडिणि दिसि वेयद्धपञ्चयाभिमुहे पयाए यावि होत्था) आयुधगृहशाला से बा-
हर निकल कर वह चक्ररत्न दक्षिण दिशा की ओर वैताढ्यपर्वत की तरफ चल दिया ॥२४॥

शुभट्ठ करवाभा आवी छे, ओथी निज्जासुओओ त्याथी लथी वेदु ओधओ. (पडिणिक्खमित्ता
जाव दाडिणि दिसि वेयद्धपञ्चयाभिमुहे पयाए यावि होत्था) आयुधगृहशालाआथी अडार
नीडणीने ते अकरत्त दक्षिण दिशा तरक्क वैताढ्य पर्वतनी तरक्क रवाना थु ॥२४॥

ताए उक्किह्वाए तुरिआए जाव उद्धूआए विज्जाहरगइए जेणेव भरहे राया
तेणेव उवागच्छति उवागच्छिता, अंतलिक्खपड्विण्णा सखिखिणीयाइं जाव
जएणं विजएणं वद्धावेति वद्धावित्तो एवं वयासी अभिजिएणं देवाणुप्पि-
या ? जावअम्हे देवाणुप्पिआणं आणत्तिकिकरा इति कदटु तं पडिच्छंतु णं
देवाणुप्पिआ ! अम्हं इमं जाव विणमी इत्थीरयणं णमी रयणाणि समप्पेइ ।
तएणं से भरहे राया जाव पडिर्वेसज्जेइ पडिविसज्जिता पोसहसालाओ
पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता मज्जणघरं अणुपविमइ अणुपविसित्ता
भोअणमंडवे जाव नमीविनमीणं विज्जाहरगइणं अट्टाहिअ महामहिमा, तए
णं से दिव्वे चक्रकश्यणे आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ जाव उत्तरपुरित्थमं
दिसि गंगादेवी भवणाभिमुहे पयाए यावि होत्था, सच्चेव सव्वा सिधुव-
त्तव्वया जाव नवरं कुंभट्टसहस्सं रयणचित्तं णाणामणि कणगरयणभत्ति-
चित्ताणि अ दुवे कणगसीहासणाइं सेसं तंचेव जाव महिमत्ति ॥सू० २५॥

छाया- ततः खलु तद्दिव्यं चक्ररत्नं यावद् वैताढ्यस्य पर्वतस्योत्तरादौ नितम्ब तत्रैव उपाग-
च्छति उपागत्य वैताढ्यपर्वतस्योत्तराद्दे नितम्बे द्वादशयोजनायाम यावत्पौषधशालामनु प्रविश-
ति, यावत् नमिबिनम्योः विद्याधरराक्षोः अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति प्रगृह्णा पौषधशालायां यावत् नमि-
विनमि विद्याधरराजानौ मनसि कुर्वाणो मनसि कुर्वाणस्तिष्ठति, ततः खलु तस्य भरत-
स्य राक्षः अष्टमभक्ते परिणमति नमिबिनमि विद्याधरराजानौ दिव्यया मत्या चोदितमती
अन्योऽन्यस्यान्तिकं प्रादुर्भवत् प्रादुर्भूय पवमवादिष्टाम् उत्पन्नः खलु भो देवानुप्रियाः जम्बूद्वीपे
द्वीपे भरते वर्षे भरतो राजा चातुरन्तचक्रवर्त्ती तस्माज्जीतमेतद् अतीतवर्तमानानागतानां
विद्याधरराक्षां चक्रवर्त्तिनामुपस्थानिकं कर्तुं तद्गच्छामः खलु देवानुप्रिया । वयमपि भरत-
स्य राक्ष उपस्थानिकं कुर्म इति कृत्वा विनमि राजान चक्रवर्त्तिनं दिव्यया मत्या चोदित-
मतिः मानोन्मानप्रमाणयुक्तां तेजस्विनीं रूपलक्षणयुक्तां स्थितयौवनकेशावस्थितनखाम्
सर्वरोगनाशिनीं बलकरीम् इच्छितशीतोष्णस्पर्शयुक्तां त्रिषु तनुकां त्रिषु ताम्रां त्रिवलीक
श्रुन्तां त्रिगम्भीराम् । त्रिषु कृष्णां त्रिषु प्रवेतां त्रिषु आयतां त्रिषु च विस्नीर्णां समशरीरां
भरते वर्षे सर्वमहिलाप्रधानां सुन्दरस्तनजघनकरचरणनयनसिरसिज दशनजनहृदयरमण
मनोहरां शृङ्गारागार यावत् युक्तोपचारकुशलां अमरवधूना सुरूपं रूपेण अनुहरन्तीं
सुमद्रां भद्रे यौवने वर्त्तमानां स्त्रीरत्न नमिश्च रत्नानि कटकानि च वृद्धिकानि च गृह्णाति
गृहीत्वा तया उत्कृष्टया त्वरितया यावदुद्धृतया विद्याधरगत्या यत्रैव भरतो राजा तत्रैव
उपागच्छतः उपागत्य अन्तरिक्षप्रतिपन्नो सर्किकिणीकानि यावत् जयेन विजयेन वर्द्धयतः
वर्द्धयित्वा पवमवादिष्टाम् अभिजित खलु देवानुप्रिया ! यावत् आवाम् देवानुप्रियाणाम-
ह्मत्तिकिङ्करावित्तिकृत्वा तत्प्रतीच्छन्तु देवानुप्रिया ! अस्माकमिदं यावत् विनमि स्त्रीरत्न
नमिश्च रत्नानि समर्पयति तत खलु स भरतो राजा यावत् प्रतिविसर्जयति प्रतिविसृज्य

पौषधाशालातः प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्क्रम्य मज्जनगृहमनुप्रविशति अनुप्रविश्य भोजनम-
प्लभे यावत् नमिबिनम्यो- विद्याधरराज्ञो अष्टाहिकां महामहिमाम्, ततः खलु तद्विव्यं चक्र-
रत्नम् आयुधगृहशालात प्रतिनिष्कामति यावदुत्तरपौरस्थां दिश गङ्गादेवी भवनाभिमुखं
प्रयातं चाप्यभवत् सैव सर्वा सिन्धुवक्तव्यता यावत् नवरं कुम्भाष्टसहस्रं रत्नचित्रं नानामणि-
कनकरत्नभक्तिचित्राणि च द्वे कनकसिंहासने शेषं तदेव यावत् महिमेति ॥सू० २५॥

टीका—‘तणं से भरहे’ इत्यादि ।

‘तणं से भरहे राया तं दिव्यं चक्ररयणं जाव वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्त-
रिल्ले णितंवे तेणेव उवागच्छइ’ ततः खलु स भरतो राजा तद्विव्यं चक्ररत्नं यावद् यावत्
पदात् दक्षिणस्यां दिशि वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयातं पश्यति दृष्ट्वा हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः
इत्यादि सर्वं वक्तव्यम् । ततः वैताढ्यस्य पर्वतस्य औत्तराहो नितम्बः उत्तरपार्श्ववर्ती कटकः
अधोभाग. तत्रैव उपागच्छति ‘उवागच्छत्ता’ उपागत्य ‘वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले
णितंवे दुवालसजोयणायाम जाव पोसहसालं अणुपविसइ जाव’ वैताढ्यस्य पर्वतस्य
औत्तराहे-उत्तरपार्श्ववर्तिनि नितम्बे गिरेः समीपभागे अधः प्रान्ते द्वादशयोजनाऽऽ-
यामम् द्वादशयोजनदैर्घ्यम् अत्र यावत्पदात् नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशम् स्कन्धावार-

‘तणं से भरहे राया तं दिव्यं चक्ररयणं’— इत्यादि सू० २५॥

टीकार्थ—(तणं से भरहे राया तं दिव्यं चक्ररयणं जाव वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंवे
तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद जब भरत राजा ने उस दिव्य चक्ररत्न की यावत् दक्षिण दिशा में
वैताढ्यगिरि की ओर जाते हुए देखा तो देखकर वह बहुत ही अधिक हृष्ट एवं तुष्ट चित्त हुआ ।
इसके बाद वहाँ वैताढ्य पर्वत का उत्तरदिग्वर्ती नितम्ब था—अधोभाग था— वहाँ पर वह आया
(उवागच्छत्ता वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंवे दुवालसजोयणायाम जाव पोसहसालं अणुपवि-
सइ) वहाँ आकर के उसने वैताढ्य पर्वतके उत्तरदिग्वर्ती नितम्ब पर गिरिसमीप में—अधः प्रान्त
में—द्वादश योजन की लम्बाई वाले एवं नौयोजन की चौड़ाई वाले श्रेष्ठनगर के जैसे अपने स्कन्धा

‘तणं से भरहे राया तं दिव्यं चक्ररयणं’ ॥ इत्यादि सूत्र. २५ ॥

टीकार्थ—(तणं से भरहे राया तं दिव्यं चक्ररयणं जाव वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्त-
रिल्ले णितंवे तेणेव उवागच्छइ) त्थार भाइ ज्थारे भरत राजा ने ते दिव्य चक्ररत्नने यावत्
दक्षिण दिशा मा वैताढ्य गिरि तरई अतु जेथु तो जेधने ते अहुं ज हुंटे तेमज तुंटे चित्त-
वाणे थये। त्थार भाइ ज्थां वैताढ्य पर्वतने। उत्तर दिशा तरई ने। नितंभ हुतो—अधो भाग
हुतो, त्थां ते आये। (उवागच्छत्ता वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंवे दुवालसजोयणायाम
जाव पोसहसालं अणुपविसइ) त्थां आवीने तेणे वैताढ्य पर्वतना उत्तर दिग्वर्ती नितंभ उपर
गिरि समीप—अध प्रान्त भां—द्वादशयोजना अटली व आर्ध वाणा अने नवयोजना प्रमाण वाणा
श्रेष्ठ नगर जेवा पोताना स्कन्धावार ने। पडाव नाथ्ये। पछी पौषधाशालामां श्रीमहाशय भरत

निवेशमिति करोतीति वाच्यम्, पौषधशालां स भरतोऽनुप्रविशति । अत्र यावत्पादात् पौषध-
विशेषणानि सर्वाणि वक्तव्याणि 'णमिविणमिणं विज्जाहरराईणं अट्टमभक्त पणिण्डइ' नमिवि-
नम्योः प्रथमतीर्थकर श्रीऋषभस्वामि महासामन्तकच्छमहाकच्छपुत्रयोः विद्याधरराज्ञोः साध-
नाय अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति 'पणिण्डित्ता ' प्रगृह्य अष्टमभक्तमवधार्य 'पोमहसालाए जाव णमि
विणमि विज्जाहररायाणो मणसी करेमाणे करेमाणे चिट्टइ' पौषधशालायां यावत्पादात्
अवस्तुतकुशासनोपविष्टो मुक्तभूषणालङ्कारो ब्रह्मचारी पौषधिक इत्यादि विशेषणविशिष्टो
भरतः नमिविनमि विद्याधरराजानौ मनसि कुर्वाणो मनसि कुर्वाणस्तिष्ठति अनयोरुपरि
बाणमोक्षणेन प्राणघातन न क्षत्रियधर्म इति बुद्ध्या सिन्ध्वादि देवीनामिव अनयोर्मनसि

वार का पहाव ढाला फिर उस पौषधशाला में भरत नरेश ने प्रवेश किया । यहा पर जो यावत्
शब्द आया है उससे इस पाठ में पौषध के जितने विशेषण पहिले कहे जा चुके है, वे सब कह-
लैना चाहिये यह प्रगट किया है "णमि विणमिणं विज्जाहरराईणं अट्टमभक्तं पणिण्डइ" पौषधशा-
ला में प्रविष्ट होकर उस भरत राजा ने श्री ऋषभ स्वामी के महासामन्तकच्छ के पुत्र एवं विद्या-
धरो के राजा ऐसे नमि और विनमिको अपने वश में करने के लिये अष्टम भक्त की तपस्या धा-
रण करली । (पणिण्डित्ता पोसहसालाए जाव णमिविणमिविज्जाहररायाणो मणसो करेमाणे २ चि-
ट्टइ) अष्टमभक्त की तपस्या धारण करके पौषधशाला में यावत्पादगृहीत वे भरत राजा कुशासन
पर उबविष्ट हो गये । समस्त भूषण एवं अलङ्कारो का उन्होंने परित्याग कर दिया । वे ब्रह्म-
चारी बन गये । इत्यादि पूर्वोक्त समस्त विशेषणा से विशिष्ट हुए उन भरत राजा ने नमि विन-
मिराजाओ को जो कि विद्याधरो के स्वामी थे, किस प्रकार से वश में किया जावे क्योंकि इनके
ऊपर बाण का छोड़ना और उससे इनका प्राणघात करना यह क्षत्रिय धर्म नहीं है, अतः सिन्धु-
आदि देविया की तरह इन दोनो के इन्हे अपने मन में करने रूप साधनोपाय में वे प्रवृत्त हो

नरेश प्रवेश कर्ते। अही के यावत् शब्द आवेक छे तेनार्थी के पाठमा पौषध अंगेना नेटलां
विशेषणो पडेला कडेवाभां आल्या छे ते भधा अही पण्य अडुष्य कर्वां नेधं के "णमि विणमिण
विज्जाहरराईणं अट्टमभक्तं पणिण्डइ" पौषधशाणामां प्रविष्ट थधने ते भरत राजाके श्रीऋषभ
स्वामिनी ना महासामन्त कच्छना पुत्र तेमज विद्याधरोना राजा केवा नमि अने विनमिने
पोताना वशमां कर्वा भाटे अष्टमभक्तनी तपस्या धारण्य करी (पणिण्डित्ता पोसहसालाए
जाव णमिविणमि विज्जाहररायाणो मणसी करेमाणे २ चिट्टइ) अष्टमभक्तनी तपस्या धारण्य
करीने पौषधशाणामा यावत् पद गृहीत ते भरत राजा कुशना आसन उपर उपविष्ट थधं गया
समस्त भूषण्य अने अलंकारोने तेमके परित्याग कर्ते तेको अक्षयारी भनी गया इत्यादि
पूर्वोक्त समस्त विशेषणोथी विशिष्ट थयेला त भरत राजाके नमि- विनमि राजाकेने के
केको विद्याधरोना स्वामी हुता तेमनेकेवी रीते वशमा करी शक्य ? केम के तेमनी उपर
आण्य वगेरे शस्त्रोना प्रयोग करी तेमने उषुवा, ते क्षत्रियेचित धर्म नथी केथी सिन्धु वगेरे
देवीकेनी केमज के भन्ने ने पोताना वशमां कर्वा भाटे के साधनेना उपयोग थधं थके

पौषघाशालातः प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्काम्य मज्जनगृहमनुप्रविशति अनुप्रविश्य भोजनम-
ण्डपे यावत् नमिबिनभ्यो- विद्याधरराज्ञो अग्राहिकां महामहिमाम्, ततः खलु तद्विव्यं चक्र-
रत्नम् आयुधगृहशालात प्रतिनिष्कामति यावदुत्तरपौरस्त्या दिश गङ्गादेवी भवनाभिमुखं
प्रयातं चाप्यभवत् सैव सर्वा सिन्धुवक्तव्यता यावत् नवरं कुम्भाष्टसहस्रं रत्नचित्रं नानामणि-
कनकरत्नभक्तिचित्राणि च द्वे कनकसिंहासने शेषं तदेव यावत् महिमेति ॥सू० २५॥

टीका—‘तपणं से भरहे’ इत्यादि ।

‘तपणं से भरहे राया तं दिव्यं चक्ररयणं जाव वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्त-
रिल्ले णितंवे तेणेव उवागच्छइ’ ततः खलु स भरतो राजा तद्विव्यं चक्ररत्नं यावद् यावत्
पदात् दक्षिणस्यां दिशि वैताढ्यपर्वताभिमुखं प्रयातं पश्यति दृष्ट्वा हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः
इत्यादि सर्वं वक्तव्यम् । ततः वैताढ्यस्य पर्वतस्य औत्तराहो नितम्बः उत्तरपार्श्ववर्ती कटकः
अधोभाग तत्रैव उपागच्छति ‘उवागच्छित्ता’ उपागत्य ‘वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले
णितंवे दुवालसजोयणायाम जाव पोसहसालं अणुपविसइ जाव’ वैताढ्यस्य पर्वतस्य
औत्तराहे-उत्तरपार्श्ववर्तिनि नितम्बे गिरेः समीपभागे अधः प्रान्ते द्वादशयोजनाऽऽ-
यामम् द्वादशयोजनदैर्घ्यम् अत्र यावत्पदात् नवयोजनविस्तीर्णं वरनगरसदृशम् स्कन्धावार-

‘तप ण से भरहे राया त दिव्व चक्ररयण’— इत्यादि सू० २५॥

टीकार्थ—(तप णं से भरहे राया त दिव्व चक्ररयण जाव वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंवे
तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद जब भरत राजा ने उस दिव्य चक्ररत्न की यावत् दक्षिण दिशा में
वैताढ्यगिरि की ओर जाते हुए देखा तो देखकर वह बहुत ही अधिक हृष्ट एव तुष्ट चित्त हुआ ।
इसके बाद वहा वैताढ्य पर्वत का उत्तरदिग्वर्ती नितम्ब था—अधोभाग था— वहा पर वह आया
(उवागच्छित्ता वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंवे दुवालसजोयणायाम जाव पोसहसालं अणुपवि-
सइ) वहां आकर के उसने वैताढ्य पर्वतके उत्तरदिग्वर्ती नितम्ब पर गिरिसमीप में—अधः प्रान्त
में—द्वादश योजन की लम्बाई वाले एवं नौयोजन की चौड़ाई वाले श्रेष्ठनगर के जैसे अपने स्कन्धा

‘तपणं से भरहे राया तं दिव्वं चक्ररयण’ ॥ इत्यादि सूत्र. २५ ॥

टीकार्थ—(तप णं से भरहे राया त दिव्वं चक्ररयणं जाव वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्त-
रिल्ले णितंवे तेणेव उवागच्छइ) त्थार भाइ त्थारे भरत राजा ने ते दिव्य चक्ररत्नने यावत्
दक्षिण दिशाभा वैताढ्य गिरि तरइ अणु जेथु तो जेठने ते अहुं अ हृष्ट तेभअ तुष्ट चित्त-
वाणे थये। त्थार भाइ त्थयां वैताढ्य पर्वतने। उत्तर दिशा तरइ ने। नितंअ हतो—अधो भाग
होतो, त्थांते आये। (उवागच्छित्ता वेयद्धस्स पव्वयस्स उत्तरिल्ले णितंवे दुवालसजोयणायाम
जाव पोसहसालं अणुपविसइ) त्थां आवीने तेथे वैताढ्य पर्वतना उत्तर दिग्वर्ती नित अ उपर
गिरि समीप—अधः प्रान्त भां—द्वादशयोजना अटवी लम्बाई वाणा अने नवयोजना प्रमाण वाणा
श्रेष्ठ नगर जेवा पोताना स्कन्धावार ने पडाव नाये। पछी पौषघाशालाभां श्रीमहाराज भरत

निवेशमिति करोतीति वाच्यम्, पौषधशालां स भरतोऽनुप्रविशति । अत्र यावत्पादात् पौषध-
विशेषणानि सर्वाणि वक्तव्याणि 'णमिविणमिणं विज्जाहररार्हणं अष्टमभक्त पगिण्हइ' नमि-
नम्योः प्रथमतीर्थकर श्रीऋषभस्वामि महासामन्तकच्छमहाकच्छपुत्रयोः विद्याधरराज्ञोः साध-
नाय अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति 'पगिण्हित्ता' प्रगृह्य अष्टमभक्तमवधार्य 'पोमहसालाए जाव णमि
विणमि विज्जाहररायाणो मणसी करेमाणे करेमाणे चिट्ठइ' पौषधशालायां यावत्पादात्
अवस्तुतकुशासनोपविष्टो मुक्तभूषणालङ्कारो ब्रह्मचारी पौषधिक इत्यादि विशेषणविशिष्टो
भरतः नमिविनमि विद्याधरराजानौ मनसि कुर्वाणो मनसि कुर्वाणस्तिष्ठति अनयोरुपरि
बाणमोक्षणेन प्राणघातनं न क्षत्रियधर्म इति बुद्ध्या सिन्ध्वादि देवीनामिव अनयोर्मनसि

वार का पडाव डाला फिर उस पौषधशाला में भरत नरेश ने प्रवेश किया । यहां पर जो यावत्
शब्द आया है उससे इस पाठ में पौषध के जितने विशेषण पहिले कहे जा चुके हैं, वे सब कह-
लेना चाहिये यह प्रगट किया है "णमि विणमिणं विज्जाहररार्हणं अष्टमभक्तं पगिण्हइ" पौषधशा-
ला में प्रविष्ट होकर उस भरत राजा ने श्री ऋषभ स्वामी के महासामन्तकच्छ के पुत्र एवं विद्या-
धरो के राजा ऐसे नमि और विनमिको अपने वश में करने के लिये अष्टम भक्त की तपस्या धा-
रण करली । (पगिण्हित्ता पोसहसालाए जाव णमिविणमिविज्जाहररायाणो मणसो करेमाणे २ चि-
ट्ठइ) अष्टमभक्त की तपस्या धारण करके पौषधशाला में यावत्पादगृहीत वे भरत राजा कुशासन
पर उबविष्ट हो गये । समस्त भूषण एवं अलङ्कारो का उन्होंने परित्याग कर दिया । वे ब्रह्म-
चारी बन गये । इत्यादि पूर्वोक्त समस्त विशेषणा से विशिष्ट हुए उन भरत राजा ने नमि विन-
मिराजाओ को जो कि विद्याधरो के स्वामी थे, किस प्रकार से वश में किया जावे क्योंकि इनके
ऊपर बाण का छोड़ना और उससे इनका प्राणघात करना यह क्षत्रिय धर्म नहीं है, अतः सिन्धु-
आदि देविया की तरह इन दोनो के इन्हें अपने मन में करने रूप साधनोपाय में वे प्रवृत्त हो

नरेशे प्रवेश कर्था, अही ने यावत् शब्द आवेल छे तेनाथी ओ पाठमा पौषध अणेना नेटवां
विशेषणो पडेवां कडेवां आल्या छे ते गधा अही पणु अहणु कर्था ओर्ध ओ "णमि विणमिण
विज्जाहररार्हणं अष्टमभक्तं पगिण्हइ" पौषधशाणामां प्रविष्ट थर्धने ते भरत राजाओ श्रीऋषभ
स्वामाभी ना महासामन्त कच्छता पुत्र तेमज्ज विद्याधराना राजा ओवा नमि अने विनमिने
पोताना वशमां कर्वा भाटे अष्टमभक्तनी तपस्या धारणु करी. (पगिण्हित्ता पोसहसालाए
जाव णमिविणमि विज्जाहररायाणो मणसी करेमाणे २ चिट्ठइ) अष्टमभक्तनी तपस्या धारणु
करीने पौषधशाणामा यावत् पद गृहीत ते भरत राजा कुशना आसन उपर उपविष्ट थर्ध गया
समस्त भूषण अने अलंकारे ने। तेमणे परित्याग कर्था तेओ ब्रह्मचारी गनी गया इत्यादि
पूर्वोक्त समस्त विशेषणोथी विशिष्ट थयेवा त भरत राजाओ नमि- विनमि राजाओने के
ओओ विद्याधराना स्वामी इता तेमनेकेवी रीते वशमा करी सकाय ? केम के तेमनी उपर
आणु वगेरे शस्त्रोने प्रयोग करी तेमने हणुवा, ते क्षत्रियोसित धर्म नथी ओथी सिन्धु वगेरे
देवीओनी नेमज्ज ओ गन्ने ने पोताना वशमा कर्वा भाटे ने साधनोने उपयोग थर्ध शके

करणमात्ररूपे साधनोपाये प्रवृत्त इत्यर्थः 'तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टममत्तसि परिण-
ममाणंसि णमि विणमि विज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइयमई अण्णमण्णस्स अंतिअं
पाउब्भवंति' ततः तदनन्तर खलु तस्य भरतस्य राज्ञः अष्टमभक्ते परिणमति सति परिपू-
र्णप्राये जायमाने सति नमी विनमी विद्याधरराजानौ दिव्यया दिव्यानुभावजनितत्वात्
मत्या ज्ञानेन चोदितमती प्रेरितमतिकौ अवधिज्ञानाद्यभावेऽपि यत्तपो भरतमनोविषयक-
ज्ञानं तत्सौधमेशानदेवीनां मन प्रविचारीदेवानां कामानुषक्तमनोज्ञानमिव दिव्यानुभावा-
दवगन्तव्यम्, अन्यथा तासामपि स्वविमानचूळिकाध्वजादि विषयकावधिमतीनां रमणेच्छा
ज्ञानासम्भवेन सुरतानुकूलचेष्टोन्मुखत्वं न सम्भवेदिति, एतादृशीं सन्तौ तौ अन्योऽन्यस्य
अन्तिकं समीपं प्रादुर्भवत् 'पाउब्भचित्ता एवं वयासी' प्रादुर्भूय प्रकटीभूय एवं वक्ष्यमाणप्रका-
रेण अवादिष्टाम् उक्तवन्तौ किमुक्तवन्तौ इत्याह—'उत्पण्णे खलु' इत्यादि । 'उत्पण्णे खलु भो

गये । (तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अट्टममत्तसि परिणममाणंसि परिणममाणंसि णमिविणमी
विज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइयमई अण्णमण्णस्स अंतिअं पाउब्भवंति) भरत राजा की अष्टम
भक्त की तपस्या जब पूर्ण होने की आई तब नमि और विनमि दोनों विद्याधर राजा दिव्यानु-
भावजनित होने से दिव्य ऐसे अपने ज्ञान के द्वारा प्रेरित मतिवाले बन कर आपस में एक दूसरे
के समीप आये । यहाँ दिव्य ज्ञान से भरत के मन की बात जानने का जो उल्लेख किया गया
है । सो इनके अवधिज्ञान तो था ही नहीं फिर भी उन्होंने जो उसके मन की बात जानली वह
सौधमेशान की देविया जिस प्रकार मनः प्रविचारि देवो के दिव्यानुभाव से (कामानुषक्तमनोवि-
ज्ञान वाली होती है । उसी तरह से इन्होंने भी दिव्यानुभाव से भरत के मन के भाव को जान-
लिया ऐसा समझना चाहिये । यदि ऐसा बात न मानी जावे तो फिर अपने विमान की चूळि-
का की ध्वजमान जाननेवाले अवधिज्ञान वाली उन देवियों में उनके रिरंसा ज्ञान के अभाव से
सुरतानुकूल काम चेष्टा के प्रति उन्मुखना नहीं बन सकती है । (पाउब्भचित्ता एव वयासी)

तेभा प्रवृत्त थया (तए ण तस्स भरहस्स रण्णो अट्टममत्तसि परिणममाणंसि णमि विणमी
विज्जाहररायाणो दिव्वाए मईए चोइयमई अण्णमण्णस्स अंतिअं पाउब्भवंति) श्रीभरत
महाराजानी अष्टम भक्त नी तपस्या न्याये पूरी. थया आवी त्थारे नमि अने विनमि अने
विद्याधर राजाओ दिव्यानुभावजनित होवाथी दिव्य जेवा पोताना ज्ञान वडे प्रेरित थई ने
परस्पर ओक- भीलनी पासे आओ. अही दिव्य ज्ञानथी भरतराजना मननी वात लघुवा
अ गेने जे उद्वेग करवाभा आवे छे तो तेमने अवधिज्ञानतो हउ नहि छतांओ जे तेमणे
तेना मननी वात लघी लीधी ते सौधमेशाननी देवीओ जेम मन प्रविचारि देवाना दिव्या-
नुभावथी कामानुषक्त मने विज्ञानवाणी होय छे, ते प्रभाणे जे अमणे पणु दिव्यानुभावथी
भरतना मनने आव लघी लीधी आम समल देवु नेछ ओ जे आ प्रभाणे मानवाभा
आवे नई तो पछी पोताना विमाननी चूळिकाथी ध्वजमान लघुनार अवधिज्ञानवाणी ते
देवीओभां तेमना रिरंसाज्ञानना अभावथी सुरतावृक्ष कामओटा प्रत्ये उन्मुखता सलथी
शुके तेम नथी (पाउब्भचित्ता एव वयासी) आ प्रभाणे तेओ अने पासे आवी ने

देवानुप्पिया ! जंबुद्वि्वे दीवे भरहे वासे भरहे राया चाउरंतचक्रवट्टी त जीअमेअ-
तीअपच्चुप्पणमणागयाण विज्जाहरराईणं चक्रवट्टीणं उवत्थाणीयं करेत्तए' उन्पन्न
खलु भो देवानुप्रिया ! जम्बूद्वीपे द्वीपे जम्बूद्वीपनामक मध्यजम्बूद्वीपे भरते वर्षे भर-
तखण्डे श्रीभरतो नाम महाराजा-चातुरन्तचक्रवर्ती चत्वारोऽन्नाः त्रयः पूर्वापग्दक्षिणममुद्राः
चतुर्थो हिमालय गिरवर इत्येव रूपास्ते वश्यतया सन्ति यस्य न चातुरन्तः स चाभौ चक्रवर्ती
च इति चातुरन्तचक्रवर्ती तत् तस्माज्जीतमेतत् एष आचारक्रमः अतीतवर्तमानानागतानां
विद्याधरराज्ञां चक्रवर्तीनामुपस्थानिकं रत्नादिना प्राभृतं कर्तुम् अर्पयितुम् 'तं गच्छ मो ण
देवानुप्पिया । अम्हे वि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमो' तत् तस्मात्कारणान् गच्छामः
खलु देवानुप्रिया ! वयमपि भरतस्य राज्ञ उपस्थानिकं कुर्म 'इतिकट्टु' इति कृत्वा इति
अन्योऽयं भणित्वा 'विणमी' विनमिः उत्तरश्रेण्यधिपतिः सुभद्रां नाम्ना खीरत्न नमिश्च
दक्षिणश्रेण्यधिपतिः रत्नानि कटकानि त्रुटिकानि च गृह्णाति इत्थेऽन्वयः अथ विनमिः
कोट्टयः सन् किं कृत्वा सुभद्रां कार्त्तनं गृह्णाति इत्याह—'णारुण चक्रवट्टिं दिव्वाए मईए
चोइयमई' दिव्यया मत्या दिव्येन ज्ञानेन नोदितमतिः प्रेरितः सन् चक्रवर्तिनं राजान

इस तरह वे एक दूसरे के पास आकर विचार करने लगे (उपपणे खलु भो देवानुप्पिया ! जंबु-
द्वि्वे दीवे भरहे वासे भरहे राया, चाउरंतचक्रवट्टी तं जीअमेअं) हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप
नाम के द्वीप में भरत क्षेत्र में चातुरन्त चक्रवर्ती भरत नाम के राजा उत्पन्न हुए हैं । तो यह
आचार है । (तीअपच्चुप्पणमणागयाण विज्जाहरराईणं चक्रवट्टीणं उवत्थाणियं करेत्तए) अ-
तीत वर्तमान और अनागत विद्याधरराज्ञो का कि वे चक्रवर्तियों के लिये भेट में रत्नादिक
प्रदान करे । (तं गच्छामो देवानुप्पिया ! अम्हे वि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमो) तो हे
देवानुप्रिय चलो— हमलोग भी भरत राजा के लिये भेट दें (इति कट्टु) इस प्रकार से प स्पर
में विचार विनिमय करके (विणमी) उत्तर श्रेणी के अधिपति विनमी ने सुभद्रा नाम का खीरत्न
को प्रदान किया और दक्षिण श्रेणी के अधिपति नमि ने रत्न को कटक और त्रुटिक प्रदान
किये ऐसा यहाँ सम्बन्ध लगा लेना चाहिये । (णारुण चक्रवट्टिं दिव्वाए मईए चोइयमई)

विचार करवा लया (उपपणे खलु भो देवानुप्पिया ! जंबुद्वि्वे दीवे भरहे वासे भरहे राया,
चाउरंतचक्रवट्टी तं जीअमेअं) हे देवानुप्रिय ! जम्बूद्वीप नामक द्वीपमां अगतक्षेत्रमा
चातुरन्त चक्रवर्ती भरत नामे राजा उत्पन्न थयाछे तो आपणो अये आचार अये (तीअपच्चुप्पण-
मणागयाण विज्जाहरराईणं चक्रवट्टीणं उवत्थाणियं करेत्तए) अतीत, वर्तमान अने
अनागत विद्याधर राजायेना के तेअो अकवर्तीअो भाटे लेट् इयमां रत्नादिक प्रदान करे-
(तं गच्छामो देवानुप्पिया ! अम्हेवि भरहस्स रण्णो उवत्थाणियं करेमो) तो हे देवानु-
प्रिय, आये, अये लोके पण भरत महाराज भाटे लेट् अपिंअे (इति कट्टु) आ प्रभाणे
परस्पर विचारविनिमय करीने (विणमी) उत्तर श्रेणीना अधिपति विनमीने सुभद्रा नामक
खीरत्न प्रदान कथुं अने दक्षिण श्रेणीना अधिपति नमिअे रत्नना कटक अने त्रुटिको प्रदान
कथां अये अर्थ अहीं लगावये लेध अये (णारुणं चक्रवट्टिं दिव्वाए मईए चोइ-

મરતં જ્ઞાત્યા તસ્મૈ ઉપહારં પ્રદાતું તદનુરૂપાં સુભદ્રાં સ્ત્રીરત્નં ગૃહ્ણાતીત્યર્થઃ । અતएव अनन्त-
 रोक्तसूत्रतः चक्रवर्तित्वे लब्धेऽपि यत् 'णाऊण चक्रवर्ति' इत्याद्युक्तं तत् सुभद्रा स्त्रीर-
 त्नमस्यैवोपयोगि इति योग्यता व्यापनार्थमवसेयम्, तत्र कीदृशीं सुभद्रामित्याह—'माणु-
 म्माणप्पमाणजुत्तं' मानोन्मानप्रमाणयुक्तम्, तत्र मानं जलद्रोणप्रमाणता उन्मानम् तुला-
 रोपितस्यार्द्धभारप्रमाणता, यश्च स्वमुखानि नव समुच्छ्रितः स प्रमाणोपेतः स्यात् अय-
 म्भात्र जलपूर्णायां पुरुषप्रमाणादीपदतिरिक्तायां महत्यां कुण्डीकायां प्रवेशितो यः पुरुषः
 सारपुद्गलोपचितो जलस्य द्रोणं त्रिटङ्क सौवर्णिक गणनापेक्षया द्वात्रिंशत्सेरप्रमाणं निष्का-
 शयति जलद्रोणोनावा तां पूरयति स मानोपेतः, तथा सारपुद्गलोचितत्वादेव यस्तुलायामारो
 पितःसन् अर्द्धभारं तुलयति स उन्मानोपेतः, तथा यद्यस्य स्वकीयेन अङ्गुलेन द्वादशाङ्गु-

क्योकि विनमिने यह बात अपने दिव्यानुभाव जनित ज्ञान से जान ली थी, कि भरत नाम
 का चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुआ है और उसके लिये विधाधर राजा भेट देते है । इसी कार-
 ण उसने स्त्रीरत्न चक्रवर्ती के लिये दिया अतः अब जिस स्त्रीरत्न को चक्रवर्ती के लिये भेंट
 स्वरूप में विनमि ने प्रदान किया वह स्त्रीरत्न कैसा था इस बात को सूत्रकार प्रगट करते हुए
 कहते हैं— (माणुम्माणप्पमाणजुत्तं तेअस्सि रूवलक्खणजुत्तं ठियजुंव्वणकेसवट्टियणहं सव्वरोगणा-
 सणिं वलकरिं, इच्छिंम सीउण्हफासजुत्तं) किं वह सुभद्रा नाम का स्त्रीरत्न मान उन्मान एवं
 प्रमाण से युक्त था तात्पर्य इसका ऐसा है कि सार पुद्गलों से उपचित पुरुष का जितना प्रमाण
 होता है; उससे भी कुछ अधिक प्रमाण वाली एक वड्डी कुण्डिका में जल भर दो और उसमें
 उस पुरुष को प्रवेश कराओ उसके प्रवेश करने पर उसके मोतर से त्रिटङ्क सौवर्णिक गणना की
 अपेक्षा यदि ३२ सेर जल बाहर निकल आता है तो वह पुरुष मानोपेत माना जाता है । और
 वही सार पुद्गलोपचित पुरुष तराजू पर तौलने व हजार पल प्रमाण वजन में तुलता है तो वह
 उन्मानोपेत कहा जाता है । तथा जिस व्यक्ति का जितना अंगुल है उस अंगुल से १२ अंगुल

અમદ્ર) કેમકે વિનમિએ - એ વાત પોતાના દિવ્યાનુભાવ જનિત જ્ઞાનથી જાણી લીધી કે
 ભરત નામક ચક્રવર્તી રાજા ઉત્પન્ન થયો છે અને તેને વિધાધર રાજા ભેટ આપે છે - એથી
 જ તેણે ચક્રવર્તી માટે સ્ત્રી-રત્ન આપ્યું હવે જે સ્ત્રી-રત્ન ચક્રવર્તી માટે ભેટ સ્વરૂપમાં
 વિનમિએ અર્પિત કર્યું તે સ્ત્રીરત્ન કેવું હતું, તે વાતને 'સૂત્રકાર આ પ્રમાણે પ્રગટ કરે
 છે- (માણુમ્માણપ્પમાણજુત્ત તેઅસ્સિ રૂવલક્કણજુત્તં ઠિયજુવ્વણકેસવટ્ટિયણહં સવ્વ
 રોગણાસણિ વલકરિં, ઇચ્છિંમ સીઉણહફાસજુત્ત) કે તે સુભદ્રા નામક સ્ત્રી-રત્ન માન
 ઉન્માન અને પ્રમાણથી યુક્ત હતું. તાત્પર્ય આમ છે કે સાર પુદ્ગલોથી ઉપચિત પુરુષ
 જેટલું પ્રમાણ હોય છે તેની કરતા પણ કંઈક વધારે પ્રમાણવાળી એક મોટી કુડિકામાં પાણી
 ભરી અને તેમાં તે પુરુષને પ્રવિષ્ટ કરાવો, તે પ્રવિષ્ટ થાય અને તેની અદરથી ત્રિટક સૌવ-
 ર્ણિક ગણનાની અપેક્ષાએ જે ૩૨ સેર જેટલું પાણી બહાર-લીકળી આવે તો તે, પુરુષ ને-
 માનોપેત માનવામાં આવે છે, અને તે જ સાર પુદ્ગલોપચિત પુરુષ ને તાલવા ઉપર તોલવા-
 માં આવે તો તેનું વજન ૧ હજાર પલ પ્રમાણ જેટલું થાય તો તેને ઉન્માનોપેત કહેવામાં

छानि मुखं प्रमाण युक् अनेन च मुखप्रमाणेन नवमुखानि समुच्छ्रितः पुरुषः प्रमाणयुक्तः स्यात्, प्रत्येकं द्वादशकुलैर्नवभिर्मुखैर्गुलानामष्टोत्तरशतं सम्पद्यते, ततश्चैतावदुद्भूयः पुरुषः प्रमाणयुक्तः स्यात्, एवं सुभद्रापि मानोन्मानप्रमाणयुक्ता तथाभूताम् पुनश्च कीदृशीम् 'तेअस्सि' तेजस्विनीम् विदक्षणतेजः सम्पन्नां तथा 'रुवळवखणजुत्तं' रूपलक्षणयुक्ताम् तत्र रूपम्, अतीव सुन्दराकारः लक्षणानि च छत्रादीनि तैर्युक्ताम्, तथा 'ठिअजुव्वण-केसवट्टिअणहं' स्थितयौवनकेशावस्थितनखाम् तत्र स्थितम् अविनाशित्वाद्यौवनं यस्याः सा तथा एवं केशवदवस्थिताः अवर्धिष्णवो नखाः यस्याः सा तथा ततः पदद्वयस्य कर्मधारये तां तथा 'सव्वरोगणासणिं' सर्वरोगनाशनीम् तदीयस्पर्शमहिम्ना सर्वरोगाः नश्यन्तोत्यर्थः तथा 'बळकरिं' बलकरीम्-बलवृद्धिकरीम् नापरस्त्रीणामिव अस्याः परिभोगे परिभोक्तवर्द्धक्षय इत्यर्थः तथा 'इच्छिय सीउण्हफासजुत्तं' इच्छित शीतोष्णस्पर्शयुक्ताम् तत्र इच्छित्ताः इप्सिताः ऋतुविपरीतत्वेन इच्छागोचरीकृताः ये शीतोष्णस्पर्शास्तैर्युक्ताम्-उष्णतौ शीतस्पर्शाम् शीतऋतौ उष्णस्पर्शाम् मध्यमतौ मध्यमस्पर्शामिति भावः । तिस्रु, तणुअं तिस्रु तंब तिवळ्ळिगतिउण्णय तिगंभीर । तिस्रु कालं तिस्रु सेअं ति आयतं तिस्रु अविच्छिण्णं ॥१॥' त्रिषु तनुकां त्रिषु ताम्नां त्रिवळ्ळिकञ्चुन्नतां त्रिगम्भीराम् । त्रिषु कृष्णां, त्रिषु श्वेतां त्रयायतां त्रिषु च विस्तोर्णाम् ॥१॥ तत्र- त्रिषु तनुकां त्रिषु स्थानेषु मध्यो-

का जिसका मुख होता है-: वह मुख प्रमाण से जो १९ मुख का होता है । अर्थात् १०८ अंगुल का ऊँचा होता है । वह प्रमाणोपेन कहा जाता है । ऐसे मान, उन्मान और प्रमाण से युक्त वह सुभद्रारत्न था. तथा वह सुभद्रारत्न तेजस्वी था विदक्षण तेज से युक्त था. सुन्दर आकार वाला था छत्रादि प्रशस्तलक्षणो से युक्त था. स्थिर यौवन वाला था. केज की तरह इसके नख अवर्धिष्णु थे- समस्त रोग इसके स्पर्शमात्र से नष्ट हो जाते थे. बलकी वृद्धि करने वाला था. दूसरी स्त्रियों की तरह यह सुभद्रा अपने भोक्ता पुरुष के बल को क्षय करने वाली नहीं थी. शीत काल में यह सुभद्रारत्न उष्णस्पर्शवाला रहता था और उष्णकाल में यह शीतस्पर्शवाला होता था. तथा मध्यम ऋतु में यह मध्यमस्पर्शवाला बन जाता था यह सुभद्रारत्न तीन स्थानों में

आवे छे तेभने जे पुरुषने जेटवे प्रभाषुवादे। अशुद्ध होय छे, ते अशुद्धथी १२ अशुद्ध जेटवे जेटु शुभ होय छे तेने शुभप्रभाषु मानवाभां आवे छे जेवा शुभप्रभाषुथी जे पुरुष ६ शुभ जेटवे होय छे अटेवे के १०८ अशुद्ध जेटवे। जे जे होय छे, तेने प्रभाषुपेन कडेवाभा आवे छे जेवा मान, उन्मान अने प्रभाषुथी युक्त ते सुभद्रा नामके स्त्री-रत्न हंतु तेभने ते सुभद्रा स्त्री-तेजस्वी हंतु ते विदक्षु तेजथी सम्पन्न हंतु आकारे ते सुभद्रा स्त्री-रत्न सुन्दर हंतु छत्रादि प्रशस्त लक्षणोथी ते युक्त हंतु स्थिर यौवनवाणु हंतु वाणनी जेमे जेना नजे अवर्धिष्णु हतां जेना स्पर्शमात्रथी न समस्त रोगो नाश पावता हता ते अणुवृद्धि करनार हंतु, भील स्त्रीजोनी जेमे ते सुभद्रा पीताना उपशोक्तता पुरुषना अणने क्षय करनार न होती शीत कालमां ते सुभद्रारत्न उष्ण स्पर्शवाणु रहेतु हंतु अने उष्णकालमा जे शीतस्पर्श वाणु थय जेतु हंतु तेभने मध्यम ऋतुमां जे मध्यम स्पर्श

दरतनुलक्षणेषु तनुकाम् कृणाम् पुनः कीदृशी वर्तते तदाह त्रिषु ताम्रां त्रिषु दृगन्तावरयो-
निलक्षणेषु स्थानेषु ताम्राम्-रक्ताम् तथा-त्रिवलिकाम्-त्रयो बलयो मध्यवर्ति रेखा रूपाः
यस्याः सा तथा ताम् त्रिवलि कृत्वं स्त्रीणा मति प्रशस्यं पुंसां तु न तथाविधम् । तथा त्र्यु-
न्नताम्-त्रिषु स्थानेषु स्तनजघनयोनिनिलक्षणेषु उन्नताम् तथा त्रिगम्भीराम् त्रिषु नाभि-
सत्त्व स्वरूपेषु गम्भीरां धृतगाम्भीर्याम् तथा त्रिषु कृष्णाम् त्रिषु रोमराजी चूचुक
कनीनिकारूपेषु अवयवेषु कृष्णां कृष्णवर्णाम् तथा त्रिषु श्वेतां त्रिषु दन्तस्मित-
चक्षुर्लक्षणेषु श्वेतवर्णाम् तथा ज्यायताम् त्रिषु वेणीबाहुलता लोचनेषु आयतां दीर्घाम्
तथा त्रिषु च विस्तीर्णाम् त्रिषु श्रोणिचक्रजघनस्थली नितम्बस्थानेषु विस्तीर्णाम् ॥१॥
तथा 'समसरीर' समशरीराम् सम चतुरस्रं संस्थानं यस्या सा समचतुरस्रा समसंस्था-
नत्वात् तथा-'भरहे वासंमि स सव्वमहिलप्पहाणं' भारते वर्षे भरतक्षेत्र सममहिला-
प्रधानाम् पुनः कीदृशी सुभद्राम् सुदरथणजघणवरकरचलणयणसिरसिजदसणंजण

मध्यमें ऋटिभागमें, उदर में एवं शरीर मे कृश था तीन स्थानो में नेत्र के प्रान्त भागां में, अध-
रोष्ठ में, एव योनिस्थान में रक्त-जाल था, त्रिवलियुक्त था तीन स्थानों में स्तन जघन एव योनिरूप
स्थानो में उन्नत थां. तीन स्थानो में नाभि में, सत्त्व में और स्वर में गंभीर था तीन स्थानो में
रोमराजि चुचुक, और कनीनिका मे कृष्णवर्णोपेत था तीन स्थानो में दन्त स्मित और चक्षुरूप स्था-
नो में श्वेतवर्णोपेत था. तीन स्थानो में वेणी, बाहुलता और लोचन रूपस्थानो में- यह लम्बाई
युक्त था तथा तीन स्थानों में- श्रोणिचक्र, जघनस्थली और नितम्ब इनमें चौड़ाई से युक्त था. इस
सब विशेषणों का कथन करने वाली माथा इस प्रकार से है-

“तिसु तणुअं तिसु तवं तिवलीग ति उण्णय ति गंभीरं । तिसु कालं तिसु सेअं तिमायत
तिसुय विच्छिण्ण ॥१॥ (समसरीरं) समचतुरस्रस्थानवाला होने से यह सुभद्रारत्न बहुसमरम-
णाय शरीरवाला था (भरहे वासमि सव्वमहिलप्पहाणं) भरत क्षेत्र में यह रत्न समस्त महिलाओं

वाणु यथं जटुं. इतु. अे सुभद्रा स्त्री रत्न मध्यमा-ऋटि भागमा उदरमां अने शरीरमा
अे त्रषु स्थानो मां कृश इतु त्रषु स्थानोमां-नेत्रना प्रान्त भागोमा, अधरोष्ठमा तेमज्ज
योनिस्थानमां अे दाव इतु ते त्रिवलि युक्त इतु त्रषु स्थानोमां-स्तन जघन अने
योनि इप स्थानोमां ते उन्नत इतु. त्रषु स्थानोमा नाभिमां सत्त्वमां अने स्वरमा अे
गंभीर इतु. त्रषु स्थानोमां-रोमराजि, चुचुक अने कनीनिकांमां अे कृष्णवर्णोपेत् इतु,
त्रषु स्थानोमा दन्त, स्मित अने चक्षु इप स्थानोमां अे श्वेतवर्णोपेत् इतु त्रषु स्थानोमा
वेणी, बाहुलता अने लोचन इप स्थानोमा अे लम्बाई युक्त इतु. तेमज्ज त्रषु स्थानो मा
श्रोणिचक्र जघन स्थली अने नितम्ब अे स्थानोमां अे पडोणाथयुक्त इतु अे सर्वे
विशेषणोत्तु कथन प्रकट करनारी माथा आ प्रभाणु अे -

“तिसु तणुअं तिसु तवं तिवलीग ति उण्णय ति गंभीरं ।

तिसु कालं तिसु सेअं ति आयतं तिसुय विच्छिण्णं ॥१॥

(समसरीर) समचतुरस्र संस्थान वाणुं डोवाथी अे सुभद्रारत्न समशरीर वाणु इतुं
(भरहे वासंमि सव्व महिलप्पहाणं) भरत क्षेत्रमां अे रत्न समस्त महिलाओंनी कृष्ण

हिअयरमणमणहरि' सुंदरस्तनजघनवरकरचरणनयनसिरसिजदशनजनहृदयरमणमनोहरीम्, तत्र सुन्दर मनोहरम् स्तनजघनवरकरचरणनयनं यस्याः सा तथा शिरसि जायन्ते ये ते शिरसिजाः केशाः दशना दन्तास्तैः जनहृदयरमणीं द्रष्टृपुरुषचित्तप्रसन्नकरी अतएव मनोहरो चित्तहारिका पश्चात् धर्मधारयः एवंभूता या सा तथा ताम् तथा— 'सिगारागार जाव जुत्तोवयारकुसळं' शृङ्गारागार यावद् युक्तोपचारकुशलाम् अत्र यावत्पदात् शृङ्गारागारचारुवेपां सङ्गतगतहसित भणितचेष्टितविलाससललितसंलापनिपुणामिति संग्राह्यम् तथा च शृङ्गारागारचारुवेपाम् शृङ्गारस्य प्रथमरसस्यागार गृहमित्र चारुः सुन्दरां वेषो यस्याः सा तथा ताम्, तथा सङ्गताः उचिताः गतहसितभणितचेष्टितविलासाः यस्याः सा तथा ताम् तत्र गतं गमनं हसित स्मितं भणित वाणी चेष्टितं च नेत्रचेष्टा तथा सह ललितेन प्रसन्नतया ये संलापाः परस्परभाषणलक्षणास्तेषु निपुणा या सा तथा ताम्, तथा युक्तोपचारकुशलाम् युक्तः—संगताः ये उपचाराः लोकव्यवाहारास्तेषु कुशलानिपुणा या सा तथा ताम् तथा 'अमरवहूणं सुखं रूपेण अणुहरंती' अमरवधूनां देवाङ्गनानां मूर्खं सौन्दर्यं रूपेण निजेन अनुहरन्तीम् अनुकुर्वन्तीम् तथा

के बीच में प्रधान रत्न था. (सुन्दरथणजघनवरकरचरणनयनसिरसिजदशनजनहृदयरमणमणहरि) इसके स्तन, जघन, एवं कर द्वय ये सब सुन्दर थे दोनों चरण बड़े ही मनोज्ञ थे. नेत्र दोनों बहुत अधिक लुभावने वाले थे मस्तक के केश एवं दन्तपङ्क्ति द्रष्ट पुरुष के चित्त को आनन्दकारी थे. अतः यह सुभद्रारत्न बड़ा ही मनोहर था (सिगारागार जाव जुत्तोवयारकुसळं) इसका सुन्दर वेष प्रथमरसरूप शृङ्गार ही का धर था. यावत् सगत लोक व्यवहारों में यह सुभद्रारत्न बहुत ही अधिक कुशलता पूर्ण था यहां यावत्पद से— "चारुवेषा, सगनगतहमितभणितचेष्टितविलाससललितसंलापनिपुणाम्" इन पदों का प्रहण हुआ है इनकी व्याख्या इस प्रकार से है— इसका गमन, इसका हास्य, इसको सुस्वयान, इसका बोलना, इसका वाणी, इसका चेष्टित—नेत्र चेष्टा, और प्रसन्नता पूर्वक किये आलाप ये सब ही मनोखे थे अर्थात् यह सुभद्रारत्न. इन सब गमनादिरूप कार्यों में बहुत ही उत्तमतालिये हुए था (अमरवहूणं सुखं रूपेण

प्रधान रत्न इत्तु (सुंदरथणजघनवरकरचरण नयनसिरसिजदशन जनहृदयरमण मणहरि) येना स्तना, जघन अने करद्वय ये सर्वे सुंदर इतां भन्ने अरथो भूषण मनोज्ञा । इतां भन्ने नेत्रो अतीव आकर्षक इतां मस्तकना वाण अने इत पङ्क्ति दष्ट पुरुषना चित्तने आनंद आपनारा इतां आ प्रभाषे ये सुभद्रारत्न अतीव मनोहर इत्तु (सिगारागार जाव जुत्तोवयारकुसळं) येना सुंदर वेष प्रथम रस रूप शृंगारतु धर इत्तु यावत् सगत लोक व्यवहारमा ये सुभद्रारत्न अतीव कुशलता पूर्ण इत्तु. अही यावत् पदार्थी 'चारुवेषा, संगतगतहसितभणित, चेष्टितविलाससललितसंलापनिपुणाम्) ये पदोनु ग्रहण भुञ्जे छे. पदोनी व्याख्या आ प्रभाषे छे—ये सुभद्रारत्नीरत्न तुं गमन, हास्य सुस्वयान, मोक्षे, आ वाणी, चेष्टित, नेत्र-चेष्टा अने प्रसन्नतापूर्वक करवामा आवेला आलापो ये सर्वे अहंभुत इतां अट्टे के ये सुभद्रारत्न ये सर्वे गमनादिक रूप कार्योंमा अतीव उत्तमता युक्त इत्तु

‘सुभद्रं भद्रंमि जोव्वणे वट्टमाणि इत्थीरयणं’ भद्रे कल्याणकारिणी यौवने वर्त्तमानां सुभद्रां तत् नामकं स्त्रीरत्नम् विनमिः गृह्णाति ‘नमीअ रयणाणि अ कडगाणि य तुडि-याणि य गेण्हइ’ नमिश्च रत्नानि च कटकानि च त्रुटिकानि च गृह्णाति एतत्पदस्यार्थः प्राक्कथित एवेत्यलं पुनरुपादानेन ‘गिण्हित्ता’ गृहीत्वा ‘ताए उक्किट्टाए तुरियाए जाव उडूयाए विज्जाहरगईए जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति’ तथा उत्कृष्टया त्वरितया यावदुद्धृतया विद्याधरगत्या यत्रैव भरतो राजा तत्रैव द्वौ उपागच्छतः तत्र तथा उत्कृष्टया उत्कर्षयुक्तया त्वरया आकुलया न स्वाभाविन्या यावत्पदात् चपलया अतिवेगेन चण्डया प्रबलया रौद्रया अत्युत्कर्षयोगेन सिंहया सिंहसदृशदाढ्यं सिंहसदृशपराक्रमशालि गत्या उद्धृतया दर्पातिशयेन जयिन्या विपक्षजेतृत्वेन छक्रया निपुणया दिव्यया विद्याधरगत्या उत्तरश्रेण्याधिपति दक्षिणश्रेण्याधिपती विनमोनमी यत्रैव भरतो राजा तत्रैव उपागच्छतः ‘उवागच्छित्ता’ उपागत्य ‘अंतल्लिखपडिवण्णा सख्खिणीयाइं जाव जएण

अणुहरंती सुभद्र भद्रमि जोव्वणे वट्टमाणि इत्थीरयणं, णमीय रयणाणि य कडगाणि य, तुडियाणि य गेण्हइ) यह अपने रूप से देवाङ्गनाभो के सौन्दर्य का अनुकरण करता था ऐसे विशेषणो से विशिष्ट तथा भद्र-कल्याणकारी-यौवन में स्थित ऐसे स्त्रीरत्नरूप सुभद्रारत्न को विनमिने लिया और नमिने अनेकरत्नों को कटको को और त्रुटिको को लिया (गिण्हित्ता जेणेव भरहे राया, तेणेव उवागच्छइं) इन सबको लेकर फिर वे जहा पर भरतमहाराजा थे वहा पर आये. (ताए उक्किट्टाए तुरियाए जाव उडूयाए विज्जाहरगईए) आते समय वे साधारणगति से नहीं चले किन्तु उत्कृष्ट गति से ही चले. वह—उनकी उत्कृष्ट गति भी ऐसी थी कि जिसमें त्वरा-भरी हुई थी. शीघ्रता से युक्त थी इससे उन्होने मार्ग में कहीं पर भी विश्राम नहीं किया. त्वरा युक्त होने पर भी वह ऐसा नहीं थी कि जिसमें अनुद्धतता हो किन्तु उद्घृतता से—छत्रागो से—वह युक्त थी अतः जैसी विद्याधरो की गति होती है इसी प्रकार की गति से चलकर वे भरत

(अमरवह्ण सुरूवं रूपेण अणुहरती सुभद्र भद्रंमि जोव्वणे वट्टमाणि इत्थीरयणं, णमीय रयणाणि य कडगाणि य तुडियाणि य गेण्हइ) એ સુભદ્રાસ્ત્રીરત્ન રૂપમા દેવાગનાઓના સૌ હર્યંતુ અબુકરણ કરનાર હવુ એવા વિશેષણોથી વિશિષ્ટ તેમજ ભદ્ર-કલ્યાણકારી યૌવનમા સ્થિત એવાસ્ત્રી-રત્નરૂપ સુભદ્રારત્નને વિનમિએ સાથે લીધુ અને નમિએ અનેક રત્નોને, કટકોને અને ત્રુટિકોને લીધા (ગિણ्हિત્તા જેણેવ ભરહે રાયા તેણેવ ઉવાગચ્છઈ) એ સર્વને લઈને પછી તેઓ જ્યાં ભરત રાજા હતા ત્યાં ગયા. (તાએ ઉક્કિટ્ટાએ તુરિયાએ જાવ ઉડૂ યાએ વિજ્જાહરગઈએ) જતિ વખતે તેઓ એ સાધારણ ગતિથી ગમન કર્યું નહિ પણ ઉત્કૃષ્ટ ગતિથી ગમન કર્યું તે તેમની ઉત્કૃષ્ટ ગતિ પણ એવી હતી કે જેમા ત્વરા હતી, શીઘ્રતા હતી. એથી તેમણે માર્ગ માં કોઈ પણ સ્થાને વિશ્રામ લીધો નહિ ત્વરા યુક્ત હોવા છતાં એ તે એવી નહોતી કે જેમા અનુદ્ધતતા હોય પણ ઉદ્ઘૃતતાથી છલ ગથી—તે યુક્ત હતી આ પ્રમાણે એવી વિદ્યાધરની ગતિ હોય છે, એવી જ ગતિથી આલીને તેઓ ભરતરાજાની પાસે ગયા. અહીં યાવત્ પદ્યથી “ચપલયા ચણ્ડયા, રોદ્રયા, સિંહયા, જયિન્યા” એ વિશેષણો

विजयणं वद्धाविति' तत्र अन्तरिक्षप्रतिपन्नौ गगनस्थितौ चिनमी नमी सर्किक्किणीकानि क्षुद्रघण्टिका युक्तानि यावत्पादात् पञ्चवर्णानि शुक्लनीलपीतरक्तहरितपञ्चवर्णमिश्रितानि वस्त्राणि प्रवराणि परिहितौ धारितवन्तौ जयेन विजयेन जयविजयशब्दाभ्यां वर्द्धयतः 'वद्धावित्ता एव वयासी' वर्द्धयित्वा एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादिष्टाम् उक्तवन्तौ किमुक्तवन्तावित्याह—'अभिजिणं देवाणुप्पिया ! जाव अम्हे देवाणुप्पियाणं आणत्तिकिकरा इति कदद्दु तं पडिच्छत्तु णं देवाणुप्पिया ! अम्ह इमं जाव विणमी इत्थीरयणं णमी रयणाणि समप्पेइ' अभिजितं स्ववशे कृतं खल्ल भो देवानुप्रियाः ! यावत्पादात् सर्वे

राजा के पास आये. यहा यावत्पद से "चपलया चण्डया, रोइया सिंहया जयिन्या" इन विशेषणां का ग्रहण हुआ है (उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवन्ना सख्खिखिणीयाइं जाव जणं विजयणं वद्धावेति) वहा आकर वे बोचे नहीं उतरे किन्तु आकाश में ही वे ठहर रहे. जिन वस्त्रों को ये उस समय धारण किये हुए आये थे वे, वस्त्र उनके क्षुद्र घण्टिकाओं से युक्त थे और पांचवर्णों से—शुक्ल, नील, पीतरक्त और हरित इन पांच प्रकार के रंगों से—रंगे हुए थे. अतएव प्रवर—श्रेष्ठ थे आकाश में ठहरे हुए ही इन विनमि और नमिने भरत को जय विजय शब्दों से बधाया (वद्धावित्ता एवं वयासी) और वधाकर-वधाई देकर फिर इस प्रकार से कहा— (अभिजिणं देवाणुप्पिया ! जाव अम्हे देवाणुप्पियाण आणत्तिकिकरा इति कदद्दु तं पडिच्छत्तु णं देवाणुप्पिया ! अम्ह इमं जाव विणमी इत्थीरयणं णमी रयणाणि समप्पेइ) हे देवानुप्रिय ! आपने विजय प्राप्त कर लिया है. यहा आगत यावत्पद मागधगम को वक्तव्यता प्रकट करता है. इसलिये मागध प्रकरण में जो कहा गया है वह सब यहा पर कह लेना चाहिये इस प्रकार से हम आपके आज्ञाति 'किकरा है' कहकर फिर उन्होंने ऐसा कहाकि हे देवानुप्रिय ! आप हमारी इस भेंट को त्वोकार करें इस प्रकार कहकर विनमि ने खोरत्तन को और नमिने रत्तादिकों

अहंथुं थुं छे (उवागच्छित्ता अंतलिक्खपडिवन्ना सख्खिखिणीयाइं जाव जणं विजयणं वद्धावेति) त्या पडोत्थीने तेत्थे नीत्थे उतथां न्हो पणु आकाशमां न स्थिर रद्धा. न्ने वस्त्राने तेमत्थे ते वथते धारणु करेवा इतां, ते वस्त्रे क्षुद्रघण्टिकाओथी युक्त इतां अने पाथ वथोत्थी—शुक्ल, नील, पांत-रक्त अने हरित ओ पांथ प्रकारना रगेथी रगेवा इतां ओथी ओ वस्त्रे श्रेष्ठ इता आकाशम स्थिर रद्धीने न्ने ओ विनमि अने नाम्मे भरत महाराजने न्थ-विजय शब्दोथी वधाभष्ठी आवी (वद्धावित्ता एवं वयासी) अने वधाभष्ठी आपी ने पछी आ प्रभाषे क्खु (अभिजिणं देवाणुप्पिया ! जाव अम्हे देवाणुप्पियाण आणत्तिकिकरा इति कदद्दु तं पडिच्छत्तु णं देवाणुप्पिया ! अम्ह इमं जाव विणमी इत्थीरयणं णमी रयणाणि समप्पेइ) हे देवानुप्रिय ! आपत्थीने विजय प्राप्त कर्ये छे अही आवेवा यावत् पदथी मागध गमनी वद्वत्तव्यता प्रकट करवामा आवी छे, ओथी मागध प्रकरणमां न्ने-कडेवामा आव्थुं छे ते पणु अही कडेवु ओधंथे आ प्रभाषे अने आपत्थीना आशमि किंकरे आज्ञा पावके छीथे आ प्रभाषे क्खीने पछी तेमत्थे आ प्रभाषे क्खु के हे देवानुप्रिय ! आपत्थी आभारी, आपत्थीने क्वीकरे. आ प्रभाषे, क्खीने विनमिने खी-रत्तन अने

मागधगमवद् वाच्यम् 'नवरं उत्तरेणं चुल्लहिमवतमेराए' उत्तरतः क्षुद्र हिमवद्विरिमयादम् इति 'अम्हे णं देवाणुप्पियाणं विसयवामिणोत्ति' आवां देवानुप्रियाणाम् भाङ्गसिक्किङ्गराविति कृत्वा तत्प्रतीच्छन्तुअङ्गीकुर्वन्तु खलु देवानुप्रियाः । अस्माकमिदं यावत्पदात् एतद्रूप प्रीतिदानमिति कृत्वा विनमिः उत्तरश्रेण्याधिपतिः स्त्रीरत्न समर्पयति नमिः दक्षिणश्रेण्याधिपतिः विविधप्रकाराणि रत्नानि तस्मै राज्ञे उपहाररूपेण ददातीत्यर्थः 'तए णं से भरहे राया जाव पडिविसज्जेइ' ततः स्त्रीरत्न रत्नसमर्पणानन्तरं खलु स भगतो राजा यावत् पदात् प्रीतिदानग्रःणसत्कारसम्मानादि ग्राह्यम् प्रतिविसर्जयति तौ विनमि नमी स्वस्व गृहगमनाय आदिशति 'पडिविसज्जित्ता' तौ विद्याधराधिपो प्रतिविसृज्य आदिव्य 'पोसह सालाओ पडिणिकखमड, पडिणिकखमित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ' स भरतो राजा पौषधशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य मज्जनगृह स्नानगृहम् अनुप्रविशति 'अणुपविसित्ता' मज्जनगृहम् अनुप्रविश्य स्नानविधिः पूर्णोऽत्रवाच्यः, ततः 'भोयणमंडवे

को भरत राजा के लिये भेंट में दे दिया (नवर उत्तरेणं चुल्लहिमवतमेराए अम्हे देवाणुप्पियाण विसयवामिणोत्ति) भेंट देने के साथ २ उन्होंने" हम दोनों क्षुद्रहिमवत्पर्वत की हृद में आगत उत्तरश्रेणिके अधिपति विनमि और नमि विद्याधराधिपति हैं और अब आपके ही देश के निवासी बन चुके हैं" इस प्रकार से अपना परिचयदिया (तएणं से भरहे राया जाव पडिविसज्जेइ) इस प्रकार उनके द्वारा भेंट में प्रदत्त स्त्रीरत्न एवं रत्नादिक को स्वीकार करके भरत राजा ने उनका सत्कार क्रिया और सम्मान क्रिया बाद में उन्हें अपने अपने स्थान पर जान का आदेश दे दिया (पडिविसज्जित्ता पोसहसालाओ पडिणिकखमड) इस प्रकार उन्हें विसर्जित करके भरत राजा पौषधशाला से बाहर निकले (पडिणिकखमित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ) बाहर निकल कर वे स्नान घर में गये (अणुपविसित्ता भोयणमंडवे जाव णमि विनिमोण विज्जाहरराईणं अट्टाहिय महामहिमा) वहाँ पहुँच कर उन्होंने स्नान क्रिया-यज्ञ पर स्नानविधि का पूर्णरूप से वर्णन कर लेना चाहिये

नमिओ रत्नादिके भरत राजा ने भेंटमा आयां (नवर उत्तरेण चुल्लहिमवतमेराए अम्हे देवाणुप्पिया णं विसयवामिणोत्ति) भेंट आपवानी साथे-साथे तेमओ "अमे अन्ने क्षुद्रा-भवत्पर्वतनी सीमाभा आवेदा उत्तर श्रेष्ठिना अधिपति विनमि अने नमि विद्याधराधिपति ओछीओ अने डवे अमे आपश्रीना देशना अ निवासीओ थछ गया छीओ "आ प्रभाओ पोतानी ओणभाओ आपी (तएण से भरहे राया जाव पडिविसज्जेइ) आ प्रभाओ तेमना वडे भेटमां प्रदत्त स्त्रीरत्न तेमओ रत्नादिके ने स्वीकारी ने भरत महाराजओ तेओ अन्नेतो सत्कार कथी अने तेओ अन्नेनु सम्मान कथु' तयार अन्नेने पोत-पोताना स्थाने अथानी राजा ओ आदेश अ थ्ये (पडिविसज्जित्ता पोसहसालाओ पडिणिकखमई) आ प्रभाओ तेओ अन्नेने विसर्जितकरिने भरत राजा पौषध शाला भाथी अहार नीकओ (पडिणिकखमित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ) अहार नीकणी ने ते राजा स्नान घरमा गथे। (अणुप विसित्ता भोयणमंडवे जाव णमि विनिमोण विज्जाहरराईणं अट्टाहिय महामहिमा)

जाव नामिविनमीणं विज्जाहरराईणं अट्टाहिय महामहिमा' ततो भोजनमण्डपे पारणं वाच्यम् यावच्छद्वादेन श्रेणिप्रश्रेणिशब्दनम् अट्टाहिकाकरणाज्ञापनमिति ततः नमिविनम्यो विद्याधरराज्ञोरष्टाहिकां महामहिमां कुर्वन्तीति आज्ञां च राज्ञे भरताय प्रत्यर्पयन्तीति बोध्यम् 'तए से दिव्वे चक्ररयणे आउहघरसालाओ पडिणिकखमइ जाव उत्तपुरत्थिमं दिस्सि गंगादेवीभवणाभिमुहे पयाए यावि होत्था' ततः नमिविनमिसाधनानन्तर खल्लु तद्विष्यं चक्ररत्नम् आयुधगृहशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छतीत्यादिकं प्राग्वत् यावत्पदादवसेयम् अयं विशेषः उत्तरपौरस्त्यां दिशम् ईशानदिश वैतान्यतो गङ्गादेवी भवनाभिमुखं गच्छतः ईशानकोणगमनस्य ऋजुमार्गत्वात् गङ्गादेवी भवनाभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत् 'सच्चेव सव्वा सिंधुवत्तव्वया जाव नवरं कुंभट्टसहस्स रयणचित्तं णाणामणिक्कणगरयणभत्तिचित्ताणि य दुव्वे कणगसीहासणाइं सेसं त चेव जाव महिमत्ति' सैव

फिर वहा से वे भो जन मंडप में गये, वहा उन्होने पारणा को यहां यावत् शब्द से हम कथनका समग्र हुआ जाना चाहिए— कि फिर उन्होने श्रेणी प्रश्रेणो जने को बुझाय, उन्हें आठ दिन तक लगातार महामहोत्सव करने की आज्ञा दी उन्होने भरत राजा को आज्ञा से नमिविनमिविद्याधर राजाओं के विजयोपलक्ष्य में आठ दिन तक ठाठ वाटसे महोत्सव क्रिया और उस महोत्सव के पूर्णरूप से संपादन हो जानेकी खबर राजा को कर दी" (तए ण से दिव्वे चक्ररयणे आउहघर-सालाओ पडिणिकखमई) इसके बाद वह चक्ररत्न आयुधगृहशाला से बाहरनिकला (जाव उत्तर-पुरत्थिम दिस्सि गंगादेवीभवणाभिमुहे पयाए यावि होत्था) और यावत् वह इशानदिशा में गंगा देवी के भवन को ओर चला क्योंकि वैतान्य से गङ्गादेवी के भवन की ओर जाने वाले को ईशान दिशा में जाने का मार्ग सरल है, (सच्चेव सव्वा सिंधुवत्तव्वया जाव नवरं कुंभट्टसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिक्कणगरयणभत्तिचित्ताणि य दुव्वे कणगसीहासणाइं सेसं तचेव जाव महिमत्ति) वही पूर्वोक्त समस्त सिंधु प्रकरण में कहा गई वक्तव्यता अब यहां पर कह लेनी चाहिये, परन्तु

त्या पडोअथीने तेभण्णे स्नानं कथुं, अड्डी स्नानविधिं तु संपूष्णं इपमा वल्लुं न करुं न्नेधंजे. पछी ते त्थाथी लोअन भउपमां अथा त्या तेभण्णे पारश्या कथां अड्डीं यावत् शउद्धथी अे कथनं सगृहीतं थयेअं छे के पछी तेभण्णे श्रेणी-प्रश्रेणी जनोने जेतोअथा अने आठ दिवस सुधी सततं मडोअहोत्सव करवानी तेभने आज्ञा आपी तेभण्णे भरत महाराजानी आज्ञाथी नमि-विनमि विद्याधर राजाओ उपर विजय भेजण्ये। ते विजयेपलक्ष्यमा आठ दिवस सुधी आठ माठथी मडोअसव कथे अने ते मडोअसव पूष्णं इपे संपादित थये छे अेनी सूअना राजाने आपी (तए ण से दिव्वे चक्ररयणे आउहघरसालाओ पडिणिकखमई) त्थार अह ते अकरत्त आयुधगृह शालाभाथी णहारे नीकथुं. (जाव उत्तरपुरत्थिमं दिस्सि गंगा देवी भवणाभिमुहे पयाए यावि होत्था) अने यावत् ते ईशान दिशाभां गंगा देवीना भवननी तरई रवाना थयुं के मडै वैताइथी गंगादेवीना भवन तरई जनाराने ईशान दिशाभां अयुं अे पधारे सरई पडे छे. (सच्चेव सव्वा सिंधु वत्तव्वया जाव नवरं कुंभट्टसहस्सं रयणचित्तं णाणामणिक्कणगरयण भत्ति चित्ताणि य दुव्वे कणगसीहासणाइं सेसं त चेव

સર્વા સિન્ધુવક્તવ્યતા સિન્ધુદેવી વક્તવ્યતા ગદ્ગામિભાષેન વિદ્વેયા इयं च वक्तव्यता अस्मि-
 ન્નેવ તૃતીયવક્ષસ્કારે एकादशसूत्रे विशेषरूपेण द्रष्टव्या यावत्प्रोत्तिदानमिति गम्यम्.
 तात्पर्यःतं वाच्यं नवरम् अयं विशेषः-कुम्भाष्टसहस्रं कुम्भानाम् अष्टोत्तरसहस्रं अष्टोत्तरं
 सहस्रं कुम्भ रत्नचित्रं रत्नविचित्रम्, नानामणिकनकरत्नभक्तिचित्रे च-नानामणिकनक-
 रत्नमयी भक्तिः-विच्छित्तः तथा चित्रे विचित्रे च द्वे कनकसिंहासने शेषं प्राभृतग्रङ्ग-
 सन्मानदानादिकं तथैव-पूर्ववदेव यावदष्टाहिका मशमहिमेति बोध्यम् ॥सू. २५।

अथाग्रतो दिग्ग्यात्रामाह-‘तएणं से दिव्वे’ इत्यादि ।

मूलम्—तए णं से दिव्वे चक्करयणे गंगाए देवीए अट्टाहियाए
 महामहिमाए निव्वत्ताए समाणीए आउहघरसालाओ पडिणिक्खमइ पडि-
 णिक्खमित्ता जाव गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्लेणं कूलेणं दाहिणदिसि
 खंडप्पवायगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था, त एणं से भरहे राया जाव
 जेणेव खंडप्पवायगुहा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सव्वा कयमालक-
 वत्तव्वया णेयव्वा णवरि णट्टमालगे देवे पीतिदाणं से अलंकारिअ मंडं
 कडगाणि य सेसं सव्वं तहेव जाव अट्टाहिया महामहिमा । तए णं से भरहे

सिंधु के स्थान में गङ्गा पद लगाकर अभिलाष करना चाहिये यह वक्तव्यता इसी ग्रन्थ में तृतीय
 वक्षस्कार के ११ वें सूत्र में विशेषरूप से प्रतिदान पर्यन्त कही गई है—सो वही प्रतिदान पर्यन्त
 की वक्तव्यता यहां पर भी समझलेनी चाहिये. हां उस वक्तव्यता से जो इस वक्तव्यता में अन्तर है
 वह ऐसा है कि गंगा देवी ने भरत नरेश के लिये भेंट में १००८ कुम्भ जो रत्नों से विचित्र हो
 रहे थे. दिये तथा अनेक मणियों से एवं कनक तथा रत्नों से जिनमें रचना हो रही है ऐसे दो
 कनक सिंहासन दिये. बाकी का ओर सब कथन प्राभृत का स्वीकार करना सम्मान करना आदिरूप
 जो है वह सब आठ दिन के महोत्सव पर्यन्त जैसा पहिले कहा गया है वैसा ही है । ॥सू.२५॥

जाव महिमत्ति) पूर्वोक्त सिंधु अउरણ्णमा जे वक्त्तव्यता कळेवाभा आवी छे ते अही कळेवी
 जेधञ्जे. પણ અહીં સિંદુના સ્થાને ગંગાપદ લગાડીને અભિલાષ કરવો જોઇએ એ વક્ત-
 વ્યતા આ જ ગ્રન્થમાં તૃતીય વક્ષસ્કારમાં ૧૧ માં સૂત્રમાં વિશેષ રૂપે માથી પ્રીતિ દાન સુધી
 કહેવામાં આવી છે તે પ્રીતિદાન સુધીની વક્તવ્યતા અહીં પણ બાણી લેવી જોઇએ તે વક્ત-
 વ્યતા અને આ વક્તવ્યતામાં અતર આ પ્રમાણે છે કે ગંગાદેવીએ ભરત નરેશ માટે ભેટમાં
 ૧૦૦૮ કુલો કે જેઓ રત્નોથી વિચિત્ર પ્રતીત થતા હતા, આબ્યા તેમજ અનેક માણિઓ
 થી, કનક તથા રત્નોથી જેમનામાં રચના થઈ રહી છે, એવા એ કનક સિંહાસનો આબ્યા શેષ
 સર્વ કથન પ્રાભૃત (ભેટ) સ્વીકાર કરવી, સન્માન કરવું વગેરે છે તે સર્વ આઠ દિવસ મહો-
 ત્સવ સુધીતુ કથન પહેલા પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે અહીં પણ તે પ્રમાણે જ સમજી લેવું
 જોઇએ. ॥સૂત્ર૨૫॥

राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइं सद्दावेइ सद्दावित्ता जाव सिंधुगमो णेयव्वो जाव गंगाए महाणईए पुरत्थिमिल्लं णिव्वखुडं सगंगासागरगिरिमेरागं समविसमणिव्वखुडाणि य ओअवेइ ओअवित्ता अग्गाणि वराणि स्यणाणि पडिच्छइ पडिच्छित्ता जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता दोच्चंपि सखंधावाखले गंगामहाणई विमलजलतुंगवीइं णावाभूएणं चम्मस्यणेणं उत्तरइ उत्तरित्ता जेणेव भरहस्स रण्णो विजयखंधावारनिवेसे जेणेव बाहिरिया उव्वट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आभिसेक्काओ हत्थिस्यणाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता अग्गाइं वराइं स्यणाइं गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता कस्यलपरिग्गाहियं जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ वद्धावित्ता, अग्गाइ वराइं स्यणाइ उवणेइ । तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाइं वराइं स्यणाइं पडिच्छई पडिच्छित्ता सुसेणं सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ । तए णं से सुसेणे सेणावई भरहस्स रण्णो सेसंपि तहेव जाव विहरइ, तए णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेणावइस्यणं सद्दावेई सद्दावित्ता एवं वयासी गच्छणं भो देवाणुप्पिया । खंडगप्पवायगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाडे विहाडेइ विहाडित्ता जहा तिमिसगुहाए तहा भाणियव्वं जाव पियं मे भवउ, सेसं तहेव जाव भरहो उत्तरिल्लेणं दुवारेणं अईइ, ससिब्व मेहंधयारनिवहं तहेव पविसंतो मंडलाइं आलिहइ, तीसेणं खंडगप्पवायगुहाए बहुमज्झदेसभाए जाव उम्मग्गणिमग्गजलोओ णामं दुवे महाणईओ तहेव नवरं पच्चत्थिमिल्लाओ कडगाओ पबूढाओ समाणोओ पुरत्थिमेणं गंगं महाणईं समप्पेत्ति सेसं तहेव णवरि पच्चत्थिमिल्लेण कूलेणं गंगाए संकमवत्तव्वया तहेव त्ति, तएणं खंडगप्पवायगुहाए दाहिल्लस्स दुवारस्स कवाडा सयमेव महया महया कांचाखं करेमाणा करेमाणा सरसर स्सगाइं ठाणाइं पच्चोसक्कि-

त्था, तएणं से भग्हे राया चक्ररयणदेसियमग्गे जाव खंडपत्राय गुहाओ
दक्खिणिल्लेणं दारेणं णीणेइ ससिब्ब मेहंधयारनिवहाओ ॥सू०२६॥

छाया—ततः खलु तद्विष्यं चक्ररत्नं गङ्गाया देव्या अष्टाहिकायां महामहिमाया निवृत्ता-
यां सत्याम् आयुश्चगृहशालात प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्काम्य यावद् गङ्गायाः महानद्याःपश्चिमे
कूले दक्षिणदिशि खण्डप्रपातगुहाभिमुखं प्रजातं चाप्यभवत्, तत खलु स भरतो राजा
यावत् यत्रैव खण्डप्रपातगुहा तत्रैव उपागच्छति उपागत्य सर्वा कृतमालवकव्यता नेतव्या
नवरं नाव्यमालको नृत्तमालको वा देव. प्रीतिदानं तस्य अलाङ्कारिकभाण्डं कटकानि च
शेषं सर्वं तथैव यावत् अष्टाहिका महामहिमा । ततः खलु स भरतो राजा नाव्यमालकस्य
नृत्तमालकस्य वा देवस्य अष्टाहिकाया महामहिमाया निवृत्तायां सत्या सुपेणं सेनापतिं
शब्दयति शब्दयित्वा यावत् सिन्धुगमो नेतव्यः, यावद् गङ्गाया महानद्या पौरस्त्यं निष्कुटं
सगङ्गासागरगिरिमश्राद् समविषमनिष्कुटानि च प्रोक्षेति साधयति साधयित्वा अश्याणि
वराणि रत्नानि प्रतीच्छति प्रतीप्य, यत्रैव गङ्गामहानदी तत्रैव उपागच्छति उपागत्य द्वितीय
मपि सस्कन्धावारबलं गङ्गामहानदी विनलजलतुङ्गवीचि नौभूतेन चर्मरत्नेन उत्तरति,
उत्तीर्य यत्रैव भरतस्य राज्ञो विजयस्कन्धाधारनिवेशे यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला तत्रैव
उपागच्छति उपागत्य अश्याणि वराणि रत्नानि गृहीत्वा यत्रैव भरतो राजा तत्रैव उपाग-
च्छति उपागत्य करतलपरिगृहीतं यावदब्जलिं कृत्वा भरत राजान जयेन विजयेन वर्द्धयति
वर्द्धयित्वा अश्याणि वराणि रत्नानि उपनयति, ततः खलु स भरतो राजा सुपेणस्य सेना-
पतेः अश्याणी वराणि रत्नानि प्रतीच्छति प्रतीप्य सुपेणं सेनापतिं सत्कारयति सन्मानयति
सत्कार्यं सन्मान्य प्रतिविसर्जयति, ततः खलु स सुपेणः सेनापतिः भरतस्य राज्ञः शेषमपि तथैव
यावत् विहरति, तत खलु स भरतो राजा अन्यदा इदाचित् सुपेणं सेनापतिरत्नं शब्दयति
शब्दयित्वा पवम् अवादीत् गच्छ खलु भो देवानुप्रियः खण्डप्रपातगुहायाः औत्तराहस्य
द्वारस्य कपाटौ विघाट्य विघाट्य यथा तमिखगुहाया तथा भणितव्यं यावत् प्रियं
भवतां भवतु शेषं तथैव यावत् भरत औत्तराहणे द्वारेण गच्छति, शशीव मेघान्धकार-
निवहम् तथैव प्रविशन् मण्डलानि आलिखति तस्या खलु खण्डप्रपातगुहाया बहुमध्यदेशभागे
यावत् उन्मग्ननिमग्नजले नाम्नी द्वे महानद्यौ तथैव नवरं पाश्चात्यात् कटकात् प्रव्यूहे,
पौरस्त्येन गङ्गां महानदीं समाप्नुन, शेषं तथैव नवरं पाश्चात्येन कूलेन गङ्गाया संकम-
वकव्यता तथैव इति तत खलु खण्डप्रपातगुहायाः दक्षिणात्यस्य द्वारस्य कपाटौ स्वयमेव
महता महता क्रौडारवं कुर्वाणौ 'सरसरस्स' अनुकरणशब्दं कुर्वाणौ स्वके स्थाने प्रत्यवाष्-
ष्किषाताम्, तत खलु स भरतो राजा चक्ररत्नदेशि समागं यावत् खण्डप्रपातगुहातो दक्षि
णात्येन द्वारेण निरेति शशीव मेघान्धकारनिवहात् ॥सू०२६॥

टीका "तएणं से दिब्बे" इत्यादि !

'तएण से दिब्बे चक्ररयणे गंगाए देवीए अष्टाहियाए महामहिमाए णिच्चत्ताए
समाणीए आउहरसालाओ पडिणिव्वमइ' ततः खलु गङ्गादेवी साधनानन्तरं खलु तद्विष्यं

चक्ररत्न गङ्गायाः तन्नाम्न्याः देव्याः अष्टादिक्रायां महामहिमायाम् उत्सवरूपायां महान् महिमा अस्ति यस्यां सा तथा तस्यां निवृत्तायां सत्याम् आयुधगृहशालातः-शस्त्रागारभवनतः प्रतिनिष्क्रामति चक्ररत्नं निर्गच्छति 'पडिणिक्खमिच्चा' प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य 'जाव गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्लेण कूलेण दाहिणदिसि खंडप्पवायगुहाभि-द्धे पयाए यावि होत्था' यावत् गङ्गायाः महानद्याः पश्चिमे कूले दक्षिण-दिशि खण्डप्रपातगुहाभिमुखं प्रयात प्रस्थातुं चाप्यभवत् आसीत् अत्र यावत् अन्तरिक्ष-प्रतिपन्नं यक्षसहस्रसंपरिवृत दिव्यत्रुटितवाद्यविशेषशब्दसन्निनादेन आपूरयदिव अम्बगतलं चक्ररत्नमिति ब्राह्मम् 'तएणं से भरहे राया जाव जेणेव खंडप्पवायगुहा तेणेव उवागच्छइ' ततः खलु स भरती नाम महाराजा यावत् अत्र यावत्पदात् चक्ररत्न पश्यति दृष्ट्वा दृष्टतुष्टचित्तानन्दितः, नन्दित प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद् हृदय इति, द्वादशसूत्रे अस्मिन्नेव तृतीयवक्षस्कारे इयं वक्तव्यता द्रष्टव्या सर्वं तावद् वाच्यम्

'तएणं से दिव्वे चक्ररयणे गंगाए देवीए अट्टाहियाए' इत्यादि २६॥

टीकार्थ- 'तएणं से दिव्वे चक्ररयणे गंगाए देवीए अट्टाहियाए महामहिमाए निवत्ताए समाणोए) जब गंगा देवी के विजयोपलक्ष्य में क्रिया गया आठ दिन का महोत्सव समाप्त हो चुका तब वह दिव्य चक्ररत्न 'आउहघरमाल'ओ' आयुधगृह शाला से (पडिणिक्खमइ) निकला और (पडि-णिक्खमिच्चा जाव गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्लेण कूलेण दाहिणदिसि खंडप्पवायगुहाभिमुहे पयाए यावि होत्था) मिलकर वह यावत् गंगा महानदीके पश्चिम कूले से होता हुआ दक्षिण दिशा में खंडप्रपात गुहा की तरफ चलने लगा यहाँ यावत् शब्दसे अन्तरिक्ष प्रतिपन्न यक्ष सहस्र परि-वृत आदिपाठ गृहीत हुआ है. (तएणं से भरहे राया जाव जेणेव खंडप्पवायगुहा तेणेव उवागच्छइ) जबभरत महाराजा ने चक्ररत्न को खंडप्रपात गुहा की ओर जाते देखा तो यावत् वह भी जहाँ खण्डप्रपात नाम की गुफा थी. उसी ओर पहुँचा. यहाँ यावत्पाठ से "पश्यति दृष्ट्वा दृष्ट तुष्ट चित्तानन्दित प्रीतिमना परमसौमनस्यित हर्षवशविसर्पद् हृदय" यह पाठ तृतीय वक्षस्कार में

'तएणं से दिव्वे चक्ररयणे गंगाए देवीए अट्टाहियाए ?' इत्यादि-सूत्र, २६॥

टीकार्थ-(तएणं से दिव्वे चक्ररयणे गंगाए देवीए अट्टाहियाए महामहिमाए निवत्ताए समाणोए) अथारे गंगादेवीना विजयोपलक्ष्यमा आयेत्तित आठ दिवस ने भडोत्सव समाप्त थई थूँथे. त्थारे ते दिव्य चक्ररत्न 'आउहघरमालाओ' आयुधधरशाला भांथी (पडिणि-क्खमइ) षडार नीकउथु अने (पडिणिक्खमिच्चा जाव गंगा महाणईए पच्चत्थिमिल्लेण कूलेण दाहिणदिसि खंडप्पवायगुहाभिमुखे पयाए यावि होत्था) नीकणीने ते यावत् गंगा महानदीना पश्चिम कूले पर थई ने दक्षिण दिशाभा अउ प्रपात गुहा तरई आलवा वाउथु. अड्डी यावत् शकथी अन्तरिक्ष प्रतिपन्न यक्ष सहस्र परिवृत वगेरे पाठ गृहीत थयेल छे (तएणं से भरहे राया जाव जेणेव खंडप्पवायगुहा तेणेव उवागच्छइ) अथारे भरत राजाअने चक्ररत्नने अउ प्रपात गुहा तरई अतु अथु तो ते पथु अथा अउ प्रपात नामक शुका छती ते तरई पडोःगे. अड्डी यावत् पाठथी "पश्यति दृष्ट्वा दृष्टतुष्टचित्तानन्दित प्रीतिमनाः परमसौमनस्यित हर्षवशविसर्पद् हृदयः" अे पाठ तृतीय वक्षस्कारमा अेम कडेवाभां

यावत् खण्डप्रपातगुहाया मागच्छतीति पिण्डार्थः, ततः यत्रैव खण्डप्रपातगुहा तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'सव्वा कयमालकवत्तन्वया जेयन्वा' सर्वा कृतमालकवत्तन्वया तमिस्रागुहाधिपसुरवत्तन्वया नेतव्या ज्ञातव्या 'णवरं णट्टमालगे देवे पीइदाण सेआलंकारियमंडं कडगाणि य सेसं सव्वं तहेव जाव अट्टाहिया महामहिमा' नवाम् अयं विशेषः नाट्यमालको देवः प्रीतिदानं 'से' तस्य अलंकारिकभाण्डम् आमरणभ्रतभाजनम्, कटकानि च शेषम् उक्तविशेषातिरिक्त सर्वम् तथैव पूर्ववदेव सत्कारसन्मानादिकं कृतमालदेयतावद् वक्तव्यम् याददष्टाहिका महामहिमेति 'तएणं से भरहे राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्टाहियाए महिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावई सदावेइ' ततः खलु स भरतो राजा नाट्यमालकस्य देवस्य अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां परिपूर्णायां सत्या सुपेगं सेनापतिं शब्दयति आह्वयति 'सहावित्ता' शब्द-

जैसा कहा गया है वैसा ही यहा पर समझीत हुआ है (उवागच्छिता सव्वा कयमालगवत्तन्वया जेयन्वा णवरि णट्टमालगे देवे पीइदाणं से आलंकारियमंडं कडगाणि य सेसं सव्वं तहेव अट्टाहिया महा महिमा)वहा पहुंचकर उसने जो कार्य वडा पर किया वइ कृतमालक देव की वक्तव्यता में जैसा कहा गया है वैसा ही यहापर जानना चाहिये. कृतमालक देव तमिस्रा गुहा का अधिपति देव है. उस वक्तव्यता में और इस वक्तव्यता में यदि कोई अन्तर है तो वह ऐसा है कि नाट्यमालक देवने भरतके लिये प्रीतिदान में आमरणों से भरा हुआ भाजन और कटकदिये इससे अतिरिक्त और सब अवशिष्ट कथन सत्कारसन्मान आदि करने का कृतमालक देव की तरह से ही आठदिन तक महा-महोत्सव करने तक का है (तएण से भरहे राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्टाहियाए महिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेण सेणावई सदावेइ) जब नाट्य मालक देव के विजयोपलक्ष्य में कृत आठ दिन का महोत्सव समाप्त हो चुका - तब भरत महाराजा ने अपने सुपेण सेनापति को बुलाया (सहावित्ता जाव सिधुगमो जेयन्वो) बुलाकर उसने जो उससे कहा वह सब सिंधुनदी के प्रकरण

आवेक्षे छे, ते प्रभावे अत्रे पणु स गृहीत थये छे (उवागच्छिता सव्वा कयमालगवत्तन्वया जेयन्वा णवरि णट्टमालगे देवे पीइदाण से आलंकारियमंडं कडगाणिय सेसं सव्वं तहेव अट्टाहिया महामहिमा) त्या पडोथी ने तेणे जे कार्ये त्या कथां ते विषे कृतमालक देवनी वक्तव्यता-नां जेम वणुववामा आवेक्षे छे तेम अही पणु लक्ष्मी देवु जेधजे कृतमालक देव तमिस्रा गुहानो अधिपात देव छे ते वक्तव्यतामां अने आ वक्तव्यतामां तक्षयत आटलो ज छे के नाट्यमालक देवे भरत महाराज भाटे प्रीतिदानमां आबरणे थी पूरित भाजन अने कटके आयां ओना सिवायतु शेष पणु कथन सत्कार, सन्मान वगेरे करवा अ गेनु कृतमालक देवनी जेम ज आठ दिवस सुधी महामहोत्सव करवा सुधीनु छे (तएण से भरहे राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्टाहियाए महिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेण सेणावई सदावेइ) जे नारे न द्य मालक देवना विजये, पक्षस्थमा आयोजित आठ दिवस सुधीना महोत्सव स पूणु थधं थूथे त्यारे भरत महाराजो पोताना सुपेण नामक सेनापति ने बोला थो. (सहावित्ता जाव सिधुगमो जेयन्वो) बोलावी ने तेणे जे कथं ते सेनापति ने कथं ते

यित्वा आह्वय 'जात्र सिंधुगमो जेयव्यो' यावत् परिपूर्णः सिन्धुगमः नेतव्यः ज्ञातव्यः
 'एवं वयासी गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिया । सिंधुए' इत्यादिकः सिन्धुनदी निष्कुट-
 साधनपाठो गङ्गाभिलापेन नेतव्यः ग्रहीतव्यः अस्मिन्नेव वक्षस्कारे त्रयोदशसूत्रे सिन्धु
 नदी निष्कुटसाधनपाठो द्रष्टव्यः 'जात्र गंगाए महाणईए पुरत्थिमिल्लं णिक्खुड
 संगंगासागरगिरिमेरागं समविसमणिकखुडाणि य ओअवेड' यावत् गङ्गाया महानद्याः
 पौरस्त्यं पूर्वदिग्वर्ति निष्कुटं कोणस्थितभरतक्षेत्रखण्डरूपम् इदं च कैर्विभाजकैः
 विभक्तमित्याह संगंगामागरगिरिमर्यादम्, तत्र पश्चिमतः गङ्गाः पूर्वतः सागरः दक्षिणतः
 गिरिः वैताड्यगिरिः उत्तरतश्च क्षुद्रहिमवत् पर्वतः एतैः कृता या मर्यादा विभागरूपाः
 तथा सह वर्तते यत्तत्तथा, एतैः कृतविभागमित्यर्थः 'समविसमणिकखुडाणि य' समविषम-
 निष्कुटानि च, तत्र समानि च समभूमिभागवर्तीनि विषामाणि च दुर्गभूमिभागवर्तीनि
 यानि निष्कुटानि अवान्तरक्षेत्रखण्डरूपाणि तानि तथा 'ओअवेहि'साधय तत्र प्रयाणं कृत्वा
 विजयं कुरु 'ओअवेत्ता' साधित्वा विजित्य 'अग्गाणि वराणि रयणाणि पडिच्छेहि'
 अग्रयाणि अग्रेगण्याणि वराणि श्रेष्ठानि रत्नानि स्वस्वजातौ उत्कृष्टवस्तूनि प्रतीच्छ गृहाण
 'तए ण से सेणावई जेणेव गंगामहाणई तेणेव उवागच्छई' ततः खलु स सेनापतिः सुषेण
 नामकः यत्रैव गङ्गा महानदी तत्रैव उपागच्छति उत्रागच्छिता'उपागत्य'दोच्चंपि सक्खधा-

में जैसा कहा गया है वैसा ही जानना चाहिये. परन्तु यहा वह प्रकरण सिंधु नदी के स्थान
 में गङ्गा शब्द को जोड़कर कहा जावेगा-जैसे "गच्छाहि ण भी देवाणुप्पिया !" हे देवानुप्रिय ।
 सुषेण ! तुम जाओ और गंगामहानदीके 'पुरत्थिमिल्ल णिक्खुड संगंगासागरगिरिमेरागं सम-
 विसमणिकखुडाणि य ओअवेहि " । पूर्वदिग्वर्ती निष्कुट-भरत क्षेत्र को-जो कि पश्चिम में
 गङ्गासे पूर्व में समुद्र से दक्षिण में वैताड्यगिरि से और उत्तर में क्षुद्र हिमवत्पर्वत से विभक्त
 हुआ है उसे साधो और उसके सम विषमरूप जो अवान्तर क्षेत्र खंड है. उन्हें साधो अपने
 वश में करो और उन्हें वश में करके वहां से प्राप्त अपनी अपनी जाति में उत्कृष्ट वस्तुओं को
 प्रीतिदान में प्राप्त करो (तए ण से सेणावई जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छई) इस तरह से
 भरत राजा द्वारा कहा गया वह सुषेण सेनापति जहां गंगा महानदी थी वहां पर गया (उवा-

अधु सिंधु नदीना प्रकरणभां जेम कडेवाभा आन्धु छे तेवुं जे अत्रे पधु समज्जु पधु
 अडी सिन्धु नदीना स्थाने गंगा शब्द जोडवे पडथे जेम के-"गच्छाहि ण भी देवाणुप्पिया !" !"
 हे देवानुप्रिय । सुषेण तमे लब्धो अने गंगा महानदीना (पुरत्थिमिल्ल णिक्खुड संगंगा-
 सागरगिरिमेरागं समविसमणिकखुडाणिय ओअवेहि) पूर्व दिग्वर्ती निष्कुट-भरत क्षेत्रने के
 जे पश्चिमभा गंगामहानदीथी पूर्वभा समुद्रथी, दक्षिणभां वैत द्रुप गिरिथी अने उत्तरभा क्षुद्र
 हिमवत् पर्वतथी विभक्त थयेद छे तेने साधो अने तेना सम-विषम रूप जे अवान्तर क्षेत्र-
 अड छे, तेमने साधो, पौताना वशभां करे अने तेमने वशभा करीने त्यापी प्राप्त पौत-
 पौतानी लतिभा उत्कृष्ट डोय तेवी वस्तुज्जेने प्रीतिदानभा प्राप्त करे । (तएणं से सेणावई
 जेणेव गंगा महाणईते णेव उवागच्छई) आ प्रभाषे भरत राजा वडे आशस थयेदो ते सुषेण

यावत् खण्डप्रपातगुहाया मागच्छतीति पिण्डार्थः, ततः यत्रैव खण्डप्रपातगुहा तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छत्ता' उपागत्य 'सव्वा कयमालकवत्तव्वया जेयव्वा' सर्वा कृतमालकवत्तव्वया तमिस्सागुहाधिपसुरवत्तव्वया नेतव्वया ज्ञातव्वया 'णवरं णट्टमालगे देवे पीइदाण सेअलकारियभंडं कडगाणि य सेसं सव्वं तहेव जाव अट्टाहियमहामहिमा' नवाम् अयं विशेषः नाट्यमालको देवः प्रीतिदानं 'से' तस्य अलंकारिकभाण्डम् आभरणभ्रतभाजनम्, कटकानि च शेषम् उक्तविशेषातिरिक्तं मर्षम् तथैव पूर्ववदेव सत्कारसन्मानादिकं कृतमालदेवतावद् वक्तव्यम् यादृष्टाहिका महामहिमेति 'तएणं से भरहे राया णट्टमालगस्स देवस्स अट्टाहियाए महिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावईं सदावेइ' ततः खलु स भरतो राजा नाट्यमालकस्य देवस्य अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायां परिपूर्णायां सत्या सुषेणं सेनापतिं शब्दयति आह्वयति 'सदावित्ता' शब्द-

जैसा कहा गया है वैसा ही यहा पर सगृहीत हुआ है (उवागच्छत्ता सव्वा कयमालकवत्तव्वया जेयव्वा णवरि णट्टमालगे देवे पीइदाणं से अलंकारियभंडं कडगाणि य सेसं सव्वं तहेव अट्टाहिया महा महिमा)वहा पहुंचकर उसने जो कार्य वडा पर किया वइ कृतमालक देव की वक्तव्यता में जैसा कहा गया है वैसा ही यहापर जानना चाहिये. कृतमालक देव तमिस्सा गुहा का अधिपति देव है. उस वक्तव्यता मे औरइस वक्तव्यता में यदिकोई अन्तर है तो वह ऐसा है कि नाट्यमालक देवने भरतके लिये प्रीतिदान में आभरणों से भरा हुआ भाजन और कटकदिये इससे अतिरिक्त और सब अवशिष्ट कथन सत्कारसन्मान आदि करने का कृतमालक देव की तरह से ही आठदिन तक महा-महोत्सव करने तक का है. (तएणं से भरहेराया णट्टमालगस्स देवस्स अट्टाहियाए महिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावईं सदावेइ) जब नाट्य मालक देव के विजयोपलक्ष्य में कृत आठ दिन का महोत्सव समाप्त हो चुका -तब भरत महाराजा ने अपने सुषेण सेनापति को बुलाया (सदावित्ता जाव सिधुगमो जेयव्वो) बुझकर उसने जो उससे कहा वह सब सिधुनदी के प्रकरण

आवेस छे, ते प्रभावे अत्रे पथु स गृहीत थये छे (उवागच्छत्ता सव्वा कयमालकवत्तव्वया जेयव्वा णवरि णट्टमालगे देवे पीइदाणं से अलंकारियभंडं कडगाणिय सेसं सव्वं तहेव अट्टाहिया महामहिमा) त्या पडोथी ने तेणे ने कार्यो त्या कथां ते विषे कृतमालक देवनी वक्तव्यता-यां जेम वषुववामा आवेस छे तेम अही पथु लक्षी देवुं जेम अ कृतमालक देव तमिस्सा गुहानो अधिपात देव छे ते वक्तव्यतायां अने आ वक्तव्यतायां तक्षवत आट्टो ज छे के नाट्यमालक देवे भरत महाराज भाटे प्रीतिदानमां आबरणे। थी

रत आभन अने कटके आयां अना सिवायतु शेष अधु कथन सत्कार, सन्मान वगेइ कृतमालक देवनी जेम ज आठ दिवस सुधी महामहोत्सव करवा सुधीनु छे णट्टमालगस्स देवस्स अट्टाहियाए महिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं नरे न द्य मालक देवना विजये.पलक्ष्यमा आये.जित आठ दिवस सुधीने धि यूथो त्यारे भरत मालके पोताना सुषेण नामक सेनापति ने आवा सिधुगमो जेव्वो) आवावी ने तेणे ने कथं ते सेनापति ने ते

यित्वा ब्राह्मण 'जात्र सिंधुगमो जेयव्यो' यावत् परिपूर्णः सिन्धुगमः नेतव्यः ज्ञातव्यः
 'एवं वयासी गच्छाहिणं भो देवाणुप्पिया ! सिंधुए' इत्यादिकः सिन्धुनदी निष्कुट-
 साधनपाठो गङ्गाभिलाषेण नेतव्यः ग्रहीतव्यः अस्मिन्नेव वक्षस्कारे त्रयोदशखुत्रे सिन्धु
 नदी निष्कुटसाधनपाठो द्रष्टव्यः 'जात्र गंगाए महाणईए पुरत्थिमिल्ल णिक्खुड
 संगंगासागरगिरिमेरागं समविसमणिकखुडाणि य ओअवेड' यावत् गङ्गाया महानद्याः
 पौरस्त्यं पूर्वदिग्वात्तिं निष्कुटं कोणस्थितभरतक्षेत्रखण्डरूपम् उदं च कैर्विभाजकैः
 विभक्तमित्याह संगंगामागरगिरिमर्यादम्, तत्र पश्चिमतः गङ्गाः पूर्वतः मागरः दक्षिणतः
 गिरिः वैताव्यगिरिः उत्तरतश्च क्षुद्रहिमवद् गिरिः एतैः कृता या मर्यादा विभागरूपाः
 तथा सह वर्तते यत्तत्तथा, एतैः कृतविभागमित्यर्थः 'समविसमणिकखुडाणि य' समविषम-
 निष्कुटानि च, तत्र समानि च समभूमिभागवर्तीनि विषामाणि च दुर्गभूमिभागवर्तीनि
 यानि निष्कुटानि अवान्तरक्षेत्रखण्डरूपाणि तानि तथा 'ओअवेहि'माधय तत्र प्रयाणं कृत्वा
 विजयं कुरु 'ओअवेत्ता' साधित्वा विजित्य 'अग्गाणि वराणि रयणाणि पडिच्छेहि'
 अत्रयाणि अग्नेगण्याणि वराणि श्रेष्ठानि रत्नानि स्वस्वजातौ उत्कृष्टवस्तूनि प्रतीच्छ गृहाण
 'तए ण से सेणावई जेणेव गंगामहाणई तेणेव उवागच्छई' ततः खलु स सेनापतिः सुषेण
 नामकः यत्रैव गङ्गा महानदी तत्रैव उपागच्छति उवागच्छित्ता'उपागत्य'दोच्चंपि सकखधा-

में जैसा कहा गया है वैसा ही जानना चाहिये. परन्तु यहा वह प्रकरण सिन्धु नदी के स्थान
 में गङ्गा शब्द को जोड़कर कहा जावेगा-जैसे "गच्छाहि ण भो देवाणुप्पिया !" हे देवानुप्रिय !
 सुषेण ! तुम जाओ और गंगामहानदीके 'पुरत्थिमिल्ल णिक्खुड संगंगासागरगिरिमेरागं सम-
 विसमणिकखुडाणि य ओअवेहि " । पूर्वदिग्वात्तिं निष्कुट-भरत क्षेत्र को-जो कि पश्चिम में
 गङ्गासे पूर्व में समुद्र से दक्षिण में वैताव्यगिरि से और उत्तर में क्षुद्र हिमवत्पर्वत से विभक्त
 हुआ है उसे साधो और उसके सम विषमरूप जो अवान्तर क्षेत्र खण्ड है. उन्हें साधो अपने
 वश में करो और उन्हें वश में करके वहां से प्राप्त अपनी अपनी जाति में उत्कृष्ट वस्तुओं को
 प्रीतिदान में प्राप्त करो (तए ण से सेणावई जेणेव गंगा महाणई तेणेव उवागच्छई) इस तरह से
 भरत राजा द्वारा कहा गया वह सुषेण सेनापति जहां गंगा महानदी थी वहां पर गया (उवा-

अधु सिंधु नदीना प्रकरणभां जेम कडेवाभां आन्धु छे तेवुं ज अत्रे पधु समज्जु पधु
 अही सिन्धु नदीना स्थाने ग गा शब्द जोडवे पडथे जेम डे-"गच्छाहि ण भो देवाणुप्पिया !"
 हे देवानुप्रिय ! सुषेण तमे जाओ अने ग गा महानदीना (पुरत्थिमिल्ल णिक्खुडं संगंगा
 सागरगिरिमेरागं समविसमणिकखुडाणिय ओअवेहि) पूर्वमा समुद्रथी, दक्षिणमा वैत द्र्ग गिरिथी अने उत्तरमा क्षुद्र
 हिमवत् पर्वतथी विभक्त थयेक छे तेने साधो अने तेना सम-विषम रूप जे अवान्तर क्षेत्र-
 खण्ड छे, तेभने साधो, पेताना वशमा करे अने तेभने वशमा करीने त्याथी प्राप्त पेत-
 पेतानी जतिमा उत्कृष्ट वस्तु तेवी वस्तुज्जेने प्रीतिदानमा प्राप्त करे । (तएणं से सेणावई
 जेणेव गंगा महाणईते जेव उवागच्छई) आ प्रभावे भरत राजा वडे आशस थयेदो ते सुषेण

वारबले गगामहाणई विमलजलतुंगवीडं णावाभूएणं चम्मरयणेणं उत्तरइ' सस्कन्धावारबलः स्कन्धावारसैन्यसहितः सेनापतिः सुषेणः सेनापतिः द्वितीयमपि गङ्गायाः महानद्याः विमलजलतुङ्गवीचिम् निर्मळोदकोत्थितकल्लोलम् अतिक्रम्य नौभूतेन चर्मरत्नेन उत्तरति पारं गच्छति 'उत्तरित्ता' उत्तीर्य पारं गत्वा 'जेणेव भरहस्म रण्णो विजयखंधावारणिवेसे जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव भरतस्य राज्ञो विजयस्कन्धावारनिवेशः यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ' आभिषेकपात् अभिषेकयोग्यात् प्रधाना हस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति अधस्तात् अवतरति 'पच्चोरुहित्ता' प्रत्यवरुत्वा 'अग्गाइ वराइ' रयणाइ गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ' अट्टयाणि वराणि श्रेष्ठानि रत्नानि गृहीत्वा यत्रैव भरतो राजा तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'करयलपरिगगहिय जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएण विजएणं वद्धावेइ' करतलारिगृहीतं यावत्पदात् दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन जय-

गच्छित्ता दोच्चपि सखंधावारबले गंगा महाणई विमलजलतुंगवीडं णावा भूएणं चम्मरयणेणं उत्तरइ) वहा जाकर उसने अपने स्कन्धावाररूप बलसहित होकर जिसमें विमल जल की बड़ी २ लहरे उठ रही है ऐसी उस गंगामहानदी को नौका भून हुए चर्मरत्न के द्वारा पारकिया (उत्तरित्ता जेणेव भरहस्म रण्णो विजयखंधावारणिवेसे जेणेव वाहिरिया उवट्टाणमाला तेणेव उवागच्छइ) पार करके फिर वह जहां पर भरत महागजा का विजयस्कन्धावार का पडाव था. और जहां पर बाह्य उपस्थानशाला थी वहा पर आया (उवागच्छित्ता अभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ) वहां आकर वह अभिषेक्य-आभिषेक योग्य-प्रधान-हस्तिरत्न से नीचे, उतरा (पच्चोरुहित्ता अग्गाइ वराइ' रयणाणि गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) नीचे उतर कर वह श्रेष्ठ रत्नो को लेकर जहा भरत राजा थे वहां पर आया, (उवागच्छित्ता करयलपरिगगहिय जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएण विजएणं वद्धावेइ) वहा आकर के उसने दोनो हाथों को जोड़कर और

सेनापति न्या गंगा महानदी डनी त्या गये। (उवागच्छित्ता दोच्चपि सखंधावारबले गंगा महाणई विमलजलतुंगवीडं णावाभूएणं चम्मरयणेण उत्तरइ) त्या अर्धने तेणे पोताना स्कंधावार इय बलसहित सुसज्ज थर्धने-लेभा विमल जलनी विधाण तर गे। लहरेउठ रही छे अर्धने ते गंगा महानदीने नौकाभूत थयेला ते यर्मरत्न वडे पार करी (उत्तरित्ता जेणेव भरहस्म रण्णो विजयखंधावारणिवेसे जेणेव वाहिरिया उवट्टाणसाला तेणेव उवागच्छइ) पार करीने पत्री ते न्या भरत राजाने। विजय स्कंधावार-पडाव-इते। अने न्या बाह्य उपस्थान शाला डनी त्या आये। (उवागच्छित्ता अभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ) त्या आनीने ते आभिषेक्य-अभिषेक योग्य-प्रधान हस्तिरत्न उपरथी नीचे उतर्या (पच्चोरुहित्ता अग्गाइ वराइ रयणाणि गहाय जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छइ) नीचे उतरतीने ते श्रेष्ठ रत्नोने लर्ध ने न्या भरत महाराज इता त्या आये। (उवागच्छित्ता करयलपरिगगहियं जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायं जएण विजएणं वद्धावेइ) त्या आनीने तेणे

विजयशब्दाभ्यां वर्द्धयति 'वद्धावित्ता' वर्द्धयित्वा स सेनापतिः 'अग्गाड वराडं रयणाडं उवणेड' अश्याणि वराणि रत्नानि उपनयति अर्पयति राज्ञः समीपम् आनयति इत्यर्थः 'तए णं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाड वराडं रयणाडं पडिच्छड' ततः आनयनानन्तरं खलु स भरतो राजा सुषेणस्य सेनापतेः अश्याणि वराणि रत्नानि प्रतीच्छति गृह्णाति 'पडिच्छित्ता' प्रतीष्य गृहीत्वा 'सुसेणं सेणावडं सक्कारेड सम्माणेड सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ' स भरतो राजा सुषेणं सेनापतिं सत्कारयति वस्त्रालङ्कारादि पुरस्कारैः सन्मानयति मधुरवचनादिभिः, सत्कार्यं सन्मान्य च प्रतिविसज्जयति निजनिवासस्थानम् प्रतिगन्तुमाज्ञापयतीत्यर्थः 'तएणं से मुसेणे सेणावडं भरहस्स रण्णो सेसपि तहे व जाव विहरड' ततः खलु भरतस्य राज्ञः सेनापतिः स सुषेणः शेषमपि अवशिष्टमपि तथैव पूर्वोक्तं सिन्धुनिष्कुटसाधनवदेव यावत् स्नातः, कृतवल्किर्मा, कृतकौतुकमगलप्रायश्चित्त इत्यारभ्य यावत्प्रासादवरं प्राप्तः सन् इष्टान् इच्छाविषयीकृतान् गन्धस्पर्शरसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान् मनुष्यसम्बन्धिनः कामभोगान् तत्र शब्दरूपे कामौ स्पर्शरसगन्धाः भोगाः

उन्हें अंजलि के रूपमें कर भरतमहाराजा को जय विजय शब्दों से वधाई दी (वद्धावित्ता अग्गाड वराडं रयणाड उवणेड) वधाई देकर फिर उसने श्रेष्ठ रत्नों को उसके लिये अर्पित किया—राजा के पास उन्हें रक्त्वा (तएणं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाड वराड रयणाड पडिच्छड) भरतनरेश ने उस सुषेण सेनापति के उन प्रदत्त श्रेष्ठ रत्नों को स्वीकार कर लिया. (पडिच्छित्ता सुसेण सेणावडं सक्कारेड सम्माणेड) स्वीकार करके फिर उसने सुषेण सेनापति का सत्कार और सन्मान किया—(सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) सत्कार सन्मान कर फिर भरत नरेश ने उसे विमर्जित कर दिया. (तएणं से मुसेणे सेणावडं भरहस्स रण्णो सेसपि तहेव जाव विहरड) इसके बाद भरत नरेश के पास से आकर वह उस सुषेणसेनापति ने स्नान किया बलि कर्म किया कौतुकमगल प्रायश्चित्त किये यावत् वह अपने श्रेष्ठ प्रासाद में पहुंचकर. इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रस रूप और गंध विषयक पांच प्रकार के कामभोगों को भोगने लगा. शब्द रूप

अन्ने हाथो ने जेडी ने अने तेभने अन्नि इपमा अनापीने भरत भडाराअने जय-विजय शब्दो वडे वधाभष्ठी आपी (वद्धावित्ता अग्गाड वराडं रयणाड उवणेड) वधाभष्ठी आपी ने पछी तेथे ते भरत भडाराअने श्रेष्ठ रत्नो अर्पित कयो-राजनी साभे श्रेष्ठ रत्नो भूक्यां (तएणं से भरहे राया सुसेणस्स सेणावइस्स अग्गाड वराड रयणाड पडिच्छड) भरत नरेशे ते सुषेण सेनापति वडे प्रदत्त रत्नोने स्वीकार कयो (पडिच्छित्ता सुसेण सेणावडं सक्कारेड सम्माणेड) स्वीकार करीने पछी तेथे सुषेण सेनापतिने सत्कार कयो अने सन्मान कयो. (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) सत्कार अने सन्मान करीने पछी भरत नरेशेते सुषेण सेनापति ने आहरणुव कविसिन्त कयो (तएणं से मुसेणे सेणावडं भरहस्स रण्णो सेसपि तहेव जाव विहरड) तार भाड भरत नरेश पासेशी पोताना आवास-स्थान उपर आपी ने सुषेण सेनापतिने स्नान कयो, अलिक्कभं कयो, कौतुक मगल, प्रायश्चित्त कयो यावत् ते पोताना श्रेष्ठ प्रासादमां पछोथीने इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रस रूप अने गंध विषयक पांच प्रकारना

इति तान् श्रुञ्जान्ः अनुभवन् विहरति तिष्ठति 'तण्णं से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेणं सेनावइरयणं सद्दवेइ' ततः गङ्गानिष्कुटसाधनानन्तरं खलु स भरतो राजा सुषेणं सेनापतिरत्नं शब्दयति आह्वयति 'सद्दवित्ता' शब्दयित्वा आहूय 'एवं वयासी' एवं -वक्ष्यमाणप्रकारेण अगादीत् उक्तवान् किमवादीत् इत्याह- 'गच्छ ण भो देवाणुप्पिया ! खंडगप्पवायगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाढे विहाडेइ ? गच्छ खलु देवानुप्रिय ! खण्डप्रपातगुहायाः औत्तराहस्य द्वारस्य कपाटी विघाटय उद्घाटय 'विहाडित्ता' विघाटय उद्घाटय 'जहा तिमिसगुहाए तहा भाणियव्व जाव पियं मे भवउ' यथा तमिस्रागुहायाः तथा महतिविशालाया खण्डप्रपातगुहाया अपि भणितव्यं तावत्पर्यन्तं यावत् प्रियं भवतां भवतु तमिस्रागुहाविषय अस्मिन्नेव वक्षस्कारे चतुर्दशसूत्रे त्रिलोकनीयम् 'सेसं तहेव जाव भरहो उत्तरिल्लेणं दुवारेणं अईइ ससिच्च मेहंधयारनिवह' शेषम् अवशिष्टं तथैव पूर्ववदेव तावत् भणितव्यम् यावत् मेघान्धकारनिवहं-मेघान्धकारसमूहं शशीव चन्द्रइव स भरत औत्तराहेण द्वारेण तमिस्रागुहाम् अत्येति प्रविशति 'तहेव पविसंतो मंडल्लाई'

ये काम माने गये हैं और स्पर्श रस गन्ध ये भोग माने गये हैं । (तण्ण से भरहे राया अण्णया कयाइ सुसेण सेणावइरयणं सद्दवेइ) गंगा के निष्कुटो के साधने के बाद किसी एक समय भरत राजाने सुषेण सेनापति रत्न को बुलाया (सद्दवित्ता एवं वयासी) बुलाकर उससे ऐसा कहा- (गच्छ ण भो देवाणुप्पिया खंडगप्पवायगुहाए उत्तरिल्लस्स दुवारस्स कवाढे विहाडेइ) हे देवानुप्रिय तुम जाओ और खण्डप्रपात गुहा के उत्तर दिग्वर्ती द्वार के किवाड़ो को खोलो, (जहा तिमिस गुहाए तहा भाणियव्वजाव पियं मे भवउ) यहां जैसा कथन तमिस्रागुहा के सम्बन्ध में कहा जा चुका है वैसा ही कथन खण्डप्रपात गुहाके सम्बन्ध में भी आकरा कल्याण हो यहा तक के पाठ का कर लेना चाहिये. तमिस्रागुहा के सम्बन्ध में कथन इपी वक्षस्कार के १४ वे सूत्र में किया गया है. सो वहां से यह विषय जाना जा सकता है (सेसं तहेव जाव भरहो उत्तरिल्लेणं दुवारेणं अईइ ससिच्च मेहंधयारनिवहं) इससे आगे का कथन पूर्वोक्त जैसा है यावत् जिस प्रकार चन्द्र मेघान्त अन्धकार में प्रवेश करता है उसी प्रकार उम मगत ने उत्तर द्वार से

કામ ભોગો ભોગવવા લાગ્યો. શબ્દ અને રૂપ એ કામો માનવામાં આવ્યા છે અને સ્પર્શ, રસ, ગન્ધ એ ભોગો માનવામાં આવ્યા છે (તણ્ણં સે મરહે રાયા અણ્ણયા કયાઈ સુસેણં સેનાવરયણં સદ્દવેઈ) ગ ગાના (નિષ્કુટને) છતાં પછી કોઈ એક વખતે ભ ત મહારાજાએ સુષેણ સેનાપતિને બોલાવ્યો (સદ્દવિત્તા એવં વયાસી) બોલાવીને તેને આ પ્રમાણે કહ્યું-ગચ્છ ણ મો દેવાણુપ્પિયા ! ઘંડગપ્પવાયગુહાપ ઉત્તરિલ્લસ્સ દુવારસ્સ કવાઢે વિહાઢેઈ) હે દેવાનુપ્રિય ! તમે ત્વરાથીજાઓ અને ખંડપ્રપાત ગુહાના ઉત્તર દિગ્વર્તી દ્વારના કવાડો ખોલો. (જહા તિમિસ ગુહાપ તહા ભાણિયવ્વ જાવ પિયં મે ભવઉ) જેટું કથન તમિસ્રા ગુહાના સંબંધ માં કહેવામાં આવ્યું છે, તેવું જ કથન અત્રે ખંડપ્રપાત ગુહાના સંબંધમાં પણ તમારું કલ્યાણ થાઓ અહીં સુધી સમજી લેવું જોઈએ. તમિસ્રા ગુહાના સંબંધમાં કથન આજ વક્ષસ્કારના ૧૪ માં સૂત્રમાં કરવામાં આવેલ છે તે ત્યાંથી એ વિષય બહુી શકાય તેમ છે. (સેસં તહેવ જાવ મરહો ઉત્તરિલ્લેણં દુવારેણં અઈઈ સસિચ્ચ મેહંધયારનિવહ) આના પછીનું કથન પૂર્વોક્ત જેટું

आलिहइ' तथैव भरतस्य राज्ञः तमिस्रागुहाप्रवेशानुमारेणैव स सुपेणः सेनापतिः खण्ड-
प्रपातगुहां प्रविशन् मण्डलानि एकोनपञ्चाशत् संख्याकानि आलिखति, अत्र गुहाक-
पाटोद्घाटनाज्ञापनादिकम् एकोनपञ्चाशन्मण्डलालेखनान्तं सर्वं तमिस्रागुहायामिव विज्ञेयम्
अत्र विशेषमाह—'तीसेणं इत्यादि । 'तीसे णं खडग्पवायगुहाए बहुमज्जदेसभाए जाव
उम्मग्गणिमग्गजलाओ णामं दुवे महाणईओ तहेव णवर पच्चत्थिमिल्लाओ कडगाओ
पवूहाओ समाणीओ पुरत्थिमेणं गगं महाणइं समप्पेति' तस्याः खण्डप्रपातगुहायाः
बहुमध्यदेशभागे यावत्पदात् 'एत्थ णं' इति पदमात्रमत्रसेयम् उन्मग्ननिमग्नजले नाम्नी
द्वे महानद्यौ स्तः तथैव तमिस्रागुहागतोन्मग्नानिमग्ना नदीगमेन ज्ञातव्ये अस्मिन्नेव
तृतीयवक्षस्कारे पोडशसूत्रे द्रष्टव्यम् नवरम् अयं विशेषः खण्डप्रपातगुहायाः पश्चात्पात्
पश्चिमभागकटकत् द्वे अपि उक्तउन्मग्ननिमग्नजलेनाम्नी महानद्यौ प्रव्यूढेनिर्गने सत्यौ पौर-
स्त्येन-पूर्वेण गङ्गामहानदीं समाप्नुतः प्राप्नुतःप्रविशतः 'सेमं तहेव णवर पच्चत्थिमिल्लेण

तमिस्रागुहा में प्रवेश किया (तहेव पविसतो म डणइ आच्छिहइ) भरत महाराजाके खण्ड प्रपात गुहा
में प्रवेश के अनुसार ही सुपेण सेनापति ने वहा पविष्ट होकर ४९ मंडल लिखे यहा गुहा के कपाटों
को खोलने से लेकर ४९ मंडलों के लिखने तक का जितना वर्णन है वह सब जैसा तमिस्रागुहा के
प्रकरण में किया गया है—वैसे ही है (तीसे ण खडग्पवायगुहाए बहुमज्जदेसभाए जाव उम्मग्ग-
णिमग्गजलाओ णामं दुवे महाणईओ तहेव णवर पच्चत्थिमिल्लाओ कडगाओ पवूहाओ समाणीओ
पुरत्थिमेणं गगं महाणइं समप्पेति) उस खण्डप्रपात गुहा के बहुमध्यदेशभागमें यावत्—आगत
—ठीक इसीस्थान पर—उन्मग्ना और निमग्ना नाम की दो महानदियाँ बहती हैं इनका स्वरूप
तमिस्रागुहा की इसी नाम की नदियों के जैसा है १६ वें सूत्र में इसी वक्षस्कार के वर्णन में
यह कथन किया गया है परन्तु जो उस—वर्णन से हम वर्णन में विशेषता है वह इस प्रकार से
है खण्डप्रपातगुहा के पश्चिमभाग में जो कटक है उस कटक से ये दोनों महानदियाँ निकली हैं
और पूर्व दिशा की ओर से ये गङ्गा नामकी महानदी में मिली हैं । (सेस तहेव णवरं पच्च-

७ छे यावत् ७म अन्द्र भेधावृत्त अधिकारमां प्रवेशे छे तेम ७ ते भरत महाराजाके उत्तर
द्वारथी तमिस्रागुहामां प्रवेश कथे (तहेव पविसतो मडलाइ आलिहइ) भरत महाराजाके ७म
७४ प्रपात शुक्षमां प्रवेश कथे तेम ७ सुपेणु सेनापतिके पणु त्यां प्रविष्ट थर्ध ने ४६
म डवो लण्था अही शुक्षना कभाओ पोडवाथी भांटीने ४६ म डवो लण्था सुधी नेटु पणुन
छे, ते पणु नेपु तमिस्रा शुक्षना प्रश्नभुमां करवामां आवेहु छे तेपु' ७ छे (तीसेणं खडग्पवाय-
गुहाए बहुमज्जदेसभाए जाव उम्मग्गणिमग्गजलाओ णामं दुवे महाणइओ तहेव णवर पच्च-
त्थिमिल्लाओ कडगाओ पवूहाओ समाणीओ पुरत्थिमेणं गगं महाणइं समप्पेति) ते ७४
प्रपात शुक्षना पणु मध्य देश भागमा यावत्—परापर के ७ स्थान पर उन्मग्ना अने
निमग्ना नामके छे महानदीके वडे छे, के नदीकेतु स्वरूप तमिस्रा शुक्षानी के ७ नामनी
नदीके नेपु ७ छे १६ भा सूत्रमा आ ७ वक्षस्कारना पणुनमां के कथन कडेवामां आवेहु
छे पणु ते पणुनथी आ पणुनमां के विशेषता छे, ते आ प्रभावे छे —७४ प्रपात शुक्षना

કૂલેણં ગંગાપ સંક્રમવત્તવ્વયા તદેવ ત્તિ' શેષમ્ અવશિષ્ટં વિસ્તારાયામો દ્વેધાન્તરાદિક તથૈવ
 પૂર્વપદર્શિતાનુસારૈવ તમિસ્રાગતોક્ત નદી દ્વયપ્રકારેણ વિજ્ઞેયમ્ નવર વિશેષસ્તુ ગઙ્ગાયાઃ
 પાશ્ચાત્યકૂલે સક્રમવત્તવ્વયા-સેતુરુરણાજ્ઞાદાનતદ્વિધાનોત્તરણાદિકં જ્ઞેય તથૈવ પ્રાગવત્
 વિજ્ઞેયમ્ इति પોઢશદ્ધત્રે અસ્મિન્નેવ વક્ષસ્વારે દ્રષ્ટવ્યમ્ 'તણ ણં સ્વહગપ્વાયગુહાપ
 દાહિણિલ્લસ્સ દુવારસ્પ ક્વાઢા સયમેવ મહયા મહયા કૌચારવં કરેમાણા કરેમાણા
 સરસરસ્સગાઈ ઠાણાઈ પચ્ચોસવિકત્થા' તતઃ સ્વહુ સ્વહુપ્રપાતગુહાયાઃ દાક્ષિણાત્યસ્ય
 દ્વારસ્ય કપાટૌ સ્વયમેવ સેનાપતિ દણ્ડરત્નાઘાતમન્તરેણૈવ 'મહયા મહયા' इति દેશેન
 પૂર્વસૂત્રસ્મરણ તેન 'મહયા મહયા સદેણં' મહતા મહતા શબ્દેનેતિ વૉધ્યમ્ ક્રોચ્ચારવ ક્રોચ્ચ-
 સ્ય પક્ષિવિશેષસ્યેવ વહુવ્યાપિત્વાત્ ય ધારવઃ શબ્દઃ તં કુર્વાળી કુર્વન્તૌ 'સરસરસ્સત્તિ'
 અનુકરણશબ્દસ્તેન તાદૃશ શબ્દમનુકુર્વન્તૌ 'સગાઈ સગાઈ' સ્વકે સ્વકે 'ઠાણાઈ' સ્થાને
 પચ્ચોસવિકત્થા' પ્રત્યવાષ્વષ્કિપાતામ્ પ્રત્યપસર્પતુઃ પ્રત્યવસર્પિતવન્તૌ સ્વયમ્ ઉદ્ઘા-
 ઠિતવન્તૌ 'તણ ણં સે મરહે' રાયા ચક્કરયણદેસિયમગ્ગે જાવ સ્વહગપ્વાયગુહાઓ દક્ષિ
 ણિલ્લેણં દારેણં ણીણેઈ સસિન્ધુ મેહધયારનિવહાઓ'તતઃસ્વહુ સ ષહસ્વહુઢાધિપતિમ્ભરતો

સ્થિમિલ્લેણં કૂલેણં ગંગાપ સક્રમવત્તવ્વયા તદેવંતિ) इन दोनो नदियों के आयाम विस्तार
 उद्देश अन्तर आदि का सब कथन तमिस्रा गुहागत उक्त नदीद्वय के जैसा ही है यहा की इन
 दोनो नदियों का प्रवेश गंगा के पश्चिम तट में हुआ है अर्थात् तमिस्रा गुहा को इन दोनो
 नदियों का प्रवेश सिन्धु नदि से हुआ है और यहा की इन दोनो नदियों का प्रवेश गंगा नदी
 में हुआ है । बाकी का और सेतु आदि बनाने आदि का सब कथन पहिले जैसा किया गया
 है वैसा ही है । (तण णं स्वहगपवायगुहाप दाहिणिल्लस्स दुवारस्स क्वाडा सयमेव महया महया
 कौचारवंकरेमाणा करेमाणा सरसरस्सगाइ ठाणाइं पचोसविकत्था)स्वहप्रपात गुहा का दक्षिण द्वार
 के किवाड कौचपक्षी के जैसा शब्द करते हुए अपने आप सेनापति के दण्डरत्नके आघातके
 बिना अपने २ स्थान से सरक गये (तण णं से मरहे राया चक्करयणदेसियमग्गे जाव स्वहगप-

પશ્ચિમ ભાગમાં જે કટક છે, તે કટકથી એ બન્ને નદીઓ નીકળી છે અને પૂર્વ દિશા તરફ
 થી એ બન્ને નદીઓ ગંગા નામક મહાનદી માં મળી છે. (સેસં તદેવ ણવર પચ્ચત્થિ
 મિલ્લેણં કૂલેણં ગંગાપ સક્રમવત્તવ્વયા તદેવંતિ) એ બન્ને નદીઓના આયામ-વિસ્તાર, ઉદ્દેશ-
 અન્તર વગેરે સર્વ કથન તમિસ્રા ગુહાગત પૂર્વોક્ત નદી દ્વય જેવું જ છે અહીંની બન્ને
 નદીઓનો પ્રવેશ ગંગાના પશ્ચિમ તટમાં થયેલ છે. એટલે કે તમિસ્રા ગુહાની એ બન્ને નદી-
 ઓનો પ્રવેશ સિન્ધુનદીઓમાં થયેલ છે અને અહીંની બન્ને નદીઓનો પ્રવેશ ગંગા નદીમાં
 થયેલો છે શેષ સેતુ વગેરે બનાવવા સબધી સર્વ કથન પહેલા જેવું જ અને પણ સમ-
 બધું (તણ ણં સ્વહગપવાયગુહાપ દાહિણિલ્લસ્સ દુવારસ્સ ક્વાડા સયમેવ મહયા ૨ કૌચારવં
 કરેમાણા ૨ સરસરસ્સગાઈ ઠાણાઈ પચ્ચાસવિકત્થા)અ પ્રપાત ગુહાના દક્ષિણ દ્વારના કમાડો
 કૌચ-પક્ષીના શબ્દ જેવા શબ્દ કરતા પોતાની મેળે જ સેનાપતિના દડરત્નના પ્રહાર વિના
 જ પોતાના સ્થાન ઉપર થી ખસી ગયા (તણ ણં સે મરહે રાયા ચક્કરયણદેસિયમગ્ગે જાવ

नाममहाराजा चक्ररत्नदेशितमार्गः यावत्पदात् अनेकराजवरसहस्रानुयातमार्गः महतोत्कृष्ट-
सिंहनादबोलकलकलारवेण प्रक्षुभितमहासमुद्रवभूतामिव प्रतामिव गुहां भू गतौ इति
सौत्रधातोः क्तः कुर्वाणः कुर्वाणः खण्डप्रपातगुहातो दाक्षिणात्येन द्वारेण मेघान्धकार-
निवहात् मेघान्धकारसमुहात् शशीव चन्द्रश्च निरेनि निर्गच्छति ननु चक्रवर्तिनां तमिस्रया
गुह्या प्रवेशः खण्डप्रपातया गुह्या निर्गमः, तत्र किं कारणम्?, खण्डप्रपातया प्रवेशः
तमिस्रया निर्गमोऽस्तु, प्रवेशनिर्गमरूपस्य कार्यस्य उभयत्र तुल्यत्वात् इति चेन्न
तमिस्रया प्रवेशे खण्डप्रपातया निर्गमे च सृष्टिः, तथा च क्रियमाणस्य तस्य प्रगस्तो
दर्कत्वात्, अन्यच्च खण्डप्रपातया प्रवेशे आसन्नोपस्थीयमानऋषभकूटे चतुर्दिक्
पर्यन्त माधनमन्तरेण नामन्यासोऽपि न स्यादिति ॥सू०२६॥

वायुगुहाओ दक्षिणिल्लेण दारेण णोणेइ ससिच्च मेहघयारनिवहाओ) इगके चाद चक्ररत्न
जिसे गन्तव्यमार्ग प्रकट कर रहा है ऐसा वह भरत नरेश यावत् खण्डप्रपातगुहा से दक्षिण के
द्वार से होकर अंधकार समूह से चन्द्र की तरह निकला यहां यावत्पाठ से “अनेकराजवरसहस्रा-
नुयातमार्ग” इत्यादि विशेषणों द्वारा “महासमुद्रवभूतामिव” इस विशेषण तक वर्णन जैसा पीछे
तमिस्रागुहा के प्रकरण में किया गया है—वैसा ही वह सब वर्णन यहां पर भी कर लेना चाहिये
ऐसा सूचित किया गया है। वहा ऐसी आशंका होती है कि चक्रवर्तियों का जो तमिस्रागुहा से
प्रवेश और खण्डप्रपात गुहा से निर्गम होता है इसका क्या कारण है? ऐसा क्यों नहीं होता
है कि खण्डप्रपात गुहा से उनका प्रवेश हो और तमिस्रागुहा से उनका निर्गम हो। क्योंकि प्रवेश
और निर्गम रूप कार्यों की उभयत्र तुल्यता है तो इसका समाधान ऐसा है—ऐसा जो कहा सो
उनमें यह कारण है कि इस तरह से प्रवेश और निर्गम जो करता है वह चक्रो प्रशस्त फल वाला

खण्डप्रपातगुहाओ दक्षिणिल्लेण दारेण णोणेइ ससिच्च मेहघयारनिवहाओ) त्थारणाद चक्र
रत्न जेने गन्तव्य मार्ग प्रकट करी रह्युं छे जेवोते भरत नरेश यावत् षड प्रपात शुक्षाना
दक्षिण द्वारथी पथार थर्छ ने चन्द्रनी जेम अंधकार समूह भाथी नीकल्ये अही यावत्
पठनापाठथी “अनेक राजवरसहस्रानुयातमार्ग” इत्यादि विशेषणो वडे “महासमुद्ररत्न
भूतामिव” जे विशेषण सुधी वरुन पडेवा तमिस्रा शुक्षाना प्रकरणा करवामा आवेद छे,
तेवु जे सब वरुन अही पथ करी देवु जे जे. आम सूचित करवामा आवे छे अत्रे जेवी
आशंका थाय छे के चक्रवर्तीजोनो जे तमिस्रा शुक्षाना प्रवेश अने षडप्रपात शुक्षानाथी
निर्गम होय छे, जेतु कारण थु छे? जेवु केम थतु नथी के षडप्रपात शुक्षानाथी तेमने
प्रवेश थाय अने तमिस्रा शुक्षानाथी तेमनु निर्गमन थाय केम के प्रवेश अने निर्गमन रूप
कार्योनी उभयत्र तुल्यता छे तो आ शकतु समाधान आ प्रमाणे छे के जेवु जे कडेवामा
आण्यु छे तो तेमा जे कारण छे के आ प्रमाणे प्रवेश अने निर्गमन जे करे छे ते चकी
प्रशस्त कृणवान् थाय छे भील वात जे छे के षडप्रपात शुक्षानाथी प्रविष्ट थर्छे तो ऋष
भूट आपन पडे छे ते तेनी उपर चतुर्दिक् पर्यन्त साध्य वगर नामन्यास जेटवे के—नाम
द्वयवु पथ शक्य होतु नथी ॥सूत्र-२६॥

अथ दक्षिणभरतार्द्धागतो भरतो यत्कृवान् तदाह—“तएण से भरहे” इत्यादि ।

मूलम्—तएण से भरहे राया गंगाए महाणईए पच्चत्थिमिल्ले कूले
दुवालसजोयणायामं णव जोयणविच्छिण्णं जाव विजयखंधावारणिवेसं
करेइ अवसिद्धं तं चेव जाव निहिस्यणाणं अट्टमभत्तं पगिण्हइ, तएण से
भरहे राया पोसहसालाए जाव णिहिस्यणे मणसि करेमाणे करेमाणे
चिद्धइत्ति, तस्स य अपरिमियरत्तस्यणा धुअमक्खयमच्चया सदेवा लोको
पचयंकरा उवगया णव णिहिओ लोगविस्सुयजसा, तं जहा—“नेसप्पे
पंडुअए२, पिंगलए३, सब्बरयण४, पहपउमे४ । काले६, अ महाकाले७,
माणवगे महानिही८, संखे ॥१॥”

‘णेसप्पंमि णिवेसा गामागरणगरपट्टणाणं च ।

दोणमुहमडंवाणं खंधावारावणगिहाणं ॥१॥

गणिअस्स य उप्पत्तो माणुम्माणस्स जं पमाणं च ।

धण्णस्स य वीआण य उप्पत्ती पंडुए भणिया ॥२॥

सव्वा आभरणविही पुरिसाणं जा य होइ महिलाणं ।

आसाण य हत्थीण य पिंगलगणिहिंमि सा भणिया ॥३॥

रयणाइं सब्बरयणे चउदस विवराइं चक्कवट्टिस्स ।

उप्पज्जंते एगिंदियाइं पंचिंदियाइं च ॥४॥

वत्थाणय उप्पत्ती णिप्फत्ती चेव सब्बभत्तीणं ।

रंगाणय धोव्वाणय सव्वा एसा महापउमे ॥५॥

कले कालणाणं सब्बपुराणं च तिसु वि वंसेसु ।

सिप्पसयं कम्माणि य तिण्णि पयाए हिय करणि ॥६॥

लोहस्स य उप्पत्तो होइ महाकालि आगराणं च ।

रूपस्स सुवणस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं ॥७॥

जोहाणय उप्पत्ती आवरणाणं च पहरणाणं च ।

सव्वाय जुद्धणीइ माणवगे दंडणीइ य ॥८॥

होता है दूसरी बात यह है कि खण्डप्रपात गुहा से प्रवेश करने पर ऋषमकूट आसन्न पड़ता है सो उस पर चतुर्दिक पर्यन्त साधते ने बिना नामन्यास नाम लिखना भी नहीं होता है सु०॥२६॥

णट्टविही णाडगविही कब्बस्म य चउव्विहस्स उणत्ती ।
 संखे महाणिहिमी तुडिअंगाण च सव्वेसि ॥९॥
 चक्कट्ट पइट्ठाणा अट्टुस्सेहाय णव य विक्खमा ।
 बारस दीहा मंजूससंठिआ जण्हवीइ मुहे ॥१०॥
 वेरुलिअ मणि कवाडा कणगमया विविहिरयणपडिपुण्णा ।
 ससिसुरचक्कलक्खण अणुसम वयणोववत्ती वा ॥११॥
 पलिओवमट्टिईआ णिहि सरिणामा य तत्थ खलु देवा ।
 जेसिं ते आवासा अक्कज्जा आहि वच्चाय ॥१२॥
 एए णव णिहि स्यणा पभूय धणरयण संचय समिद्धा ।
 जेव समुपगच्छति भरहाविव चक्कवट्टीणं ॥१३॥

तएणं से भरहे राया अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसाला-
 ओ पडिणिक्खमइ एवं मज्जणघरपवेसो जाव सेणिपसेणि सहा वण-
 या जाव गिहिरयणाणं अट्टाहियं महामहिमं करेइ, तएणं से भरहे राया
 णिहिरयणाणं अट्टाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं
 सेणावइस्यणं सद्दावेइ, सहावित्ता एवं वयासी गच्छणं भो देवाणुप्पि
 या ! गंगा महाणइए पुरत्थिमिल्लं णिक्खुडं दुच्चंपि सगंगासागागिरि-
 मेरागं समविसमणिक्खुडाणि य ओअवेहि ओअवित्ता एयमाण-
 त्तियं पच्चप्पिणाहित्ति । तएणं से सुसेणे तंचेव पुव्ववणियं भाणियव्वं
 जावओअवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणइ पडिविसज्जेइ जाव भोगभो-
 गाइ भुज्जमाणे विहरइ । तएणं से दिव्वे चक्करयणे अन्नया कयाइ
 आउह घरसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे
 जक्खसहस्स संपरिवुडे दिव्वतुडिय जाव आपूरेते चेव विजयखंधावार
 णिवेसे मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ, दाहिणपच्चत्थिमं दिंसि विणीयं
 रायहाणि अभिमुहे पयाए यावि होत्था । तएणं भरहे राया जाव पासइ पसि-
 ताहइतुइ जाव कोडुंबियपुरिसे सहावेइ सहावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव
 भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं जाव पच्चप्पिणंति ॥ सू०२७॥

छाया=ततः खलु स भरतो राजा गङ्गायाः महानद्या पाप्रचात्ये कूले द्वादशयोजनायामं
नवयोजनविस्तीर्णं यावत् विजयस्कन्धावारनिवेशं करोति, अवशिष्टं तदेव यावत् निधिरत्ना-
नाम् अष्टमभक्त्वं प्रगृह्णाति, ततः खलु स भरतो राजा पौषघशालायां यावत् निधिरत्नानि
मनसि कुर्वन् तिष्ठतीति, तस्य च अपरिमितरक्तनयनाः ध्रुवाक्षया व्ययाः सदेवाः लोकोप-
चयकरा उपगताः नवनिघयो लोकाविश्रुतयशस्काः, तद्यथा-नैसर्षे १, पाण्डुक २, पिङ्गलकः
३, सर्वरत्नम् ४, महापद्यम् ५, कालश्च ६ महाकालः ७, माणवको मङ्गानिधिः ८, शङ्खः ९ ॥१॥
नैसर्षे निवेशाः ग्रामाकर नगरपत्तनानां च । द्रोणमुखमडम्बानां स्कन्धावारापण गृहाणाम् १
गणितस्य चोत्पत्तौ मानोन्मानस्य यत्प्रमाणं च । धान्यस्य च बीजानां चोत्पत्तिः पाण्डुके भणिता
सर्व आभरणविधि पुरुषाणां यश्च भवति महिलानाम् ।

अश्वानां च हस्तिना च स पिङ्गलकनिधौ भणित ३ ॥

रत्नानि सर्व रत्ने च चतुर्दशापि वराणि चक्रवर्तिनः । उत्पद्यन्ते एकेन्द्रियाणि पञ्चेन्द्रियाणि च ४ ॥
वस्त्राणां चोत्पत्तिः निष्पत्तिश्चैव सर्वभक्तीनाम् । रत्नानां च प्रक्षालनानां सर्वा चैषा महापद्मे ५ ॥

काले कालज्ञानं सर्वं पुराणं च त्रिष्वपि वशेषु ।

शिल्पशत कर्माणि च त्रिणि प्रजाया हितकराणि ६ ॥

लोहस्योत्पत्तिं भवति महाकाले चाकराणाम् ।

रूप्यस्य सुवर्णस्य च मणिमुक्ताशिला प्रवालानाम् ७ ॥

योधानां चोत्पत्तिरावरणानां च प्रहरणानां च । सर्वा च युद्धनीति माणवके दण्डनीतिश्च ८ ॥

नृत्यविधिः नाटकविधिः फाव्यस्य च चतुर्विधस्योत्पत्तिः ।

शङ्खे महानिधौ वृष्टिताङ्गानां च सर्वेषाम् ११ ॥

चक्राष्टप्रतिष्ठाना कष्टोत्सेधाश्च नव च विष्कम्भाः ।

द्वादश दीर्घा मञ्जुषावत्संस्थिताः जाह्नव्याः मुखे १० ॥

वैदूर्यमणिकपाटाः कनकमयाः विधिघरत्नप्रतिपूर्णा ।

शशि सूर चक्रलक्षणा अनुसम चदनोत्पत्तिका ११ ॥

पल्योपमस्थितिका निधिसदृशनामान तत्र च खलु देवाः ।

येषां ते आवासा अक्रेया आधिपध्याय १२ ॥

पते नव निधिरत्नाः खलु प्रभूत धनरत्न सञ्चयसमृदाः ।

ये वशमुपगच्छन्ति भरताधिप चक्रवर्तिनाम् १२ ॥

ततः खलु स भरतो राजा अष्टमभक्ते परिणमति पौषघशालातः प्रतिनिष्क्रामति, एवं
मञ्जनगृहप्रवेशो यावत् श्रेणि प्रश्रेणि शब्दपनया यावत् निधिरत्नानाम् तद्यादिकां महामहिमा
करोति, ततः खलु स भरतो राजा निधिरत्नानाम् अष्टादिकायां महामहिमायां निवृत्तायां सत्यां
सुषेणं सेनापतिरात्न शब्दयति शब्दयित्वा पवम् अवादीत् गच्छ खलु भो देवानुप्रियाः ! गङ्गायाः
महानद्याः पौरस्त्य निष्कुटं द्वितीयमपि सगङ्गासागरगिरीमर्यादं समविषमनिष्कुटानि च
'ओमवेद्मि' साधय साधयित्वा पतामज्ञितिकां प्रत्यर्पय इति । ततः खलु स सुषेण तदेव
पूर्ववर्णितं भणितव्यं यावत् साधयित्वा ताम् आज्ञासिकां प्रत्यर्पयति प्रतिविसर्जयति यावत्
भागभोगान् भुञ्जानो विहरति । ततः खलु तद्विषयं चक्ररत्नम् अन्यथा कदाचिद् प्रायुषगृह-
शालान् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य अन्तरिक्षं प्रतिपन्न यश्च सदृशं संपरिवृत्तं दिव्यवृद्धित
यावत् आपूरयति च विजयस्कन्धावारनिवेशं ण्डयमध्येन निर्गच्छति दक्षिणात्यं प्राश्नार्त्यां

द्विंश विनीतां राजधानीमभिमुखं प्रयातं चाप्यभन्त् तत खलु स भरतो राजा याचन पट्टयति
हृष्टा हृष्टतुष्ट यावत् कीदृम्भिक पुरुषान् शब्दयिन शब्दयित्वा पञ्चमवादीन् क्षिप्रमेव भो
देवानुप्रिया ! अभिपेक्ष्य यावत्प्रत्यर्पयन्ति ॥सू०२७॥

टीका—“तए णं से भरहे गया” इत्यादि । ‘तए णं से भरहे गया गंगाए महाणईए
पञ्चत्थिमिल्ले कूले दुवालसजोयणायाम णवजोयणविच्छिण्णं जान विजयवखंघावारणि-
वेसं करेइ’ ततो गुहानिर्गमानन्तर खलु स श्रीभरतो महाराजा गङ्गाया महाभद्याः पाश्चात्पे
पश्चिमे कूले—तटे द्वादशयोजनायामम् द्वादशयोजनानि अष्टाचत्वारिंशत् क्रोश परिमितानि
आयामो दैर्घ्यं यस्य स तथा तम् एवं नवयोजनविस्तीर्णम् नवयोजनानि पट्त्रिंशत्
क्रोशपरिमितानि विस्तीर्णानि विष्कम्भानि यस्य स तथा तम् यावत् पदात् वरनगर
सदृशं विजयस्कन्धावारनिवेश विजयाय यः स्कन्धावारः ‘छौनी’ इति भाषा प्रसिद्धः
तस्य निवेशः योजना तं करोति ‘अवसिद्धं तचेव जाव निहिरयणाणं अट्टमभत्तं पगिण्ह-
इ’ अवशिष्टम् वर्द्धकिरत्नशब्दज्ञापनादिकं तदेव यन्मागधदेवसाधनावसरे प्रोक्तमिति
अस्मिन्नेव तृतीयवक्षस्कारे सप्तमसूत्रे मागधदेवसाधनपाठो द्रष्टव्यः यावत् शब्दात् पौष-

‘तएण से भरहे राया गंगाए महाणईए’—इत्यादि सूत्र—२७॥

टीका—(तए णं से भरहे राया गंगाए महाणईए पञ्चत्थिमिल्ले कूले दुवालसजोयणायाम णव-
जोयणविच्छिण्णं जाव विजयवखंघावारनिवेश करेइ) गुहा से निकलने के बाद भरत राजा ने गंगा
महानदी के पश्चिम दिग्बर्ती तट पर १२ योजन प्रमाण लम्बी और ९ योजन प्रमाण चौड़ी अतएव
एक सुन्दर नगर जैसी दिखने वाली विजय सेना का निवास पड़ाव छावनी डाला—(अवसिद्धं
तं चेव जाव निहिरयणाणं अट्टमभत्तं पगिण्हइ) यहां से आगे का और सब कथन जैसा
मागधदेव के साधन प्रकरण में कहा गया है वैसा पौषवशाळा में दर्भ के आसन पर
बैठने आदि तत्काल यहा पर जानना चाहिए मागध देव के साधन करने का प्रकरण
इसी तृतीयवक्षस्कार के सप्तम सूत्र में कहा गया है इस प्रकार से सब कुछ पूर्वोक्तरूप से

(तए णं से भरहे राया गंगाए महाणईए) इत्यादि—‘सूत्र—२७’

टीका—(तए णं से भरहे राया गंगाए महाणईए पञ्चत्थिमिल्ले कूले दुवालसजोय-
णायाम णवजोयणविच्छिण्णं जाव विजयवखंघावारनिवेशं करेइ) शुद्धभाषी नीकल्या भाई
भरतराज्ये गंगा महानदीना पश्चिम दिग्बर्ती तट पर आठ योजन प्रमाण लम्बी अने
९ योजन प्रमाण चौड़ी की ७ अक्ष सुन्दर नगर जैसी सुशीलिन देखाती विजय सेना
निवास पड़ाव नाथे। (अवसिद्धं तं चेव जाव निहिरयणाणं अट्टमभत्तं पगिण्हइ) अही
थी आगलतु अथु कथन जेभ मागधदेवना साधन प्रकरणमा स्पष्ट करवामा आवेल छे,
तेतु अ पौषवशाळामा दर्भना आसन उपर जेवना सुधीनुं अही लक्षी देवु जोधये मागध
देवने साधन करवा अ गेनु प्रकरण आठ तृतीय वक्षस्कारना सप्तम सूत्रमा स्पष्टकरवामा
आवेछु छे आ प्रमाणे सर्व कथन पूर्वोक्त रूपमा संपन्न करीने भरत महाराज्ये ६ निधिओ
अने १४ रत्नोने साधना भाटे अष्टम लक्ष्मी तपस्या धारय्करी (तएण से भरहे राया
१०७

धशालां दर्भसंस्तारक सस्तरणादि सर्वं विज्ञेयम् निधिरत्नानां साधनाय अष्टमभक्त प्रगृह्णाति करोति 'तपणं से भरहे राया पोसहसालाप जाव णिहिरयणे मणसि करेमाणे करेमाणे चिह्द ति' ततः खलु स भरतो महाराजा पौषधशालायां यावत् निधिरत्नानि मनसि कुर्वन् मनसि कुर्वन् मनसि ध्यायन् मनसि ध्यायन् तिष्ठति यावत्पदात् पौषधिक इत्यारभ्य एकः अद्वितीय इति पर्यन्तं पदकदम्बक संग्राहम् । इत्थमनुतिष्ठतः तस्य भरतस्य किं जातमित्याह—'तस्स' इत्यादि 'तस्स य अपरिमियरत्तरयणा ध्रुवमक्खयमव्वया सदेवा लोकोपचयकरा उवगया णवणिहिओ लोगविस्सुअजसा' तस्य भरतस्य च शब्दोऽर्थांतरारम्भे नवनिधयः उपागताः समीपमागताः इत्यग्रेण सम्बन्धः क्रीदशास्ते निधयः अपरिमितरत्तरत्नाः अपरिमितानि असीमितानि अपाराणीत्यर्थः रत्नानि रक्तवर्णानि उपलक्षणात् कृष्णनीलपीतशुक्लाद्यनेकवर्णानि येषु ते तथा, पदार्थाः साक्षादेव उत्पद्यन्ते

करके भरत महाराजा ने नौ निधियां एवं चौदह रत्नों को साधन के लिये अष्टमभक्त की तपस्या धारण करली(तपणं से भरहे राया पोसहसालाप जाव निहिरयणे मणसि करेमाणे चिह्द) उस अष्टम भक्त(तेळे)क्रीतपस्यामें उस चक्रवर्ती श्रीभरत नरेशने नौ निधियो का और १४ रत्नों का अपने मन में ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया यहां यावत् शब्द से—“पौषधिकः” इस पद से लेकर “एकः अद्वितीयः” पद तक का पदसमूह गृहीत हुआ है (तस्स अपरिमियरत्तरयणा ध्रुवमक्खयमव्वया सदेवा लोकोपचयकरा उवगया णवणिहियो लोगविस्सुअजसा) उस भरत राजा के पास अपरिमित रक्तवर्ण के, कृष्णवर्ण के, नीलवर्ण के पीतवर्ण, के, शुक्लवर्ण के और हरितवर्ण के इत्यादि अनेक वर्ण के रत्नों वाली तथा जिनका यश लोक में व्याप्त हो रहा है ऐसे नौ निधियां अपने अपने अधिष्ठापक देवों सहित उपस्थित हुई यहां अनेक वर्णों वाले रत्न जिनमें रहते हैं ऐसा जो कहा गया है वह उनके मत की अपेक्षा से कहा गया है जो ऐसा मानते हैं कि नौनिधियो में ये वक्ष्यमाण पदार्थ साक्षात् उत्पन्न होते हैं शाश्वति कल्प पुस्तक इन

पोसहसालाप जाव-निहिरयणे मणसि करेमाणे चिह्द) ते अष्टमभक्त(तेळा) तपस्यामा ते भरत नरेशे ६ निधिओत्तु अने १४ रत्नोत्तु' पोताना मनमा ध्यान शक्युं आश्र अही यावत् पदथी-पौषधिकः “आ पदथी मांडीने एकः ‘अद्वितीयः’ पद सुधीना यह समझो गृहीत था। (तस्स अपरिमियरत्तरयणा ध्रुवमक्खयमव्वया सदेवा लोकोपचयकरा उवगया णव णिहिओ लोगविस्सुअजसा) ते भरत महाराजनी यामे अपरिमित रत्तवर्षुना, कृष्णवर्षुना, नीलवर्षुना, पीतवर्षुना, शुक्ल वर्षुना अने हरित वर्षुना वगेरे अनेक वर्षुना रत्नोवाणी तेमज्जे मनेना यश लोकमां व्याप्त थरुं रह्यो छे ओवा ६ निधिओ पोत-पोताना अधिष्ठापक देवो सहित उपस्थित था अही अनेक वर्षुवाणा रत्नो जेमा रहे छे, आम जे कडेवामा आवुं छे ते तेमना मतनी अपेक्षाओ कडेवामा आवेल छे जे आ प्रभाओ माने छे के नव निधिओमां ओ वक्ष्यमाण पदार्थो साक्षात् उत्पन्न थाय छे शाश्वति कल्प पुस्तक वगेरे पुस्तकैमां विश्वनी स्थिति प्रकट करवामां आवी छे डेटलाकना मत सुब्ब कल्प पुस्तक प्रतिपाद्य पदार्थ साक्षात् ओ निधिओमां उत्पन्न थाय छे तेमज्जे ओ

इति, कल्पपुस्तकप्रतिपाद्याः अर्था साक्षादेव तत्रोत्पद्यन्ते इति तथा ध्रुवाः निश्चलाः तथाविधपुस्तक रूप स्वरूपस्यापरिहाणेः अस्रयाः अविनश्चराः अवयविद्रव्यस्य अपरिहाणेः अव्यया तदारम्भकप्रदेशापरिहाणेः अत्र प्रदेशापरिहाणि युक्तिः समयमंवादिनी पद्मवरवेदिका व्याख्या समये निरूपितेति ततोऽवसेया अत्र पदद्वये मकारोऽलाक्षणिकः ततः पदत्रयस्य कर्मधारयः सदेवाः अधिष्टायकदेवकृतसान्निध्या इत्यर्थः लोकोपचयङ्करा अस्य तीर्थकरादिवत् साधुत्वम् यद्वा अनुस्वारः आर्पत्वात् लोकोपचयङ्कराः-वृत्तिकल्पककल्पपुस्तकप्रतिपादनेन लोकानां पुष्टिकारकाः लोकविश्रुतयशस्काः लोकविख्यात कीर्त्तयः 'एवं विशेषणविशिष्टा नवनिधयः उपागताः' अथ नामतः तान् नवविधीन् उपदर्शयति 'तं जहा' इत्यादिना-

नेसप्ये १ पंडुअए २ पिंगलए ३ सव्वरयण ४ महपउमे ५ काले ६ अ महाकाले ७ माणवगे महानिही ८ संखे ९। १। तत्र नैसर्पः नैसर्पस्य देवविशेषस्यायं नैसर्पः

पुस्तकों में विश्व की स्थिति कही गई है किन्ही २ के मतानुसार कल्प पुस्तक प्रतिपाद्य पदार्थ साक्षात् उन निधियों में उत्पन्न होते हैं तथा ये ध्रुव हैं क्यों कि तथाविध पुस्तक वैशिष्ट्य रूप स्वरूप इनका नष्ट नहीं होता है, अवयवी द्रव्य की अविनाशिता को लेकर ये अक्षय हैं, तदारम्भक प्रदेशों की अविनाशिता को लेकर ये अव्यय हैं, प्रदेशों की अपरिहीनता के सम्बन्ध में युक्ति सिद्धान्त के अनुसार पद्मवरवेदिका की व्याख्या करते समय कही जा चुकी है, इसलिये जिज्ञासु जनको वहाँ से इसे देखलेनी चाहिए, "ध्रुवमकलयं" में मकार का प्रयोग अलाक्षणिक है, "लोकोपचयङ्कर" पद की निष्पत्ति "तीर्थकर" पद की निष्पत्ति की तरह से ही जाननी चाहिये अथवा आर्ष होने के कारण यहाँ अनुस्वार कर दिया गया है वृत्तिकल्पक कल्पपुस्तक के प्रतिपादन से ये लोको को पुष्टि कारक होती हैं उन नौ निधियों के नाम इस प्रकार से कहा गया है-नेसप्ये १, पंडुअए २, पिंगलए ३, सव्वरयण ४. महपउमे ५। काले ६ महाकाले ७ माणवगे महानिही ८ संखे ९।१।

(१) नैसर्पनिधि—यह नैसर्पनामक देव से अधिष्ठित होती है (२) पाण्डक निधि. यह निधि पाण्डक नामक देव से अधिष्ठित होती है (३) पिंगलक निधि—यह पिंगलक नामक देव से अधि-

ध्रुव छे डेभ डे तथाविध पुस्तक वैशिष्ट्य रूप स्वरूप अमरु' नाश पाभतु नथी अवयवी द्रव्यनी अविनाशिताने लधने अथो अक्षय छे तदार लक प्रदेशोनी अविनाशिताने लधने अथो अव्यय छे, प्रदेशोनी अपरिहीनताना स अ धमां युक्ति सिद्धान्त मुण्ण पद्मवरवेदिका नी व्याख्या करती वभते कडेनामा आवी छे अथी जिज्ञासुओ त्थाथी न लधुवा प्रयत्न करे "ध्रुवमकलयं" मा मकारने प्रयोग अलाक्षणिक छे. 'लोकोपचयङ्कर' पदनी निष्पत्ति "तीर्थकर" पदनी निष्पत्तिनी लभन्न लधुवी अर्थओ अथवा आर्ष डेवाथी अही अनुस्वार करवामा आवेल छे वृत्तिकल्पक कल्पपुस्तकना प्रतिपादनथी ओ लोको भाटे पुष्टि कारक डेय छे ते नव निधियो ना नामे आ प्रमाणे छे-नेसप्ये-पंडुअए-२, पिंगलए-३, सव्वरयण-४, महपउमे-५, काले-६, महाकाले-७, माणवगे महानिही-८, संखे ९।१।

एवमग्रेऽपि इत्थमेव विज्ञेयम् अथ यत्र निधौ यदाख्यायते तदाह-तत्र प्रथमे नैसर्पाधि-
ष्ठात्देवस्य नैसर्पाख्यनिधौ 'णे सप्पमि' इत्यादि

तत्र-नैसर्पे-नैसर्पाख्ये निधौ निवेशाः स्थापनानि स्थापनविधयो ग्रामादीनां गृहप
र्यन्तानां व्याख्यायन्ते तत्र ग्रामः-वृत्तिवेष्टितः, आकरः-सुवर्णरत्नाद्युत्पत्तिस्थानम् नगरम्
अष्टादशरुवर्जितम्, पत्तनं समस्तवस्तुप्राप्तिस्थानम्, शकटादिभिः नौभिर्वा यद्गम्यं
तत्पत्तन यत्केवल नौभिरेव गम्य तत् पट्टनम् उक्तञ्च-पत्तनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव च
नौभिरेवच यद्गम्यं पट्टनं तत्प्रचक्षते । द्रोणमुखम्-जल-स्थलमार्गगमनयोग्यस्थानम्, मडम्बम्

ष्ठित होती है. (४) सर्वरत्ननिधि-यह सर्वरत्न नामक देव से अधिष्ठित होती है (५) महा
पद्म निधि. यह महापद्मनामक देव से अधिष्ठित होती है (६) कालनिधि-यह काल नामक देव
से अधिष्ठित होती है. (७) महाकाल निधि-यह महाकाल नामक देव से अधिष्ठित होती
है (८) माणवकनिधि यह माणवक नामक देव से अधिष्ठित होता है और (९) शंखनिधि यह
शङ्ख नामक देव से अधिष्ठित होती है.

'णैसप्पमि णिवेसा गामागरणगर पट्टणाण च द्रोणमुह् मडंवाणं खंधावारावणगिहाणं ?

नैसर्प नामकी निधि में ग्राम, आकर, नगर, पट्टण, द्रोहमुख, मडव, रुक्धावार, आपण
और भवन उनकी स्थापन विधि रहती है वृत्ति-वाड से जो आवेष्टित होता है उसका नाम ग्राम
है. जहां पर सुवर्ण रत्न आदिकों की उत्पत्ति होती है उसका नाम आकर है अठारह प्रकार के
टेक्स से जो रहित हैं उसका नाम नगर है. समस्त वस्तुओं की प्राप्ति का जो स्थान है उसका
नाम पत्तन है. अथवा बेलगाड़ी द्वारा या नौकाओं द्वारा जहां पर जाने का मार्ग होता है.
उसका नाम पत्तन है. अथवा जलयान द्वारा हो जहा पर जाया जा सकता है वह पट्टण है
उक्तंच-पत्तन शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव च । नौभिरेवच यद्गम्यं पट्टन तत्प्रचक्षते ?

(१) नैसर्पनिधि-जे निधिनैसर्पनामक देवथो अधिष्ठित होय छे (२) पांडुनिधि-जे निधि
पाण्डुक नामना देवथी अधिष्ठित होय छे (३) पि गलक निधि- जे पि गलक नामक देवथी
अधिष्ठित होय छे (४) सर्वरत्ननिधि-जे सर्वरत्ननामक देवथी अधिष्ठित होय छे (५)
महापद्मनिधि-जे महापद्मनामक देवथी अधिष्ठित होय छे (६) कालनिधि-जे काल नामक
देवथी अधिष्ठित होय छे. (७) महाकाल निधि-जे महाकाल नामक देवथी अधिष्ठित होय
छे (८) माणवकनिधि- जे माणवक नामक देवथी अधिष्ठित होय छे अने (९) शंखनिधि
जे शंख नामक देवथी अधिष्ठित होय छे

णैसप्पमि णिवेसा गामागरणगर पट्टणाणं च । द्रोणमुह् मडवाणं खंधावारावणगिहाणं ॥१॥
नैसर्प नामक निधिमां ग्राम आकर, नगर, पट्टण, द्रोणमुख, मडं, रुक्धावार, आपण
अने भवन जेभनी स्थापना निधि रहे छे वृत्ति-वाड-थी जे आवेष्टित होय छे, तेने ग्राम
कडेवाभां आवे छे जथा सुवर्णरत्न वगैरेनी उत्पत्ति होय छे, तेनु नाम आकर छे अठार
प्रकारना करैथी जे रहित होय छे ते नगर कडेवाय छे समस्त वस्तुजोनी प्राप्तिनुं जे
स्थान छे ते पत्तन कडेवाय छे अथवा मणक गाडी वडे के नावे वडे जथा जर्ष शक्य छे
तेनुं नाम पट्टण छे अथवा ज लयान द्वारा ज जथा जर्ष शक्य छे ते पत्तन छे-

—सार्द्धक्रोशद्वयान्तरेण ग्रामान्तररहितम् वसतिरिति । स्कन्धावार-कटकम् आपणो हट्टः गृहम्-भवनम् उपलक्षणात् खेटकर्बटादि परिग्रह खेट-धूलिकाप्राकारवेष्टितम् नदी पर्वतवेष्टितं च नगरम्, कर्बटम् क्षुद्रप्राकारवेष्टित कुत्सितनगरम्, एतेषां स्थापनविधयो नैसर्पण्ये निर्धौ भवन्तीत्यर्थः ॥ १ ॥ अथ द्वितीयं पण्डुकाधिष्ठानुदेवस्य पाण्डुकनामक निधिस्वरूपं तत्र यानि उत्पद्यन्ते तान्याह—

तत्र गणितस्य संख्याप्रधानतया व्यवहर्त्तव्यस्य दीनागदेः नारिकेन्द्रादेर्वा च शब्दात्परिक्षयस्य मौक्तिकादे रूपात्तिप्रकारः वर्णनम्, तथा मानं सेतिकादि तद्विषयो यः सोऽपि मानमेव मेयं पाठ्येन पाइलीति लोकप्रसिद्धेन मातुं योग्यम्, तथा उन्मानं

जलमार्ग से भी और स्थलमार्ग से भी जहाँ पर सुविधासे जाया जाता है वह द्रोणमुञ्ज है जहाँ पर ढाई कोश पर्यन्त आस पास में कोई भा प्रामान्तर नहीं होते हैं उसका नाम महम्ब है । स्कन्धावार नाम कटक का है । जिसे भापा में-छावनी कहा गया है । आपण नाम बाजार का है, और गृह नाम भवन का है । उपलक्षण से यहाँ पर खेट कर्बट आदि स्थानों का भी ग्रहण हुआ है । धूलिका के प्राकार कोट से परिवेष्टित हुए स्थान का नाम खेट है । नदी एवं पर्वत से वेष्टित हुवे स्थान का नाम नगर है, क्षुद्र प्राकारसे परिवेष्टित कुत्सित-नगर का नाम कर्बट है इनसब की स्थापना करने की विधियाँ नैसर्प नाम की निधि में होती हैं । दूसरी पण्डुकनिधि है—इसके सम्बन्ध में ऐमा कथन है ।

गणितस्य य उप्पत्ती माणुम्माणस्स जं पमाणं च घण्णस्स य बीभाण य उप्पत्ती पड्डुए भणिया । संख्या प्रधान होने से व्यवहर्त्तव्य दीनार आदि का अथवा नारिकेल आदि का तथा परीक्ष्य मौक्तिकादि का कथन तथा मान-सेतिका आदि रूप तौल का तथा इस तौल के विषय-भूत पदार्थ का उन्मान तुला, कर्ष-तौला इनका और इनके द्वारा जो तौले जाते पदार्थ है,

ईदं च-पत्तनं शकटैर्गम्यं घोटकै नौभिरेव च । नौभिरेव च यद्गम्य पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥१॥
जणभागाथी अने स्थल भागाथी पणु जयां जर्ध शकथ छे, ते द्रोणु भुण छे. जयां अही गाड सुधी जीअ आभो डोता नथी. तेनुं नाम भडंण छे स्कधानार नाम कटकनु छे. जेने हिन्दी भाषामा 'छावनी' कहे छे आपणु जणरतुं नाम छे अने गृह भवननु नाम छे. उपलक्षणथी अही जेट, कर्बट वगेरे स्थानो तु पणु अक्षु यथुं छे धूलिकाना प्राकार-कोट-थी परिवेष्टित थयेला स्थाननुं नाम जेट छे नही अने पर्वत थी वेष्टित स्थाननुं नाम नगर छे. क्षुद्र प्राकारथी परिवेष्टित थयेला कुत्सित नगरनु नाम कर्बट छे जे सर्वथी स्थापना करवानी विधियो नैसर्पनामक निधिमा होय छे

गणितस्य य उप्पत्ती माणुम्माणस्स ज पमाण च ।

घण्णस्स य बीभाणय उप्पत्ती पड्डुए भणिया ॥२॥

संख्या प्रधान होवाथी व्यवहर्त्तव्य दीनार वगेरेनु अथवा नारिकेल वगेरेनुं तेमज परीक्ष्य मौक्तिकादिनु कथन तेमज मान-सेतिका आदि रूप तौलनु तेमज जे तौलना विषयभूत पदार्थनु उन्मान, तुला कर्ष-तौला जेमनु अने जेमना वडे जे तौलवामां आवे छे जेवा जे पदार्थो छे तेमनु तथा धान्य शालि वगेरे अने जीजनुं आ प्रभाणु जे सर्वथी

एवमग्रेऽपि इत्थमेव विज्ञेयम् अथ यत्र नित्री यदाख्यायते तदाह-तत्र प्रथमे नैसर्पाधि-
ष्ठात्देवस्य नैसर्पाख्यनिधौ 'णे सत्पंमि' इत्यादि

तत्र-नैसर्पे-नैसर्पाख्ये निधौ निवेशाः स्थापनानि स्थापनविधयो ग्रामादीनां गृहप-
र्यन्तानां व्याख्यायन्ते तत्र ग्रामः-वृत्तिवेष्टितः, आकरः-सुवर्णरत्नाद्युत्पत्तिस्थानम् नगरम्
अष्टादशकरवर्जितम्, पत्तनं समस्तवस्तुप्राप्तिस्थानम्, शकटादिभिः नौभिर्वा यद्गम्यं
तत्पत्तन यत्केवल नौभिरेव गम्य तत् पट्टनम् उक्तञ्च-पत्तनं शकटैर्गम्यं घोटकैर्नौभिरेव च
नौभिरेवच यद्गम्यं पट्टनं तत्प्रचक्षते । द्रोणमुखम्-जल-स्थलमार्गगमनयोग्यस्थानम्, मडम्बम्
ष्ठितं होतो है. (४) सर्वरत्ननिधि-यह सर्वरत्न नामक देव से अधिष्ठित होती है (५) महा
पद्म निधि. यह महापद्मनामक देव से अधिष्ठित होती है (६) कालनिधि-यह काल नामक देव
से अधिष्ठित होती है. (७) महाकाल निधि-यह महाकाल नामक देव से अधिष्ठित होती
है (८) माणवकनिधि यह माणवक नामक देव से अधिष्ठित होतो है और (९) शंखनिधि यह
शङ्ख नामक देव से अधिष्ठित होती है.

'णेसत्पंमि निवेशा गामागरणगर पट्टणाण च द्रोणमुह मडम्बाणं खंधावारावणगिहाणं १

नैसर्प नामकी निधि में ग्राम, आकर, नगर, पट्टण, द्रोहमुख, मडब, रुन्धावार, आपण
और भवन उनकी स्थापन विधि रहती है वृत्ति-वाड से जो आवेष्टित होता है उसका नाम ग्राम
है. जहां पर सुवर्ण रत्न आदिकों की उत्पत्ति होती है उसका नाम आकर है अठारह प्रकार के
टेक्स से जो रहित हैं उसका नाम नगर है. समस्त वस्तुओं की प्राप्ति का जो स्थान है उसका
नाम पत्तन है. अथवा बेलगाड़ी द्वारा या नौकाओं द्वारा जहां पर जाने का मार्ग होता है.
उसका नाम पत्तन है. अथवा जलयान द्वारा हो जहा पर जाया जा सकता है वह पट्टण है
उक्तंच-पत्तन शकटैर्गम्य घोटकैर्नौभिरेव च । नौभिरेवच यद्गम्य पट्टन तत्प्रचक्षते १

(१) नैसर्पनिधि-जे निधि नैसर्प नामक देवथी अधिष्ठित होय छे (२) पांडुनिधि-जे निधि
पाण्डुक नामना देवथी अधिष्ठित होय छे (३) पि गलक निधि- जे पि गलक नामक देवथी
अधिष्ठित होय छे (४) सर्वरत्ननिधि-जे सर्वरत्ननामक देवथी अधिष्ठित होय छे (५)
महापद्मनिधि-जे महापद्मनामक देवथी अधिष्ठित होय छे (६) कालनिधि-जे काल नामक
देवथी अधिष्ठित होय छे. (७) महाकाल निधि-जे महाकाल नामक देवथी अधिष्ठित होय
छे (८) माणवकनिधि- जे माणवक नामक देवथी अधिष्ठित होय छे अने (९) शंखनिधि
जे शंख नामक देवथी अधिष्ठित होय छे

णेसत्पंमि निवेशा गामागरणगर पट्टणाण च । द्रोणमुह मडम्बाणं खंधावारावणगिहाणं ॥१॥
नैसर्प नामक निधिमां ग्राम आकर, नगर, पट्टण, द्रोणमुख, मडम्ब, रुन्धावार, आपण
अने भवन जेभनी स्थापना विधि रहे छे वृत्ति-वाड-थी जे आवेष्टित होय छे, तेने ग्राम
कडेवाभां आवे छे जथा सुवर्णरत्न वगैरेनी उत्पत्ति होय छे, तेनु नाम आकर छे अठार
प्रकारना करैथी जे रहित होय छे ते नगर कडेवाय छे समस्त वस्तुजोनी प्राप्तिजुं जे
स्थान छे ते पत्तन कडेवाय छे अथवा मण्ड गाडी वडे के नावो वडे जथा जर्ध शक्य छे
तेनु नाम पट्टण छे अथवा ज लयान द्वारा ज जथा जर्ध शक्य छे ते पत्तन छे-

—सार्द्धक्रोशद्वयान्तरेण ग्रामान्तररहितम् वसतिरिति । स्फुन्वावार-कटकम् आपणो हट्टः
गृहम्-भवनम् उपलक्षणात् खेटकर्षटादि परिग्रह खेट-धुलिकाप्राकारवेष्टितम् नदी
पर्वतवेष्टितं च नगरम्, कर्षटम् क्षुद्रप्राकारवेष्टितं कुत्सितनगरम्, एनेपां स्थापनविधयो
नैसर्पाख्ये निर्धौ भवन्तीत्यर्थः ॥ १ ॥ अथ द्वितीयं पाण्डुकाधिष्ठातृदेवस्य पाण्डुकना
मक निधिस्वरूपं तत्र यानि उत्पद्यन्ते तान्याह—

तत्र गणितस्य संख्याप्रधानतया व्यवहर्तव्यस्य दीनागदेः नारिकेलदेर्वा च
शब्दात्परिक्षयस्य मौक्तिकादे रूपात्तिप्रकारः वर्णनम्, तथा मानं सेतिकादि तद्विषयो यः
सोऽपि मानमेव मेयं पाय्येन पाइलीति लोकप्रसिद्धेन मातुं योग्यम्, तथा उन्मान

जलमार्ग से भी और स्थलमार्ग से भी जहां पर सुविधासे जाया जाता है वह द्वीगमुख है
जहां पर ढाई कोश पर्यन्त आस पास में कोई भा प्रामान्तर नहीं होने हैं उसका नाम
महम्ब हैं । स्फुन्वावार नाम कटक का है । जिसे भाषा में-छावनी कहा गया है । आपण नाम
बाजार का है. और गृह नाम भवन का है । उपलक्षण से यहाँ पर खेट कर्षट आदि स्थानो
का भी ग्रहण हुआ है । धुलिका के प्राकार कोट से परिवेष्टित हुए स्थान का नाम खेट
है । नदी एव पर्वत से वेष्टित हुवे स्थान का नाम नगर है, क्षुद्र प्राकारसे परिवेष्टित कुत्सि-
तनगर का नाम कर्षट है इनसब की स्थापना करने की विधिया नैसर्प नाम की निधि में
होती हैं । दूसरी पण्डुकनिधि है—इसके सम्बन्ध में ऐसा कथन है ।

गणितस्य य उपपत्ती माणुग्माणस्स जं पमाणं च घण्णस्स य बीजाण य उपपत्ती पंडुए भणिया ।
सख्या प्रधान होने से व्यवहर्तव्य दीनार आदि का अथवा नारिकेल आदि का तथा
परीक्ष्य मौक्तिकादि का कथन तथा मान-सेतिका आदि रूप तौल का तथा इस तौल के विषय-
भूत पदार्थ का उन्मान तुला, कर्ष-तौल इनका और इनके द्वारा जो तौले जाते पदार्थ है,

उक्तं य-पत्तनं शकटैर्गस्यं घोटके नौमिरेव च । नौमिरेवच यद्गम्य पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥१॥
जणमागंथी अने स्थल मागंथी पणु जथा जठ शक्य छे, ते द्रोणु भुष छे. जथा
अही गाड सुधी पीज आगे डोता नथी. तेनु नाम मडण छे स्फुन्वावार नाम कटकनु छे. जेने
हिन्दी भाषामां 'छावनी' कहे छे आपणु जणारनु नाम छे अने गृह भवननु नाम छे.
उपलक्ष्युथी अही जेट, कर्षट वगेरे स्थानो तु पणु अडणु थुं छे धुलिकाना प्राकार-
कोट-थी परिवेष्टित थयेला स्थाननु नाम जेट छे नही अने पर्वत थी वेष्टित स्थाननु
नाम नगर छे. क्षुद्र प्राकारथी परिवेष्टित थयेला कुत्सिन नगरनु नाम कर्षट छे. जे
सर्वनी स्थापना करवानी विधियो नैसर्पनामक निधिमा डोय छे

गणितस्य य उपपत्ती माणुग्माणस्स ज पमाण च ।
घण्णस्स य बीजाणय उपपत्ती पणुए भणिया ॥२॥

सख्या प्रधान डोवाथी व्यवहर्तव्य दीनार वगेरेनु अथवा नारिकेल वगेरेनु तेमज
परीक्ष्य मौक्तिकादिनु कथन तेमज मान-सेतिका आदि रुप तौलनु तेमज जे तौलना
विषयभूत पदार्थनु उन्मान, तुला कर्ष-तौला जेमनु अने जेमना वडे जे तौलवामां आवे
छे जेवा जे पदार्थो छे तेमनु तथा धान्य शादि वगेरे अने पीजनु आ प्रमाणे जे सर्वनी

તુલાકર્ષાદિ તદ્વિપયં યત્તદપિ ડન્માન ખણ્ડગુહાદિ ધરિમજાતીયઘનમિત્યર્થઃ તસ્ય ચ યત્પ્રમાણં ળિઙ્ગવિપરિણામેન તત્પાણ્ડુકે મણિતમિતિ સમ્બન્ધઃ, ધાન્યસ્ય શાલ્યાદે વીજાનાં ચ વાપયોગ્યધાન્યાનામુત્પત્તિઃ પાણ્ડુકે નિઘૌ મણિતા ॥૨॥

અથ તૃતીયં પિઙ્ગલકાધિષ્ઠાતૃદેવસ્ય પિઙ્ગલકનામકનિઘિરૂપં તત્ર સર્વામરણ-વિધિં ચ આહ—“સન્વા” ઇત્યાદિ

તત્ર સર્વા આમરણવિધિઃ યઃ પુરુષાણાં યશ્ચ મહિલાનાં તથા શ્વાનાં ઇસ્તિનાં ચ સ યથૌચિત્યેન પિઙ્ગલનામનિ નિઘૌ મણિતા મૂલે સા મણિતેતિ સ્ત્રીલિંગપ્રયોગઃ નિઘેઃ પ્રાકૃતભાષાયમાર્પત્ત્વાત્ ઇતિ પદે આમરણસ્ય પ્રયોજન ભવતિ તદા તથાભૂતાનિ આમર-ણાનિ નિષ્કાશ્યતે । સર્વા રત્નાધિષ્ઠાતૃદેવસ્ય ચતુર્થ સર્વરત્નાલ્કયનિઘિસ્વરૂપમાહ ‘રયણાઈ’ ઇત્યાદિ । તત્ર રત્નાનિ ચતુર્દશાપિ વરાણિ ચક્રવર્તિનશ્ચક્રાદીનિ ચક્રદણ્ડાસિચ્છત્રચર્મ-મણિકાક્રેણીતિ સપ્ત એકેન્દ્રિયાણિ સેનાપતિ ગાથાપતિ વર્દ્ધકી પુરોહિત અશ્ચ ઇસ્તિ સ્ત્રી સમાલ્યાનિ સેનાપત્યાદીનિ ચ સપ્ત પન્ચેન્દ્રિયાણિ સર્વરત્ને સર્વરત્નાલ્કયે મહાનિઘૌ ઉત્પદ્યન્તે ઇત્યર્થઃ ॥૪॥ અથ પઠ્ચમે મહાપદ્માધિષ્ઠાતૃદેવસ્ય મહાપદ્મનિઘૌ યેષાં યા

उनका तथा धान्य शालि आदि का और बीज का इस तरह इन सब के नापने तोलने की विधि का परिमाण इस दूसरी निधि में रहता है : अर्थात् कौन वस्तु कितनी है : कितने वजन की है : इत्यादि का सब हिसाब किताब यही निधि करती है .

તૃતીય નિધિ—સન્વા આમરણ વિદી પુરિસાણં જા ય હોઈ મહિલાણં ।

આસાણ ય હૃત્થીણ ય પિંગલણિર્હિમિ સા ય મણિયા “૩”

સર્વ પ્રકાર કે પુરુષો કે ઇવં મહિલાઓ કે ઘોડો કે ઇવં હાથિયો કે આમરણો કી વિધિ હિસ તૃતીય પિઙ્ગલ નિધિ મેં રહતી હૈ .

ચતુર્થ નિધિ—રયણાઈ સન્વરયણે ચઢહસ વિ વરાઈ ચક્રવટ્તિસ્સડપ્પજ્જંતે પ્પિદિયાઈ પ્પિદિયાઈ ચ “૪”

સર્વ રત્નનામ કી નિધિમેં ચૌદહ રત્ન જો કો ચક્રવર્તી કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં ઉત્પન્ન હોતે હૈં ઇન

માપવા-તોલવાની વિધિનુ પરિભાષુ ખીબ નિધિમા રહે છે. એટલે કે કઈ વસ્તુ કેટલી, છે, કેટલા વજનવાળી છે, વગેરેનો હિસાબ-કિતાબ એ નિધિકરે છે. તૃતીયનિધિ-

સન્વા આમરણવિદી પુરિસાણં જા ય હોઈ મહિલાણં ।

આસાણ ય હૃત્થીણ ય પિંગલણિર્હિમિ સા મણિયા ॥૩॥

સર્વ પ્રકારના પુરુષોનાસ્ત્રીઓના, ઘોડાઓના અને હાથીઓના આભારણોની વિધિ એ ત્રીજી પિંગલ નિધિમા રહેલી છે.

ચતુર્થનિધિ- રયણાઈ સન્વરયણે ચઢહસ વિ વરાઈ ચક્રવટ્તિસ્સ । ઉત્પન્નંતે પ્પિદિયાઈ, પ્પિદિયાઈ ચ ॥૪॥

સર્વ રત્ન નામક નાધમા ચતુર્દશરત્નો કે જે ચક્રવર્તી ને પ્રાપ્ત હોય છે તે ઉત્પન્ન થાય એ ૧૪ રત્નોમાં સાત રત્નો-ચક્રરત્ન, ડહરત્ન, અસિરત્ન, છત્રરત્ન, ચર્મરત્ન, મહિરત્ન અને કાકલી રત્ન એ બધા રત્નો એકેન્દ્રિય હોય છે. અને એમના, સિવાય સેનાપતિ

उत्पत्तिः येषां या निष्पत्तिश्च सा उच्यते साधारणान्यपि चक्रादीनि सेवनापत्यादीनि एतानि प्रभावात् विशिष्टतराणि भवन्ति रत्नपदं वाच्यानि भवन्तीति 'वत्थाण य' इत्यादि ।

तत्र सर्वेषां वस्त्राणां च या उत्पत्ति तथा सर्वभक्तीनां वस्त्रगत सर्वरचनानां रत्नानां च माळिज्जग्रा रागाणां 'धोव्वणय' त्ति सर्वेषां प्रक्षालनविधीनां च या निष्पत्तिः सा सर्वा महापद्मे महापद्मनामकनिधौ वर्तते महापद्मनिधेः शुक्लरक्तादि गुणोपेतत्वात् वस्त्रादीनां स निधिः स्वच्छरक्तादिभावं वस्त्रादीनां करोति चतुरशीति लक्षणा हस्तीनामश्वाना षण्णवति कोटिसख्यावता मनुष्याणा वस्त्राणि समुत्पाद्य समर्पयतीति ।

अथ षष्ठो निधिः अथ कालाधिष्ठातृदेवस्य कालनिधिस्वरूप कालनामनि निधौ च यानि वस्तूनि सन्ति तान्याह—'काले कालण्णाणं' इत्यादि ।

तत्र काले कालनामनि निधौ कालज्ञानं समस्त ज्योतिः शास्त्रानुबन्धिज्ञानम् तथा त्रिष्वपि वशेषु त्रयो वंशा तीर्थङ्करवंशश्चक्रवर्तिवंशः बलदेववासुदेववंशश्च इत्येतेषु त्रिष्वपि

१४ रत्नों में सात रत्न चक्ररत्न, दण्डरत्न, असिररत्न, छत्ररत्न चर्मरत्न, मणिरत्न एवं काकणीरत्न ये सात-रत्न एकैन्द्रिय होते हैं और इनके अतिरिक्त सेनापति गाथापति, वर्द्धकी, पुरोहित अश्व हस्ति, एव अी ये सात रत्न पञ्चेन्द्रिय होते हैं पंचमी निधि—

वत्थाणय उत्पत्ती णिप्फत्ती चैव सव्वभक्तीणं रंगाण य धोव्वण य सव्वा एसा महापडमे '५'

इस महापद्म नाम की पांचवीं निधि में समस्त प्रकार के बलों की उत्पत्ति तथा वलगत रचनाओं की रंगोकी, और बलों के घुने की विधि निष्पन्न होती हैं । क्योंकि यह महापद्मनिधि शुक्ल रक्त आदि गुणो से युक्त होती है. इसलिये यह निधि बलों को भिन्न २प्रकार के रंगों से रंगना तथा उन्हें धोकर साफ करना, एव चौरासी लाख हाथियों के और घोड़ों के तथा ९६ करोड मनुष्यों के बलों को बनाकर उन्हें समर्पण करना यह सब काम इसी निधि का है ।

छठी निधि—काले कालण्णाणं सव्वपुराणं च तिसु वि वंसेसु ।

सिप्पसयं कम्माणि य तिण्णि पयाए हियकराणि "६"

इस काल नाम की छठी निधि में समस्त ज्योतिःशास्त्रानुबन्धो ज्ञान तथा तीर्थकर वंश चक्रवर्तिवंश और बलदेव वासुदेव वंश इन तीन वशो में जो शुभाशुभ हो चुका है .होने

गाथापति, वर्द्धकी पुरोहित, अश्व, हस्ति अने अी ओ सात रत्नों पञ्चेन्द्रिय होय छे.

पंचमी निधि—वत्थाणय उत्पत्ती णिप्फत्ती चैव सव्वभक्तीणं ।

रंगाण य धोव्वण य सव्वा एसा महापडमे ॥५॥

ओ महापद्मनामक पांचमी निधिमा सर्व प्रकारना वस्त्रोनी उत्पत्ति तेमज वस्त्रगत समस्त रचनाओनी २ गोनी अने वस्त्रोविगेरेने धोवानी विधि निष्पन्न होय छे. केम के ओ महापद्मनिधि शुक्ल-रक्त वगेरे शुभोथी युक्त होय छे. ओथी आ निधि वस्त्रोने भिन्न-भिन्न प्रकारना २ गोथी रगवा तेमज तेमने प्रक्षादित करवा ८४ लाखहाथीओना अने घोडाओना तथा ९६ करौड मनुष्येना वस्त्रोने अनावीने तेमने अर्पवा, ओ अधु काम ओ निधिनु' छे.

छठीनिधि-काले कालण्णाणं सव्वपुराणं च तिसु वि वंसेसु ॥

सिप्पसय कम्माणिय तिण्णि पयाए हियकराणि ॥६॥

ओ काल नामक छठी निधिमा समस्त ज्योतिःशास्त्रानुबन्धी ज्ञान तीर्थकर भगवानने व श, चक्रवर्ती व श अने बलदेव-वासुदेव ओ त्रशु व शोमां ओ शुभाशुभ थड थडथु छे थवानुछे,

તુલાકર્ણાદિ તદ્વિપયં ચત્તદપિ ઝન્માન ચ્ચણ્ડગુડાદિ ધરિમજાતીયઘનમિત્યર્થઃ તસ્ય ચ ચત્પ્રમાણં ક્લિઙ્ગવિપરિણામેન તત્પાણ્ડુકે મણિતમિતિ સમ્બન્ધઃ, ધાન્યસ્ય શાલ્યાદે વીજાનાં ચ વાપયોગ્યધાન્યાનામુત્પત્તિઃ પાણ્ડુકે નિર્ઘૌ મણિતા ॥૨૧॥

અથ તૃતીયં પિઙ્ગલકાષિષ્ટાતૃદેવમ્ય પિઙ્ગલકનામકનિધિરૂપં તત્ર સર્વામરણ-વિધિં ચ આહ—“સવ્વા” ઇત્યાદિ

તત્ર સર્વા આમરણવિધિઃ યઃ પુરુષાણાં યશ્ચ મહિલાનાં તથા શ્વાનાં હસ્તિનાં ચ સ યથૌચિત્યેન પિઙ્ગલનામનિ નિર્ઘૌ મણિતા મૂલે સા મણિતેતિ સ્ત્રીલિંગપ્રયોગઃ નિધેઃ પ્રાકૃતભાષાયમાર્પત્વાત્ ઇતિ પદે આમરણસ્ય પ્રયોજન ભવતિ તદા તથાભૂતાનિ આમર-ણાનિ નિષ્કાશ્યતે । સર્વા રત્નાષિષ્ટાતૃદેવસ્ય ચતુર્થ સર્વરત્નાલ્પનિધિસ્વરૂપમાહ ‘રયણાઈ’ ઇત્યાદિ । તત્ર રત્નાનિ ચતુર્દશાપિ વરાણિ ચક્રવર્તિનશ્ચક્રાદીનિ ચક્રદળ્ડાસિચ્છત્રચર્મ-મણિકાક્રેણીતિ સપ્ત એકેન્દ્રિયાણિ સેનાપતિ ગાથાપતિ વર્ડકી પુરોહિત અશ્ચ હસ્તિ સ્ત્રી સમાલ્યાનિ સેનાપત્યાદીનિ ચ સપ્ત પન્ચેન્દ્રિયાણિ સર્વરત્ને સર્વરત્નાલ્પે મહાનિર્ઘૌ ઉત્પદ્યન્તે ઇત્યર્થઃ ॥૪॥ અથ પઠ્ચમે મહાપદ્માષિષ્ટાતૃદેવસ્ય મહાપદ્મનિર્ઘૌ યેષાં યા

અનકા તથા ધાન્ય શાલિ આદિ કા ઔર વીજ કા ઇસ તરહ ઇન સબ કે નાપને તૌલને કી વિધિ કા પરિમાણ ઇસ દૂસરી નિધિ મેં રહતા હૈ ? અર્થાત્ કૌન વસ્તુ કિતની હૈ ? કિતને વજન કી હૈ ? ઇત્યાદિ કા સબ હિસાબ કિતાબ યહી નિધિ કરતી હૈ .

તૃતીય નિધિ—સવ્વા આમરણ વિહી પુરિસાણં ના ય હોઈ મહિલાણં ।

આસાણ ય હત્થીણ ય પિંગલણિહિમિ સા ય મણિયા “૩”

સર્વ પ્રકાર કે પુરુષો કે એવં મહિલાઓ કે ઘોડો કે એવં હાથિયો કે આમરણો કી વિધિ ઇસ તૃતીય પિઙ્ગલ નિધિ મેં રહતી હૈ .

ચતુર્થ નિધિ—રયણાઈ સવ્વરયણે ચઠહસ વિ વરાઈ ચક્રકવદ્દિસ્સ ડપ્પઝ્જંતે. પર્મિદિયાઈ પંચિદિયાઈ ચ “૪”
સર્વ રત્નનામ કી નિધિમેં ચૌદહ રત્ન જો કો ચક્રવર્તી કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં ઉત્પન્ન હોતે હૈં ઇન

આપવા—તેલવાની વિધિતુ પરિમાણ બીજા નિધિમા રહે છે. એટલે કે કઈ વસ્તુ કેટલી, છે, કેટલા વજનવાળી છે, વગેરેનો હિસાબ—કિતાબ એ નિધિકરે છે. તૃતીયનિધિ—

સવ્વા આમરણવિહી પુરિસાણ ના ય હોઈ મહિલાણં ।

આસાણ ય હત્થીણ ય પિંગલણિહિમિ સા મણિયા ॥૩॥

સર્વ પ્રકારના પુરુષોના સ્ત્રીઓના, ઘોડાઓના અને હાથીઓના આલસણોની વિધિ એ ત્રીજી પિંગલ નિધિમા રહેલી છે.

ચતુર્થનિધિ—રયણાઈ સવ્વરયણે ચઠહસ વિ વરાઈ ચક્રકવદ્દિસ્સ । ડપ્પઝ્જંતે પર્મિદિ-યાઈ, પંચિદિયાઈ ચ ॥૪॥

સર્વ રત્ન નામક નાધિમાં ચતુર્દશરત્નો કે જે ચક્રવર્તીને પ્રાપ્ત હોય છે તે ઉત્પન્ન થાય એ ૧૪ રત્નોમાં સાત રત્નો—ચક્રરત્ન, દહરત્ન, અસિરત્ન, છત્રરત્ન, ચર્મરત્ન, મહિરત્ન અને કાકલી રત્ન એ બધા રત્નો એકેન્દ્રિય હોય છે. અને એમના, સિવાય સેનાપતિ

उत्पत्तिः येषां या निष्पत्तिश्च सा उच्यते साधारणान्पि चक्रादीनि सेवनापत्यादीनि एतानि प्रभावात् विशिष्टतराणि भवन्ति रत्नपदं वाच्यानि भवन्तीति 'वत्थाण य' इत्यादि ।

तत्र सर्वेषां वस्त्राणां च या उत्पत्ति तथा सर्वभक्तीनां वस्त्रगत सर्वरचनानां रङ्गानां च माञ्जिष्ठा रागाणा 'घोव्वणय' त्ति सर्वेषां प्रक्षालनविधीनां च या निष्पत्तिः सा सर्वा महापद्मे महापद्मनामकनिधौ वर्तते महापद्मनिधेः शुक्लरक्तादि गुणोपेतत्वात् वस्त्रादीनां स निधिः स्वच्छरक्तादिभावं वस्त्रादीनां करोति चतुरशीति लक्षणां हस्तीनामश्वानां षण्णवति कोटिसख्यावता मनुष्याणा वस्त्राणि समुत्पाद्य समर्पयतीति ।

अथ षष्ठो निधिः अथ कालाधिष्ठातृदेवस्य कालनिधिस्वरूप कालनामनि निधौ च यानि वस्तूनि सन्ति तान्याह—'काले कालणाणं' इत्यादि ।

तत्र काले कालनामनि निधौ कालज्ञानं समस्त ज्योतिः शास्त्रानुबन्धिज्ञानम् तथा त्रिष्वपि वंशेषु त्रयो वंशा तीर्थङ्करवंशश्चक्रवर्तिवंशः बलदेववासुदेववंशाश्च इत्येतेषु त्रिष्वपि

१४ रत्नों में सात रत्न चक्ररत्न, दण्डरत्न, असिररत्न, छत्ररत्न चर्मरत्न, मणिरत्न एवं काकणीरत्न ये सात-रत्न एकेन्द्रिय होते हैं और इनके अतिरिक्त सेनापति गाथापति, वर्द्धकी, पुरोहित अ.स्व हस्ति, एव स्त्री ये सात रत्न पञ्चेन्द्रिय होते हैं पंचमी निधि—

वत्थाणय उत्पत्ती णिप्फत्ती चैव सव्वभत्तीणं रंगाण य घोव्व ण य सव्वा एसा महापउमे '५' इस महापद्म नाम की पांचवीं निधि में समस्त प्रकार के वस्त्रों की उत्पत्ति तथा वस्त्रगत रचनाओं की रंगोक्ती, और वस्त्रों के धोने की विधि निष्पन्न होती है । क्योंकि यह महापद्मनिधि शुक्ल रक्त आदि गुणों से युक्त होती है। इसलिये यह निधि वस्त्रों को भिन्न २ प्रकार के रंगों से रंगना तथा उन्हें धोकर साफ करना, एवं चौरासी लाख हाथियों के और घोड़ों के तथा ९६ करोड़ मनुष्यों के वस्त्रों को बनाकर उन्हें समर्पण करना यह सब काम इसी निधि का है ।

छठो निधि—काले कालणाण सव्वपुराणं च तिसु वि वंसेसु ।

तिप्पसयं कम्माणि य तिण्णि पयाए हियकराणि "६" इस काल नाम की छठी निधि में समस्त ज्योतिःशास्त्रानुबन्धी ज्ञान तथा तीर्थंकर वंश चक्रवर्तिवंश और बलदेव वासुदेव वंश इन तीन वंशों में जो शुभाशुभ हो चुका है .इने

गाथापति, वर्द्धकी पुरोहित, अश्व, हस्ति अने स्त्री अने सात रत्नों पञ्चेन्द्रिय होय छे.

पंचमी निधि—वत्थाणय उत्पत्ती णिप्फत्ती चैव सव्वभत्तीणं ।

रंगाण य घोव्वण य सव्वा एसा महापउमे ॥५॥

अने महापद्मनामक पांचवीं निधिमा सर्वा प्रकारना वस्त्राणी उत्पत्ति तेमज्ज वस्त्रगत समस्त रचनाओंनी र गोनी अने वस्त्राविगेशेने धैवानी विधि निष्पन्न होय छे. तेम के अने महापद्मनिधि शुक्ल-रक्त वगैरे शुद्धीथी युक्त होय छे. अथी आ निधि वस्त्राणे भिन्न-भिन्न प्रकारना र गोथी रगवा तेमज्ज तेमने प्रक्षालित करवा ८४ लाखहाथीओंना अने घोडाओंना तथा ९६ करौड मनुष्येना वस्त्रेने पनावीने तेमने अर्पणां, अने अधु काम अने निधिसुं छे.

छठीनिधि—काले कालणाणं सव्वपुराणं च तिसु वि वंसेसु ॥

तिप्पसयं कम्माणिय तिण्णि पयाए हियकराणि ॥६॥

अने काल नामक छठी निधिमा समस्त ज्योतिःशास्त्रानुबन्धी ज्ञान तीर्थंकर भगवानने वंश, अश्वती वंश अने बलदेव-वासुदेव अने त्रयु वंशोंमा अने शुभाशुभ धर्म युक्त छे थावावुछे,

वंशेषु सर्वपुराणं च यद्भाष्यं यच्च पुराणं व्यतीतम् उपलक्षणात् वर्तमानं च शुभाशुभं तत्सर्वम् अत्र कालाख्यनिधौ वर्तते इतो महानिधितः ज्ञायते इत्यर्थः तथा शिल्पशतं विज्ञानशतम् घटलोहचित्ररस्त्रनापितशिल्पानां पञ्चानामपि प्रत्येकं विंशतिभेदात् कर्माणि च कृष्यादीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानि त्रीणि एतानि प्रजायाः हितकराणि निर्वाहाभ्युदयहेतुत्वात् एतत् सर्वम् अत्र कालनामनि निधौ अभिधीयते । अत्र कालनिधौ मूलोक्तानि सर्वाण्यपि वस्तुज्ञानानि विद्यन्ते तानि च पुण्यप्रभावात् चक्रवर्त्तिनः समीपे समुपस्थापितानि भवन्तीत्यर्थः । अथ सप्तमो निधिः महाकालाधिष्ठातृदेवस्य सप्तमं महाकालनिधिस्वरूपं तत्र च येषामुत्पत्तिः तामाह—'लोहस्स य इत्यादि ।

मूलम्—लोहस्स उत्पत्ती होइ महाकालि आगराणं च ।

रूपस्स सुवर्णस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं ॥७॥

छाया—लोहस्य चोत्पत्ति भवति महाकाले चाकराणाम् ।

रूप्यस्य सुवर्णस्य च मणिमुक्ताशिला प्रवालानाम् ॥७॥

तत्र लोहस्य च नानाविधस्य उत्पत्ति भवति महाकाले महाकालनामनि निधौ' तत्र तदुत्पत्तिराख्यायते इत्यर्थः, तथा रूप्यस्य सुवर्णस्य च मणिमुक्ताशिलाप्रवालानाम् तत्र मणयः—चन्द्रकान्तादयः मुक्ताः मुक्ताफलानि शिलाः स्फटिकादयः प्रवालाश्च इति

वाला है एवं हो रहा है वह सब रहता है . तात्पर्य यह है कि इम निधि से समस्त शुभाशुभ जाना जाता है शिल्पशत—घर-लोह, चित्र, वस्त्र एवं नापित इन पांच शिल्पो के प्रत्येक शिल्प के २० - २० भेद है इस तरह से यह शिल्पशत तथा कृषि वाणिज्य आदि तीन कर्म—जो कि उत्तम, मध्यम एवं जघन्य के भेद से तीन प्रकार के हैं और जिन से प्रजाजनों का निर्वाह होता है उनका अभ्युदय होता है—जाने जाते हैं ।

सप्तमनिधि-लोहस्सय उत्पत्ती होइ महाकालि आगराणंच रूपस्स सुवर्णस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं।

इस महाकाल नामकी निधि में नाना प्रकार की लोहे की उत्पत्ति बताई गई है . तथा चांदी, सोना मणि, मुक्ता शिला-स्फटिक आदि, एवं प्रवाल-मूंगा इत्यादि की खानों की उत्पत्ति बताई गई है ।

यथ रद्धसु छे ते अणु रडे छे तात्पर्यं आ प्रभाणु छे अे निधिथी अमस्त शुभ-अशुभ आशुवामा आवे छे शिल्पशत घट-लोह, चित्र, वस्त्र तेमञ नापित अे पांच शिल्पोना इरेके इरेके शिल्पना-२० २० बेदो छे आ प्रभाणु अ शिल्पशत तेमञ कृषि, वाणिज्य वगेरे त्रषु कर्म के अे उत्तम मध्यम अने जघन्यना बेदथी त्रषु प्रकारना छे अने जेमनाथी प्रवालानो-नोनिर्वाह थाय छे, तेमने अणुदय थाय छे—अणुवामा आवे छे

सप्तमनिधि-लोहस्स य उत्पत्ती होइ महाकालि आगराणंच ।

रूपस्स सुवर्णस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं ॥८॥

अे महाकाल नामके निधिमां अनेके प्रकारना दोषांठनी उत्पत्ति अताववामां आवी छे. तेम आंही, सोनामणि, मुक्ताशिला स्फटिक वगेरे तेमञ प्रवाल-मूंगा वगेरेनी भाणुनी उत्पत्ति अताववामां आवी छे,

ते तथा तेषां च सम्पन्निनाम् आकराणां 'खानि' इति प्रसिद्धानामुत्पत्तिर्भवति महाकाल-
नाम्निनिधौ इति योगा ।

अथाष्टमो निधिः अष्टमे माणवकाधिष्ठातृदेवस्य माणवकनिधिस्वरूपं तत्र च
यानि सन्ति तान्याह — 'जोहाण य' इत्यादि ।

तत्र योधानां शूराणां च शत्रूनां कातराणामुत्पत्तिरभिधीयते तथा आवरणानां
च शरीररक्षकाणां वस्तूनां कवचादीनामुत्पत्तिर्ज्ञानं च यत्र प्रहरणानां स्रग्नादीनां च सर्वा
च युद्धनीतिः गरुड शकटचक्रव्यूहरचनादि लक्षणा सर्वापि च दण्डनीतिः दण्डेन उप-
लक्षिता नीतिर्दण्डनीतिः सामदामदण्डभेदतश्चतुर्विधा माणवकनाम्नि निधौ अभिधीयते
ततः प्रवर्चते ज्ञायते इत्यर्थः । अथ नवमो निधिः अथ नवमे शङ्खाधिष्ठातृदेवस्य
शङ्खनामक महानिधिस्वरूपं तत्र च येषामुत्पत्तिस्तामाह— 'णट्ट विही' इत्यादि ।

तत्र सर्वोऽपि मनोहादजनक नृत्यविधिः द्वात्रिंशत्सहस्रभेदभिन्नगात्रसचालनलक्षण-
नाट्यकरणप्रकारः' सर्वोऽपि च नाटकविधिः द्वात्रिंशत् भेदभिन्न अभिनेयप्रवचन-

अष्टम निधि-जोहाण य उत्पत्ती आवरण णं च पहरणं च सन्वा य जुद्धणीई मणवगे दंडणीइय' ८'

इस माणवक नामकी आठवींनिधि में योद्धामो की कायर को आवरणो-शरीररक्षक
कवचादि वस्तुओं की समस्त प्रकार के प्रहरणो-हरियारो की युद्ध नीति-गरुड, शकट, चक्रव्यूह
आदिरूप से रचना वाछे युद्धो की नीति की तथा साम-दाम, दण्ड, एव भेद इन चार प्रकार
की राजनितियों की उत्पत्ति कही गई होनी है . अर्थात् इप निधि से इन समस्त वस्तुओं की
उत्पत्ति का ज्ञान चक्रवर्ती को प्राप्त होता है ।

नववीं निधि-णट्टविहीणाडगविहो कव्वस्स य चउच्चिहस्स उत्पत्ती

सखे महाणिहिम्मि तुडिअंगाणं च सर्वेसि "९"

इस शङ्खनाम की निधि में नाट्यविधि की ३२ हजार नाटकाभिनयरूप अंग सचालन
करने के प्रकार की नाटक विधि ३२ प्रकार के नृत्य गीत वाजों का अभिनेय वस्तु से मिलता

अष्टमनिधि-जोहाण य उत्पत्ती आवरणं च पहरणं च ।

सन्वा य जुद्धणीई माणवगे दंडणीइ य ॥८॥

ये भाष्यक नामक आठवीं निधिमा योद्धामोनी, कायरानी-आवरणोनी शरीर रक्षक
कवचादि वस्तुओंनी समस्त प्रकारना प्रहरणो शस्त्रो नी युद्धनीति गरुड, शकट, चक्र-
व्यूह पगेरे इपमा रचनावाछा युद्धोनी नीतिनी तेसअ साम, दाम दण्ड अने वेद ये चार
प्रकारनी नीतिओनी उत्पत्ति कहेवाभा आवे छे अट्टवे के ये निधिथी ये समस्त वस्तुओंनी
उत्पत्तिनु ज्ञान चक्रवर्तीने प्राप्त थाय छे

नवमी निधि-णट्टविहीणाडगविहो कव्वस्स य चउच्चिहस्स उत्पत्ती ।

सखे महाणिहिम्मि तुडिअंगाणं च सर्वेसि ॥९॥

ये श अ नामक निधिमा नाट्यनिधिनी उर २६अ नाटकाभिनय इप अ ग अत्यासन
करवाना प्रकारोनी नाट्यविधि उर प्रकारना नृत्य-गीतवाजोनी अभिनय वस्तुथी स अद्ध प्रदर्श-
३०८

वंशेषु सर्वपुराणं च यद्भाष्यं यच्च पुराणं व्यतीतम् उपलक्षणात् वर्तमानं च शुभाशुभं तत्सर्वम् अत्र कालारण्यनिधौ वर्तते इतो महानिधितः ज्ञायते इत्यर्थः तथा शिल्पशतं विज्ञानशतम् घटलोहचित्ररस्त्रनापितशिल्पानां पञ्चानामपि प्रत्येकं विंशतिभेदात् कर्माणि च कृष्यादीनि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानि त्रीणि एतानि प्रजायाः हितकराणि निर्वाहाभ्युदयहेतुत्वात् एतत् सर्वम् अत्र कालनामनि निधौ अभिधीयते । अत्र कालनिधौ मूलोक्तानि सर्वाण्यपि वस्तुज्ञानानि विद्यन्ते तानि च पुण्यप्रभावात् चक्रवर्त्तिनः समीपे समुपस्थापितानि भवन्तीत्यर्थः । अथ सप्तमो निधिः महाकालाधिष्ठातृदेवस्य सप्तमं महाकालनिधिस्वरूपं तत्र च येषामुत्पत्तिः तामाह—‘लोहस्स य इत्यादि ।

मूलम्—लोहस्स उत्पत्ती होइ महाकालि आगराणं च ।

रूपस्स सुवण्णस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं ॥७॥

छाया—लोहस्य चोत्पत्ति र्भवति महाकाले चाकराणाम् ।

रूप्यस्य सुवर्णस्य च मणिमुक्ताशिला प्रवालानाम् ॥७॥

तत्र लोहस्य च नानाविधस्य उत्पत्ति र्भवति महाकाले महाकालनामनि निधौ तत्र तदुत्पत्तिराख्यायते इत्यर्थः, तथा रूप्यस्य सुवर्णस्य च मणिमुक्ताशिलाप्रवालानाम् तत्र मणयः—चन्द्रकान्तादयः मुक्ताः मुक्ताफलानि शिला स्फटिकादयः प्रवालश्च इति वांछा है एवं हो रहा है वह सब रहता है . तात्पर्य यह है कि इस निधि से समस्त शुभाशुभ जाना जाता है शिल्पशत—घर-लोह, चित्र, वस्त्र एवं नापित इन पांच शिल्पो के प्रत्येक शिल्प के २० - २० भेद है इस तरह से यह शिल्पशत तथा कृषि वाणिज्य आदि तीन कर्म—जो कि उत्तम, मध्यम एवं जघन्य के भेद से तीन प्रकार के हैं और जिन से प्रजाजनों का निर्वाह होता है उनका अभ्युदय होता है—जाने जाते हैं ।

सप्तमनिधि-लोहस्सय उत्पत्ती होइ महाकालि आगराणं च रूपस्स सुवण्णस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं

इस महाकाल नामकी निधि में नाना प्रकार की लोहे की उत्पत्ति बताई गई है . तथा चांदी, सोना मणि, मुक्ता शिला-स्फटिक आदि, एवं प्रवाल मूंगा इत्यादि की खानों की उत्पत्ति बताई गई है ।

थय रइयु छे ते षधु रडे छे तात्पर्यं आ प्रभाणु छे ओ निधिथी अमस्त शुभ-अशुभ अणुवामा आवे छे. शिल्पशत घट-लोह, चित्र, वस्त्र तेभज नापित ओ पाय शिल्पोना इरेके इरेके शिल्पना-२० २० भेदो छे आ प्रभाणु अ शिल्पशत तेभज कृषि, वाणिज्य वगेरे त्रषु कर्म के जे उत्तम मध्यम अने जघन्यना भेदथी त्रषु प्रकारना छे अने जेभनाथी प्रजाजो-नोनिर्वाह थाय छे, तेभनो अणुदय थाय छे—अणुवामा आवे छे

सप्तमनिधि-लोहस्स य उत्पत्ती होइ महाकालि आगराणं च ।

रूपस्स सुवण्णस्स य मणिमुत्तसिलप्पवालाणं ॥८॥

ओ महाकाल नामके निधिमां अनेके प्रकारना लोभंडनी उत्पत्ति अताववामा आवी छे तेभ थांडी, सोनामणि, मुक्ताशिला स्फटिक वगेरे तेभज प्रवाल-मूंगा वगेरेनी पाणुनी उत्पत्ति अताववामां आवी छे,

ते तथा तेषां च सम्बन्धिनाम् आकराणां 'स्त्रानि' इति प्रसिद्धानामुत्पत्तिर्भवति महाकाल-
नाम्निनिधौ इति योगा ।

अथाष्टमो निधिः अष्टमे माणवकाधिष्ठातृदेवस्य माणवकनिधिस्वरूपं तत्र च
यानि सन्ति तान्याह — 'जोहाण य' इत्यादि ।

तत्र योधानां शूराणां च शब्दात् कातराणामुत्पत्तिरभिधीयते तथा आवरणानां
च शरीररक्षकाणां वस्तूनां कवचादीनामुत्पत्तिर्ज्ञानं च यत्र प्रहरणानां खट्वादीनां च सर्वा
च युद्धनीतिः गरुड शकटचक्रव्यूहरचनादि लक्षणा सर्वापि च दण्डनीतिः दण्डेन उप-
लक्षिता नीतिर्दण्डनीतिः सामदामदण्डभेदतश्चतुर्विधा माणवकनाम्नि निधौ अभिधीयते
ततः प्रवर्तते ज्ञायते इत्यर्थः । अथ नवमो निधिः अथ नवमे शङ्खाधिष्ठातृदेवस्य
शङ्खनामक महानिधिस्वरूपं तत्र च येषामुत्पत्तिस्तामाह— 'णट्ट विही' इत्यादि ।

तत्र सर्वोऽपि मनोहादजनक नृत्यविधिः द्वात्रिंशत्सहस्रभेदभिन्नगात्रसचालनलक्षण-
नाट्यकरणप्रकारः' सर्वोऽपि च नाटकविधिः द्वात्रिंशत् भेदभिन्न अभिनेयप्रवचन-

अष्टम निधि-जोहाण य उत्पत्ती आवरणं च पहरणं च सन्वा य जुद्धणीई गणत्रगे दंडणीय '८'

इस माणवक नामकी आठवीं निधि में योद्धाओं की कायरा को आवरणो-शरीररक्षक
कवचादि वस्तुओं की समस्त प्रकार के प्रहरणों हथियारों की युद्ध नीति-गरुड, शकट, चक्रव्यूह
आदिरूप के रचना वाद्य युद्धों की नीति की तथा साम-दाम, दण्ड, एव भेद इन चार प्रकार
की राजनितियों को उत्पत्ति कहो गई होनी है . अर्थात् इन निधि से इन समस्त वस्तुओं को
उत्पत्ति का ज्ञान चक्रवर्ती को प्राप्त होता है !

नववीं निधि-णट्टविहीणाडगविहो कव्वस्स य चउत्विहस्स उत्पत्ती
सखे महाणिहिम्मि तुडिअंगाणं च सर्वेसि "९"

इस शङ्खनाम की निधि में नाट्यविधि की ३२ हजार नाटकाभिनयरूप अंग सचालन
करने के प्रकार की नाटक विधि ३२ प्रकार के नृत्य गीत वाजों का अभिनेय वस्तु से मिलता

अष्टम निधि-जोहाण य उत्पत्ती आवरणं च पहरणं च ।

सन्वा य जुद्धणीई माणवगे दंडणीह य ॥८॥
ये माणवक नामके आठमो निधिमा योद्धाओनी, कायराओनी-आवरणोनी शरीर रक्षक
कवचादि वस्तुओनी समस्त प्रकारना प्रहरणो शस्त्रो नी युद्धनीति गरुड, शकट, चक्र-
व्यूह वगेरे रूपमा रचनावाणा युद्धोनी नीतिनी तेमज साम, दाम दण्ड अने वेद ये यार
प्रकारनी नीतिओनी उत्पत्ति कहेवाभा आवे छे अट्टवे के ये निधिथी ये समस्त वस्तुओनी
उत्पत्तिनु ज्ञान चक्रवतीने प्राप्त थाय छे

नवमी निधि-णट्टविहीणाडगविहो कव्वस्स य चउत्विहस्स उत्पत्ती ।

सखे महाणिहिम्मि तुडिअंगाणं च सर्वेसि ॥९॥
ये शङ्ख नामके निधिमा नाट्यनिधिनी ३२ रूढअ नाटकाभिनय रूप अंग सचालन
करवाना प्रकारनी नाट्यविधि ३२ प्रकारना नृत्य-गीतवाजोनी अभिनय वस्तुथी स अर्द्ध प्रदर्श-

प्रपञ्चनप्रकारः नृत्यवाद्यगीतादि यावन्नाटकम् प्रकारः इत्यर्थः तथा चतुर्विधस्य काव्यस्य ग्रन्थस्य धर्म १ अर्थ २ काम ३ मोक्ष ४ उक्षगपुरुषार्थनिबद्धस्य अथवा संस्कृत १ प्राकृता २ पभ्रंश ३ सकीर्ण ४ भाषानिवद्धस्य गद्य १ पद्य २ गेय ३ चौर्ण ४ पदबद्धस्य ना उत्पत्तिः निष्पत्तिः तद्विधिः, तत्र आद्यं काव्यचतुष्के धर्मार्थादि प्रमिद्धम् द्वितीयचतुष्के संस्कृतप्राकृतद्वयं प्रसिद्धमेव अपभ्रंशः तत्तद्देशेषु शुद्धतया भाषितम् सङ्कीर्णभाषा शौरसेन्यादि भाषा तन्निबद्धस्य तथा तृतीयचतुष्के गद्यम् अञ्छन्दोबद्धं शस्त्रपरिज्ञाध्ययनवत्, पद्यं-छन्दोबद्धं विमुक्त्यध्ययनवत् गेयम् निषाद्य ऋषभ-गान्धार-षड्ज-मध्यम-धैवत, परिशाधित तन्त्रीलयसमन्वितं गेयं भवति तत्र गान्धाररीत्या बद्ध परिशोत्रितं गानयोग्यम्, गेयमिति, चौर्णम् बाहुलकविधिवहुलं गमपाठबहुलं निपातबहुलं निपाताव्ययबहुलम् ब्रह्मचर्याध्ययनप-

हुषा प्रदर्शन के प्रकार को तथा धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों के प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों को अथवा-संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश और सकीर्ण इन चार प्रकार की भाषाओं में निबद्ध ग्रन्थों को अथवा गद्य, पद्य, गेय और चौर्ण पदों से बद्ध ग्रन्थ-इनको और समस्त प्रकार के नृटिताङ्गों की निष्पत्ति होती है. इनमें धर्मार्थादि पुरुषार्थ चतुर्थष्टय से निबद्ध जो चतुर्विध काव्य है वह तो प्रसिद्ध है तथा द्वितीय प्रकार का चतुर्विध काव्यभी जो कि संस्कृत प्राकृत भाषाओं में निबद्ध हुआ है. प्रसिद्ध है, अपभ्रंश काव्य निबद्ध होता है. तथा शौरसेनी आदि भाषाओं में जो काव्य निबद्ध होता है वह सकीर्ण भाषा निबद्ध काव्य है। तृतीय चतुष्क वह है जो भिन्न भिन्न देशों की भाषाओं में जो काव्य शस्त्र परिज्ञाध्ययन की तरह छन्दो रचना से निबद्ध नहीं होता है वह पद्य काव्य है। निषाद्य, ऋषभ गान्धार षड्ज मध्यम और धैवत इन स्वरो में निबद्ध होता है और इन्हीं के अनुरूप तन्त्रीलय आदि से समन्वित होता हुआ गाने के लायक होता है वह गेय काव्य है जो काव्य ब्रह्मचर्याध्ययन पद की तरह बाहुलक विधि बहुल होता है। गम पाठ बहुल होता है। निपात बहुल होता है निपात अव्यय

नना प्रकारनी तेमन् धर्म, अर्थ, काम अने मोक्ष अने पुरुषार्थानु प्रतिपादन करनारा ग्रन्थानी अथवा संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश अने सकीर्ण अने अर प्रकरनी भाषाओंमा निबद्ध ग्रन्थानी अथवा गद्य-पद्य गेय, अने चौर्ण पदो थी निबद्ध ग्रन्थ-अने समस्त प्रकारना नृटिताङ्गोनी निष्पत्ति होय छे अना अे धर्मार्थादि पुरुषार्थ अतुष्टयशी निबद्ध अतुर्विध काव्यो छे ते तो प्रसिद्ध छे अने तेमन् द्वितीय प्रकारना अतुर्विध काव्यो पद्य के अे संस्कृत, प्राकृत भाषाओंमा निबद्ध थयेलां छे, प्रसिद्ध छे अपभ्रंश काव्य ते छे के अे भिन्न भिन्न देशोनी भाषाओंमा निबद्ध होय छे तथा शौरसेनी वगेर भाषाओंमा अे काव्यो निबद्ध होय छे ते सकीर्ण भाषा निबद्ध काव्य छे. तृतीय अतुष्कमा अे काव्य शास्त्र परिज्ञाध्ययननी अे अे छन्दोरचनाशी निबद्ध होतुनयो ते पद्य काव्य छे निषाद्य, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम अने धैवत अने स्वरोमा निबद्ध होय छे अने अेभना अनुरूप तन्त्रीलय वगेरयो अे अे अने गानलायक होय ते गेयकाव्य कहेवाय छे. अे काव्य ब्रह्मचर्याध्ययन प. नी अे बाहुलक बहुल होय छे गम पाठ बहुल होय छे निपात

दवत् एतावद्गद्यादि चतुष्पदवद्धस्य वा उत्पत्तिः गङ्गनामनि महानिधौ भवति । तथा त्रुटिताङ्गानां च तूर्याङ्गानां सर्वेषां गेयपदेन कथितानां वा तथा चाद्यभेदभिन्नानां मुत्पत्तिः शङ्खे महानिधौ भवतीति । यदा चक्रार्त्नी एव विजयं करोति तदनन्तरं गङ्गा-मुखवासिनो नवनिधयश्चक्रवर्त्तिनो भाग्योदयात् पातालमार्गेण चक्रप्रत्यभिष्टिनग्रामे आगत्य वसति तथा यदा चक्रवर्त्तिनां प्रयोजनं जायते तदा ते निधयश्चक्रवर्त्ति पाञ्च भजन्ते तानेव निधीन् साधारणप्रकारेण अतः पर निरूपयन्नाह - 'चक्रद्व' इत्यादि ।

तत्र चक्राष्टप्रतिष्ठानाः प्रत्येकमष्टसु चक्रेषु प्रतिष्ठानम् अवस्थानं येषां ते तथा, यत्र यत्र वाहयन्ते तत्र तत्र अष्टचक्रप्रतिष्ठाना एव वहन्ति, अत्र अष्टपद चक्रगन्धान् पूर्वं प्रयोक्तव्य पर प्रयोगः प्राक्नत्वादवसेयः अष्टोत्सेधाश्च अष्टो योजनानि उत्सेध उच्चैस्त्वं येषां ते तथा नव च योजनानीति गम्यते विष्णुम्भाः विष्णुम्भेण विस्तारेण नवयोजन विस्तारा इत्यर्थः, द्वादशयोजनानि दीर्घाः आयामाः मञ्ज्रावत्सस्थिता जाह्नव्याः

बहुल होता है । वह चौणकाव्य है । इस आठवीं गङ्गा निधि में ही समस्त प्रकार के वाजों की उत्पत्ति होती है । जब चक्रवर्ती विजय प्राप्त करने को निकलता है तब गंगा मुखवासी ये नौ निधिया चक्रवर्ती के भाग्योदय से पाताल मार्ग से आकर चक्रवर्ती के रास्ते में आनेवाले ग्राम में आकर वस जाती है । और जब चक्रवर्ती को कोई मतलब हांसिल करना होता है काम पड़ता है तो फिर ये चक्रवर्ती के पाम आ जाती है ।

चक्रद्व पदद्वया अद्दुस्सेहा य णवय विकखमा । बारह दीहा मंजूस सठिया जणहवी मुहे ॥१०॥

वे प्रत्येक निधिका अवस्थान आठ २ चक्रके ऊपर रहता है, जहा २ ये लेजाई जाती हैं वहा वहां वे आठ चक्रों के ऊपर प्रतिष्ठित हुइ हो जाती हैं । इनका उत्सेध-उँचाईआठ २ योजन का होता है, विस्तार इनका नौ योजन का होता है बारह योजन की इनकी लम्बाई-होती है तथा इनका आकार मजूषा के जैसा होता है जहां से गंगा समुद्र में प्रवेश करती है वहां पर ये नौनिधिया रहती है ।

अहुल डोय छे निपात अव्यय अहुल डोय छे ते चौणु काव्य छे जे आठमी शय निधि-मा सर्व प्रकारना वाधोनी उत्पत्ति डोय जे न्यारे चक्रवर्ती विजय प्राप्तकरवा नीकणे छे त्तारे गङ्गामुखवासी जे नव निधियो चक्रवर्तीना भाग्योदयथी पाताण मार्गथी आवीने चक्रवर्तीना भाग्यमा पडनास आभोभा आवीने वसी जय छे अने न्यारे चक्रवर्तीने कर्ध-पञ्च कार्यनी सिद्धि भेजववी डोय छे कर्ध काम आवी जय छे-त्यारे जे सिद्धियो चक्रवर्ती पास आवी जय छे ।

चक्रद्व पदद्वया अद्दुस्सेहा य णवय विकखमा । बारहदीहा मंजूस संठिया जाणहवीमुहे ॥१०॥
जोभाथी द्वरेक निधिसु अवस्थान आठ-आठ चक्रनी उपर रहै छे न्यां न्यां जे निधियो वरजनामा आवे छे त्या-त्या तेजो आठयो नी उपर प्रतिष्ठित थर्धनेज जय छे जेभनी उँचाय (उत्सेध) आठ आठ योजन जेटवी डोय छे, जेभनो विस्तार ९ योजन जेटवी डोय छे १२ योजन जेटवी जेभनी ल पार्ध डोय छे तेभज जेभनो आकार

ગજ્ઞાયા મુખે યત્ર મહાનદીગજ્ઞા સમુદ્રં પ્રવિશતિ તત્ર एते नवनिधय सन्तीत्यर्थः तथा तत्र वैदूर्यमणिकपाटाः वैदूर्यमणिमयाः खचिताः कपाटाः येषां ते तथाभूताः, कनकमयाः सौवर्णाः, पुनः कथंभूताः विविधरत्नप्रतिपूर्णाः विविधैः अनेकप्रकारकैः रत्नैः प्रतिपूर्णाः शशिखरचक्रलक्षणाः शशिखरचक्राकाराणि लक्षणानि चिह्नानि येषां ते तथाभूताः अनुसमबद्धनोपपत्तिकाः अनुरूपा, समा अविपमा, वदनोपपत्तिः द्वाररचना येषां ते तथाभूताः नवनिधयः । तथा—

तत्र पल्योपमस्थितिका पल्योपमा स्थिति येषां ते तथाभूताः, निधिसदृग्नामानः निधिसदृशानि नामानि येषां ते तथाभूताः खलु निश्चये यत्र च निधिषु ते देवाः येषां देवानां ते एव निधयः आवासाः आश्रयाः कीदृशास्ते अक्रयाः अक्रयणीयाः किमर्थ-मित्याह—आधिपत्याय आधिपत्यहेतवे कोऽर्थं तेषामाधिपत्यार्थीं काश्चित् मूल्यदानादिभिः कर्तुं न शक्नोति इति किन्तु पूर्वसुचरितमहिम्नैरेत्यर्थः

वेरुलिय મણિકવાડા કળમયા ત્રિવિહરયણપહિપુણ્ણા ।

સસિસૂર ચક્રલક્ષણ અણુસમવયણોવવત્તીયા ॥૧૧॥

इनके किवाड वैदूर्यमणि के बने हुए होते हैं ये स्वयं स्वर्णमय होते है अनेक रत्नो से ये प्रतिपूर्ण होते हैं. इनमें जो चिह्न होते हैं वे शशि के सूर्य के और चक्र के आकार के होते हैं. इनके द्वारों की रचना अनुरूप और सम-अविपम होती है ।

પલિબોવમદ્વિર્દેયા ણિહિસરણામા ય તત્થ સ્ખલુ દેવા । જેસિતે આવાસા અવિકજ્ઞા આહિવચ્ચા ય ॥૧૨॥

प्रत्येक निधि के रक्षक देव की स्थिति एक पल्योपम की होती है जैसा निधि कानाम है वैसा ही रक्षक देवों का भी नाम होता है ये देव उन्हीं निधियों के सहारे पर रहते हैं. अतः ये निधियां उसके आवासरूप होती है.इन्हें कोई आधिपत्य के लिये खरीद नहीं सकता है ये तो भाग्यशाली चक्रवर्तियों को पूर्वचरित पुण्य प्रभाव से ही प्राप्त होती है ॥१२॥

મજ્જા (પેટી) એવો હોય છે જયાથી ગગા સમુદ્રમાં પ્રવેશ કરે છે ત્યાં એ નવ-નિધિઓ રહે છે

वेरुलियंमणिकवाडा कणमया विविहरयणपडिपुण्णा ।

ससिसूरचक्रलक्षण अणुसमवयणीववत्तीया ।११॥

એમના કમાડો વૈદ્યમણિના બનેલા હોય છે. એ સ્વર્ણમય હોય છે. અનેક રત્નોથી એ પ્રતિપૂર્ણ હોય છે એમનામાં જે ચિહ્નો હોય છે તે શરી, સૂર્ય અને ચક્રાકાર હોય છે એમની દ્વારોની રચના અનુરૂપ અને સમ-અવિપમ હોય છે

પલિબોવમદ્વિર્દેયા ણિહિસરણામાય તત્થસ્ખલુ દેવા ।

જેસિતે આવાસા અવિકજ્ઞા આહિવચ્ચા ય ॥૧૨॥

प्रत्येक निधिना रक्षक देवनी स्थिति एक पल्योपम जैसी होंगी होंगी है जो नाम निधिषु है ते नाम थी तेना रक्षक देवोपणु संज्ञोपाय है जो देवो ते निधिषोना सहारे न रहे है; जैसी जो निधिषो तेमना आवास रूप होंगी है आधिपत्य भोगवदानी धृष्टार्थी को धर्षणु जेभने अशीदी शक्तुं नहीं है तो मात्र भाग्यशाली चक्रवर्तीजोने पूर्वचरित पुण्य प्रभावથી જ પ્રાપ્ત થાય છે ॥૧૨॥

तत्र एते नवनिचयः प्रभूतधनरत्नसंचयममुद्धा ये भरताधिपानां पट्टखण्डभरतश्रे-
त्राधिपानां चक्रवर्तिनः वज्रमुपगच्छन्ति इत्यता यान्ति, एतेन वामुदेयानां चक्रवर्तित्वेऽ
पि एतद्विशेषणप्रतिषेधो भवति ॥१३॥

अथ पट्टखण्डदत्तदृष्टि भरतो यथोत्सहते तथा प्राह-‘तए ण’ इत्यादि । ‘तए णं
से भरहे राया अट्टमभत्तसि परिणममाणंमि पोसहसालाओ पड्डिणिक्खमड’ ततः’ खलु-
म श्रीमद्धरतो महाराजा अट्टमभक्ते परिणमति-परिपूर्णे जायमाने सति पौषधशालातः
प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति‘एवंमज्जनघरप्पवेसो जाव सेणिप्पसेणि सदावणया जाव णिडि-
रयणांणं अट्टाहियं मःमहिमं करेइ’ एवं मज्जनगृहप्रवेगः मज्जनगृहे मनानार्थे प्रवेगो
यस्य स तथा यावत्पादात् कृतस्नानः ततो निर्गच्छतीत्यादि बोध्यम् ततः श्रेणिप्रश्रेणि-
शब्दापनता श्रेणिप्रश्रेण्यः आदानं यावत् निधिरत्नाना प्रोक्तनयानाम् अप्रादिकां महोमहिमां

एष णवणिहरयणा पभूय घणरयणसमिद्धा । जेव समुवगच्छंति भरहाविव चक्रवट्टीणं ॥१३॥

इन नवनिधियों के प्रभाव से इनके अधिपति को अपार धन रत्नादिरूप समृद्धिका सचय होता
रहता है, क्योंकि ये निधियाँ स्वयं अपार धन रत्नादि सचय से समृद्ध होती हैं । ये भरतक्षेत्र के छह
खंडों का विजय करनेवाले चक्रवर्तियों के ही वश में रहती है इस तरह वामुदेव भी अर्धचक्रा होते
हैं, परन्तु वे उनके वश में नहीं होती हैं । क्योंकि ये तो पूर्ण चक्रवर्ती राजा के ही वश में रहती
है । (‘तए णं से भरहे राया अट्टमभत्तसि परिणममाणंमि पोसहसालाओ पड्डिणिक्खमड) जब भरत
नरेश को अट्टम भक्त की तपस्या परिपूर्ण हो गई तब वज्र पौषधशाला से बाहिर निकला (एवं
मज्जनघरप्पवेसो जाव ‘सेणिप्पसेणो सदावेइ ण्हाया जाव णिडिरयणाण अट्टाहियं महामहिमं करेइ)
और निकल कर वह स्नान घर में गया—वहाँ अच्छी तरह से स्नान किया फिर वहाँ से निकल
कर वह भोजनशाला में गया इत्यादि रूप से अब कथन पूर्वोक्त जैसा ही यहाँ पर कह लेना
चाहिये इसकेबाद उसने श्रेणि प्रश्रेणिजनो को बुलाया और निधिरत्नो की वश्यता के उपलक्ष्य

एष णवणिहरयणा पभूयघणरयणसंमिद्धा ।

जेव समुवगच्छंति भरहाविव चक्रवट्टीण ॥१३॥

ये नवनिधियोऽना प्रभावथी येमना अधिपतिने अपरिभित धन-रत्नादि इय समृद्धिषु
संचयन थतु रडे छे केभके ये निधियो जाते अपारधन-रत्नादि सचयथी समृद्ध डोय छे
ये भरतक्षेत्रना ६ अओ उपर विजय भेणव नारा यकवतीओना वशभा ७ रडे छे आ प्रभाषे
वामुदेवपथु अधयकी डोय छे, पथु ये तेमना वशभा रडेती नथी केभके येओतो पूषु-
यकवतीरानना वशभा ७ रडे छे (तए णं से भरहे राया अट्टमभत्तसि परिणममाणंसि
पोसहसालाओ पड्डिणिक्खमड) अथारे भरतनरेशनी अट्टमभक्तनी तपस्या परि पूषु थध
गधं थारे ते पौषधशाणाभाथी अहार नीकणथा (एव मज्जनघरप्पवेसो जाव सेणिप्पसेणी
सदावेइ ण्हाया जाव णिडिरयणाण अट्टाहियं महामहिमं करेइ) अने नीकणीने स्नान-
घरभां गया त्या तेष्से सारीरीते स्नानं क्युं पछी त्याथी नीकणी ने ते बोधनशाणाभां गया
धत्यादि इपथी अथु कथनपूर्वोक्तं क्येपु ७ अही पथु अध्याहृत करी देपुं जेधंओ, थारभाह

करोति 'तए णं से भरहे राया णिद्विरयणाण अद्वाहियाए महामहिमाए णिव्वत्ताए समाणीए सुसेणं सेणावइरणं सद्वावेइ' ततः खलु स भग्तो राजा निशिरत्तानां प्रोक्तनवानां वश्य ता जनितोपलक्षितायाम् अष्टाहिकायां महामहिमायां निवृत्तायाम् सम्पन्नायाम् सत्यां सुषेणं तन्नामान सेनापतिरत्तं सेनापतिश्रेष्ठ शब्दयति आह्वयति सद्वावित्ता एवं वयासी' शब्दयित्वा तम् आह्वय एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् किमुक्तवान् इत्याह—'गच्छणं भो देवाणुप्पिया ! गंगा महाणईए पुरत्थिमिल्लं णिकखुडं दुच्चंपि सगंगासागरगिरिमेराग समविसमणिकखुडाणि य ओअवेहि ओअवेत्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणाहित्ति' गच्छ सल्लु भो देवानुप्रिय ! सुषेण ! सेनापते गङ्गायाः तन्नाम्न्याः मद्भानद्याः पौरस्त्यं पूर्वं भागवत्तिं द्वितीयमपि निष्कुटं ऋणस्थितभरतक्षेत्रखण्डरूपम् उद च कैर्विभाजितमित्याह—सगङ्गायागरगिरिमेरागं समङ्गासागरगिरिमर्यादम् तत्र पश्चिमायां दिशि गङ्गा पूर्वदक्षिणयो दिशोः सागरो उत्तरस्या दिशि गिरिः वैताद्वचपर्वतः कृताया मर्यादा क्षेत्रविभागरूपः तथा सह वर्त्तते यत्तत्तथाविधम्, तथा 'समविसमणिकखुडाणि य' समविषमनिष्कुटानि च तत्र ममानि समभूमिभागवतीनि निपमाणि च उन्नतान्नतदुर्गभूमिभागवतीनि च यानि निष्कुटानि अवान्तरभरतक्षेत्रखण्डरूपाणि तानि 'ओअवेहि' साधय विजयी भूत्वा तत्र स्वाज्ञां प्रवर्त्तय इत्यर्थः 'ओअवेत्ता' साधयित्वा विजयं प्राप्य एताम् उक्तप्रकाराम् आज्ञप्तिर्कां महचं प्रत्यर्पय इति 'तए णं से सुसेणे त चेव पुव्ववणिणयं

में आठ दिनों तक उत्सव करने का उन्हें आदेशदिया जब यह महोत्सव समाप्त हो चुका तब उसने सुषेण सेनापति रत्न को बुलाकर उससे ऐसा कहा—(गच्छणं भो देवाणुप्पिया गंगा महाणईए पुरत्थिमिल्लणिकखुड दुच्चंपि सगंगासागरगिरिमेरागं समविसमणिकखुडाणि य ओअवेहि ओअवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि) हे देवानुप्रिय ! सुषेण सेनापते ! तुम गगानदी के पूर्व भागवतीं भरत क्षेत्र खण्डरूप निष्कुट प्रदेश में जो कि पश्चिमदिशा में गंगा से पूर्व दक्षिणांदिशा में दो सागरो से और उत्तर दिशामें गिरि वैताद्वच से विभक्त हुआ है जाओ—तथा वहाँ के जो समविषम अवान्तर क्षेत्ररूप निष्कुट प्रदेश है उन्हें अपने वश में करो वहाँ अपनी आज्ञा चलाओं और यह सब काम कर के फिर हमें इसको खबर दो (तए णं से सुसेणे तं चेव पुव्व-

तेषु श्रेष्ठी-प्रश्रेष्ठीजनाने जेलाब्ध्या अने निधिरत्तानी वश्यताना उपलक्ष्यमा आठ द्विवस सुधी उत्सव करवाने तेभने आदेश आये। ज्यारे ते भडोत्सव सम्पन्न थछ गये। त्यारे तेषु सुषेष्णु सेनापति रत्नने जेलाब्धे। अने तेने आ प्रभाये कलु (गच्छणं भो देवाणु-प्पिया गगामहाणईए पुरत्थिमिल्लं णिकखुडं दुच्चंपि सगंगासागरगिरिमेरागं सम-विसमणिकखुडाणि य ओअवेहि ओअवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि) हे देवाणु प्रिय सुषेष्णु सेनापते तमे गंगा नदीना पूर्वभागवतीं भरतक्षेत्र अउइय निष्कुट प्रदेशमा-के ने पश्चिम दिशामा गगाथी, पूर्वदिशामा जे सागराथी, अने उत्तर दिशामा गिरि वैता-द्वथी, विभक्त थयेल छे-जने। तथा त्याना जे सम-विषम अवान्तर क्षेत्र इय निष्कुट प्रदेशे छे ते प्रदेशेने तमे चेताना वशमां करे। त्या तमे चेतानी आज्ञा प्रवर्त्तित करे-

भाणियव्वं' ततः स्वामिनो पदखंडाधिपतिश्री मत्तरतराजस्य आज्ञात्यनन्तरं सख्यु संसृपेणः
सेनापति तं निष्कुट साधयतीत्यादि, तदेव पूर्ववर्णितम्-दाक्षिणान्यमिन्धुनिष्कुट-
वर्णितं तत्सर्वम् अत्रापि भणितव्यं वक्तव्यम् हियत्पर्यन्तमित्याह-'जाव ओअवित्ता'
इत्यादि 'जाव ओअवित्ता तमाणत्तिय पन्वप्पिणड पडिक्खिमज्जेड' यावन्निष्कुटम्
साधयित्वा विजित्य ताम् उकानुमारिणीम् आज्ञप्तिकां स्वामिने भरताय प्रत्यर्पयति
समर्पयति प्रतिविसर्जयति च तं सुपेण सेनापतिं निजनिवामस्थानगमनाय स राजा
भरतः आज्ञापयतीत्यर्थः 'जाव भोगभोगाइ सुजमाणे विहरइ' विमृष्टः सन् स सुपेणः
यावत्पदात् स्नातः इत्यारभ्य यावत्प्रासादवर प्राप्तः सन् इष्टान् गन्धस्पर्शमरूपगन्धान्
पञ्चविधान् यानुष्यक्तान् भोगभोगान् कामभोगान् तत्र शब्दरूपे कामो स्पर्शरसगन्धा-
भोगाः इति तान् सुञ्जानः अनुभवं विहरति तिष्ठति 'तएण से दिव्वे चक्ररयणे
अन्नया कयाइ आउडघरमालायो पडिणिक्खमइ' ततो गङ्गादक्षिणनिष्कुटविजयानन्तरं
खलु तद् दिव्यं चक्ररत्नम् अन्यदा कदाचिद् आयुःशुद्धशालातः प्रतिनिष्क्रामति
निर्गच्छति'पडिणिक्खमित्ता'प्रतिनिष्क्रम्य बर्हिर्निर्गत्य 'अंतलिक्खपडिवण्णे जवखसहस्म-

वर्णिय भाणियव्वं) इस प्रकार की आज्ञा जब भरतमहाराजा ने अपने सुपेण सेनापति को दी तब
उस सुपेण सेनापति ने उस निष्कुट को अपने वश में कर लिया इत्यादि रूप से जैसा वर्णन
पीछे किया गया है वैसा ही वह सब वर्णन यहाँ पर पीछे उसने इस बात की भरत राजा को
खबर दी यहाँ तक का कर लेना चाहिये भरत नरेश ने उस सुपेण सेनापति को सत्कार एवं
सन्मानित कर विसर्जित किया (जाव भोगभोगाइ सुजमाणे विहरइ) यावत्पद से यहाँ "उस
सुपेण सेनापति ने घर पर पहुँच कर स्नान किया आदि रूप पीछे कहा गया सब पाठ यहाँ
गृहीत हुआ है" इस तरह वह अपने श्रेष्ठ प्रासाद में रहता हुआ भोग भोगों को भोगने लगा
(तएण स दिव्वे चक्ररयणे अन्नया कयाइ आउडघरमालायो पडिणिक्खमइ) गंगानदी के
दक्षिण निष्कुट प्रदेशों को विजित कर लिया गया तब इसके बाद वह चक्ररत्न किसी

अने ओ भधु सम्पन्न करी तमे अभने सूयना आपो (तएण से सुपेणे तं चैव पुव्व-
वर्णिय भाणियव्वं) आ प्रक्षरनी आज्ञा न्यारे भरत राजन्ने पोताना सुपेण सेनापतिने
आपी त्तारे ते सुपेण सेनापतिने ते निष्कुट प्रदेशने पोताना वशमां करी दीधो, वगेरे
ने वरुण पडेला करवाभा आन्धु छे तेवु न भधु वरुण अही पणु सम्पत्तु जेअने
त्यारभाह ते सुपेण सेनापतिने ओ वातनी भरत राजन्ने सूयना आपी, भरत नरेशे ते
सुपेण सेनापतिने सत्कार अने तेनु सन्मान कथुं अने त्यारभाह तेने न्वानी आज्ञा
आपी. (जाव भोगभोगाइ सुजमाणे विहरइ) य वत् पन्थी अही 'ते सुपेण सेनापति ओ
घर पडोअनीने स्नान कथुं वगेरे रूपमा पाठ पडेला वरुणवाभा आवेल छे ते अही स गृहीत
थयो छे आ प्रभाणे ते पोताना श्रेष्ठ प्रासादमा रडेने अनेक लोगेने लोगववा लाग्यो.
(तएण से दिव्वे चक्ररयणे अन्नया कयाइ आउडघरमालायो पडिणिक्खमइ)
गंगानदी ना दक्षिण निष्कुट-प्रदेशोने न्यारे छती दीधो त्यार भाह ते दिव्य चक्ररत्न केध

संपरिवुडे दिव्यतुडिय जाव आपूरेते चेव विजयस्त्रंधावारणिवेस मञ्ज मञ्जेणं
 गिगच्छद् दाहिणपच्चत्थिम दिस्सि विणायं रायद्वाणि अभिमुहे पयाए यावि होत्था'
 तद् दिव्यं चक्रत्नम् अन्तरिक्षप्रतिपन्नम् गगनतलस्थितम्, यक्षसहस्रसंपरिवृत्तम् यक्ष-
 सहस्रैः युक्तम्, दिव्यं त्रुटित यावत् अत्र यावत्पदेन दिव्यत्रुटिततलतालघनमृद्ग-
 पटुप्रगादितदिव्यारवेण वाद्यविशेषमग्निनादेन शब्दवाहुल्येन गगनतलमिति ग्राह्यम्
 आपूरयद्दिन विजयस्त्रन्धावारनिवेशं मध्यमव्येन-विजयस्त्रन्धावारस्य मध्यभागेन निर्ग-
 च्छति दक्षिणपाश्चात्यां दक्षिणपश्चिमां दिशं नैऋतींदिशं प्रत विनीतां राजधानीं लक्षीकृत्य
 अभिमुखं प्रयातं चाप्यभवत् आसीत् 'तए ण से भरहे राया जाव पासह, पासित्ता हट्टतुट्टजाव
 काहुंबिय पुरिसे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया । आभिसेक्कं
 जाव पच्चप्पिणंति' ततः चक्रत्नप्रस्थानानन्तर खलु स भरतौ महाराजा यावन् पश्यति
 दृष्ट्वा हृष्टतुष्ट यावत् स राजा पदखण्डाधिपतिर्भरतः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति आहयति
 शब्दयित्वा आहूय एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् क्षिप्रमेव शीघ्रमेव भो देवा-
 नुप्रिया ! आभिपेक्ष्यम् अभिपेक्षयोग्यं यावत्प्रत्यर्पयन्ति । अथ प्रथम यावत्पदात्

एकमय आयुधगृहशाला से बाहर निकला और (पडिणिकस्रमिक्ता) निकल कर (अंतलिक्खपडि-
 वण्णे जक्खसहस्स संपरिवुडे दिव्यतुडिय जाव आपूरेते चेव विजयस्त्रंधावारणिवेस मञ्ज मञ्जेणं
 निगच्छद् दाहिणपच्चत्थिम दिस्सि विणायं रायद्वाणि अभिमुहे पयाए यावि होत्था) आकाश मार्ग से
 जाता हुआ वह चक्रत्न जो कि एक हजार यक्षों से सुरक्षित था । दिव्यत्रुटित यावत् रव से
 आकाश मंडल को व्याप्त करता विजयस्त्रन्धावार निवेश के ठीक बीच में से होकर निकला
 और नैऋती दिशा तरफ जो विनीता नामकी राजधानी है उस ओर चल दिया (तए ण से भरहे-
 राया जाव पासह) भरत नरेश ने विनीता राजधानी की ओर चक्रत्न को जाते हुए जब देखा
 तो (पासित्ता हट्ट तुट्ट जाव कोहुंबिय पुरिसे सदावेइ) देखकर उमको हर्षका ठिकाना नहीं रहा उ-
 सने उसी वरुत कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया (सदावित्ता एवं वया सी) और बुलाकर उनसे ऐसा
 कहा (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयण जाव पच्चप्पिणंति) हे देवानुप्रियो.

समये आयुधगृहशालाभाथी षडार नीकत्थु' अने (पडिणिकस्रमिक्ता) नीकणीने (अंत
 लिक्खपडिवण्णे जक्खसहस्ससंपरिवुडे दिव्यतुडिय जाव आपूरेते चेव विजयस्त्रंधा
 वारणिवेस मञ्ज मञ्जेणं निगच्छद् दाहिणपच्चत्थिमं दिस्सि विणायं रायद्वाणि अभिमुहे
 पयाए यावि होत्था) आकाशमार्गं प्रयाणु करतु तेय्करत्तं हे वे अेक सहस्र यक्षो
 थो सुरक्षित इत्-दिव्य-त्रुटित यावत् रवथी आकाश मण ने व्याप्त करतु विजय स्त्रंधा-
 वार निवेशनी हींके मध्यभाथी पसार थं ने नीकत्थु अने नैऋत्य दिशा तरक् विनीता
 नामके राजधानी छे, ते तरक् रवाना थथु (तए ण से भरहे राया जाव पासह भरत
 नरेशे विनीता राजधानी तरक् अकरत्तने वतु जेथु तो (पासित्ता हट्ट-तुट्ट जाव कोहुंबिय
 पुरिसे सदावेइ) जेधने तेज्यो परम हृषित थथ। तेमण्णे तरत्तं कौटुम्बिक पुत्रुधोने
 जेक्षाव्या (सदावित्ता एवं वयासी) अने जेक्षावीने तेमने ते भरत नरेशे आ प्रभाण्णे कथं
 -खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया आभिसेक्क हत्थिरयणं जाव पच्चप्पिणंति) हे देवानुप्रियो।

गगनत आदि विशेषणयुक्तं तद्दिव्यं चक्रगन्मिति ग्राह्यम् । द्वितीय यावत्पदान् हृष्टतुष्ट-
चित्तानन्दितः प्रोत्तिमनाः परममौमनस्यित हर्षवशविमर्षद् हृदयः इति ग्राह्यम् । तृतीय
यावत्करणात् हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत, सेना सन्नाहयत इति आज्ञापयति स भरत तेच
कौटुम्बिकपुरुषाः सर्वे कुर्वन्ति आज्ञां च प्रत्यर्पयन्ति समर्पयन्ति इतिग्राह्यम् ॥२७॥

अथाक्तमेवार्थं दिग्विजयकालाद्यधिकार्थविवक्षया विस्तर्याचनया चाह—
“तएणं से,, इत्यादि ।

मूलम्—तए णं से भरहे राया अज्जिअरज्जो णिज्जिअसत्तू
उप्पण्ण सम्मत्तरयणे चक्करयणप्पहाणे णवणिहिर्वई समिद्धकोसे वत्तीस-
रायवस्सहस्साणुयायमग्गे सट्ठीए वरिससहस्सेहिं केवलकप्पं भरहं वासं
ओयवेइ ओयवेत्ता कोडुंविणपुरिसे सदावेइ, सदावित्ता एवं वयासी
खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिस्यणं हयगयरह तहेव
अंजणगिरिक्कडसण्णिमं गयवइं णरवई दुरूढे । तएणं तस्स भरहस्स
रण्णो आभिसेक्कं हत्थिस्यणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठ मंगलगा
पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ तं जहा—सोत्थिअ सिखिच्छ जाव
दप्पणे, तयणंतरं च णं पुण्णकलसभिगार दिव्वा य छत्तपडागा जाव
संपट्ठिआ, तयणंतरं च वेरुलिअभिसंत विमलदंडं जाव अहाणुपुव्वीए
संपट्ठिअं, तयणंतरं च णं सत्त एगिदियरयणा पुरओ अहाणुपुव्वीए
संपत्थिया, तं—चक्करयणे १, छत्तरयणे २, चम्मरयणे ३, दंडस्यणे ४,
असिस्यणे ५, मणिस्यणे ६, कागणिस्यणे ७, । तयणंतरं च णं णव
महाणिहिओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिआ, तं जहा णेसप्पे
पंडयए जाव संखे, तयणंतरं च णं सोलस देवसहस्सा पुरवो अहाणु-

सुभ लोगों शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को एव सेना को सुसज्जित करो यावत् भरत नरेश
के द्वारा आज्ञत हुए उन कौटुम्बिक पुरुषों ने आभिषेक्य हस्तिरत्न का एव सेनाको सुसज्जित कर
दिया. इसके बाद भरत नरेश के पास उनको आज्ञा को पूर्ति हो जाने की खबर भेज दी॥२७॥

तमे शीघ्र आभिषेक्य हस्तिरत्नने तेमञ्जे सेनाने सुसज्जित करे, यावत् भरत नरेश वडे
आज्ञप्त थयेत्ता ते कौटुम्बिक पुरुषोन्ने आभिषेक्य हस्ति-रत्न तेमञ्जे सेनाने सुसज्जित करी
त्थारणाढ भरत नरेशनी पास तेमनी आज्ञा पूरी थई चूकी छे, ते अणे नी सूचना भेजकी
॥ सूत्र २७ ॥

पुन्वीए संपट्टिआ, तयणंतरं च णं वत्तीसं रायवरसहस्सा अहाणुपु-
 व्वीए संपट्टिआ, तयणतरं च णं सेणावइरयणे पुरओ अहाणुपुन्वीए
 संपट्टिए, एवं गाहावइरयणे वद्धइरयणे पुरोहिअरयणे, तयणंतरं च
 णं इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिए तयणंतरं च णं वत्तीसं
 उडुकल्लाणिआ सहस्सा पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिआ तयणंतरं च णं
 बत्तीसं बत्तीसइवद्धा णाडगसहस्सा पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिया
 तयणंतरं च णं तिण्णिण सट्ठा सुअसया पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिया
 तयणंतरं च णं अट्ठारस सेणिप्पसेणीओ पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिया
 तयणंतरं च णं चउरासीइं आससयसहस्सा पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिया
 तयणंतरं च णं चउरासीइं हत्थिसयसहस्सा पुरओ अहाणुपुन्वी संपट्टिया
 तयणंतरं च छण्णउई मणुस्स कोडिओ पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिआ
 तयणंतरं च णं बहवे राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिईओ पुरओ
 अहाणुपुन्वीइ संपट्टिया तयणंतरं च णं बहवे असिग्गाहा लट्ठिग्गाहा
 कुंतग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा फल्लग्गाहा परसुग्गाहा
 पोत्थयग्गाहा वीणग्गाहा क्खअग्गाहा इडप्फग्गाहा दीविअग्गाहा सएहिं
 सएहिं रूवेहिं, एवं वेसेहिं चिंधेहिं निओएहिं सएहिं२ वत्थेहिं पुरओ
 अहाणुपुन्वीए संपत्थिया तयणंतरं च णं बहव दंडिणो मुंडिणो सिंहंडिणो
 जडिणो पिच्छिणो हासकोरगा खेड्डुकारगा दवकारगा चाडुकारगा कंदप्पि-
 आ कुकुइआ मोहरिआ गायंता य दीवंता य (वायंता) नच्चंताय हसंता
 य रमंता य कीलंता य सासेंता य सोवेंता य जावेंतायरावेंताय
 सौभेता य सोभावेता य अलोअंता य जयजयसहं च पउंजमाणा पुरओ
 अहाणुपुन्वीए संपट्टिआ, एवं उववाइअगमेण जाव तस्स रण्णो पुरओ मह
 आसा आसधरा उभओपासि णागा णागधरा पिट्ठओ रहा रहसंगेल्ली
 अहाणुपुन्वीए संपट्टिआ इति । तए णं से भरहाहिवे णरिंदे हारोत्थए
 सुकयरइयवच्छे जाव अमरवइ सण्णिभाए इद्धीए पहियकित्ती चक्कर-
 यणदेसियमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे जाव समुहस्व भूओंपव

करेमाणे करेमाणे सव्विद्धीए मव्वज्जुईए जाव णिग्घोसणाइयुरवेणं गामा-
गणगरखेडकव्वडमंडव जाव जोयणंतसियाहिं वसहीहिं वसमाणे वसमाणे
जेणेव विणीआ रायहाणी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता विणीआए राय-
हाणीए अदूरसामंते दुवालसजोयणायामं णवजोयणवित्थिणं जाव स्वंधा-
वारणिवेसं करेइ करित्ता वद्धइस्यणं सदावेइ, सदावित्ता जाव पोसहसालं
अणुपविसइ अणुपविसित्ता विणीयाए रायहाणीए अड्डमभत्तं पगिण्हइ पगि-
ण्हित्ता जाव अड्डमभत्तं पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ ॥ सू. २८ ॥

छाया-तत खलु स भरतो राजा अर्जितराज्य निर्जितशत्रु उत्पन्नसमस्तरत्नः चक्ररत्न-
प्रधानः नवनिधिपतिः समृद्धकोशः द्वात्रिंशद्वाजवरसहस्राजुयातमार्गं पट्टया वर्षसहस्रैः
केवलकल्प भरतर्ष साधयति साधयित्वा कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा पवम्
अवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! आभिषेक्यं हस्तिरत्न हयगजरथ तथैव अंजनगिरिकूट
सन्निभं गजपतिं नरपतिः दुरुढः । तत खलु तस्य भरतस्य राज्ञः आभिषेक्यं हस्तिरत्न
दुरुढस्य सतः इमानि अष्टाष्ट मङ्गलकानि पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थितानि तद्यथा-स्वस्तिक
श्रोवत्स यावत् दर्पणः, तदनन्तरं च खलु पूर्णकलशभृङ्गारविद्या च छत्रपताका यावत्
संप्रस्थिता, तदनन्तरं च वैडूर्यं दीप्यमानं विमलदेडयावत् यथानुपूर्व्यां संप्रस्थितम्, तदनन्तरं
च खलु सप्त पकेन्द्रियरत्नानि पुरतः यथानुपूर्व्यां संप्रस्थितानि तद्यथा चक्ररत्नम् १ छत्ररत्नम् २
चर्मरत्नम् ३ वण्डरत्नम् ४ असिरत्नम् ५ मणिरत्नम् ६ काकणीरत्नम् ७ तदनन्तरं च खलु नव
महानिधयः पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिताः, तद्यथा नैसर्ग्यं पाण्डकः यावच्छङ्ख तदनन्तरं
खलु षोडशदेवसहस्राः पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिता, तदनन्तरं च खलु द्वात्रिंशद् राजव-
रसहस्राः यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिता तदनन्तरं च खलु सेनापतिरत्नं पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्र-
स्थितम् एवं गाथापतिरत्नं वर्द्धकिरत्नं पुरोहितरत्नं च, तदनन्तरं च खलु स्त्रीरत्नं पुरतो यथानु
पूर्व्यां संप्रस्थितम्, तदनन्तरं च खलु द्वात्रिंशत् ऋतु कल्याणिकाः सहस्रा यथानुपूर्व्यां पुरतः,
संप्रस्थिता, तदनन्तरं च खलु द्वात्रिंशत् जनपदकल्याणिकसहस्राः पुरतः यथानुपूर्व्यां संप्र-
स्थिता, तदनन्तरं च खलु द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत् वद्या नटकसहस्रा पुरतः यथानुपूर्व्यां संप्र-
स्थिताः तदनन्तरं च खलु त्रीणि पद्यानि रूपयतानि पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थितानि, तद-
नन्तरं च खलु अष्टादश श्रेणिश्रेणय पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिताः, तदनन्तरं च खलु
चतुरशीतिरश्वशतसहस्राः पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिता तदनन्तरं च खलु चतुरशीति हस्ति-
शतसहस्रा पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिता, तदनन्तरं च खलु षण्णवति मनुष्याणां कौट्य
पुरतः यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिताः, तदनन्तरं च खलु बहवो राजेश्वर तलवर यावत् सार्थवाह
प्रभृतयः पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिताः तदनन्तरं च खलु बहव असिप्राहा, यष्टिप्राहाः
कुन्तप्राहा, चापप्राहा, चामरप्राहा, पाशप्राहा, फलकप्राहा परशुप्राहा, पुस्तकप्राहाः,
वीणाप्राहा, कुतप्राहा, हडङ्गप्राहाः, दीपिकाप्राहा स्वकै स्वके रूपे पव वेधं चिह्नै नि-
योगै स्वकै स्वकैः पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थिता तदनन्तरं च खलु बहवो दण्डिनो मुण्डि-
न शिखण्डिन जटिन पिच्छिन हास्यकारका खेडुकारका द्रवकारका चाडुकारका
कान्दपिकाः कौतुक्यकारिणः मुखरा गायन्तश्च वाद्यन्तश्च नृत्यन्तश्च हसन्तश्च रममाण

અથ ક્રોડ્યન્તશ્ચ શાસયન્તશ્ચ શ્રાવયન્તશ્ચ રાવયન્તશ્ચ શોભમાનાશ્ચ શોભયન્તશ્ચ આલોકમાનાશ્ચ જયજયશબ્દં ચ પ્રયુજ્ઞાના પુરતો યથાનુપૂર્વ્યા સમ્પ્રસ્થિતાઃ પવમ્ ઔપપાતિક્કગમેન યાવત્ તસ્ય રાજ્ઞ પુરતો મહાશ્વા અશ્વઘરા ઉભયતઃ પાર્શ્વયો નાગા નાગઘરા પૃષ્ઠતઃ રથાઃ રથસન્નેભ્યઃ યથાનુપૂર્વ્યા સંપ્રસ્થિતાઃ ઇતિ । તત સ્વલુ સ ભરતાધિપો નરેન્દ્ર દ્વારાવસ્વૃતઃ સુકૃતરતિદવક્ષસ્કો યાવત્ અમરપતિસન્નિભયા ઋદ્ધયા પ્રથિતકીર્તિં ચક્રરત્નદેશિતમાર્ગઃ અનેકરાજવરસહસ્રાનુયાતમાર્ગ યાવત્ સમુદ્રરવભૂતામિવ કુર્વન્ કુર્વન્ સર્વદ્વર્યા સર્વદ્યુત્યા યાવન્નિર્ઘોષનાદિતરવેણ ગ્રામાઞ્ચરન્ગરસ્થેટકર્વટમહમ્ યાવત્ યોજનાન્તરિતામિ વંસતિમિ ઘસન્ ઘસન્ યત્રૈવ વિનીતા રાજઘાની તત્રૈવોપાગચ્છતિ ઉપાગત્ય વિનીતાયા રાજઘાન્યા અદુરસામન્તે દ્વાદશયોજનાયામ નવયોજનવિસ્તીર્ણ યાવત્ સ્કન્ધાવારનિવેશ કરોતિ કૃત્વા વર્દ્ધેકિરત્નં શબ્દયતિ શબ્દયિત્વા યવત્ પૌપવશાલા મનુપ્રવિશતિ અનુપ્રવિશ્ય વિનીતાયા રાજઘાન્યા અષ્ટમમક્ત પ્રગૃહ્ણતિ પ્રગૃહ્ય યાવત્ અષ્ટમમક્ત પ્રતિજાગ્રદ્ પ્રતિજાગ્રદ્ વિહરતિ ॥૨૦૦ ૨૮॥

ટીકા—‘તણ્ણ સે’ इत्यादि । ‘तण्णं से भरहे राया’ ततः तदनन्तरं स्वलु स भरतो राजा ‘अज्जियरज्जो’ अर्जितराज्यः तत्र अर्जित बाहुबलाद् उपार्जित राज्यं येन स तथाभूतः तथा ‘णिज्जिय सत्तू’ निर्जितशत्रुः तत्र निर्जिताः वशीकृताः शत्रवो रिपवो येन स तथाभूतः, तथा ‘चक्करयणप्पहाणे’ चक्ररत्नप्रधानः तत्र चक्ररत्नं प्रधानं सर्वरत्नेषु श्रेष्ठं यस्य स तथाभूतः तथा ‘णव णिहिवइ’ नवनिधिपति तत्र नवानां नैसर्प्यपाण्डुकादि नामकानां निधीनां पतिः तथा ‘समिद्धकोसे’ समृद्धकोशः न्तत्र समृद्धः सम्पन्न कोशः भाण्डागार यस्य स तथाभूतः तथा ‘वत्तीसरायवरसहस्साणुयायमग्गे’ द्वात्रिंशद्राजवरसहस्रानुयातमार्गः तत्र द्वात्रिंशद्राजवरसहस्रैरनुयातः अनुगत मार्गो यस्य स तथाभूत महाराजाश्रीभरतस्य पृष्ठभागे अनेके राजसु प्रवरा मुकुटधारिणो राजानः भरतप्रदर्शितमार्गं प्रचलन्तीत्यर्थः एवभूतः

(तण्णं से भरहे राया अज्जियરજ્જો ણિજ્જિયસ ત્તુ)—इत्यादि

ટીકાર્થ—(तण्णं भरहे राया अज्जियरज्जो णिज्जियसत्तू) इसके बाद जिसने अपने बाहु बल से राज्य को उपार्जित किया है और शत्रुओं को जिसने परास्त कर अपने वश में कर लिया है ऐसे उस भरतमहाराजा ने (चक्करयणप्पहाणे) कि जिसके समस्त रत्नो में एक चक्ररत्न तो प्रधान है (णवणिहिवइ) तथा जो नौ निधियों का अधिपति बन चुका है (समिद्धकोसे) कोश—भाण्डागार—जिसका कोष बहुत सम्पन्न है । (वत्तीसरायवरसहस्साणुयायमग्गे) ३२ वत्तीस हजार मुकुटबद्ध उत्तमराजवशी राजा जिसके पीछे २ चलते हैं । (सट्टीए वरिससहस्सेहिं केवल

ટીકાર્થ—तण्णं से भरहे राया अज्जियरज्जो णिज्जियसत्तू) त्याख्याद ने भरत राजाએ પોતાના બાહુબળથી રાજ્યોપાર્જિત કર્યું છે અને શત્રુઓને જેણે પરાસ્ત કર્યા છે અને પોતાને વશમાં કર્યા છે, એવા તે ભરત મહા રાજાએ. (ચક્કરયણપ્પહાણે) કે જેના સમસ્ત રત્નોમાં એક ચક્રરત્નની પ્રધાનતા છે. (ણવણિહિવइ) તથા જે નવનિધિઓનો અધિપતિ થઈ ચૂક્યો છે, (સમિદ્ધકોસે) કોશ ભાણ્ડાગાર જેનો પર્થાપ્ત-સમ્પન્ન છે. (વત્તીસરાયવર સહસ્સાણુયાયમગ્ગે) ૩૨ હજાર મુકુટ બદ્ધ રાજ્ય શીરાજા જેની પાછળ-પાછળ ચાલે છે (સટ્ટીએ વરિસ સહસ્સેહિં કેવલરૂપે ભરહં વાસં ઓમવેહ) ૬૦ હજાર વર્ષ સુધી વિભ્ય યાત્રા કરીને સ પૂર્ણ

सन् स षट्क्षण्डाधिपति भरतो राजा 'सद्वीए वरिससहस्सेहि केवलकप्पं भरह वामं ओअवेड' पण्डया वर्षसहस्रैः पण्डिसहस्रसख्यकवर्षे केवलकल्पम्-परिपूर्णं भरतवर्षं साधयति शत्रून् मिजित्य स्वाधीनं करोतीत्यर्थः 'ओअवेत्ता' साधयित्वा 'कोडुंबियपुरिसे सदावेड' कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति आह्वयति 'सदावित्ता एव वयासी' शब्दयित्वा आह्वय एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !' क्षिप्रमेव शीघ्रमेव भो देवाणुप्रियाः ! 'आभिसेक्कं हत्थिरयणं हयगयरह तहेव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवई णरवई दुरूढे' आभिषेक्यम् पट्टहस्तिरत्नम् हस्तिश्रेष्ठम् इदं च पद हस्ति वर्णकस्मारकम्, तथा हयगजरथेति पद सेनासन्नाहस्मारकम् तथैव पूर्ववदेव तेनैव प्रकारेण स्नानविधि भूषणविधि सैन्योपस्थितहस्तिरत्नोपागमनानि वक्तव्यानि अञ्जनगिरिकूटसन्निभम्—अञ्जनपर्वतभृङ्गसदृशम् सादृश्यं च कृष्णवर्णत्वेन उच्चत्वेन च बोध्यम् एवंविध गजरत्नं हस्तिश्रेष्ठं नरपतिः भरतो राजा दुरूढः आरूढवान् 'तएण तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्क हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्टट्ट मगलगा पुरओ अहाणु-

कप्प भरह वास ओअवेड) ६० हजार वर्ष तद् विजय यात्रा कर सम्पूर्ण इस भारत क्षेत्र को अपने वश मे किया (ओअवेत्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेड) इस प्रकार से सम्पूर्ण भारत को साध कर-अपने वश कर भरत राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया (सदावित्ता एवं वयासी) और बुलाकर उनसे ऐसा कहा-(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्क हत्थिरयण हयगयरह तहेव अजणगिरिकूडसण्णिभं गयवई णरवई दुरूढे) हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को और हयगजरथ एवं प्रवर सैन्य को इत्यादि रूप से पूर्व की तरह यहाँ पर स्नानविधि, भूषणविधि सैन्योपस्थिति, एवं हस्तिरत्नोपस्थिति कहलानी चाहिये। भरत महाराजा अंजनगिरि के शिखर जैसे गजरत्न पर आरूढ हो गये। यहा हस्तिरत्न को जो अजनिगिरि के कूट जैसे कहा गया है, उसका कारण हस्तिरत्न को कृष्णता और ऊँचाई है। (तएण तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्टट्ट मगलगा पुरओ अहाणुपुण्णो सपण्डिया) जब हस्तिरत्न पर आरूढ हुए भरत राजा चलने को तैयार

अे भरतक्षेत्र ने पोताना वशमां कथुं . (ओअवेत्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेड) आ प्रभाणु स पुरुषं भारतने साधीने-पोताना वशमा करीने भरत राजाअे पोताना कौटुम्बिक पुरुषोने भेदांथा. (सदावित्ता एवं वयासी) अने ओदावीने ते कौटुम्बिक पुरुषोने ते राजाअे आ प्रभाणु कथुं (खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया आभिसेक्कं हत्थिरयणं हयगयरह तहेव अजणगिरिकूडसण्णिभं गयवई णरवई दुरूढे) हे देवानुप्रियो तमे यथाशीघ्र आभिषेक्य हस्तिरत्न ने अने हय गजरथ तेमअ प्रणव सैन्यने सुसज्ज करे। इत्यादिप्रमाण अहाँ पढेदानी अेभअ स्नानविधि, सैन्योपस्थिति तेमअ हस्तिरत्नोपस्थिति लक्ष्मी देवी जेअेअे भरत महा राजा अञ्जन गिरिना शिखर जेअ गजरत्न उपर आरूढ थर्ध गया अहाँ हस्तिरत्नने जे अञ्जन गिरिना इट जेवु कहेवाभा आंथु अे, तेवु कारणे हस्तिरत्ननी कृष्णता अने उचाधने लधने कहेल अे (तएण तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे

पुन्वीए सपट्टिया' ततः खलु भरतस्य राज्ञ आभिषेक्यम् अभिषेकयोग्यं हस्तिरत्नं दुरूढस्य आरूढस्य सतः इमानि स्वस्तिकादीनि अष्टाष्टमङ्गलकानि पुरतः अग्रे यथानुपूर्व्या यथा- क्रमं सप्रस्थितानि चलितानि कानि च तानि इत्याह— 'तं जहा' इत्यादि 'त जहा-सो- त्थिय सिरिवच्छ जाव दप्पणे' तद्यथा-स्वस्तिक, १ श्रीवत्स, २, यावत् दर्पणाः ३। अत्र यावत्पदात् नन्दिकावर्च, वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलशाः, इति ग्राह्यम् 'तयणंतरं च ण पुण्णकलसभिगार दिव्वा य छत्तपडागा जाव सपट्टिया' तदन्तरं च खलु पूर्णकलशभृङ्गाराः तत्र पूर्णजलभृतः कलशः भृङ्गाराश्चेत्यर्थः तत्र कलशाः लोकप्रसिद्धाः भृङ्गाराः पात्रविशेषाः ज्झारी' इति भाषाप्रसिद्धाः समाहारद्वद्धादेकवद्धावः नपुसकत्वञ्च इयं कलशादि जलपूर्णत्वेन चित्रलिखितकलशादिना भिन्ना तेन चित्रलिखित कलशा- दिभ्यो न पौनरुक्त्यमित्यर्थः। दिव्या प्रधाना चः समुच्चये 'स च व्यवहितसम्बन्धः छत्र- पताका च यावत्पदात् 'सचामरा दंसणरइय आलोयदरिसणिज्जा वाउद्धूयविजय- वेजयती अब्भुस्सिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुन्वीए' इति ग्राह्यम् तेन तत्र सचामरा - चामरयुक्ता दर्शने प्रस्थातु दंष्ट्रिये रचिता मङ्गल्यत्वात् अतएव आलोके- शकुनानुकूल्यदर्शने दर्शनीया द्रष्टुं योग्या वातोद्धूत विजयवैजयन्ती वातेन वायुना उद्धता कम्पिता विजयसूचिका वैजयन्ती पार्श्वतो लघुपताकाद्वययुक्तः पताका विशेषाः

हुए तो उनके आगे आठ आठ की संख्या में आठ मंगल द्रव्य सर्वप्रथम प्रस्थित हुए (तं जहा) वे आठ मंगल द्रव्य नामतः इस प्रकार से हैं—(सोत्थिय, सिरिवच्छ जाव दप्पणे) स्वस्तिक श्री- वत्स, यावत् नन्दिकावर्च, वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश, एवं दर्पण (तयणंतरं च ण पुण्ण- कलसभिगार दिव्वाय छत्तपडागा जाव सपट्टिया) इनके बाद पूर्णकलश—निर्मल जल से भरा हुआ कलश भृङ्गार— झारी एव दिव्य प्रधान छत्रयुक्त पताकाएँ यावत् प्रस्थित हुईं। यहाँ यावत्पद से "सचामरा दंसणरइय आलोय दरिसणिज्जा वाउद्धूय विजयवेजयति अब्भुस्सिया गगणतलमणुलि- हतो पुरओ अहाणुपुन्वीए" इस पाठ का सप्रह हुआ है (तयणंतरं च वेरुलिय भिसत विमल दंड जाव अहाणुपुन्वीए सपट्टिय) इनके बाद वैदूर्यमणि निर्मित विमल दण्ड वाला छत्र प्रस्थित हुआ यहा यावत्पद से—“पलंब कोरंट मल्लशामोवसोहिय चंद्रमहलनिभं ससित्तुयं विमलं आयवत्त पवरं सिहासणं च मणिरयणपायपीढ स पाउआ जोगसमाउत्त बहुकिंकर कम्मकर पुरिसपायत्त परिविख-

अद्दुम्मंगलगा पुरओ अहाणुपुन्वीए सपट्टिया) अथारे हस्तिरत्न उपर समाइढ थयेदा भरत मंडा राजा आइवा प्रस्तुत थया तो तेमनी आगण आठ-आठनी सभ्यामां आठ मंगल द्रव्यो सर्वप्रथम प्रस्थित थयां (तं जहा) ते आठ मंगल-द्रव्यो ना नाओ आ प्रभाओ छे—(सोत्थिय सिरिवच्छ जाव दप्पणे) स्वस्तिक, श्रीवत्सयावत् नन्दिकावर्च वर्धमानक, भद्रासन, मत्स्य कलश अने दर्पण (तयणंतरं च ण पुण्णकलसभिगार दिव्वा य छत्तपडागा जाव सपट्टिया) तयारआठ पूरुं कलश अण संपुरित कलश अणारे आरी तेमभ दिव्य प्रधान छत्रयुक्त पताकाओ यावत् प्रस्थित थय अइी यावत् पदथी (सचामरा दंसणरइय आलोय-

सर्वत्र विशेषण समासः 'अब्भुस्सिया' अत्युच्छ्रिता अत्युन्नता अतएव गगनतलमनुलि-
खन्ति पुरतः अग्रतः यथानुपूर्व्या यथाक्रम सम्प्रस्थिता प्रचलिता पूर्णघटादयो विजय-
वैजयन्ती च उक्तविशेषणविशिष्टा सत्यः अत्युच्चतया पुरतः यथाक्रमं सम्प्रस्थिता इत्यर्थः
'तयणंतरं च वेरुलिय भिसतविमलदंड जाव अहाणुपुव्वीए सम्पट्टिय' तदनन्तरं च
वैदूर्यमयः रत्ननिर्मितः 'भिसंतत्ति' दीप्यमानो विमलो दण्डो यस्मिन्तथा भूतम् वैदूर्य-
मणिरत्नमिति खचितदण्डविशिष्टं छत्रमित्यर्थं । इदं च पदं यावत्पदान्तरगताऽतपत्र
विशेषणम् यावत्पदात् 'पलंबकोरंटमल्लदामोवसोहिय चंदमंडलनिभं समूसियं विमल
आयवत्तं पवरं सीहासनं च मणिरयणपायपीढं सपाउआजोगसमाउत्तं बहुक्किरकम्म-
करपुरिसपायत्तपरिक्खितं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं त्ति' इति ग्राह्यम् पुनः कीदृ-
शमात्तपत्रं छत्रम् प्रलम्बकोरंटमाल्यदामोपशोभितम् प्रलम्बेन लम्बमानेन कोरंटस्य
कोरंटनामकपुष्पस्य माल्यदाम्ना-पुष्पमालया उपशोभितं पुनः कीदृशं चन्द्रमण्डल-
निभं चन्द्रमण्डलसदृशम् उज्ज्वलत्वात् समुच्छ्रितम् ऊर्ध्वीकृतं विमलं धवलमात्तपत्रं छत्रम्,
प्रवरं श्रेष्ठं सिंहासनं च ततः सिंहासनविशेषणानि प्रोच्यन्ते मणिरत्न इत्यादीनि तत्र
मणिरत्नमयं पादपीठं यत्र चरणौ निक्षिप्य सिंहासनोपरि समानीतो भवति तत्पा-
दपीठमुच्यते पुनः कीदृशम्-स्वपादुकायोगसमायुक्तम्-स्वः-स्वकीयो यो पादुकायोगः-

त्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं त्ति" इस पाठ का सग्रह हुआ है इस पाठगतपदों की व्याख्या
इस प्रकार से है जो छत्र प्रस्थित हुआ वह कोरंट पुष्पों की लम्बी २ दो मालाओं से सुशोभित
था । चन्द्रमण्डल के जैसा उज्वल था तथा वह बन्द नहीं था । खुला हुआ था और ऊँचा था
एवं आगन्तुक मैल से यह रहित था । इसलिए विमल था । इसके बाद सिंहासन प्रस्थित हुआ
यह सिंहासन मणिरत्न के बने हुए पादपीठ से युक्त था । इसी पर पैर रखकर राजा उस सिंहासन
पर चढ़ता था तथा यह सिंहासन पादुकायोग से समायुक्त था । सड़ाउ रखने के स्थानद्वय से
सहित था । अनेक किङ्कर एवं पदातिर्या के समूह से परिक्रित था । चारों ओर से घिरा हुआ

द्विरसिण्जा वाउद्वय विजयवेजयति अब्भुस्सिया गगनतलमणुलिहंति पुरओ अहाणुपुव्वीए"
ये पाठने स अहं थये। छे (तयणंतरं च वेरुलिय भिसंत विमल दंड जाव अहाणुपुव्वीए
संपट्टियं) त्थार भाह वैदूर्यमणि निर्मित विमल दंडयुक्त छत्र प्रस्थित थयु. अह्दी
थावत् पदथी "(पलंबकोरंटमल्लदामोवसोहिय चंदमंडलनिभं समूसियं विमलं आयवत्तं
पवरं सीहासनं च मणिरयणपायपीढं सपाउआजोगसमाउत्तं बहुक्किरकम्मकरपुरिस
पायत्तपरिक्खितं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं त्ति) ये पाठने स अहं थये। छे. ये
पाठगत पदोनी व्याख्या आ प्रभाषे छे जे छत्र प्रस्थित थयु ते कीदृशं पुष्पोनी लांभी-
लांभी भाषाओथी सुशोभित हंतु, ते चन्द्रमण्डल जेपुं उज्ज्वलण हंतु तेमज ते अंध
नहोतु प्रक्षुटित हंतु अने उच्यु हंतु अने आगन्तुक मैलथी जे रहित हंतु, ओथी जे
विभण हंतु. त्थार भाह सिंहासन प्रस्थित थयु जे सिंहासन मणिरत्न निर्मित पादपीठ

पादरक्षणयुग तेन समायुक्तम्, पुनः कीदृशं तत् बहुकिङ्कर कर्मकर पुरुषपादात् परिक्षिप्तम्, बहुकिङ्कराः प्रतिकर्मपृच्छाकारिणः स्वामीनमापृच्छय कार्यकारिण इत्यर्थः भृत्याः कर्मकराः कार्यकारिण ततोऽन्यथाविधास्ते च ते पुरुषाश्चेति बहुकिङ्करकर्मकरपुरुषास्तैः पदातीनां समूहः पादात् पदातिसमूहस्तेन च परिक्षिप्तं सर्वतो वेष्टितं तैर्धृतत्वादेव पुरतो यथानुपूर्व्यां यथाक्रमं संप्रस्थितम् 'तयणतरं च ण सत्त एगिदियरयणा पुरओ अहाणु-पुव्वीए संपत्थिया' तदन्तरं च खलु सत्त एकेन्द्रियरत्नानि पृथिवी परिणामरूपाणि पुरतः संप्रस्थितानि चलितानि कानि च तानि इत्याह 'तं जहा' इत्यादि 'तं जहा चक्ररयणे१, छत्ररयणे२, चर्मरयणे३, दण्डरयणे४, असिररयणे५, मणिरयणे६, कागिणिरयणे७' तद्यथा चक्ररत्नम्१, छत्ररत्नम्२, चर्मरत्नम्३, दण्डरत्नम्४, असिर रत्नम्५, मणिरत्नम् ६, काकणीरत्नम्७, । 'तयणंतरं च णं णव महाणिहिओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया' तदन्तरं च खलु नव महानिधय नैसर्पादि शङ्खान्ताः पुरतः अग्रतो यथानुपूर्व्यां यथाक्रमं संप्रस्थिताः पातालमार्गेणेति गम्यम् अन्यथा तेषां निधि-व्यवहार एव न सङ्गच्छते, तदेव निधिनां निधित्वं यत् भूम्यामधोऽवस्थायित्वं तद् यदि चक्रवर्तिना सह उपरि चलेत्तदा तेषां निधित्वमेव अतस्ते निधय उपरि यच्छत्रशक-

थः। (तयणंतरं च णं सत्त एगिदियरयणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया) इसके बाद सात एकेन्द्रिय रत्न-चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिररत्न, मणिरत्न और काकणीरत्न—ये सब रत्न यथानुपूर्वीं चले (तयणंतरं च णं णव महाणिहिओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया) इनके बाद पाताल मार्ग से होकर नौ महानिधिया प्रस्थित हुईं। निधियों में यही निधित्व है। कि वे भूमि के नीचे रहती हैं ये अगर चक्रवर्ती के साथ ऊपर होकर दिखती हुईं चले तो उनका निधित्व ही समाप्त हो जावेगा। इसलिए ये चक्रवर्ती को लक्ष्य करके भीतर २ ही चलती हैं। इन निधियों के नाम नैसर्प पाण्डुक यावत् शक है, यहां यावत्पद से ये अवशिष्ट छह निधियां गृहीत हुई हैं—उनके नाम इस प्रकार से हैं—पिंगलक, सर्वरत्न महापद्म, काल, महाकाल, माणवक और

थी युक्त इतुं अने उपर ७ पग भूमी ने राज ते सिंहासन उपर आइत थते इते। अ सिंहासन पाण्डुकयोग थी पणु समायुक्त इतु अटले के अहाणु भूकवाना स्थानद्वय युक्त इतु अने किंकरे, कर्मकरे। तेमण पदातीओना समूहोथी परिक्षिप्त इतुं ओमेर अे सर्वथी व्याप्त इतुं (तयणंतरं च णं सत्त एगिदियरयणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया) त्थार आह सात अेकेन्द्रियरत्न—चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिररत्न मणिरत्न, अने काकणी रत्न अे सर्वरत्ने। यथानुपूर्वीं आख्यां—(तयणंतरं च णं णव महाणिहिओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया) त्थारआह पाताळ मार्गोथी यधने नव महानिधियो प्रस्थित थया निधियोभां अेण निधित्व अे के तेओ भूमिनी नीचे रहे अे अे निधियो अकवर्तीनी साथे उपर यधने अथा अर्थ शके अेवी रीते आले तो तेमणु निधि-त्वण समाप्त थम अे अेथी अकवर्तीने लक्ष्य करीने तेओ अहर ७ आले अे, अ निधियो-ना नाओ-नैसर्प, पाण्डुक यावत् शक अे अही यावत् पदथी अवशिष्ट निधियो सगृ-

वर्त्तिन लक्षीकृत्य भूम्यामधोभागे एव प्रचलति इतिभावः । केचने इत्याह—
 'तं जहा' इत्यादि 'तं जहा—णेसप्पे षंडुयए जाव संखे' नैसर्पः१ पाण्डुकः२ यावच्छंखः
 अत्र यावत्पदात् पिङ्गलकः३, सर्वरत्नम्४, महापद्मम्५, कालश्व६, महाकालः७, माणव-
 को महानिधिः८, शङ्खः९ एतेषा ग्रहणे एतेषामर्थाः पूर्वसूत्रे द्रष्टव्याः'तयणंतरं च णं
 सोलस देवसहस्सा पुरओ अहाणुपुन्वीए सपट्टिया' तदन्तर च खल्ल पोडशदेवसहस्सा-
 णि पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितानि 'तयणंतरं च णं वत्तीसं रायवरसहस्सा अहाणुपु-
 न्वीए संपट्टिया' तदन्तर च खल्ल द्वात्रिंशदाजदरसहस्साणि-द्वात्रिंशत्संख्यकाः मुकुटधारिणो
 राजश्रेष्ठाः पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितानि 'तयणंतरं च णं सेणावडरयणे पुरओ अहाणु-
 पुन्वीए संपट्टिए' तदन्तरं च खल्ल सेनापतिरत्न सुपेणनामकम् यथानुपूर्व्या पुरतः सम्प्र-
 स्थितम् 'एवं गाहावडरयणे वड्डइरयणे पुरोहियरयणे' एत्रम् अमुना प्रकारेण गाथापति-
 रत्नम्, वर्द्धकिरत्न पुरोहितरत्नम् एतत् त्रय पुरतो यथानुपूर्व्या संप्रस्थितम् तत्र अयं वि-
 शेषः पुरोहितरत्नं-शान्तिकर्मकारकः सङ्ग्रामे प्रहारार्हिताना मणिरत्नजलच्छटया वेदनो-
 पशामकमितिभावः । हस्त्यश्वरत्नगमनं तु हस्त्यश्वसेनाभिः सहैव तेन नात्र कथनम्

शङ्क इनके सम्बन्ध में कथन अभी अभी किया जा चुका है । (तयणतर च सोलस देवसहस्सा पुरओ अहाणुपुन्वीए सपट्टिया) इनके बाद सोलह हजार देव १४ चौदह रत्नों के १४ हजार देव और चक्रवर्ती शरीर के रक्षक २ हजार देव मिलकर १६ हजार देव यथानुपूर्वी चले (तयणतरं च ण वत्तीस रायवरसहस्सा अहाणुपुन्वीए सपट्टिया) इनके बाद ३२ हजार मुकुट वद्ध राजा जन चले (तयणतरं च णं सेणावडरयणे पुरओ अहाणुपुन्वीए सपट्टिए) इनके बाद सेनापतिरत्न प्रस्थित हुआ (एवं गाहावडरयणे वड्डइरयणे पुरोहियरयणे) बाद में गाथापतिरत्न उसके बाद वर्द्ध-किरत्न, बाद में पुरोहितरत्न ये ३ रत्न चले । यह पुरोहित रत्न शान्ति कर्म कारक होता है । संग्राम में प्रहार आदि से पीड़ित हुए सैनिक जनों की मणिरत्न के जल के छीटे से यह वेदना को शान्त करता है इतिरत्न और अश्व रत्न सेना के साथ ही चले है । इसलिए इनके गमन का

हीत तथा छे ज्ये, अवशिष्ट निधिया ना नाभो आ प्रभाण्ये छे (प गलक, सर्वरत्न, महापद्म काण, महाकाण, माणुपक अने श थ ज्येना स भधमां डभणुाण पडेलां स्पष्टता करवाभां आवी छे (तयणतरं च सोलस देवसहस्सा पुरओ अहाणुपुन्वीए सपट्टिया) त्थारभाह सोण डणर, देवो यत्तुं शरत्तेना १४ डणर देवो अने अकवती-शरीरना रक्षक जे डणर देवो आभ भधा भणीने १६ डणर नेटला देवो यथानुपूर्वी आल्या (तयणतरं च णं वत्तीसं रायवर-सह अहाणुपुन्वीए सपट्टिया) त्थार भाह उर डणर मुकुट भद्ध शणज्यो आल्या (तय-णतरं च णं सेणावडरयणे पुरओ अहाणुपुन्वीए सपट्टिया) त्थारभाह सेनापति रत्न प्रस्थित थथु (एवं गाहावडरयणे वड्डइरयणे पुरोहियरयणे) त्थारभाह गाथापतिरत्न ज्येना पछी वर्द्ध किरत्न, ज्येना पछी पुरोहितरत्न ज्ये त्रय रत्नो आल्या. ज्ये पुरोहितरत्न शान्ति कर्मकारक होय छे संग्राममा प्रहार आदिथी पीडित थथेला सैनिकोनी मणिरत्नना जणना छाटाथी ज्ये रत्न वेदनाने शान्त करे छे इतिरत्न अने अश्वरत्न, सेनानी साथे

‘तयणंतरं च णं इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुञ्जीए०’ तदन्तरं च खलु स्त्रीरत्नं सुभद्रा-
 जामकम् पुरतो यथानुपूर्व्यां संप्रस्थितम् ‘तयणंतरं च णं वत्तीसं उडकल्लाणिया सह-
 स्सा पुरओ अहाणुपुञ्जीए०’ तदन्तरं च खलु द्वात्रिंशद् ऋतु कल्याणिका सहस्राणि द्वात्रिं-
 शत् ऋतुकल्याणिकाः-ऋतुषु पदस्वपि कल्याणिकाः ऋतुविपरीतस्पर्शत्वेन शीतकाले
 उष्णस्पर्शः उष्णकाले शीतस्पर्शः इत्यादिरूपेण सुखस्पर्शाः अथवाऽमृतकन्यात्वेन सदा
 कल्याणकारिण्यः राजकन्यास्तासां सहस्राणि पुरतो यथानुपूर्व्यां यथा ज्येष्ठलघुपर्यायं
 सम्प्रस्थितानि जन्मान्तरोपचितप्रकृष्टपुण्यप्रकृतिमहिम्ना राजकुलोत्पत्तिवद् यथोक्तलक्ष-
 णगुणसम्भवात् ‘तयणंतरं च णं वत्तीस जणवय कल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपु-
 ञ्जीए सपट्ठिए’ तदन्तरं च खलु द्वात्रिंशज्जनपदकल्याणिका सहस्राणि । भरतचक्र-
 वर्तिनः चतुः पष्ठिसहस्रसंख्यका स्त्रियो भवन्ति तासु एता द्वात्रिंशत् सहस्र संख्यकाः
 कल्याणिका इति । तत्र द्वात्रिंशज्जनपदाः जनपदाग्रागण्य इत्यर्थः पदैकदेशे पदसमुदायो-
 पचारात् ‘तावतीभिर्जनपदाग्रणी कन्याभिरावृतः’ इति, एवंविधाः कल्याणिकाः कल्याण-
 कारिण्यो राजकन्यकाः इत्यर्थः समर्थविशेषणेन विशेष्यं लभ्यते इति लक्षणगुणयो-
 गात् तासां सहस्राणि पुरतः यथानुपूर्व्यां यथाज्येष्ठलघ्वनुक्रमेण सम्प्रस्थितानि च्छितानि

कथन नहीं किया (तयणंतरं च इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुञ्जीए) बाद में स्त्रीरत्न चला (तयण
 तरं च णं वत्तीसं उडकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपुञ्जीए) बाद में ३२ हजार ऋतुकल्याण
 कारिणियां—राजकुलोत्पन्न कन्याएँ—चली जिनका स्पर्श ऋतुविपरीत—शीतल काल में उष्णस्पर्शरूप
 और उष्णकाल में—शीतस्पर्शरूप हो जाता था—चली इनमें ऐसा गुण जन्मान्तरोपचित—प्रकृष्ट
 पुण्य प्रकृति को महिमा से राजकुल में उत्पत्ति हो जाने की तरह उत्पन्न हो जाता है । (तय णं
 तरं च णं वत्तीस जणवयकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपुञ्जीए सपट्ठिया) इनके बाद ३२
 हजार जन पद कल्याण कारिणिया चली चक्रवर्ती के १४ हजार ब्रिया होती हैं । उनमें ये ३२
 हजारहोती हैं । इनके साथ जनपद के अग्रणि नो की- मुखियानो को- इतनी हो कन्याएँ और
 साथ रहती है इसलिए इन्हें जनपद कल्याण कारिणियां कहा गया है । (तयणंतरं च ण वत्तीसं

७ आक्षयां येथी जेमना जमननु कथन अत्रे करवाभा आण्यु नथी (तयणतरं च
 इत्थिरयणे पुरओ अहाणुपुञ्जीए) त्थार भाद सी रत्न आक्षु (तयणंतरं च वत्तीसं
 उडकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहा०) त्थार भाद उर हार ऋतुकल्याणकारिणियां—राजकुलो-
 त्पन्न कन्याओ आली जेमने र्पशं ऋतु विपरीत—शीतकालमा उष्ण स्पर्शरूप अने उष्ण
 कालमा शीत स्पर्शरूप थछ नथ छे—आली. जे सर्वकन्याओमा जे शुभजन्मान्तरोपचित-
 प्रकृष्ट पुण्य प्रकृतिना महिमाथी जेम राजकुलमा उत्पत्ति थर्छ छे तेमज उत्पन्न थर्छ नथ
 छे, (तयणतरं च वत्तीस जणवयकल्लाणिया सहस्सा पुरओ अहाणुपुञ्जीए सपट्ठिए) त्थार-
 भाद उर हार जनपद कल्याण कारिणियां आली यकपत्तीने ६४ हार सीओ डोय छे
 तेमां जे उर हार थछ डोय छे जेमनी साथे जनपदना अग्रणि नोनी—मुखियानोनी—
 जेटली ७ कन्याओ पील साथे रहे छे, जेथी ७ जेमने जनकल्याण कारिणियां हरेवाभा

‘तयणंतरं च णं वत्तीसं वत्तीसह वद्धा णाडगसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए’ तदनतरं च खलु
 द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशद् वद्धानि द्वात्रिंशता पात्रै वद्धानि संयुक्तानि नाट रुमहम्माणि पुगनः अग्रतो
 यथानुपूर्व्या यथाक्रमं प्रथमं प्रथमोद्दिपित्प्राभृतीकृतनाटक ततस्तदनन्तरोद्दि नाट रुमित्यादि-
 सम्प्रस्थितानि एतेषां चोक्तसख्याकत्वं द्वात्रिंशता राजवृगसहस्रैः स्वस्वकन्यापारिणग्रहण-
 हेतौ प्रत्येक करमोचनसमयसमर्पितैकैकनाटकसद्भावात् ‘तयणंतरं च णं तिन्निमट्टाम्भ-
 सया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया’ तदन्तरं च खलु त्रीणि पट्टानि पट्टचित्रिकानि सूपशता
 नि सूपानां पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् सूपकाराणाम् शतानि त्रिपट्टय्यवकशतानीत्यर्थः
 पूरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितानि ‘तयणंतरं च णं अट्टारससेणिप्पसेणीओ संपट्टिया’
 तदन्तरं च खलु अष्टादश कुम्भकाराद्याः श्रेणयः तदन्तरे प्रभेदाः प्रश्रेणयः पूरतो यथानुपूर्व्या
 सम्प्रस्थिताः अष्टादश श्रेणयश्चेमाः

मूळम्-कुम्भकार १, पट्टइल्ला २, सुवण्णकाराय ३, सूवकाराय ४ ।

गंधव्वा ५ कासवगा ६ मालाकाराय ७ कच्छकरा ८ ॥९॥

तंबोलिया ९ य एए नवप्पयारा य नारुआ भणिया ।

अहण णवप्पयारे कारुअवण्णे पवक्खामि ॥१०॥

वत्तीसहवद्धा णाडगसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए सट्टिया) बाद-३२-३२-पात्रो से वद्ध ३२ ह-
 जारनाटक चले । ये ३२ हजार राजाओं द्वारा अपनी कन्याओं के पाणिग्रहणोत्सव में करमोचन
 के समय में चक्रवर्ती को एक २ नाटक दिया जाता है । इसलिए ये ३२ हजार हो जाते हैं
 (तयणतरं च णं तिन्निमट्टा सूपसया पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्टिया) इन नाटको के बाद ३६०
 सूपकार- पाचक जन प्रस्थित हुए । (तयणतरं च णं अट्टारससेणिप्पसेणीओ सपट्टिया) इनके
 बाद १८ श्रेणो प्रश्रेणिजन प्रस्थित हुए । २८ प्रश्रेणियां इय प्रकार से हैं-कुम्भकार १ पट्टइल्ला
 सुवण्णकाराय ३ सूवकाराय ४ गंधव्वा ५ कासवगा ६ मालाकाराय ७ कच्छकरा ८ ॥९॥
 तंबोलिया ९ य एए नवप्पयाराय नारुआ भणिया अहणं णवप्पयारे कारुअवण्णे पवक्खामि ॥१०॥

आवेद्ये (तयणंतरं च ण वत्तीसं वत्तीसहवद्धा णाडग सहस्सा पुरओ अहा० सपट्टिया)
 त्थार भाह ३२-३२ पात्रोथी आ अह्, ३२ इत्थं नाटके आह्या ये ३२ इत्थं २०००
 पोटानी कन्याओंना पाणिग्रहणमहोत्सवमां करमोचनना समयमां अकवत्ती ने अेक-अेक नाटक
 आपवामां आवे छे, आम अे ३२ इत्थं थाय छे (तयणतरं च ण तिन्निमट्टा सूपसया
 पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्टिया) अे नाटके पत्ती ३६० सूपकारे-पाचकजनो-प्रस्थित थया.
 (तयणतरं च ण अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सपट्टिया) त्थार भाह १८ श्रेणो-प्रश्रेणियो
 प्रस्थित थया, १८ प्रश्रेणियो आ प्रभाष्ये छे-कुम्भकार १, पट्टइल्ला-२, सुवण्णकाराय
 ३, सूवकाराय-४, गंधव्वा-५, कासवगा ६, मालाकाराय-७, कच्छकरा-८, ॥९॥
 तंबोलिया ९, य एए नवप्पयाराय नारुआ भणिया ।
 अहणं णवप्पयारे कारुअवण्णे पवक्खामि ॥ १० ॥

चम्मयरु १ जंतपीलग २ गच्छिअ ३ छिपाय ४ कंसकारे ५ य ।

सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला ८ धीवर ९ वण्णाइ अट्टदस ॥ ३ ॥

छाया-कुम्भकारः १ पटेलाश्च (ग्राम मुखिकाः) २ स्वर्णकाराः ३ सूपकाराश्च ४ ।

गन्धर्वा (गायका) ५ काश्यपकाश्च नापिताः ६ मालाकाराश्च ७ कक्षकरा ८ ॥ १ ॥

ताम्बूलिकाश्चते ९ खल्वेते नव प्रकाराश्च नारुकाः भणिता ।

अथ खलु नव प्रकारान् कारुकवर्णान् प्रवक्ष्यामि ॥ २ ॥

चर्मकार १ जन्त्रपीलकर २ ग्रन्थिक ३ छिपक ४ कंशकाराश्च ५ ।

सीवक ६ गोपाल ७ भिल्ल ८ धीरवान् ९ अट्टादशवर्णान् ॥ ३ ॥

‘तयणंतरं च णं चउरासीइं आससय सहस्सा पुराओ अहाणुव्वीए संपट्टिया’

तदन्तरं च खलु चतुशीतिश्च शतसहस्राणि चतुरशीतिलक्षसंख्यकहस्तिनः पुरतो यथानु-
पूर्व्या संप्रस्थितानि ‘तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्स कोडीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए
संपट्टिया’ तदन्तरं च खलु पण्णवति मनुष्याणां पदातीनां कोटयः पण्णवति कोटिस-
ख्यकाः पदातयः पुरतो यथानुपूर्व्या संप्रस्थिताः ‘तयणंतरं च णं वहव राईसर तलवर

चम्मयरु १ जंतपीलग २ गच्छिअ ३ छिपाय ४ कंसकारे ५ य सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला
८ धीवर ९ वण्णाइ अट्टदस ॥ ३ ॥ कुंभकार-मिट्टी के वर्तन बनानेवाला पटेला २ गाम का मुखिया
स्वर्णकार ३ सुनार. सूपकार-रसोहबनानेवाला ४, गधर्व ५ गायक काश्यपक-नापित नाई-वाल-
बानानेवाला ६, मालाकार-माळी ७, कच्छकर ८ और ताम्बूलिक-पानवेचनेवाला तंबोली ये ९
प्रकार के नारुक कहे गये हैं । तथा चर्मकार-चमार-जतेरनानेवाला १, यन्त्रपीलक-तेली २
ग्रन्थिक ३, छिपक-छोपा ४, कंशकरतमेरा ५, सीवक-दर्जी ६, गोपाल-ग्वाल ७ भिल्ल ८
और धीवर ये ९ प्रकार के कारुक कहे गये हैं । (तयणंतरं च णं च उरासीइं आससयसहस्सा
पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) इनके बाद ८४ लाख घोडे प्रस्थित हुए (तयणंतरं च णं छण्णउई
मणुस्स कोडीओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) इनके बाद ६ करोड़ मनुष्यराशि पदातियों का

चम्मयरु १, जंत पीलग २ गच्छिअ ३, छिपाय ४, कंसकारे ५ य सीवग ६, गुआर
७, भिल्ला ८, धीवर ९, वण्णाइ अट्टदस ॥ ३ ॥

कुंभकार-१, कुंभार माटीना वासणो अनावनार, पटेला-२, गामनेा मुभी, सुवर्णकार
-३ सोनी, सूपकार-२सोई थो ४, गधर्व-५, गायक, काश्यपक नापित-नाई-वाण अनाव-
नार वाण ६ मालाकार-माळी-७, कच्छकर-८ अने ताम्बूलिक-पान विकेता त भोणी, जे नव
प्रकारना नारुके कडेवामां आंथा छे तेमज्ज अमंकार-अमार जेडा अनावनार-भोणी १, यन्त्र
पीलक १, -तेलीर, ग्रन्थिक ३, छिपक-छोपा-४, कंशकर-तमेरा ५, सीवक-दर्जी ६, गोपाल-ग्वाल
कारवाड ७, भिल्ल-भोळ ८ अने धीवर-भच्छोमार जे ९ प्रकारना नारुके कडेवामा आंथा छे

(तयणंतरं च णं चउरासीइं आससयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया)
त्यरभाइ ८४ लाख घोडाओ प्रस्थित थया (तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्स कोडीओ
पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) त्यरभाइ ६६ करोड जेटली मानव भोहनी पहाती ओनी

जाव सत्यवाहृप्पभिइओ पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिआ' तदन्तरं च खलु बहवो राजानो माण्डलिका, ईश्वराः-युवराजाः तलवराः नगररक्षका यावत्सार्थवाहप्रभृतयः पुरत' यथानुपूर्व्या संप्रस्थिताः अत्र-यावत्पदा, माडम्बिक कौटुम्बिक मन्त्रि महामन्त्रि गणक दौवारिक अमात्य चेटपीठमर्दकनगरनिगम श्रेष्ठ सेनापति सार्थवाहाः इति ग्राह्यम् । तत्र-माडम्बिकाः मडवो ग्रामविषेशः यस्य ग्रामस्य चतुर्दिक्षु सार्द्धं तृतीय, क्रोगद्वय-पर्यन्त, ग्रामान्तरं न भवति सः तस्याधिपतिः तद्बहुवचने-मड'वाधिपतयः, कौटुम्बिकाः- परिवारस्थायिनो माता पिताभ्रातृभगिन्यादयः, मन्त्रिणः, सचिवा अमात्याः, महामन्त्रि णः, - सर्वोच्चामात्याः प्रधानमन्त्रिणः, गणकाः - ज्योतिषिकाः, दौवारिकाः - द्वारपालकाः, अमात्या - राज्याधिष्ठायकाः, चेटाः - दासा वा, पीठमर्दाः - आस्थाने आसन्ना-सन्नसेवकाः समवयस्या इत्यर्थः, नगरम् प्रसिद्धम्, निगमाः - कारिका वणिजो

समूह चली (तयणंतरं चणं बहवे राईसर तलवर जाव सत्यवाहृप्पभिइओ पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्टिया) इस जनसमूह के बाद अनेक राजा-माण्डलिकजन, ईश्वर युवराज, तलवर नगर रक्षक यावत् सार्थवाह आदिजन चले यहाँ यावत्तद में माडम्बिक, कौटुम्बिक मन्त्री महामन्त्री गणक-ज्योतिषी' दौवारिक, अमात्य चेट पीठमर्द अंगरक्षक नगरनिगम के श्रेष्ठजन, सेनापति' इन सबका ग्रहण हुआ है । जिन ग्राम के आस पास दूरी कोश तक दूसरा ग्राम नहीं होता है उसका नाम मडव है इस मडव ग्राम रूप विशेष-का जो अधिपति होता है वह माड-म्बिक कहा गया है कौटुम्बिकजन-माता पिता आदि-कौटुम्बिक कहे गये हैं, मन्त्री महामन्त्री प्रधान ये भिन्न २ पद के अनुमार होते हैं गणक नाम ज्योतिर्विद का है जिसे भाषा में ज्योतिषी कहा गया है द्वारपाल का नाम दौवारिक है राज्य के अधिष्ठापक हाते हैं उन्हें अमात्य कहा जाता है दासी दास आदि चेट कहलाते हैं पीठमर्द अंगरक्षक को कहते हैं जिसे अप्रेजी में बोडीगार्ड कहा गया है अथवा जा समानवय के होते हैं वे भी पीठमर्द कहे जाते हैं ।

आधी (तयणंतरं च ण बहवे राईसरतलवर जाव सत्यवाहृप्पभिइओ पुरओ अहाणु-पुव्वीए संपट्टिया) ये जनसमूह पछी अनेक राजाओ-माण्डलिकजन, ईश्वरयुवराज तलवर, नगर रक्षक यावत् सार्थवाह वगेरे लोक आत्या आधी' यावत् पछी माडम्बिक कौटुम्बिक, मन्त्रीओ, महामन्त्रीओ गणको-ज्योतिषीओ दौवारिको अमात्यो चेटो-पीठमर्दो, अंग-रक्षको, नगरनिगमना श्रेष्ठजनो, सेनापतिओ ओ सर्वानुअहंषु थयुं छे जे आभनी आस-पास आधी गाठ सुधो अन्य ग्राम डोय नहिं तेनु नाम मडव छे. ओ मडव विशेष ने ओ अधिपति डोय छे ते माडम्बिक कहेवाय छे कौटुम्बिकजन, माता पिता वगेरे ने कौटु-म्बिको कहेवामा आब्या छे मन्त्री, महामन्त्री प्रधान ओ ओ बिध पद. मज्जण डोय छे गणक नाम ज्योतिर्विदनु छे, जेने हिन्दी भाषामां ज्योतिषी कहेवामां आवे छे द्वारपाल तु' नाम दौवारिक छे. राज्यना जे अधिष्ठापको डोय छे तेने अमात्यो कहेवामा आवे छे. दासी-दास वगेरेने चेट कहेवामां आवे छे, पीठमर्द अंगरक्षक ने कहे छे जेने अत्रेण-भाषामां बोडीगार्ड कहेवामा आवे छे. अथवा जेओ समानवयना डोय छे तेओनेपीठमर्द

चम्मयरु १ जंतपीलग २ गच्छिअ ३ छिपाय ४ कंसकारे ५ य ।

सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला ८ धीवर ९ वण्णाइ अट्टदस ॥ ३ ॥

छाया—कुम्भकारः १ पटेलाश्च (ग्राम मुखिकाः) २ स्वर्णकाराः ३ सूपकाराश्च ४ ।

गन्धर्वा (गायका) ५ काश्यपकाश्च नापिताः ६ मालाकाराश्च ७ कक्षकरा ८ ॥ १ ॥

ताम्बूलिकाश्चते ९ खल्वेते नव प्रकाराश्च नारुकाः भणिता ।

अथ खलु नव प्रकारान् कारुकवर्णान् प्रवक्ष्यामि ॥ २ ॥

चर्मकार १ यन्त्रपीलकर २ ग्रन्थिक ३ छिपक ४ कक्षकाराश्च ५ ।

सीवक ६ गोपाल ७ भिल्ल ८ धीरवान् ९ अष्टादशवर्णान् ॥ ३ ॥

‘तयणतरं च णं चउरासीइं आससय सहस्सा पुराओ अहाणुव्विए संपट्टिया’

तदन्तरं च खलु चतुरशीतिश्च शतसहस्राणि चतुरशीतिलक्षसंख्यकहस्तिनः पुरतो यथानु-
पूर्व्या संप्रस्थितानि ‘तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्स कोडीओ पुरओ अहाणुपुव्वीए
संपट्टिया’ तदन्तरं च खलु पण्णवति मनुष्याणां पदातीनां कोटयः पण्णवति कोटिस-
ख्यकाः पदातयः पुरतो यथानुपूर्व्या संप्रस्थिताः ‘तयणंतरं च णं वहव राईसर तलवर

चम्मयरु १ जतपीलग २ गच्छिअ ३ छिपाय ४ कंसकारे ५ य सीवग ६ गुआर ७ भिल्ला
८ धीवर ९ वण्णाइ अट्टदस ॥ ३ ॥ कुम्भकार-मिट्टी के वर्तन बनानेवाला पटेअ २ गाम का मुखिया
स्वर्णकार ३ सुनार. सूपकार-रसोइवनानेवाला ४, गंधर्व ५ गायक काश्यपक-नापित नाई-वाल-
बानानेवाला ६, मालाकार-माली ७, कच्छकर ८ और ताम्बूलिक-पानवेचनेवाला तबोली ये ९
प्रकार के नारुक कहे गये हैं । तथा चर्मकार-चमार-जतेनानेवाला १, यन्त्रपीलक-तेली २
ग्रन्थिक ३, छिपक-छोपा ४, कक्षकरतमेरा ५, सीवक-दर्जी ६, गोपाल-ग्वाल ७ भिल्ल ८
और धीवर ये ९ प्रकार के कारुक कहे गये हैं । (तयणंतरं च णं च उरासीइं आससयसहस्सा
पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्टिया) इनके बाद ८४ लाख घोडे प्रस्थित हुए (तयणंतरं च णं छण्णउई
मणुस्स कोडीओ अहाणुपुव्वीए सपट्टिया) इनके बाद ६ करोड़ मनुष्यराशि पदातियों का

चम्मयरु १, जत पीलग २ गच्छिअ ३, छिपाय ४, कंसकारे ५ य सीवग ६, गुआर
७, भिल्ला ८, धीवर ९, वण्णाइ अट्टदस ॥ ३ ॥

कुम्भकार-१, कुम्भार भाटीना वासणो बनावनार, पटेअ-२, गामनेा सुभी, सुवर्णकार
-३ सोनी, सूपकार-२सोई थे ४, गंधर्व-५, गायक, काश्यपक नापित-नाई-वाण बनाव-
नार वाण ६ मालाकार-भाणी-७, कच्छकर-८ अने ताम्बूलिक-पान विकेता त जोणी, अने नव
प्रकारना नारुक कहेवामां आओया छे तेमअ चर्मकार-चमार जोडा बनावनार-भीची १, यन्त्र
पीलक १, -तेलीर, ग्रन्थिक ३, छिपक-छोपा-४, कक्षकर-तमेरा ५, सीवक-दर्जी ६, गोपाल-ग्वाल
कारवाड ७, भिल्ल-भिल्ल ८ अने धीवर-भच्छोमार अने ९ प्रकारना नारुक कहेवामां आओया छे

(तयणतरं च णं चउरासीइं आससयसहस्सा पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्टिया)
त्यरभाड ८४ लाख घोडाओ प्रस्थित थया (तयणंतरं च णं छण्णउई मणुस्स कोडीओ
पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) त्यरभाड ६६ करोड बेटली मानव भेइनी पहाती ओनी

जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ अहाणुपुन्वीए संपट्टिआ' तदन्तर च एल्लु बहवो राजानो माण्डलिका, ईश्वराः-युवराजाः तलवराः नगररक्षका यावत्सार्थवाहप्रभृतयः पुरत यथानुपूर्व्या संप्रस्थिताः अत्र-यावत्पदा, माडम्बिक कौटुम्बिक मन्त्रि महामन्त्रि गणक दौवारिक अमात्य चेटपीठमर्दकनगरनिगम श्रेष्ठि सेनापति सार्थवाहाः इति ग्राह्यम् । तत्र-माडम्बिकाः मडवो ग्रामविषेशः यस्य ग्रामस्य चतुर्दिक्षु सार्द्धं तृतीय, क्रोशद्वय-पर्यन्त, ग्रामान्तरं न भवति सः तस्याधिपतिः तद्वहुवचने-मडवाधिपतयः, कौटुम्बिकाः-परिवारस्थायिनो माता पिताभ्रातृभगिन्यादयः, मन्त्रिणः, सचिवा अमात्याः, महामन्त्रि णः, - सर्वोच्चामात्याः प्रधानमन्त्रिणः, गणकाः - ज्योतिषिकाः, दौवारिकाः - द्वारपालकाः, अमात्या - राज्याधिष्ठायकाः, चेटाः - दासा वा, पीठमर्दाः - आस्थाने आसन्नासन्नसेवकाः समवयस्या इत्यर्थः, नगरम् प्रसिद्धम्, निगमाः - कारणिका वणिजो

समूह चली (तयणंतरं वणं बहवे राईसर तलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ अहाणुपुन्वीए सपट्टिया) इस जनसमूह के बाद अनेक राजा-मांडलिकजन, ईश्वर युवराज, तलवर नगर रक्षक यावत् सार्थवाह आदिजन चले यहाँ यावत्तर में माडम्बिक, कौटुम्बिक मन्त्री महामन्त्री गणक-ज्योतिषी' दौवारिक, अमात्य चेट पीठमर्द अंगरक्षक नगरनिगम के श्रेष्ठजन, सेनापति' इन सबका प्रहण हुआ है । जिम ग्राम के आस पास दाईं कोश तक दूसरा ग्राम नहीं होता है उसका नाम मडंब है इस मडंब ग्राम रूप विशेष-का जो अधिपति होता है वह माडम्बिक कहा गया है कौटुम्बिकजन-माता पिता आदि-कौटुम्बिक कहे गये हैं, मन्त्री महामन्त्री प्रधान ये मन्त्र २ पद के अनुमार होते हैं गणक नाम ज्योतिर्विद का है जिसे भाषा में ज्योतिषी कहा गया है द्वारपाल का नाम दौवारिक है राज्य के अधिष्ठापक हाते हैं उन्हें अमात्य कहा जाता है दासी दास आदि चेट कहलाते है पीठमर्द अंगरक्षक को कहते है जिसे अंग्रेजी में बोडीगार्ड कहा गया है अथवा जो समानवय के होते हैं वे भी पीठमर्द कहे जाते हैं ।

आधी (तयणंतर च णं बहवे राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ पुरओ अहाणु-पुन्वीए संपट्टिया) ये जनसमूह पछी अनेक राजाओ-मांडलिकजनो, ईश्वरयुवराज तलवर, नगर रक्षक यावत् सार्थवाह वगेरे लोके आत्था आधी' यावत् पछी माडम्बिक कौटुम्बिक, मन्त्रीओ, महामन्त्रीओ गणको-ज्योतिषीओ दौवारिको अमात्यो चेटो-पीठमर्दो, अंगरक्षको, नगरनिगमना श्रेष्ठिजनो, सेनापतिओ ओ सर्वानुअहसु थसु छे जे आभनी आस-पास आधी गाँठ सुधो अन्य आभ डोय नहि तेनु नाम मडम्ब छे ओ मडम्ब विशेष ने ओ अधिपति डोय छे । ते माडम्बिक कहेवाय छे कौटुम्बिकजन, माता पिता वगेरे ने कौटुम्बिको कहेवाभा आन्था छे मन्त्री, महामन्त्री प्रधान ओ ओ। बिअ पद. मज्जम डोय छे गणक नाम ज्योतिर्विदनु छे, जेने हिन्दी भाषामां ज्योतिषी कहेवाभां आवे छे द्वारपाल ओ नाम दौवारिक छे राज्यना जे अधिष्ठापको डोय छे तेने अमात्यो कहेवाभां आवे छे, दासी-दास वगेरेने चेट कहेवाभा आवे छे, पीठमर्द अंगरक्षक ने कहे छे जेने अत्रेण-भाषामां बोडीगार्ड कहेवाभा आवे छे. अथवा जेओ समानवयना डोय छे तेओनेपीठमर्द

वा, श्रेष्ठिनः प्रसिद्धाः, सार्थवाह प्रभृतयः प्रभृतिपदात् दूतसन्धिपालेति ग्राह्यम् । दूताः प्रसिद्धाः सन्धिपालाः - राज्यसन्धिरक्षकाः एषां द्वन्द्वः एते पुरतो अग्रतः यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः 'तयणतरं च ण बहवे असिग्गाहा लट्टिग्गाहा कुतग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा फलगग्गाहा परसुग्गाहा पोत्थयग्गाहा वीणग्गाहा कूभग्गाहा हडप्फग्गाहा दीविभग्गाहा सएहिं सएहिं रूवेहिं एवं वेसेहिं चिचेहिं निभोएहिं सएहिं २ वत्थेहिं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया' तदनन्तरं च खल्ल बडवः असिग्गाहाः, खड्गग्रहिणः, तथा केचिद् यष्टिग्गाहाः - यष्टिकाग्रहिणः, दण्डग्रहिण इत्यर्थः कुन्ताः भल्लधारिणः केचित् चापग्रहाः धनुर्ग्रहिणः चामरग्रहाः, पाशग्रहाः-पाशाः द्यूतोपकरणानि तद्ग्रहाः, परशुग्रहाः परशयः कुठाराः तद्ग्रहा पुस्तकग्रहाः - पुस्तकानि शुभाशुभपरिज्ञानहेतु-भूतपुस्तकादि तद्ग्रहाः वीणाग्रहा 'कूभग्गाहा' कुतपग्रहाः कुतपा तैलादि भाजनानि तद्ग्रहाः, हडप्फग्रहाः- हडप्फः ताम्बूलार्थे पूगिफलादिभाजनं तद्ग्रहाः दीपिकाग्रहाः प्रसिद्धाः एते च स्वकीयैः रूपैः आकारैः एवं स्वकीयैः स्वकीयैः वेपैः

निगमनाम वणिक्जनों का है बाकी के शब्दों का अर्थ स्पष्ट है यहाँ प्रभृति शब्द से दूतसन्धिपाल का ग्रहण हुआ है दूत-राजा के संदेशवाहक होते हैं एवं सन्धिपाल राज्य की सधि के रक्षक होते हैं । (तयणंतरचणं बहवे असिग्गाहा लट्टिग्गाहा कुतग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा फलगग्गाहा परसुग्गाहा पोत्थयग्गाहा, वीणग्गाहा कूभग्गाहा, हडप्फग्गाहा, दीविभग्गाहा सएहिं सएहिं, रूवेहिं एवं वेसेहिं, चिचेहिं, निभोएहिं सएहिं सएहिं वत्थेहिं पुरओअहाणुपुव्वीए संपत्थिया) इनके बाद अनेक असि तलवारग्राही जन अनेक यष्टि ग्राही जन, अनेक भल्लधारी जन अनेक धनुर्धारीजन, अनेक ध्वजोपकरण धारीजन, अनेक फलकग्राहीजन, अनेक परशुग्राहीजन अनेक शुभाशुभ परिज्ञान के जानने के लिये पुस्तको को लेकर चलने वाले जन अनेक वीणाधारीजन अनेक तैल आदि के रखने के कुतुप को लेकर चलने वालेजन अनेक सुपारी आदिरूप पानकी सामग्री से भरे हुए डिब्बों को लेकर चलने वाले जन एवं अनेक

कडेवाभां आवे छे. निगम नाम वणिक् जनोनुं छे शेष शब्दोनेो अर्थ स्पष्ट न छे, अडीं प्रभृते शब्दथी इतसन्धिपालक नुं अडणु थयु छे, इतो-राजना संदेशवाहकें डोय छे. तेमज सन्धिपाल राजनी सन्धिना रक्षक डोय छे (तयणतर च णं बहवे असिग्गाहा लट्टिग्गाहा, कुतग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा, पासग्गाहा, फलगग्गाहा, परसुग्गाहा, पोत्थयग्गाहा, वीणग्गाहा, कूभग्गाहा, हडप्फग्गाहा, दीविभग्गाहा, सएहिं सएहिं, रूवेहिं एवं वेसेहिं चिचेहिं, निभोएहे सएहिं २ वत्थेहिं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया) थार आठ अनेक असि तलवार आडीजनो, अनेक यष्टि-(लाकडी) आडीजनो, अनेक भल्लधारी जनो अनेक धनुर्धारीजनो, अनेक ध्वजोपकरणधारीजनो अनेक फलक आडीजनो, अनेक परशुग्राही जनो, अनेक शुभाशुभ परिज्ञानने लक्ष्यवाभाटे पुस्तकोने लक्ष ने आलनाराजनो, अनेक वीणाधारीजनो अनेक तैल आदिना कुतुपो लक्ष ने आलनारा जनो अनेक सुपारी वगेदइथ पाननी सामग्री भरिने डब्बाओ लक्षने आलनार जनो तेमज अनेक दीवाओ ने लक्ष ने

वस्त्रालङ्काररूपै चिधैः - अभिज्ञानैः 'चिन्हे' नियोगः न्यापारः स्वकीयैः स्वकीयैः वस्त्रैः नेपथ्यै सहिताः सन्तः पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थिताः 'तयणंतर च णं ब्रह्मे दंडिणो मुडिणो सिहंडिणो जडियो पिच्छिणो हासकारगा खेडुकारगा दवकारगा चाडुकारगा कंदपिआ कुकुइआ मोहरिआ गायता य दीवता य(वायंता) नच्चंता य हसंता य रमता य क्रीलता य सासेता य सावेता य जावेता य रावेता य सोभेता य सोभावेता य आलोअंता य जयजयसदं च पउजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया' तदनन्तर च खलु बहवो दण्डधरिणः कंचित् मुण्डिनः अपनी तकेशाः शिखण्डिनः शिखाधारिणः केचित् जटिनः जटाधारिणः तथा पिच्छिनः मयूरदि पिच्छादिधारकाः तथा हास्यकारकाः तथा खेडुकारकाः खेडं धृतविशेष स्तकारकाः तथा द्रवकारकाः, केलिकराः चाडुकारकाः प्रियवादिनः कान्दपिकाः कामकथा कारिणः 'कचकुइआ' कोत्कुच्यकारिणो भाण्डाः भाण्डचेष्टाकारिण इत्यर्थः 'मोहरिया'

दीपो को लेकर चलने वाले जन जा कि अपने २ कार्य के अनुरूप वेश भूषा से सज्जित थे एवं अपने नियोग में अशून्य थे चले (तयणतरं चणं ब्रह्मे दंडिणो, मुडिणो, सिहंडिणो, जडिणो पिच्छिणो हासकारगा, खेडुकारगा, दवकारगा चाडुकारगा, कंदपिआ कुकुइआ, मोहरिआ, गायताय दीपंता (वायताय) नच्चंताय इसतः य क्रीलताय सासेताय सावेताय, जावेताय रावेताय सोभेताय सोभावेताय आलोअंताय जयजयसदं च पउजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए सपट्टिया) इनके बाद अनेक दंडधारीजन, अनेक शिखंडी-जिनके मस्तकके बाल मुडाये जा चुके हैं-ऐसेजन अनेक शिखंडी जिनके मस्तक पर केवल एकचोटी ही है ऐसे जन, अनेक जटाधारीजन अनेक मयूर आदि के पिच्छो को धारण करनेवाले जन अनेक हैंमी उत्पन्न करनेवाले जन अनेक बूत आदि में प्रवृत्ति कराने वाले ऐसे खेडुकारक जन अनेक द्रवकारक क्रीडा आदि में प्रवृत्ति कराने वाले जन, अनेक चाडुकारी खुशामद करनेवाले जन, अनेक कामकथा करनेवालेजन, अनेक कोत्कुच्य-कायकी कुचेष्टा करनेवाले-भाण्डजन, अनेक भाण्ड-

आधनारा जेना के जेयो पीत-पीताना कार्य ने अनुरूप वेशभूषाया सुसज्ज हुता अने पीताना नियोग मां अशून्य हुता-आध्या. (तयणतरं च ब्रह्मे दंडिणो मुडिणो, सिहंडिणो, जडिणो पिच्छिणो, हासकारगा, खेडुकारगा, दवकारगा, चाडुकारगा, कंदपिआ, कुकुइआ मोहरिआ, गायताय दीवताय (वायताय) नच्चंताय, हसंताय, क्रीलताय, सासेताय, सावेताय, जावेताय, रावेताय सोभेताय सोभावेताय आलोअंताय, जयजयसदं च पउजमाणा, पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) त्थारभाह अनेक दंडधारी जेना, अनेक मुंडीजनो-जे ना मस्तकना वाणी मुंडित करवाया आन्था छे जेवादीके, अनेक शिखंडीजो-जेना मस्तक उपर ओकज थोटी छे जेव दीके, अनेक जटाधारी जेना, अनेक मयूर वगेरेना पिच्छेने धारणु करनारा दीके अनेक छसावनारा दीके अनेक धूत आदि मा प्रवृत्ति करनारा दीके अर्थात् जेडुकारक जेना अनेक द्रवकारक क्रीडा वगेरेमा प्रवृत्ति करनारा दीके, अनेक चाडुकारी खुशामद करनारा दीके अनेक कामकथा करनारा, दीके,

सुख १: वाचालाः असम्बद्धप्रलापिन इत्यर्थः, गायन्तश्च दीव्यन्तश्च क्रोडयन्त वादयन्तश्च वादित्राणि नृत्यन्तश्च, हसन्तश्च रमणाश्च अक्षादिभिः क्रीडयन्त प्रमोदजनक्रीडया क्रीडां कुर्वन्तः शासयन्तश्च परेभ्यो गानादी शिक्षयन्तः श्रावयन्तश्च मनोभिरोचकवचनादि श्रावयन्तः जल्पन्तश्च कल्याणप्रदवाक्यानि राचयन्तः शब्दान् कारयन्तः स्वप्रोक्तवाक्यानि अनुवादयन्त इत्यर्थः शोभमानाश्च मनोज्ञवेपादिना स्वयम् शोभयन्तश्च परान् मनोज्ञवेपादिना आलोकमानाश्च पुण्यशालिन भरतचक्रिण राजराजस्यावलोकन कुर्वन्तः जय-जयशब्दं च प्रयुक्तजानाः पुरतो यथानुपूर्व्यां पूर्वोक्तपाठक्रमेण सम्प्रस्थिता 'एवं उववाइय गमेण जाव तस्स रण्णो पुरओ महआसा आसधरा उमओ पासि णागा णागधरा पिट्ठओ रहा रहसंगेल्ली अहाणुपुव्वीए संपट्टिया' इति एवम् उक्तक्रमेण औपपातिकगमेन प्रथमोपाङ्गत पाठेन तावद्वक्तव्य यावत् तस्य भरतस्य राज्ञ पुरतः महाश्याः बृहत्तुरङ्गाः अश्वधरा अश्वधारकपुरुषाः गजरत्नारूढभरतस्य उभयतः द्वयोः पश्वयोः नागाः हस्तिनः नागधाः हस्तिधारकपुरुषाश्च पृष्ठतः पृष्ठभागे रथारथसङ्गेल्ली रथसमुदाय देशीयोऽयं शब्दः

जन, अनेक वाचालजन-असम्बद्ध प्रलापोजन, गाते हुए भिन्न २ प्रकार की क्रीडा करते हुए, अनेक वादित्रों को बजाते हुए नृत्यकरते हुए, हँसते हुए, अक्ष आदि के द्वारा खेळते हुए प्रमोदजनक क्रीडा करते हुए, दूसरों को गान आदि सिखाते हुए, मनोभिरोचक वचनों को सुनाते हुए, मीठे २ शब्दों को दूसरों के प्रति उच्चारण करते हुए, अपने ही द्वारा कहे गये वचनों का अनुवाद करते हुए मनोज्ञवेष आदि से अपने को और दूसरों को सज्जित करते हुए, एवं राजाओं के राजा पुण्यशाली भरत चक्रों का अवलोकन करते तथा जय जय शब्द का प्रयोग करने हुए प्रस्थित हुए (एवं उववाइयगमेण जाव तस्स रण्णो पुरओ मह आसा आसधरा उमओ पासि णागा णागधरा पिट्ठओरहा रहसंगेल्ली अहाणुपुव्वीए सपट्टिया) इस तरह प्रथम उपाङ्ग औपपातिक सूत्र के पाठ के अनुसार यहाँ "उस भरत राजा के आगे बड़े २ घोड़े, अश्व धारक पुरुष दोनों ओर हाथी, हस्तिधारक पुरुष, पीछे रथ और रथों का समूह चला"

अनेक कौतुकस्थ-काथानी कुचेष्टा करनारा-लाडजने, अनेक वाचाल जने, असम्बद्ध प्रलापी-जने, गाता-गातां विन्न प्रकारनी क्रीडाओ करता, अनेक वाद्यो वगाडता, नृत्य करता, हसता, अक्ष वगेरे द्वारा रमता, प्रमोदकारी क्रीडाओ करता भीलओने सगीत वगेरे कलाओ शीभवता, मनोभिरोचक वचनो स बणावता. भीलओना माटे भधुर शब्दो मोलता पोतेकडेला वचनोने अनुवादित करता मनोज्ञवेष वगेरेथी पोतानी लतने अने भीलओने सुखजित करता, राजओना पशु राज पुण्यशाली भरतयकीना दर्शन करता तथा जय जय शब्दोने उच्यारता प्रस्थित थया. (एव उववाइयगमेण जाव तस्स रण्णो पुरओ महआसा आसधरा उमओ पासि णागा णागधरा पिट्ठओ रहा रहसंगेल्ली अहाणुपुव्वीए संपट्टिया) आ प्रभाणे प्रथम उपाङ्ग औपपातिक सूत्र ना पाठं सुभय अडो " ते भरत राजनी आगण मोटा-मोटा घोडाओ, अश्वधारक पुरुषो, अन्ने तरुं हाथीओ हस्तिधारक पुरुषो पाछण रथ अने अनेक रथोना समूहो आख्या, ओ पाठं सुधीडं कथन अपेक्षित छे.

च समुच्चये यथानुपूर्व्या संप्रस्थिताः अत्र यावत् पदेन सवर्णक सेनाद्धानि संशृङ्खन्ते ।
 'तयणंतरं च णं तरमल्लिहायणाणं हरिमेला मउलमल्लिअच्छाणं चचुच्चिअ लल्लिअ
 पुल्लिअ चलचवल चंचलगईणं लघणवगणधावण धोवण तिवडजडण सिक्खियगईणं
 ललत लामगललायवरभूसराणं मुहमंडगओचूलग-थासग अहिल्लाणचामरगडपरिमडि
 यकडोणं किंकरवरतरुणपरिगगहिआ अट्टमयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुन्वीण सपट्टियं'
 तदनन्तरं च लल्लु तरमल्लिहायनाना तत्र च तरो वेगो वालं वा इति 'मल्ल मल्लिधा णे'
 इत्यस्मात् धातोः भवति तथा च तरमल्ली तरधारकः वेगादि कारकः हायनं सम्ब-
 त्सरोऽस्ति येषां ते तथाभूताः नवतरुणा इत्यर्थः तेषाम् इदं च वक्ष्यमाणं वरतुरगा-
 णामित्यस्य विशेषणम् पुनश्च कीदृशानाम् 'हरिमेला मउलमल्लिअच्छाणं' हरिमेला मुउल-
 मल्लिकाक्षणांम् हरिमेला वनस्पति विशेषस्तस्याः मुकुला कुहमलं कलिका मल्लिका च
 विचकिल नामकं शुभ्रपुष्पं तद्वद् अक्षिणी नेत्राणि येषां ते तथाभूताः तेषां शुक्लाक्षणा-
 मित्यर्थः, पुनश्च कीदृशानाम् 'चंचुच्चिय लल्लिय पुल्लिय चळ चवल चंचलगईणं' चंचु-
 च्चित्तं चलितं पुल्लितं चळ चपलचञ्चलगतीनाम् चञ्चुरितम् कुटिलगमनम् अथवा चञ्चुः
 शुकचञ्चुः तद्वद् वक्रतया इत्यर्थं उच्चित्तम् उच्छ्रिताकरणम् पादस्योत्पाटनं चञ्चुच्चित्तं
 तच्चलितं च विहासयुक्ता गतिः पुल्लितं च गतिविशेषः एवंविधा तथा चळ वायु-
 तद्वत् शीघ्रगामित्वात् तद्वच्चपला चञ्चला अतीव चपला गति येषां ते तथा अतीव
 इस पाठ तक कथन करना चाहिये यहाँ यावत् पद से सवर्णक सेनाज्ञो का ग्रहण हुआ है ।

(तयणनरंचण तरमल्लिहायणाणं हरिमेला मउलमल्लिअच्छाणं चचुच्चिअलल्लिअपुल्लिअ
 चळचवलचंचलगईणं लघणवगण धावण धोवण तिवड जडण सिक्खियगईणं ललंतलामगललाय
 वरभूसराणं मुहमंडगओचूलगथासग अहिल्लाण चामरगंडपरिमडियकडोणं किंकरवरतरुणपरिगगहिआ
 अट्टमयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुन्वीण सपट्टियं) इनके बाद तरमल्लिहायन वेग धारण कराने-
 वाला है वर्ष जिन्हो के ऐसे नवोन-तरुण तथा हरिमेला नामक वनस्पति विशेष की कलिका
 के जैसे एवं मोघरो के पुष्प जैसी शुभ्र आसो वाले, तथा वायु के जैसे शीघ्र गामी होने से
 पुल्लितगति से चाल चलनेवाले, टापों का आस्फोटन करते हुए चलनेवाले विहासयुक्त गतिवले,
 अर्द्धी यावत् पदधी सवर्णक सेनाज्ञो अहंशु थयु छे

(तयणतरं च णं तरमल्लिहायणाणं हरिमेला मउलमल्लिअच्छाणं चंचुच्चिअलल्लिअ
 पुल्लिअचळचवलचंचलगईणं लघणवगणधावणधोवणतिवडजडण सिक्खियगईणं ललंतलाम-
 गललायवरभूसराणं मुहमंडगओचूलग थासग अहिल्लाण चामरगडपरि-मडियकडोणं
 किंकर वरतरुण परिगगहिआ अट्टमयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुन्वीण सपट्टियं)
 तयारमाह तरमल्लिहायणः—वेगधारणं कस्नारं छे वर्षं जेना जेवा नवीन, तरुण तथा
 हरिमेला नामक वनस्पति विशेषनीशुद्ध कलिका जेवी अने मोधराना पुष्प जेवी शुभ्र
 आंजोवाणा तथा वायुनी जेम' शीघ्रगामी होवाथी पुल्लित गतिथी आद आद-गरो,
 टापोंको आस्फोटन करता आधनारा, विहास युक्त गतिवाणा, अथन द्वियामा-आडा आदिने.

चपल-तुरगा तेषां पुनः कीदृशानाम् वरतुरङ्गानाम् 'लंघणवर्गगणधाणधोरणगतिवद्भङ्ग
 सिक्खियगईणं' लंघनवल्लान-धारणधोरणत्रिपदिजयिषिषितगततीनाम् सूत्रे प्रकृतत्वात्
 पदव्यत्यासः तत्र शिक्षितम् अभ्यस्तं लंघनं गर्तादेरतिक्रमणं उल्लंघनं वल्लानम् उत्कूईनम्
 धावनम्-शोघ्रगमनम् त्वरितं वेगेन गमनम् धोरणं गतिचातुर्यम् तथा त्रिपदी भूमौ त्रिपदा
 स्थानम् जयिनी अन्यस्य गति जयनशीला गतिश्च येषाम् ते तथा अत्र शिक्षितपदं सर्वतः
 आदौ प्रयोक्तव्यं मूले पठव्यत्ययः प्राकृतत्वात् पुनः कीदृशानाम् 'ललत्तलामगललायवर-
 भूमणान्' ललद्रम्य गललातवरभूपणानाम् ललन्ति दोलायमानानि 'लाम' इति
 रम्याणि गललातानि कण्ठे न्यस्तानि वरभूपणानि श्रेष्ठालङ्कारा येषां ते तथा तेषाम् तथा
 'मुद्मडग ओचूलग थासग अहिलाण चामरगण्डपरिमण्डियकडीणं' मुखभाण्डकावचूल-
 स्थासकाहिलाण चामर गण्डपरिमण्डितकटीनाम् तत्र मुखमण्डकं मुखाभरणम् अवचूला
 प्रलम्बगुच्छाः स्थासकाः दर्पणाकारा अश्वालङ्कारा अहिलाणं मुखसंयमनम् एतानि
 सन्ति येषामिति मुखभाण्डकावचूलस्थासकाहिलाणाः अत्र मत्स्वर्थायलोपो द्रष्टव्यः
 तथा चामरगण्डैः चामरदण्डैः परिमण्डिता शोभिता कटिः कटिप्रदेशो येषां ते तथा
 भूतास्तेषाम् बहुव्रीहैः पश्चात् कर्मधारयः पुनः कीदृशानाम् 'किंकरवरतरुणपरिगहियाणं'
 किङ्कर-वरतरुणपरिगृहीतानाम् किङ्करा अश्वानां किङ्करभूताः ये वरतरुणाः वर
 युवपुरुषास्तैः परिगृहीतानाम् अवलम्बितानाम् 'अद्वसय वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए
 संपट्टिय' चि अष्टशतम् अष्टोत्तर शतम् उक्तविशेषणविशिष्टानां वरतुरगाणां पुरतः अत्रे
 यथानुपूर्व्या यथाक्रमं संप्रस्थितम् अत्राष्टशतमित्युपलक्षणं तेन चतुरशीत्यश्वानामन्यत्र कथि-
 तानां संग्रहो भवतीति ज्ञातव्यम् । अथ गजाः 'तयणंतर च णं ईसिदंताण ईसिमत्ताणं
 लंघन क्रिया में गर्त आदि के लंघन करने में शिक्षित, कूदने की क्रिया में शिक्षित, धावन क्रिया
 में शिक्षित भूमि में तीन पैरों से खड़े होने की क्रिया में शिक्षित, तथा अन्य की गति को
 परास्त करनेवाली गतिवाले, गलो में लटकते हुए रम्य श्रेष्ठ आभूषणों वाले, मुख के आभूषणों
 से, अवचूलों से लम्बे २ गुच्छों से, स्थासकों से-दर्पण के जैसे अश्वालङ्कारों से अहिलाण-
 लगामों से युक्त, तथा चामर दण्डों से सुशोभित कटि प्रदेशवाले, किंकर मूत श्रेष्ठ युवा पुरुष
 जिन्हें पकड़े हुए हैं ऐसे १०८ एकसौ आठ घोड़े प्रस्थित हुए यह १०८ पद उपलक्षणरूप है इसलिये
 यहाँ ८४ लाख घोड़ों का संग्रह हुआ जानना चाहिये (तयणंतरं चणं ईसिदताण ईसिमत्ताणं
 ज्ञाण गवाभा शिक्षित थथेत्ता, इहवानी क्रियाभां शिक्षित धावन क्रियाभां शिक्षित, भूमिभा
 त्रक्षु यग उपर उभा रडेवानी क्रियाभा शिक्षित तेमन्न षे'ल्लज्जेनी गतिज्जेने परास्त
 करनारी गति वाणा, श्रीवाज्जेभां जूलता रम्य श्रेष्ठ आभूषणो वाणा, मुभना आभूषणोथी,
 अवचूवैना दांभा-दाभा गुच्छज्जेथी, स्थासकैथी-दर्पण्ण जेवा अश्वालङ्कारोथी अहि-
 लाण्ण-लगाभेथी युक्त तथा चामर दण्डोथी सुशोभित कटि प्रदेश वाणा किंकर मूत श्रेष्ठ
 युवा पुरुषोज्जे जेभने पकडी राभ्या छे जेवा १०८ घोडाज्जे प्रस्थित थथा. आ १०८
 पद उपलक्षण्ण इय छे जे पदथी अत्रे ८४ लाख घोडाज्जेनो संग्रह थथे छे (तयणंतरं

ईसितुंगाणं ईसि उच्छगउन्नयविसालधवलदताणं कंचणकोसीपविट्टदंताणं कंचणमणि
 रयणभूसियाण वरपुरिसारोहणसंपउत्ताण गयाण अट्टसयं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिय
 त्ति' तदनन्तर च खलु ईषद्वान्तानाम्-मनाग्राहितगिक्षाणम् इदं च वक्ष्यमाणगजाना
 मित्यस्य विशेषणम् पुनश्च कीदृशानाम् ईपन्मत्तानाम्-मनाग् युवत्वमापन्नानं यौवनार-
 म्भवर्तित्वात् पुनः कीदृशानाम् इपतुङ्गानाम् ईषदुच्चानाम् तस्मादेव 'ईसि उच्छंग उन्नय
 विसालधवलदताणं, ईषदुच्छङ्गोन्नतविसालधवलदन्तानाम् ईषदुच्छङ्ग, उत्सङ्ग पृष्टदेश
 तस्मिन् ईषदुत्सङ्गे क्किञ्चित्पृष्टदेशभागे उपरि उन्नता मेरुदण्डा अधो भागे च विशालाश्च
 उदरापरपर्यायावयव विशेषा यौवनारम् भवर्तित्वादेव ते च ते धवलदन्ताश्च ते सन्ति येषां ते
 तथा भूतास्तेषाम् पुनः कीदृशाना गजानां काञ्चन कोशी प्रविष्टदन्तानाम्-काञ्चनकोश्यः
 सुवर्णखोला. ताम् प्रविष्टा दन्ता येषां ते तथाभूता तेषाम् तथा काञ्चनमणिरत्न
 भूषितानां काञ्चनानि सुवर्णानि मणय चन्द्रकान्तादय रत्नानि च अन्ये बहुमूल्यकरत्न-
 विशेषास्तै मृषिता शोभिताः ये ते तथाभूता तेषाम् पुनः कीदृशानाम् वरपुरुषरो-
 हकसप्रयुक्तानाम् वरपुरुषाः श्रेष्ठपुरुषाः ये रोहकाः आरोहकाः निपादिनस्तैः सम्प्रयुक्ता

ईसितुंगाणं ईसिउच्छग उन्नविसालधवलदंताण कंचणकोडीपविट्टदंताणं कंचणमणिरयणभू-
 सियाणं वरपुरिसारोहणसंपउत्ताण गयाण अट्टसयं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थियत्ति) इनके
 बाद हाथियो का छण्ड प्रस्थित हुआ ये हाथी जिनके अभी पूर्णरूप से दात बाहर नहीं निकल
 पाये थे-किन्तु कुछ २ रूप में ही जिनके दात बाहर निकले थे ऐसे थे इसी कारण जो
 पूर्णरूप से युवावस्था सपन्न नहीं थे-युवत्व की ओर बढ़ रहे थे पूरी ऊँचाई जिनमें अभी
 प्रकट नहीं हो सकी था, पृष्ठ देश भी जिनका पूरा ऊँचा नहीं हो पाया था, ऐसे उस
 ईषदुन्नतपृष्ठ देश में जिनका मेरुदण्ड कुछ २ ऊँचा था तथा अधोभाग में उदरापरपर्यायरूप
 अवयव विशेष विशाल थे दांत इनके बिलकुल शुभ्र थे वे सुवर्णनिर्मित खोली से आवृत थे ये
 सुवर्णों से चन्द्रकान्त आदि मणियो से एवं बहुमूल्य रत्नविशेषों से शोभित थे इनके ऊपर अथ

व णं ईसिदंताणं ईसिमत्ताणं ईसितुंगाणं ईसिउच्छंग उन्नविसाल धवल दताणं कंचण
 कोसीपविट्टदंताणं कंचणमणिरयणभूसियाणं वरपुरिसारोहणसंपउत्ताणं गयाणं अट्टसयं
 पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थियत्ति) त्थारभाह्मं हाथीओने। समूहं प्रस्थित थथे। ओ हाथीओके
 नेमना हाते। हल्लं पूष्णं इपमा अहार पष्णं नीकल्या नहोता, पष्णं थोडा-थोडा हाते। नेमना
 अहार नीकल्या छे ओवा हाता, ओथी ओ हाथीओ पूष्णं इपमां युवावस्था सम्पन्न थया न
 हाता युवावस्था तरक्क ओ हाथीओ वधी रक्षाहाता पूरे-पूरी उयाध पष्णं ओ हाथीओनी
 हल्लं प्रकट थध न हाती, ओ हाथीओने। पृष्ठभाग पष्णं हल्लं संपूष्णं इपमां ओथे थथे।
 न हाते, ओवा ओ धपह्म उन्नत पृष्ठ देशमा नेमना मेरुदण्ड थोडा-थोडा उथे हाते।
 तथा अधो भागमा ओहर उपर पर्यायइय अवयव विशेषो विशाण हाता ओ हाथीओना
 हाते ओकहम शुभ्र हाता ओ हाते सुवर्णं निर्मित पत्रथी आवृत हाता ओ हाथीओ। सुव-
 र्णोथी, चन्द्रकान्त वगेरे भण्णियोथी तेमज्ज अहुमूह्य रत्नविशेषो थी शोभित हाता, नेमनी

ये ते तथाभूताः तेषाम् एवं भूताना गजानां हस्तिनाम् अष्टशतम् अष्टोत्तरशतं पुरतो यथानुपूर्व्या क्रमेण सम्प्रस्थितम् । अथ रथाः 'तयणंतर च ण सञ्जयाण सञ्जयाण सघंटाण मरडागाण सतोरणवराणं सणदिघोसाण सखिखिणीजालपरिक्खिताण हिमवंत कंद- रतरणिवाय संवद्धिय चित्तिणिणिस कणगमणिजुत्तदारुगाणं कालायससुकयणेमिजंत कम्मणं सुसिलिद्धवत्तमंडलधुरण आइणवरतुरग संपउत्ताणं कुसलणरच्छेअ सारहिंसु संपगगहियाणं वत्तीसतोरणपरिमंडियाण सकंकडवडेंसगाणं सचावसरपहरणावरण भरिथ जुद्ध सञ्जाण भट्टसयं रहाण पुरभा अहाणुपुच्चीए सपट्टिय'इति रथानां विशेषणानि आह- नदनन्तर च खलु रमणीयाति रमणीय सच्छत्राणा छत्रयुक्तानां सध्वजानां महाध्वज- सहितानां सघण्टानाम् घण्टिकायुक्तानां सपताकाना लघुध्वजसहिताना सतोरणवराणा श्रेष्ठतोरणयुक्तानाम् अत्र तोरण द्वारस्य अवयवविशेषः यद्वा तोरणम् 'मेहराव' इति भाषाप्रसिद्धं तद्युक्तानां सनन्दिघोषाणा नन्दिघोषा युगपद् द्वादशप्रकारक वाद्योत्थि- तध्वनिविशेषा ते सहितानां सकिङ्किगीजालपरिक्षिप्तानां परिक्षिप्तक्षुद्रघण्टिकापङ्कि- विशेषयुक्ताना हिमवत् कन्दरान्तरनिर्वातसंवर्द्धितचित्रतिनिश कनकमणियुक्तदारुका- गाम्' तत्र हिमवत क्षुद्रहिमवतःक्षुद्रहिमवद्भिरे. निर्वातानि वातरहितानि यानि कन्दरान्त- के चात्रन क्रिया मे पटुतर विषादाजन वैठे हुए थे ऐस थे हाथी १०८ एकसो आठ थे (तयणंतरंचणं सञ्जयाण सघंटाण, सपडागाण, सतोरणवराणं सणदिघोसाणं सखिखिणीजालपरिक्खिताणं हिम-वनकंदर तरणिवाय संवद्धिय चित्तिणिणिसकणग मणिजुत्तदारुगाण) इनके बाद रथ सप्र स्थित हुए थे रथ छत्रों सहित थे, ध्वजार्भा सहित थे घंटाओं सहित थे पताकाओं-लघुध्वजाओं- सहित थे श्रेष्ठ तोरणों से युक्त थे द्वार के अवयवविशेष का नाम तोरण है जिसे भाषा में मेहराव कहा जाता है । नन्दिघोष से समन्वित थे एक साथ जो बारह प्रकार के बाजे बजते हैं और उनसे जो ध्वनिका अबार निकलता है उसका नाम नन्दिघोष है छोटी २ घंटियों का जाल तरतीव बार इनके ऊपर बिछा हुआ था इनमें जो फलक-विशेष प्रकार के पट्टिये लगाये गये थे-वे क्षुद्र हिमवद्भिरि को निर्वात कन्दरा के बीच में-भीतर संवर्द्धित हुए विविध ऊपर अथ स आलन कियाभा पटुतर ढोके करता पथु विशेष पटु जेवा विषाही जेने। जेका डता. जेवा जे डतीजे। १०८ डता. (तयणतरंचणं सञ्जयाणं सघंटाणं सपडागाणं, तोरणवराणं, सणदिघोसाणं सखिखिणीजालपरिक्खिताणं हिमवंतकंद- रतरणिवायसंवद्धिय चित्तिणिणिसकणगमणिजुत्तदारुगाण) त्याख्याइ रथे स प्रस्थित थय। जे रथे छत्रे सहित डता. ध्वजजे सहित डता, घंटाजे सहित डता, पताकाजे- लघुध्वजजे-सहित डता. तोरणे।थीयुक्तडता द्वारना अवयव विशेषतु' नाम तोरण छे जेने हिन्दी भाषामा 'मेहराव' कडेव भा आवे छे. नन्दिघोषथी समन्वित डता जेकी साथे जे बार प्रकारना वाद्यो वगाडवाभा आवे जेने तेभाथीजे ध्वनि नीकणे छे तेनु नाम नन्दिघोष छे नानी-नानी घंटीजे।ने। समुह कभश जेभनी ऊपर आस्तुत डता. जेभनी अइर जे कलक।वशेष प्रकारना पाटियाजे।लगाडवाभा आव्या डता-ते क्षुद्र डिभवइ। गरिनी निर्वात

राणि दरीमध्यानि तत्र सर्वर्द्धिता वृद्धि प्राप्ता चित्रा विविधा अनेकप्रकारकाः तिनिगाः
 तन्नामक वृक्षविशेषा तेषामेव कनकमणिपुक्तानि दारुणि काष्ठविशेषकल्पाणि येषु
 ते तथा तेषाम् पुनः क्रीडशानाम् कालायस सुकृतनेमियन्त्रकर्मकाणाम् कालायस लोहविशेषः
 तेन सुकृतं सुरचितं नेमियन्त्र नेमिः चक्रपरिधिः तस्योपरि भागे वर्तमान यन्त्रं तस्य
 कर्म गतिक्रिया येषां ते तथा पुनः क्रीडशानाम् सुलिष्टवृत्तमण्डलधुराणा सुलिष्टं सुमङ्गत
 वृत्तमण्डलं चक्रोपरिभागेवर्तुलाकाररूप धुर धुरायेषां ते तथा तेषाम् पुनः आकीर्णं वरतुरग-
 सप्रयुक्तानाम् आक्रोयेन्ते व्याप्यन्ते जवादि गुणैरिति आकीर्णाः वरतुरगाः श्रेष्ठाश्वाः ते
 सुसप्रयुक्ताः सुष्टुसम्यग्योजिताः येषु ते तथा पुनः क्रीडशानाम् कुशलनरच्छेकसारथि
 सुसंप्रगृहीतानां कुशलाः निपुणाः नरच्छेकाः मनुष्येषु चतुरा तैः सुसंप्रगृहीताः सुष्टु
 सञ्चालिताः ये ते तथा तेषाम् पुनः क्रीडशाना द्वित्रिंशत्तूणपरिमण्डितानां द्वित्रिंशत्
 द्वित्रिंशत्सख्यकाः तूणाः बाणाधारभूताः तैः मण्डिताः शोभिताः ये ते तथभूतास्तेषाम्
 पुनः क्रीडशानाम् सकङ्कटावतंसकानां सकङ्कटाः कवचाः अवतंसकः शिरस्त्राणभूताः
 शिरोवेष्टनरूपा आभरणविशेषा स्ते सन्ति येषु ते तथा भूतस्तेषाम् पुनः क्रीडशानाम्
 सचापशर प्रहरणावरणभरितयुद्ध सज्जानाम् चापाः धनुषि तैः सहिताः शराः बाणाः तथा
 तिनिग वृक्षो के बने हुर थे और कनक एव मणियोंसे सञ्चित थे. (कालायस सुकृतने-
 मिजंतकम्माण सुसिलिष्टवृत्तमण्डलधुराण आङ्गणवरतुरगसुसंप्रयुक्तान) कालायस लोहवि-
 शेष-से सुरचित चक्रपरिधि के उपर वर्तमान यन्त्र को गतिक्रिया से युक्त थे इनकी धुरा
 सुलिष्ट सुसगत एवं गोल मंडल वाली थी. अपने वेग से युक्त ऐसे श्रेष्ठ घाड़े इनमें जुते
 हुए थे. (कुशलनरच्छेक सारथि सुसंप्रगृहीतानां) कुशल सारथियों द्वारा जो कि रथ स-
 चालक मनुष्यों के बीच में श्रेष्ठ माने जाते थे ये सञ्चालित हो रहे थे. (वत्तीसतौणपरिमण्डिया-
 ण सकंकटवडेंसगाण सचावसरप्रहरणावरणभरिभजुद्धसज्जानां अद्वयसं रहाण पुरयो महाणु-
 पुन्वीप संपट्टियं) ३२ बाणों के धरने के स्थान मृत तौणों से-भागों से परिमंडित थे ये सकङ्कट
 कवच और अवतंसक-शिरस्त्राणभूत-आवरणविशेषों से भरे हुये थे, धनुष-बाण-प्रहरण, और
 कंदराना मध्यमा-अ हर सर्वर्द्धित थयेका विविध तिनिग वृक्षोंना बनावेका होता. तेमअ
 कनक अने मणियों थी ओ मंडित होता. (कालायस सुकृतनेमिजंतकम्माणं सुसिलिष्ट-
 वृत्तमण्डलधुराण आङ्गणवरतुरगसुसंप्रयुक्तान कालायस-लोह ३ विशेष थी सुरचित चक्र
 परिधिनी उपर विद्यमान यन्त्रना गति क्रिया थी ओओ युक्त होता. ओ रथानी धुरा
 सुलिष्ट सुसगत तेमअ गोल- मंडलवाणी होती योताना वेगथी युक्त ओना श्रेष्ठ
 घोडोंओ ओ रथोमा नोतरेका होता (कुशलनरच्छेकसारथि सुसंप्रगृहीतानां) कुशल सारथियो
 वडे के ओओ रथ सञ्चालक मनुष्याओ श्रेष्ठ मानवओ आता होता ओ रथो सञ्चालित थर्थ
 रहा होता (वत्तीसतौणपरिमण्डियाण सकंकटवडेंसगाण सचावसरप्रहरणावरणभरिभजुद्ध-
 सज्जान अद्वयसं रहाण पुरयो महाणुपुन्वीप संपट्टियं) ३२ अत्रीश पाणोने भूकवाना स्थान
 भूत तौणो थी तौणोरेथी ओ रथोथी मंडित होता. ओ रथो सकंकट, कवच अने अवतंसक

प्रहरणानि आयुधानि अस्यादीनि भावरणानि क्वचानि तैः भरिताः परिपूरिताः अतएव युद्धसज्जाः सङ्ग्रामसज्जिताः ये ते तथाभूतास्तेषां स्थानाम् अष्टशतम् अष्टोत्तरशतम् पुरतो यथानुपूर्व्या यथाक्रमं सम्प्रस्थितं संचलितम् ।

अथ पदातयः—‘तयणंतरं च ण असिसत्ति कुंत तोमरसूललउडभिडिपालधणुपाणिसज्जं पाइत्त णीयं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थियं च्चि’ तदनन्तरं च खल्ल असिसत्ति कुन्ततोमरसूलभ्रगूडमिन्दिपाल धनुःपाणिसज्जं पदात्यनीकं पादचारी सैन्यसमूहः पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितमिति तदनन्तरं च खल्ल पदात्यनीक पादचारकसैन्यसमूहः पुरतो यथानुपूर्व्या सम्प्रस्थितं तत् इत्याह—‘असि’ इत्यादि । ‘असिसत्तिकुन्ततोमरसूललगुडमिन्दिपालधनुःपाणिसज्जम्—तत्र आसः खड्गः, शक्तिः त्रिशूलं कुन्त प्रसिद्धः तोमरः बाणविशेषः शूलम् एकशूलं लगुडःप्रसिद्धः मिन्दिपाल शस्त्रविशेषः धनुः प्रसिद्धम् एते पाणौ हस्ते यस्य तत् यथा सज्ज सङ्ग्रामादि स्वामिकार्ये तत्परम् एवभूत सत् तत् संप्रस्थितमित्यर्थः । ‘तएणं से भरहाडिवे णरिदे हारोत्थय सुकयरइयवच्छे जाव अमरवइ सण्णिभाए इद्धीए पहियक्कित्ती चक्करयणदेसिमग्गे अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे’ ततः खल्ल स महाराजो भरताधिपो नरेन्द्रः हारावस्तृतसुकृतरत्तिदवक्षस्को यावत् आयुध इनमें जगह जगह पर रखे गये थे अतएव ऐसा प्रतीत होता था कि मानो ये रथ युद्ध के निमित्त ही सज्जित करने में आये हैं ऐसे ये रथ १०८ थे

(तयणतरं चणं. असि. सत्ति कुंत तोमर. सूल लउड, मिडियाल धणुपाणिसज्जपाइत्ताणीयं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिय) इनके बाद अगे पदात्यनीक—पैदल सेना समूह चला इसमें प्रत्येक सैनिक के हाथ में असि—तलवार शक्ति—त्रिशूल, कुन्त, भाला, तोमर बाणविशेष, शूललगुडलाठी, मिन्दिपाल—शस्त्रविशेष एवं धनुष ये सब थे (तएणं से भरहाडिवे णरिदे हारोत्थयसुकयरइयवच्छे जाव अमरवइ सण्णिभाए इद्धीए पहियक्कित्ती, चक्करयणदेसियमग्गे, अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे जाव समुहरवभूयंपिव करेमाणे २ सन्विद्धीए सवज्जुईए जाव णिग्घोशिरआणुभूत आपरएणु विशेषो थी अल्ल कृतं इत्ता. धनुष, भाणु प्रहरणु अने आयुध ओ रथो मा स्थान स्थान उपर भूकवामा अ व्याइत्ता ओथी ओनी प्रतीती यती इती के अणु ओ रथो युद्ध माटे ए सु वल्लिगत करवामा आव्या न डोथ । ओ रथो १०८ इत्ता

(तयणतरं चणं असिसत्तिकुन्ततोमर, लउड, मिडियाल धणुपाणिसज्ज पाइत्ताणीय पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिय) त्पारआइ आगण आगण पदात्यनीक पदाति सेनानो समूह आइथे ओ पदाति सेनाना एरेक हरेक सैनिकना हाथमा असि तलवार, शक्ति—त्रिशूल, कुन्त—ल डो, तोमर भाणु विशेष, शूल, लगुड—लाठडी, मिन्दिपाल शस्त्र विशेष तेम ए धनुष ओ अधां अस्त्र—शस्त्रो इत्ता (तएणं से भरहाडिवे णरिदे हारोत्थयसुकयरइयवच्छे जाव अमर वइ सण्णिभाए इद्धीए पहियक्कित्ती चक्करयणदेसियमग्गे, अणेगरायवरसहस्साणुयायमग्गे जाव समुहरवभू यंपिवकरेमाणे २ सन्विद्धीए सवज्जुईए जाव णिग्घोस-

तत्र हारेण-मुक्ताहारेण अवस्तृतम् आच्छादितम् अतएव मृकृतरतिद मृगद्वर्चततया
 आनन्दजनकं वक्षो वक्षःस्थलं यस्य स तथा, अत्र यावत्पदात् कुण्डलोद्घोति-
 ताननः प्रलम्बप्रालम्बमानसुकृतपटोत्तरीयः इति ग्राह्यम्, पुनः रीदृशः सः तत्राह-
 'अमरवह' इत्यादि 'अमरवड सण्णभाए' अमरपतिसन्निभया उन्मत्तुल्यया ऋद्ध्या भव-
 नाभरणादि लक्षणया सम्पदा (युक्तः), तथा प्रथितकीर्तिः विख्याः यशाः तथा चक्ररत्न-
 देशितमार्गः चक्ररत्नेन देशितः प्रदर्शितो मार्गो यस्मै स तथा, तथा अनेक राजवरसदृस्ता-
 नुयातमार्गः-अनेकराजवरसदृस्तैः अनुयातः अनुगतो मार्गो यस्य भरतस्य स तथा तस्य
 मृकृटधारिणोऽनेकसदृस्ता राजप्रवरा राजानः पद्लक्षणाधिपतिर्भरतप्रदर्शितमार्गो प्रचलन्ती-
 त्यर्थः दिग्विजयार्थं गमनसमये सेनादिकानां शब्दमुपमानेन दर्शयन्नाह-'जाव समुद्रवभूयं-
 पिव करेमाणे करेमाणे सव्वद्धीए सव्वज्जुइए जाव णिग्घोमणाइयरवेण' यावत्समुद्र-
 वभूतामिव समुद्रशब्द प्राप्तमिव मेदिनीमिति गम्यम् अत्र यावत्पदात् त्रुटित वाधाविशेष
 शब्दसन्निनादेन अत्रगज सैन्यादि शब्दवाहुल्येन च समुद्रव प्राप्तमिव मेदिनीं क्वं-
 सणाइयरवेण गामागरणगरखेडकव्वडमडंब जाव जोयणंतरियाहि वसद्धिहि वसमाणे २ जेणेव
 विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छइ) इस तरह के ठाठ बाट से सज्जित हुआ जिसका ममस्त
 राजवैभव जिसके आगे २ चल रहा है ऐसे वे भरत जहाँ पर अपनी विनीता नाम की राजधानी
 थी वहाँ पर आये ऐसा सम्बन्ध यहाँ पर लगाकेना चाहिये, अपने ममस्त राजसी टाठ बाट
 से चलने वाले भरत राजा का वक्षस्थल मुक्ताहार से आच्छादित था अत एव वह देखने
 वाले को आनन्द दायक बना हुआ था यावत् कुण्डल की कान्ति से मुखको आभा द्विगुणित
 होकर बाहर फैल रही थी, बहुत ही सुन्दर ढंग से लम्बे अधोवक्र और उत्तरायवक्र इन्होंने
 पहिरे हुए थे अमरपति जैसा ऋद्धि से युक्त थे, इनका यश चारो दिशाओ में प्रख्यात हो
 चुका था विनीता राजधानी का और जानेवाले निष्कंटक मार्ग को बतानेवाला चक्ररत्न इनके
 आगे २ जा रहा था अनेक श्रेष्ठ राजाओ का सहस्र इनके पीछे २ चल रहा था, सेना
 आदिजनों के उत्थित हुए शब्दों से उस समय यह मूढल को, समुद्र के नूफानी शब्दों से
 णाइयरवेण गामागर णगरखेड कव्वडमडंब जाव जोयणतरियाहि वसद्धिहि वसमाणे
 २ जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छइ) आ नतना ठाठ-भाठ थी आलनारा भरत
 राजानु वक्षस्थल मुक्ताहार थी समस्त कृत इतु ऐथी दशके भाटे ते आडल दक जनी गधुं
 इतु यावत् कुंडली कति थी सुथनी आशाद्विशुषित थड ने अडार प्रमरी रडो इतो
 अतीव सुंदर ढंग थी ऐ राजाके अधोवक्र अने उत्तरीय वक्रो धारणु करेला इता ऐ नृपति
 अमर पति (भद्र) जेवी ऋद्धि थी युक्त इता ऐमनेो यश योभर दिशाओ भा प्रख्यात
 थड युद्धो इतो। विनीता राजधानी तरङ्ग जतु अने निष्क टक मार्ग अतावनीइ अकरत-
 ऐमनी आगण-आगण आदी रणु इतु अनेक श्रेष्ठ राजाओ ने समूह ऐमनी पाछण-
 पाछल आदी रडो इतो पोतानी सेना वजेरे थी उत्थित शब्दो थी ते समये भ्रमंडलने
 लये समुद्रना तोशन थी धार शब्द थथेन डोय, आभ अतावतो ने नृप भरत आदी

कुर्वन् सर्वद्वयां हस्त्यश्वादि 'सर्वे सम्पदा सर्वद्युत्या मणिमुकुटादि द्युत्या सर्वकान्त्या यावत् निर्घोषनादितेन यावत्पदात् भेरी झलञ्चरी मृदन्नानेकवाद्यपरिग्रहः तेषां निर्घोषनादि-
नेन मग्नाध्वनिप्रतिरवेण (युक्तः) स महाराजो भरत. 'ग्रामागरणगरखेडकवडमडव जाव
जोयणं रिरियाहिं वसहोहिं वसमाणे व-माणे जेणेव विणीया रायहाणी तेणे उवागच्छइ'
ग्रामाकरनगरखेटकर्बट मडम्ब यावद् योजनान्तरिताभिः योजन व्यवहिताभिः वसतिभिः
निवासस्थानैः वसन् वमन् निवसन् निवसन् यत्रैव विनीता तन्नाम्नी राजधानीतत्रैव
उपागच्छति स भरतः। यावत्पदात् द्रोणमुख पत्तनाश्रम सम्बन्ध सहस्रमण्डितं स्तिमितमे-
दिनीकाम् उपद्रवरहितेन स्थिरमेदिनीस्थजनां वसुधामभिजयन् अग्र्याणि उत्तमोत्तमानि
वराणि रत्नानि प्रतीच्छन् तद्दिव्यं चक्ररत्नमनुगच्छन् अनुगच्छन् इति ग्राह्यम् ग्रामाकर-
नगरादीनां तु अस्मिन्नेव वक्षस्कारे अव्यवहित पङ्क्तिं शतं सूत्रे द्रष्टव्यम् 'उवागच्छित्ता'
उपागत्य 'विणीयाए रायहाणीए अदूरसामंते दुवालस जोयणायाम णवजो यणवित्थिन्नं
जाव खंधावारनिवेशं करेइ' विनीता राजधान्याः राजधानीभूतनगर्याः विनीता अदूरसामन्ते
नात्तिदूरे नात्तिसमीपे द्वादशयोजनायामम् अष्टाचत्वारिंशत्क्रोशपरिमितदैर्घ्यम्, नवयोजनवि-
स्तीर्णं पट्त्रिंशत्क्रोशविस्तारभूत यावत्स्कन्धावारनिवेशं करोति। अत्र यावत्पदात् वरनगरसह-

व्याप्त हुआ नही मानो ऐसा करता २ चल रहा था और हस्त्यश्वादि रूप अपनी सम्पत्ति
से मणि मुकुटादिकों की धुति से एवं शारीरिक कान्ति से दिग्मडल को आश्चर्य चकित करता
हुआ था रहा था साथ में अनेक प्रकार के बाजे बजते हुए आ रहे थे इस तरह वे भरत
राजा ग्राम आकर नगर खेट, कर्बट आदि स्थानों में चार २ कोश से अन्तर से अपनी सेना
का पडाव डालते २ और वहाँ के निवासियों द्वारा प्रदत्त प्रीति दान को स्वीकार करते २
वहाँ पर विनीता नाम की राजधानी थी वहाँ पर आ पहुँचे ग्राम आकर आदि पदों की
व्याख्या इसी प्रकरण में २६ वे सूत्र में अभी २ की गई है सो वही से देख लेनी चाहिये
(उवागच्छित्ता विणीयाए अदूरसामंते दुवालसजोयणायाम णवजो यणवित्थिन्नं जाव खंधावा-
रनिवेश करेइ) विनीता राजधानी के पास आकर इन्होंने अपनी सेना की ४८ कोश लम्बा

रहो हुतो तेभञ्ज इस्ति अश्वआदि रूप पोतानी सम्पत्ति थी, मणि मुकुटादिनी धुति थी
तेभञ्ज शारीरिक कान्ति थी दिग्मडल ने आश्चर्य चकित बनाव तो आली रहयो हुतो तेनी
साथे अनेक प्रकारना बाधो वगाडनाओ बाधो वगाडता आली रह्या हुता आ प्रमाणे
ते भरत राजा ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, वगेरे स्थानोभा थार-थार गाठिना अंतर
थी पोतानी सेनानो पडाव नाभतो नाभतो अने त्यांना निवासीओ द्वारा प्रदत्त प्रीतिदानने
स्वीकारतो स्वीकारतो तथा विनीता नामे राजधानी हुती त्या पडोव्यो ग्राम, आकर वगेरे
पडोनी व्याख्या आ प्रकरणमा ७ २६मा सूत्रमा डमष्या ७ करवाभां आवी छे तो निहासु
७नो त्यांथी लक्ष्मी छे (उवागच्छित्ता विणीयाए अदूरसामंते दुवालसजोयणायाम
णवजो यणवित्थिन्नं जाव खंधावारनिवेशं करेइ) विनीता राजधानी पास पडोथीने
ते राजा ओ पोतानी सेनानो ४८ गाठि बाधो अने उ६ गाठि पडोयो पडाव नाभ्यो ओ

शमिनि ग्राह्यम् । 'करित्ता' कृत्वा 'वड्डहरयणं सदावेड सदावित्ता जाव पोसहसाल अणुपविसइ' वर्द्धकरित्तं शब्दयति आह्वयति शब्दयित्वा आह्वय यावत् पौषधशालामनु-
प्रविशति, अत्र यावत्पदात् पौषधशाला निर्माणार्थं वर्द्धकिं आज्ञापयति स च पौषधशालां
करोति कृत्वा उक्तामाह्नप्तिकां राज्ञे भरताय समर्पयतीति ग्राह्यम् 'अणुपविसित्ता' अनु-
प्रविश्य 'विणीयाए रायहाणोए अट्टमभत्तं पगिण्हइ' विनीतायां राजधान्याम् अष्टमभक्त
प्रगृह्णाति अत्र विनीताधिष्ठायकदेवमाधनाय । ननु इदमष्टमानुष्ठानम् अनर्थकं विनीता
नगरींश्चकर्त्तित्तो भरतस्य पूर्वमेव तदधिकारे स्थितत्वादिति चेन्नैव निरूपद्रवेण त्रामस्य-
र्यार्थमित्यभिप्रायात् 'पगिण्हित्ता' प्रगृह्य 'जाव अट्टमभत्तं पडिजागरमाणे २ विहरइ'
यावत् अष्टमभक्तं प्रतिजाग्रत् विहरति तिष्ठति स भग्नः इति भावः ॥सू० २८॥

और ३६ कोश नक को चौड़ी गवनो ढाली यइ छावनो का स्थान विनोनानगरो के पास ही था
यह एक श्रेष्ठ नगर है जैसा उस समय प्रतीत होना था(करित्ता वड्डहरयण सदावेड)सेना का पडाव
ढाल कर फिर भरत नरशने अपने वर्द्धकरित्तन को बुलाया(सदावित्ता जाव पोसहसालं अणुपविसइ)और
बुलाकर उसे पौषधशाला के निर्माण करने को आज्ञा प्रदान की आज्ञानुसार उमने पौषधशाला का
निर्माणकर दिया और पीछे पौषध शाला के निर्माण हो जाने की खबर श्रीभरत नरेश के पासपहुंचा
दा भरतनरेश उम पौषधशालामें आ गये(अणुपविसित्ता विणीयाए रायहाणोए अट्टमभत्तं पगिण्हइ)
वहाँ आकर उन्होंने विनीता नगरके अधिष्ठायक देव को वशमें करने केलिये अष्टमभक्तकी तपस्या
धारण क (पगिण्हित्ता जाव अट्टमभत्तं पडिजागरमाणे २ विहरइ) और धारण करके यावत् वे उसमें
अच्छो तरहसे सावधान होगये यहा ऐसी आशकाहो सकती है कि यहा पर जो भरत नरेशने अट्टम
भक्तकी तपस्याधारण का वह तो एक प्रकार से अनर्थक जैसी ही प्रतीत होती है क्योकि विनीता
राजधानी तो पहिंछे से उनके सर्वाधिकार में स्थित थी सो इसका समाधान ऐसा है कि बिना किसी
पडाव विनीता नगरीनी पास ७ इतो अे पडाव इशंकनोने अेक श्रेष्ठ नगर जेवे ७
प्रतीत थतो इतो (करित्ता वड्डहरयणं सदावेड) सेनाने पडाव नाथीने पछी भरत नरेशे
पोताना वर्द्धकरित्तने ओलाओ (सदावित्ता जाव पोसहसाल अणुपविसइ) अने ओलापीने
तेने पौषधशाला निर्माण करवानी आज्ञा आपी आज्ञा सुअण ते वर्द्धकरित्तने पौषधशाला
अनावी अने पछी पौषधशाला निर्मित थई गई छे जेवी सूचना भरत नरेश पास पडोयाडी
अ नरेश ते पौषधशालामा अतो रघो. (अणुपविसित्ता विणीयाए रायहाणोए अट्टमभत्तं
पगिण्हइ) त्या पडोयीने भरत नरेशे विनीता नगरीना अधिष्ठायक देवने वशभाकरवा भाटे
अष्टम भक्तनी तपस्या धरण करी (पगिण्हित्ता जाव अट्टमभत्तं पडिजागरमाणे २ विहरइ)
अने धरण करीने यावत् ते तेमा सारी रीते भावधान थई गये अने जेवी
अ शंका उद्भवो शके तेम छे के, अही जे भरत नरेशे अट्टम भक्तनी तपस्या धारण करी
ते तो अेक रीते अनर्थक जेवी ७ प्रतीत थाथ छे, केभके विनीता राजधानी तो पडोवे
थी ७ तेमना सर्वाधिकारमा इनी ७ तो आ शंकाइ समाधान आ प्रमाणे छे केवगर अई

यदा स भरतो दिग्विजयं कृत्वा आगच्छति स्वराजधानीं तदा तत्र किं करोति तत्राह-“ तएणं से” इत्यादि ।

मूलम्-तए णं से भरहे राया अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमिच्चा कोडुंबिय पुरिसे सदावेई सदाविच्चा तहेव जाव अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवईं दुरूढे तचेव सव्वं जहा हेट्ठा णवरिं णव महाणिहिओ चत्तारिं सेणाओ ण पविसंति सेसो सोचेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेण जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थ गमणाए, तएणं तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणिं मज्झं मज्झेणं अणुपविसमाणस्स अप्पेगइया देवा विणीयं रायहाणिं सब्भंतरवाहिरियं आसिसम्मज्जिओ-वलित्तं करेति अप्पेगइया मंचाइमंचकलियं करेति एवं सेसेसु वि पए अप्पेगइया णाणाविहरागवसणुस्सिय घय पडागामंडितभूमियं अप्पेगइया लाउल्लोइयमहियं करेति अप्पेगइया जाव गंधवट्ठिभूयं करेति, अप्पे गइया हिरण्णवासं वासिंति सुवण्णस्यणवइरआभरणवासं वासेति, तएणं तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणीं मज्झं मज्झेणं अणुपविसमाणस्स सिंघाडग जाव महापहेसु बहवे अत्थत्थिआ कामत्थिआ भोगत्थिआ लाभत्थिआ इद्धिसिआ किब्बिसिआ कारवाहिआ कारोडिआ संखिआ चक्किआ णांगलिआ मुहमंगलिआ वद्धमाणया लंख मंख माइआ ताहिं ओरालाहिं इट्ठाहिं कंताहिं पिआहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं धण्णाहिं सिवाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीआहिं हिअयगमणिज्जाहिं हिअयपल्हायणिज्जा-हिं वग्गहिं अणुवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंताय एवं वयासी-जय जय णंदा जय जयभद्दा । भइंते अजियं जिणाहिं जिअं पालयाहिं

उपद्रव के वहां पर वास बना रहे तथा प्रजाजन सुख शांति से रहें-इसके लिये यह तपस्या उन्होंने धारण की अतः इसमें, सार्थकता ही है निरर्थकता नहीं । ॥२८॥

पशु नतना उपद्रवे त्या पीताना वास रहे तथा प्रण सुभ शान्ति पूर्वक रही शुक्रे-ओटवा माटे आ तपस्या तेभणे धारणु करी. ओथी आ तपस्या सार्थक न कडेवाय, निरर्थक नही ॥२८॥

जिअमज्झे वसाहि इंदोविव देवाणं चंदोविव ताराणं चमरोविव अमुगणं
 धरणोविव नागाणं व्हृहिं पुव्वसयसहस्साणं व्हृईओ पुव्वकोडीओ व्हृई-
 ओ पुव्वकोडाकोडीओ विणीयाए गयहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमे-
 रागस्स य केवलकप्पस्स भरहस्स गामागरणगर खेड-कव्वड दोणमुह
 पट्टणासमंसणिवेसेसु सम्मं पयापालणोवज्जिअ लद्धजसे जाव आहे-
 वच्चं पोरेवच्चं जाव विहराहि त्तिकट्टु जय जय सइं पउंजंति, तए णं से
 भरहे राया णयणमाला सहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे २ वयणमाला सहस्सेहिं
 अभिथुव्वमाणे २ हिअयमाला सहस्सेहिं उण्णं दिज्ज माणे मणोरह-
 मालासहस्सेहि विच्छिप्पमाणे २ कंतिरुवसोहग्गुणेहिं पिच्छिज्जमाणे
 २ अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे २ दाहिणहत्थेणं व्हृणं णरणारी-
 सहस्सेणं अजलिमालासहस्सेहिं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे भवणपंती
 सहस्साणं समइच्छमाणे २ तती तल तुडिय गीय वाइयरवेणं मधुरेणं
 मणहरेणं मंजुमंजुणा घोसेणं अपडिबुज्जमणे २ जेणेव सए गिहे जेणेव
 सए भवणवरवडिसयदुवारे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता आभिसेक्कं
 हेत्थिरयणं ठवेइ ठवित्ता हत्थिय्यणाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता सोलस-
 देवसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता बत्तीसं रायस-
 हस्से सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता सेणावइरयणं सक्कारेइ
 सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं गाहावइरयणं वद्धइरयणं पुरोहियर-
 यणं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता तिण्णिसट्ठे सूअसए
 सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता-सम्माणित्ता अट्टारससेणिप्पसेणीओ
 सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता अण्णे वि बहवे राईसर
 जाव सत्थवाहप्पभिईओ सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता
 पडिविसज्जेइ इत्थीरयणेणं बत्तीसाए उडुकल्लणिया सहस्सेहिं बत्तीसाए
 जणवयकल्लणिया सहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीसइबद्धेहिं णाडयसहस्सेहिं

सद्धि संपरिवृडे भवणवरवडिसंगं अईइ जहा कुबेरोव्व देवराया केलास-
सिहरिसैग भूअंति तए णं से भरहे राया मित्तणाइणिअगसयणसंबंधिप-
रिअणं पच्चुवेक्खइ पच्चुवेक्खिता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ
उवागच्छिता जाव मज्जणघराओ पडिक्खमइ पाडणिक्खमित्ता जेणेव
भोअणमंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता भोयणमंडवंसि सुहासणवर-
गए अट्टमभत्तं पारेइ पारित्ता उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थ-
एहिं बत्तीसइबद्धेहिं णाडएहिं उवलालिज्जमाणे २ उवणच्चिज्जमाणे
२ उवगिज्जमाणे २ महया जाव भुंजमाणे विहरइ ॥ सू० ।२९॥

छाया-तत खलु स भरतो राजा अष्टमभक्ते परिणमति पौषघशालात प्रतिनिष्का-
मति प्रतिनिष्कस्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा तथैव यावत् अञ्जनगिरिकूट-
सन्निभं गजपतिं नरपतिः दुरुद्ध । तदेव सर्वं यथा अधः नवर नव महानिधयः चतस्रः
सेनाः न प्रविशन्ति शेषः स पव गमो यावत् निर्घोषनावितेन विनीताया राजधान्या मध्य
मध्येन यत्रैव स्वकं गृहं यत्रैव भवनधरावतंसकस्थ प्रतिद्वारं तत्रैव । अय प्रचारितवान् ततः
खलु तस्य भरतस्य राज्ञो विनीतां राजधानीं मध्यमध्येन अनुप्रविशत' अप्येके देवा विनीतां
राजधानीं साम्यन्तरवाह्याम् आसिक्तसम्मार्जितोपलक्षितां कुर्वन्ति अप्येके मध्वानिमध्व-
कालिता कुर्वन्ति अप्येके नानाविधरागवसनोच्छ्रितध्वजपताकामण्डितभूमिकां लापितोल्लोचित
महितां कुर्वन्ति अप्येके एव क्षेपेर्ष्यापि पदेषु, अप्येके यावत् गन्धवतिभूतां कुर्वन्ति अप्येके
हिरण्यवर्ष वर्षन्ति सुवर्णरत्नवज्राभरणवर्ष वर्षन्ति तत खलु तस्य भरतस्य राज्ञो-
विनीता राजधानीं मध्यमध्येन अनुप्रविशत' श्रृङ्गाटक यावत् महापथेषु सहवोऽर्थाधिनः
कामार्थिनो भोगार्थिनो लाभार्थिनः ऋद्धयेषाः किन्चिषिका. कारोटिका' कारवाहिकाः शास्त्रि-
काः चाक्रिकाः लाङ्गलिका, क्षुमटाः मुखमाङ्गलिका पुष्यमानका' वर्द्धमानका. लङ्खमद्वलमा-
दिका. तामि' उदाराभिः इष्टाभिः कान्ताभिः प्रियाभिः मनोहाभिः मनोमार्मः शिवाभिः
घम्याभिः मङ्गलाभिः सश्रोकाभि हृदयगमनीयाभि हृदयप्रव्हादनीयाभि वाग्भि अनुपरतम्
अभिनन्दन्तश्च अभिष्टुवन् पवम् अवादिषु. जय जय नन्दा ! जय जय भद्रा ! भद्र ते
अजितं जय जितं पाल्य जितमध्ये वस इन्द्र इव देवानाम्, चन्द्रइव ताराणाम् चमर इव
असुराणाम्, धरण इव नागानाम्, बहूनि पूर्व शतसहस्राणि बहोः पूर्वकोटी वही पूर्वकोटाकोटी
विनीतायाः राजधान्याः क्षुद्रहिमवद्विरिसागरमर्यादाकस्य च केवलकल्पस्य भारतवर्षस्य ग्रामा-
करणगरखेटकबंदमडम्बद्राणमुखपत्तनाश्रमसन्निवेशेषु सम्यक् प्रजापालनोपाजितलब्धयथास्क
महता यावत् आधिपत्य यावत् विहर इति कृत्वा जय जय शब्द प्रयुजन्ति, ततः खलु
स भरतो राजा नयनमालासहस्रैः प्रेक्ष्यमाणः प्रेक्ष्यमाण बचनमालासहस्रैरभिष्टुवन्त, अभि-
ष्टुवन्तः हृदयमालासहस्रैः पूर्णपुन पुनर्वा-दीयमान पूर्ण दीयमान मनोरथमालासहस्रै वि-
क्षिप्यमाण विक्षिप्यमाण. कान्तिरूपसौभाग्यगुणैः प्रेक्ष्यमाण प्रेक्ष्यमाण अङ्गुलिमालासहस्रै

दृश्यमान दक्षिणहस्तेन बहता नरनारी महत्त्राणाम् अञ्जलिमालासहस्राणि प्रतीच्छन् प्रतीच्छन् भवनपङ्क्ति सहस्राणि समतिक्रमन् समतिक्रमन् तन्त्रोत्तलनाल्लुटितगीतवादित्रवेण मधुरेण मनोहरेण मञ्जुञ्जुनाद्योपेण अप्रतिबुध्यमान अप्रतिबुध्यमान. यत्रैव स्वक गृहं यत्रैव भवनवरावतंसकस्य, द्वारं तत्रैवोपागच्छति उपागत्य आभिषेक्यं हस्तिरत्न स्थापयति स्थोप-थित्वा आभिषेकयात् हस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति प्रत्यवरुत्त पोंडपदेवसहस्रान् सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य द्वात्रिंशतं राजसहस्रान् सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य सेनापतिरत्नं सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य पव गाथापतिरत्न वर्द्धकिरत्नं पुरोहितरत्न सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य त्राणि पट्टानि सूयशतानि सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य अष्टादश श्रेणप्रश्रेणी सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य अन्यानपि बहून् राजेश्वर यावत् सार्थबाहप्रभृतीन् सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य प्रतिविसर्जयति । स्त्रीरत्नेन द्वात्रिंशता ऋतुकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिका सहस्रै द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्द्वै नटिकसहस्रैः सार्द्धं सम्परिवृतो भवनव-रावतंसकम् अत्येति यथाकुबेरो देवराज इव कैलासशिखरिश्रगभूतमिति । तत खलु स भरनो राजा मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनं प्रत्युपेक्ष्यते प्रत्युपेक्ष्य यत्रैव मञ्जनगृह तत्रैव उपागच्छति उपागत्य यावत् मञ्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति प्रातनिष्क्रम्य यत्रैव भाजनमण्ड पस्तस्त्रैव उपागच्छति उपागत्य भोजनमण्डप सुखासनवरगतः अष्टमभक्त पारयति पारावित्वा उपरिप्रासाश्वरगतः स्फुटञ्चि मृदङ्गमस्तकै द्वात्रिंशद्द्वै नटिकै रूपलात्पमान उपलात्पमानः उप नृत्यमान. उपनृत्यमान उपगीयमान उपगीयमान महता यावत् भुञ्जानो विहरति॥ सू०२९ ॥

टीका—“तएणं से” इत्यादि । ‘तएण से भरहे राया अट्टमभत्तंसि परिण-ममाणंसि पोसहसालाओ पडिणिकखमइ’ ततः खलु तदनन्तर किल पङ्कण्डाधिपति स भरतो राजा अष्टमभक्ते परिणमति सति परिपूर्णं जायमाने सति पौषधशालातः प्रति-निष्कामति निर्गच्छति ‘पडिणिकखमित्ता’ प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य ‘कोहु’ वियपुरिसे सदावेइ’

राजधानी में भरत का कर्तव्य—

(तएण से भरहे राया अट्टमभत्तंसि परिणममाणंसि—इत्यादि सूत्र-२९—

टीकार्थ—(तएणं से भरहे राया) इसके बाद वह श्री भरत महाराजा (अट्टमभक्तास परिणम-माणंसि) अट्टमभक्तको तपस्या समाप्त हो जाने पर (पोसहसालाओ पडिणिकखमइ) पौष-धशाला से बाहर निकला (पडिणिकखमित्ता) और बाहर निकल कर (कोहुं वियपुरिसे सदावेइ) अपने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया (सदावित्त, एव वयासी) बुलाकर उनसे ऐसा कहा

राजधानीमा भरतनुं कर्तव्य

(तएण से भरहे राया अट्टमभक्त सि परिणममाणंसि) इत्यादि सूत्र —२९॥

टीकार्थ—(तएण से भरहे राया) त्पार भाद ते भरत राज (अट्टमभक्त सि परिणममाणंसि) अष्टम भक्तानी तपस्या पूरी थर्ध ते पछी (पोसहसालाओ पडिणिकखमइ) पौषधशालाभांथी पडार नीकल्ये (पडिणिकखमित्ता) अने पडार नीकलीने (कोहु वियपुरिसे सदावेइ) तेणे

कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति आह्वयति 'सद्वाचित्ता' शब्दयित्वा आह्वय 'तद्देव जाव' तथैव पूर्ववदेव यावत् अत्र यावत्पदात् आभिषेक्यगजपतिसज्जीकरणमञ्जनगृहस्नानकरणादिरूपं सर्वो आलापको ग्राह्यः तदनन्तरम् 'अञ्जनगिरिकूडसणिगमं गयवडं णरवई दूरूढे' अञ्जनगिरिकूटसन्निभम्—अञ्जनपर्वतशृङ्गसदृश्यं मादृश्यं च उच्चत्वेन कृष्णवर्णत्वेन च बोध्यम् गजपतिम्, पट्टहस्तिनं नरपतिः राजा भरतः दूरूढः आरूढः 'तं चेव सव्वं जहा हेट्टा' तदेव सर्वं तथा वक्तव्यम् यथा 'हेट्टा' अत्रस्तनपूर्वसूत्रे यादृशसामग्री-विशिष्टस्य विनीतातो गमनसमये वर्णनं कृतं तथाऽत्रापि प्रवेशे वक्तव्यम् इत्यर्थः, अत्र विशेषमाह 'णवरं णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसति सेसो सोचेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणोयाए रायहाणीए मज्झ मज्झेण जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थ गमणाए' नवरम् अयं विशेषः नैसर्पादिश ह्वान्ताः नव महानिधयो न प्रविशन्ति तेषां मध्ये एकैकस्य निधेर्विनीताप्रमाणत्वात् भो देवानुप्रियो । तुम आभिषेक्य हरिन्वत्तं को सज्जितं करो इत्यादि पूर्वकथितं सच कथनं जैसां किं पहिले कहा जा चुका है वह सभी कथन यज्ञ पर मञ्जनगृह प्रवेश, स्नान करने तक का ग्रहण कर लेना चाहिये उसके बाद वड (अञ्जनगिरिकूडसणिगमं गयवडं णरवई दूरूढे) नरपति श्री भरत महाराजा उस अञ्जनगिरि के जैसे गजपति पर आरूढ हो गया (तं चेव सव्वं जहा हेट्टा) यहाँ अब सब वर्णन जैसा विनीता राजधानी से विनय करने को निकलने समय पीछे किया जा चुका है इसी तरह का वह सब कथन यहाँ प्रवेश करते समय भी कह लेना चाहिये. (णवरं णवमहा-णिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसति सेसो सो चेव गमो जाव णिग्घोसणाइएण विणोयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थ गमणाए) परन्तु प्रवेश करते समय इतनी विशेषता हुई कि विनीता राजधानी में महानिधियो ने प्रवेश नहीं किया—क्यों कि एक एक महानिधि का प्रमाण विनीता राजधानी के बराबर था. अतः वडा उन्हें स्थान पोटाना औट्टु णिक पुग्घेने ओलाओथा (सद्वाचित्ता एव वयासी)ओलावीने तेभने आ प्रभाषेकंहुं डे देवानुप्रियो तमे आभिषेक्य हरिन्वत्तं ने सज्जितं करो वगेरे सर्वकथन पडेतां सुण्णअ अत्रे पणुं समञ्जुं अहीं मञ्जन गृहमा प्रवेश तथा स्नान करवा सुधीने पाठं स'गृहीतं थयेदी. छे, ओपुं समञ्जुं त्थारणाए ते(अञ्जनगिरिकूडसणिगमं गयवडं णरवई दूरूढे)नरपति भरत ते अञ्जन गिरि सदृश गजपति उपर आरूढ थई गया (तं चेव सव्वं जहा हेट्टा)अहीं हुवे अधु वधुं न ओपुं विनीता राजधानी थी निकलती वथते—विनय भेगववा माटे पडेतां रूपट करवामा अण्युं छे, तेपुं न ते अधु कथन अहीं प्रवेशकस्ती वथते पणुं पूर्वकथन प्रभाषे यथार्थं समञ्जुंतेपुं ओधेओ (णवरं णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसति सेसो सो चेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणोयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थ गमणाए)पणुं प्रवेश करती वथते आट्ठी वात विणेष थई के विनीता राजधानीमा मडा निधिओओ प्रवेश कर्यो नही. केमके ओक—ओक महानिधियु प्रभाषु विनीता राजधानीनी अराअर

कस्मात्तेषां तत्रावकाशः तथैव चतस्रः सेना अपि न प्रविशन्ति जेपः स एव गमः अर्जित-
राज्यो निर्जितशत्रुरित्यादि ममग्रोऽपि पाठो वक्तव्यः यावन्निर्ग्रोपनादिनेन अत्र याव-
त्पदात् भेरी झल्लरी मृदङ्गादीनां ग्रहः तेषां निर्ग्रोपनादिनेन महागन्धप्रतिगन्धेन
(युक्तः) स भरतो विनीताया राजधान्याः मध्यमध्येन यत्रैव भवकं स्वकीय गृह राज-
भवनम्, यत्रैव भवनवरावतसकप्रतिद्वार तत्रैव गमनाय गन्तु प्रधारितवान् प्रवृत्तवान् ।
प्रविशति भरते चक्रवर्तिनि आभियोगिकदेवाः यथा २ वासभवनं परिष्कुर्यन्ति तथा
आह—‘तएणं’ इत्यादि ‘तए णं’ तस्म भरहस्स रण्णो विणीय रायहाणि मज्झं मज्झेणं
अणुपविसमाणस्स अप्पेगइया देवा विणीयं रायहाणि सम्भतरवाहिरियं आसियसम्म-
ज्जियोवल्लित्त करेति’ ततः खलु तदनन्तरं किल, तस्य भरतस्य राज्ञो विनीतां
राजधानीं मध्यमध्येन अनुप्रविशतोऽपि बाह्यम् एके केचन आभियोगिका आज्ञाकारिणो
व्यन्तरदेवाः साभ्यतरबाह्याम् अभ्यन्तरे बाह्य च विनीतां राजधानीम् आसित्त सम्मा-
ही कैसे प्राप्त होता, इसी तरह चार सेनायां ने भी वहा प्रवेश नहीं किया, बाकी का और सब
कथन यहां पर पूर्व के ही पाठ जैसा जानलेना चाहिये है इस प्रकार पूर्वोक्त जो कि गडगडाहट
ध्वनि के साथ वह भरत राजा विनीता राजधानी के बीचों बीच से होते हुए जहा पर अपना
गृह था राज भवन था और उसमें भी जहा पर प्रामादावत्तं सक द्वार था उसी ओर चले, भरत
चक्रवर्ती के प्रवेश द्वार पर प्रवेश करने पर आभियोगिक देवों ने क्या क्रिया इस बात को प्रकट
करते हुए सूत्रकार कहते हैं—(तएण तस्स भरहस्स रण्णो विणीय रायहाणि मज्झं मज्झेणं अणुपवि-
समाणस्स अप्पेगइया देवा विणीय रायहाणि सम्भतरवाहिरियं आसियसम्मज्जियोवल्लित्तं करेति) जब
भरत राजा विनीता राजधानी में प्रवेश करने के लिये उसके ठीक बीचों बीच के मार्ग से आ रहे
थे उस समय कृतनेक आज्ञाकारी व्यन्तररूपदेव आभियोगिक देवों ने उस विनीता राजधानी को
भीतर बाहर से जल से सिञ्चित कर तर कर दिया कूड़ा करकट हो सब बुझारकर साफ कर दिया
हुतु ज्येथो तेमने त्या स्थान भवे ज केरीरीते आ प्रभाणु आर प्रकारनी सेना पणु तेमां प्रविष्ट
थधं नथी शेष भधु कथन अडि पूर्व पाठवत् समञ्जु जेमजे आ प्रभाणु पूर्वोक्त के जे गड
गडाहुटध्वनि साथे ते भरत नरेश विनीता राजधानी वन्थे थधं ने जथा पोतातु भवन हुत्तु
राज भवन हुत्तु अने तेमा पणु जथा प्रामादावत्तं सकद्वार हुत्तु तं तस्स खाना थथे, भरत
यकवतीं जे जय रे प्रवेश द्वारमा प्रवेशमेणज्ये ते वपते आसियोगिक देवो जे थु कथुं ?
जे वातने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे— (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो विणीय राय-
हाणि मज्झं मज्झेण अणुपविसमाणस्स अप्पेगइया देवा विणीय रायहाणि सम्भतरवाहिरियं
आसियसम्मज्जियोवल्लित्तं करेति) जयरे भरत राजा विनीता राजधानीमा प्रवेश करवा भाटे ते
राजधानीना ठीक मध्यामा आवेशा मार्ग उपर थुने जधं रक्षी हुते ते समये कटलाक आज्ञाकारी
ज्यतर जेप देवे, आसियोगिक देवो जे ते विनीता राजधानीने अहर अने भहार जल सिञ्चित
करी तरमाण करी हीधी हुती कथराने सावरणीधी साक्ष कथी अने गोभयादिधी दिस करीने राज
धानीने स्वच्छ बनावी हीधी हुती, आ प्रभाणु ते राजधानीने ते देवो जे साक्ष करी नाथी हुती हैं

कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति आह्वयति 'सद्वाचित्ता' शब्दयित्वा आह्वय 'तद्देव जाव' तथैव पूर्ववदेव यावत् अत्र यावत्पदात् आभिषेक्यगजपतिसञ्ज्ञी करणमञ्जनगृहस्नानकरणादिरूपं सर्वो आलापको ग्राह्यः तदनन्तरम् 'अंजणगिरिकूडसण्णिमं गयवडं णरवईं दूरूढे' अञ्जनगिरिकूटसन्निभम्—अञ्जनपर्वतशृङ्गसदृश्यं सादृश्यं च उच्चत्वेन कृष्णवर्णत्वेन च बोध्यम् गजपतिम्, पट्टहस्तिनं नरपतिः राजा भरतः दूरूढः आरूढः 'तं चेव सर्व्वं जहा हेट्टा' तदेव सर्व्वं तथा वक्तव्यम् यथा 'हेट्टा' अयस्तनपूर्व्वसूत्रे यादृशसामग्री-विशिष्टस्य विनीतातो गमनसमये वर्णनं कृतं तथाऽत्रापि प्रवेशे वक्तव्यम् इत्यर्थः, अत्र विशेषमाह 'णवरं णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसंति सेसो सो चेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेण जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थं गमणाए' नवरम् अयं विशेषः नैसर्पादिशद्धान्ताः नव महानिधयो न प्रविशन्ति तेषां मध्ये एकैरुस्य निधेर्विनीताप्रमाणत्वात् भो देवानुप्रियो ! तुम आभिषेक्य हस्तिनं को सञ्ज्ञित करो इत्यादि पूर्व्वकथितं सव कथनं जैसा कि पहिले कहा जा चुका है वह सभी कथन यज्ञ पर मञ्जनगृह प्रवेश, स्नान करने तक का ग्रहण कर लेना चाहिये उसके बाद वः (म ननगिरिकूडमण्णिमं गयवडं णरवईं दूरूढे) नरपति श्री भरत महाराजा उस अञ्जनगिरि के जैसे गजपति पर आरूढ हो गया (तं चेव सर्व्वं जहा हेट्टा) यहां अब सब वर्णनं जैसा विनीता राजधानी से विनय करने का निकलने समय पीछे किया जा चुका है इसी तरह का वह सब कथन यहां प्रवेश करते समय भी कह लेना चाहिये. (णवरं णवमहा-णिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसंति सेसो सो चेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थं गमणाए) परन्तु प्रवेश करते समय इतनी विशेषता हुई कि विनीता राजधानी में महानिधियों ने प्रवेश नहीं किया—क्यों कि एक एक महानिधि का प्रमाण विनीता राजधानी के बराबर था. अतः वडा उन्हें स्थान पोटाना कौटुम्बिकपुरुषाने आलाप्यो (सद्वाचित्ता एवं वयासी)आलापीने तेभने आ प्रभाषेकहुं हे देवानुप्रियो तमे आभिषेक्य हस्तिनं ने सञ्ज्ञित करे। वगेरे सर्व्वकथन पडेलां सु ५५५ अत्रे पष्णुं समञ्जु अर्ही मञ्जन गृहमा प्रवेश तथा स्नान करवा सुधीना पाठं स गृहीत थयेदो छे, अेषुं समञ्जुं त्यारभाड ते (अंजणगिरिकूडसण्णिमं गयवडं णरवईं दूरूढे)नरपति भरत ते अञ्जन गिरि सदृश गजपति उपर आरूढ थर् गथा (तं चेव सर्व्वं जहा हेट्टा)अर्ही हुवे अधु पष्णुं न षेपुं विनीता राजधानी थी निकलती वपते—(विनय भेणववा माटे पडेलां सपट करवाभा आःप्यु छे. तेवुं न ते अधु कथन अर्ही प्रवेशकरती वपते पष्णुं पूर्व्वकथनं प्रभाषे यथार्थं समञ्जुदेषुं नोर्धे (णवरं णव महाणिहिओ चत्तारि सेणाओ ण पविसंति सेसो सो चेव गमो जाव णिग्घोसणाइएणं विणीयाए रायहाणीए मज्झं मज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भवणवरवडिसगपडिदुवारे तेणेव पहारेत्थं गमणाए)पष्णुं प्रवेश करती वपते आटली वात विशेष थर् हे विनीता राजधानीमा भडा निधिओअे प्रवेश कर्थे नही. हेभके ओक-ओक भडानिधियु प्रभाषुं विनीता राजधानीनी परापर

कस्मात्तेषां तत्रावकाशः तथैव चतस्रः सेना अपि न प्रविशन्ति ज्ञेयः स एव गमः अर्जित-
राज्यो निर्जितशत्रुरित्यादि ममग्रीऽपि पाठो वक्तव्यः यावन्निर्योपनादिनेन अत्र याव-
त्पदात् मेरी झल्लरी मृदङ्गादीनां ग्रहः तेषां निर्योपनादिनेन महाशब्दप्रतिशब्देन
(युक्तः) स भरतो विनीताया राजधान्याः मध्यमध्येन यत्रैव ग्वकं स्वकीय गृह राज-
भवनम्, यत्रैव भवनवरावतसकप्रतिद्वार तत्रैव गमनाय गन्तु प्रधारितवान् प्रवृत्तवान् ।
प्रविशति भरते चक्रवर्तिनि आभियोगिकदेवाः यथा २ वासभवन परिष्कुर्वन्ति तथा
आह—‘तपणं’ इत्यादि ‘तप ण’ तस्म भरहस्स रण्णो विणीय रायहाणि मज्झं मज्झेणं
अणुपविसमाणस्स अप्पेगइया देवा विणीयं रायहाणि सम्भंतरवाहिरियं आसियसम्म-
ज्जियोवल्लित्तं करेति’ ततः खलु तदनन्तरं किल, तस्य भरतस्य राज्ञो विनीतां
राजधानीं मध्यमध्येन अनुप्रविशतोऽपि वाहम् एके केचन आभियोगिका आज्ञाकारिणो
व्यन्तरदेवाः साभ्यतरवाह्याम् अभ्यन्तरे वाह्य च विनीता राजधानीम् आसिक्त सम्मा-
ही कैसे प्राप्त होता. इसी तरह चार सेनायां ने भी वहां प्रवेश नहीं किया. बाकी का और सब
कथन यहां पर पूर्व के ही पाठ जैसा जानलेना चाहिये है इस प्रकार पूर्वोक्त जो कि गडगडाहट
ध्वनि के साथ वह भरत राजा विनीता राजधानी के गोंचों बीच से होते हुए जहां पर अपना
गृह था राज भवन था और उसमें भी जहां पर प्रामादावत सक द्वार था उसी ओर चले. भरत
चक्रवर्ती के प्रवेश द्वार पर प्रवेश करने पर आभियोगिक देवो ने क्या क्रिया इस बात को प्रकट
करते हुए सूत्रकार कहते हैं—(तपणं तस्म भरहस्स रण्णो विणीय रायहाणि मज्झं मज्झेणं अणुपवि-
समाणस्स अप्पेगइया देवा विणीय रायहाणि सम्भंतरवाहिरियं आसियसम्मज्जियोवल्लित्तं करेति) जब
भरत राजा विनीता राजधानी में प्रवेश करने के लिये उसके ठीक बीचो बीच के मार्ग से आ रहे
थे उम समय कितनेक आज्ञाकारी व्यन्तरूपदेव आभियोगिक देवों ने उस विनीता राजधानी को
भीतर बाहर से जब से सिञ्चित कर तर कर दिया कूडाकरकट हो झ ड बुगारकर साक कर दिया
हुतु ज्येथी तेभने त्यां स्थान भद्वे ज केवीरीते आ प्रभाण्णे यार प्रकारनी सेना पण्णु तेमां प्रविष्ट
थथं नथी शेष भधु कथन अडि पूर्व पाठवत् समज्जु जेभजे आ प्रभाण्णे पूर्वोक्ता के जे गड
गडाहटध्वनि साथे ते भरत नरेश विनीता राजधानी वन्थे थथं ने जथा पोतानु भवन हुतुं
राज भवन हुतुं अने तेमा पण्णु जथा प्रामादावत सकद्वार हुतुं ते तत्सं खाना थथे. भरत
चक्रवर्तीजे जथा ते प्रवेश द्वारमा प्रवेशमेण्णथे ते वपथे आभियोगिक देवाजे शु कथुं
जे वातने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे— (तपणं तस्म भरहस्स रण्णो विणीय राय-
हाणि मज्झं मज्झेण अणुपविसमाणस्स अप्पेगइया देवा विणीय रायहाणि सम्भंतरवाहिरियं
आसियसम्मज्जियोवल्लित्तं करेति)जथा ते भरत राजा विनीता राजधानीमा प्रवेश करवा भाटे ते
राजधानीना ठीक मधे ममा आवेसा मार्ग उपर थरने जथ रह्यो हुतो ते समथे कटवाक आज्ञाकारी
व्य तर जेप देवो, आभियोगिक देवाजे ते विनीता राजधानीने अहर अने अहार जद्व सिञ्चित
करो तरणेण करी दोधी हुती कथराने सावरणीथी साइ कथे अने गोभयादिथी विम करीने शेष
धानीने स्वच्छ अनावी हीधी हुनी आ प्रभाण्णे ते राजधानीने ते देवाजे साइ करी नाथी हुती है

जितोपलिप्तां कुर्वन्ति जलसेचनेन सम्मार्जिकया सम्मार्जनेन गोमयाद्युपलेपनेन च परिष्कृन्तोत्पर्यः, 'अप्येगइया मंचाइमंचकलियं करेति' अप्येके केचन देवाः दर्शनार्थिनामुपवेशनाय मञ्चानिमञ्चकलितां मञ्चाः प्रसिद्धाः तेषामुपरि स्थिताः ये मञ्चाः ते अतिमञ्चा स्तैः कलितां युक्तां, विनीतां कुर्वन्ति एवं सेसेसु वि पएसेसु एवम् अमुना प्रकारेण शेषेष्वपि अवशिष्टेष्वपि त्रिरुचतुष्कचत्वरमहापथसहितराजधानीपर्यन्तेषु, प्रदेशेषु बोध्यम् 'अप्येगइया णाणाविह रागवसणुस्सिय घयपडागामंइयभूमियं अप्येगइया लाउल्लोइयमहियं करेति' अप्येके केचन देवा नानाविधरागव मनोच्छ्रित-ध्वजपताकामण्डितभूमिकाम् तत्र नानाविधः रागो-रञ्जनं येषु तानि मञ्जिग्रादि रूपाणि वसनानि वस्त्राणि तेषु उच्छ्रिताः ऊर्ध्वीकृताः ध्वजाः सिंहगरूडादि रूपयुक्त बृहत्पट्टरूपाः पताकाश्च तैः मण्डितासुशोभिता भूमिः यस्यां सा तथा ता कुर्वन्ति अप्येके देवाः लापितोल्लोचितमहितां तत्र लापितं छगणादिना लेपनम् उल्लोचितं सेटिकादिना कुड्यादिषु धवलनं महितमिव महितं युक्तम् अतिप्रशस्तं प्रासादादि यस्यां सा तथा तां कुर्वन्ति 'अप्येगइया जाव और गोमयादि से लिप्तकर उसे सुथराकर दिया इस तरह से उसे ऐसा बिल्कुल परिष्कृत कर दिया कि जिसे वहाँ घूँल एवं कचरा का निशान भी देखने को न आवे और गोमयादि से लिपपोत कर जमीनको इतनी परिष्कृत कर दी कि जिससे उसमें कहीं पर भी गर्त आदि के होने का चिन्ह तक दिखाई न पड़े तथा (अप्येगइया मंचाइमंचकलियं करेति) कितनेक आभियोगिक देवों ने उस विनीता राजधानी को मंचातिमंचों से युक्त कर दिया जिससे अपने प्रिय नरेश को देखने के लिये उपस्थित हुई जनमंडली इन पर बैठकर सुस्ता ले (एवं सेसेसु वि पएसु) इसी प्रकार से त्रिक चतुष्क चत्वर और महापथ सहित राजधानी के समस्त रास्तों में सफाई आदि का काम कर आभियोगिक देवों ने उन २ स्थानों को भी मंचातिमञ्चों से युक्त कर दिया (अप्येगइया णाणाविहरागवसणुस्सिय घयपडागामंइयभूमियं, अप्येगइया लाउल्लोइयमहियं करेति) कितनेक देवों ने उस राजधानी को अनेक रंगों के वस्त्रों से बनाई गई ऊँची २ ध्वजाओं से और पताकाओं से मण्डित भूमिवाला कर दिया कुछ पक्ष स्थाने क्यरे देभाते न इतो, ते देवाञ्जे गोमयादिथी दीधीने जमीनने जेवी रीते परिष्कृत करी नाभी हुनी के जेथी तेमा केध पक्ष स्थाने गर्तवगेरेना थिहो पक्ष देभाता नडेता. तेमञ्(अप्येगइया मंचाइ मंचकलियं करेति)केटलाक आभियोगिक देवाञ्जे ते विनीता राजधानीने मंचातिमञ्चोथी युक्त भनावी दीधी हुती. जेथी पोताना प्रिय नरेशना दर्शन भाटे उपस्थित थगेदो जन मंडली जे मंचो उपर जेसी ने विश्राम लथ शके (एवं सेसेसु वि पएसु) आ प्रभाणे ज त्रिक चतुष्क चत्वर अने महापथ सहित राजधानीना समस्त रस्ताञ्जोभां स्वच्छता वगेरेनुं काम संपन्न करीने आभियोगिक देवाञ्जे ते स्थानो उपर पक्ष मंचातिमञ्चो भनावी दीधा (अप्येगइया णाणाविहरागवसणुस्सिय घयपडागामंइयभूमियं, अप्येगइया लाउल्लोइयमहियं करेति) केटलाक देवाञ्जे ते राजधानीने अनेक २ गोना-वस्त्रोथी निर्मित जेथी जेथी ध्वजोथी अने पताकाञ्जोथी वमूषित भूमिवाणी भनावी दीधी तेमञ् केटलाक देवाञ्जे स्थान-स्थान उपर चत्वरवाञ्जो ताणीने ते भूमिने सुसज्जित करी

गंधवद्विभूयं करेति' अप्येके देवाः यावद् गन्धवर्तिभूतां गन्धवात्तयुक्तां कुर्वन्ति' अत्र यावत्पदात् 'गोसीससरसरत्तचंदणकलसं, चंदणघडसुकय जाव गंधुद्ध्याभिराम सुगंध-वरगंधियं' इति गोशीर्षसरसरत्तचन्दनकलशाम्, तत्र गोशीर्षं सुगन्धितचन्दनविशेषः तस्य सरसं जलयोगेन घर्षणद्वारा आर्द्रीभूतं यद्रत्तचन्दनं तेन युक्ताः कलशाःघटाः शोभार्थं सन्ति यस्यां सा तथा ताम् पुनःचन्दनघट सुकृत-यावद्गन्धोद्धृताभिरामाम् सुकृताः मुग्चिताः चन्दन-घटाः चन्दनयुक्तकलशाः अतएव यावद्गन्धोद्धृताः समस्तगन्धैः व्याप्ताः अतएव अभिरामाः मनोहराः ते सन्ति यस्यां सा तथा ताम् सुगन्धवरगन्धितां श्रेष्ठसुगन्धै सुवासितां सुगन्धि-तां च गन्धवर्ति भूतां कुर्वन्ति इत्यर्थः' 'अप्येगइया हिरण्णवास वासिति' अप्येके देवाः हिर ण्यवर्षं-रजतवर्षणं वर्षन्ति 'सुवण्णरयणवहरआभरणवासं वासेति' सुवर्णरत्नवज्राभरणवर्षं वर्षन्ति सुवर्णवर्षं चन्द्रकान्तादि रत्नवर्षं वज्रवर्षम् अत्र वज्रपदेन हीरकादीनि बोध्यानि कटकषाष्टादशसरिक नवसरिक यावत्त्रिसरिकाद्याभरणवर्षं केचिद्देवाः वर्षन्तीत्यर्थः 'तए त्था कितनेक देवो ने जगह २ चदोवा तानकर उसे सुसज्जित कर दिया अथवा लोपकर और फिर कलई से पोतकर प्रासादादिको' की भित्तियोको' अतिप्रशस्त कर दिया (अप्येगइया जाव गंधवद्विभूयं करेति) कितनेक देवों ने उसे गन्ध की वर्ती जैसा बना दिया यहां के यावत्पद से "गोसीससरसरत्तचंदणकलसं, चंदणघडसुकयजाव गंधुद्ध्याभिरामं सुगन्धवर-गंधियं" इस पाठ का सग्रह हुआ है इस पाठ का अर्थ ऐसा है कि शोभा के लिए गोशीर्ष चन्दन से उपलब्ध सरसरत्त चन्दन के कलश राजद्वार पर कितनेक देवों ने रख दिये थे जगह २ देवों ने चन्दन के कलशों को तोरण के रूप में सजाकर स्थापित कर दिया था. इससे इन सुगन्धि से यह विनीता नगरी गंधकीवर्तिका रूप जैसी बन गई थी (अप्येगइया हिरण्णवास वासिति, सुवण्णरयणवहरआभरणवास वासेति) कितनेक देवोंने उस विनीता नगरी में रजत चाँदी की वर्षा की, कितनेक देवोंने सुवर्ण, रत्न वज्र और आभ-रणों की-अठारह लरवाले हारों की, नौ लरवाले हारों की एवं तीन लरवाले हारों की थी. अथवा लीपीने अने पछी चुनीथी धोणी ने प्रासादादिडेकी लीतोने अति प्रशस्त करी दीथी (अप्येगइया जाव गंधवद्विभूयं करेति) डेटलाक देवोअे ते भूमिने गंधनी वती' नेवी अनावी दीथी अही ने यावत् पड आवेल छे तेनाथी--"गोसीससरसरत्तचन्दन चंदणघडसुकय गंधधुद्ध्याभिरामं सुगंधवरगंधियं" अे पाठने। संअड थये। छे अे पाठने। अर्थ आ प्रभाषे छे डे शोभा भाटे गोशीर्ष चन्दन थी उपलब्ध सरसरत्त चन्दनना कणशे। राजद्वार अेपर डेटलाक देवोअे भूडी दीधाडता स्थान-स्थान अेपर देवे। अे चन्दनना कणशे।ने तारणे।ना आकारभां सुसज्ज करीने स्थापित करी दीधा डना। अेवी अे।सुगन्धित पढार्थे थी अे विनीता नगरी गन्धनी वर्तिका नेरी अनी गड डती (अप्ये गइया हिरण्णवास वासिति, सु रयणवहर रणवास वासिति) डेटलाक देवोअे ते विनीता नगरीमा रजत चाँदीनी वर्षा करी. डेटलाक देवे अे सुवर्ण, रत्न वज्र, अने आभरणोनी वर्षा करी, अठार लीवाला डारोनी, नव लीवाला डारोनी, अने त्रय ली-

णं तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणीं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसमाणस्स सिंघाडगं जाव महापहेसुं ततः खलु तदनन्तरं किल तस्य भरतस्य राज्ञः विनीतां तन्माभ्नीं राजधानीं मध्यं मध्येन मध्यभागेन अनुप्रविशतः शृङ्गाटक यावन्महापथेषु महापथपर्यन्तेषु स्थानेषु अत्र यावत्पदात् त्रिकचतुष्कादि परिग्रहः 'बहवे अत्थत्थिया' बहव अर्थार्थिकाः अर्थार्थिनः द्रव्यार्थिनः 'कामत्थिया' कामार्थिनः मनोहरशब्दरूपार्थिनः 'भोगत्थिया' भोगार्थिकाः मनोहर गन्धरसस्पर्शार्थिनः 'लाभत्थिया' लाभार्थिकाः भोजनमात्रादि प्राप्त्यर्थिनः 'इद्धिसिया' ऋद्धये-पिकाः ऋद्धिं गवादि संपदम् इच्छन्ति एपयन्ति वा ऋद्धयेषाः तएव ऋद्धयेपिकाः स्वार्थे इक् प्रत्ययविधानात् 'किब्बिसिया' किल्विपिकाः परविद्रोहकत्वेन भाडवेष्टाकारिणो भाण्डादयः 'कारोडिया' कारोटिकाः ताम्बूलसमुद्रवाहकाः 'कारवाहिया' कारवाहिकाः करं राजदेयं द्रव्यं वहन्त्येवं शीलाः कारवाहिन इत्यर्थः 'संखिया' शांखिकाः शंखग्राहिणः शंखवादका इत्यर्थः 'चक्किया' चाक्रिकाः चक्रग्राहिणो भिक्षुका 'णंगलिया' लाङ्गलिकाः इलावलम्बन काष्ठसदृशा-स्त्रधारिण सुभटाः 'सुहमंगलिया, सुखमाङ्गलिकाः चारणादयः 'पूसमाणया' पुष्यमानकाः शा-की तथा और भी आभरणो की-आभूषणो की-वर्षा की (तए ण तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणीं मज्झं मज्झेण अणुप्पविसमाणस्स सिंघाडगं जाव महापहेसुं) जव वह श्री भरत महाराजा ने विनीता राजधानी में मध्य के मार्ग से प्रवेश किया-तब वहाँ के त्रिक चतुष्क आदि महापथ के मार्गों में (बहवे अत्थत्थिया भोगत्थिया कामत्थिया लाभत्थिया इद्धिसिया किब्बिसिया कारोडिया) अनेक अर्थार्थिजाती जनों ने, अनेक भोगभिलाषी जनों ने, अनेक कामभिलाषी जनों ने, अनेक लाभार्थिजनों ने, अनेक गवादिसंपत्ति की अभिलाषावालेजनों ने अनेक किल्विषिक-भाण्ड आदि-जनों ने, अनेक कारोटिका-ताम्बूल समुद्रवाहकजनों ने (कार-वाहिया) अनेक कारवाहिक राजदेय द्रव्यको बकाया रखनेवाले-जनों ने, अनेक (संखिया) शांखिक-शंखबजाने वाले जनों ने, अनेक (चक्किया) चाक्रिक-भिक्षुक जनों ने, अनेक (णंग-लिया) लाङ्गलिक-हलके अबलम्बन भूत काष्ठ के जैसे अलवारो सुभटों ने, (सुहमंगलिया)

वाला क्षारीनी, तथा अन्य पशु आभारणोनी-आभूषणोनी वर्षा करी. (तएण तस्स भरहस्स रण्णो विणीयं रायहाणीं मज्झं मज्झेण अणुप्पविसमाणस्स सिंघाडगं जाव महापहेसुं) जयारे भरत राजाये विनीता राजधानीना मध्यमार्गभा प्रवेश कयो त्यारे त्याना त्रिक, अतुष्क वगेरे महापथना मार्गोभा (बहवे अत्थत्थिया भोगत्थिया कामत्थिया लाभत्थिया, इद्धिसिया किब्बिसिया कारोडिया) अनेक अर्थार्थिजाती जनोये, अनेक भोगभिलाषी जनोये अनेक कामार्थी जनोये, अनेक लाभार्थी जनोये, अनेक गवादिनी संपत्ति भोगव-पानि अभिलाषा राभनारा जनोये, अनेक किल्विषिक-भाडआदि जनोये, अनेक कारोटिक तांबूल समुद्रवाहक जनोये (कारवाहिया) अनेक कारवाहिक-राजदेय द्रव्य आप्थु नथी-ओवा जनोये, अनेक (संखिया) शांखिक शंख वगाडनारा जनोये, अनेक (चक्किया) चाक्रिक भिक्षुक जनोये, अनेक (णंगलिया) लाङ्गलिकोये. अबलम्बन भूत काष्ठना ओवा अलवारणु करनारा सुभटोये, (सुहमंगलिया) अनेक सुभभागलिकोये आशुषु

कुनिकाः शकुनशास्त्रज्ञाः 'वद्धमाणया' वर्द्धमानकाः मगलघटधाग्का 'लंखमखमाइया' ल-
 ह्मह्ममादिकाः तत्र वशादेरुपरि ये वृत्त नृत्यं दर्शयन्ति ते लङ्का नटादय गह्वाश्वित्रफलकः
 हस्ता भिक्षुकाः गौरीपुत्रनाम्ना प्रमिद्धाः मायिका मायाविनः प्रोक्ता एते पुरुषा 'ताहि'
 ताभिः 'ओरालाहिः' औदारामि उदारग्युक्ताभिः, 'इट्टाहि' इट्टामिः अमिप्रेताभिः, 'कताहि'
 कान्ताभि मनोहराभिः, 'पियाहि' प्रियाभिः प्रीतियुक्ताभि 'मणुन्नाहि' मनोज्ञाभिः, 'म
 णामाहि' मनोऽमाभिः मनसाऽम्यन्ते प्राप्यन्ते पुन पुनः स्म णतो यास्ताभि मनोऽनुकू-
 लाभिरित्यर्थः, 'सिवाहि' शिवाभि, कल्याणयुक्ताभि "धण्णाहि' धन्याभिः, प्रशसायु-
 क्ताभिः 'मंगलाहि' मंगलाभिः मङ्गलयुक्ताभिः, 'सस्सिरीयाहि', 'मश्रीकाभिः लालित्योदा-
 यौदिगुणशोभिताभिः 'हिययगमणिज्जाहि' हृदयमगनीयाभि हृदयङ्गमाभि, 'हिययपल्हा-
 यणिज्जाहि' हृदयप्रह्लादनीयाभि हृदयप्रमोदनीयाभि, 'वग्गूहि' वाग्भि इति अध्या-
 हार्यम्, 'अणुवरयं' अनुपरतम् उपरतस्य विरामस्य अभाव अनुपरतम् यथा स्यात्तथा न
 विरम्येत्यर्थः 'अभिणंदताय' अभिनन्दन धन्यासि अभिनन्दन्, 'अभियुणंताय' अभिषुव-
 न्तश्च अभिषुवति कुर्वन्तश्च एवं वक्षरपागप्रकारेण अदिषु उक्तवन्त किमुक्तवन्त इत्याह-

अनेक सुखमाङ्गलिको ने, चारणादिको ने-(पूसमाणया) अनेक शकुन शास्त्रज्ञो ने (वद्धमाणया)
 अनेक वर्द्धमानको ने मङ्गलघटधाग्को ने, (लंखमखमाइया) वंशादि के ऊपर जो तमाशे को
 दिखाते हैं ऐसे अनेक नटा ने अनेक लोगो ने-चित्रफलको को हाथ में लेकर भिक्षा
 मांगने वाले भिक्षुको ने एवं अनेक 'मायाविद्यो ने-इन्द्रनालको ने-जादूगरो ने (ताहि-
 ओरालाहि इट्टाहि) उन उदार, इष्ट (कंताहि) कान्त मनोहर (पियाहि) प्रीतियुक्त (मणुन्नाहि)
 मनोज्ञ (मनोमाहि) एव बारबार याद करने योग्य ऐसी (वग्गूहि) वाणियो द्वारा-वचनो
 द्वारा-जो कि (मिवाहि) कल्याण युक्त थी (धण्णाहि) प्रशंसायुक्त थी, (मंगलाहि) मंगलयुक्त
 थी, (सस्सिरीयाहि) लालित्य औदार्य आदि गुणो से शोभिन थी (हिययपल्हायणिज्जाहि)
 एवं हृदय को प्रमुदित करनेवाली थी (अणुवरयं) बिनाविराम लिये ही-बिना रुके ही (अभि-
 णंदताय अभियुणंताय जयजयणदा, जयजय महा) अभिनन्दन करते हुए, अभिषुवति-

हिंकोओ, (पूसमाणया) अनेक शकुन शास्त्रज्ञोओ, (वद्धमाणया) अनेक वर्द्धमानकोओ मगल
 घटधारकोओ, (लंखमखमाइया) वंशादि' उपर ने जेस थनावे छे ओवा अनेक नटाओ,
 अनेक बीकोओ-चित्रफलकोओ, इधिया लधने भिक्षा मागनारालिखुकोओ अने अनेक
 भाथोपीओओ इन्द्रनालकोओ-जादूगरोओ(ताहिओरालाहि इट्टाहि)ते उदार, इष्ट(कंताहि) कान्त,
 मनोहर (पियाहि) प्रीतियुक्त (मणुन्नाहि) मनोहर (मनोमाहि) तेमज बारबार याद करवा-
 थोओओपी (वग्गूहि) वाणीओओ वडे-वयने। वडे के ने (सिवाहि) कल्याण युक्त होती (धण्णाहि)
 प्रशसा युक्त होती, (मंगलाहि) मंगलयुक्त होती (सस्सिरीयाहि) लालित्य, औदार्य, आदि
 गुणोओओ सुशोभित होती (हिययपल्हायणिज्जाहि) तेमज हृदयने प्रमुदित करनारी होती
 (अणुवरय) वगर विराम बीधां ओ सतत (अभिणंदताय अभियुणताय जय जयणदा जय
 जय महा) अभिनन्दन करतां, अभिषुवति-स्तुति करतां आ प्रभाषे कहुं हेनन्द ! आन ह

‘जय जय जंदा’ इत्यादि ‘जय जय जंदा’ हे नन्द हे आनन्द स्वरूप । भरत । ‘जय जय भद्रा’ हे भद्र । कल्याणकर चक्रवर्तिन् जय जय अजितशत्रून् विजयस्व विजयस्व ‘जय जय-भद्रा !’ हे भद्र ! कल्याणस्वरूप ! जय जय ‘भदंते’ ते तुभ्यं भद्र कल्याण भूयात्-‘अजिय जिणाहि’ अजितम् अपराजितं प्रतिशत्रु जय विजयस्व ‘जियं पालयाहि’ जितम् आज्ञावशवद् पालय रक्ष ‘जियमज्जे वसाहि’ जितमध्ये आज्ञावशवदमध्ये वस-तिष्ठ जितपरिजनैः परिवृतो भव इत्यर्थः ‘इंदोविव देवाणं’ इन्द्र इव देवाना वैमानिकानां मध्ये सर्वत ऐश्वर्यवान् इत्यर्थः ‘चंदोविव ताराणं’ चन्द्र इव ताराणां नक्षत्राणां मध्ये चन्द्रमा इव ‘चमरो विव असुराणं’ चमर इव असुराणां दाक्षिणात्यानामपुराणां मध्ये चमर नामकासुरेन्द्र इव ‘धरणो विव नागाणं’ धरण इव नागानाम्-नागानां मध्ये धरण-नामक नागकुमार इव ‘बहूइं पुव्वसयसहस्साइं’ बहूनि पूर्वशतसहस्राणि बहूनि पूर्वल-क्षाणि ‘बहूइंओ पुव्वकोडीओ’ बहूनि पूर्वकोटीः ‘बहूइंओ कोहाकोडीओ’ बहूनि पूर्व कोटाकोटीः ‘विणीयाए रायहाणीए’ विनीतायाः राजधान्याः प्रजाः पालयन् ‘चुल्ल हिमवंतगिरिसागरमेरागस्स य’ क्षुल्लहिमवद्गिरिसागरमर्यादाकस्य च क्षुल्लहिमवद्गिरिः उत्तरस्या दिशि क्षुद्रहिमवत्पर्वतः अपरत्र च दिशात्रये त्रयः सागराः तैः कृताया स्तुति करते हुए ऐसा कहा—हे नन्द ! आनन्द स्वरूप भरत चक्रवर्तिन् ! तुम्हारा जय हो तुम अजित शत्रुओं पर विजय पाओ हे भद्र—कल्याणस्वरूप भरत ! तुम्हारी चारों तरफ जय हो (भदंते) तुम्हारा कल्याण हो (अजिय जिणाहि) जिसे दूसरा वीर परास्त नहीं कर सके ऐसे शत्रु को तुम परास्त करो, (जियं पालयाहि) जो तुम्हारी आज्ञा माननेवाले हैं उनकी तुम रक्षा करो (जियम-ज्जे वसाहि) जित व्यक्तियों के बीच में आप रहो—अर्थात् परिजनों से आप सदा परिवृत्त बने-रहो (इंदोविव देवाणं) वैमानिक देवों के बीच में इन्द्र की तरह (चंदोविव ताराणं) ताराओं के बीच में चन्द्र की तरह (चमरोविव असुराणं) असुरों के बीच में असुरेन्द्र असुरराज चमर की तरह (धरणोविव नागाणं) नागकुमारों के बीच में धरण नामक नागकुमार की तरह तुम (बहूइं पुव्वसयसहस्साइं) अनेक लाख पूर्वतक (बहूइंओ कोहाकोडीओ) अनेक कोटाकोटी पूर्वतक (विणीयाए रायहाणीए) विनीता राजधानी की प्रजा का पालन करते हुए (चुल्लहि-स्वरूप भरत चक्रवर्ती । तमारो जय थाओ, तमे अल्लत शत्रुओ उपर विजय भेजवो. डे भद्र, कल्याण स्वरूप भरत ! तमारो चारों तरफ जय थाओ, (भदंते) तमारु’ कल्याण थाओ. (अजिय जिणाहि) जेने ओले वीर डरावी शके नहि जेवा शत्रु ने तमे परास्त करे। (जियं पालयाहि) जेवो तमारी आज्ञातु पालनकरेछे तेमनी तमे रक्षा करे. (जियमज्जे वसाहि) जे व्यक्तियों ने आपे छती दीधेछे तेमनी वच्चे तमे रहे। ओटलेके यकिनोशी तमे सर्वदा परिवृत्त रहे। (इंदोविव देवाणं) वैमानिक देवोभा तमे इन्द्रनी जेम (चंदोविव ताराणं) ताराओनी वच्चे चन्द्रनी जेम, (चमरोविव असुराणं) असुरोनी वच्चे असुरेन्द्र = सुरराज चमरनी जेम (ध-रणो विव नागाणं) नागकुमारो नी वच्चे धरण नामक नागकुमारनी जेम (बहूइं पुव्वसयसह-स्साइं) अनेक लाख पूर्व सुधी (बहूइंओ कोहाकोडीओ) अनेक कोटा कोटी पूर्व सुधी (विणीयाए

मर्यादा अवधिः सा अस्ति यस्मिन् तत्तथा तस्य एवभूतस्य च 'केवलकल्पस्य' केंद्रल कल्पस्य सम्पूर्णस्य 'भरहस्स वासस्स' भारतवर्षस्य 'गामागरणगरखेडकम्बडमडंबदोण-मुहपट्टणासमसणिवेसेसु' ग्रामाकरनगरखेटकर्बटमडम्बद्रोणमुखपत्तनाश्रमसन्निवेशेषु तत्र ग्रामः प्रसिद्धः आकरः यत्र सुवर्णाद्युत्पद्यते नगरम्-प्रसिद्धम् खेटः धूलिका प्राकारसहित नदी पर्वतवेष्टितं च नगरम्, कर्बट कुत्सितनगरम् मडम्बम् एकयोजनान्तरग्रामरहितम् द्रोणमुखम् जलस्थलपवेशम् पत्तनम् प्रसिद्धम् आश्रमं तापमानां निवासस्थानम् नगरवाह्यप्रदेशः आभीरादि निवासस्थानम् सन्निवेशः आगन्तुनिवासस्थानानि तेषु 'सम्मं' सम्यक् 'पयापालणोवज्जियलद्धजसे' प्रजापालनोपार्जितलब्धयशस्कः सम्यक् प्रजापालनेन उपार्जितम् एकत्रीकृत यल्लब्ध निजभुजपराक्रमै प्राप्तं यशो येन स तथा पुनः कीदृशः 'महया जाव आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरइ' महता यावत् आधिपत्यं पौरपत्यं यावत् विहर विचर, अत्र प्रथमयावत्पदात् 'महयाहायण-मवंतगिरिसागरमेरागस्स य केवलकल्पस्स भरहस्स वासस्स गामागरणगरखेडकम्बड मडंबदोणमुहपट्टणासमसणिवेसेसु) उत्तर दिशा में क्षुद्रहिमवत्पर्वत एवं तीन दिशाओं में तीन सागरों द्वारा जिसकी मर्यादा की गई है ऐसे इस केवल कल्प-सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के ग्राम, आकर नगर खेट कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, और सन्निवेश इन सबस्थानों में (सम्मं) अच्छी तरह से (पयापालणोवज्जियलद्धजसे महयाजाव आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरइ) प्रजापतियों के पालन से उपार्जित किये हुए तथा अपने भुज पराक्रम से प्राप्त हुए यश से सम्बन्धित हुए दक्ष बजानेवालों के हाथों से जोर २ से जिनमें समस्त प्रकार के वाजे बजावे जा रहे हैं ऐसे विविध नाटकों को एव गीतों को देखते हुए सुनते हुए विपुल भोग भोगों के भोग-भोग पद की व्याख्या पोछे की जा चुकी है, ग्राम आकर आदि स्थानों का स्वरूप भी पीछे के स्थलों में प्रकट कर दिया है एवं "महया के जाव" से गृहीत नाट्यगीत वादिततन्त्रीतल०" परं (रायहाणीप) विनीता राजधानी नी प्रजापति पालन करतां (क्षुद्रहिमवतगिरिसागरमेरागस्स य केवलकल्पस्स भरहस्स वासस्स गामागरणगरखेडकम्बडमडंबदोणमुहपट्टणासमसणिवेसेसु) उत्तर दिशा में क्षुद्र हिमवत्पर्वत अने त्रय दिशाओं में त्रय सागरों वडे जेनी सीमा निश्चित करवाभा आवी छे, जेवा जे केवलकल्प स पूर्ण भारतक्षेत्रना ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन अने सन्निवेश जे सबस्थानोभा (सम्मं) सारीरीते (पयापालणोवज्जियलद्धजसे महया जाव आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव विहरइ) प्रजापति पालनशी समुपार्जित तेमज्य पौताना भुज पराक्रमशी प्राप्त यशशी सम्बन्धित थयेला अतुर वाध वगाडनाराज्योना हाथोथी जेर-जेरथी जेभां सब प्रकारना वाधो वगाडवाभा आवी रह्या छे, जेवा विविध नाटकोने तेमज्य गीताने जेताने, साभणताने विपुल भोग भोगोने भोगवता 'भोग' पदनी व्याख्या पूर्वे करवाभा आवी छे आन आकर आदि स्थानोनु स्पष्टप पक्ष पूर्वं प्रकरभा स्पष्ट करवाभा आवेल छे तेमज्य "महया जाव" थी गृहीत 'नाट्यगीतवादित तन्त्रीतल०' पदोनी व्याख्या पक्ष केलाके स्थलोभां करवाभा आवी छे.

दृगोयवाडयतंतीतलतालतुडिअघणमुदंगपडुप्पगाडयरवेण विउळाडं भोगभोगाडं भुंजमाणे' इति संग्रहः महताऽहतनादयगीतवादित तन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण विपु लान भोगभोगान् भुञ्जान, तत्र महता प्रधानेन बृहता वा रवेणेत्यग्रे सम्बन्धः, अहतः अनुवद्धो रवस्येति विशेषणम् नाट्यं नृत्तं तेन युक्तं गीतं तच्च वादितनि च तानि शब्दयुक्तानि कृतानि तन्त्री च वीणा तलौ च हस्तौ तालाश्च कंशिकाः- 'तुडिय च्चि' तूर्याणि च पटहादीनि यानि तानि अहत नाट्यगीतवादिततन्त्रीतलतालतूर्याणि इति इतरेतरद्वन्द्वः तानि च तथा घनो मेघः तत्सदृशो यो मृदङ्गो ध्वनि गाम्भीर्य- साधर्यात् म चासौ पटुना दक्षेण प्रवादितश्च यः स घनमृदङ्गपटुप्रवादितः सवेति अहत नाट्यगीतवादिततन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादिता इति पुनः इतरेतर द्वन्द्वः तेषां रव शब्द तेन ऋणधूनेन अत्र मृदङ्गग्रहणं वाद्येषु मध्ये प्रधानमिति बोध्यम् त्रिपुत्रानि प्रचुराणि भोगभोगान् भुञ्जान भुञ्जन् आधिपत्यं पौरपत्य यावत् अत्रापि यावत्पदात् 'सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसर सेणावच्च कारेमाणे पालेमाणे' चि स्वामित्तं भर्तृत्वं महत्तरत्वम् आङ्गेश्वरसेनापत्यं कारयन् पालयन् इति ग्राह्यम्, विहर विचरण कुरु 'त्तिकददु जय जय सहं पउजंति' इति कृत्वा-इत्युक्त्या जय जय शब्दं प्रयुञ्जन्ति प्रयुञ्जन्ते वदन्तोत्यर्थः 'तएणं से भरहे राया णयणमालासहस्सेहि पिच्छिञ्जमाणे २' ततः खलु स भरतो राजा दर्शकप्रजागणानाम् नयनमालासहस्रैः प्रेक्ष्यमाणः २ अवलोक्यमानः २ 'वयणमाला सहस्सेहि अभिथुव्वमाणे २' वचनमाला क व्याख्या भी कई स्थले पर लिखी चुकी है, अतः वहीं से इसे जान लेनी चाहिये 'हर एक जगह इन की व्याख्या लिखने से ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाने का भय रहता है, यहाँ मृदङ्ग का ग्रहण वाद्यो में प्रधान होने से किया गया है, और अपने साम्राज्य के अन्तर्गत मनुष्यों का आधिपत्य पौरपत्य यावत् करते हुए आनन्द के साथ अपने समय का सदुपयोग करो, यहाँ पद यावत् शब्द से "सामित्तं, भट्टित्तं, महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्च कारेमाणे" इन पदों का संग्रह हुआ है, (त्तिकददु जयजयसह पउजंति) इस प्रकार कहकर उन सबनेपुनः आपकी जय हो जय हो इस प्रकार से जय जय शब्द का उच्चारण किया (तएणं से भरहे राया णयणमाला-सहस्सेहि अभिथुव्वमाणे २) बारंबार हजारों वचनावलियों से स्तुत होते हुए (हिययमालासह-ओथी त्याथीअ ओ स भ धमा भाषी लेपु जेधओ. दरेक स्थाने ओनी आअथा लभवाथी अथ जुं कवेवर विस्तुत थधं जय तेवा लयनी स आवना रडे छे अही मूहं गनुं अहणु व धोभा प्रधान डोवाथी करवामा आवेध छे अने पोताना साआन्यनी अ हर मनुष्योउ आधिपत्यं, पौरपत्य यावत् करता आन ह पुनं क पोताना सभयने सदुपयोग करे। अही यावत् शब्द थी "सामित्तं, भट्टित्तं, महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्च कारेमाणे" ओ पढेने। अअहं थये छे (त्तिकददु जय-जयसह पउजंति) आ प्रभाषे कहीने तेओ। सर्वं करीथी 'आपने। जय थाओ, जय थाओ।' आ प्रभाषे जय-जय शब्दने उग्र रवा लाग्या. (तएणं से भरहे राया णयणमालासहस्सेहि अभिथुव्वमाणे २) बार व २ हजारों वचनमालाओथी स्तुति करता। (हिययमाला सहस्सेहि पिच्छिञ्जमाणे २) आ प्रभाषे ते ७.२११ शब्द ७१११ नेत्र

सहस्रैः अभिष्टयमानः २ 'हिययमालासहस्मेहि उष्णं दिङ्जमाणे' हृदयगतमभिस्रैः
पूर्ण दीयमानः पूर्णं दीयमानं दर्शकप्रजागणहृदयमहस्त्रेषु पूर्णतया निजवासस्थान दीय-
मानः इत्यर्थः मनोरहमालासहस्मेहि विच्छिद्यमाणे' मनोरथमानः स्रैः विच्छिद्यमान -
विशेषेण स्पृश्यमान 'कंतिरुव सोहृगगुणेहि पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे कान्ति'
रूप सौभाग्यगुणैः प्रेक्ष्यमाणः २ 'अंगुलिमालासहस्मेहि दाड्जमाणे २' अङ्गुलि-
मालासहस्रैः दृश्यमान २ 'दाहिणहृत्थेणं बहूणं णरणारीः सहस्साण अजलि मालामहस्साड
पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे' दक्षिणहृस्तेन बहूनां नरनारी सहस्राणाम् अजलिमालासह-
स्राणि प्रतीच्छन् प्रतीच्छन्स्वीकुर्वन् स्वीकुर्वन् 'भवणपंती स'स्साड समडच्छमाणे २'
भवनमालासहस्राणि सपतिक्रमन् समतिक्रमन् उल्लङ्घयन् र अनेक भवनानि तंतीतल
तुडियगीयवाइयरवेणं' तन्त्रीतलतूर्य गीतवादितरवेण तत्र गीतम् गानविशेषः तच्च
वादितानि च शब्दवन्ति कृतानि तन्त्री च वीणा तलौ च स्त्री तूर्याणि च पट्टादि
वाद्यविशेषाः यानि तानि गीतवादित तन्त्रीतलतूर्याणि मूले प्राकृतत्वान् आपत्त्वाद्वा
पदव्यत्ययः तेषां स्वः-शब्दस्तेन 'मधुरेण' मधुरेण 'मणहरेण' मनोहरेण मनोज्ञेन
स्मेहि पिच्छिज्जमाणे २) इमं तरह वे भरत राजा हजारों नेत्रपंक्तियो द्वारा वारंवार देखे जाते
हुए (वयणमालासहस्मेहि अभिधुव्वमाणे २) बारबार हजारो वचनावलियों से स्तुत होते हुए
(हिययमालासहस्मेहि उष्ण दिङ्जमाणे २) हजारो दर्शक जनो के हृदयों में अपना पूर्णरूप से
स्थान बताते हुए (मणोरहमालासहस्मेहि विच्छिद्यमाणे) जनता के हजारो मनोरथों द्वारा विशेष
रूप से स्पष्ट होने हुए (कंतिरुव सोहृगगुणेहि पिच्छिज्जमाणे २) कान्तिरूप एव सौभाग्य गुणों
को लेकर जनता के द्वारा अपने २ नेत्रों को पसार २ कर देखे गये (अंगुलिमाला सहस्मेहि
दाड्जमाणे २) हजारों अंगुलियो द्वारा बारबार दिखाये गये (दाहिणहृत्थेण बहूणं णरणारी-
सहस्साणं अजलिमालासहस्साड पडिच्छेमाणे पडिच्छेमाणे)अपने दक्षिण हाथ से अनेक हजारो नर
नारी जनो द्वारा कृत हजारों अंजुलियों को बारं बार स्वीकार करते २ (भवणपंती सहस्साड
समडच्छमाणे २) हजारों भवनों की श्रेणि को पार करते २ (तंतीतलतुडियगीयवाइयरवेणं)गीतों में
५ कृतयो वडे वारंवार दृश्यमान थता (वयणमालासहस्मेहि अभिधुव्वमाणे २) वार वार
हजारो वचनावलायो थी स स्तुतमानथता, (हिययमाला सहस्मेहि उष्ण दिङ्जमाणे २) हजारो
दर्शकजनोना हृदयोमा स पूर्य पथे पोतानु स्थान भनानता, (मणोरहमाला सहस्मेहि
विच्छिद्यमाणे) प्रजनता हजारो मनोरथो वडे विशेष रूपमां स्पष्ट थता, (कंतिरुव सोहृगग
गुणेहि पिच्छिज्जमाणे २) कान्ति, रूप अने सौभाग्य गुणोने लगने प्रक वडे साश्र्वथं दृष्टिथी
नेवाथेद, (अंगुलिमालासहस्मेहि दाड्जमाणे २) हजारो आंगुलीयो वडे वार वार
निच्छिड करथेद (दाहिणहृत्थेण बहूणं णरणारी सहस्साणं अजलिमालासहस्साड पडि-
च्छेमाणे २) पोताना न मथा डोथथी हजारो नर-नारीयो वडे जे अजलिओ भन.ववाभा
अ वी छे, तेना वार वार स्वीकार करतो, (भवणपंती सहस्साड समडच्छमाणे २) हजारो भवनोंकी
श्रेणीयश्रेणी ओने पार करते (तंतीतलतुडियगीयवाइयरवेणं) गीतोभा वागता, तन्त्री, तल

मंजुमंजुणा' मञ्जुमञ्जुना अतिसरत्नेन 'घोसेणं' घोषेण शब्देन "अपडिबुज्जमाणे
 २' अप्रतिबुध्यन् २ अन्यद्वस्तु अजानन् अजानन् तत्रैव शब्दे लीनत्वात् 'जेणेव सए गिहे
 जेणेव सए भवणवडिसयदुवारे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव स्वकं गृहम् पैत्र्यं राजभवनं यत्रैव
 स्वकं भवनावतंसकद्वार जगद्धर्ति वासगृहशेखरी भूतराज योग्यवासगृहप्रतिद्वारमित्यर्थः तत्रैव
 उपागच्छति स भरतः 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'आभिसेक्क हत्थिरयण ठवेइ' आभिषेक्यम्
 हस्तिरत्नम् प्रमुखपट्टइस्तिनं स्थापयति 'ठवित्ता' स्थापययित्वा 'आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ
 पच्चोरुइइ' आभिषेक्यात् पट्टहस्तिनः हस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति उत्तरति 'पच्चोरुहिच्चा
 प्रत्यवरुह्ण ऊत्तीर्य 'सोलसदेवसहस्से सक्कारेइ सम्मानेइ' षोडशदेवसहस्राणि सत्कारयति
 अंजलिप्रभृतिभिः सम्मानयति अनुगमन'दिना 'सक्कारित्ता संमानित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य
 'वत्तीसं रायसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ' द्वात्रिंशत् राजसहस्राणि सत्कारयति सम्मानयति
 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य 'सेणावइरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ' सेनापतिरत्न
 वजते हुए तन्त्री तल त्रुटित-वाध विशेष-इनकी तुमुल गडगडाहट के साथ २ (मधुरेणं मणहरेण मंजु
 मंजुणा घोसेणं अपडिबुज्जमाणे अपडिबुज्जमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव सए भवणवडिसयदुवारे ! तेणेव
 उवागच्छइ) तथा होते हुए मधुर मनोहर, अत्यंत कर्णप्रिय घोष में तल्लीन होने के कारण अन्य
 किसी दूसरी वस्तु की ओर ध्यान नहीं देते हुए वे भरत नरेश जहां पर पैतृक राजभवन था
 और उस में भी जहां पर जगद्धर्ता वासगृहों में मुकुट रूप अपना निवासस्थान था उसके द्वार
 पर आये (उवागच्छित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ) वहां आकर उन्होंने अपने आभिषेक्य हस्ति
 रत्न को खडा कर दिया (ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुइइ) आभिषेक्य हस्तिरत्न
 को खडा करके फिर वे उससे नीचे उतरे (पच्चोरुहिच्चा सोलसदेवसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ)
 नीचे उकर उन्हो ने सोलह हजार देवों का अनुगमनादि द्वारा सत्कार किया और सम्मान किया
 (सक्कारित्ता सम्माणित्ता वत्तीस रायसहस्से सक्कारेइ, सम्माणेइ) देवों का सत्कार और स
 न्मान करके फिर उन्हो ने ३२ हजार राजाओं का सत्कार एव सम्मान किया (सक्कारित्ता
 सम्माणित्ता सेणावइरयणं सक्कारेइ समाणेइ) सत्कार सम्मान करके फिर अपने सेनापतिरत्न का
 त्रुटित-वाधविशेष-ओ सर्वना तुमुल गडगडाहट युक्त शब्द साथे (मधुरेणं मणहरेणं मंजु
 मंजुणा घोसेणं अपडिबुज्जमाणे अपडिबुज्जमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव सए भवणवडिसयदुवारे
 तेणेव उवागच्छइ) तेमञ्जु मधुर, मनोहर, अत्यंत कर्णप्रिय घोषमा तल्लीन होवाथी थीअ
 कौंधिपथु वस्तु तरक लेनु ध्यान नहीं ओवा ते भरत नरेश न्या पैतृक राजभवन इतु अने
 तेमा पथु न्या जगद्धर्ती वास गृहोमा मुकुटरूप पोतातु निवासस्थान इतु, तेना द्वारसाथे
 पडेअथी (उवागच्छित्ता आभिसेक्क हत्थिरयणं ठवेइ) तथा आवीने तेमथे पोताना आभि-
 सेक्य हस्तिरत्न ने उलोराथीने पथी तेओ नीचे उतथा (पच्चोरुहिच्चा सोलसदेवसहस्से
 सक्कारेइ सम्माणेइ) नीचे उतरीने तेमथे सोलहजार देवानो अनुगमनादि वडे सत्कार कथी
 अने सम्मान कथु (सक्कारित्ता सम्माणित्ता वत्तीसं रायसहस्से सक्कारेइ सम्माणेइ) देवानो
 सत्कार अने सम्मान कथीने पथी तेमथे उर हजार राजओ ने। सत्कार तेमञ्जु सम्मान

सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्य सम्मान्य 'एवं गाहावहरयण
 बद्धहरयणं पुरोहितरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ' एवम् अमुना प्रकारेण गाथापतिगन्नं बद्धकि-
 रत्न पुरोहितरत्नं च सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्य सम्मान्य
 'तिणिण सट्टे सूअसए सक्कारेइसम्माणेइ' त्रीणि पट्टानि पट्टयधिकानि सूपशतानि रसवती-
 कारशतानि सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्य सम्मान्य 'अट्टारम
 सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ सम्माणेइ' अष्टादश श्रेणिः प्रश्रेणीः सत्कारयति सम्मानयति
 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्य सम्मान्य 'अण्णे वि बहवे राईसर जाव सत्थवाहप्पभि
 ईओ सक्कारेइ सम्माणेइ' अन्यानपि बहून् राजेश्वर यावत्सार्थवाहप्रभृतीन् सत्कारयति
 सम्मानयति अत्र यावत्पदात् माडम्बिक कौटुम्बिक मन्त्रि महामन्त्रि गणकदौवारिकाऽमा-
 सत्कार और सम्मान क्रिया (सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं गाहावहरयण बद्धहरयण पुरोहितरयणं
 सक्कारेइ सम्माणेइ) सेनापतिरत्न के सत्कार और सम्मान हो जाने के बाद फिर उन्होंने गाथापति
 रत्न का बद्धकिरत्न का एव पुरोहितरत्न का सत्कार और सम्मान क्रिया(सक्कारित्ता समाणित्ता
 तिणिणसट्टे सूअसए सक्कारेइ समाणेइ) इन सबके सत्कार और सम्मान हो चुकने पर उम भरत
 नरेशने तीनसौ ६० रसवती कारको का रसोईयो का—सत्कार एव सम्मान क्रिया (सक्कारित्ता
 समाणित्ता अट्टारससेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ, सम्माणेइ) इन का सत्कार सम्मान हो जाने के
 बाद फिर भरत राजा ने अठारह श्रेणिप्रश्रेणि जनों का सत्कार और सम्मान क्रिया (सक्कारित्ता
 समाणित्ता अण्णे वि बहवे राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ सक्कारेइ, सम्माणेइ) इनका सत्कार
 सम्मान हो जाने पर फिर भरत राजा ने और भी अनेक राजेश्वर अदि से लेकर सार्थवाहो
 तक के जनसमूह का सत्कार और सम्मान क्रिया यहां यावत्पदसे "माडम्बिक, कौटुम्बिक,
 कथु". (सक्कारित्ता सम्माणित्ता सेणावहरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ) सत्कार तेमनु सम्मान करी
 ने पछी पोताना सेनापति ने। तेणु सत्कार कथो' अने तेनु सम्मान कथु' (सक्कारित्ता
 णित्ता एव गाहावह रयणं बद्धहरयणं पुरोहितरयण सक्कारेइ सम्माणेइ) सेनापति
 रत्नने। सत्कार अने सम्मान करीने पछी तेणु गाथापति रत्नने। बद्धकिरत्न ने। अने
 पुरोहित रत्न ने। सत्कार अने सम्मान कथु' (सक्कारित्ता सम्माणित्ता तिणिण सट्टे सूअसए
 सक्कारेइ सम्माणेइ) अे सर्वना सत्कार अने सम्माननी विधि समाप्त थई त्यार भाइ ते
 भरत नरेशे त्रिषुसो साधक रसवतीकारकेने—सोअथिअेने। सत्कार कथो' अने तेमनु
 सम्मान कथु' (सक्कारित्ता सम्माणित्ता अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ, सम्माणेइ) अे
 सर्वनी सत्कार अने सम्मान विधि समाप्त थई त्यार भाइ भरत महाराजने अट्टार श्रेणि
 प्रश्रेणिअेने। सत्कार कथो' अने तेमनु सम्मान कथु' (सक्कारित्ता सम्माणित्ता अण्णे वि
 बहवे राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईओ सक्कारेइ सम्माणेइ) अे सर्वने। सत्कार अने
 सम्मान विधि पूरी कथो पछी अकवती श्री भरत राजने गीला पणु अनेक राजेश्वर आदिथी
 भाडी ने सार्थवाहो सुधीना जन समूहने। सत्कार कथो' अने तेमनु सम्मान कथु'
 अई यावत् पदथी "माडम्बिक, कौटुम्बिक मन्त्री, महामन्त्री, गणक, दौवारिक, अमात्य

कोटशो भरतः कीदृशश्च राजभवनमित्याह—'जहा कुवेरोब्ब' इत्यादि । यथा कुवेर इव देवराजः कैलासशिखरशृङ्गभूतमिति यथा कुवेरः तथा देवराजः लोकपालो भरतोऽपि संपत्तिशालीतिभावः यथा कैलासं—स्फटिकाचलं किं स्वरूपं भवनावतसकं शिखरि शृङ्गे पर्यतशिखरं तद्गतं तत्सदृशं भरतस्य राजभवनमपि सादृश्यं च उच्चत्वेन मुन्दरत्वेन चेतिभावः 'तएणं से भरहे राया मित्तणाइणियगसयणसंबधिपरिअण पञ्चुवेक्खइ' तत खल्लु स भरतो महाराजा मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनं प्रत्युपेक्षते, ततः खल्लु तदनन्तरं किल स महाराजा भरतः मित्राणि मुहूदः निजका मातापितृभ्रात्रादयः । स्वजनाः पितृव्यादयः, सम्बन्धिनः—श्वसुरादयः परिजनाः—दासादयः अत्र एकवद्भावात् एकवचनं द्वितीयान्तं समस्तपदं बोध्यम् प्रत्युपेक्षते कुशलप्रश्नादिभिरापृच्छय संभाषते इत्यर्थः अथवा चिरकालाददृष्टत्वेन मित्रादीन् स्नेहदृशा पश्यतीत्यर्थः 'पञ्चुवेक्खित्ता' प्रत्युपेक्ष्य 'जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ' यथैव मज्जनगृहं स्नानगृहं तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'जाव मज्जणघराओ पडिणिकखमइ' यावत् मज्जनगृहात् स्नानगृहात् प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति स भरतः, अत्र यावत्पदात् तत्रैव कृतस्नानः सन् इति बोध्यम् 'पडिणिकखमित्ता' प्रतिनिष्क्रम्य—निर्गत्य 'जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव भोजनमण्डपः भोजनालयः तत्रैव 'उपागच्छति' 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'भोयणं (तएणं से भरहे राया मित्तणाइणियगसयणसंबधिपरिअण पञ्चुवेक्खइ) वहां जाकर उस भरत महाराजा ने अपने मित्र जनो से अपने माता पिता भाई आदि जनो से, स्वजनोसे काका आदि जनो से असुर आदि सम्बन्धी जनो से, और दाम आदि परिजनो से कुशलता पूछी अथवा चिरकाल के बाद देखने से मित्रादिको को उसने स्नेह को दृष्टि से देखा (पञ्चुवेक्खित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) सब के साथ संभाषण करने या स्नेहाद्रं दृष्टि से देखने के अनन्तर वह भरत नरेश जहां पर स्नानगृह था वहां पर गया (जाव मज्जणघराओ पडिणिकखमइ) वहां पर जाकर के उसने — यावत्— स्नान किया, और स्नान करके फिर वह स्नान घर से (पडिणिकखमित्ता) बाहिर आकरके (जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ) जहां पर भोजन मंडप था वहां पर आया (उवागच्छित्ता भोयणमंडवंसि सीहासणवरगए अट्टमभत्त पारेइ) वहां आकर पौताना प्रधान राजभवननी अंदर प्रविष्ट थये। (तएणं से भरहे राया मित्तणाइणियगसयणसंबधिपरिअण पञ्चुवेक्खइ) त्यां पडोत्थीने ते भरत राजको ये ताना मित्रजनो नी पौताना माता—पिता, भाई वगेथनी, स्वजनोनी काकाविगेथनी श्वशुरविगेथे सखधी जनो नी अने दास—दासी परिजनोनी कुशलता पूछीअथवा जेभने ते अरकाण पथी जेध थथये छे जेवा ते मित्रादिकोने ते महाराज श्री भरते स्नेह दृष्टिथी जेथा। (पञ्चुवेक्खित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) सर्वानी साथे संभाषण कर्या आइ अथवा सर्वाने स्नेह दृष्टिथी जेथा आइ ते भरत नरेश जथा स्नान गृह छेत्तु त्यां गथे (जाव मज्जणघराओ पडिणिकखमइ) त्यां जेधने तेथे यावत् स्नान करुं अने स्नान कराने पथी ते स्नान घरथी (पडिणिकखमित्ता) अंदर आवीने (जेणेव भोयणमंडवे तेणेव

त्यचेटपीठमर्दक नगरनिगम श्रेष्ठि सेनापति तथा सार्थवाह प्रभृति पदात् दूतसन्धिपाल
एतानि पदानि ग्राह्यानि एतेषां व्याख्यानम् पतत् सूत्राव्यवहिते सप्तविंशतितमे सूत्रे
द्रष्टव्यम् 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्य सम्मान्य 'पडिविमज्जेइ' प्रतिविसर्जयति निज-
वासगमनाय सर्वान् आदिशतीत्यर्थः, अथ स पदखंडाधिपति' श्री भरतो महाराजा यावत्
परिच्छदः यथा वासगृहं प्रविशति तथा आह 'इत्थीरयणेणं इत्यादि' इत्थीरयणेणं बत्तीसाए
उडुकल्लाणिया सहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयइल्लाणिया सहस्सेहिं बत्तीसाए बत्तीस-
इबद्धेहिं णाडयसहस्सेहिं सद्धिं संपरिबुडे भवणवरवडिसंगं अईइजहा कुवेरोव्व देवराया
केलाससिहरिसिगभूर्यति' स्त्रीरत्नेन सुभद्रया तथा द्वात्रिंशत्संख्याका ऋतुकल्याणिका
सहस्रैः द्वात्रिंशत् सहस्रसंख्यायुक्ताभिः अमृतकन्यात्वेन सदा ऋतुषु पद्मसु कल्याणीभिः
राजकन्याभिः तथा द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिका सहस्रैः द्वात्रिंशत्सहस्र संख्यायुक्ताभिः
जनपदाग्रणी कल्याणिकाभिः राजकन्याभिः, तथा द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद् बद्धे द्वात्रिंशत्पात्र
युक्तैः नाटकसहस्रैः द्वात्रिंशत्पात्रबद्ध द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यकनाटकैः सार्द्धं संपरिवृत्तः वेष्टितः
भवनवरावतंसकं श्रेष्ठभवनावतंसकं स्वप्रधानाजभवनम् अत्येति प्रविशति स भरतः तत्र
मंत्री महामंत्री गणक दौवारिक, अमात्य, चेटपीठमर्दक, नगर निगम श्रेष्ठी, सेनापति दूत सन्धिपाल
इन सबका ग्रहण हुआ है इन पदों की व्याख्या २७ वे सूत्र में कर दी गई है ।

(सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविमज्जेइ) सत्कार सम्मान करके फिर भरत राजा ने
इन्हें अपने २ स्थान पर जाने की आज्ञा दे दी (इत्थीरयणेण बत्तीसाए उडुकल्लाणिया सहस्सेहिं
बत्तीसाए जणवयकल्लाणिया सहस्सेहिं बत्तीसबद्धेहिं णाडयसहस्सेहिं सद्धिं संपरिबुडे भवण-
वरवडिसंगं अईइ जहा कुवेरोव्व देवराया केलाससिहरिसिगभूर्यति) इसके अनन्तर सुभद्रा नामक
स्त्रीरत्न एव ३२ हजार ऋतुकल्याणिकाओं से छ हा ऋतुओं में आनन्ददायनी राजकन्याओं
से ३२ हजार जनपदाग्रणियों की कन्याओं से एवं ३२-३२ पात्रों से सबद्धित ३२
हजार नाटकों से युक्त हुआ वहकुवेर के जैसा भरत राजा ने कैत्रसगिरि के शिखर के तुल्य
अपने श्रेष्ठ भवनावतंसक के भीतर अपने - प्रधान राजभवन के भीतर प्रवेश किया
चेट, पीठमर्दक, नगरनिगम श्रेष्ठि सेनापति सधिपाल ओसर्वपदोअडुधु थया छे. ओ
पदोनी व्याख्या २७भा सूत्रभां करवाना आनी छे

(सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविमज्जेइ) सर्वने सत्कृत तेभञ्ज सम्मानित करीने श्रीभरत
राज्ज्जे तेभने पोतपोताना स्थान उपर ज्वानी आज्ञा आपी. (इत्थीरयणेणं बत्तीसाए
उडुकल्लाणियासहस्सेहिं बत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्सेहिं बत्तीसबद्धेहिं णाडय
सहस्सेहिं सद्धिं संपरिबुडे भवणवरवडिसंगं अईइ जहा कुवेरोव्व देवराया केलाससिहरि
सिगभूर्यति) त्थार आह सति सुभद्रा नामक स्त्री रत्नथी, उर डंभर ऋतुकल्याणिकाओंथी ६
ऋतुओंभां आनन्ददायिनी राजकन्याओंथी, उर डंभर जनपदाग्र ज्ञोनी कन्याओंथी
तेभञ्ज उर-उर पात्रोंथी संभद्ध उर डंभर नाटकोंथी सम्न्वित थयेदो अने कुणेर जेवो
दाओतो ते भरत राजा केलास गिरिना शिखर तुल्य पोताना श्रेष्ठ भवनावतंसकणी अंहर-

कोटशो भरतः कीदृशश्च राजभवनमित्याह—'जहा कुवेरोन्व' इत्यादि । यथा कुवेर इव देवराज. कैलासशिखरशृङ्गभूतमिति यथा कुवेरः तथा देवराजः लोकपालो भगतोऽपि संपत्तिशालीतिभाव यथा कैलास-स्फटिकाचलं किं स्वरूप भवनावतसक शिखरि शृङ्गे परंतशिखरं तद्गतं तत्सदृशं भरतस्य राजभवनमपि सादृश्यं च उच्चत्वेन सुन्दरत्वेन चेतिभावः 'तपणं से भरहे राया मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिअण पञ्चुवेक्खइ' तत खल्ल स भरतो महाराजा मित्रज्ञातिनिजकस्वजनसम्बन्धिपरिजनं प्रत्युपेक्षते, ततः खल्ल तदनन्तर किल स महाराजा भरत. मित्राणि सुहृद्. निजका मातापितृभ्रात्रादय । स्वजनाः पितृव्यादयः, सम्बन्धिनः-श्वसुरादयः परिजनाः-दासादयः अत्र एकवद्भावात् एकवचनं द्वितीयान्तं समस्तपदं बोध्यम् प्रत्युपेक्षते कुशलप्रश्नादिभिरापृच्छय सभापते इत्यर्थः अथवा चिरकालाददृष्टत्वेन मित्रादीन् स्नेहदृशा पश्यतीत्यर्थ. 'पञ्चुवेक्खित्ता' प्रत्युपेक्ष्य 'जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ' यथैव मज्जनगृहं स्नानगृहं तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'जाव मज्जणधराओ पडिणिकखमइ' यावत् मज्जनगृहात् स्नानगृहात् प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति स भरतः, अत्र यावत्पदात् तत्रैव कृतस्नानः सन्न इति बोध्यम् 'पडिणिकखमित्ता' प्रतिनिष्क्रम्य-निर्गत्य 'जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव भोजनमण्डपः भोजनालयः तत्रैव 'उपागच्छति' 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'भोयणं से भरहे राया मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिअण पञ्चुवेक्खइ' वहां जाकर उस भरत महाराजा ने अपने मित्र जनो से अपने माता पिता भाई आदि जनो से, स्वजनोसे काका आदि जनो से श्वसूर आदि सम्बन्धी जनो से, और दास आदि परिजनो से कुशलता पूछी अथवा चिरकाल के बाद देखने से मित्रादिको को उसने स्नेह को दृष्ट मे दखा (पञ्चुवेक्खित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) सब के साथ सभाषण करने या स्नेहाद्रं दृष्टि से देखने के अनन्तर वह भरत नरेश जहां पर स्नानगृह था वहां पर गया (जाव मज्जणधराओ पडिणिकखमइ) वहां पर जाकर के उसने - यावत्- स्नान किया, और स्नान करके फिर वह स्नान था से (पडिणिकखमित्ता) बाहिर आकरके (जेणेव भोयणमंडवे तेणेव उवागच्छइ) जहां पर भोजन मंडप था वहां पर आया (उवागच्छित्ता भोयणमंडवंसि सीहासणवरगए अट्टमभत्त पारेइ) वहां आकर योताना प्रधान राजभवननी अहर प्रविष्ट थयो (तपणं से भरहे राया मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिअण पञ्चुवेक्खइ) त्यां पडोत्थीने ते भरत राजाये ये ताना मित्रजने नी योताना माता-पिता, भाई वगेथनी, स्वजनोनी काकाविशेथनी श्वशुरावगेथे सभधी जनो नी अने दास-दासी परिजनोनी कुशलता पूछीअथवा जेभने ते चिरकाण पछी जेथ थइथे छे जेवा ते मित्रादिकोने ते महाराज श्री भरते स्नेह दृष्टिथी जेथा. (पञ्चुवेक्खित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) सर्वनी साथे सभाषण कथां भाइ अथवा सर्वने स्नेह दृष्टिथी जेथा भाइ ते भरत नरेश जथा स्नान गृहं छत्तु त्यां जथे (जाव मज्जणधराओ पडिणिकखमइ) त्या जेथने तेछे यावत् स्नान कथुं अने स्नान करीने पछी ते स्नान धरथी (पडिणिकखमित्ता) अहार आवीने (जेणेव भोयणमंडवे तेणेव

ખમંડવંસિ સુહાસનવરગણ અદ્દમમત્તં પારેઈ' મોજનમળ્ડપે સુહાસનરવગતઃ સન્ ૫ મરતઃ
 અષ્ટમમત્ત પારયતિ અહોરાત્રં દિનત્રયમ્પુષ્ય તતઃ પરં પારણાં કરોતીત્યર્થઃ 'પારિત્તા'
 પારયિત્વા પારણાં કૃત્વા 'ઉપ્પિ પાસાયવરગણ ફુટ્ટમાણેહિં મુહંગમત્થપહિં વત્તીમહ્વદ્દેહિં
 ણાહ્ણપહિં ઉવ્વલાલિજ્જમાણે ઉવ્વલાલિજ્જમાણે ઉવ્વણચ્ચિજ્જમાણે ઉવ્વણચ્ચિજ્જમાણે ઉવ્વગિ-
 જ્જમાણે ઉવ્વગિજ્જમાણે મહયા જાવ મુંજમાણે વિહરઈ' ઉપરિ પ્રાસાદવરગતૈ સ્ફુટન્નિઃ
 મૃદન્નમસ્તકૈઃ દ્વાત્રિશ્ચબ્દ્દૈઃ નાટકૈરુપલાલ્યમાનઃ ૨ ઉપનૃત્યમાનઃ ૨ ઉપગીયમાનઃ ૨
 મહતા યાવત્ મ્હુઝ્જાનો વિહરતિ તિષ્ઠતિ સ મરતઃ અત્ર યાવત્ આહતનાટચ ગીતવાદિત
 તન્ત્રીતલ્લાલતૂર્યધનમૃદન્ન પદુપ્રવાદિતરવેણ વિપુલાન્ મોગમોગાન્ इति ગ્રાહચમ્ ૧૫
 વ્યાખ્યાનમ્ અસ્મિન્નેવ સૂત્રે પૂર્વે દ્રષ્ટવ્યમ્ ॥૨૧॥

મૂલમ્—તણ તસ્સ મરહસ્સ રણ્ણો અણ્ણયા કયાઈ રજ્જધુરં ચિંતેમાણ-
 સ્સ ઇમેયારૂવે જાવ સમુપ્પજ્જિત્થા, અભિજિણ્ણં મણિઅગ્ગબલવીરિઅ-
 પુરિસક્કાર પરક્કમેણ ચુલ્લહિમવંતગિરિસાગરમેણ કેવલકપ્પે મરહે વાસે,

વહ એક શ્રેષ્ઠ સુહાસન પર બેઠ ગયા ઓર ઉસને અપને દ્વારા ગૃહીત અદ્દમમત્ત કી તપસ્યા કો
 પારણા ક્રિયા (પારિત્તા ઉપ્પિ પાસાયવરગણ ફુટ્ટમાણેહિં મુહંગમત્થપહિં વત્તીમહ્વદ્દેહિં ણાહ્ણપહિં
 ઉવ્વલાલિજ્જમાણે ૨ ઉવ્વણચ્ચિજ્જમાણે ૨ ઉવ્વગિજ્જમાણે ૨ મહયા જાવ મુંજમાણે વિહરઈ) પારણા
 કરકે વહ મરત અપને શ્રેષ્ઠ પ્રાસાદ કે મીતર ચલા ગયા ઓર વહા વહ જિનમેં મૃદન્નો કો અવિરલ્લધ્વનિ
 હો રહો હૈ એસે ૩૨ પાત્રો સે બદ્ધ નાટકો દ્વારા, બારંબાર ઉપલાલિત હોતા હુઆ, બારંબાર વૃત્ત્યો
 કા અવલોકન કરતા હુઆ બારંબાર ગાયકોં કે ગાનો દ્વારા સ્તુત હોતા હુઆ યાવત્ મોગમોગો
 કો મોગને લગા યદા યાવત્પદ સે "અહત નાટચગીતવાદિત તન્ત્રી તલ્લાલતૂર્યધનમૃદન્નઃ
 પદુપ્રવાદિતરવેણ વિપુલાન્ મોગમોગાન્" હસ પાઠ કા સમ્પ્રહ હુવા હૈ । નાટ્ય ગીત આદિ પદો
 કી વ્યાખ્યા પીછેકંઈ સ્થલો પર લિસી જા ચુકી હૈ અતઃ ઉસે વહોં સે જાનલેની ચાહિયે ॥૨૧॥

ઉવાગચ્છઈ) જ્યાં લોજન મંડપ હોતો, ત્યાં ગયા (ઉવાગચ્છિત્તા મોયણમંડવંસિ સીહાસન
 વરગણ અદ્દમમત્તં પારેઈ) ત્યાં જઈને તે એક શ્રેષ્ઠ સુહાસન ઉપર બેસી ગયા અને તેણે
 પોતાની વડે ગૃહીત અષ્ટમ મત્ત તપસ્થાના પારણા કર્યા (પારિત્તા ઉપ્પિ પાસાયવરગણ
 ફુટ્ટમા જેહિં મુહંગમત્થપહિં વત્તીમહ્વદ્દેહિં ણાહ્ણપહિં ઉવ્વલાલિજ્જમાણે ૨ ઉવ્વણચ્ચિજ્જમાણે ૨
 ઉવ્વગિજ્જમાણે ૨ મહયા જાવ મુંજમાણે વિહરઈ) પારણા કરીને પછી તે ભરત મહારાજ
 પોતાના શ્રેષ્ઠ પ્રાસાદ ૧ અહર ગયા, અને ત્યાં તે જેમાં મૃદ ગોનો અવિરલ ધ્વનિ થઈ રહ્યો છે
 એવા ૩૨ પાત્રોથી બદ્ધ નાટકો વડે વરવાર ઉપલાલિત થતો વારવાર નૃત્યોનું અવલોકન
 કરતો વારંવાર ગાયકોના સ ગીતથી સ સ્તુત થતો યાવત્ લોગલોગો લોગવવા લાગ્યા અહીં
 યાવત્ પદથી "અહતનાટ્યગીતવાદિત તન્ત્રીતલ્લાલતૂર્યધનમૃદન્નપદુપ્રવાદિતરવેણ વિપુલાન્
 મોગમોગાન્" એ પાઠને સંપ્રહ થયો છે. નાટ્ય ગીત વગેરે પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં અનેક
 સ્થલો પર કરવામાં આવી છે. એથી જિજ્ઞાસુ જનો ત્યાંથી બહી લે. ॥૨૧॥

तं सेयं खलु मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेएणं अभिमिन्त्रावित्त-
 एत्तिकद्दु एवं संपेहेति संपेहिता कल्लं पाउप्पभाए जाव जलंते जेणेव
 मज्जणघरे जाव पडिणिक्खपइ पडिणिक्खमिता जेणेव वाहिरिया उवट्टाण-
 साला जेणेव सीहामणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता सीहामणवरगए
 पुरत्थाभिमुहे णिसीयति णिसीइत्ता सोलसदेवसहस्से वत्तीसं रायवरसह-
 स्से सेणावइरणे जाव पुरोहियरणे तिण्णि सट्टे सूअसए अट्टास
 सेणिप्पसेणीओ अण्णेअ वहवे राईसर तलवर जाव सत्थवाहप्पभियओ
 सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी अभिजिएणं देवाणुप्पिया! मए णिअग-
 बल वीरिअ जाव केवलकप्पे भरहे वासे तं तुव्वे णं देवाणुप्पिया! ममं
 महया महया रायाभिसेयं वियरह, तए णं से सोलसदेवसहस्सा जाव-
 प्पभियओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ट करयल मत्थए अंजलि
 कद्दु भरहस्स रण्णो एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेंति तए णं से भरहे
 राया जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता जाव अट्टम-
 भत्तिए पडिजारमाणे विहरइ । तए णं से भरहे राया अट्टमभत्तंसि परि-
 णममाणंसि आभिओगिए देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी खिप्पा-
 मेव भो देवाणुप्पिया! विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एगं
 महं अभिसेयमण्डवं विउव्वेह विउव्वित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।
 तए णं ते आभिओगा देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्टा जाव
 एवं सामित्तिआणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति पडिसुणित्ता विणी-
 याए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता-
 वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं
 णिसिरति, तं जहा रयणाणं जाव रिट्टाणं अहाबायरे पुग्गले परिसाडेंति
 परिसाडित्ता अहासुहुमे पुग्गले परिआदिअंति, परिआदित्ता दुच्चंपि
 वेउव्वियसमुग्घाएणं जाव समोहणंति समोहणित्ता बहुसपरमणिज्जं भूमि-
 भाग विउव्वंति, से जहानामए आलिगपुक्खरेइ वा० तस्सणं बहुसरम-

‘तएणं तस्स भरहस्सरण्णो अण्णया कयाइं । इत्यादि

टीकार्थ—तएण तस्स भरहस्स रण्णो अण्णया कयाइ रजघुरं चितेमाणस्स इमेयारूवे जाव
 समुप्पजित्था) एक दिन की बात है कि जब श्री भरत राजा अपने राज्य शासन के

णिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगं अभिसेयमंडवं
 विउव्वंति अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव गंधवट्टिभूयं पेच्छाघरमंडवं-
 वण्णगो त्ति, तस्सणं अभिसेयमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगं
 अभिसेयपेः विउव्वंति अच्छं सण्हं, तस्स णं अभिसेयपेढस्स तिदिसिं
 तओ तिसोवाणपडिख्वए विउव्वंति तेसिण तिसोवाणपडिख्वपगाणं
 अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव तोरणा, तस्स णं अभिसेय-
 पेढस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते तस्सणं बहुसमरमणिज्जस्स
 भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगं सीहासण विउव्वंति
 तस्सणं सीहासणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव दामवण्णं
 समत्तंति तए णं ते देवा अभिसेयमंडवं विउव्वंति विउव्वित्ता जेणेव भरहे
 राया जाव पच्चप्पिणंति । तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं
 अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ट तुट्ट जाव पोसहसालाओ पडिणि-
 क्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं
 वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिक्कप्पेह
 पडिक्कप्पित्ता हयगय जाव सण्णाहेत्ता एयमाणत्तित्वं पच्चप्पिणह जाव पच्च-
 प्पिणंति तएणं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविमइ जाव अंजणगिरि-
 कूडसंणिमं गयवइं णरवईदूरूढे तए णं तस्स भरहस्स रण्णो अभिसेक्कं
 हत्थिरयण दूरूढस्स समाणस्स इमे अट्टट्टमंगलगा जो चेव गमो विणीयं
 पविसमाणस्स सोचेव णिक्खममाणस्स वि जाव अप्पडिबुज्झमाणे विणीयं
 रायहाणीयं मज्जं मज्जेणं णिगच्छइ णिगगच्छित्ता जेणेव विणीयाए राय-
 हाणीए उत्तर रत्थिमे दिसीभाए अभिसेयमंडवे तेणेव उवागच्छइ उवाग-
 च्छित्ता अभिसेयमंडवदुवारे आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठावेइ ठावित्ता आभि-
 सेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहए पच्चोरुहित्ता इत्थीरयणेणं बत्तीसाए
 उडुकल्लणिया सहस्सेहि बत्तीसाए जणवयकल्लाणिया सहस्सेहि बत्तीसाए
 बत्तीसइ बद्धेहि णाडगसहस्सेहि सद्धिसंपरिवुडे अभिसेयमंडवं अणुपविसइ,

अणुपविसिता जेणेव अभिसेयपेढे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता अभि-
 सेयपेढं अणुपदाहिणी करेमाणे करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाण
 पडिरूवणं दूरूहइ दूरूहिता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ उवाग-
 च्छिता पुरत्थाभिमुहे साण्णसण्णेत्ति । तएण तस्स भरहस्स रण्णो वत्तीसं
 रायसहस्सा जेणेव अभिसेयमंडवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता अभि-
 सेयमंडवं अणुपविसंति अणुपविसिता अभिसेयपेढं अणुपयाहिणी करे-
 माणा अणुपयाहिणी करेमाणा उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवणं जेणेव
 भरहे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छिता कस्यलजाव अंजलिं कद्दु
 भरहं रायाणं जणेणं विजएणं वद्धावेत्ति वद्धावित्ता णच्चासण्णे नाइदूरे
 सुस्सुसामाणाजाव पज्जुवासंति । तएणं तस्सा भरहस्सा रण्णो सेणाव-
 इस्यणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ तेऽवि तहचेव णवरं दाहिणिल्लेणं
 तिसोवाणपडिरूवणं जाव पज्जुवासंति ॥ सू०३०॥

छाया-तत. खलु तस्य भरतस्य राज्ञोऽन्यदा कदाचित् राज्यधुर चिन्तयत. अयमेत-
 द्रूपो यावत् समुद्रपद्यत अमिजित खलु मया निजकबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमेण क्षुल्लहिमवद्वि-
 रिसागरमर्याद्या केवलकल्प भरत वर्षेम्, तच्छ्रेयःखलु मे आत्मान महता राज्याभिषेकेण अभि-
 षेकेण अभिषेचयितुमिति कृत्वा पवं सम्प्रेक्षते सम्प्रेक्ष्य कस्ये प्रादुर्भूताते यावत् ज्वलिते यत्रैव
 मज्जनगृहं यावत् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्कम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव सिंहासनं

उपागच्छति उपागत्य सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखः निषीदति निषद्य षोडशदे-
 वसद्वह्मन् द्वात्रिंशतं राजवरसद्वह्मन् सेनापतिरत्न यावत् पुरोहितरत्न त्रीणि षष्टानि
 सूपशतानि अष्टादश श्रेणि प्रश्नेणीः अन्यान् च बहून् राजेश्वर तलवर यावत् सार्थवाहप्रभृतीन्
 शब्दयति शब्दयित्वा पवमवादीत् अभिजित खलु देवानुप्रिया । मया निजकबलवीर्यं यावत्
 केवलकल्प भारत वर्षं तत् यूय खलु देवानुप्रिया । मम महाराज्याभिषेकं वितरत । ततः
 खलु षोडशदेवसद्वह्मन् यावत्प्रभृतयो भरतेन राज्ञा पवमुक्ताः सन्त दृष्टतुष्ट करतल याव
 म्मस्तके अञ्जलिं कृत्वा भरतस्य राज्ञमपतमर्थं सम्यग् विनयेन प्रतिश्रुण्वन्ति, ततः खलु स
 भरतो राजा यत्रैव पौषधशाला तत्रैव उपागच्छति उपागत्य यावत् अष्टमभक्त प्रतिजाप्रत्
 विहरति तत खलु स भरतो राजा अष्टमभक्ते परिणमति आभियोग्यान् देवान् शब्दयति
 शब्दयित्वा पवम् अवादीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः । विनीताया राजघान्त्या. उत्तरपौरस्त्ये
 दिग्माने एक महान्तम् अभिषेकमण्डपं विकुर्वत विकुर्वन् मम पनामाहृत्तिकां प्रत्यर्पयत ततः
 ते आभियोग्या. देवा भरतेन राज्ञा पवमुक्ता सन्त. दृष्टतुष्टा. यावत् एवं स्वामिन् !
 इति आम्नाया विनयेन वचनं प्रतिश्रुण्वन्ति प्रतिश्रुत्य विनीताया राजघान्त्या उत्तरपौरस्त्ये

द्विभागे अपक्रमन्ति अपक्रम्य वैक्रियसमुद्घातेन समवघ्नन्ति समवहृत्य संख्येयानि योजनानि दण्ड निस्तृजन्ति नद्यथा रत्नानां यावत् रिष्टानां यथा वादरान् पुष्टान् परिशातयन्ति परिशात्य यथा सूक्ष्मान् पुद्गलान् पर्यादते पर्यादाय द्वितीयमपि वैक्रियसमुद्घातेन यावत् समवघ्नन्ति समवहृत्य बहुसमरमणीयं भूमिभागं विकुर्वन्ति तद्यथानामक आल्लियपुष्कर इति वा, तस्य खलु बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु एक महान्तम् अभिषेकमण्डपं त्रिकुर्वन्ति, अनेकसन्मशतपन्नविष्टं यावद् गन्धवर्त्तिभूतं प्रेक्षागृहमण्डपवर्णक इति, तस्य खलु अभिषेकमण्डपस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महान्तमेकम् अभिषेकपीठं विकुर्वन्ति अञ्चलं लक्षणम्, तस्य खलु अभिषेकपीठस्य त्रिदिशं त्रीन् त्रिसोपानप्रतिरूपकान् विकुर्वन्ति तेषां खलु त्रिसोपानप्रतिरूपकानाम् अयमेतद्रूपो वर्णकव्या ३. प्रज्ञप्तः यावत् तोरणम् तस्य खलु अभिषेकपीठस्य बहुसमरमणीयो भूमिभागः प्रज्ञप्तः तस्य खलु बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु एकं सिंहासनं विकुर्वन्ति तस्य खलु सिंहासनस्य अयमेतद्रूपो वर्णकव्यास प्रज्ञप्तो यावदावर्णक समाप्तमिति । ततः खलु ते देवा अभिषेकमण्डपं विकुर्वन्ति विकुर्व्यं यत्रैव भरनोराजा यावत् प्रत्यर्पयन्ति । ततः खलु स भरनो राजा आभियोग्यानां देवानामन्तिके पतमर्गं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टयावत् पौषधशालात् प्रतिनिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा पवमवाश्रीत् क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः । अभिषेक्य हस्तिरत्नं प्रतिकल्पयत प्रतिकल्प्य ह्यगज यावत् सन्नाहयत, पनामाज्ञसिक्ता प्रत्यर्पयत यावत्प्रत्यर्पयन्ति । ततः खलु स भरतो राजा मञ्जनगृहम् अनुप्रविशति यावद् अञ्जनगिरिकूटसन्निभं गजपतिं नरपतिं दुरूढ । ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञ आभिषेक्यं हस्तिरत्नं दुरूढस्य सतः इमानि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि य पव गमो विनीता प्रविशतः स पव निष्क्रामतोऽपि यावत् अप्रतिबुध्यन् २ विनीता राजधानीं मध्यमधेन निर्गच्छति निर्गत्य यत्रैव विनीताया राजधान्या उत्तरेणोत्तरे द्विभागे अभिषेकमण्डपस्तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य अभिषेकमण्डपद्वारे आभिषेक्यं हस्तिरत्नं स्थापयति स्थापयित्वा अभिषेक्यात् हस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति पत्यवरुह्यं स्त्रीरत्नेन द्वात्रिंशता ऋतुकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद् बह्वैर्नाटकसहस्रैः साह्यं संपरिवृतोऽभिषेकमण्डपम् अनुप्रविशति अनुप्रविश्य यत्रैव अभिषेकपीठं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य अभिषेकपीठमनुप्रदक्षिणी कुर्वन् अनुप्रदक्षिणी कुर्वन् पौरस्त्येन त्रिसोपानप्रतिरूपकेन दूरोहति दुरूह्य यत्रैव सिंहासनं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य पौरस्त्याभिमुखं सन्निषण्ण इति । ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञो द्वात्रिंशद्वाज नह् स्त्राणि यत्रैव अभिषेकमण्डपः तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य अभिषेकमण्डपम् अनुप्रविशन्ति अनुप्रविश्य अभिषेकपीठम् अनुप्रदक्षिणी कुर्वन्तः अनुप्रदक्षिणी कुर्वन्तः उत्तरेण त्रिसोपानप्रतिरूपकेण यत्रैव भरतो राजा तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य करतल यावद् अञ्जलिं कृत्वा भरतं राजानं जयेन विजयेन वर्द्धयन्ति वर्द्धयित्वा भरतस्य राज्ञो नात्यासन्ने नातिदूरे शुश्रूषमाणाः यावत् पय्युर्पासते ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञो सेनापतिरत्नं यावत्सार्थवाहप्रभृतयस्तेऽपि तथैव नवर दक्षिणात्येन त्रिसोपानप्रतिरूपकेण यावत् पर्युपास्ते ॥सू० ३०॥

इष्टरूपेण स्वीकृत पुष्पित इव 'मनोगत' मनोगतः मनसि दृढ रूपेण निश्चयः 'संकल्पे' सङ्कल्पः इत्यमेव मया कर्त्तव्यमिति राज्यभारविषयको विचारः फलित इव समुत्पन्न ५, स च क.सङ्कल्प इत्याह—'अभिजिण् णं' इयादि । 'अभिजिण्ण मण् णिअगबलवीरियपुरिसक्कारपरक्रमेणं चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेराए केवलकल्पे भरहे वासे तं सेय खल्ल मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेएण अभिसिंचावित्तए त्तिकट्टु एव संपेहेइ' अभिजित खल्ल मया 'राज्ञा' चक्रवर्त्तिना भरतेन निजकबलवीर्यपुरुषकारपराक्रमेण निजकं-स्वकीय बलम्-शरीरशक्तिः वीर्यम्- आत्मशक्तिः पुरुषकारः- पौरुषम् पराक्रमः- परेषु शत्रुषु आक्रमणशक्तिः परपराजयशक्तिरित्यर्थः अत्र समाहारद्वन्द्वः तत् निजकवर्त्वीर्यपुरुषकारपराक्रमम् तेन कारणभूतेन अत्र समाहारद्वन्द्वाद् एकवचनं नपुंसकत्वञ्च बोध्यम् खुल्लहिमवद्गिरिसागरमर्यादया उत्तरस्यां दिशि खुल्लहिमवद्गिरि क्षुद्रहिमवत्पर्वतः अपरत्र च दिशात्रये सागराः त्रयः समुद्रास्तैः कृतायाः मर्यादा अवधिः तथा केवलकल्प सम्पूर्णं भारत वर्षम् अभिजित मिति पूर्वेण सम्बन्धः तच्छ्लेष खल्ल मे ममात्मानं महता राज्याभिषेकेण राज्याभिषेकरूपेण अभिषेकेन अभिषेचयितुम् अभिषेकं कारयितुम् इतिकृत्वा भारतं क्षेत्रं पदखण्डरूपमभिजितमिति एवं प्रकारेण सम्प्रेक्षते- राज्याभिषेकं विचारयति स भरतः ।

चक्रवर्ती ने किसी से कहा नहीं इसलिये मन में ही वर्तमान होने के कारण इसे मनोगत कहा गया है । जो भरतचक्री को सकल्प उत्पन्न हुआ वह इस प्रकार से हैं—(अभिजिण्णं मण् णियग बलवीरियपुरिसक्कारपरक्रमेणं चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेराए केवलकल्पे भरहे वासे तं सेय खल्ल मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेए ण अभिसिंचावित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ) मैंने अपने बल से— शारीरिक शक्ति से, और वीर्य से, आत्मबल से तथा पुरुषकार पराक्रम से— शत्रुओं को पराजित करने की शक्ति से— उत्तर दिशा में जिसकी मर्यादारूप क्षुद्रहिमवत्पर्वत पड़ा हुआ है और तीन दिशाओं में जिसकी तीन समुद्र पड़े हुए हैं ऐसे इस सम्पूर्ण भारत क्षेत्र को मैंने अपने बश में कर लिया है. इसलिये अब मुझे यही योग्य है कि मैं राज्य में अपना अभिषेक कराऊँ इस प्रकार का विचार कर फिर उसने ऐसा सोचा—(कल्लं पाठप्पभाए जाव जल्लते) कल्ल जव रजनी प्रभात प्राय हो जावेगी और सूर्य की प्रभा चारों ओर फैल

ज्येथी भनभाण विद्यमान होवाथी आने भनागत कडेवाभा आवेइ छे भरत थकीने जे स'कल्प उद्भव्यो ते आ प्रभाणे छे—(अभिजिण्णं मण् णियगबलवीरियपुरिसक्कारपरक्रमेणं चुल्लहिमवतगिरिसागरमेराए केवलकल्पे भरहे वासे तं सेय खल्ल मे अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसेएण अभिसिंचावित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ) में योताना भल्लथी शारीरिक शक्तिथी अने वीर्यथी आत्मबलथी तेभण पुरुषकार पराक्रमथी शत्रुओने पराजित करवानी शक्तिथी उत्तरदिशाभा जेनी मर्यादा इय क्षुद्रहिमवत् पर्वतो छे अने त्रय दिशाओभां समुद्र छे. जेवा आ स'पूर्णं भारत क्षेत्रने में योताना वशभां करी दीधुं छे ज्येथी छवे भारा भाटे जेण योग्य छे के हुँ राज्य पर भारे। अभिषेक करवडावु, आ प्रभाणे विचार करीने पछी तेणे आ प्रभाणे विचार करी (कल्लं पाठप्पभाए जाव जल्लते) कल्ल प्रभात

अथ विचारोत्तरकालिककार्यमाह - 'संपेहिता' इत्यादि

'संपेहिता' सम्प्रेक्ष्य विचार्य 'कल्ल पाउप्पभाअए जाव जल्लते' कल्पे आगामिनि प्रभाते प्रादुप्रभाते प्रभायुक्ते यावद् ज्वलिते सूर्ये प्रकाशिते सतीत्यर्थः 'जेणेव मज्जणघरे जाव पडिणिकल्लमइ' यत्रैव मज्जनगृहं स्नानगृहं यावत् प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति स भरतः, अत्र यावत्पदात् प्रविशति निमज्जति निमज्ज्य इति ग्राह्यम् 'पडिणिकल्लमित्ता' प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य, 'जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला सभामण्डपः यत्रैव सिंहासन तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ' सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखो निपीदति सिंहासने उपविशति स भरतः 'णिसोइत्ता' निषद्य-उपविश्य "सोलसदेवसहस्से" षोडशदेवसहस्राणि देवानित्यर्थः 'बत्तीस रायवरसहस्से' द्वात्रिंशत् राजवरसहस्राणि द्वात्रिंशत् सहस्राणि राजवरान् इत्यर्थः 'सेणावहरयणे जाव' सेनापतिरत्नं यावत् पुरोहितरत्नम् अत्र यावत्पदाद् गाथापतिरत्नं बद्धकिरत्न मितिग्राह्यम् 'तिण्णि सट्टे सुअसए' त्रीणि पट्टानि-पष्टयधिकानि स्रपशतानि अत्र

जावेगी, तब यह राज्याभिषेक का कार्य प्रारम्भ कराऊंगा (जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ जाव पडिणिकल्लमइ) दूसरे दिन जब प्रातः काल हो गया और सूर्य की प्रभा फैल गई तब वे भरत राजा जहा पर स्नान गृह था वहां पर गये वहा जाकर उन्होंने अच्छी तरह से स्नान किया और स्नान करके फिर वे स्नानशाला से बाहर आगये बाहर आकर के वे (जेणेवबाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ) जहां पर बाह्य उपस्थानशाला थी और जहा पर सिंहासन था वहा पर गये (उवागच्छिता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ) वहा जाकर वे पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठ गये (णिसोइत्ता सोलसदेवसहस्से बत्तीस रायवरसहस्से सेणावहरयणे जाव तिण्णिसट्टिसुअसए अट्टारससेणिप्पसेणिओ अण्णेय बहवे राईसर तल्लवर जाव सत्थवाहप्पमिइओ) बैठ कर उन्होंने १६ हजार देवो को ३२ हजार श्रेष्ठ राजाओ को सेनापति रत्न को, यावत् पुरोहित रत्न को गाथापति रत्न को तीनसौ ६० रसवतीकारको

थये अने सूर्यनी किरणो आयेर प्रसरी अथे त्यादे आ राज्याभिषेकनु कार्य प्रारंभ करावीस (जेणेव मज्जणघर तेणेव उवागच्छइ जाव पडिणिकल्लमइ) भील द्विपसे अथादे सवार थयु अने सूर्यनी प्रभा प्रसरी गर्ध त्यादे ते भरत राज अथा स्नान गृह छंठु' त्या गथा त्या अथने तेणे सारी रीते स्नान कथुं स्नान करीने पछी ते स्नान शालाभाथी अट्टार आये. अट्टार आवी ने (जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ) अथा बाह्य उपस्थान शालाहती अने अथा सिंहासन छंठु त्य गथा (उवागच्छिता सीहासण वरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ) त्या अथने ते पूर्व दिशा तरक्ष सुअ करीने ऐसी गथा (णिसोइत्ता सोलसदेवसहस्से बत्तीस रायवरसहस्से सेणावहरयणे जाव तिण्णि सट्टिसुअसए अट्टारस सेणिप्पसेणिओ अण्णेय बहवे राईसर तल्लवर जाव सत्थवाहप्पमिइओ) ऐसीने तेभणे १६ हजार देवाने, ३२ हजार श्रेष्ठ राजाओने, सेनापति, रत्नेने, यावत् पुरोहित

सुपशब्दस्य रूपकारशतानि त्रिपट्याधिकशतानि स्रपकारान्-रमवतीकारान् इत्यर्थः 'अट्टारस सेणिप्सैणीओ' अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणीः 'अण्णोय वड्वे राईसर तलवर जाव सत्थवाह-प्पभियओ' अन्यांश्च बहून् राजेश्वर तलवर यावत् सार्थवाहप्रभृतीन् शब्दयति आह्वयति अत्र यावत्पदात् माडम्बिककौटुम्बिकमन्त्रिमहामन्त्रि गणकदौवारिकामात्य चेटपीठमर्दनगरनिगमश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहदूतसन्धिपालपदानि ग्राह्यानि एतेषा व्याख्यानम् अस्मिन्नेव तृतीयवक्षस्तारे सप्तविंशतितमे सूत्रे द्रष्टव्यम् 'सदावित्ता' शब्दयित्वा आह्वय एवं वयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् किमुक्तवान् इत्याह-'अभिजिण्णं' इत्यादि 'अभिजिण्ण देवाणुप्पिया ! मए णिअगवलवीरअ जाव केवलकप्पे भरहे वासे त तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! मम महया रायाभिसेयं वियरह' अभिजितं खलु देवानुप्रिया ! मया निजकवलवीर्यं यावत्-निजकवलवीर्यपराक्रमेण क्षुद्रहिमवद्विरिसागरमर्यादया केवलकल्पम् सम्पूर्णं भारत वर्षम् तत्-तस्मात् यूयं खलु देवानुप्रियाः मम महाराज्याभिषेकं वितरत-कुरुत 'तएणं से सोलसदेवसहस्सा जाव प्पभिइओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ट करयल मत्थए अंजलि कट्टु भरहस्स रण्णो एयमहं सम्मं विणएणं

को, अठारह श्रेणिप्रश्रेणि जनो को दूसरे और भी अनेक राजेश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि को बुलाया यहां आगत यावत्पद से" कौटुम्बिक मंत्री, महामंत्री, गणक दौवारिक अमात्य चेट, पीठमर्द, नगर निगम श्रेष्ठिजन सेनापति, सार्थवाह दूत, सन्धिपाल" इन सबका ग्रहण हुआ है. (सदावित्ता एवं वयासी) बुलाकर भरत महाराजा ने उन से ऐसा कहा-(अभिजिण्ण देवाणुप्पिया ! मए णियगवलवीरिय जाव केवलकप्पे भरहे वासे) हे देवानुप्रियो ! मैंने अपने बलवार्थ एव पुरुषकार पराक्रम से इस सम्पूर्ण भरत खण्ड को अपने वश में कर लिया है (त तुब्भेण देवाणुप्पिया ! मम महया रायाभिसेयं वियरह) इसलिये हे देवानुप्रियो ! आप सब वडे ठाट जाट से मेरा राज्याभिषेक करो.(तएणं से सोलसदेवसहस्सा जाव प्पभिइओ भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ट तुट्ट करयलमत्थए अंजलि कट्टु भरहस्स रण्णो एयमहं सम्मं विणएणं पड्डियुणोत्) इस प्रकार श्री भरत महाराजा द्वारा

रत्नने, गथापति रत्नने ३६० रसवती डारकेने १८ श्रेष्ठि प्रश्रेष्ठि जनोने पील अनेक राजेश्वर तलवरो यावत् सार्थवाहो विगेरे ने जोलाव्या अही आवेला यावत् पड्थी "माडम्बिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेटपीठमर्द, नगरनिगम श्रेष्ठिजन, सेनापति, सार्थवाह, दूत, सन्धिपाल" ये सर्व पडोतु अडुथ थुथु छे (सदावित्ता एवं वयासी) जोलावीने भरत राजाये तेभने आ प्रभाये कहुं (अभिजिण्णं देवाणुप्पिया ! मए णियगवलवीरिय जाव केवलकप्पे भरहे वासे) हे देवानुप्रियो ! मे स्वगलवीर्यं तेभअ पुरुषकार परकभथी आ सम्पूर्णं भरत अ उने वशमा करी दीधो छे (त तुब्भेणं देवाणुप्पिया ! मम महया रायाभिसेय वियरह) ऐथी हे देवानुप्रियो ! तमे सर्वे भूमज डाठ-माठथी भासे राज्याभिषेक करे (तएणं से सोलसदेवसहस्सा जावप्पभिइओ भरहेणं रण्णाएवं वुत्ता समाणा हट्ट-तुट्ट करयल मत्थए अंजलि कट्टु भरहस्स रण्णो एयमहं सम्मं विणएणं

पडिसुणेंति' ततः खलु तदनन्तरं किल तानि षोडशदेवसहस्राणि यावत्प्रभृतयः यावत्पदा
 द्वात्रिंशत् राजवरसहस्राणि सेनापतिरत्नगाथापतिरत्न वर्द्धकिरत्न पुरोहितरत्नानि त्रीणिप-
 षुयधिकानि सूफकारशतानि अन्ये च बहवो राजेश्वर तलवर यावत् सार्थवाहप्रभृतय भर-
 तेन राज्ञा एवम् उक्तप्रकारेण उक्ताः आज्ञप्ता सन्तः 'हृदुतुदु' चि इहैकदेशभूतमपि इदं पदं
 पूर्णतया तदधिकारसूत्रार्थस्मारकम् तेन हृष्टतुष्टचित्तानन्दिता नन्दिता सुमनसः परमसौम-
 नस्यिताः हर्षवशविसर्पद् हृदया सन्त एवमेव अग्रेऽपि करतलपरिगृहीत दशनख शिरसावर्तं
 मस्तके अञ्जलिं कृत्वा भरतस्य राज्ञः एतम् अनन्तरोदितम् अर्थम् सम्यग् विनयेन
 विनयपूर्वकं प्रतिशृण्वान्त स्वीकुर्वन्ति अथ यथा जलात् लब्धाऽऽत्मलाभा कृषिर्जलेनैव
 वर्द्धते तथा तपसा प्राप्तं राज्यं तपसैव अभिनन्दतीति चेत्तसि चिन्तयन् भरतो यत्कृत-

कहे गये वे सोलह हजार देव बहुत ही अधिक हर्षित एव सत्पुष्ट चित्त हुए और
 उन्होने दोनों हाथों की अंजुलि करके एव उसे मस्तक पर धारणकरके भरत महाराजा-
 राजाका इस कथन को अच्छी तरह से विनय पूर्वक स्वीकार कर लिया। यहा यावत्पद
 से "इसी प्रकार से भरतमहाराजाद्वारा कहे गये ३२ हजार राजा जन, सेनापतिरत्न, गाथा
 पतिरत्न, वर्द्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, तीनसौ साठ सूफकारजन, तथा और भी दूसरे राजेश्वर तलवर
 यावत् सार्थवाह आदिजन-भी बहुत ही अधिक हर्षित, एवं सत्पुष्ट चित्त हुए और उन्होने
 भी दोनों हाथों की अंजुलिबना करके एव उसे मस्तक पर धारण करके भरत महाराजा के इस
 कथन को अच्छी तरह से विनय पूर्वक स्वीकार कर लिया" इस पाठ का सप्रह हुआ है "हृदु
 तुदु" इस कथित पद से ऐसा "हृष्ट तुष्टचित्तानन्दिता, सुमनसः परमसौमनस्यिता हर्षवशवि-
 सर्पद् हृदयाः" यह पाठ यहां लगा लेना चाहिये इसी प्रकार "करतलपरिगृहीत दशनख शिर-
 सावर्तं" इतना पाठ करतल के साथ और लगा लेना चाहिये, जिस प्रकार जल से प्राप्त आत्म
 लाभ वाली कृषि जल से ही वृद्धिगत होती है, उसी प्रकार तप से ही प्राप्त हुआ राज्य

पडिसुणेंति) आ प्रभाषे भरत महाराज वडे आज्ञप्त थयेदा ते सोल हंजर देवे अतीव
 अधिक हर्षित तेमज सत्पुष्ट चित्त थया अने तेमजे पोताना अन्ने हाथेनी अजलि बनावीने
 अने तेने मस्तके मूडीने भरत राजनी जे आज्ञानो सारीरीते अने विनयपूर्वक स्वीकार करी
 दीधी. अही यावत् पदथी आ प्रभाषे भरत राज द्वारा आज्ञप्त थयेदा उर हंजर राजजे
 सेनापति रत्नो गाथापतिरत्न, वर्द्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, उ६० सूफकारजने तेमज पीनपषु
 राजेश्वर तलवर यावत् सार्थवाह वगेरे दोडोपषु अतीव अधिक हर्षित तेमज सत्पुष्ट चित्त
 थया अने तेमजेपषु पोताना अन्ने हाथेनी अजलि बनावीने अने तेने मस्तके उपर
 धारण करीने भरत राजनी जे आज्ञाने सारीरीते सविनय स्वीकारी दीधी. "जे पाठने
 संशुद्ध थये छे "हृदुतुदु" जे कथित पदथी जेवे "हृष्ट तुष्ट चित्तानन्दिताः सुमनस परम-
 सौमनस्यिता हर्षवशविसर्पद् हृदया" आ पदसुधीनेपाठ अही लगाडवे जेधजे आप्रभाषे
 "करतलपरिगृहीत दशनख शिरसावर्तं" आटवे पाठ 'करतल' साथे लगाडवे जेधजे
 जेभ पाषीथी प्राप्त आत्मलाभवाणी जेतीनी उपर पाषीथी म वर्द्धित थाय छे तेमज

વાન તદાહ'ત્તણં સે' इत्यादि 'तणं से भरहे राया जेणेव पोसहसाला तेणेव उवा-
गच्छइ' तदनन्तरं खलु स भरतो राजा यत्रैव पोपधशाला तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता'
उपागत्य 'जाव अट्टमभत्तिए पडिजागरमाणे विहरइ' यावत् अट्टमभक्तिकः सन् अट्टम-
भक्तं प्रतिजाग्रत् विहरति तिष्ठति अत्र यावन्पदात् त्यक्तालङ्कारशरीरः त्यक्तस्नानः
विस्तारितदर्भासनोपविष्टः ब्रह्मचारी इति ग्राह्यम् 'तणं से भरहे राया अट्टमभत्तंसि
परिणममाणंसि आभिओगिए देवे सदावेइ सदावित्ता एव वयासी' ततः खलु स भरतो
राजा अट्टप्रभक्ते परिणमति परिपूर्णे जायमाने सति आभियोग्यान् आज्ञाकारिणः देवान्
शब्दयति आह्वयति शब्दयित्वा आह्वय एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान्
कुमुक्तवान् इत्याह- 'खिप्पामेव' इत्यादि 'खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! विणीयाए
रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एग महं अभिसेयमंडव विउव्वेह विउव्वित्ता मम
एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह' क्षिप्रमेव शीघ्रमेव भो देवानुप्रियाः ! विनीतायाः

તપ સે હી વૃદ્ધિગત હોતા હૈ इस प्रकार चित्त में सम्यक विचार करते हुए भरतमहाराजा ने जो कि-
या उसे अब सूत्रकार प्रकट करते हुए कहते हैं— (तणं से भरहे राया जेणेव पोसहसाला
तेणेव उवागच्छइ) इसके बाद भरतमहाराजा जहां पर पौषध शाला थी वहां पर आये— (उवाग-
च्छिता जाव अट्टमभत्तिए पडिजागरमाणे विहरइ) वहा आकरके अष्टमभक्तिक- बन गये और
सावधानी से गृहीत व्रत को आराधना करने लगे यहां यावत् शब्द से (त्यक्तालङ्कारशरीरः,
त्यक्तस्नानः विस्तारितदर्भासनोपविष्टः ब्रह्मचारी) इस पाठ का ग्रहण हुवा है । (तणं से
भरहे राया अट्टमभक्तं परिणममाणंसि आभिओगिए देवे सदावेइ) इसके बाद भरतमहाराजा ने
अट्टम भक्त की तपस्या समाप्त होनेपर आभियोगिक देवों को बुलाया. (सदावित्ता एवं वयासी)
और बुलाकर उनसे ऐसा कहा—(खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! विणीयाए रायहाणीए उत्तर
पुरत्थिमे दिसीभाए एग महं अभिसेयमंडव विउव्वेह) हे देवानुप्रियो ! तुमलोग बहुत शीघ्र विनीता
राजधानी के ईशान कोन में एक विशाल अभिवेक मण्डप निर्मित करो (विउव्वित्ता मम एय-

તપથી પ્રાપ્ત રાજ્ય તપથીજ વૃદ્ધિગત હોય છે. આ પ્રમાણે ચિત્તમાં વિચાર કરતા શ્રી ભરત
મહા રાજાએ ભેદ કર્યું તે. વિષદેવે સૂત્રકાર સ્પષ્ટતા કરતા કહે છે—(તણં સે ભરહે
રાયા જેણેવ પોસહસાલા તેણેવ ઉવાગચ્છઇ) ત્યાર બાદ ભરત મહારાજા જ્યાં પૌષધ-
શાળા હતી ત્યાં ગયા (ઉવાગચ્છિતા જાવ અટ્ટમભત્તિએ પડિજાગરમાણે વિહરइ) ત્યાં
આવીને તે અટ્ટમ ભક્તિકથઈ ગયા અને સાવધાની પૂર્વક ગૃહીત વ્રતની આરાધના કરવા
લાગ્યા અર્કી યાવત શબ્દથી (ત્યક્ત્તલ્કારશરીર ત્યક્તસ્નાન, વિસ્તારિતદર્ભાસનો પવિષ્ટઃ
બ્રહ્મચારી) “આ પાઠપ્રહ્લુ થયુ છે (તણં સે ભરહે રાયા અટ્ટમભત્તસિ પરિણમમાણસિ
આભિઓગિએ દેવે સદાવેइ) ત્યાર બાદ ભરત મહારાજાએ જ્યારે અષ્ટમભક્તની તપસ્યા પૂરી થઈ
ત્યારે આભિઓગિદેવો ને બોલાવ્યા (સદાવિત્તા એવ વયાસી) અને બોલાવી ને તે દેવાને
આ પ્રમ.ણે કહ્યું (ખિપ્પામેવ મો દેવાણુપ્પિયા ! વિણીયાએ રાયહાણીએ ઉત્તરપુરત્થિમે વિસી
માએ પગ મહ અભિસેયમઠવં વિઉવ્વેહ) હે દેવાણુપ્રિયો ! તમે અતીવ શીઘ્ર વિનીતા રાજ-
ધાની નાઈશાન કેણુમા એક વિશાલ અભિવેક મંડપ નિર્મિત કરો (વિઉવ્વિત્તા મમ એ

राजधान्याः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे ईशानकोणे तस्यात्यन्त प्रशस्तत्वात् एक महान्त महत्वपूर्णम् अभिषेकमण्डपम् अभिषेकाय गज्यभिषेकाय मण्डपो ऽभिषेक मण्डपस्तम् यद्वा राज्याभिषेकयोग्यमण्डपं विकुर्वत रचयत विकुर्व्य रचयित्वा ममताम् आज्ञप्तिका प्रत्यर्पयत समर्पयत 'तएणं ते आभिओगा देवा भरहेण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्टा जाव एवं सामित्ति आणाए विणएणं वयण पडिसुणेंति' ततः खलु ते आभियो- ग्याः देवा भरतेन राज्ञा एवम् उक्तकारेण उक्ताः आदिष्टाः सन्तः हष्टतुष्टचित्तान- न्दिता सुमनसः परमसौमनस्यिताः हर्षवग्विसर्पद् हृदयाः एव स्वामिन ! यथैव ग्यमा- दिशत आज्ञायाः स्वामिनामनुसारेण कूर्म इत्येव रूपेण त्रिनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति अङ्गी- कुर्वन्ति, 'पडिसुणित्ता' प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य 'विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति' ते देवाः विनीताया राजधान्याः उत्तरपौरस्त्य दिग्भागम् ईशानकोणम् अपक्रामन्ति गच्छन्ति 'अवक्कमित्ता' अपक्रम्य गत्वा 'वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति' वैक्रियसमुद्घातेन ईशानकोण वैक्रियकरणार्थक प्रयत्नविशेषेण समवध्नन्ति आत्मप्रदेशान् दूरतो विक्षिपन्ति तत् स्वरूपमेव व्यनक्ति 'समोहणित्ता संखिज्जाइ' इत्यादि 'समोहणि- चा' समवहत्य आत्मप्रदेशान् दूरतो विक्षिप्य 'संखिज्जाइ जोयणाइ दंडं णिसिरंति' संख्येयानि योजनानि दण्डं दण्ड इव दण्डः ऊर्ध्वार्ध आयतः शरीरवाहल्यो जीवप्रदे-

माणत्तियं पच्चप्पिणह) और निर्मित करके मेरी इस आज्ञा को पीछे मुझे वापिस करो अर्थात् मड- पनिर्मित हो जाने की खबर मेजो । (तएणं ते आभिओगा देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ट तुट्टा जाव एव सामित्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति) इस प्रकार से भरतमहाराजा द्वारा कहे गये वे आभियोगिक देव हट्ट तुष्ट आदि विशेषणों से विशिष्ट हुए और कहने लगे—हे स्वा- भिन् ! जैसा आपने आदेश दिया है उसीके अनुसार हम सब कार्य करेंगे इस प्रकार कह- कर उन्होंने विनयपूर्वक भरत महाराजा की आज्ञा को स्वीकार कर लिया (पडिसुणित्ता विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति) भरत महाराजा की आज्ञा को स्वीकार करके वे विनीता राजधानी के ईशान कोने में चले गये (अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति) वहा जाकरके उन्होंने वैक्रियसमुद्घातद्वारा अपने आत्मप्रदेशों को बाहर निकाला—(समोहणित्ता संखि-

माणत्तियं पच्चप्पिणह) अने निर्मित करीने पछी जे आज्ञापूरी थयानी अने अणर आयो. (तएण ते आभिओगा देवा भरहेण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ट-तुट्टजाव एवं सामि- त्ति आणाए विणएण वयण पडिसुणेंति) आ प्रभाषे भरत महाराज पडे आज्ञस थयेदा ते आभियोगिक देवे हट्ट तुष्ट विजेरे विशेषणैथी विशिष्ट थया अने कडेवा लाग्या हे स्वाभिन् जे प्रभाषे आपत्रीजे अमने आज्ञा करी छे ते सुजण अमे तभाम कथं संपूषुं करीशुं आ प्रभाषे कडेने तेभषे सविनय श्रीभरतशब्दनी आज्ञाने शिरोधार्य करी (पडिसुणित्ता विणीयाए रायहाणीए उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति) भरत शब्दनी आज्ञा शिरोधार्य करीने तेजो अधा विनीता राजधानी ना ईशान केअभा जता रक्षा (अवक्कमित्ता वेउ- व्वियसमुग्घाएणं समोहणति) त्या जेअने तेभषे वैक्रिय समुद्घातद्वारा पोताना आत्म

शस्तं निःसृजन्ति-शरीराद्बहिर्निष्काशयन्ति निःसृज्य च तथाविधान् पुद्गलान् आददते इति एतदेव दर्शयति 'तं जहा रयणाण' इत्यादि 'तं जहा रयणाण जाव रिट्ठाण अहा वायरे पुग्गळे परिसाडेंति' तथा रत्नानां कर्केतनादीनां यावद् रिट्ठानां रत्नविशेषाणां सम्बन्धिनो यथाबादरान् असारान् पुद्गलान् परिशातयन्ति त्यजन्ति अत्र यावन्पदात् 'वइराणं वेरुलियाणं लोहि अक्खाणं मसारगल्लाणं हंसगम्भाणं पुलयाणं सोगंधियाणं जोईरसाणं अंजणाणं अंजणपुलयाणं जायरूवाणं अकाणं फलिहाणं' इति सङ्ग्रहः वज्राणां हीरकाणां वैदूर्याणां लोहिताक्षाणां मसारगल्लानां हंसगम्भाणां पुलकानां सौगन्धिकानां ज्योतिरसानाम् अञ्जनानाम् अञ्जनपुलकानाम् जातरूपाणाम् सुवर्णरूपाणाम् अङ्कानाम् स्फटिकानाम् एतेषां तत्तद् रत्नविशेषाणां सङ्ग्रहः 'परिसाडित्ता' परिशातय असारान् पुद्गलान् परित्यज्य 'अहासुद्दुमे पुग्गळे परिआदिअंति' यथा सूक्ष्मान् सारान् पुद्गलान् पर्याददते गृह्णन्ति 'परिआदि-इत्ता' पर्यादाय-सूक्ष्मान् पुद्गलान् गृहीत्वा 'दुच्चपि वेउन्वियसमुग्घाएणं जाव समोहणंति' 'चिकीर्षिताभिषेक मण्डपनिर्माणार्थम् द्वितीयमपि वार वैक्रियसमुद्घातेन यावत् समव-घ्नन्ति आत्मप्रदेशान् दूरतो विक्षिपन्ति 'समोहणित्ता' समवहत्य विक्रिय्य 'बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउच्चति' बहुसमरमणीयं भूमिभागं विकुर्वन्ति 'से जहानामए आळिगपुक्ख-

ज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसिरंति,) उन्हें बाहर निकाल कर सत्यातयोजनेो तक उन्हें दण्डके आ-कार में परिणमाया (तं जहा-रयणाण जावरिट्ठाण अहावायरे पुग्गळे परिसाडेंति) और इनके द्वारा उन्हेने रत्नों के यावत् रिष्टों के रत्न विशेषों के-सम्बन्धो जो असार बादर पुद्गल ये उन्हे' छोड़ दिया-यहा यावत्पद से "वइराणं, वेरुलियाणं, लोहिअक्खाणं, मसारगल्लाणं, हंसगम्भाणं, पुलयाणं, सोगंधियाणं, जोईरसाणं, अंजणाणं, अजणपुलयाण, जायरूवाणं, अकाण, फलिहाणं" इस पाठका संग्रह हुआ है (पडिसाडित्ता अहासुद्दुमे पुग्गळे परिआदिअंति) उन्हे छोड़कर उन्हेने यथासूक्ष्मसार पुद्गलको प्रहण कर लिया (परिसाडित्ता दुच्चपि वेउन्वियसमुग्घाएण जाव समोहणंति) सारपुद्गलों को प्रहण करके उन्हेने चिकीर्षित मण्डप के निर्माण के निमित्त द्वितीय वार भी वैक्रियसमुद्घात किया (समोहणित्ता बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउच्चति,) द्वितीयवार

प्रदेशोने अहार डाढया (समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं णिसिरंति) ते प्रदेशोने अहार डाढीने तेमने स'भ्यातये'नेो सुधी द डाकारमां परिशुत क्थी (तं जहा रयणाण जाव रिट्ठाणं अहा वायरे पुग्गळे परिसाडित्ति) अने तेमना वडे तेमणे रत्नो यावत् रिष्टो-रत्नविशेषोथी सम्भद्ध ने असार आहर पुद्गलौ हुता तेमने छोडया अडी यावत् पढथी 'वइराण, वेरुलियाण, लोहिअक्खाण, मसारगल्लाणं हंसगम्भाणं जोईरसाण अंजणाण, अजणपुलयाण, जायरूवाण, अकाण, फलिहाणं" ये पाठनेो संग्रह थये छे (पडिसाडित्ता अहासुद्दुमे पुग्गळे परिआदिअंति) तेमने छोडीने तेमणे यथा सूक्ष्मसार पुद्गलौने अद्रष्टु करी दीधा. (परिआदिअत्ता दुच्चपि वेउन्वियसमुग्घाए ण जाव समोहणंति) सार पुद्गलौने अद्रष्टु करीने तेमणे चिकीर्षित म'डपनानिर्माण भाटे थील वअतपणु वैक्रिय समुद्घात क्थी (समोह-णित्ता बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं विउच्चति) थील वअत समुद्घात करीने तेमणे अद्रष्टु-

रेखा' तद्यथानामः आलिङ्ग्यपुष्कर इति वा, आलिङ्गितुं योग्यः कमलबीजकोशः कमलमध्यभाग इत्यर्थः ननु रत्नादीनां पुद्गला औदारिकास्ते वैक्रियसमुद्घाते कथं ग्रहणयोग्याः ? इति चेत् उच्यते औदारिका अपि ते पुद्गला गृहीताः सन्तो वैक्रिय-तया परिणमन्ते, पुद्गलानां तत्तत्सामग्रीवशात् तथा तथापरिणमनात् अतो न कश्चिदो-प्लेशोऽपीति, पूर्ववैक्रियसमुद्घातस्य जीवप्रयत्नरूपत्वेन क्रम क्रम मन्दमन्दतरभा-वापन्नत्वेन क्षीणशक्तिकत्वात् इष्टकार्यसिद्धेः । अथ समभूमिभागे आभियोग्यास्ते देवाः यत्कृतवन्तः तदाह—'तस्मिन् बहुसमरमणिञ्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्जदेसभाए एत्थ णं महं एगं अभिसेयमण्डवं विउव्वंति' तस्य खलु बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महान्तम् एकमभिषेकमण्डपं विकुर्वन्ति निर्मान्ति मण्डपस्य विशेषमाह 'अणेगखंभसयसण्णिविद्ध जाव गंधवट्ठिभूयं पेच्छाघरमंडववण्णगोत्ति' अनेक-

समुद्घात करके उन्होंने बहुसमरमणीय भूमिभाग की विकुर्वणा की— (से जहानामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा) वह बहुसमरमणाय भूमिभाग आलिङ्ग पुष्कर के जैसा प्रतीत होता था—कमलबीज का नाम आलिङ्गपुष्कर है. शंका—रत्नादिकों के पुद्गल औदारिक होते हैं वे वैक्रियसमुद्घात द्वारा ग्रहण योग्य कैसे हो सकते हैं ? तो इन आशंका का उत्तर ऐसा है कि औदारिक भी वे पुद्गल गृहीत होते हुए वैक्रियरूप से परिणम जाते हैं, क्योंकि तत्तत्सामग्री के वश से पुद्गलों का उस उस स्वभावरूप से परिणमन हो जाता है. इसलिए यहाँ कोई भी दोष समवित नहीं होता है पूर्व वैक्रियसमुद्घात जीवका एक प्रकार का प्रयत्न विशेषरूप था. इसलिए उसमें क्रम क्रम से मन्द मन्दतर रूपता आने के कारण वह क्षीण शक्तिवाला हो जाता है इसलिये इससे इष्ट कार्य सिद्ध नहीं होता है (तस्मिन् बहुसमरमणिञ्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्जदेसभाए एत्थ णं एगं महं अभिसेयमण्डवं विउव्वंति) उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के ठीक मध्यभाग में एक विशाल अभिषेक मंडप की उन्होंने विकुर्वणा की— वैक्रियशक्ति द्वारा एक विशाल अभिषेक मंडप बनाया

भरभणीय भूमिभागनी (विकुर्वणा करी (से जहानामए आलिङ्गपुक्खरेइ वा) ते बहुसम-रभणीय भूमिभाग आलिङ्ग पुष्कर जेवा प्रतीत थतो इतो. कमल बीज कु नाम आ लि ङ पुष्कर छे. शंका—रत्नादिकोंना पुद्गलौ औदारिक होय छे. ते वैक्रिय 'समुद्घात द्वारा आद्य ईवीरीते यथशक्ते छे' तो आ आशंका नो जवान आ प्रभाषे छेके ते पुद्गलौ औदारिक छे छतांछे गृहीत यथ ने वैक्रियरूपमा परिणमन यथ नय छे केमके तत् तत् सामग्रीना वशथी पुद्गलौतु' तत् तत् स्वभाव रूपथी परिणमन यथ नय छे अटलाभाटे अही कोषपिषु नतना होपनी सभावना छपन्न थती नथी 'पूर्व' वैक्रिय समुद्घात एवमु' अेक प्रकारतुं अयत्न विशेष रूपतुं अेथी तेमां कभशः मन्दमन्दतर रूपता आवव.थी ते क्षीण शक्तियुंकेत यथ नय छे अेथी अेनाथी छिष्टकार्य' सिद्ध थतु नथी (तस्मिन् बहुसमरमणिञ्जस्स भूमि-भागस्स बहुमज्जदेसभाए एत्थ णं एगं महं अभिसेयमण्डवं विउव्वंति) ते बहुसमरभणीय भूमिभागना ठीक मध्यभागमा अेक विशाल अभिषेक मंडपनी तेमछे विकुर्वणा करी अेट्ठेके वैक्रिय शक्ति वडे तेमछे अेक विशाल अभिषेक मंडपतुं निर्माय कथुं (अणेगखंभस णि-

स्तम्भशतसन्निविष्टम् अनेकानि स्तम्भशतानि अनेकशतानि स्तम्भाः सन्ति यत्र स तथाभूतस्तम्, यावद् गन्धवर्त्तिभूतम् गन्धवर्त्तियुक्तम् अत्र यावत्पदात् राजप्रश्नीयोपाङ्गत सूर्याभदेवयानविमानवर्णको ग्राह्यः स च कियत्पर्यन्तमित्याह—यावद्गन्धवर्त्तिभूतमिति विशेषणम् अतएव सूत्रकार एव साक्षादाह—‘पेच्छाघरमंडववण्णगोत्ति’ प्रेक्षागृहमंडप वर्णको ग्राह्य इति ‘तस्स णं अभिसेयमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगं अभिसेयपेढं विउव्वति अच्छं सण्हं’ तस्य खलु अभिषेकमण्डपस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महान्तम् एकमभिषेकपीठं विकुर्वन्ति अच्छम् अत्तरजस्कत्तात् श्लक्ष्णं निर्मलमित्यर्थः सूक्ष्मपुग्दलनिर्मितत्वात् ‘तस्स णं अभिसेयपेढस्स तिदिसिं तओ तिसोवाण- पडिरूवए विउव्वति’ तस्य खलु अभिषेकपीठस्य त्रिदिशि त्रीन् तिसोपानप्रतिरूपकान् विकुर्वन्ति ‘तेसिं णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव तोरणा’ तेषां खलु तिसोपानप्रतिरूपकाणाम् अयमेतद्रूपं वापी तिसोपानप्रतिवर्णनादि प्र- तिपादयन्नाह—‘तस्स णं’ इत्यादि ‘तस्स णं अभिसेयपेढस्स बहुसमरमणिज्जे भूमिभाए पण्णत्ते’ तस्य खलु अभिषेकपीठस्य बहुसमरमणियो भूमिभागः प्रज्ञतः ‘तस्स णं

(अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव गंधवट्टिभूयं पेच्छाघरमंडववण्णगोत्ति) यह मंडप से कड़े संभों से युक्त थां. यावत् सुगन्धित धूपवर्तियों से यह महक रहा था. यावत् पद से यहाँ राजप्रश्नीय उपाङ्ग में वर्णित सूर्याभदेवकी विमान वक्तव्यता यावत् गंधवर्ती भूत इस विशेषण तक गृहीत हुई है. इसी बात को सूत्रकार ने “प्रेक्षागृहमंडपवर्णक” इस पद द्वारा साक्षात् कहा है. (तस्स णं अभिसेय-मंडवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण महं एगं अभिसेयपेढं विउव्वति) उस अभिषेक मंडप के ठीक मध्यभाग में एक विशाल अभिषेक पीठ जो (अच्छं सण्हं) अच्छा धूलि बिहीन था और सूक्ष्म पुद्गलों से निर्मित होने के कारण श्लक्ष्ण था. (तस्स णं अभिसेयपेढस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपरि-रूवए विउव्वति) उस अभिषेक पीठ की तीन दिशाओं में उन्हेने तीन तिसोपान प्रतिरूपक विकुर्वन्ति (तेसिं णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव तोरणा) उन तिसो-पान प्रतिरूपकों का इस प्रकार से वर्णन तोरणो तक किया गया है “तस्स णं बहुसमरमणिज्ज-

विट्ठं जाव गंधवट्टिभूयं पेच्छाघरमंडव वण्णगोत्ति) ओ मंडप के ऊपर था। वही धूलि से युक्त होता था। यावत् सुगन्धित धूपवर्तियों से यह महक रहा होता. यावत् पद से यहाँ राज-प्रश्नीय उपाङ्ग में वर्णित सूर्याभदेवकी विमान वक्तव्यता यावत् गंधवर्ती भूत ओ विशेषण सुधी गृहीत थो ओ वातने सूत्रकारे— “प्रेक्षागृहमंडपवर्णक” ओ पद से साक्षात् रूप-भ करी ओ. (तस्स णं अभिसेयमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थणं महं एगं अभिसेयपेढं विउव्वति) ओ अभिषेक मंडपना ओके मध्यभागमा ओके विशाल अभिषेकपीठनी तेमणे विकुर्वन्ति करी ओ अभिषेक पीठ (अच्छं सण्हं) अच्छा-धूलि बिहीन होतु ओ सूक्ष्म पुद्गलों से निर्मित होवा ओके श्लक्ष्ण होतु (तस्स णं अभिसेयपेढस्स तओ तिसोवाणपरिरूवए विउव्वति) ते अभिषेक पीठनी त्रेषु दिशाओमा तेमणे त्रेषु तिसोपान प्रतिरूपकों विकुर्वन्ति करी (तेसिं णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव तोरणा) ते तिसो-

बहुसमरमणिज्जस्त भूमिभागस्त बहुमज्जदेसभाए एत्थ णं महं एग सीहामणं विउव्वं-
ति' तस्य खलु बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य बहुमध्यदेशभागे अत्र खलु महत् एकं
सिंहासनं विकुर्वन्ति 'तस्स णं सीहाणस्म अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव दाम-
वण्णगं सम्मत्तनि' तस्य खलु सिंहासनस्य अयमेतदूपो वर्णव्यामः प्रज्ञप्नः कथितः सच
विजयदेवसिंहासनस्यैव ज्ञातव्यः यावद्दामवर्णकम् यावद्दाम्नां वर्णकी यत्र तत्तथाभूतम्
समस्तम् सम्पूर्णं सूत्रं वाच्यमिति शेषः । 'तएणं ते देवा अभिसेयमंडवं विउव्वंति'
ततः खलु ते देवाः उक्तविशेषणविशिष्टम् अभिषेकमण्डपं विकुर्वन्ति 'विउव्वित्ता'
विकुर्व्यं निर्माय 'जेणेव भरहे राया जाव पच्चप्पिणत्ति' यत्रैव भरतो राजा यावत्प्रयर्पय-
न्ति—यावत्पदात् यत्रैव भरतो राजा तत्रैव ते देवा उपागच्छन्ति उपागत्य उक्ताम् आज्ञ-
प्तिकां भरताय राज्ञे समर्पयन्तोत्यर्थः ।

'तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं अतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ-
तुट्ठ जाव पोसहसाळाओ पडिणिक्खमइ' तत खलु स भरतो महाराजा आभियोग्यानामाज्ञा-
कारिणां देवानाम् अन्तिके एतम् उक्तप्रकारकम् अर्थं विषयं श्रुत्वा निश्चय्य सम्यक्प्रकारेण

स्त भूमिभागस्त बहुमज्जदेसभाए एत्थणं एग मह सीहासण विउव्वति, तस्स णं सीहासणस्स-
अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव दामवण्णगं सम्मत्तनि" विजयदेव के सिंहासन का जैसा वर्णन
किया गया है वर्णन वही सब दामवर्णन तक का यहां पर भी ग्रहण करलेना चाहिये "तएणं
ते देवा अभिसेयमंडव विउव्वति" इस तरह का जब अभिषेक मंडप विकुर्वित हो चुका—
तत्र (विउव्वित्ता जेणेव भरहे राया जाव पच्चप्पिणत्ति") उन देवों ने मंडप की पूर्णरूप से
विकुर्वणा हो जाने की स्वर महाराजा भरत के पास भेज दी यहां यावत्पद से "जेणेव ते देवा
उपागच्छति, उपागच्छित्ता अणत्तिय" इस पाठ का ग्रहण हुआ है ।

(तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं अतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ
जाव पोसहसाळाओ पडिणिक्खमइ) श्री भरत महाराजा ने आभियोग्य देवों से जब यह
सब समाचारज्ञात किये तो वह छलंडोंके अधिपति श्री भरत महाराजा बहुत ही हर्षित एवं

पान प्रतिशुद्धं आ प्रभाषे वर्षान्तरात् सुधी कर्वाभा आवेक्ष्ये "तस्स णं बहुसम-
रमणिज्जस्त भूमिभागस्त बहुमज्जदेसभाए एत्थणं एगं महसीहासण विउव्वंति तस्सणं
सीहासणस्स अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते जाव दामवण्णगं सम्मत्तनि" (विजयदेवना शि-
ंहासनं ने प्रभाषे वर्षान्तरात् आवेक्ष्ये तेभ्यः 'हाम्' सुधीनु वर्षान्तरात् अर्थात् पशु-
अर्थात् 'तएणं ते देवा अभिसेयमंडव विउव्वंति' आ प्रभाषे ज्यारे अ-
भिषेक मंडप विकुर्वित्थं सूचयेत्यारे (विउव्वित्ता जेणेव भरहे राया जाव पच्चप्पि-
णत्ति) ते मंडपानी पूर्णरूपेण तैयार यथैवानी सूचना ते देवोऽपि राम पासे पढीयाडी
अर्थात् यावत् पद्ये "जेणेव ते देवा उपागच्छति उपागच्छित्ता" अथ पठ्यथ्येथ्ये

(तए णं से भरहे राया आभिओगाणं देवाणं अतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ
जाव पोसहसाळाओ पडिणिक्खमइ) श्री भरत महाराजाऽपि ज्यारे आक्षिप्योक्ति देवे। पासेथी-

ज्ञात्वा हृदि अवधार्य हृष्टतुष्ट यावत् पौषधशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति अत्र यावत्पदात् हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद् हृदय इति ग्राह्यम् 'पडिणिक्लमिक्ता' पौषधशालात प्रतिनिष्क्रम्य वहि निर्गत्य 'कोडुंबियपुरिसे सदावेइ सदावित्ता एव वयासी' कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति आह्वयति शब्दयित्वा आहूय एवं वक्ष्यमाण प्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया' आभिसेक्क हत्थिरयणं पडिकप्पेह' क्षिप्रमेव शीघ्रातिशीघ्रमेव भो देवानुप्रियाः! आभिषेक्यम् अभिषेकयोग्यं हस्तिरत्न प्रधानपट्टहस्तिनमित्यर्थः प्रतिकल्प्य सज्जीकृत्य, 'हयगय जाव सण्णाहेह' हय गज यावत् सन्नाहयत अत्र यावत्पदात् हयगजरथप्रवरयोधकलितां चतुरङ्गिणीं चत्वारि हयादीनि अङ्गानि यस्याः सा तथाभूता तां सेनां सन्नाहयत सज्जीकुरुत 'सण्णाहेत्ता' सन्नाहयित्वा सज्जीकृत्य 'एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह जाव पच्चप्पिणंति' एताम् उक्तप्रकाराम् आङ्गप्तिका प्रत्यर्पयत समर्पयत यावत्प्रत्यर्पयन्ति । कार्यं सम्पाद्य कथयन्तीत्यर्थः अत्र यावत्पदात् ते देवानुप्रियाः राज्ञ आज्ञानुसारेण हयादि सज्जीकरण-

सतुष्ट चित्त हुआ और पौषधशाला से बाहर आया यहा यावत्पद "हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमनाः परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद् हृदय." यह पूरा पाठ यहा पर लिया गया है । (पडिणिक्लमिक्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेइ) पौषधशाला से बाहर आकर उसने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया (सदावित्ता एव वयासी) बुलाकर उनसे भरत महाराजा ने ऐसा कहा— (खिप्पामेव भो देवाणुप्पियाआभिसेक्क हत्थिरयणं पडिकप्पेह) हे देवानुप्रियो तुम लोग जितनी जल्दी हो सके उतनीजल्दी अपने आभिषेक्य हस्तिरत्न को सज्जित करो (पडिकप्पित्ता हय गय जाव सण्णाहेह) सज्जितकरके हयगज एवं प्रवर योषाओं से क्लित-चतुरंगिणी सेना को भी सज्जित करो (सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) सज्जित करके फिर मुझे खबर दो यहा यावत्पद से—ऐसाप्रकरण समझ लेना चाहिये—कि उन कौटुम्बिक पुरुषो ने महाराजा भरत के कहे अनुसार आभिषेक्य हस्तिरत्न को एव चतुरंगिणी सेना को सज्जित कर दिया और

ये सभाकार सांख्यिया तो ते अतीव डरित तेमञ्च संतुष्ट चित्तवाणो थये। अने पौषध-शाणाभा थी अडार आये। अही यावत् प= थी "हृष्टतुष्टचित्तानन्दितः प्रीतिमना परमसौमनस्यितः हर्षवशविसर्पद् हृदयः" ये पूरा पाठ सगृहीत थये छे. (पडिणिक्लमिक्ता कोडुंबियपुरिसे सदावेइ) पौषधशाणाभाथी अडार आवीने तेबु कौटुम्बिक पुरुषोने बोला ०या (सदावित्ता एव वयासी) बोलावीने ते पुरुषोने तेबु आ प्रभाषे कछु—(खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्क हत्थिरयणं पडिकप्पेह) हे देवानुप्रियो ! तमे शीघ्रातिशीघ्र आभिषेक्य हस्तिरत्न ने सुसज्जित करो. (पडिकप्पित्ता हय गय जाव सण्णाहेह) सज्जित करीने हय-गज तेमञ्च प्रवर ये। आओथी क्लित चतुरंगिणी सेनाने पछु सज्जित करी (सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह) सज्जित करीने पछी मने अणर आपे। अही यावत् प=थी आमानु प्रकरषु समञ्च देवुं लेउं अके ते कौटुम्बिक पुरुषोअे राजा भरताना आदेश सुञ्ज आभिषेक्य हस्तिरत्न तेमञ्च चतुरंगिणी सेनाने सुसज्जित करी

रूप कार्यं सम्पादितं कृत्वा उक्ताम् आर्हाप्तिकां राज्ञे समर्पयन्तीत्यर्थः 'तए णं से भग्हे राया मज्जनघरं अणुपविसइ जाव अंजणगिरिकूडसण्णिम गयवइं णरवइ दुरूढे' ततः खलु स भरतो राजा मज्जनगृहं स्नानगृहम् अनुप्रविशति यावत् अत्र यावत्पदात् अनुप्रविश्य स्नानविधिः ततो मज्जनगृहात् निर्गत्य इति ग्राह्यम् 'अञ्जनगिरिकूटमग्निभम् अञ्जनपर्वतशृङ्गसदृशम् सादृश्यञ्च उच्चत्वेन कृष्णत्वेन च बोध्यम् गजपतिं प्रधानपट्टहस्तिन नरपतिं दुरूढः आरूढः 'तएण तस्म भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्टमंगलगा जो चेव गमो विणीय पविसमाणस्स सोचेव णिक्खममाणस्स वि जाव अप्पड्डिबुज्झमाणे विणीयं रायहाणीं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ' तत खलु तदनन्तरं किल तस्य भरतस्य राज आभिषेक्यम् पट्टहस्तिरत्नं दुरूढस्य आरूढस्य सत इमानि अष्टावष्टौ मङ्गलकानि पुरत अग्रे सम्प्रस्थितानीति शेषः, य एव गमो विनीता तन्नाम्नीं राजधानीं प्रविशतः स एव गमः निष्क्रामतोऽपि निर्गच्छ

सञ्जित कर देने की खबर भरत नरेश के पास भेज दी (तएणं से भरहे राया मज्जनघरं अणुपविसइ) खबर पाते ही वह भरत नरेश स्नान गृहमें गये (जाव अंजणगिरिकूडसण्णिम गईवइ णरवइ दुरूढे) यावत्-वहा जाकर उसने स्नान क्रिया फिर वह मज्जनगृह से बाहर आया बाहर आकर वह नरपति भरत महाराजा अंजनगिरि के सदृशगजपति पर आरूढ होगये (तए णं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्टमंगलगा जो चेव गमो विणीयं पविसमाणस्स सोचेव णिक्खममाणस्स वि जाव अप्पड्डिबुज्झमाणे विणीयं रायहाणियं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ) जब भरत महाराजा आभिषेक्यहस्तिरत्न पर आरूढ हो रहे थे उस समय उनके आगे सबसे पहले आठ आठ की सख्या में आठ महा मंगल द्रव्यप्रस्थित हुए इस तरह जैसा पाठ विनीता राजधानी से भरतके निकलने के प्रकरण में और फिर विनीता राजधानी में विजय करके वापिस आने के प्रकरण में प्रतिपादित क्रिया जाचुका है वही सब पाठ यहा "बजते हुए बाजोकी मञ्जुष्वनि से जिनका चित्त अन्यत्र नहीं लगा है उन्हीं के शब्दो के

अने सञ्जित करीने पछी राजा पासो ये अंजेनी सूचना भेकलानी दीधी (तएणं से भरहे राया मज्जनघर अणुपविसइ) सूचना भणतांते ते भरत नरेश स्नान घर तरहे गया (जाव अंजणगिरिकूडसण्णिम गईवइ णरवइ दुरूढे) यावत् त्यां जधने स्नान करुं अने पछी ते मज्जन गृहमा थी पढार आन्था पढार आनीने ते नरपति अंजनगिरि सदृश गजपति उपर आइठ थरु गया (तएण तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्क हत्थिरयण दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्टमंगलगा जो चेव गमो विणीय पविसमाणस्स सो चेव णिक्खममाणस्स वि जाव अप्पड्डिबुज्झमाणे विणीयं रायहाणीय मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ) अथारे श्री भरतराज आभिषेक्य हस्तिरत्न उपर आइठ थरु रथी डता, ते सभये तेमनी आगण सर्व प्रथम आठ आठनी सज्यामा आठ मंगल द्रव्यो प्रस्थित थया आसीते जेवे पाठ विनीता राजधानी थी भरत महाराजनीकेल्या ते प्रकरणमा आवेल छे, तेमज जेवे पाठ विनीता राजधानी मां विजय संपादितकरीने पछी पुनः प्रविष्ट थया ते प्रकरणमा आवेल

તોડપિ તસ્ય ભરતસ્ય કિયદન્તમિત્યાહ યાવદ્પ્રતિબુધ્યન્ અપ્રતિબુધ્યન્ વિનીતાં રાજ-
 ધાનીં મધ્ય મધ્યેન મધ્યમાનેન નિર્ગન્ઠતિ નિષ્ક્રામતિ 'ગિગચ્છિત્તા' નિર્ગત્ય નિષ્ક્રા-
 મ્ય 'જેનેવ વિળીયાપ રાયહાળીપ ઉત્તરપુરતિથમે દિસીમાપ અભિસેયમંહવે તેણેવ
 ઉવાગચ્છહ' સ ભરતઃ યજૈવ વિનીતાયા રાજધાન્યાઃ ઉત્તરપૌરસ્ત્યે દિગમાગે ઈશ્વાનકો-
 ણે અમિપેકમણ્ડપઃ તત્રેવ ઉપાગચ્છતિ 'ઉવાગચ્છિત્તા' ઉપાગત્ય 'અભિસેયમહવદુવારે
 આમિસેકકં હત્થિરયણં ઠાવેહ' અમિપેકમણ્ડપર્વદિદ્વાર આમિપેક્ય પટ્ટહસ્તિરત્નં સ્થાપ-
 યતિ 'ઠાવિત્તા' સ્થાપયિત્વા 'આમિસેકકાઓ હત્થિરયણાઓ પચ્ચોરુહહ' આમિપેકયાત્
 અમિપેકપટ્ટહસ્તિરત્નાત્ પ્રત્યવરોહતિ અવતરતિ 'પચ્ચોરુહિત્તા' પ્રત્યવરુહથ અવતીર્ય
 'ઇત્થીરયણેણં વત્તીસાપ' ઉડુકુલ્લાણિયા સહસ્સેહિ વત્તીસાપ જળવયકલ્લાણિયા સહ-
 સ્સેહિ વત્તીમાપ' વત્તીસહ્સદ્ધેહિ ણાહગમહસ્સેહિ સદ્ધિં સપરિવુદે અમિસેયમંહવં

બ્રવણ મેં જાસન્ન હૈ" રૂપ કથિન પાઠ તક યહા પર મી પ્રહણ કરલેના ચાહિયે રૂપ તરહ કી
 સ્થિતિ મેં હોતે હુપ વે ભરત નરેશ વિનીતા રાજધાનો કે ઠીક ત્રોચ કે માર્ગે સે હોકર નિકલે
 (ગિગચ્છિત્તા જેનેવ વિળીયાપ રાયહાળીપ ઉત્તરપુરતિથમે દિસીમાપ અભિસેયમહવે તેણેવ ઉવાગચ્છહ)
 બાહર નિકલ કરવે ચક્રવર્તી શ્રી ભરત મહારાના જિસ ઔર વિનીતા રાજધાની કા ઈશ્વાન કોળ
 એવ જહા પર રમણીય અમિપેક મંડપ થા વહા પર આયે (ઉવાગચ્છિત્તા અમિસેયમંહવદુવારે આ-
 મિસેકક હત્થિરયણં ઠાવેહ), વહાંબાકર ઉન્હોને આમિપેક્ય મંડપ કે દ્વાર, પર અપને આમિ-
 પેક્ય હસ્તિરત્ન કો સ્વહાકરદિયાં (ઠાવિત્તા આમિસેકકાઓ હત્થિરયણાઓ પચ્ચોરુહહ) સ્વહાં
 કરકે વે ડસ આમિપેક્યહસ્તિરત્ન સે નીવે. ઉતરે (પચ્ચોરુહિત્તા ઈત્થીરયણેણં વત્તીસાપ
 કલ્લાણિયાસહસ્સેહિ વત્તીસાપ જળવયકલ્લાણિયાસહસ્સેહિ વત્તીસાપ વત્તીસહ્સદ્ધેહિ ણાહગમ-
 હસ્સેહિ સદ્ધિં સપરિવુદે) નીચે ઉતરે કર લીરત્ન સુભદ્રા આદિ વત્તીસ હજાર ઋતુકલ્યાણિકા
 રાજકન્યાઓ સે ૩૨ હજાર જનપદ કે મુલિયાઓ કી કલ્યાણકારિણિ' કન્યાઓ' સે

છે, તે પાઠ એટલે કે "વાગતા વાધોના મજુધ્વનિ થી જેનુ ચિત્ત અન્યત્ર સંલગ્ન થયુ નથી,
 તેવા વાધોને સાંભળવામાજ જે આસક્ત છે" એ કથિત પાઠ સુધી અને પછી પાઠ સંગૃહીત
 થયો છે આ પ્રમાણે ઠાક-આઠ થી ભરત નરેશ વિનીતા રાજધાની ના ઠીક મધ્યમાં આવેલા
 માર્ગમાં થઇને નીકળ્યા (ગિગચ્છિત્તા જેનેવ વિળીયાપ રાયહાળીપ ઉત્તરપુરતિથમે દિસી
 માપ અમિસેયમહવે તેણેવ ઉવાગચ્છહ) બહાર નીકળીને તેઓ વિનીતા રાજધાની ના
 ઈશ્વાન કોળમાં કે જ્યાં આમિપેક મંડપ હતો, ત્યાં પહોચ્યા. (ઉવાગચ્છિત્તા અમિસેયમંહવ-
 દુવારે આમિસેકકં હત્થિરયણ ઠાવેહ) ત્યાં પહોચીને તેમણે આમિપેક્ય મંડપના દ્વારની
 સામે આમિપેક્ય હસ્તિરત્નને ઊભુરાખ્યુ (ઠાવિત્તા આમિસેકકાઓ હત્થિરયણાઓ પચ્ચોરુહહ)
 ઊભુ રાખીને તે રાજા ને આમિપેક્ય હસ્તિરત્ન ઉપર થી નીચે ઉતર્યા (પચ્ચોરુહિત્તા ઈત્થી-
 રયણેણં વત્તીસાપ જળવયકલ્લાણિયાસહસ્સેહિ વત્તીસહ્સદ્ધેહિ ણાહગમહસ્સેહિ સદ્ધિ
 સપરિવુદે) નીચે ઉતરીને સ્ત્રી રત્ન સુભદ્રા, અને ૩૨ હજાર ઋતુ કલ્યાણિકા રાજકન્યાઓ
 ૩૨ હજાર જનપદના સુખીઓની કલ્યાણકારિણી કન્યાઓ અને ૩૨-૩૨ પાત્રીથી બંધ

अणुपविसङ्घः ? ततः स भरतो राजा स्त्रीरत्नेन। सुभद्रया द्वात्रिंशता ऋतुः कल्याणिका सहस्रैः ऋतुविपरीनस्पर्शत्वेन शीतकाले उष्णस्पर्शः ग्रीष्मकाले शीतस्पर्श इत्यादि रूपेण ऋतुषु सुखस्पर्शादायिकानां स्त्रीणां द्वात्रिंशता सहस्रैरित्यर्थः यद्वाऽमृतकन्यात्वेन सदा कल्याणकारिकाकन्यकासहस्रैरित्यर्थः तथा द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिकासहस्रैः जनपदाः पदैकदेशे पदसमुदायोपचारात् जनपदाग्रगण्यः याः कल्याणिकाः सदा कल्याणकारिण्यो राजकन्या इत्यर्थः तासां द्वात्रिंशतासहस्रैरित्यर्थः तथा द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्बद्धैर्नाटकसहस्रैर्द्वात्रिंशद्बद्धैः द्वात्रिंशता पात्रैः बद्धैः समुक्तैः द्वात्रिंशता नाटकसहस्रैः सार्द्धं सम्परिव्रतः सम्परिवेष्टितः सन् स भरत अभिषेकमण्डपम् अनुप्रविशति 'अणुपविसिद्धा, अनुप्रविश्य 'जेणेव अभिसेयपेढे तेणेव उवागच्छह' यत्रैव अभिषेकपीठं तत्रैव उपागच्छति स भरत 'उवागच्छिता' उपागत्य 'अभिसेयपेढ अणुपदाहिणी करेमाणे अणुपदाहिणी करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणतिसोवाणपडिखवण्ण

और ३२-३२ पात्रों से बद्ध ३२ हजार नाटकों से सहित हुए वे (अभिसेयमंडव अणु-पविसङ्घ) अभिषेक मंडप में प्रविष्ट हुए (अणुपविसिद्धा) अभिषेक मंडप में प्रविष्ट होकर (जेणेव अभिसेयपीढे तेणेव उवागच्छह) फिर वे जहाँ अभिषेक पीठ था वहाँ पर गये (उवागच्छिता अभिसेयपेढं अणुपदाहिणीकरेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेण तिसोवाणपडिखवण्णं दुरुहङ्ग) वहाँ जाकरके उन भरत राजा ने उस अभिषेकपीठ को तीन प्रदक्षिणाएँ की फिर वे पूर्वभागावस्थित तिसोपान प्रतिरूपक से होकर उस पर चढ़ गये (दुरुहत्ता) वहाँ चढ़कर वे (जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छह) जहाँपर सिंहासन था वहाँ पर आये—(उवागच्छिता) वहाँ आकर (पुरत्थामिमुहे सण्णिसण्णेत्ति) वे पूर्वदिशाकी ओर मुँह करके उम पर अच्छी तरह से बैठ गये (तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीस रायसहस्सा जेणेव अभिसेयमंडवे तेणेव उवागच्छति) इसके बाद उस भरतराजा के ३२ हजार राजा जन जहाँ पर अभिषेक मण्डप था वहाँ पर आये (उवागच्छिता अभिसेयमंडवं अणुपविसिद्धि) वहाँ आकर के वे अभिषेक मंडप में प्रविष्ट

उर हजार नाटकों थी परिवेष्टित थयेदाते भरत राजा (अभिसेयमंडवं अणुपविसिद्ध) अभिषेक मंडपमा प्रविष्ट थया (अणुपविसिद्धा) अभिषेक मंडपमा प्रविष्ट थयने (जेणेव अभिसेय पीढे तेणेव उवागच्छह) पछी तेज्जे नथा अभिषेक पीठं इत्त तया पडोत्था (उवागच्छिता) अभिसेयपेढं अणुपदाहिणी करेमाणे २ पुरत्थिमिल्लेण तिसोवाणपडिखवण्णं दुरुहङ्ग) तया ते नथने श्री भरत राजाज्जे ते अभिषेक पीठं नी त्रथु प्रदक्षिणाज्जे करी. पछी तेज्जे पूर्व भागावस्थित तिसोपान प्रतिरूपकं उपर आइठ थयने ते पीठं उपर थडी गया. (दुरुहत्ता) तया थडीने तेज्जे (जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छह) नथासिंहासनं इत्तं तया आय्था. (उवागच्छिता) तया अनीने (पुरत्थामिमुहेसण्णिसण्णेत्ति) तेज्जेपूर्व दिशा तरङ्गं मुथ करीने सिंहासनं उपर सारी रीते भेसी गया (तए णं तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीस राय सहस्सा जेणेव अभिसेयमंडवे तेणेव उवागच्छति) तयार भाड ते भरत मंडा राजाना उर हजार राजाज्जे नथा अभिषेक मंडप इत्तं तया आय्था. (उवा गच्छिता अभिसेयमंडवं अणुपविसिद्धि) तया अनीने तेज्जे। अभिषेक मंडपमा प्रविष्ट

दूरुद्द' अभिषेकपीठम् अनुप्रदक्षिणी कुर्वन् अनुप्रदक्षिणी कुर्वन् पौरस्त्येन पूर्वभागाव-
स्थितेन त्रिसोपानप्रतिरूपकेण दुरोहति-आरोहति दूरुद्द आरुद्द 'जेणेव सीहासणे तेणेव
उवागच्छद्' यत्रैव सिंहासन तत्रैव उपागच्छति स भरतः 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'पुरत्या-
भिमुहे मणिसण्णेत्ति' पौस्त्याभिमुखः पूर्वाभिमुखो भूत्वा सन्निपण्णः सम्यक्तया
यथोचित्येन उपविष्टः । 'तएण तस्स भरहस्स रण्णो वत्तीसं रायसहस्सा जेणेव अभि-
सेयमडवे तेणेव उवागच्छति तत खल्लु तस्य भरतस्य राज्ञो द्वात्रिंशद्वाजसहस्राणि
द्वात्रिंशत्सहस्राणि राजानः यत्रैव अभिषेकमण्डपः तत्रैव उपागच्छन्ति, 'उवागच्छित्ता'
उपागत्य 'अभिसेयमडवं अणुपविसत्ति' ते राजानः अभिषेकमण्डपम् अनुप्रविशन्ति 'अणु-
पविसित्ता' अनुप्रविश्य 'अभिसेयपेढ अणुप्पयाहिणी करेमाणे अणुप्पयाहिणी करेमाणे
उत्तरिल्लेण तिसोवाणपडिरूवणं जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छति' अभिषेकपीठम्
अनुप्रदक्षिणी कुर्वन्त अनुप्रदक्षिणी कुर्वन्त औत्तराहेण त्रिसोपानप्रतिरूपकेण यत्रैव भरतो
राजा तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'करयत्त जाव अंजलिं कट्टु भरह
रायाणं जएण विजएण वद्धावेत्ति' करतल परिगृहीतं दशनख शिरसावर्त्तं मस्तके अठ्जलिं
कृत्वा भरत राजानं जयेन विजयेन च जयविजयशब्दाभ्यां ते द्वात्रिंशत्सहस्राणि राजानो
वर्द्धयन्ति 'वद्धावित्ता' वर्द्धयित्वा 'तस्स भरहस्स रण्णो णच्चासण्णे णाद्दरे सुस्ससमाणा
जाव पञ्जुवासत्ति' तस्य भरतस्य राज्ञेनात्या सन्ने नातिदूरे शुश्रूषमाणाः सेवमानाः सन्तो

हुए (अणुपविसित्ता अभिसेयपेढं अणुप्पयाहिणीकरेमाणाः उत्तरिल्लेण तिसोवाणपडिरूवणं
जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छति) प्रविष्ट होकर उन्होंने अभिषेक पीठ की तीन प्रदक्षि
णाएँ दो और फिर वे उत्तरदिग्वर्ती त्रिसोपान से होकर उसपर चढ़ गये एवं जहाँ पर
भरत महाराजा थे वहाँ पर आये (उवागच्छित्ता) वहाँ पर आकरके उन्होंने (करयत्तजाव अंजलिं
कट्टु भरहं रायाणं जएणं विजएणं वद्धावेत्ति) दोनों हाथों की अंजुलि बनाकर और उसे
मस्तक पर धरकर भरत राजा को जय विजय शब्दों द्वारा वधाई दी (वद्धावित्ता तस्स
भरहस्स रण्णो णच्चासण्णे णाद्दरे सुस्ससमाणा जाव पञ्जुवासत्ति) वधाई देकर फिर वे
३२ हजार राजा भरत महाराजा के पास यथोचित स्थान पर सेवा करतेहुए बैठ गये यहाँ
पर यावत् शब्द से १६ हजार देवोंका ग्रहण हुआ है क्योंकि ये देव भी चक्रवर्ती की

थ्या. (अणुपविसित्ता अभिसेयपेढं अणुप्पयाहिणी करेमाणाः उत्तरिल्लेण तिसोवाणपडि-
रूवणं जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छति) प्रविष्ट यर्धने तेभ्यो अभिषेक पीठनी
त्रय प्रदक्षिणा करी अने त्थारणाड तेज्जे उत्तरदिग्ग त्रिसोपान उपर यर्धने तेनी उपर
गुडी गया. अने अथा भरत राजा उता त्या गया (उवागच्छित्ता) त्यां आपीने तेभ्यो (करयत्त
जाव अंजलिं कट्टु भरहं रायाणं जएणं विजएणं वद्धावेत्ति) अने हाथोनी अ अविभनापी,
अने तेने मस्तक उपर भुडीने भरत राजने अय-विजय शब्दो वडे वधाभष्ठी आपी
(वद्धावित्ता तस्स भरहस्स रण्णो णच्चासण्णे णाद्दरे सुस्ससमाणा जाव पञ्जुवासत्ति)
वधाभष्ठी आपीने पछी ते उर उलर राजा भरत राजानी यासे यथोचित स्थान उपर सेत्री
करताभेसी गया अर्धी यावत्पह थी १६ हजार देवोसु अक्षय्य अथु छे कैमहे जे देवो पथु अक्ष-

यावत्पर्युपासते अत्र यावत्पदात् पौडशदेवसदस्त्राणि इतिग्राह्यम् एते देवा अपि पर्युपासते
 'तृष्णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावहरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ तेऽवि तहचेव णवरं
 दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूपणं जाव पञ्जुवामंति'तत खलु तदनन्तर किञ्च तस्य
 भरतस्य राज्ञः सेनापतिरत्नं यावत् सार्थवाहप्रभृतयः तेऽपि तथैव पूर्ववदेव यथा
 द्वात्रिंशत्सहस्रसङ्ख्याः राजान प्रथमं यत्र अभिषेकमण्डपः तत्र उपागच्छन्ति ततोऽभि
 षेकमण्डपमनुप्रविशन्ति तथा तेऽपीतिभायः नवरं पूर्वापेक्षयाऽयं विशेषः दाक्षिणात्येन
 द्वारेण तिसोपानप्रतिरूपकेण यावत् पर्युपासते अत्र यावत्पदात् दक्षिणद्वारेण तिसोपान
 प्रतिरूपकेण यत्र भरतो राजा तत्र उपागच्छन्ति ततोऽञ्जलिमुक्तविशेषणविशिष्टं कृत्वा
 जयविजयशब्दाभ्यां वर्द्धयन्ति, ततः तस्य राज्ञो नातिदूरे नाति समीपे शुश्रूषमाणाः
 सन्तः ते पर्युपासते इति क्रमो बोध्यः 'सेणावहरयणे जाव' अत्र यावत्पदात् सेना पति-
 रत्न, गाथापतिरत्न वर्द्धकिरत्न पुरोहितरत्नानि त्रीणि पृष्ठ्यधिकानि सूपकारशतानि अष्टा-
 दशश्रेणिप्रश्रेणयः, अन्ये च बहवो राजेश्वरतलवर यावत् सार्थवाहप्रभृतयो ग्राह्याः ॥सू० ३०॥

सेवा करते हैं (तृष्णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावहरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ तेऽवि
 तह चेव— णवरं दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूपणं जाव पञ्जुवासति) इसके बाद उस भरत
 महाराजा का सेनापतिरत्न सुषेण यावत् पार्थवाह आदि जन ये सब भी पूर्व की तरह ही
 अभिषेक मण्डप में आये यहा पर इन के आनेका और आकरके यथोचित स्थान पर बैठ
 जानेका सब कथन जैसा ३२ हजार राजाओं के आने के और यथोचितस्थान पर
 बैठने तक के सम्बन्ध में किया गया है—वैमा ही कर लेनाचाहिये परन्तु हम कथन में उस
 कथन की अपेक्षा यही विशेषता है कि ये सब सेनापति आदि जन दक्षिण दिग्गतीं तिसोपान
 से होकर अभिषेक पीठ पर चढ़े सेनापतिरत्नके साथ जो यावत्पदात् आया है उससे गाथापतिरत्न
 वर्द्धकिरत्न, पुरोहितरत्न इन तीन रत्नों का, ३६० रसोईयो का भोजन पकाने वालोका
 श्रेणिप्रश्रेणिजने का तथा अन्य और भी अनेक राजेश्वर/तलवर आदिका ग्रहण हुआहै॥सू० ३०॥

वर्तीनी सेवामा रहे छे (तृष्णं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावहरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ
 तेऽवि तहचेव—णवरं दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूपणं जाव पञ्जुवासति)त्यार भादते श्रीभरत
 राजाना सेनापतिरत्न सुषेण यावत् सार्थवाह वगेरे होके। पञ्च पूर्ववत् अभिषेक मण्डपमां आन्था.
 अर्ही ओ सवे' होके आन्था अने आपीने यथोचित स्थान उपर ओसी गया ओ अ ओ ने
 प्रभाषे उर हजर राजाओ अगे ने प्रभाषे कहेवामां आन्थु' छे तेषु अ कथन समस्त
 तेषु ओर्ध ओ पञ्च आ कथन मा ते कथन ॥ अपेक्षाओ ओअ विशेषता छे के ओ सवे' सेना
 पनि वगेरे होके दक्षिण दिग्गतीं तिसोपान उपर थधने आभिषेक्य पीठ उपर अही गया.
 सेनापति रत्ननी साथे ने यावत् पड आवेल छे, तेनाथी गाथापति रत्न, वर्द्धकिरत्न पुरोहित
 रत्न, ओ त्रषु रत्नो तु' उ६० सू० ३० तेषु—भोजन भनावनारा रसोईआओतु', श्रेष्ठी-प्रश्रेष्ठी
 जनोतु तेमअ अन्य पञ्च अनेक राजेश्वर तलवर वगेरेतु अहस्य थयु छे ॥सू०-३०॥

मूलम-तएणं से भरहे राया आभिओगे देवे सदावेइ सदावित्ता एवं
 वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! ममं महत्थं महग्घं महरिहं महा-
 रायाऽभिसेयं उवड्डवेह तएणं ते आभिओगिका देवा भरहेणं रण्णा एवं
 बुत्ता समाणा हड्डतुड्ड चित्ता जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति
 अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणंति. एवं जहा विजयस्स तहा
 इत्थंपि जाव पंडगवणे एगओ मिलायति एगओ मिलाइत्ता जेणेव
 दाहिणद्धभरहे वासे जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति उवाग
 च्छित्ता विणीयं रायहाणी अणुप्पयाहिणी करेमाणा २ जेणेव अभिसेय-
 मंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तं महग्घं मह-
 रिहं महारायाभिसेयं उवड्डवेति, तएणं तं भरहं रायाणं बत्तीसं रायसहस्सा
 सोभणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि उत्तरपोड्ढं वयाविजयंसि तेहिं
 साभाविएहि य उत्तरवेउव्विएहि य वरकमलपइड्डाणेहिं सुरभिवरवारि
 पडिपुण्णेहिं जाव महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति अभिसेओ
 जहा विजयस्स अभिसिंचित्ता पत्तेअं २ जाव अंजलिं कट्टु ताहिं इड्डाहिं
 जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहीत्तिकट्टु जयजयसइं पउंजंति। तए
 णं तं भरहं रायाणं सेणावइस्यणे जाव पुरोहियस्यणे तिण्णिय सड्डा सूयसया
 अट्टारस सेणिप्पसेणीओ अण्णेय बहवे जाव सत्थवाहप्पभिइओ एवं
 चेव अभिसिंचति तेहिं वरकमलपइड्डाणेहिं तहेव जाव अभिथुणंति य
 सोलसदेवसहस्सा एवं चेव णवरं पम्हसुकुमालए जाव मउडं पिण्छेति, तय-
 णंतरं च णं दद्रमलयसुगंधिएहिं गंधेहिं गायाहिं अब्भुक्खेति दिव्व च
 मणोदामं पिण्छेति, किं बहुणा ! गंठिम वेढिम जाव विभूसियं करेति,
 तएणं से भरहे राया महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिए समाणे
 कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवा-
 णुप्पिया ! हत्थिखंधवरगया विणीयाए रायहाणीए सिंघाड्ढ चउक्क
 चच्चर जाव महापहपहेसु महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा

उस्सुक्कं उक्करं उक्कट्टं अदिज्जं अमिज्जं अब्भडपवेसं अदंडुकुदंडिमं
जाव सपुरजणवयं दुवालससंवच्छरिअं पमोय घोसेह ममेय माणत्तियं
षच्चप्पिणहत्ति, तएणं ते कोडुंवियपुरिसा भरहेणं रण्णा एवंवुत्ता समाणा
हट्टतुट्टचित्तमाणदिया पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएणं वयणं
पडिसुणेति पडिसुणित्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया जाव घोसंति घोसि-
त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति तएणं से भरहे राया महयामहया गयाभि-
सेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अब्भुट्टेइ अब्भुट्टित्ता इत्थीरयणेणं
जाव णाडगसहस्सेहि सद्धि संपरिवुडे अभिसेयपेढाओ पुरत्थिमिल्लेणं
तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अभिसेयमंडवाओ पडि-
णिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवाग-
च्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरिकूडसण्णिमं गयवइं जाव दूरूढे। तएण
तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा अभिसेयपेढाओ उत्तरिल्लेणं ति-
सोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तएणं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे
जाव सत्थवाहप्पभिईओ अभिसेयपेढाओ दाहिणील्लेणं तिसोवाण-
पडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तएणं तस्स भरहस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं
दूरूढस्स समाणस्स इहे अट्टट्टमंगलगा पुरओ जाव संपत्थिया जोऽवि य
इगच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सोचेव इहंपि कमो स-
क्कारजढो णेयव्वो जाव कुबेरोव्व देवराया केलाससिहरिसिं गभूर्यंति।
तएणं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता जाव भोयण-
मंडवंसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ पारित्ता भोयणमंडवाओ पडि-
णिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थ-
एहिं जाव मुंजमाणे विहरइ तएणं से भरहे राया दुवालससंवच्छरियंसि
पमोयंसि णिव्वत्तंसि समाणंसि जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उ-
वागच्छित्ता जाव मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव
बाहिरिया उवट्टाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ

मूलम-तएणं से भरहे राया आभिओगे देवे सदावेइ सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! ममं महत्थं महग्घं महरिहं महारायाऽभिसेयं उवड्डवेह तएणं ते आभिओगिका देवा भरहेणं रण्णा एवं बुत्ता समाणा हट्टतुट्ट चित्ता जाव उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणंति. एवं जहा विजयस्स तहा इत्थंपि जाव पंडगवणे एगओ मिलायंति एगओ मिलाइत्ता जेणेव दाहिणद्धभरहे वासे जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता विणीयं रायहाणी अणुप्पयाहिणी करेमाणा २ जेणेव अभिसेय-मडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता तं महग्घं महरिहं महारायाभिसेयं उवड्डवेति, तएणं तं भरहं रायाणं वत्तीसं रायसहस्सा सोभणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि उत्तरपोडुंवयाविजयंसि तेहिं साभाविएहिं य उत्तरवेउव्विएहिं य वरकमलपइट्टाणेहिं सुरभिवस्वारि पडिपुण्णेहिं जाव महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति अभिसेओ जहा विजयस्स अभिसिचित्ता पत्तेअं २ जाव अंजलिं कट्टुं ताहिं इट्टाहिं जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहीत्तिकदट्टु जयजयसहं पउंजंति। तएणं तं भरहं रायाणं सेणावइस्यणे जाव पुरोहियस्यणे तिण्णिय सट्टा सूर्यसया अट्टारस सेणिप्पसेणीओ अण्णेय बहवे जाव सत्थवाहप्पभिइओ एवं चेव अभिसिंचति तेहिं वरकमलपइट्टाणेहिं तहेव जाव अभिथुणंति य सोलसदेवसहस्सा एवं चेव णवरं पम्हसुकुमालए जाव मउडं पिणद्धेति, तयणंतरं च णं ददस्समलयसुगंधिएहिं गंधेहिं गायाहिं अब्भुक्खेति दिव्व च मणोदामं पिणद्धेति, किं बहुणा ! गंठिम वेढिम जाव विभूसियं करेति, तएणं से भरहे राया महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचिए समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सदावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हत्थिखंधवरगया विणीयाए रायहाणीए सिंघाडग चउक्क चच्चर जाव महापहपहेसु महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा

उस्सुक्कं उक्करं उक्किट्टं अदिज्जं अमिज्जं अच्चमडपवेसं अदंडकुदंडिमं
जाव सपुरजणवयं दुवालससंवच्छरिअं पमोयं घोसेह ममेय माणत्तियं
पच्चप्पिणहत्ति, तएणं ते कोडुंवियपुरिसा भरहेणं रण्णा एवंवुत्ता समाणा
हडतुडुचित्तमाणदिया पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएणं वयणं
पडिसुणेति पडिसुणित्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया जाव घोसंति घोसि-
त्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति तएणं से भरहे राया महयामहया रायाभि-
सेएणं अभिसित्ते समाणे सीहासणाओ अच्चुड्डेइ अच्चुड्डित्ता इत्थीरयणेणं
जाव णाडगसहस्सेहि सद्धि संपरिवुडे अभिसेयपेढाओ पुरत्थिमिल्लेणं
तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहत्ता अभिसेयमंडवाओ पडि-
णिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवाग-
च्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरिकूडसण्णिमं गयवइ जाव दूरुडे । तएण
तस्स भरहस्स रण्णो बत्तीसं रायसहस्सा अभिसेयपेढाओ उत्तरिल्लेणं ति-
सोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तएणं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे
जाव सत्थवाहप्पभिईओ अभिसेयपेढाओ दाहिणील्लेणं तिसोवाण-
पडिरूवएणं पच्चोरुहंति, तएणं तस्स भरहस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं
दूरुदस्स समाणस्स इडे अड्डमंगलगा पुरओ जाव संपत्थिया जोऽवि य
इगच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सोचेव इहंपि कमो स-
क्कारजढो णेयव्वो जाव कुबेरोव्व देवराया केलाससिहरिसिगभूर्यंति ।
तएणं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ अणुपविसित्ता जाव भोयण-
मंडवंसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ पारित्ता भोयणमंडवाओ पडि-
णिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थ-
एहिं जाव मुंजमाणे विहइ तएणं से भरहे राया दुवालससंवच्छरियंसि
पमोयंसि णिव्वत्तंसि समाणंसि जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उ-
वागच्छित्ता जाव मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव
बाहिरिया उवट्ठाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ

णिसीइत्ता सोलसदेवसहस्से सकारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता
 पडिविसज्जेइ पडिविसज्जित्ता वत्तीसं रायवरसहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ
 सक्कारित्ता सम्माणित्ता सेणावइरणं सकारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता
 सम्माणित्ता जाव पुरोहियरणं सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता
 सम्माणित्ता एवं तिण्णि सट्ठे सुवयारमए अट्टारस सेणिप्पसेणीओ स-
 क्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता अण्णे य वहवे राइसर तलवर
 जाव सत्थवाहप्पभिइओ सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता
 पडिपिसज्जेइ पडिविसज्जित्ता उप्पिपासायवरगए जाव विहरइ ॥सू०३१॥

छाया-ततः खलु स भरतो राजा आभियोग्यान् देवान् शब्दयति शब्दयित्वा पवं अ-
 धादीत्क्षिप्रमेव भो देवानुप्रिया । मम महार्थम् महार्घम् महार्हम् महाराज्याभिषेकमुपस्थाप-
 यत् । तत खलु ते आभियोग्या देवाः भरतेन राज्ञा पवमुक्ताः सन्त दृष्टदृष्ट चित्त यावत्
 उत्तरपौरस्त्यं दिग्भागम् अपकामन्ति अपकम्य वैक्रियसमुद्घातेन समवभ्रन्ति, एव यथा
 विजयस्य तथा इत्थमपि यावत् पण्डकवने एकतो मिलन्ति एकतो मिलित्वा, यत्रैव दक्षि-
 णार्द्धभारतवर्षवर्षं यत्रैव विनीता राजधानी तत्रैव उपागच्छन्ति उपागत्य विनीतां राज-
 धानीमनुप्रदक्षिणी कुर्वन्तः । अनुप्रदक्षिणी कुर्वन्तः यत्रैव अभिषेकमंडपो यत्रैव भरतो राजा तत्रैव
 उपागच्छन्ति उपागत्य तत् महार्थं महार्घं महार्हं महाराज्याभिषेकम् उपस्थापयन्ति, तत खलु
 त भरत राजान द्वात्रिंशद्राजसहस्राणि शोभने तिथिकरणदिवसनक्षत्रसुहृते उत्तरपौष्टपदा
 विजये तैः स्वाभाविकैश्च उत्तरवैक्रियैश्च वरकमलप्रतिष्ठानैः सुरभिवरवारिप्रतिपूर्णेः यावत् म
 हता महता राज्याभिषेकेण अभिषिञ्चन्ति अभिषेको यथा विजयस्य, अभिषिञ्च्य प्रत्येकं प्रत्येकं
 यावत् अर्द्धलिं कृत्वा ताभिरिष्टाभिः यथा प्रविशतो भणिता यावत् विरह इति कृत्वा जय
 जय शब्दं प्रयुञ्जन्ति । तत खलु तं भरतं राजान सेनापतिरत्न यावत् पुरोहितरत्नम्
 त्रीणि च पद्यानि सूपशतानि अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणयः अन्ये च बहवो यावत् सार्थवाहप्रभृतयः
 एवमेव अभिषिञ्चन्ति तैः वरकमलप्रतिष्ठानैः तथैव यावत् अभिष्टवन्ति च षोडशदेवस
 हस्राणि एवमेव नवरं पद्मसुकुमारया यावत् मुकुटं पिनहन्ति । तदनन्तरं च खलु वर्द्ध-
 मलयसुगान्धतैः गन्धैः गात्राणि अभ्युक्षन्ति दिव्यं च सुमनोदामं पिनहन्ति किं बहुना ?
 ग्रन्थिमवेष्टिम यावत् धभूषितं कुर्वन्ति तत खलु स भरतो राजा महता महता राज्या-
 भिषेकेण अभिषिक्तः समानः कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति शब्दयित्वा एवम् अवादीत्-क्षिप्रमेव
 भो देवानुप्रिया ! इस्तिस्कन्धवरगताः विनीताया राजधान्या शृङ्गाटकं त्रिकचतुष्कचत्वर
 यावत् महापथस्थेषु महता महता शब्देन उद्घोषयन्त उच्छुक्कम् उत्तरम् उत्कृष्टम् अदेयम्
 अमेयम् अमटप्रवेशम् अण्डकुर्द्धिमम् यावत् सपुरजनजानपदम् द्वावशसंघत्सरिकं प्रमोद
 घोषयत, घोषयित्वा मम पनामाज्ञासिकां प्रत्यर्पयत इति ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः

भरतेन राज्ञा एवमुक्ता सन्तः हृद्युत्प्रवृत्तानन्दिता प्रीतिमनस हर्षवशचिसर्पद् हृद्या' विनयेन वचनं प्रतिशृण्वन्ति प्रतिश्रुत्य श्चिप्रमेव हस्तिस्कन्धवरगताः यावद् घोषयन्ति घोषयित्वा पतामाज्ञतिकाम् प्रत्यर्पयन्ति । तत खलु स भरतो राजा महता महता राज्याभिषेकेण अभिषिक्तः सन् सिंहासनाद् अभ्युत्तिष्ठति अभ्युत्थाय स्त्रीरत्नेन यावत् नाटक-सहस्रैः सार्द्धम् संरिवृतोऽभिषेकपीठात् पौरस्त्येन त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहति प्रत्य-वरुह्य अभिषेकमण्डपात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव आभिषेक्यं हस्तिरत्न तत्रैव उपागच्छति उपागत्य अञ्जनगरिकूटसन्निभ गजपति यावद् दुरुद्ध । ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञो द्वात्रिंशद्वाजसहस्राणि अभिषेकपीठात् औत्तराहेण त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहन्ति । तत खलु तस्य भरतस्य राज्ञः सेनापतिरत्न यावत् सार्थवाहप्रभृतय अभिषेकपीठात् दक्षिणात्येन त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहन्ति । ततः खलु तस्य भरतस्य राज्ञः अभिषेक्यं हस्तिरत्नं दुरुद्धस्य सत इमानि अष्टाष्टपङ्कलानि पुरतो यावत् सम्प्रस्थितानि योऽपि च अतिगच्छतो गमः प्रथम कुबेराचसान स पञ्च क्रमः इहापि स त्कारवर्जितो नैतव्यो यावत् कैलासशिखरिशृङ्गभूनमिति । तत खलु स भरतो राजा मञ्जनगृहम् अनुप्रविशति अनुप्रविश्य यावत् भोजनमण्डपे सुखासनवरगत अष्टमभक्त पारयति पारयित्वा भोजनमण्डपात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्क्रम्य उपरि प्रासादवरगतः स्फुटञ्चि सृन्दङ्गमस्तकै यावद् भुञ्जानो विहरति । तत खलु स भरतो राजा द्वादश सम्वत्सरिके निवृत्ते सति यत्रैव मञ्जनगृहं तत्रैव उपागच्छते उपागत्य यावद् मञ्जनगृहात् प्रतिनिष्कामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यावत् सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखो निषोदति निषद्य पोडशदेवसहस्राणि सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य प्रतिविसर्जयति प्रतिविसृज्य द्वात्रिंशद्वाजवरसहस्राणि सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य यावत् सेनापतिरत्नं सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य यावत् पुरोहितं तं सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य त्रीणि पद्याणि सत्कारयति अष्टादशश्रेणिप्रश्रेणी सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य अन्याश्च बहून् राजेश्वरं तलवर् यावत् सार्थवाह प्रभृतीन् सत्कारयति सम्मानयति सत्कार्यं सम्मान्य प्रतिविसर्जयति प्रतिविसृज्य उपरि प्रासादवरगतो यावत् विहरति ॥सू० ३१ ॥

‘टीका-‘तएणं से’ इत्यादि । ‘तएणं से भरहे राया आभिओगे देवे सहावेइ’ ततः खलु तदनन्तरं किल स भरतो राजा आभियोग्यान् आज्ञाकारिणो देवान् शब्दयति आह्वयति

‘तएणं से भरहे राया आभियोगे देवे सहावेइ’ इत्यादि

टीकार्थ- (तएण से भरहे राया आभिओगे देवे सहावेइ) इसके बाद उस भात महाराजा ने आभियोग्यदेवो को बुलाया (सहावित्ता एवं वयासी) और बुलाकर उन आज्ञाकारी

‘तएणं भरहे राया आभिओगे देवे सहावेइ’ इत्यादि

टीकार्थ- (तएण से भरहे राया आभिओगे देवे सहावेइ) त्थार पाठ भरत राज्ञे आभि-योगिभ देवाने ओलाव्या (सहावित्ता पक्ष वयासी) अने ओलावीने ते आज्ञाकारी आभियोगि

‘सद्वाचित्ता’ शब्दयित्वा आहूय ‘एवं वयामी’ एव वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान्
 ‘खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! मम महत्थं महग्घं महहिं महारायाऽभिसेयं उवट्टवेह’
 क्षिप्रमेव शोघ्रातिशीघ्रमेव भो देवानुप्पियाः ! मम ‘महत्थं’ महार्थम् महान् अर्थः मणि-
 कनकरत्नादिक उपयुज्यमानो व्याप्रियमाणो यस्मिन् स तथाभूतस्तम्, तथा महार्थम्
 महान् अर्थः यत्र स तथा भूतस्तम् तथा महार्थम् महत् उत्सवमर्हतीति महार्हः-उत्स-
 वयोग्यवाद्यविशेषस्तम् एवभूत महाराज्याभिषेक उपस्थापयत सम्पादयत ‘तए ण ते
 आभिमोइया देवा भरहेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्ट चित्त जाव उत्तरपुत्थिमं
 दिसीभाग अवक्कमति’ ततो भरतस्य राज्ञ आज्ञप्त्यनन्तरं खल्वेते आभियोग्या देवा
 भरतेन राज्ञा एवमुक्ताः सन्तो हृष्टतुष्ट चित्त यावद् उत्तरपोरस्त्यं दिग्भागम् ईशानकोणम्
 अपक्रामन्ति गच्छन्ति, अत्र यावत्पदात्हृष्टतुष्ट चित्तानन्दिताः प्रीतिमनसः परमसौमनस्यिताः
 हर्षवशमिर्षद् हृदयाः करतलपरिगृहीतं दशनखं शिरसावर्त्तं मस्तके अञ्जलिं कृत्वा एवं
 स्वामिनः ! यथैव यूयम् आदिशथ तथैव आज्ञया अनुसारेण वयं कुर्म इत्येवं रूपेण विनयेन
 वचन प्रतिश्रुण्वन्ति प्रतिश्रुत्य इति ग्राह्यम् । ‘अवक्कमत्ता’ अपक्रम्य गत्वा ‘वेउच्चिय-
 समुग्घाएणं’ ममोहणति ‘वैक्रियसमुद्घातेन वैक्रियकरणार्थकप्रयत्नविशेषेण समवध्नन्ति

आभियोग्यदेवो से ऐसा कहा— (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया, मम महत्थं महग्घं महरियं
 महारायाभिसेय उवट्टवेह) हे देवानुप्पियो ! तुमलोग शीघ्र ही माणकरत्नादिरूप पदार्थ
 जिसमें सम्मिलित हों, तथा जिसमें आई हुई वस्तुएं सब विशेष मूंग्यवाली हों एव जिसमें उत्सव
 के योग्य व.धविशेष हों ऐसे महाराजाभिषेक के योग्य सामग्री का प्रबन्ध करो (तएणं ते
 आभिमोगिया देवा भरहेणं रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्टतुट्टचित्तजाव उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं
 अवक्कमति) इस प्रकार श्रीभरत महाराजा के द्वारा कहे गये वे आभियोगिक देव बहुत अधिक
 हर्षित एव सतुष्ट चित्त हुए यावत्—वे ईशान कोने में चले गये यहां यावत्पद से “चित्तानन्दिताः
 प्रीतिमनसः” आदि पूर्वोक्त पाठगृहोक्त हुआ है और यह पाठ “पडिसुणित्ता” पद तक गृहीत हुआ
 है (अवक्कमत्ता - वेउच्चियसमुग्घाएणं समोहणति) ईशानदिशा में जाकर—उन्होंने वैक्रियसमुद्घात द्वारा

देवो ने आ प्रभाणु कथु— (खिप्पामेव भो देवानुप्पिया ! मम महत्थं महग्घं महरियं महा-
 रायाभिसेयं उवट्टवेह) हे देवानुप्पियो ! तुम लोके शीघ्र भण्डी रत्नादि रूप पदार्थों जेमां
 सम्मिलित होय, तथा जेमा आवेले सर्व वस्तुजो मूंग्यवान् होय, तेमज्ज जेमां उत्सव
 योग्य वाद्य विशेष होय जेवी महाराजाभिषेक माटे योग्य सामग्रीनी व्यवस्था करो. (तएणं
 ते आभिमोगिया देवा भरहेण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ट-तुट्ट चित्त जाव उत्तरपुर-
 थिमं दिसीभागं अवक्कमति) आ प्रभाणु भरत महाराज वडे आराधयथेदाते आभियो.गिक देवो.
 जूम अधिक दुष्पित तेमज्ज सतुष्ट चित्त थया यानत् तेजो ईशान होय तसक्क जना
 रथो. अही आवेला यावत् पठथी “चित्तानन्दिताः प्रीतिमनसः” आदि पूर्वोक्त पाठनो स गूढ
 थयेदी छे अने जे पाठ “पडिसुणित्ता” पठ सुधी गृहीत थयेदी छे. (अवक्कमत्ता
 वेउच्चियसमुग्घाएणं समोहणति) ईशान कोणमा जेधने तेमणो वैक्रिय समुद्घात वडे

आत्मप्रदेशान् वहिः दूरतो विक्षिपन्ति 'एवं जहा विजयस्स तथा इत्थंपि जाव पंडगवणे एगओ मिलार्यति' एवम् इत्थ प्रकारमभिषेकसूत्रम् यथा विजयस्य—जम्बूद्वीपविजयद्वारा धिपदेवस्य तृतीयोपाङ्गे प्रोक्तम् 'तथा इत्थंपि' तथाऽत्रापि विजयम् यावत् पण्डकवने एकतः एकत्र मिलन्ति अत्र च यावत्पदात् सर्वापि अभिषेक सामग्री वक्तव्या साचोत्तरा जिनजन्माधिकारे पञ्चमवक्षस्कारे पत्राकाररीत्या विशत्युत्तरशते सूत्रे निःसृज्यतीत्या पञ्चमवक्षस्कारे अष्टमसूत्रे वक्ष्यते तत्र तत्सूत्रस्य साक्षाद्दर्शितत्वात् तत एव सर्वं द्रष्टव्यम् । 'एगओ मिलार्यति' एकतः— एकत्र मिलित्वा 'जेणेव दाहिणद्धमरहे वासे जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छन्ति' यत्रैव दक्षिणार्द्धभारतवर्षे यत्रैव विनीता राजधानी तत्रैव ते देवाः उवागच्छन्ति 'उवागच्छन्ति' उपागत्य 'विणीयं रायहाणि अणुप्पयाहिणी करेमाणा अणुप्पयाहिणी करेमाणा जेणेव अभिसेयमंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति' विनीतां राजधानीम् अनुप्रदक्षिणी कुर्वन्तः अनुप्रदक्षिणी कुर्वन्तः यत्रैव अभिषेकमण्डपो

अपने आत्मप्रदेशों को बाहर—निकाला (एव जहा विजयस्स तथा इत्थंपि ज व पंडगवणे-एगओ मिलार्यति) इस तरह जम्बूद्वीप के विजयद्वारके अधिपति देव—विजय के प्रकरण में तृतीय उपाङ्ग में अभिषेक—सूत्र कहा गया है उसी प्रकार से यद्वा पर भी वही अभिषेक—सूत्र, यावत् वे सबके सब पण्डक वन में एकत्रित होजाते हैं यहा तक का कहलेना चाहिये । यहा यावत् पद से समस्त अभिषेक समारंभगृहीत हुई है वह आगे जिनजन्माधिकार में पंचम वक्षस्कार में पत्राकाररीत्या १२० सूत्रमें और और द्वारा दत्त अङ्करीति से पञ्चमवक्षस्कार में आठवे सूत्रमें कहा जावेगी अतः वही से यह सब जानने में आज्ञावेगी (एगओ मिलार्यति) पंडक वन में एकत्रित होकर (जेणेव दाहिणद्धमरहे वासे जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छन्ति)वे सब के सब देव जहा दक्षिणार्द्ध भारतक्षेत्र था, और इसमें भी जहां विनीता राजधानी थी वहा पर आये (उवागच्छन्ति विणीयं रायहाणी—अणुप्पयाहिणी करेमाणे २ जेणेव अभिसेयमंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) वहा आकर के उन्होंने उस विनीता राजधानी की तीन प्रदक्षिणाएं की बाद में जहां अभिषेक

पेटान आत्मप्रदेशों के शरीरों को निकाले। (एव जहा विजयस्स तथा इत्थंपि जाव पंडगवणे एगओ मिलार्यति) आ प्रमाणे जम्बूद्वीपना विजयद्वारना अधिपति देव—विजयना प्रकरणे मा तृतीय उपाङ्गमा अभिषेक सूत्र कहेवाभा आवेल छे ते प्रमाणे ज अर्द्धी पक्ष अभिषेक सूत्र यावत् ते सर्व पंडक वनमा एकत्र थर्ध नय छे. अर्द्धी सुधी पाठ अर्द्धे कर्वे। अर्द्धे अर्द्धी यावत् पदथी समस्त अभिषेक सामग्री गृहीत थयेली छे. ते आगण जिन जन्माधिकारमा, पञ्चमवक्षस्कारमा, पत्राकार रीत्या १२० मा सूत्रमा अने मारा पडे इत्त अर्द्ध रीतिथी पञ्चमवक्षस्कारना आठमा सूत्रमा कहेवाभा आवेशे अथी जिज्ञा-सुओ। ओ अणे त्याथी ज नक्षुवा प्रयत्न करे (एगओ मिलार्यति) पंडक वनमा एकत्र थर्धने (जेणेव दाहिणद्धमरहे वासे जेणेव विणीया रायहाणी तेणेव उवागच्छन्ति) तेणे। सर्वे देवे। अथा विनीता राजधानी इती त्यां आ-या. (उवागच्छन्ति विणीयं रायहाणी अणुप्पयाहिणी करेमाणे २ जेणेव अभिसेयमंडवे जेणेव भरहे राया तेणेव उवागच्छन्ति) त्यां आवीने तेभणे

यत्रैव श्री भरतो राजा तत्रैव उपागच्छन्ति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य त महर्त्थं महर्घं महरिहं महारायाभिसेयं उवद्वेति' ते देवाः तत् पूर्वाक्त महार्थं महार्घं महार्हं महाराज्याभिषेक महाराज्याभिषेकोपयोगिक्षीरोदकाद्युपस्करणमित्यर्थः उपस्थापयन्ति उपदौकयन्ति राज्ञः समीपे आनयन्तीत्यर्थः वैक्रियशक्त्या निष्पादितानि सर्वाणि रत्नगजाश्वादीनि बहुमूल्यानि वस्तूनि आनीय समर्पयन्तीति। अथ पूर्वकृत्य पूर्वमुच्चा उत्तरकृत्यमाह- 'तएण' इत्यादि 'तएण तं भरहं रायाण वत्तीस रायसहस्सा सोभणंसि तिहि करणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि उत्तरपोट्टवया विजयंसि तेहिं सामाविण्हिय उत्तरवे उच्चिण्हिय वरकमल पडट्टाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं जाव महया महया रायाभिसेएणं अभिसिचंति' ततः खलु त भरत राजानंद्वात्रिंशद्वाजसहस्राणि शोभने निर्दोषगुणयुक्ते तिथिकरणदिवसनक्षत्रमुहूर्ते अत्र समाहारद्वन्द्वः ततः सप्तम्येकत्रचनम् तत्र तिथिः रिक्ताकेन्दुद्गधादिदुष्टतिथिभ्यो भिन्ना जयादितिथिः । करणं विशिष्ट दिवसः दुर्दिनग्रहणोत्पातदिनादिभ्यो भिन्नदिवसः नक्षत्रं राज्याभिषेको-

मंडप और उसमें भी जहां चक्रवर्ति श्री भरत महाराजा थे वहां पर वे आये (उवागच्छित्ता तं महर्त्थं महर्घं महरिहं महारायाभिसेयं उवद्वेति) वहां आकर के उन्होंने ने उस महार्थं महार्घं एवं महार्हं महाराजाभिषेक को समस्त सामग्री को राजाके समक्ष उपस्थित कर दिया अर्थात् वैक्रियशक्ति द्वारा निष्पादित-समस्त रत्न गज, अश्व आदिरूप बहुमूल्य वस्तुओं को लाकर समर्पित कर दिया (तए णं तं भरहं रायाणं वत्तीस रायसहस्सा सोभणंसि तिडिकरणदिवस-णक्खत्तमुहुत्तंसि उत्तरपोट्टवया विजयंसि तेहिं सामाविण्हिय उत्तरवे उच्चिण्हिय वर कमल पडट्टाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं जाव महया २ रायाभिसेएणं अभिसिचंति) इस के बाद श्रीभरत महाराजा का उन ३२ हजार गजाओं ने निर्दोषगुणयुक्त तिथि करण दिवस-नक्षत्र समन्वित मुहूर्त में अभिषेक किया रिक्ता आदि दुष्ट तिथियों से भिन्न जो जयादितिथियां होती हैं वे शुभतिथियां मानो जातो हैं करण नाम विशिष्ट दिवस का है यह दिवस दुर्दिन, ग्रहण, उत्पात आदि से भिन्न रहिन-होता है, राज्य में अभिषेक-के योग्य जो भ्रवण आदि वर नक्षत्र

ते विनीता राजधानीनी त्रयु प्रदक्षिण्योऽकरी त्पार आह न्यां अलिभेक म उप अने तेभा पयु न्यां भरत राजा डला त्या आया (उवागच्छित्ता त महर्त्थं महर्घं महरिहं महारायाभिसेयं उवद्वेति) त्या आवीने तेभण्णे ते महार्थं, महार्घं अने महार्हं महाराज्याभिषेकनी समस्त सामग्रीने राजानी सामे भूमी दीधी. अर्थात् वैक्रिय शक्ति वडे निष्पादित समस्त रत्न, गज अश्व, आदि ३२ बहुमूल्य वस्तुओंने लावीने समर्पित करी. (तएणं तं भरहं रायाण वत्तीस रायसहस्सा सोभणंसि तिडिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि उत्तरपोट्टवया विजयंसि तेहिं सामाविण्हिय उत्तरवे उच्चिण्हिय वरकमलपडट्टाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं जाव महया २ रायाभिसेएणं अभिसिचंति) त्पारआह भरत राजाने। ते उर डलार राजाओंने निर्दोष गुण युक्त तिथि, करण दिवस नक्षत्र-समन्वित मुहूर्त मा अलिभेक कथे। रिक्ता वगेरे दुष्ट तिथिओंशी भिन्न जे अथ आदि तिथिओं डेय छे तेने शुभतिथिओं मानवाभा आवे छे. करण नाम विशेष दिवस छे जे दिवस दुर्दिन, ग्रहण, उत्पात

पयोगि श्रवणादि त्रयोदश नक्षत्राणामन्यतरत् उक्तञ्च“ अभिषिक्तो महीपालः श्रुति ज्येष्ठो लघुद्वैः । मृगानुराधा पौष्णैश्च, चिरं शास्ति वसुन्धराम् ॥१॥ इति मुहूर्तः अभिषेकोक्तनक्षत्र समानदैवत इति तस्मिन् उत्तरप्रौष्ठपदाविजये—उत्तरप्रौष्ठपदा उत्तरभाद्रपदा नक्षत्रं तस्य विजयो नाम मुहूर्तः अभिजिदाह्वयः क्षण तस्मिन् अयं भावः— मुहूर्त्तापरपर्यायः पञ्चदशक्षणात्मके दिवसेऽष्टमक्षणः, तल्लक्षण चेदं ज्योतिः शास्त्रे प्रसिद्धम् द्वौयामौ घटिका न्यूनौ द्वौ यामौ घटिकाऽधिकौ । विजयोनाम योगोऽयं सर्वकार्यप्रसाधकः ॥१॥ त- तस्तैः पूर्वोक्तैः स्वाभाविकै रत्तरवैक्रियैश्च वरकमलप्रतिष्ठानैः वरकमले प्रतिष्ठानं स्थिति र्षेषां ते तथा भूतास्तैः षष्ट सहस्रघटैरितिगम्यं पुनः कीदृशैः सुरभि वरवारिप्रतिपूर्णेः श्रेष्ठ निजलव्याप्तैः यावद् महता महता गरीयसा राज्याभिषेकेण अभिषिञ्चन्ति अत्र

हैं उनमें से कोई एक नक्षत्र का होना ही शुभ नक्षत्र कहा गया है. उक्तञ्च—
अभिषिक्तो महीपालः श्रुति ज्येष्ठालघुद्वैः । मृगानुराधा पौष्णैश्च चिरं शास्ति वसुन्धराम् ॥१॥
अभिषेक के समय उक्त नक्षत्रों का समान देवता वाले होना—यह मुहूर्त कहा गया है. उत्तर प्रौष्ठपदा विजय का तात्पर्य—है उत्तरभाद्रपदा नक्षत्र का विजय—अभिजितनामका क्षण में यह अभिषेक किया गया तात्पर्य यह है दिन पञ्चदशक्षणात्मक दिवस होता है इसमें षष्टम क्षणरूप मुहूर्त होता है. उसका लक्षण ज्योतिषशास्त्र—में ऐसा कहा गया है-

द्वौ यामौ घटिकान्यूनौ, द्वौ यामौ घटिकाधिकौ । विजयोनाम योगोऽयं सर्वकार्यं प्रसाधकः ॥१॥

भरत महाराजा का जो राज्याभिषेक किया गया वह सुरभिजल—से परिपूर्ण हुए स्वाभाविक कलशों द्वारा तथा उत्तरविक्रिया से देवों ने जिन्हें विकुर्वित किया है. ऐसे ऐसे कलशों द्वारा किया गया । ये कलश श्रेष्ठ कमलों के ऊपर स्थापित किये हुए थे तथा संख्या में १००८, थे. यह अभिषेक साधारण रूप से करने में नहीं आया किन्तु बड़े भारी ठाठ नाट से ही करने

वगेरही भिन्न—रहित—होय छे. राज्यभा अभिषेक योज्यने श्रवण आदि उत्तर नक्षत्रो छे, तेभनामांथी कौण्णैक नक्षत्र होय तो न शुभ कडेवायछे उक्तञ्च—

अभिषिक्तो महीपालः श्रुतिज्येष्ठालघुद्वैः । मृगानुराधा पौष्णैश्च चिरं शास्ति वसुन्धराम् ॥१॥
अभिषेक वभते उक्त नक्षत्रोना समान देवतावागा थयु जे मुहूर्त कडेवाभा आवे छे. उत्तर प्रौष्ठपदा विजयतुं तात्पर्य छे, उत्तरभाद्रपदा नक्षत्रो विजय—अभिषिक्त नामकक्षयुते- क्षयुभां अभिषेक करवाभां आये. तात्पर्यआ प्रभाणे छे के दिवस—पञ्चदश क्षणात्मक दिवस होय छे जेभां अष्टम क्षण इप मुहूर्त होय छे. जेतुं लक्षण ज्योतिष शास्त्रभां आ प्रभाणे कडेवाभा आवे छे ।

द्वौ यामौ घटिका न्यूनौ, द्वौ यामौ घटिकाधिकौ । विजयोनाम योगोऽयं सर्वकार्यं प्रसाधकः ॥१॥
भरतने जे राज्याभिषेक करवाभा आये ते सुरभि नक्षत्री परिपूर्ण थयेला स्वाभाविक कलशो वडे तेभन उत्तरविक्रियाथी जेभने देवे जे विकुर्वित कयो छे जेवा कलशोवडे करवा- भा आये जे कलशो श्रेष्ठ कमलोनी उपर स्थापित करवाभां आये। इता. सभ्या भा जे कलशो १००८ कना. जे अभिषेक साधारण इपभां आयोजित थये नहि थयु बारे ठाड- ११८

यावत्पदात् 'चंदणकयचच्चेहि आविद्धकंठेगुणेहि पउमुप्पलपिहाणेहि करयलपरिग्ग-
हिप्पहि अट्टसहस्सेण सोवणियकलसाणं जाव अट्टसहस्सेणं भोमेज्जाणं' इत्यादि पाठो
ग्राह्यः अयं च विस्तररूपेण उत्तरत्र जिनजन्माभिषेकप्रकरणे पञ्चमवक्षस्कारे एकविंशत्युत्तर-
शतत्रे सूत्रे १२१ निजदत्ताङ्करीत्या पञ्चमवक्षस्कारे दशमसूत्रे १० द्रष्टव्यः । तत्रैव अस्य साक्षा
दर्शितत्वात् सर्वेषां प्रत्येकं व्याख्यानमपि तत्रैव द्रष्टव्यम् । तथा च पुनः क्रीदशैः चन्दन-
कृतव्यत्ययैः चन्दनकृतव्यतिक्रमै चन्दनचर्चितदेहैः पुनः आविद्धकण्ठेगुणैः गुणैराविद्धकण्ठै-
रित्यर्थः पद्मोत्पलपिधानैः कमलोत्पलाच्छादनैः करतलपरिगृहीतैः हस्ततलपरिगृहीतैः एवमुक्तप्र-
कारेण विशेषणविशिष्टैः अट्टसहस्सेण सौवर्णिककलशानाम् यावद् अट्टसह स्त्रेण भोमेयानां च
अट्टसहस्रसंख्यकसौवर्णिककलशैः अट्टसहस्रसंख्यकभोमेयकलशैश्च सर्वोदकः सर्वमृत्सर्वोपधि
प्रभृति वस्तुभिर्महता महता राज्याभिषेकेण अभिषिञ्चतीत्यर्थः 'अभिसेओ जहा विजयस्स'
अभिषेको यथा विजयस्य जम्बूद्वीपविजयद्वाराधिपदेवस्य जीवाभिगमोपाङ्गे प्रोक्तस्तथाऽ-
त्रापि बोद्धव्यः 'अभिसिचित्ता' अभिषिच्य 'पत्तेय पत्तेयं जाव अंजलिं कट्टु ताहि इट्ठाहि-
जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहि तिकट्टु जय जय सहं पउंजंति' प्रत्येकं प्रत्येकंप्रातिवृत्त

में आया—इसी बात को प्रकट करने के लिये "महया २ रायाभिसेपणं" ये पद यहां प्रयुक्त हुए
हैं यहां प्रयुक्त हुए यावत्पद से "चंदणकयचच्चेहि, आविद्धकंठे गुणेहि, पउमुप्पलपिहाणेहि,
करयलपरिग्गहिप्पहि अट्टसहस्सेणं सोवणियकलसाण, जाव अट्टसहस्सेणं भोमेज्जाण" इत्यादि
पाठ गृहीत हुआ है यदि इसपाठ को देखना हो तो यह विस्तररूप से आगे जिन-
जन्माभिषेक के प्रकरण में पंचमवक्षस्कार में १२१ वें सूत्रमें और मेरे द्वारा प्रदत्त अङ्करीति
के अनुसार १० वें सूत्र में आनेवाला है वहीं से इसे देख लेना चाहिये । (अभिसेओ
जहा विजयस्स) इस तरह महाराजा भरत का अभिषेक इस प्रकार से हुआ कि जैसा
अभिषेक जम्बूद्वीप के द्वारके अधिपति विजय देवका हुआ कहा गया है यह अभिषेक
जीवाभिगम उपाङ्ग में वर्णित हुआ है (अभिसिचित्ता पत्तेयं पत्तेयं जाव अंजलिं कट्टु ताहि
इट्ठाहि जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहि तिकट्टु जय २ सहं पउंजंति) भरत महाराजा का

भाइथी सम्पन्न थये। हुते। ओ न आशयने प्रगट करवा भाटे 'महया २ रायाभिसेपणं'
ओ यह अत्रे प्रयुक्त थये। ओ अही प्रयुक्त थये। यावत् पहथी "चंदणकयच-
च्चेहि आविद्धकंठेगुणेहि, पउमुप्पलपिहाणेहि, करकमलपरिग्गहिप्पहि अट्टसहस्सेणं सोव-
णियकलसाणं, जाव अट्टसहस्सेणं भोमेज्जाणं" इत्यादि पाठ संगृहीत थये। ओ ओ
पाठ अगे लक्षुकारी भणवपी होय ते। ओगण जिनजन्माभिषेक प्रकरणमां, पञ्चमवक्षस्का-
रमां, १२१ मा सूत्रमां अने भारा वडे प्रदत्त अङ्करीति सुख्य १० मा सूत्रमां आपवाभा
आवतथे तेथी ते संअंध मां त्याथीसमल देवु लधं ओ त्यां ओ अगे सविस्तर वर्णन करवा
मां आवेहुं। (अभिसेओ जहा विजयस्स) राज भरतने अभिषेक आ प्रभाषे सम्पन्न
थये। ओ रीते जम्बूद्वीपना द्वारना अधिपति विजय देवने थये। ओ अभिषेकवर्णन
'जीवाभिगम उपाङ्गमां करवाभां आवेहुं'। (अभिसिचित्ता पत्तेयं पत्तेयं जाव अंजलिं कट्टु

यावद् अञ्जलिं कृत्वा ताभिरिष्टाभिः अत्रापि 'कंताहिं जाव वग्गूहिं अभिणंदंता य अभिथुणंताय एव वयासी-जय जय णदा । जय जय भदा । भदं ते अजियं जिणाहि' इत्यादि पाठो तथा ग्राह्यः 'जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहि' यथा विनीतां प्रविशतो भरतस्य अर्थाभिलाषि प्रमुखपाचकजनैर्भणिता आशीरिति गम्यम् क्रियत्पर्यन्त मित्याह 'यावद् विहर' इति विहरेति पर्यन्तमित्यर्थः इति कृत्वा जय जय शब्दं प्रयुज्जन्ति तए णं तं भरहं रायाणं सेणावहरयणे जाव पुरोहियरयणे तिण्णि य सट्ठा सुमसयाद्वारस अ सेणि ष्पसेणीओ अण्णे य बहवे जाव सत्थवाहप्पभिइओ एवंचेव अभिसिचंति' ततोद्वात्रिंशद्राजसह- स्नाभिषेकानन्तरं सल्लु तं भरत सेनापतिरत्न यावत्पुरोहितरत्नं त्रीणि च पणानि षट्चधिकानि

अभिषेक करके फिर प्रत्येक ने यावत् अंजलि करके उन उन इस कान्त यावत् वचनों द्वारा उन का अभिनन्दन एवं सस्तवन करते हुए इस प्रकार से कहा (जय जय णदा । जय जय भदा भदं ते अजियं जिणाहि) हे नन्द-आनन्दस्वरूप भरत ! तुम्हारी जय हो जय हो हे भद्र ! कल्याण स्वरूप-भरत ! तुम्हारी बारबार जय हो तुम्हारा कल्याण हो वीरो द्वारा भी परास्त नहीं किये जा सकने वाले ऐसे शत्रु को तुम परास्त करो० इत्यादि रूप से जैसा यह पाठ २९वें सूत्र में इसी वक्षस्कार के कथन में कहा गया है वैसा ही यहाँ पर भी वह ग्रहण करना चाहिये (जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहि) जिस प्रकार से विनीता में प्रवेश करते समय भरत के प्रति "यावत् विहर" इसपाठ तक अर्थाभिलाषो से लेकर पाचक तक के जनों ने शुभाशीर्वाद प्रकट किया उसी प्रकार से यहाँ पर भी वही आशीर्वाद उसी रूप में प्रत्येक वृत्तने प्रकट किया ऐमाजानना चाहिये (तएणं भरहं रायाणं सेनावहरयणे जाव पुरोहियरयणे तिण्णिय सट्ठा सुमसया अद्वारससेणिष्पसेणीओ अण्णेय बहवे जाव सत्थवाहप्पभिइओ एवं चेव अभिसिचंति) इसके बाद भरत राजा का सेनापतिरत्न ने यावत् पुरोहित रत्न ने, ३६० रसवती-

ताहिं इट्ठाहिं जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहि चि कट्ठु जय २ सद्दं पडंजति) भरत राजानो अभिषेक करीने पछी इदंके-यावत् अञ्जलि जनावीने ते-ते छंछ-कान्त यावत् वचनेो वडे तेमनुं अभिनन्दन तेमञ्ज स्तवन करतां करतांआ प्रभाषे कट्ठु-(जय-जय णदा ! जय जय भदा ! भदं ते अजियं जिणाहि) हे नन्द ! आनन्द स्वरूप भद्राशुभ भरत ! तमारो जय थाओ, जय थाओ हे भद्र ! -कल्याण स्वरूप भरत ! तमारो बारबार जय थाओ, तमहं कल्याण थाओ । वीरो द्वारा पणु अपराजित शत्रुने तमे परास्त करे। वगेरे इपमां जेवो आ पाठ रत्तमा सूत्रमां आञ्ज वक्षस्कर' मां कडेवामा आवेद छे, तेवो ज पाठ अत्रे पणु सभजवे। (जहा पविसंतस्स भणिया जाव विहराहि) जेम विनीतामां प्रवेश करेती वभते भरत प्रत्ये "यावत् विहर" जे पाठ सुधी अर्थाभिलाषी थी मांतीने पायकसुधीना जनेओ जेम शुभाशीर्वादे प्रकट कथां तेम ज अत्रे पणु ते प्रभाषे ज आशीर्वादे इदंके राजजे प्रकट कथां जेम जल्लुपु जेधंजे. (तएणं त भरहं रायाणं सेणावहरयणे जाव पुरोहियरयणे तिण्णिय सट्ठा सुमसया अद्वारससेणिष्पसेणीओ अण्णेय बहवे जाव सत्थ- वाहप्पभिइओ एवं चेव अभिसिचंति) त्थारभाह भरत राजा सेनापति रत्ने यावत् पुरो-

सूपशतानि सूपकारशतानि अष्टादश श्रेणिप्रश्रेणयः अन्ये च बहवो यावत्सार्थवाहप्रभृतयः एवमेव उक्तप्रकारेण राजान इव अभिषिञ्चन्ति 'सेणावहरयणे जाव पुरोहियरयणे' अत्रे यावत्पदात् 'गाहावहरयणे बह्वहरयणे' इति ग्राह्यम् तथाच सेनापतिरत्नं पुरोहितरत्नं गायपतिरत्नं वर्द्धकिरत्नं पुरोहितरत्नं चेति बोध्यम् द्वितीय यावत्पदात् राजेश्वरतलवरमाडम्बिक कौटुम्बिकमन्त्रि महामन्त्रि गणकदौवारिकामात्यचेटपीठमर्दननगरनिगमश्रेष्ठिसेनापतयो ग्राह्याः यावत्सार्थवाहप्रभृतयः अत्र प्रभृतिपदात् सार्थवाहदूतसन्धिपालाः, अस्मिन्नेव वक्षस्कारे सप्तविंशतितमे सूत्रे एतेषां व्याख्यानं द्रष्टव्यम् 'तेहिं वरकमलपद्मणोहिं तदेव' तैः पूर्वोक्तैः वरकमलपतिष्ठानैः-वरकमले प्रतिष्ठानं स्थितिर्येषां ते तथाभूतास्तैः तथैव पूर्वोक्तप्रकारेणैव कलशविशेषणादिकं विज्ञेयम् 'जाव अभिथुणंति य' यावद् अभिषुवन्ति च यावत्पदात् अभिनन्दन्ति इति ग्राह्यम् 'सोलसदेवसहस्रा एवंचेव' ततः सर्वतः पश्चात् षोडशदेवसहस्राणि षोडशसहस्रसख्यकदेवाः एवमेव उक्तप्रकारेणैव अभिषिञ्चन्ति अभिनन्दन्ति अभिषुवन्ति च आभियोग्यसुराणाम् अन्तिमोऽभिषेकस्तु तद्भरतस्य मनुष्येन्द्रत्वेन मनुष्याधिकाराद् मनुष्यकृताभिषेकानन्तरभावित्वेन बोध्यं: यद्वा देवानां चिन्तितमात्र तदात्वसिद्धिकारकत्वेन अन्ते तथाविधोत्कृष्टाभिषेकविधानार्थम् अत्र यो

कारको ने १८ श्रेणिप्रश्रेणिजनो ने तथा अन्य और भी अनेक सार्थवाह आदिजनो ने इसी प्रकार से अभिषेक किया "सेणावहरयणे जाव पुरोहियरयणे" आगत यावत्पद से "गाहावहरयणे बह्वहरयणे" इन दो रत्नों का ग्रहण हुआ है. तथा द्वितीय यावत्पद से राजेश्वर तलवर माडम्बिक कौटुम्बिकमन्त्री, महामन्त्री, गणक, दौवारिक अमात्य, चेट पीठमर्द, नगर निगम श्रेष्ठी, सेनापति तथा सार्थवाहके प्रभृतिपद से दूत और सन्धिपाल इनका ग्रहण हुआ है. इनका व्याख्या न इसी वक्षस्कार के प्रकरण में २७ वें सूत्र में किया जाचुका है. (तेहिं वरकमलपद्मणोहिं) सेनापति से लेकर दूत और सन्धिपाल तक के इन समस्त जनोने श्रेष्ठकमल पर स्थापित किये गये कलशों द्वारा ही भरत नरेश का अभिषेक किया और पूर्वोक्तरूप से ही उनका अभिनन्दन और सस्तवन किया (सोलसदेवसहस्रा एवंचेव) इसी प्रकार से १६ हजार देवों ने भी अभिषेक

हितरत्नथी भांटीने ३६० रसवती करकेजे, १८ श्रेणि प्रश्रेणोजे तेमज अन्य पक्ष अनेक सार्थवाह आदि जनो जे आ प्रभावे ज अभिषेक कथे. "सेणावहरयणे पुरोहियरयणे" आ वाक्य भा आवेल यावत् पद थी "गाहावहरयणे बह्वहरयणे" जे जे रत्नोड अहस्य थयेले. जे. तेमज द्वितीय यावत् पदथी 'राजेश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक मन्त्री महामन्त्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द, नगर निगम श्रेष्ठि, सेनापति तेमज सार्थवाह साथेना 'प्रभृति' पदथी दूत अने सन्धिपाल जे सर्वपक्षे अहस्य थया जे जे सर्वदु व्याख्यान आज वक्षस्कारना प्रकरणभा २७भां सूत्रभां करवाभां आवेल जे. (तेहिं वरकमल पद्मणोहिं) सेनापतिथी भांटीने दूत अने सन्धिपाल सुधीना जे सर्व जनोजे अह कभली पर प्रस्थापित करवाभां आवेला कथे। वडे भरत नरेश ने अभिषेक कथे अने पूर्वोक्त रूपभां जे तमनु अभिनन्दन अने सस्तवन कथुं. (सोलस देवसहस्रा एवं जे आ

विशेषस्तमाह 'णवरं पम्हलसुकुमालाप जाव मउडं पिणद्धेति' नवरं अयं विशेषः पक्षमलसुकुमा-
रया पक्षमलया पक्षमवत्या सुकुमारया अतिकोमलया च अस्य च पदस्य यावत्पदगृहीते गन्ध-
कापायिक्या लघुशाटिक्या गात्राणि रूक्षयन्ति इत्यग्रे सम्बन्धः यावत् पिणद्धयन्ति अस्य च
पदस्य यावत्पदगृहीतं विचित्ररत्नोपेतं मुकुटमित्यत्राग्रे सम्बन्धः अत्र यावत्पदात् 'गंधकासाइ
एहिं गायान् ल्हैति सरसगोसीसचंदणेणं गायान् अणुलिपंति अणुलिपित्ता नासाणीसास वा-
यवोज्झं वणफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगं धवलं कणगखइअंतकम्म आगासफलिहसरिसप्पमं
अहय दिव्वं देवदूसजुयल णिअंसावेति णिअंसावित्ता हार पिणद्धेति पिणद्धित्ता एवं अद्धहारं
एगावलिं मुत्तावलिं रयणावलिं पालंबं अंगयाइं तुडियाइं कडयाइं दसमुद्धियाणंतगं कडिसुत्तगं
वेअच्छगसुत्तगं सुरविं कंठपुरवि कुडलाइं चूडामणिं चित्तरयणुककंडत्तिगन्धकापायिक्या
सुरभिगन्धकषायद्रव्यपरिकर्मितया लघुशाटिक्या इति गम्यं गात्राणि भरतदेहावयवान्
रूक्षयन्ति ते देवाः प्रोच्छन्तीत्यर्थः रूक्षयित्वा सरलेन गोशीर्षचन्दनेन गात्राणि अनुलिम्प-

आदि किया (णवरं पम्हलसुकुमालाप जाव मउडं पिणद्धेति) परन्तु देवो ने इतना विशेषकार्य और
किया कि भरत नरेश के शरीर का उन्हेने प्रोच्छन्न अतिमुकुमार-पक्षमल-रुधोवाली तौलिया,
से किया. और उनके मस्तकपर मुकुट रखा यहां यावत्पदसे गृहीत पाठका इस प्रकार से सम्बन्ध
है-"गंधकापायिक्या लघुशाटिक्या गात्राणि रूक्षयन्ति" इसके बाद "गंधकामाहएहिं गायान्
ल्हैति, सरसगोसीसचंदणेणं गायान् अणुलिपंति अणुलिपित्ता नासाणीसासवायवोज्झं चक्खुहरं
वणफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगं धवलं, कणगखइअंतकम्म आगासफलिहसरिसप्पमं अहयं
दिव्वं देवदूसजुयलं णिअंसावेति णिअंसावित्ता हारं पिणद्धेति पिणद्धित्ता एवं अद्धहारं एगावलिमुत्ता
वलि रयणावलिं पालंबं अंगयाइं तुडियाइं कडयाइं दसमुद्धियाणंतगं कडिसुत्तगं वेअच्छगसुत्तगं
सुरविं कंठपुरवि कुडलाइं, चूडामणिं, चित्तरयणुककंडत्ति" यह पाठ है इसका तात्पर्य ऐसा
है कि जब इन देवों ने सुगंधित सुकुमार तौलिया-से भरत महाराजा के शरीर को पोछ दिया

प्रभाषे ७ १६ उल्लर देवेअये पथु अबिणेड वगेरे विधि सम्पन्न करी (णवरं पम् सुकु
मालाप जाव मउडं पिणद्धेति) पथु देवेअये आट्ठुं विशेष रूपमां पधादे क्खुं के भरत नरेश
ना शरीरसुं तेमणे प्रोच्छन्न-अति सुकुमार-पक्षमल दुवावाणा अगोछा थी-क्खुं. अने
मस्तकणी उपर मुकुट भूक्ये. अडो यावत् पदथी संगृहीत पाठ आ प्रभाषे छे-गंधकापायिक्या
लघु शाटिक्या, गात्राणि रूक्षयन्ति" त्थारथाइ "गंधकासाइएहिं गायान् ल्हैति, सरस
गोसीसचंदणेणं गायान् अणुलिपंति, अणुलिपित्ता नासाणीसासवायवोज्झं चक्खुहरं
वणफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगं धवलं, कणगखइअंतकम्म आगासफलिह
सरिसप्पमं अहय दिव्वं देवदूसजुयलं णिअंसावेति णिअंसावित्ता हारं पिणद्धेति,
पिणद्धित्ता एवं अद्धहारं एगावलिं मुत्तावलिं, रयणावलिं पालंबं अंगयाइं तुडियाइं कडयाइं
दसमुद्धियाणंतगं कडिसुत्तगं वेअच्छग - सुत्तगं सुरविं कंठपुरवि कुडलाइं, चूडामणिं
चित्तरयणुककंडत्ति" अथु तात्पर्य आ प्रभाषे छेके ते देवेअये सुगंधित, सुकुमार अगोछा
थी भरत राजना शरीर ने पोछ्युं त्थार थाइ तेमणे तेमना शरीर उपर गोशीर्षचंदन सुं

न्ति अनुलिप्य देवदूष्ययुगलं देववस्त्रयुगलं निवासयन्ति-परिधापयन्ति इति योगः कीदृशं तदित्याह 'नासाणीसासवायवोज्झं' नासिकाणिःश्वासवातवाह्यम् नासिकाणिःश्वासवातेन बाह्यं दूरापनेयं *लक्षणंतरमित्यर्थः अयम्भावः महावातस्य का कथा नासिका वातोऽपि स्वस्वक्ष्म बलेन तद् वस्त्रयुगलम् अन्यत्र प्रापयति, तथा चक्षुर्हरम्-नयनसुखकरम् रूपातिशयत्वात् तथा वर्णस्पर्शयुक्तम् अतिशायिना वर्णेन स्पर्शेन च युक्तम् पुनः कीदृशं तत् 'हयलाला-पेलवाइरेगं' हयलालापेक्षवातिरेकम्-हयलाला-अश्वमुखजलं तस्मादपि पेलव कोमलम् अतिरेकम् अतिरेकेण अतिशयेन अतिविशिष्टमृदुत्वलघुत्वगुणोपेतमितिभावः, तथा धवल निर्मलं कनकखचितान्नकर्म-कनकेन सुवर्णेन खचितानि विच्छुरितानि अन्तकर्माणि अश्वरथो वा न लक्षणानि यस्य तत्तथाभूतम् तथा आकाशस्फटिकसदृशप्रभम् आकाशस्फटिको नाम अतिस्वच्छस्फटिकविशेषस्तत्सदृशो प्रभा दीप्ति र्यस्य तत्तथाभूतम् अहतं छिद्ररहितं नवीनमित्यर्थः दिव्यं दिव्यकान्तिमत् इत्थमुक्तविशेषणविशिष्टम् देवदूष्ययुगलं निवासयन्ति-परिधापयन्ति-निवास्य 'हारं पिण्डेति' हारं-पिण्डेति-ते देवाः चक्रवर्तिनो भरतस्य कण्ठप्रदेशे हारम् अष्टादशसरिकं बध्नन्ति 'पिण्डेत्ता' हारं

तब उसके बाद उन्होंने फिर उनके शरीरपर गोशीर्षचन्दन का लेप किया लेपकरके फिर उन्होंने देवदूष्य युगल पहिराया. यह देवदूष्य-युगल इतना अधिक वजन में कम था कि वह नाक की वायु से भी हलने लग जाता इस तरह से यहाँ देवदूष्य युगल का पतलापन प्रकट किया है. जो अधिक पतला होता है वही वजन में कम होता है तथा यह देवदूष्य युगल रूपातिशय वाला होनेसे नयनोंको सुख उपजाने वाला था वर्णस्पर्श से-अतिशायी वर्ण से और अतिशायी स्पर्श से युक्त था हय-अश्व के मुखकी लाला-जैमी कोमल होती है ऐसा ही कोमल यह था आगन्तुक मल से विहीन होने के कारण यह निर्मल था. इसकी जो किनार थी वह सुवर्ण- से खचित थी आकाशस्फटिक अतिस्वच्छस्फटिक विशेष की तरह इसको दीप्ति थी. यह अहत छिद्ररहित था. अर्थात् नवीन था और दिव्य था-दिव्यकान्ति से सुशोभित था. इस तरह के इन विशेषणों से युक्त देवदूष्य युगल को पहिराकर फिर उन्होंने उनके गले में हार पहिराया

लेपन कथं' लेपन करीने पछी तेमणे देवदूष्य युगल धारण करायुं. अे देवदूष्य युगल वजनमा ओटलुं हट्टु हटुं के ते नाकना श्वासोच्छ्वासथी पणु हाततु हटुं आप्रभाणे अर्द्धा देवदूष्य युगलतु अीष्वा पणु प्रकट करवामां आवेल छे अे वधारे अीष्ुं डोय छे तेअ वजनमां ओर्द्धुं डोय छे. तेमअ अे देवदूष्य युगल रूपातिशयवाणु डोवाथी नयनां ने सुअ आपनाडुं हटुं नथुं स्पर्शथी-अतिशय थी वणु थी अने अतिशायी स्पर्श थी-अे युक्त हटुं. हय-अश्वनासुअनी हाण अेवी डोमल डोय छे, अेवु अ डोमल अे हटुं आगन्तुक मणथी विहीन डोना अहल अे निर्मल हटुं अेनी अे 'ओड'रदती ते सुवणुं अथिन हती आकाश स्फटिक अति स्वच्छ स्फटिक-विशेषनी अेअ अेनी हीसि हती अे अहत छिद्र रहित हटुं. ओटवे के नवीन हटुं अने दिव्य हटुं. दिव्य कान्तिथी सुशोभित हटुं आ प्रभाणेना अेविशेषणोथी युक्त देवदूष्य युगल ने धारण करवीने पछी तेमणे तेमना गुणामां डार

पिनद्य 'एवं अर्द्धहारं एगावली' इत्यादि । एवम् एतेन अभिलाषेनार्द्धहारादीनि वक्तव्यानि यावन्मुकुटमिति तत्र अर्द्धहारं नवसरिकम् एकावलीम् मुक्तावलीम् मुक्ताफलमयीम्, कनकावलीं कनकमणिमयीं रत्नावलीम् रत्नमयीम् प्रालम्बं तपनीयमयं विचित्रमणिरत्नभक्तचित्रं शरीरप्रमाणम् आभरणविशेषम् अङ्गदे त्रुटिके च बाहुभूषणे कटकै हस्तभूषणे दशमुद्रिकानन्तक-हस्ताङ्गुलिमुद्रिकादशकम्, कटिसूत्रिकं पुरुषरुदयाभरणम् वैकश्यसूत्रकम् उत्तरासङ्गम् दुपष्टा इति भाषाप्रसिद्धम् सुरवीं मृदङ्गाकारमाभरणम्, कण्ठ-सुरवीं-कण्ठासन्नं तदेव, कुण्डले प्रसिद्धे, चूडामणि शिरोविशिष्टभूषणम् चित्ररत्नोत्कटम् विचित्ररत्नोपेतं मुकुटं ते देवाः पिनहन्ति इति 'तयणंतरं च णं ददरमलयसुगन्धिर्हि गंधेहिं गायार्इ अन्मुक्खेति' तदनन्तरं च खलु दर्दरमलयसुगन्धितः दर्दरमलय-

हार पहिराकर फिर अर्धहार एकावली मुक्तावली रत्नावली इन गठे के आभूषणों को पहिराया १८ छर का हार होता है ९ नवछरका अर्ध हार होता है प्रालम्ब पहिराया यह प्रालम्ब एक प्रकार का आभरणविशेषरूप होता है. तपनीय सुवर्ण का यह बना हुआ होता है. और अनेक प्रकार के मणियों और रत्नों के द्वारा इसमें चित्र बने रहते हैं । तथा यह जितना शरीर होता है उसी प्रमाण में बना हुआ होता है । इसके पहिराने के बाद फिर उसे अङ्गद पहिराये गये त्रुटित बाहु के आभूषण पहिराये गये. कटक हाथके आभूषण बलय पहिराये गये दश अंगुलियों में दश मुद्रिकाएं पहिराई गई कटि में कटिसूत्र करधौनी पहिराया शरीर पर-दुपष्टा उड़ाया, कानों में सुरवी पहिराई कंठ में सुरवी-कानों के चारों ओर कानों को घेरनेवाला आभूषण-पहिराया यह कान से निकल जाने पर कंठ तक लटकने लगता है इसलिये इसे कंठसुरवी कहा गया है, पुनः कानों में कुंडल भी पहिराये साथे पर चूडामणि शिरोभूषण-पहिराया (तयणंतरं च ण ददरमलयसुगन्धिर्हि गंधेहिं गायार्इ अन्मुक्खेति) इन सब आभूषणों

पहिराये. ६१ पहिरावीने पछी अर्धहार, ओकावली मुक्तावली, रत्नावली अने गणाना आभूषणो पहिराव्या. १८ लदीने ६१ हार डोय छे. ६ लदीने अर्ध हार डोय छे. प्रालम्ब पहिराव्या-अे प्रालम्ब ओक प्रकारतुं आभरणु विशेष रूप डोय छे. तपनीयसुवर्ण निर्मित अे डोय छे. अनेक प्रकारना मणियो अने रत्नो वडे ओमां चित्रो भनेला डोय छे. तेमज्ज अे शरीरना प्रमाणना आधारे भनेल डोय छे. अे पहिराव्या पछी ते रत्नने 'अगदो' धारणु करववामा आव्या त्रुटित बाहुना-आभूषणो पहिराववामा आव्या कटक हाथना आभूषणो, वलयो पहिराववामा आव्या दश आंगणो ओमां दश मुद्रिकाओ पहिरावी. कटिमा कटिसूत्र ओट्टे के कटोरो पहिराववामा आव्यो शरीर उपर ओप भूषवामा आव्यो कानोमा कुंडल पहिराववामा आव्या कठमा सुरवी ओट्टे के कानोमा कानोने ओमेरथी आवृत करी ले ओपुं आभूषणु पहिराववामा आव्यु अे कानमांथी नीकणी नय त्यारे कठ सुधी लटकवा भाडे छे ओथी न अे आभूषणु ने कंठसुरवी कडेवामा आवेल छे करी कानोमा कुंडलो पहिराव्या भस्तक उपर चूडामणि-शिरोभूषणु पहिराव्यु. अने त्यार भाद विचित्र रत्नोथी मुक्ता, मुकुट, पहिराववामा आव्यो (तयणतरं च ण ददरमलयसुगन्धिर्हि गंधेहिं गायार्इ

सम्बन्धिनो ये सुगन्धा शोमनवासाः चन्दनवृक्षादयस्तेषां गन्धो येषु द्रव्येषु ते तथा भूतास्तैः गन्धैः काश्मीरकर्पूरकस्तुरीमधृति गन्धवद्द्रव्यैः गात्राणि अभ्युक्षन्ति सिञ्चन्ति ते देवाः भरतस्य । अयं भागः दर्दरमन्थ गिरिसम्बन्धिवन्दनादिमिश्रितानेकसुमिद्रव्यघुसृणरसच्छटकान् कुर्वन्ति भरतवासंसीति भरतशरोरे च 'दिव्यं च सुमणोदामं पिण्डेति' च पुनः दिव्यं सुमनोदामं कुसुममालां पिण्डयन्ति परिधापयन्ति किं बहुना ? उक्तेनेति शेषः 'गंठिमवेष्टिम जाव विभूसिय करेति' ग्रन्थिमवेष्टिम यावद् विभूषितं कुर्वन्ति अत्र यावत्पदात् 'पुरिमसघाद्मेण चउच्चिद्देण मल्लेणं कप्पवृक्षयं पिव समलंकिय' त्ति ग्राह्यम् ग्रन्थनं ग्रन्थः ते निवृत्तं ग्रन्थिमम् यत् सूत्रादिना ग्रन्थयते तद् ग्रन्थिममिति भावः, ग्रथितं सद् वेष्टयते यत्तद् वेष्टिमम् येन वंशशलाकादिमय पठजरादि पूर्यते तद्ग्रत् पूर्यते इति पूरिमम्, यत्परस्परं नालं संघात्यते तत् सघातिमम् एवंविधेन तेन ग्रन्थिमवेष्टिमपूरिमसंघातिमेन चतुर्विधेन मालयेन कल्पवृक्षमिव समलंकृतविभूषितं भरतचक्रिवर्तिनं कुर्वन्ति ते देवाः अथ कृताभिषेको भरतो यत्कृतवान् तदाह— 'तएणं से भरहे राया महया महया रायाभिसेएण अभिसिंचिए समाणे कोडु बियपुरिसे सदावेइ' ततः खलु तदन्तरं किल स भरतो राजा महता महता राज्याभिषेकेण अभिषिक्तः सन् कौटुम्बिकपुरुषान् शन्दयति आह्वयति 'सदावित्ता' शब्दयित्वा आहूय 'एवं वयासी' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत् उक्तवान् 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया' इत्यिखंधवरगया

द्वारा भरतचक्री के शरीर की सजावट हो जानेके बाद फिर उन देवों ने उनके शरीर पर चन्दन वृक्ष आदि का गंध जिन्हो में संमिलित हैं ऐसे काश्मीर केशर, कर्पूर और कस्तुरी आदि सुगन्धित द्रव्यों को छिड़का (दिव्यं च सुमणोदामं पिण्डेति) और फिर पुष्पों की मालाएँ उन्हें पहिराईं अधिक क्या कहा जाय—(गंठिमवेष्टिम जाव विभूसिय करेति) उन देवों ने उस भरत चक्री को ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम और सघातिम इन चारो प्रकार की मालाओं से ऐसा सुशोभित एवं अलंकृत कर दिया कि मानो यह कल्पवृक्ष ही है। (तएणं से भरहे राया महयां रायाभिसेएण अभिसिंचिए समाणे कोडुंबियपुरिसे सदावेइ), जब भरत नरेश पूर्वोक्त प्रकार से राज्याभिषेक की समस्त सामग्री से अभिषिक्त हो चुके—तब उन्होंने कौटुम्बिक पुरुषों को

अभ्युक्षन्ति) को सर्व आभूषणो वडे भरतयकीना शरीर ने समलंकृत करीने पछी ते देवो को तेमना शरीर पर चन्दन-वृक्ष आदिनी सुगंधि जेभां संमिलित छे जेवा काश्मीर केशर कर्पूर अने कस्तुरी वगैरे सुगंधित द्रव्यो छिड़का (दिव्यं च सुमणोदामं पिण्डेति) अने पछी पुष्पोनी मालाओ ते शब्दने धारण करवाभां आवी वधादे शु कछीओ (गंठिमवेष्टिम जाव विभूसिय करेति) ते देवोओ ते भरत यकीने ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम अने संघातिम ओ थारे प्रकारनी मालाओथी जेवी रीते सुशोभित तेमन समलंकृत करी दीधा के जेओ ते कल्पवृक्ष जे न होय ! (तएणं से भरहे राया महयां रायाभिसेएण अभिसिंचिए समाणे कोडु बियपुरिसे सदावेइ) थारे भरत नरेश पूर्वोक्त प्रकारथी राज्याभिषेकनी सर्व सामग्री वडे अभिषिक्त यई चुक्या थारे तेमणे कौटुम्बिक पुषुपेने मालाओ। (सदावित्ता

विणीयाए रायहाणीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरजाव महापहपहेसु महया महया सद्देण उग्घोसेमाणा उग्घोसेमणा उस्सुक्कं उक्कर उक्किट्ट अदिज्ज अमिज्ज अम्महपवेसं अदं-
डकुदंडिमं जाव सपुरजणजाणवयं दुवाळससंवच्चरियं पमोय घोसेः घोसित्ता ममेय माण-
सियं पच्चप्पिणहत्ति' तत्र क्षिप्रमेव शीघ्राति शीघ्रमेव भो देवानुप्रिया। यूयं हस्तिस्कन्धवर-
गताः श्रेष्ठहस्तिस्कन्धेषु आरूढा. सन्तः विनीताया राजधान्याः शृङ्गाटकत्रिकचतुष्कचत्वर
यावद् महापथपथेषु स्थानेषु महता महता शब्देन उद्घोषयन्त उद्घोषयन्तः जल्पन्तः
जल्पन्तः आभीक्ष्ण्ये द्विर्वचनम् उच्छुल्कम् उत्कम् उत्कृष्टम् अदेयम् अमेयम् अभटप्रवेशम्
अदण्डकुदण्डिमम् यावत् सपुरजनजानपदम् द्वादशसंवत्सरिकम् प्रमोद घोषयत घोषयित्वा
मम एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत इति तत्र द्वादशसंवत्सरिकम् द्वादशसंवत्सराः वर्षाणि
कालो मानं यस्य स द्वादशसंवत्सरिकस्तं प्रमोदहेतुत्वात् प्रमोदः उत्सवस्तं घोषयत
उच्चस्वरेण प्रकाशयत कीदृश प्रमोदं तत्राह—उच्छुल्कमित्यादि । उन्मुक्तं त्यक्तं शुल्क
विक्रेतव्य वस्तु प्रति राजदेयं द्रव्यं यस्मिन् प्रमोदे स तथाभूतस्तम् तथा उत्करम् उन्मुक्तः
त्यक्तः करः गवादीन् प्रति प्रतिवर्षं राजदेयं द्रव्यं यस्मिन् स तथाभूतस्तम्, तथा उत्क-

बुलाया—(स्त्रिणामेव भो देवानुप्रिया । हत्थिखंघवरगया विणीयाए रायहाणीए सिंघाडगतिगच-
उक्कचच्चर महया २ सद्देण उग्घोसेमाणा २) हे देवानुप्रियो । तुम सब हाथी के ऊपर बैठकर
बड़े जोर से विनीता राजधानी के जितने भी शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, आदि महा-
पथ तर्क के मार्ग हैं उनमें सब में ऐसी घोषणा करो कि (उस्सुक्क उक्करं उक्किट्ट अदिज्जं
अमिज्जं अम्महपवेसं अदंङ्कुदंडिमं जाव सपुरजणजाणवयं दुवाळससंवच्चरियं पमोयं)
पुरवासी समस्त जन और मेरे राज्य में रहनेवाले जन सब १२ वर्ष तक उत्सव करे—उस
उत्सव में विक्रेतव्यवस्तु पर जो राज्य की ओर से टेक्स लिया जाता है वह माफ किया गया
है गाय आदि जानवरो पर जो प्रतिवर्ष कर राज्य की ओर से निर्धारित किया हुआ है
वह भी माफ कर दिया गया है, बेचने पर जो सरकारी टेक्स लिया जाता है वह भी माफ
कर दिया गया है तथा मुनाफा से वस्तु बेचकर जो द्रव्य अर्जित किया जाता है, वह

पण वयासी) અને બોલાવીને આ પ્રમાણે કહયું (સ્ત્રિણામેવ ભો દેવાણુપ્પિયા ! હત્થિખંઘવર-
ગયા વિણીયાए रायहाणीए, सिंघाडगतिगचउक्कचच्चर महया २ सद्देण उग्घोसेमाणा
२) हे देवानुप्रियो । तमे सवे हथी उपर भेसीने भूम भेरथी विनीता राजधानी ना
नेट्ठांशृंगाटके, त्रिके, चतुष्के, चत्तरे वगेरे महापथाना मार्गे छे, ते सर्वभां जेवी
घोषणा करे के (उस्सुक्कं उक्कर उक्किट्ट अदिज्जं अमिज्जं अम्महपवेसं अदंङ्कुदंडिमं
जाव सपुरजणजाणवयं दुवाळससंवच्चरियं पमोयं) हे पुरवासी वर्जनो । मारा राज्यभां
रहेनारा जने सवे १२ वर्ष सुधी उत्सव करे ते उत्सव भां विक्रेत वस्तु उपर जे राज
तरे थी टेक्स (कर) देवाभां आवे छे, ते भाइ करवाभा आवेत्त छे गाय वगेरे पशुयो
उपर जे हर वर्षे राज तरे थी कर निर्धारित करवाभा आवेत्त छे ते यणु भाइ करवाभां
आवेत्त छे वस्तुना विक्रेत उपर जे सरकारी टेक्स देवाभां आवे छे ते यणु भाइ करवाभां

एष उत उन्मुक्तं त्यक्तं कष्टं कर्षणम् लभ्यवस्तुतो मूल्यकर्षणमित्यर्थः यस्मिन् स तथा भूतस्तम् तथा अदेयम् विक्रयनिषेधेन न विद्यते देयं दातव्यद्रव्यं यस्मिन् स तथा भूतस्तम् विक्रयकररहितम् इत्यर्थः पुनः कौटुम्बम् अमेयम् क्रयविक्रयनिषेधेन न विद्यते मेयं मातुं योग्यं वस्तु यस्मिन् स तथाभूतस्तम् क्रयवस्तुन एतावदेव प्रमाणं विक्रय वस्तुन एतावदेव नियमरहितम् पुनः कौटुम्बम् अभटप्रवेशम् न विद्यते भटानां राजपुरुषाणां प्रवेशः कुटुम्बगृहेषु यस्मिन् स तथाभूतस्तम् द्वादशवर्षपर्यन्तं कोऽपि राजपुरुषः कस्यापि गृहे नागच्छतु इत्यर्थः पुनः कौटुम्बम् अदण्डकुदण्डिमम् दण्डेन लभ्यं द्रव्यं दण्डः कुदण्डेन निवृत्तं कुदण्डिमं राजद्रव्यं तन्नास्ति यस्मिन् स तथाभूतस्तम्, अत्र च दण्डो नाम यथापराधं राजग्राह्यं द्रव्यम् कुदण्डस्तु राजकर्मचारिणां प्रज्ञाद्यपराधात् अपराधिनो महत्यपराधे अल्पम् अल्पापराधे चाधिकं यथोचितरहितरहित राजग्राह्यं द्रव्यमिति विज्ञेयम् । यावत् सपुरजनजानपद द्वादशसवत्सरिकं प्रमोदम् उत्सव घोषयत घोषयित्वा ममैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत समर्पयत अत्र यावत्पदात् अधरिमम् गणिकावरनाटकीयक-

मुनाफा भी माफ कर दिया है अर्थात् जिस मूल्य से जो वस्तु बाहर से आवे—वह वस्तु उसी मूल्य से बेची जावे' इसमें क्षतिकी पूर्ति राज्य की ओर से होगी नाप तौलसे कोई वस्तु नहीं बेची जावेगी तथा कुटुम्बी जनों के घरों में १२ वर्ष तक राज्य के किसी भी कर्मचारी का प्रवेश नहीं होगा क्योंकि वह वर्जित कर दिया गया है किसी भी प्रजाजन पर या राजकर्मचारी पर अपराध के होने पर या जो जुर्माना लिया जाता है वह १२ वर्ष तक नहीं लिया जावेगा अपराध के होने पर अपराध की मात्रा के अनुसार राजग्राह्य द्रव्य का नाम दण्ड है और राजकर्मचारी की भूल होने पर बड़े अपराध में थोड़ा राज्यग्राह्य लेना और थोड़े से अपराध हो जाने पर अधिक द्रव्य लेना—जुर्माना कर देना यह कुदण्ड है—ये दोनों प्रकार के दण्ड राज्य की तरफ से १२ वर्ष तक स्थगित (माफ) कर दिये गये हैं. इस प्रकार की घोषणा करके" मुझे इसकी पीछे खबर दो यहां पर यावत्पद से—“अधरिमम्, गणिका-

आवे छे, कोट्टे के किंमतमां के वस्तु पहारथी आवे ते वस्तु तेज किंमतमां वेचवामां आवे, जेमां क्षति पूर्ति राज तरक्षथी करवामां आवेशे, भाप-तोळ थी केरि पणु वस्तु वेचवामा आवेशे नहि, तेमज कौट्टु (अक भाषुसोना धरेमां १२ वर्ष सुधी राजथनां केरि पणु कर्मचारीनां प्रवेश थरी नही केमके जे अजे आज्ञा करवामा आवी छे केरि पणु प्रजाजन अथवा राजकर्मचारी उपर अपराध होवा पहल जे जुर्माना के अर्थदंड लेवामां आवे छे ते १२ वर्ष सुधी लेवामा आवेशे नही अपराध थाय अने ते अपराधनी मात्रा सुजण राजग्राह्य द्रव्यनुं नाम दंड छे, अने राजकर्मचारीनी भूल थाय त्यारे भौटा अपराध पहल कम राजग्राह्य लेवो, अने नानो अपराध थाय त्यारे वधारे द्रव्य लेवु-दंड करवो जे कुदंड छे जे अने प्रकारना दंडो राजथ तरक्ष थी १२ वर्ष भाटे स्थगित करवामां आवे छे कोट्टे के भाक्ष करवामां आवे छे, आ प्रभाषु घोषणा करीने अने को अगेनी अत्रर आपो अही यावत् पद थी “अधरिमम्, गणिकावरनाटकीयकलि

लितम् अनेक तालाचरानुचरितम् अनुद्धृतमृदङ्गम् अम्लानमाल्यदामानम् प्रमुदित प्रकी-
 डितसपुरजनजानपदम् विजयवैजयिकम् इति ग्राह्यम् पुनः क्रीडगमुत्सवम् अधरिमम्
 न विद्यते धरिमम् कस्यापि ऋणद्रव्यं यस्मिन् स त भूतस्तम् अयम्भावः उत्तमर्णाघम-
 णीभ्यां परस्परम् ऋणनयनार्थं न विवदनीयम् उत्सवेऽस्मिन् गजगृहात् देयद्रव्यं नीत्वा
 अधमर्णेन उत्तमर्णाय दातव्यमिति, पुनः क्रीडशम् गणिकावरनाटकीयकलितम् गणिका-
 वरैः विलासिनीप्रधानैः नाटकीयैः नाटकप्रतिबद्धपात्रैः कलितः शोभितो यः स तथा
 भूतस्तम् चतुर्गणिकायुस्तमुत्सव कुरुत न तु व्यभिचारार्थम् अनेकतालाचरानुचरितम्
 अनेके ये ताडचरा प्रेक्षाकारि विशेषास्तरनुचरितः आसेवितो यः उत्सवः स तथाभूत-
 स्तम् तथा अनूद्धृतमृदङ्गम् अनु आनुरूप्येण मृदङ्गसम्बन्धिविना उद्धृताः कलाकौशल-
 दर्शनार्थम् ऊर्ध्वं सिप्ताः मृदङ्गाः यस्मिन् स तथा भूतस्तम् मृदंगादिवाद्ययुक्तम् तथा
 अम्लानमाल्यदामानम् अम्लानानि म्लानरहितानि माल्यदामानि पुष्पमालाः यस्मिन् स
 तथाभूतस्तम् अभिनवमालायुक्तमुत्सवं कुरुत इत्यर्थः पुनः क्रीडशम् प्रमुदितप्रकीडित
 सपुरजनजानपदम् प्रमुदिता. सानन्दा प्रकीडिता तत्र क्रीडितुमारब्धाः सपुरजनाः अयो-

वर नाटकीयकलितम्, अनेकतालाचरानुचरितम्, अनुद्धृतमृदङ्गम्, अम्लानमाल्यदामानम्, प्रमुदित-
 प्रकीडितसपुरजनजानपदम्, विजयवैजयन्तीकम् " इस पाठ का ग्रहण हुआ है इस गृहोत्सव पाठ
 का भाव यह है ऋणदाता और ऋणगृहीता इन दोनों को अपना ऋण वसूल करने के लिये
 परस्पर में लड़ाई झगडा करना या उसपर कचहरी में जाकर अभियोग दायर करना ये सब
 बातें १२ वर्ष तक बन्द कर दी गई है कर्जदार अपने कर्ज को चुकाने के लिये राज्य कोष से
 पैसा ले जावे और ऋण दाता के ऋण की पूर्ति कर देवे गणिकाजनो द्वारा १२ वर्ष तक
 जनता इस उत्सव में मनमाना उत्सव करावे कोई इनके साथ व्यभिचारक्रिया न करें अनेक
 प्रेक्षाकारी विशेषो से यह उत्सव आसेवित होता रहे. अपनी अपनी कला में कुशलता दिखाने के लिये
 मृदङ्गवादक जन खूब जिस प्रकार से बजाने में उनको वादन कुशलता प्रगट होसके इस प्रकार
 प्रकट करने में स्वतन्त्र हैं. इस उत्सव में पुष्प मालाओ का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया

तालाचरानुचरितम्, अनुद्धृतमृदङ्गम्, अम्लानमाल्यदामानम्, प्रमुदितप्रकीडितसपुरजन-
 पदम् विजयवैजयन्तिकम् " ये पाठ अदृश्य थये छे ये गृहीत पाठने भाव आ
 प्रभाषे छे-ऋण दाता अने ऋण गृहीता ओओ. जन्नेने ऋण वसूली माटे परस्पर लडपु,
 कोर्टमां इरिय ह करवी अने केस हाथल करवे, ओ सव पातो १२ वर्ष सुधी स्थगित
 करवाभां आवी छे. कर्जदार पीताना कर्जने चुकरवा माटे राज्य कोषथी नाष्वां लड लडशके
 छे अने आम ऋण दाताना ऋणनी पूर्ति करी देवी, गणिकाओ वडे १२ वर्ष सुधी जनताना
 ओ उत्सवमा धरिछा सुभल उत्सवा आथेअनित करावडावे कोठे तेमनी साथे व्यभिचार
 करे नही अनेक प्रेक्षाकारी विशेषेथी ओ उत्सव आसेवित थाय. पीत पीतानी कणामां
 कुशलता पताववा माटे मृदंग वादको ले रीते वगाडवाथी तेमनी कुशलता प्रकट थाय ते
 रीते वगाडीने कुशलता पतावी शके छे. ओ उत्सवमा ईदनी भाण.ओने प्रचुर मात्राभा उपयोग

ध्यावासिननसहिताः जनपदाः कोशलदेशवासिनो जनाः यत्र स तथाभूतस्तम्, तथा विजयवैजयिकम् अतिशयेन विजयो विजयः स प्रयोजनं यस्मिन् स तथाभूतस्तम् एता-
 वद्विशेषणविशिष्ट द्वादशसंवत्सरिकं प्रमोदम् उत्सवमुद्धोषयत उच्चस्वरेण सर्वप्रजाजनान्
 अबोधयत इति घोषयित्वा ममैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत समर्पयत इति, अथ ते कौटुम्बिक-
 पुरुषाः राज्ञ आजानुसारेण यथा प्रवृत्तवन्त स्तथाऽऽह 'तएण' इत्यादि । 'तएणं ते को-
 ङ्वियपुरिसा भरहेण रणा एवं वुत्ता समाणा हट्टुत्तु चित्तमाणंदिया पीइमणा हरिसवस-
 तिमप्पमाणहियया विणएणं वयण पड्डिणुणति' तत खलु तदनन्तर किञ्च ते कौटुम्बिक-
 पुरुषा भरतेन राज्ञ एवम् उक्तप्रकारेण उक्ताः आज्ञप्ताः सन्त' हट्टुत्तु चित्तानन्दिताः
 प्रीतिमनसः परमसौमनस्यता हर्षवशविसर्पद् हृदयाः भूत्वा विनयेन विनयपूर्वकम् वचनं
 प्रतिशृण्वन्ति स्वीकुर्वन्ति 'पड्डिसुणित्ता' प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य 'खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया
 जाव घोसेति' क्षिप्रमेव शीघ्रमेव हस्तिस्फुन्धवरगताः श्रेष्ठहस्तिस्फुन्धेषु समारूढाः सन्तः
 ते कौटुम्बिकपुरुषाः यावद् घोषन्ति अत्र यावत्पदात् विनीतायाः राजधान्याः शृङ्गाटक
 त्रिकवत्सुकचत्वरचतुर्मुखमज्ञापथेषु महता महता शब्देन उद्घोषयन्त उद्घोषयन्तः

जावे कोशल देशवासी समस्त जन अयोध्या वागी जनो के साथ मिलकर आनन्द पूर्वक भिन्न
 २ प्रकार की क्रोडाओ से खेल तमाशो से इस उत्सव को सफत्र करें—जगह २ इस उत्सव की
 आराधनामें विजय वैजन्तिया फहराई जावे इस प्रकार के इन पूर्वोक्त विशेषणो वाले उत्सव होने की
 तुम घोषणा करो (तएण ते कोङ्खियपुरिसा भरहेण रणा एवं वुत्ता समाणा हट्टुत्तु चित्तमाणंदिया
 पंइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएणं वयणं पड्डिणुणति) इस प्रकार भरत राजा द्वारा आज्ञप्त
 हुए वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत अधिक हट्ट और तुष्ट चित्त हुए उनका मन प्रीतियुक्त हो गया
 उनका हृदय आनन्द से उछलने लगा बड़ी विनय के साथ उन्होंने ने अपने स्वामी की आज्ञा के
 बचनों को स्वीकार किया (पड्डिसुणित्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया जाव घोसेति) स्वीकार
 करके वे शीघ्र ही हाथी पर बैठकर अयोध्या राजधानी के शृङ्गाटक आदि मार्गपर गये
 और जोर २ से उच्छुक्क आदि पूर्वोक्त विशेषण संपन्न उत्सव होने को घोषणा करने लगे

करनामा आवे कोशल देश वासी समस्त जनो अयोध्यावासी जनो साथे भगिने आनंद पूर्वक
 भिन्न भिन्न प्रकारनी क्रोडाओशी-रभतो थी ओ उत्सवने सकण भनावे ठेके-ठेकाओ ओ उत्सवनी
 आराधनामा विजयवैजन्तीओ, लडेरववामा आवे, आ प्रभाओ ओ पूर्वोक्त विशेषणो
 वागा उत्सव अणेनी तमे घोषणा करे। (तएण ते कोङ्खियपुरिसा भरहेण रणा एवं
 वुत्ता समाणा हट्टुत्तु चित्तमाणंदिया पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएण वयणं
 पड्डिणुणति) आ प्रभाओ भरत राजा वडे आज्ञप्त थयेला कौटुम्बिक पुरुषो अत्यधिक हट्ट अने
 तुष्ट निवाणा थया तेमनुं भ १ प्रीतियुक्त थयु अने तेमनुं हट्टय आनंद थी उछलणा लाग्यु
 अतीव नम्रतापूर्वक तेमणुं पीताना स्वामीनी आज्ञाना वयने स्वीकारो कीया। (पड्डिसुणित्ता
 खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया जाव घोसेति) स्वीकार करीने तेओ शीघ्र हाथी पर बैसीने
 अयोध्या राजधानीना शृङ्गाटक आदि मार्गो उपर गया अने जोर जोरथी उच्छुक्क आदि

उच्छुल्कम् उत्करम् उत्कृष्टम् अदेयम् अमेयम् अभद्रप्रवेशम् अदण्डकुदण्डिमम् अधर्मम् गणिकावरनाटकीयकलितम् अनेकतालाचरानुचरितम् अनुधृतमृदङ्गम् अम्भानमाल्य-
दामानम्, प्रमुदितप्रक्रीडितसपुरजनजानपदम्, विजयवैजयिकम् इति ग्राह्यम्, तत्र शृङ्गा-
टकं 'मिषाडा' इति भाषा प्रसिद्ध जलजफलं तदाकार स्थान त्रिकोणमित्यर्थः, त्रिकम्-
मिलितत्रिमार्गस्थानम् २, चतुष्कम् यत्र चत्वारो मार्गाःमिलन्ति तत् 'चोगाहा' इति भाषा-
प्रसिद्धम् ३, चत्वरम् - बहुमार्गसंमेलनस्थानम् चतुर्मुखम्-चतुर्द्वारस्थानम् आगन्तुका-
दीनां विश्रामस्थानम् ५, महापथः-राजमार्गः ६, पन्था-रथ्यामार्गः तेषु सप्तसु स्थानेषु
ते कौटुम्बिकपुरुषाः पट्टस्तिस्कन्धारुढा. सन्त उच्छुल्कमित्यादि विशेषणविशिष्ट
द्वादशसंवत्सरिकं राज्याभिषेकोपब्रक्षकं प्रमोदम् उत्सवं घोषयन्ति उच्चस्वरेण सर्वज-
नान् अवबोधयन्तीत्यर्थः 'घोसित्ता' घोषयित्वा 'एयमाणत्तिय पच्चप्पिणत्ति' ते कौटु-
म्बिकपुरुषाः एताम् उक्त प्रकारिकाम् आज्ञप्तिकां राज्ञे भरताय प्रत्युत्तरयन्ति समर्पयन्ति।

अथ भरतो यत्कृतवान् तदाह 'तए णं से' इत्यादि । 'तएणं से भरहे राया महया
महया रायाभिसेएणं अभिसित्ते धमाणे सोहासणाओ अब्भुट्टेह' ततः खलु तदनन्तरं
किल स भरतो राजा महता महता राज्याभिषेकेण अभिषिक्तः सन् सिंहासनात् अभ्यु-
त्तिष्ठति 'अब्भुट्टित्ता' अभ्युत्थाय 'इत्थिरयणेण जाव णाडगसहस्सेहिं सद्धिं सपरिवुडे
अभिसेयपेढाओ पुरत्थिमिल्लेण तिसोवाणपडिखवएणं पच्चोरुहंति' स्त्रीरत्नेन सुभ-
द्रया यावत् नाटकसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतः संपरिवेष्टितः सन् स भरतो राजा अभिषेक-

सिंहासे के आकर का जो मार्ग होता है उसका नाम शृङ्गाटक है जहा पर तीन मार्ग आकर
मिलते हैं उसका नाम त्रिक है जहा पह चार रास्ता आकर मिलते हैं उसका नाम चतुष्क है,
इसे चौराहा कहते हैं । अनेक मार्ग जहा पर आकर मिलते हैं उसका नाम चत्वर है जिस
स्थानमें चार द्वार होते हैं उसका नाम चतुर्मुख है राजमार्ग का नाम महापथ है गल्लिमार्ग
का नाम पथ है (तएण से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसित्ते समाणे सोहासणाओ
'अब्भुट्टेह) भरत राजा जब उनका राज्य के योग्य अभिषेक से अभिषेक हो चुका तब वे सिंहा-
सन से उठे और (अब्भुट्टित्ता इत्थिरयणे णं जाव णाडग सहस्सेहिंसद्धिं सपरिवुडेअभिसेयपीढाओ-
'पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिखवएणं पच्चोरुहंति) उठकर स्त्रीरत्न के साथ २ यावत् हजारों

पूर्वोक्त विशेषण संपन्न उत्सव योजवानी घोषणा करना आग्या- शिंघोडाना जेवे आकार
जे मार्गना डोय तेनु नाम शृगाटक कडेवाभा आवे छे जथा त्रयु मार्गो आवीने भजे
छे, तेनु नाम त्रिक छे, अने चारमार्ग भजे तेनु नाम चतुष्क छे. अने अकडो पथ-कडे
छे. अनेक मार्गो जथा आवीने भजे छे तेनु नाम चत्वर छे जे स्थानमां चार
द्वार डोय छे, तेनु नाम चतुर्मुख छे राजमार्गनु नाम महापथ छे. गदीना
मार्गनु नाम पथ छे (तएण से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसित्ते
समाणे सोहासणाओ अब्भुट्टेह) राजने योग्य जेवी अभिषेक विधिथी भरत राजने राज्या-
भिषेक थध गये त्यारे तेजे सिंहासन उपरथी जिला थया अने (अब्भुट्टित्ता इत्थिरयणे ण
जाव णाडगसहस्सेहिं सद्धिं सपरिवुडे अभिसेयपीढाओ पुरत्थिमिल्लेयेण तिसोवाण

ध्यावासिनसहिताः जनपदाः कोशलदेशवासिनो जनाः यत्र स तथाभूतस्तम्, तथा विनयवैजयिकम् अतिशयेन विजयो विजयः स प्रयोजनं यस्मिन् स तथाभूतस्तम् एता-
 वद्विशेषणविशिष्ट द्वादशसंवत्सरिकं प्रमोदम् उत्सवमुद्धोपयत उच्चस्वरेण सर्वप्रजाजनान्
 आबोधयत इति घोषयित्वा ममैतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत समर्पयत इति, अथ ते कौटुम्बिक-
 पुरुषाः राज्ञ आज्ञानुसारेण यथा प्रवृत्तवन्त स्तथाऽऽह 'तएण' इत्यादि । 'तएणं ते को-
 ङ्खियपुरिसा भरहेण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्टवुद्धचित्तमाणंदिया पीइमणा हरिसवस-
 णिमप्यमागहियया विणएणं वयणं पडिसुणंति' तत खलु तदनन्तरं क्लि ते कौटुम्बिक-
 पुरुषा भरतेन राजा एवम् उक्तप्रकारेण उक्ताः आज्ञप्ताः सन्तः हट्टवुद्धचित्तानन्दिताः
 प्रीतिमनसः परमसौमनस्यिता हर्षवशविसर्पद् हृदयाः भूत्वा विनयेन विनयपूर्वकम् वचनं
 प्रतिशृण्वन्ति स्वीकुर्वन्ति 'पडिसुणित्ता' प्रतिश्रुत्य स्वीकृत्य 'खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया
 जाव घोसति' क्षिप्रमेव शीघ्रमेव हस्तिस्कन्धवरगताः श्रेष्ठहस्तिस्कन्धेषु समारूढाः सन्तः
 ते कौटुम्बिकपुरुषाः यावद् घोषन्ति अत्र यावत्पदात् विनोतायाः राजधान्याः शृङ्गाटक
 त्रिकवतुष्कचत्वरचतुर्मुल्लमडापथपथेषु महता महता शब्देन उद्घोषयन्त उद्घोषयन्तः

जावे कोशल देशवासी समस्त जन अयोध्या वा गी जनो के साथ मिलकर आनन्द पूर्वक भिन्न
 '२ प्रकार की कोडाओ से खेल तमाशो से इस उत्सव को सफत्र करें—जगह २ इस उत्सव की
 आराधनामें विजय वैजयंतिया फहराई जावे इस प्रकार के इन पूर्वोक्त विशेषणो वाले उत्सव होने की
 लुम घोषणा करो (तएणं ते कोङ्खियपुरिसा भरहेण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ट वुद्ध चित्ताणंदिया
 पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएणं वयणं पडिसुणंति) इस प्रकार भरत राजा द्वारा आज्ञत
 हुए वे कौटुम्बिक पुरुष बहुत अधिक हष्ट और लुष्ट चित्त हुए उनका मन प्रीतियुक्त हो गया
 उनका हृदय आनन्द से उछलने लगा बड़ी विनय के साथ उन्हें ने अपने स्वामी की आज्ञा के
 बचनों को स्वीकार किया (पडिसुणित्ता खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया जाव घोसे ति) स्वीकार
 करके वे शीघ्र ही हाथी पर बैठकर अयोध्या राजधानी के शृङ्गाटक आदि मार्गोपर गये
 और जोर २ से उच्छुक्क आदि पूर्वोक्त विशेषण संपन्न उत्सव होने को घोषणा करने लगे

हरवाभा आने कोशल देश वासी समस्त जनो अयोध्यावासी जनो साथे भगीने आनंद पूर्वक
 भिन्न भिन्न प्रकारनी कोडाओथी—रभतो थी ओ उत्सवने सक्रण भनावे ठेक-ठेकाओ ओ उत्सवनी
 आराधनाभा विजयवैजयन्तीओ। लडेराववाभा आने, आ प्रभाओ ओ पूर्वोक्त विशेषणो
 वागा उत्सव अगेनी तसे घोषणा करे। (तएण ते कोङ्खियपुरिसा भरहेण रण्णा एव
 वुत्ता समाणा हट्ट-वुद्ध चित्ताणंदिया पीइमणा हरिसवसविसप्पमाणहियया विणएण वयणं
 पडिसुणंति) आ प्रभाओ भरत राजा वडे आज्ञस थयेला कौटुम्बिक पुरुषो अत्यधिक लुष्ट अने
 लुष्ट निवाणा थया तेमनु' मन प्रीतिशुक्त थयु अने तेमनु लुडय आनंद थी लक्षणवा लाओ
 अतीव नम्रतापूर्वक तेमणे पेताना स्वामीनी आज्ञाना वचने स्वीकारी लीधा (पडिसुणित्ता
 खिप्पामेव हत्थिखंधवरगया जाव घोसेति) स्वीकार करीने तेओ शीघ्र हाथी पर बैसीने
 अयोध्या राजधानीना शृ ग्राटक आदि मार्गो उपर गया अने जोर-जोरथी उच्छुक्क आदि

उच्छुल्कम् उत्तरम् उत्कृष्टम् अदेयम् अमेयम् अभटप्रवेशम् अदण्डकुदण्डिमम् अधर्मिम्
गणिकावरनाटकीयकलितम् अनेकतालाचरानुचरितम् अनुद्धतमृदङ्गम् अम्भानमाल्य-
दामानम्, प्रमुदितप्रकीडितसपुरजनजानपदम्, विजयवर्जायकम् इति ग्राह्यम्, तत्र शृङ्गा-
टकं 'मिघाडा' इति भाषा प्रसिद्ध जलजफलं तदाकार स्थान त्रिकोणमित्यर्थः, त्रिकुम्-
मिलितत्रिमार्गस्थानम् २, चतुष्कम् यत्र चत्वारो मार्गाःमिलन्ति तत् 'चौराहा' इति भाषा-
प्रसिद्धम् ३, चत्वरम् - बहुमार्गसमेलनस्थानम् चतुर्मुखम्-चतुर्द्वारस्थानम् आगन्तुका
दीनां विश्रामस्थानम् ५, महापथः-राजमार्गः ६, पन्था-रथ्यामार्गः तेषु सप्तसु स्थानेषु
ते कौटुम्बिकपुरुषाः पट्टइस्तिस्क्रुंधारूढाः सन्त उच्छुल्कमित्यादि विशेषणविशिष्ट
द्वादशसंवत्सरिकं राज्याभिषेकोपलक्षकं प्रमोदम् उत्सवं घोषयन्ति उच्चस्वरेण सर्वज-
नान् अवबोधयन्तीत्यर्थः 'घोसित्ता' घोषयित्वा 'एयमाणत्तिय पच्चप्पिणत्ति' ते कौटु-
म्बिकपुरुषाः एताम् उक्त प्रकारिकाम् आङ्गुप्तिकां राज्ञे भरताय प्रत्यप्पर्यन्ति समर्पयन्ति।

अथ भरतो यत्कृतवान् तदाह 'तए णं से' इत्यादि । 'तएणं से भरहे राया महया
महया रायाभिसेएणं अभिसित्ते समणे सोहासणाओ अब्भुट्टेइ' तत् खलु तदनन्तरं
किल स भरतो राजा महता महता राज्याभिषेकेण अभिषिक्तः सन् सिंहासनात् अभ्यु-
त्तिष्ठति 'अब्भुट्टित्ता' अभ्युत्थाय 'इत्थिरयणेण जाव णाडगसहस्सेहिं सद्धिं सपरिवुडे
अभिसेयपेढाओ पुरत्थिमिल्लेण तिसोवाणपडिक्खएणं पच्चोरुहंति' स्त्रीरत्नेन सुभ-
द्रया यावत् नाटकसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतः संपरिवेष्टितः सन् स भरतो राजा अभिषेक-

सिंघाडे के आकर का जो मार्ग होता है उसका नाम शृङ्गाटक है जहा पर तीन मार्ग आकर
मिलते हैं उसका नाम त्रिक है जहा पह चार रास्ता आकर मिलते हैं उसका नाम चतुष्क है
इसे चौराहा कहते हैं । अनेक मार्ग जहा पर आकर मिलते हैं उसका नाम चत्वर है जिस
स्थानमें चार द्वार होते हैं उसका नाम चतुर्मुख है राजमार्ग का नाम महापथ है गल्लिमार्ग
का नाम पथ है (तएण से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसित्ते समणे सोहासणाओ
'अब्भुट्टेइ' भरत राजा जब उनका राज्य के योग्य अभिषेक से अभिषेक हो चुका तब वे सिंहा-
सन से उठे और (अब्भुट्टित्ता इत्थिरयणे णं जाव णाडग सहस्सेहिंसद्धिं सपरिवुडेअभिसेयपेढाओ-
'पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिक्खएणं पच्चोरुहंति) उठकर स्त्रीरत्न के साथ २ यावत् हजारों

पूर्वोक्त विशेषण संपन्न उत्सव योजवानी घोषणा करवा लाग्या. सिंघाडाना जेवे आकार
जे मार्गना होय तेनु नाम शृगाटक कडेनामा आवे छे जथा त्रिषु मार्गो आवीने, भणे
छे, तेनु नाम त्रिक छे, अने चारमार्ग भणे तेनु नाम चतुष्क छे. जेने थकडो पणु-कडे
छे अनेक मार्गो जथा आवीने भणे छे तेनु नाम चत्वर छे जे स्थानमा चार
द्वार होय छे, तेनु नाम चतुर्मुख छे राजमार्गनु नाम महापथ छे. गल्लीना
मार्गनु नाम पथ छे (तएणं से भरहे राया महया २ रायाभिसेएणं अभिसित्ते
समणे सोहासणाओ अब्भुट्टेइ) राजने योग्य जेवी अभिषेक विधिथी भरत राजने राज्या-
भिषेक थई गयो त्यारे तेजे. सिंहासन उपरथी जेला थया अने (अब्भुट्टित्ता इत्थिरयणे णं
जाव णाडगसहस्सेहिं सद्धिं संपरिवुडे अभिसेयपेढाओ पुरत्थिमिल्लेयेण तिसोवाण

पीठात् पौरस्सयेन त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहति अत्रतरति अत्र यावत्पदात् द्वात्रिंशता ऋतुकल्याणिका सहस्रैः द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्वैः एतेषां संग्रहः व्याख्यानं तु एतेषाम् अव्यवहितपूर्वघट्टे एव द्रष्टव्यम् 'पञ्चोरुहित्ता' प्रत्यवरुह्य अवतीर्य 'अभिसेयमंडवाओ पडिणिकखमइ' स भरतः अभिषेकमण्डपात् प्रतिनिष्कामति निर्गच्छति 'पडिणिकखमिता' प्रतिनिष्कम्य निर्गत्य 'जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव अभिषेक्यम् अभिषेकयोग्यं हस्तिरत्नं प्रधानपट्टहस्तिनं तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'अंजनगिरिकूडसन्निभं गयवइ जाव दुरूढे, अज्जनगिरिकूटसन्निभम्-अठजनपर्वशृङ्गसदृशम् सादृश्यञ्च कृष्णवर्णत्वेन उच्चत्वेन च बोध्यम् गनपतिं पट्टहस्तिनं यावद् दुरूढः आरूढः अत्र यावत्पदात् नरपतिरिति ग्राह्यम् 'तए णं तस्स भरहस्स रण्णो वत्तीसं रायसहस्सा अभिसेयपेढाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवणं पञ्चोरुहति' ततः खलु तदनन्तरं किल तस्य भरतस्य राज्ञः द्वात्रिंशद्राजसहस्राणि अभिषेकपीठात् औत्तराहेण त्रिसोपानप्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहन्ति

नाटकों के साथ २ वे उस अभिषेक पीठ से पूर्व के त्रिसोपान प्रतिरूपक से होकर नीचे उतरे यद्वा यावत् पद से जितना भी ऋतुकल्याणिका क्रम्याजन आदिरूप परिंकर उनके साथ था वह सब गृहीत हुआ है । (पञ्चोरुहित्ता अभिसेयमंडवाओ पडिणिकखमइ) और उत्तर कर वे उस अभिषेक मण्डप से बाहर आये (पडिणिकखमिता जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) और बाहर आकर वे जहाँ पर अभिषेक्य हस्तिरत्न खड़ा था वहाँ पर आये (उवागच्छित्ता अज्जनगिरिकूडसन्निभं गयवइ जाव दुरूढे) वहाँ आकर वे उस अज्जन गिरि के शिखर जैसे हस्तिरत्न पर यावत् चढ़ाये-बैठ गये यहाँ यावत्पद से "नरपति" पद का ग्रहण हुआ है । (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो वत्तीसं रायसहस्सा अभिसेयपेढाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवणं पञ्चोरुहति) इसके बाद ३२ हजार राजाजन उस अभिषेकपीठ से उत्तर दिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक से होकर नीचे उतरे ॥ (तएणं

पडिरूवणं पञ्चोरुहति) उवाचने श्री-रत्ननी साथे-साथे यावत् उभारे नाटकीनी साथे-साथे तेजो। ते अभिषेक पीठ उपरथी पूर्वना त्रि-सोपान प्रतिरूपक उपर थधने नीचे उतर्या। अर्धी यावत् पदथी उट्टे। ऋतु कल्याणिकाओ वगेरे परिकर तेमनी साथे उते। ते संगृहीत थथे। (पञ्चोरुहित्ता अभिसेयमंडवाओ पडिणिकखमइ) अने उतरिने तेजो। ते अभिषेक मंडपमाथी उठार आथी (पडिणिकखमिता जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ) अने उठार आथीने तेजो। अथी आभिषेक्य हस्तिरत्न उल्लुंठु त्थी आथी। (उवागच्छित्ता अंजनगिरिकूडसन्निभं गयवइ जाव दुरूढे) त्थी आथीने तेजो। ते अंजनगिरिना शिखर सदृश हस्तिरत्न उपर यावत् आइठ थथी-असी गथी। अर्धी यावत् पदथी "नरपति" पदं उल्लुं थथु। (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो वत्तीसं रायसहस्सा अभिसेयपेढाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवणं पञ्चोरुहति) त्थीर आठ उर उठार राजाओ। ते अभिषेक पीठ उपरथी उत्तर दिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक उपर थधने, नीचे

अवतरन्ति 'तएणं तस्स भरहस्स रण्णो सेणावइरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ अभिसेयपेढाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिक्खएणं पच्चोरुहंति' ततः खलु तस्य श्रीभरतस्य महाराज्ञः सेनापतिरत्नं यावत् सार्थवाहप्रभृतयः अभिषेकपीठात् दक्षिणात्येन त्रिसोपान-प्रतिरूपकेण प्रत्यवरोहन्ति अवतरन्ति अत्र यावत्पदात् गाथापति वर्द्धकि पुरोहितरत्नानि, त्रोगि षष्ट्यधिकानि ३६० सूफकारशतानि अष्टादशश्रेणिप्रश्रेणयः अन्ये च बहवो राजेश्वर-तलवरमाडम्बिककौटुम्बिकमन्त्रिमहामन्त्रिगणकदौवारिकाऽऽमात्यचेटपीठमर्दनगरनिगम -- श्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहदूतसन्धिपाला ग्राह्याः राजेश्वरादि सन्धिपालान्तानां व्याख्यानम् अस्मिन्नेव वक्षस्कारे सप्तविंशतितमे सूत्रे द्रष्टव्यम् । अथ यथा रीत्या पदखण्डाधिपतिषक्रवर्त्ती भरतो महाराजा विनी ताराजधानीप्रविष्टवान्तांरीतिमाह 'तएणं तस्स' इत्यादि । 'तएणं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दूरुद्धस्स समाणं स इमे अट्टट्ट मंगलगा पुरओ जाव संपत्थिया' ततः खलु तदनन्तरं किल तस्य भरतस्य राज्ञः आभिषेक्यम् अभिषेकयोग्यं हस्तिरत्नं श्रेष्ठपट्टहस्तिनं दूरुद्धस्य आरूद्धस्य सतः इमानि स्वस्तिक १ श्रीवत्स २

तस्स भरहस्स, रण्णो सेणावइरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ अभिसेयपेढाओ दाहिणिल्लेण तिसोवाण पडिक्खएण पच्चोरुहंति) इसके बाद उस भरत नरेश का सेनापतिरत्न यावत् सार्थवाह आदिजन उस अभिषेक पीठ से दक्षिणदिग्वर्ती त्रिसोपान से होकर नीचे उतरा यहां यावत्पदसे "गाथापतिरत्न, वर्द्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, ३६० सूफकारजन तथा श्रेणिप्रश्रेणि जन एवं अन्य और भी राजेश्वर तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, मंत्री, महामन्त्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्द, नगर निगम श्रेष्ठि जन, सेनापति, सार्थवाह दूत और सन्धिपाल" इन सबका ग्रहण हुआ है ॥ (तएणं तस्स भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दूरुद्धस्स समाणस्स इमे अट्टट्ट मंगलगा पुरओ जाव संपत्थिया) भरत राजा जब आभिषेक्य हस्तिरत्न पर अच्छी तरह से बैठ चूके तब उनके आगे सबसे पहिले से आठ आठ की संख्या में आठ मण्डल द्रव्य प्रस्थित हुए—यहां यथाक्रम जाव शब्द यावत्पद से गृहीत

उत्थी(तएणं तस्स भरहस्स, रण्णो से इरयणे जाव सत्थवाहप्पभिईओ अभिसेय पेढाओ दाहिणिल्लेण तिसोवाणपडिक्खएणं पच्चोरुहंति) त्थारभाह ते भरत नरेशत्वं सेनापतिरत्नं यावत् सार्थवाह वजेरे जने। ते अभिषेक पीठ उपरथी दक्षिण दिग्वर्ती त्रिसोपान उपर थर्ध ने नीचे उत्थी अर्धी यावत् पदथी "गाथापतिरत्न, वर्द्धकिरत्न पुरोहितरत्न, ३६० सूफ " जने। तेमज श्रेष्ठि-प्रश्रेष्ठि जने। अने भील पणु राजेश्वर, तलवर, माड भिडे, कौटुम्बिके, मन्त्रीओ, महामन्त्री, गणुडे, दौवारिके, अमात्ये, चेटे, पीठमर्दो, नगरनिगम श्रेष्ठिजने, सेनापतिओ, सार्थवाहो, दूते अने सन्धिपालो ओ सर्वत्वं अर्द्धेषु थथुं छे। (तएणं त भरहस्स रण्णो आभिसेक्कं हत्थिरयणं दु स समाणस्स इमे अट्टट्ट मंगलगा पुरओ संपत्थिया) भरत राज ज्यारे आभिषेक्य हस्तिरत्न उपर थारी धीते आइठ थर्ध, गमा थारे तेमनी आगण सर्व प्रथम आ प्रभावे आठ-आठनी संख्यामां आठ मंगल द्रव्ये प्रस्थित थया। अर्धी यावत् पदथी जे आठ द्रव्ये स गृहीत थया छे ते आठ मंगल द्रव्येना

नन्धावर्त्त ३ वर्द्धमानक ४ भद्रासन ५ मत्स्य ६ कलश ७ दर्पण ८ नामकानि अष्टाष्ट
मङ्गलकानि प्रत्येकम् अष्टौ अष्टौ संमेलने सति चतुः पष्टितमसंख्यकानि मङ्गलकानि इत्य-
र्थः पुरतो यावत् संप्रस्थितानि यावत्परात् यथानुपूर्व्या यथाक्रममिति ग्राह्यम् 'जोऽवि य
अङ्गच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सोचेव इहंपि कमो सक्कारजढो णेयव्वो'
योऽपि च अतिगच्छतः विनीतां प्रविशतो भरतस्य क्रमः परिपाटी प्रथमः अधस्तनसूत्रो-
क्तो भरतविनीता प्रवेशवर्णकः कुबेरावसानः कुबेरदृष्टान्तभावितसूत्रावसानः स एव क्रमः
इहापि सत्कारविवर्जितो-मत्कारादिरहितो नेतव्यः ग्राह्यः अय भावः पूर्वं प्रवेशे षोडशदेव-
सहस्रद्वात्रिंशदा जसहस्रादीनां सत्कारो यथा भरतेन राज्ञा विहितस्तथा नात्रेति, अस्य च
सत्कारस्य द्वादशवार्षिकोत्सवनिर्वत्तनोत्तरकाले एव अवसरप्राप्तत्वात् लोकपालः स भरतो
राजा निजराजभवनप्रतिद्वारमागत्य हस्तिरत्नात् प्रत्यवरुच स्त्रीरत्नेन सुभद्रया द्वात्रिं-
शता ऋतुकल्याणिकासहस्रैः, द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्वर्द्धैः

हुआ उन अष्ट मंगल द्रव्यों के नाम—स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्धावर्त्त वर्द्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, 'कलश, एवं दर्पण" इस प्रकार से हैं (जे वि य अङ्गच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरा-
वसाणो सो चेव इहंपि कमो सक्कारजढो णेयव्वो) भरत के अयोध्या में प्रवेश करने
समय जैसा पाठ कुबेर की उपमा तकका कहा गया है वैसा ही वह पाठ यहाँ पर भी
कहलेना चाहिये परन्तु यहाँ केवल इतनी सी ही विशेषता है कि यहाँ पर सम्मिलित ज-
नों का सत्कार नहीं कहा गया है अर्थात् भरत ने अयोध्या में प्रवेश करते समय सोलह
हजार देवों का एवं हजारों राजा आदि जनों का सत्कार किया ऐसा कथन किया जा चुका
है—पर यहाँ वह कथन नहीं किया गया है क्योंकि वह कथन तो १२ वर्ष के उत्सव की परि-
समाप्ति के बाद ही किया जायगा इस तरह चलते २ वे लोकपाल भरत अपने राजभवन के
प्रतिद्वार पर आकर हस्तिरत्न से नीचे उनरे और स्त्रीरत्न सुभद्रा ३२ हजार ऋतुकल्याण
कारिका कन्यायों ३२ हजार जनपदाप्रणियों की कल्याणकारिणि कन्यायों एवं ३२-

नामा आ प्रभाषे छे - स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्धावर्त्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश,
तेमञ्ज इत्यु. (जे वि य अङ्गच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सो चेव इहंपि कमो
सक्कारजढो णेयव्वो) भरतना अयोध्या प्रवेश अणेना पाठ जेवो पाठ कुबेरनी उपमा
सुभी कहेवामां आवेस छे, तेवोञ्च पाठ अत्रे पञ्च सुभद्रवो पञ्च अर्द्धी आठली विशेषता
छे ई अर्द्धी सम्मिलित थयेवा लोकपाल सत्कार अत्रे कर्द्धी पञ्च कहेवामां आण्युं नथी
जेठले छे भरत राजाये अयोध्याभं प्रवेश करती पणने सोण डंनर देवो तेमञ्ज सक्को
राजा वंजेरे लोकपाल सत्कार करी, परन्तु आणु कथन अर्द्धी करवामां आण्युं नथी केअके ते
कथनुते १२ वर्षीय उत्सवनी परिसमाप्ति प श्रीञ्च करवामां आवेशे आ प्रभाषे आसता आसता
ते लोकपाल भरत पोताना राजभवनना प्रतिद्वारनी सामे आवीने हस्तिरत्न उपरशी नीच
इतथा अने स्त्री रत्न सुभद्रा, ३२ डंनर ऋतु कल्याणकारिका कन्यायो, ३२ डंनर जन
पदाप्रणियोनी-कल्याण कारिणी कन्यायो तेमञ्ज ३२-३२ यात्र. अर्द्ध ३२ डंनर नाटकी

नाटकसद्वैः सार्द्धं सपरिवृत्तो भवनवरावतमकं स्वराजमभनं प्रविशति तत्र कीदृशो राजा कीदृशं च राजभवनं तत्राह—'जाव कुवेरोव देवराया कैलास मिहरि सिंगभूमति' यावत् सर्वतो भावेन कुवेरो देवराज इव—यथा कुवेरो देवराजः तथा अयमपि लोकपालो भरतो देवराजः यथा च कैलासं स्फटिकाचल किं लक्षणं भवनवरावतमकं शिखरिशृङ्गं पर्वतशिखरं तद्भूतं तत्सदृशमुच्चत्वेन भरतस्य राजभवनमित्यर्थः 'तए णं से भरहे राया मज्जणघर अणुपविसइ' ततः खलु स भरतो राजा मज्जनगृहं स्नानगृहम् अनु-प्रविशति 'अणुपविसित्ता जाव' अनुप्रविश्य यावत् अत्र यावत्पदात् कृतस्नानः सन् ततो निःसृत्य भोजनमण्डपमुपागच्छति उपागत्य 'भोयणमंडवसि सुहासणवरगए अट्टम-भत्तं पारेइ' भोजनमण्डपे भोजनशालायां सुखासनवरगतः सन् अष्टमभक्तं पारयति भदोरात्रत्रयात्मकं दिनत्रयमुपवासं कृत्वा ततः परम् अष्टमभक्तेन पारणां करोति स भरत इत्यर्थः 'पारेत्ता' पारयित्वा पारणां कृत्वा 'भोयणमंडवाओ पडिणिकखमइ' भो-जनमण्डपात् भोजनशालातः प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति 'पडिणिकखमिता' प्रतिनिष्क्र-म्य निर्गत्य 'उत्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहि मुइंगमत्थएहि जाव भुंजमाणे विहरइ' उपरि प्रासादवरगतः श्रेष्ठप्रासादमवस्थितः सन् स भरतो राजा स्फुटद्भिः मृदङ्गमस्तकैः

३२ पात्रबद्ध ३२ हजार नाटकों, से युक्त हुए भवनवरावतसक स्वराजभवन में प्रविष्ट हुए (जाव कुवेरोव देवराया कैलास सिहरिसिंगभूमति) त्रिम प्रकार कुवेर कैलास पर्वत के भीतर प्रविष्ट होता है उनी प्रकार वे भरत राजा कैलास के शिखर जैसे ऊंचे अपने राजभवन में प्रविष्ट हुए (तएणं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ) राजभवन में प्रवेश करने के बाद वे भरत महाराजा स्नानगृह में गये और वहां अच्छी तरह से स्नान किया फिर वे वहां से निकले और निकलकर (भोयणमंडवसि सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ) भोजन मण्डप में गये वहां जाकर उन्होंने सुखासन से बैठ कर अष्टम भक्त तपस्या की पारणा की (पारेत्ता भोयणमण्डवाओ पडिणिकखमइ) पारणा करके फिर वे वहां से चले आये और आकर (पडिणिकखमिता उत्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहि मुइंगमत्थएहि जाव भुंजमाणे विहरइ) अपने भवनवतमक स्वराजभवन में आये और वहां आकरके वे

युक्त थयेदा भवनवरावतसक स्वराज भवनमा प्रविष्ट थया (जाव कुवेरोव देवराया कैलाससिहरिसिंगभूमति) जेम कुवेर कैलास पर्वतमा प्रविष्ट थाय छे, तेमज ते भरत राजा कैलास ना शिखर जेवा उच्च पोटाना राज भवनमा प्रविष्ट थया (तएणं से भरहे राया मज्जणघरं अणुपविसइ) राजभवनमा प्रविष्ट थया भाह ते भरत राजा स्नान गृहमा गया अने त्यां तेमजे सारी रीने स्नान कथुं पछी तेज्ये त्याथी नीकल्यां अने नीकणीने (भोयण मंडवाओ सुहासणवरगए अट्टमभत्तं पारेइ) बोअन मंडपमा गया त्या जेअने तेमजे सुखा-सनमा जेअने अष्टम भक्त तपस्थाना पारथा कथां. (पारेत्ता भोयणमंडवाओ पडिणिकख मइ) पारथा करीने पछी तेज्ये त्याथी आअ्या अने आवीने (पडिणिकखमिता उत्पि पासायवर गए फुट्टमाणेहि मुइंगमत्थएहि जाव भुंजमाणे विहरइ) पोटाना भवनवतसक स्वराजभवन

नन्धावर्त्त ३ वर्धमानक ४ भद्रासन ५ मत्स्य ६ कलश ७ दर्पण ८ नामकानि अष्टाष्ट
मङ्गलकानि प्रत्येकम् अष्टौ अष्टौ संमेलने सति चतुः पष्टितमसंख्यकानि मङ्गलकानि इत्य-
र्थः पुरतो यावत् सप्रस्थितानि यावत्परात् यथानुपूर्व्या यथाक्रममिति ग्राह्यम् 'जोऽवि य
अङ्गच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सोचेव इहंपि कमो सक्कारजढो णेयव्वो'
योऽपि च अतिगच्छतः विनीता प्रविशतो भरतस्य क्रमः परिपाटी प्रथमः अधस्तनसूत्रो-
क्तो भरतविनीता प्रवेशवर्णकः कुबेरावसानः कुबेरदृष्टान्तभाषितसूत्रावसानः म एव क्रमः
इहापि सत्कारविवर्जितो-मत्कारादिरहितो नेतव्यः ग्राह्यः अयं भावः पूर्वं प्रवेशे षोडशदेव-
सहस्रद्वान्त्रिंशदा जसहस्रादीनां सत्कारो यथा भरतेन राज्ञा विहितस्तथा नात्रेति, अत्य च
सत्कारस्थ द्वादशवार्षिकोत्सवनिर्वत्तनोत्तरकाले एव अवसरप्राप्तत्वात् लोकपालः स भरतो
राजा निजराजभवनप्रतिद्वारमागत्य हस्तिरत्नान् प्रत्यवरुष स्त्रीरत्नेन सुभद्रया द्वात्रिं-
शता ऋतुकल्याणिकासहस्रैः, द्वात्रिंशता जनपदकल्याणिकासहस्रैः द्वात्रिंशता द्वात्रिंशद्वर्षैः

हुआ उन अष्ट मण्ड द्रव्यों के नाम-स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्धावर्त्त वर्द्धमानक, भद्रामन,
मत्स्य, 'कलश, एवं दर्पण" इस प्रकार से हैं (जे वि य अङ्गच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरा-
वसाणो सो चेव इहंपि कमो सक्कारजढो णेयव्वो) भरत के अयोध्या में प्रवेश करने
समय जैसा पाठ कुबेर की उपमा तकका कहा गया है वैसा ही वह पाठ यहां पर भी
कहलेना चाहिये परन्तु यहां केवल इतनी सी ही विशेषता है कि यहां पर सम्मिलित ज-
नों का सत्कार नहीं कहा गया है अर्थात् भरत ने अयोध्या में प्रवेश करते समय सोठह
हजार देवों का एवं हजारों राजा आदि जनों का सत्कार किया ऐसा कथन किया जा चुका
है-पर यहां वह कथन नहीं किया गया है क्योंकि वह कथन तो १२ वर्ष के उत्सव की परि-
समाप्ति के बाद ही किया जायगा इस तरह चलते २ वे लोकपाल भरत अपने राजभवन के
प्रतिद्वार पर आकर हस्तिरत्न से नीचे उतरे और स्त्रीरत्न सुभद्रा ३२ हजार ऋतुकल्याण
कारिका कन्यायों ३२ हजार जनपदाप्रणियों की कल्याणकारिणि कन्यायों एवं ३२-

नामा आ प्रभाषे छे - स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्धावर्त्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, मत्स्य, कलश,
तेमन् ८पशु. (जे वि य अङ्गच्छमाणस्स गमो पढमो कुबेरावसाणो सो चेव इहंपि कमो
सक्कारजढो णेयव्वो) भरतना अयोध्या प्रवेश अणेना पाठ जेवो पाठ कुबेरनी उपमा
सुधी कहेवामा आवेळ छे, तेवोच पाठ अत्रे पशु समजवो पशु अर्डी आटवी विशेषता
छे हे अर्डी सम्मिलित यथेवा बोडोना सत्कार अत्रे कर्डी पशु कहेवामा आण्यु' नथी.
जेठवे के भरत राजाके अयोध्याभां प्रवेश करती अपने सोण डंजर डेवा तेमन् सडको
राज्य वजेरे बोडोना सत्कार कर्यो, परन्तु आपु कथन अर्डी करवामा आण्यु' नथी. केमके ते
कथनुते १२ वर्षीय उत्सवनी परिसमाप्ति पत्री च करवामा आवशे आ प्रभाषे आगतता आगततां
ते बोडपाल भरत पोताना राजभवनना प्रतिद्वारनी आशे आपीने हस्तिरत्न उपरभी नीचे
उतर्या अने स्त्री रत्न सुभद्रा, ३२ डंजर ऋतु कल्याणकारिका कन्याको, ३२ डंजर जन्म
पदाप्रणियोंकी-कल्याण कारिणी कन्याको तेमन् ३२-३२ पात्र : अर्धे ३२ डंजर नाटकी

द्वादशसम्बत्सरिके द्वादशसम्बत्सराः वर्षाणि कालो मानं यस्य स तथा भूतस्तस्मिन् प्रमोदे महाराज्याभिषेकजनितमहोत्सवे समाप्ते व्यतीते सति यत्रैव मञ्जनगृहम् स्नानगृहं तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागत्य 'जाव मञ्जघराओ पडिणिकखमइ' यावद् मञ्जनगृहात् स्नानगृहात् प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति स भरतः, अत्र यावत्पदात् कृतस्नानः इति बोध्यम् 'पडिणिकखमित्ता' प्रकृतिनिष्क्रम्य निर्गत्य 'जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ' यत्रैव बाह्या उपस्थान-शाला सभामण्डपः यावत् सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखः पूर्वाभिमुखः निपीदति सिंहासने उपविशति स भरत इत्यर्थः, अत्र यावत्पदात् यत्रैव च सिंहासनं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य इति बोध्यम् 'णिसीयित्ता' निपद्य उपविश्य 'सोलसदेवस-हस्से सक्कारेइ सम्माणेइ' षोडशदेवसहस्राणि-षोडशसहस्रसंख्यकान् देवान् इत्यर्थः सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य च 'पडिविसज्जेइ' तान् देवान् प्रतिविसर्जयति स्वनिवासस्थानं गन्तुम् आज्ञापयतीत्यर्थः 'पडिविसज्जित्ता' प्रतिविसर्ज्य तथाऽऽदिश्य 'वत्तीसं रायवरसहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ' द्वात्रिंशद् राजवरसह-

जेणेव मञ्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) जव १२ वर्ष तच्च किया गया उत्सव समाप्त हो चुका तब वे भरत नरेश जहां पर मञ्जन-स्नान-गृह-था वहा पर आये । (उवागच्छिता जाव मञ्जणघराओ पडिणिकखमइ) वहां आकरके उन्होंने अच्छी तरह से स्नान किया (पडिणिकख-मित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ) फिर वहां से बाहर आये और बाहर आकर यावत् वे पूर्वदिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गये यहां आगत यावत्पद से "जहां सिंहासनथा वहा पर वे आये" इन पदे का सग्रह किया गया है (णिसीयित्ता सोलसदेवसहस्से सक्कारेइ, सम्माणेइ,) वहा बैठ करे उन्होंने उन १६ हजार देवों का सत्कार और सम्मान किया (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिवि-सज्जेइ) सत्कार सम्मान करके उन्हें विसर्जित कर दिया (पडिविसज्जित्ता वत्तीस रायवर-सहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ) देवों को विसर्जित करके फिर भरत नरेश ने ३२ हजार

राया उवासर्षवच्छरिजसि पमोयसि समाणसि जेणेव मञ्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) अथारे १२ वष भुधी येणामा आवेइ उत्सव समाप्त थर्छ गये। त्थारे ते भरत महाराज अत्थां मञ्जन-स्नान गृह-हंतुं' त्थां गथा. (उवागच्छिता जाव मञ्जणघराओ पडिणिकखमइ) त्थां आवीने तेभणे सारी रीते स्नानं कथुं. (पडिणिकखमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ) पछी त्थांथी णडार आत्था अने णडार आवीने यावत् तेत्थो पुर्वदिशा तरइ भुभु करीने श्रेष्ठ सिंहासन उपर भेसी गथा. अत्थी आवेइ यावत् पदथी अत्थां सिंहासन हंतुं तेत्थो त्था आत्था 'जे पदो अहंथु यथा छे' (णिसीयित्ता सोलसदेवसहस्से सक्कारेइ, सम्माणेइ) त्था भेसीने तेभणे ते १६ हजार देवानो सत्कार अने तेभणु सम्मान कथुं (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) सत्कार अने सम्मान करीने ते देवाने ते भरत राजजे विसर्जित करी दीधा (पडिविसज्जित्ता

यावद् भुञ्जानो विहरति तिष्ठति अत्र यावत्पदात् द्वात्रिंशद्बद्धैः नाटकैः वरतरुणीसं-
 प्रयुक्तैः उपनृत्यमानः २ उपगीयमानः २ उपलालिज्यमानः २ महताऽऽहतनाट्यगीत-
 वादिततन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण इष्टान् शब्दस्पर्शसंरूपगन्धान् पञ्च
 विधान् मानुष्यकान् कामभोगान् इति ग्राह्यम् । अत्र स्फुटद्भिः अतिरभसा स्फालनवशात्
 विदद्भिः मृदङ्गमस्तकैः मृदङ्गानां मृदङ्गनामकवाद्यविशेषाणां मस्तकानि उपरितनभा-
 गास्तैः तथा द्वात्रिंशद्बद्धैः द्वात्रिंशता अभिनेतव्यप्रकारैः पात्रैः वा बद्धैः उपसम्पन्नै-
 र्नाटकैः तथा वरतरुणीसंप्रयुक्तैः वरतरुणाभिः सुष्ठु युवतिस्त्रीभिः मम्प्रयुक्तै कृत-
 संप्रयोगैः उपनृत्यमानः २ नृत्यविषयी क्रियमाणः २ तदभिनयपुरस्सरं नर्चनात् तथा
 उपगीयमानः २, तद्गुणगानात्, तथा उपलालिज्यमानः २, तदीप्सितार्थसम्पादनात्
 तथा महताऽऽहत नाट्यगीतवादिततन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण तत्र-महता
 प्रधानेन बृहता वा इत्यस्य रवेणेत्यग्रे सम्बन्धः अहतः-अनुबद्धो रवस्येति विशेषणम्
 नाट्यं नृत्तं तेन युक्तं गीतं तच्च वादितानि च शब्दवन्ति कृतानि तन्त्री च वीणा
 तल्लौ च हस्तौ तालाश्च कशिकाः तूर्याणि च पटहादीनि, इति वादिततन्त्रीतलताल-
 तूर्याणि तानि च तथा घनो मेघः तदाकारो यो मृदङ्गो ध्वनिगाम्भीर्यसाधर्म्यात् स
 चासौ पटुना दक्षेण प्रवादितश्च यः स घनमृदङ्गपटुप्रवादितः सचेति अहतनाट्यगीत-
 वादिततन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादिता इति इतरेतरद्वन्द्वः तेषां रवः तेन करण-
 भूतेन महता रवेण शब्देन अत्र च मृदङ्गग्रहणं वाद्येषु प्रधानं बोध्यम् । इष्टान्-इच्छा
 विषयी कृतान् शब्दस्पर्शसंरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान् तत्र शब्द-
 रूपे कामौ स्पर्शसंरूपगन्धा भोगा इति समयपरिभाषाः भुञ्जानः अनुभवन् विहरति
 तिष्ठति स भरतः इति 'तए णं से भरहे राया दुवालससवच्छरिअंसि पमोअंसि
 समाणसि जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छह' ततः खलु तदन्तरं किल स भरतो राजा

बजते हुए मृदङ्गादिको की तुमुल ध्वनि पूर्वक सांसारिक विविध प्रकार के कामभोगों के
 सुखो को भोगते हुए अपना समय व्यतीत करने लगे यहाँ यावत्पद से" द्वात्रिंशद्बद्धैः ना-
 टकैः वरतरुणीसंप्रयुक्तैः उपनृत्यमानः २ उपगीयमानः २ उपलालिज्यमानः २ महताऽऽहत
 नाट्यगीतवादिततन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण इष्टान् शब्दस्पर्शसंरूपगन्धान् पञ्चवि-
 धान् मानुष्यकान् कामभोगान्" इस पाठ का ग्रहण हुआ है इन पदों की व्याख्या यथा-
 स्थान कई बार की जा चुकी है (तएणं भरहे राया दुवालससवच्छरिअंसि पमोअंसि समाणसि

भां आण्या. अने त्या आनीने तेणे। वागता मृद गाडिकेना तुमुल ध्वनि साथे सांसारिक
 विविध प्रकारना कामभोगेने, सुषोने लोणवता २ पोताने। समय पसार करवालाग्या अर्था
 यावत् पठथी "द्वात्रिंशद्बद्धैः नाटकैः वरतरुणीसंप्रयुक्तैः उपनृत्यमानः २ उपगीयमान
 २ उपलालिज्यमान २ महताऽऽहतनाट्यगीतवादिततन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादि-
 तरवेण इष्टान् शब्दस्पर्शसंरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष्यकान् कामभोगान्"
 अने पाठ श्रद्धु थये छे. अने पढेनी न्या.प्या यथास्थान करवाभा आवी छे, (तएणं भरहे

द्वादशसम्बत्सरिके द्वादशसम्बत्सराः वर्षाणि कालो मानं यस्य स तथा भूतस्तस्मिन् प्रमोदे महाराज्याभिवेकजनितमहोत्सवे समाप्ते व्यतीते सति यत्रैव मञ्जनगृहम् स्नानगृह तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'जाव मञ्जघराओ पडिणिक्लमड' यावद् मञ्जनगृहात् स्नानगृहात् प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति स भरतः, अत्र यावत्पदात् कृतस्नानः इति बोध्यम् 'पडिणिक्लमित्ता' प्रकृतिनिष्क्रम्य निर्गत्य' जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयड' यत्रैव बाह्या उपस्थान-शाला समामण्डपः यावत् सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखः पूर्वाभिमुखः निपीदति सिंहासने उपविशति स भरत इत्यर्थः, अत्र यावत्पदात् यत्रैव च सिंहासनं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य इति बोध्यम् 'णिसीयित्ता' निपद्य उपविश्य 'सोलसदेवस-हस्से सक्कारेइ सम्माणेइ' पोटसदेवसहस्राणि-पोडपसहस्रसंख्यकान् देवान् इत्यर्थः सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य च 'पडिविसज्जेइ' तान् देवान् प्रतिविसर्जयति स्वनिवासस्थानं गन्तुम् आह्वापयतीत्यर्थः 'पडिविसज्जित्ता' प्रतिविसर्ज्य तथाऽऽदिश्य 'वत्तीसं रायवरसहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ' द्वात्रिंशद् राजवरसह-

जेणेव मञ्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) अब १२ वर्ष तक किया गया उत्सव समाप्त हो चुका तब वे भरत नरेश जहां पर मञ्जन-स्नान-गृह-था वहां पर आये । (उवागच्छित्ता जाव मञ्जणघराओ पडिणिक्लमड) वहां आकरके उन्होंने अच्छी तरह से स्नान किया (पडिणिक्ल-मित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयड) फिर वहां से बाहर आये और बाहर आकर यावत् वे पूर्वदिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गये यहां आगत यावत्पद से "जहां सिंहासनथा वहां पर वे आये" इन पदों का समग्र किया गया है (णिसीयित्ता सोलसदेवसहस्से सक्कारेइ, सम्माणेइ,) वहां बैठ करे उन्होंने उन १६ हजार देवों का सत्कार और सम्मान किया (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिवि-सज्जेइ) सत्कार सम्मान करके उन्हें विसर्जित कर दिया (पडिविसज्जित्ता वत्तीस रायवर-सहस्सा सक्कारेइ सम्माणेइ) देवों को विसर्जित करके फिर भरत नरेश ने ३२ हजार

राया उवाससंख्खच्छिरांसि पमोयसि समाणसि जेणेव मञ्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) न्यादे १२ वष मुधी येणगामा आवेइ उत्सव समाप्त थइ गथे। त्यादे ते भरत मवाराण न्यां मञ्जन-स्नान गृह-हुतु त्या गथा. (उवागच्छित्ता जाव मञ्जणघराओ पडिणिक्लमड) त्यां भावीने तेभए सारी रीते स्नान कथुं. (पडिणिक्लमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जाव सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे णिसीयड) पधी त्यांथी णहार आन्था अने णहार भावीने यावत् तेओ पूर्वदिशा तरइ मुअ करीने श्रेष्ठ सिंहासन उपर भेसी-गथा. अही आवेइ यावत् पडिणी न्यां सिंहासन हुतु तेओ त्या आन्था 'जे पडे अहए थया छे: (णिसीयित्ता सोलसदेवसहस्से सक्कारेइ, सम्माणेइ) त्या भेसीने तेभए ते १६ हजार देवाने सत्कार अने तेभए सम्मान कथुं (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) सत्कार अने सम्मान करीने ते देवाने ते भरत राजाणे विसर्जित करी दीथा (पडिविसज्जित्ता

स्त्राणि द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यकान् राजवरान् सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य 'पडिविसज्जेइ' प्रतिविसर्जयति स्ववासगमनाय आज्ञापयति स भरतः 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' तान् राजवरान् सत्कार्यं सम्मान्य च 'सेणावहरयणं सक्कारेइ सम्माणेइ' सेनापतिरत्न सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य च 'जाव पुरोहियरयणे सक्कारेइ सम्माणेइ' यावत् पुरोहितरत्नं सत्कारयति सम्मानयति अत्र यावत्पदात् गाथापतिरत्नं वर्द्धकिरत्न च ग्राह्यम् 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य च 'एवं तिणिसट्टे सूवयारसए अट्टारससेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ सम्माणेइ' एवम् उत्तरीत्या त्रीणि पट्टानि षष्ठ्यधिकानि सूपकारशतानि त्रिपट्ट्यधिकशनसंख्यकान् सूपकारान् इत्यर्थः तथा अष्टादशश्रेणिप्रश्रेणीः च सत्कारयति सम्मानयति 'सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं सम्मान्य च 'अण्णे य बह्वे राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पभिइओ सक्कारेइ सम्माणेइ' अन्यांश्च

राजाओं का सत्कार एवं सम्मान किया (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) उनका सत्कार सम्मान करके फिर विसर्जित कर दिया (पडिविसज्जित्ता) इन्हे विसर्जित करके (सेणावहरयणं सक्कारेइ, सम्माणेइ) फिर उम भरत नरेश ने सेनापतिरत्न का सत्कार और सम्मान किया (सक्कारित्ता सम्माणित्ता जाव पुरोहियरयणे सक्कारेइ सम्माणेइ) मत्कार सम्मान करके उसे विसर्जित कर दिया इसके बाद उभने गाथापतिरत्न का और वर्द्धकिरत्न का सत्कार सम्मान किया इन्हे सत्कृत और सम्मानित कर विसर्जित कर दिया बाद में उसने पुरोहित रत्न का सत्कार और सम्मान किया फिर उसे भी विसर्जित कर दिया (एवं तिणिसट्टे सूवयारसए अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ, सम्माणेइ) इसी तरह उसने ३६० सूपकारों को सत्कृत और सम्मानित किया और उन्हें विसर्जित कर दिया १८ श्रेणि प्रश्रेणी-जनों को सत्कृत सम्मानित कर विसर्जित कर दिया (अण्णेय बह्वे राईसर तलवर जाव

बत्तीस रायवरसहस्रा सक्कारेइ सम्माणेइ) देवाने विसर्जित करीने पछी भरत नरेशे उर डभर राजाओंने सत्कार अने ते सर्वनुं सम्मान कथुं (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडि विसज्जेइ) तेभने सत्कार अने ते सर्वनुं सम्मान करीने भरत राजांने तेभने विसर्जित करीदीधा (पडिविसज्जित्ता) अने तेभने विसर्जित करीने (सेणावहरयण सक्कारेइ, सम्माणेइ) पछी ते भरत नरेशे सेनापतिरत्न ने सत्कार अने तेभनुं सम्मान कथुं अने (सक्कारित्ता सम्माणित्ता जाव पुरोहियरयणे सक्कारेइ सम्माणेइ) यावत्सत्कार तेभञ्च सम्मान करीने तेभने विसर्जित करी दीधा त्यार आह तेण्णे गाथापति रत्न अने वर्द्धकिरत्न अने पुरोहित रत्नने सत्कार अने सम्मान कथुं अने तेभने सत्कृत अने सम्मानित करीने विसर्जित करी दीधा (एवं तिणिसट्टे, सूवयारसए अट्टारस सेणिप्पसेणीओ सक्कारेइ, सम्माणेइ) आ प्रभाण्णे तेण्णे उ६० सूपकारोने सत्कृत अने सम्मानित कथां अने त्यार आह तेभने विसर्जित करी दीधा आ प्रभाण्णे १८ श्रेणि प्रश्रेणीजनेने सत्कृत अने सम्मानित कथां अने त्यार आह तेभने विसर्जित करी दीधा (अण्णे य बह्वे

बहून् राजेश्वर तलवर यावत् सार्थवाहप्रभृतीन् सत्कारयति मम्मनयति' सक्कारित्ता सम्माणित्ता' सत्कार्यं मम्मन्य च 'पडिविसज्जेइ' प्रतिविसर्जयति स्वनिवासस्थान गमनाय आज्ञापयति स भरत इत्यर्थः 'पडिविसज्जित्ता' प्रतिविसर्ज्य तथाऽऽजाप्य 'उप्पि पासायवरगए जाव विहरइ, उपरि प्रासादवरगत. श्रेष्ठप्रासादं प्राप्तः सन् स भरतो राजा यावद् विहरति तिष्ठति अत्र यावत्पदात् स्फुटद्धि' मृदङ्गैः द्वात्रिंशद्बद्धैर्नाटकैः धरतरुणी संप्रयुक्तैः उपनृत्यमानः २ उपगीयमानः २ उपलालिज्यमान २ महताऽहतनादयगीतवा- दिततन्त्रीतलतालतूर्यघनमृदङ्गपटुप्रवादितरवेण इष्टान् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् पञ्च- विधान् मानुष्यकान् कामभोगान् एतेषां पदानां संग्रहः व्याख्यातं तु अस्मिन्नेव सूत्रे पूर्वं विलोकनीयम् ॥सू० ३१॥

अथ चतुर्दशरत्नाधिपते भरतस्य यानि रत्नानि यत्रोत्पद्यन्ते तत्तथाऽऽह—“भरहस्स” इत्यादि ।

मूलम्—भरहस्स रण्णो चक्करयणे १दंडरयणे २ असिरयणे ३ छत्त- रयणे ४ एते णं चत्तारि एगिंदियरयणा आउहघरसालाए समुप्पण्णा चम्मरयणे १ मणिरयणे २ कागणिरयणे ३ णव य महाणिहओ एएणं सिरिघरंसि समुप्पण्णा सेणावइरयणे १, गाहोवइरयणे २ वद्धइरयणे ३ पुरोहियरयणे ४ एए णं चत्तारि मणुअरयणा विणीयाए रायहाणीए समु- प्पण्णा, आसरयणे १ हत्थिरयणे २एए णं दुवे पंचिंदियरयणा वेयद्ध-

सत्थवाहणमिहओ सक्कारेइ सम्माणेइ) इसी तरह अन्य और भी अनेक राजेश्वर तलवर यावत् सार्थवाह आदिको को सत्कृत किया और सम्मानित किया (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविस- ज्जेइ) सत्कृत सम्मानित कर उन्हें फिर उसने विसर्जित कर दिया (पडिविसज्जित्ता उप्पि पासाय- रगवए जाव विहरइ) विसर्जित करके फिर वह भरत नरेश अपने प्रासादवरावतंमक राजभवन में चला गया और वहाँ जाकर उसने मनुष्यमव सम्बन्धी इष्ट कामभोगो को भोगते हुए अपने समय को व्यतीत किया यहाँ यावत्पद से पूर्व की तरह “स्फुटद्धिः मृदङ्गैः द्वात्रिंशद्बद्धै टिकैः” इत्यादिरूप से पाठ का संग्रह हुआ है ॥सू० ३१॥

राईसरतलवर जाव सत्थवाहणमिहओ सक्कारेइ सम्माणेइ) आ प्रभाषे णीन् पथु अनेक राजेश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदिकोने सत्कृत अने सम्मानित कर्था (सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ) सत्कृत तेमअ सम्मानित करीने तेमने विसर्जित करी हीथा. (पडिविसज्जित्ता उप्पि पासायवरगए जाव विहरइ) विसर्जित करीने पछी ते भरत नरेश योताना प्रासादवरगत सक्काराजभवनमा जातरहा त्या अछिने तेमणे मनुष्यमव सम्बन्धी छत्तम भोगेने भोगवता भोगवता योतानो सम्भय पसर कर्था अछी यावत् पठथी पूर्वणी जेम “स्फुटद्धि मृदङ्गै द्वात्रिंशद्बद्धैर्नाटकैः” वगेरे पाठ सगृहीत थये छे ॥सू० ३१॥

गिरिपायमूले समुत्पण्णा सुभद्रा इत्थीरयणे उत्तरिल्लाए विज्जाहरसेटीए समुत्पण्णे ॥सू० ३२॥

छाया-भरतस्य राज्ञः चक्ररत्नम् १ दण्डरत्नम् २ असिररत्नम् ३ छत्ररत्नम् ४ पतानि खलु चत्वारि एकेन्द्रियरत्नानि आयुधगृहशालायां समुत्पन्नानि, चर्मरत्नम् १ मणिरत्नम् २ काकणीरत्नम् ३ नव च महानिधयः पते खलु श्रीगृहे समुत्पन्ना सेनापतिरत्नम् १ गाथापतिरत्नम् २ वर्द्धकिरत्नम् ३ पुरोहितरत्नम् ४, पतानि खलु चत्वारि मनुजरत्नानि विनीतायां राजधान्यां समुत्पन्नानि, अश्वरत्नम् १, हस्तिरत्नम् २, एते खलु द्वे पञ्चेन्द्रियरत्ने वैताहृद्यगिरिपादमूले समुत्पन्ने सुभद्रा खीरत्नम् औत्तराहाया विद्याधरश्रेण्यां समुत्पन्नम् ॥सू३२॥

टीका—“भरहस्स रण्णे” इत्यादि । ‘भरहस्स रण्णे चक्ररयणे १ दंडरयणे २ असिरयणे ३ छत्ररयणे ४ एतेणं चत्वारि एगिदियरयणे आउहघरसालाए समुत्पण्णा’ भरतस्य राज्ञः चक्ररत्नम् १ दण्डरत्नम् २ असिररत्नम् ३ छत्ररत्नम् ४, पतानि खलु चत्वारि एकेन्द्रियरत्नानि आयुधगृहशालायां समुत्पन्नानि ‘चम्मरयणे १ मणिरयणे २ कागणिरयणे ३ णवय महाणिहओ एएणं सिरिघरंसि समुत्पण्णा’ चर्मरत्नम् १ मणिरत्नम् काकणी रत्नम् ३ नव च महानिधयः नैमर्प १ पाण्डुक २ पिङ्गक ३ सर्वरत्न ४ महापद्म ५ काळ ६ महाकाल ७ माणवकमहानिधि ८ खड्ग ९ नामधेयाः नैसर्पादिदेवविशेषाधिष्ठिताः एते खलु चर्मरत्नादि त्रयं नैसर्पादि नव महानिधयश्च श्रीगृहे भाण्डागारे समुत्पन्नानि एतेन च प्रोक्ता नव महानिधयः शाश्वतभाडरूपाः कथमुत्पद्यन्ते इत्याशङ्कमानोऽपि परास्ततां गतः “सेणावहरयणे १ गाहावहरयणे २ वद्धहरयणे ३ पुरोहितरयणे ४ एएणं चत्वारि

अत्र भरत राजा के जो कि चौदह रत्नो का अधिपति होता है, कौन कौन रत्न कहाँ कहां उत्पन्न होते हैं यह प्रकट किया जाता है—‘भरहस्स रण्णा चक्ररयणे १ दंडरयणे असिरयणे’ इत्यादि सूत्र—३२

टीका—‘भरहस्स रण्णे चक्ररयणे, दंडरयणे, असिरयणे, छत्ररयणे’ भरतचक्रवर्ती के चक्ररत्न, दण्डरत्न २ असिररत्न ३ छत्ररत्न (एते णं चत्तो) ये चार रत्न जोकि (एगिदियरयणा) एकेन्द्रिय रत्न है (आउहघरसालाओ समुत्पण्णा) आयुध गृह शालामें उत्पन्न होते हैं (चम्मरयणे, मणिरयणे, कागणिरयणे, णवय महाणिहओ एए णं सिरिघरंसि समुत्पण्णा) चर्मरत्न मणिरत्न, काकणिरत्न, तथा नौ महानिधिया ये सब श्रीगृह में-भाण्डागार में-उत्पन्न होते हैं । (सेणावहरयणे, गाहावहरयणे, वद्धहरयणे,

इन्हे भरतमहाराज के चारौदह रत्नो का अधिपति छे, तेमना कथा कथा रत्नो कथा कथा उत्पन्न थाय छे तेणताववाभा आवे छे-

‘भरहस्स रण्णे चक्ररयणे १ दंडरयणे २ असिरयणे’ इत्यादि सूत्र—३२ ॥

टीकाथं - भरत चक्रवर्तीना चक्ररत्न १, दंडरत्न २, असिररत्न ३, अने छत्ररत्न (एतेणं चत्तो) के चार रत्नो के छे (एगिदियरयणा) केकेन्द्रिय रत्नो छे, (आउहघरसालाओ समुत्पण्णा) आयुध गृहशालामा उत्पन्न थाय छे (चम्मरयणे, मणिरयणे, कागणिरयणे, णवय-महाणिहओ एएणं सिरिघरंसि समुत्पण्णा) अमररत्न, अश्विरत्न, काकणिरत्न तथा नव

मणुभरयणा विणीयाए रायहाणीए समुष्पण्णा' सेनापतिरत्न १ गाथापतिरत्न २ वर्द्धकि-
रत्न ३ पुरोहितरत्नम् ४ एतानि खलु चत्वारि मनुभरत्नानि विनीताया राजधान्यां
समुत्पन्नानि 'आसरयणे १ हत्थिरयणे २ एएण दुवे पंचिदियरयणा वेअद्धगिरिपाय-
मूले समुष्पण्णा' अश्वरत्नम् १ हस्तिरत्ने २ एते खलु द्वे पञ्चेन्द्रियतिर्यग्त्ने वैता-
द्वगिरेः पादमूले मूलभूमौ समुत्पन्ने जाते । 'सुभद्रा इत्थी रयणे उत्तरिण्णाए विज्जा-
हार सेढीए समुष्पण्णे' सुभद्रा सुभद्रानामकं स्त्रीरत्नम् औत्तगहायाम् उत्तरस्या विद्याधर-
श्रेण्यां समुत्पन्नम् ॥सू०-३२॥

अथ पदखण्ड भरतं पालशन् चक्रवर्ती भरतो यथा प्रवृत्तवान् तथाऽऽह—“तए ण
से भरहे' इत्यादि ।

मूलम्—तए णं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं महाणि-
हीणं सोलसण्हं देवसाहस्सीणं वत्तीसाए रायसहस्साणं वत्तीसाए उडु-
कल्लाणिया सहस्साणं वत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्साणं वत्तीसाए
वत्तीसइबद्धाणं णाडगसहस्साणं तिण्हं सट्ठीणं सूवयारसयाणं अट्ठासण्हं
सेणिप्पसेणीणं चउरासीइए आससयसहस्साणं चउरासीइए दंतिसयसह-
स्साणं चउरासीइए रहसयसहस्साणं छण्णउइए मणुस्सकोडीणं बावत्तरीए
पुरवरसहस्साणं वत्तीसाए जणवयसहस्साणं छण्णउइए गामकोडोणं णवण-
उइए दोणमुहसहस्साणं अडयालीसाए पट्टणसहस्साणं चउव्वीसाए कव्वड-

पुरोहियरयणे एएण चत्वारि मणुभरयणा विणीयाए रायहाणीए समुष्पण्णा) सेनापतिरत्न, गाथापति-
रत्न, वर्द्धकिरत्न, और पुरोहितरत्न ये चार मनुभरत्न विनीता राजधानी में उत्पन्न होते हैं (आ-
सरयणे, हत्थिरयणे एए ण दुवे पंचिदियरयणा वेअद्धगिरिपायमूले समुष्पण्णा) अश्वरत्न,
और हस्तिरत्न, ये दो पञ्चेन्द्रियतिर्यग्त्न वैताद्वगिरी की तलहटी में उत्पन्न होते हैं (सुभद्रा-
इत्थीरयणे उत्तरिण्णाए विज्जाहारसेढीए समुष्पण्णे) तथा सुभद्रा नाम का जो स्त्रीरत्न है
वह उत्तरविद्याधरश्रेणी में उत्पन्न होता है ॥सू० ३२॥

महानिधिओ ओ सुवे श्रीगृहभा-भाडागार भां उत्पन्न थया छे. (सेनापतिरत्न, गाथाप-
तिरत्न, वर्द्धकिरत्न, पुरोहितरत्न, एएणं चत्वारि मणुभरयणा विणीयाए रायहाणीए
समुष्पण्णा) सेनापतिरत्न, गाथापतिरत्न वर्द्धकिरत्न अने पुरे हितरत्न ओ थार मनुभरत्नो
विनीता राजधानीभां उत्पन्न थया छे (आसरयणे, हत्थिरयणे, एएणं दुवे पंचिदियरयणा वे-
अद्धगिरिपायमूले समुष्पण्णा) अश्वरत्न अने हस्तिरत्न ओ ओ पञ्चेन्द्रिय तिर्गत्न
वैताद्व गिरिनी तणेटीभा उत्पन्न थया छे (सुभद्रा इत्थीरयणे उत्तरिण्णाए विज्जाहार
सेढीए समुष्पण्णे) तथा सुभद्रा नामक ओ स्त्री रत्न छे ते उत्तर विद्याधर श्रेणीभा उत्पन्न
थयेल छे सूत्र-३२ ॥

सहस्साणं चउव्वीसाए मडंअसहस्साणं वीसाए आगरसहस्साणं सोलसण्हं
 खेडसहस्साणं चउदसण्हं संवाहसहस्साणं छप्पण्णाए अंतरोदगाणं
 एगूणपण्णाए कुरज्जाणं विणीयाए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमे-
 रागस्स केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स अण्णेसिं च वहूणं राईसरतलवर
 जाव सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं भट्ठितं सामित्तं महत्तरगतं
 आणारईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे ओहयणिहएसु कंटएसु उद्धि-
 अमल्लिएसु सव्वसत्तुसु णिज्जिएसु भरहाहिवे णरिंदे वस्चंदणचच्चिअंगे
 वरहारइयवच्छे वरमउडविसिड्डए वरवत्थभूसणधरे सव्वोउअसुरहि कुसु-
 मवरमल्लसोभियसिरे वरणाडगनाडइज्जवरइत्थिगुम्मसद्धिं संपरि-
 बुडे सव्वोसहि सव्वरयण सव्वसमिइसमग्गे संपुण्णमणोरहे हयामित्त-
 माणमहणे पुव्वकयतत्तप्पभावनिविड्डसंचियफले भुंजइ माणुस्सए सुहे
 भरहे नामधेज्जे त्ति ॥सू० ३३॥

छाया-ततः खलु स भरतो राजा चतुर्दशानां रत्नानां नवानां महानिघोनां षोडशानां
 वैवसहस्रानां द्वात्रिंशतो राजसहस्रराणाम्, द्वात्रिंशत् ऋतुकल्याणिका सहस्रराणाम्, द्वात्रिं-
 शतो जनपदकल्याणिका सहस्रराणाम् द्वात्रिंशतो द्वात्रिंशत्सहस्रानां नाटकसहस्रराणां त्रयाणां
 षष्ठानां सूपकारशतानाम् अष्टादशानां श्रेणिप्रश्रेणीनाम् , चतुरशीते अश्वशनसहस्रराणाम्.
 चतुरशीते. दन्तिशतसहस्रराणाम् , चतुरशीते. रथशतसहस्रराणाम् षण्णवतेः मनुष्यकोटीनाम्,
 द्वासप्ततेः पुरवरसहस्रराणाम् द्वात्रिंशतो जनपदसहस्रराणाम्, षण्णवतेः ग्रामकोटीनाम् नवनवतेः
 द्रोणमुखसहस्रराणाम्, अष्टाचत्वारिंशतः पत्तनसहस्रराणाम् चतुर्विंशते कर्बटसहस्रराणाम्, चतु-
 र्विंशतेः मडम्बसहस्रराणाम् विंशतेराकरसहस्रराणाम् षोडशानां खेटसहस्रराणाम् चतुर्दशानां
 सं सहस्रराणाम् षट्पञ्चाशतोऽन्तरोदकानाम् पकोनपञ्चाशतः कुराज्यानाम् विनीताया
 राजधान्या. कुल्लहिमवद् गिरिसागरमर्यादाकस्य केवलकल्पस्य भारतवर्षस्य अन्येषां च
 बहूनां राजेश्वरतलवर यावत् नार्थवाहप्रभृतीनाम् आधिपत्यं पौरपत्यं मर्त्यत्वं स्वामित्वं
 महत्तरत्वम् आश्वरसेनापत्यं कारयन् पालयन् उपहतनिहतेषु कण्ठकेषु उद्धतमर्दितेषु
 सर्वशत्रुषु निर्जितेषु भरताधिपो नरेन्द्र वरचन्दन-चञ्चिताङ्ग वरदाररतिदवक्षस्क वरमुकुट
 विशिष्टक वरवस्त्राभूषणधर सर्वर्तुक सुरमिकुसुमवरमात्यशोमितशिरस्क वरनाटकनाट-
 कीय वरस्त्री गुल्मसार्द्धं संपरिवृतः सर्वोषधिसर्वरत्नसर्वसमितिसमग्र सम्पूर्णमनोरथ
 हतामित्रमानमयन पूर्वकृतप प्रमावनिविष्टसर्वेनफलाणि भुङ्क्ते मानुष्यकानि क्षुन्नानि भरतो
 नामधेय इति ॥सू० ३३॥

टीका-“तए णं से” इत्यादि ‘तए णं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं’ ततः पद-
खण्डभरतसाधनानन्तर खलु स भन्तो महाराजा चतुर्दशरत्नादीनां सार्थवाहप्रभृत्यन्ताना-
माधिपत्यादिकं कारयन् पालयन् मानुष्यकानि सुखानि भुङ्क्ते इत्यग्रे सम्बन्धः तथाहि
चतुर्दशानां रत्नानाम् एकेन्द्रियाणां चक्ररत्नादि काकणीरत्नान्तानां सप्तानाम् पञ्च-
न्द्रियाणां सेनापतिरत्नादि सुभद्रारत्नान्तानां सप्तानाम् संमीलने च चतुर्दशरत्नानामित्य-
र्थः अधिपत्यादिकम् तथा ‘णवण्हं महाणिहीणं’ नवानां नैसर्पादि शत्र्वान्तानां तत्तदे-
वाधिष्ठितानां महानिधीनाम् आधिपत्यादिकम् तथा ‘सोलसण्हं देवसाहस्सीणं’
षोडशानां देवसाहस्त्रीणाम् षोडशसहस्रमन्वयकानां देवानामित्यर्थः आधिपत्यादिकम्
तथा ‘बत्तीसाए रायसहस्साणं’ द्वात्रिंशतो राजसहस्राणाम् द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यकानां
राशामित्यर्थः आधिपत्यादिकम् तथा ‘बत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्साणं’ द्वात्रिंशतः
ऋतुकल्याणिकासहस्राणाम् द्वात्रिंशसंख्यक ऋतुकल्याणिकास्त्रीणामित्यर्थः आधिपत्यं
स्वामित्वादिकम् अत्र ऋतुकल्याणिकाः इत्यस्य ऋतुविपरोतस्पर्शत्वेन शीतकाले उष्णस्पर्शः
उष्णकाले शीतस्पर्शः इत्यादि रूपेण सुखस्पर्शाः अथवाऽमृतकन्यात्वेन सदा सर्वत्रतुषु कल्या-
णकारिण्यो राजकन्यकाः इत्यर्थो बोध्यः। तथा ‘बत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्साणं’ द्वा-
त्रिंशतः जनपदकल्याणिका सहस्राणाम् द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यायुक्तानां जनपदाग्रणी कल्याणि-
कानां राजकन्यकानामित्यर्थः आधिपत्यादिकम् तथा ‘बत्तीसाए बत्तीसइवद्दाणं णाडग-
सहस्साणं’ द्वात्रिंशतो द्वात्रिंशदवद्दानां नाटकसहस्राणाम् द्वात्रिंशतो द्वात्रिंशतापात्रैः
वद्दानां युक्तानां नाटकसहस्राणाम् द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यकानां द्वात्रिंशत्पात्रवद्दानां टकाना-
मित्यर्थः तथा ‘तिण्हं सट्टीणं सुवयारसयाणं’ त्रयाणां षष्टानां षष्ठ्यधिकानां सूपकारशता-

‘तएणं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं’ इत्यादि सूत्र-३३

टीकार्थ- (तए णं से भरहे राया) षट्खण्डात्मक भरतक्षेत्र के साधन करने के बाद वे भरत चक्र
वर्ती (चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं महाणिहीणं सोलसण्हं देवसाहस्सीणं बत्तीसाए रायसहस्साणं
बत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्साणं बत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्साणं बत्तीसाए बत्तीस-
इवद्दाणं णाडगसहस्साणं) चौदह रत्नों का नौ महानिधियों का सोलह हजार देवों का
बत्तीस हजार राजाओंका बत्तीस हजार ऋतुकल्याणकारिणी कन्याओं का ३२-३२
पात्र वद्ध ३२ हजार नाटकों का (तिण्हं सट्टीणं सुवयारसयाणं अट्टारसण्हं सेणियसेणीणं चउ-

(तएण से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं) इत्यादि-सूत्र ३३ ॥

टीकार्थ- (तएण से भरहे राया) ५६ अक्षरभक्त भरतक्षेत्रने साधन ३५ अनाभ्या षोड
(स्वधीन अनाभ्या षोड) ते भरत अक्षरती (चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं महाणिहीणं
सोलसण्हं देवसाहस्सीणं बत्तीसाए रायसरस्साणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिया सहस्साणं बत्ती-
साए जणवयकल्लाणिया सहस्साणं बत्तीसाए बत्तीसइवद्दाणं णाडगसहस्साणं) चतुर्दशरत्ना,
नव महानिधियों, सोल सहस्र देवों, ३२ सहस्र राजाओं, ३२ सहस्र ऋतुकल्याणकारिणी
कन्याओं, ३२ सहस्र जनपदाग्रणीयोंनी कन्याओं, ३२-३२ पात्र वद्ध ३२ सहस्र नाटकों (तिण्हं
३२१

सहस्साणं चउव्वीसाए मडंवंसहस्साणं वीसाए आगरसहस्साणं सोलसहं
 खेडसहस्साणं चउदसहं संवाहसहस्साणं छप्पणाए अंतरोदगाणं
 एगूणपण्णाए कुरज्जाणं विणीयाए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमे-
 रागस्स केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स अण्णेसिं च वहूणं राईसरतलवर
 जाव सत्थवाहप्पभिईणं आहेवच्चं पोरेवच्चं भट्टितं सामित्तं महत्तरगत्तं
 आणारईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे ओहयणिहएसु कंटएसु उद्धि-
 अमल्लिएसु सब्वसत्तुसु णिज्जिएसु भरहाहिवे णरिंदे वरचंदणचच्चिअंगे
 वरहाररइयवच्छे वरमउडविसिड्डए वरवत्थभूसणधरे सब्बोउअसुरहि कुसु-
 मवरमल्लसोभियसिरे वरणाडगनाडंइज्जवरइत्थिगुम्भसद्धिं संपरि-
 वुडे सब्बोसहि सब्बरयणं सब्बसभिइसमग्गे संपुण्णमणोरहे हयामित्त-
 माणमहणे पुब्बकयतत्तप्पभावनिविड्डसंचियफले भुंजइ माणुस्सए सुहे
 भरहे नामधेज्जे त्ति ॥सू० ३३॥

छाया-ततः खलु स भरतो राजा चतुर्दशानां रत्नानां नवानां महानिधोनां षोडशानां
 देवसहस्रानां द्वात्रिंशतो राजसहस्रानाम्, द्वात्रिंशत् ऋतुकल्याणिका सहस्रानाम्, द्वात्रिं-
 शतो जनपदकल्याणिका सहस्रानाम्, द्वात्रिंशतो द्वात्रिंशद्द्वानां नाटकसहस्रानां त्रयाणां
 षष्टानां रूपकारशतानाम्, अष्टादशानां श्रेणिप्रश्नेनीनाम्, चतुरशीते अश्वशतसहस्रानाम्,
 चतुरशीते दन्तिशतसहस्रानाम्, चतुरशीते रथशतसहस्रानाम् षण्णवतेः मनुष्यकोटीनाम्,
 द्वासप्तते पुरवरसहस्रानाम् द्वात्रिंशतो जनपदसहस्रानाम्, षण्णवतेः ग्रामकोटीनाम् नवनवते
 द्रोणमुखसहस्रानाम्, अष्टाचत्वारिंशतः पत्तनसहस्रानाम् चतुर्विंशते कर्षटसहस्रानाम्, चतु-
 र्विंशतेः मङ्गलसहस्रानाम् विंशतेराकरसहस्रानाम् षोडशानां खेटसहस्रानाम् चतुर्दशानां
 संहस्रानाम् षट्पञ्चाशतोऽन्तरोदकानाम् पकोनपञ्चाशतः कुराज्यानाम् विनीताया
 राजधान्यां क्षुल्लहिमवद् गिरिसागरमर्यादाकस्य केवलकल्पस्य भारतवर्षस्य अन्येषां च
 बहूनां राजेश्वरतलवर यावत् नार्थवाहप्रभृतीनाम् आधिपत्यं पौरपत्यं मर्त्यं स्वामित्वं
 महत्तरस्वम् आश्वेश्वरसेनापत्यं कारयन् पालयन् उपहतनिहतेषु ऋणकेषु उद्धृतमर्दितेषु
 सर्वशत्रुषु निर्जितेषु भरताधिपो नरेन्द्र वरचन्दन-चवित्ताङ्ग, वरहाररतिदवक्षस्क वरमुकुट
 विशिष्टक वरवस्त्राभूषणधर सर्वर्तुक सुरभिक्षुसुमवरमाल्यशोभितशिरस्क वरनाटकनाट-
 कीय वरस्त्री गुल्मसाह्य संपरिवृतः सर्वौषधिसर्वरत्नसर्वसमितिसमग्र सम्पूर्णमनोरथ
 हतामित्रमानमयन, पूर्वकृतप प्रभावनिविष्टसंवेनफलानि भुङ्क्ते मातुष्यकानि सुन्नानि भरतो
 नामधेय इति ॥सू० ३३॥

टीका-“तए णं से” इत्यादि ‘तए णं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं’ तंतः पद-
खण्डभरतसाधनानन्तर खलु स भन्तो मङ्गराजा चतुर्दशरत्नादीनां सार्थवाहप्रभृत्यन्ताना-
माधिपत्यादिकं कारयन् पालयन् मानुष्यकानि सुखानि भुङ्क्ते इत्यग्रे सम्बन्धः तथाहि
चतुर्दशानां रत्नानाम् एकैन्द्रियाणां चक्ररत्नादि काकणीरत्नान्तानां सप्तानाम् पञ्चे-
न्द्रियाणां सेनापतिरत्नादि सुभद्रारत्नान्ताना सप्तानाम् संमीलने च चतुर्दशरत्नानामित्य-
र्थः अधिपत्यादिकम् तथा ‘णवण्हं महाणिहीणं’ नवानां नैसर्पादि शङ्गान्तानां तत्तद्दे-
वाधिष्ठितानां महानिधीनाम् आधिपत्यादिकम् तथा ‘सोलसण्हं देवसाहस्सीणं’
षोडशानां देवसाहस्सीणाम् षोडशसहस्रमण्ड्यकानां देवानामित्यर्थः आधिपत्यादिकम्
तथा ‘बत्तीसाए रायसहस्साणं’ द्वात्रिंशतो राजसहस्राणाम् द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यकानां
राक्षामित्यर्थः आधिपत्यादिकम् तथा ‘बत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्साणं’ द्वात्रिंशतः
ऋतुकल्याणिकासहस्राणाम् द्वात्रिंशसंख्यक ऋतुकल्याणिकास्त्रीणामित्यर्थः आधिपत्यं
स्वामित्वादिकम् अत्र ऋतुकल्याणिकाः इत्यस्य ऋतुविपरोतस्पर्शत्वेन शीतकाळे उष्णस्पर्शः
उष्णकाळे शीतस्पर्शः इत्यादि रूपेण सुखस्पर्शाः अथवाऽमृतकन्यात्वेन सदा सर्वऋतुषु कल्या-
णकारिण्यो राजकन्यकाः इत्यर्थो बोध्यः। तथा ‘बत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्साणं’ द्वा-
त्रिंशतः जनपदकल्याणिका सहस्राणाम् द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यायुक्तानां जनपदाग्रणी कल्याणि-
कानां राजकन्यकानामित्यर्थः आधिपत्यादिकम् तथा ‘बत्तीसाए बत्तीसइवद्धाणं णाडग-
सहस्साणं’ द्वात्रिंशतो द्वात्रिंशदवद्धानां नाटकसहस्राणाम् द्वात्रिंशतो द्वात्रिंशतापात्रैः
वद्धानां युक्तानां नाटकसहस्राणाम् द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यकानां द्वात्रिंशत्पात्रवद्धानाटकाना-
मित्यर्थः तथा ‘तिण्हं सट्टीणं सूवयारसयाणं’ त्रयाणां षष्ठानां षष्ठ्यधिकानां सूपकारशता-

‘तएणं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं’ इत्यादि सूत्र-३३

टीकार्थ- (तए णं से भरहे राया) षट्सण्डात्मक भरतक्षेत्र के साधन करने के बाद वे भरत चक्र
वर्ती (चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं मङ्गाणिहीणं सोलसण्हं देवसाहस्सीणं बत्तीसाए रायसहस्साणं
बत्तीसाए उडुकल्लाणियासहस्साणं बत्तीसाए जणवयकल्लाणियासहस्साणं बत्तीसाए बत्तीस-
इवद्धाणं णाडगसहस्साणं) चौदह रत्नों का नौ महानिधियों का सोलह हजार देवों का
बत्तीस हजार राजाओं का बत्तीस हजार ऋतुकल्याणकारिणी कन्याओं का ३२-३२
पात्र वद्ध ३२ हजार नाटकों का (तिण्हं सट्टीणं सूवयारसयाणं अद्वारसण्हं सेणिप्पसेणीणं चउ-

(तएणं से भरहे राया चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं) इत्यादि-सूत्र ३३ ॥

टीकार्थः- (तएणं से भरहे राया) षट् षड्भाग्य भरतक्षेत्रने साधन ३५ अनाया ओड
(स्वधीन अनाया भाह) ते भरत अकेवती (चउदसण्हं रयणाणं णवण्हं महाणिहीणं
सोलसण्हं देवसाहस्सीणं बत्तीसाए रायसरस्साणं बत्तीसाए उडुकल्लाणिया सहस्साणं बत्ती-
साए जणवयकल्लाणिया सहस्साणं बत्तीसाए बत्तीसइवद्धाणं णाडगसहस्साणं) चतुर्दशरत्ने,
नव मङ्गानिधियो, सोल सहस्त्र देवो, ३२ सहस्त्र राजयो, ३२ सहस्त्र ऋतुकल्याणिकारिणी
कन्यायो, ३२ सहस्त्र जनपदाग्रणीयोनी कन्यायो, ३२-३२ पात्र वद्ध ३२ सहस्त्र नाटके। (तिण्हं
१२१

नाम् त्रिषष्ठ्याधिकसहस्रसंख्यरूपकाराणां पाचकानामित्यर्थः तथा 'अट्टारसण्हं सेणि-
 प्पसेणीणं' अष्टादशानां श्रेणीप्रश्रेणीनाम् अत्र अष्टादश कुम्भकाराद्याः श्रेणयः तदवा-
 न्तरभेदाः प्रश्रेणयो बोध्याः तथा 'चउरासीइए आससयसहस्साणं' चतुरशीतेरश्वशतस-
 स्त्राणाम्—चतुरशीतिलक्षसंख्यकानामश्वानामित्यर्थः तथा 'चउरासीइए दंतिसयसहस्साणं'
 चतुरशीते दन्तिशतसहस्राणाम् चतुरशीतिलक्षसंख्यक इस्तिनामित्यर्थः तथा 'चउरासीइए
 रहसयसहस्साणं'चतुरशीतेः रथशतसहस्राणाम् चतुरशीतिलक्षसंख्यकरथानाम् प्रोक्तानामेते-
 षामाधिपत्यादि क्रम् तथा 'छण्णउइए माणुम्मकोडीणं'पणवते मनुष्यकोटीनाम् पणवतिको-
 टिसंख्यकमनुष्याणामाधिपत्यादिकम् तथा 'वावत्तरीए पुरवरसहस्साणं' द्वासप्ततेः पुरवर-
 सहस्राणाम् द्वासप्ततिसहस्रसंख्यकानां श्रेणनगराणाम् आधिपत्यादिकम् तथा 'वत्तीसाए ज-
 णवयसहस्साणं' द्वात्रिंशतो जनपदसहस्राणाम्—द्वात्रिंयत्सहस्रसंख्यक—जनपदानां देशानाम्
 आधिपत्यादिकम्, तथा 'छण्णउइए गामकोडीणं' पणवनेः ग्रामकोटीनाम् पणवति-
 लोटिसंख्यकानां ग्रामाणाम् आधिपत्यादिकम्, तथा 'णवणउइए द्रोणमुहसहस्साणं'
 नवनवतेः द्रोणमुखसहस्राणाम् नवनवतिसहस्रसंख्यकानाम् द्रोणमुखानाम् पाटलिपुत्रवत्
 जलस्थलमार्गोपेतानां जननिवासस्थानानाम् आधिपत्यादिकम्, तथा 'अडयालीसाए
 पट्टगसहस्साणं' अष्टाचत्वारिंशतः पत्तनसहस्राणाम्—अष्टाचत्वारिंशत्सहस्रसंख्यकानां
 पत्तनानां समस्तवस्तुप्राप्तियोग्यस्थानानाम् । उक्तञ्च-शकटादिभिर्नौभिर्वा, यद्गम्यं
 तत्पत्तनं हि इति । आधिपत्यादिकम् तथा 'चउव्वीसाए कब्बडसहस्साणं' चतुर्विंशतेः
 कर्बटसहस्राणाम्—चतुर्विंशतिसहस्रसंख्यककर्बटानाम् क्षुद्रप्राकारवेष्टितकुत्तिसतनगराणाम्
 आधिपत्यादिकम्, तथा 'चउव्वीसाए मडंबसहस्साणं' चतुर्विंशतेः मडम्बसहस्राणाम्

रासीइए आससयसहस्साणं चउरासीइए दंतिसयसहस्साणं चउरासीइए रहसयसहस्साणं छण्णउइए
 माणुस्सकोडीणं वावत्तरीए पुरवरसहस्साणं वत्तीसाए जणवयसहस्साणं) ३६० सूफकारो का १८
 श्रेणी प्रश्रेणीजनो का ८४ लाख घोडो का ८४ लाख हाथियो का ८४ लाख रथो का ९६ करोड
 पैदल मनुष्यो का ७२ हजार पुरवरो का ३२ हजार जनपदो का (छण्णउइए गामकोडीणं णवणउइए
 द्रोणमुहसहस्साणं, अडयालीसाए पट्टगसहस्साणं, चउव्वीसाए कब्बडसहस्साणं, चउव्वीसाए मड-
 बसहस्साणं) ९६ करोड प्राप्ति का, ९९ हजार द्रोणमुखो का, ४८ हजार पट्टणो का,
 २४ हजार कर्बटो का, २४ हजार मडम्बो का, (वत्तीसाए आगरसहस्साणं, सोलसण्हं

सडीणं सूवयार सयारारणं अट्टारसण्हं सेणिप्पसेणीणं चउरासीइए आससयसहस्साणं चउरा-
 सीइए दंतिसयसहस्साणं चउरासीए रहसयसहस्साणं छण्णउइए माणुस्सकोडीणं वावत्तरीए पुर-
 वरसहस्साणं वत्तीसाए जणवयसहस्साणं) ३६० सूफकारो १८ श्रेणी-प्रश्रेणी जनो ८४ लाख घो-
 डाओ ८४ लाख हाथियो, ८४ लाख रथो, ९६ करोड मनुष्यो, ७२ हजार पुरवरो, ३२ हजार जनपदो,
 १ (उइए गामकोडीणं णवणउइए द्रोणमुहसहस्साणं, अडयालीसाए पट्टगसहस्साणं, चउव्वीसाए
 कब्बडसहस्साणं, चउव्वीसाए मडंबसहस्साणं) ९६ करोड प्राप्ति, ९९ हजार द्रोणमुखो, ४८ हजार,
 थडुणो, २४ हजार कर्बटो, २४, हजार मडम्बो (वत्तीसाए आगरसहस्साणं सोलसण्हं खेडसहस्साणं

चतुर्विंशतिसहस्रसंख्यकमडस्वानाम् सार्द्धक्रोशद्वयान्तरेण ग्रामान्तररहितवसतीनाम् आधिपत्यादिकम्, तथा 'वोसाए आगरसहस्राण' विंशतेः आकरसहस्राणाम्-विंशति-सहस्रसंख्यकानाम् आकराणाम् सुवर्णरत्नाद्युत्पत्तिस्थानानाम् आधिपत्यादिकम्, तथा 'सोडसण्डं खेडसहस्राण' षोडशानां खेटसहस्राणाम् षोडशसहस्रसंख्यकखेटानाम् धूलिकाप्राकारनदीपर्वतैः वेष्टितनगराणाम् आधिपत्यादिकम्, तथा 'चउदसण्डं संवाह-सहस्राणं' चतुर्दशानां सम्वाहसहस्राणाम् चतुर्दशसहस्रमुखकसम्वाहानाम् दुर्गमस्था-नानाम् आधिपत्यादिकम्, तथा 'छप्पणाए अंतरोदगाणं' पद पञ्चाशतोऽन्तरोदकानाम् पद पञ्चाशत्संख्यकानाम् अन्तरोदकानां जलान्तर्वर्तिसन्निवेशविशेषाणाम् आधिपत्यादिकम्, तथा 'एगूणपण्णाए कुरज्जाणं' एकोनपञ्चाशतः कुराज्यानां भिल्लादिराज्यानाम् आधिपत्या-दिकम्, तथा 'विणीयाए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स केवलकप्पस्स भरह वासस्स' विनीतायाः राजधान्याः क्षुद्रहिमवद्गिरिसागरमर्यादाकस्य उत्तरस्यां दिशि क्षुद्रहिम-वद्गिरिः शेष पूर्वादिदिशात्रये त्रयः सागराः तैः कृता मर्यादा अवधिर्यस्य यत्र वा तत्त-थाभूतं तस्य केवलकल्पस्य सम्पूर्णस्य भारतवर्षस्य च आधिपत्यादिकम्, तथा 'अण्णेसिं च बहूणं राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पमिईणं' अन्येषां च बहूनां राजेश्वरतलवर याव-त्सार्थवाहप्रभृतीनाम् अत्र यावत्पदात् माडम्बिककौडुम्बिकमन्त्रिमहामन्त्रि गणक दौवारिकामात्यचेटपोठमर्दनगरनिगमश्रेष्ठिसेनापतिसार्थवाहदूतसन्धिपालपदानि ग्राह्याणि एतेषां व्याख्यानम् अस्मिन्नेव वक्षस्कारे सप्तविंशतितमे सूत्रे द्रष्टव्यम् 'आहेवच्चं

खेटसहस्राणं, चउदमण्डं संवाहसहस्राणं, छप्पणाए अंतरोदगाणं, एगूणपण्णाए कुर-ज्जाणं विणीयाए रायहाणीए चुल्लहिमवन्तगिरिसागरमेरागस्स केवलकप्पस्स भरहस्स वास-स्स) २० हजार आकरों का, १६ हजार खेटों का, १४ हजार संवाहों का ५६ अंतरोदकों, का, ४९ कुराज्यों का विनीता राजधानी का तथा उत्तरदिशा में क्षुद्रहिमवद्गिरि एव पूर्वा-दिदिशात्रय में समुद्रमर्यादावाले सम्पूर्ण भरतक्षेत्र का (अण्णेसिं बहूणं राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पमिईणं आहेवच्चं पौरैवच्चं मट्टिसं सामिसं महत्तरगत्तं आणारईसरसेणा-

चउदसण्डं संवाहसहस्राण, छप्पणाए अंतरोदगाण, एगूणपण्णाए, कुरज्जाणं विणी-याए रायहाणीए चुल्लहिमवंतगिरिसागरमेरागस्स केवलकप्पस्स भरहस्स वासस्स) २० सहस्रत्र आकरैः, ६ हजार खेटकैः, १४ हजार संवाहैः, ५६ अंतरोदकैः, ४९ कुराज्यैः, विनीता राजधानी तेमञ्ज उत्तर दिशाभा क्षुद्र हिमवद् गिरि अने पूर्वादि दिशात्रयभा समुद्र मर्यादावाणु समुद्र भरत क्षेत्र (अण्णेसिं च बहूण राईसरतलवर जाव सत्थवाहप्पमिईणं

- (१) जलान्तर्वर्ती सन्निवेशों का नाम है । (२) भिल्लादिकों के राज्य का नाम कुराज्य है । (३) इन सबका स्वरूप एवं ग्राम, आकर, जनपद, द्रोणमुख, संवाहन आदि का स्वरूपपीठे स्पष्ट किया जा चुका है ।
 (१) जलान्तर्वर्ती सन्निवेशों का नाम है । (२) भिल्लादिकों का राज्य का नाम कुराज्य है ।
 (३) ये सर्वत्र स्वल्प तेमञ्ज ग्राम, आकर, जनपद, द्रोणमुख, संवाह वेगैरेण स्वल्प पीठे स्पष्ट करवाभां आवेद है ।

पोरेवच्चं भद्रितं सामित्तं महत्तरगत आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे' आधि-
पत्यम् अधिपते भावः मुख्यत्वम् पौरोवृत्त्यम् पुरोवर्तित्वम् अग्रेसरता भर्तृत्व पतित्वम्
स्वामित्वम् नायकत्वम् महत्तरत्वम् अतिशयमहत्त्वम् आज्ञेश्वरत्वम् सेनापत्यं सेनानेतृत्वम्
कारयन् पाठयन् रक्षयन् सुखानि भुङ्क्तेस भरतः केषु सत्सु स सुखानि भुङ्क्ते इत्याह
'ओहयणिहएसु' इत्यादि 'ओहयणिहएसु कंटएसु' उपहतनिहतेषु कण्टकेषु तत्र उपह-
तेषु विनाशितेषु निहतेषु च अपहतसकलसमृद्धिषु कण्टकेषु तत्स्वरूपेषु गोत्रजशत्रुषु
तथा 'उद्धियमलिहएसु सव्वसत्तुसु' उद्ध्रतमर्दितेषु सर्वशत्रुषु तत्र उद्धृतेषु देशान्निर्वासि-
तेषु मर्दितेषु च मानहानिं प्रापितेषु सर्वशत्रुषु अगोत्रजवैरिषु एतत्सर्वं कुतोभवतीत्याह
'णिज्जिएसु' निर्जितेषु भग्नवलेषु सर्वशत्रुषु भोक्तप्रकारद्वयशत्रुषु, अत्र सर्वशत्रुषु इति
पदं देहली प्रदीपन्यायेन उभयत्र सम्बन्धः, कीदृशो भरतः सुखानि भुङ्क्ते इत्याह—'भरहा-
हिवे' इत्यादि 'भरहाहिवे णरिंदे' भरताधिपो नरेन्द्रः 'वरचदणचच्चिअंगे' वरचन्दन-

वच्चं कारेमाणे पालेमाणे) तथा और भी अनेक राजेश्वर तलवर आदि से केकर सार्थवाह
तक के जनों का आधिपत्य करते हुए अग्रेसरपना करते हुए भर्तृत्व—स्वामोपना करते
हुए उनका संरक्षणत्व करते हुए उनका नेतृत्व करते हुए, उनका सेनापत्य करते हुए
और अपनी आज्ञा का उन सब से पाठन करवाते हुए, (माणुस्से सुहे सुंजइ) मनुष्यभव
सबन्धी सुखो को भोगते हुए अपना समय शान्ति के साथ व्यतीत करने लगे (ओह-
य-निहएसु कंटएसु) क्योंकि उनके गोत्रज एव अगोत्रज समस्त शत्रु नष्ट हो चुके
थे एवं वे शत्रु सम्पत्ति विहीन हो चुके थे (उद्धियमलिहएसु सव्वसत्तुसु) देश से निर्वासित हो चुके
थे मानहानि युक्त हो चुके थे (णिज्जिएसु) सेना विहीन हो चुके थे (भरहाहिवे णरिंदे) इस
कारण सम्पूर्ण इ खंडवाले भरत क्षेत्र के अधिपति ये बन चुके थे और नरों में—प्रजाजनों
में—ये इन्द्रके जैसे चक्रवर्तित्व की अनुपम असाधारण विभूति से युक्त होने के कारण
मान्य हो चुके थे हर समय (वरचंदणचच्चिअंगे) इनका शरीर श्रेष्ठ चन्दन से चर्चित बना

आहेवच्चं पोरेवच्चं भद्रितं सामित्तं महत्तरगत आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पाले
माणे) तेमण्णीण पण्ण अनेक राजेश्वर तलवरथी भांडीने सार्थवाह सुधीना वीर्ये उपर
आधिपत्य करतां, अश्रगाभित्व करतां, भर्तृत्वकरता, सेनापत्य करतां अने पोताना
आहेशत्रु सर्वने पालन करावता (माणुस्से सुहे सुंजइ) मनुष्यभव सबंधी सुधीने
भोगता पोताने समय शान्तिपूर्वक व्यतीत करवा लाय्या. (ओहयनिहएसु कंटएसु) केभके
तेमना गोत्रज अने अगोत्रज समस्त शत्रुओं नाश पाय्या हुता अने तेओ सम्पत्ति
विहीन थर्ध अया हुता (उद्धियमलिहएसु सव्वसत्तुसु) देशथी जहार तेओ निर्वासित
थर्ध युद्धया हुता, मान हानि युद्ध थर्ध युद्धया हुता (णिज्जिएसु) सेना विहीन थर्ध युद्धया
हुता (भरहाहिवे णरिंदे) ओथी स पूर्ण इ भंड वाणा भरतक्षेत्रना ओओ अधिपति थर्ध
युद्धया हुता अने नरैभा—प्रजाजनोंमा—ओ भरत नृपति इन्द्र जेवा युद्धवर्तीत्वनी
अनुपम-असाधारण्य विभूतिथी युद्ध होवा जडल सम्मान्य थर्ध युद्धया हुता हर वपते

चर्चिताङ्गः वरचन्दनेन श्रेष्ठचन्दनेन चर्चितं समण्डलं कृतम् अङ्गं यस्य स तथाभूतः.
 पुनः क्रीदशः 'वरहाररइयवच्छे' वरहाररतिद्वलस्कः वरहारेण श्रेष्ठमुक्तादिहारेण रतिद-
 द्रष्टृणां नयनसुखकारकं वक्षो वक्षस्थलं यस्य स तथाभूतः पुनः क्रीदशः 'वरमउडविसि-
 द्दए' वरमुकुटविशिष्टकः श्रेष्ठशिरोभूषणमुकुटधारणेन विशेष शोभामापन्नः तथा 'वरवत्थ-
 भूषणधरे' वरवत्तभूषणधरः, पुनः क्रीदशः 'सन्वोडयसुराहिकुसुमवरमल्लसोमियसिरे'
 सर्वर्तुक सुरभिक्षुसुमवरमाल्यशोभितशिरस्कः सर्वर्तुकसुरभिक्षुसुमाना वरमाल्यैः श्रेष्ठ
 मालाभिः शोभितशिरस्कः, पुनः क्रीदशः 'वरणाडगणाडज्जवरइत्थिगुम्मसद्धिं सपरि-
 बुडे' वरनाटक वरनाटकीय वरस्त्रीगुल्मसार्द्धं संपरिवृतः तत्र वरनाटकानि पात्रादि समुदाय-
 रूपाणि नाटकीयानि च नाटकप्रतिबद्धं पात्राणि तैः तथा वरस्त्रीणां गुल्मम् अव्यक्ता-
 वयवविभागवृन्दं तेन च सार्द्धं संपरिवृतः युक्तः गुल्मेत्यत्र तृतीयालोप आर्पत्वात्, पुनः
 क्रीदशः 'सन्वोसहि सन्वरयण सन्वसमिडसमग्गे' सर्वोषधि सर्वरत्नसर्वसमितिसमग्रः
 सर्वोषध्यः पुनर्नवाद्याः, सर्वरत्नानि कर्केतनादीनि सर्वसमितयः अभ्यन्तरे बाह्ये च
 पर्षदस्ताभिः समग्रः सम्पूर्णः अतएव 'सपुण्णमणोरहे' सम्पूर्णमनोरथः सर्वमनोरथैः
 पूर्णः पुनः क्रीदशः 'इयामित्तमाणमहणे' हतामित्रमानमथनः हतानां बलवीर्यपराक्रम-

रहता था (वरहाररइयवच्छे) वक्ष स्थल पर दृष्टाजन को आनन्दप्रद श्रेष्ठ हार विराजित
 रहता था (वरमउडविसिद्दए) मस्तक श्रेष्ठ मुकुट से विशेष से शोभा संपन्न बना रहता
 था (वरवत्थभूषणधरे) अतिसुन्दर वक्षो को एवं भूषणो को ये धारण किये हुए रहते थे
 (सन्वोडयसुराहिकुसुमवरमल्लसोमियसिरे) इनका मस्तक समस्त ऋतुओ के सुरमित
 कुसुमों की श्रेष्ठ मालाओं से विभूषित रहता था, (वरणाडगणाडज्जवरइत्थिगुम्मसद्धिं सप-
 रिबुडे) श्रेष्ठ नाटको, श्रेष्ठ नाटकीय अभिनयो, और श्रेष्ठ स्त्रियों के अव्यक्त अवयव विभाग-
 समूह से ये सदा घिरे हुए रहते थे (सन्वोसहिसन्वरयणसन्वसमिडसमग्गे) सर्व प्रकार की
 पुनर्नवा आदि औषधियों से, कर्केतनादि समस्त रत्नों से और बाह्य आभ्यन्तर परिषदारूप
 समिति से ये हरे भरे बने रहते थे अतएव (सपुण्णमणोरहे) कोई भी इनका मनोरथ व्यभूरा

(वरचंदनचच्चियंगे) अभेनु शरीर श्रेष्ठ चन्दनशी चर्चित (विभ) रङ्गेतु डेतु (वरहाररइय-
 वच्छे) वक्षस्थल उपर दृष्टांको भाटे आनन्द प्रद श्रेष्ठ हार विराजित रङ्गेतो डेतो. (वरमउड-
 विसिद्दए) मस्तक श्रेष्ठ मुकुट थी विशेष शोभासम्पन्न रङ्गेतु (वरवत्थभूषणधरे) अति
 सुंदर वस्त्रो अने आभूषणोने ज्येओ पडेरी राभता डता (सन्वोडय सुराहिकुसुमवरमल्ल-
 सोमियसिरे) अभेनु मस्तक सर्व ऋतुओना सुरमित कुसुमोनी श्रेष्ठभाणोओथी विभूषित
 रङ्गेतु डेतु (वरणाडगणाडज्जवरइत्थिगुम्मसद्धिं संपरिवुडे) श्रेष्ठ नाटको, श्रेष्ठ नाटकीय
 अभिनयो अने श्रेष्ठ स्त्रीओना अव्यक्त अवयव विभाग समूहथी ज्येओ सर्वहा परिवृत्त
 रङ्गेता डता (सन्वोसहिसन्वरयण सन्वसमिडसमग्गे) सर्व प्रकारनी पुनर्नवा वगेरी
 औषधीओथी, कर्केतनादि समस्त रत्नोथी अने बाह्य आभ्यन्तर परिषदाइप समितिथी
 ज्येओ प्रकुद्वमन रङ्गेता डता ज्येथी (सपुण्णमणोरहे) अभेनो डेडपथु मनोरथ अपूषु रङ्गेतो

रहितत्वेन जीवन्मृतानाम् अमित्राणां शत्रूणां मानमथनः मथिताभिमानः एवं प्रोक्तविशेषणविशिष्टः स भरतो राजा कीदृशानि सुखानि भुङ्क्ते इत्याह 'पुत्रकयतवप्पभावनिविट्टसंचियफले' पूर्वकृततपःप्रभावनिविट्टसंचितफलानि पूर्वकृततपःप्रभावेण पूर्वं पूर्वजन्मनि कृत सम्पादितं यत्तपः तपस्या तस्य यः प्रभावो महिमा तेन निविट्टसंचितस्य निष्काचिततया संचितस्य तस्यैव ध्रुवफळत्वान् फलानि फलभूतानि 'सुंजइ माणुस्सए सुहे भरहे णामधेज्जेत्ति' भुङ्क्ते मानुष्यकानि सुखानि भरतो नामधेय इति-कीदृशो भरतः ? अस्मिन् भरतक्षेत्रे प्रथम भरताधिपत्वेन प्रसिद्धं नामधेय नाम यस्य स नामधेयो भरतो भरत नाम्ना प्रसिद्धो राजा उक्तविशेषणविशिष्टानि मानुष्यकानि मनुजसम्बन्धीनि सुखानि कामभोगादीनि भुङ्क्ते इत्यर्थः ॥सू० ३३॥

अथ अस्य नरदेवस्य भरतस्य धर्मदेवत्वप्राप्तिमूलमाह- तएणं से' इत्यादि ।

मूलम्-तए णं से भरहे राया अणण्या कयाइं जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव ससिब्व पियदंसणे णस्वई मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव आदंसघरे जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीहासणवगाए पुरत्थाभिमुहे णिसीअइ णिसीइत्ता आदंसघरंसि अत्ताणं देहमाणे चिट्ठइ तएणं तस्स भरहस्स रण्णो सुमेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहि विसुज्झमाणीहिं विसुज्जमाणीहिं इहापोहमग्गणगवेसण करेमाणस्स तयाव रणिज्जाणं कम्माणंखएणं

नहीं रहता था सब ही मनोरथ इनके परिपूर्ण होते रहते थे (हयामित्तमाणमहणे) बलवीर्य एवं पराक्रम से रहित हो जाने के कारण जीते हुए भी मरे के जैसे बने हुए शत्रुओं के ये मानरूपीनशा के उतारने वाले थे ऐसे इन विशेषणों से युक्त भरत चक्रवर्ती (पुत्रकयतवप्पभावनिविट्टसंचियफले) इन्हे जो इष्टानुसार निरन्तर मनुष्यभव सम्बन्धी भोगों की प्राप्ति हुई थी वह सब इनके द्वारा पूर्वभव में संपादित तप के प्रभाव का निष्काचित रूप फल है । (सुंजइ-माणुस्सए सुहे भरहे णामधेज्जेत्ति) ये भरत राजा भोगमूर्तिकी समाप्ति होने पर सर्वप्रथम ही भरतक्षेत्र के चक्रवर्ती हुए हैं ॥सू० ३३॥

नंदतो जेमना सव मनोरथो परिपुष्णं धर्षज्जा इत्ता (हयामित्तमाणमहणे) बलवीर्यं तेमज्ज पराक्रमथी हीन धर्षज्जा महल अर्थात् पराजित थयेला होवा छता जे मृतवत् थयेला शत्रुजोना मानरूपी महने जेजो उतारनार इत्ता. जेवा जे विशेषणथी युक्त भरतचक्रवर्ती इत्ता. (पुत्रकयतवप्पभावनिविट्टसंचियफले) जेमने जे धर्षज्जा सुज्जण सत्त मनुष्यभव सम्बन्धी भोगोनी प्राप्ति थयेली, ते जेमना वडे पूर्वभवमा संपादित तपना प्रभाववु निष्काचित रूप फल छे; (सुंजइ माणुस्सए सुहे भरहे णामधेज्जेत्ति) जे भरत राजा भोगमूर्तिकी परिणामाप्ति थर्ष ते पछी सव प्रथमज्ज भरतक्षेत्रना चक्रवर्ती थया छे ॥सू० ३३॥

कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं पविट्टस्स अणंते अगुत्तरे निव्वाघाए
 निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे, तएण से
 भरहे केवली सयमेवाभरणालंकारं ओमुअइ ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं
 लोअं करेइ करित्ता आयसघगओ पडिणिकखमइ पडिणिकखमित्ता अंते
 उरमज्झंमज्झेणं णिगच्छइ णिगच्छित्ता दसहिं रायवरसहस्सेहिं सच्छिं
 संपरिवुडे विणीयं रायहाणिं मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ णिगच्छित्ता
 मज्झदेसे सुहं सुहेणं विहरइ विहरित्ता जेणेव अट्ठावए पव्वए
 तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अट्ठावयं पव्वयं सणिअं सणिअं दुरूहइ
 दुरूहित्ता मेघघणमणिकासं देवसण्णिवायं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ
 पडिलेहित्ता संलेहणाञ्जसणाञ्जसिए भत्तपाणपडिआइक्खिए पाओव-
 गए कालं अणवकंखमाणे अणवकंखमाणे विहरइ। तएणं से भरहे केवली
 सत्ततरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता एगं वाससहस्सं मंड-
 लियरायमज्झे वसित्ता छपुव्वसयसहस्साइ वाससहस्समूणगाइ महाराय-
 मज्झे वसित्ता तेसीइ पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता एगं
 व्वसयसहस्सं देसूणं केवलिआउं पाउणित्ता तमेव बहुपडिपुण्णं
 सामन्नपरिआयं पाउणित्ता चउरासीइपुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पाउ-
 णित्ता मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं
 खीणे वेअणिज्जे आउए णामे गोए कालगए वीइक्कते समुज्जाए
 छिण्णजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिव्वुडे अंतगडे सव्व-
 दुक्खप्पहीणे ॥सू. ३४॥

छाया-तत. खलु स भरतो राजा अन्यदा कदाचित् यत्रैव मज्जनगृह तत्रैव उपागच्छति
 उपागत्य यावत् शशीव प्रियदर्शनो नरपतिः मज्जनगृहात् प्रतिष्क्रामति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव
 आदर्शगृहं यत्रैव सिंहासनं तत्रैव उपागच्छति उपागत्य सिंहासनवरगतः पौरस्त्याभिमुखो
 निषीदति, निषद्य आदर्शगृहे आत्मानं पश्यन् पश्यन् तिष्ठति । तत खलु तस्य भरतस्य राज्ञः
 शुभेन परिणामेन प्रशस्तैः अद्यवसानैः लेख्याभिः विशुद्धयन्तीभिः इहापोहमार्गणगवेषणं
 कुर्वत तदावरणीयानां कर्मणां क्षयेन कर्मरजोविकरणकरम् अपूर्वकरणं प्रविष्टस्य न्तम्
 अनुत्तरम् निर्व्याघातं निरावरणं कृत्स्नं प्रतिपूणं केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् : खलु

स भरतः केवली स्वयमेव आभरणालङ्कारम् अवमुञ्चति अवमुच्य स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा आदर्शगृहात्प्रतिनिष्क्रामति प्रनिनिष्क्रम्य अतःपुरमध्यमध्येन निर्गच्छति निर्गत्य दशभिः राजवरसहस्रैः सार्द्धं संपरिवृतो चिनोता राजधानीं मध्यमध्येन निर्गच्छति निर्गत्य मध्यदेशे सुखं सुखेन विहरति विहृत्य यत्रैव अष्टापदं पर्वतस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य अष्टापदं पर्वतं शनैः शनैः दुरोहति दुरूह्य मेघधनसन्निकाश देवसन्निपात पृथिवी शिलापट्टकं प्रतिलेखयति प्रनिलिख्य संल्लेखनाजोपणाञ्जुष्टो ह्युपितो वा भक्तपान-प्रत्याख्यातं पादपोषगतं कालम् अनवकाङ्क्षन् अनवकाङ्क्षन् विहरति, ततः खलु स भरतः केवली सत्नसप्ततिं पूर्वशतसहस्राणि कुमारवासमध्ये उपित्वा एकं वर्षसहस्रं माण्ड-लिकराजमध्ये उपित्वा पट्टं पूर्वशतसहस्राणि वर्षसहस्रोनानि महागजमध्ये उपित्वा त्र्य-शीतिं पूर्वशतसहस्राणि अगारवासमध्ये उपित्वा एकं पूर्वशतसहस्रं देशेन केवलिपर्यायं प्राप्य तदेव बहुप्रतिपूर्वं श्रामण्यपर्यायं प्राप्य चतुरशीतिं पूर्वशतसहस्राणि सर्वायुः प्राप्य मासिकेन भक्तेन अपानकेन श्रवणेन नक्षत्रेण योगमुपागतेन क्षीणे वेदनीये आयुषि नाम्नि गोत्रे कालगते व्यतिक्रान्ते समुद्यात छिन्नजातिजराभरणवन्धनः सिद्धो बुद्धो मुक्त अन्तगतः सर्वदुःखप्रहीणः ॥सू० ३४॥

टीका " तएणं से " इत्यादि । ' तएणं से भरहे राया अणया कयाइं जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ ' ततः वर्षसहस्रोत्पट्टपूर्वलक्षावधिसाम्राज्यानुभवानन्तरं खलु स भरतो राजा अन्यदा कदाचित् अन्यस्मिन् कस्मिंश्चित् काले यत्रैव मज्जणगृहं स्नानगृहम् तत्रैव उपागच्छति ' उवागच्छिता ' उपागत्य ' जाव ससिब्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिकखमइ ' यावच्छशीव प्रियदर्शनो नरपतिः भरत राजा मज्जणगृहात्प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति अत्र यावत्पदात् यथा चन्द्रः स्वच्छ-

नरदेव भगत को धर्मदेवत्व की प्राप्ति होने का कारण

'तएणं से भरहे राया अणया कयाइं जेणेव मज्जणघरे' इत्यादि सूत्र-३४

टीकार्थ (तएणं से भरहे राया अणया कयाइं जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) एक दिन की बात है कि १ हजार वर्ष कम ६ लाख पूर्व तक साम्राज्य पद भोगने के बाद वे भरत राजा जहा पर स्नान गृह था वहाँ पर गये (उवागच्छिता जाव ससिब्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिकखमइ) वहा जाकर शशि के जैसे प्रियदर्शनवाले वे भरत राजा मज्जणगृह से वापिस बाहर निकले यहा यावत्पद से" यथा स्वच्छमेघान्निर्गच्छन् सन् चन्द्रः

नरदेव भरतने धर्मदेवत्वनी प्राप्ति शा कारण्थी थर् ? ते स'अ धमा कथन-

(तएणं से भरहे राया अणया कयाइं जेणेव मज्जणघरे) इत्यादि सूत्र-३४॥

टीकार्थ- (तएणं से भरहे राया अणया कयाइं जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ) जेठ दिवसनी वात छे के जेठ सडस वर्ष कम ६ लाख पूर्व बुधी साम्राज्य पद भोगथा आठ ते भरत राजा जहा स्नान गृह छे तु त्या गथा (उवागच्छिता जाव ससिब्व पियदंसणे णरवई मज्जणघराओ पडिणिकखमइ) त्या जधने शशी जेवा प्रियदर्शी ते भरत राजा मज्जण गृहभांथी, पाछा आडा ११६००, अडी" यावत् पदथी "यथा स्वच्छ मेघान्निर्गच्छन् सन् चन्द्रः

मेघान्निर्गच्छन् सन् प्रियदर्शनो भवति तथाऽयमपि भरतः सुधाधवलितमञ्जनगृह-
 न्निर्गच्छन् प्रियदर्शन इति 'पडिणिकखमिक्ता' प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य 'जेणेव आदं-
 सघरे जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव आदर्शगृह दर्पणगृहम् यत्रैव च सिंहा-
 'तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छिता' उपागम्य 'सीहासणवरगए पुरत्याभिमुदे णि-
 सीयइ' सिंहसनवरगतः श्रेष्ठसिंहासने उपविश्येत्यर्थः पौरस्त्याभिमुखः पूर्वाभिमुखो
 भूत्वा निषीदति उपविशति स भरतः णिसीइत्ता' निषद्य उपविश्य 'आदंसघरंसि अत्ताणं
 पेहमाणे पेहमाणे चिट्ठइ' आदर्शगृहे आत्मान पश्यन् पश्यन् तत्र प्रतिबिम्बितं सर्वा-
 ङ्गस्वरूपं स्वशरीर प्रेक्षमाणः प्रेक्षमाणः तिष्ठति आस्ते स भरतः । 'तपणं' इत्यादि । 'तपणं

प्रियदर्शनो भवति, तथाऽयमपि भरतः सुधाधवलितमञ्जनगृहान्निर्गच्छत् प्रियदर्शनः" इस कथन का
 समग्र किया गया है. इसका अर्थ सुगम है. (पडिणिकखमिक्ता जेणेव आदंसघरे जेणेव सीहासणे
 तेणेव उवागच्छइ) बाह्य निकल कर फिर वे जहां पर आदर्श गृह (अरिसा भवन) था धीरे
 उसमें भी जहा पर सिंहासन था. वहां पर आये. (उवागच्छिता सीहासणवरगए पुरत्याभिमुदे
 णिसीयइ) वहा आकर वे पूर्वदिशा को ओर मुंह कर के सिंहासन पर बैठ गये (णिसीइत्ता
 आदंसघरंसि अत्ताणं पेहमाणे चिट्ठइ) वहा बैठे २ वे अपने पदे हुए-प्रतिबिम्ब को बार २ निहार
 ने लगे अपने प्रतिबिम्ब को निहारते २ उनकी दृष्टि अपनी अङ्गुली से गिरि मुद्रिका-अङ्गुठी-
 पर-पड़ गई. उसे-देखकर उन्होंने अपनी-अङ्गुली को दिन में ज्योत्स्ना से फीकी पड़ी हुई शशि-
 कला के समान देखा-देखकर उन्होंने विचार किया कि ओह-यह अङ्गुली अङ्गुठी से विरहित
 होकर शोभा विहीन होगई है. इस प्रकार विचार करते हुए उन भरत ने अपने शरीर के- २
 २ अवयवों को आभरण विहीन कर दिया तो ये सब-अवयव भी शोभा से विहीन हुए उन्हें
 दिखने लगे. तब, उन्होंने समस्त अङ्गों से आभूषणों को उतारना प्रारम्भ कर दिया. (तपणं

प्रियदर्शनो भवति तथाऽयमपि भरतः सुधाधवलितमञ्जनगृहान्निर्गतः प्रियदर्शनः" आ
 कथनने स'अड करवाभां आवेळ छे. आने अर्थ सुगम छे, (पडिणि मिक्ता जेणेव आदं-
 सघरे जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ) अडारनीकणीने पडी तेजो तथा आदर्श' गृह
 (दर्पणभवन) हेतु अने तेमांपधु ल्यां सिंहासन हेतु त्या आल्या (उवागच्छिता सीहासण-
 ए पुरत्याभिमुदे णिसीयइ) त्यां अर्धने तेजो पूर्व दिशा तरङ्ग मुअ करीने सिंहासन
 उपर समासीन थई गथा (णिसीइत्ता आदंसघरंसि णं पेहमाणे चिट्ठइ) त्यां असीने
 तेजो पोताना प्रतिबिम्ब ने वारे घडोअे जेवा दाअ्या पोताना प्रतिबिम्बने जेतां-
 जेतां तेमनी दृष्टि पोतानी आंगणीथी सरी पठेळी मुद्रिकां-अ'गुठी-उपर पडी गध. तेने
 जेधने तेमजे पोतानी आंगणीने दिवसमा ल्योत्सना रहित शशिकलानी जेम कातिडीन
 जेध तेरीते जेधने तेमजे विचार क्यों हे अरे । जे आंगणी अ'गुठीथी विरहित थधने शोभा
 विडीन थध गध छे. आ प्रभाजे विचार करता करतां ते भरते पोताना शरीरना जीण अ'गोने
 पधु आभरण विडीन करी हीधां आभ सर्व अ'गो पधु शोभा विडीन थध गथां त्यार
 आह तेमजे पोताना समस्त अ'गो उपरथी आभूषणो उतारी हीधां (तपणं तस्स मरहं
 १२२

तस्स भरंहस्स' ततः खलु तस्य भरतस्य राजः 'सुभेण परिणामेण' शुभेन परिणामेन—मांस-
सूत्रविष्टाद्यैर्मलं परिपूर्णमिदं शरीरं किं सुशोभम् इदञ्च कर्पूरकस्तूरीप्रभृतीन्यपि
दूषयत्येव । यत्प्रातः संस्कृत धान्य तन्मध्याह्ने विनश्यति । तदीयरसनिष्पन्नैः, काये
का नाम सारता ॥ १ ॥ इति शरीरासारत्वभावनारूपया जीवपरिणत्या 'पसत्येहिं
अञ्जवसाणेहिं' प्रशस्तैः अध्यवसानैः - प्रोक्तस्वरूपैः मनः परिणामैः 'छेसाहिं' छेश्या-
भिः शुक्लादि द्रव्योपहितजीवपरिणतिरूपाभिः 'विसुञ्जमाणीहिं विसुञ्जमाणीहिं'
विशुद्ध्यन्तीभिर्विशुद्ध्यन्तीभिः - उत्तरोत्तरविशुद्धिमापद्यमानाभिरापद्यमानाभिः 'ईहा-
पोहमगणगवेणं करेमाणस्स' निरावरणवपुर्वैरूपप्यविषयकम् ईहापोहमार्गणगवेणं
कुर्वत तत्र ईहादिपदेभ्यः प्रथमम् अवग्रहस्य उल्लेखः तथा च अवग्रहेहापोहमार्गणगवेण-
णमिति, तत्र लोके अवग्रहो यथा दूरस्थ पुरोवर्तिनि वस्तूनि किमिदमिति ज्ञानम् । ततः
ईहास्वरूपमाह - ईहनम् ईहा नामजात्यादि कल्पनारहित सामान्यज्ञानोत्तरं विशेषनि-
श्चयार्थं विचारणा इहा यथा स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये ज्ञाते सति स्पर्शः ? इति
शाढान्धकारे चक्षुष्मतोऽपि विचारणा प्रवर्तते, एव स्थाणुर्वा पुरुषो वा इति विचारणा
तथा प्रकृते सा शोभा अलङ्कारसन्नियोगशिष्टशरीरे अलङ्कारजन्या औपाधिकी
अथवा स्वभाविकीति ईहा ततोऽपोहस्वरूपमाह - अपोहनम् अपोह' मतिज्ञानस्य

तस्स भरंहस्स रण्णो सुभेण परिणामेण पसत्येहिं अञ्जवसाणेहिं छेसाहिं विसुञ्जमाणीहिं विसुञ्ज-
माणीहिं ईहापोहमगणगवेसणं करेमाणस्स) जब वे समस्त अंगो से आभूषणों को उतार
लुके तब उसके बाद—उनके अन्तरङ्ग में ऐसा शुभ परिणाम बगा कि यह शरीर मांस, मूत्र,
विष्टा आदि मलों से परिपूर्ण है, इसमें शोभा जैसी वस्तु क्या है ? यह तो ऐसा है, कि कर्पूर
कस्तूरी आदि वस्तुओं को भी दूषित बना देता है जो धान्य प्रातः संस्कृत—पकाया जाता
है—वह मध्याह्न—में विनष्ट हो जाता है, उसके रससे निष्पन्न हुए— इस कार्य में सारता जैसी
चीज क्या है, इस प्रकार की शरीर की असारताका चिन्तन करने रूप जीवपरिणति से—तथा
प्रशस्त अध्यवसायो से—मनोविचार धाराओं से—एवं प्रतिक्षण विशुद्ध होती जाती छेश्याओं से
योग की— प्रवृत्तियों से—निरावरण शरीर की विरूपता विषयक ईहा अपोह, मार्गण और गवे-

रण्णो सुभेण परिणामेण पसत्येहिं अञ्जवसाणेहिं छेसाहिं विसुञ्जमाणीहिं विसुञ्जमाणीहिं
'ईहापोहमगणगवेसणं करेमाणस्स) अथवा समस्त अंगों उपरती आभूषणों उतारो यद्यथा
शरीरे तेमना अंतरमां जेवी शुभभावना उद्भावी के आ शरीर, मांस, मूत्र, विष्टा वगैरे
भोगेथी परिपूर्णं छे जेमा शोभा जेवी वस्तु कथं छे ? आतो जेपुं छे के कर्पूर' कस्तूरी
वगैरे सुगंधित वस्तुजोने पथ दूषित जनावी हे छे जे धान्य सवादे पकववाअं
आवे छे, ते मध्याह्नमा विनष्ट थछं अथ छे तेना रसथी निष्पन्न थयेला आ कार्यं
सारवान जेवी वस्तु कथं छे ? आ प्रभाणे शरीरनी असारतापुं चिन्तन करवा इयं अथपरि-
णतिथी तेमज प्रशस्त अध्यवसायेथी—मनोविचारधाराजोथी तेमज प्रतिक्षण विशुद्ध
थती छेश्याजोथी—योगनी प्रवृत्तिजोथी—निरावरण शरीरनी विरूपता विषयक छेडा, अथोह

अवग्रहादि भेदचतुष्टये तृतीयभेदे योऽपायः स एव अपोहः, स च सामान्य ज्ञानोत्तरं कालं विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्ताया तदनुगुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः । यथा लोके किमयं कमलनालस्पर्शः . आहोस्वित भुजङ्ग स्पर्शः । इति विचारणायां मृणालस्यैव स्पर्शः एवं स्थाणुरेव न पुरुषः वल्ली उत्सर्पणादि धर्माणां तत्र सद्भावात् इत्ययं निश्चयः पुरुषमपनुदति । अत्यन्तगीतलत्वादि गुणवत्त्वात् इत्यस्यैवायमिति निश्चयोऽन्य भुजङ्गस्पर्शम् अपनुदति तथा प्रकृते सा शोभा औपधिक्येव न स्वाभाविकी तस्याः अलङ्कारादि बाह्यस्तुसंसर्गजन्यत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् । ततो मार्गणा स्वरूपमाह - अस्याः शोभायाः प्रकर्षापकर्षौ बाह्यवस्तु प्रकर्षापकर्षोन्विधायिनौ इत्यन्वयधर्मालोचनं मार्गणा यथा लोके स्थानी निश्चेतव्ये तत्र वल्ली उत्सर्पणादयो धर्माः संभवन्ति । ततो गवेषणस्वरूपमाह-प्रवृत्तस्याः तस्याः शोभायाः स्वाभाविकत्वे उत्तानदृशा भारभूतस्य आभरणस्य वपुषि धारणबुद्धिर्न स्यादिति व्यतिरेकधर्मालोचनम् गवेषणम्, यथा स्थानी शिरः कण्डूयनादयः पुरुषधर्माः न दृश्यन्ते

षण करते २ (नयावरणिज्जाणं कम्ममाणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं पविट्टरस अणते अणुत्तरे निव्वाघाप निरावरणे कमिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुपण्णे) तदा वरणीय कर्मो के क्षय से कर्मरज को-विकीर्ण करने वाले अपूर्व करणरूप शुद्धध्यान में वे भरत-महाराज प्रविष्ट हो गये सो उसी समय उनके अनन्त अनुत्तर, व्याघात रहित निरावरण, कृत्स्न एवं प्रतिपूर्ण ऐसे-केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गये. यहां जो ईहापोह आदि पद आये हैं सो उनके सम्बन्ध में ऐसा विचार है सब से पहिले अवग्रह रूप ज्ञान होता है. जो यह "यह कुछ है" इस रूप होता है अवग्रह में अवान्तर मर्त्ता विशिष्ट वस्तु का प्रश्न होता है जैसे दूरस्थ-मामने रही हुई वस्तु को देखकर ऐसा विचार आता है कि-यह कुछ है. इसके बाद अवग्रह गृहीत अर्थ में विशेष जानने की आकांक्षा जगती है-नत्र विचार होता है कि यह जो-कुछ रूप में प्रतिभासित हो रहा है सो क्या

भाग्य अने गवेषण करता करता (नयावरणिज्जाणं कम्ममाणं खएणं कम्मरयविकिरण करं अपुव्वकरणं पविट्टरस अणते अणुत्तरे निव्वाघाप निरावरणे कमिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुपण्णे) तदावरणीय कर्मोना क्षयथी कर्मरज ने विकीर्ण करनारा अपूर्वकरण रूप शुद्धध्यानमा ते भरत नृपति महाराज भग्न थर्ध गया. अने तेन क्षण्णे तेभना स्वतंत अनन्तर व्याघात रहित निरावरण, कृत्स्न तेभन परिपूर्ण जेवा केवलज्ञान-अने केवल दर्शन उत्पन्न थया. अही ने ईहापोह वगेरे पदो आवेला छे तो ने संधर्मां आ विचार छे के सर्व प्रथम अवग्रह रूप ज्ञान होय छे अने आ " जो कंछि छे " जे रूपमा होय छे अवग्रहमा अवान्तर सत्ता विशिष्ट वस्तुओनुं अर्थ थाय छे ने म दूरस्थ पणुं सोमे . न देभाती वस्तुने जेधने आभ विचार थाय छे के "जो कंछि छे त्यारथाह अवग्रह गृहीत अर्थमा विशेष ज्ञानवानी आकांक्षा जगती थाय छे. ते वभते विचार "उहसवे छे के जो ने कंछि प्रतिभासित थर्ध रह्यु छे ते थु छे ? थु ते अकप दित छे के ध्वज छे ? आ

है : क्या वक्रवृत्ति—है या ध्वजा है ? इम प्रकार के जायमान सदेह को दूर करने के लिये निश्चय की ओर झुकते हुए ज्ञान का नाम ईहा है. जैसे यह ध्वजा होनी चाहिये, ईहा के बाद विलकुल निश्चय—करने वाले ज्ञान का नाम अवाय—अपोह है—जैसे—यह—ध्वजा ही है. तथा अन्यान्य धर्म का आलोचन करना—इसका नाम गवेषण है. टीकाकार ने अवग्रह आदिकों के—रूप को इस प्रकार से समझाया है, जैसे—चक्रवर्ती ने—विचारा—शरीर में शोभा है. यह अवग्रह उसे ज्ञान हुआ—पर इसके बाद उसे ऐसा संशय ज्ञान हुआ कि यह शारीरिक शोभा अलङ्कार जन्य है. या स्वाभाविकी है ? संशय को दूर करने के लिये निश्चय की ओर झुकता हुआ ईहा—ज्ञान उसे इस प्रकार से हुआ कि यह अलङ्कार विशिष्ट शरीर की शोभा अलङ्कार जन्य होनी चाहिये. इसके बाद फिर उसे ऐसा अवाय—अपोह—ज्ञान हुआ कि यह शारीरिक शोभा औप-धिकी ही है स्वाभाविकी नहीं है। मतिज्ञान के जो सिद्धांतकारों ने अवग्रह आदि ४ भेद प्रकट किये हैं और उनमें एक अवाय नामका भेद प्रकट किया है उसी का नाम यहाँ अपोह कहा गया है। यह शारीरिक शोभा औपधिकी इसलिये निश्चित हुई कहि गई है कि यह अलंकारादि-रूप बाह्य वस्तु के संसर्ग से जन्य हुई है. यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हो रही है। इस शारीरिक शोभा के जो प्रकर्ष और अप्रकर्ष धर्म हैं वे बाह्य वस्तु के प्रकर्ष और अप्रकर्ष के अनुविधायी हैं इस तरह धन्वयरूप धर्म की आलोचना करने का नाम मार्गणा है व्यतिरेक धर्म का आलोचन करना इसका नाम गवेषण है। और वह इस प्रकार से है—यदि उप शारीरिक शोभा को स्वाभा-

प्रमाणों के सङ्केत उत्पन्न थाय तेने दूर करवा भाटे निश्चय तरङ्ग उन्मुक्त यथा ज्ञानं नाम धंसा छे. जेभ के जे ध्वजा न होवी जेधजे. धंसा पछी जेकहम निश्चय करवानाहु ज्ञान—अवाय—अपोह छे जेभके—जे ध्वजा न छे. तथा अन्य धर्मं तुं आलोचन करवुं गवेषण छे. टीकाकारे अवग्रह वगेरेना स्वरूपने आ प्रमाणे समलोक्युं छे—के जेभ चक्रवर्तीके विचार कथी के शरीरमां शोभा छे. जे अवग्रह रूप तेने ज्ञान थयुं पषु त्पारणाड तेने आपुं संशय ज्ञान थयुं के जे शारीरिक शोभा अलंकारजन्य छे—के स्वाभाविकी छे ? जे संशयने दूर करवा भाटे निश्चय तरङ्ग उन्मुक्त यत्तुं धंसाज्ञान तेने आ रीते थयुं के जे अलंकार विशिष्ट शरीरनी शोभा अलंकार जन्य न होवी जेधजे त्पारणाड तेने जेपुं अवाय—अपोह—ज्ञान थयुं के जे शारीरिक शोभा औपधिकी न छे—स्वाभाविकी नथी. सिद्धा-न्तकारेके मतिज्ञानना जे अवग्रह वगेरे ४ बेहो प्रकट कयां छे अने तेभनामां जेक अ-वायनामक बेह प्रकट करैल छे, तेतुं न नाम अर्ही अपोह छे जे शारीरिक शोभा औपधिकी जेटला भाटे निश्चित थयेवी प्रकट करवामां आनी छे के जे अलंकारादि रूप बाह्य वस्तुना संसर्गांथी जन्य छे जे वात प्रत्यक्ष प्रमाणथी सिद्ध थरि रही छे जे शारीरिक शोभाना जे प्रकर्ष अने अप्रकर्ष धर्मो छे ते जाहय वस्तुना प्रकर्ष अने अप्रकर्षना अनुविधायी छे आ प्रमाणे अन्यय रूप धर्मनी आलोचन करवावुं नाम मार्गणा छे—व्यतिरेक धर्मं तुं आलोचन करवुं जे गवेषण छे अने ते आ प्रमाणे छे—जे जे शारीरिक शोभा स्वाभाविक रूपमां मानवामां आवे तो पछी कारभूत आधुषणो शरीर उपर शोभाते धारण करवामां

इति ईहादीनां व्यख्यानम् । पुनः कोदशस्य भरतस्य 'तयावरिज्जाण कम्माण खरणं' तदावरणोयानां केवलज्ञानदर्शननिबन्धकानां चतुर्णां ज्ञानावरणीय १ दर्शनावरणीय २ मोहनीय ३ अन्तराय ४ रूपाणां घातिकर्मणां क्षयेण सर्वथा जीवप्रदेशेभ्यः तदीय पुद्गलपरिशादनेन 'कम्मरयविकिरणकरं' कर्मरजसां विकिरणकरं विक्षेपकरम् निवारकमित्यर्थः 'अपुञ्जकरणं' अपूर्वकरणम् अनादौ संसारे अप्राप्तपूर्वं ध्यानं शुक्लध्यानं प्रविष्टस्य प्राप्तस्य एवंभूतस्य भरतस्य 'अणते अनुत्तरे निञ्चाघाए निगवरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुपण्णे' अनन्तम् अप्रतिपादितत्वेन पर्यवसानरहितत्वात् अनुत्तरम् न विद्यते उत्तरम् उच्चतरं (प्रधानम्) यस्मात्तदनुत्तरम् अनन्यसदृशम् निर्व्याघातं व्याघातरहितम् निरावरणम् कटकुड्यादिआवरणसहितं प्रतिबन्धकीभूतावरणरहितम् क-

विक्र माना जावे तो फिर भारभूत गहनों को धारण क्यों किया जाता है । इससे यह जाना जाता है कि यह स्वाभाविक नहीं है । इसतरहसे यह अवप्रज्ञादिकों का स्वरूप यहां हमने प्रकट किया है । इससे टीकाकार का अभिप्राय जो टीका में लिखा गया है, वह स्पष्टरूप से हृदयंगम किया जा सकता है । टीकागत विचारधारा बिल्कूल स्पष्ट है । अतः उसका भाव लेकर यह स्पष्टीकरण किया गया है । केवलज्ञान और केवलदर्शन को आवरण करने वाले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, ये चार कर्म हैं । इन्हें घातिकर्म भी कहा गया है । इनका अब सर्वथा क्षय हो जाता है । अर्थात् ये जीव के प्रदेशों से बिल्कूल नष्ट हो जाते हैं ।—तब केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होते हैं । यहां "अपुञ्जकरण" पद शुक्लध्यान का वाचक है । इस अनादि संसारमें यह ध्यान अज्ञात पूर्व होता है ये केवलज्ञान और केवलदर्शन अप्रतिपाती होते हैं इसलिये एक बार प्राप्त होने पर फिर छूटते नहीं हैं इसलिये उन्हें अनन्त कहा गया है इनके जैसा और कोई उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन नहीं हैं इसलिये इन्हें अनुत्तर कहा गया है । इनका कटकुड्यादि से आवरण नहीं होता है । इसलिये इन्हें निर्व्याघात कहा गया है ।

आवेछे. जेथी अनिश्चय थाय छे के जे स्वाभाविक नथी आ प्रभावे जे अवअडादिहेतु स्वरूप अत्रे अमे प्रकट कथुं—छे जेथी टीकाकारे पोताने जे अभिप्राय टीकाभा स्पष्ट कथे छे ते हृदयंगम यथ नय छे टीकागत विचारधारा जेकदम स्पष्ट न छे. जेथी तेने भाव लधने न जे स्पष्टीकरण करवामा आवेल छे केवलज्ञान अने केवलदर्शनने आवृत करवारा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय अने अतराय जे चार कर्मे छे. जेभने घातिकर्मे पक्ष कहेवामा आवेल छे जेभने ज्यारे सर्वथा क्षय यथ नय छे जेटले के जे लवाना प्रदेशेथी जेकदम नष्ट यथ नय छे त्यारे केवलज्ञान अने केवलदर्शन उत्पन्न थाय छे अही " अपुञ्जकरण " पद शुक्ल ध्यान वाचक छे जे अनादि संसारमा जे ध्यान अप्राप्त पूर्व होय छे जे केवलज्ञान अने केवलदर्शन अप्रतिपाती होय छे. जेथी जेक बार प्राप्त यथ नय ते पछी छूटता नथी जेथी न जेभने ' अनन्त ' कहेवामा आवेल छे. जेभना जेसु अन्ये कौं पक्ष उद्धृत ज्ञान—दर्शन नथी, जेथी न जेभने अनुत्तर कहेवामा आवेल छे जेभनुं कट-कुड्यादिथी आवरण थतु नथी जेथी न जेभने निर्व्याघात कहेवामा

त्स्न समस्तं सकलवदार्थविषयत्वात् प्रतिपूर्णम् सूत्रतोऽक्षरमात्रादि न्यूनतया रहितं सर्वप्र-
माणोपेतम् एतावच्चतुष्टयविशेषणविशिष्टं केवलव्रजानदर्शन समुत्पन्नम् । अथोत्पन्न-
केवलः किं करोतीत्याह - तए णं' इत्यादि । 'तए णं से भरहे केवली सयमेवाभरण-
लंकार ओमुअइ' ततः केवलज्ञानानन्तर खलु स भरतः केवली स्वमेव आभरणालंकारं
वस्त्रमाल्यरूपम् अवमुञ्चति त्यजति अत्र भूषणालङ्कारस्य वस्त्रमाल्यालंकारयोरवग्रहः 'ओमुअ-
त्ता' अवमुच्य त्यक्त्वा 'सयमेव पचमुट्टियं लोअं करेइ' स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति
करित्वा । कृत्वा उपलक्षणात् सन्निहितदेवतयाऽर्पितं साधुलिङ्गं 'भरहे केवली सदोरय मुह
पत्ति रयहरणं गोच्छग पडिगगह देवदस वत्थं पडिच्छइ' भरतः केवली सदोरकमुखवत्त्रि-
कां रजोहरणं गोच्छक पात्रं देवदूष्यं वस्त्रं गृहीत्वा साधुवेपं धृत्वा 'आयसघराओ
पडिणिकखमइ' आदर्शगृहात्प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति स भरतः केवली 'पडि-
णिकखमिता' प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य 'अतेउरमज्झंमज्जेण निगगच्छइ' अन्तः पुरमध्य
मध्येन निर्गच्छति प्रतिनिष्क्रामति 'णिगगच्छिता' निर्गत्य 'दस सहस्सरायवरे
पडिबोहिय पव्वज्जं देहि तओ पच्छा तेहि सद्धि विहारं करीय, लक्खपुव्वं संजमं
पालिय' दशसहस्रारजवरसहस्रान् प्रतिबोध्य, प्रव्रज्या ददाति, ततःपश्चात् तैः सार्द्धं वि-
हारं कृतवान् । 'दसहि रायवरसहस्सेहि सद्धि सपरिवुडे विणीय रायहाणीं मज्झं मज्जेण-

सकल त्रिकालवर्ति पदार्थो का ये उनका अनन्त पर्यायो सहित हस्नामलकवत् जानते हैं इसलिये
इन्हे कृत्स्न कहा गया है । सूत्र की अपेक्षा ये अक्षर मात्रा आदि क न्यूनता से रहित होते हैं
इसलिये इन्हें प्रतिपूर्ण कहा गया है (तएण से भरहे केवली सयमेवाभरणालंकारं ओमुअइ)
इसके बाद जस भरत केवली ने अपने आप ही अवशिष्ट माल्यादिरूप आभरणो को एवं वस्त्रा-
दिकों को छोड़ दिया (ओमुअत्ता सयमेव पचमुट्टियं लोअं करेइ) छोड़कर फिर उन्होंने पंचमुष्टिक
केशोंका लोच किया (करित्वा आयंसघराओ पडिणिकखमइ) पंचमुष्टिक केशलोच करके सन्नि-
हित पास में रहे हुए देव द्वारा अर्पित साधुलिङ्ग को ग्रहण करके धारण—करके वे आदर्श भवन
से बाहर निकले (पडिणिकखमिता अंतेउरमज्झंमज्जेण निगगच्छइ) बाहर निकलकर वे अपने

आवेद छे अक्षर त्रिकालवर्ति पदार्थोने ओओ। तेमनी अनन्तपर्यायो सहित हस्नामलकवत्
जानते छे। ओथी न ओमने कृत्स्न कडेवाभां आवे छे सूत्रनी अपेक्षाओ ओ अक्षर मात्रा वजे
रेनी न्यूनताथी रहित होय छे ओथी न ओमने प्रतिपूर्ण कडेवाभां आवे छे (तए णं से
भरहे केवली सयमेवाभरणालंकार ओमुअइ) तयारमाह ते भरत केवली ओ पोतानी भणे
न ओ अवशिष्ट माल्यादि रूप आभरणो तेम न वस्त्रादिकोने पणु तए हीधां (ओमुअत्ता
सयमेव पचमुट्टिय लोअं करेइ) तयएने पछी तेमणे पचमुष्टिक केशमुच्यन कथुं. (करित्वा
आयंसघराओ पडिणिकखमइ) पचमुष्टिक केशमुच्यन करीने सन्निहित निरत भूकेवा देव द्वारा
अर्पित साधुलिङ्गने अडणु करीने—धारणु करीने तेओ आदर्श भवनमाथी अहार नीकणी
अथा. (पडिणिकखमिता अंतेउर मज्झं मज्जेण निगगच्छइ) अहार नीकणीने तेओ पोतानी
अंतपुरणी—पचमे थएने राजभवनमाथी अहार नीकणी गया 'दससहस्स रायवरे पडिबोहिय
पव्वज्जं देहि तओ पच्छा तेहि सद्धि विहारं करिय लक्खपुव्वं संजमं पालिय' इससंभार

णिगच्छद्' दशमी राजवरसहस्रै संपरिवृतो सार्द्धं विनीतायाः राजधन्याः मध्यममध्येन निर्गच्छति 'निगच्छित्ता' निर्गत्य 'मज्जदेसे सुहं सुहेण विहरइ' मध्यदेशे शोणदेसस्य मध्ये मुखं मुखेन विहरति स केवली भरतः 'विहरित्ता' विहत्य 'जेणेव अट्टावप पव्वण तेणेव उवागच्छइ' यत्रैव अट्टापदः पर्वतः तत्रैव उपागच्छति 'उवागच्छित्ता' उपागत्य 'अट्टावयं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहइ' अट्टापद पर्वतं शनै शनैः दुरोहति आरोहति 'दुरुहित्ता' दुरुह्य आरुह्य 'मेघघणसणिकासं देवसणिकासं पुढवि सिन्नावट्टयं पडिलेहेइ' मेघघनसन्निकासं—घनमेघसन्निकासम् सान्द्रजलदश्यामम् मूले पदव्यत्ययः प्राकृतत्वात् देवमन्निपातम् देवानां सन्निपातः आगमनं रम्यत्वात् यत्र स तथा भूतस्तम् पृथिवीशिलापट्टकम् आसन-विशेषं प्रतिलेखयति केवलित्वे सत्यपि व्यवहारप्रमाणीकरणार्थं दृष्ट्या निभाक्यति

अतःपुर के बीच से होकर राजभवन से चले गये (णिगच्छित्ता दमसहस्ररायवरे पडिवोहिय पव्वज्जं देहं तसो पच्छा तेहिं सद्धि विहार करिअ लवस्वपुव्व संजम पालिय'दस हजार राजाओं को प्रतिबोधित करके उन सबको दीक्षादी तदन्तर उनके साथ विहार करके लास्य पूर्व पर्यन्त संयमका पालन क्रिया 'दसहिं रायवरसहस्सेहिं सद्धि सपरिवुडे विणोय राजहाणी मज्जं मज्जेण णिगच्छइ) उस समय उनके साथ १० हजार राजा थे उनके साथ साथ ये विनीता राजधानी के ठीक बीचों बीच के रास्ते से होकर निकले थे (णिगच्छित्ता मज्जदेसे सुहं सुहेण विहरइ) और निकलकर इन्होंने मध्य देश में कोशल देश में मुख पूर्वक विहार क्रिया (विहरित्ता जेणेव अट्टावप पव्वण तेणेव उवागच्छइ) विहार करके ये फिर जहां पर अट्टापदपर्वत था, उसके पास आये । (उवागच्छित्ता अट्टावयं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहइ) वहां आकर ये उस पर बड़ी सावधानी से चढ़े (दुरुहित्ता मेघघणसणिकासं देवसणिकासं पुढविसि-लापट्टयं पडिलेहेइ) चढ़कर इन्होंने पृथिवीशिलापट्टक को जो कि सान्द्र जलधर के जैसा-श्याम था और रम्य होने से जहां देवगण आया करते थे, प्रतिलेखना की। यद्यपि ये केवली-ये, परन्तु फिर भी व्यवहारधर्म को प्रमाणित करने के लिये इन्होंने अपनी दृष्टि से उसे अच्छी तरह

शान्त्वाने प्रतिबोधित करीने तेजो ने दीक्षा आपी ते पछी तमना साथे विहार करीने साथ पूर्व पर्यन्त संयमनुं पालन कथुं (णिगच्छित्ता दसहिं रायवरसहस्सेहिं सद्धि संपरिवुडे विणोयं रायहाणी मज्जं मज्जेण णिगच्छइ) ते वणते तेनी साथे १० हजार शान्त्वो इत्ता ते सर्वं शान्त्वोनी साथे-साथे जे विनीता राजधानीना ठीक मध्यभागं माथी पसार थया (णिगच्छित्ता मज्जदेसे सुहं सुहेण विहरइ) अने पसार गध ने तेभजे मध्यदेशमां देशददेशमां सुभपूर्वक विहार करीं (विहरित्ता जेणेव अट्टावप पव्वण तेणेव उवागच्छइ) विहार करीने जे अट्टापद पर्वतनी पास आओया (उवागच्छित्ता अट्टावयं पव्वयं सणियं सणियं दुरुहइ) त्यां आवीने जे तेनी उपर सावधानी पूर्वक थया (दुरुहित्ता मेघघणसणिकासं देवसणिकासं पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ) यदी ने जेभने अणो आओया करता इत्ता-प्रतिबोधना करी जे हे जेजो केवली इत्ता इत्ता जे व्यवहार धर्मने प्रमाणित करवा माटे तेभजे पोतानी दृष्टि थी पृथ्वीशिलापट्टने सारी शीते जेधुं

‘हस्त समस्तं सकलरदार्यविययत्वात् प्रतिपूर्णम् सूत्रतोऽक्षरमात्रादि न्यूनतया रहितं सर्वप्र-
माणोपेतम् एतावच्चतुष्टयविशेषणविशिष्टं केवलवरज्ञानदर्शन समुत्पन्नम् । अथोत्पन्न-
केवलः किं करोतीत्याह - तए णं’ इत्यादि । ‘तए णं से भरहे केवली सयमेवाभरणाल-
कार ओमुअइ’ ततः केवलज्ञानानन्तर खलु स भरतः केवली स्वमेव आभरणालंकारं
वस्त्रमाल्यरूपम् अवमुञ्चति त्यजति अत्र भूषणालङ्कारस्य वस्त्रमाल्यालंकारयोरवग्रहः ‘ओमुअ-
त्ता’ अवमुच्य त्यक्त्वा ‘सयमेव पचमुट्टियं लोअं करेइ’ स्वयमेव पञ्चमुष्टिकं लोचं करोति
करित्ता । कृत्वा उपलक्षणात् सन्निकितदेवतयाऽर्पितं साधुलिङ्ग ‘भरहे केवली सदोरय मुह
पत्ति रयहरणं गोच्छग पडिगगह देवदस वत्थं पडिच्छइ’ भरतः केवली सदोरकमुखवस्त्रि-
कां रजोहरणं गोच्छरुं पात्रं देवदूष्य वस्त्रं गृहीत्वा साधुवेपं धृत्वा ‘आयसघराओ
पडिणिकखमइ’ आदर्शगृहात्प्रतिनिष्क्रामति निर्गच्छति स भरतः केवली ‘पडि-
णिकखमिता’ प्रतिनिष्क्रम्य निर्गत्य ‘अतेउरमञ्जंमञ्जेण निगगच्छइ’ अन्तः पुरमध्ये
मध्येन निर्गच्छति प्रतिनिष्क्रामति ‘णिगगच्छिता’ निर्गत्य ‘दस सहस्सरायवरे
पडिवोहिय पचवज्जं देहि तओ पच्छा तेहि सद्धिं विहारं करीय, लक्खणुव्वं सज्जं
पालिय’ दशसहस्रारजवरसहस्रान् प्रतिबोध्य, प्रत्रज्या दर्शति, ततःपश्चात् तैः सार्द्धं वि-
हारं कृतवान् । ‘दसहिं रायवरसहस्सेहिं सद्धिं सपरिवुडे विणीय रायहाणीं मञ्जं मञ्जेण-

सकल त्रिकालवर्ति पदार्थो का ये उनक’ अनन्त पर्यायो सद्धि हस्नामलकवत् जानते हैं इसलिये
इन्हें कृत्स्न कहा गया है । सूत्र की अपेक्षा ये अक्षर मात्रा आदि क न्यूनता से रहित होते हैं
इसलिये इन्हें प्रतिपूर्ण कहा गया है (तएण से भरहे केवली सयमेवाभरणालकार ओमुअइ)
इसके बाद उस भरत केवली ने अपने आप ही अवशिष्ट माल्यादिरूप आभरणो को एवं वस्त्रा-
दिकों को छोड़ दिया (ओमुअत्ता सयमेव पचमुट्टियं लोअं करेइ) छोड़कर फिर उन्होंने पंचमुष्टिक
केशोंका लोच क्रिया (करित्ता आयसघराओ पडिणिकखमइ) पंचमुष्टिक केशलोच करके सन्निक-
हित पास में रहे हुए देव द्वारा अर्पित साधुलिङ्ग को ग्रहण करके धारण—करके वे आदर्श भवन
से बाहर निकले (पडिनिक्खमिता अंतेउरमञ्जंमञ्जेण निगगच्छइ) बाहर निकलकर वे अपने

आवेक छे अकल त्रिकालवर्ति पदार्थोने ओओ। तेमनी अनन्तपर्यायो सद्धि हस्तामलकवत्
आवे छे ओथी अ ओमने कृत्स्न कडेवाभां आवे छे सूत्रनी अपेक्षाओ ओ अक्षर मात्रा वजे
रेनी न्यूनताथी रहित होय छे ओथी अ ओमने प्रतिपूर्ण कडेवाभां आवे छे (तए णं से
भरहे केवली सयमेवाभरणालंकार ओमुअइ) त्यारमाह ते भरत केवली ओ पोतानी भणे
अ अवशिष्ट माल्यादि रूप आभरणो। तेम अ वसाहितेने पद्य त्यल दीधां (ओमुअत्ता
सयमेव पचमुट्टियं लोअं करेइ) त्यलने पछी तेमणे पचमुष्टिक केशमुचन कथुं (करित्ता
आयसघराओ पडिणिकखमइ) पचमुष्टिक केशमुचन करीने सन्निकित निकट भूँडे। देव द्वारा
अर्पित साधुलिङ्गने अडणु करीने—धारणु करीने तेओ आदर्श भवनमाथी अडार नीकणी
अया। (पडिणिकखमिता अंतेउर मञ्जं मञ्जेण निगगच्छइ) अडार नीकणीने तेओ पोताना
अंतपुरनी पच्ये थपने राअभवनमाथी अडार नीकणी गया ‘दससहस्स रायवरे पडिवोहिय
पंचजं देहि तओ पच्छा तेहि सद्धिं विहारं करिय लक्खणुव्वं सज्जं पालिय’ इसडंभर

‘पडिलेहिचा’ प्रतिलिख्य सिंहावलोकनन्यायेन अत्रापि आरोहतीति बोध्यम् ‘संलेहणा झूसणाझूसिए’ संलेखना जोषणाजुष्टः सल्लिख्यते-कृशी क्रियते शरीरकपायाद्यनया इति संलेखना तपो विशेषलक्षणा तस्याः जोषणा सेवना तथा जुष्टः सेवितः द्युपितो वा क्षपितो यः स तथाभूतः ‘भक्तपाणपडिआइक्खिए’ भक्तपानप्रत्याख्यातः—प्रत्याख्यातभक्तपानः प्रत्याख्याते भक्तपाने येन स तथाभूतः मूले कान्तस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् ‘पाओवगए’ ‘पादपोपगतः—पादो वृक्षस्य भूगतो मूलभागः तस्यैव अप्रकम्पतया उपगतम् अवस्थानं यस्य स तथाभूतः ‘काल अणवकंसमाणे २ विहरइ’ कालं मरणम् अनवकांसन् अवाञ्छन् विहरति‘तएण से भरइ केवली सत्ततरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्जे वसित्ता’ ततः खलु स भरतः केवली सप्तसप्ततिं पूर्वशतसहस्राणि सप्तसप्ततिं लक्षाणि कुमारवासमध्ये कुमारभावे उपित्वा ‘एगं वाससहस्स मंडलियरायमज्जे वसित्ता’ एकं वर्षसहस्रं माण्डलिकराजा एकदेशाधिपतिः भावप्रधानत्वान्निर्देशस्य माण्डलिकत्वं तन्मध्ये उपित्वा ‘छ-पुव्वसयसहस्साइं वाससहस्सूणगाइं महारायमज्जे वसित्ता’ पटपूर्वशतसहस्राणि वर्षसहस्रानि महाराजमध्ये चक्रवर्तित्वे उपित्वा ‘तेसीइ पुव्वसयसहस्साइ अगारवासमज्जे

से देखा । (पडिलेहिचा संलेहणा झूसणाझूसिए भक्तपाणपडिआइक्खिए) अच्छी तरह से देखने रूप प्रतिलेखना करके ये उस पर चढ़ गये और काय एवं कषाय जिसके द्वारा कृश की जाती है ऐसी संलेखना को उन्होंने बड़े आदर भाव से धारण कर लिया और भक्तपान का प्रत्याख्यान कर दिया । (पाओवगए कालं अणवकंसमाणे २ विहरइ) एवं पादपोपगमन सन्धारा अंगीकार कर लिया पादपोपगमन सन्धारे में जीव वृक्ष की तरह अप्रकम्प रूप से अवस्थित हो जाता है । इस सन्धारा को धारण कर लेने पर उन्होंने अपने मरण की आकांक्षा नहीं की (तएण से भरइ केवली सत्ततरिं पुव्वसयसहस्साइ कुमारवासमज्जे वसित्ता एगं वाससहस्स मंडलियरायमज्जे वसित्ता छ पुव्वसयसहस्साइं वाससहस्सूणगाइं महारायमज्जे वसित्ता तेसीइ पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्जे वसित्ता) इस तरह वे भरत केवली ७० लाख पूर्व तक कुमार काल में रहे एक लाख पूर्व तक मांडलिक राजा रहे १ हजार वर्ष कम छ लाख पूर्व तक महाराज पद

(पडिलेहिचा संलेहणा झूसणाझूसिए भक्तपाणपडिआइक्खिए) सारी रीते दर्शन रूप प्रति देखना करीने ओ ओ तेनी ७५२ यही गया, अने कय तेमअ कषाय जेनं वडे कृश कर वामां आवे छे, जेवी संदेअताने ओमछे भूम ज आहरपूर्वक धारण करी अने लक्ष् पाननुं प्रत्याख्यान कथुं. (पाओवगए काल अणवकंसमाणे २ विहरइ) तेमअ पादपोपगमन सन्धारे अ गीकृत कथे. पादपोपगमन सन्धाराभा एव वृक्षनी जेम अप्रकम्प रूपथी अवस्थित थई अथ छे. ओ सन्धाराने धारण कथे पछी तेमछे पीताना भुक्तुनी आकांक्षा-करी नई. (तए णं से भरइ केवली सत्ततरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्जे वसित्ता एगं वाससहस्सं मंडलियरायमज्जे वसित्ता छ पुव्वसयसहस्साइं वाससहस्सूणगाइं महारायमज्जे वसित्ता तेसीइ पुव्वसयसहस्साइं अगारवासमज्जे वसित्ता) आ प्रमाणे त भरत केवली ७० लाख पूर्व सुधी कुमार काणभां रखा. ओ ६० लाख पूर्व सुधी मांडलिक राजा रखा.

वसित्ता' व्यतीति पूर्वशतसहस्राणि लक्षाणि अगारवाममध्ये उपित्वा गृहीत्वैत्यर्थः 'एगं पुव्वसयसहस्सं देवण्णं केवल्लिपरिआयं पाउणित्ता' एकं पूर्वशतसहस्रम् अन्तर्गृह्णन्तं केवल्लिपर्यायं प्राप्य पूरयित्वा 'तमेव बहुपडिपुण्णं सामन्नपरिआयं पाउणित्ता' तदेव पूर्वशतसहस्रं बहुप्रतिपूर्णम् -संपूर्णम् तेन अन्तर्गृह्णन्तेनाधिकमित्यर्थः आमण्यपर्यायं यत्तत्त्वं प्राप्य 'चउरासीइ पुव्वसयसहस्साइ सव्वाउअ पाउणित्ता' चतुरशीतिं पूर्वशतसहस्राणि लक्षाणि सर्वायु परिपूर्णं भासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं' भासिकेन भक्तेन मासोपवासैरित्यर्थः, अपानकेन पानकाहारवर्जितेन श्रवणेन नक्षत्रेण योगमुवागतेन चन्द्रेण सहेति गम्यम् 'खीणे वेअणिज्जे आउए णामे गोए' क्षीणे वेदनीये आयुषि नाम्नि गोत्रे च भवोपग्राहि कर्मचतुष्टयक्षये इत्यर्थः 'कालगए वीइक्कते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबधणे' कालगतः मरण प्राप्तः व्यतिक्रान्त व्यतीतः समुघातः निगतः छिन्नजातिजरामरणबन्धन 'सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिच्चुडे अंतगडे सव्वदुक्खप्पहीणे' सिद्धो

में-चक्रवर्ति पद में रहे और तेईस लाख पूर्व तक गृहस्थावस्था में रहे, (एगं पुव्वसयसहस्सं देवण्णं केवल्लिअउ पाउणित्ता तमेव बहुपडिपुण्णे सामन्नपरिआयं पाउणित्ता चउरासी पुव्वसयसहस्साइ सव्वाउअ पाउणित्ता भासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं खीणे वेअणिज्जे आउए णामे गोए कालगए विइक्कते समुज्जाए छिण्ण जाइजरामरणबधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिच्चुडे अन्तगडे सव्वदुक्खप्पहीणे) कुछकम अर्थात् अन्तर्गृह्णन्तं एक लाख पूर्व तक केवल्लि पर्याय में रहे इस प्रकार से अपनी पूरी ८४ लाख पूर्व की आयुको भोग करके वे भरत केवल्लो एक मास के पूरे सथारो से भक्तपान का सर्वथा परिवर्जन करने रूप सन्धारे से -श्रवण नक्षत्र के साथ योग को प्राप्तचन्द्र के समय में वेदनीय आयु, नाम गोत्र इन चार भवोपग्राही चार अघातिया कर्मों के क्षय हो जाने पर कालगत हो गये अर्थात् सिद्ध अवस्थायुक्त बन गये मोक्ष में विराजमान हो गये, जाति जरा और मरण के बन्धन से रहित हो गये सिद्ध हो

१ ७७२ वर्ष कम ६ लाख पूर्व सुधी महाराज पदमा अर्धवर्ती पदे रक्षा अने २३ लाख पूर्व सुधी गृहस्थावस्थाभा रक्षा । (एगं पुव्वसयसहस्सं देवण्णं केवल्लिअउ पाउणित्ता तमेव बहुपडिपुण्णं सामण्णपरिआयं पाउणित्ता चउरासी पुव्वसयसहस्साइ सव्वाउअ पाउणित्ता भासिएणं भत्तेणं अपाणएणं सवणेणं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं खीणे वेअणिज्जे आउए णामे गोए कालगए वीइक्कते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते परिणिच्चुडे अन्तगडे सव्वदुक्खप्पहीणे) कुछक कम अटले के अन्तर्गृह्णन्तं एक लाख पूर्व सुधी तेजो देवदि पर्यायभा रक्षा पूरा अके ६ लाख वर्ष सुधी श्रावण पर्यायभा रक्षा. आ प्रभावे योतानी सपूष्य ८४ लाख पूर्वना आयुष्यने योगवीने ते भरत देवदी अके भासना पूरा सथाराथी-भक्तपानसु सपूष्य ३पभां परिवर्जन करवा ३प सथाराथी-श्रवण नक्षत्रनी साथे योग प्राप्त अन्तना समयभा वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र अे आर-भवोपग्रही आर अघातिया कर्मों स्यारे क्षय अर्ध गथा स्यारे कालगत अथा. अटलेके सिद्धावस्था युक्त अपनी गथा-भोक्षभां विराजमान अर्ध गथा जाति, जरा अने मरणा अ धनधी रहित अर्ध गथा, १२३

बुद्धो मुक्तः परिनिवृत्तः अन्तगतः सर्वदुःखप्रहीणः ।

'इति भरतचक्रिचरियं' इति भरतचक्रिचरितम् । अत्र इति शब्दोऽधिकारं-
परिसमाप्तिघोषकः, स चायम् 'से केणट्टेणं भते एवं बुच्चइ भरहे वासे २' इति सूत्रेण ना-
मान्वर्थं पृच्छतो गौतमस्य प्रतिवचनाय 'तत्थणं विणीयाए रायहाणीए भरहे णाम राया चाउ-
रंतचक्कवट्ठी समुप्पज्जित्था' इत्यदि सूत्रे भरतचरितं प्रपञ्चितम् तच्च परिसमाप्तमित्यर्थः,
तेन भरतः स्वामित्वेन अस्यासतीति निरुक्तवशाद् भरतं क्षेत्रमिति तात्पर्यार्थः ॥ सू० ३४ ॥

अर्थं प्रकारान्तरेण नामान्वर्थमाह - "भरहे अ इत्थ" इत्यादि ।

मूलम्- भरहे अ इत्थ देवे महिद्धीए महज्जुईए जाव पल्लिओवमं-
डिइए पखिसइ से एएणट्टेणं गोयमां ! एवं बुच्चइ भरहे वासे २ इति ।
अदुत्तरं च णं गोयमा ! भरहस्स वासस्स सासाए णामधिज्जे पणत्ते,
जे णं कयाइ ण आसिं ण कयाइ णत्थिं णं कयाइ ण भविस्साइ भुविच
भवइअ भविस्साइअ धुवे णिअए सासए अक्खए अक्खए अवडिइए
णिच्चे भरहे वासे ॥ सू० ३५ ॥

गये-कृतकृत्य हो गये, बुद्ध हो गये-लोकलोक के ज्ञाता हो गये, मुक्त हो गये-अन्तरङ्ग ब-
हिरङ्ग कर्मकलंक से रहित हो गये परिनिवृत्त हो गये-शीतिभूत निरञ्जन हो गये । अन्तर्गत हो
गए । और सर्व दुःखो से सर्वथा रहित हो गये । ऐसा यह भरतचक्रो का चरित्र है । यहां इति
शब्द अधिकार की परिसमाप्ति का सूचक है । वह अधिकार ऐसा है कि "से केणट्टेणं भते ! एवं
बुच्चइ भरहे वासे २" जब गौतमस्वामी ने पूछा था कि हे भदन्त । इस क्षेत्र का नाम भरत
ऐसा क्यों हुआ है । तो उसके उत्तर में ही प्रभु ने यह "तत्थ ण विणीयाए रायहाणीए भरहे णाम
राया चाउरंतचक्कवट्ठी समुप्पज्जित्था" ऐसा कथन सूत्रो द्वारा किया है । अर्थात् इस क्षेत्र का
भरतक्षेत्र नाम पढने का कारण भरत राज का यहां का अधिपति होना है । इसी कारण भरत
राजा का यहां चरित्र विस्तार से कहा गया है । भरत चरित्र समाप्त ॥ सू० ३४ ॥

सिद्धं यथं गया इतं कुत्थं यथं गया, पुद्धं यथं गया, लोकलोकना ज्ञाता यथं गया, मुक्त
यथं गया, अंतरंग बहिरंग कर्मकलंक से रहित यथं गया परिनिवृत्त यथं गया-शीतिभूत
निरञ्जन यथं गया अंतर्गत यथं गया अने सर्व हू भोथी सर्वथा रहित यथं गया ओषु
आ अंतर्गतकेषु अरित्रे छे अही 'धति' शब्द अधिकारनी परिसमाप्ति ने सूचये छे ओ अधि-
कारि के प्रमाणे छेके "से केणट्टेणं भते ! एवं बुच्चइ भरहे वासे २" न्यारे गौतमस्वामीने अक्ष
केथी के छे अंतर्गत आ क्षेत्रणु नाम भरत ओषु आ कारणीयं पठयु तो ओना उत्तरमां प्रभुओ
आ "तत्थ ण विणीयाए रायहाणीए भरहे णाम राया चाउरंतचक्कवट्ठी समुप्पज्जित्था"
ओषु कथन सूत्रो द्वारा कथुं छे ओटले के भरत राज आ क्षेत्रना अधिपति हुता ओथी आ
क्षेत्रणु नाम भरत क्षेत्र पठयु छे ओटला माटे न अही भरतना अरित्रणु विस्तारि पूवक
वर्षान करवाभा आवेलु छे, भरत अरित्र समाप्त- ॥सू०३४॥

छाया-भरतश्चात्र देवो महर्द्धिको महाद्युतिको यद्यत् पत्योपमस्थितिक परिवसति तत् पतेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते भरत वर्षे २ इति । अदुत्तर च खलु गौतम ! भरतस्य वर्षस्य शाश्वतं नामधेयं प्रकृतम् यन्न कदाचित् नासीत् न कदाचित् नास्त न कदाचिन्न भविष्यति अभूच्च भवति च भविष्यति च ध्रुवम् नियतम् शाश्वतम् अक्षयम् अव्ययम् अवस्थितम् नित्यं भरत वर्षम् ॥सू०३५॥

टीका— “भरहे अ इत्थ” इत्यादि । ‘भरहे अ इत्थ देवे’ भरतश्चात्र अस्मिन् भारते देवः ‘महिद्धीए महज्जुइए जाव पल्लोवमट्टिइए परिवसइ’ महर्द्धिका— महती ऋद्धिः— विभवादि सम्पत् यस्य स तथाभूत, तथा— महाद्युतिक— महती द्युतिः कान्तिर्यस्य स तथाभूत, यावत् पत्योपमस्थितिकः— पत्योपमस्थिति र्यस्य स तथाभूतः परिवसति, अत्र यावत्पदात् महायशस्कः महाभौख्यो महाबलः इति ग्राह्यम् ‘से एणट्टेण गोयमा ।’ तद् भरतेति नाम ‘पतेनार्थेन गौतम’ ‘एव वुच्चइ भरहे वासे २ इति’ एवमुच्यते भरतं वर्षं भरतं वर्षमिति । यौगिकयुक्त्या नाम उक्तम् । अथ तदेव रूढ्या दर्शयति ‘अदुत्तर च णं गोयमा’ अदुत्तरम् अथापरम् चः समुच्चये ‘णं’ वाक्यालंकारे हे गौतम ! ‘भरहस्स वासस्स सासंणं णामधिज्जे पणत्ते’ भरतस्य वर्षस्य शाश्वतं नामधेयं

प्रकारान्तरं से “ भरतक्षेत्र नाम होने का कथन—

‘ भरहे अ इत्थ देवे महिद्धीए महज्जुइए जाव’—इत्यादि सू० ३५

टीका—‘भरहे अ इत्थ देवे ” इस भरत क्षेत्र में भरत नाम का देव जो कि (महिद्धीए महज्जुइए जाव पल्लोवमट्टिइए परिवसइ) महती विभवदिरूप सम्पत्तिवाला है । महती शारीरिक कान्ति और आभरणों की प्रभा से जो सदा प्रकाशशील रहता है यावत् जिसकी १ पत्योपम की स्थिति है—रहता है । यहाँ यावत्पद से महायशस्कः महाभौख्य’, महाबलः” इन विशेषणपदों का ग्रहण हुआ है । (से एणट्टेण गोयमा । एवं वुच्चइ भरहे वासे २) इस कारण हे गौतम ! भरतक्षेत्र ऐसा नाम मैंने इस क्षेत्र का कहा है । इस तरह यौगिक रीति से नाम प्रकट कर अथ सूत्रकार रूढी से इसका ऐसा नाम प्रकट करते हैं (अदुत्तरं च णं गोयमा । भरहस्स वासस्स

प्रकारान्तरेण “ भरत क्षेत्र नाम प्रसिद्धं यथु—तं अगे-कथनं ”

“ भरहे अ इत्थ देवे महिद्धीए महज्जुइए जाव ’ इत्यादि सूत्र- ३५॥

टीका—(भरहे अ इत्थ देवे) अे भरत क्षेत्र भा भरत नामक देव के अे (महिद्धीए महज्जुइए जाव पल्लोवमट्टिइए परिवसइ) महती विभवादि रूप सम्पत्तिथी युक्त अे, महती शारीरिक कान्ति अने आभरणोंनी प्रभाथी अे सर्वदा प्रकाशील रहने अे यावत् अे नी पत्योपम भी स्थिति अे—निवास करे अे अर्थात् पदार्थी ‘ महायशस्क, महाभौख्य’, महाबलः” अे विशेषण पदोंनु अक्षयं यथु अे (से एणट्टेण गोयमा । एवं वुच्चइ भरहे वासे २) अथी हे गौतम ! भरत क्षेत्र अेनु नाम अे आ क्षेत्रनु कथु अे आ प्रभाथी यौगिक रीतिथी नाम प्रकट करीने अेनु सूत्रकार रूढीथी अेनु नाम प्रकट करे अे (अदुत्तरं च णं गोयमा ! भरहस्स वासस्स सासंणं णामधिज्जे पणत्ते) हेगौतम ! भरतक्षेत्र अेनु नाम

निनिर्मितकम् अनादि सिद्धत्वाद्देवलोकादिवत् प्रज्ञप्तम्, तत्र शाश्वतत्वमेव व्यक्त्या दर्शय-
ति—'जं ण कयाइ ण आसि ण कयाइ ण भविस्सइ'यन्न कदाचित् नासीत्, न कदाचित् नास्ति
न कदाचित् न भविष्यति 'भुवि च भवइ अ भविस्सइ अ' अभूच्च भवति च भविष्यति च
'धुवे णिअए सासए अक्खए अक्वए अवट्टिए णिच्चे भरहे वासे' ध्रुवं नित्यं शाश्वतम्
अक्षयम् अव्ययम् अवस्थितम् स्थिरम् नित्यं भरत वर्षमिति । एतेन भरत नाम्नश्चक्रिणो
देवाच्च भरतवर्षनाम प्रवृत्तं भरतवर्षाच्च तयोर्नाम भरतं स्वकीयेन अस्यातीति निरुक्त-
वशेन प्रावर्त्ततेति अन्योऽन्याश्रय दोषो दुर्निवार इति वचनीयता निरस्ता ॥ सू० ३५ ॥
इति श्री विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक पञ्चदशभाषाकलित-कलितकलापाला-
पक प्रविशुद्धगद्यपद्यनिरुपग्रन्थनिर्मापकवादिमानमर्हक श्री-शाहू छत्रपति कोल्हा-
पुरराजप्रदत्त- 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारी
जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्रोधासीलाल-प्रतिविरचितायां श्री
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रस्य प्रकाशिकाख्यायां व्याख्यायां
तृतीयो वक्षस्करः समाप्तः ॥३॥

सासए णामधिज्जे पण्णत्ते) हे गौतम । भरतक्षेत्र का भरतक्षेत्र ऐसा नाम देवलोक इस नाम की
तरह निर्निमित्तक है—शाश्वत है । क्योंकि (जं ण कयाइ ण आसि ण कयाइ ण भविस्सइ) यह नाम
पहिले भूतकाल में नहीं था ऐसी बात नहीं है, वर्तमान में ऐसा इसका नाम नहीं है यह बात
भी नहीं है और आगे भी इसका ऐसा नाम नहीं रहेगा यह बात भी नहीं है । (भुवि च भवइ
अ भविस्सइ अ) क्योंकि ऐसा इसका नाम रहा है, है, और आगे भी रहेगा (ध्रुवे, णिअए,
सासए अक्खए, अक्वए, अवट्टिए, णिच्चे भरहे वासे) इसका कारण यही है कि यह भरत क्षेत्र
ध्रुव है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्ययरूप है, अवस्थित है, और नित्य है । इस प्रकार के इस
कथन से अन्योऽन्याश्रय दोष का परिहार हो जाता है ॥ सू० ३५ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री धासीलालप्रतिविरचित जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
सूत्र की प्रकाशिका व्याख्या में तीसरा वक्षस्कार समाप्त ॥ ३ ॥

देवलोक अये नाम सुखण्ण न निर्मित्तकं छे - शाश्वतं छे. केमके (जं ण कयाइ ण आसि ण
कयाइ ण भविस्सइ) अये नाम पडेवा भूतकालमा न डेतुं अये नथी, वर्तमानकालमां अये अये
नाम नथी, अये पथु नथी अने भविष्यमां पथु अये अये न नाम रडेवातु नथी, अये
पथु नथी. (भुवि च भवइ अ भविस्सइ अ) केमके अये आतु नाम रथुं छे. छे अने
भविष्यमा पथु रडेवे (ध्रुवे णिअए, सासए, अक्खए, अक्वए, अवट्टिए, णिच्चे भरहेवासे)
अये कारण्ण आ छेके आ भरतक्षेत्र भूतं छे, शाश्वतं छे, अक्षयं छे, अव्ययं ३५ छे, अवस्थितं
छे अने नित्यं छे आ प्रकारना आ कथनथी अन्योऽन्याश्रय दोषनो परिहारं यथं जयं छे
॥ सूत्र-३५ ॥

श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री धासीलालप्रतिविरचित जम्बूद्वीप
प्रज्ञप्ति सूत्रकी प्रकाशिका व्याख्याने तीसरे वक्षस्कार समाप्त ॥ ३ ॥